हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम. आर, ए, एस.

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

विंशति भाग

(रैण्णायन—वसुबन्धु)

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhnāta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S

.npiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parish d and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. Sen, at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta,

1929.

हिन्दी

विश्वकोष

विंशति भाग

रैण्णायन (सं॰ पु॰) गोत्रभेद। (संस्कारकौमुदी)

रैहर (हिं॰ पु॰) झगड़ा, लड़ाई।

रैहाँ (अ॰ पु॰) एक प्रकारकी वनस्पति।

रोंग (हिं॰ पु॰) शरीर परका बाल, लोम।

रोंगटा (हिं॰ पु॰) मनुष्यके सिरको छोड़ कर और सारे शरीर परके बाल।

रोंगटी (हिं॰ स्त्री॰) खेलमें बुरा मानना या बेईमानी करना।

रोंठा (हिं॰ पु॰) कच्चे आमकी सुखाई हुई फाँक, आमलकी।

रो टामस (Sir Thomas Roe)—एक अङ्गरेज राजदूत। भारतवर्षमें वाणिज्य फैलानेकी आशासे इङ्गलैण्डेश्वर १म जेम्सने इन्हें मुगल बादशाह जहाङ्गीरकी सभामें भेजा था। इङ्गलैण्डेश्वरका सौजन्य देख कर तथा उपहारसे प्रसन्न हो कर बादशाहने टामस रोका वाणिज्योन्नतिविषयक प्रस्ताव सुना। इस देशहितकर उद्देश्यसाधनके लिये वे अङ्गरेज दूतके साथ कई दिन तक परामर्श करते रहे। मौका देख कर राजदूत मीठी मीठी बातोंसे बादशाहको खुश करने लगे। दूतकी बातचीतसे प्रसन्न हो कर बादशाहने अङ्गरेज जातिको भारतवाणिज्यके बहुतसे विषयोंमें अधिकार दे दिया। दिल्ली-राजदरबार और भारतवर्षमें रहते समय टामस रो दिल्ली और भारतके अन्यान्य स्थानोंका तत्कालीन विवरण अपने पत्रादिमें लिपिबद्ध कर गये हैं। उन सबकी आलोचना करनेसे उस समयके भारत-इतिहासका प्रकृत विवरण संग्रह किया जा सकता है।

रोइँसा (हिं॰ पु॰) रूसा घास। इसकी जड़से सुगन्धित तेल निकलता है। रूसा देखो।

रोइया (हिं॰ पु॰) जमीनमें गड़ा हुआ काठका कुंदा जिस पर रख कर गन्नेके टुकड़े काटते हैं।

रोक (सं॰ पु॰) रुच्-घञ् न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं। १ नकद रुपया, रोकड़। २ नकद व्यवहारका सौदा। ३ दीप्ति। (क्ली॰) ४ छिद्र, छेद। ५ नौका, नाव। ६ चल, चलना, खिसकना।

रोक (हिं॰ स्त्री॰) १ किसी कार्यमें प्रतिबन्ध, काममें बाधा। २ वह वस्तु जिससे आगे बढ़ना या चलना रुक जाय, रोकनेवाली वस्तु। ३ ऐसी स्थिति जिससे चल या बढ़ न सकें, गतिमें बाधा, अटकाव। ४ मनाही, निषेध।

रोकझोंक (हिं॰ स्त्री॰) रोकटोक देखो।

रोकटोक (हिं॰ स्त्री॰) १ बाधा, प्रतिबंध। २ मनाही, निषेध।

रोकड़ (हिं० स्त्री०) १ नगद रुपया पैसा आदि विशेषतः वह रकम जिसमेंसे आय-व्यय होता हो। २ जमा, पूंजी।

रोकड़ बही (हिं० स्त्री०) वह बही या किताब जिसमें नकद रुपयेका लेन देन लिखा रहता है।

रोकड़बिक्री (हिं० स्त्री०) नकद दाम पर की हुई बिक्री।

रोकड़िया (हिं० पु०) रोकड़ रखनेवाला, खजानची।

रोकना (हिं० क्रि०) १ गतिका अवरोध करना, चलते हुएको थामना। २ जाने न देना, कहीं जानेसे मना करना। ३ अड़चन डालना, बाधा डालना। ४ किसी क्रिया या व्यापारको स्थगित करना, जारी न रखना। ५ ऊपर लेना, ओढ़ना। ६ वशमें रखना, काबूमें रखना। ७ मार्गमें इस प्रकार पड़ना कि कोई वस्तु दूसरी ओर न जा सके, छेंकना। ८ बढ़ती हुई सेना या दलका सामना करना। ९ बाज़ रखना, मना करना।

रोग (सं० पु०) रुज्यतेऽनेनेति रोजनमिति वा रुज घञ् यद्वा रुजतीति रुज-(पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६) इति कर्त्तरि घञ्। १ कुष्ठौषध। २ वह अवस्था जिससे अच्छी तरह न चले और जिसके बढ़ने पर जीवनमें संदेह हो, बीमारी, मर्ज़। पर्याय—रुज, रुजा, उपताप, व्याधि, गद, आमय, अपाटव, आम, आतङ्क, भय, उपघात, भङ्ग, आर्त्ति, तमोविकार, ग्लानि, क्षय, अनार्जव, मृत्युभृत्य, सम, मान्द्य, आकल्प। (हेम) पापका फल रोग है। पाप करनेसे रोग होता है पापकी कमी वेशी होनेसे रोग भी कमी वेशी हुआ करता है। पाप अतिपातक, महापातक और अनुपातकके भेदसे तीन प्रकारका हैं।

अतिपातकादि पापका अनुष्ठान करनेसे पहले नरक भुगतना होता है। पूर्वजन्मकृत वह पाप नरकभोगके बाद फिर व्याधिरूपमें देहको पीड़ित करता है। अतएव पाप ही एकमात्र रोगका कारण है। निष्पाप व्यक्तिके कभी रोग नहीं होता। रोग होनेसे रोगका कारण जो पाप है उसका प्रायश्चित्त करना होता है। पापका क्षय होनेसे रोगका भी क्षय होता है। इष्टमन्त्रजप, होम, दान और सुरार्च्चन आदि द्वारा भी रोगकी शान्ति होती है। अर्श आदि रोग अतिपातकज, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कास, दुष्टव्रण, गण्डमाला, पक्षाघात, अक्षिनाश, महापातकज, जलोदर, यकृत, प्लीहा, शूल, श्वास, अजीर्ण, ज्वर, छर्द्दि, रक्तार्बुद, विसर्प आदि रोग उपपातकज हैं। किस पापसे कौन रोग होता है उसका विषय कर्मविपाकमें लिखा जा चुका है।

कर्मविपाक शब्द देखो।

जो पथ्याशी, जितेन्द्रिय, देवद्विजभक्त और स्वधर्मानुष्ठानकारी हैं उन्हें रोग नहीं होता। वैद्यकके मतसे रोग और रोगके कारणादिका विषय संक्षेपमें नीचे लिखा गया है।

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरो गता।
रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते॥" (वागभट)

दोषके वैषम्यको रोग कहते हैं। वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमें जब विषमता होती है तब ही रोग होता है। दोषके साम्य रहनेसे शरीर नीरोग रहता है। आहार विहारादि इस प्रकार करना होगा, जिससे दोषमें विषमता न होने पावे। दोषमें विषमता होनेसे ही रोग होगा। रोग शरीरका दुःखदायक है।

निज और आगन्तुके भेदसे रोग दो प्रकारका है। पहले वायु आदि दोष बिगड़ कर पीछे जहां रोग उत्पादन करता है वहां उसे निज और जहां रोग उत्पन्न हो कर पीछे वातादि दोष कुपित होता है वहां उसे आगन्तु रोग कहते हैं। इन सब रोगोंका अधिष्ठान देह और मन है। उनमेंसे ज्वर आदि रोगोंका अधिष्ठान देह तथा मद, मूर्च्छा, संन्यास आदिका आधार मन है। (वागभट)

पहले ही लिखा जा चुका है, कि दोषकी विषमता रोग तथा समता ही आरोग्य है। रोगमात्र ही प्राणियोंका विशेष क्लेशदायक है। यह रोग चार प्रकारका है, स्वाभाविक, आगुन्तक, मानसिक और कायिक। इनमेंसे जो रोग स्वभावजात है उसे स्वाभाविक कहते हैं, जैसे—क्षुधा, पिपासा, निद्रा, वार्द्धक्य और मृत्यु यह स्वभावजात रोग सभीको भोग करना होगा। फिर जन्मसे जो रोग उत्पन्न होता है उसे भी सहज रोग कहते हैं जैसे जन्मान्ध इत्यादि।

अभिघातादि जनित अथवा जन्मान्तर-भाविरोगका नाम आगन्तुक रोग है। जैसे—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, क्रूरता, शोक, विषाद, ईर्षा,

असूया और मात्सर्ज आदि। इसके सिवा अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, तम और संन्यास आदि भी आगन्तुक है। पाण्डु प्रभृति रोगको कायिक कहते हैं।

यह रोग फिर कर्मज, दोषज और कर्मदोषजके भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है।

कर्मज रोग—पूर्वजन्मकृत प्रवल दुष्कर्मसे जो सब उत्पन्न होता है उसे कर्मज रोग कहते हैं। यह कर्मज रोग तीन दोषोंके बिगड़नेसे उत्पन्न नहीं होता है। यह रोग केवल भोग और प्रायश्चित्तादिके द्वारा शान्त होता है। यह चिकित्साध्य नहीं। शास्त्रमें कहा है, कि शास्त्रानुसार यथाविधि रोगका निर्णय कर दवाई करनेसे भी जो रोग नहीं दबता उसे कर्मज रोग कहते हैं।

"यथाशास्त्रन्तु निर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयो कर्मजो बुधैः॥"

(भावप्र०)

दोषज रोग—अनियमित आहार और विहारादि द्वारा वायु, पित्त और कफ कुपित हो कर जो सब रोग उत्पन्न करता है उसे दोषज रोग कहते हैं। इस पर कोई कोई प्रश्न करते हैं, कि पूर्वजन्मकृत प्रवल सुकृत रहनेसे आहार और विहारादिका नियम लङ्घन करने पर भी कोई रोग नहीं होता, ऐसा देखा जाता है। अतएव दोषज व्याधिका कारण भी पूर्वजन्मकृत कर्म है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। तब फिर इसे दोषज व्याधि किस तरह कह सकते? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जा सकता है, कि पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म दोषज व्याधिका मूल कारण है सही, पर अनियमित आहार विहार द्वारा भी रोगोंकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसी लिये उसको दोषज व्याधि कहते हैं।

कर्मदोषज रोग।—यदि दोष थोड़ा दूषित हो और उससे अति प्रवल रोगकी उत्पत्ति देखी जाय, तो उसे कर्मदोषज रोग कहते हैं। प्रवल दुष्कर्म ही इस रोगका मूल कारण है। दोषकी अल्पताके कारण रोगकी अल्पता होना उचित था, लेकिन ऐसा न हो कर प्रवल रोग उत्पन्न होता है। दुष्कृत क्षय होनेसे वह रोग भी क्षय होता है। इस रोगमें स्वल्प दोष ही उक्त दोषका कारण है। क्योंकि, अल्प दोषको भी रोगोत्पत्तिका कारण कहा गया है। अतएव दोष और कर्म इन दोनोंसे उत्पन्न होनेके कारण इसे कर्मदोषज रोग कहते हैं।

दुष्कर्मका क्षय होनेसे दुष्कर्मकृत रोगोंका, उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगका तथा दुष्कर्म और रोगक्षय होनेसे कर्मदोषज रोगोंका क्षय होता है। उपयुक्त औषधके सेवनसे दोषज रोगोंका क्षय होता है, इसका तात्पर्य यह कि दोषज व्याधिका मूल कारण दुष्कर्म है, औषध बनानेमें जिन सब द्रव्योंकी आवश्यकता होती है। उनके अभावजनित क्लेश भोग द्वारा तथा कटु, तिक्त, कषाय आदि मनके अप्रीतिकर द्रव्य भक्षणादि-जनित क्लेश भोग द्वारा दुष्कर्मका ह्रास होता है। इसके बाद औषधके सेवनसे रोगोंके प्रत्यक्षीभूत हेतुका अर्थात् कुपित दोषका क्षय हुआ करता है।

रोग साध्य, असाध्य और याप्यके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमेंसे फिर साध्य रोगके भी दो भेद हैं, सुखसाध्य और कष्टसाध्य। जो रोग चिकित्सा द्वारा प्रशमित होता है उसे साध्य; जो चिकित्सासे आरोग्य नहीं होता उसे असाध्य और जो रोग चिकित्सा द्वारा स्थगित रहता है तथा चिकित्सा नहीं करनेसे प्राण नाश होता है उसे याप्य रोग कहते हैं। यत्नपूर्वक खंभे लगानेसे जिस प्रकार गिरता हुआ घर खड़ा रह जाता है, उसी प्रकार औषधादि द्वारा सुचिकित्सित होनेसे याप्य रोगीका भी शरीर रक्षा पाता है।

रोगोत्पादक दोषके प्रकोपसे अन्यान्य जो सब विकार उत्पन्न होते हैं उनका नाम उपद्रव है। (भावप्र० पूर्वख०)

रोग, रोगके कारण और उनके निरूपणादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

पुरुषमें सुख दुःखका संयोग होनेसे ही उसको रोग कहते हैं। यह दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। यह तीन प्रकारका दुःख सात प्रकारके रोगोंमें परिणत होता है। सात प्रकारके रोग ये सब हैं—१ आदिवलजात, २ जन्मवलजात, ३ दोषवलजात, ४ संघातवलजात, ५ कालवलजात, ६ दैववलजात और ७ स्वभाववलजात।

आदिवलजात रोग दो प्रकारका है,—मातृदोषजात

जिसका पूर्वरूप और रूप सम्पूर्णरूपसे दिखाई देता है वह रोग बलवान् है। फिर जो अल्प निदान द्वारा उत्पन्न हो कर अल्पमात्र पूर्वरूप और रूप प्रकाश करता है उसे हीनबल समझना होगा।

ये सभी रोग साधारणतः दोषज और आगन्तुक दो भागोंमें विभक्त हैं। पहले जो सब भेद कह आये हैं वे इन्हीं दो भागोंके अन्तर्भुक्त हैं। जो सब रोग वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमेंसे पृथक् एक एक वा मिलित दो अथवा तीन दोषसे उत्पन्न होते हैं, उन्हें दोषज कहते हैं। एक दोषके कुपित होनेसे वह दूसरे दोषको भी कुपित कर डालता है, इस कारण कोई भी रोग एक दोषज नहीं होता, यही साधारण नियम है। तब जो एक दो वा तीन दोष रोगका प्रथम उत्पादक होता है, उसके अनुसार रोग भी एकदोषज, द्विदोषज वा त्रिदोषज कहलाता है।

जो सब रोग अभिघात, अभिचार, अभिशाप और भूतावेश आदि कारणवशतः हठात् उत्पन्न होते हैं, उनका नाम आगन्तुक है। अपने अपने निदानानुसार दोष विशेषके कुपित हुए बिना दोषजरोगकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु आगन्तुक रोगके आरम्भमें ही वेदना मालूम होती है, पीछे उससे दोष विशेष कुपित होता है, यही दोनों प्रकारके रोगोंमें पृथक्ता है।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोष दोषज रोगोत्पत्ति विषयमें विप्रकृष्ट निदान है। विविध हितजनक आहार-विहारादि रूप निदान द्वारा वे तीनदोष कुपित हो कर रोगोत्पादन करते हैं। इसके सिवा कतिपय उत्पन्न रोग और रोगविशेषका निदान होता है। जैसे—ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त, रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त इन दोनोंसे राजयक्ष्म, प्लीहावृद्धिसे उदररोग, उदररोगसे शोथ, अर्शसे उदररोग वा गुल्म, प्रतिश्यायसे कास, काससे क्षयरोग तथा क्षयरोगसे धातुशोष आदि रोग उत्पन्न होते देखे जाते हैं। इन सब रोगोत्पादक रोगोंमेंसे कोई कोई रोग अन्य रोग उत्पादन करके भी स्वयं वर्त्तमान रहता है तथा कोई रोग अन्य रोगोत्पादन कर निवर्त्तित होता है।

रोगपरीक्षा।

रोग होनेसे पहले अच्छी तरह परीक्षा करनी होती है। परीक्षा करके पीछे उसकी यथाविधान चिकित्सा विधेय है। चिकित्साका प्रथम उपाय रोग परीक्षा है। अच्छी तरह रोगका पता न लगनेसे उसकी चिकित्सा हो नहीं सकती। अनिश्चित रोगका कोई भी औषध फलप्रद नहीं होता बल्कि उससे अनिष्ट ही होता है।

रोगपरीक्षाके शास्त्रमें तीन उपाय कहे गये हैं, शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान। पहले रोगीसे कुल हालत सुन कर शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षणके साथ उसे मिलाना होगा। पीछे अनुमान द्वारा रोगका आगन्तुक दोष और उसका बलाबल निश्चय कर लेना होगा। रोगीके निकट अवस्था जाननेके समय सभी इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। रोगीके वर्ण, आकृति, परिमाण अर्थात् क्षीणता वा पुष्टता और कान्ति तथा मल, मूत्र, नेत्र आदि सभी देखे जाने लायक विषय देख कर रोगीके मुखसे उसकी कुल हालत तथा अन्त्रकूजन, सन्धिस्थानमें वा अंगुलिकी गिरहके स्फुटन आदि शरीरगत लक्षण सुनना आवश्यक है। पीछे गन्ध ठीक है वा खराब हो गई है यह परीक्षाके लिये सर्वशरीरगत गन्ध तथा मल, मूत्र, शुक्र और वान्तपदार्थ आदिको गन्ध सूंघ कर तथा सन्ताप और नाड़ीकी गति स्पर्श कर प्रत्यक्ष करना होता है। अग्निबल, शारीरिक बल, ज्ञान और स्वभाव आदि विषय कार्य विशेष द्वारा अनुमान करना होता है। क्षुधा, पिपासा, अरुचि, ग्लानि, निद्रा और स्वप्नदर्शन आदि रोगीसे पूछ लेना उचित है।

यदि दो वा तीन रोगोंके मध्य कौन रोग हुआ है इसका पता न लगे तो पहले सामान्य औषधका प्रयोग करें। इससे उपकार वा अपकार समझ कर रोगका निर्णय करना होगा। लक्षण विशेष द्वारा साध्यता, असाध्यता वा याप्यता निश्चय करना होता है। रोगीके अरिष्टलक्षण उपस्थित होनेसे मृत्यु स्थिर करनी होती है। रोगीकी नाड़ी, मूत्र, नेत्र, जिह्वा आदिकी विशेष रूपसे परीक्षा करना आवश्यक है।

रोगोत्पादक दोष—सारे शरीरमें परिव्याप्त हो कर जो सब मृत्युलक्षण दिखाई देते हैं उन्हें अरिष्टलक्षण

कहते हैं। यथार्थमें जिस किसी लक्षण द्वारा भावी मृत्युका अनुभव किया जा सकता है, उसीका नाम अरिष्ट चिह्न है। चिकित्सकको इस अरिष्ट चिह्नके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। यह अरिष्टलक्षण रोगभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारका है। अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु फिर भी रोगीका परित्याग करना उचित नहीं। जब तक रोगी जीता है तब तक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। किस किस रोगमें कैसा अरिष्टलक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी मृत्युकी सम्भावना है उसका विषय वैद्यकशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

अरिष्टलक्षण—शरीरके जो सब अङ्ग स्वभावतः जिस प्रकार रहते हैं उनकी अन्यथा होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर करनी होगी। शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्त आदि वर्णोंका अन्य प्रकारका वर्ण होना, स्थिरकी अस्थिरता, अस्थिरकी स्थिरता, स्थूलकी कृशता इत्यादि प्रकारके स्वभावका विपरीत होनेसे अरिष्ट लक्षण स्थिर करने होते हैं। कहनेका मतलब यह कि शरीर वा स्वभावकी कुछ भी विकृति होनेसे उसे अरिष्ट लक्षण कहा जाता है।

जिन सब रोगोंके भोजन नहीं करने पर भी मल-मूत्रकी वृद्धि वा भोजन करने पर मलमूत्रका अभाव, स्तनमूल, हृदय वा वक्षस्थलमें वेदना, किसी अङ्गका मध्यस्थल स्फीत और दोनों ओर कृश अथवा मध्यस्थल कृश और दोनों ओर स्फीत, अर्द्धाङ्गमें शोथ वा सार, शरीर शुष्क तथा स्वर नष्ट, हीन, विकल वा विकृत होना वा दन्त, मुख, नख आदि स्थानोंमें विवर्ण पुष्पकी तरह चिह्न वा दृष्टिमण्डलमें भिन्न प्रकारका विकृत रूप मालूम होना वा अङ्ग तैलाभ्यङ्गकी तरह दिखाई देना, इत्यादि प्रकारको अरिष्ट चिह्न जानना होगा। अतिसार रोगमें अरुचि वा दुर्बलता, कासरोगमें तृष्णाभिभूतता, क्षीणता, वमन, अरुचि, रक्तवमन, हाथ, पैर और मुंहका फड़कना आदि लक्षण विशेष अरिष्टजनक हैं।

असाध्य रोगका लक्षण—पहले लिखा जा चुका है, कि साध्य, असाध्य और याप्यके भेदसे रोग तीन प्रकारका है। साध्यरोगको भी यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो वह असाध्य हो जाता है। वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, अश्मरी, मूढ़गर्भ तथा उदरी-रोग ये ८ प्रकारके रोग स्वाभाविक असाध्य हैं। बल और मांसक्षय, श्वास, तृष्णा, शोष, वमि और ज्वर ये सब उपद्रव या मूर्च्छा, अतिसार और हिक्का उपस्थित होनेसे रोग असाध्य होता है, जिस जिस रोगमें जो जो उप-द्रव निर्दिष्ट हैं वे सब उपद्रव दिखाई देनेसे तथा प्रमेह रोगमें चित्तके अरिष्टकी तरह होने तथा अत्यन्त धातु गिरने और अतिशय यन्त्रणा होनेसे वह असाध्य है।

कुष्ठरोग—क्षत अङ्गका विदीर्ण हो कर रस निक-लना, आंख लाल और स्वरभङ्ग होना तथा वमन, विरे-चन, नस्य, निरूढ़वस्ति और उत्तरवस्ति इन पांच कर्मों-में कोई फल न दिखाई देनेसे असाध्य तथा अर्शरोग, तृष्णा, अरुचि, अतिशय वेदना, बहुत रक्त गिरना, शोथ और अतिसार ये सब उपद्रव होनेसे, भगन्दररोगमें वायु, मूत्र, विष्ठा और शुक्र ये सब निकलनेसे, अश्मरीरोगमें नाभि और कोषके स्फीत होनेसे तथा पेशाब बंद और अत्यन्त वेदना होनेसे, मूढ़गर्भरोगमें गर्भकोषमें शूल-वेदना, कुक्षिदेशमें रक्तके जमा होनेसे तथा योनिमुख समाच्छादित हो कर ये सब लक्षण दिखाई देनेसे वह असाध्य होता है। जो जो रोग जिस जिस उपद्रवसे असाध्य होता है वह उन्हीं शब्दोंमें लिखा जा चुका है।

रोग असाध्य होनेसे वह रोगीसे नहीं कहना चाहिये, बल्कि उसे सामान्य रोग कह कर आश्वासन देना उचित है। क्योंकि, रोगी यदि जीवनके प्रति हताश हो जाय, तो अनेक साध्य रोग भी असाध्य हो जाते हैं। रोगीके अनुगत, विश्वस्त और प्रिय व्यक्ति उसके पास रह कर आश्वासपूर्ण प्रियवाक्य द्वारा उसे संतुष्ट रखें। रोगीके निकट बहुत आदमियोंका रहना उचित नहीं। जो घर सूखा, साफ सुथरा हो और जिसमें हवा अच्छी तरह आती जाती हो, वैसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना उचित है। रोगीका बिछावन सूखा और मुलायम रहे।

रोगके उत्पन्न होते ही उसकी यथाविधान चिकित्सा करे। दोष कम होने पर भी उसकी उपेक्षा करना उचित नहीं। क्योंकि रोग अल्प होने पर भी अग्नि, शत्रु और विषकी तरह विकार उपस्थित हो सकता है।

शरीर धारण करनेसे ही रोग भुगतना पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं। जिसे रोग हुआ है उसे रोगी कहते हैं। यह रोगी चिकित्स्य और अचिकित्स्यके भेदसे दो प्रकार का है। जिस रोगीकी प्रकृति, वर्ण और चक्षु आदि इन्द्रियां विकृत न हो कर स्वभावमें रहती हैं तथा जो रोगी सुख और दुःखजनक क्रियादिसे विह्वल नहीं होता और चिकित्सकका वाध्य एवं इन्द्रिय दमन करनेमें समर्थ होता है उसे चिकित्स्य रोगी कहते हैं। जो व्यक्ति अधिक क्रोधी, अविवेकी, डरपोक, व्याकुलचित्त, शोकाभिभूत, अतिरिक्त इन्द्रियसेवी तथा चिकित्सकके वाक्यानुसार न चल कर अपने इच्छानुसार चलता है उसे अचिकित्स्य रोगी कहते हैं। अर्थात् चिकित्सक ऐसे रोगीकी चिकित्सा न करे। (सुश्रुत भावप्र०)

रोगकारक (सं० त्रि०) व्याधिजनक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रोगकाष्ठ (सं० क्ली०) पत्ताङ्कचन्दन, बक्कमकी लकड़ी।

रोगग्रस्त (सं० त्रि०) रोगसे पीड़ित, बीमारीमें पड़ा हुआ।

रोगघ्न (सं० क्ली०) रोगं हन्तीति हन्-टक्। १ औषध। (त्रि०) २ रोगनाशक, बीमारीको दूर करनेवाला।

रोगज्ञ (सं० पु०) रोगं जानातीति ज्ञा-क। वैद्य।

रोगज्ञान (सं० क्ली०) रोगविषयमें अभिज्ञता।

रोगद (सं० त्रि०) पीड़ादायक, दुःख देनेवाला।

रोग़न (फा० पु०) १ तेल, चिकनाई। २ लाख आदिसे बना हुआ मसाला जिसे मिट्टीके बरतनों आदि पर चढ़ाते हैं। ३ चमड़ेको मुलायम करनेके लिये कुसुम या बरेंके तेलसे बनाया हुआ मसाला। ४ पतला लेप जिसे किसी वस्तु पर पोतनेसे चमक, चिकनाई और रंग आवे; पालिश।

रोग़नदार (फा० वि०) जिस पर रोग़न किया गया हो, पालिशदार।

रोगनाशक (सं० त्रि०) रोगहर, बीमारी दूर करनेवाला।

रोगनिदान (सं० क्ली०) रोगके लक्षण और उत्पत्तिके कारण आदिकी पहचान, तशखीस।

रोग़नी (फा० वि०) रोग़न किया हुआ, रोग़नदार।

रोगपति (सं० पु०) रोगस्य पतिः। ज्वर। जो कोई कठिन रोग क्यों न हो, बिना ज्वरके वह प्रबल नहीं हो सकता। इसलिये ज्वरको रोगपति कहा है।

रोगपरिसह (सं० क्ली०) उग्र रोग होने पर कुछ ध्यान न करके उसका सहन।

रोगप्रद (सं० पु०) ज्वरदायक।

रोगभाज (सं० त्रि०) रोगं भजते भज-ण्वि। रोगयुक्त, रोगी।

रोगभू (सं० स्त्री०) रोगानां भूः स्थानं व्याधिमन्दिरत्वात्। शरीर, देह।

रोगमार्ग (सं० पु०) रोगाणां मार्गः। शाखादि रोगावर्त्म। यह रोगमार्ग तीन प्रकारका है, यथा—शाखा, मर्मास्थिसन्धि और कोष्ठ। इनमें शाखासे रक्तादि धातुसमूह और त्वक् समझा जाता है। यह वाह्यरोगमार्ग, मर्म अस्थिसन्धिस्थानके बीच रोगमार्ग तथा कोष्ठ अभ्यन्तर रोग मार्ग है। (चरक सूत्रस्था० ११ अ०) रोग देखो।

रोगमुक्त (सं० त्रि०) रोगात् मुक्तः। रोगसे मुक्त, बीमारीसे छुटकारा।

रोगमुरारि (सं० पु०) नवज्वराधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, विष, लोहा, त्रिकटु और ताँबा प्रत्येक समभाग और सीसा अर्द्ध भाग ले कर पीस डाले और दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे। अनुपान पान और अदरकका रस है। इसके सेवनसे नवज्वर शीघ्र ही प्रशमित होता है। (रसको०)

रोगराज (सं० पु०) रोगाणां राजा टच् समासान्तः। राजयक्ष्मरोग।

रोगलक्षण (सं० क्ली०) रोगाणां लक्षणं। निदानरोगव्यञ्जक चिह्न।

रोगविज्ञान (सं० क्ली०) रोगस्य विज्ञानं। जिन सब उपायोंसे रोगका कुछ ज्ञान होता है उसे रोगज्ञान कहते हैं। दर्शन, स्पर्श और प्रश्न इन तीन उपायोंसे रोगका ज्ञान होता है इसलिये यह तीन प्रकारका है। मूत्र और जिह्वा आदि देखने, नाड़ी आदि छूने और दूत आदिको प्रश्न करनेसे सब मालूम होता है।

(भैषज्यरत्ना०) रोग देखो।

रोगविनिश्चय (सं० पु०) रोगस्य विनिश्चयं। १ रोग-निश्चय, रोगका निर्णय करना। २ माधवकृत रुग्विनिश्चायक ग्रन्थ।

रोगशान्तक (सं० पु०) रोगान् शान्तयतीति शान्ति-ण्वुल्। वैद्य, चिकित्सक। वैद्य रोगको शान्तिविधान करते हैं इसीसे उनका रोगशान्तक नाम हुआ। (शब्दच०)

रोगशान्ति (सं० स्त्री०) रोगमुक्ति, पीड़ाका अपनोदन।

रोगशिला (सं० स्त्री०) रोगाय रोगनिवृत्तये शिला। मनःशिला, मैनसिल।

रोगशिल्पिन् (सं० पु०) रोगे शिल्पीव। वृक्षविशेष, सोनालूका पेड़।

रोगश्रेष्ठ (सं० पु०) रोगेषु श्रेष्ठः। ज्वर।

रोगह (सं० क्ली०) रोगान् हन्तीति हन ड। औषध, दवाई।

रोगहराद्रव्य (सं० क्ली०) रोगहरं द्रव्यं। रोगनाशक वस्तु, वह वस्तु या चीज जिससे रोग विनष्ट हो।

रोगहारिन् (सं० पु०) रोगं हरति, हृ-णिनि। १ वैद्य। (त्रि०) २ रोगनाशक।

रोगहृत् (सं० त्रि०) रोगं हरति हृ क्विप् तुक् च। रोगनाशक।

रोगहेतु (सं० पु०) रोगस्य हेतुः। रोगका हेतु, बीमारीका कारण।

रोगाक्रान्त (सं० त्रि०) व्याधि-पीड़ित, रोगसे घिरा हुआ।

रोगातुर (सं० त्रि०) रोगसे घबराया हुआ, व्याधिसे पीड़ित।

रोगाधीश (सं० पु०) रोगस्य अधीशः। राजयक्ष्मरोग।

रोगार्त्त (सं० त्रि०) रोगसे दुःखो।

रोगासन (सं० पु०) ज्वर।

रोगाह्वय (सं० पु०) कुष्ठौषध, कुट।

रोगिणी (सं० त्रि० स्त्री०) रोगिन् देखो।

रोगित (सं० त्रि०) १ पीड़ित, रोगयुक्त। (पु०) २ कुत्तेका पागलपन।

रोगितरु (सं० पु०) रोगिणां शोकनाशकस्तरुः अशोकवृक्ष।

रोगिन् (सं० त्रि०) रोगोऽस्यास्तीति रोग इनि। रोगयुक्त, पीड़ित। पर्याय--व्याधित, विकृत, ग्लान, म्लान, मन्द, आतुर, अभ्यान्त, अभ्यमित, रुग्न, सामय, अपटु, आमयावी, ग्लास्नु।

रोगिया (हिं० पु०) रोगी, बीमारी।

रोगिवल्लभ (सं० क्ली०) रोगिणां वल्लभं प्रियं। १ औषध। (त्रि०) २ रोगिप्रिय।

रोगोदक (सं० क्ली०) रोगजनक उदकं। मैला दुर्गन्धादि-युक्त रोगजनक जल।

रोग्य (सं० त्रि०) १ अपथ्य, अहित। २ रोगसम्बन्धी।

रोच (सं० त्रि०) रुच्-घञ्। १ रुचिकर। २ आलोकित, देखो हुआ। (अथर्व १७।१।२१) (पु०) ३ राजभेद, एक राजाका नाम।

रोचक (सं० पु०) रोचयतीति रुच-णिच्-ण्वुल्। १ क्षुधा, भूख। पर्याय—बुभुक्षा, अशना, जिघत्सा, रुचि। (हेम) २ कदली, केला। ३ राजपलाण्डु। ४ अवदंश, गजक। ५ एक प्रकारकी ग्रन्थिपर्णी। इसे नेपालमें 'भंडेउर' कहते हैं। इसका पर्याय—निशाचर, धनहर, कितव, गणहासक। गुण—मधुर, तिक्त, कटु, लघु, तीक्ष्ण, हृद्य, शीतल, कण्डु, कुष्ठ, कफ, वायु, स्वरभेद, अस्रज्वर, विष और व्रणनाशक। (भावप्र०) ६ काचकुप्यादिकारक, कांचकी कुप्पी या शीशी बनानेवाला। (त्रि०) ७ रुचिकारक, रुचनेवाला। ८ मनोरञ्जक, दिलचस्प।

रोचकता (सं० स्त्री०) रोचक होनेका भाव, मनोहरता।

रोचकद्वय (सं० क्ली०) लवणद्वय, विट् लवण और सैंधव लवण। (वैद्यकनि०)

रोचकिन् (सं० त्रि०) १ क्षुधायुक्त, जिससे भूख लगी हो। २ इच्छाशील, इच्छा करनेवाला।

रोचन (सं० पु०) रोचयतीति रोचि-नन्द्यादित्वात् ल्यु। १ कुटशाल्मलि, काला सेमर। २ काम्पिल्ल, कमीला। ३ श्वेत शिग्रु, सफेद सहिजन। ४ पलाण्डु, प्याज। ५ आरग्वध, अमलतास। ६ करञ्ज, कंजा। ७ अङ्कोठ, ढेरा। ८ दाड़िम, अनार। ९ रोगोंके अधिष्ठाता, एक प्रकारके देवता। (हरि० १६६।७५) १० विष्णुके औरससे दक्षिणाके पुत्रोंमेंसे दूसरा। ये स्वायम्भुव मन्वन्तरके एक देवता हैं। (भागवत ४।१।७) ११ स्वारोचिष मन्वन्तरके इन्द्र। (भाग० ८।१।२०) १२ भारतवर्षके अन्तर्गत एक

पर्वतका नाम। (मार्क० पु० ५७।१३) १३ कामदेवके पांच बाणोंमेंसे एक। १४ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० ३१।७) १५ रोली, रोचना। १६ गोरोचना। (त्रि०) १७ रोचक, रुचनेवाला। १८ दीप्तिशाली, शोभा देनेवाला। "अन्वश्चर रोचनं चारुशाखं महाबलं धर्मनेतारु मीड्य'।" (हरिवंश १२६।३५) १६ शोभमान, सुहानेवाला। २० अनुराग कर प्रिय लगानेवाला। २१ लाल।

रोचनक (सं० पु०) रोचयतीति रोचि ल्यु, ततः कन्। १ जम्बीर, जंबीरी नीबू। २ गुण्डारोचनी, कमीला। ३ वंशलोचन। ४ रोचन देखो।

रोचनफल (सं० पु०) रोचनं रुचिकरं फलमस्य। बीजपूरक, बिजौरा नीबू।

रोचनफला (सं० स्त्री०) रोचनं रोचकं फलमस्याः। चिर्भिटा, ककड़ी।

रोचनस्था (सं० स्त्री०) १ आलोकमें अवस्थानकारी, वह जो प्रकाशमें रहता हो। २ आकाशमें वास करनेवाला।

रोचना (सं० स्त्री०) रोचते या रुच् (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।७८) इति युच् टाप्। १ रक्तकह्लार, लाल कमल। २ गोपित्त। ३ गोरोचना। ४ वरयोषित्। ५ पुराणानुसार वसुदेवकी स्त्री। (भाग० ६।२४।४५) ६ आकाश, स्वर्ग। ७ कृष्णशाल्मली, काला सेमर। ८ वंशलोचन। ६ एक पर्वतका नाम। (जैन हरि० ५।२०७)

रोचनामुख (सं० पु०) एक दैत्यका नाम। (भारत ५।३६६८५)

रोचनावत् (सं० त्रि०) आलोकयुक्त, उज्ज्वल।

रोचनिका (सं० स्त्री०) रोचनैव स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। १ वंशरोचना। २ गुण्डारोचनी, कमीला।

रोचनी (सं० स्त्री०) रोचते इति रुच् 'कृत्यल्युटो बहुलमिति' ल्युट् ततो ङीष्। १ आमलकी, आँवला। २ गोरोचना। ३ मनःशिला, मैनसिल। ४ श्वेतत्रिवृता, सफेद निसोथ। ५ गुण्डारोचनी, कमीला। पर्याय—काम्पिल्ल, कर्कश, चन्द्र, रक्ताङ्ग, कम्पोल, काम्पिल, काम्पिल्य, रेचनी। (भारत) ६ दन्ती। ७ दीप्तिमान् आकाश। (ऋग्वेद १।१०२।८) ८ तारका, तारा। ६ सामभेद।

रोचमान (सं० पु०) रोचते इति रुच्-शानच्। १ अश्वग्रीवास्थित, रोमावर्त्त, घोड़ेकी गरदन परकी एक भंवरी। नृपविशेष। (भारत १।६७।१८) ३ स्कन्दके एक अनुचरका नाम। (त्रि०) ४ दीप्यमान, चमकीला।

रोचि (सं० स्त्री०) १ दीप्ति, प्रभा। २ प्रकट होती हुई शोभा। ३ रश्मि, किरण।

रोचित (सं० त्रि०) शोभित।

रोचिन् (सं० त्रि०) रोचते इति रुच णिनि। रोचिष्णु, आभूषणों आदिसे जगमगाता हुआ।

रोचिष् (सं० पु०) पुराणानुसार विभावसुके एक पुत्रका नाम। (भागवत ६।६।१६)

रोचिष्णु (सं० त्रि०) रोचते तच्छलः रुच् (अलंकृञ् निराकृञिति। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। १ अलंकारादि द्वारा जगमगाता हुआ। पर्याय—विभ्राज्, भ्राजिष्णु। २ चमकदार। ३ रोचक, रुचनेवाला।

रोचिस् (सं० क्ली०) रोचनेऽनेनेति रुच् बाहुलकात् इसिन्। (उण् २।११२) प्रभा, दीप्ति, चमक।

रोची (सं० स्त्री०) रोचते इति रुच-इन्, वा ङीष्। हिलमोचिका।

रोच्य (सं० त्रि०) रुच् ण्य (यजयाचरुचप्रवर्चश्च। पा ७।३।६६) इति कवर्गादेशो न। १ प्रकाश्य। ३ प्रीतिविषय।

रोज (फा० पु०) १ दिन, दिवस। (अव्य०) २ प्रति दिन, नित्य।

रोज आफजान (नाजिर)—सम्राट् महम्मदशाहके अधीनस्थ एक ख्वाजा। ये ख्वाजा सरा नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने १७४८ ई०में दिल्लीके निकटवर्ती शाहजहानाबादमें 'बाग नाजिर' नामकी एक प्रसिद्ध उद्यान-वाटिका बनवाई थी।

रोजगार (फा० पु०) १ जीविका या धन संचयके लिये हाथमें लिया हुआ काम जिसमें कोई बराबर लगा रहे, व्यवसाय, धंधा। २ क्रय विक्रयका आयोजन, तिजारत।

रोजगारी (फा० पु०) व्यापारी, सौदागर।

रोजनामचा (फा० पु०) १ वह किताब या वही जिस पर रोजका किया हुआ काम लिखा जाता है, दिनचर्याकी पुस्तक। २ प्रति दिनका जमा खर्च लिखनेकी बही, कच्चा चिट्ठा।

रोजमर्रा (फा० अव्य०) १ प्रति दिन, हर रोज। (पु०) २ नित्यके व्यवहारमें आनेवाली भाषा, बोलचाल।

रोजविहान् (शेख)—एक मशहूर मुसलमान पंडित और साधु। इन्होंने तफशीर आरायस नामको कुरानकी टीका और सफवत् अल मसारिव् आदि कितने ग्रन्थ लिखे। १२०६ ई०में ये कराल कालके गालमें पतित हुए।

रोज़ा (फा० पु०) १ व्रत, उपवास · २ वह व्रत जो मुसलमान रमजानके महीनेमें ३० दिन तक रहते हैं और जिसका अन्त होने पर ईद होती है।

रोजाना (फा० क्रि० वि०) प्रति दिन, हर रोज।

रोज़ी (फा० स्त्री०) १ रोजका खाना, नित्यका भोजन। २ एक प्रकारका पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार व्यापारियोंके चौपायोंको एक दिन राज्यका काम करना पड़ता था। ३ वह जिसके सहारे किसीको भोजन वस्त्र प्राप्त हो, काम धंधा जिससे गुजर हो।

रोज़ी (हिं० स्त्री०) गुजरातमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास। इसके फूल पीले होते हैं।

रोजीदार (फा० पु०) वह जिसको रोजाना खर्चके लिये कुछ मिलता है।

रोज़ीना (फा० पु०) १ रोजका, नित्यका, । २ प्रतिदिनकी मजदूरी, वेतन या वृत्ति आदि।

रोज़ीविगाड़ (फा० पु०) लगी हुई रोजीको विगाड़नेवाला, जम कर कोई काम धंधा न करनेवाला।

रोझ (हिं० स्त्री०) गवय, नीलगाय।

रोझन—पञ्जावप्रदेशके डेरा गाजो खाँ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८°४१´ उ० तथा देशा० ६६°५८´ पू०के मध्य सिन्धुनदके वायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। मजारी वलूच जातिके सरदार वहरामखाँने १८२५ ई०में इस नगरको बसाया। वर्त्तमान सरदार द्वारा प्रतिष्ठित विचारगृह और उसके पिता तथा भतीजेका मकबरा देखने लायक है। पशमी रंग वा आच्छादन वस्त्रके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रोझी—वम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके नवागढ़ राज्यके अन्तर्गत एक द्वीप। यह कच्छउपसागरको नवानगर खाड़ीके मुहाने पर नवानगरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहां चारण-रमणीके उद्देशसे स्थापित एक मन्दिर है। कहते हैं, कि एक दिन नागरराज शिकार खेलने जंगल गये। वहां उन्होंने एक नीलगाय देख कर उसका पीछा किया। नीलगाय बड़ी तेजीसे भाग कर उसी चारण-रमणीके आश्रममें घुस गई। राजा भी उसका पीछा करते हुए वहां पहुंचे। वृद्धा चारण-रमणीको जब मृग दिखला देने कहा गया, तब वह बोली, 'आप चाहे मेरी गरदन ले लें, पर मैं उस आश्रित मृगको नहीं दे सकती।' इस पर राजाने मृगको बाहर निकाल कर मार डाला। वृद्धासे यह अन्याय देखा न गया, उसने राजाको शाप देकर आत्महत्या कर ली। उसकी अक्षयकीर्त्तिका स्मरण रखनेके लिए समुद्रके किनारे जहां उसका आश्रम था एक मन्दिर बनवा दिया गया। यहां जो आलोकभवन है उसे १८६७ ई०में नवानगरके राजाने बनवाया था। आकाश परिच्छन्न रहने पर समुद्रके किनारेसे ७ मील दूरसे इसकी रोशनी दिखाई देती है।

रोट (सं० त्रि०) रुट (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते। पा ३।२।७५) इति विच्। १ हिंस्र, हिंसा करनेवाला। २ वधक, मारनेवाला।

रोट (हिं० पु०) १ गेहूंके आटेकी बहुत मोटी रोटी, लिट्ट। २ मीठी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओंको चढ़ाया जाता है।

रोटकव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद। (व्रतप्रकाश)

रोटका (हिं० पु०) बाजरा।

रोटास (रोहितास)—पञ्जावप्रदेशके झेलम जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। लवण पर्वतके जिस स्थानसे कुहान नदी निकली है उसके समीपवर्त्ती एक शैलशृङ्ग पर यह अक्षा० ३२° ५५´ उ० तथा देशा० ७३° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है।

अफगान सरदार शेरशाहने जिस समय हुमायूंको भगा कर दिल्लीका सिंहासन अपनाया था उसी समय अर्थात् १५४० ई०में उसने गक्कर जातिका दमन करनेके अभिप्रायसे यह दुर्ग स्थापन किया। उस गिरिपथके सामने अवस्थित एक शैलशृङ्गको परिवेष्टित कर उसने दुर्गके चारों ओर प्रायः ३ मील विस्तृत एक लंबी दीवार खड़ी कर दी। उस दीवारको मजबूत रखनेके लिये जहां तहां उसकी मोटाई ३०से ४० फुट तक कर दी गई है। इसका प्रवेशद्वार आज भी ज्योंका त्यों दिखाई देता है।

किन्तु दुःखका विषय है, कि सीमाप्राचीरकी मध्यगत दुर्गवाटिका ढह गई है। इस सुरक्षित दुर्गभूमिका परिमाण करीब २६० एकड़ होगा। इस स्थानका प्राकृतिक चित्र बड़ा ही मनोरम है।

रोटासगढ़ (रोहितास)—शाहाबाद जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २४° २७' उ० तथा देशा० ८३° ५५' पू०के मध्य ससेराम शहरसे ३० मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या २ हजारके करीब होगी।

शाहाबाद जिलेमें जगह जगह प्राचीन कीर्त्तिके अनेक निदर्शन रहने पर भी प्रत्नतत्त्वविदोंके लिये ऐसा स्थान और कहीं भी नहीं है। इस स्थानके प्राचीनत्वके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती प्रचलित हैं सही, पर एकमात्र दुर्गसे ही उसकी अतीत कीर्त्तिका स्पष्ट आभास मिलता है। सूर्यवंशीवतंश राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वके नामानुसार इस स्थानका नाम रोहिताश्वगढ़ हुआ था। पीछे मुसलमानी अमलमें इसका नाम बदल कर रोटासगढ़ रखा गया। यहां रोहिताश्व मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। स्थानीय लोग भक्तिपूर्वक उस मूर्त्तिकी उपासना करते थे। सम्राट् औरङ्गजेबने रोटासगढ़को जीत कर तहस नहस कर डाला।

उपरोक्त ससागरा पृथ्वीके अधिपति महाराज हरिश्चन्द्रसे उस वंशके कितने राजे इस दुर्गाधिकारकी रक्षा करते आ रहे थे, उसका कोई विवरण नहीं मिलता। ऐतिहासिकयुगमें १५३९ ई०को शेरशाहने इस स्थानको जीत कर दुर्गसंस्कार करना चाहा, किन्तु कुछ समय बाद ही वह उस स्थानका परित्याग कर शेरगढ़में दुर्ग बना कर रहने लगे। सम्राट् अकबर शाहके सेनापति और बङ्गालके प्रतिनिधि राजा मानसिंहने १६वीं सदीके शेष भागमें यह दुर्ग मजबूत करके वहां सेनादल स्थापन किया था। वे प्राचीन दुर्गका संस्कार कर और नये नये वासभवनादि बनवा गये हैं। उनके उत्कीर्ण दुर्गगात्रस्थ संस्कृत और पारस्य भाषामें लिखे हुए दो शिलाफलकसे उनका आनुपूर्विक विवरण जाना जाता है।

रोटासगढ़ शैलके जिस अधित्यकाप्रदेशमें ध्वस्तदुर्गका निदर्शन पड़ा है वह पूर्व-पश्चिममें ४ मील और उत्तर-पश्चिममें ५ मील विस्तृत होगा। उसकी परिधि प्रायः २८ मील होगी। १८४८ ई०में डा० हुकरने इस स्थानकी ऊंचाई १४९० फुट स्थिर कर गये हैं।

इस पर्वत पर चढ़नेके ८३ रास्ते हैं। उनमेंसे ४ बड़ा घाट और ७९ घाटी कहलाता है। दुर्गपरिक्रमाके मध्य जितनी प्राचीन कीर्त्तियां दिखाई देती हैं, उनमेंसे मानसिंहके प्रतिष्ठित दो हिन्दूमन्दिर, औरङ्गजेबकी बनाई मसजिद, महाल सराय नामक प्रासाद और 'बारहद्वारी' नामक राजकार्यालय स्थापत्य शिल्पका उत्कृष्ट निदर्शन है।

भविष्यब्रह्मखण्डमें गयाके अन्तर्गत रुहिदासपत्तनका उल्लेख है। भौगोलिक विवरणानुसार वह स्थान रोटासगढ़के जैसा प्रतीत होता है। (ब्रह्मख० ३।३६०)

रोटिका (सं० स्त्री०) पिष्टविशेष, रोटी। यह मैदा, कलाय, चने आदिकी बनाई जाती है। साधारणतः रोटी कहनेसे मैदेकी ही रोटी समझी जाती है। भावप्रकाशमें रोटी बनानेका तरीका इस प्रकार लिखा है—सूखे गेहूंको चूर कर जलसे गूंथे। पीछे गोल गोल लाई बना कर उसे तवेमें गरम करे। अनन्तर कोयलेकी आगमें सेक लेनेसे यह तैयार होती है। इसका गुण बलकारक, रुचिजनक, शरीरका उपचयकारक, धातुवर्द्धक, वायुनाशक, और गुरु है। जिस आदमीकी अग्नि प्रबल है उसके लिये यह विशेष उपकारी है।

जौकी रोटी—जौको चूर कर उक्त प्रणालीसे रोटी बनाई जाती है, इसीको जौकी रोटी कहते हैं। इसका गुण रुचिकर, मधुररस, लघु, मलवर्द्धक, शुक्र और वातजनक, बलकारक तथा कफरोग, पीनस, श्वास, कास, मेह, प्रमेह और गलरोगनाशक माना गया है।

उड़दकी रोटी—सूखी उड़दके चूरको चमसी कहते हैं। इस चमसीसे जो रोटी बनाई जाती है उसे बलभद्रिका या उड़दकी रोटी कहते हैं। इसका गुण रूक्ष, उष्णवीर्य, वायुवर्द्धक और बलकारक है। यह प्रबलाग्नि मनुष्योंके लिये हितकर है। उड़दकी दालको जलमें भिगो कर उसकी भूसी फेंक दे। पीछे उसे धूपमें सुखा कर जांतेमें पीस लेनेसे उसे धूमसी कहते हैं। इस धूमसीकी रोटी कफ और पित्तनाशक तथा कुछ वायुवर्द्धक है। इस रोटीका नाम झर्झरिका है।

चनेकी रौटी रूखी, कफ और रक्तपित्तनाशक, भारी, विष्टम्भी तथा नेत्रोंको तकलीफ देनेवाली होती है। तिलकी रौटीमें भी वही सब गुण हैं।

रौटी (हिं० स्त्री०) १ गुंधे हुए आटेकी आंच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया। यह नित्यके खानेके काममें आती है। इसे फुलका भी कहते हैं। २ भोजन, रसोई।

रौटीफल (हिं० पु०) १ फल जो खानेमें बहुत अच्छा होता है। २ इस फलका पेड़ जो मझोले आकारका होता है और दक्षिणमें मन्द्राजकी ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोठा (हिं० पु०) बाजरेकी एक जाति।

रोड़ (सं० त्रि०) १ तृप्त, संतुष्ट। २ क्षोद, चूर्ण किया हुआ।

रोड़—पञ्जाब और युक्तप्रदेशवासी कृषिजीवि जातिविशेष। पञ्जाबके कर्नाल और अम्बाला जिलेके सीमान्तवर्त्ती तथा थानेश्वरके दक्षिणस्थ सुविस्तृत धाकजङ्गल प्रदेशमें इन लोगोंका वास है। भारतयुद्धके समय पाण्डवोंने कुरुकुलका समूल निर्मूल करनेकी आशासे जहां सेना इकट्ठी की थी वही आमरीन ग्राम इन लोगोंकी आदि वासभूमि है। इस स्थानसे ये लोग धीरे धीरे पश्चिम यमुनाखालके किनारे निम्न कर्णाल और भिन्द आदि नाना जिलोंमें जा कर बस गये हैं।

ये लोग मजबूत और सुडौल होते हैं। जाट और इनमें प्रभेद केवल इतना ही है, कि ये शान्त, नम्रप्रकृतिके और कृषिकार्यनिरत हैं। जाट जातिकी तरह ये लोग युद्धप्रिय वा परस्वापहारी नहीं होते।

इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई विशेष वंशोपाख्यान नहीं है। अरोड़ा (पूर्वपञ्जाबप्रदेशमें रोड़ा नामसे प्रसिद्ध) लोगोंकी तरह ये लोग भी अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। परशुरामके भयसे इन लोगोंने 'आउर' (दूसरी) जाति कह कर परित्राण पाया था। इस कारण तभीसे इनकी एक स्वतन्त्र जातिमें गिनती हुई है। युक्तप्रदेशके अरोड़ा और पञ्जाबके पूर्वाञ्चलवासी रोड़ासे थानेश्वरप्रान्तवासी रोड़ा सम्पूर्ण पृथक् जाति है, इसका कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता। पाश्चात्य जातितत्त्वविदोंने पूर्वाञ्चलवासी रोड़ाजातिसे पश्चिम पञ्जाबवासी रोड़ोंको अपेक्षाकृत मजबूत देख कर दोनोंको पृथक् जाति बतलाया है; किन्तु दोनोंके आचार आदि देखनेसे वे एक समझे जाते हैं। सामाजिक आचारमें जाटोंके साथ इनकी कोई विशेष पृथकता नहीं है।

मुरादाबासी आमीन ग्रामके रोड़ोंका कहना है, कि वे लोग भी स्थानीय चौहान राजपूतोंकी एक शाखा हैं और सम्बलसे यहां आ कर बस गये हैं। दूसरे रोड़ कहते हैं, कि रोहतक जिलेके झाझर तहसीलका बदली ग्राम ही इन लोगोंका आदि वासस्थान है। फिर कोई कोई राजपूतानेको अपना आदि स्थान बतलाते हैं।

इन लोगोंमें सागवाल, माइण्या, खीची और जगरान आदि कई थोक हैं। विधवा विवाह चलता है।

शाहरानपुरके रोड़ोंका कहना है, कि भारतयुद्धके समय श्रीकृष्णने योगबलसे कैथलग्राममें इनकी सृष्टि की थी। इन लोगोंको विवाहप्रथा जाट और गुजरजातिसी है; विधवाविवाह चलता है। विधवा देवरसे ही विवाह करती है। ये लोग मछली, मांस, बकरे और सूअरका मांस खाते हैं।

इनमेंसे कोई कोई दल अपनेको तोमर राजपूतवंशका बतलाता है। दिल्लीके तोमर-राजवंशका प्रभाव ह्रास होने पर वे लोग नाना स्थानोंमें जा कर बस गये। कोई कोई कहते है, कि मुगल बादशाह औरङ्गजेबके शासनसे उत्पीड़ित हो वे लोग दूसरी जगह जा कर बस गये हैं।

बिजनौर रोड़ कहते हैं, कि वे लोग श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशधर हैं। गत चार सदी पहले ये लोग कर्नाल जिलेके फतेपुर-पुण्डी नामक स्थानसे यहां आये हैं। इस ग्राममें सैयदोंका वास था। आगे चल कर सैयद और रोड़ोंमें विवाद खड़ा हुआ। रोड़ अपने दलपति महीचांदके अधीन अम्थल जा कर बस गये।

ये लोग विवाह तथा दूसरे दूसरे क्रियाकलापादि सम्भ्रान्त हिन्दूके जैसे करते हैं। विधवा देवरसे विवाह कर सकती है, किन्तु वह विधवाके इच्छाधीन है। स्त्रीचरित्रके सम्बन्धमें संदेहजनक प्रमाण मिलने पर जातीय सभासे उसे जातिच्युत करनेकी व्यवस्था है, किन्तु

पत्नीत्यागका कोई नियम नहीं है। कभी कभी अपने समाजमें अर्थदण्ड दे कर वह स्वजातिमें रह जाती है।

रोड़ा (हिं० पु०) १ ईंट या पत्थरका बड़ा ढेला, बड़ा कंकड़। २ एक प्रकारका पंजाबी धान जो विना सींचे उत्पन्न होता है।

रोढ़ (सं० त्रि०) उद्गमनशील, उत्पन्न होनेवाला।

रोण—१ बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १५° ३०' से १५° ५०' उ० तथा देशा० ७५° २६' से ७६° २' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ४३२ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें २ शहर और ८४ ग्राम लगते हैं। इस तालुकमें दक्षिण-महाराष्ट्र रेलवेके आल्लूर और मल्लापुर नामक स्थानमें दो स्टेशन हैं।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १५° ४२' उ० तथा देशा० ७५° ४४' पू०के मध्य धारवार शहरसे ५५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। यहां काले पत्थरके बने ७ प्राचीन मन्दिर हैं। उनमेंसे एक मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालेख पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये सब मन्दिर १६८० ई०में बनाये गये हैं।

रोणाहि—अयोध्याप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह घाघरा नदीके तट पर अवस्थित है। यहां पांच हिन्दू और पांच जैन मन्दिर हैं। अवध-रोहिलखण्ड रेल-पथ इस नगरकी बगल हो कर दौड़ गया है।

रोणीक (सं० क्ली०) एक देशका नाम। (पा ४।२।१४१)

रोणीकीय (सं० पु०) उस देशका मनुष्य।

रोद (सं० पु०) १ क्रन्दन, रोना। २ शोक प्रकाशकरण, दुःख जाहिर करना।

रोदःकुहर (सं० क्ली०) स्वर्गमण्डल, आकाशरूप चन्द्रातप।

रोदन (सं० क्ली०) रुद-ल्युट्। १ क्रन्दन, रोना। बच्चोंका रोदन ही बल है।

"दुर्वलस्य बलं राजा बालानां रोदनं बलम्।
बलं मूर्खस्य मौनित्वं चौराणामनृतं बलम्॥"
(चाणक्य ६२)

२ अश्रुकपिला धेनु यदि क्रन्दन करे, तो उसके नेत्राश्रुसे रत्न उत्पन्न होता है। मृत व्यक्तिके लिये नहीं रोना चाहिए। रोनेसे उसके नरक होता है। इसलिये रोना शास्त्रमें निषिद्ध कहा है।

"ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदी पुत्र साम्प्रतम्।
रोदनाश्रुप्रपतनात् मृतानां नरकं ध्रुवम्॥"
(ब्रह्मवै०पु० गणपतिख० २७ अ०)

"श्लेष्माश्रुवान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्या विधानतः॥"
(शुद्धितत्त्व)

रोदनिका (सं० स्त्री०) रोदनं अश्रु पातयत्वेनास्त्यस्येति, रोदन ठन्। यवास।

रोदनी (सं० स्त्री०) रुद्यतेऽनयेति रुद-करणे-ल्युट् ङीप्। दुरालभा, जवासा।

रोदस (सं० क्ली०) रुद-असुन्। १ स्वर्ग। २ भूमि।

रोदप्रिया (सं० त्रि०) स्वर्ग और मर्त्यका पूरणकारी।

"द्यावा पृथिव्योः पूरयितृ" (ऋक् १०।८८।५ सायण)

रोदसी (सं० स्त्री०) रोदस् गौरादित्वात् ङीष्। १ स्वर्ग। २ भूमि।

रोदस्त्व (सं० क्ली०) रोदसी देखो।

रोदा (हिं० पु०) १ कमानकी डोरी, धनुषकी पतंचिका। २ सितारके परदे बांधनेकी बारीक तांत।

रोदितव्य (सं० क्ली) रुद तव्य। रोदनीय, रोने लायक।

रोद्धृ (सं० त्रि०) रुध तृच्। रोधकारी, रोकनेवाला।

रोद्धव्य (सं० त्रि०) रुध-तव्य। रोधनीय, रोकने योग्य।

रोध (सं० पु०) रुणद्धि जलमिति रुध पचाद्यच्। १ किनारा, तट। रुध-घञ्। २ रोधन, रुकावट। ३ वारी।

रोधक (सं० त्रि०) रुणद्धीति रुध-ण्वुल्। रोधकर्त्ता, रोकनेवाला।

रोधकृत् (सं० त्रि०) रोधं करोति कृ क्विप् तुकच्। १ रोध-कर्त्ता, रोकनेवाला। (पु०) २ साठ संवत्सरोंमेंसे पैंतालीसवां संवत्सर। (वृहत्संहिता)

रोधचक्र (सं० त्रि०) रोधनशीलानि चक्राणि यासु। नदीके किनारेका दह या भंवरी।

रोधन (सं० त्रि०) रुणद्धीति रुध-ल्यु। १ रोधकर्त्ता, रोकनेवाला। (क्लीं०) रुध भावे ल्युट्। २ रोध, रुकावट। ३ दमन।

रोधवक्रा (सं० स्त्री०) रोधने वक्रा। नदी।

रोधस् (सं० क्ली०) रुणद्धि वार्यादिकमिति रुध (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। नदीतीर, नदीका किनारा।

रोधस्वत् (सं० त्रि०) १ उच्चकूलयुक्त। (पु०) २ नदी। (ऋक् १।३८।११)

रोधस्वती (सं० स्त्री०) नदी। (भागवत ५।१९।१८)

रोधिन् (सं० त्रि०) १ रोधनशील, रोकनेवाला। (पु०) २ वृक्षभेद।

रोधोवक्रा (सं० स्त्री०) रोधसा वक्रा। नदी।

रोधोवती (सं० स्त्री०) रोधोऽस्त्यस्याः रोधस्-मतुप् ङीष्। नदी।

रोधोवप्र (सं० पु०) वेगवान् नद।

रोध्य (सं० त्रि०) रोधयोग्य, रोधनीय।

रोध्र (सं० क्ली०) रुध्यतेऽनेन रुध बाहुलकात् रन्। १ अपराध, कसूर। २ पाप। ३ लोध्र, लोध।

रोध्रपुष्प (सं० पु०) रोध्रस्येव पुष्पमस्य। १ मधूकवृक्ष, महुएका पेड़। (क्ली०) २ रोध्रफूल, लोधका फूल। ३ चक्रयुक्त सर्पभेद, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर चक्र-सा दाग हो।

रोध्रपुष्पक (सं० पु०) १ लोध्रका फूल। २ शालिधान्य, शालि धान। ३ सर्पजातिभेद, एक प्रकारका सांप।

रोध्रपुष्पिणी (सं० स्त्री०) रोध्र इव पुष्यतीति पुष्प णिनि-ङीप्। धातकीवृक्ष, धौका पेड़।

रोध्रयुग्म (सं० क्ली०) शावर और पट्टिका नामक दो प्रकारका लोध।

रोध्रशूक (सं० पु०) रोध्रपुष्पकार शूकशालि, लोधके फूलके आकारका जौ। (वाभटसू० ६ अ०)

रोध्रादिगण (सं० पु०) लोध आदि करके गणभेद। द्विविध लोध्र, पलाश, कृष्णशाल्मली, सरलकाष्ठ, कट्फल, कदम्ब, अशोक, एलवालु, परिपेलव और मोचा ये सब रोध्रादिगण हैं। इसका गुण—मेद, कफ और योनिदोषनाशक, पुरीषादिका स्तम्भन, वर्ण्य और विषनाशक। (वाभट सूत्रस्था० १५ अ०)

रोना (हिं० क्रि०) १ रोदन करना, पीड़ा, दुःख या शोकसे व्याकुल हो कर मुंहसे विशेष प्रकारका स्वर निकालना और नेत्रोंसे जल छोड़ना। २ दुःख करना, पछताना। ३ चिढ़ना, बुरा मानना। (पु०) ४ रंज, दुःख। (वि०) ५ थोड़ी सी बात पर भी दुःख माननेवाला, रोनेवाला। ६ रोनेका सा, मुहर्रमी। ७ बात बात पर बुरा माननेवाला, चिड़चिड़ा।

रोनी धोनी (हिं० वि० स्त्री०) १ रोने धोनेवाली, शोक या दुःखकी चेष्टा बनाये रहनेवाली। (स्त्री०) २ रोने धोनेकी वृत्ति, शोक या दुःखकी चेष्टा, मनहूसी।

रोप (सं० पु०) रूप्यतेऽनेनेति रुप विमोहे, घञ्। १ बाण, तीर। रुह-णिच्-घञ्। २ रोपण, स्थापित करना। ३ ठहराव, रुकावट। ४ मोहन, बुद्धि फेरना। ५ छिद्र, सूराख।

रोप (हिं० पु०) हलकी एक लकड़ी जो हरिसके छोर पर जंघेके पार लगी रहती है।

रोपक (सं० त्रि०) १ वृक्षरोपणकारी, पेड़ लगानेवाला। २ स्थापित करनेवाला, उठानेवाला। ३ स्थित करनेवाला। ४ सोने चांदीकी एक तौल या मान जो सुवर्णका ७०वां भाग होता है। रूपक देखो।

रोपण (सं० क्ली०) रुप-ल्युट्। १ जनन, जमाना, लगाना। २ प्रादुर्भाव। ३ विमोहन, मोहित करना। ४ ऊपर रखना या स्थापित करना। ५ स्थापित करना, खड़ा करना। ६ अंजनविशेष। (पु०) ७ पारद, पारा। ८ घुसामन वृक्ष। ९ क्षतादिपूरण, घावका सूखना या उस पर पपड़ी बंधना। १० घाव पर किसी प्रकारका लेप लगाना। (त्रि०) ११ रोपक, लगानेवाला। रोपक देखो।

रोपणचूर्ण (सं० क्ली०) रोपणस्य चूर्ण। नेत्राञ्जनविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—खपड़ेको शिला पर अच्छी तरह पीस कर जलमें छोड़ दे। पीछे पेंदीमें जमे हुए चूरको फेंक कर जल ले ले। वह जल सूख कर जब पपड़ीकी तरह हो जाय, तब उसे चूर कर त्रिफलाके रसमें तीन बार भावना दे। अनन्तर दशवां भाग कपूर डालनेसे रोपणचूर्ण प्रस्तुत होता है। इस चूर्णका नेत्रमें अञ्जन देनेसे सभी प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं। (भावप्र० रोगाधि०)

रोपणका (सं० स्त्री०) पक्षिभेद, मैना।

रोपणाञ्जन (सं० क्ली०) १ कषाय और स्नेहसंयुक्त अंजन।

२ तिक्त द्रव्य द्वारा, अञ्जन। (चक्रदत्त अञ्जनाधि०)

रोपणी (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जनविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रसाञ्जन, धूना, जातीपुष्प, मैनसिल, समुद्रफेन, सैन्धव, गेरूमिट्टी तथा मिर्च इनका समान भाग ले कर मधुके साथ पीसे। क्लिन्नवर्त्मरोगीके नेत्रमें इसका अंजन देनेसे नेत्रवात, क्लेद और कण्डु नष्ट होता है तथा गिरे हुए नेत्ररोम फिरसे खड़े हो जाते हैं। पुनर्नवाको दूधमें पीस कर उसका अंजन देनेसे कण्डु, मधुमें पीस कर देनेसे नेत्रस्राव, घृतमें पीस कर पुष्पतैल द्वारा देनेसे तिमिर तथा कांजीके साथ देनेसे रतौंधी दोष दूर होता है। इन्हीं सब प्रक्रियाओंको रोपणी कहते हैं।

(भावप्र० नेत्ररोगाधि०)

रोपणीवटी (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जनविशेष, आंखमें लगानेका एक अंजन। इसके बनानेका तरीका—रसांजन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मालती तथा निमका पत्ता, इन सबों को गोबरके रसमें पीस कर डेढ़ मटर परिमाणकी गोली बनावे। इससे जो अंजन तैयार होता है उसके लगानेसे रतौंधी दूर होती है। (भाव० नेत्ररोगाधि०)

रोपणीवर्त्ति (सं० स्त्री०) कुसुमाभिध नेत्राञ्जन नववर्त्तिभेद।

रोपणीय (सं० त्रि०) रूप-अनीयर, वा रुह-णिच् अनीयर्। रोपणयोग्य, लगानेके काबिल।

रोपना (हिं० क्रि०) १ जमाना, लगाना। २ अड़ाना, ठहराना। ३ कोई वस्तु लेनेके लिये हथेली या कोई बरतन सामने करना। ४ पौधेको एक स्थानसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर जमाना, पौधा जमीनमें गाड़ना। ५ बीज रखना, बोना।

रोपनी (हिं० स्त्री०) रोपनेका काम, धान आदिके पौधोंको गाड़नेका काम।

रोपयितृ (सं० त्रि०) रुह णिच्-तृच् वा रूप-णिच् तृच्। रोपणकारी, लगानेवाला।

रोपि (सं० स्त्री०) दारुण वेदना, बहुत दर्द।

(अथर्व ५।३०।१६)

रोपित् (सं० त्रि०) १ लगाया हुआ। २ उठाया हुआ, खड़ा किया हुआ। ३ मोहित, भ्रान्त। ४ स्थापित, रखा हुआ।

रोपिन् (सं० त्रि०) स्थापनकारी, स्थापित करनेवाला। लगानेवाला, जमानेवाला।

रोपुषी (सं० स्त्री०) लोपयित्री। छेद्री, सूराख करनेवाला, छेदनेवाला।

रोप्य (सं० त्रि०) रोपणयोग्य, रोपनेके लायक।

रोप्यातिरोप्य (सं० पु०) धान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

रोब (अ० पु०) बड़प्पनकी धाक, दबदबा।

रोबदार (अ० वि०) जिसकी चेष्टासे तेज और प्रताप प्रकट हो, रोबदाबवाला, प्रभावशाली।

रोम (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। ३ लोम, देहके बाल, रोयाँ। ४ छिद्र, सूराख। ५ जनपदविशेष। रोम-साम्राज्य देखो।

रोमक (सं० क्ली०) रोमे कायतीति कै क। १ पांशु लवण, शाकंभरी नमक। २ अयस्कान्तभेद, चुम्बक। रोमैव स्वार्थे कन्। (पु०) ३ रोमनगर। ४ इस देशका मनुष्य। ५ पञ्जाबके पश्चिम प्रान्तका एक प्राचीन नगर।

(भारत २।५०।१५)

"औष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान् पुरुषादकान्।"

(भारत २।५०।१५)

गरुड़पुराणमें (८।२०) तथा कुमारिकाखण्डमें (११५।२।२) इस देशके उत्पन्न रत्नका उल्लेख है। ५ महानिम्ब। (वैद्यकनि०) ६ एक ज्योतिषसिद्धान्त।

रोमकन्द (सं० पु०) रोमयुक्तः कन्दो मूलमस्य। पिण्डालु।

रोमकपत्तन (सं० स्त्री०) रोमकं पत्तनमिति कर्मधा०। एक नगरका नाम। कोई इसे अलेकसन्द्रियां और कोई कनस्तान्तिनोपल मानते हैं।

रोमकर्णक (सं० पु०) शशक, खरगोश। (वैद्यकनि०)

रोमकसिद्धान्त (सं० पु०) रोमकाचार्यका लिखा हुआ एक ज्योतिष-ग्रन्थ।

रोमकाचार्य (सं० पु०) एक विख्यात ज्योतिर्विद्। शाकल्यसंहिता और वराहमिहिरकृत हायनरत्नमें इनका उल्लेख है।

रोमकायन (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

(बृहत्कर्मपु० ३।१०)

रोमकूप (सं० पु०) रोम्णां कूपः। लोमविवर, शरीरके वे छिद्र जिनमेंसे रोएं निकलते हुए होते हैं।

रोमकेशर (सं० पु०) रोम्णां केशरमिव। चामर, चंवर।

रोमगर्त्त (सं० पु०) रोम्णां गर्त्तः। रोमकूप, लोमछिद्र।

रोमगुच्छ (सं० पु०) रोम्णां गुच्छः। चामर, चँवर।

रोमगुच्छक (सं० पु०) चामर, चँवर।

रोमगुल्स (सं० पु०) चामर, चँवर।

रोमरावत् (सं० त्रि०) १ रोमयुक्त, रोएंवाला। २ पूंछ-वाला।

रोमतक्षरी (सं० स्त्री०) अरोमा स्त्री।

रोमत्यज (सं० त्रि०) लोमनाशक।

रोमद्वार (सं० पु०) रोमकूप देखो।

रोमद्वीप (सं० पु०) कृमि, किरमिजी।

रोमन् (सं० क्ली०) रौतीति रु (नामन् सीमन् व्य मन् रोमन्निति। उणा ४।१५०) इति मनिन् प्रत्ययेन साधुः। १ शरीरजातांकुर, रोआं। पर्याय—लोम, अङ्गज, त्वगज, चर्मज, तनूरुह। (राजनि०)

शरीरके रहस्यस्थान अर्थात् गोपनीय स्थानमें जो रोआं उत्पन्न हो उसे स्पर्श नहीं करना चाहिये। (कूर्मपु० १५ अ०) २ जनपदविशेष। ३ उस देशका वासी। (पु०, ३ भूमि। (भारत ६।६।५५)

रोमन कैथलिक (अं० पु०) ईसाइयोंका प्राचीन सम्प्रदाय। इसमें ईसाकी माता मरियमकी तथा अनेक सन्त महात्माओंकी उपासना चलती है और गिरजोंमें मूर्त्तियां भी रखी जाती हैं।

रोमन्थ (सं० पु०) सींगवाले चौपायोंका निगले हुए चारेको फिरसे मुंहमें ला कर धीरे धीरे चबाना, पागुर।

रोमपाट (सं० पु०) ऊनी कपड़ा, दुशाला आदि।

रोमपाद (सं० पु०) अङ्ग देशके एक प्राचीन राजा। इनका उल्लेख वाल्मीकीय रामायणमें (बाल० सर्ग ६) है। कहते हैं, कि यह राजा बड़ा अन्यायी और अत्याचारी था। इनके पापोंसे एक बार भयंकर अनावृष्टि हुई। राजाने शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुला कर उपाय पूछा। उत्तरमें सबने ऋष्यशृंग मुनिको लाकर उनके साथ राजकन्या शान्ताका विवाह कर देनेकी राय दी। वेश्याओंको चेष्टासे ऋष्यशृंग मुनि लाये गये और खूब वृष्टि हुई। तब राजाने अपनी कन्या शान्ताका उनसे विवाह कर दिया।

रोमपुलक (सं० पु०) रोम्णां पुलकः। रोमहर्ष, रोमाञ्च।

रोमफला (सं० स्त्री०) तिन्तिश, डेंढ़सी।

रोमबद्ध (सं० त्रि०) १ जो रोयोंसे बंधा या बुना हो। (पु०) २ वह वस्त्र जो रोयोंसे बंधा या बुना हो।

रोमभूमि (सं० स्त्री०) रोम्णां भूमिरिव। त्वक्, चमड़ा।

रोममूर्द्धन् (सं० त्रि०) रोमयुक्त मस्तकविशिष्ट, जिसके शिरमें बाल हों।

रोमरलासार (सं० पु०) उदर, पेट।

रोमरन्ध्र (सं० क्ली०) रोमकूप, शरीरके वे छिद्र जिनमेंसे रोएं निकले हुए होते हैं।

रोमराजि (सं० स्त्री०) रोम्णां राजिः। १ रोमावलि, रोयोंकी पंक्ति। २ रोयोंकी वह पंक्ति जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर जाती है।

रोमलता (सं० स्त्री०) रोम्णां लतेव, रोमावलि, रोम-राजि।

रोमलतिका (सं० स्त्री०) नाभिके ऊपर स्त्रियोंके लोमकी रेखा।

रोमलवण (सं० क्ली०) शाम्भर लवण, शाकंभरी नमक।

रोमवत् (सं० त्रि०) रोमन् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः नस्य लोपः। रोमविशिष्ट, रोयाँवाला।

रोमवल्ली (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

रोमवाहिन् (सं० त्रि०) रोआं काटनेके योग्य तेज धार-वाला।

रोमविकार (सं० पु०) रोम्णां विकारः। रोमाञ्च।

रोमविक्रिया (सं० स्त्री०) रोमाञ्च, आनन्दसे रोओंका उभर आना।

रोमविध्वंस (सं० पु०) १ लोमनाशकारी। २ खटमल।

रोमविवर (सं० क्ली०) रोम्णां विवरं। लोमकूप।

रोमवेध (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

रोमश (सं० पु०) रोमाणि सन्त्यस्येति रोमन् (लोमादि पामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००) इति शः। १ मेष, मेड़ा। २ पिण्डालु, रतालु। ३ कुम्भी। ४ शूकर, सूअर। ५ ऋषिविशेष। इस ऋषिका एक एक

रोम गिरनेसे एक एक इन्द्रपति होता था। इस प्रकार इनके जब सभी रोम गिर जायेंगे, तब इनकी परमायु शेष होगी। अपनी परमायु थोड़े दिनोंके लिये जान कर इन्होंने रहनेके लिये कोई घर नहीं बनाया, केवल वर्षाकालमें ये धारापात रोकनेके लिये शिर पर कट (चटाई) रख कर तपस्या करते थे। (भागवत ६।१५) विशेष विवरण ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें लिखा है।

(क्ली०) ६ उपस्थ, नीचेका मध्य भाग। (त्रि०) ७ अत्यन्त रोमविशिष्ट, जिसके बहुत रोयें हों।

रोमशपत्रा (सं० स्त्री०) देवताड़वृक्ष, एक प्रकारका तृण या पौधा।

रोमशफल (सं० पु०) रोमशं फलमस्य। डिण्डिशवृक्ष, ढेंड़सी।

रोमशमूलिका (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी।

रोमशसिद्धान्त—रोमशमुनिका बनाया हुआ एक ज्योतिष-ग्रन्थ।

रोमशा (सं० स्त्री०) रोमाणि सन्त्यस्या इति रोमन् श, टाप्। १ दुग्ध वृक्ष। २ लोमशी, बृहस्पतिकी कन्या। (ऋक् १।१।२६) ३ कर्कटिका, ककुई। ४ अलगर्द नामक एक विषैला जोंक। (सुश्रुतस० १३ अ०) ५ मांसरोहणी।

रोमशातन (सं० क्ली०) रोम्णां शातनं। लोमका उद्ध्ंसन, बाल काटना।

रोमशूक (सं० क्ली०) रोमयुक्तं शूकं यस्य। स्थौणेयक, थुनेर।

रोम-साम्राज्य (रोमक-साम्राज्य)—पाश्चात्य-सभ्यताके आदर्शक्षेत्र सुप्राचीन रोम नगरसे रोम तथा लेटिन जाति-की सौभाग्योन्नतिके साथ साथ शौर्य वीर्य और राजतन्त्रके प्रतिष्ठाप्रभावसे राज्यसमृद्धिकी परिवृद्धिके साथ क्रमशः जो बड़ी राज्यसम्पद् अर्जित हुई थी, वही ईसाकी ३री शताब्दीमें रोमकसाम्राज्यके नामसे परिचित हुआ।

पुराने जमानेमें यह फैला हुआ रोमकराज्य कई भागोंमें विभक्त था और इस समय वे सब विभिन्न देश भिन्न भिन्न राजाओंके द्वारा वा प्रजातन्त्रके प्रतिनिधियोंके साहाय्यसे परिचालित हुआ उसकी सूची नीचे दी जाती है—

यूरोपीय-राज्य।

लेटिन नाम — वर्त्तमान नाम

ब्रिटानिया— इङ्गलैण्ड और वेल्स।

गालिया—फ्रान्स, बेलजियम, हालेण्ड, और स्वीजरलैण्डका कुछ अंश।

हिसपानिया—स्पेन और पुर्त्तगाल।

बलियारिस—बेलियारिक द्वीपपुञ्ज।

सिसिलिया—सिसिली।

इटालिया—इटली।

रेटिया—स्वीजरलैण्ड और अष्ट्रो हङ्गरीका कुछ अंश।

भिण्डेलिसिया—जर्मनसाम्राज्यका दक्षिणांश।

जार्मानिया—विश्चुला नदीके पश्चिम किनारे तक जर्मन साम्राज्य और पोलण्डका कुछ अंश और डेनियूबके किनारे तक अष्ट्रिया राज्य।

पानोनिया—डेनियूब नदीके पश्चिम किनारे तक अष्ट्रो-हङ्गरी प्रदेश।

डाकिया—थिस नदीके पूर्णवर्त्ती अष्ट्रो हङ्गरी प्रदेश और प्रूथ और डेनियूब नदीके बीचका रूमानिया राज्य।

नोरिकम—डेनियूब नदीके दक्षिण किनारेके वियना नगरके समीपवर्त्ती प्रदेशसे आड्रियाटिक समुद्र तक।

इलिरिकम्—आड्रियाटिक सागरोपकुलवर्त्ती अष्ट्रो-हङ्गरी प्रदेश, मण्टिनिग्रो और तुर्कीका कुछ अंश।

एपिरस—ग्रास और इलिरिकमके मध्यवर्त्ती तुर्की प्रदेश।

कर्सिका, सार्डिनिया, साइप्रस और क्रीट द्वीप—भूमध्य सागरका मध्य।

आकाइया—ग्रीसराज्य।

माकिदोनिया—तुर्कीका कुछ अंश।

थ्रासिया—बुलगेरिया और कनस्तान्तिनोपल नामक तुरुष्क विभाग।

मीसिया—सर्विया और तुर्कीका कुछ अंश।

एशिया का अन्तर्भुक्त राज्य

माइसिया, लिडिया, कारिया,—इजियन सागरतीरवर्त्ती माइनर प्रदेश।

बिथनिया और पेण्टस—कृष्णसागरके दक्षिण और एशियामाइनरके दोनों प्रदेश।

कार्सोनेससटोरिका—युरोपिय रूसियाका क्रिमिया-विभाग।

कलकिस, इबेरिया, अलबानिया—काकेसस (कोहे-काक) पहाड़के दक्षिण और अर्मेनियाके उत्तर और कृष्णसागरसे कास्पीय झील तक विस्तृत भूखण्ड।

फ्रिजिया, पिसिडिया, गेलेसिया, लाइकोनिया, कापाडोकिया और अर्मनिया माइनर—एशिया माइनरके अन्तर्गत।

अर्मेनिया—असीरियाके उत्तर।

असीरिया, मेसोपोटामिया, बाबिलोनिया, काल्डिया-राज्य, अररिया पिट्रियाराज्य, सिरिया और पार्थिया—लिभाण्ट-उपसागरके किनारेसे पारसके पश्चिमार्द्ध, अरबके उत्तर और अर्मेनियाके दक्षिण तक फैला हुआ भूखण्ड।

अफ्रिकाके अन्तर्गत राज्य।

मौरिटानिया, न्यूमिडिया, अफ्रिका (राजधानी कार्थेज) लिबिया और इजिप्टस नामक भूमध्यसागरके किनारेके अफरिकाका तटीय प्रदेश। ये सब राज्य भाग इस समयके मोरोक्को, अलजिरिया, ट्यूनिसो, ट्रिपोली, बार्का और इजिप्ट (मिस्र) राज्यका कुछ अंश ले कर गठित हुआ था।

इस समय यूरोपके प्रदेशोंमें जो पर्वत और नदियां दिखाई देती हैं, उस समय भी वे सब उसी भावसे मौजूद थीं। विसुवियस, ष्ट्रम्बोली और एटना नामक आग्नेय गिरिके अग्न्युद्गमने उस समय रोम-राजधानीको कम्पित कर दिया था। अत्यन्त प्राचीन हाकुलेनियम और पम्पियाई नगर विसुवियसके ज्वलन्त धातव निस्रावसे और उत्तप्त भस्मोंसे भर गया था। दो वर्ष तक उसका चिन्ह तक न था। इस समयका रोमराज्य इमानुयेलके शासनकालमें उस लुप्तप्राय दोनों नगरोंकी अतीत कीर्त्ति प्रकट हुई थी। कुछ दिनों तक वहां अग्न्युद्गम नहीं था। सन १६०५ ई०से फिर धीरे धीरे अग्न्युद्गम दिखाई देने लगा। गत सन १६२८ ई०में भी अग्न्यस्फुरण हुआ था।

इस प्राचीन समृद्ध रोमराज्यके वाणिज्यप्रभावकी याद करने पर मनमें अभूतपूर्व विस्मय जागरित हो उठता है। जिस समय जलद्वारा वाणिज्य करनेका कोई द्रुतगामी ष्टीमर न था, उस समय रोमकने भूमध्यसागरके वक्षस्थल पर नावों पर चढ़ मिस्रसे भारत और पारस्यकी चीजें अपने देशमें ले आते थे। गथ, हूण, भाण्डाल और वर्बर जिस समय पश्चिम एशियाके पाश्चात्य जातिमात्रके लिये भयके कारण हो उठे थे, उस समय निडर रोमजाति अपने बाहुबलसे उस दुर्दमनीय एशिया वासियोंका दमन कर अक्षुण्ण भावसे तुर्कोंके बीच खुश्कीकी राहसे कारोबार करते थे। युद्धकालमें जैसे रोमक क्षिप्रहस्त थे, वैसे ही अस्त्रशस्त्र बनानेमें भी यह कम न थे।

रोमराजधानीमें भारतीय मणिमुक्ताका यथेष्ट आदर था। यह बात पुस्तकोंके पढ़नेसे ज्ञात होती है, इसी कारण समुद्रमें चलनेवाली बड़ी बड़ी नावोंके चलानेमें भी यह बड़े कुशल और श्रमशील थे। उस समय डांड और पालकी सहायतासे जहाज समुद्रमें चलता था। कार्थेजिनीय सरदार हानिबलके रोम-आक्रमणके समय और रोम-सेनापति सिपियोंके यूनानी-आक्रमण-कालमें ऐसी डाँड और पालसे चलनेवाले जहाजें व्यवहृत हुए थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। इतिहासमें रोमकोंकी कर्मोन्नतिका यथेष्ट परिचय दिया गया है।

इटलीके अन्तर्गत टाइबर नदीके किनारे रोमा (Roma) नगरी इस विस्तृत साम्राज्यकी राजधानी थी। यहां ईसासे दो शताब्दी पहले ईसाकी १४वीं शताब्दी तक कारीगरी, शिल्प, वाणिज्य और सङ्गीतादि कलाविद्याकी जैसी उन्नति हुई थी, वैसी यूरोपकी किसी राजधानीमें किसी विषयकी उन्नति देखी नहीं जाती। रोमका "कालोसियम" महल कारीगरी या स्थापत्य विद्याका चरम निदर्शन (नमूना) है। यह जगत्के सातो आश्चर्योंमें एक है।

वर्त्तमान जगत्की उन्नतिके साथ साथ इटलीमें भी नाना विषयोंकी उन्नति हुई। किन्तु इस समय रोमनों-

लेटिन नगरके अधिवासियोंने रोमनोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया, किन्तु शीघ्र ही वे पराजित हुए। रोमुलासने किनानीके राजा आक्रेनको अपने हाथों मार डाला और लूटी हुई सम्पत्तिकों 'जुपिटर' के चरणोंमें रख दिया।

अन्तमें सेवाइन राज्यके अन्तर्गत क्यूरेशके पराक्रमशाली राजा टाइटस्ने असंख्य वीरवाहिनियोंको ले कर युद्धकी यात्रा की। इस तरह ऐसे बहुसंख्यक सैनिकोंके साथ खुल्लमखुल्ला युद्ध करना असम्भव समझ रोमुलासने किलेमें प्रवेश किया। इससे पहले रोमुलासने केपिटा लाइन पर्वतके चारों ओर रक्षाका उचित प्रबन्ध किया था। टार्पियास नामक एक सेनापतिको उसने केपिटा लाइनकी रक्षाका भार दे रखा था। किन्तु इस सेनापतिकी कन्या टार्पिया सेवाइन सैन्योंके कानोंमें सोनेका कुण्डल पहने देख विमुग्ध हो उठी। उसने सेवाइन् सेनापतिके पास दूत भेज कर कहला दिया, कि "तुम लोग अपने कानोंके कुण्डल देना स्वीकार करो तो मैं किलेमें घुस आनेका उपाय बतला दूंगी।" सेनापतिने टार्पियाकी बात स्वीकार कर ली। आधी रातके समय भूषणप्रिया टार्पियाने नगरका दरवाजा खोल दिया। चीटियोंकी श्रेणीकी तरह सेवाइन सैन्य किलेमें घुस आई। जब टार्पियाने अपना पुरस्कार मांगा तो, फौजोंने लात मुक्के से उसे उचित पुरस्कार दिया। वह शीघ्र ही परलोकगामी हुई। उसी समयसे राजद्रोहियोंको इस पर्वतसे नीचे गिराया जाता था।

दूसरे दिन रोमनोंने केपिटा लाइनकी रक्षाके लिये अपनी फौजोंको सुसज्जित किया। पलेटाइन और केपेटालाइनकी बीचकी उपत्यकामें भीषण युद्धानल प्रज्वलित हुआ। कुछ देर तक भीषण युद्ध होनेके बाद जिस समय फौजें लौटनेको थीं; उस समय रोमुलासने मनमें मनौती की, यदि युद्धमें विजय पाऊंगा, तो जुपिटरका एक मन्दिर बनवा दूंगा। इसके बाद रोमन सैनिक दुगुने उत्साहसे युद्ध करने लगे। ऐसे समय जिसके लिये युद्ध हो रहा था वही अपहृता कन्यायें आ कर युद्धक्षेत्रमें सेवाइन सैनिकोंसे युद्ध बन्द करनेका अनुरोध करने लगी। रमणीकी प्रार्थना पर कौन ध्यान नहीं दे सकता? सेवाइनोंने रोमनोंके साले ससुर बन इस विवाह-बन्धनको और भी दृढ़ कर दिया। रोमन रोमुलासके अधीनमें पेलेटाइन पहाड़ पर रहने लगे। उधर सेवाइन टाइटस् टेनियासके अधीन केपिटालाइन पर्वत पर रहने लगे। इन दोनों राज्योंके बीचकी उपत्यकामें सेनेटाका अधिवेशन होता था। इसके साथ ही 'फोरम' की प्रतिष्ठा हुई। ये दोनों राज्य बहुत दिनों तक स्थायी न रह सके। कुछ आततायी लेटिनोंके हाथ टाइटस् मारा गया। इसके बाद इन दोनों राज्यों पर अकेले रोमुलास ही शासन करने लगे। कुल ३६ वर्ष तक रोमुलासने राजत्व किया। एक दिन रोमुलास पोइसपुल नामक स्थानमें कम्पास मासियस् प्रजापुञ्जका निरीक्षण कर रहे थे, ऐसे समय आकाशमें सूर्य्यग्रहण दिखाई दिया। तुरत ही एक तूफान दिखाई दिया और उसी तूफानके साथ रोमुलासके पिता मार्स एक अग्निमय पुष्पक रथ पर रोमुलासको बैठा कर स्वर्गगामी हुए। दूसरे दिन कोई उसको देख न सका।

नुमापम्पिलियसका राजत्वकाल।

(७१५-६७३ ईसासे पूर्व।)

रोमुलासको मृत्युके बाद रोमकोंने परमज्ञानी और धार्मिकप्रवर नुमा पम्पिलियसको राजा मनोनीत किया। उन्होंने परलोकवासी टाइटस् टेसियासकी पुत्रीसे अपना विवाह किया। इसने शान्तिके साथ ४२ वर्ष तक राजत्व किया। यह रोम साम्राज्यके सर्वप्रथम धर्मशास्त्रप्रयोक्ता हैं।

नुमाने साम्राज्यके हितकर कितने ही काम किये। उसने पञ्चाङ्गको शुद्ध कर ज्योतिषशास्त्रकी उन्नति की। उसने सम्पत्तिकी सीमा निर्धारित कर उसे टार्मिनास नामक देवताके अधीन सौंप दिया। उसने जिनिस नामक दोमुखे एक देवताका मन्दिर बनवाया था। युद्धके समय ही इस मन्दिरका दरवाजा खुलता था और शान्तिके समय यह दरवाजा सदा बन्द रहता था।

टाल्लासहष्टलियस।

(६७३-६४२ ई० पू०।)

नुमाकी मृत्युके बाद टाल्लासहष्टलियस राजा मनोनीत

हुए। इसका राजत्वकाल शान्तिके बजाय युद्धविग्रहसे परिपूर्ण था। इनमें आलवा लङ्गाका ध्वंस ही सर्वापेक्षा प्रसिद्ध घटना है।

रोमन सैनिकोंमें होरेशियस नामका एक आदमी था। एक ही गर्भसे इसके दो भाई और यह पैदा हुए थे। इसी तरह आलवान नामक सैन्यदलके क्यूरिशियस नामक एक गर्भजात तीन भाई थे। ऐसा स्थिर हुआ कि इन तीन भाइयोंमें द्वन्द्व युद्ध होगा। इस द्वन्द्व युद्धमें होरेशियसके दोनों भाई मारे गये। अन्तमें होरेशियसने एक एक करके तीनों भाइयोंको धराशायी कर दिया।

जिस समय विजयोल्लासके साथ होरेशियस् अपने नगरमें प्रवेश कर रहे थे, ऐसे समय राहमें उसको देख उसकी बहन जोर जोरसे रोने लगी, क्योंकि मृतभाइयोंमें एक भाईसे उसका प्रेम हो गया था। इस समय नगरमें प्रवेश करते देख अपने प्रेमीको न देख वह चिन्तित हो उठी, यह ज्ञान कर वह रोमकवीर क्रोधित हो उठा। उसने तलवारकी चोटसे अपनी बहनको मार डाला। इस अपराधमें वहांके विचारकोंने उस रोमकवीरको फाँसी पर चढ़ा दिया था। इस काण्डसे रोमनोंको भीषण शिक्षा मिली थी।

इसके बाद टाल्लासने फिडनी और एट्रास्कानोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। अलवान रोमनोंके अधीन युद्धक्षेत्रमें गये। किन्तु जब तक रोमकसैन्य एटास्कानोंके साथ घोरतर युद्धमें प्रवृत्त था, तब तक अलवान पहाड़ पर छिपे खड़े थे। इस काण्डसे क्रोधित हो टाल्लासने अलवाको ध्वंस करनेका हुक्म दिया। शीघ्र ही अलवानगर ध्वंस हुआ। वहांके अधिवासी बाल-वृद्ध-वनिताको ले फिलियन पर्वत पर रोमकोंकी प्रजा बन कर रहने लगे। इस तरह टाल्लासने युद्धमें फँसे रह कर ३१ वर्ष तक राजत्व किया था।

आन्कास मर्शियास (६४२-६१७ ई० पू०)

टाल्लासकी मृत्युके बाद नुमाका नाती सेवाइनवासी अंकास-मर्शियास राजा मनोनित हुआ। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही पदाङ्कधर्मानुसरण कर सर्वधर्मानुष्ठानको पुनर्जीवित किया। किन्तु लेटिन नगरके अधिवासियोंके साथ युद्धमें प्रवृत हो उसको शान्तिभङ्ग करना पड़ा। युद्धमें उसने कई लेटिन नगरों पर अधिकार कर लिया। २५ वर्ष तक राजत्व कर अंकास परलोकगामी हुआ। इसके बाद प्रिस्कास राजा हुआ।

ल्यूशियस टार्कुइनयास प्रिस्कास (६१७-५७६ ईसासे पूर्व)।

वह एल्डर (ज्येष्ठ) टार्कुइन नामसे विख्यात हुआ। रोमके पांचवां राजा टार्कुइन माता एट्रास्कन और पिता यूनानी था। उसके पिता डेमारेटस् करिन्थ नगरके एक धनशाली व्यक्ति थे। डेमारेटस्ने एट्रास्कानवंशकी एक कन्यासे विवाह कर एट्रास्कानमें टार्कुइन वंशकी प्रतिष्ठा की। डेमारेटस्के ज्येष्ठ पुत्र टार्कुइनने टानाकुंइल नामी एक उच्चवंशीय रमणीके साथ विवाह किया। यह रमणी अत्यन्त उच्चाभिलाषिणी थी। टार्कुइन बहुत अल्प अङ्कास मर्शियस् और रोमवासी सवसाधारणके प्रियपात्र हो उठा। अङ्कास मर्शियस्ने उसके पुत्रोंके लिये शिक्षक नियुक्त किया। इसके बाद अङ्कास मर्शियस्की मृत्युके बाद रोमवासी प्रजाने टार्कुइनको सिंहासन पर बैठाया।

टार्कुइनका राजत्वकाल कई तरहकी प्रसिद्ध घटनाओंसे पूर्ण हुई। इसने सेवाइनोंको हटा कर उनके कलेशिया नामक नगर पर अधिकार कर लिया और अपने भतीजे इजेरियसको वहांका शासक नियुक्त किया। इसने लेटियम प्रदेशके कई नगरों पर भी अधिकार कर लिया था।

इन सब कामोंके सिवा इसने कितने ही लोकहितकर कार्य किये थे। इसने सबसे पहले केपिटा लाइन और अमेन्टाइन नामके दो पर्वतोंके बीचके जलाशयका जल निकलवा कर वहां पत्थरकी गँथाई कर फोरम और सार्कास नामके दो महल बनवाये। इसकी गँथाई ऐसी अच्छी हुई थी, कि हजारों वर्षके बाद आज उसका एक टुकड़ा भी टससे मस नहीं हुआ है। इसके बनाये 'सार्कास मेक्सिमम" नामक रङ्गालयमें कई तरहके क्रीड़ाकौशल दिखाये जाते थे। प्लिनिका कहना है, कि इसने केपिटालाइन पर्वत-शिखर पर एक विराट् सौध प्रस्तुत किया था। सिवा इसके इसने राज्यके शासन प्रणालीमें कई तरहका संस्कार किया था। इसी समय चार भेष्टल कुमारीके बदले ६ कुमारी नियुक्त हुई।

टार्कुइन सर्वियस टाल्लियस नामक गुलामके

पुत्रको बहुत प्यार करता था। इस लड़केका शैशवकाल अद्भुत घटनाओंसे पूर्ण है। एक दिन सर्भियसके बिछौनेमें आग लग गई। बिछौना जलने लगा। इसी पर यह बालक सोया हुआ था। बिछौनेसे आगकी लपट उठी सही, किन्तु लड़केको स्पर्श न कर सकी। यह देख कर टाकुइनपत्नी टानाकुइलने विस्मित भावसे कहा, यह बालक अपनी अवस्थामें सम्राट् होगा। उस समयसे उस बालकको पोष्यपुत्रकी तरह पालन करने लगी और अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया।

भूतपूर्व राजा अङ्कास मर्शियसके पुत्रोंने देखा, कि भविष्यत्में यही दामाद राजसिंहासन अधिकार करेगा। इसलिये उसने राजाको गुप्तरूपसे मार डालनेके लिये दो आदमी नियुक्त किये। इनमें एकके ही कुठाराघातसे टाकुइन सांघातिक चोटसे आहत हुआ। किन्तु अङ्कास मर्शियसके पुत्र इस गुप्तहत्याका फल लाभ नहीं कर सके। बुद्धिमती रानी टानाकुइनने साधारण प्रजामें यह प्रचार कर दिया, कि टाकुइनकी चोट सांघातिक नहीं है। यह शीघ्र ही आराम होगा। इधर अपने प्रियपोष्यपुत्र शर्भियसको राजकार्य्य करनेका हुक्म दिया। सर्भियस भी प्रजारञ्जनके गुणसे थोड़े ही समयमें प्रजाप्रिय हो उठा। किन्तु टाकुइनकी मृत्युका संवाद अधिक दिन तक गुप्त न रह सका। जब टारकुइनका मृत्युसंवाद प्रकाशित हो गया, प्रकाश्यरूपसे सर्भियस राजसिंहासन पर बैठा।

सर्भियस टालियस (५७८ ५३५ ई० पू०)

छठें राजा सर्भियसको साधारणके निर्वाचनके फलसे राजसिंहासन मिला। उसके सब संस्कारोंमें शासन-संस्कार सबसे उत्तम है। वहांका शासन पहले आभिजात्यवंशगत था, किन्तु इसके समयमें वह धनगत हुआ। वहांके लोगोंमें यह इच्छा बलवती हुई, कि धन कमानेसे मैं कुलीन न होऊंगा। रोमका धनभण्डार शिल्प बाणिज्य-कृषिसे उत्पन्न धनसे परिपूर्ण होने लगा। सर्भियसने रोमकोंको चार भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उसने सबसे पहले मर्दुमशुमारी कर सम्पत्तिका मूल्य निर्द्धारित किया। उक्त चारों विभाग धनगत थे। जिनके पास एक लाख या इससे अधिक रुपया था, वे सबसे धनी कहे जाते थे। पांचवीं श्रेणीके लोगोंके पास १२५००) रुपया रहता था।

इस शासन-संस्कारके बाद सर्भियसने रोम नगरकी सीमा वृद्धि की। पहले 'पमरिरम' नगरकी निर्दिष्ट पवित्र परिधि थी। अब कुइरिनल, मिमिनेल और एस्‌क्वलेन पर्वत इस नगरकी सीमाके अन्तर्गत आ गये। इस सीमाके चारों ओर पत्थरकी गँथाईकी चहारदीवारी उठा दी गई। इसको लोग सर्भियसकी चहारदीवारी कहते हैं। इस समय रोमकी परिधि ५ मीलकी हुई। नगरके बाहरी दरवाजे पर एक मील लम्बा एक प्रकाण्ड स्तूप तैयार हुआ और १०० फुट चौड़ी ३० फुट गहरी एक खाई खोदी गई। रोमके सम्राटोंके शासनकाल तक वही नगरकी सीमा निर्दिष्ट थी। इस घटनाके बाद सर्भियसने लाटियमके अन्यान्य प्रदेशोंके अधिवासियोंको रोममें मिला कर उनको समान अधिकार दिया।

पूर्वोक्त ज्येष्ठ टाकुइनके दो पुत्रोंके साथ सर्भियसकी दो कन्याओंका विवाह हुआ। इनमें ज्येष्ठ पुत्र ल्यूशियस निष्ठुर प्रकृतिका था; किन्तु उसकी स्त्री अत्यन्त कोमल प्रकृतिकी थी। छोटा लड़का अर्णास अत्यन्त नम्र और धार्मिक था। फिर भी उसकी स्त्री टालिया अत्यन्त क्रूर प्रकृति तथा उच्चाभिलाषिणी थी। इस असदृश तथा विषम प्रकृतिका भीषण परिणाम हुआ। ल्यूशियसने अपनी धर्मशीला पत्नीको मार डाला। इधर टालियाने अपने पतिका प्राणहरण किया। अबल्यूशियसने बड़ी खुशीके साथ अपनी अनुजपत्नी ल्यूशियसने टालियाके साथ विवाह किया। किसीने भी पति और पत्नीकी हत्या पर जरा भी शोक प्रकट न किया।

सर्भियसकी प्रिय पुत्री टालिया पतिकी हत्या और मैंसुरसे विवाह कर अपने पिताकी हत्याकी फिक्रमें लगी। अन्तमें इन दोनों पति पत्नीने सर्भियाका प्राणनाश कर दिया। जिस समय टालिया गाड़ी पर चढ़ कर घर लौट रही थी, उसी समय लहूलुहान सर्भियसकी शवदेह सड़क पर छटपटा रही थी। कोचवान ने यह देख कर घोड़ेकी रश्मी रोक दी। किन्तु उपर्युक्त

कन्याने कोचवानको हुकम दिया, कि तुम पिताकी शवदेह के ऊपरसे गाड़ी चला ले चलो। ऐसा ही हुआ, गाड़ी के चक्केसे शवदेहके दो खण्ड हुए। इससे निकले हुए रक्तके छींटोंसे टालियाकी पोशाक भींग गई। उसी समयसे इस सड़कका नाम (Wicked street) विकेड ष्ट्रीट अर्थात् निष्ठुरपंथ रखा गया। सर्भियसके मृत-शरीरका कोई सत्कार न हुआ। इसने ४३ वर्ष तक राजत्व किया था।

ल्यूशियस टार्कुइनस सुपर्वास। (५३५-५१० ईसासे पूर्व)

ल्यूशियसको लोग अहङ्कारी टार्कुइन कहते है। इसने धनिकोंको देशसे निकाल कर उनकी धनसम्पत्ति पर अधिकार करना आरम्भ किया। इसने अपने जीवन नष्ट होनेकी आशङ्कासे देहरक्षक नियुक्त किया था। वह रोम पर भीषण अत्याचार करने पर भी विदेशमें एक पराक्रमशाली राजाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने अक्टृभियस मानेलियसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर लाटियममें प्रभुत्व स्थापित किया। इसके बाद टार्कुइनने भलसियानोंके समृद्ध सुयेषा, पमेरिया नगर पर अधिकार कर बहुतसे धन-सम्पत्ति लूट ली और उसी धनसे केपिटालाइन पर्वतके शिखर पर जुपिटर, जुनो, एवं मिनार्भा—इन तीन देवताओंके नाम पर केपिटालियम नामक एक विराट् मन्दिर बनवाया। मन्दिरकी बुनियाद खोदते समय एक ताजा नरमुण्ड कटा हुआ पाया गया था। इस मन्दिरमें एक भूगर्भस्थ कोठरीमें अनेक पवित्र हस्तलिखित पुस्तकें रखी हुई थीं।

इसके बाद टार्कुइनने गेबियाई नामक एक लेटिन नगर पर विश्वासघातकतापूर्वक अधिकार किया। इस समय एक दैवी घटनासे वह व्यथित हुआ। एक दिन एक सर्प पूजाकी वेदीसे निकल कर बलिदान किये हुए बैलकी अँतड़ी खाने लगा। यह देख टार्कुइनने इसका मर्म जाननेके लिये अपने दो पुत्र तथा बहनको यूपानाके डेलिफीके यहां भेजा। इधर टार्कुइन जब अर्डिया पर अधिकार करनेके लिये युद्धमें जा रहा था, उस समय उसके पुत्र सेक्टसने लेशियसकी पतिपरायणा स्त्री लुक्रेशियका सतीत्व नाश किया। एक आधी रातको सेक्टसने हाथमें नङ्गी तलवार ले कर लुक्रेशियाकी कोठरीमें प्रवेश किया और कहा—"यदि तुम मेरी बात न मानोगी, तो मैं तुमको मार डालूंगा और बाहर कहूंगा, कि तुम गुलामके साथ व्यभिचार कर रही थी, इसीसे तुमको मैंने मार डाला है।" लुक्रेशियाने प्राणभयकी अपेक्षा कलङ्कका अधिक डर माना। सेक्टसके इस अमानुषिक काण्डके करनेके उपरान्त लुक्रेशियाने अपने पिता और पतिको बुला कर इसका बदला चुकानेके लिये उत्तेजित किया और छातीमें छुरा मार कर इस कलङ्कमलिन अनुतप्त जीवनलीलाका अन्त कर दिया। इस काण्डसे रोमके अधिवासी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने राजा तथा उसके परिवारवर्गको देशनिकालका दण्ड दिया। उस समय टार्कुइन बाहर युद्धमें प्रवृत्त था। उसका भांजा एलब्रूटसने सैन्यका अधिनायक हो कर टार्कुइनके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। राजाकी फौजें अत्याचारी राजाकी अधीनता छोड़ कर ब्रूटसके अधीन हुई। टार्कुइन शीघ्रतासे रोम लौट आया; किन्तु किसीने नगरका दरवाजा न खोला। उस समय वह डर कर अपने पुत्रोंके साथ कायेरी नामक स्थानमें जा बसे। वह २५ वर्ष तक राजत्व कर पुत्रके दोष तथा प्रजाकी ओरसे निर्वासित हुआ।

रोममें राजतंत्र प्रणालीकी जगह प्रजातंत्र-शासन कायम हुआ। इस घटनाको अमर करनेके लिये रोम-वासियोंने ईसाके ५१० पूर्वकी २४ फरवरीको रेजिफिडजियम या फिडगालिया नामक वार्षिकोत्सवका सूत्रपात किया। किन्तु प्रजातन्त्रप्रणालीके बदले शासनप्रणालीके मूलका परिवर्त्तन न हुआ। प्रजाके चुने हुए दो महामाण्डलिक नियुक्त हुए। उनका यह पद तीन वर्षके लिये स्थायी हुआ। वे ही साधारणकी सम्मतिसे राज्यशासन करने लगे। ये पिटर और पीछे कन्सल नामसे पुकारे गये।

सन् ५०६ ईसासे पूर्व एल-ब्रूटस् और टार्कुइनस कोलेशियस पहले कन्सल नियुक्त हुए। किन्तु टार्कुइन वंशोद्भव होनेकी वजह कोलेशियस पीछे रोम परित्याग करने पर बाध्य हुए और पिमालेसियस उनकी जगह नियुक्त हुए।

इसी समय निर्वासित राजा टार्कुइन एट्रास्कानोंकी सहायतासे अपहृत राज्यको पुनः पानेका उद्योग करने लगा। टार्कुइनने अपनी निजी (*Private*) सम्पत्ति-को पानेका दावा कर दो दूतोंको रोम भेजा। कन्सलोंने यह प्रार्थना न्याय समझ कर पूरी कर दी। किन्तु दूतोंने कई रोमक युवकोंसे षड़यन्त्र कर टार्कुइनको राजा बनानेकी चेष्टा आरम्भ की। एक गुलामने इस चेष्टा या साजिशको प्रकट कर दिया। इन साजिश कारियोंमें एलब्रुटसके दो पुत्र भी शामिल थे। ब्रुटसने अपने पुत्रोंका अपराध क्षमा नहीं किया। इसने सभी साजिशकारियोंकी तरह अपने पुत्रोंके वध करनेका हुक्म जारी किया। इसलिये ब्रुटसका नाम रोम इति-हासमें अमर है।

टार्कुइनने अपनी साजिशको असफल होते देख एट्रास्कानोंकी सहायतासे रोमके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। ब्रुटस और भालेरियस भी सैन्य ले कर आगे बढ़े। टार्कुइनका पुत्र आर्णास ब्रुटसके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने लगा। दोनों सांघातिक रूपसे आहत हो घोड़ेसे गिर पड़े। इसके बाद घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। जय-पराजयका निर्णय करना कठिन हो गया। एकाएक आधी रातको दैववाणी हुई—"रोमन ही जयी हुए हैं।" यह सुन कर एट्रास्कान भाग चले। भलेरियस ब्रुटसकी मृत देहको ले कर रोम लौट आये। ब्रुटसके लिये सभी हाहाकार कर विलाप करने लगे। भले-रियस न्यायके गुणसे सबके प्रियपात्र हुए। इसीलिये उसका नाम पाब्लिकाला अर्थात् प्रजाप्रिय हुआ।

इसके बाद दूसरे वर्ष सन् ५०८ ईसासे पूर्व टार्कुइन एट्रास्कानके अन्तर्गत क्रासियानके राजा लार्स पर्सेनाके शरणापन्न हुए। परसेनाने विराट सैन्य ले कर रोमके दूसरे हिस्सेके जेनिक्यूलम नामक किले पर बेरोक टोक आक्रमण किया। आमने सामने युद्ध करना असम्भव समझ रोमक देशोद्धारके लिये टाइवर नदी परके बने पुलको तोड़ने लगे। होरिशियास लक्लेस नामक एक अलौ-किक वीर असाधारण वीरताके साथ पुलके दूसरे छोर पर शत्रुसे मुकाबला करने लगा। इधर रोमक वीर पुल तोड़ने लगे। पुल टूट जानेके बाद होरिशियस शत्रुओं-के सहस्र तीरोंकी वर्षासे प्रपीड़ित हो नदीमें कूद पड़ा और उसने कहा—"पितः टाइबर नद, मुझको निर्विघ्न रोम पहुंचा दे।" तैरनेमें कुशल होनेकी वजह वह तीरों-की वर्षासे बचते हुए टाइबरके उस पार आ पहुंचा। इस घटनाको अमर बनानेके लिये रोमकी सरकार-ने उसकी एक प्रतिमूर्त्ति तय्यार कराई और सारा दिन वह जितना पैदल चल सके, उतनी भूमि उसको प्रदान की। रोमके इतिहासमें रेशियसकी यह कीर्त्ति स्वर्णाक्षरोंमें लिखी गई है।

इसके बाद पार्सनाने रोम नगर पर घेरा डाला खाद्य वस्तुओंकी आमदनी बन्द हो जानेकी वजह रोम-वासी घबरा उठे। उस समय म्युशियन नामक एक स्वदेशवत्सल पुरुषने रोमकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिया। उसने गुप्तहत्याकी चेष्टामें पार्सनाके खेमेमें प्रवेश किया। किन्तु पार्सनाको पहचान न सकनेके कारण उसने राजमन्त्रीका वध किया। इसके बाद वह पकड़ा जा कर पार्सनाके सामने उपस्थित किया गया। जिस समय पार्सनाने कष्ट दे कर उसके प्राण-नाशका हुक्म सुनाया, उस समय उसने अपने दाहने हाथको जलती हुई अग्निशिखा पर फैलाया और वह हंसने लगा। हाथ जल गया, किन्तु उसकी हास्य-रेखा उसके मुंहसे विलीन न हुई। उस समय म्यूशि-यसने निर्भीकताके साथ पार्सनासे कहा,—"मेरी तरह तुम्हारा गुप्तहत्याके लिये ६०० युवक नियत किये गये हैं, उनमें मैं ही पहला हूं। दूसरे दूसरे युवक भी एक एक करके आयेंगे।" इससे डर कर और उसकी कष्ट-सहिष्णुता तथा साहसको देख पार्सनाने उसे सकुशल रोम पहुंचा दिया। इस अद्भुत कीर्त्तिके लिये म्यूसि यसको 'सिकभोला' या 'वामबाहु' नामसे पुकारने लगे। इसके बाद रोमके साथ सन्धि कर पार्सना घर लौट आये। रोमकने सन्धिके प्रतिभूस्वरूप १० युवक और १० कुमारियोंको पार्सनाके पास भेजा। इनमें क्लिलिया नाम्नी एक कुमारी टाइबर नदको तैरते हुए पार कर घर लौट आई। रोमकोंने उसे पकड़ कर फिर पार्सनाके पास भेजा। पार्सनाने उसके असीम साहस तथा

प्रतिभा देख कर उसको और उसके साथियों को छोड़ दिया।

इसके बाद टार्कुइनने लेटिन नगरवासियोंकी सहायतासे तीसरी बार रोम पर आक्रमण किया। रोमकोंने विपद्में फंस कर एक डिरेक्टर नियुक्त किया। कन्सल डिरेक्टर नियुक्त करते थे। छः महीने तक यह पद स्थायी रहता था। डिरेक्टरोंकी सर्वतोमुखी क्षमता रहती थी। एपष्टुमियस पहले डिक्टेटर हुए। दोनों ओरकी सेना एजिल्लास झीलके निकट युद्धसज्जासे सज्जित हुई। इस भयङ्कर युद्धमें रोमक जयी हुए। टार्कुइनके पुत्र टाइटस मारा गया। टार्कुइन ज़ख्मी हो प्राण ले कर भागा।

इसके बाद टार्कुइनने राज्य पानेकी फिर चेष्टा न की। अबकी बार वह क्यूमी नामक स्थानमें भाग गया और ४९६ ईसाके पूर्व ई०में उसने इस संसारको परित्याग किया।

रेजिलास झीलके युद्धसे डिसेस्विरेट तक ४९८—४५१ ईसासे पूर्व।

पेट्रेशियन या अभिजातगण एवं प्लेबियन या निम्नश्रेणी विरोधसे परिपूर्ण है। रोमका राजतन्त्र लुप्त हो जानेके बाद शासनप्रणाली धनिकोंके हाथ आ गई। वे ही कन्सल बनते थे, वे ही विचार करते थे। क्रमशः प्लेबियनगण अत्याचारसे पीड़ित हो कर असन्तोष प्रकाश करने लगे। सिवा रोममें ऋण ग्रहण तथा वसूल करनेका नियम भी बड़ा बेढब था। प्लेबियनोंमें बहुतेरोंको दरिद्रतावश ऋणग्रस्त धनिकोंकी गुलामी करनी पड़ती थी। राजतन्त्र विलुप्त होनेके बाद राजाकी जो साधारण भूमि थी, उस पर भी पेट्रेशियन स्वेच्छापूर्वक दखल जमा कर उसका भोग कर रहे थे, प्लेबियनोंका उस पर कुछ भी अधिकार न था।

इन सब कारणोंसे प्लेबियनोंने ईसासे पूर्व सन् ४९४ ई०में रोमके तीन मीलकी दूरी पर एक नया नगर निर्माण करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु उन सबको फिरा लानेके लिये मेनेशियस एग्रिपा नामक एक मनुष्य प्रतिनिधि नियुक्त हुआ। उसने ईशपकी कथामालासे उदर और अन्यान्य अवयवोंका किस्सा सुना कर उन्हें शान्त किया। उन सबोंने कहा, 'हम लोग सब विषयोंमें यदि समान अधिकार पावें तो लौटें।' उन्होंने कंटिब्रिडन (धर्माधिकार) स्थापित कर अपने प्रति किये गये अत्याचारोंके प्रतिविधानकी चेष्टा की।

इसी समय स्पिउरियस-काशियस नामक एक विख्यात पेट्रेशियनने प्लेबियनोंके अनुकूल "एग्रेरियन ला" या "कृषिविधि" नामका एक कानून तैयार करनेकी चेष्टा की। इस कानूनसे उनका कुछ उपकार हुआ। अर्थात् इस साधारण भूमिके कुछ अंशके प्लेबियन भी अधिकारी बन गये।

इस समयके रोमके इतिहासमें करिउलेनास और भलसियनोंको और किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं है।

मर्शियास करिउलेनास नामक एक अहङ्कारी पेट्रेशियसे युवक प्लेबियनोंसे घृणा करता था। सन् ४८८ ईसासे पूर्व एक बार दुर्भिक्षके समय रोमके सहायतार्थ एक जहाज अन्न आया। करिउलेनासने उस अन्नसे प्लेबियनोंको देनेसे मना किया। इस पर प्लेबियनोंने उसका संहार करनेकी चेष्टा की। किन्तु कन्सलोंकी चेष्टासे वह बच गया। किन्तु वह युवक उस अपराधमें देशसे निकाल दिया गया। करिउलेनासने निर्वासित हो कर भलसियनोंको रोम पर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित किया। उन्होंने उसको अपनी सेनापति बना कर युद्ध करनेके लिये रोम भेज दिया। करिउलेनासने कितने ग्रामको लूट कर प्रबल प्रतापान्वित हो कर रोम पर आक्रमण किया। रोमके पुरोहित और प्रधान प्रधान सम्भ्रान्त व्यक्ति करिउलेनासके पास रोमरक्षा करनेके लिये प्रार्थना करने गये। किंतु उसने उन सबोंकी प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया। अन्तमें रोमकी रमणियां करिउलेनासकी माता भेटुरिया और स्त्री भलामणियांको आगे कर रोमरक्षाके लिये करिउलेनासके खेमेमें गईं। इनके करुणक्रन्दनसे विचलित हो कर उसने कहा "माता! तुमने रोमकी रक्षा की सही; किन्तु अपने पुत्रको मार डाला।"

इसके बाद वे भलशियानोंको लौटा-ले गये। कुछ लोगोंका कहना है, कि भलशियानोंने इस जघन्य कार्य-

से उसकी हत्या कर डाली। कुछ लोगोंका कहना है, कि वह वृद्धावस्था तक जीता रहा और सदा वह यही कहता था—"विदेशियोंमें रहनेका कष्ट वृद्धके सिवा दूसरा कोई अनुभव नहीं कर सकता।"

ईसासे पूर्व ४७७ ई०में मियेनटाइनोंके साथ एक युद्ध हुआ। उसमें रोमक जीत गये और कन्सल टाइट-मेनेलियासके हुक्मसे सारे मियाइ नगर समूल विनष्ट हुए। केवल उस वंशका एक बालक बच गया था। इसने आगे चल कर रोमके इतिहासमें ख्याति लाभ की।

ईसाके पूर्व सन् ४५८ ई०में एकुइयानोंके साथ एक भयङ्कर युद्ध हुआ। सिनसिनेटसके अद्वितीय रण कौशलसे रोमकोंने जय प्राप्त किया। जिस समय सिन-सिनेटसको सेनापति चुननेके लिये लोग गये थे, उस समय वह खेतमें हल चला रहे थे। इसके बाद उसकी पत्नी रेसिलियाने उसको एक साधारण वस्त्र दिया। उसी वस्त्रको पहन कर वह राजसभामें पहुंचा और वहां डिरेक्टर या रोमका सर्वमय कर्त्ता नियुक्त हुआ। असा-मान्य प्रतिभाके बल तथा रणकौशलसे शत्रुसैन्यको पराजित कर जयमाल्यसे भूषित हो कर वह रोम लौट आया।

डिसेम्विरेट था दश शासन ४५१-४४६ ई० पू०।

ईसासे पूर्व सन् ४७१ ई०में ट्रिव्यून पावलियस भलेराने पावलियन नामक कानून तैयार किया। इस कानूनके फलसे प्लेबियनोंको स्वतन्त्रताकी वृद्धि हुई। इसके बाद ईसासे पूर्व ४६२ ई०में ट्रिव्यूनके यासटेरे-लिटलियस अर्साके प्रस्ताव पर दश आदमियोंकी एक कमिटी संगठित हुई। किन्तु इसका पेट्रेसियनोंने बहुत विरोध किया। अन्तमें ८ वर्षों तक विरोध होनेके बाद तीन विज्ञ व्यक्तियोंको यूनान देशमें सोलनका कानून संग्रह करनेके लिये भेजा गया। वे वहां दो वर्ष तक रह कर रोम लौट आये। ईसासे पूर्व ४५२ ई०में दश आदमियोंकी एक कमिटी संगठित हुई। यह कमिटी सर्वेसर्वा हो कर शासनदण्ड परिचालन करने लगी। इनमें एपियस, क्लेडियस और टाइटस जेनिउलियस कन्सल नियुक्त हुए। इस समितिने दश धाराएं तैयार की। ये सर्वसम्मतिसे कानूनके रूपमें परिणत हुईं। पूर्वोक्त आइनकी इस धाराओंमें दो और धाराएं जोड़ दी गईं।

ईसाके ४४६ पूर्व एकुइयान और सेवाइयोंने फिर रोम पर आक्रमण किया। एपियस स्वयं युद्धक्षेत्रमें न जा कर रोममें रह गया। किन्तु उसकी साजिशसे निडर-सेनापति डेन्टाटस गुप्तरूपसे मार डाला गया। इसने १२० बार युद्धमें जय प्राप्त किया था। इसके बाद एपियासने अन्यतर सेनापति मर्जिनियाकी अलौकिक रूपवती कन्याको बलपूर्वक हरण करनेके लिये नाना उपायोंका आश्रय लिया। दूसरा उपाय न देख मर्जीनियाने अपनी प्रिय पुत्रीके वक्षस्थलमें छूरा मार कर उसका उद्धार किया। एपि-यासके इस तरहके अत्याचारसे प्लेबियन उत्तेजित हो उठे और वे रोमनगरको परित्याग कर दूसरी ओर जा कर रहने लगे। यह काण्ड दूसरा है। इस समय पेट्रे-शियन दलने निरुपाय हो कर एल् भालेरियन और एम-होरेशियन नामक दो मनुष्योंको प्लेबियनोंके साथ संधि करनेके लिये भेजा। इसके बाद इन दश आदमियोंकी यह सम्मति विलुप्त हुई और ये ही दोनों मनुष्य कन्सल नियुक्त हुए। उन्होंने फिरसे आइनका संस्कार कर प्लेबि-यनोंको बहुत सुविधायें दीं। इन दश आदमियोंमें एपि-यन कैद कर लिया गया। यह आत्महत्या कर मौतके मुखपतित हुआ। अन्यान्य लोगोंमें किसीने आत्महत्या की और कोई निर्वासित तथा कुछ लोग मार डाले गये। उनकी धनसम्पत्ति जब्त कर ली गई।

ईसाके ४४४ वर्ष पूर्व रोमकी शासन-प्रणालीमें पुनः परिवर्त्तन हुआ और इसके अनुसार ३ आदमी मिलि-टरी ट्रिव्यून या सामरिक विचारक नियुक्त किये गये। पहले कन्सल पेट्रिशियनोंसे चुने जाते थे, इस समय प्लेबियन दलसे ही सामरिक विचारक मनोनीत हुए।

इतने दिनों तक रोमराज्यकी सीमा निर्दिष्ट थी। अब रोमकोंने एट्रेरिया पर अधिकार कर वहां और अन्यान्य जगहोंमें उपनिवेश कायम करनेके लिये चिन्ता करने लगे। अतएव राज्यकी परिधि फैलने लगी। ईसाके ३६४ वर्ष पूर्व रोमकोंने मियाई राज्यको सम्पूर्णरूपसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। दश वर्ष तक भयङ्कर युद्ध करनेके बाद

रोमकोंने विजय प्राप्त की। इसी समय दैववाणी प्रचारित हुई, कि जो ६००० फुट सुरङ्ग खोद कर अलवान भीलके जलका संयोग समुद्र-जलसे करा देगा, उसीकी इस युद्धमें विजय होगी। इसके अनुसार रोमके डिरेक्टर फिउरियस कामिल्लासने उक्त सुरङ्ग तैयार की। आज भी वह विद्यमान है। इसके बाद एट्रास्कान राज्यका ध्वंस हुआ। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर कामिल्लासने महा आडम्बरके साथ सादे घोड़े के रथ पर चढ़ कर रोमनगरमें प्रवेश किया। जूनो देवताकी प्रतिमूर्त्ति रोममें लाई गई। इस मूर्त्तिके रखनेके लिये एक विराट् मन्दिर बनवाया गया।

ईसाके ३६१ वर्ष पूर्व कामिल्लास निर्वासित हुआ और गलगण असंख्य सेनाओंको ले कर रोमको ध्वंस करनेके लिये चढ़ आये। अलिया नामक स्थानमें घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सहस्र सहस्र सैनिक धराशायी हुए। ऐसे समय बचे खुचे लोग पुरोहित और भेष्टलकुमारियोंके साथ केपिटाल पर्वत पर चले गये। गलोंने रोमनगरमें प्रवेश कर मार काट मचाते आग लगा कर नगरको भस्म कर दिया। केवल मानिलेयासकी सावधानतासे केपिटाल शत्रुहस्तसे बच गया। इससे वह वीर नामसे पुकारा गया।

अन्तमें १००० स्वर्णमुद्रा पा कर गलगण रोम छोड़ कर चले गये। किन्तु राहमें रोमक सैनिकों द्वारा आक्रान्त हो नष्ट भ्रष्ट हो गये। इसके बाद रोमवासी रोममें लौट कर घरद्वार बनाने लगे। कमिल्लास लौट कर फिर प्रजातन्त्रका डिरेक्टर नियुक्त हुआ। सन् ३६१ ई० पू०में गलोंने फिर रोम पर आक्रमण किया। किन्तु अर्णो नदीके किनारेके युद्धमें मानिलियासकी अद्भुत वीरतासे रोमकी रक्षा हुई। इसके लिये टार्कोटस नामक गौरवान्वित उपाधि उसको मिली थी। किन्तु अकृतज्ञ रोमवासियोंने पीछे उसको मार डाला। इसी समय पेट्रिशियन और प्लेबियनोंमें स्वत्व और स्वामित्व पर घोर वाद विवाद उपस्थित हुआ। पीछे ईसासे पूर्व ३६७ ई०में प्लेबियन दलके एक सेक्सटियस सर्वप्रथम कन्सल हुआ और विचार-कार्यके लिये प्रिटर या एक नया मजिष्ट्रेट नियुक्त हुआ। कुछ समयके लिये प्लेबियन और पेट्रिशियनोंमें शान्ति स्थापित हुई।

लेटिन-युद्ध (३४०-३३० ई० पू०)।

इसके बाद लेटियामके प्राधान्य पर रोमके साथ सामनाइट और लेटिनोंके दो युद्ध हुए। प्रथम सामनाइट युद्धमें (३४३-३४१ ई० पू०) रोमकोंने जीते और सामनाइटोंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। लेटिनोंने दूत भेज कर कहवाया, कि हम लोगोंमेंसे भी कन्सल और शासक नियुक्त किया जाये। किन्तु रोमवासियोंने इस पर आपत्ति की और इसके फलसे इन दोनोंमें फिर घमासान युद्ध हुआ। (३४० ईसासे पूर्व) भेसेरिस और ट्रिफानाम नामक स्थानके युद्धमें रोमक सम्पूर्णरूपसे विजयी हुए। इस युद्धमें तीन चौथाई लेटिन मार डाले गये। इस युद्धमें मानिलियास टर्कोटस् सामरिक नियम उल्लङ्घनके लिये ब्रुटसकी तरह अपने पुत्रका सर काट लेनेका हुक्म अम्लानवदनसे दिया था।

२रा सामनाइट महायुद्ध (३२६-३०४ ई० पू०)

ईसासे ३३० वर्ष पहले रोमकोंने भलसियानोंके साथ युद्धमें विजय प्राप्त किया। रोमकोंके पुनः पुनः श्रीवृद्धि होते देख सामनाइटोंने यूनानियोंकी सहायतासे फिर रोमके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। यह युद्ध २२ वर्ष तक चला था। पहले पांच वर्षों तक रोमन ही जीतते गये और सामनाइट हताश हो कर युद्धकी इच्छा परित्याग करनेका सङ्कल्प करने लगे। पीछे सी० पाण्टियस् नामक एक सामनाइट वीरके अत्यद्भुत समरकौशलसे सामनाइटोंका भाग्यचक्र पलटा। उसने "कडाइन कक" नामक गिरिसङ्कटमें रोमकोंका इस तरहसे अपमान और वे इस तरह पराजित हुए, कि वैसा रोमक-इतिहासमें कभी दिखाई नहीं देता। पण्टियासके रणकौशलसे रोमकोंकी वीरवाहिनियां पहाड़के पथमें सम्पूर्ण रूपसे घिर गईं। अवश्यम्भावी विनाश देख कर रोमकोंने बुद्धिपूर्वक आत्मसमर्पण किया। पण्टियासने भी दया कर रोमसैन्य और सेनापतियोंके प्रति सद्व्यवहार किया। दोनों कन्सलों और दोनों सेनापतियोंने स्वीकार किया, कि हम लोग सामनाइटोंको रोमकोंके साथ सब विषयोंमें समान अधिकार देंगे और

६०० रोमक घुड़सवार प्रतिभूस्वरूप सामनाइटों के पास रहेंगे। जब यह समाचार रोममें पहुंचा, तब सैनेटके सदस्य इनकी की हुई प्रतिज्ञाके पालन करनेमें सम्मत न हुए। उन्होंने कहा, 'सेनापतियोंके स्वीकृत प्रस्ताव-के पालन करनेमें हम लोग बाध्य नहीं है।' फिर युद्ध होने लगा। रोमका भाग्य फिर चमकने लगा। ईसासे ३०४ वर्ष पूर्व रोमकोंने सम्पूर्णरूपसे विजय प्राप्त किया। इसी समय एट्रास्कानोंने पराजित हो कर रोमकी अधी-नता स्वीकार कर ली। मध्य इटलीके अधिवासी भी रोमके साथ सम्मिलित हो गये। ईसाके ३०० वर्ष पहले रोमका प्रभुत्व मध्य इटली पर सम्पूर्ण रूपसे बद्ध-मूल हो गया।

३रा सामनाइट युद्ध (२९८-२९० ई० पू०)

रोमकी उत्तरोत्तर उन्नति देख कर सामनाइटोंने फिर युद्धकी घोषणा की। गलोंने चाहा, कि उनकी सहायतामें रोमकोंसे युद्ध करें। मक्सिमस और डेसियस नामके दो कन्सलोंने फौजोंके साथ रणक्षेत्रकी यात्रा की। डेसियाने भयङ्कर युद्ध कर प्राणत्याग किया। मेक्सियसने जयलाभ किया। सामनाइट फिर रोमकोंके साथ मिल गये।

इसके दश वर्ष बाद एट्रास्कान तथा गलभाडिमो-भीलके निकट युद्धमें पराजित हुए। अब रोमको दक्षिणी सीमा बढ़ने लगी। दक्षिण इटली पूर्वकी ओर यूनानियों द्वारा उपनिविष्ट हुई थी। इससे यह स्थान माग्ना-ग्रीशियाके नामसे परिचित था। इस स्थानके वासिन्दे लुकानियों द्वारा आक्रान्त हो रोमकोंकी सहायताके इच्छुक हुए। रोमकोंने उनकी सहायता कर लुकानियों-को मार भगाया और वहां रोमसैन्य कायम किया। इस समय रोमकोंको विकट युद्ध करना पड़ा था। यह ईसा-के २८२ वर्ष पहलेकी बात है।

रोमक कन्सल दश नावों पर सब दलबल टैरेण्टम नगरके सामनेके समुद्रसे रोम लौट रहे थे। टैरेण्टाइनोंने रङ्गालयकी ऊंची छत पर चढ़ कर इन्हें समुद्रपथसे जाते देखा। देर न लगी, मौका देख कर इन सबोंने जलयुद्धकी तय्यारी कर दी। ४ नावें डुबा दी गईं। कन्सल भालेरियस मारे गये। बाकी सब भाग निकले। रोमकी सिनेटने इसका कारण जाननेके लिये एक दूत भेजा। किन्तु वह दूत अभद्रोचित अपमानित किया गया। टैरेण्टम और रोमके बीच युद्ध छिड़ गया। टैरेण्टा-इयोंने यूनानी एपिरासके राजा पिरहासके निकट साहाय्य प्रार्थना की। पिरहास मन ही मन समूचे इटली देश पर अधिकार कर एक प्रकाण्ड हेलेनिक साम्राज्य स्थापित करनेका सङ्कल्प कर रहा था। मौका देख कर टैरेण्टाइनोंको सहायता देना स्वीकार कर वह एक बड़ी फौज एकत्र करने लगा। शीघ्र ही उसने मिलो नामक एक सेनापतिको ३००० पैदल सैनिकोंके साथ टैरेण्टम नगरको भेज दिया। अन्तमें (२८१ ई० पू०) उसने २५००० पैदल, ३००० घुड़सवार और २० हाथी ले कर रोमके विरुद्ध युद्धयात्रा की। टैरेण्टममें पहुंच कर उसने रङ्गालयका क्रीड़ाकौतुक बन्द कर दिया और सब युवकोंको युद्धविद्या सिखाने लगा।

रोमक कन्सल भलेरियस निभिनास ससैन्य लुका-नियोंसे हो कर चले। पिरहासने कौशलसे रोमक कन्सल-के पास पत्र लिख कर समय मांगा। कन्सलने गर्वित-भावसे उनको स्वदेश लौट जानेका परामर्श दिया। उस समय पिरहासने युद्ध करनेके लिये ये यात्रा की। सिरिस नदीके किनारे हिराक्लिया नामक स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आपसमें जूट गईं। पिरहासने पहले घुड़सवार सैन्य ले कर रोमसैन्यों पर आक्रमण किया। रोमक 'लीजन' भीमवेगसे आक्रमणको रोकने लगे। उस समय पिरहासने पैदल सैनिकोंको परिचालना की। भयङ्कर युद्ध होने लगा। ७ बार नया नया आक्रमण हुआ, किन्तु जय-पराजयका निर्णय किया जा न सका। इसके बाद पिरहासने रणहस्तियोंको आगे बढ़ाया। हाथियोंके पराक्रमको देख रोमक भाग गये। यह ईसाके २८० वर्ष पहलेकी बातें हैं।

पिरहासने रोमकसैन्योंके वीरत्वको देख कर कहा था, कि ये रोमक सैन्य मेरे पास होते या मैं इनका नेतृत्व करता होता, तो मैं पृथ्वीको जीत लेता। उसने देखा, कि एक और युद्ध होनेसे उसकी अवस्था सोचनीय हो जायगी। इससे उसने रोम दूत भेज कर यूनानियोंसे सन्धि की प्रार्थना कराई। किन्तु यूनानियोंकी स्वाधीनता अक्षुण्ण रखनेका प्रस्ताव किया गया था।

युनानीदूत सिनियास वक्तृताच्छटासे सेनेटके सदस्य सन्धि कर लेनेके पक्षपाती थे; किन्तु स्वदेशवत्सल वृद्ध-क्लडियास किकसके उद्दीपनापूर्ण वाक्यसे सन्धि हो न सकी। उस समय पिरहास धीरे धीरे सैन्यके साथ रोमकी ओर अग्रसर हुआ। पीछे विपद्को ख्याल कर शीत-कालके आश्रयके लिये टेरेण्टमसमें आ पहुंचे।

रोमकोंने कैदियोंके बदलनेका प्रस्ताव दूत द्वारा पिरहासके पास भेजा। पिरहासने राजोचित सम्मान दिखा कर रोमक दूतके क्रेब्रियासको अभिनन्दन किया। क्रेब्रिशियस अत्यन्त सत्यनिष्ठ और विक्रमशाली था। वह अपने हाथों हल चलाता था। पिरहासने उसको हाथ करनेके लिये साम, दाम, दण्ड और भेदसे काम लिया; किन्तु सफलीभूत हो न सका। फ्रिबिशियस मस्त गज-राजके सूंड़के सामने भी अचलरूपसे खड़ा था। पिरहासने निरुपाय हो कर कहा, कि रोमक कैदियोंको वह सादार्नेलिया या शनि उत्सवमें शामिल होनेका हुक्म दिया और कहा, यदि 'सेनेट सन्धिके प्रस्त व पर सम्मत न हो, तब कैदी फिर लौट आयेंगे।' सेनेटके सदस्योंने अविचलित भावसे सन्धिका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उत्सवके अन्तमें रोमक कैदी फिर पिरहासके कैम्पमें भेज दिये गये।

ईसाके २७६ वर्ष पहले फिर युद्ध आरम्भ हुआ। अस्कुलम नामक स्थानके युद्धमें रोमक सैन्य फिर पराजित हो गए। ६००० रोमक सैनिक युद्धक्षेत्रमें काम आये। युद्धमें जयी होने पर भी पिरहासको सिवा नुकसानके कोई लाभ न हुआ। इसी समय पिरहासके राज्य पर गलोंका आक्रमण हुआ, अब वह बुरी बलामें फंसा। इधर सिसिली-वासियोंने भी उसकी सहायताकी प्रार्थना की। इससे घबड़ा कर पिरहासने रोमक कैदियोंको स-सम्मान रोम भेज कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु रोमकी सिनेटने उसे इनकार कर दिया।

पिरहासने सिसिलीमें जा कर आक्रमणकारी कार्थे-जियोंको हराया। किन्तु सिसिलीवासी उसके अत्याचार से प्रपीड़ित हुए। इसके बाद ईसाके २७६ वर्ष पहले फिर इटलीमें वह लौट आया और शीघ्र ही रोमकोंके अधिकृत लेकिनगर पर अधिकार कर अर्थाभावसे पार्सिफोन देवीके मन्दिरका धनरत्न अपने व्यवहारमें लाया। इस काण्डमें उसका एक लदी लदाई नाव या जहाज डूब गया। इससे पिरहास पार्सिफोनका निग्रह समझ भग्नोत्साह हुआ।

दूसरे वर्ष कन्सल एम क्युरियसने पिरहासके विरुद्ध युद्धयात्रा की। बेलिभेण्टम् नामक प्रसिद्ध स्थानमें दोनों ओरकी फौजें आ कर आपसमें जुट गईं। घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें पिरहासके दो हाथी मारे गये और चार हाथी रोमकोंके हाथ लगे। पिरहासकी फौजें रण-क्षेत्रसे भाग खड़ी हुईं। पिरहास कई सेवक या कर्म-चारियोंके साथ यूनान भाग गया। अर्गस नगर पर अधिकार करते समय एक स्त्रीकी चलाई एक ईंटसे उसकी मृत्यु हुई थी।

कुछ ही समयमें रोमकोंने समूचे इटली पर कब्जा कर लिया। सबकी दृष्टि रोम पर पड़ी। मिश्रके राजा टलेमी फिलाडेलफासने दूत भेज कर मित्रता स्थापित की। रोमके अधिकृत प्रदेशोंके अधिवासी तीन भागोंमें विभक्त हुए।

(१) रोमवासी या रोमनगरकी ३३ विभिन्न जातियां।
(२) रोमके औपनिवेशिक अधिवासी।
(३) रोमके अधिकारभुक्त म्यूनिसिपल (स्वायत्त-शासन) चालित नगर।

म्यूनिसिपल नगरवासियोंके सदस्योंका पूर्ण अधिकार था और वे रोमवासियोंके साथ वाणिज्य तथा अन्तर्विवाह करनेके अधिकारी थे, सिवा इसके मित्र और सहयोगी छोटे छोटे राज्योंको भी रोमकशासनकी सुविधा मिली थी। चारों ओर स्वाधीन राजोंके साथ रोमकोंकी मित्रता स्थापित हुई। इस तरह रोमकोंका राज्यशासन दृढ़तर भित्ति पर कायम हुआ। सामाजिक विधि-व्यवस्थायें भी बहुत अंशमें सुधार प्रणालीक्रमसे प्रतिष्ठित हुईं। शिल्पी और व्यवसायी वोट देनेके अधिकारी हुए। गुलामोंको भी किसी किसी विषयमें सुविधा दी गई। इसी समय कानूनी और सरकारी कामोंमें सुधार होने लगा। उसके पहले पुरोहित ही कानून और धर्मशास्त्रका अनुशासन किया करते थे। किन्तु क्लडियसने इस समय सरकारी और सामाजिक कार्यों-

की अनुशासन सम्बन्धी विधि-व्यवस्थाकी एक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें यह भी लिखा गया था, कि किस किस दिन सरकारी या धर्माधिकरण आदि कार्य्य होंगे, या बन्द होंगे। पुरोहितोंका पवित्र अधिकार कम हुआ।

राज्यविस्तारके साथ साथ चारों ओर उपनिवेश स्थापित होने लगा। १२ नई जातियां रोमके शासनाधीन हुईं। लिभिका कहना है:—ईसाके २७५ वर्ष पूर्व मर्दुमशुमारीसे जाना गया था, कि रोमकी जनसंख्यामें पुरुषोंकी संख्या ६०००० थी। स्त्रियोंकी संख्या निर्दिष्ट नहीं। रोमकी समृद्धि सुन कर नाना देशके विद्वद्गण रोममें आने लगे। धीरे धीरे लक्ष्मीकी वृद्धिके साथ-साथ सरस्वतीकी कृपा हुई। यूनानी विद्वान् रोममें आ कर रहने लगे। मिस्रके विद्वान् भी रोमके परिदर्शन करनेके लिये रोम आने लगे।

भूमध्यसागरके चारों ओरके राज्योंके मध्यमें स्थापित इटलीराज्य इतने दिनों तक शक्ति और समृद्धि अर्जित कर राजकीय जगत्में यथार्थ केन्द्रत्व लाभ कर रहा था। उस सागरके किनारेके राज्यके अधिवासी राजा और प्रजा सभी इटलीके शीर्षक्षेत्र रोमका प्राधान्य अनुभव कर रहे थे। पिरहासका भागना और यूनानियोंके अधिकृत दक्षिण-इटलीके नगरोंमें रोमका आधिपत्य और वश्यता स्वीकार होनेके पहले भूमध्यजगत्में (Eastern Mediterranean world) इस इटली राज्यकी शक्ति और प्रभा विकसित हो आई। मिस्रने रोमसे मित्रताकी कामना कर आपसमें सद्भाव कर लिया। यूनानी विद्वन्समाज इस नवोद्भुत और दिग्दिगन्तमें ख्याति प्राप्त कर रोम-राज्यका इतिहास, राजतन्त्र और लेटिन प्रजातन्त्रके मूल विषयकी उन्नतिमें सहायता करने लगे। पिरहासके लौटने पर रोमका पूर्ण सम्बन्ध उसी तरह था। उस समय ५० वर्ष तक फिर रोमकी क्रूर दृष्टि पूर्वाञ्चलमें न पड़ी।

रोममें जब प्रजातन्त्र कायम हुआ, तब रोम कार्थेजके साथ सन्धिसूत्रमें बद्ध था। जब पिरहास सिसिलीमें कार्थेजके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए तब भी कार्थेज रोमके साथ नई सन्धि कर मित्रताके पाशमें बंध गया था। किन्तु उस समय रोमकी श्रीवृद्धि उत्तरोत्तर होते देख कार्थेज ईर्षान्वित हो उठा। सिसिली द्वीपके ऊपर कार्थेजका रोमके साथ विवाद उठ खड़ा हुआ। सिसिलीके अन्तर्गत मेसनानगरमें बहुत दिनों तक मैमार्टिनी (या मङ्गलपुत्र) नामक एक प्रबल डाकूदलका वास था। साइराक्युजके राजा हीरो इनको जीत कर समूल नष्ट करनेका उद्योग करने लगे। इस समय इन्होंने रोमसे सहायताकी प्रार्थना की। रोमक हीरोके साथ मैत्री रहनेके कारण पहले सहायता करने पर राजी न हुए। पीछे कार्थेजीयनोंको सहायतार्थ प्रवृत्त देख रोमक इनकी सहायता करने पर राजी हुए। पूर्वोक्त कन्सल क्लडियासके पुत्र एपियास क्लडियास सैन्यके साथ सिसिली चला। इसके पूर्व ही कार्थेजीयन सैन्य मेमार्टिनोके सहायतार्थ मेनसाना नगरमें आ पहुंचा था। हीरोने रोमक सैन्यको देख कार्थेजीनोके साथ मिल कर जलपथ और स्थलसे मेसमना पर घेरा डाल दिया। रोमक वीरोंने भी इस मिलित सैन्यदलसे युद्धकी घोषणा की। यह ईसासे २६४ वर्ष पहलेकी बात है। पहले पिउनिक-युद्धका सूत्रपात हुआ।

कार्थेजवाले जलयुद्धमें प्रसिद्धि पा चुके थे। क्योंकि फिनिकोंने प्राचीनकालसे समुद्र वाणिज्यमें रत रहनेके कारण भारतीय शिल्पियोंसे जहाज बनाने सीख लिया था। इससे उस समय भी कार्थेजीयनोंके पास बड़े बड़े जहाज मौजूद थे, किन्तु रोमकोंके पास कुछ भी न था। फिर भी निर्भीक क्लडियास मेसानाके निकट स्थल युद्धमें प्रवृत्त हुए। रोमकसैन्यके पराक्रमसे यह सम्मिलित सैन्य बार बार पराजित हुआ। ईसाके २६३ वर्ष पहले रोमकवीर हीरोकी राजधानी साइराक्यूज पर आक्रमण करनेके उद्योगी हुए। बहुसंख्यक नगरोंको लूटपाट कर तथा जला कर भस्म कर साइराकूजकी चहारदीवारोंके निकट वे पहुंचे। हीरो रोमकोंके साथ सन्धि कर उनका साहाय्यकारी बनाया गया।

रोमक सैन्योंने हीरोके साथ मैत्री कर कार्थेजीय फौजोंके साथ युद्धार्थ एग्रीजेण्टस नगर पर घेरा डाला। इस नगरमें सिसिलीवासी यूनानियोंका किला था। ईसाके २६२ वर्ष पहले युद्धमें जयलाभ कर रोमोंने इस

नगर पर अधिकार कर लिया। इस तरह युद्धके तीन वर्ष पहले वे जयलाभ कर सिसिलीके अधिकांश पर अधिकार कर बैठे। इस समय कार्थेजीय जङ्गी-जहाजसे इटलीके किनारे लूटपाट कर रोमकी विशेष क्षति करने लगे। यह देख निरुपाय हो कर रोमक जहाज बनानेमें प्रवृत्त हुए। नाना देशोंके लूटनेसे रोमकोंका धनागार भरा पूरा था। शीघ्र ही बड़े बड़े जङ्गीजहाज बनने लगे। पहलेके एक बड़ा फिनिक-जहाज इटलीके किनारे लगा था। इसीको देख कर रोमक शिल्पी जहाज बनाने लगे। जिस दिन इसकी लकड़ी काटी और चिरी गई, उसी दिनसे ६० दिनोंमें १३० जहाजें तैयार हो कर समुद्रमें तैरा दिये गये। शीघ्र ही मल्लाह, कप्तान आदि उसके चलानेवाले सिखाये गये। समुद्रवक्ष पर रोमके जङ्गीजहाज सर्व-प्रथम चलने लगे।

ईसाके २६० वर्ष पहले कन्सल कर्णिलियसने १७ सुसज्जित जङ्गीजहाज ले कर युद्धयात्रा की। किन्तु कार्थेजियोंके मुकाबले लिपारा नामक स्थानमें सम्पूर्ण-रूपसे पराजित हो कर कैद कर लिये गये। इसके बाद दूसरे कन्सल डुइलियस बकोये जङ्गी जहाजोंको ले कर युद्धके लिये चले। उसने असामान्य कौशलसे एक नई प्रथाका आविष्कार किया। उसके प्रत्येक जहाज पर एक एक २४ हाथ लम्बे पुल रखे हुए थे। ये पुल जहाजमें रस्सीसे बंधे रहते थे। शत्रुके जहाज जब समीप आता था, तब रस्सी खोल कर पुल जलमें तैरा कर सैकड़ों आदमी उस जहाज पर चढ़ जाते और उसका समस्त धन लूट लिया करते थे। इस नये आविष्कारके फलसे माइली नामक स्थानके युद्धमें रोमकोंको ३१ कार्थेजिय जङ्गीजहाज हाथ लगे थे और १४ जङ्गीजहाज नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये। कितने ही जहाज रणस्थलसे भाग निकले। डुइलियस महाडम्बरसे रोममें पहुंचे। रोशनी की गई, राह फूल पत्तियोंसे सजाई गई थी और बाजे बज रहे थे। ऐसे सजधजसे कन्सलने रोममें प्रवेश किया। युद्धमें पकड़े हुए जहाजके उपकरणों द्वारा 'फोरम'-में एक स्तम्भ उसके सम्मानार्थ प्रतिष्ठित हुआ। इसका नाम रष्ट्राटा स्तम्भ है। रोमके कापिटोलाइन म्यूजियममें यह आज भी रखा हुआ है।

इसके कई वर्ष पीछे अर्थात् ईसासे २५६ वर्ष पूर्व रोमक दोनों कन्सल रेग्डलास और मनेलियस-ने ३३० जङ्गी जहाजोंको सुसज्जित कर कार्थे-जिय सैन्यके विरुद्ध यात्रा की। इससे पहले प्राचीन समयमें किसी समुद्रमें इतने जङ्गी जहाजोंका समावेश नहीं हुआ था। पूर्वोक्त पुलके कौशलसे रोमक-सैन्यने कार्थेजियन जहाजोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस युद्धमें केवल २४ जङ्गीजहाज नष्ट हुए थे। किन्तु रोमकों-ने ६३ जङ्गी जहाजोंको मालमत्ता समेत गिरफ्तार कर लिया था। युद्धमें जयलाभ कर रोमक कार्थेजिय नगरोंको लूटने पाटने लगे। इस लूटपाटमें उनको बहुत धनरत्न प्राप्त हुआ। कुछ दिनोंके बाद शीतकालमें माने-लियस अर्द्धक सैन्य ले कर रोममें लौट आये। रेग्ड-लस युद्धक्षेत्रमें रहे। रेग्डलस नित्य नये नगरों पर अधिकार करते कार्थेजिय नगरके समीप पहुंचे। कार्थेजिय भी हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंको ले कर युद्धके लिये आगे बढ़े। इस युद्धमें भी रेग्डलसने विजय पाई। कार्थेजियके १५००० सिपाहियोंने रणस्थल-में प्राण गवां दिये। इसके सिवा ५००० फौजें और १८ हाथी पकड़ लिये गये। रेग्डलस कार्थेजिय नगरों-को लूट पाट कर कार्थेजनगर पर घेरा डालनेकी तरकीब सोचने लगे। उसने शीघ्र ही ट्यूनिस नगर पर अधि-कार कर उसे लूट लिया। ऐसे मौके पर न्यूमिडियगण कार्थेजकी अधीनता अस्वीकृत कर स्वाधीनता लाभ करने-की चेष्टा करने लगे। कार्थेजिय हताश हो रेग्डलससे सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु जबसे उन्मत्त रेग्डलसने उस प्रार्थना पर ध्यान न दिया, इसी समयसे कार्थेजियोंके भाग्यमें परिवर्त्तन दिखाई दिया। स्पार्ट-राज जण्टियस ४००० घुड़सवार, १०० हाथी और कई हजार पैदल सैन्य ले कर कार्थेजके सहायतार्थ आ गये। भयङ्कर युद्ध उपस्थित हुआ। ३००० रोमक-सैन्य रणक्षेत्रमें काम आये। रेग्डलस ५०० सैनिकोंके साथ कैद हुए। बाकी २००० सैनिक अपने शिविरोंमें भागे। यह ईसासे २५५ वर्ष पहलेकी बात है। रोमकोंके दुर्भाग्य का यहां ही अन्त नहीं हुआ। भागी हुई रोमक फौजें जहाज पर चढ़ कर रोमकी यात्रा कर रही थी, ऐसे

समय भीषण तूफानमें पड़ कर सभी जङ्गीजहाज डूब गये। इसके जहाजियोंने भी सागरगर्भमें स्थान लिया। ३६४ जङ्गी जहाजोंमें केवल ८० जहाज रोम लौटे। इसके साथ कुछ फौजें भी आईं।

इस काण्डसे रोमक निरुत्साह नहीं हुए वरं बड़े उत्साहसे जङ्गी जहाजोंके बनानेमें प्रवृत्त हुए। तीन महीनेमें २२० जहाज बने। रोमन फिर जलपथसे चले। ईसासे २५३ वर्ष पहले रोमक कन्सल कार्थेजके किनारे लूट पाट करने लगे। यह युद्धमें विजय प्राप्त कर लौट रहा था, ऐसे समय तूफानमें पड़ कर सब जहाज डूब गये। पालिनस अन्तरीपके किनारे यह काण्ड हुआ था।

रोमक सैन्य फिर सिसिलीमें युद्ध करने लगा। २०० वर्ष ईसासे पूर्व रोमक प्रोकन्सल मेटेलस पानार्मास नामक स्थानमें एक भीषण युद्धमें जयी हुआ। २०००० कार्थेजिय सैनिक रणस्थलमें मारे गये। १०४ हाथी रोमकोंके हाथ लगे। इस युद्धमें जयी हो कर बड़े उत्साहसे फिर २०० जङ्गी-जहाज तैयार किये गये। अब कार्थेजिय रोमकोंके साथ सन्धि करने पर तैयार हुए। रेण्डलस पहलेके युद्धमें वहां कैद था। रोमक-इतिहासमें उसके वीरत्व, सत्यनिष्ठता तथा स्वदेशप्रेम स्वर्णाक्षरमें लिखे हुए हैं। कार्थेजियोंने अपने दूतोंके साथ रेण्डलस को रोम भेज दिया और कहा,—यदि आप सन्धि न करा सकें तो फिर कार्थेजियन जेलमें चले आयें। निर्भीक रेण्डलस सम्मत हुआ। लज्जाके मारे पहले रेण्डलस रोमकी चहारदीवारीके भीतर घुसता न था; किन्तु कार्यवश जाना पड़ा। वीरहृदय रेण्डलसके पानेकी ही गरजसे कार्थेजियोंके साथ सन्धि करने पर रोमक तय्यार हुए। किन्तु रेण्डलसने कहा था—"भाइयों, मेरे इस तुच्छ शरीरके लिये रोमकोंका गौरव नष्ट कर कभी भी सन्धि न करना। रोमके गौरवसे ही मेरा भी गौरव है।" सेनेटके सभ्योंने कहा—"आप कार्थेज मत जाइये।" इसके बाद सहस्र सहस्र व्यक्तियोंने कहा, विदेशमें बलपूर्वक पकड़े हुए लोगोंके शपथका पालन न करनेसे पाप नहीं होता। किन्तु सत्यसन्ध स्वदेश-वत्सल रेण्डलस यह बात जानता था, कि वहां लौट जानेसे मुझ पर अमानुषिक अत्याचार होगा। फिर भी उसकी परवाह न कर वह कार्थेज चला गया। वहां जानेसे उस पर जो अमानुषिक अत्याचार हुआ, उसका वर्णन करनेसे हृदय कांप उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कार्थेजिय क्रोधित हो घोर नृशंसताके साथ उसको मार डाला। पहले आंखोंकी पपनियां काट कर वह भीषण धूपमें डाल दिया गया। पीछे एक बड़े बक्समें चोखे चोखे सुइयां गाड़ कर उसमें वे उसको ढुका देते थे। स्वदेशवत्सल रेण्डलसने ऐसे भीषण अत्याचारको सह्य करते हुए अपने प्राण गंवा दिये।

इस निष्ठुरताकी वीभत्स कहानी सुन कर रोमक कार्थेजको ध्वंस करने पर दृढ़प्रतिज्ञ हुए और शीघ्र ही उन्होंने इटलीके अन्तर्गत कार्थेजीय नगर लिलिवियम पर घेरा डाल दिया। दूसरी ओर कन्सल क्लडियसने जलपथसे डे्पानन नामक स्थानमें कार्थेजिय जङ्गी-जहाजों पर आक्रमण किया। पहले युद्धमें रोमकोंके जय प्राप्त करने पर जलयुक्त क्लडियसकी मूर्खतासे रोमकोंकी प्रायः हार हो हुई। आर्टिनियस कलेटिनस उसकी जगह कन्सल नियुक्त हुआ। दूसरे कन्सल सि० जुनियस जङ्गीजहाज ले कर लिलिवियाम नगरमें रोमक फौजोंके सहायतार्थ जा रहा था। राहमें तूफानमें पड़ कर उसके सब जङ्गीजहाजें डूब गये। केवल दो जहाजें बच गये थे। इस तरह दैवविडम्बनसे तीन बार रोमक जङ्गी-जहाज सागरगर्भमें डूब गये। अब रोमकोंने जलयुद्धकी ओरसे मन हटा कर स्थलयुद्धको ओर ध्यान लगाया।

इस समय कार्थेजमें एक वीर पुरुषका जन्म हुआ। इसका नाम था—हमिलकार बार्का। यही इतिहासके प्रसिद्ध हानिबलका पिता है। ईसासे २४७ वर्ष पूर्व वह सिसिलीमें कार्थेजिय सैन्यके सेनापति हो कर गया, उस समय वह तरुण था। वह युद्धक्षेत्रमें सीधे न जा कर हार्केटपर्वतके नीचे नीचे सैन्य ले कर गया। इस स्थानमें उसने ऐसी व्यूह रचना की और एक वर्ष तक वहीं टिका रहा—कि उसके अद्भुत कार्य्योंको शत्रु मित्र सभी सराहने लगे। इस सुरक्षित व्यूहसे वह धीरे धीरे रोमक फौजोंकी ओर दौड़ा। रोमक फौजें उसको बाधा दे न सकी। हामिलकर आगे बढ़ा और उसने ड्रेपी नामके निकटका एरिक्स नामक पहाड़ी नगर पर

अधिकार कर लिया। दो वर्षकी अक्लान्त चेष्टासे रोमक फौजें हामिलकरको एक पैर भी पीछे हटा न सकीं।

रोमक अब समझ गये कि वे जलयुद्धके विना स्थल-युद्धमें कार्थेजियके साथ प्रतियोगिता कर नहीं सकेंगे। २४२ ईसाके पूर्व कन्सल लुटारियसके कटेलससे २०० जहाज ले कर युद्ध करने चला। हानो नामक सेनापति कार्थेजीय जहाजोंके अध्यक्ष था। इगेट्स नामक द्वीपके निकटके युद्धमें रोमकोंने विजय पाई। इस युद्धमें रोमकोंको सब विषयमें सुविधा मिली। क्योंकि जल-पथ बन्द करने पर कार्थेजसे कुछ भी सहायता नहीं आ सकी। फलतः हामिलकरको ससैन्य भूखों ही मरना पड़ा।

कार्थेजियोंने निरुपाय हो कर हामिलकरको रोमके साथ सन्धि कर लेनेको कहा। ईसाके २४१ वर्ष पहले यह सन्धि हो गई। इससे कार्थेजियोंको सिसिलीका प्रभुत्व और निकटके द्वीपपुञ्जोंका आधिपत्य छोड़ देना पड़ा। कैदियोंको उन्होंने छोड़ दिया। सन्धिमें यह शर्त्त थीं, कि कार्थेजिय १० वर्षके भीतर ३२०० तोला सोना रोमकोंको युद्धके क्षतिपूर्त्तिके रूपमें देंगे। कर्सिका और सार्डिनिया रोमके अधिकारमें आ गये। किस तरह सिसिली पर शासन करें, रोमक इस विषय पर चिन्ता करने लगे। रोमकी शासन-प्रणालीके अनुसार सिसिलीका शासन होना असम्भव समझ कर उन्होंने सिसिलीमें एक नई शासन-प्रणाली प्रतिष्ठित की। रोमसे एक शासक हर साल निर्वाचित कर भेजा जाने लगा। इसी शासक द्वारा सिसिली देश शासित होने लगा। इसी तरह रोम-साम्राज्यकी प्रथम नींव पड़ी।

इधर हामिलकर अपने देशमें लौट आया और बदला चुकानेकी फिक्र करने लगा तथा साथ ही स्पेनमें एक विपुल साम्राज्य-प्रतिष्ठाका आयोजन करने लगा। बहुत दिनोंके बाद रोममें शान्ति स्थापित हुई। नुमाके समयसे इतने दिनों तक रणदेवता जेनासका दरवाजा खुला था। रोमके इतिहासमें दूसरी बार इस मन्दिरका दरवाजा बन्द हुआ। किन्तु अधिक दिनों तक बन्द न रहा। रणभेरीके आह्वानसे फिर शीघ्र ही रणदेवताका मन्दिरद्वार खुला। पहले ३३ जातियां मिल कर रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस समय दो जातियों और इस जातिमें मिल कर ३५ जातियां हो गईं।

एड्रियाटिक सागरके पूर्वीय भागमें इलिरीय वास करते थे। ये जल-डाकैतीसे समृद्धशाली हुए थे। इनके उपद्रवोंसे इटलीका किनारा निरापद न था। रोमकी सेनेटने इलिरीय राजा अग्रनके पास दूत भेज कर इस उपद्रवोंको दूर करनेकी प्रार्थना की। राजाने इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान न दिया; वरं दूत मार डाला गया। शीघ्र ही रोमक फौजें वहां पहुंचीं। यह ईसाके २२६ वर्ष पहलेकी घटना है। उस समय वहांका राजा अग्रन मर गया था। उसकी विधवा रानी टिउटा डिमेट्रियस नामक एक यूनानीके साहाय्यसे राज्य-शासन कर रही थी। डिमेट्रियस रानीने टिउटाको छोड़ कर 'करसाइरा' नामक द्वीप रोमकोंको दिया। टिउटाने निरुपाय हो कर रोमकोंके प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया। इस तरह वहांकी जल-डकैती दूर हुई। इससे जितनी खुशी यूनानियोंको हुई, उतनी खुशी रोमकोंको न हुई। उन सबोंने रोमकोंको धन्यवाद-सूचक संवाद ले कर उनके पास दूत भेजा।

इस युद्धके समाप्त न होते होते गलोंसे फिर रोमकोंका युद्ध आरम्भ हुआ। इट्रिरियाके अन्तर्गत टैलमन नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। यह ईसासे २२५ वर्ष पहलेकी बात है। समरक्षेत्रमें ४०००० गलसैन्य हताहत हुई और १०००० फौजें कैद कर ली गईं। रोमकोंने बोआई प्रदेशसे पो-नदीके किनारे तकके देशों पर अधिकार कर लिया। रोमराज्यका आकार चारों ओरसे बढ़ने लगा। उत्तर-अल्पस पहाड़ तक रोमकोंकी जयपताका फहराई।

उस समय हामिलकरने स्पेनमें साम्राज्यका बीज वपन किया था। उसकी अद्भुत प्रतिभासे वहां राज्यकी सीमा जल्द जल्द बढ़ने लगी। हामिलकरके हृदयमें रोमकोंके प्रति वैरभाव सर्वदा विद्यमान रहता था। उसने अपने नौ वर्षके पुत्रसे अग्निस्पर्श करा कर प्रतिज्ञा कराई थी, कि वह आजीवन रोमकोंके

प्रति विद्वेषभाव रखेगा और वैर-चुकानेमें प्राणपणसे चेष्टा करेगा। हामिलकर लड़कपनसे ही अपने पुत्र हानिवलको युद्धविद्यामें निपुण कर रहा था। हानिवल पिताकी प्रतिज्ञा और रणपाण्डित्य आदि गुणोंमें उपयुक्त अधिकारी था। हामिलकर स्पेनके भीतर धीरे धीरे राज्यविस्तार कर रहा था। ईसाके २२२ वर्ष पहले एक युद्धमें हामिलकर मारा गया। इससे उसका दामाद हासद्रुबल सेनापति बना। स्पेनमें न्यूकार्थेज नामका इसने एक नगर बसाया। इसका इस समय कार्टेजना नाम है। तरुण वयस्क हानिवल सेनानायकके पद पर अधिष्ठित हुआ। २२१ वर्ष ईसासे पूर्व हासद्रुबल गुप्तरूपसे एक गुलामके हाथ मारा गया। इस समय हानिवल सेनापति और शासक नियुक्त हुआ। हानिवलके हृदयमें सदा रोम पर आक्रमण करनेकी चिन्ता रहती थी। इसलिये उसने फौजोंको सुशिक्षित करना आरम्भ किया। हानिवल अपने गुणोंसे स्पेनके सभी जातियोंके साहाय्य पानेके अधिकारी बन गये। इस समय वह रोमसे युद्धका कारण ढूंढ़ रहा था।

पहले हासद्रुबलके साथ सन्धिमें यह ठहरा था, कि एब्रो नदीकी पूर्वी सीमा तक रोमकोंका अधिकार रहेगा और नदीके पश्चिम पार कार्थेजिय स्पेनकी सीमा रहेगी। किन्तु हानिवलने इस सन्धिको अस्वीकार कर दिया और ईसाके २१९ वर्ष पूर्व अपने राज्यके बाहर सेगाण्टम नगर पर आक्रमण कर ८ मासके युद्धके बाद अधिकार कर लिया। रोमक मित्र-राज्योंके सहायतार्थ इतने दिनों तक कुछ न कर सके। रोमकोंने हानिवलसे संधि तोड़नेका कारण पूछनेके लिये दो वार दूत भेजे। हानिवलने उसका साफ तौर पर कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरा प्यूनिकयुद्ध (२१८-२०१ ई०से पू०)

हानिवल सेगाण्टम पर अधिकार कर शीतकालकी वजह न्यूकार्थेज लौट आया। इसने ईसाके २१८ वर्ष पहले विराट् सैन्य ले कर पराक्रान्त रोमराज्यके ध्वंस करनेके लिये यात्रा की। युद्धयात्राके पहले इसने स्पेन और कार्थेजकी रक्षाका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया था। अपने छोटे भाई हासद्रुबलको स्पेन-रक्षाका भार दे कर कार्थेजकी रक्षाके लिये सैनिकोंके साथ अफ्रिका भेज दिया। सब प्रबन्ध कर हानिवल ईसाके पूर्व २१८ ई०के वसन्त ऋतुमें ९०००० पैदल, १२००० घुड़सवार और कई हाथी ले कर इटली चला और पांच महीनेमें पिरिनीज पर्वत पार कर रोम नदीके किनारे जा पहुंचा। पिरिनीज पर्वतके पहाड़ी जातियोंके साथ युद्ध करनेमें उसकी बहुतेरी फौजें नष्ट हुई थीं। रोमकोंने हानिवलको युद्धार्थ आते देख कन्सल पी-कानलियास सिपिओकी फौजोंके साथ उसके रोकनेके लिये भेजा। किन्तु कन्सल सिपिओके मेसालिया पहुंचनेके पहले ही हानिवल रोम-नदी पार कर अल्पसके निकट पहुंच गया। सिपिओने हानिवलको वहां रोकना असम्भव समझ रोम लौट आया और अपने भाई नेसियस सिपिओको स्पेन पर अधिकार कर लेनेके लिये भेजा। इसी कौशलसे पिछले समयमें रोम हानिवलके हाथ बच गया था। क्योंकि हानिवलको स्पेनसे सहायता मिलती तो वह सहज ही रोमका ध्वंस कर देता।

हानिवल विराट् सैन्योंके साथ बड़ी तेजीसे अल्पस पर्वतसे होता हुआ इटलीकी ओर आने लगा और शीघ्र ही सिसाल्पाइन गलके निकट पर्वतसे नीचे उपत्यकामें उतरा। उसको एकाएक इस तरह तेजीसे आते देख रोमक विचलित और भयभीत हुए। अल्पस पर्वतको पार करते समय हानिवलके बहुतेरे सैनिक मर गये। उपत्यकामें पहुंच कर जब उसने अपने सैनिकोंको संभाला तब उसको दिखाई दिया, कि उसकी विराट् फौजोंमें केवल २०००० पैदल, ६००० घुड़सवार बाकी बच गये हैं। उसने कुछ दिनों तक विश्राम कर सैनिकोंकी क्लान्ति दूर की।

इधर रोमक फौजें आ कर उसके सामने डट गईं। टिशिनस और ट्रेवियामें दो भीषण युद्ध हुए। हानिवलके न्यूमिडिया घुड़सवारोंके भीम-पराक्रमसे रोमक फौजें तितर-बितर हो कर भागी। सिपिओ गुरुतररूपसे आहत हो कर पीछे लौट प्लासेण्टियरकी चहारदीवारीमें आ छिपा। हानिवल पो नदीको पार कर युद्धार्थ आ पहुंचा। किन्तु रोमक फौजें भाग खड़ी हुईं। उस समय दूसरे कन्सल सेम्प्रोनियस सिपिओ-

के सहायतार्थ पहुंच गये। रोमक फौजोंने हानिवल-को ललकारा। दोनों ओरसे भीषण युद्ध होने लगा। हानिवलकी रणनिपुणताके कारण विशाल रोमक फौजें पराजित हुई। किन्तु शीतकालके आ जानेसे हानि-वल रोमकी ओर आगे बढ़ न सका। भीषण शीतके कारण हानिवलके बहुतेरे सैनिक मर गये। एक छोड़ कर सब हाथी मर गये। उस समय शीत बितानेके लिये वह फिसली नगरमें चला गया।

सर्मियस और फ्लेमिनियस वर्त्तमान वर्षके कन्सल नियुक्त हुए। फ्लेमिनियस फिर फौजोंको ले कर हानि-वलसे युद्ध करने चला। किन्तु हानिवलके कौशलसे वह फौजोंके साथ गिर गया। वह गिरिसङ्कटके एक छोटे पथसे ट्रासिमिन झीलके किनारे पहुंच अपनी फौजोंको एकत्र कर रहा था; ऐसे समय पीछेसे शत्रुओंने हमला कर दिया। फलतः कितनी ही फौजें मृत्यु-मुखमें पतित हुई। कन्सल भी मारा गया। कितने ही सैनिक झीलमें कूद कर डूब गये। इस युद्धमें हानिवल-के १५०० सैनिक काम आये थे। हानिवलने १५००० रोमक सैनिक कैद कर लिये। हानिवलने केवल रोमक फौजोंका कैद कर इटली आदिके सैनिकोंको आदरके साथ छोड़ दिया। उसका उद्देश्य था, कि अन्यान्य जातियोंकी सहानुभूति अर्जन कर रोमका उच्छेद साधन किया जाये। इसीलिये उसने इस नीतिसे काम लिया। यथार्थमें बहुतेरी जातियोंके लोग हानिवलकी असीम प्रतिभाको देख उसके पक्षपाती बन गये। किन्तु एक विदेशी आक्रमणकारीके प्रति बहुतेरोंने विश्वास न किया। इस युद्धमें विजय प्राप्त कर हानिवल रोमकी ओर अग्रसर होता, किन्तु उसका दूसरा उद्देश्य था। वह पूर्वकी ओर अग्रसर हो कर तलवार और अग्नि द्वारा बहुत नगरोंको ध्वंस करने लगा। इस समय उस के पास २६००० पैदल थे। किन्तु रोमक-सहयोगी राजाओंकी सहायतासे ७००००० सैनिक एकत्र कर सकते थे। हानिवल फौजोंके साथ आपुलियाके अन्न-धनसे पूर्ण प्रदेशमें जा कर लूटपाट कर रोमके सहयोगी राजाओंका सर्वनाश करने लगा। उसकी धारणा थी, कि इस तरह उपद्रव करने पर रोमके विरुद्ध कितने ही लोग उसको सहायता देंगे। इस समय इमिलियस पलास और टेरेण्टियस भारो कन्सल नियुक्त हो ससैन्य आपुलिया प्रदेशमें गये। उनकी अनुपस्थितिमें रोमकोंने और एक सैन्य एकत्र कर कमिशिया सेंचुरिस द्वारा फेवियस मेक्सिमसको डिरेक्टर नियुक्त किया। फेवियसने कौशलसे हानिवलको पराजित करना निश्चय किया।

हानिवल अपिनाइन पर्वतको पार कर कम्पेनियाकी समतल भूमिके समृद्ध नगरोंको लूटने और ध्वंस करने लगा। फिर भी फेवियस आमने सामने युद्ध करनेमें देर करने लगा। फेवियसने कम्पेनियाके गिरिसङ्कट पर अधिकार कर यह स्थिर किया, कि इसी पर्वत-पथ पर हानिवलको विनष्ट करूं। किन्तु अद्भुत कौशलसे हानि-वल इस विपदसे बच गया। उसने पहले ही कम्पेनिया-को लूट कर बहुतेरे बैल और गायोंको पकड़ लिया था। रात्रिके समय उसने २००० बैलोंके दोनों सींगोंमें कपड़ा लपेट तेलसे भिगा आग लगा कर मशालके सदृश बना दिया और अपने सैनिकोंको हुक्म दिया, कि इन बैलोंको रोमकोंकी फौजोंके सामने भगाओ। बैल अपने सींगोंमें आग जलते देख भड़क भड़क कर इधर उधर दौड़ने लगे। रोमक असंख्य मशालोंको अपनी तरफ आते देख विचलित हुए, मनमें सोचने लगे, कि हानिवल एकाएक रात्रिको आक्रमण करना चाहता है। इससे अपनी रक्षा न देख रोमक वहांसे भागे। हानिवलने भी इस अवसर पर बे-रोक गिरिसङ्कटको पार कर आपु-लियाकी समतल भूमि पर पहुंच शीतावासके लिये जिरोनियम नामक स्थानमें अपना खेमा खड़ा किया। वह (२१६ ई० पू०) शीतकाल यहां बिता कर बसन्त आने पर समर सज्जा करने लगा। किन्तु खाद्य द्रव्य-के अभावमें वह वहांसे कानि नामक स्थानमें चला गया और उसने रोमक फौजोंके सामने अपने खेमे खड़ा किये।

पूर्वोक्त दोनों कन्सल ८०००० पैदल और ६००० घुड़सवार ले कर हानिवलके सामने आये। हानिवलके पास ४०००० पैदलोंसे अधिक फौज न थी। किन्तु उसके पास १०००० घुड़सवार मौजूद थे। अफिदियस नदीके दक्षिण मैदानमें युद्ध हुआ। यह कानिका युद्ध

भुवनविख्यात है। हानिबलके घुड़सवार भीमबलसे युद्ध करने लगे। रोमकी विशाल फौजें सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुई। इस तरह रोमक फौजें पराजित हुई।

हानिबल यदि इच्छा करता, तो रोमको इसी समय जीत लेता, किन्तु उसने ऐसा न किया। इसलिये बहुतेरे ऐतिहासिक उसकी नीतिकी निन्दा करते हैं।

हानिबलने भी सहयोगी राजाओंको रोमके हाथसे बचानेके लिये सैन्य भेज कर साहाय्य करने लगा। हानिबल साम‌नियमसे चल कर कम्पैनिया पहुंचा और वहांका प्रसिद्ध नगर कापुआ अधिकार कर लिया। नगरवासियोंने तनिक बाधा न दे नगरका द्वार खोल दिया और उसका अभिनन्दन किया। यहां हो उसने शीतकाल बितानेके लिये खेमे खड़े किये। यहां तक ही प्यूनिक युद्धका आदि काल है। इसी समय हानिबलने सर्व भावसे साफल्य लाभ किया था।

युद्धका मध्यकाल (२१५-२०७ ईसासे पूर्व)

वाणिज्य-समृद्धि, विलासवैभव, शिल्पविज्ञानकी उन्नति और साधारण ऐश्वर्य्यमें कापुआ रोमकी अपेक्षा किसी तरह कम न था। रोमके रसिक और विख्यात ऐतिहासिकने रहस्यच्छलसे लिखा है, कि विलास वायुके सुखस्पर्शसे हानिबलकी फौजोंने अनेकांशमें दृढ़ता और उद्यमको खो दिया था। जो हो, हानिबल भी रोमके सहयोगियोंकी सहायताके लिये इटलीके एक छोरसे दूसरे छोर तक देशमें आधिपत्य फैलाने लगा। ईसासे २१५ वर्ष पहले फिर महासमर उपस्थित हुआ। फेवियस और सेम्प्रोनियस नामके दोनों कन्सल युद्धकी तय्यारी करने लगे। हानिबलने भी टिफटा पर्वत पर व्यूहकी रचना की। यहां वह इटलीवासी साहाय्यकारी राजाओंकी प्रतीक्षा करने लगा। कार्थेजसे भी घुड़सवारोंके लिये वह प्रतीक्षा कर रहा था। इस समय नोला नामक स्थानमें एक छोटा युद्ध हुआ। इसमें उसके बहुतेरे सैनिक मारे गये। टिफटामें अवस्थान करते समय वह चारों ओरसे साहाय्य प्राप्त करने लगा। माकिदन-पति फिलिपने और साइराक्यूज राजपुत्र हीरोनिमसने हानिबलके समीप दूत भेज साहाय्य करना चाहा। इस तरह और इतने दिनोंके बाद दो प्रबल राजा रोमके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये तैयार हुए।

ईसाके २१४ वर्ष पहले फेवियस और मर्सेलस फिर कन्सल नियुक्त हुए। हानिबल आपुलियासे टिफटा जा कर कापुआ नगरीकी रक्षा करनेका उपाय सोचने लगा। वह पिउटोली अधिकार करनेका सङ्कल्प कर रहा था, ऐसे समय टरेण्टम् नगर पर अधिकार करनेका मौका दीख पड़ा। इसके अनुसार वह शीघ्र उस ओर चला। रोमक सैन्य भी वहां पहुंच अपने दुर्गकी रक्षा करने लगा। हानिबल फिर शीतकाल बितानेके लिये आपुलिया चला गया। ईसासे २१३ वर्ष पहले ग्रीष्मकालमें सिसिलीमें युद्ध आरम्भ हुआ। कार्थेजीय सैनिकोंने आ कर सिसिलीमें युद्ध खड़ा किया। कुछ रोमक फौजें सिसिलीमें पहुंची थीं। इतनेमें टरेण्टम्के दो अधिवासियोंने विश्वासघातकता पूर्वक हानिबलसे नगर सौंप देनेका संकल्प किया। किन्तु किलेमें रोमक फौजोंके रहनेके कारण हानिबल कुछ भी नहीं कर सका।

साइराक्यूजके राजा हीरो रोमकोंका मित्र था। किन्तु उसका पुत्र हीरोनियस भिन्न प्रकृतिका आदमी था। उसने रोमके विरुद्ध कार्थेजकी सहायतामें युद्ध करनेका संकल्प किया था। १५ महीने राजत्व करनेके उपरान्त वह एक गुप्त घातकके हाथ मारा गया। साइराक्यूजमें प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई। रोम और कार्थेज—ये दोनों इस पर अधिकार कर लेने पर तुल गये थे। किन्तु रोमकोंके प्रबल होनेसे हानिबलके भेजे दो कार्थेजीय प्रतिनिधि एपिसाइडस् और हिप्पोक्रेटिस भाग कर लिओण्टिनी नगरको प्रस्थान किया। इसी समय कन्सल मर्सलस् फौजोंके साथ सिसिलीमें पहुंचा (२१४ ई० पू०) वह शीघ्र ही लिओण्टिनीमें हानिबलके दोनों प्रतिनिधिके साथ युद्ध करनेके लिये चला। उसने इस युद्धमें विजय प्राप्त कर लिओण्टिनी पर अधिकार कर लिया। उसने अधिवासियोंको क्षमा किया। किन्तु दो सौ सैनिकोंको प्राणदण्ड हुआ।

मर्सेलसने आगे बढ़ कर स्थल और जलपथसे साइराक्यूज पर घेरा डाला। रोमकोंने चहारदीवारी तोड़नेके लिये नाना तरहके यन्त्र और कला-कौशलकी

अवतारणा की थी। किन्तु भुवनविख्यात गणितज्ञ पण्डित आर्कमिदिसकी प्रतिभाके बलसे रोमकोंकी सारी चेष्टा विफल हुई। बहुतेरे ऐतिहासिकोंका कहना है, कि बड़े कांचके एक टुकड़ेमें सूर्यकी किरणको एकत्र कर उसने रोमकोंके बहुतेरे जङ्गी जहाजोंको जला दिया था।

मार्सेलसने स्थलपथसे दृढ़ताके साथ उस स्थान पर घेरा डाला। एक दिन जब साइराक्यूज़के दुर्गके सैनिक भोजनोत्सवमें प्रवृत्त थे, मार्सेलस अद्भुत कौशलसे उस घनान्धकारको पार कर सीढ़ी लगा कर किलेकी बहार-दीवारीको लाँघने लगा और उसने एकाएक आक्रमण कर एपिपोलाई पर अधिकार कर लिया। इधर महोत्साहसे नगरके दूसरे किनारे पर लूट होने लगी; एपिसाइडस शीघ्र ही इस किलेको छोड़ कर आकराडिना और यूरेलस किलेमें जा छिपा। मार्सेलसने युरेलस पर अधिकार कर आकराडिना पर घेरा डाला। हिमिल्को और हिप्रोक्रेटिसके अधीनस्थ कार्थेजीय सैन्य दुर्ग-रक्षार्थ मौके पर पहुंचा। किन्तु महामारीके कारण बहुतेरे कार्थेजीय सैनिकोंकी मृत्यु हुई। मार्सेलसने विजय-प्राप्त कर किले पर अधिकार कर लिया। नगरवासियोंने नगरका द्वार खोल दिया। रोमक-सैन्य नगर लूटने लगे। जब रोमक-फौजें भीषण कोलाहलके साथ नगर लूट रही थी, उस समय आर्कमिदिस एकाग्रचित्तसे ज्योमेट्रीकी प्रतिज्ञा लिख कर उसे साबित कर रहे थे। एक रोमक-सैन्य द्वारा पूछे जाने पर भी एकाग्र होनेसे उसने कुछ जवाब न दिया। उससे रंज हो कर उसने उसका मस्तक काट दिया था। मार्सेलसने इसके लिये अत्यन्त दुःखी हो कर विलाप किया था और महासमारोहसे उसको कब्र दे कर सन्तप्त परिवारको अर्थ-साहाय्यमें बहुत धन दिया। आर्कमिदिसने समाधि-स्तम्भमें उनके उद्भावित रेखागणितके सिद्धान्तोंकी प्रतिकृति और वृत्तसूचिच्छेदकी चित्रावली अङ्कित की गई।

साइराक्यूज़ने प्राचीनकालके वाणिज्यजात विलास-वैभवमें विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी। शिल्प-विकल्पित भुवनमोहन चित्रावलीमें और रमणीय भास्कर्य्य सुकुमार कारुकार्य्यमें इसको चित्रशालिका अमरावतीकी उपमास्थल थी। मार्सेलसको नगर लूट कर आशातीत धनरत्न मणिमुक्ता हाथ लगा और वह शिल्पजात अपूर्व चीजें रोमके देव-मन्दिरको सजानेके लिये ले गया। इसके पहले पुराने ज़मानेमें किसीने शिल्पविकल्पित भास्कर्यचित्रावली संग्रह करनेकी चेष्टा न की।

इधर ईसाके २१२ वर्ष पूर्व दोनों कन्सल क्लडियस और फ्यूफिवियस कापुआका उद्धार करनेके लिये चले। हानिवलके सामने आ जानेसे वे पीछे हटे। हानिवल टरेण्टामके किले पर फिर अधिकार करनेके लिये वहां चला। वहां उसने (२११ ई० पू०) शीतका समय विताया। दोनों कन्सलोंने इस सुयोगमें कापुआ पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया और दो ओरसे फौजोंने नगरको घेर लिया। यह समाचार पा कर हानिवल तेज़ीसे वहां लौट आया और भीतरसे फौजें भी उसको सहायता देने लगी। बाहर और भीतरसे आक्रमण करके भी हानिवल रोमकोंको तितर बितर नहीं कर सका। इस समय वह रोम पर अधिकार कर लेनेका गरज़से रोमकी ओर आगे बढ़ा। देखते देखते वह रोमके सिंहदरवाजे पर आ उपस्थित हुआ। उसको देख कर रोमके अधिवासी डर तो गये, किन्तु लड़ाई करनेसे पीछे न हटे। उस समय नगरके भीतर भी बहुतेरे सैनिक थे। उधर फवियसने कापुआके घेरेको सुव्यवस्था कर कुछ फौजोंको ले कर रोमकी ओर यात्रा की। हानिवल रोम-आक्रमणमें असफल हो कर उसके चारों ओरके स्थानोंको लूटने लगा। अन्तमें वह हताश हो कर लौटने पर बाध्य हुआ। विद्रोहियोंको प्राणदण्ड हुआ; सम्भ्रान्त व्यक्ति कैद कर लिये गये और बाकी अधिवासी गुलाम बना कर बेच दिये गये। अतुल ऐश्वर्य और विलासवैभवपूर्ण कापुआ नगरी श्मशानके रूपमें परिणत हुई। यह २११ ई०के पूर्वकी घटना हुई।

इसके बाद रोमक-कन्सल मार्सेलसने सलापिया नगर पर अधिकार कर लिया। किन्तु हार्डेनाई नामक स्थानमें फाबियसकी हार हुई। जो हो, रोमकी फिरसे उत्तरोत्तर उन्नतिमें विद्रोही सहयोगी फिर रोमकी शरणमें आने लगे। ईसाके २०९ वर्ष पूर्व ग्रीष्मकालमें सामनाइट और लुकानियन रोमके साथ फिर मित्रतासूत्रमें

बंध गये। इधर किलेकी फौजोंकी विश्वासघातकतासे टेरेण्टम नगर रोमनोंके अधिकारमें आया। फावियसके रणकौशलसे रोमक बारम्बार कृतकार्य्य होने लगे। हानिबलने अब सामनेके युद्धमें विपदको आशङ्का जान नगर आदिको लूटते हुए दक्षिण इटलीमें खेमें खड़ा किये और हासद्रुबलके साहाय्यकी प्रत्याशामें दिन गिनने लगे। इसी तरह ईसाके २०७ वर्ष पूर्व इटलीमें प्युनिक-युद्धका अन्त हुआ।

दोनों सिपिओकी मृत्युके बाद हासद्रुबल तेजीसे भाईकी सहायताके लिये इटलीकी ओर चला। ईसाके २०७ वर्ष पहले वह अल्पस पर्वतको पार कर इटलीकी समभूमिमें उतरा। इस वर्ष क्लुडियस निरो और एम लिभियस् कन्सल नियुक्त हुए। निरो दक्षिण इटलीमें हानिबल पर आक्रमण करने चला और लिभियस हासद्रुबलकी गति रोध करनेके लिये आरिमिनियमकी ओर चला। गल हासद्रुबलकी सहायता करने लगे। यह देख निरो यहांका आक्रमण छोड़ कर हासद्रुबलकी ओर ७००० फौजोंको ले कर चला। यह बात हानिबलको मालूम न होने पाई। सात दिनोंमें २५० मीलका पथ तय कर लिभियसके साथ निरो मिल गया। कार्थेजिय भी इन दोनोंके आनेकी बात जानते थे। एक दिन विश्राम कर दोनों कन्सल-युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। तुमुल-युद्ध होने लगा हासद्रुबल अद्भुत रणकौशलसे युद्ध करने लगा। भीमकर्म्मा हासद्रुबलके अति अद्भुत और भयङ्कर युद्धमें सहस्र सहस्र रोमक धराशायी होने लगे। पीछे हताश हो जयको आशा छोड़ हासद्रुबलने वीरतासे काटते मारते हुए अपने प्राण दे दिये। उसकी पीठ पर अस्त्रका एक भी चिन्ह न था। कन्सल नीरो हासद्रुबलका कटा शिर ले कर हानिबलके खेमेकी ओर ससैन्य चला। नीरोने वहां पहुंच कटे हुए शिरको हानिबलके खेमेमें फेंक दिया। अब हानिबलको अपने सहोदरकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ। उसने कहा था—"मैं जानता हूं, कि कार्थेजका दुर्भाग्य अब निकट है।"

मेटोरसके युद्धमें रोमक फिर इटली पर कायम हुए। हानिबल सम्मुख युद्ध तथा स्वदेश जाना असम्भ समझ कर विभिन्न स्थानोंकी फौजोंको एकत्र कर पर्वत परिवृत ब्रुटियाई नामक स्थानमें दृढ़ताके साथ खेमा खड़ा कर ४ वर्ष तक विश्राम करता रहा। इस बार प्युनिक युद्धका रङ्ग ढङ्ग बदल गया। अफ्रिका और स्पेनमें युद्ध होने लगे। पहले कहा गया है, कि सिपिओने (२१२ई०-के पूर्व) स्पेनमें प्राण त्याग किया। उसका सुप्रसिद्ध पुत्र सिपिओ इस समय जवान हो कर तरुणाईमें ही शौर्य्यवीर्य्यमें आश्चर्य्य हो उठा।

युद्धका तीसरा या अन्तिम समय (२०६-२०१ ई०के पूर्व)

रोमवासी उसको देवताका वरपुत्र कह कर सम्बोधित करते थे और इसके सम्बन्धमें उनके मनमें भी ऐसी ही धारणा थी, कि देवता उसको सारे कार्यों में सलाह दिया करते हैं। इसके बादका रोम-इतिहास इसकी उज्ज्वलकीर्त्तिसे चमक रहा है। ईसाके २१८ वर्ष पहले टिशिनासके भीषण युद्धमें उसने अपनी सत्रह वर्षकी आयुमें ही पिताकी प्राण-रक्षा की थी। कानिके युद्धक्षेत्रमें भी उसने ट्रिब्यूनके रूपमें युद्ध किया था। इस समय वह अपियास क्लडियसके साथ स्पेनमें सैन्यपरिचालन करने लगे। इस समय प्रोकन्सलका पद खाली देख २४ वर्षकी अवस्थामें सिपिओ उक्त पदके प्रार्थी हुआ। ईसाके २१० वर्ष पहले वह स्पेनमें आ उपस्थित हुआ। सिपिओने नगराधिकार कर कैदियोंके प्रति सद्व्यवहार किया। उसका वीरत्व और सद्व्यवहार देख स्पेनके सरदारोंने कार्थेजका पक्ष छोड़ कर उसका पक्ष ग्रहण किया। इसके बाद मण्डोनियस और इण्डिविलिस नामक दो प्रकाण्ड राजाओंने सिपिओका आश्रय ग्रहण कर लड़ाई करना आरम्भ किया। स्पेनके सभी अधिवासी रोमकी जयध्वनि कर सिपिओकी शरणमें आये। वे सिपिओके वीरत्व तथा सद्व्यवहारसे मुग्ध हो गये।

सिपिओ अब अफ्रिकाके कार्थेजियोंकी पराजयकी चिन्ता करने लगा। शीघ्र ही उसने वहां जा कर न्यूमिडियाके राजाओंसे सद्भाव स्थापित किया। सिपिओकी आकारसदृश प्राज्ञता और बुद्धिमत्तासे मुग्ध हो कर सभी मित्रतासूत्रमें बंध गये। सिपिओ (ईसाके २०६ वर्ष पूर्व) रोममें जा कर कन्सल-पद प्राप्त

करनेके प्रार्थी हुआ। दूसरे वर्षके लिये कन्सल पद पर नियुक्त हो उसने अफ्रिका जा वहांके प्यूनिक लड़ाईका अन्त करना चाहा। किन्तु प्रवीण दोनों कन्सलोंने इसमें सम्मति नहीं दी। तब सिपिओने सिसिली पर विजय-प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु सेनेटने फौज भेजनेमें अनिच्छा प्रकट की। सिपिओका अद्भुत साहस देख कर बहुतेरे रोमक-वीर स्वेच्छापूर्वक लड़ाईके लिये अग्रसर हुए। सेनेट इन युवकोंकी इच्छाओंको दबा न सकी। सिपिओ सिसिलीमें लड़ाईका उद्योग करने लगा। इधर उसके शत्रु उसको लौटा लानेके लिये सेनेटको उत्तेजित करने लगे। सिपिओ यूनानी साहित्यमें अनुरक्त और अत्यन्त विलासी था। इसलिये पुराने रोमवासी उसको अच्छी दृष्टिसे देखते न थे। उसके शत्रुओंने समाचार दिया, कि सिपिओ सिसिलीमें बैठ कर विलास-प्रवाहमें प्रवाहित हो रहा है, इससे उसको शीघ्र वापस बुला लेना चाहिये। किन्तु सेनेटको उसको लौटा लानेका साहस न हुआ। इसलिये जांच करनेके लिये उसने एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशनने वहां जा कर उसके युद्धोद्योग और अभिनव रणकौशल देख कर विस्मित हृदयसे भूयसी प्रशंसा की। उस समय सेनेटने उसको आनेके बदले अफ्रिकामें जा कर युद्ध करनेकी आज्ञा प्रदान की। इसके अनुसार (ईसासे २०४ वर्ष पहले) सिपिओ लिलिबियमसे अफ्रिकाके उटिका नामक स्थानमें चला गया। कार्थेजीय-सैनिक सिपिओके पहले प्रतिद्वन्द्वी जिसगो हासद्रुवलकी अधीनतामें परिचालित हुए थे और उसका दामाद साइफाक्सके साहाय्यार्थ कार्थेजके पक्षमें युद्ध करने लगा। २०३ ईसाके पूर्व रीतिके अनुसार युद्ध आरम्भ हुआ। मेसिनिसाने पूर्वके सौहृद्यके अनुसार सिपिओका पक्ष ग्रहण किया।

घोर अन्धेरी रातमें सिपिओने कार्थेजीयके खेमे पर आक्रमण किया और आग लगा दी। सारे खेमे जल कर भस्म हो गये। बहुतेरे कार्थेजीय-सैन्य तलवार और आगके मुखमें पतित हुए। हासद्रुवल फिर एक बार सैन्य ले कर साइफाक्सकी सहायतामें युद्ध करने लगा। किन्तु सिपिओ और मेसिनिसाकी सम्मिलित फौजोंने उन सबोंको पूर्णरूपसे पराजित किया। साइफाक्सकी प्रेमिका सफोनिसबा कैद कर ली गई। मेसिनिसा बहुत दिनों तक इसका प्रेमाकांक्षी था। इस समय इसको कैद कर उसने इसके साथ विवाह कर लिया; किन्तु इस बातको सिपिओ नहीं जानता था। किन्तु उसने मनमें अनुमान किया, कि पीछे इस विवाहके फलसे मेसिनिसा अपने ससुर हासद्रुवलका पक्ष ले लिया, इसीलिये उसने उस कन्याको उसके हाथ सौंप देनेकी बात कही। मेसिनिसा सफोनिसबाको वास्तवमें प्रेम करता था। इससे उसको कैद कराना उपयुक्त न समझ उसको जहर खिला दिया। इस तरह सफोनिसबाका अन्त हुआ। कार्थेजीयोंने सिपिओके पराक्रमसे तंग आ कर रोमसे चले आनेके लिये हानिबल और मागोरके पास दूत भेजे। हानिबलने १५ वर्ष तक इटलीमें युद्ध कर एक छोरसे दूसरे छोर तक अधिकार कर लिया था। हानिबलके स्वदेश लौटने पर रोमक बड़े खुश हुए। हानिबलके साथ युद्ध करनेसे रोमकोंके ३००००० सैन्य विनष्ट हुए थे। धनरत्न जो लुट गया था, उसकी इयत्ता नहीं। रोमकोंने उसके पहले ऐसे वीर पुरुषको देखा न था।

अद्वितीय पितृभक्त पुत्रने पिताकी आज्ञा पालनके लिये जो महाव्रत उठाया था, उसका किञ्चितांश पूरा कर हानिबल लम्बी सांस ले जहाज पर बैठा। उसके कार्थेजमें पहुंचते ही कार्थेजीय नये बलसे बलवान् हो उठे; किन्तु हानिबलने वहांकी अवस्थाका पर्यावेक्षण कर युद्धसे सन्धि ही करना उचित जाना। किन्तु युद्धोन्मत्त सिपिओकी कड़ी सन्धि शर्तोंको कार्थेजीय सैन्य स्वीकृत नहीं कर सका। हानिबल स्वयं उपस्थित हो किसी किसी शर्तको बदल देना चाहा; किन्तु सिपिओने उस पर जरा भी ध्यान न दिया। फलतः लड़ाई छिड़ गई। (२०२ ईसाके पूर्व) जेमा नामक स्थानमें दोनों फौजोंका भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें सिपिओकी ही विजय हुई। २०००० कार्थेजीय सैनिकोंके रक्ताक्त परिपूरित नरमुण्डोंसे युद्धस्थल भयङ्कर हो उठा। २५००० कार्थेजीय कैद कर लिये गये। हानिबलने बड़े कष्टसे अपना प्राण बचाया।

फिर युद्ध करना असम्भव समझ हानिबलने सन्धिका

प्रस्ताव किया। सिपिओकी सन्धिशर्त पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कठोर हुई। किन्तु दूसरा उपाय न था। किसी तरह सन्धि (२०१ ई०साके पूर्व) हो गई। कार्थेजीय अफ्रिकामें स्वाधीनभावसे राज्य करने लगे। उनके अन्यान्य प्रायः सभी अधिकार छीने गये। यह भी स्थिर हुआ, कि वे बिना रोमकी आज्ञाके युद्धविग्रह भी न कर सकेंगे। सभी हाथी रोमको सौंप देने होंगे। मेसिनिसाको वे न्यूमिडियाका राजा स्वीकार करेंगे। युद्धकी क्षति-पूर्त्तिमें १०००० रौप्यमुद्रा ५० वर्षोंमें रोमको देने होंगे।

इस तरह रोम बाहुबलसे पश्चिम प्रदेशोंके सार्वभौम अधिपति हो गया। इस समय दिग्विजयी सिकन्दरके उत्तराधिकारियोंके द्वारा संस्थापित यूनानी राज्योंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। जो सिरिया राज्य सिन्धुनदसे इजियन-सागर तक फैला था, उसके बहुतेरे प्रदेशोंने अधीनता स्वीकार कर ली थी। एशिया-माइनरके राजे सिरियाका शासन अस्वीकार कर स्वाधीन बन गये थे। फ्राइजिया और गलेशियामें गल प्रबल हो उठे थे। माइसिया नामक एक नया राज्य कायम हुआ था। इसकी राजधानी पार्गामास थी। पार्गामासके राजाने आद्दल्लासमें द्वितीय प्युनिक लड़ाईके समय रोमके साथ मित्रता स्थापित की थी।

इस समय ३रा अन्तिओकास् सिरियाके राजा था। उसने पार्थियानोंको पराजित कर 'ग्रेट' या महाराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इस समय टलेमीवंशीय यूनानी राजा मिश्रके सिंहासन पर बैठा था। इसने भी पिर-हासके समय दूत भेज कर मित्रताकी सन्धि कर ली थी। किन्तु ईसाके २०५ वर्ष पूर्व ४थे टलेमीकी मौत होने पर बालक-सम्राट् टलेमी एपिफेनिस सिंहासन पर बैठा। उसके मन्त्रियोंने सिरिया और माकिदनके आक्रमणकी आशङ्का कर रोमक-सम्राट् के साहाय्यकी प्रार्थना की थी। इजियन सागरमें रोडसका प्रजातन्त्र सामुद्रिक लड़ाईमें अद्वितीय कहा जाता था। इस साधारण तन्त्रने माकिदनके आक्रमणकी आशङ्कासे रोमके साथ मित्रता की थी। माकिदनिया इस समय प्राच्यजगत्में पराक्रमशाली राजा समझा जाता था। सुदक्ष राजा ५वां फिलिप इस समय इस देशका शासनदण्ड परिचालन कर रहा था। यह ईसाके २२० वर्ष पहले १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा। यूनान देशमें इसका राज्य बहुत दूरमें फैला था। किन्तु उस समय यूनानमें 'एकियान लिग' और 'इटोलियन लिग' नामके दो नये सम्प्रदायोंका अभ्युत्थान हुआ था। एथेन्स और स्पार्टा तब तक अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। किन्तु इनका पूर्वगौरव मलिन हो गया था। जब प्राच्य और प्रतीच्यकी ऐसी अवस्था थी, तब रोमके साथ माकिदनकी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी।

माकिदनीय, सिरीय और गलेशिय-युद्ध (२१४-१९८ ई० पू०)

पहले ही कहा जा चुका है, कि दूसरे प्युनिक युद्धके समय माकिदनके राजाने कार्थेजका साथ दे रोमके साथ शत्रुताचरण किया था। दिमेत्रियस नामक एक विश्वासघातक यूनान-विद्रोही इलिरीय प्रदेशसे रोमको द्वारा विताड़ित हुआ था। यह फिलिपकी राजसभामें जा कर राजाका विशेष प्रियपात्र बन गया। प्रियपात्र ही क्यों, एक परामर्शदाता बन चुका था। फिलिप सदा उसकी रायके मुताबिक कार्य करता था। दिमेत्रियस युवकने फिलिपके अन्तःकरणमें रोमके प्रति विरुद्धभावको उत्तेजना फैला दी थी। ईसासे २१४ वर्ष पू० फिलिपने कई जङ्गी जहाजोंको ले कर अरिकम पर अधिकार कर लिया और आपलोनिया पर घेरा डाल दिया। किन्तु रोमक-सैन्यके आ जानेसे वह वहां लौट आया। इसके बाद तीन वर्षों तक कोई घटना न हुई। फिर २११ ईसाके पूर्व जब 'इटोलियन लीग'ने रोमके साथ बन्धुत्व कर लिया। तब वह फिलिपके विद्वेषी बन गया। अब एकियान लिग फिलिपके साथ मिल गया। इटोलियन-लीग पहले फिलिपके साथ सन्धि करने पर बाध्य हुआ। फिर अफ्रिकामें रोम जब युद्धमें लिप्त था, तब रोमने भी फिलिपके साथ सन्धि कर ली थी। यह ईसाके २०५ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस तरह माकिदनीय पहले युद्धका अवसान हुआ। किन्तु दोनों पक्षने ही उस समय समझ लिया था, कि यह सन्धि अधिक दिनों तक टिक न सकेगी। सिपिओ जब तक अफ्रिकामें प्रसिद्ध सेनाके साथ लड़ाईमें फंसा था, तब तक फिलिपने हानिबलकी

सहायतामें ४००० सैनिक भेजे थे। इजियनसागरमें प्राधान्यलाभ करनेके लिये वह सारे यूनान पर क़ब्ज़ा कर रहा था। इसलिये रोडसके प्रजातन्त्र और पार्गामासके राजा आटालुस पर उसने शीघ्र ही आक्रमण किया। ये दोनों ही रोमके मित्रतासूत्रमें आवद्ध थे। फिलिपने लड़ाई आरम्भ करनेसे पहले सिरियाके राजा अन्तिओकासके साथ सन्धि कर ली थी। इससे रोम निश्चिन्त न रह सका। इस तरह दूसरी बार माकिदनीय लड़ाई आरम्भ हुई। ईसाके २०० वर्ष पूर्व फिलिपने पहले एथेन्स पर आक्रमण किया। इस पर एथेन्सकी सहायता करनेके लिये रोमक कन्सल सालपेशियस गलवा कई जङ्गीजहाज़ोंके साथ आया। यह देख कर फिलिप एथेन्सवासियों पर भयानक अत्याचार करने लगा। किन्तु प्रकाश्य लड़ाईमें किसी पक्षकी जय-पराजय न हो सकी। गलवाके वाद भिलियस कन्सल नियुक्त हुआ। यह ईसाके १९९ वर्ष पूर्वकी घटना है। वह भी फिलिपका कुछ विगाड़ न सका। इसके एक वर्ष वाद फ्लेमेनियस कन्सल नियुक्त हो कर नये उद्योगसे लड़ाई करने लगा। उसने शीघ्र ही थेसाली पर क़ब्ज़ा कर फोलिस और लोक्रिसमें शीतकाल बिताया। इसके दूसरे वर्षमें शिनो-सेफालेमें या 'कुकुरमस्तक' नामक स्थानकी लड़ाईमें माकिदनीय रणे युद्धका अवसान हुआ। रोमक पहले वड़ी विपदमें फंसे थे; पीछे इटालियन घुड़सवारोंके भीमपराक्रमसे रक्षा हुई। माकिदनीय फौजें भी (Phalanx) अमित विक्रमके साथ युद्ध करने लगीं। ८००० माकिदनीय फौजें आहत और ५००० कैद हुईं; किन्तु रोमकोंके ७००से अधिक सिपाही नष्ट नहीं हुए। फिलिप अब सन्धि करने पर वाध्य हुआ। ईसाके १९६ वर्ष पहले यह सन्धि हुई। इसके अनुसार फिलिपको यूनानसे फौजें हटा लेनी पड़ी। जङ्गीजहाज रोमकोंके हाथ सौंप देने पड़े और फिलिपको इस वातकी प्रतीज्ञा करनी पड़ी, कि रोमके विना कहे किसी देशसे वह मित्रता न करेंगे। लड़ाईकी क्षतिपूर्तिमें १००० रुपये रोमकोंको मिले।

फ्लेमेनियसने यूनानको शीघ्र रोमके शासनाधीन कर देना उचित न समझ यूनानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की। पीछे पांच वर्ष तक यूनानमें रह कर शासनकी बागडोरको सम्भाल कर बड़ी धूमधामसे रोम पहुंचा। रोममें उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस समय सिरियाके राजा अन्तिओकस एशियामाइनर पर घेरा डाल कर यूनान पर आक्रमण करनेकी तय्यारी कर रहा था।

इधर यूनानके इटालियन औद्धत्यके कारण फिलिप और अन्तिओकसको रोमके विरुद्ध उभाड़ रहे थे। किन्तु फिर फिलिप रोमके सामने शिर उठा न सका। अन्तिओकस और नेविसने इटालियनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस समय हानिवल अपने देशसे निर्वासित हो सिरियाकी राजसभामें उपस्थित हुआ। वहांकी सेनेटने रोमके विरुद्ध शिर ऊंचा करनेका उद्योग करनेके अपराधमें इसे देशसे निकाल दिया था। सिरियाके राजाने यहां आनन्दके साथ हानिवलको अपना प्रधान सेनापति बनाया। अन्तिओकस थेसालीके सुप्रसिद्ध दिमेत्रियस नामक सुरक्षित किलेमें पहुंचा। ईसाके १९१ वर्ष पूर्व रोमकोंने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। कन्सल इलियस-ग्लेबरने भी थेसालीकी यात्रा की। अन्तिओकस थार्मोपली नामक गिरिपथ पर सैन्य ले कर पड़ा था। इस तरह उसने रोमकोंके मध्य एशियामें आनेका रास्ता रोक रखा था। किन्तु रोमक दूसरे एक पथसे सिरियाकी फौज़ोंके पीछे आ पहुंचे। यह देख सिरियाकी फौजें भाग खड़ी हुईं। अन्तिओकस यूनानकी विजयसे निराश हो कर अपने देश एशियामें लौट आया। ईसाके १९० वर्ष पूर्व हानिवलको परास्त करनेवाला सिपिओ आफ्रिकेनासके भाई एल-सिपिओ और सी लेलियास कन्सल नियुक्त हुआ। एल-सिपिओको अन्तिओकसके विरुद्ध युद्धमें जानेकी प्रार्थना करने पर सेनेटको उसकी योग्यतामें सन्देह हुआ। फलतः सेनेटने उसको आज्ञा न दी। किन्तु सिपिओ आफ्रिकेनासके भी भाईके साथ जानेकी वात सुन कर सेनेटने पीछे आज्ञा दे दी।

इधर अन्तिओकस एक विराट सैन्योंका संगठन कर पार्गामस राज्यको लूट रहा था। रोमक फौजें हेलेसपन्तको पार कर उसके सामने पहुंच गईं। सिपाइलस पर्वतके नीचे मेगनिसिया नामक स्थानमें लड़ाई आरम्भ हुई। रोमकोंके लोक-भयङ्कर पराक्रमसे अशिक्षित

सिरियाकी फौजें ध्वंस हुईं। ५३००० सिरीय फौजें हताहत हुईं और रोमकोंके केवल ४०० सिपाही काम आये। उपाय न देख अन्तिओकसने सन्धिकी प्रार्थना की। रोमकोंकी शर्त्तें ये हुईं—(१) वह टरास पर्वतके पश्चिमके सारे प्रदेश रोमकोंको प्रदान करेगा अर्थात् वह केवल एशिया-माइनरका ही राजा रहेगा। (२) ११ वर्ष के भीतर अन्तिओकस् १५००० रुपया क्षतिपूर्त्तिस्वरूप रोमकोंको देगा। (३) उसे सभी रणहस्ती और जङ्गी-जहाज रोमकोंको देने पड़ेंगे। (४) हानिबलको कैद कर रोमकोंके हाथ सौंप देना पड़ेगा। अन्तिओकसने सन्धिशर्त्तोंको स्वीकार कर लिया। हानिबल वहांसे भाग क्रीत द्वीप पहुंचा। वहांसे वह विथाइनियाकी राजसभामें जा पहुंचा था।

एल-सिपिओ अतुल धन-सम्पत् ले कर महासमारोहसे रोम लौटा। उसके भाईने जैसे अफ्रिका पर विजय करने पर 'अफ्रिकेनास'-की उपाधि पाई थी, वैसे ही उसको एशिया जय करने पर "एशियातिकास"-की उपाधि मिली। इसके बाद विद्रोही इटोलियनोंको दण्ड देनेमें रोमक अग्रसर हुए। ईसाके १८६ वर्ष पूर्व कन्सल फलवियस नोविलिओने यूनान जा कर वहांके प्रसिद्ध नगर एम्ब्रेशिया पर अधिकार कर लिया। इटोलियनोंने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। सन्धिके अनुसार अपनी स्वाधीनता खो कर सब तरहसे रोमके अधीन हुए। इटोलियनोंने युद्धकी क्षतिस्वरूप ५०० ट्रेलेण्ट रोमको दिये। इस तरह प्रसिद्ध इटोलियन लीगकी क्षमताका ह्रास हुआ। नोविलिओके सहयोगी कन्सल मानलियस भलसो इस समय एशिया-माइनरके सन्निकटके राज्योंमें शान्ति स्थापन करनेके लिये सेनेट द्वारा भेजा गया था। किन्तु उसके हृदयमें विजिगीषा और अर्थलालसा बलवती हो उठी थी। इसलिये सेनेटके आदेशकी अपेक्षा न कर उसने गलेशियनोंके साथ युद्ध-घोषणा कर दी। उससे पहले किसी कन्सलने बिना सेनेटकी आज्ञासे किसीके साथ युद्ध किया न था। मनलियसने अतुल विक्रमके साथ गलेशियनोंको हरा कर बहुत धनरत्न हाथ किया। किन्तु रोमकोंने उस समय एशियाके जीते हुए देशोंमें कोई मुख्य शासन-प्रणाली न कायम कर रोमके अधीन हो किया। उन्होंने पार्गामसके राजा यूमिन्सको चार्सोनिज, माइसिया और लिभियाके शासनकी बागडोर दे दी और केरियाका अधिक भाग रोडियन प्रजातन्त्रके अधीन कर दिया। मनलियस १८७ ईसाके पूर्व महासमारोहसे रोम लौट आया। विख्यात ऐतिहासिकोंने इन युद्धोंको (सुलतान महमूदकी तरह) केवल धन लूटनेका दूसरा पथ कह कर निन्दा की है।

गलिक-लिगारियन और स्पेनीय युद्ध (२०० १७५ ईसाके पूर्व)

जिस समय रोमक एशिया छोटे छोटे युद्धोंमें धन-रत्न लूट रहे थे, उस समय पश्चिम यूरोपमें उपरोक्त जातियोंमें भीषण लड़ाई चल रही थी। इटलीके उत्तर पो नदीके किनारेके लड़ाई-विशारद गल और लिगारिओ जातियां हामिलकर नामक अन्य कार्थेजीय सेनापतिकी उत्तेजनासे रोमके विरुद्ध अस्त्र धारण करने पर उतारू हुए थे। २०० वर्ष ईसाके पू० गलोंने रोमाधिकृत प्लासण्टिया और तत्सन्निहित कई स्थान लूटते हुए लड़ाईकी घोषणा की।

सिपिओ द्वारा अधिकृत स्पेन देशमें रोमकोंकी शासन-प्रथा कायम हो गई थी। स्पेन देश दो भागोंमें विभक्त हो कर दो रोमक-प्रिटर या मजिस्ट्रेट द्वारा शासित होता था। किन्तु उत्तर और पश्चिममें अनेक युद्धप्रिय जातियोंने उस समय भी रोमका अधीनता स्वीकार नहीं की थी। मध्य स्पेनके केल्टिबेरियम पुर्त्तगालके लिउसेटेनियन और केराटेबियन तथा गलेशियन स्वतन्त्रभावसे राज करते थे। रोमकोंने शान्ति स्थापनके लिये प्रान्तोंमें चार दल सैनिक रोममें सुरक्षित रखे थे और इसके खर्च चलानेके लिये अधिवासियोंके सबसे पहले कर वसूल करनेकी प्रथा चलाई गई। रोमक शासन स्पेनमें स्थायिभाव बद्धमूल हो रहा है, यह देख कर वहांके अधिवासी विद्रोही हो उठे। कन्सल एम पोर्सियस केटो विद्रोह दमन करनेके लिये स्पेन भेजे गये। यह १९५ ई०के पू०की घटना है। सारे देशने रोमके विरुद्ध अस्त्रधारण किया, किन्तु केटोकी शासनकुशलता और रणनिपुणतासे फिर रोमक शासन दृढ़ हुआ।

रोमक-शासन-प्रणाली और सैन्य व्यवस्था।

इस समयके रोमकी 'कनष्टिटिउशन' या शासन-व्यवस्थाका संक्षेपमें वर्णन करना चाहिये। पहले प्लिबियन, पिट्रेशियनोंके विरोधकी घटनाओंका उल्लेख किया गया है। इस समय प्लिबियन पिट्रेशियनोंकी बराबरीमें किसी तरह कम न थे। २रे प्युनिक-युद्धके बादसे दोनों दलमें कोई विरोध नहीं हुआ। क्योंकि प्रति वर्ष दो कन्सल और दो सेन्सर प्लिबियनोंकी ओरसे नियमित रूपसे निर्वाचित किये जाते थे। पिट्रेशियनोंके किसी किसी काल्पनिक उत्कर्षके सिवाय और कोई सुविधा नहीं थी। प्रत्येक रोमवासी भिन्न भिन्न सरकारी काम करनेके बाद कन्सल हो सकते थे। किन्तु जो नीचे ओहदे पर काम नहीं करते, उनमें अधिक गुण रहने पर भी वे कन्सल नहीं हो सकते थे। सिर्फ प्रसिद्ध सिपियोंकी मुकर्ररीमें इस नियमका व्यभिचार हुआ था। ईस्वी-सन् १७६के पूर्व 'लेक्स आनालिस' नामक एक आईन बनाया गया। उसके अनुसार 'कोयेष्टरशिप' या निम्नतम मजिष्ट्रेट पद पर अधिष्ठित व्यक्तिकी उमर २८ वर्ष, उनसे नीचे इडाइलशिपकी ३७, प्रिटरशिपकी ४० तथा कन्सल पदके लिये ४३ वर्ष ठहराई गई। जो उक्त पद पर नियमानुसार कार्य करते थे, वही एक समय कन्सल हो सकते। उपरोक्त मजिष्ट्रेटगण दो भागोंमें विभक्त थे—राजचिह्नालंकृत क्यूरिउल यथा कन्सल, प्रिटर आदि तथा नन क्यूरिउल मजिष्ट्रेट या डिक्टेटर आदि।

१। कोयेष्टरगण राज्यका वेतन बांटते और राजस्व वसूल करते थे।

२। इडाइलगण ठीक पब्लिक वर्कस डिपार्टमेण्ट या सरकारी पूर्त्तकार्यके निर्वाहक थे।

३। प्रिटर और कन्सल (या राजकीय मजिष्ट्रेट) प्रिटरगण सेनेट-सभा करते, व्यवहारशास्त्र बनाते और सामरिक शासनके अधिकारी थे। प्रत्येक प्रिटरके ६ लिक्टर रहते थे। पहले सिविल विचार या नागरिक विचार-कार्यके लिये एक प्रिटर नियुक्त होते थे।

४। कन्सलगण उच्चतम मजिष्ट्रेट थे। वे राज्य-शासन और सामरिक-विभागकी परिचालना किया करते थे। वे सेनेट-सभा करते तथा साधारण सभाका अधिवेशन कर सकते थे। वे ही सेनेटके सभापति थे। इसके अलावा जनताकी सम्मतिके अनुसार ये सैन्य-विभागके सर्वमय कर्त्ता थे। वे ही प्रकृत प्रस्तावमें सैन्योंके दण्डमुण्डके कर्त्ता थे। उनमेंसे हरएकके अधीन १२ लिक्टर रहते थे। उपरोक्त मजिष्ट्रेट प्रति वर्ष ही निर्वाचित होते थे। इनके अधीन कभी कभी प्रोकन्सल और प्रोप्रिटरगण नियुक्त होते थे। साधारणतन्त्रके परवर्त्ती कालमें कन्सलोंका शासनकाल समाप्त होने पर वे प्रोकन्सलके रूपमें वैदेशिक शासनकर्त्ता नियुक्त होते थे।

५। दूसरे प्युनिक-युद्धके पहले तक डिक्टेटर शिपका विशेष प्रचलन था। किन्तु रोमकी प्राधान्य-वृद्धिके साथ साथ इस असाधारण पदकी उतनी आवश्यकता न थी। किन्तु कन्सल किसी युद्ध-विग्रहके समय डिक्टेटरकी क्षमता पाते थे।

(६) सेन्सर—प्रत्येक पांच वर्ष पर दो सेन्सर नियुक्त होते थे। किन्तु १८ महीनेसे अधिक कोई उक्त पद पर कार्य्य कर नहीं सकता था। इनके कार्य विशेष प्रयोजनीय और दायित्वपूर्ण थे। इनके कार्य तीन भागोंमें विभक्त थे—

(१) इनके सर्वप्रथम कार्य मर्दुमशुमारी और उसकी रिपोर्ट तैयार कर प्रत्येक प्रजाकी सम्पत्तिका मूल्य निर्द्धारण करना था। पीछे सम्पत्तिके अनुसार अधिवासियोंका श्रेणी-विभाग किया जाता था। पहले कहा गया है, कि सार्वियस टालियसने इस प्रथाको सर्वप्रथम चलाया था।

(२) सेन्सरोंके दूसरे कार्य—अधिवासियोंके चरित्र तथा व्यवहारके प्रति दृष्टि रखना। इस विषयमें वे अपने कर्त्तव्य ज्ञानके ऊपर निर्भर करते थे। किसीकी अनुरोध रक्षा तथा प्रशंसाकी परवाह नहीं करते थे। वे व्यक्तिगत और साधारण असद्‌व्यवहारके लिये दण्ड-विधान किया करते थे। सेन्सरगण उच्च श्रेणीके लोगोंको निम्नश्रेणीमें लाते, सेनेटके सदस्योंको दोषके कारण हटाते और साधारणको राजकीय सुविधासे वञ्चित कर सकते थे।

(३) सिवा इसके ये सेनेटके परामर्शसे राज्यशासनकी

और राजस्व संग्रहको व्यवस्था कर सकते थे। पूर्त्त कार्यकी उन्नति करनेके लिये इनके हाथमें निर्दिष्ट संख्या में रुपया आता था। इससे बड़े बड़े राजपथ या सड़कें बनती थीं।

सेनेट।

सेनेट पहले केवल एक मन्त्रिसभा थी, किन्तु क्रमसे यह राज्यके शासनयन्त्रके एकमात्र परिचालक हो उठी थी। मजिष्ट्रेट केवल सेनेटके आज्ञानुसार कार्य किया करते थे। सेनेट ३०० सदस्योंसे संगठित होती थी। जो सभ्य इसमें निर्वाचित होते थे वे आजीवनके लिये होते थे, ऐसे ही कोई विशेष कारण उपस्थित होने पर सदस्य हटाये जा सकते थे। किन्तु यह पद खान्दानी नहीं होता था। प्रत्येक ५ वर्ष पर खाली पद पर नये सदस्य चुन लिये जाते थे। सरकारी मजिष्ट्रेटोंमें-से ही ये सदस्य अधिक लिये जाते थे। राजनीति विद्या-में प्रवीणता और विज्ञता लाभ कर न सकने पर कोई सेनेटका सभ्य हो न सकता था।

सेनेटको सब तरहकी क्षमता थी। सेनेटकी आज्ञासे कोई कोई कानूनमें जनसाधारणकी सम्मति ली जाती थी। किन्तु अनेक विषयमें सेनेट साधारणकी सम्मतिके बिना कानून बना सकती थी। लड़ाई विग्रह विषयमें भी सेनेटके निर्देशानुसार कन्सल कार्य्य करते थे। पर राष्ट्र-के साथ युद्ध और सन्धि स्थापन विषयमें भी सेनेटका सार्वभौम प्रभाव था। सिवा इसके कमिशिया क्यूरि-यटा, कमिसिया सेंचुरियटा, कमिसिया ट्रिबिउटा, पपुली आदि कई साधारण समिति भी समय समय पर गठित हुई थी।

रोमकी आभ्यन्तरिक अवस्था।

माकिदनीय लड़ाईके बाद रोममें नाना विषयोंमें नाना परिवर्त्तन हुए थे। अर्थकी ऐसी महिमा है, कि एशिया खण्डमें जयप्राप्त कर धन सञ्चय होने पर रोमजातीय चरित्रमें महा परिवर्त्तनके लक्षण प्रकाशित हुए। जो त्यागको ही धर्म समझते थे, वे अर्थ पा कर भोगको ही धर्म समझने लगे और इन्द्रियसुखको ही मनुष्य भोगके चरमोत्कर्ष समझ उसके उपायमें लगे।

वाकानेलियन षड्यन्त्र।

किसी जातिके उत्थान-पतनके साथ साथ जातीय चरित्रकी उन्नति-अवनतिके साथ साथ जातीय देव-देवियोंकी उन्नति और अवनति होती रहती है। दक्षिण इटलीसे वेंकस नामक मदिरा और मदनके अधिष्ठातृ देवता रोममें स्थापित हुए।

विलासस्रोत अन्य प्रणालीमें प्रवाहित हुआ। बड़े-बड़े रङ्गालयोंकी अस्त्रक्रीड़ाका आमोद सातवें आस-मानमें चढ़ गया। नरहत्या कौतुकहास्यकी चरम-साधन कही जाती थी।

धनवृद्धिके साथ-साथ कृषिकार्य्यकी अवनति हुई। अर्थवान् मनुष्य अर्थव्यय कर (रिश्वत दे कर) सरकारी पद लेने लगे। इस कारणसे सबसे पहले (१८१ ई० पू०) "रिश्वत देना और लेना मना है" यह कानून बना है।

अधिक दिनों तक बड़ी बड़ी लड़ाई और विलासके आविर्भावसे कृषक-समाजकी अवनति हुई। गुलामी प्रथाके परिवर्त्तनमें स्वाधीन श्रमजीवियोंको अन्नाभावसे कष्ट होने लगा।

इस समय जो समस्त प्रसिद्ध व्यक्ति रोमके जातीय चरित्र और प्राचीन गुणावली अक्षुण्ण रख सके थे, उनमें एम पर्सियस केटो सर्वप्रधान हैं। पहले इस-की बात कह चुके हैं, कि केटो प्राचीन रोमके एक आदर्श पुरुष थे।

इस रोममें अपूर्व एक घटना हुई। ईसाके २१५ वर्ष पूर्व प्रथम प्यूनिक लड़ाईके समय ट्रिब्यून ओपि-यास द्वारा "लेक्सओपिया" नामका एक कानून बना था। इस कानूनके अनुसार कोई रोमक रमणी आधे आउन्ससे अधिक सोनेका व्यवहार नहीं कर सकती थी। कई तरहके रंगोंके रंगे कपड़ोंका पहनना तथा नगरके बाहर घोड़ेगाड़ीका हांकना—ये सब काम स्त्रियां कर न सकती थीं। इस समय हानिबलको जीत लेने और लूट पाट करनेसे रोमकोंके खजाने भरे हुए थे। अतः विलासिनी रमणियोंने इस समय उक्त कानूनको रद्द करनेका प्रस्ताव दोनों ट्रिब्यूनोंके पास भेजा। किन्तु इनके दोनों सहयोगी उनके विरोधी हो उठे। किन्तु

अन्तमें रमणियोंकी ही जीत हुई। वे नाना रंगोंके कपड़ोंको पहन तथा स्वर्णालङ्कारसे भूषिता हो कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने लगीं।

इस समय सिपिओ अफ्रिकेनास और सिपिओ एशियाटिकास दोनों भाई साधारण लोगोंकी दृष्टिमें गिर गये। केटोकी कुचेष्टासे नेवियस नामक एक ट्रिव्यूनने छोटे सिपिओ पर लूटे हुए धनके अपव्यय करनेका अभियोग लगाया। इस अपराधमें उसको बड़ा कठोर दण्ड होता, किन्तु प्रसिद्ध ग्राकासके बुद्धि-बलसे छोटे सिपिओ बच गया।

फिर ट्रिव्यूनों द्वारा सिपिओ अफ्रिकेनास अभियुक्त हुआ। जब उससे उसके अभियोगके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा गया, तब इसका कुछ भी उत्तर न दे कर रोमके प्रजातन्त्रके लिये अपनी की हुई कीर्त्तियोंको ओजस्विनी भाषामें वर्णन करने लगा। सिपिओ जोरसे कहने लगा—"मैंने भुवनविख्यात जेमाके युद्धमें हानिवलको पराजित किया था। आज उसका वार्षिकोत्सवका दिन है।" सिपिओके ओजस्वी भाषणसे अदालतके सभी लोग उठ कर केपिटाल पर पूजा करनेके लिये चले गये। अदालतमें केवल विचारक ही रह गया। इसके बाद सिपिओ भी अदालतका नियमवन्धन तोड़ कर अकृतज्ञ रोमको छोड़ अपनी जन्मभूमिमें जा कर रहने लगा। रोमसे सम्बन्ध विच्छेद कर बाकी जिन्दगी उसने वहीं बिताई। ईसाके १८३ वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके समय उसने कहा था, कि मेरी शवदेह अकृतज्ञ रोमकी भूमिमें न दफनाई जाये।

हानिवलने भी इसी समय प्राणत्याग किया। जब सेनेटने हानिवलको मार डालनेका विचार किया था, तब सिपिओने सेनेटके उस हुक्मको रद्द बनाया था। सिपिओको अन्तिओकस्‌सभामें हानिवलके साथ जो कथोपकथन हुआ था, वह इतिहासमें प्रसिद्ध है। सिपिओने हानिवलसे पूछा—"कहो, किसको श्रेष्ठ सेनापति कहते हो?" हानिवलने उत्तर दिया,—"दिग्विजयी सिकन्दरको।" सिपिओने फिर पूछा दूसरा कौन? उत्तर मिला—"पिरहास" फिर सिपिओने कहा,—"तीसरा कौन?" हानिवलने कहा,—"तीसरा स्वयं मैं।" यदि आप मुझको हरा देते, तब आप कौन होते? हानिवलने हँस कर कहा था—"आपको हरा कर मैं सिकन्दर और पिरहाससे भी बढ़ जाता।" वे दोनों आपसमें एक दूसरेको समझ गये थे। पहले कहा जा चुका है, कि हानिवल विथाइनियाकी राजसभामें रहने लगा था। किन्तु वहां रोमकोंके समागम होनेकी आशङ्कासे उसने विष पान कर आत्महत्या कर ली थी।

ईसाके १८४ वर्ष पूर्व केटो सेन्सर हुए। इस समय इसने रोमके भीतर बहुतेरे संस्कार किये। विलासिता दूर करनेके लिये उसने विलासिताकी सामग्रियों पर दूना कर बढ़ाया। सिवा इसके सेनेटके कई अकर्मण्य सदस्योंको उनके पदसे हटाया। किन्तु वयःवृद्धिके साथ साथ उसकी शक्ति कम होती गई। अन्तमें उसने यूनानी साहित्यकी आलोचनामें अपना ध्यान बढ़ाया। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक और प्रौढ़-वक्ता था।

तीसरा माकिदनीय युद्ध, एकियान और प्यूनिक-युद्ध।

(१७९-१४६ ई० पू०)

रोम पश्चिम यूरोपमें प्राधान्य स्थापित और एशियाके पश्चिम भागमें प्रतिनिधित्व कर शान्तिसे दिन बिता रहा था। ऐसे समय फिर युद्ध आरम्भ हुआ। ईसाके १७९ वर्ष पूर्व माकिदनपति फिलिपकी मृत्यु हुई और उसका लड़का पर्सियस सिंहासन पर बैठा। फिलिपने मृत्युके पहलेसे ही रोमके साथ फिर युद्धका आयोजन किया था। पर्सियस जब राजा हुआ, तब उसका खज़ाना भरा था। विपुल सैन्य संग्रह करनेके लिये एशियाई राजे यूनान, हेसियन, इलिरियन और केलटिक जातियोंके साथ उसने मित्रता कर ली थी। रोमक भी चुप बैठे न थे। इन सब आयोजनोंको वे देख रहे थे। इस समय पर्सियस रोमके मित्र पार्गामासके राजा यूमिनसके प्राणनाशकी चेष्टा करने पर १७२ वर्ष ईसासे पूर्व खुलमखुला युद्ध होने लगा। पर्सियसके अधीनमें प्रकाण्ड सैन्यदल संगृहीत हुआ। ओडेसियाका राजा कोटिस् उसका प्रधान सहायक बना। रोमकोंने भी युद्ध आरम्भ किया। किन्तु तीन वर्ष तक रोमक कुछ कर न सके। इधर पर्सियस ही जीतने लगा। इसलिये बहुतेरी जातियां आ

आ कर पर्सियससे मिलने लगीं। अन्तमें ईसाके १६८ वर्ष पहले रोमसे एमेलियस पलास युद्ध करनेके लिये भेजे गये। दोनों फौजें पिड़ना नामक स्थानमें जुट गईं। रोमकोंके भीषण आक्रमणके फलसे पर्सियस पहले पेला और पीछे अस्फापेलिस और वहांसे सेमोथ्रेसक भाग गया। अन्तमें वह पकड़ा गया और उसने आत्मसमर्पण किया।

ईसाके १६७ वर्ष पूर्व पलास इटली पहुंचा। उसने विपुल धन सम्पत्ति ला कर रोमके खजानेको भर दिया। माकिदूनिया पर विजय कर रोमने भूमध्यसागरके पूर्वी किनारे पर भी सार्वभौम प्राधान्य लाभ किया था। उस समयके सम्राट् भी रोमसे कांप उठते थे। प्रबलतम एकियान लीग पर्सियसके पक्ष ग्रहण करनेके अपराधमें दण्डित हुआ। १ हजार जवान सम्भ्रान्त एकियान १६ वर्ष तक रोममें कैद थे। १६ वर्षोंके बाद जब वह कैदसे छुटे, तब उनमें केवल ३०० ही जीवित बचे थे। बांकी ७०० अमानुषिक अत्याचारके कारण मर गये। इस घटनासे विरक्त हो कर अनेक विद्रोही हो उठे। उनमें आन्द्रिस्कस नामक एक दासीपुत्रने अपनेको पर्सियसका वंशधर कह कर माकिदूनीय राजसिंहासनका दावा किया और (१४९ ई० पू०) फिलिप नाम रख कर सिंहासन पर बैठ गया। पहले इसने बहुत कुछ जीता था। रोमक प्रिटर जुफेन्टियस इसके हाथसे पराजित हुए। किन्तु एक वर्ष भी राजत्व करते न करते मेटोलस द्वारा यह कैद कर लिया गया।

एण्ड्रिस्कसकी क्षणिक कृतकार्य्यतासे एकियानोंने उत्तेजित हो स्पार्टा पर आक्रमण कर दिया। किन्तु ईसाके १४७ वर्ष पहले दो रोमक कमिश्नर इस झगड़ेको मिटानेके लिये यूनान भेजे गये। किन्तु शीघ्र ही करिन्थ आदि स्थानोंमें विद्रोह मच गया। स्पार्टा एकियानों द्वारा आक्रान्त हुआ। कमिश्नरोंने भाग कर अपना प्राण बचाया। तब सेनेटने एकियान लीगके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। मेटारमस-सैन्यके साथ यूनान पहुंचे। एकियान सेनापति क्रिटोलस युद्धक्षेत्रमें उपस्थित न हो सके। पीछे स्कार्पिया नामक स्थानमें पकड़े जा कर कैद कर लिये गये। इसके बाद डियसने एकियन लीगके अधिनायक हो करिन्थ नगरमें फौजोंको रख कुछ दिनों तक युद्ध किया। कन्सल मम्मियसने करिन्थ नगर पर घेरा डाला। डियस पराजित हो कर भाग गया। वहांके अधिकांश अधिवासियोंने भाग कर जान बचाई। मम्मिय ने नगरमें घुस कर कत्ले आम जारी कर दिया और बालक और स्त्रियोंको गुलाम बना कर बेच दिया। इसके बाद उस प्राचीन करिन्थ नगरकी धन-सम्पित्ति लूटी गई फिर आग लगा कर भस्म कर दिया गया। करिन्थ नगर प्राचीन पृथ्वीके शिल्पनैपुण्यका एक नमूना था। सारा नगर जल कर राखका ढेर बन गया। इस तरह भुवन-विख्यात यह नगर भस्मीभूत हुआ। यूनान स्वतन्त्रता खो कर रोमकोंके अन्तर्गत हुआ।

३रा प्युनिक-युद्ध और कार्थेजका ध्वंस (१५६-१४६ ई० पू०)

हानिबलके निर्वासनके बाद कार्थेजीय ईसाके २०१ वर्ष पहले सन्धिके अनुसार कार्य्य करते चले आते थे। ये स्वदेशके विलुप्त गौरवको पुनरुद्धार कर रहे थे। इसलिये ये रोमकी सेनेटकी आँखके काँटे बन गये।

सेनेट युद्धका कारण ढूंढ़ने लगी। घटनाक्रमसे न्यूमिडिके राजा मेसिनिसाके साथ कार्थेजीयका झगड़ा होने लगा। वह रोमका मित्रराज था। इसलिये केटोने कार्थेजको ध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही युद्धघोषणाका परामर्श दिया। किन्तु सेनेटने सम्पत्ति नहीं दी। उस समय केटो आदि कितने ही दूत कार्थेजको अवस्था जाननेके लिये वहां भेजे गये। वहां जाने पर केटो कार्थेजका धनऐश्वर्य्य देख जल गया। रोम लौट कर इसने कार्थेज ध्वंशके लिये रोमकवासियोंको उत्तेजित करना आरम्भ किया। अन्तमें सेनेटने इसकी बात पर ध्यान दिया।

अब सेनेटने कार्थेजको तंग करना शुरू किया। सेनेटने आज्ञा दी,—प्रतिभूस्वरूप ३०० सम्भ्रान्त कार्थेजीय रोममें रखे जाये। कार्थेजने इसे स्वीकार कर ३०० युवकोंको रोममें भेज दिया। किन्तु रोमवाले इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उनको तो कार्थेजका ध्वंस करना था। फल हुआ, कि रोमकोंने कहा, कि तुम लोग अस्त्र-शस्त्र रख दो। कार्थेजीय इस पर भी सम्मत हुए। उन्होंने २००००० अस्त्र-शस्त्र, २००० चहारदीवारी तोड़नेका

सामान या एञ्जिन आदि ला कर रोमकोंके हवाले किया। निर्दय रोमकोंका कलेजा इससे भी ठण्ढा न हुआ। अब रोमकोंने कहा, कि "तुम लोग कार्थेज छोड़ कर दूसरे स्थानमें जा वसो। क्योंकि, यह नगर ध्वंस किया जायगा।"

निर्दोष कार्थेजियोंसे अब नहीं रहा गया। अब हताश और निरुपाय हो कर उन्होंने वीरताके साथ लड़ कर मर जाना ही उचित विचार किया। शीघ्र ही नगरका दरवाजा बन्द कर सारे इटालियनोंको उन्होंने मार डाला और वे इस अन्यायी शत्रुके साथ युद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर स्वदेशवत्सल कार्थेजियोंको उत्तेजित करने लगे। कारीगर दिन रात अस्त्र-शस्त्र बनाने लगे। स्त्रियां अपने बाल काट धनुष पर गुण चढ़ाने लगीं। आबाल वृद्ध वनिता स्वदेशवात्सल्यके मोहनमन्त्रसे दीक्षित और प्रणोदित हो कर अनवरत युद्धविद्या सीखने लगे। कार्थेज मानो एक प्रकाण्ड अस्त्रागार बन गया। इमिलियस पलासके ज्येष्ठ पुत्र कर्नेलियस सिपिओ ससैन्य कार्थेज पहुंचा। हासद्रुवल नामक एक निर्वासित सेनापतिने कार्थेजियोंकी अधिनायकता स्वीकार कर ली। कार्थेजियोंके दो आक्रमणोंसे रोमक तितर बितर हो गये। केवल सिपिओके रणकौशलसे फौजें नष्ट होनेसे बच गईं। सिपिओने मिस्र पर अधिकार कर कार्थेजमें अन्न आदि आनेवाले पथको रोक दिया। कार्थेजीय अद्वितीय वीरतासे आत्मरक्षा करने लगे और शीघ्र ही ५०० जङ्गी-जहाज तय्यार कर जलयुद्धकी तय्यारी करने लगे। यह देख रोमक डर गये। सिपिओका प्रमाद बढ़ गया। जलयुद्ध होने लगा। सात दिन घोर जलयुद्ध होने पर अन्तमें सभी जङ्गी-जहाज नष्ट हुए। इसके बाद सिपिओने दृढ़तापूर्वक कार्थेज पर घेरा डाला और रातको रोमकोंने कथन बन्दर पर कब्जा कर कार्थेजकी ऊंची चहारदीवारीको पार कर भीतर प्रवेश किया। नगरमें हृदयविदारक काण्ड होने लगे। खाद्याभावसे कार्थेजीय शवदेह भक्षण कर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने लगे। सभी जगह तलवारोंकी झनकार सुनाई देती थी। प्रत्येक राजपथके बड़े बड़े महलोंमें कार्थेजीय नरनारियां अपने अस्त्रोंके सामने अपनी इहलीला संवरण करने लगीं। अग्निदेव उन गगनचुम्बी इमारतोंको अपने तेजसे जलाने लगे। नर-नारियोंका रक्तप्रवाह वेगवती नदीकी तरह समुद्रमें आ कर मिल गया। इस तरह यह उन्नत और ऐश्वर्य्यपूर्ण महानगरी महाश्मशानके रूपमें परिणत कर दी गई। आज भी उसका ध्वंसावशेष उस समयकी भयानक घटनाकी याद दिला देता है।

ईसाके १४६ वर्ष पहले जुलाई महीनेमें कार्थेजका ध्वंस हुआ। सिपिओने रोममें लौट कर बड़े समारोहसे विजयोत्सव मनाया। उसने भी हानिवलजेता सिपिओकी तरह अफ्रिकेनासकी उपाधि धारण की। बाकी कार्थेज-राज्य अफ्रिकाके नामसे रोमकोंके शासनके अन्तर्गत हो गया। प्राच्यवाणिज्यके प्रधान केन्द्र करिन्थ और प्रतीच्यवाणिज्यका निलय कार्थेज—ये दोनों वाणिज्य प्रधान नगर रोमकोंके हाथसे विनष्ट हुए। इस समयसे ही रोमके जीते देशोंमें साम्राज्यका सूत्रपात होने लगा।

स्पेनका युद्ध (१५३-१३० ई० पूर्व)

इस समय स्पेन देशके शासनकर्त्ता सेम्प्रोनियस ग्राकासके सद्व्यवहार और सुशासनसे वहां शान्तिमय शासन प्रवर्त्तित हुआ था। किन्तु ईसाके १५३ वर्ष पूर्वसे गेड़ा नगरके अधिवासियोंने नगरकी चहारदीवारी बनाना आरम्भ की। फलतः रोमकोंने इस कार्य्यमें बाधा उपस्थित की। इसलिए स्पेनमें बहुवर्षव्यापी युद्धका सूत्रपात हुआ। केण्टेबेरियनोंने सेगड़ाका पक्ष ग्रहण किया। कालवियस नोविलियोंके युद्धमें उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। पीछे क्लडियस मार्सेलसने उन सबोंको पराजित कर सन्धि स्थापित की। इसके बाद सालपिसियस गलवाने ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु वह स्पेनियार्डों द्वारा विशेषरूपसे पराजित हुआ। पीछे ल्युसिनियस लुकालसने उसके सहायक बन फिरसे ल्युसिटानिया पर आक्रमण किया। किन्तु उन्होंने सन्धिके लिये गलवाके पास दूत भेजा। उस समय गलवा ल्युसिटानियोंको सपरिवार निर्भयरूपसे अपने खेमेमें आनेको कहा। वे उसकी बात पर विश्वास कर खेमेमें चले आये। वह विश्वासघातकता कर उन सबोंको मार डाला। बहुतेरे आदमी निर्दयतासे मार डाले गये। केवल भिरियेथस और अन्यान्य कई

आदमियोंने भाग कर अपनी जान बचाई। भिरिथेयस रोमकोंकी इस निर्दयता और विश्वासघातकताका बदला चुकाने पर तैयार हुआ। वह पहले भेड़िहार था, पीछे डकैती कर जीविका-निर्वाह करने लगा। किन्तु रोमकोंके इस अत्याचारसे वह स्वदेशवात्सल्यसे प्रणोदित हो उठा। लक्ष लक्ष व्यक्ति उसके अधीनमें युद्ध करने लगे। भिरिथेयस प्रकाश्ययुद्ध न कर गुप्तयुद्ध करने लगा। बहुतेरे लड़ाईमें उसके पराक्रमसे रोमक फौजें पराजित हुईं। पीछे ईसाके १४५ वर्ष पूर्व रोमसे फेवियस मेक्सिमस उसके साथ लड़ाई करनेके लिए भेजा गया। उसने भिरिथेसको विशेषरूपसे पराजित किया। यह लड़ाई न्यूमण्टियनके नामसे प्रसिद्ध हुई।

जो हो, उससे भी लड़ाईका विराम नहीं हुआ। एक दल रोमक-सैनिक उत्तर स्पेनमें केल्टिवियनोंके साथ और दूसरा दल दक्षिण-स्पेनमें भिरियेथस और ल्युसिटानियाकी फौजोंके साथ लड़ाई करने लगे। ईसाके १४१ वर्ष पूर्व भिरिथेयस फेवियसको एक गिरि-सङ्कटमें बन्द कर दिया। उसके बाहर जानेका पथ रुक गया। फेवियसने दूसरा उपाय न देख भिरिथेयससे मित्रराज बना कर सन्धि कर ली। किन्तु सेनेटने यह सन्धि स्वीकार नहीं की। फिर लड़ाई आरम्भ हुई। अन्तमें, भिरिथेयसकी मौत हो जानेसे स्पेनिशार्ड कम जोर हो गया। इसके बाद जुनियस ब्रुटसने इन स्थानोंमें शान्ति स्थापित की। किन्तु केल्टिवेरियनोंके साथ उस समय भी लड़ाईका अन्त न हुआ। ईसाके १३७ वर्ष पूर्व इष्टलियस मानसिनस न्यूमानटाइन फौजों द्वारा घिर गया और दूसरा उपाय न देख उसने सन्धि कर ली। किन्तु सेनेटने फिर इस सन्धिको अस्वीकार कर दिया। अन्तमें (१३४ ईसाके पूर्व) सिपिओ अफ्रिकेनास स्पेन भेजा गया। सिपिओने उनके नगरों पर घेरा डाला। स्पेनीय फौजें वीरताके साथ युद्ध कर नगरकी रक्षा करने लगी। अन्तमें उन सबोंको आत्मसमर्पण करना पड़ा। सिपिओने नगरकी चहारदीवारीको तोड़ कर अधिवासियोंको गुलामके रूपमें बेच दिया।

पहला गुलाम-युद्ध (१३४-१३२ ई० पू०)

न्यूमाण्टाइन युद्धके समय रोममें भीषण समाज-विप्लवका सूत्रपात हुआ। वहां गुलामोंके आ जानेसे रोमके कृषक और श्रमजीवि-समाजमें अधःपतनका स्रोत प्रवाहित होने लगा था। इधर गुलाम भी नाना प्रकारके निर्दय व्यवहारसे ध्वंसप्राय हो रहे थे। भगाये हुए दासोंकी जीविकाका कोई स्थायी प्रबंध न था। सिसिलीमें गुलामोंकी संख्या अत्यधिक हो उठी थी। वहांके एनाप्रदेशके भूस्वामी डेमोफिलसने गुलामोंको अति निर्दयतासे दण्ड दिया था। इससे कोई ४०० गुलामोंने यूनास नामक एक सिरियाके गुलामके अधीन एना पर आक्रमण किया और भीषण अत्याचार कर नगरके अधिवासियोंको मार डाला। यूनास मस्तक पर राजमुकुट धारण कर सिंहासन पर जा बैठा। यह समाचार पा कर ७०००० गुलाम और दासियोंने आ कर उसका साथ दिया। रोमके प्रिटरने सैन्य ले कर उन पर आक्रमण किया। किन्तु गुलामोंके सामने वह ठहर न सका और पराजित हो कर भागा। अन्तमें (१३४ ई०के पू०) फलभियस उनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा गया। यह भी गुलामोंको पराजित करनेमें असमर्थ हुआ। किन्तु अन्तमें कन्सल रूपिलियसने आ कर युद्धमें गुलामोंको हराया। २०००० हजार गुलाम मार डाले गये। बाकी शूली पर चढ़ा दिये गये। यूनास कैद कर रोम भेज दिया गया; किन्तु राह हीमें वह मर गया।

इस समय रोमका एशियाखण्डमें एक प्रकाण्ड राज्य हो गया। पार्गामासके राजा अटलस फिलोमेटरने निःसन्तान होनेकी वजहसे अपने विशाल राज्य और विपुल धन-भाण्डारको रोमराज्यके नाम वसीयतनामा लिख दिया। यह १३३ ईसाके पूर्वकी घटना है। किन्तु उसके पिता ओरिष्ठनिकसने इसके सम्बन्धमें बड़ी गड़बड़ी मचाई थी। रोमक कन्सल लिसिनसक्रेसस उसके द्वारा पराजित और निहत हुआ (१३१ ई० पू०)। किन्तु दूसरे वर्ष अरिष्ठनिकस रोमकसैन्य द्वारा पराजित कर कैद कर लिया गया और पार्गामस राज्य रोमराज्यमें मिला लिया गया (१२६ ई० पू०)। इस समय यूरोप, एशिया और अफ्रिका इन तीन महादेशोंमें रोमकी राज्य-सीमा बढ़ाई गई। यह प्रकाण्ड राज्य १० भागोंमें विभक्त

हुआ। १ सिसिली, २ सार्डिनिया और कर्सिका, ३-४ स्पेनके दो प्रदेश, ५ गलिया सिसालपिना, ६ माकिदनिया और एकिया, ७ इलिरिकम, ८ अफ्रिका या कार्थेज, ९ एशिया या पार्गामस, १० ट्रान्सालपाइन गल या प्रभिनसिया। रोमके प्रजातन्त्रने यह विशाल राज्य लाभ किया सही; किन्तु धन वृद्धिके साथ साथ विलासवृद्धिमें राज्यसमृद्धि नष्ट होने लगी। रोमके राज्यशासन विषयमें आभ्यन्तरिक विप्लव होने लगे। जो रोमवासी स्वदेशप्रेमसे प्रणोदित हो दिग्विजय करनेमें समर्थ थे, इस समय वे प्रेम भोगविलासमें परिणत हुए। वे त्यागधर्मको छोड़ कर भोगके धर्ममें प्रवृत्त हुए। वीरव्रत रोमक तलवार छोड़ कर हाथमें वंशी ले उसकी तानमें मस्त रहने लगे।

रोमके इस अन्तर्विप्लवके समय टाइवेरियस और केयस ग्राकसने विशेष प्रसिद्धिलाभ की थी। ये दोनों भाई विख्यात सेम्प्रोनियन ग्राकासके पुत्र और हानिवल-जेता सिपिओ अफ्रिकेनासके नाती थे। इनकी माता कर्निलियाने अपने पुत्रोंको सर्वतोभावसे सुशिक्षा प्रदान की थी। इसीलिये उस समय इन दोनों भाइयोंने रोम राज्यके युवक-समाजमें ऊंची ख्याति पाई थी। ज्येष्ठ भाईके गुण पर मोहित हो सेनेटके प्रधान सदस्य एपियास क्लडियसने उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया था। फिर टाइवेरियसकी वहन सेम्प्रोनियाके साथ छोटे सिपिओ अफ्रिकेनसका विवाह हुआ था। इस तरह ये दोनों भाई हर तरहसे रोम राज्यमें प्रसिद्ध हो गये थे। टाइवेरियस (ईसाके पूर्व १३७ वर्ष) कोयष्ठके पद पर नियुक्त हुआ। एट्रुरियाके वीचसे जाते समय उसने रोमके कृषक सम्प्रदायकी हालत खराब देख उनका संस्कार करना निश्चय किया। इसके अनुसार वह (१३३ ईसाके पूर्व) ट्रेविउनेटके पद पर नियुक्त हुआ। उसने ओजस्वी भाषामें वहांके कृषकोंकी दुर्दशाकी वात सेनेटमें कही और ३६७ वर्ष ईसाके पूर्ववाली लिसिनियस या कृषिसम्बन्धी कानूनको संस्कार कर वहां प्रवर्त्तित करनेकी प्रार्थना की। जो हो, कृषि सम्बन्धीय कानून उस समय प्रवर्त्तित हुआ। अब ग्राकसने प्रस्ताव किया, कि पार्गामासके दिये हुए धन-भाण्डारसे कृषकोंकी दशा सुधारी जाये। इस तरह ग्राकासने सेनेटके सदस्योंके अधिकार पर हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्रदेश-शासन और कोषागार (खजाना)की व्यवस्था सेनेटके सदस्योंके हाथ थी। इस प्रस्तावसे वह वहांके धनिकोंके अश्रद्धा भाजन हो उठा।

इस तरह रोममें पहले पहल अन्तर्जातीय विवाद या गृह-युद्धकी सृष्टि हुई। रोमके राजाके निर्वासन करनेके वाद ऐसी घटना नहीं हुई थी। रोमके नये सम्प्रदायके इस तरह जयलाभ करने पर भी वे ग्राकासके प्रवर्त्तित "एग्रेरियन" कानूनको रद्द करनेके साहसी नहीं हुए। ग्राकासके पद पर कार्वो नामक एक आदमी नियुक्त हुआ। इस समय ग्राकासके वहनोई छोटे सिपिओने अफ्रिकेनास स्पेनसे लौट कर अपने सालेकी मृत्यु पर हर्ष प्रकट किया। यह देख सर्वसाधारणकी दृष्टिमें वह गिर गया। सिपिओ इस समय साधारणके हितके लिये प्रवर्त्तित एग्रेरियन कानूनका प्रतिवाद करने लगा और प्लिवियन-सम्प्रदायके अधिकारमें हस्तक्षेप करने लगा। ग्राकासके पद पर प्रतिष्ठित कार्वोने 'फोरम'-में खड़े हो कर कड़ी भाषामें सिपिओको प्रजाका शत्रु कह कर तिरस्कार किया। सिपिओके फिर ग्राकासकी मृत्युसे आनन्द प्रकट करते ही सम्मिलित प्रजाने उत्तेजित हो कर कहा—"अत्याचारीको दूर करो।" दूसरे दिन सवेरे देखा गया, सिपिओकी मृतदेह शय्या पर लोट रही है। कार्वोने सिपिओको मार डाला है, लोगोंको ऐसा सन्देह होने लगा। किन्तु इस काण्डसे धनी-सम्प्रदाय डर गया। कार्वो इस समय सारे इटलीवासियोंको सभ्यनिर्वाचनमें सम्मति देनेका अधिकार प्रदान करने पर अन्यान्य स्थानोंके अधिवासी (१२६ ईसाके पूर्व) रोममें एकत्र हुए। कार्वोका प्रस्ताव व्यर्थ करनेके अभिप्रायसे ट्रिव्यून जुनियस पेन्नासने रोमके प्रवासियोंको शीघ्र ही रोम परित्याग कर अन्यत्र चले जानेका हुक्म दिया। किन्तु टाइवेरियस ग्राकासके कनिष्ट भ्राता केयास ग्राकासने इसका प्रतिवाद किया। वह कार्वो और उनके अन्यान्य मित्र इटालियनोंके पक्षमें निर्वाचनाधिकार प्रदान करनेमें तत्पर हुए। पेन्नास इसकी प्रतिकूलताचरण करने लगे। यह देख कर इटलीवासी

उत्तेजित हो उठे और फ्रेजिलो नामक स्थानके अधिवासियोंने अस्त्र धारण किया। किन्तु प्रिटरओपिमियसने शीघ्र ही विद्रोह दमन किया।

इस समयसे साधारणके लिये केयस ग्राकासकी दृष्टि आकृष्ट हुई। वह सार्डिनियाके शासनमें लिप्त रह कर (१२४ ई० पू०) अकस्मात् रोममें लौट आया और १२३ ई० पू० ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। उसने साधारणके हितार्थ सेनेटको क्षमता घटा कर समाज और राज्य-शासनके मूलतः संस्कारमें ध्यान लगाया। दरिद्रोंकी उन्नतिके लिये और रोमवासियोंके हितार्थ केयास ग्राकासने कई कानून बनाये। वह अपने भाई द्वारा बनाये कानून 'एग्रेरियन' को पुनः प्रचलित कर सर्वसाधारणके प्रियपात्र हो उठा। अतः वह १२२ ईसाके पूर्व फिर ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। इस समय फालमियस फ्लेकस कन्सल नियुक्त हो कर केयासकी सहायता करने लगा। उसमें केयास ग्राकासने सभी इटालियनोंको रोमकी तरह निर्वाचन अधिकार प्रदान किया। सेनेटने ग्राकासकी प्रतिपत्ति देख कर उसके विरुद्ध लिभियस ड्रासस नी नामक एक धनी सदस्यको नियुक्त किया। ड्रासस पहले उसके मतके अनुसार ही कार्य करता था। किन्तु केयासके अफ्रिकामें उपनिवेश स्थापनके लिये जाने पर मौका देख ड्रासस ने बहुतेरे लोगोंको केयासके विरुद्ध उत्तेजित किया। केयास ग्राकास जब रोम लौट आया, तब पहलेकी तरह उसके प्रति साधारणकी सहानुभूति नहीं दिखाई दी। वह और उसके मित्र फ्लाकास पुनः ट्रिब्यून पदके लिये उम्मेदवार खड़े हुए। किन्तु सफलीभूत नहीं हो सके। उनके विरोधियोंने सफलता प्राप्त की और वे कन्सल नियुक्त हुए। ईसाके १२१ वर्ष पूर्व केयासके शत्रुओंने प्राधान्य लाभ कर ग्राकासके चलाये सब कानूनोंको रद्द करना आरम्भ किया और सेनेटके नये सदस्य ग्राकास तथा फ्लाकसको प्रजातन्त्रके शत्रु घोषित किया। इधर दोनों कन्सल डिक्टेटरकी क्षमता प्राप्त कर ग्राकास और फ्लाकसके विरुद्ध साधारणको उत्तेजित करने लगे। फ्लाकसने अपने सहयोगी ग्राकासके साथ मिल कर शत्रुओंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। इस तरह गृह-विवादका सूत्रपात हुआ। उस समय दोनों कन्सल अस्त्रके साथ आभिण्टाइनमें फ्लाकस पर आक्रमण करनेके लिये चले। फ्लाकसने अपने पुत्रको सन्धिके लिये सेनेटमें भेजा। किन्तु सेनेटके सदस्योंने उसे मार डाला। इधर कन्सलोंके आक्रमणके फलसे फ्लाकस मारा गया और ग्राकास अकारण नरहत्यासे बच कर एक विश्वस्त नौकरके साथ साब्लिशियन पुलके निकट टाइबरनदीको पार कर एक वनमें जा पहुंचा। वहां ग्राकासने अपने नौकरसे अपनेको मार डालनेके लिये कहा। प्रभुभक्त उस नौकरने अपने मालिकको मार कर अपनेको भी मार डाला।

ग्राकास दोनों भाइयोंके जितने कानून बनाये हुए थे, उन सबको इस नई सेनेटने रद्द कर दिया। कृषकोंको जो भूमि दी गई थी, वे सब सेनेट द्वारा निकाल ली गई।

जुगार्थाइन युद्ध (११८-१०४ ई० पू०)।

सेनेटके इस अत्याचारके समय साधारणकी ओरसे एक प्रबल प्रतिनिधिका प्रादुर्भाव हुआ। इसका नाम मेरायास था। सिपिओ अफ्रिकेनासने इसका बलविक्रम देख कर कहा था, कि यह बालक हम लोगोंके समकक्ष होगा। यह अपने समय पर ईसाके ११६ वर्ष पूर्व प्लिबियनोंकी ओरसे ट्रिब्यून नियुक्त हुआ। वह प्रबल प्रतापी सेनेटके सामने साधारणके अनुकूल मत प्रकट करनेमें जरा भी भयभीत न हुआ। इस पर सेनेटके सदस्योंने डराया धमकाया। इस पर उसने कन्सल मेटलासको कैद कर लिया। इस तरह वह रोममें विशेष विख्यात तथा क्षमतासम्पन्न हो गया। उसने विख्यात जुलियस-सिजरकी चचेरी बहनसे विवाह किया था। इस समय अफ्रिकाके न्यूमिडियाके सिंहासनके विषय पर गड़बड़ी मच रही थी। वृद्ध राजाने सिनिसाकी मृत्युके बाद उसके तीन पुत्रोंमें राज्यको बांट दिया। किन्तु कुछ ही दिनोंके भीतर दोनों भाइयोंकी मृत्यु हो जानेसे मिसिप्सा अकेले सभी राज्यसम्पत्तिके अधिकारी बन गये। उन दोनों भाइयोंमें किसीको सन्तान न था। किंतु एक भाईका एक जारज सन्तान था। उसका नाम था जुगार्था। किंतु मिसिप्साने उसकी प्रतिभा देख कर अपने सन्तानकी तरह उसका लालन पालन किया; पीछे अपने राज्यका हिस्सेदार होगा, यह समझ कर उसको

दूर भेज देनेकी उसकी इच्छा हुई। इसके अनुसार उसने जुगार्थाको सिपिओकी सहायताके लिये एक छोटी फौजके साथ स्पेन भेज दिया। वहां उसके पराक्रम और प्रतिभाको देख कर सिपिओने उसको प्रशंसापत्र दिया था। किंतु मिसिप्साके दोनों पुत्र हिम्पासल और अविर्थेल उसको ईर्षाकी दृष्टिसे देखने लगे। मिसिप्साने अपने दोनों कुमारोंके रक्षकरूपसे जुगार्थाको नियत कर दिया। इसके बाद मिसिप्सा परलोक सिधारा। किन्तु हिम्पसालके विरुद्धाचरण करने पर जुगार्थाने उसे मार डाला। यह ईसाके ११७ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके बाद जुगार्थाने छोटे भाई आविर्वेलको भी मार डालनेकी चेष्टा की थी। आविर्वेल लड़ाईके लिये तैयार हुआ। आविर्वेलने जुगार्थाके विरुद्ध शिकायत कर अपनी राज्यरक्षाके लिये रोमकी सेनेटसे सहायता मांगी। इस पर रोमसे कमिश्नर भेजे गये। कमिश्नरोंने आ कर दोनों भाइयोंको बंटवारा कर दिया। किन्तु रिश्वतखोर कमिश्नरोंने जुगार्थासे रिश्वत ले कर अच्छा या उपजाऊ अंश जुगार्थाको दे दिया। इस पर भी जुगार्था सन्तुष्ट न हुआ और (ईसाके ११२ वर्ष पूर्व) सिरा नामक किले पर आक्रमण कर उसने मिसिप्साके पुत्र आविर्थेलको मार डाला। इस किलेमें जुगार्थाने कितने ही इटालियनोंको भी मार डाला। इस पर रोमके ट्रिब्यून मेमियसने सेनेटस जुगार्थासे लड़ाई करनेकी सलाह दी। इस पर वेष्टिया और स्करास लड़ाई करनेके लिये न्यूमिडिया भेजे गए। किन्तु उनको बहुल रिश्वत दे कर जुगार्थाने रोमको राजी कर लिया। इसने इनके हाथ सेनेटको ३० हाथी और कुछ धन भेजा था। यह रिश्वतखोरी छिप न सकी। केसियस नामक एक उदारचेता धार्मिक पुरुष जुगार्थाको बुलानेके लिये न्यूमिडिया भेजे गये। जुगार्था गवाही देनेके लिए ही बुलाया गया था। जुगार्था रोममें लाया गया। जुगार्था जब सभाभवनमें गवाही देने जैसे खड़ा हुआ, वैसे ही एक ट्रिब्यूनने उसे रोका। ट्रिब्यूनने उन दोनों वेष्टिया और स्कारससे रिश्वत ली थी।

जुगार्था कुछ दिनों तक रोममें ही रह गया। यहां उसको किसी साजिशमें शामिल देख कर सेनेटने इटली छोड़ देनेकी आज्ञा दी। रोमसे जाते समय सेनेटके सदस्योंके गर्हिताचरणका उल्लेख कर उसने कहा था,—"ये सोर्थी नीचाशय सभ्य उपयुक्त खरीददार पाने पर रोमको बेंच सकते हैं। रोमका पतन अवश्यम्भावी है।" इसके बाद ईसाके ११० वर्ष पूर्व जुगार्थाके साथ युद्ध होने लगा। पहले पष्टुमियस अलविनस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। किन्तु उसके असफल होने पर उसका भाई अलास उस पद पर नियुक्त कर भेजा गया। किन्तु अपनी असवधानतासे वह शत्रु द्वारा घेर लिया गया और अपमानजनक सन्धि कर रोम लौट आया। सेनेटने सन्धिको अस्वीकृत कर मेटलासको युद्ध करनेके लिये न्यूमिडिया भेजा। इधर जिन्होंने जुगार्थासे रिश्वत ली थी, वे सब देशसे निकाले गये। मेटलासके साधुचरित्रको देख कर जुगार्था रिश्वत दे कर सन्तुष्ट करनेमें हताश हुआ। मेटलासने जुगार्थाको बारंबार पराजित किया। जुगार्थाने दूसरा उपाय न देख बहुतेरे हाथी और धन दे कर सन्धि कर लेनेकी प्रार्थना की। मेटलासने अपने खेमेमें उसको आने कहा। जुगार्थाको ऐसा साहस न हुआ। इससे फिर युद्ध होने लगा।

पूर्वकथित मेरायस इस समय मेटलासके अधीन युद्ध कर रहा था। वह अपनी रणनिपुणता तथा सद्व्यवहारसे सबका प्रियपात्र बन गया था। इस समय गार्था नाम्नी एक सिरीय रमणीने उसको शीघ्र ही एक ऊंचा पद पानेकी भविष्यद्वाणी की थी। यह सुन कर उसने रोमके कन्सल पद प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। मेटलसने पहले आज्ञा न दी। किन्तु पीछे उसको रोम जानेकी आज्ञा दे दी। मेरायासने सबकी सहायतासे वह पद पा लिया। किन्तु शीघ्र ही वह न्यूमिडिया युद्ध करनेके लिये भेजा गया। इधर यह समाचार पा कर मेटलस युद्धसे विरत हुआ। मेरायासके न्यूमिडिया पहुंचने पर रोमक सैनिक बड़ी बहादुरीके साथ लड़ने लगे। मेरायासने एक एक करके जुगार्थाके सभी सुरक्षित किलों पर अधिकार कर बहुत धन संग्रह कर लिया। इस समय सल्ला नामक एक प्रतिभाशाली रोमक-सैनिक मेरायासके अधीन युद्ध कर रहा था। इसीकी कूटनीतिके फलसे मेरायास जुगार्थाको पराजित करनेमें समर्थ हुआ था।

जुगार्थाने बारंबार पराजित हो कर भी अपने श्वसुर बोथासकी मददसे एक बहुत बड़ी फौज इकट्ठी कर ली। यह देख कर बोथासको सल्ला नाना प्रलोभन और कौशलसे हाथमें कर लेनेका उपाय करने लगा। अन्तमें रोमकोंके कूट-प्रलोभनमें फंस कर बोथासने अपने दामादको जंजीरसे बांध कर रोमकोंके हाथमें सौंप दिया। सल्ला उसको ले कर बड़ी खुशीके साथ मेरायासके खेमेमें पहुंचा। यह १०६ ईसाके पूर्वकी घटना है। मेरायास इस कामसे संतुष्ट होने पर भी सल्लाके इस कामसे ईर्षान्वित हुआ। सल्ला यूनानी साहित्यके सुपण्डित और विलासी थे। किन्तु युद्ध-विद्यामें उसको अद्वितीय पण्डित देख रोमक चमक उठे। ईसाके १०४ वर्ष पूर्व मेरायास जुगार्थाको जंजीरसे बांध कर रोममें बड़े समारोहसे लौट आया। मेरायासके शत्रुओंने सल्लाको ही जुगार्थाका पकड़नेवाला कह कर उसीके गलेमें जयमाला पहनाई। मेरायास दूसरी बार भी कन्सल नियुक्त हुए।

सिम्ब्री और ट्यूटनोंके साथ युद्ध (११३-१०१ ई० पू०)

इस समय बाल्टिक और राइनप्रदेशके दो पराक्रान्त असभ्य सम्प्रदाय अल्पस पर्वतके उत्तर भागमें पङ्गपालकी तरह मिल कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगे। ये सिम्ब्री और ट्यूटन जर्मनवंशके हैं। किन्तु पीछे केल्टिक जाति भी इस सम्प्रदायके साथ मिल गई थी। यह भ्रमणशील असभ्य सम्प्रदाय अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ देश-देशान्तरमें भ्रमण कर रहा था। इस दलमें ३००००० लड़ाकू सैनिक थे। कन्सलोंने इस सम्प्रदायकी अचानक चढ़ाईसे डर कर शीघ्र उसके विरुद्ध सैन्य भेजा ; किंतु रणदुर्मद इस सम्प्रदायके साथ रोमन फौजें बारंबार पराजित तथा ध्वंस होने लगीं। ईसाके १०६ वर्ष पूर्व कन्सल जुलियस सिलेनास सिम्ब्रियोंके साथ बारंबार पराजित हुआ। इसके बाद केसियस नामक लङ्गीनास भीषण युद्धमें पराजित और मारा गया और दूसरे एक लड़ाईमें अरेलियसस्करास इस सम्प्रदायसे पराजित हुआ और कैद कर लिया गया। बहुतेरी सेना मारी गई। इसके बाद ईसाके १०५ वर्ष पूर्व दोनों कन्सल मेलियस माक्सियस और सार्भिलियस किपिओ विराट सैन्य ले कर इस सम्प्रदायके सामने आ डटे। असभ्य सम्प्रदायने इन रोमक-सैनिकोंको भीम-पराक्रमसे कदली वृक्षकी तरह काटना आरम्भ किया। हानिबलके बाद ऐसी मार-काटकी लड़ाई नहीं हुई थी।

रोमकोंने ईसाके १०३ वर्ष पूर्व इस विपदके समय मेरायासको तीसरी बार कन्सल नियुक्त किया। किन्तु यायावर इटलीकी ओर आगे न बढ़ स्पेनमें घुस कर लूटने और आग लगाने लगे। इधर मेरायास एक नई सेना एकत्र कर उसको सिखाने पढ़ाने लगा। इसने उस समय सैन्य विभागमें बहुतेरे सुधार भी किये। पीछे (१०२ ईसाके पूर्व) मेरायास चौथी बार कन्सल नियुक्त हुआ। उस समय सिम्ब्री फिर गल प्रदेशमें ढुका। मेरायास फौजोंके साथ वहां पहुंचा और उस स्थानको सुरक्षित करनेके लिये इसने भूमध्यसागरसे यहां तक एक खाई या नहर खोदवाई। यायावर दो दलोंमें विभक्त हो कर इटलीकी यात्रा की ट्यूटन मेरायासकी ओर दौड़े एकुई सेकसेटियाई नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। मेरायासकी सुशिक्षित फौजें पहले गुप्तभावसे छिपी हुई थीं। जब ट्युटन उस पथसे जा रहे थे, तब उन पर रोमक-सेना एकाएक टूट पड़ी और बुरी तरहसे ट्युटन मारे और काटे गये। सूर्यकी प्रखर किरणसे व्याकुल हो ट्यूटन भागे। पीछेसे रोमक-सैन्य मारने लगे। वीभत्स काण्ड हुआ। प्रायः सभी मार डाले गये और जो बाकी बचे उन्होंने भी आत्महत्या कर अपने प्राण गंवा दिये। गोशकटमें रहनेवाली उनकी स्त्रियां पति-पुत्रको इस तरह पराजित होते देख शिशु-सन्तानोंको मार कर स्वयं आत्महत्या करने लगीं। रक्तधारा सुदूर भूमध्यसागरमें जा मिली। मेरायास युद्धमें जय कर खेमेमें लौट आया। ऐसे समय उसको एक घुड़सवारने खबर दी कि आप पांचवीं बार कन्सल नियुक्त हुए।

इधर सिम्ब्री गङ्गाकी बाढ़की तरह आल्पस पर्वतसे इटलीकी ओर दौड़े। ट्युटनोंके मिलनेकी आशासे मिलानके बीच मार्सेली नामक स्थानमें अपने खेमे खड़े किये। (१०१ ईसाके पूर्व) ३०वीं जुलाईको लोक-भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। मेरायासके कूट कौशलसे सिम्ब्री

हार गये। इनके १४००० सैनिक मारे गये और ६०००० सैनिक कैद कर लिये गये और गुलाम बना कर बेच दिये गये। किन्तु इनकी स्त्रियां कैद न हुई वरं लक्ष लक्ष रमणियां आत्महत्या कर यमलोक सिधारीं। मेरायासने इस तरह असामान्य प्रतिभाबलसे और अभूतपूर्व रण-कौशलसे रोमक-सौभाग्यसूर्यको राहु मुखसे बचाया। रोमवासी भी देवाराधना करते समय उसकी पूजा और तर्पण करनेसे न भूले। वह रोमका ३रा उद्धारकर्त्ता कहलाया। पीछे मेरायास बड़े समारोहसे विजयोत्सव कर गौरवान्वित चित्तसे रोममें वापस आया। यह छठीं बार फिर कन्सल नियुक्त हुआ। इससे पहले और कोई भी रोम-अधिवासी इतना सम्मानित नहीं हुआ था। बड़े बड़े ऐतिहासिकोंका कहना है, कि इस यशःसूर्यके मध्याह्नकालमें मेरायासकी यदि मौत हो जाती, तो अच्छा होता। क्योंकि ऐसा होने पर उस यशोरविका अस्तगमन-रूप दुर्दिन देखना न पड़ता।

दूसरा गुलाम-युद्ध (१०३-१०१ ई० पू०)।

इस समय गुलामोंका बड़ा भारी विद्रोह खड़ा हुआ। चार वर्षव्यापी इस गुलाम युद्धने देशका बड़ा अनिष्ट किया। लुकानास और सार्डिलियास कस्काके अधीन दो बार रोमक फौजें गुलामोंसे पराजित हुईं। सालर्डि-यस नामक एक दैवज्ञने अपनी असमान प्रतिभाके बलसे शीघ्र ही २०००० पैदल और २००० घुड़सवार सैन्य पढ़ा लिखा कर अपना नाम ट्राइफन रख लिया। यही नहीं, उसने राज्याभिषेकोत्सव भी कर लिया। इधर गुलाम दो दलोंमें विभक्त हुए और आथेनी तथा आथे-निउने पश्चिम दलके राजा होने पर भी ट्राफनका प्राधान्य स्वीकार कर लिया। ट्राइफनकी मृत्युके बाद अथेनियो गुलामोंका राजा हुआ। एकुइलियस सिसिलीमें भेजे गये। उन्होंने लड़ाईमें विजय-प्राप्त कर अपने हाथों आथे-नियोको रोमके आरिफथियेटरमें सिंहशार्दूलके साथ युद्ध करनेमें नियुक्त किया। किन्तु हिंस्र जन्तुके साथ लड़ाई कर निष्ठुर रोमवासियोंके चित्तविनोद करनेकी अपेक्षा वे आपस होमें लड़ कर मर गये। यह ९९ वर्ष ईसासे पूर्वकी घटना है।

इस समय रोमको शासन-प्रणालीमें फिर विप्लव उपस्थित होनेकी सूचना मिली। मेरायास शासन और सैन्य विभागमें एकाधिपत्य करनेके लिये सङ्कल्प करने लगा। किन्तु उसकी शासन क्षमता और वक्तृता शक्ति कुछ भी न थी। इसलिये साटार्निनास और ग्लसिया नामक दो वाग्मियोंको हाथमें कर अपने काममें लगा। साटार्निनास ट्रिब्यून वहां पर नियुक्त हुआ और एग्रे-रियन कानून चला कर गल प्रदेशकी भूमिको मेरा यासने फौजोंमें बांट देना चाहा। इस आईन-की एक शर्त्त थी, कि इसके प्रवर्त्तनका प्रस्ताव यदि सर्वसम्मतिसे पास हो, तो सेनेटके सदस्य इसका पालन करने पर शपथ बद्ध होंगे और जो असम्मत होंगे वे सदस्यपदसे च्युत होंगे। मेटलास मेरायास—दोनोंने सेनेटकी सर्वसम्मतिसे यह कानून बनाया। केवल मेटलास अपने स्वीकृत शपथ पालन करने पर तैयार न हुआ। इस सम्बन्धमें मेटलास और मेरायासके पक्षमें घोरतर मनमुटाव उपस्थित हुआ। विरोधियोंके अत्याचारसे रोम राजधानी जर्जरित हो उठी। इस तरह राष्ट्रविप्लव कुछ समय तक चलनेके बाद प्रधान-प्रधान नेताओंके पदाधिकार कम हो आया। उस समय सभीके निर्वाचनमें फंस गये। निर्वाचनमें दंगा फसाद होते देख सेनेटने मेरायासके विरोधियोंको दबाने-के लिये तथा राजरक्षा करनेके लिये आदेश दिया। उस समय साटार्नियास तथा ग्लेसियाको हताश हो आत्म-समर्पण करना पड़ा। सेनेटके उनकी राजद्रोहिता पर विचार करते समय प्रजाने उन्हें मार डाला।

सेनेटके साथ विवाद करनेमें, प्रजादलकी पराजय और मेरायासके ६ बार कन्सल नियुक्त होनेमें प्रजाके स्वाधि-कारह्रासके साथ साथ रोमकोंके प्राचीन प्रजातन्त्रके अनेक परिवर्त्तन हुए। मेरायास ६ बार कन्सल पद पर सेनेटके अनुमोदित ऊपर ही ऊपर नेतृपरिवर्त्तनमें अन्त-राय उपस्थित हुआ। इस लम्बे नेतृत्वमें मेरायासने साहार्निभास प्रवर्त्तित सामयिक संस्कारपद्धतिका अनु-करण कर एक एक सेनापतिके अधीनमें साधारण सेना-दल नियुक्त किया। यह सब सैनिक अपने अपने सेना-पतियोंकी बात या आज्ञा पालन करनेके अधिकारी होंगे। साधारण सैनिकोंमें वंशमर्य्यादा या अर्थगरिमाका

कोई स्वातन्त्र्य न रहेगा। विस्तृत रोमचमू या लीजन (Legions) से सम्पूर्ण विच्युत रहा।

मार्कस फालवियस, गेयास, प्राकस, सार्टानिनास आदि ४० वर्षसे इटालियनोंको सम्मिलित करनेकी आशा देते आते थे, किन्तु वे इस काममें सफल नहीं हो सके। जितनी बार इटालियन मिले, उतनी बार वे कन्सलके कठोर नियमसे निगृहीत हो रोमसे भगा दिये गये थे। इन सब असद्व्यवहारोंसे इटालियनोंको उत्तेजित होता देख ट्रिब्यून मार्कास लिमियस ड्रूससने संस्कारका भार लिया। उन्होंने जब सेनेट सभामें राजविधि संस्कारका प्रस्ताव उठाया, तब सम्भ्रान्त सम्प्रदाय (equestrian order) अपने दलके साथ क्रोधित हो उठा। ड्रूससके बनाये कानूनोंको साधारणसे पास कर दिया, किन्तु सेनेटने मंजूर नहीं किया और ड्रूससको इटालियनोंके साथ साजिशमें लिप्त और राजद्रोही होनेकी घोषणा की। सभासे घर आते समय गुप्त हत्यारेके हाथ ड्रूसस मार डाला गया।

ड्रूससके मरने पर इटलीवासी सेनेटके विरुद्ध उत्तेजित हो उठे। उस समयके क्यूमेटियस साजिश करनेवालोंको दण्ड देनेके लिये एक समिति संगठित हुई। इस समितिके विचारफलसे बहुतेरे लोग प्राणवधके दण्डसे दण्डित हुए।

आन्तर्जातिक या मार्सिक युद्ध। (६०-८८ ई०के पूर्व)

इटली वासियोंके निर्वाचनाधिकार पर एक महायुद्धकी सृष्टि हुई। इस युद्धमें इटलीवासी इस नये सम्प्रदायके तीन लाख आदमी मारे गये। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व लिसियस क्रेससके चलाये नियमके अनुसार इटलीवासी रोमकोंके सारे अधिकारोंसे वञ्चित हुए। इसमें समग्र इटलीवासियोंने उत्तेजित हो कर तथा मार्सियन, पेलिगनियन, मेरिउसिनियन, भेष्टिनियन, साबेलियन, पिसेण्टाइनस, सामनाइटस, आपुलियन और लुकानियन आदि पराक्रान्त जातिके लोगोंके साथ दल बांध कर रोमके ध्वंस साधनके लिये एकत्र हो कर अस्त्र धारण किया। इनमें मार्सि जातिने अधिनायकत्व ग्रहण किया था। इससे यह मार्सिक "युद्ध" कहलाया। इस समय लेटिन किसी ओर साथ न दे कर निरपेक्ष रहे। सम्मिलित इटालियनोंने रोमवासियोंके समभावसे निर्वाचनाधिकार न पानेकी आशासे इटालीमें एक नई राजधानी कायम और रोम नगरको ध्वंस करनेका सङ्कल्प किया। पलिग्नि जातिकी वासभूमि कर्फिनियम नगरीं इस नये प्रवर्त्तित प्रजातन्त्रकी राजधानी कायम हुई और इसका नाम इटालिका रखा गया। यहां ५०० सदस्योंकी एक एसेम्बली कायम हुई। इस प्रजातन्त्रके प्रतिवर्ष दो कन्सल और १२ प्रिटर नियुक्त होने लगे। सिलोपपेडियस नामक एक मार्सियन इसके प्रथम कन्सल नियुक्त हुआ।

एल जुलियस सीजर और रुटिलियास रुफास रोमके कन्सल नियुक्त हो कर युद्धके लिये चले। मेरायास और कर्नियाससल्ला इनके अधीन हो कर युद्ध करनेके लिये चले। पहले वर्ष मर्सिया जीतने लगा। रुटिलियास रुफास भयङ्कर युद्ध करके भी विपक्षियोंके हाथ मारा गया और मार्सिया कन्सल केटोने युद्धमें विजय पाई। किन्तु रोमक-वीर युद्धसे पीछे न हटे। विशेष दृढ़ताके साथ युद्ध कर मेरायास और सल्लाने कन्सल, सीजर, कम्पेजियर, मर्सि आदि शत्रुओंको पराजित किया। मेरायासके अधीनमें रोमक-सेना सुरक्षित भावसे अवस्थान करने लगी। इस समय रोमकोंने विपद्की आशङ्कासे जुलियस सीजरके परामर्शके अनुसार 'लेक्सजुलिया' नामक एक कानून बनाया। यह ईसासे ६० वर्ष पूर्वकी घटना है। इस कानूनके अनुसार रोमकी ओरसे विश्वस्त रूपसे युद्धकारी और शान्त प्रजावर्गको रोमवासियोंके साथ समभावसे निर्वाचनाधिकार (Franchise) देनेकी व्यवस्था हुई। इससे अब रोम प्रबल हो उठा और लड़ाईके दूसरे वर्षसे रोमकोंको सफलता प्राप्त होने लगी। इसके दूसरे वर्षमें पम्पियास ष्ट्राबो और पर्सियास केटो कन्सल नियुक्त हो कर युद्धक्षेत्रमें पधारे। लड़ाईके प्रारम्भमें केटो मर गया, किन्तु रोमक फौजें कमजोर न होने पाईं। केटोके लेफ्टिनेन्ट सल्ला प्रबल पराक्रमसे युद्ध करने लगा। उसका यशः सूर्य्यके प्रखर किरणसे मेरायासकी ख्याति हीनप्रभ हो उठी। वह मर्सिया सेनापति मिउटलासको पराजित कर बभियेनाम् नामक सुरक्षित दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

इधर पम्पियास ष्ट्रावो उत्तर-इटलीमें जीतने लगा। प्रबल युद्धके बाद आस्कालाम नगर पर अधिकार हो गया। विपक्षियोंके अधिकांशने हथियार छोड़ कर अधीनता स्वीकार कर ली। उस समय प्लेटियास सिल्मेनास और पेपिरियस कार्बो नामक दोनों ट्रिव्यूनने "लेक्स प्लोटिया-पपेरिया" नामक एक कानून बनाया। यह ८९ ईसाके पूर्वकी घटना है। इससे जिस कारणसे युद्धकी उत्पत्ति हुई थी, वह कारण दूर हुआ। अतएव बहुतेरे विपक्ष रोमक-दलमें आ गये। इस युद्धमें इटलीका सम्भ्रान्त नया सम्प्रदाय निर्वंश हो गया। अन्तमें ३५ जातियां और १५ विभिन्न इटलीवासियोंको रोमके साथ समान निर्वाचन-अधिकार मिला। इसके बाद सामनाइट और लुकानियनोंने कुछ दिनों तक रोमके विरुद्धाचरण किया था। सामनियमके युद्धमें सल्लाने दोनोंकी शक्ति क्षीण कर दी थी। इसके बाद सारे इटलीके रहनेवाले रोमकी प्रधानता स्वीकार कर एकमें मिल गये।

इस अन्तर्विप्लवका अन्त होने पर भी पूर्वतन कलह-सूत्र पर फिर वाद-विवाद होने लगा। स्वाधिकार प्राप्त नया इटली-सम्प्रदाय रोमक सदस्योंकी पक्षपातिता और निर्वाचन विषयमें अपने पक्षमें राजकीय शक्तिका अलगाव कर घोरतर प्रतिवाद करने लगा। सदस्योंकी घोर प्रतिद्वन्द्वितासे सेनेटसभाका रूप बदल गया था। साम्प्रदायिक वाद-विवाद, आपसमें शत्रुताभाव और प्रजाका चिरन्तन प्रसिद्ध और राज्यव्याप्त हृदय-भेदी मर्मपीड़ासे समूचा रोम पीड़ितोंके करुण क्रन्दनसे परिपूरित हुआ। अर्थनाश और अन्नाभावके कारण प्रजा ध्वंस होने लगी। रोमके इस कष्टने वहांकी सभी श्रेणीके लोगों पर अपना प्रभाव जमाया था।

पहला गृहयुद्ध (८८-८६ ईसाके पू०)

इस गड़बड़ीके दूर होते न होते मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध लड़ाईकी घोषणा की गई। इस समय पण्टसके राजा छठें मिथ्रिडेटिस या यूटरके साथ रोमका युद्ध अनिवार्य हो गया। पहलेकी लड़ाईमें सल्लाने जैसा पराक्रम और रणप्रतिभा दिखाई थी, उसको देख कर ही सबोंने उसको इस बार कन्सल नियुक्त किया (८८ ईसाके पूर्व)। किन्तु वृद्ध मेरायास इस पदके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। सिवा इसके उसने सालपिसियस रुफास नामक एक वक्तृता-कुशल और क्षमताशाली व्यक्तिको लूटी हुई धन सम्पत्तिका प्रलोभन दे कर अपने पक्षमें कर लिया। ऐसा कर वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिका उपाय खोजने लगा। सालपिसियसने मेरायासको मिथ्रिडेटिक-युद्धमें अधिनायकत्व प्रदान करनेके लिये एक नया कानून बनाया। सेनेटके सदस्योंने इसको रोकनेके लिये "जाष्टिशियम" घोषणा की। इसके अनुसार उस समय कोई कानूनी कार्य्य नियम विरुद्ध कहा जाता था। किन्तु सालपिसियस बलपूर्वक यह रद करने पर उतारू हुआ। उसने अपने ३ हजार अश्वक्रोड़कोंका एक "एण्टीसेनेट" दल कायम किया और वह इनके साहाय्यसे बलपूर्वक कन्सलोंको फोरमसे निकाल कर अपनी अभीष्टसिद्धि पर उद्यत हुआ। पम्पियस भाग गया। उसका पुत्र और सल्लाका दामाद कुइण्टस मारा गया। सल्लाने अपने फोरमके निकटके मेरायासके घरमें घुस कर अपनी जान बचाई और प्राणके भयसे पूर्वोक्त "जाष्टिशियम" प्रत्याहार किया।

सल्ला रोम छोड़ कर कम्पनियाके निकट नोला नामक स्थानमें अवस्थित अपने सैन्योंके साथ मिल गया। इधर सलपिसियस और मेरायासने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास मिथ्रिडेटिक युद्धमें कन्सल नियुक्त हुआ और उसने सल्लाके सैन्यदलका नेतृत्व ग्रहण कर नोलामें प्रतिनिधि भेजे। यह प्रतिनिधि नोलामें सल्लाकी फौजोंके चलाई ईंटोंके टुकड़ेंसे मर गया। अब सल्लाने अपनी फौजोंको रोमके विरुद्ध चलाया। इस तरह सल्ला फौजोंके साथ रोम पर अधिकार करने चला। मेरायासने उसकी गतिमें बहुत रुकावटें डालीं; किन्तु वह विफल हुआ। अन्तमें सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया। मेरायास पुत्रके साथ भाग चला। सल्लाने रोम पर अधिकार कर लिया सही; किन्तु रक्तपात लूट तराज न होने दी। सालपिसियस अपने गुलामके विश्वासघातसे पकड़ा और मार डाला गया। इस समयसे रोमका राजनैतिक घटनास्रोत दूसरी प्रणालीसे प्रवाहित हुआ। इस समय अर्थात्

ईसासे ८७ वर्ष पूर्व सिन्ना और अक्टेवियस कन्सल नियुक्त हुए। इसके बाद ही सल्ला इस वर्षके प्रारम्भमें ही एशिया चला।

सल्लाने विजय पाई सही, किन्तु उससे रोमक-सभा विशेष लाभवान् न हुई। उसने देखा, कि जो काम राजकीय नेताओंके अनुमोदनसे होता था। वह अब फौजोंकी तलवारके बलसे ही सम्पन्न हो जाता है। फौजें भी अपने नेताओंके हुक्मके सिवा दूसरा कार्य नहीं करती थीं। सल्लाके रोम त्याग करनेके बाद ही कन्सल सिन्ना· सालपिसियसके प्रस्तावित ३५ जातियोंमें समभावसे निर्वाचनाधिकार विधि प्रचलन करने पर उतारू हुए। जो सारे नये नागरिक इस विषय पर मत या वोट देनेके लिये फोरमके सामने उपस्थित हुए थे, उनको सिन्नाके प्रतियोगी अक्टेवियसने मार डाला। सिन्ना भाग गया। रोमके लिजनमें जा कर रहने लगा। सेनेटने उसको फिर कन्सल पद पर प्रतिष्ठित किया। उसने कम्पेनियाकी सेनाओंको प्रजाके स्वाधिकार नष्ट होनेकी बात कह कर उत्तेजित किया। देखते देखते सहस्र सहस्र व्यक्ति उसके अनुयायी बन गये। निकटका इटली सम्प्रदाय इस नागरिक हत्या पर बहुत क्षुब्ध हुआ था। वह भी सिन्नाके दलमें शामिल हुआ और धनजनकी पूरी मदद करने लगा। इधर सल्लाके अभ्युदयसे रोमसे भागे मेरायास एक सहस्र न्यूमिडिया घुड़सवार ले कर इट्रेरियामें पहुंचा। वहां उसके दलके लोगोंने उसके दलमें भर्त्ती हो कर उसका बल बढ़ाया। अल्प कालमें ही उसने ६ सहस्र सेना ले कर जेनिकिउलमको घेर लिया और पीछे रोमके प्रवेशद्वारके सामने सिन्नाके साथ मिल गया।

सेनेट पहले युद्धार्थ प्रस्तुत हुए; किन्तु दुर्भाग्यवश अधिक समय तक युद्धमें टिक न सका। इसीसे पराजित होना पड़ा। सिन्नाको फिर कन्सल पद मिला और राजद्रोहिताके लिए निर्वासित मेरायास फिर बुलाया गया। उस समय सिन्ना और मेरायास ससैन्य रोमनगरमें आये।

मेरायासने नगरमें प्रवेश कर अपनी प्रतिहिंसा-पिपासा शान्त की। प्रसिद्ध वाग्मी आण्टोनियस और अक्टेवियस मारे गये। विद्वेषियोंके रक्तपातसे रोमका राजपथ रंग गया। इस भयावह हत्याकाण्डसे रोमने भीषण मूर्त्ति धारण कर ली थी। इस बार शत्रुशून्य रोमनगरमें मेरायासके पक्षवालोंने उसको सातवीं बार कन्सल पद पर नियुक्त किया। किंतु कुछ सप्ताहके सिवा वह इसका आनन्द न ले सका। ईसाके ८६ वर्ष पूर्वके प्रारम्भमें ही वह इस संसारसे चल बसा। इसके बाद सिन्नाके तीन वर्ष तक रोमका शान्तिके साथ शासन करने पर भी वास्तविक रूपसे रोमका शासन सम्बन्धीय उन्नतिपथ बिलकुल रुक गया। वह सदा सल्लाके आनेके भयसे डरा करता था। इसीलिए ८६ ईसाके पूर्व कन्सल भालेवियस फ्लाकास सल्लाको नीचा दिखानेके लिए भेजा गया। किन्तु दुर्भाग्यसे निकोमिडिया स्थानमें वह अपने सैन्य द्वारा मार डाला गया।

प्रथम मेथ्रिडेटिक युद्ध (८८-८४ ईसाके पूर्व)

कृष्णसागरके किनारेके एशिया-माइनरके बीच मिथ्रिडेटिसका समृद्धशाली राज्य था। पूर्व मिथ्रिडेटिसकी गुप्तहत्याके बाद ६ठवें मिथ्रिडेटिसने १२वें वर्षकी अवस्था में ही राजसिंहासन लाभ किया। यह शस्त्र और शास्त्रमें विख्यात पण्डित था। २५ विभिन्न भाषाओंका वह जानकार था। वह धीरे धीरे अपने राज्यकी सीमा बढ़ाने लगा। इसी समय २रे निकोमिडेसकी मृत्यु होनेके बाद ३रे निकोमिडेस राजगद्दी पर बैठा। किन्तु मिथ्रिडेटिसको यह मंजूर न था। इससे इसने एक दूसरे आदमीको राजगद्दी देनेके लिये उसने एक सैन्य भेजा। इससे डर कर वहांका बालक राज छोड़ कर भाग रोमकी शरणमें चला गया। रोमकका भाग्य चमका। रोमकोंके साहाय्यसे फिर वह गद्दी पर बैठा और उसने रोमकोंका बल पा कर उसने मिथ्रिडेटिस पर आक्रमण कर दिया। किन्तु मिथ्रिडेटिसने उसके आक्रमणका जवाब देते हुए उसको पराजित किया और बिथाइनियासे उसे भगा दिया। इसके बाद उसने फ्रिजिया और गलेसिया पर अधिकार कर एशियाके रोमक प्रदेश पर आक्रमण किया। कन्सल एकुइलास मिथ्रिडेटिसके हाथ कैद हुआ।

इसके बाद मिथ्रिडेटिसने पार्गामास पर अधिकार कर

उसके सारे इटालियनों और रोमकोंको मार डालनेकी आज्ञा जारी कर दी। ८०००० रोमक एक दिनमें मार डाले गये। मिथ्रिडेटिसके जयलाभसे यूनानियोंने रोमकी अधीनताको तोड़ कर विद्रोही हो उसकी सहायताके लिये यात्रा की। इस समय सल्लाने फौजोंके साथ यूनानके अन्तर्गत पपिरासमें आ कर एथेन्स और पिरियास पर घेरा डाल दिया। कुछ ही समयमें सल्लाने एथेन्स पर अधिकार कर उसे लूटा पाटा।

मिथ्रिडेटिसके सेनापति आर्थेलास विशाल सैन्य ले कर ब्यूटियामें सल्लाके सामने आ डटा। चोरेनिया नामक स्थानमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। किन्तु इस समय एक नयी विपद्का सूत्रपात हुआ। मेरायासकी ओरसे एक सैन्य ले कर भालेवियस फ्लाकसको एक दल फौजके साथ यूनानमें मिथ्रिडेटिस और सल्लाके साथ ही युद्ध करनेके लिये भेजा गया। फिम्ब्रिया नामक सेनापतिके साजिशसे फ्लाकास मार डाला गया। पीछे फिम्ब्रिया सेनापति हो कर मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध कई युद्धोंमें परास्त किया (८५ ई०के पू०)। इधर आर्कोमेनास नामक स्थानके युद्धमें सल्लाने आर्थेलासको पूर्णरूपसे पराजित किया। उस समय मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। यह ईसाके ८४ वर्ष पूर्वकी घटना है। इसके अनुसार मिथ्रिडेटिस एशिया खण्डके जीते हुए प्रदेशोंको रोमकोंको दे दिया और ७० सुसज्जित जङ्गीजहाज रोमकोंको दिये। युद्धके क्षतिस्वरूप उसने २०० टालेण्ट प्रदान किये। सल्लाने सन्धि कर मेरायास द्वारा भेजे हुये फ्लाकासके हत्याकारी सेनापति फिम्ब्रियासे युद्ध करनेकी तयारी की। यह देख फिम्ब्रियाकी सेनायें उसे परित्याग कर सल्लाकी फौजोंसे मिल गई। फिम्ब्रियने आत्महत्या कर ली। इसके बाद सल्ला इटलीकी ओर बढ़ा। सल्लाने एशियामें विजय प्राप्त करते समय अपर सम्पत्ति हस्तगत कर ली थी। सिवा इसके वह युद्धमें फंसे रहने पर भी यूनानके टिउस नगरसे एपेलिकन नामक विराट पुस्तकालय रोम ले आया था। इस पुस्तकालयमें अरिष्टल और थिउफ्राष्टसके ग्रन्थ सुरक्षित थे।

ईसाके ८३ वर्ष पूर्व वसन्तकालमें ४० हजार सैनिक और बहुसंख्यक पारिषदोंके साथ सल्ला ब्राण्डुसियममें उतरा। उस समय एल-सिपिओ और नोर्वानास कन्सल थे। सिन्ना और सिसालपाइन, गलोंके प्रो-कन्सल कार्बो, सल्लाके साथ युद्ध करनेके लिये सैन्य संग्रह कर रहे थे। किन्तु सिन्ना अपने विद्रोहियोंके हाथ मारा गया। मेरायासका दल नेतृहीन हो कर भी सल्लाके साथ युद्ध करनेका आयोजन करने लगा। २००००० फौजें मेरायासके दलकी ओर युद्ध करने लगीं। किन्तु सल्ला ४०००० फौजोंके साथ ब्राण्डुसियासमें उपस्थित था। किन्तु मेरायासका सैन्य दल, अधिनायक और शिक्षाके अभावसे कापुआ, टिनाम और पिनेष्टिके युद्धमें पराजित हो कर तितर बितर हो गया।

कन्सल नोर्वानास कम्पिनीयरके युद्धक्षेत्रमें पराजित हो कर रोडस द्वीपमें चला गया। इधर कार्बो और छोटा मेरायास रोमके कन्सल नियुक्त हुए। ईसासे ८२ वर्ष पूर्व सल्लाके सैन्यके साथ छोटे मेरायासका साक्रिपोर्टस नामक स्थानमें युद्ध हुआ। मेरायासने परास्त हो कर प्रिनेष्टि नामक स्थानमें आश्रय ग्रहण किया। प्रिनेष्टिके उद्धारके लिये दो युद्ध हुए। इस समय पम्पी और कार्बोमेटलास सल्लाकी ओरसे कार्बोके साथ युद्ध करने लगे। सल्ला बे-रोक रोममें जा घुसा। कार्बो पराजित हो कर अफ्रिका भागा। किन्तु सामनाइट और लुकानियन सल्लाके विरुद्ध युद्धार्थ रोमकी ओर दौड़े। कलिनगेट नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। सामनाइट-सेनापति पण्टियास कासकी अद्भुत वीरताके कारण पराजित हुआ और मारा गया। कम्पोस मर्शियस नामक रणक्षेत्रमें सल्लाके नृशंस आदेशसे कई सहस्र सामनाइट और लुकानियन कैदियोंका शिर काट लिया। इस घटनासे प्रिनेष्टि किलेके सैनिकोंने आत्मसमर्पण किया। छोटा मेरायासने आत्महत्या कर ली। लुकानियन निर्दय भावसे मारे गये। सल्ला अब इटलीका एकमात्र कर्त्ता हो गया। उसने मेरायासके पक्षपाती सभी आदमियोंके कटे शिर लानेकी आज्ञा जारी की और इसके लिये पुरस्कारका लोभ दिखाया। इसके अनुसार भीषण लोम-हर्षण दृश्यका अभिनय होने लगा। २०० सेनेटके सदस्य, ४६ कन्सल, १६०० विचारक और १५०००० रोमवासियोंके शोणित स्रोतसे रोममें वीभत्स दृश्य उपस्थित हुआ।

इस लोक-भयङ्कर नृशंस कार्य्यके समय सल्ला रोमका डिक्टेटर या सार्वभौम स्वामी हुआ। कन्सलका निर्वाचन लुप्त हुआ, किन्तु रोममें सल्लाका यथेच्छाचार शासन प्रचलित होता देख ईसाके ८१ वर्ष पूर्व दो कन्सल नियुक्त हुए। किन्तु सल्ला अनिर्दिष्ट कालके लिये डिक्टेटर हुआ। यथार्थमें रोमसे प्रजातन्त्र-शासनका अन्त हुआ और व्यक्तिगत यथेच्छाचारकी प्रतिष्ठा हुई। ईसाके ७८ वर्ष पूर्व ६० वर्षकी अवस्थामें सल्लाकी मृत्यु हुई। सल्लाकी आज्ञासे उसकी शवदेह कम्पास मर्शियास नामक स्थानमें जलाई गई। उसकी बनाई एक कविता उसके स्मृतिस्तम्भमें खोदी गई थी। उसका मर्म इस तरह है—"मित्रका उपकार और शत्रुका अपकार सल्ला ने अच्छी तरह निबाहा था।" उसके चलाये शासनमें सेनेटका पुनर्गठन, प्रादेशिक शासन व्यवस्था और फौजदारी अदालतका संस्कार उसकी प्रतिभाके परिचायक हैं। ये सब रोममें स्थायी हुए थे।

सल्लाकी मृत्युके बाद चारों ओरसे विशृङ्खलता दिखाई देने लगी। उसने कृषकोंका सर्वनाश कर फौजोंको जागीर दी थी। वे सब इस समय उत्तेजित होने लगे। सल्लाके सहयोगी इमेलियस लेपिडसने सल्लाके बलाई शासन व्यवस्थाका मूलोच्छेद करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु उसमें वह असफल हुआ। बल्कि पद्रास्कान विद्रोहियोंके साथ मिल कर उसने रोमके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। सल्लाके लेफटनण्ट केटलसने मालभियान सेतु नामक स्थानके युद्धमें लेपिडसको पराजित किया। मेरायास पक्षी शासनकर्त्ता क्यूसार्टारियासने स्पेन देशमें अपने प्राधान्य स्थापित करनेकी चेष्टा की। ईसाके ७६ वर्ष पूर्व मेटेलास उसके विरुद्ध भेजा गया और पराजित हुआ। अन्तमें प्रो कन्सल पद प्रतिष्ठित कर पम्पी (ग्रेट) स्पेनमें भेजा गया। सार्टोवियासने कई युद्धोंमें पम्पीको पराजित किया। दो वर्षके बाद सार्टोवियास अपने विद्रोही सैनिक पार्पार्ना द्वारा गुप्तभावसे मारा गया। पार्पार्नाने सोचा था, कि वह पम्पीको पराजित करेगा। किन्तु पहले ही युद्धमें वह पम्पी द्वारा पराजित तथा कैद हुआ। इस पम्पीने शीघ्र ही स्पेन जय कर इटलीकी यात्रा की। इस समय रोममें विषम विपद्की सूचना मिली। स्पार्टाकास नामक एक थ्रेसियन गुलाम युद्धमें कैदके रूपमें पकड़ा जा कर कापुआके अस्त्र-क्रीड़ागारमें (Gladiator's training school) शिक्षित हो रहा था। अम्फी-थियेटरमें यह अस्त्रक्रीडक आपसमें एक दूसरेको वध कर रोमक दर्शकोंकी शोणित-पिपासा दूर किया करता था। ईसाके ७३ वर्ष पू० स्पार्टाकास ७० अस्त्रक्रीडकोंके साथ व्यायाम घरसे भाग कई नौकरोंको ले कर विसुवियास पर्वत पर जा पहुंचा और अपने दलकी पुष्टि करने लगा। बहुतेरे अस्त्रक्रीडक या खेलाड़ी और गुलाम शीघ्र ही स्पार्टाकासके दलमें मिल गये। दो वर्षके भीतर स्पार्टाकासने ७० हजार सैन्य एकत्र कर समूचे इटली पर अधिकार कर लिया। यह ईसाके ७२ वर्ष पूर्वकी घटना है। दोनों कन्सल उससे हार गये। इसके बाद स्पार्टाकास समूचे इटलीमें लूटपाट मचा दी। सेनेटने इस विपद्के समय (७१ ई०के पूर्व) प्रिटरक्रासासको ६ दल सैनिकोंका अध्यक्ष बना कर युद्धक्षेत्रमें भेजा। लुकानियाके पेटिल्ला नामक स्थानमें स्पार्टाकासके सैन्यके साथ क्रासास्का भयङ्कर युद्ध हुआ। स्पार्टाकास पराजित हुआ और आपुलियर मारा गया। पकड़े हुए ६ हजार सैनिकोंको कापुआसे रोम तक पथके दोनों पार्श्वोंमें श्रेणीबद्ध भावसे खड़ा कर शूलों पर चढ़ा दिये गये। बाकी सैन्य पम्पी द्वारा विनष्ट हुआ था। पीछे पम्पी और क्रासास, दोनों कन्सल बनाये गये। नियमानुसार वे पदके लिये उपयुक्त न थे, फिर भी सेनेटने उनको कन्सल नियुक्त किया। ईसाके ७१ वर्ष पूर्व ३१ वीं दिसम्बरको पम्पी जयोल्लासमें महासमारोहसे रोम पहुंचा। इसके कार्यकालसे सल्लाकी शासन-व्यवस्थामें बहुत फेरफार हुआ। इस समय अरेलियासकट्टासे लेक्सने अरेलिया नामक कानून बनाया।

दूसरा मिथ्रिडेटिस युद्ध (८३-८२ ई०के पू०)।

सल्लाके एशियासे इटलीमें लौट आनेके बाद रोमक सेनाध्यक्ष मरेनाने अरेलाकी मायासे मिथ्रिडेटिसके राज्य पर आक्रमण किया था। उसमें मिथ्रिडेटिस रोमक सेनेट मरेनाके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर उसके प्रतिविधानकी आशा करता था; किन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ। वरं मरेनाने उत्तरोत्तर मिथ्रिडेटिस

पर आक्रमण कर उसको तंग कर दिया था। उस समय निरुपाय हो कर मिथ्रिडेटिसने एक दल सैन्य संग्रह कर हेलिस नदीके किनारे मरेना पर आक्रमण किया। इस बार मरेना पराजित हो कर फ्रिजिया भागा। उस समय मिथ्रिडेटिसने कापाडोकिया आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। इस समय (८२ ईसाके पूर्व) गाविनियासने सल्लाकी आज्ञासे एशिया जा कर मरेनासे युद्ध वन्द करने कहा। इस पर मिथ्रिडेटिसने पूर्व सन्धिकी शर्त्तोंके अनुसार कापाडोकिया छोड़ दिया और वह अपने घर लौट आया। इसी तरह दूसरे मिथ्रिडेटिसयुद्धका अन्त हुआ।

तीसरा या महामिथ्रिडेटिक युद्ध (७४ ६१ ई०के पू०)

मिथ्रिडेटिस रोमकोंकी अभिसन्धि जान कर भीतर ही भीतर युद्धकी तय्यारी करने लगा। मेरायास पक्षीय सेनापति स्पेनके सार्टारियास और हजारों जलडाकू उसके दलमें आ मिले। इसी समय विथाइनियाके राजा ३रे निकोमिडस अपनी मृत्युके समय अपना समूचा राज्य रोमके प्रजातन्त्रके नाम सौंपा गया। किंतु निकोमिडसकी नाइसा नाम्नी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न लड़केको गद्दी पर बैठानेके लिये मिथ्रिडेटिसने साहाय्य करने लगा। इसके सम्बन्धमें भीषण युद्ध हुआ।

रोमक सैनिक लुकालस और अरिलियासकट्टा उनके विरुद्ध युद्धके लिये भेजे गये। मिथ्रिडेटिसने पहले समूचे विथाइनिया पर अधिकार कर लिया। अंतमें मिथ्रिडेटिसको पराजित किया और उसको मिजिकास नामक स्थानमें घेर कर खाद्य द्रव्यकी आमद रफ्त रोक दिया। उस समय वह अपने राज्यमें लौट आया। किंतु लुकालासने उसका पीछा कर उसको फिर पराजित किया। मिथ्रिडेटिसने अपने दामाद अर्मेनियाके राजा टाइग्रेनसके मिलित सैन्य ले कर रोमक-सेनापति फेरियासको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया। इसके वाद (६७ ईसाके पूर्व) रोमक सेनाध्यक्ष, ट्रियारियस जिला नामक स्थानमें भयङ्कर युद्धमें पराजित हुआ। रोमकोंके खेमे और युद्धसामग्री शत्रुके हाथ लगीं।

इधर लुकालासके विपक्षियोंको रोममें प्राधान्यलाभ करने पर उन्होंने लुकालासको रणक्षेत्रसे लौट आनेकी आज्ञा भेज दी। उससे लुकालासकी सैन्य विद्रोही हो उठीं। इस अवसर पर मिथ्रिडेटिस और टाइग्रेनसने फिर पण्टास और कापाडोकिया पर अधिकार कर लिया। लुकालासके विपक्षियोंने उसके बदले ग्लव्रिओको कन्सल नियुक्त कर युद्धक्षेत्रमें भेजा। किन्तु वह शत्रुपक्षका कुछ भी बिगाड़ न सका। मिथ्रिडेटिस (६७ ईसाके पूर्व) फिर अपने सिंहासन पर बैठा। इसी समय पम्पी मिथ्रिडेटिस युद्धके सेनापति होनेके कारण लुकालासने अपना पद परित्याग किया।

जल डाकुओंके साथ युद्ध।

इस समय भूमध्यसागरके जल डकैतोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया था। सिरिया, साइप्रस और क्रीतद्वीपके सभी आदमी इस काममें लिप्त थे। उन सबोंने व्यवसायिक जहाजोंको लूटने पाटनेसे बहुत धन संग्रह किया था। उनके पास एक हजार जङ्गीजहाज और बहुतेरी सुशिक्षित फौजें तथा मल्लाह थे। वे प्रबल-पराक्रान्त हो उठे थे। उन्होंने अष्ट्रिया बन्दरमें कई रोमक जहाजोंको जला दिया तथा अण्टोनियासकी दुहिता तथा पुत्रको पकड़ लिया था। इस पर रोमसे मर्सिलियस युद्ध करनेके लिये भेजा गया। ईसाके ६७ वर्ष पूर्व ट्रिब्यून गेबिनियस "लेक्स गेबेनिया" नामका एक कानून बना कर भूमध्यसागरके युद्धादि-निर्वाह करनेके लिये एक क्षमताशाली शासनकर्त्ताके नियोगका नियम बनाया। इसके अनुसार २०० जङ्गीजहाजें तैयार हुए। पम्पी इन सब जहाजोंके अधिनायक बन कर युद्ध करने चला और ३ महीनेके भीतर उसने उन जल-डाकुओंको परास्त किया। २०००० जल डाकू कैद कर लिये गये। किन्तु पम्पीने इनको जानसे न मार कर इनसे एशिया-माइनर और अन्यान्य स्थानमें उपनिवेश स्थापित कराया। इसके बाद पम्पीने सिलिसिया नामक स्थानके जल-डाकुओंके सुरक्षित किलोंका ध्वंस किया। ईसाके ६६ वर्ष पूर्व ट्रिब्यून मनिलियसने 'लेक्समानिलिया' नामका कानून बना कर पम्पीको मिथ्रिडेटिक युद्धकी अध्यक्षता सौंपी। सिसिरो और जुलियस सीजरने पम्पीका पक्ष समर्थन किया था। समाचार पाते ही पम्पीने एशिया जा कर लुकालाससे सेनापतित्व ग्रहण किया और कौशलसे पार्थिव नरपतिको हाथमें कर ससैन्य मिथ्रिडेटिसके

विरुद्ध स्थलपथसे यात्रा की। मिथ्रिडेटिसने सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर पम्पीने जरा भी ध्यान न दिया। तब मिथ्रिडेटिस अर्मेनिया भागा और पम्पी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ। पीछे सिनोरियसके दुर्भेद्य दुर्गमें रह कर उसने फिर सैन्यसंग्रह कर लिया। किन्तु इस बार उसका दामाद टाइग्रेनसने उसकी सहायता न की। मिथ्रिडेटिस सैन्यके साथ वस्फोरसके निकटके अपने राज्यमें भाग गया।

पम्पीने उसका पीछा न कर टाइग्रेनस पर आक्रमण किया। टाइग्रेनसका पुत्र पितासे बगावत कर पम्पीकी ओर हो गया। साथ ही अर्मेनियाके सभी नगरवासियों ने पम्पीकी अधीनता स्वीकार कर ली। निरुपाय हो कर टाइग्रेनसने पम्पीके सामने आत्मसमर्पण किया। पम्पीने उसके साथ सद्व्यवहार कर ६००० टेलेण्ट ले कर उसको अर्मेनियाका राजा स्वीकार करना चाहा। सिरिया, फिनीकिया, सिलिशिया और कापाडोकिया रोमके अधिकारमें आया। पम्पीने इसके बाद मिथ्रिडेटिसके विरुद्ध यात्रा की। राहमें आइवेरिमन और अलवेनियनोंके साथ उसका युद्ध हुआ। दोनों जातियोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली (६५ ईसाके पूर्व)। किन्तु मिथ्रिडेटिसका अनुसरण कष्टसाध्य समझ फिर लौट कर उसने पण्टासमें रोमक शासन कायम किया। इसके बाद पम्पी सिरियाराज्यके ध्वंसावशेषमें जो सब स्वाधीन राज्य उद्भुत हुआ था, उस पर अधिकार करने लगा। अन्तिओकस एशियाटिकस राज्यच्युत हुआ और उसका राज्य अधिकृत हुआ। इस तरह सारा सिरिया और उसके निकटके देशोंमें रोमक-शासन प्रतिष्ठित कर (६३ ई०के पू०) पम्पीने फिनिकिया और पलेस्ताइन देशमें यात्रा की। इस समय हिर्कानास और अरिष्टाबुलास नामक पेलेष्टाइनके पुरोहित दोनों नरपति युद्धमें प्रवृत्त हुए। पम्पीके हिर्कानासका पक्ष लेने से अरिष्टाबुलसने शीघ्र ही आत्मसमर्पण किया। किन्तु राजाके पराजित होने पर भी जेरुजेलमवासी यहूदी प्रजाने रोमकोंकी अधीनता स्वीकार न की। तीन मासके घेरेके बाद जेरुजेलम पर अधिकार हुआ। पम्पीने उस पवित्रतम मन्दिरमें (Holy of Holies) प्रवेश किया। इससे पहले पवित्र यहूदी पुरोहितके सिवा इस मन्दिरमें कोई घुस न सकता था। पम्पीने हिर्कानासको पुरोहितके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर अरिष्टबुलसको कैद कर रोमकी यात्रा की। इस समय उसको मिथ्रिडेटिसकी मृत्युका समाचार मिला। मिथ्रिडेटिस मृत्युके पहले विराट सैन्य दल संगठन कर हानिबलकी तरह इटली आक्रमणका संकल्प कर रहा था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र फार्नासेसने कुछ दिनों तक विपक्षता की थी। पीछे उसने वस्फोरसका राजा बन रोमकी अधीनता स्वीकार कर ली और डिओटेरस, गेलेशिया और एरिओ वाजेंनस कापोडोकियाका करद राजा बना। पम्पीने जीते हुए देशोंमें ३९ नये नगर प्रतिष्ठित किये। इसी समय रोमकी पूर्वी सीमा दूर तक फैली।

रोमके बाहरी प्रदेशोंमें रोमकी विजय वैजयन्ती फहराने पर भी विशेष कोई उन्नति नहीं हो सकी। गेवियन और मानिलियन कानूनों द्वारा सेनेटकी क्षमता कम हो गई थी। प्रजा अपनी अवनति देख क्रासेसकी मुखापेक्षी हुई। साधारण पक्षके मध्य रोममें जुलियस सीजरकी प्रतिभा व्याप्त हुई। वह रोममें प्रधानता लाभ कर गौरव-पथ पर चढ़ने लगा। उसने ईसाके १०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। यह पम्पीसे ६वर्ष छोटा था। उसके चाचाकी पुत्री जुलियाके साथ विख्यात मेरायासका विवाह हुआ। सीजरने अपने सिन्नाकी कन्या कर्निलियाके साथ विवाह किया था।

रोमका तत्सामयिक इतिहास (६९-६१ ई० पूर्व)

सल्लाने सीजरकी प्रतिभा देख कर कहा था, कि एक दिन इस नये सम्प्रदायका प्राधान्य इस बालक द्वारा ही ह्रास होगा। सीजरने वक्तृताशक्तिमें भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रोड्सके अलफारिकोंसे शिक्षा लाभ की थी। आपलोनियसने उसकी आराधना की थी। मेरायासके पक्षका पुनः जीवित करना ही सीजरका उद्देश्य था। अपने व्यवहारसे वह सर्वसाधारणका प्रियपात्र हो उठा था। ईसाके ६८वर्ष पूर्व उसने कोयेष्टका पद प्राप्त किया। किन्तु इसी समय उसकी पत्नी कर्निलिया और मेरायासकी विधवा पत्नी जुलिया

मर गई। इस शोकपूर्ण घटनासे उसने ओजस्वी भाषामें सर्व साधारणको सम्बोधित कर एक वक्तृता दी थी।

वह गेविनियन और मानलियन कानूनका एक प्रधान पृष्ठपोषक था। ईसाके ६५ वर्ष पूर्व उसने मेरायासकी प्रतिमूर्त्ति छिप कर रात्रिमें केपिटालमें प्रतिष्ठित की। पहले यह प्रतिमूर्त्ति सल्ला द्वारा तोड़ी गई थी। सीजरके इस कामसे प्रजाने अत्यन्त आनन्दके साथ उसकी जय-ध्वनि की थी। केचेलासने इस घटनाका समाचार सेनेटमें कहा; किन्तु सेनेट आनन्दित प्रजाका कुछ बिगाड़ न सकी। इस तरह सीजर, मेरायास, सिल्ला और मार्टि-नास आदिने प्रजापक्षीय वीरोंकी विलुप्त कीर्त्तियोंका पुनरुद्धार करने लगा।

इस समय मार्कास टालियास सिसिरो सीजरके सहकर्मी रूपमें काम करने लगा। सिसिरोने ईसाके १०६ वर्ष पूर्व आर्पिनाम नगरमें जन्म लिया था और अपनी प्रतिभाके बलसे २५ वर्षकी अवस्थामें सेक्सरोसियासके प्राणदण्डकी आज्ञाके समय डिक्टेटर सल्लाके विरुद्ध ओजस्विनी भाषामें वक्तृता दे कर सर्व साधारणको उत्तेजित किया था।

इस समय रोममें कटलाइनकी साजिशका घोर आन्दो-लन चल रहा था। अन्यान्य शत्रुपक्षसे रोम नगरको प्रजासमेत ध्वंस करनेके लिये वेष्टल कुमारियोंके साथ साजिश चल रही थी। कटलाइनने अरेलिया अरेष्टिला नाम्नी एक वेश्याके प्रेम-फांसमें पड़ कर अपनी पत्नी तथा पुत्रका वध कर दिया था। सिसिरोने रोमध्वंसकी साजिशको प्रकट किया। सिसिरोकी वक्तृताके फलसे साजिश करनेवालेको प्राणदण्ड हुआ था। ईसाके ६३ वर्ष पहले सिसिरोने कन्साल पद पाया। इसी समय एक ओरेप्रिडधून, कन्साल कृषिसम्बन्धीय एक कानून बनाने-की चेष्टा कर रहे थे। दूसरी ओर कटलाइनकी दूसरी साजिशकी नयी विपद् प्रकट हुई। सिसिरोने जुपिटरके मन्दिरमें कटलाइनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर ८वीं नवम्बरको सेनेटके सदस्योंकी एक सभा बुलाई। साजिश करनेवाले इस बार भी जानसे मारे गये। काटो-लाइन अब सैन्य संग्रह कर रोम पर आक्रमण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। ईसाके ६२ वर्ष पहले उसकी फौजोंके साथी कन्सलकी फौजोंका युद्ध हुआ। कटलाइन परा-जित हुआ और मारा गया। सिसिरोके बुद्धिबलसे इस विपद्से रोम बच गया था। इसीलिये केटोने उसको "रोमका पिता" कहा था। सारे देवोमन्दिरमें सिसिरोके कल्याणके लिये पूजा हुई। किन्तु साजिश करनेवालोंको विना विचार किये प्राणवध करने पर बहुतेरोंने सिसिरोको अपराधी बनाया।

पम्पी रोममें आ कर दो विपदमें फंसा। नया पक्ष या साधारण पक्ष—किस पक्षका अवलम्बन करूं—यह बात वह स्थिर न कर सका। फिर नये पक्षसे विद्वेषका लक्षण देख उसने साधारण पक्षका अवलम्बन लिया। उसने एशियाके युद्धमें विशिष्ट सेनापतियोंको जागीर देनेकी प्रतिज्ञा की थी इस समय सेनेटसे उसने प्रार्थना की, कि सेनापतियोंको जागीर दी जाय। किन्तु सेनेटने उसकी प्रार्थनाको नामंजूर कर दिया। अब पम्पी कौशल-से प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी चेष्टा करने लगा। इसलिये क्रासस और सीजरसे उसने मित्रता स्थापित की। सीजर इस समय स्पेन और ल्यूसेटानियाके युद्धमें विजय-प्राप्त कर रोममें लौट आया और वह कन्सल नियुक्त किया गया। पम्पी, सीजर और क्रासस इन तीनोंकी मित्रता पहले 'ट्रायम्विरेट' नामसे प्रसिद्ध है। यथार्थमें ये तीन पुरुष ही रोमके सार्वभौम मालिक हो उठे। किन्तु उस समय इनमें सीजरका प्राधान्य सबसे अधिक था। सीजरने कन्सल-पद प्राप्त कर पम्पीकी प्रार्थना पूरी की और काम्पिनियाके भूमिखण्डको पम्पीकी सेनाओंमें बांट दिया। सीजरकी मध्यस्थतामें सेनेटको बाध्य हो कर पम्पीके एशिया-विजय-कार्यका समर्थन करना पड़ा। इसके बाद सीजरने पम्पीके साथ मित्रता दृढ़ करनेके लिये अपनी दुहिताका विवाह पम्पीके साथ कर दिया। सीजर क्रमसे सब पक्षके लोगोंका प्रियपात्र हो उठा। सीजर रोम-साम्राज्यके प्राधान्यलाभ कर सैन्यबल बढ़ानेका उपाय सोचने लगा। इसके लिये उसने गल-प्रदेशके शासक पदके लिये प्रार्थना की। फल भी हुआ। ट्रिब्यून भेटिनियासकी अनुकूलतासे वह सिसाल-पाइन-गल और इल्लिरिकम प्रदेशका शासक बना। ईसाके ५८ से ५४ वर्ष पूर्व तक वह इस पद पर था। यहां एक बड़ी

विशाल सैन्य सुशिक्षित करने लगा। जिन गलोंने एक दिन इटलीका बहुत अनिष्ट किया था, उन गलोंका वह दमन करनेकी बात सोचने लगा।

उक्त त्रयश्वीर-समिति या ट्रायम्बरेटके बुलाने पर सिसिरो उनके दलमें सम्मिलित नहीं हुआ। इसलिये ट्रिब्यून पोक्लडियासने सिसिरोसे शत्रुताचरण करनेकी चेष्टा की। ईसाके ६२ वर्ष पूर्व सीजरकी स्त्रीका "बोना डिया" व्रतोपलक्षमें पुरुषोंका आना निषेध रहने पर भी क्लडियास स्त्री-वेशमें स्त्री मण्डलीमें घुस गया था। क्लडियासके अभियोगके सम्बन्धमें सिसिरोकी गवाही देने पर उनके साथ विरोधका कारण उपस्थित हुआ। विचारकोंके अविचारसे क्लडियसको छुटकारा मिला था। कडियसने एक कानून बनाया, कि जिसने विना मामला चलाये रोमकोंको फांसी दिलवाया है, वह निर्वासित किया जायगा। इसलिये सिसिरो रोम छोड़ कर यूनान चला गया। यह ईसाके ५८ वर्ष पूर्वकी घटना है। इस कार्य में क्लडियसने त्रयश्वीर-समितिको राय नहीं ली। पहले पम्पी द्वारा कैद टाइग्रेनसको छोड़ देनेके फलसे पम्पीके साथ उसकी शत्रुता उत्पन्न हुई। पम्पीने इसका बदला चुकानेके लिये यह चेष्टा की, कि किसी तरह सिसिरो फिर रोममें बुला लिया जाय। पम्पीकी मनस्कामना पूर्ण हुई। सेनेटने उसको बुलानेके लिये दूत भेजा और ईश्वरकी कृपासे वह एक बार फिर रोम लौट आया। रोममें सिसिरोके लौटने पर उसकी कल्याण-कामनाके लिये जुपिटर-मन्दिरमें पूजा चढ़ाई गई। यह ४थी सितम्बर सन् ५७ ईसाके पूर्वकी घटना है।

सीजरकी चौथी यात्रा (५५ वर्ष ईसासे पूर्व)।

ईसाके ५६ वर्ष पूर्व सीजरने वृटानी प्रदेशमें मेनेटी जातिके विरुद्ध यात्रा की और वहांसे कैले और बोलन प्रदेशोंके निकटके मरिनी और मेनापाई जातियोंके दुर्भेद्य दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सीजर राइन नदीके किनारे केल्टिक जातिके साथ युद्धमें लिप्त हुआ। इस युद्धमें जर्मनोंको सीजरने पूर्णरूपसे पराजित किया। जयप्राप्त कर सीजरने दश ही दिनोंमें राइन नदी पर एक पुल तैयार कर राइन नदीको पार किया। वहांसे लौट कर कोलन और सेलाम्ब्री नामक स्थानके अधिवासियोंको हरा कर रोममें वह लौट आया। सीजर इसी समय वृटेन पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प कर कैलेके निकट-वर्त्ती इटियास नामक स्थानमें जहाज पर चढ़ कर साउथ फोरलैण्ड नामक स्थानमें उतरा। वृटेन भीम-पराक्रमसे युद्ध करके भी पराजित हुए।

सीजरकी पांचवीं और छठीं यात्रा (ईसाके ५४ वर्ष पूर्व)।

इस बार ५ लीजन ले कर सीजर वृटेनमें आया। वृटन मिडलसेक्स और एसेक्स प्रदेशके अधिपति केसि-भेलनासको सेनापति बना कर युद्ध करने लगे। वृटेन कई युद्धोंमें पराजित हुए। उन्होंने रोमक खेमों पर आक्रमण किया सही; किन्तु वे सीजरके साथ युद्धमें पराजित हो कर भाग गये। किन्तु शीघ्र ही विद्रोही हो कर वे स्वाधीनताकी चेष्टा करने लगे और बहुतेरे रोमक सैनिकोंको उन्होंने मार डाला। सीजरने सिसाल्पाइन गलसे दो दल सैनिक एकत्र कर गलोंको पराजित कर फिर विद्रोहियोंको अपने वशमें किया। जर्मनोंने गलोंका साहाय्य किया था; इससे सीजरने फिर राइन नदी पार कर जर्मनोंको हराया। गलोंने फिर रोमकोंके विरुद्ध प्रबलवेगसे अस्त्र धारण किया।

सीजरकी ७वीं यात्रा (ईसासे ५२ वर्ष पूर्व)।

भर्सिङ्गेटोरिक्स नामक एक प्रसिद्ध वीर गलोंका सेनापति बना। इसके प्रबल-प्रतापके कारण सीजरके ६ वर्षोंकी विजयविभूति पर पानी फिर जानेका उपक्रम हो गया था। गलोंका यह सेनापति बर्गाण्डी प्रदेशके एलसिया नगरके किलेमें जा कर ठहरा। बहुतेरे गल-सैनिकोंने रोमक सैनिकोंको घेर लिया। इस विपद्के समय सीजरने अद्भुत साहस तथा अतुल बल-विक्रमसे गलोंको छिन्न भिन्न कर दिया। एलेसिया सीजरके अधिकारमें आ गया। गलोंके सेनापति कैद कर लिया गया।

सीजरकी ८वीं यात्रा (५१ ईसाके पूर्व)।

सीजरने इस यात्रामें समूचे गल देश पर अधिकार कर वहां रोमक-शासनकी प्रतिष्ठा की। प्रत्येक प्रदेशमें शासन-व्यवस्था और 'कर' निर्द्धारित कर वह रोम लौट जानेको तैयार हुआ। इस तरह नौ वर्ष तक लगातार

युद्ध कर सीजरने रोम-साम्राज्यकी उत्तरी सीमाको बहुत दूर तक बढ़ा दिया।

ईसाके ५४ वर्ष पहले क्रासस पार्थिव राजाओंके साथ युद्ध करनेके लिये सिरिया गया। किन्तु मूर्खतावश २०००० रोमक उनके हाथ पराजित हुए तथा मारे गये। उनके कटे शिर पार्थिव-राजके दरबारमें भेजे गये। क्राससकी मृत्युसे पम्पी और सीजर रोमके अधिनायक थे। कुछ ही समयमें इन दोनोंमें परस्पर विद्वेष हो गया। सीजरकी कन्या और पम्पीकी पत्नी जुलियाकी मृत्युसे इनका सम्बन्ध और भी क्षीण हो गया। सभीके मुंहसे सीजरकी गल-विजयकी बात पम्पीको असह्य हो गई थी। इसके बाद पम्पी डिक्टेटरका पद प्राप्त कर सार्वभौम आधिपत्य-लाभ करनेकी चेष्टा करने लगा।

इस समय बड़ी अराजकता फैली। माइलोने कन्सल हो कर क्लडियसको मार डाला। सीजरकी कन्या जुलियाके मर जानेके बाद पम्पेने नेटेलस सिपिओकी कन्या कर्णिलियासे विवाह किया। अपने श्वसुरको शीघ्र ही उसने कन्सल पद पर नियुक्त किया। किन्तु सीजरको कन्सल-पदका प्रार्थी होना देख कर पम्पीने एक कानून बनाया। इसके अनुसार किसी भी पदके प्रार्थीको रोममें रह कर उसे पद-प्राप्तिकी प्रार्थना करनी होगी। कोई भी नियुक्तिकी तारीखसे ५ वर्षसे अधिक एक प्रदेशमें शासक न रह सकेगा। इसी समय सिपिओने एक आज्ञा प्रचारित की, कि "सीजर अमुक दिनको अपने पदसे इस्तेफा दाखिल न करेगा, तो वह रोमका शत्रु समझा जायेगा।" सेनेटने नव-नियुक्त कन्सलोंको डिक्टेटरकी क्षमता प्रदान की सही; किन्तु ट्रिब्यून आण्टोनियस और कासीओ इसके विरुद्ध आज्ञाका प्रतिवाद करनेमें रोमसे निकाले गये। इसके बाद गुप्तरूपसे सीजरके खेमेमें जा कर उन्होंने उससे सहायता मांगी। फलतः फिर एक बार गृह-विवाद उठ खड़ा हुआ। सेनेटने पम्पीको सेनापति बनाया।

गृहयुद्ध (ईसाके ४९-४४ वर्ष पूर्व)।

सीजरने सेनेटका दृढ़ सङ्कल्प देख सैन्य-समावेश कर उन सैन्योंका मत जानना चाहा। फौजोंने एक वाक्यसे उसकी आज्ञा पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। यह इटलीकी उत्तरी सीमाकी रुबिकन नदीको पार कर थोड़े सैनिकोंको ले इटलीकी ओर तेजीसे दौड़ा; सीजर-विजय प्राप्त करते करते पिसेनामको पीछे छोड़ कर्फिनियाममें पहुंचा। इसी स्थानमें पम्पीका सेनापति सदलबल खड़ा था। पम्पीका सेनापति अहेनोबार्बास, बहुतेरे सेनेटके सदस्य और कई प्रसिद्ध व्यक्ति कैद कर लिये गये। सीजरने इन पर कठोरताका व्यवहार नहीं किया। इससे सीजर पर साधारणका भाव अच्छा हो गया।

सीजरके बारंबार जीतने पर पम्पी तथा प्रजातन्त्रके प्रतिनिधि भयभीत हो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। सन्ध्याके घनान्धकारमें पम्पी रोम छोड़ कर भाग गया। भयसे वह खजानेसे धन तक लेना भूल गया। कन्सल, सेनेटके सदस्य और बहुतेरे विख्यात मनुष्य भी पम्पीके साथ भागे। जहाजकी कमीसे सीजरने उन सबोंको पीछा न किया। अतः रोम छोड़ कर कोई तीन महीनेमें सीजरने सम्पूर्ण इटलीके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। अब सीजर रोमका सर्वोपरि-स्वामी हो गया। केवल ट्रिब्यून मेटल्लासने उसके पवित्र धन-भाण्डारमें हस्तक्षेप किया था। सिवा इसके सीजर शीघ्र ही रोमका अद्वितीय अधीश्वर हो गया। सीजर लेपिडस पर रोम रक्षाका भार अर्पण कर तथा अण्टिनियसको फौजोंके साथ इटली-रक्षाका भार सौंप कर पम्पी पक्षके सेनापतियोंको पराजित करनेके लिये स्पेन चला। उसने किउरिओंको और भालेरियासको सिसिली और सार्डिनियाकी रक्षा करनेके लिये भेजा। इन दोनोंने अनायास ही दोनों स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ये पम्पी-पक्षीय सेनाओं पर विजय प्राप्त करनेके लिये अफ्रिका चले। किन्तु किउरिओ पम्पीके सहयोगी मरेटेनियरके राजा जुबाके हाथ मार डाला गया।

इधर सीजरने मसेलियामें आ कर देखा, कि वहांके अधिवासी अधीनता स्वीकार करने पर राजी नहीं हैं। इस समय सीजर ट्रेबोमियास और ब्रुटसको उक्त स्थान पर घेरा डालनेकी आज्ञा दे कर ससैन्य स्पेन चला। पम्पीके दोनों लेफ्टिनेण्ट अफ्रिनियास तथा पेट्रियासने

सीजरके विरुद्ध इलरेडा नामक स्थानमें विशाल फौजें खड़ी कीं। किन्तु सीजरका सितारा चमका था। इससे उसने शीघ्र ही उनको भी पराजित किया। दोनों लेफिटनेण्टोंने वाध्य हो कर आत्मसमर्पण किया। सीजरने दया कर उन दोनोंको छोड़ दिया और उनकी फौजोंको अपनी फौजमें मिला लिया। अब सीजर पश्चिम स्पेनके भारोके विरुद्ध चला। भारोने भी शीघ्र ही पराजित हो कर कर्डोवा नामक स्थानमें आत्मसमर्पण किया। इस तरह ४० दिनोंमें ही स्पेन पर विजय-प्राप्त कर सीजर गल देशको चला। मसेलिया नगर अब तक अधिकारमें आया न था। किन्तु सीजरका आना सुन किलेके किलेदारोंने भयभीत हो कर आत्मसमर्पण कर दिया।

इधर सीजरकी अनुपस्थितिमें लेपिडासने नये बनाये एक कानूनके अनुसार सीजरको डिक्टेटर नियुक्त किया। किन्तु केवल ग्यारह दिनों तक इस पद पर रह कर स्वेच्छानुसार कन्सल हुआ। सार्डिलियस मेरियाने भी कन्सल पद पाया। ग्यारह दिन ही डिक्टेटर पद पर रह कर सीजरने कई लोकहितकर कार्य्य किये थे। ईसाके ४६ वर्ष पूर्व दिसम्बर महीनेमें सीजर पम्पीका पीछा करने लगा। इधर पम्पीने यूनान, मिस्र और एशियाखण्डके अनेक राज्योंसे बड़ी विशाल फौजें एकत्र कर लीं। विबुलास उसके सेनापति हुआ। निडर वीर सीजर फिर भी सैन्यके साथ ब्राण्डुसियमसे एपिरास चला। आयसस नदीके किनारे सीजर और पम्पीकी फौजें एकत्र हुईं। सीजर बाकी फौजोंके लिये इस तरह चिन्तित हुआ कि वह अकेले एक दिन रातको एक छोटी नाव पर चढ़ कर एड्रियाटिक समुद्रके बीचसे हो कर ब्राण्डुसियमको चला। अन्तमें अण्टोनियस बाकी फौजोंको ले कर सीजरसे आ मिला। पम्पीके पास सैनिक अधिक थे; फिर भी उसने सीजर पर आक्रमण न किया। सीजरने एक खाई खोदवा कर अपनी थोड़ी फौजोंसे ही पम्पी पर घेरा डाल दिया। एक दिन आचानक पम्पीने बड़े वेगसे सीजर पर आक्रमण कर उसकी फौजोंको तितर बितर कर दिया। तब सीजर शीघ्र ही उस स्थानको छोड़ कर खेसाली चला। खेसालीके फार्सिलास या फार्लिया नामक स्थानमें भयङ्कर युद्ध हुआ। ईसाके ४८ वर्ष पूर्व ६वीं अगस्तको सैन्य-संख्या अधिक होने पर भी पम्पी सम्पूर्णरूपसे पराजित हुआ।

इस तरह सीजरने अपनी अदम्य शक्तिसे उत्तर, पूव और पश्चिम रोम-साम्राज्यका एकाधिपत्य स्थापित कर अपने हाथसे वृहत् शासनदण्ड परिचालन किया था। अपने बाहुबलसे रोम-साम्राज्य पूर्वमें युफ्रेटिस नदीके किनारे तक और ककेशस तक, उत्तरमें राइन नदी डेन्यूब और एल्ब नदी तथा पश्चिममें अटलाण्टिक महासागर तक फैला हुआ था।

उसने प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंका कार्य्यकाल कम कर अपने खजानेको लूटनेका पथ रोक दिया। उसने प्रादेशिक शासकोंका राजस्वका अधिकार और ट्रान्सपेडेन गलोंको रोमवासियोंका अधिकार दे कर समग्र इटलीको रोममें मिला लिया। सिवा इसके उसने समग्र इटलीमें एक तरहका स्वायत्तशासनपद्धति चलाई थी।

ईसाके ५३ वर्ष पहले पार्दों द्वारा कड्हीके युद्धमें क्राससकी जो हत्या हुई थी, उसका बदला चुकाने और पार्दोंकी राजशक्ति क्षीण करनेके लिये सीजरने अपनी वीरवाहिनियोंको ले कर रणयात्राका आयोजन किया। प्रजातन्त्रका नया सम्प्रदाय सीजर द्वारा अपमानित और लांछित हो कर मर्मकी वेदनासे व्यथित हुआ था। इस युद्धका आडम्बर देख कर वह सम्प्रदाय ईर्षासे और भी जल भुन गया। उस सम्प्रदायके लोग जले हृदयसे सीजरका सर्वनाश करनेके लिये आगे बढ़े। जिस दिन सन्ध्याके समय सीजर पूर्व दिशाको विजय करनेके लिये तैयार हो रहा था उस समय ब्रुटस आदि अपमानित पुरुष उसके सामने आये। विश्वासघातक ब्रुटसने सीजरके वीर कलेजेमें छुरा भोंक कर उसके इहजन्मकी भवलीला खतम कर दी। ईसाके ४४ वर्ष पहले १५वीं मार्चकी यह घटना है। इस दिनसे अक्टेभियान द्वारा एक्टियास रणक्षेत्रमें आण्टनीके पराजित होनेकी तारीख २ सितम्बर। सन् ईसासे ३१ वर्ष ई० तक रोम साम्राज्यमें घोरतर अराजकता फैली थी। इस १४ वर्षके शासन-विहीन रोम-साम्राज्यका चित्र इतिहासमें अविकल रूपसे अङ्कित है।

सीज़रके प्रतिनिधि अण्टनीके आत्मश्लाघापूर्ण राजनीति अवलम्बन कर रोमकी प्राचीन शासनपद्धतिके प्रलय-साधनमें आगे बढ़ जाने पर भी सिसिरो उसके प्रतिद्वन्द्विताचरणमें पराङ्मुख नहीं हुआ। उसने अदम्य उत्साहसे अपनी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा सेनेटका पुनर्संगठन करनेका प्रयास पाया। साधारण प्रजा और प्रादेशिक शासक, प्राचीन नीतिका पक्षपाती बन कर आण्टनीके अवलम्बित शासन-प्रथाका घोरतर प्रतिवाद करने लगे। सेनेटभवनमें या फोरममें सिसिरोकी वक्तृता और साधारणके प्रतिवाद उस प्रवर्त्तित घटनास्रोतको दूसरी ओर फिरा न सका। इस तरह दोनों पक्षकी लड़ाई प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। ईसाके ४३ वर्ष पूर्व फिर एक बार अन्तर्विप्लवकी सूचना मिली।

दूसरी त्रयम्वीर-समिति (४३-२८ ई० पू०)

इस वर्षके शरत्कालमें आण्टनी १७ लीजन सैन्य ले कर इटली पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगा। सभी इस यात्रासे डर गये। इस पर वर्षके अक्तूबर महीनेमें आण्टनीने सेनेटकी रुकावटोंको नामञ्जूर कर सहयोगी लेपिडासकी सहायतासे वीस वर्षके छोटे भाई अक्टेभियानको कन्सल मनोनीत किया और इस तरह उसने दूसरी त्रयम्वीर समितिका संगठन किया। इससे प्रजा-पक्षमें भयकी मात्रा अत्यधिक बढ़ गई। इस समितिका शासनकार्य भी वैसा होता न था। सीजरकी तरह यह समिति अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको राजी नहीं रख सकी थी। वरं सल्लाकी तरह कठोर शासन कर साधारणकी अप्रीतिभाजन बन गई। इसके बाद प्रेस्क्रिपशन जारी करके उन्होंने सिसिरो आदि नये दलके लोगोंको फांसी पर चढ़ा कर अपना पक्ष सुदृढ़ कर लिया। दूसरे वर्ष अण्टनी और आक्टेभियानकी सम्मिलित सेनाके साथ फिलिपीमें ब्रुटस् और केसासका युद्ध हुआ। इस युद्धमें ब्रुटसके चलाये प्रजातन्त्र पक्षीय सेनादलके पराभव होनेसे प्रजातन्त्रकी प्राचीन पद्धति-प्रतिष्ठाकी रही सही आशा भी विलुप्त हो गई।

ईसाके ४० वर्ष पूर्व उक्त दोनों विजयी सेनानायकोंमें मनमुटाव हो गया। किन्तु ब्राण्डुसियाममें जो सन्धि हुई थी, उससे यह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया। इस तरह रोम-साम्राज्य नररक्तपातरूप कलङ्क-कालिमासे बच गया।

इस सम्मेलनसे दोनोंकी मित्रता दृढ़ हो गई। इस पर आण्टनीने अक्टेभियानकी बहन अक्टेभियाके साथ विवाह कर आपसका सम्बन्ध और भी दृढ़ कर लिया। इन तीनों वीरोंने आपसमें रोम-साम्राज्यको बांट कर अलग अलग शासन करना आरम्भ किया। आण्टनीने रोम-साम्राज्यका समूचा पूर्वांश अपने शासनमें कर लिया। अक्टेभियानको इटली और समग्र पश्चिमाञ्चलका शासन मिला और लेपिडस अफ्रिकाके जीते हुए प्रदेशोंको ले कर ही शान्त रहने पर बाध्य हुआ।

अक्टेभियानने ३६ वर्ष ईसाके पूर्व लेपिडासको अफ्रिकासे किर्सियाई (Circeii) प्रदेशमें निर्वासित कर दिया। मुण्डरनक्षेत्रमें पराजित सेक्टस पम्पियास द्वारा अतुल धनरत्न एकत्र कर वहांके लोगोंके भयका कारण हुआ था। अक्टेभियानने लेपिडास-विजयसे छुट्टी पाते ही उसको समूल नष्ट किया। ईसाके ३५ वर्ष पूर्व पम्पियासकी मृत्यु हो गई। उस समयसे अक्टेभियान पश्चिम-साम्राज्यभागका एकमात्र अधीश्वर हो गया। उसकी राजशक्तिके कण्टक-स्वरूप दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

शीघ्र ही उसको आण्टनीकी शक्तिपरीक्षाका सुयोग प्राप्त हुआ। सुखलालसासे लुब्ध आण्टनीकी स्वेच्छाचारिता कर्मवीर अक्टेभियानके मनके मुताबिक नहीं हुई। ईसाके ३२ वर्ष पहले आण्टनीने अमानुषिक अत्याचार और व्यभिचारसे सर्वसाधारणके हृदय पर एक और दारुण चोट पहुंचाई। उसने मिस्र सिंहासनको समुज्ज्वल करनेवाली टलेमी-कन्या वीराङ्गना क्लिओपेट्राके मन मुग्ध करनेवाले रूप पर मुग्ध हो कर अपनी प्रियतमा पत्नी अक्टेभियाको परित्याग किया। एक ओर आण्टनीने जैसे जीवनपणसे प्राणकी आराध्य प्रणयप्रतिमा प्राप्त की, दूसरी ओर वैसे ही उन्होंने अक्टेभियाके अपमानसे और दुःखसे उसके भाई अक्टेभियानके हृदयमें दारुण प्रतिहिंसाग्नि प्रज्वलित कर दी। अक्टेभियान अपने बहनोईको उचित दण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

इस कुकर्मके लिये आण्टनीको सेनेटने पदच्युत और पूर्व साम्राज्यके आधिपत्यसे पदच्युत होनेकी घोषणा की और रानी क्लिओपेट्राके विरुद्ध रोमक फौजोंको भेजनेकी आज्ञा प्रचारित की। इसके अनुसार अक्टेभियान रोमक फौजोंका सेनापति बना। ईसाके ३१ वर्ष पूर्व २री सितम्बरको अक्टियास रणक्षेत्रमें दोनों ओरसे घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। अण्टनी युद्धमें पराजित हो कर जान ले कर भागा। किन्तु शत्रुके हाथसे सम्मानरक्षा कर न सकने पर आण्टनी और क्लिओपेट्राने आत्महत्या कर ली। यह ३० ईसाके पूर्वकी घटना है।

एक्टियाके रणक्षेत्रमें आण्टनीके दर्पको चूर्ण करनेवाला डिक्टेटर सीजरके भाईका पोता अक्टेभियस सीजर इस समय रोमक जनसाधारणके पूज्य हो गया। अक्टेभियानने सेनेटकी रायसे राजासन ग्रहण किया। सेनेटने उसके अनुभवोंको देख उसको "अगाष्टस" की उपाधि दी थी।

अक्टेभियानने एक नगण्य खानदानमें जन्मग्रहण किया था। उसकी वंशोपाधि अक्टेभियास थी। उसका पितामह भिलेटली नगरके एक सामान्य नागरिक था। पीछे उसको चाचाने गोद ले लिया। इससे वह उस वंशकी सीजर उपाधिसे विभूषित हुआ। उस समयसे वह इतिहासमें अक्टेभियस सीजरके नामसे परिचित हुआ।

सन् २८-२७ ईसाके पूर्व तक अगष्टसने राजतख्त पर बैठ कर प्रजातन्त्रकी फिर प्रतिष्ठाके साथ उसको अनुकरण कर ही राज्यका शासन किया था और प्रादेशिक नगरोंमें खण्डराज्यकी स्थापना कर स्वयं उन राजाओंका अधिनायक बन कर सार्वभौम आधिपत्यका विस्तार किया था। उसकी चलाई यह शासन प्रणालीके अनुसार (Constitution of princepate) रोम साम्राज्य २७ ईसाके पूर्वसे २८४ ईस्वी तक शासित हुआ था।

केवल एक वर्ष इस विराट् साम्राज्यका अधीश्वर हो कर उसने मनमें पूर्वके अधिनायकोंके सार्वभौम आधिपत्यका स्मरण कर समझ लिया; कि प्रजाका मनोरञ्जन ही श्रेष्ठ धर्म है। स्वेच्छाचारिताका दास बन कर प्रजाका विद्वेषभाजन बनना बड़ा ही गर्हित कर्म है। इससे अपना भी केवल हानिके कोई लाभ नहीं अतः जिससे प्रजा सुखसे रहे, इस विषय पर लक्ष्य रखना ही राजाका एकमात्र कर्त्तव्य है। ऐसा विचार कर अगष्टसने स्वेच्छासे राजसिंहासन त्याग दिया और जिस अलौकिक शक्तिके प्रभावसे वह ४३ ई०के पू०से रोमको शासनदण्ड धारण करता चला आता था, उसे "रोमके साधारण प्रजापुञ्जके और सेनेटके सदस्योंके कर्तृत्वाधीनमें साधारणतन्त्रका भार अर्पण किया।" उसने यह कह कर अवसर ग्रहण कर लिया। इसके बाद फिर रोमराज्यमें सेनेट, एसेम्बली और मजिष्ट्रेसीका कार्य्य प्रवर्त्तित हुआ। इस तरह अक्टेभियान रोमका "स्वाधीनतादाता" (Restorer of Common wealth and Champion of freedom) कहा गया। उसकी सुसम्बद्ध शासनप्रणालीको लोग "Maxims of Augustus" कहते थे। डाईक्लिसियानके राजत्व काल तक इस नीतिकुशल प्रणालीसे ही रोमराज्यका शासन हुआ था। जुलियास सीजर बाहुबलसे रोमवासियोंके चित्त भीतिविजड़ित कर जो नहीं कर सका था, अगष्टस सीजर अनायास ही शान्ति और सहिष्णुताके बलसे वह सुसम्पन्न कर गया।

अगष्टस जीवित समयमें जो सब विषय कार्य्यरूपमें परिणत नहीं कर सका, उन सबोंको कार्य्यमें परिणत करनेका भार अपने गोदके पुत्र टाइबेरियासको सौंप गया। उसने अपने गोदके पुत्रको पहले ही राजशक्तिकी प्रतिभा दे दी थी। आईन प्रवर्त्तन और प्रचलित विधिका संस्काराधिकार (Censorial and tribunitian) प्राप्त करनेके समय टाइबेरियासने राजसरकारमें यथेष्ट प्रतिपत्ति बढ़ा ली थी। अगष्टसके जीवित समयमें उसके कार्य्यका प्रतिवाद करनेके लिये एक आदमीको भी खड़ा होनेका साहस नहीं हुआ।

उसके पुत्र टाइबेरियासने अपनी दाम्भिक बुद्धिके वशवर्त्ती हो कर प्रजातन्त्रके सारे अधिकारोंका लोप किया। देखते देखते कमिसिया, मजिष्ट्रेसी, कन्सल, प्रिटर, इडाइल, ट्रिब्यूनेट, कुइष्टर आदि पद या उसके पदाभिषिक्तके कार्य्य नाममात्र रह गये। कोई पहलेकी तरह अपनी क्षमताका प्रयोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

टाइवेरियासकी मृत्युके बाद ३७ ई०में कालीगुलाने साम्राज्याधिकार पाया। वह दुर्वृत्त, कोपन स्वभाव, गर्वित और ज्ञानशून्य उन्माद प्रकृतिका मनुष्य था। उसके बाद ३१वीं ई०में यथाक्रम निर्वोध क्लडियस, ५४ ई०में नरपिशाच निरो, ६८ ई०में गालवा, ६६ ई०में ओथो और पशुप्रकृति, निष्ठुर अत्याचारके आमोद-प्रिय भिटेलियासने रोमका राज-पद अधिकार किया। इसके बाद उक्त वर्षके अन्त समयमें भेष्पेसियानने मसनद पर बैठ कर इटली नगरवासी और पश्चिम साम्राज्य विभागके प्रदेशवासी लेटिन जातियोंमेंसे सभ्य मनोनीत करनेकी आज्ञा जारी की। इससे रोमकी सेनेटकी शक्ति कुछ अधिक बढ़ गई। इसके बाद ७१ ई०में टाइटस, ८१ ई०में कापुरुष डोमिटियान, ६६ ई०में नेर्भा, ६८ ई०में ट्रिजान और १७७ ई०में हाड्रियानने क्रमसे रोमके राजपदको अलंकृत किया था। उन सबोंने भेष्पेसियानकी प्रवर्त्तित प्रथाका अनुसरण कर रोमीय सेनेटका प्रवल प्रताप खर्व कर दिया था। रोमकोंने स्वेच्छा और सज्ञानसे जिस सरकारका अनुमोदन कर एकके हाथमें राज्य-भार सौंपा था, उन्हींके अत्याचारसे भीतरमें घृणा प्रकाश करने पर भी बाहर तोषामोद करने पर बाध्य हुए थे। किन्तु वे शताब्दी लुप्त स्वाधीनता-समृद्धिको बिलकुल भूल न सके।

अगष्टस्के बादसे हाड्रियान तक राजाओंके अधिकार कालमें रोमका वाह्यआडम्बर वहुत बढ़ गया था। इस समयसे ही प्रिन्सेप्सोंको छोड़ रोमकी अन्यान्य शक्तियां ह्रास होने लगीं। अगष्टस, टाइवेरियास और क्लडियान—इन तीनों सम्राटोंके शासनकालमें राजशक्ति और शासनभार उनके ऊपर ही छोड़ दिया गया था। किन्तु जब अन्यान्य शासकशक्ति शिथिल होने लगी तब रोमराज्यका एक आमूल परिवर्त्तन अवश्यम्भावी हो उठा। अगष्टस् टाइवेरियस कूटनीतिके वलसे और निर्लिप्तभावसे छिप कर राजशक्तिका प्रभाव देखता था, केलिगुला क्लडियस और नीरोने उस तरहके छिपे तौरसे न देख अर्थात् इस नीतिको घृणाके साथ छोड़ कर प्रकाश्यरूपसे शासनकार्य्यमें, राजस्वविभागमें, सामरिक-विभागमें और वदेशिक राजशासन सम्बन्धमें प्रिन्सेप्सका सर्वमय कर्तृत्व स्थापन किया। लिगेट, प्रिफेट प्रोकि ओरेट और छोड़े हुए गुलाम (Freedmen) इसके अधीनमें रह कर सरकारका कार्य्य करने लगे। इस तरह शक्ति-वृद्धिके साथ साथ प्रिन्सेप्सकी मर्य्यादा वढ़ गई। धीरे धीरे यथार्थमें वह राज्येश्वर हो उठा।

अगष्टस् दीनहीन प्रजाकी तरह अपेक्षाकृत छोटे मकानमें रह कर सामान्य और सरलभावसे जीवन विता गया है। किन्तु वादके शासकोंने ऐश्वर्य्य-मदसे मत्त हो कर उस सरलताकी पदमर्य्यादाको तोड़ दिया। वे सभी राजाकी तरह चमक-दमकके पक्षपाती हो गये। नीरोके राजत्वकालमें यह पूर्णरूपसे प्रकाश हो गया। रोमक-सम्राट्के राज्यकार्य्य निर्वाह करने योग्य आवश्यकीय उपयोगी द्रव्य राजसरकारमें विराजमान थे। उसके ही यत्नसे एक अलग राजमहल बना। महलके रक्षक इसकी बड़े यत्नसे रक्षा करते थे। वह मन्त्रि-मण्डलमें घिर कर सम्राट्की तरह गर्वके साथ विचरण करता था और उसके भव्यभवनमें रोज ही एक न एक उत्सव हुआ करता था। उसके मर जाने पर इस अवस्थामें वहुत परिवर्त्तन हुआ। क्योंकि उसके वादके फ्लवीय-वंशीय भेष्पेसियान आदि सम्राट् ट्रजन, हड्रियान, आण्टोनिनास उस सुख-समृद्धिकी अतृप्तवासनामें न डूब कर अपेक्षाकृत सरलतासे जीवन विता गये हैं। कालीगुला या नीरोकी तरह वे अत्याश्य तोषामोद प्रिय न थे। उनके इस सरल और सद्व्यवहारके परिवर्त्तनसे रोममें एक नये युगका सूत्रपात हुआ। सामरिक और राज्यशासन पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो कर उत्तरोत्तर उन्नत हुआ। कालीगुला और नीरोके शासन कालमें वे सेनाविभागकी ओरसे 'इम्पारेटर' कह कर सम्मानित हुआ करते थे और पीछे सेनेटने उनको शक्ति दे दी। एकाएक इस तरहके उनके भाव परिवर्त्तनसे रोममें कोई भावान्तर न दिखाई देने पर भी रोमके वाहरी प्रदेशोंमें उसका यथेष्ट आभास मिला था। स्पेनमें लीजन द्वारा गालवाके सम्मानसे ही रोममें नये युगकी अवतारणा हुई थी। उसी समयसे ही यथार्थमें प्रिन्सेप्सोंको निर्वाचन सम्मति लीजनसे न लेने पर भी वास्तवमें उनकी आज्ञासे ही राजा राजशक्ति-सम्पन्न होते थे और राजशक्तिकी

रक्षाके लिये राजाको सैन्य पर ही निर्भर रहना पड़ता था। इस तरह जर्मन और सीरोह लीजनके अभिमतके अनुसारसे भिटेलियास और भेष्पेसियन सम्राट् पद पर प्रतिष्ठित हुए थे डोमिसियाने सिपाहियाना ठाटमें रोमकी सेनेटमें घुस अपने राज्यकालमें सामरिक प्रभाव (Military character)का परिचय दिया था। सम्राट् नेर्भाके (गोद) दत्तक पुत्र विख्यात वीर और योद्धा ट्राजनसे ही सामरिक विभागके सम्पूर्ण मालिक या "इम्पारेटर" पदने प्राचीन शासनपद्धतिके प्रिन्सेप्सकी शक्तिको भी पार कर दिया था।

सम्राट् हाड्रियानके बाद क्रमसे आण्टोनिनास पयास (१३८ ई०में), मार्क स् उरेलियस (१६१ ई०में), मार्कास आण्टोनिनास (१६१ ई०में), कोमाडियस (१८० ई०में), पार्टीनाक्स (१९२ ई०में), डिडायास जुलियानास (१९३ ई०में) और सेप्टिमियास सेभेरासने (१९३ ई०में) रोमक सिंहासन पर बैठ कर राजकार्य्यकी परिचालना की थी। वे सभी 'टाइरैण्ट' नामसे पुकारे गये थे।

गालवा, भिटेलियास और भेष्पेसियनने सम्राट् पद पर अभिषिक्त हो कर ही अपनी अपनी जन्मभूमिसे रोममें आ कर सेनेटकी राय ली। ट्राजन और हाड्रियान दूसरे प्रदेशके उत्पन्न थे। इनमें ट्राजन सम्राट् पद प्राप्त करके भी एक वर्ष तक रोममें न आया; किन्तु हाड्रियानने सेनेट द्वारा अभिनन्दित होनेके पहले सिरीयामें "इम्पेरियाम" ग्रहण किया था। इसलिये वह सेनेटके सामने विनीत भावसे क्षमाप्रार्थना करने पर बाध्य हुआ था। ट्राजन और मार्कास औरिलियासकी दिगन्त-निनादित विजय कीर्त्ति, सुबन्दोबस्त और प्रतिष्ठाद्योतक हुई थी। अतः आवश्यक समझ कर रोमसे हटा कर दूसरे स्थानमें राजधाट परिवर्त्तन करनेकी व्यवस्था हुई थी। डेमिटियास-के सिवा भेष्पेसियनसे औरिलियास तकके राजे सेनेट-के साथ मिल कर अतीव गुरुतर राज्यकार्य्य सम्पादन करते थे। किन्तु समय पा कर यूनानी दर्शनशास्त्रकी शिक्षाके प्रभावसे जब रोमकोंके मानसिक शक्ति बढ़ गई तब वे ज्ञानार्जनमें प्रवृत्त हुए। समयके मुताबिक एक संस्कृत राजकीय शासन पद्धति (Imperial System of government)की आवश्यकता हुई। इसके अनुसार हाड्रियान इसके लिये उद्योगी हुआ था। उसकी इस अभीष्ट-सिद्धिके द्वारा राज्यके शासनविभागकी बहुत उन्नतिकी आशा थी; किन्तु ऐसी न हुई। वरं इसके द्वारा साम्राज्य शक्तिकी बहुत कमी हो गई थी।

मार्कास औरिलियासकी मृत्युसे डायोक्लिशिया सिंहासनके अधिकार तक (१८०-२०८ ई०में) रोमकी प्राचीन अगष्टन-पद्धतिका सम्यक्विलय साधित हुआ था। पार्टिनेक्स सेभेरास सिकन्दर माक्सिमास; बालबिनास, टासिटस आदि बादशाहके द्वारा राजपद पर निर्वाचित होने पर भी सेभेरास सिकन्दरके सिवा उनमें और कोई लीजनका आनुगत्य लाभ कर न सका। ईसाकी ३री शताब्दीमें रोमक बादशाह प्रधानतः सेनासंघके निर्वाचन द्वारा ही मनोनीत होते थे। ये सब बादशाह सीमान्त प्रदेशवासी नगण्य व्यक्तिके सन्तान हैं। जो ऐश्वर्य्यगर्वसे मत्त हो कर दूसरेकी मर्मवेदनाको समझनेमें समर्थ नहीं होते थे। अत्याचार और निष्ठुरता उसके अंगका आभूषण बनी थी। अमानुषिक अत्याचारसे वे साधारणको पीड़ित कर अपनी अपनी पाशव प्रवृत्तिको चरितार्थ करते थे। इन सब नीच प्रकृतिके राजाओंसे सेनेट सदा अपदस्थ, लांछित और विड़म्बित होते थे। जो राज्यशासनके उपयोगी और दयावान् थे वे भी सेनेटको सरकारी कामोंमें हस्तक्षेप नहीं करने देते थे। सेप्टिमियस सेभेरास अफ्रिकावासी था। सेनेटसे अभिमत (Formal confirmation) न ले कर उसने राज्यकार्य्य भार ग्रहणका पथ प्रशस्त किया। रोममें रह कर उसने ही "प्रोकन्सल" उपाधि धारण और फोरममें बैठ कर शासन और विचार कार्य्य समाधान कर महलकी चहार-दीवारीके भीतर उन कार्योंके पूर्ण करनेकी व्यवस्था की थी। अन्तमें वह प्रिटोरियाके रक्षकोंके प्रिफेक्को ही बादशाहके अधस्तन राजकर्मचारीके रूपमें नियोजित कर गये। इससे उसके असीम प्रभुत्वका परिचय मिलता है। उसकी शिलालिपिमें वही पहले बादशाहको "Dominus" शब्द लिखा गया है।

सन् २४९ ई०में डिसियासके अभ्युदय और रोम-साम्राज्यके अधिकारसे हम डेन्यूब प्रवाहित प्रदेशोंके उत्पन्न कई सुदक्ष सम्राट्को ऊपर ऊपर रोम-सिंहासन

पर अलंकृत होते देखते हैं। उन्हीं नरपतियोंके राज्यकालसे ही रोम-साम्राज्यके सामरिक और राजकीय शान्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे वह उत्तरोत्तर बढ़ गई थी। उस समयसे 'इम्पिरियल' और 'सेनेटेरियल' प्रदेश-विभाग विलुप्त हुआ। राजकोष तथा सम्राट्‌के अपनत्वका अलगाव दूर हुआ। इसके बाद सेनेटर सामरिक और राजकीय कार्य्योंमें स्वाधिकार-विच्युत हुए। जो कुछ बाकी था, वह विख्यात वीर औरेलियनके (२७०-२७५ ई०में) यत्नसे पूर्ण हुआ। उसने राज्यशासनका कठोर दण्ड अपने हाथमें ले कर प्राचीन प्रथाका सम्पूर्णरूपसे विलुप्त किया। उसने अपने अधिकारकालमें रोम-सरकारमें डाइओक्लिसियानके अनुकरण पर राजशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई थी और प्राच्य नगरोंकी समृद्धिका अनुकरण कर अपने राज्य समृद्धिकी गाम्भीर्य्य-वृद्धि की थी।

रोम-साम्राज्यका संक्षिप्त इतिहास।

पहले ही कहा जा चुका है, कि जुलियस सीजरने रोमसाम्राज्यकी सीमा बढ़ा कर नाना विषयोंका संस्कार किया था। किन्तु रात दिनके युद्धविप्लवकी शान्तिका कोई उपाय नहीं कर गया। महानुभाव अगष्टस् इसका उपाय कर गया था क्योंकि वह फूंक फूंक कर पैर रखता था। रोमीय प्रजातन्त्रके निर्वाचित सेनापतियों तथा स्वयं सीजर दक्षिण और पश्चिमके भूखण्डों पर विजय कर गया। फलतः अफ्रिकाके मरुप्रदेश तथा अटलाण्टिक-महासागरके सिवा रोम-राज्यसीमा और अधिक नहीं बढ़ सकी। सीजरने गल-विजय की थी सही; किन्तु उसका भतीजा अगष्टसने ही इन सब नगरोंमें सुसम्बद्ध शासनपद्धति-विस्तार और राजशक्तिका पतन किया था और उसी तरह राजकीय विधिसे ही वह रोमराज्यकी सीमारक्षामें तत्पर हुआ था।

ईसासे २५वर्ष पहले न्यूमिडिया-राज्य प्राचीन अफ्रिका प्रदेशके अन्तर्भुक्त और उसके निकटका इजिप्त नगर एक स्वतन्त्र प्रदेशके रूपमें गिना जाने लगा। स्पेनके उत्तर-पश्चिमके रहनेवाली असभ्य पहाड़ी जातियोंको जीत कर लूसिटानियाका शासन-विस्तार किया गया था। ईसाके २७ वर्ष पूर्व अगष्टसने आकुइटानिया, गलडुनेनूसिस और बेलजिका प्रदेशको राज्यभुक्त कर युक्साइनसे जर्मनसागरके किनारे तक सीमा बढ़ा दी थी। इसके बाद उसने दक्षिणके मिसिया (६ ई०में) रिटिया (१५ ई०में) और गालिया-बलजिका आदि प्रदेश अधिकार कर सुशासन प्रतिष्ठा द्वारा शान्तिस्थापन करनेकी चेष्टा की थी। ९वीं ई०में भेरुसकी पराजयके बाद वह राइनको पार कर सामने आगे बढ़ नहीं सका। उसके वंशधर टाइबेरियस शिलभा स्यूटरने वर्गेसिसकी विपत्तिका बदला चुका कर जर्मनीकासको लौटनेकी आज्ञा दी और १७ ई०में उत्तर डेन्यूबके मार्कोमन्नी प्रदेशके राजा मोबोबोआसके साथ सन्धि कर उसने अपने पिताके निर्दिष्ट अपने पक्षकी सुरक्षाका बन्दोबस्त करनेमें मन लगाया था। इसके अनुसार राइन नदीके किनारे उत्तर और दक्षिण जर्मनीमें डेन्यूबकी सीमा पर और पानोनिया और मिसियाके चारों ओर रोमीय लीजन प्रतिष्ठित किये गये थे।

अगष्टस् रोम साम्राज्यकी शान्ति और समृद्धि प्रतिष्ठित कर गया। इसके बादके बादशाह सभी सुदक्ष थे। वे अप्रतिहतरूपसे राज्यशासन कर गये हैं। गेयास, क्लडियास और नीरो दुर्बुद्धिके कारण तथा उसके अत्याचारसे रोम और इटली उत्पीड़ित हो उठी थी। राज्यके अन्य किसी स्थानमें उनकी दाल न गली। नीरोकी मृत्युके बाद, प्रतिद्वन्द्वी बादशाहोंके विरोधजनित युद्धमें रोम-साम्राज्यकी जो क्षति हुई थी, उसकी पूर्त्ति भेष्पेसियान कर गया था। ओथो, भिटेलियास और भेष्पेसियानके परस्पर युद्धके अवसर पर ६९ ७० ई०में सिभिलिसका विद्रोह उपस्थित हुआ। ट्राजस, हाड्रियान और दोनों आण्टोनियास अपनी अपनी असाधारण शक्तिसे रोम-साम्राज्यके विश्वविजयिनी शक्तिके पुनराविर्भाव करनेमें समर्थ न होने पर भी सुशासन तथा शान्ति-स्थापनमें सफल हुए थे। क्लडियास वृटेनको जीतनेके लिये अग्रसर हुआ था। आग्रिकाला (७८ ८४ ई०में) वहांका उत्तर-देश जीत कर "हाड्रियानकी चहारदीवारी" बना गया था। १०७ ई०में वर्वर जातिके आक्रमणसे डर कर ट्राजस निम्न डेन्यूब प्रदेशमें गया और उसने डाकिया-राज डसेबालासको पराजित कर उसका राज्य छीन

लिया। उस समयसे २५६ ई० तक उक्त प्रदेश रोमके अधिकारमें था। बादशाह ट्राजानने आराविया-पिट्रिया प्रदेशको रोमसाम्राज्यमें मिला लिया था।

मार्कास ओरेलियासके राजत्वकालमें (१६२-१७५ ई०) मार्कोमन्नी आदि असभ्य जातियां सीमान्तसे आ कर रोम राज्य पर आक्रमण करने लगीं। वे धीरे धीरे उत्तर डेन्यूब प्रदेशको पार कर क्रमसे रिटिया, नौरिकाम और पानिया प्रदेशको लूट पाट और ध्वंस कर आल्पसको पार कर इटलीमें आ उपस्थित हुई। इन वैदेशिक बर्बरोंके साथ रोमको चौदह वर्ष तक युद्ध करना पड़ा।

सन १८० ई०में मार्कास औरेलियासकी मृत्यु हुई। उस समयसे २८४ ई० तक सामान्य युद्धविग्रह और शासन-विश्रृङ्खलासे रोम-साम्राज्यमें घोर विपर्याय उपस्थित हुआ। किन्तु सेप्टिनियास सेभेरास, डेसियास क्लडियास, औरेलियन और प्रोवास आदि रणदुर्मद बादशाहोंके कठोर शासनसे रोम ध्वंस होनेसे बच गया था। २११ ई०में सेभेरासकी मृत्युके बादसे २८४ ई०के डायोक्लिशियनके राज्यारोहण तक लगभग २३ बादशाह अगष्टसके सिंहासन पर बैठे थे। इनमें केवल तीन बादशाहोंकी शोचनीय मृत्यु हुई थी। डिसियस गथ-जातिके साथ युद्ध करते समय मारा गया था। भालेरियानने सुदूर पूर्वकी ओर कैदमें पड़ कर अन्धकारपूर्ण जीवनका अवसान किया था और क्लडियासने उसी दुर्दिनकी महामारीमें अपना जीवन खो दिया था।

राजमुकुट आहरणोद्देशसे जानसे क्षयकारी इन सब अभिमानी बादशाह 'टाइरेण्ट' नामसे पुकारे गये थे। कौमोडासने अपनी बुद्धिके दोषसे और अत्याचारसे रोम-राज्यमें विश्रृङ्खला उपस्थित कर दी। चारों ओरसे शत्रुओंने उसके प्राणनाशकी चेष्टा की। उसकी बहन लुसियास भेरुसकी विधवा पत्नी और क्लडियास पम्पिनाशकी द्वितीय-परिणीता रमणी लुसिल्ला भाईके प्राण साजिश करने लगी। आम्फी थियेटरसे महलमें आते समय बादशाहको मोडास गुप्तघातकके हाथ मारा गया। सन् १०६ ई०की ३१वीं दिसम्बरको लुसिल्ला निर्वासित की गई।

कौमोडासकी मृत्युसे जनताने शोक प्रकट न कर उसकी जगह पर प्रिफेक्ट पार्टिनाक्सको बैठाना चाहा। उस समय अन्यतम कन्सल सोसियास फालको उसका प्रतिद्वन्द्वी बन कर सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा करने लगा। किन्तु सफलता न मिली और सभी ध्वंसको प्राप्त हुए।

कोमोडासकी मृत्युके बाद (१६३ ई०की २८वीं मार्चको) तीन सौ "प्रिटोरीय गार्ड्स" नामक रक्षक सैनिकोंने गुप्तरूपसे महल पर आक्रमण कर पार्टिनाक्सको मार डाला था। उस समय बृटेन सिरिया और इल्लिरिकायके रोमीय सेनावृन्दने प्रिटोरीय सेनादलके पार्टिनाक्सको मार डालने पर शोक प्रकाश किया और इस बुरे मार्गसे प्राप्त अर्थको युक्तियुक्त स्वीकार नहीं किया। उस समय वे अपने अपने कठोर अधिनायकोंके अधीनमें रह कर उपरोक्त हत्याकारियोंको दण्ड देनेके लिये आगे बढ़े। बृटेनके लीजनके नायक क्लोडियास आल्विनास, सिरियाके सेनापति और पिस् सेनियास नाइगर और पानोनिया सेनादलके अध्यक्ष सेप्टिमियासने मेरास पार्टीनाक्सकी मृत्युका बदला चुकाने आ कर आपसमें प्रतियोगी हो कर सिंहासन पानेकी आशामें युद्धका आयोजन किया। लुगडुनाम रणक्षेत्रमें हेलेसपेण्ट और साइलिसियाके युद्धमें और वैजयन्ती नगरके घेरेके समय भीषण युद्धमें आलवविनास और नाइगरपरिचालित प्रतिपक्ष रोमक सैनिक अपने नायकके साथ मार डाले गये। पृथ्वी रक्तरञ्जित हुई। वीराग्रगणी सेप्टिमियास सेभेरासने इस तरह शत्रुओंका नाश कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। विख्यात नीतिवान् पापिनियन अपने अधिकारके समय क्लोटिनासके बाद "प्रोटोरियन प्रिफेक्ट" हुआ था। उक्त पापिनियनके सिवा उसके वंशके अधिकारकालमें पलास और उलपियान नामक दूसरे दो व्यवहारविद् पैदा हुए। उनकी लेखनीसे मालूम होता है, कि उस समय रोमकी राजनीतिने पूर्णता प्राप्त की थी।

प्रथम पत्नीके वियोगमें सेभेरासने एमेसावासी जुलिया डोम्ना नाम्नी एक रमणीका पाणिग्रहण किया। ये रमणी रोमकी सम्राज्ञी होने पर भी चरित्रहीन थी,

फिर भी नाना सद्गुणोंसे परिपूर्ण थी। इस राज-महिषीके गर्भसे काराकल्ला तथा जेटा नामके दो चरित्र-हीन और पाशव प्रकृति प्रतिमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ। सन् २०८ ई०में ६० वर्षका बुड्ढा सेमेरास अपने दोनों पुत्रको साथ ले कर वृटेन पर विजय करने गया। किन्तु रणमें विजय-प्राप्त करके भी दोनों पुत्रोंके असद्-व्यवहारसे वह भग्नमनोरथ हुआ। काराकल्लाने उसके अन्तिम दिनोंमें उसे मार डालनेकी साजिश की। किन्तु विश्वस्त लीजनकी सतर्कतासे उसकी रक्षा हुई। सेमेरासने अपने कठोर शासनसे अपने पुत्रोंको उत्पीड़ित किया तथा डराया धमकाया। इससे भी उनके चरित्र-का संस्कार न हुआ। अन्तमें ६५ वर्षकी अवस्थामें इयार्क नगरमें उसने यह शरीर त्याग दिया। मृत्युके समय उसने सैनिकोंके सामने अपने पुत्रसे कहा था, कि तुम लोग इस सेनासङ्घके ही पुत्र हो। किन्तु दुर्भाग्य-वशतः इन्होंने आपसमें मेल नहीं रखा।

सम्राट्की मृत्युके बाद सैन्यदलने दोनों भाइयोंको सम्राट कह कर विघोषित किया। यह दोनों राजसिंहासन पर बैठनेके लिये राजधानीको चले। अभी गल और इटलीको भी पार न कर सके थे, कि इन दोनोंमें पर-स्पर मनमुटाव पैदा हुआ। राजधानीमें पहुंच कर उन्होंने राज्यारोहण किया। किन्तु इन दोनोंने आपसमें राज्यका विभाग कर लिया। पिताका ऐसा आदेश भी था। ज्येष्ठ भ्राता काराकल्लाको यूरोप और पश्चिम अफ्रिका मिला और गेटाने एशिया और मिस्रदेश ले कर अले-कजेण्ड्रिया और अन्तिओकमें राजधानी कायम की। दो केन्द्रोंमें राजपाट प्रतिष्ठित होनेसे फिर आन्तर्जातिक विवादका सूत्रपात हुआ। दोनोंमें परस्पर ईर्षाग्नि प्रज्वलित हो उठी। यह देख माता जुलियाने दोनोंमें मेल करा देनेके लिये अपने घर दोनोंको बुलाया। किन्तु फल यह हुआ कि काराकल्लाने गुप्त हत्यारोंको लगा कर गेटा-को मरवा डाला।

भाईको मार कर काराकल्लाने अपने प्राणकी आशङ्का बता कर सेना तथा देवमन्दिरके सामने अपने प्राणकी भिक्षा मांगी। सेनेट और सेना द्वारा आश्वासन पाने पर मृत सम्राट्का सत्कार कर यह २१२ ई०में एकेश्वर अधीश्वर बन गया।

गेटाकी मृत्युके १ वर्ष बाद यह राजधानी छोड़ कर पूर्व विभागके प्रदेशोंमें शान्तिस्थापनके लिये चला। उसके शासनके समय पूर्व राज्यमें अत्याचार और अनाचारकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। अलेकजेण्ड्रियामें भीषण हत्या-काण्ड साधित हुआ। ओपिलियास माक्रिनाश दीवानी (Civil) विभागका और आडभेण्टस् सामरिक विभाग-का सर्वमय कर्त्ता हुआ। सम्राट्का मर जाना ही उसके लिये काल हो गया। बात फूट गई। यह बात मालूम हो गई कि काराकल्लाने ही अपने भाईको मरवा डाला है। इससे इसका सैन्य धीरे धीरे इसका साथ छोड़ने लगा। माक्रिनाश भविष्यद्वाणीके आधार पर साम्राज्य होनेकी चेष्टा करने लगे। सन् २१७ ई०की ८वीं मार्चको एडेसासे कड़ही आते समय अपने एक रक्षक मार्सियालिसके हाथ काराकल्ला मारा गया।

काराकल्लाकी मृत्युके बाद तीन दिनों तक रोमराज्यका सिंहासन शून्य था। इसके बाद श्रेष्ठ प्रिफेक् आडभेण्टास-की इच्छासे सबोंने माक्रिनाशको राजसिंहासन पर बैठाया। किन्तु कुछ ही समयके बाद माक्रिनाशने अपने पुत्र डायाडुमेनियासनासको अण्टेनिनास नाम और राजोपाधि दान कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसका अभिप्राय था, कि बालकको मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध हो कर सेनाओंका चित्तहरणपूर्वक अपने संशयपूर्ण सिंहा-सनको सुदृढ़ कर लूं। उसने इसी उद्देश्यसे राजमाता जुलियाको अन्तिओकके राजप्रासादसे निकाल दिया। इस रमणीने बहु धन रत्न ले कर अपनी सोइमियास और मामयी नाम्नी विधवा कन्याओंको सङ्गमें ले कर एमासामें पहुंच कर सोइमियासके पुत्र वासियानासको सम्राट् बनाया। इसको उसने काराकल्लाके विवाहित स्त्रीजात पुत्र कह कर घोषणा कर दी। सेनाओंने मिसाय-के धनसे पुष्ट हो कर वसियानासको अन्तिओकस् नामसे सम्राट् स्वीकार कर लिया। माक्रिनास खाली पड़ा। कुचक्रमें पड़ कर वह अन्तिओकके निकट इम्पिके युद्धमें पराजित हुआ। उसके साथ दश वर्षके पुत्र डियाडुमे-नियानासका भाग्य चूर्ण हो गया। शत्रु मित्र सभी विजेताकी शरणमें आये। काराकल्लाके कल्पित पुत्र वासियानास एमेसाके सूर्य्यमन्दिरकी देवमूर्त्तिके नाम

पर इलागावालस अन्तिओकास नाम इम्पिके युद्धके बाद रोम-साम्राज्यका अधीश्वर हुआ। यह सन् २१८ ई०की ७वीं जूनकी घटना है।

सोहमियासका पुत्र राजा हुआ और मामियाका पुत्र अलेकसन्दर उसका सहयोगी बन कर राजसंसारका कार्य्य करने लगा। किन्तु नया सम्राट् अपने भाईकी ईर्षासे कातर हो कर उसके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगा। प्रिटोरियान गार्डसदल बालक अलेकसन्दरकी प्राणरक्षाके लिये अग्रसर हुआ। एक दिन यह प्रिटोरिया दलने उसको राजपथमें ला कर निष्ठुरतासे मार डाला (२२२ ई०की १०वीं मार्चको)। सेनाओंने माक्रिनासको मारनेवाला १७ वर्षके अलेकसन्दरको राजसिंहासन पर बैठाया। इसके अनुसार अलेकसन्दर-भेरस नामसे सम्राट् बन गया। अलेकसन्दरने दुर्भाग्यवशइससे लौटते समय राइन नदी पर अपनी सेनाओंको एकत्र कर माक्सिमीन नामक एक व्यक्तिको एक नई सेना एकत्र करने तथा उसको सिखाने पढ़ानेका भार दिया। यह मनुष्य धीरे धीरे प्रधान सेनापतिके पद पर पहुंच गया। इस समय सम्राट्के अत्याचारसे पीड़ित हो कर लोगोंने सम्राट्को मार डाला। इसके बाद माक्सिमीनको गद्दी पर बैठाया। यह सन् २३५ ई०की १९वीं मार्चकी घटना है।

माक्सिमीन थ्रेसवासी एक किसानवंशका था। इसने ऊंचा पद पा कर 'टाइरेण्ट'की तरह सर्वसाधारणका सर्वस्व लूट लेना चाहा। अर्थलोलुपताके कारण उसने देवमन्दिरकी पूजामें भी कमी कर दी और प्रतिमाके निकट सञ्चितअर्थसे पेट पालन करने लगा। उसके धर्मनाशक इस कार्य्यसे साम्राज्यका प्रत्येक व्यक्ति बिगड़ उठा। थिसड्रस नगरमें अफ्रिकाके प्रोकन्सल गर्डियानाशके अधीन साजिश करनेवालोंने मार डाला। अस्सी वर्षके बुड्ढे गार्डियानाश विद्रोहियोंके बहकावेमें पड़ कर अपने पवित्र जीवनको अन्तर्जातिक विप्लवजनित रक्तपातमें कलुषित कर डाला। वृद्ध गार्डियानाश सद्बुद्धिसे राजसिंहासन पर बैठ कर राज्यशासन करने लगा। उसके पुत्र छोटे गार्डियानकी वीरता और दृढ़तासे कार्थेज नगरमें राजधानी कायम हुई। प्रिटोरिया गार्डस सेनादलके नायक भिटोलियानाश नगरकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त हुआ। उसने अपने अत्याचारसे बादशाहका प्रियपात्र बन कर सेनेट और नगरवासियों पर अपना प्रभुत्व कायम किया। किन्तु प्रजाविप्लवमें उसको अपना जीवन खो देना पड़ा। उस समय सेनाको अर्थका लोभ दे कर दोनों गार्डियनोंने राज्यको सुदृढ़ बनाया। किन्तु इससे विशेष कोई फल नहीं हुआ। सन् २३७ ई०की ३री जुलाईको मौरियानियाका शासनकर्त्ता कापिलियानसने अरक्षित कार्थेजप्रदेश पर आक्रमण किया। कनिष्ठ गार्डियान रणक्षेत्रमें मारा गया। यह सुन कर वृद्ध गार्डियानने आत्महत्या कर ली। इसने कुल ३६ दिन ही राजत्व किया था।

इधर दोनों गार्डियानकी मृत्युसे सेनेटके सदस्य आनन्दाश्रु प्रवाहित करने लगे। सेनेटने माक्सिमास और बालविनासको सम्राट्के पद पर नियुक्त किया। माक्सिमास राजशत्रुके विरुद्ध युद्ध कार्य्यमें लिप्त रहने लगा और सुवाग्मी और कवि बालविनास राजविधिका प्रभाव विस्तार करने लगा। माक्सिमासने सौरमतीय और जर्म्मन जातिको पराजित कर सेनानायकत्वका यथेष्ट परिचय दिया था। किन्तु जब इन दोनों सम्राट विजयोत्सवमें मत्त हो कर देवमन्दिरमें पूजा दान करनेमें मस्त थे, तब अकस्मात् एक जनसंघने उस सुखशान्तिको भङ्ग कर चीत्कार कर कहा—"गार्डियन वंशधरको ले कर तीन सम्राट् बनाये जायें।" दोनों सम्राटोंने अपनी थोड़ी सी सेना ले कर इस जनसमाजको तितर-बितर कर देनेकी व्यर्थ चेष्टा की। उन लोगोंने वृद्ध गार्डियानके पौत्र और कनिष्ठ गार्डियानके भतीजे गार्डियानको सीजर नाम दे कर सबके सामने उपस्थित किया। इस विरोधके समाप्त होने पर रोम आत्मरक्षा करने पर तैयार हुआ।

रणजयी उद्धत स्वभाववाले माक्सिमासके साथ विशाल रोमसाम्राज्यमें सुशासन विस्तार करनेके लिये बालविनाशका मनोमालिन्य उपस्थित हुआ। समग्र नगर केपिटोलाइन-क्रीड़ामें उन्मत्त हुआ था। दोनों सम्राट् राजअन्तःपुरकी निर्भीक कोठरियोंमें विश्राम कर रहे

थे। ऐसे समय प्रिटोरिया गार्ड स् दलने आ राजमहल-में घुस कर अधीश्वरके गहनोंको उतार कर मार डाला। यह सन् २२८ ई०की १५वीं जुलाईकी घटना है।

इस तरह एक एक करके छः सम्राट् कुछ महीनेमें ही विद्रोही प्रजाके हाथसे मार डाले गये। गार्डियान प्रजा पुञ्जकी कृपासे राजतख्त पर बैठा सही, किन्तु उसकी माताके कृपापात्र खोजा उसके बाल्यकालमें ही आधिपत्य विस्तार करने लगा। वे प्रजाके प्रति अत्याचारपरायण हो कर भी निश्चिन्त नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने बालक सम्राट्की दोनों आंखें निकाल लीं। उस समय (२४३ ई०) सम्राट् ने प्राणके भयसे भाग कर प्रधान मन्त्रीकी शरण-में जा कर प्राणभिक्षा पाई। उनके विश्वस्त परामर्श-दाता और प्रिटोरिय प्रिफेक्ट मिसिथियासने सम्राट्की ओरसे मिसोपोटामिया-आक्रमणकारी पारस्यके राजा-को पराजित किया और उस घटनाका स्मरण रखनेके लिये उसने २४२ ई०में जानासके मन्दिरका दरवाजा खोल दिया।

पारस्यकी फौजोंको भगा कर सम्राट् ने उनका पीछा किया और उन्हें यूफ्रेटिससे टाइग्रीस तक भगा कर सेनेटको अपने सचिवकी प्रखर बुद्धिका परिचय दिया। किन्तु अकस्मात् मिसिथियासकी मृत्युसे अधीश्वर गार्डियानकी समृद्धिका लोप हुआ। उसने अरब देशीय प्रसिद्ध डाकू फिलिपको प्रिफेक्ट पद पर नियुक्त किया। उसने इसको नियुक्त कर आप ही आप अपनी मृत्युको बुलाया। फिलिप डाकू था ही, साम्राज्यको हड़प जाने-के लिये उसने अधीश्वरके विरुद्ध सैनिकोंको भड़काया। उत्तेजित सैनिकोंने आबोरास नदीके किनारे सम्राट्को मार कर फिलिपको सम्राट् बनाया।

फिलिप पूर्वसे आ कर रोमके सिंहासन पर बैठा। उसने रोमवासियोंके हृदयसे अपनी नीच वंशोद्भवता दूर करनेके लिये पवित्र क्रीड़ाओंका प्रचलन किया। अग-स्टसके बाद क्लडियास, डोमिसियान और सेभेरसके सिवा और किसीने इन क्रीड़ाओंका प्रचलन नहीं किया था। उसके शासनकालके सन् २४६ ई०में मिसिनामें लीजनों-के भीतर घोर विद्रोह फैला। मारिनास नामक एक सेनापति इस विद्रोहका नेता बना। उस समय सम्राट् ने डिसियास् नामक एक सेनेटके सदस्यको इस विद्रोहका दमन करनेके लिये भेजा। डिसियासकी जानेकी इच्छा न थी, किन्तु वह राजाके आदेशसे गया। वहां जा कर विद्रोहियोंके कहनेसे सम्राट्के विरुद्ध उसने अस्त्र धारण किया। फौजोंने उसको ही राजमुकुट पहना कर आगे किया। फल हुआ, कि मेरोनाके युद्धमें फिलिपको पराजित कर डिसियासको ही रोमका अधीश्वर बनाया। डिसियासने कई मास निर्विघ्न राजत्व कर सीमान्त आक्रमणकारी गथ जातिको दण्ड देनेके लिये यात्रा की और वह डेन्यूबके निकट आ उपस्थित हुआ। इधर एक दल डाकिया प्रदेशको लूटने लगा और मिसियाकी अन्य-तम राजधानी मार्सियानापोलिस पर घेरा डाल कर बर्बरोंने बहुत धन सम्पत्ति लूट ली। गथ-सेनापति निभा डिसियासको दलबल सहित अग्रसर होते देख भाग गया। गथ लोगोंने पीछे हट कर थ्रेसके निकटके हिमास पर्वतके पादमूलस्थ फिलिपोपोलिस नगर पर घेरा डाला। डिसियास् उनका पीछा करके भी आगे जा न सका। शत्रुदलने एक दिन अचानक अधीश्वरके खेमे पर आक्रमण किया। रोमकसैन्य तितर-बितर हो गया। फिलिपोपोलिस शत्रुओंके हाथ चला गया। डिसियासने नये उद्यमसे फिर सेना एकत्र कर उनको उचित दण्ड देने तथा रोमके प्रणष्ट गौरवका उद्धार करनेके लिये चेष्टा की। इस बार उनको रोमकी अवनतिका प्रधान कारण मालूम हुआ। सारे रोममें रिश्वतखोरीका बाजार गर्म था। अर्थलालसासे रोमकों-का मस्तिष्क विकृत हो गया था और रीतिनीति हीना-वस्थापन्न थीं। अधीश्वरने इस जातीय अवनतिका मूलतः संस्कार करनेके लिये भलेरियानको नियुक्त किया। किन्तु गथ जातिके बारंबार आक्रमणसे अधी-श्वरको इसे मूलसे नष्ट करनेका अवसर नहीं मिला। सिसिया प्रदेशके फोरम ट्रेबोनियाई नामक नगरके निकट दोनों ओरसे विकट युद्ध हुआ। अधीश्वर पुत्रके साथ मारा गया।

रोमीय लीजनने भग्नमनोरथ हो कर डिसियासके पुत्र हष्टिलियानासको सम्राट् बनाया (२५१ ई० दिसम्बर) और गालास दूसरे राजकार्य संभालनेके लिये

नियुक्त हुआ। उसने गथ-शत्रुओंके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेमें असमर्थ हो कर उन्हें धन दे कर सन्तुष्ट किया। इस दुर्दिनके समय अकस्मात् हष्टिलियानासकी मृत्यु हुई। लोगोंने गाल्लासके प्रति सन्देह किया, किन्तु विशेष कोई आपत्ति नहीं की। उन लोगोंने उसके सद्गुणों पर मोहित हो कर उसको ही सम्राट्के पद पर अभिषिक्त किया।

गथ हाथोंसे रोमका प्रभाव खर्व तथा वर्त्तमान सम्राट्की दुर्बलता देख नया बर्बर दल पहाड़ी सोतोंकी तरह रोमसाम्राज्यमें आ घुसा। पानोनियाके शासनकर्त्ता एमिलियानासने राजाके निश्चेष्ट भावकी उपेक्षा कर स्वयं अपनी सेनाओंको ले कर इन वर्बरोंको डेन्यूव नदीके उस पार कर दिया। सेनाने उसकी अद्भुत वीरताको देख उसीको सम्राट् बनाया।

सम्राट् गाल्लास यह समाचार पा कर विद्रोही सेनाओंको और सहयोगीको समुचित दण्ड देनेके लिये स्पोलेटो-रणक्षेत्रमें उपस्थित हुआ। किन्तु सम्राट्की सेनायें विद्रोहियोंमें मिल गईं। फल यह हुआ, कि पुत्र के साथ सम्राट् गाल्लास मारा गया। इसी समयसे गृहयुद्धका अवसान हुआ। यह २५३ ई०की घटना है।

उक्त वर्षके मई महीनेमें एमलियानासने राजसम्मान पाया। वह सेनेटके हाथ शासनविभागका भार अर्पण कर स्वयं रोमराज्य-रक्षाके अभिप्रायसे उत्तर और पूर्वकी ओर वर्बरियनोंको दण्ड देनेके लिये सेनापतित्व ग्रहण कर चला। किन्तु उसका यह उद्देश्य कार्य्यमें परिणत नहीं हुआ। क्योंकि गाल्लासने इससे पहले ही भालेरियानको सैन्य संग्रह करनेके लिये गल और जर्मनीमें भेजा था। भलेरियान सैन्य ले कर लौट आया। इन दोनोंमें संघर्ष होनेसे पहले एमिलियानास सेनाओं द्वारा मारा गया।

सेन्सर भलेरियान ६० वर्षकी अवस्थामें साम्राज्यका अधीश्वर हुआ। किन्तु पुत्र गालियेनासके हाथ राजकार्य्यका कुछ भार अर्पण कर निश्चिन्त हुआ। इससे राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। फ्राङ्कस, गथ, आलेमन्नी और पारसीवालोंके बारंबार आक्रमणसे चिन्तित हो कर राजा स्वयं युद्ध करनेके लिये पूर्वकी ओर सैन्य ले कर अग्रसर हुआ। गालियेनास राइनके किनारे था। सेनापति पसथूमासने फ्राङ्कसोंको पराजित कर गल राज्यकी रक्षा की और आलेमन्नियोंको रोमीय-प्रजावर्गने परास्त किया। वर्बरोंको जीत कर भी गाल्लियेनास सन्तुष्ट नहीं हुआ। क्योंकि, उस समय सेनेट भीषण षड़यन्त्रमें फंसी थी। उसने मिलान नगरके समीप सहस्र आलेमन्नी सैनिकोंको पराजित कर मार्कोमन्नी राजतनया पीपाका पाणिग्रहण किया।

जब गथ-जाति बाढ़की तरह यूनानके प्रदेशोंको लूट पाट कर ध्वंस कर रही थी, तब पारस्य-राज सापुरने गुप्तरूपसे अर्मेनियाके राजा खुशरूको मार कर उनके अधिकृत प्रदेशों पर कब्जा कर लिया। इससे आर्त्तज राक्षसके पुत्रने क्रोधित हो कर युफ्रेटिस नदीके दोनों ओरके देशोंको उजाड़ बना दिया। भालेरियान उसका बदला चुकानेके लिये युफ्रेटिस नदीके किनारे पहुंचा। नदीको पार करते ही पारस्यराजकी सेनाओंने उसको पराजित कर कैद कर लिया (२६० ई०)। इसी समय विख्यात वीर डिमोस्थेनिस कापाडोकियाकी राजधानी सिजारियाकी रक्षा कर रही थी। शाह शापुरने घोड़े पर सवार हो कर रोमसम्राट्का खाल खिचवा लिया। पीछे उस खालको भूसेसे भर कर पारस्य विजयकी कीर्त्तिस्वरूप राजपथमें गड़वा दिया।

गाल्लियेनास अपने पिताकी मृत्यु पर हर्षित हो उठा। अब वही राज्यका एकमात्र अधीश्वर था। उसके वाग्मितागुणसे, कवित्वशक्तिसे और उद्यान-परिपाटीसे सभी उस पर प्रसन्न रहते थे। किन्तु उसकी तरह नीच प्रकृतिका सम्राट् कभी बैठा न था। उसके इस श्रीहीन राज्यने क्रमशः वैदेशिकोंके आक्रमणसे वीभत्सरूप धारण किया। वर्बरगण रोमसाम्राज्यको हिलाने डोलाने लगे। अलेकसण्ड्रियामें गृहविवाद उठ खड़ा हुआ। सिसिली द्वीपमें डाकुओंके प्रादुर्भावसे राजकर न मिलने लगा। इसौरियामें द्रिवेलियानास शत्रुताचरण करने लगा। बारह वर्ष तक इस तरहके विप्लवसे तथा लगातार १५ वर्ष तक महामारीके कारण रोमसाम्राज्य ध्वंसप्राय हो उठा। यह देख सम्राट्को बड़ा शोक हुआ। अलेकसण्ड्रियाके आधेसे अधिक अधिवासी दुर्भिक्षके कारण

मर गये। उस प्रजामण्डलीने "स्वेच्छाचारी राजाके पापसे राज्यका क्षय होता है" समझ औरेओलासको सम्राट् बना कर आड्डाके रणक्षेत्रमें गालिएनासको हराया। आधी रातको सम्राट् गुप्तचरों द्वारा मारा गया था। मरते समय सम्राट् राजपरिच्छद और वेशभूषा पाभियाके सेनानायक क्लडियासको दे कर राजसिंहासन पर बैठानेकी व्यवस्था कर गया। इसके अनुसार क्लडियास राजसिंहासन पर बैठा। मिलान हाथमें कर और औरेलिओलासको मार कर उसने सेनाओंका संस्कार किया था। किन्तु गथ और वर्गरोंके साथ सौरमतीय तथा अन्यान्य जर्मन जातियोंने जल और स्थलसे युद्ध कर रोम-साम्राज्यको विध्वंस करना आरम्भ किया था। क्लडियासने रोमको इनसे बचाया था। फिर नाइसेसके युद्धमें क्लडियासने युद्धविद्याका यथेष्ट परिचय दिया था।

इसी समय सम्राट्के प्रधान शत्रु टेट्रिकासने पश्चिमाञ्चलमें और जेनोवियाने पूर्व प्रदेशमें राज्य स्थापन करनेकी चेष्टा की। पहले तो वह उन सबोंको दण्ड देने पर तैयार न थे; किन्तु पीछे वह मिसिया थ्रेस, माकिडोनियाके युद्धमें विजय लाभ कर रोगाक्रान्त हो शिरमियास नगरमें मर गया। मरते समय वह औरेलियानको राजसिंहासनका अधिकारी बना गया। फिर भी उसके भाई कुइण्टिलियसने १७ दिनके लिये आकुइलेइया नगरमें राजच्छत्र शिर पर धारण किया था। औरेलियानके आनेसे शत्रुदल डेन्यूबके दूसरे पार भाग गया।

शिरमियास नगरवासी किसानकुलका सामान्य सैनिक रह कर सौभाग्यसे लियान सम्राट् बन गया। उसके राज्यकालके चार वर्ष ६ महीनेमें "गथिक युद्ध" का अन्त हुआ था। जर्मनजातिने अपने किये दुष्कर्मोंका उपयुक्त दण्ड भोगा था। एकुटाइन प्रदेशके शासनकर्त्ता टेट्रिकास राजसिंहासनलाभका प्रयासी हुआ। इसको सम्राट्ने विद्रोही होने पर पकड़ कर कैद कर लिया था। आण्टोनियासकी चहारदीवारीसे हार्कयूलास स्तम्भ तक सम्राट् शान्तिविस्तार कर निश्चिन्त हुआ था। यह २७१ ई०की घटना है।

इसके बाद सम्राट्ने उसी वर्षमें ही पामिरा और पूर्व प्रदेशोंकी अधीश्वरी जेनोवियाके विरुद्ध युद्धकी तैयारी की। वह राजकुलकामिनी रूप और गुणोंसे अलंकृत थी। वह यूनान, सिरिया और मिस्रदेशकी भाषा अच्छी तरहसे जानती थी। उसके पति वीरश्रेष्ठ ओडेनाथास सेनेटसे सिरियाका शासक नियुक्त किया गया था। स्वामीके मर जाने पर जेनोवियाने ही सब प्रदेशोंका शासन कार्य किया था। और तो क्या, पारसराज तथा रोम-सम्राट् गालियानासको भी उसके हाथसे पराजित होना पड़ा था। इस समय उसने अपनी राज्यसीमा विथिनिया सीमान्तसे युफ्रेटिसके किनारे तक विस्तार कर ली थी। शस्यशाली मिस्रराज्य उसके अधीन हुआ था।

सम्राट् औरेलियानके विथिनिया पहुंचने पर सबोंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली। आनकिरा और तियाना पदानत हुए। किन्तु जेनोवियाने युद्धकी तैयारी की। अन्तिओक और एमेसारके युद्धमें (२७२ ई०में) पराजित हो कर जेनोविया तीसरी बार युद्धकी तैयारी करने लगी। उसके मिस्रविजयी सेनापति जावदास तथा उसने स्वयं युद्धकी परिचालना की थी। इधर सम्राट्के विश्वस्त सेनापति प्रोवासने एक रणवाहिनी ले कर मिस्रको जीत लिया। उस समय रानी जेनोवियाने अपने किलेमें आश्रय लिया। उस समय पामिरा नगरीका समृद्धगौरव रोमसे कुछ कम न था। सम्राट्ने पामिरा पर घेरा डाला। पारसके राजाके मर जानेसे साहाय्यकी आशा न रही। इधर मिस्र विजय कर प्रोवास पहुंच गया। यह देख रानी जेनोविया भाग खड़ी हुई। किन्तु पीछा करनेवाले सैनिकोंने उसको पकड़ लिया। सम्राट्ने रानीकी बहादुरी पर सदयता दिखाई थी। सम्राट्के वहांसे जाते ही पामिरावासियोंने विद्रोह कर वहांके शासकको मार डाला। यह समाचार पा कर सम्राट् लौट आया और उसने पामिराका ध्वंस किया था। पामिराकी आबाल-वृद्ध वनिता सभी तलवारके शिकार हुए थे। यहांसे जा कर उसने मिस्रके विद्रोहका दमन किया। दलपति फार्मास मारा गया। विजयगौरवसे उन्मत्त होने पर भी सम्राट्ने कैदी राजाओंके प्रति असद्व्यवहार नहीं किया। जेनोवियाको उसने टिभोलीके बगीचेमें रखा था और उसकी कन्याओंका विवाह

साम्भ्रान्त रोमकोंके साथ कर दिया था। टेट्रिकास और उसके पुत्र फिर राजसम्पद् भोग करनेके अधिकारी हुए। पूर्वके विद्रोहका दमन और विभिन्न स्थानोंको जीत कर उसने समूचे रोमसाम्राज्यमें शान्तिका साम्राज्य फैलाया था। इसके बाद २७४ ई०के अक्टोबर महीनेमें भालेवियानके कैदका बदला चुकानेके लिये पारस चला। इस समय उसने अपने मन्त्रीके अयथा अत्याचार और प्रजाके सर्वस्व हरणसे क्रुद्ध हो कर उसको मार डालनेकी धमकी दी। उस समय उक्त राजकर्मचारीने प्राण बचानेके लिये और भी कई कर्मचारियोंको मिला कर एक दल संगठन किया। इस पर सम्राट्ने इन सबोंको मार डालनेका भय दिखा कर अपराधमें दण्डित (प्राणवध) होनेवालोंकी एक एक फिहरिस्त उन सबोंको दिखलाई। जिसने देखा, उसने यह समझ लिया, कि सम्राट्ने मेरे प्राणनाशके लिये ही यह भयावह स्मृति कराई है। यह सोच कर उन सबोंने सम्राट्को विदूरित करनेका उपाय खोजना आरम्भ किया। बैजन्तीसे हराक्लिया आते समय सन् २७५ ई०की जनवरी महीनेमें अपने विश्वस्त सेनापति मुकोपोरके हाथसे रोमपति मारा गया। रोम-वासियोंने इतने दिनोंके बाद एक उदारचेता राजाहको अपने हाथसे खो दिया।

फौजों और सेनेटको जब रोमपतिकी मृत्युका कारण मालूम हुआ और अपनी क्षतिकी ओर उनका ध्यान गया, तब उन कपटी और विश्वासघातक राजकर्मचारियोंको यथोचित दण्ड दिया गया। लीजनने घोषणा की—"एकके पापसे और बहुतेरोंके प्रलोभनोंसे आज हम लोगोंने अपने प्रियतम अधीश्वरको लोकान्तरमें भेज दिया है। उनकी आत्मा स्वर्गमें शान्ति लाभ करे। अब हमें चाहिये, कि उसकी जगह एक उपयुक्त अधीश्वर मनोनीत करें।" यह सन् २७५ ई०की ३री फरवरीकी घटना है। इसके बाद फौजोंने अपने दलसे एक आदमीको चुन कर अधीश्वर बनानेकी प्रार्थना की। कोई ८ महीने सोच विचार करनेके बाद इसी वर्षके २५वीं सितम्बरको सर्वसम्मतिसे प्रधान सेनेटके टासिटास ७५ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठा।

सम्राट् औरेलियनने मृत्युसे पहले आलानी नामक शकजातिके साथ मिल कर पारस विजयका प्रस्ताव किया था। अकस्मात् सम्राट्की मृत्यु तथा रोममें अराजकताका स्वप्न देख तथा पारसकी यात्रा स्थगित होते देख बर्बर रोमसीमान्त पर चढ़ आया। आलानियोंने सन्धिके शर्त्तानुसार अर्थ न पाने पर पण्टास, कापाडोकिया, साइलिसिया और गेलेसिया प्रदेश पर अधिकार कर लिया। टासिटासने अलानियाको उस समय सन्धि-शर्त्तके अनुसार धन दे कर अन्यान्य शकजातिके आक्रमणकारियोंको पराभूत और राज्यसे भगाया। इस वृद्धावस्थामें अनभ्यस्त युद्ध करनेमें असाधारण परिश्रम करनेमें सम्राट्का स्वास्थ्य खराब हो गया। ६ महीने २० दिन राज्य कर वह कापाडोकियामें मर गया। यह सन् २७६ ई०की घटना है। टासिटासके भाई फ्लोवियानास सिंहासन पर बैठे सही, किन्तु पूर्वविभागके प्रसिद्ध सेनापति प्रोबास उसके प्रतिद्वन्द्वी हो उठा। तीन मास राजत्व कर फ्लोवियानास अपने उद्धत सैनिकों द्वारा टार्संस नगरमें मार डाला गया और इल्लिरिकामवासी कृषकसन्तान सेनापति प्रोबास ३री अगस्तको सम्राट् निर्वाचित हुआ। सैन्यगण अफ्रिका, पण्टास, राइन, डेन्यूब, युफ्रेटिस और नीलनदके किनारेके प्रदेशोंमें उसकी वीरता देख पहलेसे ही उसके प्रति श्रद्धावान् थीं। उन्होंने उसको मान्यस्पर्द्धाज्ञापक अगष्टसकी उपाधि प्रदान की।

औरेलियनकी मृत्युके बाद रोमके शत्रु अधीश्वरोंको बलहीन समझ कर शिर ऊंचा कर रहे थे। अगष्टस प्रोवासने उनके गर्वको खर्व करनेके लिये सेनेटके हाथ राज्य शासनभार समर्पण कर स्वयं उनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। रिटियावासियोंने तथा सौरमतीय जाति और इसौरियान जातिने उससे पराजय स्वीकार कर ली। कोल्टास और टलेमीप्रदेशके नगरों तथा जर्मनीके अन्तर्गत ७० समृद्धिशाली नगरोंको वर्वरोंके हाथसे उसने छीन लिया। अपने अधीनस्थ सेनानायक साटार्निनास पूर्वाञ्चलमें और गलराज्यमें बोनासस और प्रोक्युलासके विद्रोही होने पर उचित शिक्षा प्रदान कर राज्यकी सुश्रृङ्खला स्थापन करनेमें वह यत्नवान् हुआ था। इस समय उसने कृषिकार्य्यमें विशेष उन्नति की थी।

साम्राज्यकी रक्षाके लिए उसने वेतनभोगी सैन्य रखनेकी आवश्यकता बतलाई । इस पर सन् २८२ ई०के अगस्त महीनेमें प्रजाने विद्रोही हो कर उसका जीवन नाश किया । पीछे उन्होंने मर्मपीड़ासे पीड़ित हो कर मृत अधीश्वरकी कीर्त्तियोंको चिरस्मरणीय रखनेके लिए कई स्मृतिस्तम्भ बनवाये थे ।

लीजनकी प्रार्थनाके अनुसार प्रिटोरीय प्रिफेक्कारुस ७० वर्षकी अवस्थामें रोम-साम्राज्यका अधीश्वर हुआ। उसके दो पुत्र कारिनास न्यूमेरियास प्रौढ़ थे। इस रण-निपुण अधीश्वरने राजसिंहासन पर बैठते ही अपने पुत्र कारिनासको सीजरकी उपाधि दे कर गलके विद्रोहकी शान्ति करनेके लिए भेज दिया और स्वयं वह रोमक-जातिकी चिरपोषित पारस्य विजयाशाको पूर्ण करनेके लिए पारस्य सीमा पर पहुंचा । अधीश्वरके साथ उसका पुत्र न्यूमेरियान भी गया था। वहां संधि न हो सकी। अधीश्वरने मिसोपोटामियाको ला कर सिलेओ-किया क्टेसिफ नगरों पर अधिकार कर लिया । इसके बाद टाइग्रीस नदी तक अपनी विजयवाहिनी ले कर वह गया। इसी समय पारसवालोंने भारतकी सीमा पर आ कर अपनी जान बचाई । रोमकोंने आशा की थी, कि पारस्यसाम्राज्यके पतनके साथ साथ अरब और मिश्र-राज्य रोमके चरणके नीचे आयेगा और शकोंका प्रभाव खर्व हो कर रोमका छुटकारा होगा । किन्तु अकस्मात सन् २८३ ई०की २५वीं दिसम्बरको वज्राघातसे अधीश्वर-की मृत्यु हो जानेकी वजहसे उनकी सारी आशा लुप्त हो गई।

फौजोंने केरुषपुत्र न्यूमेरियन और कारिनासको एकत्र ही अधीश्वर बनाया। किन्तु वज्राघात निबन्धन केरुषकी मृत्युसे ईश्वरीय प्रकोप समझ रोमकोंने फिर टाईग्रीस पार करनेका नाम नहीं लिया । अतः पारसवालोंका पीछा करना छोड़ कर रणक्षेत्रसे वे लौट आये । युद्धमें विजय प्राप्त करने पर भी कारिनास गालिकको अभिचा-रिक प्रकृतिने सर्वसाधारणके सामने उसको घृणित बना दिया। इसी समय रोमसे नौ सौ मील पर न्यूमेरियनकी मृत्यु हुई । २८६ ई०की १२वीं सितम्बरकी यह घटना है।

केरुषपुत्र न्यूमेरियनकी मृत्युके बाद सभीने मन्त्रीवर आपेरको राजसिंहासनका आकांक्षी देख उसको ही साजिशकारी और हत्याकारी स्थिर किया । इसका विचारभार शरीररक्षक सैन्यके सेनापति डाइओक्लिसि-यानको दिया गया। इसने दोषी जान उसके वक्षस्थलमें अपनी तलवार घुसेड़ दी।

कारिनास इस समय एकमात्र अधीश्वर हुआ। उसने रोमके अतुल ऐश्वर्य्यसे बलवान् हो सैन्य सामन्त ले कर डाइओक्लिसियनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। किन्तु अपने पापके कारण ही उसने अपना जीवन खो दिया। मिसिया राज्यके अन्तर्गत मर्गासनगरके समीप पूर्व और पश्चिम सैन्योंके अधिनायक डाइओक्लिसियन और कारि-न्ससने अपनी अपनी सेना एकत्र कर ली। पारस्यसे लौटी हुई सेना रणक्लिष्ट थी। किन्तु उन सबोंको युद्ध करना न पड़ा। कारिनासने अपने पापप्रवृत्तिको चरितार्थ-के लिये जिस ट्रिब्यूनकी पत्नीका सतीत्व नष्ट किया था, उसी मनुष्यने छिप कर २८६ ई०के मई महिनेमें खेमेमें घुस कर उसको मार डाला। इस व्यभिचारी अधीश्वर-की मृत्युके साथ अन्तर्विप्लवकी शान्ति हुई और डाइ-ओक्लिसियनने राजमुकुट धारण किया।

डाइओक्लिसियनने रोम साम्राज्यकी बागडोर हाथमें ले कर अगष्टस् और मार्कोस अण्टोनिनासके पदानुसरण करना स्थिर किया। फलतः उसने माक्सिमियानको सहयोगी बना कर उसके हाथमें शासनभार दे कर युद्ध-विग्रहमें लवलीन हुआ । दोनोंकी प्रकृति भिन्न थी सही; किन्तु कभी भी दोनों अधीश्वरमें मनोमालिन्य नहीं हुआ।

डाइओक्लिसियानने चारों ओर शत्रुओंसे रोमको घिरा देख रोम-साम्राज्यको चार अधीश्वरोंके अधीन कर देना चाहा । फलतः इसने अपनी राजशक्तिको दो भागोंमें विभक्त कर गालेरियास तथा कनस्तान्सियस नामके दो सेनापतियोंको बराबर कर बांट दिया । ये राजसम्मानके दूसरे स्थान (Second honours of the Imperial purple) लाभ करके भी अपने-अपने निर्दिष्ट विभागमें आपसमें समान शक्ति सञ्चालन करनेमें सामर्थ्य थे। कनस्तान्सियसको स्पेन, गल और बृटेनका शासन

भार मिला। गालेरियसको डेन्यूबके किनारेके प्रदेशोंका शासनभार मिला। माक्सिमियानने इटली और अफ्रिकाका अधिकार विस्तार किया। स्वयं अधीश्वर डाइओक्लिसियन थ्रेस, मिस्र और एशियाके धनधान्य पूर्ण राज्योंका शासनभार ले कर निश्चिन्त हुआ।

डाइओक्लिसियन अनुलिनास-वंशीय एक सेनेटके सदस्यके गुलामका पुत्र था। वह बुद्धि और बाहुबलसे अतुल सम्पत्तिका अधीश्वर हुआ। राजा हो कर एक वर्षके बाद ही सन् २८६ ई०में वह माक्सिमियानको अपना सहयोगी बना लिया। इसके बाद दूसरे वर्ष उसने बागांडीवासी विद्रोहियोंका दमन किया। इस समयसे रोम-साम्राज्यके चारों ओर विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वर्बरजाति रोमकसैन्य, राजकरके संग्रह करनेवाले और स्वयं राज्येश्वरोंके अपूर्व अत्याचारोंसे प्रपीड़ित गल जाति विद्रोही हो उठी। पण्टासके किनारे पर फ्राङ्क औपनिवेशिकोंने डकैती आरम्भ की। अफ्रिका, यूनान और एशियाके किनारे दिन रात लूटतराज हो रही थी। ऐसी विश्रृङ्खलतामें बुलो नगरमें अवस्थित मेनापीय सेनाध्यक्ष कारोसियसने इङ्गलिशप्रणाली पार कर बृटेन पर अधिकार कर लिया: यह सन् २८९ ई०की घटना है।

डाइओक्लिसियन और माक्सिमियान हताश हुए। किन्तु फिर दोनों सीजरोंकी सहयोगिता प्राप्त कर उन्होंने नवबलसे बलवान् हो कर बृटेन पर आक्रमण किया। कनस्तान्सियास इस सैन्यका अधिनायक हुआ था। सन् २९२ ई०के बुलो नगरके युद्धमें कारोसियस पराजित हुआ और उसकी फौजोंने आत्मसमर्पण किया। इसके बाद कनस्तान्सियसने फिर जलयुद्धका आयोजन किया। इतनेमें मन्त्री आलेक्टसने राजाको मार कर सन् २९४ ई०में बृटेन पर अधिकार कर लिया। रोमक प्रिफेक्ट असक्लिपिओडसने जङ्गीजहाजोंसे अलेक्टसको मार गिराया। बृटेनवासी राजभक्त ही देख पड़े।

डाइओक्लिसियनने प्रोवासकी तरह रोम-साम्राज्यकी भित्ति दृढ़ करनेका सङ्कल्प कर सीमान्तके किलोंको मजबूत किया। मिस्रसे पारस तक खेमे खड़े किये गये। अन्तिओक, एमेसा और दमस्कसमें अस्त्रागार स्थापित हुए। इस तरहका आयोजन करनेसे गथ, भाण्डाल, गेपिडि, आलेमनी आदि वर्बर जातियोंका बल चूर्ण हुआ था और वे रणक्षेत्रमें यमसदन सिधारे। आलेमन्नी लङ्ग्रे और विन्देनीसाके युद्धमें केस्तान्सियासके हाथसे पराजित हुआ। गलवासी आलेमन्नी जातिके उपद्रव बच गये।

मिस्र विजयके बाद वह पारस्यविजयके लिये चला। रोम-साम्राज्यके चतुर्विभागकी एकत्र वाहिनियां उसकी सहायताके लिये भेजने की व्यवस्था हुई। गलेवियास साथ साथ चला। पारस्यके राजा नारशेषने नाना स्थानोंसे सैन्य संग्रह किया, किन्तु कोई शृंखलाबद्ध व्यवस्था नहीं कर सका। युद्धमें असमर्थ हो कर वह मिसियाकी मरुभूमिमें भाग गया। गलेरियासने उसके परिवारवर्ग (स्त्रीपुत्रादि) को बड़े यत्न और सम्मानके साथ रणक्षेत्रमें रखा था। अन्तमें सन्धिका प्रस्ताव हुआ। पारस्यको रोमकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस्तिलीन, जावदिसिन आर्जानिन और कार्दुइन प्रदेश और इबेरियाका शासन रोम-अधीश्वरके हाथ लगा। इस पर रोम और पारस्यके बीच मित्रताकी सन्धि हुई। तिरिदेतिसने भी पिताकी सम्पत्ति पाई। इसके बाद वह डालमेसियाके अन्तर्गत सलोना नगरमें गया। यह सन् ३०५ ई०की १ली मईकी घटना है। इसी दिन उसके सहयोगी अन्यतम अधीश्वर मेक्सिमियान अपनी मिलान राजधानीमें इसी तरहकी घोषणा प्रचारित कर स्वयं लुकानिया नामक गण्डग्राममें जा कर निश्चिन्त हुआ।

डाइओक्लिसियन और मेक्सियनके राजकार्य्यसे अवसर ग्रहण करते ही रोमराज्यमें फिर विश्रृङ्खला उपस्थित हुई। कनस्तन्सियस और गलेरियस सर्वमय कर्तृत्व प्राप्त कर भी सुशासनकी प्रतिष्ठा कर न सके। गलेरियस और कनस्तान्सियसने पूर्वकी तरह अगष्टसकी उपाधि धारण कर ली। गलेरियसने अपने भांजे मेक्सिमिन और इटलीके सेनापति सेभेरसको सीजर बना कर चार विभागोंमें साम्राज्यको बांट दिया। उसने समझ लिया था, कि ऐसा करनेसे शासनकी व्यवस्था ठीक हो जायगी। किन्तु उसकी समझ गलत निकली।

पश्चिम विभागमें कनस्तान्ताइन और अफ्रिका और इटलीमें माक्सेण्टियासने विद्रोही बन कर अपने अधीनस्थ देशों पर कब्जा कर लिया। कालेडिनियामें बर्बरोंको पराजित कर अधीश्वर कनस्तान्सियस मर गया। यह ३०६ ई०की घटना है। उस समय गलेरियसने राज्यकी विभ्राट् दशा देख कर अपने पुत्र कनस्तान्ताइनको सीजरकी उपाधि दे कर उसके विभागका शासक बनाया और पूर्वकथित सेभेरसको अगष्टसकी उपाधि दी।

कनस्तान्ताइनकी इस तरह सौभाग्यवृद्धि होते देख मेक्सिमियानके पुत्र और गालेरियासके दामाद माक्सेण्टियासके राजैश्वर्यलाभकी आशासे इसी वर्षको २०वीं अक्तूबरको उत्कण्ठित रोमकोंको अपने पक्षमें ला कर रोममें विद्रोह-ध्वजा फहराई। पुत्रके प्रति स्नेहाधिक्यवश वृद्ध मेक्सिमियनने विद्रोहियोंका ही पक्ष ग्रहण किया। यह देख कितने ही रोमक उसके साथ आ गये। इस तरह उसका पक्ष और भी मजबूत हो गया। अधीश्वर सेभेरेस अपने सहयोगीके परामर्शके अनुसार राजधानीकी ओर चला। किन्तु उसके आने पर नगरका दरवाजा वन्द हो गया। उसकी सेनाओंने सेभेरेसका साथ छोड़ दिया। यह देख वह रामेन्नामें भाग गया। वहां मेक्सिमियनकी फौजोंने उस पर आक्रमण किया। इस तरह सेभेरेस पकड़ा जा कर मार डाला गया। इसके बाद मेक्सिमियानने आल्पस् पर्वतमालाको पार कर सन् ३०७ ई०की ३१वीं मार्चको दरबारमें कनस्तान्ताइनको बुला कर अगष्टस उपाधि और अपनी कन्या फष्टाको दान किया।

सेभेरेसके मारे जानेका समाचार पा कर रोमकोंको दण्ड देनेके लिये गलेरियास, इल्लिरिकामसे अपनी फौजोंको ले कर रोमकी ओर चला। किन्तु नार्नी नामक स्थानमें पहुंचने पर फौजोंने उनका साथ छोड़ दिया। इससे वह भाग गया। यह सन् ३०८ ई०की घटना है। इस समय निम्नलिखित छः अधीश्वरोंने रोम साम्राज्यका शासन किया था—मेक्सिमियानके अधीन कनस्तान्ताइन और मेक्सेण्टियस और गेलेरियसके अधीन लाइसिनियस और मेक्सिमिन। वृद्ध अधीश्वर मेक्सिमियनने अपने पुत्रके लिये समग्र पश्चिम-विभागको हस्तगत कर लेनेकी साजिश की। कनस्तान्ताइनके फ्राङ्क जातिको परास्त करनेके लिये राइन नदीके किनारे अग्रसर होने पर वृद्ध अधीश्वरने अर्थ दे कर सेनादलको वशीभूत किया। कनस्तान्ताइनकी उन्नत सैन्यके सामने युद्ध करनेमें असमर्थ हो मेक्सिमियनने मार्शेल्स नगरमें आश्रय लिया। विपक्षियोंने नगर पर अधिकार कर लिया। कनस्तान्ताइनके आज्ञासे सन् ३१० ई०की फरवरी महीनेमें उन्होंने उसे मार डाला। इसके एक वर्ष बाद सन् ३११ ई०की मई महीनेमें अत्यधिक मद्य पीनेके कारण पीड़ित हो कर गलेरियसने परलोक प्रयान किया।

गलेरियसके मृत्युके बाद इस बात पर लिसिनियास मेक्सिमिनमें विरोध पैदा हुआ, कि किसका प्राधान्य हो। अन्तमें मेक्सिमिनने प्राच्य-विभागके एशियाखण्ड और लिसिनियासने यूरोपखण्ड पर अधिकार कर लिया। हेलेसपण्ट और थ्रेसीय बफरास दोनोंकी अधिकृत सीमा निर्दिष्ट हुई। इसी समय रोम-राजकी उन्नतिविधानके लिये लिसिनियास और कनस्तान्ताइन एकमत हुए। किन्तु मेक्सिमिन और माक्सेण्टियस एक दल हो कर छिप कर अन्तर्जातिक विप्लवकी कुटिल कल्पना करने लगे।

अधीश्वर महात्मा कनस्तान्ताइन प्रथमने ३०६ और ३१२ ई०में फ्राङ्क और आलेमनी जातिको सम्पूर्णरूपसे निर्जीव कर दिया। इसके बाद सन् ३१५ ई०में वह इटलीवासीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर तुरीण-रणक्षेत्रमें उन्हें परास्त किया था। दोनों ओरसे भयङ्कर युद्ध होनेके बाद उनकी हार हुई थी। इसके उपरान्त उसने भेरोना पर घेरा डाला। मेक्सिण्टियासके सेनापति प्यरिसियास पम्पियानास नगरकी रक्षामें लवलीन था। दोनों ओरके भयङ्कर युद्धके बाद पम्पियानास पराजित हुआ।

सम्राट् कनस्तान्ताइन इस समय लिसिनियासके साथ अपनी बहन कनस्तान्सियाका विवाह कर देनेका आयोजन किया। सन् ३१३ ई०के मार्च महीनेमें दोनों मिलान नगरमें एकत्र हुए। दोनों विवाहकार्यमें फंसे थे, ऐसे समय उन सबको रणक्षेत्रमें जाना पड़ा था। कनस्तान्ता-

इन फ्राङ्क जातिके औद्धत्य-निवारणार्थ राइन तट पर गया और लिसिनियास विद्रोही मेक्सिमिनके दर्पको चूर्ण करनेके लिये वैजन्ती नगर पर अधिकार कर इसी वर्षके १७वीं अप्रिलको हिराक्लियामें परस्पर सम्मुखीन हुए मेक्सिमिन परास्त हो कर निकोमिडियामें भाग गया। यहां उसकी मृत्यु हुई।

सन् ३१४ ई०में कनस्तान्ताइन और लिसियानास रोमीय जगत्के एकमात्र अधीश्वर हुए। दोनों अधीश्वर बलदर्प-से उत्तेजित हो कर एकाधिपत्यकी आशासे आपसमें युद्धविग्रह करने लगा। कनस्तान्ताइनके अन्यतम वहनोई वासियानाको सीजरकी उपाधि और इटलीका शासन-भार मिला। इससे लिसियानासका हृदय विद्वेषाग्निसे जल उठा। वह अपने अधीनस्थ अपराधियोंको दूसरे दो बादशाहोंको विचारार्थ देनेमें असम्मत हुआ। इस पर घोर युद्ध हुआ। सन् ३१५ ई०में ८वीं अक्तूबरको पानोनियाके अन्तर्गत किवालिस नगरके निकट घोर लड़ाई होनेके बाद सिसियानास पराजित हो कर डोकियासे थ्रेसमें भाग गया। निम्नोक्त स्थानके मार्दिया रणक्षेत्रमें दूसरी लड़ाई हुई। लिसियानासकी सेना रात्रिके घनान्धकारमें इस बार भी खड़ी हुई।

दो बार लगातार पराजयसे लिसियानासको श्रीभ्रष्ट देख कर कनस्तान्ताइनको दया हुई। उसने सन्धि कर आपसके मनोमालिन्यको दूर करनेका यत्न किया। किंतु युद्धके क्षतिपूरण-स्वरूप पानोनिया, डोलमासिया, डाकिया, माकिदोनिया और यूनान पश्चिम साम्राज्यमें मिला लिये गये। क्रप्पास और छोटे कनस्तान्ताइन पश्चिमके सीजर नियुक्त और कनिष्ठ लिसियानाश पूर्व राज्यका सीजर हुआ।

इस घटनाके ८ वर्ष बाद सन् ३२३ ई०की ३री जुलाई को कनस्तान्ताइन अपने सहयोगी लिसियनासके सर्वनाश करने पर उतारू हो उठा। हेब्रुस नदीको पार कर उसने भीमवेगसे अपने शत्रु पर आक्रमण किया। लिसियानास आत्मरक्षामें असमर्थ हो वैजन्ती किलेमें रुक गया। किन्तु वहांसे वह कालसिडनमें उसके बाद नेकोमिडियामें भागा। अन्तमें वहन कनस्तान्तियाके कहनेसे अधीश्वर कनस्तान्ताइनने अपने बहनोई लिसियानाससे रोम-साम्राज्यका अधिकार निकाल लिया। इसके साथ ही उसके अधीनके शासनकर्ता मार्टिनियानासको अन्तर्हित होना पड़ा। लिसियानास थेसेलोनिका नगरमें नजरबन्द हुआ। पीछे राजद्रोहिताके अपराधमें उसको यमसदन जाना पड़ा। डाइओक्लिसियनने सुशासन-व्यवस्थाके लिये जिस रोम-साम्राज्यको चार भागोंमें विभक्त किया था, वह आज ३७ वर्षके बाद सन् ३२४ ई०में रोम साम्राज्य एक छत्राधीन हुआ। राज्य-विभागोंके एक हो जानेसे और राज्यकार्यकी सुविधाके लिये उसने स्वनामसे कनस्तान्तिपोल नगरी स्थापन किया और अलेकसन्दर सेभेरेस जो खृष्ट या ईसाधर्मका प्रश्रय दे गया है, वह उसकी सम्यक् प्रतिष्ठा कर गया।

अधीश्वर कनस्तान्ताइनके दो पत्नियां थीं। पहली मिनार्भिनाके गर्भसे एकमात्र क्रीस्पास और दूसरी पत्नी फष्टाके गर्भसे कनस्तान्ताइन दूसरे, कनस्तान्सियास और कनस्तान्सने जन्मग्रहण किया। कनस्तान्सियासको सीजरकी उपाधिके साथ गल प्रदेशका शासनभार देनेसे क्रुस्पासका हृदय विद्वेषाग्निसे जल उठा। इस समय राजाने जीवन-नाशके सङ्कल्पमें षड्यन्त्रकारी कह कर क्रुस्पास पकड़ा और मार डाला गया। अधीश्वर कनस्तान्ताइनने प्रथम अपने जीवनके बीस और तीस वार्षिक राजभोगोत्सव सम्पन्न कर सन् ३३७ ई०में २२वीं मईको निकोमिडियाके आकुइरियन राजमहलमें देहत्याग किया। इसके बाद उनकी पत्नी फष्टाके गर्भसे उत्पन्न तीनों पुत्र राज्यके अधिकारी हुए। ज्येष्ठ कनस्तान्ताइनको नई राजधानी, कनस्तान्सियासको थ्रेस और पूर्वी नगर तथा कनस्तान्सको इटली, अफ्रिका और इल्लिरिकाम मिले। इसी समय नारशेषके पौत्र और हरमूजका पुत्र सापुर प्राच्य रोमराज्य पर अधिकार कर अपने शासनका विस्तार कर रहा था। कनस्तान्सियास प्राणपणसे युद्ध करके भी उसे हटा न सका। सन् ३४८ ई०के शिङ्गाड़ा-युद्धमें रोमक पराजित हो कर भागे। इसी समय भारतको फौजोंने पारसिककी सहायता की थी।

इसी समय मस्सेगेटोके अधीन शक पारस्यके पूर्वी भाग उपद्रव कर रहे थे। पारस्यराजने दूसरा उपाय न देख रोम-सम्राट्के साथ सन्धि कर ली। इधर भ्रातृ-

द्रोही कनस्तन्ताइनने कनिष्ठ भाई कनस्तान्सके धन-ऐश्वर्य्यको बढ़ते देख ईर्षान्वित हो कर उस पर आक्रमण कर दिया। उसके आनेसे डर कर कनस्तान्सके द्वारा भेजी हुई फौजोंने छलसे कनस्तान्ताइनको ले जा कर उन सबोंको मार डाला। यह ३४० ई०की घटना है। इसके ठीक दश वर्ष बाद अर्थात् सन् ३५० ई०में माग्नेण्टियास नामक एक राजद्रोहीने मार्शेलियानासकी उत्तेजनासे कनस्तान्सको मार डाला। कनस्तान्सियासने माग्नेण्टियासको नहीं छोड़ा। सिलिओकस पर्वतके निकटके युद्ध माग्नेण्टियास सन ३५३ ई०में मारा गया।

सन् ३५० ई०में कनस्तान्सियास एकछत्र राजा हो गया। सन ३५१ ई०की ५वीं मार्चको उसने गाल्लासके साथ अपनी कन्या कनस्तान्तिनाका विवाह कर दिया और उसको राजकार्य्यके सुप्रबन्धमें लगाया। सन ३५३ ई०में कनस्तान्सियासका राज्य निष्कण्टक होने पर भी गाल्लासका अत्याचार दिनों दिन बढ़ने लगा। यह देख सम्राट्ने उसकी क्षमताको कम कर देनी चाही। उसने कौशलसे अपनी कन्याका प्राण-संहार कर दामाद-को छलसे मिलानमें बुला कर बर्बासिओ नामक सेनापतिके साहाय्यसे पेटोमिओ नामक स्थानमें कैद कर लिया। इसके बाद उसने पोला नामक स्थानमें कैद कर उसको भवयन्त्रणासे मुक्त कर दिया। इस समय उन्होंने भतीजोंको मार डाला। केवल साम्राज्ञी यूसिबियाको बीचमें रख जुलियास एथेन्स नगरमें निर्वासित किया गया। वह वहां ही रहने लगा। किन्तु उसको वहां अधिक दिनों तक रहना न पड़ा। साम्राज्ञीकी कृपासे उसका विवाह कनस्तान्सियासकी बहन हेलनासे हो गया। अब वह सीजरकी उपाधिके साथ आल्पस पर्वतके दूसरे किनारेके प्रदेशोंका शासक बनाया गया। इसके सम्बन्धमें उसको मिलानमें आ कर अधीश्वरसे भेंट करनी पड़ी। यहां २४ दिन रह कर वह गल-राज्यके शासन करने चला। यह ३५५ ई०की घटना है।

सन् ३५७-५६ ई०में सम्राट् कनस्तान्सियास पूर्व विभागका परिदर्शन करने आ कर कादी, सौरमतीय और लिमिगेन्तिस आदि जातियोंको वशमें लाया। शेषोक्त वर्णमें उसको सापुरके साथ युद्ध करना पड़ा। इसी युद्धमें उसके पुत्रके कलेजेमें बाण धंस जानेकी वजह मृत्यु हो गई। इससे उसने क्षतिपूरण-स्वरूप आमिदा नगरको ध्वंस किया। इससे रोमकोंने उत्तेजित हो कर उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। इस समय बर्बरोंने सापुरका साथ छोड़ दिया। इससे उसका बल कम हो गया। सन् ३६० ई०में रोमकोंने शिङ्गाड़ा और मिसिपोटामिया पर अधिकार कर लिया और भीर्थाके युद्धमें हार कर सापुर भाग गया। इसके बाद अधीश्वर कनस्तान्सियासने अपने सेनापतिके कार्य्योंसे असन्तुष्ट हो कर स्वयं डेन्यूबके किनारेसे पूर्वकी ओर यात्रा की। बेशाब्दे-किले पर घेरा डालनेके समय वर्षाकाल आ जाने-से अधीश्वरने अन्तिओकमें लौट कर छावनी बनाई।

राजनीतिक विशृङ्खलामें गिर कर अधीश्वर कनस्तान्सियास फ्राङ्क आलेमन्नी आदि जर्मनीके असभ्य अधिवासियोंको गलराज्यके अधिकांश प्रदेश छोड़ देने पर बाध्य हुआ। इस समय नाना शास्त्रविद् जुलियान गलका शासक हुआ। इसने युद्धविद्यामें निपुण न होने पर भी ३५७-३५६ ई०में कई युद्धोंमें जर्मनीके बर्बरोंको पराजित कर राइन नदीके दूसरे किनारे तक रोमराज्यको सीमाका विस्तार किया।

जुलियानकी यह प्रतिभा और सौभाग्य अधीश्वरकी आंखोंमें कांटा बन गया। उसने शीघ्र ही उसके पास आज्ञा भेजी, कि द्रिव्यूनके समीप अपनी चार लीजन भेजो। इससे सेनायें बिगड़ गईं। वे पारस्यके कठिन क्लेशोंको सहने पर राजी न हुईं। उन्होंने अधीश्वरकी आज्ञाका अमान्य कर जुलियानके लिए जीवन उत्सर्ग करना स्वीकार किया। वे बलपूर्वक राज-प्रासादमें घुस कर जुलियानको आदरके साथ पकड़ कर ले आये और सिंहासन पर बैठा कर उसको अधीश्वर होनेकी घोषणा प्रचारित की। इसके सम्बन्धमें दोनों ओरसे घोर युद्ध होने लगा। जुलियानने सन् ३६१ ई०में बासिल नगरके समीप अपने सेनादलको दो भागोंमें विभक्त कर सेनापतिने विक्ताकी रिटिया और नोरिकामके बीचसे और जोभियास और जोभिनासको आल्पस पार कर उत्तरी इटलीमें जानेकी आज्ञा दी। इसके बाद वह स्वयं डेन्यूब नदी द्वारा विपुल-वाहिनियोंको शिरमियाममें ला कर उनसे मिले

गया। इधर कनस्तान्सियास अपनी फौजोंके साथ पथ पर्य्यटनमें अत्यधिक क्लान्त हो गया। दारुण परिश्रम और दुश्चिन्ता-निवन्धनसे स्वास्थ्य भङ्ग होने पर मोपसुक्रोन नगरके खेमेमें ही वह पीड़ित हो गया। २४ वर्ष राजत्व भोग कर ४५ वर्षकी अवस्थामें इसी रोगसे उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके पहले वह युवक जुलियानको सम्राट् बना गया।

जुलियान राजसिंहासन पर बैठ कर सरकारी कामोंमें कितने ही संस्कारोंमें प्रवृत्त हुआ। वह पहलेकी तरह मूर्त्तिपूजक था। इससे ईसाई उसके शासनकालमें अपना विस्तार कर न सके। वह जेरुसलेमके प्राचीन मन्दिरको संस्कार कर पारस-विजय करनेके लिये आगे बढ़ा। माओगा मालका किलेको ध्वंस करने के बाद पारसवाले हताश होने पर भी रोमकोंके विपक्षताचरण करनेसे बाज न आये। सन् ३६३ ई०की २६वीं जून को जुलियान स्वयं युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ। विपक्षियों-के चलाये (बड़शा) अस्त्रसे वह मूर्च्छित हो गया। संज्ञा प्राप्त होने पर घोड़े पर चढ़ कर वह फिर युद्ध करने चला। किन्तु डाक्टरोंने उसकी मृत्यु निकट समझ उसके इस कामसे रोक दिया। मृत्यु-शय्या पर उसने दार्शनिकश्रेष्ठ प्रिस्कास और माक्सिमसके साथ 'आत्मा की प्रकृति' विषय पर विचार किया था।

जुलियानकी मृत्युके बाद रोमीय सैन्यके अधिनेता वीर जोभियानने सेनाओंके आग्रहसे राजपद ग्रहण किया। किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्यसुखभोग करना न पड़ा। सन् ३६४ ई०की १७वीं फरवरीको अत्यधिक मद्य पीने और भोजन करनेसे उसका दादास्ताना नगरमें मृत्यु हो गई। उसकी मृत्युके बाद रोम-साम्राज्य १० दिन तक खाली था। निर्वाचन क्रमसे भालेण्टिनियनने २६वीं फरवरीको सम्राट् पद प्राप्त किया था। उसने उक्त वर्षके मार्च महीनेमें अपने भ्राता भालेन्सको कनस्तान्तिनोपोल राजधानीके साथ राज्य-भाग समर्पण किया और स्वयं मिलानमें रह कर इल्लिरिकाम, इटली, गल आदि पश्चिमीय राज्यों पर शासन करने लगे। इस समय सन् ३६५ ई०के सितम्बर महीनेमें जुलियानके निकट आत्मीय प्रोकोपियासके विद्रोह और उस समयके जर्मन-युद्धने उसको विशेष रूपसे तंग कर दिये। शेषोक्त युद्धके समय प्रेसवर्गके अन्तर्गत ब्रेगेसिओ नगरमें अपने लूटप्रिय सैनिकोंको विस्तार करनेके समय मनके आवेगमें उसकी तिल्ली फट गई। इसीसे उसकी मृत्यु हो गई। यह ३७५ ई०की घटना है। उसका भाई भालेन्स और तीन वर्ष तक प्राच्य सिंहासन पर बैठ कर सन् ३७८ ई०में गथ-युद्धमें पराजित हो शत्रुके हाथ मारे गया।

भालेण्टिनियानकी मृत्युके समय उसको ज्येष्ठ पुत्र ग्रेसियन द्रिमस प्रासादमें था। वह राजपदका अधिकारी था, पर सेनापति ब्रेगेसिओने रणक्षेत्रमें अपने सौतेले भाई द्वितीय भालेण्टिनियनको राजा होनेकी घोषणा की। तब प्रोसियान चार वर्षके छोटे भाईको सौतेली माके तत्त्वावधानमें मिलान नगरमें रख स्वयं आल्पसके बाहरके प्रदेशों पर शासन करनेके लिये चला। सन् ३७५-३८३ ई० तक प्रोसियानके ३७२-३९२ ई० तक भालेण्टियनका और सन् ३६४ ३८७ ई० तक भालेन्सका राज्यकाल है। अतः ३७५-३७८ ई० तक रोमजगत् तीन सम्राटों द्वारा शासित हुआ था। भालेन्सके जीवनकालमें पूर्व भागमें रोमकों-का प्रभाव अक्षुण्ण था। उसकी मृत्युसे ही यथार्थमें रोम-साम्राज्यके अधःपतनकी कल्पना की जाती है।

गथ जातिके हाथसे भालेन्सकी मृत्यु होनेके बाद पूर्व रोमराज्य उत्सन्नप्राय देख कर सम्राट् ग्रासियान अपने चाचाकी सहायताके लिये आ उपस्थित हुआ। उसने आते ही अपने चाचाकी मृत्युसे व्यथित हो कर भावी-विपद्के निवारण करनेके लिये वृटेन और गल-विजेता निर्वासित पुत्र ओडिसियासको अधीश्वर बनाया। सन् ३९५ ई० तक प्रथम थिओडोसियास ही रोम-साम्राज्यका एकमात्र अधीश्वर था।

ओर्बोगाष्टस नामका एक सेनापति सन् ३९१ ई०में भालेण्टियानकी हत्या कर स्वयं यूजिनियास नाम रख कर पश्चिम साम्राज्यका अधीश्वर बन गया। राज्यापहारक यूजिनियाको पराजित कर थिओडोसियास रोम-साम्राज्यका एकमात्र अधीश्वर हो गया। इसीने खृष्टान-धर्मका अनुयायी हो कर मूर्त्तिपूजक धर्मका नाश किया था। सन् ३९५ ई०में १७वीं जनवरीको मिलान नगरमें

थियोडोसियासकी मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र आर्केडियासने पूर्व राज्यका भाग ले कनस्तान्तिनोपलमें राजधानी की और छोटे पुत्र ओनोरियास पश्चिम विभागका अधीश्वर बना।

सन् ३९५ ई०में ओनोरियास पश्चिम राजधानीके सिंहासन पर बैठा सही, किन्तु उसमें राजकीय प्रतिभा न रहनेसे उसके राज्यमें घोरतर विशृङ्खला उपस्थित होने लगी। अफ्रिकामें गिल्डोर-विद्रोह, आलारिक और रादागाइससके इटली आक्रमण, जर्मन द्वारा गल राज्य उत्सादन, ष्टिलिकोर और रूफिनियासके षड़यन्त्र, गथ जातिका पराभव, अलारिककी मृत्यु, कनस्तान्ताइनके अभ्युदय और पतन, ष्टिलिकोरकी हत्या आदि घटनाओंसे रोम साम्राज्यका बल घटने लगा था।

ओनोरियासके बाद हीनवीर्य्य निम्नोक्त कई राजे पश्चिम अधीश्वर सिंहासन पर बैठे थे। सन् ४२४ ई०में तृतीय भालेण्टिनियन राजसिंहासन पर बैठा। इसके बाद ४५५ ई०में मेक्सिमास, इसी वर्षमें अवितास, सन् ४५७ ई०में मेजोरियानास, ४६१ ई०में सेभेरास, ४६७ ई०में एन्थिमियास, ४७२ ई०में ओलिब्रियास, ४७३ ई०में ग्लिसेरियस, ४७४ ई०में जुलियास नेपोस और ४७५ ई०में रोमूलास अगष्टलस पश्चिम रोम-साम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। अन्तिम अधीश्वरके बाद सन् ४७६ ई०में प्रजातन्त्रके हाथ रोम-साम्राज्यका शासन-भार अर्पण करनेसे पश्चिम साम्राज्यका अन्त हो गया। अनोरियासके शासनकालमें अगष्टलासके आधिपत्य तक आटिला और हूण जातिके उपद्रवसे समग्र पश्चिम रोम-राज्यका विध्वंस हुआ था। प्रजातन्त्रके अभ्युदयसे अन्यान्य शासनसमितिकी अपेक्षा खृष्टधर्माध्यक्ष पोपका ही आधिपत्य बढ़ गया था। पोपग्रेगरी दी ग्रेट या 'प्रथम' के समयमें धर्मशक्ति पर विजय पाई।

पोप शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

महात्मा थियोडाससके पुत्र आर्केडियसने सन् ३९५ ई०में पूर्व विभागका शासनाधिकार प्राप्त कर सन् ४०८ ई० तक राज्यशासन किया। इसी समय गाइनासका विद्रोह हुआ। इसके बाद उसका पुत्र द्वितीय थियोडोसियस सन् ४०८से ४५० ई० तक और मार्सियन और आर्केडियास तनया फूलचेरियाने ४५० ई०से ४५७ ई० तक राज्यशासन किया। इसके उपरान्त निम्नलिखित राजे राज्यसिंहासन पर बैठे थे।

नाम	सन्
१ लिओ प्रथम	४६७ ४७४
२ लिओ द्वितीय	४७४-४७४

३ जेनो ४७४-४९१ यह द्वितीय लिओका पाप है।

४ आनाष्टासियास् ४९१-५१८ यह साइलेण्टयारो उपाधिसे विभूषित थो।

५ जाष्टिन प्रथम या ज्येष्ठ ५१८-५२७।

६ जाष्टिनियन ५२७-५६५ यह जेष्टिनका भतीजा है।

७ जेष्टिन द्वितीय या छोटा ५६५-५७८ इसके अधिकारके समय इसलामधर्मके प्रवर्त्तक महम्मदका जन्म हुआ।

८ टाइबेरियास द्वितीय ५७८-५८२ इसने कनस्तान्ताइनकी उपाधि धारण कर राज्य-शासन किया था।

९ मरिस ५८२-६०२ यह कापाडोकियावासी था और अन्तमें गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया।

१० फोकास ६०२-६१० अन्तिम वर्षमें शत्रुके हाथ मारा गया।

११ हेरोक्लियास ६१०-६१४

१२ हेरोक्लियास द्वितीय ६४१-६४१ यह ११ संख्यकका पुत्र था। इसने कनस्तान्ताइन नाम रखा था।

१३ हिरोक्लिओनास ६४१-६४१। १२ संख्यकका भाई, निर्वासित किया गया।

१४ कनस्तान्स द्वितीय ६४१-६६८। हिरोक्लियास कनस्तान्ताइनके पुत्र।

१५ कनस्तान्ताइन ४र्थ ६६८-६८५ उपाधि प्रगोनेटस।

१६ जष्टिनयन द्वितीय ६८५ ई०में राज्याधिकार ६९५ ई०में निर्वासित ७०५ ई०में पुनः राज्यप्राप्ति और ७१५ ई०में मारा गया।

१७ लिओण्टिआस ६९५ ई०में शासनाधिकार और ६९८ ई०में राज्यसे भगाया गया।

१८ आप्सिमार टाइबेरियास ६९८ ई०में राज्याधिकार और ७०५ ई०में राज्यच्युत किया गया।

१९ फिलिपिकास वार्डेनिस ७११ ई०में राज्यारोहण और ७१३ ई०में मरा।

२० अनाष्टासियस द्वितीय ७१३ ई०में सिंहासनप्राप्ति, ७१६ ई०में राज्यच्युत और ७१९ ई०में शत्रुके हाथ मारा गया।

२१ थिओडोसियास तृतीय ७१६ ई०में राज्यप्राप्ति; ७१८ ई०में राज्य-त्याग।

२२ लिओ तृतीय ७१८-७४१ ई० यह इसौरीय देशवासी सन्तान था।

२३ कनस्तान्ताइन (५म) ७४१-७७५ ई०।

२४ लिओ ४र्थ ७७५ ७८० इसकी उपाधि 'छाजारै' थी।

२५ कनस्तान्ताइन (६ष्ठ) ७८० ई०में इसने माता इरेणेके सहयोगसे राज्यशासन किया, अन्तमें ७९७ ई०में गुप्त घातकों द्वारा मारा गया।

२६ इरेणे ७९७-८०२ २५ संख्यककी माता, अन्तके वर्ष-में राज्यसे बहिष्कृत की गई।

२७ निसेफोरस ८०२-८११ ई०।

२८ ष्टोरेसियास ८११ ई०में राज्याधिकार और २७ संख्यकका पुत्र। इसी वर्षमें इसने राज्य त्याग किया।

२९ माइकेल ८११ ई०में राज्याधिकार और ८१३ ई०में राज्यच्युत।

३० लिओ (५म) ८१३ ई०में सिंहासन अधिकार और ८२०में गुप्त शत्रुके हाथ मारा गया। यह आर्मेनियन था।

३१ माइकेल (२य) ८२०-८२९ यह "दी ष्टोमारर" या तोतला नामसे प्रसिद्ध था।

३२ थिओफिलास ८२९-८४२ ई०।

३३ माइकेल (३य) ८४२ ई०में राज्य प्राप्त कर ८६७में मारा गया।

३४ वासिल ८६७ ८८५ ई० यह 'माकिदोनिया' नामसे परिचित था।

३५ लिओ ६ठा ८८६-९११ ई० यह दार्शनिक था।

३६ अलेकसन्दर ९११-९१२ ई० यह ६ठे लिओका भाई था। इसने भतीजा कनस्तान्ताइन सप्तमके साथ मिल कर राज्य किया।

३७ कनस्तान्ताइन (७म) 'पोर्फाइरोजेनिटस' ९११ ई०में राज्याधिकार, किन्तु पितामह रोमानास द्वारा ९१९ ई०में राज्यच्युत, अन्तमें ९४५ ९५९ ई० तक फिर सिंहासनलाभ और राज्य शासन।

३८, ३९, ४०, ४१ रोमानास (१म) या लेकोपेनास और उसके तीन पुत्र खृष्टेफार, ष्टिफन और कनस्तान्ताइन ८म, इन्होंने यथाक्रम ९१९, ९२१ और ९२८ ई०में शासनाधिकार लाभ किया और ९४४ और ९४५ ई०में राज्यच्युत हुए।

४२ रोमानास (२य) या छोटा ९५९-९६३ यह ६ठे कनस्तान्ताइनका पुत्र है।

४३ निसेफोरस (२य) या (फोकस) ९६३ ई०में सिंहासन पर बैठा और ९६९ ई०में गुप्तघातक द्वारा मारा गया।

४४ जान जिमिस्केस ९६९ ९७६।

४५, ४६ वासिल (२य) और कनस्तान्ताइन (९म) ९७६ १०२५ और कनस्तान्ताइन (९म), पीछे १०२५-१०२८ ई०।

४७ रोमानास (३य) १०२८-१०३४ यह आर्गाइरासके नामसे परिचित।

४८ माइकेल (४र्थ) १०३४-१०४१ यह 'पाफ्लागोणीय-के नामसे विख्यात।

४९ माइकेल (५म) १०४१ ई०में राज्यरोहण और १०४२ ई०में राज्यसे भगाया गया। यह कालफेट के नामसे प्रसिद्ध था।

५०, ५१ जोई और कनस्तन्ताइन (१०म) १०४२-१०५४।

५२ 'थिओडोरा-१०५४-१०५६ यह सम्राट् जोईकी बहन थी।

५३ माइकेल (६ष्ठ) १०५६ ई०में राज्याधिकार प्राप्त हुआ और १०५७ ई०में इसने छोड़ दिया, इसका दूसरा नाम ष्ट्रोटिओटिकास।

५४ आइजाक (१म) या कोम्नेनास १०५७ ई०में राजपद पर प्रतिष्ठित हुए और १०५९ ई०में स्वेच्छा-पूर्वक राज्य त्याग।

५५ कनस्तान्ताइन (११वां) या (डुकस) १०५७से १०५९ तक इसने आइजाकके साथ एकत्र राजत्व

किया। इसके बाद १०६७ ई० तक रोमराज्य वैदेशिकके आक्रमणोंसे घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई।

५६ यूडोकिया और रोमानस (३य) १०६७-१०७१ ई०।

५७ माइकेल ७म (या आन्द्रानिकास १म) और कनस्तान्टाइन १२वां एकत्र १०७१ ई०।

५८ माइकेल ७म् इसी वर्षमें ही एकेश्वर सम्राट् हुआ। सन् १०७८ ई०में उसको स्वेच्छापूर्वक सिंहासन परित्याग करना पड़ा।

५६ निसेफोरस (३य) या (वोटानियस) सन् १०७८ ई०में साम्राज्य पद प्राप्ति और १०८१ ई०में सिंहासन च्युति।

६० आलेक्सियस (१म) वा (काम्नेनास) १०८१-१११८।

६१ जनको मेनास १११८—११४३ ई०।

६२ मनुएल कोम्नेनास ११४३ ११८० ई०।

६३ आँलेक्सियास (२य) या (कोम्नेनास) ११८० ई० में राज्याधिकार; किन्तु ११८३ ई०में राज्यच्युत और मारा गया।

६४ आन्द्रोनिकस (१म) कोम्नेनास ११८३ ई०में राज्य-प्राप्ति और ११८५ ई०में शत्रुके हाथ मारा गया।

६५ आइजक (१म) (अञ्जेलास) ११८५ ई०में राज्याधिकार और ११६१ ई०में राज्यच्युति किन्तु १२०३-१२०५ ई० तक फिर राज्यशासन। इसी समय हिन्दूस्थानमें दासवंशने पठान सरदार कुतुबउद्दीन द्वारा दिल्ली राजधानीमें पठान शासन प्रतिष्ठित हुआ।

६६ आलेक्सियास (३य) अञ्जेलास सन् ११६५ ई०में सिंहासनारोहण और १२०३ ई०में राज्यच्युति और १२०५ ई०में पुनः शासनभार प्राप्ति।

६७ आक्सियास (४र्थ) अञ्जेलास १२०३ ई०में पिता अञ्जेलासके सहयोगसे राज्यशासम किया। किन्तु शीघ्र ही १२०४ ई०में मारा गया।

६८ आलेक्सियास (५म) आञ्जेलास मार्जुफ्ले १२०४ ई०में सिंहासन अधिकार और इस समयके वाद ही शत्रु द्वारा रक्षित घातकके हाथ उसकी जीवन-लीलाका शेष हुआ।

कनस्तान्तिनोपोलके लेटिनजातिके सम्राट्।

६६ वालडुइन (१म) १२०४-१२०६ ई० यह फ्लाण्डार जाति के एक काउण्ट था।

७० हेनरी १२०६-१२१६ ई०

७१ पिटर कुटिर १२१७-१२१६ ई०

७२ रावर्ट १२१६-१२२८ ई०

७३ वालडुइन (२य) १२२८ ई०में राज्याधिकार प्राप्त कर १२६१ ई० तक राज्यशासन किया। अन्तमें माइकेल पेलिओलोगास द्वारा उक्त वर्षमें उसको राज्यसे वाहार कर दिया गया।

इस समय किस नगरमें राजधानी कायम कर चार यूनानी सम्राट् रोमसाम्राज्यके कुछ अंश तक स्वतन्त्र भावसे शासन करते रहे—

थिओडोर लास्कारिस (१म) १२०६ १२२२ ई०। जान डुकस डालेसिस १२२२-१२५५ ई०। थिओडोर डुकस लास्कारिस १२५५-१२५६ ई०।

जान लास्कारिस १२५६ ई०में सिंहासन प्राप्त किया सही; किन्तु उसको अधिक दिनों तक राज्य भोग न करना पड़ा। १२६० ई०में उसको राज्यच्युत कर पेलिओलोगासवंशीय राजोंने रोमसाम्राज्य पर अपना प्रभाव फैलाये।

पेलिओलोगास-वंशीय यूनानी सम्राट्।

७४ माइकेल १२६० ई०में राजा हुआ। १२६१ ई०में उसने कनस्तान्ताइन पर विजय प्राप्त कर १२८२ ई० तक राज्य किया था।

७५ आन्द्रोनिकास (२य) १२८२-१३३२ ई० माइकेलने इस समय १२६५-१३२० ई० तक इसके सहयोगीके रूपसे राज्यशासन किया।

७६ आन्द्रोनिकास (३य) १३२८ और पीछे १३३२ ई०में दो वार राजा हुआ। १३३२ वर्षसे १३४१ ई० तक इसने राजत्व किया था। यह तुर्क जातिके साथ युद्धमें आहत और पराजित हुआ। इसके पुत्र जान पेलिओलागास राज्यका उत्तराधिकार हुआ था।

७७ जान (१म) १३४१-१३६१ ई०, राज्याधिकारके समय यह नौ वर्षका वालक था। इसलिये इसकी

माताआनने राज्य चलानेके लिये अपने स्वामी-के परमहितैषी मित्र जान काण्टाकुजेनको राज्य-परिदर्शक (Regent) नियुक्त किया। इस वर्ष उसका प्रभाव देख कर ईर्षान्वित हो शत्रु-ओंने उसको राजद्रोही और धर्मद्वेषी होनेकी घोषणा की और उन्होंने उसकी माताको कैद कर लिया। पीछे उसने डेमोटिका नगरमें अपने मस्तक पर राजछत्र धारण किया। किन्तु उसकी सेनाओंने उसका साथ छोड़ दिया। इस पर साथीय वह असभ्य जातिकी शरणमें चला गया। इधर नौ-सेनापति आपोकोकास और धर्म्माध्यक्ष जान (John of Apri the Patriarch) राज्यका मालिक हुआ। राज्यमें घोर अत्याचार और अनाचार फैल गया। नौसेनापति मारा गया। राज्यमें घोर विश्रृ-ङ्खला उपस्थित होते देख रानी आनने काण्टा-कुजेनकी निर्वासनकी दण्डाज्ञा रद्द करनेके लिये धर्म्माध्यक्ष जानसे प्रार्थना की। बदलेमें जानने उसको राज्य और धर्मच्युतका डर दिखाया। इसी गड़बड़ीमें काण्टाकुजेनने सेना-के साथ आ कर कनस्तान्तिनोपोल पर घेरा डाल दिया। रानीने यह समाचार सुन कर उसके पदानत हुई। आक्रमणकारीने अपनी कन्याके साथ राजकुमार जानका विवाह कर दिया और स्वयं उसके संरक्षक बन गया। यह १३४७ ई०की घटना है।

इस तरह ६ वर्षों तक घोर अत्याचार होते रहनेके बाद काण्टाकुजेनके राज्यमें शान्ति उपस्थित हुई। किन्तु आन्द्रोनिकासके वंशधर अब राजा न रहे, कौशलसे काण्टाकुजेन ही राज्य के अधीश्वर बन गया। अब जान अपने राज्य प्राप्त करनेके लिये विद्रोहाचरण करनेमें प्रवृत्त हुआ। काण्टाकुजेनके अनुगृहीत यूरोपीय तुर्की सेनाओंने उसको पराजित किया। उस समय काण्टाकुजेनने बालक अधीश्वरके साथ पुनः मिल जानेकी आशासे निराश हो कर अपने पुत्र माथिओ काण्टाकुजेनसे सहयोगसे राजकार्य्य चलाना चाहा। सन् १३५५ ई०में उसने राजकार्य्योंसे अवसर ग्रहण कर अपने पुत्रके हाथ शासन-भार अर्पण किया। माथिओको सन् १३५६ ई०में सिंहासन त्याग करने पर बाध्य होना पड़ा।

७८ मेनुएल १३९१-१४२५ ई०

७९ जान (२य) मेनुएलके साथ १३९९ ई०में शासन-भार ग्रहण और सन् १४०२ ई०में राज्य-त्याग किया।

८० जान (३य) १४२५-१४४८ ई०

८१ कनस्तान्ताइन १४४८ ई०में साम्राज्य सिंहासन पर आरोहण किया और १४५३ ई० २९वीं मईको तुर्कसेना द्वारा कनस्तान्तिनोपल अवरोध किया गया और विजयके समय वह मारा गया।

रोमसाम्राज्यका अधःपतन।

सम्यक् समुन्नत रोमजाति उद्यमसे इतने दिनों तक धीरे धीरे जिस विस्तृत रोमराज्यने परिपुष्ट हो समग्र सभ्यजगत्को प्रकाशित किया था, उस सुमहान् राज-तन्त्रका किस तरह ह्रास हुआ, रोमका राजचरित्र और इतिहासकी आलोचना करने पर उसका एक पूर्णचित्र प्रकाशित हो सकता है। असीम वीरतासे रोमके नेताओं-ने राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर प्रजामें जो भय उत्पन्न किया था, उसीसे रोमराज्यकी भित्ति मजबूत हुई थी। सिपिओ, सल्ला, सीजरकी अद्भुत वीरता और रणमें जय करनेके समयकी नृशंस नरहत्या उस समयकी सुसभ्य तथा अर्द्धसभ्य जातियोंके ऊपर आधिपत्य स्थापित करने पर समर्थ हुई थी। उस पर रोमके राजनीतिक प्रभाव, पहलेकी सेनेट, एसेम्बली, कमिसिया और मजि-ष्ट्रेसी आदि राजकीय विधिसे अधिकृत-राज्यमें सुशासन प्रतिष्ठा होने पर भी सभी विभागके शासनकर्त्ता प्रजाके सर्वस्व लूटनेसे बाज न आते थे। उन्होंने रोमका अक्षुण्ण प्रताप प्रजावर्गको विशेषरूपसे जता दिया था। उस समयका सम्पूर्ण सभ्यजगत् रोमजातिके भयसे सर्वदा कम्पित और विचलित रहता था।

अधीश्वर अगष्टसकी राजविधिके परिवर्त्तनसे रोम-साम्राज्यमें शान्ति-राज्य-प्रतिष्ठाताकी आशा समुदित होने पर भी यथार्थमें अराजकता और अत्याचारके सिवा और कुछ नहीं देखा जाता था। क्योंकि, वहांका राजवंश परम्परागत न था। वीरत्व-प्रतिभासे लब्धप्रतिष्ठित सेनानायकगण अधिकांश स्थलमें सम्राट् पद निर्वाचित होते थे। कभी वे अर्थके लोभसे सम्भ्रान्तवंशीय धनी सन्तानोंको सिंहासन पर बैठानेमें द्विरुक्ति नहीं करते थे। राजसिंहासनकी इस तरह दुरवस्था देख अधीश्वर धनलालसामें स्वतः ही यथेच्छाचारी "Tyrant" हुए थे। वरन् वे लूटनेके लिये सदा युद्धविग्रह किया करते थे और उनके अधीनस्थ सेनामें भी राज्य जीतने पर धन अपहरण करनेकी आशासे उद्दृप्त हो कर प्राणपणसे युद्ध कर वीरताकी पराकाष्ठा दिखाती थी।

रोमराज्यके इस निदारुण आधिपत्यकालमें ष्टोइक, प्लेटोनिष्ट, आकाडेमिक और इपिक्यूरियास आदि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ था। वे अर्थलिप्सा और जीवहिंसा तिलाञ्जलि दे कर जीवात्माकी मङ्गलकामनामें शान्ति-सुखके उद्देश्यसे दौड़ रहे थे। संसारकी बड़ी झंझटोंसे अलग हो कर उन्होंने राजाकांक्षा त्याग कर दी और एक सम्राट् मनोनीत कर उसके हाथ समग्र साम्राज्यका शासनभार सौंप थे निश्चिन्त मनमें ज्ञानकी चर्चामें समय बिताने लगे। ष्टोइक वैशैपिककी तरह आणविक और भौतिक सिद्धांतमें (Contemplation of orig'nal matters) मत्त रहता था। प्लेटोका शिष्य सम्प्रदाय आत्माका अविनश्वरत्व (Immortality) प्रतिपादन करनेमें सचेष्टित था। आकाडेमिक सांख्यकी तरह प्रत्यक्षीभूत जगत्‌की वस्तुसत्ता स्वीकार न कर तर्क और मीमांसाके सागरमें गोता लगाता (Lost in Scepticism) था और एपिकिउरीय सम्प्रदायने चार्वाकके मतानुसार परमेश्वरकी ऐशी शक्ति आरोप करनेमें अस्वीकार (Denied the prudence of a supreme power) कर दिया। फ्लावियवंशीय राजाओंके शासनकालमें विभिन्न सम्प्रदायके धर्ममन्दिरोंमें विविध सम्प्रदायके दिये उपहारोंकी रक्षाका उचित प्रबन्ध था। अतः यह कहानी ही होगी, कि ज्ञानवृद्धिके साथ दुर्द्धर्ष और नृशंस-प्रकृति रोमकोंके हृदयमें कोमल और कमनीयताने आश्रय लिया था। वही उग्र और प्रचण्डप्रकृतिके रोमक क्रमशः नरहत्याजनित पापपङ्कमें डुबकियां लगा कर अपनी आत्माको कलुषित करनेसे बाज आये। वे भार्जिल, सिसरो आदिके ज्ञानगर्भ उपदेशोंका अनुसरण कर भाव और भाषानुशीलनमें लगे। चित्तकी शान्तिके कारण उसने अब युद्धविग्रहमें मन खराब करना अनुचित समझा सिवा इसके व्यवसाय वाणिज्यमें अतुल ऐश्वर्य्यसम्पन्न हो कर वे प्राच्यसमृद्धि हृदयमें पोषण करते थे। सुख-सम्पद्से मत्त हो कर वे आलसी हो गये और इसलिये धीरे धीरे जातीय उद्यमसे हाथ धोने लगे। रोमीय नगर-वासियोंकी अपरिमित समृद्धिराशि देख कर वैदेशिक वर्बरोंने बारंवार उन स्थानोंका ध्वंस किया था। इटली आलस्यसलिलमें निमज्जित होने पर भी गल, स्पेन, बृटेन आदि यूरोपीय प्रदेश शक्तिहीन नहीं हुए। फिर भी अर्थके दास हो कर रोमक जातिकी गौरव-रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। ऐतिहासिक गिवनने लिखा है—

"But though the tranquil and plentiful state of the Empire was felt and confessed by the provincials as well as the Romans, though the latent causes of decay and corruption might escape the eye of contemporaries, yet Rome was gradually declining and slowly verging towards dessolution. A secret poison had been introduced by the long peace and lethargic inactivity into the bowels of the Empire. Military spirit no longer existed; the fire of enterprise was extinguished, and the commanding genius of Rome forsook the polluted habitations of a luxurious and effeminate people. The improvements of arts, whilst it refined, had gradually enervated the country; the splendour of their cities served only to allure the impending rapacity of hardy race of Barbarians.

ज्ञानोन्नतिके साथ रोमराजाओंके हृदयमें भी स्वजातिप्रियताका प्रभाव बढ़ गया था। सम्राट् हाड्रियान और

अण्टोनाइन द्वयने दयापरवश हो-कर हतभाग्य गुलामके छुटकारेके नये कानूनका प्रचार किया। वे छुट कर राजानुग्रह लाभकी आशामें विशेष विश्वासके साथ दिन बिताने लगे। इस तरह गुलामोंके छुटकारेसे रोमक हीनवीर्य्य हो गये थे। राज्यलिप्सा और आपसकी प्रतिद्वन्द्विता फिर उनके मनको लुभा न सकी।

समग्र साम्राज्यमें काव्य और साहित्यकी उन्नतिके लिये पूर्वोक्त तीनों सम्राटोंने यथासाध्य चेष्टा की थी। सुदूर-वृटेनराज्यके उत्तरी किनारेके प्रदेश अलङ्कारशास्त्राध्ययनका केन्द्रस्थान बन गया था। डेन्यूब और राइन नदीके किनारे होमर और भार्जिलकी ओजस्विनी गीत प्रतिध्वनित होती थी। यूनानियोंने पदार्थ-विद्या और ज्योतिष आलोचनामें शीर्षस्थान अधिकार कर लिया था। टलमी और गालेनका नाम आज भी प्राच्य और प्रतीच्य जगत्‌में उनकी स्मृति जगा रही है। लुसियानकी कवित्व-प्रतिभा अब नहीं। पूर्वपुरुषोंकी वैसी असाधारण प्रतिभा ले कर रोममें और किसीने जन्म ग्रहण नहीं किया। शोफिष्टोंने सुवक्ताका स्थान ग्रहण किया था।

ईसाकी तीसरी शताब्दीके मध्य भागमें उत्साह-सम्पन्न पाश्चात्य रोम जातिके बीच अवसाद और अधःपतन लक्ष्य कर पूर्वाञ्चलवासी शिक्षित गुलाम लञ्जीनासने कहा था—

"In the same manner (says he) as some children always remain pigmies, whose infant limbs has been too closely confined; thus our tender minds, fettered by the prejudices and habits of an unjust servitude, are unable to expand themselves, or to attain that well proportioned greatness which we admire in the ancients, who living under a popular government, wrote with the same freedom as they acted." (Gibbon, Chap, I.)

इस तरह दर्शन और काव्यामोदसे जितने ही लोगोंका मन पागल हो गया, उतने ही वे पूर्वपुरुषोंके शौर्य्यवीर्यको छोड़ कर कोमला-कलाविद्याओंका आश्रय लेने पर वाध्य हुए।

उच्च-शिक्षाप्राप्त और सम्यक् समुन्नत पारसवालोंके साथ बारंबार युद्धमें रोमकोंका उत्तरोत्तर बलक्षय होने लगा। चिरशत्रुता रख कर वे दोनों ही अपनी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। पारसवालोंके वीर्य्यबल और धर्मबल विदूरित होनेके साथ-साथ रोमकोंके भी आभ्यन्तरिक प्रभाव और धर्मप्राणता क्रमशः ही हीन-तेज हो रही थी। इसी समय रोमकोंके अधिकृत पेलेस्ताइनमें ईसाई धर्मके प्रतिष्ठाता महात्मा ईसामसीह आत्मवादका प्रचार कर धन-लोलुप रोमकोंके हृदयमें शान्तिवारि प्रवाहित कर रहे थे। सम्राट् कनस्तान्ताइन प्रथम और थिओडोसियासने ईसाईधर्मकी विमल प्रतिभा प्राप्त कर मूर्त्तिपूजाका अनाचार बन्द कर दिया।

ईस्वीसनकी ८वीं शताब्दीके अन्तमें सम्राट् सार्लिमनके अभ्युदय और उसकी सहानुभूतिसे समूचे यूरोपमें ईसाईधर्मका प्रचार हुआ था। ईसाई-धर्मका प्रभाव पश्चिम-साम्राज्यमें जिस तरह फैला था, पूर्वाञ्चलमें वैसा प्रभाव फैला नहीं था। रोमक ईसाई-धर्ममें आस्था कायम कर धीरे धीरे स्वयं ही धर्मस्रोतमें प्रवाहित हुए थे। रोमूलास अगष्टुलासके ४७६ ई०में राजासन छोड़नेसे जितने ही प्रजातन्त्रका प्रचार होने लगा, उतने ही नवधर्ममें दीक्षित ईसाई-सम्प्रदायका आधिपत्य रोममें फैल गया। ईसाई रोमक प्रजाने सुशिक्षाके गुणसे लौकिक राज्यमें राजाके बदले धर्मगुरुको ही आध्यात्मिक जगत्‌का सर्वमय कर्त्ता बना डाला। धर्म प्रचार और विस्तारके साथ साथ क्रमसे वे रोमक-समाजमें 'राजगुरु' बन कर पूजित हुए।

खृष्टान, ईसा (यीशु) और पोप शब्द देखो।

इस नये धर्मबलसे रोमक प्रकाश्यमें हीनबल न होने पर भी धर्माभिव्यक्तिकी कोमलतासे उनकी उद्दाम चित्तवृत्तियां शिथिल हो गईं। युद्धविद्यामें वे सम्पूर्णरूपसे अनभ्यस्त और अशिक्षित हो गये। ऐसे समय सन् ५७० ई०में मक्का नगरमें इसलाम धर्मका अभ्युदय हुआ। शीघ्र ही अरबवासी पवित्र इसलाम-धर्मसे दीक्षित हुए। सुयोग्य अली धर्मगुरु और सम्प्रदायके अधिनायक हुआ। इसने क्रमसे अरबो और सोरासेनी नये उद्यम और बलसे पारस, सिरिया, मिस्र, अफ्रिका

और सुदूर स्पेन राज्य पर अधिकार कर लिया। हतवीर्य रोमक इसके साथ युद्धमें पराजित हुए। ईसाइयोंको भी इस समय इनके हाथ बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था।

महम्मद और मुसलमान देखो।

मुसलमानी साम्राज्यके विस्तारके साथ साथ खलीफोंका आविर्भाव हुआ। खलीफा सुलेमानके राजत्वके समय अरबोंने सन् ७१६ ई०में कनस्तान्तिनोपोल पर घेरा डाला और फ्रान्स पर आक्रमण किया। स्थान स्थानमें खलीफाके अधीनस्थ शासनकर्त्ता या सेनापति स्वतन्त्र राजपाट स्थापित करने लगे (७८१ ई०से ६६० ई० तक)। देखते देखते इतना बड़ा रोमराज्य खण्ड खण्ड मुसलमानी राज्योंमें परिणत हुआ। इसी समय अर्थात् ईस्वीसन्‌की १०वीं शताब्दीमें तुर्क जाति बड़ी प्रभावसम्पन्न हुई थी। उनके बलवीर्य्यसे रोमक नष्ट भ्रष्ट और श्रीहीन हो उठे। सालजुक वंशीय तुर्क-सरदार तुग्‌रल बेग और जाफर पारस जीत कर खलीफोंको सहायता करने लगे। सरदार अलपआर्स-लामने यूनानकी रानी युडोसियाको परास्त कर राजदण्ड हाथमें कर लिया और उक्त रानी और सम्राट् रोमानास डाइओजेनिसको कैद कर लिया (१०६४ ई०)। इसके बाद १०८२ ई०में मालिक शाहने एशियामाइनर और जेरुसलाम पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ई०की १३वीं शताब्दीके शुरूमें मुगल-सरदार चङ्गेज खांने और अन्तमें तैमूरलङ्गने रोमसाम्राज्यको लूट-पाट कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसके बाद सन् १४४८ ई०में तुर्कके हाथ रोमसम्राट् कनस्तान्ताइनकी मृत्युके साथ साथ रोम साम्राज्यका अवसान होने लगा। (पारस्य, तुरुष्क, कनस्तान्तिनोपल, सिरिया आदि शब्दोंमें विशेष द्रष्टव्य)

रोम नगर और उसका प्रत्नतत्त्व।

रोम नगर ही रोमसाम्राज्यकी प्रधान राजधानी है। यूरोपके अन्तर्गत इटली राज्यमें प्रवाहित टाइवर नदीके किनारे समुद्र तटसे प्रायः १४ मील पर अवस्थित है। अक्षा० ४१°५३'५२" उ० और देशा० १२°२८'४०" पू०।

टाइवर नदीके दोनों किनारे क्रमोच्च निम्न पार्वत्य प्रदेश पर यह नगर स्थापित है। यहांके भूतत्त्वकी आलोचना कर देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि यह स्थान एक समय समुद्रके निकट था। समय पा कर समुद्रके उस पलिमय वेलाभूमिके निकटके किसी ज्वालामुखी पर्वतके अग्न्युद्गम और गलित धातवस्रावसे परिव्याप्त हो कर इधर उधर असमान भावसे फेंके हुए स्तूप राशिमें समाच्छादित हो गया। पीछे वही विभिन्न प्रान्तरस्तरोंमें रूपान्तरित हो कर एक एक छोटे छोटे पहाड़ोंके रूपमें परिणत हो गया। इस तरहके कितने ही शैलशिखरों और उसके सानुमय भूभागमें इतिहास-प्रसिद्ध रोमनगरी प्रतिष्ठित हुई थी।

लागो, ब्राकियानो और रोमके निकटकी आलवान शैल-श्रेणीमें कितने ही ज्वालामुखीका मुंह (Craters) दृष्टि-गोचर होता है। इन सब पर्वतोंसे अपेक्षाकृत आधुनिक युगमें भी वालुकादि और धातवनिस्राव बाहर हो रहा है। भूगर्भ निहित भग्न मृत्पात्र, ब्रोञ्ज धातुनिर्मित शस्त्रादि, मनुष्योंकी हड्डियां उसके प्रमाण हैं।

रोम नगरकी जमीन तीन भागोंमें विभक्त है—१ टाइवर नदीके बाये किनारे अवस्थित समतल और उपत्यका भूमि। यह समुद्रसैकतज पलिमय प्रान्तरसे परिपूर्ण है। २ उक्त समतलक्षेत्रोपरि आग्नेय गिरिजात शैलमय भूभाग और ३ टाइवर नदीके दक्षिणी किनारेके जनिकुलान और भाटिकन पर्वतमालाके मध्यवर्त्ती सानुनय समतल भूखण्ड।

प्राचीनतम कालमें यह स्थान समुद्रगर्भमें था। अभी भी यहां उसके बहुत नमूने पाये जाते हैं। सुन्दर सोन-हरी वालुकारेणु और मृद्‌भाण्ड बनानेवाली मट्टी उसके प्रमाण और उल्लेखनीय वस्तु हैं।

उपरोक्त तीन तरहके आग्नेयस्तर (Volcanic deposits) और पलिमय भूमि (Alluvial deposits) के सिवा आवेन्ताइन और पिञ्चिय शैलमालामें एक तरहके चूनेके पत्थरका स्तर दिखाई देता है।

पालेटाइन् शैलके समीपके जिन देशोंमें अग्निमय रक्त-वर्ण भस्मराशि गिरि थी, सम्भवतः एक वनमाला पर गिरी होगी। कारण उस दग्ध भस्मराशिके प्रदाहसे विमर्दित और दग्ध हो कर वृक्षकी लकड़ियां कोयलेमें परिणत हो गई हैं। इस तरहके बहुतेरे नमूने दिखाई देते हैं। इन सब तूफा पर्वतके स्थान स्थानमें इस तरहके पत्थर

कोयलेका स्तर दिखाई देता है। कहीं कहीं कोयलेके रूपमें परिणत दग्ध वृक्ष-साखादि भी अवयवके साथ सुरक्षित देखे जाते हैं। रोमुलासके प्रसिद्ध रोमकी चहार दीवारी इस तरहके प्रस्तर (Conglomerate of tufa and charred wood) गठित। इसकी "स्कालि काकि" (Scalœ caci) विभागके वृक्षावयवके पूर्ण निदर्शन विद्यमान हैं। एक समयमें जो उपत्यकावली जलाभूमिपूर्ण और दुर्गम था (Dionys, ii 50, Ov. Fast. vi. 401), पिछले समय वही जलराशिपरिशून्य सुरम्य प्रान्तरमें पर्य्यवसित हुई थी। प्राचीन रोमराज्यके स्थापत्यविद्या (कारीगरी)का श्रेष्ठतम निदानभूत भूगर्भस्थ जलप्रणालीके (Cloacae) द्वारा इन सब दूषित जलराशिको निकाल कर उस स्थानको कृषिक्षेत्र और उद्यान तथा उपवन आदिके लिये उपयोगी बनाया गया है। (Varro Ling. Lat, IV. 149)। एक समयमें चुड़ावलम्बी जो शैलशिखर ग्रामादिसे समाच्छादित थे और प्रत्येक पर्वत-शिखरके अधिवासियोंने ग्रामकी रक्षाके लिये ऊंचे पर्वत पर एक ग्राम्यदुर्ग (Village forts) बनाया था, उन्होंने उस समयके शत्रुओंके आक्रमणसे अपनेको बचानेके लिये उस पर्वतके निम्न भागको दुरारोह और दुर्गम बनानेकी चेष्टा भी की थी। एक सरकारके शासनाधीन होनेकी वजह उन सब पार्वत्य भूमिको अलग अलग रखना उचित न जान पड़ा। श्रेणीबद्ध सुदृश्यमय अट्टालिका समृद्धिसे इस समय रोमकोंको भूषित करना ही सरकारका उद्देश्य हुआ। उनके अभीष्ट कार्य्यसाधनमें तथा कारीगरीकी पराकाष्ठा दिखलानेमें अग्रसर हुई। उसकी यह अद्भुत कीर्त्ति (Gigantic engineering works) जगत्‌के इतिहासमें एक अलौकिक घटना है।

इस समय रोमवासियोंके उत्साहसे अत्युच्च पर्वतशिखर समतल बना कर बस्तीके उपयुक्त अधित्यकामें परिणत किया गया और दुर्गम चूड़ा और पर्वतगात्र काट कर सुगम ढालुआं और सीढ़ियां बनाई गईं। मध्ययुगमें भी (Middle ages) यह कारीगरी या वास्तुविद्या समानभावसे विद्यमान थी। ई०सन्‌की १४वीं शताब्दीमें काम्पास मर्शियासकी सीमासे केपिटालाइन आर्क (Capitoline Arx) जानेके लिये क्यूलोंके अन्तर्गत सेण्टमारिया तक सुदीर्घ सोपान-श्रेणी या सीढ़ियां बनाई गई थीं।

मध्ययुगमें रोमसाम्राज्य-मण्डलके स्थापत्य-निकेतनमें जो सौभाग्यरेखा समुदित हुई थी, आज भी वह समस्रोतसे दिखाई देती है। रोम गवर्नमेण्टके सन् १८८६ ई०में किये गये "*Piano regolatore*" नामक प्रस्तावके अनुसार स्थापत्यकार्य्य धीरे धीरे सुसम्पन्न हो रहा है। मध्ययुगमें जो शैलशिखर तोड़ कर समतल अधित्यकाओंमें परिणत किया गया था और प्रणाली पथसे स्थिर जल बहा कर जो उपत्यकायें साधारणके वासयोग्य बनाई गई थी, वर्त्तमान पुर्त्तविभागकी विशद्‌व्यवस्थासे वे सभी एक सम्पूर्ण समतल प्रान्तरमें (uniform level) पर्य्यवसित करनेका आयास हुआ है। और फिर अमेरिका देशके नगरोंका ढंग पर (Chessboard plan) की तरह चौड़े चौकोन रास्ता बना कर नया रोमनगर बसाया गया।

बारंबार अग्निकाण्ड होते रहनेके कारण रोम नगरीके भस्मीभूत होते रहनेसे इसकी प्रान्तसीमानष्ट हो गई है। इससे यह ठीक करना कठिन हो गया है, कि प्राचीन रोम राजधानी किस स्थानसे किस स्थान तक थी।

वर्त्तमान रोमकी अपेक्षा प्राचीन रोममें शैत्यका आधिक्य था। उस समय रोम नगरके बीचमें और चारों ओरके स्थानोंमें मलेरिया ज्वरका उतना प्रकोप न था। किन्तु इस समय बड़े जोरोंका है। प्राचीनकालमें केवल सुप्रणालीबद्ध जल ही (Campagna) स्वास्थ्यके लिये प्रसिद्ध था। यह स्थान उस समय बस्ती अधिक रहनेसे वहांकी स्वास्थ्योन्नति नाना उपायों पर अवलम्बित थी। किन्तु यह कहा जा नहीं सकता, कि इससे ही उस समयसे आज तक ज्वर रोगका प्रादुर्भाव न था। पालेटाइन और अन्यान्य शैलशिखर पर फबिसदेवीके उद्देश्यसे स्थापित वेदियों पर और एसकुइलाइन पर्वत पर मेफाइटिसकी स्मृति और सम्मानार्थ-प्रदत्त उपवन दर्शन करनेसे स्वतः ही मनमें रोग प्राबल्यका उद्बोधन कर देता है। ईस्वीसन्‌के ४थी शताब्दीसे ही रोमकी जनसंख्या क्रमसे बढ़ने लगी। उससे पहले

यहांकी भूमिके अस्वास्थ्यकर होनेका ही अनुमान होता है। (Monografia di Rome vol iii, 1878.) पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त शताब्दीमें रोम नगरमें प्रायः २५ लाख मनुष्योंकी वसती थी। उस महासमृद्धशाली रोम नगरीने भी उस समयके उपयोगी सौधमालासे विभूषित हो समग्र सभ्य-जगत्के सामने रोम साम्राज्यके कीर्त्तिगौरवका विकाश किया था।

उस समयके रोम नगरमें Tufa, Lapis Albanus, Lapis Gabinus, Silex, Lapis Tiburiinus, Pulvis Puteolames (Pazzolana) प्रभृति पत्थरकी अट्टालिकायें बनी थीं। विट्रूविवास, प्लिनो आदि लेखकोंने अपने अपने ग्रन्थोंमें इन सब पत्थरों तथा उसकी जोड़ाइयोंके मसलोंका उल्लेख किया है।

सूर्यपक्क और पजावेकी पकायी ईंटोंका उस समय यथेष्ट व्यवहार था। फिर किसी समयमें प्राचीन रोमकी कोई प्रसिद्ध अट्टालिका या चहारदीवारी ईंटोंकी बनी न थी। केवल चहारदीवारी, जोड़ाई तथा नीवों आदिमें कङ्करीट (Concrete) किया जाता था। नीव मजबूत करनेके लिये ईंटका टुकड़ा पत्थर और सिमेण्टका अधिक व्यवहार होता था। रोमकोंने सिमेण्ट तैयार करनेमें विशेष पारदर्शिता प्राप्त की थी।

ईसाके १०० वर्ष पहले सबसे पहले रोम नगरमें मरमर पत्थरका प्रचलन हुआ। विख्यात वाग्मी क्रेससने यूनानी भोगविलासके रसास्वादनमें उत्सुक हो कर ९२ वर्ष ईसासे पूर्व अपने पालेटाइन शैलके महलमें हाइमेसियाना मर्मरका स्तम्भ तैयार किया था। इसके कुछ समय बाद अधीश्वर अगष्टसके शासनकालमें मर्मर पत्थरका आदर सब जगह फैल गया। और तो क्या, साधारण तथा राजघरानोंमें उसी चिकने मरमरका ही व्यवहार होने लगा।

स्तम्भादि बनानेमें वहां सदा मरमरका ही अधिक प्रचलन था। यह पत्थर रंगके अनुसार स्थान विशेषमें अलग अलग नामोंसे परिचित था। किन्तु देश या स्थानके नामानुसार यह चार भागोंमें विभक्त था। लूणा नदीके किनारेका उत्पन्न Marmor Lunense,—डोगना डी टेरार करिन्थियनस्तम्भ इसी पत्थरसे बना है। २ एथेन्सके निकटके हाइमेटास शैलका तय्यार किया Marmor Hymettium, भिङ्कोलिका S Pietro स्तम्भ और S. Maria Maggiore मन्दिरके भीतर ४२ स्तम्भ इस पत्थरके खुदे हुए हैं। इसका रंग धूसर और इसमें नील रंगकी पतली पतली रेखायें हैं। लूणाके मरमर पत्थरकी अपेक्षा इसका दाना बहुत मोटा है। ३ एथेन्स नगरके निकटके पेण्टेलिकास पर्वतका Marmor pentelicum,—इसका दाना बारीक और सफेद रंगका है। भेटिकानके कुमार अगष्टसकी मूर्त्ति इस पत्थरसे ही काटी गई। भास्करकी देवमूर्त्ति या मनुष्यमूर्त्ति तय्यार करनेके लिये इस देशी मरमरका ही आदर था। ४ पेरोस द्वीपका सुन्दर Marmoparium पत्थर इसका गठन Crystal पत्थरकी तरह है।

विभिन्न श्रेणीके पत्थरोंको एकत्र जोड़नेमें रोमक कारीगर जिस मसाले और सिमेण्टका व्यवहार करते थे, उस पर विचार करनेसे विस्मित होना पड़ता है। चहारदीवारी या गृहकी नीवके किसी स्थानमें जब गुरुभारकी आवश्यकता होती थीं, तब उस स्थानमें उसीको अनुरूप गुरुत्वका पत्थर बैठाया जाता था। पूर्वकथित कोलोसियाम प्रासादमें दबावकी आवश्यकता होनेके कारण जोड़ाईके कौशलमें इस तरहकी अनेक जटिलतायें दिखाई देती हैं। सिवा इसके उस समयके ईंटोंको जुड़ाईकी पराकाष्ठा भी दिखाई दी थी। २७ वर्ष ईसाके पहले पान्थिओन प्रासादकी नीवमें या दीवार विशेषमें मरमर लगानेके लिये त्रिकोणाकार ईंटकी गथनी या जोड़ाई हुई थी। सेभरासके समयमें और उसके बादके समयमें फ्लावीय युगापेक्षा छोटी ईंटोंका व्यवहार हुआ था। इन छोटे ईंटोंकी जुड़ाई मसालाके गुणसे ऐसी मजबूती हुई थी, कि आज भी उसके नमूने प्रत्नतत्त्वविदोंके चित्तको कर्षण करनेमें समर्थ हुई है। ईंटोंकी बनी कीर्त्तियोंकी एक फिहरिस्त नीचे दी जाती है—

नाम	तारीखें		ईंटका परिमाण।
जुलियस सीजरका रोष्ट्रा	४४	ईसासे पूर्व	१॥ फुट
एग्रिप्पार पान्थिओन	२७	"	१॥ "
टाइबेरियासके प्रिटोरीय	२३	"	१-१॥ "

नीरोकी जलप्रणाली	६२ ईसासे पूर्व	१-२।	इञ्च
टाइटासका स्नानागार	८० „	१॥	„
डोमिसियोनका प्रासाद	६० „	१॥	„
हड्रियानकृत भिनास और			
रोमका मन्दिर	१२५ „	१॥	„
सेभेरसका प्रासाद	२०० „	१	„
औरेलीय चहरदीवारी	१७१ „	१। १॥।	„

मसाला और सिमेण्टसे मरमर पत्थरकी जोड़ाई सिवा रोमक अन्यान्य जोड़ाई पर भी मरमरकी पत्ती विछाना या बैठना (Marble lining) जानते थे। प्राचीन Concord मन्दिरके भीतरी तूफाकी बनाई भीतरी भित्तिको रङ्गविरङ्गके मरमरों द्वारा सुसज्जित करनेके लिये वे नाना द्रव्योंको मिला कर पलस्तर तय्यार कर दीवारमें लगाते थे। Concrete cement backing लाभा, सुरखी, मरमरकी धुलि, तूफाखण्ड और ट्राभाटाइन प्रभृति द्रव्योंको मिला कर (अर्थात् कारीगरके घरमें जो कुछ रहता था, वह एकत्र कर) यह तैयार किया जाता था। कभी कभी रोमकगृहकी भीत अथवा चहारदीवारी इस मिले हुए द्रव्योंसे परिमाणानुसार ढाल लेते थे। इसके वाद इस पलस्तर पर मरमरकी पत्तियां बैठा कर अङ्कुड़ीयुक्त धातवबंधनी Clumpes of metal, hooked at the end) द्वारा दीवारमें गाढ़ देते थे।

रोमराजधानीसे विभिन्न प्रदेशोंमें गमनागमनकी सुविधाके लिये प्राचीन रोमक समाजने सब तरहके कई चौड़े पथ तैयार कराये थे। इन सब रास्तेमें जिन जिन स्थानोंको रोमकी प्रसिद्ध चहारदीवारी पार कर गई, उन स्थानोंमें एक एक दरवाजा बना था।

ऊपरमें जिस रोमके सीमान्त प्राचीर या चहारदीवारीका उल्लेख किया गया है, उनमें रोमके प्रधान ऐतिहासिक या यों कहिये कि रोमके इतिहासके उत्पादक रोमूलासके कथित दीवारीका (Wall of Romulus) नमूना ही सर्वापेक्षा प्राचीन है। इसके वाद रोमके राजा सर्वियास टालियासका सुवृहत् और सुदृढ़ प्राचीर (wall of Servius Tullius) उल्लेखयोग्य है। इस अतीत कृतिका ध्वंसावशेष-निदर्शन अब पृथ्वीसे निकला है। इस पर साधारणकी दृष्टि आकर्षित हुई है। इसके वाद २७२-७६ ई०में सुविख्यात् औरलीय और प्रोवोस प्राचीर (Wall of Aurehian and Probus) बना। इसके वाद ८५० ई०में पोप लिओ दी फोर्थ नेटाइवर नदीके पश्चिम पारमें एक चहारदीवारी निर्माण करायी। इसके वाद १५६० से १६४० ई०के बीच तक नदीके पश्चिम किनारेके भाटिकानास और जेनिकिओलास पर्वतको घेर कर रोम-अधीश्वरने एक सुदृढ़ और सुवृहत् चहारदीवारी निर्म्माण करा कर नगरका पश्चिम भाग सुरक्षित किया था।

कारीगरी (स्थापत्यविद्या) के प्रभाव-विस्तारके साथ रोमकोंने शिल्पविद्याकी भी यथेष्ट उन्नति की थी। रोमकप्रजातन्त्र और राजतन्त्रके आधिपत्यकालमें रोम नगरमें जो सब अद्भुत कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित हुए थे, उनके भग्नावशिष्ट निदर्शन (नमूने) आज भी सुरक्षित रह कर प्राचीन शिल्पका गौरव बतला रहे हैं। इसके सिवा मट्टीके भीतरसे भी प्रजा और राजतन्त्रके उक्त युगोंसे पूर्व समयके भी बहुतेरे नमूने पाये गये हैं। इन सब द्रव्योंके प्राचीनत्व निरूपणका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिला है।

प्राचीन युगकी कीर्त्ति और स्मृतिचिह्नोंका विशेष उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। क्योंकि उनके कोई धारावाहिक इतिहासके उद्धारकी गुञ्जाइश नहीं।

पेलेटाइन पर्वतके नमूने।

सबसे पहले पैलेटाइन शैलके रोमा कोयाड्रटा नामक स्थानके "रोमूलास प्राचीर" उल्लेखनीय है। चहारदीवारीसे घिरा इस सुविस्तृत भूखण्डमें क्यूरी मेटरिस, सेशेलाम लाराम, फोरम रोमानाम, नगरद्वार, जुपिटरका मन्दिर, सर्कसमाक्सिमास आदि विद्यमान हैं।

केपिटोलाइन शैलोपरिस्थित प्राचीन कीर्त्तियां।

1 *Temple of Jupiter Capitolianus*, 2 Tabularium, 3 Forum Julla, 4 Forum of Augustus, 5 Forum *Pacis*, 6 Forum Nerva, 7 Form of Trajan. 8 Trajan's column, 9 Temple of Trajan, 10 Temple of Fortuna Virlis, 11 *Porticus* Octaviae, 12 Temple of Neptune, 13 Temple of Venus and Rome. इन मन्दिरोंके निकट और भी कितने ही मन्दिर

हैं, इनमें सबोंमें भिन्न भिन्न मूर्त्तियां प्रतिष्ठित की गई है। मिनार्भा मेडिकाके मन्दिरका गठन देख कर यही मनमें आता है, कि वह किसी समयमें किसी पुराने महलका स्नानागार होगा। सिवा इसके सल्लाष्टर वास भवन, सम्राट् टाइवेरियस-कृत सेनानिवास या छावनी (Praetorian camp), २७ ईसासे पूर्व अग्रिप्पा विनिर्मित सुप्रसिद्ध 'Pantheon' प्रसाद या देवमन्दिर और उसके निकटके बड़ी दालान (Thermae of Agrippa) और Firemen's barrack, Goldens House of Nero और जुलियस सीजर द्वारा प्रतिष्ठित Septa Julia आदि और भी वहुतेरी अट्टालिकायें नमूनेके रूपमें पाई गई है।

रोमके पुराने क्रीड़ामण्डप और रङ्गालयोंमें सर्कस, मक्सिमस, सर्कस फ्लमिनियस, केलिओलाका सर्कस आदि उल्लेख किया जा सकता है। लिभिने १७६ ईसासे पूर्व एम० ए० म्रिलियस लेपिडासके रङ्गालयका उल्लेख किया है। ५६ ५२ ईसासे पूर्व पम्पीने पत्थरके एक रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठा की थी। रङ्गालय देखो।

खृष्टान-सम्प्रदायके अभ्युदयसे इस्वीसन् ४थीसे १२वीं शताब्दीके बीच नाना स्थानोंमें ईसाई-मन्दिर स्थापित हुए थे। देशी शिल्पकी पराकाष्ठास्वरूप सम्राट् निरोके राज्यकालमें प्लोटियास लाटरनासकृत लोटोरन प्रासाद बना। सम्राट् कनस्तान्ताइनके राज्यकालमें भाटिकन प्रासादगृहका पतन हुआ था। पीछे आनुमानिक १२०० ई०में पोप इनोसेण्ट और पीछे १२७७ १२८० ई०में ३रे निकोलसने वहुत यत्नके साथ इसके आकारको वदल दिया था। कुइरिनल प्रासाद, यह इटलीके राजा इमानुएलके राजभवनके रूपमें गृहीत हुआ है।

फ्लोरेण्टाइन युग।

सन् १४५०-१५५० ई० तक रोमको फ्लोरेण्टाइन युग कहा जाता है। इस समय मिनो दी फिलोले या Mino di giovanni Bramante, Baldassare Peruzzi आदि प्रसिद्ध कारीगरोंका आविर्भाव हुआ था। इनके जीवनकालमें रोमीय शिल्पकलाविद्याने शीर्षस्थान अधिकार किया था। इसके वाद भिगनोला (१५०७-१५७३), कार्लोमडाना (१५५६ १६३६), वार्निनी (१५६८-१६८०), कार्लोफण्टाना (१६३४-१७१४ ई०) आदि कारीगरोंकी कारीगरी विद्याके उत्कर्ष साधनमें अग्रसर होने पर भी उसको रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। उस समय रोमवासी स्थापत्य-सौन्दर्य्यको भूल कर माइकेल आञ्जीलोके चित्रनैपुण्य पर मोहित हो रहे हैं। इसके वाद सुदक्ष राफेल, कनिष्ठ आण्टानो या दा सङ्गालोजक सान्सोभिनो आदि चित्रकारगण (artist) अपने अपने मनके अनुसार कल्पनाचित्र प्रासाद निर्माण करनेमें प्राचीन स्थापत्य शिल्पका अवसाद हुआ था।

वर्त्तमान युग।

फ्लोरेण्टाइन युगके अन्तमें धीरे धीरे कई कारीगरोंके अभ्युदय होने पर भी चित्रविद्याके प्राधान्य और उत्कर्षताने रोमीय स्थूलशिल्पके वदले सूक्ष्म कलाविद्याका आश्रय ग्रहण किया। सङ्गीतशास्त्र और चित्रविद्याका यथेष्ट आदर वढ़ने लगा।

ई०सन्‌की १७वीं और १८वीं शताब्दीमें रोमकोंके पसन्द करनेकी शक्तिका लोप हो गया। इस समय Cosmati या Renaissance युगका शिल्पचातुर्य्य आज कलकी अट्टालिकाओंको परिशोभित नहीं कर सकता है। सामान्य रूपसे अट्टालिकाओंकी गंथाई होने पर भी वासिलिकाओंके सरल गाम्भीर्य्यकी रक्षा नहीं हुई है। १९वीं शताब्दी इसमें कितने ही परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। सन् १८७० ई०में रोम राजधानीके रूपमें पुनः व्यवहृत होने पर राजकर्मचारी फिर कारीगरी विद्याकी उन्नतिमें लगे। कोसोपरि स्थापित Cassa di Risparmio नामक प्रासाद और टाइवर नदीके किनारेकी कई अट्टालिकायें Strozzi और फ्लोरेण्टाइन प्रासादके ढङ्ग पर वनी हैं। पियाज्जा निकोसियाकी एक अट्टालिका, ब्रामेण्टर "पालाज्जो गिरौद" प्रसादके और ब्रिष्टलहोटेल, भिनिसके एक सुन्दर प्रासादके ढङ्ग पर निर्मित हुए थे। सिवा इसके राजपुरुषोंके यत्नसे S. Paolo fuori le Mura के वसलिका आदि प्राचीन कीर्त्तियोंकी मरम्मत हुई थी। इस समय वहांका म्युजियम और चित्रमन्दिर (Galleries) देखनेकी चीज है।

कानून और साहित्य।

रोमकोंने सभ्यतामार्गमें अग्रसर हो कर सभ्यजातिके

गौरवजनक कई कानूनोंका प्रचलन किया। वही इतिहासमें "Roman Law" के नामसे परिचित है। अगष्टस केन्द्रभूत राजनीतिने यूरोपीय सभ्यजगत्‌को प्रकाशित किया था। कमिसियाने ट्रिव्यून मजिष्ट्रेसी, प्रिटर, कुइष्टर आदि राजव्यवस्थाके अनुसार राज्यशासन किया था। वही रोमीय 'जुरीसप्रुडेन्स' आज भी संस्कृतरूपमें समूचे यूरोपीय सभ्यजातियोंकी शासनपद्धतिमें दिखाई देता है।

राजविधि या कानून बनानेमें रोमक साहित्यका (Roman Literature) अभ्युदय हुआ। ईसासे २४०से ८० वर्ष पूर्व तक लिभियस आन्द्रोनिकस, निभियस, प्लोटास, इन्नियस, पोसियस, केटो, टेरेन्स, लुसियास आदि आविर्भूत हुए थे। द्वितीय युगमें अर्थात् ८०से ४२ वर्ष ईसासे पूर्वके बीच सिसिरो, सोजर, हरोर्टेन्सियस और सलाष्टलुकेसियस और काटुलास आदि प्रसिद्ध वाग्मियोंने जन्मग्रहण कर रोमकसाहित्यकी उन्नति की थी। इसके बाद अगष्टानके युगमें (४२ वर्ष ईसासे पूर्वसे सन् १७ ई० तक) भार्जिल, होरेश, टाइबुलास, प्रोपासियस, ओभिड् आदि सुकवि तथा लिभी ऐतिहासिक प्रादुर्भूत हुए थे। इसके बाद सन १७से १३० ई०के भीतर टोसिभास, जुभिनल, दोनों सेनेटका लुकान, कुइण्टिलियस, मार्शाल, भल्लेइयस, भालेरियस माक्सिमस, पेट्रोनियस फ्रासिया, भेलोरियस, फ्लाकस, प्लिनी आदि बहुतेरे ऐतिहासिक, पदार्थविद् कवि, साहित्य-लेखकोंने जन्मग्रहण किया था।

ट्राजान और हाड्रियानके राज्यान्तमें रोमक साहित्यका भी उसी तरहसे अवसान हुआ। जुभिनलकी मृत्युके बाद ई०सनकी २री शताब्दीमें सुइटेनियस अलास गेलियस; ४थी और ५वीं शताब्दीमें डोनेटास, सार्वियस और मार्केवियसने साहित्य भाण्डारको अलंकृत किया था।

रोमहरण (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

रोमहर्ष (सं० पु०) रोम्णां हर्षः। रोमाञ्च, रोंगटे खड़े होना।

रोमहर्षण (सं० क्ली०) रोम्णां हर्षणं। १ रोमाञ्च, रोओंका खड़ा होना, जो अत्यन्तआनन्दके सहसा अनुभवसे अथवा भयसे होता है। रोम्णां हर्षणं यस्मात्। (त्रि०) २ रोमाञ्चकर, जिससे रोंगटे खड़े हों। (पु०) ३ वेदव्यासका शिष्य, सूत, पौराणिक। (कूर्मपु० १.अ०) ४ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

रोमहर्षित (सं० त्रि०) रोमहर्ष जातार्थे इतच्। सञ्जातपुलक, रोमाञ्चित, पुलकित।

रोमाख्य (सं० क्ली०) रोम इति आख्या यस्य। शाम्भर लवण, शाकंभरी नमक।

रोमाञ्च (सं० पु०) रोम्णां अञ्चः उद्गमः। १ रोमहर्षण, आनन्दसे रोओंका उभर आना। २ भयसे रोंगटे खड़े होना।

रोमाञ्चकी (सं० पु०) नागभेद।

रोमाञ्चिका (सं० स्त्री०) रोमाञ्च उत्पाद्यत्वेनास्त्यस्या इति रोमाञ्च-ठन्। रुदन्ती वृक्ष, संजीवनीका पेड़।

रोमाञ्चित (सं० त्रि०) रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्येति, रोमाञ्च (तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६) इति इतच्। १ जातपुलक, हृष्टरोमा। २ भयसे जिसके रोंगटे खड़े हो गये हों।

रोमाग्र (सं० पु०) रोएंकी नोक।

रोमान्त (सं० पु०) हाथका उपविभाग।

रोमान्तिका मसूरिका (सं० स्त्री०) चेचककी तरहका एक रोग। इसमें रोमकूपके समान महीन महीन दाने शरीर भरमें निकलते हैं और कई दिनों तक रहते हैं। खांसी, ज्वर और अरुचि भी रहती है। इस रोगको छोटी माता भी कहते हैं।

रोमान्तीज्वर (सं० पु०) ज्वरविशेष, हामज्वर। इस ज्वरमें हरएक रोएंके छेदसे हींगा या छोटी माता निकलती है। इसमें कफ और पित्तकी अधिकता तथा कास और अरुचि होती है। (माधवनि०)।

रोमाली (सं० स्त्री०) रोम्णां आली श्रेणिर्यत्र। १ वयःसन्धि, लड़कपन और जवानीके बीचका काल। २ रोमावली, रोओंकी पंक्ति।

रोमालु (सं० पु०) रोमविशिष्ट, वह जिसे बाल हों।

रोमालुविटपी (सं० पु०) रोमालुरिव विटपी वृक्षः। कोंकणदेशप्रसिद्ध कुम्भीवृक्ष। (राजनि०)

रोमावलि (सं० स्त्री०) रोमावली देखो।

रोमावली (सं० स्त्री०) रोम्णां आवली। रोओंकी पंक्ति

जो पेटके बीचो बीच नाभिसे ऊपरकी ओर गई होती है। पर्याय—रोमलता, रोमाली, लोमराजि। यह रोमावली जवानीके शुरूमें होती है। (रसमञ्जरी)

रोमाश्रयफला (सं० स्त्री०) रोमाश्रय फलमस्याः। झिंझिरिष्टाक्षुप, झिंझिरीटा नामका पौधा।

रोमोद्गति (सं० स्त्री०) रोम्णां उद्गतिः उद्गमः। रोमाञ्च, पुलक।

रोमोद्गम (सं० पु०) रोम्नामुद्गमः। रोमाञ्च, रोंयोंका हर्ष या भयसे खड़ा होना।

रोमोद्भेद (सं० पु०) रोम्नामुद्भेदः। रोमाञ्च, रोमहर्ष।

रोम्बिलुवेङ्कटबुध—तर्कभाषाभावके प्रणेता।

रोयाँ (हिं० पु०) बाल जो सब दूध पिलाने वाले प्राणियोंके शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं, लोम।

रोर (सं० स्त्री०) १ बहुत-से लोगोंके मुंहसे निकल कर उठी हुई ऊंची सम्मिलित ध्वनि, कलकल। २ घमासान, हलचल। ३ बहुत-से लोगोंके रोने चिल्लानेका शब्द। (वि०) ३ प्रचण्ड, तेज। ४ उपद्रवी, अत्याचारी।

रोरवण (सं० क्ली०) अतिशय शब्द, घोर शब्द।

रोरा (हिं० पु०) १ चूर गांजा। २ रोर देखो।

रोरी (हिं० स्त्री०) १ हलदी चूनेसे बनी हुई लाल रंगकी बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। २ चहल पहल, धूम। (वि०) ३ सुन्दर, रुचिर। (पु०) ४ लहसुनिया नाग, एक प्रकारका रत्न।

रोरुक (सं० क्ली०) जनपदभेद।

रोरुदा (सं० स्त्री०) रुद्-यङ् रोरुद्-अ-टाप्। अत्यन्त रुदन और विलाप।

रोल (सं० पु०) १ हरा अदरक। २ तालीशपत्र, तेजपत्ता।

रोल (हिं० पु०) १ पानीका तोड़, बहाव। २ रुखानीकी तरहका एक औजार जिससे बरतनकी नक्काशीकी जमीन साफ की जाती है। (स्त्री०) ३ रोर कोलाहल। ४ शब्द, ध्वनि।

रोलदेव (सं० पु०) एक चित्रकर। (कथासरित्सा० ५०।३७)

रोलम्ब (सं० पु०) रौतीति रु-विच्, रोः कुजन् सन् लम्बति स्थानात् स्थानान्तरं गच्छतीति रो-लम्ब-अच्। भ्रमर, भौंरा। (त्रिका०)

रोलर (अं० पु०) १ ढुलकनेवाली वस्तु, बेलन। २ छापेखानेमें स्याही देनेका बेलन। यह सरेस और गुड़ मिला कर बनता है। इसी पर स्याही लगा कर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम (अं० पु०) बेलनकी कमानी। इसमें रोलर लगा कर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहेका एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठकी दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़ कर सिल पर स्याही पीसते और अक्षरों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड (अं० पु०) सरेसके बेलन ढालनेका सांचा। यह दो प्रकारका होता है,—(१) चोंगा, जिसमें बेलन ठेल कर निकाला जाता है। बेलन डालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंड़ीका तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्डमें सरेस न पकड़ ले। (२) दो-फांका जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देनेसे रोलर सहजमें निकल आता है।

रोला (सं० पु०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ११+१३के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं। किसी किसीका मत है, कि इसके अन्तमें दो गुरु अवश्य आने चाहिए। पर इसे सब कोई नहीं मानते हैं।

रोला (हिं० पु०) १ शोरगुल, कोलाहल। २ घमासान युद्ध। ३ जूठे बरतन मांजनेका काम, चौका बरतन करनेका काम।

रोली (हिं० स्त्री०) चूने हल्दीसे बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। श्री, इसके बनानेका तरीका—लोहेकी कड़ाहीमें चूनेका पानी भर कर उसमें हलदी, खटाई और सोना गलानेका सुहागा डाल कर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखा कर छान लेते हैं।

रोवना (हिं० क्रि०) १ रोना देखो। (वि०) २ बहुत जल्दी रोनेवाला, बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। ३ हंसी या खेलमें भी बुरा मान जानेवाला, चिढ़नेवाला।

रोवासा (हिं० वि०) जो रोने पर तैयार हो, जो रो देना चाहता हो।

रोशंसा (सं० स्त्री०) इच्छा।

रोशन (फा० वि०) १ जलता हुआ, प्रदीप्त। २ प्रकाश-

मान, चमकदार। ३ प्रकट, ज़ाहिर। ४ प्रसिद्ध, मशहूर।

रोशन आरा (बेगम)—मुगलसम्राट् शाहजहान्‌की छोटी लड़की। १६६६ ई०में दिल्लीराजधानीमें ही उनकी मृत्यु हुई। शाहजहानाबादके स्वरचित रोशन आरा उद्यानमें उनकी समाधि मौजूद है।

रोशन उद्दौला रुस्तम जङ्ग—सम्राट् महम्मद शाहका अनुगृहीत एक उमराव। इनका प्रकृत नाम था जाफर खां। इन्होंने १७२२ ई०में दिल्ली राजधानीके कोतवाली चबूतरेके समीप सुनहरी मसजिद बनवाई थी। इसके बाद १७२५ ई०में इन्होंने मुसलमानोंके पढ़नेके लिये दिल्लीके काज़ीपाड़ाके पास एक और मसजिद बनाई जो रोशन उद्दौला मसजिद नामसे मशहूर और सोनेके पातसे मंडित थी। इस मखतबकी छत पर खड़े हो कर पारसपति नादिरशाहने दिल्लीवासियोंकी हत्या करनेका आदेश दिया था। १७३२ ई०में रोशन उद्दौला इस लोकसे चल बसे।

रोशन उद्दौला (नवाब)—हैदराबाद निज़ामके भाई। ये सुशिक्षित और सदाचारी थे। १८७० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

रोशनचौकी (फा० स्त्री०) फूंक कर बजानेका एक बाजा, शहनाईका बाजा। इसे प्रायः पांच आदमी मिल कर बजाते हैं। एक सिर्फ स्वर भरता है, दो उसके द्वारा राग रागिणीका गान करते हैं, एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और झांझके द्वारा ताल देता है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बाबुओंके द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है इसीसे चौकी कहलाता है।

रोशनदान (फा० पु०) प्रकाश आनेका छिद्र, गवाक्ष, मोखा।

रोशनाई (फा० स्त्री०) १ अक्षर लिखनेकी स्याही, काली। २ प्रकाश, रोशनी।

रोशनी (फा० स्त्री०) १ उजाला, प्रकाश। २ दीपमालाका प्रकाश, दीपकोंकी पंक्तिका उजाला। ३ ज्ञानका प्रकाश, शिक्षाका प्रकाश। ४ दीपक, चिराग।

रोशेनाबाद—त्रिपुरा जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। ५३ परगने ले कर यह विभाग गठित हुआ है। भू-परिमाण ५८६ वर्गमील है। पहाड़ी त्रिपुराके राजा इसके अधिकारी हैं। वृटिश-सरकारको सालाना १५३६१०) राजस्व देना होता है।

रोशेनिया—मुसलमानधर्म-सम्प्रदायभेद। बयाजिद अनसारी नामक एक मुसलमान-साधु इसका प्रवर्त्तक है। वह पीर-इ रोशन नामसे परिचित था।

बयाजिदने कन्धार सीमान्तवर्त्ती कानिगुरम जिलेके बुर्दवंशीय अफगान जातिके मध्य अबदुल्ला नामक एक विद्वान् और स्वधर्मनिरत मुसलमानके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया। पिताके यत्नसे वह उपयुक्त पा कर गर्वित हो गया। पीछे वह घोड़ेका व्यवसाय करनेके लिये समरकन्द राज्यमें गया। वहांसे भारतवर्ष लौटते समय कालिञ्जरमें मुल्ला सुलेमानके साथ उसकी भेंट हुई। तभीसे उसका धर्मविश्वास बदलने लगा। पिताने पुत्रके इस अधर्माचरणसे क्रुद्ध हो उसके शरीरमें अस्त्राघात किया और उसे इस्लाम धर्मका आदेश पालनके लिये कबूल कराया। किन्तु इससे भी पुत्रका विकृत चित्त परिवर्त्तित न हुआ। क्षतस्थान आरोग्य होते ही वह जन्मभूमिका परित्याग कर निनगहर नामक स्थानमें गया और वहां अपना धर्ममत फैलानेकी कोशिश करने लगा। वह हुमायूं बादशाहके पुत्र मिर्ज़ा महम्मद हकीमका समसामयिक था। मुगलशाह अकबरके समय ९४९ हिजरीमें उसने प्रधानता लाभ कर अपना धर्ममत स्थापन किया। खान् दौराननें इसके पहले काबुलमें मिर्ज़ा महम्मद हकीमकी सभामें मियां बयाजिदके साथ तर्क-वितर्कमें उस समयके मुसलमान साधुओंको परास्त होते देखा था।

प्रवाद है, कि बयाजिदने पाठशालामें वर्णविन्यास भी नहीं सीखा था। किन्तु पूर्वजन्मके सुकृतिगुणसे दर्शनादिका मीमांसातत्त्व उसे कण्ठाग्र था। वह कुरानके प्रसिद्ध वाक्योंकी अत्यन्त सरल व्याख्या कर लोगोंको समझा देता था। उसकी हर एक बात उपदेशपूर्ण होती थी। वह 'आत्मवाद' का प्रचार कर गया है। उसके मतसे जिस हिन्दूने आत्माका स्वरूप समझ लिया है वह मुसलमानसे भी पूज्य है। जिस व्यक्तिके आत्मज्ञान नहीं हुआ है तथा जो आत्माका अविनश्वरत्व

विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है। वैसे अहङ्कारविमूढ़ व्यक्तिको ऐशिक ऐश्वर्यमें कोई अधिकार नहीं है। उस अज्ञ और जीवन्मृत व्यक्तिके वंशधर भी जब मृतवत् आचरण करेंगे, तब जीवित और ज्ञानी ही उस सम्पत्ति के प्रकृत उत्तराधिकारी समझे जायेंगे इस संस्कारके वशवर्त्ती हो कर उसने बहुतसे मूर्ख लोगोंका काम तमाम करनेका हुकुम दे दिया था। यहां तक कि उसने तथा उसके चार पुत्रोंने दस्युवृत्ति द्वारा अमीर उमरा आदि धनाढ्य मुसलमानोंका यथासर्वस्व लूट लिया था। लूटके मालका पांचवां हिस्सा वह एक जगह जमा रखता था और जरूरत पड़ने पर उसे अपने विश्वस्त अनुचरोंके बीच बांट देता था।

दस्युवृत्तिमें लिप्त रह कर भी वयाजिद वा उसके चार पुत्र कभी भी धर्मपथसे भ्रष्ट नहीं हुआ था। वे सब-के सब संयमी और जितेन्द्रिय थे, कभी भी कोई कुकार्थ नहीं करते थे। वे एकेश्वरोपासनाकारीका न कभी धन लूटते और न उन्हें किसी प्रकारकी तकलीफ ही देते थे। इसलाम धर्मके क्रियाकर्ममें बड़े कट्टर थे। नित्य ५ बार नमाज पढ़ते थे। और तो क्या, एकेश्वरमें विश्वास करनेवालेके सिवा दूसरे हाथका मारा हुआ पशुमांस तक भी नहीं खाते थे। एक दिन वयाजिदने अबदुल्लासे कहा, कि पैगम्बर महम्मद वर्णित सरियात् रात्रिकी समान, तरिकात् तारकाके समान, हकिकत् चन्द्रके समान और मारिफत् सूर्य्यके समान हैं। आत्मा-को उज्ज्वल करनेके लिये मारिफत् भिन्न और दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलाम धर्मका सरियात् वा पञ्चाङ्ग साधन हर एक मुसलमानका कर्त्तव्य है। नित्य ईश्वरका नाम जपना, भजन करना तथा तसबिया और तहलील करना मुसलमानका कर्त्तव्य है।

वयाजिदके बनाये हुए कई उपदेश ग्रन्थ मिलते हैं। वे सब ग्रन्थ अरबी, पारसी, हिन्दी और पेगू (अफगानी) भाषामें हुए हैं। उसका 'मकशुद-अल मुमेनिन' ग्रन्थ अरबी भाषामें रचा गया है। उस ग्रन्थमें लिखा है, कि परम पिता परमेश्वरने मियांजी जबराईल द्वारा उसे प्रेमकी शिक्षा दी थी। उसका 'खायर-अल-रियान' नामक ग्रन्थ उपरोक्त चार भाषामें लिखा है। इसमें वयाजिदके प्रति स्वयं परमेश्वरके उपदेशकी बात है। हालनामा उन्हींके धर्ममतका इतिहास है। यह धर्ममत बहुत कुछ सुफिमतके जैसा है।

वयाजिदके इस नये धर्ममतमें विश्वास करके बहुतेरे अफगान उसके शिष्य हो गये। काबुल, कन्धार, युसुफजै आदि प्रदेशवासीने उसका मत ग्रहण कर एक शक्ति-सम्पन्न अफगान-सम्प्रदायकी सृष्टि की। वे उद्धत साम्प्रदायिकगण उस समयके समृद्ध मुगल साम्राज्यके विरुद्धाचरण करनेसे बाज न आये। सम्राट् अकबर-शाहके शासनकालसे ले कर शाहजहांकी समृद्धिके शेष तक रोशेनियोंने दिल्लीश्वरका प्रतिपक्षताचरण किया था। वयाजिदके जीते जी इस सम्प्रदायने बड़ी उन्नति की थी। उस समय उन्होंने धर्मगुरु वयाजिदको अपना अधिनायक बना कर अकबरके शान्तिमय राज्यका शान्तिभङ्ग किया था। अफगानिस्तानके अन्तर्गत भातापुरमें वयाजिदका मकबरा मौजूद है।

वयाजिदके उमार शेख, कमाल उद्दीन, नूरउद्दीन और जलाल-उद्दीन नामक चार पुत्र तथा कमाल-खातुन नामक एक कन्या थी। मियां वयाजिदकी मृत्युके बाद जलाल उद्दीन धर्मगुरु बन कर गद्दी पर बैठा। १००७ हिजरीमें गजनीके अधिकार करने पर वह अकबर द्वारा भेजे गये सेनापतिके हाथ मारा गया। उसके मरने पर उमार शेखका लड़का मियां आहादाद गद्दी पर बैठा। १०३५ हिजरीमें जहांगीरके सेनापतिने नवागढ़ दुर्गमें उसका काम तमाम किया। शिष्यमण्डली उसे आहाद वा ईश्वरका अवतार मानती थी।

बादमें आहादादका लड़का अबदुला कादिर गद्दी पर अधिरूढ़ हुआ। शाहजहांकी सभामें उसकी बड़ी खातिर थी। १०४३ हिजरीमें उसका देहान्त हुआ। लाश पेशा-वरमें दफनाई गई। इसके बाद मुगलके षड़यन्त्रसे एक एक कर वयाजिदवंशका लोप हुआ। शाहजहांके जमानेमें नूरउद्दीनके पुत्र मिर्जा दौलताबाद युद्धमें मारा गया। जलालउद्दीनके एक पुत्र करिमदादने मुगल-सेनापति सैयद खांके कौशलसे १०४८ ई०में भवलीला शेष की। दूसरा लड़का अल्लादाद खां रसीदखानी उपाधिके साथ दाक्षि-

णायकका ४ हजारी मनसबदार हुआ। १०५७ हिजरीमें उसकी मृत्यु हुई।

रोष (सं० पु०) रुष-घञ्। १ क्रोध, गुस्सा। २ लड़ाईका उमंग, जोश। ३ चिढ़, कुढ़न। ४ वैर, विरोध, द्वेष।

रोषण (सं० पु०) रोषति तच्छीलः रुष (क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च। पा ३।२।१५१) इति युच्। १ पारद, पारा। कसौटी। ३ ऊसर जमीन (त्रि०)। ४ क्रुद्ध, गुस्सा करनेवाला।

रोषणता (सं० स्त्री०) रोषणस्य भावः तल् टाप्। रोषणका भाव या धर्म, क्रोध।

रोषमय (सं० त्रि०) रागयुक्त, क्रुद्ध।

रोषाक्षेप (सं० पु०) भीतिप्रदर्शन, डर दिखाना।

रोषान्वित (सं० त्रि०) क्रुद्ध।

रोषित (सं० त्रि०) क्रुद्ध, नाराज।

रोषिन् (सं० त्रि०) रुष-इनि। रोषयुक्त, नाराज।

रोष्टृ (सं० त्रि०) रुष-तृच्। रोषयुक्त, क्रुद्ध।

रोस (सं० पु०) रोष देखो।

रोस (फा० स्त्री०) रौस देखो।

रोसनाई (फा० स्त्री०) रोशनाई देखो।

रोसनी (फा० स्त्री०) रोशनी देखो।

रोसा (हिं० पु०) रूसा नामक सुगन्धित घास।

रोह (सं० पु०) रोहतीति रुह-अच्। १ अंकुर, अँखुवा। २ कली। ३ चढ़ना, चढ़ाई। (त्रि०) रोहणीय, चढ़ने-योग्य।

रोह (हिं० पु०) नीलगाय।

रोहक (सं० पु०) रुह-ण्वुल्। १ प्रेतभेद। (त्रि०) २ चढ़नेवाला। ३ रथ, घोड़े आदि पर सवारी करनेवाला।

रोहग (सं० पु०) सिंहलद्वीपका पहाड़ जिसे अब 'आदमी की चोटी' कहते हैं, विदूराद्रि।

रोहण (सं० क्ली०) रोहत्यनेनेति रुह करणे ल्युट्। १ शुक्र, वीर्य्य। २ चढ़ना, चढ़ाई। ३ उगना, अंकुरित होना। ४ ऊपरको बढ़ना। (पु०) ५ एक राजाका नाम। ६ विदूराद्रि पर्वत, रोहण पर्वत। (राजेन्द्रकर्णपु० ५२)

रोहणद्रुम (सं० पु०) १ चन्दनवृक्ष। २ मलयागुरु। (वैद्यकनि०)

रोहणा—मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३२′ ३०″ उ० तथा देशा० ७८° २५ पू०के मध्य अवस्थित है। नगरके सामने एक छोटी नदी बहती है। उस नदीमें अक्सर बाढ़ आया करती है, इस कारण किनारेमें एक बांध खड़ा कर दिया गया है। उस वालुकामयके किनारे प्रति सप्ताह हाट लगती है। प्रतिवर्षके माघमासमें यहां एक मेला लगता है। करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले कृष्णजी सिन्दे नामक एक व्यक्तिने यहांका दुर्ग बनवाया। हैदराबाद और भोंसलेसे उन्हें यह नगर बे-लगान मिला था। शर्त्त यह रही, कि जरूरत पड़ने पर उन्हें २०० घुड़सवार सेनासे मदद देनी होगी। यहां अफीम, ईख और इलायचीकी खेती होती है।

रोहत्पर्व्वा (सं० स्त्री०) वल्लिदूर्वा, सफेद दूब।

रोहतक—पञ्जाब प्रदेशके हिसार विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° २१′ से २९° १७′ उ० तथा देशा० ७६° १३′ से ७६° ५८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७९७ वर्गमील है।

गोहाना, झाजर, शापला और रोहतक नामक चार उपविभाग ले कर यह जिला बना है। झाजर, शापला और रोहतक तहसील जहां मिली है वहां दुजाना और महराणा नामक सामन्तराज्य अवस्थित है। रोहतक नगरमें जिलेका विचार-सदर प्रतिष्ठित है।

यमुना और शतद्रु नदीकी उपत्यकाको विच्छिन्न रख कर जो विस्तृत अधित्यकाभूमि विद्यमान है उसके ठीक मध्यस्थलमें यह जिला अवस्थित है। यहांकी प्राकृतिक सौन्दर्य-शोभा वैसी नहीं जो जनसाधारणके चित्तको चुरा सके। परन्तु पहाड़ी भूमिके छोटे जंगली सूअर, हरिन, खरगोश और वनमुर्गा आदि पशु-पक्षी अधिक संख्यामें रहनेके कारण मृगया प्रिय शिकारियोंके लिये यह बड़ा ही आनन्दवर्द्धक है।

पहले यह स्थान प्राचीन हरियाना राज्यके अन्तर्भुक्त था। उस समय समृद्धिशाली महीम नगर ही इसका प्रधान वाणिज्यकेन्द्र समझा जाता था। प्रसिद्ध शाहबुद्दीन घोरीने भारतविजयकालमें इस स्थानको जीता और तहस नहस कर डाला। पीछे १२६६ ई०में इसका फिरसे संस्कार हुआ। किन्तु उसी सालसे ले कर १७१८ ई० तक इस स्थानकी किसी

ऐतिहासिक प्रसिद्धिकी बात नहीं सुनी जाती। शेषोक्त वर्षमें सम्राट् फर्रुखसियरने सारा हरियाना विभाग अपने मन्त्री रुकन उद्दौलाको प्रदान किया। पीछे रुकनने भी वह सम्पत्ति फौजदार खां नामक एक बेलुचिस्तानवासी उमरावको दे दी और १७३२ ई०में उसे फर्रुख नगरकी नवाबी मसनद पर अभिषिक्त किया। नया नवाब राजतख्त पर बैठ कर वर्त्तमान हिसार, रोहतक और गुरुगांव जिलेके कुछ अंश तथा पतियाला और झिन्द राज्यके कुछ अंशका शासन करने लगा। उसके लड़केने १७६० ई० तक बे-रोकटोक राज्यभोग किया था। पीछे दिल्ली-साम्राज्यके अधःपतनके साथ उसकी भी तकदीर फूटो निकली। आलमगीरकी हत्या और सम्राट् शाह आलमके नाममात्रके राजा होनेसे राज्यमें अराजकताका लक्षण सूचित होने लगा। दूसरे वर्ष पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्रशक्तिके अधःपतनके साथ साथ मुगलशक्तिका भी ह्रास हुआ। फर्रुख नगरके नवावने प्रतिपालककी दुरवस्थासे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझा। वह सामर्थ्यहीन हो नाममात्रके लिये मसनदकी शोभा बढ़ने लगा। इस समय सौभाग्यान्वेषी सिखसरदारोंने दस्युवृत्ति और अर्थलालसाका परित्याग कर राजपाट स्थापनकी ओर ध्यान दिया। इससे नवाब दिनों दिन कमजोर होता गया। आखिर १७६२ ई०में भरतपुरके जाटसरदार जवाहिर सिंहने उसे राज्यसे निकाल भगाया।

इसके प्रायः २० वर्ष बाद उत्तर-भारतके हरियानामें नाना प्रकारकी विशृङ्खला उपस्थित हुई। नवाब फौजदारके पुत्र कुछ समयके लिये पैतृक सम्पत्ति अधिकार कर फिरसे राज्यशासन करने लगा। अनन्तर नजफ खांने यह स्थान जीत कर अपने एक अनुचरको प्रदान किया। पीछे सरदानाकी रानो बेगम समरूका स्वामी वालटर रिनहार्डट इसके कुछ अंशोंका जागीर तौर पर भोग करने लगा। १७८४ ई०में महाराष्ट्रगण इन सब विशृङ्खलाओंसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ हुए सही, किन्तु सुसमृद्ध सिन्दे राजशक्ति सिखोंका दमन न कर सकी। सिखोंने वार वार आक्रमण कर स्थानीय अधिवासियोंको तंग कर डाला। अन्तमें सिन्देराजने हरियाना विभागका अधिकांश कैथल और झिन्दके सरदारको समर्पण कर उपद्रवसे परित्राण पाया।

इसी समय सौभाग्यान्वेषी सैनिक जार्ज टामस हरियानाका अपराद्ध हस्तगत कर स्वयं राज्यशासन करने लगा। उन्होंने झाजरके निकट जर्जगढ़ नामक स्थानमें और हिसार जिलेके हाँसीमें दो दुर्ग बना कर अपना अधिकार मजबूत कर लिया था। १८०२ ई०में फरासी सेनानायकके अधीन परिचालित महाराष्ट्रदलने टामसको राज्यसे निकाल भगाया। दूसरे वर्ष अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने शतद्रु से शिवालिक पादमूल पर्यन्त अंगरेज शासनभुक्त कर लिया।

इस समय कैथल और झिन्दके सरदार जिलेका उत्तरांश अधिकार कर बैठे थे। अंगरेजराजने झाजरके नवाबको दक्षिण, दाद्रि और बहादुरगढ़के नवाबको पश्चिम तथा दुजानाके नवाबको मध्यभाग शासन करनेके लिये दे दिया। शेषोक्त नवाब सिख और भट्टि जातिके वार वार आक्रमणसे तंग आ कर जब राज्य चलानेमें असमर्थ हुए, तब १८०१ ई०में वहां सुश्रृङ्खला स्थापनके लिये अंगरेजी सेना भेजी गई। इस समय वर्त्तमान जिलेका कुछ परगना अंगरेजोंके अधिकारभुक्त हो गया था। १८१८ ई०में कैथलराजकी मृत्युके बाद तथा १८२० ई०में झिन्दके सरदार कुछ भूभाग हस्तगत कर रोहतक जिला संगठित हुआ। उसी साल हिसार और शिर्षा विभाग रोहतकसे निकाल लिया गया और १८१४ ई०में पानीपत (वर्त्तमान कर्नाल) जिला स्वतन्त्र शासनभुक्त किया गया।

१८६२ ई० तक दिल्लीराजधानीके अंगरेज रेसिडेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेण्ट यहांका शासन करते रहे। पीछे वह युक्तप्रदेशके साधारण राजनियमके शासनाधीन किया गया। १८५७ ई०के गदरमें यह जिला अंगरेजोंके हाथसे जाता रहा। फर्रुख नगर, झाझर और बहादुरके नवाबने गुरुगाँव हिसारवासी विभिन्न मुसलमान-सम्प्रदायके साथ मिल कर यहां आधिपत्य जमाया। पीछे शिर्षा और हिसारके भट्टि-सरदारोंने उनसे मिल कर रोहतक पर आक्रमण किया और उसे लूटा। दिल्ली अंगरेजोंके हाथ आनेके बाद पंजाबी सेनादलको सहा-

यतासे अंगरेजराजभी यहां शान्तिस्थापन करनेमें समर्थ हुए थे। झाझर और वहादुरके नवाव पकड़े जा कर अंगरेजविचारसे दण्डित हुए। दिल्ली नगरमें झाझरपतिको फांसी हुई। उनके आत्मीयगण लाहोर नगरमें कैद किये गये। झिन्द, पतियाला और नाभा राजविद्रोहके समय अङ्गरेजराजने उनकी सहायता की थी, इस कारण पारितोषिक स्वरूप झाझर राजसम्पत्ति उन्हें मिली। इसके बाद रोहतक पञ्जाव गवर्मेण्टके अधीन हुआ। १८६० ई०में झाझर जिलेका कुछ अंश रोहतक जिलेमें मिलाया गया।

इस जिलेमें ११ शहर और ४६१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। हिन्दुकी संख्या सैकड़े पीछे ८५ है।

वाणिज्य व्यवसाय और कृषिकार्यकी यहां वड़ी उन्नति देखी जाती है। यहां खजाना देनेकी दो प्रथा है, भायाचारा और तप्पादारी। जो सव प्रजा खेतीवारी नहीं करती, उन पर जमींदार एक स्वतन्त्र कर लगाते हैं जिसे 'कमिनी' कहते हैं। अनावृष्टिके कारण यहां अकसर दुर्भिक्ष हुआ करता है। १८२४, १८३०, १८३२, १८३७, १८६०-६१ और १८६८-६६, १८६५, १८६६ और १६०० ई०में यहां दुर्भिक्ष पड़ा था। १६०० ई०का दुर्भिक्ष बड़ा भयङ्कर था। हजारों आदमी कराल कालके शिकार बने थे। वहुतोंने अन्नके कष्टसे चोरी डकैती करना शुरू कर दिया था। इससे भी संतुष्ट न हो कर जाटोंने वाइलीका वाजार लूट लिया था। इस समय लोगोंकी ऐसी दुर्दशा हो गई थी, कि वे एक पैसेके लिये ऊंट वेचते और एक शाम रोटीके लिये एक गाय बेच डालते थे। इस प्रकार एक एक कर जिलेकी गाय भैंस सभी नष्ट हो गई थीं। ३६ जातियोंमें ३४ जातियां लोप हो गई थी, सिर्फ दो जातियां रह गई थीं, एक कसाई और दूसरी व्यवसायी।

इस जिलेमें पांच म्युनिसपलिटियां हैं, रोहतक, वेरी, झज्जर, वहादुरगढ़ और गोहाना। विद्याशिक्षामें यह जिला पिछड़ा हुआ है। पञ्जावके २८ जिलोंमें इसका स्थान २६वां आया है। अभी जिले भरमें १० सिकेण्ड्री, ७० प्राइमरी, २ उच्च श्रेणीके और ४२ एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। इनके सिवा रोहतक शहरमें एक एङ्गलो वर्नाक्युलर हाईस्कूल, दो एङ्गलोवर्नाक्युलर मिडिल स्कूल तथा ६ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८°३८' से २६° ६' उ० तथा देशा० ७६°१३' से ७६° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६२ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखके करीब है। इसमें ५ शहर और १०२ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका प्राचीन नगर और विचारसदर। यह अक्षा० २८° ५४' उ० तथा देशा० ७६° ३५' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २० हजारके करीव है।

यह नगर बहुत पुराना है, किन्तु दुःखका विषय है, कि इसका वह प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। वर्त्तमान नगरके समीप उत्तरकी ओर खोकरा कोट नामक स्थानमें बहुतसे प्राचीनत्वके निदर्शन देखे जाते हैं। एक समय यह स्थान विशेष समृद्धिशाली था, उक्त खण्डहरसे उसका पता चलता है। कहते हैं, कि इस प्रकार ११६० ई०में दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके शासनकालमें इस सौन्दर्यभ्रष्ट नगरका फिरसे जीर्णसंस्कार हुआ था। दूसरेका कहना है, कि ई०सन्‌के ४ सदी पहले यह स्थान संस्कृत और समृद्धिसम्पन्न हुआ था। मुगल साम्राज्यके अधःपतनके समय यह स्थान भिन्न भिन्न सरदारोंके अधीन होता गया। १८२४ ई०में यह अङ्गरेजाधिकृत एक जिलारूपमें गिना जाने लगा। तभीसे यह अङ्गरेजोंके ही अधिकारमें चला आ रहा है। प्रति वर्ष अक्तूवरके महीनेमें यहां एक घोड़े का मेला लगता है। शहरमें एङ्गलोवर्नाक्युलर हाई स्कूल है।

रोहतकी—उत्तर-पश्चिम भारतवासी वनिये जातिकी एक शाखा।

रोहताङ्ग—पञ्जावप्रदेशके हिमालयशृङ्गके ऊपर एक गिरिसङ्कट। यह कनील जिलेमें अक्षा० ३२° २२' २०" उ० तथा देशा० ७७° १७' २०" पू०के मध्य अवस्थित है। यह रास्ता लाहुलके अन्तर्गत कोकसरसे कुलु विभागके पलयान तक चला गया है। इसका सर्वोच्च स्थान समुद्रकी तहसे १३ हजार फुट ऊंचा है। इसके दोनों किनारेकी पर्वतमाला १६ हजार फुट ऊंची दीवारकी तरह खड़ी है। प्रायः २० हजार फुट उच्च एक एक शृङ्ग मस्तक

उठाये खड़ा है। सुलतानपुर और काङ्गरासे जो चौड़ा रास्ता लेहवारखन्द तक गया है वह इसी रास्तेके ऊपरसे चन्द्रा और भागा नदीकी उपत्यकाको पार कर बारा लाचामें मिला है। दिसम्बर महीनेको छोड़ कर अभी सभी समय यह रास्ता जाने आने लायक रहता है।

रोहन (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसे सूहन और सूमी भी कहते हैं। यह पेड़ बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्यभारतके जंगलोंमें बहुतायतसे होता है। इसकी लकड़ी मकानोंमें लगती और मेज, कुरसी आदि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। हीरकी लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिये काले रंगकी होती है। शिशिर ऋतुमें इस पेड़के पत्ते झड़ते हैं।

रोहना (हिं० क्रि०) १ चढ़ाना, ऊपर करना। २ अपने ऊपर रखना, धारण करना। ३ सवार कराना।

रोहन्त (सं० पु०) रुह्यादिति रुह (रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि। उण् ३।१२७) इति इच्। १ वृक्षभेद, एक पेड़का नाम। २ वृक्षमात्र, पेड़।

रोहन्ती (सं० स्त्री०) रुह-झच्, षित्त्वात् ङीष्। १ लताभेद। २ लतामात्र।

रोहरी—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। कोहिस्तान ले कर इसका भूपरिमाण ५४१० वर्गमील है। इसके पश्चिम और उत्तर सिन्धु नदी, उत्तर-पूर्व और पूर्वमें वहवलपुर और जयसलमेर राज्य तथा दक्षिणमें खैरपुर जिला है। मीरपुर नगर इसका विचार-सदर है।

रेजिस्तान नामक मरुप्रदेश और शिकारका समतल प्रान्त ले कर यह विभाग संगठित है। बीच बीचमें वनमाला परिशोभित गण्डशैलश्रेणी शोभा दे रही है। एक समय सिन्धुनदी उन सब गण्डशैलके पार्श्व हो कर अरोर नगर तक विस्तृत थी। पीछे किसी प्राकृतिक परिवर्त्तनसे स्रोत गति वखर शैलकेके मध्य हो कर लौटी है। शायद सिन्धुनदोत्क्षिप्त बालुकाराशिके विकारसे ही वह शैलमाला बनी है। रेजिस्तान विभागकी रेन नदी एक समय मूलसिन्धु रूपमें बड़ी तेजीसे बहती थी। अभी मन्दगति हो जानेसे उसकी चौड़ाई घट गई है तथा दोनों किनारा बालुकापूर्ण मरुप्रान्तरमें बदल गया है। एतद्भिन्न खेतीबारीकी सुविधाके लिये यहां बहुत-सी नहरें हैं। उनमेंसे पूर्व-नारा १३ मील, लुण्डी १६ मील अरोर १६ मील, दहर २६ मील, मसु ३२ मील, कोराई २३ मील, महारो ३७ मील और देङ्गरो १६ मील, लम्बी है। इन सब नहरोंसे स्थानीय जमींदार फिर ५७ नहर काट कर अपने अपने इलाकेमें ले गये हैं।

यहां मट्टीके बरतन, सूती कपड़े और चूनेका विस्तृत कारबार है। घोटकी और खैरपुर धर्की नगरमें फर्सी, नासदानी, कैंची और रसोईके बरतन तैयार होते हैं। यहांसे तरह तरहके अनाज, सज्जीमिट्टी, चून, तेल, पशम, रेशमी वस्त्र, नील और खाद्योपयोगी फलादिकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती है। नार्थवेष्टर्न रेलवेके खुल जानेसे व्यवसाय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हुई है।

सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २७° ४′ से २७° ५०′ उ० तथा देशा० ६८° ३५′ से ६९° ४८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४६७ वर्गमील और जनसंख्या ८५ हजारसे ऊपर है। इसमें रोहरी नामक १ शहर और ६६ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान उपज धान, ज्वार और गेहूं है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २७° ४१ उ० तथा देशा० ६८° ५६′ पू०के मध्य सिन्धुके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या हजारके करीब है। प्रवाद है, कि १२९७ ई०में सैयद रुकन उद्दीन शाहने इस नगरको बसाया। मुसलमानी जमानेमें यहां बहुत-सी मसजिदें बनी थीं। उनमें से १५६४ ई०में सम्राट् अकबर शाहके अधीनस्थ शासनकर्त्ता फते खाँने नाना शिल्प और कारुकार्य-समन्वित जमा-मसजिद तथा १५९३ ई०में मीर मुशान शाहने इदगाह मसजिदकी प्रतिष्ठा कराई थी।

१५४५ ई०में स्थानीय कलहोड़ा-राज मीर महम्मदने अपने मित्र खैरपुराधिपति मीर अलीमुरादसे पैगम्बर महम्मदकी दाढ़ीका एक बाल पाया। उसने उस देवस्मृतिकी रक्षार्थ नगरसे उत्तर 'वार मुबारक' नामक एक चौकोन धर्मभवन बनवाया। उस मसजिदके मध्यस्थलमें हीरे पन्नेसे जड़े हुए एक सोनेके डब्बेमें वह

श्मश्रुकेश बड़े यत्नसे रखा हुआ है। प्रति वर्षके चैत्र मासमें वह केश दिखानेके समय एक छोटा मेला लगता है।

१८५५ ई०में यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई। तभीसे यहांकी आवहवा अच्छी है। नाथ वेष्टर्न ष्टेट-रेलवेके खुल जानेसे वाणिज्यवृद्धिके साथ साथ नगरके भी सौन्दर्य और समृद्धिकी वृद्धि हुई हैं। रेलपथ जानेके लिये नगरके सामने सिन्धुनद पर लोहेका एक सुन्दर पुल बना है। कलकत्तेसे कराची वन्दर जानेमें रोहरीके मध्य हो कर जाना पड़ता है। रोहरीके दूसरे किनारे सिन्धुवक्षस्थ चरके ऊपर पीर ख्वाजा खिजिरका पीठस्थान है। यहां हिन्दू और मुसलमान एक साथ पूजा करते हैं। शहरमें सव-जजकी अदालत, एक अस्पताल और चार स्कूल हैं।

रोहस् (सं० क्ली०) उच्च प्रदेश।

रोहसेन (सं० पु०) मृच्छकटिक नाटकोक्त एक व्यक्तिका नाम।

रोहा—१ वम्बईप्रदेशके कोलावा जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १८° १७´ से १८° ३२´ उ० तथा देशा० ७२° ५७´ से ७३° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०३ वर्गमील है। इसमें रोहा नामक १ शहर और १३३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५० हजारके लगभग है। इसका अधिकांश स्थान पर्वतमय और जंगलावृत है। केवल कुण्डलिका नदी प्रवाहित उपत्यका-प्रदेश ही उर्वरा है।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा १८° २६´ उ० तथा देशा० ७३°७´ पू०के मध्य कुण्डलिका नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। रोहाके शस्यभंडारसे वम्बई नगरमें चावल भेजा जाता है। १६७३ ई०में अवसेशडेन इस स्थानका "Esthemy" नामसे उल्लेख कर गये हैं। उस समय इसकी वाणिज्य-समृद्धि भी अच्छी थी।

रोहार—वम्बईप्रे सिडेन्सीके कच्छप्रदेशके अंजार विभागके अन्तर्गत एक प्रधान वन्दर। यह अञ्जार नगरसे १२ मील पूरवमें अवस्थित है। १८१८ ई०में २ हजार मनका बोझा लाद कर जहाज इस बंदरमें आसानीसे आता जाता था, किन्तु अभी समुद्रतटकी अवस्था बदल जानेसे वाणिज्यका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। उसीसे यहांका छोटा दुर्ग काममें न लाये जानेके कारण टूटी फूटी अवस्थामें पड़ा है।

रोहि (सं० पु०) रोहतीति रुह (हृपिषिरुहीति। उणा् ४।११९) इति इन्। १ वीज। २ वृक्ष, पेड़। ३ व्रती, तपस्वी।

रोहिक (सं० पु०) वनरोहि नामक मृग। इसका मांस हित और बलकर, वात और श्लेष्मावर्द्धक माना गया है। (अत्रिसं० २२ अ०)

रोहिकाप्रिय (सं० पु०) महाकरंज।

रोहिण (सं० पु०) रोहतीति रुह (रुहेश्च। उणा् २।५५) इति इनन्। १ कालभेद। दिनके नवें मुहूर्त्तको रोहिण कहते हैं। इस समयके बीच एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। कुतपमुहूर्त्तमें श्राद्ध शुरू कर रोहिणकालके अन्दर शेष करे। (श्राद्धतत्त्व) इसका दूसरा नाम रौहिण भी है।(पु०) २ भूतृण, रोहिस घास। ३ वटवृक्ष, बड़का पेड़। ४ रोहितक वृक्ष, रोहितका पेड़। ५ पुराणानुसार शाल्मलद्वीपके एक पर्वतका नाम (मत्स्यपु० १२११९६) ६ कट्फल वृक्ष, गूलरका पेड़।

रोहिणि (सं० स्त्री०) रोहिणी नक्षत्र।

रोहिणिका (सं० स्त्री०) रोहिण्येव स्वार्थे कन् टाप्, ह्रस्वश्च। क्रोधसे लाल स्त्री।

रोहिणिनन्दन (सं० पु०) रोहिणीपुत्र, बलराम।

रोहिणिसेन (सं० पु०) रोहिणी नक्षत्रके चारों ओर अवस्थित तारामण्डली।

रोहिणी (सं० स्त्री०) रुह इनन्, गौरादित्वात् ङीष्। १ स्त्री गवि, गाय। २ तड़ित्, बिजली। ३ कटुम्भरा, कटुका, कुटकी। ४ सोमवल्क, रीठा। ५ महाश्वेता, सफेद कौवाठोंठी। ६ लोहिता, लाल गदहपूरना। ७ जैनोंकी विद्यादेवी। ८ काश्मरी, गंभारी। ९ हरीतकी, छोटी लंबी पीली हड़ जो गोल न हो। १० मञ्जिष्ठा, मजीठ। ११ एक प्रकारकी कपिल वर्णकी हड़ जो गोल और दस्तावर हो। १२ वसुदेवकी स्त्री जो बलरामकी माता थीं। ये कश्यपपत्नी सुरभिके अंशसे उत्पन्न हुई थी। (हरिवंश) १३

सुरभि-कन्या। (कालिकापु०) १४ नव वर्षीया कन्या, नौ वर्षकी कन्या।

'अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।"

(उद्वाहतत्त्व)

१५ पञ्चवर्षीया कन्या, पांच वर्षकी कुमारी। रोगियों-का रोग नाश करनेके लिये इस कुमारीकी पूजा करनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

"रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता।"

(देवीभाग० ३।२६।४२)

"रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः।"

(देवीभाग० ३।२६।४८)

रोहिणीकी पूजा निम्नोक्त मन्त्रसे करनी होती है।

"रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै।
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥"

(देवीभाग० ३।२६।५६)

इस कुमारीकी पूजा करनेसे अनेक प्रकारकी सुख-सम्पद प्राप्त होती है। १६ हिरण्यकशिपुकी कन्या। (भारत ३।२२०।१८) १७ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों-के अन्तर्गत चौथा नक्षत्र। पर्याय—रोहिणी, ब्राह्मी। यह नक्षत्र शकटाकार और पञ्चतारात्मक है। ब्रह्मा इस-के अधिष्ठात्री देवता हैं। इस नक्षत्रमें वृषराशि होती है।

रोहिणी (नक्षत्र) चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रियतमा है। चन्द्रमाकी सत्ताईस स्त्री होने पर भी वे हमेशा रोहिणी-के निकट रहते थे। शेष स्त्रियां इससे असन्तुष्ट हो दक्ष के पास गईं और कुल वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। दक्ष बड़े बिगड़े और उन्होंने चन्द्रमाको शाप दिया। रोहिणी-के कारण चन्द्रमा दक्षके अभिशापसे यक्ष्मरोगाक्रान्त हुए। (कालिकापु०)

यह नक्षत्र उर्द्ध्वमुख, और सर्पजातिका है। शत-पदचक्रानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण होनेसे इसके चार पादमें "ओ, व, वी, वु" इन चार अक्षरोंका आदि नाम होगा। (कालिदासकृत रात्रिलग्नानि०)

पांच नक्षत्रयुक्त शकटाकार रोहिणी नक्षत्र यदि प्रकाशित हो, तो सिंहलग्नका ३ दण्ड ३८ पल बीत गया है, ऐसा जानना होगा।

इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे जात बालक कुशल, कुलीन, सुचारुदेह, धनी, मानी और कामुक होता। (कोष्ठीप्र०)

अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे सूर्यकी दशा तथा विंशोत्तरी मतसे चन्द्रकी दशा होती है। नक्षत्रके परिमाणादि अनुसार भोग्यभुक्तादिका निरूपण किया जा सकता है।

भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे जयन्ती-योग होता है। यह रोहिणी नक्षत्र रात्रिकाल पा कर यदि दूसरे दिन भी रहे, तो जब तक रोहिणी नक्षत्र रहेगा, तब तक उपवास करना होता है। रोहिणी रहने पर पारण नहीं करना चाहिये। जन्माष्टमी देखो।

१८ गलरोगभेद, गलेका एक रोग। इसके निदान और चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। गलरोग १८ प्रकारका है। उनमेंसे रोहिणीके पांच भेद हैं।

निदान—दूषित वायु, पित्त, कफ और रक्त जब गलेमेंके मांसको दूषित कर कण्ठरोधकारी मांसाङ्कुर उत्पादन करता है, तब उसे रोहिणी रोग कहते हैं। इस रोगमें प्रायः रोगीका जीवन नष्ट होता है।

वातज रोहिणीका लक्षण—वातज रोहिणी रोगमें जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनाविशिष्ट कण्ठरोधकारक मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है तथा रोगी स्तम्भत्व आदि वातजनित उपद्रवोंसे पीड़ित रहता है।

पित्तज लक्षण—पित्तजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर जल्दी निकलता है तथा अत्यन्त दाह और पाकयुक्त होता है। इस रोगीको जोर शोरसे ज्वर आता है।

कफज लक्षण—कफजन्य रोहिणी रोगमें मांसाङ्कुर गुरु, स्थिर और अल्पपाकविशिष्ट होता है, तथा कण्ठ-स्रोत बंद हो जाता है।

सन्निपातज लक्षण—त्रिदोषज रोहिणी रोगमें उक्त तीन दोषोंके सभी लक्षण दिखाई देते हैं तथा मांसाङ्कुर गम्भीरपाकी होता है। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे रोगीकी जान पर खतरा है, ऐसा जानना होगा।

रक्तज लक्षण—रक्तजन्य रोहिणी रोगमें जीभके नीचे

फोड़े हो जाते हैं तथा पित्तज रोहिणीकी तरह लक्षण दिखाई देते हैं। यह रोग साध्य है।

त्रैदोषिक रोहिणी रोग रोगीके जीवनको तुरत नष्ट कर डालता है। कफज रोहिणी तीन दिनके भीतर, पैत्तिक रोहिणी पांच दिनके भीतर और वातज रोहिणी सात दिनके भीतर जीवन नष्ट करता है।

इसकी चिकित्सा—साध्य रोहिणी रोगमें रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, गण्डूषधारण और नस्य हितकारक है। वातज रोहिणी रोगमें रक्तमोक्षण कर सैन्धव द्वारा प्रतिसारण करे तथा कुछ उष्ण स्नेह द्वारा वार वार गण्डूष लेवे। पित्तज रोहिणी रोगमें रक्तमोक्षण कर प्रियङ्गु-चूर्ण, चीनी और मधु मिला कर उस पर घिसे तथा दाख और फालसे फलके काढ़े से कुल्ली करे। कफज रोहिणी-में गृहधूम, सोंठ, पीपल और मिर्चके चूर्णसे प्रतिसारण करना होगा।

श्वेत अपराजिता, विड़ङ्ग, दन्ती और सैन्धव द्वारा तैल पाक कर नास लेने और कुल्ली करनेसे रोहिणी रोग नष्ट होता है। पित्तजादि भेदसे पित्तादिनाशक औषधका व्यवहार करनेसे वे सब लक्षण जाते रहते हैं। (भावप्रका० रोहिणीरोगचि०)

१६ शरीरका षड्त्वक्, त्वचाकी छठी परत। २० अश्वका मुखरोगभेद, घोड़ेके मुंहका एक रोग। २१ जलचर पक्षीविशेष। २२ ब्राह्मी बूटी। (त्रि०) २३ स्थूल, मोटा।

रोहिणीकान्त (सं० पु०) रोहिण्याः कान्तः। रोहिणी-पति चन्द्र।

रोहिणीचन्द्रव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

रोहिणीचन्द्रशयन (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

रोहिणीतनय (सं० पु०) रोहिण्यास्तनयः। रोहिणीके पुत्र, बलराम।

रोहिणीतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

रोहिणीत्व (सं० क्ली०) रोहिणी भावे त्व। रोहिणी नक्षत्र-का भाव या धर्म। (शतपथब्रा० २।१।२।६)

रोहिणीपति (सं० क्ली०) रोहिण्याः पति। १ चन्द्रमा। २ वसुदेव। ३ वृषभ, बैल।

रोहिणीप्रिय (सं० पु०) रोहिण्याः प्रियः। रोहिणीपति।

रोहिणीभव (सं० पु०) १ रोहिणीके पुत्र, बलराम। २ बुधग्रह।

रोहिणीयोग (सं० पु०) रोहिण्या योगः। रोहिणी नक्षत्रका योग, जन्माष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्र होनेसे रोहिणीयोग होता है। इस रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे उसे जयन्ती योग भी कहते हैं। जन्माष्टमी देखो।

रोहिणीरमण (सं० पु०) रोहिण्याः रमणः। १ वृषभ, ऋषभ नामकी ओषधि। (राजनि०) २ वसुदेव। ३ चन्द्रमा।

रोहिणीवल्लभ (सं० पु०) रोहिण्या वल्लभः। १ चन्द्रमा। २ वसुदेव।

रोहिणीव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद।

रोहिणीश (सं० पु०) रोहिण्या ईशः। १ चन्द्रमा। २ वसुदेव।

रोहिणीषेण (सं० पु०) रोहिणी नक्षत्रके चारों ओर अव-स्थित नक्षत्रपुञ्ज।

रोहिणीसुत (सं० पु०) रोहिण्याः सुतः। १ रोहिणीके पुत्र, बलराम। २ बुधग्रह।

रोहिणेय (सं० पु०) रौहिणेय, मरकतमणि।

रोहिण्यष्टमी (सं० स्त्री०) रोहिणीयुक्ता अष्टमी। रोहिणी नक्षत्रयुक्ता भाद्रकृष्णाष्टमी। जन्माष्टमीके दिन रोहिणी-नक्षत्रके योग होनेको रोहिण्यष्टमी कहते हैं। (गरुड़पु० १३२ अ०) जन्माष्टमी शब्द देखो।

रोहिण्याद्यघृत (सं० क्ली०) गुल्माधिकारमें घृतौषधविशेष। (चरक चिकि० ५ अ०)

रोहित (सं० पु०) रोहतीति रुह (इसुरुहिभ्य इति त। उणा० ३।९६) १ सूर्य। २ वर्णभेद। ३ मत्स्यभेद, रोहू मछली। मछली मात्र ही, कफ और पित्तवर्द्धक होती है; किन्तु रोहू और मँगुरी मछली कफ और पित्तवर्द्धक नहीं होता। (स्त्री०) ४ मृगी। ५ एक लता। ६ लाल रंगकी घोड़ी, बड़वा। ७ नदी। (त्रि०) ८ रोहित वर्ण-विशिष्ट, लाल रंगका।

रोहित (सं० क्ली०) रूह (रुहेरश्च लोवा। उणा० ३।९४) इति इतन्। १ कुङ्कुम, केसर। २ रक्त, लहू। ३ इन्द्र-धनुष। (पु०) ४ मीनविशेष, रोहू मछली। इस मछलीका रंग काला, छोलकायुक्त और इसकी पेटी

लाल होती है। सब मछलियोंमेंसे यह श्रेष्ठ होती है। इसका गुण थोड़ा उष्ण, बलकर, वातनाशक तथा वीर्य-वर्द्धक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय और गुण—रक्तोदर, रक्तमुख, रक्ताक्ष, रक्ताक्षति, कृष्णपक्ष, भसश्रेष्ठ और रोहित। यह मत्स्य सर्वापेक्षा श्रेष्ठ होता है। गुण—शुक्रवर्द्धक, अर्दितरोगनाशक, कुछ कषाय, मधुररस, वायुनाशक और थोड़ा पित्तकारक। (भावप्र०)

हारीतमें लिखा है, कि यह मछली सेवार खाती तथा स्वप्नरहित होनेसे दीपनीय और लघुपाक होती है।

"शैवालाहारभोजित्वात् स्वप्नस्य च विवर्जनात्।
रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महाबलः॥"

(हारीत १।११ अ०)

५ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। (देवीभाग० ७।२५।१५) ६ एक प्रकारका मृग। ७ रोहितक नामका पेड़। ८ कुसुमका फूल, बरैंका फूल। ९ रक्तवर्ण, लाल रंग। १० एक नदीका नाम। (जैनहरि० ५४।२) ११ गन्धर्वोंकी एक जाति। (त्रि०) १२ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका।

रोहितक (सं० पु०) रोहितएव स्वार्थे कन्। १ रोहितका पेड़, रोहेड़ा। यह पेड़ सफेद और लाल दो प्रकारका होता है। पर्याय—रोही, प्लीहशत्रु, दाड़िमपुष्पक, रोहीतक, रोहिण, कुशाल्मलि, दाड़िमपुष्प, सदाप्रसून, कूटशाल्मलि, विरोचन, शाल्मलिक। गुण—कटु, स्निग्ध, कषाय, शीतल, कृमि, व्रण, प्लीहा और रक्तनेत्ररोग नाशक। (राजनि०) २ हरिणविशेष। ३ कुसुम्भका पेड़। ४ एक देशका नाम। रोहतक देखो।

रोहितकारण्य (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम।

(भारत उद्योगपं०)

रोहितकूट—एक पर्वतका नाम। (जैनहरि ५१।१।२)

रोहितकूल (सं० क्ली०) जनपदभेद।

(पंचविंश ब्रा० १४।३।१२)

रोहितकूलीय (सं० क्ली०) साममेद।

रोहितगिरि (सं० पु०) पर्वतभेद।

रोहितपुर (सं० क्ली०) रोहितक नगर। हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने यह नगर बसाया। रोटसगढ़ देखो।

रोहितवत् (सं० त्रि०) रक्ताकयुक्त, लाल रंगका।

(कात्यायन १।४।४)

रोहितवस्तु (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

(ललितवि०)

रोहितवाह (सं० पु०) अग्नि।

रोहिता (सं० स्त्री०) रोहित-टाप्, (वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः। पा ४।१।३९) इति पाक्षिको ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च न। रागादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल।

रोहिताक्ष (सं० पु०) रक्तचक्षुः। रक्तलोचन, लाल आँख।

रोहिताङ्ग—एक देशका नाम। रोहतक देखो।

रोहिताङ्कि (सं० त्रि०) रक्त चिह्नविशिष्ट, लाल चिह्नका।

रोहिताश्व (सं० पु०) रोहितोऽश्वो यस्य। १ अग्नि। २ राजा हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम। ३ एक प्राचीन गढ़का नाम जो शोन नदके किनारे पर था।

रोहितिका (सं० स्त्री०) रोहितो वर्णोऽस्त्यस्या इति रोहित-ठन्, टाप्। रागादि द्वारा रक्तवर्ण, क्रोधसे लाल।

रोहितेय (सं० पु०) रोहित एव स्वार्थे ढ। रोहितवृक्ष, रोहेड़ा।

रोहिदश्व (सं० पु०) अग्नि।

रोहिन् (सं० पु०) अवश्यं रोहतीति रुह आवश्यक णिनि। १ रोहितकवृक्ष, रोहेड़ा। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। वटवृक्ष, बड़का पेड़। रोहू मछली। ५ एक प्रकारका मृग। ६ रोहिष घास।

रोहिलखण्ड—युक्तप्रदेशके छोटे लाटके अधीन एक शासन विभाग। यह अक्षा० २७°३५´से २९°५८´ उ० तथा देशा० ७८° २´से ८०° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२८०० वर्गमील है। विजनौर, मुरादाबाद, बदाऊं, बरेली, पिलिभित और शाहजहानपुर जिला इसके अन्तर्भुक्त हैं। इसके उत्तरमें हिमालय, दक्षिण पश्चिममें गङ्गा और पूरबमें अवधप्रदेश है। यहांकी आबहवा बहुत स्वास्थ्यकर है। ईख और धान प्रधान फसल है। फिर गेहूं, चना, रुई तथा बाजरा आदि भी कम नहीं उपजता।

इस विभागमें १८ प्रधान नगरके सिवा और भी २८ छोटे छोटे नगर तथा ११३२७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या

६० लाखसे ऊपर है। अवध-रोहिलखण्ड और कुमायून-रोहिलखण्ड रेलवेके खुल जानेसे स्थानीय वाणिज्य-व्यवसायमें बड़ी सुविधा हुई है।

रोहिला-अफगान जाति एक समय इस विस्तृत विभागमें रहती थी। उन लोगोंने अपने बाहु-बलसे इस स्थानको जीत कर अफगान-शासन फैलाया था। तभीसे यह स्थान रोहिलखण्ड कहलाता है। दुद्धर्ष रोहिला जातिकी वीरप्रकृति और युद्धविग्रहका हाल तथा प्रत्येक जिलेका इतिहास रोहिला शब्दमें लिखा गया है।

रोहिल्ला शब्द देखो।

रोहिल्ला (रोहेला) भारतवासी अफगान जातिकी एक शाखा। ये लोग प्रधानतः युसुफजै अफगान नामसे परिचित हैं। दिल्लीमें पठान-आधिपत्यके समय ये लोग भारतवर्षमें आ कर नाना राज्योंमें फैल गये। उस समय अफगान-सरदार जागीरका शासनकर्तृत्व ले कर अपनी अपनी प्रधानता स्थापनके लिये कोशिश करते थे। पञ्जाबके पेशावर-विभागमें भारत पर आक्रमण करनेवाले कुछ अफगानोंने उपनिवेश बसाया सही, पर भारतके अन्यान्य स्थानोंमें उन्हें ठहरनेकी सुविधा न हुई। १५२६ ई०में मुगल-बादशाह बाबरशाहने जब भारतवर्षमें राजपाट स्थापन किया, उस समयसे ले कर औरङ्गजेबके शासनकाल तक भारतवर्षमें पठानोंका विशेष प्रादुर्भाव रहा। प्रतिष्ठापन्न और प्रतापशाली योद्धा राजपूत वा हिन्दू-राजाओंके जमानेमें अफगान लोग अपना शिर ऊंचा न कर सके। औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद मुगल-प्रभावकी दिनों दिन अवनति होती देख अफगान जाति लूट पाट करती हुई नौकरीकी खोजमें भारतवर्ष आई। दो एकको राजकार्यमें नौकरी मिल जाने पर भी अधिकांश चोरी डकैती कर जीवन-निर्वाह करने लगे।

भारतवासी यह अफगान जाति उस समय रोहिला कहलाती थी। हिन्दुओंने उनका रोहिला नाम क्यों रखा उसका पता नहीं चलता। परन्तु भाषामें रोहका अर्थ पर्वत और रोहेलाका अर्थ पर्वतवासी है। एतद्भिन्न तारीख-इ-शाही और फिरिस्तामें अफगानिस्तानके अन्तर्गत रोह नामक जनपदका उल्लेख देखनेमें आता है। वह स्थान स्वात और वाजौरसे भक्करके अन्तर्गत शिवि नगर तक तथा हसन अवदालसे काबुल तक विस्तृत था। शायद इसी रोह नामक जनपद वा पहाड़ी प्रदेशसे समागत अफगान जातिका नाम भारतवर्षमें रोहिला हुआ होगा। उत्तर भारतकी अपेक्षा दक्षिण-भारतमें खास कर हैदराबादमें अफगान औपनिवेशिकगण 'रोहेला' कहलाते हैं। उत्तर-भारतवासी अफगान जाति साधारणतः पठान नामसे ही परिचित है।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद मुगल-साम्राज्यमें जब विशृङ्खला उपस्थित हुई, तब नाना स्थानोंमें नेतृगण अपने अपने प्रभुत्व स्थापनकी कोशिश करने लगे। इस समय उत्तर प्रदेशवासी अफगान चोरी डकैती करके पेट भरते थे। सौभाग्यान्वेषी अफगान-सेनापति दाऊद मुगल-सरकारमें क्रीतदास रूपमें नियुक्त था। सद्गुणोंसे दरबारमें उसकी अच्छी खातिर थी। अन्तमें वह मालिक शाह आलमको मार कर कातिहार नामक स्थानमें अपने गोटी जमानेके लिये मौका ढूढ़ने लगा। इस समय उसकी वीरतासे मुग्ध हो कर अफगान लोग उसके दलमें मिल गये। दाऊदने प्रथम जीवनमें अर्थात् जब वह लूट-पाट किया करता था, एक जाट बालकको अपहरण कर उसका लालन पालन किया था। उस बालकका नाम था अली महम्मद। अली अपने प्रतिपालक दाऊदको मार कर स्वयं अफगान-सम्प्रदायका अधिनेता हो गया। अपने साहस और कार्यतत्परताके गुणसे वह शीघ्र ही कातिहारका सर्वमय कर्त्ता हो उठा। उसने सैकड़ों अफगान योद्धाको कार्यमें नियुक्त कर अपना बल बढ़ाया था।

दिल्ली-दरबारकी दुरवस्था देख कर १७३९ ई०में नादिरशाहने मुगलशाहका दर्प और भी चूर कर दिया। इससे अली महम्मदकी क्षमता पहलेसे बढ़ चली। अनेक शिक्षित अफगान सेना और सेनापति उसके दलमें मिल गया। महम्मद इस प्रकार बलवान् हो भावी प्रतियोगीके विरोधकी आशङ्का दूर करनेके लिये अपने चचा रहमत् खांसे जा मिला। रहमत् उस समय रोहिलखण्डका सर्वप्रधान अफगान-सरदार था। वह अलीसे कुछ जागीर ले कर उसके साथ मिल कर कार्य करनेको राजी हुआ। रहमत्का पिता शाह आलम बादलजै अफ-

गीन था। वह कन्धारका परित्याग कर कातिहारमें आ कर बस गया था। १७१० ई०में रहमत्का जन्म हुआ।

१७४० ई०में रोहिलखण्ड नामक बड़ा देशभाग अली महम्मदके अधिकारभुक्त हुआ तथा सम्राट् उसीको वहांका शासनकर्त्ता माननेको बाध्य हुए। ५ वर्ष राज्यशासन करनेके बाद १७४५ ई०में अयोध्याके सूबेदार सफदरजङ्गके साथ उसका युद्ध हुआ। इस समय सम्राट् महम्मदने वजीरका पक्ष लिया था, इस कारण अलीमहम्मद उसकी वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य हुआ। वह नजरबंदीकी तौर पर दिल्लीमें रखे जाने पर भी उसके अधीनस्थ दुर्द्धर्ष अफगानोंने अत्याचार और उपद्रव करना शुरू कर दिया। सम्राट् ने अलीको सरहिन्दका शासनकर्त्ता बना कर अफगानोंके हाथसे छुटकारा पाया।

१७४८ ई०में अवदालीके भारत-आक्रमणकी तैयारी देख कर अली महम्मदने फिरसे रोहिलखण्ड हस्तगत कर लिया तथा बड़ी होशियारीसे वह राज्यशासन चलाने लगा। शासनविशृङ्खलाको सुदृढ़ करनेके कुछ समय बाद ही १७४६ ई०में उसका देहान्त हुआ। उस समय उसका बड़ा और मझला लड़का फमदुल्ला और अवदुल्ला खां अवदालीके साथ कन्धारमें था। इस कारण बाकी चार नाबालिग लड़कोंके हाथ राज्यभार न सौंप कर अलीने अपने चचा रहमत् खांको 'हाफिज' अर्थात् राज्यका प्रधान अभिभावक और रहमत्के भ्रातिभ्राता दुण्डी खांको सेनापति बनाया।

अली महम्मदकी मृत्युके बाद उसके विख्यात सेनापति और बिजनौरके जागीरदार नाजिर खांके दुण्डी खांकी कन्यासे विवाह किया और नाजिब उद्दौला नाम धारण कर बिजनौरमें स्वतन्त्र राजपाट बसाया। मध्य अन्तर्वेदीमें बङ्गसवंशीय अफगान कायमजङ्गने फर्रुखाबादमें अपना प्रभाव फैला कर अफगान-शासनका विस्तार किया था। इस समय वजीर सफदरजङ्गने उनका दर्प चूर करनेकी इच्छासे पहले सेनापति कुतुबउद्दीनको भेजा। दुण्डी खां-परिचालित रोहिल्लोंके हाथसे कुतुब मारा गया। पीछे सफदरने कायम-जङ्गकी सहायतासे १७५० ई०में रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। बदाऊंकी लड़ाईमें हाफिज रहमत और दुण्डी खांके हाथसे कायम-जङ्ग यमपुर सिधारा। अब सफदरने रोहिलखण्ड पर आक्रमण न कर कायमके पुत्र अहमद खां पर फतेआबादमें चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें विशेषरूपसे अपमानित, लाञ्छित और पराजित हो सफदर प्राण ले कर भागा। पीछे अफगानोंने इलाहाबाद तक लूटा।

इस अपमानसे क्रुद्ध हो सफदर महाराष्ट्र-सेनापति मलहार राव होलकर और जयाप्पा सिन्देकी सहायतासे पुनः रणक्षेत्रमें उतरा। अहमद खां रहमत् और दुण्डी खांसे सहायता पा कर युद्धकी तय्यारी करने लगा। १७१५ ई०में महाराष्ट्र सेनाने रोहिलखण्डमें घुस कर अहमद खांको परास्त किया। इस प्रकार अहमद खां फिरसे फर्रुखाबादके सिंहासन पर बैठा।

इस समय फयजुल्ला खां, अवदुल्ला खां, हाफिज रहमत और दुण्डी खांके बीच राज्यविभाग ले कर झगड़ा खड़ा हुआ। आखिर चारोंने ही मिल कर अलीकी सम्पत्ति आपसमें बांट ली। १७५४ ई०में मन्त्री गाजीउद्दीन् द्वारा सम्राट् अहमदशाहकी राज्यच्युति तथा सफदरजङ्गकी मृत्यु और सुजा उद्दौलाकी अयोध्या-मसनद प्राप्तिसे रोहिल्ला जातिका अदृष्टसूर्य धीरे धीरे अन्धकारसे ढक गया। १७५६ ई०में अवदालीने तीसरी बार भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दी। इस बार उसने पूर्वाकथित नाजिब उद्दौलाको सेनापति और प्रधान मन्त्री बनाया। गाजी उद्दीनको यह अवनति अच्छी न लगी। वह मराठोंकी सहायतासे उसका सर्वनाश करने तुल गया। १७५८ ई०में मराठासेनाने नाजिब-उद्दौलाको रोहिलखण्ड मार भगाया। इससे भी संतुष्ट न हो कर आखिर उन्होंने १७५९ ई०में नाजिबको तख्त परसे उतार दिया। हाफिज रहमत तथा अन्यान्य रोहिला-सरदारोंने मराठोंकी गति रोकनेमें असमर्थ हो सुजा-उद्दौलाकी सहायता मांगी। उसी सालके नवम्बर मासमें मिलित सेनादलसे हार खा कर महाराष्ट्रीय दल चम्पत हुआ।

महाराष्ट्रीय-सेनाके भागनेके और भी कई कारण थे। १७५९ ई०के सितम्बरके महीनेमें अवदालीने ४थी बार भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये पञ्जाबमें पदार्पण किया। पञ्जाब उस समय मराठोंके

अधिकारमें था। महाराष्ट्रगण रोहिलोंको छोड़ कर अवदालीके विरुद्ध अपने राज्यकी रक्षामें लग गये। १७६० ई०में अवदाली नाजिव उद्दौला, हाफिज रहमत् और अन्यान्य रोहिल्ला सरदारोंके साथ दिल्लीकी ओर बढ़े। ६ठी जनवरी १७६१ ई०को पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्र शक्तिका जब अवसान हुआ, तब अहमदशाह अवदालीने विजयघोषणाके पीछे शाह आलमको ही दिल्लीका सम्राट् मनोनीत कर नाजिव उद्दौलाको प्रधान मन्त्री और सुजा उद्दौलाको वजीर बनाया था। उसने हाफिज रहमत और दुण्डी खाँको यथाक्रम इटावा तथा आगरा और कालपी प्रदेश प्रदान किया। अन्यान्य रोहिला-सरदारोंको अन्तर्वेदीके मध्यवर्त्ती प्रदेशका अधिकार मिला। इस समय थोड़े वर्षों तक रोहिलोंने शान्तिमय सुखराज्यका भोग किया था।

१७६४ ई०में सुजा उद्दौलाके साथ अंगरेजोंका विवाद खड़ा हुआ तथा १७६५ ई०को बक्सरकी लड़ाईमें वह बहुत कुछ दब गया। १७६६ ई०में अफगानोंने जब फिरसे इटावा और दोआबके मध्यवर्त्ती जिलों पर आक्रमण कर दिया, तब क्लाइवके मनमें तरह तरहकी भावनाएं उठने लगी। किन्तु १७७० ई०में नाजिव उद्दौलाके मरने पर उसका लड़का जाविता खाँ राजा हुआ सही, पर रोहिल्ला जातिका दर्प बहुत कुछ चूर हो गया। उसी साल रोहिलखण्डमें दुण्डी खाँकी मृत्यु हो जानेसे रोहिल्ला लोग फिर मराठोंकी गति न रोक सके। १७७१ ई०में उन लोगोंने दश वर्षके वाद फिरसे दिल्ली पर धावा बोल दिया। जाविता खाँ विपद्‌को नजदीक देख कर राज्य छोड़ भाग गया। उसी वर्षकी २५वीं दिसम्बरको मराठोंके साथ एक शर्त्त करके सम्राट्‌ने नगरमें प्रवेश किया।

१७७२ ई०में महाराष्ट्रदलने रोहिलखण्ड पर आक्रमण किया। जाविता खाँ और हाफिज रहमत् आदि रोहिला-सरदार तथा स्वयं सुजा उद्दौला महाराष्ट्रीय सेनाकी गति रोकनेमें असमर्थ हुए। महाराष्ट्रदल पानीपतकी लड़ाईका बदला लेनेके लिये जब रोहिलखण्डको पदस्त कर अयोध्या लूटने अग्रसर हुआ, तब वजीर सुजा उद्दौलाने कलकत्तेकी गवर्मेण्टसे सहायता मांगी तथा रोहिलखण्ड विभागका कुछ अंश क्षतिपूरण स्वरूप अंगरेजको देनेका वचन दिया। तदनुसार सभाके प्रेसिडेण्ट कार्टियरकी आज्ञासे सर रावर्ट बेकारने बीचमें पड़ कर महाराष्ट्र, रोहिल्ला और सुजाउद्दौलाके बीच मेल करानेकी चेष्टा की। उसी सालकी २५वीं मई तक सन्धिका प्रस्ताव चलता रहा, किन्तु कोई विशेष फल न हुआ। वर्षाके आरम्भमें महाराष्ट्रीयदल गङ्गा पार कर न सका और लौट आया। रोहिल्लागण तथा जाविता खां पत्नीपुत्र ले कर राज्यमें घुसे। वजीर बेकार साहबको ले कर अयोध्या गया।

इधर हेष्टिंग्स मन्द्राजसे आ कर उसी वर्षके अप्रिल मासमें वङ्गालके गवर्नर हुए। महाराष्ट्र रोहिल्ला, वजीर और मुगल-सम्राट्‌के स्वार्थ और सम्बन्धकी रक्षा करना ही उनका उद्देश था। महाराष्ट्रोंने यद्यपि रोहिलखण्ड छोड़ दिया और वहांसे वे लोग युद्धके सामान उठा लाये, तो भी वहां शान्ति स्थापित होने न पाई। रोहिलोंके बीच गृह-विवाद खड़ा हुआ। रोहिल्ला-सरदार सर्दार खां वक्सीके मरने पर उसके लड़के राज-सिंहासन ले कर झगड़ने लगे। हाफिज रहमत्‌के पुत्र इनायत खांने पिताके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस समय दूसरे दूसरे रोहिला सरदार कमजोर होने लगे, सरदार शेख कबीका देहान्त हुआ, फर्रुखाबादका मुजफ्फरजङ्ग अकर्मण्यताके कारण दुर्बल हो गया तथा जाविता खां स्वजातिकी सहानुभूति खो कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ। वह दिल्लीश्वरका प्रधान मन्त्री होनेकी आशासे १७७२ ई०के जुलाई मासमें मराठा-दलमें मिल गया।

उसी वर्षके शेषमें महाराष्ट्रगण जब दिल्ली घुसे, तब नजफ खां विशेष चेष्टा करके भी आत्मरक्षा न कर सका। तब महाराष्ट्रदलने खुल्लमखुल्ला सम्राट्‌को किसी तरहका सम्मान न दिखा कर उनसे इलाहाबाद और कोराप्रदेश छीन लिया। इस संवादसे डर कर सुजा-उद्दौलाने अङ्गरेज गवर्मेण्टसे सहायता मांग भेजी। कोरा और इलाहाबादसे ले कर अङ्गरेजोंके साथ युद्धकी सम्भावना देख कर महाराष्ट्रीय-सेनापति हाफिज रहमत्‌के साथ मिलनेकी आशासे गङ्गा पार कर रोहिलखण्डमें घुसे।

हाफिज रहमत्के साथ महाराष्ट्रदलका सन्धि-प्रस्ताव चलता देख हेष्टिंसको बहुत फिक्र हुई। उन्होंने अयोध्याके वजीरका पक्ष लेने और अङ्गरेजोंका स्वार्थ साधनेके लिये सेनापति सर राबर्ट बेकारके अधीन एक दल अङ्गरेजी सेना भेजी। मराठोंको रोहिलखण्डसे भगाना ही उनका मुख्य उद्देश था। सेनाध्यक्ष बेकारने सुजा उद्दौलाके साथ शर्त्त करके दो दल अङ्गरेज, छः दल सिपाही और एक दल कामानवाही सेना ले कर १७७३ ई०के मार्च मासमें अयोध्यासे रोहिलखण्डकी यात्रा कर दी। अयोध्याकी सेना और अङ्गरेजी-सेना रोहिलोंको मदद देगी, इस आशय पर सुजा-उद्दौलाने हाफिज रहमत्को पत्र लिखा तथा मराठोंके विरुद्ध युद्धघोषणा करनेका संकल्प किया। इस प्रस्ताव पर हाफिज रहमत् सहमत न हुए। सेनापति बेकारने जब देखा, कि हाफिजने जाविता खां और महाराष्ट्रका पक्ष लिया, तब वह दल-बलके साथ रामघाटकी ओर अग्रसर हुआ। यहां नदीके दूसरे किनारे महाराष्ट्रगण ससैन्य रहते थे। हाफिज रहमत् शठतापूर्वक आज तक महाराष्ट्र वा सुजाके दलमें शामिल न हुआ था। महाराष्ट्र-सेनापतिने समय न खो कर बलपूर्वक उसे वशीभूत करनेकी चेष्टा की। उन्होंने नदी पार कर हाफिज रहमत्के शिविरके सामने रोहिला-दुर्ग पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वे अङ्गरेजोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार न हुए।

इधर २१वीं मार्चको हाफिज रहमत् कोई उपाय न देख सुजाके प्रस्तावको मान कर उसके दलमें मिल गया। इससे मराठोंको पीछे हटना पड़ा। कई बार आक्रमणका भय दिखा कर उन लोगोंने सुजा और अङ्गरेजोंको उत्कण्ठित किया था। आखिर मई मासमें दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र-सरदारोंके बीच मनोमालिन्य हो जानेसे उन्होंने बाध्य हो कर उत्तर भारतवर्षको छोड़ दिया। इससे वजीर और अङ्गरेजोंके सितारे चमक उठे। महाराष्ट्र शक्तिका बिलकुल लोप हो गया। इस भीषण विवादसे महाराष्ट्रीय सरदार तितर-बितर हो गये। उन लोगोंने जो लाखसे अधिक अश्वारोही-सेना और १० करोड़ तङ्का वसूल किया था उसीको आपसमें बांट कर महाराष्ट्र-सरदार चुप हो बैठे। इसी समयसे महाराष्ट्र-शक्तिका अवसान हुआ।

इस युद्धमें वजीरका खजाना खाली हो जानेके कारण उसने मराठोंसे अपना प्राप्य मांगा। हाफिज रहमत् देनेको राजी न हुआ, इससे उसके विरुद्ध युद्ध ठान देनेका हुकुम हुआ। किन्तु सुजाने युद्ध करके राजकोष खाली करना न चाहा। इस पर हेष्टिंग्सने वाराणसीकी सन्धिके अनुसार उसे ५० लाख रुपये दे कर इलाहाबाद और कोरा खरीद लिया। इसके बाद रोहिलोंको मार भगानेकी कोशिश होने लगी। वजीरने इसमें अपनी सम्मति दी सही, पर सेना एक भी न भेजी।

१७७४ ई०में सुजाने मराठोंको दोआबसे भगा कर जाविता खाँ तथा अन्यान्य सरदारोंसे मेल कर लिया। किन्तु शीघ्र ही उसका मन बदल गया। उसने रोहिल्लाओंका दमन करनेके अभिप्रायसे पुनः हेष्टिंसकी सहायता प्रार्थना की। सेनापति बेकार उसकी मददमें भेजे गये। बातकी बातमें अंगरेजी-सेना अयोध्या-प्रान्तमें जा धमकी। कर्नल चम्पियनके निकट संधिका प्रस्ताव भेज कर भी हाफिज रहमत् प्राप्य रुपये देनेको राजी न हुआ। अब युद्ध अवश्यम्भावी हो उठा। उसी वर्षकी २३वीं अप्रिलको शाहजहानपुर जिलेके मीरन-कटरामें युद्ध छिड़ा। रणक्षेत्रमें हाफिज रहमत्के साथ करीब दो हजार रोहिल्लोंने प्राण विसर्जन किये। इसके बाद फयजुल्ला खांने रोहिलोंका नेतृत्व ग्रहण किया सही, पर वह युद्धमें असमर्थ हो रामपुर, तराई और पीछे गढ़वालके पर्वतसानुदेशमें भाग गया और वहींसे सन्धिका प्रस्ताव लिख भेजा। जूनमासमें अंगरेज और वजीर सेनाको पर्वत सीमान्त पर उपस्थित देख डरके मारे उसने सन्धिकी शर्तें मंजूर कर ली।

अंगरेजी सेना और वजीरके वहांसे चले जाने पर फयजुल्ला पांच हजार रोहिल्ला ले कर रामपुर आया और राज्यशासन करने लगा। बाकी रोहिला-सेना सरदारके साथ रोहिलखण्डका परित्याग कर जाविता खाँके इलाकेमें रहने लगी। इस युद्धमें रोहिला जातिके ऊपर जो अत्याचार किया गया था वह महामति बार्केकी १७८६ ई० ४थी अप्रिलकी वक्तृतामें तथा लार्ड मेकलेके विवरणमें साफ साफ लिखा है।

रोहिश (सं० क्ली०) रूसा नामक घास। इसकी जड़ सुगन्धित होती है।

रोहिशा—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत जूनागढ़ राज्यका एक बड़ा गांव। यह समुद्रतटसे पाव भर दूर तथा ऊना नगरसे ४ कोस पूरबमें अवस्थित है। पलिताना राजवंशमें एक ऐसी प्रथा चली आती है, कि जो कोई सरदार गद्दी पर बैठता है, वह अपने पूर्व पुरुष द्वारा जीते गये इस रोहिशा नगरसे एक पत्थरका टुकड़ा ले जाता है। यहांसे १॥० कोस उत्तर 'चिलासर' नामक एक बड़ा बांध है। इसके चारों ओर बड़े बड़े मकान हैं।

रोहिशाला—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यहांके सरदार जूनागढ़के नवाब और बड़ौदाके गायकवाड़को कर दिया करते हैं।

रोहिष (सं० क्ली०) १ कत्तृण, रूसा घास। (पु०) २ रोहिकमृग, एक प्रकारका मृग जो गधेसे मिलता जुलता है। ३ रोहू मछली।

रोही (सं० पु०) रोहिन् देखो।

रोही (हिं० वि०) १ चढ़नेवाला। (पु०) २ एक हथियार।

रोहीतक (सं० पु०) रोहीत एव स्वार्थे कन्। रोहितक-वृक्ष, रोहेड़ा।

रोहीतकघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। यह औषध दो प्रकारका है—स्वल्प और महत्। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—घी ४ सेर, काढ़ेके लिये। रोहीतककी छाल २५ पल, सूखो बेर ३२ पल, पाकार्थ जल ५७ सेर, शेष १४ सेर २ पल। कल्कार्थ पीपलका मूल, चई, चिता-मूल, सोंठ प्रत्येक १ पल, रोहीतककी छाल ५ पल, पाक का जल १६ सेर। पीछे यथाविधान इस घृतका पाक करे। यह घृत पान करनेसे प्लीहा और गुल्म आदि रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

महारोहीतकघृतकी प्रस्तुत प्रणाली—घी ४ सेर, क्वाथार्थ रोहीतककी छाल १२॥० सेर, सूखी बैर ८ सेर, जल १२८ सेर, शेष ३२ सेर, बकरीका दूध १६ सेर। कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, हींग, अजवायन, धनिया, विटलवण, जीरा, कृष्णलवण, अनारका बीज, देवदारु, पुनर्णवा, ग्वाल ककड़ीका मूल, यवक्षार, कुट, विड़ङ्ग, चितामूल, हबूषा, चई और वच प्रत्येक २ तोला, पाक-का जल १६ सेर। यथाविधान पाक शेष करके नीचे उतार ले। इस घृतकी मात्रा आठ आनेसे दो वा तीन तोला तथा अनुपान मांसरस, जूस और दूध बताया गया है। यह घृत बहुत बलकर है। इसका सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और उससे उत्पन्न शूल, कुक्षिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल आदि अनेक प्रकारके रोग दूर होते हैं। प्लीहा यकृत् अधिकारमें यह एक उत्कृष्ट घृत है। (भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

रोहीतकलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रोहीतककी छाल, त्रिकटु, त्रिफला, विड़ङ्ग, मोथा, चितामूल, प्रत्येक वस्तु बराबर बराबर भाग; फल मिला कर जितना हो उतना ही लौह। इन्हें अच्छी तरह पीस कर औषध बनाना होगा। अनुपान दोषका बल देख कर स्थिर करना उचित है। इसके सेवनसे प्लीहा, अग्रमास और शोथ नष्ट होता है। (भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

रोहीतकलौह (सं० क्ली०) प्लीहाधिकारमें लौहभेद। प्रस्तुतप्रणाली—रोहितक, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, विड़ङ्ग, चीता और मोथा प्रत्येक द्रव्य एक एक भाग तथा सबोंके समान लौह एक साथ मिला कर यह बनाना होगा। मात्रा और अनुपान रोगके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इसके सेवनसे अग्रमास और यकृत्रोग अच्छा होता है। (रसेन्द्रसारसं० प्लीहारोगाधि०)

रोहीतकाद्यचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—रोहीतक छाल, यवक्षार, चिरायता, कुटकी, मोथा, निशादल, अतीस, सोंठ प्रत्येकका चूर्ण समान, इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर एक साथ मिलावे। इस औषधकी मात्रा १ माशा और अनुपान शीतल जल बताया गया है। इसका सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा बहुत जल्द नष्ट होतो है। (भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

रोहीतकारिष्ट (सं० पु०) अरिष्ट औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—रोहीतक छाल १२॥ सेर, जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर। इस क्वाथको अच्छी तरह छान कर उसमें २५ सेर घोल दे। पीछे धाईका फूल १६ पल, पीपल,

पीपल मूल, चई, चीतामूल, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक १ पलके अंदाज चूर्ण कर ऊपरसे डाल देना होगा। पीछे उसे एक बरतनमें रख कर उसका मुंह अच्छी तरह बंद कर दे और एक मास तक उसी अवस्थामें छोड़ दे बाद एक मासके उसे आलोड़न कर छान ले। यह अरिष्ट दिनके समय २ या ३ बार करके छटांक भर सेवन करना होगा। इसके सेवनसे प्लीहा, गुल्म, उदरी आदि रोग प्रशमित होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

रोहुन (हिं० पु०) रोहन नामका पेड़।

रोहू (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बड़ी मछली। इसका मांस अति स्वादिष्ट होता है। इसके सिरेको लोग अत्यन्त स्वादिष्ट बनाते हैं। इसके ऊपर सेहरा होता है। २ एक वृक्ष जो पूर्व हिमालयमें विशेषतः दार्जिलिङ्गमें होता है।

रौंद (हिं० स्त्री०) १ रौंदनेका भाव या क्रिया। २ चक्कर गश्त।

रौंदन (हिं० स्त्री०) रौंदनेकी क्रिया या भाव, मर्दन।

रौंदना (हिं० क्रि०) १ पैरोंसे कुचलना, मर्दित करना। २ लातोंसे मारना, खूब पीटना।

रौंसा (हिं० पु०) १ केवाँच। २ केवाँचके बीज। ३ लोबिया, बोड़ा। ४ लोबियाके बीज।

रौ (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ पानीका बहाव, तोड़। ३ चाल, ढंग। ४ किसी बातकी धुन, किसी कामके करनेकी झोंक। ५ वेग, झोंक।

रौ (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़।

रौक्म (सं० त्रि) रुक्म-अण्। १ रुक्म सम्बन्धी। २ सुवर्णनिर्मित, सोनेका बना हुआ।

रौक्मिणेय (सं० पु०) १ रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न। २ प्रद्युम्न।

रौक्षक (सं० पु०) रुक्षके गोत्रमें उत्पन्न एक ऋषिका नाम।

रौक्ष्य (सं० क्ली) रुक्षस्य भावः रुक्ष-ष्यञ्। रुक्षता, रूखापन।

रौगन (अ० पु०) १ तेल। २ लाख आदिका बना हुआ पक्का रंग जो चीजों पर चमक आदि लानेके लिये चढ़ाया जाता है।

रौगनी (अ० वि०) १ तेलका। २ रोगन फेरा हुआ, जिस पर लाख आदिका पक्का रंग चढ़ाया हो।

रौचनिक (सं० त्रि०) १ गोरोचन या रोली सम्बन्धी, गोरोचन या रोलीसे रंगा हुआ। (क्ली०) २ दांतकी जड़का चमड़ेके समान कठिन मैला।

रौच्य (सं० पु०) रुचेरपत्यमिति रुचि-ष्यण्। १ विल्वदण्ड धारण करनेवाला संन्यासी, रौच्य मनु। रुचि प्रजापतिके पुत्रका नाम रौच्य था। (मत्स्यपु० ९ अ०)

रौच्य तेरहवें मनु थे। इस मन्वन्तरमें सुपर्व्वा आदि देवता, इन्द्र दिवस्पति तथा धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा, निष्प्रकम्प, चित्रसेन, विचित्र नयक्षत्र, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुरत ये सब मनुके पुत्र हैं। (मार्कण्डेयपु०)

२ विल्वकाष्ठदण्ड, बेलकी लकड़ीका दंड। ३ मन्वन्तरविशेष। (मार्कण्डेयपु० १००।३६)

रौजन (फा० पु०) १ छिद्र, सुराख। २ गवाक्ष, मोखा। ३ दरार, दरज।

रौजा (अ० पु०) १ बाग, बगीचा। २ बड़े पीर, बादशाह या सरदार आदिकी कब्रके ऊपर बनी हुई इमारत।

रौढ़ीय (सं० पु०) एक व्याकरण-सम्प्रदायका नाम।

रौताइन (हिं० स्त्री०) १ राव या रावतकी स्त्री, ठकुराइन। २ स्त्रियोंके लिये आदर सूचक सम्बोधन।

रौताई (हिं० स्त्री०) १ राव या रावत होनेका भाव। २ राव या रावतका पद, ठकुराई, सरदारी।

रौद्र (सं० क्ली०) रुद्रस्येदं वा रुद्रो देवता यस्य रुद्र-अण्। १ शृङ्गारादि रसके अन्तर्गत रसविशेष। इसका पर्याय उग्र है। यह रस क्रोधका आश्रय है। इस रसका विषय साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखा है,—इस रसका स्थायिभाव क्रोध है, वर्ण लाल है, अधिष्ठात्री देवता रुद्र हैं, शत्रु इसका आलम्बन है, यह शत्रुओंकी चेष्टा है तथा उद्दीपन, मुष्टिप्रहार, पतन, 'विकृतच्छेद', अवदारण, संग्राम और सम्भ्रमादि द्वारा उद्दीप्त होता है। भ्रूविक्षेप, ओष्ठनिर्दंश, बाहुस्फोटन, तर्जन, आत्मावदानकथन ये सब रसके अनुभाव हैं, आक्षेप, क्रूरसन्दर्शनादि उग्रता, वेग, रोमाञ्च, स्वेद, वेपथु, मत्तता, मोह और अमर्षादि इसका व्यभिचारिभाव है। (सा०द० ३।२३१)

रौद्ररसके साथ हास्य, शृङ्गार और भयानक रसके साथ विरोध है। (साहित्यद० ३।२४२)

(पु०) रुद्रस्यायमिति रुद्र-अण्। २ रुद्रतेज, धूप, घाम। पर्याय—घर्म, प्रकाश, द्योत, आतप। इसका गुण—कटु, रुक्ष, स्वेद मूर्च्छा और तृष्णानाशक, दाह और वैवर्ण्यजनक तथा चक्षुरोगवर्द्धक।

ज्योतिषमें रौद्रके ७ नाम देखनेमें आते हैं, जैसे—जठर, पिङ्गल, रौद्र, घोराख्य, कालसंज्ञित, अग्निनामा और हत।

प्रतिवर्ष एक एक रौद्र अधिपति होता है। जिस प्रकार राजा, मन्त्री आदि प्रतिवर्ष एक एक होता है उसी प्रकार इन सात रौद्रोंमेंसे एक एक हुआ करता है। किस वर्षमें कौन रौद्र अधिपति होगा, गणना द्वारा उसका स्थिर करना होता है।

"जठरः पिङ्गलो रौद्रो घोराख्यः कालसंज्ञितः।
अग्निनामा हतो रौद्रः सप्त रौद्राः प्रकीर्त्तिता॥"
(ज्योतिष)

किसी किसी ग्रन्थमें 'हत' इस नामकी जगह 'प्राणदाह' नाम लिखा है।

इस रौद्रका फल इस प्रकार लिखा है,—जिस वर्ष पिङ्गल रौद्र होता है उस वर्षमें प्रजाक्षय, अनेक रोगों और सब जीवोंकी उत्पत्ति होती है। जठर रौद्र होनेसे प्राणादि पित्तरोग और मानवको तरह तरहका क्लेश; अग्नि नामक रौद्र होनेसे उत्ताप द्वारा पृथ्वी शुष्का तथा, जीवोंको नाना प्रकारका रोग; रौद्र नामक रौद्रमें चित्तोद्वेग नाना रोग और व्रणादि पीड़ा; घोर नामक रौद्रमें अतिशय उत्ताप तथा बहुविध रोग; काल नामक रौद्रमें उत्तापसे सभी जीव पीड़ित तथा व्रणादि नाना प्रकारका रोग होता है। (ज्योतिष)

३ हेमन्त ऋतु। ४ यम। ५ कार्त्तिकेय। ६ बृहस्पतिके ६० संवत्सरोंमेंसे ५४वां वर्ष। ७ केतुभेद। ८ अपदेवताभेद। इस अर्थमें रौद्र शब्द बहुवचनान्त है। ९ जातिविशेष। १० आर्द्रा नक्षत्र। इसका अधिष्ठात्री देवता रुद्र है। इस कारण आर्द्राका रौद्र नाम हुआ है। ११ सामभेद। १२ लिङ्गभेद। (त्रि०) रुद्र-अण्। १३ तीव्र, तेज। १४ भीषण, खौफनाक। १५ रुद्रसम्बन्धी। १६ रुद्रका उपासक।

रौद्रक (सं० क्ली०) रुद्रेण कृतं रुद्र-(कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति वुञ्। रुद्र द्वारा किया हुआ।

रौद्रकर्म्मन् (सं० त्रि०) रौद्रं कर्म यस्य। १ भीषण कर्मा, भयंकर काम करनेवाला। (क्ली०) २ भीषण कर्म, भयंकर काम।

रौद्रकेतु (सं० पु०) आकाशके पूर्व-दक्षिण मार्गमें शूलके अग्रभागके समान कपिश या कपासी, रुक्ष या रूखा ताम्रवर्ण किरणोंसे युक्त और आकाशके तीन भाग तकमें गमन करनेवाला एक केतु।

रौद्रगण (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार एक गणका नाम। इस गणमें जन्म लेनेसे वह व्यक्ति पापिष्ठ होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

रौद्रता (सं० स्त्री०, रौद्रस्य भावः तल-टाप्। १ रौद्रत्व, भयङ्करता, डरावनापन। २ प्रचण्डता, प्रखरता।

रौद्रदर्शन (सं० त्रि०) रौद्रं दर्शनं यस्य। भीषण आकृति और चेष्टावाला, भयंकर रूपका।

रौद्रध्यानी—जैनसम्प्रदायभेद। (स्थविरा० १।७८)

रौद्रपाद (सं० क्ली०) रौद्रस्य नक्षत्रविशेषस्य पादं। आर्द्रा नक्षत्रका पादभेद।

रौद्रमनस् (सं० त्रि०) रौद्रं मनोयस्य। भयानक मनोयुक्त निष्ठुर चित्तवाला, क्रूर।

रौद्राग्न (सं० त्रि०) रुद्र और अग्निसम्बन्धीय।

रौद्रायण (सं० पु०) रुद्रके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौद्रार्क (सं० पु०) २३ मात्राओंके छंदोंकी संज्ञा जो कुल मिला कर ४६३६८ हो सकते हैं।

रौद्राश्व (सं० पु०) पुरुषपुत्र और उसके वंशके एक राजा।

रौद्रि (सं० पु०) रुद्रके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौद्री (सं० स्त्री०) रौद्र-ङीप्। १ रुद्रकी पत्नी, चण्डी। महामाया चामुण्डादेवीने रुद्र नामक महादैत्यका संहार किया था, इसीसे ये महारौद्री नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। (वराहपु० त्रिशक्तिमा०)

२ गान्धारस्वरकी दो श्रुतियोंमेंसे पहली श्रुति।

रौद्रीभाव (सं० पु०) रुद्रका धर्म।

रौध (सं० पु०) रौधस्यापत्यं रौध (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति ण् अ। रौधका अपत्य।

रौधादिक (सं० त्रि०) रुधादिगण सम्बन्धीय।

रौधिर (सं० त्रि०) रुधिर-अण्। रुधिरसम्बन्धीय।

रौनक (अ० स्त्री०) १ वर्ण और आकृति, रूप। २ प्रफुल्लता, विकाश। ३ शोभा, छटा, चहल-पहल। ४ दीप्ति, चमक-दमक।

रौप्य (सं० क्ली०) रूप्यमेव अण्। रूप्य, चांदी। यह एक खनिज पदार्थ है तथा अष्टधातुओंमें गिना जाता है। इस धातुसे नाना प्रकारके अलङ्कार और औषधादि बनते हैं। स्नायविक दुर्बलताजनित रोगमें आयुर्वेद मतसे स्वर्ण वा लौहके योगसे रौप्यघटित औषध प्रयोगकी विधि है। डाकृर एमार्सन उस औषधकी उपकारिताके सम्बन्धमें प्रशंसा कर गये हैं।

क्या प्राच्य क्या प्रतीच्य जगत्‌में बहुत पहलेसे रौप्यका आदर और व्यवहार चला आता है। वैदिक ब्राह्मणादि युगमें भी ऋषिगण सोने और चांदीका व्यवहार जानते थे। पुराणादि और मन्वादि स्मृतिमें चांदीका उल्लेख देखनेमें आता है। स्मृतिकारोंने ब्राह्मणके पक्षमें शूद्रसे रौप्यदान ग्रहणकी व्यवस्था दी है। इस दानसे वे पतित नहीं हो सकते। ये सब रत्न उस समय ब्राह्मणगण देवसेवाके लिये निर्दिष्ट रखते थे।

विशेष विवरण चांदी शब्दमें देखो।

रौप्यगिरि—प्राचीन विदेह राजाके अन्तर्गत एक शैल।

रौप्यमय (सं० त्रि०) रौप्य-स्वरूपे मयट्। रौप्यस्वरूप, चांदीका।

रौप्यमुद्रा (सं० स्त्री०) रौप्यधातुसे प्रस्तुत राजचिह्नाङ्कित रौप्यचक्र वा चतुष्कोण खण्ड, चांदीका सिक्का, रुपया (Silver Coinage) अंगरेजोंके शासनकालमें आज कल जिस प्रकार रौप्यमुद्रा या रुपया (१६ आना वा ६४ पैसेके बराबर) प्रचलित है, मुसलमानोंके जमानेमें भी उस प्रकार सिक्का प्रचलित था, लेकिन उसका परिमाण आज कलके समान न था। प्राचीन हिन्दूराजाओंके समय नाना प्रकारकी स्वर्ण और रौप्यमुद्रा प्रचलित थी। भारतवर्षमें विभिन्न राजाओंके अधिकारमें छेनीसे कटी हुई या सांचेमें ढलाई जो सब मुद्रा प्रचलित हुई थी उनमें कुछ न कुछ खाद अवश्य मिली रहती थी। १८६८ ई०में सर्जन मेजर सेकल्टन (Surgeon major Sheklton) एक पत्रिकामें १०२ प्रकारकी स्वर्ण मुहर, ३२ प्रकार हूण वा पगोडा, १ प्रकार अर्द्ध पगोडा, २४ प्रकार सोनेका फानम (परिमाण २.६से ५.६ ग्रेन) और २१ प्रकार वैदेशिक स्वर्णमुद्रा तथा रौप्यके मध्य ४५६ प्रकारके रुपये, २३ प्रकारकी अठन्नी, ६ प्रकारके फानम और १ दमड़ी सिक्केकी खादका पार्थक्य निर्देश कर गये हैं।

अबुल फजलकी लेखनीसे मालूम होता है, कि १५४२ ई०में हुमायूंसे दिल्लीका सिंहासन छीन कर शेरशाहने पहले पहल अपने नाम पर सिक्का चलाया था। उस शेरशाही मुद्राकी एक पीठ पर इस्लाम-धर्मका निशाना और दूसरी पीठ पर पारसी भाषामें शेरशाहका नाम लिखा था। उसके पहले भारतवर्षमें अरबदेशीय चांदीका दरहाम, स्वर्ण; दिनार और तांबेका फुलस प्रचलित था। पठान और मुगल आधिपत्य विस्तारके साथ साथ वे सब मुद्रायें भी इस देशमें लाई गईं। प्राचीन हिन्दू और शक-राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा उसी विप्लवके दिन एक तरह लोप-सी हो गई थी।

विशेष विवरण मुद्रातत्त्व शब्दमें देखो।

सम्राट् अकबरने शेरशाही सिक्केका संस्कार कर चौकोन रौप्यजलाली सिक्का चलाया। उसका वजन ११.० माशा था। उसे 'चारयारी' सिक्का भी कहते थे। क्योंकि, इसके चार कोनेमें महम्मद, आबूबकर, ओमर और ओसमानका नाम तथा किनारेमें अलीका नाम खुदा था। उस समय भारतके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न तरहका माशे भरका सिक्का प्रचलित रहनेसे मुद्राविशेषका वजन ठीक करना बड़ी ही असुविधा थी। अध्यापक कोलब्रुकने अकबरशाहके राज्यकालकी कुछ परिष्कार स्वर्ण और रौप्यमुद्राका वजन ले कर उसका औसत १५-५ ग्रेन स्थिर किया। अर्थात् एक एक विशुद्ध रौप्यमुद्रा १७४४ ग्रेनकी अकबरशाह द्वारा चलाई गई थी। जहांगीर, शाहजहां और औरङ्गजेबके समय जो सब मुद्रा चलाई गई हैं उसका वजन भी १७५ ग्रेन था। महम्मद शाहके जमानेमें सूरत, दिल्ली, अहमदाबाद और बङ्गालमें उतने ही वजनकी मुद्रा ढाली गई थी। अतएव मुगल जमानेकी अकबरी, जहांगिरी, शाहजहानी, आलमगिरी,

महम्मदशाही, अहादशाही, शाहआलमी (१७७२ ई०) मुद्रा एक-सी थी। महाराष्ट्र और अन्यान्य हिन्दू-राजाधिकृत प्रदेशोंमें मुगल-बादशाहोंके नाम रख कर स्वतन्त्र मुद्रा चलती थी। अंगरेज आधिपत्य-विस्तारके साथ साथ प्रचलित मुद्रामें भी बहुत हेरफेर हुआ। भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मुद्रा प्रचलित रहनेसे अंगरेज कम्पनीने १७९३ ई०की ३५वीं धाराके अनुसार शाहआलमके शासनकालके १९वें वर्षमें जो मुद्रा प्रचलित थी, उसीके बराबर दिल्लीकी प्राचीन मुद्रा कर ली। मुगल बादशाहोंके सूरती-मुद्राका परिमाण १७८·३१४ ग्रेन था। उसमें १७२·४ ग्रेन विशुद्ध चांदी रहनेके कारण उसका मूल्य दिल्ली मुद्राके बराबर था। पीछे १८०० ई०में १७९ ग्रेनकी सूरती मुद्रा जिसमें १६४·७४ विशुद्ध चांदी रहती थी, फिरसे ढाली गई। १८२९ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीके डिरेकृर बम्बई और मन्द्राजमें १८० ग्रेनकी मुहर और रौप्यमुद्रा ढालने लगे। १७८८ ई० तक आर्कटी रुपया १७० ग्रेन विशुद्ध चांदीका जारी था। पीछे १६६·४७७ ग्रेन विशुद्ध वा १७६·४ ग्रेनका वह रुपया तैयार होने लगा। पीछे उसका वजन १८० ग्रेन कर दिया गया।

इष्ट इण्डिया कम्पनीने कलकत्तेमें पहले पहल जो सिक्का ढलवाया था उसकी एक पीठ पर "हमि-इ-दिन-इ-महम्मद, सया-हि-फजलउल्ला सिक्का जाद बरहफत कि.सवर शाहआलम् बादशाह" और दूसरी पीठ पर 'मुर्शिदाबाद' और मुगलशाह शाहआलम बादशाहका 'सौभाग्यशाली राज्यका १९वां वर्ष' अङ्कित था। पश्चिम-भारतके फर्रुखाबाद, वाराणसी और सागर-नगरके टकसाल-घरमें जो सिक्का ढाला गया था उसकी एक पीठ पर वही नाम तथा दूसरी पीठ पर 'फर्रुखाबाद' नगर अङ्कित है। मन्द्राज और बम्बई मिन्टके रुपयेमें उस स्थानके नामका परिवर्त्तन हुआ था। १८४० ई०में अङ्कित मुद्राकी एक ओर रानी विक्टोरियाकी मुकुटहीन मूर्त्तिके दोनों बगल Queen Victoria और दूसरी ओर One Rupee लिखा हुआ है। सिपाही-विद्रोहके बाद भारतवर्ष जब अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया, तब १८६२ ई०में जो रौप्यमुद्रा प्रचलित हुई उसकी एक पीठ पर भारत-साम्राज्ञी विक्टोरियाकी मुकुट मण्डित आवक्ष मूर्त्तिके पार्श्वमें Queen Victoria और दूसरी पीठ पर One rupee India 1862 लिखा हुआ था।

पहले लिख आये हैं, कि १६ आनेका एक रुपया होता है। किन्तु चांदी वा तांबेकी आना मुद्रा (अन्नी) नहीं होती। आजकलकी तरह तांबेका आध आना या डबल पैसा, एक पैसा, आध पैसा और पाई पैसा (छदाम) ढलता था। उसकी एक ओर सिंह और युनिकरण मूर्त्ति तथा Auspicis regis at senatua Anglae और दूसरी ओर East India company Half anna दो पैसा' लिखा रहता था। उस ताम्रमुद्राका परिमाण इस प्रकार था—

डबल पैसा—२०० ग्रेन (Troy)
एक पैसा— १० " "
आध पैसा—५० " "
छदाम—३३$\frac{१}{३}$ " "

बङ्गालमें पहले जो सोनेकी मुहर प्रचलित थी, उसमें ९९। भाग सोना और ॥।० भाग खाद रहती थी। १८वीं सदीकी १४वीं धाराके अनुसार $\frac{११}{१२}$ सोना और $\frac{१}{१२}$ खाद मिलानेकी व्यवस्था हुई। पीछे १८३५ ई०की १७वीं धारासे उस खादको स्थिर कर ३० रुपये मोलकी एक डबल मुहर, १८० ग्रेन अर्थात् १५ रुपयेकी मुहर, १० रुपयेकी $\frac{२}{३}$ मुहर और ५ रुपयेके बराबर $\frac{१}{३}$ मुहर ढाली जाने लगी थी। १८७० ई०की २३वीं मुद्राधारा (Indian coinage act xxiii of 1870) राजविधिरूपमें गृहीत हो कर उसी प्रकारकी मुहर ढलने लगी। केवल डबल मुहरका मूल्य ३२ रुपया कर दिया गया। मुद्राका परिमाण मुहरसे दूना अर्थात् ३६० ग्रेन और ९१६·६६६ कस (Touch) था। मुर्शिदाबादमें जो अशर्फी प्रचलित थी उसका परिमाण १९०·८९५ ग्रेन (Troy) था। सिन्दे और होलकर-राज प्राचीन उज्जयिनीमें रौप्यमुद्रा चलाते थे। हैदराबादमें आसफ-जाही राजवंशके समय सामसिरोय और हाली सिक्का

तथा तांबेका ढबुआ एवं तिर्वांकुरमें फानम और चकम् सिक्का चलता था।

रौप्यायण (सं० पु०) रुप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौप्यायणि (सं० पु०) रुप्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम (सं० क्ली०) रुमायां लवणाकरे भवं, रुमा अण्। शाम्भरिलवण, सांभर नमक।

रौमक (सं० क्ली०) शाम्भरिलवण, साँभर नमक। रुम नदीसे यह नमक उत्पन्न होता है, इसलिये इसे रौमक कहते हैं। (भावप्र०)

रौमकीय (सं० त्रि०) रोमक चतुर्षु अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमदेशका रहनेवाला। २ रोमप्रदेश। ३ रोमकदेशके पास। ४ रोमकदेशसे निवृत्त।

रौमण्य (सं० त्रि०) रौमण देशका रहनेवाला या रोमनदेशमें उत्पन्न। (पा ४।२।८०)

रौमलवण (सं० क्ली०) रौम-लवणमिति। शाम्भरिलवण, साँभर नमक।

रौमशीय (सं० त्रि०) रोमश चतुर्षु अर्थेषु (कृशाश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति छण्। १ रोमश देशवासी। २ रोमशमें उत्पन्न। ३ रोमशदेशके पास। ४ रोमशदेशसे निवृत्त।

रौमहर्षणक (सं० त्रि०) रोमहर्षणसंयुक्त।

रौमहर्षणि (सं० पु०) रोमहर्षण ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौम्यायण (सं० पु०) महादेव। (महाभारत १३।१७) बहुवचनका प्रयोग करनेसे अग्निका अनुचर अपदेवता समझा जाता है।

रौरव (सं० पु०) रुरुर्जन्तुविशेषस्तस्यायमिति रुरु-अण्। १ नरकविशेष, रौरव नरक। इस नरकका नाम इक्कीस नरकोंमेंसे पांचवां कहा गया है। यह दो हजार योजन विस्तृत है। यह नरक बड़ा भयानक है। जो कूटसाक्षी तथा मिथ्यावादी हैं वही इस नरकका भोग करते हैं। (मार्कपु० पितापुत्रनामाध्याय) नरक शब्द देखो।

(त्रि०) २ चञ्चल, बात पर दृढ़ न रहनेवाला। ३ धूर्त्त, बेईमान, कपटी। ४ घोर, भयंकर। ५ रुरु मृगसम्बन्धी। (मनु ३।४१) (क्ली०) ६ साममेद। (ऐत०ब्रा० ३।१७)

रौरव—शैवधर्मप्रवर्त्तक एक आचार्य। अभिनवगुप्तने इनका नामोल्लेख किया है।

रौरवक (सं० क्ली०) रुरुणा कृतं (कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति रुरु-वुञ्। रुरु द्वारा कृत।

रौरुकिन् (सं० पु०) रुरुक प्रवर्त्तित सम्प्रदायभेद।

रौला (हिं० पु०) १ हल्ला, शोर। २ ऊधम, हलचल।

रौशन (फा० वि०) रोशन देखो।

रौशनदान (फा० पु०) रोशनदान देखो।

रौशनी (फा० स्त्री०) रोशनी देखो।

रौशर्म्मन् (सं० पु०) आतङ्कदर्पणके प्रणेता वाचस्पतिके भाई और प्रमोदके पुत्र। ये एक अद्वितीय पण्डित थे।

रौस (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ बागकी पटरी, बागकी क्यारियोंके बीचका मार्ग। ३ रंग ढंग, तौर तरीका।

रौंसली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिकनी उपजाऊ मिट्टी, डाकर।

रौंसा (हिं० पु०) रौंसा देखो।

रौहाल (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी एक चाल। २ घोड़ेकी एक जाति।

रौहिक (सं० त्रि०) रुह इव (अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्। पा ५।३।१०८) इति इवार्थे ठक्। रुहके समान।

रौहिण (सं० क्ली०) रोहिणमेव स्वार्थे अण्। दिनमानका नवममुहूर्त्त। एकोद्दिष्टश्राद्धमें पूर्वाह्नको एकोद्दिष्टश्राद्ध आरम्भ करके रौहिणकालका लङ्घन नहीं करना चाहिये। अर्थात् उतने समयके भीतर श्राद्ध समाप्त करना होगा। यदि सङ्गवमुहूर्त्तके बाद रौहिण तक तिथिलाभ हो तथा दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त तक वह तिथि रहे, तो पूर्व दिन श्राद्ध होगा। किन्तु दोनों दिन यदि सङ्गवमुहूर्त्त लाभ हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा। (श्राद्धतत्त्व)

(पु०) रुह-इनन्-स्वार्थे अण्। २ चन्दन वृक्ष।

रौहिणक (सं० क्ली०) साममेद। (लाट्या० १।६।३५)

रौहिणायन (सं० पु०) रोहिणस्य गोत्रापत्यं (रोहिण्या अश्वादिभ्य-फञ्। पा ४।१।११०) इति अपत्यार्थे फञ्। रोहिणका गोत्रापत्य।

रौहिणि (सं० पु०) १ साममेद। २ रोहिणका गोत्रापत्य।

रौहिणेय (सं० पु०) रोहिण्या अपत्यमिति रोहिणी

(शुभ्रादि यश्च। पा ४।१।१२२) इति ढक्। १ रोहिणीके पुत्र, बलराम। (भारत १।१६२।१६) २ बुधग्रह। ३ गोवत्स, गायका बछड़ा। ४ पुरुषोत्तमस्थित पञ्च-तीर्थोंमेंसे एक तीर्थ। पुरुषोत्तम जा कर पञ्चतीर्थ करना होता है। पुरुषोत्तमस्थ पञ्चतीर्थ करनेसे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

"मार्कण्डेयेवटे कृष्णे रौहिण्येये महोदधौ।
इन्द्रद्युम्नसरःस्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥"

(तिथितत्त्व)

(क्ली०) ५ मरकत मणि, पन्ना।

रौहिणेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

रौहिण्य (सं० पु०) रोहिणका गोत्रापत्य।

रौहित (सं० त्रि०) १ रोहितमत्स्य सम्बन्धीय, रोहू मछलीका। (पु०) २ रोहित मनुके पुत्रका नाम। ३ कृष्णके एक पुत्रका नाम।

रौहितक (सं० त्रि०) रोहितकके काष्ठसे उत्पन्न।

रौहित्यायनि (सं० पु०) रौहित्यके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौहिदश्व (सं० पु०) १ वसुमनाका वंशधर। २ रोहि-दश्वके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रौहिष (सं० क्ली०) रोहतीति रुह-(रुहेर्वृद्धिश्च। उण् १।४८) इति टिषच्, धातोश्च वृद्धिः। १ कत्तृण, रौहिष नामक घास। पर्याय—देवजग्ध, सौगन्धिक, भूतीक, ध्याम, पौर, श्यामक, धूपगन्धिक। गुण—तिक्त, कटुपाक, हृद्य और कण्ठव्याधि, पित्त, अम्ल, शूल, कास और ज्वर-नाशक। (भावप्र०)

(पु०) २ मृगविशेष। ३ रोहितमत्स्य, रोहू मछली।

रौहिषी (सं० स्त्री०) रौहिष-ङीप्। १ मृगी। २ दूर्वा, दूब।

रौही (सं० स्त्री०) स्त्री मृग।

र्‍योरी (हिं० स्त्री०) रेवड़ी देखो।

ल

ल—यवर्गका तीसरा और व्यञ्जनवर्णका अट्ठाईसवाँ वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान दन्त है। इसके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं। यह अल्पप्राण है।

इसका पर्याय—चन्द्र, पूतना, पृथ्वी, माधव, शक्र, बलानुज, पिणाकीश, व्यापक, मांस, खड्गी, नाद, अमृत, देवी, लवण, वारुणीपति, शिखा, वाणी, क्रिया, माता, भामिनी, कामिनी, प्रिया, ज्वालिनी, वेगिनी, नाद, प्रद्युम्न, शोषण, हरि, विश्वात्मा, मन्द्र, बली, चेतः, मेरु, गिरि, कला और रस। (तन्त्रसार)

इसका ध्यान—

"चतुर्भुजां पीतवस्त्रां रक्तपङ्कजलोचनाम्।
सर्वदा वरदां भीमां सर्वालङ्कारभूषिताम्॥
योगीन्द्रसेवितां नित्यां योगिनी योगरूपिणीम्।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं नागहारोपशोभिताम्।
एवं ध्यात्वा लंकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जयेत्॥"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

इस प्रकार ध्यान कर लकार दश बार जपना होता है। यह लकार कुण्डलीत्रयसंयुक्त, पीतविद्युल्लताकार, सर्वरत्नप्रदायक, पञ्चदेव और पञ्चप्राणमय, त्रिशक्ति और त्रिविन्दुमय है। आत्मादि तत्त्वके साथ इस वर्णकी हृदयदेशमें भावना करनी होती है।

"लकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीत्रयसंयुतम्।
पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम्॥
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा।
आत्मादितत्त्वसहितं हृदि भावय पार्वति॥" (कामधेनुत०)

मातृकान्यासमें इस वर्णका ककुद्‌देशमें न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे विपत्ति होती है।

लंकलाट (अं० पु०) एक प्रकारका मोटा बढ़ियां कपड़ा। यह प्रायः धुला हुआ होता है।

लंकाल (हिं० पु०) सिंह, शेर।

लंकोई (हिं० स्त्री०) लङ्कोदक देखो।

लंग (फा० स्त्री०) १ लांग देखो। (पु०) २ लंगड़ापन।

लंगड़ (फा० वि०) लँगड़ा देखो। (पु०) २ लंगर देखो।

लँगड़ा (हिं० वि०) १ जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हो। २ जिसका एक पाया टूटा हो। (पु०) ३ एक प्रकारका बहुत बढ़िया कलमी आम। यह प्रायः बनारसमें होता है।

लँगड़ाना (हिं० क्रि०) चलनेमें दोनों या चारों पैरोंका ठीक ठीक और बराबर न बैठना बल्कि किसी एक पैरका कुछ रुक या दब कर पड़ना, लंग करते हुए चलना।

लँगड़ी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका छन्द। (वि०) २ बली, जोरावर। ३ जिस स्त्रीका एक पैर बेकाम या टूटा हो।

लंगर (फा० पु०) १ लोहेका बना हुआ एक प्रकारका बहुत बड़ा कांटा। इस कांटेके बीचमें एक मोटा लंबा छड़ होता है और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी झुकी हुई नुकीली शाखाएं और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है। इस कांटेका व्यवहार बड़ी बड़ी नावों या जहाजोंको जलमें किसी एक ही स्थान पर ठहराये रखनेके लिये होता है। इसके ऊपर कड़ेमें मोटा रस्सा या जंजीर आदि बांध कर इसे बीच पानीमें छोड़ देते हैं। जब यह तलमें पहुंच जाता है तब इसके टेढ़े अंकुड़े जमीनके कंकड़ पत्थरोंमें अड़ जाते हैं जिससे नाव या जहाज उसी जगह रुक जाता है और जब तक यह फिर खींच कर ऊपर नहीं उठा लिया जाता तब तक नाव या जहाज आगे नहीं बढ़ सकता। २ रस्सी या तार आदिसे बंधी और लटकती हुई कोई भारी चीज। इसका व्यवहार कई प्रकारकी कलोंमें और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदिमें होता है। ऐसा लंगर प्रायः निरन्तर एक ओरसे दूसरी ओर आता जाता रहता है। कुछ कलोंमें यह ऐसे पुरजोंका भार ठीक रखनेमें व्यवहार किया जाता है जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधर उधर हटते बढ़ते रहते हैं। बड़ी घड़ियोंमें जो लंगर होता है वह चाभी दी हुई कमानीके जोरसे एक सीधी रेखामें इधरसे उधर चलता रहता है और घड़ीकी गति ठीक रखता है। ३ जहाजोंमेंका मोटा बड़ा रस्सा। ४ लकड़ीका वह कुंदा जो किसी हरहाई गायके गलेमें रस्सी द्वारा बांध दिया जाता है। इसके बांधनेसे गाय इधर उधर भाग नहीं सकती। इसे ठेंगुर भी कहते हैं। ५ चांदीका बना हुआ तोड़ा जो पैरमें पहना जाता है। इसकी बनावट जंजीरकी-सी होती है। ६ लोहेकी मोटी और भारी जंजीर। ७ पहलवानोंका लंगोट। ८ अंडकोश। ९ किसी पदार्थके नीचेका वह भाग जो मोटा और भारी हो। १० कमरके भाग। ११ वह स्थान जहां बहुतसे लोगोंका भोजन एक साथ पकता हो। १२ कपड़ेमेंके वे टांके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं, जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा अथवा एक साथ सीए जानेवाले दो कपड़े अपने स्थानसे हट न जाय। इस प्रकारके टांके पक्की सिलाई करनेसे पहले डाले जाते हैं इसीसे इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं। १३ वह पका हुआ भोजन जो प्रायः हर रोज किसी निश्चित समय पर दीनों और दरिद्रों आदिको बांटा जाता है। १४ वह स्थान जहां दीनों और दरिद्रों आदिको बांटनेके लिये भोजन पकाया जाता है। १५ वह उभड़ी हुई रेखा जो अंडकोशके नीचेके भागसे शुरू हो कर गुदा तक जाती है, सीवन। १६ वह स्थान या व्यक्ति आदि जिसके द्वारा किसीको किसी प्रकारका आश्रय या सहारा मिलता हो। (वि०) १७ जिसमें अधिक बोझ हो, भारी। १८ नटखट, ढीठ। १९ लंगड़ा देखो।

लंगरखाना (फा० पु०) वह स्थान जहांसे दरिद्रोंको बना बनाया भोजन बांटा जाता हो।

लंगरगाह (फा० पु०) किनारे परका वह स्थान जहां लंगर डाल कर जहाज ठहराए जाते हैं।

लंगूर (हिं० पु०) १ बंदर। २ पूंछ, दुम। ३ एक विशेष प्रकारका बंदर। यह साधारण बन्दरसे बड़ा होता है और इसकी पूंछ बहुत लम्बी होती है। इसके सारे

शरीर पर सफेद रंगके रोएं होते हैं और मुंह, हाथकी हथेलियां तथा पैरके तलवे और उंगलियां आदि काली होती हैं।

लंगूरफल (हिं० पु०) नारियल।

लंगूरी (हिं० स्त्री०) १ घोड़ेकी एक चाल जिसमें वह उछल उछल कर चलता है। २ वह इनाम जो चोरोंको उस समय दिया जाता है जब वे चोरी गये हुए मवेशियों-का पता लगा देते है।

लंगूल (हिं० पु०) पूंछ, दुम।

लंगोट (हिं० पु०) कमर पर बांधनेका एक प्रकारका बना हुआ वस्त्र जिससे केवल उपस्थ ढका जाता है। यह प्रायः लंबी पट्टीके आकारका अथवा तिकोना होता है, जिसमें दोनों ओर कमर पर लपेटनेके लिये बंद लगे रहते हैं। प्रायः पहलवान लोग कुश्ती लड़ने या कसरत करनेके समय इसे पहना करते हैं। इसे रूमाली भी कहते हैं।

लंगोटा (हिं० पु०) लंगोट देखो।

लंगोटी (हिं० स्त्री०) कोपीन, कछनी।

लंठ (हिं० वि०) मूर्ख, उजड्ड।

लंड (हिं० पु०) पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय।

लंडूरा (हिं० वि०) विना पूंछका, जिसकी सब पूंछ कट गई हो।

लंतरानी (अ० स्त्री०) व्यर्थकी बड़ी बड़ी बातें, शेखी।

लंबर (हिं० पु०) नंबर देखो।

लंबरदार (हिं० पु०) नंबरदार देखो।

लंबा (हिं० वि०) जिसके दोनों छोर एक दूसरेसे बहुत अधिक दूरी पर हों, जो किसी एक ही दिशामें बहुत दूर तक चला गया हो। २ जिसकी ऊंचाई अधिक हो। ऊपरकी ओर दूर तक उठा हुआ। जैसे—लम्बा आदमी। ३ जिसका विस्तार अधिक हो, जैसे—गरमीमें दिन लंबा होता है। ४ विशाल, बड़ा।

लंबाई (हिं० स्त्री०) लंबा होनेका भाव, लंबापन।

लंबान (हिं० पु०) लंबाई।

लंबी (हिं० वि० स्त्री०) लंबाका स्त्री-लिंग रूप।

ल (सं० क्ली०) लीयतेऽनेनेति ली अभिधानान्निरूप-पदेऽपि डः। १ पृथ्वीका बीज। 'लमिति पृथ्वीबीजं' 'लं' यह मन्त्र पृथ्वीका बीज है। भूतशुद्धिकालमें इस मन्त्र द्वारा न्यास करना होता है। २ अद् धातुका अनुबन्ध-विशेष। "अदु लौ भक्षणे", यहां पर ल अनुवन्ध है अर्थात् "इत्" विशेष है, केवल अद् धातु ही समझा जायगा। ३ छन्दःशास्त्रोक्त लघु नामक गणविशेष। छन्दके लक्षणमें लकार कहनेसे एक लघुवर्ण समझा जायगा। ४ इन्द्र। ५ मेदिनी, पृथ्वी।

लकच (सं० पु०) लकुचवृक्ष, बड़हरका पेड़।

लकड़बग्घा (हिं० पु०) एक मांसहारी जङ्गली जन्तु जो भेड़ियेसे कुछ बड़ा होता है। यह कुत्तोंका मांस बहुत पसन्द करता है। इसे लग्घड़ भी कहते हैं।

लकड़हारा (हिं० वि०) जंगलसे लकड़ी तोड़ कर बेचने-वाला।

लकड़ा हिं० पु०) लकड़ीका मोटा कुंदा। लक्कड़।

लकड़ी (हिं० स्त्री०) १ पेड़का कोई स्थूल अंग जो कट कर उससे अलग हो गया हो। काठ। २ गतका। ३ छड़ी, लाठी। ईंधन, जलावन।

लकताई—बङ्गालके पार्वत्य त्रिपुराके अन्तर्गत एक गिरि-श्रेणी। पहाड़ी अधिवासियोंके देवताविशेषके नामसे ही इस पर्वतका नामकरण हुआ है। यह पार्वत्य-त्रिपुराके उत्तर क्रमागत फैल कर श्रीहट्टके समतलक्षेत्रमें मिला है। गिरिशृङ्ग थेङ्गपूई और सिमयासिया यथा-क्रम १५८१ और १५५४ फुट ऊंचा है। इस पार्वत्य भूभागमें बांस और शालका वन है। वर्त्तमान मानचित्र-में इसका लाङ्गतराई नाम लिखा है।

लकब (अ० पु०) उपाधि, खिताब।

लकलक (अ० पु०) १ लंबी गर्दनका एक जलपक्षी, ढेंक। (वि०) २ बहुत दुबला पतला।

लकवल्ली—१ महिसुर राज्यके कदूर जिलान्तर्गत एक तालुक। भूपरिमाण ५०४ वर्गमील है। ७६६ ग्राम ले कर यह उपविभाग बना है। चन्द्रकोण वा बाबाबूदन शैलमाला इस उपविभागके दक्षिणमें विस्तृत है। बाबा-बूदन पर्वत पर तमाम तथा वनमाला-समाकीर्ण जागर उपत्यकामें चायकी खेती होती है। पश्चिममें भद्रा नदी-के दोनों किनारे लकवल्ली ग्राम तक विस्तृत शाल और महोगनीका जंगल है।

२ उक्त विभागके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह

अक्षा० १३° ४२´ उ० उ० तथा देशा० ७५° ३८´ पू० भद्र-नदीके किनारे तरिकेरी रेलवे स्टेशनसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। राजा वज्रमुक राय की सुप्राचीन राजधानी रत्नपुरी इसके पास ही अवस्थित है। येदेपल्ली नगरमें विचार-सदर प्रतिष्ठित।

लकवा (अ० पु०) एक वातरोग। इसमें प्रायः चेहरा टेढ़ा हो जाता है। यह चेहरेके सिवा और और अंगोंमें भी होता है और जिस अंगमें होता है उसे बिलकुल बेकाम कर देता है। इस रोगमें शरीरके ज्ञानतन्तुओंमें एक प्रकारका विकार आ जाता है। जिससे कोई कोई अंग हिलने डोलने या अपना ठीक ठीक काम करनेके योग्य नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं।

लकसी (हिं० स्त्री०) फल आदि तोड़नेकी लग्गी। इसके ऊपरी सिरे पर लोहेका चन्द्राकार फल या एक तिरछी छोटी लकड़ी बंधी रहती है। इसी लग्गीको हाथमें ले कर ऊपरी सिरेमें बंधी हुई छोटी लकड़ी या फलकी सहायतासे ऊंचे वृक्षोंके फल आदि तोड़ते हैं।

लकाटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बिल्ली जिसके नरोंके अंडकोशोंमेंसे एक प्रकारका मुश्क निकलता है।

लकार (सं० पु०) ल-स्वरूपे कारः। लस्वरूप वर्ण, लकार यही अक्षर।

"अनुकूलां विमलाङ्गी कुलजां कुशलां सुशीलसम्पन्नां।
पञ्चलकारां भार्यां पुरुषः पुण्योदयाल्लभते॥" (उद्भट)

लकि—१ पञ्जाबप्रदेशके बन्नू जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १२६६ वर्गमील है। यह अक्षा० ३२° १६´ से ३२° ५१´ उ० तथा देशा० ७०° २५´ १५´´ से ७०° १८´ ४५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। कुराम और तोची-विधौत उपत्यकाका दक्षिण प्रान्त ले कर यह तहसील संगठित है। यहां मारवात नामक एक जातिका वास है। उन लोगोंको प्रधानताके कारण पार्श्ववर्त्ती स्थानवासी इसे मार्वत विभाग कहते हैं। किन्तु लकि नगरमें राज-कीय सदर प्रतिष्ठित रहनेसे सरकारी विवरणमें इसका लकि नाम रखा है।

यह स्थान बलुई है, इस कारण फसल अच्छी नहीं लगती। गम्भीला आदि पहाड़ी नदियोंके सिवा यहां जलका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं है। अधिकांश नदियोंमें वर्षाके सिवा और किसी समय जल नहीं रहता। जहां बालू कम है वहां अधिवासी एकत्र हो कर रहते हैं। वही एक एक गांव कहलाता है। वर्षाका पानी जमा रखनेके लिये ग्रामवासी बड़े बड़े गड्ढे खोद रखते हैं। पीछे वर्षाके बाद उसी पानीको खेत आदि पटानेके काममें लाते हैं। कई ग्रामोंके बीच एक तालाब रहता है, किन्तु बलुई मिट्टी रहनेके कारण वह स्थायी नहीं होता। उस समय अधिवासी एकमात्र गम्भीला नदीसे अथवा १०से १५ मील तक दूरवर्त्ती पर्वत मध्यस्थित जलस्रोत वा पुष्करिणीसे जल लाते हैं। गदहे वा बैलकी पीठ पर जलका मशक लाद स्त्रियां ही जल लाती हैं। कभी कभी वे स्वयं ही ढो कर लाती हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और मार्वत् वा लकि तहसील-का विचारसदर। यह अक्षा० ३२° ३८´ उ० तथा देशा० ७०° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरके दूसरे किनारे पूर्वतन ईशानपुर नामक नगर था। १८४४ ई०में सिख-गवर्मेण्टके राजस्व-संग्राहक फते खाँ तिवानाने यहां दुर्ग स्थापन कर एक नगर बसाया। गम्भीला नदीकी प्रबल बाढ़से नगर डूब जाने तथा कुरम गम्भीला-सङ्गमस्थ खाड़ीसे उत्पन्न मच्छड़ोंके उपद्रवसे राजकर्मचारी उस राजधानीको उठा कर दूसरे किनारे बलुई भूमि पर ले गये। यहां पहले मीनाखेल, सोयेदायखेल और सैयद-खेल नामक तीन ग्राम थे। ईशानपुरके अधिवासी भी पीछे यहां आ कर बस गये। इस प्रकार कई ग्रामोंके अधिवासियोंके एकत्र हो जानेसे यह एक समृद्धिशाली नगर बन गया। १८७४ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। तभीसे नगर बहुत साफ सुथरा है। यहां एक अस्पताल और एक वर्नाक्युलर स्कूल है।

लकि—सिन्धुप्रदेशके करांची जिलान्तर्गत गिरिश्रेणी।

लखि देखो।

लकि—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके शिकारपुर जिलेका एक नगर।

लखि देखो।

लकीर (हिं० स्त्री०) १ कलम आदिके द्वारा अथवा और किसी प्रकार बनी हुई वह सीधी आकृति जो बहुत दूर तक एक ही सीधमें चली गई हो, रेखा। २ धारी।

३ पंक्ति, सतर। ४ वह चिह्न जो दूर तक रेखाके समान बना हो।

लकुच (सं० पु०) लक्यते इति लक स्वादे बाहुलकात्। १ वृक्षविशेष, बड़हड़का पेड़। पर्याय—लिकुच, शाल, कषायी, द्रढ़वल्कल, डहु, कार्श्य, शूर, स्थूलस्कन्ध। इसका गुण—तिक्त, कषाय, उष्ण, लघु, कण्ठदोषहर, दाहजनक और मलसंग्रहकारक।

भावप्रकाशके मतसे पर्याय—क्षुद्रपनस, डहु। आमगुण—उष्ण, गुरु, विष्टम्भकर, मधुर, अम्ल, त्रिदोषवर्द्धक, रक्तकर, शुक्र और अग्निनाशक, चक्षुका अहितकर। सुपक्वगुण—मधुर, अम्ल, वायु और पित्तवर्द्धक, रुचिकर, वृष्य और विष्टम्भक। (भावप्र०) २ लकुट देखो।

लकुचग्राम—विन्ध्यपादमूलस्थ एक प्राचीन ग्राम।
(भविष्यब्रह्मख० ८।६२)

लकुट (सं० पु०) लगुड़, लाठी।

लकुट (हिं० पु०) १ एक प्रकारका वृक्ष जो मध्यम आकारका होता है। यह प्रायः सारे भारतमें पाया जाता है। इसकी डालियां टेढ़ी मेढ़ी और छाल पतली और खाकी रंगकी होती है। इसकी टहनियोंके सिरे पर गुच्छोंमें पत्ते लगते हैं। ये पत्ते अनीदार और कंगूरदार होते हैं। साथमें सफेद रंगके छोटे छोटे फूलोंके २३ गुच्छे लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो प्रायः गुलाब जामुनके समान होता है और वसन्त ऋतुमें पकता है। यह फल मीठा होता है और खाया जाता है इसे लुकाट या लखोट भी कहते हैं।

लकुटिन् (सं० त्रि०) लगुड़-हस्त, लाठी ले कर चलनेवाला।

लकुल (सं० पु०) ल अक्षरका अनुप्रासयुक्त, ल बहुल।

लकुलिन् (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

लकुल्य (सं० त्रि०) लकुल-सम्बन्धीय।

लकोड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी बकरा। इसके बालोंसे शाल, दुशाले आदि बनाये जाते हैं।

लक्क (सं० पु०) राजतरङ्गिणीवर्णित एक व्यक्तिका नाम।
(राजत० ८।४३४)

लक्कड़ (हिं० पु०) काठका बड़ा कुंदा।

लक्का (अ० पु०) एक प्रकारका कबूतर जो खूब छाती उभाड़ कर चलता है और जिसकी पूंछ पंखे-सी होती है।

लक्का कबूतर (हिं० पु०) १ नाचकी एक गत। इसमें नाचनेवाला कमरके बल इतना झुकता है, कि सिर प्रायः भूमि तक पहुंच जाता है। यह झुकाव बगलकी ओर होता है। २ लक्का देखो।

लक्खी (हिं० वि०) १ लाखके रंगका, लाखी। (पु०) २ घोड़ेकी एक जाति। ३ वह जिसके पास लाखों रुपये हों, लखपति।

लक्खीसराय—विहार और उड़ीसाके मुंगेर जिलान्तर्गत एक गांव। यह अक्षा० २५° ११´ उ० तथा देशा० ८६° ६´ पू०के मध्य, क्युल नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेकी 'कार्ड' और 'लूप' लाईन मिली है। कलकत्तेसे यह स्थान २६२ मील दूर है। यहां क्युल नदीके ऊपर एक सुन्दर पुल बना है।

लक्त (सं० त्रि०) रक्तवर्ण, लाल।

लक्तक (सं० पु०) रक्तेन रक्तवर्णेन कायतीति कै-क रस्य लत्वं, वा लक्यते हीनैरास्वाद्यते अनुभूयते लक कर्मणि क्त, ततः स्वार्थे कः। १ अलक्तक, अलता। २ जीर्ण वस्त्रखण्ड, बहुत फटा हुआ पुराना कपड़ा, चीथड़ा।

लक्तकर्मन् (सं० पु०) लक्तं रक्तवर्णं करोतीति कृ-मनिन्। रक्त वर्ण लोध्र, लाल लोध।

लक्तचन्द्र (सं० पु०) राजतरङ्गिणी वर्णित एक व्यक्तिका नाम। (राजत० ७।११७४)

लक्ष (सं० क्ली०) लक्षयतीति लक्ष अच्। १ व्याज, बहाना। २ लक्ष्य देखो। ३ पद, पैर। ४ चिह्न, निशान। ५ वह अंक जिससे एक लाखकी संख्याका ज्ञान हो। ६ अस्त्रका एक प्रकारका संहार। (त्रि०) ७ एक लाख, सौ हजार।

लक्षक (सं० क्ली०) लक्षयतीति लक्ष-ण्वुल्। १ वह शब्द जो सम्बन्ध या प्रयोजनसे अपना अर्थ सूचित करे। (त्रि०) २ वह जो लक्ष करा दे, जता देनेवाला।

लक्षण (सं० क्ली०) लक्ष्यतेऽनेनेति लक्ष-ल्युट् (यद्वा लक्षेरट् च। उण् ३।७) इति न प्रत्ययस्तस्याड़ागमश्च। १ चिह्न, निशान। २ नाम। लक्ष्यते ज्ञायतेऽनेनेति लक्षणं। जिससे

जाना जाय या जिसके द्वारा पहचाना जाय उसे लक्षण कहते हैं। यह लक्षण दो प्रकारका है, इतरभेदानुभावक और व्यवहारप्रयोगक। (न्यायमत)

कृत्, तद्धित और समासका नियामक अभिधान तथा अनभिज्ञोंका अभिज्ञानसूत्रक ही लक्षण पदवाच्य है। लक्ष्यमें लक्षार्थके अभिनिवेशको लक्षण कहते हैं। समान और असमान जातीय व्यवच्छेद ही लक्षणार्थ है।

३ दर्शन। ४ सौमित्रि, लक्ष्मण। ५ सारस पक्षी। ६ सामुद्रिकके अनुसार शरीरके अंगोंमें होनेवाले कुछ विशेष चिह्न जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। ७ शरीरमें होनेवाला एक विशेष प्रकारका काला दाग जो बालकके गर्भमें रहनेके समय सूर्य वा चन्द्रग्रहण लगनेके कारण पड़ जाता है। ८ शरीरमें दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोगके सूचक हों। अंगरेजीमें इसे Symptoms कहते हैं।

लक्षणक (सं० पु०) लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो।

लक्षणज्ञ (सं० त्रि०) लक्षणं जानातीति ज्ञा-क। लक्षणवेत्ता, जो लक्षणसे जानकार हो।

लक्षणत्व (सं० क्ली०) लक्षणस्य भावः त्व। लक्षणका भाव या धर्म।

लक्षणलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षणाभेद। लक्षणा देखो।

लक्षणवत् (सं० त्रि०) लक्षणं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लक्षणविशिष्ट, लक्षणयुक्त।

लक्षणसन्निपात (सं० पु०) १ अङ्कपात। २ द्रव्य विशेषमें कोई चिह्न या निशान अंकित करना।

लक्षणा (सं० स्त्री०) लक्ष (लक्षेरट् च। उण् ३।७) इति नस्तस्याड़ागमश्च, लक्षणमस्त्यस्येति अच्, ततष्टाप्। १ हंसी। २ सारसी। ३ अप्सराविशेष। ४ शक्यसम्बन्ध। तात्पर्यकी अनुपपत्तिके कारण (तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण) शक्यार्थका जो सम्बन्ध है, उसे लक्षणा कहते हैं।

केवल शब्दार्थ ले कर अर्थबोध वा शब्दबोध करनेमें अनेक जगह तात्पर्यकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् तात्पर्यका बोध नहीं होता, इस कारण लक्षणा स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य मालूम करनेमें कोई कष्ट नहीं होता। सहजमें इस लक्षणाशक्तिके बल मालूम हो जाता है।

पहले लिखा जा चुका है, कि तात्पर्यका अर्थ ग्रहण करनेके लिये शक्यसम्बन्धका नाम लक्षणा है। अभी इसका उदाहरण देनेसे स्पष्ट हो जायगा। 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' गङ्गामें घोष रहता है, यह एक वाक्य है, गङ्गा कहनेसे प्रवाहयुक्त जलरूप समझा जाता है। प्रवाहयुक्त जलमें घोष नहीं रह सकता। आदमी जमीन पर रहता है जलमें रहना असम्भव है। अतएव यहां पर शब्दार्थकी कोई प्रतीति नहीं होती अर्थात् गङ्गामें वास करता है, इससे कोई अर्थहीन समझा गया। अतः इन सब स्थानोंमें अर्थबोधके लिये लक्षणाशक्ति स्वीकार करनी होती है। लक्षणा स्वीकार करनेसे तात्पर्य आसानीसे मालूम हो जाता है। 'गङ्गामें घोष रहता है' ऐसा वाक्य कहा गया है। जलमय गङ्गामें रहना जब असम्भव है तब क्या गङ्गाके समीप है? इसका पता लगानेसे पहले तीर देखा जाता है। अतएव गङ्गा शब्दका अर्थ लक्षणा द्वारा गङ्गातीर कहनेसे और कोई गोलमाल न रह जाता तथा इससे तात्पर्यकी भी उत्पत्ति होती है। इसलिये यहां पर तात्पर्यकी उत्पत्ति होनेके कारण शब्दबोधमें भी कोई व्याघात न पहुंचा। अतः गङ्गाके किनारे शक्यसम्बन्धरूपा लक्षणा हुई। इस प्रकार जहां जहां तात्पर्यका अर्थ ले कर अर्थ मालूम किया जायगा, वहां लक्षणा होगी।

शब्दशक्तिप्रकाशिकामें लिखा है, कि—

"जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्था निरूढाधुनिकादिकाः।
लक्षणा विविधास्ताभिर्लक्षकं स्यादनेकधा॥" (शब्दशक्ति)

शब्दशक्तिप्रकाशिकाके मतसे यह लक्षणा जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था, निरूढा और आधुनिकादिके भेदसे अनेक प्रकारकी है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि—

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणाशक्तिरर्पिता॥"

(साहित्यद० २।१३)

जहां मुख्य अर्थका बोध न हो कर तद्युक्त अर्थात् मुख्यार्थयुक्त हो रूढ़ि (प्रसिद्ध) वा प्रयोजनसिद्धिके लिये जिस शक्ति द्वारा अन्य अर्थकी प्रतीति होती है उसका नाम लक्षणा है।

शब्दके तीन प्रकारकी शक्ति है, लक्षणा, व्यञ्जना और अभिधा। इन तीनों प्रकारकी शक्ति द्वारा सभी जगह अर्थबोध होता है। अर्थबोधके लिये ये तीन प्रकारकी शक्तियां स्वीकृत हुई हैं। इन तीन प्रकारके शब्दकी शक्ति यदि स्वीकार न की जाय, तो अर्थबोध हो ही नहीं सकता। इस कारण शब्दशास्त्रविद् पण्डितोंने शब्दकी तीन प्रकारकी शक्तियां स्वीकार की है। अभिधा और व्यञ्जनाका विषय उन्हीं शब्दोंमें लिखा जा चुका है। यहां पर लक्षणाका विषय लिखा जाता है। लक्ष्यका अर्थ ही लक्षणाशक्ति द्वारा जाना जाता है। वक्ताका जो लक्ष्य है उसीको मूल वना कर जिस शक्ति द्वारा उस मूलका अर्थ जाना जाता है उसी शक्तिका नाम लक्षणा है।

(साहित्यद० २।११)

काव्यप्रकाशमें लक्षणाका लक्षण इस प्रकार लिखा गया है---मुख्यार्थमें बाधा होने पर उसका योग करनेसे प्रसिद्ध शब्द वा प्रयोजन सिद्धिके लिये जिसके द्वारा दूसरा अर्थ दिखाई देता है उसे लक्षणा कहते हैं।

(साहित्यद० २ परि०)

शब्दके सम्बन्धमें अर्पित स्वाभाविक इतर अर्थात् स्वाभाविकसे भिन्न वा ईश्वरानुद्भावित शक्तिविशेष ही लक्षणापदवाच्य है। कोई कोई कह सकते हैं, कि यह लक्षणा पण्डितों द्वारा कल्पित है, किन्तु यथार्थमें सो नहीं है। यह शक्ति स्वाभाविकी और ईश्वरानुद्भाविता है। विद्वानों द्वारा शब्दकी शक्ति कल्पित होनेसे ही वह जो ग्रहणीय होगा, सो नहीं। लक्षणा, अविद्या और व्यञ्जना यह तीन शक्ति ईश्वरानुद्भाविता है। अतएव इस शक्ति द्वारा तात्पर्यका अर्थ ग्रहण करना ही होगा, नहीं कहने से तात्पर्यका अर्थबोध कुछ भी नहीं हो सकता।

'कलिङ्गः साहसिकः' कलिङ्ग साहसिक है, यह वाक्य कहनेसे कलिङ्ग शब्द देशवाचक है। कलिङ्ग कहनेसे कलिङ्गदेश समझा जाता है। कलिङ्गदेश साहसिक है, यह अर्थ सङ्गत नहीं होता। अतएव यहां पर 'कलिङ्गदेश साहसिक' यह मुख्य अर्थमें बाधा पहुंचाता है। यहां पर कलिङ्गको योग कर कलिङ्ग शब्दसे कलिङ्गदेशवासी ऐसा अर्थ करनेसे भी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये जो अर्थ प्रतीत होता है वह अर्थ क्यों नहीं लिया जायगा। अतएव यहां पर लक्षणाशक्ति द्वारा कलिङ्ग शब्दसे कलिङ्गदेशवासी आदमी समझा जाता है तथा उस लक्षणाशक्तिके बल ही ऐसा अर्थ हो कर वक्ताका प्रयोजन सिद्ध होता है। अतएव यहां पर लक्षणा द्वारा प्रयोजन सिद्ध हुआ, इस कारण इसे प्रयोजनसिद्धिका उदाहरण समझना होगा।

रूढ़िका उदाहरण—'कर्मणि कुशलः' कर्ममें कुशल। यहां पर कुशल शब्दका मुख्य अर्थ क्या है? 'कुश' लाति इति कुशलः' जो कुश लेते हैं वही कुशल हैं। इसके सिवा कुशल शब्दका दूसरा अर्थ है दक्ष। यह अर्थ रूढ़ार्थ है। इस रूढ़ार्थ सिद्धिके लिये कुशग्रहणकारी इस मुख्य अर्थमें वाधा पहुंचा कर लक्षणाशक्ति द्वारा ही दक्ष, यह अर्थ लिया गया तथा इससे आसानीसे तात्पर्य अर्थकी भी सिद्धि हुई। कर्मविषयमें दक्ष ऐसा अर्थ होनेसे रूढ़ि वा प्रयोजन सिद्धि हो कर तात्पर्य अर्थका बोध हुआ है।

रूढ़ि और प्रयोजनकी सिद्धिके लिये लक्षणा स्वीकृत हुई है। अर्थात् लक्षणा स्वीकार नहीं करनेसे रूढ़ार्थकी सिद्धि नहीं होती और न प्रयोजनकी ही सिद्धि होती है। अतएव इन दो विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके लिये यह लक्षणा स्वीकार की गई है।

अभी रूढ़ शब्दका विषय थोड़ा गौर कर देखना चाहिये। सङ्केतयुक्त नामको रूढ़ कहते हैं। जो नाम प्रकृति प्रत्ययके अर्थानुसार प्रवृत्त नहीं होता, सभीके अर्थके अनुसार प्रवृत्त होता है अर्थात् जिसका व्युत्पत्तिसे प्राप्त अर्थ न ले कर समुदायका अर्थ लिया जाता है उसे सङ्केतयुक्त रूढ़ कहते हैं। जैसे—गो आदि शब्द। गम् धातु डोस् प्रत्यय करके गो शब्द हुआ है, गम् धातुका अर्थ गति वा जाना और डोस् प्रत्ययका अर्थकर्त्ता है। अतएव गो शब्दका व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ गमनकर्त्ता यानी जानेवाला होता है। इस अर्थके अनुसार गो शब्दका प्रयोग नहीं होता, क्योंकि ऐसा होनेसे गमनकर्त्ता मनुष्यादिमें भी गो शब्दका प्रयोग हो सकता है तथा शयन और उपवेशन अवस्थामें अर्थात् जिस अवस्थामें गमनक्रिया नहीं रहती उस अवस्थामें प्रकृत गो-में गो शब्दका प्रयोग नहीं हो सकता।

इन दोनों दोषोंका यथाक्रम दार्शनिक नाम अतिव्याप्ति और अव्याप्ति है। अतिव्याप्ति—अतिशय सम्बन्ध वा अतिरिक्त सम्बन्ध। सम्बन्धयोग्य स्थलको अतिक्रम कर अर्थात् जिसके साथ सम्बन्ध होना उचित है उसके साथ न हो कर दूसरेके साथ होनेसे अतिव्याप्ति-दोष होता है। सम्बन्ध योग्य स्थलको अतिक्रम करना, ऐसा कहनेसे यह न समझना होगा, कि सम्बन्धयोग्य स्थलमें बिलकुल सम्बन्ध रहेगा ही नहीं। सम्बन्धयोग्य स्थलमें सम्बन्ध रह कर भी यदि सम्बन्धके अयोग्य स्थलमें सम्बन्ध हो, तो अतिव्याप्तिदोष हुआ करता है।

उक्त स्थलमें व्युत्पत्तिके अनुसार गमनशील गो पशुमें गो शब्दका प्रयोग होनेमें कोई भी बाधा नहीं होती, फिर गमनशील मनुष्यादिमें भी गो शब्दका प्रयोग हो सकता है। गमनशील मनुष्यादि गोशब्दका सम्बन्धयोग्य स्थल नहीं है। इस अयोग्य स्थलमें सम्बन्ध होनेके कारण अतिव्याप्तिदोष होता है।

अव्याप्ति शब्दसे असम्बन्ध समझा जाता है। किसी अर्थके साथ शब्दका सम्बन्ध न रहेगा यह असम्भव है। अतएव जहां पर सम्बन्ध रहना उचित है वहां सम्बन्ध नहीं रहनेसे ही असम्बन्ध सम्बन्ध समझना होगा। जैसे शयान वा उपविष्ट गो पशु भी गो है, उस अवस्थामें भी उसके साथ गो शब्दका सम्बन्ध रहना उचित है. परन्तु गो शब्दके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थके अनुसार शयनादि अवस्थामें गो पशुके साथ गो सम्बन्ध नहीं रह सकता इस कारण अव्याप्तिदोष होता है। गो शब्दको यौगिक कहनेसे उक्त प्रकारका अतिव्याप्ति और अव्याप्तिदोष होता है। अतएव गो शब्द यौगिक नहीं रूढ़ है।

कोई कोई प्रत्यय क्रिया करने योग्य तक समझा जाता है सही, किन्तु सभी प्रत्यय नहीं। साधारणतः क्रिया कर्त्ता ही समझा जाता है। यहां पर डोस् प्रत्ययका अर्थ क्रियाकर्त्ता है। इसलिये अव्याप्तिदोष होता है। क्रिया करने योग्य तक ही डोस् प्रत्ययका अर्थ है, यह यदि मान लिया जाय, तो प्रश्न यह हो सकता है, कि पाचक व्यक्ति जिस समय पाक नहीं करता उस समय भी उसे पाचक कहते हैं। क्योंकि, उस समय पाक नहीं करनेसे भी उसमें पाक करनेकी योग्यता है। इसी प्रकार शयान वा उपविष्ट गो पशु, उस समय यद्यपि गमन नहीं करता, तो भी गमन करनेकी योग्यता उसमें है। इस कारण शयनादिकालमें भी गो शब्दका प्रयोग हो सकता है। सुतरां गो शब्दके यौगिक होने पर भी अव्याप्तिदोष नहीं होता। इसके उत्तरमें यही कहना है, कि उक्त प्रकारसे थोड़ा बहुत अव्याप्ति दोषका परिहार भले ही हो सकता है, पर अतिव्याप्तिदोषका परिहार तो किसी हालतसे नहीं हो सकता। अतएव गो शब्दको रूढ़ मानना होगा।

गमनकर्त्ता यह अवयवार्थ (गमधातु और डोस् प्रत्ययका अर्थ) गोशब्दका व्युत्पत्ति निमित्तमात्र है; किन्तु प्रवृत्तिनिमित्त नहीं। गोशब्दका प्रवृत्तिनिमित्त गोत्वजाति है। जिस अर्थका अवलम्बन कर शब्द व्युत्पन्न होता है वा शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार जो अर्थ पाया जाता है उसे व्युत्पत्तिनिमित्त तथा जिस अर्थका अवलम्बन कर शब्दकी प्रवृत्ति अर्थात् प्रयोग होता है उसे प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं। अतएव गोत्वजाति वा गोत्वजातिविशिष्ट व्यक्तिमें गो शब्दका प्रयोग होता है, इस कारण उस अर्थमें गो शब्दका सङ्केत स्वीकार किया गया है। वह सङ्केत गो इस वर्णावलीगत गो शब्दका घटक है, गम् धातु वा डोस् प्रत्ययगत नहीं। पाचक शब्द यौगिकरूढ़ नहीं है। क्योंकि, पाचक उस वर्णावलीके किसी अर्थविशेषमें सङ्केत नहीं है। अवयव सङ्केत अर्थात् पच् धातु वुण् प्रत्ययके सङ्केत द्वारा ही पाककर्त्तारूप अर्थकी अवगति हो सकती है। समुदायका सङ्केत स्वीकार करनेका कोई कारण नहीं। इसलिये पाचक शब्द रूढ़ नहीं, यौगिक है।

पहले जिस सङ्केतका उल्लेख किया गया है, वह सङ्केत दो प्रकारका है, आजानिक और आधुनिक। जो सङ्केत बहुत दिनोंसे चला आता है, जो नित्य है उसे आजानिक तथा जो सङ्केत अनादिकालसे नहीं चला आता, बीच बीचमें परिवर्त्तित हो गया है उसे आधुनिक कहते हैं। आजानिक सङ्केतका दूसरा नाम शक्ति और आधुनिक सङ्केतका परिभाषा है। गोगवयादि सङ्केत आजानिक तथा चैत्रमैत्रादि सङ्केत आधुनिक है। आजानिक सङ्केत शक्तिके अनुसार जो शब्द जो अर्थ

प्रतिपादन करता है, अनादिकालसे उस शब्दका उस अर्थमें प्रयोग होता है। आधुनिक सङ्केत वा परिभाषाके अनुसार जो शब्द जो अर्थ प्रतिपादन करता है, उस अर्थमें उस शब्दका अनादिकालसे प्रयोग नहीं होता। क्योंकि, आधुनिक सङ्केत वा परिभाषा व्यक्तिविशेषके इच्छानुसार परिवर्त्तित हुआ करती है। परिभाषाकी सृष्टि होनेसे पहले पारिभाषिक अर्थबोध बिलकुल असम्भव है।

रूढ़ शब्द देखो।

इस प्रकार रूढ़ शब्दकी सिद्धिके लिये लक्षणा स्वीकृत हुई है। गोशब्दसे व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ गमनशील मनुष्यादि न समझ कर गो-पशु तथा कुशल शब्दसे कुशग्राही न समझ कर दक्ष ऐसा अर्थ समझा जाता है। इस प्रकार जहां जहां रूढ़ शब्दकी सिद्धि होगी वहां लक्षणा होगी। प्रयोजन सिद्धिका विषय पहले ही लिखा जा चुका है।

साधारण भावमें लक्षणाका लक्षण कहा गया। यह लक्षणा फिर कई प्रकारकी है। साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण आदिमें इसका विषय विशेष भावमें लिखा है। उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणा आदि भेदसे भी यह लक्षणा अनेक प्रकारकी है।

वाक्यार्थमें अन्वयबोधके लिये अर्थात् वाक्यकी अर्थबोधक अन्वयसिद्धिके लिये जहां मुख्य अर्थ न ले कर दूसरा अर्थ लिया जाता है, वहीं पर यह मुख्यार्थका उपादान हेतु हुआ है, इस कारण इसको उपादानलक्षणा कहते हैं। (साहित्यद० २।१७)

जहां दूसरेकी अन्वयसिद्धिके लिये मुख्य अर्थ अपना अर्पण अर्थात् स्वार्थ परित्याग करता है वहां यह लक्षणा होती है। यह लक्षणा उपलक्षणके कारण ही हुआ करती है, इसलिये इसका नाम लक्षणलक्षणा हुआ है। यह लक्षणा सारोप्य और अध्यवसानाके भेदसे दो प्रकारकी है। (सहित्यद० २।१६)

इन सब लक्षणोंका भेद शब्द और शब्दार्थ ले कर आलोचित हुआ है। शब्द और शब्दशक्ति देखो।

लक्षणादोन—१ मध्यप्रदेशके सिवनी जिलेका एक तहसील। भूपरिमाण १५८३ वर्गमील है। २ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

लक्षणालौह (सं० क्ली०) औषध-विशेष। इसके बनानेकी तरकीब—लक्षणमूल, हस्तिकर्ण पलाशमूल, त्रिकटु, त्रिफला, विडंग, चितामूल, मुता, अश्वगन्धामूल प्रत्येक १ तोला, लौह १२ तोला, इन सबको अच्छी तरह मर्द्दन कर यह औषध तैयार करे। इसका अनुपान घी और मधु है। औषध सेवन करने बाद चीनीके साथ दूध पीना चाहिए। यह औषध बलकर है। इसका व्यवहार करनेसे स्त्रियोंके कन्याप्रसव निवृत्त हो कर पुत्रप्रसव होता है। वाजीकरणाधिकारमें यह एक उत्तम औषध है।

(भैषज्यरत्ना० वाजीकरणाधि०)

लक्षणिन् (सं० त्रि०) १ लक्षण या चिह्नयुक्त, जिसमें कोई लक्षण या चिह्न हो। २ लक्षणज्ञ, लक्षण जाननेवाला।

लक्षणीय (सं० पु०) लक्षणा द्वारा ज्ञातव्य या बोधव्य, लक्षण द्वारा जाना हुआ।

लक्षणोरु (सं० त्रि०) जंघेमें चिह्न या लक्षणयुक्त।

लक्षण्य (सं० त्रि०) १ लक्षणयुक्त, जिसमें कोई लक्षण हो। २ लक्षणार्ह, लक्षण जाननेवाला। ३ दैवशक्तिसम्पन्न आदर्श पुरुष। (दिव्या० ४७४।२७)

लक्षदत्त (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

(कथासरित्सा० ५३।८)

लक्षपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम।

(ऐ० ५३।६)

लक्षसिंह (राणा)—मेवाड़के एक राणा, वीरवर हामीरके पौत्र और क्षेत्रसिंहके पुत्र। ये करीब करीब १३८३ ई०में पितृसिंहासन पर बैठे। राज्यभार ग्रहण करते ही इन्होंने पितृपुरुषोंका पदानुसरण करके विजयविलाससुखका भोग करनेके लिये पहले मारवाड़राज्यके ऊपर दृष्टि डाली। विजयगढ़का पहाड़ी दुर्ग अधिकार कर उसे तहस नहस कर डाला तथा अपनी विजयकीर्त्तिके अक्षयस्तम्भ-स्वरूप उसके ऊपर बेद्नोर-दुर्ग बनवाया। इस समय उनके अधिकृत भील प्रदेशके अन्तर्गत जावुरा नामक स्थानमें चांदी और टीनकी खान निकली। उस खानसे चांदी निकाल कर इन्होंने राज्यका समृद्धिगौरव सौ गुना बढ़ा दिया था।

अनन्तर राणा लक्षने अम्बर राज्यके अन्तर्गत नगरा-

चलनिवासी शाङ्कल राजपूतोंको पराजित और वशीभूत किया था। सम्राट् महम्मद शाह लोदीने इस समय जब राजपूताने पर आक्रमण कर दिया, तब राणा उसके विरुद्ध खड़े हो गये। बेदनौर-दुर्गके सामने मुसलमान-सेनाके साथ राजपूतसेनाकी मुठभेड़ हुई। सैकड़ों पठान-सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। जो कुछ बच गई वह हार स्वीकार जान ले कर भागी।

लक्षके राज्यकालमें विधर्मी मुसलमानोंने हिन्दूके पवित्र तीर्थ गयाधाम पर चढ़ाई कर दी। धर्मक्षेत्र गयापुरीका मुसलमान-कवलसे उद्धार करनेकी कामनासे राणा दलबलके साथ उस ओर रवाना हुए। इस युद्धयात्राके साथ तीर्थयात्रा करना भी उनका उद्देश्य था।

बहुत दिन राज्यशासन कर जब लक्षसिंह बूढ़े हुए, तब मेवाड़के भावी राणा चण्डको जामाता वरण कर मारवाड़पति रणमल्लने विवाह प्रस्तावके साथ नारियल भेजा। उस समय चण्ड राजसभामें उपस्थित नहीं था, किसी जरूरी काममें बाहर गये हुए थे। अतएव वृद्ध राजाने कहीं रणमल्ल गुस्सा न जायें, इस भयसे नारियलको ले लिया। उस कन्याके गर्भसे मुकुलजीका जन्म हुआ। मुकुलजीने जब पांचवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब राणा उसके ऊपर प्रजा-पालनका भार सौंप कर जंगल चले गये। जितेन्द्रिय वीर चण्ड बालक मुकुलका पक्ष ले कर राजकार्य चलाने लगे।

लक्षणसिंह सनातन हिन्दूधर्मके विरुद्धाचारी इसलाम धर्मावलम्बियोंके विरुद्ध गयाधाम गये। वहीं मुसलमानोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई।

महाराणा लक्ष शिल्पोन्नतिकी बड़ी सहायता कर गये हैं। अला उद्दीनने विजातीय विद्वेषसे जिस मेवाड़राज्यको श्मशानभूमिमें परिणत कर दिया था, राणाने उस मरुभूमिमें अमरापुरी सदृश एक नगरी बसा दी। उस नगरीको सुन्दर सुन्दर सौधमाला और मन्दिरसे परिशोभित कर दिया। बहुत रुपया खर्च करके उन्होंने एक सुन्दर प्रासाद और एकेश्वरकी उपासनाके लिये एक बड़ा भजन-मन्दिर बनवाया था। वह मन्दिर आज भी विद्यमान है। स्थानीय लोगोंका जलाभाव दूर करनेके लिये उन्होंने उच्च प्राचीर परिवेष्टित कुछ दिग्गी खुदवा कर राज्यकी शोभा बढ़ाई।

राणाके अनेक सन्तान सन्तति थी। चण्ड ही सबसे बड़े थे। किन्तु उन्हें पितृसिंहासन नहीं मिला था। आज कल अगुणा, पानोर और आरावल्लीके नाना प्रान्तवासी लूणावत् और दुलावत्-वंशीय सरदार लक्षके वंशधर कहलाते हैं।

लक्षा (सं० स्त्री०) लक्षयतीति लक्ष-अच्-टाप्। लक्ष, एक लाखकी संख्या।

लक्षान्तपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लक्षि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी देखो। २ लक्ष्य देखो।

लक्षित (सं० त्रि०) लक्ष क। १ आलोचित, विचारा हुआ। २ दृष्ट, देखा हुआ। ३ अंकित, बतलाया हुआ। ४ लक्षणाश्रय, जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना हो। ५ अनुमित, अनुमानसे समझा या जाना हुआ। (पु०) ६ वह अर्थ जो शब्दकी लक्षणाशक्तिके द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षितव्य (सं० त्रि०) निर्देश्य, बतलाया हुआ।

लक्षितलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षिते लक्षणा। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षण। जहां लक्षित अर्थमें लक्षण होती है उसीको लक्षितलक्षणा कहते हैं। लक्षणा देखो।

लक्षिता (सं० स्त्री०) लक्ष क्त, स्त्रियां टाप्। परकीयान्तर्गत नायिकाभेद, वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियोंको मालूम हो जाय। यह नायिका पुंश्चलीभावनिपुण है।

उदाहरण—

"यद्भूतं तद्भूतं यद्भूयात् तदपि वा भूयात्।
यद्भवतु तद्भवतु वा विफलस्तव गोपनोपायः।" (रसमञ्जरी)

लक्षी (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त, इसके प्रत्येक चरणमें आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गंगाधर और खंजन भी कहते हैं।

लक्षीसराय—लक्खीसराय देखो।

लक्ष्णौ—युक्तप्रदेशान्तर्गत एक जिला और नगर। लखनऊ देखो।

लक्ष्मन् (सं० क्ली०) लक्षयत्यनेन लक्ष्यते इति वा लक्षमनिन्। १ चिह्न, निशान। २ प्रधान, मुख्य।

लक्ष्मण (सं० क्ली०) १ चिह्न, लक्षण। २ नाग। ३ सारस। (पु०) ४ कुरुराज दुर्योधनके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ५ श्रीविशिष्ट, जिसमें शोभा और कान्ति हो।

लक्ष्मण—रामायणोक्त एक अद्वितीय वीर और रघुकुल-तिलक श्रीरामचन्द्रके छोटे वैमात्रेय भाई। सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम सौमित्रि भी था। लङ्कायुद्धमें इन्होंने इन्द्रविजयी मेघनादको मारा था।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है, कि अत्यन्त सुलक्षण सम्पन्न होनेके कारण इनका नाम लक्ष्मण हुआ था।

"भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत॥

(अध्यात्मरामा० १।३।४५)

रामायणके बालकाण्डमें लिखा है, कि लक्ष्मण रामचन्द्रके प्राण समान थे। राम जब बैठते तब ये भी बैठते थे, जहां राम जाते, लक्ष्मण भी उनके साथ हो लेते थे, सो जाने पर पैरके समीप बैठते थे। आजन्म छायाकी तरह भाईके अनुगामी थे। रामके प्रसादके सिवा और किसी उपादेय खाद्यसे उनकी तृप्ति नहीं होती थी। राम जब घोड़े पर आखेटको निकलते, तब लक्ष्मण भी धनुषबाण हाथमें लिये उनके शरीररक्षक रूपमें पीछे पीछे चलते थे। जिस दिन विश्वामित्रके साथ राम ताड़कादि राक्षसका वध करनेके लिये निविड़ वनपथसे जा रहे थे उस दिन भी काकपक्षधर लक्ष्मण उनके साथ थे। भ्रातृ-भक्तिके विषयमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस समय वनपथसे जाते समय दोनों भाइयोंको अन्न-कष्ट होता था, इस कारण महामुनि विश्वामित्रने कष्ट दूर करनेके लिये एक मन्त्रदान किया। पीछे दोनों भाइयोंने गौतमाश्रम जा कर अहल्याका उद्धार किया अनन्तर जनक-भवनमें जा कर शिवका धनुष तोड़ा। रामने सीताका और लक्ष्मणने ऊर्मिलाका पाणिग्रहण किया। ऊर्मिलाके गर्भसे लक्ष्मणके अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए।

रामका अभिषेक-संवाद सुन कर सभी आनन्द-सागरमें गोते खाते थे, पर लक्ष्मणके चेहरे पर जरा भी प्रसन्नता न थी, वे नीरव हो कर रामकी छायाकी तरह पीछे पीछे चलते थे। राम स्वल्पभाषी भ्राताका हृदय अच्छी तरह जानते थे। अभिषेक संवादसे सुखी हो उन्होंने सबसे पहले लक्ष्मणको आलिङ्गन कर कहा, "मैं जीवन और राज्य तुम्हारे लिये ही चाहता हूं।" यह सुन कर लक्ष्मणके दोनों गाल प्रसन्नताके मारे लाल हो गये लक्ष्मण स्वल्पभाषी थे सही, पर रामके प्रति जब कोई अन्याय व्यवहार करता, तब वे क्षमा करना नहीं जानते थे। जिस दिन कैकेयीने अभिषेकव्रतोज्ज्वल-प्रफुल्ल रामचन्द्रको मृत्युतुल्य वनवासकी आज्ञा सुनाई, उस दिन रामकी मूर्त्ति हठात् वैराग्यकी श्रीसे भूषित हो उठी। लेकिन लक्ष्मणने क्रुद्ध हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनका पीछा किया था।

इस अन्याय आदेशको वे सहन न कर सके। रामचन्द्रने जिन्हें अकुण्ठित चित्तसे क्षमा कर दिया है, लक्ष्मण उन्हें क्षमा न कर सके। रामका वनवास ले कर इन्होंने कौशल्याके सामने बहुत बहस की थी। आखिर क्रुद्ध हो समस्त अयोध्यापुरीको नष्ट करना चाहा। इन्होंने रामकी कर्त्तव्यबुद्धिकी प्रशंसा नहीं की, इस गर्हित आदेशका पालन करना धर्मसङ्गत नहीं है, इस प्रकार उन्हें बार बार समझाया था।

लक्ष्मण रामके साथ वन चले। इन आत्मत्यागी देवताके लिये किसीने विलाप नहीं किया। यहां तक, कि सुमित्राने भी विदाय-कालमें पुत्रके लिये आंसू नहीं बहाया था, बल्कि दृढ़ और स्नेहार्द्र कण्ठसे लक्ष्मणको कहा था, 'पुत्र! जाओ, स्वच्छन्द मनसे वन जाओ, रामको दशरथके समान देखना, सीताको मेरे समान मानना तथा वनको अयोध्या समझना।' इस प्रकार उपदेश दे कर सुमित्राने लक्ष्मणको विदा किया था।

आरण्यजीवनमें जो कुछ कठोरता थी, उसका अधिक भाग लक्ष्मणके ऊपर था। लक्ष्मणने बड़े आह्लादपूर्वक उसे अपने शिर पर ले लिया था। पहाड़ पर पुष्पित वन्यतरुराजिसे पुष्प तोड़ कर रामचन्द्र सीताके बालोंको सजाते थे; पद्मको उठा कर सीताके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करते थे अथवा गोदावरीतीरस्थ बेतके वनमें सीताकी जांघ पर मस्तक रख कर सुखसे सोते थे। इधर मौन-संन्यासी लक्ष्मण खंतासे मट्टी खोद कर पर्णशाला बनाते थे, कभी हाथमें कुठार ले कर शाखा-प्रशाखा काटते थे, कभी भैंस और बैलका सूखा गोबर इकट्ठा कर अग्नि जलानेकी व्यवस्था करते थे। कभी शीतकालकी चांदनी रातको पद्मशोभित सरोवरसे

कलसीमें जल भर कर लाते थे। फिर कभी चित्रकूट पर्वतकी पर्णशालासे सरोवर-तट जानके पथको चिह्नित करनेके लिये ऊंची तरुशाखा पर कपड़े बांध देते थे। कभी कोमल डाभके अंकुर और वृक्षपर्णसे रामकी शय्या बना कर उनकी बाट जोहते थे। कभी वे कालिन्दी पार करनेके लिये बेड़े बनाते और उस पर सीताके बैठनेके लिये सुन्दर आसन बिछा देते थे। इन संयमी स्नेहवीरने भ्रातृसेवामें अपनी निजसत्ता खो दी थी। रामचन्द्रने पञ्चवटी जा कर लक्ष्मणसे कहा था, "इस सुन्दर तरु-राजिपूर्ण प्रदेशमें पर्णशालाके लिये एक उत्तम स्थान चुनो।' लक्ष्मणने कहा, 'आपको जो स्थान पसन्दमें आवे, वही दिखला दीजिये। सेवकके ऊपर चुननेका भार मत दीजिये।" रामचन्द्रने जब वह स्थान बता दिया, तब लक्ष्मण खंता हाथमें लिये जमीनको चौरस करने लगे।

एक दिन काले सांपोंसे भरे हुए गभीर अरण्यमें भूख और राहकी थकावटसे सीताका चेहरा उदास देख राम बहुत दुःखित हुए। वे भी दुःखमयी रातका कष्ट सह न सके। वे लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, "तुम अयोध्या लौट जाओ, शोककी अवस्थामें सान्त्वना दे कर मेरी माताओंका पालन करना।" रामकी ऐसी कातरोक्तिसे दुःखित हो लक्ष्मणने कहा, "मैं पिता, सुमित्रा, शत्रुघ्न, यहां तक कि स्वर्गको भी तुमसे बढ़ कर नहीं समझता।"

यहां एक दिन दशाननकी बहन सूर्पणखा आई और रामकी प्रेमभिखारिणी हुई। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। संयमी, जितेन्द्रिय और अनाहार-क्लिष्ट लक्ष्मणको रमणीप्रेम बिलकुल अच्छा न लगा। उन्होंने सूर्पणखाके नाक कान काट कर उसे निर्लज्जताका पुरस्कार दिया। सूर्पणखाकी प्रार्थनासे राक्षस-सेनापति खरदूषण वहां आ धमका। दोनों भाईके नुकीले तीरसे राक्षसोंका निर्मूल हुआ। सूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर दशानन दण्डकारण्य आया और सीताको हर ले गया। स्वर्ण-मृगरूपधारी मारीच रामके शरसे यमपुर सिधारा।

कबन्ध मरा, जटायु भी मरा; लक्ष्मणने समाधि-स्थल खोद कर कबन्ध और जटायुका सत्कार किया। दिन-रात उन्हें जरा भी चैन नहीं—वन आते समय इन्होंने कहा था, "देवी सीताके साथ मैं गिरिसानुदेशमें विहार करूंगा, जागरित हों या निद्रित, उनका काम मैं ही कर दूंगा, खंता, कुठार और धनुष हाथमें लिये मैं उनके साथ साथ घूमूंगा।" वनवासके शेष वर्षमें उन पर विपदका पहाड़ टूट पड़ा; रावण सीताको हर ले गया। सीताके शोकसे राम पागल हो गये। भाईका यह दारुण कष्ट देख कर लक्ष्मण भी पागलकी तरह सीताको इधर उधर खोजने लगे। रामकी आज्ञासे वे गोदावरीके किनारे उन्हें खोजने आये।

इसके बाद दनु नामक शापग्रस्त पक्षके कहनेसे राम लक्ष्मणके साथ पम्पाके किनारे सुग्रीवकी खोजमें गये। सुग्रीवने राजकुमारको आते देख हनुमान्‌को उनके पास भेजा। हनुमान्‌ने उनका परिचय पूछा और बड़े सम्मान-पूर्वक कहा, "आप दोनों भाई दिग्विजयीसे मालूम होते हैं, तब फिर आपने चीर और वल्कल क्यों धारण किया है? आपकी बड़ी बड़ी भुजा सब भूषणोंसे भूषित होने योग्य थी, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता, सो क्यों?' यह सुन कर लक्ष्मण बहुत दुःखित हुए। जो चिरदिन मौनभावसे स्नेहार्द्र हृदय वहन करते आये हैं, आज वे स्नेहके छन्द और भाषाको रोक न सके। परिचय देनेके बाद उन्होंने कहा, 'दनुके कहनेसे आज हम दोनों भाई सुग्रीवके शरणापन्न होने आये हैं। जिन रामने शरणागतोंको अकुण्ठित चित्तसे प्रचुर धन दान किया है, त्रिभुवन-विख्यात दशरथके ज्येष्ठ पुत्र मेरे गुरु वह जगत्-पूज्य रामचन्द्र आज वानराधिपतिकी शरण लेनेके लिये यहां खड़े हैं। सर्वलोक जिनका आश्रय पा कर कृतार्थ होता था, जो प्रजापुञ्जके रक्षक और पालक थे, आज वे आश्रय-भिक्षा करके सुग्रीवके निकट उपस्थित हैं। वे शोकाभिभूत और आर्त्त हैं, सुग्रीव निश्चय ही प्रसन्न हो कर उन्हें शरण देंगे।" इतना कहते-कहते लक्ष्मणका चिरनिरुद्ध अश्रु बहने लगा। वे रो कर मौन हो गये। रामकी दुरवस्था देख कर वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, उनका दृढ़ चरित्र आर्द्र और करुण हो गया।

अशोक-वनमें हनुमानसे सीताने कहा था, 'लक्ष्मण

मुझसे बढ़ कर रामके प्यारे हैं।' रावणके शेलसे विद्ध लक्ष्मण जिस दिन युद्धक्षेत्रमें मृतकल्प हो गये थे, उस दिन राम आहत शावककी जिस प्रकार व्याघ्री रक्षा करती है, उसी प्रकार छोटे भाई लक्ष्मणको अपनी गोदमें बिठा कर उसकी रक्षा करते थे:—रावणका असंख्य शर रामकी पीठको छिन्न भिन्न कर रहा था। राम उस ओर जरा भी दृष्टि न फेर कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे लक्ष्मणकी रक्षा कर रहे थे। अनन्तर वानर सेनाके लक्ष्मणकी रक्षाका भार ग्रहण करने पर वे युद्धमें प्रवृत्त हुए। रावण भाग चला। पीछे रामचन्द्रने मृतकल्प भ्राताको अति सुकोमलभावमें आलिङ्गन कर कहा, 'तुमने जिस प्रकार वनमें मेरा अनुगमन किया था, आज मैं भी उसी प्रकार यमालय तक तुम्हारा अनुगमन करूंगा। तुम्हारे बिना मैं जीवन धारण नहीं कर सकता। देश देशमें स्त्री और मित्र मिल सकता है, पर ऐसा कोई देश देखनेमें नहीं आता, जहाँ तुम्हारे समान भाई, मन्त्री और सहाय मिलता हो। भाई! उठो, आंख खोलो, मेरा दुःख देखो। जब कभी मैं पर्वत पर वा वनमें शोकार्त्त, प्रमत्त और विषण्ण होता था, तब तुम ही प्रबोध वाक्यसे मुझे सान्त्वना देते थे। अभी क्यों इस प्रकार नीरव हो गये हो?'

रामायणी युद्धमें वीरवर लक्ष्मण बलवीर्य और साहसका अच्छा परिचय दे गये हैं। सहयोगी सेनापतिके रूपमें युद्ध करनेके सिवा इन्होंने अपने भुजबलसे अतिकाय, इन्द्रजित् आदिको यमपुर भेजा था। मेघनादको मारना उसका सङ्कल्प था। चौदह वर्ष अनाहारी और जितेन्द्रि नहीं होनेसे इन्द्रजित्को कोई मार नहीं सकता, ऐसा वर था। लक्ष्मणने वनवासकालमें उस व्रतका पालन किया था। ताड़का-निधनकालमें विश्वामित्र प्रदत्त मन्त्र ही उस अनशन-क्लेशके निवारणका सहाय हुआ था।

रामके आज्ञापालनमें लक्ष्मणने कभी भी मुख नहीं मोड़ा। न्यायसङ्गत हो वा न हो, लक्ष्मण सर्वदा मौनभावसे उसका पालन कर गये हैं। राक्षसोंका विनाश कर जिस दिन रामने सीताको विपुल-सैन्यसंघर्षके मध्य हो कर पैदल आने कहा था, उस दिन सीता लज्जासे मानो मर गई थी, उनका सर्वाङ्ग कम्पित हो रहा था। लक्ष्मण यह दृश्य देख कर व्यथित हो गये, किन्तु रामके कार्यका उन्होंने प्रतिवाद नहीं किया। जब सतीत्वपरीक्षाके समय सीता अग्निमें कूद पड़नेके लिये तैयार हो गई, तब उन्होंने लक्ष्मणसे चिता बनाने कहा। लक्ष्मणने रामका अभिप्राय समझ कर सजल-नेत्रोंसे चिता बनाया, जरा भी प्रतिवाद नहीं किया। भ्रातृ स्नेहसे वे स्वीय अस्तित्वशून्य हो गये थे। सीताका उद्धार कर राम अयोध्याके राजा हुए। लक्ष्मणने भ्रातृभक्तिवशतः उनके शिर पर छत्र थामा था। वे राजकार्यमें भाईकी सहायता करते थे। कुछ दिन बाद प्रजाको जब सीताके चरित्रसम्बन्धमें संदेह हुआ, तब रामने उन्हें वनवास देनेकी सलाह दी। लक्ष्मण यह गुरुभार ले कर परमाराध्या सीतादेवीको वाल्मीकिके आश्रममें रख आये। इस समयसे लक्ष्मणकी चित्तविकृति हुई। अश्वमेध यज्ञके समय वे ही महामुनिके आश्रमसे सीतादेवीको लाने गये। सीताके पाताल-प्रवेशके बाद एक दिन कालपुरुष आ कर रामचन्द्रसे मिले। उस समय रामचन्द्रने लक्ष्मणको द्वारपाल बनाया और कहा कि मन्त्रणागृहमें किसीको घुसने न देना। अकस्मात् रोषमूर्त्ति दुर्वासा रामचन्द्रसे मिलने आये। लक्ष्मणने रामचन्द्रकी आज्ञा सुना कर उन्हें भीतर जानेसे रोका। दुर्वासा शाप देनेको तैयार हो गये। इस पर रामसे अनुमति लेनेके लिये लक्ष्मणने घरमें प्रवेश किया। प्रतिज्ञाबद्ध रामने लक्ष्मणकी निन्दा की। लक्ष्मणने सरयू-जलमें कूद कर प्राण गँवाये।

अध्यात्मरामायणमें लक्ष्मणको 'शेष' का अवतार कहा है।

लक्ष्मणके चरित्रमें आद्यन्त पुरुषकारकी महिमा देखी जाती है। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा, "जलसे निकाली हुई मछलीकी तरह मैं आपके बिना क्षण भर भी नहीं ठहर सकता।" उन्होंने वनवासकी आज्ञाको अन्याय तथा रामके पितृ-आदेश-पालनको धर्मविरुद्ध समझा था। इस पर रामने लक्ष्मणसे कहा था, 'तू क्या इस कार्यको दैवशक्तिका फल नहीं समझता। आरब्ध कार्यका नष्ट कर यदि किसी असंकल्पित पथसे कार्यप्रवाह बदल

जाय, तो उसे दैवका कर्म समझना चाहिये। देखो, कैकेयी हमेशासे मुझे भरतके समान मानती आती थी, पर वह जो मेरी जानी दुश्मन हो गई सो क्यों? यह स्पष्ट दैवका कर्म है, इसमें मनुष्यका कोई चारा नहीं।" लक्ष्मणने उत्तरमें कहा, 'अति दीन और अशक्त व्यक्तिही दैवकी दोहाई देते हैं। पुरुषकार द्वारा जो दैवके प्रतिकूल खड़े होते, वे आपकी तरह अवसन्न न हो जाते। मृदु-व्यक्ति ही सर्वदा कष्ट भोगते हैं—"मृदुर्हि परिभूयते।" धर्म और सत्यका बहाना कर पिता जो घोर अन्याय करते हैं, वह क्या आपको मालूम नहीं? आप देवतुल्य हैं, ऋजु और दान्त हैं तथा शत्रु भी आपकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे पुत्रको किस अपराधसे वनमें भगा रहे हैं? आप जो धर्म करनेके लिये छटपटा रहे हैं, उस धर्मको मैं अधर्म समझा। स्त्रीके वशवर्त्ती हो कर निर-पराध पुत्रको वनवास देना—यही क्या सत्य है, क्या इसीको धर्म कहते? मैं आज ही अपने बाहुबल पर अयोध्याके सिंहासन पर बैठूंगा। देखूं तो सही, कौन मुझे रोकता? आज पुरुषकारके अंकुससे उद्दाम दैव-हस्तीको मैं अपने काबू करूंगा। जिसे आप दैवकुल बतलाते हैं, उसे आप आसानीसे प्रत्याख्यान कर सकते हैं, तब फिर किस लिये अकिञ्चित्कर दैवकी प्रशंसा कर रहे हैं?"

लक्ष्मण दृढ़, पुरुषोचित और विपद्में निर्भीक थे। विपद् पड़ने पर वे हताश नहीं होते थे। विराध राक्षस-के हाथमें सीताको निःसहायभावमें पतित देख "हाय, आज माता कैकेयीकी आशा पूरी हुई" ऐसा कह कर रामचन्द्र अवसन्न हो गये थे। लक्ष्मणने भाईको उस अवस्थामें देख क्रुद्ध सर्पकी तरह निश्वास छोड़ कर कहा, 'इन्द्रके समान पराक्रमी हो कर आप क्यों अनाथ-की तरह परिताप कर रहे हैं! आइये, हम लोग दुष्ट राक्षसका वध करें।'

शेलविद्ध लक्ष्मणने पुनर्जीवन लाभ कर जब देखा, कि राम उनके शोकसे अधीर हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्त्रियोंकी तरह विलाप कर रहे हैं, तब उसी कातर अवस्थामें लक्ष्मणने इस प्रकार पौरुषहीन मोहप्राप्तिके लिये रामका तिरस्कार किया था। विरहकी अवस्थामें रामकी एकान्त विह्वलता देख उन्होंने व्यथित चित्तसे 'आप उत्साहशून्य न होवें' 'आपको इस प्रकार दुर्बलता दिखाना उचित नहीं' 'पुरुषकार अवलम्बन कीजिये' इत्यादि प्रकार उपदेश दे कर रामसे कहा था, "देवताओंके अमृतलाभकी तरह बहु-तपस्या कृच्छ्र साधन करके महा-राज दशरथने आपको पाया था। यह सब मैंने भरतके मुखसे सुनी है—आप तपस्याके फलस्वरूप हैं। यदि विपद्में पड़ कर आप जैसे धर्मात्मा सह्य न कर सकें, तो साधारण आदमी किस प्रकार सह्य करेगा?"

राम जानते हों वा न जानते हों, जिस किसीने अन्याय किया है, लक्ष्मणने उसे क्षमा न की, यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। दशरथकी गुणराशि उन्हें अच्छी तरह मालूम थी, क्रोधकी उत्तेजनासे वे चाहे जो कुछ कहें, पर दशरथ पुत्रशोकसे प्राणत्याग करेंगे, इसका भी उन्हें पहले ही अनुमान हो चुका था। फिर भी वे दशरथको फटकारनेसे बाज नहीं आये। सुमन्त्रने विदाय कालमें जब लक्ष्मणसे पूछा, 'कुमार! पितासे कुछ कहना भी है?" इस पर लक्ष्मण बोले, 'राजासे कहना, उन्होंने रामको क्यों वन भेजा, निरपराध ज्येष्ठ पुत्रका क्यों परित्याग किया, बहुत सोचने पर भी मुझे समझमें आया। मैं महाराजके चरित्रमें पितृत्वका कोई निदर्शन नहीं देख पाता। मेरे भ्राता, बन्धु, भर्त्ता और पिता, सभी रामचन्द्र हैं।'

भरतके प्रति उन्हें भारी संदेह था। कैकेयीके पुत्र भरत माताके भावसे अनुप्राणित होंगे, इस सम्बन्ध-में उनकी अटल धारणा थी। केवल रामके डरसे वे भरतके प्रति कठोर वाक्यका प्रयोग नहीं करते थे। किन्तु जब जराबद्ध केशकपाल अनशन कृश भरत रामके चरणोंमें लेट गये, तब लक्ष्मणका संदेह दूर हुआ और लज्जाके मारे वे मृतवत् हो गये। एक दिन शीत-कालकी रातको पाला खूब पड़ रहा था। चिड़िया अपने अपने घोंसलेमें सिकुड़ गई थीं। उसी समय भरतके लिये लक्ष्मणके प्राण रो उठे। उन्होंने रामसे कहा, 'यह तीव्र शीत सह्य कर धर्मात्मा भरत आपकी भक्तिके लिये तपस्या कर रहे हैं। राज्य, भोग, मान, विलास सबों पर लात मार कर नियताहारी भरत इस

भीषण शीतकालकी रातको जमीन पर सो रहे हैं। पारिव्रज्यका नियम पालन कर प्रतिदिन शेष रात्रिको भरत सरयूमें स्नान करते हैं। चिरसुखोचित राजकुमार उस समय किस प्रकार स्नान करते होंगे।"

इन लक्ष्मणने ही पहले भरतके प्रति इतना क्रोध दिखलाया था। किन्तु जिस दिन उन्हें समझमें आया, कि वे वन वनमें घूम कर रामकी जिस प्रकार सेवा करते हैं, अयोध्याकी महासमृद्धिके मध्य रह कर भी भरत उसी प्रकार रामकी भक्तिमें कृच्छ्र साधन कर रहे हैं। उसी दिनसे भरतके प्रति जो कुछ उनका बुरा भाव था, वह जाता रहा, उनका स्वर स्नेहार्द्र और विनम्र हो गया। किन्तु कैकेयीको उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं किया। एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा था "दशरथ जिसके स्वामी हैं, साधु भरत जिसके पुत्र हैं, वह कैकेयी ऐसी निष्ठुर क्यों हुई?"

शरत्काल उपस्थित हुआ, किन्तु सुग्रीवका कहीं पता नहीं। उसने राम द्वारा वाली मारे जाने पर प्रतिज्ञा की थी; कि वह सीताको खोजनेमें मदद देगा। लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक कहा, 'ग्राम्यसुखमें रत मूर्ख सुग्रीव उपकार पा कर प्रत्युपकारकी अवहेला करता है। इसका मजा जल्द चखाता हूं। रामने उनका क्रोध शान्त कर सुग्रीवके पास भेज दिया। सुग्रीवको अपने कर्त्तव्यकी बात याद दिला कर लक्ष्मणने उसे जो सब बातें कही थीं, उनमें क्रोधसूचक कुछ ये हैं—

"जिस पथसे वाली गया है, वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। सुग्रीव! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्यों नहीं पालन करता, क्या वालीके पथका अनुसरण करना चाहता?' किन्तु लक्ष्मणका चरित्र जान कर रामने एक 'पुनश्च' जोड़ कर लक्ष्मणको सावधान कर दिया। आज उस मिथ्यावादीका विनाश करूंगा। वालीका पुत्र अङ्गद अभी वानरोंको ले कर जानकीको खोज करेगा।

केवल बातसे ही वे सन्तुष्ट न हुए, हाथमें तीर धनुष ले कर तैयार हो गये। वानराधिपति डरसे कांपने लगा और अपने गलेमेंके विचित्र क्रीड़ामाल्यको तोड़ ताड़ कर रामचन्द्रके उद्देशसे चल दिया। ऐसे तेजस्वी युवकको तेजस्विनी सीताने जो कठोर वचन कहा था, उस वचनको उन्होंने किस प्रकार सह्य किया था, जान कर आश्चर्य हो सकता है। मारीच राक्षसने रामके स्वरका अनुकरण कर विपन्न कण्ठसे 'हा लक्ष्मण' कह कर चीत्कार किया था। सीताने व्याकुल हो कर उसी समय लक्ष्मणको रामके पास जाने कहा। लक्ष्मण रामकी आज्ञा उठा कर जानेको राजी न हुए। उन्होंने सीतासे समझा कर कहा, कि दुष्ट मारीच छल कर रहा है और कोई बात नहीं है। रामजी कुशलपूर्वक हैं। किन्तु सीताने स्वामीको विपदाशङ्कासे ज्ञानशून्य हो अश्रुपूर्ण और क्रोध भरी आंखोंसे लक्ष्मणको कहा, "तू भरतका चर है, प्रच्छन्न ज्ञातिशत्रु है, केवल मेरे लोभके लिये रामके पीछे पीछे आया है, अगर राम पर कोई विपद् पड़ी तो मैं आगमें कूद मरूंगी' यह सुन कर लक्ष्मण कुछ समय स्तम्भित और विमूढ़ हो खड़े रहे। क्रोध और लज्जासे उनके कपोल लाल हो गये। उन्होंने कहा, 'देवी! तुम मेरे निकट देवीस्वरूप हो, तुम्हारे प्रति मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियोंकी बुद्धि स्वभावतः ही भेदकारी होती है। वे विमुक्तधर्मा, क्रूरा और चपला होती हैं। तुम्हारी बात तप्तलौहशेलके सदृश मेरे कानोंमें घुस रही है,—निश्चय ही मेरी मृत्यु उपस्थित हो गई, चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" इतना कह कर लक्ष्मण वहांसे चल दिये। जानेके समय उन्होंने सीतासे कहा था, "विशालाक्षि! अभी ये सब वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें और यह लकीर जो मैं खींच देता हूं, उसे कभी पार न करना।"

लक्ष्मणका पुरुषोचित चरित्र सर्वत्र सतेज था। उनकी पौरुषदृप्त महिमा सर्वत्र अनाविल थी,—शुभ्र शेफालिकाकी तरह सुनिर्मल और सुपवित्र थी। रावण जब सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब सीताने कुछ आभूषण नीचे गिराये थे। उन आभूषणोंको सुग्रीवने संग्रह कर रखा था। उसे देख कर लक्ष्मणने कहा था, 'मैंने हार और केयूरको सीताके बदनमें कभी नहीं देखा, इसलिये उसे नहीं पहचानता हूं, केवल उनके दोनों पैरोंके नूपुरको। क्योंकि, पदवन्दना कालमें उसे अक्सर देखा करता था।" किष्किन्ध्याकी गिरिगुहास्थित राजधानीमें प्रवेश कर गिरिवासिनो रम-

णियोंके नूपुर और काञ्चीका विलासमुखर-निक्वन सुन कर लक्ष्मण लज्जित होते थे। यह लज्जा प्रकृत पौरुषकी लक्षण थी। चरित्रवान् साधुका इस प्रकार लज्जा स्वाभाविक था। जब मदविह्वलाक्षी नमिताङ्गयष्टि तारा लक्ष्मणके पास आई,—उसका विशाल श्रोणी स्खलित काञ्चीका हेमसूत्र उनके सामने मृदुतरङ्गित हो उठा, तब लक्ष्मणसे शिर झुका लिया था। इन सब गुणोंसे वे देवताके समान पूजनीय थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

लक्ष्मण—कई एक ग्रन्थकार और पण्डित। १ गुरुवंश टीकाके रचयिता। २ एक ग्रन्थकार। इन्होंने चूड़ामणि-सार, दैवज्ञविधिविलास और रमलग्रन्थ नामक तीन ग्रन्थ लिखे। ३ परमहंससंहिताके रचयिता। ४ समस्यार्णवके प्रणेता। ५ वैद्यकयोगचन्द्रिका या योगचन्द्रिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ये दत्तके पुत्र तथा नागनाथ और नारायणके शिष्य थे। ६ महाभाष्यादर्शके प्रणेता। इनके पिताका नाम था मुरारि पाठक। ७ पद्यामृत तरङ्गिणीधृत एक कवि। ८ मृच्छकटिटीकाके प्रणेता, लल्लादीक्षितके पिता और शङ्कर दीक्षितके पुत्र।

लक्ष्मण—१ एक हिन्दू-महाराज। कोसामके शिलाफलकमें यही सम्वत् उत्कीर्ण देखा जाता है। २ कच्छपघात-वंशीय एक राजा, वज्रदामनके पिता। ये १०वीं सदीके अन्तमें विद्यमान थे। ३ बङ्गालके सेनवंशीय एक राजा। ये राजा केशवसेनके पौत्र और नारायणके पुत्र थे। ऐतिहासिक अबुल फजलने नारायणको "नौजेव" नामसे और सेनवंशके शेष स्वाधीन राजा कह कर उल्लेख किया है। लक्ष्मणसेन और वङ्गदेश देखो।

लक्ष्मण आचार्य—१ चण्डाकुचपञ्चशतीके प्रणेता। २ जगन्मोहन नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ पादुका-सहस्र, विरोधपरिहार और वेदार्थविचारके प्रणेता।

लक्ष्मणकवच (सं० क्ली०) १ लक्ष्मणकी स्तुति करनेका एक स्तोत्र। २ धरणोविशेष।

लक्ष्मण कवि—कृष्णविलासचम्पूके रचयिता। २ चम्पू-रामायण युद्धकाण्डके प्रणेता।

लक्ष्मणकुण्डक (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके जयपुर राज्यके शेखावाटी जिलान्तर्गत एक नगर। जयपुर राज्यके अधीनस्थ सामन्त शीकर-वंशीय सरदार राव राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा १८०६ ई०में यह नगर बसाया गया। यह नगर दुर्ग आदिसे परिरक्षित तथा जयपुर नगरके अनुकरण पर बना है। यहां धनी महाजनोंकी कई एक सुन्दर सुन्दर अट्टालिका है।

लक्ष्मणगढ़—राजपूतानेके अलवार सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अलवार नगरसे २३ मीलकी दूरी पर दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले यह स्थान तौर नामसे परिचित था। राजा प्रतापसिंहने दुर्ग बनानेके बाद इस स्थानका नाम बदल कर लक्ष्मणगढ़ रखा। नजफ खांने इस दुर्ग पर हमला किया था।

लक्ष्मण गुप्त—काश्मीरवासी एक शैवदार्शनिक। ये उत्पल और भट्टनारायणके शिष्य थे। तथा ९५० ई०में मौजूद थे।

लक्ष्मणचन्द्र—कीरगांवके एक हिन्दू-सामन्त राजा। इनकी उपाधि राजानक थी। ये त्रिगर्त्त (जालन्धर) राज जयचन्द्रके अधीन राज्य करते थे। इनकी माता लक्ष्मणिका त्रिगर्त्त-राजपुङ्गव हृदयचन्द्रकी लड़की थीं। कीरगांवके शिववैद्यनाथ मन्दिरमें इनकी प्रशस्ति उत्कीर्ण देखी जाती है।

लक्ष्मण ठाकुर—मिथिलाके एक राजा तथा महाराज शिवसिंहके पूर्वपुरुष।

लक्ष्मणतीर्थ—पुराणोक्त एक प्राचीन तीर्थ। इस नदीके जलमें स्नान करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है। नारद-पुराण ७५ अध्यायमें इस तीर्थमाहात्म्यका वर्णन है।

यह दक्षिण-भारतमें प्रवाहित कावेरी नदीकी एक शाखा है। कुर्गराज्यमें ब्रह्मगिरिसन्निहित कुर्छिग्रामके पार्श्वदेशसे निकल कर उत्तर-पूर्वकी ओर महिसुर-राज्य होती हुई कावेरी-सङ्गममें मिली है। यहांकी नदीमें सात बांध हैं जिससे खेत पटानेमें बड़ी सुविधा हो गई है। इन सब बांधोंमें हानागोद बांध सबसे बड़ा है।

उत्पत्ति-स्थानसे कुछ दूर पर्वत पर आनेसे ब्रह्मगिरिमें एक बड़ा जलप्रपात दिखाई देता है। यही प्रपात लक्ष्मण-तीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। वहां प्रति वर्षमें हजारों आदमी स्नान करने आते हैं। जिस पथसे इस तीर्थमें आना होता है वह बड़ा ही विस्मयजनक है। पथके दक्षिण-

पार्श्वमें दुरारोह पर्वतश्रृङ्ग और वाम पार्श्वमें गभीर नदीकी खाई है। इन्हीं दोनोंके मध्यवर्त्ती पथसे यात्री जाते आते हैं। अन्यमनस्क होनेसे गिरनेकी सम्भावना है। भिक्षुक और संन्यासी राहकी बगलमें तरह तरहके रूप बना कर बैठे रहते हैं जो यात्रियोंके और भी भयके कारण हैं।

लक्ष्मणदास—श्रीसूक्तभाष्यके रचयिता।

लक्ष्मणदेव—तर्कभाषासारमञ्जरी प्रणेता माधवदेवके पिता।

लक्ष्मणदेशिक—एक प्रसिद्ध तान्त्रिक पण्डित। ये वारेन्द्र ब्राह्मण विजय आचार्य्यके पौत्र और श्रीकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनदीपदानपद्धति, कुण्डमण्डपविधि, ताराप्रदीप, शारदातिलक, शब्दार्थचिन्तामणि नामक शारदातिलकटीका और तत्त्वप्रदीप नामकी ताराप्रदीपटीका लिखी।

लक्ष्मणद्विवेदिन्—उपसर्गद्योतकत्वविचार, द्विकर्मवाद और सारसंग्रह नामक व्याकरणके प्रणेता।

लक्ष्मणनायक—एक नायक-सरदार। ये १८१० ई०में वालघाटके अन्तर्गत परशवड़ा नामक स्थानमें एक जनपद स्थापन कर गये हैं।

लक्ष्मण पण्डित—सारचन्द्रिका नामक राघवपाण्डवीय टीका और सूक्तिमुक्तावलीके रचयिता।

लक्ष्मणपति—गौरीजातकके प्रणेता।

लक्ष्मणप्रसू (सं० स्त्री०) लक्ष्मणस्य प्रसूर्जननी। सुमित्रा।

लक्ष्मणभट्ट (सं० पु०) गीतगोविन्दकी टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मणभट्ट—१ काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता चण्डिदासके एक मित्र। ग्रन्थकारने अपनी टीकामें बन्धुवरकी पंडिताईका परिचय दिया है। २ पद्यरचना और रत्नमालाके प्रणेता। ३ महाभारतकी टीकाके प्रणेता। जहां तक सम्भव है कि ये भारतभावदीपके प्रणेता नीलकण्ठके गुरु थे। ४ होलकल्पद्रुमके प्रणेता नारायणभट्टके पुत्र। इन्होंने बाघेल-सरदार राजा भावसिंह देवके आदेशानुसार उक्त ग्रन्थ संकलन किया। ५ आचाररत्न, आचारसार, गुरूशतकटिप्पण और गोत्रप्रवररत्नके रचयिता। रामकृष्णभट्टके पुत्र, नारायणभट्टके पौत्र और रामेश्वरभट्टके प्रपौत्र थे। ६ लक्ष्मणभट्टीय नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता।

लक्ष्मणमाणिक्य—बङ्गालके प्रसिद्ध बारभूञाँमेंसे एक। भुलुआमें इनकी राजधानी थी। मेघनाके पूर्ववर्त्ती अनेक परगनों पर इनका आधिपत्य था।

बङ्गालके इस भूंयावंशके प्रभाव और प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती प्रचलित हैं। उनका अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि एक दिन आदिशूर वंशीय बङ्गज कायस्थ श्रेणीमें उत्पन्न राजा विश्वम्भर राय चट्टग्रामके अन्तर्गत सीताकुण्ड तीर्थ जा रहे थे। राहमें उन्हें रात हो गई। मेघनाके एक चोरबालूके चरमें लङ्गर डाल कर रात भर वहीं रहे। स्वप्नमें राजाने देखा कि भगवान् कह रहे हैं, "तुम आज जिस स्थानमें सो रहे हो, उनके चारों ओरके स्थानों पर तुम्हारा अधिकार होगा।" प्रातःकाल होने पर उन्होंने स्वप्नको ईश्वरका आदेश ही समझ लिया। उस स्थानको जीतनेका सङ्कल्प कर वे अरुणोदयकालमें ही रवाना हुए। प्रशान्त नदीमें दिङ्‌निरूपण न कर सकनेके कारण वे इधर उधर भटकते रहे। इसी कारण राजाने उस स्थानका भुल वा भुलुआ नाम रखा।

प्रवाद है, कि १०वीं माघ अथवा १२०३ ई०में यह घटना घटी थी। इसके पहले ही महम्मद-इ-बख्तियार खिलजीने बङ्गाल पर आक्रमण कर दिया था। प्रवादवर्णित कालनिर्णयमें विश्वास नहीं होने पर भी लक्ष्मणमाणिक्यको वंशलतासे मालूम होता है, कि राजा विश्वम्भरकी ११वीं पीढ़ीमें राजा लक्ष्मणमाणिक्य उत्पन्न हुए थे। विश्वम्भरकी मृत्यु और लक्ष्मणके जन्म, दोनोंमें ३५० वर्षका अन्तर है।

इधर ऐतिहासिक प्रमाणसे भी जाना जाता है, कि १५८६ ई०में चन्द्रद्वीपपति राजा कन्दर्पनारायण जीवित थे। राजा लक्ष्मणमाणिक्य उन्हींके समसामयिक थे। कन्दर्पनारायणकी मृत्युके बाद बालक रामचन्द्रराय राजा हुए। बालक रामचन्द्रको लक्ष्मणमाणिक्य बुरी निगाहसे देखते थे। कई कारणोंसे क्रुद्ध हो उन्होंने भुलुआ पर चढ़ाई करनेके लिये जंगी जहाजोंको सजानेका हुकुम दिया। तदनुसार उनका दलबल अस्त्रशस्त्र ले कर मेघना नदीको पार कर गया और लक्ष्मणको खबर दी गई। भुलुआ-राज कोई आशङ्का न कर प्रति-

वेशी राजाके सम्बर्द्धनार्थ स्वयं उपस्थित हुए। उनके साथ एक भी सिपाही न गया था। शत्रुकी नाव पर चढ़ते ही वे वन्दीभावमें चन्द्रद्वीप लाये गये। यहां कारागृहमें रहते समय एक दिन रामचन्द्र उनसे मिले। इस समय लक्ष्मणमाणिक्यने उन्हें बुरी तरह घायल किया था। इस पर उन्होंने क्रोधसे अधीर हो लक्ष्मणके प्राण लेनेका हुकुम दे दिये। राजाका हुकुम फौरन तामिल किया गया।

लक्ष्मणमाथुर कायस्थ—लक्ष्मणोत्सव और वैद्यसर्वस्व नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ये अमरसिंहके पुत्र थे।

लक्ष्मणराजदेव—चेदीराज्यके कलचूड़ी-वंशीय एक राजा तथा केयूरवर्ष १म युवराजदेवके पुत्र। पिताके स्वर्ग सिधारने पर ६५० ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राजकन्या राहड़ासे विवाह किया था। उनकी लड़की बोन्थादेवीके साथ पश्चिम-चालुक्यराज विक्रमादित्यकी शादी हुई थी। राजदौहित्र २य तैलपने ६७३-६६७ ई० तक प्रभूत प्रतापके साथ राज्यशासन किया था।

विलहरिफलकसे मालूम होता है, कि राजा लक्ष्मणराजदेव कोशलाधिपतिको हरा कर पश्चिमप्रदेश जीतने को गये थे तथा गुजरातमें सोमेश्वरलिङ्गकी उपासना की थी।

लक्ष्मण वन्द्योपाध्याय—एक बंगाली कवि। इन्होंने सम्भवतः वशिष्ठकृत अध्यात्मरामायणका बंगलानुवाद किया था। इस रामायणकी दो सौ वर्षकी पुरानी पुस्तक मिली है।

लक्ष्मण वेदान्ताचार्य—न्यायप्रकाशिका नामकी श्रीभाष्यटीकाके रचयिता।

लक्ष्मण शास्त्री—अमरकोषव्याख्याके प्रणेता तथा विश्वेश्वर शास्त्रीके पुत्र।

लक्ष्मणसिंह—शतकोटीमण्डलके प्रणेता।

लक्ष्मणसेन—बंगालके सेनवंशीय एक राजा। ये वल्लालसेनके पुत्र थे। इनके समयमें मुसलमानी सेनाने बंगाल पर आक्रमण किया था। याज्ञवल्क्यदीपकलिकाके प्रणेता शूलपाणि, हलायुध, पशुपति, जयदेव और धोवी कविने इन्हींकी सभामें रह कर सभाको उज्ज्वल किया था। इन सब पण्डितोंके संसर्ग होनेसे आप भी एक सुकवि हो गये थे। पद्यावलीमें इनकी बनाई बहुत-सी कविता उद्धृत हुई हैं। प्राचीन ताम्रलिपिमें ये दक्षिणाब्धिविजयी थे ऐसा उल्लेख देखा जाता है। जब महम्मद-ई-वखतियारने पदार्पण किया, उस समय घूस लेनेवाले पंडितोंकी प्ररोचनासे बूढ़े राजा किस प्रकार राज्य छोड़ कर जगन्नाथ दर्शनके बहाने भाग गये यह बात किसीसे छिपी नहीं है। कुलशास्त्रमें ये कुलपद्धतिसंस्कारक नामसे विख्यात हैं।

सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मण सोमयाजिन्—सीताराम-विहारकाव्यके प्रणेता तथा ओगेंटिशङ्करके पुत्र।

लक्ष्मणस्वामी—काश्मीरके मन्दिरमें प्रतिष्ठित लक्ष्मण-मूर्त्ति। (राजत० ४।२७६)

लक्ष्मणा ((सं० स्त्री०) लक्ष्मणमस्त्यस्या इति अर्श आदित्वात् टाप्। १ श्वेतकण्टकारी। २ सारसी, सारस पक्षीकी मादा। ३ एक जड़ी जो पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदनकी सी बूंदें होती हैं। इसका कन्द सफेद होता है और वही औषधके काममें आता है। इसका संस्कृत पर्याय—लक्ष्मणाकन्द, पुत्रकन्दा, पुत्रदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपत्नी, तुलिनी, मञ्जिका, अस्रविन्दुच्छदा, पुच्छदा। गुण—मधुर, शीतल, स्त्रीवन्ध्यतानाशक, रसायन, वलकर और त्रिदोषनाशक। (राजनि०)

मद्रदेशके राजा बृहत्सेनकी कन्या। यह कृष्णजीसे ब्याही गई थी और उनकी आठ पटरानियोंमेंसे एक थी। (भागवत० १०।५८।५७) ५ दुर्योधनकी बेटीका नाम। इस कन्याका जब स्वयम्बर हुआ तब श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने इसे हर कर विवाह किया।

(भागवत० १०।६८।१)

६ जवाका पेड़। ७ मुचुकुन्दवृक्ष।

लक्ष्मणाचार्य (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

लक्ष्मण आचार्य देखो।

लक्ष्मणाजटा (सं० स्त्री०) लक्ष्मणामूल।

लक्ष्मणादित्य राजपुत्र—एक कवि। ये क्षेमेन्द्रके शिष्य थे। कविकण्ठाभरणमें इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं।

लक्ष्मणावती—बङ्गालकी प्राचीन राजधानी। इसका दूसरा नाम गौड़ था। गौड़ेश्वर महाराज लक्ष्मणसेन (दूसरेके मतसे सेनवंशीय अंतिम राजा लछमनिया) ने गौड़ राजधानीको अच्छी तरह सजा कर उसका 'लक्ष्मणावती' नाम रखा था। तत्परवर्त्ती मुसलमान ऐतिहासिक भी इस नगरका 'लखनौती' नामसे उल्लेख कर गये हैं। १२४३ ई०के कुछ बाद मिनहाजने इस नगरमें वास किया था। लक्ष्मणावतीका तोरणद्वार तथा अन्यान्य हिन्दू और मुसलमान-कीर्त्तिका निदर्शन आज भी जो गौड़राजधानीमें विद्यमान है उसका संक्षिप्त विवरण गौड़में लिखा जा चुका है। वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंके अध्यवसायसे इस प्राचीन जनपदके लुप्त इतिहासका अनेकांश वल्लालसेन और लक्ष्मणसेन आदि सेनवंशीय राजाओंके जीवन इतिहासके साथ साथ उद्घाटित होता है। उसका विस्तृत विवरण बङ्गालके इतिहासमें दिया जायगा।

गौड़, बङ्गाल और सेनराजवंश देखो।

लक्ष्मणोरु (सं० लि०) लक्ष्मणोरु देखो।

लक्ष्मण्य (सं० पु०) लक्ष्मणके पुत्र। (ऋक् ५।३३।१०)

लक्ष्मवीथी (सं० स्त्री०) लक्ष्य करनेका पथ।

लक्ष्मी (सं० स्त्री०) लक्षयति पश्यति उद्योगिनमिति लक्षि (लक्षेर्मुट् च। उण् ३।१६०) ई प्रत्ययो मुडागमश्च। विष्णुपत्नी। पर्याय—पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया, इन्दिरा, लोकमाता, क्षीराब्धितनया, रमा, जलधिजा, भार्गवी, हरिवल्लभा, दुग्धाब्धितनया, क्षीरसागरसुता। (कविकल्पलता)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लक्ष्मीका उत्पत्ति-विषय इस प्रकार लिखा है,—एक दिन नारदने नारायणसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति और पूजादिका विषय पूछा। नारायणने कहा था कि, "सृष्टिके पहले रासमण्डलस्थित परमात्मा श्रीकृष्णके वामभागसे लक्ष्मीदेवी उत्पन्न हुईं। वे अत्यन्त सुन्दरी और तप्तकाञ्चनवर्णाभा थीं। उनका अङ्ग शीतलमें सुखजनक, उष्ण और ग्रीष्मकालमें शीतल; कटिदेश क्षीण, दोनों स्तन कठिन और नितम्ब अति विशाल था। यह देवी स्थिरयौवना थीं तथा उनका वर्ण श्वेत चम्पकके समान था। मुखमण्डल शारदीय कोटि पूर्णचन्द्रकी प्रभाको भी मात करता था। दोनों नेत्र शरत्कालीन पद्मके विकसित पद्मको भी तिरस्कार करते थे। यह देवी उत्पन्न होते ही ईश्वरकी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गईं। दोनों ही मूर्त्ति रूप, वर्ण, तेज, वयस, प्रभा, यश, वस्त्र, भूषण, गुण, हास्य, दर्शन, वाक्य, मधुरस्वर और नीतिमें एक-सी थीं। उनका नाम राधिका और लक्ष्मी रखा गया। कृष्णकी वामांशसम्भूता मूर्त्ति लक्ष्मी तथा दक्षिणांशसम्भूता देवी राधिका कहलाई। राधिकाने उत्पन्न होते ही श्रीकृष्णकी कामना की। पीछे लक्ष्मीने भी कृष्णकी प्रार्थना की। श्रीकृष्णने इस प्रकार दोनोंसे प्रार्थित हो दोनोंका ही अभिलाष पूर्ण किया था। इसके बाद श्रीकृष्ण दक्षांशसे द्विभुज और वामांशसे चतुर्भुज इन दो भागोंमें विभक्त हुए। पीछे द्विभुज मूर्त्तिमें कृष्णने राधिकाको ग्रहण किया और स्वीय चतुर्भुज नारायणमूर्त्ति ले कर लक्ष्मीकी प्रार्थना पूरी की। लक्ष्मीदेवी स्निग्ध दृष्टिसे समस्त विश्व पर लक्ष्य रखती हैं, इस कारण वे महालक्ष्मी कहलाईं। इस प्रकार द्विभुज कृष्ण राधिकाकान्त तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीकान्त हुए थे।

श्रीकृष्ण राधिका और गोपियोंके साथ गोलोकमें रहे तथा चतुर्भुज नारायण लक्ष्मीदेवीके साथ वैकुण्ठमें गये। कृष्ण और नारायण दोनों ही सर्वांशमें एक-से हैं। यह लक्ष्मीदेवी शुद्धसत्त्वस्वरूपा हैं। वैकुण्ठधाम हो उनका पूर्णाधिष्ठान निर्दिष्ट है। वे प्रेमसे नारायणको आबद्ध कर सभी रमणियोंमें प्रधान हुईं। यह लक्ष्मीदेवी इन्द्रकी सम्पत्तिरूपिणी स्वर्गलक्ष्मीरूपमें, पाताल और मर्त्त्यमें राजाओंके निकट राजलक्ष्मीरूपमें, गृहिगण-गृहमें गृहलक्ष्मीरूपमें, कलांश द्वारा गृहिणी और सम्पद् रूपमें, गोगणकी प्रसूति सुरभिरूपमें, यज्ञकामिनी दक्षिणा रूपमें, क्षीरोदसागरकी कन्या रूपमें, चन्द्रसूर्यमण्डलमें, रत्नमें, फलमें, नृपपत्नीमें, दिव्य स्त्रीमें, गृहमें, समस्त शस्यमें, वस्त्रमें, परिष्कृत स्थानमें, देवप्रतिमामें, मङ्गलघटमें, माणिक्य और मुक्ता आदिमें शोभारूपमें अवस्थान करती है। जहां जहां सामान्य रूपकी भी शोभा देखनेमें आती है, वहां लक्ष्मीदेवी अवस्थित हैं, ऐसा जानना होगा। क्योंकि, लक्ष्मीदेवी ही एकमात्र शोभाकी आधार हैं। विना उनके अवस्थानके शोभा रह नहीं सकती। लक्ष्मी-

देवी जहां विराजित नहीं रहती हैं. वहां हतश्री दिखाई देती है।

लक्ष्मीदेवी पहले वैकुण्ठधाममें नारायणसे पूजी गईं। पीछे ब्रह्मा और महादेवने उनकी पूजा की। अनन्तर क्षीरोदसागरमें विष्णुने, भारतमें स्वायम्भुव मनुने, मानवेन्द्र, ऋषीन्द्र, मुनीन्द्र और साधुगृहिगणने तथा पातालमें नागोंने यथाक्रम उनका पूजन किया था। पहले ब्रह्माने भाद्रमासकी शुक्लाष्टमीसे समस्त पक्ष भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की थी। तभीसे त्रिलोकमें वह पद्धति प्रचलित है।

चैत्र, पौष और भाद्रमासके शुद्ध और मङ्गलजनक दिनमें विष्णुने उनकी पूजा की। पीछे त्रिलोकवासी भी इन तीनों महीनोंमें लक्ष्मीदेवीकी पूजा करने लगे। मनुने पौषमासके संक्रान्ति दिनमें प्राङ्गणके मध्य लक्ष्मीका पूजन किया। धीरे धीरे यह पूजन भी संसारमें प्रचलित हो गया। इसके बाद राजेन्द्र, मङ्गल, केदार, बलदेव, सुबल, ध्रुव, इन्द्र, बलि, कश्यप, दक्ष आदिने उनकी पूजा की थी।

इस प्रकार वह सर्व सम्पत्स्वरूपिणी सकल ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी सर्वदा सर्वत्र सभी लोगोंसे वन्दित और पूजित होती हैं। लक्ष्मीदेवी वैकुण्ठमें पूर्णभावमें तथा चराचर ब्रह्माण्डमें अंशभावमें विराजित हैं।

नारायणसे लक्ष्मीदेवीकी उत्पत्ति आदिका विवरण सुन कर नारदके मनमें एक महा संशय उपस्थित हुआ। यह संशय दूर करनेके लिये उन्होंने भगवान्‌से प्रश्न किया कि, लक्ष्मीदेवी रासमण्डलमें आविर्भूत हुईं, किन्तु उनका नाम सिन्धु-तनया क्यों पड़ा? समुद्र मथ कर देवताओंने किस प्रकार लक्ष्मीको पाया? आप यह संशय दूर कर कृतार्थ करें।

भगवान्‌ने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'नारद! पहले दुर्वासा मुनिके अभिशापसे जब देवराज, देवगण और मर्त्यवासी सभी श्रीभ्रष्ट हुए, तब लक्ष्मीदेवी रुष्ट हो परम दुखितान्तःकरणसे स्वर्गादिका परित्याग कर वैकुण्ठधाम गईं और महालक्ष्मीमें लीन हुईं। एक दिन देवराज इन्द्र अतिशय कामोन्मत्त भावमें रम्भाका शृङ्गार कर रहे थे। इसी समय अकस्मात् दुर्वासामुनि शङ्करकी पूजा करनेके लिये वहां जा पहुंचे। देवेन्द्रने मुनीन्द्रको देख कर ज्ञानशून्य अवस्थामें प्रणाम किया। इस पर महामुनि दुर्वासाने उन्हें आशीर्वाद दे कर पारिजातपुष्प प्रदान किया और कह दिया कि यह पुष्प सकल पापनाशक और सब प्रकारका मङ्गलनिदान है। उन्होंने यह भी कहा, कि जो भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणोंमें निवेदित यह पुष्प मस्तक पर धारण न करेगा, वह स्वगणके साथ श्रीभ्रष्ट होगा।

उस समय इन्द्र अत्यन्त कामोन्मत्त थे। उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ भी ज्ञान न था। अतएव दुर्वासाके चले जाने पर उन्होंने भ्रमवशतः वह पुष्प ऐरावतके मस्तक पर फेंक दिया। ऐरावत उस पुष्पको मस्तक पर धारण करते ही इन्द्रका परित्याग कर जंगल चला गया। इन्द्र उसी समय स्वजनोंके साथ श्रीभ्रष्ट हुए। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट होते देख रम्भा भी उन्हें छोड़ चली गई, तब इन्द्रकी नींद टूटी, वे होशमें आये।

इन्द्र बड़े दुःखित हो अमरावती गये। अमरावती जा कर उन्होंने पुरीको निरानन्दमय, शत्रुओंसे परिपूर्ण, दीनभावापन्न तथा बन्धु बान्धववर्जित देखा। पीछे दूतके मुखसे कुल वृत्तान्त सुन कर वे देवताओंके साथ ब्रह्माके निकट गये। ब्रह्माको जब कुल हाल मालूम हुआ, तब वे इन्द्रसे कहने लगे, 'देवेन्द्र! तुम मेरा प्रपौत्र हो। निरन्तर श्रीके आश्रयमें तुमने उज्ज्वल दीप्तिको धारण किया था, तुम लक्ष्मी सदृशी शचीका स्वामी हो। फिर भी तुम सर्वदा पराई स्त्रीमें फंसे रहते हो, पहले तुम गौतमके शापसे भगाङ्ग हो गया था, तिस पर भी तुमने पर-स्त्रीरमण नहीं छोड़ा। जो पर-स्त्री-रमण करता है, उसकी श्री और यश नष्ट होता है। इत्यादि प्रकारसे इन्द्रको तिरस्कार कर लोकपितामहने फिरसे कहा, 'अभी तुम भगवान् विष्णुकी आराधना करो, वे तुम्हें लक्ष्मी-प्राप्तिका उपाय बतला देंगे।'

अनन्तर इन्द्र नारायणके उद्देशसे कठोर तपस्या करने लगे। तपस्यासे प्रसन्न हो कर नारायणने लक्ष्मीको सिन्धु-कन्यारूपमें जन्म लेने कहा। पीछे लक्ष्मीके पानेके लिये देव-दानवने मिल कर समुद्र-मन्थन किया था। इस समुद्र-मन्थनसे इन्द्रने सम्पत्-स्वरूपिणी लक्ष्मीको पाया। नारायणकी आज्ञासे उनके निजांशसे

सिन्धुकन्यारूपमें लक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई थीं। समुद्रसे उत्पन्न हो कर लक्ष्मीने देव आदिको वर दिया। लक्ष्मीकी कृपासे इन्द्र राज्य और श्रीयुक्त हुए थे। उस समय सबोंने मिल कर लक्ष्मीदेवीका स्तव किया था।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ३३-३६ अ०)

लक्ष्मीचरित।

लक्ष्मी किस किस स्थानमें रहती हैं और कहां कहां नहीं रहती हैं उसका विषय पुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—यह लक्ष्मीचरित परम-पवित्र है। जो भक्तिपूर्वक उसे सुनते हैं उनका दुःख दूर होता है। लक्ष्मीदेवी जब समुद्रसे उत्पन्न हुई, तब अङ्गिरा, मरीचि आदि ऋषियोंने उनका पूजन और स्तव कर कहा था, 'मातः! आप देवताओंके घर और मर्त्यलोक जाइये। जगज्जननी लक्ष्मीने देवताओंसे यह वचन सुन कर उन्हें कहा, 'मैं ब्राह्मणोंकी सलाहसे देवताओंके घर और मर्त्यलोकमें अवश्य जाऊंगी। हे मुनीन्द्रगण! भारतवर्षमें मैं जिनके घर जाऊंगी सो ध्यान दे कर सुनो।

मैं पुण्यवान् सुनीतिज्ञ गृहस्थ और राजाओंके घर स्थिरभावमें रह कर उन्हें पुत्रके समान प्रतिपालन करूंगी। गुरु, देवता, माता, पिता, बान्धव, अतिथि और पितृलोक जिनके प्रति रुष्ट हैं मैं उनके घर नहीं जा सकती। जो व्यक्ति हमेशा चिंता करता रहता है तथा जो सर्वदा भयभीत, शत्रुग्रस्त है, जो अत्यन्त पातकी, ऋणग्रस्त वा अतिशय कृपण है उन सब पापियोंके घर मैं पदार्पण नहीं करूंगी। जिस व्यक्तिने दीक्षा नहीं ली है, जो सर्वदा शोकपीड़ित, मन्दबुद्धि, स्त्रीके वशीभूत है, जिसकी स्त्री और माता वेश्या है, जो कटुभाषी है, हमेशा कलह करता है, जिसके घर हमेशा कलह होता है, जिसके घरमें स्त्रियां प्रधान है, उनके घर मैं प्रवेश नहीं करूंगी। जो व्यक्ति हरिपूजा और हरिका गुण गान नहीं करता अथवा जो हरिकी प्रशंसा करना नहीं चाहता, जो व्यक्ति कन्या-विक्रय, आत्म-विक्रय और वेद-विक्रय करता है वह नरहत्याकारक और हिंसक है, उसका घर नरकके समान है। वहां मैं कदापि नहीं जाऊंगी। जो व्यक्ति कृपणता, दोषसे दूषित हो कर माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी, गुरुपुत्र, अनाथा, भगिनी, कन्या और आश्रयरहित बान्धवोंका पोषण न करके सर्वदा धनसञ्चयमें लगा रहता है, मैं कभी भी उनके घर नहीं जाऊंगी।

जिस व्यक्तिके दन्त अपरिष्कृत, वस्त्र मलिन, मस्तक रुक्ष, ग्रास और हास्य विकृत हैं तथा जो मूर्ख मूत्रविष्ठा त्याग करते समय मूत्रादि त्याग करनेवालेको देखता है, जो भींगे पैरको धो कर वा पैरको न धो कर सोता है, जो नंगा सोता है, जो शाम वा दिनको शयन करता है उसके घरमें कभी भी पदार्पण नहीं करूंगी। जो व्यक्ति पहले शिरमें तेल लगा कर पीछे दूसरे अंगमें लगाता है, जो तेल लगा कर विष्ठामूत्र त्याग करता, प्रणाम करता वा फूल तोड़ता है, जो नाखूनसे तृण काटता और जमीन कोड़ता है, जिसके शरीर और पैरमें मैल रहता है, उस पर मेरी कृपा नहीं रहती। जो व्यक्ति जान बूझ कर आत्मदत्त वा परदत्त ब्राह्मणकी वा देवताकी वृत्ति हरण करता है, उसके घरमें मेरा स्थान नहीं। जो मन्दबुद्धि, शठ, दक्षिणाविहीन, यज्ञकारक और पापी है तथा मन्त्र और विद्या द्वारा जीविका-निर्वाह करता है, जो ग्रामयाजी, चिकित्सक, पाचक और देवल, जो क्रोधवशतः विवाह-कर्म वा अन्य धर्मकार्यमें बाधा पहुंचाता है तथा दिनको मैथुन आचरण करता है, मैं इन सब व्यक्तियोंके घर नहीं जाती। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणेशखं०,२१, २२ अ०)

पद्मपुराणमें लिखा है, कि एक दिन केशवने मेरुपृष्ठ पर सुखसे बैठी हुई लक्ष्मीसे पूछा था, 'देवी! तुम कहां पर निश्चल हो कर रहती हो।' उत्तरमें लक्ष्मीने विष्णुसे इस प्रकार कहा था—

"मेरुपृष्ठे सुखासीनां लक्ष्मीं पृच्छति केशवः।
केनोपायेन देवि त्वं नृणां भवति निश्चला॥

श्रीरुवाच।

शुक्लाः पारावता यत्र गृहिणी यत्र चोज्ज्वला
अकलहा वसतिर्यत्र तत्र कृष्ण वसाम्यहम्॥
धान्यं सुवर्णसदृशं तण्डुला रजतोपमाः।
अन्नञ्चैवातुषं यत्र तत्र कृष्ण वसाम्यहम्॥"

(स्कन्दपु० लक्ष्मीचरित्र)

जहां सफेद कबूतर रहते हैं, जहां गृहिणी सुन्दरी और कलहहीना है, वहां मैं अवस्थान करती हूं। जहां धान

सुवर्ण सदृश तथा तण्डुल रजत सदृश उत्पन्न होता है, अन्न तुषरहित अर्थात् परिष्कृत पाया जाता है वहां मेरी अवस्थिति जाननी चाहिये। जो प्रियवाक्यभाषी, वृद्धोपसेवी, प्रियदर्शन, अल्पप्रलापी तथा अदीर्घसूत्री हैं, जो धर्मशील, जितेन्द्रिय, विद्याविनीत, अगर्व्वित, जनानुरागी हैं और जो परोपतापी नहीं हैं, मैं सर्व्वदा वैसे व्यक्तिके यहां रहती हूं। जो देरीसे स्नान करता और जल्दी खाता है, जो सुगन्ध पुष्प पा कर उसे नहीं सूंघता, नग्नो स्त्रीको नहीं देखता है, वही सब आदमी मेरे प्रिय हैं। जिस पुरुषमें त्याग, सत्य और शौच ये तीन महागुण हैं मैं उनके घर वास करती हूं।

आमलक फल, गोमय, शङ्ख और शुक्ल वस्त्र, पद्मोत्पल, चन्द्र, महेश्वर, नारायण, वसुन्धरा और उत्सवमन्दिर, इन सब स्थानोंमें लक्ष्मी नित्य अवस्थान करती हैं।

जो सब स्त्री गुणभक्तियुक्ता, पतिकी आज्ञानुवर्त्तिनी है, तथा जो पतिका जूंठा खाती है, जो सर्व्वदा सन्तुष्टा, धीरा, प्रियवादिनी, सौभाग्ययुक्ता, लावण्यमयी, प्रिय दर्शना, श्यामा, मृगाक्षी, सुशीला, पतिव्रता, इन सब गुणोंसे युक्त हैं उनमें मैं सर्व्वदा अवस्थान करती हूं।

जो पूति और पर्य्युषित पुष्प घ्राण करता, बहुत आदमियोंके साथ सोता, टूटे फूटे आसन पर बैठता और जो कुमारी-गमन करता है लक्ष्मी उसको दूरसे परित्याग करती है। चिताङ्गार, अस्थि, वह्नि, भस्म, द्विज, गाय, तुष, गुरु इन्हें जो पैरसे स्पर्श करता वह लक्ष्मीहीन होता है। (स्कन्दपु० लक्ष्मी-केशवसंवाद लक्ष्मीचरित्र)

गरुड़पुराणके ११४वें अध्याय तथा मार्कण्डेयपुराण आदिमें भी यह लक्ष्मीचरित्र विशदरूपसे वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

लक्ष्मीपूजाकी व्यवस्था।

स्वर्गमें देवताओंसे लक्ष्मी पूजित हुई थीं, इस कारण भारतवर्षमें भी लोग उनकी पूजा करते हैं। पौष, चैत्र और भाद्र इन तीन महीनेमें लक्ष्मीपूजाका विधान है। विष्णुने इसी समय लक्ष्मीकी पूजा की थी, इस कारण यह तीन मास लक्ष्मीपूजाका उपयुक्त समय है। इन तीन महीनेमें तीन बार पूजा होती है। लक्ष्मीकी पूजा करके उनके उद्देशसे हविष्याशी हो नियम पालन करना होता है।

शुक्लपक्षमें बृहस्पतिवारको लक्ष्मीपूजा करनी होती है। इस दिन यदि शुभ तिथिनक्षत्रका योग न हो, तो रवि और सोमवारको पूजा की जा सकती है। इस पूजामें बृहस्पतिवार मुख्य तथा रवि और सोमवार गौण हैं। बृहस्पतिवारमें यदि पूर्णा अर्थात् पञ्चमी, दशमी वा पूर्णिमा तिथि हो, तो उसी दिन पूजा करना उत्तम है। इसमें कुछ विशेषता भी है, वह यह कि पौषमासमें दशमी, चैत्रमासमें पञ्चमी तथा भाद्रमासमें पूर्णिमा तिथि विशेष उपयोगी है। तिथि प्रतिपद, एकादशी, षष्ठी, चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या और अष्टमी तिथिमें लक्ष्मीपूजा निषिद्ध है। संक्रान्ति, प्रथममास, अपराह्नकाल, त्र्यहस्पर्श दिन और रात्रिकालमें यह पूजा नहीं करनी चाहिये। श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद इन चार नक्षत्रोंमें तथा कृष्णपक्षमें कभी भी पूजा न करे।

एक काठके बरतनमें करीब चार सेर धान भर कर उसे अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सजावे। पीछे सुगन्ध शुक्लपुष्प द्वारा उसकी पूजा करे। पौषमासमें पिष्टक, चैत्रमासमें परमान्न तथा भाद्रमासमें पिष्टक और परमान्न तथा नाना प्रकारके उपहार द्वारा पूर्वकी ओर मुंह करके पूजा करनी होगी। जो यथाविधान यह लक्ष्मीपूजा करते हैं वह इस लोकमें नाना प्रकारका सुख सौभाग्य भोग कर अन्तकालमें विष्णुलोकको जाते हैं। लक्ष्मीदेवीकी पूजा स्त्रियोंको करनी चाहिये, ऐसा विधान देखनेमें आता है। जहां लक्ष्मीपूजा होगी, वहां घंटा नहीं बजाना चाहिये। झिण्टी और काञ्चन-पुष्प द्वारा लक्ष्मीपूजा न करे। पद्म द्वारा लक्ष्मीपूजा विशेष शुभजनक है।

इस लक्ष्मीपूजामें लक्ष्मी, नारायण और कुबेर इन तीनोंकी पूजाका विधान देखा जाता है। इस दिन सरस्वतीकी पूजा तथा सरस्वतीपूजाके दिन भी लक्ष्मीपूजा होती है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लक्ष्मीदेवीको श्वेतवर्णा बतलाया है।

"श्वेतचम्पकवर्णाभा सुलक्ष्म्या मनोहरा ।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभा-प्रच्छादितानना ॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ३५ अ०)

किन्तु दूसरी जगह इन्हें गौरवर्णा कहा है। जिस ध्यानसे लक्ष्मीपूजा होती है उस ध्यानके अनुसार ये गौरवर्णा हैं। ध्यान—

"पाशाक्षमालिकाम्भोजसृणिभिर्याम्यसौम्ययोः ।
पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥
गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
रौक्मपद्मव्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु ॥"

स्कन्दपुराणोक्त ध्यान—

"हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदसमावहाम् ॥
गौरवर्णान्तु द्विभुजां सितपद्मोपरिस्थिताम् ।
विष्णोर्वक्षःस्थलस्थाञ्च जगच्छोभाप्रकाशिनीम् ॥"

आश्विनी पूर्णिमाके दिन कोजागरी लक्ष्मीपूजा और कार्त्तिकी अमावस्याके दिन दीपान्विता लक्ष्मीपूजा होती है। दीपान्विता और कोजागरी शब्दमें देखो।

२ दुर्गा। ३ सम्पत्ति, दौलत। ४ शोभा, सौन्दर्य। ५ ऋद्ध्यौषध, ऋद्धि नामकी ओषधि। ६ वृद्धिनामौषध, वृद्धि नामकी ओषधि। ७ फलवान्वृक्ष, वह वृक्ष जो फलता हो। ८ सीताजीका एक नाम। ९ वीरस्त्री। १० स्थलपद्मिनी, थलकमल। ११ हरिद्रा, हल्दी। १२ शमीवृक्ष। १३ द्रव्य, चीज। १४ मुक्ता, मोती। १५ मोक्षकी प्राप्ति। १६ पद्म, कमल। १७ श्वेत तुलसी, सफेद तुलसी। १८ मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी। १९ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें दो रगण, एक गुरु और एक लघु अक्षर होता है।

लक्ष्मी—एक विदुषी स्त्री-कवि। लक्ष्मी देखो।

लक्ष्मीक (सं० त्रि०) १ लक्ष्मीवन्त, धनवान्। २ सौभाग्ययुक्त, भाग्यवान्।

लक्ष्मीकवच—एक मन्त्रौषध जो पहना जाता है। आगमसार, कूर्मपुराण और स्कन्दपुराणमें इसका विषय लिखा है।

लक्ष्मीकान्त (सं० पु०) लक्ष्म्याः कान्तः। १ नारायण। २ कल्लोलेश-लक्ष्मीकान्त नामक एक देवता।

लक्ष्मीकान्त न्यायभूषण (भट्टाचार्य)—रथपद्धतिके प्रणेता। इन्होंने कृष्णनगराधिप राजा गिरिशचन्द्रके कहनेसे प्रायः ६५ वर्ष पहले यह ग्रन्थ बनाया था।

लक्ष्मीकुमार ताताचार्य—लघुभाव-प्रकाशिका और सारचन्द्रिकाके रचयिता।

लक्ष्मीकुलार्णव (सं० पु०) एक तन्त्रका नाम।

लक्ष्मीगृह (सं० क्ली०) लक्ष्म्याः गृहं आवासस्थान। १ रक्तोत्पल, लाल कमल। २ लक्ष्मीवेश्म, लक्ष्मीका घर।

लक्ष्मीचन्द्र मिश्र—शैवकल्पद्रुमके प्रणेता।

लक्ष्मीजनार्द्दन (सं० पु०) १ लक्ष्म्या सहितो जनार्द्दनः। शालग्रामशिलाविशेष। इसके लक्षण—एक ओर चार चक्र, नवीन नीरदतुल्य अर्थात् घोर कृष्णवर्ण तथा वनमालारहित शालग्राम शिलाको लक्ष्मीजनार्द्दन कहते हैं। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० और देवीभाग० ९।२४।५९) २ लक्ष्मी और नारायण।

लक्ष्मी टोड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी संकर रागिणी। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

लक्ष्मीताल (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तस्तालः। १ श्रीतालवृक्ष। २ संगीतमें १८ मात्राओंका एक ताल। इसमें १५ आघात और तीन खाली होते हैं।

लक्ष्मीत्व (सं० क्ली०) लक्ष्मी भावे त्व। १ लक्ष्मीका भाव या धर्म। २ ऐश्वर्य।

लक्ष्मीदत्त—१ सहमचन्द्रिका-टीका और हिल्लाजदीपिका-टीकाके रचयिता। २ पाण्डवचरितकाव्यके प्रणेता तथा लक्ष्मीनारायणके पुत्र।

लक्ष्मीदत्त आचार्य—आकाश-निरूपण नामक न्यायग्रन्थ। वचनभूषण (वेदान्त) तथा पदार्थदीपिका और संग्रह नामक व्याकरणके प्रणेता।

लक्ष्मीदास (सं० पु०) योगशतक ग्रन्थके प्रणेता।

लक्ष्मीदास—१ अनुमान-लक्ष्मणके प्रणेता। २ योगशतक नामक ग्रन्थकर्त्ता। ३ केरलवासी एक कवि। इन्होंने शुकसन्देश-काव्य रचा। ४ भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थकी गणिततत्त्वचिन्तामणि नामक प्रसिद्ध टीकाके प्रणेता। ये वाचस्पति मिश्रके

पुत्र और केशवके पौत्र थे। इन्होंने १५०१ ई०में अपना ग्रन्थ समाप्त किया।

लक्ष्मीदेव—मङ्खके समसामयिक एक पण्डित। श्रीकण्ठचरित काव्यमें इनका उल्लेख है।

लक्ष्मीदेवी (सं० स्त्री०) मिथिलाराज चन्द्रसिंहकी महिषी। ये लछिमा और लखिमा नामसे मशहूर थीं। विवादचंद्र आदि ग्रंथके प्रणेता मिसरू मिश्र और मिताक्षरा-टीकाके रचयिता बालंभट्ट उन्हीं द्वारा पाले पोसे गये थे। रानीने स्वयं पण्डितोंके साहाय्यसे मिताक्षरा-व्याख्यान नामक प्रसिद्ध मिताक्षरा-टीका लिखी।

लक्ष्मीधर (सं० पु०) १ स्रग्विणी छन्दका दूसरा नाम। २ विष्णु।

लक्ष्मीधर—१ एक कवि। पद्यावलीमें इनका उल्लेख है। २ द्राविड़वासी एक ब्राह्मण। भोजप्रबन्धमें इसका विषय वर्णित हुआ है। ३ अलङ्कार मुक्तावलीके प्रणेता। ४ चक्रपाणिकाव्य और मलवर्णनकाव्यके रचयिता। ५ पिङ्गलटीकाके प्रणेता। वृत्तरत्नाकरादर्शमें इनका नामोल्लेख है। ६ स्मृतिकल्पद्रुम या गृहस्थकाण्डके रचयिता। ७ गणितप्रदीपके प्रणेता। ये नागनाथके भाई और निम्बदेवके पुत्र थे। ८ षड्भाषाचन्द्रिकाके रचयिता। ये कोण्डभट्टके शिष्य और यज्ञेश्वरभट्टके लड़के थे। ९ इष्टिकारिकाके प्रणेता तथा श्रीकण्ठके पुत्र और विद्याधरके पौत्र। १० विरुद्धविधिविध्वंस नामक ग्रन्थके रचयिता। ये मल्लदेवके पुत्र और वामनके पौत्र थे।

लक्ष्मीधर आचार्य—नामचिन्तामणि, न्यायभास्कर और भगवन्नामकौमुदीके रचयिता। ये विट्ठलाचार्यके पुत्र थे। अनन्तानन्द रघुनाथपति और श्रीकृष्ण सरस्वतीसे इन्होंने विद्या सीखी।

लक्ष्मीधर—कवि-अद्वैतमकरन्द और न्यायमकरन्दके रचयिता।

लक्ष्मीधर देशिक—आनन्दलहरीकी टीकाके बनानेवाले।

लक्ष्मीधर भट्ट—१ कुण्डकारिकाके रचयिता। २ कृत्यकल्पतरुके प्रणेता। ये कान्यकुब्जाधिपति राजा गोविन्दचन्द्र देवके मन्त्री और महासान्धिविग्रहिक हृदयधरके पुत्र थे। इनके रचे तीन और खण्डग्रन्थ मिलते हैं,—दानकल्पतरु, राजधर्मकल्पतरु और व्यवहारकल्पतरु। ये ग्रन्थ सम्भवतः उक्त कल्पतरुके ही अंदर हैं।

लक्ष्मीधरसेन—एक वैद्य पण्डित। ये काकुत्स्थसेनके पुत्र और साङ्गसेनके पौत्र थे। तत्त्वचन्द्रिका नामकी चिकित्सासंग्रहकी टीकाके प्रणेता। शिवदाससेन इनके प्रपौत्र थे।

लक्ष्मीनरसिंह—विलास नामक व्याकरणके प्रणेता। इन्होंने विशेषणद्वयवैयर्थ्य नामक न्यायशास्त्र भी बनाया।

लक्ष्मीनाथ (सं० पु०) विष्णु।

लक्ष्मीनाथ—गोपालार्च्चनचन्द्रिकाके रचयिता।

लक्ष्मीनाथ भट्ट—१ पिङ्गलार्थप्रदीपके प्रणेता रायभट्टके पुत्र और नारायणके पौत्र। १८०० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया। २ एक पण्डित। वृत्तमौक्तिकके प्रणेता चन्द्रशेखर इनके लड़के थे।

लक्ष्मीनाथ मिश्र—लीलावतीटीका और सिद्धान्तशिरोमणि-टीकाके प्रणेता।

लक्ष्मीनाथ शर्म्मन्—शिशुपाल-वधव्याख्याके रचयिता। ये नारायण शर्माके पुत्र और वंशीधर शर्माके पौत्र थे।

लक्ष्मीनारायण—१ उपशमार्य, काशीस्तोत्र, कृष्णाष्टक, देव्याष्टक, नीराजनपद्यालक्षणविविक्ति, पांशुलावृत्तिप्रकाश, प्रातःस्मरणाष्टक, भारतीनीराजन, मङ्गलदशक, मदनमुखचपेटिका, रामचन्द्रपञ्चदशी, रामपञ्चदशीकल्पलतिका, विन्ध्यवासिनीदशक, विश्वेश्वरनीराजन, विष्णुनीराजन, शङ्कराष्टक, शिवदशक, शिवस्तोत्र, सूर्य्यषट्पदी आदि ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वप्रकाशिकाव्याख्या नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ३ दायाधिकारिक्रमके प्रणेता। ४ लघुसंग्रह नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ श्रुतबोधटीकाके प्रणेता।

लक्ष्मीनारायण—कुर्गराज्यके दीवान। ये जातिके ब्राह्मण थे। १८३७ ई०में तालुप्रदेशवासी गौड़गण विद्रोही हो उठे। धीरे धीरे वह विद्रोहकी आग दक्षिण-कणाड़ा होती हुई कुर्गराज्यमें फैल गई। इस समय अभ्रम्बर नामक एक राजद्रोहीके उकसाने पर दीवान लक्ष्मीनारायण अंगरेजोंके दुश्मन बन बैठे, किन्तु विश्वासी कुर्गसेनाके साहाय्यसे शीघ्र ही दीवानजीका उद्यम फजूल गया।

लक्ष्मीनारायण (सं० पु०) लक्ष्म्यान्वितो नारायणः। १ शालग्रामशिलाविशेष। जिस शालग्राम-शिलाका एक ओर चार चक्र, घोर कृष्णवर्ण और वनमाला विभूषित

अर्थात् वनमाला-चिह्नयुक्त होते हैं उन्हें लक्ष्मीनारायण कहते हैं। २ लक्ष्मी और नारायण। (ब्रह्मवैवर्त्तपु०)

लक्ष्मीनारायण न्यायालङ्कार—व्यवस्थारत्नमाला नामक दीधितिकार ये नवद्वीपके प्रसिद्ध नैयायिक गदाधर तर्कवागीश भट्टाचार्यके पुत्र थे।

लक्ष्मीनारायण यति—न्यायामृतके रचयिता व्यासतीर्थ विन्दुके गुरु।

लक्ष्मीनारायण (राजा)—कोचविहारके एक राजा तथा बालगोस्वामीके पुत्र और नरनारायणके पौत्र। ये राजा मानसिंहको १००५ हि०में बड़े सम्मानसे अपने राज्यमें ले आये तथा १६१८ ई० पर्यन्त राजसिंहासनको अलंकृत करते रहे।

लक्ष्मीनारायणव्रत—एक प्रकारका व्रत।

लक्ष्मीनिधि (सं० पु०) राजा जनकके पुत्रका नाम।

लक्ष्मीनिवास—शिष्यहितैषिणी नाम्नी मेघदूतकी टीकाके प्रणेता। ये रत्नप्रभासूरिके शिष्य और श्रीरङ्गके पुत्र थे। १४५८ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी।

लक्ष्मीनिवास (सं० पु०) लक्ष्म्याः निवासः। लक्ष्मीका निवासस्थान।

लक्ष्मीनृसिंह (सं० पु०) लक्ष्मीयुतो नृसिंहः। एक प्रकारके शालग्राम जिन पर दो चक्र और एक एक वनमाला बनी होती है। ऐसे शालग्राम गृहस्थोंके लिये बहुत शुभप्रद माने जाते हैं। (ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

लक्ष्मीनृसिंह—१ सर्व्वतोविलास नामक सत्यनिधिविलासके टीकाकार। २ अनङ्गसर्व्वस्व भानके रचयिता। ये नृसिंहाचार्यके पुत्र थे। ३ अमलानन्दकृत वेदान्तकल्पतरुकी आभोग नामक टीका और तर्कदीपिकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम था कोण्डभट्ट।

लक्ष्मीनृसिंहकवच (सं० क्ली०) एक मन्त्रौषध जो पहना जाता है।

लक्ष्मीनृसिंहभट्ट—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये रमलसारके रचयिता श्रीपतिके पिता थे।

लक्ष्मीपति—१ एक प्रसिद्ध ज्योतिषी। इन्होंने इष्टदर्पणोदाहरण, जातकचिन्तामणि, जैमिनिसूत्र टीका, भुवभ्रमण, नीलकण्ठीटीका, पद्मकोषप्रकाश, पाराशरी-टीका, मकरन्दसारिणी, मुहूर्त्तसंग्रहटीका, शंकुविचार, शीघ्रबोधटीका, षोड़शयोगव्याख्यान, सम्राड्यन्त्र, सारणी, हिल्लाजदीपिका टीका आदि ग्रन्थ इन्होंने लिखे। २ नृपनीतिगर्भित नामक वृत्तकार। ३ शिक्षानीति नामक काव्यके प्रणेता। ४ श्राद्धरत्नके रचयिता। ये इन्द्रपतिके शिष्य थे। ५ छन्दोनाम विवरणाके प्रणेता रामचन्द्रगुरु।

लक्ष्मीपति (सं० पु०) लक्ष्म्याः पतिः। १ वासुदेव, विष्णु। २ नरपति, राजा। ३ लवङ्गवृक्ष, लौंगका पेड़। ४ पूग, सुपारी।

लक्ष्मीपाशा—बंगालके यशोहर जिलान्तर्गत एक भारी बस्ती। यह मधुमतीके तट पर अवस्थित है। यहां राढ़ीय श्रेणीके बड़े कुलीन ब्राह्मण वास करते हैं।

लक्ष्मीपुत्र (सं० पु०) लक्ष्म्याः पुत्रः। १ कामदेव। २ घोटक, घोड़ा। ३ सीताके पुत्र लव और कुश। ४ धनवान् व्यक्ति, अमीर आदमी।

लक्ष्मीपुर (सं० क्ली०) आसामके एक प्राचीन नगरका नाम।

लक्ष्मीपुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजागापट्टम जिलान्तर्गत एक घाट या पहाड़ी रास्ता। यह समुद्रपीठसे तीन हजार फुट ऊंचा है और अक्षा० १९° ६´ उ० तथा देशा० ८३° २०´ पू०के बीच पड़ता है। इसी रास्तेसे पार्वतीपुरसे जयपुर जाया जाता है।

लक्ष्मीपुर—एक प्राचीन देवतीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके लक्ष्मीपुर-माहात्म्यमें इस तीर्थका वर्णन है।

लक्ष्मीपुष्प (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तं सौन्दर्यविशिष्टं पुष्पमिवास्य। १ पद्मरागमणि, लाल। (क्ली०) २ पद्म, कमल।

लक्ष्मीपूजा (सं० स्त्री०) लक्ष्म्याः पूजा। १ लक्ष्मीदेवीकी पूजा। २ व्रतविशेष। लक्ष्मी देखो।

लक्ष्मीफल (सं० पु०) लक्ष्म्याः स्तनजं फलं यत्र। विल्व, बेल।

लक्ष्मीमल्ल (दीवान)—एक सिख-सरदार। सिन्धुप्रदेशमें जब सिखोंका अधिकार जम गया तब वहांका शासन करनेके लिये नाना स्थानोंमें शासनकर्त्ता नियुक्त होने लगे। सावनमल्ल और मूलराज जिस समय मूलतान प्रदेशके शासनकर्त्ता थे उसी समय उत्तर-देरजातका

शासनभार लक्ष्मीमल्ल पर पड़ा। बाद उसके पुत्र दौलतराय उस प्रदेशके शासनकर्त्ता हुए।

लक्ष्मीयजुस् (सं० क्ली०) मन्त्रभेद।

लक्ष्मीया—बङ्गालमें प्रवाहित ब्रह्मपुत्र नदकी एक शाखा। यह मैमनसिंह जिलेके उत्तर-सीमान्तवर्त्ती तोक गांवमें ब्रह्मपुत्रको छोड़ कर दक्षिणकी ओर मेघना-धलेश्वरी-संगमके पास धलेश्वरीमें आ कर मिली है। तथा अक्षा० २३° ३४´ ३० और देशा० ९०° ३४´ पू०के बीच पड़ती है। ढाका जिलेका मशहूर नारायणगंज बन्दर इसी नदीके तट पर अवस्थित है। इस नदीका जल बड़ा ही परिष्कार और सुशीतल है। इसके दोनों पार जंगल है इससे किनारेकी शोभा और भी मनोहारिणी हो गई है। बरसमें सिर्फ पांच महीने इस नदीमें ज्वार और भाटा होता है। वर्त्तमान ब्रह्मपुत्रमें कहीं कहीं भूर पड़ गया है इससे इस नदीका जलस्रोत एकदम कमता जाता है।

लक्ष्मीरमण (सं० पु०) लक्ष्म्याः रमणं। नारायण।

लक्ष्मीवत् (सं० पु०) लक्ष्मीः शोभाऽस्त्यस्येति मतुप्, मस्य वः। १ पनसवृक्ष, कटहलका पेड़। २ श्वेत रोहितक वृक्ष, सफेद रोहेड़का पेड़। ३ विष्णु। (भारत० १३।१४७।५२) ४ अश्वत्थका वृक्ष। (त्रि०) ५ श्रीयुक्त। ६ धनवान्, अमीर। पर्याय—लक्ष्मण, श्रील, श्रीमान्।

लक्ष्मीवती—मौखरीराज ईशानवर्माकी महिषी।

लक्ष्मीवर्मदेव (सं० पु०) मालवके परमारवंशीय एक हिन्दू-राजा। ये राजा यशोवर्माके पुत्र थे। इन्होंने अजयवर्मासे मालव-राज्यका कुछ अंश ले कर अपने नाम पर राजपाट कायम किया। ११४४ ई०में ये उज्जयिनीके सिंहासन पर बैठे थे। मरने पर इनके लड़के हरिश्चन्द्र और पीछे पोते उदयवर्मदेव राजगद्दी पर बैठे।

लक्ष्मीवल्लभ (सं० पु०) लक्ष्म्याः वल्लभः। १ विष्णु। २ एक प्राचीन ग्रन्थकारका नाम।

लक्ष्मीवसति (सं० स्त्री०) पद्मपुष्प, कमलका फूल।

लक्ष्मीवहिष्कृत (सं० त्रि०) जिसे लक्ष्मी छोड़ गई हों, धनहीन।

लक्ष्मीबाई—एक महाराष्ट्र भूम्यधिकारिणी। इन्होंने १८५७ ई०के बलवाके समय चान्दाके विद्रोही दलपति बाबूरावको छल बलसे पकड़ कर अंगरेजोंके हाथ समर्पण किया। चान्दा देखो।

लक्ष्मीविलासतैल (सं० क्ली०) वातव्याधिरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—मजीठ, देवदारु, सरलकाष्ठ, व्याघ्री (गंधद्रव्यविशेष), वच, सुपारीके पेड़की छाल, दारचीनी, गंधतृण, कचूर, हर्रे, बहेड़ा, आंवला और मोथा प्रत्येक २ पल। चार सेर तिलके तेलमें उक्त गंध कल्क डाल कर पाक करे। पीछे जटामांसो, मुरामांसीका दाना, चम्पा फूल, प्रियंगु, दारचीनी, गठिवन, अतिबला, कुट, मरुवकपुष्प, पिड़ींसाग, प्रत्येक २ पल तथा गंधविराजा, नखी, सोयां प्रत्येक १ पल। इसके द्वारा द्वितीय कल्क पाक करे। इसके बाद इलायची, लवङ्ग, शिलारस, श्वेत चन्दन, जातीपुष्प, खट्टाशी, कंकोल, अगुरु लता, कस्तूरी, केसर प्रत्येक ४ तोला, मृगनाभि २ तोला, कर्पूर १ तोला वा ६ माशा ४ रत्ती, इन सब द्रव्यों द्वारा तृतीय कल्क पाक करे। पाक सिद्ध होने पर खट्टाशीको तेलमें निकाल अच्छी तरह शिला पर पीसे, बाद उसे तेलमें मिला दे। दूसरा तरीका—बिल्वादि पञ्चपल्लव क्वाथ द्वारा प्रथम कल्क, गन्धाम्बु द्वारा द्वितीय कल्क और अगुरु धूपति गंधवारि द्वारा तृतीय कल्क पाक करे। इस तेलमें भी सभी गंध द्रव्यशोधन कर लेना होगा। इसके व्यवहारसे तरह तरहकी वातव्याधि नष्ट होती है। इसे महासुगंधितैल कहते हैं।

ऊपर जितने द्रव्य कहे गये हैं उन्हें दूने तेलमें पाक करनेसे लक्ष्मीविलास तेल कहते हैं।

(भैषज्यरत्ना० वाताधि०)

लक्ष्मीविलासरस (सं० पु०) १ औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अबरक ८ तोला, पारा, गंधक, कपूर, जैत्री, जायफल प्रत्येक ४ तोला, वृद्धदारकबीज, सिद्धिबीज, भूमिकुष्माण्डमूल, शतमूली, गोपवल्लीका मूल, विजबन्दका मूल, गोक्षुरबीज और हिजलबीज, प्रत्येक दो तोला करके लेना होगा। पीछे उन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण कर पानके रसमें मिला ३ गुंजेके बराबर गोली बनानी होगी। अनुपान दूध, दही और कांजो है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके ज्वर, प्रमेह, नाड़ीव्रण आदि रोग नष्ट होते हैं।

२ कासाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, हरिताल, प्रत्येक दो भाग; खपड़ा, रांगा, कान्तलौह, अबरक, तांबा, कांसा, गंधक, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे और केसरके रसमें भावना दे कर इलायची, जायफल, तेजपत्र, लवङ्ग, यमानी, जीरा त्रिकटु, त्रिफला, प्रत्येक एक एक भाग मिलावे। बादमें चनेके समान गोली बना कर छायामें सुखा ले। अनुपान शीतल जल है। इसके सेवनसे सभी प्रकारके कास शीघ्र नष्ट होते हैं। औषधसेवनकालका पथ्य—मछली, मांस, दूध और स्निग्ध भोजन। साग, खट्टा, मीठा खाना मना है। यह औषध क्षयकास, श्वास, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह, और अर्श आदि रोगोंमें भी विशेष उपकारक है। (रसेन्द्रसारस० कासाधि०)

३ वातव्याधिनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरक, पारा, गंधक, विजबंद, नागवला, शतमूली, भूमिकुष्माण्ड, काले धतूरेका बीज, हिजलबीज, वृद्धदारकबीज, गोक्षुरबीज, सिद्धिबीज, जातीफल, जैत्री, कपूर प्रत्येक २ तोला; सोनेकी भस्म २ माशा, इन्हें एक साथ अच्छी तरह पीस कर चनेके बराबर गोली बनावे। अनुपान त्रिफलाका जल वा दोषके बलाबल अनुसार स्थिर करना होगा। यह औषध पुष्टिकारक, बलकर तथा वातव्याधि, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह आदि रोगनाशक है। (रसेन्द्रसारस० वातव्याधि रोगाधिका०)

४ रसायन और वाजीकरण रोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कृष्ण अबरकका चूर्ण ८ तोला, पारा, गंधक, कपूर, जायफल, जैत्री, वृद्धदारकबीज, धतूरेका बीज, सिद्धिबीज, भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, विजबंद, गोपवल्ली, गोखरू, हिजलबीज, प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण कर पानके रसमें मर्दन करे और ३ रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधके सेवनसे घोर सन्निपात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, बीस प्रकारके प्रमेह, नाड़ीव्रण आदि रोग नष्ट होते हैं।

औषध सेवनके बाद दूध, दही, मांस, सुरा आदि पान करनेसे कामकी वृद्धि होती तथा बूढ़ा जवान होता है। शुक्रक्षय और लिङ्ग शिथिल कभी भी नहीं होता। मतवाले हाथीके समान बलवान् हो कर रोज सौ स्त्रीके साथ संभोग कर सकता है। इससे नेत्रकी वृद्धि भी होती है। महात्मा नारदके उपदेशसे जगत्पति भगवान् वासुदेव इस रसका सेवन कर लाख स्त्रीके वल्लभ हुए थे। (रसेन्द्रसारस० रसायनाधिका०)

लक्ष्मीवेष्ट (सं० पु०) लक्ष्मीयुक्तो वेष्टः। ताड़पीन।

लक्ष्मीश (सं० पु०) लक्ष्म्याः ईशः। १ विष्णु। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। (त्रि०) धनवान्, अमीर।

लक्ष्मीशसूरि—जैन सूरिभेद। ये परमाराध्यके पुत्र और *मन्त्रदेवताप्रकाशिका* नामक ग्रन्थके रचयिता विष्णुदेवके पिता थे।

लक्ष्मीश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी। (वैद्यकनि०)

लक्ष्मीश्वर सिंह—मिथिलाके एक राजा। ये ऊषाहरण नाटकके प्रणेता, हर्षनाथके प्रतिपालक थे।

लक्ष्मीसख (सं० पु०) १ लक्ष्मीके प्रियपात्र या वरपुत्र। २ राजा या धनी व्यक्ति।

लक्ष्मीसनाथ (सं० स्त्री०) रूप और ऐश्वर्यशाली।

लक्ष्मीसमाह्वया (सं० स्त्री०) लक्ष्म्यासह आह्वयो यस्याः। सीता।

लक्ष्मीसहज (सं० पु०) लक्ष्म्या सहजातः इति जन-ड, क्षीराब्धिजातत्वादस्य तथात्वं। चन्द्रमा।

लक्ष्मीसागर सूरि—एक जैन सूरि। इनका जन्म १४०८ ई०में हुआ था। इनके शिष्य शुभशीलगणिने पञ्चशतीप्रवन्धसम्बन्ध और स्नातृपञ्चाशिका आदि ग्रन्थकी रचना की थी।

लक्ष्मीसिंह—रंगपुरके एक राजा। इनकी माताका नाम कमलेश्वरी था। (देशावली)

लक्ष्मीसिंह नरेन्द्र—आसामके इन्द्रवंशीय एक राजा। १७५१ ई०में ये सिंहासनसे उतारे गये।

लक्ष्मीसूक्त (सं० क्ली०) श्रीसूक्त। श्रीसूक्त देखो।

लक्ष्मीसेन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक व्यक्तिका नाम। (६६।१७३)

लक्ष्मीस्तोत्र (सं० क्ली०) लक्ष्मीदेवीका स्तव।

लक्ष्मेश्वर (लक्ष्मीश्वर)—बम्बई प्रेसिडेन्सीकी दक्षिण मराठ एजेन्सीके मिराज राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° ७' १०" उ० तथा देशा० ७४° ३०' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक पुराना देवमन्दिर है।

लक्ष्म्याराम (सं० पु०) लक्ष्म्या आरामः। एक वनका नाम।

लक्ष्य (सं० क्ली०) लक्ष्यते यदिति लक्ष ण्यत्। १ शरवेधस्थान, वह जगह या वस्तु जिस पर किसी प्रकारका निशाना लगाया जाय। पर्याय—लक्ष, शरव्य, प्रतिकार, वेध्य, वेध। २ वह जिस पर किसी प्रकारका आक्षेप किया जाय। ३ व्याज, बाधा। ४ अनुमय, वह जिसका अनुमान किया जाय। ५ अस्त्रोंका एक प्रकारका संहार। ६ अभिलषित पदार्थ, उद्देश्य। ७ वह अर्थ जो वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग इन तीन प्रकारके शब्दोंकी लक्षण-शक्तिके द्वारा निकलता है उसे लक्ष्य कहते हैं। लक्षणा देखो। (त्रि०) ८ दर्शनीय, देखने योग्य।

लक्ष्यक्रम (सं० त्रि०) १ जिस अज्ञात प्रणालीके द्वारा उद्दिष्ट वस्तुका आकार और इङ्गित जाना जाय। २ काव्योक्तिमें अनिर्द्देश्यबोधक ज्ञान जिसके प्रकाश करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

लक्ष्यज्ञत्व (सं० क्ली०) १ चिह्नानुशीलन ज्ञान, वह ज्ञान जो चिह्नोंको देख कर उत्पन्न हो। २ वह ज्ञान जो दृष्टान्तके द्वारा उत्पन्न हो।

लक्ष्यता (सं० स्त्री०) लक्ष्यस्य भावः तल टाप्। लक्ष्यका भाव या धर्म, लक्ष्यत्व।

लक्ष्यभेद (सं० पु०) चिह्नितस्थान विच्छिन्नकरण, एक प्रकारका निशाना जिसमें तेजीसे चलते या उड़ते हुए लक्ष्यको भेदते हैं। अर्जुनने आकाशमार्गमें न्यस्त मत्स्यचिह्नको चक्रपथसे विद्ध किया था।

लक्ष्यवीथी (सं० स्त्री०) लक्ष्यावीथी। १ मनुष्य-जीवनकी उद्देश्यसाधक पन्था, वह उपाय या कर्म जिससे जीवनका उद्देश्य सिद्ध होता हो। २ ब्रह्मलोकका मार्ग, देवयान पथ।

लक्ष्यवेधिन् (सं० त्रि०) चिह्नविद्धकारी, लक्ष्य वेध करनेवाला।

लक्ष्यसुप्त (सं० त्रि०) नींद तोड़नेवाला।

लक्ष्यहन् (सं० त्रि०) लक्ष्यं हन्ति हन क्विप्। १ लक्ष्यभेदकारी, उड़ते या तेजीसे चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना करनेवाला। (पु०) २ तीर।

लक्ष्यार्थ (सं० पु०) वह अर्थ जो लक्षणासे निकले।

लखतार—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त राज्य। यह अक्षा० २२° ४६′ से २३° उ० तथा देशा० ७१° ४६′ से ७२° ३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४८ वर्गमील और जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। इसमें ५१ ग्राम लगते हैं। राजस्व ७० हजार रुपयेसे ज्यादा है। थान और लखतार नामक दो भूसम्पत्ति तथा अह्मदाबाद जिलेके कुछ ग्राम ले कर यह राज्य संगठित है।

यहां एक भी नदी वा पहाड़ नहीं है। अधिकांश स्थान समतल है। रुई और धान ही यहांका प्रधान उपज है। घेर और बोराश्रेणीके मुसलमान स्थानीय कपाससे एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार करते हैं। थानकी कुम्हार-जातिका मृत् शिल्प प्रशंसनीय है। ज्वरके सिवा यहां और किसी प्रकारका रोग नहीं दिखाई देता। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

यहांके सरदार तृतीय श्रेणीके सामन्त कहलाते हैं। १८०७ ई०की सन्धिके अनुसार ये लोग भी अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। हलाहाबादके राजा साहब चन्द्रसिंहजीके लड़के अभयसिंहजीको लखतार तालुक ध्राङ्गध्रा राज्यसे मिला था। अभयसिंहने १६०४-१५ ई०के भीतर थान तथा आस पासके देश वाररियासे छीन लिये। वर्तमान सरदार उन्हींके वंशधर हैं। सकर इनकी उपाधि है। जूनागढ़के नवाब और अंगरेजोंको कर देना पड़ता है।

लखन (हिं० स्त्री०) लखनेकी क्रिया या भाव।

लखनऊ—१ अयोध्या प्रदेशके कमीश्नरके अधीन एक विभाग। यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन है। अक्षा० २५° ४६′ से २८° ४२′ उ० तथा देशा० ७६° ४१′ से ८१° ३४′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०५१ वर्गमील है। इसमें ४४ शहर और १०१५० ग्राम लगते हैं। लखनऊ शहर सबसे बड़ा है। लखनऊ, उनाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई और खेरी जिला ले कर यह विभाग संगठित है। जनसंख्या ६० लाखके करीब है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ३०′

से २७° ६´ उ० तथा देशा० ८०° ३४´ से ८१° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हरदोई और सीतापुर, पूरबमें बाराबंकी, दक्षिणमें रायबरेली और पश्चिममें उनाव जिला है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान उर्वर तथा श्यामल शस्यसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें ग्राम और वनमाला-विराजित विस्तीर्ण मैदान रणक्षेत्रकी अतीतकीर्त्ति वहन कर जनसाधारणके हृदयमें वीरकीर्त्तिका उद्बोधन कर देता है। स्थानीय नदीमालाकी बालुकामय सैकत भूमि भूर तथा अनुर्वर खारी जमीन ऊपर कहलाती है। गोमती और साइनदी शाखा-प्रशाखामें फैल कर यहां वहती है। इनमेंसे वेहता, नागवा, लोनी और बांका नदी ही प्रधान हैं।

इस जिलेका उतना प्राचीन इतिहास नहीं है। शाहबुद्दीन द्वारा पराभूत (११९४ ई०) प्रसिद्ध कन्नौज-राज जयचांदके शासनकालसे पहले लखनऊ नगर प्रतिष्ठा नहीं हुआ। इस विभागमें औपनिवेशिक राजपूतोंके आगमन-प्रसङ्गकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि मुसलमानी आक्रमणके बाद ही यहां नाना राजपूत शाखायें बस गई थीं।

मुसलमान जातिके अभ्युदयसे पहले जनवार, परिहार और गौतम यहां आ कर बस गये थे। जनवार जातिका इतिहास भर और बहराइच जातिके साथ मिला है। गौतमोंकी प्राचीन किंवदन्तीका अनुसरण करनेसे ज्ञात होता है, कि वे लोग कन्नोजराजवंशके साथ संश्लिष्ट थे तथा बाई जातिने इस देशमें आ कर भी कन्नोजराजकी प्रधानता स्वीकार नहीं की थी। पनवार और चौहान राजपूत दिल्लीश्वरके अधीन इस प्रदेश पर आक्रमण करने आये और उन्होंने नाना स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन किया।

पठान राजाओंके आक्रमण तथा धर्मनाशके भयसे बहुतेरे राजपूत-परिवार यहां भाग आये। वे लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर वहांके सरदार हो गये। मोहल, लालागञ्ज और नियोवन परगनेमें अमेठिया और गौतमोंने इसी प्रकार प्रभुत्वलाभ किया था। १६वीं सदीके मध्यभागमें शेखोंने अमेठी परगनेसे अमेठियाओंको भगा कर अपनी गोटी जमाई। उन लोगोंके अधीन इकोनावासी जनवारोंने यहां आ कर उपनिवेश बसाया था।

बाई और चौहानने विजनोर जीता। इसके बाद बाई लोगोंने ककोरी जीत कर अपना प्रभाव फैलाया था। जनवार और राइकराड़गण मोहन-औरस नामक स्थानमें आ कर बस गये। इसके बाद निकुम्भ, गाहरवाड़, गौतम और जनवारगण मलिहाबाद परगनेमें धीरे धीरे फैल गये। पनवार और चौहानोंके महोना आक्रमण और जीतनेके बाद जनवारोंने उत्तरमें कुर्सी और देवाको फतह किया। अनन्तर उन्होंने कुर्सीसे कल्याणी नदीके उत्तर तीर पर्यन्त भूभाग पर अपना अधिकार जमाया था। पीछे बाई लोगोंने उनसे देवाको छीन लिया।

इसके बाद मुसलमानोंका अभियान शुरू हुआ। १०३० ई०में सबसे पहले सैयद मसाउदने इस स्थान पर चढ़ाई की। किन्तु वह यहां मुसलमान-प्रभाव फैला न सका। पर हां किसी किसी परगनेके प्राचीन नगरादिमें मुसलमानोंकी टूटी फूटी कीर्त्तिका निदर्शन देखनेसे मालूम होता है, कि उसने जिस जिस स्थान हो कर जिलेमें प्रवेश किया था, वहां वहां उसके अनुचरोंने गांव बसा दिये थे। मोहनलालगञ्जके नग्राम और अमेठी ग्राममें वह छावनी डाल कर दलबलके साथ वहां रहा। सभिख नगरमें उसका सदर था। छावनी छोड़नेके बाद सैनादलको सदरसे वहां आ कर रहनेका साहस न हुआ।

अनन्तर शाहबुद्दीनके जमानेमें १२०२ ई०को खिलजी-पुङ्गव महम्मद-इ-बख्तियारने इस स्थान पर चढ़ाई कर दी। उसके समयकी कोई कीर्त्ति यहां नहीं है। अधिक सम्भव है, कि उसने मसिहाबादके निकटवर्त्ती बख्तियार नगरकी प्रतिष्ठा कर इस नगरमें एक पठान उपनिवेश बसाया हो, किन्तु वे सब पठान ककोरीके बाई-राजा साथनाके विरुद्ध युद्ध करके यहां पठान-प्रभाव फैला कर दूसरी जगह उपनिवेश स्थापन न कर सके।

१३वीं सदीके मध्यभागसे ही वहां मुसलमानोंका उपनिवेश प्रतिष्ठित हुआ। औपनिवेशिकके मध्य परगनोंके फसमन्दीरवासी शेख और सलिमाबादके सैयद ही प्रधान

थे। इसके बाद किदवाड़ाके शेखोंने आ कर अपना प्रभाव फैलाया। इसके बाद अन्यान्य मुसलमान-सम्प्रदाय कुर्सी और देवासे होता हुआ यहां बस गया था। प्रवाद है, कि वे मुसलमानगण सतिखसे यहां आये थे।

सतिखसे मुसलमान लोग बार बार इस जिलेके नाना स्थानोंको आक्रमण करके भी स्थायी प्रभुत्व लाभ न कर सके। वे लोग सलार मसाउदके सेनापति शाह वेगके अधीन पहले देवा नगरको आक्रमण कर लखनऊ होते हुए मरिड्यौम तक बढ़े थे। यहां शाह वेग हिन्दुओंसे परास्त और निहत हुआ। निकटवर्त्ती एक ग्राममें उसका मकबरा मौजूद है। उसकी चोटी बहुत ऊंची है, इस कारण लोग उसे नौ-गजापीर कहते हैं। पीछे यहां मुसलमान-शासनकर्त्ता नियुक्त होनेके बाद क्रमशः देवास, कुर्सी और लखनऊसे ककोरी परगना तक विस्तृत स्थानोंके ग्रामादिमें मुसलमान-उपनिवेश बसाया गया। वे लोग धीरे धीरे एक एक स्थान जीत कर वहांका सरदार कहलाने लगे।

स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है, कि राजपूत और मुसलमान औपनिवेशिकोंके पहले यहां भर, अरख और पासी नामक निम्नश्रेणीकी कुछ जातियोंका वास था। अयोध्यामें सूर्यवंशी राजाओंका प्रभाव जब लुप्त हुआ तब भरोंने इस प्रदेशको लूटा। यहांके घने जंगलमें आर्यऋषि तपस्या किया करते थे। इस कारण कोई कोई वन-स्थानीय लोगोंके निकट परम पुण्यस्थान समझा जाता था। वे सब ऋषि जिस जिस स्थानमें रहते थे, वह अभी नगररूपमें परिणत होने पर भी उन्हीं ऋषियोंके नामसे पुकारे जाते हैं। मरिड्यौन-मण्डल ऋषिके नामसे, मोहन मोहनगिरि गोस्वामीके नामसे, जगौर जगदेव योगीके नामसे तथा देवा देवल ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भर-डकैतोंने उन सब ऋषियोंका आश्रम लूट कर १२वीं सदीमें सई नदीके तीरवर्त्ती भूभागोंका शासन किया था।

ये लोग किरात नामक पहाड़ी जातिकी तरह तराई प्रदेशसे यहां आये थे। आज भी भरडिहोंका भग्नावशेष यहांके नाना ग्रामोंमें पड़ा है। कन्नोज-राजवंशने अपने अधःपतनसे पहले भरोंका दमन करनेकी कोशिश की थी। राजा जयचंदने अला, उदन और वनाफर राजपूत जातिकी सहायतासे विजनोरके निकटस्थ नाथवन पर हमला कर दिया। वे यहांके पासीराज विगलीको पराजित कर सर्सावा और देवा तक अग्रसर हुए। पासी और अरखोंने मलिहाबाद तथा ककोरी और विजनोरके दक्षिण सईतीरवर्त्ती सालैन्दी तक अपना दखल जमाया था। इसके पहले यहां भर जातिका अधिकार और प्रभाव विस्तृत था।

पासी और अरखगण यहांके आदिम अधिवासी हैं। ये लोग दुर्द्धर्ष और शराबी होते हैं। अन्यान्यी अधिवासियोंको शराब पिला कर ये लोग उनका सर्वस्व लूट लेते थे। भर जातिके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक किंवदन्ती प्रचलित है। ६१८ ई०में राजा तिलकचंदसे ही यहां भरराजवंशका प्रभाव फैला। बराइच नगरमें उसकी राजधानी थी। उसने दिल्लीपतिको हरा कर दिल्ली पर अधिकार जमाया। उसके वंशमें ९ राजाओंने दिल्लीसे अयोध्या पर्वतप्रान्त तक राज्यशासन किया था। इस वंशके राजा गोविन्दचंदकी स्त्री भीमादेवी राज्यशासन कर १०६३ ई०में परलोकवासिनी हुई। मरते समय उन्होंने अपनी सम्पत्ति अपने धर्मगुरु हरगोविन्दको दान कर दी थी। उक्त हरगोविन्दके वंशने १५ पीढी तक यहांका शासन किया था।

लखनऊ नगर और सेनावास, ककोरी, मलिहाबाद और अमेठी यहांका प्रधान नगर और वाणिज्यकेन्द्र है। रब्बी, खरीफ और हैमन्तिकादि धान काफी उपजता है। नाव द्वारा यहांका वाणिज्य उतना नहीं चलता। अधिकांश रेलपथ और पक्की सड़कसे बैलगाड़ी द्वारा ही चलता है। सीतापुर, फैजाबाद और कानपुर जाने आनेके लिये जो सड़क गई है वह प्रायः ५ सौ मील लम्बी है। इसके सिवा कुर्सी, देवा, सुलतानपुर, गोसाईगञ्ज और अमेठी हो कर सुलतानपुर, मोहनलालगञ्ज हो कर रायबरेली, सई नदीका सुन्दर पुल पार कर मोहन और उन्नाव जिलेके रसूलाबाद और मलिहाबादसे हरदोई जिलेके शाण्डिल्य नगर तक सड़कें गई हैं। इन सभी सड़कोंसे लखनऊ नगर जा सकते हैं। फिर कुछ सड़कें यहांसे अन्यान्य जिलोंके प्रधान प्रधान

नगरोंमें गई हैं। उनमेंसे जो सड़कें महोनासे कुर्सी और देवा होती हुई बाराबंकी तक ; गोसाईंगञ्ज और मोहनलालगञ्ज होती हुई कानपुरके राजवर्त्म तक ; बनिपुलसे मोहन और औरस तक ; सई नदीके पक्के का पुल पार कर मोहन-औरसके उत्तरसे रहिमाबाद तक तथा लखनऊसे बिजनोर तक गई हैं, वे ही प्रधान हैं। जिलेकी उपरोक्त सभी सड़कें पक्की हैं। वर्षाके समय उन पर कीचड़ जमने नहीं पाता। सभी स्थानोंमें नदीके ऊपर पक्के का पुल है।

अयोध्या-रोहिलखण्ड-रेलपथ इस जिलेके मध्य हो कर दौड़ गया है। इसकी तीन शाखाएं पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वको गई है। एक लखनऊसे बारबंकी और खर्वरा-तीरवर्त्ती बहरामघाट तक जा कर फैजाबादसे वाराणसी पर्यन्त आई है। दूसरी शाखा लखनऊसे कानपुर तथा तीसरी ककोरी और मलिहाबाद नगर होती हुई हरदोई नगर पार कर शाहजहानपुर, बरेली और मुरादाबाद तक चली गई है। लखनऊ नगर ही व्यवसाय वाणिज्यमें प्रसिद्ध है। दूसरे दूसरे नगरोंमें सामान्य तौरसे वाणिज्य चलता है।

इस जिलेमें ६ शहर और ६३२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ७८, मुसलमानकी २० तथा बाकीमें दूसरी दूसरी जातियां हैं। विद्याशिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर दो सौसे अधिक स्कूल है। कालेजकी संख्या ६ है जिनमेंसे एक लखनऊ शहरमें पांच कालेज हैं। स्कूल और कालेजको छोड़ कर २५ अस्पताल हैं।

३ लखनऊ जिलेकी मध्य तहसील। यह अक्षा० २६° ३६′ से २७° उ० तथा देशा० ८०° ३६′ से ८१° ६′ पू०के मध्य अवस्थित हैं। भूपरिमाण ३६० वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें ३२७ ग्राम और ३ शहर लगते हैं।

४ अयोध्या प्रदेशकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५२′ उ० तथा देशा० ८०° ५६′ पू० गोमती नदीके दोनों किनारे अवस्थित है। यह नगर कलकत्तासे ६६६ मील, वाराणसीसे १९६ मील और बाबईसे ८८५ मील दूर पड़ता है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ४०३ फुट है। यह नगर युक्तप्रदेशमें सबसे बड़ा है तथा अंगरेजाधिकृत भारतीय नगरोंमें चौथा है। जनसंख्या तीन लाखके करीब है।

बम्बई, कलकत्ता और मन्द्राजको छोड़ कर भारतीय सभी नगरोंमें यह मनोरम है। मुसलमानी अमलके आखिरमें यह उत्तर-पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद भी यहां उस विभागका विचार-सदर प्रतिष्ठित है। यहां सभ्यता और उन्नतिकी पराकाष्ठा यथेष्ट विद्यमान है। सङ्गीतविद्यालय, व्याकरण शिक्षासमिति और इसलामधर्मकी आलोचनाके लिये कई एक साम्प्रदायिक विद्यालय आज भी स्थानीय समृद्धिका परिचय देते हैं।

गोमती नदीके दोनों किनारे बड़े बड़े मकान हैं जिनसे नगरकी शोभा और भी बढ़ गई है। नगरकी सीमा पार करनेसे नदीके किनारे दूरव्यापी उद्यानवाटिका स्थानीय सौन्दर्यकी मात्रा और भी बढ़ाती है। नगरके एक छोरसे दूसरे छोर तक जानेके लिये गोमती नदी पर चार पुल बने हैं। उनमेंसे दो स्थानीय मुसलमान राजाओंके यत्नसे तथा १८५६ ई०में अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद अंगरेजोंके उद्योगसे बाकी दो पुल बनाये गये थे। नदी पर जो हालका बना हुआ पुल है उसे पार करनेसे जगमगाता हुआ मर्मर-सा सफेद सुन्दर महल दृष्टिगोचर नहीं होता। उस समय फलफूलके भारसे झुके हुए श्यामल वृक्षोंसे समावृत उद्यान-वाटिका ही लोगोंकी दृष्टि पर पड़ती है। इस प्रकार कुछ दूर नदीमें जानेसे नवाब आसफ-उद्दौलाका प्राचीन पत्थरका पुल दिखाई देता है। उसीके वाम भागमें मच्छिभवन दुर्गका सुबृहत् प्राचीर है। उस प्राचीरके भीतर लक्ष्मण टीला नामक प्राचीन नगरभाग है। इसके बगलमें ही नाना अट्टालिकादिसे परिशोभित आसफउद्दौलाका प्रतिष्ठित प्रसिद्ध इमामबाड़ा है। यहांसे कुछ दूर आगे बढ़ने पर इतिहास-प्रसिद्ध जुमा-मसजिद मिलती है। उस मसजिद पर चढ़नेसे नगरका कुल भाग दिखाई देता है। इसके पास ही नदीके किनारे रेसिडेन्सी-भवनका भग्नप्राचीर है। वहांका स्मृतिक्रोस (Memorial Cross) आज भी दर्शकके हृदयमें

१८५७ के गदर और अंगरेजकी वीरत्व-कहानीका परिचय देता है। इस सुविस्तृत प्राङ्गणके सामने नदीके किनारे स्थापित छत्रमञ्जिल नामक विख्यात प्रासाद है। इस प्रासाद पर जो सोनेका छत्र है उस पर सूर्यकी किरण पड़नेसे दूर स्थानवासीको उसकी चमक दिखाई देती है। इसके पास ही बांई ओर दो मसजिद हैं। दोनों मसजिदके बीचमें कैसरबाग नामक महल है। यहां अयोध्याराजवंशके सिंहासनच्युत वंशधर रहते थे।

लखनऊ-सेतु।

मुगल-साम्राज्यके अन्तिम समयमें भी अयोध्याके वजीरवंशकी प्रधानताके समय लखनऊमें राजधानी कायम की गई। उक्त मुसलमान-राजवंशने यथाक्रम रोहिलखण्ड, इलाहाबाद, कानपूर, गाजीपुर और इस विभागमें शासन किया था। इसके बाद सैयत् खांके वंशजोंने इसका उपभोग किया। इसके पहले यहां ब्राह्मण और कायस्थोंका प्रभाव था। मच्छिभवन दुर्ग-प्राकारके भीतर लक्ष्मणटीला नामक उच्च भूमि ही उस प्राचीन जनपदका निदर्शन है। प्रवाद है, कि यहां अयोध्या-राज रामचन्द्रके भाई लक्ष्मणने शेषनागके पवित्र तीर्थके समीप अपने नाम पर लक्ष्मणपुर नगर बसाया था। उस पवित्र तीर्थके ऊपर मुगल बादशाह औरङ्गजेबने एक मसजिद बनवा दी। किन्तु लक्ष्मणपुरकी पवित्र स्मृति आज भी लखनऊवासीके हृदयसे दूर नहीं हुई है।

शेख वा लखनऊके शेखजादा नामक प्रसिद्ध मुसलमान-राजवंशने ही पहले अयोध्याको जीत कर अपनी धाक जमाई। पीछे रामनगरके पठानोंने गोल-दरवाजा तक मुसलमान शासनदण्ड परिचालित किया था। इसके ठीक पूरबमें शेखोंकी अधिकार-सीमा थी। उन्होंने ही ध्वस्तप्राय मच्छिभवन दुर्ग बनवाया था। धीरे धीरे उस दुर्गके चारों ओर आबादी हो गई। मुगल-बादशाह अकबरशाहके समय वही आबादी लखनऊ कहलाने लगी। राजा टोडरमलके पैमाइश-विवरणमें गोमती-तीरवर्त्ती समृद्धिका उल्लेख है। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहां मुसलमान-साधु शेख मीनाशाहका मकबरा था। लोग उनकी पूजा करनेके लिये यहां आया करते थे। उस समय यहां सैकड़ों ब्राह्मणका वास था। सम्राट् अकबरशाहने उन लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये लाख रुपये दे कर वाजपेय-यज्ञ कराया। उनके पहले यहांकी कोई विशेष समृद्धि न थी। उनके उद्योगसे और पीछे सैयत् अली खां और आसफ उद्दौलाके अध्यवसायसे इस नगरकी धीरे धीरे श्रीवृद्धि हुई थी। प्राचीन नगरभाग जहां वर्त्तमान चक है, वह तथा चकसे संलग्न नगरका दक्षिणांश सम्राट् अकबरशाह द्वारा बनाया गया है। इसके सिवा उन्होंने अन्यान्य स्थानोंका अङ्ग-सौष्ठव करनेके लिये बहुत रुपये खर्च किये थे। उनके पुत्र मिर्जा

सलीम शाह (जहांगीर) ने वर्त्तमान दुर्गसे पश्चिम 'मिर्जामण्डि' की स्थापना की थी। अनन्तर अयोध्या-राजवंशके पहले और किसी भी मुगल-बादशाहने प्रासादादि बना कर इस नगरको शोभाको नहीं बढ़ाया।

नैशापुरका सुप्रसिद्ध पारसिक वणिक् सैयत् खां वाणिज्य करनेके लिये यहां आया था। किन्तु यहां युद्ध-व्यवसाय द्वारा उसका भाग्य चमक उठा। वह मुगल बादशाहकी कृपासे १७३२ ई०में अयोध्याका शासनकर्त्ता हुआ। लखनऊ नगरमें उसने राजधानी बसाई। तभीसे अयोध्यामें इस स्वाधीन राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई है। यह वंश पीछे अयोध्याका वजीरवंश हो गया था।

सैयत् खांके वंशधरोंने राज्यसमृद्धिसे गौरवान्वित हो लखनऊ नगरको बड़े बड़े सुन्दर महलोंसे सुशोभित कर दिया था। स्वयं सूबेदार सैयत् खां मच्छिभवनके पश्चाद्भागमें एक छोटा-सा महलमें रहता था। दुर्गके दक्षिण-पश्चिम जहां अंगरेजोंका अस्त्रागार (Ordnance Stores) है उस स्थान पर यहांके शेख राजाओं द्वारा निर्मित दो सुप्राचीन अट्टालिकाका निदर्शन पाया जाता है। सैयत् खां जब सूबेदार हो कर यहां आया तब उनमेंसे एकमें भाड़ा दे कर रहता था। वह तीन तीन महीनेमें भाड़ा चुकाता जाता था; किन्तु उसके वंशधरोंने भाड़ा देना बंद कर दिया। आखिर नवाब आसफ उद्दौलाने उस अट्टालिकाको राजसम्पत्ति बतला कर जब्त कर लिया।

सैयत् खां जब पहले पहल यहां आया था, तब शेख लोग कई बार उसके विरुद्ध खड़े हो गये थे, पर कुछ कर न सके। आखिर वे उस वीरवरका बलवीर्य देख कर स्वयं उसके अधीन हो गये। मृत्युसे पहले सैयत्ने अपने शत्रुकुलको निर्मूल कर अयोध्या विभागमें एक स्वाधीन देश बसाया था। वृद्धावस्थामें भी उसके बलवीर्यका ह्रास नहीं हुआ था। हिन्दू लोग उसके युद्ध-कौशलसे पराजित और भयभीत होते थे। प्रसिद्ध हिन्दू-वीर भगवन्तसिंह खीचि उससे द्वन्द्वयुद्ध कर मारे गये। अपने अधीनस्थ सेनादल और अध्यक्षके शिक्षा गुणसे उस समय उसने विशेष प्रतिष्ठा लाभ की थी।

उसका दामाद और उत्तराधिकारी नवाब सफदर जङ्ग (१७४३ ई०में) दिल्लीमें वजीर-पद पर नियुक्त था। उसने बाइसवाड़ाकी दुर्द्धर्ष बाई जातिको भयभीत रखनेके लिये नगरसे ३ मील दक्षिण जलालाबादमें दुर्ग बनवाया तथा लक्ष्मणपुरके प्राचीन दुर्गका पुनः संस्कार कर उसका मच्छिभवन नाम रखा। उस दुर्गके शिखर पर एक मछली स्थापित रहनेसे उसका यह नाम हुआ था। उसने नगरमें बहनेवाली नदीके ऊपर दो पुल बनवानेकी कोशिश की थी। पीछे आसफ उद्दौलाके यत्नसे उसका आरम्भ किया हुआ कार्य शेष हुआ था। क्योंकि उसका लड़का सुजाउद्दौला (१७५३ ई०में) बक्सर-युद्धके बाद फैजाबादमें ही रहता था। उसके लखनऊ नगरमें न रहनेके कारण नगरको कोई श्रीवृद्धि न हुई।

अयोध्याके इस नवाबवंशके प्रथम तीन राजे ही योद्धा और प्रसिद्ध राजनैतिक थे। उन्होंने अंगरेज, महाराष्ट्र और रोहिला तथा दिल्लीके प्रधान प्रधान अमात्योंके विरुद्ध युद्ध कर अच्छा नाम कमाया था। लगातार युद्धविग्रहमें लिप्त रहनेके कारण वे राज्यशासनके सिवा राज्यके स्थापत्य-शिल्पकी कोई उन्नति न कर सके। केवल सामरिक विभागकी उपयोगी दुर्गमाला, कूप और सेतु आदि बनानेमें उन लोगोंका चित्त आकृष्ट था।

चौथे नवाब आसफ उद्दौलासे लखनऊका राजनैतिक चित्र परिवर्त्तित हुआ। उसने अङ्गरेजोंसे मेल कर लिया। अंगरेजी सेनाकी सहायतासे उसने रोहिलखण्डको जीत कर वाराणसी तक अपना अधिकार फैलानेकी चेष्टा की। इस प्रकार धीरे धीरे उसने अपना दल मजबूत कर लिया। बहुत रुपये खर्च करके उसने पुल और मसजिद बनवाई तथा लखनऊ शहरको गौरवकीर्त्ति और स्थापत्यविद्याका प्रकृष्ट निदर्शन प्रसिद्ध इमामबाड़ा नामक प्रासाद स्थापन किया। यह प्रसिद्ध अट्टालिका यद्यपि दिल्ली और आगरेके इमामबाड़ेकी तरह मुसलमानी ढंग पर नहीं बनी है, तो भी 'रूमिदरवाजा' नामक मसजिदके साथ संलग्न रहनेके कारण इसका सौन्दर्य देखने लायक है। इसका गठन साधारण तथा गाम्भीर्यपूर्ण है। इसमें ग्रीक और इटली गठनकी बहुत कुछ सदृश्यता देखी जाती है। १७८४ ई०में जब यहां महामारीका भारी प्रकोप

था, उस समय बेचारी क्षुधित प्रजाको अन्न जल आदि मिलता और इसके बदले उन लोगोंसे इमामबाड़ा बनानेमें काम लिया जाता था। कहते हैं, कि अर्थाभावके कारण नगरके कितने मान्यगण्यने भी इसमें काम किया था। दिनको कहीं लोगोंसे पहचाने न जायें, इस लाजसे वे दोपहर रातको अपनी मजदूरी लेते थे। उस इमामबाड़े-का एक-प्रकोष्ठ १६७ फुट×५२ फुट लम्बा है। उसके बनानेमें करीब एक करोड़ रुपया खर्च हुआ था। उसमें चमकीले और प्रभासम्पन्न जो सब चारुशिल्प चित्रित हुए थे, अभी केवल उनका चिह्नमात्र रह गया है। मूल-द्रव्य स्थानभ्रष्ट वा अपहृत होनेके कारण लोगोंको देखने-में नहीं आता। उक्त स्थान दुर्गसीमाके मध्य रहनेसे अभी वृटिश-सरकारने उसमें अस्त्रादि रखनेकी व्यवस्था की है। आश्चर्यका विषय है, कि अट्टालिका काष्ठका कोई शिल्प देखनेमें नहीं आता। फार्गुसन साहब इसके गुम्बजकी बड़ी तारीफ कर गये हैं।

इमामबाड़ेको छोड़ रूमीदरवाजा भी आसफ उद्दौला-को एक प्रधान कीर्त्ति है। इसके बाद दुर्गके पश्चिमस्थ नदी-तीरवर्त्ती दौलतखाना नामक प्रासाद है। वही पीछे सरकारी रेसिडेन्सीमें परिणत हो गया था। गोमती-तीर वर्त्ती यह सुवृहत् अट्टालिका लखनऊका एक गौरवस्थल है। नवाब सयादत् अली जब फरहत्बक्स नामक सुरम्य प्रासादमें अपना वासभवन उठा ले गया, तब इस अट्टा-लिकामें अंगरेज-रेसिडेन्ट रहने लगे। नगरके बहिर्भागमें तथा नदीके दूसरे किनारे नवाब आसफ उद्दौला-प्रतिष्ठित विवियापुर नामक प्रासाद है। नवाब बहादुर जब शिकार-को बाहर निकलते, तब इसी ग्राम्य-भवनमें आ कर रहते थे। पतद्भिन्न नगरके दूसरे दूसरे स्थानमें भी इन नवाब-के उद्योगसे निर्मित और भी कितनी अट्टालिकायें मौजूद हैं। वे सब अट्टालिकायें लखनऊ शहरका गौरव बढ़ाती हैं।

इस समय सेनापति क्लाड मार्टिनने Martiniere नामक सुप्रसिद्ध विद्यालय स्थापन किया। वह बिलकुल इटली-ढंग पर बनाया गया था। पीछे कहीं मुसल-मानराज उसे छीन न ले, इस भयसे उसके मध्य स्थापयिताकी हड्डी गाड़ दी गई। किन्तु सिपाही-विद्रोह-के समय मुसलमानोंने मकबरा खोद कर हड्डोको बाहर निकाल दिया।

आसफ उद्दौलाके शासनकालमें लखनऊ-इस बार बहुत भड़कीला दिखाई देता था। इस समय राज्यसीमा-की वृद्धिके साथ साथ राजस्वकी भी यथेष्ट वृद्धि हुई थी। नवाब आसफ उद्दौला बहुत उदार और शौकीन थे। उसीमें वह अपना खजाना खाली कर गये। पाश्चात्य ऐतिहासिकोंका कहना है, कि यूरोप वा भारतवर्षमें आसफ उद्दौलाके गौरवमय कीर्त्तिकलापका मुकाबला कोई भी राजा नहीं कर सकता। उनके उच्चाभिलाषने उन्हें साधारण सीमासे बाहर कर दिया था। उस समयका प्रसिद्ध मुसलमान-राजा टीपू सुलतान वा निजाम जिससे हाथी वा हीरकादि सम्पत्तिमें उनके समान ऐश्वर्य्यवान् न हो सके, इस ओर उनका विशेष लक्ष्य था। अपने लड़के वजीर खाँके (जिसने मि० चेरीके हत्यापराधमें चूनार दुर्गमें बन्दी रह कर भवलीला सम्वरण की थी) के विवाहमें उन्होंने बारातके साथ १२ सौ हाथी भेजे थे। उस समय अलीके शरीर पर करीब २० लाख रुपये का हीरा जवाहर आदिका अलङ्कार शोभता था।

यह अतुल सम्पत्ति उन्होंने भारतीय प्रजाका खून चूस कर संग्रह की थी। Tennantका विवरण पढ़नेसे इसका पता चलता है। उन्होंने लखनऊके सम्बन्धमें लिखा है— 'Jnever witnessed so many varied forms of wretchedness, filth and vice" अर्थात् ऐसी भीषण पाप-कलङ्क कालिमालिप्त नगरी मैंने कभी नहीं देखी। उस समय खोजा मियाँ आलमसके शासित प्रदेशको छोड़ कर आसफ उद्दौलाका सारा अयोध्या-राज श्मशानभूमिमें परिणत हो गया था।

आसफ उद्दौलाके लड़के सयादत् अली खाँ (१७९८ ई०)-ने अङ्गरेजोंका आनुगत्य स्वीकार किया था। वह अङ्गरेजी-सेनाकी आश्रयछायामें निर्विघ्न हो कर ऐश्वर्य्यसुखके भोगविलासको स्वप्नमें देख रहा था। सयादत् पूर्वपुरुषोंकी तरह बलवीर्य्यमें जातीय गौरवको पुष्टि न करके भोगविलासमें उन्मत्त हो गया था। वह

अङ्गरेजोंके हाथ अपनी सम्पत्तिका आधा सौंप कर अवशिष्ट ले कर ही आत्मतृप्ति करता था। मसजिद, कूप, दुर्ग, सेतु आदि निर्माण द्वारा राज्यको श्रीवृद्धि न करके उसने भोगविलासके लिये कई मकान बनवाये थे। वे सब मकान नये भाव और नई प्रणालीसे बनाये गये थे। तत्परवर्ती राजाओंके जमानेमें भी इस प्रकारके मकान बनानेकी चेष्टा की गई थी। उनमें यूरोपीय कारीगरी दिखाई देती थी।

जिस सयादत् खां और उसके वंशधरोंने एक सामान्य वासभवनमें रह कर यह सौभाग्य अर्जन किया था; इमामवाड़ा, चक और बाजारादिके प्रतिष्ठाता जो शौकीन आसफ उद्दौला केवल एक प्रासाद ले कर संतुष्ट था, उस वंशमें सयादत् अली बहुत-से प्रासाद बनवा कर भोगविलासकी पराकाष्ठा दिखा गया है। इस वंशमें बसीर उद्दीन हैदरने अपरिमित धन खर्च करके राजपरिवार और राजमहिषियोंके लिये कई एक अत्युत्कृष्ट प्रासाद बनवाये थे। उसकी विवाहिता स्त्रियां जिस प्रासादमें रहती थीं वह छत्रमञ्जिल नामसे प्रसिद्ध था। केसर-पसन्द और अन्यान्य महलोंमें उसकी रक्षिता रमणियां रहती थीं। शाहमञ्जिल नामक प्रसिद्ध भवन-प्राङ्गणमें उसके कौतूहल उद्दीपनार्थ जंगली पशु रखे जाते थे। नवाब फहरत्बक्स, हजूरबाग, बिबियापुर और अन्यान्य प्रासादमें रहता था। वयाजिद अलीशाहने ३६० रमणियोंसे विवाह न करके उन्हें आश्रितारूपमें अपने बेगम महलमें रखा था। उनमेंसे हर एकके लिये प्रासादके समान अट्टालिका बनाई गई थी।

सयादत् अली खांने फरहत्बक्स नामक प्रमोदभवन बनवा कर राजप्रासाद परिवर्त्तन किया था। उसने हिन्दुओंकी बस्तीके पूर्वांशसे लगायत दिलखुश तक नगरके बाहर कई एक छोटे छोटे प्रासाद बनवा दिये थे। वे सब प्रासाद वर्त्तमान सेनानिवासके उत्तरमें अवस्थित हैं। उन महलोंसे नदीकूल, नगर और आस-पासके स्थानोंका सौन्दर्य दूना बढ़ गया था। पीछे वयाजिद अलीने नदीके किनारे कैसरबाग नामक नन्दनकाननमें देवपुरी सदृश नाना शिल्पपूर्ण अत्युत्कृष्ट अट्टालिका बनवा कर उसीको अपना वासभवन बनाया। उसने पूर्वोक्त जेनरल मार्टिनसे इस प्रासादका तीरवर्ती कुछ अंश खरीदा था। पीछे बहुत रुपये खर्च कर उस सुरम्य हर्म्यका संस्कार करा उसे अभिनव और अभिलषित प्रासादमें पर्यवसित किया था। उसका राजदरबार-घर अर्थात् जहां सुविस्तृत नाना शिल्पनैपुण्य-मण्डित राजसिंहासन प्रतिष्ठित था, वह लालबारद्वारी वा कसर-उल-सुलतान कहलाता था। वयाजिदके शासनकालमें लखनऊ नगरी चित्र वैचित्र्यकी चरम सीमा तक पहुंच गई थी। जिस दिनसे इस मुसलमान-राजवंशने अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया तथा जिस समयसे लखनऊ नगरमें अङ्गरेज रेसिडेण्टके रहनेकी व्यवस्था हुई, उसके बादसे ही जब कभी नवीन नवाबका राज्याभिषेक होता, तब अङ्गरेज-रेसिडेण्ट आ कर उसे सिंहासन पर बैठाते थे तथा इस प्रदेशमें अपनी राजशक्तिकी प्रधानता जतानेके लिये उसे राजनजर देते थे।

सयादत् अली खांका लड़का गाजी उद्दीन हैदर १८१४ ई०में अयोध्याके राजपद पर बैठा। वही इस वंशमें प्रकृत राजनामका अधिकारी हुआ था। उसने अपने पिताके अनुष्ठित मोतीमहल गुम्बजके चारों बगल मोतीमहल प्रासाद बनवाया। नदीके प्राचीन नौका-सेतुके उभय तीरवर्ती मुबारक-मञ्जिल और शाह-मञ्जिल नामक प्रासाद उसीके अनुग्रहसे संस्कृत हुआ था। शाह-मञ्जिल प्रासादमें वह रोमक-सम्राटोंकी तरह दुरन्त जंगली पशुओंका रणकौतुक देखते थे। लखनऊ राजवंशके अवसान तक इस प्रासादमें भयावह पाशव-युद्ध हो रहा था। इसके सिवा गाजी उद्दीन हैदरने चीनी-बाजार सुप्रसिद्ध 'छत्रमञ्जिल-कलान' और 'छत्रमञ्जिल खुर्द' बनवाया था।

अपने मकबरेके लिये उसने गोमतीके किनारे शाह नजफ नामक एक मन्दिर निर्माण किया था। बचपनमें वह इसीमें रहता था। उस पर अपने पिता और माताके लिये उसने दो मकबरे भी बनवाये थे। जलकी सुविधाके लिये उसने एक नहर कटवानेकी चेष्टा की थी। उसका निदर्शन नगरके पूर्व और दक्षिणमें आज भी देखा जाता है। अर्थाभावके कारण वह उसे शेष न कर सका था। कदम-रसूल अर्थात् महम्मद-पदचिह्नस्थापित

कृत्रिम स्तूपके ऊपर उसने एक बड़ी अट्टालिका बनवाई थी। पहले एक मुसलमान उस पदचिह्नको अरबसे इस देशमें लाया था। वही उसको एक ऊंचे स्थान पर स्थापन कर एक मुसलमान तीर्थरूपमें घोषित कर गया है। गाज़ी उद्दीनके आग्रहसे उसका माहात्म्य बहु बढ़ गया। १८५७ ई०के गदरमें वह पत्थर स्थानान्तरित किया गया था, इस कारण तभीसे वह कदम रसूलके मन्दिरमें प्रतिष्ठित न हुआ।

गाज़ी उद्दीनके पुत्र नासिर उद्दीन हैदर १८२७ ई०में पितृ-सिंहासन पर अभिषिक्त हो राजकार्य चलाने लगा। ज्योतिःशास्त्रमें ऐकान्तिक आसक्तिके कारण उसने बहुत रुपये खर्च कर 'तारावाली कोठी' नामक एक वेधालय खोला था। विख्यात अङ्गरेज-ज्योतिर्विद् कर्नल विलकाक्स उसके कर्मचारिरूपमें नियुक्त रह कर उक्त वेधालयके यन्त्रादिका परिदर्शन करते थे। १८४७ ई०में कर्नल विलकाक्सकी मृत्युके बाद वयाजिद अलीशाहने उस वेधालयको बंद कर दिया। सिपाही-विद्रोहके समय विद्रोहियोंके उपद्रवसे उक्त वेधालयमें जितने यन्त्रादि थे सभी टूट फूट गये। विद्रोहि-दलके नेता और परामर्शदाता फैजाबादवासी मौलवी अह्मदउल्ला शाह इस समय यहां आ कर बस गया। विद्रोहियोंको उभाड़नेके लिये वह अपने प्राङ्गणमें सभा किया करता था।

नासिर उद्दीन हैदरने उपरोक्त वेधालयको छोड़ कर हराइत नगरमें एक बड़ी 'करबला' भी बनवाई थी। उसी करबलामें वह दफनाया गया था।

नासिर उद्दीनकी मृत्युके बाद उसका चचा महम्मद अली शाह १८३७ ई०में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने कीर्त्तिस्तम्भ हुसेनाबादका इमामवाड़ा बनवाया। यह दो भागोंमें विभक्त है। लखनऊ दुर्गका प्रसिद्ध रूमी दरवाजा गोमती-तीरवर्त्ती प्रशस्तपथसे इस इमामवाड़ाके बहिःप्राङ्गणमें चला आया है। यहां रास्तेसे कुछ पश्चिम खड़ा हो कर देखनेसे दाहिनी ओर आसफ उद्दौलाका इमामवाड़ा और रूमी-दरवाजा तथा बाईं ओर हुसेनाबादका इमामवाड़ा और जूमा मसजिद दृष्टिगोचर होती है। इन सब अट्टालिकाओंका समावेश देख कर अनेक स्थापत्यवित् मुक्तकण्ठसे कह गये हैं, कि स्थापत्य शिल्पका ऐसा अत्युत्कृष्ट निदर्शन भारतवर्षमें बहुत थोड़ा है।

राजा महम्मद अलीशाहने अपने इमामवाड़े में आनेके लिये छतरमञ्जिलसे दुर्गके मध्य होता हुआ इमामवाड़ा तक एक लम्बा चौड़ा रास्ता निकाला था। उस रास्तेके किनारे एक दिग्गी भी खोदी गई थी। उसने दिल्लीकी जुमामसजिदकी अपेक्षा अधिकतर उत्कृष्ट प्रणालीसे स्वनिर्मित इमामवाड़ेकी बगलमें एक मसजिदकी नींव डाली थी। अकालमें उनकी मृत्यु हो जानेसे उसका निर्माणकार्य पूरा न होने पाया। तभीसे वह उसी हालतमें पड़ा है। उसने 'सातखण्ड' नामक एक और दुर्गस्तम्भ बनानेका उद्योग किया था। उसके चार खण्ड बनाये जानेके बाद वह इस लोकसे चल बसा। वह भी अधूरा ही पड़ा है।

अनन्तर लखनऊके चतुर्थ राजा आमजाद अलीशाह (१८४१ ई०)-ने कानपुर तक पक्की सड़क, हजरतगञ्जमें अपना मकबरा और गोमतीका लौहसेतु बनवाया। राजा गाजी उद्दीन हैदरने उस सेतुको इङ्गलैण्डसे लानेका हुकुम दिया था। उसके पहुंचनेसे पहले ही गाजीका देहान्त हो चुका था। पीछे उसके लड़के नासिर उद्दीनने रेसिडेन्सीके सामने उसे स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था; किन्तु नदीमें स्तम्भ खड़ा करना सहज न था, इस कारण वह प्रस्ताव स्थगित रहा। आखिर आमजाद अलीने उसकी प्रतिष्ठा की।

अयोध्याराजवंशके अन्तिम राजा वाजिद अलीशाहने १८४७ से १८५६ ई० तक लखनऊ सिंहासनको अलंकृत किया था। उसका बनाया कैसरबाग नामक प्रमोदउद्यान नगरमें सबसे बड़ा और सुन्दर होने पर भी वह जनसाधारणके निकट प्रशंसाभाजन न हो सका था। १८४८ ई०में उसका कार्यारम्भ तथा १८५० ई०में उसका निर्माणकार्य शेष हुआ। उसके बनानेमें करीब ८० लाख रुपये खर्च हुए थे।

वेधालयके सम्मुखस्थ उत्तर-पूर्व द्वार हो कर प्रवेश करनेसे दर्शकको पहले जिलौखाना नामक प्रासाद द्वार पार करना होता है। इस प्रासादसे राजकीय यातो-

त्सव हुआ करता था। यहांसे दक्षिणकी ओर घूम कर एक आच्छादित द्वार पार करनेसे चीनीवागमें जाया जाता है। यहां चीनी कांचके पात्रादिने उद्यानभोगको अलंकृत कर रखा है। वहांसे नग्नाकृति रमणी मूर्त्तिसे परिशोभित एक प्रवेशद्वार अतिक्रम करनेसे हजरतवागमें पहुंचते हैं। यह नग्न प्रतिकृतियां १८वीं में अमार्जित यूरोपीय रुचिसे बनाई गई हैं। हजरतवागके दक्षिण चण्डीवाली, वारद्वारी और खासमुकाम वा बादशाहमंजिल है। इस बारद्वारीकी मेज एक समय चांदीसे मढ़ी हुई थी। बादशाह मञ्जिल सयादत् अली खां द्वारा प्रतिष्ठित होने पर भी वाजिद अलीशाहने उसे अपने नवप्रासाद चित्रके अन्तर्भुक्त कर लिया। उसके वामभागमें और भी कितनी अट्टालिकायें हैं जिनमेंसे राजक्षौरकार आजिम उल्ला खांका चांदलक्ष्मी नामक वासभवन उल्लेखनीय है। नवाब वाजिद अलीने चार लाख रुपयेमें इसे खरीदा था। इस अट्टालिकामें प्रधान वेगम और राजमहिषी रहती थीं। सिपाही विद्रोहके समय इस प्रासादमें रह कर उसकी एक वेगमने विद्रोहिदलकी सहातार्थ दरवार लगाया था। इसके पासवाले अस्तवलमें अङ्गरेज बन्दी रखे गये थे।

इसके पार्श्वस्थ-पथकी बगलमें वृक्ष है। उस वृक्षका तला मर्मर पत्थरका बंधा हुआ था। मेलेके दिन नवाब फकीरके वेशमें पीला कपड़ा पहन कर वहां बैठे रहते थे।

पूर्वकी ओर लालीद्वारा लाख रुपया खर्च कर वनाया गया था। उसे पार करनेसे कैसरवागका प्रकृत उद्यानप्राङ्गण देखनेमें आता है। इसके चारों ओर अन्तःपुर कामिनियोंका प्रासाद है। इस प्रासाद-प्राङ्गणमें प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें मेला लगता है। इस मेलेमें लखनऊवासी क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी जमा होते हैं। इसके बाद प्रस्तरनिर्मित वारद्वारी है। वह अभी रङ्गमञ्चमें परिणत हो गया है। पश्चिमका लालीद्वार पार करनेसे 'कैसर-पसन्द' नामक प्रसिद्ध प्रासाद मिलता है। उसे नासिर उद्दीन हैदरके मन्त्री रौशन-उद्दौलाने बनवाया था। उसका ऊपरी भाग अर्द्ध गोलाकार स्वर्णमय आभरणसे आच्छादित है। नवाब वाजिद अलीशाहने उसे हस्तगत कर अपनी प्रियतमा स्त्री मसुक-उल सुलतानको रहनेके लिये दिया था। पीछे एक दूसरा जिलौखाना पार करनेसे दर्शक राजपथ पर पहुंचता है।

लखनऊ अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद यहांके स्थापत्यशिल्पकी गौरवज्ञापक और किसी भी प्रकारकी अट्टालिका न बनाई गई। केवल कुछ दातव्य चिकित्सालय, विद्यालय और राजकार्यालय बनाये गये थे। बलरामपुरके महाराज सर दिग्विजयसिंह के, सी, एस, आईने रेसिडेन्सिकी बगलमें एक अस्पताल बनवा दिया है।

उपरोक्त दोनों इमामबाड़े, छत्रमञ्जिल, कैसरवाग और अयोध्या राजवंशधरोंके अन्याय प्रासादोंको छोड़ कर यहां सयादत् अली खाँ, मुसिदजादी, महम्मद अली शाह और गाजी-उद्दीन हैदरका समाधिमन्दिर देखने लायक है। एतद्भिन्न बहुत सी उद्यानवाटिका, हवाखाना, देवमन्दिर, मसजिद और धनाढ्य नगरवासियोंका वासभवन भी स्थापत्यशिल्पसे परिपूर्ण है। १८वीं सदीकी घृणित स्थापत्यरुचि जब इङ्गलैण्डसे दूर की गई, तब उसने भारतमें प्रवेश किया। भोगविलासलोलुप मुसलमानराजोंने उसको खूब अपनाया। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु फार्गुसनने इस नगरके स्थापत्यशिल्पका उल्लेख यों किया है,—No caricatures are so ludicrous or so bad as those in which Italian detail are introduced. १८५६ ई०की ७वीं फरवरीको अंगरेजराजने अयोध्याप्रदेशको जीत कर लखनऊके राजा वाजिद अली शाहको कलकत्तेका गङ्गातीरवर्त्ती मुचीखोला नामक स्थानमें नजरबंद रखा। उसी भवनमें १९वीं सदीको लखनऊके अंतिम नवाबकी मृत्यु हुई।

सिपाही-विद्रोह।

मीरटनगरमें सिपाही-विद्रोहवहि धधकनेके दो मास बाद १८५७ ई०की २री मार्चको सर हेनरी लारेन्स नवाधिकृत अयोध्याप्रदेशके चीफ कमिश्नर नियुक्त हुए। उस समय लखनऊ दुर्गमें ३२ अंगरेज सेनादल, एक दल यूरोपीय कमानवाही सैन्य, ७ नम्बरके देशी अश्वारोही सेनादल तथा १३, ४८ और ७१ नम्बरके देशी पदाति नगरके समीप दो दल सेनादल तथा स्थानीय इरेगुलके पदातिक, एक दल सामरिक पुलिस-सेना, दो दल देशी कमानवाही

और एक दल अयोध्याके इरेगुलाका पदातिक रहता था। तात्पर्य यह कि, उस समय वहां ७५० अंगरेज और प्रायः ७००० भारतीय सेना थी। अप्रिल मासके आरम्भमें ही देशी सिपाहियोंमें विद्वेषभाव दिखाई दिया। इस समय अंगरेजोंने जो जातिनाशका उपाय अवलम्बन किया था, उसका बदला चुकानेके लिये सिपाहियोंने ४८ नम्बर पदातिक दलके सार्जनका घर जला दिया। सर हेनरी लारेन्सने उपस्थित विपद्की आशङ्का कर रेसिडेन्सीको सुरक्षित करने और रसद जुटानेकी व्यवस्था कर ली। ३०वीं अप्रिलको ७ नम्बर अयोध्याके इरेगुलाका सेनादल कार्ट्रिजमें गायकी चर्वी मिली जान कर उसे काटनेसे इनकार चला गया। फिर भी उन्हें भुलावा दे कर सेनापतिकी आज्ञा माननेको वाध्य किया गया। ३री मईको हेनरीने उन लोगोंके अस्त्रशस्त्र छीन लेनेका हुकुम जारी किया। तदनुसार सभी देशी सिपाहियोंसे हथियार छीन लिये गये।

१२वीं मईको सर हेनरी लारेन्सने एक दरवार करके जनताको हिन्दीभाषामें समझा दिया, कि अंगरेजी शासन हिन्दू और मुसलमानके लिये बहुत लाभदायक है। अतएव सबोंको अंगरेजी शासनका पक्षपाती हो उसीकी अनुगामी होना चाहिये। उसके दूसरे दिन सबेरे मीरटके हत्याकाण्डका संवाद जब लखनऊ नगर पहुंचा, तब सेनादलमें बड़ी सनसनी फैल गई। १६वीं मईको सर हेनरी लारेन्सने अयोध्याके सेनादलका कर्तृत्व लाभ कर रेसिडेन्सीमें यूरोपीय नर-नारीको रखा और दुर्ग तथा मच्छिभवनको सुरक्षित कर दिया। ३०वीं मईको रातको लखनऊ नगरमें विद्रोहवह्नि जो इतने दिनोंसे सुलग रही थी, एकाएक धधक उठी। ७१ नम्बरके सेनादल तथा अन्यान्य दलके लोगोंने मिल कर अध्य ें-की कोठीमें आग लगा दी तथा घरके लोगोंको मार डाला। दूसरे दिन सबेरे यूरोपीय सेनादलने उन्हें आक्रमण कर पीछे हटा दिया। किन्तु ७ नम्बरके अश्वारोहिदल विद्रोहिदलमें मिल कर सीतापुरकी ओर रवाना हुए। १२वीं जून तक लखनऊ नगर अंगरेजोंके अधिकारमें रहा सही, पर अयोध्याके दूसरे दूसरे अंश विद्रोहियोंके हाथ लगे।

११वीं जूनको सामरिक पुलिस और देशी घुड़सवार विद्रोही सेनादल खुल्लमखुल्ला अंगरेजों पर गोला बरसाने लगे। दूसरे दिन देशी पदातिक दलने उन्हें साथ दे कर नगरको मथ डाला। २० जूनको कानपुर विद्रोहि-दलके हाथ लगा जान कर सिपाही लोग फूले न समाये। २६ जूनको ७००० हजार विद्रोहियोंने फैजाबादके पथसे अग्रसर हो रेसिडेन्सीसे आठ मील दूर किनहाट ग्राम पर चढ़ाई कर दी। सर हेनरी लारेन्स युद्धके लिये अग्रसर हुए। किन्तु वे शत्रुके सामने बहुत देर तक ठहर न सके। हार स्वीकार कर लौट आये। उन्होंने शत्रुपक्षका बल अधिक देख कर मचीभवनको छोड़ दिया और रेसिडेन्सीकी बलपुष्टि करनेके लिये वहां कुल सेना इकट्ठी की। १ली जुलाईको शत्रुदल रेसिडेन्सीको घेर कर गोला बरसाने लगा। २री शत्रुपक्षका एक गोला सर हेनरीके सोनेकी कोठरीमें घुसा जिससे वे बुरी तरह घायल हुए और ४थी जुलाईको इसी यन्त्रणासे परलोक सिधारे। अनन्तर मेजर वांक्स सिभिल विभागके और ब्रिगेडियर इनग्लिस सामरिक विभागके अध्यक्ष हुए। २०वीं जुलाईको शत्रुओंने फिरसे अंगरेजों पर हमला कर दिया। दूसरे दिन मेजर-वांक्स मारे गये। अब कुल अधिकार ब्रिगेडियर इंगलिशके हाथ रहा। १० और १८ अगस्तको लगातार दो आक्रमण करके भी शत्रुदल अंगरेजोंको परास्त न कर सका। रेसिडेन्सीमें जो अंगरेज थे, कहींसे मदद मिलनेकी आशा न देख हताश हो रहे थे। इसी समय आउट्रम और हावलकके आनेको खबर सुन कर वे लोग बहुत उत्साहित हुए। २२वीं सितम्बरको हावलकने आलमबागमें पहुंच कर वहांके विद्रोहियोंका दमन किया। २५ सितम्बर तक शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए वे रेसिडेन्सके दरवाजे पर पहुंचे। उसके पहले ही शत्रुओंके हाथसे जेनरल नील मारे गये थे। शत्रुदलने अंगरेजोंकी शक्ति कमजोर देख कर फिरसे नगर पर धावा बोल दिया। आउट्रम और हावलकने बड़ी वीरतासे दिन रात युद्ध कर नगरकी रक्षा की थी।

अक्टूबर मास तक अंगरेज लोग असीम उत्साहसे युद्ध कर आत्मरक्षा करते रहे। १०वीं नवम्बरको सर

कासिन-काम्बेलके अधीनस्थ सेनादल कानपुरसे आलमबेग पहुंचा। काम्बेल वहांसे कलकत्ता आ कर लखनऊका उद्धार करनेकी इच्छासे भिन्न भिन्न स्थानसे सैन्य संग्रह करने लगे। १२वीं नवम्बरको उन्होंने दलबलके साथ आलमबेग पर चढ़ाई कर दी। कुछ समय युद्ध करनेके बाद शत्रुदल परास्त हुआ। अनन्तर वे दिलखुश प्रासादको कब्जा कर मार्टिनेयरकी ओर अग्रसर हुए। यहां हथियारबंद विद्रोही सिपाही दल रहता था। उक्त स्थानको जीत कर काम्बेलने खालको पार किया और १६वीं नवम्बरको शत्रुदलके प्रधान केन्द्र सिकेन्दराबाग पर हमला कर दिया। यहां दोनों दलोंमें घोर युद्ध होनेके बाद विद्रोहीदल परास्त हुआ। अंगरेजीसेना दुर्गको अधिकार कर बड़े उत्साहसे मोतीमहल तक अग्रसर हुई। हावलक रेसिडेन्सीसे निकल कर दलबलके साथ उनसे मिले।

इस प्रकार विजयी द्वितीय साहाय्यकारी सेनादल लखनऊ नगर पहुंचा सही, पर अङ्गरेजोंके लिये नगरकी रक्षा करना असम्भव-सा हो उठा। इस पर सर कालिन काम्बेलने शत्रुको जबर्दस्त चढ़ाई देख कर अङ्गरेज पुरुष, स्त्री और बालबच्चोंको यहांसे कलकत्ता भेज देना चाहा। तदनुसार वे २०वीं नवम्बरको दलबलके साथ अग्रसर हुए। रेसिडेन्सी पर पुनः शत्रुका कब्जा हुआ। राहमें सर हेनरी हावलककी मृत्यु हुई। आलमबागमें वे दफनाये गये।

अब सबके सब कानपुरकी ओर बढ़े। केवल सर जेम्स आउट्रम ३५०० सेना ले कर आलमबागकी रक्षा करने रह गये। वे प्रधान सेनापतिकी बाट जोह रहे थे। इसी समय मौका देख विद्रोहि-दलने नगरके चारों ओर घेर लिया। वे लोग आत्मरक्षाके लिये चारों सीमाको सुदृढ़ करने लगे। प्रायः ३० हजार शिक्षित सिपाही और ५० हजार भोलंटीयर नगरके चारों ओर प्रायः २० मील तक फैल गये थे। उन लोगोंके पास १०० कमान थीं।

१८५८ ई०की २री मार्चको सर कालिन काम्बेलने फिर लखनऊकी यात्रा कर दी। उन्होंने दिलखुशको जीत कर मार्टिनियारकी रक्षाके लिये कमानवाही सेनाको सजा रखा। ५ मार्चको ब्रिगेडियर फ्राङ्कस नेपालराज द्वारा भेजे गये ३ हजार गुर्खा और ३ हजार अङ्गरेजी सेना ले कर वहां डट गये। आउट्रम भी दलबलके साथ गोमती पार कर फैजाबादकी ओर चल दिये। इस समय सिपाही-दलने दक्षिण-पूर्वसे उन पर चढ़ाई कर दी। एक सप्ताह (६से १५ मार्च तक) दोनोंमें घमसान युद्ध चलता रहा। आखिर विद्रोहि-दलकी हार हुई। अङ्गरेजोंने एक एक उन लोगोंके सभी सुरक्षित स्थान जीत लिये। विद्रोहि दल लखनऊसे भाग चला। पीछे सेनापति काम्बेल अयोध्याके सेनादलको विभक्त कर उनका संस्कार करने लगे। उसी सालको १८वीं अक्तूबरको लार्ड कैनिङ्गने सस्त्रीक यहां आ कर ध्वस्त नगरका पुनः संस्कार कार्य देखा था।

इस नगरमें नाना प्रकारका शिल्प-वाणिज्य चलता है। उनमेंसे जरी, रेशम और जवाहरका कार्य ही प्रसिद्ध है। कश्मीरी वणिकोंने यहां शाल बनानेका कारखाना खोला है। कांचके बरतन और कागज बनानेकी कल भी हैं।

शिक्षा-विभागमें मार्टिनेयरको छोड़ कर लखनऊका कैनिङ्ग कालेज प्रसिद्ध है। यह कालेज १८६४ ई०में स्थापित हुआ है। विभागीय कमिश्नर इस कालेजके सभापति हैं। इसके सिवा अमेरिकन मिसनके अधीन ७ और इङ्गलिश चर्च-मिसनके अधीन ५ विद्यालय हैं। तालुकदारके लड़कोंके पढ़नेके लिये भी एक स्वतन्त्र स्कूल है जो कोलविन स्कूल (Colvin School) कहलाता है। इसके सिवा नारमल स्कूल, जुबली हाई स्कूल, सिकेण्ड्री स्कूल और प्राइमरी स्कूल भी है। बालिका-स्कूल जो अभी कुर्शेद-मञ्जिलमें है १८६६ ई०में स्थापित हुआ है। वाद्ययन्त्र और सङ्गीत-शिक्षाके लिये यहां बहुतसे उस्तादोंके अधीन विद्यालय परिचालित होता है। लखनऊका देशी रङ्गमञ्च देखने लायक है। यहांसे ५ अङ्गरेजी और १८ हिन्दी समाचार-पत्र निकलते हैं। शहरमें जितने प्रेस हैं उनमेंसे नवलकिशोर प्रेस ही मशहूर है।

लखनदै—बाघमती नदीकी एक शाखा। यह नेपालकी पर्वतमालासे निकल कर इटावा गांवके पास होती हुई

मुजफ्फरपुर जिलेके बीच बह चली है और शौरान तथा बासियाड़ नामक दो जलधारासे कलेवर पुष्ट कर दक्षिण-की ओर दरभङ्गा-मुजफ्फरपुर रास्तासे ७·८ मील दक्षिण बाघमती नदीमें मिल गई है। उक्त रास्ता नदीके ऊपर लोहेका पुल हो कर गया है। वर्षाकालमें इस नदीसे सीतामढ़ी तक नौका पर जा सकते हैं। राजापति, दुमड़ा, बेलाही, शरपुर और राजखण्ड नीलकोठी इस नदीके किनारे है।

लखना (हि० क्रि०) १ लक्षण देख कर अनुमान कर लेना। २ देखना।

लखनोर—रोहिलखण्डके रामपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। पहले यहां कटारिया जातिकी राजधानी थी। आज कल यह शाहाबाद कहलाता है। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक ध्वस्त निदर्शन पड़े हैं।

लखनोर—बङ्गालका एक प्राचीन राजनगर। प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाजके वर्णनसे जाना जाता है, कि राजनगर, वङ्ग, कामरूप और तिरहुत यह विस्तीर्ण भूखण्ड एक समय लक्ष्मणावती वा गौड़राज्य नामसे परिचित और लक्ष्मणसेनके अधिकारभुक्त था। लक्ष्मणावती प्रदेश गङ्गा द्वारा दो भागोंमें विभक्त था। इनमेंसे पश्चिमी भाग राढ़ और पूर्वी भाग 'वरिन्द' (वरेन्द्र) कहलाता था। उसी राढ़में लखनोर नगरी अवस्थित थी।

अबुल फजलकी आईन इ-अकबरीमें लिखा है, कि बल्लालसेनने उत्तर-राढ़में वीरभूम जिलेके अन्तर्गत लक्ष्मणनगर नामसे एक प्रसिद्ध नगर बसाया था। तबकात-इ-नासिरी आदि मुसलमान-इतिहासमें उसीको 'लखनोर' कहा है। आज कल यह 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनौती (लक्ष्मणावती)—युक्तप्रदेशके शहरानपुर जिलान्तर्गत नाकुर तहसीलका एक प्राचीन नगर। अभी यह ध्वंसावस्थामें पड़ा है और श्रीभ्रष्ट हो गया है। प्राचीन कीर्त्तिके निदर्शन-स्वरूप यहां एक टूटा फूटा किला मौजूद है।

इस नगरमें तथा इसके उपकण्ठस्थित पांच ग्रामोंमें पहलेसे तुर्क जातिका एक उपनिवेश चला आता था। बहुत दिनों तक वे लोग वहां बलशीर्ष और समृद्धिहीन हो कर रहे। पीछे १८वीं सदीके शेष भागमें उन लोगोंने क्रमशः अपना दल मजबूत कर लिया। १७९४ ई०में शहरानपुरके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता बापू सिन्दे उन लोगोंका दमन करनेके लिये तुल गये। आखिर जार्ज टामसके अधीन प्रेरित साहाय्यकारी सेनादलने जा कर दुर्ग-प्राचीरको तोड़ फोड़ डाला। तुर्क लोग आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए।

लखनौती—बङ्गालकी एक प्राचीन नगरी। लक्ष्मणावती देखो।

लखपती (हिं० पु०) लाखों रुपयेका अधिपति, जिसके पास लाखों रुपयेकी सम्पत्ति हो।

लखमीतात (हिं० पु०) समुद्र।

लखमीवर (हिं० पु०) विष्णु।

लखर (हिं० पु०) काकड़ासिंगीका पेड़। इसे अरकोल भी कहते हैं।

लखलखा (फा० पु०) १ कोई सुगन्धित द्रव्य। २ एक विशेष प्रकारका बना हुआ सुगन्धित द्रव्य। यह प्रायः मिट्टी पर गुलाव-जल छिड़क कर अथवा इसी प्रकारके और द्रव्योंसे तैयार किया जाता है। इसे सुंघा कर बेहोश आदमीको होशमें लाते हैं।

लखाहाण्डाई—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

लखात—आसाम प्रदेशके श्रीहट्ट जिलेकी सीमा पर स्थित एक बड़ा गांव यह खासिया शैलकी नीचे अवस्थित है। यहां हर सप्ताहमें दो दिन हाट लगता है जिसमें पहाड़ी खस और सनतेग लोग पहाड़ी वस्तुएं बेचने आते हैं।

लखाना (हिं० क्रि०) १ दिखलाना। २ अनुमान करा देना, समझा देना।

लखि—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्धु-प्रदेशान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह बलुचिस्तानकी हाला या ब्राहुई पर्वत श्रेणीसे मिली हुई। इसकी लम्बाई प्रायः ५० मील और ऊंचाई १५००से २००० फुट है। यह अक्षा० २६° उ० तथा देशा० ६७° ५' पू०के मध्य पड़ती है। इस पर्वतमें बहुतसे गरम सोते हैं। सेवान नगरके समीप यह पर्वतांश क्रमशः सिन्धुनदको समतल भूमिमें परिणत हो गई है। पर्वतवक्षमें कहीं कहीं सीसा, रसांजन और तांबा पाया जाता है।

लखि—सिन्धुप्रदेशके करांची जिलेके सेवोन उपविभागके अन्तर्गत एक बड़ा गांव यह सिन्धुनदके पश्चिमी किनारेके पास और लखि गिरिसंकटके प्रवेशपथ पर अवस्थित है। सिन्धु, पंजाब और दिल्ली रेलवे लाइन लखि नगर होती हुई गिरिपथके बीच हो कर चली गई है। यहां उक्त रेलवे लाइनका एक स्टेशन है। यहांसे प्रसिद्ध धारातीर्थ दो मील दूर पड़ता है। इस गरम झरनेमें जानेके लिये लंबी चौड़ी सड़क दौड़ गई है।

लखि—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° ५१' उ० तथा देशा० ६८° ४४' पू०के बीच पड़ता। इस नगरसे सिन्धु, पंजाब और दिल्ली रेलपथका एक जङ्कशन सिर्फ डेढ़ कोस दूर है। यह नगर बहुत प्राचीन है। जिस समय वर्त्तमान शिकारपुर विभाग जंगलोंसे भरा था, उस समय यह सिन्धुप्रदेशके प्रसिद्ध वह्निका और लर्खाना विभागका प्रधान केन्द्र समझा जाता था। फिलहाल वह सौन्दर्य बहुत कुछ नष्ट हो गया है।

लखिमपुर—आसाम प्रदेशकी पूर्वी सीमा पर स्थित अङ्गरेजोंके अधिकारमें एक जिला। ब्रह्मपुत्र-नदके दोनों तीरवर्त्ती भूभागको ले कर यह जिला गठित है। यह अक्षा० २६° ४६' से २७° ५२' उ० तथा देशा० ९३° ४६' से ९६° ५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५२६ वर्गमील है। इस जिलेका अधिकांश हिस्सा ही जंगलों और पर्वतोंसे भरा है। बीच बीचमें पहाड़ी जातिका वास है। सरकारकी वर्त्तमान पैमाइशीमें सिर्फ ३७२३ वर्गमील भूमि रहने योग्य विशिष्ट हुई है। डिब्रुगढ़, डिब्रुनदी और ब्रह्मपुत्रके संगम पर अवस्थित है और यही इस जिलेका बिचार सदर है। जनसंख्या ३७१३९६ है।

इस जिलेके उत्तर दफला, मीरी, आवर और मिशमी शैलमाला; पूर्वमें मिशमी और सिङ्गफो शैलमाला; दक्षिणमें पाटकै पर्वत और नागाशैलका अववाहिका प्रदेश तथा पश्चिममें दरङ्ग और शिवसागर जिलेकी प्रान्तप्रवाही मरा-भरणाई, दिहिङ्ग और दिसङ्ग नदी पड़ती है। उत्तर और पूर्वप्रान्तस्थित शैलमाला पर उस नामकी पहाड़ी जाति रहती है, इस कारण अभी तक पर्वतप्रान्तमें अङ्गरेजोंका अधिकार न होने पाया है। दक्षिण सीमा ले कर अङ्गरेजराज और ब्रह्म गवर्मेण्टका बंदोबस्त हुआ था। सम्प्रति ब्रह्मराज्य अङ्गरेजोंके अधिकारमें आने पर भी उस देशकी बहुतेरी पहाड़ी जातियां आज भी स्वाधीनभावसे पहाड़की तराई-विचरण करती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदके दोनों किनारोंकी भूमि बड़ी उपजाऊ है। इसको उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी सीमा पर बड़े बड़े पहाड़ हैं जिससे आसाम उपत्यकाके ये सब स्थान बड़े मनोरम दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्मपुत्र नद नाना शाखाओंके साथ हिमालयकी कन्दरासे निकल कर आसाम-प्रदेश होता हुआ नीचेकी ओर बह गया है। नदीके कीनारे धान काफी उपजता है। बहुत-से बाँस और फलके भी जंगल हैं।

ब्रह्मपुत्र नद ही यहांका प्रधान है। वर्षाकालमें इस नदमें सदिया तक जहाज आता जाता है, किन्तु दूसरी ऋतुमें डिब्रुगढ़ तक जाता है। इस समय छोटी छोटी नावें ब्रह्मकुण्डतीर्थ तक जा सकती हैं। दिवङ्ग और दिहङ्ग नामकी दो शाखानदी हिमालयकी तराईसे निकल कर यहां ब्रह्मपुत्रमें आ मिली है। दिवङ्ग ही तिब्बतकी प्रसिद्ध तसानपु नदी है। इसके अलावा सुवर्णश्री नव-दिहिङ्ग, डिब्रु, बूढ़ी-दिहिङ्ग, तिङ्गराई और लोहित नदी ब्रह्मपुत्रका कलेवर बढ़ाती हुई इस जिलेके बीच हो कर बहती है।

खेतीबारीकी उन्नति और वृद्धिके लिये यहांकी किसी नदीमें बांध नहीं दिया जाता। प्राचीन आसामके राजाओंने राज्यकी उन्नतिके लिये बांध दिलवाया था। जंगलमें जो सब वस्तु मिलती है उनमें रबरके ही पेड़ प्रधान हैं। इसके सिवा रेशम, मोम और अनेक तरहकी औषध भी पाई जाती है। हाथी, गैंड़ा, जंगली भैंसा, जंगली गाय, हरिण और भालू आदि पशु और बहुत तरहके पक्षी वनमें स्वच्छन्दरूपसे विहार करते हैं।

ब्रह्मकुण्ड या परशुरामकुण्ड यहांका प्रधान तीर्थ है। यहां ब्रह्मपुत्रकी एक शाखा बहती है। हर साल बहुतसे तीर्थयात्री पर्वतके ऊपर स्थित इस तीर्थका दर्शन करने आते हैं। पास हीमें प्रसिद्ध देवडुबी (राक्षसकुण्ड)—

एक गभीर पर्वत गह्वर है। दिसङ्ग नदीने जहां नागाशैल छोड़ा है वहीं यह अवस्थित है।

यहांका इतिहास बहुत कुछ आसामके इतिहासके साथ मिला है। आसाम अधिकार करनेकी इच्छासे पूर्वाञ्चलवासी राजे ब्रह्मपुत्रको पार कर पहले लखिमपुरमें घुसे थे। कहते हैं, कि बंगालके पालराजाओंने एक समय यहां अपना प्रभाव फैला कर हिन्दू-उपनिवेश स्थापन किया था। उसके बाद बंगालके बारभूंया राजाओंने आत्मकलहसे प्रपीड़ित हो कर विवाद-विरहित इस निविड़ प्रदेशमें आ कर एक उपनिवेश बसाया। आज भी बाँसकाटा और लखिमपुर नगरके पास जो दिग्गी हैं वह उनकी कीर्त्तिकी घोषणा करती है। शानवंशीय चूटियाओंने पहलेसे ही आसाम कब्जा कर रखा था। वे बारभूंयाओंको यहांसे भगा कर सुवर्णश्री नदीके किनारे रहते थे; किन्तु यह राज्यसंभोग उनके भाग्यमें अधिक दिनों तक बदा न था। १३वीं सदीमें आहम राजाओंने आसाम अधिकार कर प्राधान्य स्थापन किया। चुटियाने इस समय कुछ समयके लिये अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की; किन्तु इसमें वे फली भूत न हुए—पासके दरङ्ग जिलेमें भाग आये। यहां जिस स्थान पर वे रहते थे वह आज चुटिया कहलाता है।

ये आहमगण भी शानजातिके हैं। ये पोङ्गराज्यके पार्वत्य भूभागसे दलबलके साथ आगे बढ़ कर पश्चिमकी ओर आसाममें आये। यहां बलसंचय करके धीरे धीरे एक दुर्द्धर्ष जाति हो उठे। इस समय उन्होंने अपने बाहुबलसे ब्रह्मपुत्र प्रवाहित उपत्यकाभूमिमें अपना आधिपत्य फैलाया। मुगलसम्राट् औरङ्गजेब द्वारा भेजे गये सेनापति मीरजुम्लाको उन्होंने परास्त कर बंगालसे भगा दिया। इस वंशके प्रतापी राजा रुद्रसिंहके शासनकालमें आसाम-राज्यमें शान्ति और समृद्धि विराज करती थी।

आहम और आसाम देखो।

राजा गौरीनाथके राज्यकालमें ही लखिमपुरमें आहमवंशकी शासनशक्तिका लोप हो गया। कमजोर राजा गौरीनाथ बागियोंके षड़यन्त्रमें पड़ कर राज्यच्युत और निम्न आसाममें निर्वासित हुए। उसके बाद शत्रुओंने वह समृद्ध राजधानी नष्ट भ्रष्ट कर दी। इस समय मोयामारिया या मटक जाति ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिने किनारे पर स्वाधीनता स्थापन कर अपना प्रभाव फैलाती थी तथा उन्होंने खम्तीरा सदिया-विभागको लूट कर तहस-नहस कर डाला। उस अराजक राज्यमें किसी प्रकार शृङ्खला स्थापित नहीं हुई। राज्यापहारक बड़े गोसांई कुछ भी शासनकी अच्छी व्यवस्था न कर सके। प्रजा उपद्रव और अत्याचारके हाथसे छुटकारा पानेके लिये राज्य छोड़ भाग गई। अवसर पा कर ब्रह्मराजने उपर्युपरि लखिमपुर पर आक्रमण कर दिया। युद्धविग्रहमें बहुत मनुष्य कटे मरे। प्रजाओंने निरुपाय हो कर भी लखिमपुर नगरके सामने फिर युद्धका आयोजन किया। दुर्द्धर्ष ब्रह्म-सेनाके सामने हतबल रिआया खड़ी न रह सकी। वह हार खा कर भागने लगी, लेकिन विजयीने पीछा कर उनको समूल नष्ट कर डाला।

१८२५ ई०में ब्रह्मसैन्य लखिमपुरसे भगाया गया सही, पर लखिमपुरके अदृष्टमें अत्याचारका स्रोत समभावसे प्रवाहित होने लगा। अंगरेजराजने नाममात्र आसन पर अधिकार किया। वे आज भी इस देशमें सुशासनकी व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। दिब्रुगढ़ उपविभागके अन्तर्गत मटक विभाग उस समय देशी सरदारके अधीन शासित होता था। १८३६ ई०में जब बूढ़े सरदारकी मृत्यु हुई, तब उनके वंशधरने अंगरेजराजके प्रस्तावानुसार राज्यशासन करना अस्वीकार कर दिया। अतः वे पदच्युत हुए। इस साल अंगरेजराजने उत्तर-लखिमपुर और शिवसागर विभाग राजा पुरन्दरसिंहसे छीन लिया। क्योंकि, यह राजा राज्यशासनमें निकम्मा था तथा उसका कर्मचारी प्रजाओं पर अत्याचार कर खजाना वसूल करता था। इस अराजकतामें पहाड़ी असभ्य जातिने उत्तर-राज्यको लूट कर जनशून्य कर डाला। इस समय सदिया नगरमें एक खमती सरदार स्थानीय शासनकर्त्ताके रूपमें राजकार्यकी परिचालना करता था। १८३५ ई०में अंगरेजराजने एक सेनानायकके अधीन सदिया नगरमें एक दल सिपाही रखा। उसके चार वर्ष बाद अचानक एक दिन पहाड़ी खमतीने पहाड़से समतल भूमिमें उतर कर अंगरेज-सेनापति और पालिटिकल एजेंट मेजर होयाइटके साथ सिपाहियोंको मार

डाला। पीछे १८३१ ई०में अंगरेजराजने आसामप्रदेश-का पूरा शासनभार अपना कर पहाड़ी शत्रुका आक्रमण रोकनेके लिये खूब कोशिश की। तभीसे यहां शांति राज्य कायम हुआ।

आबर, आहम, दफला, काछाड़ी, खमती, कुकी, लालङ्ग, मणिपुरी, मटक, चुटिया, मिकिर, मिशमी, नागा, नेपाली, राभा, सन्थाल, शिम्पी आदि असभ्य जातियां इस जिलेके पहाड़ी प्रदेशमें वास करती हैं। औपनिवेशिक हिन्दुओंमेंसे ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ, अगरवाल बनिया और कलिता (ये लोग असभ्य और पहाड़ी आसाम-राजाओंकी पुरोहिताई करते थे। आज कल सभी खेतीबारी कर अपना गुजारा चलाते हैं। ये लोग यहां सत्‌शुद्र कहलाते हैं) आदि जातियां मौजूद हैं।

इस सुदूर पूर्वप्रान्तमें इसलाम-धर्म नहीं फैला। मुगल-सम्राट्‌के समय मुसलमानी सेना आसाम प्रदेशमें घुसने पर भी जलवायुका प्रकोप सहन न कर सकी। उन्हें यह देश छोड़ देनेको बाध्य होना पड़ा। आहम राजाओंने राजसमृद्धि बढ़ानेकी इच्छासे कई घर मुसलमान कारीगरको राजधानीमें ला कर स्थापन किया। इस समय ढाकासे भी कुछ मुसलमान दूकानदार लखिमपुर आ कर रहने लगे। वे सभी फराईजीके मतावलम्बी थे। मरन या मोयामारीगण इस समय वैष्णवधर्ममें दीक्षित हुए हैं। शक्तिउपासक आसाम राजाओंके अत्याचारसे इस वैष्णव-सम्प्रदायमें कई बार विद्रोह उपस्थित हुआ। अन्तमें वैष्णवोंने ही प्रधानता पाई।

यहांके अधिवासियोंकी अवस्था उतनी खराब नहीं है। नमक, अफीम आदि कई द्रव्योंको छोड़ वे अपनी जरूरी चीजें मेहनत कर उपजाते हैं। सूती कपड़ेके अलावा यहांके लोग रेशमी कपड़े भी बुनते हैं। यहां दो तरहका रेशम तैयार होता है। उसका कीड़ा पड़िया या मूंगा कहलाता है। स्त्रियां खास कर रेशमी कपड़े तैयार करती हैं। मर्द बागानमें पिल्लू पालते हैं।

यहांके चायके बगीचेमें बढ़िया चाय होती है। चाय तथा सूती कपड़ा, मूंगा और अंडी रेशमी कपड़ा, मिट्टीका बरतन, पाटी, चटाई, रबर और मोम यहांसे प्रचुर परिमाणमें बंगाल भेजा जाता है। सदियामें ब्रिटिश सरकारकी देख-रेखमें हर साल एक मेला लगता है। कलकत्तेसे धुबड़ी, डिब्रूगढ़ और काछार जाने आनेके लिये रेल चलाई गई है। इस रेलपथसे तथा ष्टीमर और नावोंसे यहांका वाणिज्य-व्यवसाय चलता है। इस जिलेमें एक शहर और ११२३ गांव लगते हैं।

२ उक्त जिलेके उत्तर एक उपविभाग। यह उत्तर-लखिमपुर कहलाता है। भू-परिमाण १२७५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दफला और मीरीशैल तथा दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र नद है। लखिमपुर नगर इसका सदर है। जनसंख्या ८४८२४ है।

३ उत्तर-लखिमपुर उपविभागके अन्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २७° ५७′ उ० तथा देशा० ८०° ४७′ पू०के बीच सुवर्णश्रीनदीकी गड़ियाजान शाखाके किनारे अवस्थित है। यहां अंगरेज राजकी एक छावनी है।

लखिमपुर—१ अयोध्याप्रदेशके खेरी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ४७′ से २८° ३०′ उ० तथा देशा० ८०° १८′ से ८१° १′ पू०के बीच पड़ती है। इसका भूपरिमाण १०७५ वर्गमील है। खेरी, श्रीनगर, भूर, पैला और कुकड़ा-मैलानी परगने इसके अन्तर्भुक्त हैं। जनसंख्या ३६६३२६ है।

२ खेरी जिलेका प्रधान नगर और लखिमपुर तहसीलका सदर। यह अक्षा० २७° ५७′ उ० तथा देशा० ८०° ४७′ पू०के मध्य उल नदीके दाहिने किनारे एक मील दूरमें अवस्थित है। यहां वाणिज्यका कारोबार जोरों चलता है इसलिये यह बड़ा समृद्धिशाली हो गया है।

लखीपुर (लक्ष्मीपुर)—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेके दक्षिण एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २२° ५७′ उ० तथा देशा० ९०° ५१′ पू०के मध्य गारो पहाड़के उत्तर पादमूलमें अवस्थित है। यहां मेचपाड़ाके प्रसिद्ध जमींदारका प्रासाद है। यहां जो बालक और बालिकाकी पाठशाला है उसका खर्च इन्हींसे चलता है। जनसंख्या ४७६४ है। इष्ट-इंडिया कम्पनीने १७५६ ई०में यहां एक कपड़ेका कारखाना खोला था।

लखीपुर (लक्ष्मीपुर)—आसामप्रदेशका एक गाँव। यह काछाड़ जिलेके पूर्व बराक और भिरी नदीके संगम पर बसा हुआ है। गांवमें मणिपुरके महाराजकी एक कचहरी है।

लखेरा—लाखसे चूड़ी और खिलौना बनानेवाली एक जाति। सम्भवतः संस्कृत लाक्षाकार शब्दके अपभ्रंशसे लखेरा शब्द बना है। इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत सी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इस जातिके लोग अपनेको पटवास जातिकी एक शाखा तथा उनके समान कायस्थ जातिसे उत्पन्न मानते हैं। एक और उपाख्यान-से पता चलता है, कि पार्वतीके विवाहकालमें देवादिदेव महादेवने हिमालयकी कन्याके हाथकी चूड़ी बनानेके लिये पार्वतीके शरीरका मैल ले कर इस जातिकी सृष्टि की। उसमें यह भी लिखा है, कि ये पहले यदुवंशी राजपूत थे। पाण्डवोंका विनाश करनेके लिये कुरुराजने जो जतुगृह बनवाया था उसमें दुर्योधनको इन लोगोंने मदद पहुंचाई थी। इस कारण ये लोग पीछे निन्दित और समाजच्युत हुए। तभीसे ये उसी लाखकी तिजारत कर अपनी जीविका चलाते हैं।

इनमें विधवा-विवाह प्रचलित है। इच्छा करनेसे ये विवाह-बंधन भी तोड़ सकते हैं। सभी शराब पीते और मांस खाते हैं। विहारमें ये लोग लहेरी कहलाते हैं।

लखोट (हिं० पु०) लकुट देखो।

लखौटा (हिं० पु०) १ चंदन, केसर आदिसे बना हुआ अंगराग। २ एक प्रकारका छोटा डिब्बा। यह प्रायः पीतलका बना है और इसमें स्त्रियां प्रायः सिन्दूर आदि सौभाग्यकी सामग्री रखती हैं। इसके ढकनेमें प्रायः शीशा भी लगा होता है। ३ लिखावट।

लखौरी (हिं० स्त्री०) १ भारतकी एक प्रकारकी छोटी पतली ईंट। इस तरहकी ईंट प्रायः पुराने मकानोंमें ही पाई जाती है। अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है। इसे नौतेरही ईंट भी कहते हैं। २ एक प्रकारकी भौंरीका घर जो वह मिट्टीसे घरोंके कोनोंमें बनाती है, भृंगीका घर। ३ किसी देवताको उसके प्रियवृक्षकी एक लाख पत्तियाँ या फल आदि चढ़ाना।

लगंत (हिं० स्त्री०) १ लगने या स्त्री-प्रसंग करनेकी क्रिया या भाव। २ लगन होनेकी क्रिया या भाव।

लग (हिं० क्रि० वि०) १ नजदीक, समीप। २ पर्यन्त, तक। (स्त्री०) ३ लगन, लाग, प्रेम। (अव्य०) ४ लिये, वास्ते।

लगड़ (सं० त्रि०) चारु।

लगढग (हिं० क्रि० वि०) लगभग देखो।

लगण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग, इसमें पलक पर एक छोटी, चिकनी, कड़ी गाँठ हो जाती है। इस गाँठमें न तो पीड़ा होती है और न यह पकती है।

लगत (सं० पु०) वेदान्तज्योतिके प्रणेता एक ज्योतिषी-का नाम। इनका दूसरा नाम लगध भी था।

लगदी (हिं० स्त्री०) वह बिछौना जिसे बच्चेवाली स्त्रियां बच्चोंके नीचे इसलिए बिछा कर उन्हें अपने पास सुलाती हैं, कि जिसमें उनके मलमूलसे और बिछौने खराब न होने पावे, कथरी, पोतड़ा।

लगन (हिं० स्त्री०) १ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाव। २ किसी ओर ध्यान लगानेकी क्रिया, प्रवृत्तिका किसी एक ओर लगना, लौ। ३ प्रेम, मुहब्बत। (पु०) ४ वे दिन जिनमें विवाह आदि होते हैं, सहालग। ५ विवाहके लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त्त, ब्याहका मुहूर्त्त या साइत। ६ लग्न देखो।

लगन (फा० पु०) १ कोई बड़ी थाली जिसमें आटा गूंधते या मिठाई आदि रखते हैं। २ तांबे, पीतल आदि-की एक प्रकारकी थाली जिसमें रख कर मोमबत्ती जलाई जाती है। ३ मुसलमानोंमें विवाहकी एक रीति। इस-में विवाहसे पहले थालियोंमें मिठाइयां आदि भर कर वरके लिये भेजी जाती हैं।

लगनपत्री (हिं० स्त्री०) विवाह समयके निर्णयकी चिट्ठी जो कन्याका पिता वरके पिताको भेजता है।

लगना (हिं० क्रि०) १ दो पदार्थोंके तल आपसमें मिलना, एक चीजकी सतह पर दूसरी चीजकी सतहका होना, सटना। २ एक चीजका दूसरी चीज पर सीया, जड़ा, टाँका या चिपकाया जाना। ३ सम्मिलित होना, शामिल होना। ४ किसी पदार्थका दूसरे पदार्थमें संलग्न होना, मिलना। ५ उत्पन्न होना, जमना, उगना। ६ किसी पदार्थके तल पर पड़ना। ७ आघात पड़ना, चोट पहुं-चाना। ८ स्थापित होना, कायम होना। ९ सम्बंध या रिश्तेमें कुछ होना। १० छोर या प्रान्त आदि पर पहुंच कर टिकना या रुकना। ११ व्यय होना। खर्च होना। १२ क्रमसे रखा या सजाया जाना, सिलसिलेसे रखा

जाना। १३ जान पड़ना, मालूम होना। १४ आरम्भ होना, शुरू होना। १५ कामके लिये आवश्यक होना, जरूरी होना। १६ सड़ना, गलना। १७ प्रभाव पड़ना, असर होना। १८ किसी प्रकारकी प्रवृत्ति आदिका आरम्भ होना। १९ टक्कर खाना, टकराना। २० किसी पदार्थका किसी प्रकारकी जलन या चुनचुनाहट आदि उत्पन्न करना। २१ किसी ऐसे कार्यका आरम्भ होना जिसमें बहुतसे लोगोंके एकत्र होनेकी आवश्यकता हो। २२ खाद्य पदार्थका पकनेके समय जल आदिके प्रभाव या आंचकी अधिकताके कारण बरतनके तलमें जम जाना। २३ किसी चीजके ऊपर लेप किया जाना, पोता जाना, मला जाना। २४ जारी होना, चलना। २५ एक चीजका दूसरी चीजके साथ रगड़ खाना। २६ उपयोगमें आना, काममें आना। २७ जूएकी बाजी पर रखा जाना, दाँव पर रखा जाना। २८ समीप पहुंचना, पास जाना। २९ गड़ना, चुभना। ३० किसी कार्यमें प्रवृत्त या तत्पर होना। ३१ पीछे पीछे चलना, साथ होना। ३२ दातव्य नियत होना, देना निश्चित होना। ३३ अंकित होना, चिह्नित होना। ३४ बंद होना, मुंदना। ३५ गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओंका दूहा जाना। ३६ सम्बद्ध होना, चिमटना। ३७ छेड़खानी करना, छेड़छाड़ करना। ३८ काममें आने योग्य होना, ठीक बैठना। ३९ आरोप होना। ४० हिसाब होना, गणित होना। ४१ प्रज्वलित होना, जलना। ४२ स्पर्श करना, छूना। ४३ बदलेमें जाना, मुजरा होना। ४४ जहाजका छिछले पानीमें अथवा किनारेकी जमीन पर चढ़ जाना। ४५ एक जहाजका दूसरे जहाजके सामने या बराबर आना। ४६ किसी स्थान पर एकत्र होना। ४७ दाम आँका जाना। ४८ पालका खींच कर चढ़ाया जाना। ४९ होना। ५० फैलना, बिछना। ५१ धारदार चीजकी धारका तेज किया जाना। ५२ किसी चीजका विशेषतः खानेकी चीजका अभ्यस्त होना, परचना, सधना। ५३ घातमें रहना, ताकमें रहना। ५४ अपने नियत स्थान या कार्य आदि पर पहुंचना। ५५ संभोग करना, मैथुन करना।

लगभग (हिं० क्रि० वि०) प्रायः, करीब करीब।

लगमात (हिं० स्त्री०) स्वरोंके वे चिह्न जो उच्चारणके लिये व्यञ्जनोंमें जोड़े जाते हैं।

लगरि—एक पहाड़ी जाति।

लगलग (अ० वि०) बहुत दुबला पतला, अति सुकुमार।

लगवाना (हिं० क्रि०) लगानेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको लगानेमें प्रवृत्त करना।

लगातार (हिं० क्रि० वि०) एकके बाद एक, सिलसिलेवार।

लगान (हिं० पु०) १ लगने या लगानेकी क्रिया या भाव। २ वह स्थान जहां पर मजदूर आदि सुस्तानेके लिये अपने सिरका बोझ उतार कर रखते हैं। ३ किसी मकानके ऊपरी भागसे मिला हुआ कोई ऐसा स्थान जहांसे कोई वहां आ जा सकता हो, लाग। ४ भूमि पर लगनेवाला वह कर जो खेतिहरोंकी ओरसे जमींदार या सरकारको मिलता है, राजस्व। ५ वह स्थान जहां पर नावें आ कर ठहरा करती हैं।

लगाना (हिं० क्रि०) १ एक पदार्थके तलके साथ दूसरे पदार्थका तल मिलाना, सतह पर सतह रखना। २ किसी पदार्थके तल पर कोई चीज डालना, रगड़ना, चिपकाना या गिराना। ३ दो पदार्थोंको परस्पर संलग्न करना, जोड़ना। ४ उपयोगमें लाना, काममें लाना। ५ आरोपित करना, अभियोग लगाना। ६ किसीके पीछे या साथ नियुक्त करना, शामिल करना। ७ किसीमें कोई नई प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना। ८ ऐसा कार्य करना जिसमें बहुतसे लोग एकत्र या सम्मिलित हों। ९ गणित करना, हिसाब करना। १० एक चीज पर दूसरी चीज सीना, टांकना, चिपकाना या जोड़ना। ११ दातव्य निश्चित करना, यह तै करना कि इतना अवश्य दिया जाय। १२ प्रज्वलित करना, जलाना। १३ क्रमसे रखना या सजाना, कायदे या सिलसिलेसे रखना। १४ अनुभव करना, मालूम करना। १५ एक ओर या किसी उपयुक्त स्थान पर पहुंचना। १६ सम्मिलित करना, शामिल करना। १७ खर्च करना, व्यय करना। १८ आघात करना, चोट पहुंचाना। १९ ठीक स्थान पर बैठाना, जड़ना। २० वृक्ष आदि आरोपित करना, जमाना। २१ लेप करना, पोताना। २२ सड़ाना, गलाना। २३ स्थापित करना, कायम करना। २४ किसी विषयमें अपने आपको बहुत दक्ष या श्रेष्ठ समझना, किसी बातका

अभिमान करना। २५ नियत स्थान या कार्य पर पहुंचाना। २६ गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओंको दूहना। २७ बंद करना। २८ अंग पर पहनना, ओढ़ना या रखना। २९ किसी चीजका विशेषतः खानेकी चीजका अभ्यस्त करना, परचाना, सधाना। ३० गाड़ना, धँसाना। ३१ जूएकी बाजी पर रखना, दाँव पर रखना। ३२ अपने साथ या पीछे ले चलना। ३३ खरीदनेके समय चीजका मूल्य कहना, दाम आँकना। ३४ किसी प्रकार साथमें सम्बन्ध करना। ३५ किसी कार्यमें प्रवृत्त या तत्पर करना, नियुक्त करना। ३६ स्पर्श करना, छुआना। ३७ किसीके मनमें दूसरेके प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना, कान भरना। ३८ बदलेमें लेना, मुजरा करना। ३९ समीप पहुंचाना, पास ले जाना। ४० धारदार चीजकी धार तेज करना, सान पर चढ़ाना। ४१ अंकित करना, चिह्नित करना। ४२ पाल खींच कर चढ़ाना। ४३ जहाजको छिछली या किनारेकी जमीन पर चढ़ाना। ४४ फैलाना, बिछाना। ४५ संभोग करना, मैथुन करना। ४६ करना। ४७ एक जहाजको दूसरे जहाजके सामने या बराबर ले जाना।

लगाम (फा० स्त्री०) १ इस ढाँचेके दोनों ओर बंधा हुआ रस्सा या चमड़ेका तस्मा जो सवार या हाँकनेवालेके हाथमें रहता है। सवार या हांकनेवाला इसी रस्से या तस्मेकी सहायतासे घोड़ेको चलाता, रोकता, इधर उधर मोड़ता और अपने वशमें रखता है, बाग, रास। २ लोहेका वह काँटेदार ढाँचा जो घोड़ेके मुंहके अंदर रखा जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़ेका तस्मा आदि बंधा रहता है।

लगार (हिं० स्त्री०) १ नियमित रूपसे कोई काम करने या कोई चीज देनेकी क्रिया या भाव, बंधी। २ वह जो किसीकी ओरसे भेद लेनेके लिये भेजा गया हो, वह जो किसीके मनकी बात जाननेके लिये किसीकी ओरसे गया हो। ३ वह जिससे घनिष्ठताका व्यवहार हो, मेली। ४ लगनेकी क्रिया या भाव, लगाव। ५ लगन, प्रीति। ६ तांता, क्रम, सिलसिला। ७ रास्तेमें बीचका वह स्थान जहांसे जुआरी लोग जूआ खेलनेके स्थान तक पहुंचाये जाते हैं, टिकान।

लगालगी (हिं० स्त्री०) १ लाग, लगन। २ सम्बन्ध, मेल जोल।

लगालिका (सं० स्त्री०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें चार अक्षर होते हैं। पहला और तीसरा वर्ण गुरु और बाकी दो लघु होते हैं।

लगाव (हिं० पु०) लगे होनेका भाव, वास्ता।

लगावट (हिं० स्त्री०) १ सम्बन्ध, वास्ता। २ प्रेम, प्रीति, मुहब्बत।

लगावना (हिं० क्रि०) लगाना देखो।

लगित (सं० वि०) लग-कर्मणि क्त। संयुक्त।

लगुड़ (सं० पु०) १ दण्ड, डंडा, लाठी। २ लौहमय अस्त्रभेद, एक विशेष प्रकारका लोहेका डंडा। इसकी आकृति और परिमाण आदिका विषय शुक्रनीतिमें इस प्रकार लिखा है,—यह प्रायः दो हाथका होना चाहिये। इसका निचला भाग पतला और मूंढ मोटी तथा लोहेसे बांधी रहनी चाहिये। इसका व्यवहार प्राचीनकालमें पैदल सैनिक अस्त्रोंके समान करते थे। ३ लाल कनेर।

लगुल (हिं० पु०) शिश्न, लिंग।

लगौंहाँ (हिं० वि०) जिसे लगन लगानेकी कामना हो, रिझावना।

लग्गा (हिं० पु०) १ लंबा बाँस। २ वह लंबा बाँस जिसके सहारेसे छिछले पानीमें नाव चलाते हैं, लग्गी। ३ घास या कीचड़ आदि हटानेका एक प्रकारका फरसा जिसमें दस्तेकी जगह एक लंबा बांस लगा रहता है। ४ वृक्षोंसे फल आदि तोड़नेका वह लंबा बांस जिसके आगे एक अंकुसी लगी रहती है, लकसी। ५ कार्य आरम्भ करना, काममें हाथ लगाना।

लग्गी (हिं० स्त्री०) लंबा बांस। लग्गा देखो।

लग्घड़ (हिं० पु०) १ बाज, शचान। २ एक प्रकारका चीता। यह सामान्य चीतेसे बड़ा होता है। इसे शिकार करना सिखाया जाता है। यह प्रायः ६ फुट लंबा होता है। इसकी आंखों पर एक जंजीरसे पट्टियां बंधी रहती हैं। इसीको लकड़बग्घा भी कहते हैं।

लग्घा (हिं० पु०) लग्गा देखो।

लग्घी (हिं० स्त्री०) लग्गी देखो।

लग्न (सं० क्ली०) लग ते फले इति लग संज्ञे (क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नेति । पा ७।२।१८) इति निपातनात् साधुः । १ ज्योतिषमें दिनका उतना अंश जितनेमें किसी एक राशिका उदय होता है। अहोरात्रके मध्य द्वादश राशिका उदय होता है, इसलिये अहोरात्रमें द्वादशलग्न कल्पित हुए हैं। 'राशिनामुदयो लग्नं' (दीपिका) प्रति दिवारात्रमें यथाक्रमसे द्वादश राशिका उदय हुआ करता है। इस एक एक राशिके उदितकालके मानको लग्नमान कहते हैं।

पृथ्वी ६० दंड यानी दिन रातमें एक बार अपनी धुरी पर घूमती है। इसीको पृथ्वीकी आह्निकगति कहते हैं। इस एक आह्निकगतिवशतः पृथ्वी मेष आदि द्वादश राशि अतिक्रम करती है। सुतरां इससे सहजमें हो जाना जाता है, कि एक राशि अतिक्रम करनेमें प्रायः ५ दंड लगता है। किन्तु सूक्ष्मरूपसे गणना की जाने पर सब लग्नोंका लग्नमान समान नहीं होता। इसका कारण यह है, कि पृथ्वीका आकार बिलकुल गोल नहीं है। इसीलिये लग्नमानको घटती बढ़ती हुआ करती है। सूर्योदयके समय जिस लग्नका उदय अर्थात् पूर्वाकाशमें प्रकाश होता है, उसे उदयलग्न तथा सूर्यास्तके समय जिस लग्नका उदय होता है, उसे अस्तलग्न कहते हैं। फिर यह लग्नमान सब देशोंमें समान नहीं है।

सूर्यकी अयनगतिसे इसका परिवर्त्तन हुआ करता है। ६६ वर्ष ८ मासमें सूर्य एक मास हट जाते हैं इससे लग्नमानका भी कुछ प्रभेद हो जाता है। प्रति वर्षकी पञ्जिकामें अयनांशशोधित लग्नमान दिया जाता हैं उसको देख कर लग्नमान स्थिर किया जाता है। ६६ वर्ष ८ मासके बाद सूर्यके एक अंश हट जाने पर भी इसी लग्नमानके अनुसार लग्न स्थिर करनेसे करीब करीब ठीक होता है। सामान्य २।१ पलका तारतम्य हो सकता है।

प्राचीन लग्नमान—

"रामोगवेदैर्जलधिस्तु मैत्रै र्यायोरसैः पञ्चलसागरैश्च।
मायाः कुवेदैर्विषयोङ्कयुगैः क्रमात् क्रमान्मेषतुलादिमानम्॥"

(ज्योतिःसारसं०)

लग्ननिरूपणकी प्रणाली—किसी निर्दिष्ट समयका लग्ननिरूपण किये जाने पर अर्थात् किसी एक बालकका जन्म होने पर अथवा किसी व्यक्ति द्वारा प्रश्न किये जाने पर बालकका किस लग्नमें जन्म हुआ है अथवा किस लग्नमें प्रश्न किया गया है, इसके जाननेमें निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार लग्न स्थिर करना होता है।

लग्न स्थिर करनेमें पहले उसी दिनकी रविभुक्ति स्थिर करनी होती है। साधारणतः रविभुक्तिका अर्थ यह, कि राशिमान या लग्नमानका जितना अंश रवि द्वारा भुक्ति या जितना अंश रविने भोग किया है। रवि एक एक मासमें एक एक राशिमें रह कर बारह महीनेमें बारह राशिका भोग करते हैं। जिस मासकी जिस राशिमें सूर्य उदय होते हैं। उसकी सातवीं राशिमें वे अस्त होते हैं। जैसे वैशाख महीनेमें सूर्य मेष राशिमें उदय होते और सातवीं तुला राशिमें अस्त होते हैं। सूर्य प्रतिदिन राशिके कुछ अंश बढ़ते बढ़ते मासके अन्तमें राशिके सीमान्त प्रदेशमें पहुंचते हैं। इस प्रकार सभी राशि रवि द्वारा भुक्त होती है। इसमें प्रत्येक दिन राशिसे कुछ कुछ बढ़नेमें जो समय लगता है, उसे सूर्यकी दैनिक रविभुक्ति या गति कहते हैं। उदय लग्नकी रविभुक्ति उदयरविभुक्ति तथा अस्तलग्नकी रविभुक्ति अस्तरविभुक्ति कहलाती है।

लग्नमानको मासकी दिनसंख्या द्वारा भाग देने पर जो भागफल होगा, वही दैनिक रविभुक्ति है। और उपायसे भी रविभुक्ति जानी जाती है, किन्तु यही तरीका सबसे सहज है और इसीसे सूक्ष्मरूपसे रविभुक्ति स्थिर होती है।

लग्नमानके दंडपलको दूना कर उसके दंडको पल तथा पलको विपल करनेसे दैनिक रविभुक्ति निश्चित होगी। जैसे मेष लग्नमान ४।७ पल है, इसका दूना करनेसे ८।१४ पल होगा। यहां पर ८ दंडको पल करनेसे ८ पल १४ विपल दैनिक रविभुक्ति होगी, यही जानना होगा। यह जो नियम कहा गया, वह उस हालतमें जब तीस दिनका मास होता है। मासकी कमी बेशी होनेसे समयमें भी कुछ फर्क पड़ जाता है।

रविभुक्ति स्थिर करनेका और भी एक नियम है।

"लग्नश्च द्विगुणं कृत्वा गणनीयस्तथा दिनैः।
षष्टिभागेन दण्डश्च शेषश्च पलमुच्यते ॥"

(ज्योतिःसारस०)

जिस मासके जिस लग्नके जितने दिनोंकी रविभुक्ति गणना करनी होगी उस लग्नफलको दूना कर गुणनाफलको मासकी अतीत संख्यासे पुनः गुना करे। गुणनफल जितना हो उसे ६०से भाग दे। पीछे भागफलको दण्ड और भागावशिष्टको पल समझना होगा। इस प्रकार प्राप्त दण्डपल अभीष्ट दिनकी रविभुक्ति होगा।

इस तरह रविभुक्ति स्थिर करके दिवाभागमें जन्म ग्रहण करनेसे वा प्रश्न होनेसे दोनों लग्नकी रविभुक्ति जानी जाती है। रात्रिकालमें जन्म वा प्रश्न होनेसे अस्तलग्नकी रविभुक्ति जानना आवश्यक है। इस प्रकार निर्दिष्ट दिनके उदय वा अस्त लग्नकी रविभुक्ति बाद देनेसे लग्नका अवशिष्टभोग्य अंश जो रहेगा, उसके साथ दूसरे दूसरे लग्नका मान क्रमशः योग करना होगा। जब देखा जाय, कि इष्ट दण्डपलादि समष्टीकृत लग्नमानके मध्य शेष लग्नके दण्डपलादिमें अन्तर्निहित हुआ है तथा शेष लग्नके पहले लग्नके दण्डपलादिको अतिक्रम किया है, तब जानना चाहिये कि उक्त शेष लग्न ही इष्ट दण्डके उदित लग्न अर्थात् लग्नमें ही जन्म वा प्रश्न हुआ है।

एक उदाहरण देनेसे यह अच्छी तरह समझमें आ जायगा। १२९९ ई०की २२ जेठको ९ बजे रातको एक लड़केका जन्म हुआ। उस लड़केका कौन लग्न होगा, यह स्थिर करनेमें पहले रविभुक्ति स्थिर करनी होगी, ज्येष्ठ मासको वृषराशिमें सूर्यका उदय तथा वृश्चिक राशिमें अस्त हुआ है। इस बालकका रातमें जन्म होनेसे अस्तलग्न मानना होगा। दिनमें जन्म होनेसे दिवालग्न और रातमें होनेसे अस्तलग्न मानना होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

वृश्चिक लग्नका मान ५।४०।२० विपल है। उस सालका ज्येष्ठ मास (बंगला) ३२ दिनका हुआ है। अतएव उक्त लग्नमानको ३२ द्वारा भाग देनेसे प्रत्येक दिनकी रविभुक्ति मालूम हो जायगी। एक मासकी दिनसंख्या जितनी हुई है उस संख्या द्वारा उक्त दैनिक रविभुक्तिको गुना करनेसे उस दिनकी रविभुक्ति पाई जाती है। यहां पर दैनिक रविभुक्तिको बाद दे कर निम्नोक्त प्रकारसे लग्नमान स्थिर किया जा सकता है। जैसे—

$$\frac{\text{वृश्चिक लग्नमान ५।४०।२०}}{\text{मासकी दिनसंख्या ३२}} = \text{० द १० पल ३८}\frac{१}{८}\text{वि०}$$

दैनिक रविभुक्ति ०।१०॥३८ $\frac{१}{८}$ विपल। + दैनिक रविभुक्ति २२ जन्मतारीख = ३।५४।५८।४५ अनुपल। उस दिन अङ्गरेजी ६।३७ मिनिटमें सूर्य अस्त हुए हैं। अतएव ९ बजे रातको जन्म होनेसे सूर्यास्तके २ घण्टा २३ मिनिट बाद जन्म हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा। इसको दण्ड पलादिमें परिणत करनेसे ५।५७।३० विपल होता है। अतएव उस समय रात्रिजात दण्डपलादि होगा।

पूर्वोक्त नियमानुसार वृश्चिक लग्नमान ५।४०।२० से उक्त २०वीं जेठकी रविभुक्ति ३।५४।५८।४५ घटनासे १।४५।२१।१५ वृश्चिक लग्नका अवशिष्ट भोग्यमान रहेगा उसके साथ दूसरा दूसरा लग्नमान जोड़ना होगा। इस प्रकार जोड़ करते करते जब देखा जाय, कि समष्टीकृत लग्नमानके मध्य जिस राशिमें जातदण्ड पतित हुआ है, उस समय उस राशिमें लग्न हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा। यदि वृश्चिक लग्नके अवशिष्ट भोग्यमानके मध्य जात दण्डका समय पतित होता, तो इसका परवर्त्ती लग्नमान फिर जोड़ना नहीं होगा।

यहां पर वृश्चिकभोग्य लग्नमान—१।४५।२१।१५
धनुर्लग्नमान—५।१७।२०।०
समष्टि—७।२।४१।१५

पहले ५।५७।३० विपल जातदण्ड निर्णीत हुआ है। वृश्चिकभोग्य लग्नमान अतिक्रम कर धनु लग्नमानके मध्यवर्त्तिकालमें लड़के भूमिष्ठ होनेसे धनुर्लग्नमें उसका जन्म हुआ है, ऐसा स्थिर हुआ। यदि जातक ९ बजे रातको जन्म न ले कर २ बजे रातको जन्म लेता, तो दूसरा दूसरा लग्नमान क्रमशः जोड़ना पड़ता।

इसी नियमसे लग्न स्थिर करना होता है। दिनको जन्म होनेसे सूर्योदयकालसे लग्नस्थित करना होता है।

लग्न स्थिर नहीं होनेसे जातकका फलाफल नहीं जाना जा सकता। इस कारण पहले लग्नस्थिर करना उचित है। लग्न स्थिर होनेसे निःसन्देह शास्त्रोक्त फल फलता है। बहुतेरे ज्योतिर्विद् लग्नके प्रति विशेष लक्ष्य न करके फल निर्णय करते हैं; किन्तु इससे शास्त्रोक्त फल कुछ भी नहीं मिलता। इस कारण शास्त्रमें लग्न-परीक्षाके अनेक उपाय कहे हैं। अति संक्षिप्त भावमें इसका विषय लिखा जाता है।

अनेक समय ऐसा हुआ करता है, कि जब कोई बच्चा जन्म लेता, तब वहां घड़ीके न रहने अथवा निश्चितरूपसे समयका ज्ञान न होनेसे आनुमानिक समयको ले कर लग्न स्थिर किया जाता है, किन्तु आनुमानिक समयके ले कर जो लग्न निरूपित होता है, वह ठीक है या नहीं, उसकी जांचके अनेक उपाय हैं। जैसे—

सन्देहलग्नपरीक्षा।

वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इसका अन्यतम लग्न होनेसे धात्री सधवा तथा प्रसूति द्विवस्त्रा हो कर बच्चा जनती है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इसका अन्यतम लग्न होनेसे धात्री विधवा तथा प्रसूतिने एकवस्त्रा हो कर बच्चा जना है, ऐसा जानना होगा।

"युग्मे च सधवा धात्री अयुग्मे विधवा स्मृता।
अयुग्माद्वस्त्रमयुग्मं युग्माद्युग्मं क्रमाद्बुधैः।" (वृहज्जा०)

जातकचन्द्रिकामें लिखा है, कि मेष, सिंह और धनु लग्नमें जन्म होनेसे सूतिक गृह घरसे पूर्वभागमें तथा सूतिकागृहकी स्त्रियोंकी संख्या ५; कन्या, वृष और मकर लग्नमें सूतिकागृह घरसे दक्षिण और स्त्रीकी संख्या ४ जन; कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें सूतिकागृह घरसे पश्चिम तथा स्त्री-संख्या ७ जन; मीन, कर्कट और वृश्चिक लग्नमें सूतिकागृह घरसे उत्तर तथा स्त्री-संख्या ३, ६ वा ७ है, ऐसा जानना होगा।

मेष, कर्कट, तुला, वृश्चिक और कुम्भ इनमेंसे एक जन्मलग्न अथवा लग्नका उदित नवांश राशि स्वरूप होनेसे घरसे पूरब; धनु, मीन, मिथुन और कन्या लग्न होनेसे उत्तर; वृष लग्न होनेसे पश्चिम; सिंह और मकर लग्न होनेसे दक्षिण भागमें सूतिकागृह होगा। स्थिर लग्नमें जन्म होनेसे सूतिकागृहके एक द्वार; द्व्यात्मक लग्नमें दो द्वार तथा चर लग्नमें होनेसे अनेक द्वार होते हैं। वृहज्जातकमें यह भी लिखा है, कि केन्द्रस्थित बलवान् ग्रह जिस दिशाका अधिपति है, सूतिकागृहका द्वार उसी ओर स्थिर करना चाहिये। केन्द्रस्थित अनेक ग्रह बलवान् होनेसे अनेक द्वार होते हैं और यदि केन्द्रमें ग्रह न रहे, तो जन्मलग्नसे राशिदिक्के अनुसार सूतिकागृहका द्वार निर्णय करें।

मेष और वृष लग्नमें सूतिकागृहके पूर्व भागमें, मिथुन लग्नमें अग्निकोणमें, कर्कट और सिंहलग्नमें दक्षिण भागमें, कन्यालग्नमें नैर्ऋतकोणमें, तुला और वृश्चिक लग्नमें पश्चिम भागमें, धनुलग्नमें वायुकोणमें, मकर और कुम्भ लग्नमें उत्तर भागमें तथा मीनलग्नमें ईशानकोणमें शिशुका प्रसव और शय्यास्थान निरूपण करना होता है।

शिशुके मस्तक पतन द्वारा लग्न राशिकी जो दिशा है, उसी दिशामें शिशुका मस्तक पतित होता है अर्थात् मेष, सिंह और धनु लग्नमें पूर्वशिरा; वृष, कन्या और मकर लग्नमें दक्षिणशिरा; मिथुन, तुला और कुम्भ लग्नमें पश्चिम शिरा, कर्कट, वृश्चिक और मीन लग्नमें उत्तरशिरा हो कर बच्चा जन्म लेता है। किसी किसी मतमें लग्नस्थ अथवा लग्नाधिपति ग्रह यदि बलवान् हो, तो उस ग्रहकी जो दिशा है उसी दिशामें प्रसवगृह वा प्रसवगृहका द्वार तथा शिशुका मस्तक पतन होगा, ऐसा स्थिर किया जाता है। फिर किसीका कहना है, कि लग्नके द्वादशांशपतिकी दिशासे सूतिकागृहका द्वार निरूपित होता है।

राश्याधिप ग्रहकी स्थितिके अनुसार लग्न-परीक्षा—चन्द्र जिस राशिमें रहते हैं उस राशिका अधिपति ग्रह जन्मकुण्डलीचक्रमें जिस राशिमें रहता है उस राशिमें अथवा उस राशिकी पञ्चम वा नवम राशिमें अथवा सप्तम राशिसे पञ्चम वा नवम राशिमें जन्मलग्न होगा। यह नियम अधिकांश जगह प्रायः एक सा देखा जाता जाता है। चन्द्र राश्यधिपतिकी अवस्थितिके स्थानसे उक्त ६ स्थानोंमें जन्मलग्नकी जो सम्भावना लिखी गई, इसका किसी प्रकार व्यतिक्रम होनेसे पूर्वापर राशिमें ही लग्न हुआ करता है।

रविस्थित नक्षत्रके अनुसार लग्नपरीक्षा।—यदि दोपहर दिनको जन्म हो, तो रवि जिस नक्षत्रमें हैं, उस नक्षत्रमें अर्थात् उस नक्षत्रघटित जिस राशि अथवा रविस्थित नक्षत्रसे सप्तम नक्षत्रमें जो राशि होती है वह राशि जन्म-लग्न होगी। दोपहर दिनके बाद शाम तक रविभोग्य नक्षत्रसे द्वादश नक्षत्रघटित जो राशि होगी, उसीको जन्मलग्न समझना चाहिये। संध्याके बाद दोपहर रातको जन्म होनेसे रविभोग्य नक्षत्रसे सत्तरह वा उन्नीस नक्षत्र तथा दोपहर रातके बादसे ले कर सूर्योदयसे पूर्व तक चौबीस नक्षत्रघटित जो राशि होगी वही लग्न होती है। चन्द्रराश्यधिप और रविभोग्य नक्षत्र ये दोनों नियम कहे गये। इन्हीं दोनों नियमोंसे अकसर लग्न निरूपण करते देखा जाता है तथा इसीके अनुसार लग्न स्थिर किया जाता है। (वृहज्जातक)

जन्मलग्नमें यदि शीर्षोदय हो, तो गर्भस्थ शिशु मस्तक द्वारा, पृष्ठोदय होनेसे पाद द्वारा तथा दोनोंका उदय हो, तो हस्त द्वारा भूमिष्ठ होता है। फिर यदि जन्म-लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि वा योग रहे, तो सुख और यदि पापग्रहकी दृष्टि वा योग रहे, तो कष्टसे प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये। इस पर मनित्थ नामक एक ज्योतिर्विद् कहते हैं, कि लग्नपति वा लग्नका नवांशपात यदि वक्री हो अथवा यदि कोई वक्री-ग्रह लग्नमें रहे, तो विपरीत भावमें अर्थात् हस्तपदादि द्वारा गर्भस्थ शिशु बाहर निकलता है। वृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पलका कहना है, कि शीर्षोदय लग्नमें गर्भस्थ शिशु ऊद्ध्वोदर, ऊद्ध्वमुख और निम्नपृष्ठ हो कर तथा पृष्ठोदय लग्नमें अधोमुख ऊद्ध्वपृष्ठ हो कर जन्म लेता है।

मेष, वृष वा सिंह इसके अन्यतम लग्नमें यदि जन्म हो, तथा उसमें यदि शनि वा मङ्गल रहे, तो गर्भस्थ शिशु नाड़ीवेष्टित हो कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानना होगा। लग्नका उदित नवांश जिस राशिके स्वरूप होगा, उस राशिमें जातकका जो अङ्ग निरूपित होता है, वही अङ्ग नाड़ीवेष्टित था, जानना होगा। जन्मलग्न राशि और लग्नकी नवांश स्वरूप राशि बलवान् होती है, उस राशिके सञ्चरण स्थान प्रसव-स्थानकी कल्पना करनी होगी। लग्न वा नवांश राशि चरसंज्ञक होनेसे घरके बाहर, परदेशमें, राहमें वा और किसी जगह तथा स्थिरसंज्ञक राशि होनेसे अपने घरमें स्वसम्पर्कीय आत्मीय घरमें प्रसव होगा, ऐसा जानना चाहिये।

दीपवर्त्ति द्वारा लग्नका अंश निरूपण—स्नेहमय चन्द्र यदि राशिके आरम्भमें रहें, तो प्रदीप तेलसे भरा था; यदि मध्य भागमें रहें, तो आधा तेल था और यदि वे शेष भागमें रहें, तो प्रदीपमें थोड़ा तेल था, ऐसा जानना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि चन्द्रके पूर्णापूर्णत्वभेदसे तेलका रहना स्थिर किया जाता है, किन्तु यदि प्रदीपकी बत्ती दग्ध हो रही हो, तो जानना चाहिये, कि लग्नके प्रारम्भमें प्रथम भागमें जन्म हुआ है। उस बत्तीमेंसे आधी दग्ध होनेसे लग्नके मध्यभागमें तथा अधिकांश दग्ध होनेसे शेष भागमें जन्म हुआ है, स्थिर करना होगा।

लग्न ही जातकका शरीर है, इस कारण लग्न-परीक्षा अच्छी तरह करना उचित है। जातकके लग्नमें किस किस विषयका विचार किया जाता है उसका विषय नीचे लिखा जाता है।

लग्नमें देहका परिमाण, रूप, वर्ण, आकृति, शरीर-चिह्न, यश, गुण और निर्गुण, सुख और दुःख, प्रवास और स्वदेशवास, सबल और दुर्बल, ज्ञान, चरित्र, स्वभाव, आरोग्य, प्रशंसा, मान, इन्द्रिय-निग्रह, वयोमान अर्थात् आयुका स्थूल परिमाण, जाति, क्लेश, भागिनेयवधू, पुंस्त्रीविचार, चेष्टा, कटु, लवण और तिक्तादि रस, पितामही, मातामह, पुत्रका भाग्य, शत्रुकी मृत्यु, वैद्य, सालेका पुत्र, सासकी माता, पितामहकी सम्पत्ति, स्वदेशभाग्य और विदेशभाग्य, मस्तक, सूतिकागार और कीर्त्ति, इन सबका विचार करना होता है। अर्थात् इन सबका विचार करनेमें लग्नसे ही देखना होता है।

जातकालङ्कारमें लिखा है, कि लग्न और लग्नपति दोनों ही बलवान् होनेसे लग्नभावोत्थ फलकी वृद्धि तथा दुर्बल होनेसे फलकी हानि होती है। इस प्रकार अन्यान्य भावस्थलमें ही भावराशि और भावपतिके शुभाशुभके अनुसार शुभाशुभकी कल्पना करनी होगी।

एक लग्नके ऊपर ही सभी भावफल निर्भर करता है लग्नमें गोलमाल होनेसे सभी फल गोलमाल हो जाते हैं।

इस कारण लग्नका अच्छी तरह विचार करना परमावश्यक है, लग्न स्थिर नहीं होनेसे जातकके जीवनका शुभाशुभ नहीं जाना जा सकता। लग्नसे राशिचक्रके द्वादश गृहको द्वादश लग्न कहते हैं। जैसे—लग्न, धन, सोदर, बंधु, पुत्र, रिपु, पत्नी, निधन, धर्मकर्म, आय और व्यय, इन द्वादश गृहको द्वादश लग्न कहते हैं। जैसे धन लग्न, सोदर लग्न, बन्धु लग्न, इत्यादि। किंतु राशिमें रविके उदय कालरूप लग्न ही प्रधान है। उसीको प्रधान लक्ष्य करके अन्यान्य विषयोंका विचार करना होता है। लग्नभावफलका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

जो जो भावपति लग्नसे अथवा भावस्थानसे छठे, आठवें और बारहवेंमें रहे, तो उस उस भावोत्थ फलकी हानि होती है। अतएव किसी भावका शुभाशुभ विचार करनेमें देखना होगा, कि वह भावपति लग्नसे तथा भावस्थानसे कहां है। यदि दोनों स्थानसे शुभ स्थानमें स्थित हो, तो उस भावफलका सम्पूर्ण फल तथा शुभाशुभ स्थान हो, तो फलका भी शुभाशुभ होता है।

वृहज्जातकके टीकाकार भट्टोत्पलका मत है, कि केवल छठे स्थानको छोड़ कर अन्य स्थानका शुभग्रह भाववृद्धिकर हुआ करता है। छठे स्थानका अशुभग्रह अशुभप्रद होने पर भी शत्रुनाशक होता है। लग्नसे छठा, आठवां और बारहवां स्थान दुःस्थान है। उस स्थानका ग्रह वा भावपति अशुभप्रद होता है। अतएव ग्रहोंका छठा, आठवां और बारहवां सम्बन्ध होनेसे ही फलकी न्यूनता कल्पना करनी होगी। इसमें विशेषता यह है, कि जैसा ऊपर कह आये हैं, शुभ और स्वामिग्रहके योगसे शुभफल हुआ करता है, लेकिन छठे, आठवें और बारहवें स्थानके सम्बन्धमें विशेष विधि यह है, कि उसका विपरीतक्रमसे विचार करना होता है अर्थात् शुभग्रहके इस स्थानमें रहनेसे अशुभ और अशुभग्रहके रहनेसे शुभ होता है।

द्वादश लग्नरिष्टि।—मेष लग्नमें यदि जन्म हो कर लग्नमें चन्द्र, मङ्गल तथा मकर भिन्न अन्य किसी राशिमें शनि और रवि रहे, तो जातबालककी तीन दिनके भीतर मृत्यु होती है। यदि वृष लग्नमें जन्म हो तथा वह लग्न वृहस्पति वा शनिसे छठे स्थानमें रहे अर्थात् शनि और वृहस्पति धनुराशिमें हों एवं आठवें स्थानमें मङ्गल रहे, तो जातककी चौदह दिनमें मृत्यु होगी। मिथुन लग्नमें जन्म हो कर कर्कटमें शनि, सप्तममें रवि रहनेसे मिथुनलग्नरिष्टि होती है। कर्कटलग्नमें जन्म हो कर तुला वा कुम्भमें यदि वृहस्पति तथा वह राहु वा मङ्गलसे देखा जाय, तो कर्कट लग्नरिष्टि ; यदि सिंहलग्नमें जन्म हो तथा चन्द्रलग्नमें रहें और मकर भिन्न अन्य राशिमें शनि और रवि हों, तो सिंहलग्नरिष्टि ; यदि कन्या लग्नमें जन्म हो तथा उस लग्नमें चन्द्र तथा वृहस्पतिके केन्द्रमें शनि रहे, तो कन्यालग्नरिष्टि; तुलालग्नजात व्यक्तिके छठे घरमें शुक्र तथा लग्नमें चन्द्र रहे, तो तुला लग्नरिष्टि ; वृश्चिक लग्नजात व्यक्तिके कर्कटमें चन्द्र, धनुर्लग्नजात व्यक्तिके लग्नमें वृहस्पति तथा मङ्गलमें शनि रहे; मकरलग्नजात व्यक्तिके मेषमें चन्द्र और सिंहमें रवि, कुम्भलग्नजात व्यक्तिके चतुर्थमें चन्द्र वा कन्या अथवा तुलामें शुक्र; मीनलग्नजात व्यक्तिके लग्नमें चन्द्र और वृश्चिकमें शनि रहनेसे लग्नरिष्टि होती है। ये सब रिष्टि होनेसे जातककी मृत्यु हुआ करती है।

प्रत्येक लग्नको सूक्ष्म कर षड़्वर्ग किया जाता है। षड़्वर्ग इस प्रकार है, लग्न, होरा, द्रेक्काण, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश। इसके सिवा लग्नका स्फुटसाधन करनेसे और भी सूक्ष्म होता है। बिना स्फुटके अंश सूक्ष्म नहीं होता। सिंहलग्नमें जन्म हुआ है, कहनेसे स्फुटसाधन किया जाता है। इससे सिंहलग्नके कितने अंश और कितनी कलामें जन्म हुआ है, सो मालूम होता है। स्फुटसाधन देखो।

लग्नफल—यदि मेष, सिंह वा धनुर्लग्न हो और उस स्थानमें रवि रहे, तो जातक गृहस्थ, धर्मपालक, बन्धुओंका हितकारी, उद्धत, बलवान, कर्तृस्वाभिमानी, क्षमाशील, मानी, उदारचित्त, दाम्भिक और उच्चाभिलाषी होता है। किन्तु कर्कट अथवा तुलालग्न होनेसे तथा उस लग्नके ८ अंशके मध्य रविके रहनेसे वक्र चक्षु, नेत्ररोग और शिरःपीड़ा होती है तथा जातव्यक्ति प्रायः आत्मश्लाघी, घृणारहित और पुत्रहीन होता है। उस रविके दोनों पार्श्वमें अथवा उसके सातवेंमें शनि

और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसे पितृरिष्टि होती है। यदि मेष, वृष अथवा कर्कट लग्न हो और वहां पूर्ण वा बलवान् चन्द्र रहे, तो जातक रूपवान्, प्रियदर्शन, गुणवान, धनी, गर्वित और भाग्यवान् होता है। उक्त तीन राशिको छोड़ कर लग्नजात चन्द्रके क्षीण होनेसे तथा उसके साथ अथवा उसके सातवेंमें किसी शुभग्रहके नहीं रहनेसे जातबालक मलिन, असुस्थ, भ्रमणशील और दुबला पतला होता है। उसकी अवस्था बदलती रहती है अर्थात् कभी ह्रास और कभी वृद्धि होती है। उस चन्द्रके उभय पार्श्वमें अथवा उसके सातवें शनि और मङ्गलके रहनेसे जातक अल्पायु होता और उसकी मातृरिष्टि होती है।

शुभग्रहसे दृष्ट हो कर मङ्गलका यदि लग्न रहे, तो जातक तेजस्वी, उग्र-स्वभाववाला, साहसी, बलवान्, धार्म्मिक और वीर होता है। उस मङ्गलके सप्तममें बृहस्पतिके रहनेसे वह ऐश्वर्यशाली और राजाके समान होता है। किन्तु पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल होता है। अर्थात् जातक कलहप्रिय, क्षतशरीर वा त्वक् दोषविशिष्ट, क्रूरचेष्टान्वित, इन्द्रियासक्त, क्रोधी, मद्यमांसप्रिय, चञ्चल, विकलाङ्ग, मलिन, उदर वा दम्भरोगी और अर्शादि गुह्यरोगी हुआ करता है।

लग्नमें खास कर मिथुन और कन्यालग्नमें बुधके रहनेसे जातव्यक्ति, प्रियंवद, सुचतुर, मिष्टभाषी बंधुओंका हितकारी, कौतुकी, धनी, सद्वक्ता, वणिक् वा शास्त्रवेत्ता होता है। किन्तु लग्नस्थ बुध, शनि वा मङ्गलके द्वारा दृष्ट होनेसे जातक वाचाल, मिथ्यावादी, मन्दमति-सम्पन्न, शठ, अविश्वासी, प्रवञ्चक, कपटी और चोर होता है।

मकर भिन्न अन्य किसी लग्नमें बृहस्पतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, स्वधर्मानुरत, विविध शास्त्रज्ञान-सम्पन्न, सदुपदेष्टा, लोकपूज्य, राजसम्मानित, भाग्यवान् और ऐश्वर्यशाली होता है।

लग्नमें शुक्रके रहनेसे जातक विलासी, गुणवान्, सुन्दरी स्त्री अथवा बहु ललनायुक्त, शिल्पशास्त्रविशारद, सङ्गीत और काव्यशास्त्रप्रिय, सदालापी और प्रफुल्लचित्त वाला होता है। यदि तुला लग्न हो तथा उसमें शुक्र और कुम्भराशिमें बृहस्पति रहे, तो पुरुष सुन्दर होता है तथा उसकी स्त्रियां सर्वाङ्ग सुन्दरी होती हैं। किन्तु लग्नगत शुक्र पापयुक्त हो वा पापसे देखा जाय, तो वह नीचसङ्गप्रिय, नीचामोदरत, अपव्ययी, क्रीड़ासक्त और परस्त्रीरत होता है।

यदि तुला, धनु, कुम्भ वा मीनराशि लग्न हो और लग्नमें शनि रहे, तो जातक दीर्घायु, ऐश्वर्य्यशाली तथा बहुलोकप्रतिपालक होता है। मतान्तरमें वृष, मिथुन वा कन्यालग्नमें शनि रहनेसे उक्त प्रकारका फल हुआ करता है। उस शनिके सप्तममें यदि बृहस्पति रहे, तो मानव परम ऐश्वर्य्यशाली होता है। किन्तु लग्नगत शनिके अन्य राशिमें रहनेसे मानव कान्तिहीन, अशोभन, दम्भयुक्त, सर्वदा व्याधिपीड़ित, नीचाशय और सुखविहीन होता है। मेषसे कन्या पर्य्यन्त इन छः राशिके मध्य कोई राशि लग्न होनेसे तथा वहां राहुके रहनेसे मानव अन्य ग्रहरिष्टिसे मुक्तिलाभ करता है। इसका विपरीत होनेसे राहु अशुभ फल देता है। केतु लग्नमें रहनेसे लग्नाधीन फलका ह्रास होता है। लग्नस्थित ग्रह जिस प्रकार फलप्रद होता है उसी प्रकार लग्नाधिपति द्वारा भी फल निर्णय किया जाता है।

लग्नाधिपफल—लग्नाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक भाग्यवान्, रिपुजयी, बहु परिजनयुक्त तथा अपने बन्धुवर्गमें श्रेष्ठ होता है। अलग्नाधिपके द्वितीय स्थानमें रहनेसे मनुष्य अपने यत्न और परिश्रमसे धन कमाता है। लग्नाधिपके तृतीय स्थानमें रहनेसे जातक दाम्भिक, अभिमानी, भ्राता, ज्ञाति वा प्रतिवासीकी वशतापन्न तथा भ्रमणरत होता है। चतुर्थ स्थानमें रहनेसे वह पितृ सम्पत्ति, उत्तम वाहन, उत्तम वासस्थान और भूमिलाभ करता है। कृषिकार्यमें ही उसे सफलता प्राप्त होती है। लग्नाधिपके पञ्चम स्थानमें रहनेसे मानव सन्ततियुक्त, अलस, विलासप्रिय, कल्पनाशक्तिविशिष्ट और बुद्धिमान् होता है। ६ठे स्थानमें रहनेसे पीड़ा, शत्रुवृद्धि वा वध-बन्धन होता है। किन्तु शुभग्रहदृष्ट होनेसे मामा वा चाचासे सहायता पानेकी सम्भावना है। लग्नाधिपके सप्तम स्थानमें रहनेसे यौवनावस्थामें एकसे अधिक स्त्रीलाभ, वासस्थानका परिवर्त्तन, विदेशयात्रा और शत्रुवृद्धि होती है तथा जातक अपनी बुद्धिके दोषसे अपना

अनिष्ट करता है। किसी व्यवसाय द्वारा धन और प्रतिपत्ति मिलती है। लग्नाधिपके आठवें स्थानमें रहनेसे मानव रुग्न, अल्पायु, शोकार्त्त, भयार्त्त और सर्वदा विपदापन्न होता है। किन्तु लग्नाधिपति यदि शुभ और बलवान् हों, तो उसे स्त्रीधन वा कोई सम्पत्तिलाभ होता है। लग्नाधिपके नवम स्थानमें रहनेसे जातक भाग्यवान्, विद्वान्, शास्त्रानुरागी, धार्मिक वा पोतवणिक् होता है। दशम स्थानमें रहनेसे मान्य, उच्चपद, कार्यसंफलता और किसी समाजकी प्रधानता लाभ होती है। ग्यारहवें स्थानमें रहनेसे वहुमित्र, प्रचुर अर्थागम, उत्साह, वृद्धि और उत्तम वाहन लाभ होता है। लग्नाधिपके बारहवें स्थानमें रहनेसे दुर्भावना, बन्धनभय, ऋण, निर्वासन, क्षीणदेह, शोक और गुरुशत्रु होता है।

द्वितीय पतिके लग्नमें रहनेसे मनुष्य धनी और सौभाग्यशाली होता है; तृतियाधिपतिके लग्नमें रहनेसे बहुभ्रमण और वासस्थानका परिवर्त्तन, परिजन द्वारा वेष्टित, कुल-श्रेष्ठ और पराक्रमशाली, चतुर्थाधिपके रहनेसे बन्धुवाहन और स्थावरसम्पत्तिका लाभ; पञ्चमाधिपतिके रहनेसे जातक बुद्धिमान्, विद्यानुरागी, पुत्रवान्, विलासप्रिय, प्रफुल्लचित्त और अपने वंशका भूषणस्वरूप, षष्ठाधिपतिके रहनेसे क्लेशयुक्त, शत्रु द्वारा पीड़ित, अल्पायु और सर्वदा असुस्थ, सप्तमाधिपतिके लग्नमें रहनेसे थोड़ी उमरमें विवाह, वाणिज्यकुशल और विदेशयात्रा; अष्टमाधिपतिके रहनेसे विपद्, शोक, अल्पायु वा दीर्घस्थायी पीड़ा; नवमाधिपतिके रहनेसे जातक भाग्यवान्, बुद्धिवान्, धर्मपरायण, विद्या वा वाणिज्य द्वारा धनी और बहुभ्रमणशील, दशमाधिपतिके रहनेसे मानव क्षमताशाली, गण्य-मान्य और कीर्त्तिशाली; एकादशाधिपतिके रहनेसे प्रचुर आय, बहुमित्र और पद पदमें उत्साह तथा द्वादशाधिपतिके लग्नमें रहनेसे जातक अपव्ययी, हमेशा विपदापन्न और अल्पायु होता है।

लग्न और लग्नपति शुभ ग्रह द्वारा वेष्टित होनेसे जातक सौभाग्यशाली और यशस्वी होता है। इसी प्रणालीसे लग्नका फल विचार करना होता है।

(दीपिका, जातककौ॰ इत्यादि)

(पु॰) लग्न-क्त निपातनात् साधुः; यद्वा लस्ज्-क्त तस्या नश्च। २ स्तुतिपाठक, बंदीजन। पर्याय—प्रातश्च स्तुतिव्रत, सूत। (जटाधर) ३ विवाह, शादी। ४ विवाहके दिन, सहालग। ५ विवाहका समय। (त्रि॰) ६ लगा हुआ, मिला हुआ। ७ लज्जित, शरमिंदा। ८ आसक्त।

लग्नक (सं॰ पु॰) १ प्रतिभू, वह जो जमानत करे, जामिन। २ एक राग जो हनुमत्के मतसे मेघरागका पुत्र माना जाता है।

लग्नकङ्कण (सं॰ पु॰) वह कङ्कण या मङ्गलसूत्र जो विवाहके पूर्व वर और कन्याके हाथमें बांधा जाता है।

लग्नकाल (सं॰ पु॰) लग्नस्य कालः। लग्नका समय।

लग्नकुण्डली (सं॰ स्त्री॰) फलित ज्योतिषमें वह चक्र या कुंडली जिससे यह पता चलता है, कि किसके जन्मके समय कौन कौनसे ग्रह किस किस राशिमें थे, जन्मकुण्डली।

लग्नग्रह (सं॰ पु॰) १ दृढ़संश्लिष्ट। २ लग्नस्थित ग्रह।

लग्नदण्ड (सं॰ पु॰) गाने या बजानेके समय स्वरके मुख्य अंशों या श्रुतियोंको आपसमें रह दूसरेसे अलग न होने देना और सुन्दरतासे उनका संयोग करना, लाग डांट।

लग्नदिन (सं॰ क्ली॰) लग्नस्य दिनं। लग्नका दिन, विवाहके लिये निश्चित दिन।

लग्नदिवस (सं॰ पु॰) लग्नदिन।

लग्नदृष्टि (सं॰ स्त्री॰) लग्नमें नक्षत्र आदिकी दृष्टि।

लग्नदेवी (सं॰ स्त्री॰) पुराणवर्णित पत्थरकी गाभी या गाय।

लग्नपत्र (सं॰ पु॰) लग्नस्य पत्रं। वह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे सम्बन्ध रखनेवाला दूसरे कृत्योंका लग्न स्थिर करके ब्योरेवार लिखा जाता है।

लग्नपत्रिका (सं॰ स्त्री॰) लग्नपत्र देखो।

लग्नफल (सं॰ पु॰) लग्नविशेषमें जन्मके लिये जीवका शुभाशुभ फलभोग।

लग्नवेला (सं॰ स्त्री॰) लग्नस्य वेला। लग्नकाल, लग्नका समय।

लग्नायु (सं॰ स्त्री॰) फलितज्योतिषमें वह आयु जो लग्नके अनुसार स्थिर की जाती है।

लग्नका (सं॰ स्त्री॰) लग्निका, नंगी स्त्री।

लग्नकाश्रम (सं॰ पु॰) एक मठका नाम। (बृहन्नील॰ २०)

लग्नेश (सं० पु०) फलितज्योतिषमें वह ग्रह जो लग्नका स्वामी हो।

लग्नोदय (सं० पु०) १ किसी लग्नके उदय होनेका समय। २ लग्नके उदय होनेका कार्य्य।

लघट (सं० पु०) लङ्घते मध्यस्थानमस्पृष्ट्वा उत्तरस्थाने पतति प्लुतं इतस्ततो गच्छति वा लङ्घ (लङ्घेर्नलोपश्च। उण् । १।१३४) इति अटि, नलोपश्च धातोः। वायु, हवा।

लघटि (सं० पु०) लघ-गतौ अटि, इद्भावः। वायु।

लघड़बग्गा (हिं० पु०) लग्घड़ देखो।

लघन्ती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

लघमीपुष्प (हिं० पु०) पद्मराग मणि, लाल, माणिक्य।

लघरि—एक असभ्य जाति।

लघित्र (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका धारदार अस्त्र। इसमें दस्ता लगा होता था और इससे भैंसे आदि काटे जाते थे।

लघिमन् (सं० पु०) लघोर्भावः लघु (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पा ५।१।१२२) इति इम निच्। १ लघुत्व, लघु या हल्का होनेका भाव। २ अणिमादि ऐश्वर्यों के अन्तर्गत एक ऐश्वर्य। साधनाके द्वारा यह ऐश्वर्य लाभ होता है। योगियोंके संयम सिद्धि द्वारा क्षित्यादि पञ्चभूत जय कर सकने पर उनके अणिमादि आठ ऐश्वर्योंकी सिद्धि प्राप्त होती है। लघुत्वको लघिमा कहते हैं। जो व्यक्ति लघिमा शक्ति प्राप्त करते हैं वे बहुत छोटे या रूईकी तरह हलके बन सकते हैं तथा वे जल आदिके ऊपर आसानीसे चल सकते हैं।

(पातञ्जलद० विभूतिपा० ४६)

लघिमा (सं० त्रि०) लघिमन् देखो।

लघिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन लघुः, लघु-इष्ठ। अतिशय लघुत्वयुक्त, बहुत छोटा या हलका।

लघिष्ठसाधारण गुणनीयक—अङ्कविशेष, एक तरहका हिसाब।

लघीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन लघुः लघु-ईयसुन्। अतिशय लघुत्वयुक्त, बहुत छोटा या हलका।

लघु (सं० क्ली०) लङ्घतेऽनेनेति लङ्घ (लङ्घिवह्योर्नलोपश्च। उण् १।३०) इति कु, धातोर्नलोपश्च। १ शीघ्र, जल्दी। २ कृष्णागुरु, काला अगर। ३ उशीर, खस। ४ हस्ता, अश्विनी और पुष्या नक्षत्र। ये तीनों नक्षत्र ज्योतिषमें छोटे माने गये हैं और इनका गण लघुगण कहा गया है। (वृहत्सं० ९८।९) ५ समयका एक परिमाण। पन्द्रह क्षण परिमाण कालको लघु कहते हैं। पञ्चकाष्ठा परिमाणका एक क्षण होता है। (भाग० ३।११।७)

(पु०) ६ तीन प्रकारके प्राणायामोंमेंसे वह प्राणायाम जो बारह मात्राओंका होता है। शेष दो प्राणायाम मध्यम और उत्तम कहलाते हैं। ७ व्याकरणमें वह स्वर जो एक ही मात्राका होता है। जैसे,—अ, इ, उ, ओ, ए आदि। ८ छन्दःशास्त्रोक्त लघुगणभेद। छन्दके लक्षणमें 'न' शब्द रहनेसे तीन लघु, 'भ' शब्दमें आदि-गुरु तथा शेष दो लघु, 'य' शब्दमें आदि लघु, 'ज' आदि और शेष लघु, 'र' लघु, 'स' पहला दो लघु, 'त' शेष लघु और 'ल' शब्दमें सिर्फ एक लघु होता है। (छन्दोम०) ९ रोगमुक्त, वह जिसका रोग छूट गया हो। रोग छूटने पर शरीर कुछ हलका जान पड़ता है। १० वंशीका छोटा होना जो उसके छः दोषोंमेंसे एक माना जाता है। ११ चांदी। १२ पृक्का, असबरग। १३ पिंडिसाग। (त्रि०) १४ अगुरु, हलका। १५ जो बड़ा न हो, कनिष्ठ। १६ सुन्दर, बढ़िया। १७ निःसार, जिसमें किसी प्रकारका सार या तत्त्व न हो। १८ थोड़ा, कम। १९ दुर्बल, दुबला। २० नीच।

लघु आचार्य—एक ग्रन्थकार। इन्होंने त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र या त्रिपुरास्तोत्र, देवीस्तोत्र और त्रिपुरस्तव बनाया। ये लघु-पण्डित नामसे भी प्रसिद्ध थे।

लघुकङ्कोल (सं० पु०) एक प्रकारका कंकोल जो साधारण कंकोलसे छोटा होता है।

लघुकटाई हिं० स्त्री०) कण्टकारी देखो।

लघुकरण (सं० पु०) शुक्लजीरक, सफेद जीरा।

लघुकर्कटी (सं० स्त्री०) लजालू।

लघुकर्कन्धु (सं० पु०) भूमिबदर, भुईबेर।

लघुकर्णी (सं० स्त्री०) मूर्व्वा।

लघुकाय (सं० पु०) लघुः कायो यस्य। १ छाग, बकरा। (त्रि०) २ क्षुद्रशरीर, नाटा।

लघुकाश्मर्य (सं० पु०) लघुः काश्मर्यः। कट्फलवृक्ष, कटहलका पेड़।

लघुकिन्नरी (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा। इस बाजेमें बजानेके लिये तार लगे होते थे।

लघुकौमुदी (सं० स्त्री०) वरदराजका बनाया हुआ सिद्धान्त-कौमुदीका संक्षिप्त व्याकरण।

लघुक्रम (सं० पु०) द्रुतगमन, जल्दी जल्दी चलनेकी क्रिया।

लघुक्रिया (सं० स्त्री०) क्षुद्र या तुच्छ कार्य।

लघुखट्टिका (सं० स्त्री०) लघुखट्टिका, खटोला। पर्याय—आसन्दी।

लघुखरतर (सं० क्ली०) प्राचीन वंशभेद। जैन शब्द देखो।

लघुगङ्गाधर (सं० पु०) उदरामय रोगमें प्रयोज्य चूर्णकभेद, यह चूर्ण या औषधि जो पेटकी बीमारीमें आती काम है।

लघुगण (सं० पु०) लघुर्गणः। अश्विनी, पुष्या और हस्ता इन तीन नक्षत्रोंका समूह।

लघुगर्ग (सं० पु०) लघुर्गर्ग इव। १ त्रिकण्टकमत्स्य, टेंगरा या त्रिकण्टक नामकी मछली। २ खैरा नामकी मछली।

लघुगोधूम (सं० पु०) ह्रस्वगोधूम, छोटा गेहूं। यह स्निग्ध, गुरु, वृष्य, कफघ्न, आमदोषकर, मधुर, वीर्य और पुष्टि-कर माना गया है। (राजनि०)

लघुचन्दन (सं० क्ली०) काष्ठागुरु, अगर नामक सुगन्धित लकड़ी।

लघुचित्त (सं० त्रि०) लघु चित्तं यस्य। क्षुद्रचित्त, जिसका मन बहुत ही दुर्बल या चञ्चल हो।

लघुचित्तता (सं० स्त्री०) चित्तकी स्थैर्यहीनता, मनके बहुत ही दुर्बल या चञ्चल होनेका भाव।

लघुचिन्तामणिरस (सं० क्ली०) रसौषधविशेष।

लघुचिर्भिटा (सं० स्त्री०) मृगैर्वारु, सफेद इन्द्रायण।

लघुचेतस् (सं० त्रि०) लघु चेतो यस्य। जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और बुरे हों, नीच।

लघुच्छदा (सं० स्त्री०) महाशतावरी, बड़ी सतावर।

लघुच्छेद्य (सं० त्रि०) जो सहज हीमें काटा या ध्वंस किया जाय।

लघुजल (सं० पु०) लवा नामक पक्षी।

लघुजाङ्गल (सं० पु०) लावक पक्षी, लवा नामक पक्षी।

लघुतर (सं० त्रि०) अति लघु, हलका।

लघुता (सं० स्त्री०) लघु-भावे तल् टाप्। १ लघु होनेका भाव, छोटापन। २ तुच्छता, हलकापन।

लघुतिक्त (सं० क्ली०) मुरदासंग।

लघुतुपक (सं० स्त्री०) तमंचा, पिस्तौल।

लघुत्तमापवर्त्य (सं० पु०) वह सबसे छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओंमेंसे प्रत्येकको पूरा पूरा भाग दे सके।

लघुत्व (सं० पु०) १ लघु होनेका भाव, लघुता। २ तुच्छता, हलकापन, छोटापन।

लघुदन्ती (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा दन्ती। क्षुद्रदन्ती-वृक्ष, छोटी दन्ती। दन्ती देखो।

लघुदुन्दुभि (सं० पु०) लघुर्दुन्दुभिः। एक प्रकारकी छोटी दुन्दुभि, डुग्गी।

लघुद्राक्षा (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा द्राक्षा। कोकलीद्राक्षा, किशमिश।

लघुद्वारवती (सं० स्त्री०) वर्त्तमान द्वारवती नगरी।

लघुनाभमण्डल (सं० क्ली०) मण्डलात्मक चक्रभेद।

लघुनामकर्म (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार वह कर्म जिससे जीवका शरीर न तो बहुत भारी होता है और न हलका होता है बल्कि साधारण सम विभक्त होता है।

लघुनामन् (सं० क्ली०) लघु लघुवर्णयुक्तं नाम यस्य। अगुरु, अगर नामक सुगन्धित लकड़ी।

लघुनारायणोपनिषत्—एक उपनिषद्का नाम।

लघुपञ्चक (सं० क्ली०) लघुपञ्चमूल देखो।

लघुपञ्चमूल (सं० क्ली०) लघु क्षुद्रं पञ्चमूलं। क्षुद्रपञ्च-मूल पाचन। शालिपर्णी, पिठवन, कटाई, कटेहरी और गोखरू इन पांचोंकी जड़ोंको लघुपञ्चमूल कहते हैं। यह पाचन, लघु, स्वादु, बलकर, पित्तानिलनाशक, नात्युष्ण, वृंहण, ग्राहक, ज्वर, श्वास और अश्मरीनाशक माना गया है। (भावप्र०)

लघुपण्डित (सं० पु०) एक नैयायिक। इन्होंने लघुपण्डि-तीय नामक न्यायशास्त्र लिखा। लघु आचार्य देखो।

लघुपतनक (सं० पु०) १ द्रुत पतनशील, वह जो जोरसे गिर गया हो। २ हितोपदेशके अनुसार एक काक।

लघुपत्र (सं० पु०) कमीला।
लघुपत्रक (सं० पु०) लघूनि पत्राणि यस्य कप्। कमीला।
लघुपत्रफला (सं० स्त्री०) लघु उदुम्बरिका, छोटा गूलर।
लघुपत्री (सं० स्त्री०) लघूनि पत्राणि यस्याः ङीप्। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।
लघुपराशर (सं० पु०) १ स्मृतिशास्त्रभेद। २ ज्योतिषभेद।
लघुपर्णी (सं० स्त्री०) १ मूर्व्वा, मरोड़फली। २ शतमूली, सतावर।
लघुपाक (सं० पु०) लघुः पाकः यस्य। वह खाद्य-पदार्थ जो सहजमें पच जाय।
लघुपाकिन् (सं० पु०) चीनाधान्य, चेना नामक कदन्न।
लघुपातिन् (सं० त्रि०) १ शीघ्र पतनशील, जल्द गिरनेवाला। (पु०) २ काक, कौवा।
लघुपाण्डुरपुष्पक (सं० पु०) द्वीपान्तर खर्जूरिका, एक प्रकारको खजूर जो भिन्न भिन्न द्वीपोंमें होती है।
लघुपिच्छिल (सं० पु०) लघुः पिच्छिलः। भूकर्बुदारक, लिसोड़ा।
लघुपुलस्त्य (सं० पु०) पुलस्त्यका बनाया हुआ एक धर्मशास्त्र।
लघुपुष्प (सं० पु०) लघूनि क्षुद्राणि पुष्पाणि यस्य। भूमिकदम्ब, भुईं कदंब।
लघुप्रयत्न (सं० त्रि०) आलसी।
लघुफल (सं० पु०) लघु उदुम्बर, छोटा गूलर।
लघुबदर (सं० पु०) लघुः क्षुद्रो बदरः। छोटा बेर। पर्याय—सूक्ष्मफल, बहुकर, सूक्ष्मपत्र, दुस्पर्श, मधुर, दरहार, शिखिप्रिय। पके बेरका गुण—मधुराम्ल, कफवातनाशक, रुचिकर, स्निग्ध, कुछ पित्तार्त्ति, दाह और शोषनाशक। (राजनि०)
लघुबदरी (सं० स्त्री०) भूबदरी, भुईं बेर।
लघुबुद्धपुराण (सं० क्ली०) ललितविस्तर ग्रन्थका एक संक्षिप्त विवरण।
लघुव्यास—वृत्तिवल्लभनाटकके रचयिता।
लघुब्राह्मी (सं० स्त्री०) लघुः क्षुद्रा ब्राह्मी। क्षुद्रब्राह्मी, छोटी ब्राह्मी।
लघुभण्टी (सं० स्त्री०) चिञ्चोटक, चेंच साग।

लघुभव (सं० पु०) १ निम्न पद, छोटा ओहदा। २ निकृष्ट जन्म।
लघुभागवत (सं० क्ली०) भागवतपुराणका एक चूर्णक।
लघुभाव (सं० पु०) १ हलका। २ सहजसाध्य, वह काम जो आसानीसे हो जाय।
लघुभुज् (सं० त्रि०) लघु लघुपाकद्रव्यं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। १ लघुपाक द्रव्यभोजनकारी, अपच खानेवाला। २ अल्पभोजी, थोड़ा खानेवाला।
लघुभोजन (सं० क्ली०) वह भोजन जो सहजमें और थोड़े समयमें परिपाक हो।
लघुमति (सं० त्रि०) छोटी समझवाला, मूर्ख।
लघुमन्थ (सं० पु०) लघुः क्षुद्रो मन्थः। क्षुद्राग्निमन्थ, छोटी गनियारी।
लघुमांस (सं० पु०) लघु स्वल्पं मांसं यस्य। तीतर नामक पक्षी।
लघुमांसी (सं० स्त्री०) गन्धमांसी, छोटी जटामांसी।
लघुमान (सं० पु०) नायिकाका वह मान या अल्प रोष जो नायकको किसी दूसरी स्त्रीसे बातचीत करते देख कर उत्पन्न होता है।
लघुमूल (सं० क्ली०) बीजगणितके अनुसार एक हिसाब।
लघुमूलक (सं० क्ली०) लघुमूलं यस्य कप्। ह्रस्व-मूलक, छोटी मूली।
लघुयम (सं० पु०) तन्नामक एक स्मृति।
लघुराशि (सं० स्त्री०) एक छोटी राशि।
लघुलता (सं० स्त्री०) १ कारवेल्लक, करैलेकी बेल। २ अनन्ता, अनन्तमूल।
लघुलय (सं० क्ली०) लघु शीघ्रं लीयते इति ली अच्। १ उशीर, खस। २ पीला वाला या लामज नामकी घास।
लघुलोणिका (सं० स्त्री०) लोनीका साग।
लघुवासस् (सं० त्रि०) परिच्छन्न और सूक्ष्मवासपरि-धानकारी, साफ और पतला कपड़ा पहननेवाला।
लघुविक्रम (सं० पु०) द्रुतगमन, तेज जाना।
लघुविष्णु (सं० पु०) विष्णुकथित स्मृतिविशेष।
लघुवृत्ति (सं० त्रि०) नीच कार्यावलम्बी, छोटा काम करनेवाला।

लघुवेधिन् (सं० त्रि०) शीघ्र वेधकारी, जल्द वेधने या छेदनेवाला।

लघुशङ्का (सं० स्त्री०) मूत्रोत्सर्ग, पेशाब करना।

लघुशङ्ख (सं० पु०) क्षुद्रशङ्ख, घोंघा।

लघुशमी (सं० स्त्री०) शमीवृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ जो सेमरके पेड़के समान होता है।

लघुशान्तिपुराण—एक छोटा उपपुराण।

लघुशिखर (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल।

लघुशिवपुराण—एक उपपुराण।

लघुशीत (सं० पु०) लिसोड़ा।

लघुसत्त्व (सं० त्रि०) लघुप्रकृतिक, नीच स्वभावका।

लघुसदाफला (सं० स्त्री०) लघु सदा फलं यस्याः सा लघुसदा फला। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघुसमुत्थ (सं० पु०) वह राजा या राज्य जो लड़ाईके लिये जल्दी तैयार किया जा सके।

लघुसार (सं० त्रि०) लघुः अल्पः सारो यस्य। अल्पसारयुक्त, जिसमें थोड़ा सार हो।

लघुसुदर्शन (सं० क्ली०) आयुर्वेदके अनुसार एक प्रकारकी चूर्णौषध।

लघुस्थानता (सं० स्त्री०) चञ्चलता।

लघुहस्त (सं० पु०) लघुः क्षिप्रकारी हस्तो यस्य। शीघ्रवेधी, वह जो बहुत जल्दी जल्दी वाण चला सकता हो।

लघुहस्तता (सं० स्त्री०) लघुहस्तस्य भावः तल्-टाप्। लघुहस्तका भाव या धर्म, जल्दी जल्दी वाण फेंकना।

लघुहस्तवत् (सं० त्रि०) लघुहस्त-सदृश, तेज वाण फेंकनेके समान।

लघुहारित (सं० पु०) हारितऋषि-प्रवर्त्तित स्मृतिशास्त्रभेद।

लघुहृदय (सं० त्रि०) चंचलचित्त, अस्थिर चित्तवाला।

लघुहेमदुग्धा (सं० स्त्री०) लघुहेमदुग्धा। लघुदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघूकरण (सं० क्ली०) १ हलका करना, छटाना। २ गणितके अनुसार एक तरहका अंक।

लघूक्ति (सं० स्त्री०) लघुः उक्तिः। लघुकथन, कम बोलना।

लघूत्थानता (सं० त्रि०) १ जो सहजमें उठ सके। २ उत्तम स्वास्थ्यसम्पन्न, खूब तन्दुरुस्त।

लघूदुम्बरिका (सं० स्त्री०) छोटा गूलर।

लघ्वञ्जीर (सं० क्ली०) एक प्रकारका अंजीर।

लघ्वत्रि (सं० पु०) अत्रिऋषि-प्रवर्त्तित स्मृतिभेद।

लघ्वद्युडुम्बराह्वा (सं० स्त्री०) लघु उदुम्बरिका, छोटा गूलर।

लघ्वानन्द (सं० त्रि०) लघुः आनन्दो यस्य। १ अल्प आनन्दयुक्त, कम मजावाला। (पु०) २ अल्प आनन्द, कम मजा।

लघ्वानन्दरस (सं० पु०) १ रसौषधविशेष। बनानेका तरीका—पारा, गंधक, लोहा, विष, अभ्र प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अमलवेतके रसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान पानका रस है। इसके सेवनसे पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर और वातश्लेष्म आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० पाण्डुरोगाधि०)

२ वातव्याधि रोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अभ्र, विष, प्रत्येक एक भाग; मिर्च ८ भाग, सोहागा ४ भाग, भंगरैये और अनारके रसमें प्रत्येकको पांच बार भावना दे कर अनारके काढ़ेमें गोली बनावे। दोषके मुताबिक अनुपान ठीक करना होता है। इस औषधका इस्तेमाल करनेसे भ्रम और दाहके साथ वातव्याधि जाती रहती है।

(रसेन्द्रसारस० वातव्याधिरोगाधि०)

लघ्वार्यसिद्धान्त (सं० पु०) आर्यसिद्धान्तका संक्षिप्त ग्रन्थ।

लघ्वाशिन् (सं० त्रि०) लघु अल्पं लघुपाकं द्रव्यं वा अश्नाति अश-णिनि। लघुभोजी, कम खानेवाला।

लघ्वाहार (सं० त्रि०) लघुः आहारः यस्य। १ लघुभोजी, कम खानेवाला। (पु०) लघुभोजन, थोड़ा खाना।

लघ्वी (सं० स्त्री०) लघु ङीष्। १ लाघवयुक्ता, बहुत छोटी। २ बेर नामक फल। ३ स्पृक्का, असबरग। ४ हस्तिकोली।

लङ्क (सं० पु०) १ एक व्यक्तिका नाम। (पाणिनि ४।१।९९) २ लङ्का नामक द्वीप। (स्त्री०) ३ कटि, कमर।

लङ्कक—मङ्कके भाई।

लङ्कटङ्कटा (सं० स्त्री०) १ सुकेश राक्षसकी माता और विद्युत्केशकी कन्याका नाम । (रामायण ७।४।२३) २ सन्ध्याकी कन्याका नाम ।

लङ्कनाथ (सं० पु०) १ रावण । २ विभीषण ।

लङ्कनायक (सं० पु०) लङ्कनाथ देखो ।

लङ्का (सं० स्त्री०) रमन्तेऽस्यामिति रम् वाहुलकात् कः रस्य लत्वं (उण् ३।४०) टाप् । रक्षःपुरी, रावणका राज्य ।

ज्योतिःशास्त्रके मतसे यह लङ्का पृथिवीके वामभागमें अवस्थित है ।

"लङ्काकुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च ।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुःसौम्येऽथ याम्ये बड़वानलश्च ।"

(सिद्धान्तशिरोमणि)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि लङ्कापुरी तीस योजन विस्तीर्ण है। इस पुरीके प्राकार सोनेके बने हैं। दक्षिण-समुद्रके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस पर्वतके शिखर पर मध्यम समुद्रके समीप त्वष्टाने बहुत परिश्रम करके इन्द्रके लिये यह पुरी बनवाई। इस पुरीमें चिड़िया भी नहीं जा सकती हैं। राक्षस सुखसे इस पुरीमें वास करते थे। वे अमरावतीके सदृश इस लङ्का-नगरीको पा कर भयानक दुर्धर्ष हो गये थे।

"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा स्वर्णप्राकारतोरणाम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमाम्बुधिसन्निधौ ।
पतत्रिभिश्च दुष्प्रापा टङ्कच्छिन्ना चतुर्दिशम् ॥
शक्रार्थं मत्कृता पूर्वं प्रयत्नात् बहुवत्सरैः ।
वसन्तु तत्र दुर्द्धर्षाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः ॥
लङ्कादुर्गं समासाद्य शत्रूणां शत्रुसूदनाः ।
दुराधर्षा भविष्यन्ति राक्षसैर्बाहुभिर्वृताः ॥"

(अग्निपु० कपित्थदर्शन नामाध्याय)

रामायणमें लिखा है, कि दक्षिण सागरके किनारे त्रिकुट नामक एक पर्वत है। उस शिखर पर अमरावती-सदृश लङ्का नामक एक विशाल पुरी है। वह सुन्दर पुरी सोनेकी दीवार और खाईसे घिरी है। उसके सभी दरवाजे सोने और वैदूर्यमणिके हैं। सभी स्थान यन्त्रोंसे सुसज्जित हैं। राक्षसोंके रहनेके लिये विश्वकर्माने बड़े यत्नसे इस पुरीको बनाया है। राक्षस इस पुरीमें रह कर अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो गये थे। पीछे विष्णुके भयसे उन्होंने इस पुरीका परित्याग कर पातालमें आश्रय ग्रहण किया। कुछ दिन यह पुरी बिना राक्षसके रही।

पीछे कुवेर विश्रवाकी आज्ञासे लङ्कापुरीके अधीश्वर हो वहां रहने लगे। इसके बाद जब रावण तपोबलसे बल-वान् हो उठा और उसे यह मालूम हुआ, कि लङ्कापुरी हमारे पूर्वपितृपुरुषोंकी निवासभूमि है, तब उसने लङ्का छोड़ देनेके लिये कुवेरके पास एक दूत भेजा। कुवेर रावणके भयसे पुरीको छोड़ चले गये। रावण लङ्काका अधीश्वर हुआ। (रामायण उत्तरका०) रावण देखो।

रामचन्द्र कपिसैन्यको साथ ले सीताके उद्धारके लिये लङ्का गये थे। वह लङ्का कहां है, उसका वर्त्तमान नाम क्या है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसका प्राचीन और आधुनिक इतिहास क्या है, उसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं ;—

वर्त्तमान देशी और विदेशी भौगोलिकगण एक स्वरसे कहते हैं, कि अभी जिसको हम लोग सिंहल वा सिलोन कहते हैं उसीका प्राचीन नाम लङ्का है। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता, बहुत पहले होसे हम लोगोंके पुराणादि-शास्त्रकारगण लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप जानते थे। महाभारत और पुराणादिमें वह विशेषभावमें वर्णित है।

"सिंहलान् वर्व्वरान् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः ।"

(महाभारत, वन, ५१ अ० २२ श्लो०)

"लङ्का कालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा । २६
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ॥" २७

(मार्कण्डेयपुराण ५८ अ०)

फिर भागवत ५।१६।३०, बृहत्संहिता १४।१५ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लङ्का और सिंहलको दो स्वतन्त्र द्वीप बताया है।

रामायणमें दक्षिणदेशीय स्थानादिका उल्लेख करते समय लिखा है—मलय-पर्वतके बाद ताम्रपर्णी नदी है। यह नदी समुद्रमें गिरी है। इस नदीको पार करनेसे पाण्ड्यनगर मिलता है। उस नगरका पुरद्वार सोनेका बना है। इसके " समुद्र पड़ता है। समुद्र पार करनेसे

सागरके मध्य अगस्त्यनिवेशित महेन्द्र पर्वत देखनेमें आयेगा। उसके दूसरे किनारे सौ योजन विस्तृत अतिशय प्रभायुक्त एक द्वीप है। उसी द्वीपमें रावण रहता था। जैसे—

"* * मलयस्य महौजसः।
द्रक्ष्यथादित्यसङ्काशमगस्त्यमृषिसत्तमम्॥
ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।
सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपधारिणी॥
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते।
ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम्॥
युक्तं कपाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः।
ततः समुद्रमासाद्य सम्प्रधार्यार्थनिश्चयम्॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः।
चित्रसानुनगः श्रीमान् महेन्द्रः पर्वतोत्तमः॥
जातरूपमयः श्रीमान् अवगाढो महार्णवम्।
द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः॥
तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः।
ते हि देशास्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः॥"

(किष्किन्ध्याकाण्ड ४१ स० । १५-२५ श्लोक)

मलय पर्वतका वर्त्तमान नाम पश्चिमघाट है। इस पर्वतके जिस स्थानसे ताम्रपर्णी उत्पन्न हुई है उस स्थानको अभी भी अगस्त्यादि कहते हैं। (Caldwell's Dravidian Grammar, Intro, p. 48) ताम्रपर्णी नदी तिनवेल्ली प्रदेश होती हुई समुद्रसे मिली है। इस नदीके किनारे समुद्रके पास जो पाण्ड्यनगर स्थापित था उसको प्राचीन अरबी और ग्रीक भौगोलिक 'कोलके' और 'कोयल' तथा निकटस्थ सागरको 'कोलकिकस'* कहते थे। समुद्रको पार करनेसे महेन्द्र पर्वत मिलता है। यही सिंहलद्वीपका वर्त्तमान महिन्तल पर्वत होता है। जिस समयकी बात लिखी जाती है मालूम होता है, कि उस समय ताम्रपर्णी नदी-प्रवाहित भूमिखण्ड दक्षिणांशमें बहुत दूर तक विस्तृत था। इस नदीको पार करनेसे ही सिंहलद्वीप जाया जाता था, इस कारण सिंहलद्वीपको पौराणिककालमें ताम्रपर्णी कहते थे। ग्रीकके प्राचीन पुराविदोंका कहना है, कि पाण्ड्यनगर मुक्ता मिलनेके कारण प्रसिद्ध था। किन्तु महाभारतके मतसे लोग सिंहलद्वीपके निकटवर्त्ती समुद्रसे मुक्ता निकालते थे। राजसूययज्ञके समय सिंहलद्वीपके लोगोंने ही राजा युधिष्ठिरको मुक्ता उपहारमें भेजी थी।

"समुद्रसारं वैदूर्यं मुक्तासङ्घास्तथैव च।
शतशश्च कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन्॥"

(सभापर्व ५१।३६)

रामायणमें ही दूसरी जगह लिखा है, कि हनुमानादि वानरगण सीताकी तलाश करते करते दक्षिणदेश पार कर एक अज्ञातपूर्व पर्वतगह्वरमें पहुंचे थे। उस स्थानका नाम ऋक्षविल था। इसके चारों ओर दुर्गम पर्वतश्रेणी थी। यहां आ कर वानरगण क्लान्त और पथश्रान्त हो गये। उन्होंने पहले सुग्रीवसे सुना था, कि महेन्द्र पर्वतके बाद समुद्रके दूसरे किनारे रावणनिवास लङ्काद्वीप है; किन्तु इस स्थानका नाम उन सबोंने पहले कभी नहीं सुना था। बहुत खोज करते करते इस भयङ्कर गह्वरके मध्य एक योजन जानेके बाद उन्हें एक रमणीय स्थान मिला। वह स्थान नील, वैदूर्यमणि और पद्मिनीसे परिपूर्ण था। सोने और चांदीके विमान वहां शोभा दे रहे थे। सभी घर चांदीके बने थे, उनकी खिड़कियां सोनेकी थीं (इत्यादि)। उन सबोंने थोड़ी ही दूर पर एक तपस्विनीको देखा। उसी तपस्विनीसे उन्हें कुल बातें मालूम हुई,—

"मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम्॥
पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह।
स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने॥
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम्।
विधाय सर्वं बलवान् सर्वकामेश्वरस्तदा॥
उवास सुखितं कालं कञ्चिदस्मिन् महावने।
तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुङ्गवम्॥
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः।
इदञ्च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम्॥"

(किष्किन्ध्या ५१ स० १०-१५ श्लोक)

---

* "कोलकिकस समुद्रका वर्त्तमान नाम मनार-उपसागर है।" (Lassen)

महा तेजस्वी मायावी मयदानवने मायावलसे इस काञ्चनमय वनभूमिको बनाया है। वे पहले दानवोंके विश्वकर्मा थे। उन्होंने इस महावनमें हजार वर्ष तपस्या करके पितामह ब्रह्मासे वर पाया था। उस वरसे उन्हें औशनस रचित सभी प्रकारका शिल्पशास्त्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे सर्वशक्ति-सम्पन्न और स्वसृष्ट भोग्य विषयके भोक्ता हो कर कुछ समय सुखपूर्वक इस वनमें रहे। उस समय हेमा नाम्नी अप्सरामें वे आसक्त हो गये. इस कारण देवराज इन्द्रने वज्र द्वारा उन्हें मार डाला था। पीछे ब्रह्माने हेमाको यह अनुत्तम वन प्रदान किया।

महावंश नामक पालि-ग्रन्थके मतसे सिंहलद्वीपके एक विभागका नाम मय है। वर्त्तमान आदमश्रृङ्ग वा श्रीपादशैल और उसके निकटस्थ स्थानको बहुतेरे मय-राज्यके अन्तर्गत मानते हैं। (Tenent's Ceylon. vol 1. p, 337 n,) यद्यपि महावंशमें सिंहल, नागद्वीप और ताम्रपर्णको एक द्वीपका पर्याय बतलाया है, पर यह बौद्धमत बहुत कुछ असङ्गत-सा प्रतीत होता है। क्योंकि, पहले ही महावंशके प्रणेताने सिंहल नामको ले कर गोलमाल कर रखा है। उनका कहना है, कि पहले इस स्थानका नाम सिंहल नहीं था। वङ्ग-राजकुमार विजयसिंहने जब इस द्वीपको जीता, तब उन्हींके नामानुसार इस स्थानका नाम 'सिंहल' हुआ। किन्तु उस समयसे बहुत पहले यह स्थान जो सिंहल कहलाता था, वह महाभारतमें कई जगह लिखा है। इसके सिवा ताम्रपर्णी (सिंहल) और नागद्वीप, ये दोनों जो स्वतन्त्र हैं वह सभी पुराण पढ़नेसे मालूम होता है।

रामके कपि-सैन्यको ले कर समुद्र तट पर पहुंचनेके बाद नलने १०० योजनका एक सेतु बनवाया था। इससे जाना जाता है, कि समुद्र-तटसे लङ्काका किनारा १०० योजन अर्थात् ४०० कोस था।

कोई कोई कहते हैं, कि रामेश्वर-द्वीपसे सेतु आरम्भ हुआ था। कोई कोई वर्त्तमान आदमस् ब्रिजको ही नल-निर्मित सेतु बतलाते हैं। किन्तु यह आधुनिक लोगोंकी कल्पनामात्र है। रामेश्वर-द्वीपसे नल सेतु हो सकता है, पर वर्त्तमान आदम ब्रिजको हम लोग नलसेतु नहीं मान सकते। जिन सब सङ्कीर्ण स्थानोंको बहुतेरे उस नल-सेतुका प्रस्तरखण्ड मानते हैं, वे समुद्र स्रोतसे फेंके गये बालू या रेतीले पत्थर (Sand-stone) मात्र हैं। भूतत्त्वविदोंने परीक्षा कर देखा है, कि वे सब खण्ड नितान्त आधुनिक समयके हैं। (Ouden Nieuw Oost Indian, Ch XV. p 218.) इसके पास ही समुद्रके निर्मल जलमें बहुतों प्रवाल देखे जाते हैं। आगे चल कर प्रवाल उन सब खण्डोंमें मिल कर द्वीपाकारमें परिणत होंगे। बहुतेरोंका कहना है; कि पहले सिंहलद्वीप भारतवर्षके साथ मिला था। विशेषतः वर्त्तमान रामेश्वर-द्वीपसे सिंहलका किनारा १०० योजन नहीं है।

५वीं सदीमें पालि-ग्रन्थ महावंश पहले पहल रचा गया। उस महावंशके मतसे सिंहलका दूसरा नाम लङ्का है। किन्तु उस समय (७वीं सदीमें) प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग सिंहलद्वीप गये थे। उन्होंने सिंहलद्वीपको लङ्का नहीं कहा है। वे लिख गये हैं, कि, "सिंहलद्वीपके दक्षिण पूर्वमें एक पर्वत है। उसी पर्वतको लोग लङ्का कहते हैं। वहां यक्ष आदि वास करते हैं।" अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि यूएनचुवंगके समयमें भी सिंहलद्वीपको कोई भी लङ्काद्वीप नहीं कहता था। सिंहलद्वीपसे बहुत दूर दक्षिण-पूर्वमें लङ्का नामक एक सामान्य पर्वत रहने पर भी समस्त सिंहलको हम लोग रामायणोक्त लङ्का नहीं कह सकते। सिंहलमें लङ्का पहाड़ है यह सुन कर ही यदि कोई सिंहलको लङ्का कहे, तो काश्मीरके अन्तर्गत जो लङ्काद्वीप है उसे तो बहुतेरे बेधड़क रावणकी लङ्का कह सकते हैं। केवल एक नामका मेल पानेसे प्राचीन जनपदादिकी अवस्थिति नहीं जानी जा सकती। उस स्थानके भूतत्त्व, चतुःसीमा और उत्पन्न द्रव्यादिके साथ वर्त्तमान निर्दिष्ट स्थानादिके भूतत्त्वादिका सादृश्य होनेसे भले ही उस प्राचीन जनपदादिका बहुत कुछ पता चल सकता है।

लङ्काके सम्बन्धमें पहले ही कहा जा चुका है, कि हम लोगोंके प्राचीन शास्त्रीय मतानुसार लङ्का और सिंहल दो स्वतन्त्र द्वीप थे। अभी देखना चाहिये, कि किस स्थानको हम लोग लङ्का कह सकते हैं।

अग्निपुराणमें लिखा है—

"त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुधिसन्निधौ ।
पतत्रिभिश्च दुष्प्रापां टङ्कच्छिन्नां चतुर्दिशम् ॥
शक्रार्थं मत्कृता पूर्वं प्रयत्नाद्बहुवत्सरैः ।
वसन्तु तत्र दुर्द्धर्षाः सुखं राक्षसपुङ्गवाः ॥"

दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकुट नामक पर्वत है। उस पर्वतके मध्यशिखर पर समुद्रके समीप ३० योजन विस्तीर्ण स्वर्णप्राकार और तोरणादिसे परिशोभित लङ्कापुरी है। इस पुरोमें पक्षिगण भी नहीं घुस सकते। पूर्वकालमें इन्द्रके लिये सैकड़ों वर्ष कठिन परिश्रम करके हमने (विश्वकर्मा) इस पुरीको बनाया है। हे दुर्द्धर्ष-राक्षसगण उस स्थानमें सुखसे वास करो।

रामायणमें भी लिखा है,—

"दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ २२
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वराः ।
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसन्निभे ॥ २३
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्ने चतुर्द्दिशि ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ २४
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥" २५

(उत्तरकाण्ड ५म सर्ग)

हे राक्षसगण! दक्षिण-सागरके किनारे त्रिकुट नामक पर्वत है। उसके समान सुवेल नामका वहां एक और पर्वत है। उस पर्वतका मध्यम शिखर मेघके जैसा है। उसके चारों ओर बड़े बड़े चट्टान रहनेसे वहां पक्षी भी नहीं जा सकते। मैंने (विश्वकर्मा) उस शिखर पर इन्द्रके आदेशसे लङ्कापुरी बनाई है। वह पुरी तीस योजन लम्बी और एक सौ योजन चौड़ी है। चारों ओर सोनेकी दीवार दौड़ गई है। सभी दरवाजे सोनेके बने हैं।

फिर दूसरी जगह लिखा है।

"शिखरन्तु त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् ।
समन्तात् पुष्पसंच छन्नं महारजतसन्निभम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसन्निभैः ॥
सकाञ्चनेन शालेन राजतेन च शोभते ।
प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ॥"

(लङ्काकाण्ड ३९ सर्ग)

जिसका महोच्च शिखर आकाशसे छूता है, वह त्रिकूट पर्वत पुष्पसमाच्छन्न होनेके कारण सुवर्णमय-सा मालूम होता है। वह गिरि सौ योजन विस्तृत है और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है। उसीके शिखर पर रावणपालिता लङ्कापुरी है। यह लङ्कापुरी सौ योजन लम्बी और बीस योजन चौड़ी है। यह नगरी पाण्डुवर्ण मेघसदृश, सुवर्ण और रजत प्रासादयुक्त तथा विमानोंसे विभूषित है।

रामायणके मतसे लङ्कामें निम्नलिखित उद्भिद् उत्पन्न होते हैं।

"चम्पकाशोकवकुलशालतालसमाकुला ।
तमालपनसच्छन्ना नागमालासमावृता ॥
हिन्तालैरर्ज्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैः सुपुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥"

(लङ्काकाण्ड ३९ सर्ग)

चम्पक, अशोक, वकुल, शाल, तमाल, पनस, नागकेशर, हिन्ताल, अर्जुन, कदम्ब, सप्तपर्ण, पिलक, कर्णिकार और पाटल।

भास्कराचार्यने लिखा है,—

"लंकापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्
तदा दिनार्द्धं यमकोटिपुर्य्याम् ।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव ॥
यथोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे
प्राच्यां दिशि स्याद् यमकोटिरेव ।
ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती
लंकैव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम् ॥"

(गोलाध्याय ३।४४-४६)

जब लङ्कामें सूर्योदय होता है, तब (उसके नभे अंश

पूरबमें) यमकोटिमें मध्याह्न, सिद्धपुरमें सूर्यास्त और रोमकपत्तनमें दोपहर रात्रिकाल होता है। यमकोटि उज्जयिनीसे ठीक पूरब नब्बे अक्षांश दूरमें अवस्थित है। फिर लङ्का यमकोटिके ठीक पश्चिममें है, उज्जयिनी पश्चिममें नहीं है।

स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डके मतसे लङ्का देशमें ३६००० ग्राम हैं।

"षट्त्रिंशच्च सहस्राणि लङ्कादेशः प्रकीर्त्तितः।"
(कुमारिकाखण्ड ३७ अ०)

सूर्यसिद्धान्तके मतसे लङ्का "भारतवर्षका एक नगर है।" (सूर्यसिद्धान्त १२।३९)

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे—यवद्वीपके बाद मलयद्वीप है। इस मलय नामक द्वीपके अन्तर्गत पर्वतके ऊपर लङ्कापुरी है।

"तथाच मलयद्वीपं मेरुमेव सुसंस्कृतम्।
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरः कमलस्य च॥
अनेकयोजनाविष्टे चित्रसानुदरीगृहे।
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणे॥
निर्य्यूहवहुविचित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी।
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता॥
नित्यप्रमुदिता स्फीता लंका नाम महापुरी।
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम्॥
आवासो बलदृप्तानां तद्विद्याद्देवविद्विषाम्॥"
(ब्रह्माण्डपु० अनुषङ्गपाद ५३ अ०)

जनसाधारण लङ्काको स्वर्णलङ्का कहते हैं। रामायणमें एक जगह लिखा है,—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥" (कि० ४०।३०)

उक्त श्लोकसे भी जाना जाता है, कि यवद्वीपके पास ही सुवर्ण और रूप्यक द्वीप है। अतएव ब्रह्माण्डपुराणके साथ रामायण बहुत कुछ मिलता है।

सूर्यसिद्धान्तमें लङ्काको भारतवर्षका एक नगर कहा है, पूर्वकालमें भारतमहासागरीय द्वीप भी भारतवर्षमें ही गिना जाता था। ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंमें लिखा है—

"अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च।
शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च॥ १४
एवं षड़ेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः॥ ४१
भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः॥"
(ब्रह्माण्डपुराण ४८ अ०)

अतएव ब्रह्माण्डपुराणके मतानुसार मलयद्वीपके अन्तर्गत लङ्कापुरी कहनेसे पौराणिक मतमें वह भारतवर्ष भिन्न नहीं है। अतएव सूर्यसिद्धान्तके साथ मतभेद नहीं होता है।

यवद्वीपको अभी सब कोई 'जावा' कहते हैं। भारतमहासागरमें इस द्वीपकी अवस्थितिका विषय सभोंको मालूम है, यह कहना अनावश्यक है।

पर हां, यवद्वीपके पास ही लङ्का थी, इसका बहुत कुछ आभास पाया जाता है। फिर ब्रह्माण्डपुराणसे मालूम होता है, कि लङ्कापुरी मलयद्वीपके अन्तर्गत थी। अभी पूर्व-उपद्वीपके अन्तर्गत श्यामदेशके दक्षिणमें विस्तीर्ण जिस भूमिखण्डको मलय-प्रायद्वीप कहते हैं, वह यवद्वीपके पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी मलयजातिका प्राचीन इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे लोग सुमात्रा द्वीपस्थ मेनङ्कावु नामक स्थानमें पहले रहते थे। वह उन लोगोंका आदिवासस्थान था। उसे वे लोग मलय कहते थे*।

इस मलय जातिकी भाषा आज भी सुमात्रा आदि द्वीपोंसे लगायत अष्ट्रेलिया तथा पश्चिममें मादागास्कर तक प्रचलित है।† भारतमहासागरके द्वीपोंमें प्रायः एक भाषा प्रचलित रहनेसे यह सहजमें मालूम होता है, कि यह मलयवासी भिन्न देशीय विभिन्न जातियां पहले एक जातिकी थीं। कोई जाति असभ्यावस्थामें रह कर भी कालक्रमसे सभ्य और कोई सभ्य हो कर भी पुनः अवस्थाभेदसे नितान्त असभ्य हो गई है।

इन मलयभाषी जातियोंका रक्षः वा राक्षस जाति नामसे रामायणादिमें उल्लेख है। आज भी यवद्वीपके निकट-

---

* Crawfurd's Indian *Archipelago*, Vol 11, p. 371-2 ग्रीक-देशीय प्राचीन भौगोलिकगण इसी मलयको Chersonesus *Area* अर्थात् स्वर्णद्वीप कहते थे।

† English Cyclopaedia, Vol, XI, p, 656,

वर्त्ती फ्लोरिस द्वीपमें एक प्रकारकी कुरूप भीषण कृष्ण-वर्णकी असभ्य जाति वास करती है*। उन सभीको रक्त† कहते हैं। उन लोगोंका स्वभाव भी राक्षसके जैसा है। इसी द्वीपके मध्य लरान्तक नामक एक नगर है। यह नाम भी संस्कृत नरान्तक¶ शब्दका अपभ्रंश-सा मालूम होता है। इस द्वीपके पास ही आज भी राम, लक्ष्मण, नील और नल आदि रामायणोक्त वीरोंके नामानुसार कई छोटे छोटे द्वीप मौजूद हैं।

जो हो, ब्रह्माण्डपुराणके मतानुसार यह साबित होता है, कि मलयके मध्य ही लङ्कापुरी है। रामायणके मतसे इस समयका नाम सुवर्णद्वीप है। आज कल उसको सुमात्रा कहते हैं।

वर्त्तमान मानचित्रमें देखा जाता है, कि सुमात्रा द्वीपके उत्तर पूर्वमें पर्वतकी चोटी पर और समुद्रके समीप 'सोनीलंखा' नामक एक नगर है। वह नगर 'स्वर्णलङ्का' शब्दका अपभ्रंश-सा मालूम होता है। फिर इस द्वीपके अन्तवर्त्ती हीरक अन्तरीप (Diamond Pt.) के समीप एक बन्दरको 'लङ्का' कहते हैं। आज भी इस द्वीपके उत्तर-पश्चिम काञ्चनगिरि (Golden Mt) है।× इत्यादि प्रमाण द्वारा ज्ञात होता है, कि रामायणोक्त 'लङ्कापुरी' अथवा 'सुवर्णद्वीप' वर्त्तमान सुमात्राद्वीप समझा जाता था। सुमात्रा, यवद्वीप और फ्लोरिस द्वीपके दक्षिण-पश्चिममें प्रवाहित विस्तीर्ण समुद्रको आज भी यहांकी वुगी जातियां 'लङ्काई' सागर कहती हैं। इससे भी लङ्काका बहुत कुछ स्थान निर्णय हो सकता है। अनेक बार भूमिकम्प और आग्नेयगिरिके उत्पात आदि प्राकृतिक विप्लवसे सुमात्राके दक्षिणस्थ विस्तीर्ण भूभाग समुद्रगर्भशायी हो गया है। प्राचीन लङ्काराज्यका वही अंश शायद 'लङ्काई' सागर कहलाता हो।

यद्यपि इस सुमात्राद्वीपमें हिन्दू जाति आज भी नहीं रहती और हिन्दूनिर्मित मन्दिरादिका कुछ भी ध्वंसावशेष नहीं दिखाई देता और न इतिहासमें ही लिखा है फिर भी ऐसे कितने प्रमाण हैं जिनसे हम लोग मुक्तकण्ठसे स्वीकार कर सकते हैं, कि श्रीरामचन्द्रके आगमनके बादसे भारतवासी हिन्दूगण स्वर्णलाभकी आशासे यहां आया करते थे।† सुमात्राके मध्यस्थलसे प्राचीन हिन्दू राज्योंकी अनेक शिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं, उनमें भी हिन्दू प्राधान्यके यथेष्ट निदर्शन हैं।

इस द्वीपमें आज भी मङ्गल, इन्द्रगिरि, इन्द्रपुर इत्यादि हिन्दू-प्रदत्त नामक नगर और नदीविशेषमें मौजूद है। अभी मलयजाति जिस स्थानको अपनी आदि-भूमि कह कर गौरव करती है, पृथिवीके दूसरे दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा जहां बहुत कुछ सोना पाया जाता था आज भी उस स्वर्णमयी भूमिके निकट हो कर इन्द्रगिरि नामक नदी बहती है। उक्त नाम पढ़नेसे भी स्पष्ट मालूम होता है, कि एक समय हिन्दुओंने इस सुमात्रा द्वीपमें आ कर उपनिवेश बसाया था।

इस द्वीपमें अलकेश्वर नामक शिवलिङ्ग विद्यमान है। (सह्याद्रिखण्ड १६।१४)

---

* English Cyclopaedia (Geography), Vol 11 p, 1045 ; 111, 704,

† संस्कृत रक्षः शब्दका प्राकृत रूप।

¶ नरान्तक शब्दका अर्थ भी राक्षस है। रावणके एक सेनापतिका नाम भी नरान्तक था।

× ब्रह्माण्डपुराणमें इसीको मलयद्वीपके मध्य "काञ्चनपाद" कहा है "तथा काञ्चनपादस्य मलयस्यापरस्य हि।"

(ब्रह्माण्ड० ५३ अ०)

† श्रीरामचन्द्रके बादसे इस लंकाद्वीपमें बहुतेरे स्वर्णलाभकी आशासे आया जाया करते थे। स्कन्दपुराणके नागर-खण्डोक्त निम्नलिखित वचनोंसे वह बहुत कुछ प्रमाणित होता है—

"भविष्यन्ति कलौ काले दरिद्रा नृपमानवः।
तेऽत्र स्वर्णस्य लोभेन देवतादर्शनाय च॥ ४०
नित्यञ्चैवागमिष्यन्ति त्यक्त्वा रक्षःकृतं भयम्॥"

(नागरखण्ड ६४ अ०)

रामचन्द्रके स्वर्गारोहण करनेके बाद उनके पुत्र कुश लंका आये थे, यह भी नागरखण्डमें लिखा है। (नागरखण्ड १८८ अ० ६०-६२ श्लोक देखो)। इस सुमात्राकी बगलमें ही रूपत् नामक एक द्वीप है। वह रामायणोक्त रूप्यक द्वीप-सा प्रतीत होता है।

२ शाखा, डाली। ३ कुलटा, व्यभिचारिणी। ४ शाकिनी, चुड़ैल। ५ असवरग, स्पृक्का। ६ काला चना। ७ शिम्बी धान्य। पर्याय—करालत्रिपुटा, कान्तिका, रुक्षणात्मिका। गुण—रुचिकर, शीतल, पित्तनाशक, वातकारक और गुरु। (राजनि०)

लङ्कादाहिन् (सं० पु०) लङ्कां दहति तच्छीलः दह णिनि। हनुमान्।

लङ्काद्वीप—भारत-महासागरस्थित एक द्वीप। रामायण-के अनुसार राक्षसपति रावण यहां राजत्व करता था। लङ्का देखो।

लङ्काधिपति (सं० पु०) लङ्कायाः अधिपति। रावण।

लङ्कानाथ—लङ्काद्वीपका अधिपति, राक्षसराज रावण। अर्कचिकित्सा और निबन्धसंग्रह नामक दो वैद्यकग्रन्थ इन्होंने लिखे थे।

लङ्कापति (सं० पु०) १ रावण। २ विभीषण।

लङ्कापिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्कायिका (सं० स्त्री०) स्पृक्का, असवरग।

लङ्कारि (सं० पु०) रामचन्द्र।

लङ्कारिका (सं० स्त्री०) पिड़िशाक।

लङ्कावतार—समन्तभद्रकृत एक प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ।

लङ्काशिज—एक प्रकारका वृक्ष।

लङ्कास्थायिन् (सं० पु०) लङ्कावत् तिष्ठतीति स्था-णिनि। १ एक प्रकारका वृक्ष। (त्रि०) २ लङ्कावासी, लङ्कामें रहनेवाला।

लङ्किनी (सं० स्त्री०) रामायणके अनुसार एक राक्षसी जिसे हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश करते समय घूसोंसे मार डाला था।

लङ्केश (सं० पु०) लङ्काया ईशः पति। १ रावण। २ विभीषण।

लङ्केश्वर (सं० पु०) १ रावण। कालाग्निरुद्रोपनिषद्, प्राकृत कामधेनु और शिवस्तुति नामक तीन ग्रन्थ इनके बनाये हैं। लङ्कानाथ देखो। २ लङ्काद्वीपस्थ शिवलिङ्गभेद।

लङ्केश्वररस (सं० पु०) कुष्ठरोगाधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—पारा, सोना, तांबा, गन्धक, हरताल, शिलाजित, अमलवेत इन सबोंको एक साथ तीन दिन मर्द्दन कर दो दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान शहद और घी है। इसके अलावा त्रिफला, मंजीठ, वच, पाढर, मूला, कटकी और हल्दीका काढ़ा सेवन किया जा सकता है। इसका सेवन करनेसे कुष्ठरोगमें बड़ा लाभ पहुंचता है। (भैषज्यर० कुष्ठरोगाधि०)

लङ्केशवनारिकेतु (सं० पु०) अर्जुन।

लङ्कोदक (सं० पु०) स्पृक्का, असवरग।

लङ्कोपिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्कोयिका (सं० स्त्री०) लङ्कायिका देखो।

लङ्गती (सं० स्त्री०) घोड़ेकी एक प्रकारकी लगाम।

लङ्ग (सं० पु०) लङ्गतीति लङ्ग-गतौ अच्। १ सङ्ग, साथ। २ पिङ्ग, उपपति।

लङ्गक (सं० पु०) उपपति, स्त्रीका यार।

लङ्गतराई—पहाड़ो त्रिपुराराज्यके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। इसका प्रधान शृङ्ग फेङ्गपुई १५८१ और सिमवासिया १५४४ फुट ऊंचा है। लक्वाइ देखो।

लङ्गदत्त—एक प्राचीन कवि।

लङ्गरीन्—आसाम प्रदेशके खासिया पर्वतके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यू-चोर नामक एक सरदार यहांके अधिकारी हैं। यहां चूनेका कारबार जोरों चलता है। उसीका शुल्क यहांके अधिकारीका राजस्व है। धान, चना, लालमिर्च और हल्दी यहांकी प्रधान उपज है। यहां कोयलेकी भी खान है।

लङ्गल (सं० क्ली०) १ लाङ्गल, हल। २ लागल नामक जनपद।

लङ्गाई—आसामप्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक नदी। यह आसामकी सीमाके बाहरसे निकल कर पहले उत्तर और पीछे उत्तर-पूरब बहती हुई त्रिपुरा और लुसाई-शैलके बीच हो कर इस जिलेमें आ मिली है।

लङ्गिम (सं० त्रि०) संयोगके उपयुक्त।

लङ्गिमय (सं० त्रि०) लङ्गिम देखो।

लङ्गूल (सं० क्ली०) लाङ्गूल, पूंछ।

लङ्गूलिया—दक्षिण-भारतके मध्यप्रदेश विभागमें प्रवाहित एक नदी। इसे संस्कृतमें लङ्गल और तेलगू भाषामें नागुल कहते हैं। यह गोण्डवाना पर्वतके कालाण्डी नामक स्थानके समीपसे निकल कर तीन पहाड़ी जल

धारामें हो गई है। अनन्तर दक्षिण-पूरबको ओर जयपुर राज्यके बीच बहती हुई मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विशाख-पत्तन और गञ्जाम जिलेके भोतर हो कर चिकाकोलके दक्षिण समुद्रमें आ गिरी है। यहां नदी पर एक सुन्दर पुल है जिस हो कर ग्रेट ट्रांक रोड चली गई है। १८७६ ई०के तूफानसे पुल कुछ टूट फूट गया है। इस नदीके किनारे शिंगापुर, विरद, रायगड़ (रायगढ़), पार्वतीपुर, पालकोण्डा और चिकाकोल नगर अवस्थित हैं। सालुर और मक्कुवा नामक दो शाखा इस नदीका कलेवर पुष्ट करती है।

लङ्गूर—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २९° ५५′ उ० तथा देशा० ७८° ४०′ पू०के बीच पड़ता है। अभी यह भग्नावस्थामें पड़ा है। समुद्र-की तहसे इसकी ऊंचाई ६४०१ फुट है। यहां जलसर-वरोहकी सुविधा न रहनेसे यह दुर्ग छोड़ दिया गया है।

लङ्घक (सं० त्रि०) १ अतिक्रमणकारी, लांघनेवाला। २ नियम भङ्गकारी, कायदा तोड़नेवाला। ३ सीमा वहि-र्गामी, हदके वाहर जानेवाला।

लङ्घन (स० क्ली०) लङ्घ-ल्युट्। १ उपवास, अनाहार, फाका।

"ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोक श्रमोद्भवात्॥"
(चक्रपाणि ज्वराधि०)

नवज्वरमें पहले उपवास करना होता है। इससे वात, पित्त, कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी लघुता, ज्वरका उपशम तथा भोजनकी इच्छा होती है। वातज ज्वरमें; भय, क्रोध, शोक, काम और परिश्रमजनित ज्वरमें धातुक्षयजनित ज्वरमें तथा राजयक्ष्माजनित ज्वरमें लङ्घन उचित नहीं है। जो वायु प्रधान, क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, मुख-शोषयुक्त, भ्रमयुक्त तथा वालक, वृद्ध, गर्भिणी वा दुर्वल हैं, उनके लिये भी लङ्घन कर्त्तव्य नहीं।

लङ्घनविहितज्वरमें भी अधिक लङ्घन द्वारा दुर्वल होना अच्छा नहीं। विशेषतः अधिक लङ्घन द्वारा अस्थिसन्धिमें वा सारे शरीरमें वेदना, काश, मुखशोष, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रिय-को दुर्वलता, मनकी चञ्चलता वा भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह, अग्निमान्द्य आदि नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। उपयुक्त परिमाणमें यथारीति उपवास करनेसे ही मल, मूल और वायुका निःसरण, शरीरकी लघुता, धर्म्म निर्गम, मुख और कण्ठपरिष्कार, तन्द्रा और क्लान्तिका नाश, आहारमें रुचि, एक ही समय क्षुधातृष्णाका उदय, अन्तःकरणकी प्रसन्नता तथा विशुद्ध उद्गार आदि उपकार दिखाई देते हैं। (सुश्रुत)

२ प्लवन, लांघनेकी क्रिया। शास्त्रमें लिखा है, कि अग्निका लङ्घन नहीं करना चाहिये।

"न चाग्निं लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्।
न चैनं पादतं कुर्यात् मुखेन न धमेद्बुधः॥"
(कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

३ अतिक्रम, पार करनेकी क्रिया। ४ घोड़ेकी एक चाल जिसमें वह वहुत तेज चलता है। ५ लाघवकर विधि, वह उपाय जिससे किसी काममें लाघव या सुभीता हो। ६ लघुभोजन, अल्प आहार। स्त्रियां टाप्। ७ अवमानना, उपेक्षा, लापरवाही।

"अन्यस्यापि स्ववंशस्य लङ्घना क्रियते हि या।
तां नालं क्षत्रियं सोढुं किं पुनः पितृमारणम्॥"
(मार्कण्डेयपु० १३४।३३)

लङ्घनक (सं० त्रि०) १ लांघनेवाला, जिसके द्वारा लांघा जाय। (पु०) २ सेतु, पुल।

लङ्घना (सं० स्त्री०) अवमानना, उपेक्षा, लापरवाही।

लङ्घनीय (सं० त्रि०) लङ्घ-अनीयर्। १ लांघनेके योग्य। २ उलंघन करनेके योग्य।

लङ्घनीयता (सं० स्त्री०) लङ्घनीय-तल्-टाप्। लांघनेका भाव या धर्म।

लङ्घित (सं० त्रि०) लङ्घ-क्त। कृतलङ्घन, जो लांघ गया हो

लङ्घ्य (सं० त्रि०) लङ्घ-यत्। लङ्घनीय, लांघनेके योग्य।

लच (हिं० पु०) लचकनेकी क्रिया, लचक।

लचक (हिं० स्त्री०) १ लचकनेकी क्रिया या भाव, लचन। २ वह गुण जिसके रहनेसे कोई वस्तु दवती या झुकती हो। ३ एक प्रकारकी नाव। यह ६०-७० हाथ लंबी होती है और मकसूदाबादकी तरफ बनती है। इसे बहुत-से लोग मिल कर खेते हैं।

लचकना (हिं० क्रि०) १ किसी लंबे पदार्थका बोझ पड़ने या दबने आदिके कारण बीचसे झुकना, लचना। २ स्त्रियोंका कोमलता या नखरे आदिके कारण चलनेके समय रह रह कर झुकना। ३ स्त्रियोंकी कमरका कोमलता या नखरे आदिके कारण झुकना।

लचका (हिं० पु०) एक प्रकारका गोटा।

लचकाना (हिं० क्रि०) किसी पदार्थको लचनेमें प्रवृत्त करना, झुकाना।

लचकीला (हिं० वि०) जो सहजमें लच या दब जाय, लचकनेयोग्य।

लचन (हिं० स्त्री०) लचक देखो।

लचनि (हिं० स्त्री०) लचक देखो।

लचलचा (हिं० वि०) जो लचक जाय, लचीला।

लचलचापन (हिं० पु०) लचीले होनेका भाव, लचीलापन।

लचाकेदार (हिं० वि०) मजेदार, बढ़िया।

लचाना (हिं० क्रि०) लचकाना, झुकाना।

लचारी (हिं० स्त्री०) १ लाचारी देखो। २ वह कर जो कोई व्यक्ति अपनेसे बड़ेको देता है, भेंट, नजर। ३ एक प्रकारका गीत। ४ एक प्रकारका आमका अचार जो खाली नमकसे बनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता। इसे अचारी भी कहते हैं।

लच्छ (हिं० पु०) १ व्याज, बहाना। २ वह वस्तु या स्थान जिस पर शस्त्र चलाना हो, निशाना। ३ सौ हजारकी संख्या, लाख। (स्त्री०) ४ लक्ष्मी देखो।

लच्छण (हिं० पु०) स्वभाव।

लच्छना (हिं० स्त्री०) लक्षण देखो।

लच्छमण (हिं० वि०) धनवान, अमीर।

लच्छमी (हिं० स्त्री०) लक्ष्मी देखो।

लच्छा (हिं० पु०) १ कुछ विशेष प्रकारसे लगाये हुए बहुतसे तारों या डोरों आदिका समूह, गुच्छे या झुप्पे आदिके रूपमें लगाये हुए तार। २ मैदेकी एक प्रकारकी मिठाई। यह प्रायः पतले लंबे सूतकी तरह और देखनेमें उलझी हुई डोरके समान होती है। ३ एक प्रकारका घटिया केसर जो नीचल या निकृष्ट श्रेणीके केसरमें थोड़ा-सा बढ़िया केसर मिला कर बनाया जाता है। ४ किसी चीजके सूतकी तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े। ५ इस आकारकी किसी तरह बनाई हुई कोई चीज। ६ एक प्रकारका गहना जो तारोंकी जंजीरोंका बना होता है। यह हाथों और पैरोंमें पहननेका भी होता है।

लच्छा साख (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी संकर रागिणी।

लच्छि (हिं० पु०) लाखकी संख्या।

लच्छिनाथ (हिं० पु०) लक्ष्मीपति, विष्णु।

लच्छी (हिं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा। (स्त्री०) २ लक्ष्मी देखो। ३ सूत, रेशम, ऊन, कलाबत्तू इत्यादिकी लपेटी हुई गुच्छी, अट्टी।

लच्छेदार (फा० वि०) १ जिसमें लच्छे पड़े हों, लच्छोंवाला। २ जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुननेमें मन लगता हो, मजेदार या श्रुतिमधुर।

लछन (हिं० पु०) रामके छोटे भाई, लक्ष्मण।

लक्ष्मण देखो।

लछमन (हिं० पु०) १ लक्ष्मण देखो। (स्त्री०) २ लक्ष्मणा देखो।

लछमनगढ़—राजपुतानेके जयपुर राज्यके शेखावाटी जिलान्तर्गत एक नगर। शीकर-सरदार राव राजा लक्ष्मणसिंहने १८०६ ई०में यह नगर बसाया।

लक्ष्मणगढ़ देखो।

लछमनजी—छन्दभाषाके एक व्याकरणके प्रणेता।

लछमन-झूला (हिं० पु०) १ बदरीनारायणके मार्गमें एक स्थान। यहां पहले पुरानी चालका रस्सोंका एक लटकौवा पुल था जिसे झूला कहते थे। २ रस्सों या तारों आदिसे बना हुआ वह पुल जो बीचमें झूलेकी तरह नीचे लटकता हो। ३ एक प्रकारकी लता या बेल।

लछमना (हिं० स्त्री०) लक्ष्मणा देखो।

लछमी (हिं० स्त्री०) लक्ष्मी देखो।

लछमी चांद—कुमायूंके चान्द्रवंशीय एक राजा।

लछमीनारायण—बनारसके रहनेवाले एक ऐतिहासिक। इन्होंने गुल-ए-राणा नामक एक तजकिराकी रचना की।

लछमीराम—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने अपनी कवित्वशक्तिके लिये सुकवी उपाधि पाई थी।

लछमीराय—बरदाराज्य मलहाररावकी महिषी। १८७४

ई०में इनके एक पुत्र हुआ जो राज्यका उत्तराधिकारी समझा गया।

लजकारिका (सं० स्त्री०) लज्जं लज्जां करोतीव कृ-ण्वुल् टाप् अत इत्वं। लज्जालुका पौधा।

लजना (हिं० क्रि०) लजाना, शरमाना।

लजर—एक पहाड़ी जाति।

लजवर्द—वदाकसानके अन्तर्गत एक नगर।

लजवाना (हिं० क्रि०) दूसरेको लज्जित कराना।

लजाधुर (हिं० पु०) लजालू नामका पौधा।

लजाना (हिं० क्रि०) १ अपने किसी बुरे या भद्दे व्यवहारका ध्यान करके वृत्तियोंके संकोचका अनुभव होना। २ लज्जित करना।

लजालू (हिं० पु०) लज्जालु देखो।

लज़ीज़ (अ० वि०) स्वादिष्ट, लज्ज़तदार।

लजीला (हिं० वि०) जिसमें लज्जा हो, लज्जायुक्त।

लजौहाँ (हिं० वि०) जिसमें लज्जा हो या जिससे लज्जा सूचित होती हो, लजीला।

लज्जका (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, वनकपास। २ एक ब्राह्मणकी श्रेणी। (सह्या० २।५।१५)

लज्ज़त (अ० स्त्री०) स्वाद, जायका।

लज्ज़तदार (फा० वि०) स्वादिष्ट, मजेदार।

लज्जरी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लजालू लता।

लज्जा (सं० स्त्री०) लज्जनमिति लस्ज व्रीड़ने (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ-टाप्। १ अन्तःकरणवृत्तिविशेष, अन्तःकरणकी वह अवस्था जिसमें स्वभावतः अथवा अपने किसी भद्दे या बुरे आचरणकी भावनाके कारण दूसरोंके सामने वृत्तियां संकुचित हो जाती हैं, चेष्टा मंद पड़ जाती है, मुंहसे शब्द नहीं निकलता, सिर नीचा हो जाता है और सामने ताका नहीं जाता, लाज, शर्म, हया। पर्याय—मन्दाक्ष, ह्री, त्रपा, व्रीड़ा, अपत्रपा, मन्दास्य, लज्या, व्रीड़, व्रीडन। २ मान-मर्यादा, इज्जत। ३ लज्जालु, लजालू। ४ वराहक्रान्ता, वाराही।

लज्जाकर (सं० त्रि०) लज्जाजनक, लाज पैदा करनेवाला।

लज्जान्वित (सं० त्रि०) लज्जया अन्वितः। लज्जायुक्त, लाजवाला।

लज्जाप्रद (सं० त्रि०) लज्जाजनक, जिससे लज्जा उत्पन्न हो।

लज्जाप्राया (सं० स्त्री०) केशवके अनुसार मुग्धा नायिकाके चार भेदोंमेंसे एक।

लज्जालु (सं० पु० स्त्री०) लज्जेवास्य अस्तीत्यर्थे आलुः। स्वनामख्यात क्षुपविशेष। लज्जालु नामका पौधा। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। जैसे, बङ्गालमें—लाजक, लाजुकीलता, लज्जावती; कुमायुन्—लाजवंती; पञ्जाब—लाजवन्ती; पस्तु—भान्द, मराठी—लजाल्, लाजरी; गुर्जर—लजालु—ऋषामुनि, तामिल—तोतलवड़ि; तेलगू—पेङ्गनिद्राकण्ठी, अयोपत्ति; कणाड़ी मृदुगुडबरे; ब्रह्म—तकयुम्; संस्कृत—वराहक्रान्ता, लज्जालु; पर्याय—रक्तपादी, शमीपत्रा, स्पृक्का, खदिरपत्रिका, सङ्कोचिनी, समङ्गा, नमस्कारी, प्रसारिणी, सप्तपर्णी, खदिरी, गण्डमालिका, लज्जा, लज्जिरी, स्पर्शलज्जा, अस्त्ररोधिनी, रक्तमूला, ताम्रमूला, स्वगुप्ता, अञ्जलिकारिका, महाभीता, वशिनी, महौषधि।

यह हाथ डेढ़ हाथ ऊंचा एक कांटेदार छोटा पौधा होता है। इसकी पत्तियां छूनेसे सुकड़ कर बंद हो जाती है और फिर थोड़ी देरमें धीरे धीरे फैलती हैं। इसके डंठलका रंग लाल होता है और महीन महीन पत्तियां शमी या बबूलकी पत्तियोंके समान एक सींकेके दोनों ओरकी पंक्तिमें होती हैं। हाथ लगते ही दोनों ओरकी पत्तियां संकुचित हो कर परस्पर मिल जाती हैं, इसीसे इसका नाम लज्जालु पड़ा। फूल गुलाबी रंगकी गोल गोल घुंडियोंकी तरहके होते हैं। फूलके झड़ जाने पर छोटे छोटे चिपटे बीज पड़ते हैं। भारतके गरम भागोंमें यह सर्वत्र होता है। बंगालके दक्षिण भागमें कहीं कहीं बहुत दूर तक रास्तेके दोनों ओर यह लगा मिलता है।

इसका गुण—कटु, शीतल, पित्तातिसार, शोफ, दाह, श्रम, श्वास, व्रण, कुष्ठ और कफनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे—शीतल, तिक्त, कषाय, कफपित्तनाशक, रक्तपित्त, अतीसार और योनिरोगनाशक।

एन्स्लिका कहना है, कि मलबार उपकूलवासी पथरीकी वेदनामें इसकी जड़का काढ़ा पीते हैं। करमण्डल उपकूलवासी वाहती जाति अर्श और भगन्दर रोगमें इसकी जड़का काढ़ा पीती और दूधके साथ दो वा दो से अधिक पत्तोंका चूर्ण सेवन करती हैं। भगन्दर

क्षतके ऊपर इसका रस देनेसे बहुत उपकार होता है। पञ्जावप्रदेशमें भी पूर्वोक्तरूपसे लज्जावतीके मूल और पत्रका व्यवहार होता है। अज्ञ कुसंस्कारापन्न मनुष्य निर्दिष्ट ऋतुमें पत्ते को तोड़ते और जड़को उखाड़ते हैं। इस समय शुभ मुहूर्त्तमें वे एक उत्सव मनाते हैं। उस मासके प्रथम सप्ताहमें जो मूल उखाड़ा जाता है, वह पित्तज पीड़ा और ज्वरादिमें बहुत उपकारी है। द्वितीय सप्ताहमें उखाडा हुआ पत्र मूलादि कामला, अर्श आदि रोगोंमें काम आता है। तृतीय सप्ताहके मूलादि कुष्ठ, वसन्त और Scab रोगमें अति फलदायक है। कोङ्कण जिलेमें इसको पत्तियोंको पीस कर कोरण्ड (पोत) पर लगाते हैं। इसके रसमें उतना ही घोड़े का मूत्र मिला कर जो अञ्जन बनाया जाता है वह चक्षुपक्ष्मके त्वग् रोगमें (Cornea) बहुत लाभदायक है। चमड़े पर लगानेसे पहले जलन देती, पीछे लाल हो कर वह स्थान सूज आता है। कुछ समय बाद कुल वेदना जाती रहती है।

रासायनिक परीक्षा द्वारा जाना गया है, कि लज्जालु लताकी पतली पतली जड़में सैकड़े पीछे १० भाग tannin रहता है। हीराकसीस (Salt of iron) के साथ मिलानेसे अच्छी काली बनती है।

२ लज्जालुभेद। दुग्धिका शब्द देखो। (त्रि०) लज्जा अस्त्यर्थे आलु। ३ लज्जाशील, लजीला।

लज्जावत् (सं० त्रि०) लज्जा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लज्जायुक्त, शर्मीला।

लज्जावती (सं० त्रि० स्त्री०) लज्जाशील, शर्मीला।

लज्जावन्त (सं० त्रि०) १ लजावत् देखो। २ लज्जालूका पौधा, लाजवंती।

लज्जावान् (सं० त्रि०) लज्जाशील, शर्मदार।

लज्जाशील (सं० त्रि०) लज्जा एव शीलं यस्य। लज्जायुक्त, जो बात बातमें शरमाता हो।

लज्जाशून्य (सं० त्रि०) निर्लज्ज, जिसे लज्जा न हो, बेहाया।

लज्जाहीन (सं० त्रि०) लज्जाशून्य, बेहाया।

लज्जिका (सं० स्त्री०) लज्जालूका पौधा।

लज्जित (सं० त्रि०) लज्जाके वशीभूत, शर्ममें पड़ा हुआ।

लज्जितभाव—ग्रहोंके छः भावोंमेंसे एक भाव। फलित ज्योतिषके अनुसार कोई ग्रह यदि लोनसे पञ्चम गृहमें राहुके साथ मिला रहे अथवा रवि या शनि किंवा मङ्गलके साथ मिल कर लग्नादि द्वादश स्थानके बीच किसी स्थानमें रहे, तो वह ग्रह लज्जित कहलाता है। मनुष्यके पुत्र (पञ्चम) स्थानमें लज्जित ग्रह रहनेसे उसके सब सन्तान मर जाते हैं, सिर्फ एक जीवित रहता है।

लज्जिरी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लजालू।

लज्या (सं० स्त्री०) लज्जा, शर्म।

लञ्चा (सं० स्त्री०) १ उपहार, उपढौकन। २ उत्कोच, घूस।

लञ्छन (सं० क्ली०) शस्यभेद।

लञ्ज (सं० पु०) लञ्जयति शोभते इति लञ्ज-अच्। १ पद, पांव। २ कच्छ, काछ। ३ पुच्छ, पूंछ। ४ अनिद्रा। ५ लाम्पट्य, लंपटना। ६ स्रोत, सोता। (स्त्री०) ७ लक्ष्मी।

लञ्जिका (सं० स्त्री०) लञ्जयति शोभते इति लञ्ज-ण्वुल्, टाप् अत इत्वं। गणिका, वेश्या, रंडी।

लटंग (हिं० पु०) एक प्रकारका बांस जो बरमामें होता है।

लट (सं० पु०) लटति यथेच्छाया वदति लट्-अच्। १ प्रमादवचन, बेखबर हो कर कहना। २ दोष। ३ पागल। ४ निर्बोध। ५ चौर, चोर।

लट (हिं० स्त्री०) १ सिरके बालोंका समूह जो नीचे तक लटके, बालोंका गिरा हुआ गुच्छा। २ एकमें उलझे हुए बालोंका गुच्छा, परस्पर चिमटे हुए बाल। ३ एक प्रकारके सूतके-से महीन कीड़े जो मनुष्यकी आंतोंमें पड़ जाते हैं और मलके साथ निकलते हैं। इसे चनूना भी कहते हैं। ४ एक प्रकारका बेंत। यह आसामकी ओर बहुत होता है। ५ लपट, लौ, अग्निशिखा।

लटक (सं० पु०) लटतीति लट् (क्वुनशिल्पिसंज्ञयोरपूर्व्वस्यापि। उण् २।३२) इति क्वुन्। दुर्जन, नीच, दुष्ट।

लटक (हिं० स्त्री०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नीचेकी ओर गिरता सा रहनेका भाव। २ झुकाव। ३ अंगोंकी मनोहर गति या चेष्टा, लुभावनी चाल। ४ ढालू जमीन, ढाल।

लटकन (हिं० पु०) १ लटकनेकी क्रिया या भाव, नीचेके ओर गिरता सो रहनेका भाव। २ मनोहर अंग, भंगी'

लुभावनी चाल। ३ कलगी या सिरपेंचमें लगे हुए रत्नोंका गुच्छा। यह नीचेकी ओर झुका हुआ हिलता रहता है। ४ मलखम्भकी एक कसरत। इसमें दोनों पैरोंके अंगुठोंमें बेंत फसा कर पिंडलीको लपेटते हैं और पिंडलीके ही बल पर अगूठोंसे बेंतको ऊपर खींचते हुए जंघोंके बल ऊपरका सारा धड़ नीचेको लटका देते हैं। ५ किसी वस्तुमें लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो, लटकनेवाली चीज। ६ नाकमें पहननेका एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है। यह या तो नाकके दोनों छेदोंके बीचमें पहना जाता है अथवा नथमें लगा रहता है। ७ एक पेड़ जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं और जिसके बीजोंका पानीमें मीसनेसे गेरुआ रंग निकलता हैं। इस रंगसे कपड़े रंगते हैं।

लटकना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे लग या टिक कर नीचेकी ओर अधरमें कुछ दूर तक फैला रहना, ऊपरसे लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो, झूलना। २ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग नीचेकी ओर अधरमें हो, टंगना। ३ ऊंचे आधार पर टिकी हुई वस्तुका कुछ दूर नीचे तक आ कर इधरसे उधर हिलना डोलना, झूलना। ४ लचकना, बलखाना। ५ किसी खड़ी वस्तुका किसी ओर झुकना, नम्र होना। ६ किसी कामका पूरा बिना हुए पड़ा रहना, देर होना। ७ कोई काम पूरा न होने या किसी बातका निर्णय न होनेके कारण दुबधामें पड़ा रहना, झूलना।

लटकवाना (हिं० क्रि०) लटकानेका काम दूसरेसे कराना।

लटका (हिं० पु०) १ गति, चाल। २ कोई शब्द या वाक्य जिसके बार बार प्रयोगका किसीको अभ्यास पड़ गया हो, सखुनतकिया। ३ बनावटी चेष्टा, हाव भाव। ४ मन्त्रतन्त्रकी छोटी युक्ति, टोटका। ५ बातचीत करनेमें स्वरका एक विशेष प्रकारसे चढ़ाव उतार, बातचीतका बनावटी ढंग। ६ एक प्रकारका चलता गाना। ७ लिङ्ग। ८ किसी रोग या बाधाकी शान्तिकी छोटी युक्ति, छोटा नुसखा।

लटकाना (हिं० क्रि०) १ किसी ऊंचे स्थानसे एक छोर लगा या टिका कर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपरका छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचेका निराधार हो। २ किसीका कोई काम पूरा न करके उसे दुबधामें डालना, आसरेमें रखना। ३ किसी ऊंचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोरके अतिरिक्त और सब भाग अधरमें हों, एक छोर या अंश ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु जमीन पर न गिरे। ४ किसी कामको पूरा न करके डाल रखना, देर करना। ५ किसी खड़ी वस्तुको किसी ओर झुकाना, लचकाना या नम्र करना।

लटकीला (हिं० वि०) झूमता हुआ, बल खाता हुआ, लचकदार।

लटकू (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जिसकी छालको उबालनेसे रंग निकलता है।

लटकौवा (हिं० वि०) लटकनेवाला, जो लटकता हो।

लटजीरा (हिं० पु०) १ अपामार्ग, चिचड़ा। २ एक प्रकारका जड़हन धान। यह अगहनमें तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना (हिं० क्रि० १ थक थक कर गिर जाना, लड़खड़ाना। २ ढीला पड़ना, शक्ति और उत्साहसे रहित होना। ३ श्रमरोग आदिसे शिथिल होना, दुबला और कमजोर होना। ४ व्याकुल होना, विकल होना। ५ श्रमसे निकम्मा हो जाना, अधिक काम करनेके योग्य न रह जाना, थक जाना। ६ ललचाना, लुभाना। ७ लिप्त होना, अनुरक्त होना।

लटपट (हिं० वि०) लटपटा देखो।

लटपट (हिं० वि०) १ गिरता पड़ता, लड़खड़ाता हुआ। २ जो स्पष्ट या ठीक क्रमसे न निकले, टूटा फूटा। ३ थक कर गिरा हुआ, बेबस। ४ जो ठीक बंधा न रहनेके कारण ढीला हो कर नीचेकी ओर सरक आया हो, ढीला-ढाला। ५ जो ठीक क्रमसे न हो, अटसट। ६ जो लेईकी तरह गाढ़ा हो, लुटपुटा। ७ गिंजा हुआ, जिसमें शिकन या सिलवट पड़ी हो।

लटपटान (हिं० स्त्री०) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव, लड़खड़ाहट। २ मनोहर गति या चाल, लचक।

लटपटाना (हिं० क्रि०) १ सीधे ढंगसे न चल कर निर्बलता या मद आदिके कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना, लड़खड़ाना। २ ठीक तरहसे न चलना, चूक जाना। ३ स्थिर न रहना, डिगना। ४ लुभाना, मोहित होना। ५ लीन होना, अनुरक्त होना।

लटपर्ण (सं० क्ली०) लटमुग्रं पर्णमस्य। गुड़त्वक्।

लटा (हिं० वि०) १ लोलुप, लंपट। २ बुरा, खराब। ३ तुच्छ, हीन। ४ लुच्चा, नीच। ५ गिरा हुआ, पतित।

लटापटी (हिं० स्त्री०) १ लटपटानेकी क्रिया या भाव। २ लड़ाई, झगड़ा, भिड़ंत।

लटिया (हिं० स्त्री०) सूत आदिका लच्छा, आंटी।

लटिया सन (हिं० पु०) पटसन।

लटी (हिं० स्त्री०) १ बुरी बात। २ झूठी बात, गप। ३ वेश्या, रंडी। ४ साधुनी, भक्तिन।

लटुआ (हिं० पु०) लट्टू देखो।

लटुक (हिं० पु०) लकुट नामका पेड़ और उसका फल। लटकु देखो।

लटुरी (हिं० पु०) लटूरी देखो।

लटू (हिं० स्त्री) लट्टू देखो।

लटूरी (हिं० स्त्री०) सिरके बालोंका लटकता हुआ गुच्छा, केश।

लटोरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी पत्तियां गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं। वसंतमें इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं। यह भारतवर्षमें प्रायः सब जगह होता है। फलोंमें बहुत-सा लसदार गूदा होता है। फल औषधके काममें आता है और सूखी खाँसी को ढीली करनेके लिये दिया जाता है। फारसीमें इसे 'सपिस्ताँ' कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिला कर इसका लऊक सपिस्ताँ नामक अवलेह बनाते हैं और खाँसीमें चाटनेके लिये देते हैं। संस्कृतमें भी इसे 'श्लेष्मान्तक' कहते हैं। २ एक पक्षी। इसकी गर्दन और मुंह काला, डैने नीलापन लिये हुए भूरे और दुम काली होती है। इसकी लम्बाई दश इञ्च होती। यह भारतमें स्थायी रूपसे रहता है और प्रायः मैदानोंमें ही पाया जाता है। यह तीनसे छः तक अंडे देते हैं। इसके कई भेद होते हैं।

लट्ट (सं० पु०) दुर्जन, दुष्ट आदमी।

लट्टनभट्ट—एक प्राचीन कवि।

लट्टू (हिं० पु०) गोले बट्टेके आकारका एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूतके द्वारा जमीन पर फेंक कर लड़के नचाते हैं। इसके बीचमें लोहेकी एक कील जड़ी होती है जिसे गूंज कहते हैं। इसमें डोरी लपेट कर ज़ोरसे फेंकते हैं जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

लट्टूदार पगड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पगड़ी। इसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा-सा भी निकला होता है। इसे लज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ (हिं० पु०) बड़ी लाठी, मोटा लंबा डंडा।

लट्ठबाज़ (हिं० वि०) लाठी लड़नेवाला, लठैत। २ बड़ी लाठी बांधनेवाला।

लट्ठबाज़ी (हिं० स्त्री०) लाठीकी लड़ाई या मार-पीट।

लट्ठमार (हिं० वि०) १ लट्ठ मारनेवाला। २ अप्रिय और कठोर, कड़या।

लट्ठा (हिं० पु०) १ लकड़ीका बहुत लम्बा टुकड़ा, शहतीर। २ खेत वा जमीन नापनेका बाँस या बल्ला जो ५॥ गजका होता है और नापके रूपमें चलता है। ३ घरकी छाजन या पाटनमें लगा हुआ लकड़ीका बल्ला, धरन। ४ लकड़ीका खंभा। ५ एक प्रकारका गाढ़ा मोटा कपड़ा, गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी (हिं० स्त्री०) जमीनकी साधारण नाप जो लट्ठेसे की जाय।

लट्व (सं० पु०) लटतीति लट (अश्रुप्रुषिलटीति। उण् १।१५१) इति क्वन्। १ एक जाति, नटुवा। २ एक प्रकारका राग। ३ तुरङ्गम, घोड़ा।

लट्वका (सं० स्त्री०) लट्वा।

लट्वा (सं० स्त्री०) लट्व-कन् टाप्। १ एक प्रकारका करञ्ज। २ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। ३ गौरा पक्षी। ४ कुसुम्भ, बालोंकी लट। ५ शिली, देहलीज। ६ तूलिका, चित्र बनानेकी कूंची। ७ द्यूत, कोड़ा। ८ चूर्ण कुन्तल, अलक, बालोंकी लट। ९ व्यभिचारिणी स्त्री। १० मीठी खानेकी चीज़।

लठ (हिं० पु०) लट्ठ देखो।

लठियल (हिं० वि०) लाठी बांधनेवाला, लठैत।

लठैत (हिं० वि०) लाठी चलानेवाला, लट्ठबाज।

लडंत (हिं० स्त्री०) १ लड़ाई, भिंडत। २ सामना, मुकाबला।

लड़ (हिं० स्त्री०) १ सीधमें गुछी हुई या एक दूसरीसे लगी हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंकी पंक्ति, माला। २ रस्सीका एक तार। ३ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मञ्जरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ४ पंक्ति, कतार।

लड़क (सं० पु०) जातिविशेष।

लड़कखेल (हिं० पु०) १ वालकोंका खेल। २ सहज काम, साधारण वात।

लड़कपन (हिं० पु०) १ वह अवस्था जिसमें मनुष्य वालक हो, वाल्यावस्था। २ लड़कोंका-सा चिलविलापन, चंचलता।

लड़कबुद्धि (हिं० स्त्री०) वालकोंकी सी समझ, नासमझी।

लड़का (हिं० पु०) १ थोड़ी अवस्थाका मनुष्य, वालक। २ पुत्र, वेटा।

लड़कावाला (हिं० पु०) १ संतती, औलाद। २ पुत्र कलत्र आदि, परिवार।

लड़की (हिं० स्त्री) १ छोटी अवस्थाकी स्त्री, वालिका। २ कन्या, वेटी।

लड़कीवाला (हिं० पु०) विवाह सम्बन्धमें कन्याका पिता या और कोई संरक्षक।

लड़कौरी (हिं० वि० स्त्री०) जिसकी गोदमें लड़का हो, जिसके पास पालने पोसनेके योग्य अपना वच्चा हो।

लड़खड़ाना (हिं० क्रि०) १ न जमने या न ठहरनेके कारण इधर उधर हिल डोल जाना, झोंका खाना। २ डगमगा कर गिरना, झोंका खा कर नीचे आ जाना।

लड़खड़ी (हिं० स्त्री०) लड़खड़ानेकी क्रिया या भाव, डगमगाहट।

लड़न (सं० क्ली०) लड़ ल्युट्। स्यन्दन, डोलना।

लड़ना (हिं० क्रि०) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेका व्यापार करना, एक दूसरेको चोट पहुंचाना। २ वादविवाद करना, वहस करना। ३ विरोधी या प्रतिपक्षीके हानि पहुंचानेवाले प्रयत्नको निष्फल करने और उसे विफल करनेका उद्योग करना, व्यवहार आदिमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न करना। ४ एक दूसरेको गिरानेका प्रयत्न करना, कुश्ती करना। ५ एक दूसरेको कठोर शब्द कहना, हुज्जत करना। ६ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरेसे जा लगना, टक्कर खाना। ७ अनुकूल पड़ना, मुवाफिक उतरना। ८ पूर्णरूपसे घटित होना, मेल मिल जाना। ९ किसी स्थान पर पड़ना, लक्ष्य पर पहुंचना। १० विच्छू, भिड़ आदिका डंक मारना।

लड़ड़ाना (हिं० क्रि०) लड़खड़ाना देखो।

लड़वावर (हिं० वि०) १ जो लड़कपन लिये हो, अल्हड़, नासमझ। २ मूर्खतासे भरा हुआ, जिससे मूर्खता प्रकट हो। ३ गँवार, अनाड़ी।

लड़वौरा (हिं० वि०) लड़वावरा देखो।

लड़ह (सं० त्रि०) १ मनोज्ञ, सुन्दर। २ एक जातिका नाम।

लड़हचन्द्र—एक प्राचीन कवि।

लड़ाई (हिं० स्त्री०) १ आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करनेकी क्रिया, एक दूसरेको चोट पहुंचानेकी क्रिया या भाव, युद्ध। २ एक दूसरेको पटकनेका प्रयत्न, कुश्ती। ३ वादविवाद, वहस। ४ सेनाओंका परस्पर आघात-प्रतिघात, संग्राम, जंग। ५ परस्पर कठोर शब्दोंका व्यवहार, कलह। ६ विरोधी या प्रतिपक्षीके व्यवहारसे अपनी रक्षा करने और उसे विफल करनेका परस्पर प्रयत्न व्यवहार या मामलेमें सफलताके लिये एक दूसरेके विरुद्ध प्रयत्न या चाल। ७ दो वस्तुओंका वेगके साथ एक दूसरीसे जा लगना, टक्कर। ८ अनवन, वैर, दुश्मनी।

लड़ाका (हिं० वि०) १ लड़नेवाला, योद्धा, सिपाही। २ वात वातमें लड़ जानेवाला, फसादी।

लड़ाकू (हिं० वि०) १ युद्धमें व्यवहृत होनेवाला, लड़ाईमें काम आनेवाला। २ लड़ाका देखो।

लड़ाना (हिं० क्रि०) १ लड़नेका काम दूसरेसे कराना, लड़नेमें प्रवृत्त करना। २ झगड़ेमें प्रवृत्त करना, कलहके लिये उद्यत करना। ३ परस्पर उलझाना। ४ एक वस्तुको दूसरीसे वेग या झटकेके साथ मिला देना, भिड़ाना। ५सफलताके लिये व्यवहारमें लाना, सिद्धिके लिये

संचारित करना। ६ लक्ष्य पर पहुंचाना, किसी स्थान पर फेंकना या डालना। ७ लाड़ प्यार करना, प्रेमसे पुत्र-कारना।

लड़ी (हिं० स्त्री०) १ सीधमें गुछो हुई या एक दूसरोसे लगो हुई एक ही प्रकारकी वस्तुओंको पंक्ति, माला। २ पंक्तिमें लगे हुए फूलों या मंजरियोंका छड़ीके आकारका गुच्छा। ३ रस्सी या गुच्छेका तार। ४ पंक्ति, कतार।

लड़ुआ (हिं० पु०) मोदक, लड्डू।

लड़ुवा (हिं० पु०) लड़ुआ देखो।

लड़ैता (हिं० वि०) १ जिसका बहुत लाड़ प्यार हो, लाड़ला, दुलारा। २ प्यारा, प्रिय। ३ जो लाड़ प्यारके कारण बहुत इतराया हो, जिसका स्वभाव किसीके बहुत प्रेम दिखानेसे विगड़ गया हो, शौख। ४ लड़नेवाला, योद्धा।

लडोले (लाटोल) बड़ौदा राज्यके बीजापुर उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह नगर गायकवाड़के शासनाधीन है।

लड्ड (सं० त्रि०) दुर्जन, खोटा आदमी।

लड्डुक (सं० पु०) लड्डू देखो।

लड्डकेश्वर—शिवलिङ्गभेद। (शिव० ५४।१।६)

लड्डू (हिं० पु०) गोल बंधी हुई मिठाई, मोदक। लड्डू कई प्रकारके तथा कई चीजोंके बनते हैं।

लढंत (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच जो मुरगों या खरगोशोंकी लड़ाईका अनुकरण है।

लण्ड (सं० क्ली०) लण्ड्यते उत्क्षिप्यते इति लण्ड-घञ्। पुरीष, विष्ठा।

लण्डन—इङ्गलैण्डकी राजधानी। यह टेम्स नदीके तट पर अवस्थित है। यहां प्रासादके समान बहुत-सी अट्टालिकाओं और कल-कारखानोंके रहनेसे यह नगर जगमगा उठा है।

विशेष विवरण इङ्गलैण्ड और वृटेन शब्दमें देखो।

लत (सं० स्त्री०) किसी बुरी बातका अभ्यास और प्रवृत्ति, बुरी टेव।

लतखोर (हिं० वि०) लतखोरा देखो।

लतखोरा (हिं० वि०) १ सदा लात खानेवाला; सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। २ नीच, कमीना। ३ दास, किंकर। ४ दरवाजे पर पड़ा हुआ पैर पोंछनेका कपड़ा, पायंदाज। ५ देहली, चौखट।

लतड़ी (हिं० स्त्री०) १ केसारी नामका अन्न। २ एक प्रकारकी जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत (हिं० वि०) लथपथ देखो।

लतमर्दन (हिं० स्त्री०) १ लातोंसे दबानेकी क्रिया, पैरोंसे रौंदनेकी क्रिया। २ पदाघात, लातोंकी मार।

लतर (हिं० स्त्री०) बेल, वल्ली।

लतरा (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा अन्न। इसे 'बराबर' और रेवछ भी कहते हैं। इसकी फलियोंकी तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास या पौधा। यह खेतोंमें मटरके साथ बोया जाता है और इसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं। इसके दानोंसे दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'मोट' और खेसारी भी कहते हैं। २ एक प्रकारकी हलकी जूती जो केवल तलके रूपमें होती है और अंगूठेको फंसा कर पहनी जाती है।

लता (सं० स्त्री०) ललति वेष्ट्यते यात्यमिति लत पचाद्यच् टाप्। १ वह पौधा जो सूत या गेरीके रूपमें जमीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तुके साथ लिपट कर ऊपरकी ओर चढ़े, बेल। पर्याय—वल्ली, वल्लि, वेल्लि, प्रतति, जिस लतामें बहुत-सी शाखाएं इधर उधर निकलती हैं और पत्तियोंका फापस होता है, इसे प्रतालिनी कहते हैं। इसका पर्याय—वीरुध, गुल्मिनी, उलप, (अमर) अमावास्याके दिन लता और वीरुधको काटना नहीं चाहिए। काटनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

(विष्णुपु० २।१२ अ०)

२ कोमल कांड या शाखा। ३ प्रियंगु। स्पृक्का। ५ अशनपर्णी। ६ ज्योतिष्मती। ७ लताकस्तूरिका। ८ माधवीलता। ९ दूर्वा, दूब। १० कैवर्त्तिका। ११ सारिवा। १२ जातीपुष्पका पौधा। १३ सुन्दरी स्त्री। १४ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम। (भारत १।२१७।२०) १५ श्वेत सारिवा। १६ श्वेत यूथिका। १७ बृहती। १८ लाल परवलका पौधा। १९ मेरुकी

कन्या और इलायुधकी स्त्रीका नाम। २० एक प्रकारका छन्द। इसके चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, आठवां, ग्यारहवां, चौदहवां और सत्तरहवां गुरु और बाकी लघु होता है।

लताकर (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक प्रकार।

लताकरञ्ज (सं० पु०) लतारूपं करञ्जः। १ प्रकारका करञ्ज, कंटकरेज। संस्कृत पर्याय—दुष्पर्श, वीराख्य, वज्रबीजक, धनदाक्षी, कण्टफल, कुवेराक्षी। इसके पत्तेका गुण कटु, उष्ण, कफ और वातनाशक तथा वीजका गुण दीपन, पथ्य, शूल, गुल्म और विषनाशक माना गया है। (राजनि०)

लताकस्तूरिका (सं० स्त्री०) लतारूप कस्तूरी, तद्वत् गन्धत्वात्, ततः स्वार्थे कन्। दक्षिणमें होनेवाला एक पौधा। वैद्यकमें इसे तिक्त, स्वादु, वृष्य, शीतल, लघु, नेत्रोंको हितकारी तथा श्लेष्मा, तृष्णा और मुखरोगको दूर करनेवाली माना है।

लताकुञ्ज (सं० पु०) लताओंसे छाया हुआ स्थान।

लतागण (सं० पु०) वैद्यकमें सूत या डोरोके रूपमें फैलनेवाले पौधोंका वर्ग।

लतागृह (सं० पु० क्ली०) लतानिर्मितं गृहं। लताओंसे मंडपकी तरह छाया हुआ स्थान।

लताङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गी, काकड़ासींगी।

लताजिह्व (सं० पु०) लतेव जिह्वा यस्य। सर्प, साँप।

लताड़ (हिं० स्त्री०) लथाड़ देखो।

लताड़ना (हिं० क्रि०) १ पैरोंसे कुचलना, रौंदना। २ लातोंसे मारना। ३ लेटे हुए आदमीके शरीर पर खड़े हो कर धीरे धीरे इधर उधर चलना जिससे उसके बदनकी थकावट दूर होती है। ४ हैरान करना, थकाना।

लतातरु (सं० पु०) लतेव दीर्घस्तरुः। १ नारङ्गवृक्ष, नारङ्गीका पेड़। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शाल या साखूका पेड़। ४ पुष्पलतिकाभेद।

लतताल (सं० पु०) हिन्तालवृक्ष।

लताद्रुम (सं० पु०) लतेव द्रुमः दीर्घत्वात्। लताशाल। संस्कृत पर्याय—तार्क्ष्य, अश्वकर्ण, कुशिक, वन्य, दीर्घ।

लतानन (सं० पु०) नाचनेमें हाथ हिलानेका एक ढंग।

लतान्त (सं० क्ली०) १ पुष्प, फूल। २ लताकी फुनगी।

लतापता (हिं० पु०) १ लता और पत्ते, पेड़ों और पौधोंका समूह। २ पौधोंकी हरियाली। ३ जड़ी बूटी।

लतापनस (सं० पु०) लतायां पनसमिव फलमस्य। फल-लताविशेष, तरबूजा। पर्याय—चेलाल, चित्रफल, सुखाश, राजतेमिष, नाटाम्र, सेतु।

लतापर्ण (सं० पु०) विष्णु।

लतापर्णी (सं० स्त्री०) १ तालमूली। २ मधुरिका, सौंफ।

लतापाश (सं० पु०) लताका झापस या समूह, लताजाल।

लतापृक्का (सं० स्त्री०) लताप्रताना पृक्का। समुद्रान्ता।

लताप्रतानिनी (सं० स्त्री०) लताप्रतानोऽस्त्यस्येति इनि। शाखाप्रचयवती लता। पर्याय—वीरुध, गुल्मिनी, उलप, वीरुधा, वरुध, प्रताना, कफ।

लताफल (सं० क्ली०) लतायां फलमस्य। पटोल, परवल।

लताबृहतिका (सं० स्त्री०) बृहती लता।

लताभद्रा (सं० स्त्री०) लतया भद्रा यस्याः। भद्रालीवृक्ष।

लताभवन (सं० क्ली०) लतानिर्मितं भवनं। लतागृह, लताओंका कुंज।

लतामणि (सं० पु०) लतासदृशो मणिः। प्रवाल, मूंगा।

लतामण्डप (सं० पु०) लतागृह, छाई हुई लताओंसे बना हुआ मंडप या घर।

लतामण्डल (सं० पु०) छाई हुई लताओंका घेरा या कुंज।

लतामरुत् (सं० स्त्री०) लतायां मरुत् यस्याः। पृक्का।

लतामाधवी (सं० स्त्री०) लताप्रधाना माधवी। माधवीलता।

लतामृग (सं० पु०) शाखामृग, वानर।

लताम्बुज (सं० क्ली०) खीरा।

लतायष्टि (सं० स्त्री०) लता यष्टिरिव। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

लतायावक (सं० पु०) लतायां याव इव यस्य। प्रवाल, मूंगा।

लतारसन (सं० पु०) लतेव रसना यस्य। सर्प, सांप।

लतार्क (सं० पु०) लता अर्क इवतीव्रा यस्य। पलाण्डुवृक्ष, प्याजका पौधा।

लतालक (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

लतालय (सं० पु०) लतानिर्मितः आलयः। लतागृह, लताओंसे मंडपकी तरह छाया हुआ स्थान।

लतावलय (सं० पु०) १ लतागृह। २ वह जिसने चारों ओरसे मंडलाकारमें लता लगाई है।

लतावृक्ष (सं० पु०) शल्लकीवृक्ष, सलईका पेड़।

लतावेष्ट (सं० पु०) लतयेव आवेष्टो वेष्टनं यत्र। १ कामशास्त्रमें सोलह प्रकारके रतिबंधनोंमेंसे तीसरा। २ एक पर्वत जो द्वारकापुरोसे दक्षिणकी ओर पड़ता है।

(हरिवंश १६५।१६)

लतावेष्टन (सं० क्ली०) एक प्रकारका आलिङ्गन।

लतावेष्टित (सं० पु०) १ लतावेष्ट, सोलह प्रकारके रतिबंधोंमेंसे तीसरा। २ एक प्रकारका आलिङ्गन। ३ लता द्वारा वेष्टित या घेरा हुआ।

लतावेष्टितक (सं० क्ली०) लतायेव वेष्टितं वेष्टनं यत्र कन्। एक प्रकारका आलिङ्गन।

लताङ्कुतरु (सं० पु०) लताशालका पेड़।

लताशङ्कु (सं० पु०) शाल या साखूका पेड़।

लताशैल—कामरूपके अन्तर्गत एक गिरि।

(भविष्य ब्रह्मख० १६।५१)

लतासाधन (सं० क्ली०) लतया साधनं। तन्त्रोक्त साधनविशेष। इस साधनकी प्रधान अधिकरण स्त्री है, इसीसे इसको लतासाधन कहते हैं। इस साधनका विषय मंत्रमें इस प्रकार लिखा है—यह साधन यदि करना हो, तो पहले एक स्त्रीको ला कर यथाविधि इष्टदेवीकी पूजा करे। पीछे उस स्त्रीके केशमें सौ, कपालमें सौ, सिन्दूरमण्डलमें सौ, दोनों स्तनोंमें सौ, नाभिदेशमें सौ और योनिदेशमें सौ बार इष्टमन्त्रका जप करे। अनन्तर आसन पर उठ कर पुनः तीन सौ बार जप करना होगा। इस प्रकार हजार बार जप करनेसे इष्टमन्त्रकी सिद्धि होती है।

अन्य प्रकार—महारात्रिको एक ऋतुमती नारी ला कर उसके योनिदेशमें इष्टदेवताको पूजा करनेके बाद जप करे। इस प्रकार तीन दिन पूजा और जप करना होता है। पीछे चक्रचक्रमें १०८ बार जप करके नवपुष्पाञ्जलि द्वारा फिरसे १०८ बार जप करे। अनन्तर पूर्णाहुति दे कर पुनः १०८ बार जप करना होगा। इस तरह जपादि करनेसे इष्टमन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्रसिद्ध होनेसे धनवान, बलवान्, वाग्मी और नारियोंका प्रिय होता है।

(मायातन्त्र १२वां पटल)

इस साधनका विषय अन्नदाकल्पके १६वें पटल तथा गुप्तसाधनतन्त्रके ४थे पटलमें विशदरूपसे लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं लिखा गया।

लतिका (सं० स्त्री०) छोटी लता, बेल।

लतियर (हिं० वि०) जो सदा लात खाता हो, लतखोर।

लतियल (हिं० वि०) लतियर देखो।

लतिहर (हिं० वि०) लतिहर देखो।

लतिहल (हिं० व०) लतिहर देखो।

लतीफ़ (अ० वि०) १ मज़ेदार, जायकेदार। २ मनोहर, बढ़िया।

लतीफ़ा (अ० पु०) १ हास्यरसपूर्ण छोटी कहानी, चुटकुला। २ चमत्कारपूर्ण बात, अनूठी बात। ३ चुहलकी बात, हँसीकी बात।

लतोद्गम (सं० पु०) लताया उद्गमः। अवरोह, अधःपतन।

लत्ता (हिं० पु०) १ फटा पुराना कपड़ा, चीथड़ा। २ कपड़ेका टुकड़ा, वस्त्रखण्ड। ३ कपड़ा।

लत्तिका (सं० स्त्री०) लत-घाते (कृतिभिदिलतिभ्यः कित्। उण् ३।१४७) इति तिकन्-टाप्। गोधा, गोह।

लत्ती (हिं० स्त्री०) १ प्रहारके लिये उठाया या चलाया हुआ घोड़े, गदहे आदिका पैर, पशुओंका पादप्रहार। २ लात मारनेकी क्रिया। ३ कपड़ेकी लंबी धज्जी। ४ बाँसमें बंधी हुई कपड़ेकी धज्जी जिसे ऊंचा करके कबूतर उड़ाते हैं। ५ पतंगकी दुम अर्थात् नीचे बंधी हुई कपड़ेको लंबी धज्जी, पुछिल्ल।

लथपथ (हिं० वि०) १ जो भींग कर भारी हो गया हो, तराबोर। २ कीचड़ आदिमें सना हुआ, जो कीचड़के लगनेसे भारी हो गया हो।

लथाड़ (हिं० स्त्री०) १ जमीन पर पटक कर इधर उधर लोटाने या घसीटनेकी क्रिया, चपेट। २ हानि, नुकसान। ३ पराजय, हार। ४ डाँट, डपट, झिड़की।

लथाड़ना (हिं० क्रि०) लथेड़ना देखो। २ लताड़ना देखो।

लधिया—संयुक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह जमानियासे एक मील दक्षिण-पूर्व पड़ता है।

स्तम्भ है। इस स्तम्भकी मथनी शिल्पनैपुण्यसे पूर्ण है। चोटीमें जो दो स्त्रीकी मूर्त्तियां हैं वह टूट कर अभी स्तम्भके नीचे पड़ी हैं।

यहां प्राचीनताके निदर्शनस्वरूप २६ फुट ऊंचा एक स्तम्भ है। इस स्तम्भकी मथनी शिल्पनैपुण्यसे पूर्ण है। चोटीमें जो दो स्त्रीकी मूर्त्तियां हैं वह टूट कर अभी स्तम्भके नीचे पड़ी हैं।

लथेड़ना (हिं० क्रि०) १ कीचड़ आदिसे लपेटना, कीचड़ आदि पोत कर भारी करना। २ जमीन पर पटक कर इधर उधर लोटाना या घसीटना। ३ मिट्टी, कीचड़ आदि लिपटा कर गंदा करना। ४ बातों या गालियोंकी बौछाड़से व्याकुल करना; झिड़कियां सुनाना। ५ कुश्ती या लड़ाईमें पछाड़ना, हराना। ६ श्रमसे शिथिल करना, थकाना।

लदंन (हिं० स्त्री०) लदाव।

लदना (हिं० क्रि०) १ भाराक्रांत होना, बोझसे भरना। २ किसी वस्तुका किसी वस्तुके संमूहसे ऊपर ऊपर भर जाना, पूर्ण होना। ३ किसी भारी या वज़नी चोजका दूसरी चीजके ऊपर होना या रखा जाना, किसी वस्तुके ऊपर बोझके रूपमें पड़ना या रखा जाना। ४ सामान ढोनेवाली सवारीका वस्तुओंसे पूर्ण होना, बोझसे भर जाना या भरा जाना। ५ सामान ढोनेवाली सवारी पर वस्तुओंका रखा जाना, बोझका डाला या रखा जाना। ६ परलोक सिधारना; मर जाना। ७ जेलखाने जाना, कैद होना।

लदनी (सं० स्त्री०) एक विदुषी स्त्री-कवि।

लदलद (हिं० क्रि० वि०) किसी गीली और गाढ़ी या जमी हुई वस्तुके गिरनेके शब्दका अनुकरण।

लदवाना (हिं० क्रि०) लादनेका काम दूसरेसे कराना।

लदाख—काश्मीर-महाराजके अधिकृत हिमालयकी सीमान्तवर्त्ती एक विभाग। यह काश्मीरसे पूर्वमें स्थित है और एक स्वतन्त्र शासनकर्त्ता द्वारा परिचालित होता है। हिमालयशैलके वर्फसे ढके शैलश्रृंगमें अवस्थित रहनेके कारण इसकी सीमा निर्देश करना कठिन है। यह हो कर सिन्धु नद और उसकी शाखा-प्रशाखा बहती है इसलिये इसे सिन्धुनदकी उपत्यका भूमि कहना अत्युक्ति नहीं है। यह अक्षा० ३२° से ३५° उ० तथा देशा० ७५° २६' से ७६° २६' पू०के बीच पड़ता है।

रूपसु और निओब्रा नामक मध्यभागके दो जिले हैं। हिमालका वर्फसे ढका श्रृंग तथा जनशून्य कुएनलूनकी अधित्यका भूमि और लिन्‌क्थिंगका पहाड़ी प्रान्तको ले कर यह विभाग गठित हुआ है। डा० कनिंहमके मतसे जानस्करको मिला कर इसका भू-परिमाण तीस हजार वर्गमील है।

हिमालय-पर्वतके मध्यांशवर्त्ती विस्तृत शैलपृष्ठमें स्थापित रहनेसे यहांकी जनताका निर्णय करना कठिन है। उक्त महात्माकी गणनाके अनुसार यहांकी जनसंख्या १६८००० है लेकिन मुर क्रफटने १६५००० और डॉ० वेलिङ ने २०००० जनसंख्या ठीककी है। लदाखके वर्त्तमान इतिहास-लेखक एफड्के मतसे मर्दुमशुमारी २०६०१ है।

लदाखके समान और कहीं भी ऐसे ऊंचे स्थान पर लोगोंका वास नहीं है। यहांकी अधित्यका और उपत्यका माल ही समुद्रकी तहसे ६०००-१७००० फुट ऊंची है। उनमें बहुत से पर्वतश्रृंग भी २५ हजारसे कम नहीं है। यहां सिन्धु और उसकी सहायक निओब्रा, चानचेंगमो और जानस्कर शाखा बहती हैं। यहांके गड्ढे खारे पानीसे भरे हैं जिनमेंसे पोंगकोंग और छोमारिरि प्रधान है।

इस जनपदका प्राकृतिक-परिवर्त्तन और असाधारण तुषारशीतल हिमालयकी चोटी पर अवस्थित रहनेके कारण यहां गरमी बहुत बेशी पड़ती है। दिनमें यहां भीषण गरमी और रातमें इतनी ठंढ पड़ती है, कि कलेजा कांपने लगता है। शीतकी अधिकता तथा वायुकी रूक्षतासे यहां विशेष कोई फसल नहीं उपजती। यहां लिखनेके योग्य कोई वस्तु नहीं होती। सिर्फ कई तरहके फलके पेड़ देखे जाते हैं। यहांके जंगली जंतुओंमें जंगली गदहा, भेड़ा, बकरा, खरगोश और Marmot तथा पक्षियोंमें ईगल, मुर्गा आदि प्रधान है। लदाखके रहनेवाले पालतू भेड़के लोमसे शाल तैयार करते हैं। यह लोम खास कर काश्मीर, नेपाल और भारतमें भेजा जाता है। १८५३ ई०में डा० कनिंहम लदाखसे काश्मीरमें २४०० मन पशमकी रफतनीका विषय उल्लेख कर गये हैं। यहांका बकरा साधारणका बड़ा उपयोगी है। पहाड़ी बड़ी बकरीका वे दूध पीते और बकरेके पीठ पर पण्यद्रव्य लादते हैं।

यहां जो सब द्रव्य उपजते है, उनमेंसे पशम, सोहागा,

गंधक और सुखे फल ही प्रधान हैं। ये सब द्रव्य यहांके रहनेवाले बकरेकी पीठ पर लाद कर काश्मीर और निकटवर्त्ती हिन्दुस्तान, यारकन्द, खुसान तथा उत्तर और पूर्व तिब्बतीय प्रदेशमें बेचनेके लिये ले जाते हैं। ये सब द्रव्य बेचनेसे उन्हें काफी लाभ होता है। वे उस मूल्यके बदले भारतसे सूती कपड़ा, कच्चा चमड़ा, साफ चमड़ा, अनेक तरहका शस्य, बंदूक, और चाय आदि तथा चीनसाम्राज्यसे बकरा और भेड़का लोम, चाय, सोनेका कण, चांदी, नाना तरहकी प्राचीन मुद्रा, रेशम और चरस आदि द्रव्य लेते हैं। इस प्रदेशके मध्य वर्त्ती रूपसु जिलेमें आने जानेके दो अच्छे पथ हैं। रूपसुसे बड़लाचा गिरिसंकट हो कर अंगरेजाधिकृत भारतमें आना होता है तथा परंग घाट हो कर लाहुल और सिमला शैत्यावासमें जाने आनेमें सुविधा पड़ती है इस लिये बहुतेरे घूमनेवाले वणिक् इसी पथ द्वारा भारतसे रूपसु और सिमला आदि स्थानोंमें जाते हैं। लासा-नगरवासी चायके व्यवसायी ले प्रदेश रूपसुके बीच हो कर जाते आते हैं।

यहांके अधिवासी लादखी कहलाते हैं। ये बौद्धधर्मा-वलम्बी हैं। ये नाटे और मजबूत होते हैं इससे कदर्य तुराणीय जातिके शाखाभुक्त माने जाते हैं। ये लोग आपसमें झगड़ा लड़ाई नहीं करते। दल बांध कर एक साथ गांवमें रहते हैं। खेतीबारी ही उनकी प्रधान उप-जीविका है। समुद्रपृष्ठसे ६५०० फुटसे १३५०० फुट ऊंचे पर वे लोग रहते हैं। ये सर्वदा आनन्दमें विभोर रहते हैं और मदिरा आदि मादकद्रव्य नहीं पीते। इनकी वेशभूषाकी उतनी परिपाटी नहीं है। ये पशमीने कुरता, पायजामा, कमरबन्द और पाँवमें मोटा जूता पह-नते हैं। पुरुष तथा स्त्रियां घंघरेकी तरहके एक प्रकारके अंगरखेसे समूचा शरीर ढक लेती हैं। कंधे पर लोम लगा हुआ चमड़ा और माथे पर कौड़ी द्वारा अलंकृत वस्त्र ओढ़ती हैं। जिस तरह और सब देशोंमें मौसिमके अनुसार कपड़ा पहना जाता है उस तरह यहां नहीं है। सभी लादखीको थोड़ा बहुत खेत है। यहां जौ ही अधि-कतासे उपजता है। कहीं कहीं नीची जमीनमें गेहूं और उरद भी बोया जाता है। दूधमें सिद्ध किया हुआ जौ ये बड़ा पसन्द करते हैं। चंग नामक मद्य साधारणका प्रिय है। ये बड़े हट्टे-कट्टे और मेहनती होते हैं। आसानीसे ये भारी बोझा ऊंचे पहाड़ पर ले जा सकते हैं। औरतें भी मर्दोंके समान बलिष्ठ और कर्मपटु होती हैं। इनमें परदा सिसटम नहीं है। ये स्वेच्छासे घूमती फिरती हैं। धनवान् व्यक्तिको छोड़ साधारणतः स्त्रियोंके एकसे अधिक स्वामी देखे जाते हैं। इसमें वे कोई दोष नहीं मानते।

करीब करीब प्रत्येक गांवमें ही एक एक बौद्धमठ या विहार है। हर गांवके पास एक निर्जन पर्वतकी चोटी पर ये मठ स्थापित हैं। इन सबमें प्रायः ही एक या दो लामा तथा कभी कभी बहुतसे बौद्धयति वास करते हैं। यहांके मठाधिकारी उपाध्यायका कभी अभाव नहीं होता। स्थानीय वासिन्दोंमेंसे एक परिवारका बालक पर्याय-क्रमसे इस व्रतका अवलम्बन करते हैं। मठमें ब्रह्मचर्य अवलम्बन करनेके पीछे वे विद्याभ्यास करते हैं। पर्वत-गात्रमें खोदित बड़ी बड़ी बौद्धमूर्त्ति, प्रस्तरस्तूप, शिला-फलकोत्कीर्ण प्राचीन तथा अन्यान्य पवित्र प्रतिकृति देखनेसे साफ जाहिर होता है, कि यहां धर्मका पूरा प्रभाव है।

४थी सदीमें चीन-परिव्राजक फाहियान इस जन-पदका विवरण लिख गये हैं। प्लिनिने Akhassa Regio नामक यहांके अधिवासियोंकी बहुत-सी कहानी लिखी है। ७वीं सदीमें चीन-परिव्राजक यूएनचुवंग यह स्थान परिदर्शन कर यहांके बौद्धमठादिका उल्लेख कर गये हैं।

पहले यह स्थान मशहूर भोटराज्यके अन्तर्भुक्त था। उस समय एक राजकुमार स्वाधीनभावसे इस प्रदेशका शासन करते थे और लासाके प्रधान लामा यहांके बौद्धों-में सर्वश्रेष्ठ गुरु माने जाते थे। १०वीं सदीमें जब बड़ा तिब्बत साम्राज्य घरके झगड़ोंमें बंट गया, तब प्रान्तीय जनपद एक एक स्वाधीन राज्य हो गया था। उस समय पालगीगोन यहांके राजा थे।

१७वीं सदीके अन्तमें स्कार्डोंके सरदार शेर अलीने इस स्थान पर हमला कर मठ, मन्दिर और विहारादिके सभी हाथके लिखे ग्रन्थोंको छार खार कर दिया। तभीसे

यहांके इतिहासकी बड़ी कमी पड़ गई है। आज उनका एक भी अध्याय नहीं है जिससे पुनः उसकी पूर्त्ति हो।

राजा सिउङ्ग नामग्यलके राजत्वकालमें लदाख राज्यकी बहुत कुछ श्रीवृद्धि हुई। उन्होंने मुगल सम्राट् जहांगीरकी सहायता पा कर बलति-सरदारको हटा कर लदाखी जातिके बलवीर्यकी पराकाष्ठा देखी थी। तदनन्तर सोकपो और लदाखी जातिके बीच लगातार कई लड़ाइयां हुईं। अन्तमें सोकपो हार खा कर भाग गये। इस समय काश्मीरवासी मुसलमानोंने लदाखियोंको खासी मदद पहुंचाई थी। सोकपोको उस समय बसनेके लिये रूदोख विभाग मिला था। इस युद्धमें लदाखोने मुसलमानोंकी सहायता पाई थी, इस कारण इसकी एहसानमन्दीमें लदाखराज उस समय इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। तभीसे वे काश्मीरराजको राजकर देते आ रहे हैं।

१८२२ ई०में मूर क्रुफट लदाख देखने आये। उस समय गैलपो या लदाखके शासनकर्त्ताने अङ्गरेजराजकी अधीनता स्वीकार करना चाहा; किन्तु लदाखकी उस समयकी समृद्धि देख कर वे राजी न हुए। १८३४ ई०में काश्मीरराज गुलाबसिंहने अपना प्रसिद्ध दोगरा सैन्य ले कर लदाख पर चढ़ाई कर दी। सेनापति जोरावर सिंह सेनानायक हो कर यथाक्रम दो अभियानके बाद लदाख और बलती प्रदेश पर कब्जा कर बैठे। जयोल्लास हो कर सिख-सेनापतिने लदाख पर आक्रमण किया; किन्तु युद्धका कोई फल न निकला। चीनी और सोकपो सेनाके साथ युद्ध तथा दारुण पहाड़ी शीतके कारण सिखसेना समूल निहत हुई। उसी वर्ष अफगानिस्तानमें एक दल अंगरेजी सैन्य भी इसी प्रकार नष्टभ्रष्ट और निहत हुआ। अङ्गरेजी-सेनाने जब पंजाब पर विजय पाई, तब काश्मीर और उसके अधीनका सभी प्रदेश अंगरेजोंके हाथ आया। १८४६ ई०की १६वीं मार्चकी सन्धिके अनुसार अंगरेज-गवर्मेण्टने पुनः यह गुलाबसिंहको सौंप दिया।

१८६७ ई०में अंगरेज-गवर्मेण्टने यहांका वाणिज्य विवरण संग्रह करनेके लिये Dr Cayley-को लदाख भेजा। १८७० ई०में काश्मीर-महाराजके साथ अङ्गरेज राजप्रतिनिधि लार्ड मेओकी एक संधि हुई। उस सन्धिके अनुसार यहांके लिये एक अंगरेज और एक देशी कमिश्नर नियुक्त हुए। ये दोनों एक साथ मिल कर इस कामको चलाते आ रहे हैं। (Dr Aitchison कृत Trade Prodncts of Leh 1874 नामक ग्रन्थमें यहांके पण्यद्रव्यकी लंबी चौड़ी विवरणी दी हुई है।)

लदाना (हिं० क्रि०) लादनेका काम दूसरेसे कराना।

लदाफंदा (हिं० वि०) भारपूर्ण, बोझसे भरा या लदा हुआ।

लदाव (हिं० पु०) १ लादनेकी क्रिया या भाव। २ भार, बोझ। ३ वह छत या महराव जिसमें ईंटोंकी जोड़ाई विना धरन या कड़ीके सहारे अधरामें ठहरी हो। ४ ईंटोंकी जोड़ाई जो विना धरन या लकड़ीके आधारमें ठहरी हो, कड़ेकी जोड़ाई। ५ छत आदिका पटाव।

लदुवा (हिं० वि०) बोझ ढोनेवाला, पीठ पर बोझ ले कर चलनेवाला।

लद्दू (हिं० वि०) बोझ ढोनेवाला, लदुवा।

लद्दड़ (हिं० वि०) जिसमें तेजी और फुरती न हो, काहिल।

लद्दड़पन (हिं० पु०) काहिली, सुस्ती।

लनएटक (सं० क्ली०) एक प्रकारका पौधा या घास जिसका साग बना कर खाया जाता है।

लना (हिं० पु०) १ एक पेड़ जिससे पञ्जाबमें सज्जी निकाली जाती है। इसका एक भेद जोरालना है। २ शोरा।

लनी (हिं० स्त्री०) १ पानकी बारोमेंकी क्यारी। २ पञ्जाबमें होनेवाला एक पेड़। इससे सज्जी निकाली जाती है।

लन्दौर—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलान्तर्गत एक शैलवास। इस नगरमें अङ्गरेजोंकी एक छावनी है। यह समुद्रपृष्ठसे ७४५६ फुट ऊंचा, अक्षा० ३०° २७' उ० तथा देशा० ७८° ८' पू०के मध्य हिमालय पहाड़के शिखर पर अवस्थित है। मसूरी शैलमालाके अन्तर्गत होने पर भी यह स्वतन्त्र काण्टनमेण्ट मजिष्ट्रेटके शासनाधीन है। यह नगर १८२७ ई०में पीड़ित अङ्गरेजसेनाके स्वास्थ्यवासरूपमें परिणत हुआ। मसूरी नगर और लन्दौर अभी एक नगर गिना जाता है। मसूरी देखो।

लन्दौरा—युक्तप्रदेशके शहारनपुर जिलेकी रूढ़की तहसील के अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ४८' उ० तथा देशा० ७७°५८' पू०के मध्य रूढ़कीसे २॥ कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। इस नगरमें एक दुर्ग है जिसके चारों ओर एक खाई दौड गई है। दुर्द्धर्ष सरदार रामदयाल सिंहके गूजर जातीय आत्मीय स्वजनोंका यहां वास है। सिपाही विद्रोहके समय गुजरोंने भारी अत्याचार किया था, इस कारण नगरमें आग लगा दी गई थी।

लप (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी घास। इसे 'लुरारी' भी कहते हैं। २ दोनों हथेलियोंको मिला कर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके, अञ्जली। ३ अञ्जली भर वस्तु। (स्त्री०)४ बेंत या लचीली छड़ीको पकड़ कर हिलानेसे उत्पन्न शब्द या व्यापार। ५ छुरी, तलवार आदिकी चमककी गति।

लपक (हिं० स्त्री०) १ ज्वाला, लपट। २ लौ या लपटकी तरह निकलने या चलनेकी तेजी, वेग। ३ चमक, कान्ति। ४ चलनेका वेग, फुरती।

लपकना (हिं० क्रि०) १ चटपट या तेजीसे चल पड़ना, तुरत दौड़ पड़ना। २ आक्रमणके लिये दौड़ पड़ना, झपटना। ३ वेगसे गमन करना, तेजीसे जाना या चलना। ४ कोई वस्तु लेनेके लिये झटसे हाथ बढ़ाना।

लपकी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सीधी सिलाई।

लपचा (हिं०पु०) सिक्किमके पहाड़ोंकी एक जङ्गली जाति। लेप्चा देखो।

लपझप (हिं० वि०) १ चञ्चल, चपल। २ तेज फुरतीला। ३ चुपचाप न बैठनेवाला, अधीर।

लपट (हिं० स्त्री०) १ आगके दहकनेसे उठा हुआ जलती वायुका स्तूप, आगकी लौ। २ तपी हुई वायु, हवामें फैली हुई गरमी। ३ गंध, महक। ४ किसी प्रकारकी गंधसे भरा वायुका झोंका।

लपटना (हिं० क्रि०) १ अंगोंसे घेरना, आलिंगन करना। २ उलझना, फंसना। ३ किसी सूतकी सी वस्तुका दूसरी वस्तुके चारों ओर कई फेरोंमें घेरना। ४ लग जाना, संलग्न होना। ५ लगा रहना, रत रहना। ६ परिवेष्टित होना, घिर जाना।

लपटा (हिं० पु०) १ गाढ़ी गीली वस्तु। २ कढ़ी। ३ लपसी, लेई।

लपटाना (हिं० क्रि०) १ अङ्गोंसे घेरना, चिमटाना। २ आलिङ्गन करना, गले लगाना। ३ परिवेष्टित करना, घेरना। ४ किसी सूतकी-सी वस्तुको कई फेरे करके टिकाना या बांधना, लपेटना। ५ संलग्न, सटना। ६ उलझना, फंसना।

लपटौआँ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका जङ्गली तृण जिसकी बाल कपड़ेमें लिपट या फंस जाती है और कठिनतासे छूटती है। (वि०) २ लिपटनेवाला, चिमटनेवाला। ३ सटा या लिपटा हुआ।

लपन (सं० क्ली०) लप्यतेऽनेनेति लप कारणे ल्युट्। १ मुख, मुंह। २ भाषण, कथन।

लपना (हिं० क्रि०) १ बेंत या लचीली छड़ीका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, झोंकके साथ इधर उधर लचना। २ झुकना, लचना। ३ लपकना, ललचना, हैरान होना, परेशान होना।

लपलपाना (हिं० क्रि०) १ बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदिका एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाये जानेसे इधर उधर झुकना, झोंकके साथ इधर उधर लचना। २ किसी लंबी कोमल वस्तुका इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकलना। ३ छुरी, तलवार आदिका चमकना, झलकना। ४ झोंकके साथ इधर उधर लचाना, लपाना। ५ किसी लंबी नरम चीजको इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तुके अंदरसे बार बार निकालना। ६ छुरी, तलवार आदिको निकाल कर चमकाना, चमचमाना।

लपलपाहट (हिं स्त्री०) १ लपलपानेकी क्रिया या भाव, एक छोर पकड़ कर जोरसे हिलाए जाते हुए बेंत आदिका झोंका। २ चमक, झलक।

लपसी (हिं० स्त्री०) १ भुने हुए आटेमें चीनीका शरबत डाल कर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लेई जो खाई जाती है, थोड़े घीका हलुवा। २ पानीमें औटाया हुआ आटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेलमें कैदियोंको दिया जाता है। इसे लपटा भी कहते हैं। ३ गीली गाढ़ी वस्तु।

लपहा (हिं० पु०) पानका एक रोग, पानकी गेरुई।

लपाना (हिं० क्रि०) १ लचीली छड़ी आदिको झोंकके

साथ इधर उधर लचाना, फटकारना। २ नरम लंबी चीज़को डुलाना। ३ आगे बढ़ाना।

लपित (सं० क्ली०) लप भावे क्त। १ वचन, बात। (त्रि०) २ कथित, कहा हुआ।

लपिता (सं० स्त्री०) शार्ङ्गिका नामक पक्षीकी एक जाति।

लपेट (हिं० स्त्री०) १ लपेटनेकी क्रिया या भाव। २ बंधी हुई गठरीमें कपड़ेकी तहकी मोड़। ३ किसी सूत, डोरी या कपड़ेकी सी वस्तुको दूसरी वस्तुकी परिधिको लपेटने या बांधनेको स्थिति, फेरा। ४ उलझन, फंसाव। ५ ऐंठन, मरोड़। ६ किसी मोटी लम्बी वस्तुकी मोटाई-के चारों ओरका विस्तार, घेरा। ७ कुश्तीका एक पेच। जब दोनों लड़नेवाले एक दूसरेकी बगलसे सिर निकालते हैं और कमरको दोनों हाथोंसे पकड़ कर भीतर अड़ानी टांगसे लपेटते हैं तब उसे लपेट कहते हैं। ८ पकड़, बंधन।

लपेटन (हिं० स्त्री०) १ लपेटनेकी क्रिया या भाव, लपेट। २ ऐंठन, मरोड़। ३ फेरा, वल। ४ उलझन, फंसाव। (पु०) ५ लपेटनेवाली वस्तु, वह वस्तु जो चारों ओर सर कर घेर ले। ६ वह कपड़ा जिसे किसी वस्तुके चारों ओर घुमा घुमा कर बांधे। ७ वह वस्तु जिसे किसी वस्तुके चारों ओर घुमा घुमा कर बांधे। ८ पैरोंमें उलझने-वाली वस्तु। ९ वह लकड़ी जिस पर जुलाहे बुन कर तैयार कपड़ा लपेटते हैं, तूर, बेलन।

लपेटना (हिं० क्रि०) १ किसी सूत, डोरी या कपड़ेकी-सी वस्तुको दूसरी वस्तुके चारों ओर घुमा कर बांधना, घुमाव या फेरेके साथ चारों ओर फंसाना। २ डोरी, सूत या कपड़ेकी-सी फैली हुई वस्तुको तह पर तह मोड़ते या घुमाते हुए संकुचित करना, फैली हुई वस्तु-को लच्छे या गट्ठरके रूपमें करना। ३ सूत, डोरी या कपड़ेकी-सी वस्तु चारों ओर ले जा कर घेरना, परिवे-ष्टित करना। ४ हाथ पैर आदि अंगोंकी चारों ओर सटा कर घेरेमें करना, पकड़में कर लेना। ५ पकड़में लाना, काबू करना। ६ मोड़े हुए कपड़े आदिके अन्दर करके बंद करना, कपड़े आदिके अन्दर बांधना। ७ उलझनमें डालना, झंझटमें फंसाना। ८ ऐसी स्थितिमें करना कि कुछ करने न पावे, गतिविधि बन्द करना। ९ गीली गाढ़ी वस्तु पोतना, लेपन करना।

लपेटनी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंकी लपेटन नामकी लकड़ी, तूर।

लपेटवाँ (हिं० वि०) १ जो लपेटा हो, जिसे लपेट सके। २ जिसमें सोने चांदीके तार लपेटे गये हों। ३ जो लपेट कर बना हो। ४ जो सीधे ढंगसे न कहा या किया गया हो, घुमाव फिरावका। ५ जिसका अर्थ छिपा हो, गूढ़।

लपेटा (हिं० पु०) लपेट देखो।

लपेटिका (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक पवित्र तीर्थका नाम।

लपेत (सं० पु०) बालरोगोंके अधिष्ठाता एक देवता। (पारस्करगृह्य० १।१६)

लप्पा (हिं० पु०) १ छतमें लगी हुई वह लकड़ी जिसमें रेशमी कपड़े बुननेवाले जुलाहोंके करघेकी रस्सियां बन्धी रहती हैं। २ एक प्रकारका गोटा।

लप्सिका (सं० स्त्री०) खाद्यद्रव्यविशेष, लप्सी। बनानेका तरीका—घीमें मैदेको अच्छी तरह भून कर शक्करके साथ दूधमें डाल दे। पीछे उसको आँच पर चढ़ा कर गाढ़ा करे। गाढ़ा होने पर लवङ्ग और गोलमिर्च ऊपरसे छोड़ दे। अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर नीचे उतार लें। इसीका नाम लप्सिका है। इसका गुण बृंहण, बलकर, वृष्य, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, श्लेष्मवर्द्धक, गुरु-पाक और रुचिकर माना गया है। इसको मोहनभोग भी कह सकते हैं। फर्क इतना ही है, कि मोहनभोग सूजीसे बनाया जाता है।

लप्सुद (सं० क्ली०) कूर्च।

लप्सुदिन (सं० त्रि०) कूर्चयुक्त।

लफंगा (फा० वि०) १ लंपट, व्यभिचारी। २ शोहदा, कुमार्गी।

लफटंट (अं० पु०) सेनाका एक छोटा अफसर।

लफटंट गवर्नर (अं० पु०) किसी प्रान्तका शासक, छोटे सूबेका हाकिम।

लफ्ज (अ० पु०) १ शब्द। २ बात, बोल।

लब (फा० पु०) ओष्ठ, होठ।

लवगुरानया (हिं० स्त्री०) गहरे बैंगनी रङ्गके रतालूकी लता जो भारतवर्षमें कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लवड़ घोधों (हिं० स्त्री०) १ झूठ मूठका हल्ला, व्यर्थका गुल गपाडा। २ क्रम और व्यवस्थाका अभाव, गड़बड़ी। ३ बातोंका भुलावा, बेईमानाकी चाल। ४ अन्याय, अनीति।

लंवदा (हिं० पु०) मोटा बेडौल डंडा।

लवदी (हिं० स्त्री०) छोटी छड़ी, पतली छड़ी।

लवनी (हिं० स्त्री०) १ मिट्टीकी लम्बी हांड़ी या मटकी, जो ताड़के पेड़ोंमें बांध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है। २ काठकी लंबी डांड़ी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाहमें शीरा निकालते हैं, डौवा।

लवरा (हिं० वि०) १ झूठ बोलनेवाला। २ गप हांकनेवाला, गप्पी।

लवरी (हिं० वि० स्त्री०) १ झूठ बोलनेवाली, गप्पी। (स्त्री०) २ खिचड़ी देखो।

लवलबी (फा० स्त्री०) वन्दूकके घोड़ेकी कमानी।

लवादा (फा० पु०) १ रूईदार चोगा, दगला। २ वह लंबा ढीला पहनावा जो अंगरखे आदिके ऊपरसे पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है, चोगा।

लवारी (हिं० स्त्री०) १ झूठ बोलनेका काम। (वि०) २ झूठा। ३ चुगलखोर।

लवालव (फा० क्रि० वि०) मुंह या किनारे तक, छलकता हुआ।

लवी (हिं० स्त्री०) ईखका रस जो पका कर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो, राव।

लवेचू (हिं० पु०) जैन वैश्योंकी एक जाति, लमेचू।

लवेद (हिं० पु०) वेदके विरुद्ध वचन या प्रसंग, लोकाचार और दन्तकथा।

लंवेदा (हिं० पु०) मोटा बड़ा डंडा।

लवेदी (हिं० स्त्री०) १ छोटा डंडा, लाठी। २ डंडेका बल, जबरदस्ती।

लवेरा (हिं० पु०) लसोड़ेका पेड़ या फल, लपेरा।

लब्ध (सं० त्रि०) लभ-क्त। १ प्राप्त, पाया हुआ। २ उपार्जित, कमाया हुआ। ३ भाग करनेसे आया हुआ फल। (पु०) ४ दश प्रकारके दासोंमेंसे एक।

लब्धक (सं० त्रि०) प्राप्त, पानेवाला।

लब्धकाम (सं० त्रि०) अभीष्टसिद्ध, जिसकी मनस्कामना पूरी हो गई हो।

लब्धकीर्त्ति (सं० त्रि०) १ यशस्वी, जिसने कीर्त्ति पाई हो। २ विख्यात, नामवर।

लब्धचेतस (सं० त्रि०) पुनःप्राप्तचित्त, जिसने पुनः ज्ञानलाभ किया हो।

लब्धजन्मन् (सं० त्रि०) प्राप्तजन्म, जिसने जन्म लिया हो।

लब्धदत्त (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। (कथासरित्सा० ५१।८९)

लब्धधन (सं० त्रि०) धनवान्, दौलतमंद।

लब्धनामन् (सं० त्रि०) लब्धं नाम यस्य। ख्यातनामा, नामवर।

लब्धनाश (सं० पु०) प्राप्त वस्तुका नाश, पूर्वधनका विनाश।

लब्धप्रतिष्ठ (सं० त्रि०) लब्धा प्रतिष्ठा येन। प्रतिष्ठित, जिसने प्रतिष्ठा पाई हो।

लब्धप्रशमन (सं० त्रि०) मिले हुए धनका सत्पात्रको दान।

लब्धलक्ष (सं० त्रि०) १ जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे। २ जिसे अभिप्रेत वस्तु मिल गई हो।

लब्धवर (सं० त्रि०) लब्धः वरो येन। वरप्राप्त, जिसने वर पाया हो।

लब्धवर्ण (सं० त्रि०) लब्धा वर्णो यशांसि येन। विद्वान्, पण्डित।

लब्धविद्य (सं० त्रि०) लब्धा विद्या येन। विद्वान्, पण्डित।

लब्धव्य (सं० त्रि०) लभ-तव्य। लाभार्ह, पानेके योग्य।

लब्धशब्द (सं० त्रि०) लब्धनाम, नामवर, मशहूर।

लब्धसिद्धि (सं० त्रि०) लब्धा सिद्धिः येन। जिसने सिद्धि पाई हो।

लब्धा (सं० स्त्री०) लभ-क्त-टाप्। विप्रलब्धा नायिका। विप्रलब्धा देखो।

लब्धाङ्क (सं० पु०) गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो। जवाब।

लब्धानुज्ञ (सं० त्रि०) लब्धा अनुज्ञा येन। जिसने अनुज्ञा पाई हो।

लब्धावकाश (सं० त्रि०) लब्धः अवकाशः येन। जिसने अवकाश या छुट्टी पाई हो।

लब्धावसर (सं० त्रि०) जिसने कार्यसे अवसर ग्रहण किया हो, पेनसन पानेवाला

लब्धि (सं० स्त्री० लभ-क्तिन्। १ लाभ, प्राप्ति। २ हिसावका जवाव।

लब्धिम (सं० त्रि०) प्राप्त, उपार्जित।

लब्धोदय (सं० त्रि०) लब्धः उदयः उत्पत्तिर्येन्य। १ जात, उत्पन्न। २ जिसने सौभाग्य अर्जन किया हो।

लभन (सं० क्ली०) प्राप्त करना, हासिल करना।

लभस (सं० पु०) लभ (अत्यविचमोति। उण् ३।११७) इति असच्। १ वाजिवन्धनरज्जु, घोड़ा बांधनेकी रस्सी। इसे पिछाड़ो भी कहते हैं। २ धन। ३ याचक, मांगनेवाला।

लभ्य (सं० त्रि०) लभ्यते इति लभ (पोरदुपधात्। पा ३।१।९८)इति यत्। १ न्याययुक्त, मुनासिव। २ लब्धव्य, पाने योग्य।

लमक (सं० पु०) रमते इति रम (रमरश्च लापः। उण् २।३३) इति क्वुन् रस्य लत्वं। १ जार, उपपति। २ विलासी, लंपट।

लमगजा (हिं० पु०) इकतारा, ठठंवा।

लमघिचा (हिं० वि०) लम्बी गरदनवाला।

लमचा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बरसाती घास, जो काली चिकनी मिट्टीकी जमीनमें बहुत पाई जाती है।

लमछड़ (हिं० पु०) १ सांग, वरछी। २ पुरानी चालकी लंबी बंदूक। ३ कवूतरवाजोंकी लग्गी। (वि०) ४ पतला और लम्बा।

लमछुआ (हिं० वि०) जो आकारमें कुछ लम्बा हो, लम्बापन लिये हुए।

लमजक (हिं० पु०) कुशकी तरहकी एक घास जिसमें सुन्दर महक होती है। इसे 'ज्वराकुश' भी कहते हैं और ज्वरमें औषधके रूपमें देते हैं।

लमज्जुक (हिं० पु०) लमजक देखो।

लमटंगा (हिं० वि०) १ जिसकी टांगें लम्बी हों। (पु०) २ सारस पक्षी।

लमढींग (हिं० पु०) एक प्रकारका जङ्गली जानवर।

लमतड़ङ्ग (हिं० वि०) बहुत लम्बा या ऊँचा।

लमान—एक जाति। यह बम्बई प्रेसिडेन्सीके अहमदनगर, धारवाड़ आदि जिलोंमें रहती है और चारण-बंजारी नामसे प्रसिद्ध है। यह जाति राजपूतानेके मारवाड़ प्रदेशसे यहां आकर बस गई है। इस जातिके लोग चावन, होलकर, मधु, पवार, रतवार और सिन्दे आदि उपाधिधारी हैं। वर और कन्याकी उपाधि एक होनेसे विवाह नहीं होता। इसके अलावा विवाहमें और कोई अड़चन नहीं है। ये लोग हिन्दू हैं। सभी शिखा रखते हैं, लेकिन वेशभूषा और परिच्छद आदि वड़ा गंदा होता है। यहां तक, कि सप्ताहमें दो दिन भी स्नान नहीं करते।

गोकुलाष्टमी, दशहरा और दीवाली ये वड़ी धूमधामसे मनाते हैं। विवाह आदि कार्योंमें गांवके जोषी लोग ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। विवाह और अन्त्येष्टिके अलावा इनमें और कोई संस्कार नहीं है। इनमें विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। सन्तान आदिके उत्पन्न होने पर प्रसूति ४० दिन तक अशौच मानती हैं विवाहमें वरके साथ बारात जानेकी प्रथा नहीं है सिर्फ दो एक आदमी जाते हैं। खास कर उनके कोई धर्मगुरु नहीं हैं।

विवाहित पुरुष या रमणीकी मृत्यु होने पर ये शवको जलाते हैं। मृत्युके बाद आत्मीय स्वजनके अशौच नहीं होता। तीसरे दिन ही जाति कुटुम्बका भोज होता है। किसी तरहका श्राद्ध आदि नहीं होता। आपसमें किसी विषयकी मीमांसा करनेके लिये पंचायत बैठती है।

लमेताघाट—नर्मदा नदीके किनारेका एक शैल।

लम्घन्—काबुलके अंदर एक प्रदेश। इसका संस्कृत नाम लम्पाक है। लम्पाक देखो।

लम्न (सं० पु०) एक जाति।

लम्प (अं० पु०) दीपक, चिराग।

लम्पक (सं० पु०) जैनियोंका एक सम्प्रदाय। शैल देखो।

लम्पट (सं० त्रि०) १ व्यभिचारी, कामुक। (पु०) २ स्त्रीका उपपति, यार।

लम्पटता (सं० स्त्री०) लम्पट होनेका भाव, दुराचार।

लम्पा (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

लम्पाक (सं० पु०) १ लम्पट, दुराचारी । २ पुराणानुसार एक देशका नाम । इसे मुरण्ड भी कहते हैं। यह देश भारतके उत्तर-पश्चिममें था। (भारत द्रोणपर्व ११९।४२) ३ पद्मनाभकृत स्वरशास्त्रभेद।

लम्पाटह (सं० पु०) पटहवाद्य, नगाड़ा।

लम्फ (सं० पु०) प्लुतगति, उछाल।

लम्फन (सं० क्ली०) उछाल, कूदना।

लम्ब (सं० पु०) लम्बते इति लवि अवस्रंसने अच्। १ नर्त्तक, वह जो नाचता हो। २ पति। ३ उत्कोच, घूस। ४ अङ्ग। ५ शुद्धरागका एक भेद। ६ एक राक्षस जिसे श्रीकृष्णने मारा था। इसीको प्रलम्बासुर भी कहते हैं। ७ एक दैत्यका नाम। (हरिवंश ४३।४२) ८ ज्योतिषमें एक प्रकारकी रेखा जो विषुवरेखासे समानान्तर होती है। ९ एक मुनिका नाम। १० ज्योतिषमें ग्रहोंकी एक प्रकारकी गति। (स्त्री०) ११ विलम्ब देखो। (त्रि०) १२ दीर्घ, लम्बा।

लम्बक (सं० पु०) लम्ब स्वार्थे कन्। १ लम्ब, लम्बा। २ किसी पुस्तकका एक अध्याय। ३ ज्योतिषमें एक प्रकारके योग जो संख्यामें पन्द्रह होते हैं। ४ मुखका एक रोग।

लम्बकर्ण (सं० पु०) लम्बौ कर्णौ यस्य। १ छाग, बकरा। २ अंकोट वृक्ष। ३ राक्षस। ४ हस्ती, हाथी। ५ श्येनपक्षी, बाज चिड़िया। ६ शशक, खरगोश। ७ खर, गदहा। (त्रि०) ८ दीर्घ कर्णविशिष्ट, जिसके कान लंबे हों।

लम्बकेश (सं० पु०) लम्बः केश इवाग्रभागो यस्य। १ दीर्घाग्रयुक्त कुशमय विष्टर, लम्बे लम्बे कुशका बनाया हुआ आसन।

विवाहके समय वरके बैठनेके लिये विष्टर देना होता है। थोड़े कुशको ले कर उसके अग्र-भागमें वामावर्त्तसे ढाई बार लपेट दे कर अग्रभागको नीचेकी ओर खड़ा कर देनेसे विष्टर बनता है। विष्टर देखो। २ दीर्घकेशयुक्त, जिसके बड़े बड़े बाल हों।

लम्बकेशक (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

लम्बग्रीव (सं० पु०) उष्ट्र, ऊँट।

लम्बजठर (सं० त्रि०) लम्बोदर, लम्बा पेटवाला।

लम्बजिह्व (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

लम्बज्यका (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त ज्या रेखा भेद। Sine of co-latitude.

लम्बज्या (सं० स्त्री०) लम्बज्यका देखो।

लम्बतङ्क (सं० त्रि०) ताड़के समान लंबा, बहुत लंबा।

लम्बदन्ता (सं० स्त्री०) लम्बा दन्ता इव फलानि यस्याः। १ सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली। (त्रि०) २ बृहद्दशनविशिष्ट, जिसके दांत बड़े बड़े हों।

लम्बन (सं० क्ली०) लम्बते इति लम्ब-ल्युट्। १ नाभिलम्बित कण्ठिकादि, गलेका वह हार जो नाभि तक लटकता हो। पर्याय—ललन्तिका। २ अवलम्बन, आश्रय। ३ झूलनेकी क्रिया। (पु०) लम्बाल्यु। ४ कफ।

लम्बपयोधरा (सं० स्त्री०) १ लम्बमान स्तनयुक्त स्त्री, वह स्त्री जिसके स्तन लंबे हों। २ कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

लम्बबीजा (सं० स्त्री०) लम्बानि बीजानि यस्याः। सैंहली पिप्पली, सिंहल देशकी पिप्पली।

लम्बमान (सं० त्रि०) लम्ब-शानच्। लम्बायमान वस्तु, वह वस्तु या चीज जो लम्बी हो।

लम्बस्फिच् (सं० त्रि०) लम्बा स्फिक् यस्य। विपुल नितम्ब, जिसका चूतड़ चौड़ा हो।

लम्बांश (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार अक्षांश रेखा विशेष। अंगरेजीमें इसे Complement of latitude या Co-latitude कहते हैं।

लम्बा (सं० स्त्री०) १ लक्ष्मी। २ गौरी। ३ तिक्ततुम्बी, छोटा कड़ुवा कद्दू। ४ दक्षकी कन्याका नाम। (हरिवंश) ५ स्थावरविषके अन्तर्गत पत्रविष। ६ हिमालयकी कन्याका नाम। ७ लंबा देखो।

लम्बाक्ष (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

लम्बानि—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलेमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग हमेशा घूमते रहते हैं।

लम्बिका (सं० स्त्री०) लम्बते वा लम्ब-ण्वुल्-टापि अत इत्वं। तालूर्द्ध्व सूक्ष्मजिह्वा, गलेके अंदरकी घंटी। पर्याय-घण्टिका, क्षुधाश्रवा, गलशुण्डिका, अलिजिह्वा, अलिजिह्विका।

लम्बिकाकोकिला (सं० स्त्री०) देवताभेद।

लम्बित (सं० त्रि०) लम्बक क्त । १ लंबा। (पु०) २ मांस।

लम्बिन् (सं० त्रि०) लम्बयुक्त, लंबा।

लम्बिया—पञ्जाब-प्रदेशके बुसाहर राज्यान्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा० ३१° १६' उ० तथा देशा० ७८° २०' पू० के बीच पड़ता है। कुनावरसे क्रमशः उत्तर हिमालयको पार कर गया है। यह स्थान समुद्रकी तहसे १७ हजार फुट ऊँचा है।

लम्बुक (सं० पु०) १ एक नागका नाम। २ ज्योतिषमें एक प्रकारके योग जिनकी संख्या पन्द्रह है, लम्बक।

लम्बुषा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका हार जो सात नलका होता है।

लम्बोदर (सं० पु०) लम्बमुदरं यस्य। १ गणेश। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम। (भागवत १२।१।२२) (त्रि०) ३ औदरिक, पेटु।

लम्बोष्ठ (सं० पु०) लम्ब ओष्ठो यस्य, ओत्वोष्ठयोः समासे इति अकारलोपेन साधुः। १ उष्ट्र, ऊँट। २ एक प्रकारके क्षेत्रपाल देवता। (त्रि०) ३ लम्बमान ओष्ठयुक्त, जिसका होंठ लम्बा हो।

लम्बौष्ठ (सं० पु०) १ उष्ट्र, ऊँट। (त्रि) २ दीर्घ ओष्ठ विशिष्ट, जिसका होंठ लंबा हो।

लम्भ (सं० पु.) लाभ, फायदा।

लम्भक (सं० त्रि०) प्रापक, लाभ करनेवाला।

लम्भन (सं० क्ली०) लभि लभ धातु ल्युट्। १ प्रतिलम्भ, फायदा उठाना। २ ध्वनि। ३ लाञ्छना, कलंक।

लम्भा (सं० स्त्री०) लभि लभ-अच् टाप्। वारशृङ्खला।

लम्माड़ी—दाक्षिणात्य आर्कट विभागवासी एक घूमनेवाली जाति।

लाम्भूक (सं० त्रि०) नित्यग्राही, प्रतिदिन लेनेवाला।

लय (सं० पु०) ली-अच्। १ विनाश, लोप। २ संश्लेष, मिल जाना। ३ प्रलय, प्रकृतिका विरूप परिणाम। वेदान्तसारमें लिखा हैं, कि अखण्ड वस्तुका अवलम्बन कर चित्तवृत्तिकी जो निद्रा होती है उसको लय कहते हैं।

"अखण्डवस्त्ववलम्बनेन चित्तवृत्तेर्निद्रा" (वेदान्तसा०)

सुबोधिनी-टीकाके मतसे—यह लय दो प्रकारका है, प्रथम प्रकारका लय जैसे—शमदमादि अठासी योगानुष्ठान द्वारा निर्विकल्पक समाधिमें परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें चित्तवृत्तिकी लीनतारूप जो अवस्था है उसको लय कहते है। अत्यन्त तपे लोहेमें जलविन्दु फेंकनेकी तरह अर्थात् तपे लोहेके वरतनमें जल फेंकते ही वह जिस प्रकार सूख जाता है उसी प्रकार योगाङ्गादिके अनुष्ठान द्वारा निर्विकल्प समाधिलाभ होनेसे चित्तवृत्तिके धर्म दुःखादि नहीं हो सकते। जल जिस प्रकार तपे लोहेमें सूख जाता है, उसी प्रकार चित्तवृति भी परमानन्द ब्रह्ममें लीन हो जाती है। अतएव जब चित्तवृत्ति लीन हो गई, तब चित्तकी वृत्ति जो विक्षेपादि है वे फिर उपस्थित नहीं होती। मूर्च्छावस्थाकी तरह आलस्यादिसे चित्तवृत्तिके वाह्य शब्दादि विषय ग्रहण न कर सकनेसे प्रत्येक् आत्मस्वरूपमें अनवभासनके कारण चित्तवृत्तिका जो शुद्धीभाव होता है वही द्वितीय लय है। तामसिक जिस किसी विचार द्वारा चित्तवृति जब शुद्ध वा जड़ हो जाती है, तभी यह लय होता है।

४ संगीतमें नृत्य, गीत और वाद्यकी समता, नाच, गाने और बाजेका मेल। सङ्गीत-दामोदरमें लिखा है कि हृदय, कण्ठ और कपाल इन तीन स्थानोंमें लयकी स्थिति है। किसी किसी पण्डितका कहना है, कि लय ४० प्रकारका है। भगवान् एकमात्र लयमें वशीभूत हैं तथा जनार्द्दन इसमें लीन हैं।

४० प्रकारके लय ये सब हैं—द्विपदी, वलतिका, झल्लिका, छिन्नखण्डिका, ग्रामध्रुव, छिन्ना, खण्डधावा, फड़कक, जम्भट्टिका, कलतिक, खण्डक, खरिक, चतुरस्र, अर्द्ध चतुरस्र, नर्त्तक,त्र्यस्र, पष्ठी, उन्दालना, अवकृष्ठा, नन्दघटी, कदम्ब, चर्च्चरी, घट्टा, मिश्र, अर्द्धवनिता, अतिचित्र, समय, वलित, अर्द्धदल, आविद्ध, टङ्कक, चित्र, विचित्रिक, आन्ध्री, विकृतधावा, मुकुल, विलोलक, रमणीय और करकण्टक। (सङ्गीतदामो०)

यह समता नाचनेवालेके हाथ, पैर, गले और मुंहसे प्रकट होती है। सङ्गीतदामोदरमें हृदय, कण्ठ और कपाल लयके स्थान माने गये हैं।

५ प्रवेश, एक पदार्थका दूसरेमें मिलना या घुसना। ६ एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें इस प्रकार मिलाना कि

वह तद्रूप हो जाय और उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय। ७ चित्तकी वृत्तियोंका सब ओरसे हट कर एक ओर प्रवृत्त होना, ध्यानमें डूबना। ८ गूढ़ अनुराग, लगन। ९ कार्यका अपने कारणमें समाविष्ट होना या फिर कारण के रूपमें परिणत हो जाना। १० स्थिरता, विश्राम। ११ मूर्च्छा, बेहोशी। १२ वह समय जो किसी स्वरको निकालनेमें लगता है। यह तीन प्रकारका माना गया है—द्रुत, मध्य और विलंबित। १३ एक प्रकारका पाटा जिससे वैदिककालमें खेत जोत कर उसको मिट्टी को सम या बराबर करते थे। इसका उल्लेख शुक्ल यजुर्वेदकी वाजसनेयसंहितामें है। (स्त्री०) १४ गानेका स्वर, गानेमें स्वर निकालनेका ढंग। १५ गीत गानेका ढंग या तर्ज़, धुन। १६ सङ्गीतमें सम। १७ लामज्जक, लामज्ज नामक तृण। (त्रि०) १८ आवरणात्मक, ढकनेवाला।

लयन (सं० क्ली०) १ विश्राम, शान्ति। २ आश्रय, विश्राम स्थान। ३ आश्रयग्रहण, पनाह लेना।

लयपुत्री (सं० स्त्री०) लयस्य पुत्रीव, नर्त्तकी।

लययोग (सं० पु०) तन्त्रोक्त साधनयोगभेद।

(प्राणतो० २४०,३११)

लयली-मजनु—पारस्योपाख्यानोक्त नायक नायिकाभेद। इनके प्रेम-चित्रके आधार पर बंगला भाषामें एक ग्रन्थ लिखा गया है।

लयादा—छोटा नागपुर विभागान्तर्गत एक शैलश्रेणी। यह सिंहभूम ज़िले तक पूर्व पश्चिममें फैली हुई है।

लयारम्भ (सं० पु०) लयस्य आरम्भो यस्मात्। नट।

लयालम्ब (सं० पु०) लयमालम्बते इति लम्ब-अण्। नट।

लरखराना (हिं० क्रि०) लड़खड़ाना देखो।

लरजना (हिं० क्रि०) १ कांपना, हिलाना। २ भयभीत होना, दहल जाना।

लरज़ा (फा० पु०) १ कंप, थरथराहट। २ एक प्रकारका ज्वर जिसमें रोगीका शरीर ज्वर आते ही कांपने लगता है, जूड़ी। ३ भूकम्प, भूचाल।

लरावर—मध्यभारतकी भोपाल एजेन्सीके धार और देवास राज्यके अन्तर्गत एक विभाग। भू-परिमाण ३० वर्गमील है। १८८० ई०में यहांके जागीरदार रामचन्द्र राव पोवारकी जब मृत्यु हो गई, तब उनके भतीजेको मासिक वृत्ति दे कर यह सम्पत्ति धार और देवास राज्यमें मिला कर ली गई।

लर्ज (हिं० पु०) सितारके एक तारका नाम। यह छः तारोंमें पांचवाँ और पीतलका होता है।

ललक (हिं० स्त्री०) प्रबल अभिलाषा, गहरी चाह।

ललना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको पानेकी गहरी इच्छा करना, ललचना। २ अभिलाषासे पूर्ण होना, चाहकी उमंगसे भरना।

ललकार (हिं० स्त्री०) १ युद्धके लिये उच्च स्वरसे आह्वान, प्रचारण, हाँक। २ किसीको किसी पर आक्रमण करनेके लिये पुकार कर उत्साहित करना, लड़नेका बढ़ावा।

ललकारना (हिं० क्रि०) १ युद्धके लिये उच्च स्वरसे आह्वान करना, हाँक लगाना। २ किसी पर आक्रमण करनेके लिये किसीको पुकार कर उत्साहित करना, लड़नेके लिये उकसाना या बढ़ावा देना।

ललचना (हिं० क्रि०) १ लालच करना, पानेकी प्रबल इच्छा करना। २ किसी बातकी प्रबल इच्छा करना, लालसा करना। ३ मोहित होना, लुब्ध होना।

ललचाना (हिं० क्रि०) १ किसीके मनमें लालच उत्पन्न करना, लालसा उत्पन्न करना। २ मोहित करना, लुभाना। ३ कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रख कर किसीके मनमें लालच उत्पन्न करना, कोई वस्तु दिखा कर उसके पानेके लिये अधीर करना।

ललचौहाँ (हिं० वि०) लालचसे भरा, ललचाया हुआ।

ललजिह्व (सं० पु०) ललन्ती जिह्वा यस्य। १ उष्ट्र, ऊंट। २ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) ३ जीभ लपलपाता हुआ। ४ भयंकर, खूंखार।

ललदम्बु (सं० पु०) ललत् चलदम्बु यत्र। लिम्पाक, एक प्रकारका नीबू।

ललदेया (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जिसकी फसल अगहनमें तैयार होती है।

ललन (सं० क्ली०) लल-ल्युट्। १ केलि, क्रीड़ा। २ चालन, चलानेकी क्रिया। (पु०) लल्यते ईप्स्यते इति लल-कर्मणि ल्युट्। ३ प्यारा बालक, दुलारा लड़का। ४ लड़का, बालक। ५ नायकके लिये प्यारका शब्द,

प्रिय नायक या पति। ६ साल, साखूका पेड़। ७ प्रियाल, चिरौंजीका पेड़।

ललनदास—डलमऊके रहनेवाले एक ब्राह्मण। इनका जन्म सं० १८३१में हुआ था। ये बड़े महात्मा हो गये हैं। इनकी शान्तरसकी कविता उत्तम है।

ललना (सं० स्त्री०) ललयति ईप्सति कामान् लल-ल्यु टाप्। १ कामिनी, स्त्री। २ जिह्वा, जीभ। ३ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण और दो सगण होते हैं।

ललनाप्रिय (सं० क्ली०) ललनानां प्रियं। १ ह्रीवेर। (पु०) २ कदम्ब। ३ कामिनीवल्लभ, स्त्रियोंका प्रिय।

ललनिका (सं० स्त्री०) ललना, स्त्री।

ललन्तिका (सं० स्त्री०) ललन्त्येव स्वार्थे कन्। १ नाभिलम्बकण्ठिकादि, नाभि तक लटकती हुई माला या हार। २ गोधा, गोह।

लला (हिं० पु०) १ प्यारा या दुलारा लड़का। २ लड़का, कुमार। ३ लड़के या कुमारके लिये प्यारका शब्द। ४ नायक या पतिके लिये प्यारका शब्द, प्रिय नायक या पति।

ललाई (हिं० स्त्री०) लालिमा, सुर्खी।

ललाक (सं० पु०) शिश्न, लिङ्गेन्द्रिय।

ललाट (सं० क्ली०) ललं ईप्सां अटति ज्ञापयति अट-अण्। १ अवयवविशेष, माथा। संस्कृत पर्याय—अलिक, गोधि, महाशङ्ख, भाल, कपालक, अलीक, ललाटक। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि जिसका ललाट उन्नत, विपुल और विषम होता वह निर्धन तथा जिसका अर्द्धचन्द्राकृति-सा होता वह धनवान् होता है। इसी प्रकार शुक्तिविशाल होनेसे धार्मिक और शिराल होनेसे पापी, स्वस्तिकादि रेखा और उन्नतशिरा रहनेसे धनवान्, संवृत होनेसे कृपण, उन्नत होनेसे नृप तथा निम्न होनेसे पापी होता है। ललाट पर तीन रेखा रहनेसे सौ वर्षकी परमायु, चार रेखा रहनेसे ९५ वर्षकी परमायु और राजा, रेखा नहीं रहनेसे ९० वर्षकी परमायु, रेखा छिन्न भिन्न होनेसे पुंश्चल, केशान्त-तक रहनेसे ८० वर्षकी, ५, ६, ७ वा अनेक रेखा रहनेसे ४० वर्षकी, भ्रूलग्नगामी रेखा होनेसे ३० वर्षकी, बाईं ओर वक्र रेखा होनेसे २० वर्षकी परमायु और रेखा छोटी होनेसे अल्पायु होती है। (गरुड़पु०) सामुद्रिकमें भी इसका विशेष विवरण दिया गया जो सामुद्रिकशास्त्रमें अभिज्ञ हैं, वे ललाट देख कर मनुष्यकी आयु और शुभाशुभका हाल कह सकते हैं। २ भाग्यका लेख, किस्मतका लिखा।

ललाटक (सं० क्ली०) ललाटमेव ललाट कन्। १ प्रशस्त ललाट। २ ललाटमात्र, मस्तक।

ललाटन्तप (सं० त्रि०) ललाटं तपतीति ललाटन्तप (असूर्यललाटयोर्दृशितपोः। पा ३।२।३६) इति खश् मुम्। १ ललाटतापक, ललाट-तापकारी। (पु०) २ सूर्य।

ललाट-पटल (सं० क्ली०) मस्तकका तल, माथेकी सतह।

ललाटपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (पा ५।४।७४)

ललाटफलक (सं० क्ली०) कपाल, ललाट-पटल।

ललाटरेखा (सं० स्त्री०) कपालका लेख, भाग्यलेख। कहते हैं, कि विधाता जातकके षष्ठी जागर वासर अर्थात् छठी रातमें उसके ललाटमें चिह्न कर देते हैं।

ललाटाक्ष (सं० पु०) ललाटे अक्षिणी यस्य। शिव।

ललाटाक्षी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

ललाटिका (सं० स्त्री०) ललाटे भवोऽलङ्कारः (कर्णललाटात् कनलङ्कारे। पा ४।३।६५) इति कन्। १ माथे पर बांधनेका एक गहना, टीका। २ माथे परका टीका, तिलक।

ललाटूल (सं० त्रि०) उच्च कपालयुक्त, जिसका ललाट ऊंचा हो।

ललाटेन्दुकेशरी—उड़िष्याके केशरीवंशीय एक राजा। उड़िष्या देखो।

ललाट्य (सं० त्रि०) ललाट-सम्बन्धीय, ललाटका।

ललाम (सं० क्ली०) लड़ विलासे क्विप्, तम् अमति प्राप्नोतीति अम गतौ अन् डस्य लत्वं। १ चिह्न, निशान। २ ध्वज, दंड और पताका। ३ शृङ्ग, सींग। ४ भूषण, अलंकार। ५ घोड़े या सिंहकी गर्दन परका बाल, अयाल। ६ तुरङ्ग, घोड़ा। ७ प्रभाव। ८ घोड़े या गायके माथे परका चिह्न अर्थात् दूसरे रंगका चिह्न। ९ घोड़ेका गहना। १० रत्न। (त्रि०) ११ [illegible] श्रेष्ठ। १२ [illegible]गाय, सुन्दर। १३ लाल रंगका, सुर्ख।

ललामक (सं० क्ली०) माथेमें लपेटनेकी माला।

ललामगु (सं० पु०) शिश्न, लिङ्गेन्द्रिय।

ललामन् (सं० क्ली०) १ ललाम। २ पुरुष।

ललामात् (सं० त्रि०) सुन्दर अलंकृत।

ललामी (सं० स्त्री०) १ कर्णभूषणविशेष, कानमें पहनने-का एक गहना। २ सुन्दरता। ३ लालिमा, सुर्खी।

ललित (सं० क्ली०) लल-क्त। १ शृङ्गारभावज क्रियाविशेष। शृङ्गाररसमें एक कायिक हाव या अङ्गचेष्टा। इसमें सुकुमारता (नजाकत)-के साथ भौं, आँख, हाथ, पैर आदि अङ्ग हिलाए जाते हैं। कहीं कहीं भूषण आदिसे सजानेको ललित भाव कहा है। (पु०) लल्यते ईप्सते इति लल कर्मणि क्त। २ षाड़व जातिका एक राग। यह भैरव रागका पुत्र माना जाता है। इसमें निषाद स्वर नहीं लगता तथा धैवत और गान्धारके अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं। इसके गानेका समय रात्रिके तीस दण्ड बीत जाने पर अर्थात् प्रातःकाल है। ३ एक विषम वर्णवृत्त। इसके पहले चरणमें सगण, जगण, सगण, लघु; दूसरे चरणमें नगण, सगण, जगण, गुरु; तीसरेमें नगण, नगण, सगण, सगण, और चतुर्थमें सगण, जगण, सगण जगण होता है। ४ कुछ आचार्योंके मतसे एक अलङ्कार। इसमें वर्ण्य वस्तु (बात)-के स्थान पर उसका प्रतिबिम्ब वर्णन किया जाता है।

(त्रि०) ५ सुन्दर, बढ़िया। ६ ईप्सित, मनचाहा। ७ चलित, चलता हुआ।

ललितक (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

ललितकला (सं० स्त्री०) वे कलाएं या विद्याएं जिनके व्यक्त करनेमें किसी प्रकारके सौन्दर्यकी अपेक्षा हो।

विशेष विवरण 'कला' शब्दमें देखो।

ललितकान्ता (सं० स्त्री०) ललिता कान्ता च। मङ्गलचण्डिका, दुर्गा।

ललितचैत्य (सं० पु०) चैत्यभेद, एक प्रकारका मन्दिर या धर्मशाला।

ललिततल (सं० पु०) संगीतका एक ताल।

ललितपद (सं० त्रि०) १ सुन्दर पदयुक्त, जिसमें सुन्दर पद या शब्द हों। (पु०) २ एकमात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १२के हिसाबसे २८ मात्राएं होती हैं। अन्तमें दो गुरु रखे जाते हैं। इसे सार, नरेन्द्र और दोवे भी कहते हैं।

ललितपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

(राजतरङ्गिणी ४।१८७)

ललितपुर—१ युक्तप्रदेशके झांसी जिलेका एक उपविभाग। यह ललितपुर और महरोनी तहसील ले कर बना है।

२ झांसी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २४°१६´ से २५°१२´ उ० तथा देशा० ७८°१०´ से ७८°४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०५८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें ललितपुर और तालबहत नामक २ शहर और ३६८ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलके पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें बेतवा-राज्य है। यहांकी जमीन काली है।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २४°४२´ उ० तथा देशा० ७८°२८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है।

ललितपुरका कोई प्राचीन इतिहास नहीं है। पहले यहां असभ्य गोंड़ जातिका वास था। आज भी विन्ध्यशैलमालाके शिखर पर उस पहाड़ी जातिका प्रतिष्ठित देवमन्दिरादि उस अतीत स्मृतिका परिचय देता है। वर्त्तमान समयमें भी पर्वत परके कुछ ग्रामोंमें गोंड़ जातिका वास देखा जाता है।

परवर्त्तीकालमें यहां जब आर्य-उपनिवेश स्थापित हुआ, तब वे गोंड़ लोग क्रमशः हिन्दुधर्म पर विश्वास कर उसके अनुरागी तथा थोड़े ही समयके अन्दर शिक्षा और सभ्यताके गुणसे उन्नत हो गये। उन लोगोंकी स्थापत्यविद्याके परिचय स्वरूप आज भी अट्टालिका और जलनालियां यहां विद्यमान हैं। उनके अधःपतनके बाद महोवाके चन्देलवंशीय राजोंने यहां आधिपत्य फैलाया। बांदा और हमीरपुरमें उनकी राजधानी थी।

बांदा और हमीरपुर शब्द देखो।

१२वीं सदीके शेष भागमें इस चन्देल-राजवंशका अधःपतन हुआ। उस समय यह स्थान छोटे छोटे सामन्त राजोंके शासनाधीन हो गया। उन सामन्तोंने दिल्लीके मुसलमान राजोंकी प्रधानता स्वीकार नहीं की। उन लोगोंने सम्पूर्ण स्वाधीनभावसे राज्यशासन किया था।

१४वीं सदीमें दुर्द्धर्ष बुन्देला जातिने इस प्रदेश पर आक्रमण और अधिकार किया। उन्होंने पहले झांसीमें और पीछे सारे बुन्देलखण्डमें अपना प्रभाव फैलाया था।

१७०२से १७८८ ई० तक रुद्रप्रतापके वंशधर नौ राजोंने चन्देरीका शासन किया था। बीच बीचमें यहां दिल्लीके मुगल-बादशाहोंका आधिपत्य फैला था। अन्तिम नवम राजा रामचांद जब तीर्थयात्रा करने अयोध्या गये, तब उनकी अनुपस्थितिमें मराठोंने इस प्रदेशमें अपना प्रभाव फैलाया; किन्तु वे लोग अधिक दिन तक इस प्रदेशमें प्रतिष्ठालाभ न कर सके। १८०० ई०में रामचांदके लड़केको वे लोग सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बनानेसे बाध्य हुए। इसके दो वर्षके भीतर किसी अमात्यके षड़यन्त्रसे राजकुमार यमपुर सिधारा। पीछे उसके भाई मूरप्रह्लाद तख्त पर बैठे। वे उच्छृङ्खल और शासनकार्यमें अकर्मण्य थे। उनके अधीनस्थ ठाकुर सामन्त पूर्वाभ्यस्त लुण्ठनप्रवृत्तिके दास हो कर आस पासके राज्योंमें ऊधम मचाते थे। राजा मूरप्रह्लाद उन्हें काबूमें न कर सके। बार बार इस प्रकार आक्रमण और लुण्ठनसे जब उन लोगोंने १८११ ई०में ग्वालियरके सीमान्तमें पहुंच सिन्देराजकी प्रजा पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया, तब ग्वालियरपति उसका दमन करनेके लिये आगे बढ़े। महाराजके हुकुमसे सिन्दे सेनाने चन्देरी पर चढ़ाई कर दी। ग्वालियरके सेनापति जिन बाप्तिस्ते (Jean Baptiste)-ने दलबलके साथ अग्रसर हो कोटरावंशी, राजवाड़ा और ललितपुर दुर्गको अधिकार किया। मूरप्रह्लाद झांसी भाग गये, किन्तु उनके सेनापतिगण नगररक्षामें अग्रसर हुए। कई सप्ताह अवरोधके बाद असीम साहससे युद्ध करनेके चन्देरी-सेनाने आत्मसमर्पण किया। एक ठाकुर-सामन्तकी विश्वासघातकतासे चन्देरी शत्रुके हाथ लगा। देखते देखते तालबहोतवासीने भी सिन्दे-राजाकी शरण ली। सिन्दे महाराजने तब इस प्रदेशका शासनभार ग्रहण कर कर्नल बेप्तिस्तेको वहांका शासनकर्त्ता बनाया।

ग्वालियर-महाराजकी कृपासे पूर्वतन जागीरदारोंको अपनी अपनी जागीर वापस मिली। राजा मूरप्रह्लादने अपने भरणपोषणके लिये ३१ ग्राम पाये।

इसके बाद ३५ वर्ष तक यहां शान्ति विराजती रही। सिन्देराजकी निर्दिष्ट शासन-प्रणालीसे यहांका शासनकार्य निर्विघ्नपूर्वक चलने लगा। किन्तु बुन्देलागण पहलेके राजाको राजा बना कर अकस्मात् बागी हो गये। इस पर सिन्दे महाराजने फिरसे कर्नल बाप्तिस्तेको शान्तिस्थापन करनेके लिये भेजा। उन्होंने ललितपुर-राज्यको तीन भागोंमें बांट दिया। एक भाग राजा मूरप्रह्लादको मिला और दो भाग सिन्देराजके राज्यभुक्त रहा। राजा मूरप्रह्लाद यह छोटा राज्य ले कर भी अपने अधीनस्थ ठाकुर सामन्तोंके साथ लड़ते लड़ते १८४२ ई०में परलोकको सिधारे। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के मर्द्दनसिंह राजा हुए। उक्त घटनाके दो वर्ष बाद महाराजपुर युद्धका अवसान हुआ। सिन्देराजने ग्वालियर-सेनादलके खर्च वर्चके लिये जामीन-स्वरूप अंगरेजोंके हाथ चन्देरी-राज्यका अपना अंश सौंप दिया।

अंगरेज-गवर्मेण्टने वह सम्पत्ति पा कर उसे एक स्वतन्त्र जिला बना लिया। किन्तु सन्धिके शर्त्तानुसार सिन्दे-महाराजका प्रभुत्व अक्षुण्ण रखने और प्रजावर्गके स्वाधिकारकी रक्षा करनेके लिये अंगरेज-गवर्मेण्ट राजी हुई। सिपाहीविद्रोह तक यह उसी प्रकार चलता रहा। बाणपुरराज मर्दनसिंहने अपने सम्मानह्राससे दुःखित हो कर इस समय बुन्देला सरदारोंको अंगरेजोंके विरुद्ध उभाड़ा। १८५७ ई०की १२वीं जूनको राजा मर्द्दनसिंह विद्रोहिदलसे परिवृत हो झांसी और ग्वालियरके विद्रोहियोंके साथ मिल गये। इस प्रकार सैकड़ों विद्रोहीसेना तथा अङ्गरेजोंके देशीय सेनानायकोंको अपने दलमें ला कर राजा मर्द्दनसिंहने अपनेको बाणपुरका स्वाधीन राजा घोषित कर दिया। उन्होंने अङ्गरेजोंसे लड़नेकी इच्छासे बाणपुरमें बन्दूक बनानेका एक कारखाना खोला। राजाको सागर जिलेके उत्तर अपना अधिकार फैलाते देख अङ्गरेज गवर्मेण्ट निश्चिन्त न रह सकी। १८५८ ई०के जनवरी मासमें सेनापति सर ह्यु रोजके अधीनस्थ सेनादलने उन्हें आक्रमण कर परास्त किया। राजा मर्दनसिंह बनबधियाकी लड़ाईमें हार कर चन्देरीकी ओर भागे। मार्च मासमें अङ्गरेजी-सेनाने

उन्हें ललितपुरसे वाणपुर और तालवहत्की ओर खदेरा। राजाकी पराजयसे अधीनस्थ सेनादलने डर कर शान्तभाव धारण किया। इस समय ग्वालियरका विद्रोह-दमन करनेके लिये अङ्गरेजी सेना चन्देरीसे चली जानेको वाध्य हुई। इधर विद्रोही-दलने फिरसे चन्देरी-राज्यको हस्तगत कर लिया। इसके बाद उसी साल-के अक्तूवर मासमें अङ्गरेजी-सेनाने पुनः ललितपुर पर चढ़ाई कर दी। बुन्देलागण भीम-विक्रमसे युद्ध करके भी आत्मरक्षा न कर सके। आखिर उन्होंने ललितपुर अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। इस विद्रोहके समय बुन्देल ठाकुर-सरदारोंने आपसमें विद्वेषभाव दिखा कर अपना सर्वनाश कर डाला। सिपाही-विद्रोहके वाद यहां शान्ति स्थापित हुई। अशिक्षित सरदार अंगरेज-गवर्मेण्टके कठोर शासनसे नियन्त्रित हो शान्तिमय जीवन वितानेको वाध्य हुए। तभीसे यहां और कोई उपद्रव न हुआ।

शहरके निकट ठाकुर-सरदारोंके निर्मित वासभवन और दुर्ग देखे जाते हैं। सभी दुर्गोंका अधिकांश ध्वंसावस्थामें पड़ा है। १८५८ ई०में ललितपुर-विजय-के बाद सेनापति सर ह्यु रोजने उनमेंसे बहुतोंको तोड़ फोड़ डाला। विन्ध्यशैलश्रेणीके समुन्नत-शिखर पर बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखा जाता है। वे सब प्राचीन गोंड़-अधिवासियोंकी कीर्त्ति हैं। वर्त्तमान जैन अधिवासियोंके उद्योगसे यहां एक सुन्दर मन्दिर बनाया गया है। शहरमें १८७० ई०को म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। यहांसे चमड़ा और घी दूसरे दूसरे देशों में भेजा जाता है। शहरमें चार स्कूल हैं।

ललितपुराण (सं० क्ली०) बौद्धोंका 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ जिसमें बुद्धका चरित लिखा है।

ललितप्रहार (सं० पु०) अल्प प्रहार।

ललितललित (सं० क्ली०) अत्यन्त सुन्दर।

ललितलोचन (सं० त्रि०) १ सुन्दर चक्षु, उत्तम नेत्र। (स्त्री०) २ विद्याधर वाणदत्तकी कन्या।

ललितवनिता (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री।

ललितविस्तर (सं० पु०) बौद्धोंका जीवनचरित-विषयक सुप्राचीन एक बौद्धग्रन्थ। गाथा देखो।

ललितव्यूह (सं० पु०) १ बौद्धशास्त्रके अनुसार एक समाधि। २ देवपुत्रभेद। ३ बोधिसत्त्वभेद।

ललिता (सं० स्त्री०) ललित टाप्। १ कस्तूरी। २ दारी, बेवाई। ३ नदीविशेष। कालिकापुराणमें लिखा है, कि पुराकालमें ब्रह्मनन्दन वशिष्ठ निमिराजके शापसे तथा राजर्षि निमि भी वशिष्ठके शापसे देहहीन हो गये। वशिष्ठने ब्रह्माके उपदेशसे कामरूपपीठमें सन्ध्याचल पर घोर तपस्या की। विष्णुने तपस्यासे संतुष्ट हो कर उन्हें वर दिया। उस वरके प्रभावसे वशिष्ठने अमृतकुण्ड बनाया। इसी कुण्डके पूर्व ललिता नामक मनोहारिणी और दक्षिण-सागरगामिनी एक नदी है। महादेवजी उस नदीको लाये थे। वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयाको इस नदीमें स्नान करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। ललिता नदीके पूर्व किनारे भगवान् नामक एक पर्वत है। उस पर्वत पर भगवान् विष्णु लिङ्गरूपमें विराजित हैं। जो शुक्ला द्वादशीको ललितामें स्नान कर इस पर्वत पर भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं उन्हें इस लोकमें नाना सुख और परलोकमें विष्णुलोककी गति होती है।

(कालिकापु० ८१ अ०)

बृहन्नीलतन्त्रके २०वें अध्यायमें इस तीर्थका हाल लिखा है।

४ पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिके अनुसार राधिकाकी प्रधान आठ सखियोंमेंसे एक। गोलोक रास-मण्डलमें श्रीमती राधिकाके लोमकूपसे इन सब गोपियों-की उत्पत्ति हुई थी। (ब्रह्मवैवर्त्तपु०)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि जो ललिता हैं वे ही दुर्गा तथा राधिका हैं। इनमें कोई भेद नहीं है।

५ एक रागिणी जो सङ्गीतदामोदर और हनुमत्के मतसे मेघरागकी और सोमेश्वरके मतसे वसन्तरागकी पत्नी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स, ग, म, ध, नि, स। अथवा स, रि, ग, म, प, ध, नि, स (प्रथम) ध, नि, स, ग, म, ध (द्वितीय)। इसका ध्यान—

"प्रफुल्लसप्तच्छदमाल्यकण्ठा सुगौरकान्तिर्युवती सुदृष्टिः।
विनिश्वसन्ती सहसा प्रभाते विलासवेशा ललिता प्रदिष्टा॥"

(सङ्गीतरत्नाकर)

६ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं।

ललितातन्त्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका तन्त्र।

ललितातृतीयाव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका योषिद्व्रत।

ललितादित्य—काश्मीरके एक राजा। कश्मीरराज तारापीड़के परलोक सिधारने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। जिस समय राजा तारापीड़का स्वर्गवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीरके अन्तर्गत काश्मीरके एक शासक थे। ललितादित्यको स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था, कि मुझे समस्त काश्मीरके शासनका भार मिलेगा।

काश्मीरके सिंहासन पर बैठते ही ललितादित्यने समूचे जम्बूद्वीपको अपने कब्जेमें कर लिया। दिग्विजयके लिये जब वे युद्ध यात्रा करते थे, तब डर कर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था।

ललितादित्यने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर हमला किया था। अगणित सेना इकट्ठी कर यशोवर्मा रणभूमिमें उतरे। किन्तु यशोवर्माकी अगणित सेना राजा ललितादित्यके प्रतापानलमें भस्म हो गई। अन्तमें यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्रसे भाग गये। इन्हीं कनौजपति राजा यशोवर्माकी सभामें भवभूति आदि महाकवि थे। कनौज अधिकार करनेके बाद राजा ललितादित्य पूर्वकी ओर दिग्विजयमें आगे बढ़े। इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय यात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी। दिग्विजयमें इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे। इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नामका एक कीर्त्तिस्तम्भ प्रतिष्ठित किया था। वह स्तम्भ पत्थरका था और ५४ फुट ऊंचा था। इन्होंने ३६ वर्ष ७ महीने ११ दिन राज्य किया था।

ललितादित्य २य—काश्मीरके एक राजा।

ललितादित्यपुर (सं० क्ली०) ललितादित्य द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर।

ललितापञ्चमी (सं० स्त्री०) आश्विन महीनेकी शुक्ला पञ्चमी। इसमें ललितादेवी (पार्वती)की पूजा होती है।

ललितापीड़—काश्मीरके एक राजा। ये जयापीड़की रानी दुर्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ललितापीड़ बड़े ही इन्द्रियपरायण थे। राजकार्यकी ओर उनका कुछ भी ध्यान न था। इनके राज्यकालमें दुराचारकी वृद्धि हुई थी और वेश्याओंकी प्रधानता हो गई थी। इनके नारकी पिता जयापीड़ने पापकर्मोंके द्वारा जो धन संचय किया था, इस समय पुत्र ललितापीड़ उसका उचित व्यय करने लगे। धूर्त्त दुराचारियोंने राजाको वेश्या-विद्यामें निपुण कर दिया। वीर अथवा पण्डितोंका आदर करना वे एकदम भूल गये। भड़ुओं और मसखरों ही का आदर दरबारमें होता था। ललितापीड़ इतने दुर्वृत्त हो गये कि एक क्षण भी स्त्रियोंको विना देखे उन्हें चैन नहीं पड़ता था। जो राजा सर्वदा दिग्विजयमें प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ानेमें लगे रहते थे, ललितापीड उन्हें मूर्ख कहता था। इन दुराचारोंका फल यह निकला कि ललितापीड़के मन्त्री आदि सबोंने अपना अपना पद छोड़ दिया। इस राजाने ब्राह्मणोंको दी हुई वृत्ति छीन ली थी। इस दुराचारी राजाका शासन काश्मीरमें १२ वर्ष तक रहा।

ललितापुर—एक प्राचीन नगर। यहां ललितादेवी विराजित हैं। (वृहन्नील० २२) ललितपुर देखो।

ललिताव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका व्रत।

ललिताषष्ठी (सं० स्त्री०) भाद्रकृष्ण षष्ठी। जिस तिथिको स्त्रियां पुत्रकी कामनासे या पुत्रके हितार्थ ललिता देवी (पार्वती)का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं उसीका नाम ललिताषष्ठी है। पूजा कुश और पलाशकी टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ा कर होती है।

ललितासप्तमी (सं० स्त्री०) ललिताख्या सप्तमी। भाद्रमासका शुक्लसप्तमी व्रतविशेष। उक्त सप्तमी-तिथिमें व्रतका अनुष्ठान किया जाता है, इसलिये इस व्रतका नाम ललितासप्तमीव्रत है। इसे कुक्कुटीव्रत भी कहते हैं।

ललितोपमा (सं० स्त्री०) एक अर्थालङ्कार। इसमें उपमेय और उपमानकी समता जतानेके लिये सम, समान, तुल्य लौं, इव आदिके वाचक पद न रख कर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं।

ललित्थ—पुराणानुसार एक प्राचीन जनपद। (मार्क० ५७।३७)

ललिथ (सं० पु०) जातिविशेष।

लली (हिं० स्त्री०) १ लड़कीके लिये प्यारका शब्द। २ दुलारी लड़की, लाड़ली लड़की। ३ नायिकाके लिये प्यारका शब्द, प्रेमिका।

ललीतिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थ। यह चम्पा जनपदमें अवस्थित है। (भारत३।८४।१२६)

ललयान (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपद।

(राजतर० ६।१८३)

लल्ल—भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी। इसका सिद्धान्त आर्य ज्योतिषमें बड़े आदरसे देखा जाता है।

लल्ल—विधानमालाके प्रणेता। ढुंढिराज लल्लोपाध्य नामक और एक पद्धतिकार देखे जाते हैं। इनका रचा मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेप्सितप्रयोग और होत्रसामान्य ग्रन्थ देखनेसे बोध होता है, कि दोनों एक व्यक्ति थे।

लल्ल—ज्योतिषरत्नकोष, गणिताध्याय और गोलाध्याय तथा शिष्यधीवृद्धिद-महातन्त्र नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता त्रिविक्रम भट्टके पुत्र। भास्कराचार्यने सिद्धान्त-शिरोमणिके शेषोक्त ग्रन्थमें उल्लेख किया है।

लल्लच्छन्द—छिन्दवंशीय एक राजा। ये नलहनके पुत्र और वैरवर्माके पौत्र थे। इनकी माता अणहिला चुलुकीश्वर-वंशकी थीं।

लल्लवाराहसुत (सं० पु०) १ लल्ल तथा वाराहके पुत्र। २ नक्षत्रसमुच्चयके प्रणेता।

लल्लादीक्षित—मृच्छकटिकटीकाके रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और शङ्कर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १८२१ ई०में उक्त ग्रन्थ संकलन किया।

लल्लियशाही—काबुलके शाही-वंशीय एक हिन्दू राजा। इनका दूसरा नाम था कमलुक। उदभाण्डपुरमें इनको राजधानी थी। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि महाराज प्रभाकरदेवके मन्त्री गोपालवर्म्माने इनके पुत्र तोरमाणको सिंहासनच्युत किया था। ये खुरासान-पति आमरु इवन-लेईके समसामयिक थे।

लल्लूजी लाल—एक हिन्दी ग्रन्थकार।

लल्लो (हिं० स्त्री०) जीभ, ज़बान।

लल्लोचप्पो (हिं० स्त्री०) चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये कही जाय, ठकुर-सुहाती।

लव (सं० क्ली०) लू अप्। १ जातीफल। २ लवङ्ग। ३ लामज्जक, उशीराङ्कुश नामका तृण। ४ ईषत्, बहुत थोड़ी मात्रा। (पु०) लवणमिति लू-अप्। ५ लेश। ६ विनाश। ७ छेदन, कटाई। ८ कालका एक मान, दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेषका अल्प समय। कुछ लोग एक निमेषके सातवें भागको लव मानते हैं। ९ पक्षिभेद, लवा नामकी चिड़िया। १० ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियोंके शरीरसे कतर कर निकाले जाते हैं। ११ गो-पुच्छलोम, सुरागायकी पूंछके बाल जो चँवर बनानेके लिये कतरे जाते हैं।

लव—रामचन्द्रके पुत्र। रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि रामचन्द्रने सीतादेवीकी गर्भावस्थामें लोकापवादसे भय खा कर उन्हें छोड़ देनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। लक्ष्मण उनकी आज्ञाका पालन करते हुए सीताको ले कर वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आये। वहां सीताके यमज दो सन्तान उत्पन्न हुए। इन दो पुत्रोंका नाम लव और कुश पड़ा। वाल्मीकिने इन्हें रामायणका गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्रकी सभामें जा कर वह गाना सुनाया, तब रामने इन्हें पहचाना।

सीता और राम शब्द देखो।

लवक (सं० पु०) १ छेदक, वह जो छेद करता हो। २ द्रव्यभेद।

लवङ्ग (सं० क्ली०) लुनाति श्लेष्मादिकमिति लु (तरत्यादिभ्यश्च। उण् १।११९) इति अङ्गच्। स्वनामख्यात वणिक् द्रव्यभेद, लौंग। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—महाराष्ट्र और कलिङ्ग—लवङ्ग कलिका, लविङ्ग; तामिल—किरमबेर, किराम्बु; इलवङ्ग—अप्पु, करुवाप्प इकन्बु; तैलङ्ग—लवङ्गलु; द्राविड़—लवङ्ग मलयालम्—छङ्कि; शिङ्गापुर—बरल; पारस्य—मेखक, बङ्गाल—लङ्ग, लवङ्ग। संस्कृत पर्याय—देवकुसुम, श्री-प्रसून, लवङ्गक, लवङ्गकलिका, दिव्य, शेखर, लव, श्रीपुष्प, रुचिर, वारिसम्भव, भृङ्गार, जीर्वाणकुसुम, चन्दनपुष्प।

इसके वृक्ष मलबार, अफ्रिकाके समुद्र तट पर, जंजीबार, मलाया, जावा आदिमें होते हैं। लवङ्गकी खेतीके लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखीकी राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी

मानी जाती है। पहले इसको पनीरीमें एक एक फुटके फासले पर बो देते हैं। इसका विशेषतः ताजा बीज ही बोया जाता है। चार पांच सप्ताहमें बीज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊंचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरीसे उखाड़ कर बीस फुटकी दूरी पर बागमें लगाते हैं। जहां यह लगाया जाय, वहांकी भूमि पोली और दोमट होनी चाहिये। मटियार, बालू या दलदलमें उसकी खेती नहीं होती। यदि काली मिट्टीमें बालू मिला हो और उसके नीचे पीली मिट्टी तथा कङ्कड़ पड़ जाय, तो लवङ्गका पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। बहुत घनी छाया पौधेको हानी पहुंचाती है। पनीरी बैठानेके समय प्रायः वर्षाका आरम्भ है। बैठाये हुये पौधेको दो तीन वर्ष तक धूपसे बचानेके लिये प्रायः छायाकी जरूरत पड़ती है। आंधीसे बचानेके लिये इसके बागको घनी झाड़ीसे रुंधाई करनेकी आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपरसे छाजन हटा ली जाती है। छठे वर्षसे फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है और बीस पचीस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूल कम आने लगते हैं। कलियां पहले हरी रहती हैं; फिर पीली और अन्तको गुलाबी रंगकी हो जाती हैं। वही उनके तोड़नेका समय है, ये कलियां या तो बंधी हुई चुन ली जाती है अथवा लकड़ियोंसे पीट कर नीचे गिरा दी जाती हैं और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लवङ्ग है जो बाजारोंमें बिकता है। कुछ कलियां जो पेड़ोंमें रह जाती हैं, बढ़ कर फूल जाती हैं। फूल जब झड़ जाते हैं, तब नीचेका भाग फूल कर छोटी सी घुंडीके आकारका हो जाता है जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंडी बोनेके काममें आती है। लवङ्गकी कलम भी उसकी डालीको मिट्टीमें दबानेसे तैयार की जाती है। डेढ़ दो महीनेमें उसमें जड़े निकल आती हैं। इस प्रकारकी कलम जल्दी फूलने लगती है।

लवङ्गके भवकेसे एक प्रकारका सुगंधित तेल निकलता है। यह तेल वर्णहीन तथा कभी कभी हल्दी रंग-सा देखा जाता है। सुगन्धित द्रव्य (*Perfumery*) तथा चर्बी, साबन और शराबकी गंध बढ़ानेमें इसका व्यवहार होता है। जर्मनराज्यमें कार्बलिक एसिडके साथ यह मिलाया जाता है। ४ औंस लवङ्गका तेल एक गेलन स्पिरिटमें मिलानेसे लवङ्गसार (essence of gloves) बनता है।

बेनकुलेन, पिनां, आम्बयना और जंजीबारका लवङ्ग सबसे उमदा होता है। औषधमें जो सब लवङ्ग व्यवहृत होते हैं उनकी गंध बड़ी कड़ी होती है। नाखूनसे दबाने पर उनमेंसे तेल निकल आता है। भारतवर्षके बाजारोंमें जो सब लवङ्ग पाये जाते हैं वे पुराने पेड़के हैं। इस कारण किसी विशेष कार्यमें उनका व्यवहार नहीं होता। आकृति, वर्ण और आभ्यन्तरिक तेलकी परीक्षा करनेसे ही लवङ्गका प्रभेद सहजमें जाना जा सकता है।

लवङ्ग उत्तेजक, वायुनाशक और उत्कृष्ट गंधयुक्त होता है। दीर्घकालस्थायी उदरामयमें, पाकस्थलीकी वेदनामें तथा गर्भावस्थामें जो लगातार वमन होता रहता है, उसमें यह विशेष उपकारक है। डा० ऐन्सलिने शारीरिक अवसन्नता और अजीर्ण रोगमें दिनको दो या तीन बार लवणका काढ़ा सेवन करनेकी व्यवस्था दी है। उनके मतसे आध पाइंट गरम जलमें १ ड्राम लवङ्ग-चूर्णको सिद्ध कर १ वा २ औंस प्रतिवार सेवन करना चाहिये। स्नायविक दुर्बलता और अग्निमान्द्यमें चिरायता और लवणका क्वाथ विशेष उपकारप्रद है। इससे प्यास, वमन, उदराध्मान और पेटकी वेदना निवृत्त होती है। गेठियावात, शिरःपीड़ा और दन्तशूलमें लवङ्गतैल लगानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। हकीमी मतसे इसका गुण उत्तेजक और श्लेष्मानाशक, विषनाशक तथा मस्तिष्क स्निग्धकारक माना गया है। यह चक्षुरोगमें हितकर, हृदयका यातना-निवारक, बलकर और पुष्टि-वर्द्धक है।

तांबेके बरतनमें अथवा पत्थर पर पद्ममधुके साथ लवङ्ग घिस कर आंखके पलक पर लगानेसे पानीका गिरना और योजकत्वगोष (Conjunctivitis) बंद हो जाता है। लवङ्गको दीयेकी बत्तीमें जला कर खानेसे खुसखुसी खांसी दूर होती है। व्यञ्जनादिमें गरम मसालेके साथ और पानमें लवङ्ग सिद्ध कर खानेकी व्यवस्था वङ्गालमें अधिक प्रचलित है।

अंगरेजी भैषज्यतत्त्वमें लवङ्ग-तैल विशेष Oleum Carysphylli नामके प्रसिद्ध है। रासायनिक प्रक्रियाकी विशेष परीक्षा द्वारा इसमें Engenol वा Engenic acid, Salicylic acid, Cary ophyllic acid, Carmulellic acid और सामान्य मात्रामें tannic acid पाया गया है।

प्रति वर्ष ११०६८४१ रु० लवङ्गकी जंजीवार, आदेन और भारतीय द्वीपपुञ्जोंसे वङ्गाल, वम्बई और मान्द्राजमें आमदनो तथा यहांसे इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्ड, हांकों; ष्ट्रेटसेटलमेण्ट, एशियास्थ तुरुष्क, आदेन, फ्रान्स और अन्यान्य देशोंमें ३६७२४६, रु०की रफ्तनी होती है।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—शीतल, तिक्त, कटु, नेत्रहितकर, दीपन, पाचन, रुचिकर, कफ, पित्त और अस्रदोषनाशक, तृष्णा, छर्दि, आध्मान तथा शूल आशुविनाशक, काश, श्वास, हिक्का और क्षयनाशक।

(भावप्र० राजनि०)

"विरहानलसन्तप्ता तापिनी कापि कामिनी।
लवङ्गानि समुत्सृज्य प्रहरो राघवे ददौ॥" (उद्भट)

लवङ्गक (सं० क्ली०) लवङ्ग स्वार्थे कन्। लवङ्ग, लौंग।

लवङ्गकन्दपत्री (सं० स्त्री०) लघु तालीशपत्र, छोटा तेजपत्ता।

लवङ्गकलिका (सं० स्त्री०) लवङ्ग, लौंग।

लवङ्गलता (सं० स्त्री०) १ लौंगका पेड़ या उसकी शाखा। २ राधिकाकी एक सखीका नाम। ३ प्रायः समोसेके आकारकी एक बंगला मिठाई। इसमें ऊपरसे एक लौंग खोंसा हुआ होता है और इसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे होते हैं।

लवङ्गादि (सं० पु०) अजीर्णरोगका एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मिर्च और सोहागा, बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे अपामार्ग और चितेके रसमें ७ बार भावना दे। अग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रामें इस औषधका सेवन करनेसे अजीर्णरोग दूर होता है। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी मात्रा एक रत्ती बताई है।

लवङ्गादिचूर्ण (सं० क्ली०) ग्रहणीरोगाधिकारोक्त चूर्णौषधविशेष। यह चूर्ण स्वल्प और वृहद्‌के भेदसे दो प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—स्वल्पलवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, बेलसोंठ, अकवन, मोचरस, जीरा, धवफूल, लोध, इन्द्रजौ, अतिबला, धनिया, सफेद धूना, कर्कटश्रृङ्गी, पीपल, सोंठ, वराक्रान्ता, यवक्षार, सैन्धवलवण और रसाञ्जन इन्हें बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पीसे और एक साथ मिला दे। इस चूर्णकी मात्रा १० रत्तीसे २० रत्ती, अनुपान चावलका पानी, मधु या बकरीका दूध कहा है। इस चूर्णका सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, ग्रहणी और अतीसार आदि उदररोग नष्ट होते हैं। वृहल्लवङ्गादि चूर्ण—लवङ्ग, अतीस, मोथा, पीपल, मरिच, सैन्धव, हवूषा, धनिया, कायफल, कुट, जयित्री, जायफल, मंगरैला, सचललवण, नागेश्वर, चितामूल, विट्‌लवण, तितलौकी, बेलसोंठ, दारचीनी, इलायची, रसाञ्जन, धवफूल, मोचरस, आकनादि, तेजपत्र, तालीशपत्र, पीपल-मूल, वनयमानी, यमानी, वराक्रान्ता, इन्द्रजौ, सोंठ, अनारके फलका छिलका, यवक्षार, नीमका छिलका, सफेद धूना, साचिक्षार, समुद्रफेन, सोहागेका लावा, अतिबला, कुटजमूलका छिलका, जामुनका छिलका, आमका छिलका, कटकी, अबरक, लोहा, गन्धक और पारा प्रत्येकका समान चूर्ण। इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर एक साथ मिलावे। अनुपान मधु और चावलका पानी है। इसके सेवनसे ग्रहणी, अतिसार और प्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं।

दूसरा तरीका—लवङ्ग, जीरा, रेणुक, सैन्धव, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, वनयमानी, यमानी, मोथा, त्रिकटु, त्रिफला, सोयां, आकनादि, चिरायता, गोखरू, जैती, जायफल, दारुहरिद्रा, जटामांसी, रक्तचन्दन, मूरामांसी, कचूर, सौंफ, मेथी, सोहागेका लावा, मंगरैला, यवक्षार, साचिक्षार, अतिबला, बेलसोंठ, कुट, चितामूल, पीपलमूल विड़ङ्ग, धनिया, पारा, अबरक, गन्धक और लोहा, समान भाग चूर्ण ले कर एक साथ मिलावे। मात्रा एक माशेसे ले कर क्रमशः आध तोले तक बढ़ानी चाहिये। यह चूर्ण अत्यन्त अग्निवृद्धिकारक और ग्रहणीरोगनाशक है। इसके सिवा अन्यान्य उदररोगमें भी यह विशेष उपकारी है। (भैषज्यरत्ना० ग्रहणीरोगाधि०).

३ स्त्रीरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, सोहागेका लावा, मोथा, धवफूल, बेलसोंठ, धनिया, जायफल, सफेद धूना, सोयाँ, अनारके फलका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, सुन्दिमूल, रसाञ्जन, अबरक, रांगा, वराक्रान्ता, रक्तचन्दन, सोंठ, अतसी, कर्कटश्रृङ्गी, खैर और अतिवला समभाग चूर्ण कर एक साथ मिलावे। अनुपान बकरीका दूध बताया है। गर्भावस्थामें संग्रहग्रहणी, अतिसार, ज्वर और आमरक्तातिसार होनेसे इसका प्रयोग करना चाहिये। इस चूर्णको भंगरैयेके रसमें भिगो कर तीन दिन तक भावना देनी होती है।

४ गुल्मरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, निसोथका मूल, दन्तीमूल, यमानी, सोंठ, वच, धनिया, चितामूल, त्रिफला, पीपल, कटकी, दाख, चई, गोखरू, यवक्षार, इलायची, वनयमानी (अजमोदा) और इन्द्रजौ इन्हें चूर्ण कर २ तोला भर गरम जलके साथ सेवन करे। इससे सभी प्रकारके गुल्म, अर्श, शोथ आदि नष्ट होते है।

लवङ्गादिवटी (सं० स्त्री०) १ अग्निमान्द्यरोगाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली—लवङ्ग, सोंठ, मरिच और सोहागेका लावा बराबर बराबर चूर्ण ले कर तथा अपामार्ग और चितामूलके काढ़ेमें भावना दे कर एक रत्तीकी गोली बनावे। इसके सेवनसे मांस आदि कड़ी वस्तु पच जाती है। (भैषज्यरत्ना० अग्निमान्द्याधि०)

२ अजीर्ण रोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लवङ्ग, जातीफल, धनिया, कुट, सफेद जीरा, बहेड़ा, इलायची, दारचीनी, सोहागा, कौड़ीकी भस्म, मोथा, वच, अजवायन, विट्लवण, सैन्धवलवण, प्रत्येक एक भाग; पारा, गंधक, लोहा, अबरक, प्रत्येक आधा भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर पानके साथ गोली बनावे। इसका अनुपान गरम जल बताया गया है। इसके सेवनसे ग्रहणी, आमदोष, पेटकी वेदना, प्रवाहिका, ज्वर, कफजनितशूल, कुष्ठ, अम्ल, पित्त, प्रबलवायु, मन्दाग्नि और कोष्ठगतवात आदि रोग जल्द दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसा० अजीर्णरोगाधि०)

लवण (सं० क्ली०) लुनाति जाड्यमिति लु-नन्दादित्वात् ल्यु, पृषोदरादित्वात् णत्वं। क्षाररसयुक्त द्रव्य, नमक। विभिन्न स्थानीय नाम। बम्बई—नमक, नोमक; मराठी—मीठा, गुर्जर—मिठ्ठ, तामिल—उप्पू; तेलगू—लवणमु, उप्पू; कनाड़ी—उप्पू; मलयालम्—उप्पू, लवणम्; ब्रह्म—श; शिङ्गापुर—लुणु; अरब—मिलहुल आजिन, पारस्य - नमक, नमके, खुर्दानि, नुमके तायाम्; यव—उया; चीन येन्; अङ्गरेजी—Sea-salt, common salt, table-salt; फरासी—Sel Commun sel de Cuisine, sel Marin; जर्मन—Chlorantrium Kochsalz; डेनमार्क और स्विस—Salt, इटली—Chloruro-di-Sodio, Sal commune; स्पेन—Sal।

भारतमें प्रधानतः दो प्रकारके लवणका व्यवहार देखा जाता है। पहला सादा लवण (Sodium chloride) और दूसरा कृष्ण लवण वा विट् लवण। विट् लवणमें साधारण लवणका भाग रहने पर भी उसमें अन्यान्य द्रव्य मिला रहता है। इस कारण वह बहुत कुछ भेषजगुणयुक्त हैं। स्थान विशेषमें उस गुणमें कमी वेशी देखी जाती है। साधारणतः विट्लवणमें Sulphuret of iron पाया जाता है। क्लोराइड और कार्बनेट अव सोडियमको गरम कर उसमें आंवला और हर्रे मिलानेसे जो गुण पाया जाता है, विट्लवणमें प्रधानतः वही गुण रहता है।

हिन्दूगण स्मरणातीत कालसे ही लवणका व्यवहार जानते थे। अथर्व्ववेद ७।७६।१, आश्वलायनश्रौतसूत्र २।१६।२४, छान्दोग्य उपनिषद् ४।१०।७, शतपथब्राह्मण १४।५।४।१२, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।८।१०, गोभिल २।३।१३ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लवणका बहुल-प्रचार देखा जाता है। महामुनि सुश्रुतने स्वकृत आयुर्वेदशास्त्रमें लवणके निम्नोक्त भेद बतलाये हैं।

सुश्रुतमें लिखा है, कि सैन्धव, सामुद्र, विट्, सौवर्च्चल, रोमक और उद्भिद् आदि लवण पराक्रमसे उष्ण, वायुनाशक, कफ और पित्तकर तथा पूर्वक्रमसे स्निग्ध, स्वादु और मलमूत्रका सञ्चयकर है। सैन्धव, स्वच्छ, विट्, पाक्य, साम्भर, सामुद्र, पक्तिम, यवक्षार, उषक्षार और सुवर्च्चिका आदि लवणवर्ग है।

इनका गुण—लवणरस, पाचक और संशोधक है। इससे रसोंका विश्लेषण तथा शरीरका क्लेद और शैथिल्य

संाधित होता है। इन सब रसोंका विरोधी उष्णगुण-युक्त और मार्गविशोधक तथा शरीरांशका कोमलता-साधक है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीरमें खुजली होती, गोल गोल चकत्ते पड़ जाते, मुख और नेत्रमें फोडे निकलते, रक्तपित्त और वातरक्त दोष होता, पुरुषत्वकी हानि होती तथा खट्टी डकार आती है।

सैन्धवलवण—चक्षुका हितकर, मुखप्रिय, रुचिकर, लघु, अग्निवृद्धिकर, स्निग्ध, मधुररस, वृष्य, शीतल, दोषनाशक तथा उक्त सभी प्रकारके लवणसे उत्कृष्ट और फलदायक होता है।

सामुद्रलवण—परिपाकमें मधुर, अल्प उष्ण, अविदाही, भेदक, ईषत् स्निग्ध, शूलनाशक और अल्पपित्तवर्द्धक होता है।

सौवर्चललवण—परिपाकमें लघु, उष्णवीर्य, विशद, कटु, गुल्म, शूल और विवन्धनाशक, मुखप्रिय, सुरभि और रुचिकर माना गया है।

रोमक (पांशुलवण)—तीक्ष्ण, अतिशय उष्ण, स्त्रीसंसर्गशक्तिका वर्द्धन कर, पाकमें कटु, वायुनाशक, लघु, विस्यन्दी, सूक्ष्म, मलभेदक और मूत्रकर होता है। औद्भिद् लवण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, हृदय और श्लेष्मसञ्चयकर, वायुका अनुलोमकारी, तिक्त और कटु माना जाता है। गुटिकालवण कफ, वायु और कृमिशान्तिकर, लेखनकर, पित्तवर्द्धक, अग्निकर, पाचक और भेदक होता है। उषक्षार (क्षारमृतिकासम्भूत लवण)—यह वालुकेय अर्थात् बालुकाजातके मूलदेशस्थ आकरसे उत्पन्न होता तथा कटु और छेदनकर माना जाता है।

इन सब लवणोंमेंसे सैन्धव, सौवर्चल, विट्, सामुद्र और साम्भर इन पांचोंको पञ्चलवण कहते हैं। एक लवण कहनेसे सैन्धव, द्विलवण कहनेसे सैन्धव और सचल, त्रिलवणसे सचल और विट्, चतुर्लवणसे सैन्धव, सचल बिट् और सामुद्र तथा पञ्चलवण कहनेसे पूर्वोक्त पांच लवण जानना होगा। किन्तु चरकमें पञ्चलवणकी जगह साम्भर लवणके बदलेमें औद्भिद् लवण माना गया है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०)

संस्कृत ग्रन्थमें जिस प्रकार सैन्धव अर्थात् सिन्धुदेशजात पार्वत्य लवण (Rock-Salt), समुद्र अर्थात् सूर्यके उत्तापसे सुखाया हुआ समुद्रजलज लवण वा करकच, रोमक अर्थात् रुमानदो जलजात तथा शाकम्भरी वा शाम्भर ह्रदजात लवण, पांशुज और ऊषासुत अर्थात् लवणाक्त मृत्तिकासे उत्पन्न लवण, विट्लवण, सौवर्चल, वा सोञ्चल अर्थात् काला नमक, उद्भिद् अर्थात् रेहा वा कालर लवण तथा गुटिक आदि लवणोंका उल्लेख है, उसी प्रकार वर्त्तमान रसायन-विज्ञानमें साधारण लवणके भी (Sodium chloride) दो विभाग हैं। वे साधारणतः Rock—Salt और Sea-salt नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतवर्षमें इसके सिवा Marsh Salt और Earth Salt नामक और भी दो श्रेणीभेद बताये गये हैं।

भारतवासी जनसाधारण खाद्यद्रव्यके साथ प्रधानतः जितने प्रकारके लवणोंका व्यवहार करते हैं। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है—

१ पञ्जाबी सैन्धव (लाहोरी और सैन्धवलवण)—यह सिन्धुनदके दक्षिणमें पाया जाता है। 'कोहाटी' और निमक-सब्ज नामक दोनों प्रकारके लवण सिन्धुनदके पश्चिमोत्तर भागमें पाये जाते हैं। अलावा इसके हिमालय प्रदेशके मण्डिराज्यसे एक और प्रकारके नमककी आमदनी होती है।

२ दिल्लीका "सुलतानपुरी" लवण—यह दिल्लीकी लवणाक्त मिट्टीकी खान (Pit-brine Salt)से निकाला जाता है।

३ शाम्भर लवण—राजपूतानाके शाम्भरह्रदके जलसे प्रस्तुत होता है।

४ दिन्दलवण—राजपूतानाके दिड्वना विभागकी मिट्टीसे तैयार होता है।

५ कौशिया-लवण—राजपूतानाके पञ्चभद्रा नामक स्थानकी मिट्टीसे उत्पन्न होता है। मध्यभारतमें भी यह लवण प्रचलित है।

६ फलोड़ी लवण—राजपूतानाके फलोड़ी प्रदेशकी मिट्टीसे उत्पन्न।

७ बरागड़ा-लवण—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात विभागमें प्रस्तुत होता है।

८ कोङ्कणी लवण—बम्बई-उपकूलसे उत्पन्न।

९ कर्कच और बनवार (कर्कच) लवण—मन्द्राज उपकूलमें प्रस्तुत होता है।

१० पङ्गा (पांशु) लवण वङ्गालके समुद्रोपकूलमें जो लवण साधारणतः प्रस्तुत होता है।

११ खारा (क्षार) लवण—लवणाक्त मिट्टीसे जो लवण प्रस्तुत किया जाता है।

१२ पांकवां वा नमक शोर—सोरा (Saltpetre)से जो लवण बनता है।

१३ नेफुरफुली अर्थात् लीभरपुल-लवण—इङ्गलैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स राज्यसे जो लवण भारतवर्षमें आता है। यह साधारणतः Liverpool Salt कहा जाता है। वर्त्तमानकालमें इसी परिष्कृत लवणको भारतवासी काममें लाते हैं। कहीं कहीं कर्कच और सैन्धव लवणका भी प्रचार है। कट्टर हिन्दू और हिन्दू-विधवाएं सैन्धव लवणका ही व्यवहार करती हैं।

१४ सुफरी-लवण—सिंहलद्वीपमें पाया जाता है।

१५ अयोध्यापुरी-लवण—लौहित्सागरके किनारे प्रस्तुत होता है।

१६ आदेन-लवण—आदेन नगरके समीप पाया जाता है। इस लवणकी प्रतिवर्ष प्रायः ३३ हजार टनकी आमदनी होती है।

१७ मस्कट और मस्कटसेन्धा—पारस्य उपसागरके किनारे तैयार होता है।

१८ लेनचा लवण—तिब्बतदेशमें मिलता है।

१९ मणिपुर आदि छोटे छोटे देशोंमें मिलनेवाला लवण।

ये सब लवण भारतवर्षमें प्रचलित रहने पर भी लीभरपुल शहरसे जो 'Cheshire Salt' कलकत्ता, चट्टग्राम, रङ्गून और ब्रह्मके प्रसिद्ध बन्दरोंमें आता है उसका परिमाण सबसे ज्यादा है।

भारतवर्षके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे मिट्टीकी तहमें लवणका रहना निर्णय किया जा सकता है। भूतत्त्वविद् ब्लानफोर्ड और मेडलीकोटने कोहट, काङ्गड़ा, बहादुरखेल, मण्डि-लवणपर्वत और हिमालय सन्निहित शिवालिक पर्वतभागमें प्रचुर लवणका अस्तित्व देखा था। उन होगोंने चुसिन वा न्युमुलिटिकस्तरमें सिलिउरीय-युगस्तरमें, पेलियोजोइक स्तरमें, जिपसम् स्तरमें तथा प्राचीन और आधुनिक टासियारि-युगस्तरमें सैन्धव लवणस्तर (beds of rock-salt) पाया था। आज भी कोहट आदि स्थानोंकी लवणकी खानसे सैन्धव लवण निकाला जाता है।

युगान्तरीय मिट्टीकी तहसे प्राप्त लवणको छोड़ कर भारतवर्षके समुद्र और ह्रदके किनारे स्थानीय लोगोंके व्यवहारार्थ जो नमक प्रस्तुत होता है उसका संक्षिप्त हाल नीचे दिया गया है।

मन्द्राज—इस प्रेसिडेन्सीमें पहले समुद्रके खारे जलको वाष्पाकारमें परिणत कर लवण तय्यार करते थे। स्थानविशेषमें खारी मिट्टी अथवा भस्मको जलमें डुबो कर उससे लवण प्रस्तुत करते थे। किन्तु अभी यह प्रथा बिलकुल उठ गई है। प्रथमोक्त प्रणालीसे जो लवण बनता है उसीका स्थानीय लोग व्यवहार करते हैं। इसके सिवा बम्बईसे भी कई प्रकारके लवण दूसरे दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं।

बङ्गाल—पहले मेदिनीपुर और यशोहर जिलेमें लवण तैयार करनेका कारखाना था। कलकत्तेके निकटवर्त्ती सोरेकी कलोंमें सोरेसे लवण निकाला जाता था।

बिहार और उड़ीसा—उड़ीसामें आज भी धूपमें खारे जलको सुखा कर नमक तैयार करते हैं। पहले कृत्रिम उपायसे भी पांगा लवण बनाया जाता था। बिहार, भागलपुर और मुङ्गेरके विभागमें लवण तय्यार होता था।

बेरार—यहां लोणारहृदके जलसे तथा अकोलाके अन्तर्गत पूर्णा विभागके लवणजलपूर्ण कूपसे लवण प्रस्तुत होता था। लेकिन अभी नहीं होता।

राजपूताना—शाम्भरहृद, दिदवानाहृद और काचोररेवासा हृदके जलसे नमक काफी तैयार किया जाता था।

बम्बई—समुद्रके खारे जलको धूपमें सुखा कर बहुत पहले हीसे उपकूलदेशमें लवण प्रस्तुत करते आ रहे हैं। काम्बे उपसागरके किनारे कच्छके रणप्रदेशमें, सिन्धुप्रदेशमें और थानामें लवण तय्यार करनेके कारखाने हैं (Thana salt-works)। अंगरेजराजने लवणका

व्यवसाय खास कर लेनेके अभिप्रायसे काम्बेके नवाबको वार्षिक ४० हजार रुपया क्षतिपूरणस्वरूप दे कर लवण का व्यवसाय उठा दिया।

पञ्जाब—यहां प्रधानतः सैन्धव लवण ही निकाला जाता है। सिन्धुनदके दूसरे किनारे बन्नू जिलेके कोहट और कालाबाग तथा लवणगिरि (Salt-range) में सैन्धव बहुतायतसे पाया जाता है। कालाबाग और लवणगिरिका सैन्धव सिलिउरीय युगस्तरीय काङ्गड़ और कोहटमें मण्डिस्तर (Mandi deposits) के जैसा है। एतद्भिन्न यहां गुड़गांव जिलेके खारे कूपजलोंसे लवण बनाया जाता है। यह शाम्भरहृद-जात लवणसे निकृष्ट होता है।

युक्तप्रदेश—लवणाक्त कूप-जलसे इस विभागके नाना स्थानोंमें लवण तय्यार होता है। किन्तु यह दूसरे दूसरे स्थानोंके लवणके जैसा विशुद्ध नहीं होता। यहांके लवणमें Sodium sulphate, magnisium sulphates, sodium carbonate और nitre मिला हुआ देखा जाता है। बुलन्दशहर और मुजफ्फरनगरमें बहुत थोड़ा नमक तय्यार होता है।

आसाम—लवणाक्त-कूप तथा जोरहाट और सदिया-के लवण प्रस्रवणसे काफी लवण प्रस्तुत होता है। कछाड़, मायापुर और चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशोंमें भी कूपस्थ खारे जलसे नमक तय्यार किया जाता है। अशिक्षित और अर्द्ध सभ्य जातियां बांसके चोंगेमें खारे जल-को फुटा कर लवण बनाती हैं।

ब्रह्म—पेगूके टर्सियारी युगस्तरीय पर्वतों पर सैकड़ों लवणके प्रस्रवण हैं। उनसे स्थानीय लोग लवण तय्यार करते हैं। आराकावसे मार्गुई पर्यन्त समुद्रके किनारे समुद्रके जलसे सामुद्र लवण बनाया जाता है।

मुसलमान-राजाओंके जमानेमें लवण पर महसूल लगाया जाता था। १८०३ ई०की ३८ धाराके अनुसार अङ्गरेज गवमेंण्टने पहले पहल मन पीछे (८२ $\frac{२}{७}$ पौंड) लवण पर १) रु० महसूल स्थिर कर दिया। धीरे धीरे वह ३।० रु० तक बढ़ा दिया गया। १८८२ ई०में अन्यान्य प्रदेशोंकी अपेक्षा बङ्गालके लवण पर अधिक महसूल देख भारतराज प्रतिनिधिने भारतवर्षमें तमाम समान महसूल लगा कर मन पीछे २॥०) रु० कर दिया। किन्तु सीमान्त प्रदेशमें गोलमाल हो जानेके डरसे कोहाट और मण्डीकी लवणकी खान पर उन्होंने कोई कर न रखा। केवल कोहाटकी खानसे जो लवण अफगान-सीमान्त पर जाता था उस पर मन पीछे (सिक्का वजन १०२ पौंड) ॥० आना कर दिया था। मण्डीकी खान से उत्पन्न हैम-लवण पर उससे अधिक महसूल लगाया था। किन्तु अङ्गरेजी लवणकी अपेक्षा वह भी बहुत कम था। लवणका यह महसूल लेनेके लिये अङ्गरेज गवमेंण्टने देशी राजे, सरदार और जमींदारोंको क्षति-पूरणस्वरूप राजस्वका कुछ अंश माफ कर दिया।

वाणिज्य और कारबारके लिये भारतवर्षमें जितने प्रकारका नमक प्रचलित है, भारत गवमेंण्टकी राज-विवरणीमें उसकी एक तालिका देखी जाती है। यह भिन्न भिन्न प्रकारका लवण भिन्न भिन्न श्रेणीमें रखा गया है:—

१ खनिज वा सैन्धव लवण (Rock-salt)—कोहट, मण्डी आदि स्थानोंकी खानसे यह नमक नाना स्थानोंमें भेजा जाता है।

२ हृद और कूपज लवण (Lake and pit salt)—शाम्भर, दिदवाना, पचभद्रा और दिल्लीके लवणके कार-खानोंमें यह तय्यार होता है।

३ सामुद्र लवण (Sea salt और pit-salt) भारतवर्ष-के समुद्रोपकूल उपवर्त्ती विभिन्न स्थानोंमें प्रस्तुत होता है।

४ आनूपलवण (Marsh-salt)—लवणाक्त जल-से उत्पन्न होता है। दिल्ली आदि स्थानोंकी खारी मिट्टी-को खोदनेसे जो गड्ढा बन जाता है उसीके जलसे तैय्यार किया जाता है।

५ खाड़िज लवण (swamp salt) समुद्रोपकूल-वर्त्ती खाड़ियोंके खारे कीचड़से जमा किया जाता है। समुद्रका जल उन सब खाड़ियोंमें घुस कर फिर निकलने नहीं पाता। पीछे वह आपे आप सुख कर मिट्टी के ऊपर दानेदार हो जाता है। यही खाड़िज

लवण है। यह विशुद्ध होता है। उसमें प्रायः ६७ भाग Chloride of sodium रहता है।

६ क्षितिज-लवण (Caline efflorescence) वर्षा ऋतुके बाद स्थानविशेषमें नमक आपे आप बाहर निकलता है। उन सब स्थानोंमें कभी भी वृक्ष नहीं उगता। इस जातिके नमकको युक्तप्रदेशमें खरियार, लोनहा, रेह और कल्लार सोरा कहते हैं।

७ क्षारलवण (Earth salt)—भारतवर्षमें इसको खारा नमक कहते हैं। ग्वालियर, पतियाला और मध्य-भारतमें यह लवण उत्पन्न होता है।

८ नमक सोर (Saltpetre salt)—सोरेसे जो मिश्र लवण बनता है उसीको नमक-सोर कहते हैं।

उत्तर और पश्चिम-भारतमें जितनी नमककी खान हैं उनके स्तरोंमें किस प्रकार नमक जमा रहता है, वह देखने लायक है। इनमेंसे लवणगिरिके स्तर विशेष उल्लेखनीय हैं। वह शैलमाला देशा० ७१°३०' से ७३° पू० तथा अक्षा० ३२° २३' से ३०' उ०के मध्य अवस्थित है। सिन्धुसागर दोआबकी अधित्यकाभूमि और कोहिस्तान विभाग ले कर लवणशैल संगठित है। इसके एक प्रान्तमें झेलम नदी और दूसरे प्रान्तमें सिन्धु नदी बहती है। प्रायः १५२ मील विस्तृत इस पहाड़ी प्रदेशमें जिन गहरे स्तरोंमें लवणराशि जमा रहती है, नीचे केवल उनके नाम दिये गये हैं—

नाम	स्तरका घनत्व
वर्त्तमान गठित स्तर—	
Debris of gypsum	१५० फुट
चूना पत्थर स्तर—	
Nummulitic limestone	२०० ,,
कोयलास्तर—	
Coal alumshab marl	२० ,,
बलुई पत्थरस्तर—	
Green sand-stone	६०० ,,
Blue marl	१२५ ,,
Red sandstone	६०० ,,
लवणस्तर—	
Upper layer of white gypsum	५ ,,
Brick red marl	१३० फुट
Brown gypsum	१४० ,,
Lower layer of white gypsum	२०० ,,
Salt marl and salt	६०० ,,

इस लवणगिरिविभागमें प्रधानतः मेव-खनि, वार्च-खनि, कालावाग-खनि और नूरपुर खनिसे सैंधवलवण निकाला जाता है।

कोहाटका लवणमय प्रदेश सिन्धुनदके पश्चिममें अवस्थित है। यह अक्षा० ३२° ४७' से ३३° तथा ५२' देशा० ७२° ५२' तथा देशा० ७०° ३५' से ७२° १८' पू०के बीच पड़ता है। यहां जुट्टा, मालगिन्, नड़ि, खरक और बहादुरखेल नामक स्थानमें खान है। भारतके प्रायः ६० हजार वर्गमील स्थानतथा कन्दहार, वालख और गजनी आदि भूभागमें यह लवण प्रचलित है।

मण्डीके लवणकी खान हिमालयदेशके मण्डी राज्यमें अक्षा० ३२° उ० तथा देशा० ७७° पू०के मध्य अवस्थित है। गुमा और द्राङ्ग नामक स्थानमें दो खानें हैं। अंगरेजी राज्यमें मण्डी लवण विक्रय होता है इसलिये मण्डि राजको करस्वरूप लवणका लभ्यांश अंगरेज-सरकारमें देना पड़ता है। इसके अलावा Delhi-salt works, Cambhar Salt lake, Didwana-salt marsh, Pachbadra salt works, Luni and Falodi salt और Tibet or Lencha salt नामक विशिष्ट स्थानीय लवणका प्रचलन देखा जाता है।

इसको छोड़ कर आयुर्वेदमें सज्जी-खार आदि और भी अनेक प्रकारका लवण (Sodium salt) औषधमें व्यवहृत होता है।

बंगालमें लवण प्रस्तुत करनेकी प्रणाली।

लवणका वाणिज्य अंगरेज-गवर्मेण्ट खुद अपनेसे करती है। जो उसकी अनुमतिके विना लवण प्रस्तुत करते हैं, वे दण्डका भागी होते हैं। बंगालमें जो सब लवण प्रस्तुत होता है, वह अंगरेज-सरकार खरीद लेती है और उसे आठ गुने या उससे भी ज्यादे दाममें प्रजाओंके व्यवहारके लिये बेच डालती है। सिर्फ लवणसे गवर्मेण्टको ३ करोड़ रु० वार्षिक लाभ होता है। यह सब कार्य करनेके लिये उन्होंने बहुत धन व्यय कर अनेक कार्यालय खोल रखे हैं और उनमें कर्मचारी नियुक्त कर

दिये हैं। उसके सुशासनके लिये कहीं कहीं अंगरेजराजे भी रखे गये हैं। बंगदेशीय लवणके कारखानोंके व्यवस्थापक अंगरेज कलकत्तेमें रहते हैं। वे जहां एकत्र हो कर मन्त्रणा करते हैं, वह "साल्टबोर्ड" कहलाता है। इसे बोर्डके अधीनस्थ सभी कार्यालयमें एक नियम चलता है। विस्तारके हो जानेके भयसे सब स्थानोंकी लवण-प्रस्तुतप्रणाली न लिख कर सिर्फ तमलुककी लवण प्रस्तुतप्रणाली दी जाती है।

तमलुक नगर कलकत्तेसे २२ कोस दक्षिण रूपनारायण नदीके तट पर अवस्थित है। पहले यह नगर समृद्ध और वाणिज्यमें बड़ा प्रसिद्ध था, लेकिन आज वह ख्याति जाति रही। सिर्फ नाममात्र रह गया है। किन्तु लवणके लिये यह नगर सामान्य नहीं है। यहां जो कोठी है उससे हर साल नौ या दश लाख मन लवण प्रस्तुत होता है तथा उससे कम्पनी पचास लाख रुपयेके करीब लाभ उठाती है।

तमलुककी सदर कोठीके अधीन पाँच कार्यालय हैं जिनमेंसे तमलुक, महिषादल, जमालुठा, औरङ्गावाद तथा हुमजुदको आढ़त ही प्रधान और विख्यात है। फिर प्रत्येक आढ़तके अधीन छोटे छोटे कार्यालय हैं। इस छोटे कार्यालयका नाम 'हुद्दा' है। इन सब हुद्दोंमें दारोगा, मोहरर, आदलदार आदि भिन्न भिन्न नामके बहुतसे कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। वे कातिकसे ले कर जेठ तक लवण प्रस्तुत करते हैं। कातिकके शुरूमें लवणसमिति (साल्ट-बोर्ड) के साहब किस आढ़तमें कितना लवण तैयार करना चाहिए, यह ठीक कर देते हैं। इस निर्दिष्ट परिमाणका नाम 'तायदाद' है। इस तायदादके मुताबिक प्रत्येक हुद्दे के कर्मचारी अपने अपने हुद्दे के प्रजाओं या कुलियोंको बुला कर कहते हैं, कि कौन कितना लवण तैयार करेगा और क्या दाम लेगा। पीछे एक स्टांप या छपा हुआ कागज दिया जाता है। इस निर्द्धारण क्रियाका नाम "सौदापत्र" है तथा जिस कागज पर वह लिखा जाता है वह 'हाथचिट्ठा' कहलाता है। जो इस प्रकार सौदापत्र स्थिर कर हाथचिट्ठा लेते हैं, वे 'मलङ्गी' कहलाते हैं। लवण तैयार करनेमें बहुत कम लाभ होता है। सुतरां केवल यही काम कर कोई अपना गुजारा चला नहीं सकता। मलङ्गी मात्र ही लवण प्रस्तुत करनेके अलावा खेतीबारी भी करते हैं। इतने पर भी उनकी गरीबी दूर नहीं होती। सभी बड़े कर्जखोर और अत्यन्त दरिद्र हैं।

तमलुकका लवण वहांकी भागीरथी, हलदी, टेंगराखाली, रायखाली आदि कई नदीके जलसे प्रस्तुत होता है। इसलिये लवण प्रस्तुत करनेके सभी कार्यालय इन्हीं नदियोंके किनारे बने हैं। मलङ्गी लोग यथोपयुक्त स्थान निर्दिष्ट कर उसे चार भागोंमें बांटते हैं। उसके एक भाग का नाम 'चातर' है। वह सबसे बड़ा होता है और उसमें लवणकी मिट्टी प्रस्तुत होती है। दूसरेका नाम 'जुरी' अर्थात् कुण्ड है और वह लवणाक्त जल रखनेके काममें आता है। तीसरेका नाम 'मादा' अर्थात् लवण छाननेका स्थान है। चौथा "भूरी घर" अर्थात् लवण पाक करनेका घर है। इन चारों भागकी समष्टिको 'खालाड़ी' या 'मलङ्ग' कहते हैं। इस प्रकार एक एक खालाड़ीके लिये दो तीन बीघे जमीनकी जरूरत होती है।

पहले ही कह आये हैं, कि खालाड़ीके अन्यान्य अंशसे 'चातर' बड़ा होता है, उसके लिये एक बीघा या उससे भी अधिक स्थानकी आवश्यकता होती है। मलङ्गी लोग उसे बड़ी सावधानीसे साफ करते हैं और वहांसे कुछ मिट्टी खोद कर उसके बीच बीचमें तथा चारों ओर बांध देते और इस स्थानको तीन भाग करते हैं। उसके बाद उन तीन खेतोंको कोड़ कर पटेलेसे चौरस कर लेते हैं। यह चौरस की हुई भूमि आठ दश दिन तक धूपमें सुखाई जाती है। पीछे उसके ऊपरकी मिट्टी और ईंटेकी दीवारमें लोना लगनेसे जैसा चूर्ण उत्पन्न होता है वैसा ही चूर्ण हो जाता है। चूर्ण तैयार होने पर पांच या छः मनुष्य इधर उधर घूम कर उसको अच्छी तरह रौंदते हैं। अनन्तर एक सप्ताह तक उसे धूपमें सुखा कर खेतसे जमा करते हैं। इसके बाद बाढ़से चातर सिक्त रहने और धूपकी सहायता पानेसे लवण-मृत्तिका अच्छी तरह उत्पन्न होती है। बाढ़के जलसे चातर धुल जानेसे तथा कातिक वा अगहनके महीनेमें अत्यन्त वर्षा या कुहेसेसे अथवा मेघसे आकाश ढंके रहनेसे लवणोत्पत्तिमें नुकसान पहुंचता है। पूस और माघके महीनेमें ज्वारके जलसे जुरी नामक कुण्ड परि-

पूर्ण न होनेसे लवण बनानेके काममें हानि होती है।

एक जुरो बनानेमें चार कट्ठे जमीन की आवश्यकता होती है। उस जमीनमें पांच या छः हाथ गहरा, एक हाथ ऊंचा और एक हाथ चौड़ा एक गड्ढा बना कर एक नाले द्वारा किसी किसी नदीके साथ संयुक्त कर देनेसे वह जुरी तैयार होती है। बड़ी ज्वारके दिन उस नाले हो कर जब नदीके जलसे जूरी भर जाती है, तब मलङ्गी लोग नालेको बंद कर बड़ी सावधानीसे उस जलकी रक्षा करते हैं। वर्षाके समय जुरी वृष्टिके जलसे भर जाती है। कार्त्तिक मासमें वह जल फेंक कर जुरीको साफ रखते हैं। बाढ़के खारे जलसे उसे भरना ही लवण तैयार करनेका एक प्रधान उपादान है। सावधानीसे यह कार्य नहीं करनेसे सभी परिश्रम व्यर्थ जाता है। चातरको जुआरके जलसे सिक्त कर धूपमें सुखानेका नाम 'साजन' है, कार्त्तिक मासमें चातर प्रस्तुत करनेसे क्रमागत तीन मास उसमें लवणमृत्तिका जम सकती है। माघके शेषमें वा फाल्गुनके प्रारम्भमें उसे पुनः जुआरके जलसे सिक्त कर खनन न करने और उसके ऊपरकी भस्म तथा भट्ठिकी निकम्मी मिट्टी अलग न कर देनेसे उसमें लवण-मृत्तिका अच्छी तरह जमने न पाती।

खालाड़ीके तृतीय अङ्गका नाम मादा है। यह मादा प्रस्तुत करनेके लिये मलङ्गी लोग १२ हाथ परिधिका और ४॥ हाथ ऊंचा मिट्टीका एक टीला बनाते हैं और उसके ऊपर १॥ हाथ गहरा गड्ढा खोद रखते हैं। मिट्टी भस्म और वालुकादि द्वारा उसका तल ऐसा मजबूत कर दिया जाता है, कि जल उसके भीतर घुस नहीं सकता। पीछे उसके तलमें 'कुड़ी' नामक एक मिट्टीका बरतन रख कर एक बांसकी नलीसे उसका संयोग टीलेके निकटस्थ एक गड्हेसे कर दिया जाता है। उस गड्हेका नाम 'नाद' है। ३०-३२ कलसी जल उस नादमें समा सकता है।

चातरमें लवण-मृत्तिका प्रस्तुत होनेसे मलङ्गी लोग पूर्वोक्त कूड़ीके ऊपर बांसकी एक छननी और छननीके ऊपर थोड़ा खड़ रखते हैं। पीछे उस मिट्टीसे मादाका गड्ढा भर कर पैरसे उसको अच्छी तरह दाब देते हैं और जूरीसे कलसी कलसी लवणजल उस पर ढालते हैं। इस प्रकार ८०-कलसी जल ढालनेसे वह लवणकी मट्टी बह कर बांसकी नली द्वारा नादमें आ गिरती है। किन्तु वह जल लवणको मिट्टीसे अलग नहीं होता। ८० कलसी जलमें से सिर्फ ३०।३२ कलसी जल नादमें गिरता है। बांकी जल मिट्टीके साथ मिला रहता है। नादमें जलका गिरना बंद होनेसे मलङ्गी लोग उस लवण जलको एक दूसरी कलसीमें रख देते हैं। मादाकी घुली हुई मिट्टी चातरमें डालनेके लिये उसे दूसरी जगह रख नई लवणकी मिट्टीसे उस मादाको भरनेके अभिप्रायसे पुनः नई मिट्टी छानना शुरू करते हैं।

लवणको जलमें देनेके घरका नाम भुनरी घर है। वह घर चातरके पास ही बना होता है। उसकी लम्बाई २५-२६ हाथ और चौड़ाई ७ वा ८ हाथ होती है। मलङ्गी मात्र ही उस घरको उत्तर-दक्षिणमें लम्बा तथा उसके दक्षिणी भागकी अपेक्षा उत्तरी भाग अधिक ऊंचा बनाते हैं। इसका कारण यह है, कि दक्षिण भागमें वे लोग रहते हैं, इससे अधिक ऊंचा बनानेकी जरूरत नहीं होती। किन्तु उत्तर भागमें लवण-जलका चूल्हा बनाना' होता है, इस कारण ऊंचा बनाना जरूरी है। ऊंचा नह बनानेसे उसमेंसे जो धूआं निकलता वह बाहर निकलने नहीं पाता जिससे घरमें रहना कठिन हो जाता है। चूल्हा मिट्टीका बना होता है। उसकी ऊंचाई तीन हाथ होती है। उस चूल्हेके ऊपर कीचड़ देते और कीचड़ पर दोसौ या दोसौ पचीस मिशरीके कुन्दाकार छोटे छोटे मट्टीके बरतन रख छोड़ते हैं। उस बरतनका नाम कूड़ी है। प्रत्येक कूड़ीमें डेढ़ सेर बालू समाती है। उन बरतनों को चूल्हेके ऊपर कीचड़ पर रखनेसे जैसा आकार बन जाता है वह नीचे दे दिया गया है। मलङ्गी-लोग उसे 'झंट तथा जिस पर वह रखा रहता है उसे झंटचक्र कहते हैं।

चूल्हेमें आंच देनेसे कीचड़ सूख कर उस परके सभी कूड़ी बरतनोंका एक पिण्ड बन जाता है। चार पांच या छः घंटा उसमें नादका लवण जल पाक करनेसे दो टोकरी लवण तय्यार होता है। वह टोकरी चूल्हेकी बगलमें रखो रहती है। उस टोकरीसे जो जल निकलता है

v
vv
vvv
vvvv
vvvvv
vvvvvv
vvvvvvv
vvvvvvvv
vvvvvvvvv

झंट

वह उसके नीचेको घास पर पड़ कर लवणके स्थूल पिण्डरूपमें परिणत हो जाता है। उस लवणपिण्डका नाम 'गाछालवण' है। दूसरे लवणकी अपेक्षा वह बहुत निर्मल होता है। कम्पनीने 'गाछालवण' का बनाना बंद कर दिया है। क्योंकि, मलङ्गी लोग वह लवण कम्पनीको न दे कर दूसरेके हाथ चुपके बेच लिया करते थे।

लवणपाकका एक दूसरा नाम पोक्तान है। कारखानेमें इस पोक्तान शब्दका ही व्यवहार होता है। दो टोकरी लवण पोक्तान होनेसे कम्पनीके आदलदार नामक कर्मचारी आ कर काठकी मुहरकी छाप मार देते हैं। उस मुहरका नाम आदल है। उस आदलसे ही आदलदार नाम पड़ा है।

लवण पर मुहर पड़ जानेसे वह मलङ्गीकी खरीमें रखा जाता है। वहां एक दिन और एक रातमें वह सूख जाता है। पीछे मलङ्गी लोग गोलाघरकी मट्टी पर ढेर लगा कर रख देते हैं। दश या बारह दिन गोलाघरमें रखनेके बाद बाहर ला कर गोलाघरके सामने ढेर लगा दी जाती है। उस ढेरका नाम 'बहिरकांडी' है। १०।१५ दिन उस कांडीमें रहनेसे लवण सूख जाता है। पीछे पोक्तान-दारोगा आ कर वह लवण मलङ्गीसे वजन कर लेते और उतनेका एक चिट्ठा लिख देते हैं। पहले इसी नियमसे लवण तय्यार किया जाता था।

२ असुरविशेष। लवणासुर देखो। ३ राक्षसविशेष। (त्रि०) लवणेन संसृष्टः लवण ठक् (लवणात् ठक्। पा ४।४।२४) इति ठको लुक् यद्वा लवणो रसोऽस्त्यस्मिन्निति अर्श आद्यच्। ४ लवणरसयुक्त, नमकीन। ५ लावण्ययुक्त, सुन्दर।

लवण—चट्टलके अन्तर्गत गण्डग्राम।

(भविष्य० ब्रह्मखण्ड १५।४५)

लवणकिंशुका (सं० स्त्री०) महाज्योतिष्मती।

लवणक्षार (सं० पु०) लवणस्य क्षारः। खारी नमक।

लवणखनि (सं० स्त्री०) लवणाकर, नमककी खान।

लवणजल (सं० त्रि०) लवणं जलं यस्य। १ लवणसमुद्र। (क्ली०) लवणं जलं। २ लवणाक्त जल, खारा पानी। ३ लवणमिश्रित जल, वह पानी जिसमें नमक मिला हो।

लवणजलधि (सं० पु०) लवणसमुद्र। (भागवत ५।१७।११)

लवणजलनिधि (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र। (रामायण ५।३१।६२)

लवणता (सं० स्त्री०) लवणस्य भावः तल्-टाप्। लवणका भाव या धर्म, लवणरसयुक्त।

लवणतृण (सं० क्ली०) लवणरसविशिष्टं तृणं। १ तृणविशेष, अमलोनी घास जिसका साग खाते हैं, उसको लोनिया भी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—लोमतृण, तृनाम्ल, पटुतृणक, अम्लकाण्ड। गुण—अम्ल, कषाय, स्तनदुग्धनाशक, अम्लवृद्धिकर। (राजनि०) २ कुलफा नामक साग।

लवणतोय (सं० त्रि०) लवणजल, लवणसमुद्र।

(रामा० ५।७।२१)

लवणत्रय (सं० क्ली०) लवणस्य त्रयं। तीन प्रकारके नमकोंका समूह—सैंधव, विट् और सचल।

लवणत्व (सं० क्ली०) लवणधर्मान्वित, लोणा।

लवणद्वय (सं० क्ली०) दो प्रकारके नमकोंका समूह—सचल और सैंधव।

लवणनित्य (सं० त्रि०) प्रतिदिन लवण-रसास्वादनशील।

लवणधेनु (सं० स्त्री०) लवणनिर्मिता धेनुः। गायके रूपमें कल्पित नमकका ढेर। इसके दानका वराहपुराणमें बड़ा माहात्म्य लिखा है जो इस तरह है,—गोबरसे लिपे स्थानमें कुशके आसन पर सोलह प्रस्थ नमकका एक ढोंका रखे और उसे गायके रूपमें कल्पित करे। चार प्रस्थ और नमक पासमें रख कर उसे उस गायका बछड़ा माने। फिर चार गन्ने रख कर चार पैर, सोना रख कर मुंह और सींग, चांदी रख कर खुर, फल रख कर दांत, चीनी रख कर जीभ, गन्धद्रव्य रख कर नाक, मक्खन रख कर स्तन, तागा रख कर पूंछ, तांबेके पत्तर रख कर पीठ, कुश रख कर रोएं और कांसा रख कर दोहनी कल्पित करे। पीछे इस धेनुके गलेमें घंटी बांधे। तदनन्तर सुगंध पुष्प आदि द्वारा यथाविधान पूजन करके इस धेनुको दो वस्त्रसे ढक कर ब्राह्मणको दान कर दे। संक्रान्ति ग्रहण, व्यतीपातादि योग और उत्तम कालमें दान करना उचित है। विधिपूर्वक धेनु दान कर इसकी दक्षिणामें सोना देना होता है। उक्त विधिके अनुसार

इस लवणधेनुका दान करनेसे इहलोकमें विविध सुख और अन्तकालमें रुद्रलोककी गति होती है।

लवणपत्तन—चट्टलके अन्तर्गत एक नगर।
(भविष्य ब्रह्मावि० १५।६४)

लवणपाटलिका (सं० स्त्री०) लवणकी थली, नाकका स्थान।

लवणपालालिका (सं० स्त्री०) लवणपाटलिका देखो।

लवणपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

लवणभास्कर (सं० क्ली०) वैद्यकका एक प्रसिद्ध चूर्ण। इसमें तीनों नमक और अन्य कई औषधियां पड़ती हैं और यह पेटकी अपच आदि बीमारियोंमें दिया जाता है।

लवणमद (सं० पु०) लवणस्य मदः। खारो नमक।

लवणमन्त्र (सं० पु०) लवण उत्सर्गकालीन एक मन्त्र।

लवणमेह (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार प्रमेह रोगका एक भेद। इस रोगमें पेशाबके साथ लवणके समान स्राव होता है। (सुश्रुत नि० ६ अ०)

लवणयन्त्र (सं० क्ली०) दो मुहड़ेदार बरतनोंके मुंह जोड़ कर बनाया हुआ एक यन्त्र जिसमें कुछ औषधियोंका पाक होता। इनमेंसे एक बरतनमें नमक भी दिया जाता है।

लवणवर्ष (सं० पु०) पुराणानुसार कुशद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष या खंड। (लिङ्गपु० ४६।३६)

लवणवारि (सं० क्लि०) लवणजल, खारे पानीका समुद्र।

लवणव्यापत् (सं० स्त्री०) घोड़ोंकी एक प्रकारकी गहरी पीड़ा। घोड़ा जब बहुत नमक खाता है, तो वायु कुपित हो कर बहुत पीड़ा होती है, इस पीड़ाको लवणव्यापत् कहते हैं।

लवणसमुद्र (सं० पु०) लवणसागर, खारे पानीका समुद्र। यह पुराणोक्त सात समुद्रोंमेंसे एक है। अन्य पुराणोंमें तो सातो समुद्रोंकी उत्पत्ति सगरके पुत्रोंके खोदनेसे या प्रियव्रत राजाके रथके चलनेसे बताई गई है, पर ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है, कि श्रीकृष्णकी एक पत्नी विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए जो सात समुद्र हुए। इनमेंसे एक पुत्रके रोनेके कारण थोड़ी देरके लिये कृष्णका वियोग हो गया। इस पर विरजाने उसे शाप दिया—'तू लवणसमुद्र होगा और तेरा जल कोई नहीं पीयेगा।' यह कथा बहुत पीछेकी कल्पित जान पड़ती है।

लवणस्थान (सं० क्ली०) एक जनपद।

लवणा (सं० स्त्री०) लुनाति या लु ल्यु-टाप्। १ एक नदीका नाम, लूनी। २ दीप्ति, आभा। ३ महाज्योतिष्मती लता। (राजनि०) ४ चुक्रिका, चुक। ५ चंगेरी। ६ लवणशाक, अमलोनी साग।

लवणाकर (सं० पु०) लवणस्य आकरः। लवणकी खान, वह स्थान जहांसे नमक निकलता है।

लवणाख्य—चटगाँवके अन्तर्गत एक लवण-प्रस्रवण।

लवणाचल (सं० पु०) लवणनिर्मितं अचलः। दानार्थ लवणादिनिर्मित पर्वत, पहाड़के रूपमें कल्पित नमकका ढेर। लवणका जो पर्वत बना कर दान करते हैं उसे लवणाचल कहते हैं। मत्स्यपुराणमें इस पर्वतदानका विधान इस प्रकार है। सोलहद्रोण नमकका एक ढोंका ले कर उसका पर्वत बनावे, अर्थात् उसे पर्वतके आकारमें स्थापित करे। इतने नमकसे जो पर्वत बनाया जाता है वह उत्तम; उसके आधेका बनाया हुआ वह मध्यम; और उससे भी आधेका बनाया हुआ पर्वत अधम कहलाता है। जिस परिमाणका पर्वत बनाया जायगा, उसके चौथाईसे विष्कम्भ पर्वत बनावे। पर्वतदानके विधानानुसार सुवर्ण आदिसे ब्रह्मादि और लोकपालादि बना कर विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। पीछे उसे दान कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे और भोजन करावे। इस प्रकार विधिके अनुसार जो लवणपर्वत दान करते हैं, वे इस लोकमें नाना प्रकारका सुखसौभाग्य भोग कर उमालोकमें एक कल्प तक वास करते और पीछे उन्हें मुक्ति मिलती है। (मत्स्यपु०)

लवणाद्यमोदक (सं० क्ली०) नमकसे बनाई हुई एक प्रकारका औषध।

लवणान्तक (सं० पु०) लवणस्य अन्तकः। १ लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्न। (रघु १५।४०) २ नीबू।

लवणाब्धि (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र।
(मार्कण्डेयपु० ५४।७)

लवणाब्धिज (सं० क्ली०) लवणाब्धौ लवणसमुद्रे जायते

इति जन्-ङ । समुद्र लवण, समुद्रसे निकला हुआ नमक ।

लवणाम्बुराशि (सं० पु०) लवणस्य अम्बुराशिः । लवण-समुद्रका जलसमूह ।

लवणाम्भस् (सं० पु०) लवणजल, समुद्र ।

लवणार (सं० क्ली०) लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणारज (सं० क्ली०) लवणक्षार, खारी नमक।

लवणार्णव (सं० पु०) लवणसमुद्र, खारे पानीका समुद्र ।

लवणालय (सं० पु०) लवणस्य आलयः । लवनासुरकी बसाई हुई मधुपुरी । पीछे यह मथुराके नामसे प्रसिद्ध हुई । (रामा० ४।४१।३४) लवण देखो ।

लवणाश्व (सं० पु०) महाभारतवर्णित एक ब्राह्मण ।

लवणासुर—एक असुरका नाम । रामायणमें लिखा है,—सत्ययुगमें दैत्यवंशमें लोलाके गर्भसे मधु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस मधुने महादेवकी कठोर तपस्या कर एक शूल पाया था । महादेवका शूल पा कर मधु बड़ा बल-वान् हो उठा । किन्तु मधु दैववलसे बलवान् होने पर भी परमधार्मिक था, किसीका कोई अनिष्ट नहीं करता था । इसके बाद मधुने पुनः तपस्या कर महादेवसे प्रार्थना की, कि मुझे एक ऐसा वर दीजिये जिससे यह शूल वंशपरम्पराक्रमसे रह जाय । किन्तु महादेवने कहा, कि यह वर तो नहीं मिल सकता, पर तुम्हारा बड़ा लड़का यह शूल पायेगा, इसमें सन्देह नहीं ।

विश्वावसुकी कन्या अनलाके गर्भसे कुम्भीनसी नामकी एक कन्या हुई । मधुने कुम्भीनसीसे विवाह किया और उसीके गर्भसे लवण पैदा हुआ । क्रमशः लवण बड़ा दुर्द्धर्ष हो उठा । मधुने जब देखा, कि लवण बड़ा दुर्द्धर्ष हो गया, तब वह शोकातुर हो कर शूल उसे दे परलोक सिधारा । लवण इस शूलके प्रभावसे त्रिलोकका अवध्य हो गया । लवणके भीषण अत्याचारसे पीड़ित हो ऋषियोंने रामचन्द्रकी शरण ली । भगवदवतार रामचन्द्रने इसका बध करनेके लिये भरतसे कहा । किन्तु शत्रुघ्नने स्वयं उसका बध करनेके लिये प्रार्थना की । शत्रुघ्नकी प्रार्थना पर रामचन्द्रने उन्हें ही लवणका बध करने भेजा । "लवणके हाथ जब तक शूल रहेगा, तब तक देवदानवादि भी क्यों न हो जो इसके सामने लड़ाई करने आयंगे वे भस्मीभूत हो जायगे ।" शत्रुघ्नको यह बात अच्छी तरह मालूम थी । इसलिये जिस समय राक्षसके हाथ शूल नहीं था, उसी समय शत्रुघ्नने आ कर उसका काम तमाम किया । देवगण बड़े सन्तुष्ट हुए और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा कर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे ।

इसके बाद देवोंने शत्रुघ्नके समीप उपस्थित हो उनसे वर मांगने कहा । शत्रुघ्नने प्रार्थना की कि, 'देवविनिर्मित इस लवणासुरकी मनोहारिणी मधुपुरी (मथुरा) जिससे शीघ्र ही जनाकीर्ण हो जाय यही वर हमें दीजिये ।' 'तथास्तु' कह कर देवगण चले गये । पीछे शत्रुघ्न बारह वर्ष इसी नगरीमें रह कर अयोध्या लौटे थे ।

(रामायण अयोध्याका० ७३.८४ अ०)

लवणिमन् (सं० पु०) लवणस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् । पा ५।१।१२३) इति इमनिच् । लवणका भाव या धर्म ।

लवणोत्तम (सं० क्ली०) लवणेषु उत्तमं, सैन्धव लवण, सेंधा नमक । यह सब नमकोंसे अच्छा माना जाता है ।

लवणोत्तमादिचूर्ण (सं० क्ली०) अर्श रोगमें बड़ा फायदा पहुंचानेवाली एक औषध । इसके बनानेकी तरकीब—सेंधा नमक, चितामूल, इन्द्रजौ, करंजका बीया, नीमकी छाल, इनका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण कर पीछे अच्छी तरह मिला दे । औषधकी मात्रा २ मासा है । इसे मट्ठे के साथ खानेसे अर्शरोग आरोग्य होता है ।

(भैषज्यरत्ना० अर्शरोगाधिकार)

लवणोत्तमादिचूर्ण (सं० क्ली०) अर्शरोगाधिकारमें चूर्णौषधविशेष । प्रस्तुतप्रणाली—सेंधा नमक, चितक, इन्द्रजौ, करंजमूल और महापिचुमर्द मूल, इन सब मूलोंके प्रत्येकका चूर्ण २ तोला ले कर एक साथ अच्छी तरह चूर्ण करे । इस औषधका परिमाण ८ मासा और अनुपान मट्ठा है । अर्शरोगमें यह बड़ा लाभदायक है ।

(चक्रदत्त अर्शरोगाधि०)

लवणोत्थ (सं० क्ली०) लवणादुत्तिष्ठतीति उद्-स्था-क । लवणक्षार, खारी नमक ।

लवणोत्था (सं० स्त्री०) ज्योतिष्मती लता ।

लवणोत्स (सं० पु०) एक नगर । (राजतर० १।३३।१)

लवणोद (सं० पु०) लवणं उदकं यस्य, उत्तरपदस्य चेत्युदकस्योदादेशः । लवणसमुद्र ।

लवणोदक (सं० पु०) १ लवणमिश्रित जल, नमक मिला हुआ पानी। २ क्षारसमुद्र।

लवणोदधि (सं० पु०) लवण समुद्र।

लवन (सं० क्लो०) लू-भावे ल्युट्। १ छेदन, काटना। २ खेतकी कटाई, लुनाई। ३ खेत काटनेकी मजदूरीमें दिया हुआ अन्न, लौनी।

लवना (हिं० क्रि०) १ पके हुए अन्नके पौधोंको खेतोंसे काट कर एकत्र करना, लुनना। २ लोना देखो।

लवनि (सं० स्त्री०) लवनी देखो।

लवनी (हिं० स्त्री०) १ खेतमें अनाजकी पकी फसलकी कटाई, लुनाई। २ वह अन्न जो खेत काटनेवालोंको मजदूरीमें दिया जाता है।

लवनी (सं० स्त्री०) फलवृक्षविशेष, शरीफेका पेड़ या फल।

लवनीय (सं० त्रि०) लू अनीयर्। छेदनीय, काटनेके लायक।

लवन्य (सं० पु०) एक जाति। (राजतर० ७।१२।४१)

लवराज (सं० पु०) काश्मीरके एक ब्राह्मण। (राजतर० ८।१३।४७)

लवली (सं० स्त्री०) लवं लेशं लातीति ला-क, गौरादित्वात् ङीष्। १ फलवृक्षविशेष, हरफारेवरी नामका पेड़ और उसका फल। पर्याय—सुगन्धमूला, शन्डु, कोमलवल्कला। इसके फलका गुण हृद्य, सुगन्धि और कफवातनाशक माना गया है। (राजनि०) २ एक विषम वर्णवृत्त। इसके प्रथम चरणमें १६, दूसरेमें १२, तीसरेमें ८ और चौथे चरणमें ३० वर्ण होते हैं।

लवलीन (हिं० वि०) तन्मय, मग्न।

लवलेश (सं० पु०) १ अत्यन्त अल्प मात्रा, बहुत थोड़ी मिकदार। २ जरा-सा लगाव, अल्प संसर्ग।

लववत् (सं० त्रि०) क्षणस्थायी, थोड़ी देर तक रहनेवाला।

लवशस् (सं० अव्य०) खंड खंड, मूहूर्त्तके लिये।

लवा (हिं० पु०) तीतरकी जातिका एक पक्षी। यह तीतरसे बहुत छोटा होता है और जमीन पर अधिक रहता है। इसके पंजे बहुत लम्बे होते हैं। नर और मादामें देखनेमें कोई भेद नहीं होता। मादा भूरे रंगके अंडे देती है। जाड़े के दिनोंमें इस चिड़ियाके झुंडके झुंड झाड़ियों और जमीन पर दिखाई पड़ते हैं। यह दाने और कीड़े खाते हैं।

लवाई (हिं० वि०) १ हालकी ब्याई हुई गाय, वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। (स्त्री०) २ खेतकी फसलकी कटाई, लुनाई। ३ फसल-कटाईकी मजदूरी।

लवाक (सं० पु०) लवरर्थं छेदनार्थं अकतीति अक-अच्। छेदनद्रव्य, काटनेकी चीज।

लवाजमा (अ० पु०) १ किसीके साथ रहनेवाला दलबल और साज सामान, साथमें रहनेवाली भीड़-भाड़ या असबाब। २ आवश्यक सामग्री, वह सामान जो किसी बातके लिये जरूरी हो।

लवाजमात (अ० पु०) सामग्री, उपकरण।

लवाणक (सं० पु०) लूयतेऽनेनेति लू (आपाका-लू-धूशिन्धिताभ्य्यः। उण् ३।८३) इति आणक। दात्रादि छेदनद्रव्य, हंसिया।

लवित्र (सं० क्लो०) लूयतेऽनेनेति लू (अर्त्ति लू धू सूखनसहचर इत्र। पा ३।२।१८४) इति इत्र। दात्र, हंसिया।

लवेरणि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (संस्कारकौमुदी)

लब्दरिया—१ सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २७° १५' से ३१' उ० तथा देशा० ६८° २' से ६८° २३' के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण २०७ वर्गमील है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यहां दो फौजदारी अदालत है।

लब्धिसागर—श्रीपालकथाके प्रणेता।

लव्य (सं० त्रि०) छेदनयोग्य, काटनेके लायक।

लब्बय—मन्द्रास और बम्बई प्रेसिडेन्सीमें रहनेवाली एक मुसलमान जाति। मलवार उपकूलमें भी इस जातिका वास देखा जाता है। इस जातिके लोग अरब और पारस देशके औपनिवेशिक मुसलमानोंके सन्तान हैं। अधिक सम्भव है, कि ७वीं सदीमें इराकके शासनकर्त्ता हजाज-इबन-यूसुफके अत्याचारसे तंग आ कर उस देशके अरबी और पारसी लोग इस देशमें आ कर बस गये हों। इसके अलावा जो सब अरबी और पारसी

मुसलमान वणिक् पश्चिमी-भारतके वाणिज्यके लिये भारत आते जाते थे, उनमेंसे बहुतेरे यहांके अधिवासी हो गये इसी वणिक्सम्प्रदायने १६वीं सदीके प्रारम्भ तक दक्षिण-भारतमें अपनी धाक जमा ली थी। पुर्त्तगीज वणिकोंके प्रभावसे उक्त मुसलमान वणिक्सम्प्रदायका वाणिज्य धीरे धीरे ह्रास होता गया। भारतवासी ये सब मुसलमान-वंशधर ही अभी लव्वय कहलाते हैं। ये खास कर मारवाड़ी और हिन्दी भाषा बोलते हैं।

इनका मुंह और काली काली आँखें देखनेसे मालूम होता है, कि नाना वैदेशिक रक्तके मिलनेसे यह जाति उत्पन्न हुई है। ये स्वभावतः नाटे लेकिन बड़े बलिष्ठ होते हैं। इनका आचार-व्यवहार सराहनीय है। ये साफ सुथरा रहते हैं। चमड़ा, मुक्ता, किमती पत्थर, चावल और नारियल बेचना ही इनका जातीय-व्यवसाय है।

ये साफाई सम्प्रदायभुक और सुन्नी-मतावलम्बी हैं। धर्मकर्ममें इनका पूरा ध्यान रहता है। आधेसे अधिक मनुष्य चमड़ेका कारबार करते हैं। व्यवसायके लिये ये सिंहलद्वीप तक धावा करते हैं।

लशकर (फा० पु०) १ सेना, फौज। २ मनुष्योंका भारी समूह, भीड़भाड़। ३ जहाजमें काम करनेवालोंका दल, जहाजी आदमी। ४ फौजके टिकनेका स्थान, छावनी।

लशकरी (फा० वि०) १ फौजका, सेनासम्बन्धी। २ जहाजसे सम्बन्ध रखनेवाला। ३ जहाज पर काम करनेवाला, खलासी। (पु०) ४ सैनिक, सिपाही। ५ जहाजी-आदमी। ६ जहाजियों या खलासियोंकी भाषा।

लशकारना (फा० क्रि०) शिकारी कुत्तोंको शिकार पकड़नेके लिये पुकार कर बढ़ावा देना, लहकारना।

लशुन (सं० क्ली०) अश्यते भुज्यते इति अश (अशेर्लशच। उण् ३।५७) इति उनन्, लशादेशच धातोः। रसोन, लहसुन। पर्याय—महौषध, गृञ्जन, अरिष्ट, महाकन्द, रसोनक, रसोन, म्लेच्छकन्द, भूतघ्न, उग्रगन्ध। लहसुनकी जड़ या कन्द प्याजके ही समान तीक्ष्ण और उग्र गंधवाली होती है। इससे बहुत-से आचारवान् हिन्दू विशेषतः वैष्णव नहीं खाते; प्याजकी गांठ और लहसुनकी गांठकी बनावटमें बहुत अंतर होता है। प्याजकी गांठ कोमल छिलकोंकी तहोंसे मढ़ी हुई होती है, पर लहसुनकी गांठ चारो ओर एक पंक्तिमें गुछी हुई फाकोंसे बनी होती है जिन्हें जवा कहते हैं। वैद्यकमें यह मांसवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगहको ठीक करनेवाला, कफवातनाशक, कण्ठशोधक, गुरु, रक्तपित्तवर्द्धक, बलकारक, वर्णप्रसादक, मेधाजनक, नेत्रोंका हितकारी, रसायन और हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमि, वायु, श्वास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि लहसुन खानेवालेके लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक है तथा कसरत, धूप, क्रोध, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर है। वैद्यकमें इसके बहुत गुण कहे गये हैं। यह तरकारीके मसालेमें पड़ता है। भावप्रकाशमें लहसुनके सम्बन्धमें यह आख्यान लिखा है,—जिस समय गरुड़ इन्द्रके यहांसे अमृत हर कर लिये जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूंद जमीन पर गिर पड़ी, उसीसे लहसुनकी उत्पत्ति हुई।

धर्मशास्त्रके मतसे लहसुन खाना एकदम निषिद्ध है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन जातियोंको कदापि लहसुन नहीं खाना चाहिये।

"लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च॥"

(मनु ५।५)

लशुन, गृंजन, पालाण्डु, कवक और अमेध्यप्रभाव अर्थात् विष्ठादि जात वस्तु द्विजातियोंकी अभक्ष्य है। कुल्लूकभट्टने उस श्लोककी टीकामें लिखा है,—'द्विजातिग्रहणं शूद्रस्यपर्युदासार्थं' द्विजाति पदसे पर्युदासार्थ अर्थात् अप्रशस्तार्थ जानने पर शूद्र भी भक्षण न करे। यदि करे तो कोई विशेष दोषावह नहीं होगा। लहसुन द्विजातियोंके अभक्ष्य है, शूद्र द्विजातिमें गिना नहीं जाता। अतएव शूद्र लहसुन भक्षण कर सकेगा यह शास्त्रका अभिमत नहीं है।

मनु और याज्ञवल्क्यके मतसे यदि कोई द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय) जान बूझ कर लहसुन भक्षण करें, तो वे पतित होंगे। अज्ञानतः भक्षण करनेसे केवल चान्द्रायण तथा ज्ञानतः भक्षण करनेसे उन्हें चान्द्रायणादि करके पुनः संस्कार करना होगा, नहीं तो वे अव्यवहार्य और पतित होंगे।

(मनु ५।१९-२०, याज्ञवल्क्यस० १।१७६) पलाण्डु देखो।

लशुनाद्यतैल—कर्णरोगमें उपकारक एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—तिलतेल १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर। कल्कार्थ—लहसुन, आंवला और हरताल मिला कर २ पल। इसे कानमें देनेसे बहिरापन जाता रहता है। (भैषज्यरत्ना०)

लशून (सं० पु०) रसेन ऊनः, रस्य लत्वं, पृषोदरादित्वात् सस्य शः अकारलोपश्च। लशुण, लहसुन।

लषण (सं० क्ली०) वाञ्छन, चाह।

लषणावती (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगर।

लषना (हिं० क्रि०) लखना देखो।

लषमण (सं० पु०) लक्ष्मण।

लषमादेवी—एक राजकन्याका नाम। दूसरा नाम लक्ष्मीदेवी था।

लष्व (सं० पु०) लाषयति नृत्ये शिल्पं युनक्तीति लष (सर्व्वनिसृष्वेरिष्वेति। उण् १।१५३) इति वन्प्रत्ययेन साधुः। नर्त्तक, वह जो नाचता हो।

लष्वन (हिं० पु०) लक्खन देखो।

लस (सं० पु०) १ चिपकने या चिपकानेका गुण श्लेषण। २ वह जिसके लगावसे एक वस्तु दूसरी वस्तुसे चिपक जाय, लासा। ३ चित्त लगनेकी बात, आकर्षण।

लसक (सं० पु०) नर्त्तक, नाचनेवाला।

लसदार (फा० वि०) जिसमें लस हो, लसीला।

लसना (हिं० क्रि०) एक वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ इस प्रकार सटाना कि वह अलग न हो, चिपकाना।

लसम (हिं० वि०) जो खरा और चोखा न हो, दागी।

लसलसा (हिं० वि०) लसदार, चिपचिपा।

लसलसाना (हिं० क्रि०) गोंद या लसदार चीजकी तरह चिपकना, चिपचिपाना।

लसलसाहट (हिं० स्त्री०) लसदार होनेका भाव, चिपचिपाहट।

लसवारी—राजपूताना अलवार-राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७°३३´ उ० तथा देशा० ७६° ५६´ पू०के मध्य रामगढ़नगरसे चार कोस दक्षिण-पूर्व तथा अलवार-राजधानीसे दश कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां १८०३ ई०में विख्यात लसवारीका युद्ध हुआ था, जिसमें अङ्गरेजोंके हाथसे प्रसिद्ध महाराष्ट्र-शक्तिका पराभव हुआ।

जब सेनापति लार्ड लेकको यह खबर लगी, कि मराठी सेना छिपके बढ़ रही है, तब वे उन्हें रोकनेके लिये घुड़सवार सेनादलको ले कर गहरी रातमें इस गांवमें आ धमके। पहली नवम्बरको दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। लार्ड लेक अपनी पराजय अवश्यम्भावी समझ कर पीछे हटे। इसी समय पैदल सेना उनकी सहायतामें पहुंच गई। लार्ड लेक कुछ काल विश्राम कर फिर युद्धके लिए रणक्षेत्रमें उतरे। इस बार सिन्दे-सैन्यने भीमविक्रमसे अङ्गरेजों पर हमला किया। मराठी सेनाने शेष पर्य्यन्त युद्ध कर भारतमें गौरवकी रक्षा की थी। अन्तमें उन्होंने यह सैन्य नष्ट हो जानेके भयसे लड़ाई बन्द कर दी। अङ्गरेजोंकी जीत हुई। उन्हें ७१ कमान और काफी रसद भी मिली।

लसा (सं० स्त्री०) लसतीति लस-अच्, टाप्। हरिद्रा, हल्दी।

लसिका (सं० स्त्री०) लसतीति लस-अच् ततः कन् ततः टाप् अत इत्वं। लाला, थूक।

लसी (हिं० स्त्री०) १ लस, चिपचिपाहट। २ दिल लगनेकी वस्तु, आकर्षण। ३ सम्बन्ध, लगाव। ४ लोभका योग, फायदेका डौल। ५ दूध और पानी मिला शरबत।

लसीका (सं० स्त्री०) १ इक्षुरस, ईखका रस। २ त्वङ्मांसमध्यगत रस, मांस और चमड़ेके बीचमें रहनेवाला रस या पानी।

लसीला (हिं० वि०) १ लसदार, चिपचिपा। २ शोभायुक्त, सुन्दर।

लसुन (हिं० पु०) लशुन देखो।

लसुनिया (हिं० पु०) लहनिया देखो।

लसोड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी पत्तियां गोल गोल और फल बेरके-से होते हैं। यह वसन्तमें पत्तियां झाड़ता है और हिन्दुस्तानमें प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। फलमें बहुत ही लसदार गूदा होता है। यह फल औषधके काममें आता है और सूखी खांसीको ढीली करनेके लिये दिया जाता है। फारसीमें इसे सपिस्ता कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिला कर अवलेह या चटनी बनाते हैं, जो खांसीमें चाटनेके लिये दिया जाता है। संस्कृतमें भी इसे श्लेष्मान्तक कहते हैं।

लसोफरञ्च (सं० क्ली०) एक नगर।

लसौटा (हिं० पु०) बांसका चोंगा। इसमें बहेलिए चिड़िया फंसानेका लासा रखते हैं।

लस्करपुर—उत्तर बंगालके अन्तर्गत एक विभाग। मुसलमानी अमलदारीके समय यह पुटिया भूसम्पत्ति कहलाता था। मुर्शिद कुली खांके समय १५ परगनोंको ले कर यह विभाग गठित हुआ।

लस्करी—एक वैष्णव-सम्प्रदाय। ये लोग रामात् सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं और रामानन्दियोंकी तरह तिलक लगाते हैं, लेकिन उनके समान लाल वर्ण नहीं सफेद श्री धारण करते हैं। अयोध्यामें इस सम्प्रदायके वैष्णवोंका एक स्थान है। इस सम्प्रदायके वैरागी लोग कभी कभी साम्प्रदायिक तिलकके बदले ललाटमें गोपीचन्दन, कभी समूचे मुखमण्डलमें अपनी अपनी इच्छानुसार रामरज नामक मिट्टी अधिकतर लगाते हैं। इनके और सब आचार-व्यवहार रामानन्दियोंके जैसे हैं। रामात् देखो।

लस्त (सं० त्रि०) लस क्त। १ क्रीड़ित, क्रीड़ा किया हुआ। २ शोभायुक्त, सजावटसे भरा।

लस्त (हिं० वि०) १ शिथिल, थका हुआ। २ अशक्त, जिसमें कुछ करनेकी शक्ति या साहस न रह गया हो।

लस्तक (सं० पु०) धनुषका मध्य भाग, मूठ।

लस्तकिन् (सं० पु०) लस्तकोऽस्त्यस्येति लस्तक इन्। धनुष।

लस्पूजनी (सं० स्त्री०) बड़ी सूची, बड़ी सूई।

लस्सी (हिं० स्त्री०) १ लस, चिपचिपाहट। लसी देखो। २ छाछ, मठा।

लहंगा (हिं० पु०) कमरके नीचेका सारा अङ्ग ढाँकनेके लिये स्त्रियोंका एक घेरदार पहनावा। यह सूतकी डोरी या नाले (इजारबंद)-से कमरमें कस कर पहना जाता है और इसमें बहुत-सी चुनटें पड़ी रहती हैं। इसमें नालीके आकारका घेरेदार माला पड़ा रहता है जिसे नेफा कहते हैं। लहंगेसे केवल कटिके नीचेका भाग ढंकता है इससे इसके साथ ओढ़नी भी ओढ़ी जाती है।

लहक (हिं० स्त्री०) लहकनेकी क्रिया या भाव। २ चमक, द्युति। ३ आगकी लपट। ४ शोभा, छवि।

लहकना (हिं० क्रि०) १ हवामें इधर उधर डोलना, झोंके खाना। २ हवाका बहना, हवाका झोंके देना। ३ आगका इधर उधर लपट छोड़ना, दहकना। ४ चाहसे भरना, उत्कंठित होना। ५ चाह या उत्कंठासे आगे बढ़ना, लपकना।

लहकाना (हिं० क्रि०) १ हवामें इधर उधर हिलाना डुलाना, झोंका खिलाना। २ उत्साह दिला कर आगे बढ़ाना, किसी ओर अग्रसर होनेके लिये बढ़ावा देना। ३ आगे बढ़ाना। ४ किसीके विरुद्ध कुछ करनेके लिये भड़काना, ताव दिलाना। ५ चाह या उत्कंठासे आगे बढ़ाना, लपकाना।

लहकारना (हिं० क्रि०) १ किसीके विरुद्ध कुछ करनेके लिये बहकाना, ताव दिलाना। २ उत्साहित करके आगे बढ़ाना। ३ कुत्तेको उत्साहित या क्रुद्ध करके किसीके पीछे लगाना।

लहकौर (हिं० स्त्री०) विवाहकी एक रीति। इसमें दुलहा और दूलहिन कोहबरमें एक दूसरेके मुंहमें कौर या ग्रास डालते हैं।

लहकौरि (हिं० स्त्री०) लहकौर देखो।

लहजा (हिं० पु०) गाने या बोलनेका ढंग, स्वर।

लहजा (अ० पु०) पल, क्षण।

लहड़ (सं० क्ली०) १ काश्मीरके अन्तर्गत एक जनपद। आज कल यह लाहोर कहलाता है। (पु०) २ उस देशका रहनेवाला।

लहन (हि० पु०) कंजा नामकी कंटीली झाड़ी। कंजा देखो।

लहनदार (फा० पु०) वह मनुष्य जिसका कुछ लहना किसी पर बांकी हो, महाजन।

लहना (हिं० क्रि०) १ प्राप्त करना, पाना। (पु०) २ किसीको दिया हुआ धन जो वसूल करना हो, उधार दिया हुआ रुपया पैसा। ३ वह धन जो किसी कामके बदलेमें किसीसे मिलनेवाला हो, रुपया पैसा जो किसी कारण किसीसे मिलनेवाला हो। ४ भाग्य, किस्मत।

लहना बही (हिं० पु०) वह बही जिसमें ऋण लेनेवालोंके नाम और रकमें लिखी जाती हैं और जिसके अनुसार वसूली होती है।

लहनी (हिं० स्त्री०) १ प्राप्ति। २ फलभोग। ३ वह औजार जिससे ठठेरे बरतन छीलते हैं।

लहबर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बहुत लंबा और ढीला ढाला पहनावा, चोगा। २ झंडा, निशान। ३ एक प्रकारका तोता जिसकी गरदन बहुत लंबी होती है।

लहमा (हिं० पु०) निमेष, पल।

लहर (सं० पु०) एक जाति। २ काश्मीरके अन्तर्गत लोहर जनपद।

लहर (हिं० स्त्री०) १ हवाके झोंकेसे एक दूसरेके पीछे ऊंची उठती हुई जलकी राशि, बड़ा हिलोरा। २ उमंग, जोश। ३ आनन्दकी उमंग, मौज। ४ शरीरके अंदरके किसी उपद्रवका वेग जो कुछ अंतर पर रह रह कर उत्पन्न हो, झोंका। ५ मनकी मौज, मनमें आपसे आप उठी हुई प्रेरणा। ६ वक्र गति, इधर उधर मुड़ती हुई टेढी चाल। ७ आवाज़की गूंज, स्वरका कंप जो वायुमें उत्पन्न होता है। ८ हवाका झोंका। ९ किसी प्रकारकी गंधसे भरी हुई हवाका झोंका, महक। १० बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होती हुई जानेवाली रेखा, चलते सर्पकी-सी कुटिल रेखा।

लहरदार (फा० वि०) जो सीधा न जा कर टेढ़ मेढ़ा गया हो, कुटिल या वक्र गतिसे गया हुआ।

लहरना (हिं० क्रि०) लहराना देखो।

लहरपटोर (हिं० पु०) पुरानी चालका एक प्रकारका रेशमी धारीदार कपड़ा।

लहरा (हिं० पु०) १ लहर, तरंग। २ मौज, मजा। ३ बाजोंकी वह गत जो आरम्भमें नाचने वा गानेके पहले समाँ बाँधने और आनन्द बढ़ानेके लिये बजाई जाती है। इसमें कुछ गाना नहीं होता केवल ताल और स्वरोंकी लयमात्र होती है। ४ एक प्रकारकी घास।

लहरा—उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह पाल-लहरा राज्यकी राजधानी है। पाल-लहरा देखो।

लहराना (हिं० क्रि०) १ हवाके झोंकेसे इधर उधर हिलना डोलना, लहरें खाना। २ मनका उमंगमें होना, उल्लासमें होना। ३ आगकी लपटका निकल कर इधर उधर हिलना, दहकना। ४ हवाका चलना या पानीका हवाके झोंकेसे उठना और गिरना, बहना या हिलोर मारना। ५ किसी वस्तुके लिये उत्कंठित होना, लपकना। ६ शोभित होना, विराजना। ७ सीधे न चल कर साँपकी तरह इधर उधर मुड़ते या झोंका खाते हुए चलना। ८ हवाके झोंकेमें इधर उधर हिलाना डुलाना या हिलने डोलनेके लिये छोड़ देना। ९ बार बार इधरसे उधर हिलाना डुलाना। १० सीधे न चल कर साँपकी तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना, वक्रगतिसे ले जाना।

लहरि (सं० स्त्री०) महातरंग। लहर देखो।

लहरिया (हिं० पु०) १ ऐसी सामानान्तर रेखाओंका समूह जो सीधी न जा कर क्रमसे इधर उधर मुड़ती हुई गई हों, टेढ़ी मेढ़ी गई हुई लकीरोंकी श्रेणी। २ वह साड़ी या धोती जिसकी रंगाई टेढ़ी मेढ़ी लकीरोंके रूपमें हो। ३ एक प्रकारका कपड़ा जिसमें रंग बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं। ४ जरीके कपड़ोंके किनारे बनी हुई बेल। (स्त्री०) ५ लहर शब्दका पूरबी निर्देशात्मक रूप।

लहरियादार (फा० वि०) जिसमें लहरिया बना हो, जिसमें बहुत-सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएं हों।

लहरी (सं० स्त्री०) लहर, तरंग।

लहल (हिं० पु०) एक प्रकारका राग जो दीपक रागका पुत्र कहा जाता है।

लहलह (हिं० वि०) १ लहलहाता हुआ, हरा भरा। २ हर्षसे फूला हुआ, खुशीसे खिला हुआ।

लहलहा (हिं० वि०) लहलहाता हुआ, हरा भरा। २ हृष्ट पुष्ट। ३ आनन्दसे पूर्ण, खुसीसे भरा हुआ।

लहलहाना (हिं० क्रि०) १ लहरानेवाली हरी पत्तियोंसे भरना, हरा भरा होना। २ दुर्बल शरीरका फिरसे हृष्ट और सजीव होना, शरीर पनपना। ३ प्रफुल्ल होना, खुशीसे भरना। ४ सूखे पेड़ या पौधेमें फिरसे पत्तियां निकलना, पनपना।

लहलही (हिं० वि० स्त्री०) लहलहा देखो।

लहसुन (हिं० पु०) १ एक केन्द्रसे उठ कर चारों ओर गिरी हुई लम्बी लम्बी पतली पत्तियोंका एक पौधा। इसकी जड़ गोल गांठके रूपमें होती है।

विशेष विवरण लशुन शब्दमें देखो।

२ मानिकका एक दोष। इसे संस्कृतमें अशोभक कहते हैं।

लहसुनिया (हिं० पु०) धूमिल रंगका एक रत्न या बहुमूल्य

पत्थर, रुद्राक्षक। यह नवरत्नोंमें है तथा लाल, पीले और हरे रंगका भी होता है। जिस पर तीन अर्द्ध-रेखाएं हों, वह उत्तम समझा जाता है और 'ढाई सूतका' कहलाता है।

लहसुनी हींग (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कृत्रिम हींग जो लहसुनके योगसे बनाई जाती है।

लहसुवा (हिं० पु०) एक प्रकारका साग।

लहाछेह (हिं० पु०) १ नृत्यकी क्रियाओंमेंसे चौथी क्रिया, नाचकी एक गति। २ नाचनेमें तेजी और झपट।

लहार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक दुर्गाधिष्ठित नगर। यह अक्षा० २५° ११´ ५०´´ उ० तथा देशा० ७८° ५६´ ५´´ पू०के मध्य सिन्धुनदके दाहिने किनारेसे तीन कोस पूर्वमें अवस्थित है। १७८० ई०में अङ्गरेजी-सेनाके इस दुर्ग पर चढ़ाई करनेसे दोनों दलमें घमसान युद्ध छिड़ा। उस समय दुर्गमें ५०० सेना मौजूद थी। कर्नेल पपहाम दुर्ग पर घेरा डाल कर गोला बरसाने लगे। इससे सिर्फ किलादार और उनके कुछ अनुचरोंके सिवा और सभी यमपुरको सिधारे।

लहारपुर—१ अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक परगना। भू-परिमाण १७२ वर्गमील है। लहारपुर नगरसे दो मील पश्चिम केशरीगंज नगर यहांका प्रधान वाणिज्यकेन्द्र है। इस परगनेके मध्यभागमें १०३० फुट ऊंची एक अधित्यका भूमि दिखाई पड़ती है। यहांकी मिट्टी कड़ी होती है। दक्षिणकी जमीन उर्व्वरा है।

मुगल-सम्राट् अकबरके समय राजा टोडरमल्लने १३ तप्पोंको ले कर यह परगना संगठित किया था। गौड़ और जनावर राजपूत यहांके स्वत्वाधिकारी हैं। १७०७ ई०में मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबकी जब मृत्यु हो गई, तब राज्यमें अराजकता देख गौड़राज चन्द्रसेनने सीतापुर पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने कब्जेमें कर लिया। तभीसे उन्हींके वंशधर इस सम्पत्तिके अधिकारी हैं। स्थानीय जनवार राजपूत कुशी परगनेके सैन्दूर नगरसे यहां आ कर बस गये और सैन्दूरी कहलाने लगे। ये गौड़राजवंशसे पहले यहां आये हुए थे।

२ उक्त परगनेका एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २७° ४२´ उ० तथा देशा० ८०° ५५´ पू०के मध्य घाघरा नदीके तट पर मल्लापुर नगर जानेके रास्तेमें अवस्थित है। जनसंख्या १०६६७ है जिसमें आधा हिन्दू और मुसलमान है।

इस नगरमें १३ मसजिद, २ मकबरा, ४ हिन्दूमन्दिर और २ सिख मन्दिर हैं। इसके अलावा यहां १ चिकित्सालय और २ स्कूल हैं। रबि-उस्-सानीके महीनेमें यहां एक मेला लगता है और बड़ी धूमधामसे मुहर्रम मनाया जाता है। १३७० ई०में सम्राट् फिरोज तुगलक बहराइचमें सैयद सलार मसाउदका मकबरा देखने आये। उन्होंने ही इस नगरको अपने नाम पर बसाया था। इसके ३० वर्ष बाद लहरी नामक एक पासीने इस नगर पर कब्जा कर इसका नाम लहारपुर रखा। १४१८ ई०में कनौजसे प्रेरित मुसलमान सेनापति शेख ताहिर गाजीने पासियोंको समूल निहत कर यह स्थान अपने कब्जेमें कर लिया। ११०७ ई०में गौड़ राजपूतगण मुसलमानोंको नगरसे भगा कर खुद राज्यशासन करने लगे। सम्राट् अकबरशाहके राजमन्त्री और सेनापति राजा टोडरमल इसी नगरमें पैदा हुए थे।

लहालोट (हिं० क्रि०) १ हँसीसे लोटता हुआ, हँसीमें मग्न। २ प्रेममग्न, लुभाया हुआ। ३ खुशीसे भरा हुआ, आनन्दके मारे उछलता हुआ।

लहासन (हिं० स्त्री०) वह काली भेंड जिसकी कनपटीसे माथे तकका भाग लाल होता है।

लहासी (हिं० स्त्री०) १ वह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज बांधे जाते हैं। २ रस्सी, डोरी। ३ रास्तेमें निकली हुई जड़।

लहिक (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। लहोड़ देखो।

लहुल (लाहुल)—पंजाबप्रदेशके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० ३२° ८´ से ३२° ५६´ उ० तथा देशा० ७६° ४६´ से ७७° ४७´ पू०के बीच पड़ता है। भू-परिमाण २२५५ वर्गमील और जनसंख्या ७२०५ है। उत्तर-पश्चिममें विस्तृत चम्बा पर्वतमाला और दक्षिण-पूर्वमें कंजामगिरिमालाकी मध्यवर्त्ती उपत्यकाभूमि ले कर यह उपविभाग बना है। इसके उत्तर-पश्चिममें चम्बा शैल, उत्तर और पूर्वमें लादकके अन्तगत रुपसू उप-

विभाग, दक्षिण-पश्चिममें कांगड़ा और कुलु तथा दक्षिण-पूर्वमें स्पिति विभाग हैं।

हिमालयके शिखर पर स्थित यह उपत्यका-भूमि बड़े बड़े पहाड़ोंसे घिरी है। उसके बीच हो कर चन्द्रा और भागा नामकी दो नदियां तीव्र धारासे बहती हैं और ताण्डी गांवके पास आपसमें मिल गई हैं। पीछे चन्द्रभागा नामसे चम्बामें प्रवेश कर पंजाबकी समतल-भूमिमें बह चली हैं।

इन दोनों नदीके अववाहिका प्रदेशके दोनों किनारे हिमालयकी चोटी खड़ी है। देखनेसे मालूम होता है मानो उसी भयावह और वनमाला समाच्छन्न पर्वत-कन्दराको फाड़ कर दोनों नदी इस छोटी उपत्यकामें बहती है। बड़ा लाचा गिरिपथ समुद्रको तहसे १६२२१ फुट ऊंचा है। उससे उत्तर-पूरबमें जो सब शैलमाला शिर उठाये खड़ी हैं, वे भी १९-२१ हजारसे कम ऊंची न होंगी।

इस पहाड़ी उत्यकाका अधिकांश स्थान ही जन शून्य है। मनुष्यके बसनेका कोई उपयुक्त स्थान दिखाई नहीं पड़ता। गरमीके दिनोंमें कुलुवासी ग्वाले इस विभागमें भेंड़ चराने आते हैं। उस समय वे अपने अपने रहनेके लिये घर बना लेते हैं। कहीं कहीं लामा या बौद्ध-संन्यासियोंके घर और बौद्धसङ्घ दिखाई पड़ने हैं।

चन्द्रातीरवर्त्ती कोकसारसे भागाके किनारे अवस्थित दार्चा तक वासोपयोगी स्थान एकदम नहीं है। इस उपत्यका-भूमिके नीचे अर्थात् समुद्रपृष्ठसे प्रायः १० हजार फुट ऊंचे स्थानमें कुछ ग्रामादि दिखाई पड़ते हैं। ११३४५ फुट ऊंची अधित्यका भूमिमें कांशर नामक ग्राम अवस्थित है। इतने ऊंचे पर इसके सिवाय और कोई ग्राम नहीं है। रोहतङ्ग और वारलाप गिरिपथ हो कर लादक और यारखन्द जानेका एक चौड़ा रास्ता गया है। आज भी वणिक् लोग इस पथसे जाते आते हैं।

विख्यात चीन-परिव्राजक यूएनचुवङ्ग ७वीं सदीमें यह स्थान देखने आये थे। पूर्वकालमें यहां बौद्धधर्मका प्रादुर्भाव था तथा यह स्थान तिब्बतराज्यके अन्तर्गत था। १०वीं सदीमें भोट राज्यमें जब राष्ट्रविप्लव खड़ा हुआ, तब यह स्थान तिब्बतीय अधिकारसे निकल कर लदाखके शासनभुक्त हो गया। किस समय तथा कैसे यह स्थान तिब्बतीय अधिकारसे निकल कर स्वाधीन हो गया, मालूम नहीं। पर हां, इतना अनुमान किया जाता है, कि १५८७ ई०में लदाखकी शासनपद्धतिका संस्कार होनेसे पहले यह घटना घटी थी। कुछ समय तक यह स्थान ठाकुर-सामन्तोंके मातहतमें रहा। स्थानीय उक्त सरदारगण सभी चम्बाराजोंको कर देते थे। आज भी इन सरदारोंका ५वां वंश उस प्रदेशका शासन करता है। वे पूर्वपुरुषोंकी इस सम्पत्तिका जागीरदारकी तौर पर भोग करते आ रहे हैं। १७वीं सदीमें राजा जगत्सिंहके पुत्र बुधसिंहके राजत्वकालमें यह कुलूराजके अधिकारमें हुआ। राजा जगत्सिंह मुगल-सम्राट् शाहजहान् और औरङ्गजेबके समसामयिक थे। बुधसिंहके अधिकारसे १८४६ ई० तक लाहुलकुलूराजके दखलमें रहा। पीछे वह अंगरेज-राजके हाथ आया।

यहांके अधिवासियोंमेंसे ठाकुर उपाधिधारी सामन्त ही प्रधान हैं। ये लोग अपनेको राजपूत बतलाते हैं सही, पर भुटिया या तिब्बतीय खून इनके शरीरमें जरूर है। कुनेत नामक पहाड़ी जाति भारतीय और मंगोलीय जातिसे उत्पन्न हुई है। ये सबके सब बौद्धधर्मावलम्बी हैं। फिर भी वर्त्तमान ठाकुरोंके उद्योगसे यहां धीरे धीरे हिन्दू-धर्मकी भी गोटी जमती जा रही है। नीचे उपत्यका-भागमें कुछ घर ब्राह्मण-धर्मयाजकके हैं, किन्तु बहुत जगह पुरोहित लोग दोनों धर्मका पालन करते हैं। कहीं कहीं तिब्बतीय प्रथाका धर्मचक्र दिखाई देता है। पर्वतके ऊपर बहुतसे बौद्धमठ प्रतिष्ठित हैं। उनमेंसे चन्द्रा और भागा नदीके संगम पर अवस्थित गुरुगण्डाल-मठ ही प्रधान है। यहांके वाशिन्दे बड़े लंपट और शराबी होते हैं। किलां, कार्दोङ्ग और कोलङ्ग ग्राम ही यहांका प्रधान वाणिज्य-स्थान है। अधिवासी पशम, सोहागा, गदहे, बकरे, भेड़ और घोड़ेका व्यवसाय कर अपना गुजारा चलाते हैं। यहां ठंढ खूब पड़ती है। चैतके महीनेमें कार्दोङ्गकी वायुका ताप ४६° F, जेठमें ५६° F तथा आसिनमें २६° F बढ़ता है। पीछे धीरे धीरे कम होता जाता है।

लहू (हिं० पु०) रक्त, खून।

लहेर (हिं० पु०) सुनार ब्राह्मण।

लहेरा (हिं० पु०) छोटे डीलका एक सदाबहार पेड़। यह

पञ्जाब, दक्षिण-गुजरात और राजपूतानेमें बहुत होता है। इसके हीरकी लकड़ी बहुत चिकनी, साफ और मजबूत होती है और कुर्सी, मेज, अलमारी इत्यादि सजावटके सामान बनानेके काममें आती है।

लहेरा—१ विहारवासी जातिविशेष। लाहकी चूड़ी बना कर बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। इनकी स्वतन्त्र जाति नहीं है, निम्न श्रेणीके विभिन्न सम्प्रदायसे बनी है। लाहका व्यवसाय करनेके कारण इनका लहेरा नाम हुआ है। गङ्गानदीके उत्तरी और दक्षिणी किनारे रहनेसे इनमें तिरहुतिया और दक्षिणिया नामक दो स्वतन्त्र थोक हैं। नूरी-जातिकी एक शाखा लाहका गहना बनाती है, इस कारण वह भी लहेरा-श्रेणीमें मिल गई है। लाखेरी देखो।

इन लोगोंके मध्य काशी और महुरिया नामक दो गोत वा श्रेणी-विभाग हैं। सपिण्ड सात पुरुषको बाद कर ये लोग पुत्र-कन्याका विवाह करते हैं। जवान पुत्र-कन्याका विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होता। किन्तु अकसर बाल्यविवाह ही चलता है। विवाहप्रथा स्थानीय हिन्दू-सी है। केवल वरके पिताको तिलक देनेकी व्यवस्था है। इन लोगोंके मध्य बहुविवाह प्रचलित है। पहली स्त्री बांझ होनेसे मर्द दूसरा विवाह कर सकता है।

विधवा सगाई मतसे विवाहित होती है। इस समय वह अकसर देवरसे ही विवाह करती है। यदि दूसरे मर्दसे विवाह करनेकी इच्छा हो, तो कर भी सकती है। स्त्रीका चालचलन खराब होनेसे पंचायत उसका विचार करती है। यदि दोष साबित हो जाय, तो पुरुष उसे छोड़ सकता है। स्वजातिके मध्य यदि कोई किसी स्त्रीको कुमार्ग पर ले जाय, तो अपने समाजके प्रधानोंको भोज दे कर समाजमें मिलता है। किन्तु भिन्न सम्प्रदायके दूसरे पुरुषमें आसक्त हो कर यदि वह रमणी पाप-पङ्कमें लिप्त हो जाय, तो उसे समाजसे निकाल दिया जाता है।

विहार प्रदेशके प्रकृष्ट हिन्दूके मध्य पुत्र-कन्याका उत्तराधिकार मिताक्षराके मतसे प्रचलित है। इन लोगोंमें पञ्जाबकी 'चूड़ावन्द' प्रथा देखी जाती है। उससे स्त्रीके संख्यानुसार ही स्वामीकी सम्पत्ति विभक्त होती है। अर्थात् पहली-स्त्रीके यदि एकमात्र पुत्र हो और दूसरीके अनेक, तो मृत पिताकी सम्पत्ति दो भागोंमें बांटी जाती है। एक भागका अधिकारी पहली स्त्रीका एकमात्र पुत्र होता है। सम्पत्ति बांटते समय विवाहित और नीका-स्त्रीका कोई विचार नहीं रहता।

ये लोग अपनेको कट्टर हिन्दू बतलाते हैं। भगवतीको आराध्य देवी जान कर उन्हींकी उपासना करते हैं। किन्तु हिन्दूके दूसरे दूसरे देवकी अवज्ञा भी नहीं करते, तिरहुतिया ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इससे वे लोग समाजमें निन्दनीय नहीं होते। वन्दी और गोराइया नामक ग्राम्य-देवताकी हरएक गृहस्थ पूजा करता है। इस समय ब्राह्मणकी जरूरत नहीं पड़ती। इन दो देवताको घरका मालिक ही बकरा, दूध, रोटी और मिष्ठान्नादि चढ़ाता है।

ये लोग समाजमें कोइरी और कुर्मियोंके समान समझे जाते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। लाखकी चूड़ी और खिलौने बनानेके सिवा ये लोग खेती बारी भी करते हैं।

२ एक जाति जो रेशम रंगनेका काम करती है। ३ एका रेशम रंगनेवाला, रंगरेज।

लहेरियासराय—दरभङ्गा जिलेके दरभङ्गा शहरका एक हिस्सा। १८८४ ई०से सरकारी अदालत यहीं पर लगती है। यहां बी० एन० डबल्यू रेलवेका एक ष्टेशन भी है।

लहोड़ (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति। (पा ५।३।३८)

लह्य (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। २ उनके वंशधर। (वृहदारण्यक ३।३।१)

लाँ (अं० पु०) १ वे राजनियम या कानून जो देश या राज्यमें शान्ति या सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये बनाये जांय। २ ऐसे राजनियमों या कानूनोंका संग्रह, व्यवहारशास्त्र, धर्मशास्त्र। जैसे,—हिन्दू लाँ, महम्मदन लाँ।

लांगड़ो (हिं० पु०) हनुमानजी।

लांग प्राइमर (अं० पु०) छापेखानेमें एक प्रकारका टाइप, जिसका आकार आदि इस प्रकार होता है—

'लांग प्राइमर'।

लांघना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजके इस पारसे उस पार जाना, लांघना। २ किसी वस्तुको उछल कर पार करना।

लाँघनी उड़ी (हिं० स्त्री०) मालखंभकी एक कसरत। यह साधारण उड़ीके ही समान होती है। इसमें विशेषता यह है, कि इसमें बीचका कुछ स्थान कूद या लांघ कर पार किया जाता है।

लांच (हिं० स्त्री०) रिशवत, घूस।

लांजी (हिं० पु०) एक प्रकारका धान।

लाइक (हिं० वि०) लायक देखो।

लाइची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लाइट हाउस (अं० पु०) एक प्रकारका स्तम्भ या मीनार जिसके सिर पर एक बहुत तेज रोशनी रहती है जिसमें जहाज चट्टान आदिसे न टकराय या और किसी प्रकारकी दुर्घटना न हो, प्रकाशस्तम्भ।

लाइत् माव-दो—आसामके खासिया पर्वतमालाके अन्दर एक गिरिश्रेणी। यह समुद्रकी तहसे ५३७७ फुट ऊंची है।

लाइन (अं० वि०) १ कतार, अवली। २ पंक्ति, सतर। ३ रेलकी सड़क। ४ घरोंकी वह पंक्ति जिनमें सिपाही रहते हैं, बारिक, लैन। ५ रेखा, लकीर। ६ व्यवसायक्षेत्र, पेशा।

लाइन क्लियर (अं० पु०) रेलवेमें वह संकेत या पत्र जो किसी रेलगाड़ीके ड्राइवरको यह सूचित करनेके लिये दिया जाता है, कि तुम्हारे आने या जानेके लिये रास्ता साफ है। विना यह संकेत या पत्र पाये वह गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकता।

लाइफ बॉय (अं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र। यह ऐसे ढंगसे बना होता है, कि पानीमें डूबता नहीं, तैरता रहता है और डूबते हुए व्यक्तिके प्राण बचानेके काममें आता है। इसे तरेंदा भी कहते हैं। यह कई प्रकारका होता है और प्रायः जहाजों पर रखा रहता है। यदि संयोगसे कोई मनुष्य पानीमें गिर पड़े, तो यह उसकी सहायताके लिये फेंक दिया जाता है। इसे पकड़ लेनेसे मनुष्य डूबता नहीं।

लाइफ बोट (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव जो समुद्रमें लोगोंके प्राण बचानेके काममें लाई जाती है। ये नावें विशेष प्रकारसे बनी हुई होती हैं और जहाजों पर लटकती रहती हैं। जब तूफान या अन्य किसी दुर्घटनासे जहाजके डूबनेकी आशंका होती है, तब ये नावें पानीमें छोड़ दी जाती हैं। लोग इन पर चढ़ कर प्राण बचाते हैं।

लाइब्रेरी (अं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां पढ़नेके लिये बहुत सी पुस्तकें रखी हों, पुस्तकालय। २ वह कमरा या भवन जहां पुस्तकोंका संग्रह हो, पुस्तकालय।

लाइसेंस (अं० पु०) लैसंस देखो।

लाई (हिं० स्त्री०) १ उबाले हुए धानोंको सुखा कर गरम बालूमें भूननेसे बनी हुई खीलें, धानका लावा। २ छिपी शिकायत, चुगली।

लाई (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा। २ एक प्रकारकी ऊनी चादर। ३ शराबकी लतछट।

लाऊ (हिं० पु०) लौकी, घिआ।

लाक-अप (अं० पु०) हवालात।

लाकड़ी (हिं० स्त्री०) लकड़ी देखो।

लाकेट (अं० पु०) वह लटकन जो घड़ीकी या और किसी प्रकारकी पहननेकी जंजीरमें शोभाके लिये लगाया जाता है और नीचेकी ओर लटकता रहता है।

लाक्साम—त्रिपुराके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां आसाम बंगाल रेलवेका एक जंकशन है।

लाकादोंग—आसामप्रदेशकी जयन्ती शैलमालाके दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यह सरमाकी शाखा हरिनदी तीरवर्त्ती बोरघाटसे ६ मील दूर और समुद्रपृष्ठसे २२०० फुट ऊंचा है। यहां एक छोटी कोयलेकी खान है। इस खानका कोयला प्रायः अंगरेजी बढ़िये कोयलेके समान है। यह अङ्गरेज-सरकारके मातहतमें है। लाकाडोंगसे कुलीगाड़ीमें बोरघाट ला कर कोयला बोझाई करता था इसमें बहुत खर्च पड़ता था। इस कारण आज कल यहांसे कोयला निकाला नहीं जाता।

लाकाबादर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके मालवाड़ प्रान्तमें एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार बड़ौदा गायकवाड़को वार्षिक १५४) और जूनागढ़ नवाबको २४) राजकर देते हैं।

लाकिनी (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक योगिनीका नाम। दुर्गोत्सवपद्धतिमें 'लां लाकिनीभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

लांकुच (सं० पु०) लकुच देखो।

लाक्ष (सं० त्रि०) लाक्ष्म या लक्ष्मी शब्दका अपप्रयोग।

लाक्षकी (सं० स्त्री०) सीताका एक नाम।

(पद्मपु० उत्तरखं० ५५ अ०)

लाक्षण (सं० त्रि०) १ लक्षण-सम्बन्धी, लक्षणका। २ लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला।

लाक्षणि (सं० पु०) लक्षणका गोत्रापत्य।

लाक्षणिक (सं० पु०) लक्षणमधीते वेदा वा लक्षण (क्रतूक्थादि सूत्रान्तात् ठक्। पा ४।२।६०) इति ठक्। १ लक्षणाभिज्ञ, वह जो लक्षणोंका ज्ञाता हो। २ वह छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएं हों। (त्रि०) ३ जिससे लक्षण प्रकट हो। ४ लक्षणसम्बन्धी।

लाक्षण्य (सं० त्रि०) लक्षणवित्, लक्षण जाननेवाला।

लाक्षा—कामरूपके दक्षिणमें प्रवाहित एक नदी। (कालिकापु० १७ अ०) रामपालके दक्षिणमें भी यह नदी बहती है।

(देशावली)

लाक्षा (सं० स्त्री०) लक्ष्यतेऽनयेति लक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ-टाप् यद्वा-बाहुलकात् राजतेरपि सः' कपिलिकादित्वात् वा लत्वं (उण् ३।६२) रक्तवर्ण वृक्षनिर्यासविशेष, लाख, लाह। संस्कृत पर्याय—राक्षा, जतु, याव, अलक्त, द्रुमामय, खदिरिका, रक्ता, रङ्गमाता, पलङ्कषा, क्रमिहा, द्रुमव्याधि, अलक्तक, पलाशी, मुद्रिणी, दीप्ति, जन्तुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि।

भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध हैं। हिन्दी—लाख, लाह; बङ्गला—गाला; गुजरात—लाक; तामिल—कोम्बुरुक्कि; तैलङ्ग—कोम्मलक, लत्तुक, लक्क; मलयालम्—अम्वुलु; ब्रह्म—खेजिजक; शिङ्गापुर—लकर; महाराष्ट्र—लाख; कलिङ्ग—अरण्ड।

असना, वट, महुआ; पलाश आदि वृक्षोंके छिलकेमें लाखका कीड़ा (Coccus lacca) रहनेके कारण लाल रंगका जो निर्यास निकलता है उसीको लाक्षा कहते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि लाखका कीड़ा वृक्षका छिलका खा कर जो मल त्याग करता है वही जलवायु और वृक्षके रसगुणसे लाक्षामें परिणत हो जाता है। इस लाक्षा वा लाहके लिये भारतवर्षके नाना स्थानोंमें खेती होती है। वहांके लोग एक वृक्षसे लाक्षा-कीट ले कर दूसरे वृक्ष पर छोड़ देते हैं। उस कीटसे वृक्षके छिलकेमें नये कीटकी उत्पत्ति होती है। धीरे धीरे वह नूतन कीटवंश वृक्षको छा लेता है। जब लाक्षाकीटसे वृक्षका आपाद मस्तक आच्छन्न हो जाता है, तब वह वृक्ष जीता नहीं रहता, रसहीन हो कर उसके पत्ते झड़ जाते हैं। उसके तनेसे ले कर पल्लवादि तक लाक्षामलसे आवृत हो कर मलसंयुक्त हरिद्राभ लोहितवर्णमें रंग जाता है। लाक्षापालनकारी उपयुक्त समयमें वह लाक्षामल परिपक्व हुआ है वा नहीं, जान कर उसे तोड़ लेते और बाजारमें बेचते हैं। यह लाक्षा देशी वाणिज्यके पण्यद्रव्यमें गिनी जाती है। इससे नाना प्रकारके खिलौने बनते हैं। खिलौने बनानेसे पहले उसे जलमें भिगो रखते हैं। जल धीरे धीरे लाल हो जाता है। वह लाल जल सुखाने पर गाढ़ा होता है। पीछे जो लाल रंग पेंदीमें जम जाता है उसे पुनः सुखा कर 'Lac dye' तय्यार करते हैं। वही वाणिज्यद्रव्यरूपमें बाजारमें बिकता है। अलता नामक सूती कपड़ा इसी लाक्षा-रंगसे बनता है।

भिगोने और परिष्कार करनेके बाद लाख एक छोटे बीजकी तरह चूर्ण हो जाती है। उसे लाकदाना वा seed-lac कहते हैं। उन दानोंको आगकी गर्मीमें थोड़ो रजनके साथ गला कर जो लाखका पत्तर (shell-lac) बनाया जाता है उसका नाम चपड़ा है। बुतामको जैसी छोटो और गोल लाख (Bütton-lac) कहलाती है।

भारतवर्षके स्थानविशेषमें लाखको उत्पत्ति और परिमाण स्वतन्त्र है। पश्चिम बङ्गाल और आसामके पहाड़ी प्रदेशमें तथा मध्यप्रदेशके नाना स्थानोंमें लाक्षा बहुतायतसे पाई जाती है। युक्तप्रदेशमें इसकी खेती बहुत कम देखी जाती है। पञ्जाब, बम्बई और मन्द्राज विभागोंमें भी उतनी नहीं होती। ब्रह्ममें कहीं कहीं पर्याप्त और कहीं कहीं अल्प उत्पन्न होती है। श्याम, सिंहल, पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जोंमेंसे किसी किसी द्वीपमें तथा चीन-साम्राज्यमें बहुत कम लाह उपजती है। इन सब स्थानोंमेंसे श्याम, आसाम और ब्रह्मदेशकी लाक्षा सर्वोत्कृष्ट है।

भारतवर्षमें लाक्षाका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे, संभवतः वैदिक कालसे होता आया है। मनुसंहिता और महाभारतमें लाक्षाका उल्लेख है। दुर्योधन कर्तृक पञ्च-

पाण्डवके जतुगृहदाहकी कथा किसीसे भी छिपी नहीं है। उस समय उत्तर पश्चिम-भारतमें लाक्षाका जो बहुत प्रचार था, वह दुर्योधन द्वारा बनाये गये जतुगृहसे ही मालूम होता है। यही जतुगृह उस समयके लाक्षा शिल्प (Lac industry)-का प्रकृष्ट निदर्शन है।

भारतीय लाक्षाका अंगरेजी नाम Lac तथा लाक्षाजात द्रव्योंका नाम "Lacquer ware" है। इतिहासका अनुसरण करनेसे पता चलता है, कि भारतवर्षसे यह द्रव्य अरबी वणिकों द्वारा एशियाखण्डमें लाया जाता था। वे लोग इस द्रव्यको लाख नामसे ही बेचते थे। प्रायः ८०-६० ई०में पेरिप्लसकी लेखनीसे मालूम होता है, कि Lariake देशके मध्यसे अनेक प्रकारके लाक्षाजातद्रव्य लोहित-सागरके पश्चिमोपकुलस्थित Barbarike बन्दरमें भेजे जाते थे। उक्त ग्रन्थकार अलक्तक वर्णका भी (Lac dye) उल्लेख कर गये हैं। Aelian-कृत प्राणितत्त्वमें (२५० ई०में) लाक्षाकीटका उल्लेख है। उन्होंने लिखा है, कि भारतवासी वृक्ष पर इन कीड़ोंको पालते थे। कुछ समय बाद वे उन्हें पकड़ कर चूर करते और उस चूरको जलमें भिगो रखते थे। इस प्रकार जो रंग बनता था उससे गैरिक वस्त्र तथा कुर्त्ते आदि रंगते थे। इसी रंगमें रंगाया हुआ कपड़ा उस समय पारस्य राजके पास बिक्रयार्थ भेजा जाता था। (Nat. Animal Vol iv. 46) गर्सियाका कहना है, कि अरबी वणिक् लाक्षाको 'लाक् सुमुती' कहते थे। अधिक सम्भव है, कि पेगूकी लाक्षा पहले सुमात्राके वाणिज्यभाण्डारमें लाई जाती हो। उक्त द्वीपके बंदरसे ही अरबी वणिक् उक्त द्रव्य खरीदते थे। इस कारण उन्होंने उसका लक् सुमुती नाम रखा था। १३४३ ई०में Della Decima (iii 365) ने, १५१६ ई०में Barbosa ने, १५१६ ई०में Correa आदि ग्रन्थकारोंने भारतीय तथा पेगू, मार्त्तवान और करमण्डल उपकूलजात लाक्षाका उल्लेख किया है। गर्सियाने १५६३ ई०में पत्रादि चिपकानेके लिये लाहकी बत्ती तथा अबुल फजलने आईन-इ-अकबरीमें लाहकी पालिशकी बात लिखी है। उक्त सदीमें भ्रमणकारी लिनसोटेन (Linschoten) मलबार, बङ्गाल और दाक्षिणात्यकी लाक्षाका विषय वर्णन कर गये हैं।

उत्तर पश्चिमके गढ़वाल जिलेकी विस्तृत वनभूमिमें तथा अयोध्याके दक्षिण-पूर्व विभागकी वनराजिमें प्रचुर लाक्षा उत्पन्न होती है। मिरजापुरके लाहके कारखानेमें अयोध्याकी लाहकी ही अधिक आमदनी होती है। पञ्जाबमें बहुत कम लाह उत्पन्न होती है। सिन्धुप्रदेशमें हैदराबादके अरण्य विभागमें जो लाक्षा उत्पन्न होती है उसका अधिकांश स्थानीय प्रसिद्ध खिलौने बनानेके काममें व्यवहृत होता है। मध्यप्रदेशकी पहाड़ी वनभूमिमें जितनी लाक्षा उत्पन्न होती है उससे स्थानीय मनुष्य चूड़ी आदि बनाते हैं। अधिकांश रेलगाड़ी द्वारा कलकत्ते और बम्बई शहरमें लाया जाता है तथा वहांसे जहाज द्वारा बम्बई होते हुए यूरोप जाता है। मध्यप्रदेशमें बहेलिया, राजहोड़, भिरिज़ा, कुकूं, धानुक, नहिल और भोई आदि असभ्य जातियां तथा स्थानीय निम्न श्रेणीके मुसलमान लाक्षा संग्रह कर पटुआ लोगोंके हाथ बेचते हैं। लाक्षावृत वृक्ष पल्लव जो जंगलसे शहरमें बिक्रयार्थ लाया जाता है, उसको लाक्षादण्ड वा Stick lac कहते हैं। महिसुर और ब्रह्मराज्यके शानस्टेट और उत्तर-ब्रह्मविभागमें प्रचुर लाक्षा उत्पन्न होती है। यहांसे लाक्षादण्ड कलकत्ता लाया जाता है। पीछे वहांसे यूरोप भेजा जाता है।

भारतवर्षकी मध्यप्रदेशजात लाक्षाका वैदेशिक वाणिज्य ही प्रधान है। परन्तु बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मदेशसे उसकी अपेक्षा कहीं कम लाह देशान्तर भेजी जाती है। देशी लोगोंके व्यवहारार्थ कुछ लाह यहां रह जाती है। बङ्गालके वीरभूम, छोटानागपुर और उड़ीसा-विभागमें बहुतायतसे लाहकी खेती होती है। सिंहभूम, पुरुलिया और हजारीबागसे प्रति वर्ष बहुत-सी लाख कलकत्ते आती है। बांकुड़ाके अन्तर्गत सोनामुखी, झालिदा आदि स्थानोंमें तथा मिरजापुरमें लाक्षाका कारखाना है।

बङ्गालमें प्रति वर्ष दो बार लाक्षा जमा की जाती है। पहली बार कातिकसे पूस तक और दूसरी बार बैशाखसे जेठ मास तक। समयके तारतम्यानुसार यह कुसुमी, ईगीन, बैशाखी, जलचाला आदि विशेष विशेष नामोंसे प्रसिद्ध है।

वनमें दावानल, अनावृष्टि अथवा अत्यन्त कुहेसा

पड़नेसे लाक्षाकीट मर जाते हैं। इसके सिवा पिपी-लिकामात्र ही इनके अपकारक हैं। वे सब वृक्ष पर चढ़ कर लाक्षाकीटके मादा-कोटर (Female cell)में घुस जातीं और उस पर रखे हुए मीठा मोमके जैसा सफेद छिलका खाने लगती हैं। इससे कोटरके कीड़े परिपुष्ट होने नहीं पाते। वायु और उत्तापकी प्रखरतासे नष्ट हो जाते हैं। जिस वृक्षमें चिउंटी लगती हैं उसकी लाह पुष्ट हो नहीं सकती। फिर Galleria और Tinea श्रेणीके और भी दो प्रकारके कीट इनके शत्रु हैं। वे केवल स्त्री-लाक्षाकीटके रंगका अंश और छोटे छोटे कीड़ोंको खाते हैं।

रासायनिक परीक्षा द्वारा लाक्षामें विभिन्न पदार्थका होना साबित हुआ है। उन सब पदार्थोंमें विशेष विशेष गुण रहने तथा उसके स्वतन्त्र स्वतन्त्र कार्यमें व्यवहृत होनेके कारण बाजारमें उसकी विशेष मांग है। अध्यापक हाचेटने विश्लेषण द्वारा देखा है, कि पल्लवमण्डित लाक्षामें (Stick lac) ६८ भाग रजन, १० भाग रंग, ६ भाग मोम, ५॥ भाग दूधके जैसा पदार्थ, ६॥ भाग मांड़ और ४ भाग धूल आदि है। लाक्षाचूर्णमें (eed-lac) ८८'५ रजन, १२॥ रंग, ४॥ मोम और २ भाग दूध तथा Shell-lac-में ९० भाग रजन, ॥० भाग रंग, ४ भाग मोम और २'८ भाग नाइट्रोजन-सम्बन्धीय पदार्थ रहता हैं। उनभारडोरवेनका कहना है; कि Shell lac-का रजन नामक पदार्थ अलकोहल और इथरसे गल जाता है। फिर उस धूने जैसे पदार्थका कुछ अंश अलकोहलमें गलता है; पर इथरमें नहीं गलता। वह दाना देता है उसमें लाक्षाकीटकी चर्वी (Unsaponified fat) तथा मौलिक और मार्सारिक एसिड है। कुछ मोम और Laccine भी पाया जाता है।

लाक्षाका पत्तर बनानेका तरीका—पहले पल्लवमण्डित लाक्षाको जांतेमें पीस कर चूर्ण करना होता है। उसमें-से घास भूसा चुन कर फेंकना होता है। पीछे उन लाखके खण्डोंको क्रमशः फल बीजकी तरह छोटा करनेके लिये तीन वा चार प्रकारके जांतोंमें लगातार पीस और चूर्ण कर छननीसे छान लेते हैं। इस प्रकार छानते छानते जब केवल लाहका चूर्ण मेज पर गिरने लगता है घास भूसा कुछ भी नहीं रहता, तब स्त्रियां उसे उठा कर सूपमें फटकती हैं। सूपमें परिष्कार करते समय वे अपरिष्कार लाक्षाचूर्ण अलग रख कर परिष्कार लाक्षाके दानोंको लाहका पत्तर बनानेके लिये उठा रखती हैं। अपरिष्कार लाक्षाचूर्ण चूड़िहारोंके यहां बेच लिया जाता है। वे उसे गला कर भारतीय स्त्रियोंके हाथका अलङ्कार बनाते हैं।

इसके बाद उन परिष्कृत दानोंको एक लंबे नलमें भर जलमें छोड़ देते हैं। नलके भीतर जल रहनेसे लहका रंग धीरे धीरे जलमें मिल कर लाल हो जाता है। वे सब दाने जलमें हिलानेसे गल कर छोटे छोटे दानोंमें परिणत हो जाते हैं तथा वर्ण पदार्थ (Colouring matter) लाक्षासे एकदम अलग हो जाता है। अनन्तर उस रंगीन जलको थिरानेके लिये एक बड़े चहबच्चेमें २४ घंटे तक रख देते हैं। नीलकी तरह चहबच्चेकी पेंदीमें जब रंग जम जाता है, तब बड़ी सावधानीसे ऊपरका जल चहबच्चेसे निकाल दिया जाता है। पीछे उस सञ्चित रंगीन पदार्थको अच्छी तरह छान कर एक बरतनमें रखते हैं। वहां सुखने पर जब वह गाढ़ा हो जाता, तब उसे बरफीके आकारमें खण्ड खण्ड करके धूपमें फिर सुखा लेते हैं। इसीका नाम 'लाकडाय' है।

उपरोक्त जलधौत लाक्षाकणको 'Seed lac' कहते हैं। उसे आवृतपात्रमें वाष्पोत्तापसे तरल करके पात्रमें लगे हुए उत्तम नालीपथ द्वारा रजन मिलाई जाती है। इससे भीतरकी लाक्षा और भी तरल हो जाती है, बरतनमें लगने नहीं पाती।

पूर्वकथित बरतनके चारों ओर दस्तेके कुछ नल सजे रहते हैं। उनका ऊपरी भाग ४५° कोणमें झुका होता है। भीतर पोल और हमेशा गरम जलसे भरा रहता है। जल बहुत थोड़ा गरम होता है, क्योंकि अधिक गरम होनेसे लाह ठंढी होने नहीं पाती इस कारण वह जम भी नहीं सकती। फिर यदि लाह बिलकुल ठंढी हो जाय, तो बहुत जल्द कड़ी हो जानेकी सम्भावना है। ऐसी अवस्थामें उसमें तरल लाह लगा कर खींचनेसे वह उन दस्तेके खंभोंमें अटक जायगी। अतएव नियमित उत्तम जलसे उन दस्तेके चोंगे भरे रहने पर एक आदमीके

छिलकेमें थोड़ी पिघली हुई लाह ले कर एक स्तम्भके शिर पर लगा देता है। गोल और चिकने उस दण्डके ऊपर समान भावमें गर्मी लगनेसे लाह सरल और पतली हो कर फैल जाती है। पीछे एक आदमी अनारस, ताड़ वा नारियलके पत्ते को दोनों हाथसे दो कोणे पकड़ कर नलके शिरसे उस तरल लाहको खींच बढ़ाता है। लाहकी गर्मी और तरलता घटने पर जब वह वायुमें सूख जाती तब ऊपरके छोटे अंशको तोड़ फोड़ कर बाकी चादरकी तरह पतले अंशको एक डंडेमें लटकाया जाता है। वह डंडा साधारणतः स्त्रियां ही पकड़ती हैं। वे उस चादरकी तरह पतली लाहको कपड़े की तरह झुला कर वहांसे एक दूसरे घरमें डंडेके साथ उठा ले जाती हैं और रैकमें श्रेणीबद्ध करके रख देती हैं। इस स्थानको 'Drying shed' वा सुखानेका घर कहते हैं। दूसरे दिन उस सूखी लाहके पत्तरको काट कर बकसमें भर नाना स्थानोंमें भेजा जाता है।

लाहका रंग चिरप्रसिद्ध है। पैरमें अलता या महावर लगाना स्त्रियां बहुत पसन्द करती हैं। मुर्शिदाबाद, रघुनाथपुर आदि स्थानोंमें रेशमी कपड़े के सूत अलते रंगसे रंगाये जाते हैं। यह अलता चर्मरोगमें भी विशेष उपकारी है। पैरमें पकोही होने अथवा शरीरमें खुजली होनेसे उसके मुंह पर अलता रंग लगानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। हिन्दूके आयुर्वेदशास्त्रमें लाक्षादि तैलमें इसका भेषज गुण लिखा है। इसका रंग सबसे आदरणीय होता है। कपड़ छापनेके सिवा पहले इस रंगकी सहायतासे दूसरे दूसरे रंग तैयार किये जाते थे। इसका रंग बहुत पका होता है।

लाक्षासे चूड़ी, छड़ी, तरह तरहके गहने और खिलौने आदि बनते हैं। कुसुमी लाहका बना हुआ गलेका हार ठीक गिन्नी-सोनेके जैसा दीखनेमें लगता है। एक फल फूलसे परिशोभित उद्यान-वाटिका सजानेकी यदि इच्छा हो, तो लाह द्वारा आसानीसे सजा सकते हैं। यह पालिशकी तरह चिकनी और चमकीली हो सकती है। बङ्गालके सोनामुखी और झालदा आदि स्थानोंमें लाहके अलङ्कार और खिलौने बनते हैं। पञ्जाब, सिन्धु और पाकपत्तनमें प्रसिद्ध लाक्षाके खिलौनेका कारखाना (Lac turnery) है। कारखानेमें प्रस्तुत लाहके द्रव्य यूरोपमें Lacquer-work कहलाते हैं। दूसरे काठ पर लाह जमा कर उसे जिस किसी काठके आकारमें परिणत कर सकते हैं। काशीमें लाहसे तरह तरहके सुन्दर बकस, फूलदानी आदि चीजें तैयार होती हैं। सोने आदिके गहनोंमें लाह भरनेका प्रचलन है।

भारतीय लाक्षाकारुसे जापानी लाक्षाशिल्प स्वतन्त्र है। वे काठके ऊपर लाहके बदले Rhus Vernicifera नामक पेड़के दूधकी पालिश देते हैं। लाहकी पालिश अलाहदा है। अलकोहलमें चांच लाह, खुनखराबी, लोबान और रुइमुस्तकी मिलानेसे लाहकी पालिश बनती है। साधारणतः बकस, अलमारी, दरवाजे, झरोखे आदिमें खूबसूरती बढ़ानेके लिये यह लगाई जाती है।

लाक्षा और लाक्षारंगका वाणिज्य पहले एक-सा चलता था। १८६५ ई०में चांच लाहकी अपेक्षा लाक्षावर्णका दाम दूना बढ़ गया। उस समय नीलकी खेती भी होती थी। नीलसे बढ़िया रंग बननेके कारण लाक्षारंगके बदले उसीका व्यवहार होने लगा। नीलके कारण लाक्षारंगका आदर घट गया। १८७२ ई०में उसकी दर एकदम घट गई। १८७४ ई०की २७वीं नवम्बरको भारत-सरकारने जो नोटिस निकाला उससे इसकी रफ्तनी बंद हो गई। यूरोपीय बाजारमें उसको खपत न थी, इस कारण उस पर जो महसूल लगा था वह वसूल नहीं होने पाता था। आज भी लाक्षाका वाणिज्य चलता है, किन्तु पहलेकी तरह नहीं। ब्रिटेनराज्य और अमेरिकाके युक्तराज्यमें लाक्षाकी रफ्तनी होती है। फ्रान्स, अष्ट्रीया, जर्मनी, इटली, अष्ट्रेलिया, बेलजियम, चीन, ष्ट्रेटसेटलमेण्ट, स्पेन और हालैण्ड राज्यमें भी बङ्गालसे लाक्षाकी रफ्तनी होती है।

समुद्रगर्भमें जो ताड़ित-वार्त्तावह-तार परिचालित हुआ है उसके ऊपर लाक्षाका स्तर दिया जाता है। क्योंकि, जल और मिट्टीके संयोगसे लाक्षा नष्ट नहीं होती। अतएव उसके भीतरका तार भी खराब नहीं होता।

इसका गुण—कटु, तिक्त, कषाय, श्लेष्म, पित्तरोग, शोफ, विषदोष, रक्तदोष और विषमज्वरनाशक तथा बलकर माना गया है।

भावप्रकाशके मतसे लाक्षा व्रणकर, शीतल, बलकर, स्निग्ध, लघु, कफ, पित्त, अस्र, हिक्का, कास, ज्वर, व्रण, उरक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठरोगनाशक है। भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि नई तथा मिट्टीरहित लाक्षाका प्रयोग करना चाहिये।

"लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादि विवर्जिता।"

(भैषज्यरत्ना०)

२ शतपत्री। ३ सेवती।

लाक्षागुग्गुलु—आयुर्वेदोक्त एक प्रकारको औषध। प्रस्तुत प्रणाली—लाक्षा, हाड़जोड़ा, अर्जुन-छाल, अश्वगन्धा प्रत्येक एक तोला और गुगुल ५ तोला ले कर एक साथ मर्द्दन करे। पीछे इसका टूटे हुए अंगमें प्रलेप दे। इससे टूटा हुआ अंग और किसी स्थानका मरूकना दूर हो जाता और समूचा शरीर वज्रको तरह मजबूत होता है।

लाक्षागृह (सं० पु०) लाखका वह घर जिसे दुर्योधनने पांडवोंको जला देनेकी इच्छासे बनवाया था। आग लगनेसे पहले ही सूचना पा कर पाण्डव लोग इस घरसे निकल गये थे।

लाक्षातरु (सं० पु०) लाक्षोत्पादकस्तरुः। पलाशका वृक्ष।

लाक्षातैल (सं० क्लो०) लाक्षादिभिः पक्वं तैलं। १ एक तैलविशेष। लाख आदिसे यह तैल तैयार किया जाता है इसीसे इसको लाक्षातैल कहते हैं। यह तेल दो प्रकारका है,—स्वल्प और वृहत्। प्रस्तुत प्रणाली—

स्वल्पलाक्षातैल—सम परिमाण लाक्षा, हरिद्रा और मजीठ द्वारा तैल पका कर उसमें गन्धद्रव्य डाल कर उतारना होता है। यह तैल दाद, शीत और ज्वरनाशक माना गया है। (सुखबोध)

२ बालरोगाधिकारमें, तैलभेद। इसके बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका क्वाथ ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ—रास्ना, रक्तचन्दन, कुट, अश्वगन्धा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, सोयां, देवदारु, यष्टिमधु, मूर्वामूल, कटकी और रेणुक सब मिला कर १ सेर, इन सब कल्कों द्वारा यथाविधान तैल पाक करना होता है। इसकी मालिश करनेसे बालकके ज्वरादि नाश होते और बलकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० बालरोगाधिका०)

दूसरा तरीका—कूटी हुई लाख ३ शराव, जल १६ शराव, इन्हें २१ बार दोलायन्त्रमें परिश्रुत करके १६ शराव ग्रहण करे। अथवा लाक्षा ८ शराव, जल ६४ शराव, पक कर १६ शराव। पीछे तिलतैल ४ शराव, लाक्षारस वा क्वाथ १६ शराव, दहीका पानी १६ शराव; कल्कार्थ—सोयाँ, हल्दी, मूर्वाका मूल, रेणुक, कटुकी, मुलेठी, रास्ना, असगंध, देवदारु, मोथा और रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला, यथाविधान पाक करे। पाक सिद्ध होने पर कपूर, शिलारस और नखी प्रत्येक २ तोला ले कर ऊपरसे डाल दे। यह तैल ज्वरादि रोगनाशक है। (रसव०)

लाक्षादितैल—ज्वररोगमें उपकारक तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, पुरानी कांजी २४ सेर; कल्कार्थ—लाख, हल्दी, मजीठ कुल मिला कर १ सेर। इस तेलकी मालिश करनेसे ज्वर तथा दाह दूर होता है।

महालाक्षादि तैल नामक इस प्रकारका एक और तैल तैयार होता है। इसके बनानेका तरीका—मूर्च्छित तिलतैल ४ सेर, लाक्षाका काढ़ा १६ सेर (लाक्षा ८ सेर, ६४ सेर जलमें पाक कर शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ—सोयाँ, हरिद्रा, मूर्वामूल, कुट, रेणुक, कटकी, मुलेठी, रास्ना, अश्वगन्धा, देवदारु, रक्तचन्दन प्रत्येक २ तोला। पाक खतम होने पर कपूर २ तोला, शिलारस २ तोला और नखी २ तोला इस तेलमें मिलावे। इस तेलकी मालिश करनेसे विषम ज्वर आदि नाना रोग विनष्ट होता है।

लाक्षाके छः गुने जलमें अर्थात् १८ सेर जलमें ३ सेर लाक्षा कूट कर छोड़ दे। तदनन्तर यह जल दोलायन्त्रसे परिश्रावित कर सिर्फ १६ सेर जल ले लेवे और बाकी छोड़ दे अथवा ८ सेर लाक्षाको ६४ सेर जलमें पका कर उसीका एक पाद क्वाथ औषध बनानेमें प्रयोग किया जा सकता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधिका०)

लाक्षादिवर्ग (सं० पु०) सुश्रुतोक्त लाक्षादि गणभेद। ये गण यथा—लाक्षा, रेवत, कूटज, अश्वसार, कटफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निम्ब, सप्तच्छद, मालती और त्रायमाणा।

(सुश्रुत सूत्र० ३८ अ०)

लाक्षाघतैल—मुखरोगमें हितकर एक औषध। इसके बनानेका तरीका—तिलका तेल ४ सेर, लाखका रस ४ सेर,

दूध ४ सेर, खेरका काढा १६ सेर; कल्कार्थ—लोध, ५ायफल, मजीठ, पद्मकेशर, पद्मकाष्ठ, रक्तचन्दन, उत्पल, यष्टिमधु प्रत्येक १ पल। इस तेलकी कुल्ली करनेसे दालन, दन्तचाल, दन्तमोक्ष; कपालिका, शीताद, मुखदौर्गन्ध्य, अरुचि और मुखकी विरसता नष्ट होती और सब दन्त मजबूत होते हैं।

लाक्षाद्वीप—दक्षिण-भारतके मलवार उपकूलके निकट एक द्वीप। यह अक्षा० १०° से १४° उ० तथा देशा० ७१° ४०′ से ७४° पू०के मध्य भारत-महासागरमें अवस्थित है। यह भारत उपकूलसे प्रायः २०० मील पड़ता है। चौदह द्वीपोंको ले कर यह द्वीपपुञ्ज बना है। इसके नौ द्वीपोंमें लोग वास करते हैं। इसका उत्तरांश दक्षिण-कनाडाके कलक्टरके अधीन तथा अवशिष्ट दक्षिण भाग कोन्ननूरके अली राजाके शासनाधीन है। वह मलवार जिलेका एक अंश माना जाता है।

यहां एकत्र बहुत द्वीप रहनेके कारण लक्षद्वीप शब्दसे लाक्षाद्वीप शब्दकी उत्पत्ति हुई है। शायद एक समय मालद्वीप और लाक्षाद्वीप एक श्रेणीबद्ध हुआ हो। उस समय लोगोंने छोटा छोटा लक्षद्वीप देख कर उसका नाम लाक्षाद्वीप रखा। फिर बहुतोंका कहना है, कि प्रवाल-समष्टियोगसे इस द्वीपकी उत्पत्ति हुई है। प्रवाल और लाक्षा एक-सी होती है इस कारण लोग इसे लाक्षाद्वीप कह कर पुकारते हैं। अधिक सम्भव है, कि अरबी वणिक् बहुत दिनोंसे लाक्षाका वाणिज्य करनेके लिये मलवार उपकूल जाते आते होंगे। उन्होंने ही लाक्षासे इस द्वीपका लाक्षाद्वीप नाम रखा। १५१६ ई०में वार्बोसा लाक्षाद्वीपको मलनद्वीप और मालद्वीपको पलनद्वीप घोषित कर गये हैं। तुहफत्-उल-मजाहिदीन ग्रन्थमें यह मलवार द्वीपपुञ्ज कह कर वर्णित है। नीचे वर्त्तमान द्वीपपुञ्जोंके नाम दिये जाते हैं,—

दक्षिण कनाडा	लोकसंख्या
आमीनि या आमीनदीवि	२०६०
चेतलात	५७७
कद्‌म	२४५
किलतान	७६०
विता (आबादी नहीं है)	
कोन्ननूर द्वीपावाली—	
अगत्ति	१३७५
कवरत्ति	२१२६
अन्द्रोथ	२८८४
कालपेणी	१२२२
मिनिकोई (मीनकट)	२१६१
सुहेली (आबादी नहीं)	—

मिनिकोई द्वीपके अधिवासी लाक्षाद्वीपके वासियोंकी तरह मलयालम् भाषा नहीं बोलते। इनकी कथित भाषामें लाक्षाद्वीपी भाषाकी बहुत कुछ पृथक्‌ता और मालद्वीप-वासीकी भाषाके साथ बहुत सदृशता देख कर इस द्वीपको मालद्वीपपुञ्जके अन्तर्गत किया जाता है।

इसका प्रत्येक द्वीप प्रवालसमष्टिके संयोगसे उत्पन्न है। सब समुद्रकी तहसे १० या १५ फुट ऊंचा और भू-परिमाण २ से ३ वर्गमील है। इसके चारों ओर प्रवालज पर्वतशिखर दिखाई पड़ता है। पूर्वांशका प्रवाल-गिरि पश्चिमसे कुछ कम है। पश्चिमकी ओर वह ५०० गज और कोई कोई पौन मील तक विस्तृत है। यहांके कम गहराईके गड्ढेका जल 'लेगुण'की तरह स्थिर है। यहां तक, कि भीषण तूफानके समय उसी जलमें निर्भयसे नारियलका छिलका भिगोया जा सकता है। बह जानेका कोई भय नहीं रहता। ज्वारके समय वह स्थिर भाग जलपूर्ण रहता है, भाटा पड़ने पर गड्ढेके बीचसे जल बह जाता है। उस समय उसका ऊपरी भाग सूखा दिखाई देता तथा उसी नली या खात हो कर देशो नावें चल कर लेगुनके बंदरमें जहां अधिक जल रहता है वहीं हट आती हैं। उक्त द्वीपोंके पश्चिममें जैसा प्रशस्त प्रवालज गिरि है, वैसा पूर्वमें नहीं है। उस ओर उच्च पर्वत एकदम समुद्रके गर्भमें मिल गया है। भूतत्त्वकी आलोचनासे मालूम होता है, कि पश्चिमकी अपेक्षा पूर्व दिशा बहुत पहले गठित हुई है। इस द्वीपपुञ्जके प्रत्येक ऊपरी भागमें चूनापत्थर या प्रवालज स्तर दिखाई देता है। उसके ऊपर कभी भी जल नहीं चढ़ता। यह स्तर एक डेढ़ फुट मोटा है। इसको खोदनेसे नीचे बलुई

मिट्टी मिलती है। कुदालसे यह बालू उठा कर फेंकनेसे वह गड्ढा जलसे भर जाता है। इसी प्रकार कूप, तड़ाग और पुष्करिणी आदि काट कर जल निकलने पर नारियलका छिलका भिगोया जाता है।

यहां बहुतायतसे नारियलका पेड़ होता है। यहां चूहेको छोड़ दूसरा जानवर दिखाई नहीं पड़ता। यह नारियलका जानी दुश्मन है। कछुवा और मछली भी बहुत पाई जाती है।

प्रायः ढाई सौ वर्ष तक यह द्वीपपुञ्ज कोन्ननूर-राज्यके शासनाधीन रहा। १५५० ई०में कोलत्तिरी-राज प्रसिद्ध चिरक्कलने यहांके सरदारको जागीरस्वरूप दिया। इसके बहुत दिन बाद मालद्वीपके सुलतानसे मिनिकोई द्वीप ले लिया गया। १७८६ ई०में उत्तर-द्वीपके अधिवासियोंने बागी हो कर राजाका अधीनता-बंधन तोड़ महिसुर-राजकी वश्यता स्वीकार कर ली। १७६६ ई०में कनाड़ा विभाग इष्ट-इण्डिया कम्पनीके हाथ आया। तभीसे यह द्वीप कोन्ननूरके नवाबजादोंको लौटाया नहीं गया, सिर्फ उनके राजस्वसे ५२५० रुपये अंगरेजराजने घटा दिये। उसी समयसे यह द्वीपमाला दो विभागमें हो गई है।

१८५५से ले कर १८६० ई० तक दक्षिण द्वीपका खजाना बाकी पड़ जानेके कारण उसे वसूल करनेके लिये न्यासी नियुक्त हुए। तदनन्तर १८७७ ई०में पुनः राजस्व अदा नहीं होने पर उक्त विभाग मलबारके राजस्व-संग्राहक (Collector of Malabar) के अधीन सौंपा गया था। इससे रिआया नाखुश हो गई। अङ्गरेज-सरकार उत्तर-विभागमें तथा कोन्ननूरके अली राजा अपने अधिकृत विभागमें उत्पन्न नारियलका छिलका बड़ी कड़ाईसे वसूल करते हैं। वे दोनों ही प्रजाओंसे निर्दिष्ट मूल्य दे कर छिलका खरीद करते और उपकूलके बाजारोंमें ऊंचे मूल्य पर बेच डालते हैं। मूलधनके अलावा जो बचत होती है वह दोनों आपसमें बांट लेते हैं। अली राजा खुद यहांका शासन करते हैं, उसके लिये इन्हें अङ्गरेज सरकारको वार्षिक दश हजार रुपया पेशगी देना पड़ता है।

अङ्गरेजराज-शासित कनाड़ाके अधीन द्वीपभागमें नारियलके छिलकेका दाम घटता बढ़ता नहीं है। अङ्गरेज कर्मचारी चावल और नगद रुपये दे कर उसका मूल्य चुका देते हैं। अलीराजाके अधिकृत भूभागमें उसका ठीक उलटा है। वहांके देशी सरदार लोग छिलकेका मूल्य ले कर राजाके साथ बड़ा गोलमाल करते हैं। इससे राजाका बड़ा नुकसान होता है। नारियल, कौड़ी, कछुएका खप्पर आदि द्रव्यसे राजाका वाणिज्य चलता है।

कनाड़ाके अधीनका द्वीप एक सब मजिष्ट्रेट और मुनसफ द्वारा तथा कोन्ननूर द्वीपपुञ्ज अमीनोंके द्वारा परिचालित होता है। यहांके अधिवासी शान्तिप्रिय हैं। वादाविवाद होने पर गांवके प्रधान द्वारा उसका निबटेरा करा लेते हैं।

जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है जिनमेंसे अधिकांश मुसलमान हैं। उपकूलवासी मापिल्लाओंकी तरह वे भी पहले हिन्दू थे। उनमें एक ऐसी किंवदन्ती है, कि उनके पूर्वपुरुषगण धार्मिक प्रधान राजा चेरमाल पेरुमलकी खोजमें मलयालसे मक्काकी ओर बढ़े थे। रास्तेमें इस द्वीपसे टकरा कर जहाज टूट गया और वे लोग यहां उतरनेमें बाध्य हुए। यहांके बाशिन्दे पहले हिन्दू थे इसमें सन्देह नहीं। सम्भवतः तीन सौ वर्ष पहले वे इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। उनकी कन्याएं ही पितृसम्पत्तिकी अधिकारिणी होती हैं। पुरुषगण वाणिज्यके लिये या राजकर्मकी खोजमें मलबार उपकूल आते हैं। लड़के भी पिताके साथ हो लेते हैं। इस कारण द्वीपसमूहमें स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक देखी जाती है।

स्त्रियां निर्भय हो नगरमें घूमती फिरती हैं। नौका खेनेके सिवा वे सब काम करती हैं। वे घूंघट नहीं देतीं। यहांके अधिवासी मलयालम् भाषा बोलते लेकिन अरबी अक्षर लिखते पढ़ते हैं। मिनिकोई द्वीपकी भाषा मालद्वीपी और मलयालम् मिश्रित है।

लाक्षाप्रसाद (सं० पु०) लाक्षायाः प्रसादो यस्मात्। पट्टिका लोध्र, पठानी लोध।

लाक्षाप्रसादन (सं० पु०) लाक्षां प्रसादयतीति प्र सद्‌-णिच् ल्यु। रक्तलोध्र, लाल लोध। पर्याय—क्रमुक, पट्टिका, पेटी। (भावप्र०)

लाक्षारस (सं० पु०) लाक्षयाः रसः । महावर जो पानीमें लाख औटा कर बनता है ।

लाक्षावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—लाख, मेला, अजवायन, सफेद अपराजिताकी छाल, अर्जुनके फल और फूल, विडंग, माखी और गुग्गुल इन सबोंको एकत्र चूर्ण कर गोली बनानी होती है। इस औषधको घरमें रखनेसे सांप तथा चूहा आदि घरमे पैठ नहीं सकता । (रसेन्द्रसार पाण्डुरोगाधिका०)

लाक्षावृक्ष (सं० पु०) १ कोशाम्रवृक्ष, कोसमका पेड़ । २ पलासका पेड़ ।

लाक्षिक (सं० त्रि०) १ लाक्षासम्बन्धी, लाखका । २ लाक्षाभाव, लाखका बना हुआ ।

लाक्षेय (सं० पु०) लक्षका गोत्रापत्य ।

लाक्ष्मण (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य । २ लक्ष्मण-वृक्षसम्बन्धीय ।

लाक्ष्मणि (सं० पु०) लक्ष्मणका गोत्रापत्य ।

लाक्ष्मणेय (सं० पु०) १ लक्ष्मणका गोत्रापत्य । २ बंगालके सेनवंशीय एक राजा । सेनराजवंश देखो ।

लाक्ष्यिक (सं० त्रि०) लक्ष्यमधीते वेद वा (क्रतूक्थादि-सूत्रान्तात् ठक् । पा ४।२।६०) इति लक्ष्य-ठक् । वह जो लक्ष्याभ्यास या भेद कर सकता है ।

लाख (हिं० वि०) १ सौ हजार । (पु०) २ सौ हजार-संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० । (क्रि० वि०) ३ बहुत, अधिक । (स्त्री०) ४ लाक्षा देखो ।

लाखनसेन—जयसलमेरके एक राजा । इनके पिताका नाम था कर्णसी । पिताकी मृत्यु होने पर लाखनसेन सन् १२७२ ई०में जयसलमेरके राजसिंहासन पर बैठे । ये बड़े सीधे सादे थे । इनको सर्वदा एक प्रकारका उन्माद रोग हुआ करता था । एक दिन माघके महीनेमें गीदड़ बड़े जोरसे चिल्ला रहे थे । लाखनसेनने सभा-सदोंको बुला कर कहा, 'ये क्यों चिल्ला रहे हैं?' एक सभा-सदने उत्तर दिया कि जाड़से व्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं । लाखनसेनने उत्तर दिया, कि इनको कपड़े बनवा दिये जायँ । कई दिनोंके पीछे राजाने पुनः उस-का चिल्लाना सुना । तब राजाने अपने उसी सभासदको बुला कर पूछा—"अब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े अभी तक नहीं बनवाये गये ?" सभासदने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! कपड़े तो बन गये ।" लाखनसेन बोले, 'तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं । अच्छा इनको रहनेके लिये मकान बनवा दिये जायँ ।' इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि राजकर्मचारियोंने शीघ्र ही राजाको इस आज्ञाका पालन किया । सोढा जातिकी रानी इन पर अपनी बड़ी प्रभुता रखती थी । रानीने अपने पिताकी राजधानी अमर-कोटसे बहुतेरे अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथमें राज्यका एक एक काम सौंप दिया था । किन्तु एक दिन विना कारण ही लाखनसेनने उन सभोंको मार डाला । इतिहासमें लिखा है, कि इस निर्बोध राजाने चार वर्ष तक राज्य किया था । इनके पुत्रका नाम पुण्यपाल था ।

लाखना (हिं० क्रि०) लाख लगा कर बरतन या और किसी चीजमेंका छेद बंद करना ।

लाखपती (हिं० पु०) लखपती देखो ।

लाखा (हिं० पु०) १ लाखका बना हुआ एक प्रकारका रंग । इसे स्त्रियां सुन्दरताके लिये होठों पर लगाती हैं । २ गेहूंके पौधोंमें लगनेवाला एक रोग । इससे पौधेकी नाल लाल रंगकी हो कर सड़ जाती है । इसे गेरुआ या कुकुहा भी कहते हैं । यह एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म लाल रंगके कीड़ोंका समूह होता है । ३ एक प्रसिद्ध भक्त । यह मारवाड़ देशमें रहता था ।

लाखागृह (सं० पु०) लाक्षागृह देखो ।

लाखिराज (हिं० वि०) वह भूमि जिसका लगान न देना पड़ता हो, जिस पर कर न हो ।

लाखिराजी (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो ।

लाखी (हिं० वि०) १ लाखके रंगका, मटमैला लाल । (पु०) २ मटमैला लाल रंग, लाखका सा रंग । (स्त्री०) ३ लाखके रंगका घोड़ा ।

लाखेरी—बम्बई प्रदेशवासी जातिविशेष । लाहसे चूड़ी आदि बनाना ही इनकी उपजीविका है । उन लोगोंका कहना है, कि उनके पूर्वपुरुष मारवाड़से अहमदनगर, धारवाड़ आदि दाक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें आ कर बस गये हैं । ये लोग हिन्दूधर्मावलम्बी हैं । इनमें श्रेणिगत कोई विभाग नहीं है । एक उपाधिवाले व्यक्तियोंमें

आदान-प्रदान नहीं चलता। बालाजोकी प्रतिमूर्त्ति और तिरुपतिकी व्यङ्कोवा मूर्त्ति ही उनकी उपास्य देवी हैं। विवाहादिमें वे लोग शराव पीते हैं।

स्त्रियां और बाल बच्चे चूड़ी बनानेमें पुरुषको मदद देते हैं। ये लोग स्थानीय कुनवियोंसे सामाजिक मर्यादामें ऊंचे तथा ब्राह्मणोंसे नीचे हैं। सिमगा, दशहरा, दीवाली एकादशी और शिवरात्रि पर्वमें ये लोग उपवासादि करते हैं। जातकर्म और अन्त्येष्टिको छोड़ कर इनके और कोई संस्कार नहीं है। जातकर्म बहुत कुछ उच्च हिन्दू-सा है। विवाहकार्यमें स्त्रियां मारवाड़ीभाषामें गाती हैं। ब्राह्मण आ कर कन्यादान करते हैं। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान अङ्ग है। विवाहके बाद वर कन्याको अपने घर ले आता तथा आत्मीयकुटुम्बोंको एक भोज देता है। बालिकावधू ऋतुमती होनेसे तीन दिन अशौच रहता है। चौथे दिन उसे उवटन लगा कर गरम जलसे नहलवाया जाता है। पीछे स्त्रियां आ कर बालिका-की गोदमें चावल, नारियल, पञ्चफल और पान देती हैं। इसके बाद वह स्वामिसहवास करने पाती हैं। एक वर्षसे कम उमरवाले बच्चोंके मरने पर उन्हें गाड़ दिया जाता है। उससे ऊपर होनेसे दाहकर्म होता है। मृतका पुत्र वा निकट आत्मीय दाहके बाद क्षौरकर्म करके शुद्ध होते हैं। उस दिन वह अपने हाथसे पाक नहीं करता, किसी आत्मीयके घरमें खिचड़ी खा कर रहता है। तीसरे दिन वे मृतकी भस्मराशिको एकत्र करते हैं तथा दही और भात खाते हैं। दशवें दिन ब्राह्मणको बुला कर मृतके उद्देशसे पिण्ड तथा ग्यारहवें दिन आत्मीय कुटुम्बोंको एक भोज देते हैं। छः मासमें अर्द्धवार्षिक श्राद्ध तथा वर्षके अन्तमें वार्षिक श्राद्ध होता है। उस समय भी वे ज्ञातिभोज देते हैं। महालयाके दिन भी वे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते हैं। जातीय पञ्चायत सामाजिक विवादकी निष्पत्ति करती है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है।

लाग (हिं० स्त्री०) १ संपर्क, लगाव, ताल्लुक। २ लगा-वट, लगन। ३ प्रेम, मुहब्बत। ४ युक्ति, तरकीब। ५ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। ६ वह स्वांग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझमें न आवे। ७ जादू, टोना। ८ वैर, दुश्मनी। ९ धातुको फूंक कर तैयार किया हुआ रस, भस्म। १० एक प्रकारका नृत्य। ११ भूमि कर, लगान। १२ वह चेप जिससे चेचकका अथवा इसी प्रकारका और कोई टीका लगाया जाता है। १३ दैनिक भोजनकी सामग्री, रसद। १४ वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदिको अलग अलग रस्मोंके सम्बन्धमें दिया जाता है।

लागडांट (हिं० स्त्री०) १ शत्रुता, दुश्मनी। २ प्रति-स्पर्धा, चढ़ा ऊपरी। नृत्यकी एक क्रिया।

लागत (हिं० स्त्री०) वह खर्च जो किसी चीजकी तैयारी या बनानेमें लगे, कोई पदार्थ प्रस्तुत करनेमें होनेवाला व्यय।

लागुडिक (सं० त्रि०) १ लगुड़युक्त, जिसके हाथमें लाठी हो। २ प्रहरी, पहरा देनेवाला।

लाघरक (सं० पु०) हलीमक नामक रोग।

लाघव (सं० क्ली०) लघोर्भावः कर्म वा (इगन्ताच्च लघु-पूर्वात्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ लघुत्व, लघु होने-का भाव। २ अल्पत्व, थोड़ा होनेका भाव, कमी। ३ हाथकी सफाई, फुर्ती। ४ आरोग्यता, नीरोगता, तंदुरुस्ती। ५ नपुंसकता। (अव्य०) ६ फुरतीसे, सहजमें।

लाघवायन (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। इन्होंने एक श्रौतसूत्र और उसका भाष्य प्रणयन किया।

लाघविक (सं० त्रि०) संक्षिप्त, थोड़ा।

लाङ्क (सं० स्त्री०) १ कमर, कटि। २ परिमाण, मिक-दार।

लाङ्कायनि (सं० पु०) लङ्काका अपत्य।

(पा० ४।१।१५९)

लाङ्कायन (सं० पु०) लङ्काका गोत्रापत्य।

(पा० ४।१।९९)

लाङ्ग (सं० स्त्री०) धोतीका वह भाग जो दोनों जांघोंके नीचेसे निकाल कर पीछेकी ओर कमरसे खोंस लिया जाता है, काछ।

लाङ्गल (सं० पु०) लङ्गतीति लगि गतौ बाहुलकात् कलच्।

१ स्वनामख्यात भूमिकर्षणयन्त्र, खेत जोतनेका हल। पर्याय—हल, गोदारण, सीर, हाल, शीर। २ शिश्न, लिंग। ३ चन्द्रमाका अर्द्धोन्नत शृङ्ग। ४ पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल। ५ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

लाङ्गलक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार हलके आकारका वह घाव जो भगंदर रोगमें गुदामें शस्त्रचिकित्सा करके किया जाता है। (सुश्रुतचि० ८ अ०)

लाङ्गलकी (सं० स्त्री०) विषलांगुलिया, कलियारी नामका जहरीला पौधा।

लाङ्गलग्रह (सं० पु०) लाङ्गलं गृह्णाति (शक्तिलाङ्गलाङ्कुश-यष्टितोमरघटघटीधनुःषु। पा ३।२।६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अच्। कृषक, खेतिहर।

लाङ्गलग्रहण (सं० क्ली०) लाङ्गलधारण, हल लेना या पकड़ना।

लाङ्गलचक्र (सं० क्ली०) लाङ्गलाकारं चक्रं। फलित-ज्योतिषमें एक प्रकारका चक्र। इस चक्रकी सहायतासे खेतीके सम्बन्धमें शुभाशुभ फल जाने जाते हैं।

यह चक्र लाङ्गलाकार बनाना होता है इसीसे इसको लाङ्गलचक्र कहते हैं। जिस दिन गणना करनी होगी, उस दिन सूर्याक्रान्त नक्षत्र मानना होगा। सभी नक्षत्रोंको यथास्थान विन्यास करके देखना होगा, कि उस दिनका नक्षत्र किस स्थानमें है। यदि दण्डमें रहे, तो गोको हानि, यूपस्थ होनेसे स्वामिका भय, लाङ्गल और योक्तृमें होनेसे लक्ष्मीलाभ होता है। अतएव लाङ्गल और योक्तृस्थित नक्षत्रमें खेती करनेसे शुभफल होता है।

लाङ्गलदण्ड (सं० पु०) लाङ्गलस्य दण्डः। लाङ्गलका ईश, हलकी हरिस। पर्याय—ईशा, ईषा।

लाङ्गलध्वज (सं० पु०) बलराम।

लाङ्गलपद्धति (सं० स्त्री०) लाङ्गलस्य पद्धतिः। लाङ्गलरेखा, वह रेखा जो जमीन जोतते समय हलकी फालके धंसनेसे पड़ती जाती है। पर्याय—शीता, सीता।

लाङ्गलफाल (सं० पु० क्ली०) हलकी अंकड़ीके नीचे लगी हुई वह लोहेकी चौकोर लंबी छड़ जिसका सिरा नुकीला और पैना होता है, कुस।

लाङ्गलाख्य (सं० पु०) कलियारी नामका जहरीला पौधा।

लाङ्गलापकर्षिन् (सं० त्रि०) १ लाङ्गल अपकर्षणकारी, हल जोतनेवाला। (पु०) २ वृष, बैल।

लाङ्गलायन (सं० पु०) लाङ्गलका गोत्रापत्य।

लाङ्गलाह्वया (सं० स्त्री०) लाङ्गलिया क्षुप, कलियारी नामका पौधा।

लाङ्गलि (सं० पु०) १ कलियारी नामका जहरीला पौधा। २ जल-पीपल। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ पिठवन। ५ कौंछ, केवाँच। ६ चव्य, चाब। ७ गजपीपल। ८ ऋषभक नामकी अष्टवर्गीय ओषधि। ९ महाराष्ट्री या मराठी नामकी लता।

लाङ्गलिक (सं० पु०) लाङ्गलवत् आकृतिरस्त्यस्येति लाङ्गल-ठन्। एक प्रकारका स्थावर विष।

लाङ्गलिका (सं० स्त्री०) लाङ्गलमिवाकारोऽस्त्यस्या इति ठन्-टाप्। लाङ्गलि देखो।

लाङ्गलिकी (सं० स्त्री०) लाङ्गल ठन्-ङीष्। कलियारी। पर्याय—अग्निशिखा, अग्निज्वाला, लालका, लाङ्गली, गैरी, दीप्ता, हलिनी, गर्भघातिनी, अग्निजिह्वा, इन्द्रपुष्पा, अग्निमुखी, वह्निशिखा। इसका गुण कुष्ठ और दुष्टव्रण-नाशक माना गया है। (राजनि०)

लाङ्गलिन् (सं० पु०) लाङ्गलमस्त्यस्येति लांङ्गल-इनि। १ बलराम। २ नारिकेल, नारियल। ३ सर्प, साँप। (स्त्री०) ४ पुराणानुसार एक नदीका नाम। (मार्क० ५७।२६) ५ कलियारी। ६ पिठवन। ७ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ८ जलपीपल। ९ गजपीपल। १० कौंछ, केवाँच। ११ चव्य, चाब। १२ महाराष्ट्री नामकी लता। १३ ऋष-भक नामकी अष्टवर्गीय ओषधि। (त्रि०) १४ लाङ्गल विशिष्ट, हलवाला।

लाङ्गलिनी (सं० स्त्री०) कलियारी, कलिहारी।

लाङ्गली (सं० स्त्री०) लाङ्गलाकारोऽस्त्यस्याः इति लाङ्गल-अच्-ङीष्। लाङ्गलाकार पुष्प, जलज शाकविशेष। पर्याय—शारदी, तोयपिप्पली, शकुलादनी, जलाक्षी, जलपिप्पली, पित्तला, श्यामादिनी, मत्स्यगन्धा, कलियारी। (राजनि०) २ शालपर्णी, सरिवन नामका वृक्ष।

लाङ्गलीश (सं० पु०) एक शिवलिङ्गका नाम। (सौरपुराण ६ अ०)

लाङ्गलीशाक (सं० पु०) जल-पीपल।

लाङ्गलीषा (सं० स्त्री०) (एङि पररूपं। पा ६।१।९४) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या साधुः। हरिस, हलका लट्ठा।

लाङ्गूल (सं० क्ली०) लङ्ग (खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४.९०) इति ऊलच्, बाहुलकात् वृद्धिश्च। १ पूंछ, दुम। पर्याय—पुच्छ, लूम, वालहस्त, वालधि, लङ्गूल, लाङ्गूल, लुलाम, आवाल, लञ्ज, पिच्छ, वाल। गोपुच्छका जल मस्तक पर देनेसे पाप विनष्ट होता है। यह जल तीर्थजलके समान पवित्र है। (वराहपुराण) २ शेफ, लिङ्ग। ३ कुशूल, कोठला।

लाङ्गूलिन् (सं० पु०) प्रशस्त लाङ्गूलमस्त्यस्येति लाङ्गूल-इनि। १ वानर, बंदर। २ ऋषभ नामक ओषधि। ३ पिठवन। ४ कौंछ, केवाँच।

लाङ्गूलिया—मध्यप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। सम्भवतः यही पुराणानुसार लाङ्गलिनी नदी है।

लाङ्गूली (सं० पु०) लाङ्गूलिन देखो।

लाङ्गूलीका (सं० स्त्री०) लाङ्गूलाकृतिरस्त्यस्या इति लाङ्गूल-ठन्। पृश्निपर्णी, पिठवन।

लाङ्गूल (सं० क्ली०) १ दुम, पूंछ। २ शिश्न, लिङ्ग।

लाङ्गूला (सं० स्त्री०) १ केवाँच, कौंछ। २ पृश्नपर्णी, पिठवन।

लाचार (फा० वि०) १ विवश, मजबूर। (क्रि० वि०) २ विवश हो कर, मजबूर हो कर।

लाचारी (फा० स्त्री०) लाचार होनेका भाव, मजबूरी।

लाची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लाचीदाना (हिं० पु०) खाली चीनीकी एक प्रकारकी मिठाई। यह छोटे छोटे गोल दानोंके आकारकी होती है। कभी कभी इसके अंदर सौंफ या इलायचीका दाना भी भरा होता है। इसे इलायचीदाना भी कहते हैं।

लाज (सं० क्ली०) लाज-अच्। १ उशीर, खस। २ धानका लावा, खील। इसका गुण—मधुररस, शीतवीर्य, लघु, अग्निसन्दीपक, मलमूत्रको कम करनेवाला, रूक्ष, बलकारक, पित्त, कफ, वमि, अतिसार, दाह, रक्तदोष, प्रमेह, मेद और पिपासानाशक माना गया है। (भावप्र०) (पु०) लाज अच्। ३ आर्द्रतण्डुल, पानीमें भींगा हुआ चावल।

लाज (हिं० स्त्री०) लज्जा, शर्म, हया।

लाजक (सं० पु०) धानका भूना हुआ लावा, लाई।

लाजतर्पण (सं० क्ली०) लाजकृतं तर्पणं। लाजशक्तुकृत तर्पणविशेष। खोईका बना हुआ एक प्रकारका तर्पण। दाह और वमिसे रोगीके अत्यन्त कातर होने पर गुड़ और शहद मिला कर लाजतर्पणका प्रयोग किया जा सकता है। खोईको खूब चूर्ण कर यह तैयार करना होता है।

लाजपेया (सं० स्त्री०) लाजेन कृता पेया। वह मांड़ जो खोई या लावा उबालनेसे निकले। इसका व्यवहार रोगियोंको पथ्य देनेमें होता है।

लाजभक्त (सं० पु०) लाजस्य भक्तः। खधिभक्त, खोई या लावाका पकाया हुआ भात। यह रोगियोंको पथ्यमें दिया जाता है। इसका गुण—लघु, शीतल, अग्निदीप्तिकर, मधुर, बलकर, निद्रा और रुचिकर, कफ और पित्तनाशक तथा व्रणशोधनकारी। (वैद्यकनि०)

लाजमण्ड (सं० पु०) लाजस्य मण्डः। वह मांड़ जो खोई या लावा उबालनेसे निकले।

लाजवंत (हिं० वि०) जिसे लज्जा हो, शर्मदार।

लाजवंती (हिं० स्त्री०) लजालू नामका पौधा, छुई मुई।

लाजवर्णा (सं० स्त्री०) लाजस्य वर्ण इव वर्णो यस्याः। असाध्य लूताविशेष, फुंसी जो मकड़ीके मूतनेसे निकलती है।

लाजवर्द (फा० पु०) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध कीमती पत्थर। इसे संस्कृतमें 'राजवर्त्तक' कहते हैं। यह जंगाली रंगका होता है और इसके ऊपर सुनहले छींटे होते हैं। यह वातज रोगोंके लिये गुणकारी, मनको प्रसन्न करनेवाला, हृदयके लिये बलकारी और उन्माद आदि रोगोंमें उपकारी माना जाता है। आँखोंमें सुरमा लगानेके लिये इसकी सलाई भी बनती है जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है। २ विलायती नील जो गंधकके मेलसे बनता और बहुत बढ़िया होता है।

लाजवर्दी (फा० वि०) लाजवर्दके रंगका, हलका नीला।

लाजवाब (फा० वि०) १ जिसके जोड़का और कोई न हो, अनुपम, बेजोड़। २ जो कुछ जवाब न दे सके, निरुत्तर।

लाजशक्तु (सं० पु०) लाजस्य शक्तुः। खोई या लावाका सत्तू।

लाजहोम (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका होम। इसमें खोई या धानका लावा आहुतिमें दिया जाता था।

लाजा (सं० स्त्री०) लाज-अच्-टाप्। १ चावल। २ भृष्ट धान्य, लावा। गुण—तृष्णा, छर्दि, अतीसार, प्रमेह, मेद और कफनाशक, कास और पित्तोपशमक, अग्निकारक, लघु और शीतल। इसके मांड़का गुण—अग्निकारक, दाह, तृष्णा, ज्वर और अतीसारनाशक, अशेष दोषनाशक और आमपाचक। (पु०) ३ भूमि, पृथ्वी।

लाज़िम (अ० वि०) १ जो अवश्य कर्त्तव्य हो। २ उचित, मुनासिब।

लाज़िमी (अ० वि०) जो अवश्य कर्त्तव्य हो, जरूरी।

लाञ्चुल (सं० क्ली०) धान्य, धान।

लाञ्छन (सं० क्ली०) लाञ्छ-ल्युट्। १ चिह्न, निशान। २ दाग। ३ दोष, कलंक। (पु०) ४ रागीधान्य, मड़ुवा।

लाञ्छनी (सं० स्त्री०) लञ्छन देखो।

लाञ्जी—मध्यप्रदेशके वालाघाट जिलेकी बुर्हा तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° ३०´ उ० तथा देशा० ८०° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर चारों ओर तालावसे घिरा है। उत्तरी भाग घने जंगलसे ढका है। वहां एक प्राचीन शिवमन्दिर और कुछ खंडहर देखे जाते हैं। वह प्राचीन लाञ्जि नगरका अवशेष समझा जाता है। यहां एक किला टूटी फूटी हालतमें पड़ा है। शायद १७०० ई०के लगभग गोंड़-राजोंने वह किला बनवाया था। किलेके अहातेमें लाञ्जकाई नामक काली-मूर्त्ति प्रतिष्ठित एक देवालय है। उक्त देवीमूर्त्तिके नामानुसार ही नगरका नामकरण हुआ है।

लाट (अं० पु०) १ किसी प्रान्त या देशका सबसे बड़ा शासक, गवर्नर। २ बहुत-सी चीजोंका वह विभाग या समूह जो एक ही साथ रखा, बेचा या नीलाम किया जाय।

लाट (सं० पु०) १ एक अनुप्रास जिसमें शब्द और अर्थ एक ही होते हैं, पर अन्वयमें हेर फेर होनेसे वाक्यार्थमें भेद हो जाता है। २ वह लंबा बांध जो किसी मैदानके पानीके वाहनको रोकनेके लिये बनाया जाता है।

लाट (सं० पु०) देशविशेष, वर्त्तमान गुजरात प्रदेशका प्रान्त भाग।

नर्मदा नदीका मुहाना और मही नदीके तीरस्थ गुजरात तथा खान्देश विभाग ले कर यह प्राचीन जनपद संगठित था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें यह लाट नामसे प्रसिद्ध है। मुसलमान भौगोलिक मसूदी (A D. 940 vol 1. 381), अलविरुणी (A D, 1020 in Elliot 166) तथा टलेमी (A D. 150, vol 11 63) पेरिप्लस आदिने इसका लाड़, लारिस वा लारियक नामसे उल्लेख किया है। वे लोग इस जनपदके स्थाननिर्णयके सम्बन्धमें अनेक स्थानोंके नाम बतलाते हैं। अलविरुणी, अबुलफदा और इब्न सैयदका कहना है, कि थाना और सोमनाथ पत्तन ले कर यह लाटदेश बना है। मुसलमान वणिक् सुलेमान काम्बे उपसागरसे ले कर मलबार-उपकूल तक सागरांशको लाट-समुद्र बता गये हैं। मसूदीने सैमूर, सुपर, थाना और अन्यान्य नगरोंको ले कर लारिमा (लाट) प्रदेशकी सीमा निर्देश की है। वर्त्तमान प्रत्न-तत्त्वविदोंका सिद्धान्त है, कि सूरत, भरोंच, कैरा और बड़ोदाका कुछ अंश ले कर यह लाट देश बना था।

इस स्थानके अधिवासी लाट कहलाते थे। ये लोग अनहिलवाड़-राजके अधीन थे। किसी कारणसे उन लोगों पर असंतुष्ट हो राजा कुमारपालने लाटोंको राज्यसे भगा दिया। तभीसे वे भारतवर्षके नाना स्थानोंमें जा कर बस गये हैं। राजपूतानेके मरुदेशमें, बेरारके मैकर विभागमें आज भी इन लोगोंका वास देखा जाता है। परन्तु अभी वे उस प्रकार सुविस्तृत भावमें तथा प्राचीन नामसे परिचित नहीं हैं। ये सबके सब हिन्दू हैं। बहुतोंने जैनधर्म भी ग्रहण कर लिया है। राजपूतानेके लाड़ व्यवसाय-वाणिज्यमें लिप्त हैं, बेरारके लाड़ रेशमी कपड़े बुनते हैं। विख्यात भ्रमणकारी टावर्नियरने मलवार-उपकूलमें तथा थुनवर्गने सिंहलद्वीपमें लाड़ी नामक एक प्रकारकी मुद्राका प्रचार देखा था। शायद वह मुद्रा सुप्राचीन लाटदेशमें प्रचलित थी। पीछे उस नामके अपभ्रंशसे उसका लाड़ी नाम हो गया था।

भार्यावर्त्त और लाहुरी बन्दर देखो।

लाट (हिं० स्त्री०) मोटा और ऊंचा खंभा। उत्तर-पश्चिम भारतमें बहुत प्राचीन कालसे अनेक प्रस्तरके खंभे विराजित हैं। प्राचीन कीर्त्तिके आदर्श होनेसे वे विशेष विख्यात और जनसाधारणके आदरकी वस्तु हैं। इसके सिवा इन सब स्तम्भों पर अति प्राचीन अक्षरोंमें

जो सब इतिवृत्त लिखे हैं, वे प्रत्नतत्त्वविदों के बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। उन विद्वानों ने बहु परिश्रम और आलोचना द्वारा उन लिपिमालाका पाठ कर उनका प्रकृततत्त्व निर्णय किया है। महामति जेम्स-प्रिन्सेप्सने पहले पहल इस वर्णमालाका आविष्कार किया। वह माला अभी लाट-वर्णमाला (Lat-character) कहलाती है।

भारतवर्षके विभिन्न देशोंमें इस प्रकारके कितने लाट स्तम्भ मस्तक उठाये खड़े हैं। उनमेंसे इलाहाबादकी लाट ही प्रसिद्ध है। उस स्तम्भकी एक बगलमें गुप्तराजवंशके सामयिक अक्षरों में तथा दूसरी बगलमें बौद्धसम्राट् अशोककी प्रशस्तिके जैसे अक्षरों में लिपि खोदी हुई है। दिल्लीकी लाटकी लिपिके साथ कटककी धौली-लिपि और गिरनरकी पहाड़ी-लिपिकी वर्णमालाका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है। इसके सिवा उसमें कपर्द्दिगिरियोंकी सेमितिक अक्षरमालाकी जैसी लिपि भी देखी जाती है। उस लाटमें २६ श्लोक लिखे हैं। उसमें भारतवर्षस्थित जनपदादिका विभाग और उसका नाम, उस समयके राजवंशका विवरण तथा पारस्य और शकजातिका विवरण लिखा है। हस्तिनापुरमें चन्द्रवंशीय राजों की राजधानी प्रतिष्ठित होने तथा मनुसंहिता वा महाभारतमें शूरसेनका कोई विशेष नहीं रहने पर भी हमें उस लिपिसे मालूम होता है, कि ईसा जन्मसे पहले ३री सदीमें बौद्धसम्राट् अशोकके राजत्वकालमें यह इलाहाबाद भूभाग एक प्रसिद्ध स्थान समझा जाता था।

२ भीतरी लाट—गाजीपुर जिलान्तर्गत एक स्तम्भ। उसमें इलाहाबाद लाटके जैसे राजवंशका परिचय और वंशतालिका विद्यमान है।

३ दिल्लीलाट—फिरोजस्तम्भ नामसे परिचित। पाठानराज फिरोज तुगलक (१३५१-१३८८)-ने इसके ऊपर सोनेका एक कलस लगवा दिया है। तभीसे यह स्वर्णलाट नामसे प्रसिद्ध है। पूर्वकालकी सुप्रसिद्ध भारतीय राजधानी सारे दिल्ली-विभागमें इसके सिवा और कोई प्राचीन निदर्शन नहीं है। यही कौटिल्य विषयके अन्तर्भुक्त एक अद्भुत कीर्त्तिस्तम्भ है। पूर्वकालसे इस स्तम्भके विषयमें नाना किंवदन्तियां प्रचलित हैं,—हिन्दू लोग उसे भीमकी गदा, मुसलमान लोग सम्राट् फिरोजकी टहलनेकी लाठी, कोई कोई महात्मा अलेकसन्दरका पुरुविजयस्मृतिस्तम्भ तथा टोम कोरियट आदि प्राचीन अङ्गरेज-भ्रमणकारिगण उसे अशोकस्तम्भ जानते थे। परवर्त्तिकालमें यूरोपीय प्रत्नतत्त्वविदोंकी चेष्टासे जब उसका प्रकृत पाठ उद्धृत हुआ, तब लोगोंका सन्देह जाता रहा।

वह स्तम्भ पहले यमुनाके दूसरे किनारे सलोरा जिलेके शिवालिक पादमूलस्थ खिजिराबादके समीप था। पीछे वह दिल्ली-द्वारके बाहरमें ला कर गाड़ दिया गया है। डा० कनिंहमका कहना है, कि वह स्तम्भ प्राचीन श्रुघ्न राजधानीके किसी स्थानमें था। चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग उसको पार्श्ववर्त्ती बौद्ध विहार और बुद्धस्मृतिसे संयुक्त सम्राट् अशोकके समकालीन सुवृहत् स्तूपका उल्लेख कर गये हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि उक्त प्राचीन देशसे यह स्तम्भ बैलगाड़ी पर चढ़ा कर खिजराबाद लाया गया था। करीब १३५६ ई०में फिरोजशाह हिन्दूके मुखसे उसकी निश्चलताका हाल सुन बहुत रुपये खर्च करके उसे दिल्ली लाये थे। उन्होंने उसका शिखर सफेद और काले पत्थरोंसे सुशोभित कर स्वर्णकलस रखा था। उस समय मीनार-जरिन नामसे प्रसिद्ध था। १६११ ई०में विलियम फिञ्च दिल्ली नगरमें आ कर इसके स्वर्णमयकलस और अर्द्धचन्द्राकृति चूड़ाका उल्लेख कर गये हैं।

यह लाट अन्यान्य अशोकस्तम्भकी तरह घोर लाल पत्थरकी बनी है। उसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इञ्च है। ऊपरी भाग ३५ फुट चौड़ा, पालिशदार और चिकना तथा निम्न भाग रूखरा है। वह करीब आठ सौ मन भारी होगी। उस स्तम्भमें दो प्रधान और बहुत-सी छोटी छोटी लिपियां उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे ईसा-जन्मकी ३री सदीके शेष भागमें बौद्धसम्राट् अशोककी जो लिपि उत्कीर्ण है, वही सबसे पुरानी है। वह ब्राह्मी अक्षरमें लिखी है। उसकी वर्णमाला भारतीय वर्णमालाका सर्वप्राचीन निदर्शन है। आज भी उसके अक्षर साफ साफ दिखाई देते हैं। केवल दो एक जगह पत्थरकी चिट उखड़ जानेसे उस स्थानकी लिपि नष्ट हो गई है। उसके शेष भागमें एक छत्र पर सम्राट् अशोकका आदेश लिखा है जो इस प्रकार है;—"धर्मकी रक्षाके कारण शिलास्तम्भके ऊपर एक ऐसा शिलाफलक

उत्कीर्ण करो जो बहुत दिन तक रह जाय।" उसके ऊपरी भागके चारों ओर चार और नीचे एक शिलालिपि देखी जाती है। पूर्वमुखी फलकके शेष दश छत्र तथा अन्यान्य फलकोंकी लिपि इस दिल्लीस्तम्भका पार्थक्य सूचित करती है। एक दूसरे फलकमें चौहानराज विशाल (विग्रह) देवकी विजयवार्त्ता उत्कीर्ण है। उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने हिमाद्रिसे ले कर विन्ध्यगिरि पर्यन्त समस्त भूभाग एकच्छत्राधीन कर लिया था।

चौहान राजवंशकी गौरवज्ञापक यह लिपि दो खण्डोंमें विभक्त है। उसका अर्द्धांश प्राचीन अशोक-लिपिके ऊपर और शेषार्द्ध उसके नीचे उत्कीर्ण है। दोनों लिपिखण्डोंमें ही १२२० संवत् लिखा है। निम्न खण्डकी वर्णमाला आधुनिक संस्कृत है। उसमें लिखा है, कि शाकम्भरीराज विशालदेवने ११६६ ई०में वह शिलाफलक खोदा था। इसी प्रकारका एक दूसरा लाटस्तम्भ मीरटसे दिल्ली नगरमें लाया गया था। सम्राट् अशोकने अपने सुप्रसिद्ध अनुशासनका राज्यके मध्य प्रचार करनेके लिये जो सब स्तम्भ स्थापित किये थे उन्हींमें परवर्त्ती राजन्य और वैदेशिक भ्रमणकारिवर्ग अपनी अपनी वीरकीर्त्ति उत्कीर्ण कर गये हैं। उनका नया स्तम्भ खड़ा करनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

४ दिल्लीका लौहस्तम्भ—मसजिदके मध्यस्थलमें स्थापित है। ऊंचाई २२ फुट और घेरा १६ इञ्च है। प्रत्नतत्त्ववित् प्रिन्सेप्सने उसे ३री वा ४थी शताब्दीका बना अनुमान किया है। उसकी गात्रस्थ लिपि 'कनोजी नागरी' तथा अन्यान्य मिश्र-वर्णमालामें लिखी है। इसमें हस्तिनापुर-राज्यापहारक राजा ध्रव तथा वाह्लिकादि जातिका उल्लेख रहनेसे वह ५वीं सदीके पीछेका बना मालूम होता है।

५ निर्गमवोध—यमुनातीरवर्त्ती एक तीर्थस्थान। यह दिल्लीसे कुछ मील दक्षिणमें स्थापित है। चांद कविके विवरणसे पता चलता है, कि चौहान-राजवंशका गौरवप्रकाशक एक स्तम्भ यहां विद्यमान था। अभी उसका नामोनिशान नहीं है।

६ वाराणसीस्थ अशोकका प्रशस्तियुक्त स्तम्भ। इसकी ऊंचाई ४२ फुट ७ इञ्च है। इसके गात्रमें नाना प्रकारके कारुकार्य हैं।

७ गाजीपुरस्तम्भ—गाजीपुरमें स्थापित एक बौद्धस्तम्भ। उसकी वर्णमाला पूर्ण संस्कृत नहीं है। इस कारण लोग उसे आसानीसे नहीं समझ सकते। इसके गात्रमें जो शिलाफलक खोदित है वह इलाहाबाद, दिल्ली आदि स्तम्भोंकी तरह बौद्धस्तम्भके ऊपर स्थापित हुआ है। उसमें गुप्तवंशीय समुद्रगुप्तसे युवराज महेन्द्रगुप्तका नाम पाया जाता है।

८ रूपवास शैलस्तम्भ—भरतपुर राज्यके रूपवासविभागमें एक बड़े पहाड़ पर स्थापित है। वह असम्पूर्ण अवस्थामें पड़ा है। बड़े स्तम्भकी ऊंचाई ३३॥० फुट और छोटेकी २२॥० फुट है।

९ धौलीस्तम्भ—कटक जिलेके धौली ग्राममें अवस्थित है। इसमें लाटवर्णमाला तथा बीच बीचमें वलभी और सिवनी-लिपिके अक्षरमाला देखी जाती है। उड़ीसा विभागमें जो सब अशोकस्तम्भ प्रतिष्ठित हैं वे सभी बालु-पत्थरके बने हैं।

१० जूनरस्तम्भ—इसमें दो शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। नानाघाटके स्तम्भ पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह दिल्लीस्तम्भ और गिर्नर पर्वतस्थ शिलाफलकके साथ मिलती जुलती है। गिरनारकी पहाड़ी-लिपिको जेम्स प्रिन्सेप्सने पाली बताया है।

लाटलिपि।

महामति कर्नल टाडने राजस्थानकी प्राचीन कीर्त्ति और स्तम्भखोदित लिपिमाला देख कर मुक्तकण्ठसे कहा था, 'पहले इन्द्रप्रस्थ, प्रयाग, मेवार, जूनागढ़की शैलमाला, विजली और आरावल्ली शिखर पर स्थापित स्तम्भादिका, पर्वत गात्रखोदित लिपिका तथा भारतमें सर्वत्र प्रतिष्ठित जैन और बौद्ध-मन्दिरादिमें उत्कीर्ण शिलाफलकोंका प्रकृत तत्त्व मालूम होनेसे हम निश्चय ही भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना कर सकते हैं।" इस प्रकार संकल्प कर महामती जेम्स प्रिन्सेप्स गभीर गवेषणाके साथ भारतीय प्रत्नतत्त्वका अनुशीलन करने लगे। लाटलिपिका उद्धार करते समय उन्हें मालूम हुआ, कि वह पाली और संस्कृत भाषाके मेलसे बनी है। उसके

विशेष्य और अपरापर पद पालि-विभक्ति और प्रत्यययोग-से साधित तथा क्रियापद प्रायः संस्कृतसे लिये गये हैं। भिलसा-स्तम्भमें भी गुप्तवंशीय फलकादिकी जैसी भाषा-का प्रयोग है, वे ही पहले पहल भिलसा-स्तम्भकी संख्या निरूपण कर कालनिर्णय करनेमें समर्थ हुए थे। बौद्ध-स्तम्भादिमें पदविन्यास द्वारा कालमान वर्णित देखा जाता है।

लाटलिपिकी अक्षरमाला प्राचीन ब्राह्मीलिपिके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्तम्भके ऊपर छोड़ कर दूसरी जगह ऐसी वर्णमाला नहीं देखी जाती, इस कारण उसे लाटलिपि कहते हैं। अफगानिस्तानकी कपर्दिगिरियोंकी वर्णमाला उससे कुछ बड़ी तथा प्राचीन सेमितिक ढंग पर अङ्कित है। किन्तु कटक, दिल्ली, इलाहाबाद, बेतिया, मुल-टिया और राधिया आदिकी स्तम्भलिपि भारतीय ब्राह्मी है।

ऊपर जितने लाट-स्तम्भोंकी बात लिखी गई उनकी आकृति भिन्न भिन्न है। दिल्लीमें फिरोजस्तम्भ नामक जो लाट है वह किसीसे भी छिपी नहीं है। वह एक ऊंची अट्टालिकाके ऊपर स्थापित है। इसके ऊपरकी लाटलिपि बहुत प्राचीन है तथा निम्नदेशोंमें अपेक्षाकृत परवर्त्तिकालमें संस्कृत अक्षरोंमें खोदित एक दूसरा शिला-फलक उत्कीर्ण है।

अभी बौद्ध-सम्राट् अशोकके प्रवर्त्तित जो सोलह लाट-स्तंभ आविष्कृत हुए हैं और उनमें जिन सब राजानु-शासनका हाल दिया गया है उसे नीचे लिखते हैं—

अशोकका अनुशासन और उनका हाल।

१ला—खाद्यार्थ वा यज्ञार्थमें पशुहिंसाका निषेध तथा धर्मनीतिकी परिवृद्धिका आदेश।

२रा—राज्यमय आयुर्वेद-शिक्षा-प्रचार और विना मूल्यके दुःखित प्रजाओंकी चिकित्सा-व्यवस्था, रास्तेकी बगलमें कुआँ खोदना और वृक्ष रोपना।

३रा—प्रियदर्शीके शासनकालका द्वादशवार्षिक समा-रोह-प्रचार और पञ्चमवार्षिक राजानुगत्य वा राजभक्ति-प्रदर्शन।

४था—प्रियदर्शीके शासनकालके गत द्वादशवार्षिक राज्यशासनके साथ वर्त्तमान निर्विरोध राजत्वका साम-ञ्जस्य प्रचार।

५वां—बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये धर्मगुरु और प्रचारकनियोग।

६ठा—पतिवेदक, राज्यरक्षक, धर्माधिकरण आदि पदों पर व्यक्तिविशेषको नियुक्त कर राज्यका मङ्गल व्यवस्था-प्रचार।

७वां—विभिन्न धर्मसम्प्रदायके मतपार्थक्यका साम-ञ्जस्य करके ऐक्यमत स्थापनमें राजाका आग्रहज्ञापन।

८वां—पूर्ववर्त्ती राजाओंके पार्थिव भोगविलासके साथ अपने निरीह आमोदका पार्थक्यनिर्देश और पवित्र साधुपुरुष संदर्शन, भिक्षादान और धर्मगुरु आदि मान-नीयोंको यथायोग्य सम्मानना दानकी अनुज्ञा।

९वां—धर्म और नीतिविषयक कथा, धर्ममङ्गल, धर्म-सेवीका सुख, भिक्षुकोंको दान, सभी पर दया और गुरु-जनोंके प्रति मान्यका फलनिर्देश और उसकी कर्त्तव्यता-के सम्बन्धमें आदेश-प्रचार।

१०वां—'यशो वा क्षिति वा' वादकी मीमांसा, अनित्य संसारके अविद्याजनित गर्भका प्रत्याख्यान और जीव-न्मुक्तिका प्रकृष्ट पन्थानिर्देश।

११वां—धौली और गिरनार प्रशस्तिमें वर्णित "धर्म-ही ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ दान है।"

१२वां—बौद्धधर्ममें अविश्वासियोंके साथ अनुनय-पूर्वक मताभिव्यक्ति।

१३वां—सारे अनुशासनका सारमर्म और संक्षिप्त उपदेश।

लाट—कुरानके अनुसार एक अपदेवता। महम्मदके समय थामिया और कोरश जाति इस देवताकी उपासना करती थी।

लाटक (सं० त्रि०) लाट जाति-सम्बन्धीय।

लाटडिण्डीर—एक प्राचीन कवि। क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्त-तिलकमें इनका उल्लेख है।

लाटपत्र (सं० पु०) दारचीनी।

लाटपर्ण (सं० पु०) दारचीनी।

लाटरी (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी योजना। इसका आयोजन विशेष कर किसी सार्वजनिक कार्यके लिये

धन एकत्र करनेके निमित्त किया जाता है और इसमें लोगोंको किस्मत आजमानेका मौका मिलता है। इसमें एक निश्चित रकमके टिकट बेचे जाते हैं और यह घोषणा की जाती है, कि एकत्र धनमेंसे इतना धन उन लोगोंमें बांटा जायगा जिनके नामकी चिटें पहले निकलेंगी। टिकट लेनेवालोंके नामकी चिटें किसी संदूक आदिमें डाल दी जाती हैं और कुछ निर्वाचित विशिष्ट व्यक्तियोंकी उपस्थितिमें वे चिटें निकाली जाती हैं। जिनके नामकी चिटें सबसे पहले निकलती हैं, उसे पहला पुरस्कार अर्थात् सबसे बड़ी रकम दी जाती है। इस प्रकार पहले निकलनेवाले नामवालोंमें निश्चित धन यथाक्रम बांट दिया जाता है। इसके लिये सरकारसे अनुमति लेनी पड़ती है।

लाटाचार्य—एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

लाटानुप्रास (सं० पु०) वह शब्दालङ्कार जिसमें शब्दोंकी पुनरुक्ति तो होती है, परन्तु अन्वयमें हेर फेर करनेसे तात्पर्य भिन्न हो जाता है।

लाटायन (सं० पु०) लाट्यायन।

लाटिका (सं० स्त्री०) रीतिभेद। वैदर्भी, पाञ्चाली, गौड़ी और लाटिका ये चार प्रकारकी रीति हैं। रचना पद्धतिको ही रीति कहते हैं।

वैदर्भी और पाञ्चाली रीतिकी मध्यस्थिता जो रीति है उसे लाटी कहते हैं। तात्पर्य यह, कि केवल वैदर्भी रीतिके अनुसार वा पाञ्चाली रीतिके अनुसार रचना न हो कर इसके मध्य भावमें जो रचना होगी वही लाटीरीति है। वैदर्भी और पाञ्चाली इन दोनों ही रीतिके नियमका अनुसरण कर जो रचना होती है वही लाटी-रीति है।

इस रीतिमें मृदु पदविन्यास होगा अथच दीर्घ-समासबहुल और युक्तवर्ण अधिक न रहेगा तथा उचित विशेषन द्वारा वस्तु-विन्यास होनेसे यह रीति होगी। विशेषणका प्रयोग इस प्रकार करना होगा, कि वर्णनीय वस्तुके साथ उसकी सङ्गति रहे।

दूसरा लक्षण—डम्बर-बन्धयुक्त रचना होनेसे गौड़ी-रीति, ललित-पदविन्यास होनेसे वैदर्भी, मिश्रभावमें पाञ्चाली तथा मृदु-पदविन्यास करनेसे लाटी-रीति होती है। (साहित्यद० ९ परि)

लाटी (सं० स्त्री०) लाटिका रीति।

लाटीय (सं० त्रि०) लाटक, लाटजाति-सम्बन्धी।

लाटेश्वर—पश्चिम-भारतमें स्थित एक शैवतीर्थ।

लाट्यायन (सं० पु०) श्रौतसूत्रके प्रणेता एक ऋषि।

लाठ (हिं० पु०) १ लाट देखो। (स्त्री०) २ लाट देखो।

लाठी (हिं० स्त्री०) वह लंबी और गोल बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलनेमें सहारेके लिये अथवा मार-पीट आदिके लिये होता है, डंडा।

लाठी—१ बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेल-वाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २१° ४१´ से २१° ४५´ उ० तथा देशा० ७१° २३´ से ७१° ३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२ वर्गमील है। यहांका अधिकांश स्थान पर्वतमालासे पूर्ण है। कहीं कहीं काली मिट्टी दिखाई पड़ती है। इस उर्वर मिट्टीमें रुई, ईख और उरद बहुतायतसे उपजता है। निकटवर्त्ती भावनगर बन्दरमें यहांके पण्यद्रव्यकी खरीद-विक्री होती है।

भावनगर-राजवंशके प्रतिष्ठाताके मंझले भाई शाङ्गजीने यहांके सरदारवंशकी प्रतिष्ठा की। इस वंशके एक ठाकुर-सरदारने दामाजी गायकवाड़को अपनी कन्या ब्याह दी। उन्होंने दहेजमें अपनी कन्याको छभारी नामक भूसम्पत्ति दी थी।

यह सम्पत्ति आज दामनगर नामसे विख्यात है। गायकवाड़-राज दामाजीने यह सम्पत्ति पाने पर अपने ससुरसे राजकर लेना छोड़ दिया। तभीसे यहांके सरदार उक्त सम्पत्तिका प्रायः निष्कर भोग करते आ रहे हैं। और गायकवाड़राजको प्रत्येक वर्ष एक घोड़ा भेज दिया करते हैं। उनका वार्षिक राजस्व ७३११० रु० है। इसमेंसे वे बड़ोदाके गायकवाड़को तथा जूनागढ़के नवावको एक साथ २००७ रु० कर देते हैं। उन्हें दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है। जेठे लड़के ही पितृपदके अधिकारी होते हैं। यहांके सरदार बापुभा (१८८४ ई०) गोहेलवंशीय राजपूत हैं। ये अङ्गरेज-राजसरकारमें चौथी श्रेणीके सामन्त गिने जाते हैं। ये अपने राज्यमें किसी तरहका पण्यद्रव्य पर महसूल नहीं लगाते।

२ उक्त सामन्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ४३´ उ० तथा देशा० ७१° २४´ पू०के बीच पड़ता है। भाव

नगेर-गोंडाल रैलपथकी धोराजी शाखा इस राज्यके बीचो-बीच हो कर चली गई है। नगरसे आध कोस पर इस रैलपथका एक स्टेशन है। जनसंख्या ५६६७ है। यहां धर्मशाला, चिकित्सालय और विद्यालय है।

लाड़ (हिं० पु०) बच्चोंका लालन, प्यार, दुलार।

लाड़—बम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक जाति। यह जाति दक्षिण-गुजराती भी कहलाती है। सम्भवतः यही प्राचीन लाट जनपदवासी लाट-जातिके वंशधर हैं। इनमें एक प्रवाद इस तरह है,—उत्तर-भारतसे उनके पूर्वपुरुष दक्षिण-भारतमें आ कर बस गये हैं। ये काले और पीले रंगके होते हैं। तुलजाभवानी और येल्लमा इनकी प्रधान उपास्य देवी हैं।

इस जातिके लोग हट्टे कट्टे, मजबूत और सुडौल होते हैं। ये बहुत कुछ शिम्पियोंसे मिलते जुलते हैं। इनकी आंखें बड़ी बड़ी, तोतेकी जैसी नाक, दोनों होंठ पतला और मुंह गोल होता है। इनका आचार-व्यवहार उच्च श्रेणीके ब्राह्मण-सा और पहनावा साफ सुथरा होता है। ये शराब नहीं पीते और न मांस ही खाते हैं। अधिकांश निरामिषाशी हैं। दूधके लिये सब कोई गाय और भैंस पालते हैं। स्त्रियां घंघरा अथवा फेंटा बांधती हैं। ये आतिथ्य-सत्कार खूब करते लेकिन सभी बड़े आलसी होते हैं। इनके क्षत्रिय लाड़ थोककी अवस्था उतनी खराब नहीं है। इतर आदि गंधद्रव्य बेचना ही उनकी प्रधान उपजीविका है।

इनमें नामके अलावा और कोई उपाधि देखी नहीं जाती। लड़केके विवाहसे लड़कीके विवाहमें ही अधिक खर्च होता है। क्योंकि जमाईको दहेजमें रुपये देने पड़ते हैं। ये सभी धार्मिक होते और ब्राह्मणोंकी बड़ी भक्ति करते हैं। विवाहादिमें ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। ये पण्ढरपुर और तुलजापुरमें देवदर्शनको जाते हैं और हिन्दूके प्रधान प्रधान सब त्योहारोंमें ही उपवास आदि किया करते हैं। बनारसमें इनके धर्मगुरुका वंश है। वे जातिमें गोस्वामी हैं। वे समय समय पर दक्षिणी शिष्यको मन्त्र देने आते हैं। दूसरी जातिको वे शिष्य नहीं बनाते।

बालकके जन्मके बाद नाभिच्छेद किया जाता है और तब प्रसूति नहलाई जाती है। पांचवें दिन षष्ठीपूजाके बाद जातीय कुटुम्बका भोज होता है। तेरहवें दिन सभी बालकको गोद लेते हैं। इसी दिन उसका नामकरण होता है। इसके बाद तीन महीने तक प्रति सोमवारको प्रसूति षष्ठीपूजा करती है। इस तरह तीन महीना बीतने पर प्रसूति पुत्रको ले कर आस-पासके देवालयमें जाती और देवताको भेंट दे कर घर वापस आती है।

इस दिनसे विवाह पर्यन्त और कोई संस्कार नहीं होता। विवाहसे एक दिन पहले 'देवरुता' होता है। इसमें कुलदेवताकी पूजा होती है। विवाहके दिन वर और कन्याको उबटन लगा कर स्नान कराया जाता है। पीछे उन्हें एक साथ बैठा कर पुरोहित मन्त्र पाठ करते हैं। सिन्दूरदानके बाद विवाह शेष होता है। पीछे एक भोज होता है।

ये लोग मृत-शरीरको जलाते और सिर्फ दश दिन तक अशौच मानते हैं। ये देखनेमें प्रायः एकसे लगते हैं। समाजमें किसी तरहकी गड़बड़ी होने पर जातीय प्रधानोंके विचारसे उसका निबटेरा होता है। जो इसका उलंघन करते वे जातिच्युत होते हैं। पीछे दश रुपये देने पर समाजमें लिये जाते हैं।

लाड़कसाव—बम्बईप्रदेशमें रहनेवाली एक मुसलमान जाति। भेड़ा, बकरा आदि मार कर बेचना ही इस जातिका व्यवसाय है। इस जातिके लोग पहले हिन्दू थे। महिसुरराज टीपू सुलतान (१७८५-१७९९ ई०)-के प्रभावसे सभी इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुए हैं। स्त्री और पुरुषोंका वेशभूषा स्थानीय हिन्दू-सा है। कोई कोई पुरुष केवल दाहिने कानमें एक बड़ा कुंडल पहनते हैं। स्त्रियां पुरुषोंसे सुन्दरी होतीं और घरसे बाहर आनेमें नहीं लजाती हैं। यहां तक, कि दूकान पर बैठ कर मांस बेचती हैं। ये मितव्ययी, कर्मठ, चतुर और विनयी होते हैं पर कुछ गंदा रहते हैं।

ये अपने ही समाजमें शादी करते हैं। 'पाटिल' नामक निर्वाचित समाजके अध्यक्षका आदेश सभी मानते हैं। किसी तरहका सामाजिक गोलमाल होनेसे पंचायत उसका निबटेरा कर देती है। उसको अवहेला करने पर पाटिल जुर्माना करते हैं। ये हिन्दू देवदेवीकी बड़ी भक्ति करते हैं। हिन्दूके देवताकी पूजा आदि

तथा त्योहारमें ये बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाते हैं। कोई भी गोमांस नहीं खाता। काजो इनका विवाह और समाधिकार्य सम्पादन करते हैं। इसके अलावा अन्यान्य सभी विषयोंमें ये हिन्दू-प्रथाकी अनुसरण करते हैं। ये कुरान या कलमा नहीं पढ़ते और न मसजिदमें ही जाते हैं। दूसरे दूसरे मुसलमान सम्प्रदायके साथ बैठ कर खानेमें ये घृणा करते हैं।

लाड़खान—एक मुसलमान राजा। ये अनङ्गरङ्गके प्रणेता कल्याणमल्लके प्रतिपालक थे।

लाड़लड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका सांप जो प्रायः वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़लड़ैता (हिं० वि०) जिसका बहुत अधिक लाड़ हो, प्यारा, दुलारा।

लाड़ला (हिं० वि०) जिसका लाड़ किया जाय, दुलारा।

लाड़ली (हिं० वि० स्त्री०) जिसका लाड़ किया जाय, दुलारी।

लाड़वानी—बम्बई प्रदेशवासी एक जाति। राजा कुमारपाल द्वारा दक्षिण गुजरातके लाट देशसे भगाये जाने पर ये लोग सम्भवतः यहां आ कर बस गये होंगे। ये हिन्दू हैं। इनमें अगस्त्य, भरद्वाज, गर्ग, गौतम, जमदग्नि, कौशिक, काश्यप, नैध्रुव और विश्वामित्र गोत्र प्रचलित हैं। सगोत्र अथवा एक पदवी होनेसे इनमें विवाह नहीं होता। ये हर रोज स्नान और कुलदेवताकी पूजा किया करते हैं। इसके अलावा तुलजापुरकी भवानीदेवी, सताराके अन्तर्गत सिंगनापुरके महादेव, पण्ढरपुरके विठोवा आदि तीर्थोंमें ये सचराचर जाते हैं। इनका लौकिक आचार-व्यवहार और वेशभूषा स्थानीय ब्राह्मणोंसे मिलता जुलता है। ये साफ सुथरे, मेहनती, आतिथेय और चतुर होते हैं। चावल, कपड़ा और तरह तरहका मसाला बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ग्रामवासी बहुतेरे लाड़ खेती-बारी करते हैं। सम्प्रति बहुत लोग पढ़ लिख कर सरकारी नौकरी करने लगे हैं। स्त्रियाँ पुरुषोंके साथ दूकानमें अन्न बेचती हैं। इसके सिवाय वे गृहस्थोका सब काम करते हैं।

ये स्थानीय ब्राह्मणोंसे समाजमें नीच और कुनबियोंसे उच्च गिने जाते हैं। देशके ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई करते हैं। हिन्दूकी सभी देवदेवीकी पूजामें इनकी बड़ी भक्ति देखी जाती है। ये हिन्दूके सब त्योहारोंको मानते और प्रति वर्षकी सलौनी पूर्णिमामें सब कोई जनेऊ पहनते हैं। इनमें बाल्यविवाह और बहुविवाह चलता है; किन्तु विधवा-विवाह निषिद्ध है। बालकका अष्टम वर्ष ही उपनयनका उत्तम काल है। १५से २० वर्ष तक लड़केका विवाह होता है। विवाहका मन्त्र वैदिक नहीं है। ये देशी भाषामें ही विवाह आदि कराते हैं। ये शवको जलाते हैं। सिर्फ दश दिन तक अशौच रहता है। उसके बाद शुद्ध हो कर जातिभोज देते हैं। किसी प्रकारका बखेड़ा खड़ा होने पर पंचायत उसका निबटेरा कर देती है। अपराधीको जुर्माना किया जाता है। कभी कभी दोषी जातिभोज दे कर छुटकारा पाता है।

लाड़सूर्यवंशी—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलेमें रहनेवाली एक नीच जाति। बकरा आदि काट कर उसका मांस बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये अशुद्ध हिन्दी बोलते हैं।

इनमें किसी तरहका श्रेणीविभाग नहीं है। पुत्र उत्पन्न होने पर नाभि काटनेके बाद ये जातबालकके मुंहमें रेंड़ी तेलकी कई बूंदें डाल देते हैं तथा पांचवें दिन एक बकरा काट कर आत्मीय स्वजनको भोज देते हैं। तेरहवें दिन अशौचके बाद सब कोई बालकको गोद लेते तथा नामकरण करते हैं। उसके बाद विवाह तक और किसी तरहका संस्कार नहीं होता। विवाहके दिन वर और कन्या एक उच्च वेदी पर बैठाई जाती और गांवके पण्डित कन्या सम्प्रदान करते हैं। मन्त्र पढ़ते समय वे दोनोंके शिर पर हल्दीसे रंगा हुआ चावल छिड़कते हैं। विवाहके उपरान्त आत्मीय स्वजनका भोज होता है।

मृत्युके बाद ये शवदेहको स्नान कराते और बिछा कर कपड़ा पहनाते हैं। इसके बाद उसे फूलकी माला और अलंकार आदिसे सुशोभित कर दफनाते हैं। तीसरे दिन ये उसी कब्र पर आ कर दूध ढालते हैं। यदि कोई अशुभ दिनमें मरता है, तो उस घरके सब कोई तीन महीने तक इस घरको छोड़ दूसरी जगह जा कर रहते हैं। इनका विश्वास है, कि अशुभ समयमें मृत्युके लिये जो दोष होता है, वह इस घरमें

रहनेसे गृहस्थित अपर व्यक्तिको निःसन्देह ही स्पर्श कर सकता है।

इनमें वाल्यविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। विधवा-विवाह निषिद्ध है। सामाजिक किसी भी विषयकी मीमांसा पंचायत द्वारा ही होती है। इनकी बातकी अवहेला करनेवाला व्यक्ति समाजच्युत होता है।

ये लोग धार्मिक होते हैं। धर्मकर्ममें भी इनकी बड़ी श्रद्धा है। वेलगांव जिलेकी सवदत्ती नगरीका येलम्मा देवीतीर्थ तथा नवलगुण्डके मुसलमान-साधु दवल-मालिकका मकवरा ये देखने आते हैं। ब्राह्मणोंके प्रति भी इनकी भक्ति अचला है। विवाहादि क्रिया कर्ममें ब्राह्मण लोग भी याजकता करते हैं। इनके कोई धर्म-गुरु नहीं होते।

लाड़ू (हिं० पु० १ लड्डू, मोदक। २ दक्षिणी नारंगी।

लाढ़िया (हिं० पु०) वह दलाल जो दूकानदारसे मिला रहता है और ग्राहकोंको धोखा दे कर उसका माल विकवाता है।

लाढ़ियापन (हिं० पु०) १ लाढ़ियाका काम। २ धूर्त्तता, चालाकी।

लाण्डणी (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री।

लात (हिं० स्त्री०) १ पैर, पाँव। २ पैरसे किया हुआ आघात या वार, पादप्रहार।

लाद (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुको बैल या गाड़ी पर रख कर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेका कार्य, लादनेकी क्रिया। २ मिट्टीका वह ढोंका जो पानी निकालने-की ढेंकीके दूसरे ओर लगा रहता है। ३ पेट, उदर। ४ आँत, अँतड़ी।

लादना (हिं० क्रि०) १ किसी चीज पर बहुत-सी वस्तुएं रखना, एक पर एक चीजें रखना। २ गाड़ी या पशुको भारसे युक्त करना, ढोने या ले जानेके लिये वस्तुओंको भरना। ३ कुश्ती लड़ते समय विपक्षीको अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना। ४ किसीके ऊपर किसी बातका भार रखना।

लादवा—पञ्जाब प्रदेशके अम्बाला जिलेकी पिप्पली तह-सीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ५९´ उ० तथा देशा ७७° ३´ पू०के बीच पिप्पलीसे रहौर जानेके रास्तेमें अवस्थित है। जनसंख्या ३५१८ है। यहां पहले सामन्त-राज्यकी एक राजधानी थी। १८४६ ई०में सिख-युद्धके समय यहांके सरदार राजा अजितसिंह अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हो गये थे। इस कारण सम्पत्ति जब्त कर ली गई है। आज भी दुर्ग और राजप्रासाद तथा अन्यान्य प्रधान प्रधान अट्टालिका विद्यमान है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेसे नगरकी पूर्वसमृद्धिका किसी तरह ह्रास न होने पाया है। नगरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक चिकित्सालय है।

ला-दावा (अ० वि०) जिसका कोई दावा न रह गया हो, जो अधिकारसे रहित हो गया हो।

लादिया (हिं० पु०) वह जो किसी चीज पर बोझ लाद कर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाता हो।

लादी (हिं० स्त्री०) १ कपड़ोंकी वह गठरी जो धोबी गदहे पर लादता है। २ वह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है।

लानंग (हिं० पु०) एक प्रकारका अंगूर। यह कुमायूं और देहरादूनमें अधिकतासे होता है। इससे अर्क निकाला जाता और एक प्रकारकी शराब बनाई जाती है।

लान (अं० पु०) हरी घासका बड़ा मैदान जिस पर गेंद आदि खेलते हैं।

लानटेनिस (अं० पु०) गेंदका एक खेल जो छोटे-से मैदानमें खेला जाता है।

लानत (हिं० स्त्री०) धिक्कार, फिटकार।

लानती (हिं० पु०) वह जो सदा लानत मलानत सुननेका अभ्यस्त हो, सदा फिटकार सुननेवाला।

लाना (हिं० क्रि०) १ कोई चीज उठा कर या अपने साथ ले कर आना, कोई चीज उस जगह पर ले जाना जहां उसे ग्रहण करनेवाला हो अथवा जहां ले जानेवाला रहता हो। २ प्रत्यक्ष करना, सामने रखना। ३ उत्पन्न करना, पैदा करना। ४ आग लगाना, जलाना।

लान्त (सं० पु०) तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका संकेत।

लान्तकज (सं० पु०) जैनियोंके एक प्रकारके देवताओंका गण।

लान्दीखाना—अफगानिस्तानके अन्तर्गत "खैवरघाटी" नामक प्रसिद्ध पहाड़ी रास्तेका एक अंश। ऐसा कठिन और दुर्गम स्थान और कहीं भी नहीं है। पूर्वमुखमें कदम नामक स्थानसे यह स्थान ३० मील और पश्चिममुखसे ७ मील पड़ता है। गिरिसंकटके इसी स्थान पर लान्दीखाना नामक एक गाँव है। यह अक्षा० ३४° ३' उ० तथा देशा० ७१° ३' पू०के बीच पड़ता है और समुद्रकी तहसे २४८८ फुट ऊँचा है। इस गिरिपथकी सबसे ऊँची सुरंग लान्दीकोटाल ३३७८ फुट ऊँची है। यहां एक दुर्ग है। खैवर गिरिपथ हो कर जाते समय अंगरेजी सेना इसी दुर्गमें ठहरती है। दुर्गकी खाईकी बगलमें एक सराय है। यात्री तथा वणिक् लोग जाने आनेके समय इसी स्थान पर भोजन आदि करते हैं।

लान्दीकोटालके अंगरेजराजके एक कर्मचारी (Political officer) के अधीन यह संकट रक्षित है। पहाड़ी सेना (Irregular levies) इसकी रखवाली करती है। लान्दीकोटालके पास ही पिसगाह नामक पर्वतशृंग है। विगत अफगान-युद्धके समय इस शिखर पर आरोहण कर स्थानीय अंगरेज-कर्मचारीने जलालाबाद तक अफगानिस्तानके समतल क्षेत्रका पर्यवेक्षण किया था।

लान्दीकोटाल पार कर गिरिपथकी चौड़ाई कुछ संकीर्ण हो गई है। उसी कन्दरमें लान्दीखाना ग्राम है। वहांसे कुछ दूर जाने पर अफगानिस्तानका समतलक्षेत्र पड़ता है।

लान्द्र—पाणिनीय यावादिगणोक्त एक शब्द। (पा ५।४।२९)

लाप (सं० पु०) लप-घञ्। कथन, बात।

लापता (हिं० वि०) १ जिसका पता न लगे, खोया हुआ। २ गुप्त, गायब।

लापरवा (फा० वि०) १ जिसे किसी बातकी परवा न हो, बे-फिक्र। २ जो सावधानीसे न रहता हो, असावधान।

लापरवाह (फा० वि०) लापरवा देखो।

लापरवाही (फा० स्त्री०) १ लापरवा होनेका भाव। बे-फिक्री। २ असावधानी, प्रमाद।

लापिन् (सं० त्रि०) लप-णिनि। कथनशील, कहनेवाला।

लापु (सं० पु०) रुद्रवंती, रुदंती।

लाप्य (सं० त्रि०) लप्यते इति लप-ण्यत्। कथनीय, कहने योग्य।

लाफा—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलान्तर्गत एक जमींदारी सम्पत्ति। भू परिमाण २७२२ वर्गमील है। १३९ ई०से यहांके जमींदारवंश इस सम्पत्तिका भोग करते आ रहे हैं। स्थानीय जमींदार कुनवार-वंशीय हैं।

लाफागढ़—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेका एक गिरि-दुर्ग। यह अक्षा० २२° ४१' उ० तथा देशा० ८२° ६' पू०के बीच बिलासपुर नगरसे २५ मील उत्तर लाफाशैल पर स्थापित है। समुद्रकी तहसे यह स्थान ३२०० फुट ऊंचा है। दुर्गके चारों ओर अधित्यकाभूमि तीन वर्गमील है जो अभी छोटे-से जंगलमें परिणत हो गई है।

इस सुशीतल अधित्यकाभूमिमें एक समय छत्तीसगढ़के हैहयवंशीय राजे रहते थे। पीछे वे रत्नपुरमें राजधानी उठा ले गये। आज भी दुर्ग और चहारदीवारी आदि अभग्न अवस्थामें पड़ी है।

लाभ (सं० पु०) लभ-करणे घञ्। १ प्राप्ति, मिलना। २ फायदा, मुनाफा। ३ उपकार, भलाई।

लाभक (सं० पु०) लाभ स्वार्थे कन्। लाभ, फायदा।

लाभकारक (सं० त्रि०) जिससे लाभ होता हो, फलदायक, फायदेमंद।

लाभकारी (सं० त्रि०) फायदा-करनेवाला, फायदेमंद)

लाभक्षायिक (सं० पु०) जैनोंके अनुसार वह अनन्त लाभ जो समस्त कर्मोंका क्षय या नाश हो जाने पर आत्माकी शुद्धताके कारण प्राप्त होता है।

लाभदायक (सं० त्रि०) जिससे लाभ हो, गुणकारी।

लाभमद (सं० पु०) वह मद जिससे मनुष्य अपने आपको लाभवाला और दूसरेको हीनपुण्य समझे।

लाभलिप्सा (सं० स्त्री०) पानेकी इच्छा।

लाभलिप्सु (सं० त्रि०) पानेकी इच्छा करनेवाला।

लाभवत् (सं० त्रि०) लाभः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लाभयुक्त, फायदेमंद।

लाभस्थान (सं० क्ली०) लाभस्य स्थानं। जातबालकके तन्वादि बारह भावोंमेंसे लग्नसे ग्यारहवां स्थान इस

स्थानमें लाभका विषय विचार करना होता है। इस लिये इसे लाभस्थान कहते हैं।

हस्ती, अश्व, यानवाहनादि, उत्तम भूषणादि, शय्या, धनरत्नादि, कन्या, आयु, विद्या और अर्थलाभ ये सब विषय लाभस्थानसे अर्थात् लग्नसे ग्यारहवें स्थानका निश्चय करना होता है।

लाभान्तराय (सं० पु०) वह अन्तराय कर्म जिसके उदय होनेसे मनुष्यके लाभमें विघ्न पड़ता है।

लाभ्य (सं० क्ली०) लभ-ण्यत्। लाभ, फायदा।

लाम (हिं० पु०) १ सेना, फौज। २ बहुत से लोगोंका समूह।

लामकायन (सं० पु०) १ लमकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९९) २ एक आचार्यका नाम।

लामकायनिन् (सं० पु०) लामकायन शाखाध्यायी।

लामज (हिं० पु०) एक प्रकारका तृण। संयुक्त प्रदेश, पंजाब और सिंधमें प्रायः बारहों महीने यह पाया जाता है। यह खसकी तरहका और कुछ पीले रंगका होता है इसलिये इसे पीलावाला भी कहते हैं। इसकी जड़के पासका भाग मोटा होता है और उस पर रोयें होते हैं। इसका डंठल सीधा होता है जिस पर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। वैद्यकमें इसे उत्तेजक, आमवातमें पसीना लानेवाला, रुधिरको साफ करनेवाला, अजीर्ण, खाँसी आदि दूर करनेवाला और विशूचिका तथा ज्वरमें लाभकारी माना जाता है।

लामज्जक (सं० क्ली०) १ लामज नामक तृण। लामज देखो। २ खस, उशीर।

लामय (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो प्रायः ऊसर भूमिमें पाई जाती है।

लामा (ब्'लामा*)—तिब्बतका बौद्धयतिभेद। इन लोगोंके मध्य सर्वश्रेष्ठ बौद्धसंन्यासी दलई लामा कहलाते हैं। मङ्गोलियोंने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर तिब्बतस्थ श्रेष्ठ धर्मयाजकोंका यह नाम रखा था। तिब्बतीय भाषामें ब्'लामा शब्दसे श्रेष्ठ तथा मङ्गोलीय दलईसे समुद्र समझा जाता है।

राजा थिस्रोङ्ग्दे-त्सानने (७२८-८६ ई०में) तिब्बतीय बौद्धयतियोंके मध्य श्रेणीविभाग करके उनके आचार-व्यवहारकी प्रणाली निर्द्धारित कर दी। आगे चल कर उस प्राचीन पद्धतिका विलोप हुआ तथा १५वीं सदीके आरम्भमें वर्त्तमान धर्मपद्धति सम्पूर्ण पृथक् और स्वाधीन भावमें संगठित हुई। सुप्रसिद्ध लामा त्सोंखापाने १४१७ ई०में लासा नगरीमें गाःल्दन् सङ्घाराम स्थापन किया तथा स्वयं उस मठके सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष हुए। जनसाधारण उनकी बड़ी श्रद्धा करते थे। उनके प्रति लोगोंकी ऐसी अचला भक्ति हो गई थी, कि उनकी सन्तानसन्ततिको भी वे लोग देवांश-समुद्भूत समझते थे। उसी विश्वासके बल उनके पुत्रपौत्रादि आज भी उस मठके अध्यक्ष हो कर हैं। किन्तु लासा नगरके सर्वश्रेष्ठ बौद्धधर्माचार्य दलई लामाने तथा तषिलहुणपोके पञ्चेन् रिन्पोछके धर्मप्रभावने जनसाधारणका चित्त आकर्षण किया, तब पूर्वोक्त गाःल्दन् मठाधिकारोंकी समस्त प्रतिपत्ति नष्ट हो गई। शेषोक्त दोनों लामाको देवसम्भूत जान कर वे लोग देवताके समान उन्हें मानने लगे।

दलई लामा जनताके निकट ध्यानी बोधिसत्त्व चेनरेशीके अंशसम्भूत वा उन्हींके अवतार समझे जाते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि बोधिसत्त्व चेनरेशी जब जिस मनुष्यकी देहमें प्रविष्ट हो कर धराधाममें अवतीर्ण होनेकी इच्छा करते, तभी वे अपने शरीरसे एक अपूर्व ज्योतिः निकाल कर उस मनुष्यकी देहमें मिला देते हैं। इससे उस मनुष्यकी देहमें देवभावका आविर्भाव हो जाता है। पञ्चेन्-रिन् पोछे नामक लामा चेनरेशी बोधिसत्त्वके पिता अमिताभका अवतार माने जाते हैं।

किंवदन्ती है, कि त्सोंखापाने अपने दो प्रधान शिष्योंको पुनः पुनः जन्म-परिग्रह कर बौद्धधर्मकी पवित्रतारक्षा तथा परिपालनके लिये हुकुम दिया। उन्होंने ही सबसे पहले उन दोनोंको आचार्यमर्यादाकी पृथक्ता और प्रधानता बतला दी। इसी प्रकार उपरोक्त देवांशसम्भूत दोनों लामाकी उत्पत्ति हुई है। Csomaकी वंशतालिकासे मालूम होता है, कि गेदुन ग्रुबने (जन्म १३८९ ई०, मृत्यु १४७३ ई०) सबसे पहले ग्येलब-रिन्पोछेकी उपाधि ग्रहण की थी। आज भी दलई लामा

* तिब्बत-भाषामें अग्रवर्त्ती 'ब' अनुच्चार्य।

उसी उपाधिसे परिचित हैं। अतएव इससे स्पष्ट अनुमान होता है, कि गेदुन ग्रुब ही सबसे पहले दलई लामारूपमें जनसाधारणके निकट गृहीत हुए थे। गाःलदन् सङ्घाराम-के मठाध्यक्ष त्सोनखापाके वंशधर धर्म-ऋचेन्को उक्त मर्यादा न मिली। १४४५ ई०में वे तषिलहुन्-पोछेका सुवृहत् संघाराम स्थापन कर गये हैं। उक्त मठके उपाध्यायने ही शायद् पञ्चेन् ऋन् पोछे नाम धारण कर दलई लामाकी तरह अपनी ऐसी शक्ति फैलानेकी कोशिश की। अपनी दैवशक्ति जनताको बता कर वे सफलीभूत हुए सही, पर दलई लामाकी तरह धर्मराज्यमें उनका प्रभाव न फैला और न अपने अधिकृत भूभागमें उनका बचन वा उपदेश देववाक्यवत् उस तरह सम्मानित और प्रतिपालित ही हुआ। केवल तिब्बतमें दलई लामाकी तरह वे अपनी राजशक्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

५म ग्येलव-ऋन्-पोछे लोवजङ्ग गैमत्सो उच्चाभिलाषो थे। उन्होंने भोटराजके साथ विरोधकालमें कुकुनोर नामक ह्रदतीरवर्त्ती कोषोत् मोङ्गलियोंके पास इस आशय पर एक दूत भेजा था, कि भोटराजधानी दिगार्चो पर चढ़ाई करनेके लिये वे लोग उन्हें मदद पहुंचायेंगे। दिगार्चोके भोटराजके साथ उनका जो युद्ध हुआ उसमें मोङ्गलियोंने तिब्बत अधिकार कर लोवजङ्गको दे दिया। १६४० ई०में यह घटना घटी। अतएव उसी समयसे सारे तिब्बतराज्यमें दलई लामाका अधिकार (temporal government) विस्तृत हुआ।

पहले लिखा जा चुका है, कि लामागण बोधिसत्त्वके अंशसम्भूत थे। तिब्बतियोंका विश्वास है, कि उनमेंसे कोई कोई नरदेहमें पृथ्वी पर अवतीर्ण होते और कोई स्वर्गीय ज्योति पा कर अंशावताररूपमें पूजित होते हैं। बौद्धधर्मशास्त्र-प्रसिद्ध बोधिसत्त्वोंने जिस प्रकार संसार-धर्मका परित्याग कर प्रव्रज्याव्रत अवलम्बन किया था, वे लामागण भी उसी प्रकार प्राचीनतम बौद्धयतियों (भिक्षु)के सङ्घ, श्रमण और अर्हत्-धर्मका पालन करते हैं। मठविहारिणी बौद्धभिक्षुणीगण लामाओंके साथ समधर्मानुशीलनमें रत रहने पर भी जनसाधारणकी निगाहमें उस प्रकार सम्मानके साथ नहीं देखी जातीं। वे सब साधारण उपासक समझी जाती हैं।

संसारधर्मनिरत गृहिव्यक्तिका यदि पवित्र बौद्धधर्ममें विश्वास रहे, तो वे धार्मिक गृहस्थ कहे जाते हैं। धर्मोपदेश सुननेका उन्हें अधिकार है। पञ्चोपदेशका पालन कर संसार-कार्य निर्वाह करनेसे वे उपासक वा उपासिका, ब्रह्मचर्यका अवलम्बन नहीं करनेसे पवित्रकर्मा और चार उपदेश पालन करनेसे ग्नेन्-थो वा ग्नेन्-मा कहलाते हैं।

धर्मप्राण तिब्बतीय समाजमें लामागण पार्थिव और आध्यात्मिक शक्तिके आधारभूत हैं तथा सर्वसम्पदका भोगाधिकारी जान कर जनसाधारण उस आचार्यपदके प्रार्थी होते हैं। इस कारण उस देशके अधिकांश मनुष्य बचपनमें संसारधर्मको जलाञ्जलि दे लामाका शिष्यत्व-ग्रहण करते हैं। फिर राजशक्ति और धर्मशक्तिके बलसे अनुप्राणित हो ये आचार्यगण लामापदप्रार्थी बालकों पर यथेच्छ अर्थदण्ड (बत्सुन ग्रल) भी करते हैं शिक्षानविशीके समय उन लोगोंको यथेष्ट कायिक क्लेश भी भुगतना पड़ता है। ये सब अमानुषिक कठोरता रहते हुए भी तिब्बतवासी प्रत्येक गृहस्थ अपने अपने प्रथम वा प्रियतम पुत्रको लामापद पर नियोग करनेके लिये मठमें भेज देते हैं। उन लोगोंकी अन्यान्य सन्तान-सन्ततिका विवाह होता है तथा वे गृहस्थके भरण-पोषणार्थ नाना कार्योंमें व्यापृत रहती हैं। जिसका प्रथम पुत्रके अलावा दूसरा पुत्र भी लामा होना चाहता है वे दो वा दोसे अधिक पुत्र भेज सकते हैं। इस कारण बौद्धप्रधान भोटराज्यमें प्रति छः या आठ आदमीके भीतर एक लामा हो गया है। सिक्किममें इस प्रकार १ : १०, लदाकमें १ : १३, भूटानमें १ : १०, स्पितीमें १ : ७, सिंहलमें १ : ३०, बर्मामें १ : ३०, तथा उत्तर एशियाकी कालमक जातिमें १५० से २०० तम्बूमें सिर्फ १ लामा विद्यमान देखे जाते हैं।

स्लागिनट्वइट्, डा० कनिंहम, डा० काम्बेल, मूरक्रफट, स्मिथ्ट हुक आदिका तिब्बत और लदाक-विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि तिब्बतकी राजधानी लासा नगरीके बारह मठोंमें तथा उसके आस पासके भूभागमें प्रायः १८५०० लामा हैं। पश्चिम-तिब्बत वा लदाक विभागकी वर्त्तमान जनसंख्यामें प्रायः छठांश लामा हैं।

साधारण संन्यासाश्रममें पारमार्थिक उत्कर्ष साधन-

के लिये १ शिष्य वा शिक्षानवीश और २ दीक्षित शिष्य रहते हैं। ये लोग पुरोहितका पद पाते हैं तथा ३ महामान्य आचार्य वा धर्मगुरु पदाधिकारी होनेकी व्यवस्था है। भारतीय बौद्धसमाजमें श्रमण वा भिक्षु और स्थविर वा उपाध्याय आदि पद देखे जाते हैं। तिब्बती लामासम्प्रदायमें भी उसी प्रकार सामान्य बालकसे महामान्य आचार्य पद पानेके भी चार क्रम हैं। उन सबोंका शिक्षानवीशकाल दो भागोंमें विभक्त है।

१ला 'गे-ञेन्' वा उपासक। धर्मजीवन बितानेके अभिप्रायसे जो मठमें प्रवेश कर शिक्षाकार्यमें व्रती होते हैं, वह उपासक दो प्रकारका है, पञ्चमहापातकका परित्याग कर धर्ममतानुवर्त्तनकारी व्यक्तिमात्र तथा संन्यासाश्रमावलम्बी शिष्य। शेषोक्त श्रेणीमें जो १० उपदेशका परिपालन तथा साम्प्रदायिक परिच्छदादिको पहन कर इस धर्मपथका पथिक होनेको तय्यार हैं वे 'रब्‌ब्युङ्' कहलाते हैं। मङ्गोल लोग उन्हें स्काबि, बन्दि, वन्द वा बन्ते और काल्मीकगण मांभी कहते हैं।

२रा गे तसुंल वा शिक्षाजीवनका प्राथमिक पर्याय। इस समय उन्हें ३६ धर्मनियमोंका पालन करना होता है। मठके दूसरे दूसरे लोगोंके निकट वे बहुत कुछ उपधर्माध्यक्ष समझे जाते हैं। किन्तु बौद्धयतिकी तरह उनका सम्मान नहीं होता।

३रा गे-लोङ्—धर्माचार्य और भिक्षु। २४ वर्षकी उमर नहीं होती, तब तक कोई भी यह मर्यादा पानेका अधिकारी नहीं। इस समय वे लोग प्रकृत दीक्षितयति समझे जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें २५३ नियमोंका पालन करना होता है।

४था खान-पो—मठाध्यक्ष वा उपाध्याय। यही लामासंन्यासव्रतकी चरमसीमा है। क्योंकि, 'खान-पो' ही शिक्षित, दीक्षित और यतियोंके प्रकृत गुरु हैं। इस समय उन्हें उपरोक्त साम्प्रदायिक तीनों विभागके शिक्षकताकार्यमें व्रती रहना होता है। केवल जो ऐशीशक्ति द्वारा अनुप्राणित वा बोधिसत्त्वावतार, 'हुतुक्' है तथा आचार्य देव कह कर राजशक्तिसे भूषित हैं, वे ही लाम खान्-पोके ऊपर रहते हैं। यथार्थमें ये लोग भी पूर्व-कथित उपाध्याय या गुरुके सिवा और कुछ नहीं हैं। बहुत पहले हीसे ये राजशक्तिसम्पन्न देवरूपी धर्मयाजकगण लामा वा आचार्यकी तरह सम्मानित होते आ रहे हैं। अन्यान्य मठाधिकारीसे इसका पार्थक्यनिर्देश करनेके लिये वे श्रेष्ठ लामा (Grand Lama) नामसे भी पुकारे जाते हैं। केवल बड़े बड़े मठमें ही एक एक खान्-पो रहते हैं। निकटस्थ छोटे छोटे लामास्थान और मन्दिरादिके परिदर्शकके रूपमें वे वहांके सभी कार्यादिका देखरेख करते हैं। उनका यह पद बहुत कुछ काथलिक विशपों-सा है।

लामाकी दीक्षा-प्रणाली।

देपुङ्, सेरा, गाःल्दन् और तषिल्हुन्पो आदि भोटराजस्थ सुप्रसिद्ध संन्यासाश्रममें जिस प्रणाली (गो-लुग्-प)से लामा-शिष्य बनाया जाता है नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। तिब्बतके अन्यान्य मठोंमें अधिकारीगणोंकी आचरित प्रथाका अनुसरण कर कार्य करते हैं।

जिस बालकको (बत्सन्-छथोड़) पिता माताने लामा बनाना स्थिर कर लिया है वह अपने घरमें आठ (छःसे बारह वर्ष तक भी) वर्ष तक रहेगा। लेकिन उस समय वह मठमें जा कर विद्याभ्यास कर सकता है। मठ जाते समय उसके शिर पर लाल या हल्दी रंगकी टोपी पहनाई जाती है। यहां पाठाभ्यासके समय शिक्षाभिलाषी छात्रवृन्द शिक्षानुरूपसे उत्तरोत्तर उच्च श्रेणीमें पहुंच जाते हैं। ये ड़ापा, गो-त्स उल् और गे-लोङ् अर्थात् यथाक्रमसे शिक्षानविश शिष्य, दीक्षित शिष्य तथा यति होते हैं और वे बौद्धयतिपदके अधिकारी हो कर शिक्षाविभागीय किसी एक विशेष विज्ञानकी उन्नति करनेके लिये कोशिश कर सकते हैं।

बहुतेरे बालक ही प्रधान मठमें वा संघाराममें लामा पद और उसके समान शिक्षा पानेके लिये प्रवेश करनेसे पहले गांवके छोटे मठमें प्राथमिक पाठ शिक्षा समाप्त करते हैं तथा दीक्षा पानेके समय मठमें इकट्ठे होते हैं। सिकिमके पेमियोङ्छि मठमें तथा मिन्दोलिङ्के निङ्मा-संघाराममें जिस प्रथासे बालकोंको शिक्षा दी जाती है, वह नीचे लिखी गई है।

जब कोई बालक दो मठमें शिक्षा पानेके लिये आता है, तो पहले उसे उसके पिताका नाम, कुलमर्यादा और पदमर्यादा आदि बातें पूछी जाती हैं। यदि पिता धनवान् हो तो वे लड़केको मठमें रख सकते हैं। बालकका परि-

चर्य जानने पर उसके शारीरिक बलकी परीक्षा की जाती है। क्योंकि उसका शरीर यदि दुर्बल हो तो वह कभी भी ऐसा कठोर व्रतपालन नहीं कर सकता। पहले लड़का, लंगड़ा, बहरा, गूंगा या तोतला है या नहीं, इसको वे अच्छी तरह जांच लेते हैं। यदि बालकके स्नायविक दुर्बलता आदि कोई दोष हो, तो वह कदापि मठमें प्रवेश नहीं कर सकता। शारीरिक परीक्षामें उपयुक्त होनेसे बालकके पिता या अभिभावक मठके किसी यति या लामाके निकट अपने पुत्रको रख आते हैं। बालकके निकट आत्मीय ही अकसर उसके परिदर्शक और उपदेष्टा हुआ करते। निकट आत्मीयका अभाव होनेसे बालकका कोष्ठी-फल विचार कर मठके किसी वृद्धयतिके हाथ बालकको सौंप दिया जाता है। उस समय वही वृद्ध यति बालकों-के उपदेष्टा होते हैं। गुरुके हाथ समर्पण करते समय बालकके पिता कुछ रुपया, खानेकी वस्तु और शराब दे कर यतिको संतुष्ट करते हैं। कहीं कहीं रुपये देनेकी पृथक्ता है। सिकिमके पेमिओङ्गछि संघाराममें करीब डेढ़ सौ रुपये और भूटानमें एक सौ भूटानी मुद्रा दी जाती है। छोटे छोटे मठोंमें १०) तक भी दिया जाता है।

गेर-गान् या उपदेशक यथोपयुक्त अर्थ और खाद्य वस्तु पा कर बालकको मठमें ले जाते हैं। पीछे जिस विस्तृत गृहमें यति लोग एकत्र हो कर बैठते हैं, वहां बालकको ला कर सबोंके सामने उसके वंशका परिचय और पिताके दिये हुए उपहार आदिके बारेमें कह सुनाते और प्रधान यति या ढुव्-ओ-छओससे उस बालकको शिष्य बनानेके लिये अनुमति लेते हैं। श्रेष्ठ यतिके इस विषयमें अनुमोदन करने पर वह बालक शिक्षार्थिरूपमें लिया जाता है।

विद्यार्थी अवस्थामें इस बालकके बाल छँटवा दिये जाते हैं। पीछे वह शिक्षकके अधीन साधारण वस्त्र पहन कर पाठाभ्यास करता है। क ख ग से आरम्भ कर क्रमशः वह कई छोटे छोटे धर्मग्रन्थ कण्ठस्थ कर डालता है। इसके अलावा उसे नीति उपदेश और व्याकरण पढ़ाया जाता और शिक्षा तथा उसका चरित्र संशोधनके हेतु इसी समय उसे दशविध दुष्कर्म, नीच जन्मके लक्षण, संघका उद्देश्य और बोलनेकी रीति आदि सिखाई जाती है। इस पाठ्यावस्थाके प्रथम वर्षमें बालकके पिता या आत्मीय स्वजन महीनेमें सिर्फ एक दिन आते तथा शिक्षकका वेतन और लड़केकी खुराकी दे कर घर लौट आते हैं। इस प्रकार दो या तीन वर्षके भीतर बालक जब आवश्यकीय सभी पाठ कण्ठस्थ कर लेता और शिक्षक उसको गे-त्स् उल पदके लायक समझते हैं, तब वे प्रधान यति (ख्रि-रगन्)के पास आवेदनपत्र भेज देते हैं। इस समय बालकको एक उत्तरीय और १०) रुपया भेजना पड़ता है। प्रधान यति उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तिकी फिर परीक्षा लेते हैं। गे-त्स उल पदके लायक जान कर उस पद पर स्थापित करनेके लिये एक जामीन नामा लिखवा कर अंगूठेका निशान ले लेते हैं। पीछे शाखाविशेषमें शिक्षा समाप्त करनेके लिये शिक्षक अपने छात्रको वहांके प्रधान मठाध्यक्ष (उपाध्याय)के निकट ले जाते हैं। इस उपाध्यायको उस समय प्रणामी स्वरूप एक रुपया और एक उत्तरीय देना होता है।

जब गुरु शिष्यके साथ उपाध्यायके पास जाते हैं, तो उपाध्याय गुरुको निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं,—"लामा-धर्म ग्रहण करनेकी इसकी प्रबल इच्छा है वा नहीं? यह बालक क्रीतदास, ऋणी अथवा सैनिकवृत्ति-धारी है वा नहीं? इसकी वंशमर्यादा कैसी है, वंश किसीने इसके यह धर्मग्रहण करनेमें आपत्ति भी की है? क्या इसने कभी बुद्धकी तीन आज्ञाओंका उलंघन भी किया है? जलमें विष डाला है या पर्वत पर पक्षियोंको कभी ढेला भी मारा है?" इत्यादि। उपरोक्त प्रश्नोंके यथायथ उत्तर पर संतुष्ट होनेसे उपाध्याय उसे पढ़े हुए पाठ्यग्रन्थोंका आनुपूर्विक पाठ पढ़ने कहते हैं। मठाचार्य जब बालकके मेधा और विनयादि गुण पर मुग्ध हो जाते, तब वे मठकी नाम-तालिका पर शिष्य और गुरुका नाम लिख अंगूठेका निशान ले लेते हैं। इस समय बालकको एक उत्तरीय उपहारमें दिया जाता है। इसके बाद उसे शाक्यमुनिके संसारत्याग और संन्यासाश्रम-ग्रहणकालीन वस्त्रधारणके अनुरूप लाल या हल्दीसे रंगे हुए वस्त्र पहनाये जाते हैं। बालक उपाध्यायकी परीक्षामें लामा-धर्मग्रहणके अनुपयोगी होनेसे वह मठसे

निकाल दिया जाता है और उसके शिक्षक दण्डनीय होते हैं। उपाध्याय उसे बेंतसे पीटते हैं और मठमें दिया जलानेके लिये उन्हें कई सेर मक्खन देना होता है।

उपाध्यायके सहमत होने पर शिक्षक पुनः इस बालकको मठके 'जाल-ङो' या श्रेष्ठ लामाके पास ले जाते हैं और उन्हें भी एक उपरना और एक रुपया प्रणामी दे कर अपना वक्तव्य जताते हैं। श्रेष्ठ लामा उसे मठमें रहनेका अधिकार और स्थान दे कर पुनः एक बहीमें उसका नाम लिख लेते हैं। यह बालक यदि भविष्यमें कोई अपराध करता है, तो उसे और उसके गुरुको दण्ड दिया जाता है।

जालङो-लामा द्वारा नाम लिखे जानेके बाद वह बालक ड़ापा पदाभिषिक्त हो कर मठको लौट आता है। अवस्थानुसार वह उसी मठके अपरापर सहपाठियोंको चाय पिलाता है। अगर वहां उसके कोई आत्मीय नहीं रहते हैं तथा खाद्यादि रींधनेकी असुविधा होती है, तो वह मठके भांडारसे भोजन पाता है। उसके आत्मीय खानेके लिये जो कुछ भेज देते हैं, उसका तीन भाग कर एक भाग मठ भांडारमें लिया जाता तथा बाकीसे वे स्तोद गग्, ब् पम्-ठाव्स्, गुजन, ङ्ला-गम, याव-सेर, स्नो-लुग्स् आदि यतिका उपयोगी वस्त्र, पीनेका वरतन, मैदेका थैला और एक छड़ माला पाते हैं। तदनन्तर प्रव्रज्याव्रत अवलम्बन कर वह जब तक संन्यासोके समान आचार अनुष्ठान नहीं कर सकता, तब तक वह गेत्सुल श्रमण पद नहीं पाता और न मठके धर्मकार्यमें साथ देनेका अधिकार ही पाता है।

ड़ापा पदाभिषिक्त बालक कर्मनिष्ठामें पारदर्शी हो कर धर्मकार्यमें लिप्त होनेको आशासे मठाधिकारी श्रेष्ठ लामा (दुगे लदेन् ख्-म्रन्-पोछे)के सामने अपना अभिप्राय प्रकट करता है। इस समय उसे एक उपरना और यथाशक्ति रुपया (पहलेसे अधिक) प्रणामीमें देना होता है। श्रेष्ठ लामाके अभिनन्दनके अनुसार वह गेत्सुल-पद पाता है। बालकको गेत्सुल पदाभिषिक्त करनेका एक दिन निश्चित होता है। साधारणतः 'उपोसथ' या उपवास दिन ही उत्तम माना गया है। इस दिन उसका शिर मुड़वा दिया जाता है। सिर्फ बीचमें एक शिखा रहती है। उसके बाद उसको संघके प्रधान प्रकोष्ठमें उपाध्यायके सामने ला कर संन्यासीका वेश धारण कराया जाता है। एक मन्त्र पढ़नेके बाद श्रेष्ठ लामा अथवा मठाध्यक्ष लामा उसका संन्यास-आश्रमका एक स्वतन्त्र नाम रखते हैं। बादमें इस बालकने संन्यास-धर्म अपनी इच्छासे और सहर्ष ग्रहण किया है, ऐसा जताने पर मठाधिकारी या दीक्षाकार्यके समय उपस्थित लामा उस शिखाको काट देते हैं। उस समय उसे गेत्सुल ३६ धर्मोपदेशों और ३६ नियमोंका पालन करना पड़ता। वह प्रधान लामाको नरदेही बुद्ध समझता। पीछे लामाके कहे हुए "मैंने बुद्ध, धर्म और संघका आश्रम ग्रहण किया" इस महामन्त्रको अङ्गीकार तथा तीन बार उच्चारण करनेके बाद संस्कारकार्य समाप्त होता है। संस्कार समाप्त होनेके बाद वह लामाको एक कपड़ा और १०) रुपया प्रणामी देता है। तभीसे वह गेत्सुल लामाके रखे हुए नाम और उपाधिसे मठमें परिचित होता है।

तदनन्तर वह संघके दालानमें लाया जाता और 'मठके साथ उसके विवाहरूप' एक प्रक्रियाका अनुष्ठान होता है। उस समय उसके शिर पर एक टोपर और हाथमें प्रज्वलित धूप रहता है। उसके बाद वह निर्दिष्ट आसन पर बिठाया जाता है। जो बौद्धयति इस समय उसे यतिधर्मको रीति नीति आदि शिक्षा देते हैं, वे व-नाग्रा कहलाते हैं। वज्राचार्य-सम्प्रदायभुक्त तान्त्रिक बौद्धाचार्योंकी यह दीक्षाप्रथा बहुत कुछ नेपाली "बांढ़ा" ओंसे मिलती जुलती है। नेपाल देखो।

यतिरूपमें दीक्षित तथा तत्साम्प्रदायिक सब कर्मोंमें अधिकार होने पर भी वह ड़ापा या छाल कहलाता है। इस समय भी उसे करीब तीन वर्ष तक विद्याभ्यास करना होता है। पीछे वही बालक यतिधर्मका 'म्रग्-छ'ओन' शिक्षाकाल अतिक्रम करता है। उसके बाद अलाहदा रहनेके लिये उसे एक कोठरी मिलती है। इस प्रकार शिक्षाकी पारदर्शिताके अनुसार वह पर्-पा और गे-लोङ् (पूर्ण यति) हो जाता है। तिब्बतीय प्रधान प्रधान संघारामोंके अध्यक्ष यति लोग ही केवल लामा उपाधि पा सकते हैं।

अगर छओोन होने पर भी वह शिक्षाकाल अतिक्रम कर नहीं सकता। इस समयसे उसे कठिन परिश्रमके साथ धर्मशास्त्रादि अध्ययन करना होता है। शास्त्र देखनेके सिवा वह शिष्य हर तरहकी शिल्प या चित्र-विद्या सीख सकता है। पाठ याद नहीं करनेसे वह बेंतकी मार खाता है। उस समय जो आचार्य गेत्सुलको बौद्धधर्मका गूढ़ रहस्य बता देते हैं, वे 'र्त्से वै लामा' नामसे इस बालक द्वारा चिरदिन पूजित होते हैं। इस समय अकसर उसकी परीक्षा की जाती है।

एक संघारामके अंदर प्रत्येक मठमें ही एक एक धर्माचार्य रहते हैं। वे श्रेष्ठ लामा कहलाते हैं। सूत्र, विनय और अभिधर्म नामक धर्मशास्त्रके किसी एक विषयमें पारदर्शी न हो सकनेसे कोई भी लामा पद नहीं पाता। लामाओंमेंसे जो जितना धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, वे उतने ही पूज्य समझे जाते हैं। इस कारण गेत्सुलगण भी अपने अपने उपाध्यायकी अध्यापनासे एक एक विषयमें पारदर्शी होते हैं। प्रतिदिन पढ़नेके समय घंटा बजता है। इसी घंटेको सुन वे पाठगृहमें जा कर पाठाभ्यास करते हैं और अपने आचार्यसे नया पाठ लेते हैं। इस प्रकार आवश्यकीय पाठ समाप्त होने पर उनका इम्तहान लिया जाता है। पहले एक वर्षके बाद और पीछे एक या दो वर्षके बाद इम्तहान होता है। दोनों परीक्षामें जब तक पास नहीं होते, तब तक उन्हें चाय बनानी और संघके बूढ़े यतिओंकी आज्ञा माननी पड़ती है।

परीक्षाके समय प्रत्येक संघारामके सर्वश्रेष्ठ आचार्य और यतिगण एक घरमें जमा होते हैं। वे सभी चुपचाप बैठते हैं तथा उनके बीच गेत्सुल खड़ा हो कर अपना पाठ सुनाता है। अगर पढ़ते समय वह कहीं भूल जाता है, तो एक दूसरा बालक समीपमें खड़ा हो कर बतला देता है। पहली परीक्षामें सभी पढ़नेकी पुस्तकें इस भांति सुनानेमें करीब तीन दिन लगते हैं और हर दिन वह बालक नौ दफे विश्राम करने पाता है। इस मौके पर वह पुनः आगेका किताब देख सकता है।

जो बालक इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकता, उसको बड़ी लाञ्छनाके साथ घरसे बाहर ला कर 'छओस थमसपा' उत्तम-मध्यम प्रहार किया जाता है। जो तीन वर्ष लगातार पास नहीं होता, वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। सिर्फ धनवान्‌का लड़का ही बहुत रुपये खर्च करने पर मठमें रह कर विद्याभ्यास कर सकता है। निर्धनका लड़का अगर वह फिर पढ़ना चाहे, तो वह साधुवेशी गृही हो कर दिन बिताता है, लेकिन उसे संघारामके किसी किसी मठकी दास्यवृत्ति करनी पड़ती है। अगर वह पीछे पारदर्शी हो, तो वह किसी गाँवके मठका लामाचार्य बना दिया जाता है। किन्तु उस समय वह लामाकी तरह प्रतिष्ठित होने पर भी उस पदका यथार्थ अधिकारी नहीं होता।

उपरोक्त परीक्षासे छात्रसंघका परस्पर विचार बड़ा ही अच्छा है। उससे छात्रको कैसी शिक्षा दी गई है, यह अच्छी तरह जाना जाता है। तिब्बतके सुप्रसिद्ध दे-पुङ्, तषिल्हुनपो, सेर और गाल्दन् संघाराममें समय समय पर ऐसी विचारसभा बुलाई जाती है। वहां करीब चारसे ले कर आठ हजार तक बौद्धयति इकट्ठे हैं। इसको तिब्बती भाषामें 'मूत्सान्-जिंदु' कहते हैं। इस सभामें यह भी विचार होता है, कि शिष्योंने धर्मशास्त्र और धर्मतत्त्वका सारमर्म समझा है वा नहीं। जहां यह सभा बैठती है वह स्थान शालपेड़की डाली और पत्थरसे घिरा रहता है। बौद्धयतिके अलावा और कोई भी उस सभामें प्रवेश नहीं कर सकता। उस सभाके बीच सबसे ऊंचे पत्थरके आसन पर स्वयवस्-मगोन्, उसके नीचे छोटे आसन पर मखान-पो और उससे नीचे गवैये बैठते हैं। उसके चारों ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान सात भागोंमें बंटा रहता है। प्रश्न करनेवाले हल्दी रंगका साफा बांध कर दर्शकमण्डलीके समक्ष हाथ जोड़ अपना प्रश्न उठाते हैं। एकत्रित छात्रमण्डलीमेंसे जो उस प्रश्नका उचित उत्तर दे सकता है, वही छात्र लामाके आदेशसे उच्चश्रेणीमें चढ़ता है।

वर्ष भरमें सिर्फ चार बार ग्रीष्म, शरत्, शीत और वसन्तकालमें यह बिचार-सभा बैठती है। इस प्रकार बारह वर्ष तक पढ़ कर सुपण्डित हो सकने पर बीससे चौबीस वर्षके बाद गेत्सुल अपने अध्यवसायके बल गेलोङ्-पद पाता है। गेत्सुल होनेके समय जिस प्रथाका अनुसरण कर उपाध्याय और श्रेष्ठ लामाका अभिमत

ग्रहण करना पड़ा था, इस समय भी उसे उसी प्रकार मठकी तालिकामें नाम लिखवा कर प्रकृत यति होना होता है। जो यति अपने अध्यवसायके बल पर खुलो विचारसभामें अथवा मठकी प्रधान परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही बौद्धधर्मतत्त्वकी श्रेष्ठ उपाधि पाते हैं। उपाधिपानेके बाद वे सब प्रकार आचार-मर्यादा पानेके अधिकारी होते हैं।

गे-षे तथा रव्-जम पा बौद्धधर्मकी श्रेष्ठ उपाधि है। गे लोङ् शिक्षा बलसे 'षे-षे' हो कर किसी एक वैज्ञानिक तत्त्वालोचनामें नियुक्त रह सकते हैं; लेकिन जब तक वे इस पद पर न चढ़ेंगे तब तक उन्हें धर्मशास्त्र हीकी आलोचना करनी होगी। गे षे उपाधि-प्राप्त बहुत से बौद्धयति तिब्बत, माङ्गोलिया-आमदो और चीन राज्यकी गवर्मेण्टकी देखरेखमें परिचालित संघारामके प्रधान लामा या स्थन्नस् मगोन पद पर अभिषिक्त हैं। जो मठके आचार्यका पद ग्रहण नहीं करते, वे मठमें रह कर तन्त्र शास्त्र पढ़ते हैं। पीछे तन्त्रशास्त्रकी वक्ष्यमाण परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर सर्वपूज्य गाःलदन् संघारामका 'ठृप' पद पाते हैं।

वर जम्-प परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रगण जनसाधारणके बीच हो गिने जाते हैं। वे खुली जगह सबोंको बौद्धधर्मका उपदेश दिया करते हैं। तिब्बतके बारह प्रसिद्ध संघारामोंको छोड़ अन्य किसी मठाध्यक्षको यह उपाधि देनेका अधिकार नहीं है। देवांशसम्भूत लामाओंके लिये निर्दिष्ट पद और कार्यावलीमें उनका अधिकार है। राजशक्तिधारी दलई-लामा ऐसे छात्रोंको 'छओजे' और 'पण्डित'की उपाधि देते हैं। इन दोनोंकी मध्यवर्ती उपाधिका नाम लो-न्स-व है। 'रव् जम् प' और 'छओजे' उपाधि करीब करीब समान है। ये तै-जा कह कर सम्मानित होते हैं। इसलिये देवांशसम्भूत लामाओंके नीचे यथाक्रमसे खान-पो, छओजे तथा रव-जम प पदाधिकारीगण मर्य्यादासम्पन्न हैं। छओजे और रव् जम्-प श्रेणीसे खान् पो चुना जाता है। किसी किसी मठमें खान् पोके सहकारी रूपमें छओजे नियुक्त देखे जाते हैं। छोटे छोटे मठमें प्रधान लामाका कार्य्य छओजे वा रव्-जम्-प-ओंके हाथ सौंपा हुआ है।

रमो-छे और मो-रु नामक मठमें भोजविद्या और भौतिकविद्या शिक्षाके लिये स्वतन्त्र शाला प्रतिष्ठित है। जो इस विद्यालयमें रह कर इस विज्ञानके गूढ़ रहस्यका मर्म जानते और परीक्षामें उतीर्ण होते हैं, वे ङग् रम्-प कहलाते हैं। वे आयुर्व्वेद, रसायन, भूततत्त्व आदिकी आलोचना करते हैं। शैवसम्प्रदायकी तरह वे वेशभूषा धारण करते हैं। सम्भवतः तान्त्रिक कापालिक-मत अनुसरण कर ही इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई होगी। इस श्रेणीके अज्ञ व्यक्ति 'ङग-प' या भविष्यद्वक्ता कहलाते हैं और झाड़ना फूकना और भूत उतारना या भगाना आदि कार्य्य दिखाते हैं।

मठकी शासनव्यवस्था।

बड़े बड़े संघाराममें हजारों बौद्धयति वास करते हैं। एक नियमका पालन न कर सकनेके कारण लामाओंने वहांकी कार्य्यावली निर्व्विरोध चलानेके लिये एक शासनतन्त्र बनाया है। यहां एक तरह राजतन्त्र ही विद्यमान देखा जाता है। इस पद्धतिका परिचालन करनेके लिये परिदर्शकरूपमें कुछ कर्मचारी नियुक्त हैं। वे वहांका हिसाब किताब करते और आवश्यकता पड़ने पर दुर्वृत्त छात्रसंघको भी अपराधके अनुसार दण्ड देते हैं।

कु-षो, टुङ-कु आदि उपाधिधारी देवानुगृहीत लामा लोग ही इन सब संघारामोंके एकमात्र कर्त्ता हैं। मङ्गोलीय बौद्ध-सम्प्रदायमें वे खुबिलियन नामसे परिचित हैं। किसी किसी संघाराममें खान-पो या उपाध्याय ही अध्यक्ष हैं। ये खान्-पो दलई लामाकी अनुमतिके अनुसार या प्रादेशिक लामा प्रधानोंके आदेशानुसार ही नियुक्त होते हैं। वे एकक्रमसे सिर्फ सात वर्ष तक एक मठका अध्यक्ष रह सकते हैं। उनके अधीन निम्नोक्त कर्मचारी मठकी सुश्रृङ्खला और सुशासनकी रक्षा करते हैं। वे सभी मठवासी यतिओंकी सलाहसे निर्वाचित होते तथा सभी निर्दिष्ट समय तक नियोजित पदकी मर्यादा रक्षा करनेको बाध्य हैं।

१ लोब-पोन् या अध्यापक—ये संघारामके धर्म और विद्या-शिक्षाके परिदर्शक हैं।

२ छग्-द्सो—कोषाध्यक्ष और खजांची।

३ ञेर-प या दिसय-ञेर—भाण्डारी।

४ गे-को तथा भाल नो—हाकिम और सेनाध्यक्ष। यह दो व्यक्ति होते हैं और पुलिस-कर्मचारीकी तरह इधर उधर पहरा देते तथा मठवासियोंके दोष गुणका विचार करते हैं। इनके सहकारी दो हग्-ञेर हैं।

५ उम्-द्ज़े—प्रधान गायक।

६ कु-ञेर—धर्मालयका परिचारक।

७ छ'ओव-द्रे न्—जल देनेवाला।

८ ज-म—चाय बनानेवाला। इसके अलावा प्रत्येक मठमें ही सम्पादक और परिदर्शक, पाचक, पुररक्षी, अतिथि-सत्कारक, हिसाब-रक्षक, कर-संग्राहक, चिकित्सक, चित्रकर, वाणिक् यति, भूतके ओझा और माङ्गल्य-दण्डवाही आदि नियुक्त हैं।

संघारामोंकी कार्यावली नियमपूर्वक परिचालित करनेके लिये अलग अलग विभाग निर्दिष्ट हैं। दे-पुङ्ग संघाराममें ७७०० यति वास करते है। वे द्लो-न्ग साल-ग्लिङ्-स्गो-मङ्, वदे-यङस् और स ङ्गस् प नामक चार विश्वविद्यालयके अधीन हैं। प्रत्येक विद्यालय एक उपाध्याय द्वारा परिचालित होता है। यतिगण प्रादेशिक और जातीय विभागानुसार विभिन्न मठमें स्थान पाते हैं। उस विभिन्न श्रेणीके मध्य करनेका स्थान खमृन्-त्सन् (Provincial messing club) तथा विद्यालय ग्रव-त्सन् (College) कहलाता है। प्रथमोक्त स्थानमें यतिगण आहार, शयन और अध्ययन करते तथा शेषोक्त टोलमें जा कर वे अपने अपने गुरुके पास अपना पाठ सुनाते हैं। इस संघारामके सबसे बड़े बरामदे (ठ् सोग्स्-छेन-लह-खङ्)में जनसाधारणको आनेका अधिकार है।

सेर-संघाराममें ५५०० यति रहते हैं। उनमेंसे बयेरा, सङ्गस्-प स्मद्-प विद्यालयके प्रत्येकके अधीन एक *शाखासमिति* है। गाल्दन संघाराममें ३३०० बौद्धयति वास करते हैं। बेङ् त्से और यर-त्से नामक दो शाखा विद्यालय इसके अन्तर्गत हैं। तिषिलहूनपोके प्रसिद्ध संघाराममें तीन 'त त्सङ्' या विद्यालय हैं। उनके अधीन प्रायः ४० खमत्सन् या शिष्यावास देखे जाते हैं।

बंगालके प्रसिद्ध परिव्राजक श्रीयुक्त राय शरत्चन्द्र दास बहादुरने सुप्रसिद्ध तषिलहूनपो संघाराममें परिभ्रमण कर उसका ठीक ठीक विवरण संग्रह किया था। उनके सम्पादित Jour. Bud. Text, Socy. India iv, p. 14 (1893) तथा Journey to Lhasa and Central Tibet नामक ग्रन्थमें विशदरूपसे यह विवरण लिखा है। शेषोक्त ग्रन्थके ७६ पन्नेमें लिखा है,—तु-लम प्रदेशवासी तषिलहूनपोके एक देवकृपालब्ध नवीन लामाने १८८१ ई०की १५वीं दिसम्बरको उपवास और त्योहारका दिन समझ कर *बौद्धयतिओंके तु-लम्त्सन्* पदलाभका इरादा किया। अतः उन्होंने कुन खेव लिङ्से पञ्चेनको निमन्त्रण करने भेजा। उन्होंने उक्त सङ्घाराम-के मध्यस्थ ३८०० यतिओंको एक एक रुपया करके, श्रेष्ठ लामाको उपहार और प्रणामी तथा लामा-विद्यालय-में (College of Incarnate Lamas) बहुत धन दिया था। पञ्चेनके पधारने पर सभी बाजे गाजेके साथ उन्हें सम्मानपूर्वक मठके प्रधान प्रकोष्ठमें ले गये थे। वे इस उपासनागृह (त्सो खङ्)में आ कर वेदीके ऊपर बैठे और तब उत्सव क्रियाकाण्ड शुरू हुआ। १० बजे रातमें उसका शेष हुआ। पीछे भोज्यद्रव्य, माल्य और अपरापर द्रव्य ले कर यतिगण अपने अपने मठवास लौट आये। इस यज्ञके बाद उक्त नवीन लामा तुषिलहूनपो संघाराम-में शिक्षानवीशरूपमें रह कर पाठाभ्यास करने लगे। पीछे उन्होंने परीक्षा दे कर लामा पद पाया और इस देशमें तषिलामा नामसे प्रसिद्ध हुए। ये बौद्धतीर्थ देखनेके लिये भारतवर्षमें आये थे।

उपरोक्त संघारामके छात्रावासमें दो लामा रहते हैं। उनमेंसे ज्येष्ठ लामा ही छात्रावाससंलग्न मठके परिदर्शक और मन्दिरके पूजक तथा छात्रमण्डलीके उपदेष्टा हैं। कनिष्ठ लामा केवल भाण्डारकी देखरेखमें रहते हैं। यदि उनके अधीनस्थ मठका कोई छात्र असदाचरण करता है, तो वह दण्डका भागी होता है। हरसाल इन दो कर्मचारीको बदली होती है। इन सब कर्मचारियोंकी नियुक्तिके समय स्वतन्त्र प्रक्रियाका अनुष्ठान होते देखा जाता है।

प्रति दिन सवेरे अथवा चार बजे एक बालक मंदिर-की चोटी पर चढ़ कर छहोरुखङ् गाता है। यह गान

सुनते ही छात्रमण्डली जाग उठती तथा अपने अपने घरके और छात्रोंको घंटा बजा कर उठाती है। तब वे सब मुंह और हाथ पैर धो कर कपड़ा बदल लेते हैं। पीछे शिरको ज्ला-गमसे ढक कर तथा हल्दी रंगकी टोपी पहन कर एक कटोरा और मैदेकी थैली हाथमें लेते और भंडारी मैदा लाने जाते हैं। उसके बाद वे मन्दिरके प्राङ्गणमें प्रणाम कर मठका प्रदक्षिण करते तथा कोई कोई मञ्जुश्री-मन्दिरमें जा कर ओम ह्-प त्च मढ़ि मन्त्र पाठ किया करते हैं।

एक बजे मिग्-र्त्से-म लामा छिग्-र्त्सेम स्तोत्र उच्च स्वरसे गाते हैं। उस समय छात्रगण उसी दरवाजे पर आ कर शिरमें पीला साफा बांध कर एक स्वरमें वही स्तोत्र पढ़ते हैं। कुछ देर बाद हविल आ कर द्वार खोल देता और वे सबके सब मन्दिरमें घुसते हैं। भीतर जा कर सब अपने योग्य स्थान पर बैठते और सिकी टोपी खोल नीचे रख देते हैं। उस समय अपनी थैली और कटोरा ठेहुनेके नीचे छिपाये रखते हैं। पीछे प्रधान गायकके देवपदाश्रयभीत गाने पर जब कनिष्ठ मठपरि-दर्शक पीला साफा शिरमें लपेट कर लोहेके हथौड़ेसे खंभेमें चोट देता, तब सब छात्र जलखईघर जा कर चाय पीते हैं और फिर वापस आ कर अपने अपने आसन पर बैठ जाते हैं। इस जलखईघरकी स्वतन्त्र व्यवस्था है। जिस नियमसे लड़के चाय पीते हैं वह विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर लिखा नहीं गया। चाय बांटनेके लिये पांच नौकर नियुक्त हैं। मठके यति दिनमें तीन दफे चाय पीते हैं। चंदेमें अधिकांश चाय हा वसूल होती है। कोई कोई धनी, प्रादेशिक शासन-कर्त्ता और चीनके सम्राट् त्योहार आदिमें लामाओंको चाय पिलाते हैं। लामामठकी जिस हंडीमें चायका जल गरम होता है, उसमें करीब दो सौ मन जल अंटता है।

मठकी प्रचलित प्रथाका उलंघन करने, किसी प्रकार-का असौजन्य या असद्व्यवहार दिखलाने अथवा ब्रह्मचर्य भंग करनेसे प्रातिमोक्षविधिके अनुसार उसका विचार होता और सजा दी जाती है। सामान्य अपराध होने पर तिरस्कार या लाञ्छना द्वारा छुटकारा पाता है। यदि कोई एक ही अपराध वारंवार करता है, तो वह अपराध गुरुतर समझा जाता है और अपराधी उसीके अनुसार सजा पाता है। यदि कोई छात्र शराब पीता या चोरी करता है, तो उसके शिक्षक और छात्रावासके परिदर्शक विचारसभासे निन्दक समझे जाते हैं। पीछे दो मनुष्य इस छात्रके पैरमें डोरी बांध कर मन्दिरके बाहर लाते और उसे बेंत मारते हैं। कड़ी मार देनेके बाद वह मठसे बाहर कर दिया जाता है। जो अपनी इच्छासे ब्रह्मचर्य भंग कर मठ छोड़ देता है, वह जंगली कहलाता है।

मठके बाहर भी लामाओंका प्रभाव फैला हुआ है। यदि कोई किसीके ऊपर जुल्म करता है, तो ह्रे-हो-सङ्ग या ललाटमें काली रेखा लगानेवाले गेकोर लामागण मठके बाहर आ कर उस जुल्मीका दमन कर सकते हैं। ये गेकोर लामागण मठाध्यक्ष अपर दो प्रतियोगियोंकी सहायतासे लामा या ब्रह्मचर्याश्रमका नियम पालन करते हैं। ये लामा प्राचीन बौद्धसंन्यासियोंकी तरह सुख-स्पृहावर्जित नहीं हैं। संन्यासीके समान वे अर्थलालसा और भोजनलिप्सात्याग नहीं कर सकते। गे-लुग्-प आदि तिब्बतीय प्रधान संघारामके अधीन बहुत-सी भू-सम्पत्ति है। उसकी आयसे उनका खर्चा चलता है। इसके अलावा धान कटनेके समय सैकड़ों लामा मठसे निकल कर धान, चाय, नेनू, नमक, मांस आदि मांगते फिरते हैं। जो मिलता है वह मठके भंडारमें जमा रहता है। कोई कोई लामा पुतली बना कर या मूर्त्ति काट कर, छाप मार कर, कोष्ठी बना कर, चिकित्सा कर और झाड़ फूक कर नाना उपायसे अर्थ संचय कर मठका खर्चा चलाते हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते, वे मठमें रह कर दूसरा दूसरा काम करते हैं। कोई कोई वाणिज्य करके संघारामका गौरव बढ़ाते हैं। ये सब धर्माचार्य्य सूद लेनेसे जरा भी बाज नहीं आते। सचमुच वे सुव्यवसायी और देशके महाजन गिने जाते हैं।

भारतीय बौद्धोंका वेशभूषा भारतीय ऋतुओंके अनु-सार बना था। जब बौद्धधर्म तिब्बत आदि तुषारमय देशोंमें फैल रहा था, उसी समयसे वेशभूषाका परिवर्त्तन हो गया है। तिब्बतीय लामा या बौद्धयति भयानक

शीत और मच्छड़से बचनेके लिये जूता, मोजा और पहननेका कपड़ा आदि शीतप्रधान देशका उपयोगी करके बनाते हैं। प्राचीन बौद्धोंका चीरवास और वर्त्तमान लामाओंकी जपमाला, शिरस्त्रान, कमरबंद, छोटा कुरता, चोगा, इजार, पायजामा तथा जूता आदिका मिलान करनेसे मालूम होता है, कि वर्त्तमान युगमें बौद्धधर्ममें कैसा विप्लव उपस्थित हुआ है।

तिब्बतीय लामागण शिरमें जो साफा बांधते हैं, वह ठीक भारतीयके समान है, थोड़ा चीन और मङ्गोलीयासे मिलता है। तिब्बतीय लामाओंका विश्वास है, कि लामाधर्मके प्रतिष्ठाता बौद्धभिक्षु पद्मसम्भव है तथा उनके सहयोगी शान्तरक्षित ईस्वी सन् ८वीं सदीमें भारतसे जो पगड़ी पहन कर तिब्बत आये थे, उसीकी तरह वर्त्तमान टोपी बनती है। पञ्चे नुउवे दमन लाल पगड़ी बांध शान्तरक्षित तिब्बतमें आये थे। गे लुग्-प-को छोड़ तिब्बतमें सभी जगह ऐसी पगड़ीका प्रचार था। वह साफा या पगड़ी भारतके शीतप्रधान देशोंमें व्यवहृत रूईकी कनझप्पा टोपी-सी है। त्सोङ-खापा उसी लाल टोपीके बदले पीली पगड़ी प्रचार कर गये हैं। वही गे-लुग्-प सम्प्रदायका पहनावा है।

मठविहारिणी बौद्धभिखारिन पशमीने कपड़े या लोमसे बने हुए एक प्रकारके शिरस्त्राणका व्यवहार करती हैं। सम्प्रदायके भेदसे वह शिरस्त्राण लाल या काला होता है। सिकिम, भूटान और हिमालय प्रान्तके अनेक देशोंमें जहां वृष्टि नहीं होती, वहांके अधिवासी बौद्धलामागण गरमीके दिनोंमें खड़की टोपी पहनते हैं। कोई भी पहलेकी टोपी नहीं पहनता। चीनवासीकी तरह वे टोपी खोल कर आगन्तुकको प्रणाम करते हैं। यही कारण है, कि देवमन्दिरमें घुसते समय कोई भी शिर पर टोपी नहीं रखते, सिर्फ कई धर्मकार्यमें टोपी पहननेकी विधि है।

उनके शरीरके कपड़े भी दो रंगके होते हैं। गे लुग्-प सम्प्रदायके आचार्यगण केसरसे रंगा हुआ कपड़ा पहनते हैं। जब कोई गे लुग्-प आचार्यको उपढौकन देने आवे, तो उसी तरहका कपड़ा पहन सकता है। उसको छोड़ वह यदि कोई ऐसा वस्त्र पहन कर आता है, तो वह दण्डका भागी होता है। प्राचीन बौद्धोंकी संघाटी, अन्तर्वासक और उत्तरासंघाटीके साथ तिब्बतीय लामाओंका शान, नम् जार और बूल्गोम् नामक शरीर परका वस्त्र मिलता जुलता है। इसके अलावा शाक्त और वैष्णवोंकी भांति वे माला जपते हैं। इस मालामें १०८ दाने रहते हैं और उसके दोनों छोरके सूतेमें दश दश करके 'साक्षी' रखते हैं। १०८ बार माला जपनेके बाद एक एक साक्षी ले कर वे मन्त्रसंख्या निश्चय करते हैं। इस हिसाबसे दोनों ओर १०×१० साक्षीमें उनकी १०८०० जपसंख्या होती है। ये दाने भी भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। सर्वप्रधान तषिलामाके पास मुक्ता, चुन्नी, पन्ना, नीला, प्रवाल, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थरमें बनी माला देखी जाती है। पतद्भिन्न सम्प्रदायभेदसे और देवाराधनाविशेषसे मालाके दाने अलग अलग होते हैं। गे लुग-प सम्प्रदायमें हल्दी रंगके काष्ठकी माला, तम-दिन् पूजामें लालचन्दनकी लकड़ीकी तथा छ-रशी उपासनामें सफेद शंखकी, तान्त्रिक उपदेवताओंकी पूजामें रुद्राक्ष (Elaeocarpus Janitus), सांपकी हड्डी, अवलोकितकी पूजामें स्फटिककी, पद्मसम्भव और ताम्दिनकी पूजामें प्रवाल तथा वज्रभैरवकी उपासनामें नरमुण्डमाला व्यवहृत होती है।

लामा जब माला जप नहीं सकते, तब वे गले या दाहिने हाथमें बांध रखते हैं। माला जपनेके समय प्रत्येक दाना पकड़नेके पहले वे ओम् प्रणव उच्चारण करते हैं। पीछे दाना पकड़ कर मन ही मन पाठ किया करते हैं। भिन्न भिन्न देवताका जपमन्त्र भिन्न भिन्न है। ये सब लामा अकसर और भी कई एक द्रव्योंका व्यवहार किया करते हैं। उनमेंसे भजनचक्र, वज्रदण्ड, घंटा, करोटीनिर्मित ढक्का या ढाक, खञ्जनी, कवच, पोथी और अलंकार प्रधान है। तषिल् हुन्पोके प्रधान लामा कभी कभी जवाहिरातका बना कंठहार पहनते हैं। किसी किसीको भिक्षापात्र और संन्यासदण्ड है।

तिब्बतवासी लामाधर्मके लिये प्राण-विसर्जन करने पर भी कर्मकाण्डमें उनकी बड़ी आसक्ति देखी जाती है। मठवासी व्रत, ग्राम्य पुरोहित, गुहावासी तपःपरायण लामा भिक्षु अथवा कृषिवाणिज्यादि कर्ममें लिप्त लामा-

गण पृथक् पृथक् कार्यों में व्यापृत रह कर जीवनयात्रा निर्वाह कर रहे हैं। इस विभिन्न श्रेणीके लामाओंकी नित्यकर्मपद्धति भी स्वतन्त्र है।

लासानगरीके पोतल पर्वतस्थ श्रेष्ठ लामा-संघाराममें बौद्धयति जिस प्रथाका अवलम्बन कर दैनिक कार्य करते हैं, वही नीचे संक्षिप्तरूपसे लिखी जाती है,—

रात्रिकालमें जब नींद टूटती है, उसी समय यति शय्यात्याग करते हैं। पीछे बिछावन परसे उठ कर परिच्छद पहन कर संयत हृदयसे गृहमध्यस्थ वेदीके समक्ष तीन बार देवोद्देशसे प्रणाम करते हैं। तदनन्तर जीवनयात्रा-निर्वाहके उपायकी प्रार्थना कर बुद्ध और बोधिसत्त्वोंके उद्देश्यसे स्तव तथा एकत्र हो कर कई मंत्र पाठ करें। स्तव और मन्त्र पढ़नेके बाद "ओं खेचरगणय ह्रीं ह्रीं स्वाहा" यह मन्त्र तीन बार पढ़ कर यतिगण अपने अपने पैरोंको थूकें। उनका विश्वास है, कि दिनमें घूमनेसे जो सब जीव कुचला जाता है, वह इसी मन्त्रके बलसे अमरावतीके इन्द्रपुरमें देवरूपमें जन्म लेता है।

इन सब देवाराधनाके बाद यदि रात्रि अधिक रह जाय, तो वे पुनः शय्या पर जा सकते हैं; किन्तु यदि दो या चार दण्ड बाकी रहे, तो उन्हें और नहीं सोना चाहिये। थोड़े समयके लिये 'स्मोन् लम्' भजनगीति या मन्त्र पाठ कर रात्रि यापन करें तथा घंटाध्वनिसे जब सब कोई उठें, तो वे भी शय्या त्याग कर शङ्खध्वनि और शिङ्गाध्वनि तक अपना वेशभूषा पहनें। शिङ्गा ध्वनि होते ही सभी अपने अपने मठको छोड़ कर 'दों चूछल' नामक प्रस्तरमण्डपमें उपासनाके लिये जुटें। प्रस्तर आसन पर खड़े हो कर वे "ओम् अर्घं चार्घं विमलसे। उत्सुष्म महाक्रोध हुं फट्" मन्त्र पाठ कर मनका पाप और कलुष आदिकी चिन्ता करें। उससे उनका चित्तपातक दूर हो जाता है। तदनन्तर सुग्-पा नामक सज्जी मिट्टी या साबुनसे अपना हाथ पैर धो डालें। हाथ पैर धोते समय वे विशेष विशेष मन्त्र पढ़ते हैं। मुख आदि धोनेके बाद शौच हो कर वे हाथमें माला ले कर जप करते करते तारादेवी और मञ्जुश्रीके उद्देश्यसे मन्त्र पाठ करते हैं। समय बचने पर कोई कोई अपनी अपनी कुलाधिष्ठात्री देवीकी स्तुति भी किया करते हैं।

यह सब कार्य करनेमें करीब १५ मिनट लगता है। उसके बाद दूसरी बार शंखध्वनि होनेसे गे-लोङ यति गण मन्दिरके दरवाजेके सामने तथा गेत्सुल लोग मन्दिरके सामनेवाले आँगनमें खड़े हो कर देवताको प्रणाम करते हैं। पीछे मन्दिरका दरवाजा खुलने पर एक एक करके सभी मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। इस समय हाथमें दण्ड ले कर गेको दरवाजे पर खड़े रहते हैं। जब सब कोई अपनी अपनी चटाई पर मर्यादाके अनुसार बैठ जाते, तब तीसरी बार शंखध्वनि होती है। उस समय सभी एक स्वरमें कुछ निर्दिष्ट मन्त्र पाठ करते हैं। पीछे चाय पीते हैं। चाय पीनेके पहले अध्यक्ष लामा सर्वोके स्तुतिवाक्य उच्चारण करने पर अपना अपना प्याला बाहर कर देते हैं। मठका शिक्षानवीश या कोई भृत्य उसमें चाय डाल देता है। पीनेके पहले यतिगण अंगुलीसे दो बूंद जमीन पर गिरा कर बुद्ध, अपरापर देवता और पितरोंको दे कर पीछे आप पीते हैं। मिठाई और मांस खानेके समय भी इसी प्रकारकी व्यवस्था है।

जनसाधारण कौतूहल दूर करनेके लिये नीचे केवल मन्त्रोंका भावार्थ दिया गया।

'खाने पीने चाटने चूसने योग्य चष्य पेयादि स्वादिष्ट भोज्यद्रव्य हम ध्यानी बुद्ध और स्वर्गके बोधिसत्वोंको भेंट देते हैं। वे इस खाद्य पर कृपा करें। ओम् अः हूं।" तदनन्तर यथाक्रमसे "ओम् गुरु वज्र नैविद्य अः हूं। ओम् सर्व बुद्ध बोधिसत्त्व वज्रनैविद्य अः हूं। ओम् देव डाकिनि श्रीधर्मपाल सपरिवार वज्रनैविद्यः अः हूं।" भूतेश्वरके उद्देश्यसे—"ओम् अग्रपिण्ड असिभ्यः स्वाहा। ओम् हारिते महा वज्रयक्षिणि हर हर सर्वपापविमोक्षि स्वाहा" इत्यादि। जीवमांस होनेसे जीवहिंसा और उसका मांस खानेसे जो पाप होता है उसका क्षय करनेके लिये तथा पशुकी स्वर्गकामनाके लिये "ओम् अविर खेचर हूं" मन्त्र पाठ किया जाता है। तदनन्तर मठभाण्डारके खाद्यद्रव्य देनेवालेकी मंगलकामनाके लिये यह मंत्र पढ़ा जाता है—"नमो! समन्तप्रभराजाय तथागताय अब्दुते सम्यक्बुद्धाय नमो मञ्जुश्रिये। कुमारभूताय बोधिसत्वाय महासत्वाय! तद्यथा! ओम् रत्नमे निरभसे जये जये लब्धे महामतरक्षिणस्मै प्रतिशोषाय

स्वाहा"। इसके बाद वे और भी कितनी स्तुति किया करते हैं। ये धर्म, निर्वाण, चिन्तामणि, कल्पतरु, मङ्गल और प्रवृत्ति निवृत्तिकी प्रार्थनामात्र है।

चाय पीनेके बाद धर्मानुवेदकोंकी अर्चना, स्थविरोंकी पूजा, मण्डलार्पण, भैरव तथा तारा, देम-छोग् और सङ्दु आदि कुलदेवताओंकी पूजा यथाक्रमसे अनुष्ठित होती है इन सब पूजाओंके करनेमें अधिक समय लगता है इसलिये बीच बीचमें चाय पीनेकी भी विधि है। कुलदेवताकी पूजा करनेके समय मध्य मध्यमें मृत व्यक्तिकी प्रेतात्मा तथा पीड़ित व्यक्तिकी रोगमुक्तिके लिये मङ्गलकामना की जाती है। पीड़ितकी रोगमुक्ति-कामनाका नाम "कु रिक्" पूजा है। अनन्तर अवशिष्ट कुलदेवोंकी पूजा समाप्त कर वे चाय पीते हैं। उसके बाद शेव-राव् सञ्चिङ-पो गान कर सभा भंग करते और एक एक करके मन्दिरसे बाहर हो कर अपने अपने घर चले जाते हैं। प्रधान लामा सबके पीछे बाहर होते हैं।

घर आ कर वे अपना अपना अभीष्ट मन्त्र जप और कुलदेवताकी पूजा करते हैं। उसके बाद उक्त देवोंको भोग चढ़ाते हैं। पूजाके समय "अजनचक्र" घुमा कर सभी समय ठीक कर लेते हैं। इस समय अगर सूर्यदेव आकाशचक्रमें दिखाई दें; तो सभी अपने अपने कमरेसे बाहर हो कर दोनों हाथ उठा कर "ओम् मरीचीनां स्वाहा" मन्त्र पढ़ कर स्तुति करते हैं। तदनन्तर सवेरे करीब नौ बजे जब सूर्यकी किरण कड़ी और शीतल वायु गरम हो जाती है, तो फिर एक बार शङ्खध्वनि होती है। तब मठवासी सभी संन्यासी मलत्यागार्थ निर्दिष्ट स्थान जाते तथा शौच-कर्मादि कर वापस आते हैं। दूसरी शङ्खध्वनि होने पर सभी पढ़नेवाले आँगनमें जमा होते हैं। इस समय अगर पानी पड़ता रहे, तो सभी एक बरामदे पर आ कर पढ़ते हैं। पन्द्रह मिनटके बाद फिर तीसरी शङ्खध्वनि होती है। उस समय सभी वहांसे मन्दिरमें जा कर पुनः उपासनामें लग जाते हैं। दोपहरके बाद पुनः शङ्खनाद होनेसे वे उसी तरह पहले प्राङ्गणमें और पीछे मन्दिरमें इकट्ठे हो कर उपासना किया करते हैं। इसके बीच वे तीन बार चाय पीने पाते हैं।

सभी अपने अपने कमरेमें आ कर जूता उतार अभीष्ट देवताकी पूजा कर भोग लगाते हैं। उसके बाद मठका भृत्य उन्हें खानेकी चीज दे जाता है। अपने अपने भोजनसे थोड़ा निकाल कर वे पितरों तथा हारिती और अपने पुत्रोंको दे कर पीछे आप खाते हैं। तब यति लोग कुछ समयके लिये अपने अपने कर्ममें व्यस्त रहते हैं। ३ बजेके बाद वे चौथी बार मन्दिरमें इकट्ठे होते हैं। इस समय भी पहलेकी भांति तीन दफे शङ्खध्वनि होती है। इस दफे देवताओंको भोग चढ़ानेके समय तीन बार चाय पी कर घर लौट आते हैं। शिक्षानवीश और 'पार-पा' यतिगण इस समय घर आ कर पाठाभ्यास करते हैं। ७ बजे पांचवीं बार सम्मिलन होता है। इस समय तीन बार शङ्खनादके बाद सभी पूजादि समाप्त कर तीन बार चाय पीते और तब घर लौटते हैं। रातमें दूसरी बार घंटा बजने पर शिक्षानवीश और दीक्षित यति सम्प्रदाय अपने अपने अध्यापकको अपना पाठ सुनाते और पीछे पाठ लेते हैं। तीसरी बार घण्टा बजने पर सभी सोने जाते हैं।

जिङ्-मा सम्प्रदायके सभी मठोंमें प्रायः ऐसी ही प्रथा चलती है। पृथक्तामें उस उस साम्प्रदायिक मठमें सभी समय शङ्खध्वनि नहीं होती। ८ बजे शङ्खघण्टा बजने पर सब कोई मन्दिरमें इकट्ठे हो कर पूजादि किया करते हैं तथा वहां बैठ कर चाय और मूढ़ी खाते हैं। सवेरे १० बजे चीनदेशीय दुन्दुभि बजाई जाती है। इस समय सभी सङ्घारामके बड़े बरामदेमें इकट्ठे हो कर भोजन करते हैं। बिना भोग लगाये कोई भी नहीं खाता। सन्ध्या समय भी वे शङ्खध्वनि सुन कर इकट्ठे होते और चाय पीते हैं। तदनन्तर चीनी ढाक बजने पर सभी चङ्ग मद्य पीते हैं। इस समय महाकालकी पूजा तथा उसके बाद साधारणकी मंगलकामनाके लिये देवपूजा होती है। सन्ध्या समय १०८ दीप जला कर वे स्कङ्-पाग् पूजा करते हैं। गुरु पद्मसम्भवकी पूजा ही जिङ्-मा साम्प्रदायिक मठकी प्रधान है। यहांके यति दिनमें नौ बार चाय पीते और भोजन करते हैं। सन्ध्या समय एकत्र होनेके बाद यतिगण फिर एक बार एकत्र होते हैं। रातमें एकत्र हो कर वे अन्न और मांस खाते हैं।

गांवके पुरोहित सम्पूर्णरूपसे लामाके महामठका अनुकरण करते हैं। लेकिन पूजा और कर्मकाण्डमें बहुत पृथकता देखी जाती है। रातमें नींद टूटने पर भजन-कालमें बहुतेरे हठयोगका अभ्यास करते हैं। जिनकी नींद रातमें नहीं टूटती, वे प्रातःकाल मुख आदि धोनेके बाद उपरोक्त रूपसे आचारानुष्ठान करते हैं। तदनन्तर देवार्च्चना, प्रेतार्च्चना और भोग दे कर वे चाय सूढो खाते हैं। २ बजे सभी पेट भर खाते हैं। ६ बजे शाम-को वे पुनः कुलदेवता आदिकी पूजा और स्तवादि पाठ करते हैं। रातने ६-१० बजे वे शयन किया करते हैं।

तपःपरायण लामा योगी ऐसे क्रियाकाण्डका अनुष्ठान नहीं करते। वे पर्वतगुहामें रह कर निरन्तर ईश्वर-चिन्तामें निमग्न रहते तथा प्रकृत संन्यासीके पालनीय आचार-अनुष्ठानको करते हैं। यह योगाभ्यास तीन मास तीन दिन ले कर करना होता है। इस समय 'मूलयोग सङ्गोन गो'की चार शाखा हो वे लक्षवाका जप करते और आश्रममें सिक्षामंत्र पढ़नेके समय लक्षमाके देवोद्देशसे नत होते हैं। वे वज्रयान-मतावलम्बी तथा संन्यासीके हठयोगसाधनकारी हैं। ये सिद्धि पानेकी आशासे यह कार्यानुष्ठान किया करते हैं।

पश्चिम भोटराज्यवासी अधिकांश लामा ही वाणिज्य और शिल्प ले कर व्यस्त हैं। वे खेती कर और धान आदि बेच कर जो लाभ उठाते हैं, उसीसे मठका खर्च चलता है। बहुतोंने मठके लामाओंके पहननेके लिये दर्जी, चमार और तसवीर खींचनेका काम उठा लिया है। कोई गांव गांवमें भिक्षा मांग कर मठका भंडार भरते हैं।

लामा लोग खास कर चावल, दूध, मक्खन, दाल, चाय और मांस खाते हैं। वे बकरा, भेड़ा और गौका मांस सेवनीय तथा मछली और मुरगेका मांस निषिद्ध मानते हैं। गे-लोङ मांस कदापि नहीं खाते। वे सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्यावलम्बन करते हैं। तषिलुहुन् पोके प्रधान लामा मांस खाते हैं। प्रसिद्ध लासा-मठके लामागण साधु प्रकृतिके होते हैं। वे शराब नहीं पीते। अन्यान्य जगहोंके लामा चङ्ग मद्य पीते। लासा-मठके लामा लोग भूत आदिकी तृप्तिके लिये मद्य उत्सर्ग करते हैं।

लामा-धर्मकी उत्पत्ति।

कब और कैसे भोटराज्यमें बौद्धधर्मकी प्रतिष्ठाके साथ साथ तंत्रमतप्रसूत इस लामाधर्मकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रतिपत्ति फैली थी, इसका विशेष विवरण संग्रह करनेका कोई उपाय नहीं है। ७वीं सदीमें यहां सचमुच बौद्धधर्मका बीज उगने पर भी तिब्बत जनपद-वासी मात्र ही वर्व्वरताके घोर अन्धकारसे आच्छन्न था। भोटराज स्रोङ्-त्स्यान् गम्पो (६३६-४१ ई०)-ने अपने बाहुबलसे चीन-राज्यकी पश्चिमी सीमा तक जय कर एक विस्तृत राज्य जीता था। थङ्गवंशीय चीन-सम्राट् थैत्सुङ्ग अपनी कन्या वेन्छेङ्गके साथ उसका विवाह कर मित्रतापाशमें आवद्ध हुए थे। चीन-इतिहास-में भोटराज स्रोङ् त्सान् ग्रम्पो छित्सुङ्ग पुङ्सान् नामसे प्रसिद्ध हैं। ६४१ ई०में यह घटना घटी। इसके दो वर्ष बाद उन्होंने नेपाल-राज अंशुवर्माकी कन्या भ्रूकुटीदेवीसे शादी कर ली। दोनों राजकन्याका बौद्धधर्ममें अटल विश्वास था। इसलिये पत्नियोंके अनुरोधसे राजा भी बौद्धधर्ममें आसक्त हो गये। किसी किसी ग्रन्थकारका कहना है, कि उन्होंने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर पीछे बौद्धराज-कन्यासे ब्याह किया था। वे अपनी दो महिषी-की प्रार्थनासे तथा तिब्बत राज्यमें बौद्धधर्म फैलानेकी इच्छासे बौद्धधर्मग्रन्थका संग्रह करनेमें कृत-संकल्प हुए थे। उन्हींके उद्योगसे भोटराज्यमें बौद्धधर्माचार्य लानेकी व्यवस्था हुई थी। भारत, नेपाल और चीन राज्यके नाना स्थानोंमें भोट-राजदूत जा कर ग्रन्थादि संग्रह करते थे।

उनके आदेशसे जो दूत भारत आये थे उनका नाम था थोन मि-सम्भोट। यह ६३२ ई०में भारत आये और ६५० ई०में भोटराज्य लौट गये। उन्होंने भारतमें रह कर ब्राह्मण-लिपिदत्त तथा पण्डित देववित् सिंह (सिंहघोष)-से बौद्धधर्मशास्त्र पढ़ा था। स्वदेश जाते समय वे सैकड़ों बौद्धग्रन्थ साथ ले गये थे। वे उत्तर-भारतीय कुटिल वर्णमाला-मिश्रित जिस अक्षरमें पुस्तक लिख ले गये थे उसी अक्षरमें तिब्बतीय भाषामें उन्होंने व्याकरण लिख कर प्रचार किया। सिर्फ तिब्बतीय वर्णमालाका स्वर-सामञ्जस्यके लिये उन्होंने उसी अक्षरमालामें कुछ चिह्नों-

का आविष्कार किया था। यही पीछे तिब्बतीय वर्ण-माला कहलाई।

थोन्मिने बौद्धधर्मग्रन्थके अनुवादमें सारा जीवन बिताया सही, पर वे यथार्थ धर्मप्रचारक या बौद्धयति न हो सके; किन्तु राजा स्रोङ्-त्सन गम्पो बौद्धधर्मके प्रतिष्ठाता कह कर बोधिसत्त्व अवलोकितके अवतार माने जाते थे। उनकी पत्नी चीनराजदुहिता वेनछेङ्ग अवलोकितकी पत्नी तारादेवीके नामसे श्वेताङ्गिनी तारा तथा नेपालराजकन्या भ्रूकुटी तारादेवी कह कर पूजिता हुईं। भ्रूकुटी ताराका वर्ण नीला और मूर्त्ति बड़ी ही डरावनी थी। वह रात दिन अपने पति वेनछेङ्गके साथ कलह किया करती थीं इसलिये इसकी उग्रमूर्त्ति कल्पित हुई है।

सम्भवतः ६५० ई०में राजा स्रोङ्-त्सन् गम्पोके परलोक सिधारने पर उनके पौत्र मङ्गस्रोङ मङ्ग्-त्सनने राजाके बौद्धधर्मयाजक मखरेके प्रतिनिधित्वमें राज्य किया। उसके बादसे तिब्बतमें कुसंस्काराच्छन्न भूतो-पासक षामान धर्मका प्रभाव फैला। प्रायः एक सौ वर्ष बाद उक्त वंशमें राजा थि स्रोङ्-देवत्सानके राजत्वकाल-में पुनः बौद्धधर्मकी प्रधानता हुई। चीनसम्राट् त्छङ्ग-त्सोङ्गकी पालित कन्या छिन्-छेङ्गके गर्भसे इस राज कुमारका जन्म हुआ। बौद्धधर्ममें माताकी आसक्ति रहनेके कारण पुत्र भी बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ। उन्होंने कुलपुरोहित भारतीय बौद्धयति शान्तरक्षितके परामर्शसे भारतवर्षसे गुरु पद्मसम्भवको लानेके लिये दूत भेजा। पद्मसम्भव उस समय विहारके नालन्दामठमें तान्त्रिक योगाचार्य शाखामें बड़े प्रतिष्ठित हो उठे थे। कहते हैं, कि गुरु पद्मसम्भवने शान्तरक्षितकी भगिनी मन्दारवा-से ब्याह किया था।

राजाकी बुलाहट सुन पद्मसम्भव फूले न समाये। उन्होंने नेपालराज्य हो कर तिब्बतकी यात्रा की। ७४७ ई०में उन्होंने राजधानी पहुंच कर अपनी यात्राका विव-रण लिखा था। रास्तेमें उन्होंने किस तरह डाकिनी और यक्षिणीका प्रभाव चूर किया था, राजाको सुनाते हुए कहा था,—"उन लोगोंने बुद्धका प्रभुत्व स्वीकार कर लिये अब वे किसीका अपकार न करेंगी। मैंने भी उन्हें अभय दे कर कहा है, कि तुम लोग भी मेरे आदेश-से पूजा और बलि पाओगी।" इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि भारतकी अर्द्ध सभ्य और असभ्य जातिको जब बौद्धा-चार्योंने बौद्धधर्ममें दीक्षित करनेकी कोशिश की थी तब उन्होंने देखा था, कि वे लोग कुसंस्कारमें तथा पर्वत, वृक्ष और भूत आदिकी उपासना ले कर इतने मोहित हो गये हैं, कि उनके हृदयसे यह कुसंस्काररूप कुहेसेको हटा कर निर्वाणमुक्ति और प्रतीत्य-समुत्पादरूप महा-धर्मबीजको बोना बड़ा ही कठिन है। पीछे वे देवरूपमें पूज्य उन्हीं सब भीषण दृश्य अपदेवताओंको प्रकृत देवरूपमें गिन कर "न देवाः सृष्टिनाशकाः" वाक्यकी सार्थकताकी रक्षा करनेमें प्रयासी हुए। वे इस बातका प्रचार करने लगे,—"यही सब पिशाच, यक्ष, डाकिनी, योगिनी आदि बुद्धकी मङ्गलमय करुणासे मन्दकारी शक्ति विसर्ज्जन कर अभी जीवकी मङ्गलकामनामें लगी हैं। वे अब किसी भी जीवोंका अपकार न करेंगी। वरं जिससे जीवोंका मङ्गल और मुक्तिलाभ हो, उसीमें सहायता करेंगी। इसलिये वे साधारणकी पूज्य हैं और उन्हें बलि देना उचित है।" इस प्रकार जैसे भारतमें बौद्धतान्त्रिकयुगमें साधरणकी चित्तवृत्ति आकर्षण करने-की इच्छासे दशबाहुशालिनी दुर्गा, लोलरसना कराल वदना काली, विस्फारितनेत्र विरूपाक्ष, रक्तवर्णा भीषण दृश्या शीतला, करालदंष्ट्रा वाराही आदि देवदेवीका आविर्भाव हुआ था, वैसे बौद्धगुरु पद्मसंभवने भी तिब्बत पहुंच कर कुसंस्काराच्छन्न तिब्बतवासीको पूर्वतन धर्ममें विश्वास दिलाते हुए उनके हृदयमें बुद्धका प्राधान्य स्थापन कर बौद्धधर्मका बीज बोया था। यहैं पौत्तलिकमिश्रित बौद्धधर्म मूलधर्मके साथ मिल कर लामा (ब्लम) वा ब्रह्मधर्म नामसे प्रसिद्ध हुआ। तिब्बतीय भाषामें लामा शब्दसे परम पुरुष समझा जाता है; बुद्ध ही परम पुरुष थे अर्थात् जिनकी महीयसी शक्तिके प्रभावसे अपकर्मा भूतगण भी वशीभूत हो कर जनसाधारणकी भलाईके लिये तैयार हो गये थे।

गुरु पद्मसम्भवसे बौद्धधर्मका प्रकृत मर्म और प्रभाव जान कर तथा तिब्बतीय प्राचीन भौतिक क्रियाकाण्डोंमें उनका अटल विश्वास देख राजा थि-स्रोङ्-देत्सन तत्म-

वर्त्तित लामा या श्रेष्ठ धर्मके पक्षपाती हुए। उन्हींकी कृपा तथा उत्साहसे ७४६ ई०में तिब्बतके सम-यास नगरमें प्रथम बौद्धमठ प्रतिष्ठित हुआ। वह मगधकी ओदण्डपुरीके सुप्रसिद्ध बौद्धमठके अनुकरण पर बनाया गया था, स्वयं पद्मसम्भवने इस मन्दिरकी नींव डाली थी। यतिवर शान्तरक्षितने प्रतिष्ठाकार्यमें गुरुको खासी मदद पहुंचाई थी। इसी मन्दिरमें पहले लामा-सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा हुई तथा शान्तरक्षितने वहांका प्रथम आचार्य वा उपाध्याय हो कर तेरह वर्ष तक कठिन परिश्रमसे धर्मकार्य चलाया था। वे सम्प्रति लामा-समाजमें आचार्यबोधिसत्त्वके रूपमें पूजे जाते हैं। उनकी धारणा है, कि प्रसिद्ध बौद्धाचार्य शारिपुत्र, आनन्द, नागार्ज्जुन, शुभङ्कर, श्रीगुप्त और ज्ञानगर्भ आदिकी तरह वे स्वतंत्र सम्प्रदायभुक्त थे।

तिब्बतके बाशिन्दे इस नवप्रवर्त्तित लामा-मतको धर्म या बौद्धधर्म कहते हैं; किन्तु सचमुच उसमें प्रकृत बौद्ध-धर्मका छायामात्र विद्यमान है। तान्त्रिक वीराचारमें वह सम्यक्‌रूपसे गिना जाता है। नाना देवताकी उपासना तथा भौतिक क्रिया और भोजविद्याने उस प्राचीन सूक्ष्मतम धर्मतत्त्वको आश्रय कर उसे नये रूपमें गठित किया है। इस धर्मके विश्वासी लोग "नङ-प" तथा जो इस मतसे बाहर हैं, वे "थ्यि-ड्डिङ" कहलाते हैं।

उपाध्याय शान्तरक्षितके बाद "पल बङ्स"ने आचार्यका आसन ग्रहण किया; यथार्थमें "ब्य-खृग जिग्स्" सर्वप्रथम दीक्षित लामा हुए थे। शिक्षानवीश शिष्योंमेंसे लामा सगोर वैरोचन हो सर्वापेक्षा सुपण्डित हुए थे। वे लामा-समाजमें बुद्धके भ्राता और सहचर आनन्दके अवतार समझे जाते थे। वैरोचनने तिब्बतीय भाषामें बहुत से संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद किया था।

गुरु पद्मसम्भवने लामाधर्म प्रतिष्ठा और प्रचारप्रसङ्गमें जो सब आचारानुष्ठान विधिबद्ध किया था। उसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। उनके साम्प्रदायिक पचीस शिष्य उनके तिरोधानकी कुछ सदी पीछे उनके प्रवर्त्तित प्रकृत धर्ममत और पद्धति जो सब ग्रन्थ संकलन कर गये हैं, उसमें सम्भवतः उस समयके आचार आदिका वर्णन है। लेकिन आदि पद्धति अनुसृत तथा भौतिकविद्या-समाश्रित क्रिङ्-म-प सम्प्रदायकी आचारपद्धति देखनेसे सहजमें जाना जाता है, कि पद्मसम्भवने अपनी जन्मभूमि उद्यान तथा काश्मीरमें प्रचलित घोर तान्त्रिक और भोजविद्याप्रसूत महायान-सम्प्रदायका बौद्धमत ही स्थापन किया था। उसमें मन्त्रमूलक शैवधर्म और भूतोपासक बोन्-पा धर्म मिला हुआ था।

गुरु पद्मसम्भवके जो पचीस शिष्य थे, वे सभी भौतिक और भोजविद्यामें पारदर्शी थे। वे मन्त्रबलसे भूतोंको वशमें कर तिब्बतमें अपने चलाये धर्ममें बद्धपरिकर हुए। तिब्बतवासी बौद्धगण पद्मसम्भवके असामान्य तिरोधान और उनके भोजविद्याका प्रभाव देख कर उनकी द्वितीय बुद्धरूपमें पूजा करते आ रहे हैं। आज भी प्राचीन लामासम्प्रदायोंके मठमें उनकी आठ प्रकारकी मूर्त्तिकी उपासना होती है। तिब्बतवासीका विश्वास है, कि गुरु पद्मसम्भवने समय समय पर यह विभिन्न मूर्त्ति धारण की थी।

राजा थि-स्रोङ्-देत्सन् और उनके दो वंशधरके प्रगाढ़ उत्साहसे तिब्बतमें लामाधर्म सुप्रतिष्ठित हो कर धीरे धीरे फैल गया। बोन्-पा धर्माश्रित तिब्बतवासी आचरित प्रथाका सामञ्जस्यसाधक इस नवीन मतका प्रतिद्वन्द्वी न हुआ, वरं राजाके भयसे उसको पुष्टि ही की थी। उन्होंने समझ रखा था, कि इस मतमें शक करनेका कारण नहीं, अधिकन्तु इसमें नई शक्तिका संचार हुआ है। इसी कारण शक्तात्मक नवधर्ममें तिब्बतवासीके अनुरक्त होनेसे लामाधर्मको शीघ्र ही पुष्टि और वृद्धि हो गई। किन्तु शिक्षाबलसे तिब्बतवासी जितनी मानसिक उन्नति करते गये, उतनी ही लामाधर्म संस्कारकी आवश्यकता सूझ पड़ी। ज्ञानवृद्धिके साथ साथ धर्मपद्धतिकी भी संस्कार होता गया; इसी कारण तिब्बतीय बौद्धधर्मका तीन युग निरूपण कर गये,—१म आदि युग अर्थात् राजा थि-स्रोङ-देत्सनके राज्यकालमें लामाधर्मकी प्रतिष्ठासे बौद्धोंकी ताड़ना तक; २य मध्य-युग या लामाधर्मके संस्कारकाल तक तथा ३य वर्त्तमान लामा धर्म या १७वीं सदीमें धर्माचार्य दलई लामाका प्राधान्य और राजत्वविस्तार तक।

८२२ ई०में उत्कीर्ण लासा नगरीके शिलाफलकको पढ़नेसे पता चलता है, कि तिब्बत और चीनवासिगण तीन परम पुरुष तथा पवित्रचेता साधुगण सूर्य, चन्द्र, ग्रह और ताराओंकी उपासना करते थे, वही यथार्थमें वहांका आदिलामाधुगका निदर्शन गिना जाता है।

७८६ ई०में थि-स्रोङ देत्सनकी मृत्युके बाद उसके लड़के मुथित् सान-पो राजा हुए। अधिक दिन इन्होंने राज्य करने भी न पाया था, कि विष खिला कर इनकी जान ले ली गई। पीछे इनके भाई सदन लोगस सिंहासन पर बैठे। ये बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये कमलशीलको तिब्बतमें लाये थे। उनके लड़के रालपछन ८१६ ई०में (दूसरेके मतसे ९वीं सदीके शेष भागमें) सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। उनके शासनकालमें नागार्जुन, वसुबन्धु और आर्यदेवकी प्रसिद्ध टीका और धर्मग्रंथोंका भोटभाषामें अनुवाद हुआ। इसके सिवा उन्होंने भारतवासी कुछ बौद्धयतियोंको धर्मग्रन्थोंका अनुवाद करने नियुक्त किया था। उन यतियोंमें स्थविरमतिके शिष्य जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि, सुरेन्द्रबोधि, प्रज्ञावर्मन, दानशील और बोधिमित्रके नाम उल्लेखनीय हैं।

राजा रालपच्छनके बौद्धधर्मानुरागसे ईर्षा-परतन्त्र हो उनके छोटे भाई लङ्-दर्म बौद्धधर्मद्वेषी हो गये। उन्होंने ८६० ई०में अपने भाईको यमपुर भेज सिंहासन अपनाया। सिंहासन पर बैठ वे लामाओं पर यथेच्छ अत्याचार करने लगे। यहां तक कि उन्होंने मन्दिर और मठको ध्वंस कर लामा-संन्यासियोंको जोवहिंसाकारी कसाईका कार्य करनेके लिये बाध्य किया था। इसके सिवा इनके हुकुमसे कितने बौद्धग्रन्थ जला दिये गये थे।

बौद्धधर्मके प्रति जो उनका घोर विद्वेष था, वह बहुकाल स्थायी न रहा। उनके राज्यकालका तीसरा वर्ष बीतने भी न पाया था, कि लालुङ्वासी लामा पाल दोर्जे मुखोस आदिने भयावह वेशभूषा पहन कर उन्हें मार डाला। लामा पालदोर्जे बाउल जैसा अद्भुत पहनावा पहन कर राजमहलके सामने नाचने लगा। राजा ज्यों ही उसे देखने आये, त्योंही लामाने उन्हें बाणसे विद्ध कर डाला। राजसेना उसे पकड़नेके लिये दौड़ पड़ी। वे कालेसे रंगे घोड़े पर सवार हो नदी तैर कर भाग गये। जलमें घोड़ेका बनावटी रंग धुल गया, असली रंग दिखाई देने लगा। उन्होंने अपना छद्मवेश फेंक कर नया सफेद वस्त्र पहन लिया। इस प्रकार वे खुशीसे नदी पार कर गये। कुसंस्काराच्छन्न तिब्बतवासीने उन्हें दूसरा व्यक्ति समझ कर अथवा दैवशक्ति-सम्पन्न जान कर पीछा करना छोड़ दिया। तीरके आघातसे राजा पञ्चत्वको प्राप्त हुए। मरते समय उन्होंने कहा था, "बौद्धधर्म उत्सादनरूप पापपङ्कमें लिप्त होनेसे (३ वर्ष) पहले क्यों न मुझे मार डाला गया।" राजा लङ्-दर्मके मृत्युकालीन इस वाक्यसे बौद्धधर्ममें उनका विश्वास देख उनके बालक पुत्रको लामाओंके प्रति विरुद्धाचरण करनेका साहस न हुआ। इस प्रकार लामागण अपनी खोई हुई शक्तिका पुनरुद्धार कर अपनी प्रतिपत्ति फैलानेमें समर्थ हुए थे।

११वीं सदीके प्रारम्भमें भारतके नाना स्थानोंसे खास कर काश्मीरसे कुछ बौद्धयति तिब्बत आये। उनमेंसे स्मृति, धर्मपाल, सिद्धपाल, गुणपाल, प्रज्ञापाल तथा प्रज्ञापारमिताके अनुवादक सुभूति, श्रीशान्ति आदि यतियोंके नाम उल्लेखनीय हैं। पीछे १०३८ ई०में लामाधर्मसंस्कारक सुप्रसिद्ध बौद्धचार्य्य, अतीशने तिब्बतमें पदार्पण किया। वे लामाओंके निकट 'जो-वो-जे दपाल-लदन अतीश' नामसे परिचित और देवताकी तरह सम्मानित हुए।*

---

* भारतवर्षमें वे दीपङ्कर श्रीज्ञान नामसे प्रसिद्ध थे। उनके पिताका नाम कल्याणश्री तथा माताका प्रभावती था। भोट-इतिहासके मतसे बङ्गालके गौड़-राज्यके अन्तर्गत विक्रमपुरके राजवंशमें ९८० ई०को उनका जन्म हुआ। वे ओदन्तपुरि-विहारमें आ कर बौद्ध-यतिधर्ममें दीक्षित हुए थे। सुवर्णद्वीप वा सुधर्मनगरके बौद्धाचार्य सुपरिचित चन्द्रकीर्त्ति, महाबोधिविहारके उपाध्याय मतिवितर तथा महासिद्धि नारोके निकट उन्होंने महायानमत और महासिद्धिका अभ्यास किया था। तिब्बत-यात्राकालमें वे मगधके विक्रमशिला सङ्घारामके अध्यापक-पद पर नियुक्त थे। राजा महीपालके पुत्र नयपाल उनके समसामयिक थे।

अतीशके प्रधान शिष्य ड्रोम-टौन संस्कृत कदम-सम्प्रदायके प्रधान महन्त हुए थे। वह सम्प्रदाय साढ़े तीन सौ वर्षके बाद तिब्बतके सुप्रसिद्ध गे-लुग प सम्प्रदाय पर्यवसित हो उसी नामसे प्रतिष्ठित हुआ। अतीशके प्रवर्त्तित वाद्म-प-सम्प्रदायके अनुकरण पर अर्द्ध संस्कृत कर ग्यु-प तथा शाक्य प सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी।

११वीं सदीके शेष भागमें लामाधर्मकी जड़ मजबूत होने पर भी शाक्य प्रभृति स्थानोंमें उसके प्रतियोगी सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। वे सब सम्प्रदाय स्वतन्त्र भावसे पारमार्थिक मण्डल स्थापन कर अपनी पौरोहित्य शक्तिका विस्तार करने लगे। धर्मयाजकोंकी शक्ति वृद्धिके साथ साथ स्थानीय सरदारोंकी शक्ति ह्रास होने लगी। इसी मौकेमें चीन और मोङ्गल-जातिने तिब्बतके नाना स्थानोंमें आ कर अपनी गोटी जमाई।

१२०६ ई०में खाकनमोगलके वंशधर जेनघिज (जेङ्गिस) खाँने तिब्बत पर अधिकार किया। उनके वंशधर प्रसिद्ध चीनसम्राट् खुबिलई (कुबलाइ) खाँ वर्वरने अशिक्षित और असभ्य प्रधान चीन और मोङ्गलीयराज्यमें एक सद्धर्मप्रतिष्ठाके उद्देशसे प्रसिद्ध शाक्यके श्रेष्ठ लामाको (शाक्य पण्डित नामसे परिचय) अपनी राजसभामें बुलाया और बौद्धधर्म ग्रहण किया। तभीसे वह एक नई शक्ति पा कर राजधर्मरूपमें तमाम फैल गया।

खुबिलाई खाँने अपने धर्मोपदेष्टा शाक्यपण्डितको लामाधर्ममण्डलके गुरुपद पर अभिषिक्त किया तथा उसे चीनराज्यपौरोहित्यके पुरस्कार स्वरूप तिब्बतराज्यका शासनकर्त्ता बनाया। इसके बाद १२६१ ई०में उन्हींके यत्नसे उक्त पण्डितके भतीजे मतिध्वज फागसप उपाधिके साथ श्रेष्ठ धर्माचार्यके पद पर प्रतिष्ठित हुए। राजाकी कृपासे इन्हें रोमक पोपकी तरह अधिकार मिला था।

सम्राट् खुबिलाई खाँने लामाधर्मकी उन्नतिके लिये बहु परिश्रम और अर्थव्ययसे मोङ्गलियाके नाना स्थानोंमें तथा पेकिन नगरमें एक बहुत बड़ा संघाराम खोला था। उन्हींके उत्साहसे शाक्यपण्डित मतिध्वजने पण्डितोंसे समावृत हो लामाधर्मके प्रसिद्ध कर-ग्युका ग्रन्थ मोङ्गलीय भाषामें अनुवाद किया।

परवर्त्ती मुगल बादशाहोंके अधीन शाक्य-पुरोहितोंकी राजकीय प्रधानता धीरे धीरे बढ़ती गई तथा उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी लामासम्प्रदायके विरुद्धाचारी हो उन पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। १३२० ई०में उन लोगोंने दिकुङ्गका सुप्रसिद्ध कर-ग्यु-प संघाराम जला डाला था। १३६८ ई०में मिङ्गराजवंश चीनसाम्राज्यके सिंहासन पर बैठे। उक्त वंशीय सम्राटोंने शाक्य पण्डितोंकी क्षमता खर्व करनेके उद्देशसे कर-ग्यु प दिकुङ्ग और क-दम-प-तषल संघारामके तीनों आचार्योंको तदनुरूप श्रेष्ठ पौरोहित्य-शक्ति प्रदान की थी।

१५वीं सदीके प्रारम्भमें लामा तसोङ्-ख प ने अतीश-प्रवर्त्तित संस्कृत-लामाधर्मका पुनः संस्कार कर गेलुग-प नामसे उसका प्रचार किया। इस सम्प्रदायने धीरे धीरे श्रीवृद्धिलाभ कर तिब्बतमें प्रचलित अन्यान्य सम्प्रदायको कमजोर कर दिया। पांच पीढ़ीके भीतर इस सम्प्रदायके प्रधान धर्मयाजक तिब्बतके पुरोहितराज कह कर विख्यात हुए। उक्त साम्प्रदायिक प्रधान धर्माचार्य आज भी उसी सम्मानसे भूषित हैं।

१०३८ ई०में लामा नग तमोके साथ जब वे नारिखोरसुम पथसे तिब्बत आये, उस समय इनकी अवस्था ६० वर्षकी थी। उन्होंने यहां आ कर लामाधर्मका संस्कार करना चाहा। १०५२ ई०में लामा-नगरीके निकटवर्त्ती सकठाङ् सङ्घाराममें उनका देहान्त हुआ। लामामतके संस्कारकार्यमें लिप्त हो उन्होंने स्वमतप्रतिपादक कुछ ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थोंके नाम ये हैं:—बोधिपथप्रदीप, चर्यासंग्रहप्रदीप, सत्यद्वयावतार, मध्यमोपदेश, संग्रहगर्भ, हृदयनिश्चित, बोधिसत्त्वमन्यावली, बोधिसत्त्वकर्मादिमार्गावतार, शरणागतोपदेश, महायानपथसाधनवर्णसंग्रह, महायानपथसाधनसंग्रह, सूत्रार्थसमुच्चयोपदेश, दशकुशलकर्मोपदेश, कर्मविभङ्ग समाधिसम्भरपरिवर्त्त, लोकोत्तरसप्तकविधि, गुरुक्रियाक्रम, चित्तोत्पादसम्वरविधिकर्म, शिक्षासमुच्चय अभिसमय (सुवर्णद्वीपाधिपति राजा धर्मपालने दीपङ्कर और कमलको जो धर्मशिक्षा दी थी वही उसका सारमर्म है) और विमलरत्नालोक। तिब्बतयात्राकालमें दीपङ्कर अतीशने अन्तिम ग्रन्थ मगधराज नयपालको लिख भेजा था। तिब्बतमें ये बोधिसत्त्व मञ्जुश्रीके अवतार कह कर पूजित हैं।

लामा तसोङ् ख-प के भतीजे गेदेन-डब उक्त सम्प्रदायके प्रधान धर्माचार्य (Grand Lama) हुए। लोगोंके निकट वे अवताररूपमें समझे जाते थे। १६४० ई०में मुगलराज गुसरी खाँने तिब्बत जीत कर पञ्चम लामाचार्य ङग्-वङ् लौ-जङ्गको दे दिया। तभीसे गे-लुग-प सम्प्रदायके लामाचार्यगण राजशक्तिसे भूषित हुए। १६५० ई०में चीन सम्राट्ने उन्हें तिब्बतका अधिराज कबूल कर मोङ्गलीय 'दलई' (समुद्र)की उपाधि दी। तभीसे यूरोपीय परिव्राजकोंके निकट वे तथा उनके वंशधरगण दलई लामा नामसे परिचित हुए हैं। तिब्बतीय समाजमें वे गल-व-रिन-पोछे नामसे प्रसिद्ध हैं।

१६४३ ई०में उन्होंने लासानगरके समीप पहाड़के ऊपर सुप्रसिद्ध पोतल प्रासाद-मन्दिर बनवाया। तिब्बतके दूसरे दूसरे लामा-साम्प्रदायिकगण उन्हें तथा उनके वंशधरोंको अवलोकितका अवतार मानते हैं। किन्तु राजशक्तिप्राप्त लामा ङग-वङ् अपना शेष जीवन शांतिसे बिता न सके। प्रभुत्वस्थापनमें उद्दाम आकाङ्क्षा तथा आम्बुजातिके विद्रोहसे प्रपीड़ित हो वे इस लोकसे चल बसे। छठे लामा चीन-सम्राट्के हुकुमसे मारे गये। पीछे उन्होंने अपने हाथमें तिब्बतका कर्त्तृत्व ले कर सारे राज्यमें धर्मनीति और राजनीतिका सामञ्जस्य विधान करके वहां महन्त नियुक्त करनेकी व्यवस्था दी। किन्तु गे-लुग् प सम्प्रदाय पञ्चम लामाकी चलाई प्रथासे दिनों दिन उन्नति कर रहे थे। इसी समय कुछ चीन-राजकर्मचारियोंके तिब्बतमें आने पर भी इस सम्प्रदायके लामाचार्यगण यथार्थमें राज्यके अधीश्वर समझे जाते थे तथा सभी सम्प्रदायभुक्त लामा उन्हींको श्रेष्ठ समझते थे।

यह लामाधर्म केवल तिब्बतमें ही नहीं, दूर दूर देशोंमें भी फैल गया। अभी वह पश्चिममें यूरोपीय काकेससे ले कर पूर्वमें कामस्कट्का तथा उत्तरमें बुरियात् साइबेरियासे दक्षिणमें सिकिम और युन-नान् तक विस्तृत है। इस विस्तृत भूभागमें लामाधर्म विस्तृत होने पर भी वहांकी अधिवासियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। किन्तु सब कोई लामाको राजा और धर्मगुरु मानते हैं।

सारे तिब्बत-राज्यकी जनसंख्या ४० लाखसे ऊपर नहीं है। उनमेंसे बहुतेरे लामाधर्मोपासक हैं। पूर्व-भोटवासिगण बोन धर्मसेवी हैं तथा कुछ दोनों ही धर्मको मानते हैं। बोन धर्माचारिगण लामाधर्मके भी पृष्ठपोषक हैं।

यूरोपमें कालमक तातार जातिकी वासभूमि भलगा नदीतीर तक लामाधर्मकी अन्तिम सीमा है। तोरगोत् जातिके भागनेके बाद भी यूरोपके रूसराज्यमें डन और थैक नदीके मध्यवर्ती स्थानमें २० हजार घर कालमक तातारका वास था। उनमेंसे करीब लाख मनुष्य लामाधर्मावलम्बी हैं। तोरगोत् जाति जबसे भागी है, तबसे वह देवरूपी पुरोहित लामाको श्रेष्ठ नहीं मानती और न उनका आदेश ही पालन करती है। उन लोगोंमें एक श्रेष्ठ पुरोहित है। आज भी वे लुकछिप कर उन लोगोंकी धर्मरक्षाकी व्यवस्था देते आ रहे हैं। आज भी भलगा नदीके किनारे उनकी धर्मशक्ति फैल रही है। कालमाकोंके श्रेष्ठ पुरोहित अभी भी लामा नामसे पूजित हैं। दलईलामाको सर्वश्रेष्ठ नहीं मानने पर भी रूस गवर्नमेण्टके निर्वाचित एक प्रधान लामाके उपदेशानुसार वे लोग अपने धर्मकी रक्षा करते हैं।

इतिहासका अनुसरण करनेसे जाना जाता है, कि पहले भलगा नदीतट तक दलई-लामाका अधिकार विस्तृत था। उनके निकट दायित्वग्रस्त अनेक बौद्धपुरोहित प्रति वर्ष उन्हें लासानगरीमें राजकर भेजते थे। ये सब लामापुरोहित अभी स्काविनर नामसे प्रसिद्ध हैं। तोरगोतोंके भागनेके बादसे स्काविनरोंने कर भेजना बन्द कर दिया। अवशिष्ट उल्लुस (Ulluse)-के स्काविनरगण अभी विभिन्न चुसलमें विभक्त हैं। १८०३ ई०के विवरणसे पता चलता है, कि कालमक जातिकी जनसंख्याका दशमांश पुरोहितप्रधान होने तथा स्वजातिसमाजमें प्रभाव फैला कर उनके अर्थसे प्रतिपालित होनेके कारण रूस गवर्नमेण्टने १८३८ ई०में प्रधान-लामा जम्बोनमककी सहायतासे उक्त अयौक्तिक प्रभावको खर्व कर डाला। पहले दुष्ट और आलसी आदमी अर्थोपार्जनमें अक्षम हो इस पुरोहित-सम्प्रदायका आश्रय लेते थे तथा धर्मप्राण-निरीह बौद्ध-कालमकोंसे धर्मका बहाना कर रुपका संग्रह करते थे। रूस-गवर्नमेण्टने हजारों अकर्मण्य पुरोहितोंको सम्प्रदायसे निकाल दिया था।

नेपालमें गुर्खा जातिके प्रादुर्भावसे शैवहिन्दूधर्मका प्रचार हुआ। बौद्धद्वेषी होने पर भी उनमेंसे अधिकांश नेपाली बौद्ध ही लामामतावलम्बी हैं। वर्त्तमान भूटान देशमें लामाधर्म पूर्णमात्रामें विराजित है। वहांके तासिसूदन जिलेमें ५ सौ, पुनाखामें ५ सौ, पारो जिलेमें ३ सौ, तोङ्गसोरमें ३ सौ, टागनामें २॥ सौ और बन्दीपुर (अन्दीपुर) में २ सौ लामा पुरोहित हैं। इसके सिवा पर्वतगुहामें असंख्य लामासंन्यासी तथा मठमें बौद्ध-भिक्षुणी देखी जाती हैं। मठवासीको छोड़ कर प्रायः ३ हजार लामा-पुरोहित राजकर्म और वाणिज्य व्यवसायमें लिप्त हैं।

सिकिममें लामामत ही राजधर्म है। वहांके लामा तथा साधारण लोगोंका विश्वास है, कि धर्मात्मा पद्मसम्भव (गुरु रिम-वो छे) लामामत स्थापन करनेके लिये तिब्बत जाते समय इसी देश हो कर गये थे। १७वीं सदीके लामा परिव्राजक लहा-तसुन छेम्बो तिब्वतसे सिकिम आये थे। उनके विवरणसे मालूम होता है, कि उस समय वहांके अधिवासी अज्ञानान्धकारमें निमज्जित थे। शायद उनके आनेके वाद सिकिमवासी लामाधर्ममें दीक्षित हुए होंगे। वे यहां परित्राणकर्त्ता धर्मात्मारूपमें पूजित होते हैं।*

१७वीं सदीके शेष भागमें लहा-तसुन छेम्बोकी मृत्युवादसे सिकिममें लामाधर्म धीरे धीरे फैल गया तथा थोड़े ही समयमें बौद्धयति और सङ्घाराम सिकिमराज्य आच्छन्न हो गया। अतएव सिकिमवासीकी सभ्यता और साहित्य तथा लेप्छा जातिकी वर्णमालाका उत्पत्तिकाल लामाधर्मको सहायतासे परिपुष्ट हुआ है, ऐसा कहा जाता है। सिकिममें ञिङ-मन्य और कर ग्यु-प (कर-म-प) सम्प्रदायका प्रभाव ही अधिक है। वहां दुक्-प-सम्प्रदायका कोई मठ नहीं देखा जाता।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि तिब्बतमें लामाधर्मके विस्तारके साथ साथ उसके कितने साम्प्रदायिक विभाग संगठित हुए। भारतीय महायान और तान्त्रिक बौद्धमत तथा भोट-जनपदस्थ प्राचीन बोन-धर्मको एकत्र कर वहांके लामामतकी उत्पत्ति हुई है। ७४७ ई०में ओगेन वा उद्यानवासी गुरु पद्मसम्भवकी चेष्टासे परिवर्द्धित होने पर भी वह उतनी प्रतिष्ठालाभ न कर सका। ८९९ ई०में राजा लङ्-दर्मने बौद्धधर्मका उच्छेद करनेकी कामनासे बौद्धोंके प्रति विशेष अत्याचार करना शुरू कर दिया। उस समय तिब्बतमें प्रतिष्ठित बौद्धमत धीरे धीरे हीनप्रभ हो गया। उसके वादसे ले कर महात्मा अतीशके शुभागमन तक लामाधर्म फिर उठ कर खड़ा न हो सका। १०५० ई०में अतीश और उनके शिष्य वरोम-स्तोङ् कदम प सम्प्रदायकी स्थापना कर आदि लामाधर्मके संस्कारक कह कर पूजित हुए। इस शाखामतावलम्बी सुप्रसिद्ध लामा लासोन-ख प-ने १४०७ ई०में गाःल्दन् संघाराम स्थापन कर बौद्धधर्म फैलाना चाहा। १६४० ई०में वही तिब्बतके पारमार्थिक-मण्डलरूपमें गिना जा कर संस्कृत गेलुगप (कदम-प शाखान्तर्भुक्त) सम्प्रदाय नामसे प्रतिष्ठित हुआ। १६४० ई०से यह पारमार्थिक मण्डलेश्वर वर्त्तमान समय तक इस साम्प्रदायिक मत और अपने प्रभावको एक नजरसे देखते आ रहे हैं।

१०६२ ई०में ञिङ्-म-शाखा प्रतिष्ठित हुई। यह १३वीं सदीके शेष भाग तक अच्छी तरह संस्कृत हो आखिर ञिङ्माप सम्प्रदायरूपमें प्रधान हो गई है। १५वीं सदीके शेषार्द्धसे ले कर १७वीं सदीके मध्यभाग तक इस सम्प्रदायके शाखानुरूपमें यथाक्रम ओगेन-प-दोर्जे-तक-प मिन्दोलिन-प, ङ दक-प, कर्तोक-प और लहा-तसुन-प आदि सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है। ये सब सम्प्रदाय ञिङ्-म-प वा प्राचीन असंस्कृत लामा मतसम्बन्धीय शाखा नामसे प्रसिद्ध हैं।

१०७१ ई०में शाक्य मोनने जो शाखा प्रवर्त्तित की, वह शाक्य प-शाखा नामसे फैल गई है। उससे १३वीं सदी०

---

* लहा-तसुन छेम्बोने दक्षिणपूर्व तिब्बत भूभागके कोङ्गबू जिलेकी त्सङ्गपो (ब्रह्मपुत्र) उपत्यकामें १५९५ ई०को जन्मग्रहण किया था। वे वहांसे सिकिम आते समय राहमें नाना बौद्ध-सङ्घाराम होते हुए १६४८ ई०में लासानगर पहुँचे। यहां पहले दलई-लामा ङग्-वङ्के साथ उनकी भेंट हुई। ये भारतीय बौद्धाचार्य महात्मा भीममित्रका अवतार कह कर प्रसिद्ध हैं। वर्त्तमान पेमियोङ्गछि-सङ्घारामके प्रतिष्ठाता जिक्मी-प बो उन्हींके अवतारूपमें जन्म लिया था।

के मध्यभागमें जोनङ-प शाखाकी उत्पत्ति हुई है। १७वीं सदीके मध्य भागमें तारनाथने जोन-ङ-प शाखाका मत प्राधान्य स्थापन किया। १५वीं सदीके प्रथमार्द्धमें शाक्यप शाखासे नोर-प नामक एक दूसरी शाखा संगठित हुई, वह प्रधानता लाभ न कर सकी।

११वीं सदीके शेष भागमें मर-प और मिल रस-प शाखा स्थापन कर गये हैं। लामा द्वग्-पो-लहर्जे उक्त साम्प्रदायिक मतकी प्रतिष्ठा कर जनसाधारणमें उसके प्रवर्त्तक रूपमें परिचित हुए थे। लगभग ११४२ से १२२० ई०के मध्य कर-ग्यु-प सम्प्रदायसे पृथक् और संस्कृतभावमें दिकुन्-प, कर्म प तथा प्राचीन वा उत्तर दुक्-प (२१६० ई०) शाखाकी उत्पत्ति हुई। आखिर १२१० ई० में उक्त दुक्-प सम्प्रदायसे संस्कृतभावमें मध्य और दक्षिण भोटान्तके लुक-प तथा फिरसे १२२० ई०में उक्त भोटान्त दुक-पसे आधुनिक वा दक्षिण दुक-प शाखाका उद्भव हुआ था। १२वीं सदीके शेषभागमें दिकुन-प शाखासे तलुन-प नामक एक और स्वतन्त्र शाखाकी उत्पत्ति हुई। करग्यु-प और शाक्यप सम्प्रदायाश्रित शाखाएं अर्द्ध संस्कृत लामामत नामसे प्रसिद्ध हैं।

वर्त्तमान समयमें कोई कोई लामा गुरु पद्मसम्भवकी गुहामें छिपा कर रखे हुए प्राचीन धर्मग्रन्थकी दोहाई दे कर जो सब शाखा-मत प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं, वे सब 'तेर-म' वा गुरुके अभिव्यक्त साम्प्रदायिक मत जिङ-म-प सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माने जाते हैं। इसमें शमानी बोन-प और भूतादिकी उपासनाके साथ विशुद्ध लामामतका समन्वय दिखलाया गया है। उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायकी पद्धति परस्पर पृथक् है। उन लोगोंका परिच्छद और शिरस्त्राण भी अलाहदा है। नीचे दिये गये चित्रोंसे उसका पता चलेगा।

मोङ्गललामा शे-राव। कर्-गु लामा। शाक्यपलामा। कर्मलामा।
लामा उग्येन्-ग्य त्सो। जिङ्-मा लामाद्वय।

उपरोक्त सम्प्रदायसमष्टिके विस्तार और प्रतिष्ठाके साथ साथ लामाधर्मराज्यमें असंख्य मठ और सङ्घारामकी प्रतिष्ठा हुई। उन सब विभिन्न शाखा-सम्प्रदाय और उनके अन्तर्भुक्त विभिन्न मठादिका विवरण विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं दिया गया। सांसारिक प्रलोभनसे निलिप्तभावमें अवस्थान करना ही बौद्ध-यतियोंका प्रधान कर्म है। क्योंकि इससे वे निश्चिन्त मनसे ईश्वरकी उपासना कर सकते हैं। यही कारण है कि वे लोग निर्जन और प्रलोभनशून्य निर्जन प्रदेशमें आ कर वास करते हैं। वहां सब वासस्थान बौद्धोंके

सङ्घाराम वा मन्दिर कहलाते हैं। लामाधर्म फैलानेके लिये तिब्बत-राज्यमें तथा उसके आस पास चीन, मोङ्ग-लीय, रूस आदि विभिन्न देशोंमें नाना सङ्घाराम और मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंको भोटभाषामें गोन-प (निर्जन स्थान) कहते हैं। नीचे कुछ विभिन्न देशी प्रसिद्ध सङ्घारामके नाम दिये गये है,—

तिब्बत—तषिलहुणपो, शास्क्य, मिन्द्रोलिङ्, हीमिस (लादक), सङ्-ङ छो लिङ्ग, पदुम-यङ तसे (पेमि ओङ्गछि), त-क-तषि रिङ्, फो-दङ, ल-ब्रङ, दोर्जेलिङ (दार्जिलिङ्ग); देठाङ, रि-गोन्, तू-लुङ्, एन चे, दुब दे, फनजङ, कचो पल-रि, मणि, से-नोन, षङ गङ, लहुन तसे, नम-तसे, तसुन ठाङ, रव-लिङ्ग, नुव लिङ्ग दे-चिय-लिङ। ये सब स्थानके नामानुसार प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा सम-यास, गाल्दन, दे-पुङ्ग, सेर र, नम-ग्यल-छोई-दे, रमो-छे और कर्मक्य, देपेरिप-गय, जन-लछे, छमन मरिन (१२२२० फुट ऊंचा), दोर्क्यो-लुगु-दोङ, शाक्य वा शस्क्य, र-रेङ्ग, तिङ्गगे, फुन-तयोगसग्लिङ, सम-दिङ (१४५१२ फुट ऊंचा), दि-कुङ्ग (व्रि-गुङ), स्मिन-ग्रोल-ग्लिङ (मिन्द्रोलिङ्ग), रोर्जे दग, दपल-रि, षालु, गुरु-छो-वङ्, रुङ्ग-कर-गु-थोक, कछु-छ, गैन-तसि, देर्ज, छाव-मेदा, कार्थोक, रिछचे, दोर्जे-यु, मर-पुङ्-लेरु-पुङ्, मेन देलदेम, फुं प रोन्, कोन्-देग, भो-लुन्, छमनक, क्योन-स, नरतोन, रिण-छेन-सुन, तसेनचुरु, ग्यपुन, और देमू आदि प्रधान प्रधान कई संघाराम विद्यमान हैं। समूचे तिब्बतके मठाश्रम वा सङ्घारामकी संख्या ३ हजारसे कम नहीं होगी। इन सब प्रसिद्ध सङ्घारामकी बगलमें पवित्र छोते-न (चैत्य वा स्तूप) तथा मेनदोङ (स्मृतिस्तम्भ) विद्यमान देखे जाते हैं।

चीन—युन-हो-कोङ्ग वा प्रसिद्ध पेकिन-सङ्घाराम, कुन्तै-यान, कुम्बुम (यहां एक श्वेतचन्दनका वृक्ष है। कहते हैं, कि वह वृक्ष तसोङ-ख-पाके जन्मकालीन निःस्रावित रक्तसे उत्पन्न हुआ था। उसके पत्ते रंग बिरंगके हैं। प्रत्येक पत्तेमें नरसिंह तथागतकी मूर्त्ति अङ्कित है। पाश्चात्य प्रत्नतत्त्ववित् हुकने उस पत्तेको देख कर लिखा है, कि उसके पत्तेमें तिब्बतीय वर्णमाला विन्यस्त है। यह अनैसर्गिक व्यापार सचमुच विस्मय-कर है) तथा जो-वो-ख-ङ नामक बड़ा मन्दिर है।

मङ्गोलिया—उर्गकुरेन और तारानाथ मन्दिर। यहां ३० हजार बौद्धयति तथा कुकु-खोतुन विभागके पांचके सङ्घाराममें प्रायः २० हजार लामा रहते हैं।

साइबेरिया—बैकाल ह्रदके निकटवर्त्ती सेलिंजिनस्क-के उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक सङ्घाराम। यहांके मठाचार्य बरियातोंके मध्य खानेपा पण्डित नामसे परि-चित हैं।

यूरोप—भलगा नदीतीरवर्त्ती कालमक तातारोंका मन्दिर 'छुरुल' कहलाता है। वह साधारणतः तम्बूसे बनाया जाता है। वे सब तम्बू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं :—जहां पुरोहित रहते हैं उसका नाम छुरु-ल्लुन-ओयर्गो और जहां देवमूर्त्ति और धर्मसंक्रान्त चित्रा-वली सज्जित रहती है उसका नाम श्वितानीवा वुर्च्छो-नुन-ओयर्गो है। एक एक छुरुलमें सौसे ऊपर पुरोहित रहते देखे जाते हैं।

लदाक वा छोटा तिब्बत—हेमि वा हीमिस, लम-युर रु, मथोग्लिङ्ग (तुर्किस्तानके मानचित्रमें थोतलिङ्ग-मठ), थेग छोस्, कोठदज्ञोगस, वम-ले, मषो, स्पिथुग, शेर-गल, श्यि ञ्ड, गुं गे, कनुम-दुब-लिङ, पोचि और पङा गि।

नेपाल—यहांकी निम्न उपत्यकामें कोई सङ्घाराम नहीं देखा जाता। उत्तर-दिग्वर्त्ती अधित्यका-विभागमें है वा नहीं कह नहीं सकते। यहांके बौद्धतीर्थोंमें बहुतेरे लामाओंका वास है।

भूटान—तापि-छोद-सोङ्ग, पुन-थाङ, उग्य न-त-से, वाकरो, वाह, रतम-छोग गैन, क इ-लि, सम-भिन, खा-छागस-गैन खा, छाल-फुग, कालिमपोङ्ग, पेछोङ्ग आदि। भूटानके महालामा धर्मराज और देवराज ताषिछोदसङ्ग सङ्घाराममें वास करते हैं।

सिकिम—सङ्गछेलिङ, दुवदि, पेमिओङ्गछि, गङ्टोक, तषिदिङ्ग, सेनन, रिनचिनपोङ्ग, रलोङ्ग, मलि, रम-थेक, फदुङ्ग (फोंदङ), छेउङ्ग-टोङ्ग, केटसुपेरि, लछुङ्ग, तलुङ्ग (दो-लुङ), एण्टछि, फेनसुङ्ग, करतोक, दलिङ्ग (दों-ग्लिङ), थनगङ्ग (ग्यङ-सगङ), वलब्रङ, लछुङ्ग, लहुन-रत्से, सिनिक (जिमिग), रिङ्गिम (ऋद्गोन), लिङ्थेम, रत्संग-नेसं, लछेन, लिङ्कोद, फदुङ्ग (फग्सुर्ग्योल),

नोब्लिङ्ग (तुवग्लिङ), नमछी, पवियाा, सङ लताम।

ये सब सङ्घारामवासी बौद्धयतिगण तिब्बतीय विभिन्न सम्प्रदायको आश्रय कर अपने अपने साम्प्रदायिक मतकी रक्षा करते आ रहे हैं। धर्मसम्प्रदायकी पृथकताके अनुसार उनके शिर पर लाल और पीली पगड़ी देखी जाती है। सिकिममें जितने मन्दिर हैं उनका अधिकांश जिङम सम्प्रदायभुक्त है। केवल नमछी, ताषि-दिङ्ग, सिनोन और थङ मोछे सङ्घाराममें ङद्क-प तथा कर्तोक और दोलिङ्ग मन्दिरमें कर्तोक-प शाखामत विस्तारित देखा जाता है।

पूर्वकथित सङ्घाराम और मन्दिरको छोड़ कर तिब्बतके नाना स्थानोंमें मन्दिर विराजित हैं। उन सब मन्दिरोंमेंसे लासा नगरीका सुवृहत् मन्दिर ही सर्वप्रधान है। मन्दिरको द्वारसे ले कर गर्भपीठ तक जगह जगह नाना देवमूर्त्ति देखी जाती हैं जिनमेंसे द्वारपालोंकी आकृति बड़ी ही डरावनी है। लामाराज्यके पश्चिमदिक्पति विरूपाक्ष, दक्षिण-दिक्पति विरूधक, भूतोंकी ईश्वरी देवीमूर्त्ति, द्वादश तानमा भूतिनी मूर्त्ति, वज्रपाणि मूर्त्ति; पूर्वदिक्पति धृतराष्ट्र तथा उत्तरदिक्पति यक्षेश्वरके वैश्रवण; यम, अग्नि, वायु, वरुण, यक्ष, रक्षः, सोम, ब्रह्म, इन्द्र और भूपति नामक दशलोकपालमूर्त्ति आदि देवचित्र विस्मयकर हैं। इनके सिवा वहां अमिताभ, अमितायु, नागार्जुन, मञ्जुश्री, सामन्तभद्र, एकादशशिरस्क, अवलोकित, तारा, एकविंश तारामूर्त्ति, पद्मसम्भव, शान्तरक्षित, अतीश, वज्रधर, मरप, मिल-रः प, शाक्यबुद्ध, अक्षोभ्य, अमोघसिद्धि, वैरोचन, रत्नसम्भव, मरीचि वा वाराहीमूर्त्ति, वज्रभैरवमूर्त्ति, हयग्रीवमूर्त्ति, विभिन्न शक्ति (काली) मूर्त्ति, विभिन्न डाकिनी, यक्षिणी, गन्धर्व, असुर, किन्नर, महोरग, गरुड़ आदि असंख्यबुद्ध, बोधिसत्त्व, बौद्धाचार्य, कुलदेवता, ग्राम्यदेवता तथा डाकिनी, भूतिनी और तान्त्रिक हिन्दू देवदेवी मूर्त्ति तिब्बतीय लामा समाजमें पूजित देखी जाती हैं।

लामागण पितृपुरुषोंके प्रेतोद्दिष्ट श्राद्ध और पिण्डदानादि बड़ी श्रद्धापूर्वक करते हैं। वे लोग यमराजको नरकका अधिपति कह कर विश्वास करते हैं। सञ्जीव, कालसूत्र, सङ्घात, रौरव, महारौरव, तापन, प्रतापन और अवीचि नामक ८ अग्निमय तथा अर्बुद, निरर्बुद, अतत, हहव, उत्पल, पद्म और पुण्डरीक नामक ८ शीतमय और तद्भिन्न पृथ्वीपृष्ठ पर, पर्वत पर, मरुदेशमें, उष्ण प्रस्रवण और ह्रदादिमें प्रायः ८४ हजार नरक निरूपित हैं। ये सब नरक 'लोकान्तरिक' नामसे प्रसिद्ध हैं। नरकसे ऊपर और सितवनसे नीचे वे प्रेतलोककी कल्पना करते हैं।

लामायतियोंकी मृतदेह ध्यानी बुद्धकी तरह आसन पर बैठा कर गाड़ी जाती हैं। जहां उन लोगकी समाधि होती है, वह स्थान तीर्थरूपमें गिना जाता है, निम्नश्रेणीके लामाओंकी लाश जलाई जाती है। पीछे उस भस्म वा अस्थिको गाड़ कर उसके ऊपर एक एक बुद्धमूर्त्ति स्थापित कर देते हैं। साधारण व्यक्तिके मरने पर किसी प्रकारका उत्सव नहीं मनाया जाता। कहीं कहीं वे लोग लाशको पर्वत पर फेंक देते हैं। कहीं कहीं लाश फेंकनेके लिये दीवारसे घिरा हुआ समाधिक्षेत्र विद्यमान है। मङ्गोलीय लामा कभी कभी मृतदेहको गाड़ देते हैं और उसके ऊपर पत्थरके टुकड़े रख कर जन्ममृत्युका संक्षिप्त इतिहास लिख रखते हैं। पर्वत पर इस उद्देशसे लाश फेंकी जाती है, जिससे मांस खानेवाले पशु पक्षी उसका मांस खावे। कहीं कहीं वे लाशको जलाते भी हैं। छोटे छोटे बच्चोंके मरने पर उनके माता पिता उन्हें रास्तेको बगलमें फेंक देते हैं। स्पितिमें दाह, समाधिस्थ वा नदीके जलमें बहा देनेका नियम है। मृत्युके बाद प्रेतकी मङ्गलकामनासे वे लोग मन्त्र पढ़ते हैं। एकमात्र लाल पगड़ी पहननेवाले सामानी गे लोङ लामा ही विवाह करते हैं।

तिब्बतीय बौद्धधर्मका दूसरा दूसरा हाल परिव्राजक बौद्धाचार्योंकी जीवनीमें तथा बौद्धधर्म, प्रतीत्यसमुत्पाद, भवचक्र, भौतिकविद्या, भोजविद्या और तिब्बत शब्दमें संक्षेपमें दिया गया है। अतएव यहां पर उनका उल्लेख नहीं दिया गया।

१ दलई लामा-वंशकी तालिका।

संख्या।	नाम।
१	दगेदुन ग्रब्-प।

२ द्गेदुन ग्रामत्सो ।
३ षसोध् नम्स् ।
४ योन् तान् ।
५ ङग द्बङ ब्लोव सन् ग्यंमत्सो ।
६ तषङस् ह्नस ग्यंमत्सो ।
७ स्कल् ब्जन् ।
८ भम् द्पल ।
९ लुङ्ग् तोंगस् ।
१० तषुल खृमस् ।
११ मखस् ग्रव् ।
१२ फ्रिन् लस् ।
१३ थुव् बस्तान् ।

इस वंशके प्रतिष्ठाता महालामा गेदुजका प्रवश स्के-बो निकट किसी स्थानमें जन्म हुआ। पीछे उन्होंने तमिल-हुण-पो सङ्घारामकी स्थापना की थी। छठे लामाके चरित्रदोषसे राज्यच्युत और निहत होने पर तातारराज गिस्किर खाँने पोतल-मठके अध्यक्षपद पर छगफोरिलस् ङग् वङ्ग-येषे-ग्यमत्षोको नियुक्त किया। किन्तु थोड़े ही दिनोंमें यह घोषणा कर दी गई कि लिथङ्ग नगरमें देपुङ्ग सङ्घारामके एक बौद्धयतिके पुत्ररूपमें कलजङ नामक छठे लामाने जन्म लिया। इस पर चीन-सम्राट्ने उस बालककी कारारुद्ध कर १७२० ई०के युद्धपर्यन्त तातार-राजके नियोजित लामाको ही लासा नगरीके धर्मगुरु-पद पर नियुक्त रखा। १७२८ ई०में नरहत्याके अपराधमें उन्होंने भोटराजको तख्त परसे उतार दिया और छोतिन सङ्घारामके केशरी रिनपोछेको उनके पद पर अभिषिक्त किया। इसके कुछ समय बाद उन्होंने फिरसे अपनी धाक जमाई। उनके राजत्वकालके १७४९ ई०में चीन-राजशक्ति तिब्बतसे हटा दी गई।

नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें महालामा बचपनमें ही अपने अपने अभिभावक द्वारा विष खिलवा कर यमपुर भेज दिये गये। शेषोक्त लामा तेरह ही वर्षकी अवस्थामें इस लोकसे चल बसे। पीछे १३वें लामा खुबतसान उस पदके अधिकारी हुए।

सुप्रसिद्ध "ताषि" लाम्यवंश।

१ खुग् प लहस तुसस—रतनग सङ्घारामके एक बौद्धयति।
२ शास्क्य पण्डित।
३ गुन् स्तोन दोर्जे पाल।
४ ग्सग्रव गेलेगपालजङ्गपा।
५ पञ्चेन् सोदनम पयोग् फितृलङपो।
६ चेन स प लोजन दोङ्ग ग्रव।

ये सब बौद्धयति या 'ताषि' लामा नामसे प्रसिद्ध थे या नहीं, कह नहीं सकते। क्योंकि तषिलहुणपोका प्रसिद्ध सङ्घाराम १५वीं सदीके प्रथम भागमें प्रतिष्ठित हुआ। अतएव उक्त तालिकाके अन्तिम दो लामाको ही तत्सामयिक मान सकते हैं। पञ्चेन रिनपोछे उपाधिधारी निम्नोक्त लामागण ही प्रकृत ताषि-लामारूपमें सर्वत्र पूजित होते हैं।

१ लोंजङ छोस् ग्यि ग्र्यालमत्सन।
२ „ येषे द्पल जङ पा।
३ „ द्पल लदन् येषे।
४ जेंस्तान पहि ञिम।
५ जेंद्पालादन छोस् ग्यि।

शाक्य-साम्प्रदायिक लामाचार्यगण।

१ शाक्य बसङपो।
२ यङ-वत्सुन।
३ वन्-करपो।
४ छ्यङरिन स्कोम्प।
५ कुङ्गरङ्ग।
६ यङ-वङ।
७ छङदेरि।
८ अङलेन।
९ लेगस-प-द्पल
१० लेङगे द्पल।
११ ओद्-जेर द्पल।
१२ ओद्-सेर-सेङगे।
१३ कुनरिन।
१४ दौन, चौद-द्पन।
१५ योन वत्सुन।
१६ ओद्-सेर सेङगेहेय।
१७ ग्यंल-व-सङपो।
१८ द्बङ-स्चङ्ग द्पल।

१९ सोद-नम-दपल।

२० ग्यँव-व-तसन पोग्येर।

२१ ङ्ग-व-तसुन।

ये मठाचार्यगण आज भी 'शाक्य पन छेन' कहलाते हैं। भूटानके मठाचार्य महालामागण कर-ग्यु-प सम्प्रदाय-के दक्षिण-डुक प शाखाके अन्तर्भुक्त हैं। इन भूटानियोंने ३री सदीके पहले बङ्गालको उत्तरी सीमा कोचविहार पर आक्रमण किया। भूटानीदलमें कुछ तिब्बतीय सैन्य भी थे। उनके अधिनायक डुपगणि ग्येपतुन नामक एक लामा क्रमशः सेनाओंके ऊपर आधिपत्य फैला कर धर्म-राजरूपमें गण्य हुए। उनके मरनेके बाद उनकी आत्माने लोगोंको धारणाके अनुसार लासानगरीके जिस बालकके शरीरमें प्रवेश किया था, उसीको भूटान लाया गया। यह लामावतार 'रिनपोछे' और 'धर्मराज' कहलाता है। बालक लामाने राजदण्डपरिचालनके लिये जो अभि-भावक नियुक्त किया वे ही देवराज कहलाये।

भूटानके लामाचार्यगण।

१ ङग वङ नम ग्यँल डुद् भोम दोर्जे।
२ „ भिग् मेद् तँगस पा।
३ „ छोस् क्यि ग्यँल मत्सान।
४ „ भिग मेद ङ्ग पो।
५ „ शाक्य सेङ गे।
६ „ भम ह् यङस ग्यँल मतयान।
७ „ छोस क्यि ङ्ग फुग।
८ „ भिग मेद् तँगस प (द्वितीयबार अवतीर्ण)
९ „ „ „ नोर्बु।
१० „ „ „ छोस ग्यँल।

इन दशों लामावतारको स्वतन्त्र जीवनी है। प्रथम लामा विवाहित और महालामा सोनस ग्यत्सोके सम-सामयिक थे। अवशिष्ट लामागण ब्रह्मचर्यावलम्बी हैं। धर्मराज ग्रीष्मकालमें तषिछा दुर्गमें रहते हैं। वह प्रासाद पत्थरका बना और सात मंजिला है। यहां प्रायः ५ सौ बौद्धयति रहते हैं। नेपालवासी लामाओं पर ये ही कर्तृत्व करते हैं। गुर्खा-गवर्नमेण्ट उनके विरोधी नहीं हैं।

खलकप्रदेशवासी मङ्गोलियोंके प्रधान धर्माध्यक्ष उर्ग्या-कुरेन नामक स्थानमें वास करते हैं। ये लोग जेत्सुन-दम्प नामसे परिचित हैं। खलकवासी मङ्गोलियोंका विश्वास है, कि सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक लामा तारनाथ उन लोगोंके जेत्सुन दम्पियोंके शरीरमें बार बार अवतीर्ण हो धर्म विस्तार करते हैं। मङ्गोलियोंका उर्ग्या सङ्घा-राम पहले शाक्य-सम्प्रदायभुक्त था। पीछे वह गे-लुप साम्प्रदायिक मठाश्रममें परिणत हुआ है।

सम्राट् कङ्ग-हि'के शासनकालमें (१६६२ १७२३ ई०) पीतनदी तीरस्थ कोकौ-खातान नगरमें धर्माचार्य जेत्सुन-दम्प रहते थे। उस समय कालमक वा सिलउथ जातिके साथ खलकोंका झगड़ा खड़ा हुआ। खलकोंने परास्त हो कर चीनराजका आश्रय लिया। इस पर कालमाकोंने चीन-सम्राट के निकट जेत्सुनदम्प और उनके भाई राज-कुमार तुश्छेतु खांको उन्हें प्रत्यर्पण करनेकी प्रार्थना की। किन्तु सम्राट् के राजी नहीं होने पर उन्होंने दलई-लामाको मध्यस्थ बनाया। दलई-लामा वा उनके प्रति-निधिने विचार करके उक्त दोनों राजकुमारोंको सौंप देनेका हुकुम दिया। इससे सम्राट् के साथ कालमाक जातिका युद्ध हुआ। इस समय एक दिन सम्राट् जेत्सुन दम्पसे मिलने गये। जेत्सुनने उनका अपमान किया। राजाने क्रुद्ध हो कर उनका शिर काट डालनेका हुकुम दिया। इस घटनासे खलक लोग विद्रोही हो उठे और जेत्सुनदम्पने यह घोषणा कर दी, कि वे सम्राट् से खुलमखुला युद्ध करना चाहते हैं। चीन-सम्राट् ने विद्रोहकी सूचना देख दलई-लामाकी शरण ली। उनके विचारसे यही स्थिर हुआ, कि जेत्सुनदम्पके तीरवर्ती अवतार तिब्बतमें ही होंगे। खलकवासिगण इसी समयसे स्वदेशस्थ मिक श्रेष्ठ पुरोहित होनेसे वञ्चित हुए।

अभी मध्य वा पश्चिम-तिब्बतसे ही साधारणतः जेत्सुनदम्पका अवतार आविर्भूत होता है। वर्तमान जेत्सुनदम्पका लासा-नगरीके बाजारके समीप जन्म हुआ था। वे देपुङ्ग सङ्घाराममें गेलुग-प लामाके विद्यार्थी रूपमें प्रविष्ट हुए। किन्तु उनके पांचवें वर्षमें पदार्पण करते ही खलक लोग उन्हें उर्गा ले गये। उनके साथ देपुङ्ग लामा उनके शिक्षकरूपमें गये थे।

अवतारूपमें पूज्य पूर्वोक्त धर्माचार्योंके अलावा

उनकी अपेक्षा हीनप्रभाव-सम्पन्न और भी कितने लामाचार्य हैं। ये ज्योतिःप्राप्त वा देहान्तधारी कह कर पूजित हैं। इस श्रेणीके लामाचार्य तिब्बतमें ३०, उत्तर-मङ्गोलियामें १९, दक्षिण-मङ्गोलियामें ५७, कोकोनोरमें ३५, छियामदो आंजें छवनमें ५ और पेकिनमें १४ हैं। इन सब देहान्तरप्रविष्ट लामाके मध्य पश्चिम-तिब्बतके सेङ्छेन रिणपोछे, यङ्जिन-लो-प, विल्लुङ, लो-छेन, क्यिजर-तिङ्गि, दे-छन-अलिग, कङला और कोङ तथा खाम विभागमें तु, छम-दो दोर्जे आदि प्रधान हैं।

पेकिनके लामामण्डलको तिब्बतीय भाषामें छङ-स्क्य (शाक्य) कहते हैं तथा यहांके लामाचार्य रोलपहोके अवतारूपमें पूजित हैं। सम्राट् कङ्ग-हि-के शासनकालमें १६९०से १७०० ई०के मध्य वे दैवशक्तिसम्पन्न हो गये थे। सम्राट्ने उन पर विश्वास कर उन्हें मध्य मङ्गोलियाका धर्माध्यक्ष पद प्रदान किया।

लदाकके अवतीर्ण लामागण कुषौ नामसे प्रसिद्ध हैं। यमदोक ह्रदतोरस्थ सङ्घाराममें एक बौद्ध रमणीने आचार्याणीका पद पाया है। वे वज्रवाराहीकी अवतार मानी जाती थी। मि० बोगल उनसे जा कर मिले थे।

लामाचार्यगण देहत्याग करनेके समय अपने अपने पुनर्जन्मका हाल बतला गये हैं। वे लोग किस ग्राममें किस परिवारमें जन्म लेंगे वह भी कह दिया करते थे। किन्तु वर्त्तमान समयमें उस लामावतारका निर्वाचन और परीक्षा स्वतन्त्र प्रथासे की जाती है। मृत लामाचार्य किस नामसे अवतीर्ण हो सकते हैं। पहले ११७ विशुद्धचेता लाला एकत्र हो उसका नाम निर्द्धारण कर लेते हैं। नामनिर्देश करते समय भजन और पूजन होता है। जितने पवित्र नाम उनके मनमें आते हैं उन्हें वे एक एक कागजके टुकड़े पर लिख एक स्वर्णपात्रमें रख देते हैं। पीछे स्तोत्रगान करते करते ३१से ७१ दिन तक उसमेंसे एक एक कागज निकालते हैं। उन कागजोंके मध्य नव अवतारका नाम पाया जाता है। पेकिनराज 'नंछुङ'की भविष्यवाणी पर विश्वास कर महालामा नियुक्त करते हैं। लामाचार्यकी निर्वाचन-प्रणालीका गूढ़ रहस्य और उसके प्रकृत तत्त्वका मर्मोद्घाटन अनावश्यक जान कर नहीं लिखा गया।

लामा (हिं० पु०) घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु। यह ऊंटकी तरहका होता है। आकारमें यह ऊंटसे कुछ मोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिकामें पाया जाता है। यह बहुत चपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है, तब तक पानीकी कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उंगलियां अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उंगलीमें एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोएं बहुत मुलायम होते हैं और इसकी खालका चरसा बहुत होता है, इसीलिये कुत्तोंकी सहायतासे इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है, तब यह उस पर थूक देता है जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशामें इसे ग्वाना और पालतू दशामें लामा कहते हैं। लंबा देखो।

लामो (हिं० पु०) एक प्रकारका फल। यह प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और दिल्ली तथा राजपूतानेकी ओर पाया जाता है। इसकी तरकारी बनाई जाती है।

लायक (अ० वि०) १ उचित, ठीक, वाजिब। २ उपयुक्त, मुनासिब। ३ सुयोग्य, गुणवान्।

लायक (सं० पु०) संलग्न, जुड़ा हुआ।

लायकी (अ० स्त्री०) १ लायक होनेका भाव या धर्म। २ सुयोग्यता, काबिलीयत।

लायची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

लायल (अं० वि०) राजभक्त।

लायलटी (अं० स्त्री०) राजभक्ति।

लार (हिं० स्त्री०) १ वह पतला लसदार थूक जो कोई बहुत कड़ई चीज खाने या मुंहमें कोई दवा आदि लगाने पर तारके रूपमें निकलता है। २ लासा, लुआब। ३ कतार, पंक्ति। (क्रि० वि०) ४ साथ पीछे।

लारेन्स (लार्ड Sir John Lawrence Bart. K, C. B)—भारतके एक अंगरेज-राजप्रतिनिधि। १८६३ ई०में लार्ड एलगिन (Alexander Bruce, Earl of Elgin and Kincardine)की धर्मशालामें अकस्मात् मृत्यु हो जानेसे तथा ओहबी नामक मुगल-सम्प्रदायकी विद्रोहिता देख कर लण्डनकी मन्त्रिसभा दहल गई और उन्होंने महामति सरजान लारेन्सको भारतके गवर्नर जनरल और

वाइसराय बना कर भेजा। तदनुसार १८६४ ई०को १२वीं जनवरीको कलकत्तेमें आ कर उन्होंने राजकार्यका भार अपने हाथ लिया। भारतमें आ कर ही वे अम्बाला अभिमानका अवसान देख कर कुछ निश्चिन्त हुए। क्योंकि उस समय चीनके आन्तर्जातिक युद्ध और धर्मोन्मत्त मुसलमानोंकी विद्रोहिता अंगरेजोंके वाणिज्यस्वार्थमें बाधा डाल रही थी। उसी सालके अक्तूबर मासमें उन्होंने लाहोरमें दरबार किया और ६ सौ राजाओंसे परिवृत्त हो भारत-राज्यमें जिससे शान्ति स्थापित हो उसका उपाय कर दिया।

इस समय बङ्गाल-गवर्मेण्ट भूटान जातिके उपद्रवसे तंग तंग आ गई थी। इन दुर्वृत्त डकैतोंका दमन करनेके अभिप्रायसे इन्होंने मालकाष्टर, डान्सफोर्ड, रिचार्डसन, गफ, पिउ आदि सेनापतियोंके अधीन अङ्गरेज-सेनादलको भिन्न दिशासे भूटान पर आक्रमण करनेका हुकुम दे दिया। तदनुसार अङ्गरेजी-सेना भूटानकी ओर दौड़ पड़ी। नाना स्थानोंमें युद्ध करके भी भूटानवासी अङ्गरेज वाहिनीको परास्त न कर सके। आखिर उन्होंने अङ्गरेजोंसे सन्धि कर ली। अङ्गरेज राजने भूटानके देवराजके जो सब प्रदेश भारत-सीमान्तभुक्त कर लिये थे उसके लिये वे भूटानपतिको वार्षिक २५ हजार रुपये देनेको राजी हुए। इससे रक्तक्षयकारी भूटान युद्धका अवसान हुआ।

इस समय १८६५ ई०में प्रधान सेनापति सर ह्यु रोजने पदत्याग किया। उस पद पर सर विलियम रोज मान्सफिल्ड के, सी, बी, नियुक्त हुए। इन्होंने शतद्रु, पञ्जाब, सिपाही-विद्रोह और क्रिमियाके युद्धमें बड़ी वीरता दिखलाई थी।

उसी साल राजप्रतिनिधि लारेन्सने पञ्जाब और अयोध्याकी प्रजाओंके हितसाधनमें कोई कसर उठा न रखी थी। १८६६ ई०में उड़ीसामें महा दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। वह धीरे धीरे ४ मील लंबे और ७० मील चौड़े स्थानमें फैल गया। मन्द्राजके लाट हारिशने इस समय विशेष उदारताका परिचय दिया था। इस महामारीमें प्रायः ८ लाख आदमी करालकालके गालमें फंस गये थे।

इस समय १८६७ ई०में महिसुरराजका राज्याधिकार ले कर महिसुरमें गोलमाल खड़ा हुआ। महिसुर-राजने कई बार लार्ड डलहौसी, कैनिङ्ग, एलगिन और लारेन्सके पास निवेदन-पत्र भेजा था। लारेन्सने बड़ी गंभीरता और बुद्धिमत्ताके साथ उसका भार भारत-सचिव (Conservative Secretary of State for India.)के हाथ सौंपा। भारत-सचिवने महिसुरराजके दत्तकपुत्रको राज्यका अधिकारी ठहराया। उनके अधिकारकालमें मिस्र और आबिसिनिया-युद्धमें भारतवर्षसे देशी सेनादल बहुत दूर पश्चिम भेजा गया था। उक्त वर्षके भारत-प्रतिनिधिने लखनऊ नगरमें एक राजदरबार बैठाया। उसमें वहांके उत्तर पश्चिम भारतवासी तालुकदार, जमींदार और अयोध्याके प्रजासाधारणने भारतेश्वरी विक्टोरियाके प्रति सम्मान और अङ्गरेज-गवर्मेण्टके प्रति राजभक्तिका चरम-निदर्शन दिखलाया था।

उसी साल रूसराजसेनापतियोंने मध्य-एशियाके बोखारा राज्यमें तथा उजबेकिस्तान प्रदेशमें आ कर वहांके अमीरको आश्रय दिया था। अमीरके लड़के विद्रोही प्रजाओंके साथ मिल कर पितृसिंहासन पर अधिकार करना चाहते थे। किन्तु कुछ कर न सके, क्योंकि रूस-सेनासे अमीरको खासी मदद मिलती थी। अपने राजपदको सुदृढ़ कर अमीरने कृतज्ञता-स्वरूप रसियनोंको बुखारामें स्थान दे दिया। भारतवर्षमें रसियनोंका विपज्जनक समझ कर लार्ड-लारेन्सने अफगानपति और अङ्गरेजोंके मित्र दोस्त महम्मदके पुत्र शेरअलीको काबुलके सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार वे अङ्गरेज जाति और राज्यकी भलाई करनेमें तत्पर हो गये। कुछ समय बाद शेरअली राज्यसे निकाले गये तथा एक अफगान-राजपुङ्गव रूस-सेनादलमें मिल कर राज्य पानेके लिये षड्यन्त्र करने लगे। इस गोलमालके समय महामति लारेन्सने बड़ी गंभीरताके साथ निरपेक्षताका अवलम्बन किया था। उनकी इस निरपेक्ष राजनीतिको राजनीतिज्ञ लोग "as masterly in activity" कह कर बड़ी तारीफ करते हैं।

वे भारतवर्षमें प्रजाकी सुखवृद्धिके लिये नहर कटवा गये हैं। उस समय इन्होंने भारतवर्षमें तमाम नहर

काटनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु राजकोषमें उतने रुपये न रहनेके कारण वह प्रस्ताव स्थगित रहा। इनके आदेशसे भारतके गवर्मेण्ट स्कूलोंमें बाइबिल-ग्रन्थ पाठ्य-पुस्तकरूपमें व्यवहृत हुआ था।

१८६९ ई०में वे भारतके प्रतिनिधिका पद छोड़ कर २७वीं मार्चको इङ्गलैण्ड वापस आये। भारतसाम्राज्ञीने उन्हें (Baron Lawrence of the Punjab and Grately in the Country of Southamton) मर्यादा तथा तरह तरहकी मान्यसूचक उपाधि और पारितोषिक दिया था। १८७८ ई में उनका देहान्त हुआ।

लारेन्स (सर-हेनरी)—एक अंगरेज-सेनापति। इन्होंने गदरके समय अयोध्याके विद्रोहिदलके साथ युद्ध करके बड़ी वीरता दिखलाई थी। लखनऊके अवरोधकालमें तथा चिनहुतके युद्धमें इन्होंने अंगरेजोंकी स्वार्थरक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया था। चिनहुतके युद्धमें विद्रोहिदलने जयलाभ कर रेसिडेन्सी पर चढ़ाई कर दी। उन लोगोंका एक गोला हेनरी लारेन्सकी कमरमें ऐसा लगा कि वे ४थी जुलाईको इस लोकसे चल बसे।

लार्काकोल—पश्चिमी बंगालके पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाली प्रसिद्ध कोल जातिकी एक शाखा। ये बड़े दुर्द्धर्ष होते हैं। कोल देखो।

लार्काना—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्धुप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २५° ५३´ से २८° उ० तथा देशा० ६७° ११´ से ६८° ३३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०९१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शकर और अपर सिन्द फ्रन्टियर डिष्ट्रिक्ट, पूर्वमें सिन्ध नदी, खैरपुर राज्य और हैदराबाद जिला, दक्षिणमें कराची जिला और पश्चिममें खीरथर पर्वतमाला है। लरके वा लदाक जातिसे जो एक समय लार्काना उपविभागमें रहती थी, जिलेका नामकरण हुआ है।

इस जिलेकी प्राकृतिक शोभा उतनी चित्ताकर्षक नहीं है। केवल सिन्धुनद और पश्चिम नारानदी तथा नारासे गार-खाल तकका भूभाग हमेशा हराभरा दिखाई देता है। दूसरे दूसरे स्थानकी जमीन ऊषर है। यहां बहुत-सी नहरें हैं, इस कारण खेती बारीमें बड़ी सुविधा है। स्थानीय जमींदार और गवर्मेण्टसे वे सब नहरें काटी गई हैं। उनमेंसे गवर्मेण्टकी नारा नहर सबसे बड़ी है। उसकी लम्बाई ३० मील और चौड़ाई १०० फुट है।

इस जिलेका इतिहास शकर और करांची जिलेके साथ मिला हुआ है। कलहोरा वंशमें जब आपसमें लड़ाई होती थी, तब एक ब्राहुई-सरदार मारा गया था। उसीके क्षतिपूरणस्वरूप लार्कानाका कुछ अंश उसके वंशधरको दिया गया। पीछे तालपुरोंने उसे छीन कर अपने दखलमें कर लिया। शाहशुजाके युद्धके बाद तालपुरके मीरोंमें लार्काना उपविभाग बंट गया। पीछे सिन्धविजयके साथ साथ यह जिला भी अंगरेजोंके हाथ लगा।

इस जिलेमें ५ शहर और ७०८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है। सैकड़े पीछे ६४ मनुष्य सिन्धी भाषा बोलते हैं। विद्याशिक्षामें इस प्रदेशके चौबीस जिलोंमें इसका स्थान इक्कीसवां आया है। अभी कुल मिला कर ६०० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ८ अस्पताल हैं। स्थानीय प्राचीन कीर्त्तियोंके निदर्शनस्वरूप एक पुराना किला, शाहाल महम्मद कलहोरा तथा उनके प्रधान मन्त्री शाहबहादुरका मकबरा विद्यमान है। शाहाल-महम्मदके पौत्र आदम शाह एक प्रसिद्ध फकीर थे। उनके वंशधरोंने एक समय सिन्धुप्रदेशका शासन किया था।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें लार्काना, लबदरिया, कम्बर और रतो दरो तालुक लगते हैं।

३ लार्काना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७° २७´ से २७° ४६´ उ० तथा देशा० ६८° १´ से ६८° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६७ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें लारकाना नामक १ शहर और ७२ ग्राम लगते हैं। सिन्ध नदीके किनारे गेहूं बहुतायतसे उपजता है। जंगलमें आम और खजूरके पेड़ अनेक देखे जाते हैं।

४ लार्काना तालुकका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २७° ३३´ उ० तथा देशा० ६८° १६´ पू० गार-नहरके बाएं किनारे अवस्थित है। शिकारपुर शहरसे यह ४० मील दूर पड़ता है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम देख कर अंगरेज भ्रमण-

कारिगण इसे सिन्धुप्रदेशका नन्दनकानन (Eden of Sind) बतला गये हैं। यहां ३ बाजार और कुछ राज-कार्यालय हैं। जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। ताल-पुरके मीर राजाओंके अधिकारकालमें पूर्वकथित दुर्ग अस्त्रागाररूपमें व्यवहृत था। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बादसे उसका कुछ अंश अस्पताल तथा कुछ कारागार रूपमें व्यवहृत होता है। शाहबहारका मकबरा और पूर्वोक्त दुर्ग यहांके प्राचीनत्वका परिचायक है। शहरमें एक चिकित्सालय, एक एङ्गलोवर्नाक्युलर स्कूल और एक वर्नाक्युलर स्कूल है। १८८५ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

लाखोनी (लाड़खानी)—राजपूतानाके प्रसिद्ध दस्यु सम्प्र-दाय। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ये सब दस्युवृत्ति द्वारा विशेष प्रतिपत्ति लाभ की थी। ये क्रमशः पेन्धारी और कजक दस्यु-सम्प्रदायके समान एक सुप्रणालीबद्ध दल संग्रह किये थे। इसी कारण वहांके आस पासके अधि-वासी भयभीत हो उठे थे। इस दलमें करीब ५ सौ अश्वारोही दस्यु-सेना तथा बहुतसे पैदल और लाठी-वाले थे। वे लोग जिस समय भीमवेगसे जिस किसी स्थान पर आक्रमण करते, उस समय वहांके अधिवासी-गण घर-द्वार छोड़ कर भाग जाते थे। ये लोग मारवाड़-राज्यके अन्तर्गत सम्वर-राज्यके अधीनस्थ दन्तरामगढ़ भूभागको जय कर एक छोटा सामन्तराज्य विस्तारके साथ आगे बढ़े थे। उक्त दन्तरामगढ़के सिवा ये दस्यु-सम्प्रदाय नसूल तप्पा और ३० मौजे लाभ किये थे। इस दस्यु-सम्प्रदायको शान्त रखनेके लिये बिकानेर और मारवाड़के राजाने उन्हीं लोगोंके तरफका बहुत-सा मौजा प्रदान किया था।

लार्ड (अं० पु०) १ परमेश्वर, ईश्वर। २ मालिक, स्वामी। ३ भूम्यधिकारी, जमींदार। ४ इंगलैण्डके बड़े बड़े जमींदारों और रईसों आदिको मिलनेवाली कतिपय बड़ी उपाधियोंका सूचक शब्द। यह उनके नामके पहिले लगाया जाता है।

लार्ड गाफ—एक अंगरेज-सेनापति। गाफ देखो।

लार्ड लेक—एक अंगरेज-सेनापति। लेक देखो।

लार्ड सभा (हिं० स्त्री०) ब्रिटिश पार्लमेण्टकी वह शाखा या सभा जिसमें बड़े बड़े तालुकेदारों और अमीरोंके प्रतिनिधि होते हैं। इनकी संख्या लगभग सात सौ है। इस सभाको अंगरेजीमें हाउस आफ लार्डस् कहते हैं।

लाल (हिं० पु०) १ छोटा और प्रिय बालक, प्यारा बच्चा। २ पुत्र, बेटा। ३ प्रिय व्यक्ति, प्यारा आदमी। ४ श्रीकृष्ण-चन्द्रका एक नाम। ५ दुलार, प्यार। ६ पतला थूक जो प्रायः बच्चों और वृद्धोंके मुंहसे बहा करता है, लार। ७ एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया। इसका शरीर कुछ भूरापन लिये लाल रंगका होता है और इस पर छोटी छोटी सफेद बुंदकियां पड़ी रहती हैं। यह बहुत कोमल तथा चंचल होता है और इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे प्रायः पालते हैं। इसकी मादाको मुनियां कहते हैं। ८ चौपायोंके मुंहका एक रोग।

लाल (फा० पु०) १ मानिक या माणिक्य नामका रत्न। मानिक देखो। (वि०) २ मानिक, बीरबहूटी या लहू आदिके रंगका; रक्त वर्ण; सुर्ख। ३ जिसका चेहरा क्रोध-के मारे तमतमा गया हो, बहुत अधिक क्रुद्ध। ४ चौसर-के खेलमें गोटी जो चारों ओरसे घूम कर बिलकुल बीचके खानेमें पहुंच गई हो और जिसके लिये कोई चाल बाकी न रह गई हो। ५ जिसकी सब गोटियां बीचके घरमें पहुंच गई हों और जिसे कोई चाल चलना बाकी न रह गया हो। ऐसा खिलाड़ी जीता हुआ समझा जाता है। ६ जो खेलमें औरोंसे पहले जीत गया हो।

लाल (सं० पु०) १ एक ज्योतिषी और विख्यात पंडित। ये देवीदासके पिता थे। इनका जन्मस्थान कान्यकुब्ज था। २ एक लुसाई-दलपति। इन्होंने अंगरेज-विपक्षमें युद्ध कर बड़ी वीरता दिखाई थी।

लाल अंबारी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पटुआ जिसके बीये दवामें काम आते हैं। २ पटसनको जातिका एक प्रकारका पौधा। इसे पटवा भी कहते हैं। पटवा देखो।

लाल अगिन (हिं० पु०) प्रायः एक बालिश्त लंबा भूरे रंगका एक प्रकारका पक्षी। इसका गला नीचेको ओर सफेद होता है। यह मध्यभारत तथा उड़ीसामें अधि-कतासे पाया जाता है और घास फूससे प्यालेके आकारका घोंसला बना कर उसमें चार तक अण्डे देता है।

लाल आलू (हिं० पु०) १ रतालू। २ अरुई।

लाल इलायची (हिं० स्त्री०) बड़ी इलायची। इलायची देखो।

लाल उद्दीन—नजीबाबादके नवाबके भाई। ये १८५७ ई०के गदरमें शामिल थे। इसलिये १८५८ ई०के अप्रेल महीनेमें बृटिश-राजके विचाराधीन हुए।

लालक (सं० त्रि०) १ लालनकारी, प्यार करनेवाला। (पु०) २ एक हिन्दू राजा। इनके पौत्र हथिसिंहकी कन्यासे कलिङ्गराज खारवेल (भिखुराज) ने विवाह किया।

लालकङ्क—लाल रंगकी कङ्क जातिकी एक चिड़िया।

लालकच्चू (हिं० पु०) गजकर्ण आलू, बंड।

लाल कलमी (हिं० पु०) चाँदनी या गुलचाँदनी नामका पौधा या उसका फूल।

लाल कवि—१ एक भाषा कवि। ये राजा छत्रसाल हाड़ा कोटेवालेके दरबारमें थे। जिस समय दाराशिकोह और औरङ्गजेब बादशाहीके लिये आपसमें फतुहामें लड़ रहे थे और जिस युद्धमें राजा छत्रसाल आहत हुए थे, उस युद्धमें ये कवि मौजूद थे। इन्होंने नायिकाभेदका 'विष्णु-विलास' नामक एक भाषाका ग्रन्थ भी बनाया है।

२ एक कवि। इनका नाम बिहारीलाल था। ये जातिके ब्राह्मण थे और टिकमापुरमें रहते थे। इनका छाप नाम 'लाल कवि' था। ये सं० १८८५ में उत्पन्न हुए थे और महाकवि मतिरामके वंशधरोंमें-से थे। ये ही अपने वंशके अन्तिम महाकवि कहे जा सकते हैं।

३ बनारसके रहनेवाले एक भाट। ये काशीनरेश राजा चेतसिंहके दरबारमें रहते थे। इन्होंने नायिकाभेद 'आनन्दरस' और सतसईकी टीका 'लालचन्द्रिका' नामके दो ग्रन्थ बनाये हैं।

४ एक भाषा-कवि। ये संस्कृत भाषा भी जानते थे। इन्होंने चाणक्यनीतिका भाषान्तर किया।

५ एक हिन्दीके विद्वान्। इनका पूरा नाम था लल्लू लाल जी। ये गुजराती थे परन्तु आगरेमें रहते थे। संवत् १८६२में इनका जन्म हुआ था। कहते हैं, कि आधुनिक हिन्दीके यही आचार्य थे। इन्होंने सभाविलास, माधव-विलास, प्रेमसागर-वार्त्तिक, राजनीति आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं।

लालकीन (हिं० पु०) नानकीन देखो।

लालकुमारी—दिल्लीके बादशाह जाहान्दार शाहकी एक प्रियतमा रखेली। नाचनेवालीके गर्भसे इसका जन्म हुआ। जवानीमें भी लालकुमारी वेश्याकी तरह मह-फिल आदिमें नाचती गाती थी। इसकी सुरीली तान और रूपलावण्य पर मुग्ध हो कर जाहान्दारने इस पर आत्मजीवन समर्पण कर दिया। उसीके अनुग्रहसे यह वेश्या राजकुलाङ्गनारूपमें गिनी जाने लगी और उसका वंश राजपुरुषोंसे बड़ा आदर पाने लगा। यहां तक, कि बहुत समय लालकुमारीके स्वजन उमरावोंका अनादर कर बेरोक-टोक सब काम करते थे।

लाल खाँ—भारतके एक प्रसिद्ध गवैये। ये दिल्लीश्वर अकबर शाह और जहांगीर बादशाके दरबारमें रहते थे। १६०६ ई०में इन्होंने इहलीला संवरण की।

लालखानी—उत्तर-पश्चिम भारतवासी एक मुसलमान-सम्प्रदाय। ये पहले राजपूत थे, पीछे इसलामधर्म ग्रहण करने पर अपने सरदार लाल खाँके नामानुसार लालखानी नामसे परिचित हुए।

ये अपनेको राजपूतानेके अन्तर्गत राजोड़के बड़े गुर्जरवंशीय ठाकुर-सामन्त कुमार प्रतापसिंहका वंशधर मानते हैं। कुमार प्रतापसिंहने मेवाड़की लड़ाईमें दिल्ली-श्वर पृथ्वीराजकी सहायता की। युद्धमें जाते समय उन्होंने रास्तेमें मीना जातिका विद्रोह दमन करनेके लिये कैला और अलीगढ़में डोर-राज्यका साहाय्य किया था, इसलिये राजाने खुशीसे राजकन्या उनको ब्याह दी और उन्हें बुलन्द-शहरके आस पासके १५० गांव पुरस्कार या दहेजमें दिये। उक्त प्रतापसिंहसे ग्यारह पीढ़ी बाद लालसिंहने जन्म लिया। मुगल-सम्राट् अकबर शाहने लालसिंहकी वीरता और राजभक्ति पर प्रसन्न हो कर उन्हें खानकी उपाधि दी। उसी समयसे यह राजवंश लाल-खानी नामसे परिचित हुआ। लाल खाँके पौत्र इतिमद राय मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके समय इसलामधर्ममें दीक्षित हुए। इतिमद रायसे सात पीढ़ी नीचे नाहरअली खाँ और उनके भतीजे दून्दे खाँने बुलन्दशहरके कुमोना दुर्गमें रह कर अङ्गरेज-सेनासे युद्ध किया था। उन्होंने पीछे अपना अपना अधिकृत प्रदेश दुर्गादिसे सुरक्षित कर

रखा। अङ्गरेज राजने बादमें यह सम्पत्ति अलीमर्दन खाँ नामक इस वंशके एक व्यक्तिको दे दी। अभी छितावी, पहासु और धर्मपुर आदि स्थानोंमें यह सामन्तवंश बड़ी प्रतिष्ठाके साथ वास करते हैं। ये आज भी अपनी हिन्दू-मर्यादा भूले नहीं हैं। कुमार और ठाकुरानी उपाधि तथा विवाह-कार्यमें हिन्दू पद्धति आज भी इनमें चलती है। छितावी-शाखावंश इस समय गौड़ा मुसलमान होनेका उद्योग कर रहे हैं।

बहुतेरे इन्हें नौ मुसलिम नामसे भी पुकारते हैं। इनका आचार व्यवहार हिन्दू और मुसलमान दोनों सा है। ये इसलामधर्ममें दीक्षित ठाकुरवंशको छोड़ कर और किसीके साथ पुत्र-कन्याका आदान प्रदान नहीं करते। विवाहके समय कुलमर्यादा और गोत्रादि पर विशेष लक्ष्य रखते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु संस्कार मुसलमानों सा है। विवाहमें काज़ी पुरोहिताई करते हैं तथा शवदेह दफनाई जाती है। कोई भी कलमा नहीं पढ़ते। ये हिंदू-देवदेवीकी भी पूजा करते हैं।

लालगञ्ज—मुजफ्फरपुर जिलेकी हाजीपुर तहसीलका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह अक्षा० २५° ५२' उ० तथा देशा० ८५° १०' पू०के मध्य गण्डकके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। यहांसे चमड़े, तेलहन, अनाज, सोरा आदि द्रव्योंकी रपतनी होती है। नगरसे एक मील दक्षिण जिस गञ्जघाटसे माल-असबाब नाव पर लादा जाता है वह बसन्तघाट कहलाता है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह कुचानू नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। गोरखपुर-सेनानिवाससे सुलतानपुर जानेका रास्ता इसी नगर हो कर गया है। यहां एक सुन्दर बाज़ार है।

लालगञ्ज—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° १' उ० तथा देशा० ८२° २५' पू०के मध्य गाङ्गेय उपत्यकाके ताराघाट पहाड़ पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई ५०४ फुट है। यहां एक बाजार है।

लालगञ्ज—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलेकी दलमौ तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २६° ६' उ० तथा देशा० ८१° ० पू०के मध्य पड़ता है। इस नगरके पास ही एक हफ्तेमें दो दिन हाट लगती है। पहले यहां तहसीली सदर था। १८७६ ई०में वह दलमौ नगर उठ कर चला आया है।

लालगढ़—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां एक प्राचीन परीस्थान है।

(भविष्य० ब्रह्मख० ४८।१२५)

लालगला—उड़ीसा प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह जयपुर सामन्तराज्यके उत्तर (अक्षा० १९° ३५' उ० तथा देशा० ८३° १८' पू०)से निकल कर जयपुर और विजागापट्टम जिलेके बीच हो कर बहती हुई बंगालकी (अक्षा० १८° १२' उ० तथा देशा० ८४° पू०) खाड़ीमें आ गिरी है।

लालगिरिधर—एक भाषा कवि। ये बैसवारेके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म-संवत् १८०७ में हुआ था। इन्होंने नायिकाभेदका एक ग्रन्थ बनाया जिसे भाषाके कवि उत्तम समझते हैं।

लालगुली—बम्बई प्रदेशके चेल्लापुर उपविभागका एक प्रसिद्ध झरना। चेल्लापुर नगरसे ८ मील उत्तर काली नदी प्रायः ३०० फुट ऊंचेसे गिरती है। इस झरनेके पास एक प्राचीन दुर्ग है। कहते हैं, कि गोंड़-सरदार लोग दुर्दान्त शत्रु या कैदियोंको दुर्गकी छतसे इस गभीर जलधारामें फेंकते थे।

लालगुरु—उत्तर भारतमें रहनेवाली भंगी जातिके एक पूजित देवता। ये राक्षस आरण्य-किरात नामसे परिचित हैं।

लालगोल—मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह पद्मानदीके किनारे अवस्थित है और एक वाणिज्य-केन्द्रमें गिना जाता है।

लालङ्ग—आसामकी एक पहाड़ी जाति। आसाम देखो।

लालचंदन (हिं० पु०) एक प्रकारका चंदन। इसका पेड़ कदमें छोटा होता है और मैसूर प्रान्त तथा अर्काटमें बहुतायतसे पाया जाता है। इसके ऊपरकी लकड़ी सफेद और हीरकी लकड़ी कुछ कालापन लिये लाल होती है। इसे घिसनेसे बहुत ही लाल रंग और अच्छी सुगंध निकलती है। यह भी चंदनकी तरह माथे पर लगाया जाता है। विशेष विवरण रक्तचन्दन शब्दमें देखो।

लालच (हिं० पु०) कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करनेकी इतनी अधिक और ऐसा कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो, कोई चीज पानेकी बहुत बुरी तरह इच्छा करना, लोभ।

लाल चकवी (हिं० पु०) भैंसा।

लालचन्द—एक भाषा-कवि। कवित्त और कुण्डलिया छन्दोंमें इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालचन्द्र (सं० पु०) भाषालीलावतीके प्रणेता।

लालचोंच (हिं० पु०) शुक, तोता।

लालचाँद—उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इन्होंने फारसीमें एक दीवान बनाया। १८५२ ई०में इनको मृत्यु हुई।

लालची (हिं० वि०) जिसे बहुत अधिक लालच हो, लोभी।

लालचीता (हि० पु०) लाल फूलका चित्रक या चीता। चीता देखो।

लालचीनी (हि० पु०) एक प्रकारका कबूतर। इसका सारा शरीर सफेद और शिर पर लाल छिटकियां होती हैं।

लालटेन (हिं० स्त्री०) किसी प्रकारका वह खाना आदि जिसमें तेलका खजाना और जलानेके लिये बत्ती लगी रहती है। इसके चारों ओर तेज हवा और पानी आदिसे बचानेके लिये शीशा या इसी प्रकारका और कोई पार दर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाशके लिये ऐसे स्थानों पर होता है जहां या तो प्रकाशको प्रायः एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता होती है या ऐसी जगह स्थायिरूपसे रखनेके लिये होता है, जहां चारों ओर हवा आया करती है। इसे कंडील भी कहते हैं।

लालड़ी (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका नगीना। यह प्रायः नथों और बालियों आदिमें मोतीके दोनों ओर लगाया जाता है।

लालढङ्ग—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २९° ५२' उ० तथा देशा० ७८° २३' पू०के बीच पड़ता है। यहां १७७४ ई०में रोहिल्ला-सरदार फैजुल्ला खाँने तेतुनाकी लड़ाईमें अंगरेजोंसे हार खा कर आश्रय लिया था। अंगरेज और अयोध्याराजकी सेनाने जब इनका पीछा किया, तो इन्होंने कोई उपाय न देख यहीं अंगरेजोंसे सन्धि कर ली थी।

लालदरवाजा—उत्तर पश्चिम प्रदेशके सहारनपुर और देहरादुन जिलेकी मध्यवर्ती शिवालिक गिरिमालाका एक गिरिपथ। यह समुद्रकी तहसे २९३५ फुट ऊंचा है और अक्षा० ३३° १३' उ० तथा देशा० ७७° ५८' पू०के बीच पड़ता है।

लालदरवाजा—मुंगेरसे बहुत समीप गंगाके तट पर अवस्थित एक रेलवे स्टेशन। यहांसे मुंगेर कचहरी प्रायः एक मील दूर पड़ती है। गंगा पार करनेके लिये यहां जहाज भी लगता है।

लालदाना (हिं० पु०) लाल रंगका पोस्तेका दाना, लाल खसखस।

लालदास—अलवारवासी मेओजातिके एक साधु। ये लालदासी नामक वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे तथा १५४० ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कुछ दिन तक धौलीपुर, बन्दोली और गुरगाँव जिलेके डोड़ी गाँवमें जा कर अपना मत प्रचार किया। बन्दोलीमें रहते समय इनके एक पुत्रकी मृत्यु हो गई। वहीं उसका संस्कार किया गया। १६४८ ई०में जब इनकी मृत्यु हुई, उस समय इनके एक पुत्र और एक कन्या जीवित थी।

लालन (सं० क्ली०) लल-णिच्-ल्युट्। अत्यन्त स्नेह करना, प्रेमपूर्वक बालकोंका आदर करना, लाड़।

लालन (हिं० पु०) १ प्रिय, प्यारा बच्चा। २ कुमार, बालक। (स्त्री०) ३ चिरौंजी, पियाल।

लालनपालन (सं० क्ली०) यत्नपूर्वक प्रतिपालन, भरण-पोषण।

लालनीय (सं० त्रि०) लल-णिच्-अनीयर्। लालन करनेके योग्य, दुलार या प्यार करनेके लायक।

लालपानी (हिं० पु०) शराब, मद्य।

लालपिलका (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कबूतर। इसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लालपुर—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° २९' उ० तथा देशा० ८७° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। पूर्णिया नगरसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है।

लालपुर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६° ५´ उ० तथा देशा० ७८° ५४´ पू०के मध्य मुरादाबादसे अलमोरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

लालपुर—गुजरात-प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत हालर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° १२´ उ० तथा देशा० ७४° ६´ पू०के मध्य विस्तृत है।

लालपुर—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २६° ४७´ उ० तथा देशा० ८०° ६´ पू०के मध्य फतेगढ़-सेनानिवाससे कानपुर आनेके रास्ते पर अवस्थित है।

लालपेठा (हिं० पु०) कुम्हड़ा।

लालबहादुर—महिम्नस्तोत्र और शूद्रकृत्यके प्रणेता। ये लाल पंडितसे भी परिचित थे।

लालबांध—बंगालकी मल्लभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां एक प्राचीन दुर्ग और देव-मन्दिरादिका टूटा फूटा खंडहर पड़ा है।

लालबाक्या—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक शाखानदी। यह अदौरी गांवके पास बाग्मती नदीमें आ कर मिल गई है।

लालबाग—मुर्शिदाबाद जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ६´ से २४° २३´ उ० तथा देशा० ८७° ५६ से ८८°३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७० वर्गमील और जनसंख्या २ लाखके करीब है। इसमें मुर्शिदाबाद और आजिमगञ्ज नामक २ शहर और ६३२ ग्राम लगते हैं।

लालबाग—भारतीय मुसलमान राजाओंका प्रसिद्ध प्रमोद-उद्यान। पद्मराग मणि (लाल)की तरह यह हमेशा जगमगाता रहता था। इस कारण इसका लालबाग नाम हुआ है। उस उद्यानवाटिकाके चारों ओर रोशनीके घर थे जिससे इसकी शोभा और भी खिलती थी। धीरे धीरे यह एक छोटे नगरमें परिणत हो गया था। दाक्षिणात्यके अहमद नगर और बङ्गलूरमें ऐसी सौधमालासंकुल सुप्रसिद्ध उद्याननगरी आज भी विद्यमान है।

लालबाग—खान्देश जिलेका एक नगर। सौधमाला और वाणिज्यसमृद्धिसे यह नगर पूर्ण है।

लालबाजार—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

लालबुझक्कड़ (हिं० पु०) बातोंका अटकलपच्चू मतलब लगानेवाला, वह जो कोई बात जानता तो न हो पर यों हीं अंदाज लड़ाता हो।

लालबेग (हिं० पु०) १ लाल रंगका एक प्रकारका परदार कीड़ा। २ मुसलमान, भंगियों और मेहतरोंके एक कल्पित पीरका नाम।

लालबेगी—झाड़ूदार मेहतर सम्प्रदायभेद। ये लोग मुसलमान कह कर परिचित हैं, पर सुन्नत कोई भी नहीं कराता। सूअरका मांस ये लोग बे-रोक-टोक खाते हैं। यूरोपीय राजपुरुष अथवा वणिकोंके घर झाड़ूदारका काम करते हैं। परिष्कार परिच्छन्न रहनेके कारण दूसरे दूसरे नौकर इन्हें जमादार कह कर पुकारते हैं।

ये लोग यूरोपीय मुनीवोंका जूठा खाते और सभी प्रकारकी शराब पीते हैं। मृतदेह छूनेसे ये लोग अपनेको अपवित्र समझते हैं। इनके आचरित धर्म और क्रिया-पद्धति बहुत कुछ हिन्दू और मुसलमानकी रीति-सी है। मुसलमानोंकी तरह इन लोगोंमें भी एक वृद्धा रमणी घटकी बन कर पात्र और पात्रीका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करती हैं। किन्तु 'काबिन' वा विवाहका प्रतिज्ञापत्र तो नहीं लिखते, पर यह कबूल करते हैं, कि विवाहित पत्नीका अच्छी तरह लालन किया जायगा और उसके रहते घरमें दूसरी स्त्री नहीं लाई जा सकती।

विवाहके पूर्व दिन ये लोग "खन्दूरी" उत्सव तथा मुसलमान-सम्प्रदायके आचरित अन्यान्य कर्म करते हैं। किन्तु उस समय ये लोग आचार्य्य ब्राह्मणको नहीं बुलाते हैं। वरके घरमें कन्याका विवाह होनेसे पञ्चायतको १। रु० तथा कन्याके घरमें होनेसे।≶) आना सलामी देनी होती है।

कोई कोई लालबेगी रमजान पर्वमें उपवास करता है। किन्तु अधिकांश मनुष्य उसका पालन नहीं करते। मसजिदमें घुस कर इन्हें उपासना करनेका अधिकार नहीं है।

इन लोगोंकी अन्त्येष्टि-प्रथा स्वतन्त्र है। मुसलमानके निर्दिष्ट समाधिक्षेत्रमें ये लोग मृतदेहको नहीं दफना सकते। जङ्गलमें अथवा जनमानव-परिशून्य किसी अनुर्वर भूखण्डमें ये लोग लाश ले जा कर गाड़ देते हैं।

गाड़नेसे पहले ये पांच वस्त्रसे उसे ढक देते हैं। दोनों बाहुके नीचे दो रुमाल बांध देते, मस्तक एक गमछेसे ढक देते और पीछे एक कसावा या गमछा पहना कर जमीनमें गाड़ देते हैं। अनन्तर कब्रको मिट्टीसे भर कर उसके ऊपर एक चादर बिछा देते हैं। उसका नाम 'फूलकी चादर' है। उस चादरके चार कोनोंमें चार अगरके लकड़ी गाड़ते और आग लगा कर उसे भस्मसात् कर देते हैं। इसके बाद मुसलमानोंकी संस्कार-प्रथासे ही सभी काम होता है। मृत्युके बाद चार दिन मृत व्यक्तिके घरमें किसी प्रकारकी रोशनी वा आग नहीं जलाई जाती। इन दिनों वे पड़ोस वा किसी आत्मीयके घर भोजनादि करते हैं। पांचवें दिन मृतके घरके सामने एक थाल सुपारी रख कर फूलसे ढक देते हैं तथा उसी दिन स्वजातीय भोज होता है।

ये लोग हिन्दूके अनेक पर्वोंका पालन करते हैं तथा अनेक विषयोंमें हिन्दूकी आचारपद्धतिका अनुसरण कर कार्य्य करते हैं। दीवाली और होली पर्व ये लोग बड़ी धूमधामसे करते हैं। इस दिन ये लोग अपने आदि-पुरुष लालबेगके उद्देश्यसे मिट्टीकी एक पांच गुम्बजवाली मसजिद वा मकबरा बनाते हैं, उसके सामने मुर्गीको बलि दी जाती तथा उसके नाम पर पोलाव, शिरनी और मिष्टान्न चढ़ाया जाता है।

ऐतिहासिक इलियटका कहना है, कि इनके उपास्य आदिपुरुष वा कुलदेवता लालबेग शायद उत्तर पश्चिम भारतीय लालगुरु (राक्षस आरण्य किरात) होंगे। किन्तु वाराणसीवासी लालबेगी पीर जहरको ही (चिस्तिया साधु सैयद शाह जुहुर) लालबेग मानते हैं। पञ्जाबके कमार जिस प्रकार हज़रत दाऊद और रङ्कर पीर अली रंगरेजकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार वहांके मेहतर लालपीर वा बाबा फकीरकी उपासना किया करते हैं। लालगुरु देखो।

लालबेगी इस्लामधर्ममें दीक्षित होनेके बाद ही किसी मुसलमान साधुको अपना वंशप्रवर्त्तक मानते आ रहे हैं। उत्तर-भारतसे ये लोग नौकरीकी खोजमें बङ्गाल आ कर बस गये हैं।

लालबेगी—दरभंगा जिलेमें प्रवाहित एक नदी।

लालभरेंडा (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा झाड़। यह भारतके गरम प्रान्तोंमें उत्पन्न होता है। इसके बीजोंसे तेल निकलता है जो गठियाके रोगमें काम आता है। इसको उंदरबीबी भी कहते हैं।

लालमणि—प्रश्नसुधाकर और मुहूर्त्तदर्पणके प्रणेता।

लालमणि त्रिपाठी—परिभाषाशिरोमणि और विवाद-कौमुदी नामक व्याकरणके प्रणेता।

लालमणि भट्टाचार्य—निर्णयसारके रचयिता।

लालमणि हाट—रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर और प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान। यहां पटसन, तमाकू आदि द्रव्य बहुत परिमाणमें बेचनेके लिये लाया जाता है।

लालमन (हिं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ एक प्रकारका तोता। इसका सारा शरीर लाल, डैने हरे, चोंच गुलाबी और दुम काली होती है।

लालमाई—बङ्गालके पार्वत्य त्रिपुरा जिलेके अन्तर्गत एक शैल। यह कुमिल्ला नगरसे ३ मील पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें १० मील विस्तृत है। इस शैलश्रेणीकी ऊंचाई कहीं भी १०० फुटसे अधिक न होगी। इसका अधिकांश स्थान गभीर वनमालासे समाच्छन्न है। यहां लोहे और चांदीकी खान है। अङ्गरेज-गवर्मेण्टने २१ हजार रुपयेमें मैनामती और लालमाई शैलको त्रिपुराराजके हाथ बेच दिया है। इस शैलशिखर पर जङ्गलावृत-स्थानमें एक प्राचीन दुर्ग और कुछ पत्थरकी प्रतिमूर्त्ति पड़ी है। भास्कर-खोदित पत्थरके चित्रोंमें नाग और वराहमूर्त्ति देख कर यूरोपीयगण अनुमान करते हैं, कि वे सब ध्वस्त निदर्शन पर्वतवासी असभ्य अहिन्दू जातिकी कीर्त्ति है। किन्तु त्रिपुरा राजधानी कुमिल्लाके इतने समीप रहनेसे यह स्पष्ट अनुमान किया जाता है, कि वह त्रिपुरा-राजवंशके किसी प्राचीन राजाकी ही कीर्त्ति, मूर्त्ति शेषनाग और वराह अवतारके प्रतिपादक हैं। भारतवर्षसे बहुत दूर पूरब पार्वत्य विभागमें जब पहले पहल हिन्दूधर्म फैला, तब ही शायद यह दुर्ग और देवालय आदि बने होंगे। त्रिपुरामें वैष्णवधर्मकी प्रतिष्ठासे शाक्तधर्मका विलोप हुआ। मालूम होता है, उसी समय त्रिपुरावासीने शक्ति उपासनाके उस पूज्य स्थानको छोड़ दिया और धीरे धीरे वही जंगलसे ढक गया है।

सम्भवतः इस शैलशिखर पर लालमाई नामक शक्ति-मूर्त्ति और उनका मन्दिर प्रतिष्ठित था। कालक्रमसे वह मन्दिर और देवमूर्त्ति नष्ट हो गई है। किन्तु आज भी देवीके नाम पर वह पर्वत-पीठ घोषित होता है। कोई कोई कहते हैं, कि त्रिपुर-राजकुमारीने लालमाईके नामानुसार इस पर्वतका नाम रखा होगा। अनुमान होता है, कि उक्त राजकन्याने अपने नाम पर पर्वतके ऊपर देवमन्दिर और दुर्गादि बनाया होगा। उन्हींकी कीर्त्तिके निदर्शन प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति आज भी इधर उधर पड़े हैं।

लालमिर्च (हिं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध तिक्त फली। इसका व्यवहार प्रायः सारे संसारके व्यञ्जनोंमें मसालेके रूपमें होता है।

भारतवर्षके समतलक्षेत्रमें, काश्मीरकी निम्नतर शैलमाला पर तथा चन्द्रभागा-प्रवाहित उपत्यका-भूमिके ६५०० फुट ऊंचा स्थान पर भी इसका पेड़ उत्पन्न होता है। पहाड़ी मिर्च बहुत तिक्त होती है। काश्मीरके पहाड़ी प्रदेशमें ७ प्रकारकी लाल मिर्च देखी जाती हैं। लम्बाई, गठन और वर्ण द्वारा उसकी पृथकता जानी जाती है।

भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें तथा यूरोपीय राज्योंमें लालमिर्च विभिन्न नामोंसे परिचित हैं। हिन्दी—मिरचा, मरिचा, लालमिचा ; बङ्गाल—लालमरिच, लङ्का मरिच, गाछमरिच ; भोट—सुरुफमशा ; कुमायुन—मारिन्सा-बङ्गरु ; काश्मीर—मिर्त्तज-आ-बङ्गून, मिर्च-वाङ्गुम ; गुर्जर—लालमिरिच, मरचू ; कच्छ—मिरचू ; मराठी—मिरशिङ्गा ; तामिल—मिलगाई, भूतागाई, मोलु-सचे, मोलागु ; तेलगू—मिरपाकय, मेरपुकाई ; मलवार—कपुमोलेगु, कप्पल-मेलक ; कनाड़ी—मेनसिनाकायि ; संस्कृत—मरिचफलम् ; अरब—फिलफिले, अहमूर ; पारस्य—फिलफिले-सुर्ख, पिलपिले सुर्ख ; शिङ्गापुर—मिरिश, ट्रत-मिरिश ; ब्रह्म—नायु शि, नाघोप ; अङ्गरेजी—Chilly ; फरासी—Poivre de Guinee, poivre du Bresil, d' Inde तथा अन्यान्य राज्योंमें—Red pepper और chilly वा Chilensis नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

इस फलीका क्षुप मकोयके क्षुपके समान, पर देखनेमें उससे अधिक झाड़दार होता है। सारे भारतमें इसी फलीके लिये उसकी खेती होती है। इसके पत्ते पीछेकी ओर चौड़े और आगेकी ओर अनीदार होते हैं। काली चिकनी मिट्टीमें यह बहुतायतसे उपजती है। बलुई जमीन इसके लिये अच्छी नहीं होती। इसकी बोआई आषाढ़से कार्त्तिक तक होती है। जाड़ेमें इसमें पहले सफेद रंगके फूल आते हैं और तब फलियां लगती हैं। ये फलियां आकारमें छोटी, बड़ी, लंबी, गोल अनेक प्रकारकी होती हैं। कहीं कहीं इसका आकार नारंगीके समान गोल और कहीं कहीं गाजरके समान होता है। परन्तु साधारणतः यह उंगलीके बराबर लंबी और उतनी ही मोटी होती है। इन फलियोंका रंग हरा, पीला, काला, नारंगी या लाल होता है और यह कई महीनों तक लगातार फलती रहती है। जब यह कच्ची रहती है, तब इसका रंग हरा और पकने पर लाल हो जाता है।

उद्भिद्विदोंका विश्वास है, कि लालमिर्च पहले पहल अमेरिकामें उत्पन्न हुई थी। दक्षिण-अमेरिकाके चिलि-विभागमें पहले यह मिर्च देखी गई थी। तभीसे इसका अंगरेजी नाम चिलि हुआ है। शायद इसका उत्कट कटुत्व दारुण शीतकी तरह तीव्र होनेके कारण भी Chill शब्दसे Chilly नाम पड़ा है। किन्तु अधिक सम्भव है, कि चिलिदेशसे पहले पहल यह भारतीय द्वीपपुञ्जमें लाई गई है। यह द्वीपपुञ्ज प्राचीन कालमें लङ्का और महालङ्का नामसे प्रसिद्ध था। उस लङ्काद्वीपसे भारतवर्षमें आनेके कारण इसका लङ्का या लालमिर्च नाम पड़ा है। १६३१ ई०में Bontiusने चिलि और ब्रेजिल देशजात लङ्काका उल्लेख किया है। (Jac Bontii, Dial. V, p. 10) फरासी राज्यमें प्रचलित लङ्का नाम देखनेसे मालूम होता है, कि गिनि, भारत और ब्रेजिल ही एक समय लालमिर्च पाई जानेका प्रधान स्थान समझा जाता था।

१७८७ ई०में मिहोमने वम्बई प्रदेशमें लालमिर्चको उत्पन्न होते देखा था। विदेशजात इस वस्तुको भारतके पश्चिमप्रान्तमें अधिक उत्पन्न होते देख वे बड़े विस्मित हुए थे। उस समय गोआ प्रदेशमें जो मिर्च उत्पन्न होती थी उसे लोग गोआई-मिर्च कहते थे।

१६वीं सदीमें यूरोपमें पहले पहल लालमिर्चकी खेती हुई। वहांके लोगोंका कहना है, कि उसके परवर्त्तिकालमें भारतवर्षमें उसकी आमदनी हुई थी। शायद पुर्त्तगीज-नाविकगण वेष्ट-इण्डिजसे भारतीय द्वीपोंमें और पीछे भारतवर्षमें लाये होंगे, परन्तु यह विश्वास नहीं होता। क्योंकि जो हिन्दू एक समय सुमात्रा, जावा, बाली और लङ्का आदि द्वीपोंमें उपनिवेश स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे, वे क्या अमेरिकाके निकटवर्त्ती महालङ्का द्वीपजात 'लङ्का' नामक यह उद्भिज्ज भारतवर्षमें नहीं लाये होंगे? गोलमिर्चकी तरह कटु जान कर उस समयके ग्रन्थकारोंने अपने अपने ग्रन्थमें उसे 'मरिच' जातिके अन्तर्भुक्त कर लिया था। अधिक सम्भव है, कि गोलमिर्चकी तरह सद्गुण-सम्पन्न न होनेके कारण उसका उतना आदर नहीं था। यही कारण है, कि वैद्यक ग्रन्थमें कुमारिच नामसे उसका उल्लेख देखा जाता है। लङ्काद्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण इसका लङ्का या लालमिर्च नाम हुआ है। आयुर्वेदशास्त्रमें इसका गुण—दीपन, विदाही, अर्शवृद्धिकर, अम्लकर, गुरुपाक और विष्टम्भी बताया है।

मरिच शब्द देखो।

ऊपरमें लालमिर्चके जातिविभागका उल्लेख किया गया है। अङ्गरेजीमें जिसको Red Pepper कहते हैं उसका वैज्ञानिक नाम Capsicum annuum है। C. frutescens नामक इसकी एक और जाति है। अङ्गरेजीमें इसे Chilly, Goat pepper, Cayenne pepper, Spur pepper कहते हैं। इस जातिकी मिर्च उपरोक्त श्रेणीसे छोटी होती है। बङ्गाल और उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें इसको गाछमिर्च कहते हैं। किन्तु हिमालयप्रदेशमें यह "खर्सानो", मलयालममें "चवे-लोम्बक चीना मरिच और लदामेरा" शिङ्गापुरमें "घास मरिश" नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण अमेरिका, बंगाल, उड़िष्या और मन्द्राज प्रदेशमें इस जातिकी लालमिर्च बहुतायतसे उपजती है। इसको सूर्यमुखी मिर्च भी कहते हैं। C. grossum श्रेणीकी लालमिर्च बङ्गाल तथा भारतवर्षके अन्यान्य देशोंमें कमरंगा वा काफ्री मिर्च नामसे मशहूर है। यह बहुत तिक्त होती है। कृषक इस जातिकी मिर्चकी खेती नहीं करते। किसी किसी उद्यानमें शौकीन लोग इस लालमिर्चको लगाते हैं। इसके फलोंका रंग सिन्दूरके समान गाढ़ा लाल होता है। इसकी कड़ी उग्रता देख कर मसाले अथवा व्यञ्जनादिके साथ नहीं खाते। यूरोपीयगण अकसर खट्टे अचारमें अथवा उसके बीये निकाल उसमें मसाला भर कर भिनिगारमें डुबो रखते हैं। C. minimum वा C. fastigiatum धानकी तरह छोटी होती है, इस कारण इसको धानीमिर्च कहते हैं। इसके अलावा बेर वा बटफलकी जैसी लाल और गोल एक और प्रकारकी लालमिर्च देखी जाती है। चन्द्रमणि नामक छोटी लालमिर्चकी एक और श्रेणी है।

कच्ची, पक्की, सूखी और अचारमें डुबोई हुई सभी प्रकारकी लालमिर्च लोग खाते हैं। तरकारी आदिको झाल करने तथा अचारादिकी गंध बढ़ानेके लिये लालमिर्चका व्यवहार अधिक होता है। बङ्गालमें मिर्चके काढ़ेसे झोलागुड़की तरह एक प्रकारकी वस्तु बनाते हैं। इसका स्वाद तीता होता है। इङ्गलैण्डमें भी लालमिर्चका यथेष्ट आदर है। सूखी लालमिर्चको ढेंकीमें कूट कर अथवा जांतेमें पीस कर पीछे कपड़ेमें छान बोतलमें रखते यह चूर्ण नहीं बिगड़ता। कारि पाउडरके साथ उस चूर्णका व्यवहार होता है।

वैद्यकग्रन्थमें लालमिर्चको कु-मरिच कहा है। यह दीपन, अग्निकर और बलवर्द्धक है। वेदनायुक्त स्थानमें यह मिर्च पीस कर प्रलेप करनेसे वह स्थान लाल हो उठता और पीछे वेदना जाती रहती है। गलेकी घंटी बढ़ने अथवा जीभके तलेमें कांटा पड़नेसे वहां लालमिर्चको घिस दे, भारी उपकार होगा। सामयिक वा दूषित गलक्षतरोगमें इसके सिद्ध किये हुए जलसे कुल्ली करनेसे वेदनाका नाश होता है। चीनी और कतीराके साथ लालमिर्चका लोजेञ्ज बना कर सेवन करनेसे स्वरभङ्ग-दोष दूर होता है। गायक और वक्ताओंको यह लोजेञ्ज बहुत प्रिय है। यह मलेरिया-नाशक और गलगण्ड-निवारक माना गया है। कुत्ते अथवा सांपके काटे हुए स्थानमें लालमिर्चको पीस कर प्रलेप करनेसे विषनाश होता है। मदात्ययरोग (Delirium Tremens) २० ग्रेन सेवन करनेसे बहुत उपकार होता है। गलक्षतमें एक बो॰ जलमें ४ ड्राम लालमिर्च सिद्ध कर वह जल लगाने

क्षतस्थान सूख जाता है। अजीर्ण रोगमें रेवचीनी, लाल-मिर्च और सोंठ समान भागमें पीस कर गोली बना कर सेवन करे। विसूचिका रोगग्रस्त रोगीको अफीम-मिश्रित लालमिर्चके काढ़े के साथ हिंगुवीज मिला कर थोड़ी मात्रामें खिलानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। वेष्ट इण्डिज द्वीपपुञ्जोंमें आरक्तज्वरमें (Scarlatina) इसी प्रकार एक लाल मिर्चका काढ़ा बना कर सेवन करनेकी व्यवस्था है। चाय पीनेके चमचेसे दो चमचा लालमिर्च-का चूर्ण और दो चमचा लवण खरलमें अच्छी तरह पीस कर उसमें एक पाइण्ट (*Pint*) गरम जल डाल दे। ठंढा होने पर सूती कपड़े में छान कर उसमें फिरसे आध पाइण्ट भिनिगार मिला दे। प्राप्तवयस्कके पक्षमें चार चार घंटेमें एक चमचा और बालकोंके पक्षमें उनकी उमर और रोग-बलाबल विचार कर देना उचित है।

१८१६ ई०में अध्यापक Bucholz और Braconnot लालमिर्च (Capsicum)से रासायनिक विश्लेषण द्वारा Capsicin नामक एक पदार्थका आविष्कार किया है। यही मिर्चका सार वा कटुत्व (acridity) है।

लालमी (हिं० पु०) खरबूजा।

लालमुंहा (हिं० पु०) एक प्रकारका निनावाँ जिसमें मुंहके अंदर छाले पड़ जाते हैं और उसका रंग लाल हो जाता है।

लालमुकुन्द—एक भाषा-कवि। इनका जन्म संवत् १७७४में हुआ था। ये कवि सरस तथा मधुर कविता करते थे। इनकी कविता प्रायः शृङ्गाररस हीकी पाई जाती है।

लालमुरगा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पक्षी जिसका शिकार किया जाता। यह काश्मीरसे आसाम तक पाया जाता है। यह दो फुटसे अधिक लंबा होता है। २ मयूर-शिखा। ३ गुलमखमली नामक पौधा।

लालमूली (हिं० स्त्री०) शलजम, सलगम।

लालयितव्य (सं० त्रि०) लल णिच्-तव्य। लालन करनेके लायक।

लालरी (हिं० स्त्री०) लालड़ी देखो।

लाल लाड़ू (हिं० पु०) दक्षिण-भारतमें होनेवाली एक प्रकारकी नारंगी।

लालवत् (सं० त्रि०) लाला।

लालविहारी दे—अंगरेजी शिक्षित एक बंगाल-सन्तान। इन्होंने ईसाधर्म ग्रहण कर रेभरेण्डकी उपाधि पाई थी। ये अंगरेज-गवर्मेण्ट द्वारा स्थापित हुगली-कालेजके अंगरेजी अध्यापक थे। इन्होंने गोविन्दसामन्त और बंगालका गल्पगुच्छ (Gobind Samant, Bengal Peasant life और Folktales of Pengal) नामक दो अंगरेजी पुस्तक बना कर बड़ा नाम कमाया। इसके अलावा ये और भी बहुत-सी स्कूलपाठ्य अंगरेजी पुस्तकें बना गये हैं। १८९४ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

लालविहारी—परिभाषेन्दुशेखरटीकाके प्रणेता।

लालशक्कर (हिं० स्त्री०) बिना साफ की हुई चीनी, खाँड़।

लालस (सं० पु०) लालसा, चाह।

लाल सफरी (हिं० पु०) अमरूद।

लालसमुद (हिं० पु०) लालसागर देखो।

लालसर (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसकी गरदन और सिर लाल, छाती चितकवरी और पीठ काली होती है और डैना सुनहरे रंगका होता है।

लालसा (सं० स्त्री०) लस्-यङ्-ततः (अः प्रत्ययात्। पा ३।३।१०२) इति अ, टाप्। १ महाभिलाष, किसी पदार्थको प्राप्त करनेकी बहुत अधिक उत्कंठा या अभि-लाष। २ औत्सुक्य, उत्सुकता। ३ याच्ञा, किसीसे कुछ मांगना या चाहना। ४ दोहद, वह अभिलाषा जो गर्भिणी स्त्रीके मनमें गर्भावस्थामें उत्पन्न होती है। (त्रि०) ५ लोल, चञ्चल। ६ लोलुप, लालची।

लालसाग (हिं० पु०) मरसा नामका साग।

लालसागर (हिं० पु०) भारतीय महासागरका वह अंश जो अरब और अफ्रिकाके मध्यमें पड़ता है और जो वाब्-एल-मंदवसे स्वेज तक फैला हुआ है। यह प्रायः १४०० मील लंबा है और इसकी अधिकसे अधिक चौड़ाई २३० मील है। इसके किनारों पर बहुतसे छोटे छोटे टापू और प्रवालद्वीप हैं जिनके कारण जहाजोंको इसमेंसे हो कर आने जानेमें बहुत कठिनता होती है। पहले यह उससे मिल गया है। इसके पानीमें कुछ ललाई झलकती है इसीसे इसे लालसागर कहते हैं।

लालसाहवाज—एक मुसलमान-महापुरुष। सेहवानमें उनका मकबरा आज भी मौजूद है। मुसलमान लोग

अकसर ही इस पवित्र तीर्थको देखने आया करते हैं। सबोंकी धारणा है, कि १३५६ ई०में उक्त मकबरा बना था। १६३६ ई०में तर्खान राजवंशीय मीर्जा आनीने इस साधुके उद्देश्यसे एक और बड़ा मकबरा बनवाया। सिन्धुराज मीर करमअली खाँ तालपुरने इसका शर और चूड़ाका गुम्बज चांदीके पत्तरसे मढ़वा दिया। इस मकबरेमें अरबी-भाषामें लिखा एक शिलाफलक है।

लालसिंह—एक सिख-सरदार। ये रानी चांदकुमारीके प्रियपात्र थे। इस कारण राजसरकारमें इनकी गोटी अच्छी जम गई थी। राजा जवाहिर सिंहके परलोक सिधारने पर १८४४ ई०में ये ही प्रधान मन्त्री हुए। सिपाही-विद्रोहके पहले ये कुछ समयके लिये आगरामें नजरबंद थे।

लालसिंह—एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

लालसिरा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बत्तख जिसका सिर लाल होता है।

लालसीक (सं० क्ली०) पिच्छिल, गिलगिला।

लाला (सं० स्त्री०) लल-णिच् अच्-टाप्। मुखभव जल, मुंहसे निकलनेवाली लार, थूक। पर्याय—सृणिका, स्यन्दिनी, द्राविका, सृणीका, मुखस्राव। (राजनि०)

लाला (हिं० पु०) १ एक प्रकारका संबोधन। इसका व्यवहार किसीका नाम लेते समय उसके प्रति आदर दिखलानेके लिये किया जाता है, महाशय। इस शब्दका व्यवहार प्रायः पश्चिममें खत्रियों और बनियों आदिके लिये अधिकतासे होता है। २ कायस्थ जाति या कायस्थोंका सूचक एक शब्द। ३ छोटे प्रिय बच्चेके लिये संबोधन, प्रिय व्यक्ति विशेषतः बालक। (वि०) ४ लाल रंगका। लाल देखो।

लाला (फा० पु०) पोस्ताका लाल रंगका फूल। इसमें प्रायः काली खसखस पैदा होती है। इसे गुलेलाला भी कहते हैं।

लाला जयनारायण—चण्डीकाव्य और हरिलीलाके प्रणेता। ये लाला रामप्रसादके पुत्र थे। रामप्रसाद देखो।

लालाट (सं० त्रि०) ललाट-सम्बन्धीय।

लालाटि (सं० पु०) ललाटका गोत्रापत्य।

लालाटिक (सं० त्रि०) ललाटं पश्यतीति ललाट (संज्ञायां ललाटकुक्कुटी पश्यति। पा ४।४।४६) इति ठक्। १ प्रभुका कपालदर्शी, कार्याक्षम। २ ललाट-सम्बन्धी। (पु०) ३ आश्लेषणविशेष, मिलावट।

लालाटी (सं० स्त्री०) ललाट।

लालाठाकुर—आह्निकसंक्षेपके रचयिता वामदेवके प्रतिपालक।

लालापाठक—एक भाषा-कवि। ये रुकुम नगरमें रहते थे। इनका जन्म सं० १८३१में हुआ था। इन्होंने 'शालिहोत्र' नामक भाषाकी एक उत्तम पुस्तक लिखी।

लालाप्रमेह (सं० पु०) लालामेह देखो।

लालाबाबू—एक प्रसिद्ध बङ्गाली-साधु और परम वैष्णव। मुर्शिदाबाद जिलेके कान्दी नगरके सुप्रसिद्ध उत्तर-राढ़ीय कायस्थ जमींदार। हरेकृष्णके वंशमें इनका जन्म हुआ। कलकत्तेके उत्तर पाइकपाड़ा ग्राममें उन लोगोंका एक वासभवन है। इस कारण वे लोग पाइकपाड़ाके राजा कहलाते हैं। लालाबाबू अतुल-ऐश्वर्यके अधिपति थे। परदुःखसे दुःखित हो वे खुले हाथ दान दिया करते थे, इस कारण लोगोंने उनका लालाबाबू नाम रखा था। उनके पितामह दीवान गङ्गागोविन्द सिंह भारतप्रतिनिधि वारेन हेस्टिङ्गके शासनकालमें इष्ट-इण्डिया कम्पनीके दीवान थे। गङ्गागोविन्दके पुत्र प्राणकृष्ण (पीछे दीवान) ने अपने बड़े भाई राधाकान्त (बङ्गेश्वर नवाब सिराजउद्दौलाके प्रधान राजस्व-संग्राहक)की देख रेखमें रह कर विषय-कर्ममें विशेष दक्षतालाभ किया था। वे पितृसम्पत्तिके अधिकारी हो उदारताका यथेष्ट परिचय दे गये।

इन्हीं महानुभवके पुत्र कृष्णचन्द्र सिंह उर्फ लाला बाबू थे। ये पिताके सद्‌गुणशाली थे। प्रथम जीवनमें ये वर्द्धमान और कटककी कलक्टरीके दीवान हुए थे। पीछे उनकी विषय-तृष्णा धीरे धीरे बुझती गई। सुना जाता है कि एक दिन शामको वे अपने महलके ऊपर टहल रहे थे। इसी समय एक धोबिन जो पास ही में रहती थी, जोरसे चिल्ला उठी, "सूर्यास्त हो चला, वासना (केलेका छिलका) में आग लगा दो।" यह बात सुन कर साधकके प्राण चमक उठे। उन्होंने यह नहीं समझा, कि धोबिन रातके लिये वासना या केलेके छिलकेको जलाना

चाहती है। उन्होंने यह समझ लिया, कि धोबिन उन्हें विषय-मदमें मत्त देख कर व्यङ्गसे कह रही है, "समय बीत चला, वासनाओंको जला दो।" उनके हृदयमें दावाग्निसे जले हुए वृक्षके भीतरके कीड़ोंकी पीड़ाकी तरह विषम ज्वाला धधक उठी। उन्होंने वैराग्यका अवलम्बन किया।

वैराग्योदय होनेसे वे विषय-भोगलालसाका परित्याग कर पश्चिमाञ्चलमें तीर्थयात्राको निकले। प्रत्येक तीर्थमें आ कर वे अपनी दानशीलताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं। वृन्दावनमें आ कर उन्होंने मर्मर पत्थरका एक बड़ा मन्दिर बनवा दिया। वह मन्दिर आज भी 'लाला बाबूका कुञ्ज' नामसे प्रसिद्ध है। राजपूतानेमें जब वे मर्मरपत्थर खरीदने गये, तब वे कई राजकीय कार्यों में फँस गये। पीछे उससे छुटकारा पा कर वे फिरसे वृन्दावनवासी हो ऐकान्तिक-चित्तसे भगवान् नारायणके ध्यानमें निरत हुए। वृन्दावन-वासीका विश्वास है, कि उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए थे। कभी कभी प्रेमोन्मादमें उनको मोहन-मुरली ध्वनि सुन कर वे यमुनाके किनारे दौड़ पड़ते थे।

वृन्दावनमें रहते समय उन्होंने मथुरा जिलेके अन्तर्गत 'राधाकुण्ड' नामक तीर्थको चारों ओर सफेद मर्मर पत्थरकी सीढ़ीसे बंधवा दिया था। श्रीकृष्णका चरण-ध्यान करते करते वृन्दावनधाममें ही उनका देहान्त हुआ। जहां उनकी समाधि हुई थी, व्रजवासी उसे एक तीर्थ बतला कर यात्रियोंको दिखलाते हैं।

मृत्युके बाद उनके बालकपुत्र श्रीनारायणसिंह उस सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

लालाभक्ष (सं० त्रि०) १ लाला-भोजनकारी, लार खानेवाला। (पु०) २ नरकभेद, पुराणानुसार एक नरकका नाम। कहते हैं, कि जो लोग बिना देवताओं आदिको भोग लगाये अथवा बिना अतिथियोंको भोजन कराये आप भोजन कर लेते हैं, वे इसी नरकमें जाते हैं।

लालामिक (सं० त्रि०) लालामग्राही, सौन्दर्य लेनेवाला।

लालामेह (सं० पु०) लालावत् मेहतीति मिह-अच्। एक प्रकारका प्रमेह। इसमें मुंहकी लारकी तरह तार बंध कर पेशाब होता है।

लालायित (सं० त्रि०) लाला "नमस्तयो वरिवः कण्ड्वादिभ्यः क्यङ्कती' इति क्यं, लालाय-क्त। १ लाला-विशिष्ट, जिसके मुंहमें बहुत अधिक लालचके कारण पानी भर आया हो, ललचाया हुआ। २ जिसका बहुत अधिक लालन किया गया हो, दुलारा।

लाला लाजपत राय—पञ्जाबके एक विख्यात नेता। आप जनसाधारणमें पञ्जाब केशरी नामसे परिचित थे। आपका जन्म पञ्जाबके लुधियाना जिलेके अन्तर्गत जगराममें १८६५ ई०में अग्रवाल श्रेणीके एक वैश्य वंशमें हुआ था। आपके पिता लाला राधाकिशन गवर्मेण्ट स्कूलमें उर्दू भाषाके अध्यापक थे। १८७७ ई०में लाला लाजपत रायने स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी मतानुयायी शिक्षा ग्रहण की

लाला राधाकिशन एक पक्के कांग्रेसके आदमी थे। उन्होंने सर सैयद अहमदका मत अवलम्बन किया था; किन्तु उन्होंने हठात् अपना मत परिवर्त्तन कर जब कांग्रेसका विरुद्धाचार आरम्भ किया, तब लाला राधाकिशनने उनके आचारका घोर प्रतिवाद कर 'कोहिनूर' पत्रिकामें उर्दू-भाषामें एक प्रबन्ध लिखा था। लाला लाजपत रायने एक ओर पितासे स्वदेश प्रेम तथा दूसरी ओर मातासे सरलता और मितव्ययिता शिक्षा पाई थी। आपके चरित्रमें माताका आदर्श विशेष परिस्फुट होते देखा गया था। लाला राधाकिशन स्वयं शिक्षक थे इसलिये सन्तानकी शिक्षाके प्रति उनका विशेष लक्ष्य था। आपने वृत्तिलाभ कर लाहोर गवर्मेण्ट कालेजमें दो वर्ष तक आईन अध्ययन किया तथा १८८३ ई०में आईनकी प्रथम परीक्षा तथा १८८५ ई०में पञ्जाब-विश्वविद्यालयकी लाइसेन्सियेट इन-ला (Licentiate in Law) परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे। अन्तकी परीक्षामें तीस परीक्षार्थियोंके बीच आपने द्वितीय स्थान पाया था। इसके बाद आप हिसार नगरमें वकालत करने लगे।

इस समय पञ्जाबमें एक नया आन्दोलन खड़ा हुआ था। १८४९ ई०में जब लार्ड डलहौसीके समय पञ्जाब अंगरेज गवर्मेण्टके कब्जेमें आया था तबसे पञ्जाबमें देश, धर्म या अपने लिये किसी प्रकारका आन्दोलन नहीं हुआ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती देश और धर्मकी अवस्था, पादरियोंका जुल्म, शिक्षा, राजनीति आदिके

पञ्जाब-केशरी लाला लाजपत राय ।

बारेमें पञ्जाबके हर शहरोंमें वक्तृता देते फिरते थे। इस प्रकार दश वर्ष बीतने पर वक्तृताका फल दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने हिन्दू समाजके अनेक कुसंस्कारोंकी निन्दा की थी। इससे बहुतेरे हिन्दू उनके विरुद्ध हो गये थे। स्वामीजीने आर्य्य-समाज नामक एक समाज प्रतिष्ठित किया था। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला हंसराज और लाला लाजपत राय ये तीन नवयुवक आर्य्य समाजके पूरे कट्टर थे तथा इन्होंने ही इसके चलानेका कुल भार अपने हाथ लिया था। आप तीनोंने १८८६ ई०की पहली जूनको लाहोरमें दयानन्द एंगलोवैदिक कालेज स्थापित किया जिसमें आज भी एम० ए० तककी शिक्षा दी जाती है। पञ्जाब-विश्वविद्यालयसे भी उक्त विद्यालयकी मंजूरी हो गई। कुछ समय बाद देशीय भाषासे शिक्षा देनेका बन्दोबस्त हुआ। तीस वर्ष पहले भारतवर्षमें कहीं भी ऐसा बन्दोवस्त नहीं था। इस समय लाला लाजपत राय हिसार नगरमें वकालत करते थे। उनके मित्र तथा दयालु-हृदय लाला लाजपत रायने जो धन कमाया था, कुल देशको मंगल और शिक्षाकी उन्नतिमें दे दिया। उस धनसे आपने आर्य्य-समाजकी बड़ी ही उन्नति की थी। १८९२ ई०में आप हिसार छोड़ लाहोर वकालत करने आये। यद्यपि आप हिसार म्युनिसपल-बोर्डके सेक्रेटरी थे, तो भी आपको वहांके छोटे काममें मन न लगा। आप बड़े उत्साहसे अपना जीवन वृहत् कार्यमें अतिवाहित करनेके लिये पञ्जाबका केन्द्र लाहोर आये। यहां आ कर आपने दयानन्द कालेज और आर्य समाजके कार्योंमें विशेष मनोयोग दिया। पहले पहल यहां तक, कि आर्य-समाजीने भी लालाजीको बड़ा निरुत्साहित किया था, लेकिन आप उससे जरा भी विचलित न हुए और अदम्य उत्साहसे काम करने लगे। इसके फलस्वरूप आर्य-समाजकी सालाना लाखों रुपयेकी आय बढ़ गई। सम्प्रति एक कालेज, १६ उच्च अंगरेजी-विद्यालय, बहुत सी कन्या-पाठशाला, फिरोजपुरमें एक बड़ा अनाथ आश्रम और कई जिलोंमें बहुत से छोटे अनाथ-आश्रमोंका खर्च उसी रुपयेसे चलता है। इस उन्नतिके मूल एकमात्र लाला लाजपत राय और लाला हंसराज थे। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थीने २५ वर्षकी उम्रमें ही अपनी जीवनलीला संवरण की थी।

लाला हंसराज उक्त कालेजके अध्यक्ष थे। लाला हंसराज और आप आर्य-समाज तथा आर्य-समाजके प्रतिष्ठित विद्यालयों और अनाथालयोंके प्राणस्वरूप थे। लाला हंसराजका उद्देश्य था अपने उद्योग और परिश्रमको समाज और समाजके प्रतिष्ठित किये हुए विद्यालयों तथा आश्रमोंकी देख-रेखमें नियोजित करना। परन्तु लाला लाजपतका कहना था, कि धर्ममत और सामाजिक आचारमें सब एक नहीं हो सकता। इसलिये देशकी सार्वजनिक भलाईके लिये राजनीतिकी चर्चा करना उचित है। सुतरां आपने राजनीति अवलम्बन की थी। पहले ही कहा जा चुका है, कि सर सैयद अहमद कांग्रेसका पक्ष छोड़ विरुद्धता करने लगे और लाला राधाकिशनने उनके आचरणका प्रतिवाद किया था। १८८८ ई०में लाला लाजपत राय पहले राजनीति क्षेत्रमें उतरे और सैयद साहबके पूर्व तथा बादके मतोंको ले कर संवादपत्रोंमें बहुत पत्र लिखा करते थे। पत्रके अन्तमें अपना नाम इस तरह देते थे,—(The son of an old follower of yours) अर्थात् 'आपका एक पुराने शिष्यका पुत्र।' लालाजीके पिताने एक उर्दू अखबारमें 'अलीगढ़ पालिसी' नामक एक प्रबन्ध लिख कर सर सैयद अहमदको प्रतिवाद किया था।

पहले पहल सर सैयदके राजनैतिक मतसे लालाजीका चरित्र गठित हुआ था, लेकिन पीछे आपने माट्सिनी (Mazzini) और गारीबल्डी (Garibaldi) नामक दो इटालियन स्वदेश-भक्तों और शिवाजीका चरित्र पाठ करके अपना चरित्र उनके जैसा बना लिया। आप शिवाजी और श्रीकृष्णका चरित्र-विवरण लिख गये हैं।

१९०१ ई०में गवर्मेंटकी ओरसे फेमिन कमीशनमें लालाजीका बयान लिया गया था। सर आन्टोनी मेकडोनेलने लालाजीके बयान पर निर्भर करके कमीशनके बहुत प्रस्तावोंका परिवर्त्तन कर दिया। उन प्रस्तावोंमें अनाथ बालकोंको ले कर जो व्यवस्था हुई थी, उससे हिन्दू समाजका बड़ा उपकार हुआ। १९०५ ई०के अप्रेल महीनेमें भूडोलसे कांगड़ा जिलेमें भारी नुकसान पहुंचा था। इसमें आपने आर्यसमाजकी ओरसे चंदा वसूल कर उन लोगोंको खासी मदद पहुंचाई थी। कड़े

परिश्रमके कारण उक्त वर्षके अन्तमें आपका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। इतने पर भी जब भारतवर्षकी दुरवस्थाका विवरण इङ्गलैण्डमें साधारणको जतानेकी बात छिड़ी, तब मि० गोखले और आप जाने पर उद्यत हुए थे। वहां जा कर बहुत जगहोंमें आपने अपने देशकी दुःख-कहानी कह सुनाई। सुनते ही वहांके सभी लेबर, डेमोक्रेटिक और सोसेलिस्ट आपके पक्षमें हो गये। फिर वहांसे यूरोपके अनेक स्थानोंमें और अमेरिका गये। आपके जानेका उद्देश्य एकमात्र वहांकी शिक्षाप्रणालीको देखना था। वहांसे पुनः इङ्गलैण्ड लौट आये और मि० गोखलेके साथ मिल कर बहुत से राजनैतिक कार्य किये। यूरोप और अमेरिकामें भ्रमण करनेसे आपको वहांकी अवस्थाके साथ भारतवर्षकी अवस्थाकी तुलना करनेका सुयोग मिला। उन देशोंमें उस समय राजनैतिक क्षमताके लिये प्रजाओं और गवर्मेण्टके बीच आन्दोलन चल रहा था, लेकिन भारतमें उसका कुछ भी नामो निशान न था। पाश्चात्य सभ्यताका लक्षण यह था, कि जिस देशकी गवर्मेण्ट होगी, उस देशके आदमियोंके लिये उस देशके आदमियों द्वारा शासनतन्त्र बनाया जायगा। प्रजातान्त्रिक इंगलैण्ड, राजतान्त्रिक जर्मनी, यथेच्छाचार तान्त्रिक रूस और साधारण तान्त्रिक फ्रान्स सब मुल्कोंमें एक ही लक्षण दिखाई पड़ता था। जब कोई गवर्मेण्ट प्रजाके विरुद्ध काम करती थी, तब प्रजा सब मिल कर उस गवर्मेण्टको बदल कर नई गवर्मेण्ट स्थापित करती थी।

१६०७ ई०के दिसम्बर महीनेमें सूरतमें जो निखिल भारतवर्षीय स्वदेशी सम्मेलन हुआ था, उसमें आपने कहा था,—'सम्मिलित भारतका धर्म एक ही स्वदेशी होना चाहिये।' उनकी वक्तृता संवादपत्रमें पढ़ कर सर डो, इवेटसन आदि सिविलियन उनको राजविद्रोही मानते थे और लार्ड मारलीका ख्याल था, कि लाला लाजपत रायके मातहत बहुत-सी बागी सेनाएं मौजूद हैं, समय पड़ने पर वे सरकारके विरुद्ध उठ खड़ी होंगी। लेकिन सचमुच आप राजविद्रोही नहीं थे। आप कहते थे, कि विद्रोहका मार्ग बहुत खराब है। मैं वह नहीं चाहता। आपको उम्मेद था, कि ब्रिटेनके सरल, दयालु और न्यायपर अधिवासी भारतवासीका दुःख सुन कर उनका दुःख छुड़ानेके लिये चेष्टा करेंगे। लेकिन पीछे मालूम हुआ, कि वे लोग आगेका गुण खो बैठे हैं।

लालाजीकी वक्तृतासे गवर्मेण्ट इतना डर गई थी, कि पञ्जाबके लाट सर डि, इवेडसनने भारतके बड़े लाट लार्ड मिंटो और सेक्रेटरी आव स्टेट लार्ड मारलीसे सलाह कर १८१८ ई०के रेगुलेशन तीनके अनुसार आपको गिरफ्तार करके बिना विचार किये ही गुप्त कैदखानेमें डाल दिया था। क्योंकि, उनका ख्याल था, कि लालाजीको कैद करनेसे पञ्जाबमें शान्ति रहेगी, पर इसका फल उलटा ही निकाला। शान्तिके बदले समूचे भारतमें अशान्ति फैल गई।

आपका विश्वास था, कि गवर्मेण्टके मदद पहुंचानेसे भारतवासी एक जाति नहीं हो सकते हैं और न उनके दबावसे भारतीयोंकी उत्तेजना घट सकती है। आपका उपदेश यह था, कि भारतीयोंका एकमात्र धर्म स्वदेशप्रेम ही होना चाहिए और उसीके लिये उन्हें जीना और मरना चाहिए।

लालाजीने हिन्दू समाज-संस्कार करनेके लिये बड़ी चेष्टा की थी। आप कहते थे, कि मुसलमानों और क्रिस्तानोंको हिन्दू बनानेका कुछ प्रयोजन नहीं है। हिन्दुओंके पुराने शास्त्र और वर्त्तमान अवस्थाके अनुसार समाज-संस्कार करके सबोंको एकत्रित करना चाहिए। आप राजनैतिक या सामाजिक परिवर्त्तन इंगलैण्डके अनुसार नहीं चाहते थे। भारतकी अवस्थानुसार जैसे चल सकता है आप वैसा ही परिवर्त्तन चाहते थे।

१६०६ ई०में कलकत्ता-इण्डियन नेशनल कांग्रेसके आप सभापति नियुक्त हुए थे। उस समय आपने कहा था,—होनहार तथा बूढ़े मनुष्योंकी बात माननी चाहिए, अधीर होना उचित नहीं। हिन्दू, मुसलमान और पारसी लोगोंके लिये वह एक बुरा दिन होगा जब कि वे लोग अपना चाल-चलन छोड़ यूरोपीयोंका अनुसरण करेंगे।

आप बहुत-सी स्कूल-पुस्तकें लिख गये हैं जिनमें इटली तथा भारतके अनेक देशभक्तों और अवतार तथा धर्मप्रचारकोंका चरित्र लिखा है। आप भारत, यूरोप

और अमेरिकाके बहुत समाचारपत्रोंमें अपना प्रवन्ध देते थे। लालाजी १६१६ ई०में जब अमेरिकामें थे, तब भारतके सेक्रेटरीने उन्हें वहांसे इंगलैण्ड और भारत आनेकी मनाही की थी। उस समय पञ्जाबमें भीषण अकाल पड़ा था और गवर्मेण्टकी ओरसे प्रजाओं पर जुल्म होता था। पीछे सरकारने उन्हें स्वदेश आनेकी अनुमति दी। १६१६ ई०की २८वीं नवम्बरको अमेरिकाके न्यू यार्क शहरमें अमेरिका-वासियोंने आपकी विदाईमें एक भोज दिया था और आपको भूरि भूरि प्रशंसा की थी। उसमें आपने कहा था, कि मैं लड़ाई करना नहीं चाहता, सिर्फ कनाड़ा और दक्षिण-अफरिका-वासियोंको जैसा अधिकार मिला है, भारतवासियों को भी सिर्फ वैसा ही अधिकार मिलना चाहिए। १६२० ई०की २०वीं फरवरीको आप अमेरिकासे वम्बई पधारे। वहां वम्बई-वासियोंने आपका यथोचित समादर किया। लाला लाजपत रायने एक वार कहा था, कि गवर्मेण्टसे जितना अधिकार मिले, उसे ग्रहण करना हम लोगोंका फर्ज है। उसके लिये आनाकानी नहीं करनी चाहिए। लेकिन गवर्मेण्ट अगर फिर लौटा लेना चाहे, तो उसके लिये घोर प्रतिवाद करना चाहिए।

लाला लाजपत रायको जव जलिवानवाला वागमें निष्ठुरताके साथ पंजावियोंके प्राण लेनेकी पूरी खबर मालूम हुई तथा हंटर कमिटीसे भी कुछ विचारका उम्मेद न रहा, तब आपने कहा था, कि जिन सब आफिसरोंने ऐसा जुल्म किया है उनसे असहयोग करना चाहिये। महात्मा गान्धीका भी यही मत था। १६२० ई०के जून महीनेमें आपने अपने संवादपत्र 'वन्देमातरम्' में लिखा था,—'पञ्जावके सिख-सम्प्रदायने सर माइकेल ओडोयरके विरुद्ध जो सब दोषारोपण किया था, गवर्नमेण्टने उसका कुछ भी विचार नहीं किया और सर माइकेलको निर्दोष वताया। इस हालतमें मैं कौंसिलमें जा नहीं सकता हूं।' १६२० ई०के सितम्बर महीनेमें जो कलकत्तेमें खास अधिवेशन हुआ था, उसमें आप सभापति हुए थे। उस समय भारतमें असहयोग जोरों चल रहा था। उसी सालके दिसम्बर महीनेमें नागपुरमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ था, उसमें आपने प्रस्ताव किया था, कि भारतवर्षमें राजनैतिक आन्दोलनका एकमात्र लक्ष्य स्वराज ही है।

लाहोरमें आपने एक तिलक-राजनैतिक-विद्यालय खोला था और उसका सब खर्च आप स्वयं देते थे। वह विद्यालय आज भी उनकी कीर्त्तिका गौरव बढ़ा रहा है। कलकत्ता हिन्दू-महासभाके आप प्रेसिडेण्ट थे। १६२१ ई०में आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेसका जो द्वितीय अधिवेशन हुआ था उसमें आप ही सभापति नियुक्त हुए थे। लाला लाजपत राय श्रमिक लोगोंको ओरसे प्रतिनिधि स्वरूप जेनेभा भेजे गये थे। वहां जा कर आपने श्रमिकोंकी उन्नतिके लिये वहुत काम किया था। लालाजीका विश्वास था, कि 'यद्यपि कौंसिलसे असहयोग करनेसे कुछ फायदा नहीं होगा तो भी कांग्रेसके मतानुसार आप कौंसिल नहीं गये। पीछे जब कांग्रेससे कौंसिलमें जानेका विचार हुआ, तब आपने लेजिसलेटिभ एसेम्वलीमें प्रवेश किया और जातीय-दलके नेता हुए।

मिस मेओ नामकी एक अमेरिकन लेडीने 'मदर इंडिया' (Mother India) नामकी एक पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने भारत-रमणियोंके चरित्र पर बड़ा धब्बा लगाया था। लालाजीने उसके जवावमें "अनहापी इंडिया" (Unhappy India) नामकी एक किताव लिख कर भारतके मानसम्भ्रमकी रक्षा की थी।

१६२८ ई०के नवम्बर महीनेमें जव साइमन-कमीशन लाहोर आया था, तव उसका प्रतिवाद करनेके लिये भारतके सब नेताओंके साथ लालाजी भी लाहोर स्टेशन जा रहे थे। इसी समय एक अंगरेज पुलिशने आपकी छाती पर लाठी मारी थी। उसके कई दिनों बाद १६२८ ई०की १७वीं नवम्बरके प्रातःकाल आप इहलोक छोड़ परलोक सिधारे।

लालाविष (सं० पु०) लालायां विषं यस्य। वह जन्तु जिसके मुंहकी लारमें विष हो। जैसे,—मकड़ी।

लालासव (हिं० स्त्री०) लूता, मकड़ी।

लालास्रव (सं० पु०) १ लाला-निःसरण, मुंहसे लार बहना। २ लूता, मकड़ी।

लालास्राव (सं० पु०) लालां स्रावयतीति स्रु-णिच्-अण्।

१ मुंहसे थूक या लार गिरना। २ मकड़ीका जाला।

लालास्राविन् (सं० त्रि०) लालास्रावकारी, जिसके मुंहसे लार गिरती हो।

लालिक (सं० स्त्री०) महिष, भैंस।

लालित (सं० त्रि०) १ जिसका लालन किया गया हो, प्यारा। २ जो पाला-पोसा गया हो। (क्ली०) ३ आह्लाद, उल्लास।

लालितपुर—युक्तप्रदेशका एक नगर और जिला।

ललितपुर देखो।

लालित्य (सं० क्ली०) ललित-ष्यञ्। ललित होनेका भाव, सुन्दरता, सरलता।

लालिमा (सं० स्त्री०) ललाई, अरुणता, सुर्खी।

लालियाद—काठियावाड़-विभागके झालावार प्रान्तस्थ एक सामन्त राज्य और उसके अधीन एक गण्डग्राम। यह भावनगर गोंडाल रेलपथके चूड़ा स्टेशनसे डेढ़ मील उत्तर-पूरबमें अवस्थित है। वर्त्तमान सम्पत्तिके दो पट्टीदार हैं। वे अङ्गरेज-सरकारको वार्षिक ३६२) रु० करस्वरूप दिया करते हैं।

लाली (हिं० स्त्री०) १ लाल होनेका भाव, ललाई। २ इज्जत, पत, आबरू। ३ पीसी हुई ईंटें जो चूनेमें मिलाई जाती हैं, सुरखी।

लाली—एक फरासी सेनापति, इनका पूरा नाम काउण्ट-लाली टेल्लेण्डल था। फरासी राजाधिकृत भारतीय प्रदेशोंके प्रधान सेनापति हो कर १७५८ ई०में वे भारतवर्ष आये थे। इनके पिताका नाम सर जिराई लाली था। वे आयर्लैण्डमें रहते थे। सामरिक युद्धमें वीरता दिखा कर वे फरासी-सेनाके अधिनायक हुए थे। वहांके सामरिक विभागमें रह कर इन्होंने सेनादलका संगठन किया। उनका लड़का टामस अर्थात् एक ही वर्षकी उमरमें (१७०२ ई०) फरासी सेनादलके प्राइमेट पद पर चुना गया। ४३ वर्षकी उमरमें (१७४५) इन्होंने अपने बड़े भाई काउण्ट डिल्लोंके परिचालित ब्रिगेड सेनादलका अधिनायक हो कर फण्टिनर रणक्षेत्रमें अमित विक्रमका परिचय दिया था। अटल अङ्गरेज-वाहिनी उनके आक्रमणका वेग न सह सकी और पराजित हुई। उसी दिनसे फरासी-सेनाकी रणपाण्डित्य-ख्याति चारों ओर फैल गई। इसके बाद लालीने रूस-युद्धमें विशेष वीरता दिखा कर अपने गुणसे फरासी राजपुरुषोंका चित्त चुरा लिया था। पीछे उन्होंने फरासी-सेनापति Marshal Saxe के अधीन युद्धकौशल और कार्यतत्परताका जो परिचय दिया था वह बड़ा ही प्रशंसनीय है।

इसके कुछ समय बाद ही १७५६ ई०की ३१वीं दिसम्बरको ५४ वर्षकी उमरमें वे एशियास्थ फरासी अधिकारों (French possessions in the East)-का प्रधान सेनाध्यक्ष हो कर भारत-सीमान्तमें आ धमके। वे नीतितत्त्वके पक्षपाती थे। भारतवर्षमें आ कर उसी स्वभावसिद्ध नीतिमार्गका अनुसरण कर वे भारतीय फरासी-सेनादलकी शिक्षा और संस्कारकार्यमें व्रती हुए। इस समय मदगर्वसे तथा अपनी शक्तिप्रधानता-से मत्त हो उन्होंने यथेष्ट हठकारिता और शक्तिचालना-का परिचय दिया था। उनकी वीरता और दाम्भिकता थोड़े ही दिनोंमें उन्हें अवनतिके पथ पर ले गई थी। भारतमें आ कर उन्होंने राजनीति-विशारद डूप्लेका साम्यवाद छोड़ दिया तथा राजा-प्रजाका सम्बन्ध जमाने-के उद्देशसे फरासीके अधिकृत प्रदेशोंमें अपनी गोटी जमानेके लिये प्रजावर्गके ऊपर कठोर शासन प्रवर्त्तित किया। जिसके छूनेसे शरीर अपवित्र हो जाता है, ऐसी निषिद्ध वस्तु भी उन्होंने ब्राह्मणको ढोने अथवा शूद्रोंके साथ उन्हें इक्का गाड़ी खींचनेके लिये बाध्य किया था। ऐसा मनमाना काम कर De layrit और मन्त्रिसभा (Council)-ने उनकी कार्यावलीकी निन्दा करते हुए प्रतिवाद किया। इस पर लाली बड़े बिगड़े और उन्हें रिश्वत लेनेके अपराधमें अभियुक्त किया।

मन्द्राज युद्धकालमें जब फरासी-दल मन्द्राज नगरके सामने पहुंचा, तब लालीके अधीनस्थ सेनापतिगण उन-के व्यवहारसे बहुत तंग आ गये थे। उन लोगोंने घृणाके साथ उनका आदेश उल्लंघन कर दिया और मन्द्राज पर चढ़ाई करना नहीं चाहा। इस प्रकार लाली प्रत्येक सेना-से घृणित और लाञ्छित हुए। फिर विद्रोही सेनादल भी अपनी नौवाहिनीसे परित्यक्त हो अपनेको विशेष

अपमानित समझने लगी। इस प्रकार चारों ओर विपद्से घिरा देख उन्होंने बाध्य हो कर बुशीको युद्धका अधिनायक बनाया और युद्ध करने भेजा। वन्दिवास-रणक्षेत्रमें कर्नल कूटके निकट वे दलबलके साथ पराजित हुए थे। इसके बाद विद्रोही सेनावृन्द और अत्याचारी प्रजाके मध्य रह कर उन्होंने पण्डिचेरीको बचानेका संकल्प किया। रसदके घट जानेसे जब दुर्गवासी यमपुरके मेहमान बनने लगे, तब लाली आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए थे।

इस अवरोधकालमें फरासी सेना और नगरवासिगण हाथी, घोड़े, ऊंट आदिको मार कर उन्हींके मांससे अपना पेट भरते थे। यहां तक, कि उस समय २४) रु०में एक एक देशी कुत्ता फरासियोंके हाथ बेचा जाता था।

लालीके लौटने पर उनको भारतीय कार्यावलिका तत्त्वानुसन्धान और विचार होने लगा। वे राजद्रोही और अत्याचारी ठहराये गये। इस अपराधमें उन्हें मैलेकी गाड़ीमें बैठा कर राजपथसे वध्यभूमिमें लाया गया था। वहां उन्होंने चिल्ला कर कहा था, "जगदीश्वरने विचारकोंको क्षमा करनेके लिये मुझे यथेष्ट अनुग्रह प्रदान किया है। यदि उन लोगोंसे फिर एक बार मेरी मुलाकात होती, तो मैं कभी भी उन्हें क्षमा न कर सकता।" यह कहनेके बाद उन्हें फांसी पर लटका दिया।

लालीनदी—आसाममें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० २८' उ० तथा देशा० ६५°१' पू० तक अबर जातिकी वासभूमि जंगलावृत पर्वतसे निकल कर दिबुङ्गके साथ मिल गई है।

लालील (सं० पु०) अग्नि, आग। (तैत्तिरीय आर० १०।१।७)

लालुका (सं० स्त्री०) कण्ठहारभेद, गलेमें पहननेका एक प्रकारका हार।

लालु नन्दलाल—एक बंदीजन। इनके बनाये बहुत से कवित्त मिलते हैं।

लाले (हिं० पु०) लालसा, अरमान।

लालेर-फोर्ट (लालनेर दुर्ग)—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २८° १२' उ० तथा देशा० ७८° ७' पू० तक खासगंजसे मेरठ जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां एक टूटा फूटा दुर्ग था।

लाल्य (सं० त्रि०) लल णिच् ण्यत्। लालनीय, लालन करने योग्य, दुलार करने लायक।

लाव (सं० पु०) पक्षिविशेष, लवा नामक पक्षी। लवा देखो। इसके मांसका गुण—लघु, कटु, मलवद्धकारक, स्वादु, शीतल और त्रिदोषनाशक तथा भावप्रकाशके मतसे अग्निकर, स्निग्ध, श्लेष्मवर्द्धक, उष्णवीर्य, वायुनाशक, लघु, त्रिदोषजित्, शीतल, हृद्रोग और रक्तपित्तरोगनाशक कहा गया है। (भावप्र०) २ लवङ्ग, लौंग।

लाव (हिं० स्त्री०) १ वह मोटा रस्सा जिससे चरसा खींचते या इसी प्रकारका और कोई काम करते हैं, रस्सा लास। २ रस्सी, डोरी। ३ उतनी भूमि जितनी एक दिनमें एक चरसेसे सींची जा सके। (पु०) ४ वह ऋण जो किसीकी चीज अपने पास रख कर उसे दिया जाय।

लावक (सं० पु०) लाव एव स्वार्थे कन्। १ लावपक्षी, लवा। पर्याय—लघुजाङ्गल। लुनातीति लू-ण्वुल्। २ छेदक।

लावक (हिं० पु०) १ चावलको जाड़ेकी फसिल। २ चरसा। ३ मोट खींचनेमें बैलोंके एक बार जाने और आनेका काल।

लावज (सं० पु०) बहुत प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

लावण (सं० त्रि०) १ लवण द्वारा संस्कृत, जिसका संस्कार लवण द्वारा हुआ हो। २ लवण-सम्बन्धी, नमकका, नमकीन। (क्ली०) ३ नस्य, सुंघनी।

लावणिक (सं० त्रि०) लवण-ठञ्। १ लवण द्वारा संस्कृत, जिसका लवण द्वारा संस्कार हुआ हो। २ लवण सम्बन्धी, नमकका। (पु०) लवणविक्रेता, वह जो नमक बेचता हो। (क्ली०) ४ लवणपात्र, वह बरतन जिसमें नमक रखा जाता है, नमकदान।

लावण्य (सं० क्ली०) लवण ष्यञ्। १ लवणत्व, लवणका भाव या धर्म, नमकपन। २ सौन्दर्यविशेष, अत्यन्त सुन्दरता।

मुक्ताफलमें छायाकी तरलताके समान अङ्गमें जो उदय होता है, उसे लावण्य कहते हैं। शरीर अवयवका जो प्रकृष्ट सौन्दर्य है वही लावण्य कहलाता है।

३ शीलकी उत्तमता, स्वभावका अच्छापन।

लावण्यशर्मन्—लावण्यशर्मतन्त्र और शकुनप्रदीपके प्रणेता।

लावण्या (सं० स्त्री०) ब्राह्मी नामकी बूटी।

लावण्यार्ज्जित (सं० क्ली०) लावण्येन अर्ज्जितम्। वह दहेज जो विवाहमें ससुर और सास देती हैं।

लावदार (फा० वि०) १ जो छोड़ी जाने या रंजक देनेके लिये तैयार हो। २ तोपमें वत्ती लगानेवाला, तोप छोड़नेवाला।

लावना (हिं० क्रि०) १ लगाना, स्पर्श करना। २ जलना, आग लगाना।

लावनि (हिं० स्त्री०) लावनी देखो।

लावनी (हिं० स्त्री०) १ गानेका एक प्रकारका छंद। २ इस छंदका एक प्रकार जो प्रायः चंग बजा कर गाया जाता है। इसे ख्याल भी कहते हैं। ३ इस प्रकारका कोई गीत।

लावबाली (अ० पु०) १ वह जिसे किसी प्रकारकी चिन्ता आदि न हो, लापरवाह, वेफिक्र। २ वह जो सदा निकम्मा घूमा करता हो, आवारा। ३ वह जिसके विचार, धार्मिक दृष्टिसे बहुत ही स्वतन्त्र अच्छृंखल हों। (स्त्री०) ४ लावबाली होनेका भाव, लावबालीपन।

लावल्द (फा० वि०) जिसके बालबच्चा न हो, निःसन्तान।

लावल्दी (फा० स्त्री०) लावल्द या निःसंतान होनेका भाव या अवस्था।

लावा (सं० पु०) लवा नामक पक्षी। लवा देखो।

लावा (हिं० पु०) भूना हुआ धान, ज्वार, बाजरा या रामदाना आदि जो भुननेके कारण फूल कर फूट जाता है और जिसके अंदरसे सफेद गूदा बाहर निकल आता है। यह बहुत हलका और पथ्य समझा जाता है और प्रायः रोगियोंको दिया जाता है। इसे खील या लाई भी कहते हैं।

लावा (अं० पु०) राख, पत्थर और धातु आदि मिला हुआ वह द्रव पदार्थ जो प्रायः ज्वालामुखी पर्वतोंके मुखसे विस्फोट होने पर निकलता है।

लावा—पञ्जावप्रदेशके झेलम जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ३२° ४१′ ४५″ उ० तथा देशा० ७१° ५५′ ३०″ पू०के मध्य सुखेश्वर और लवण पर्वतके उत्तरमें अवस्थित है। भूपरिमाण १३५ वर्गमील है। यह एक सुबृहत् 'आवान्' ग्राम नामसे प्रचलित है।

लावा—राजपूतानेके अन्तर्गत एक देशीय सामन्त-राज्य। यह अक्षा० २६° १८′ से ले कर २६° २५′ उ० तथा देशा० ७५° ३१′ से ले कर ७५° ३६′ पू०के बीच पड़ता है। इसका भूपरिमाण १८ वर्गमील और जनसंख्या २६७१ है। जयपुर-राजने किसी समय अपने निकटवर्त्ती आत्मीय को लावाका सामन्त-पद दिया। इसके बाद महाराष्ट्र-सरदार अमीर खाँने लावा अधिकार कर वहांके ठाकुरको पदानत किया था। उसके बाद ठाकुरगण तोङ्क-सामन्त-राजके अधीन हुए थे। १८४७ ई०में अङ्गरेज गवर्मेण्टने इस अधीनता पाशको तोड़ दिया था।

लावा नगर तोङ्कसे १० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

लावाक्षक (सं० पु०) व्रीहिभेद, चेता धान।
(सुश्रुत सू० ४६ अ०)

लावाड़—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ७′ उ० तथा देशा० ७७° ४७′ पू० तक मीरट सदरसे ६ कोस उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या ५०४६ है। यहां पर महल सराई नामका एक सुन्दर प्रासाद विद्यमान है। इस प्रासादके आस पास एक बड़ा उद्यान भग्नावस्थामें पड़ा है। करीब १७०० ई०में इस अट्टालिकाको एक श्रेष्ठ वणिक् जवाहिर सिंहने निर्माण किया था। मीरट शहरके नजदीक इन्हींका बनाया एक बहुत बड़ा सूर्यकुण्ड है।

लावाणक (सं० पु०) प्राचीनकालके एक देशका नाम जो मगधके पास था।

लावापरछन (हिं० पु०) विवाहके समयकी एक रीति। इसमें वरके आगे कन्या खड़ी की जाती है और उसके हाथमें एक डलिया दी जाती है। कन्याका भाई उसी डलियामें धानका लावा डालता है। हवन और सप्तपदी इसके बाद होती है।

लावारिस (अ० पु०) १ वह मनुष्य जिसका कोई उत्तराधिकारी या वारिश न हो। २ वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी या स्वामी न हो।

लावारिसी (अ० वि०) जिसका कोई अधिकारी न हो।

लाविक (सं० पु०) लालिक, महिष।

लाविका (सं० स्त्री०) लवा नामक पक्षी।

लाविन् (सं० पु०) लू-णिनि। छेदक, छेदनेवाला।

लाबु (सं० स्त्री०) कद्दू, घिआ।

लाबुआन—भारतीय द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत एक छोटा द्वीप। यह बोर्णिओ द्वीपके उत्तर-पूर्व उपकूलसे ६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। इसके दक्षिण सुप्रसिद्ध विक्टोरिया बंदर तथा उसीके सन्मुख भागमें कई छोटे छोटे द्वीप (Islet) हैं। इसकी लंबाई १० मील तथा चौड़ाई ५ मील है। समुद्रतीरवर्त्ती भूपृष्ठका कर्द्दम और रैलपथका उपर्युपरि स्तर देख कर अनुमान किया जाता है, कि उक्त स्तरसे ही यह द्वीप बना है।

यहां कोयलेकी खान है। उसमें सुन्दर कोयला पाया जाता है। स्थान स्थान पर अविशुद्ध लोहेकी खान दिखाई पड़ती है। द्वीपवासिगण इसी लोहेसे बरतन भी बनाते हैं। पूर्व-भारतीय द्वीपपुञ्जमें अङ्गरेजोंके जितने उपनिवेश हैं, उन सबोंके मध्य यह सबसे छोटा है। १८४६ ई०में यह अङ्गरेजोंके हाथ सौंपा गया था।

लाबुर्द्दने—एक फरासी शासनकर्त्ता। ये १८वीं सदीके मध्य भारत-महासमुद्रस्थ फरासी अधिकारोंके शासनकर्त्ता हो कर पूर्व देशमें आये और भारत उपकूलमें फरासी-सेनाको ला कर मन्द्राज पर कब्जा कर बैठे थे।

लावेरणि (सं० पु०) लवेरणिका गोत्रापत्य।

लावेरणीय (सं० त्रि०) लावेरणीका गोत्रापत्य।

लाव्य (सं० त्रि०) लू-यत्। छेद्य, छेद करने योग्य।

लाश (फा० स्त्री०) किसी प्राणीका मृतक देह, शव।

लाषुक (सं० त्रि०) लष-उकञ्। गृध्नु, लोभी।

लास (सं० पु०) लस्-घञ्। १ नृत्यमात्र, एक प्रकारका नाच। २ मटक। ३ जूस, शोरवा।

लास (हिं० पु०) उस छड़के दोनों कोने जिसे पाल बांधनेके लिये मस्तूलमें लटकाते हैं।

लास—बलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह अरब-सागरके किनारे अवस्थित है। सिन्धुनदकी 'व' द्वीपभूमि और हाला-पर्वतमाला द्वारा यह निम्न सिन्धुप्रदेशसे अलग हुआ है। इस समुद्रोपकूलवर्त्ती प्रदेशकी लंबाई १०० मील तथा चौड़ाई ८० मील है। इसकी उत्तरी सीमा पर झालवान पर्वत और बौद्ध-राज्य, पूर्व और पश्चिममें बड़े बड़े पर्वतोंका समूह तथा दक्षिणमें भारत-महासागर अवस्थित है। यहांके शासनकर्त्ता जाम (सरदार) नामसे विख्यात हैं।

यहां जामोट, सावरा, माछ्वा, गुदोड़, अङ्गारिओ, रुञ्झा, गुङ्गा, बुणा, मुन्द्राणो, शेख, मुसोना, गुदुड़, मुसुर, बराड़िया, मेरी, धीरा बुधौर, मङ्गा, वावरा, जोर, तुमूरी वा लुमरी, जगदल, गुज्जर, संगूर और होरमारा आदि जातियोंका वास है। जामोत जातिके बारह थोकोंमेंसे एक थोकसे जाम-सरदार उत्पन्न हुए हैं। सोनमिनो यहांका प्रधान वाणिज्य-बन्दर है। इसके कुछ उत्तर बेरला नगर अवस्थित है। यही स्थानीय राजधानी कह कर विख्यात है। यहां अनेक प्राचीन मुद्रा और मृत्-पात्रादि पाये गये हैं। इससे अनुमान होता है, कि बहुत प्राचीनकालसे ही इस देशमें वैदेशिक वाणिज्य प्रचलित था। मेकरान और सिन्धु प्रदेशमें मुसलमान समागमके समय यहां सम्भवतः अरबवासी मुसलमान-वणिक् उपनिवेश स्थापन करेंगे।

लासक (सं० क्ली०) लसतीति लस-ण्वुल्। १ मटक, मटका, घड़ा। (पु०) २ लास्यकारी, नाचनेवाला, नचनिया। ३ मयूर, मोर। ४ वेष्ट, गोंद। (त्रि०) ५ दीप्तिकारक, चमकानेवाला।

लासकी (सं० स्त्री०) लासक ङीष्। नर्त्तकी, नाचनेवाली स्त्री।

लासन (हिं० पु०) जहाज बांधनेका मोटा रस्सा, लहासी।

लासा (हिं० पु०) १ कोई लसदार या चिपचिपी चीज, लुआब। २ एक विशेष प्रकारका चिपचिपा पदार्थ जो बहेलिये लोग चिड़ियोंको फंसानेके लिये बरगद और गूलरके दूधमें तीसीका तेल पक कर बनाते हैं। इसे प्रायः वे लोग वृक्षोंको डालियों पर लगा देते हैं और जब पक्षी उन पर आ कर बैठते हैं, तब उनके परोंमें यह लग जाता है जिससे वे उड़ नहीं सकते। उस समय बहेलिये उन्हें पकड़ लेते हैं।

लासा (Lhassa)—हिमालयके उत्तर पार्श्वमें सुविस्तृत तिब्बतराज्यकी राजधानी। यह जनपद भोट भाषामें ख-छन्-प या तुषार प्रदेश कहलाता है। फिर तिब्बतीय भाषामें ल्हा शब्दका अर्थ देव और सा का विश्राम-

निकेतन समझा जाता है। लासा अर्थात् देवस्थान। सुतरां लहासा या लासा शब्दसे देवस्थान ही हुआ*। इस नगरके अधिवासी बौद्ध हैं। बौद्ध लामाचार्य और यति आदि धर्मकर्ममें निरत रह कर यहांके मठोंमें वास करते हैं। भारतवासीके पूज्य और प्रसिद्ध बुद्धावतार शाक्यमुनिके प्रसादसे यहांकी धर्ममण्डली आज भी बौद्ध-धर्मकी उदारताका पालन कर रही है। लेकिन वर्त्तमान लामाधर्ममें पहाड़ी जातिके वोन-पा धर्मका बहुत प्रभाव मिला जुला है। इस नगरमें तिब्बतके सर्वप्रधान लामाचार्य 'दलईलामा' राजशक्ति सम्पन्न हो कर राजदण्डके प्रभावसे धर्मराज्य और कर्मराज्यको रक्षा कर रहे हैं।

तिब्बत और लापा देखो।

वर्त्तमान लासा नगरीके उत्तर शैलशृङ्ग पर पोतल गुफा नामक दलई लामाका राजप्रासाद अवस्थित है। उसकी गठन प्रणाली तथा वहांके दूसरे दो प्रसिद्ध संघारामोंका कारुकार्य्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है।
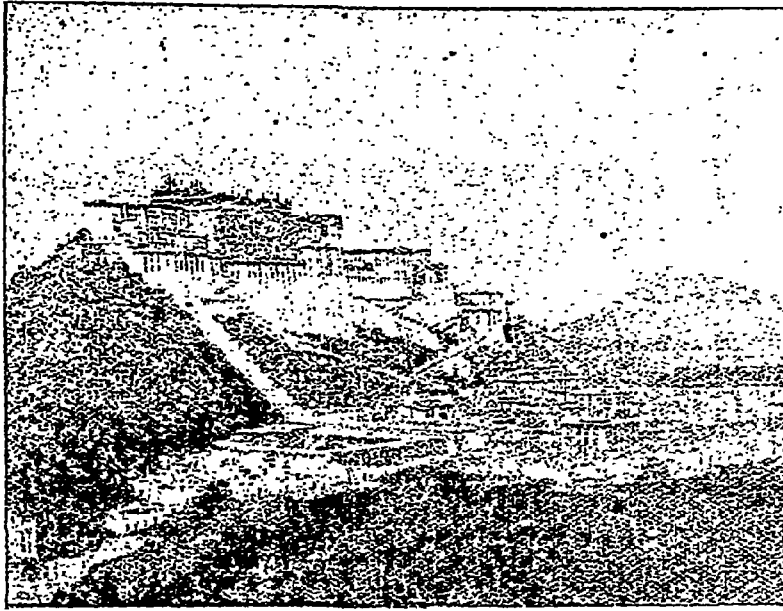
दलई-लामाका पोतल प्रासाद।

दलई लामा यहांके राज्यशासन-कार्य्य तथा धर्मरक्षा और प्रचारके सर्वमय कर्त्ता होने पर भी इस नगरमें चीनराज्यके दो अम्बन या राजदूत रहते हैं। उन्हींकी सलाहसे लासापति दलई-लामा यहांका राजकीय कार्य्य किया करते हैं। लासावासी उक्त दो चीन-राजकर्मचारी के अधीन दलु-हे नामक दो प्रधान सेनापति हैं वे अपने अपने पद और मर्यादाके अनुसार तिब्बतराज्यके सुशासनके लिये सब विषयोंकी देखरेख किया करते हैं। दलु हेके दो छोटे कर्मचारी फोपुन कहलाते हैं। वे सेना-विभागमें वेतन बांटनेवाले नपसो और अङ्गरेज-सेना-विभागके एडजुटेण्ट और कोयार्टार मास्टर जेनरलकी तरह कार्य्य करते हैं। एक दलु-हे और एक फोपुन दोघार्चीमें रह कर तिब्बतीय सेनादलके साधारण परिदर्शकका काम करते हैं।

इन दो कर्मचारी या सेनाध्यक्षके नोचे तीन 'चोङ् पर' हैं। वे चीनजातीय तथा एक एक सेनाविभागके नायक हैं। उनमेंसे एक दीघार्चीमें और दूसरे नेपालके सीमान्त-

* प्रत्नतत्त्वविद् हुकका कहना है, कि लासा शब्दसे प्रेतभूमि समझी जाती है। मंगोलीयगण "मोङ्खेत भीत" या स्वर्गीय देव-पीठ तथा छेबु लामागण इसे देवनगर कहते हैं।

यहाँ टिंगरी नगरमें ससैन्य रह कर तिब्बत सीमान्तकी रक्षा करते हैं। उक्त तीन सेनानायकके अधीन तीन चीना 'लिगपुन्' या 'नन् कमिसन्ड् आफिसर' हैं। इसके अलावा तिब्बतराज्यके सामरिक विभागमें और कोई चीन कर्मचारी नहीं हैं। राजकीयशासन और विचारविभागीय कार्य्य तिब्बतवासी भद्र पुरुष द्वारा परिचालित होता है। समूचे तिब्बतमें चीनराज्यकी प्रायः चार हजार सेना है। उनमेंसे लासा नगरमें दो हजार, दीघाचींमें एक हजार, गैनटिसतमें पांच सौ और टिंगरीमें पांच सौ है।

लासानी (अ० वि०) जिसका कोई सानी या जोड़ न हो, बे-जोड़।

लासि (हिं० पु०) लास्य देखो।

लासिका (सं० स्त्री०) लासोऽस्त्यस्य इति लास-ठन्। नर्त्तकी, नाचनेवाली।

लासिन् (सं० त्रि०) लस-णिनि। नर्त्तकी, नाचने वाला।

लासिनी (सं० स्त्री०) लासिनी, नाचनेवाली।

लासी (हिं० स्त्री०) १ जूँकी तरहका एक प्रकारका काला कीड़ा, जो गेहूंके पेड़ोंसे लग कर उन्हें निकम्मा कर देता है। २ लसी या लस्सी देखो।

लासु (हिं० पु०) लास्य देखो।

लासेन (Lasseu)—जर्मनराज्यवासी प्रसिद्ध पण्डित और शब्दवेत्ता। ज्योतिष, विज्ञान आदि विषयोंमें इनकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। ये १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे। इन्होंने संस्कृत, अरबी, पारसी, ग्रीक, हिब्रु, लैटिनआदि प्राच्य और प्रतीच्य भाषा-समूहोंकी आलोचना की थी तथा उसी देशके प्राचीन ग्रन्थादि, भारतीय शिलालिपि और आसिरीय कोणाकारकी लिपिसे प्रत्नतत्त्व का उद्धार कर उन्होंने जगद्वासीको चमत्कृत् किया था। उनके रचे ग्रन्थ सब छप कर यूरोपमें प्रचारित हुए थे। नीचे उसकी एक तालिका दी गई है,—Commentation Geographica atque Historica de Pentapomia Indica १८२७ ई०में, बन नगरमें; Die Altpersischen, १८३६ ई०में, कायेल नगरमें, Die Taprobane Insula १८४४ ई०में, Indische Alterthumskunde या भारतीय प्रत्नतत्त्व—१८४७से १८६१ ई०के मध्य ४ खण्ड मुद्रित और प्रकाशित हुए थे।

इसके अलावा इन्होंने खूब अनुसन्धान कर उस समयके आविष्कृत कोणाकार शिलाफलकोंसे ३९ प्रकारकी भिन्न भिन्न वर्णमाला तैयार कर जनसाधारणके सामने उसकी एक तालिका उपस्थित की थी तथा जितने प्रकारकी लिपियां उस समय यूरोपके विद्वान प्रत्नतत्त्वविदोंके समाजमें प्रचलित थीं, इन्होंने उनके अनेक फलकोंको अनुवाद कर जनसाधारणको समझा दिया था।

लास्फोटनी (सं० स्त्री०) १ आस्फोटनी, मदार। २ वेधनिका, वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हों।

लास्य (सं० क्ली०) लस (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) इति ण्यत्। १ नृत्य, नाच। २ तौर्य्यत्रिक, नाच या नृत्यके दो भेदोंमेंसे एक; वह नृत्य जो भाव और ताल आदिके सहित हो, कोमल अङ्गोंके द्वारा हो और जिसके द्वारा शृङ्गार आदि कोमल रसोंका उद्दीपन होता हो। साधारणतः स्त्रियोंका नृत्य ही लास्य कहलाता है, कहते हैं, कि शिव और पार्वतीने पहले पहल मिल कर नृत्य किया था। शिवका नृत्य तांडव कहलाया और पार्वतीका लास्य। यह लास्य दो प्रकारका कहा गया है—छुरित और यौवत। साहित्यदर्पणमें इसके दस अंग बतलाये गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं,—गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैन्धवाख्य, द्विगूढ़क, उत्तमोत्तम और युक्तप्रत्युक्त।

(पु०) लास्यमस्त्यस्येति लास्य-अच्। ३ नर्त्तक, नचनिया।

लास्यक (सं० क्ली०) लास्यमेव स्वार्थे कन्। नृत्य, नाच।

लास्या (सं० स्त्री०) लास्यमस्त्यस्या इति लास्य-अच्-टाप्। नर्त्तकी, नाचनेवाली।

लाह (हिं० स्त्री०) १ लाख, चपड़ा। २ चमक, आभा। (पु०) ३ लाभ, फायदा।

लाहन (हिं० पु०) १ वह महुआ जो मद्य खींचनेके उपरान्त देगमें बच रहता है। यह प्रायः पशुओंको खिलाया

जाता है। २ किसी प्रकार या पदार्थका खमीर। ३ जूसी और महुएको मिला कर उठाया हुआ खमीर। ४ अनाजके ढोनेकी मजदूरी। ५ वे पेय ओषधियाँ जो गौओंको बच्चा होने पर दी जाती हैं।

लाहरा (लेहिरा)—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। यह सम्बलपुर नगरसे साढ़े आठ कोस उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। लेहिरा गण्डग्राम (अक्षा० २१° ४४' उ० तथा देशा० ८४° १७' पू०) यहांका प्रधान वाणिज्यकेन्द्र है। समूची भूसम्पत्तिका भू-परिमाण ४६ वर्गमील है।

लेहिरा-सरदारने किसी युद्धमें सम्बलपुर-राजकी सहायता की थी। उसीमें १७७१ ई०को सम्बलपुर राजने लाहराके वर्त्तमान सरदारवंशके उस पूर्वपुरुषको यह सम्पत्ति दी। ये सरदार लोग गोंडजातीय हैं। १७५७-५८ ई०के गदरमें यहांके सरदार शिवनाथ सिंहने अंगरेजराजके विरुद्ध योगदान नहीं किया था। १८८४ ई०में उनके नावालिग पुत्र वृन्दावन सिंह जागीरी मसनदके अधिकारी हुए।

लाहल (हिं० पु०) लाहौल देखो।

लाही (हिं० स्त्री०) १ लाल रंगका वह छोटा कीड़ा जो वृक्षों पर लाख उत्पन्न करता है। विशेष विवरण लाक्षा शब्दमें देखो। २ इससे मिलता जुलता एक प्रकारका कीड़ा। यह प्रायः माघ फागुनमें पुरवा हवा चलने पर उत्पन्न होता है और फसलको बहुत हानि पहुंचाता है। ३ धान, बाजरे आदिके भूने हुए दाने, लावा। ४ सरसों। ५ काली सरसों। ६ तीसरी बारका साफ किया हुआ शोरा। (वि०) ७ लाहके रंगका, मटमैलापन लिये लाल।

लाहुल—पञ्जावके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक उपत्यका और उपविभाग। लहुल देखो।

लाहोर—पञ्जावके अन्तर्गत एक विभाग। लाहोर, फिरोजपुर और गुजरानवाला जिला ले कर यह विभाग गठित है। इसकी उत्तरी सीमा पर शाहपुर और गुजरात जिला; पूर्वमें सियालकोट और अमृतसर जिला, कपूरथला राज्य और जालन्धर जिला; दक्षिणमें पतियाला राज्य तथा शीर्षा, मण्टगोमरी और झङ्ग जिला है। यह अक्षा० २६° ५८' से ले कर ३२° ५१' ३० तथा देशा० ७२° २७' से ले कर ७५° ५६' पू० तक विस्तृत है। भू-परिमाण १७१५४ वर्गमील और जनसंख्या ५५६८४६३ है। इस विभागमें ६८६६ गांव और ४१ नगर लगते हैं। यह स्थानीय कमिश्नरकी देखरेखमें है। लाहोर, गुजरानवाला और फिरोजपुर देखो।

लाहोर—पञ्जावप्रदेशके छोटा लाटके शासनाधीनमें परिचालित एक जिला। यह अक्षा० ३०° ३८' से ले कर ३१° ५४' उ० तथा देशा० ७३° ३८' से ले कर ७४° ५८' पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ३७०४ वर्गमील और जनसंख्या ११६२१०६ है जिनमें मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ६२, हिन्दुओंकी २४ और सिखोंकी १४ है। लाहोर विभागका मध्यांश ले कर यह जिला गठित है। इसके उत्तर-पश्चिममें गुजरानवाला, उत्तर-पूर्वमें अमृतसर, दक्षिण पूर्वमें शतद्रु नदी और दक्षिण-पश्चिममें मंटगोमरी जिला है।

समूचे पञ्जाव प्रदेशके ३२ जिलोंमें लोकसंख्यानुसार यह तीसरा तथा भूमिके परिमाणानुसार ग्यारहवां स्थान गिना जाता है। यह चार स्वतन्त्र तहसीलोंमें विभक्त है। शरकपुर तहसील इरावती नदीके वहिर्भूत प्रदेशको ले कर गठित, दक्षिण-पश्चिमार्द्धकी चूनियान तहसील इरावती और शतद्रु के मध्यस्थलमें अवस्थित, कसूर तहसील शतद्रुके किनारे तक विस्तृत तथा उत्तर-पूर्वार्द्धकी लाहोर तहसील इरावतीके तटसे शतद्रु तीरवर्त्ती कसूर उपविभाग तक परिव्याप्त है।

इस जिलेका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोरम है। शतद्रुसे इरावती तथा इरावतीसे रेकना-दोआव नामक शस्यसमृद्ध अन्तर्वेदीके मध्यस्थल तक यह जिला विस्तृत है। शतद्रु, इरावती और देघ इन तीन नदियोंके कारण इस जिलेका अधिकांश स्थान उर्व्वर है। कहीं कहीं पर्वत भी दिखाई पड़ता है।

शतद्रु और इरावती नदीके मध्यस्थलमें मांझा नामक अधित्यका या ऊंची भूमि पड़ी है। कहते हैं, कि एक समय आदि-सिखजाति वहीं रहती थी। उस विस्तृत प्रदेशके उत्तर उपजाऊ जमीन है लेकिन दक्षिणकी भूमि मरुभूमिमें परिणत है। उसके सबसे अन्तमें बहुत थोड़ी घास उगती है सही, पर खाल या नदीमें जल न रहनेसे

उतनी नहीं जमती। वर्षाके सिवा अन्यान्य ऋतुओंमें वहां जो घास और पौधे उगते हैं, उसे ऊंट आदि जानवर खाते हैं। वर्षाके जलसे वह घास पुनः सजीव हो कर बढ़ने लगती है जो पीछे गौओंको खिलाई जाती है। बीच बीचमें बड़े बड़े गांव दिखाई तो पड़ते हैं, पर इस उच्च-भूमिका अधिकांश स्थान ही प्राचीन पुष्करिणी, कूप, नगर और दुर्ग आदिका टूटा-फूटा खंडहर देख कर अनुमान होता है, कि इस अधित्यका-भूमिमें एक समय एक समृद्ध जातिका वास था। शतद्रु नदीसे कुछ दूर पूर्व-पश्चिममें विस्तृत एक ऊंचा बांध है। इस बांधसे नदी तीर तक जो त्रिकोणाकार उर्व्वर-भूमि है, वह हीतार कहलाती है। इरावती नदीके किनारे बहुत से पेड़ तथा फल और फूल उगते हैं। उसके उत्तर-पश्चिममें देघनदी-के किनारे तक जंगल है।

उपरोक्त नदियोंके अववाहिका प्रदेश तथा खलप्रवाहित स्थानोंके अलावा इस जिलेमें और कहीं भी प्रचुर शस्य उत्पन्न नहीं होता। इसका एकमात्र कारण जलका अभाव ही है। यहां कूआं खोद कर जल निकाला जाता है अथवा खालसे या और दूसरे उपायसे जमीन सींची जाती है। चेष्टा करनेसे और जिलोंके समान यहां शस्य पैदा किया जा सकता है; किन्तु कठिन परिश्रम करने पर भी यहां सियालकोट, होसियारपुर या जालन्धरकी तरह शस्य पैदा नहीं हो सकता।

इरावती नदी इस जिलेके बीच हो कर तथा लाहोर नगरके पास हो कर वह चली है। बीच बीचमें पहाड़ रहनेके कारण इसका जल टकरा कर शाखारूपमें वह गया है। फिर आगे जा कर एक धारामें हो गई है। शतद्रु और विपाशा नदी आज कल एक हो कर बहती है। ग्रामवासियोंमें एक किंवदन्ती है, कि १७५० ई०की किसी अनैसर्गिक कारणसे इस नदीकी गति परिवर्त्तित हुई। लोगोंका कहना है, कि विपाशा नदीकी प्रखर धारा यहां तपस्यानिरत सिख-गुरुकी कुटी भंसा ले गई। इस कारण उन्होंने उसे शाप दिया। तभीसे उस प्रदेशमें विपाशाकी गति रुक गई है। कसूर और चुनियान नगर तथा बहुत-सा प्राचीन ग्राम इस पुरातन नदी-गर्भमें अवस्थित है।

खेती बारीकी सुविधाके लिये इस जिलेके चारों ओर खाल काट कर जमीन उपजाऊ बनाई गई है। उनमें-नाना शाखा विस्तृत बड़ादोआब खाल विशेष उल्लेख-योग्य है। यह शतद्रु से ले कर लाहोर नगर और मियान-मीरके सेनानिवासके बीच हो कर बह गई है और नियाजवेगके निकट इरावतीमें मिल गई है। इसकी कसूर शाखा और सोब्राओन शाखा फिर घूम कर शतद्रु-में मिल गई है। मुगल-सम्राट् शाहजहांके प्रसिद्ध स्थपति अलीमर्द्दन खाँने यहांकी हसली खाल कटवा निकाली थी। वह पहले शालिमारका विख्यात उद्यान और फुहारेका जल सरवराह करती थी; लेकिन आज कल बड़ादोआब खालका कलेवर पुष्ट करती है। इसके अलावा कटोरा, खानवा और सोहाग नामक खाल शतद्रु के गर्भसे काट कर मांझा और उक्त नदीके मध्यवर्त्ती त्रिकोणाकार भूमि-में जल पहुंचाया जाता है।

यहां कीकर, शिरीष, फन्द, करील, शिशु, आम, बकायन, आमलता, पीपल, वट आदिके पेड़ बहुतायतसे होते हैं। जङ्गलोंमें अन्यान्य नाना जातीय वृक्ष तथा चीता, नीलगाय, वनवराह और हिरन आदि पशु तथा नदीके किनारे तरह तरहके पक्षी विचरण करते हैं।

बहुत पहलेसे यह जिला आर्य सभ्यताका केन्द्रस्थल था। आज भी जनशून्य वनान्तराल-प्रदेशस्थ ध्वस्त नगर तथा कूपतड़ाग आदि उसका परिचय देता है। यह सब प्राचीन कीर्त्ति ऊंची भूमिमें रहनेके कारण अनुमान होता है, कि उस समय यहांकी जलराशि अपेक्षाकृत उच्च स्तरमें बहती थी तथा अधिक सम्भव है, कि तत्का-लीन सुशिक्षित और सभ्यदेश-वासियोंने सुकौशलसे अपने अपने प्रतिष्ठित नगरोंमें जल लाया था। फिल-हाल भी उस प्राचीन आर्यसभ्यताके कुछ निदर्शन यहां दिखाई पड़ते हैं।

इस जिलेका इतिहास लाहोर नगरके इतिहासके साथ मिला हुआ है। उक्त नगरके नाम पर ही इस जिलेका नाम पड़ा है। अफगानस्थान तक विस्तृत एक रास्ते पर अवस्थित रहनेसे यह नगर अलेकसन्दरके भारत आक्र-मणके पहलेसे भी पाश्चात्य वैदेशिक शत्रुके हाथ पड़ा है। पञ्चनदके साथ गान्धार-राज्यका सम्बन्ध महाभार-तादि प्राचीन ग्रन्थमें देखा जाता है। इसलाम-धर्मका

स्रोत रोकनेके लिये एक समय इस नगरमें हिन्दू धर्मका एक प्रबल केन्द्र कायम हुआ था। पीछे गजनी-राजवंश-के यहां राजधानी स्थापन करने पर धीरे धीरे मुसलमानों ने उपनिवेश स्थापन करना शुरू कर दिया। बादमें मुगल सम्राटोंने कुछ समयके लिये यहां राजपद कायम किया था।

महाराज रणजित् सिंहके अभ्युदयमें यह स्थान उन्नतिके शिखर पर चढ़ने लगा तथा क्रमसे वह पञ्चनद राज्यकी राजधानी गिना जाने लगा। इस समय यह अङ्गरेजाधिकृत एक विस्तृत प्रदेशका विचार-सदर है।

माकिदनपति अलेकसन्दरने जिस समय भारत पर आक्रमण किया, उस समयके लाहोर जनपदकी कोई प्रसिद्धि पाई नहीं जाती। ७वीं सदीमें जब चीन-परिव्राजक बौद्धतीर्थ देखने भारतवर्ष आये, तब वे यह स्थान अतिक्रम कर जालन्धर पधारे थे। उस समय लाहोर नगर ब्रह्मण्य धर्मका केन्द्रस्थान था। उक्त सदीके अन्तमें जब मुसलमानोंने सर्वप्रथम भारतवर्ष पर चढ़ाई की, तब लाहोर नगरमें अजमेर राजवंशके एक राजा राज्य करते थे। उस समयसे करीब तीन शताब्द तक यहांके हिन्दू राजे मुसलमान-आक्रमणसे पञ्चनद प्रदेशकी रक्षा करते आ रहे हैं। १०वीं सदीके शेष भागमें गजनीपति सुलतान सुबक्तगीन अपनी विपुल मुसलमान-वाहिनी ले कर हिन्दुस्थान-विजयके लिये आगे बढ़े। लाहोर-राज जयपालने मुसलमान-सेनासे पराजित हो कर हताशहृदयसे अग्निकुण्डमें प्राण विसर्जन किये। इसके कुछ समय बाद गजनीराज सुलतान महमूद भारत लूटनेके अभिप्रायसे आ कर पेशावरके पास जयपालके लड़के अनङ्गपालको हरा कर दलबलके साथ अग्रसर हुए तथा पञ्चनदके आस पासके प्रदेशोंको जीत और लूट कर बहुत धनरत्नके साथ अपने राज्यको लौटे। अनङ्गपालको जय करनेके तेरह वर्ष बाद वे पुनः भारत आये और लाहोर अपने कब्जेमें कर लिया। तभीसे यह स्थान किसी न किसी मुसलमान राजवंशके ही अधिकारमें रहता है। सिखजातिके अभ्युदयसे यहांके मुसलमान राजवंशकी शक्ति घट गई है तथा सिख सरदार यहां आधिपत्य फैला कर क्रमशः राज्यशासन करते हैं। पञ्जाब-केशरी महाराज रणजित् सिंहके समय लाहोर राजधानीने सिख-सरदारकी पराकाष्ठा झलका दी थी।

सबक्तगीन, महमूद, जयपाल और अनङ्गपाल देखो।

सुलतान महमूदकी आठ पीढ़ी नीचे गजनी-राजके राजत्वकालमें लाहोर नगर मुसलमान राज-प्रतिनिधिके द्वारा शासित हुआ था। ११०२ ई०मे सेलजुकों (तातार)-ने गजनीके सुलतानको हरा कर उनका सिंहासन दखल कर लिया और वे भारत भाग आये। तबसे महम्मद घोरीके भारत-विजय तक उक्त राजवंश तथा भारतीय मुसलमान साम्राज्यकी राजधानी लाहोरमें रही। महम्मद घोरी ११९३ ई०में दिल्ली अधिकार कर वहां राजपाट और राजधानी उठा लाये। खिलजी और तुगलक-वंशीय पाठान राजाओंके राजत्वकालमें लाहोर नगरकी उल्लेखयोग्य कोई घटना न घटी।

१३९७ ई०में मुगल-सरदार तैमूरने भारत पर हमला किया। उनके एक सेनापतिने स्वयं इस नगरको लूटा। उस समय लाहोर एकदम श्रीहीन हो गया था। १४३६ ई०में बहलोल लोदीने भारत-साम्राज्यके अधीश्वर हो कर लाहोर पर चढ़ाई कर दी और उसे अपने कब्जेमें कर लिया। उनके पौत्र सुलतान इब्राहिम लोदीके राज्यकाल-में यहांके अफगान शासनकर्त्ताने राजद्रोही हो कर मुगल-सम्राट् बाबर शाहको भारत पर चढ़ाई करनेके लिये बुलाया। बाबर १५२४ ई०में लाहोर प्रान्तमें आ धमके। लाहोरके निकट इब्राहिमके सेनादलके साथ बाबरका युद्ध हुआ। बाबरने इब्राहिमको हरा कर लाहोर नगर लूटा था।

१५२६ ई०में बाबरने पुनः भारत पर आक्रमण किया। पानीपतकी लड़ाईमें पाठान राजको परास्त कर उन्होंने दिल्ली अधिकार कर भारतमें मुगल साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की थी। भारत साम्राज्यमें इस राजवंशका प्रभाव कायम रहनेके साथ ही साथ लाहोर नगरकी श्रीवृद्धि हुई। मुगलसम्राटोंके राजप्रासाद तथा राजपुरुषोंकी नाना शिल्पसमन्वित अट्टालिका और मकबरा आदि आज भी मुगल-कीर्त्तिका गौरव बढ़ा रहा है। लाहोर नगर देखो।

१७३८ ई०में पारस्यपति नादिर शाहने बेरोकटोक इस जनपदके मध्य हो कर भारतमें आ कर मुगल राजशक्ति-

को पददलित किया था। उनके हठात् आक्रमण और विजयको देख बलवीर्यसम्पन्न सिखजाति अपने हृदयमें अभ्युत्थानकी एक अभिनव आशा संचारित करने लगी। गुरु नानकके धर्ममतने पहले ही उनका कलेजा मजबूत कर समूचे पञ्जाबमें धीरे धीरे एक जातीयशक्ति फैला दी थी। सिखगण इस धर्ममन्त्रके बलसे क्रमशः एकतावद्ध और बलद्रुत हो कर वैदेशिकका पदाघात सह न सके तथा इच्छुक हो कर सभी वैदेशिक राजाका अधीनतापाश तोड़नेका उपाय ढूढ़ने लगे। उन्होंने पहले डकैतोंकी तरह दल बांध कर इधर उधर लूट पाट मचाया और धन इकट्ठा कर पञ्जाबके हर एक प्रदेशमें सरदाररूपमें अपना शासन फैलाया। पीछे वे आपसमें मिल कर दो या तीन मिसलमें एक-एक शक्ति संगठन कर प्रबल शत्रुके आक्रमणसे स्वदेशकी रक्षा करनेमें आगे बढ़े थे।

पञ्जाब और सिख देखो।

१७४८ ई०में दुर्रानी सरदार अहमद शाह अवदलीने लाहोर पर धावा किया। इस समय मुसलमान शत्रुओंके उपर्युपरि आक्रमण और लूट-पाटसे लाहोर नगर और उसका चतुष्पार्श्ववर्त्ती स्थान उत्सन्न तथा जनशून्य हो गया। सिखोंने इस समय यथेष्ट वीरत्वका परिचय दिया था। १७६७ ई०में अहमद शाह अन्तिम बार भारतको लूट तथा विजय कर स्वदेश लौटे। उसके बाद ३० वर्ष तक लाहोर नगरमें किसी प्रकारका अत्याचार तथा दुर्घटना नहीं हुई तथा उद्धत सिख-सम्प्रदाय इस समय किसी तरहके युद्ध-विग्रहसे क्लिष्ट नहीं हुए थे; वरन् उनका बल बढ़ता ही जाता था। समूचे लाहोर जिलेमें उस समय भंगी-मिसलके तीन सरदारोंने अपना अपना प्रभाव फैलाया था।

१७९९ ई०में सिख-सरदार रणजित् सिंहने अफगान-आक्रमणकारी जमान शाहसे लाहोर पा कर अपना राजपद कायम करनेका संकल्प किया। क्रमशः उन्होंने अपनी बुद्धि और भुजबलसे पंजाब प्रदेशका अधीश्वर-पद प्राप्त किया तथा "पञ्जाब-केशरी महाराज रणजित् सिंह" नामसे विख्यात हुए थे। इनके परिश्रम तथा वीरतासे अर्जित यह पञ्चनद राज उनके वंशधरोंकी शासन-शक्तिके अभावसे तथा गृहविवादसे शीघ्र ही नष्ट हो गया। उसके बाद ही बृटिश शासनाधिकार आरम्भ हुआ।

रणजित्सिंह और पञ्जाब देखो।

पञ्जाब प्रदेशमें अपना शासन विस्तार करनेके अभिप्रायसे १८४६ ई०के दिसम्बर महीनेमें अङ्गरेजराजने लाहोर नगरमें प्रतिनिधि सभा (Council of Regency) कायम की तथा अङ्गरेज रेसिडेंट ही यथार्थमें उस समय लाहोरके प्रधान शासनकर्त्ता हुए थे। उनके अनभिमतसे कोई भी सिख-सरदार राज्यशासन संक्रान्त कोई काम नहीं कर सकते थे। १८४९ ई०की २९वीं मार्चको द्वितीय सिख-युद्धका अवसान हुआ। युवक महाराज दलीप सिंहने अङ्गरेजके हाथ राज्यका शासनभार सौंप स्वयं राजपद छोड़ दिया। तभीसे इस जिलेका शासनकार्य अङ्गरेजोंकी शासनप्रणालीके अनुसार परिचालित होता है। खड़्ग सिंह, नवनेहाल सिंह और दलीप सिंह देखो।

१८५७ ई०के गदरमें यहांके मियां मीर सेनावासके देशी सेनादलने बागी हो कर लाहोर-दुर्ग पर आक्रमण करनेका षड़यन्त्र किया। सौभाग्यवश बृटिश गवर्मेण्टसे यह बात छिपी न रही। अङ्गरेज-सेनापतिने वहांकी अङ्गरेज कमानवाही और पदातिक सेनाओंकी सहायतासे उस बागी सेनादलको अपने वशमें कर उनका सब हथियार छीन लिया। इससे उनकी आशा व्यर्थ हुई सही; पर लाहोर-राज्यकी विद्रोहवह्नि न बुझी। दीर्घकालव्यापी गदरके समय यहांके सिखोंने भी बीच बीचमें अङ्गरेज राजको शंकामें डाल दिया था। उक्त वर्षके जुलाई महीनेमें मीयान् मीरके २६ देशी पदातिक दलने विद्रोही हो कर सेनानायकके प्राण लिये और सबके सब छिप रहे। अमृतसरके डिपुटी कमिश्नर मि० कूपर द्वारा परिचालित एक दल अङ्गरेजो-सेनाने इरावती नदीके किनारे उनके सामने हो कर लड़ाई की। इस युद्धमें देशी पैदल सेना पूर्णरूपसे हारी थी। उसके बाद दिल्ली नगरके अधःपतन तक अङ्गरेजराजने लाहोरकी रक्षाका अच्छा बन्दोबस्त किया था। दिल्ली राजधानी अङ्गरेजोंके पदानत होते देख यहांका विद्रोही-दल उनके बलवीर्य और वीरत्वसे स्तम्भित हो गया।

लाहोर नगर और मीयान-मीर गोरा बाजार, कसूर, चुनियनपट्टी, खेमकर्ण, राजा जङ्ग और शूरसिंह नगर

यहांके प्रधान वाणिज्य स्थान हैं। खुदियान और शरखपुरमें म्युनिसिपलिटियां हैं, फिर भी इनकी जनसंख्या सबसे बहुत कम है। सरकारकी सहायतासे तथा देशी मनुष्यों की सहायतासे प्रतिष्ठित विद्यालयके सिवा इन नगरोंमें अमेरिकन वेपटिष्ट मिशन, चर्च मिसनरी सोसाइटी और स्त्री-मिशन शिक्षा तथा धर्मप्रचारके लिये विद्यालय प्रतिष्ठित हुए हैं। सन १८६३ ई०में लण्डनके रिलिजस ट्रेक्टसोसाइटीके सहयोगसे पञ्जाबकी रिलिजस ट्रेक्टसोसाइटीने यहांके अनारकली बाजारमें एक पुस्तकालय स्थापित किया है।

अंगरेजोंने अपने राजत्वमें पञ्जाबमें सुशिक्षा और सुशासनमें प्रयासी हो जगह जगह रीत्यनुसार राजकर्मचारियोंकी नियुक्ति कर दी। शिक्षाकी वृद्धिके लिये उन्होंने वहां एक पञ्जाब यूनिवरसिटी कायम कर दी है। अब लाहोर नगरके ओरियण्टल कालेज, गवर्नमेण्ट कालेज, ट्रेनिङ्ग्कालेज, नार्मल विद्यालय, स्कूल आफ आर्ट अथवा कला-विद्यालय, ला स्कूल, स्त्री-मिशनके अधीनस्थ और अमेरिकाके प्रेसबिटेरियन मिशनके अधीनस्थ सभी विद्यालय, चर्च-मिशनरी सोसाइटीके कर्तृत्वाधीनमें रखे सेण्टजेमस डेमिनिटी स्कूल और यूरोपीय, देशीय बालक-बालिकाओंके शिक्षा-परिचालित सभी विद्यालय, इस यूनिवरसिटीके नियमानुसार चलते हैं। कसूरमें सन् १८७४ ई०में एक श्रमजीवी विद्यालय (School of Industry) स्थापित हुआ। इसमें अब भी गलीचे तथा कपड़े बुननेका काम होता तथा चमकीसितारेका काम, दर्जीका काम आदि शिल्पचातुर्य्यकी शिक्षा लड़कोंको दी जाती है। सिवा इसके मेडिकल कालेज, म्यो अस्पताल, भेटरनरी स्कूल (पशुचिकित्सा-विद्यालय) और लुनाटिक एसाइलाम (पागल खाना) यहांका रोगविज्ञान-शिक्षाके विशेष उपयोगी हुए हैं।

इस जिलेके रहनेवालोंमें जाटोंकी संख्या अधिक है। यह अधिकांश श्रमजीवी हैं। इनमें प्रायः नौ आने भाग अर्थात् ८० हजार मनुष्य पूर्वजोंकी तरह हिन्दू या सिखधर्मका पालन करते हैं और बकिये मुसलमान बन गये हैं। अन्यान्य अधिवासी हिन्दू होने पर भी मुसलमानोंके संसर्गसे इनका आचरण भ्रष्ट होता जा रहा है। किसी किसी जातिकी शाखा मुसलमानोंका वंशधर कहलाती है। इस श्रेणीमें डुहरा, अराइन, राजपूत, जोलाहा, अरोरा, क्षत्रिय, कुमार, तखान, मच्छी, तेली, भिनवार, ब्राह्मण, मोची, कुम्बो, धोबी, नाई, लोहार, मिरासी, लवाना, खहरम, सोनार, गुजर और दोगरा जाति ही उल्लेखनीय है। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों दिखाई देते हैं। असली मुसलमानोंमें शेख, खोजा, काश्मीरका सैयद, पठान, बलूची और मुगल ही प्रधान हैं। इनमें सिया, सुन्नो या ओहावी सभी मतके लोग हैं।

इन अधिवासियोंमें अधिकांश ही किसान हैं। इनमें कितने हो शिक्षित हो कर राजकार्यमें अथवा शिक्षाविभागमें भी काम करते हैं। अपढ़ लोग घरके कामोंमें लगे रहते हैं या दूसरेकी गुलामी किया करते हैं। धनी व्यवसाय वाणिज्यमें और गरीब मजदूरी कर अपना अपना दिन बिताते हैं।

यहां रब्बी और खरीफ दोनों तरहकी फसल पैदा होती है। इनमें (यव) जौ, धान, बाजरा, मकई, चना, तेलहन तथा अन्यान्य फसल ही प्रधान हैं। रूई, तम्बाकू और सन यहां अधिकतासे पैदा होता है। यहांकी यह उपज नावों, रेलों और गाड़ियों द्वारा बाहर भेजी जाती है। यहांकी उपज सिन्धु, पञ्जाब, दिल्ली और दण्डसभेली रेलपथसे रायविन्द हो कर करांची आती है। दूसरी ओर नर्दर्न पञ्जाब स्टेट रेल पेशावर और उत्तर-पश्चिम सीमान्तमें यहांका माल ले जाती है। ग्राण्ड ट्रङ्क रोड नामक रास्ता इरावती और शतद्रु नदीके पुलसे पार कर लाहोर नगरसे उत्तरको ओर पेशावर तक गया है। इस पथसे और जिलेके अन्यान्य नगर संयुक्त रास्तोंसे यहांकी उपज गोशकटमें सदा जाया करती है। अच्छे सुस्वादुपूर्ण फलोंमें यहां आम, नारंगी, तूंत, बेर, खरबूजे, अमरूद, अनारस, फलसा, अनार, सरबती नीबू और केले अधिकतासे पाये जाते हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। बड़ी दोआबका उत्तर पूर्व विभाग ले कर यह गठित है। भूपरिमाण ७३० वर्गमील और जनसंख्या ४७३१८१ है। यह अक्षा० ३१° १४´ से ले कर ३१° ४४´ ३० तथा देशा० ७४° ०´से

ले कर ७४° ४०′ पू० तक विस्तृत है। यहां ७ थाने हैं जिनमें ७६० रेगुलर पुलिश तथा ३२२ चौकीदार हैं। इस तहसीलमें लाहोर नगर और ३७२ गाँव लगते हैं।

लाहोर नगर—पञ्जावप्रदेशको राजधानी और लाहोर विभागका विचारसदर। यह अक्षा० ३१° ३५′ उ० तथा देशा० ७४° २०′ पू०के बीच रावी नदीके किनारे अव स्थित है। जनसंख्या १८६८८४ है जिनमें मुसलमानोंकी ही संख्या अधिक है। प्राचीन लाहोर नगरके खण्डहर पर यह वर्त्तमान नगर स्थापित हुआ है सही, किन्तु अब भी उसकी प्राचीन कीर्तियोंका लोप नहीं कर सका है। आज भी इधर उधर फैले बहुतेरे प्राचीन नमूनोंसे अतीत स्मृतियोंकी कीर्त्तियां लोगोंके नेत्रोंमें विराजित हैं।

लाहोर नगरका पुरानेसे पुराना इतिहास और प्रत्न तत्त्वके सम्बन्धमें आज भी कोई विशेष प्रमाण नहीं मिला है। यहांके हिन्दुओंकी दन्तकथाओंसे मालूम होता है, कि यह नगर अयोध्यावासी श्रीरामचन्द्रके वंशधरोंके राजत्वकालमें उन्नत हुआ था। उपरोक्त श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र लव और कुश अपने नाम पर लावोर तथा कुशर नगर स्थापित कर शासन करते थे। पीछे इन नगरोंका नाम विगड़ते-बिगड़ते लावोरका लाहोर तथा कुशरका कसूर हो गया है। किसी किसी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें इस नगरका नाम लवारण्य या लवारण भी कहा गया है।

इस दन्तकथाके सिवा और कोई इसके पुराने इतिहासका कुछ पता नहीं लगता। सिकन्दरके समयके इतिहासकारोंने इस नगरके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है या बाह्लिक यवनवंशीय (Grecco Bactrian) राजों द्वारा प्रचलित कोई सिक्का यहांके खण्डहरोंमें नहीं पाया गया है। ये सब देख कर सहज ही अनुमान होता है, कि भारतके इतिहासमें पहली अवस्थामें लाहोर नगरके किसी तरहकी समृद्धिके परिचयसे भारतीय अवगत न थे। ईस्वी सन्‌की ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें बौद्धधर्मके जिज्ञासु चीन परिव्राजक यूएनचुवङ्गने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें इस नगरकी समृद्धिका विवरण दिया है। इससे मालूम होता है, कि ईस्वी १से ७वीं शताब्दीके भीतर यह लाहोर नगर बड़ा ही समृद्धशाली था।

यहांके हिन्दू राजाओं और प्राचीन मुसलमान राजाओंके अधिकारकालमें लाहोर नगरकी अवस्था कैसी थी, लाहोरके जिला इतिहासमें उसका कुछ आभास मिलता है। अजमेरके राजवंशीय एक चौहान राजपूत यहांका राजत्व कर रहे थे। इनके वंशके ही जयपाल तथा अनङ्गपाल दो राजे हो गये हैं। इनके जमाने तक यहां हिन्दूप्रभाव प्रतिष्ठित था। इसके बाद क्रमसे गजनी और गोरीवंशीय मुसलमान सुलतानने पञ्जावको जीत कर यहां अपनी राजधानी कायम की थी। उन्होंने जिन इमारतोंको बनवाया था, उनका ध्वंसावशेष आज भी मौजूद है।

मोगल सम्राट्‌के राजत्वकालमें लाहोर नगरकी सीमा बढ़ी थी और यह नगर सुन्दर सुन्दर अट्टालिकाओं द्वारा सुसज्जित हुआ था। मुगलराज हुमायूँ, अकबरशाह, जहांगीर, शाहजहान, औरङ्गजेबने यहांकी कारीगरीकी पराकाष्ठा दिखलाई थी। उनके राजत्वकालमें लाहोर नगरके इतिहासमें वास्तवमें स्वर्णयुग उपस्थित हुआ था।

बादशाह अकबरने यहांके किलेका रूप बदल कर इसकी पूरी मरम्मत कराई थी। उन्होंने इस नगरके चारों ओर चहारदीवारी बनवाई थी। उसका चिह्न आज भी देख पड़ता है। महाराज रणजित् सिंहने उसी भग्नावशेष प्राचीर (चहारदीवारी) पर ही ईंटोंकी जुड़ाई करा कर चहारदीवारी तैयार कराई थी। हिन्दू और मुसलमान-शिल्पके बहुतेरे नमूने अकबरके प्रतिष्ठित लाहोरी किलेमें दिखाई देते हैं। इस समय कहीं कहीं उसकी मरम्मत करते समय उन नमूनेमें कुछ नष्ट हो गये हैं। महात्मा अकबर शाहके राजत्वकालमें लाहोर नगरकी जनसंख्या-वृद्धिके साथ साथ नगरकी चौड़ाई भी बढ़ी थी। जहां बहुसंख्यक लोगोंकी बस्ती थी, वही स्थान आज लाहोर नगरके नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन नगरकी चहारदीवारीके बाहर जनशून्य स्थानोंमें इस समय बहुत बड़े राजाओं और लोगोंकी बस्ती हो रही है।

मुगल-सम्राट् जहाङ्गीर समय-समय पर यहां आ कर रहते थे। उस समय लाहोर नगर समृद्धिसे पूर्ण

था। यहां रह कर उनके बेटे खुसरूने पिताके विरुद्ध तलवार उठाई थी। जहांगीरके राजत्वकालमें आदि ग्रन्थके सङ्कलयिता सिक्ख-गुरु अर्ज्जुनमल यहांके कैदखानेमें मरे थे। मुगल राज-प्रासाद और राजा रणजित्‌सिंहके भजन-मन्दिरके वीच धर्मार्थ-जीवनदानकारी इन सिक्ख-गुरु अर्ज्जुनका समाधि मन्दिर विद्यमान है। बादशाह जहांगीरने यहांके प्रसिद्ध ख्वाव गाह या विश्राम स्थान, मोती मसजिद और अनारकलीका समाधि मन्दिर बनाया था। जहांगीरका राजमहल इरावती नदीके तट पर अवस्थित है।

शाहदरामें बना जहांगीरका भजनाश्रम या इबादतखाना लाहोरका एक प्रधान भूषण है। मुसलमान राजाओं और सिक्खोंके उपद्रवोंसे इसकी बुरी हालत हो रही है। इस इमारतके समाधि स्थलमें जो सङ्गमरमरका बुर्ज था, उसे औरङ्गजेब उखाड़ ले भागा। जहांगीरकी प्रियतमा पत्नी नूरजहान् और साला आसफ खांके समाधि-मन्दिरके मरमर-मन्दिरों और नाना रंगोंके मीनारोंके शिल्पको सिक्खोंने लूट लिया। इससे यह सम्पूर्णरूपसे श्रीहीन हो गया है।

इस जहांगीरके महलकी बगलमें उसके पुत्र शाहजहानने एक छोटा-सा महल बनवाया था। इस समय भी इसकी शिल्पशोभा देख पड़ रही है। इसके मरमर पत्थरों पर सफेद चूनेका काम हुआ है। इससे सिक्ख भ्रममें पड़ कर इसके मरमरोंको उठानेसे बाज आये थे। उक्त सम्राट्‌ने "ख्वावगाह" महलकी बाईं बगलमें बारिककी तरह लम्बी लम्बी अट्टालिकायें बनवाईं थीं। इनके बीचमें 'समानबुरुज' नामक एक अठकोना किला है। उसके बीच आंगनमें बड़ी एक चांदनी अनेक मूल्यवान् पत्थरोंसे खोदित पुष्पमालादि शिल्पचातुर्य्यसे परिपूर्ण है। इसके बनानेमें नौ लाख रुपया खर्च हुआ था, इससे लोग इसे "नौलखा" कहा करते थे। इसीकी बगलमें 'शीसमहल' नामक महल है। महाराज रणजित् सिंह यहां बैठ कर वैदेशिक और सामन्त राजाओंकी अभ्यर्थना अथवा उनके भेजे दूतोंके साथ भेंट करते थे। इसी महलमें बैठ उनके बेटे दिलीप सिंहने अंगरेज-सरकारके हाथ पञ्जाबका राज्य भार सौंपा था। इसीलिये अंगरेजोंके लिये यह महल बड़ा प्रिय है।

औरङ्गजेबके अत्याचारसे पीड़ित हो कर लाहोरवासी लाहोर छोड़ कर भाग गये। उसके राज्याधिकारके पहले जहानाबाद (वर्त्तमान दिल्ली) नगर स्थापन कालमें भी कई (राजकर्मचारी और राजानुगृहीत व्यक्ति) लाहोर नगर शून्य कर वहां जा कर बस गये। जहानाबाद प्रतिष्ठित होनेके बाद मुगल-सम्राट् प्रायः ही लाहोर नगरीमें आते न थे। इससे इसकी भावी उन्नतिका पथ अवरुद्ध होते देख यहांके रहनेवाले धीरे धीरे वहांसे भागने लगे।

सन् १८४६ ई०में लाहोर नगरमें अंगरेजोंके (Council of Regency) सभा प्रतिष्ठित हुई और सन् १८४६ ई०में महाराज दिलीपसिंहने ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके हाथमें लाहोरका शासन-भार अर्पण कर सिंहासन त्याग किया था। तबसे लाहोर अंगरेजाधिकृत पञ्जाब प्रदेशकी राजधानीके रूपमें गिना जाने लगा। इधर अंगरेज अधिकारी भी इस नगरकी उन्नतिमें दत्तचित्त हुए। तबसे यह नगर उन्नत हो रहा है।

सन् १८४६ ई०में अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद भी इस नगरके चारों ओरके स्थान टूटे-फूटे मकानोंके खण्डहरोंसे परिपूर्ण था। पहलेसे यूरोपियोंकी बस्ती नगरके दक्षिण ओर बनी थी। पीछे धीरे धीरे ये पूर्वकी ओर बढ़ गई और जो स्थान पहले खण्डहर और जंगल था, वह नाना रंगकी अट्टालिकाओंसे पूर्ण हो गया। इसके बाद वहां नये नये भवन बननेसे इस नगरकी श्रीवृद्धि हो रही है।

वर्त्तमान लाहोर नगर प्रायः ६४० एकड़ जमीनमें फैला हुआ है। यह पहले प्रायः ३० फीट उच्च ईंटोंकी चहारदीवारीसे घिरा था और इसके चारों ओर खाई खोदी गई थी और नगररक्षणोपयोगी किला, बुरुज भी बने थे। पीछे यह खाई भर दी गई और ३० फीटकी ऊंची चहारदीवारी टूट फूट कर अब १६ फीटकी रह गई है। चहारदीवारीके चारों ओर खाईके स्थानमें नाना जातीय वृक्षोंसे परिशोभित हो रहे हैं। केवल नगरका उत्तर भाग वृक्षोंसे खाली है।

इरावती नदीके किनारेमें यह नगर स्थापित होने पर आज कलका नगर स्थान उच्चस्तूपमें परिणत हुआ है।

नगरको एक पक्के पथने चारों ओरसे घेर लिया है। इसी पथसे चहारदीवारीके १३ दरवाजोंसे नगरमें प्रवेश करना पड़ता है। नगरके उत्तर-पूर्व कोन प्राचीन नदी खात तक लाहोरका किला फैला हुआ है। किलेके सामने एक बड़ा मैदान दक्षिण और पूर्वकी ओर बहुत दूर तक फैला हुआ है।

लाहोर नगरके रास्ते कम चौड़े और टेढ़े होने तथा यहांकी ऊंची अट्टालिकाओंके उन्नत मस्तक और श्रेणी-बद्ध भाव खड़ी रहनेके कारण नगरकी कोई शोभा नहीं होती। एकमें एक मकानोंके सटे रहनेसे स्वभावतः ही रास्ता बुरे दीख पड़ते हैं। किन्तु मुगल-सम्राटोंके समयमें जो अत्युत्कृष्ट और शिल्पनैपुण्य-समन्वित सुन्दर अट्टालिकायें बनी थीं, वे लोगोंके चित्तविनोदको अवश्य सामग्री थीं। मुगल कीर्त्तियोंमें नगरके उत्तर-पूर्व कोने में अवस्थित औरङ्गजेबकी बनाई मसजिद, रणजित सिंह-का समाधिमन्दिर विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। मस-जिदके सादे मरमरके बने गुम्बज और शिखर-स्तम्भ, रणजित्‌के समाधि-मन्दिरका बरामदा और गोलाकार छत और अव्यवहृत और अपविलीकृत मोगल-प्रासाद-के सम्मुख भाग भारतीय कारीगरीका नमूना है।

नगरकी चहारदीवारीका बाहरी भाग लाहोरी दर-वाजेके सामने एक रास्ता दक्षिणकी ओर आया है। यह अनारकली या सदर-बाजार रास्ता नामसे प्रसिद्ध है। यह पथ देशीय नगर भाग यूरोपीय बस्ती और अनार-कलीके पूर्वतन सैन्यनिवासके साथ सटा हुआ है। लाहोर नगरके यूरोपीय विभागमें राजकीय कार्यालय, अदालत और स्टेशन चर्च विद्यमान हैं। अनारकलीसे पूर्व ओर लारेन्स उद्यान और गवर्नमेण्ट हाउस तक प्रायः ३ मीलों तक जो यूरोपीयन नई बस्ती हुई है, वह डोनाल्ड टाउनके नामसे परिचित है। वहांके छोटे लाट सर डोनाल्ड मेकलिउडके नामानुसार इस नगरका नाम-करण हुआ था। मल (Mall) नामक चौड़ा रास्ता इस यूरोपीय नगरके बीचसे अनारकली तक गया है। उस रास्तेकी उत्तर तरफ रेल-स्टेशन और रेल-कर्मचारियों-के रहनेके लिये गुमटियां बनी हैं तथा इसके दक्षिण ओर यूरोपीयनोंकी बस्ती देख पड़ती है।

लाहोर नगरमें कई जो राजकीय और शिक्षा-विभागीय इमारतें दिखाई देती हैं, उनमें पञ्जाब यूनिवरसिटी और सेनेटहाल (देशी राजाओं और नवाबोंके चन्देसे प्रतिष्ठित) ओरियण्टल कालेज, लाहोर गवर्मेण्ट कालेज, मेडिकल स्कूल, सेण्ट्रल ट्रेनिङ्ग कालेज, ला स्कूल, मेटरनारी स्कूल, लाहोर हाई स्कूल, मेओ अस्पताल, म्यूजियम, स्वार्टस-इन्स्टीच्युट, लारेन्स और मण्टगोमरी हाल और एग्रि-कल्चरल सोसाइटीका मकान देखनेकी चीज है।

यहांका बना रेशमी वस्त्र, शाल, सुनहली और रुपहली सच्चे जरीके कपड़े, बरतन, पत्थरके खिलौने और गल्ले-का बहुत बड़ा कारोबार होता है। यह सब चीजें रेलपथ-से करांची बन्दरमें लाई जातीं और बहुतेरी चीजें विदेशमें भी भेजी जाती हैं। जो चीजें भेजी जाती हैं, उनमें गल्ला ही विशेष उल्लेखनीय है, उसमें भी गेहूं वहांसे अधिकतासे विदेश भेजा जाता है। कलकत्ता, अम्बाला, पेशावर, मुलतान और दिल्ली आदि भारतके प्रसिद्ध नगरोंमें भी आवश्यकतानुसार चीजें भेजी जाती हैं। यहांकी और यूरोपीय वणिकोंकी सुविधाके लिये यहां इम्पेरियल बङ्क, आग्रा बङ्क, सिमला बङ्क और एलायन्स बङ्क (यह बङ्क फेल हो गया) आफ सिमला आदि अनेक बङ्क मौजूद हैं।

लाहोरी बन्दर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्धु प्रदेशके करांचीके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध बन्दर। यह सिन्धुनदके पश्चिमाभिमुखमें बहती हुई बाघिरा नामक शाखाकी बाईं ओर अक्षा० २४° ३२´ ३० तथा देशा० ६७° २८´ पू०में अवस्थित है। पिति मुहानेसे यह १० कोसकी दूरी पर है। समुद्रकी इस खाड़ीके मुंह पर मिट्टी जम जानेसे खातकी गहराई कम हो गई है। इस समय वणिक्‌गण छोटे छोटे जहाजोंको उस खाड़ीसे बन्दर पर नहीं ला सकते हैं। मर्णटन कहते हैं, १६६६ ई०के पहले यह सिन्धुप्रदेशका एक प्रसिद्ध बन्दर था तथा २०० टन बोझको लिये जहाजें अनायास ही इस बन्दरमें माल ले कर प्रवेश करता था। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें इस जगह अङ्गरेज-वणिकोंकी एक कोठी थी।

इस बन्दरका प्रकृत नाम लाड़ी-बन्दर था। कारण यह प्राचीन लाट वा लाड़देशके अन्तर्भुक्त कह कर

इसका यह नाम पड़ा। इसके बाद मुसलमान ऐतिहासिकोंने इसे पञ्जाबके निकटवर्त्ती जान लाहोर नगरके नामानुसार इसका लाहोरी-बन्दर नाम रखा। १०३० ई०में अल्बिरुणीने इस नगरका लहरानी तथा १३३३ ई०में इब्न् बतुताने लाहरी नामसे उल्लेख किया था। तारीख-इ-ताहिरि नामक इतिहासमें लिखा है,—१५६५ ई०में फिरंगियोंने लाहोरी-बन्दर पर आक्रमण किया था। १६१३ ई०में सैन्सबारी, १६६५ ई०में खेवेन तथा १७२७ ई०में अलेकसंदर हामिल्टनने इस नगरको लोर-बंदर और लाड़ बंदर कह कर उल्लेख किया है। इब्न् बतुता कहते हैं, 'हमने अमीरअला-उल् मुल्कसे सुना है, कि उस समय इस स्थानका वार्षिक राजस्व ६० लाख रुपया वसूल होता था।

लाहौर—लाहोर देखो।

लाहौरी नमक (हिं० पु०) सैन्धव लवण, सेंधा नमक। नमक देखो।

लाहौल (अ० पु०) एक अरबी वाक्यका पहला शब्द। इसका व्यवहार प्रायः भूत-प्रेत आदिको भगाने या घृणा प्रकट करनेके लिये किया जाता है।

लाह्य (सं० पु०) लह्यका गोत्रापत्य।

लाह्यायनि (सं० पु०) भुज्युका गोत्रापत्य। (शत० ब्रा० १४।६।३.१)

लाह्वा (सं० स्त्री०) उल्लू पक्षी।

लिंट (अ० पु०) तूतियेमें रंगा हुआ मुलायम कपड़ा या फलालीन जो घावमें मरहम लगा कर इसलिये भर दी जाती है जिसमें उसका मुंह एकबारगी बंद न हो जाय और मवाद न रुके।

लिंफ (अं० पु०) शीतलाका चेप जो टीका लगानेके काममें आता है।

लि (सं० पु०) १ शान्ति, क्लान्ति। २ क्षति, ध्वंस। ३ शेष, अन्त। ४ समता। ५ हस्तालङ्कारभेद, हाथमें पहननेका एक जेवर।

लि—एक चीन दार्शनिक। ये ईस्वीसन् ५वीं सदीके अन्तमें अर्थात् कनफुचीके प्रायः एक शताब्द बाद तक विद्यमान थे। इन्होंने ज्ञानोन्नतिविषयमें जो मत विस्तार किया था, वही पीछे चीन-साम्राज्यके बौद्धधर्म-विस्तारका परिपोषक हुआ था।

लि—१ चीन देशीय एक प्रकारकी मुद्रा। १० लिका १ कान्दारीन, १०० लिका १ मन, १००० लिका १ तायेल = अंगरेजी ५ शिलिं। २ जमीनकी दूरी नापनेकी एक नाप, २९३ गज या अंगरेजी मीलका छठां हिस्सा। चीन-परिव्राजक यूएन-चुवंगने इसीके अनुसार लंबाई नाप कर भारतीय नगर आदिकी दूरी जाना था।

लि—पञ्जाबके काङ्ग़ा जिलेमें प्रवाहित एक नदी। स्पिति देखो।

लिए—हिन्दीका एक कारक-चिह्न। यह सम्प्रदानमें आता है और जिस शब्दके आगे आता है, उसके अर्थ या निमित्त किसी क्रियाका होना सूचित करता है। जैसे,—मैं तुम्हारे लिए आम लाया हूं। यह चिह्न शब्दके सम्बन्ध कारक रूप काके साथ लगता है। जैसे,—उसके लिए। बहुतेरे इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृते'-से बताते हैं; पर 'लग्न' और 'लग्ग' शब्दसे इसका अधिक लगाव जान पड़ता है। पुरानी काव्य-भाषा विशेषतः अवधीमें 'लगि' रूप बराबर मिलते हैं। यह प्रायः "लिये" भी लिखा जाता है।

लिओ—पञ्जाब प्रदेशके बसहर राज्यके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ३१° ५३´ ३० तथा देशा० ७८° ३७´ पू० तक अलावारके अन्तर्गत स्पिति और लिपक नदीके संगम पर स्पितिके दाहिने किनारे एक गण्डशैल पर अवस्थित है। ग्रामसे पूरब शैल शिखर पर एक भग्न दुर्गका निदर्शन पड़ा हुआ है जो समुद्रकी तहसे ८३६२ फुट ऊंचा है। यहांके बाशिन्दे भोटजातीय और बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं।

लिकिन (हिं० पु०) मटियाले रंगकी एक बड़ी चिड़िया। इसकी टांगें हाथ हाथ भरकी और गरदन एक बालिश्तकी होती है।

लिकुच (सं० क्ली०) लक्ष्यते आस्वाद्यते इति लक बाहुलकात् उच, पृषोदरादित्वादित्वं। लुक, बड़हरका पेड़।

लिकुचि—एक पण्डित। ये शिवस्तुतिके प्रणेता नारायण पण्डितके पिता थे।

लिक्षा (सं० स्त्री०) लिक्षा, जूंका अंडा, लीख।

लिक्खाड़ (हिं० पु०) बहुत लिखनेवाला, भारी लेखक।

लिकिडेटर (अं० पु०) वह अफसर जो किसी कंपनी या

फार्मका कारबार उठाने, उसकी ओरसे मामला मुकदमा लड़ने या दूसरे आवश्यक कार्य करनेके लिये नियुक्त किया जाता है।

लिक्विडेशन (अं० पु०) सम्मिलित पूंजीसे चलानेवाली कम्पनी या फार्मका कारबार बंद कर उसकी सम्पत्तिसे लेहनदारोंका देना निपटाना और बची हुई रकमको हिस्सेदारोंमें बाँट देना। जैसे—वह कम्पनी लिक्विडेशनमें चली गई।

लिक्षा (सं० स्त्री०) लिश-गतौ बाहुलकात् श, सच कित्। (उण् ३।६६) १ यूकाण्ड, लीख। पर्याय—लिक्का, लीक्षा, लीक्का, लिक्षिका। २ एक परिमाण। यह कई प्रकारका कहा गया है, जैसे, कहीं चार अणुओंकी लिक्षा कही गई है, कहीं आठ बालाग्रकी। (८ परमाणु=रज। ८ रज=बालाग्र)। ३ लिक्षाका एक सर्षप या सरसों माना गया है।

लिक्षिका (सं० स्त्री०) लिक्षा, लीख।

लिख (सं० त्रि०) लिखतीति लिख (इगुपधज्ञेति। पा ३।१।१३५) इति क। लेखक।

लिखत (हिं० स्त्री०) १ लिखी हुई बात, लेख। २ दस्तावेज़। ३ लिखित पत्र।

लिखन (सं० क्ली०) लिख-ल्युट्। १ लेखन, लिपि, लिखावट। २ कर्मकी रेखा, भाग्यमें निश्चित बात। विधिलिपि अखण्डनीय है। विधाताने जो अदृष्टमें लिख दिया है, उसे खण्डन करनेकी किसीकी शक्ति नहीं है।

"यस्य यल्लिखनं पूर्वं यत्र काले निरूपितम्।
तदेव खण्डितुं राधे क्षम्ये नाहञ्च को विधिः॥
दिधातुश्च विधाताहं येषां यल्लिखनं कृतम्।
ब्रह्मादीनाञ्च क्षुद्राणां न तत् खण्ड्यं कदाचन॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णज० ख० १५ अ०)

लिखना (हिं० क्रि०) १ किसी नुकीली वस्तुसे रेखाके रूपमें चिह्न करना, अंकित करना। २ स्याहीमें डूबी हुई कलमसे अक्षरोंकी आकृति बनाना, अक्षर अंकित करना। ३ पुस्तक, लेख या काव्य आदिकी रचना करना। ४ रंगसे आकृति अंकित करना, तसवीर खींचना।

लिखवाई (हिं० स्त्री०) लिखाई देखो।

लिखवाना (हिं० क्रि०) लिखाना देखो।

लिखाई (हिं० स्त्री०) १ लेख, लिपि। २ लिखनेका कार्य। ३ लिखनेका ढंग, लिखावट। ४ लिखनेकी मजदूरी।

लिखाना (हिं० क्रि०) अंकित कराना, दूसरेके द्वारा लिखनेका काम कराना।

लिखापढ़ी (हिं० स्त्री०) १ पत्र-व्यवहार, चिट्ठियोंका आना जाना। २ किसी विषयको कागज पर लिख कर निश्चित या पक्का करना।

लिखावट (हिं० स्त्री०) १ लिखे हुए अक्षर आदि, लेख। २ लिखनेका ढंग, लेख-प्रणाली।

लिखि—बम्बई प्रदेशको महिकान्था एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार ठाकुर उपाधिधारी मूकवाना कोलीवंशोद्भव हैं। ये लोग अंगरेजराज अथवा किसी भी देशी राजाको कर नहीं देते। ज्येष्ठ पुत्र ही राज्यके अधिकारी होते हैं। अंगरेज गवर्मेण्ट द्वारा अनुमोदित दत्तक लेनेका व्यवस्था पत्र या सनद इन्हें नहीं है।

लिखिखिल्ल (सं० पु०) मयूर, मोर।

लिखित (सं० क्ली०) लिख-भावे क्त। १ लिपि, लेख। २ लिखी हुई सनद, प्रमाण पत्र। ३ एक स्मृतिकार ऋषि, इन्होंने जो संहिता लिखी है, उसे लिखित संहिता कहते हैं। यह संहिता १९ संहिताओंमेंसे एक है।

'पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगोतमौ।
शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥'
(श्राद्धतत्त्व याज्ञवल्क्य)

पितृपुरुषोंके श्राद्धकालमें धर्मशास्त्र-प्रयोजक इन सब ऋषियोंके नाम उच्चारण करने होते हैं।

विशेष विवरण 'लिखितसंहिता' शब्दमें देखो।

लिख-कर्मणि क्त। (त्रि०) ३ लिपिबद्ध किया हुआ, अंकित।

लिखितक (हिं० पु०) एक प्रकारके प्राचीन चौखूंटे अक्षर जो खुतन (मध्य एशिया) में पाये गये शिलालेखोंमें मिलते हैं।

लिखितरुद्र—एक प्राचीन वैयाकरण। रायमुकुट इनका मत उल्लेख कर गये हैं।

लिखितसंहिता—एक स्मृति ग्रन्थ। महर्षि लिखित इस

संहिताके कर्त्ता हैं। इस संहितामें ९२ श्लोक हैं। लिखितसंहिताके मतसे पोखरा खुदवाना और ब्राह्मणोंके लिये अग्निहोत्र करना बड़े पुण्यके कार्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो कोई जलदान करेगा, उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी यह महर्षि लिखितका उपदेश है। इस संहिताके मतसे काशीमें वास करना तथा गयामें पिण्डदान करना बड़ा उत्तम है। महर्षि लिखित कहते हैं, कि जो जो कार्य अपनेको बुरे मालूम पड़े, उनके प्रायश्चित्तके लिये एक सौ आठ बार गायत्री जप करनेसे उसका कल्याण होगा।

लिखितस्मृति—एक प्राचीन स्मृति। याज्ञवल्क्य आदि इसका उल्लेख कर गये हैं।

लिखेरा (हिं० पु०) लिखनेवाला, लेखक।

लिख्या (सं० स्त्री०) १ जूँका अंग, लीख। २ एक परिमाण। लिक्षा देखो।

लिगदी (हिं० स्त्री०) कमजोर छोटी घोड़ी।

लिगु (सं० क्ली०) लिङ्गति विषयात् विषयान्तरं गच्छति लिग (खरुशंकुपीयुनीलङ्गुलिगु। उण् १।३७) इति कुप्रत्ययेन साधु। १ मन। (पु०) २ मूर्ख। ३ भूप्रदेश। ४ मृग।

लिङ्ग (सं० क्ली०) लिङ्ग्यते अनेन इति लिङ्ग-घञ्, 'पुंसि घञः' इति नियमेऽपि अभिधानात् क्लीवलिङ्गत्वं। १ वह जिससे किसी वस्तुकी पहचान हो, चिह्न, लक्षण २ वह जिससे किसी वस्तुका अनुमान हो, साधक हेतु। ३ सांख्यके अनुसार मूल प्रकृति। सांख्यके मतसे मूल प्रकृति ही लिङ्ग है तथा प्रकृतिके विकृति कार्यको भी लिङ्ग कहते हैं।

.. विकृति उसकी प्रकृतिमें लीन होती है; इसलिये उसका नाम लिङ्ग है। सांख्यतत्त्वकौमुदीमें लिखा है, 'लयं गच्छतीति लिङ्ग' लयको प्राप्त होती है, इसीसे उसे लिङ्ग कहते हैं। प्रकृति शब्द देखो।

४ व्याकरणमें वह भेद जिससे पुरुष और स्त्रीका पता लगता है। जैसे,—पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग। ५ मीमांसामें छः लक्षण जिनके अनुसार लिङ्गका निर्णय होता है। यथा— उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति। ६ अठारह पुराणोंमेंसे एक। लिङ्गपुराण देखो।

७ सामर्थ्य। ८ पुरुषका चिह्नविशेष जिसके कारण स्त्रीसे उसका भेद जाना जाता है, पुरुषकी गुप्त इन्द्रिय। पर्याय—शिश्न, स्वरस्तम्भ, उपस्थ, मदनांकुश, कन्दर्पमुषल, मेहन, शेफस्, मेढ्र, लाङ्गु, ध्वज, रागलता, व्यङ्ग, लाङ्गूल, साधन, शेफ, कामाङ्कुश। (जटाधर)

तन्त्रमें लिखा है, कि लिङ्गमूलमें स्वाधिष्ठान नामक षड्दल पद्म है। इस पद्ममें वकार आदि करके लकार तक वर्ण रहता है।

सामुद्रिकमें लिङ्गके शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार लिखे हैं,—लिङ्ग बड़ा होनेसे दीर्घजीवी, क्षुद्र होनेसे धनी तथा स्थूल होनेसे निःसन्तान तथा दरिद्र होता है। लिङ्ग बाईं ओर झुका रहनेसे मनुष्य निःसन्तान और निर्धन, दक्षिण ओर झुका रहनेसे पुत्रवान् और नीचेकी ओर झुका रहनेसे दरिद्र होता है। लिङ्ग छोटा रहनेसे मनुष्य पुत्रवान्, शिराविशिष्ट होनेसे सुखी तथा स्थूलग्रन्थियुक्त रहनेसे पुत्रादि तथा नाना सुखसम्पद्युक्त होता है। दीर्घलिङ्ग होनेसे दरिद्र, स्थूल लिङ्ग होनेसे अर्थहीन, कृष्णवर्ण होनेसे भाग्यवान् तथा लघुलिङ्ग होनेसे राजा होता है। लिङ्ग कनिष्ठ और कर्कश होनेसे परस्त्रीरत; कृष्णवर्ण, सूक्ष्म वा रक्तवर्ण होनेसे सुखी, पर-स्त्रीगामी और स्त्रियोंका प्रिय होता है। कृश वा रक्तवर्ण लिङ्ग रहनेसे मनुष्यको उत्तमा स्त्री, राज्य और सुखसम्पद् प्राप्त होती है।

९ शिवमूर्त्तिविशेष, शिवलिङ्ग। हिन्दूमात्रको शिवलिङ्गकी पूजा करना कर्त्तव्य है। शास्त्रमें शिवलिङ्ग पूजाका अनन्त फल लिखा है। यहां तक, कि ब्राह्मणोंको शिवलिङ्ग पूजा किये विना जल भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

महादेवने किस कारण यह लिङ्ग प्राप्त किया था, उसका विषय पद्मपुराण उत्तरखण्डके १८वें अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,—

दिलीपने वशिष्ठसे प्रश्न किया कि, देवादिदेव महादेवने भार्या सहित यह विकराल रूप क्यों धारण किया था? भगवान् वशिष्ठदेवने उत्तरमें कहा कि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मन्दार पर्वत पर ऋषिगण एक दीर्घसत्रका अनुष्ठान करते थे। उस यज्ञमें सभी मुनि

एकत्र हुए। वे आपसमें आलोचना करने लगे, कि वेदविद् ब्राह्मणोंके मध्य कौन देवता पूज्य हैं। अन्तमें यह निश्चय हुआ, कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनोंके पास चल कर इसका निर्णय करना चाहिए। सब ऋषि पहले शिवके पास गये। द्वार पर पहुंच कर उन लोगोंने देखा, कि दरवाजा बंद है और नन्दि पहरा दे रहा है। तब ऋषियोंने नन्दिसे कहा,—तुम शीघ्र जा कर महादेवको हम लोगोंके आनेकी खबर दो। हम लोग उन्हें प्रणाम करनेके लिये यहां आये हुए हैं। नन्दिने कर्कश शब्दसे अवज्ञा करते हुए तेजस्वी ऋषियोंसे कहा, 'यदि तुम्हें अपने प्राणका भय है, तो तुरत लौट जाओ, देवादिदेवसे अभी तुम्हें मुलाकात हो नहीं सकती। वे पार्वतीके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।' ऋषियोंको प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया। इस पर भृगु ऋषिने कोप करके शाप दिया—"हे शिव! तुमने काम क्रीड़ाके वशीभूत हो कर हमारा अपमान किया; इससे तुम्हारी मूर्त्ति योनि-लिङ्ग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा। ब्राह्मण तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, करनेसे अब्रह्मण्यत्वको प्राप्त होंगे।" भृगु इस प्रकार शाप दे कर मुनियोंके साथ ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके पास चले गये।

लिङ्गपुराण पढ़नेसे मालूम होता है, कि देवर्षि नारदने जहां जहां रुद्रदेवके पवित्र तीर्थक्षेत्रोंको देखा था, वहां वहां लिङ्गपूजा की थी। (१।१२) यह लिङ्ग क्या है तथा क्यों संसारमें सबोंका इतना पूज्य हो गया है, यह सूतकी अभिव्यक्तिसे स्पष्ट ही प्रतीत होता है।

यह लिङ्ग साधारणतः दो प्रकारका है—निष्कल और निर्गुणमय शिव अलिङ्ग तथा जगत्कारणरूप शिव ही लिङ्ग है। इस अलिङ्ग शिवसे लिङ्ग शिवकी उत्पत्ति है; वे स्थूल सूक्ष्म, जन्मरहित, महाभूतस्वरूप, विश्वरूप और जगत्कारण हैं। लिङ्ग कहनेसे ही शिवसम्बन्धीय लिङ्ग समझना होगा। (लिङ्गपु० ३।१ १०) फिर उक्त पुराणके सप्तदश अध्यायके पांचवें श्लोकमें लिखा है,—"प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः।" वचन देखनेसे अनुमान होता है, कि लिङ्ग ही प्रधान है तथा उसी प्रधानकी प्रकृति या शिवशक्तिको लक्ष्य कर महेश्वरको लिङ्गी कहा गया है। उक्त अध्यायके अपरापर कथाप्रसङ्गमें ब्रह्मा और विष्णुके विरोध भञ्जनार्थ सैकड़ों कालानल सदृश लिङ्गरूपी महादेवके आविर्भावकी कथाएं हैं। (१७।३१ ३२) लिङ्गरूप देख कर विष्णु और ब्रह्मा विह्वल हो गये। उस समय अकस्मात् ओंकार वाणी निकली। इस ओंकारका तात्पर्य्य नीचे दिया जाता है,—

"अस्य लिङ्गादभूद्बीजमकारं बीजिनः प्रभोः।
उकारयानौ वै क्षिप्तमवर्द्धत समन्ततः॥" ६४

अर्थात् बीजि महेश्वर लिङ्गसे अकार बीज उत्पन्न हुआ और वह उकाररूप योनिमें पड़ कर चारों ओर फैलने लगा। इस श्लोककी विशेषरूपसे पर्यालोचना करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि लिङ्ग ही सृष्टिशक्तिका परिचायक है। इस शिवशक्तिको उत्तरसाधक लिङ्गमूर्त्तिमें जिस प्रकार शिवपूजा विहित है, उसी प्रकार शक्तिबोधक योनिमूर्त्तिमें भी शक्तिपूजाकी व्यवस्था देखी जाती है।

"पीठाकृतिरुमादेवी लिङ्गरूपश्च शङ्करः।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयन्ति सुरासुराः॥'
(लिङ्गपु० उत्तरख० ११।३१)

उक्त अध्यायके ३७से ले कर ४०वें श्लोकमें लिखा है, कि ब्रह्मादि देवगण, ऐश्वर्य्यशाली राजगण, मानवगण और मुनिगण सभी शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। भगवान् विष्णुने भी ब्रह्माके वरपुत्र रावणको मार कर समुद्रके किनारे बड़ी भक्तिसे विधिवत् लिङ्गकी आराधना की थी। लिङ्गकी अर्चना करनेसे सौ ब्राह्मण वध करनेका पाप नष्ट होता है।

इक्कीसवें अध्यायके ७६ ८३ श्लोकमें लिखा है, कि अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, बहुदक्षिणक यज्ञादि शिवलिङ्गार्चनाके एक कलांशका भी बराबर नहीं है। जो दिनमें सिर्फ एक बार लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे साक्षात् रुद्र कहलाते हैं। शिवकी पूजा करनेसे धर्म अर्थ काम और मोक्षफल मिलता है।

लिङ्गपुराण पूर्व भागके २५ २७वें अध्यायमें शिवपूजाका स्थान निर्वाचन और पूजोपकरणादिका यथायथ विवरण लिखा है। शक्तिके बिना शिवपूजा नहीं करनी चाहिये। एकमात्र शिवलिङ्गपूजाके शिव और शक्ति दोनोंकी पूजा कह कर पुराण और तन्त्रमें उनकी पूजाकी विधि कही गई है।

लिङ्गपूजाप्रवर्त्तन और लिङ्गोत्पत्तिका विषय भिन्न भिन्न पुराणमें भिन्न भिन्न रूपसे वर्णित है। वामन-पुराणके ६ठे अध्यायमें लिङ्गोत्पत्ति-प्रकरणमें लिखा है,—ब्रह्माने शिवलिङ्गमूर्त्ति धारण कर अपनी उपासनाके प्रचारके लिये शैव, पाशुपत, कालवदन और कपाली नामके चार शैवसम्प्रदाय प्रवर्त्तित किये। वशिष्ठपुत्र शक्ति और उनके शिष्य गोपायन प्रथम शैव, तपस्वी भारद्वाज और उनके शिष्य सोमकाधिपति राजा ऋषभ पाशुपत, आपस्तम्ब और वक्र क्राथेश्वर नामक वैश्य कालवदन, धनद और उनके शूद्रवंशीय शिष्य कन्दोदर कपाली हुए थे। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि लिङ्गोपासना-प्रसङ्गके समय शैव-सम्प्रदायमें चार शाखाविभाग हुआ था तथा चारों प्रधान योगियोंने यह विभिन्न मत प्रचार किया।

स्कन्दपुराणमें लिङ्ग शब्दकी व्युत्पत्ति ले कर लिखा है,—

"आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥"

(स्कन्दपुराण)

आकाश लिङ्ग और पृथिवी उसकी पीठिका है। यह सब देवताओंका आलय है। इसमें सभी लयको प्राप्त होते हैं इसलिये इसे लिङ्ग कहते हैं। एक घरमें दो लिङ्गकी पूजा नहीं करनी चाहिये; इसी प्रकार दो शालग्राम शिलाओंकी भी पूजा निषिद्ध है। शिवका निर्माल्य ग्रहण नहीं करना चाहिये, किन्तु शालग्राम-शिलाका निर्माल्य ग्रहणीय है।

लिङ्ग शब्दसे साधारणतः शिवलिङ्ग ही समझा जाता है। देवादिदेव महादेव हिन्दूजगत्‌में किस लिये लिङ्गरूपमें प्रकट हुए थे तथा क्यों हिन्दूप्रधान भारत-भूमिमें उनकी प्रतिष्ठा और पूजा प्रचारित हुई थी, लिङ्ग-पुराण, शिवपुराण और पाद्मोत्तरखण्डमें उसका यथायथ विवरण लिखा है। हिमालयसे सिंहल पर्यन्त विस्तीर्ण भारत-साम्राज्यमें ढाई हजार वर्ष पहलेसे इस लिङ्गमूर्त्तिकी उपासना प्रचलित देखी जाती है।

मनुसंहितामें शिवशक्ति भद्रकाली तथा विष्णुशक्तिश्रीका उल्लेख है (मनु० ३।८९)। उक्त ग्रन्थके ३।१५१-१५२ श्लोकमें बहु याजक और देवलोंकी निन्दा तथा देव-प्रतिमाका (मनु० ३।२८५) प्रसङ्ग रहनेसे बोध होता है, कि उसके लिखे जानेके पहले प्रतिमा पूजा प्रवर्त्तित हुई थी। रामायण और महाभारतकी प्रसङ्गाधीन आख्यायिका ऐतरेय (८।२१ २३) और शतपथब्राह्मण (१३।५।४।१)में रहने तथा मनुमें राम और कृष्णका नामोल्लेख न देखनेसे अनुमान होता है, कि मनुसंहिता सबोंसे प्राचीन है। मनुसंहिताके समय देवगणको घृताहुति देनेकी विधि थी। आजकी तरह पुष्पचन्दनलिप्त नैवेद्य आदि चढ़ानेकी व्यवस्था थी वा नहीं, कह नहीं सकते। जो विष्णु और शिव मनुसंहिता संकलन कालमें पद और बलके अधिष्ठाता कह कर पूजित थे, रामायण, महाभारत, पुराण और तन्त्रादि ग्रन्थमें उनकी महिमा परिवर्द्धित हुई है; तभीसे वे परात्पर परमेश्वर-रूपमें पूजित हैं।

रामायण (७।३१।४२) और महाभारतके सौप्तिक पर्व ७म अध्यायमें शिवलिङ्गका परिचय है। राजतरङ्गिणी (१।१६४ और २।१२६ १३०) पढ़नेसे मालूम होता है, कि जलौक (Seleukos) राजाके जमानेमें विजयेश्वर, नन्दीश और क्षेत्रज्येष्ठेश नामक शिवलिङ्ग पूजाका प्रचार था। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि रामायण-रचनाके पहले हीसे भारतवर्षमें लिङ्गपूजा प्रचलित थी। ईसाजन्मसे पहले शक, कुशन और खरोष्ठी राजाओंके समयमें भी लिङ्गोपासनाका यथेष्ट आदर हुआ था। गुप्त राजाओंकी शिवभक्ति किसीसे भी छिपी नहीं है। इन लोगोंकी मुद्रामें अङ्कित वृष, त्रिशूल और शिवशक्ति सिंहवाहिनी आदिका प्रतिरूप ही उसका साक्ष्य प्रदान करता है।

केवल उत्तरभारतमें ही नहीं, दक्षिणभारतमें भी ईसा जन्मसे पहले ५वीं सदीमें लिङ्गाराधना प्रचलित थी। ग्रीकोंके वर्णनसे जाना जाता है, कि पाण्ड्यराजने रोमक-सम्राट् अगष्टसकी सभामें दूत भेजा था। ईसा जन्मसे ३५०से २१४के भीतर पाण्ड्य और चोलराज्य एक हो गया। दोनों राज्यके राजे लिङ्गस्थापक और शिवभक्त थे*। दाक्षिणात्यसे शैवधर्मस्रोत ५वीं सदीमें यवद्वीप

* लिङ्गके सम्बन्धमें Sonnerat ने लिखा है,—"The lingam may be looked upon as the phallus

और बालिद्वीपमें सुप्रतिष्ठित हुआ। वहांके प्रम्बनन नामक स्थानमें दो सौसे अधिक देवमन्दिर तथा शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदिकी पत्थर और पीतलकी प्रतिमूर्त्ति आज भी विद्यमान है।† जावा और बालि देखो।

ग्रीक भौगोलिक आरियनने कन्याकुमारीके वर्णनास्थलमें लिखा है, कि कुमारीनाम्नी देवीके नाम पर उस स्थानका नामकरण हुआ है। दुर्गाका एक नाम कुमारी है। आरियनके समय (२री सदीमें) वहां उस देवीकी एक प्रतिमूर्त्ति थी। शायद दाक्षिणात्य-प्रसिद्ध किसी शिवलिङ्गकी ही वह शक्ति होगी।

जगत्सृष्टिकी आदिभूता प्रकृतिपुरुषात्मिका उत्पादिका शक्तिको ही सृष्टितत्त्वका मूल उपादान जान कर शैवगण हर पार्वतीकी लिङ्गशक्तिको ही जीवोत्पत्तिका मुख्य कारण बतलाते हैं। योनि और लिङ्ग अर्थात् प्रकृति और पुरुषके सङ्गमसे ही सृष्टि हुआ करती है, इस कारण उसीके चिह्नस्वरूप लिङ्गमूर्त्ति संगठित हुई है। एक मङ्गलमय इच्छासे प्रणोदित हो परमपिताने जगत्‌की भलाईके लिये प्रकृतिपुरुषके सङ्गमसे सृष्टिकार्य आरम्भ किया। सम्भवतः प्रकृतिके उपासकगण उस लिङ्गरूपमें ही शिवत्वकी आरोपना करते होंगे। तभीसे शैवसम्प्रदाय उस लिङ्गरूपी युग्ममूर्त्तिकी ही शिव नामसे उपासना करते आ रहे हैं।

प्राचीन भारतवासी उस सृष्टिस्थितिलयकारी अध्यात्माका निराकारत्व अपनोदन कर क्रमशः लिङ्गरूपमें उनके साकारत्वकी कल्पना करते आ रहे हैं तथा वही धीरे धीरे जगद्वासीका उपास्य माना गया है। केवल भारतवर्षमें नहीं, सुप्राचीन चीन, ग्रीक और रोमकजातिमें भी लिङ्गोपासना प्रचलित थी*। रोमकोंके मध्य 'प्रियापस' और ग्रीकोंके मध्य 'फालास' नामक लिङ्गमूर्त्ति परिचित थी। तिब्बतीयोंकी उपास्य लिङ्गमूर्त्तिको चीनभाषामें हुङ्-हि फु कहते हैं। इसरायलगण भी पहले लिङ्गपूजा करते थे। मक्कामें जो मक्केश्वर लिंगमूर्त्ति है वह एक समय इसरायलोंकी उपास्य थी। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें इस मक्केश्वर लिंगका उल्लेख आया है।

बाइबिल पढ़नेसे मालूम होता है, कि रेहोबोयमके पुत्र आशाने अपनी माता मायाकाको लिङ्गके सामने बलि देनेसे मना किया था। पीछे उन्होंने क्रुद्ध हो उस लिङ्गमूर्त्तिको तोड़फोड़ डाला (Kings xv. 13)। यहूदीगण बड़े उत्साहसे लिङ्गरूपी देवता बेलफेगोके गुप्तमन्त्रमें दीक्षित होते थे। मोयाबीय और मरिनावासिगण फेगोके पर्वत पर स्थित इस लिङ्गकी ही उपासना करते थे। उनकी उपासनापद्धति सर्वतोभावमें मिस्रवासियोंके बेलफेगोकी उपासनापद्धतिको जैसी थी। जुदा (Judah)-वासिगण पर्वतशृङ्गस्थ वनभागमें तथा बड़े वृक्षके नीचे देवमन्दिर और देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर परम पिताके अप्रियभाजन हुए थे। बाल (Baal) उनका उपास्य था तथा लिङ्गाकार प्रस्तरस्तम्भ ही उनकी मूर्त्तिका चिह्नस्वरूप माना गया था। वे लोग इस देवताकी वेदीके सामने धूप धूना जलाते थे तथा प्रति अमावस्याको उस लिङ्गमूर्त्तिके सम्मुखस्थ वृषके सामने पूजोपहार देते थे। इसरायल लिङ्गमूर्त्तिके सामनेकी यह वृषभमूर्त्ति हिन्दूके सत्त्वगुणप्रधान बालेश्वर शिवलिङ्ग सम्मुखस्थ धर्मरूपी वृषमूर्त्तिकी जैसी है। मिस्र ओसिरिस मूर्त्तिके एपिसके साथ भी इसका यथेष्ट सादृश्य है। पाश्चात्य लेखकगण भूलसे उस वृषमूर्त्तिको शिवानुचर नन्दी¶ बतलाते हैं। कोई कोई उसे शिवका वाहन कहते हैं।

---

or the figure representing the virile member of Atys, the well-beloved of Cybele, and the Bacchus which they worshipped at Heliopolis. The Egyptians, Greeks and Romans had temples dedicated to Priapus, under the same form as that of the lingam. The Israelites worshipped the same figure and erected statues to it."

† Vide Journal of the Indian Archipelego, vol, iii.

* W. Taytor's Ex. & Analy of Mack. Manus. and Jour Roy. As. Soc. vol. iii, & 202-218

¶ दाक्षिणात्यमें शिववाहन वृषको नन्दी भी कहते हैं।

"उलूकं वृषभं देवि नाम्ना नन्दी प्रकीर्त्तितः।"

(लिङ्गार्च्चनतन्त्र २य पटल)

कर्नल टाडका कहना है, कि अरबी देवमूर्त्ति लात वा अलहातके साथ हिन्दूको लिङ्गमूर्त्तिका यथेष्ट सादृश्य है। रोमकजातिके प्रभाव-विस्तारके साथ साथ यह लिङ्गोपासना और मूर्त्तिप्रतिष्ठा फ्रान्सराज्यमें विस्तृत हुई। निसमेस नगरके प्रसिद्ध सरकस घरमें, इटलीके सुप्राचीन धर्म मन्दिरोंमें, टोलौस नगरके गिरजामें तथा बुर्दोके कुछ धर्ममन्दिरोंमें आज भी वह शिवलिङ्गमूर्त्ति विद्यमान देखी जाती है†।

राजस्थानके इतिहासमें महात्मा टाडने लिङ्गोपासनाके तत्त्वनिर्णयप्रसङ्गमें इस प्रकार लिखा है,—मिस्र, ग्रीक, रोमक, यहां तक कि ईसाइयों द्वारा वंशपरम्पराक्रमसे लिङ्गपूजा चलाई जाने पर भी ग्रीक *Phallic* शब्दका व्युत्पत्तिगत किसी तरह परिस्फुट अर्थ निराकृत होता है। अधिक सम्भव है, कि देवभाषा संस्कृतकी जन्मदाता आदि आर्यभाषा हीसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति सिद्ध हुई होगी। सर्वसिद्धिप्रदाता फलेश शब्दमें ईश्वरके लिङ्गत्वकी आरोपना कर यदि ग्रीक फालाश शब्दको उत्पत्ति कल्पना की जाय तो शब्दार्थका प्रकृति प्रत्ययसाध्य किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती, वरन् उससे ओसिरिसके साथ शिवलिङ्गके अन्यान्य विषयोंमें अनेक सामञ्जस्य हो सकता है। दोनों देवता ही नदोके अधिष्ठाता हैं। ओसिरिस जिस प्रकार इथियोपीयाके अन्तर्गत चन्द्रशैल निःसृत नीलनद (Nile) के अधिष्ठाता हैं, ईश्वर भी उसी प्रकार सिन्धुनद (दूसरा नाम नीलफिरिल्तः) और चन्द्रगिरिनिःसृत गङ्गाके पति हैं। इस चन्द्रगिरि तुषारावृत कैलास शिखर पर शिव पार्वतीके साथ रहते हैं, ऐसा पुराणमें लिखा है। ग्रीकवासीने मिस्रवासियोंसे अथवा उन्हींके जैसे उपायसे इस फलेश लिङ्गपूजाकी पद्धति पाई होगी। वे लोग फलके आकारमें लिङ्गमूर्त्तिकी स्थापना अथवा कभी कभी उसी फलकी देवतारूपमें पूजा करते थे। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि संस्कृत फलेश (फल+ईश)से ग्रीक Phallus शब्द लिया गया है। फाल्गुनमें नये पल्लव, पुष्प और फलके बोझसे झुक हुए वृक्ष जब पृथिवीको नये वस्त्रसे भूषित कर शोभा देते हैं, तब जगद्वासी अपने अपने इष्टदेवताको अभीष्ट फलपुष्पदानसे संतुष्ट करते थे। बहुत दिनोंसे फाल्गुनमासमें यह पूजोत्सव होता आ रहा है*।

वासन्तीदेवीय (Goddess of the spring Saturnalia) यह फाल्गुन महोत्सव ग्रीकोंके डाइओनिसेयसका फागोसिया उत्सव मिस्रका फालिका (Phalles) तथा हिन्दुस्तानके फलगूत्सव वा होलिकासे मिलता जुलता है। वसन्तोत्सवके बाद फाल्गुन मासमें शिवरात्रि-पर्वमें तथा चड़क-संक्रान्तिमें शिवको विल्वफल नारिकेल आदि फलदानकी विधि है।

मदनमहोत्सव और वसन्तोत्सव देखो।

आर्यजाति और भारतीय आर्यसमाजकी प्रथमा-

† प्लुतार्ककी लेखनीसे मालूम होता है, कि मिस्र-देवता ओसिरिस लिङ्गरूपमें सर्वत्र विराजित with the *Priapus* exposed) थे। Ptah Sokari मूर्त्ति भी इसी आकारमें दिखलाई जाती है। ऐसी लिङ्गमूर्त्तियां उस समय *P*tah Sokari Osiri कहलाती थीं।

* 'I have derived Phallus from *Phalisa* the Chief fruit. The Greek, who either borrowed it from the Egyptians or had it from the same source, typified the fructifier by a Pine apple the form of which resembles Sitaphala, * *, In like manner Gauri the Rajpoot Ceres is typified under the cocoa-nut or sriphal, the Chief of fruit or fruit sacred to Sri or Isa (Isis), whose other elegant emblem of abundance the Camacumpa is drawn with branches of palmyra, or cocotree gracefully pendent from the vase (cumbha).

The sriphala is accordingly presented to all the votaries of swara and Isa on the conclusion of the spring festival of Phalguna, the Phagasia of the Greeks, the Phamenoth of the Egyptians and the Saturnalia of antiquity, a rejoicing at the renovation of the powers of nature, the empire of heat over cold—of light over darkness." Tod's Rajasthan, Vol. I. p. 603.

रुद्ध; लिङ्गपूजाकी चिरन्तनपद्धति, उत्पत्ति और विस्तारका सम्यक् इतिहास विलुप्त हो कर मिस्रवासीकी तरह क्रमशः किंवदन्तीमूल हो रहा है। परवर्त्तीकालमें लिङ्गादि महापुराणमें तथा तन्त्रादि शास्त्रमें लिङ्गार्च्चन-विधि स्वतन्त्रभावमें और उस समयकी रीतिके अनुसार लिपिबद्ध हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। उस आदिम उपासनापद्धतिका कुछ अंश अर्थात् लौकिक और कौलिक आचारादि उसमें नहीं शामिल किया गया है, ऐसा सोचना गलत है। राजा काम्बिशने पौत्तलिक-धर्मके विरोधी हो पुरोहितोंको दण्ड दिया तथा पवित्र एसिसको तहस नहस कर डाला। ऐसे कठोराचारका अवलम्बन करके भी वे लिङ्ग-उपासनाका उच्छेद न कर सके। परवर्त्तीकालमें ग्रीक और रोमक जातिने नील नदका अववाहिका प्रदेश जीत कर मिस्र-देवमण्डलीकी रक्षा की थी। उन लोगोंने भक्तिचित्तसे उन उन देवताओंका मन्दिर बनवा कर उसे स्थापत्यशिल्पसे परिशोभित किया।*

ईसाधर्मके अभ्युदय पर पाश्चात्य जनपदवासियोंने धीरे धीरे पौत्तलिक उत्सव और आडम्बर छोड़ दिया। नीलनदका देवसङ्घ, रोमका देवलोक और आथेन्स नगरीका देव-समाज ईसाधर्मके गौरवको बिलकुल दबा न सका। पारिपाट्यहीन और आडम्बरशून्य उपासनामें लिप्त हो कर उस देशके लोगोंने मूर्त्तिपूजाका अनादर किया। देवता और मन्दिरादि अनादरसे तहस नहस कर डाले गये। थियोफिलसने अलेक्सन्द्रियाके कहनेसे कितने मन्दिरोंको ढाह दिया। पीछे मेम्फिसका ओसिरिस मन्दिर भी लिंगभ्रष्ट हो कर गिरजाघरमें परिणत हुआ था।

* "Isis and Osiris, Serapis and Canopus, Apis and *Ibis* adopted by the Romans, whose temples and images yet preserved, will allow full scope to the Hindu antiquary for analysis of both systems. The temple of Serapis at Pazzouli is quite Hindu in its ground plan."
Tod's Rajasthan, vol. 1, p. 606 n

इन सबकी आलोचना करनेसे यह निःसन्देह कहा जा सकता है, कि जगत्‌के आदिकारणस्वरूप प्रकृतिपुरुषात्मक *लिंग और योनि* ही जीवोत्पत्तिका अवान्तर कारण है और यही जान कर जगद्वासी जातिमात्र ही परमपिता महान् ईश्वरको उस मुख्य शक्तिकी उपासना किया करती है। प्राचीन आर्यसमाजमें समादृत और पूजित उस महेश्वरको लिंगमूर्त्तिका आर्यजातिके प्रतीच्य और प्राच्य उपनिवेशमें क्रमशः प्रचार हो गया था। शायद इसी कारण भारतीय और रोमीय लिंगमूर्त्तिमें इतनी सदृशता देखी जाती है। प्राचीन हिब्रु गण जिन 'बाल' देवताके उपासक थे वे भारतीय वालेश्वर लिङ्गके सिवा और कुछ नहीं हैं। बाइबिल ग्रन्थमें भी इस लिङ्गमूर्त्तिको Chiun वा शिउन कहा है। † भारतवासी हिन्दूमात्र ही इस मूर्त्तिको *शिव, शिउ आदि नामोंसे* पुकारते हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि ईसाधर्मसे बहुत पहले जम्बू और शाकद्वीपके आर्यसमाजमें शिवलिङ्गको उपासना प्रचलित थी। प्राचीन भारतीय आर्यजाति जिस समय शिवलिङ्गकी उपासना-पद्धतिसे जानकार थी, उस समय हिब्रु गण भी वालदेवकी लिङ्गरूप उपासना किया करते थे। किन्तु किस समय तथा किससे यह लिंगोपासना भारतवर्षमें अथवा सुदूर पश्चिम-यूरोपखण्डमें प्रचारित हुई थी, मालूम नहीं। पाश्चात्य प्रत्नतत्त्वविदोंकी धारणा है, कि जब हिब्रु जाति अथवा ग्रीक और रोमकोंके मध्य पहले लिंगोपासनाका प्रभाव देखा जाता है, तब यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि भारतवासीने यह प्रतीच्यसे ग्रहण किया है। किन्तु यह बात कहां तक सच है, सहजमें इसका पता लग सकता है। जब रोम-साम्राज्यका उत्थान नहीं हुआ, जब ईसामसीहने जन्मग्रहण नहीं किया था, बाइबिल ग्रन्थकी सूचना हुई थी या नहीं संदेह है, तभीसे भारतवर्षमें आर्य सभ्यताका स्रोत पूर्णशक्तिसे बह रहा था। बुद्ध-निर्वाणके एक सदी बाद बुद्धकी प्रतिकृति बौद्धोंके यत्नसे सारे

† Ezekiel XVI 17 Amos, v, 25 27, पढ़नेसे मालूम होता है, कि ई० सनके ९५५ वर्ष पहले भी वर्त्तमान शिवलिङ्गमूर्त्तिमें लिङ्गोपासना और कपालमें तिलकधारण प्रचलित था।

जम्बूद्वीपमें तथा उत्तर-पश्चिम एशियाखण्डके नाना स्थानोंमें प्रतिष्ठित और पूजित हुई। ललित-विस्तारसे जाना जाता है, कि बुद्धके पहले हीसे शिव, विष्णु और सूर्यपूजा प्रचलित थी। शैव, वैष्णव और सौरोंसे बौद्धोंने मूर्त्तिका बनाना सीखा होगा। शिव देखो।

अमेरिका महादेशके पेरुभिया नामक स्थानमें 'राम-सीतोया' महोत्सव तथा वहांके राजवंशके सूर्य वंशोद्भवताका प्रवाद प्रचलित है। उस स्थानकी मध्यवर्त्ती कुछ जातियोंकी भाषामें ईश्वरका नाम सिव्र है। आसिया के अन्तर्गत फ्रिजिया नामक देशके लोग सेवा वा सेवाजियस नामक देवताकी उपासना करते हैं। वे देवोपासकगण दीक्षाकालमें सर्पघटित कुछ अनुष्ठान किया करते हैं। मिस्रवासीके बाकस (व्याघ्रेश)के सिवा एक दूसरे देवताका नाम सेव, सेव्वा वा सोवक देखा जाता है। इस नामकी सदृशता तथा सर्पगत प्रक्रियादिका अनुधावन करनेसे हम लोगोंके व्यालमाल-विभूषित और व्याघ्राम्बरपरिहित शिवकी बात याद आ जाती है*।

पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि विष्णुकी उपासनापद्धति प्राचीन तातार-राज्य (शाकद्वीप)से भारतवर्षमें लाई गई है। किन्तु सौभाग्यका विषय है, कि वे लोग शिवपूजाके सम्बन्धमें ऐसी किसी एक अद्भुत मीमांसा पर नहीं पहुंचे हैं। उन लोगोंका कहना है, कि ईसा-जन्मके पहले हीसे यह शिवोपासना-पद्धति सिन्धु-सैकतसे राजपूतानेके मध्य होती हुई आर्यावर्त्तभूममें फैली। कालिदासके वर्णनसे मालूम होता है, कि ईसा-जन्मसे पहले पहली सदीमें उज्जयिनी नगरमें महाकाल तथा ओङ्कारेश्वरका महोत्सव होता था। मुसलमानी आक्रमणके पहले भी हिन्दू-राजोंके अधिकारमें वहां लिंगोपासना प्रबल थी। वहांका विन्दुस्वर्ण नामक शिवलिंग अत्यन्त प्रसिद्ध है।

हम लोगोंके देशमें एक खण्ड लम्बे गोल वा कोणाकार प्रस्तरस्तम्भ ले कर साधारणतः शिवलिंग बनाया जाता है। उसका निचला भाग कुछ मोटा होता और आसन कहलाता है। स्तम्भके मध्यस्थलमें योनिपट्ट वा गौरीपट्ट रहता है। कहीं कहीं उसे प्रणालिका मानते हैं। यह गौरीपट्ट ही पार्वतीकी योनि वा मूलप्रकृतिकी स्त्रीचिह्न है। इस योनिपट्टके ऊपर जो पुंचिह्न है वही शिवलिंग कहलाता है। यही कारण है, कि प्रधान प्रधान शैव-पीठमें आसन न बना कर हो योनिपट्टके ऊपर लिंग स्थापित देखे जाते हैं।

भारतवर्षमें कमसे कम आठ करोड़ मनुष्य शिवलिंगकी पूजा करते हैं। हिमालयके अत्युच्च शृंग बदरिकाश्रम और पशुपतिनाथसे लगायत बहुत दूर दक्षिण रामेश्वर सेतुबन्ध तक पर्यवेक्षण करनेसे असंख्य शिवलिंग नजर आते हैं। गंगाके दोनों किनारे खास कर वाराणसीक्षेत्रमें और बंगालमें मन्दिर-प्रतिष्ठाके साथ साथ लिंगमूर्त्ति-स्थापनका बाहुल्य देखा जाता है। वाराणसीके विश्वेश्वरादि मन्दिर, उड़िसाका भुवनेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर मन्दिर, सोमनाथका सोमनाथ मन्दिर तथा वैद्यनाथ और कालना नगरमें वर्द्धमानराजके प्रतिष्ठित १०८ मन्दिर शैवकीर्त्तिके निदर्शन हैं। इनके सिवा काञ्चीपुर, जम्बूकेश्वर, तिरुमलय, चिदम्बरम् और कालहस्ती आदि स्थानोंमें प्रसिद्ध और सुप्राचीन शैवकीर्त्तियां देखनेमें आती हैं।

शिवपुराण (३८ अध्याय) तथा नन्दि उपपुराणमें शिवजी कहते हैं, कि 'मैं सर्वव्यापी हूं, किन्तु सौराष्ट्रमें—सोमनाथ, कृष्णातीरस्थ श्रीशैल पर—मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी नगरमें—महाकाल, ओङ्कार और अमरेश्वर; चिताभूममें—वैद्यनाथ, दक्षिण सेतुबन्धमें—रामेश्वर, वाराणसीक्षेत्रमें—विश्वेश्वर, गोमती तट पर—त्र्यम्बक, हिमालयके पृष्ठ पर—केदारनाथ, दारुकवनमें—नागेश, शिवालयमें—घूश्मेश, डाकिनीमें—भीमशङ्कर आदि विशेष विशेष मूर्त्तिमें मैं विद्यमान हूं।'

१०२४ ई० या ४१५ हिजरीमें सुलतान महमूदने गजनी आ कर सोमनाथ मन्दिरको तोड़ा। ११५८ शकमें सुलतान अलतमस उज्जयिनीकी महाकालमूर्त्ति तोड़ कर दिल्ली ले गया। हिमालयस्थ केदारतीर्थमें आज भी हिन्दू-तीर्थयात्री जाते हैं। दक्षिणमें राजमहेन्द्रीके अन्तर्गत

* Serpent and Siva worship and Mythology in Central America Africa and Asia by Hyde Clarke. p. 10-11.

द्राक्षाराम-तीर्थमें भीमेश्वर मूर्त्ति विद्यमान है। वह पुराणोक्त डाकिनीस्थित भीमशङ्कर नामसे प्रसिद्ध है। नर्मदाके किनारे ओङ्कार-मान्धाता नामक स्थानमें ओङ्कार शिव विद्यमान हैं। काशीमें विश्वेश्वर, वैद्यनाथमें तथा सेतुबन्धमें रामेश्वर आज भी पूजित होते हैं। त्र्यम्बक, घृष्मेश और नागेश लिंग कहां किस प्रकार हैं उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता।

ग्रीक ऐतिहासिक आरियनके वर्णनसे जाना जाता है, कि माकिदन-वीर अलेकसन्दर पञ्जावप्रान्तमें शिवपूजा और शैवोत्सव देख गये थे। उसके वहुत पहले हीसे उत्तर-पश्चिम भारतमें शैवसम्प्रदायका प्रादुर्भाव हुआ था। ३री सदीमें वहुत दूर पूरव आनम् और कम्बोजमें शैवप्रभाव विस्तृत हुआ था। १०वीं या ११वीं सदीमें दाक्षिणात्यमें लिंग वा रुद्रोपासक शैवसम्प्रदायका पुनः प्रादुर्भाव हुआ। उन लोगोंने वौद्धोंको उत्पन्न कर भारतवर्षमें हिन्दू-प्राधान्य स्थापन करनेके लिये शैवधर्मकी प्रतिष्ठा की। यह वौद्धशाक्त-विरोध भारतीय हिन्दू इतिहासकी एक प्रसिद्ध घटना है।

दाक्षिणात्यके तैलिंग राज्यमें त्रिलिंग वा त्रिमूर्त्ति, इलोराकी गुहामें तथा अन्यान्य स्थानोंमें चौमूर्त्ति वा चतुर्मुख, मथुरा-सन्निहित स्थानमें पञ्चमुख तथा उदयपुरके उत्तरमें अवस्थित इतिहासप्रसिद्ध एकलिङ्गनाथ-मूर्त्ति भारतके विभिन्न साम्प्रदायिक शिवलिंगका निदर्शन है।

एकलिंग मूर्त्ति एक खण्ड नलाकार अथवा कोणाकार पत्थर पर वना होता है। इसी प्रकार किसी किसी लिंगके चारों ओर तथा ऊपरमें चार या पांच मुख खोद कर चतुर्मुख वा पञ्चमुख शिवमूर्त्ति कल्पित हुई है। इसके सिवा अगणित मूर्त्तिविशिष्ट और भी कितने प्रकारके शिवलिंग दृष्टिगोचर होते हैं। उनमेंसे शेषलिंग, कोटीश्वर आदि उल्लेखनीय हैं। एक बड़े पत्थरके खंभेमें लाखसे अधिक छोटे छोटे लिंग खोद कर उक्त दोनों मूर्त्ति वनाई गई हैं। सिन्धुनदके पूर्वी किनारे इसी प्रकार एक कोटीश्वर लिंगका सुप्राचीन मन्दिर तथा सौराष्ट्रदेशमें शेष लिंगकी कई मूर्त्तियां तथा मन्दिर विद्यमान है। ग्रीस और मिस्र राज्यमें वैकस (Bacchus) देवकी चक्रपीठस्थ जो सब लिंगमूर्त्ति हैं, उनके साथ कोटीश्वरका सादृश्य देखा जाता है। वैकसको व्याघ्रेश शब्दका अपभ्रंश माननेसे हिन्दूकी व्याघ्रेश-शिवमूर्त्तिके अनुकरण पर वैकसकी लिंगमूर्त्ति स्थापनाकी कल्पना की जा सकती है। क्योंकि दोनों ही मूर्त्ति एक-सी हैं तथा व्याघ्राम्बरधारी हैं। प्राचीन ढोलपुरमें (वर्त्तमान बरोली नामक स्थानमें) योनिचक्र पर घूमती हुई एक लिंगमूर्त्ति स्थापित है। वह मूर्त्ति घाटेश्वर महादेव नामसे प्रसिद्ध है। तीर्थयात्री निर्जन अरण्य-मध्यस्थित यह घाटेश्वरतीर्थस्थ लिंगमूर्त्ति देख कर बड़े ही विस्मित होते हैं।

प्राचीनकालमें लिंगोपासना केवल भारतवर्षमें ही आवद्ध थी सो नहीं, यहांसे १८ सौ कोस पश्चिम मिस्र देशमें ओसीरिस देवकी लिंगपूजा विशेषरूपसे प्रचलित थी। ओसीरिस वहांके एक श्रेष्ठ देवता समझे जाते हैं। इस ओसीरिस और उनकी स्त्री आइसीस देवीके साथ शिव और शक्तिको अनेक विषयोंमें एकता देखी जाती है। भगवती जिस प्रकार विश्वरूपा हैं, आइसीस देवी भी उसी प्रकार पृथिवीरूपा हैं। तन्त्रोक्त शक्तियन्त्र जिस प्रकार त्रिकोणाकार होता है, आइसीसदेवीका परिचायक उसी प्रकार एक त्रिकोणयन्त्र था। शिव जिस प्रकार संहारकर्त्ता हैं, ओसीरिस उसी प्रकार प्राणसंहारक यम-स्वरूप हैं। शिवका वाहन धर्मरूपी वृष जिस प्रकार पूजनीय है, ओसीरिसदेवका एपिस नामक वृष भी उसी प्रकार उनका अंशस्वरूप समझा जाता है।

पाश्चात्य जगत्‌में प्रचलित एक उपाख्यानसे जाना जाता है, कि वैकस देव भारतवर्षसे दो वृषको मिस्रदेश ले गये। उसीका एक नाम एपिस है। शिव और ओसीरिस दोनों देवताका ही शिरोभूषण सर्प है। शिवके हाथमें जिस प्रकार त्रिशूल शोभता है, ओसीरिस देवके हाथमें उसी प्रकार एक तीन फलवाला दण्ड लटक रहा है। मिस्रदेशके ओसीरिस देवकी अनेक पाषाणमय प्रतिमूर्त्तिके साथ व्याघ्रचर्म परिहित शिवमूर्त्तिका सादृश्य देखा जाता है। मि० विलकिन्सकृत प्राचीन मिस्रवासीके इतिहासमें ओसीरिस देवका चर्मपरिधृत प्रतिरूप विद्यमान है। शिवप्रिय विल्ववृक्षकी तरह उन्हें

भी एक प्रिय वृक्ष था। उस वृक्षका पत्र विल्वपत्रकी तरह तीन भागोंमें विभक्त था। काशीधाम जिस प्रकार महादेवका प्रधान तीर्थ है, मेम्फिस नगर भी उसी प्रकार ओसीरिस देवका सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य क्षेत्र समझा जाता है। दूधसे जिस प्रकार शिवका अभिषेक किया जाता है, फिलिद्वीपमें ओसीरिस देवके पीठस्थानमें भी उसी प्रकार प्रतिदिन ३६० बरतन दूध चढ़ाया जाता था। दोनोंमें प्रभेद इतना ही है, कि शिव श्वेत वर्णके, पर ओसीरिस कृष्णवर्णके होते हैं। किन्तु महाकाल नामक शिवमूर्त्तिविशेष भी कृष्णवर्णकी होती है। इसके सिवा भारतवर्षके नाना तीर्थोंमें कसौटी पत्थर पर घोर और उज्ज्वल कृष्णवर्णके शिवलिंग विद्यमान देखे जाते हैं।

भारतवर्षमें शिवलिंग-पूजाकी तरह मिस्रदेशमें भी ओसीरिस देवकी लिंगपूजा अति प्रबल थी। यह पूजा किस प्रकार फैली, इसके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार है,—टाइफन नामक देवताने मन्त्रणा करके ओसीरिसको मार उसके शरीरको खण्ड खण्ड कर डाला। यह अशुभ समाचार सुन उनकी स्त्री आइसीस देवीने उन सब खण्डोंको संग्रह कर विशेष विशेष स्थानमें गाड़ रखा। किन्तु जब लिंगदेश न मिला, तब उन्होंने प्रतिमूर्त्ति बना कर उसकी पूजा और महोत्सवका प्रचार किया *।

मिस्रदेशके स्थान स्थानमें तऊ नामक इसी प्रकार-की एकलिंगमूर्त्ति देखनेमें आई है। यह इस देशके योनिलिंगकी प्रतिरूप है। भारतवर्षीय शास्त्रकारोंने जिस प्रकार शिवलिंगको शिवकी सृष्टिशक्तिका विज्ञापक बताया है, मिस्रदेशीय इतिहासकारगण ओसीरिस देवकी लिंगपूजाके विषयमें भी हूबहू वैसी ही मीमांसा कर गये हैं।

धर्मतत्त्वानुसन्धित्सु वांस केनेडीने इस देशकी लिंगउपासनाके साथ मिस्रदेशीय लिंगपूजाके दो विषयमें पृथकता बतलाई है। उनका कहना है, कि मिस्र देशकी तरह भारतवर्षमें लिंगमूर्त्तिकी ग्रामयात्रा या नगरयात्रा प्रचलित नहीं है*। उनका यह कहना नितान्त अमूलक है। बंगालदेशमें चैत्रोत्सवके समय संन्यासी लोग बड़ी धूमधामसे जलाशयमेंसे शिवलिंगको पूजाकी जगह पर लाते हैं। पीछे मस्तक पर रख कर गाँवके प्रत्येक गृहस्थके घर ले जाते हैं तथा निर्दिष्ट स्थानमें रख कर उनकी अर्चनादि करते हैं। बहुत दिनसे उड़ीसाके भुवनेश्वरक्षेत्रमें चैत्रमासमें लिंगराजकी रथयात्रा चली आ रही है। उसी समय नवद्वीपमें शिवका विवाह नामक एक महोत्सव होता है। इसमें शिवजी बाजे-गाजेके साथ बड़े समारोहसे भगवतीके घरमें लाये जाते हैं। विवाह हो जाने पर उन्हें फिर मन्दिरमें पहुंचा आते हैं। इस उपलक्षमें सात आठ कोससे अनेक लोग नवद्वीप आते हैं। केनेडी साहबने यह भी कहा है, कि ओसीरिसकी लिंगपूजाकी तरह शिवलिंगकी पूजामें मद्यपानादि प्रचलित नहीं है। प्रकाश्य रूपसे ऐसा व्यवहार प्रचलित तो नहीं है, पर वीराचारीगण अप्रकाश्यरूपसे कुलाचारके अनुष्ठानके साथ शिवलिंगकी अर्चना करते हैं। योगसारमें इस विषयके प्रतिपोषक सुस्पष्ट प्रमाण भी विद्यमान हैं।

ग्रीकदेशमें भी एक समय लिंगपूजा बहुत प्रबल थी। वहांके नगरोंके प्रायः प्रत्येक पथ पर अनेक मन्दिर और शिवलिंगमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। उक्त लिंगोंके मध्य कुछ

---

* इस घटनासे हिन्दूशास्त्रोक्त दक्षका षड़यन्त्र, विना निमन्त्रणके सतीका पित्रालयमें जाना तथा शिवकी निन्दा सुन कर सतीका देहत्याग आदि बातें याद आ जाती हैं। पीछे शिवके कंधे पर स्थित उस सतीदेहको विष्णुने सुदर्शनचक्रसे ५१ खण्डोंमें विभक्त किया। उस सती-अंगसे ५१ पीठोंकी उत्पत्ति हुई। आज भी कामरूपमें योनिपीठ विद्यमान है। उन सब सतीपीठोंकी पूजा और उत्सव प्रचलित है। मालूम नहीं, ओसीरिसके अंगखण्ड स्वतन्त्र पीठरूपमें माने गये थे या नहीं? इस पाश्चात्य उपाख्यानसे सती-पतिको लेनेके कारण विपर्यय हुआ है। मदनभस्मके समय रतिने कामदेवकी भस्म संग्रह की थी। शायद शिव प्रसङ्गाधीन इन दोनों उपाख्यानोंसे मिस्र उक्त किंवदन्ती प्रचलित हुई होगी।

* Vans Kennedey's Researches in to the nature and affinity of Ancient and Hindoo Mythology. p 305.

प्रधान और प्रसिद्ध लिंगोंके उद्देशसे कभी कभी उत्सव भी मनाया जाता था। वैकसदेवके फेलिफोरिया नामक महोत्सवमें वहांके लोग मेषका चमड़ा पहन कर, सारे शरीरमें काली लेप कर और एक लंबे लकड़ीके डंडेमें चर्मलिंग बांध कर रास्ते रास्ते नाचते घूमते थे। वैकसके पुत्र प्रायेपसका उत्सव कुत्सित और वीभत्स व्यापारयुक्त होता था। उनका प्रधान प्रधान महोत्सव केवल स्त्री द्वारा ही सम्पन्न होता था। वे सब रमणियां उनकी पूजाके समय गदहेकी वलि देतीं तथा मद्यादि विविध उपचारसे पूजा कर नाच गान और बाजेके साथ उन्हें संतुष्ट करती थीं।

वैकस और प्रायेपसकी पूजा तथा महोत्सवके सम्बन्धमें वहांके लोगोंका कुत्सित आचार और अनुष्ठानादि देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि सुदूर यूरोप महादेशमें भी बहुत समय पहले तन्त्रोक्त वीराचारके जैसा आचार प्रचलित था।

आथेनियसकी लेखनीसे हमें मालूम होता है, कि ग्रीकवासिगण वैकसदेवके महोत्सवविशेषमें १२० हाथ लम्बी एक सोनेकी लिंगमूर्त्ति ढो कर ले जाते थे। अलेक्सन्द्रियाराज टलेमीने इस उत्सवका अनुष्ठान किया था। (Athenaeus, lib, v,)

प्राचीन फिनिकीया-राज्यमें भी अति जघन्यभावमें लिंगपूजा प्रचलित थी। लुसियानके वर्णनसे मालूम होता है, कि सिरियाके एक बड़े मन्दिरमें ३०० फादम ऊंचा लिंग था। प्राचीन आसिरीय और वाविलनराज्य वासी ३०० हाथ लंबी लिंगमूर्त्ति बना कर उसको उपासना करते थे। वाविलनसे जो सब पीतलकी पुरानी लिंगमूर्त्ति आविष्कृत हुई है, वह अविकल भारतीय शिवलिंगकी-सी है*। ७वीं सदीमें चीन परिव्राजक यूएनचुवंग काशीधाम आ कर १०० फुट ऊंचा तांबेका शिवलिंग तथा कमसे कम ६६ हाथ लम्बी एक पीतलकी शिवमूर्त्ति और २० सुन्दर मन्दिर देख गये हैं। काशी देखो। किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्ने प्रमाणके साथ यह साबित किया है, कि पूर्वकालमें ईसाइयोंमें भी एक तरहकी लिंगपूजा प्रचलित थी। आज भी इटलीके रोमन काथलिक सम्प्रदायमें उसका अंगविशेष विद्यमान है वा नहीं, अच्छी तरह आलोचना करनेसे उसका पता लग सकता है। मिस्रदेशीय प्रथम ईसाईगण लिंगाकृतिमूलक पूर्वोक्त 'तऊ' नामक वस्तु गलेमें पहनते थे। पूर्वतन ईसाइयोंके अनेकों समाधि-मन्दिर वा स्तम्भमें वह तऊमूर्त्ति अङ्कित है। वहां तऊ-लिंग पीछे क्रोसचिह्नमें रूपान्तरित हुआ है वा नहीं कह नहीं सकते। भारतीय हिन्दुओं तथा पाश्चात्य ईसाइयोंमें लिंगोपासनाका सामञ्जस्य देख कर मूर साहबने लिखा है—

"This last lingering relic of a very ancient rite—Phallic, Lingaic, or Ionian, as one may be differently disposed to view it—in Christendom, has been thought to deserve a separate and somwhat lengthy dissertation. I have compiled such a one from sources not mentionable, with a running commentary showing its close correspondence with existing Hindu rite"—Moor's Oriental Fragments, p, 147.

भारतवर्षमें शिवलिंगपूजामें चारों वर्णका समान अधिकार है। शिवलिंगके मध्य पार्थिव शिवलिंगपूजा ही विशेष प्रशस्त है। इसके सिवा सोने, चांदी, तांबे, स्फटिक और पारेका लिंग बना कर उसकी पूजा करनेका विधान देखा जाता है।

लिंगमहिमा—संसारमें जो सब पुण्य कार्य हैं, उनमेंसे शिवपूजा प्रधान है। अश्वमेध और वाजपेयादि यज्ञको अपेक्षा शिवपूजामें अधिक फल है। यथा—

"अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
महेशार्च्चनपुण्यस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्॥"

(मत्स्यसू० १६ प०)

शिवलिंगकी पूजा करनेसे जो फल होता है, अग्निहोत्रादि यज्ञ उसके कोटि भागमेंसे भी एक भाग नहीं है। जो शिवलिंगकी पूजा करते हैं वे सभी पापोंसे मुक्त होते हैं। इस जगत्में जीव नाना योनियोंमें भ्रमण कर एकमात्र शिवलिंग पूजा द्वारा ही मुक्तिलाभ करता है।

लिंगपुराणमें लिखा है, कि एकमात्र शिवलिंग-

---

* Jour Roy. As, Soc, of Great Britain and Ireland, Vol. 1 p, 91-92

पूजनसे चतुर्वर्ग फल या अष्टैश्वर्यकी सिद्धि होती है। स्वयं नारायणने कहा है, कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आदि स्थानोंमें जो सब देवता हैं, एकमात्र शिवजीकी पूजा करनेसे ही उन सब देवताओंकी पूजा होती है।

स्कन्दपुराणमें लिखा है, कि जो शिवलिंगकी पूजा नहीं करते, उन्हें महा अमंगल होता है। एक ओर सभी प्रकारका दान, विविध भाग यज्ञादि और दूसरी ओर लिंगपूजा ये दोनों ही समान हैं। लिंगाराधनाके विना याग यज्ञादि निष्फल होता है। अतएव लिंगपूजा भुक्ति-मुक्तिप्रद और विविध पापनाशक है। शिवलिंगकी आराधनाके बलसे अन्तकालमें शिवसायुज्य लाभ होता है।

लिंगार्च्चनतन्त्रमें लिखा है, कि विना लिंगपूजाके अन्य पूजादि निष्फल है। इसलिये जो कोई पूजादि करते हों, उसके प्रारम्भमें लिंगपूजा करनी चाहिये।

जिस राज्यमें शिवपूजा नहीं होती, वह राज्य पतित समझा जाता है। वहां रहना उचित नहीं।

मत्स्यसूक्त, स्कन्दपुराण, वीरमित्रोदय, लिंगपुराण, शिवपुराण, स्मृति और तन्त्र आदि सभी धर्मशास्त्रोंमें शिवपूजा करनेकी आवश्यकता बताई है। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा सौर, गाणपत्य और वैष्णव आदिको शिवपूजा करना अवश्य कर्त्तव्य है। विना शिवपूजा किये जल ग्रहण करनेसे प्रत्यवायका भागी होना पड़ता है। अतएव संध्यावन्दनादिकी तरह शिवपूजा नित्यकर्म है। स्मृतिनिबन्धकार रघुनन्दनने अट्ठाईस स्मृतियोंके मध्य आह्निकतत्त्वमें पार्थिव लिंगपूजाकी अवश्य कर्त्तव्यता प्रतिपादन कर पूजाका मन्त्र और विधि व्यवस्थादि निर्दिष्ट कर दी है। विस्तार हो जानेके भयसे उसके प्रमाणादि यहां पर नहीं दिये गये।

भारतवर्षमें प्रायः सभी जगह पार्थिव शिवलिङ्गपूजाका व्यवहार देखनेमें आता है। इसके सिवा जहां अनादि लिङ्ग वा प्रतिष्ठित लिङ्ग देखनेमें आते हैं, वे पाषाणमय हैं। जिन सब द्रव्यों द्वारा लिङ्ग निर्माण किया जा सकता है उनके सम्बन्धमें गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है—

गन्धलिङ्ग—दो भाग कस्तूरिका, चार भाग चन्दन और तीन भाग कुङ्कुम इनके द्वारा लिङ्ग निर्माण करनेसे उसे गन्धलिंग कहते हैं। इस लिंगकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे शिवसायुज्यलाभ होता है।

पुष्पमय-लिङ्ग—अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प द्वारा जो लिंग बनाया जाता है, उसे पुष्पमयलिंग कहते हैं। इस लिंगकी पूजा करनेसे पृथ्वीका आधिपत्यलाभ तथा अन्तमें वह गणाधिपति होता है।

गोशकृल्लिंग—(गोवरका शिव) स्वच्छ कपिल वर्णके गोवरसे लिंग बना कर पूजा करे, तो ऐश्वर्यलाभ होता है। इस विषयमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि जिसके लिये गोवरकी शिवपूजा की जाती है उसकी अवश्य मृत्यु होती है। गोवरकी शिवपूजामें विशेषता यह है, कि मृत्तिकापतित गोवरसे लिंग नहीं बनाना चाहिये।

रजोमयलिंग—रजसे लिंग बना कर उसकी पूजा करनेसे विद्याधरत्व तथा पीछे शिवसायुज्यलाभ होता है।

यवगोधूमशालिज—जौ, गेहूं और चावलके चूरका लिंग बना कर पूजा करनेसे श्री, पुष्टि और पुत्रादिलाभ होता है।

सिताखण्डमयलिंग—सिताखण्डसे लिंग बना कर पूजा करनेसे आरोग्यलाभ होता है।

लवणजलिंग—हरिताल और त्रिकटुको लवणमें मिला कर उससे लिंग बना कर पूजा करनेसे उत्तम वशीकरण होता है।

लवणज लिङ्ग सौभाग्यप्रद; पार्थिवलिंग कामनासिद्धिद, तिलपिष्टोत्थ लिंग अभिलाषसिद्धिद; तुषोत्थ लिंग मारणशील, भस्ममय लिंग सर्वफलप्रद, गुड़ोत्थ लिंग प्रीतिवर्द्धन, गन्धमयलिंग गुणदायक, शर्करामय लिंग सुखप्रद, वंशांकुर निर्मित लिंग वंशकर, गोमयलिंग सर्वरोगप्रद और केशास्थिसम्भव लिंग सर्वशत्रुनाशक है। इसके सिवा द्रुमोद्भूत लिंग दारिद्र्यप्रद, पिष्टमय लिंग विद्याप्रद, दधिदुग्धोद्भवलिंग कीर्त्ति, लक्ष्मी और सुखप्रद, धान्यज लिंग धान्यप्रद, फलोत्थ लिंग फलप्रद, धात्रीफलजातलिंग मुक्तिप्रद, नवनीतजातलिंग कीर्त्ति और सौभाग्यवर्द्धक, दूर्वाकाण्डजातलिंग अपमृत्युनाशक, कर्पूरजातलिंग मुक्तिप्रद होता है।

क्षोभण और मारण कार्य्यमें पिष्टमय लिंग उत्तम है।

अयस्कान्तमणिज लिंग सिद्धिप्रद, मौक्तिक लिंग सौभाग्यप्रद; स्वर्णनिर्मित लिंग महामुक्तिप्रद; राजत-लिंग भूतिवर्द्धक; पितल और कांस्यज लिंग सामान्य मुक्तिप्रद; त्रपु, आयस और सीसकजातलिंग शत्रुनाशक; मिश्र अष्टधातुनिर्मित लिंग सर्व्वसिद्धिप्रद; अष्टलौहजात लिंग कुष्ठरोगनाशक, वैदूर्य्यमणिजात लिंग शत्रुदर्पनाशक; स्फटिक लिंग सर्व्वकामप्रद है। उपर्युक्त धातु और द्रव्यादि द्वारा शिवलिंग बना कर पूजा करनेसे ये सब फल लाभ होते हैं।

पहले जिन सब लिंगपूजाकी बात लिखी गई उनमेंसे ताम्रनिर्मित लिंग रैत्य, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, कांस्य, लौह और सीसक निर्मित लिंगकी कलिकालमें पूजा नहीं करनी चाहिये।

पारेका शिवलिङ्ग बना कर पूजा करनेसे महा ऐश्वर्य्य लाभ होता है।

लिङ्ग बना कर पीछे उसका संस्कार करके पूजा करनी होती है। केवल पार्थिव लिङ्गका संस्कार नहीं करना होता है। निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार संस्कार करना चाहिये। रौप्य वा स्वर्णनिर्मित लिंगको स्वर्णपात्रमें तीन दिन दूधमें रख देना होगा। पीछे 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्रसे स्नान करा कर कालरुद्रकी, पीछे वेदी पर षोड़शोपचारसे पार्वतीकी पूजा करना उचित है। इसके बाद उस पात्रसे लिंगको उठा कर गंगाजलमें तीन दिन रख देना होता है। अनन्तर यथाविधि संस्कार अर्थात् प्रतिष्ठा करके वह लिंग स्थापन करना होगा।

पार्थिव शिवलिंगपूजनमें १ या २ तोला मिट्टी ले कर उसीसे लिंग बना कर पूजा करनी होती है।

"लिङ्गप्रमाणं देवेश कथयस्व मयि प्रभो।
पार्थिवे च शिलादौ च विशेषो यत्र यो भवेत्॥
मृत्तिकातोलकं ग्राह्यमथवा तोलकद्वयम्।
एतदन्यन्न कुर्वीत कदाचिदपि पार्वति॥"

(मातृकाभेदतन्त्र ७ पटल)

पार्थिव लिंगपूजनमें मृत्तिकाभेदकी व्यवस्था देखनेमें आती है। लिंग बनाते समय ब्राह्मण सफेद मिट्टी, क्षत्रिय लाल मिट्टी, वैश्य पीली मिट्टी और शूद्र काली मिट्टीसे लिंग बना कर पूजा करें। जहां ऐसी मिट्टी न मिले, वहां यदि विभिन्न वर्णकी मिट्टीसे लिंग बना कर पूजा करे, तो कोई दोष नहीं होगा। (लिङ्गार्च्चनतंन्त्र ३ प०)

लिंगका जैसा विस्तार और परिमाण शास्त्रमें कहा है, वैसा ही विस्तार और परिमाण करना चाहिये। लिंगसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठ करना होगा। लिंग अंगुष्ठ प्रमाणका होगा। किन्तु पाषाणादि लिंग मोटा बनाना होगा। रत्नादि धातुनिर्मित लिंगका परिमाण अपने इच्छानुसार बना सकते हैं।

लिंग सुलक्षणयुक्त करना होता है। अलक्षण लिंग अशुभकर है, इस कारण उसका परित्याग करना उचित है। लिंगकी लम्बाई कम होनेसे शत्रुकी वृद्धि होती है। परिमाणको घटाना बढ़ाना उचित नहीं। योनिपीठ तथा मस्तकादिहीन करके लिंग न बनावे। इससे अनेक प्रकारका अमंगल होता है। पार्थिव लिंगमें स्वांगुष्ठपर्व्वका लिंग बना कर पूजा करे। (मातृकाभेदत० ७ प०)

सिर्फ एक लिंगकी पूजा करनेसे देव और देवी दोनोंकी ही पूजा हो जाती है। लिंगके मूलमें ब्रह्मा, मध्यदेशमें त्रिभुवनेश्वर विष्णु, ऊपरमें प्रणवाख्य महादेव अवस्थित है। लिंगवेदी महादेवी है और लिंग ही साक्षात् महेश्वर है। अतएव लिंगपूजामें सभी देवताओंकी पूजा आ जाती है। (लिङ्गपुराण)

पारद-शिवलिंगपूजाकी विशेष प्रशंसा देखनेमें आती है। जब पारेका लिंग बनाया जाता है, तब नाना प्रकारके विघ्न होनेकी सम्भावना रहती है। इस कारण उस समय शान्ति स्वस्त्ययन करना आवश्यक है। पकार शब्दसे विष्णु, आकारसे कालिका, रकारसे शिव और दकारसे विष्णु समझे जाते हैं। अतएव पारद शब्दसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और कालिका इन तीनोंका ही बोध होगा। इसलिये ब्रह्मविष्णु शिवात्मक पारद लिंगकी जो पूजा करते हैं वे शिवतुल्य हैं तथा धन, ज्ञान और अणिमादि ऐश्वर्य्यलाभ करते हैं। जीवनकालमें एक दिन भी पारद लिंगकी पूजा की जाय, तो भी ऊपर कहे गये समस्त फल प्राप्त होते हैं।

जिन सब लिंगोंकी बात कही गई, उनका लिंग-निर्माण

करना होता है। इसके अतिरिक्त नर्मदा नदीमें एक प्रकारका लिंग पाया जाता है जिसे वाणलिंग कहते हैं। यह लिंग भुक्तिमुक्ति-प्रदायक है। नर्मदा, देविका, गंगा, यमुना आदि पुण्य नदियोंमें वाणलिंग पाये जाते हैं। इन्द्रादि देवताओंने इस लिंगको पूजा की थी। स्वयं शिवजी इस लिंगमें अवस्थित हैं।

वाणलिंगकी पूजा करनेमें पहले उसकी वेदिका बनावे। पीछे उस पर यह लिंग स्थापन कर पूजा करे। ताम्र, स्फटिक, स्वर्ण, पाषाण, रजत वा रौप्यकी वेदी बनानेका विधान है।

नर्मदादि पुण्य नदियोंसे वाणलिंग निकाल कर पहले परीक्षा करे। पीछे संस्कार परीक्षाका नियम—पहले तराजूके एक पलड़े पर वाणलिंग और दूसरे पर उसीके समान चावल रख कर एक बार वजन करे। पीछे उस चावलसे दूसरी बार वजन करने पर यदि वह चावल अधिक हो जाय, तो वह लिङ्ग गृहस्थोंका पूजनीय है, ऐसा जानना होगा। वजन ३, ५, वा ७ बार करना होता है। यदि प्रत्येक बारकी तौल समान निकले, तो उस लिङ्गको जलमें फेंक देना होगा। चावलसे यदि लिङ्ग भारी हो तो वह लिङ्ग उदासीनोंके लिये हितकर है।

(सूतसंहित)

वाणलिङ्ग है वा नहीं इसी प्रणालीसे परीक्षा करनेके बाद उसका संस्कार करके पूजन करे।

लिङ्गपूजाविधि—वाणलिङ्गकी पूजामें पहले सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे गणेशादि देवताकी पूजा करके वाणलिङ्गको स्नान कराना होगा। पीछे निम्नोक्त ध्यान मन्त्र पढ़ कर मानसोपचारसे पूजा तथा फिरसे ध्यान कर पूजा करनी होती है। पूजा यथाशक्ति षोड़शादि उपचारसे की जा सकती है। ध्यान-मन्त्र—

"ओं प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यञ्च महाप्रभम्।
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्।
शृंगारादि रसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरम्॥"

इस ध्यानसे पूजा और जपादि करके स्तवपाठ करना होता है। वाणलिङ्ग-पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

वाणलिङ्ग अनेक प्रकारके हैं, जैसे—आग्नेयलिङ्ग, याम्यलिङ्ग, नैऋ तलिङ्ग, वारुणलिङ्ग, वायुलिङ्ग, कुवेरलिङ्ग, रौद्रलिङ्ग, वैष्णवलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, मृत्युञ्जयलिङ्ग, नीलकण्ठलिङ्ग, महादेवलिंग, उग्रलिंग, त्रिपुरारिलिङ्ग, अर्द्धनारीश्वरलिङ्ग और महाकाललिङ्ग आदि। इनमेंसे प्रत्येकका पृथक् पृथक् लक्षण शास्त्रमें लिखा है। उन्हीं सब लक्षणों द्वारा उक्त लिङ्ग स्थिर करना होता है। वाणलिङ्गके शुभाशुभ लक्षणकी तरह परीक्षा करनी होती है।

निन्द्य लिंग—वाणलिंग कर्कश होनेसे पुत्रदारादिक्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एक पार्श्वस्थित होनेसे पुत्रदारादि धनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, लिंग छिद्र होनेसे विदेशगमन तथा लिंगमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है। इसलिये उन सब दोषयुक्त वाणलिंगकी पूजा नहीं करनी चाहिये। इसके सिवा तीक्ष्णाग्र, वक्रशीर्ष तथा त्र्यस्र (त्रिकोण) लिंग वर्जनीय है। फिर अति स्थूल, अति कृश, स्वल्प और भूषणयुक्त लिंगकी गृहस्थ लोग पूजा न करें। यह लिंग जो मोक्षार्थी हैं उन्हींके लिये हितकर है।

शुभलिंग—घनाभ और कपिल वर्णका लिंग विशेष शुभ है। इस लिंगकी पूजा करनेसे शुभ होता है। लघु वा स्थूल कपिल वर्णके लिंगकी गृहस्थगण कभी भी पूजा न करें। भ्रमरकी तरह कृष्णवर्णका लिंग सपीठ अपीठ वा मन्त्र संस्कार रहित होने पर भी गृहस्थ उसकी पूजा कर सकते हैं।

वाणलिंगका आकार पद्मवीजके जैसा होता है। यह वाणलिंग मुक्ति और भुक्तिप्रदायक है। एक जम्बु फलकी तरह तथा कुक्कुटाण्ड आकृतिका लिंग भी वाणलिंग कहलाता है। यह लिंग भी पूजामें विशेष प्रशस्त है। मधुवर्ण, शुक्ल, नील, मरकत मणिके तथा हंसडिम्बके जैसे लिंगकी प्रतिष्ठा करना उत्तम है। यह लिंग नर्मदादि नदीके जलमें पर्वतसे आपे-आप उत्पन्न होते हैं। इस कारण नदीसे ला कर संस्कार करके उसकी पूजा की जा सकती है। पहले वाणने तपस्या करके महादेवसे यही वर पाया था, कि वे सर्वदा पर्वत पर लिंगरूपमें आविर्भूत रहें। इसीसे जगतीतलमें यह लिंग वाणलिंग नामसे प्रसिद्ध हुए। एक वाणलिंग की पूजा करनेसे बहुलिंग पुजाका फललाभ होता

पार्थिव लिङ्गपूजा—पार्थिव लिङ्गपूजामें पहले लिङ्ग निर्माण करना होता है। 'ओं हराय नमः' इस मन्त्रसे एक या दो तोला मिट्टी ले। पीछे 'ओं महेश्वराय नमः' कह अंगुष्ठ परिमित लिंग बनावे। मट्टीको तीन समान भाग करके ऊपरी भागमें लिङ्ग, मध्य भागमें गौरीपीठ तथा शेष भाग द्वारा वेदी अर्थात् आसन प्रस्तुत करना होता है। ऊपरी भागको लिंग, मध्यभाग को गौरीपीठ और निम्न भागको वेदी कहते हैं। बाएं या दहिने किसी भी हाथसे लिंग बना सकते हैं। एक हाथसे लिंग बनाना ही उत्तम है। नितान्त असमर्थ होने पर दोनों हाथसे भी बनाया जा सकता है। इस प्रकार बना कर लिंगके ऊपर एक गोल छोटा मिट्टीका टुकड़ा रख देना होगा। इसका नाम वज्र है। यदि कोई दूसरा आदमी लिंग बना दे, तो पूजक शिवके गाल पर हाथ रख कर 'ओं हराय नमः' और 'ओं महेश्वराय नमः' यह मन्त्र पढ़े। पूजाके समय शिवलिंगका पिणाक उत्तरकी ओर करके बिल्वपत्रके ऊपर रखना होता है। सामान्य पूजा-विधिके अनुसार आशनशुद्धि, जलशुद्धि, गणेशादि देवताकी पूजा कर लिंग पूजा करनी होगी। पूजा के समय ललाटमें भस्म वा मृत्तिकाका त्रिपुण्ड और गलेमें रुद्राक्षमाला पहननी चाहिये*।

अनन्तर शिवका ध्यान करना होगा। ध्यान इस प्रकार है—

"ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।"

यह ध्यान पढ़ कर मानसोपचारसे पूजा करे और पीछे ध्यान पाठ करके शिवके मस्तक पर फूल रखे। अनन्तर 'ओं पिणाकधृक् इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धस्व, इहसन्निरुद्धस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण।' इसी प्रकार आवाहनादि करे। आवाहन आदि पांच मुद्रा दिखा कर आवाहनादि करने होते हैं। पीछे 'ओम् शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव' इस प्रकार लिंग प्रतिष्ठा करके 'ओं पशुपतये नमः' इस मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तक पर जल चढ़ावे। बादमें शिवके मस्तक परका वज्र फेंक कर उसके ऊपर चार आतप तण्डुल (अरवा चावल) दे दे। इसके बाद पाद्यादि दशोपचार द्वारा पूजा करनी होती है। 'ओं एतत् पाद्यं ओं नमः शिवाय नमः।'

'इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः" इत्यादि क्रमसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, स्नानीय, गन्ध, पुष्प, विल्वपत्र, धूप, दीप और नैवेद्यादि देने होंगे। शिवके अर्घ्यमें केला और विल्वपत्र देना होता है। पीछे शिवकी अष्ट मूर्त्तिकी पूजा करनी होती है। पूर्वकी ओर—'एते गन्धपुष्पे ओं सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' ईशानकोणमें 'एते गन्धपुष्पे ओं भवाय जलमूर्त्तये नमः' उत्तरमें 'एते गन्ध-पुष्पे ओं रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः' वायुकोणमें 'एते गन्ध-पुष्पे ओं उग्राय वायुमूर्त्तये नमः' पश्चिममें 'एते गन्ध-पुष्पे ओं भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः' नैऋतमें 'एते गन्ध-पुष्पे ओं पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः' दक्षिणमें 'एते गन्धपुष्पे ओं महादेवाय सोममूर्त्तये नमः' अग्निकोणमें 'एते गन्धपुष्पे ओं ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः' इस प्रकार अष्टमूर्त्तिकी पूजा करके यथाशक्ति जप और गुह्यातिगुह्य मन्त्रसे जप और विसर्ज्जन करना होगा। पीछे दाहिने हाथका वृद्धांगुष्ठ और तर्जनी मिला कर उसके द्वारा बम् बम् शब्दसे दहिना गाल बजाना होता है। इस समय महिम्नः स्तव आदि शिवका स्तवकवच पढ़ना आवश्यक है। असमर्थ होने पर २।१ श्लोक भी पढ़ सकते हैं।

इसके बाद प्रणाम करके दहिने हाथसे अर्घ्यजलसे और आत्मसमर्पण करके शिवके मस्तक पर थोड़ा जल चढ़ावे।

इस प्रकार आत्मसमर्पण करके कृताञ्जलि हो क्षमा प्रार्थना करनी होगी।

"ओं आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनं।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥"

इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करके विसर्जन करना होता है। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बना कर

* "विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
विना मालूरपत्रेण नार्च्चयेत् पार्थिवं शिवम्॥"

पीछे संहार मुद्रा द्वारा एक निर्माल्य पुष्प सूंघते हुए उस त्रिकोण मण्डलके ऊपर देना होता है। इस समय ऐसा सोचना चाहिये कि पूजित देवता मेरे हृदयपद्ममें प्रविष्ट हुए। इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ओं चण्डेश्वराय नमः' 'ओं महादेव क्षमस्व' कह कर शिवको ले मण्डलके ऊपर रख देना होता है।

प्रस्तरमय शिवलिंगकी पूजामें आवाहन, विसर्जन और गठनादि नहीं होते। पूजाप्रणाली सभी पूर्ववत् है। केवल स्नानके समय 'ओं नमः शिवाय नमः' मन्त्रसे स्नान करना होगा। जलमें शिवपूजा करनेसे आवाहन और विसर्जनादि नहीं होता। 'ह्रीं वाणेश्वराय नमः' इस मन्त्रसे उपचारादि देने होते हैं। सभी प्रकारके पुष्पोंसे शिवपूजा नहीं करनी चाहिये। मल्लिका, मालती, जाती, शफोलिका, जवा, वकुल और नगरपुष्प निषिद्ध है। वाण-लिंग पूजाके बाद स्तवपाठ करना उचित है।

शिवपुराणमें वारह ज्योतिर्लिंगका उल्लेख है। ये सभी ज्योतिर्लिंग लिंगसे श्रेष्ठ हैं। इन वारह ज्योतिर्लिंगोंमेंसे काशीक्षेत्र प्रधान है। यहांके विश्वेश्वर नामक लिंग प्रथम हैं। वदरिकाश्रममें केदारेश्वर, श्रीशैल पर मल्लिकार्ज्जुन नामक लिंग और भीमशङ्कर लिंग, ओंकारमें अमरेश, उज्जयिनीमें महाकालेश्वर, सूरतमें सोमनाथ, पारलीमें वैद्यनाथ, ओड्रदेशमें नागनाथ, शैवालमें सुपमेश, ब्रह्मगिरिमें त्र्यम्बक और सेतुवन्धमें रामेश्वर लिंग है। यही वारह ज्योतिर्लिंग हैं। इन ज्योतिर्लिंगके दर्शन पूजन आदिसे इह और परलोकमें अशेष कल्याण-साधन होता है। (शिवपु० उत्तरख० ३ अ०)

लिङ्गक (सं० पु०) लिङ्गेन कायतीति कै-क। कपित्थवृक्ष, कैथका पेड़।

लिङ्गगुण्ठमराम—शृङ्गाररसोदय नामक मिश्रभाणके प्रणेता।

लिङ्गजा (सं० स्त्री०) लिङ्गनी लता।

लिङ्गतोभद्र (सं० क्ली०) १ तन्त्रोक्त मन्त्रात्मक चक्रभेद। २ दीधितिभेद।

लिङ्गत्व (सं० क्ली०) लिङ्गस्य भावः। लिङ्गका भाव या धर्म।

लिङ्गदेह (सं० पु०) वह सूक्ष्म शरीर जो इस स्थूल शरीरके नष्ट होने पर भी संस्कारके कारण कर्मोंके फल भोगनेके लिये जीवात्माके साथ लगा रहता है। इसमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंकी सब वृत्तियां रहती हैं, केवल उनके स्थूल रूप नहीं रहते। इस देहमें सत्रह तत्त्व माने गये हैं—१० इन्द्रियां, २ मन, ५ तन्मात्र और बुद्धि।

लिङ्गद्वादशव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद।

लिङ्गधर (सं० त्रि०) चिह्नधारणकारी, गुणवान्।

लिङ्गधारण (सं० क्ली०) वंश या धर्मसम्प्रदायके पार्थक्य-सूचक चिह्नादि धारण करना।

लिङ्गधारिन् (सं० त्रि०) १ चिह्नधारी। २ जो शिव लिङ्ग धारण करे। शैव या जङ्गमसम्प्रदायके साधु लोग गलेमें अथवा भुजाओंमें महादेवकी लिङ्गमूर्त्ति धारण करते हैं।

लिङ्गधारिणी (सं० स्त्री०) नैमिषस्थ दाक्षायणीकी एक मूर्त्ति।

लिङ्गनाश (सं० पु०) लिंगं इन्द्रियशक्तिं दृष्टिं नाशयतीति। १ नेत्ररोगविशेष, नीलिका नामक नेत्ररोग।

आंखके तीसरे या चौथे पटलमें विकार होनेसे यह रोग होता है। सुश्रुतमें इस रोगके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—दृष्टिविशारद पण्डितोंका कहना है, कि मनुष्यकी दृष्टि पञ्चभूतके गुणसे बनी है। वाह्यपटल अव्यय तेज द्वारा आवृत, शीतल प्रकृतिविशिष्ट तथा खद्योतके दोनों विस्फुलिंगसे निर्मित मसूरदलके समान विवराकृति दोष विगुण हो कर शिराओंके भीतर जाता और दृष्टिशक्तिको ह्रास करता है। दोषके चौथे पटलमें होनेसे तिमिर रोग होता है। इसमें हठात् दर्शनशक्तिका रोध होनेसे उसे लिंगनाश कहते हैं। यह रोग कठिन नहीं होनेसे चन्द्र, सूर्य विद्युत् और नक्षत्र-विशिष्ट आकाश तथा निर्मल तेज और ज्योतिः पदार्थ दृष्टिगोचर होता है। लिंगनाशरोगकी इस अवस्थाको नीलिका काच कहते हैं।

यह लिंगनाशरोग वातादि दोषसे दुष्ट हो कर अनेक प्रकारका हो जाता है। यदि यह वायु द्वारा उत्पन्न हो तो सभी पदार्थ लाल, सचल और मैले दिखाई देते हैं। पित्त द्वारा होनेसे आदित्य, खद्योत, इन्द्रधनु, तड़ित् और मयूरपुच्छकी तरह विचित्र नील अथवा कृष्णवर्णके नजर आते हैं। अथवा सभी वस्तु जलप्लावित सी मालूम होती है। रक्त द्वारा होनेसे सभी वस्तु लाल

और अन्धकारमय दिखाई देती है। कफ द्वारा उत्पन्न होनेसे सफेद और चिकनो ; सन्निपात द्वारा होनेसे हरित, कृष्ण, धूम्र आदि विचित्रवर्णविशिष्ट और विद्युत्‌की तरह तथा छोटी बड़ी दिखाई पड़ती हैं।

लिङ्गनाशरोगमें छः प्रकारके वर्ण होते हैं। वायुज-रोगमें दृष्टिमण्डल रक्तवर्ण, पित्त कर्त्तृक परिम्लायिरोग या नीलवर्ण, श्लेष्मा कर्त्तृक श्वेतवर्ण, शोणित कर्त्तृक रक्तवर्ण तथा सन्निपात कर्त्तृक विचित्र वर्ण हुआ करता है। इसकी चिकित्साका विषय नेत्ररोग शब्दमें देखो।

लिङ्गस्य नाशः। २ सूक्ष्मदेहका विनाश, मोक्ष। ३ ध्वजभङ्गरोग। ४ अंधरोग जिसमें वस्तुकी पहचान न हो सके, अंधकार, तिमिर।

लिङ्गपरामर्श (सं० पु०) न्यायके अनुसार लक्षणासिद्ध मीमांसाका एक भेद। जैसे धूमत्व, धूमचिह्न ही अग्निका उद्बोधक है। धूमचिह्नके अनुमानसे अग्नि प्रतिपादित हुई है इसलिये वह लिङ्गपरामर्शसे सिद्ध हुआ है, ऐसा जानना होगा।

लिङ्गपीठ (सं० क्ली०) मन्दिरकी वह चौकी जिस पर देव-लिङ्ग स्थापित रहता है। इसे गर्भपीठ भी कहते हैं।
(राजतरङ्गिणी २।१२६)

लिङ्गपुराण (सं० क्ली०) महर्षि वेदव्यास-प्रणीत एक पुराण। यह पुराण अष्टादश पुराणोंमें पांचवाँ पुराण है। शिवमाहात्म्य तथा लिङ्गपूजाका प्रचार करना ही इस पुराणका उद्देश्य है। इस पुराणके दो भाग हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्व भागसे सृष्टिविवरण, लिङ्गकी उत्पत्ति और पूजाप्रसङ्ग, दक्षयज्ञ, मदनभस्म, शिवविवाह, वराहचरित, नृसिंहचरित, सूर्य और सोमवंशका विवरण है। उत्तर भागमें विष्णुमाहात्म्य, शिवमाहात्म्य, स्नानदानादि माहात्म्य और गायत्रीमाहात्म्य आदि विषय लिखे गये हैं। इस पुराणमें अष्टाविंशति अवतारोंकी कथा और श्रीकृष्णके अवतार पर्यन्त राजवंशका वर्णन लिखा है। इस पुराणके मतसे प्रलयके पश्चात् अग्निमय शिवलिङ्गकी उत्पत्ति होती है और उसी शिवलिङ्गसे वेदादि शास्त्र उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण इसी शिव-लिङ्गके तेजसे ही तेजस्वी हुए हैं। बहुतोंका विश्वास है कि इसी पुराणके मतसे इस देशमें लिङ्गपूजा और मूर्त्तिकी पद्धति प्रचलित है। पुराण देखो।

लिङ्गप्रतिष्ठाविधि (सं० पु०) शिवादि लिङ्गस्थापन-पद्धति।

लिङ्गभट्ट—एक अमरकोषटीकाके रचयिता।

लिङ्गमाहात्म्य (सं० क्ली०) देवलिंगका महत्त्व। पुराणादिमें तीर्थप्रसंगमें उन उन स्थानोंके देवलिंगकी महिमा कीर्त्तित हुई है। स्कन्दपुराणके अवन्तिखण्डमें इसका विशेष विवरण मिलता है।

लिङ्गमूर्त्ति (सं० पु०) लिंगरूपा मूर्त्तिर्यस्य। शिव।

लिङ्गयसूरि—अमरकोषपदविवृतिके प्रणेता। ये वंगल-कामय भट्टोपाध्यायके पुत्र थे।

लिङ्गरोग (सं० पु०) लिङ्गस्य रोगः। लिङ्गका रोग, गर्मी।

लिङ्गदेशमें हाथ, नाखून वा दाँतका आघात लगनेसे, लिङ्गको अपरिष्कार रखनेसे, अतिरिक्त स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे, दूषित योनिमें उपगत होनेसे तथा अन्यान्य नाना प्रकारके उपचार द्वारा लिङ्गमें वातिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और रक्तज ये पांच प्रकारके उपदंशरोग होते हैं।
उपदंशरोग शब्द देखो।

लिङ्गलेप (सं० पु०) रोगभेद।

लिङ्गवत् (सं० त्रि०) १ चिह्नयुक्त। (भाग० ७।२।२४) (पु०) २ लिंगोपासक या शिवलिंगधारी एक शैवसम्प्रदाय। अधिक सम्भव है, कि इस लिंगवत् शब्दसे दाक्षिणात्यके लिंगायत सम्प्रदायका नामकरण हुआ हो।

लिङ्गवर्द्ध (सं० पु०) लिंग वर्द्धतीति वृध-णिच्-अच्। १ कपित्थवृक्ष, कैथका पेड़। २ लिंगवृद्धिकरण, लिंगका बढ़ाना।

कुष्ठ माष, मरीच तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, अश्वगन्धा, वृहती, सितसर्षप, यव, तिल और सैन्धव इन सब द्रव्योंको एक साथ चूर्ण कर लिंग और स्तनकी मालिश करनेसे वह बढ़ता है।

लिङ्गवर्द्धन (सं० पु०) शिश्न या लिङ्गको बढ़ना।

लिङ्गवर्द्धिन् (सं० त्रि०) १ लिङ्गको बढ़ानेवाला। (स्त्री०) २ एक लता।

लिङ्गवर्द्धिनी (सं० स्त्री०) लिङ्गं वर्द्धयतीति वृध णिच् इनि, ङीप्। अपामार्ग, चिचड़ा।

लिङ्गवस्तिरोग (सं० पु०) लिङ्गार्श नामक रोग।

लिङ्गविपर्यय (सं० पु०) व्याकरणोक्त पुंस्त्रयादि लिङ्गका परिवर्त्तन, चिह्नका वैपरीत्य।

लिङ्गवृत्ति (सं० पु०) लिङ्गमेव वृत्ति जीवनोपायो यस्य । जीविकार्थ जटादि चिह्नधारण, वह जो केवल बाहरी चिह्न या वेश बना कर अपनी जीविका करता है, ढकोसले बाज।

लिङ्गवेदी (सं० स्त्री०) वह चौकी या पीढा जिस पर देवमूर्त्ति स्थापित होती है।

लिङ्गशरीर (सं० क्ली०) सूक्ष्म शरीर, वह शरीर जिसका ध्वंस मृत्यु द्वारा न हो। प्रकृति देखो।

लिङ्गशास्त्र (सं० क्ली०) १ व्याकरणोक्त शब्दसमूहोंको लिङ्गादिनिर्णायक नियमावली। २ एक व्याकरण ग्रन्थ।

लिङ्गसङ्कूता (सं० स्त्री०) लताविशेष, लिङ्गिनी।

लिङ्गस्थ (सं० पु०) लिङ्गे ब्रह्मचर्य्ये तिष्ठति स्था-क। ब्रह्मचारी।

लिङ्गहनी (सं०स्त्री०) मूर्वा।

लिङ्गाग्र (सं० क्ली०) मेढ्राग्रभाग, लिंगका अगला भाग।

लिङ्गाङ्कित (सं० पु०) एक शैवसम्प्रदाय।

लिङ्गायत देखो।

लिङ्गानुशासन (सं० क्ली०) १ लिंगव्यवहारकी प्रणाली। २ वह नियम जो व्याकरणमें शब्दादिके लिंगनिरूपणार्थ कहा गया है।

लिङ्गायत—दक्षिण भारतका विख्यात शैव-सम्प्रदाय। लिंगमूर्त्तिकी उपासना उनका धर्म है। ये लोग सोने या चांदीके कवचमें सोने या पत्थरकी शिवलिंगमूर्त्ति बना कर बाहु या गलेमें पहनते हैं। इनमें विवाह अन्त्येष्टि आदि विषयमें भी नाना प्रकारकी विभिन्न आचारपद्धति प्रचलित है।

दाक्षिणात्यके लिंगायत-सम्प्रदाय भारतके नाना स्थानोंमें जंगम, लिंगधारी, लिंगधर, लिंगवन्त, लिंगमत आदि नामोंसे परिचित हैं। ये लोग वीराचारी शैव हैं। गले या बाहुमें लिंगधारण और उसकी उपासना आदिके सिवा ये लोग विशेष किसी धर्मपद्धतिका अनुसरण नहीं करते। इनमें जातिभेद नहीं है। ब्राह्मणोंको ये जातिश्रेष्ठ नहीं मानते। खेती-बारी और वाणिज्य करना ही इनकी एकमात्र जीविका है। ये लोग साम्प्रदायिक पद्धतिका बाहरी क्रियाकाण्ड बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं सही, पर नीतिमें इनकी उतनी उच्छृङ्खलता देखी नहीं जाती। वेद और ब्राह्मणमें इनकी कोई श्रद्धा नहीं है।

पहले कह आये हैं, कि दक्षिण-भारतमें शिवलिंगकी उपासना प्रचलित थी। वहांके वर्त्तमान लिंगोपासक सम्प्रदाय लिंगायत कहलाते हैं। कल्याणपत्तनके अधिपति विज्जल राजाके समय इस अञ्चलमें जैनधर्मका बहुत कुछ प्रादुर्भाव था। ११६० ई०के बाद वासव नामक एक ब्राह्मणकुमारने जैनधर्म निरसन कर शिवपूजाका प्रचार करनेके लिये दाक्षिणात्यमें जंगम-सम्प्रदाय प्रवर्त्तित किया। महाराष्ट्रके अन्तर्गत बेलगाम जिलेके मध्यवर्त्ती भागोयान ग्राममें एक शैवब्राह्मणवंशमें उनका जन्म हुआ था। वे अपना मत विस्तार और उसके नाना कार्यों को कर ११६८ ई०में परलोक सिधारे। वासवपुराणमें उनका चरित्र विशेषरूपसे वर्णित है। जङ्गम लोग उक्त पुराण और साम्प्रदायिक अन्यान्य ग्रन्थोंके अनुसार उन्हें शिवके अनुचर नन्दीके अवतार मानते हैं।

उक्त पुराणमें लिखा है, कि उपनयनके समय सूर्यकी उपासना करनी होती है इसलिये वासवने बचपनमें यज्ञोपवीत नहीं पहना था। उन्होंने कहा था, 'मैं शिवको छोड़ अन्य गुरुका उपदेश ग्रहण नहीं करूंगा।' पीछे उन्होंने अपना मतप्रतिपोषक एक अभिनव उपासक सम्प्रदाय प्रवर्त्तित किया।

वासवने हिन्दू-धर्ममें सूर्य, अग्नि और अन्यान्य देवदेवीकी पूजा, जातिभेद, मरणान्तर योनिभ्रमण, ब्राह्मण लोग ब्रह्मसन्तान और शुद्धात्मा, उनके स्वतन्त्र प्रभाव और अभिसम्पातकी आशङ्का, प्रायश्चित्त, तीर्थभ्रमण, स्थानविशेषका माहात्म्य, स्त्रियोंकी अप्रधानता और अपदस्थता, निकट सम्पर्कीय कन्याका पाणिग्रहण प्रतिषेध, गङ्गादि तीर्थजल सेवन, ब्राह्मणभोजन और उपवास, शौचाशौच, सुलक्षण, कुलक्षण, अन्त्येष्टिक्रियाकी आवश्यकता आदि विषय भ्रमात्मक समझ कर अग्राह्य किये तथा उसे छोड़ देनेकी अनुमति दी।

उन्होंने छोटी छोटी लिंगमूर्त्ति प्रस्तुत कर स्त्री और पुरुष शिष्योंके हाथ और गलेमें पहननेका उपदेश दिया था। उनके मतसे ओम्, गुरु, लिंग और जंगम यही चार परमेश्वरके बनाये पवित्र पदार्थ हैं। लिंगायतगण इस

लिंगके सिवाय विभूति और रुद्राक्ष ये ही शैवचिह्न धारण करते हैं।

इस सम्प्रदायमें स्त्री पुरुष दोनोंको गुरुपद छूनेका अधिकार है। दीक्षाके समय गुरु शिष्यके कानमें मन्त्र देते तथा उनके गले या हाथमें लिंगमूर्त्ति बांध देते हैं। गुरुके लिये मांस खाना तथा शराब और तम्बाकू पीना निषिद्ध है।

वासव अपने सम्प्रदायमें विधवा-विवाह प्रचलित कर गये हैं। इस विधवाविवाहकी क्रियापद्धति स्वतन्त्र है। इसमें कोई विशेष खर्च नहीं है। पात्रके ५) या १०) रुपये विधवाको देनेसे ही सम्बन्ध ठीक हो जाता है। इस समय विधवा कन्याको स्वामीके घरसे पिताके घर आ कर विवाह करना होता है। गाँवके अध्यक्षोंके लड़केकी पहली शादीमें २००) रु० खर्च होता है; किन्तु यह लड़का यदि विधवाविवाह करे, तो ५) से ले कर १००) रु० तक खर्च होता है। इस विवाहका उद्देश्य अच्छा रहने पर भी उस देशमें प्रचलित बहुत-सी कुत्सित प्रथाओंने इसे और भी घृणित कर दिया है। दक्षिणापथके दक्षिण पश्चिमाञ्चलमें विवाहके बाद स्त्री अपने स्वामीके साथ सहवास न कर इच्छानुसार दूसरे दूसरे पुरुषों पर आसक्त हो जाती है। जंगम लोग भी इस घृणित प्रथाको अनुसरण करते हैं।

वासव शवदाहकी प्रथा परित्याग कर अपने साम्प्रदायिकोंके दफनानेकी व्यवस्था कर गये हैं। इसके साथ साथ सती होनेकी भी प्रथा है। सती होनेमें जीवित स्त्री गाड़ी जाती है। तीर्थयात्रा निषेध तथा जीवित-समाधि आदि उनके चलाये बहुत से कदर्य्य नियमों और कठोर उपदेशोंके पालन करनेमें अशक्त हो कर उनके सम्प्रदायी शिष्य अब उसका पालन नहीं करते, वरं वे लोग आज कल शिवरात्रि-व्रत करते और श्रीशैल, कालहस्ती आदि प्रसिद्ध शैवतीर्थोंमें जाते हैं। दाक्षिणात्यके किसी किसी शिवमन्दिरके वे पुजारी हैं। काशीमें केदारनाथ लिंगके पण्डे जंगम हैं। पुरोहितोंकी जंगम उपाधि होनेसे ही साम्प्रदायिक लोग जंगम कहलाते हैं। बनारसमें जहां वे लोग रहते हैं, वह जंगमघर कहलाता है।

बहुतेरे भीख मांग कर अपना गुजारा चलाते हैं। कोई कोई भिक्षुक हाथ और पैरमें घण्टी बांध कर इधर उधर घूमता फिरता है। गृहस्थ लोग उस घण्टीकी आवाज़ सुन कर उसे अपने घर बुलाते और रास्ते पर ही आ कर भीख दे जाते हैं। कहीं कहीं इस सम्प्रदायका एक एक मठ है। इस मठमें बहुतेरे परिचारकस्वरूप रहते हैं। मठके मालिक बहुत-से चेले रखते और मरनेके समय उनमेंसे एकको अपना उत्तराधिकारी बना जाते हैं।

दक्षिण-भारतके कर्णाटकप्रदेशमें यह धर्मसम्प्रदाय प्रादुर्भूत हो कर क्रमशः महाराष्ट्र, गुजरात, तामिल और तेलगु देशोंमें फैल गया है। किन्तु आर्यावर्त्तमें इस सम्प्रदायकी वैसी प्रधानता नहीं है। लेकिन काशी आदि प्रसिद्ध शैवतीर्थोंमें कहीं कहीं इस साम्प्रदायिक साधुओंका समागम देखा जाता है। इस सम्प्रदायकी दूसरी कोई एक शाखा वैद्यनाथ आ कर बस गई है। वे जटाजूट बांध कर साँढ़को साथमें ले घूमते फिरते हैं। इस देशके अधिवासी इस बैलको वैद्यनाथका साँढ़ कहते हैं।

तेलगु कनाड़ी आदि भाषामें इस साम्प्रदायिक मतके बहुतसे ग्रन्थ विद्यमान हैं। मेकेंजी साहबकी संगृहीत पुस्तक-तालिकामें वासवेश्वरपुराण, प्रभुलिङ्ग लीला, स्मरणलीलामृत, विरक्तास काव्य आदि ग्रन्थका परिचय मिलता है। उत्तर-पश्चिम भारतमें नीलकण्ठ रचित वेदान्तसूत्रभाष्य ही इस सम्प्रदायका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

मतप्रवर्त्तक वासवके उपदेशानुसार जातिभेद, पुं स्त्री-भेद; ब्राह्मण क्षत्रियभेद तथा वेदादि शास्त्रवाक्यको प्रामाण्य नहीं समझने पर भी उनमें सचमुच जातिगत, सम्प्रदायगत और समाजगत या वाणिज्यगत नाना पार्थक्य देखा जाता है।

धर्मप्रवर्त्तक वासवके आदिष्ट उपदेशका पालन करते हुए इन्होंने जातिगत और समाजगत अथवा सम्प्रदायगत सब भेद-ज्ञान ही विसर्ज्जन कर दिया है। आर्य्य ऋषियोंके आदिमधर्मग्रन्थ ऋग्वेदादि संहितामें इनका जैसा विश्वास नहीं है, ब्राह्मणोंके प्रति भी इनकी वैसी

भक्ति या श्रद्धा नहीं है। लिङ्गायत ब्राह्मण पुत्र आराध्य नामसे समाजमें परिचित हैं सही ; लेकिन शूद्र श्रेणीके लिंगायत संतान उनका वैसा सम्मान नहीं करते। आराध्य लिंगायत ही प्रधानतः संस्कृत शास्त्रकी चर्चा किया करते हैं। इसके अलावा सामान्य भक्त और विशेष भक्त नामक इनमें दो स्वतन्त्र विभाग देखे जाते हैं।

सामान्य भक्तोंके साथ सामान्य लिंगायतोंका यथेष्ट प्रभेद है। सामान्य लिंगायत सम्प्रदायमें सामाजिक मर्यादा और जातिभेद सम्पूर्णरूपसे विद्यमान है। विशेष भक्तगण सर्वतोभावसे ईसा पिओरिटानोंके समान हैं। वे लोग जातिभेद नहीं मानते। वे तावीजमें भर कर गलेमें जो लिंग पहनते हैं, वह अयिगलु कहलाता है। शिवकी मूर्त्तिको जंगमलिंग और मन्दिरमें स्थापित मूर्त्तिको स्थावरलिंग कहते हैं। उनकी धर्मपद्धतिमें जाति पांतिका विचार न रहने पर भी अपरापर हिन्दू-सम्प्रदायकी अपेक्षा उनमें जातीयताका कट्टरपन अधिक देखा जाता है। इस कारण वे स्वतन्त्रभावसे व्यवसाय वाणिज्यमें लिप्त रह कर अपना अपना धर्म कर्म पालन करते हैं। कभी भी विभिन्न साम्प्रदायिकके लोगोंके साथ बैठ कर नहीं खाते। मन्द्राजके देशी सेनाविभागमें लिंगायत सम्प्रदायी बहुत थोड़े हैं। वे निरामिषाशी हैं—कभी भी दूसरेके हाथ हन्तव्य पशु नहीं बेचते। यहां तक, कि अपने मालिकके आज्ञा देने पर भी उसे बाजारसे खरीद नहीं लाते।

वे लोग मन्त्रदाता गुरुकी पूरी भक्ति और मान्य करते हैं। ओम्, गुरु, लिंग और जंगमके अलावा उनके धर्म-कर्मके आचरणीय और कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण-धर्मको आचरित पुरोहिताईमें उनका विश्वास नहीं है। ब्राह्मण लोग कहीं गांवमें न बस जांय, इस डरसे वे गाँवमें भी कूआँ आदि नहीं खोदते। घाटप्रभा नदीके पास कालदगी नगरके निकटवर्त्ती एक गाँवमें इनका निदर्शन मिलता है। वहांके लोग गाँवमें कूआँ या तालाव न खोद कर घाटप्रभाका जल अपने काममें लाते हैं। साम्प्रदायिक स्वातन्त्र्यनिवन्धन प्रतिमूर्त्ति-उपासक पौत्तलिक ब्राह्मण याजकोंका स्पृष्ट जल ग्रहणीय नहीं है, यह सोच कर उन्होंने इस विद्वेषकी कल्पना की है।

दाक्षिणात्यके समूचे महाराष्ट्र-राज्यमें विशेषतः कर्णाटक विभागमें इस सम्प्रदायका अधिक वास है। वे लिंगोपासनाके अतिरिक्त दूसरे किसी देवताकी पूजा नहीं करते, किन्तु हिन्दूके अपरापर देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित मन्दिर, मुसलमानकी मसजिद अथवा ईसाई गिर्जाके सामने हो कर जाते समय वे शिवके उद्देशसे उन्हें प्रणाम करते हैं। उनका विश्वास है, कि सभी धर्मगृहमें स्वयं महादेव लिंगरूपमें विराजित हैं।

बायें हाथ अथवा गलेमें लिङ्गमूर्त्तिका तावीज बांधना तथा कपालमें भस्म लगाना साम्प्रदायिक पुरुष और स्त्रियोंका प्रधान कर्म है। वे साधारणतः अतिथेयी और मितव्ययी, धीरप्रकृति, कर्मठ और सुसभ्य होते हैं। सभी वाणिज्य कर कालातिपात करते हैं। उनमें जातिगत श्रेणीविभाग नहीं है, सिर्फ गदकर, हिङ्गमीरे, जीरे, ओरेशल, काले, मितकर, परमाले, फुराने, वैकर और बीरकर नामक कई उपाधियाँ हैं। भिन्न भिन्न उपाधिगत व्यक्तिके बीच आदान-प्रदान होता है। पुरुष और स्त्रियोंके नाम विशेष कर हर पार्वती रखे जाते है। सभी घरमें कनाड़ी और बाहरमें मराठी भाषा बोलते हैं। वेशभूषा मराठिओं जैसा है—सभी निरामिषाशी०। उनके पुरोहित जङ्गम कहलाते हैं। इन पुरोहितोंकी वे बड़ी भक्ति करते हैं।

पुत्रवधू गर्भिणी होने पर पीहर भेज दी जाती है तथा वहीं वह बच्चा जनती है। बालकके जन्म होनेके बाद धात्री नाभि काट देती और पीछे पुत्रके जन्म होनेकी खबर पिताके घर पहुंचाती है। खबर पाते ही जात-बालकके पिता अपने आत्मीय, बन्धु-बान्धव और प्रतिवेशियोंके घर पान और चीनी भेज देते हैं। पहले, तीसरे या पांचवें दिन माताके गलेमें तथा जातबालकके शिरके नीचे एक लिंग रखा जाता है। पाँचवें दिन सन्ध्या समय सूतिकागृहके एक कोनेमें एक चतुष्कोण-घर अंकित कर उसमें चावल, मैदा और बालू स्थापन करते और पीछे उस पर कागजका एक टुकड़ा और एक कलम तथा नीचे छुरी जिससे नाभि काटी गई थी, रख देते हैं। उसीको षष्ठीदेवी जान कर प्रसूति प्रणाम करती है।

छठीं रातमें वे चांदीकी पार्वतीमूर्त्ति सूतिकागृहमें काठकी चौकी पर रखते हैं। पीछे धात्री उसके सामने फूल छींट देती तथा कपूर और धूना जलाती है। प्रसूति-के उस देवीमूर्त्तिकी पूजा और प्रणाम करने पर सूतिका-गारके सामने जंगम लिवाये जाते और उस चौकी पर बिठाये जाते हैं। घरकी धाई तब एक थालमें पुरोहितके दोनों पैरको पखारती है। वह पादोदक पीछे घरके सभी कमरेमें छींट दिया जाता और सभी पीते हैं। भोजनके बाद दक्षिणा ले कर जंगम विदा होते हैं। कन्या होने पर दशवें दिन तथा पुत्र होने पर तेरहवें दिन जात-बालकका नामकरण होता है। नामकरणके दिन पांच सधवा स्त्री आ कर बालकके नामकरणके बाद एकत्रित कुटुम्ब-रमणियोंके साथ बैठ कर खाती हैं।

अशौचान्तके दिन प्रसूति स्नान कर पासके किसी महादेवमन्दिरमें पुत्रके साथ जाती है। उसके बाद वह घरका काम काज कर सकती है। छः महीनेमें अन्न-प्राशन देनेकी विधि है। एक वर्षमें चोटी रख कर जातबालकका सिर मुड़ना दिया जाता है। बालिका होने पर उसका मामा आ कर सामनेके बाल छांट देते हैं। यही शायद उनका चूड़ाकरण है।

जब बालक पांच वर्षका होता है, तब वह पाठशाला भेजा जाता है तथा बारह वर्षमें उसे शैवमन्त्रकी दीक्षा दे कर स्तोत्रादि पढ़ाया जाता है। बालिका सोलह वर्षकी न होनेसे कभी भी शिव मन्त्रका अभ्यास करने-की अधिकारिणी नहीं होती। बालिकाका ८से ले कर १२ वर्ष तकमें तथा युवकोंका १२ से ले कर २५ वर्ष तकमें विवाह होता है। बालकके पिता ही पहले कन्याकर्त्ताके यहां विवाहका प्रस्ताव भेजते हैं। वरकर्त्ता, जंगम और नजदीकी सम्बन्धी कन्याके घर जा कर विवाह ठीक कर आते हैं। बातचीत पक्की होने पर वे कन्याको नया वस्त्र और अंगरखा पहना कर उसके मुंह-में चीनी देते हैं। पीछे कन्याकर्त्ता अतिथियोंके हाथ पान दे कर विदा करते हैं।

जंगम या स्थानीय आचार्य ब्राह्मणोंके साथ परा-मर्श कर विवाहका शुभ दिन स्थिर करते हैं। विवाहके दिन विवाहके लिये एक वेदी या मंडप तैयार होता है। वर घोड़े पर चढ़ कर बाजे-गाजेके साथ कन्याके घर जाता है। तब कन्यापक्षीय वरको ले जाते तथा दोनों-को उबटन लगा कर परस्परके कपड़ेके अंचलमें गांठ बांध देते हैं। तदनन्तर नवदम्पतीको ले कर निकटस्थ महादेवमन्दिरमें प्रणाम करा लाते हैं। उसके बाद निर्दिष्ट चतुष्कोण शिलाके बीच रखी हुई काठकी चौकी पर उन्हें बिठाया जाता है। उसके चारों कोनेमें चार और सामनेमें एक पीतलकी जलपूर्ण कलसी रहती है। बादमें वर और कन्याके सामनेके वृषभवाहन शिवमूर्त्ति पूजा करने पर जंगम विवाहका मन्त्र पढ़ाते हैं। इस समय आत्मीय स्वजन दोनोंके मस्तक पर चावल छींटते हैं। विवाह हो जाने पर वर और कन्या सम्मुखके शिव और नन्दीको प्रणाम करती हैं। तभीसे वे स्वामी और स्त्रीरूपमें गिने जाते हैं। इसके बाद कन्याकर्त्ता वर और कन्याको उपरोक्त वेदी पर बिठा कर अपने जामाताके हाथ एक तांबेका घड़ा या कलसी और पीतलकी थाली उपढौकन देते हैं। पीछे ज्ञाति कुटुम्ब और बरातका भोज होता है। विवाह-के दूसरे दिन वरकर्त्ता पतोहूको साथ ले अपने घर लौटते हैं।

किसी लिंगायतका मृत्युसमय उपस्थित होने पर आत्मीय स्वजन उसकी आत्माकी शुभकामनासे भिक्षा देते हैं। मरने पर पड़ोसी शवदेहको एक काठकी चौकी पर सुलाता और उसके चारों कोनेमें चार केलेका पेड़ बांध देता है। पीछे रंगीन कपड़ेसे ढक कर उस चौकीको बाहर लाता है। यहां ठंढे पानीसे स्नान करा कर मृत व्यक्तिको नया वस्त्र पहनाता और उसके कपाल, छाती और बाहुमें भस्म लगा कर गलेमें फूलकी माला पहना देता है। पीछे एक दीया जला कर उसके मुंह और शरीर-की आरती उतारता है और तब चार आदमी चौकीको कंधे पर उठा कर समाधिक्षेत्र ले जाते हैं। शवके सामने एक जङ्गम मुहुर्मुहुः शङ्ख बजाते और घंटाध्वनि करते तथा अपरापर स्त्रीपुरुष उसके पीछे 'हर हर महादेव' कहते हुए चलते हैं। समाधिक्षेत्र पहुंच कर जहां शव दफनाया जाता है वहां पानीका छींटा दे कर चार हाथ गहराई एक गड्ढा बनाते हैं। तदनन्तर शवको उसके भीतर

रख कर उसके गलेसे लिंग खोल कर हथेली पर रखते तथा उस लिंग पर बेलपत्र दे कर मृत व्यक्तिके नजदीकी सम्बन्धी यथासाध्य शवदेह नमकसे ढक देते हैं। पीछे उपस्थित व्यक्ति पुनः उस गड्ढेको मिट्टीसे भर देते हैं। मिट्टी भरनेके बाद एक पत्थरका टुकड़ा कब्र पर रख दिया जाता है। जङ्गम उस पत्थर पर खड़े हो कर प्रेतकी मंगलकामनाके लिये मन्त्र पढ़ते हैं। मन्त्र खतम होने पर जङ्गम उस पत्थर-निर्दिष्ट स्थान पर बेलपत्र दे कर पूजा करते हैं। अन्तमें सभी मृतकके घर लौट आते और जहां उसकी मृत्यु हुई थी वहांके जलते हुए दीयेका दर्शन कर सबके सब अपने अपने घर चले जाते हैं। सबोंके चले जानेके बाद दीया बुझा दिया जाता है।

इसके अलावा इनके शोक करनेका और कोई कारण नहीं देखा जाता। अच्छी अवस्था होनेसे ये मृतके मकबरे पर लिङ्ग और नन्दी समेत एक समाधिस्तम्भ निर्माण करते हैं। तीसरे दिन ये आत्मीय स्वजनको एक भोज देते हैं। वार्षिक श्राद्धके दिन भी इसी प्रकारका एक भोज होता है। इसके अतिरिक्त ये प्रेतात्माके उद्देशसे और कोई कर्म नहीं करते। सामाजिक किसी तरहका गोलमाल होने पर पंचायत उसका निवटेरा किये देती है।

लिङ्गार्च्चन (सं० क्ली०) लिंगकी पूजा।

लिङ्गार्च्चनतन्त्र (सं० क्ली०) एक तन्त्र। इसमें शिवलिङ्गकी उपासनापद्धति लिखी है।

लिङ्गालिका (सं० स्त्री०) क्षुद्र मूषिक, छोटी चूहिया।

लिङ्गिन् (सं० पु०) लिङ्गमस्त्यस्येति इनि। १ हस्ती, हाथी। (त्रि०) २ धर्मध्वजी, बाहरी रूपरंग या वेश बना कर काम निकालनेवाला। ३ चिह्नवाला, निशानवाला।

लिङ्गिनी (सं० स्त्री०) लिङ्ग इनि, ङीप्। १ लताविशेष, पँचगुरिया। पर्याय—बहुपत्री, ईश्वरी, शिववल्लिका, स्वयम्भू, लिङ्गसम्भूता, लेङ्गी, चित्रफला, चाण्डाली, लिङ्गजा, देवी, चण्डा, आपस्तम्भिनी, शिवजा, शिववल्ली। वैद्यकमें इसका गुण कटु, उष्ण, दुर्गन्ध, रसायन, सर्वसिद्धिकर और रसनियामक माना गया है। (राजनि०)

२ धर्मध्वजी या आडम्बर करनेवाली स्त्री।

लिङ्गिवेश (सं० पु०) अजिन, दण्ड और पीनेका बरतन आदि संन्यासाश्रमाचारीका चिह्न।

लिचेन (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। यह पानीमें होती है।

लिच्छविराजवंश—भारतका एक प्राचीन राजवंश। नेपालसे आविष्कृत लिच्छविराज जयदेवको शिलालिपिमें लिखा है—

"श्रीमत्पुङ्गरथस्ततो दशरथः पुत्रैश्च पौत्रैः समं।
राज्ञोऽष्टावपरान् विहाय परतः श्रीमानभूल्लिच्छविः॥"

उद्धृत प्रमाणसे जाना जाता है, कि सुप्रसिद्ध सूर्यवंशीय दशरथसे नीचे आठवीं पीढ़ीमें लिच्छविने जन्मग्रहण किया। उन्हींसे लिच्छविवंश उत्पन्न हुआ है।

यह लिच्छवि शब्द प्राचीन संस्कृतमें निच्छवि, निच्छिवि तथा पालिभाषामें लिच्छवि नामसे व्यवहृत हुआ। मनुसंहिताके मतसे—

"झल्लो मल्लश्च राजन्यात् व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खशो द्रविड़ एव च॥" (१०।२२)

अर्थात् व्रात्य क्षत्रिय और सवर्णा भार्यासे झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण और द्रविड़ जातिकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु पालिग्रन्थमें यह उत्पत्ति कुछ और प्रकारसे बताई है। पालिग्रन्थके मतसे काशीराजके पूजावली नामक एक महिषी थी। उसने एक मांस-पिण्ड प्रसव किया। उस मांसपिण्डका कोई प्रयोजन न समझ कर धात्रीने उसे गंगाजलमें फेंक दिया। गंगाके प्रवल स्रोतमें वहते वहते वह पिण्ड दो भागोंमें बंट गया। एक भागमें बालक और दूसरेमें बालिका दिखाई दी। कोई ऋषि उन दोनोंको जलसे निकाल कर लालन-पालन करने लगे। दोनों शिशु देखनेमें एक से लगते थे, जरा भी प्रभेद न था। इस कारण उनका निच्छवि नाम रखा गया

इस देशमें लोग न-को जगह ल-का उच्चारण करते हैं, जैसे 'नवीन' की जगह 'लवीन' 'नौका' की जगह 'लौका' इसी प्रकार निच्छविको जगह पालि लिच्छवि हुआ है।

अति पूर्वकालमें कोशल और मिथिलामें लिच्छवि क्षत्रियगण अत्यन्त प्रवल हो उठे थे। इसी वंशमें जैनोंके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर और बुद्ध शाक्यसिंह आविर्भूत हुए। मिथला अञ्चलमें लिच्छविगण एक समय इतने प्रवल हो गये थे, कि मिथिला राज्य भी लिच्छवि कहलाने लगा था। लिच्छविवंश वैदिक-कर्मद्वेषी थे।

महावीर तीर्थङ्कर बुद्धदेवका आविर्भाव होने तथा उनके साम्यवादसे जनसाधारणके ब्रह्मण्य-धर्मके प्रति आस्थाशून्य हो जानेसे वैदिक और स्मार्त्त ब्राह्मण सभी लिच्छवि जातिके ऊपर विद्वेषभाव दिखलाते थे। उसी कारण उन लोगोंने परवर्त्तीकालमें लिच्छवि-शासित मिथिला अंशका 'वर्जितराज्य' नाम रखा था। लिच्छवि-भक्त पालिग्रन्थकारगण मानो उसके उत्तर वर्जितराज्यकी भिन्नरूप नामोत्पत्ति स्वीकार कर गये हैं। पालिग्रन्थके मतसे जिस ऋषिने पूजावलीको पुत्रकन्याको ला कर लिच्छवि नाम रखा था, कुछ दिन बाद उनका प्रतिपालन करना कष्टजनक समझ कर उन्होंने दोनों बच्चोंको एक गृहस्थके हाथ सौंप दिया। वह गृहस्थ बड़े यत्नसे उनका लालन-पालन करने लगा। बड़े होने पर दोनों शिशु दूसरे दूसरे बालक और बालिकाके साथ खेला करते थे। लिच्छवि पितृमातृहीन था, इस कारण उनके साथी उन्हें 'वज्जितब्ब' अर्थात् वर्जित कह कर पुकारते थे। आगे चल कर उस 'वज्जितब्ब'-के वंशधरोंने ३०० योजन विस्तृत एक पराक्रमशाली राज्य बसाया। वही राज्य 'वज्जि' (अर्थात् वर्जित) कहलाने लगा था। वही मिथिला-राज्यका अधिकांश है।

लिच्छवियोंकी एक शाखा वैशालीमें, एक नेपाल प्रान्त मिथिलामें और एक पुष्पपुर वा पाटलिपुत्र अञ्चलमें फैल गई थी। वैशालीकी शाखामें महावीर स्वामी और नेपाल प्रान्तकी शाक्य-शाखामें बुद्धदेव आविर्भूत हुए थे मनुसंहितामें यह जाति व्रात्य अर्थात् संस्कारहीन क्षत्रिय कह कर चिह्नित होने पर सभी प्राचीन जैन और बौद्ध-ग्रन्थोंसे उनके उपनयन संस्कारका परिचय पाया जाता है। आज भी सैकड़ों प्राचीन बुद्धमूर्त्तिमें यज्ञोपवीत चिह्नित है। परवर्त्तिकालमें भी नेपालके प्रबल पराक्रान्त लिच्छवि राजगण विशुद्ध क्षत्रिय कह कर ही परिचित हुए हैं। इससे अनुमान किया जाता है, कि मनुसंहिता-रचनाकालमें लिच्छविगण व्रात्य क्षत्रिय कह कर निर्दिष्ट होने पर भी तत्परवर्त्तीकालमें संस्कारादि द्वारा विशुद्ध क्षत्रिय हो गये थे। यदि ऐसा नहीं होता, तो अश्वमेध-यज्ञकारी परम ब्राह्मणभक्त गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त अपनेको लिच्छिवि राजकन्याके गर्भजात कह कर गौरवान्वित न समझते।

लिच्छिविगण साधारणतन्त्रप्रिय थे। किसी किसी बौद्धग्रन्थमें 'वज्जि' राज्यको १७०७ छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त तथा अधिपतियोंको स्वाधीन बताया है। बाहरके शत्रुके आने पर वे सभी मिल कर ऐसा सिंहनाद करते थे, कि उससे समस्त उत्तर-भारत स्तम्भित हो जाता था। इस कारण मगधके परम पराक्रमी सम्राटोंको भी उनके साथ विवाद करनेका साहस नहीं होता था। सम्मिलित लिच्छविराज्यके शासनविधि-स्थापनके लिये वैशाली नगरमें एक महासभा थी। वह महासभा जो फैसला कर देती थी, उसीके अनुसार हजारों छोटे छोटे लिच्छवि-राज्य सुशासित होते थे।

लिच्छवि-समाजके इतिहासकी आलोचना करनेसे मालूम होगा, कि उनमेंसे कोई जैन, कोई बौद्ध और कोई पूर्वपुरुषाचरित ब्रह्मवादी थे।

मगधपति बिम्बिसारने वैशालीके लिच्छविराजकुलमें विवाह किया था। बुद्धदेवने मगधपतिको 'सेचनक' नामक एक बड़ा हाथी और अष्टादशरत्नखचित एक लड़ हार दिया। बिम्बिसारने वह हाथी और हार अपने प्रियतम छोटे लड़के वेहल्लको दे दिया था। इस पर उनके बड़े लड़के अजातशत्रु पिता और छोटे भाईके प्रति बड़े असन्तुष्ट हुए थे। उसीके फलसे बुद्ध निर्वाणके ८ वर्ष पहले पिताका काम तमाम कर अजातशत्रुने मगधका सिंहासन कलङ्कित किया। आत्मरक्षा करनेके लिये वेहल्लने वैशालीमें जा कर मातामहके कुलमें आश्रय लिया। अब जातीय एकतासूत्रमें सम्मिलित मातामह-कुल पर किस प्रकार शासन करेंगे, अजातशत्रु इसी ऊहापोहमें पड़ गये। बौद्धोंके महापरिनिर्वाणसूत्रमें लिखा है, कि निर्वाणके कुछ समय पहले बुद्धदेव जब राजगृहके निकटवर्त्ती गृध्रकूट पर्वत पर रहते थे, उस समय मगधराज अजातशत्रुने अपने प्रधान मन्त्री विश्वाकरको बुला कर कहा था, 'मन्त्रिन्! आप भगवान्‌के पास जाइये और उनसे कह दीजिये, कि मगधराज प्रबल पराक्रमशाली लिच्छवियोंको समूल उत्पाटन करेंगे। भगवान् इस पर क्या कहते हैं, उसे अच्छी तरह सुन लेना और हमसे आ कर कहना। मेरी बात अन्यथा होनेको नहीं।'

मन्त्रिवर बुद्धके समीप गये और उन्हें प्रणाम कर

कुल बातें कह सुनाईं। उत्तर देनेसे पहले भगवान्ने आनन्दसे कहा, "तुम जानते हो, कि वज्जि (लिच्छविगण) साधारण सभामें सर्वदा इकट्ठे हो कर एकताके साथ सभी विषयकी मीमांसा करते हैं। वे वयोवृद्धके प्रति उपयुक्त सम्मान दिखलाते हैं। वे प्राचीन प्रथाओंको नष्ट करनेमें विमुख तथा प्राचीन प्रथाको सम्मानके साथ ग्रहण करते हैं। स्त्रियोंके प्रति वे कभी भी अत्याचार नहीं करते। वे लोग चैत्यका सम्मान और पूजन करते हैं। विशेषतः अर्हतोंके प्रति वे विशेष भक्ति श्रद्धा दिखलाते हैं।" आनन्दने उत्तरमें कहा, 'भगवान्! यह सब अच्छी तरह जानता हूं।' बुद्धदेव फिरसे बोले, "इस कारण कोई भी उनका विनाश नहीं कर सकता।" पीछे उन्होंने राजमन्त्रीको देख कर कहा, "हे ब्राह्मण! वैशालीनगरी-स्थित सारन्दर चैत्यमें रहते समय मैंने लिच्छवियोंको जो सात उपदेश दिये थे, जब तक वे उन सब उपदेशोंका पालन करेंगे, तब तक कोई भी लिच्छवियोंकी ध्वंस न कर सकेगा, तब तक उनकी उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि भी होगी।" राजमन्त्रीने लौट कर मगधपतिको बुद्धदेवने जो कुछ कहा था, कह सुनाया। मगधपति कुछ समय चुप हो बैठे। उक्त घटनाके कुछ दिन बाद बुद्धदेवने वैशालीकी यात्रा की। उन्होंने गङ्गातीरस्थ पाटली* ग्राममें आ कर देखा, कि लिच्छवियोंको उत्पीड़न करनेके अभिप्रायसे विश्वाकार और सिन्धु नामक मगधराजके प्रधान मन्त्री एक दुर्ग बना रहे हैं। बुद्धदेव वैशालीमें आ कर आम्रपालीके उद्यानमें कुछ समय ठहरे। लिच्छविगण वहां उनके दर्शन कर कृतार्थ हुए। उन लोगोंके सामने ही बुद्धदेवने कहा था, कि वे तीन मासके बाद कुसीनगरमें महानिर्वाण करेंगे। पीछे बुद्ध वैशालीका परित्याग कर कुशीनगरकी ओर बढ़े। लिच्छवि क्षत्रियगण अपने प्राणसे भी प्रियतम बुद्धको सदाके लिये किस प्रकार विदा कर सकते!

वे सबके सब फूट फूट कर रोने लगे और बुद्धदेवके साथ हो लिये। बुद्धदेवने उन्हें लौट जाने कहा, किन्तु उनके इस निदारुण आदेशका किसीने भी पालन न किया। 'यह देश क्षणस्थायी है, सभीको मरना ही पड़ेगा' इस प्रकार समझा कर बुद्धने उन्हें लौट जानेके लिये फिरसे कहा। किन्तु भक्त लिच्छवियोंने उनका साथ छोड़ा नहीं। सामने एक गहरी नदी मिली। नदीको पार करनेमें असमर्थ देख लिच्छविगण आर्त्तनाद करने लगे। बुद्धदेवने मधुर वाक्यसे उन्हें सान्त्वना कर अपने जीवनका एकमात्र सम्बल भिक्षापात्र दे दिया। वह भिक्षापात्र ले कर लिच्छविगण वैशाली लौट आये तथा एक बड़ा मन्दिर बना कर उसीमें वह पवित्र भिक्षापात्र रखा।

बुद्धदेवके परिनिर्वाणके बाद उनका देहावशेष ले कर तुमुलयुद्ध होने पर था। इसी समय कुशीनगर पावाके मल्लक्षत्रिय-राजोंके अधिकारभुक्त हुआ। उन्होंने घोषणा कर दी, कि भगवान्ने जब हम लोगोंके अधिकारमें शरीर विसर्जन किया है, तब हम ही लोग देहावशेष पानेके एकमात्र अधिकारी हैं। इधर वैशालीके लिच्छविराजगण, मगधपति अजातशत्रु, अलकापुरके वालेय क्षत्रियगण तथा उग्रद्वीपके ब्राह्मणगण देहावशेष पानेके लिये मल्लराजोंके विरुद्ध खड़े हुए। आखिर द्रोण नामक एक बौद्ध ब्राह्मणके कहनेसे भगवानका देहावशेष ८ भागोंमें विभक्त हुआ। लिच्छविगणको उसका एक भाग मिला। उन लोगोंने उस अपार्थिव पदार्थको बड़ी धूमधामसे वैशाली ला कर उसके ऊपर एक बड़ा स्तूप खड़ा कर दिया।

अत्थकथा नामक पालि बौद्धग्रन्थमें लिखा है, कि जब तक भगवान् धराधाममें थे, तब तक अजातशत्रु लिच्छवियोंका बाल बांका भी न कर सके। मगधराजमन्त्री विश्वाकर बुद्धसे लिच्छवियोंका साधारणतन्त्र जान कर उन लोगोंमें फूट पैदा करनेका मौका ढूंढ़ रहे थे, परिनिर्वाणके ३ वर्ष बाद बहुत चेष्टा करनेसे वे कृतकार्य्य हुए। उनके कूटनीतिगुणसे लिच्छवियोंके मध्य आत्मकलह उपस्थित हुआ। अजातशत्रुने लिच्छविराज्यमें जा कर वैशाली नगरको ध्वंस कर डाला। वे तीन सौ लिच्छवियोंको सपरिवार कैद कर राजगृह लौटे थे।

अजातशत्रुके निर्यातनसे लिच्छवियोंने जन्मभूमिका परित्याग कर किसीने नेपालमें, किसीने तिब्बतमें, किसीने लदाकमें आश्रय लिया। पीछे उन सब स्थानोंमें एक एक लिच्छवि-राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

* इसी पाटली दुर्गसे पीछे विश्व-विख्यात पाटलीपुत्र नगरकी सृष्टि हुई है।

बौद्धग्रन्थके मतसे मगधपति नागाशोकके औरससे लिच्छवि-कन्याके गर्भसे सुसुनाग (पुराणोक्त शिशुनाग) राजाका जन्म हुआ। वे मातामहकुलके कुछ पक्षपाती थे, उन्हींके यत्नसे विख्यात वैशाली नगरी पुनर्निर्मित हुई थी। उनके लड़के कालाशोकके समयमें ही वैशाली नगरमें द्वितीय बौद्ध-महासमिति स्थापित हुई। जो हो, मगध-सम्राटोंके प्रतापसे लिच्छविगण फिर कभी भी एकतासूत्रमें सम्मिलित न हो सके। उनमेंसे जो कुछ प्रधान हो जाते थे, मगधपति उन्हें वैवाहिकसूत्रमें आबद्ध कर अपनेमें मिला लेते थे। और तो क्या, इस राजनीतिकी मगधपतिगण पुरुषपरम्पराक्रमसे रक्षा करते आये हैं। मगधराजके साथ सम्बन्धसूत्रसे लिच्छविराजगण पाटलीपुत्रकी सभामें विशेष सम्मानित थे। इसी कारण मालूम होता है, कि पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्तने जो लिच्छविराजकन्याके गर्भसे जन्म लिया था इसी कारण वे अपनेको गौरवान्वित समझ कर ही अपनी मुद्रामें "लिच्छवयः" इत्यादि स्मृति छोड़ गये हैं।

नेपालमें लिच्छविराजवंश।

पहले लिखा जा चुका है, कि अजातशत्रुके तंग करनेसे कुछ लिच्छवियोंने नेपालमें आश्रय लिया था। नेपालमें भी वे अपना आधिपत्य फैलानेमें समर्थ हुए थे। यहांसे लिच्छवि-राजोंकी अनेक शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं। उनमेंसे सुप्रसिद्ध पशुपतिनाथके दरवाजे पर उत्कीर्ण २य जयदेव वा परचक्रकामकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि सुप्रसिद्ध रघुवंशमें यहांके लिच्छवि-राजोंका जन्म हुआ। लिच्छविके वंशमें सुपुष्प नामक एक राजा पुष्पपुर (पीछे पाटलिपुत्र) में रहते थे। वे ही नेपाल आये थे। महापरि-निर्वाणसूत्रमें भी लिखा है, कि भगवान् बुद्धदेव जब पाटलिपुत्रके निकट हो कर जा रहे थे, उस समय मगधराज मन्त्री विश्वाकर लिच्छवियोंको उत्पीड़न करनेके लिये यहां एक दुर्ग बनवा रहा था। इस दुर्ग निर्माणके बाद लिच्छविपति सुपुष्प विताड़ित हुए थे इसमें सन्देह नहीं।

उक्त जयदेवकी शिलालिपिमें लिखा है, कि सुपुष्पके बाद २३ राजोंने क्रमशः राज्य किया। पीछे सुप्रसिद्ध जयदेव नामक एक राजा आविर्भूत हुए। ये ही नेपालके लिच्छवि-इतिहासमें प्रथम जयदेव नामसे प्रसिद्ध हैं।

जयदेवके बाद ग्यारह राजोंने राजसिंहासनको अलंकृत किया। पीछे वृष नामक एक पराक्रान्त राजा अभिषिक्त हुए थे। वे बौद्धधर्मानुरागी थे। उनके वंशधर मानदेवकी शिलालिपिमें वे अद्वितीय वीर और सत्यप्रतिज्ञ कह कर कीर्त्तित हुए हैं। उनके पुत्र शङ्करदेव संग्राममें अजेय, अति तेजस्वी, अनुगतप्रिय और सिंहके समान वीर्यवान् थे। शङ्करके पुत्र राजा धर्मदेव परम धार्मिक, अति नम्र प्रकृतिके और पूर्वपुरुषाचरित धर्मानुरागी थे।

धर्मदेवके औरससे महिषी राज्यवतीके गर्भसे निष्कलङ्क शारदीय चन्द्रमाके सदृश सुन्दर राजा मानदेवने जन्मग्रहण किया। नेपालके चंगूनारायणके मन्दिर-द्वार पर इन मानदेवका ३८६ संवत्में उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। प्रत्नतत्त्वविद् फ्लिट साहबने इस अङ्कको गुप्त संवत्ज्ञापक स्थिर किया है*। किंतु मानदेवकी लेखमालाकी आलोचना करनेसे उसे किसी तरह इतना आधुनिक नहीं मान सकते। उन्होंने अपने ग्रंथमें समुद्रगुप्त आदि प्रथम गुप्तसम्राटोंकी जिन सब लिपियोंको ४थी वा ५वीं सदीकी लिपि बताया है, उन सब आदिगुप्त लिपियोंके वर्णविन्यासके साथ उक्त मानदेवको लिपिका कोई विशेष पार्थक्य नहीं है। दोनों लिपिको एक समयकी कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। उत्तर भारतमें गुप्त-सम्राटोंके पहले जो सब 'संवत्' नामक लिपि प्रचलित थीं, उसे पुराविदोंने 'शक-संवत्' ज्ञापक स्वीकार किया। इस हिसाबसे हमने भी मानदेवकी उक्त लिपिको ३८६ शकसंवत् ज्ञापक अर्थात् ४६४ ई०की लिपि ग्रहण किया। लिपिके वर्णविन्यास द्वारा ही मानदेवको ५वीं सदीका आदमी कह सकते हैं।

नेपालको पार्वतीय वंशावलीमें लिखा है, कि भारतसे विक्रमादित्य नेपाल जीतनेके लिये गये थे। समुद्रगुप्तके पिता १म चन्द्रगुप्त भी विक्रमादित्य

* Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 1. p. 182

उपाधिसे भूषित थे। स्वयं समुद्रगुप्त प्रयागके सुप्रसिद्ध स्तम्भलिपिमें "लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्या- मुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य" इत्यादि उपाधिसे सुपरिचित हैं। अधिक सम्भव है, कि चन्द्र- गुप्तने भारत-साम्राज्य अधिकार करनेके बाद शैवधर्मका प्रचार, ब्राह्मण्य प्रधानताकी स्थापना और दिग्विजयके उपलक्षमें नेपालकी यात्रा की। उस समय नेपालमें बुद्धभुक्त वृषदेव अधिष्ठित थे। लिच्छविपति १म गुप्तसम्राट्से युद्धमें परास्त और अपनी कन्या वा आत्मीया कुमारदेवीको प्रदान कर आनुगत्य करनेको वाध्य हुए थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके प्रभावसे नेपाल राजकुमारने शैवधर्म स्वीकारके साथ शङ्करदेव नाम ग्रहण किया था। नेपालकी पार्वतीय वंशावलिमें भी लिखा है, कि मानदेवके पितामह शङ्कर- देवने पशुपतिनाथके त्रिशूलकी प्रतिष्ठा की थी। पशु- पतिनाथ-मन्दिरके उत्तरी दरवाजे पर एक प्रस्तरवेदीके ऊपर प्रायः १४ हाथ ऊंचा, शङ्करदेवका प्रतिष्ठित वह त्रिशूल विद्यमान है। उस प्रस्तर-वेदिकामें मानदेवके समयमें ४१३ (शक) सम्वत्में उत्कीर्ण खोदित लिपि भी है। वह लिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि जयवर्माने मानदेव और जगत्को भलाईके लिये जयेश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठा करके उनकी सेवामें 'अक्षयनीवी' अर्थात् चिरस्थायी सम्पत्ति दान की थी।

मानदेवके बाद उनके पुत्र महीदेव सिंहासन पर बैठे। महीदेवके पुत्र वसन्तदेव थे। काठमाण्डूके लगन- तोलस्थ लुगालदेवीके मन्दिरसे वसन्तदेवकी ४३५ (शक) सम्वत्को लिपि आविष्कृत हुई है। इस शिलाफलकके ऊपर शङ्खचक्र चिह्नित रहनेसे वसन्तदेव विष्णुभक्त समझे जाते हैं। २य जयदेवकी शिलालिपिमें ये 'शान्ता- रिविग्रह' और 'उद्वान्तसामन्तवन्दित' इत्यादि विशेषण- से विशेषित हुए हैं। वसन्तदेवके पुत्र उदयदेव थे। २ जयदेवकी लिपिके मतसे उदयदेवके बाद उस वंशके १३ राजाओंने राज्य किया। इन तेरह राजाओंके नाम नहीं मिलते। उनमेंसे केवल ध्रुवदेव नामक एक राजा का नाम निकला है। इन्हीं ध्रुवदेवके समय महा- सामन्त अंशुवर्माका अभ्युदय हुआ। वे बड़े प्रतापी राजा थे।

अंशुवर्मा पहले महासामन्त कह कर परिचित होने पर भी अनेक श्रेष्ठ राजाओंके साथ आत्मीयता-सूत्रमें आबद्ध हुए थे। उनकी वहन भोगदेवीके साथ शूरसेन राजाका विवाह हुआ था। अंशुवर्माकी शिलालिपिमें लिखा है, कि उनकी वहन शूरसेन-महिषी भोगदेवीके गर्भसे राजा भोगवर्माका जन्म हुआ। भोगदेवीने अपने पतिकी पुण्य कामनासे शूरभोगेश्वर मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी।

भोट और चीनके इतिहाससे भी जाना जा सकता है, कि भोट (तिब्बत) देशके प्रसिद्ध राजा स्त्रोन्-त्सन गमपो-ने ६३७ ई०मे नेपालपति अंशुवर्माकी कन्या भ्रूकुटि देवीको ब्याहा। आज भी भोट देशमें भ्रूकुटि देवी पूजी जाती हैं। लामा शब्द देखो।

अंशुवर्माके समयमें ही लिच्छविकुलमें नरेन्द्रदेव और उनके पुत्र शिवदेव आविर्भूत हुए। नेपालमें गोल- माढ़िटोलसे शिवदेवका एक शिलाफलक पाया गया है। उसमें ३१६ वा ३१८ सम्वत् अङ्कित है। इस लिपिमें महासामन्त अंशुवर्माका प्रसङ्ग रहनेसे उसे हम लोग ७वीं सदीकी लिपि आसानीसे कह सकते हैं। गुप्त- सम्राटोंके साथ नेपाल राजाओंका बहुत पहलेसे सम्बन्ध था। इस हिसावसे उस लिपिको गुप्त संवत्-ज्ञापक मानने पर भी वह ३१६+३१८=६३७ ई०की होती है।

लिच्छविपति शिवदेवके साथ मौखरीपति भोगवर्मा- की कन्या और मगधपति महाराज आदित्यसेनकी दौहित्री श्रीमती वत्सदेवीका विवाह हुआ। उस वत्स- देवीके गर्भसे लिच्छवि-कुलकेतु परचक्रकाम उपाधि- धारी २य जयदेवने जन्मग्रहण किया। इन २य जयदेव- की शिलालिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने गौड़, ओड्र, कलिङ्ग और कोशलपति भगदत्तवंशीय श्रीहर्षदेवकी कन्या राज्यमतीको ब्याहा था। ये शिलाफलकमें त्यागी, मानधन, विशालनयन और सौजन्यरत्नाकर नामसे परिचित हैं।

२य जयदेवके श्वशुर श्रीहर्षदेवको ले कर बहुत दिन तक गोलमाल चला था। भगदत्तवंशीय राजे प्राग्- ज्योतिष (आसाम) में राज्य करते थे। ७वीं सदीमें वाणभट्टने हर्षचरितकी रचना की। वे अपना इस प्रकार परिचय दे गये हैं—

नरक महात्माके वंशमें भगदत्त, वज्रदत्त, पुष्पदत्त आदि अनेक राजाओंने राज्य किया। पीछे उसी वंशमें महीराज भूतिवर्माके प्रपौत्र, चन्द्रमुखवर्माके पौत्र तथा कैलासवासो देव श्रीस्थलवर्माके पुत्र सुरवर्मा नामक महाराजाधिराज उत्पन्न हुए। इन सूरवर्माके औरससे महादेवी श्यामादेवीके गर्भसे शान्तनुके पुत्र भीष्म सदृश भास्करके समान तेजस्वी भास्करवर्मा कुमारने जन्म ग्रहण किया।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग इन भास्करवर्माको ब्राह्मण वंशीय लिख कर भूल कर गये हैं। आश्चर्यका विषय है, कि पाश्चात्य अनेक पुराविदोंने भी चीनपरिव्राजकका अनुसरण किया है। महाभारतमें भगदत्तको क्षत्रिय-वीर बताया है। वर्मा उपाधि भी क्षत्रिय निर्देशक है। इस हिसाबसे बाणभट्टके अनुवर्त्ती हो कर हम निःसन्देह प्राग्ज्योतिष-राजवंशको क्षत्रिय कह सकते हैं।

भास्करवर्मा एक अति पराक्रान्त और धार्मिक राजा थे। सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद उनके बंधुपुत्र आदित्यसेनने मगधमें महाराजाधिराजकी उपाधि ग्रहण की। इसी सुअवसरमें भास्करवर्माके वंशधर भी गौड़, ओड्र, कलिङ्ग और दक्षिण कोशलको जीत कर एक राज-चक्रवर्त्ती हो गये थे। इसी समय भगदत्तवंशीय काम-रूपपतियोंने "गौड़ोड्र कलिङ्गकोशलपति" की प्रसिद्धि लाभ की होगी। लिच्छविपति २य जयदेवके श्वशुर भग-दत्त-वंशीय हर्षदेव उक्त भास्करवर्माके पुत्र अथवा पौत्र थे। उन्होंने गौड़ोड्रकलिङ्ग जीता हो, असम्भव नहीं। आसामके तेजपुरसे आविष्कृत भगदत्तवंशीय वनमाल-वर्मदेवके ताम्रशासनमें उक्त श्रीहर्षदेव "श्रीहरिष" नाम-से प्रसिद्ध हुए हैं*। २य जयदेवके साथ श्रीहर्षदेव किस प्रकार सम्बन्धसूत्रमें आबद्ध हुए? २य जयदेवकी शिलालिपिमें लिखा है—

"अङ्गश्रिया परिगतो जितकामरूपः
काञ्चीगुणाढ्यवनिताभिरुपास्यमानः।
कुर्वन्न् सुराष्ट्रपरिपालनकार्यचिंता
यः सार्वभौमचरितं प्रकटीकरोति॥"

* Journal of the Asiatic Society of Bengal, vol, IX, p, 768,

उक्त श्लोकका दो अर्थ रहने पर भी उससे यह भी जाना जाता है, कि २य जयदेव अङ्ग, कामरूप, काञ्ची और सुराष्ट्रदेशके राजाओंको जीत कर राजचक्रवर्त्ती हुए थे। कामरूप जयकालमें ही उन्होंने शायद कामरूपपति हर्षदेव की कन्याका पाणिग्रहण किया होगा। २य जयदेवके बाद लिच्छविवंशीय और किन राजाने नेपालका सिंहासन अलंकृत किया था, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं। पार्व-तीय वंशावलीमें कुछ नाम रहने पर भी सामयिक लिपिके साथ उनका मेल न खानेसे वे नहीं लिये गये।

अधिक सम्भव है, कि २य जयदेवके बाद लिच्छवि-वंशधरोंका प्रभाव ह्रास हुआ तथा उनके अधीन ठाकुरी-वंशीय सामन्तगण नेपालके सिंहासन पर बैठे।

लिच्छवि-संवत्।

नेपालसे महासामन्त अंशुवर्मा, लिच्छविपति २य शिवदेव और २य जयदेवकी जो सब शिलालिपियां पाई गई हैं, उनमें अंशुवर्माके नामाङ्कित शिलाफलकमें ३४, ३६, ४५ और ४८ संवत्, २य शिवदेवके शिलाफलकमें ११९, १४३ और १४५ संवत् तथा २य जयदेवके शिला-फलकमें १५३ संवत् उत्कीर्ण है।

पण्डित भगवान लाल इन्द्रजीने, प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्व-विद् बुह्लर और फ्लिटसाहबने अङ्कोंको श्रीहर्षसंवत् ज्ञापक बताया है। किन्तु हम उसे स्वीकार नहीं करते। क्योंकि, नेपालमें सम्राट् हर्षदेवका प्रभाव कब फैला था, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। नेपालपतियोंका उनके साथ कभी भी सम्बन्ध न था। इस हिसाबसे नेपालपति हर्ष-संवत्का व्यवहार करते होंगे, सम्भव नहीं। उत्तर-भारतमें शकाधिपत्य विस्तारके साथ तमाम शकसंवत् प्रचलित हुआ था। इस प्रकार गुप्तसम्राट् द्वारा नेपालविजय और लिच्छवि-राजोंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण वहां गुप्तसंवत् प्रचारित हुआ है, कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु कन्नोजपति हर्षदेवका प्रवर्त्तित संवत् नेपालमें प्रचलित होनेके पक्षमें वैसी कोई सुविधा नहीं हुई।

६०६ ई०में हर्षसंवत्का आरम्भ हुआ। इस हिसाबसे अंशुवर्माकी शिलालिपि माननेसे ६०६+४८=६५४ ई०में अंशुवर्माका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है। ६३७ ई०में चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने नेपालकी यात्रा

की। उनके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय अंशुवर्माका राज्यावसान हुआ था। चीनपरिव्राजककी उक्तिसे भी हम अंशुवर्मा आदि अङ्कोंको हर्षसंवत्‌ज्ञापक माननेको तैयार नहीं। वह किसी पराक्रान्त लिच्छविराजका प्रवर्त्तित अब्द है, ऐसा हमारा विश्वास है।

लिट्—व्याकरणमें परोक्षार्थबोधक विभक्तिसंज्ञाभेद।

लिटरेचर (अं० पु०) साहित्य, वाङ्मय।

लिटरेरी (अं० वि०) साहित्यसम्बन्धी, साहित्यिक।

लिटाना (हिं० क्रि०) लेटनेकी क्रिया कराना, दूसरेको लेटनेमें प्रवृत्त कराना।

लिट्ट (हिं० पु०) मोटी रोटी जो विना तवेके आग ही पर सेंकी जाय, अंगाकड़ी, बाटी।

लिट्य (सं० पु०) बहुत थोड़ी चिन्ता करना।

लिठोर (हिं० पु०) एक प्रकारका नमकीन पकवान।

लिडार (हिं० वि०) कायर, बुज़दिल।

लिदर (लदर)—पञ्जाब प्रदेशके काश्मीर राज्यान्तर्गत एक नदी। यह काश्मीर उपत्यकाके उत्तर पूर्वमें समुद्रपृष्ठसे १४ हजार फुट ऊँचेसे निकल कर वितस्ताकी शाखाके रूपमें बह चली है। यह अक्षा० ३४° ८′ उ० तथा देशा० ७५° ४८′ पू०के बीच पड़ती है। द्रुतगतिसे पर्वतका ढालू प्रदेश पार कर काश्मीर उपत्युकामें इसकी धीरगति हो गई है और अक्षा० ३३° ४५′ उ० तथा देशा० ७५° १५′ पू० तक इसलामावादसे पांच मील दक्षिणमें झेलम नदीमें आ कर मिल गई है।

लिधु—व्याकरणोक्त नामधातुकी एक संज्ञा। लिङ्ग और धातु समझानेमें संक्षेपमें 'लिधु' का प्रयोग किया जाता है।

लिन्दु (सं० पु०) पिच्छिल, गीला और चिकना।

लिन्सोटेन (Jan Hugo Van Linschoten)—एक पाश्चात्य भ्रमणकारी। ये १५८३ से ले कर १५८९ ई० तक भारतमें रह कर एक भारतवर्ष-विवरणी संकलन कर गये हैं। इस ग्रन्थका नाम है, "Voyages in to the East and West Indies" इस ग्रन्थमें उस समयके पुर्त्तगीज और ओलन्दाज वणिकोंका परस्पर विरोध वृत्तान्त तथा भारतजात वृक्ष और खनिज धातु आदिका परिचय सुचारुरूपसे वर्णित है।

लिप (सं० पु०) लिम्पतीति लिप-क। लेपनकर्त्ता, वह जो लेप करता है।

लिपटना (हिं० क्रि०) १ एक वस्तुका दूसरीको घेर कर उससे खूब सट जाना, चिमटना। २ इस प्रकार लग जाना कि जल्दी न छूटे, चिपटना। ३ किसी काममें जी जानसे लग जाना, तन्मय हो कर प्रवृत्त होना। ४ गले लगना, आलिंगन करना।

लिपटाना (हिं० क्रि०) १ एक वस्तुको दूसरी वस्तुसे खूब सटाना, चिमटाना। २ किसीको हाथोंसे घेर कर अपने शरीरसे खूब सटाना, गले लगाना।

लिपड़ा (हिं० पु०) १ लुगड़ा, कपड़ा। कलंदर भालू नचा कर जब उससे लोगोंसे कपड़ा मांगनेको कहते हैं, तब लिपड़ा लिपड़ा कहते हैं। (वि०) २ लेईकी तरह गीला और चिपचिपा।

लिपड़ी (हिं० स्त्री०) १ लेईकी तरह गीला और चिपचिपा पदार्थ। २ खिबड़ी देखो।

लिपना (हिं० क्रि०) १ किसी रंग या गीली वस्तुको पतली तहसे ढक जाना, पोता जाना। २ रंग या गीली वस्तुका फैला जाना।

लिपवाना (हिं० क्रि०) लीपनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको लीपनेमें प्रवृत्त करना।

लिपाई (हिं० स्त्री०) १ किसी रंग या घुली हुई गीली वस्तुको तरह फैलानेकी क्रिया या भाव। २ दीवार या जमीन पर घुली हुई मिट्टी या गोबरको तह फैलाना, पोताई। ३ लीपनेकी मजदूरी।

लिपाना (हिं० क्रि०) १ रंग या किसी गीली वस्तुको तह चढ़वाना, पुताना। २ दीवार या जमीन पर सफाईके लिये घुली हुई मिट्टी या गोबरकी तह चढ़वाना, मिट्टी गोबर आदिका लेप कराना।

लिपि (सं० स्त्री०) लिप (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) इति इन् स च कित्। १ अक्षर या वर्णके अंकित चिह्न, लिखावट। पर्याय—लिखित, अक्षरसंस्थान, लिवि, लिखन, लेखन, अक्षरविन्यास, लिपी, लिबी, अक्षररचना, लिपिका। (शब्दरत्ना०)

तन्त्रमें लिखा है, कि लिपि पांच प्रकारकी है, यथा मुद्रालिपि, शिल्पलिपि, लेखनीसम्भवा लिपि, गुण्डिका लिपि और घुणलिपि।

इन सब विभिन्न प्रकारकी लिपियोंका उत्पत्तिविवरण अक्षरलिपि शब्दमें दिया गया है। भारतवर्षके नाना स्थानों तथा बहुत दूर पश्चिम वाबिलोनीय, आसिरीय, कालदीय, मिस्र और पूर्वमें चीन आदि राज्योंमें बहुत प्राचीनकालसे विभिन्न प्रकारकी लिपि प्रचलित देखी जाती है। उनमें भारतीय लाटलिपि, वाबिलोनीय फलकलिपि, आसिरीय कोणाकार लिपि और मिस्र हाइरोग्लिफिक् वर्ण लिपि ही सर्व प्राचीन है। अक्षरलिपि और वर्णमाला देखो।

२ अक्षर लिखनेकी प्रणाली, वर्ण अङ्कित करनेकी पद्धति। ३ लिखे हुए अक्षर या बात।

लिपिकर (सं० पु०) लिपिं करोतीति लिपि-कृ (दिवानिशेति। पा ३।२।२१) इति ट। १ लेखक, लिखनेवाला। २ खोदाई करनेवाला। ३ लेपक, वह जो पोतता हो।

लिपिका (सं० स्त्री०) लिपिरेव स्वार्थे कन्-टाप्। लिपि, लिखावट।

लिपिकार (सं० पु०) लिपिं करोतीति कृ-अण्। लेखक, लिखनेवाला।

लिपिज्ञ (सं० त्रि०) सुलेखक, अच्छा लिखनेवाला।

लिपिन्यास (सं० पु०) स्याहीसे पत्र आदिकी लिखावट।

लिपिफलक (सं० पु०) पत्थर, तख्ती, धातुपत्र आदि जिन पर अक्षर खोदे जाँय।

लिपिबद्ध (सं० त्रि०) लिखित, लिखा हुआ।

लिपिशाला (सं० स्त्री०) लिपीनां शाला। लिपिगृह, पाठशाला।

लिपिसज्जा (सं० स्त्री०) लिपिकरणोपयोगी यन्त्र या द्रव्यादि, वह वस्तु जिससे लिखा जाय।

लिपी (सं० स्त्री०) लिपि कृदिकारादिति ङीप्। लिपि।

लिप्त (सं० त्रि०) लिप-क्त। १ भक्षित, खाया हुआ। २ कृतलेपन, जिस पर किसी गीली वस्तुकी तह चढ़ी हो, पुता हुआ। पर्याय—दिग्ध, विलिप्सित, चर्चित। ३ मिलित, खूब संलग्न हो। ४ अनुरक्त, खूब तत्पर। ५ विषदिग्ध, जिसमें जहर मिलाया गया हो।

लिप्तक (सं० पु०) लिप्त एव स्वार्थे-कन्। विषाक्त वाण, जहरीला तीर।

लिप्तहस्त (सं० त्रि०) रक्ताक्त या प्रक्षित हस्त, खूनसे तराबोर हाथ।

लिप्ता (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार कालका एक मान जो एक मिनटके बराबर होता है।

लिप्ताङ्ग (सं० त्रि०) जिसका शरीर सुगन्ध द्रव्यादिसे लेपा गया हो।

लिप्तिका (सं० स्त्री०) लिप्तैव स्वार्थे कन्। दण्ड।

"वैश्वस्य चतुर्थोऽशः श्रवणादौ लिप्तिकाचतुष्कं अभिजित्।"

(सत्कृत्यमुक्ता०)

लिप्सा (सं० स्त्री०) लब्धुमिच्छा लभ-सन्, अ-टाप्। इच्छा, अभिलाप, लालच।

"लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्ने स्यमन्तके।"

(हरिवंश ३८।३५)

लिप्सतव्य (सं० त्रि०) लिप्स तव्य। लाभाहं, पानेके उपयुक्त।

लिप्सु (सं० त्रि०) लब्धुमिच्छुः लभ् सन, सन्नन्तादुः। लाभकी इच्छा रखनेवाला। पर्याय—गृध्नु, गर्द्धन, तृष्णक्, लुब्ध, अभिलाषुक, लोलुप, लोलुभ।

लिप्सुता (सं० स्त्री०) लिप्सु-तल्-टाप्। लिप्सुका भाव या धर्म, पानेकी इच्छा।

लिप्स्य (सं० त्रि०) जिसे पानेकी स्वतः इच्छा हो।

लिफाफा (अ० पु०) १ कागजकी बनी हुई चौकोर खोली या थैली जिसके अंदर चिट्ठी या कागज पत्र रख कर भेजे जाते हैं। २ ऊपरी आच्छादन, दिखावटी कपड़े लत्ते। ३ ऊपरी आडंबर, झूठी तड़क भड़क, मुलम्मा। ४ जल्दी नष्ट हो जानेवाली वस्तु, दिखाऊ चीज।

लिफड़ी (हि० स्त्री०) कपड़ा लत्ता।

लिबरल (अं० वि०) १ उदार, उदारनीतिवाला। (पु०) २ इङ्गलैण्डका एक राजनीतिक दल जिसकी नीति अधोनस्थ देशोंकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें तथा अन्य राज्योंके साथ व्यवहार करनेमें उदार कही जाती है। ३ भारतका एक राजनीतिक दल जो बहुत ही सौम्य उपायोंसे अपने देशको स्वतन्त्र करना चाहता है।

लिबास (अ० पु०) पहननेका कपड़ा, पोशाक।

लिबि (सं० स्त्री०) लिप-इन, बाहुलकात् पस्य वत्वं। लिपि, लिखावट।

लिबिकर (सं० पु०) लिबिं करोतीति कृ-(दिवाविभानिशेति। पा ३।२।२१) इति ट। लिपिकर, लेखक।

लिविङ्कर (सं० पु०) लिबिं करोतीति कृ ट, पृषोदरादि त्वात् द्वितीयाया अलुक्। लिपिकार।

लिवी (सं० स्त्री०) लिवि कृदिकारादिति ङीष्। लिपि, लिखावट।

लिवुजा (सं० स्त्री०) लतिका, बेल।

लिम्प (सं० पु०) लिम्पतीति लिम्प-(अनुपसर्गात् लिम्पविन्देति। पा ३।१।१३८) इति श। लेपनकर्त्ता, पोतनेवाला।

लिम्पट (सं० पु०) विङ्ग, लंपट।

लिम्पाक (सं० क्ली०) १ निम्बूकविशेष, एक प्रकारका निबू। वैद्यकमें इसे सुरभि, स्वादु, थोड़ा अम्ल, अन्नरुचिकर, वातश्लेष्महर, हृद्य, छर्द्दिनाशक, थोड़ा पित्त वर्द्धक कहा है। (राजव०) (पु०) २ निम्बूक वृक्ष, एक प्रकारके नीबूका पेड़। ३ खर, गदहा।

लिम्पि (सं० पु०) लिपि, लिखावट।

लिमरी—बम्बई-प्रदेशके गोहेलवाड़प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। अभी यह राज्य तीन पट्टीदारोंमें बँट गया है। वार्षिक आय २५ हजार रुपयेकी है। बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक ६३४ और जूनागढ़के नवाबको २७८ रुपया कर देना पड़ता है। लिमरी नगर शोनगढ़से ६ कोस पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। नगरभाग समृद्धिसम्पन्न है।

लिमरी—बम्बई प्रसिडेन्सीके गुजरात-विभागके अन्तर्गत झालावार प्रान्तका एक देशी राज्य। यह अक्षा० २२°३०´ से २२° ३७´ उ० तथा देशा० ७१° ४४´ से ७१° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४४ वर्गमील और जनसंख्या ३१ हजारसे ऊपर है।

यह स्थान स्वभावतः ही समतल है। वालुकामय भूमिभागमें खेती-वारीकी उतनी सुविधा नहीं है। कहीं कहीं काली और लाल मिट्टी नजर आती है। यहां रूई तथा अन्यान्य नाना जातिका अनाज उत्पन्न होता है। भोगवती नामक एक छोटी नदी राज्य हो कर बह गई है। ग्रीष्मकालमें उसका जल खारा हो जाता है। कभी कभी नदीमें बाढ़ आ कर फसलको बहुत नुकसान कर देती है। यहांके सामन्तराज रुपयेके बदले अनाज भी करमें लेते हैं। यह स्थान उष्णप्रधान होने पर भी विशेष स्वास्थ्यप्रद है। लिमरी नगरमें एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा तय्यार होता है। भावनगर-गोण्डाल रेलपथ खुलनेके पहले यहांका उत्पन्न द्रव्यादि धोलेरा बन्दरसे विभिन्न स्थानोंमें भेजा जाता था।

लिमरी राज्य काठियावाड़ विभागके मध्य द्वितीय श्रेणीका सामन्त राज्य गिना जाता है। यहांके सरदार अङ्गरेज गवर्मेण्टके साथ १८०७ ई०के सन्धिसूत्रमें आवद्ध हुए। ज्येष्ठ पुत्र ही राजसिंहासनके अधिकारी हैं। इन्हें गोद लेनेकी सनद नहीं है। ठाकुर साहब यशोवन्तसिंहजी फतेसिंहजी झालावंशीय राजपूत थे। इन्हें राजकोटके राजकुमार-कालेजमें शिक्षा मिली थी। १८७६ ई०में उन्होंने शासनकार्य अपने हाथ लिया था। यहांके सरदार पालिटिकल एजेण्टकी सम्मतिके विना अपराधी प्रजाको प्राणदण्डकी सज़ा दे सकते हैं।

राजाका वार्षिक राजस्व २२१३७० रुपया है। उनमेंसे ४५५३४ रु० वृटिश सरकारको और जूनागढ़के नवाबको देना पड़ता है। राजा पण्यद्रव्यके ऊपर किसी प्रकारका महसूल नहीं लगाते। राजाके पास ७७ सिपाही हैं जिनमेंसे २७ घुड़सवार हैं। इसके सिवा ३४ हथियारबंद सिपाही भी हैं। राज्य भरमें १७ स्कूल, १ कारागार और १ अस्पताल है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २२°३४´ उ० तथा देशा० ३१° ५३´ पू० भोगाव नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है। यह नगर पहले धनजनपूर्ण और समृद्धिसम्पन्न था। यहांका प्राचीन दुर्गादि अभी टूटी-फूटी अवस्थामें पड़ा है। शहरमें एक अस्पताल और एक पुस्तकालय है।

लिम्बभट्ट (सं० पु०) एक संस्कृतज्ञ पण्डित। ये पूर्णानन्द प्रबन्धके प्रणेता नारायणके पिता थे।

लिम्बु—नेपाल और सिकिम सीमान्तवासी जातिविशेष। यह पहाड़ी किरात जातिकी एक शाखा समझी जाती है। बौद्धधर्मावलम्बी होने पर ये लोग बहुत कुछ ब्राह्मण्यधर्मसेवी हैं। ये लोग हट्टे कट्टे, मजबूत और कर्मठ होते हैं। गाय, सूअर और पालित पशु-पक्षीकी रक्षा करने तथा पहाड़ी भूमिमें अनाज उपजानेके सिवा ये और कोई भी कार्य नहीं करते। बांसकी फटरी तथा इलायची पेड़के पत्तोंसे ये लोग अपना घर बनाते हैं। दार्जिलिङ्गके

समीपवासी लिम्बुगण बहुत शराब पीते तथा देवोद्देशसे उत्कृष्ट पशुमांस भोजन करते हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि बलिरूपमें निहत पशुकी प्राणवायु ही देवता ग्रहण करते हैं। उसका मांसपिण्ड मनुष्यका ही उपभोग्य है।

डा० काम्बेलने इनकी भाषामें जिह्वामूलीय और तालव्य वर्णकी अधिकता देख कर कहा है, कि लेपछा जातिकी भाषासे लिंबु भाषा ही अधिकतर श्रुतिमधुर है। भारतीय और तिब्बतीय भाषाके साथ उक्त भाषाका अनेक सादृश्य देखा जाता है। लेपछाओंके निकट ये लोग छुङ्ग नामसे परिचित हैं। इनका शारीरिक गठन बहुत कुछ मोङ्गलीय सा है।

लियाकत (अ० स्त्री०) १ योग्यता, काबिलीयत। २ गुण, हुनर। ३ शील, भद्रता। ४ सामर्थ्य, समाई।

लिलाही (हिं० पु०) हाथका बटा हुआ देशी सूत।

लिवाना (हिं० क्रि०) १ लेनेका काम दूसरेसे कराना, थमाना। २ लानेका काम दूसरेसे कराना।

लिवाल (हिं० पु०) खरीदनेवाला, लेनेवाला।

लिवैया (हिं० पु०) लानेवाला।

लिष्व (सं० पु०) लष-कर्त्तरि वन्, निपातनात् साधुः, उपधाया इत्वं। नर्त्तक, नाचनेवाला।

लिसरी—हिमालय-पर्वतप्रान्तवासी जातिविशेष। मिथुनकोटके समीप गुर्चानी शैलके समीप लिसरी शैल पर इन लोगोंका वास है। ये गुर्चानी जातिकी एक शाखा माने जाते हैं सही, पर उन लोगोंसे बलहीन हैं। १८५० और १८५२ ई०में दो बार तथा १८५३-५४ ई०में लगातार आठ बार अङ्गरेजी-सेना आक्रमण करके भी इन्हें परास्त न कर सकी।

लिसोड़ा (हिं० पु०) मझोले डीलका एक पेड़। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए और फल छोटे बेरके बराबर होते हैं और गुच्छोंमें लगते हैं। पकने पर इसमें लसदार गूदा हो जाता है जो गोंदकी तरह चिपकता है। यह गूदा हकीम लोग खाँसीमें देते हैं। पत्ते बीड़ीके ऊपर लपेटनेके काममें आते हैं। छालके रेशेसे रस्से बटे जाते हैं। अंदरकी लकड़ी मजबूत होती है और किश्ती तथा खेती सामान बनानेके कामकी होती है। इसे 'लभेरा' और 'लिटोरा' भी कहते हैं। इसका पर्याय श्लेष्मान्तक और भूकर्बुदार है।

लिस्ट (अं० स्त्री०) फेहरिस्त, तालिका।

लिह (सं० क्रि०) १ चाटना। (त्रि०) २ चाटनेवाला।

लिहाज़ (अ० पु०) १ व्यवहार या बरतावमें किसी बातका ध्यान, कोई काम करते हुए उसके सम्बन्धमें किसी बातका ख्याल। २ किसीको कोई बात अप्रिय या दुःखदायी न हो इस बातका खयाल, मुरव्वत, मुलाहज़ा। ३ बड़ोंके सामने ढिठाई आदि न प्रकट हो इस बातका ध्यान, अदबका खयाल। ४ कृपापूर्वक किसी बातका ध्यान, मेहरबानीका खयाल, कृपा-दृष्टि। ५ लज्जा, शर्म, हया। ६ पक्षपात, तरफदारी।

लिहाड़ा (हिं० वि०) १ नीच, वाहियात। २ खराब, निकम्मा।

लिहाफ़ (अ० पु०) रातको सोते समय ओढ़नेका रूईदार कपड़ा, भारी रज़ाई।

लीक (हिं० स्त्री०) १ लम्बा चला गया चिह्न, लकीर। २ गाड़ीके पहिएसे पड़ी हुई लकीर। ३ गहरी पड़ी हुई लकीर। ४ चलते चलते बना हुआ रास्तेका निशान, डुर्री। ५ बंधी हुई मर्यादा, लोक-नियम। ६ महत्त्वकी प्रतिष्ठा, नाम, यश। ७ हद, प्रतिबंध। ८ बंधी हुई विधि, प्रथा, दस्तूर। ९ कलंककी रेखा, धब्बा, बदनामी। १० गिनतीके लिये लगाया हुआ चिह्न, गणना। ११ मटियाले रंगकी एक चिड़िया। यह बत्तखसे बहुत छोटी होती है।

लीका (सं० स्त्री०) ह्रस्वमूषिकोमारी, श्रुतश्रेणी नामकी छोटी लता।

लीक्का (सं० स्त्री०) लिक्षा, लीख।

लीक्षा (सं० स्त्री०) लिक्षा, लीख।

लीख (हिं० स्त्री०) जूँका अंडा। २ लिक्षा नामक परिमाण

लीग (अं० स्त्री०) संघ, सभा। जैसे मुसलिम लीग।

लीगल रिमेंब्रैंसर (अं० पु०) वह अफसर जो सरकारके कानूनी कागज-पत्र रखता है। कलकत्ता, बंबई और युक्तप्रदेशमें लीगल रिमेंब्रैंसर होते हैं जो प्रायः सिवीलियन होते हैं। इनका दर्जा एडवोकेट जनरलके बाद है। इनका काम सरकारी मामले मुकदमोंके कागज-पत्र रखना और तैयार करना है।

लीचड़ (हि० वि०) १ सुस्त, काहिल, निकम्मा। २ जल्दी छोड़नेवाला, चिमटनेवाला। ३ जिसका लेन देन ठीक न हो।

लीची (हि० स्त्री०) एक सदाबहार बड़ा पेड़। इसका फल खानेमें बहुत मीठा होता है। इसकी पत्तियां छोटी छोटी होती हैं; फल गुच्छोंमें लगते हैं और देखनेमें बहुत सुन्दर होते हैं। छिलकेके ऊपर कटावदार दानेसे उभरे होते हैं। गूदा सफेद खोलीकी तरह बीचसे चिपका रहता है पर बहुत जल्दी छूट कर अलग हो जाता है। यह पेड़ चीनसे आया है और बंगाल तथा विहारमें अधिक होता है।

लीझी (हि० स्त्री०) १ देहमें मले हुए उबटनके साथ छूटी हुई मैलकी बत्ती। २ वह गूदा या रेशा जिसका रस चूस या निचोड़ लिया गया हो, सीठी। (वि०) ३ नीरस, निस्सार। ४ निकम्मा।

लीडर (अं० पु०) अगुआ, मुखिया, नेता। २ किसी समाचारपत्रमें सम्पादकका लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख, सम्पादकीय अग्रलेख।

लीडर आफ दी हाउस (अं० पु०) पार्लमेण्ट या व्यवस्थापिका सभाका मुखिया। यह प्रधान मन्त्री या मन्त्रिमण्डलका बड़ा सदस्य विशेष कर स्वराष्ट्र सदस्य होता है और इसका काम विरोधी पक्षका उत्तर देना और सरकारी कामोंका समर्थन करना है।

लिडिंग आर्टिकल (अं० पु०) किसी समाचार-पत्रमें सम्पादकका लिखा हुआ प्रधान या मुख्य लेख, सम्पादकीय अग्रलेख।

लीथो (अं० पु०) पत्थरका छापा जिस पर हाथसे लिख कर अक्षर या चित्र छापे जाते हैं।

लीथोग्राफ (अं० पु०) लीथो देखो।

लीथोग्राफर (अं० पु०) वह जो लीथोग्राफीका काम करता हो, लीथोका काम करनेवाला।

लीथोग्राफी (अं० स्त्री०) लीथोकी छपाईमें एक विशेष प्रकारके पत्थर पर हाथसे अक्षर लिखने और खींचनेकी कला।

लीद (हि० स्त्री०) घोड़े, गधे, ऊँट और हाथी आदि पशुओंका मल, घोड़े आदिका पुरीष।

लीन (सं० त्रि०) ली-क (ओदितश्च। पा ८।२।४५) इति निष्ठा तस्य न। १ लयप्राप्त, जो किसी वस्तुमें समा गया हो। २ बिलकुल लगा हुआ, तत्पर। ३ तन्मय, मग्न। ४ ख्यालमें डूबा हुआ, अनुरक्त।

लीनता (सं० स्त्री०) १ तन्मयता, तत्परता। २ ऐसा संकुचित हो कर रहना जिसमें किसीको दुःख न पहुंचे।

लीनो टाइप मैशीन (अं० स्त्री० एक प्रकारकी कल जिसमें टाइप या अक्षर कम्पोज होनेके समय ढलता है। आज कल हिन्दुस्तानमें बड़े बड़े अङ्गरेजी अखबार इसी मैशीनमें कम्पोज होते हैं।

लीपना (हि० क्रि०) १ घुले हुए रंग, मिट्टी, गोबर या और किसी गीली वस्तुका पतली तह चढ़ाना, पोतना। २ सफाईके लिये जमीन या दीवार पर घली हुई मिट्टी या गोबर फेरना, पोतना।

लीफ्लेट (अं० पु०) पुस्तिका, पर्चा।

लीम (हि० पु०) १ एक प्रकारका चौड़का पेड़। इसमेंसे तारपीन या अलकतरा निकलता है। २ एक प्रकारकी चिड़िया।

लील (हि० वि०) नीला, नीले रंगका।

लीलक (हि० पु०) १ वह हरा चमड़ा जो जूतोंकी नोक पर लगाया जाता है। (वि०) २ नीला।

लीलना (हिं० क्रि०) गलेके नीचे पेटमें उतारना, निगलना।

लीलया (सं० क्रि० वि०) १ खेलमें। २ सहजमें ही, बिना प्रयास।

लीला (सं० स्त्री०) लयनमिति लो सम्पदादित्वात् क्विप्, लियं लातीति ला-क। १ केलि, क्रीड़ा, खेल। २ रहस्यपूर्ण व्यापार, विचित्र काम। ३ शृङ्गारकी उमंग भरी चेष्टा, प्रेम विनोद। ४ नायिकाओंका एक हाव। इसमें वे प्रियके वेश, गति, वाणी आदिका अनुकरण करती हैं। ५ मनुष्योंके मनोरञ्जनके लिये किये हुए ईश्वरावतारोंका अभिनय, चरित्र। ६ चौबीस मात्राओंका एक छन्द। इसमें ७, ७, ७, ७, के विरामसे २४ मात्राएं और अंतमें सगण होता है। ७ बारह मात्राओंका एक छन्द। इसके अंतमें एक जगण होता है। ८ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, नगण, और एक गुरु होता है।

लीला (हिं० पु०) १ स्याह रंगका घोड़ा। (वि०) २ नीला।

लीलाकमल (सं० क्ली०) लीलार्थं कमलम्। क्रीड़ापद्म, कमलका फूल जिसे क्रीड़ाके लिये हाथमें लिये हो।

लीलाकर (सं० पु०) छन्दोभेद।

लीलाकलह (सं० पु०) कलहका भान या प्रकाश।

लीलाखेल (सं० त्रि०) क्रीड़ाशील, खेलनेवाला।

लीलीखेली (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें पन्द्रह अक्षर होते हैं, तथा सभी गुरु होते हैं।

लीलागार (सं० क्ली०) लीलार्थं आगारं। लीलागृह, खेलका घर।

लीलागृह (सं० क्ली०) खेलका घर।

लीलागेह (सं० क्ली०) क्रीड़ागार, खेलका घर।

लीलाङ्ग (सं० त्रि०) चंचल या निरन्तर क्रीड़ेच्छु अंगयुक्त।

लीलाचन्द्र—एक प्राचीन कवि।

लीलाजन—हजारीबाग जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह गयाधामसे तीन कोस दक्षिण मुहानेसे निकल कर फल्गु नामसे गंगामें मिल गई है।

लीलाचल (सं० पु०) जनपदभेद। लीलाचल देखो।

लीलातनु (सं० स्त्री०) लीलाप्रकटनार्थं धृतदेह, वह रूप या शरीर जो खेल दिखलानेके लिये धरा जाता है।

लीलातामरस (सं० क्ली०) क्रीड़ाकमल, लीलाकमल।

लीलादग्ध (सं० त्रि०) जो अपनी इच्छासे भस्मीभूत हो गया हो।

लीलाद्रि (सं० पु०) लीलाचल।

लीलाधर भट्ट—दाक्षिणात्यवासी एक कवि। कवीन्द्रचन्द्रोदयमें इनका उल्लेख है।

लीलानटन (सं० क्ली०) कौतुकावह नृत्य।

लीलापद्म (सं० क्ली०) लीलार्थं पद्मं। क्रीड़ाकमल। लीलाकमल देखो।

लीलापर्वत (सं० पु०) लीलाचल।

लीलापुरुषोत्तम (सं० पु०) श्रीकृष्ण। राम और कृष्ण इन दो प्रधान अवतारोंमें राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं और कृष्णलीलापुरुषोत्तम।

लीलाब्ज (सं० क्ली०) लीलाकमल।

लीलाभरण (सं० क्ली०) वह अलङ्कार जो पद्ममालासे बना हो।

लीलामनुष्य (सं० पु०) छद्मवेशी मनुष्य, वह जो मनुष्याकार हो किन्तु मनुष्य न हो सिर्फ इस प्रकार देहाकृतिविशिष्ट हो।

लीलामय (सं० त्रि०) लीलास्वरूपे मयट्। लीलास्वरूप, क्रीड़ाके भावसे भरा हुआ।

लीलामात्र (सं० अव्य०) खेलते खेलते।

लीलामानुषविग्रह (सं० पु०) १ छद्मवेशी मनुष्य। २ श्रीकृष्ण।

लीलाम्बुज (सं० क्ली०) लीलापद्म। (कथासरित्सा० २३।६६)

लीलायुध (सं० पु०) एक जाति। नीलायुध देखो।

लीलारविन्द (सं० क्ली०) क्रीड़ा, खेल।

लीलारविन्द (सं० क्ली०) लीलाकमल।

लीलावज्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका शस्त्र जो वज्राकार हो।

लीलावतार (सं० पु०) लीलाप्रकटनार्थ विष्णुका अवतार, वह अवतार जिसमें विष्णुने लीला दिखाई थी।

लीलावत् (सं० त्रि०) लीला विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। लीलाविशिष्ट, क्रीड़ायुक्त।

लीलावती (सं० त्रि०) लीलावत् स्त्रियां ङीप्। १ विलासवती, क्रीड़ा करनेवाला। (स्त्री०) २ प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्यकी पत्नीका नाम। इस लीलावतीने लीलावती नामकी गणितकी एक पुस्तक लिखी थी। लीलावतीमङ्गलाचरण श्लोककी टीकामें गणेशने लिखा है—

"गोदावरीतीरनिवासिनः महाराष्ट्रदेशोद्भवस्य श्रीभास्कराचार्यस्य ग्रन्थकर्त्तुः सुप्रिया लीलावती विरहविद्धियाद्दद्यस्य ता पदैर्लीलावत्या लीलावतीमिव"

भास्कराचार्य भी लीलावती नामकी एक गणितकी पुस्तक लिख गये हैं। इस ग्रन्थका मङ्गलाचरणश्लोक इस प्रकार लिखा है—

"प्रीतिं भक्तजनस्य यो जनयते विघ्नं विनिघ्नन् स्मृत
स्तंवृन्दारकवृन्दवन्दितपदं नत्वा मतङ्गाननम्।
पाटीं सद्गणितस्य वच्मि चतुरप्रीतिप्रदां प्रस्फुटां
संक्षिप्ताक्षरकोमलामलपदैर्लालित्यलीलावतीम्॥"
(लीलावती)

३ पुराणानुसार अविक्षित् राजाकी स्त्री। (मार्कण्डेयपु० १२३।१७) ४ पुराणानुसार एक वेश्या। (मत्स्यपुराण) ५ न्यायग्रन्थविशेष। ६ सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रागिणी ललित, जयतश्री और देशकारसे मिल कर बनी कही गई है। कोई कोई इसे दीपक रागकी पुत्रवधू कहते हैं। ७ एक छंद। इसके प्रत्येक चरणमें १०, ८ और १४के विराम से ३२ मात्राएं होती है और अन्तमें एक जगण होता है।

लीलावधूत (सं० त्रि०) स्वच्छन्दसे विचरनेवाला।

लीलावापी (सं० स्त्री०) वह पुष्करिणी या तालाव जिसमें जलक्रीड़ा की जाय।

लीलावेश्मन् (सं० क्ली०) लीलागृह, खेलका घर।

लीलाशुक (सं० पु०) भक्तकवि विल्वमंगलका एक नाम।

लीलासाध्य (सं० त्रि०) सहजसाध्य, जो सहजमें या किसी झंझटके किया जाय।

लीलास्थल (सं० पु०) क्रीड़ा करनेका स्थान।

लीलास्वात्मप्रिय (सं० पु०) एक तान्त्रिक आचार्य। ये शक्ति (दुर्गा)-भक्तोंमें सुपरिचित हैं। शक्तिरत्नाकरमें इनका नामोल्लेख है।

लीली (हिं० स्त्री०) नीले रंगकी, नीली।

लीलोद्यान (सं० क्ली०) लीलार्थमुद्यानं। देववन।

"अथ मानसमुल्लङ्घ्य देवर्षिव्रातसेवितम्।
अतीत्य गण्डशैलञ्च लीलोद्यानं च योषिताम्॥"
(कथासरित्सा०)

लीलोपवती (सं० स्त्री०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १४ गुरु वर्ण होते हैं।

लीव (अं० स्त्री०) छुट्टी, अवकाश।

लीवर (अं० पु०) यकृत्, जिगर। यकृत् देखो।

लीस (अं० पु०) जमीन या दूसरी किसी स्थावर सम्पत्तिके भोगमात्रका अधिकार-पत्र जो किसीको जीवन पर्यन्त या निश्चित कालके लिये दिया जाय, पट्टा।

लुंगा (हिं० पु०) १ पञ्जाबमें धान रोपनेकी एक रीति, माच। २ लुंगड़ा देखो।

लुँगाड़ा (हिं० पु०) शोहदा, लुच्चा।

लुंगी (हिं० स्त्री०) १ धोतीके स्थान पर कमरमें लपेटने-का छोटा टुकड़ा, तहमत। इस देशमें मुसलमान, मदरासी और वरमी लोग इस प्रकार कपड़ा लपेटते हैं जिसमें पीछे लांग नहीं बांधी जाती। २ कपड़ेका टुकड़ा जो हजामत वनाते समय नाई इसलिये पैर पर आगे डाल देता है जिसमें वाल उसी पर गिरे। ३ लोल रंगका एक मोटा कपड़ा, खारुवा। (स्त्री०) ४ एक बड़ी चिड़िया। यह हिमालयके जंगलोंमें, कुमायूंनसे ले कर नेपाल और भूटान तक तालोंके किनारे पाई जाती है। इसकी लम्बाई सवा या डेढ़ हाथके लगभग और आकृति मोरकी-सी होती है। इसका अगला भाग काला और लाल होता है। सफेद चिड़ियाँ भी होती हैं। इसकी चोंच भूरे रंगकी होती हैं। जाड़े के दिनोंमें यह मैदानमें उतर आती है और कीड़े मकोड़े खा कर रहती है। कुत्तोंकी सहायतासे लोग इसका शिकार करते हैं।

लुंज (हिं० वि०) १ विना हाथ पैरका, लंगड़ा लूला। २ विना पत्तेका पेड़, ठूंठ।

लुंड (हिं० पु०) १ विना सरका धड़, कवंध।

लुंडा (हिं० वि०) १ जिसकी पूंछ और पर झड़ गये हों या उखाड़ लिये गये हों। २ जिसकी पूंछ पर वाल न हों। (पु०) ३ साफ किये हुए लपेटे सूतकी पिंडी, कुकड़ी।

लुआठा (हिं० पु०) वह लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो, सुलगती हुई लकड़ी।

लुआठी (हिं० स्त्री०) सुलगती या दहकती हुई लकड़ी।

लुआव (अ० पु०) लसदार गूदा, लासा।

लुआवदार (फा० वि०) १ लसदार, चिपचिपा। २ जिसमें लसदार गूदा हो।

लुक् (सं० पु०) लोप, व्याकरणकी एक संज्ञा। लुक् और लोपमें प्रभेद है।

लुक (हिं० पु०) १ वह लेप जिसे फेरनेसे मिट्टीके वरतन आदि पर चमक आ जाती है, चमकदार रोगन, वार्निश। २ आगकी लपट, लौ।

लुकना (हिं० क्रि०) ऐसी जगह हो रहना जहां कोई देख न सके, आड़में होना।

लुकमा (अ० पु०) ग्रास, कौर।

लुकसाज़ (फा० पु०) एक प्रकारका चमड़ा जो सिझाया और चमकीला किया हुआ होता है।

लुका—आसाम प्रदेशमें प्रवाहित एक छोटी नदी। यह पहाड़से निकल कर उत्तर-कछार और जयन्ती शैल होती हुई चली गई है। जयन्तीका पार्वत्यजिला पार कर यह श्रीहट्ट जिलेके मूलाघूल ग्रामके समीप सुरमा नदीमें मिली है।

लुकाट (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसके फल आमड़े के बराबर और खानेमें खटमीठे होते हैं।

लुकाना (हिं० क्रि०) ऐसी जगह करना जहां कोई देख न सके, आड़में करना, छिपाना।

लुकिविद्या (सं० स्त्री०) १ गुप्तविद्या। २ रहस्यपूर्ण भौतिक प्रक्रिया।

लुकेश्वर (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

लुकायित (सं० त्रि०) लुक-कायस्य यस्य तादृश इवाचरतीति लुकाय-क्विप् ततः क्त। अन्तर्हित, लुका हुआ।

लुख (हिं० स्त्री०) शर या सरपतकी तरहकी एक घास।

लुखिया (हिं० स्त्री०) १ धूर्त्त स्त्री। २ वेश्या, रंडी। ३ पुंश्चली, छिनाल।

लुगड़ा (हिं० पु०) लूगड़ा देखो।

लुगड़ी (हिं० स्त्री०) लूगड़ी देखो।

लुगदा (हिं० पु०) गीली वस्तुका गोला या पिंडा, लौंदा।

लुगदी (हिं० स्त्री०) गीली वस्तुका पिंड या गोला, छोटा लौंदा।

लुगरी (हिं० स्त्री०) फटी पुरानी धोती।

लुगाई (हिं० स्त्री०) स्त्री, औरत।

लुगु—विहार और उड़ीसाके हजारीवाग जिलेका एक बड़ा पहाड़। यह अक्षा० २३° ४७´ उ० तथा देशा० ८५° ४२´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस शैलखण्डसे उत्तर २२०० फुटकी ऊंचाई पर एक प्राचीन दुर्ग प्रतिष्ठित है। वह स्थानीय प्राचीन समृद्धिका एकमात्र परिचयस्थल है।

लुघासी—१ बुन्देलखण्ड विभागान्तर्गत एक देशीय सामन्त राज्य। यह भारतगवर्मेण्ट और मध्यभारत एजेन्सीकी देखरेखमें परिचालित होता है। इसके दक्षिण-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्व सीमा तक छत्रपुरराज्य तथा पूर्व, उत्तर और पश्चिमांश हमीरपुर राज्य द्वारा परिवेष्टित है।

अंगरेजराजने जब बुन्देलखण्डका आधिपत्य लाभ किया, तब यहांके सरदार ११ ग्रामोंके अधिकारी थे। उन्होंने अङ्गरेजराजका आनुगत्य स्वीकार तथा बन्दोवस्ती पत्र पर स्वाक्षर किया था, इसी कारण निज सम्पत्ति और सामन्त पद पाया था। १८५७ ई०के गदरमें यहांके सामन्त सरदारसिंहको अंगरेजराजके प्रति विशेष अनुरक्त देख कर विद्रोहिदलने लुघासीको लूट कर तहस नहस कर डाला। राजाने विद्रोहोका अत्याचार सहते हुए भी अविचलित भावमें अंगरेजोंका पक्ष समर्थन किया था। अंगरेजराजने इस राजभक्तिके पुरस्कारस्वरूप उन्हें राव वहादुरकी उपाधि, राजपरिच्छद तथा २ हजार रुपये आयकी एक जागीर प्रदान की। इसके सिवा सनद द्वारा उन्हें गोद लेनेका अधिकार भी दिया गया। उनके पौत्र राव वहादुर क्षेत्रसिंह १८८६ ई०में पैतृकराजपद पर अधिष्ठित थे। उनकी नावालिगीमें अङ्गरेजोंने राजकार्य चलाया। इस समय लुघासी राज्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। वर्त्तमान सरदारका नाम दीवान छत्रपति सिंह है। ये १९०२ ई०में सिंहासनारूढ़ हुए। दली (Dally) कालेजमें इन्होंने शिक्षा पाई थी। इस राज्यमें १७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। राजस्व २० हजार रुपया है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° ५´ उ० तथा देशा० ७९° ३५´ पू०के मध्य कालपीसे जब्बलपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारके लगभग है। यहां एक सुन्दर बाजार है। नगरमें राजप्रासाद और दुर्ग स्थापित है। उस दुर्गमें राजाके ६० पैदल सिपाही और ७ कमान तथा कमानवाही सेनादल रहता है।

लुङ्ग (सं० पु०) मातुलुङ्ग वृक्ष, विजौरा नीबूका पेड़।

लुङ्गमांस (सं० क्ली०) मातुलुङ्ग-मांस।

लुङ्गाम्ल (सं० क्ली०) मातुलुङ्गाम्ल।

लुङ्गुप (सं० पु०) मातुलुङ्ग, विजौरा नीबू।

लुचकना (हिं० क्रि०) दूसरेके हाथसे झटका दे कर ले लेना, झटकेसे छीनना।

लुचवाना (हिं० क्रि०) नोचवाना, उखड़वाना, चोंथवाना।

लुच्चा (हिं० वि०) १ दूसरेके हाथसे वस्तु लुचक कर

भागनेवाला, चाई । २ दुराचारी, कुचाली । ३ खोटा, कमीना, बदमाश ।

लुच्चो (हिं० वि० स्त्री०) खोटी या बदमाश ।

लुज्जा (हिं० पु०) समुद्रमें वह स्थल जो बहुत गहरा हो ।

लुञ्चन (सं० पु०) १ उत्पाटन, चुटकीसे पकड़ कर झटकेके साथ उखाड़ना, नोचना । २ काटना, तराशना । ३ जैन-यतियोंकी एक क्रिया । इसमें उनके शिरके बाल नोचे जाते हैं ।

लुञ्चित (सं० त्रि०) उत्पाटित, उखाड़ा हुआ, नोचा हुआ ।

लुञ्चितकेश (सं० पु०) जैन साम्प्रदायिकभेद । वे लोग औषध आदिसे सिरके बाल और शरीरके रोएं साफ करते हैं इसलिये उनका यह नाम पड़ा है ।

लुटकना (हिं० क्रि०) लटकना देखो ।

लुटना (हिं० क्रि०) १ दूसरेके द्वारा लूटा जाना, डाकुओं-के हाथ धन खोना । २ तबाह होना, सर्वस्व खोना ।

लुटाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको लूटने देना, डाकुओं आदिको छीन लेने देना । २ बरबाद करना, व्यर्थ फेंकना या व्यय करना । ३ मुट्ठी भर भर चारों ओर इसलिये फेंकना जिसमें जो चाहे सो ले, बहुतायतसे बांटना, अंधाधुंध दान करना । ४ मुफ्तमें देना, बिना पूरा मूल्य लिये दे देना ।

लुटिया (हिं० स्त्री०) जल भरने या रखनेका धातुका छोटा बरतन, छोटा लोटा ।

लुटेरा (हिं० पु०) जबरदस्ती छीन लेनेवाला, डर दिखा कर या मार पीट कर दूसरेका माल छीननेवाला, डाकू ।

लुट्टूर (हिं० स्त्री०) वह भेड़ जिसके कान छोटे हों ।

लुठन (सं० क्ली०) लुठ भावे ल्युट् । भूमि पर घोड़ेका बारबार श्रमोपहनन या लोटना ।

लुठनेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम । इसे लुठे-श्वर या लुकेश्वरतीर्थ भी कहते हैं । हेमचन्द्र इस तीर्थ का नामोल्लेख कर गये हैं ।

लुठित (सं० त्रि०) लुठ-क्त । बार बार भूमि पर लोटा हुआ । पर्याय—वेल्लित, अपावृत्त, परावृत्त ।

लुड़कना (हिं० क्रि०) लुढ़कना देखो ।

लुड़काना (हिं० क्रि०) लुढ़काना देखो ।

लुड़की (हिं० स्त्री०) लुदकी देखो ।

लुड़खुड़ाना (हिं० स्त्री०) लड़खड़ाना देखो ।

लुढ़कना (हिं० क्रि०) १ जमीन पर नीचे ऊपर फिरते हुए बढ़ना या चलना, गेंदकी तरह नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए गमन करना, ढुलकना । २ गिर कर नीचे ऊपर होते हुए गमन करना ।

लुढ़काना (हिं० क्रि०) जमीन पर इस प्रकार चलाना कि नीचे ऊपर होता हुआ कुछ दूर बढ़ता जाय, ढुलकाना ।

लुढ़ियाना (हिं० क्रि०) गोल बत्तीकी तरह उभरी हुई सिलाई करना, गोल तुरपना ।

लुण्टक (सं० पु०) लुण्टतीति लुण्ट-ण्वुल् । शाकविशेष, एक प्रकारका साग ।

लुण्टा (सं० स्त्री०) लुण्ट-अङ्-टाप् । लुण्ठन, लूटना ।

लुण्टाक (सं० पु०) लुण्टतीति लुण्ट (जल्प-भिक्षा-कुट्टलुण्ट-वृङः षाकन् । पा ३।२।१५५) इति कन् । चौर, चोर ।

लुण्टाकी (सं० स्त्री०) लुण्टाक षित्वात् ङीप् । स्त्रीचौर, स्त्रीचोर ।

लुण्ठक (सं० त्रि०) लुण्ठतीति लुण्ठ-ण्वुल् । स्तेयकारक, लुटेरा ।

लुण्ठन (सं० क्लि०) लुण्ठ-ल्युट् । १ लूटना, चुराना । २ लुढ़कना ।

लुण्ठनदी (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम ।

लुण्ठा (सं० स्त्री०) लुण्ठ-अङ् स्त्रियां टाप् । लुण्ठन, लूटना ।

लुण्ठाक (सं० पु०) लुण्ठ-षाकन् । १ काक, कौआ । २ चोर ।

लुण्ठि (सं० स्त्री०) दस्युवृत्ति, लूटपाट ।

लुण्ठी (सं० स्त्री०) घोड़ेका लोटना ।

लुण्ड (सं० पु०) स्तेन, चोर ।

लुण्डमुण्ड (सं० त्रि०) १ जिसका सिर, हाथ, पैर आदि कटे हों केवल धड़का लोथका रह गया हो । २ बिना हाथ पैरका, लँगड़ा लूला । ३ बिना पत्तेका, ठूँठ । ४ यों ही गठरीकी तरह लपेटा हुआ ।

लुण्डिका (सं० स्त्री०) लुण्डी स्वार्थे कन्, ततष्टाप् । लपेटे हुए सूतकी पिंडी या गोली ।

लुण्डी (सं० स्त्री०) १ लपेटे हुए सूतकी पिंडी या गोली । २ जिसकी पूंछ या पर झड़ गये हों।

लुतरा (हिं० वि०) १ इधरकी उधर लगानेवाला, चुगलखोर । नटखट, शरारती ।

लुतरी (हिं० वि० स्त्री०) झगड़ा लगानेवाली, चुगलखोर ।

लुत्फ (अ० पु०) १ कृपा, मेहरबानी । २ भलाई, खूबी, उत्तमता । ३ मज़ा, आनन्द । रोचकता । ५ स्वाद, ज़ायका ।

लुदजू—चीन और भारत सीमान्तवासी पहाड़ी जाति विशेष । लौकियां नामक स्थानसे पश्चिम लुदजू नामक स्थानमें इन लोगोंका वास है। आचार-व्यवहारमें ये लोग बिलकुल वर्बर हैं। बहुतेरे काठकी खूंटी गाड़ कर घर बनाते हैं। खाद्यादिके सम्बन्धमें ये लोग कोई विचार नहीं करते। साधारणतः वे चीता बाघ, बकरे, सियार आदि जानवरोंके चमड़े से अपना शरीर ढकते हैं। योद्धाओंका चर्मवर्म ही साज है। किन्तु गृहस्थ और ज्ञातीय सरदार सूती कपड़े पहनते हैं। जो लुदजू ईसाई हो गये हैं, वे चीनवासीके जैसे कपड़े पहनते हैं।

ये लोग आस-पासकी दूसरी दूसरी जातियोंसे अधिक काले होते हैं। शिर पर चीनवासीकी तरह बड़े बड़े बाल रखते हैं। युद्धकार्यमें वे बड़े निपुण हैं। पार्श्ववर्त्ती देशवासियोंको विशेषतः युन-नान जातिको वे उधम मचानेके लिये हमेशा उसाड़ा करते हैं। बड़ा छुरा, कुठार और धनुष ही इनका एकमात्र अस्त्र है। आसाम सीमान्तस्थित खामती जातिकी वासभूमिसे वे लोग उक्त अस्त्रादि लाते हैं। चीनराजको ये कर नहीं देते और न अपनेको राजशक्तिके वशीभूत ही समझते हैं। पर हां, चीनराजके आदेश पानेसे वे तुरत युद्धके लिये तैयार हो जाते हैं। इन लोगोंमें प्रायः १२ सौ दुर्द्धर्ष योद्धा हैं। भूतादिको प्रसन्न करनेके लिये ये मुर्गीको बलि देते हैं।

लुद्रा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान । यह अगहनके महीनेमें तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लुधियाना—पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० ३०° ३४' से ३१° १' उ० तथा देशा० ७५° २२' से ७६° ७४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४५५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शतद्रु नदी, पूर्वमें अम्बाला जिला, दक्षिणमें पतियाला, झिन्द, नाभा और मालेर-कोटला, सामन्तराज्य तथा पश्चिममें फिरोज़पुर जिला है। सरमाला, लुधियाना और जगगाँव तहसील ले कर यह जिला बना है।

इस जिलेकी भूमि सर्वत्र समतल है, किसी भी स्थान पर बड़ा पहाड़ दिखाई नहीं पड़ता। यहां कोई नदी न रहनेके कारण जलका बहुत कष्ट है। दक्षिणी सीमा पर शतद्रु नदीकी एक प्राचीन खाई है, उसके आस-पासकी भूमि कुछ उर्वरा है। वर्षा ऋतुमें विशेष वर्षा होनेसे यह खाई भर जाती है, किन्तु ग्रीष्म ऋतुमें जलके अभावसे बिलकुल सूख जाती है। अम्बालासे ले कर सरहिन्द खाल तक पानीका अभाव कुछ दूर हुआ है। इस खाईकी दो शाखायें, जो इस जिलेके पश्चिम परगने के सामने बहती हैं, खेतीबारीके लिये बहुत सुविधा पहुंचाती है। जिलेके अधिकांश भाग बालुकामय मरुभूमिके समान है। कहीं कहीं हरियाली नजर आती है।

इस प्रदेशमें घना जंगल नहीं है। शतद्रुके प्राचीन गर्भके समीपवर्त्ती बेंत विभागके सिवाय और कहीं भी बड़े बड़े वृक्ष दिखाई नहीं पड़ते, सिर्फ ग्रामोंमें तलावोंके तट पर एक एक अशोक और वटवृक्ष दिखाई पड़ते हैं। बड़े बड़े वृक्षोंके अभावको दूर करनेके लिये सड़कोंके दोनों किनारे वृक्ष लगाये जा रहे हैं। यहां जगह जगह पर केंकड़े दिखाई पड़ते हैं। वहांके लोग उनका चूना बना कर बेचते हैं। वर्त्तमान लुधियाना नगर १५ सौ वर्ष पहले इस तरह गठित नहीं था। किन्तु इस जिलेके दूसरे दूसरे नगरोंका खण्डहर देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय यह खूब प्रसिद्ध था। वर्त्तमान लुधियाना नगरके समीप ही सुनेत नामक स्थानमें ईंट और पत्थरोंके बने अट्टालिकादि पूर्ण एक प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष नजर आता है। ये ध्वंसस्तम्भादि आज भी इस नगरकी प्राचीन समृद्धिका परिचय दे रहे हैं। भारतमें मुसलमानी आगमनसे पहले ही यहांके गौरव तथा कीर्त्तिकलापादि धीरे धीरे नष्ट हो चुके थे। यद्यपि आज प्राचीन हिन्दू राजधानी मत्स्यवाट नगरका सौन्दर्य

दृष्टिगोचर नहीं होता, तथापि इसकी समृद्धिका परिचय महाभारतमें दिया गया है।

मुसलमानोंके अधिकारमें, राजकोटके राजपूत रायवंशीय बड़े प्रतापी थे; किन्तु पीछे वे इस्लाम-धर्मको मान कर मुसलमान राजाके अनुग्रहपात्र बन गये। सन् १४४५ ई०में इस राजवंशने दिल्लीके शैयद-वंशीय राजासे यह प्रदेश जागीरस्वरूपमें प्राप्त किया था। १४८० ई०में दिल्लीके लोदी-वंशीय राजाओंके उद्योगसे लुधियाना नगर बसाया गया। पूर्वोक्त शुनेत नगरकी ईंट इत्यादि ले कर मुसलमानोंने इस नगरको बसाया था। आज भी कई अट्टालिकाओंमें अंगुल चिह्न-युक्त शुनेत नगरीकी प्राचीन ईंटें दिखाई पड़ती हैं।

सम्राट् बाबरने इस नगरको लोदी-वंशीय राजाके हाथसे छीन कर मुगल-राज्यमें मिला लिया। तभीसे ले कर १७६० ई० तक यह नगर मुगलोंके अधीन रहा। इसके बाद राजकोटके राजवंशने फिरसे इस नगरको अपने अधिकारमें कर लिया।

मुगल अधिकारमें यह स्थान दिल्लीके सूबा सरहिन्द सरकारके अधीन था। राजकोटके रायवंश इस समय इस जिलेके पश्चिम भागमें इजारादार थे। मुगलराज्यके अधःपतनके समय मुगल-राजाओंको शक्तिहीन देख कर राय राजा स्वाधीन हो गये। उन्होंने इस जिलेके अधिकृत भाग तथा फिरोजपुरको कुछ अंश ले कर एक स्वाधीन राज्य स्थापित किया।

१७६३ ई०में सिक्खोंने सरहिन्दको जीत लिया। उस समय इस जिलेका पश्चिम भाग छोटे छोटे राजाओंके अधिकारमें चला गया था। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें राजकोटके सिंहासन पर बालक राजाको देख कर सिख-सरदारोंने राजकोट-राज्य पर आक्रमण किया। इस समय दूसरा कोई उपाय न देख राजकोटके राजाने सौभाग्यान्वेषी भारतीय सामन्तराज जार्ज टामससे सहायता मांगी थी। १८०६ ई०में महाराज रणजित्‌सिंहने सिन्धुनदको पार करके इस विभागके सिख-सरदारोंको पराजित किया। इस समय राजकोट-राज्यके अधिकृत-राज्यको भी रणजित्‌सिंहने अपने हाथमें कर लिया था। रणजित्‌सिंहने राजकुमार तथा उनकी दोनों विधवा माताओंके भरण-पोषणके लिये सिर्फ दो ग्राम दान दिये थे।

सन् १८०६ ई०में रणजित्‌सिंहके तृतीय आक्रमणके बाद अंगरेजोंके साथ पञ्जाबके राजाकी जो सन्धि हुई थी, उससे रणजित्‌सिंह शतद्रु पार करके और अधिक राज्य हस्तगत नहीं कर सके। उक्त सन्धिके बाद अङ्गरेजोंने अपने अधिकृत राज्यकी रक्षाके निमित्त लुधियानामें एक सेना-निवास स्थापित किया। इस समय झिन्द-राज्यमें सेनावास स्थापित होनेके कारण अंगरेज लोग झिन्दराज्यको कर देनेके लिये बाधित हुए। १८३५ ई०में झिन्दराज्यके योग्य उत्तराधिकारीके अभावसे लुधियानाके चतुष्पार्श्ववर्त्ती कितने स्थान अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गये थे—जिससे वर्त्तमान लुधियाना जिलेकी उत्पत्ति हुई।

१८४६ ई०में प्रथम सिख-युद्धके बाद लाहोर राज्यका बहुलांश इस जिलेमें मिला लिया गया। तबसे इस नगरकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती आ रही है। इसके बाद सिख-लोगोंके शान्तिभाव धारण करने पर अंगरेजोंने इस स्थानसे सेनावास हटा दिया। १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोहके समय इस स्थानके डेपुटी-कमिश्नरने थोड़ी-सी सेना ले कर दिल्लीकी ओर बढ़नेवाले जालन्धरस्थ विद्रोही सेनाकी गति रोकनेकी चेष्टा की; किन्तु वे विद्रोही सेनासे पूरी तरह पराजित किये गये। १८७२ ई०में कूका-सम्प्रदायके कितने धर्म्मोन्मत्त व्यक्ति राजद्रोही बन कर यहां भारी अत्याचार करने लगे। अंग्रेजोंने उन विद्रोहियोंको यथोपयुक्त दण्ड दे कर उनके दलपति रामसिंहको अंग्रेजाधिकृत ब्रह्मराज्यमें कैद कर लिया। सिन्ध, पञ्जाब दिल्ली रेलपथ और सरहिन्दखालके विस्तारके साथ साथ इस स्थानकी शान्ति और समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ गई है। १८३९ ४२ ई०में प्रथम अफगान युद्धके बाद काबुल राज्यसे निकाले हुए सुलतान शाहसुजाके वंशधर इस नगरमें वास करते हैं।

लुधियाना, जगरावन, रायकोट, माच्छीवाड़ा, खान्ना और बहलोलपुर आदि नगरोंमें साधारणतः इस स्थानका वाणिज्य-परिचलित होता है।

इस जिलेमें ५ शहर और ८६४ ग्राम लगते हैं। जन संख्या ७ लाखके करीब है। अधिवासियोंमें हिन्दू और मुसलमान जाट जाति ही प्रधान हैं। राजपूत, गूजर, काश्मीर प्रभृति विभिन्न स्थानवासीको संख्या भी बिलकुल कम नहीं है। व्यवसायी श्रेणीमें क्षत्री और बनियेकी संख्या ही अधिक है।

यहां पशमी कपड़ेका यथेष्ट कारबार है। शाल, मोजा, दस्ताना, रामपुरी चादर प्रभृति नाना प्रकारके वस्त्र एवं खेस, लुंगा प्रभृति सूती कपड़े यहां तैयार हो कर बिकते हैं। इनके अलावा असबाव, गाड़ी और कमान बन्दूक प्रभृति तैयार करनेके लिये यहां बड़े बड़े कार खाने हैं। पक्की सड़क तथा रेलपथ द्वारा प्रधानतः यहांका वाणिज्य-कार्य परिचालित होता है।

विद्या-शिक्षामें इस जिलेका स्थान अठाईस जिलोंमें चौथा आया है। अभी कुल मिला कर २५ सिकेण्ड्री, १०४ प्राइमरी, २० मिडिल, २ स्पेशल, ८ उच्च श्रेणीके तथा ८० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। लुधियाना शहरमें दो मिशन हाई-स्कूल हैं। इनके सिवा एक टेकनिकल स्कूल भी है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ३४' से ३१° १' उ० तथा देशा० ७५° ३६' से ७६° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६८५ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीब है। इसमें लुधियाना नामक १ शहर और ४३२ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेको प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० ३०° ५६' उ० तथा देशा० ७५° ५२' पू० शतद्रु नदीके वाएं किनारे अवस्थित है। यहां सिन्धु पञ्जाव-रेलपथका एक स्टेशन रहनेसे स्थानीय वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हो गई है।

नगरके उत्तर एक बड़े मैदानमें यहांका किला अवस्थित है। सिपाही युद्धके बाद इस स्थानको साफ सुथरा कर एक विस्तृत मैदानमें परिणत किया गया है। दिल्लीके लोदी-राजवंशके कुसुफ और निहङ्ग नामक दो राजकुमारोंने १८४० ई०में यह नगर बसाया। १७६० ई०में मुगल-राजसरकारसे यह रायकोटके रायोंके दखलमें आया। १८वीं सदीके शेष भागमें रणजित्‌सिंहने यह नगर जीत कर भिन्दके हाथ अर्पण किया। (१८०६ ई०)।

शतद्रु-प्रवाहित सामन्तराज्योंके पलिटिकल एजेण्ट जेनरल अक्टरलोनीने यह नगर दखल कर स्थायी सेना-निवास स्थापन किया था। किन्तु भारत गवर्मेण्टने इस अवैध आचरणके क्षतिपूरण-स्वरूप भिन्दराजको काफी रुपये दिये थे। १८३४ ई०में भिन्द-राजवंशधरके प्रकृत उत्तराधिकारीके अभावमें उनका राज्य अङ्गरेज-गवर्मेण्टके शासनभुक्त हुआ। तभीसे यह नगर अङ्गरेजी-सेनाकी एक छोटी छावनीरूपमें गिना जाने लगा था। १८५४ ई०में यहांसे सेनादल उठ कर दूसरी जगह चला गया, केवल एक दल दुर्गरक्षाके लिये रह गया है। मुसलमान साधु शेख अवदुल काहिदर ई जलानीके पवित्र तीर्थमें गये। यहां प्रतिवर्ष एक मेला लगता है। इस समय सैकड़ों हिन्दू मुसलमान तीर्थयात्री यहां इकट्ठे होते हैं। शहरमें मुसलमान, पठान और कश्मीरियोंकी ही संख्या अधिक है। कश्मीरी प्रतिवर्ष दो लाख रुपयेका शाल बनाते हैं। यहां लड़कीकी अच्छी अच्छी चीजें बनती हैं। हालमें एक मैदेका कारखाना खुला है। शहरमें चार ऐङ्गलोवर्नाक्युलर हाई स्कूल हैं। इसके सिवा एक अस्पताल और छापाखाना भी है।

लुनना (हिं० क्रि०) १ खेतकी तैयार फसल काटना, खेत काटना। २ दूर करना, हटाना।

लुनाई (हिं० स्त्री०) लावण्य, सुन्दरता, खूबसूरती।

लुनेरा (हिं० पु०) १ खेतकी फसल काटनेवाला, लुननेवाला। २ एक जाति जिसे लोनिया या नोनिया भी कहते हैं। यह जाति पहले नमक निकालती थी।

लुन्ही (हिं० स्त्री०) मज कर तैयार लपेटी हुई पाई।

लुप (सं० पु०) लुप् छेदे-क्विप्। लोप।

लुप्त (सं० क्ली०) लुप-क्त। १ चौर्य्यधन, चोरीका माल। (त्रि०) २ अन्तर्हित, छिपा हुआ। ३ अदृश्य, गायब। ४ नष्ट।

लुप्तविसर्गता (सं० स्त्री०) साहित्यदर्पणके अनुसार एक प्रकारका दोष।

लुप्तोपम (सं० त्रि०) उपमाशून्य, जिसमें उपमा न हो।

लुप्तोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद, वह उपमा

अलङ्कार जिसमें उसका कोई अंग लुप्त हो अर्थात् न कहा गया हो। उपमा देखो।

लुवरी (हिं० स्त्री०) किसी तरल पदार्थके नीचेकी बैठी हुई मैल, तरौंछ, गाद।

लुब्ध (सं० त्रि०) लुभ-क्त। १ आकांक्षायुक्त, लोभयुक्त। पर्याय—गृध्नु, गर्द्धन, अभिलाषुक, तृष्णक्। २ मोहित, तन मनको सुध भूला हुआ। (पु०) ३ व्याध, बहेलिया।

लुब्धक (सं० पु०) लुब्ध एव स्वार्थे कन्। १ व्याध, बहेलिया। २ लम्पट। ३ उत्तरी गोलार्द्धका एक बहुत तेजवान् तारा।

लुब्धता (सं० स्त्री०) लुब्धस्य भावः तल्-टाप्। लुब्धका भाव या धर्म, लोभ।

लुब्धापति (सं० स्त्री०) केशवके अनुसार प्रौढ़ा नायिकाका चतुर्थ भेद, वह प्रौढ़ा नायिका जो पति और कुलके सब लोगोंकी लज्जा करे।

लुब्बलुवाव (अ० पु०) १ गूदा, सार। २ किसी बातका तत्त्व, सारांश।

लुभाना (हिं० क्रि०) १ लुब्ध होना, मोहित होना। २ मोहमें पड़ना, तन मनकी सुध भूलना। ३ लालसा करना, लालचमें पड़ना। ४ लुब्ध करना, मोहित करना। ५ सुध बुध भुलाना, मोहमें डालना। ६ प्राप्त करनेकी गहरी चाह उत्पन्न करना, ललचाना।

लुभित (सं० त्रि०) लुभ-क्त। १ विमोहित, लुभाया हुआ। २ विरक्त, जिससे चाह न हो।

लम्बिका (सं० स्त्री०) वाद्ययन्त्रभेद, एक प्रकारका बाजा।

लुम्बिनी (सं० स्त्री०) कपिलवस्तुके पासका एक वन या उपवन जहां गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

लुरका (हिं० पु०) झुमका।

लुरकी (हिं० स्त्री०) १ कानमें पहननेकी बाली, मुरकी। २ लुदकी देखो।

लुरिस्तान—पारस्यके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह अक्षा० ३१ से ३४°५' उ० फार राज्य सीमासे पश्चिम कर्मनाशा तक विस्तृत है। इसके मध्य हो कर दिजफुल नामक नदी बह गई है। इस नदीके दक्षिणस्थित बखतियारीका पार्वत्य क्षेत्र लुरि-बुजुर्ग तथा आसिरीय प्रान्तर तक विस्तृत नदीके उत्तर लुरि-कुच्छुक नामसे प्रसिद्ध है।

इस विस्तीर्ण भूखण्डमें लुर नामक एक पहाड़ी जातिका वास है। उन लोगोंके मध्य कोघिलु लेक और खुर्द नामक कई शाखाएं हैं। किन्तु शीतकालमें वे पर्वतका परित्याग कर दिजफुल अथवा आसिरीय समतलक्षेत्रमें उतरते हैं तथा वहांके तुर्किस्तान सीमान्तस्थित भ्रमणकारी अरब और तुर्क जातिके साथ ऐसे मिल जाते हैं, कि वे अरबी और तुर्कजातिसे मालूम होते हैं। वे लोग महम्मद तथा उनके चलाये कुरान शास्त्रका आदर नहीं करते। एकमात्र बावा बुजुर्ग तथा दूसरी सात पवित्रात्माकी उपासना करते हैं। उनके बहुतसे क्रियाकलापोंमें महम्मदके पूर्ववर्त्ती संस्कारका निदर्शन पाया जाता है। उन लोगोंके मध्य शकजातिके उपास्य मिथ् और अनाहिता देवताकी उपासना देखी जाती है। इस पूजाके लिये वे रातको इकट्ठे हो कर भौतिक आचारादिका अनुष्ठान करते हैं।

लुरि कुछुक वा उत्तर विभागके पेष-को जिलेमें शिलासिले, दिलफुल, आमलह और बालखेरिवे (बालग्रीव) नामक चार शाखाका वास है। उनमेंसे प्रथमोक्त दो लेक शाखासे उत्पन्न हुई हैं। बाकी दो लुर कहलाती हैं। शिलाशिले और दिलफुलोंके मध्य प्रायः ३० हजार घर हैं। शिलाशिलेगण अत्यन्त पराक्रमी और युद्धविद्यामें सुनिपुण हैं। वे सहजमें वशीभूत नहीं किये जा सकते।

वर्त्तमान काजरवंशके प्रतिष्ठाता आला महम्मद खांके आदेशसे अमलाहोंने स्वदेशका परित्याग कर फार राज्यमें उपनिवेश बसाया है। तभीसे उनकी संख्या बहुत घट गई है। आला महम्मदकी मृत्युके बाद उनमेंसे कितने उपनिवेशका परित्याग कर स्वदेश चले गये। किन्तु वे अभी पहले जैसे वीर्यशाली नहीं हैं। भ्रमणकारी De Bode ने पार्सिपोलिस प्रान्तरस्थ हस्ताखर पर्वतके नीचे आमलाह शाखाके एक विभागका वास देखा था। वे उन्हें बीभत्स भौतिक आचारके उपासक बता गये हैं। वे लोग किसी राजशक्तिकी वश्यता स्वीकार नहीं करते। किन्तु मीठी मीठी बातोंसे जिस किसी कार्यमें उन्हें लगाया जाय, वे बड़ी खुशीसे उसे कर डालते हैं।

लूर शाखा भी दूसरे किसीका अत्याचार वा

उत्पीड़न सह्य करना नहीं चाहती। यदि कोई राजा उन पर बलप्रयोग करे वे उसी समय उनसे लड़ाई करने तय्यार हो जाते हैं। वालग्रीव शाखाके मध्य प्रायः ४ हजार लोगोंका वास है। वे लोग बड़े अत्याचारी और दुर्द्धर्ष होते हैं। पार्श्ववर्त्ती देशवासियोंको ये हमेशा तंग किया करते हैं।

पुस्त-इ-कोह वा आग्रास शैलवासी लुर जातिकी एक शाखा फइली कहलाती है। उन लोगोंके मध्य खुर्द, दिनारवेद, सुहोन, कलहर बद्राई और मकि नामक कई विभाग हैं। खुजिस्तान प्रदेशमें भी फेइली जातिका वास है। ऐतिहासिक रलिनसनके मतसे इस जातिमें १२ हजार आदमी है। पुष-कोह और पुस्त इ-कोहवासी नामो डकैत हैं। उन लोगोंके उपद्रवसे भ्रमणकारी, व्यवसायी अथवा तीर्थयात्रिगण गमनागमन करने नहीं पाते। पथिकके पास एक कौड़ी रहने पर भी वे उसे वेधड़क छीन लेते हैं। कभी कभी उसे यमपुर भेज कर ही निश्चिन्त होते हैं। सारे लुरिस्तानमें प्रायः ५ हजार घुड़सवार और २० हजार बन्दूकधारी सेना हैं। यह सब पहाड़ी सेना जरूरत पड़ने पर एकत्र हो कर आततायी पर आक्रमण करती है।

फेइलि लोग बखतियारोंकी तरह नर-रक्तसे पृथ्वीको कलुषित करना तथा पापपङ्कमें लिप्त होना नहीं चाहते। वे बहुत कुछ सभ्य और दयालु होते हैं। पेष कोह और पुस्त-इ-कोह पर्वतवासीको छोड़ कर बुरुजिलु और खोरेमवादके मध्यवर्त्ती हुक प्रान्तरमें बजिलान और वेहरानेवेनेद नामक दो जातिका वास हैं। वह लेक शाखासे उत्पन्न हुई है।

लुरी (हिं० स्त्री०) वह गाय जिसे बच्चा दिये थोड़े ही दिन हुए हों।

लुलन (सं० पु०) आन्दोलित होना, झूलना।

लुलाप (सं० पु०) लुल्यते इति लुल विमर्दने भिदादित्वात् अङ्, ललां आप्नोतीति आप-अण्। महिष, भैंसा।

लुलापकन्द (सं० पु०) लुलाप्रियः कन्दः, मध्यपदलोपिकर्मधा०। महिषकन्द, भैंसा कंद।

लुलापकान्ता (सं० स्त्री०) लुलापस्य कान्ता। महिषी, भैंस।

लुलाय (सं० पु०) महिष, भैंसा।

लुलित (सं० त्रि०) लुल क्त। १ आन्दोलित, लटकता या झूलता हुआ। २ विकीर्ण, चारों ओर फैला या छितराया हुआ। ३ व्यस्त। ४ म्लान, थका हुआ। ५ उन्मूलित, उखाड़ा हुआ। ६ खण्डित, टुकड़ा किया हुआ। ७ विध्वस्त, नष्ट किया हुआ।

लुवाना—मध्यभारतमें बसनेवाली कृषिजीवी एक जाति। हल जोतना तथा अनाज बुनना, रोपना, काटना और ढोना इसका प्रधान कार्य है। यह जाति गुजरात प्रदेशसे आ कर दक्षिण-भारतके नाना स्थानोंमें तथा पञ्जाब विभागकी इरावती नदीके तट पर बस गई है। इस जातिके लोग शान्त और निर्विरोध होते हैं तथा शूद्र श्रेणीमें गिने जाते हैं।

लुश (सं० पु०) ऋङ्मन्त्रद्रष्टा एक ऋषिका नाम। इन्होंने ११।५ ३६ सूक्त संकलन किया।

लुशई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चाय जो आसाम और कछारमें होती है।

लुशाकपि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (पञ्चविंश-ब्राह्मण १७।४।३)

लुषभ (सं० पु०) रोषतीति रुष हिंसायां (रुषेर्न्निल्लुपश्च। उण् २।१२४) इति अभच्, लुषादेशश्च धातोः। मत्तहस्ती, पगला हाथी।

लुसाई पर्वतमाला—भारतवर्षके उत्तर-पूर्व सीमान्तस्थित एक पार्वत्य प्रदेश। यह प्रदेश आसाम प्रदेशके किनारेके जिलेके दक्षिणसे चट्टग्राम जिलेकी पूर्वी सीमा तक फैला हुआ है। इस पार्वत्य-विभागके पूर्व, ब्रह्मराज्यके अन्तर्गत एक बहुत विस्तृत पर्वतमय भूखण्ड है। उस भूखण्डमें किन जातियोंका वास है, आज तक पता नहीं चला है। कोई भी भ्रमणकारी उस बनमालापूर्ण तथा वन्य जंतुसंकुल पार्वत्यपथसे अग्रसर हो कर उन दुर्द्धर्ष पार्वतीयगणके साथ मिलनेका साहस नहीं करते।

इस लुसाई पर्वत पर कई तरहकी जंगली जातियां वास करती हैं। इनमें बलवीर्यसम्पन्न कुकी तथा लुसाई जाति सबसे अधिक साहसी हैं। वे लोग अंग्रेजीराज्यके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेमें भी नहीं डरते। कुकी जातिके वन्य-विक्रम तथा तीरोंके अव्यर्थ सन्धानका परिचय

अंग्रेजोंको आसामके युद्धमें पूरी तरह हो गया था। १८७१-७२ ई०में लुसाईके आक्रमणसे अंग्रेजो सेनादलमें जिस तरह खलवली मच गई थी, वह इतिहास पाठकवर्ग-से छिपी नहीं है।

इस पर्वतके आदि निवासो ही प्रधानतः लुसाई जातिके नामसे परिचित हैं। पर्वतकी तराईमें वास करनेके कारण उनकी भिन्न भिन्न जातियां वन गई हैं। ये नाम उनके प्रधान सरदारोंके नाम पर ही रखे गये हैं। लुसाई पर्वतके सर्व्वोत्तर भागमें अर्थात् मणिपुर तथा नागापहाड़के मध्यभागमें कोइरेयिं जातिका वास है। उसके दक्षिण भागमें कुपुई जातिके लोग रहते हैं जो मणिपुर राज्यकी प्रजामें गिने जाते थे। अङ्गरेजोंके मणिपुर हस्तगत करनेके वाद ये अंग्रेजी राज्यके अधीन हो गये हैं। कछाड़के दक्षिणस्थ पहाड़ी भागमें असल लुसाइयोंका वास है। ये लुसाईगण तीन प्रधान प्रधान सरदारोंके अधीन तथा तीन स्वतन्त्र नामसे पुकारे जाते हैं। चट्टग्रामके सीमान्तमें लुसाई जातिकी जितनी शाखायें हैं, उनमें हौलोंग, साइलू तथा थङ्गलोवागण ही प्रधान हैं। ये लोग सर्व्वदा भ्रमण करते रहते हैं, कभी एक जगह वास नहीं करते। शत्रुओंके आक्रमणसे वचने अथवा भूमिको उर्व्वरतादिके सम्बन्धमें असुविधा जान कर ये अपनी वासभूमि परित्याग करके स्वच्छन्दतापूवक अन्य स्थानमें वसा करते हैं। लुसाई सीमान्तमें इस तरह किम्वदन्ती है, कि ब्रह्मराज्यके पूर्वकथित पार्व्वत्य प्रदेशवासी सोकि जातिके आक्रमण तथा उपद्रवसे प्रपीड़ित हो कर लुसाईगण पर्वतका पूर्व्वांश परित्याग कर-के दक्षिण तरफ अंगरेजोंके अधीन सीमान्त प्रदेशमें आ कर वस गये हैं।

आसाम-सीमान्तवासी अन्यान्य पार्व्वत्य जातियोंके साथ लुसाइयोंका अनेक विषयमें पार्थक्य दिखाई पड़ता है। उन लोगोंके वीचमें एक एक सर्दार रहते हैं। ये सर्दार वहां पुरुषानुक्रमसे अपने राजपदके अधिकारी हैं। प्रत्येक लुसाई-ग्राममें एक एक 'लाल' रहते हैं। वे ही दलके नेता वन कर विपक्षोंके साथ युद्ध करते हैं। लाल सर्दार-गण साधारणतः किसी राजवंशके ही होते हैं। प्रजा इच्छापूर्वक उनकी आज्ञा पाती हैं एवं वे ही ग्रामके हर्त्ताकर्त्ता माने जाते हैं। ये लाल सर्दार सीमान्तसे लूट कर जितना धन संग्रह कर सकते हैं उनके दलमें उतनी ही अनुचरकी संख्या वढ़ती है। सर्दारगण अवस्थानुसार क्रीतदास रखते हैं। वे उन लोगोंको युद्धमें विपक्षी-पक्षसे वन्दी कर लाते हैं। क्रीतदासके अलावा ग्रामस्थ प्रजाएं अपने अपने परिश्रमके लब्ध धनमेंसे सरदारको भाग दिया करती हैं।

लुसाईगण जंगल काट कर झूम-प्रथानुसार धान्यादिकी खेती करते हैं। युद्धविग्रह तथा वन्य-पशुका शिकार ही उन लोगोंकी अन्यतम उपजीविका है। वे लोग 'गयाल' नामकी गाय, पार्वतीय छाग, शूकर तथा अन्यान्य गृहपालित पशु पालन करते हैं। वे इन गयालोंको देवपूजामें उत्सर्ग किया करते हैं।

पुरुष लोग ही गृहस्थोका काम करते हैं। वे खदिर-गोंद, हस्तिदन्त, जंगली रूई तथा मोम ले कर पर्व्वत-प्रान्तस्थित अंगरेजाधिकृत नगर वा वाजारमें जा कर वेचते हैं एवं उसके वदले चावल, लवण, तम्वाकू तथा पीतलके वर्त्तन, सूती कपड़े एवं चांदी खरीद लाते हैं। वे 'पूरी' नामक एक प्रकारको मोटा कपड़ा तैयार करके अपने पहननेके काममें लाते हैं तथा वाजारमें जा कर वेचते हैं। स्त्रियां अलंकार पहनना वहुत पसन्द करती हैं। कर्णालङ्कार पहननेके लिये रमणियां कानके निम्नस्थ मांसखण्डमें छिद्र करके उसमें हस्तिदन्त या काष्ठ-खण्ड डाले रहते हैं। यह छिद्र कभी कभी इतना वढ़ जाता है, कि उससे मुखाकृति विलकुल भद्दी मालूम पड़ने लगती है। पुरुषगण दृढ़काय तथा मांसल होते हैं, किन्तु उनकी मुखाकृति सर्वदा ही विरक्तिकर तथा उग्रभाव व्यञ्जक होती है।

वहुत दिनोंसे लुसाई जाति अङ्गरेजोंके अधिकृत राज-में आ कर दस्युवृत्तिकी पराकाष्ठा प्रदर्शन करते आ रही है। लूटके समय वे असंख्य नरहत्या करते हैं और उन-के शिर काट ले जाते हैं। अन्त्येष्टिक्रियाके समय नर-मुण्ड दान करनेसे प्रेतात्माको सद्गति प्राप्त होगी, इस भ्रान्त विश्वासके वशवर्त्ती हो कर वे इस तरहके अमानुषिक अत्याचार करते हैं। कछाड़, श्रीहट्ट, त्रिपुरा, चट्टग्राम, पार्व्वत्य त्रिपुरा तथा मणिपुर अधीनस्थ सामन्त

राज्योंमें कभी कभी दल बांध कर उतर आते हैं और नर-रक्तसे पृथ्वीको प्लावित कर देते हैं। सन् १७७७ ई०में भारतके सर्वप्रथम गवर्नर जेनरल वारेन हेष्टिंग्सके राजत्वकालमें कूकी लोगोंके इस तरहके प्रथम उपद्रवकी बात सुनी जाती है। उस समय चट्टग्रामके एक सर्दारने कूकी लोगोंके अत्याचारसे अपनी प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो कर अंगरेज-प्रतिनिधिसे एक दल सिपाही सेनाके लिये प्रार्थना की थी। सन् १८४६ ई०में कछाड़ सीमान्तमें आ कर एक दल लुसाई जब स्वाधीन जाति वर्गसे आक्रान्त हुए, तब वे 'बराक' नदीको पार कर उत्तरमें जा कर बस गये। इन लुसाइयोंने अभी शान्त-भाव धारण कर लिया है और वे अंगरेजी-प्रजा गिने जाते हैं। वे लोग आज भी 'पुरातन कूकी' नामसे पुकारे जाते है।

१८५० ई०में वे पुनः त्रिपुरा जिलेमें आये और १८६ बंगाली ग्रामवासियोंको मार कर तथा प्रायः सौसे अधिक लोगोंको बन्दी कर ले गये। अंगरेज गवर्मेण्ट इन उपद्रवोंका दमन करनेमें लिये समय समय पर सिपाही सेनादल भेजती तो थी, पर व्यर्थ। क्योंकि पहाड़ी रास्ता दुरारोह था और उन्हें पहाड़ी गुफाओंके अन्दर छिपने का अभ्यास था। इस कारण सिपाहीसेना उनका पीछा करके भी कोई विशेष फल प्राप्त न कर सका।

सीमान्त प्रदेशमें लुसाई जातिका उपद्रव जब शान्त न हुआ तब भारत-गवर्मेण्ट बड़ी उत्कण्ठित हुई। १८६६ ई०में उन लोगोंके विरुद्ध एक आक्रमण करने पर भी कार्य्यतः कोई फल नहीं हुआ। पार्वत्य प्रदेश शत्रुके लिये अगम्य समझ कर एवं अङ्गरेजी-सेना उन लोगोंका पीछा करके भी कुछ कर नहीं पाती है, ऐसा देख कर लुसाईदल क्रमशः स्पर्द्धित हो उठे। १८७१ ई०के जनवरी महीनेमें उन्होंने अनेक दलोंमें विभक्त हो कर कछाड़, श्रीहट्ट तथा त्रिपुरा जिलेके एवं स्वाधीन मणिपुर राज्यके कई ग्रामों पर आक्रमण किया। कछाड़में उनके एक दलने हौलोंग आलेकजान्द्रापुरका चायबागान लूट लिया। दोनों पक्षके विरोधसे अंगरेज अध्यक्ष 'चा-कर' निहत हुए तथा उनकी कन्या मेरी विनचेष्टर बन्दी हो गई। नणियारखाल थानाके प्रहरीगणके साथ एक दूसरे लुसाईदलका दो दिन तक युद्ध हुआ। अन्तमें लुसाई-गण रणजयी हो कर धनरत्न, बन्दूक, कमान लूट कर तथा बहुसंख्यक कुलियोंको बन्दी करके चले गये।

इस संवादको पा कर भारत-प्रतिनिधि लार्ड मेव अत्यन्त उत्तेजित हो उठे। उन्होंने लुसाईके उपद्रवसे अङ्गरेजी सीमान्तप्रदेशको निष्कण्टक करनेके अभिप्रायसे युद्धयात्राका आयोजन किया। तदनुसार प्रधान सेनापति लार्ड नेपियरके अधीन एक सेनादल गठित हुआ। उसमें दो दल गोर्खा, दो दल पञ्जाबी तथा दो दल बंगदेशीय पदातिक सैन्य, दो दल खनक तथा एक दल पर्वतभेदी पेशावरी सैन्य सज्जित हुए। सेना दो भागोंमें विभक्त की गई। जेनरल बुचियार कछाड़पथसे एवं जेनरल ब्राउनलो चट्टग्राम पथसे एक एक दलके साथ आगे बढ़े। कछाड़-सेनादलने उक्त वर्षके नवम्बर महीनेमें शिलचरसे अग्रसर हो कर तिपाई मुख नामक स्थानमें प्रवेश किया। उन्होंने ११० मील पर्यन्त वनभागमें अग्रसर हो कर लुसाई जातिको पुनः पुनः युद्धमें विपर्य्यस्त कर डाला। चट्टग्रामकी सेनाने भी इसी तरह ८३ मील अग्रसर हो कर लुसाई सर्दारको वशीभूत किया था। लुसाई सर्दारगणके अङ्गरेजोंका आनुगत्य स्वीकार करने पर, सेनाविभागके अधिकारिवर्गने प्रायः ३००० वर्गमील भूमि त्रिकोणमिति प्रथासे अवधारित कर लिया था। इस समयसे चट्टग्राम तथा कछाड़का संयोगपथ परिष्कृत हो गया। 'चा-कर' की कन्या 'मेरी विनचेष्टर' तथा प्रायः सौसे अधिक अङ्गरेजी प्रजा बन्धनमुक्त हुई। इस युद्धमें अङ्गरेजी पक्षमें विशेष क्षति हुई। पर्वतमें रहते समय बहुसंख्यक सेनाओंने विसूचिकारोगसे प्राणत्याग किया। इस युद्धके बादसे लुसाई जातिने शान्ति धारण कर लिया। तभीसे वे लोग समतल भूमिवासी लोगोंके साथ व्यापार करते आ रहे हैं। इस व्यापारके विस्तारसे तिपाई-मुख लुसाई-हाट तथा झालुयाचारा नामक स्थानोंमें तीन प्रसिद्ध बाजार स्थापित हो गये हैं। ये तीनों नगर पर्वतगातवाही नदियोंके तट पर अवस्थित हैं। इसी तरह चट्टग्राम सीमान्त तथा देमागिरि, कसलंग, रांगामाटी आदि स्थानोंमें बाजार लगाया गया है। लुसाई सर्दारगणके

साथ अभी भी सद्भावके साथ वाणिज्यकार्य परिचालित होता है।

१८८३ ई०में चट्टग्रामके पार्वत्य सीमान्तमें लुसाई-दल रांगामाटी नदीमें सिपाहियोंकी दो नौकाओं पर आक्रमण किया। एक सिपाही आहत तथा एक मारे गये। वे लोग नौकास्थित धन तथा वस्त्रादि ले कर चम्पत हुए। लोगोंकी धारणा है, कि लुसाई जातिने अपने चिरशत्रु हौलोंग जातिके ऊपर अङ्गरेजोंकी कोप-दृष्टि पड़े, इसलिये सेन्दूजातिको अत्याचार करनेके लिये उभाड़ा था। अङ्गरेजोंने गुप्त रीतिसे इस वातका पता लगा कर भी विश्वास नहीं किया। इस विरोधी जातिसे छुटकारा पानेकी आशासे उन्होंने केवल सीमान्तस्थित थानाकी वलवृद्धि कर एवं अङ्गरेजी पक्षके ग्रामवासियोंको वन्दूक तथा वारूद दे कर अपनी आत्मरक्षाका उपाय निर्देश कर दिया था। १८८४ ई०के जनवरी महीनेमें चट्टग्राम पार्वत्य प्रदेशके डेपुटी कमिश्नरने रांगामाटीमें एक दरवार तथा मेलाका अनुष्ठान किया। उसमें प्राय सभी लुसाई-सर्दारगण इकट्ठे हुए थे। केवल दो प्रधान हेउलोङ्ग-सर्दार उपस्थित नहीं हुए। उक्त वर्षमें आसाम तथा चट्टग्राम सीमान्तमें लुसाइयोंके पुनराक्रमणका हल्ला हुआ, किन्तु वे लोग फिर कभी भी उपद्रव करनेमें साहस नहीं कर सके।

लुहार (हिं० पु०) १ लोहेका काम करनेवाला, लोहेकी चीजें वनानेवाला। २ वह जाति जो लोहेकी चीजें वनाती है।

लुहारिन् (हिं० स्त्री०) लुहार जातिकी स्त्री।

लुहारी (हिं० स्त्री०) १ लुहार जातिकी स्त्री। २ लोहेकी वस्तु वनानेका काम।

लू (हिं० स्त्री०) गरमीके दिनोंकी तपी हुई हवा, गरम हवाका लपट-सा झोंका।

लूक (हिं० स्त्री०) १ अग्निकी ज्वाला, आगकी लपट। २ पतला लकड़ी जिसका छोर दहकता हुआ हो, लुत्ती। ३ गरमीके दिनोंकी तपी हवा, तप्त वायुका झोंका जो शरीरमें लपटकी तरह लगे, लू। ४ टूटा हुआ तारा, उल्का।

लूका (हिं० पु०) १ अग्निकी ज्वाला, आगकी लौ या लपट। २ पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हो, लुत्ती। ३ मछली फँसानेका एक प्रकारका जाल।

लूक्ष (सं त्रि०) रुक्ष, लक्ष्य रत्वं। रूक्ष, रूखा।

लूघा (हिं० पु०) कब्र खोदनेवाला, गोरकन।

लूट (हिं० स्त्री०) १ वलात् अपहरण, किसीके मालका जवरदस्ती छीना जाना, डकैती। २ लूटनेसे मिला हुआ माल, अपहृत धन।

लूटक (हिं० पु०) १ जवरदस्ती छीननेवाला, लूटनेवाला। २ डाकू, लुटेरा। ३ कान्ति हरनेवाला, शोभामें वढ़ जानेवाला।

लूटखूंद (हिं० स्त्री०) लोगोंको मारने और उनका धन छीननेका व्यापार, डाका और दंगा, लूट-मार।

लूटना (हिं० क्रि०) १ वलात् अपहरण करना, जवरदस्ती छीनना। २ वरवाद करना, तवाह करना। ३ धोखेसे या अन्यायपूर्वक किसीका धन हरण करना, अनुचित रीतिसे किसीका माल लेना। ४ मोहित करना, वशीभूत करना। ५ वहुत अधिक मूल्य लेना, ठगना।

लूत—यहूदियोंके एक पुराने पैगम्बरका नाम।

लूता (सं० स्त्री०) लुनातीति लू वाहुलकात् तन्, गुणाभावश्च। १ कीटविशेष, मकड़ा। पर्याय—तन्तुवाय, ऊर्णनाभ, मर्कटक, मर्कट, लूतिका, उर्णनाभ, शनक, तन्तवाय। २ रोगविशेष। पर्याय—मर्मव्रण, वृक्का। (राजनि०)

लूताके काटनेसे यह रोग होता है, इसीसे इसको लूतारोग कहते हैं। वैद्यकशास्त्रमें लूताकी उत्पत्ति, दंशन और औषधादिका विषय लिखा है। एक दिन राजा विश्वामित्र वशिष्ठ मुनिके आश्रममें गये। वहां दोनोंमें वातचीत चलने लगी। वशिष्ठ विश्वामित्र पर वड़े विगड़े क्रोधसे वशिष्ठके गालसे तीक्ष्ण तेजोविशिष्ट पसीना टपकने लगा। गायके लिये जो घास वहां काट कर जमा की गई थी, उसी पर पसीना गिरा। पीछे उसीसे अनेक प्रकारकी वहुत जहरीली भयङ्कर लूता उत्पन्न हुई। मुनिके पसीनेके घास पर गिरनेसे यह कीट उत्पन्न हुआ था, इसीसे इसका लूता नाम हुआ है।

लूताका विष वहुत कड़ा होता है। मन्द वुद्धिवाले चिकित्सक इसकी गति सहसा समझ नहीं सकते।

विष है या नहीं ऐसा सन्देह होने पर औषध इस प्रकार सेवन कराना होगा जिससे कोई दूसरा दोष उत्पन्न न होने पावे। विषार्त्त रोगीके लिये ही औषध गुणकारी है। विषहीन शरीरमें सुखसेव्य औषधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। अतएव विष है या नहीं पहले इसका पता लगाना परमावश्यक है। इसका पता लगाये विना औषधका प्रयोग करनेसे रोगीके जीवननाशकी सम्भावना है।

जिस प्रकार अंकुरमात्रके उत्पन्न होनेसे किस जातिका वृक्ष है, यह जाना नहीं जाता, उसी प्रकार लूताविषके शरीरमें फैलते ही किस जातिकी लूताका विष है, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। पहले दिन शरीरमें कण्डुयुक्त प्रसारणशील, मण्डलाकार और अस्पष्ट वर्णविशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। दूसरे दिन उन सब मण्डलाकारोंका मध्यस्थल निम्न और चारों ओरका अन्तर्भाग सूज आता है तथा जैसा वर्ण होता है वह स्पष्ट जाना जाता है। तीसरे दिन किस जातिकी लूताका विष है, इसका पता लग जाता है। चौथे दिन विषका प्रकोप होता है। पांचवें दिनसे विषके प्रकोपसे विकार उत्पन्न होते हैं। छठे दिन विष सञ्चारित हो कर सारे मर्मस्थानको ढक लेता है। सातवें दिन विष बहुत बढ़ जाता और सारे शरीरमें फैल कर प्राणनाश करता है। इस प्रकार सात रातके मध्य केवल लूताके तीक्ष्ण विषसे ही प्राणनाश होता है। जिन सब लूताओंका विष मध्यमवीर्यविशिष्ट होता है, उनके काटनेसे सात रातके बाद प्राण जाते हैं। जिनका मन्द विष है उनके काटनेसे पन्द्रह दिनके भीतर मृत्यु होती है। इन सब कारणोंसे दंशन अथवा शरीरमें विष घुसते समय यत्नपूर्वक विषनाशक औषधका प्रयोग करना आवश्यक है। राल, नख, मूल, दांत, रज, पुरीष और शुक्र इन सात प्रकारोंसे लूताका विष निकलता है। यह विष तीन प्रकार वीर्यविशिष्ट होता है, उग्र, मध्य और मन्द।

लूताकी रालसे ये सब लक्षण होते हैं। खुजली होती, वह स्थान कठिन हो जाता और बहुत कम दर्द करता है। नखके काटनेसे वह स्थान सूज आता और खुजली होती है। उस स्थानसे अग्निशिखाकी तरह उत्ताप निकलता है। मूत्रसे दुष्ट स्थानका मध्यस्थल काला और अन्तर्भाग लाल होता है तथा वह स्थान फट जाता है। दांतसे काटनेसे वह स्थान कठिन और विवर्ण हो जाता है तथा शरीरमें चकत्ते पड़ जाते हैं। वे सब चकत्ते फैलते नहीं, एक-से रहते हैं। लूताके रज, पुरीष और शुक्रके संस्रवसे पके पीलू-फलकी तरह फोड़े निकलते हैं।

साधारणतः लूताका विष दो प्रकारका होता है, कष्टसाध्य और असाध्य। असाध्य लूता-विषमें किसी प्रकारकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। चिकित्सा करनेसे कोई फल नहीं होता, इसीसे इसको असाध्य कहते हैं। त्रिमण्डला, श्वेता, कपिला, पीतिका, अलिविषा, मूत्रविषा, रक्ता और कसना ये आठ प्रकारके लूताविष कष्टसाध्य हैं। इनके काटनेसे मस्तकमें पीड़ा, कण्डू और काटे हुए स्थानमें वेदना होती है तथा वातश्लेष्मजन्य अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं।

सौवर्णिका, लाजवर्णा, जालिनी, एणीपदी, कृष्णा, अग्निवर्णा, काकाण्डा और मालागुणा ये आठ प्रकारके लूताविष असाध्य हैं। इनके काटनेसे काटे हुए स्थानमें फोड़ा निकलता और उसमेंसे खून बहता है। स्वेद, दाह, अतिसार और सन्निपातजन्य अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं। विविध प्रकारके फोड़े और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

लूताविषकी चिकित्सा।

त्रिमण्डलाके काटनेसे काटे हुए स्थानसे काला लेहू निकलता है, कान बहरे हो जाते, दोनों आंखमें जलन देती और उसकी शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसमें अर्कमूल, हरिद्रा, नाकुली, पृश्निपर्णिका इन सब स्थानोंका नस्य, पान और नष्टस्थानमें मर्दन करनेसे उपकार होता है।

श्वेताके काटनेसे कण्डूयुक्त श्वेतपीड़का, उससे दाह मूर्च्छा और ज्वर होता है। वे सब पीड़का फैल जाती और दर्द करती हैं। जलन भी होती है। इसमें चन्दन, रास्ना, इलायची, रेणुका, नल, अशोक, कुष्ठ, खसकी जड़ २ भाग और चक्र इन सब द्रव्योंको एक साथ पीस कर प्रलेप देनेसे बहुत लाभ पहुंचता है।

कपिलाके काटनेसे काटा हुआ स्थान ताँबड़े रंगका हो जाता है। चकत्ते पड़ जाते हैं, वे चकत्ते फैलते नहीं। मस्तक भारी मालूम होता, जलन देती है तथा तिमिर रोग और भ्रम आदि उपद्रव होते हैं। इसमें पद्मकाष्ठ, कुष्ठ, इलायची, करञ्ज, अर्जुनवृक्षका छिलका, अपामार्ग, दूर्वा, ब्राह्मी और शालपर्णी ये सब द्रव्य एकत्र परिमित मात्रामें सेवन करे।

अलिविषके काटनेसे लाल लाल चकत्ते निकलते हैं। उन चकत्तोंमें सरसोंके आकारके फोड़े निकलते हैं तथा तालुशोष और दाह ये दोनों उपद्रव होते हैं। इसमें प्रियङ्गु, कुष्ठ, खसकी जड़, अशोक, अतिवला, सोयाँ, पिप्पली, वटका अंकुर इनका एकत्र प्रयोग करे।

मूत्रविषके द्वारा काटा हुआ स्थान सड़ कर धीरे धीरे फैल जाता है। उसमेंसे काला रक्त निकलता है। कास, श्वास, वमि, मूर्च्छा, ज्वर और दाह आदि उपद्रव होते हैं। इसमें मैनसिल, इलायची, मुलेठी, कुष्ठ, चन्दन, पद्मकाष्ठ, मधु और खसकी जड़का एकत्र सेवन करे।

रक्तलूताके विषसे जलन देती और क्लेदयुक्त पाण्डु वर्णके फोड़े निकलते हैं। उसका भीतरी भाग रक्तयुक्त लाल हो जाता है। इसमें अतिवला, चन्दन, खसकी जड़, पद्मकाष्ठ तथा अर्जुनवृक्ष, शेलू, आमड़ेका छिलका एकत्र कर प्रयोग करे।

कसनाके विषसे काटे हुए स्थानसे शीतल और पिच्छिल रुधिरस्राव होता है। कास, श्वास आदि उपद्रव होते हैं। इसमें पूर्वोक्त रक्तलूताके विषकी तरह चिकित्सा करनी होती है।

कृष्णा लूताके काटनेसे विष्ठासे गंधविशिष्ट थोड़ा रक्त निकलता है। ज्वर, मूर्च्छा, दाह, वमि, कास और श्वास ये सब उपद्रव होते हैं। इसमें इलायची, चक्र, रास्ना और चन्दन इन सब द्रव्योंका महासुगन्धित नामक अगदके साथ सेवन करे। असाध्य लूता विषमें रोगकी आशाका परित्याग कर चिकित्सा करे।

अग्निवर्णाके काटनेसे अतिशय दाह और रसरक्तादिका स्राव होता है तथा ज्वर, कण्डु, रोमाञ्च, दाह और शरीरमें स्फोटककी उत्पत्ति, ये सब उपद्रव होते हैं। पूर्वोक्त कृष्णाके काटनेसे जैसा प्रतीकार बताया गया है वैसा ही इसमें भी करे। श्यामा लता, खसकी जड़, मुलेठी, चन्दन, उत्पल, पद्मकाष्ठ और श्लेष्मातकका त्वक् इन सब का प्रयोग करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। क्षीरपिप्पली भी सभी प्रकारके लूताविषमें विशेष उपकारी है।

असाध्य लूताविषका विषय इस प्रकार कहा गया है। सौवर्णिकाके काटनेसे काटा हुआ स्थान सूज आता है। उसमेंसे फेनयुक्त आमिषगन्धविशिष्ट आस्राव निकलता है तथा अतिशय श्वास, कास, ज्वर, मूर्च्छा और तृष्णा आदि उपद्रव होते हैं। जालिनीका दंशन अतिशय भयानक है। वह स्थान फट जाता है और उसमें बहुत जलन देती है। स्तम्भश्वास, अतिशय तमोदृष्टि और तालूशोष आदि उपद्रव होते हैं।

एणीपदके दंशकी आकृति कृष्णतिल-सी होती है। इसमें तृष्णा, मूर्च्छा, ज्वर, वमि और कास आदि उपद्रव दिखाई देते हैं। काकाण्डाके काटनेसे काटा हुआ स्थान पाण्डु और लाल हो जाता है। उसमें बहुत जलन देती है, चारों ओर फट जाता है तथा दाह, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

असाध्य लूताविषकी चिकित्सा करते समय चिकित्सकको चाहिये, कि उसका दोष और प्रकोप अच्छी तरह जान लें, किन्तु सभी अवस्थाओंमें छेदन करना उचित नहीं। जिन सब लूताका विष साध्य है उसके काटते ही वृद्धिपत्र नामक शस्त्र द्वारा उस स्थानको काट डाले तथा जाम्बवोष्ठशलाका अग्निमें तप्त कर उस स्थानको दग्ध करे। रोगी जब तक निषेध न करे तब तक दग्ध करना न छोड़े। मर्मस्थान न होनेसे यदि वह स्थान फूल जाय, तो उसे काट डालना कर्त्तव्य है। किन्तु रोगीको यदि ज्वर आ जाय, तो काटना उचित नहीं। काटे हुए स्थानमें मधु और सैन्धवके साथ निम्नलिखित अगदका लेपन करे। अगद यथा—प्रियंगु, हरिद्रा, कुष्ठ, मञ्जिष्ठा और यष्टिमधु इन सब द्रव्योंको एकत्र कर कटे स्थान पर प्रलेप देना होगा। अथवा श्यामालता, मुलेठी, द्राक्षा, क्षीरककोली, इक्षुमूल, भूमिकुष्माण्ड और गोक्षुर इन सब द्रव्योंका मधुके साथ पान करना होगा। अर्कप्रभृति क्षीरविशिष्ट वृक्षकी छालके शीतल क्वाथसे सेवन करना भी कर्त्तव्य

है। नस्य, अञ्जन, अभ्यञ्जन, पान, धूम, अवपीड़न, कवलग्रह, वमन और विरेचन इन सबका भी दोषके अनुसार व्यवहार करना उचित है। जोंक द्वारा रक्त-मोक्षण करानेसे भी लाभ होता है। (सुश्रुत कल्प० ८ अ०) ३ पिपीलिका, च्यूंटी।

लूता (हिं० पु०) लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो, लुआठा।

लूतातन्तु (सं० स्त्री०) लूतायास्तन्तुः। लूताका तन्तु, मकड़ाका जाल।

लूतामर्कटक (सं० पु०) १ वानरश्रेणीभेद, बंदरकी एक जाति। २ अरब देशीय यूथिकापुष्प, जुही।

लूतारि (सं० पु०) लूताया आरिः। दुग्धफेनी क्षुप, गोजापर्णी।

लूतिका (सं० स्त्री०) लूतैव स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। मर्कटक, मकड़ी।

लूती (सं० स्त्री०) पतली लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो, लुआठी।

लून (सं० त्रि०) १ भिन्न, कटा हुआ। २ लोन देखो।

लूनक (सं० पु०) लून एव स्वार्थे कन्। १ सज्जीखार। २ अमलोनीका साग।

लूनकरण—बीकानेर राज्यके प्रतिष्ठाता बीकाजीके पुत्र। बीकाजीके दो पुत्र थे। लूनकरण और गड़सी। बीकाजीके परलोकवास होने पर राजाओंकी रीतिके अनुसार उनके बड़े पुत्र सिंहासन पर बैठे। राजा लूनकरणने अपने राज्यकी सीमा बढ़ानेके लिये भाटियोंके अधिकृत कितने ही देशों पर अपना अधिकार कर लिया था। इनके बड़े पुत्रने एक स्वतन्त्र राज्यकी स्थापना की और वह पिताकी आज्ञासे वहीं जा कर रहने लगा। लूनकरणकी मृत्यु संवत् १५६६में हुई।

लूनावाड़—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत पोलिटिकल एजेन्सीका एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २०°पू० से २३°१६´ उ० तथा देशा० ७३° २१´ से ७३° ४७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३८८ वर्गमील है। इसके उत्तर राजपूतानेके अन्तर्गत डूंगरपुर सामन्त-राज्य, पूर्वमें रेवाकान्थाके अन्तर्गत सुंथ और कछाना-राज्य, दक्षिणमें पांचमहालके अन्तर्गत गोधड़ा उपविभाग तथा पश्चिममें महीकान्थाके इदर राज्य और रेवाकांथाके अन्तर्गत वालासिनोर राज्य है। इसमें लूनावाड़ नामक १ शहर और ३१८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १६०० ई०के पहले ६० हजारसे ऊपर थी। अभी सिर्फ ६३ हजार रह गई है। इसका कारण १८६६-१६०० का दुर्भिक्ष है। उस दुर्भिक्षमें सैकड़े पीछे ८८ मनुष्य करालकालके गालमें पतित हुए थे। हिन्दूकी संख्या मुसलमानसे ज्यादा है। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, राजपूत और कुनबी प्रधान है।

महीनदी इस राज्यमें बहती है। बीच बीचमें बड़े बड़े बांध हैं। कूप आदि खोद कर लोग खेती-बारी करते हैं। जलाभाव दूर करनेका यही एकमात्र उपाय है। गुजरातसे मालव तक एक बड़ी सड़क चली गई है। इससे वाणिज्य-व्यवसायकी बड़ी उन्नति हुई है। गेहूं, उरद और सेगुनकाष्ठ यहांका प्रधान वाणिज्य-द्रव्य है। गुजरातके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा इस स्थानका जलवायु बहुत कुछ शीतल है। ज्वरके सिवा यहां और कोई रोग नहीं देखा जाता।

अनहिलवाड़-पत्तनके राजपूत-राजवंशसे यहांका राजवंश उत्पन्न हुआ है। प्रवाद है, कि इस राजवंशके पूर्वपुरुषोंने १२२५ ई०में वीरपुर नगरमें राजधानी बसाई थी। पीछे १४३४ ई०में उस वंशके कोई राजा लूनावाड़में राजपाट उठा ले गये। अधिक सम्भव है, कि गुजरात प्रदेशमें जब मुसलमान-राजाओंका प्रभाव फैला, तब वे लोग राज्यभ्रष्ट हो महीनदी पार कर यहां आनेको बाध्य हुए। इसके बाद यहांके सामन्त-राजगण गायकवाड़ और सिन्देराजके अधीन सामन्तरूपमें राज्यशासन करने लगे। १८१६ ई०में अङ्गरेज-गवर्मेण्टने सिन्देराजका कर्त्तृत्व अनुमोदन किया था। १८२५ ई०में लूनावाड़ महीकान्थाकी पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्भुक्त हुआ। १८३१ ई०में सिन्देराजने पांचमहाल जिलेके साथ इस राज्यका शासन-कर्त्तृत्व भी अङ्गरेज-गवर्मेण्टके हाथ सौंपा।

महाराणा वखत् (भक्त) सिंहजी १८८० ई०में राज्याभिषिक्त हुए। ये सोलङ्की-वंशीय राजपूत हैं। इनका पूरा नाम है, एच, एच महाराणा श्री सर वखत्‌सिंहजी दलेलसिंहजी के, सी, आई, ई। इन्हें ११ तोपोंकी

सलामी मिलती है और गोद लेनेका अधिकार है। पालिटिकल एजेण्टकी विना अनुमतिके ये अपराधी प्रजाको प्राणदण्डकी सजा दे सकते हैं। राजस्व कुल मिला कर दो लाख रुपयेके करीब है। वृटिश सरकार और बड़ौदाके गायकवाड़ दोनोंको मिला कर १४२३२ रु० कर देना पड़ता है। राजसैन्यसंख्या २०४ है। राज्य भरमें १२ विद्यालय, २ अस्पताल और १ कारागार है। महाराणाके एक सुपुत्र हैं जिनका नाम महाराजा कुमार साहव श्री रणजित्‌सिंहजी है।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° ८´ उ० तथा देशा० ७३° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है।

१४३४ ई०में राणा भीमसिंहजीने इस नगरको बसाया। स्थानीय प्रवाद है, कि एक दिन राणा मही-नदी पार कर शिकार खेलने गये। संयोगवश वनमें राह भूल गये जिससे उनका दल उनसे अलग हो गया। बहुत देर भटकते हुए राणा एक साधुके आश्रममें पहुंचे। साधुको दण्डवत् कर वे कुटीकी एक बगलमें खड़े हो रहे। साधुने योगवलसे राजाकी दीनता जान कर मन ही मन उनकी साधुताको धन्यवाद दिया। पीछे योगभङ्ग होने पर उन्होंने राजाको बैठनेका आदेश दिया और कहा, 'तुम्हारा और तुम्हारे वंशधरोंका भाग्य बड़ा ही तेज है; तुम इस वनमें एक नगर बसा कर राज्यशासन करो। कल सवेरे यहांसे पूरबकी ओर जाने पर जहां तुम्हें एक शशक मिलेगा, वहीं पर नगर स्थापन करना।' राजा संन्यासीके कथनानुसार पूरबकी ओर चले। कुछ दूर जाने पर गुल्मलताके भीतरसे उन्होंने एक शशकको निकलते देखा और वल्लमसे उसको उसी जगह मार गिराया। पीछे राजाने उसी जगह पर राजप्रासाद बनवाया। योगिवर लूणेश्वरके उपासक थे। राजाने उस साधुके प्रति भक्ति दिखला कर नगरका लूनागढ़ नाम रखा। नगरके दरकुली-द्वारके वहिर्भागमें आज भी लूणेश्वरका मन्दिर विद्यमान है।

१६वीं सदीके प्रारम्भमें यह नगर गुजरात और मालवकी वाणिज्य-समृद्धिसे परिपूर्ण हो उठा। उस समय यहां अच्छे अच्छे अस्त्र-शस्त्र वनते थे। वम्बई-बड़ौदा-मध्यभारत रेलवेकी गोधड़ा शाखाके अन्तिम स्टेशन शरो नगरसे लूनावाड़ तक एक पक्की सड़क दौड़ गई है। यहां पानम नदीके किनारे अगस्त और फरवरी महीनेमें दो मेले लगते हैं। शहरमें कैदखाना, विद्यालय और चिकित्सालय है।

लूनि (सं० स्त्री०) लू-क्तिन् (ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भवतीति वक्तव्यं। पा ८।२।४४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या तस्य नः। १ छेद, सूराख। २ व्रीहि, धान।

लूम (सं० क्ली०) लूयते इति लू-बाहुलकात् मक्। लांगूल, पूंछ।

लूम (हिं० पु०) १ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गानेका समय रात ११ दंड-से १५ दण्ड तक है। यह मेघरागका पुत्र कहा गया है। (स्त्री०) २ कलावत्तूकी लच्छी।

लूम (अं० पु०) कपड़ा बुननेका करघा।

लूमर (हिं० वि०) सयाना, जवान।

लूमविष (सं० पु०) लूमे लांगुले विषमस्य। वृश्चिक, विच्छू।

लूला (हिं० वि०) जिसका हाथ कट गया हो या वेकाम हो गया हो, लुंजा।

लूलू (हिं० वि०) मूर्ख, वेवकूफ।

लूसन (हिं० पु०) एक प्रकारका फलदार पेड़।

लूहसुदत्त (सं० पु०) बौद्धभेद।

लेंड़ (हिं० पु०) मलकी वत्ती जो उत्सर्गके समय वंध जाती है, वंधा मल।

लेंड़ी (हिं० स्त्री०) १ मलकी वत्ती जो उत्सर्गके समय वंध जाती है, वंधा मल। २ वकरी या ऊंटकी मेंगनी, वकरी या ऊंटका मल जो वंधी गोलियोंके आकारमें निकलता है। ३ छः हाथ लम्बी रस्सी। इसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर घुण्डी होती है। यह घोड़ेकी दुममें चूतड़ों परसे लगाई जाती है।

लेंडौरी (हिं० स्त्री०) चौपायोंको दाना या चारा खिलानेका वरतन।

लेंस (अं० पु०) शीशेका ताल जो प्रकाशकी किरणोंको एकत्र या केन्द्रीभूत करे।

लेंहड़ (हिं० स्त्री०) भेड़ों या दूसरे चौपायोंका भुंड।

लेंहड़ा (हिं० पु०) झुंड, दल ।

ले (हिं० अव्य) १ आरम्भ हो कर, शुरू हो कर। (क्रि०) २ लेना देखो ।

लेई (हिं० स्त्री०) १ पानीमें घुले हुए किसी चूर्णको गाढ़ा करके बनाया हुआ लसीला पदार्थ जिसे उँगली-उठा कर चाट सकें, अवलेह । २ आटेको भून कर उसमें शरबत मिला कर गाढ़ा किया हुआ पदार्थ जो खाया जाता है, लपसी । ३ घुला हुआ आटा जो आग पर पका कर गाढ़ा और लसदार किया गया हो और जो कागज आदि चिपकानेके काममें आवे । ४ सुरखी मिला हुआ बरीका चूना जो गाढ़ा घोला जाता है और ईंटोंकी जोड़ाईमें काम आता है ।

लेईया—पञ्जाब प्रदेशके देरा इस्माइल खां जिलेके अन्तर्गत एक तहसील । यह अक्षा० ३०° ३६´ से ३१° २४´ उ० तथा देशा० ७०° ४६´ से ७१° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण २४१७ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाख के करीब है । इसमें २ शहर और ११८ ग्राम लगते हैं ।

यह स्थान बालुकामय ऊषर भूमिसे परिपूर्ण है । सिन्धु-प्रवाहित प्रदेशांश कुछ हरियाली दिखाई देती है । इस उच्च भूमिमें गोचारणके सिवा खेतीबारी नहीं होती । बालुकामय 'थल' भूमिमें कूप खनन कर जगह जगह खेती-बारीका बन्दोबस्त हुआ है । इससे भी निम्न 'काचि' वा सिन्धु सैकतवर्त्ती भूमिभागमें खेती होती है सही, पर सिन्धुनदीकी बाढ़से वह अक्सर डूब जाया करती है । इस विभागमें मूंज नामक घास बहुत उपजती है ।

२ उक्त तहसीलका एक प्रधान नगर । यह अक्षा० ३०° ५८´ उ० तथा देशा० ७०° ५६´ पू०के मध्य विस्तृत है । सिन्धुनदके प्राचीन खातके बाएं किनारे अवस्थित नदीकी गति बदल जानेसे अभी वर्त्तमान नदीगर्भ इस नगरसे कुछ पश्चिम बहता है । म्युनिसपलिटी रहनेसे नगरके प्राचीन सौन्दर्यमें धक्का नहीं पहुंचा है, वरं दिनों दिन इसकी उन्नति होती जा रही है ।

१६वीं सदीमें देरागाजी खाँके प्रसिद्ध मीरहानीवंशीय बलूच जातीय सरदार कमाल खाँने शायद इस नगरको बसाया है । उनके वंशधरोंने प्रायः दो सदी तक इस नगरके चारों ओर अपना शासन फैलाया था । यही स्थान उस समय उनकी राजधानी समझा जाता था । पीछे सिन्धु प्रदेशके कलहोरावंशीय राजाओंने उन्हें तख्त परसे उतार दिया । १७९२ ई०में महम्मद खाँ सदोजै मनखेरामें राजपाट उठा ले गये । सिख शासनाधिकार में यहां आस पासके भूभागोंका शासनकेन्द्र प्रतिष्ठित हुआ था । १८४९ ई०में अंगरेजराजने इस नगरको जीत कर यहां लेईया जिलेका विचारसदर स्थापन किया । पीछे १८६१ ई०में उस जिलेको तोड़ कर भकरके साथ लेईया तहसील देराइसमाइल खाँके अन्तर्भुक्त हुई है । अफगानिस्तानके इस प्रदेशका सभी वाणिज्य इसी नगरसे परिचालित होता है । शहरमें एक अस्पताल और म्युनिसिपल एङ्गलो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है ।

लेक्चर (अं० पु०) व्याख्यान, वक्तृता ।

लेक्चरबाजी (फा० स्त्री०) खूब लेक्चर देनेकी क्रिया ।

लेक्चरर (अं० पु०) वह जो लेक्चर देता हो, व्याख्याता ।

लेकुञ्चिक (सं० पु०) एक बौद्धका नाम ।

लेङ्गसुत—आसाम प्रदेशके जयन्ती शैलप्रान्त और नवगाँव सीमान्त पर स्थित एक गण्डग्राम । यहाँ एक हाट लगती है । वहां पर्वतवासी स्मश-सेनतेङ्ग जातिके लोग पर्वत-जात द्रव्यादि बेचने आते हैं ।

लेख (सं० पु०) लिख्यते इति लिख घञ् । १ देव, देवता । २ लिपि, लिखे हुए अक्षर । ३ लिखी हुई बात । ४ लिखावट, लिखाई । ५ लेखा, हिसाब किताब ।

लेख (हिं० स्त्री०) लकीर, पक्की बात ।

लेखक (सं० पु०) लिखतीति लिख ण्वुल् । १ लेखनकर्त्ता, लिखनेवाला । पर्याय—लिपिकर, अक्षरचन, अक्षरचुञ्चु, बोलेक, करक, समीपण्य, करप्रणी, वर्णी । (जटाधर)

मत्स्यपुराणके १८८वें अध्यायमें लिखा है, कि जो सभी देशोंके अक्षरोंसे जानकार हैं तथा सर्वशास्त्रार्थ-दर्शी हैं, वे ही राज्यके लेखक होंगे । जो अक्षरोंको समानभाव—समानश्रेणीमें अच्छी तरह लिख सकते हैं, अर्थात् जो सब अक्षर लिखे जायंगे, वे समान होंगे, पंक्ति ठीक रहेगी तथा अक्षर देखनेमें सुन्दर मालूम पड़ेंगे वे ही लेखकश्रेष्ठ हैं ।

चाणक्यसंग्रहमें लेखकके लक्षण इस प्रकार कहे गये

हैं—जो एक बार कहनेसे उसका अर्थ समझ सकते हैं तथा जो सुनते ही विशुद्ध भावमें जल्दी और साफ साफ लिखनेमें समर्थ हैं तथा जो शास्त्र जानते हैं वे ही उत्तम लेखक हैं।

राजलेखकके लक्षणप्रवीण, मन्त्रणा-कुशल, राजनीति विशारद, नाना प्रकारकी लिपिसे जानकार, मेधावी, नाना भाषामें पण्डित, सन्धि विग्रहमें कुशल, राजकार्यमें विचक्षण, सर्वदा राजाके हिताभिलाषी तथा राजाके समीप अवस्थित, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य विषयमें विशेष दक्ष, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, स्वरूपवादी, विशुद्ध स्वभाव, धार्मिक और राजधर्मकुशल, ये सब गुणयुक्त व्यक्ति राजाके लेखक होंगे। (पत्रकौमुदी)

पराशरसंहितामें लिखा है, कि लिखनेका काम कायस्थका है।

"लेखकानपि कायस्थान् लेख्यकृत्ये विचक्षणान्।"

(पराशरसंहिता १० अ०)

"शुचीन प्राज्ञांश्च धर्मज्ञान् विप्रान् मुद्राकरान्वितान्।

लेखकानपि कायस्थान् लेख्यकृत्सु हितैषिणः॥"

(वृहत् पराशरसं० २०।२०)

वृहत् पराशरके इस वचनानुसार विद्वान् कायस्थ ही लेखक होंगे। शुक्रनीतिमें लिखा है, कि जो गणनाकुशल, देशभाषाके प्रभेदादिमें अभिज्ञ तथा निःसन्देह और सरलभावमें लिखते हैं, वे ही लेखक होंगे। शुक्रनीतिके मतसे भी कायस्थ लेखक होंगे।

"ग्रामपो ब्राह्मणो योज्यः कायस्थो लेखकस्तथा।

शुल्कग्राही तु वैश्यो हि प्रतिहारश्च पादजः।"

(शुक्रनीति २।४२०)

ग्रामपति ब्राह्मण, कायस्थ लेखक, शुल्कग्राही वैश्य और शूद्र प्रतिहार होगा।

महाभारतके लेखक गणेश हैं। व्यासने महाभारतकी रचना कर गणेशको वह लिखने कहा, इस पर गणेशने कहा था, कि यदि मेरी लेखनी क्षणकाल भी न रुके, तो मैं भले ही लिख सकता हूं। व्यास बोले, 'ऐसा ही होगा, पर तुम विना समझे लिख नहीं सकोगे।'

(भारत १।१७८।७९)

२ किसी विषय पर लिख कर अपने विचार करनेवाला, ग्रन्थकार। ३ एक प्रेतका नाम।

लेखन (सं० क्ली०) लिख-ल्युट्। १ छर्दन, उलटी करना, कै करना। २ अक्षरविन्यास, लिखनेका कार्य। तन्त्रमें लिखा है, कि भूमि पर नहीं लिखना चाहिए। ३ भूर्जत्वक्, भोजपत्र जिस पर प्राचीनकालमें लिखा जाता था। ४ लिखनेकी कला या विद्या। ५ चित्र बनाना। ६ हिसाब करना, लेखा लगाना। ७ औषध द्वारा रसादि सप्त धातुओं या वात आदि दोषोंको शोषण करके पतला करना। ८ इस कामके लिये उपयुक्त औषध। (पु०) ९ काश, खाँसी।

लेखनवस्ति (सं० स्त्री) रसादि सप्त धातु या वातादि त्रिदोष और वमन इत्यादिको पतली कर देनेवाली पिचकारी।

लेखनि (सं० स्त्री०) कलम, लिखनी। लेखनी देखो।

लेखनिक (सं० पु०) लेखनं शिल्प-मस्य ठन्। १ लेखहारक, वह जो लेख लेता हो। २ वह जो दूसरेसे लिखा कर लेखमें अपना नाम देता हो। ३ वह जो अपने हाथसे लिखता हो।

लेखनिका (सं० स्त्री०) स्त्री-चित्रकर।

लेखनी (सं० स्त्री०) लिख्यतेऽनया लिख-ल्युट्-ङीप्। लेखन-साधन वस्तु, कलम। पर्याय—वर्णतुलिका, वर्णतुली, कलम, अक्षरतूलिका, कराश्रय, चित्रक।

(शब्दरत्ना०)

लेखनीके शुभाशुभका विषय इस प्रकार लिखा है। बांसकी कलम बना कर उससे लिखनेसे अशुभ, तांबेकी कलमसे लिखनेसे उन्नतिलाभ, सोनेकी कलमसे महती लक्ष्मीलाभ, वृहन्नलकी कलमसे मतिवृद्धि और चित्रकाष्ठकी कलमसे लिखनेसे धनधान्यादि लाभ होता है। कलम आठ उंगलोकी होनी चाहिये, चार उंगलोकी कलमसे लिखना मना है, लिखनेसे आयुका क्षय होता है।

२ खटिका, खड़ी। खड़ीसे लिखा जाता है, इससे इसको लेखनी कहते हैं। सरस्वती-पूजाके दिन लेखनी पूजा करनी होती है।

लेखनीय (सं० त्रि०) लिख-अनीयर्। लेख्य, लिखने योग्य।

लेखनपत्र (सं० क्ली०) १ चिट्ठी। २ लिखा हुआ कागज, दस्तावेज।

लेखपत्रिका (सं० स्त्री०) लिखित आवश्यकीय कागज-पत्र ।

लेखप्रणाली (सं० स्त्री०) लिखनेकी शैली, लिखनेका ढंग ।

लेखप्रतिलेखलिपि (सं० स्त्री०) लेखनप्रथा, लिखनेकी शैली ।

लेखर्षभ (सं० पु०) लेखेषु देवेषु ऋषभः श्रेष्ठः, लेख ऋषभ इवेति वा । देवताओंमें श्रेष्ठ, इन्द्र ।

लेखशैली (सं० स्त्री०) लेखप्रणाली ।

लेखसन्देशहारिन् (सं० त्रि०) पत्रवाहक, खतगीर ।

लेखहार (सं० पु०) लेखं हरति अण् । पत्रवाहक, चिट्ठी ले जानेवाला ।

लेखहारक (सं० पु०) लेखहार एव स्वार्थे कन् । पत्रवाहक, खतगीर ।

लेखहारिन् (सं० त्रि०) लेखं हरति हृ णिनि । पत्रवाहक, चिट्ठी ले जानेवाला ।

लेखा (सं० स्त्री०) लिख्यते इति लिख वाहुलकात् अप् टाप् । लिपि, लिखावट । २ रेखा, लकीर ।

लेखा (हिं० पु०) १ गणना, हिसाव किताव । २ ठीक ठीक अन्दाज, कूत । ३ अनुमान, विचार । ४ रुपये पैसे या और किसी वस्तुकी गिनती आदिका ठीक ठीक लिखा हुआ ब्योरा, आय व्यय आदिका विवरण ।

लेखाधिकारिन् (सं० पु०) राजके एक कर्मचारी जो सेक्रेटरी कहलाते हैं ।

लेखाभ्र (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक नदीका नाम ।

लेखाभ्रू (सं० स्त्री०) शिवादिगणमें उक्त एक प्राचीन रमणीका नाम । (पा ४।१।१२३)

लेखावही (हिं० स्त्री०) वह वही जिसमें रोकड़के लेन देनका ब्योरा रहता है ।

लेखार्ह (सं० पु०) लेखे अर्हः । १ श्रीतालवृक्ष, हिंताल-का पेड़ । (त्रि०) २ लेखनयोग्य, लिखनेके लायक ।

लेखावलम्ब (सं० पु० क्ली०) अङ्कित-वृत्त ।

लेखिका (सं० स्त्री०) १ लिखनेवाली । २ गल्प या पुस्तक वनानेवाली ।

लेखित (सं० त्रि०) लिख्यते यत् लिख-णिच्-क्त । लिखाया हुआ, लिखवाया हुआ ।

लेखिन् (सं० क्ली०) १ अङ्कन, चिह्न करना । २ लेखन, लिखना । स्त्रियां ङीप् । ३ चमचा ।

लेख्य (सं० त्रि०) लिख-ण्यत् । १ लेखितव्य, लेखनीय, लिखने लायक । २ व्यवहाराङ्ग क्रियापादाङ्ग । मिताक्षरा और व्यवहारतत्त्व आदिमें इसका विशेष विवरण लिखा है । लेख्य दो प्रकारका है, शासन और जानपद । इनमेंसे जानपदके फिर दो भेद हैं, स्वहस्तकृत और अन्यहस्तकृत । स्वहस्तकृत असाक्षिक और परहस्तकृत ससाक्षिक है ।

छः मासके वाद भ्रान्ति हो सकती है, इस कारण विधाताने अक्षरकी सृष्टि की है । इस अक्षर द्वारा पत्र पर लिख रखनेसे उसको लेख्य कहते हैं ।

(व्यवहारतत्त्वधृत वृहस्पति)

याज्ञवल्क्यसंहितामें इस लेख्यका विषय यों लिखा है—खादक और महाजन आपसमें सलाह करके सूद और समय आदि विषयकी जो व्यवस्था करे, भविष्यमें जिससे भूल जानेके कारण इसका प्रतिकूल होने न पावे, इसके लिये उन्हें उक्त शर्त्तोंके साथ लेख्यपत्र तैयार करना चाहिये । उसमें पहले धनीका नाम लिखना होगा । वह लेख्य वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति, गोत्र, स-ब्रह्मचारिक (अर्थात् माध्यन्दिन आदि शाखाध्ययनप्रयुक्त संज्ञाविशेष, जैसे अमुक माध्यन्दिन इत्यादि) और अपने पितृनामादि द्वारा चिह्नित होना आवश्यक है । अनन्तर उसमें व्यवस्थित विषय लिखना होगा ।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि लेख्य तीन प्रकारका है, राजसाक्षिक, ससाक्षिक और असाक्षिक । इस लेख्यको दस्तावेज कहा जा सकता है । राजाके विचारालयमें राजाके नियुक्त कायस्थ द्वारा लिखित तथा विचारपतिके हस्त आदि चिह्नयुक्त लेख्यको राजसाक्षिक कहते हैं । यह राजसाक्षिक दस्तावेज आज कलकी रजिष्ट्री दस्तावेज-सी है । जिस किसी स्थानमें जिस किसी व्यक्तिके लिखित साक्षियोंके हस्तलिखित लेख्यका नाम ससाक्षिक है । परहस्तलिखित लेख्यको असाक्षिक कहते हैं । यह लेख्य यदि वलपूर्वक या छलपूर्वक लिखाया जाय, तो वह अप्रमाण होगा । दूषित कर्मदुष्ट अर्थात् जो व्यक्ति दुष्कार्य करनेके कारण दोषी समझा जाता है, जो कूट साक्षी है, अथवा दूषित और कर्मदुष्ट है, ऐसे

साक्षियोंका अङ्कित लेख्य ससाक्षिक होने पर भी अप्रमाण है।

स्त्री, बालक, पराधीन, मत्त, उन्मत्त, भीत तथा ताड़ित व्यक्तिका लिखा हुआ लेख्य भी नाजायज समझा जाता है। लेखक वा अधमर्णादि वा साक्षी यदि कहे, कि यह लेख्य मेरा नहीं है, तो उनके अक्षरादिके द्वारा लेख्य सावित करना होगा। जहां ऋणी, धनी, साक्षी अथवा लेखक मर गया हो, वहां वह लेख्य उनके स्वहस्तचिह्न द्वारा प्रमाणित करना होता है। (विष्णुसंहिता ७अ०)

लेख्यगत (सं० त्रि०) १ चित्रित, चित्र खींचा हुआ। २ लिखित, लिखा हुआ। ३ अङ्कित, चिह्न किया हुआ।

लेख्यचूर्णिका (सं० स्त्री०) लेखस्य चूर्णिका। तूलिका।

लेख्यपत्र (सं० पु०) लेख्य लेखार्हं पत्र यस्य। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। (क्ली०) २ लेखनीय पत्र, लिखनेयोग्य चिट्ठी।

लेख्यमय (सं० त्रि०) लिखा हुआ।

लेख्यस्थान (सं० क्ली०) लेख्यस्य स्थानं। वह स्थान जहां लिखा जाय, आफिस।

लेख्यारूढ़ (सं० त्रि०) जिसके सम्बन्धमें लिखा पढ़ी हो गई हो, दस्तावेजी।

लेज़म (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारकी नरम और लचकदार कमान जिससे धनुष चलानेका अभ्यास किया जाता है। २ वह कमान जिसमें लोहेकी ज़ंजीर लगी रहती है और कटोरियां पड़ी रहती हैं और जिससे पहलवान लोग कसरत करते हैं। इसे हाथमें ले कर कई तरहके पैतरों और बैठकोंके साथ कसरत करते हैं।

लेजरंग (हिं० पु०) मरकत या पन्नेकी एक रंगत जो उसका गुण मानी जाती है।

लेजिस्लेटिव (अं० वि०) व्यवस्था सम्बन्धी, कानून सम्बन्धी, जैसे—लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट।

लेजिस्लेटिव एसेम्ब्ली (अं० स्त्री०) व्यवस्थापिका परिषद् देखो।

लेजिस्लेटिव कौंसिल (अं० स्त्री०) व्यवस्थापिका सभा देखो।

लेजुरा (हिं० पु०) १ रस्सी, डोरी। २ कूएंसे पानी खींचनेकी रस्सी। ३ एक प्रकारका अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लेट—एक वर्णसंकर जाति।

लेट (हिं० स्त्री०) सुरखी, कंकड़ और चूना पीट कर बनाई हुई कड़ी चिकनी सतह, गच।

लेट (अं० वि०) जो निश्चित या ठीक समयके उपरान्त आवे, रहे या हो; जिसे देर हुई हो।

लेटना (हिं० क्रि०) १ हाथ पैर और सारा शरीर जमीन या और किसी सतह पर टिका कर पड़ रहना, पौढ़ना। २ किसी चीजका बगलकी ओर झुक कर जमीन पर गिर जाना। ३ मर जाना।

लेटपेट (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चाय।

लेटफी (अं० स्त्री०) वह फीस जो निश्चित समयके बाद डाकखानेमें कोई चीज दाखिल करने पर देनी पड़ती हो। डाकखानेमें प्रायः सभी कामोंके लिये समय निश्चित रहता है। उस निश्चित समयके उपरान्त यदि कोई व्यक्ति कोई चीज रजिस्टरी कराना या चिट्ठी रवाना करना चाहे, तो उसे कुछ फीस देनी पड़ती है जो लेट फी कहलाती है।

लेटपेटेंट (अं० पु०) वह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें किसीको कोई पद या स्वत्व आदि देने या कोई संस्था स्थापित करनेकी बात लिखी रहती है।

लेटर बाक्स (अं० पु०) डाकखानेका वह संदूक जिसमें कहीं भेजनेके लिये लोग चिट्ठियां डालते हैं, चिट्ठी डालनेका संदूक।

लेटा (हिं० पु०) गल्लेका बाजार, मंडी।

लेटाना (हिं० क्रि०) दूसरेको लेटनेमें प्रवृत्त करना।

लेड (अं० पु०) १ सीसा नामक धातु। २ प्रायः दो अंगुली चौड़ी सीसेकी ढली हुई पत्तरकी तरह पतली पटरी। यह छापेखानेमें अक्षरोंकी पंक्तियोंके बीचमें अक्षरोंको ऊपर नीचे होनेसे रोकनेके लिये दी जाती है।

लेडमोल्ड (अं० पु०) छापेखानेमें अक्षरोंकी पंक्तियोंके बीचमें रखनेके लिये सीसेकी पटरियां ढालनेका सांचा, लेड ढालनेका सांचा।

लेडी (अं० स्त्री०) १ भले घरकी स्त्री, महिला। २ लार्ड या सरदारकी पत्नी।

लेण्ड (सं० क्ली०) गूथ, बंधा मल।

लेथो (अं० पु०) लीथो देखो।

लेत (सं० पु०) अश्रुविन्दु, आंसू। लोत देखो।

लेद (हिं पु०) एक प्रकारका गीत जो फागुनमें गाया जाता है।

लेदरी (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।
(राजतर० १।८७)

लेदार (हिं० पु०) एक प्रकारकी चिड़िया।

लेदी (हिं० स्त्री०) १ जलाशयोंके किनारे रहनेवाली एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। २ घासका पूला जिसे हलके नीचेके भागमें इसलिये बांध देते हैं जिसमें चौड़ी कूंड़ बने।

लेन (हि० पु०) १ लेनेकी क्रिया या भाव। २ वह रकम जो किसीके यहां बाकी हो या मिलनेवाली हो, लहना।

लेनदार (फा० पु०) जिसका कुछ बाकी हो, महाजन, लहनेदार।

लेनदेन (हि० पु०) १ लेने और देनेका व्यवहार, आदान-प्रदान। २ रुपये लेने देनेका व्यवसाय, महाजनीय। ३ रुपया ऋण देने और ऋण लेनेका व्यवहार जो किसीके साथ किया जाय।

लेनहार (हिं० वि०) लेनेवाला, लहनेदार।

लेना (हिं० क्रि०) १ दूसरेके हाथसे अपने हाथमें करना, प्राप्त करना। २ ग्रहण करना, थामना। ३ अपने अधिकारमें करना, कब्जेमें लाना, जीतना। ४ मोल लेना, खरीदना। ५ कार्य सिद्ध करना या समाप्त करना, काम पूरा करना। ६ उधार लेना, कर्ज लेना। ७ भागते हुएको पकड़ना, धरना। ८ जोतना। ९ किसी आते हुए आदमीसे आगे जा कर मिलना, अगवानी करना। १० प्राप्त होना, पहुंचाना। ११ किसी कार्यका भार ग्रहण करना, जिम्मे लेना। १२ गोदमें थामना। १३ किसीको उपहास द्वारा लज्जित करना, हंसी ठट्ठा करके या व्यंग बोल कर शरमिंदा करना। १४ संचय करना, एकत्र करना। १५ सेवन करना, पीना। १६ पुरुष या स्त्रीके साथ संभोग करना। १७ धारण करना, अंगीकार करना। १८ काट कर अलग करना, काटना।

लेप (सं० पु०) लिप-घञ्। १ गीली या पानी आदिके साथ मिली हुई वस्तु जिसकी तह किसी वस्तुके ऊपर फैला कर चढ़ाई जाय, लेईके समान गाढ़ी गीली वस्तु। २ गाढ़ी गीली वस्तुकी तह जो किसी वस्तुके ऊपर फैलाई जाय। ३ भोजन, खाना। ४ उबटन, बटना। ५ सम्बन्ध, लगाव। ६ सुधा, आंवलेका चूर।

लेपक (सं० पु०) लिम्पतीति लिप ण्वुल्। १ एक जाति। पर्याय—पलगण्ड, लेपी, लेप्यकृत्। (त्रि०) २ लेपनकारी, पोतने या लगानेवाला।

लेपछा—हिमालय पर्वतपृष्ठवासी जातिविशेष। सिकिम, पूर्व-नेपाल, पश्चिम भोटान तथा दार्जिलिङ्ग नामक पर्वतांशमें इस पार्वत्य जातिका वास है। वे स्थान साधारणतः लेपछा जातिके वासस्थानके नामसे पुकारे जाते हैं। इन स्थानोंका प्रस्थ प्रायः ५० मील है। ये लोग कोटजाति, नेपालकी नेवा जाति तथा अपरापर जाति एवं भोटानकी लेफा जाति आदि जातियोंके साथ विशेषरूपसे संश्लिष्ट हैं। मुखाकृति तथा शारीरिक गठन देखनेसे उसी मोङ्गलीय जातिकी शाखासम्भूत जान पड़ते हैं।

इस लेपछा जातिके अन्दर रौंग तथा खाम्वा नामके दो दल हैं। प्रथमोक्त लेपछा-सम्प्रदाय अपनेको सिकिमके आदिम अधिवासी बतलाते हैं। जनसाधारणका विश्वास है, कि खाम्वा जाति चीन-साम्राज्यके अन्तर्गत खामप्रदेशसे यहां आ कर बस गये हैं। लोगोंमें इस तरह किंवदन्ती है कि प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले अर्थात् सिकिममें बौद्धधर्म फैलनेके बाद बौद्धलामागणने सिकिममें एक राजा निर्वाचन करनेके लिये उक्त खामप्रदेशमें दूत भेजा था। खाम्वाने जिस राजाको निर्वाचन करके भेजा था वे तथा उनके आत्मीयगण यहां आ कर बस गये। उन्हीं लोगोंके वंशधरगण आज भी पूर्वतन वासस्थानके नामसे पुकारे जाते हैं। वास्तविकमें उन लोगोंके बीचमें जातिगत कोई पार्थक्य नहीं है। वे दोनों दल परस्पर इस तरह हिलमिल गये हैं, कि एक ही जातिके नामसे पुकारे जाते हैं। वर्त्तमान जातितत्त्वविद्गण कहते हैं कि दो मोङ्गलीय उपनिवेशके पर्यायक्रमसे सिकिममें आ कर बसनेसे सम्भवतः उनका नाम पार्थक्य हो गया है।

डा० काम्बेल तिब्बतकी यात्राके उद्देशसे सिकिम गये थे। उन्होंने उस जातिकी आकृति प्रकृतिके विषयमें

जो कुछ लिखा है, उसके पढ़नेसे इस जातिको आचार-नीति अच्छी तरह मालूम हो सकती है। लेपछागण खर्वाकृति, साधारण दैर्घ्य ४ फुट ८ इञ्च, कदाच ५ फुट ६ इञ्च लम्बे दिखाई पड़ते हैं। पुरुषोंकी तरह रमणियां भी खर्वाकार हैं। लेपछागण दृढ़काय, वलिष्ठ एवं विस्तृत वक्षवाले होते हैं। उनके शरीरमें मांसकी अधिकता होनेके कारण उनका गठन सुललित तथा कमनीय मालूम पड़ता है। शरीरका रंग दुग्धके जैसा उज्ज्वल होता है। शीतप्रधान देशमें रहनेके कारण उनका सारा शरीर गुलाबके रंगके समान रक्ताभ होता है। मुखाकृति मोङ्गलियोंके समान चिपटी तथा गोल होती है। यदि नाक चिपटी न होती, तो वे सर्वाङ्गसुन्दर कहे जाते।

लेपछा स्त्री तथा पुरुषोंके अन्दर सौन्दर्यप्रभा इस तरह बलवती होती है कि आसानीसे उनमें पार्थक्य निर्देश नहीं किया जा सकता। यहांके युवकोंको देखनेसे स्त्रियोंका भ्रम होता है, कारण लेपछा युवकगण स्त्रियोंका-सा श्रृङ्गार करते हैं तथा वे स्त्रियोंके समान ही कमनीय होते हैं। प्राप्तवयस्क युवक तथा स्त्रियोंमें भी कुछ अंतर नहीं मालूम पड़ता। अगर अन्तर है भी तो बहुत थोड़ा, वह यह कि युवक एक मांग पारते और स्त्रियां दो या तीन मांग पारती हैं।

ये स्वभावतः गंदे होते हैं। ग्रीष्म तथा शीतकालमें कभी स्नान नहीं करते। इससे इनके शरीरमें बहुत गंदगी जम जाती है। उस समय उनके पास आने पर बहुत ही दुर्गन्धि पाई जाती है। वर्षाकालमें जिस समय जोरोंसे पानी पड़ता रहता है, उस समय कार्यके उपलक्षमें जब ये घरके बाहर निकलते हैं, तब इनके शरीर धुल जाते हैं। इस समय इनके शरीर दुर्गन्धहीन हो जाते हैं एवं कमनीय कान्तियुक्त रूपप्रभा फूट पड़ती है। धर्मभीरुता तथा लोकरञ्जकता आदि गुणोंके कारण इनका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है।

पार्श्ववर्त्ती स्थानवासी भोटिया, लिम्बू, मूर्मि तथा गुरंग प्रभृति जातियोंकी अपेक्षा लेपछागण अधिक ज्ञानी होते हैं। विनयादि सद्गुणोंके द्वारा ये लोग दूसरेके चित्तको आसानीसे आकृष्ट कर लेते हैं। ये लोग स्वजातियोंके साथ कभी विवाद नहीं करते। अकस्मात् किसी कारणसे ये लोग क्रोधित हो जाते हैं सही, किन्तु पीछे उनके अन्यायपूर्ण क्रोधका कारण समझा देने पर वे परिताप करते हैं। इन लोगोंके पास भोजाली (एक प्रकारकी छुरी) रहती तो है, किन्तु क्रोधके उद्वेगमें भी कभी किसी पर नहीं चलाते। आहार, विहार तथा वाक्यालाप आदि विषयोंमें समाजकी कड़ी दृष्टि रहती है। ये लोग पर्वतजात फलमूल तथा शाक-शब्जी आदि खाना ही खूब पसन्द करते हैं, तथापि किसीका अन्यायपूर्ण व्यवहार सहना नहीं चाहते। दार्जिलिङ्गकी अङ्गरेजी अदालतमें जा कर ये लोग न्यायके लिये प्रार्थना करते हैं।

उपरोक्त श्रेणी-विभागके अलावा इनमें वंशगत कई और विभाग हैं। जो थर नामसे विख्यात हैं। इनमें वरफुंगपूषो तथा अदिनपूषो-वंशीयगण सर्वापेक्षा सम्मानित एवं लिंघ, तिंगिलमुङ्ग, रङ्गोमुङ्ग, ताञ्जुकमुङ्ग, सुंपुटमुङ्ग, नामजिम्ममुङ्ग, लुकसोम तथा संगमि नामक दूसरे आठों थर हीनमर्य्यादाके गिने जाते हैं। उपरोक्त वरफुंगपूषो तथा अदिनपूषोगण निम्नोक्त आठों 'थर'-के बीच आदान-प्रदान नहीं करते। ये निम्नोक्त आठों थर आपसमें ही नहीं वल्कि लिम्बू जातिमें भी अपनी संतानका विवाह कर लेते हैं। इन लोगोंमें एक थरमें भी विवाह हुआ करता है। कभी कभी ममेरा चचेरा प्रभृति कुलमें भी तीन चार पीढ़ीका बाद दे कर विवाह-सम्बन्ध स्थिर कर लेते हैं।

विवाहके समय लामागण पौरोहित्य करते हैं। दामिलोंकी स्त्रियां आ कर विवाहके सारे आयोजन तथा क्रियादि सम्पन्न कर देती हैं। बालिकाओंके विवाह प्रधानतः १६से १८ वर्षके अन्दर एवं युवकोंका विवाह अर्थ उपार्जन करनेकी योग्यता प्राप्त होने पर ही किया जाता है। कन्यापण (कन्याके मूल्य) देनेकी शक्ति रहने पर अल्पवयसमें ही विवाह हो जाते हैं, यदि नहीं तो विवाह करनेवाला व्यक्ति अर्थसंग्रह करके पूर्ण वयसमें विवाह कर पाते हैं। कन्यापणमें ४०से ले कर १०० रुपये तक लगते हैं। विवाहके पहले भी कन्या अपने मनोनीत भावी पतिके साथ आहार-विहार कर सकती है। इस अवस्थामें सहवासादि दोष लग जाने पर भी वे लोग कुछ

द्विधा नहीं करते। यदि कन्या गर्भवती हो जाती है, तब वह पुरुष विवाह करनेको वाध्य हो जाता है। किन्तु यदि किसी कारणसे वह कन्याका पाणिग्रहण न करे तो उसे कन्याके पिताको क्षतिपूरण-स्वरूप कुछ अर्थदण्ड देना पड़ता है। उस कन्याके साथ दूसरेका विवाह होने पर कन्याके पिताको और कन्यापण पानेकी आशा नहीं रहती।

साधारण विवाहमें कन्याके पिता 'वर'के पास एक घटक भेजता है। विवाहका प्रस्ताव पात्रके पिता अथवा स्वयं पात्रके अनुमोदित होने पर घटक कन्याके पिताके पाससे ५ रुपये, १० सेर महुएकी शराब तथा एक उत्तरीय वस्त्र ले कर पात्रको दे आता है, उससे ही उनका विवाह-सम्बन्ध निश्चित हो जाता है। इसके बाद लामाके निर्दिष्ट शुभदिनमें प्रथम कन्याके घर तथा उसके बाद पात्रके घर जा कर विवाहका अंगविशेष सम्पादित होता है। विवाहके मन्त्र तन्त्र कुछ भी नहीं होते। जो कुछ होते भी हैं वे बिलकुल सामान्य। पात्र तथा कन्याको एक साथ बैठा कर लामा उन दोनोंके गलेमें एक एक रेशमी उत्तरीय बांध देते हैं। इसके बाद उनके मस्तकों पर चावल छींट देते हैं। इसके बाद पात्र और कन्या एक ही बर्त्तनमें भोजन तथा मद्यपान करते हैं। विवाहके बाद जाति कुटुम्ब आदि भोजन करके सानन्द-चित्तसे अपने अपने घरको जाते हैं। कन्या सिर्फ तीन दिन ससुरालमें रह कर मास दिनके लिये पितागृह चली आती है।

जो व्यक्ति कन्यापण नहीं दे सकते हैं, वे भी विवाह कर सकते हैं, किन्तु जब तक कन्यापणका ऋण नहीं चुक जाता है तब तक उन्हें ससुरालमें रह कर श्वशुरके आदिष्टकर्म करना पड़ता है। इस समय वे अपनी विवाहिता स्त्रीको अपने घर नहीं ले जा सकते।

बहुविवाह तथा बहु-स्वामिकवृत्ति भी इन लोगोंमें देखी जाती है। विधवा रमणीगण स्वेच्छामत पुनर्विवाह कर सकती है, किन्तु जब वह रमणी अपने देवरको छोड़ कर किसी दूसरे व्यक्तिके साथ विवाह कर लेती है; तब उसके देवर अपनी भौजाईकी सन्तानका पालन-पोषण करते हैं एवं भौजाईके द्वितीय पतिसे पूर्व दिये हुए कन्यापण आदाय कर लेते हैं। विधवा विवाहके समय भी पद्धतिके अनुसार विवाह-क्रिया सम्पादित हो सकती है, किन्तु अधिकतर लामाके घोषणा कर देने पर ही विवाह हो जाता है। दम्पतीमें किसी तरहका मनमुटाव हो जाने पर घटकोंको बुला कर उन्हें समझाते हैं। यदि दो तीन बार चेष्टा करने पर भी उनका मनमुटाव दूर नहीं होता है, तो विवाह करानेवाला पुरोहित लामाको बुला कर उनका विवाह बन्धन छिन्न कर दिया जाता है। उस समय वह स्त्री स्वामिगृह त्याग करके पितालय चली आती है एवं उसके स्वामीको फिर अपनी स्त्रीके पिताको क्षतिपूरण-स्वरूप कुछ अर्थदण्ड देना पड़ता है। स्त्रीके व्यभिचारिणी होने पर पंच उनका विचार करके उपपतिको अर्थदण्ड देते हैं। यदि पंचोंके विचारसे उस स्त्रीके सतीत्वहानि प्रमाणित हो तो उसका पति उसे त्याग कर सकता है। ऐसी स्त्रीका त्याग करनेमें पतिको क्षतिपूरण-स्वरूप उसके पिताको कुछ देना नहीं पड़ता, वरं वह अपने दिये हुए अलङ्कारादि उस स्त्रीके शरीरसे उतार कर उसे घरके बाहर कर देता है। इस तरहकी व्यभिचारिणी स्त्री भी बालिका कन्याके विवाह-पद्धति अनुसार विवाहित हो सकती है।

विवाह सम्बन्धके अनुसार इन लोगोंमें उत्तराधिकारके कोई विशेष नियम नहीं हैं। पंच लोग जातीय प्रथाके अनुसार मृत व्यक्तिके पुत्र या कन्याओंको पैतृक सम्पत्तिका जिस तरह विभाग करके देते हैं, उन्हें उसे ही पा कर सन्तोष करते हैं। कोई भी उसके लिये राजाके यहां नहीं जाते। यदि किसीको एकसे ज्यादा पुत्र हो तो वे सब बराबर बराबर भाग पाते है। यदि कहीं विधवा माता अथवा अविवाहिता दो एक बहन हों, तो उनके पालन-पोषणका भार बड़े लड़केको ही लेना पड़ता है; इस तरहसे बड़े लड़केको कुछ विशेष भाग मिलता है तथा जो पुत्र राजाके यहां नौकरी करते हैं, उन्हें और दूसरोंकी अपेक्षा कुछ विशेष अंश दिया जाता है। कनिष्ठ भाई ज्येष्ठ भाइयोंकी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं हो सकता, तब यदि पंच लोग अनुग्रह करके कुछ अंश दिला दें तो पा सकता है। इन लोगोंकी मृत्युके समय दानपत्र लिख देनेका नियम नहीं है। तब मृत्यु

शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति पंचोंको बुला कर अपनी सम्पत्तिका भाग जिस तरह जिसे देनेको कहते हैं, उनकी मृत्युके बाद पंच लोग उनके इच्छानुसार ही कार्य सम्पादन करनेको बाध्य होते हैं।

पहले ही उल्लेख कर चुका हूं कि अविवाहिता कन्याएं पिताके मरनेके बाद ज्येष्ठ भाईके द्वारा प्रतिपालित की जाती हैं। उन कन्याओंके विवाह न होने तक, उनके भाई अथवा विवाहिता कन्या पैत्रिक-सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकतीं। पुत्र न रहने पर विवाहिता कन्यायें ही पैत्रिक सम्पत्तिकी अधिकारी हो सकती हैं, किन्तु इस सम्पत्तिके पाने पर उन्हें पिताके घरमें ही रहना पड़ता है, यही उन लोगोंकी जातीय रीति है। साधारणतः उत्तराधिकारत्वके ऐसे नियम निर्दिष्ट होने पर भी कितने ही अवसर पर पंच लोगोंके अभिप्रायानुसार ही कार्य होता है।

वर्त्तमान समयमें अधिकांश लेपछाने ही बौद्धधर्मका आश्रय लिया है। ये लोग पर्वतांश तथा उससे बहनेवाली नदियोंको ही रोगोत्पादक समझ कर उनकी पूजा किया करते हैं। वे लोग बरफमय काञ्चनजङ्घाको ही तूफ़ान, बरफ़, वर्षा तथा पालाका एकमात्र अधिष्ठाता एवं शाक्य बुद्धका शिक्षा-गुरु समझ कर उसकी उपासना करते हैं। इसके बाद पसेगेङ्गपू, पालदेना, लहोमो, लापेन-दिन-पोछे, गेङ्गपू-मालेङ्ग, छाङ्गपू तथा थंगुङ्गमा प्रभृतिकी उपासनाके समय ये लोग मांस, मद्य, फल, तण्डुल, पुष्प तथा धूप प्रभृति गन्धद्रव्यसे पूजा करते हैं। ये लोग 'चिरेखी' या 'लछेन-उंम-चुप-छिमु' महादेव मानते हैं। सम्भव है, कि सिक्किममें बौद्धधर्म फैलनेके पहले ये लोग इसी शंकरमूर्त्ति तथा उमादेवीकी उपासना करते रहे हों।

ये लोग प्रधानतः शवको कब्र खोद कर गाड़ देते हैं। गाड़नेके पहले मृत शवको तीन दिन तक घरमें ही रखते हैं और नियमानुसार उसके सामने भोज्यादि स्थापन करते हैं। कब्रके अन्दर मृतदेहको गाड़नेके पहले उसके चारों ओर पत्थरसे घेर देते हैं। उस घेरेमें मृतदेहको रख कर ऊपरसे एक बड़ा सा पत्थर डाल कर कब्रको बन्द कर देते हैं एवं उसके ऊपर एक गोलाकार पत्थरका स्तम्भ खड़ा करके उस पर पताका टांगते हैं। रोंग लेपछागण मृत्युके एक मास बाद ओझाको बुला कर प्रेतात्माकी शान्ति तथा मङ्गलके लिये एक दिन श्राद्ध करते हैं। इस समय एक जङ्गली गाय या छाग मारा जाता है एवं सब कोई मद्यपान करके निशामें चूर हो जाते हैं। ये लोग इसी तरहसे वार्षिक-श्राद्ध भी करते हैं। नये अनाज काटनेके समय प्रत्येक गृहकर्त्ता पितृपुरुषोंके उद्देशसे नया तण्डुल, मडुआ तथा नाना प्रकारके अन्य खाद्यद्रव्य सज्जित करके उत्सर्ग करते हैं। उच्च श्रेणीके खाम्बा लेपछाओंमें शवको जलानेकी प्रथा है। शरीरको जल जानेके बाद जले हुए शरीरकी हड्डियां चूर्ण करके किसी नदीमें फेंक देते हैं। इस सम्प्रदायमें अवस्थानुसार श्राद्धक्रिया भी तारतम्य है। ब्रह्मचारिणी रमणियोंका श्राद्धप्रथा भी स्वतन्त्र है।

सिकिम राज्यमें एक ब्रह्मचारिणी रमणीके श्राद्धकी क्रिया जिस तरह अवलम्बित हुई थी वह नीचे लिखी जाती है—

श्राद्धके समय मृतकी एक मूर्त्ति निर्माण करके उसके सामने एक मेजके ऊपर नाना प्रकारकी खाद्य सामग्रियाँ, दूसरी पर उसके व्यवहारकी चीजें एवं तीसरी मेज़ पर १०८ पीतलके बलते हुए प्रदीप सुसज्जित करके रखे गये थे। इस समय कई एक लामा लाल वस्त्र पहने तथा पगड़ी बांधे देवमन्दिरमें समस्वरसे स्तोत्रादि पाठ कर रहे थे। इस तरहसे प्रेतात्माके मङ्गलके लिये तीन दिन तक पाठ होता रहा। शेष दिनमें मृतोंके बन्धु बान्धवोंने जो कुछ वस्त्र, अर्थ तथा खाने पीनेकी चीजें भेजी थीं, वे सब उसी मूर्त्तिके सामने सजा कर रख दी गईं। उस समय उस मन्दिरके प्रधान लामाने उक्त मूर्त्तिके सामने बैठ कर उन सब चीजों तथा उपहार भेजनेवालोंके नाम लोगोंको विदित कर दिया। सन्ध्याके समय उस मूर्त्तिके सामने मडुएकी मदिरा तथा चाय भरे वर्त्तन सजा कर रखे गये। कुछ ही क्षणके बाद वहां बहुतसे लामागण उपस्थित हुए। उन सबोंने जी भर भर कर चाय तथा मदिरा पान किया। इसके बाद मृतके सभी आत्मीयजन वहां उपस्थित हुए। उन सबोंने उस प्रतिमाको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया तथा मूर्त्तिके वस्त्राञ्चलको चूमा।

अन्तमें वे सबके सब उस निर्मित मूर्त्तिसे सदाके लिये विदा ले कर अपने अपने घरको चले। उस समय सभी लामाओंने मृतांकी प्रेतात्माकी मङ्गलकामनासे एक स्वरमें स्तोत्रपाठ करना शुरू किया तथा उनके प्रधानने एक मेज़के पास जा कर कई एक गुप्त क्रियायें की। लगभग ६ बजे रातमें स्तोत्रपाठ समाप्त हुआ। उसके बाद लामाओंके प्रधानने अपने आसनके पास खड़े हो कर एक लम्बी चौड़ी वक्तृता दी। उसका अभिप्राय यही था—'तुम्हारे भवसागर पार करनेकी सुविधाके लिये जितनी क्रियायें थीं, सभी पूरी की गई। अब तुम स्वच्छन्द हो कर धर्मराज यमके पास जा सकती हो।' यही उन लोगोंकी वैतरणी पार करनेकी व्यवस्था कही जाती है।

प्रधान लामाकी वक्तृता समाप्त होने पर दूसरे दूसरे लामाओंने उस मूर्त्तिको वस्त्रहीन कर दिया। इसके बाद कई मनुष्य शङ्ख, शिङ्गा, ढाक, करताल प्रभृति बाजा बजाते उस मूर्त्तिको ले कर मठके बाहर निकले। एवं प्रतिमाको अन्धकारमें फेंक कर पुनः मन्दिरमें लौट आये।

पहले ही कह चुका हूं कि लेपछाओंमें किसी तरह का जातिभेद नहीं है। जो नेपाल राज्यमें हिन्दू राजाके अधीन वास करते हैं वे राजनियमके वशीभूत हो कर उसी तरह अपना अपना धर्म पालन करते हैं। नेपालमें ये लोग गो-हत्या नहीं कर सकते। किन्तु दार्जिलिङ्गमें ये लोग शूकर, गो आदि पशुओंके मांस खाते हैं। वनमें मरे हुए पशुओंके मांसको खानेमें भी इन लोगोंको घृणा नहीं है। मरे हुए हाथीके मांस तथा चर्बी ये लोग अत्यन्त चावसे खाते हैं। इसके अलावे वनमें पैदा होने वाले फल-मूल तथा चावल, मैदेकी रोटी आदि भी इन लोगोंके खाद्य पदार्थ हैं। चावल तथा मैदेके लिये ये लोग धान, गेहूं तथा भुट्टेकी खेती करते हैं। चावल, भुट्टे तथा महुएकी मदिरा बना कर पीते हैं। ये लोग जब कहीं दूरकी यात्रा करते हैं, तब बांसके चोंगेमें मदिरा भर कर ले जाते हैं। यात्रापथमें ये लोग बांसके चोंगेमें चावल भिगो कर खाते हैं, किन्तु घर पर ऐसा नहीं करते, घर पर वे चावलको लोहेके बर्त्तनमें भात रांध कर खाते हैं।

लेपन (सं० क्ली०) लिप-ल्युट्। लेप।

"वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाक्षयसंज्ञिता।
तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरतिशोभनम्॥" (तिथितत्त्व)

गोबर द्वारा देवगृह लेपन करनेसे इहलोकमें विविध सुख और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। पुराणादि धर्मशास्त्रोंमें लेपनकी बड़ी प्रशंसा की है।

२ गात्रमें लेपप्रदान, शरीरमें चन्दनादि लेपन। सुश्रुतमें लिखा है, कि स्नानके बाद लेपन उचित है। यह लेपन अङ्गमें प्रयोग करनेसे सौभाग्य तथा देहके लावण्यकी वृद्धि होती है। यह देहका श्रम और दौर्गन्ध्यनाशक है। जिन सब अवस्थाओंमें स्नान निषिद्ध है, उस अवस्थामें लेपनको भी निषिद्ध बताया है।

लेपन तीन प्रकारका है, दोष और विषनाशक तथा वर्ण्यकर। इसके भी फिर दो भेद हैं, प्रदेह और आलेप। इनमेंसे आलेप पित्तनाशक और प्रदेह वातश्लेष्मनाशक है। लेप रात्रिकालमें निषिद्ध है। किन्तु व्रणादिमें रात्रिको भी लेप दिया जा सकता है।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि प्रतिदिन शरीरमें आंवलेका लेप कर स्नान करनेसे वलिपलित रोगसे मुक्त हो सौ वर्षकी परमायु हो सकती है।

स्नानके बाद साफ सुथरा कपड़ा पहन कर सुगन्धि द्रव्य द्वारा शरीरमें लेपन करे। शीतकालमें चन्दन, कुंकुम और कृष्णागुरुका लेपन करना चाहिये। यह उष्णवायु और कफनाशक है। ग्रीष्म और शरत्कालमें चन्दन, कपूर और अतिबला मिला कर लेपन करे। यह सुगन्धित और शीतल होता है। वर्षाकालमें चन्दन, कुंकुम और कस्तूरी मिला कर लेपन करना हितकर है। क्योंकि यह न तो उष्ण है और न शीतल।

उपयुक्त परिमाणमें लेपनका प्रयोग करनेसे प्यास, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, पसीना और दाह विनष्ट होता है तथा सौभाग्य, तेज, वर्ण, प्रीति और बलकी वृद्धि होती है। स्नानके अयोग्य व्यक्तिके लिये लेपन निषिद्ध है। स्नान किये बिना लेपन नहीं करना चाहिये।

यह लेपन कफघ्न, मेदोनाशक, शुक्रजनक, बलकारक, रक्तवर्द्धक तथा चर्मकी प्रसन्नता और कोमलताकारक है। मुखलेप द्वारा चक्षु स्थिर, गण्डस्थल स्थूलतर तथा वदन स्थूल, कमनीय, व्यङ्ग और पीड़करहित तथा कमल सदृश होता है। शरीर लेपनके बाद भूषण पहनना उचित है। (भावप्र० पूर्वख०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि लेप तीन प्रकारका है, प्रलेप, प्रदेह और आलेप। इनमेंसे शुष्क हो वा न हो, शीतल वा अल्प होनेसे ही उसे प्रलेप कहते हैं। उष्ण अथवा शीतल, अनेक वा अल्प तथा शुष्क, इसे प्रदेह तथा दोनों प्रकारके मध्यवर्त्ती होनेसे उसे आलेप कहते हैं।

रक्तपित्तजन्य रोगमें आलेप; वातश्लेष्मजन्य रोगमें अथवा टूटी हड्डी जोड़नेमें अथवा व्रणका शोधन या पूरण करनेमें प्रदेह उचित है। क्षत वा अक्षत इन दोनों ही स्थानमें प्रदेहका व्यवहार किया जाता है। जिसका क्षतस्थानमें प्रयोग किया जाता है उसे निरुद्धा लेपन कहते हैं। इससे व्रणका स्राव रुक जाता, व्रण कोमल होता तथा उससे पूतिगन्धयुक्त मांस निकलता है। जो शोथ क्षार द्वारा दग्ध नहीं किया जाता उसके लिये आलेप हितकर है। जो द्रव्य खाने वा पान करनेसे शरीरके भीतरके जिस दोषकी शान्ति होती है, उस द्रव्य का प्रलेप देनेसे शरीरमें त्वक्स्थित उस दोषकी शान्ति होती है तथा व्रणकी ज्वाला और खुजलाहट भी दूर होती है। शरीरका त्वक्संशोधन और व्रणकी दाह-शान्ति करनेमें आलेपन ही प्रधान उपाय है। इससे मांस और रक्त संशोधित होता है तथा शोथकी खुज-लाहटकी शान्ति होती है। शरीरके मर्मस्थान वा गुह्य स्थानमें जो सब रोग उत्पन्न होते हैं उनके संशोधनके लिये आलेपन उचित है।

आलेपन तय्यार करनेमें पित्तजन्य रोगमें सभी आले-पन द्रव्य मिला कर जितना होगा उसके सोलहवें भाग-का छः भाग स्नेह द्रव्य (घृत तैलादि) मिलाना होगा। वायुजन्य रोगमें चार भाग तथा श्लेष्मज रोगमें आधा मिला कर प्रयोग करे। महिषका चमड़ा आर्द्र होनेसे वह जितना ऊंचा होता है अर्थात् फूल जाता है, शरीरका आलेपन भी उतना ही मोटा होगा। आलेपन रात्रिकालमें प्रयोग न करे तथा व्रणसे जब तक उत्ताप निकलता रहे, तब तक उसमें शीतल आलेपन न करे। क्योंकि व्रणकी उष्णता नहीं निकलनेसे पीछे वह व्रण विकटरूप धारण करता है।

प्रदेह लेपन दिनको ही हितकर है। विशेषतः पित्तज, रक्तज और अभिघातजन्य अथवा विषजन्य रोगमें दिन-को ही लेपन करना कर्त्तव्य है।

पहले दिनका तैयार किया हुआ प्रलेप कदापि व्यव-हार न करना चाहिये। क्योंकि वह प्रलेप गाढ़ा हो जाता है जिससे उष्णता, वेदना और दाह उत्पन्न होता है। प्रलेपके ऊपर प्रलेप न दे। जो प्रलेप एक बार शरीरसे उतार दिया जाता है, उसका फिर दूसरी बार प्रयोग न करे। वह सूख जानेके कारण बेकाम हो जाता है।

(सुश्रुतसूत्रस्था० १८ अ०)

२ सुधा, आँवलेका चूर। ३ भोजन, खाना। ४ तुरुष्क नामक गन्धद्रव्य। ५ सिह्लक, शिलारस।

लेपना (हिं० क्रि०) गाढ़ी गीली वस्तुकी तह चढ़ाना, कीचड़ या लेई सी गाढ़ी चीज फैला कर पोतना।

लेपालक (हिं० स्त्री०) दत्तक पुत्र, गोद लिया हुआ पुत्र।

लेपिन् (सं० पु०) लिम्पतीति लिप-णिनि। १ लेपक, लेप करने या पोतनेवाला। २ लेखक, लिपिकार।

लेप्य (सं० त्रि०) लिप ण्यत्। लेपनीय, लेपन करने योग्य।

"शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥"

(भागवत ११।२७।१२)

लेप्यकृत् (सं० पु०) लेप्यं करोतीति कृ क्विप् तुक् च। लेपक, पोतनेवाला।

लेप्यनारी (सं० स्त्री०) १ अगरुचन्दन-चर्चित रमणी, वह स्त्री जिस पर चंदन आदिका लेप लगा हो। २ पत्थर या मिट्टीकी बनी स्त्रीकी मूर्त्ति।

लेप्यमयी (सं० स्त्री०) लेप्य-मयट्, ङीप्। काष्ठादि घटित पुत्तलिका, कठपुतली।

लेप्ययोषित् (सं० स्त्री०) लेप्यनारी देखो।

लेप्यस्त्री (सं० स्त्री०) लेप्या स्त्री। सुगन्धद्रव्यलिप्ता स्त्री, वह स्त्री जिस पर चन्दन आदिका लेप लगा हो।

लेफ्टिनेंट (अं० पु०) १ वह सहायक कर्मचारी जिसे यह अधिकार हो कि अपनेसे उच्च कर्मचारीके आज्ञानुसार या उसकी आज्ञाके अभावमें कोई काम कर सके। २ सेनाका वह अध्यक्ष जो कप्तानके अधीन होता है और कप्तानकी अनुपस्थितिमें सेना पर पूर्ण अधिकार रखता है।

लेवरना (हिं० क्रि०) तानेमें माटी लगाना।

लेबुल (अं० पु०) नाम विधि, पते या विवरण आदिकी सूचक वह चिट जो पुस्तकों, औषध आदिकी पुड़ियों, बोतलों या गठरियों आदि पर लगाई जाती है।

लेबोरेटरी (अं० स्त्री०) वह शाला या स्थान जिसमें वैज्ञानिक परीक्षाएं की जाती हों, किसी परिक्रियाकी जांच की जाती हो अथवा रासायनिक पदार्थ, औषधें इत्यादि बनाई या तैयार की जाती हों।

लेमनेड (अं० पु०) नीबूका शरबत। यह पहले नीबूके रसको शरबतमें मिला कर बनाया जाता था, पर अभी नीबूके सत्तको शरबतमें मिला कर बनाया जाता है और बोतलमें हवाके जोरसे बंद करके रखा जाता है। यह पाचक माना गया है।

लेमर (अं० पु०) एक प्रकारका जंतु। यह पेड़ों पर रहता है और फल, फूल, अंकुर, पत्तियाँ, अंडे और कीड़े मकोड़े खाता है। इसकी आकृति बंदरोंसे मिलती जुलती है। इसकी अनेक जातियां हैं जो अफ्रिका और पूर्वीय टापुओंमें फिलिपाइन और सिलीबीज तक मिलती हैं। इनके सिवा इसकी एक और जाति है जिसे पूंछ नहीं होती और जो मलय, वोर्नियो, सुमात्रा आदिमें पाई जाती हैं।

लेमरो—निम्न ब्रह्मके अन्तर्गत एक नदी। आराकान प्रदेशके उत्तर जो शैलमाला है उसीसे यह निकलता है। पर्वतसे निकलने पर इसमें अनेक छोटी छोटी नदियां मिल कर गई हैं। पीछे यह नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर समुद्रमें गिरती है।

लेम्योत्‌हा—ब्रह्मराज्यके इरावती विभागके अन्तर्गत वेसिन जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १७° ३४' ५०" उ० तथा देशा० ९५° १३' ४०" पू०के मध्य वेसिन वा ङगा नदी तट पर अवस्थित है। नदीमें जब बाढ़ आती है, तब नगरका पथघाट कभी कभी ३ फुट जलसे डूब जाता है।

लेय (सं० पु०) सिंहराशि।

लेर (हिं० स्त्री०) लहर देखो।

लेरुआ (हिं० पु०) बछड़ा।

लेलया (सं० स्त्री०) कम्पमाना, कांपती हुई स्त्री।

लेलिह (सं० त्रि०) लिह-यङ्, यङ् लुक, ले-लिह-अच्। १ पुनः पुनः लेहन, बार बार चाटना। २ लीख, जूं। ३ सर्प, सांप।

लेलिहान (सं० पु०) पुनः पुनरतिशयेन वा लेढ़ीति लिह-यङ्, शानच् वा। १ शिव, महादेव। २ सर्प, सांप। (त्रि०) ३ पुनः पुनः लेहनकर्त्ता, बार बार चाटनेवाला।

लेलिहाना (सं० स्त्री०) मुद्राविशेष। मुखको विवृत कर नीचेकी ओर जिह्वा परिचालित करे तथा दोनों हाथकी मुट्ठी दोनों बगलमें रखे। इसीको लेलिहान मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा तारापूजामें प्रशस्त है।

अन्य प्रकार—तर्जनी, मध्यमा और अनामिकाको समान भावमें नीचेकी ओर रख वृद्धांगुलिसे अनामिका पकड़े और कनिष्ठाको सरलभावमें रखे। इसीका नाम लेलिहान-मुद्रा है। यह मुद्रा जीवन्यासमें विशेष प्रशस्त है।

लेल्य (सं० त्रि०) गाढ़ संलिप्त, अच्छी तरह लिपटा हुआ।

लेव (हिं० पु०) १ अच्छी तरह घुली हुई मिट्टी या पीसी हुई औषधियाँ जो किसी स्थान पर लगाई जांय। २ दीवार पर लगानेका गिलावा, कहगिल। ३ मिट्टी आदिका लेप जो हंडी या और बरतनोंकी पेंदी पर आग पर चढ़ानेसे पहले किया जाता है। ऐसा करनेसे बरतनकी पेंदी जलने नहीं पाती। ४ लेवा देखो।

लेवक (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। इसकी लकड़ी इमारतके काममें आती है।

लेवड़ा (हिं० पु०) लेपा, लेव।

लेवा (हिं० पु०) १ गिलावा। २ मिट्टीका गिलावा, कहगिल। ३ नावकी पेंदीका वह तख्ता जो सिरेसे पतवार तक लगाया जाता है। ४ लेप। ५ पानीका

इतना बरसना कि जोतने पर खेतकी मिट्टी और पानी मिल कर गिलावा बन जाय। ६ गाय, भैंस आदिका थन। (वि०) ७ लेनेवाला।

लेवार (सं० पु०) अग्रहार।

लेवार (हिं० पु०) लेव, गिलावा।

लेवाल (हिं० पु०) लेने या खरीदनेवाला।

लेवोङ्ग—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह हिमालयपर्वतका अंश समझो जाती है और अक्षा० ३०° २०´ उ० तथा देशा० ८०° ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह गिरिशाखा वियान और धर्मा उपत्यकाके मध्य फैली हुई है। पर्वतके ऊपरसे एक रास्ता दूसरी ओर चला गया है। इस सङ्कटका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे १८६४२ फुट ऊंचा और चिरतुषारावृत है।

लेश (सं० पु०) लिश-घञ्। १ कणा, अणु। २ सूक्ष्मता, छोटाई। ३ चिह्न, निशान। ४ संसर्ग, लगाव। ५ एक अलङ्कार। इसमें किसो वस्तुके वर्णनके केवल एक ही भाग या अंशमें रोचकता आती है। ६ एक प्रकारका गाना। (त्रि०) ७ अल्प, थोड़ा।

लेश्या (सं० स्त्री०) १ दीप्ति, आलोक। २ जैनियोंके अनुसार जीवकी वह अवस्था जिसके कारण कर्म जीवको बांधता है। यह छः प्रकारकी मानी गई है—कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल। इसे जैन लोग जीवका पर्याय भी मानते हैं।

लेष्य (सं० त्रि०) १ नाशयोग्य, बरबाद होने लायक। २ छिद्र करणोपयोगी, काटने लायक।

लेष्टु (सं० पु०) लिश्यते इति लिश धातुलकात् तुन्, लोष्ट, ढेला, पत्थर।

लेष्टुहन् (सं० पु०) लेष्टुं हन्ति हन-ढक्। लोष्टभेदन, पत्थर फोड़ना।

लेष्टुभेदन (सं० पु०) लेष्टुं भिनत्तीति, भिद-ल्युट्। लोष्टभङ्गसाधन मुद्गर, पत्थर फोड़नेका मुगदर। पर्याय—कोटीश, लेष्टुघ्न, लेष्टुभेदी, चूर्णदण्ड।

लेस (अं० स्त्री०) १ कलाबत्तू या किनारे पर टांकनेकी इसी प्रकारकी और कोई पट्टी, गोटा। २ बेल। (पु०) ३ मिट्टीका गिलावा जो दीवार पर लगानेके लिये बनाया जाता है। ४ किसी वस्तुको पानीमें घोल कर तैयार किया हुआ गाढ़ा गिलावा, चेप।

लेसना (हिं० क्रि०) १ जलाना। २ किसी चीज पर लेस लगाना, पोतना। २ घरकी दीवार पर मिट्टीका गिलावा पोतना, कहगिल करना। ३ चिपकाना, सटाना। ४ इधरकी बात उधर लगाना, चुगली खाना। ५ दो आदमियोंमें विवाद उत्पन्न करनेके लिये उन्हें उत्तेजित करना।

लेसिक (सं० पु०) हस्त्यारोहक, फीलवान्।

लेह (सं० पु०) लेहनमिति लिह-घञ्। १ आहार, भोजन। पर्याय—स्वादन, रसन, स्वदन, स्वादि। लिह कर्मणि-घञ्। २ रस। ३ अवलेह। दोषके बलाबलके अनुसार स्नानविशेषमें अवलेहका प्रयोग करना चाहिये। अवलेह प्रायः ऊर्ध्वजत्रुगत रोग नष्ट करता है, इस कारण इसका सायंकालमें प्रयोग करना होता है। यह अवलेह अष्टाङ्ग और चतुरङ्ग आदि भेदयुक्त है।

अष्टाङ्गावलेह—कायफल, पुष्करमूल, अभावमें कुट, कर्कटश्रृङ्गी, मिर्च, पीपल, सोंठ, दुरालभा तथा मंगरैला इन सबको चूर्ण कर मधुके साथ चाटना होता है। इसीको अष्टाङ्गावलेह कहते हैं। यह चाटनेसे सन्निपात, हिक्का, श्वास, कास तथा कण्ठरोग नष्ट होता है। कफप्रधान सन्निपातमें अदरकके रसके साथ इसका प्रयोग करे। दूसरेके मतसे— लेहिका मधुके साथ वा अदरकरसके साथ सेवन करनेसे तन्द्रा और कासयुक्त दारुणमोह विनष्ट होता है।

चतुरङ्गावलेह—सिद्ध आंवलेको पीस कर दाख और सोंठके साथ मिलावे। पीछे मधुके साथ चाटनेसे श्वास, कास, मूर्च्छा और अरुचि नष्ट होती है।

(भावप्र० मध्यख०)

द्रव और कल्क बनानेमें जैसा भाग बताया गया है, अवलेहका भाग भी वैसा ही जानना चाहिये।

अवलेह देखो।

लेह—पञ्जावप्रदेशके काश्मीर राज्यान्तर्गत लदाख राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३४° १०´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ पू०के मध्य सिन्धुनदके उत्तरी कूलसे १॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह स्थान सिन्धुनद और पार्श्ववर्त्ती पर्वतमालाओंके मध्यस्थित समतलक्षेत्र पर बसा हुआ है। वहां जगह जगह गोलाकार दुर्गवाटिका

दिखाई देती है। काश्मीरराज गुलाबसिंहने यहांके राजा-को राज्यच्युत करके यह स्थान काश्मीर-राज्यमें मिला लिया। लदाख देखो।

नगरके दक्षिण-पश्चिममें एक दुर्ग है। प्राचीन राज-प्रासाद तीन खनका है। उसका शिल्पकार्य उतना अच्छा नहीं होने पर भी काठका बना बरामदा देखने लायक है। चीन, तातार और पञ्जावप्रदेशका वाणिज्यकेन्द्र होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। यहां शाल बनानेके पशम का जोरों कारवार चलता है। यहां एक वेधालय स्थापित है।

लेहन (सं० क्ली०) लिह-ल्युट्। जिह्वा द्वारा रसास्वादन, चाटना। पर्याय—जिह्वास्वाद।

लेहना (हिं० पु०) १ खेतमें कटे हुए अनाजकी वह डांठ जो काटनेवाले मजदूरोंको काटनेकी मजदूरीमें दी जाती है। २ डंठल वा वयाल आदिकी वह माला जो उठाने-वालेके दोनों हाथोंके बीचमें आ सके। ३ कटी हुई फसलका वह वाल सहित डंठल जो नाई, धोबी आदिको दिया जाता है। ४ लहना देखो।

लेहरा—विहार और उड़ीसाके दरभङ्गा जिलेका एक बड़ा गांव। यह मधुवनसे वहेरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है। पण्डौल नील-कोठीके अधीन यहां जब नीलका कारखाना था, उस समय इसकी बहुत उन्नति हुई थी। इसके एक बगलमें तीन बड़ी बड़ी दिग्गी हैं। उनमेंसे घुड़दौड़ नामक दिग्गी दो मील लम्बी है। इसके किनारे प्रायः १५ वीघा जमीन तक इष्टकस्तूप फैला हुआ है। अभी वह जङ्गलसे ढक गया है। प्रवाद है, कि तिरहुतके राजा शिवसिंह यहां रहते थे। वह स्तूप उन्हींके प्रासादका ध्वंसावशेषमात्र है।

लेहसुआ (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसकी पत्तियां चार अंगुल लंबी, तीन अंगुल चौड़ी, ऊपरकी ओर नुकीली और धारीदार होती हैं। यह बरसातमें उत्पन्न होती है और बहुत कोमल तथा लसीली होती है। इसका साग भी बनाते हैं। पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं। इसको पत्ती तेल आदिमें तलनेसे रोटीको तरह फूल जाती है। इसका दूसरा नाम कनकौवा भी है।

लेहसुर (हिं० पु०) कुम्हारोंका एक यन्त्र। इससे वे मिट्टी-को मिलाते हैं।

लेहाजा (अ० क्रि० वि०) इसलिये, इस कारण।

लेहाड़ा (हिं० वि०) लिहाड़ा देखो।

लेहाड़ापन (हिं० पु०) लिहाड़ापन देखो।

लेहाड़ी (हिं० स्त्री०) अप्रतिष्ठा, अपमान।

लेहाफ (अ० पु०) लिहाफ देखो।

लेहिन् (सं० त्रि०) १ लेहयुक्त, लीपा हुआ। २ लेहन कारी, चाटनेवाला।

लेहिन (सं० पु०) लिह-बाहुलकादिनन्। टङ्कणक्षार, सोहागा।

लेही (सं० स्त्री०) कर्णपाली-रोग।

लेह्य (सं० क्ली०) लिह ण्यत्। १ अमृत। २ आठ प्रकार-के अन्नोंमेंसे एक। ३ वह पदार्थ जो चाटनेके लिये हो। यह भोजनके छः प्रकारोंमेंसे एक है। ४ अवलेह। (त्रि०) ५ लेहनीय, चाटनेके योग्य, जो चाटा जाय।

लैंडो (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी घोड़ागाड़ी। इसमें ऊपर टप होता है। यह टप बीचमेंसे इस प्रकार खुलता है, कि पिछला अंश पीछेकी ओर और अगला आगेको ओर सिकुड़ कर दब और नीचे बैठ जाता है। इसमें आमने सामने दोनों ओर बैठनेकी चौकियां होती हैं।

लैंप (अं० पु०) दीपक, चिराग।

लै (हिं० अव्य०) पर्यन्त, तक।

लैख (सं० पु०) लेखका गोत्रापत्य।

लैखाभ्रेय (सं० स्त्री०) लेखाभ्र वा लेखाभ्रूका गोत्रा-पत्य।

लैगवायन (सं० पु०) लिगुका गोत्रापत्य।

लैगव्य (सं० पु०) लिगुका गोत्रापत्य।

लैङ्ग (सं० क्ली०) लिङ्गमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इति लिङ्ग-स्येदमिति वा लिङ्ग-अण्। १ लिङ्गपुराण। पुराण देखो। (त्रि०) २ लिङ्गसम्बन्धीय।

लैङ्गिक (सं० त्रि०) १ लिङ्गसम्बन्धीय। २ लिङ्ग या प्रतिमूर्त्ति बनानेवाला। (पु० ३ वैशेषिकदर्शनके अनु-सार अनुमान प्रमाण। सूत्रमें इसका स्पष्ट लक्षण न कह कर इसे उदाहरण द्वारा इस प्रकार लक्षित किया गया है, कि यह इसका कार्य है, यह इसका कारण है, यह इसका

संयोगो है, यह इसका विरोधी है, यह इसका समवायी है, आदि इस प्रकारका ज्ञान लैङ्गिकज्ञान कहलाता है। इसीको न्यायमें अनुमान कहते हैं।

लैटिन—पूर्वकालमें इटलीमें बोली जानेवाली एक भाषा। किसी समयमें सारे यूरोपमें यह विद्वानों और पादरियोंकी भाषा थी। इस भाषाका साहित्य बहुत उन्नत था और इसीलिये अब भी कुछ लोग इसका अध्ययन करते हैं।

लैन (अं० स्त्री०) १ सीधी लकीर जिसमें लम्बाई मात्र हो। २ सीमाकी लकीर। ३ पंक्ति, कतार। ४ पैदल सिपाहियोंकी सेना। ५ सिपाहियोंके रहनेकी जगह, वारक।

लैया (हिं० पु०) अगहनमें कटनेवाला एक प्रकारका धान, अहहन, शाली।

लैवेंडर (अं० पु०) एक सुगंधित तरल पदार्थ। यह एक पौधेके फूलोंसे निकाला जाता है। यह इतरकी तरह कपड़ोंमें, या ठंढक पहुंचानेके लिये सिरमें लगाया जाता है।

लैसंस (अं० पु०) वह प्रमाणपत्र जिसके द्वारा किसी मनुष्यको विशेष अधिकार दिया जाता है, सनद।

लैस (अं० वि०) १ वर्दी और हथियारोंसे सज्जा हुआ, तैयार। (पु०) २ कपड़े पर चढ़ानेका फीता। ३ एक प्रकारका वाण। इसकी नोक लम्बी और बड़ी होती है। ४ एक प्रकारका सिरका। ५ कमानी।

लों (हिं० अव्य०) लौं देखो।

लोंडी (हिं० स्त्री०) कानका लोलक।

लोंदा (हिं० पु०) किसी गीले पदार्थका वह अंश जो डलेकी तरह बंधा हो।

लो (हिं० अव्य०) एक अव्यय। इसका प्रयोग श्रोताको सम्बोधन करके उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया जाता है।

लोइ (हिं० स्त्री०) १ प्रभा, दीप्ति। २ शिखा, लव।

लोई (हिं० स्त्री०) १ गुंधे हुए आटेका उतना अंश जो एक रोटीमात्रके लिये निकाल कर गोलीके आकारका बनाया जाता है और जिसे बेल कर रोटी बनाते हैं। २ एक प्रकारका कम्बल। यह पतले ऊनसे बुना जाता है और साधारण कम्बलसे कुछ अधिक लंबा और चौड़ा होता है। इसकी बुनावट प्रायः दुसुत्तीकी-सी होती है।

लोकंजन (हिं० पु०) वह कल्पित अंजन जिसे आंखमें लगानेसे मनुष्यका अदृश्य होना माना जाता है, लोपांजन।

लोकंदा (हिं० पु०) विवाहमें कन्याके डोलेके साथ दासीको भेजना।

लोकंदी (हिं० स्त्री०) वह दासी जो कन्याके पहले पहल ससुराल जाते समय उसके साथ भेजी जाती है।

लोक (सं० पु०) लोक्यते इति लोक-घञ्। भुवन। लोक सात है, सप्तलोक, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक। (अग्निपु०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि लोक दो प्रकारका है, स्थावर और जङ्गम। वृक्ष, लता और तृण आदि स्थावर तथा पशु, पक्षी, कोट, मनुष्य आदि जङ्गम है। यह स्थावर और जङ्गमरूप लोक उष्ण शीत गुणभेदसे पुनः आग्नेय और सौम्य इन दो प्रकारमें विभक्त है। अथवा क्षिति, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पञ्चभूतके भेदसे पांच प्रकारमें विभक्त है। इन दोनों लोकोंके मध्य भूतकी उत्पत्ति चार प्रकार हैं—जैसे स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज। एकमात्र पुरुष इन सब लोकोंके अधिष्ठाता हैं। (सुश्रुत सूत्रस्था १ अ०)

जो पुण्यकारी हैं उन्हें उत्तमलोक और जो पापकारी हैं उन्हें अधम लोक जाना पड़ता है। पुण्यात्माके लिये नाना प्रकारके अति विचित्र और पवित्र लोक हैं, ये सब लोक काममय अति विचित्र हैं।

(अग्निपु० वराह-प्रादुर्भाव नामाध्या०)

२ जन, आदमी। ३ स्थान, निवासस्थान। ४ प्रदेश, दिशा। ५ समाज। ७ प्राणी। ८ यश, कीर्त्ति।

लोक (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जो बत्तखसे बड़ा और खाकी रंगका होता है।

लोककण्टक (सं० पु०) १ मन्द लोक, खराब आदमी। २ दोषी व्यक्ति, दुष्ट प्राणी।

लोककथा (सं० स्त्री०) १ प्रचलित प्रवाद, किंवदन्ती। २ नीतिमूलक गल्प।

लोककर्त्तृ (सं० पु०) लोकस्य कर्त्ता। १ विष्णु। २ शिव। ३ ब्रह्मा।

लोककम्प (सं० त्रि०) मनुष्यको डरानेवाला।

लोककल्प (सं० त्रि०) १ जगत्‌के जैसा। २ जगत्-स्थितिके समान।

लोककान्त (सं० त्रि०) लोकानां कान्तः। १ लोकप्रिय, जनप्रिय। २ ऋद्धि नामक औषध।

लोककार (सं० पु०) लोककर्त्ता। ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

लोककृत् (सं० त्रि०) १ सृष्टिकारी। २ स्थलकारी।

लोककृत्नु (सं० त्रि०) सृष्टिकर्त्ता।

लोकक्षित् (सं० त्रि०) स्वर्गगामी, आकाशचारी।

लोकगति (सं० स्त्री०) जीवनयात्रा।

लोकगाथा (सं० स्त्री०) लोकपरम्पराश्रुत गाथा, किंवदन्ती।

लोकगुरु (सं० पु०) जगद्वासीके उपदेष्टा, आचार्य।

लोकचक्षस् (सं० क्ली०) लोकानां चक्षुरिव। १ सूर्य। २ लोगोंके चक्षु, आदमीकी आंख।

लोकचर (सं० त्रि०) १ जीव, प्राणी। २ जगत्भ्रमणकारी, संसारमें विचरनेवाला।

लोकचरित (सं० क्ली०) जीवनयात्रा, मनुष्यका जीवन-इतिहास।

लोकचारिन् (सं० त्रि०) लोकचर।

लोकजननी (सं० स्त्री०) लक्ष्मी।

लोकजित् (सं० पु०) लोकं जितवान् इति जि क्विप् तुक् च। १ बुद्ध। (त्रि०) २ लोकजेता, संसारको जीतनेवाला।

लोकज्ञ (सं० त्रि०) मानवतत्त्वदर्शी।

लोकज्येष्ठ (सं० त्रि०) १ नरश्रेष्ठ। २ बुद्धभेद।

लोकतत्त्व (सं० क्ली०) मानवतत्त्व।

लोकतन्त्र (सं० क्ली०) जगत्‌का इतिहास।

लोकतस् (सं० अव्य०) लोकानुरूप, पहलेके जैसा।

लोकतुषार (सं० पु०) लोके तुषार इव। कपूर, कपूर।

लोकत्रय (सं० क्ली०) स्वर्ग, मर्त्य और रसातल।

लोकदम्भक (सं० त्रि०) प्रवञ्चक, ठग।

लोकद्वार (सं० क्ली०) स्वर्गद्वार।

लोकद्वारीय (सं० क्ली०) सामभेद।

लोकधातृ (सं० पु०) लोकस्य धाता। शिव।

लोकधातु (सं० पु०) बौद्धके मतसे जगत्‌का अंशविशेष।

लोकधारिणी (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

लोकधुनि (हिं० स्त्री०) जनरव, अफवाह।

लोकना (हिं० क्रि०) १ ऊपरसे गिरती हुई किसी वस्तुको भूमि पर गिरनेसे पहले ही हाथोंसे पकड़ लेना। २ बीचमेंसे ही उड़ा लेना, रास्तेमेंसे ही लेना।

लोकनाथ (सं० पु०) लोकानां नाथः। १ बुद्ध। २ ब्रह्मा। ३ विष्णु। ४ शिव। ५ पारद, पारा।

लोकनाथ—१ अद्वैतमुक्तासारके रचयिता। २ मल्लप्रकाशके प्रणेता।

लोकनाथ—एक कवि। ये दरबार बूंदीमें राव राजा बुद्धसिंहजीके आश्रित थे। उन्हींके नामसे इन्होंने रसतरङ्ग और हरिवंशचौरासीका भाष्य प्रणयन किया था। एक बार राव राजा काबुल जाते थे। उस समय कविजीको भी साथ चलनेका हुक्म हुआ। इस पर इनकी स्त्रीने जो कवि थीं, इनके पास एक छन्द लिख भेजा। वह छन्द राव राजाको दिखा कर इन्होंने वहां जानेसे छुट्टी पाई। इनका काव्य साधारण श्रेणीका है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

> भूषण निवाज्यो जैसे सिवा महाराज जू ने
> बारन दे बावन धरा पै जस छाव है।
> दिल्लीशाह दिलीप भये हैं खानखाना जिन
> गंगसे गुनीको लाखे मौज मन भाव है॥
> अब कविराजन पै सकल समस्या हेत
> हाथी घोड़ा तोड़ा दे बढ़ायो बहु नाव है;
> बुद्धजू दिवान लोकनाथ कविराज कहै
> दियो इक लौरा पुनि धौलपुर गांव है॥

लोकनाथ चक्रवर्त्ती—कर्णपूरकृत अलङ्कारकौस्तुभकी टीका और मनोहरा नाम्नी रामायणी टीकाके रचयिता।

लोकनाथ ब्रह्मचारी—पश्चिम-वङ्गमें ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न एक ब्रह्मचारी। दश वर्षकी अवस्था तक इन्होंने ग्रामकी पाठशालामें पढ़ा। पीछे वे संस्कृत पढ़नेके लिये गुरुगृहमें गये। इसी समय इनका यज्ञोपवीत संस्कार

हुआ था। इनके दीक्षा और शिक्षा-गुरुका नाम भगवान्-चन्द्र गांगूली था। भगवानूचन्द्र षड्दर्शनके अद्वितीय पण्डित थे।

यज्ञोपवीत होनेके कई वर्षों के बाद लोकनाथने गुरु-के साथ अपनी जन्मभूमिका त्याग किया। बेणीमाधव वन्द्योपाध्याय नामक एक और उनके साथी हो गये थे। भगवान् दोनों शिष्योंको साथ ले कर कालीघाट पहुंचे। उस समय कालीघाट जङ्गल था। अनेक साधु-संन्यासी उस वनमें योगसाधन करते थे। कालीघाटमें रह कर भगवानूचन्द्र अपने दोनों शिष्यों द्वारा कठिन ब्रह्मचर्य-व्रतका अनुष्ठान कराने लगे।

कहते हैं, कि लोकनाथ ब्रह्मचर्यकी अवस्थामें अपनी किसी सहचरीको स्मरण करके ब्रह्मचर्यका फल नष्ट करता था। यह जान कर भगवानूचन्द्र दोनों शिष्योंको साथ ले कर घर लौट आये और जहां लोकनाथकी सह-चरी रहती थी, वहां रहने लगे। भगवानूचन्द्रने पता लगा लिया, कि लोकनाथकी सहचरी बालविधवा है और उसने अपना चरित्र कलङ्कित कर दिया है। भगवानूचन्द्र-ने उस बाल-विधवासे लोकनाथका मनोरथ पूर्ण करने कहा। उसने भगवानूचन्द्रका कहना मान लिया। जब लोकनाथकी स्त्रीसे तृप्ति हो गई, तब उन दोनों शिष्योंको ले कर भगवानूचन्द्र वहांसे चले गये।

गुरुने अनेक प्रकारके व्रत करके अनेक शिष्योंका मनः संयम कराया था। बहुत दिनों तक इस प्रकार व्रत करने-से दोनों ब्रह्मचारी जातिस्मर हो गये थे। उन्होंने कहा था, कि मैं पूर्वजन्ममें वर्द्धमान जिलेके वेडु नामक गांव में "सीतानाथ वन्द्योपाध्याय" नामका मनुष्य था। पता लगाने पर उनकी बातें सत्य मालूम हुई थीं।

भगवानूचन्द्र लोकनाथ और बेणीमाधवको साथमें ले कर अनेक स्थानोंमें घूमते हुए अन्तमें काशी आये। काशीमें मणिकर्णिका घाट पर भगवानूचंद्रने योगसाधन द्वारा शरीर त्याग किया। शरीर त्याग करनेसे पहले भगवानूचंद्रने अपने दोनों शिष्योंको तैलङ्गस्वामीके हाथ सौंप दिया था।

लोकनाथ और बेणीमाधव स्वामीजीके निकट कुछ दिनों तक योग सीख कर हिमालयके किसी निभृत स्थान में योगसाधनार्थ चले गये। वहां बहुत दिनों तक योग-साधन करके ये सिद्ध हो गये। दोनों महापुरुष पर्वत-शृङ्गसे चन्द्रनाथ और बेणीमाधव चंद्रनाथसे कामाख्या-की ओर चले गये। लोकनाथ बारदी गाँवमें उतरे।

ढाका जिलेके नारायणगञ्जके अन्तर्गत मेघना नदीके किनारे बारदी गाँव है। बारदीमें आ कर वे रहे थे, इस कारण लोक उन्हें "बारदीर ब्रह्मचारीजी" कहते हैं।

पहले ही कहा गया है, कि लोकनाथ ब्रह्मचारी जाति-स्मर थे और इसके अतिरिक्त वे अपने शरीरसे जीवात्मा-को बाहर निकाल सकते थे। प्राणियोंके मनके भाव वे समझ जाते थे। अन्तमें क्षयरोगसे इनकी मृत्यु हुई।

लोकनाथभट्ट—कृष्णाभ्युदय नामक प्रेक्षणकके प्रणेता।

लोकनाथरस (सं० पु०) १ प्लीहा-रोगाधिकारमें औषध-विशेष। लोकनाथरस और बृहल्लोकनाथरसके भेदसे यह दो प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, अबरक, प्रत्येक एक भाग, लोहा दो भाग, तांबा दो भाग, कौड़ीकी भस्म छः भाग इन सब द्रव्योंको एकत्र कर पान-के रसमें पीस कर गजपुटमें पाक करे। ठंढा होने पर दो रत्ती भर सेवन करके पीपलचूर्ण और मधु वा गुड़ और हरीतकी अथवा गोमूत्र और गुड़के साथ जीरा सेवन करे। इस औषधका सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा, उदरी, गुल्म और शोथ नाश होता है।

बृहल्लोकनाथरस—पारा एक भाग और गंधक दो भाग मिला कर काजल बनावे। एक भाग अबरक उसके साथ मिला कर घृतकुमारीके रसमें, पीछे दूना तांबा और लोहा मिला कर काकमाचीके रसमें बार बार मर्दन कर गोल बनावे। इसके बाद गन्धक २ भाग और कौड़ीकी भस्म २ भाग जंबीरी नीबूके रसमें घोंट कर दो मूषाके मध्य वह औषध गोलक रख दे। अनन्तर उक्त दोनों मूषों-को ढक्कनसे ढक कर सन्धिमें जली मिट्टी, लवण और जलका लेप चढ़ावे इसके बाद गजपुटमें पाक करे। ठंढा होने पर छः रत्तीकी गोली बनानी होगी। इसका अनु-पान पीपलचूर्ण, मधु, हरीतकीचूर्ण, गुड़, अजवायन वा गोमूत्र है। इसका सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा, उदरी, शोथ, वात, अष्ठीला, कामठी, प्रत्यष्ठीला, अग्रमास, शूल, भगन्दर, अग्निमान्द्य और कास आदि प्रशमित होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० प्लीहयकृद्धि०)

२ अतिसार रोगाधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर एक भाग, गंधक चार भाग कौड़ीमें भर कर सोहागेसे मुंह वन्द कर दे। पीछे उसे मिट्टीके बरतनमें वन्द कर पुटपाकमें पाक करे। इसकी मात्रा ४ रत्ती बनानी होगी। मधु, सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु और वचके साथ सेवन करनेसे सभी प्रकारके अतीसार रोग नष्ट होते हैं। (रसेन्द्रसारस० अतिसाररोगाधि०)

लोकनाथशर्मा—अमरकोषटीका पदमञ्जरीके प्रणेता।

लोकनिन्दित (सं० त्रि०) लोकेषु निन्दितः। जननिन्दित, जो जनसमाजसे निन्दित हो।

लोकनेतृ (सं० पु०) लोकानां नेता। १ शिव। २ जनसमाजका मालिक, समाजपति।

लोकप (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ लोकपाल। ३ राजा।

लोकपक्ति (सं० स्त्री०) सम्भ्रम, ख्याति, यश।

लोकपति (सं० पु०) लोकानां पतिः। विष्णु। लोकप देखो।

लोकपथ (सं० पु०) साधारण पथ वा उपाय।

लोकपद्धति (सं० स्त्री०) चिरन्तन पन्था।

लोकपाल (सं० पु०) १ दिक्पाल। पुराणानुसार आठ दिशाओंमें अलग अलग लोकपाल हैं। जैसे—इन्द्र पूर्व दिशाका, अग्नि दक्षिण पूर्वका, यम दक्षिणका, सूर्य दक्षिण-पश्चिमका, वरुण पश्चिमका, वायु उत्तर पश्चिमका, कुवेर उत्तरका और सोम उत्तर पूर्वका, किसी किसी ग्रंथमें सूर्य और सोमके स्थान पर निऋति और ईशानी या पृथ्वीके नाम मिलते हैं। २ अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्वका नाम। ३ राजा। ४ शिव। ५ विष्णु।

लोकपालक (सं० पु०) लोकस्य पालकः। लोकपाल।

लोकपालता (सं० स्त्री०) लोकपालस्य भावः तल् टाप्। लोकपालत्व, लोकपालका भाव या धर्म, लोकपालका कार्य।

लोकपितामह (सं० पु०) ब्रह्मा।

लोकपुण्य (सं० क्ली०) प्राचीन नगरभेद। (राजत० ४।१९३)

लोकपुरुष (सं० पु०) ब्रह्माण्डदेव।

लोकपूजित (सं० त्रि०) लोकेषु पूजितः। जनपूजित, जनसमाजमें मान्य।

लोकप्रकाशक (सं० पु०) लोकस्य प्रकाशकः। सूर्य।

लोकप्रकाशन (सं० पु०) सूर्य।

लोकप्रत्यय (सं० पु०) जगद्व्याप्त, वह जो संसारमें सर्वत्र मिलता हो।

लोकप्रदीप (सं० पु०) बुद्धभेद।

लोकप्रवाद (सं० पु०) लोके प्रवादः। जनप्रवाद, जिसे संसारके सभी लोग कहते और समझते हों।

लोकप्रसिद्धि (सं० स्त्री०) ख्याति, नाम।

लोकबन्धु (सं० पु०) १ शिव। २ सूर्य।

लोकबान्धव (सं० पु०) लोकानां बान्धवः। १ सूर्य। २ जनसमूहका मित्र।

लोकबिन्दुसार (सं० क्ली०) सुप्राचीन चतुर्दश जैन पूर्वोका शेषांश।

लोकभर्त्तृ (सं० पु०) जनसाधारणके अन्नदाता।

लोकभाज् (सं० त्रि०) स्थानाधिकारी, स्थानव्यापी।

लोकभावन (सं० त्रि०) जगत्‌का कल्याण करनेवाला।

लोकभाविन् (सं० त्रि०) जगत्‌कर्त्ता।

लोकमय (सं० त्रि०) स्थानमय, जगदाधार।

लोकमर्यादा (सं० स्त्री०) १ चिरन्तनपद्धति। २ व्यक्तिविशेषका सम्मान।

लोकमातृ (सं० स्त्री०) लोकानां माता। १ लक्ष्मी, कमला। २ लोककी जननी।

लोकमार्ग (सं० पु०) १ प्रचलित पद्धति। २ साधारण पन्था।

लोकंपृण (सं० त्रि०) १ जगद्व्यापी। २ सर्वगामी।

लोकंपृणा (सं० स्त्री०) इष्टकाभेद। मन्त्रपाठके साथ इस इष्टक द्वारा यज्ञीय वेदीका निर्माण करना होता है। (वाजसनेयसंहिता १२।५४)

लोकयात्रा (सं० स्त्री०) लोकानां यात्रा। १ संसारयात्रा, जीवन। २ व्यवहार। ३ व्यापार।

लोकयात्राविधान (सं० क्ली०) संसारयात्रा-निर्वाहका विधिपूर्वक नीतिशास्त्रविशेष। (Political Economy)

लोकयात्रिक (सं० त्रि०) जीवनयात्रा सम्बन्धीय।

लोकरक्ष (सं० पु०) राजा, नरपति।

लोकरञ्जन (सं० क्ली०) लोकस्य रञ्जनं। लोकका प्रीतिसम्पादन, जनताको प्रसन्न करना।

लोकरव (सं० पु०) जनरव, अफवाह।

लोकरा (हिं० पु०) चीथड़ा।

लोकल (अं० वि०) १ प्रान्तिक, प्रादेशिक। २ किसी एक ही स्थान या नगर आदिसे संबन्ध रखनेवाला, स्थानीय।

लोकलबोर्ड (अं० पु०) वह स्थानीय समिति जिसके सभ्योंका चुनाव किसी स्थानके कर देनेवाले करते हों और जिसके अधिकारमें उस स्थानकी सफाई आदिकी व्यवस्था हो।

लोकलोक (हिं० स्त्री०) लोकमर्यादा।

लोकलेख (सं० पु०) राजविज्ञप्ति।

लोकलोचन (सं० पु०) लोकानां लोचनमिव। १ सूर्य। २ मनुष्यके चक्षु।

लोकवचन (सं० क्ली०) जनरव, प्रवाद।

लोकवत् (सं० त्रि०) लोक सदृश।

लोकवर्त्तन (सं० क्ली०) मनुष्यचरित्र, रीति-नीति।

लोकवाद (सं० पु०) लोकस्य वादः। लोकप्रवाद, जनश्रुति।

लोकवार्त्ता (सं० स्त्री०) जनरव, अफवाह।

लोकवाह्य (सं० त्रि०) १ लोकवहिर्भूत, आचारभ्रष्ट। २ लोकवहनीय। ३ जातिच्युत।

लोकविक्रुष्ट (सं० त्रि०) विद्विष्ट, लोकनिन्दित।

लोकविज्ञात (सं० त्रि०) विख्यात, प्रसिद्ध, मशहूर।

लोकविद्र (सं० पु०) बुद्धभेद।

लोकविद्विष्ट (सं० त्रि०) लोकनिन्दित, जो जनताके बीच दूषित हो।

लोकविधि (सं० पु०) १ सृष्टिकर्त्ता। २ जगत्‌के नियन्ता।

लोकविनायक (सं० पु०) लोके विनायक इव। ग्रह-विशेष। ग्रहगण रोगके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

लोकविन्दु (सं० त्रि०) १ स्थानकारी। २ मुक्ति वा स्वाधीनता प्राप्त।

लोकविश्रुत (सं० त्रि०) विख्यात, संसार भरमें प्रसिद्ध।

लोकविश्रुति (सं० स्त्री०) लोके विश्रुतिः। जनश्रुति, किंवदन्ती।

लोकविसर्ग (सं० पु०) जगत्सृष्टि।

लोकविस्तार (सं० पु०) लोकव्यापृति, जगत्‌में प्रसिद्ध।

लोकवीर (सं० पु०) पृथिवीस्थ सुप्रसिद्ध वीरवृन्द। यह शब्द बहुवचनान्त है।

लोकवृत्त (सं० क्ली०) १ अल्प कथोपकथन, थोड़ी बात-चीत। २ लौकिक आचार।

लोकवृतान्त (सं० पु०) १ मनुष्यचरित्र। २ प्राचीन इतिहास।

लोकव्यवहार (सं० पु०) साधारणमें प्रचलित रीति-नीति।

लोकव्रत (सं० क्ली०) मनुष्य-समाजकी प्रचलित क्रिया-पद्धति।

लोकश्रुति (सं० स्त्री०) १ जनश्रुति, अफवाह। २ ख्याति, प्रसिद्धि।

लोकसंक्षय (सं० पु०) १ जनक्षय। २ जगत्‌का ध्वंस।

लोकसंग्रह (सं० पु०) १ लोकसमन्वय, आदमीकी भीड़। २ सांसारिक अभिज्ञान। ३ जगद्वासीकी आपसमें सम्प्रीति और सम्भाषा। ४ समग्र जगत्, सारा संसार।

लोकसंज्ञा (सं० स्त्री०) केन्द्र, गुड़ुच।

लोकसंव्यवहार (सं० पु०) वैदेशिक वाणिज्य।

लोकसंसृति (सं० स्त्री०) अदृष्ट, अभाग्य।

लोकसङ्कर (सं० पु०) १ जागतिक विप्लव। २ जनसमाजमें मिथ्या आचरण करनेवाला।

लोकसनि (सं० पु०) १ स्थानकारी। २ निरुद्वेगमार्ग-साधक।

लोकसाक्षिक (सं० त्रि०) जगद्वासीका अनुमोदित।

लोकसाक्षिन् (सं० पु०) १ ब्रह्म। २ अग्नि। ३ सूर्य।

लोकसात् (सं० अव्य०) जनसाधारणकी भलाईके लिये।

लोकसात्कृत (सं० त्रि०) जो जनताकी भलाईके लिये किया गया हो।

लोकसाधक (सं० त्रि०) जगत्‌की सृष्टि करनेवाला।

लोकसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

लोकसिद्ध (सं० त्रि०) १ प्रसिद्ध। २ प्रचलित। ३ जन-साधारण द्वारा गृहीत।

लोकसीमातिवर्त्तिन् (सं० त्रि०) १ साधारण सीमाके वहिर्भूत। २ अलौकिक, अस्वाभाविक।

लोकसुन्दर (सं० पु०) १ बुद्धभेद। (त्रि०) २ जनसाधारण जिसे अच्छा कहता हो।

लोकस्कन्द (सं० पु०) तमालवृक्ष।

लोकस्थल (सं० क्ली०) दैनिक घटना।

लोकस्थिति (सं० स्त्री०) १ प्रचलित पद्धति। २ जागतिक नियम।

लोकस्पृत् (सं० त्रि०) लोकसनि देखो।

लोकस्मृत् (सं० त्रि०) जगत्को भलाई चाहनेवाला।

लोकहाँदी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी हल्दी।

लोकहार (हिं० वि०) लोकको हरण करनेवाला, संसारको नष्ट करनेवाला।

लोकहास्य (सं० त्रि०) १ जगत्का हास्यास्पद। २ जनसाधारणका उपहास्य।

लोकहित (सं० त्रि०) लोकस्य हितः। १ जनताका मङ्गल चाहनेवाला। (क्ली०) २ जनताकी भलाई।

लोकहिता (सं० स्त्री०) १ तुत्थाञ्जन। २ कुलथी।

लोकाकाश (सं० पु०) १ आकाश, शून्यस्थान। २ जैन मतानुसार विश्व जिसमें सब प्रकारके जीव और तत्त्व रहते हैं।

लोकाक्षि (सं० पु०) आचार्यभेद। मनुसंहिताकी ३।१६० टीकामें कुल्लूकभट्टने इनका उल्लेख किया है।

लोकाक्षि—दाक्षिणात्यके काञ्चिपुर-निवासी चित्रकेतुके पुत्र। ज्ञानोपार्जनके बाद वे राजधानीका परित्याग कर श्रीशैल पर रहते थे। "महाजनः येन गतः स पन्था" यह नीतिवाक्य उनके जीवनका मूलमन्त्र था। वे ज्योतिष, स्मृति और तन्त्र ग्रन्थ लिख गये हैं। लौगाक्षि देखो।

लोकाक्षिन्—लौगाक्षिका एक नाम। लौगाक्षि देखो।

लोकाचार (सं० पु०) लोकस्य आचारः। जनसमूहका आचार, लोकव्यवहार। जनसाधारण जिस आचार-पद्धतिके अनुसार चलते हैं, उसे लोकाचार कहते हैं। अनेक स्थानोंमें लोकाचार शास्त्रवत् मान्य है।

लोकाचार्य—अष्टाक्षरमन्त्र-व्याख्या, तत्त्वत्रय और वचनभूषणटीकाके प्रणेता। लोकाचार्यसिद्धान्त नामक वेदान्त ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ मालूम होता है।

लोकाट (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसके पत्ते लंबे और नुकीले होते हैं, तेंदूके पत्तोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, पर तेंदूसे कुछ बड़े होते हैं। इसका पेड़ बीस पचीस हाथसे अधिक ऊंचा नहीं होता। इसके पेड़में फागुन चैतके महीनेमें मंजरियां लगती हैं और बड़े बेरके बराबर फल लगते हैं। यह फल पकने पर पीले होते हैं और खानेमें प्रायः मीठे, गुदार और स्वादिष्ट होते हैं। सहारनपुरमें लोकाट बहुत अच्छा और मीठा उत्पन्न होता है। यह फल चीन और जापान देशका है और वहींसे भारतवर्षमें आया है।

लोकातिग (सं० पु०) १ असामान्य, मामूली। २ अद्भुत, अजूबा। ३ साधारण नियमसे बाहर।

लोकातिशय (सं० पु०) १ लोकातिग देखो। २ दैनिक प्रथासे बाहर।

लोकात्मन् (सं० पु०) १ जगत्की आत्मा। २ विष्णु।

लोकादि (सं० पु०) जगत्सृष्टिके आदिकर्त्ता, ब्रह्मा।

लोकाधिप (सं० पु०) लोकस्य अधिपः। १ लोकपाल। २ देवतामात्र। ३ नरपति। ४ बुद्ध।

लोकाधिपति (सं० पु०) १ लोकपाल। २ देवता।

लोकानन्द—किरातार्जुनीय टीकाके प्रणेता।

लोकाना (हिं० क्रि०) फेंकना, उछालना।

लोकानुग्रह (सं० पु०) १ जगत्का मङ्गल, संसारकी भलाई। २ प्रजावर्गकी उन्नति। ३ जनसाधारणके प्रति अनुकम्पा।

लोकानुराग (सं० पु०) जनसाधारणके प्रति स्नेह वा दया।

लोकान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् लोकं। परलोक, वह लोक जहां मरने पर जीव जाता है।

लोकान्तरग (सं० त्रि०) लोकान्तरं याति गच्छति वा लोकान्तर गम-ड। १ मृत, मरा हुआ। २ लोकान्तरगामी, परलोक जानेवाला।

लोकान्तरिक (सं० त्रि०) दोनों लोकके बीच बसनेवाला।

लोकान्तरित (सं० त्रि०) १ जो इस लोकसे दूसरे लोकमें चला गया हो। २ मृत, मरा हुआ।

लोकापवाद (सं० पु०) लोके अपवादः। जनापवाद, लोकनिन्दा।

लोकाभिभाविन् (सं० त्रि०) सर्वव्यापी।

लोकाभिभाषित (सं० त्रि०) १ जगद्वाञ्छित। (पु०) २ बुद्धभेद।

लोकाभ्युदय (सं० पु०) लोकस्य अभ्युदयः। लोकसमूहका अभ्युदय, जनताकी उन्नति।

लोकायत (सं० क्ली०) लोकेषु आयतं विस्तीर्णमिव। १ चार्वाकशास्त्र। इस दर्शनमें परलोक या परोक्षवादका खण्डन है। २ वह मनुष्य जो इस लोकके अतिरिक्त दूसरे लोकको न मानता हो। ३ किसी किसीके मतसे दुर्मिल नामक छन्दका एक नाम।

लोकायतन (सं० पु०) १ चार्वाक। २ जो चार्वाकके नास्तिक मतका अनुसरण करता हो।

लोकायतिक (सं० पु०) लोकायतं शास्त्रमस्त्यस्येति, लोकायत-ठन्। १ चार्वाक। २ बौद्धभेद। ये लोग नास्तिक लोकायतके मतानुसार चलते हैं, इसीसे इनका लोकायतिक नाम पड़ा है।

लोकायन (सं० पु०) नारायण।

लोकालोक (सं० पु०) लोक्यतेऽसौ इति लोकः, न लोक्यतेऽसौ इति आलोकः ततः कर्मधारयः। स्वनामख्यात पर्वत विशेष। पर्याय—चक्रवाड़। यह पर्वत सान्धिद्वीपा पृथिवीको वेष्टन कर प्राकारकी तरह खड़ा है। इस पर्वतके किसी स्थानमें सूर्यालोक दिखाई देता है और किसी स्थानमें नहीं दिखाई देता है। इसलिये इसका लोकालोक नाम पड़ा है।

इस पर्वतका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है—भगवान्ने नारदसे कहा था, 'नारद! शुद्ध सागरके चर पर लोकालोक नामक पर्वत है। वह पर्वत लोक (प्रकाशमान) और अलोक (अप्रकाशमान) इन दो स्थानोंके विभागके लिये कल्पित हुआ है इस कारण इसका लोकालोक नाम पड़ा है। मानसोत्तर और मेरु दोनोंके मध्यवर्ती समस्त भूभाग सुवर्णमय और दर्पणकी तरह निर्मल है। वहां देवताको छोड़ और कोई प्राणी नहीं रहता। वहां जो कुछ वस्तु रखी जाती है, वह सोना हो जाती है। यही कारण है, कि वहां कोई नहीं आता। परमेश्वरने उस पर्वतको तीन लोकके सीमास्थानमें रखा है। सूर्य प्रभृति ध्रुवावधि ज्योतिष्मान् ग्रहोंकी किरणें उसीके अधीन तीनों लोकमें जाती है। कभी भी उसे छोड़ कर बाहर नहीं निकल सकती। यह पर्वत इतना ऊंचा और विस्तृत है, कि ग्रहोंकी गति उतनी दूर जाने नहीं पाती। ऋषिगण इस लोकालोकका परिमाण पचास कोटि योजन इस भूमण्डलका चतुर्थांश बतलाते हैं। आत्मयोनि ब्रह्माने इस पर्वतके ऊपर चारों ओर ऋषभ, पुष्पचूड़, वामन और अपराजित नामक चार दिग्गज स्थापन किये हैं। ये सब दिग्गज सारे संसारकी रक्षा करते हैं। भगवान् हरि इस स्थानमें सभी लोगोंकी भलाईके लिये निजांशसम्भूत दिक्पालोंके वीर्य. सत्त्वगुण और ऐश्वर्यकी वृद्धि कर विष्वक्सेनादि अनुचरोंके साथ चतुर्भुज मूर्त्तिमें विराजित हैं। सनातन विष्णु अपने मायारचित विश्वको रक्षाके लिये कल्पान्तकाल तक इस मूर्त्तिमें अवस्थान करते हैं।

(देवीभाग० ८।१४ अ०)

लोकावेक्षण (सं० क्ली०) जगत्‌की भलाई चाहना।

लोकिन् (सं० त्रि०) १ लोकप्राप्त, स्वर्गीय। (पु०) २ लोकपति। ३ जगद्वासिमात्र। इस अर्थमें केवल बहुवचनका ही प्रयोग होता है।

लोकेश (सं० पु०) लोकानामोशः। १ ब्रह्मा। २ बुद्धभेद। ३ पारद, पारा। ४ इन्द्र। ५ लोकपाल। ६ लोकाधिपति।

लोकेशकर—तत्त्वदीपिका वा तत्त्वबोधिनी नामक रामाश्रमकृत सिद्धान्तचन्द्रिकाकी टीकाके रचयिता। इनके पिताका नाम क्षेमङ्कर था।

लोकेशप्रभवाप्यय (सं० त्रि०) लोकपालगणसे उद्भूत और उसीसे प्रतिनिवृत्त।

लोकेश्वर (सं० पु०) लोकानामीश्वरः। १ बुद्धदेव। २ लोकका प्रभु। ३ लोकपाल।

लोकेश्वरात्मजा (सं० स्त्री०) लोकेश्वरस्य बुद्धस्य आत्मजेव। बुद्धशक्तिभेद। पर्याय—तारा, महाश्री, ओङ्कार स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, खदूरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शङ्खिनी, महातारा, वसुधारा, धनन्ददा, त्रिलोचना, लोचना।

लोकेष्टि (सं० स्त्री०) इष्टिभेद।

लोकैकबन्धु (सं० पु०) लोकानां एक एव बन्धुः। गौतम बुद्ध वा शाक्यमुनि।

लोकैषणा (सं० स्त्री०) १ स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा, स्वर्ग-सुख-

कामना। २ सांसारिक अभ्युदयकी कामना, प्रतिष्ठा और यशकी कामना।

लोकोक्ति (सं० स्त्री०) १ कहावत, मसल। २ काव्यमें वह अलङ्कार जिसमें किसी लोकोक्तिका प्रयोग करके कुछ रोचकता या चमत्कार लाया जाय।

लोकोत्तर (सं० त्रि०) १ असामान्य, अलौकिक। २ आदर्शपुरुष। ३ राजा।

लोकोत्तरवादिन् (सं० पु०) बौद्धसम्प्रदायभेद।

लोकोद्धार (सं० क्ली०) तीर्थभेद। यह तीर्थ त्रिलोकपूजित है। इसमें स्नान करनेसे अपने सभी लोगोंका उद्धार होता है।

लोक्य (सं० त्रि०) १ लोकान्वित। २ विस्तृतस्थानयुक्त। ३ युद्धार्थ परिष्कृत स्थानयुक्त। ४ जगद्व्याप्त।

लोक्यता (सं० स्त्री०) श्रेष्ठ लोकप्राप्ति।

लोखर (हिं० पु०) १ नाईके औजार। २ लुहारों या बढ़इयों आदिके लोहेके औजार।

लोग (सं० पु०) मृत्पिण्ड, ढेला।

लोग (हिं० पु०) जन, मनुष्य।

लोगचिरकी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका फूल।

लोगाई (हिं० स्त्री०) इस शब्दका शुद्धरूप प्रायः 'लुगाई' ही माना जाता है।

लोगाक्ष (सं० पु०) पण्डितभेद। लोगाक्षि देखो।

लोगेष्टका (सं० स्त्री०) मृत्तिकानिर्मित इष्टकभेद।

लोच (सं० क्ली०) लोच्यते पर्यालोचयति सुखदुःखादिकमिति लोच अच्। अश्रु, आंसू।

लोच (हिं० पु०) १ लचलचाहट, लचक। २ कोमलता। ३ अच्छा ढंग। ४ अभिलाषा। ५ जैन-साधुओंका अपने शिरके बालोंको उखाड़ना, लुंचन।

लोचक (सं० पु०) लोचयते इति लोच-ण्वुल्। १ मांसपिण्ड, लोथड़ा। २ अक्षितारका, आंखकी पुतली। ३ कज्जल, काजल। ४ स्त्रियोंके ललाटाभरण, एक गहना जिसे स्त्रियां ललाटमें पहनती हैं। ५ कदली, केला। ६ नील वस्त्र, नीला कपड़ा। ७ निर्बुद्धि, नासमझ आदमी। ८ कर्णपूर, कानमें पहननेका एक गहना, करनफूल। ९ मुर्वा, मरोड़फली नामक लता। १० भ्रूशलय चर्म, भौंका ढीला चमड़ा। ११ निर्मोक, केंचुल।

लोचन (सं० क्ली०) लोच्यतेऽनेनेति लोच-ल्युट्। १ चक्षु, नेत्र। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि वकान्त और पद्माभलोचन होनेसे सुख, मर्जारकी तरह होनेसे पापी, मधुपिङ्गलवर्ण होनेसे महाशय, केकराक्ष (ऐंचा) होनेसे क्रूर, हरिणकी तरह होनेसे पापी, कुटिल होनेसे क्रूर, गजचक्षु होनेसे सेनापति, गम्भीर-लोचन होनेसे प्रभु, स्थूलचक्षु होनेसे मन्त्री, नीलोत्पलाक्ष होनेसे विद्वान्, श्यावचक्षु होनेसे सौभाग्यशाली, कृष्णतारका विशिष्ट होनेसे चक्षुका उत्पाटक, मण्डलाक्ष होनेसे पापी और दीर्घलोचन होनेसे निःस्व (दरिद्र) होता है।

२ जीरक, जीरा। ३ गवाक्ष, झरोखा।

लोचनकार—लोचन नामक प्रसिद्ध अलङ्कार-प्रणेता। साहित्यदर्पण (२२।१५) में इनका नामोल्लेख है। बहुतेरे इन्हें अभिनवगुप्त समझते हैं।

लोचनपथ (सं० पु०) लोचनस्य पन्थाः। १ नेत्रपथ, दृष्टिमार्ग।

लोचनपुर—वङ्गालके बालेश्वर जिलान्तर्गत एक बन्दर। यह कांसबांस नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह बन्दर चारों ओर जङ्गलसे घिर गया है।

लोचनहित (सं० त्रि०) चक्षुका हितकर।

लोचनहिता (सं० स्त्री०) लोचनाभ्यां हिता। तुत्थाञ्जन, तूतिया।

लोचना (सं० स्त्री०) लोचते पर्यालोचयतीति लोच-ल्युटाप्। रोचना, बुद्धशक्तिभेद।

लोचना (हिं० क्रि०) १ एक प्रकाशित करना। २ रुचि उत्पन्न करना। ३ अभिलाषा करना। ४ शोभित होना। ५ ललचना, तरसना। (पु०) ६ नाई, हज्जाम।

लोचनामय (सं० पु०) लोचनयोरामयः। चक्षुरोगविशेष, आँखका एक रोग। चक्षुरोग देखो।

लोचनी (सं० स्त्री०) लोच्यतेऽसौ लोच-ल्युट्, ङीप्। महाश्रवणिका, गोरखमुण्डी।

लोचपोत्स (सं० क्ली०) नगरभेद। इसका दूसरा नाम लवनोत्स है।

लोचमर्कट (सं० पु०) लोचमस्तक, रुद्रजटा।

लोचमस्तक (सं० पु०) लोचं दृश्यं मस्तकं मयूरशिखेव यस्य। १ मयूरशिखौषध, रुद्रजटा। पर्याय—खराश्वा, कारवी, दीप्य, मयूर, लोचमर्कट। २ अजमोदा।

लोचशिर (सं० क्ली०) अजमोदा।

लोचारक (सं० पु०) पुराणानुसार एक नरकका नाम।

लोचिका (सं० स्त्री०) खाद्यद्रव्यविशेष।

लोचून (हिं० पु०) १ लोहेका चूरा। २ लोहेकी कीट-का चूर्ण।

लोजंग (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव। इसके दोनों ओरके सिक्के लंबे होते हैं।

लोट (हिं० स्त्री०) लोटनेका भाववाचक रूप, लोटनेकी क्रिया या भाव, लुढ़कना। (पु०) २ उतार, घाट।

लोटन (सं० क्ली०) इतस्ततः चालन, लुढ़कना।

लोटन (हिं० पु०) १ एक प्रकारका हल। इसकी जोताई-बहुत गहरी नहीं होती। २ एक प्रकारका कबूतर। यह चोंच पकड़ कर भूमिमें लुढ़का देनेसे लोटने लगता है और जब तक उठाया न जाय, लोटता रहता है। ३ राहमें-की पड़ी हुई छोटी कंकड़ियां जो वायु चलनेसे इधर उधर लुढ़कती रहती हैं।

लोटनसज्जी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सज्जी। यह सफेद और गुलाबी रंगकी होती है। मुरब्बे आदिके गलानेमें यह काम आती है।

लोटना (हिं० क्रि०) १ भूमि पर या किसी ऐसे ही आधार-के बल उसे छूते हुए, ऊपर नीचे होते हुए किसीका एक जगहसे दूसरी जगहकी ओर जाना या गमन करना, सीधे और उलटे लेटते हुए किसी ओरको जाना। २ लुढ़कना। ३ कष्टसे करवट बदलना, तड़पना। ४ विश्राम करना, लेटना। ५ चकित होना, मुग्ध होना।

लोटपटा (हिं० पु०) विवाहकालमें पीढ़ा या स्थान बदलनेकी रीति। इसमें वरके स्थान पर वधू और वधू-के स्थान पर वर बैठाया जाता है। २ बाजीका उलट फेर, दांवका इधरसे उधर हो जाना। उलटफेर।

लोटा (हिं० पु०) धातुका एक गोल पात्र। यह पानी रखनेके काममें आता है। कभी कभी इसमें टोंटी भी लगाई जाती है। ऐसे लोटेको टोंटीदार लोटा कहते हैं।

लोटिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका साग।

लोटिया (हिं० स्त्री०) छोटा गोल जलपात्र। इसका आकार लोटे-सा होता है।

लोटी (हिं० स्त्री०) १ छोटा लोटा। २ वह बर्त्तन जिससे तमोली पान सींचते हैं।

लोट्टल (सं० पु०) लोटतोति लुट वाहुलकात् उलच। अभिलट्टक।

लोठारोनंगर (हिं० पु०) एक प्रकारका लंगर। यह जहाजी या बड़े लंगरसे छोटा और केज लंगरसे बड़ा होता है।

लोड़न (सं० क्ली०) इतःस्ततः चालन, लुढ़कना।

लोढ़ना (हिं० क्रि०) १ चुनना, तोड़ना।

लोढ़ा (हिं० पु०) १ पत्थरका गोल लंबोतरा टुकड़ा। इससे सिल पर किसी चीजको रख कर पीसते हैं। २ बुंदेलखण्डके बराबर नामक हलका एक अंश। यह मोटी लकड़ीका होता है। इसमें दतुआ या लोहेकी कीलें लगी होती हैं।

लोढ़िया (हिं० स्त्री०) छोटा लोढ़ा, बट्टा।

लोण (सं० पु०) लोनी साग।

लोणक (सं० क्ली०) लवण, नमक।

लोणतृण (सं० क्ली०) लोणं लवणरसयुक्तं तृणं। लवण-तृण, लोनो साग।

लोणा (सं० स्त्री०) लवणमस्त्यस्या इति। अच्-टाप, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ क्षुद्राम्लिका, छोटी लोनी। २ चाङ्गेरी, अमलोनी जिसका साग होता है।

लोणाम्ला (सं० स्त्री०) क्षुद्राम्लिका, छोटी लोनी।

लोणार (सं० क्ली०) लवणं ऋच्छतीति लवण ऋ-अण्, पृषोदरादित्वात् साधुः। क्षारविशेष। पर्याय—लवणोत्थ, लवणाकरज, लवणमद, जलज, लवणक्षार, लवण। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, पित्तवृद्धिकारक, ईषल्लवण और वातगुल्मादि शूलनाशक।

लोणिका (सं० स्त्री०) १ लोणो शाक, लोनी नामका साग। २ चाङ्गेरी, अमलोनी।

लोणितक—एक प्रधान कवि। इनका दूसरा नाम लोठिं-तक है।

लोणी (सं० स्त्री०) पत्रशाकविशेष, लोना। यह दो प्रकारकी होती है, छोटी और बड़ी। छोटीका गुण—रूक्ष, गुरु, वातश्लेष्महर, अर्शोघ्न, दीपन, अम्ल और मन्दाग्निनाशक, बड़ीका गुण—अम्ल, उष्ण, वातवर्द्धक

कफपित्तनाशक, वागदोषनाशक, व्रण, गुल्म, श्वास, कास और प्रमेहनाशक, शोथनाशक तथा नेत्ररोगमें हितकर है।

लोत (सं० पु० क्ली०) लुनातीति लु (हसिमृग्रिणिति। उण् ३।८६) इति तन्। १ स्तेय धन, चोरोंका धन। २ लोत्र, आँसू। ३ चिह्न, निशान। ४ लवण, नमक। ५ अश्रुपात, आंसूका टपकना।

लोत्र (सं० क्ली०) लूनातीति लु (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन्, यद्वा ला (अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ। उण् ४।१७२) इति उत्र। लोत, नेत्रजल, आँसू।

लोथ (हिं० स्त्री०) किसी प्राणीका मृत शरीर, लाश।

लोथड़ा (हिं० पु०) मांसका बड़ा खंड जिसमें हड्डी न हो, मांसपिण्ड।

लोथारी (हिं० स्त्री०) १ कम पानीमेंसे नावको खींचते या धीरे धीरे खेते हुए किनारे लगाना। २ लोचारी लङ्गर डाल कर पानीकी तहका पता लेते हुए मार्गसे किनारे की ओर नाव बढ़ाना।

लोचारी लंगर (हिं० पु०) सबसे छोटा लंगर। यह उस जगह डाला जाता है जहां पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि वह किनारे जानेका मार्ग है या नहीं।

लोद (हिं० स्त्री०) लोध देखो।

लोदी—१ प्राचीन राजवंशभेद। २ दिल्लीके स्वनामप्रसिद्ध मुसलमान राजवंश। भारतवर्ष देखो।

लोध (सं० पु०) रुध-अच्, रस्य लः। स्वनामख्यात वृक्ष। यह भारतवर्षके जङ्गलोंमें उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण लोध्र शब्दमें देखो।

लोधरा (हिं० पु०) जापानसे आनेवाला एक प्रकारका तांबा।

लोधरान—पञ्जाब प्रदेशके मूलतान जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २६° २२´ से ले कर २६° ५६´ उ० तथा देशा० ७१° २२´ से ले कर ७२° ६´ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १०५७ है।

यह तहसील शतद्रु नदीके किनारे अवस्थित है। यहांकी जमीन पहाड़ी और बलुई है जिससे यहां अन्नकी उपज उतनी अच्छी नहीं है। गेहूं, जुआर, बाजरा, रूई, जौ और नील यहांका पण्यद्रव्य है। लोधरान नगरमें एक तहसीलदार रहते हैं। वही यहांके दीवानी और फौजदारी विभागका विचार करते हैं। इस तहसीलमें कुल २६२ गांव और दो शहर लगते हैं।

लोधा—मुसलमान डकैतोंकी एक शाखा। ये अयोध्याके मुसलमान डकैत-वंशसे उत्पन्न हुए हैं। नेपालकी तराई और अयोध्याके सीमान्त प्रदेशमें इनका वास है।

लोधिका—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके हलार प्रान्तमें स्थित एक छोटा सामन्त-राज्य। यह राज्य आज कल दो भागोंमें विभक्त है। उक्त दोनों राजवंशोंकी कुल आय २५ हजार रुपया है जिनमेंसे अंगरेजराजको सालाना १२८७) और जूनागढ़के नवाबको ४०५) रु० कर देना होता है। लोधिका ग्राम राजकोटसे १५ मील और गोण्डालसे १५ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है।

लोधि—कृषिजीवी एक हिन्दू जाति। मध्यभारत, युक्तप्रदेश और भरतपुरके आस-पास स्थानोंमें इनका वास देखा जाता है। आचार-व्यवहार और सामाजिक प्रथानुसार ये कुर्मी जातिसे मिलते जुलते हैं। एक समय इस जातिके लोग जब्बलपुर और सागर जिलेमें बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। शायद १६वीं सदीमें ये बुन्देलखण्डसे आ कर मध्यभारतमें बस गये। पीछे कुर्मियोंने सम्भवतः १६२० ई०में दोआबसे उस देशमें गमन किया था। महाराष्ट्र देशमें इसी कारण उत्तर-भारतके लोधि लोग 'लोधि परदेशी' नामसे पुकारे जाते हैं। वहां ये ग्वाले और बढ़ईका काम करते हैं।

ये हट्टे-कट्टे, मजबूत और मेहनती होते हैं। खेतीबारीमें कुर्मियोंके समान हैं, पर उनके समान शान्त स्वभावके नहीं। ये घमंडी, अत्याचारी, परस्वापहरणप्रिय और प्रतिहिंसा परायण हैं। नर्मदाके निकटवर्त्ती प्रदेशोंमें ये खेती-बारी तो करते ही हैं, पर इसके सिवाय ये डकैती कर भी अपना जीवन बिताते हैं। मृगयामें ये बड़े पटु होते हैं। तीर अथवा बंदूक छोड़नेमें ये बड़े तेज हैं। इसलिये ये सैनिक कार्य करनेमें सब तरहसे उपयुक्त हैं। दक्षिणी-भारतमें इस जातिके बहुतेरे सेनामें भर्त्ती हो गये हैं।

इनमें बहुविवाह और विधवा-विवाह चलता है। विवाहित विधवा पत्नी और शास्त्रके मतसे परिणीता

भार्याके कोई पार्थक्य नहीं है। सगाई मतसे विवाहिता विधवा स्वजातीय न होनेसे उसे स्वामी ग्रहण कर नहीं सकते। बहुत जगह दूर सम्पर्कीय होने पर भी विधवाएं देवरसे ब्याही जाती हैं। दोनों विवाहिता पत्नी और सगाई पत्नीके संतानोंका पितृसम्पत्ति पर समान अधिकार रहता है।

लोधिखेरा—मध्यभारतके छिन्दवाड़ा जिलेकी सौसर तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३५´ उ० तथा देशा० ७८° ५४´ पू० पर अवस्थित है। म्युनिसिपलिटी रहनेके कारण नगरमें राजकीय समृद्धिका अभाव नहीं है। यहां उत्कृष्ट पीतलका बरतन और तांबेकी हंडी बनती है। इसके अतिरिक्त यहां एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा भी तैयार होता है। आस पासके बाशिन्दे उसे पहननेके काममें लाते हैं।

लोध्र (सं० पु०) रुणद्धीति रुध-बाहुलकात् रन् रस्य लत्वम्। लोधवृक्ष। विभिन्न देशमें यह विभिन्न नामसे प्रसिद्ध है, जैसे तैलङ्ग—तेलुलोद्दुगचेट्टु, गर्जे, लोद्र, लोद्दग; महाराष्ट्र—हुरा। संस्कृत पर्याय—गालव, शावर, तिरीट, तिल्व, मार्जन। रक्तलोध्रका पर्याय—लोध्र, भिल्लतरु, तिल्वक, कान्तकीलक, हेमपुष्पक, भिल्ली, शावरक। इसका गुण—कषाय, शीतल, वात, कफ और अन्धनाशक, चक्षुका हितकर, विषनाशक।

(राजनिघण्टु)

यह वृक्ष नेपाल और कुमायूंके पहाड़ी प्रदेशमें, कोटीके जङ्गलमें, बङ्गालके समतलक्षेत्रमें खास कर मेदिनीपुर और बर्द्धमान जिलेमें तथा बम्बईप्रदेशके घाट पर्वतमालाके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसका छिलका रंगने, चमड़ा सिझाने और औषधियोंमें काम आती है। छिलकेको उष्ण जलमें भिगो देनेसे पीला रंग निकाला जाता है। छिलकेको सज्जीमिट्टीके साथ पानीमें उबालनेसे लाल रंग निकलता है जिससे छींट छापते हैं। यह पेड़ १०से १२ फुट ऊंचा होता है। इसका छिलका पेचिश आदि पेटके कई रोगोंमें ही दिया जाता है। इसका गुण ठंढा है। इसके काढ़ेका भी प्रयोग किया जाता है। लोध्रकी लकड़ीके काढ़ेसे कुल्ला करनेसे मसूढ़ेसे रक्तका निकलना बन्द होता और वह दृढ़ हो जाता है। इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है, पर मजबूत होती है। जड़के चूरसे अबीर बनाते हैं जिसे हिन्दूमात्र ही होली पर्वमें उड़ाते हैं। अबीर देखो।

२ एक जातिका नाम।

लोध्र (हिं० पु०) जापानी तांबा, लोधरा।

लोध्रकवृक्ष (सं० पु०) लोध्र एव लोध्रकः स एव वृक्षः। लोध्र।

लोध्रतिलक (सं० पु०) एक प्रकारका अलंकार जो उपमाका एक भेद माना जाता है।

लोध्रपुष्प (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुएका पेड़।

लोध्रपुष्पक (सं० पु०) शालिधान्य विशेष।

लोध्रपुष्पिणी (सं० स्त्री०) ह्रस्वघातकी, छोटा धवका फूल।

लोध्रवृक्ष (सं० पु०) मधूकवृक्ष, महुएका पेड़।

लोना (हिं० वि०) १ नमकीन, सलोना। २ सुन्दर। (पु०) ३ एक प्रकारका रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टीकी दीवारोंमें लगता है। इससे दीवार झड़ने लगती और कमजोर पड़ जाती है। कुछ ही दिनोंमें उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं और वह कट कर गिर पड़ती है। यह रोग नींवके पासके भागमें शुरू होता है और ऊपरकी ओर बढ़ता है। ४ नमकीन मिट्टी जिससे शोरा बनाया जाता है। ५ वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवारसे झड़ कर गिरती है। यह खेतमें डाली जाती है और खादका काम देती है। ६ घोंघेकी जातिका एक कीड़ा। यह प्रायः नावके पेंदेमें चपका हुआ मिलता है। ७ वह क्षार जो चनेकी पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसकी पत्तियां चाटनेमें खट्टी जान पड़ती हैं। ८ एक कल्पित स्त्री जो जातिकी चमार और जादू टोनेमें बहुत प्रवीण कही जाती है। (क्रि०) ९ फसल काटना।

लोनाई (हिं० क्रि०) लावण्य, सुन्दरता।

लोनार (हिं० पु०) वह स्थान जहां नमक बनता हो अथवा जहांसे नमक आता हो।

लोनार—मध्यभारतके रेवा विभागके बुलढाना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १९° ५९´ उ० तथा देशा० ७६° ३३´ पू० पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ३०८५ है जिनमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है।

यह स्थान अति प्राचीन है तथा पर्वतकी तराईमें अवस्थित है। यहां लोना नामका एक तालाव है जिसका जल नमकीन या खारा होता है। कहते हैं, कि इस ह्रदके गर्भमें दानवश्रेष्ठ लवणासुर रहता था। गोलोकविहारी विष्णु सुन्दर बालकका रूप धर कर धरामें अवतीर्ण हुए थे। बालकके मोहन रूप पर मुग्ध हो कर लवणासुरने अपनी दोनों बहनोंके साथ उनका विवाह कर देना चाहा था। पीछे विष्णुके मोहजालमें पड़ कर उन्होंने विष्णुसे अपने भाईका निभृत निकेतन बतला दिया। तब विष्णुने पाद-स्पर्शसे उन गुप्त वासभवनके पत्थर उखाड़ डाले और भूतलमें प्रवेश कर घरमें सोये लवणासुरको यमपुर भेज दिया। विष्णु द्वारा लवणासुरके निहत होने पर उसी जगह उसकी समाधि हुई तथा उसके खूनसे यह गर्त्त भर आया। आज भी स्थानीय लोग लोनारह्रदके खारे जलको लवणासुरका लहू तथा विष्णुपादस्पर्शसे पवित्र समझते हैं। निकटवर्त्ती धाकेयाल नामक स्थानमें एक गण्डशैल है। इसकी लम्बाई और लोनारह्रदका घेरा करीब समान है। जनसाधारण इस शैलको लवणासुर-भवनका आच्छादन-प्रस्तर समझते हैं। विष्णुके पैरकी अंगुलिके स्पर्शसे वह पत्थर उछल कर यहां गिर पड़ा था।

इस ह्रदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोरम है। इसके चारों ओर वृत्ताकारमें चार सौ फुट उच्च पर्वतकी चोटी विराजित है। इस चोटी पर असंख्य मन्दिर और कीर्त्तिस्तम्भ खंडहरोंमें पड़े हैं। आज कल वह एक जंगल बन गया है। उसके ऊपरके किनारेकी परिधि प्रायः पांच मील तथा जलके आस-पास स्थानकी परिधि प्रायः तीन मील है। इसके अलावा किनारेकी ऊंचाई ६५' से ८०' तक है। ह्रदकी गभीरता और उसके ढालू किनारेको देख कर भूतत्त्वविद् कहते हैं, कि वह एक समय किसी आग्नेयगिरि (ज्वालामुखी पर्वत) का मुंह था। पार्श्ववर्त्ती पर्वतके पत्थर आज भी उसकी साक्षा देते हैं। यहां नाना तरहके पेड़ दिखाई पड़ते हैं जिससे उसकी शोभा और भी बढ़ गई है।

ह्रदके दक्षिणस्थ पर्वतपृष्ठमें एक छोटा गर्त्त या प्रस्रवण है। यहांसे हमेशा मीठा जल निकल कर तेज धारासे ह्रदगर्भमें गिरता है। इस प्रस्रवणके सामने एक मन्दिर है।

ह्रदके ढालू देशके वनप्रदेश और जलगर्भके मध्यवर्त्ती स्थानमें एक विस्तृत दलदल है। वर्षा ऋतुमें वह जलसे भर जाती है; किन्तु और समयमें जल सुख जाता या बह जाता है जिससे चारों ओर ही एक विस्तीर्ण झील नजर आता है। उसमें कभी भी कोई अन्न पैदा नहीं होता। ह्रदका जल खारा होनेसे इस दलदलका मिट्टी भी खारी हो जाती है। इसलिये सूख जाने पर यह सफेद दिखाई पड़ती है। तब इस मिट्टीसे नमक बनता है। वहांके नमकमें सैकड़े पीछे ३८ भाग अङ्गाराम्ल, ४०.६ क्षार (Soda), २०.६ जल और ०.५ कठिन पदार्थ तथा थोड़ी मात्रामें सलफेट मिलता है। यह सज्जीमिट्टी साबुन बनानेमें भी काम आती है।

लोनारा—अयोध्याप्रदेशके हर्दोई जिलेके अन्तर्गत एक नगर। करीब साढ़े तीन सदीके पहले निकुम्भोंने मुहम्मदोसे दक्षिण आ कर वहांके आदिम अधिवासी कमानगारोंको मार भगाया और इस नगरको अपने कब्जेमें कर खुद रहने लगे। आज तक भी निकुम्भगण यहांके सत्वाधिकारी हैं।

लोनिका (हिं० क्रि०) लोनी नामक साग।

लोनिया (हिं० पु०) १ एक जाति। ये लोग लोन या नमक बनानेका व्यवसाय करते हैं और शूद्रोंके अन्तर्गत माने जाते हैं। (स्त्री०) २ लोनी नामक साग।

लोनी (हिं० स्त्री०) १ कुलफेकी जातिका एक प्रकारका साग। इसकी पत्तियां बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ठंढी जगह पर उत्पन्न होती है, इसका स्वाद खटास होता है। इसमें तरह तरहके फूल लगते हैं। इसको लोग गमलोंमें बोते हैं और विलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायतसे आते हैं। २ वह क्षार जो चने आदिकी पत्तियों पर बैठता है। ३ एक प्रकारकी मिट्टी। इससे लोनियां लोग शोरा और नमक बनाते हैं।

लोनी—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी गाजियाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह नगर श्रीभ्रष्ट और जनशून्य हो रहा है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके प्रतिष्ठित एक प्राचीन दुर्गका खंडहर आज भी उस कीर्त्ति-

का परिचय देता है। मुगल-सम्राट्गण शिकारके लिये यहां बराबर आया करते थे। उनका प्रासाद श्रीहीन अवस्थामें पड़ा है। १७८६ ई०में सम्राट् महम्मद शाहने यहां एक उपवन और दिग्गी बनवाई थी। इस दिग्गी और उपवनमें जल लानेके लिये पहले उन्होंने ही यमुना नहर कटवाई थी। बहादुर शाहकी महिषी जिनत् महलने उलदीपुरमें प्राचीर-परिवेष्टित प्रवेशद्वार आदिसे परिशोभित एक सुन्दर उद्यान लगाया था। उसके बीच चमकीले लाल पत्थरोंसे बना गुंबजदार प्रसिद्ध बारदुआरी मौजूद है। इसके अलावा यहां मुगल-राजवंशधरोंकी और भी असंख्य कीर्त्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सिपाही-युद्धके बाद अंगरेज-राजने यह नगर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। आज इस स्थानकी सुन्दरता जाती रही।

लोनैली—बम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत एक नगर यह अक्षा० १८° ४५' उ० तथा देशा० ७३° २४' पू० तक भोर गिरिसंकटके सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवेकी दक्षिण-पूर्व शाखामें यह एक प्रधान स्टेशन है। यहांकी जनसंख्या ६६४६ है। यहां रेल-कम्पनीका कारखाना रहनेके कारण बहुतेरे यूरोपीय और देशी लोगोंका वास है। नगरसे दो मील दक्षिण रेल-कम्पनीका एक सुन्दर बांध है। इसका जल सभी लोग घरके काममें लाते हैं। यहां बहुत-सी सुन्दर अट्टालिका, प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथलिक धर्ममन्दिर, मेसनिक लाज, कोओपरेटिभ स्टोर, एक अस्पताल और आठ स्कूल है। नगरको बगलमें ही एक सुन्दर वन है।

लोनेसिंह—एक भाषा-कवि। इनका जन्म बाछिल मितौली जिला खीरीमें हुआ था। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धकी नाना छन्दोंमें भाषा की है। ये एक लड़ाईमें मारे गये।

लोप (सं० पु०) लुप्-घञ्। १ विच्छेद। २ नाश, क्षय। ३ अभाव, अदर्शन। ४ अन्तर्द्धान होना, छिपना। ५ व्याकरणके चार प्रधान नियमोंमेंसे एक जिसके अनुसार शब्दके साधनमें किसी वर्णको उड़ा देते हैं।

लोपक (सं० त्रि०) नाशकारी, विघ्न बाधा डालनेवाला।

लोपन (सं० क्ली०) १ नाशन, नष्ट करना। २ तिरोहित रना, लुप्त करना।

लोपना (हिं० क्रि०) १ लुप्त होना, मिटना। २ छिपाना।

लोपाक (सं० पु०) लोपं शीघ्रमदर्शनमकति प्राप्नोतीति अक-अण्। शृगाल, गीदड़।

लोपाञ्जन (सं० पु०) वह कल्पित अंजन जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इसके लगानेसे लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपापक (सं० पु०) लोपं द्रुतमदर्शनं आप्नोतीति ण्वुल्। शृगाल, सियार।

लोपापिका (सं० स्त्री०) लोपापक स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। शृगाली, सियारिन्।

लोपामुद्रा (सं० स्त्री०) लोपयति योषितां रूपाभिधानमिति लोपा पचाद्यण् आमुद्रयति स्रष्टुः सृष्टिमिति आ-मुद्रा-अण्, ततः कर्मधारयः किंवा न मुदं राति अमुद्रा पति-शुश्रूषाय लोपे अमुद्रा। अगस्त्यमुनिकी स्त्री।

स्मृतिमें लिखा है, कि भाद्रमासके अन्तिम तीन दिन अगस्त्यको और पीछे लोपामुद्राको अर्घ्य देना होता है।

"अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः।
अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः॥"

(मलमासतत्त्व)

यह अर्घ्य दक्षिण मुंह करके शङ्खमें जल, श्वेतपुष्प, अक्षत और चन्दनादि डाल निम्नोक्त मन्त्रसे देना होता है।

"शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्।
मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाशामुपस्थितः॥"

अर्घ्यदानमन्त्र—

"काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥"

प्रार्थनामन्त्र—

"आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीद तु॥"

लोपामुद्राका अर्घ्यदान मन्त्र—

'लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मैत्रावरुणिवल्लभे॥"

(मलमासतत्त्व)

महाभारतमें लोपामुद्राके जन्मादिका विवरण इस

प्रकार लिखा है। महर्षि अगस्त्यने एक दिन अपने पितरोंको एक विवरमें लम्बमान देख पूछा था, कि आप लोग यहां अत्यन्त कष्टसे क्यों समय विताते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, "पुत्र अगस्त्य! तुम पुत्र उत्पादन करके हम लोगोंको इस कष्टसे उद्धार करो। इससे तुम्हारा भी कल्याण होगा।" इस पर अगस्त्यने उनसे कहा, 'मैं आप लोगोंका अभिलाष पूर्ण करूंगा।' पीछे अगस्त्यने स्वयं पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करेंगे, ऐसा स्थिर किया, किन्तु उन्हें मनोनुकूल कन्या न मिली। पीछे उन्होंने मन ही मन सोच विचार कर जिस प्राणीका जो अङ्ग-प्रत्यङ्ग अति उत्कृष्ट था, उस प्राणीका वह अङ्ग प्रत्यङ्ग मन ही मन संग्रह कर उससे एक कन्या निर्माण की। इस समय विदर्भाधिपति पुत्रके लिये तपस्या कर रहे थे। अगस्त्यने अपने लिये निर्माण की हुई वह कन्या विदर्भराजको दे दी। राजाने इस कन्याका नाम लोपामुद्रा रखा। धीरे धीरे उस कन्याने युवावस्थामें कदम बढ़ाया।

महर्षि अगस्त्यने लोपामुद्राको जब गार्हस्थ्यकी योग्य देखा, तब विदर्भराजके पास जा कर कहा, 'राजन्! पुत्रके लिये गार्हस्थ्य-धर्ममें मेरी इच्छा हुई है। अतएव आप मेरी लोपामुद्राको लौटा दें।' राजाने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रानीसे यह बात जा कही। रानी भी कोई उपयुक्त उत्तर न दे सकी। इस पर लोपामुद्राने राजा और रानीको दुःखित देख कर कहा, 'पिताजी! आप मुझे ऋषिके हाथ सौंप दें।' अनन्तर विदर्भराजने कन्याके वाक्यानुसार विधिपूर्वक अगस्त्यको वह कन्या सम्प्रदान की। अगस्त्यने लोपामुद्राको भार्यारूपमें ग्रहण किया और कहा, 'अभी तुम बहुमूल्य वसन भूषणका परित्याग कर चीर वल्कल पहनो।' लोपामुद्राने वैसा ही किया।

अगस्त्य गङ्गाके किनारे आ कर अनुकूला सहधर्मिणीके साथ घोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक दिन अगस्त्यने तपःप्रदीप्ता लोपामुद्राको ऋतुस्नाता देखा। उनकी परिचर्याभिज्ञता, जितेन्द्रियता, श्री और रूपलावण्यसे सन्तुष्ट हो अगस्त्यने रति-कामनासे उन्हें बुलाया। लोपमुद्राने अत्यन्त लज्जित हो कहा, 'आपने सन्तानके लिये मुझे अपनी भार्या बनाया है, किन्तु मेरा यही अभिलाष है, कि मेरे पितृ गृहमें जैसे बिछावन, वस्त्र और भूषणादि थे, वैसे ही बिछावन और वस्त्रभूषणसे विभूषित कर आप मेरे साथ सहवास करें।' अगस्त्य बोले, 'मैं तपस्वी हूं, राजोचित वस्त्रभूषण और शय्या कहां पाऊं?' इस पर लोपामुद्राने जवाब दिया, 'आप तपोधन हैं, तपके प्रभावसे क्षण भरमें ही उन सब चीजोंको संग्रह कर सकते हैं।' अगस्त्यने फिर कहा, तुम्हारा कहना तो सच है, पर ऐसा करनेसे मेरे तपमें विघ्न-बाधा पहुंचेगी। अतएव जिससे मेरे तपमें बाधा न पहुंचे, ऐसा ही कोई उपाय करो।' इस पर लोपामुद्रा बोली, 'तपोधन! मेरे ऋतुकाल १६ दिनमें थोड़ा ही बाकी रह गया है, विना अलङ्कारादि पहने आपके पास जानेकी मेरी इच्छा नहीं होती और आपका धर्मलोप करनेकी भी मेरी इच्छा नहीं; अतएव जिससे धर्मलोप न हो और मेरा अभिलाष भी पूरा हो जाय, ऐसा ही उपाय कीजिये।' इस पर अगस्त्यने कहा, 'सुभगे! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो कुछ काल ठहरो, मैं उतना धन कमा लाता हूं जितनेसे तुम्हारा अभिलाष पूरा हो।'

अनन्तर अगस्त्य राजा श्रुतवर्माके यहां आये। उन्होंने राजासे कहा, 'राजन! मैं धनार्थी हो कर आपके पास आया हूं, इसलिये मुझे कुछ धन दीजिये। पर हां, ऐसे धनसे मुझे काम नहीं जिसके देनेसे दूसरेको कष्ट पहुंचे।' राजाने उत्तर दिया, 'मेरी आय और व्ययकी परीक्षा कर जितनी इच्छा हो ले लीजिये। तब अगस्त्यने राजाकी आय और व्ययको समान देख कर सोचा, कि यह धन लेनेसे राजा और प्रजा दोनोंको क्लेशकी सम्भावना है। इसलिये उन्होंने धनग्रहण नहीं किया। पीछे वे राजा श्रुतवर्माके साथ व्रध्नश्वके यहां और वहां भी कृतकार्य न हो पुरुकुत्स त्रसदस्यु आदिके यहां गये। वहां भी अपरिमित अर्थ न रहनेके कारण अगस्त्य वातापिके भाई इल्वलके पास गये। इल्वलने मेषरूपधारी वातापिके मांससे ऋषिको परितृप्त किया। अनन्तर इल्वल वातापिको बार बार पुकारने लगे। इस पर अगस्त्यने कहा, कि मैंने वातापिको हजम कर डाला। अनन्तर इल्वलने अति

विषण्ण और भयभीत हो कर ऋषिको प्रचुर धन दे विदा किया।

इसके बाद अगस्त्य ऋषि धन ले कर लोपामुद्राके समीप उपस्थित हुए। लोपामुद्राने कहा, 'भगवन्! आप एक अति पवित्र और बलवान् पुत्र उत्पादन कीजिये।' ऋषिने तथास्तु कह कर लोपामुद्राके साथ संभोग किया। लोपामुद्रा गर्भवती हुई और ऋषि वनको चले गये। ७ वर्ष गर्भधारण कर लोपामुद्राने एक पुत्र प्रसव किया। वह पुत्र साङ्गोपाङ्ग वेदज्ञान-सम्पन्न तथा अतिशय रूपवान् निकला। ऋषियोंने उसका नाम इध्मवाह रखा। यह इध्मवाह भी तपके प्रभावसे पिताके ही जैसे पराक्रमी हुए थे। (भारत वनपर्व ९५-९८ अ०)

लोपामुद्रापति (सं० पु०) लोपामुद्रायाः पतिः। अगस्त्य।

लोपायक (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

लोपाश (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

लोपाशक (सं० पु०) लोपं आकुलीभावं चकितमश्नाति अश-ण्वुल्। शृगाल, गीदड़।

लोपाशिका (सं० स्त्री०) लोपाशक-स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। शृगाली, सियारिन।

लोपिन् (सं० त्रि०) क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

लोप्तृ (सं० त्रि०) १ नियम भंग करनेवाला। २ क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

लोप्त्र (सं० क्ली०) लुप-ष्ट्रन्। स्तेयधन, चोरीका माल।

"ते तस्यावसथे लोप्त्रं दस्यवः कुरुसत्तम।
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवानागते बले॥"
(भारत १।१०७।५)

लोप्त्री (सं० स्त्री०) लोप्त्र-षित्वात् ङीप्। लोप्त्र, चोरीका माल।

लोप्य (सं० त्रि०) लोप योग्य, नाश करनेके लायक।

लोबान (अ० पु०) एक वृक्षका सुगन्धित गोंद। यह वृक्ष अफ्रिकाके पूर्वी किनारे पर, सुमालीलैंडमें और अरबके दक्षिणी समुद्र तट पर होता है और वहींसे लोबान अनेक रूपोंमें भारतवर्षमें आता है। कुंदुरजकर, कुदुर, उनस कुदुरछगा, कुदुरकशफा आदि इसीके भेद हैं। इनमेंसे कई दवाके काममें आते हैं। इनमें लोबानकशफा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्षमें लोबानके नामसे विकता है। यह गोंद वृक्षकी छालके साथ लगा रहता है। अरबसे लोबान बंबई आता है। वहां छांट छांट कर उसके भेद किये जाते हैं। जो पीले रंगकी बूंदोंके रूपके साफ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छांट कर यूरोप भेज देते हैं तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीनके लिये रख लेते हैं। एक और प्रकारका लोबान लावा, सुमात्रा आदि स्थानोंसे आता है जिसे जावी लोबान कहते हैं। यूरोपमें इससे एक प्रकारका क्षार बनाया गया है। इस क्षारको बैंजोइक एसिड कहते हैं। लोबान प्रायः जलानेके काममें लाया जाता है जिससे सुगन्धित धूआँ निकलता है। वैद्यकमें कुदुर-लोबानका प्रयोग सूजाकमें और जावी लोबानका प्रयोग खाँसीमें होता है। यह अधिकतर मरहमके काममें लाया जाता है।

लोबिया (हिं० पु०) एक प्रकारका बोड़ा। यह सफेद रंगका और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और पौने अंगुल तक चौड़े तथा बहुत कोमल होते हैं और पका कर खाये जाते हैं। बीजोंसे दाल और दालमोठ बनाते हैं। इसकी और भी जातियां हैं, पर लोबिया सबसे उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियां उर्दके समान होतीं, पर उनसे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजीके लिये बागोंमें बोया जाता है और बहुमूल्य होता है।

लोबिया कंजई (हिं० पु०) एक रंग जो गहरा हरा होता है।

लोभ (सं० पु०) लुभ-घञ्। १ आकांक्षा, दूसरेके पदार्थको लेनेकी कामना, लालच। पर्याय—तृष्णा, लिप्सा, वश, स्पृहा, कांक्षा शंसा, गार्द्ध्य, वांछा, इच्छा, तृप्, मनोरथ, काम, अभिलाष।

दूसरेकी दौलत आदि देख कर उसे लेनेके लिये जो अभिलाष होता है, उसे लोभ कहते हैं। यह लोभ ब्रह्माके अधरसे उत्पन्न हुआ था।

गीतामें लिखा है, कि नरकके तीन द्वार हैं,—काम, क्रोध और लोभ। इसलिये सब तरहसे लोभ छोड़ देना उचित है।

जगत्में एकमात्र लोभसे सभी अनिष्ट होता है, लोभ ही पापकी प्रसूति है, लोभसे ही क्रोध, काम, मोह और

नाश हुआ करता है। अतएव लोभ ही पापका एकमात्र कारण है। संसारमें मनुष्य लोभमें पड़ कर स्वामी, स्त्री, पुत्र और अपने सहोदर आदिको विनाश कर डालते हैं।

२ जैनदर्शनके अनुसार वह मोहनीय कर्म जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थको त्याग नहीं सकता अर्थात् त्यागका बाधक होता है। ३ कृपणता, कंजूसी।

लोभन (सं० क्ली०) लुभ-ल्युट्। १ लोभ, लालच। २ मांस।

लोभना (हिं० क्रि०) मुग्ध करना, लुभाना।

लोभनीय (सं० त्रि०) लुभ-अनीयर्। लोभार्ह, लोभके योग्य।

लोभयान (सं० त्रि०) लोभोद्रेककारी, लालच बढ़ाने वाला।

लोभविजयी (सं० पु०) वह राजा जो असलमें लड़ाई न करना चाहता हो कुछ धन आदि चाहता हो। कौटिल्यने लिखा है, कि ऐसेको कुछ धन दे कर मित्र बना लेना चाहिए।

लोभाना (हिं० क्रि०) मुग्ध होना, मोहित होना।

लोभित (सं० त्रि०) लुब्ध, मुग्ध, लुभाया हुआ।

लोभिन् (सं० त्रि०) लोभोऽस्यास्तीति लोभ-इनि। १ लोभयुक्त, जिसे किसी बातका लोभ हो। २ बहुत अधिक लोभ करनेवाला, लालची। ३ लुब्ध, लुभाया हुआ। पर्याय—गृध्नु, गर्द्धन, लुब्ध, अभिलाषुक, तृष्णक, लोभलिप्सु।

लोभी (हिं० वि०) लोभिन् देखो।

लोभ्य (सं० त्रि०) लुभ्यते इति लुभ-यत्। १ लोभनीय, लालच करनेके योग्य। (पु०) २ मुद्ग। ३ हरिताल, हरताल।

लोम (सं० क्ली०) १ शरीरके केश, रोआं। मनुष्य तथा दूसरे दूसरे प्राणियोंके शरीरमें छोटे छोटे छिद्र होते हैं। उन छिद्रोंमें जो छोटे तथा बड़े केश दिखाई पड़ते हैं, उन्हें ही लोग रोम, लोम, रोंया आदि कहते हैं। जिन छिद्रों से ये रोयें निकलते हैं वे लोमकूप कहलाते हैं।

प्राणियोंके शरीरमें ये लोम दूसरी तरह उपजते हैं। शरीरमेंके स्थानोंमें छोटे छोटे कितने तथा कितने स्थानोंमें कुछ बड़े केश दिखाई पड़ते हैं। स्थानको पृथक्ताके अनुसार इन केशोंके रंग भी भिन्न भिन्न होते हैं। विशेष करके पर्यवेक्षण करनेसे मनुष्यके शरीरके मस्तक, वक्ष, पृष्ठ तथा पांव आदि भागोंमें घोरतर काले तथा लोहिताभ रोमराशिका समावेश दृष्टिगोचर होता है। ये रोयें साधारणतः केश अथवा कुन्तल आदि नामोंसे सम्बोधित किये जाते हैं। दूसरी दूसरी भाषाओंमें भी मस्तकके केश तथा शरीरके रोम विभिन्न नामसे पुकारे जाते हैं। मनुष्यके शरीरके बाल छोटे होनेके कारण उनसे कोई विशेष कार्य नहीं होते, किन्तु स्त्रियोंके मस्तकके लम्बे लम्बे बालोंसे कई देशोंमें कितनी ही चीजें तैय्यार की जाती हैं। उत्तर-भारतके प्राचीन तीर्थ प्रयागमें स्त्री तथा पुरुषोंके मस्तक-मुण्डन की प्रथा है। उन सब बालोंको एकत्रित करके लोग बेचते हैं। उन लम्बे बालोंकी रस्सी इत्यादि नाना प्रकारकी व्यवहारोपयोगी चीजें तैयार की जाती हैं। इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि रोमके कार्थेज नगरके अवरुद्ध होने पर कार्थेज वीराङ्गणाओंने राजधानीकी रक्षाके लिये अपने अपने शिरके लम्बे लम्बे बालोंको काट कर रस्सी तैय्यार की थी। रोमसाम्राज्य देखो।

चौपाये जानवरोंके शरीरके रोओंको लक्ष्य करके लोग उन्हें दो श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं, एक स्वल्पलोमा तथा दूसरी प्रतिलोमा। तिब्बतके देशीय भेड़, बकरे, काबुली दुम्बा तथा आइवेकके तसोद्धि नामक हरिणके रोएं पशम कहलाते हैं। किसी किसी देशके कुत्ते, बिड़ाल प्रभृति पालतू जानवरोंके शरीरमें लम्बे लम्बे बाल पैदा होते हैं। उष्णप्रधान देशके जङ्गली उल्लुक तथा सुमेरु प्रदेश सदृश दूसरे दूसरे शीतप्रधान प्रदेशोंके श्वेत उल्लूकोंके शरीरमें घने रोए पैदा होते हैं। महिष, शूकर आदि स्वल्पलोमा पशुओंके रोओंसे कोई विशेष कार्य नहीं होता। शूकरोंकी पीठ पर एक प्रकारके कड़े कड़े दीर्घाकार बाल होते हैं, जो 'शूकरकी कूंची'के नामसे प्रसिद्ध हैं। उन कूंचियोंसे 'व्रस' इत्यादि बनाये जाते हैं। सिंहके मस्तकके बाल, घोड़ेके मस्तक तथा ग्रीवादेशके लम्बे लम्बे बाल एवं प्रायः सभी दूसरे दूसरे

पशुओंके वाल, रोम अथवा केशके ही नामसे पुकारे जाते हैं।

द्विपद तथा खेचर, पक्षियों आदिके अण्डेसे तत्काल हो निकले हुए बच्चोंके शरीरमें छोटे छोटे रोएं देखे जाते हैं। पीछे उनके बच्चोंके परोंके बढ़ जाने पर वे रोएं उनसे ढक जाते हैं, इसलिये दृष्टिगोचर नहीं होते। किन्तु इस जातिके पक्षियोंमें वादुड़ोंके शरीरमें पर पैदा हो कर पोछे रोमके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

उभचर अर्थात् स्थलचर और जलचर जीवजातिमें विवर, जलचूहे, उदविलाव आदि चौपाये जन्तुके शरीरमें लोम देखे जाते हैं। उनके लोम बहुत चिकने होते हैं। पद्मातीरवासी माँझी उदविलावको पोसते हैं। वे नदी-में घुस कर मछली पकड़ लाते हैं।

मनुष्यके केश, सिंहके केशर और घोड़ेकी गरदनके वाल मोटे होते हैं, इसलिये वे सूक्ष्मकार्यके उपयोगी नहीं हैं। उनसे रस्सी, चेन, चटाई आदि प्रस्तुत की जा सकती हैं। किन्तु तिब्बत, कावुल, कन्धार, समरकन्द, किरमान, वोखारा आदि शीतप्रधान देशोंके वकरेके लोम वहुत वारीक होते हैं। उनसे शाल, रामपुरी चादर, पट्टू, नामदा, लुई, मलीदा, कम्बल आदि जाड़ेके कपड़े तय्यार होते हैं। इसी कारण वहांके वणिक् वकरे आदि-को पोसते और प्रतिवर्ष पशम छांट लेते हैं। चाङ्गथान, तुर्फान और किरमानके सफेद पशम सबसे अच्छे होते हैं। इनसे एकमात्र कश्मीरी शाल तैयार होता है। ऊंट-के लोमसे भी एक प्रकारका चोगा या लवादा तैयार होते देखा जाता है। वहुत प्राचीन कालसे काश्मीर, पंजाव, सिन्धु, आगरा, मिर्जापुर, जब्बलपुर, वरङ्गल, मसलीपत्तन और मलवार आदि स्थानोंमें लोममिश्रित कार्पेट वुननेका कारखाना और वाणिज्यकेन्द्र प्रतिष्ठित था। अभी वहुत-सी जगहोंमें उस प्राचीन पशमी शिल्पकी अवनति हो गई है। वाराणसीक्षेत्रमें आज भी मखमलका गलीचा और मुर्शिदावादमें रेशमी गलीचा तैयार होता है।

विस्तृत विवरण पशम और शाल शब्दमें देखो।

२ लांगूल, पूंछ।

लोम (हिं० पु०) लोमड़ी।

लोमक (सं० त्रि०) लोमयुक्त, जिसे रोआं हो।

लोमकरणी (सं० स्त्री०) १ जटामांसी। २ मांसच्छदा, मांसी नामक घास।

लोमकर्कटी (सं० स्त्री०) अजमोदा।

लोमकर्ण (सं० पु०) लोमयुक्तौ कर्णौ यस्य। १ शशक, खरगोश। (त्रि०) २ लोमयुक्त कर्णविशिष्ट, जिसके कान पर वाल हों।

लोमकागृह (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम। (पा ६।३।६३)

लोमकिन् (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

लोमकीट (सं० पु०) जूँ।

लोमकूप (सं० पु०) त्वक्रन्ध्र, शरीरमेंका वह छिद्र जो रोएंकी जड़में होता है।

लोमगर्त्त (सं० पु०) लोमकूप, शरीरमेंका वह छिद्र जो रोएंकी जड़में होता है।

लोमघ्न (सं० क्ली०) लोमानि हन्तीति हन्-टक। १ इन्द्र-लुप्तक, गंज नामक रोग। (त्रि०) २ लोमघातक, लोम-नाशक।

लोमड़ी (हिं० स्त्री०) कुत्ते या गीदड़की जातिका एक जन्तु। यह ऊंचाईमें कुत्तेसे छोटा होता है पर विस्तारमें लंबा। भारतवर्षको लोमड़ीका रंग गीदड़-सा होता है। पर यह उससे वहुत छोटी होती है। इसकी नाक नुकीली, पूंछ झवरी और आंखें वहुत तेज होती हैं और यह वहुत तेज भागनेवाली होती है। अच्छे अच्छे कुत्ते इसका पीछा नहीं कर सकते। चालाकीके लिये यह वहुत प्रसिद्ध है। ऋतुके अनुसार इसका रोआं झड़ता और रंग वदलता है। यह कीड़े मकोड़ों और छोटे छोटे पक्षियोंको पकड़ कर खाती है। दूसरे देशोंमें इसकी अनेक जातियां मिलती हैं। अमेरिकामें लाल रंगको एक लोमड़ी होती है और शीतकटिवंध प्रदेशोंमें काले रंगकी लोमड़ी होती है जिसके रोएं जाड़ेमें सफेद रंग-के हो जाते हैं। कहीं कहीं विलकुल काली लोमड़ी भी होती है। उन सबके वाल या रोएं वहुत कोमल होते हैं। उनका शिकार उनकी खालके लिये किया जाता है जिसे समूर या पोस्तीन कहते हैं। शीतकटि-वंध प्रदेशकी लोमड़ियां विल वना कर झुण्डमें रहती हैं।

यूरोपकी लोमड़ियां बड़ी भयानक होती हैं। वे गांवोंमें घुस कर अंगूर आदि फलोंका और पालतू पक्षियोंका नाश कर देती हैं। भारतकी लोमड़ी चैत वैशाखमें बच्चे देती हैं। बच्चोंकी संख्या पांच छः होती है और डेढ़ वर्षमें पूरी बाढ़को पहुंचते हैं। इसकी आयु तेरह चौदह वर्षकी कही गई है।

लोमद्वीप (सं० पु०) शोणितज कृमिभेद, वह कीड़ा जो लहूसे उत्पन्न होता है। (चरक चि० ७ अ०)

लोमधि (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजपुत्रका नाम। (भागवत १२।१।२५)

लोमन् (सं० क्ली०) लूयते छिद्यते इति लू-(नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् पाप्मन् ध्यामन्। उण् ४।१५०) इति मनिन् प्रत्ययेन साधुः। शरीरके बाल। पर्याय—तनूरुह, तनुरुह, रोम, तनुरुट्। (शब्दरत्ना०)

गर्भस्थित बालकके छठे महीनेमें लोम उत्पन्न होता है। इसलिये छः महीने तक गर्भवती स्त्रीको वैदिक आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं रहता।

लोमन (सं० पु०) पाणिनीय अश्वर्चादि गणोक्त शब्द।

लोमपाद (सं० पु०) लोमानि पादयोर्यस्य। अङ्गदेशीय एक राजा। महाभारतमें लिखा है, कि यह राजा दशरथके मित्र थे। एक बार इन्होंने ब्राह्मणोंका अपमान किया। उससे क्रोध कर ब्राह्मण उसका देश छोड़ कर चले गये। ब्राह्मणोंके चले जानेसे अङ्गदेशमें बहुत दिनों तक अनावृष्टि होती रही। इसके निवारणार्थ राजा लोमपादने ऋष्यशृङ्गको राज्यमें बुला कर उन्हें अपने मित्र दशरथकी कन्या जिसका नाम शान्ता था, प्रदान की जिससे अनावृष्टि दूर हो गई। इन्हें रोमपाद भी कहते हैं। (भारत वनपर्व ११०-११२ अ०)

लोमपादपुरी—लोमपादकी राजधानी, चम्पा।

लोमपादपू (सं० पु०) लोमपादस्यपूः। पुरीविशेष। पर्याय—चम्पा, मालनी, कर्णपू। प्रत्नतत्त्वविद् इस नगरीको वर्त्तमान भागलपुर और उसका समीपवर्त्ती चम्पा अनुमान करते हैं।

लोमप्रवाहिन् (सं० त्रि०) लोमं प्रवाहतीति प्र-वह-णिनि। लोम युक्त शर आदि।

लोमफल (सं० क्ली०) लोमयुक्तं फलं। भव्यफल, कमरख।

लोममणि (सं० पु०) लोमनिर्मित कवच।

लोमयुक (सं० पु०) १ जूं। रोमनाशक कीट, वह कीड़ा जो पशमीने शालको काटता है।

लोमवत (सं० त्रि०) रोम सदृश, रोमयुक्त।

लोमवाहन (सं० त्रि०) १ लोमबहुल। २ रोमयुक्त।

लोमवाहिन् (सं० त्रि०) रोमवाही शर आदि।

लोमविवर (सं० क्ली०) लोम्नां विवरं। लोमकूप।

लोमविध्वंस (सं० पु०) कृमि, कीड़ा। (वैद्यकनि०)

लोमविष (सं० पु०) लोम्नि विषं यस्य। व्याघ्र, बाघ आदि।

लोमवेताल (सं० पु०) अपदेवताभेद। (हरिवंश)

लोमश (सं० पु०) लोमानि सन्त्यस्येति लोमन् 'लोमादिभ्यः शः' इति श। १ विख्यात ब्रह्मर्षि। पुराणोंमें इनको अमर माना गया है। एक समय इन ब्रह्मर्षिने इन्द्रकी सभामें जा कर देखा, कि अर्जुन इन्द्रके आसन पर बैठा है। यह देख उनके मनमें शंका हुई। देवराज इन्द्रने ब्रह्मर्षिके हृदयका भाव जान कर कहा—महाराज! आपके मनमें जो प्रश्न उठा है, उसका उत्तर सुनिये। यह अर्जुन केवल मनुष्य ही नहीं है, इसमें देवत्व भी है। यह हमारे औरस और कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। आश्चर्य है, कि आप इस पुरातन ऋषिको नहीं जानते। हृषीकेश और नारायण ये दोनों नरनारायणके नामसे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं। कार्यके लिये ये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। वदरी आश्रममें इनका निवासस्थान है। यह कह कर अर्जुनका समाचार युधिष्ठिरसे कहनेके लिये इन्द्रने ब्रह्मर्षिको युधिष्ठिरके पास काम्यक वनमें भेजा।

२ मध्वालु। ३ धातुकसीस। ४ मेष, भेड़ा। (त्रि०) ५ अतिशय रोमान्वित, अधिक और बड़े बड़े रोएं वाला। सामुद्रिकमें लिखा है, कि लोमश व्यक्ति कदाचित् सुखी हुआ करता है अर्थात् प्रायः ही दुःखी होता है। महाभारतके अनुसार जो धान्य चोरी करता है, वह लोमश हो कर जन्मग्रहण करता है।

लोमशकर्ण (सं० पु०) शशक, खरगोश।

लोमशकान्ता (सं० स्त्री०) लोमशः कान्तो यस्याः। कर्कटी, ककड़ी।

लोमशकोड़ा (सं० स्त्री०) लोमशकान्ता देखो।

लोमशच्छद् (सं० पु०) १ देवताड़वृक्ष, रामवांस। २ पीत देवदाली, पीली घघरबेल।

लोमशपत्ता (सं० स्त्री०) पीत देवदाली, पीली घघरबेल।

लोमशपत्रिका (सं० स्त्री०) लोमशपत्ता, घघरवेल।

लोमशपर्णिनी (सं० स्त्री०) लोमशं पर्णमस्त्यस्या इति इनि ङीप्। माषपर्णी नामक ओषधि।

लोमशपर्णी (सं० स्त्री०) लोमशपर्णिनी देखो।

लोमशपुष्पक (सं० पु०) लोमशानि पुष्पाणि यस्य, कप्। शिरीष, सरिस।

लोमशमार्जार (सं० पु०) लोमशो लोमबहुलो मार्जारः। मार्जारविशेष, एक प्रकारकी विल्ली। इसके बाल कोमल होते हैं और इससे मुश्क निकलता है। पर्याय—पूतिक मारजातक, सुगन्धी, मूत्रपातन, गन्धमार्जारक। इसका मुश्क वोर्यवर्द्धक, कफवातनाशक, कण्डु और कोष्ठपरिष्कारक, चक्षु का हितकर, सुगन्ध, स्वेद और गन्धनाशक माना गया है।

लोमशवक्षस् (सं० त्रि०) लोमाच्छादित वक्ष या वपुः, जिसकी छाती लोमसे भरी हो।

लोमशसक्थि (सं० त्रि०) पश्चाद्भागमें लोमयुक्त। शुक्लयजुः (. ४।१) भाष्यमें महीधरने "बहुरोमपुच्छिका" अर्थ किया है।

लोमशा (सं० स्त्री०) लोमानि सन्त्यस्या इति लोमन् टाप्। १ काकजङ्घा, मांसी। २ वच। ३ वैदिक कालकी एक स्त्री जो कई मन्त्रोंकी रचयिता मानी जाती है। ४ शूकशिम्बी, सेमको फली। ५ महामेदा। ६ कसीस। ७ शाकिनीभेद। ८ अतिवला। ९ शणपुष्पी, वनसनई। १० पर्ब्बोरु। ११ गंधमांसी। १२ केवांच, कौंछ। १३ मिसी, सौंफ। १४ ककोली।

लोमशातन (सं० क्ली०) लोम्नां शातनं। १ लोमपातन, लोमनाशक। २ औषधविशेष, यह औषध वाल पर लगा देनेसे वाल आपसे आप उड़ जाते हैं। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि हरताल और शंखचूर्ण केले पत्तेकी भस्मके साथ मिला कर रोएं पर प्रलेप देनेसे उत्तम लोमशातन बनता है। लवण, हरताल, तण्डुलीफल तथा लाक्षारस इन सब द्रव्योंको एकत्र कर प्रलेप देनेसे भी लोमशातन होता है। फिर कलिचूर्ण, हरताल, शङ्ख, मनःशिला, सैन्धव इन सबका बकरेके मूत्रके साथ पीस कर लगानेसे तुरत लोमशातन होता है। वैद्यकमें लिखा है, कि भिलावां, विड़ङ्ग, यवक्षार, सैन्धव, मनःशिला और शङ्खचूर्ण इन सबोंको तेलमें पका कर उसका प्रलेप देनेसे लोमशातन होता है। (भैषज्यर० वशीकरणाधि०)

लोमशी (सं० स्त्री०) कर्कटी, ककड़ी।

लोमश्य (सं० क्ली०) लोमबहुलता, रोएंकी ज्यादती।

लोमसंहर्षण (सं० क्ली०) लोमहर्षण, रोमांच।

लोमस (सं० पु०) लोमश देखो।

लोमसार (सं० पु०) मरकत मणि।

लोमसिक (सं० स्त्री०) शृगाली, सियारिन।

लोमहर्ष (सं० पु०) लोम्ना हर्षः। १ रोमाञ्च, पुलक। २ एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१२।१३)

लोमहर्षण (सं० क्ली०) लोम्नां लर्षणमिव। १ रोमाञ्च, पुलक। लोम्नां हर्षणमस्मादिति। (त्रि०) २ लोमहर्षकारक, रोमाञ्चकारी। (पु०) विचित्रपुराणकथाश्रवणात् लोम्नां हर्षणं उद्गमो यस्मात्। ३ प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि। इनके पिताका नाम सूत था। सूत वेदव्यासके शिष्य थे। कल्किपुराणमें लिखा है, कि परशुरामने इन्हें मार डाला था।

लोमहर्षणक (सं० त्रि०) लोमहर्षण सम्बन्धीय।

लोमहर्षिन् (सं० त्रि०) लोमहर्षकारक, रोमाञ्चकारी, ऐसा भीषण जिससे रोएं खड़े हो जांय।

लोमहारिन् (सं० त्रि०) लोमवाहिन्।

लोमहृत् (सं० पु०) लोमानि हरति नाशयतीति हृ-क्विप्। हरिताल, हरताल।

लोमा (सं० स्त्री०) वचा, वच।

लोमायणि (सं० पु०) लोमायणका गोत्रापत्य।

लोमालिका (सं० स्त्री०) लोमाल्या लोमश्रेण्या कायतीति कै क-टाप्। शृगालिका, सियारिन।

लोमाश (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

लोमाशिका (सं० स्त्री०) शृगाली, गीदड़ी।

लोय (हिं० स्त्री०) १ लौ, लपट। (पु०) २ आंख, नयन। (अव्य०) ३ लौं देखो।

लोर (हिं० पु०) १ कानका कुण्डल। २ लटकन। ३ आंसू।

लोरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका गीत। स्त्रियां बच्चोंको सुलानेके लिये यह गीत गाती हैं। साथ ही वे बच्चेको गोदमें ले कर हिलाती भी जाती हैं अथवा खाट पर लेटा कर थपकी देती जाती हैं। २ तीतरकी एक जाति।

लोर्मी (लुर्मि)—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलान्तर्गत एक ज़मींदारी। इस जमींदारीके अधिकारी एक वैरागी हैं। १८३० ई०में उनके पूर्वजोंने यह स्थान जागीरस्वरूप पाया था। भूपरिमाण ६२ वर्गमील है। लोर्मी गांव यहांका प्रधान वाणिज्यस्थान है। यहां नाना तरहकी फसल लगती है।

लोल (सं० त्रि०) लोड़तीति लुड़-विलोड़ने अच्। १ चञ्चल। २ कम्पायमान, हिलता डोलता। ३ परिवर्त्तनशील। ४ क्षणिक, क्षणभंगुर। ५ उत्सुक, अति इच्छुक। (पु०) ६ तामस मनु। (मार्कण्डेयपु० ७४।४१) ७ लिङ्गेन्द्रिय।

लोलक (सं० क्ली०) १ लटकन जो बालियोंमें पहना जाता है। यह मछलीके आकारका या किसी और आकारका होता है। स्त्रियां इसे नथ या बालीमें पिरो कर पहनती हैं। २ कानकी लव, लोलकी। ३ घंटी या घंटेके बीचमें लगा हुआ लटकन जो हिलानेसे इधर उधर टकरा कर घंटीमें लग कर शब्द उत्पन्न करता है। ४ करघेमें मिट्टीका एक लट्टू। यह राछमें इसलिये लगाया जाता है, कि उसको ऊपर या नीचे करके राछ उठा या दबा सकें।

लोलकी (हिं० स्त्री०) कानका वह भाग जो गालोंके किनारे इधर उधर नीचेको लटकता रहता है। इसीमें छेद करके कुण्डल या बाली आदि पहनते हैं।

लोलजट (सं० पु०) वृहत्संहिताके अनुसार एक जनपद जो ईशानकोणमें है।

लोलदिनेश (सं० पु०) लोलार्क नामक सूर्य।

लोला (सं० स्त्री०) लोल-टाप्। १ जिह्वा, जीभ। २ लक्ष्मी। ३ चञ्चला स्त्री। ४ मधु दैत्यकी माता। ५ एक योगिनीका नाम। ६ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, सगण, मगण, भगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। इसमें सात सात पर यति होती है। ७६४ हाथ लम्बी ८ हाथ चौड़ी और ६ $\frac{२}{२५}$ हाथ ऊंची नाव।

लोला (हिं० पु०) लड़कोंका एक खिलौना। यह एक डंडा होता है जिसके दोनों सिरों पर दो लट्टू होते हैं।

लोलाक्षिका (सं० स्त्री०) घूर्णितलोचना, वह स्त्री जिसकी आंखें चकराती हों।

लोलार्क (सं० पु०) लोलनामा अर्कः। सूर्य। महादेवने सूर्यका लोल नाम रखा था इसलिये सूर्यका लोलार्क कहते हैं। (कूर्मपु० और काशीख०)

लोलिका (सं० स्त्री०) लोलतीति लुल-ण्वुल्-टाप् अत इत्वं। चाङ्गेरी, खट्टी लोनी।

लोलित (सं० त्रि०) लुल-विमर्दे घञ् लोलः सोऽस्य जातः इति। श्लथ, ढीला।

लोलिनी (सं० त्रि० स्त्री०) चञ्चल प्रकृतिवाली।

लोलिम्बराज (सं० पु०) वैद्यकनिघण्टुके प्रणेता। ये दिवाकरके पुत्र और हरिहरके शिष्य थे। इन्होंने चमत्कार-चिन्तामणि, रत्नकलाचरित, वैद्यजीवन, वैद्यविलास या हरिविलास, वैद्यावतंश, हरिविलासकाव्य और लोलिम्बराजीय नामक और भी कितने वैद्यक ग्रन्थ प्रणयन किये।

लोलुप (सं० त्रि०) गर्हितं लुम्पतीति लुभ यङ् अच्। १ अतिशय लुब्ध, बड़ा लोभी। २ किसी बातके लिये परम उत्सुक। ३ चटोर, चट्टू।

लोलुपता (सं० स्त्री०) लोलुपस्य भावः तल्-टाप्। लोलुपत्व, लोलुपका भाव या धर्म, लालच।

लोलुभ (सं० त्रि०) भृशं लुभ्यतीति लुभ यङ् अच्। लोलुप, लालची।

लोलुया (सं० स्त्री०) काटनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा।

लोलुव (सं० त्रि०) पुनः पुनः कर्त्तनशील, बार बार काटनेवाला।

लोलोर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम। (राजतर० १।५६)

लोल्लट—कल्पवृक्षलता नामक दीधितिके रचयिता।

लोल्लटभट्ट—काव्यप्रकाशधृत आलङ्कारिकभेद।

लोवा (हिं० स्त्री०) १ लोमड़ी। (पु०) २ तीतरकी जाति

का एक पक्षी। यह बटेरसे छोटा होता है और काश्मीर, मध्यप्रदेश तथा संयुक्तप्रान्तमें पाया जाता है। नर प्रायः मादासे कुछ अधिक बड़ा होता है। शिकारी इसका शिकार करते हैं। इसे गुरगा भी कहते हैं।

लोवा—अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २१´ उ० तथा देशा० ८१° १´ पू०के मध्य सई नदीके तट पर अवस्थित है। पूर्वा और उन्नाव नगरके साथ यहांका व्यापार चलता है।

लोवागढ़—पञ्जावप्रदेशके वन्नु जिलान्तर्गत एक पर्वत। मैदानी देखो।

लोशन (अं० पु०) अधिक पानीमें घुली हुई औषधि। यह शरीरमें ऊपरसे लगाने, किसी पीड़ित अंशको धोने या तर रखने आदिके काममें आती है।

लोशशरायणि (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रंथकार।

लोष्ट (सं० पु० क्ली०) लोष्टते इति लोष्ट घञ्, यद्वा लूयते इति लू (लोष्टपलितौ। उण् ३।६२) इति क्त प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ मृत्तिकाखण्ड, ढेला। पर्याय—लोष्टु, दलि। २ लौहमल। ३ लेष्टु।

लोष्टक (सं० पु०) १ मृत्पिण्ड। २ चन्दन आदि रखनेकी वस्तु।

लोष्टघ्न (सं० पु०) लोष्टं हन्तीति हन-टक्। खेतीका वह औजार जिससे खेतके ढेले फोड़ते हैं, पटेला।

लोष्टदेव—दीनाक्रन्दनस्तोत्रके रचयिता तथा रम्यदेवके पुत्र। ये श्रीकण्ठचरितके प्रणेता मङ्खके समसामयिक थे।

लोष्टन (सं० क्ली०) मृत्पिण्ड।

लोष्टभेदन (सं० पु०) भिनत्तीति भिद्-ल्यु, लोष्टस्य भेदनः: लोष्टभञ्जसाधन मुद्गर, वह मुगदर जिससे ढेला फोड़ा जाता है, पटेला। पर्याय—लोष्टुभेदन, लोष्टघ्न, लोष्टुघ्न, कोटिश, कोटीश।

लोष्टमर्द्दिन् (सं० पु०) लोष्टुघ्न, पटेला।

लोष्टमय (सं० त्रि०) लोष्टस्वरूपे मयट्। लोष्टस्वरूप, ढेलेके समान।

लोष्टवत् (सं० त्रि०) मृत्तिकानिर्मित, मिट्टीका बना हुआ।

लोष्टसर्वज्ञ—एक प्राचीन कवि।

लोष्टाक्ष (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (संस्कारकौमुदी)

लोष्टु (सं० पु०) लोष्ट, ढेला।

लोष्ट्र (सं० पु०) लोष्ट-रन्। लोष्ट, ढेला।

लोसर—पञ्जावप्रदेशके काङ्गड़ा जिलेके स्पिति-राज्यान्तर्गत पर्वतपृष्ठस्थ एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ३२° २८´ उ० तथा देशा० ७७°४६´ पू० तक विस्तृत है तथा समुद्रकी तहसे १३४०० फुट ऊंचा है। इसके अलावा और कोई भी गांव इतने ऊंचे पर नहीं है।

लोहंडा (हिं० पु०) १ लोहेका एक प्रकारका पात्र जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। २ तसला।

लोह (सं० पु० क्ली०) लूयतेऽनेनेति लू बाहुलकात् ह। स्वनामख्यात धातुविशेष, लोहा। संस्कृत पर्याय—लौह, जोङ्गक, सर्वतेजस, रुधिर। तीक्ष्ण, मुण्ड और कान्तभेदसे लोह तीन प्रकारका होता है। मुण्डलोहके पर्याय—मुण्ड, मुण्डायस, द्रुषत्सार, शिलात्मज, अश्मज। कान्तलोहके पर्याय—आर, कृष्णायस। तीक्ष्णलोहके पर्याय—तीक्ष्ण, शस्त्रायस, शस्त्र, पिण्ड, पिण्डायस, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खड्ग, मुण्डज, अयस्, चित्रायस, चीनज। वैज्ञानिक विवरण लौह शब्दमें देखो।

वैद्यक मतसे इसका गुण—रूक्ष, उष्ण, तिक्त, वात, पित्त, कफ, प्रमेह, पाण्डु और शूलनाशक।

मनुमें लिखा है, कि अश्म (पत्थर) से लोहेकी उत्पत्ति होती है।

वैद्यकमें लोहेकी उत्पत्ति, गुण और मारणादिका विषय इस प्रकार लिखा है।

पुराकालके देव दानव युद्धमें देवताओं द्वारा लोमिल नामक दानव मारा गया था। उसीके शरीरसे अनेक प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई। लौह विशेष उपकारक है। सेवन वा औषधमें इसे शोधन कर व्यवहार किया जाता है। शोधित लौह विशेष उपकारी है। अशोधित लौहका सेवन करनेसे पण्डता, कुष्ठ, हृद्रोग, शूल, अश्मरी, हल्लास आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इससे मृत्यु तक भी हो सकती है। इसका व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिये।

शोधनप्रणाली—लोहेका वारीक पत्तर बना कर अग्निमें जलावे। पीछे गरम रहते उस पर यथाक्रम तेल, मट्ठा,

कांजी, गोमूत्र और कुलथीका काढ़ा, तीन बार करके डालनेसे लौह शोधित होता है।

मारणविधि—लोहेको शोधन कर पीछे उसका मारण करे। विशुद्ध लौहचूर्णको पातालगरुड़ीके रसमें पीस कर पुट-पाक करे। अनन्तर घृतकुमारीके रसमें पीस कर तीन बार और कुठारछिन्निकाके रसमें पीस कर ६ बार पुट पाक करे।

अन्य प्रकार—लौहचूर्णके दशवें भागके बराबर हिंगुल डाल कर घृतकुमारीके रसमें पीसे। पीछे दोपहर तक पुट पाक करे। इस प्रकार ७ बार पुट पाक करनेसे ही लौह मारित होता है।

फिर पारेके साथ दूनी गन्धक मिला कर कज्जली बनावे। पीछे कज्जलीके समान लौहचूर्ण डाल कर घृतकुमारीके रसमें दोपहर तक पीसे। जब वह पिण्डाकृतिकी हो जाय, तब उसे तांबेके बरतनमें रख दोपहर तक धूपमें छोड़ दे। पीछे उसको रेंडीके पत्तोंसे ढक देना होगा। दोपहरके बाद जब वह लौहपिण्ड गरम हो जाय, तब उसे ढक्कनसे ढक धानकी ढेरमें छोड़ दे। बाद में उस लौहचूर्णसे चौगुने जलमें अनारका पत्ता पीस कर उस रसमें वह लौहचूर्ण भिगो रखे। इस प्रकार इक्कीस बार पाक करनेसे लौह निश्चय ही मारित होता है।

मारित लोहगुण—तिक्त और कषायमधुर रस, सारक, शीतवीर्य, गुरु, रूक्ष, वयःस्थापक, चक्षुका हितकर, वायुवर्द्धक, कफ, पित्त, गरदोष, शूल, शोथ, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, मेद, मेह, कृमि और कुष्ठनाशक। इसको माला अग्निके बलाबलके अनुसार एक रत्तीसे नौ रत्ती तक सेवन की जा सकती है। (भावप्र० पूर्वख०)

रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे शोधनप्रणाली—कान्तलौहका पत्तर बना कर स्वर्णमाक्षिक, त्रिफलाचूर्ण और सालिमञ्चा सागका रस उसमें लगा कर आगमें जलावे। लाल हो जाने पर जलमें उसे छोड़ दे। पीछे हस्तिकर्ण, पलाश, त्रिफला, वृद्धदारक, मानकच्चू, ओल, हड़जोड़ा, सोंठ, दशमूल, मुण्डिरी, तालमूली, प्रत्येकके क्वाथ वा रसमें पुट देनेसे लौह शोधित होता है।

लोहभस्म—विशुद्ध पारा एक भाग, गंधक दो भाग, लोहा तीन भाग घृतकुमारीके रसमें पीस कर तांबेके बरतनमें रखे। पीछे रेंडीके पत्तोंसे ढक कर दोपहर तक पुटपाक करे। इसके बाद धानकी ढेरमें रख कर पीछे सूक्ष्मचूर्ण करे। इसी तरह लोहा भस्म होता है।

अन्यविध—लोहेका बारहवां भाग हिंगुल एकत्र मिला कर घृतकुमारीके रसमें मर्दन करे। पीछे ७ बार पुटपाक करनेसे लौह भस्म होता है।

रसायनमें निम्नोक्त नियमानुसार लौहका व्यवहार करना होता है। घी, मधु और सोहागा इन सब द्रव्योंके साथ लौहभस्म मर्दन कर अग्निमें जलावे। जब वे सब द्रव्य अच्छी तरह मिल जांय, तब रसायनमें उसका प्रयोग करे।

गुण—कृष्ण-लौह शोथ, शूल, अर्श, कृमि, पाण्डु प्रमेह, विषदोष, मेद और वायुनाशक, वयःस्थापक, गुरु, चाक्षुष्य, आयु, शुक्र, बल और वीर्यवर्द्धक और रसायनश्रेष्ठ। लौहसेवन कालमें कुष्माण्ड, तिलतैल, सर्षप, लहसुन, मद्य और अम्ल द्रव्य-भोजन विशेष निषिद्ध है।

जिन सब औषधोंमें लौह व्यवहृत होता है उनके नाम ये हैं,—बृहद्गगनसुन्दर, क्रव्यादरस, नवायसचूर्ण, अष्टादशाङ्गलौह, खण्डखाद्यलौह, अग्निरस, भूतभैरवरस, लोहरसायन, स्वायम्भुव गुग्गुल, गलत्कुष्ठारिरस, रतिवल्लभ, गदमुरारि, पर्पटीरस, वातपित्तान्तकरस, विश्वेश्वररस, चिन्तामणिरस, जयमङ्गलरस, नवभैरव, अञ्जनभैरव, रसराजेन्द्र, मृतसञ्जीवनीरस, कस्तूरीभैरवरस, बृहत्कस्तूरीभैरव, स्वच्छन्द नायक, ज्वराशनिरस, चन्द्नादि लौह, बृहत्सर्वज्वरहर लौह, महाराजवटी, त्रैलोक्यचिन्तामणिरस, महाज्वरांकुश, बृहज्ज्वरान्तकलौह, चूड़ामणिरस, भीमचूड़ामणि, बृहच्चूड़ामणि, अमृतार्णवरस, अतिसारवारणरस, कलाद्यलौह, पर्णकलावटी, ग्रहणीगजेन्द्रवटी, पीयूषवल्लीरस, पञ्चामृतपर्पटी, ग्रहणीकपर्दकपोट्टली, ग्रहणीकपाट, अग्निकुमाररस, नृपतिवल्लभ, राजवल्लभ, बृहन्नृपवल्लभ, तीक्ष्णमुखरस, अर्शःकुठाररस, चक्ररस, नित्योदितरस, चन्द्रप्रभागुड़िका, मालाद्यलौह, चञ्चत्कुठाररस, पञ्चाननवटी, पाशुपतरस, रसराक्षस, त्रिफलाद्यलौह, शङ्खवटी, विड़ङ्गादिलौह, निशालौह, धात्रीलौह, प्राणवल्लभरस, दार्व्यादिलौह, सम्मोहलौह, लब्धानन्दरस, सुधानिधिरस, रक्तपित्तान्तकरस, शुक्र-

राद्यलौह, रास्नादिलौह, काञ्चनाभ्ररस, वारिशोषणरस, सर्वतोभद्ररस, त्रिकटुवाद्यलौह, कटुकाद्यलौह, तूषणाद्यलौह, सुवर्च्चलाद्य लौह, नित्यानन्दरस, भगन्दरहररस, कुष्ठकालानलरस, महातालेश्वररस, अम्लपित्तान्तकरस, लीलाविलासरस, पानीयभक्तवाटिका, क्षुधावतीवटी, कालाग्निरुद्ररस, नेत्राशनिरस, नयनामृतरस, तिमिरहरलौह, शिरोवज्ररस, चन्द्रकान्तारस, महालक्ष्मीविलासरस, प्रदरान्तकलौह, महाराजनृपतिवल्लभरस, वृहदग्निकुमाररस, वृहल्लवङ्गादिवटी, कृमिकालानलरस, कृमिरोगादिरस, त्रिफलाद्यलौह, त्रैलोक्यसुन्दररस, चन्द्रसूर्यात्मकरस, आमलक्याद्यलौह, शतमूलाद्यलौह, रत्नगर्भपोट्टलीरस, सर्वाङ्गसुन्दररस, वृहत्काञ्चनाभ्रलौह, मृत्युञ्जयरस, महामृत्युञ्जयरस, प्रदरान्तकरस, सूतिकाघ्नमहाभ्रवटी, रसशार्दूल, वृहद्रसशार्दूल, भीमरुद्ररस, श्रीमन्मथरस, महेश्वररस, पूर्णचन्द्ररस, कार्श्यहरलौह, वृहत्पूर्णचन्द्ररस, मकरध्वज, वसन्ततिलकरस, वसन्तकुसुमाकररस, नीलकण्ठरस, महानीलकण्ठरस, शिलाजत्वादि लौह, यक्ष्मकेशरिरस, वृहच्चन्द्रामृतरस, क्षयकेशरी, वृहद्रसेन्द्रगुड़िका, पित्तकासान्तकरस, काससंहारभैरव, लक्ष्मीविलासरस, सार्वभौमरस, महोदधिरस, जयागुड़िका, विजयागुड़िका, स्वच्छन्दभैरव, श्रीचन्द्रामृतलौह, विजयावटी, लौहपर्पटीरस, पिपुलाद्यलौह, श्वासकासचिन्तामणि, भूतांकुशरस, उन्मादमञ्जरी, इन्द्रब्रह्मवटी, वातगजांकुश, वृहद्वातगजांकुश, वातनाशनरस, वातकण्टकरस, चतुर्मुखरस, गगनादिवटी, श्लेष्माशैलेन्द्ररस, गुड़ूच्यादि लौह, पित्तान्तकरस, महापित्तान्तकरस, लाङ्गल्याद्य लौह, वातरक्तान्तकरस, आमवातारिवटिका, आमवातेश्वररस, वृद्धदाराद्यलौह, आमवातगजसिंहमोदक, सप्तामृतलौह, चक्षुःसमलौह, शूलराजलौह, विद्याधराभ्र, वृहद्विद्याधराभ्र, शूलवज्रिणीवटिका, गुल्मकालानलरस, महागुल्मकालानलरस, गुल्मशार्दूल, सर्वेश्वररस, वरुणाद्यलौह, वृहद्धरिशङ्कररस, मेहमुद्गररस, मेघनादरस, चन्द्रप्रभावटी, मेहवज्र, मेहकेशरी, योगेश्वररस, तालकेश्वररस, गगनादिलौह, सोमनाथरस, वृहद्सोमनाथरस, सोमेश्वररस, वड़वाग्निलौह वैश्वानरीवटी, रोहितकलौह, लोकनाथरस, वृहल्लोकनाथरस, ताम्रेश्वरवटी, अग्निकुमारलौह, यकृदरिलौह, मृत्युञ्जयलौह, प्लीहाशार्दूल, प्लीहारिरस, अर्शोहररस, पञ्चामृतरस, अग्निमुखलौह, चव्यादिलौह, पञ्चामृतचूर्ण, नवायस लौह, योगराजलौह, लौहामृत, पञ्चास्यरस, मृगाङ्करस, चन्द्रेश्वररस, प्राणत्राणरस, कामकलारस, चित्रकाद्यचूर्ण, भूदाररस, गौड़ारस, कृष्णाद्यलौह, वृहत्रिफलाद्यलौह, लौहगुड़िका, कलायगुड़िका, लौहगुग्गुल, मूत्रकृच्छ्रहरलौह, श्वदंष्ट्रादिलौह, मेघवद्धरस, मेघद्विरदरस, शुक्रमातृकावटिका, उदरारिरस, उदकारिलौह, शोथोदरारिलौह, अग्निगर्भवटिका, यकृत्प्लीहोदरहरलौह, श्लीपदारिलौह, व्रणगजांकुश, काकणन्नवटी, लंकेश्वररस, कुष्ठान्तकरस, वेतालरस, कुष्ठशैलेन्द्ररस, सर्वसमलौह, अमृतांकुरलौह, लौहामृतलौह, कालकचूर्ण, रसाभ्रचूर्ण, भक्तपावकगुड़िका, धातुवद्धरस, सुरसुन्दरीगुड़िका, मृतसञ्जीवनीगुड़िका, महाकामेश्वरमोदक, वृहत्कामेश्वरमोदक, मदनसन्दीपचूर्ण, कामदूतरस, मदनसुन्दररस, रत्नगिरिरस, नवज्वरेभसिंह, पीयूषसिन्दूररस, षड़ाननरस, भल्लातकलौह, पाण्डुगजकेशरी, पाण्डुनिग्रहरस, लौहसुन्दररस, द्विहरिद्राद्यलौह, कालकण्टकरस, लौहाभयाचूर्ण, वृहत् पानीयभक्तगुड़िका, अगस्तिरस, वैश्वानररस, और पुष्पांकुश।

रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे सामान्य लौहको अपेक्षा क्रौञ्चलौह द्विगुण गुणयुक्त, क्रौञ्चसे कालिङ्ग अष्टगुण, कालिङ्गसे भद्र शतगुण, भद्रसे वज्र-सहस्रगुण, वज्रसे पान्ति शतगुण, पान्तिसे निरङ्ग दशगुण और निरङ्गसे कान्तिलौह सहस्रकोटि गुणयुक्त है। लोहेके ऊपर जो मल जम जाती है उसे मण्डूर कहते हैं। इस मण्डूरका भी औषधमें व्यवहार होता है। (रसेन्द्रसारस०)

ब्राह्मणको लौहपात्रमें भोजन नहीं करना चाहिए। करनेसे रौरव नरक प्राप्त होता है।

३ लक्षणान्वित काला या लाल वकरा। (मनु ३।२७२)
४ एक पहाड़ी जाति।

(क्ली०) ५ रक्तवर्ण, लाल। (भारत १।१ ३६।२३)
(क्ली०) ६ अगुरु, अगर वृक्ष।

लोहक (सं० पु० क्ली०) लोह देखो।

लोहकण्टक (सं० पु०) मदनवृक्ष।

लोहकान्त (सं० क्ली०) लोहः कान्तोऽस्य। अयस्कान्त, चुंबक।

लोहकार (सं० पु०) लोहं लौहमयं शस्त्रादि करोतीति कृ-अण्। लौहकारक, लोहार।

लोहकारक (सं० पु०) लोहं तन्मयशस्त्रादि करोतीति कृ-ण्वुल्। लोहार, कमार। पर्याय—व्योकार, लौहकार, अयस्कार, वर्म्मकार, कर्म्मार। जातिमालाके मतसे ग्वालेके औरस और जुलाहिनके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

लोहकारी (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त अतिवला देवी।

लोहकिट्ट (सं० क्ली०) लोहस्य किट्टं। लोहमल, लोहेकी कीट या मैल। यह भट्ठेमें डाल कर लोहेको गलाने या ताव देनेसे निकलती है। इसका पर्याय—किट्ट, लोह-चूर्ण, अयोमल, लोहज, कृष्णाचूर्ण, लोष्ट। वैद्यकमें इसे कृमि, वात, पित्त, शूल, मेह, गुल्म और शोकका नाशक लिखा है। इसका स्वाद मधुर और कटु तथा प्रकृति उष्ण मानी गई है। मण्डूर देखो।

लोहगढ़—वम्बई प्रेसिडेन्सीके पूना जिलान्तर्गत भारगिरि-संकटके सर्वोच्च शिखर पर स्थित एक नगर और दुर्ग। यह खण्डलासे दो कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। १७१३ ई०में महाराष्ट्र-जलदस्यु कान्होजी अंग्रियाने यह दुर्ग कब्जा कर लिया। एक सदी वाद शेष मराठा पेशवा वाजीरावके साथ लड़ाई कर १८१८ ई०में अङ्गरेज सेनापति लेफटेनेंट कर्नेल प्रोथरने इस स्थान पर अपना दखल जमाया। १८४५ ई०से यहां एक सेनाके अधीन अङ्गरेजी सेना रहती है।

लोहगन्ध (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक जातिका नाम।

लोहगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

लोहघातक (सं० पु०) कर्मकार नामक जाति। इस जातिके लोग लोहेको तपा कर पीटते हैं।

लोहचारिणी (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम। इसे लोहतारिणी भी कहते हैं।

लोहचालिका (सं० क्ली०) एक प्रकारका वकतर जिससे सारा शरीर ढका रहता था।

लोहचूर्ण (सं० क्ली०) लोहस्य चूर्णं। लोहकिट्ट।

लोहज (सं० क्ली०) लोहाज्जायते इति जन-ड। १ लोह-किट्ट, मण्डूर। २ कांस्य, कांसा।

लोहजङ्घ (सं० पु०) १ ब्राह्मण। (कथासरित्सा० १२।८४) २ महाभारतके अनुसार एक जाति।

लोहजाल (सं० क्ली०) १ लौहनिर्मित जाल, वह जाल जो लोहेके वना होता है। २ वर्म, वकतर। ३ लोहका पत्तर।

लोहजित् (सं० पु०) हीरक, हीरा।

लोहतारिणी (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नदी।

लोहदारक (सं० पु०) नरकभेद।

लोहद्राविन् (सं० पु०) लोहानि द्रावयतीति द्रु-णिच्-णिनि। १ टङ्कणक्षार, सोहागा। २ अम्लवेत।

लोहनगर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम। (कथासरित्सा० २७।१८८)

लोहनाल (सं० पु०) लोहस्य नालं दण्डो यस्य। नाराच नामक अस्त्र। नाराच देखो।

लोहपञ्चक (सं० क्ली०) सोना, चांदी, तांवा, रांगा और सीसा; वैद्यकके अनुसार पञ्चलोह कहनेसे उक्त पांच धातु समझी जाती है।

लोहपाश (सं० पु०) लौहशृङ्खल, लोहेकी मेखला या जंजीर।

लोहपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगर।

लोहपृष्ठ (सं० पु०) लोहस्येव कठिनं श्यामलं वा पृष्ठं यस्य। १ कङ्कपक्षी, कांक। (त्रि०) २ लौहमय पृष्ठयुक्त।

लोहप्रतिमा (सं० स्त्री०) लोहस्य प्रतिमा। लोहमयी प्रतिमा। पर्याय—सूर्मी, स्थूणा, शूर्मि, शूर्म, शूर्मिका।

लोहवद्ध (सं० त्रि०) लौहमण्डित।

लोहवान् (हिं० पु०) लोवान देखो।

लोहमय (सं० त्रि०) लोह स्वरूपे मयट्। लोहात्मक, लोहेका वना हुआ।

लोहमारक (सं० पु०) लोहं मारयति जारयतीति मृ-णिच्-ण्वुल्। १ शालिञ्चशाक, शांचि नामक साग। २ रसेन्द्रसार संग्रहके अनुसार द्रव्यगणभेद। इस गणोक्त द्रव्यके द्वारा लोहेमें पुट देनेसे लोहमारण होता है इसलिये इसे लोह-मारक कहते हैं। इसका दूसरा नाम त्रिफलादिगण भी

है। ये गण ये सब हैं,—त्रिफला, निसोथ, दन्ती, त्रिकटु, तालमूली, वृद्धदारक, पुनर्णवा, अड़ूसपत्र, चिता, अदरक, विड़ङ्ग, भृङ्गराज, भिलावाँ, सोंठ, अनारका पत्ता, सोयां, तुलसी, मोथा, ओल, गुड़ूची, मण्डुकपर्णी, हस्तिकर्णपलास, कुलिश, केशराज, माण, खण्डितकर्ण और दार्वीशाक इन सब द्रव्योंसे लोहमें पुट देना होता है। (रसेन्द्रसारस०)

लोहमुक्तिका (सं० स्त्री०) लाल रंगकी मुक्ता।

लोहमेखल (सं० त्रि०) धातुनिर्मित मेखलाधारी, जो लोहेकी मेखला पहने हो।

लोहमेखला (सं० स्त्री०) स्कन्दचर मातृभेद। (भारत ६ पर्व)

लोहयष्टि (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

लोहर (सं० क्ली०) जनपदभेद, शायद लाहोर। (राजतर० ४।१७७)

लोहरजस् (सं० क्ली०) लोहकिट्ट।

लोहराजक (सं० क्ली०) रौप्य, रूपा।

लोहलंगर (हिं० पु०) १ जहाजका लङ्गर। २ बहुत भारी वस्तु।

लोहल (सं० त्रि०) लोहमिव लातीति ला-क। १ अव्यक्त वाक्, अनुचित वाणी। २ लोहग्राहक, लोहा खरीदनेवाला। (पु०) ३ शृङ्खलाचार्य।

लोहलिङ्ग (सं० क्ली०) रक्तपूर्ण स्फोटकादि।

लोहवत् (सं० त्रि०) लोहेके समान।

लोहवर (सं० क्ली०) लोहेषु सर्वतैजसेषु वरं। स्वर्ण, सोना।

लोहवर्मन् (सं० क्ली०) लोहेका बकतर।

लोहवात (सं० पु०) धान या चावलका एक भेद।

लोहशङ्कु (सं० पु०) १ मनुके अनुसार एक नरकका नाम। (मनु ४।९०) २ लौहनिर्मित कीलक, लोहेका बना खूंटा।

लोहश्लेषण (सं० पु०) लोहानि सर्वतैजसानि श्लेषयति योजयतीति श्लेषि-ल्यु। टङ्कणक्षार, सोहागा।

लोहसङ्कर (सं० क्ली०) लोहानां सङ्करो यत्र। १ वर्त्तलोह, एक प्रकारका लोहा। २ मिश्रित तैजस।

लोहसार (सं० पु०) १ फौलाद। २ फौलादकी बनी जंजीर।

लोहसिंह—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ६० वर्गमील है। इसमें २६ गाँव लगते हैं। अधिकांश प्रजा गोंड़ और खन्दजातीय है। ग्राम-समीपवर्त्ती स्थानमें वे लोग खेती-वारी करते हैं। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय विद्रोहि-दलके नेता सुरेन्द्र शाहके अधोन यहांके अधिवासियोंने घोर अत्याचार किया था। स्थानीय सरदार चन्दतरुके भाई मधु ठाकुर मूरकी हत्याके अपराधमें प्राणदण्डसे दण्डित हुए। विद्रोह-शान्तिके बाद सरदार चन्दतरुने अङ्गरेजराजको शान्तिरक्षाका अङ्गीकार-पत्र दिया था, इस कारण वे पुनः राजा बनाये गये थे।

लोहहारक (सं० पु०) मनुके अनुसार एक नरकका नाम।

लोहाँगी (हिं० स्त्री०) वह छड़ी जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा (हिं० पु०) १ लौह और लोह देखो। २ अस्त्र, हथियार। ३ लोहेकी बनाई हुई कोई चीज या उपकरण। ४ लाल रंगका बैल। (वि०) ५ लाल। ६ बहुत अधिक कड़ा, कठोर।

लोहाकर (सं० क्ली०) लोहस्य आकरं। लोहेका आकर, लोहेकी खान।

लोहाकर्ण (सं० त्रि०) लोहितवर्ण कर्णविशिष्ट, लाल कानवाला। (कात्या० श्री० २२।११।२६)

लोहाख्य (सं० क्ली०) लोहमेव आख्या यस्य। १ अगुरु, अगर। २ लोह, लोहा।

लोहागड़ा—बङ्गालके यशोर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २३° ११´ ३० तथा देशा० ८६° ४१´ पू०के मध्य अवस्थित है। मधुमती नदी यहांसे थोड़ी ही दूर पड़ती है। यहां गुड़ और चीनीका जोरों कारवार चलता है। खाजुरा आदि निकटवर्त्ती ग्रामवासी गुड़के बदले चावल खरीद ले जाते हैं। उस गुड़से यहां अच्छी चीनी तैयार होती है। वह चीनी कलकत्ता और वाखरगंजमें भेजी जाती है। यहां एक कालीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। दूर दूर देशके लोग उस मूर्त्तिकी पूजा करने आते हैं।

लोहाघाट—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक सेनावास। यह अक्षा० २९° २४´ ३० तथा देशा० ८०° ८´ पू०के मध्य लोहानदीके वाएं किनारे अवस्थित है।

समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊँचाई ५५६२ फुट है। यह गोरा-बारिक चारों ओर ऊँचे पर्वतशृङ्गसे घिरे हैं। पहले इस नगरसे ३ मील दक्षिण चम्पावत् नगरमें गोराबारिक थी। वहांकी आवहवा अच्छी न होनेसे यहां पर उठा कर लाई गई। १८८३ ई०में वह सेनावास छोड़ दिया गया है। अभी यहां चायकी खेती होती है। अलमोरासे यह नगर ५४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

लोहागाँव—युक्तप्रदेशके बुन्देलखण्ड विभागके अजयगढ़ राज्यान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० २४° २९´ उ० तथा देशा० ८०° २२´ पू०के मध्य इलाहाबादसे १६८ मील दक्षिण-पश्चिम सागर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊँचाई १२६० फुट है। पहले यहां अंगरेजराजका एक सेनानिवास था। पीछे वह परित्यक्त हो जानेसे स्थानीय समृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है।

लोहाङ्गारक (सं० पु०) एक नगरका नाम।

लोहाचल (सं० पु०) पर्वतभेद, महिसुरके अन्तर्गत सन्दूर राज्यमें अवस्थित एक तीर्थ। लोहाचल या कुमार माहात्म्यमें इस स्थानका विवरण लिखा है।

लोहाज (सं० पु०) लाल बकरा।

लोहाज वक्त्र (सं० पु०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ प०)

लोहाण्ड (सं० लि०) लाल अण्डकोषवाला जीव।

लोहाना (हिं० क्रि०) १ लोहेके बरतनमें रखी रहनेके कारण किसी वस्तुमें लोहेके गुण या रंग आदिका उतर आना, किसी पदार्थमें लोहेका रंग या स्वाद आ जाना। (पु०) २ एक जातिका नाम।

लोहाभिसार (सं० पु०) लोहानां शस्त्रादीनां अभिसारो यत्र। लोहाभिहार।

लोहाभिहार (सं० पु०) लोहानामभिहारो यत्र। शस्त्रधारी राजाओंकी नीराजना विधि।

लोहामिष (सं० क्ली०) लाल रोयंवाला बकरेका मांस।

लोहायस (सं० क्ली०) ताम्रसंयुक्त मिश्र धातु।

लोहार (हिं० पु०) एक जाति। यह लोहेका काम करती है। इस जातिके अनेक भेद हैं। उनमेंसे कुछ अपनेको ब्राह्मण कहते और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनकी अन्तर्जातियोंके नाम भी ओझा आदि रहते हैं, पर अधिकतर आचारहीन होते हैं और शूद्र माने जाते हैं। प्रत्येक अन्तर्जातिका खान पान और विवाह-सम्बन्ध पृथक् पृथक् होता है और उनके नाम भी भिन्न होते हैं।

लोहारदगा—रांची जिलेका प्राचीन नाम। यह अक्षा० २२° २४´ से २४° ३९´ उ० तथा देशा० ८३° २२´ से ८५° ५५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०४५ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें शोननदी, हजारीबाग, गया और शाहाबाद जिलेको पृथक् करती है; उत्तर-पश्चिम और पश्चिममें मिर्जापुर जिला तथा सरगुजा, यशपुर और गाङ्गपुर सामन्तराज्य; दक्षिण और पूर्वमें सिंहभूम और मानभूमका जिला है। पूर्वी सीमामें सुवर्णरेखा नदी बहती है।

इस स्थानका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिला। अधिक सम्भव है, कि पहले यह स्थान पहाड़ और घने जङ्गलसे ढका था। लोग इसे झारखण्ड कहा करते थे। आज भी वह श्वापदसङ्कुल विजन अरण्यप्रदेशका परिचय देता है। उस वनमें बङ्गालके आदिम अधिवासी मुण्डा और पीछे ओराउनगण बहुत दिनोंसे वास करते आ रहे हैं। बहुत दिनोंसे एक साथ रहने पर भी दोनोंमें विवाहादि नहीं चलता। वे अपने अपने जातीय धर्म और कुलप्रथाकी रक्षा करते हैं। किन्तु एक समय दोनोंकी शासननीति एक-सी थी।

सच पूछिये तो बहुत प्राचीन कालसे अनार्यगण स्वाधीन भाव और सानन्दचित्तसे स्वेच्छाविहारी हो वनमें रहते आ रहे थे। उन लोगोंका यह नैसर्गिक शान्तिसुख नाश कर कोई भी राजा उन्हें शासनशृङ्खलामें आबद्ध करना नहीं चाहते थे। वे वनवासी आनन्द हृदयसे वनविहङ्गमकी तरह इधर उधर विचरण किया करते थे तथा कुटी बना कर एक एक गाँवमें दलबद्ध हो रहते थे। गाँवका एक एक दलपति समस्त ग्रामवासीका नेतृत्व ग्रहण करता था। यहां तक, कि ये लोग अपने अपने ग्राम्यमण्डलके आदेश वा परामर्शानुसार दूरस्थ किसी शत्रुके साथ युद्ध करनेसे बाज नहीं आते थे। तीन धनुष ले कर ये लोग युद्ध किया करते थे।

अनार्य ग्राम्यदलपतिगण एक समय सभ्यताके संमिश्रणसे सामन्तराजरूपमें गिने जाते थे। इन दलपतियोंमें जो दलबलके साथ शत्रुके आनेके पथ घाटोकी रक्षा करता था वह घाटवाल वा सरदार कहलाता था। अभी वे सब सरदार अपने देश और समाजमें पूर्ववत् पूज्य हैं। वहां अंगरेजी शासन फैलने पर भी मुण्डा वा ओराउन-नेताओंके अधिकारमें उतना धक्का नहीं पहुंचा है। परन्तु अंगरेजोंके अधीन रहनेसे वे लोग अब पहलेकी तरह रणमें या लूटमें प्राप्त वन्दियोंकी नृशंसरूपसे हत्या और अमानुषिक महिषोत्सर्ग आदि पाशविक अत्याचार करने नहीं पाते। वृटिश-गवर्मेण्टके कठोर शासनसे वे अभी शान्त हो गये हैं।

लगभग १६१६ ई०में मुगल-सम्राट् जहांगीर बादशाहके राज्यकालमें मुगल-सेनाने कोका (असल छोटा नागपुर)को अधिकार किया। इस समय यहांकी किसी किसी नदीमें हीरा मिलता था। युद्ध-विजय और हीरा मिलनेका समाचार पा कर दिल्ली-दरबारमें बड़ी धूमधामसे आनन्दोत्सव मनाया गया था। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त घटनाके बाद १६४०-६० ई०के मध्य मुसलमानोंने कई बार पलामू पर आक्रमण किया, पर एक बार भी वे कृतकार्य न हुए। आखिर १६५० ई०में दाऊद खाँने पलामू-दुर्गको आक्रमण किया और जीता। उनके वंशधरोंने उस दुर्गमें ३० फुट लम्बे और १२ फुट चौड़े एक बड़े चित्रपट पर उनका आक्रमण-कौशल लिख दिया है।

दाऊद द्वारा पलामू-दुर्ग जीते जानेके बादसे ले कर १७२२ ई० तक यहां और कोई ऐतिहासिक उल्लेखनीय घटना देखनेमें नहीं आती। शेषोक्त वर्षमें स्थानीय सामन्तराज रणजित् राय गुप्तरूपसे मार डाले गये। पीछे उन्हींके भतीजे जयकृष्ण राय गद्दी पर बैठे थे। कुछ दिन राज्यसुखका सम्भोग करके जयकृष्णने एक छोटी लड़ाईमें प्राण-विसर्जन किया। पीछे उनकी स्त्री और परिवारके सभी लोगोंने विहार प्रदेशके अन्तर्गत मेगरा नामक स्थानमें आ कर वहांके कानून-गो उदवन्त रायका आश्रय लिया। उदवन्त राय १७७० ई०में मृत राजा रणजित् रायके पौत्र गोपाल रायको पटनेमें लाये थे, पीछे वहांके अंगरेज एजेण्ट कप्तान कर्नाकके सामने आ कर पलामूराजका यथार्थ उत्तराधिकारी घोषित किया। कानून-गोकी प्रार्थना पर कप्तान कर्नाकने कहा, कि गोपाल रायको राजसिंहासन पर बैठनेमें अंगरेज-गवर्मेण्टकी ओरसे मदद पहुंचायेंगे। तदनुसार उन्होंने उस समयके पलामूराजको परास्त कर गोपाल राय और उनके दो भाइयोंको पांच वर्षकी सनद दी। तभीसे पलामू विभाग अंगरेजाधिकृत रामगढ़ जिलेके अन्तर्भुक्त हुआ। इस घटनाके दो वर्ष बाद कानून-गो उदवन्त रायके हत्याकाण्डमें लिप्त रहनेके अपराधमें विश्वासघातक गोपाल राय कारारुद्ध हुए और वसन्त राय गद्दी पर बैठे। १७८४ ई०को पटना नगरमें गोपाल रायकी मृत्यु हुई। राजा वसन्तरायका भी उसी साल देहान्त हुआ। पीछे चूड़ामण राय राजसिंहासन पर बैठे। वे १८१३ ई०में ऋणजालसे जड़ित हो गये इस कारण बाकी खजाना न देनेके कारण वृटिश गवर्मेण्टने उनकी पलामू सम्पत्ति खरीद ली।

गया जिलेके अन्तर्गत देवविभागके राजा फतेनारायण सिंहकी सहायतासे उपकृत हो अङ्गरेज गवर्मेण्टने प्रत्युपकार और पुरस्कार-स्वरूप १८१६ ई०में उन्हें पलामू सम्पत्ति जागीर-स्वरूप दे दी। राजा फतेनारायण न्यायपूर्वक राजस्व नहीं उगाहते थे तथा प्रजा पर भारी अत्याचार करते थे। फलतः सभी प्रजा बागी हो गई। १८१८ ई०में अङ्गरेज-गवर्मेण्टने वह सम्पत्ति पुनः हस्तगत कर ली।

अङ्गरेजोंके दखलमें आनेके बाद पलामूने शान्तभाव धारण किया है। १८३१ ई०को छोटा-नागपुरमें कोल विद्रोह उपस्थित हुआ। यही इतिहासमें 'चुयाड़-विद्रोह' नामसे प्रसिद्ध है। छोटा-नागपुरके महाराजके आत्मीय और अनुचरोंका अत्याचार ही इस विद्रोहका कारण था। १८३८ ई०के मार्च मासमें अङ्गरेजोंके यत्नसे वह रुक गया। मानभूम देखो।

इस भीषण विद्रोहमें कोलगण ऐसे उत्तेजित हो गये थे, कि बहुत खून-खराबीके बाद भी वे शान्त न हुए। बहुतसे ग्राम लूटे और जलाये गये तथा नररक्तसे पृथ्वी तरावोर की गई। पीछे गङ्गानारायण आदि दस्युदलनेता

अङ्गरेजोंके हाथसे परास्त हुए; किन्तु उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। इस घोर संघर्षके समय कोलोंने उन्मत्त हो कर यहांके पहाड़ी प्रदेशको मथ डाला, किंतु पलामू-विभागकी जरा भी क्षति न हुई। इस विद्रोहके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टके शासन-विभागीय जो सब परिवर्त्तन हुआ है, वह हजारीबाग जिलेके विवरणमें दिया गया है। हजारीबाग देखो।

उपरोक्त चुयाड़-विद्रोहके कुछ समय बाद ही चेरो और खरवार जाति बागी हो गई। १८३२ ई०में उसका दमन किया गया। तभीसे ले कर सिपाहीविद्रोह तक यहां और किसी प्रकारकी घटना न घटी। उसी साल खरवार जाति स्थानीय राजपूत जमींदारोंके विरुद्ध खड़ी हुई। उसका दल धीरे धीरे परिपुष्ट होता गया। इस समय रामगढ़के विद्रोही सेना-दलने पलामू नगरमें आश्रय ले कर वहांके राजद्वेषी जमींदार नोलाम्बर सिंह और पीताम्बर सिंहकी सहायतासे विद्रोहकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ा दी। २६ नवम्बर मन्द्राज-पदातिक दल और रामगढ़के कुछ राजभक्त सेनाकी सहायतासे वह विद्रोह शान्त हुआ। सात बरौआ-दुर्गके सामने विद्रोहि दल परास्त हुआ। नीलाम्बर और पीताम्बर बन्दिरूपमें कारागार भेज दिये गये। आखिर अङ्गरेज गवर्मेण्टके विचारसे उन्हें फाँसीकी सजा हुई।

विशेष विवरण रांची शब्दमें देखो।

२ रांची जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३° २६′ उ० और देशा० ८४° ४१′ पू०के मध्य रांची शहरसे ४७ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। १८४० ई० तक यह रांची जिलेका सदर रहा। १८८८ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां एक छोटा कुष्ठाश्रम है।

लोहारा—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत धामतरी तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ३६८ वर्गमील है। इसमें १२० ग्राम लगते हैं।

इसके पूर्व और पश्चिममें तेन्दुला और फर्करा नदी बहती है। इसके सिवा यहां और भी कितनी छोटी छोटी नदियां बहती हैं। उक्त पर्वतमालाका एक अंश दिल्ली-पहाड़ नामसे मशहूर है। उसकी ऊंचाई २००० फुट है। उसके ऊपर जो जङ्गल है उसमें सेगुन, शाल, महुआ और कुसुम वृक्ष पाये जाते हैं। इन सब जङ्गलोंमें लाख, मोम और मधु संग्रह कर गोंड़ लोग बाजारमें बेचने आते हैं। बंजार लोग यहांसे पटसन और रूई खरीद ले जाते हैं। यहां खनिज लौह गलाया जाता है। यहांके अधिकारीने गोंड़ जातीय रत्नपुरराजको लड़ाईमें खासी मदद पहुंचाई थी, इस कारण इस वंशके किसी राजाने १५३८ ई०में यह सम्पत्ति जागीर-स्वरूप पाई। लोहारा ग्राम खूब समृद्धिसम्पन्न है। यहां सरकारी विद्यालय, थाना और जनसाधारणके वायुसेवनार्थ सुन्दर उद्यान है।

लोहारा-साहसपुर—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत दुर्ग तहसीलकी एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण १६७ वर्गमील और जनसंख्या ६ हजारके करीब है। इसमें कुल ८५ ग्राम लगते हैं। शालटिकी पहाड़का जंगल ढका निम्नप्रदेश ले कर इस जमींदारीका अधिकांश-स्थान संगठित है। प्रसिद्ध पढ़ारियावंशके साथ यहांके जमींदारोंका सम्बन्ध है। यह स्थान बहुत उपजाऊ है। यहां तरह तरहकी काफी फसल लगती है। लोहारा-साहसपुर यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है।

लोहारी (सं० स्त्री०) लोहारका काम।

लोहारी नाइग—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक जलप्रपात। यह अक्षा० ३७° ५७′ उ० तथा देशा० ७८° ४४′ पू०के मध्य विस्तृत है। कई पहाड़ोंको बड़ी तेजीसे लांघता हुआ यह जलप्रपात भागीरथीमें आ कर मिला है। यहां भागीरथीके किनारे एक चौड़ा रास्ता मिला है। प्रपातसे १० मील दक्षिण तक नदीतीरस्थ रास्तेकी बगलमें ६ रस्सीका झुलेला-पुल है।

लोहारु—पञ्जाबप्रदेशके हिसार विभागका एक देशी राज्य। यह दिल्ली विभागके कमिश्नरके राजकीय तत्त्वावधानमें परिचालित होता और अक्षा० २८° २१′ से २८° ४५′ उ० तथा देशा० ७५° ४०′ से ७५° ५७′ पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण २२४ वर्गमील और जनसंख्या २० हजारसे ऊपर है। इसमें लोहारु नामक १ शहर और ५६ ग्राम लगते हैं। अहाद्बक्स नामक एक मुगल इस राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। १८०६ ई०में वे अल-

वार-राजके दूत-स्वरूप अङ्गरेज सेनापति लार्ड लेकके पास गये और राजकीय सम्बन्ध ले कर दोनोंमें जो मनमुटाव चला आ रहा था उसे इन्होंने दूर कर दिया। इस कार्यके पुरस्कार-स्वरूप इन्हें अलवार-पतिसे लोहारु देश मिला तथा लार्ड लेकने कृतज्ञ हृदयसे इन्हें फिरोजपुर परगनेका शासनभार समर्पण किया। अङ्गरेजोंके साथ उनकी जो संधि हुई थी, उसमें उन्होंने युद्धविग्रहमें मदद देनेका वचन दिया था।

अहादकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के समसुद्दीन खाँ सिंहासन पर बैठे। किन्तु १८३५ ई०को वे रेसिडेण्ट मि० फ्रेजरके हत्याकाण्डमें लिप्त थे, इस अपराधमें दिल्ली नगरमें उन्हें फांसी हुई। उनका फिरोजपुर परगना भी जप्त किया गया। आखिर अङ्गरेजराजने अमीन उद्दीन खाँ और जियाउद्दीन खाँ नामक समसुद्दीनके दो भाइयोंके बीच लोहारु सम्पत्ति बराबर बराबर बांट दी। १८५७ ई०के गदरमें उक्त दोनों भाई दिल्लीमें रहते थे। विद्रोहियोंने जब दिल्लीमें घेरा डाला, तब अङ्गरेज-प्रतिनिधियोंकी ओरसे दोनों भाई पर कड़ा पहरा बैठाया गया था। वे विद्रोहमें किसी तरह शामिल न थे, इस कारण विद्रोह-दमनके बाद अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें मुक्ति दे कर फिरसे राजभोग करने दिया था। १८६६ ई०में अमीन उद्दीनकी मृत्यु हुई। इस समय उनके पुत्र अलाउद्दीन् लोहारुकी नवाबी मसनद पर बैठे। पहले अङ्गरेजराजके बन्दोवस्तानुसार अमीनके भाई जियाउद्दीन् सहकारी नवाब हुए सही, पर वे राज्यके शासनकार्यमें किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकते। वे अङ्गरेजराज द्वारा निर्दिष्ट १८००० रु० वार्षिक वृत्ति ले कर ही संतुष्ट थे।

अङ्गरेज गवर्मेण्टके विश्वास-भाजन होने तथा अङ्गरेजराजका आनुगत्य स्वीकार करनेके कारण भारत-सरकारने १८७४ ई०में अलाउद्दीनको नवावकी उपाधि तथा गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी। १८८४ ई०में राजा पर बहुतोंका कर्ज हो गया, इस कारण सम्पत्तिकी रक्षाके लिये उन्होंने १२ वर्षके वादे पर स्थानीय गवर्मेण्टसे ऋण लिया। इस समय लोहारु-राज्यका परिचालन भार अलाउद्दीनके पुत्रके हाथ सौंपा गया। नवाब अलाउद्दीन दूसरे सामन्त सियाउद्दीनकी तरह वार्षिक १८ हजार रुपया वेतन पाने लगे। १८८४ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु हुई। अब उनके लड़के अमीर उद्दीनने राज्यशासनको बागडोर अपने हाथ ली। कुछ समय बाद वे के, सी, आई, ई-की उपाधिसे भूषित हुए। १८९३-से १९०३ ई० तक उनके भाईने राजकार्य चलाया, क्योंकि वे मालेर कोटला राज्यके सुपरिण्टेडेण्ट बनाये गये थे। इन्हें फुरसत बहुत कम मिलती थी। वर्त्तमान नवावका नाम है कैप्टेन नवाब ऐजुद्दीन अहमद खाँ बहादुर फखरुद्दौला। इन्हें ९ तोपोंकी सलामी मिलती है। राजकी आय कुल मिला कर ६६ हजार रुपया है। नवाबको १२५ पयुविट मालवा अफीमका एक बक्स रखनेका अधिकार है। इसके लिये इन्हें २८० रुपये कर देने पड़ते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° २४´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू० हिस्सारसे ५२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहां एक समय लोहेकी खान थी जिसमें लोहार लोग काम करते थे। उसी लोहारसे इसका लोहारु नाम हुआ है। यहां नवावका प्रासाद, कार्यालय, अस्पताल, जेल, डाक और तार-घर है।

लोहार्गल (सं० क्ली०) लोहस्य अर्गलमिव। १ एक तीर्थका नाम। वराहपुराणमें इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। २ लौहकीलक, लोहेका खूंटा।

लोहावत्—राजपूतानेके जोधपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५९´ उ० तथा देशा० ७२° ३६´ पू० जोधपुर शहरसे ५५ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

लोहासुर (सं० पु०) असुरभेद। लोहासुर-माहात्म्यमें इसका विषय वर्णित है।

लोहि (सं० क्ली०) श्वेतटङ्कण, सफेद सोहागा।

लोहिका (सं० स्त्री०) लोहतस्त्यस्येति लोह-ठन्। लोहपात्र, लोहेका बरतन। पर्याय—खरसेन्दि, खरपाल।

लोहित (सं० क्ली०) रुह्यते इति रुह (रुहेरश्च लो वा। उण् ३।९४) इति इतन् रस्य लत्वं। १ रक्तगोशीर्ष। २ कुंकुम, केसर। ३ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। ४ पत्तङ्ग, पीतल। ५ हरिचन्दन। ६ तृणकुंकुम। ७ रुधिर, लहू। ८ युद्ध,

लड़ाई। ९ सरोवरविशेष। (मत्स्यपु० १२०।१२) १० माणिक्य। (पु०) ११ नदविशेष। यह ब्रह्मपुत्र-की एक शाखा है। लौहित्य देखो। १२ सागरविशेष। इस सागरका जल लाल होता है इसलिये इसको लोहित या लालसागर कहते हैं। यहां वरुण रहते हैं। (भारत वनप०) १३ भौम। (बृहत्संहिता ६।८) १४ रोहित मत्स्य, रोहू मछली। १५ मृगविशेष। १६ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप। १७ सुरभेद, द्वादश मन्वन्तरके एक देवता। १८ मसूर, मसुरी। १९ रक्तालु। २० रक्तशालि, लाल धान। २१ वलभेद। २२ पर्वत-विशेष। (मत्स्यपु० १२०।११) २३ कुशद्वीपस्थ वर्षभेद। (मत्स्यपु० १२१।१६५) २४ चक्षूरोगविशेष, आंखकी एक बीमारी। (शार्ङ्गधरस० १।६।८७) २५ नागभेद। २६ ह्रद-विशेष। (हरिवंश) (त्रि०) २७ रक्तवर्ण, लाल। २८ रक्त-वर्णयुक्त, लाल रंगका।

लोहितक (सं० क्ली०) लोहित मिव स्वार्थे कन्। १ रीति। २ कांस्य, कांसा। (पु०) लोहित एव स्वार्थे कन्। ३ मङ्गल ग्रह। ४ पद्मरागमणि। ५ धान्यभेद, एक प्रकारका धान। ६ बौद्धस्तूपभेद। चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग इस पर्वतको देख गये हैं। ७ आज कलके रोहतक नगरका प्राचीन नाम।

लोहितकल्माष (सं० त्रि०) लाल वर्ण चिह्नयुक्त, चित-कबरा।

लोहितकूट—एक प्राचीन जनपद, सम्भवतः लोहित पर्वतके पासका स्थान। (हरिवंश)

लोहितकृष्ण (सं० त्रि०) कृष्णाभ वर्ण, गाढ़ा लाल।

लोहितक्षय (सं० पु०) १ रक्तक्षय, लहूका क्षय होना। २ रक्तनाश, खूनकी खराबी होना। ३ रक्तक्षरण या मोक्षण, लहू गिरना।

लोहितक्षयक (सं० त्रि०) रक्ताल्पता रोगग्रस्त।

लोहितक्षीर (सं० त्रि०) रक्तवर्ण गाढ़ा दुग्धक्षरणशील।

लोहितगङ्ग (सं० क्ली०) १ प्राचीन जनपदभेद। (अव्य०) २ जहां गङ्गा लाल दिखाई पड़ती हैं। (पाणिनि २।१।२१ भाष्य)

लोहितगङ्गक (सं० क्ली०) प्राचीन स्थानभेद।

लोहितग्रीव (सं० पु०) लोहितं रक्तवर्ण ग्रीवा यस्य। अग्नि। (मार्क०पु० ९९।५९)

लोहितचन्दन (सं० क्ली०) लोहितं चन्दनमिव। १ कुंकुम, केसर। २ रक्तचन्दन, लाल चन्दन।

लोहितजह्नु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (आश्व०श्रौ० १२।१४)

लोहितत्व (सं० क्ली०) १ लोहितका भाव या धर्म। २ लोहितवर्ण, लाल रंग।

लोहितध्वज (सं० त्रि०) १ लालवर्ण पताकायुक्त। (भारत उद्योगपर्व) (पु०) २ सम्प्रदायभेद। ३ पूग, सुपारी। (पा ५।३।११२)

लोहितपाददेश (सं० पु०) एक देशका नाम।

लोहितपित्तिन् (सं० त्रि०) रक्तपित्तरोगी, जिसे रक्तपित्त की बीमारी हुई हो।

लोहितपुष्प (सं० त्रि०) लालवर्ण पुष्पधारी, रक्तकुसुम-समन्वित।

लोहितपुष्पक (सं० पु०) लोहितं पुष्पमस्य कप्। दाड़िम-वृक्ष, अनारका पेड़।

लोहितमुक्ति (सं० स्त्री०) लाल मुक्ता।

लोहितमृत्तिका (सं० स्त्री०) लोहिता मृत्तिका। १ गैरिक, गेरू। २ रक्तवर्ण मृत्तिका, लाल मिट्टी।

लोहितराग (सं० पु०) लाल रंग।

लोहितवत् (सं० त्रि०) रक्त सदृश, रक्तयुक्त।

लोहितवासस् (सं० त्रि०) रक्तवर्ण वस्त्रयुक्त, लाल कपड़े वाला।

लोहितशतपत्र (सं० क्ली०) रक्तोत्पल, लाल पद्म। (भागवत ५।२४।१०)

लोहितशवल (सं० त्रि०) चितकबरा।

लोहितसारङ्ग (सं० त्रि०) लाल विन्दुविशिष्ट।

लोहिता (सं० स्त्री०) लोहित-स्त्रियां टाप्। १ क्रोधादि-जन्य रक्तवर्णा, वह स्त्री जो क्रोधसे लाल हो गई हो। २ वराहक्रान्ता, वाराही। ३ रक्त पुनर्णवा।

लोहिताक्ष (सं० पु०) लोहिते अक्षिणी यस्य (सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्) १ विष्णु। २ कोकिल, कोयल। ३ लाल रंगका अक्ष वा पाशा, युधिष्ठिरने वैदुर्य और काञ्चनमय कृष्ण और लोहित अक्ष या पाशा तैयार कराया था।

(भारत ४।१।१२) ४ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप। ५ स्कन्दानुचरभेद। (भारत ६ पर्व) ६ ऋषिभेद। (त्रि०) ७ रक्तवर्ण चक्षुयुक्त, जिसकी आंखें लाल हों।

लोहिताक्षी (सं० स्त्री०) लोहिताक्ष स्त्रियां ङीप्। १ रक्तलोचना, वह जिसकी आंखें लाल हो। २ स्कन्दानुचर मातृभेद (भारत शल्यपर्व)। ३ जानुसन्धि और बाहुसन्धि, घुटना और केहुनि। ४ जानु और बाहुका सन्धिस्थान।

लोहितागिरि (सं० पु०) पर्वतभेद। (पा ६।३।११७)

लोहिताङ्ग (सं० पु०) लोहितं अङ्गं यस्य। १ मङ्गल ग्रह। २ कम्पिल्लक वृक्ष, कमीला नामक पेड़।

लोहितानन (सं० पु०) लोहितमाननं मुखं यस्य। १ नकुल, नेवला। २ रक्तवर्ण मुख, लाल मुंह।

लोहितामुखी (सं० स्त्री०) अस्त्रभेद, एक प्रकारका हथियार।

लोहितायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद, लोहितके गोत्रापत्य।

लोहितायनि (सं० स्त्री०) लोहितायनस्य गोत्रापत्यं स्त्री। लोहितायनकी वंशोद्भवा। यह शायद लौहितायनि शब्दका अपप्रयोग है।

लोहितायस् (सं० क्ली०) लोहितमयः। ताम्र, तांबा।

लोहितायस (सं० क्ली०) लोहितं आयसम्। १ रक्तवर्ण लोहजाति। २ ताम्र, तांबा। (त्रि०) ३ ताम्रनिर्मित, तांबाका बना हुआ।

लोहितार्ण (सं० पु०) धृतपृष्ठके एक पुत्रका नाम। (भाग० ५।२०।२१)

लोहितार्द्र (सं० त्रि०) रक्ताक्त, खूनसे तराबोर।

लोहितार्मन् (सं० क्ली०) वह रक्तगुटिका या फुंसियां जो आंखकी पुतलीके पास सफेद चमड़ेके ऊपरमें उत्पन्न होती हैं।

लोहितालु (सं० पु०) रक्तपिण्डालु, लाल रतालू।

लोहितावभास (सं० त्रि०) रक्ताभ, ललाई लिये।

लोहिताशोक (सं० पु०) रक्ताशोक, वह अशोकका पेड़ जिसमें लाल फूल लगते हैं।

लोहिताश्व (सं० पु०) लोहितवर्ण अश्वारोही, लाल घुड़सवार।

लोहितास्य (सं० त्रि०) १ रक्तवर्ण मुखविशिष्ट, लाल मुंहवाला। २ रक्ताक्त मुख, खून लगा हुआ मुंह।

लोहिताहि (सं० पु०) रक्तवर्ण सर्प, लाल सांप।

लोहितिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवहा नाड़ी, वह धमनी जिस हो कर लहू बहता है। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

लोहितिमन् (सं० पु०) लोहित्य, लाल रंग।

लोहितीभूत (सं० त्रि०) रक्तवर्णताप्राप्त, जो लाल हो गया हो।

लोहितेक्षणा (सं० स्त्री०) रक्त चक्षु, लाल आंखें।

लोहितैत (सं० त्रि०) लालचिह्नविश्लिष्ट।

लोहितोत्पल (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

लोहितोद (सं० पु०) १ पुराणानुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। (त्रि०) लोहितं उदकं यत्र। २ लालवर्ण उदकयुक्त, जिसका पानी लाल हो। ३ रक्त, लाल।

लोहितोर्ण (सं० त्रि०) लोहितानि ऊर्णानि यस्मिन्। लालवर्ण ऊर्णविशिष्ट, जिसके ऊन लाल हों।

लोहित्य (सं० पु०) लोहित-ष्यञ्। १ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। २ एक प्राचीन ग्रामका नाम। ३ वाल्मीकिने कपिवती नदीका इसमें हो कर बहना लिखा है। ४ ब्रह्मपुत्र नद। ५ एक समुद्रका नाम। पुराणानुसार यह कुशद्वीपके पास है।

लोहित्या (सं० स्त्री०) १ एक नदीका नाम। २ एक अप्सराका नाम।

लोहित्यायनमातृ (सं० स्त्री०) देवीभेद।

लोहिनिका (सं० स्त्री०) १ रक्तवर्णा स्त्री, लाल रंगकी औरत। २ शिराभेद। लोहितक देखो।

लोहिनी (सं० स्त्री०) लोहिता-(वर्णादनुदत्तादिति। पा ४।१।३९) इति ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। रक्त स्त्री।

लोहनिका (सं० स्त्री०) रक्तवर्ण दीप्तिविशिष्टा, लाल ज्योतिका।

लोहित्य (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। शायद यह लौहित्यका प्रमादिक पाठ है।

लोहिया (हिं० पु०) १ लोहेकी चीजोंका व्यापार करनेवाला। २ बनियों और मारवाड़ियोंका एक जातिका नाम। ३ लाल रंगका बैल। ४ लोहेकी बनी हुई गोली।

लोहू (हिं० पु०) रक्त, खून।

लोहोत्तम (सं० क्ली०) लोहेषु सर्वतैजसेषु उत्तमम्। स्वर्ण, सोना।

लौंग (हिं० पु०) १ एक झाड़की कली जो खिलनेके पहले ही तोड़ कर सुखा ली जाती है। विशेष विवरण लवङ्ग शब्द-में देखो। २ लौंगके आकारका एक आभूषण। इसे स्त्रियां नाक या कानमें पहनती हैं।

लौंगचिड़ा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कवाव। यह वेसन मिला कर बनाया जाता है। २ फुलकी रोटी।

लौंगमुश्क (हिं० पु०) एक प्रकारके फूलका नाम।

लौंगरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसकी पत्तियां गोल और नुकीली होती हैं। यह घास वर्षाऋतुमें उत्पन्न होती है। इसमें लौंगके आकारकी कलियां लगती हैं। फूल पीले रंगके होते हैं। उनके पक जाने पर नीचेके डंठल कुछ मोटे हो जाते हैं। बंगालमें लोग इसकी पत्तियोंका साग बनाते हैं।

लौंगिया मिर्च (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत कड़वी मिर्च। इसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे होते हैं। इसका दूसरा नाम मिरची भी है।

लौंडा (हिं० पु०) १ छोकरा, बालक। २ खूबसूरत और नमकीन लड़का (वि०) ३ अबोध। ४ छिछोरा।

लौंडापन (हिं० पु०) १ लौंड होनेका भाव। २ लड़क पन। ३ छिछोरापन।

लौंडी (हिं० स्त्री०) दासी, मजदूरनी।

लौंडेवाज (हिं० वि०) जो सुन्दर बालकोंसे प्रेम रखता हो और उनके साथ प्रकृतिविरुद्ध आचरण करता हो।

लौंडेवाजी (हिं० स्त्री०) लौंडेवाजका काम, लौंडोंसे प्रेम रखना।

लौंद (हिं० पु०) अधिमास, मलमास।

लौंदरा (हिं० पु०) वह पानी ग्रीष्म ऋतुमें वर्षा आरम्भ होनेसे पहले बरसता है, दौंगारा।

लौंदी (हिं० स्त्री०) वह करछी जिससे खंडसारमें पाक चलाया जाता है।

लौंन (हिं० पु०) १ लवन देखो। २ लौंद देखो।

लौ (हिं० स्त्री०) १ आगकी लपट, ज्वाला। २ दीपक-की टेम, दीपशिखा। ३ लाग, चाह। ४ चित्तकी वृत्ति। ५ आशा, कामना।

लौआ (हिं० पु०) कद्दू, घीआ।

लौका (हिं० पु०) कद्दू।

लौकाक्ष (सं० पु०) धर्मशास्त्रभेद। पाणिनिने ६।२।३७ सूत्रके कार्त्तकौजपादिगणमें 'कौथुम लौकाक्षाः" शब्दमें शाखा विशेषका उल्लेख किया है।

लौकायतिक (सं० पु०) लोकायतमधीते वेद वा लोकायत (क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् ठक्। पा ४।२।६०) १ तार्किक-भेद। २ चार्वाकशास्त्र जाननेवाले। लोकायतिक देखो।

लौकिक (सं० त्रि०) १ लोकसम्बन्धीय, सांसारिक। २ व्यवहारिक। (पु०) ३ सात मात्राओंके छन्दोंका नाम। ऐसे छन्द इक्कीस प्रकारके होते हैं। ४ काश्मीर-का अब्दभेद। ५ न्यायभेद।

लौकिकज्ञान (सं० क्ली०) शास्त्रादिज्ञान।

लौकिकता (सं० स्त्री०) लौकिकस्य भावः, लौकिक-तल् टाप्। १ लोकव्यवहारसिद्धत्व। २ शिष्टाचार। ३ आपसके किसी कार्यविशेषमें वस्त्र मिष्टान्नादि उपढौकनका आदान-प्रदान।

लौकिकत्व (सं० क्ली०) लौकिकता, लोकप्रसिद्धत्व।

लौकिकन्याय (सं० पु०) लोकमें पाला जानेवाला नियम, साधारण नियम।

लौकिकविषयविचार (सं० पु०) प्रचलित साधारण विषयकी मीमांसा या वादानुवाद।

लौकिकाग्नि (सं० पु०) लौकिकोऽग्निः। असंस्कृत अग्नि।

लौकिकाचार (सं० क्ली०) १ लोकाचार। २ कुलाचार।

लौकिकी (सं० स्त्री०) १ शास्त्रप्रसिद्धा। २ प्रख्याता, विख्याति।

लौकिकीयात्रा (सं० स्त्री०) १ लोकव्यवहार। २ विवा-हादि सांसारिक कार्य।

लौकी (हिं० स्त्री०) १ कद्दू, घीआ। २ काठकी वह नली जिसे भवकेमें लगा कर मद्य चुआते हैं।

लौक्य (सं० त्रि०) लोकभव इति ष्यञ्। १ लोकसम्ब-न्धीय। २ पार्थिव। ३ साधारण। (पु०) ४ ऋषिभेद।

लौगाक्षि (सं० पु०) १ लोगाक्षके गोत्रापत्य। २ वैदिक आचार्यभेद। ये धर्मसूत्रके प्रणेता कहलाते हैं।

कात्यायन श्रौतसूत्र (१।६।२४)में लोगाक्षिका उल्लेख

है। आर्षाध्याय, उपनयनतंत्र, काठकगृह्यसूत्र, प्रवराध्याय और श्लोकतर्पण नामक ग्रंथ इन्हींके बनाये हुए हैं। पैठीनसी, विज्ञानेश्वर तथा हेमाद्रिने लौगाक्षि स्मृतिका भी उल्लेख किया है।

लौगाक्षिभास्कर—अर्थसंग्रह नामक मीमांसाशास्त्र ग्रंथके प्रणेता। इनके बनाये और भी कितने दर्शनशास्त्र-सम्बन्धीय ग्रंथ मिलते हैं।

लौज (अ० पु०) १ बादाम। २ एक प्रकारकी मिठाई जो काट कर तिकोनिया बरफीके आकारको बनाई जाती है। इसमें प्रायः बादाम पीस कर डाला जाता है।

लौटना (हिं० क्रि०) १ कहीं जा कर पुनः वहांसे फिरना, वापस आना। २ इधरसे उधर मुंह फेरना, पीछेकी ओर मुंह करना।

लौटपौट (हिं० क्रि०) १ दोरुखो छपाई, वह छपाई जिसमें उलटा सीधा न हो। २ उलटने पुलटनेकी क्रिया। लोटपोट देखो।

लौटफेर (हिं० पु०) इधरका उधर हो जाना, उलट फेर।

लौटान (हिं० स्त्री०) लौटनेकी क्रिया या भाव।

लौटाना (हिं० क्रि०) १ फेरना, पलटाना। २ वापस करना। ३ ऊपर नीचे करना।

लौटानी (हिं० क्रि० वि०) लौटते समय, लौटती बार।

लौड़ा (हिं० पु०) शिश्न, लिङ्ग, पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय।

लौद (हिं० पु०) अरहर आदिकी नरम डाली। इससे छाना छानेका काम लिया जाता है।

लौदरा (हिं० पु०) लौद देखो।

लौनहार (हिं० पु०) लौनी करनेवाला, खेत काटनेवाला।

लौना (हिं० पु०) १ वह रस्सी जिससे किसी पशुके एक अगले और एक पिछले पैरको एक साथ बांधते हैं, जिसमें खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके। २ ईंधन, जलावन। ३ फसल काटनेका काम, कटनी।

लौनी (हिं० स्त्री०) १ फसलकी कटनी, कटाई। २ डावी, लहना।

लौरस (सं० क्ली०) सामभेद।

लौम (सं० त्रि०) १ लोम-सम्बन्धीय। २ लोमसे उत्पन्न।

लौमकायन (सं० त्रि०) लोमक सम्बन्धीय।

लौमकायनि (सं० पु०) लोमकका गोत्रापत्य।

लौमकीय (सं० त्रि०) लोमक-सम्बन्धीय।

लौमन्य (सं० त्रि०) रोम बहुल, जिसके बहुत रोएं हों।

लौमशीय (सं० त्रि०) १ लोमशसे उत्पन्न। २ लोमश सम्पर्कीय।

लौमहर्षणक (सं० त्रि०) लोमहर्षणकृत, जिससे रोंगटे खड़े हो गये हों।

लौमहर्षणि (सं० पु०) लोमहर्षणका गोत्रापत्य।

लौमायन (सं० त्रि०) १ लोम-सम्बन्धीय। (पु०) २ लोमनका गोत्रापत्य।

लौमायन्य (सं० पु०) लोमनके वंशधर।

लौमि (सं० पु०) लोमका गोत्रापत्य।

लौलाह—प्राचीन स्थानभेद। (राजतर० ७।१२५३)

लौमिक—एक प्राचीन कवि।

लौल्य (सं० क्ली०) लोलस्य भावः। १ चाञ्चल्य, अस्थिरता। २ अस्थायित्व, लोपत्व। ३ इच्छा, स्पृहा। ४ शैथिल्य, शिथिलता।

लौल्यता (सं० स्त्री०) बलवती आकाङ्क्षा, गहरी इच्छा।

लौल्यवत् (सं० त्रि०) १ अतिशय स्पृहाशील, बहुत इच्छुक। २ अर्थगृध्नु, अर्थलोलुप। ३ आकाङ्क्षायुक्त, इच्छुक।

लौश (सं० क्ली०) कई प्रकारके साम।

लौह (सं० पु०) लोह एव। स्वनामप्रसिद्ध लोह नामक धातु। इस धातुकी उत्पत्ति पृथ्वीके गर्भसे है। इसमें नाना प्रकारके गुण रहनेके कारण दूसरे दूसरे देशोंके चिकित्सक तथा वैज्ञानिकोंने इसके रासायनिक बलाबलकी परीक्षा करके औषधके रूपमें इसे सेवन करनेको कहा है। खनिज लौह इसकी दूसरी ओषधियोंके योगसे शुद्ध किया जाता है। लौहके वैद्यक मतसे निम्नलिखित तेरह प्रकारके संस्कार साधित हुए हैं—१ शालिघर्षण, २ उद्वर्त्तन, ३ अम्लभावन, ४ आतपशोष, ५ निषेक, ६ मारण, ७ दलन, ८ क्षालन, ९ सूर्यपाक, १० स्थालीपाक, ११ चूर्णन, १२ पुटपाक एवं १३ पाकनिष्पन्न।

वर्त्तमान समयमें भी कई देशोंमें लोहेकी खान नजर आती हैं; किन्तु इन खानोंके लौहसे प्राचीन कालीन खानोंके लौह कहीं अधिकतर शक्तिप्रद होते थे। आयुर्वेदप्रवर्त्तक ऋषियोंने कांची, पाण्डि, कान्त, कालिंग तथा वज्रक नामक लोहमें पांच प्रकारके भेद निर्देश किये हैं। उक्त पांच प्रकारके लौह ही सर्वश्रेष्ठ तथा विशेष फलदायक होते हैं। इनसे आयु, बल, वीर्यवर्द्धक तथा रोगनाशक और श्रेष्ठतम रसायन तैयार होते हैं। कृष्णवर्ण लौहका गुण—शोथ, शूल, अर्श, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, मेद तथा वायुनाशक, वयःस्थैर्य तथा चक्षुस्तेजकारी, सारक और गुरु। शोधित लौहका गुण—सर्वरोगनाशक, मरण रोधक। अशुद्ध लौहका गुण—जारणयोग्य और आयुर्नाशक। लौहके जारण मारणादिके संक्षिप्त परिचयका वर्णन यथास्थानमें किया गया है।

रसायन तथा लोह देखो।

भारतके विभिन्न स्थानमें एवं भिन्न भिन्न राज्यमें यह धातु पृथक् पृथक् नामसे परिचित है। हिन्दी—लोहा; बंगला—लोहा; मराठी—रोखण्ड; गुजराती—लेढूं; तामिल—इरुम्बू; तेलगू—इनुमु; कनाड़ी—कविना; मलयालम्—इरुम्वा; ब्रह्म—दान, थान; अरवी—हदिंद; पारस्य—आहन; शिंगापुर—यकद; अंग्रेजी—Iron; लाटिन—Ferrum; फरासी—Fer; जर्म्मनी—Eisen; पुर्त्तगाल तथा इटली—Ferro; स्पेन—Hierro; दिनेमार तथा स्वेडिस—Jern; ओलन्दाज—Jizer, Yzer; गथ—A's; ग्रीक—Sideros; तूर्क—देमिर, तिमुर, पोलण्ड—Zelazo; रूस—Schcleso; पस्तु—अयस्पणा; मलय—वसि, वेसि। रासायनिकोंके मतसे यह धातु मङ्गलग्रहके समान प्रभावसम्पन्न है।

भारतके भूपञ्जरकी आलोचना करनेसे ऐसा देखा जाता है, कि इसके विभिन्न स्तरोंमें विभिन्न पार्थिव पदार्थोंके साथ मिश्रित लौहधातु वर्त्तमान है। वैज्ञानिकोंने इन समस्त विभिन्न स्तरोंके अपरिष्कृत लौह (Iron ores) का विशेष रूपसे पर्य्यवेक्षण किया है। वे कहते हैं, कि प्राकृत अवस्थामें दूसरे दूसरे धातुओंके साथ न्यून या अधिक परिमाणसे लोहे मिश्रित रहते हैं। किसी किसी स्थानमें लोहेके साथ दूसरी दूसरी धातुओंका संस्रव नहीं रहता, केवल कितने पार्थिव पदार्थोंका समावेशमात्र देखा जाता है। यौगिकरूपमें यह लौह अधिक पाया जाता है। शुद्धलौह अपेक्षाकृत दुर्लभ पदार्थ है। लौहका स्वाभाविक यौगिक असंख्य प्रकारके हैं। इसका अक्साइड कार्वनेट, फस्फाइड प्रभृति रासायनिक परीक्षा तथा विश्लेषण द्वारा मालूम हो जाता है।

कितने ही अपरिष्कृत यौगिक लौहको परीक्षा द्वारा विशुद्ध करके देखा गया है, कि इन सभी खनिज पदार्थोंमें लौहका परिमाण दूसरेकी अपेक्षा कहीं अधिक है। सर्वसाधारणके जानकारीके लिये कुछ विशुद्ध तथा परीक्षित लोहेकी तालिका नीचे लिखी जाती है—

चुम्बक-प्रस्तर नामक द्रव्य लोहेका ही अक्साइड है। इसको Ferroso-ferric अथवा Magnetic Oxide कहते हैं। इसका दूसरा नाम Magnetic or magnetic iron है। इसमें प्रायः ७२·४ अंश विशुद्ध लोहा रहता है। वैज्ञानिक भाषामें इस यौगिकको Protosesquioxide कहते हैं। विशुद्ध लौहकी प्राप्तिकी आशासे भारतके कई स्थानोंमें लोग कृष्णवर्ण वालू (Black sand) को अग्निमें गलाते हैं। उसमें Magnetic तथा titaniferous लौह-मिश्रित रहते हैं। गेरूमिट्टी—वैज्ञानिक भाषामें Red haematite तथा अङ्गरेजीमें Red ochre (Fe 203) कहलाता है। यह Sesquioxide है। इसमें ७० भाग लोहा पाया जाता है। पलामिट्टी अथवा Yellow-oehre (2 Fe 203,3 H 20) रासायनिकोंमें Brown hoematite or Limoniteके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें साधारणतः ५९·६ लौह विद्यमान है।

कार्वनेट आव आयरन Spathic iron-ore अथवा Siderite कहलाता है। उसमें ४८·३ भाग लोहा रहता है। यह कार्वनेट अथवा स्पाथिक लोहे, कीचड़ मिश्रित रहनेके कारण Clay-ironstone वा Argillaceous iron stone ore कहलाता है। Black sand नामक मिट्टीकी तह कार्वन-मिश्रित क्ले-आयरण स्टोन ले कर बनी है। Haematite श्रेणीके अन्तर्भुक्त अथवा उसी श्रेणीकी Ilmenite नामक एक और मिट्टी पाई जाती है। उसके कई अंश Titanium द्वारा स्थानच्युत करके रासायनिक

लोग उसे Tatiniferous iron कहते हैं। इन सभी यौगिक पदार्थों में लोहेकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं है।

भूगर्भके मध्य अति प्राचीन युगीय तहमें लौह धातुका संस्थान देख कर अनुमान किया जाता है, कि अति प्राचीन कालमें भी इस धातुका प्रचार था, किन्तु किस समय तथा किस महान् पण्डितने इसका आविष्कार किया एवं किसने इसको व्यवहारोपयोगिता निर्देश किया इसका वर्णन इतिहासोंमें पाया नहीं जाता। आर्य हिन्दुओंके सर्व-प्राचीन ऋक्संहिता ग्रन्थके पढ़नेसे जाना जाता है, कि आर्य ऋषिगण वैदिकयुगमें भी लोहेकी निर्मल करणविधि (ऋक् ४।२।१७), उनकी कठिनता (ऋक् १।१६३।६) एवं तीक्ष्णधारत्व (ऋक् ६।३।५)से जानकार थे। शुक्लयजुर्वेदका "मे,हयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥" (१८।१३) मन्त्रांश पाठ करनेसे स्पष्ट जान पड़ता है, कि उस समयके आर्य लोग सभी तरहके लोहेसे परिचित थे। अथर्ववेदके ५।२८।१ तथा ११।३।१ मन्त्रोंमें लोहेका उल्लेख किया गया है।

वैदिक संहितायुगके बाद ब्राह्मण तथा सूत्रयुगमें भी लोहेका खूब प्रचलन था। शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।५; कात्यायन श्रौतसूत्र ७।४।३४, २०।७।१, २०।७।४, आश्वलायन-गृह्यसूत्र १।७।६ प्रभृतिके पाठ करनेसे पता चलता है, कि तलवार क्षुरादिका व्यवहार उस समय भी था। मनुसंहिताके ५।११४।१६ श्लोकको पढ़नेसे स्पष्ट ही ज्ञात होता है, कि उस समय यज्ञपात्रादि भी लोहेके बने होते थे। भस्म तथा अम्लसे उन लोहेके पात्रोंको मार्जना करके जलमें धो देनेसे ही वे शुद्ध समझे जाते थे। उक्त ग्रन्थके ११।१६७ श्लोकमें लौहपात्रका अपहरण करना अत्यन्त निषेध किया गया, इससे जान पड़ता है, कि प्राचीन लोग इस धातुको बहुत मूल्यवान् समझते थे। इसके बाद याज्ञवल्क्य संहितामें (२।१०७) लौह पिण्ड, महाभारतके वनपर्व्वमें लौहभाजन, रामायणमें (२।६०।१२) लौहमय आभरण, सुश्रुतमें (१।२३।२०) कुम्भ एवं श्रीमद्भागवतमें (११।२७।१२) लौही (सुवर्णादि अष्टधातुमयी) प्रतिमाके निर्माणकी व्यवस्था देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि आर्य्य-हिन्दू लोग जिस समय संसारकी सभी जातियां लोहेके प्रयोगसे अनभिज्ञ थे, उस समयसे ही इसका व्यवहार करते आ रहे हैं, एवं उस समयमें ही उन लोगोंने इस धातुसे प्रकृष्ट देवदेवीका प्रतिमा निर्माण करके शिल्पनैपुण्यकी पराकाष्ठा दिखाई थी। उस प्राचीन शिल्पकीर्त्तिकी रेखामात्र हम लोगोंके दृष्टिगोचर न होने पर भी हम लोग आज भी पूर्व्व कीर्त्तिस्तम्भादि देख कर गौरवान्वित होते हैं। आज भी दिल्लीका सुप्रसिद्ध लौहस्तम्भ (सूर्य्यस्तम्भ) हमारे प्राचीन शिल्पनैपुण्यका परिचय दे रहा है। १५०० ई०के उस भयंकर जलप्रवाहसे भी यह स्तम्भ नष्ट नहीं हुआ। दिल्ली देखो।

किसी किसीका विश्वास है, कि लोहेके टुकड़े कभी कभी आकाशसे पृथ्वी पर पतित होते हैं, क्योंकि, प्रकृतावस्थामें लौह जिस तरह यौगिकरूपमें देखा जाता है; उल्कामें भी प्रायः उसी तरह मिश्रित रहता है। इससे स्वतः ही अनुमान होता है, कि वे वह प्रधानतः उल्काज (Meteoric origin) पदार्थके सिवाय और कुछ दूसरा नहीं है। विशेषरूपसे आलोचना करके देखनेसे मालूम होता है, कि उसमें कई अम्लजन (acids)के क्षार (Soda) रूपमें पर्याप्त परिमाणसे गन्धक तथा आक्सिजन मिले हुए हैं। इसके अलावे उसमें अन्यान्य धातु तथा विभिन्न मिट्टियोंका समावेश रहनेके कारण उसका लौह-संस्थान निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उल्का देखो।

चिर-प्रसिद्ध यह लौहधातु भारतवर्षके जिन जिन स्थानोंमें यौगिकरूपसे अवस्थित है, सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

मान्द्राज-विभाग।

स्थानोंके नाम	लौहभेद	गलानेका स्थान
त्रिवाङ्कोर	ब्लाकमाग्नेटाइट तथा लाटेराइट	श्येनकोटा
तिन्नेवली	माग्नेटिक आयरन-सैण्ड	वङ्कुलम्
मदुरा	लाटेराइट	इस समय दुष्प्राप्य
पुदुकोटई	माग्नेटाइट	—
त्रिचीनपल्ली	फेरुजिनास् नडियूल	—
कोयम्बातोर	ब्लाक्-सैण्ड	—
नीलगिरि	हिमाटाइट तथा माग्नेटाइट	—

स्थानोंके नाम	लौहभेद	गलानेका स्थान
मलावार	मा॰नेटाइट तथा लाटेराइट	कर्मनार, शेरनार, वल्लवनार, परनार और तेमेलपुर तालुक।
सालेम	मा॰नेटाइट	पोर्ट नाभो
दक्षिण-आर्काट	ष्टील	तिरुणमलय, कल्लकुर्चि
उत्तर	ब्लाक सैण्ड	—
चेङ्गलपत	मा॰नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
नेल्लूर	मा॰नेटाइट तथा हिमाटाइट	—
कोड़ंग	हिमाटाइट	—
कर्णूल	"	—
बेल्लरी	"	—
कृष्णा	—	गुण्टूर, मसलीपत्तन
गोदावरी	लाइमोनाइट तथा हिमाटाइट	—

विजागापट्टम, गञ्जाम, अनन्तपुर तथा दक्षिण कनाड़ाके कई स्थानोंमें लोहा पाया जाता है।

महिसुर-राज्य।

अष्टग्राम	मा॰नेटाइट	—
वङ्गलूर	ब्लाक-सैण्ड	चीनपत्तन
नागर	,, तथा हिमाटाइट	वावा वूदन, चित्तलदुर्ग,

उपरोक्त तीनों विभागके जिलोंमें अधिक लोहा पाया जाता है। नागर-विभागान्तर्गत कोदुर नामक स्थानमें अनेक लोहेकी खानें हैं। ओब्राणी नामक वहांके स्थानके चतुष्पार्श्वोंमें तथा वावा-वूदन ग्रामके पूर्वस्थित शैलपादमूलमें खनिज लोहा गलानेका कारखाना है। इसके अलावे यहां इस्पात तैयार किया जाता है।

हैदराबाद-विभाग।

यहां हिमाटाइट, टिटानिफेरस, सांड एवं वरङ्गलमें हरिद्राबर्ण पंलामिट्टी तथा लाल गेरूमिट्टीमें लोहेकी खान दिखाई पड़ती है। लिङ्गसागर जिलेमें फैली हुई धारवार-शैलमालाके पेन्नार-हग्गेरी शैलस्तरमें माग्नेटाइट लौह भी पाया जाता है। वहांके सिङ्गरेणी कोयलेकी खानमें अपेक्षा उत्कृष्ट लोहा पाया जाता है। अनन्तगिरि, कल्लूर प्रभृति परगनेमें लोहा गलानेका कारखाना है। जेलगण्डलके अन्तर्गत कई ग्रामोंमें इस्पात तैयार किया जाता है। इस स्थानमें कोणसमुद्रके इस्पातका कारखाना बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है। पचहत्तर वर्ष पूर्व-लिखित एक विवरणीसे पता चलता है, कि पारस्यवासी वणिक्-सम्प्रदाय कोणसमुद्रके सर्वोत्कृष्ट इस्पात खरीद कर ले जाता था। उससे दामास्कासकी चिरप्रसिद्ध तलवारके फलक तैयार किये जाते थे। वह इस्पात साधारणतः मिटपल्लीके Iron-sand और दिमदुर्त्तिके Magnetite लोहेसे बनाये जाते हैं।

मध्यप्रदेश।

वस्तार, सम्बलपुर, बिलासपुर, रायपुर, चान्दा, वालाघाट, भाण्डारा, नागपुर, मण्डल, शिवनी, छिन्दवाड़ा, निमाव, होसङ्गावाद, नरसिंहपुर और जब्बलपुर आदि जिलेके नाना स्थानोंमें हिमाटाइट मा॰नेटाइट लाइमेनाइट आदि श्रेणीका यौगिक लौह बहुतायतसे पाये जाते हैं। उनमेंसे सम्बलपुरके अन्तर्गत गढ़जात-महलोंमें, रायराखोलमें, रायपुरके अन्तर्गत दण्डीलोहारा और खैरागढ़, वोरार वांध, गण्डाई, ठाकुरतला और नन्दगांव भूभागमें; चांदा जिलेके मध्य लोहारा, देवलगांव, पिप्पलगांव, गुञ्जवाड़ी, ओगलपेट, मेटापुर, भानपुर तथा लोरा पर्वतके अन्तर्गत मोगला, गांगरा, दानवाई और घोसालपुर आदि स्थानोंमें काफी लोहा उत्पन्न होता है। उमारिया-कोयलेकी खानके कारखानेका तथा जवलपुरके उत्तर-पश्चिम सभी स्थानोंका खनिज लौह यूरोपीय प्रथासे परिष्कृत हो व्यवहारोपयोगी लोहेमें परिणत होता है।

रेवा, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, इन्दोर, धार, चन्द्रगढ़ और अली-राजपुर आदि भूभागोंमें हिमाटाइट और माङ्गानिफेरस यौगिक-लौह पाया जाता है। वे सब लोहे (Coal 'measure' strata' और 'metamorphic rocks' नामक स्तरमें रखे हुए हैं। ग्वालियरके अन्तर्गत सान्तन, माइशोरा, गोकुलपुर, घरौली, वनवारी, रायपुर-पार शैल, मङ्गोर, विनावरी, बड़ौदा, इमिसिया, गुञ्जारी और वारोन आदि गांवोंमें हिमाटाइट और लाइमोनाइट श्रेणीके लोहेकी खान है। इन्दोरसे ६० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित वाघ-ग्रामके Transition rocks स्तरमें चिर-प्रसिद्ध हिमाटाइट लोहेकी खान मौजूद है।

बम्बई।

उत्तर-कनाड़ा, धारवाड़, कालादगि, बेलगाम्, गोआ, सावन्तवाड़ी, कोल्हापुर, रत्नगिरि, सतारा, सूरत, रेवा-कान्ता, पांचमहाल, काठियावाड़ और कच्छप्रदेशमें माग्ने-टाइट, लाटेराइट और हिमाटाइट श्रेणीका लोहा देखनेमें आता है। उनमेंसे रत्नगिरिके अन्तर्गत माल्यवान् पर्वतके समीप रेवाकान्ताके जम्बूघोड़ा, लिमोद्रा और लादकेश्वर नामक स्थानमें तथा काठियावाड़के ओमिया शिखर पर जुरासिक-स्तरमें प्रचुर लोहा है। किन्तु अभी वह काममें नहीं लाया जाता है।

राजपूताना।

जयपुर, मेवाड़, अलवार, मारवाड़, अजमीर, बूंदी, कोटा और भरतपुर राज्यके विभिन्न स्तरोंमें लोहा यौगिकभावमें विद्यमान है। उनमेंसे आरावल्ली-पर्वतके ड्राब्रिशन-स्तर, सिन्धुप्रदेशका कीरथर और रानीकोट श्रेणी, मेवाड़के गङ्गोर विभागके निकटवर्त्ती स्थान तथा अलवार राज्यके राजगढ़के निकटस्थ विस्तृत लौहकी खान उल्लेखनीय है। यहांका लोहा माग्नेटाइट, हिमाटाइट और माङ्गानिज अक्साइडके यौगिक रूपमें विद्यमान है।

पञ्जाब।

बन्नू, पेशावर, झेलम, कांगड़ा, मण्डो, सिमला-शैलराज्य और गुरगांव जिलेके नाना स्थानोंमें लोहा देखा जाता है। उसमेंसे कांगड़ाका magnetic iron-sand बहुत बढ़िया है। काश्मीर राज्यके पञ्च नामक नदीतीरवर्त्ती पहाड़ीप्रदेशमें, पञ्चशिरके उत्तर द्रागड़शैलके निकट, भीमवारा नदीके तीरवर्त्ती सुफाइन ग्राममें, काश्मीर-उपत्यकाके सोपुरमें और पामपुर नामक स्थानके समीप तथा लदाखके अन्तर्गत बानला-ग्राममें लौह-संग्रहके कारखाने हैं।

युक्तप्रदेश।

कुमायूं, ललित, बांदा और मिर्जापुर जिलेमें काफी लोहा पाया जाता है। उनमेंसे कुमायूंके अन्तर्गत रामगढ़, पट्टली, लोसगियानी, नातना-खाँ, पारवाड़ा, खैराना और शिवालिक स्तरके कालधुङ्गी और देचौरी नामक स्थानका लोहा उमदा होता है। इन स्थानोंका लौह micaceous halmatite and limonite नामसे प्रसिद्ध है।

विहार और उड़ीसा।

बराकर लोहेका कारखाना (Barakar Ironworks) सर्वश्रेष्ठ हैं। रानीगञ्जके कोयलेकी खानमें Ironstone shales और nodules of clay-iron-stone पाया जाता है। वीरभूम, भागलपुर, मुंगेर, गया, मानभूम, सिंहभूम, लोहरडगा, उड़ीसा, छोटानागपुरके सामन्त-राज्योंमें लौह-संस्थान देखा जाता है।

खासिया, जयन्ती और नागापहाड़ पर तथा मणिपुर राज्यमें साधारणतः टार्सियारि कोयलेके स्तरमें tita-niferous magnetite, pisolitie nodule of limonite और nodules of clay iron-stone देखा जाता है। खासिया और जयन्ती पहाड़के जिस प्रस्तर स्तरमें लोहा पाया जाता है, वह बहुत जल्द टूटता है, इस कारण वहांके आदमी उसे अच्छी तरह चूर्ण कर लेते हैं। पीछे एक नली जहां प्रवल वेगसे जलधारा बहती है, वहीं पर उस चूर्णको ले जा कर धोते हैं। इससे मिट्टी और उसी तरहके लघु पदार्थ जलस्रोतमें बहते हैं तथा उससे भारी लोहेके कण नीचे बैठ जाते हैं। इस प्रकार बार बार प्रक्षालनके बाद जब वह यौगिक लौहचूर्ण मृदादि पार्थिव पदार्थसे नियुक्त हो जाता है, तब वे लोग उसे आंचमें गला कर लोहा निकालते हैं। इस प्रकार बार बार लोहा गलानेसे वह परिष्कृत हो जाता है। इसके बाद अग्निके समान लाल कर हथौड़ेसे पीटनेसे वह अच्छे लोहेमें पलट आता है।

ब्रह्मराज्य।

उत्तरब्रह्म, पेगू और तेनासेरिम विभागमें तथा शान-राज्यके नाना स्थानोंमें, मार्गुई नगरसे १० मील दक्षिण पश्चिममें तथा उससे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित दो द्वीपोंमें लोहेका निदर्शन पाया गया है। बङ्गोपसागरस्थ अन्दामान द्वीपके पोर्टब्लेयर नगरसे कुछ मील दक्षिण 'रङ्ग ऊ-छाङ्ग' नामक स्थानमें प्रचुर परिमाणमें halma-tite यौगि.. मिलता है। किन्तु उसमें कोयाटज और पाइराइट मिले रहनेसे वह किसी काममें नहीं आता।

प्रस्तुत प्रणाली।

वाणिज्यके लिये बाजारमें जो लोहा देखा जाता है, उससे यह प्राकृत लौह बिलकुल स्वतन्त्र है। पत्थर-कोयलेका एक बड़ा चूल्हा बना कर उसमें लोहेके खनिज यौगिकोंको सबसे पहले दग्ध कर लेनेसे लोहा मुक्तावस्थामें लाया जाता है। इस प्रक्रियासे जल, कार्बनिक आनहाइड्राइड और गन्धकादि आक्सिजन द्वारा सलफर डाइअकसाइड रूपमें बाहर निकल पड़ते हैं और लोहा प्रायः फेरिक अकसाइड रूपमें बदल जाता है। इस फेरिक-अकसाइडके साथ कोयला अथवा कोक तथा लाइमष्टोन (कार्बनेट आव लाइम) मिला कर ब्लाष्ट फार्नेस (Blast furnace) नामक बड़े चूल्हेमें उत्तप्त करनेसे लोहा आक्सिजनविहीन हो जाता है।

स्वीडेन, रूस और पूर्व भारतीय देशोंमें इसी प्रथासे लोहा गलाया जाता है। नीचे लोहेके गलानेको चुल्ली और लोहेकी पर्यायिक परिणतिका विषय लिखा जाता है—

ब्लाष्ट फार्नेस—ईंटका यह चूल्हा बनाया जाता है। इसकी ऊँचाई ८० फुट होती है। ऊपर और नीचेका भाग बिचले भागसे कुछ चौड़ा होता है। नीचे वायु घुसनेके लिये नल, धातु गल कर बाहर होनेके लिये छेद रहता है। चूल्हेके ऊपरसे उपरोक्त फेरिक अकसाइड मिला देना होता है। ब्लाष्ट फार्नेस व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि चूल्हेके निम्नस्थित नल द्वारा जो वायु घुसती है उससे कोक दग्ध हो कर कार्बनिक अक्साइड उत्पन्न होता है। वह वाष्प जितना ही ऊपर उठता है, अङ्गारके द्वारा वह उतना ही आक्सिजनविहीन हो कर कार्बनिक अकसाइडमें परिणत हो जाता है। पीछे यह कार्बनिक अकसाइडका आक्सिजन आकर्षण कर लेता है उस समय लोहा अलग हो जाता है। लोहा जिस समय द्रवीभूतावस्थामें नीचे रहता है उस समय वह कुछ अङ्गारके साथ मिल जाता है। लाइमष्टोन व्यवहार करनेका तात्पर्य यह, कि वह उत्तप्तावस्थामें कार्बनिक अनहाइड्राइड वाष्पहीन हो कर कालसियम अकसाइडमें परिणत होता है तथा इस अवस्थामें कठिन कर्दमादिके साथ सम्मिलित हो कर तरलाकारमें लोहेके ऊपर बहने लगता है। इसको स्लाग (Slag) कहते हैं। चूल्हेके नीचे जो छेद रहता है उसी हो कर यह निकल पड़ता है तथा लोहा दूसरे छेदसे बाहर आता है। यह तरल लोहा जब कठिन होता है, तब उसे काष्ट वा पिग (Cast or Pig) कहते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें साधारणतः ३।४ फुटसे १० फुट तक ऊँचा फार्नेश देखा जाता है।

काष्ट आयरनमें सैकड़े पीछे २से ५ भाग अङ्गार तथा सिलिका, गंधक, फोस्फोरस, आलुमिनम आदि अनेक प्रकारकी धातु मिली रहती है।

लोहेको विशुद्धावस्थामें लानेमें उसको फिरसे गलाना होता है। उस समय वायुके आक्सिजनके द्वारा अन्यान्य पदार्थोंके साथ लोहेको सम्मिलित कर पीछे उसे पीट कर जिस अवस्थामें लाया जाता है उसको रट (Wrought) आयरन कहते हैं। रट आयरनमें सैकड़े पीछे ०·१५ से ०·५ भाग अङ्गार रहता है। जब सैकड़े पीछे ०·६ से २·० भाग अङ्गार रासायनिक योगमें लोहेके साथ रहता है, तब वह इस्पात कहलाता है।

इस्पात बनानेमें रट आयरनको कोयलेकी अग्निमें बहुत देर तक उत्तप्त करना होता है। पीछे उसको ठंढे जलमें अथवा तेलमें हठात् गिरा देनेसे वह बहुत कड़े इस्पातमें परिणत हो जाता है। वह इस्पात टूट जाता है। जो जो पदार्थ बनानेमें जिस जिस प्रकारके इस्पातकी जरूरत होती है उसमें उसी प्रकारका पान देना आवश्यक है। इस्पातको २२१° सेण्टि के उत्तापमें उत्तप्त कर धीरे धीरे ठंढा कर लेनेसे वह बहुत कठिन हो जाता है। उससे छुरी आदि अस्त्रादि प्रस्तुत होते हैं। यदि २८७° से० तक उत्तप्त कर शीतल किया जाय, तो वह बहुत मजबूत हो जाता है। इस लौहखण्डोंके स्प्रिंग आदि बनते हैं।

वेपुर, सलेम, पालमकोट्ट, पेनातुर और पुदुकोट्ट नामक स्थानोंमें लोहेका जो magnetic oxide यौगिक पाया जाता है, पार्थिव पदार्थसे वियुक्त कर Blast furnace के मध्य वह गलानेसे बढ़िया लोहा तैयार होता है। उसमें सैकड़े पीछे ७२ भाग लोहा रहता है। वह गन्धक, आर्सेनिक अथवा फोसफोरस हीन है। पानपाड़ा और होनर नामक स्थानका खनिज लौह ही इस्पात बनानेके काममें विशेष प्रशस्त है।

वेपुरके लोहेके कारखानेमें भारतीय काष्टष्टील (Cast

steel) बनानेमें जो प्रथा काममें लाई जाती है, उसे Bessemer-process कहते हैं। स्वीडेन आदि पाश्चात्य देशोंमें प्रायः उसी प्रथासे इस्पात बनाया जाता है। किन्तु ग्रेट-ब्रिटेन राज्यके विभिन्न स्थानोंमें विशेषतः सेफिल्ड नगरके प्रसिद्ध लोहेके कारखानेमें जिस उपायसे इस्पात तैयार किया जाता है, वह ऊपर लिखी प्रणालीसे एकदम भिन्न है।

सेफिल्डको छुरी कैंची (Cutlery) प्रस्तुत करनेके उपयोगी इस्पात बनानेकी प्रणाली बहुत कठिन और बहुव्ययसाध्य है, यह ज्ञान कर इस देशके लोहारोंने कारखानोंमें काम करना छोड़ दिया है। वहां 'पिग-आयरन' बनानेके लिये एक आलोड़न वा प्रतिघातकारी चूल्हा (reverberatory furnace) रहता है। उस चूल्हेकी गर्मीसे काष्ट-आयरन गल कर नलपथसे चालित हो Converter वा Bessemer vessel नामक पात्रमें जमा होता है। स्वीडेन और मान्द्राजके वेपुर-कारखानेमें उस प्रकारकी चुल्ली नहीं है। उन दोनों स्थानोंमें ब्लाष्ट फारनससे असंस्कृत लौह-धातु गल कर हत्थेके जैसे पात्र विशेषमें (Ordinary founder's ladle) परिचालित होता है। पीछे घूमते हुए उत्तोलक यन्त्र (travelling crane) की सहायतासे वह लौहपूर्ण हत्था ऊपर उठ कर कनभर्टर नामक पात्रमें द्रवलौह ढाल देता है। दोनोंमें विशेषता यह है, कि अङ्गरेजी प्रथासे रक्षित कनभर्टर-पात्र चक्रदण्डके ऊपर (axles) रखा रहता है, इच्छानुसार यह घुमाया जा सकता है। किन्तु इस देशके और स्वीडेनके उक्त कनभर्टर एक जगह स्थिरभावमें रखे रहते हैं तथा उसके चारों ओर अग्नि उत्तापके साथ इष्टकचूर्ण (Fireclay, sand और pulverized english fire-bricks) आदिका प्रलेप दिया जाता है। इसके बाद वायलरमें करीब ५० पौंण्ड वाष्प उठा कर उस गलित धातुके प्रति वर्गइञ्च स्थानमें ६॥ से ७ पौंण्ड चाप दिया जाता है। कनभर्टरमें वायुवितारनके लिये पौन इञ्च व्यासयुक्त ११ नाली (Tuyeres) उक्त पात्रके नीचे खड़े बलमें रहती हैं। उस पात्रके ष्टीलको नरम करनेमें माङ्गानिज वा दूसरे किसी धातुमिश्रणकी आवश्यकता नहीं होती। केवल वात्या सन्ताड़न द्वारा बार बार चाप देनेसे तथा आवश्यकतानुसार बहुत देर तक आंच देते रहनेसे वह ष्टील विशेषरूपसे परिष्कृत हो जाता है।

जब यह उत्तप्त और द्रवीभूत लौहधातु प्रायः सम्पूर्णरूपसे कार्बणविमुक्त (Decarbonized) होती है, तब उस पात्रस्थ नालीका टैप खोल देनेसे तरल इस्पात बड़ी तेजीसे बाहर आ कर तन्निस्थ Ladle नामक पात्रमें गिरता है। उस पात्रके भी नीचे तरल इस्पात गिरनेका छेद है। तरल इस्पातसे पूर्ण उस लेडलको पीछे हिला कर सांचे (Cast-iron ingot moulds) के ऊपर ले जाते हैं। वहां छेदका मुंह खोल देनेसे इस्पात जलस्रोतकी तरह उस सांचेमें गिरता है। ठंढा होने पर Nasmyth hammer नामक हथौड़ेसे उसको पीट लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न आकारके इस्पातका पत्तर बना कर बाजारमें विक्रयार्थ भेजे जाते हैं।

उपरोक्त अंगरेजी प्रथासे लोहा गलानेमें बड़े चूल्हेकी आवश्यकता होती है। इसमें अनेक प्रकारकी असुविधाएं तथा लकड़ीका खर्च बहुत ज्यादा देख कर यहांके कारखानोंमें अंगरेजी प्रथासे अब लोहा गलाया नहीं जाता। १८३३ ई०में दक्षिणआर्कटके सलेम जिलेके पोर्टनभो नगरमें तथा मलवारके किनारे वेपुर नामक स्थानमें कारखाने खोले गये। सलेमके कारखानेसे पिग्-आयरनको गला कर इङ्गलैण्ड भेजा जाता था। पीछे उसे इस्पातमें ला कर अधिक मोलमें बेचते थे। उसी इस्पातसे ब्रिटानिया और मोनाईका पुल बनाया गया था। वेपुरके कारखानेमें बढ़िया इस्पात तैयार हुआ था सही, पर बहुव्ययसाध्य तथा कुछ लाभ न होनेके कारण वहां उक्त प्रथासे इस्पात तैयार करना बंद कर दिया गया। १८५५ ई०में वीरभूम आयरनवर्क्स कम्पनीने कार्य आरम्भ किया। १८५७ ई०में कुमायूंमें और १८७१ ई०में इन्दोरराज्यके अन्तर्गत वारवाई ग्राममें एक लोहेका कारखाना खोला गया था। १८८० ई०के किसी समय पञ्जाव प्रदेशके सिरमूर राज्यके अन्तर्गत नाहुन नगरमें एक कारखाना स्थापित हुआ। कुछ दिन चालू रहनेके बाद परिचालकोंने अधिक खर्च देख कर उसे बंद कर दिया

१८७४ ई०में रानीगंजके कोयलेके क्षेत्रके अन्तर्गत बराकर नगरमें 'Bengal Iron Company'ने लोहा गलानेके लिये एक कारखाना खोला। इस समय तक लकड़ीका कोयला ही काममें लाया जाता था। १८७५ ई०में चान्दा जिलेमें लोहा गलानेके लिये लकड़ीके कोयलेके बदले पत्थरका कोयला काममें लाया गया। उस समय बराकरके लोहेके कारखानेमें भी लकड़ीका कोयला जलानेकी व्यवस्था हुई थी। उस कारखानेमें १२७०० टन पिग आयरन प्रस्तुत होने पर भी वाणिज्यमें घाटा देख कर १८७८ ई०में वह कारखाना बंद कर दिया गया। इसके तीन वर्ष बाद अंगरेज-गवर्मेण्टने कारखाना चलानेका भार अपने हाथमें ले कर Ritter von Schwartz नामके एक सुदक्ष वैज्ञानिकको वहांका परिदर्शक नियुक्त किया। १८८४ ई०को १ली जनवरीको एक बड़ा चूल्हा (ब्लाष्ट फर्नेस) ले कर कार्य्य आरम्भ किया गया। १८८८ ई०के शेष भागमें उसमें ३०३१६ टन माल प्रस्तुत होते देख संस्कृत प्रथासे एक दूसरा ब्लाष्ट फर्नेस स्थापन किया गया। उसमें १८८६ ६० ई०को १५००० तथा उसके दूसरे वर्षमें २० हजार टन पिग-आयरन गलाया गया था। उस कारखानेमें प्रति वर्ष प्रायः दो हजार टन पिग-आयरन गला कर Pipes, Sleepers, bridge-piles railway axle-boxes तथा तरह तरहके फूलोंके कार्य्य और कृषिकार्य्यके उपयोगी यन्त्रादि तैयार होने लगे। १८६१ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने बराकर आयरन वर्क्स एक स्वतन्त्र कम्पनीके हाथ बेच दिया। उपरोक्त पाश्चात्य वैज्ञानिकने यहां सबसे पहले यूरोपीय प्रथासे लोहा गलानेका कौशल दिखलाया था।

परीक्षा।

लोहे और इस्पातकी परीक्षा करनेके लिये एक विन्दु तीव्र नाइट्रिक एसिड डालो। डालनेसे यदि काला दाग पड़ जाय, तब उसे इस्पात जानना चाहिये। लोहे पर नाइट्रिक एसिड डालनेसे सब्ज रंगका दाग पड़ता है।

धर्म।

विशुद्ध लौह चांदीकी तरह सफेद होता और पालिस करनेसे उज्ज्वल दीख पड़ता है। लौहको संघर्षण करनेसे एक प्रकारकी गन्ध पाई जाती है। सूतगुच्छकी तरह इसकी बनावट होती है, इसलिये यह भार सहन करनेमें पूरा समर्थ होता है। अपेक्षाकृत इसका वजन—७·७ होता है। लोहा चुम्बक-शक्ति भी धारण कर सकता है। यह आक्सिजनका विशेष पक्षपाती होता है, इसलिये अत्यन्त कष्टसे इसकी रक्षा करनी होती है। क्लोरिण, ब्रोमिण एवं आयोडिनके साथ यह आसानी यौगिकभाव लाभ करता है। जल-मिश्रित सालफ्यूरिक एवं हाइड्रोक्लोरिक एसिडसे यह गल जाता है एवं ऐसे समयमें हाइड्रोजन वाष्प वहिर्गत हो जाता है। १·४५ आपेक्षिक गुरुत्वके नाइट्रिक एसिडसे लोहेका कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता, किन्तु जल-मिश्रित नाइट्रिक एसिडसे आसानीसे गल जाता है। इसका आणविक गुरुत्व ५६ है।

व्यवहार।

लौहके व्यवहारके सम्बन्धमें वर्णन करना अत्युक्ति मात्र हो है। बालक, वृद्ध, युवा सबोंको ही इसकी उपयोगिताका विशेष ज्ञान है। लौह प्रचुर परिमाणमें औषधमें प्रयोग किया जाता है। एलोपैथिककी औषधोंमें लौह जिस तरह व्यवहृत होता है, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। वैद्यक मतकी ओषधियां तथा लौहके गुणागुण यथास्थानमें लिखे जा चुके हैं।

लौहका यौगिकवृन्द।

लौह प्रधानतः दो श्रेणियोंका यौगिक उत्पादन करता है। यथा,—फेरास और फिरिक।

Ferrous oxide FeO	Ferrous hydrate $Fe(OH)_2$
Ferrose-ferric Oxide Fe_3O_4	Ferrous chloride $FeCl_2$
Ferrous iodide FeI_2	Ferrous sulphide FeS
Ferrous carbonate $FeCO_3$	Ferrous Phosphate $Fe_3P_2O_8, 8H_2O$—$FePO_4, 2H_2O$.
Ferrous sulphate $FeSO_4$	Ferric hydrate $Fe_2(OH)_6$
Ferric oxide Fe_2O_3	Ferric sulphide FeS_2
Ferric Chloride Fe_2Cl_6	

फेरास अक्साइड।—यह क्षणस्थायी पदार्थ है। हीराकसीसके जलमें क्षारघटित द्रावण मिलानेसे श्वेतवर्णका हाइड्रेट नीचे बैठ जाता है, किन्तु वह उसी समय वायुके आक्सिजनके द्वारा फिर फेरिक अवस्थामें आ

जाता है। श्वेतवर्णसे धीरे धीरे सब्ज वर्ण एवं सब्ज वर्णसे लोहिताभायुक्त हो जाता है।

फेरास क्लोराइड।—लौहको हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें जलानेसे तैयार होता है। यह अत्यन्त जलशोषक पदार्थ है। यह देखनेमें सब्ज होता तथा जल एवं अलकोहल-द्रावण उत्पादन करता है। वायुसे यह विकृत हो कर फेरिक क्लोराइड एवं आक्साइडरूप धारण कर लेता है।

फेरास आयोडाइड।—आयोडिनके द्रावकके साथ लौह मिलानेसे यह तैयार होता है। यह वायुसे विकृत हो जाता है इसलिये चीनीके रसके साथ औषध व्यवहार करनेकी विधि है।

फेरास सल्फ़ाइड।—हीराकसीसके द्रावकमें क्षारघटित सलफाइड मिलानेसे काला सल्फाइड अधःस्थ हो जाता है। इसको वायुमें रखनेसे फेरिक अक्साइड एवं गन्धक उत्पन्न होता है।

फेरास सल्फेट या हीराकस।—जल मिश्रित सल्फिउरिक एसिड द्वारा लौहको जलानेसे यह तैयार होता है। यह सब्जवर्ण तथा दानेदार पदार्थ है। इसके एक अणुमें एक अणु जल मिलानेसे भी इसके दानेका आकार नष्ट नहीं होता। जल अथवा अलकोहलमें आसानीसे गल जाता है। लोहितोत्तापसे हीराकसीस विकृत हो कर सल्फर डाइआक्साइड तथा ट्राइओक्साइड वाष्प एवं फेरिक अक्साइडमें वदल जाता है। नार्डसन (Nordhausen) सल्फिउरिक एसिड तैयार करनेमें यह व्यवहृत होता है। हीराकसीसका द्रावण वायुस्पृष्ट होनेसे वेसिक फेरिक सल्फेट पैदा हो जाता है।

फेरास कार्वनेट।—हीराकसीसके द्रावकमें कार्वनेट आव् सोडा मिलानेसे श्वेतवर्णके कार्वनेटका लोप हो जाता है, किन्तु हाइड्रेटकी तरह वायुस्थ आक्सिजनके संयोगसे हाइड्रेट बन जाता है।

फेरास फास्फेट।—फास्फेट आव् सोडाके द्रावणको हीराकसीसके द्रावणमें डालनेसे श्वेतवर्णके फेरास फास्फेटका लोप हो जाता है।

फेरिक आक्साइड।—फेरिक क्लोराइडके द्रावकमें क्षारघटित द्रावक मिलानेसे पाटकिला वर्णका चूर्ण जैसा पदार्थ नीचे चला जाता है। इसको हाइड्रेट कहते हैं। हाइड्रेटके जलको अलग करनेसे आक्साइड पाया जाता है। फेरिक आक्साइड क्षारादि पदार्थोंमें नहीं गलता। यह एसिडमें गल जाता है।

फेरसो-फेरिक आक्साइड।—समभाग फेरास एवं फेरिक सल्फेटके द्रावकमें आमोनिया मिला कर तपानेसे काले रंगका लोप हो जाता है। वह नाइट्रिक एवं हाइड्रोक्लारिक एसिडमें गल जाता है।

फेरिक क्लोराइड।—फेरिक आक्साइडको हाइड्रोक्लोरिकमें गलानेसे यह तैयार होता है अथवा लौहको हाइड्रोक्लारिक एसिडमें गलानेके वाद उसमें नाइट्रिक एसिड मिला कर उबालनेसे फेरिक क्लोराइड प्रस्तुत हो सकता है।

जल-शून्य फेरिक क्लोराइड तैयार करनेमें तपे हुए लाल लौहके साथ क्लोरिण वाष्प मिलाना होता है। यह अत्यन्त जलशोषक होता है। यह जल अलकोहल इथरमें गल जाता है।

फेरिक सल्फेट।—हीराकसीसके साथ सल्फिउरिक एसिड मिला कर, एवं उस मिले हुए कसीस और सल्फिउरिकमें नाइट्रिक एसिड मिला कर उबालनेसे फेरिक सल्फेट तैयार होता है। हाइड्रेट, कार्वनेट, फास्फेट एवं सल्फाइडके अलावा फेरोसायानाइड आव पोटासियमके द्रावक योगमें फेरस श्रेणीके श्वेतवर्णके यौगिकरूपमें अधःस्थ होता है। वायुके संसर्गसे वह धीरे धीरे नीलवर्णमें परिणत हो जाता है। फेरिडसायानाइड आव पोटासियम मिलानेसे गाढ़ा नील रंग कुछ फीका पड़ जाता है। इसे टर्णवुल-व्लू कहते हैं। सल्फोसायानाइड आव पोटासियमके साथ फेरस श्रेणीके लवणादिमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन दिखाई नहीं पड़ता।

फेरिक श्रेणीके यौगिकके क्षारादि पदार्थोंसे हाइड्रेट बनता है। क्षारघटित सलफाइड अधःस्थ हो जाता है एवं उसमें गंधक मिला हुआ नजर आता है। फेरसमें वह नहीं रहता है।

फेरोसायानाइड आव पोटासियमके साथ गाढ़ा नीलवर्ण फीका पड़ जाता है; इसे प्रुसियन व्लू कहते हैं।

फेरिड सायानाइड आव पोटासियमके संयोगसे किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं होता। इसी तरहसे फेरस एवं यौगिक-समूह अलग किये जाते हैं। सल्फो सायानाइडके साथ गाढ़ा रक्तवर्ण निकल आता है। फेरसमें वह नहीं दिखाई देता।

वाणिज्य।

इस धातुके आविष्कार और व्यवहारोपयोगिताके साथ साथ इसका वाणिज्य जनसमाजमें विस्तृत हुआ था। भारतवासी लौहपात्रका व्यवहार बहुत दिनोंसे जानते थे। उस समय भारतीय लौहपात्रादि देशान्तरमें भेजे और बेचे जाते थे वा नहीं उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु बहुत प्राचीन कालसे वैदेशिकके साथ भारतवासीका जो वाणिज्य संस्रव था इससे अनुमान होता है, कि प्राचीन सभ्यताके आदर्शस्थल भारतवर्षसे लौहनिर्मित पात्रादि अथवा इस्पात आदिकी यूरोपखण्ड में भी रफ्तनी होती थी।

माइसुर, सलेम आदि दाक्षिणात्य प्रदेशोंमें बहुत प्राचीन कालसे इस्पात प्रस्तुत होता था। वहांके लोग खनिज magnetite लौहको गला कर चोट सहनेवाला (Malleable) एक प्रकारका नरम लोहा ढालते थे। आज भी वह प्रथा जारी है।

पेरिप्लसके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय भारतीय इतिहासको बहुत ख्याति थी। प्राचीन अरबी कविताओंमें सुप्रसिद्ध भारतीय इस्पातकी बनी तलवारोंका उल्लेख है। प्राचीन स्पेनवासीके निकट यह अल-हिन्दे नामसे परिचित था। पारसिक वणिक्‌गण उसे 'हुन्द्वानी' कहते थे। मार्कोपोलके विवरणमें वह 'ओन्दानी' (Ondanique) नामसे लिखा गया है। १६वीं सदीमें पुर्त्तगीज-वणिक् कनाड़ा उपकूलस्थित भाटकल आदि स्थानोंसे लोहा ला कर यूरोप भेजते थे। १५११ ई०में पुर्त्तगालराजने गोआके गवर्नरको लिख भेजा था, कि वे प्रचुर लौह और इस्पात चेउल बन्दरसे अफ्रिकाके उपकूलमें तथा लोहितसागर-तीरवर्त्ती तुर्क जातिके मध्य बेचनेके लिये भेजें।

(Archivo Port. Orient, Fasc. 3, 318)

Wilkinson-कृत Engines of war (१८४१ ई०) नामक पुस्तकमें तथा Percy-रचित धातव विज्ञान (Metallurgy, Iron and steel) ग्रंथमें "वुत्ज" नामक इस्पातकी विशेष प्रशंसा है। वे लिख गये हैं, कि डामास्कसकी विख्यात तलवारके फलक भारतीय वुत्ज इस्पातसे ही बनाये जाते थे।

उड़ीसाके सिंहभूम ज़िलान्तर्गत जमशेदपुरका प्रसिद्ध ताता-आयरन-ष्टीलका कारखाना किसीसे भी छिपा नहीं है। उसमें ८० हजार मनुष्य काम करते हैं। ऐसा बड़ा लोहेका कारखाना एशिया भरमें नहीं है। इसके प्रतिष्ठाता बम्बई-निवासी सर दोराबजी जमशेदजी ताता हैं।

वर्त्तमान समयमें भारतीय लौहकी अपेक्षा यूरोपीय लौहका ही अधिक आदर है। इससे गृहस्थोंके नित्य काममें आने वाले हत्थे, बेड़ी, खन्तरे, झंझरी, कलसी, तसले, चीम, वरगे, कल कब्जे आदि बनाये जाते हैं। रेल-लाइन, पुल आदि बहुतसे असमसाहसिक कार्य भी लोहेके द्वारा किये जाते हैं। लोहेके इस्पातसे इञ्जिन बनाई जाती है।

२ छागविशेष, एक प्रकारका बकरा।

(भारत १३।८८।१३)

लौहकचूर्ण—चिकित्सा-सारोक्त चूर्णौषधभेद।

लौहकान्तक (सं० क्लो०) कान्तलौह।

लौहकार (सं० क्लो०) लोहार।

लौहकिट्ट (सं० क्लो०) मण्डूर, लोहेकी मैल।

लौहचारक (सं० पु०) लोहेन लौहनिगड़ेन चारः प्रचारो यत्र। नरकभेद। लौहदारक देखो।

लौहज (सं० क्लो०) लौहात् जायते इति जन-ड। १ मण्डूर, लोहेकी मैल। २ वर्त्तलौह, एक प्रकारका लोहा।

लौहदाह (सं० पु०) अश्व-चिकित्साभेद।

लौहनिरुत्थीकरण (सं० क्लो०) लोहेको अच्छी तरह भस्म करना।

लौहनिरुत्थीकरणमित्रपञ्चक (सं० क्लो०) घृत, मधु, कुंच, सोहागा और गुग्गुल। ये पांच पदार्थके मिले रहनेके कारण इसका मित्रपञ्चक नाम पड़ा है। मित्रपञ्चकके साथ विपक्व और मृत लौह संयत नहीं होने पर

भी ४ रत्ती मात्रामें उसका सेवन किया जा सकता है। (रसेन्द्रसारस०)

लौहपत्री (सं० स्त्री०) १ लौहचटका, लोहेका चटकना। २ लौहमारण। ३ लौहपुर, एक प्राचीन नगर।

लौहपर्पटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा २ तोला, गंधक २ तोला एकत्र कज्जली बना कर उसमें २ तोला लोहा मिलावे। पीछे खरलमें उसे अच्छी तरह कूटे। इसके बाद किसी लोहेके बरतनमें घी लगा कर उसमें कज्जली रख धीमी आंच पर चढ़ावे। गल जाने पर उसे केलेके पत्ते पर ढाल यथाविधि पर्पटी बनावे। पीछे उसे चूर्ण कर ले। १ रत्तीसे ले कर प्रति दिन १ रत्ती करके मात्रा बढ़ावे। एक या दो सप्ताह तक अर्थात् जब तक अच्छा न हो जाय, तब तक इसका सेवन करते रहे। अनुपान शीतल जल अथवा जीरा और धनियेका काढ़ा बताया गया है। इसके सेवनकालमें विदाही और शाकादि द्रव्य तथा चिन्ता, मैथुन आदि वर्जनीय है। लौहपर्पटी सेवन करनेसे ग्रहणी, सूतिका, अतीसार, कामला, अग्निमान्द्य और भस्मक आदि नाना रोग विनष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० ग्रहण्यधि०)

लौहपर्पटीरस (सं० क्ली०) श्वासकृच्छ् और कासादि रोगनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गंधक प्रत्येक २ भाग तथा लोहा १ भाग, इन्हें एकत्र पीस कर धीमी आंचमें गलावे, ठंढा होने पर गोली बनावे। पीछे ब्रह्मयष्टि, मुण्डीरी, वक, त्रिफला, जयन्ती, सम्हालू, त्रिकटु, अडूस, घृतकुमारी और अदरक, प्रत्येकके रसमें सात सात बार भावना दे। सूख जाने पर तांबेके बरतनमें रख जब तक गंध न निकले, तब तक पुटपाक करे। दो रत्ती भर पानके रस, पीपल, सुरस क्वाथ अथवा अडूसके पत्तोंके रसके साथ सेवन करनेसे श्वास कास आदि रोग नष्ट होते हैं। इमली, तेल, बैंगन, कुष्माण्ड, केला, मांसका जूस और कफजनक द्रव्य खाना तथा स्त्रीसम्भोग करना मना है। इस औषधमें लोहेके बदले तांबेसे पाक करने पर ताम्रपर्पटी तैयार होती है। ताम्रपर्पटी देखो।

लौहबन्ध (सं० पु० क्ली०) लौहस्य बन्धमिव बन्धनं यत्र। लौहशृङ्खल, लोहेकी जंजीर।

लौहभाण्ड (सं० पु०) १ लौहस्य भाण्डमिवाकृतिर्यस्य। १ अश्मभाल, खल। २ लौहनिर्मित पात्र या भाण्ड, लोहेका बरतन।

लौहभू (सं० स्त्री०) लोहस्य भूरिव। कटिनी नामक लौहपात्र, कड़ाह।

लौहभेकीवीज (सं० क्ली०) रस जारण वीजभेद।

लौहमय (सं० त्रि०) १ लौहमण्डित, लोहेसे मढ़ा हुआ। २ लौहनिर्मित, लोहेका बना हुआ।

लौहमल (सं० क्ली०) लोहस्य मलम्। लोहकिट्ट, मण्डूर, लोहेकी मैल।

लौहमृत्युञ्जयरस (सं० क्ली०) प्लीहारोगनिवारक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा, अबरक, तांबा, मैनसिल, विषमुष्टि, कौड़ी, शहतूत, शङ्ख, रसाञ्जन, जायफल, कुट, साचिक्षार, यवक्षार, जयपाल, सोंठ, पीपल, मिर्च, हींग और सैन्धव लवण प्रत्येक समान भाग ले कर सूर्यावर्त्त और विल्वपत्रके रसमें सात सात बार भावना दे। पीछे फिरसे सूर्यावर्त्तरसमें अच्छी तरह मर्दन करे। दो रत्तीकी गोली रोगीको सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, उदरी, वातरक्त और विद्रधिरोगकी शान्ति होती है।

लौहयन्त्र (सं० पु०) लौहेन निर्मितः यन्त्र इव। १ लोहेकी कल। २ रसायनोक्त भाण्डविशेष। इसमें औषधादिका पाक करना होता है।

लौहरसायन (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—श्लथ पोट्टलीबद्ध गुग्गुल, तालमूली, त्रिफला, खैरकी लकड़ी, अडूसकी छाल, निसोथ, भूकदम्ब, सम्हालू, चितामूल, थूहरका मूल, प्रत्येक १० पल, पाकार्थ जल ८० सेर, शेष २० सेर, काढ़ेको कपड़ेमें छान १ सेर चीनी और १० पल उक्त गुग्गुल मिलाना होगा। अनन्तर किसी तांबेके बरतनमें पुराना घी ४ सेर और लौहचूर्ण १२ पल डाल कर उसके साथ चीनी और गुग्गुल-मिश्रित क्वाथ जलसे पाक करे। आसन्न पाकमें शिलाजित २ पल, इलायची ४ तोला, दारचीनी ४ तोला, विड़ङ्ग २ पल, मिर्च, रसाञ्जन, पीपल, त्रिफला प्रत्येक २ पल ऊपरसे डाल दे। ठंढा होने पर उसमें मधु १ सेर मिलावे और पीछे शिला पर पीस कर घीके बरतनमें रखे। इसकी

मात्रा ४ माशेसे धीरे धीरे बढ़ानी होगी। अनुपान दूध और जंगली बकरेके मांसका जूस है। इससे मेदोरोग आदि अनेक प्रकारके रोग शान्त होते हैं। कदली, कन्द-मूल, कांजी, करीर और करेला यह सब खाना मना है।
(भैषज्यरत्ना० मेदोऽधिकार)

लौहविशुद्धिद (सं० पु०) टङ्कणक्षार, सोहागा।

लौहशंकु (सं० पु०) लौहस्य शंकुयत्र। १ नरक-विशेष। यहां पापियोंको सूईसे विद्ध किया जाता है। २ लौहनिर्मित कोलकमात्र, लोहेकी कील।

लौहशास्त्र (सं० क्ली०) स्वर्णादि अष्टधातुका व्यवहार और उपयोगिता निर्देशक ग्रन्थभेद।

लौहशोधन (सं० क्ली०) लौहस्य शोधनं। लौह नामक धातुको विशुद्धावस्थामें लानेकी रासायनिक प्रक्रिया-विशेष। लोहेको आंचमें तपा कर सात बार कदलीमूल-के रसमें डुबो देने अथवा अठगुने जलमें विपक्व करने तथा चतुर्थ भागावशिष्ट २ सेर त्रिफलाके काढ़ेमें सप्त-पत्रविभक्त १।० सेर लोहेको आंचमें लाल कर सात बार निक्षेप करनेसे लौह विशुद्ध होता है।

कान्ति आदि लोहेका पत्तर बना कर स्वर्णमाक्षिक, त्रिफलाचूर्ण और शालिञ्च सागका रस उसमें लगा दे। पीछे आगमें जला कर लाल कर ले। इसके बाद उसे जलमें डुबा कर हस्तिकर्ण, पलाश, त्रिफला, वृद्धदारक, मानकच्चू, ओल, हड़जोड़ा, सोंठ, दशमूली नामक द्रव्य, प्रत्येकके काढ़े वा रसमें अच्छी तरह पुट देनेसे लोहा विशुद्ध होता है। गजपीपल, श्वेतवहेड़ा, गुरुच, अपामार्ग और पुनर्नवा इन्हें पुराने मण्डूरके ऊपर और नीचे रख गोमूत्र द्वारा तीन दिन पाक करके ढक दे। इस प्रकार तीन दिन रख देनेसे जब वह भीतरके वाष्पसे सूख जाय, तब उसे बाहर करके धो डाले और फिर सुखा ले।

लौहसार (सं० पु०) एक प्रकारका लवण जो लोहेसे बनाया जाता है। यह रासायनिक परिक्रिया द्वारा बनता और औषधोंमें काम आता है।

लौहा (सं० स्त्री०) लौहभू, कड़ाह। लोहा देखो।

लौहाचार्य (सं० पु०) १ धातुविज्ञान-शिक्षादाता, धातुओं-के तत्त्वको जाननेवाला आचार्य। २ लौहशिल्पज्ञ, लोहे-को कारीगरी जाननेवाला।

लौहात्मा (सं० स्त्री०) लौह आत्मा यस्याः। लौहभू, कड़ाह।

लौहामृतलौह (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारको दवा।

लौहायन (सं० पु०) लौहका गोत्रापत्य।

लौहायस (सं० त्रि०) धातुनिर्मित, लोहे या तांबेका बना हुआ।

लौहासव (सं० पु०) ज्वररोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लौहचूर्ण, त्रिकटु, त्रिफला, यमानी, विड़ङ्ग, मोथा, चितामूल प्रत्येकका चूर्ण ४ पल, मधु ८ सेर, गुड़ १२॥ सेर और जल १२८ सेर, इन्हें एक साथ मिला कर घृतकुम्भमें एक मास रखे। इससे सभी औषध अन्तरुत्सिक्त हो कर आसवरूपमें परिणत होती हैं। इसका सेवन करनेसे अग्निवृद्धि तथा जीर्णज्वर और प्लीहा आदि अनेक रोगोंकी शान्ति होती है।
(भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

लौहि (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार अष्टकके एक पुत्रका नाम।

लौहित (सं० पु०) लोहितः इति लोहितशब्दात् स्वार्थे ष्ण (अण्) प्रत्ययेन निष्पन्नः। १ शिवका त्रिशूल। (त्रि०) २ लोहितसम्बन्धीय।

लौहितध्वज (सं० पु०) लोहितध्वजके मतानुवर्त्ती सम्प्र-दायभेद। (पा ५।३।११२)

लौहिता (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति जो लोहेका व्यापार करती है।

लौहितायन (सं० पु०) एक गोत्रका नाम।

लौहिताश्व (सं० पु०) लोहिताश्वके वंशधर।

लौहितीक (सं० त्रि०) लोहित इव, लोहित (कर्क-लोहिता-दीकक्। पा ५।३।११०) इति ईकक्। १ लोहितवर्णतुल्य, लाल रंगके जैसा। (पु०) २ स्फटिक।

लौहित्य (सं० पु०) लोहितस्य भावः, लोहित-ष्यञ्। १ लोहितत्व। लोहित इव, स्वार्थे ष्यञ्। २ सागरभेद। शायद यह हो अरब और अफ्रिकाके मध्यवर्त्ती लोहितोप-सागर (Red sea) है। इसका जल घोर लाल है तथा जलका आभ्यन्तरिक ताप भी उतना कम नहीं है। स्वेज नहर काटी जानेके बाद लोहित सागरके साथ भूमध्य सागरका संयोग हुआ है। स्वेज देखो।

३ नदविशेष। इसका दूसरा नाम ब्रह्मपुत्र नद है। कालिकापुराणमें ब्रह्मपुत्र लौहित्यका उत्पत्ति विवरण इस प्रकार लिखा है—हरिवर्षमें शान्तनुमुनि रहते थे। उन्होंने हिरण्यगर्भकी मुनिकन्या अमोघाको ब्याहा था। वे प्रियतमा पत्नीको ले कर कभी कैलास पर्वत पर, कभी चन्द्रभागाके उत्पादक वृहत् लौहित्य सरोवरके किनारे और कभी गन्धमादन पर्वत पर रहते थे। एक दिन तपस्वी शान्तनु फल पुष्प तोड़नेके लिये जंगलमें गये। अच्छा मौका देख कर लोकपितामह ब्रह्मा शान्तनुकी पत्नी अमोघाके सामने उपस्थित हुए। सुरसुन्दरी युवती अमोघाका असामान्यरूप सौन्दर्य देख कर वे काम-पीड़ित हुए। कामशरसे प्रपीड़ित हो उन्होंने महासती अमोघा पर बलात्कार करना चाहा। सती डरके मारे आश्रममें घुस गई और भीतरसे दरवाजा बंद कर दिया। विधातासे रहा न गया और आश्रममें ही रेतस्खलन हो गया। पीछे वे वहांसे चल दिये। शान्तनु जब आश्रममें लौटे, तब हंसपदचिह्न और ब्रह्मवीर्य देख कर बड़े विस्मित हुए। पत्नी अमोघाके मुखसे ब्रह्माकी आगमनवार्त्ता सुन कर वे ध्यानस्थ हुए। दिव्य ज्ञानबलसे जगत्‌की भलाईके लिये तीर्थोत्पादन देवताओंका अभीष्ट जान कर उन्होंने अपनी पत्नीको वह ब्रह्मवीर्य पी जानेका हुकुम दिया। यह ले कर पत्नीमें बहुत देर तक वादानुवाद चला। आखिर पत्नीके परामर्शानुसार शान्तनु स्वयं उस ब्रह्मवीर्यको पी गये। पीछे उस तेजके अमोघाके गर्भमें गिरनेसे वह गर्भवती हुई। यथासमय उस गर्भसे जलराशि भूमिष्ठ हुई। उस जलराशिके मध्य नीलाम्बरपरिहित रत्नमाला-विभूषित उज्ज्वल किरीटधारी चतुर्भुज पद्मविद्याध्वजशक्तिधारी आरक्त गौरवर्ण और शिशुमार मस्तकारूढ एक पुत्र विद्यमान था। शान्तनुने उस जलमय पुत्रको कैलास (उत्तरमें), सम्वर्त्तकादि (पूर्वमें), गन्धमादन (दक्षिणमें) और जारुधि (पश्चिममें) नामक चार पहाड़के मध्यवर्त्ती उपत्यका-गर्भमें स्थापित किया। बहुत दिन बीत जाने पर ब्रह्मपुत्र जलराशि रूपमें पांच योजन तक फैल गये। मातृहत्याका पापमोचनार्थ जामदग्न्य परशुराम उस ब्रह्मपुत्र महाकुण्डमें स्नान करने आये। उन्होंने पापसे मुक्त होनेके बाद जनताकी भलाईके लिये अपने परशु द्वारा हेमशृङ्गगिरिको काट डाला और उपयुक्त पथ बना कर लौहित्यको अवतारित किया। वह नद कामरूप पीठ हो कर प्रवाहित हुआ। लोहित सरोवरसे निकलनेके कारण उसका दूसरा नाम लौहित्य पड़ा था। कामरूपको परिप्लावित तथा सब तीर्थोंको गोपन करते हुए लौहित्य दिव्य-यमुनाके साथ दक्षिणसागरकी ओर बढ़े। मध्यमें ब्रह्मपुत्रको परित्याग कर बारह योजनका रास्ता तै करती हुई यमुना फिरसे उस लौहित्यनदमें मिली। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय हो कर चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीको लौहित्य जलमें स्नान करते हैं, वे कैवल्य और ब्रह्मपद पाते हैं। (कालिकापुराण जामदग्न्योपाख्यान ८४।८५ अ०)

वर्त्तमान लोहित नदी ब्रह्मपुत्रकी एक शाखारूपमें आसामके मध्य होती हुई बहती है। शिवसागर और लखिमपुर जिलेके मध्य हो कर यह नदी दक्षिण-पश्चिम गतिसे प्रायः ७० मील बहती हुई धलेश्वरी सङ्गमके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिलती है। उस सङ्गमनिबन्धन दोनों नदीके मध्य द्वीपाकार जो वालुकामय चरभूमि पड़ गई है, उसे 'माजुलिचर' कहते हैं। सुवर्णश्री नदी इसके दाहिने किनारेमें आ कर मिल गई है।

लौहित्यायनी (सं० स्त्री०) लौहित्यकी गोत्रापत्य स्त्री। (पा ४।१।१८)

लौहेष (सं० त्रि०) लौहमय ईषायुक्त, जिसमें लोहेकी हरीस लगी हो।

ल्यारी (हिं० पु०) भेड़िया।

ल्वाव (हिं० पु०) लुआब देखो।

——:०:——

व

व—हिन्दी या संस्कृत वर्णमालाका उन्तीसवाँ व्यञ्जनवर्ण। यह उकारका विकार और अन्तस्थ अर्द्धव्यञ्जन माना जाता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

"ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजत् भगवानजः।
अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम्॥"

कपालके मतसे इसका उच्चारण-स्थान दन्त्य है, किन्तु दूसरी जगह दन्त्योष्ठ बताया है।

बीजवर्णाभिधानतन्त्र, रुद्रयामलके मन्त्रकोष और अन्यान्य तन्त्रशास्त्रोंमें 'व' वर्णके जो पर्याय लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

"वो वारुणी वारुणी सूक्ष्मा वरुणो देवसंज्ञकः।
तोयं शान्तश्च वामांशः॥" (बीजवर्णाभिधान)
"वकारो वरुणो बाणः स्वेदः खड्गीश्वरो जरः॥"
(रुद्रयामल-मन्त्रकोष)

"वो वारुणी वारुणी सूक्ष्मा वरुणा देवसंज्ञकः।
खड्गीशो ज्वालिनीवक्त्रः कलसध्वनिवाचकः॥
उत्कारीशस्तु नावीतो वज्रा स्फिक् सागरः शुचिः।
त्रिधातुः शङ्करः श्रेष्ठो विशेषो यमसादनम्॥"
(नानातन्त्रशा०)

यह वर्ण पञ्च प्राणमय, त्रिबिन्दु और त्रिशक्ति समन्वित, चतुर्वर्गफलदाता और सर्वसिद्धिप्रद है। शिवने आद्याशक्तिको इसका स्वरूप बतलाया था—

"वकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीमोक्षमव्ययम्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा॥
त्रिबिन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम्॥
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
त्रिशक्तिसहितं देवि त्रिबिन्दुसहितं सदा॥"
(कामधेनुतन्त्र)

महाशक्तिसम्पन्न इस वर्णकी ध्यानप्रणाली भी तन्त्रशास्त्रमें लिखी है; यथा—

"कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम्॥
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेविताम्।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

हिन्दीमें इस वर्णका उच्चारण अधिकतर केवल ओष्ठसे होता है, सिर्फ संस्कृताभ्यासी लोग ही दन्त्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंकट (हिं० वि०) १ टेढ़ा, बाँका। २ कुटिल, जो सोधा न हो। ३ विकट, दुर्गम।

वंकनाली (हिं० स्त्री०) साधुओंकी बोलचालमें सुषुम्ना नामक नाड़ी जो मध्यमें मानी गई है।

वंक्षु—इक्षु नद। आज कल आक्सस (Oxus) नामसे प्रसिद्ध है। यह मध्य-एशियाकी एक सबसे बड़ी नदी है। इस नदीका अधिकांश तातार-राज्यमें बहता है। यह पामीरकी सबसे ऊँची अधित्यका सरीकुलसे निकल कर तुर्किस्तानको पूर्व और पश्चिम इन दो भागोंमें विभक्त करती है। पीछे बोखाराके विस्तीर्ण प्रान्तर और तातारके सुविस्तृत मरुस्थलको फाड़ती हुई १३०० मील जानेके बाद अनेक शाखाओंमें विभक्त हो आरल समुद्रमें गिरती है। पुराविदोंका विश्वास है, कि पहले यह नदी कास्पीय-सागरमें गिरती थी। पीछे उसकी गति बदल गई है।

बहुतोंकी धारणा है, कि इस अक्षु (Oxus) वा वंक्षु नदीके किनारे ही आर्य-जातिका वास था। इसी सुप्राचीन नदी हो कर आर्य-सभ्यता सुदूर यूरोपखण्डमें फैली है। पाश्चात्य प्राचीन ऐतिहासिक ष्ट्राबो, हेरोदोतस आदिके विवरणसे जाना जाता है, कि पूर्वकालमें यहां शकजातिका आधिपत्य था तथा इस नदीने इरान और तुरान राज्यको विभक्त कर रखा था। तुरानके उत्तरांशको मत्स्यपुराण और महाभारतमें शाकद्वीप कहा है। शाकद्वीप देखो। मत्स्यपुराण और महाभारतमें शाकद्वीपकी सीमा पर जिस इक्षु नदीका उल्लेख है, वही

आजकल अक्षु नदी कहलाती है। पुराणके मतसे वंक्ष नदी जम्बूद्वीपमें बहती है। पुराणका अनुवर्त्ती होनेसे मालूम पड़ेगा, कि शाकद्वीपकी सीमा पर जो अंश बहता है, वह इक्षु और जम्बूद्वीपमें जो अंश आ गिरा है, वह वंक्षु नामसे प्रसिद्ध है।

इस नदीके किनारे "वक्ष" वा "वखम' जातिका वास* रहनेके कारण इसका वंक्ष नाम पड़ा होगा। यहां सूर्य और अग्नि-उपासक शकोंके अभ्युदयके बाद बौद्ध-प्रभाव फैला था। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक इस नदीके किनारे अनेक बौद्धकीर्त्ति और अशोक-स्तूपके निदर्शन देख गये थे। उन्होंने भी इस नदीका पोत्सु वा वक्षु नामसे उल्लेख किया है। उनके वर्णनमें अनवतप्त (वर्त्तमान सरीकूल) ह्रदके पूर्वांशसे गङ्गा, दक्षिणसे सिन्धु, पश्चिमसे वक्षु तथा उत्तरांशसे सीता नदी निकली है। चीनपरिव्राजक इस स्थानको देख कर जो वर्णन कर गये हैं, उसके साथ विष्णु और मत्स्यपुराणके वर्णनका एकदम मेल है। चीनपरिव्राजकने जिसे 'अनवतप्त' ह्रद कहा है, वही पुराणमें 'विन्दुसर' नामसे परिचित है। विन्दुसर देखो।

वंगाली (हिं० स्त्री०) भैरव रागकी रागिणी। यह औड़व जातिकी है और इसमें ऋषभ तथा धैवतस्वर नहीं लगते। कल्लिनाथके मतसे यह सम्पूर्ण जातिकी है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंदनवार (हिं० स्त्री०) वह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मंडपके चारों ओर उत्सवके समय बांधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुछी रहती हैं, यज्ञादिमें आमके पल्लव गूंथे जाते हैं।

वन्दनमाला देखो।

वंश (सं० पु०) वमति उद्गिरतिपुरुषान् वन्यते इति वा। टु वम उद्गिरणे इति धातोर्यद्वा वन शब्दे इति धातो वाहुलकात् शः। यद्वा, वषि उच्यते इति वा वश कान्तौ अत्र घञ् वा। ततो नुम्। १ पुत्र-पौत्रादि। पर्याय—सन्तति, गोत्र, जनन, कुल, अभिजन अन्वय, सन्तान, निघन, जाति। (जटाधर)

विद्या और जन्म द्वारा एकलक्षणाकान्त कुलपरम्परागत सन्तान ही वंश कहलाते हैं,—'कुलञ्च विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणः सन्तानो वंशः।' (जयादित्य) सुभूतिने कहा है,—"धनेन विद्यया वा ख्यातस्यापत्यधारा वंशः।" अर्थात् धन और विद्यागौरवसे प्रसिद्ध आपत्य-धाराका नाम ही वंश है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वकालसे यहां अनेक प्रतिष्ठित और वीर्यशाली राजवंशका आधिपत्य फैला था। वे सब विभिन्न वंशीय राजसन्तति-परम्परा भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानका अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन कर गई हैं। पुराणादिमें पृथुवंश, भरतवंश आदि अनेक सुप्राचीन वंशोंका हाल लिखा है। उनमेंसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश सर्वप्रधान हैं। सूर्यवंशमें महाराज मान्धाता, दिलीप, रघु और दशरथात्मज श्रीरामचन्द्रने जन्मग्रहण किया था। रामचन्द्र द्वारा रावण-विजय सूर्यवंशकी प्रसिद्धिका कारण है। चन्द्रवंशमें सैकड़ों राजा उत्पन्न हुए थे। उनमेंसे भारतीय महायुद्धके नायक युधिष्ठिरादि पञ्चपाण्डवसे ही वंशकी ख्याति फैली है। सूर्य और चन्द्रवंश देखो।

इन चन्द्रवंशकी दूसरी शाखा यदुवंशमें भगवदवतार श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। इसी वंशमें दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध यादव राजवंश उत्पन्न हुए हैं।

यादव-राजवंश देखो।

तुर्वसुके वंशमें उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे।

शकजातिके अभ्युदयसे भारतवर्षमें शककुशन-वंशीय वैदेशिक राजवंशका अधिष्ठान हुआ। उस वंशके राजे क्रमशः हिन्दू धर्मको अवलम्बन कर राजपूत कहलाने लगे। तभीसे राजपूत-समाजमें ८ शाखाओंमें विस्तृत अग्निकुलकी उत्पत्ति हुई। परमार, परिहार, चौलुक्य और चाहमान ये चार अग्निकुल हैं। इतिहासमें इन चार वंशोंकी प्रतिपत्तिका यथेष्ट परिचय है।

ईसा जन्मसे पहले जैन और बौद्ध राजवंशके अलावा शिशुनागवंश, नन्दवंश, मौर्यवंश, यवनराजवंश, मित्र,

* Wood's Journey to the Source of the Oxus. p. XXIII.

काण्व और अन्ध्रवंश आदि वंशोंकी ख्याति भारतप्रसिद्ध है। शकवंशका लोप होनेसे भारतवर्षमें गुप्तवंशका अभ्युदय हुआ। स्कन्दगुप्तको परास्त कर तोरमाणने भारतमें हूणवंशकी प्रतिष्ठा की। मालवराज यशोवर्मदेवने हूण-वंशोय मिहिरकुलका विध्वंस कर उज्जयिनीराज-वंशका गौरव बढ़ाया था। इसके बाद मगध, वलभो, उज्जयिनी, स्थाण्वीश्वर, कनोज आदि देशोंमें एक एक प्रबल-पराक्रान्त राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। राष्ट्रकूट वा राठोरवंश, भोज और चन्देल तथा कनोजके आयुध-राजवंशका प्रभाव किसीसे भी छिपा नहीं है। इसके सिवा भारतके नाना स्थानोंमें बुन्देला, जाट तथा निज़ाम-शाही, कुतवशाही आदि विभिन्न हिन्दू और मुसलमान जातिसे बहुतों राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई है।

उत्तर-भारतीय इन सब महापराक्रमी आयुध राज वंशके समय वङ्गालमें शूरवंशका प्रभाव फैला। आदि-शूरके ब्राह्मण लानेका हाल वङ्गवासीमात्रको ही मालूम है। पीछे यहां पाल और सेन-राजवंशका अभ्युदय हुआ था। सेनवंशीय लक्ष्मणसेनको परास्त कर महम्मद इ-बख्तियार खिलजीने वङ्गालको फतह किया।

भारतवर्षमें मुसलमानोंके आनेसे यहां गजनी, घोरी, गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलकवंश, सैयद, लोदी, सुर और मुगलवंशने राज्य किया। उसके बाद अङ्गरेजराज-का अभ्युदय हुआ है।

२ गृहका ऊर्ध्वकाष्ठ, बँडेर। ३ पृष्ठावयव, पीठकी रीढ़। ४ वर्ग। ५ वाद्यभाण्डविशेष, बाँसुरी। ६ इक्षु, एक प्रकारकी ईख। ७ सर्ज नामक सालवृक्ष। ८ खड्ग-मध्योच्चभाग, खड्गके बीचका वह भाग जो ऊंचा होता है अर्थात् जहां पर वह अधिक चौड़ा होता है। ९ जनसंख्या। १० अतिथि, मेहमान। ११ दश हाथका एक मान। १२ ग्रन्थिविस्तृत हस्तपदादिकी अस्थि, वाहु आदिकी लम्बी हड्डियाँ। १३ नाकके ऊपरकी हड्डी, बाँसा। १४ विष्णु। १५ वंशलोचन। १६ पुष्प, फूल। १७ तृणजातिविशेष, बाँस। इस पृथ्वी पर विभिन्न स्थानकी आवहवाके तारतम्यानुसार विभिन्न प्रकारका बांस उत्पन्न होता है। उद्भिद्तत्त्वविद् बेन्थम और हुकारने २२ प्रकारके बांसका उल्लेख किया है। उनमेंसे भारत और मलय-प्रायोद्वीपमें जगह जगह प्रायः १४ प्रकारके बांस देखे जाते हैं। यह गरम देशोंमें अधिक होता है और बहुत से कामोंमें आता है। इससे चटाइयां, टोकरियां, पंखे, कुरसियां, टट्टर, छप्पर, छड़ियां आदि अनेक चीजें बनती हैं। कहीं कहीं तो लोग केवल बांससे ही सारा मकान बना लेते हैं और कहीं कहीं कच्चे बांसके चोगोंमें भर कर चावल तक पका लेते हैं। इसके पतले रेशोंसे रस्सियां भी बनती हैं। इसके कोपलोंका मुरब्बा और आचार भी तैयार किया जाता है।

भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दी—बांस, कटाङ्ग, मगरबांस, नलबांस ; बङ्गाला—बेहुड़ वा बेउड़बांस, बांस ; आसाम—ब्लाह, कोलकतङ्गा ; संथाली—माट ; गारो—वाह-काण्डे ; चट्टग्राम—बरियाला ; पञ्जाब—मगर, नाल ; गुजरात - वंश ; कोङ्कण—कलक, पोदई ; पांचमहल- वश ; बम्बई—मन्दले, माण्डगय ; दाक्षिणात्य—भांस, छोटा बांस होनेसे भांसा और बड़ा होनेसे वम्बू ; गोंड़—कटि बदुर ; अरब—कसाव ; पारस्य—मई; तामिल—मनगल, मलम्गिल; तेलगू—मूलकाश, कङ्क, बोङ्गा, वेदुरु, बोङ्ग-वेदुर पोन्ते-वेदेरु, वेन्तेमुकरु, वेन्नुर्शनि, वेत्तू ; कनाड़ी—विदु-ङ्गूलु; मघ—वा-नाह; ब्रह्म—व ग्नाकैत, कैकत्वा ; शिङ्गा-पुर—काङ्गू उना, उना; चीन—छुह; अङ्गरेजी—Bamboo वैज्ञानिक भाषामें यह उद्भिद्तत्त्वके तृणविभाग (Gramineal) की दण्डतृण (Bambuseal) श्रेणीके अन्तर्गत है। संस्कृत पर्याय—कीचक, त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, यवफल, वेणु, मस्कर, तेजन, किष्कुपर्वा, रम्भ, तृणकेतुक, करठालु, कण्टकी, महावल, दृढ़ग्रन्थि, दृढ़पत्र, धनुद्रुम, धानुष्य, दृढ़काण्ड, किलाटी, पुष्पघातक।

बांस साधारणतः ४०।५० हाथ अर्थात् १००से १५० फुट तक लंबा होता है। छोटा बांस ३० फुटसे कम ऊँचा नहीं होता। भारत तथा पूर्व-भारतीय देशोंमें जितने प्रकारके बांस देखे जाते हैं, पाश्चात्य उद्भिद्विदोंने उनके आयविक गठन, दीर्घता, ग्रन्थि और पत्रपार्थक्य-का निर्देश किया है। नीचे उनके वैज्ञानिक नाम, उत्पत्ति-

स्थान, ऊंचाई आदिका हाल संक्षेपमें लिखा जाता है—

१ Bambusa affinis—मार्त्तवानमें उत्पन्न होता है। लम्बाई १५से २० फुट होती है। ब्रह्मदेशकी भाषामें इसको थैका और थिशे कहते हैं।

२ B. Agrestis—जन्मस्थान चीन, कोचीन चीन और मलयद्वीपपुञ्ज। गठन वक्राकार, मोटाई १ फुट और लम्बाई १॥ फुट होती है। भीतर पोल नहीं होता।

३ Amahussana—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके अम्बयना और मनिला नामक स्थानमें होता है। लम्बाई थोडी होती है और यह झाड़ीकी तौर पर पैदा होता है। इसमें गांठें बहुत घनी होती हैं।

४ B. Apus—यवद्वीपके अन्तर्गत शालक पर्वतके ऊपर इस जातिका वांस उगता है। यह ६०से ७० फुट लम्बा और मनुष्यकी जांघके समान मोटा होता है। पत्तियां बड़ी बड़ी और सूईकी नोकसी होती हैं।

५ B Aristata—पूर्व-भारतके नाना स्थानोंमें पाया जाता है। यह चिकना तथा पतला होता है, पर दण्डाकार नहीं होता। इस श्रेणीके बांस देखनेमें बड़े ही सुन्दर लगते हैं।

६ B Arundinacea—मध्य, दक्षिण और पश्चिम-भारतमें प्रधानतः देखा जाता है। यह दण्डाकार और ३० से ६० फुट ऊंचा होता है। भीतर उतना पोल नहीं होता। रेशे चिकने, कठिन और मोटे होते हैं। पत्तियां छोटी और पतली होती है। तीस वर्ष पुराना होनेसे इसमें फूल लगते हैं।

७ B. Arundo—छौड़ी वांस कहलाता है। इससे महावलेश्वरकी प्रसिद्ध छड़ी बनती है।

८ B Aspera—आम्वयना द्वीपमें उत्पन्न होता है। पेड़ ६०से ७० फुट लम्बा होता है।

९ B. Atra—उत्पत्ति-स्थान आम्बयना द्वीप है। वंशदण्ड चिकने और काले होते हैं।

१० B. Baccifera—चट्टग्रामके पहाड़ी प्रदेशमें उत्पन्न होता है। चट्टग्रामवासी इसको पगुट्टल्लू कहते हैं। दाक्षिणात्यमें यह विषा वांस कहलाता है। इसमें जामुन जैसे एक प्रकारके फल लगते हैं। उसमें केवल एक ही बीज रहता है। इसी वांसमें तवाक्षीर वा वंशलोचन पाया जाता है।

११ B. Balcooa—पूर्व-बङ्ग आसाममें कई जगह उत्पन्न होता है। बङ्गालमें इसे बालकू-वांस वा धूली-वांस तथा आसाम और कछाड़ विभागमें बेनवा, भालूका-वांस कहते हैं। लेपछा लोगोंने इसका लिङ् नाम रखा है। यह वांस स्त्री जातिका माना गया है।

१२ B Bitung—यवद्वीपमें उत्पन्न होता है। पत्तियां चौड़ी और खुरदरी होती हैं।

१३ B. Blumeana—उत्पत्ति-स्थान यवद्वीप है। यह दण्डाकार और नवप्रसूत बच्चेके हाथकी तरह पतला होता है।

१४ B. Brandisii—ब्रह्मदेश और चट्टग्रामके ४ हजार फुट ऊंचे पर्वत पर उत्पन्न होता है। इसकी ऊंचाई १२६ फुट और मोटाई ३० इञ्च होती है। कच्ची पत्तियां लाल और हल्दी रंगकी होती हैं। यह वांस बङ्गालमें ओड़ा, ब्रह्ममें वो और मगोंके निकट तुगुंरा नामसे प्रसिद्ध है।

१५ B. Falconeri—उत्तर-पश्चिम हिमालय पहाड़ पर विशेषतः शिमला पहाड़के ५,००० फुट ऊंचे स्थान पर यह वृक्ष उत्पन्न होता है। डा० ब्राण्डिजने इसे बालकू वांसकी श्रेणीमें शामिल किया है। इसके फूल प्रायः एक इञ्च लम्बे और देखनेमें बहुत कुछ तलदा वांसके फूलके जैसे होते हैं। पहाड़ी भाषामें यह छुये काग आदि नामोंसे परिचित हैं।

१६ B Glanca—भारतवर्षके नाना स्थानोंमें पाये जाते हैं। पत्तियां एक इञ्चसे बड़ी नहीं होतीं। यह वांस दो फुटसे ज्यादा नहीं बढ़ता, किन्तु डाल पत्तियोंसे ढकी रहती हैं। इसमें छोटे और सफेद फूल लगते हैं।

१७ B. Khasiana—खासिया पर्वत पर पाया जाता है। खास जाति इसको तुमार-वंश कहती है।

१८ B. Maxima—कम्बोज, वालि, जावा आदि पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जोंके अन्तर्गत बहुत-से द्वीपोंमें यह वृक्ष पैदा होता है। इसकी ऊंचाई ६०से ७० फुट तक होती है। वंशदण्ड प्रायः मनुष्यदेहके समान मोटे होते हैं। भीतर पोल होता है।

१९ B. Mitis—आम्बयनाके वनमें भी यह काफी उत्पन्न होते देखा जाता है। कोचीन-चीनमें इसकी

खेती होती है। यह ३० फुट तक लंवा होता है; किन्तु दण्ड साधारणतः पतले होते हैं। कहीं कहीं मोटे भी देखे जाते हैं, कभी कभी मनुष्यके पैरके समान मोटे होते हैं।

२० B. Multiplex—कोचीन-चीनके उत्तर-विभागमें घेरा लगानेके लिये इसकी खेती होती है।

२१ B. Nana—ब्रह्म और चीनराज्यमें पैदा होता है। यह पेड़ छोटा, पत्तियां छोटी छोटी और निचला भाग सफेद होता है। इसका घना घेरा देनेसे बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। चीनवासी इसे थधु-फा तथा ब्रह्मवासी पिलवपिनङ्ग कहते हैं।

२२ B. Nigra—चीन-साम्राज्यके अंगरेजाधिकृत काण्टन प्रदेशमें यह वांस पाया जाता है। इसके दण्ड मनुष्यकी ऊंचाईके समान बढ़ने भी नहीं पाते, कि काट लिये जाते हैं। उससे व्यवहारोपयोगी अच्छी लाठी और स्त्रियोंके व्यवहार्य छतरीके सुन्दर वेंट तय्यार होते हैं। इङ्गलैण्डमें भी यह वांस उत्पन्न होता है।

२३ B. Nutans—नेपाल, सिक्किम, खासिया-शैलमाला, आसाम, श्रीहट्ट और भूटानके ग्रामादिके मैदानोंमें यह वांस झाड़ देखा जाता है। भूपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ७ हजार फुट होती है। यह देखनेमें वहुत कुछ तल्दा वांसके जैसा होता है। भीतर पोल नहीं होता, ठोस होता है। मोटे वांसमें कुछ पोल होते हैं। नेपालमें यह महल-वांस, लेपछा देशमें महलू, भूटियामें भिउसिङ्ग, आसाममें विदुली और मुकियाल तथा श्रीहट्टमें पिछ्ले नामसे मशहूर है।

२४ B. Orientalis—एकमात्र दाक्षिणात्यमें ही पैदा होता है।

२५ B. Pallida—पूर्व-बङ्ग और आसाममें मिलता है और ५० फुट लम्वा होता है। खासिया लोग इसको उसकेन और कछाड़ी लोग बुरवाल और वरवाल कहते हैं।

२६ B. Picta—सिराम, केलङ्गा, नेलितिस और उसके आस-पासके अन्यान्य द्वीपोंमें यह वृक्ष वहुतायतसे देखनेमें आता है। यह दो इञ्चसे अधिक मोटा नहीं होता। प्रायः ४ फुटके अन्तर पर एक एक गांठ रहती है। लकड़ी पतली, किन्तु वहुत मजवूत होती है। इस कारण यह विलकुल लाठीके लायक है।

२७ B. Prava—आम्वयनाके उपकूल देशमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें इसकी वनमाला देखी जाती है। इसकी पत्तियां साधारणतः १८ इञ्च लम्बी और ३-४ इञ्च चौड़ी होती हैं। यह वांस वेचनेके लिये उपकूल भागमें लाया जाता है।

२८ B. Polymorpha—पेगुयोमा पहाड़ पर तथा मार्त्तवान विभागके पर्वत पर इस वांसका वन देखा जाता है। ब्रह्मवासी इसे कैथौङ्ग कहते हैं।

२९ B. Pubescens —इसका दण्ड ३० फुट लम्बा पर १॥ इञ्चसे अधिक मोटा नहीं होता।

३० B Spina—दाक्षिणात्यके गञ्जाम और गुमसुर जिलेमें उत्पन्न होता है। इसकी लम्बाई ८० फुट तक देखी गई है। उड़ीसावासी इसको कांटा वांस कहते हैं।

३१ B. Spinosa—भारतके पूर्वाञ्चलजात प्रसिद्ध वांसकी जाति। हिन्दीमें इसे वुर या वेहुर वांस; बङ्गालमें वेउड़ वांस; आसाममें कोटे; कछाड़में फिङ्गेंट; ब्रह्ममें यकत्वां कहते हैं। वङ्गाल, आसाम और ब्रह्मराज्य, युक्तप्रदेश, मन्द्राज प्रदेशके उत्तर-पूर्वांशमें तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें झाड़ी वांध कर यह उत्पन्न होता है। यह देखनेमें सुन्दर और गठन मध्यमाकृतिका होता है। कलकत्तेके निकट शहरतल्लीमें और ब्रह्मराज्यमें ३० से ५० फुट ज्यादा लम्बा नहीं होता। इसकी कच्ची इतनी विस्तृत और कठिन होती है, कि उस वांसके वनमें घुसना मुश्किल है। पत्तियां छोटी और कांटेदार होती हैं। ज्येष्ठ मासमें जव वर्षा शुरू होती है, तव पुराने वांसोंमें फूल निकलते हैं। इस वांसको फाड़ कर गृहादि वनाये जाते हैं। यज्ञसूत्र धारणकालमें इस वांसकी लाठी वना कर ब्राह्मण-सन्तानके हाथमें दण्ड देनेकी विधि है।

३२ B Striata—चीन देशमें पैदा होता है। इसकी झाड़ी नहीं होती। इसके दण्ड पतले, पीले, चिकने और सब्ज रंगके होते हैं। इङ्गलैण्डके भेषजोद्यानके उष्णनिकेतनमें (hot-houses) इसकी खेती होती है। यह ३० फुट तक ऊंचा होता है।

३३ B Stricta—वहुत कुछ झाड़ी वांध कर उत्पन्न होता है। भारतवर्षमें इसे वाड़ वांस कहते हैं। दाक्षिणात्यकी तेलगू भाषामें इसका नाम सन्दनपवेदुरु है। यह वहुत मजवूत, ठोस और सीधा होता है।

३४ B Tabacaria—आम्बयना, जावा, मलिया द्वीपों में वहुतायतसे पाया जाता है। ३-४ फुटके फासले पर एक एक गांठ होती है। इसका दण्ड कनिष्ठांगुलीसे मोटा नहीं होता। इस कारण उस पर पालिस दे कर अच्छी छड़ी बनाई जाती है। उसका छिलका इतना कड़ा होता है, कि उस पर कुठाराघात करनेसे आगकी चिनगारियां निकलती हैं।

३५ B, Teres—बङ्गाल और आसाम प्रदेशमें प्रधानतः उत्पन्न होता है।

३६ B, Trilda—बङ्गालका साधारण वांस। पेगू-प्रदेशके जलमय वनभागमें भी उत्पन्न होता है। यह वांस बहुत जल्द बढ़ता है। तीस दिनके भीतर पूरी बाढ़में आ जाता है। इसकी ऊंचाई ७० फुट और मोटाई १२ इञ्च होती है। पत्तियां मंझोली, कोमल और शिरा-विशिष्ट होती हैं। गांठें कुछ मोटी होती हैं। इस वांसको फाड़ कर कुछ दिन जलमें डुबो रखनेसे वह बहुत मजबूत और टिकाऊ होता है। इससे टोकरे, पंखे, चीक आदि बनते हैं। तलदा वांससे इसकी गांठे बहुत मजबूत होती हैं। लोग इस वांसके कच्चे कोपल खाते हैं। उसमें मसाला आदि डाल कर अचार भी बनाया जाता है।

३७ B, Verticillata—आम्बयना द्वीपमें उत्पन्न होता है। इसकी ऊँचाई १५-१६से कम नहीं होती। इसके पत्ते शरीरमें लगनेसे खुजलाहट पैदा होती है जो सहजमें दूर नहीं होती। इस कारण किसीको उसकी पत्तियां संग्रह करनेका साहस नहीं होता। Rumphius ने इस जातिके वृक्षका Leleba alba नामसे उल्लेख किया है।

३८ B. Vulgaris—भारतवर्षमें तमाम, विशेषतः श्रीहट्ट, चटग्राम और सिंहल द्वीपके दक्षिण और मध्यभागमें उत्पन्न होता है। अमेरिकाके वेष्ट इण्डिज द्वीपोंमें तथा दक्षिण-अमेरिकामें जगह जगह इसकी खेती होती है। यह वांस देखनेमें पीला होता है। बीच बीचमें सब्ज धारियां दिखाई देती हैं। बङ्गालमें इसे वासिनो वांस, बम्बईमें कलक, वंशकलक और शिङ्गापुरमें ऊना कहते हैं। यह वांस साधारणतः २०से ५० फुटसे ज्यादा लम्बा नहीं होता। मोटाई छोटे छोटे लड़कोंके बाहुमूलके समान होती है। पत्तियोंमें मोटे मोटे रेशे रहते हैं। पुराने वांसमें फूल लगते हैं, फूल देखनेमें बहुत कुछ B. Arundinacea श्रेणीसे होते हैं।

उपरोक्त छोटे बड़े सभी वांसोंके ऊपर कठिन छिलके होते हैं। बाँस जातिविशेषमें मोटा वा पतला होता है। किसी वांसमें कुछ दूरके फासले पर और किसीमें घनी गांठें होती हैं। शिङ्गापुर, चीन आदि देशोंमें इस बाँसकी छोटी छोटी छड़ी बनती है। किसी किसी श्रेणीका वांस ३० दिनके भीतर पूरी बाढ़में आ जाता है। कोई कोई २-३ मासके भीतर शाखाओंके साथ बढ़ता है। प्रधानतः वर्षाऋतुमें ही वांसके कोपल निकलते हैं, कप्तान शिलमानने १८३५ ई०में अच्छी तरह पर्यालोचना कर देखा है, कि वर्षाऋतुमें वज्रध्वनिके साथ ही वांसके साथ कोपल उगते हैं। पीछे वृष्टिके जलसे वह धीरे धीरे बढ़ता जाता है। चीन देशमें 'चेकिया' नामक एक प्रकारका चौका वांस पाया जाता है। वह घर आदि सजाने अथवा असवाब बनानेमें व्यवहृत होता है। इससे अच्छे अच्छे कलमदान बनते हैं।

वर्षाके आरम्भमें जड़ लगे हुए वांसको दूसरी जगह लगानेसे उसमें भी कोपल निकलते हैं। इसके सिवा बीजसे भी वांस उत्पन्न होता है। Lodicules और Palea संयुक्त बीजको जमीनमें गाड़नेके बाद सात दिनके भीतर ही अंकुर उगते हैं। कभी कभी वह मूल वृक्षमें संलग्न रह कर ही छः इञ्च तक बढ़ता है। उस समय कोपलको दूसरी जगह उखाड़ कर रोपते हैं। वह अङ्कुरित बीज थोड़े ही समयमें नष्ट हो जाते हैं, किन्तु अच्छी तरह यदि उसकी रक्षा की जाय, तो वह भारतवर्षके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें भेजा और उससे वांस लगाया जा सकता है। १०से १२ वर्षके भीतर वह सुपक्क और काटने लायक नहीं होता।

वांसका जैसा कोपल होगा, बढ़ने पर भी उसकी मोटाई उतनी ही होगी। कोपलके अनुसार वांस पतला मोटा होता है। वांसके बढ़नेसे उसकी मोटाई घटती बढ़ती नहीं, पूर्ववत् रहती है। समय पर उसकी केवल परिपक्कता निर्भर करती है। नारियल, ताड़, खजूर आदि पेड़ोंकी डाल देख कर जिस प्रकार उसके समय-

का निर्णय किया जाता है, बांसको गांठ देख कर उस प्रकार समयका पता नहीं लगाया जा सकता। उसका पुष्पोद्गम वा वीजाधान देख कर लोग उसकी अवस्थाका निर्णय करते हैं। मध्यभारतकी पहाड़ो प्रदेशवासी जातियां पहाड़ी बांसका वीजाधान देख कर अपनी उमर तककी गणना करती हैं। जो व्यक्ति बांसका दो "काटङ्ग" अर्थात् दो बार वीजाधान देखता है, उसकी उमर ६० वर्षसे कम नहीं होती।

साधारणतः २५ से ३५ वर्षके भीतर बांसमें फूल निकलते हैं। अनेक समय ४४ वर्षके बाद फूल निकलते देखे गये हैं। कभी कभी बांसके वीजसे चावल पाया जाता है। वह चावल बहुतेरे लोग खाते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि अकालके समय बाँसमें अधिकतासे चावल उत्पन्न होता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। १८३६ ई०के Trans. Agri Horti. Soc. of India, Vol. III p. 139-43 ग्रन्थमें लिखा है, कि उस समय कई जगह बाँसोंमें चावल तो देखा गया था, पर दुर्भिक्ष कहीं भी न था। खेतोंमें भी काफी फसल लगी थी। उस समय खेतका चावल रुपयेमें १६ सेर और बाँसका चावल २० सेर मिलता था। प्रत्येक बाँसमें ४से २० सेर तक चावल पाया जाता है। जो बाँस जितने हो विच्छिन्न भावमें और जितनी उर्वर भूमिमें रहता उस में उतना ही अधिक चावल मिलता है। चावल निकलने-के बाद बाँस आप ही आप सूखने लगता है। किन्तु उस-की जड़से पुनः कोपल निकलता है। कभी कभी वीजसे भी वृक्ष उत्पन्न होता है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि मनुष्य बाँसका कोपल तरकारी बना कर अथवा उसका अचार बना कर खाते हैं। गाय आदि जन्तु बड़े चावसे बांसकी पत्ती खाते हैं। गायके पसो रोगमें बांसकी पत्ती बहुत उपकारी है। १८१२ ई०के उड़ीसा-दुर्भिक्षमें लाखों आदमीने बांस-का चावल खा कर अपने प्राण बचाये थे। १८६५ ई०की महामारीमें धारवाड़ और वेलगाम जिलावासी प्रायः ५० हजार आदमियोंने कनाड़ामें आ कर बांसके तण्डुल-से जीवन धारण किये थे। १८६६ ई०को मालदह जिलेमें रुपयेमें १३ सेर बांसका चावल मिलता था। उस समय खेतके चावलकी दर रुपयेमें १० सेर थी। दुर्भिक्षके मारे वहांके लोग बाँसका ही चावल खा कर रहते थे, किन्तु चावल सुखकर नहीं था। Dr. Bidie का कहना है, कि उससे अजीर्ण और उदारामय रोग उत्पन्न होता है।

बांसके भीतर कभी कभी जल रहता है। वह जल बहुत ठंढा होता है। वायुरोगग्रस्त व्यक्तिको वह जल पिलानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। बांसकी उपकारिताके सम्बन्धमें खनाका जो वचन प्रचलित है उसका भावार्थ इस प्रकार है, पूर्वदिशामें कुमुदकह्लार परिशोभित हंस-विराजित पुष्करिणी तथा पश्चिममें वंशवन-समाच्छादित गृहवाटिका गृहस्थोंके लिये विशेष मङ्गलप्रद है।

बांससे जितने प्रकारकी चीजें बनती हैं, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके सिवा बांससे उत्कृष्ट वाद्ययन्त्र बनते हैं। श्रीकृष्णकी मोहन बांसुरी तथा प्रसिद्ध गायक तानसेनका सहनाई नामक वाद्ययन्त्र वेणु नामक बांसका ही बना हुआ था। आज कल भी तलदा बांस-से विभिन्न प्रकारकी बांसुरी बनाई जाती है। उसके तार कच्चे बांसके रेशेके होते हैं मलयवासी औकलोङ्ग नामक वाद्ययन्त्र आवश्यकतानुसार छोटे वा बड़े एक एक गांठदार बांसके चोंगेसे बनाये जाते हैं। वह जल-तरंगकी तरह बजाया जाता है। उसमें सुरका भी तार-तम्य साफ साफ मालूम होता है। गोपीयन्त्र, सितार और एक तारा आदि यन्त्रोंका पृष्ठदण्ड भी बांसका बनाया जाता है।

उपरोक्त नित्यव्यवहार्य्य वस्तुओंके अलावा वंशदण्ड-से मनुष्यजगत्में एक और सदुपकार होता है। वह मनुष्य समाजकी ज्ञानोन्नतिकी सौकर्य्यसाधक लिपिविद्याके एक अङ्गके सिवा और कुछ भी नहीं है। मानवजातिका मनोभाव वा ग्रन्थादि लिखनेके लिये कागजका आविष्कार हुआ है। इस वंशदण्डसे एक दूसरे प्रकारका तैयार होता है। वह कागज अपेक्षाकृत दृढ़ होनेके कारण लिपिकार्य्य-में उतना व्यवहृत नहीं होता। द्रव्यादिको रखनेमें उसका अधिक प्रचलन देखा जाता है।

Indian forester नामक पत्रिकाके ४र्थ भागमें चीन-देशीय बांसका कागज बनानेकी प्रथा दी गई है। वह इतना सहज है, कि सभी लोग आसानीसे उस प्रकारका बन-

लम्बन कर कार्य कर सकते हैं। वांसकी पत्तियां और गांठ को अच्छी तरह काट कर फेंक दे। पीछे उन वांसोंके तीन चार फुट लम्बे टुकड़े कर एक साथ वांध जलमें डुवो रखे। तालाव या चहबच्चेमें डुवोते समय उसकी एक पीठ पर काफी नमक छिड़क दे। इस प्रकार ऊपर और नीचे वार वार नमक छिड़क कर धीरे धीरे जल ढालना होता है। जब जल उसमें तमाम फैल जाय तब जल देना वन्द कर दे। इस प्रकार चूर्ण-मिश्रित जलमें ३।४ मास निमज्जित रहनेसे वह वांसका पुलिंदा सड़ जाता है। पीछे उसे ढेंकी वा ऊखलमें कूट कर चूर्ण करे। अनन्तर उस चूर्णको अच्छी तरह साफ कर फिरसे उसको परिष्कृत जलमें डुवा देना होता है। कागजके आयतन वा लम्वाई, चौड़ाई और मोटाईके अनुसार ही परिष्कार जल मिलानेका नियम है। इसके वाद उस जल मिश्रित वंशचूर्णके मांड़को चौकोन छननी आकारके सांचेमें ढाल कर यथारीति कागज वनाया जाता है। कागजके अनुरूप सांचेमें वह मांड़ समानभावमें फैल कर कागजका आकार धारण तो करता है, पर उस समय भी वह गोला रहता है। उस गीले कागजको सुखा लेना आवश्यक है। सांचेसे गीले कागजको निकाल कर पहले एक गरम दीवारमें उसे सुखा लेना होता है। इसी प्रकार वांसके कोपलको फिटकरी-मिश्रित जलमें सड़ा कर वनानेसे उमदा कागज वन सकता है। वंशयष्टिका हरिद्वर्ण नाश कर जो कागज वनाया जाता है वह मध्यम और वंशचूर्णका वनाया हुआ कागज निकृष्ट समझा जाता है। एक पक्का कारीगर प्रति मिनिटमें इस प्रकारके छः कागज वना सकता है।

अमेरिका और यूरोपवासी कागज-व्यवसायियोंने वेष्ट इण्डिज द्वीपपुञ्जसे हजारों टन 'वांसके रेशे' (Bamboo fibre) ला कर उत्कृष्ट कागज वनाया है। ब्रेजिलवासी वैज्ञानिकगण इसके वारीक रेशोंको रेशम वा पशममें मिला कर कपड़े बुनते हैं। Mr. Routledgeने भारतवर्षमें वांसके रेशेसे कागज वनानेकी व्यवस्था प्रतिपादन की। किन्तु कच्चे कोपलको छोड़ कर दूसरे परिपक्व वांसमें उसको उपयोगिता कम और खर्च अधिक देख उक्त प्रस्ताव मंजूर नहीं किया गया।

ऊपरमें वांसके सामान्य भेषज गुण लिखे जा चुके हैं। वैद्यकके मतसे यह वांस दो प्रकारका है—सामान्य और रन्ध्रवंश। राजनिघण्टुके मतसे इन दोनों प्रकारके वंश-गुण कषाय, कुछ तिक्त, शीतल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, पित्तदाह और अस्रनाशकारी तथा अम्लकर हैं। रन्ध्रवंशमें विशेष गुण यह है, कि वह दीपन अजीर्णनाशक, रुच्य, पाचन, हृद्य और शूलघ्न होता है।

वंशांकुर वा कोंपलका गुण—कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, शीतल, पित्तरक्तदाहकृच्छ्रघ्न और रुचिकर।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—सारक, शतवीर्य, मधुर और कषायरस, वस्तिशोधक, छेदन तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण और शोथनाशक; वांसका कोंपल—कटु, कषाय, मधुररस, कटु विपाक, रूक्ष, गुरु, सारक, विदाही तथा कफ, वायु और पित्तवर्द्धक; वेणुफल—सारक, रूक्ष, कषायरस, कटु विपाक, वायु और पित्तवर्द्धक, उष्णवीर्य, मूत्ररोधक और कफनाशक।

नल, शर आदि तृणविशेषको भी वैज्ञानिक मीमांसामें वंश जातिका कहा है। प्राचीन वैद्यकशास्त्रमें भी इसको तृणजातिमें शामिल किया है। नल और शर देखो।

वांसके पत्ते और कच्चे कोंपलको सिद्ध कर उसका काढ़ा सेवन करानेसे स्त्रियोंके रजोनिर्गम होता है। भारतवर्ष और चीनराज्यमें प्रसवके वाद प्रसूतिको वह काढ़ा पिलाया जाता है। इससे अच्छी तरह रक्तस्राव हो कर जरायु परिष्कार होता है।

वंशऋषि (सं० पु०) वे ऋषि जिनके नाम वंश-ब्राह्मणमें आये हैं।

वंशक (सं० क्ली०) वंश इव कायतीति कै-कः। १ अगुरु, अगर नामक गंधद्रव्य। वंश इव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। ३ इक्षुभेद, एक प्रकारका गन्ना या ईख। वैद्यकमें इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, सारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है। इसके रसका स्वाद कुछ खारीपन लिये और भारी होता है। ४ क्षुद्र, वंश छोटी जातिका वांस।

वंशकञ्ज (सं० क्ली०) कृष्णगुरुकाष्ठ, काले अगरकी लकड़ी।

वंशकठिन (सं० पु०) वंशा वैणवः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। वांश वन, वांसका जंगल।

वंशकफ (सं० क्लो०) सेमल आदिका धूआं जो आकाशमें उड़ता फिरता है।

वंशकर (सं० पु०) वंशं करोतीति कृ-अच्। वंशके कर्त्ता आदि पुरुष, वह पुरुष जिससे किसी वंशका आरम्भ हुआ हो।

वंशकरा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदी जो महेन्द्र पर्वतसे निकलती है। (मार्क०पु० ५७।२९) इसका दूसरा नाम वंशधारा भी है।

वंशकरा—चट्टग्रामके दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक प्राचीन नगर। यह नगर रामाइ या रामू नामसे परिचित है। टलेमीके भूवृत्तान्तमें Barakowra शब्दमें इस स्थानका वाणिज्य प्रभाव उल्लिखित है।

वंशकरीर (सं० पु०) वंशाकुंर, बांसका अंकुर। वंश देखो।

वंशकर्पूर (सं० पु०) वंशस्य कर्पूरः, कर्पूर इव शोभते इति रुच्-ल्यु, ततः षष्ठीतत्पुरुष। वंशरोचना, वंश-लोचन। वंशलोचन देखो।

वंशकर्मकृत् (सं० त्रि०) जो बांसका डाला, सूप आदि बनाता है।

वंशकर्मन् (सं० क्लो०) बांसका काम।

वंशकार (सं० पु०) गन्धक।

वंशकीर्त्ति (सं० स्त्री०) वंशस्य कीर्त्तिः। कुलगरिमा, वंशका गौरव।

वंशकुटजा (सं० स्त्री०) कृष्णकुटज, काली कर्ची।

वंशकृत् (सं० त्रि०) १ वंशकारी या वंशप्रतिष्ठा। २ बांसका काम करनेवाला।

वंशक्रमागत (सं० त्रि०) वंशस्य क्रमः इति वंशक्रमः तेन आगतः। १ पुरुषपरम्पराप्राप्त, वंशागत। २ कुल-प्रथाप्रसिद्ध। (कामन्दकनीति० ७।३१)

वंशक्षय (सं० पु०) वंशस्य क्षयः। वंशनाश, वंशका लोप।

वंशक्षीरी (सं० स्त्री०) वंशस्य क्षीरमिवास्या अस्तीति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। वंशरोचना, वंशलोचन।

वंशगुल्म (सं० क्लो०) एक पवित्र तीर्थका नाम। यहां स्नान करनेसे बड़ा पुण्य होता है। (भारत वनपर्व)

वंशघटिका (सं० स्त्री०) क्रीड़ाविशेष, एक प्रकारका खेल। (दिव्या० ।४७५।१९)

वंशचरित (सं० क्लो०) वंशाख्यान, प्रसिद्ध वंश आदिका इतिहास।

वंशचिन्तक (सं० पु०) वंशधारा भिज्ञ, वह जो अपने वंशका परिचय देनेमें एकदम अभिज्ञ हो।

वंशच्छेतृ (सं० पु०) १ वंशच्छेदक। २ बढ़ई। ३ राज-वंशके शेष राजा, वह नरपति जिससे वंशका गौरव और पर्याय लोप हो गया हो।

वंशज (सं० पु०) वंशाज्जायते इति जन-डः। १ वेणुयव, बांसका चावल। २ अगर। ३ तनय, पुत्र। (त्रि०) वंशात् सद्वंशाज्जायते इति जन-डः। सद्वंशजात, जिसका जन्म ऊंच वंशमें हुआ हो। पर्याय—वीज्य, वंश्य। (स्त्री०) ५ वंश-रोचना, वंशलोचन।

वंशजा (सं० स्त्री०) वंशे जायते इति जन-डः ततष्टाप्। १ वंशरोचना, वंशलोचन। भावप्रकाशके अनुसार यह वृंहण, वृष्य, बल्य, स्वादु और शीतल गुणयुक्त तथा तृष्णा, कास, ज्वर, पित्त, अस्र, कामला, कुष्ठ, व्रण, वात और मूत्रकृच्छ्र नाशक मानी गई है।

२ कन्या। ३ फलित ज्योतिषोक्त भूमिभेद।

वंशतण्डुल (सं० पु०) वंशजातस्तण्डुलः। वेणुयव, बांसका चावल।

वंशतिलक (सं० पु०) एक छन्दका नाम।

वंशतैल (सं० क्लो०) अरूंषिका रोगघ्न तैलभेद।

वंशदला (सं० स्त्री०) जोरिका नामक तृणविशेष, बांसा। वंशपत्री देखो।

वंशदा (सं० स्त्री०) पुरुकी एक पत्नीका नाम। (नृसिंह २८।१९)

वंशदूर्व्वा (सं० स्त्री०) १ कटकी। २ शतपर्वा नामकी एक प्रकारकी दूब। ३ किंशुक, टेसू। (राजनि०)

वंशधर (सं० त्रि०) वंशं धरतीति धृ-अच्। १ वंश-धारिमात्र। २ वंशमर्यादारक्षाकारी, वंशकी मर्यादा रखनेवाला। (पु०) ३ कुलमें उत्पन्न; संतान। ४ विभिन्न मतावलम्बी सम्प्रदायभेद। (सह्या० ३३।६५)

वंशधरमिश्र—एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने न्यायतत्त्व-परीक्षा, योगरूढ़िविचार आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं।

वंशधान्य (सं० क्ली०) वंशस्य धान्यम्। वेणुयव, बांसका चावल।

वंशधारा (सं० स्त्री०) १ महेन्द्रपादनिःसृत एक नदी। यह मध्यप्रदेशके कालहस्ती जिलेकी लोञ्जोगढ़ जमींदारीसे निकली है तथा अक्षा० १६°५५´ उ० तथा देशा० ८३° ३२´ पू० तक विस्तृत है। यह दक्षिणपूर्वाभिमुख विशाखपत्तन जिलेके बीच होती हुई किमेड़ी विभागके वट्टिली नगरके समीप गंजाम जिलेमें घुस गई है। वहांसे पुनः दक्षिण-पूर्व गतिसे वहती हुई कलिङ्गपत्तनके पास वङ्गोपसागरमें मिल गई है। यह नदी १७० मील तक विस्तृत है। उसके प्रायः अर्द्धांशमें नौका द्वारा पण्यद्रव्य ले जाया जाता है।

२ कुलपद्धति। ३ वंशवल्ली।

वंशधारिन् (सं० त्रि०) वंशं धरतीति धृ-णिनि। वंश-रक्षाकारी, वंशधर।

वंशनर्त्तिन् (सं० पु०) गृहनर्त्तक, भाँड़। (शुक्लयजुः ३०।२१)

वंशनाड़िका (सं० स्त्री०) वंश एव नाड़िका यत्र। १ वंशनाली, वह नल जो बाँसका बना हो। २ बाँसुरी।

वंशनाथ (सं० पु०) वंशके प्रधान या प्रसिद्ध व्यक्ति। (रामा० ४।२६।२६)

वंशनालिका (सं० स्त्री०) वंशनालोऽस्त्यस्यां इति वंशनाल-ठन्-टाप्। वंशी, बाँसुरी।

वंशनाश (सं० क्ली०) वंशस्य नाशः क्षयः, वंश-नाश-घञ्। १ वंशका लोप। २ फलितज्योतिपके अनुसार एक योग। ग्रहोंके जिस समावेशभेदसे मनुष्यकी मृत्यु होती है उसे वंशनाशयोग कहते हैं। यदि जन्मकालमें रवि, शनि और राहु एक घरमें रहे, तो उस मनुष्यका वंशनाश होता है।

वंशनेत्र (सं० क्लो०) वंशस्येव नेत्राण्यस्य। इक्षुमूल, ईखके अंकुरवाले डंठल जिन्हें जमीनमें गाड़नेसे ईखका नया पौधा उत्पन्न होता है। इसे आँखा भी कहते हैं।

वंशपत्र (सं० पु०) वंशस्य पत्राणीव पत्राण्यस्य। १ नल। वंशस्य पत्रम्। (क्लो०) २ वंशदल, बाँसका पत्ता। ३ हरितालभेद, एक प्रकारकी हरताल जो सबसे श्रेष्ठ समझी जाती है। रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसके शोधने-की प्रणाली यों लिखी है,—वंशपत्राख्य नामक हरताल, कुम्हड़े और चूनेके जलमें तीन बार या सात बार निक्षेप कर शोधन कर ले। पीछे वह शोधित तालक तण्डुलके आकारमें चूर्ण कर शरावमें रख कर जलावे। अन्तमें वर-तन ठंढा होने पर माणिक्याभ-रस उठा ले। इसकी विभिन्न शोधनप्रणाली, गुण और अपरापर विषय हरि-ताल शब्दमें लिखे हैं।

४ एक छन्दका नाम। साधारणतः वंशपत्रपतित छन्द कहलाता है।

वंशपत्रक (सं० क्ली०) वंशपत्रमेव स्वार्थे कन्। १ हरिताल, हरताल। (पु०) वंशस्य पत्रमिवाकृतिरस्येति स्वार्थे कन्। २ छुद्र मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली। ३ नल। ४ श्वेतवर्ण इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख जो सफेद होती है। (राजनि०)

वंशपत्रपतित (सं० क्ली०) एक छन्दका नाम। इसका पहला, चौथा, छठा, दशवां और सत्तरहवां वर्ण गुरु तथा बाकी लघु होता है कोई कोई इसको वंशपत्रचरित छन्द कहते हैं। पण्डित शम्भूके मतसे इसका दूसरा नाम वंशदल है। (छन्दोमञ्जरी)

वंशपत्रिका (सं० स्त्री०) १ वेणुदल, बांसका पत्ता। २ वंशपत्राकार तृण, वह घास जो बांसके पत्ते सी होती है। वंशपत्री देखो।

वंशपत्री (सं० स्त्री०) वंशपत्रगौरादित्वात् ङीष्। १ एक प्रकारकी हींग। २ तृणविशेष, एक घास जिसे बांसा कहते हैं। पर्याय—वंशदला, जीरिका, जीर्णपत्रिका। इसकी पत्तियां बांसकी पत्तियोंसे मिलती हैं। वैद्यकमें यह शीतल, मधुर, रुचिकारी तथा रक्तपित्तके दोषोंको शान्त करनेवाली कही गई है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि वंश-पत्रीके वेणुपत्री, पिण्डा, हिंगु और शिराटिका ये सब पर्यायक शब्द हैं। वंशपत्री हिंगुपत्रीके समान गुण-कारी है अर्थात् यह रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पाचक, कटुरस तथा हृद्रोग, वस्तिगत दोष, विवन्ध, अर्श, कफ, गुल्म और वायुनाशक मानी गई है। (भाव० पू० १ भाग)

वंशपरम्परा (सं० स्त्री०) सन्तान-सन्ततिक्रम, पुत्र-पौत्रा-दिक्रम।

वंशपाल—सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० ३३।१०६)

वंशपात्रकारिणी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो बाँसकी टोकरी आदि बनाती है।

वंशपाल—शिलालिपिवर्णित एक राजा।

वंशपीत (सं० पु०) वंशः वंशपत्रमिव पीतः। गुग्गुलु, गुग्गुल।

वंशपुष्पा (सं० स्त्री०) वंशस्य पुष्पाणीव पुष्पाणि यस्याः। सहदेवी लता।

वंशपूरक (सं० क्ली०) वंशस्येव पूरकमस्य। इक्षुमूल, ईखकी आँख या अंकुर।

वंशप्रतिष्ठानकर (सं० पु०) वंशख्याति या प्रतिपत्ति-विस्तारकारी, वह जो वंशकी उन्नति करता हो।

वंसवीज (सं० क्ली०) वंशस्य वीजं। वेणुयव, बाँसका चावल।

वंशब्राह्मण (सं० क्ली०) १ वैदिक आचार्यपरम्पराभेद। २ सामवेदके ब्राह्मणोंमें एक प्रधान ब्राह्मण जिसमें सामवेदी ब्राह्मणोंके वंशकार ऋषियोंकी नामावली है।

वंशभार (सं० पु०) बाँसका भार या मोटा।

वंशभृत् (सं० पु०) १ वह जो वंशका भरण पोषण करता हो। २ वंशका प्रधान व्यक्ति।

वंशभोज्य (सं० त्रि०) १ वंशका उपभोग्य। २ वंशानुक्रम प्राप्त। (क्ली०) ३ पैतृक राज्य। (भारत वनपर्व)

वंशमय (सं० त्रि०) वंश इवार्थे मयट्। वंशनिर्मित, बाँसका बना हुआ।

वंशमर्यादा (सं० स्त्री०) वंशस्य मर्यादा। १ वंशपरम्परा प्राप्त गौरव, कुलक्रमागत मर्यादा। २ राजदत्त उपाधि या खिताब।

वंशमूलक (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे अशेष पुण्य संचय होता है। (भारत वनपर्व)

वंशयव (सं० पु०) वेणुयव, बाँसका चावल।

वंशराज (सं० पु०) वंशानां राजा इति राजाहसखिभ्यष्टच्। १ सबसे बढ़िया या सबसे बड़ा बाँस। २ राजभेद। (ललितविस्तर)

वंशरोचना (सं० स्त्री०) रोचते इति, रुच नन्दादित्वात् ल्युः, टाप्, वंशस्य रोचना। स्वनामख्यात वंशपर्व मध्यस्थित श्वेतवर्ण औषधविशेष, वंसलोचन। पर्याय—त्वक्क्षीरा, वंशलोचना, तुगाक्षीरी, शुभा, वांशी, वंशजा, क्षीरिका, तुगा, त्वकक्षीरी, शुभ्रा, वंशक्षीरी, वैणवी, त्वक्सारा, कर्मरी, श्वेता, वंशकर्पूररोचना, तुङ्गा, रोचनिका, पिङ्गा, वंशशर्करा, वेणुलवण। इसका गुण—रूक्ष, कषाय, मधुर, हिम, श्वासकासघ्न, तापनाशक, रक्तशुद्धिकारक और पित्तोद्रेक प्रशमनकारी। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी गुणावली वंशजा शब्दमें लिखी गई है। वंशजा और वंशलोचन देखो।

वंशलक्ष्मी (सं० स्त्री०) कुललक्ष्मी।

वंशलोचन (सं० पु०) वंशलोचना देखो।

वंशलोचना (सं० स्त्री०) वंशरोचना रस्य लत्वम्। बाँसके पर्वके बीच नीलाभ श्वेतवर्ण पदार्थविशेष। चलित भाषामें इसका नाम वंसलोचन है। अंगरेजीमें इसे Bamboo Manna कहते हैं। यह पदार्थ प्रधानतः वेहुर बाँस या नल बाँससे (Bambusa arundixa Caeae) उत्पन्न होता है। भारतके विभिन्न स्थानोंमें यह औषध 'तवाशीर' कहलाती है।

भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। हिन्दी—वंसलोचन, बंसकपूर; बंगला—वांशकपूर, वंशलोचन; आसाम—सुतोरिया; अरब और पारस्य—तवाशीर; मराठी—वंशलोचन, वनशमोठा; गुर्जर—वांशकपूर, वाशनुमोठा; तामिल—मुङ्गुप्पु; तेलगू—वेदरुप्पु, तवक्षीरि; मलयालम्—मोलेउप्प; कनाड़ी—बिदरुप्पु, तवक्षीरा; शिंगापुर—उणा, लुणु, उणाका-कर्पूर; ब्रह्म—वा-छा; वाठेगा—कियो वाठेगसा, वसन; संस्कृत—वंशरोचना शब्दमें दिया गया है।

बाजारमें यह द्रव्य साधारणतः दो प्रकारका देखा जाता है—(१) कबूदो या नीलाभ तथा (२) सफेद या श्वेतवर्ण। प्राचीन वैद्यकमें इसका भेषज गुण लिखा है—

केवल भारतवासी ही नहीं, सुदूर अरब और ग्रीसवासी यवन लोग भी बहुत प्राचीनकालसे इस वंशज दुग्धके गुणसे जानकार थे। डायकोराइडस, प्लिनि, सालमासियस, स्प्रेङ्गल फी, फ्रेरे, हाम्बोल्ट आदि मनीषिगण इस महामूल्य द्रव्यका उल्लेख कर गये हैं। प्लिनिके Saccharon et Arabia fert sed slandatius India Est antem mel in arundinibus collectum आदि

पढ़नेसे निःसन्देह तवाशीरकी बात याद आ जाती है। सालमासियस् आदि तर्क द्वारा उसे ईखको शर्करा मानते हैं, किन्तु हम्बोल्ट उसकी मीमांसा कर कहते हैं, कि अरबी या पारसी तवाशोर शब्दसे शर्करा नहीं समझो जाती, वह संस्कृत त्वक्क्षीरा (Bark milk) शब्दका अपभ्रंशमात्र है।

हिन्दू आयुर्वेदमें और मुसलमानोंके हकीमी शास्त्रमें तवाशीरका बहुत प्रयोग देखा जाता है। यह शीतल, बलकर, कामोद्दीपक और श्वासकासनिवारक, अन्यान्य औषधके साथ हृद्रोगमें प्रयुक्त होता है। अजीर्ण, आमाशय तथा उदराध्मान आदि रोगोंमें यह शीघ्र ही फायदा पहुंचाता है। यह पिपासानिवारक और कफनिःसारक है। विषम ज्वरमें पिपासा अत्यन्त बलवती होने पर वंशलोचनका एक चूर्णक प्रस्तुत कर प्रयोग करनेसे भारी उपकार होता है। ८ भाग वंशलोचन, १६ भाग पीपल, ४ भाग इलायची और १ भाग दारचीनी एकत्र चूर्ण कर घी अथवा मधुके साथ अवलेह तैयार कर सेवन करावे। चूर्णकी मात्रा १से ले कर २ स्कुपल तक है। कफनिःसारणके लिये ५से ले कर २० ग्रेन तक वंशलोचन प्रयोग किया जा सकता है।

वांसमें यह महदुपकारी पदार्थ कैसे उत्पन्न होता है, वह आज भी ठीक निर्द्धारित नहीं हुआ है। हम लोगोंके देशमें कहते हैं, कि वांसमें स्वाती नक्षत्रका जल पड़नेसे वंशलोचन उत्पन्न होता है। उद्भिद्विदोंकी धारणा है, कि वांसका स्वभावजातरस अर्थात् गांठ या पोरके बीच जलाकार तरल पदार्थ (Natural sap) विकृत हो कर यह महामूल्य पदार्थ उत्पादन करता है। वांसकी करची और कोपलमें अधिक रस रहता है। उसमें एक प्रकारकी मीठी गंध पाई जाती है। यह रस परिपक्व हो कर क्रमशः तवाखीरमें परिणत हो जाता है। अफीम विभागीय अङ्गरेज-राजकर्मचारी Mr Peppe का कहना है—"मैंने एक देशी वणिक्को तवाखीर उत्पन्न करते देखा है। विशेष परीक्षासे उसको मालूम हो गया था कि वांसमें छेद करनेवाला एक प्रकारका कीड़ा रहनेसे वांसकी गांठमेंका रस नमकीन हो कर रासायनिक संयोगसे भिन्न आकारका हो जाता है। उसने एक गाछसे ऐसे कितने कीड़े ला कर आधे पके अन्य बहुतसे पेड़ों पर छोड़ दिये। इससे भी उसको वंशलवण मिल गया था। बार बार ऐसी चेष्टा कर वह सिद्धमनोरथ हुआ था। उससे मुझे भी काफी रुपये मिल गये थे।" फिर कोई कोई कहते हैं, कि वांसकी गांठके भीतर जो स्वाभाविक रससंचारहेतु सिलिका मिश्रित एक और प्रकारका पदार्थ (Silicious Concretion of an opaline nature) उत्पन्न होता है, वही तवाखीर कहलाता है। किन्तु यथार्थमें किस किस धातुके रासायनिक संयोगसे उसकी उत्पत्ति हुई है परीक्षा किये बिना उसका पता नहीं लग सकता।

ग्लासगो नगरके रसायनके अध्यापक टी, टमसनको विश्लेषण द्वारा मालूम हुआ है, कि इसके एक सौ भागमें ९०·५० अंश सिलिका, १·१० पटाश, ०·९०, पेरक्साइड आव आयरन ०·४०, आलुमिनिया ४·८७ जल तथा नाश—२·२३ अंश है। वंशलोचनके अलावा बाँसका अपरापर अंश भी दवाके काममें आता है। वांसके कोपल अथवा अग्रभागके आवरकके भीतर रेशेकी तरह जो बारीक पदार्थ रहता है वह विषैला होता है। वह रेशा खाद्यादिमें मिला कर सेवन कराया जा सकता है। सेवनके बाद मनुष्यके शरीरमें विष अपना प्रभाव दिखलाता है। कुछ महीनेके बाद वह व्यक्ति करालकालका शिकार बन जाता है।

वंशवर्द्धन (सं० त्रि०) वंशं वंशमानं वर्द्धयति वंश-वृध-ल्युट्। १ वंशाभिमानरक्षाकारी, वंशका गौरव बढ़ानेवाला। (पु०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० ३३।९५)

वंशवर्द्धिन् (सं० त्रि०) वंशं वर्द्धयतीति वंश-वृध-णिनि। १ वंशको मर्यादा रखनेवाला। (स्त्री०) २ वंशलोचना, वंसलोचन।

वंशवाटी—हुगली जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २२° ५७´ उ० तथा देशा० ८८° २६´ पू०के मध्य भागीरथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८०००से ऊपर है।

मुगल सम्राट् शाहजहांके जमानेमें वांसवाड़िया-राजवंशके पूर्वपुरुष राघव रायने इस नगरको बसाया। वांस-

बाड़िया-राजवंशके साथ इस नगरका इतिहास मिला हुआ है, इस कारण नीचे केवल उस राजवंशका थोड़ा परिचय दिया जाता है।

वहांके राजवंशके पूर्वपुरुष देवदत्त बङ्गदेशके राजा आदिशरके समसामयिक थे। मुर्शिदाबाद जिलेके दत्तवाटी नामक ग्राममें इन लोगोंका आदिनिवास है। दत्तवंशोय जमींदारके राजमहल रहनेसे उस ग्रामका वंशवाटी नाम पड़ा है। देवदत्तसे चौदह पीढ़ी नीचे द्वारकानाथ दत्त दत्तवाटीका परित्याग कर अग्रद्वीपमें रहने लगे। पीछे उनके पौत्र उदयदत्तने भागीरथी तीरस्थ पाटुली नामक स्थानमें नगर बसाया।

द्वारकानाथके पौत्र सहस्राक्षदत्तने ९८० बंगला साल (१५७३ ई०) में मुगल बादशाह अकबरसे एक फरमान प्राप्त किया। उससे उन्हें 'जागींदार' की उपाधि मिली थी। सहस्राक्षको जागोरस्वरूप फयजलपुर परगना मिला। सहस्राक्षके पुत्र उदय दत्तको बादशाह अकबरने वंशानुक्रमसे 'सभापतिराय'-की उपाधि दी थी। १६२८ ई०में उदयके ज्येष्ठ पुत्र जयानन्दने सम्राट् शाहजहान्से 'मजुमदार' की उपाधि और कोटएकतियारपुर परगना जागीरमें प्राप्त किया। जयानन्द राय मजुमदारके बड़े लड़के राघवको बादशाहने १२ रबि १०६६ हिजरी शक (१६४६ ई०) में 'मजुमदार' और 'चौधरो'-की उपाधि दी। उस समय बङ्गदेशमें चार मजुमदार थे उनमेंसे राघव एक थे। इस उपाधिके साथ राघवने निम्नलिखित २१ परगनोंकी जमींदारी और बहुत-सी निष्कर भूमि उपहारमें दी थी—आर्शा, हलदा, मामदानिपुर, पांजनौर, वोड़ो, जहानाबाद, शाईस्तानगर, शाहानगर, रायपुर, कोतवाली, पाउनान, खोसालपुर, बकसकदर, पाइकान, अमीराबाद, जङ्गलोपुर, माइहाटी, हावली शहर, मुजाफ्फरपुर, हातिकान्दी, मेलिपुर आदि। उक्त सम्पत्तिका शासन करनेके लिये राघवने वांशबाड़ीमें एक महल बनवाया। नदीगर्भमें पाटलीप्रासाद लीन हो जानेकी आशङ्कासे राघवके बड़े लड़के रामेश्वर बाँशबेड़ियामें राजपाट उठा लाये। उस समय यह एक ग्राममात्र था। रामेश्वरने नाना स्थानोंसे ३६० घर ब्राह्मण पण्डित, कायस्थ, वैद्य और विविध आचरणीय हिन्दुओंको तथा सौसे अधिक समरकुशल पठानोंको ला कर बांशबाड़ियामें बसाया था। काशीके पण्डित रामशरण तर्कवागीश उनके सभा-पण्डित हुए थे। उन्होंने इस ग्राममें ४१ टोल स्थापन कर तथा काशी और मिथिलासे अध्यापक ला कर छात्रोंको स्मृति, श्रुति, वेदान्त, न्याय, साहित्य और अलङ्कारशास्त्र सिखानेका उपाय कर दिया था। टोलका कुल खर्च वे ही देते थे।

वर्गियोंके अत्याचारके भयसे राजा रामेश्वरने बांशबाड़ियाका राजप्रासाद परिखा द्वारा सुरक्षित कर लिया। रामेश्वरके गढ़से वह राजभवन 'गढ़वाटी' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस परिखाको परिधि प्रायः एक मील थी। धनुर्बाण, ढाल, तलवार और बन्दूकके साथ पैदल सिपाही गढ़का पहरा देते थे। आवश्यकतानुसार वहां कुछ कमान भी रखी जाती थी। वर्गी लोग जब त्रिवेणीको लूटने आये, तब वहांके कुल लोगोंने गढ़में घुस कर अपनी अपनी जान बचाई थी। यह संवाद पा कर वर्गियोंने गढ़वाटी पर घेरा डाला। राजा रामेश्वरके पुत्र राजा रघुदेवने दलबलसे सज्जित हो रात्रिकालमें युद्ध कर मरहट्टोंको परास्त किया और वहांसे मार भगाया। रघुदेवने पूर्व खाईका संस्कार कर उसके चारों ओर एक दूसरी खाई खुदवाई थी।

राजा रामेश्वर रायने १०वीं सफर १०६० हिजरीमें औरङ्गजेब बादशाहसे एक सनद पाई थी। उससे उनको ज्येष्ठ पुत्र क्रमसे 'राजा महाशय' की उपाधि दी गई थी।

इस सनदके साथ बादशाहने उन्हें पञ्चपट्टा (पांच पोशाक) खिलअत तथा राजपदवीको सम्मानके साथ रक्षा करनेके लिये वांशबेड़िया ग्राममें ४०१ बीघा जमीन जागीर एवं कलकत्ता, बालिन्दा, हातियागढ़, अलोयारपुर, मेदनमल, मागुरा, घाशी, खलोड़, मानपुर, सुलतानपुर, कुजपुर और कौनिया नामक बारह परगनोंकी जमींदारी दी थी।

बांशबाड़ियाका वासुदेवमन्दिर भी राजा रामेश्वरका बनाया हुआ है। यह ईंटोंका बना है और उसके ऊपर तरह तरह कारीगरी दिखलाई गई है।

१६०१ शकाब्द (१६७६ ई०) में यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है।

उस मन्दिरमें प्राचीन बंगला हरफमें निम्नलिखित श्लोक आज भी दिखाई देता है—

"महीव्योमाङ्गशीतांशुगणिते शकवत्सरे।
श्रीरामेश्वरदत्तेन निर्ममे विष्णुमन्दिरम्॥"

राजा रघुदेवको नवाब मुर्शिद कुली खांने 'शूद्रमणि'-की उपाधि दी थी। राजस्व उगाहनेमें मुर्शिद कुलीका कठोर नियम बंगला इतिहासमें प्रसिद्ध है। किन्तु मुर्शिदको गुण-ग्राहिता भी सामान्य न थी। सुना जाता है, कि एक ब्राह्मण जमींदारके यहां बहुत बाकी पड़ गया था। इस कारण नवाबने उन्हें वैकुण्ठकुण्डमें फेंक देनेका हुकम दिया। राजा रघुदेवको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने कुल देना चुकती कर ब्राह्मणको मुक्त कर दिया। रघुदेवको इस उदारता पर मोहित हो नवावने उन्हें 'शूद्रमणि'-की उपाधि दी थी। तभीसे उनका नाम "शूद्रमणि राजा रघुदेव राय महाशय" पड़ा।

सचमुच एक समय क्या राजकार्य, क्या समरकौशल, क्या दानधर्म, क्या नीतिनिपुणता, सभीमें पाटुलीके महाशय-वंश वङ्गालके गौरव थे। उदार अकबर, कुटिल औरङ्गजेब, जहांगीर और शाहजहां पाटुली-वंशको मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर गये हैं। मुर्शिद कुली और मुआज्जम आदिकी इन तान्त्रिक हिन्दू कायस्थ-वंश पर अच्छी निगाह रहती थी। कुल-पञ्जिका तथा मुसलमान इतिहासमें पाटुली-वंशको यथेष्ट प्रशंसा है। राजा रघुदेवके पुत्र राजा गोविन्ददेव वङ्गालके ब्राह्मणोंको एक लाख बोघा जमीन ब्रह्मोत्तर दी थी।

राजा गोविन्ददेवके पुत्र राजा नृसिंहदेव पिताके मरनेके तीन मास बाद ११४७ साल (१७४० ई०)-के पूस मासमें उत्पन्न हुए थे। उस समय वङ्गाल और बिहारके नवाब थे अलीवर्दी खां। वर्द्धमानके जमींदारके पेशकार माणिकचन्द्रने अलीवर्दी खांको खबर दी, कि बांशवाड़ियाके राजा गोविन्ददेवको निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हो गई है। अलीवर्दी खांने गोविन्ददेवको कुल जमींदारी वर्द्धमानके जमींदारको दे दी। पांच महीनेके लड़के नृसिंहदेव गुरुके कौशलसे क्षण भरमें विपुल धनसे वञ्चित हुए। नृसिंहदेव अपने हाथसे यह बातें लिख गये हैं—"सन् ११४७ साल माह आश्विनमें मेरे पिता गोविन्ददेव रायको मृत्यु हुई, उस समय मैं गर्भमें था। वर्द्धमान जमींदारके पेशकार मानिकचन्द्रने नवाब अलीवर्दी खांके निकट मेरे पिताकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई है, ऐसा लिख कर मेरी पुस्तैनी जमींदारी अपने मालिककी जमींदारीमें मिला ली।"

राजा नृसिंहदेव राय महाशय।

इस घटनाके कुछ समय बाद वङ्गालका मुसलमान सिंहासन विलुप्त हो गया। सोलह वर्षमें सात नवाब मुर्शिदाबादके नवाब हुए। इससे वङ्गकी प्रजा बहुत भय भीत और स्तम्भित हो गई। कुमार नृसिंहदेव उस समय पैतृक सम्पत्तिका उद्धार करनेको कोशिश कर रहे थे। अंगरेजोंके जमानेमें बंगालमें अराजकता बहुत कुछ दूर हो गई। वार्न हेष्टिंस वङ्गालके शासनकर्त्ता हुए। नृसिंहदेवने उनकी शरण ली।

१७७६ ई०में वार्न हेष्टिंसने राजा नृसिंहदेवको एक सनद दी। उस सनदके अनुसार पैतृक जमींदारीमेंसे केवल नौ परगने नृसिंहदेवको मिले। नृसिंहदेव उतनेसे सन्तुष्ट न हुए। जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जेनरल बन कर आये, तब नृसिंहदेवने उनके पास जा कर अपना कुल दुखड़ा रोया और जमींदारी लौटा देनेके लिये प्रार्थना की। लार्ड कार्नवालिसने उन्हें विलायतमें कोर्ट आव डिरेक्टरके निकट अपील करने कहा। नृसिंह-

देव इस अपीलके खर्च वर्चाके लिये रुपये संग्रह करने लगे। इस उद्देशसे वे काशीधाम भी गये थे। वहां धार्मिक-योगपथावलम्बी संन्यासियोंके साथ मिल कर उनकी बुद्धि बिलकुल पलट गई। अब वे उन साधुओंको सहायतासे योगमार्गमें शनैः शनैः उन्नति-लाभ करने लगे। उन्होंने सोचा, कि विलायतमें अपील करनेसे बहुत खर्च पड़ेगा, पीछे उसका फल क्या होगा वह भी अनिश्चित है। जो अर्थ जमा हो चुका है, उससे यदि कोई स्थायी कीर्त्ति-मन्दिर बनवाया जाय, तो अर्थका सद्व्यय होगा। यह सोच कर वे षट्चक्रभेद्प्रणालीसे हंसेश्वरी मन्दिर बनवानेका आयोजन करने लगे। मन्दिरका निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ सही, पर वे उसे समाप्त न कर सके। १८०२ ई०में वे इस लोकसे चल बसे। १७८८ ई०में उन्होंने स्वयम्भवाका मन्दिर बनवाया था। मन्दिरगात्रमें एक प्रस्तर-फलक पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है :—

> "आशाचलेन्दुसम्पूर्णे शाके श्रीमत् स्वयम्भवा।
> रेजे तत् श्रीगृहञ्च श्रीनृसिंहदेवदत्ततः॥"

नृसिंहदेव संस्कृत और फारसी भाषाके सुपण्डित थे। चित्र और सङ्गीतविद्यामें भी उनकी असाधारण निपुणता थी। वे धर्मविषयक अनेक सुन्दर सङ्गीत रच गये हैं।

राजा नृसिंहदेवकी पत्नी रानी शङ्करीने सुविख्यात हंसेश्वरी मन्दिरकी १८१४ ई०में प्रतिष्ठा की। उस मन्दिरके एक प्रस्तरफलकमें निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं:-

> "शाकाब्दे रसवह्निमैत्रगणिते श्रीमन्दिरं मन्दिरं
> मोक्षद्वारचतुर्द्दशेश्वरसमं हंसेश्वरी राजितं।
> भूपालेन नृसिंहदेवकृतिनारब्धं तदाज्ञानुगा
> तत्पत्नी गुरुपादपद्मनिरता श्रीशङ्करी निर्ममे॥
> (शकाब्दा १७३६)
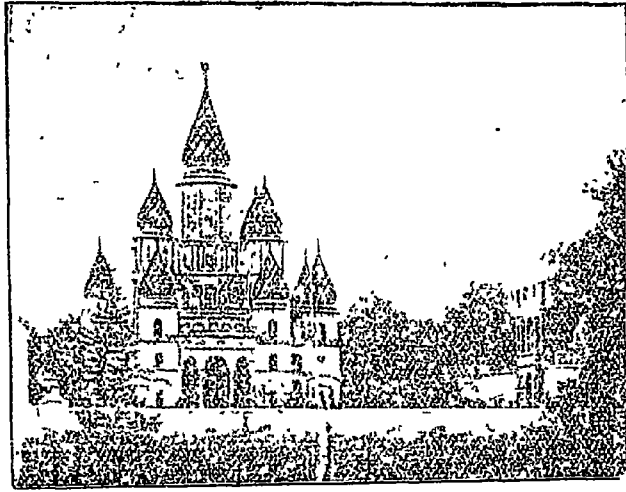
हंसेश्वरी मन्दिर।

हंसेश्वरी-मन्दिर वङ्गालकी एक उत्कृष्ट कीर्त्ति है। नाना स्थानोंसे अनेक यात्री इस देवमूर्त्तिके दर्शन करने आते हैं। एक त्रिकोण यन्त्रके ऊपर देवादिदेव सो रहे हैं। उनके नाभिकुण्डसे प्रस्फुटित पद्म निकला है। दारुमयी देवी मूर्त्ति हंसेश्वरी उसके ऊपर विराजित हैं। इसकी बनावट जनसाधारणकी दृष्टिको आकर्षण करती है।

स्वामीकी मृत्युके बाद रानी शङ्करीका वैषयिक कार्यकी ओर ध्यान दौड़ा। वह सबोंको संतानकी तरह प्यार करती थी। प्रजा भी उनके मधुर व्यवहारसे सन्तुष्ट रहती थी। वे लोग 'रानी-मा'-का नाम स्मरण किये विना जल ग्रहण नहीं करते थे। रानीमाता सामान्य चाल चलनकी पक्षपाती थी। पुत्र कैलासदेव शौकीनी और विलासिता बिलकुल देखना नहीं चाहती थी। ऋणी व्यक्तिको वे खुले हाथसे दान देती थी। पूजा-पार्वन आदिमें विशेषतः दोलयात्राके समय वे वङ्गालके पण्डितोंको निमन्त्रण

कर अवीर और एक रुपया दे कर प्रत्येकको प्रणाम करती थी।

१२४४ सालके अग्रहायण मासमें पुत्र कैलासदेव परलोकको सिधारे। उनके पुत्र देवेन्द्रदेवका भी १२५६ साल के वैशाखमासमें देहान्त हुआ। पौत्रकी मृत्युके छः मास बाद रानी शङ्करीकी मृत्यु हुई। रानी अपनी सारी जमींदारी मृत्युसे कुछ पहले एक विल करके हंसेश्वरी ठाकुरानीके नाम उत्सर्ग कर गई। नाबालिग प्रपौत्र राजा पूर्णेन्दुदेव सुरेन्द्रदेव और भूपेन्द्रदेव वंशानुक्रमिक सेवाइत नियुक्त किये गये।

१२६७ सालमें कनिष्ठ भूपेन्द्रदेवका, १३०३ सालको ११वीं श्रावणको ज्येष्ठ राजा पूर्णेन्दुदेवका और मध्यम सुरेन्द्रदेवका १३०४ सालकी १६वीं चैत्रको देहान्त हुआ।

वंशवितति (सं० स्त्री०) १ वंशगुच्छ। २ बाँसका जङ्गल। ३ कुलज-वंश।

वंशविदल (सं० पु०) वंशनिर्मित सन्दंशिका, बांसकी चिमटी।

वंशविदारिणी (सं० स्त्री०) वंशं विदारयतीति वंश-विद्र-णिच्-णिनि। वंशविदारणकारी रमणी।

वंशविशुद्ध (सं० त्रि०) वंशानि विशुद्धानि यत्र। १ परिष्कार वंश विनिर्मित। २ विशुद्ध कुलागत।

वंशविस्तर (सं० पु०) वंशस्य विस्तरः। समग्र वंशधारा, वंशपरम्परा।

वंशवृद्धि (सं० स्त्री०) वंशस्य वृद्धिः। १ पुत्र कलत्रादिके जन्मसे वंशका विस्तार। २ वंशसमृद्धि।

वंशव्यजनवायु (सं० पु०) वंशनिर्मित तालवृन्दकी वायु, बांसके पंखेको हवा। वैद्यकमें इसका गुण लिखा हुआ है। 'वंशव्यजनजो वातः रुक्षोष्णो वातपित्तदः।' (राजव० २ परि०)

वंशशर्करा (सं० स्त्री०) वंशस्य शर्करेव। १ वंशरोचना, वंसरोचन। २ वंशेक्षुकृत शर्करा, वह शर्करा जो बांसकी बनी हो। यह चक्षुकी हितकर, बल्य, सुमधुर और रुक्ष मानी गई है।

वंशशलाका (सं० स्त्री०) वंशस्य शलाकेव दार्ढ्यात्। १ वीणामूल; वीन, सितार आदि बाजोंका डंडा। २ वंशनिर्मित शलाका।

वंशसमाचार (सं० पु०) वंशस्य समाचारः। वंशाख्यान।

वंशस्थ (सं० त्रि०) वंशे तिष्ठतीति वंश-स्था-क। १ वंशस्थित। (पु०) २ बारह वर्णोंका एक वर्णवृत्त। इसका व्यवहार संस्कृत काव्योंमें अधिक मिलता है। इसमें जगण, तगण, जगण और रगण आते हैं। इसे वंशस्थविल भी कहते हैं।

वंशस्थविल (सं० क्ली०) वंशस्थ देखो।

वंशस्थिति (सं० स्त्री०) वंशस्य स्थितिः प्रतिपत्तिरिति। वंशकी मर्यादा, वंशख्याति। (रघु० १८।३०)

वंशहीन (सं० त्रि०) १ निर्वंश, जिसके वंशमें कोई न हो। २ अपुत्र।

वंशागत (सं० त्रि०) १ पुरुषपरम्पराप्राप्त। २ वंशक्रमागत।

वंशाग्र (सं० क्ली०) वंशस्य अग्रम्, प्रथमजातत्वात्। वंशाङ्कुर, बांसका कोपल।

वंशाङ्कुर (सं० पु०) वंशस्य अङ्कुरः। वंशकरीर, बांसका कोपल। पर्याय—वंशाग्र, यवफलाङ्कुर। यह कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, लघु और शीतल तथा रुचिकर और पित्तास्र दाहकृच्छ्रघ्न माना गया है।

वंशानुकीर्त्तन (सं० क्ली०) वंशावली कथन, वंशका परिचय देना।

वंशानुक्रम (सं० पु०) वंशस्य अनुक्रमः। वंशपरम्परा।

वंशानुग (सं० त्रि०) १ वंशकी तरह। २ तलवारके मध्यस्थ वक्रांशके जैसा। (वृहत्सं० ५०।३) ३ एक वंशसे दूसरे वंशमें जानेवाली (लक्ष्मी)।

वंशानुचरित (सं० क्ली०) वंशस्य अनुचरितम्। प्राचीन राजवंशोंकी कथा। यह पुराणोंके लक्षणोंमेंसे एक है।

वंशानुवंशचरित (सं० क्ली०) पुराणोक्त प्राचीन और आधुनिक वंशका आख्यान।

वंशान्तर (सं० पु०) नल।

वंशावती (सं० स्त्री०) पाणिनिके शरादि गणोद्धृत रमणीभेद। (पा० ६।३।१२०)

वंशावली (सं० स्त्री०) पूर्वपुरुषोंकी नामावली, किसी वंशमें उत्पन्न पुरुषोंकी पूर्वोत्तर क्रमसे सूची।

वंशावलेह (सं० पु०) बांसका छिलका।

वंशास्थि (सं० क्लो०) मर्कटकी अस्थि ।

वंशाह्व (सं० पु०) वेणुयव, बाँसका चावल ।

वंशिक (सं० क्ली०) वंशोऽस्त्यस्येति ठन् । १ अगुरुकाष्ठ, अगरकी लकड़ी । २ कृष्णवर्ण इक्षुभेद, काला गन्ना । (त्रि०) ३ वंशसम्बन्धीय । ४ वंशोद्भव, वंशमें उत्पन्न ।

वंशिका (सं० स्त्री०) वंशिक-टाप् । १ अगुरु, अगर । २ वंशी, बासरी । ३ पिप्पली ।

वंशिन् (सं० त्रि०) वंश-इनि । वंशसम्बन्धीय, वंशजात ।

वंशिवाद्य (सं० क्ली०) वंशीवाद्य, बांसुरी ।

वंशी (सं० स्त्री०) वंशकारणत्वेनास्त्यस्याः अच्, गौरादित्वात् ङीष् । १ मुरली, बांसुरी ।

वंशी बजानेमें पटु शठचूड़ामणि श्रीकृष्णने गोपाङ्गनाओंके मनोरञ्जनके लिये वृन्दावनमें बांसुरी बजाई थी। वृन्दावनमें "वंशीध्वनि" इस अर्थसे मनप्राणहरणकारी कृष्णका बांसुरी निनाद ही समझा जाता है। इसी कारण कविगण वंशीमें कवित्व प्रभाव आरोप कर गये हैं। वंशी श्रीकृष्णकी अङ्गभूषण थी यह प्रेमरसास्वादी वैष्णव कवियोंकी भक्तिगाथासे स्पष्ट मालूम होता है।

सङ्गीतशास्त्रमें इस वंशीवाद्ययन्त्रका प्रकार और प्रस्तुतप्रणाली लिपिबद्ध है। जिस प्रकार विना तालके गानकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार वाद्ययन्त्र नहीं रहनेसे तालकी महिमा समझमें नहीं आती। क्योंकि ताल वाद्ययन्त्रसे ही निकला है। उनमेंसे मुंहसे फूंक कर जो बांसुरी बजाई जाती है, उसको वंशी कहते हैं।

पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है, कि वंशी बांस हीकी होनी चाहिये ; पर खैर, लाल चन्दन आदिकी लकड़ीकी अथवा सोने चांदीकी भी हो सकती है। यह बाजा प्रायः डेढ़ बालिस्त लंबा होता और मुंहसे फूंक कर बजाया जाता है। इसका एक सिरा बांसकी गांठके कारण बंद रहता है। बंद सिरेकी ओर सात स्वरोंके लिये सात छेद होते हैं और दूसरी ओर बजानेके लिये एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ छेद होता है। उसी छेदवाले सिरेको मुंहमें ले कर फूंकते हैं और स्वरोंवाले छेदों पर उंगलियां रख उसे बंद कर देते हैं। जब जो स्वर निकलना होता है तब उस स्वरवाले छेद परकी उंगली उठा लेते हैं। इसी तरह बार बार उंगलियां रख और उठा कर बजाते हैं।

मातङ्ग ऋषिके मतानुसार नलीका छेद कनिष्ठा उंगलीके मूलके बराबर होना चाहिये। जो छोर मुंहमें रख कर फूंकते हैं उसका नाम 'फूत्काररन्ध्र' और सुर निकलनेवाले सात छेदोंका नाम 'ताररन्ध्र' है। इस वंशीके सिवा मातङ्गके अनुसार चार प्रकारकी मुरलियां और होती हैं। उनके नाम मदानंदा, नंदा, विजया और जयः हैं। मदानन्दामें ताररन्ध्र फूत्काररन्ध्रसे दश अंगुल पर, नन्दामें ग्यारह अंगुल पर, विजयामें बारह अंगुल पर और जयामें चौदह अंगुल पर होते हैं।

२ चार कर्षका एक मान जो आठ तोलेके बराबर होता है। ३ वंशलोचन। ४ संग्रहणी-चिकित्सामें जातीफलादि चूर्ण।

वंशीदास—भेदाभेदवाद नामक वैदान्तिक ग्रन्थके प्रणेता।

वंशीधर (सं० पु०) १ वह जो वंशी बजाता हो। २ श्रीकृष्ण ।

वंशीधर—एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने वैद्यकुतूहल और वैद्यमहोत्सव नामक दो ग्रन्थ लिखे। इनके पुत्र विद्यापतिने १६८२ ई०में वैद्यरहस्यपद्धति लिखी थी।

वंशीधर—१ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने वाचस्पति मिश्र-रचित तत्त्वकौमुदीकी टीका और शब्दप्रामाण्यखण्डनकी रचना की। २ छन्दोमञ्जरी और पिङ्गलप्रकाश नामक टीकाकार। ३ एक वैदिक। ये कुशपञ्जिका और होमविधि नामक दो वैदिक ग्रन्थ लिख गये हैं।

वंशीधरदैवज्ञ—दैवज्ञकालनिधि नामक संस्कृतज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

वंशीधारिन् (सं० पु०) वंशीं धरतीति धृ-णिनि। १ श्रीकृष्ण। २ वंशीवादक, वह जो बांसरी बजाता हो।

वंशीपत्रा (सं० स्त्री०) योनिभेद। "वंशीपत्रा तु या युक्तवंशीपत्रद्वयाकृतिः।" (लोकप्र० ५७ अ०)

वंशीय (सं० त्रि०) वंशे भवे इति वंश-छ्यञ्। सद्वंशजात, सम्भ्रान्त।

वंशीवट (सं० क्ली०) वृन्दावनमें वह बरगदका पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। वृन्दावन देखो।

वंशीवदन (सं० त्रि०) वंशीन्यस्ताधर, सर्वदा वंशी बजानेवाला।

वंशीवदनदास—एक बंगाली वैष्णव पदकर्त्ता। इनके पिताका नाम छकौड़ी चट्टोपाध्याय था। छकौड़ी पाटुलीमें रहते थे। पीछे वे नदियाके कुलियापहाड़ पर आ कर बस गये। १५१६ शकमें चैत्रमासकी पूर्णिमाको इसी कुलियापहाड़ पर वंशीदासका जन्म हुआ।

गौड़ीय वैष्णव-समाजमें वंशीदास श्रीकृष्णके अवतार माने जाते हैं। कुलियापहाड़ पर इन्होंने 'प्राणवल्लभ' विग्रहकी प्रतिष्ठा की। पीछे विल्वग्राममें आ कर बस गये। विल्वग्रामके भट्टाचार्य वंशीवदनके ज्ञाति हैं।

महाप्रभुके संन्यासग्रहणके बाद वंशीवदनने कुछ दिन नवद्वीपके गौराङ्ग-भवनमें वास किया था। यहां उन्होंने 'दीपान्विता' नामक एक छोटा काव्य लिखा। इनके दो पुत्र थे, चैतन्य और नित्यानन्द। चैतन्यके पुत्र रामचन्द्र और शचीनन्दन प्रसिद्ध पदकर्त्ता थे। शचीनन्दनने "गौराङ्ग-विजय" नामक एक काव्य भी लिखा है।

वंशीवदन शर्मा—गोपीचन्द्रके संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका तथा नैषधकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वंशीवादक (सं० पु०) शुषिरयन्त्र-वादनाभिज्ञ, वह जो खूब अच्छा वंशी बजाना जानता हो।

वंशीवादन (सं० पु०) वंशी बजाना।

वंशोद्भव (सं० त्रि०) वंशज, कुलमें उत्पन्न।

वंशोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वंशरोचना, वंसलोचन। २ बांसकी शकरा।

वंश्य (सं० त्रि०) वंशे भवः। वंश-(दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४) इति यत्। १ सद्वंशजात, अच्छे कुलमें उत्पन्न, सम्भ्रान्त। पर्याय—कुल्य, वीज्य। २ वंशज, कुलमें उत्पन्न। (पु०) ३ पृष्ठावयवविशेष, पीठकी रीढ़। ४ गृहोदूर्ध्व काष्ठाविशेष, वह बड़ी लड़की जो छाजनके बीचोबीच रीढ़के समान होती है। इसे बंड़ेर भी कहते हैं।

वंसग (सं० पु०) वृषभेद, सांढ़।

वंहियस् (सं० त्रि०) बहुत, प्रचुर।

वंहिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय, अधिक।

व (सं० अव्य०) इव अर्थबोधक। इस प्रकार, ऐसा।

व (सं० क्ली०) वा ल गमनहिंसयोः कः। १ प्रचेता। २ वरुणवीज।

व (सं० पु०) वानमिति वा भावे घः। १ सान्त्वन। वाति गच्छतीति वा-ल-गमने कः। २ वायु। ३ वरुण। ४ बाहु। ५ मन्त्रण। ६ कल्याण। ७ वसति, वस्तो। ८ वरुणालय, समुद्र। ९ शार्दूल। १० वस्त्र। ११ शालूक, जलमें उत्पन्न होनेवाले कंद। १२ वन्दन। १३ वाण। १४ सेरकी, कोईका कंद। १५ अस्त्र। १६ खड्गधारी पुरुष। १७ मूर्वा नामक लता। १८ वृक्ष। १९ मद्य। २० कलशसे उत्पन्न ध्वनि। (त्रि०) २१ बलवान्।

व (फा० अव्य०) और। जैसे राजाका रईस।

वक (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध जलचर पक्षिजातिविशेष, बगला नामका पक्षी। अंगरेजीमें इसे Ardea Nivea कहते हैं। यह जलमें मछली पकड़ कर अपना पेट भरता है।

वक।

२ अगस्तका पेड़ या फल। ३ एक दैत्यका नाम। इसे श्रीकृष्णने वाल्यावस्थामें मारा था। ४ एक राक्षस जिसे भीमने मारा था। ५ कुवेर। ६ एक यक्षका नाम। ७ दाल्भ्यगोत्रीय एक ऋषि। ८ एक राजाका नाम। ९ एक जातिका नाम। विशेष विवरण वक शब्दमें देखो।

वक—काश्मीरके एक राजा। इनके पिताका नाम था मिहिरकुल। मिहिरकुलकी मृत्युके बाद काश्मीरके सिंहासन पर वक बैठे। राज्य पानेके थोड़े ही दिनोंके बाद वकने प्रजाओंका चित्त प्रसन्न कर लिया। इनके पिताके समय प्रजाको जो दुःख हुआ था, उस दुःखको प्रजा इनको पा कर भूल गई। इनका राज्य धर्म्म और न्याय पर स्थापित हुआ। इन्होंने वकेश्वर नामक शिवको प्रतिष्ठा की थी और वकवती नामकी एक नदी और लवणोत्सं नामका एक नगर बसाया था। इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन

तक काश्मीरका राज्य किया था। एक दिन सन्ध्याके समय भट्टा नामकी एक योगिनी सुन्दर वेश धारण करके राजा वकके पास पहुंची और इन्हें अपने वचनोंसे मोहित करनेके लिये उसने यागोत्सव देखनेका निमन्त्रण दिया। राजा अपने पुत्र पौत्रोंको साथ ले कर दूसरे दिन प्रातःकाल उस योगिनीके आश्रममें गये। योगिनीने उन सभीका बलिदान किया। (राजतरङ्गिणी)

वककच्छ (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपद। यह नर्मदाके किनारे अवस्थित है। कथासरित्सागरमें लिखा है, कि उज्जयिनीके राजा सातवाहन सर्ववर्माने कलाप व्याकरणका अध्ययन करके अपने गुरुको यह राज्य गुरु-दक्षिणामें दिया था।

वककल्प (सं० पु०) युगान्तरीय कल्पभेद।

वककुण्ड—वम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम और प्राचीन तीर्थस्थान। यह सम्पगांवसे बारह मील दक्षिण पूरब पड़ता है। यहां यखनाचार्यका एक सुन्दर पत्थरका मन्दिर है। इसके अलावा यहां और भी कई प्राचीन मन्दिरोंका खंडहर पड़ा है।

वकचर (सं० पु०) वकस्येव चर-अच्। १ वकव्रतिन्, वकके समान व्रती या आचारधारी। (क्लो०) २ बगलेके विचरनेका स्थान।

वकचिञ्चिका (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली।

वकजित् (सं० पु०) १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

वकत्व (सं० त्रि०) वकका भाव या धर्म्म, कुटिलता।

वकदाल्भ्य—एक महातपा मुनि। इन्होंने जिस स्थान पर तपस्या की थी वह स्थान बड़ा ही पवित्र तथा शान्तिप्रद है। वहां जानेसे अन्य जातिके भी लोग ब्राह्मण हो जाते हैं। इनका आश्रम धृतराष्ट्रके राज्यमें था।

एक दिन मुनियोंने राजा विश्वजित्के लिये बारह वर्षमें समाप्त होनेवाला यज्ञ किया था। उस यज्ञमें पाञ्चाल देशके मुनि वकदाल्भ्य भी गये हुए थे। मुनिको उस यज्ञमें बड़े बलिष्ठ २१ बैल दक्षिणामें मिले। वकदाल्भ्यने अन्य मुनियोंसे कहा,—'तुम लोग इन बैलोंको ले लो। मैं जा कर राजा धृतराष्ट्रसे दूसरे बैल ले लूंगा।' मुनि राजा धृतराष्ट्रके पास पहुंचे और उनसे बैल मांगे। राजाने कोप हो कर, कहा ब्राह्मणाधम! देखो, हमारी गायें मरी पड़ी हैं, चाहो इन्हींमेंसे ले जाओ।' इस पर वकदाल्भ्य बड़े बिगड़े और कहा—'इस मूर्ख राजाको देखो तो सही, मुझे गाली देता है। अच्छा अब मैं इसका राज्य नष्ट किये देता हूं।'

वकदाल्भ्य उन्हीं मरी गायोंको ले गये और उन्हींका मांस काट काट कर हवन करने लगे। यथा समय यह भयङ्कर यज्ञ समाप्त हुआ। उधर धृतराष्ट्रका राज्य नष्ट होने लगा। तब राजा धृतराष्ट्र मुनिके शरणापन्न हुए। मुनिने क्षमा कर दिया। (महाभारत)

वकद्वीप—विष्णुपुरसे चार कोस दक्षिण मल्लभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां कृष्णरायको प्रसिद्ध मूर्त्ति मौजूद है। देशावली पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहां शिलावती अवस्थित है। अभी यह स्थान 'वगड़ी' कहलाता है।

वकधूप (सं० पु०) गन्धद्रव्यविशेष, वृकधूप।

वकनख (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

वकनिसूदन (सं० पु०) वकस्य निसूदनः। भीमसेन।

वकपञ्चक (सं० क्ली०) कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तककी पांच तिथियां। बकपञ्चक देखो।

वकपुष्प (सं० पु०) १ अगस्तका पेड़। (क्लो०) २ वकफूल।

वकयन्त्र (सं० क्लो०) आसव आदि भवकेसे उतारनेके लिये एक यन्त्र या बरतन। इसके मुंह पर बगलेकी गरदनकी तरह टेढ़ी नली लगी रहती है। अंगरेजीमें इसे Retort कहते हैं।

वकया—चम्पारणके अन्तर्गत एक नदी।

(भविष्य ब्रह्मख० ४२।१४१)

वकराक्षस—एकचक्रानगरवासी राक्षसभेद। कुन्तीदेवी पञ्चपाण्डवके साथ एकचक्राके एक ब्राह्मणके घर रहती थी। एक दिन अकस्मात् ब्राह्मणके घरमें आर्त्तनाद सुनाई दिया। अन्तःपुर जानेसे कुन्तीदेवीको मालूम हुआ, कि इस नगरमें वक नामक एक राक्षस रहता है। नगरवासी प्रति दिन बारी बारी उसे अपने अपने परिवारमेंसे एक एक मनुष्य और दो दो महिष देनेको बाध्य हैं। आज ब्राह्मणकी बारी है, इसीलिये वे रोते हैं। यदि आज वकराक्षसके पास किसीको नहीं भेजा जायगा, तो वह आ

कर उन्हें सर्वंश नाश करेगा। ब्राह्मणके मुखसे यह कातरोक्ति सुन कर कुन्तीदेवी बहुत दुःखित हुई और बोली, 'हे ब्राह्मण! तुम्हारे केवल एक पुत्र और एकमात्र युवती कन्या है। उन्हें भेजना अथवा तुम्हारा और तुम्हारी पत्नीका उपहार ले कर जाना उचित नहीं। मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारी भलाईके लिये उस पापी राक्षसके पास जायगा।' अनेक वादानुवादके बाद कुन्तीकी बात पर धीरज बांध कर ब्राह्मण कुन्तीके साथ भीमसेनके पास गये और यह कठिन कार्य करनेका अनुरोध किया। भीम भी यह महाव्रत करनेके लिये तैयार हो गये।

सवेरे भीमसेनने खाद्य सामग्री ले कर राक्षसके वासस्थानकी ओर यात्रा कर दी। अनन्तर राक्षसके घरमें घुस कर वे स्वयं भोजन करने लगे और राक्षसका नाम ले ले कर पुकारने लगे। वकराक्षस बहुत विगड़ा और भीमसेन पर टूट पड़ा। भीमसेनने उस पर ऐसा प्रहार किया, कि उसकी पीठकी हड्डी चूर चूर हो गई। आखिर वह पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

वकराज (सं० पु०) राजधर्मन् नामक राजविशेष। ये कश्यपके पुत्र थे। (भारत शान्तिपर्व०)

वकवध (सं० पु०) १ वकासुरका निहनन। २ महाभारतीय आदिपर्वके अन्तर्गत एक वर्वाध्याय। इस अध्यायमें भीमसेन द्वारा एकचक्रा नगरीमें वकासुरका निधनवृत्तान्त लिखा है।

वकवृक्ष (सं० पु०) वकफूलका पेड़।

वकल (सं० पु०) वृक्षके छिलकेका अभ्यन्तरस्थ पतला वल्कल।

वकवृत्ति (सं० पु०) वकस्येव स्वार्थसाधिका वृत्तिर्यस्य। कदाचार, धोखा दे कर काम निकालनेकी घातमें रहनेकी वृत्ति। वकवृत्ति देखो।

वकवैरिन् (सं० पु०) वकस्य वैरी घातकत्वात्। १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

वकव्रत (सं० क्ली०) कपटी मनुष्य, वगलेकी तरह घातमें रहनेवाला।

वकव्रतचर (सं० पु०) वकवृत्तिधारीमात्र।

वकव्रतिक (सं० पु०) कपटी संन्यासी, वह जो स्वार्थके लिये कपटभावसे धर्माचार करता हो।

वकव्रतिन् (सं० पु०) वकव्रतिक देखो।

वकसक्थ (सं० पु०) ऋषिभेद।

वकसहवासिन् (सं० पु०) पद्म, कमल।

वकसुहान - एक प्राचीन नगरका नाम।

वकाची (सं० स्त्री०) वकचिञ्चिका मत्स्य, एक प्रकारकी छोटी मछली।

वकाण्डप्रत्याश (सं० स्त्री०) वृथा आशा।

वकारि (सं० पु०) वकस्य अरिः। १ श्रीकृष्ण। २ भीमसेन।

वकाल—पूर्ववङ्गवासी चण्डाल जातिभेद। ये लोग वकाली नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यह जाति चण्डालसे भिन्न होने पर भी आपसमें वैवाहिक आदान-प्रदान अथवा आहार व्यवहार प्रचलित नहीं है। परन्तु एक ही ब्राह्मण दोनोंका पौरोहित्य करता है। ढाका जिलेके जाफरगञ्ज और माणिकगञ्ज उपविभागमें ही अधिकांश वकालोंका वास है। ये लोग खेतीवारी नहीं करते, नाव खे कर अपना गुजारा चलाते हैं। कोई कोई गांव गांवमें घूम कर हल्दी मशाला आदि वेचता है। सबोंका काश्यपगोत्र है। अधिकांश व्यक्ति कृष्णमन्त्रके उपासक हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि व्यवसाय वाणिज्य द्वारा ये लोग वहुत कुछ उन्नत हुए हैं, इसी कारण चण्डालके साथ इनका संस्रव नहीं है। ये लोग चण्डालकी तरह घृणित पशुमांस नहीं खाते और न शराब ही पीते हैं।

वकालत (अ० स्त्री०) १ दूसरेकी किसी कामका भार लेना, दूसरेके स्थानापन्न हो कर काम करना। २ दूसरेके पक्षका मंडन। ३ दूतकर्म, दूसरेका संदेशा जोर दे कर कहना। ४ अदालत या कचहरीमें किसी मामलेमें वादी या प्रतिवादीकी ओरसे प्रश्नोत्तर या वादविवाद करनेका काम, मुकदमेमें किसी फरीककी तरफसे बहस करनेका पेशा।

वकालतन अ० क्रि० वि०) वकीलके द्वारा, असालतनका उलटा।

वकालतनामा (अ० पु०) वह अधिकार-पत्र जिसके द्वारा कोई किसी वकीलको अपनी तरफसे मुकदमेमें बहस करनेके लिये मुकर्रर करता है।

वकासुर (सं० पु०) १ दैत्य। यह पूतनाका भाई और कंसका अनुचर था। कंसकी आज्ञा पा कर यह कृष्णका वध करनेके लिये गया और उन्हें निगल गया। पीछे कृष्णने होंठ फाड़ कर इसको यमपुर भेज दिया। (आदिपुराण और भागवत) २ एक राक्षस। भीमसेनने इस राक्षसको उस समय मारा था जब पांचो पांडव लाक्षागृहसे निकल कर वनमें जा कर रहते थे।

वकी (सं० स्त्री०) एक राक्षसीका नाम।

वकील (अ० पु०) दूसरेके कामको उसकी ओरसे करनेका भार लेनेवाला। २ राजदूत, एलची। ३ दूसरेका सन्देशा ले जा कर उस पर जोर देनेवाला, दूत। ४ दूसरेका पक्ष मंडन करनेवाला, दूसरेकी ओरसे उसके अनुकूल बात करनेवाला। ५ प्रतिनिधि। ६ कानूनके अनुसार वह आदमी जिसने वकालतकी परीक्षा पास की हो और जिसे हाईकोर्टकी ओरसे अधिकार मिला हो; कि वह अदालतोंमें मुद्दई या मुद्दालैकी ओरसे बहस करे।

वकुल (सं० पु०) १ स्वनामप्रसिद्ध पुष्पवृक्ष, अगस्त का पेड़ या फूल। इसके छिलके और फूलका गुण— शीतल, हृद्य, विषदोषहर, मधुर, कषाय, मदाढ्य, रुच्य, हर्षद, स्निग्ध, मलसंग्राही, क्षीराढ्य और सुरभि। इसकी छालके चूरसे दांत धोनेसे दांतकी जड़ मजबूत होती है। विस्तृत विवरण पवर्गके वकुल शब्द देखो।

वकुलपुष्प (सं० क्ली०) वकुलका फूल।

वकुला (सं० स्त्री०) वकुल-टाप्। १ कुटकी नामक ओषधि। (पु०) २ पर्णमृग।

वकुलाद्य तैल—तैलौषधभेद। प्रस्तुत-प्रणाली—क्वाथके लिये वकुल फल, लोध, हाड़जा, नीली भंटी, अमलतास, वावलाकी छाल, शाल वृक्षकी छाल, खैरकी लकड़ी; कुल मिला कर १२॥० सेर; तिलका तेल ४ सेर, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ क्वाथद्रव्य सब मिला कर १ सेर। इस तेलको मुखमें घी या नस्यकी तरह सूंघनेसे हिलता हुआ दांत मजबूत होता है।

(भैषज्यरत्ना० मुखरोगाधिका०)

वकुलित (सं० त्रि०) वकुलपुष्पपरिशोभित।

वकुली (सं० स्त्री०) १ काकोली नामकी ओषधि। २ वकुल, मौलसिरी।

वकुश (सं० पु०) वह त्यागी यति या साधु जिसे अपने ग्रन्थों, शरीर और भक्तों या शिष्योंकी कुछ कुछ चिन्ता रहती हो।

वकूअ (अ० पु०) घटित होना, प्रकट होना।

वकूफ़ (अ० पु०) १ ज्ञान, जानकारी। २ बुद्धि, समझ।

वकेरुका (सं० स्त्री०) वलाका, बगली।

वकेश (सं० पु०) वकप्रतिष्ठित शिवलिङ्गभेद।

वकोट (सं० पु०) वक, बगला।

वक्कलिन (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वक्कस (सं० पु०) मद्यविशेष, एक प्रकारकी शराब। इसका गुण—

"हृद्यः प्रवाहिकाटोपदुर्नामानिलशोकहृत्।
वक्कसो हृतसारत्वात् विष्टम्भो वातकोपनः।
दीपनसृष्टविण्मूत्रो विशदोऽल्पमदो गुरुः॥" (सुश्रुत)

वक्कुल—बौद्धभेद।

वक्त (अ० पु०) १ समय, काल। २ किसी बातके होनेका समय, अवसर, मौका। ३ इतना समय कि कोई काम किया जा सके, अवकाश, फुरसत। ४ मृत्युकाल, मरनेका नियत समय।

वक्तन् फौक्तन् (अ० क्रि० वि०) १ यदाकदा, कभी कभी। २ यथासमय।

वक्तपुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकान्था पाण्डुमेवासके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह सम्पत्ति रावल उपाधिधारी तीन सामन्तोंके अधीन है। ये लोग बड़ोदाके गायकवाड़को कर देते हैं। नगरभाग डेढ़ वर्गमील है।

वक्तव्य (सं० त्रि०) ब्रू वच वा तव्य। १ कुत्सित, हीन। २ वचनीय; वाच्य, कहने योग्य। ३ कुछ कहने सुनने लायक। वच भावे तव्य। (क्ली०) ४ वचन, कथन। ५ वाच्य, वह बात जो किसी विषयमें कहनी हो। ६ निन्दा, शिकायत।

वक्तव्यता (सं० क्ली०) कथनयोग्यता, वह बात जो कहनेके लायक हो।

वक्तव्यत्व (सं० क्ली०) वक्तव्यता देखो।

वक्तशाली (सं० पु०) स्वनामख्यात मध्यदेशमें होने-

वाला शालिधान्य। मराठीमें इसे धकोई धान कहते हैं। यह लघु और सुखपाच्य होता है।

वक्ता (सं० त्रि०) वच-तृच्। १ वाग्मी, बोलनेवाला। २ भाषणपटु, वदान्य। पर्याय—वद, वदावद, वक्ता, सुष्टुवक्ता, बहुभाषी, वाग्मी, वावदूक, वचक, सुवचा, प्रवाक्, पण्डित। (पु०) ३ कथा कहनेवाला पुरुष, व्यास।

वक्ति (सं० स्त्री०) उक्ति, कथा, वाक्य।
(बृहदारण्यक उप०४।३।२६)

वक्तु (सं० पु०) मन्दवाक्यभाषी, कुत्सित वाक्य बोलनेवाला पुरुष।

वक्तुकाम (सं० त्रि०) वक्तुं कामयते यः सः वा वक्तुं कामो यस्य सः। बोलनेमें इच्छुक या अभिलाषी।

वक्तुमनस् (सं० त्रि०) वक्तुं मनो यस्य सः वक्तुमनाः। कथितमानस, जिनने बोलनेकी इच्छा की है।

वक्तृ (सं० त्रि०) कथनशील, वक्ता, बोलनेवाला।

वक्तृक (सं० त्रि०) वक्तृ-स्वार्थे कन्। १ कथनपटु, जो बोलनेमें खूब चतुर हो। २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

वक्तृता (सं० स्त्री०) वच-तृच् तस्य भावः तल्-टाप्। १ वाक्पटुता, वाग्मिता। २ व्याख्यान। ३ भाषण, कथन।

वक्तृत्व (सं० क्ली०) १ वक्तृता, वाग्मिता। २ व्याख्यान। ३ कथन।

वक्तृत्वशक्ति (सं० स्त्री०) बोलनेकी क्षमता।

वक्त्र (सं० क्ली०) वक्ति अनेनेति वच्-(गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यस्त्रः। उण् ४।१६६) इति त्रः। १ मुख। वदन, आस्य, आनन, मुखार्थवाचक है। इस वक्त्र शब्दसे वन्दूकका मुख, हाथीकी सूंड़, पक्षीकी चोंच, तीरका फलक, भृङ्गारका नल आदि समझा जाता है। २ तगरकी जड़। ३ वस्त्रभेद, एक प्रकारका कपड़ा। ४ एक प्रकारका छंद जो अनुष्टुभ् छंदके अनुरूप होता है। ५ कामका आरम्भ। ६ बीजगणितोक्त प्रथम गृहीत संख्या। ७ तगरका फूल।

वक्त्रक (सं० त्रि०) सुखसम्बन्धी। वक्त्र देखो।

वक्त्रकटुता (सं० स्त्री०) मुखवैर।

वक्त्रक्षुर (सं० पु०) वक्त्रस्य क्षुर इव, पृषोदरादित्वात् खः। दण्ड।

वक्त्रज (सं० पु०) ब्रह्मणो वक्त्रात् जायते इति। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इति श्रुतेः जन-ड। १ ब्राह्मण। (त्रि०) २ मुखजात, मुखसे उत्पन्न।

वक्त्रताल (सं० क्ली०) वक्त्रस्य तालम्। मुखवाद्य, वह ताल जो मुखसे उत्पन्न किया जाय।

वक्त्रतुण्ड (सं० पु०) गणेश।

वक्त्रदंष्ट्र (सं० त्रि०) वक्त्रे मुखदेशे दंष्ट्राणि यस्य। १ दीर्घदन्तविशिष्ट, जिसके दांत बड़े बड़े हों। (पु०) २ शूकर, सूअर।

वक्त्रदल (सं० क्ली०) तालू।

वक्त्रद्वार (सं० क्ली०) मुखविवर।

वक्त्रपट (सं० क्ली०) मुखावरणवस्त्र।

वक्त्रपट्ट (सं० पु०) वक्त्रस्य पट्ट इव। वह बरतन जिसमें घोड़ा चना खाता है, तोबड़ा। पर्याय—तलिका, तलसारक।

वक्त्रपरिस्पन्द (सं० पु०) १ वक्तृताके समय मुखका कांपना या हिलना। २ कथन, वाचन।

वक्त्रबाहु (सं० पु०) बाराहीकंद।

वक्त्रभेदिन् (सं० पु०) वक्त्रं भिनत्तीति भिद्-णिनि। १ तिक्तरस, तीता। (त्रि०) २ मुखविदारक, मुंह फाड़नेवाला।

वक्त्रयोधिन् (सं० पु०) १ एक असुरका नाम। (हरिवंश) (त्रि०) २ मुखसे लड़ाई करनेवाला (पक्षि आदि)।

वक्त्ररन्ध्र (सं० क्ली०) मुखविवर।

वक्त्ररुह (सं० त्रि०) १ मुखसे जो उत्पन्न हो। (पु०) २ वह बाल जो हाथीकी सूंड़ पर होते हैं।
(बृहतसं० ६७।१०)

वक्त्ररोग (सं० पु०) मुखरोग, मुंहकी बीमारी।

वक्त्ररोगिन् (सं० त्रि०) मुखरोग-भोगकारी, जिसे मुंहकी बीमारी हुई हो।

वक्त्रवास (सं० पु०) वक्त्रं वासयति सुरभीकरोतीति वासि-(कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। १ नारङ्ग, नारंगी। वक्त्रस्य वासः। २ मुखतान्ध।

वक्त्रशल्या (सं० स्त्री०) गुञ्जा, घुंघची।

वक्त्रशोधन (सं० क्ली०) वक्त्रस्य शोधनमिव। १ निम्बुफल, नीबू। २ भव्य, कमरख। ३ मुखशोधन, मुखशुद्धिकरण।

वक्त्रशोधिन् (सं० पु०) वक्त्रं शोधयतीति शुध्-णिच्-णिनि। १ जंबीरी नींबू। २ मुखशोधक।

वक्लाधिवास (सं० पु०) नागरङ्गवृक्ष, नारंगीका पेड़।

वक्लवालु (सं० पु०) बाराहीकन्द।

वक्लासव (सं० पु०) वक्लस्य आसवः। लाला, थूक।

वक्ली (सं० स्त्री०) स्त्री वक्ता।

वक्त्व (सं० त्रि०) वक्तव्य, कहने योग्य।

वक्फ (अ० पु०) १ वह भूमि या सम्पत्ति जो धर्मार्थ दान कर दी गई हो, किसी धर्मके काममें लगी हुई जायदाद। २ किसीके लिये कोई चीज या धन सम्पत्ति आदि छोड़ देना। ३ किसी धर्मके काममें धन आदि देना, धर्मार्थ दान।

वक्फ़नामा (फा० पु०) वह पत्र जिसके अनुसार किसीके नाम कोई चीज वक्फ की जाय, दानपत्र।

वक्फ़ा (अ० पु०) १ अवकाश, मोहलत। २ काम करनेसे विराम।

वक्मन् (सं० क्ली०) मार्ग, मार्गभूत।

वक्मराजसत्य (सं० त्रि०) स्तोत्र करनेवालोंका विश्वस्त। (ऋक् ६।५१।१०) 'वक्मराजसत्याः वक्मवचनं स्तोत्रं। तस्य राजान ईशाना वक्मराजानः स्तोतारः तेषु सत्या अवितथाः।' (सायण)

वक्म्य (सं० त्रि०) १ प्रशंसार्ह, बड़ाई करनेके योग्य। २ स्तुतियोग्य।

"प्र तं विवक्मि वक्म्यो एषां मरुतां महिमासत्यो अस्ति।" (ऋक् १।१६७।६)

'वक्म्यः सर्वैः स्तुत्यैः सत्येऽबाध्योऽमोघोऽस्ति तम्।' (सायण)

वक्र (सं० क्ली०) वङ्कते इति वकि-कौटिल्ये रन्। पृषोदरादित्वात् न लोपः यद्वा वञ्चतीति वञ्चु गतौ (स्फायितञ्चिवञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्। १ नदीवङ्क, नदीका मोड़। पर्याय—पुटभेद, वङ्क। २ तगरपादुका। चक्रपाणि शिरोगाधिकारोक्त श्वेताद्याद्य तैलमें इसको व्यवहारोपयोगिता लिपिबद्ध कर गये हैं।

(पु०) वञ्चतीति वञ्च गतौ (स्फायितञ्चिवञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्। ३ शनैश्चर। ४ मङ्गलग्रह। ५ रुद्र। ६ त्रिपुरासुर। ७ पर्पट। ८ वक्रगतिविशिष्ट ग्रह। जिस किसी ग्रहका आश्रित क्यों न हो, उस ग्रहसे सूर्याधिष्ठित राशि तीस अंशके अंदर ही सूर्य रहेंगे। वक्रगति देखो।

९ महाभारतके अनुसार करुषदेशीय एक राजा। (भारत २।१४।११) १० स्थानच्युत और वक्रीभूत अस्थिभङ्गविशेष। ११ रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१२।१३) १२ जातिविशेष।

(त्रि०) वङ्कते इति। वकि कौटिल्ये रन्। पृषोदरादित्वात् न लोपः। यद्वा वञ्चि रक्। १३ अनृजु, टेढ़ा, बाँका। पर्याय—अराल, वृजिन, जिह्म, ऊर्मिमत्, कुञ्चित, नत, आविद्ध, कुटिल, भुग्न, वेल्लित, वङ्कुर, वेङ्कु, विनत, उन्कुर, अवनत, आनत, भंगुर।

"स वै तथा वक्र एवाभ्यजायदष्टावक्रः प्रोथितो वै महर्षिः।" (भारत ३।१३२।१२)

कविकल्पलताके नीचे लिखे बहुत-से वक्रचिह्नोंके नाम दिये जाते हैं,—

अलक, भाल, भ्रू, नखचिह्न, अंकुश, कुञ्चिका, भग्नकङ्कण, बालेन्दु, दात्र, कुद्दाल, चन्द्रक, शुकास्य, पलाशपुष्प, विद्युत्, कटाक्ष, शक्रधनु, फणा, प्रबोध, कर, हरितदन्त, शूकरदन्त, सिंहनखादि। (कविकल्पलता) १४ झुका हुआ, तिरछा। १५ क्रूर, कुटिल। १६ शठ।

वक्रकण्ट (सं० पु०) वक्राः कण्टाः कण्टका यस्य। १ बदरवृक्ष, बेरका पेड़। २ कुटिलकण्टक।

वक्रकण्टक (सं० पु०) वक्राः कण्टकाः अस्य। खदिरवृक्ष, खैरका पेड़।

वक्रखड्ग (सं० पु०) वक्रः खड्गः। करवाल, नाखून और तलवार।

वक्रग (सं० पु०) वक्र याति गच्छतीति गम ड। सर्प, साँप।

वक्रगति (सं० स्त्री०) वक्रा गतिर्यस्याः। १ वह जिसकी गति टेढ़ी हो। २ मङ्गल या नदी आदि।

खगोलस्थित ग्रहगण एक स्थानसे चल कर निर्दिष्ट समयमें पुनः उसी स्थान पर आ जाते हैं। ग्रहोंके इस चिरन्तन प्रसिद्ध गमनका नाम गति है। गमनका कारण रहनेसे ही ग्रहगण इस गतिशक्ति द्वारा चालित होते हैं। वे एक प्रकारकी गतिसे नहीं चलते। आपसके आकर्षण

और अन्यान्य शक्तिप्रभावसे उनकी वक्रगति हो जाती है।

ज्योतिषियोंने मङ्गलादि ग्रहोंकी वक्रगतिकी दिन-संख्या निर्देश की है। उससे जाना जाता है, कि मङ्गलकी वक्रगति ७६ दिन, बुधकी २१ दिन, बृहस्पतिकी १०० दिन, शुक्रकी १२ दिन तथा शनिको वक्रगति १८४ दिन है।

विस्तृत विवरण ग्रह शब्दमें देखो।

वक्रगल (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा जो मुँहसे फूंक कर बजाया जाता है।

वक्रगामिन् (सं० त्रि०) १ असरल गति, टेढ़ो चाल चलनेवाला। २ असत् व्यक्ति, भूठा। ३ शठ, कुटिल। ४ प्रवञ्चक, धोखेबाज।

वक्रगुल्फ (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

वक्रग्रीव (सं० पु०) वक्रा ग्रीवास्य। उष्ट्र, ऊंट।

वक्रचञ्चु (सं० पु०) वक्रा चञ्चुर्यस्य। शुकपक्षी, तोता।

वक्रण (सं० क्ली०) वक्रीकरण, टेढ़ा करना।

वक्रणा (सं० स्त्री०) वक्रण देखो।

वक्रता (सं० स्त्री०) १ वक्रका भाव या धर्म, टेढ़ापन। २ क्रूरता, शठता।

वक्रत्व (सं० क्ली०) वक्रता देखो।

वक्रताल (सं० क्ली०) वक्रं तालं यत्र। वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है। पर्याय—मुखवाद्य, वक्रनाल।

वक्रताली (सं० स्त्री०) वक्रतालगौरादित्वात् ङीष्। मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है।

वक्रतु (सं० पु०) देवताभेद। (मार्कपु० ८०।६)

वक्रतुण्ड (सं० पु०) वक्रं तुण्डं यस्य। १ शुक पक्षी, तोता। २ गणेश। (त्रि०) ३ वक्रोष्ठ, जिसके होंठ टेढ़े हों।

वक्रदंष्ट्र (सं० पु०) वक्रा दंष्ट्रा यस्य। शूकर, सूअर।

वक्रदन्त (सं० पु०) दन्तवक्र नामक राक्षस।

वक्रदन्ती (सं० स्त्री०) हस्वदन्ती, लघुदंती।

वक्रदल (सं० क्ली०) तालू। वक्त्रदल देखो।

वक्रदृष्टि (सं० स्त्री०) १ टेढ़ी दृष्टि। २ क्रोधकी दृष्टि। ३ मन्द दृष्टि।

वक्रधर (सं० पु०) द्वितीयाका टेढ़ा चन्द्रमा धारण करनेवाले, शिव।

वक्रनक (सं० पु०) वक्रः कुटिलः नक्र इव हिंसश्च। १ पिशुन, चुगलखोर। २ शुक पक्षी, तोता।

वक्रनाल (सं० क्ली०) मुखवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है।

वक्रनास (सं० त्रि०) वक्रनासा या चञ्चुयुक्त, जिसकी नाक या चोंच टेढ़ी हो।

वक्रनासिक (सं० पु०) वक्रा नासिका यस्य। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ कुटिल नासायुक्त, टेढ़ी नाकवाला।

वक्रपाद (सं० त्रि०) वक्रं पादं यस्य। खञ्ज, लंगड़ा।

वक्रपुच्छ (सं० पु० स्त्री०) वक्रं पुच्छं यस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

वक्रपुच्छिक (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

वक्रपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम।

(कथासरित्सा० १०७, १३६)

वक्रपुष्प (सं० पु०) वक्राणि पुष्पाण्यस्य। १ वकवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ पलासका पेड़।

वक्रपुष्पिका (सं० स्त्री०) लांगूलिका, विषलांगूली।

वक्रवालधि (सं० पु०) वक्रो वालधिः केशयुक्तलांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। (क्ली०) २ कुटिलपुच्छ, टेढ़ी पूंछ।

वक्रभनित (सं० क्ली०) वक्रं कुटिलं भणितम्। कुटिलवाक्य, खोटी बात। पर्याय—छेकोक्ति, वक्रोक्ति, श्लेषोक्ति।

वक्रभाव (सं० पु०) १ वक्रता, टेढ़ापन। २ असरलता, कुटिलता।

वक्रम (सं० पु०) अवक्रमणमिति अव-क्रम-भावे घञ्। अल्लोपः। पलायन, भागना।

वक्रय (सं० पु०) मूल्य, दाम।

वक्ररेखा (सं० स्त्री०) टेढ़ी रेखा।

वक्रलाङ्गूल (सं० पु०) वक्रं लांगूलं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। (क्ली०) २ कुटिल पुच्छ, टेढ़ी पूंछ।

वक्रवक्त्र (सं० पु०) वक्रं वक्त्रमस्य। १ शूकर, सूअर। (त्रि०) २ वक्रमुखविशिष्ट, टेढ़ा मुंहवाला।

वक्रशल्या (सं० स्त्री०) वक्रं शल्यमिव पत्रादिकं यस्याः। १ कुटुम्बिनी क्षुप, एक प्रकारकी टेढ़ी लता। २ कटुतुम्बी,

कड़वा कद्दू या घीया। ३ रक्तचांगूलिका, लाल फूलकी विषलांगली।

वक्रशृङ्ग (सं० त्रि०) जिसके सींग टेढ़े हों (महिष आदि)।

वक्राग्र (सं० क्ली०) वक्रं अग्रं यस्य। कपाटवक्रवृक्ष, बेतुका पेड़।

वक्राङ्ग (सं० क्ली०) वक्रं अङ्गं यस्य। १ हंस। २ सर्प, साँप। ३ कुटिल अवयव, टेढ़ा अङ्ग। (त्रि०) ४ कुटिल अवयवविशिष्ट, जिसका अंग टेढ़ा हो।

वक्राङ्घ्रि (सं० पु०) वक्र पाद, टेढ़ा पैर।

वक्राङ्घ्रि संग्रामदेव—काश्मीर-राज यशस्करके पुत्र। राजा यशस्कर जब बहुत बीमार पड़े, तब उन्होंने पहले अपने पुत्रको छोड़ कर अपने चाचाके नाती वर्णटको राज्य दिया था; परन्तु यशस्करके जीते-जी जब वर्णट मनमाना करने लगा, तब मन्त्रियोंकी सलाहसे यशस्करने वर्णटको अलग करके अपने पुत्रको राज्य दिया।

राजा यशस्करके परलोक सिधारने पर संग्रामदेवकी उमर कम थी इसलिये उनकी पितामही अभिभाविका हो गई। पर्वगुप्त उन दिनों राज्य लेनेके लिये बहुत व्याकुल हो रहा था। उसने एक दिन मौका देख कर राजभवन पर चढ़ाई की और संग्रामदेवको मार डाला तथा उनके गलेमें पत्थर बंधवा कर उन्हें किसी नदीमें फेंकवा दिया। इनके पैर टेढ़े थे इस कारण इनका नाम वक्रांघ्रि पड़ गया था। इन्होंने ६ महीने १ दिन राज्य किया था।

वक्रातप (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक जाति। इस जातिका दूसरा नाम वक्राति है।

वक्रि (सं० त्रि०) मिथ्यावादी, झूठ बोलनेवाला।

वक्रित (सं० त्रि०) वक्र-इतच्। १ वक्रताप्राप्त, जो टेढ़ा हो गया हो। २ वक्र, टेढ़ा।

वक्रिन् (सं० पु०) वक्रो वक्रतास्यास्तीति इनि। वैदिकधर्मविरुद्धवादित्वादस्य तथात्वम्। १ बुद्धदेव, जिन्होंने टेढ़ी युक्तियोंसे वैदिक मतका विरोध किया था। २ वह प्राणी जिसके अंग जन्मसे टेढ़े हों। ३ काकूक्ति। (त्रि०) ४ वक्रविशिष्ट, अपने मार्गको छोड़ कर पीछे लौटनेवाला। फलितज्योतिषमें लिखा है, कि जो ग्रह अपनी राशिसे एकबारगी दूसरी राशिमें चला जाता है, उसे अतिवक्री या महावक्री कहते हैं। यह वक्रता मंगल आदि पांच ग्रहोंमें ही होती है। वक्रगति देखो।

वक्रिम (सं० त्रि०) वक्र भावे क्मिच् यद्वा वक्र-इव। वक्र, कुटिल, टेढ़ा।

वक्रिमन् (सं० पु०) वक्र-इमनिच्। वक्रता, टेढ़ापन।

वक्री (सं० पु०) वक्रिन् देखो।

वक्रीकरण (सं० क्ली०) कोई सीधी वस्तुको यन्त्र या आगके योगसे टेढ़ा करना।

वक्रीकृत (सं० त्रि०) अवक्रो वक्रीकृतः अभूततद्भावे च्विः। वक्र, जो टेढ़ा हो गया हो।

वक्रीभाव (सं० पु०) १ वक्रता, टेढ़ापन। २ कुटिलता, शठता। ३ प्रवञ्चकता, धोखेबाजी।

वक्रीभू (सं० त्रि०) १ वक्रताप्राप्त, जो टेढ़ा हो गया हो। २ प्रवञ्चनायुक्त, धोखेबाज। ३ असरलचित्त, कुटिल।

वक्रेतर (सं० त्रि०) जो वक्र न हो अर्थात् सरल।

वक्रेश्वर—वीरभूम जिलेके वर्त्तमान प्रधान शहर सिउड़ीसे ८ मील पश्चिममें अवस्थित एक अति प्राचीन तीर्थस्थान। हरिपुर परगनेमें तांतिपाड़ा नामक जो ग्राम है उससे आध कोस दक्षिण 'वक्रेश्वर' नालेको बगलमें उक्त प्राचीन तीर्थभूमिका ध्वंसावशेषमात्र रह गया है। यहांकी प्राचीन कीर्त्ति अधिकांश विलुप्त होने पर भी 'वक्रेश्वर' स्रोतस्वतीके दक्षिण आज भी ३०० शिवमन्दिर और अनेक उष्ण प्रस्रवण तीर्थयात्रीके नयन और मनको आकर्षण करते हैं। प्राचीन वक्रेश्वरक्षेत्रके नामानुसार आज भी यह स्थान "भूम-वक्रेश्वर" नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध है।

गौड़देशके मध्य वक्रेश्वर शैव लोगोंका एक प्रधान और प्राचीन तीर्थ है। वहां शाक्त और वैष्णव प्रभाव फैलनेके साथ साथ यह सुप्राचीन क्षेत्र धीरे धीरे वङ्गवासीके निकट अपरिज्ञात हो गया है, इसमें सन्देह नहीं।

ब्रह्माण्ड-उपपुराणके अन्तर्गत वक्रेश्वर-माहात्म्यमें वक्रेश्वरक्षेत्रके पूर्व परिचय और महिमाका सविस्तर वर्णन देखनेमें आता है।

"गौड़देशे महत् क्षेत्रं वक्रेश्वरसुसञ्ज्ञतम्।
यन्नामस्मरणेनापि मुच्यते सर्वकिल्विषात्॥"

गौड़देशमें वक्रेश्वर नामक एक बड़ा क्षेत्र है। उस क्षेत्रका स्मरण करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होते हैं।

इस वक्रेश्वरकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है,—

सत्ययुगमें महातपा अष्टावक्रका नाम था सुव्रत। त्रैलोक्यमें ऐश्वर्यकी आस्पदीभूत लक्ष्मीके स्वयम्वरमें देवसभामें मनोहर नृत्य हुआ था। देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि सभी उस स्वयम्वरमें उपस्थित थे। वहां *अमरपति शचीनाथ* इन्द्रने सबसे पहले *लोमशऋषिको* पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय अर्पण किया। यह देख भगवान् सुव्रत बड़े विगड़े, लेकिन तपभङ्ग हो जानेके भयसे उन्होंने कोई शाप नहीं दिया। क्रोधके कारण उनका अष्टाङ्ग वक्र हो गया। उसी दिनसे उनका अष्टावक्र नाम पड़ा। इस प्रकार वक्राङ्ग हो मुनिवरने इस क्षेत्रमें आ कर कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। उनकी तपस्यासे सर्वलोक उत्तप्त हो उठा। दश हजार वर्ष तक केवल जल पी कर; पीछे दश हजार वर्ष केवल पेड़की पत्तियां खा कर और उसके बाद दश हजार वर्ष वायु भक्षण कर जितेन्द्रिय मुनिवरने कठोर तपस्या की थी। उनके निकट पावक आकारके तीन कुण्ड निकल आये। उन्हीं कुण्डोंके नाम दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि हैं। ये तीनों अग्नि अतल नामक पातालमें अवस्थित हैं। उनका जल स्वर्गप्रदायक है। वहां भोगवतीके जल प्रवाहित जिनके मस्तक पर सुमेरु है उन हाटक नामक महादेवकी भी वक्रऋषिने अर्चना की। उनकी अदृश्य जटासे जल निकल कर तीन अग्निकुण्डके साथ मिल गया है। पावक उस जलको आलिङ्गन कर उष्णतोया श्वेतगङ्गा नदीरूपमें बहते हैं। इसी नदीका किसीने भोगवती और किसीने श्वेतके नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रखा है। यहां पातालेश, अक्षयवट और नन्दीश्वरमें स्नान, पीछे ब्रह्मयोनि और शिलाका स्नान तथा नदीके एक अंशमें शिवको स्नान करा कर दक्षिणकी ओर वक्रेश्वरके पश्चाद्भागमें तीन धनुके फासले पर पापहारिणी वैतरणीमें स्नान और उसके दर्शन करनेसे अतिरात्रका फल होता है। यह पापहर क्षेत्र सर्पाकार है। त्रैलोक्यकी रक्षा करनेके लिये महादेव यहां वास करते हैं। उन्हींके उद्देशसे महातपा वक्रने तपस्या की थी। स्वयं पार्वतीपति मुनिके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। वक्रमुनिने यहां आराधना की थी, इस कारण यहां पर महादेव वक्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके प्रभावसे अष्टावक्रको अभीष्ट प्राप्त हुआ था।

इस क्षेत्रमें कहां कौन तीर्थ है तथा उन सब तीर्थोंमें किस प्रकार पूजादि करनी होती है, वक्रेश्वरकी तीर्थपरिक्रमामें इस प्रकार लिखा है,—

इस वक्रेश्वरक्षेत्रके दक्षिण क्षारकुण्डादि तीर्थोंकी क्रमशः यात्रा करनी होती है। पहले वक्रेश्वरमें जा कर क्षौरकर्म, स्नान और शिवके दर्शन और प्रणाम कर पञ्चतीर्थ विधानसे यात्रीको परिक्रमा करनी चाहिये। पीछे क्षारकुण्डमें स्नान कर कुशोदक छिड़क कर यथाविधान सङ्कल्प करनेके बाद मन्त्रपाठ करे।

इस क्षारकुण्डके पूर्वमें सिद्धसेवित सर्वपापनाशक भैरवकुण्ड है। तीर्थयात्रीको भक्तिपूर्वक इस भैरवकुण्डमें आ कर जलस्पर्श करना चाहिये।

भैरवकुण्डके पूर्वमें सर्वपापनाशक महापुण्यप्रद अग्निकुण्ड है। पीछे यात्री कुशसंयुक्त अग्निकुण्डके जल द्वारा अभिषेक करे।

अग्निकुण्डके पूर्वमें जीवकुण्ड (दूसरा नाम अमृतकुण्ड) है। सर्वपापनाशक और सर्वरोग-निवारक अग्निकुण्डसे इस जीवकुण्डमें आ कर सर्वपाप विनाशार्थ स्नान करे।

जीवकुण्डसे दक्षिण सर्वसौभाग्यप्रद सौभाग्य नामक कुण्ड है। सर्वपाप-विनाश और सर्वसौभाग्यलाभके लिये यात्रीको सौभाग्यकुण्डमें स्नान करना होता है।

अग्निकुण्डके दक्षिण पापमोचनी वैतरणी है। इसका जल स्पर्श करनेसे मनुष्य पाप-मुक्त होते हैं। यहां भी स्नान करना होता है। इस क्षेत्रमें क्षारकुण्डके दक्षिण पापहरा नामक एक सर्वपापहरा सरित् है। वैतरणी पार कर यहां स्नान करना उचित है।

इसके बाद ब्रह्मकुण्डमें आना होगा। जीवकुण्डके ईशान-कोणमें ब्रह्मकुण्ड है। यह कुण्ड मानवका भोगमोक्षप्रद और सर्वपापनाशक माना गया है। ब्रह्मकुण्डमें स्नान करना होता है।

ब्रह्मकुण्डसे पूर्वभागमें श्वेतगङ्गा नामक सर्वपापनाशक एक कुण्ड है। इस कुण्डमें आ कर स्नान करनेका नियम है।

श्वेतगङ्गाके उत्तर पुत्र, ऐश्वर्य और सुखप्रद अक्षय नामक एक वट है। इस वटवृक्षका प्रदक्षिण कर शिवभाव में दत्तचित्तसे पूजन करना होता है। वटवृक्षके समीप माधवदेव अवस्थित हैं। उनके दर्शन करनेसे सहजमें मुक्तिलाभ होता है।

माधवके निकट अनेक देवता खड़े हैं। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी भी पूजा करनी होती है। पीछे कामधेनुकी पूजा करना आवश्यक है। श्वेतगङ्गाके दक्षिण श्वेतगङ्गाके जलके निकट वृषरूपी धर्म अवस्थित हैं। गन्धपुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करनेसे चतुर्वेद पाठका फल होता है।

वृषको आलिङ्गन कर पीछे वक्रेश्वरके दर्शन करे। पाद्य अर्घ्यादि द्वारा अभिषेक कर यथाक्रम पूजा करनी होती है। वृषमूर्त्तिके पश्चिम वेदीके मध्य वक्रेश्वरदेव अवस्थित हैं।

इस अष्टावक्रनिर्मित परम रमणीय पुण्य शिवक्षेत्रका जो स्मरण वा प्रणाम करता उसके सभी पाप दूर होते हैं।

ऊपर जिन सब कुण्डोंका उल्लेख किया गया उनकी नामोत्पत्ति किस प्रकार हुई है, वह भी वक्रेश्वर माहात्म्यमें वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं लिखा गया।

वक्रेश्वर-माहात्म्यमें एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख इस प्रकार है—

सत्यवादी, सत्यपरायण, वीर्यवान्, जितेन्द्रिय और दयालु श्वेत नामक एक राजा थे। शिवजीमें उनकी अटूट भक्ति थी। मङ्गलकोट नामक नगरमें उनकी राजधानी प्रतिष्ठित थी। वे प्रति दिन ५ योजनका रास्ता तै कर वक्रेश्वरकी पूजा करने आते और फिर लौट जाते थे। उन्हें भक्तवत्सल भगवान् वक्रेश्वरने वर दिया था, कि 'तुम शत्रुओंसे दुराधर्ष और सर्वदा ब्रह्मण्य (वा ब्राह्मणमें अनुरक्त) होगे तथा देवद्विजको प्रिय वस्तु दान कर अकण्टकसे राज्य करोगे। तुम्हारा राजभवन सभी प्रकारके ऐश्वर्यसे समायुक्त होगा, तुम विपुल धनवान्, आयुष्मान् और कीर्त्तिमान् होगे।' वक्रेश्वरके वचन सुन कर श्वेत नरपति भक्तियुक्त चित्तसे प्रणत हो भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये स्तव करने लगे। भगवान् वक्रेश्वरने प्रसन्न हो कर कहा, 'राजेन्द्र! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर मांगो।' राजाने हाथ जोड़ प्रार्थना की, 'यदि आप इस दास पर प्रसन्न हैं, तो दो वर दीजिये। पहला यह कि इस पुण्यक्षेत्रमें आपके निकट मेरा प्राणान्त होने पर भी नाम रहे और दूसरा आप हीके निकट मेरा अन्तिम काल शेष हो।' शिवने कहा, 'महाराज! तुम धन्य हो, क्योंकि दूसरा वर लेनेकी आपकी जरा भी इच्छा न हुई। महाराज मेरे पास जो जाह्नवी है, मेरे स्नानार्थ जिसमें नाना तीर्थोंका समागम होता है, आजसे उसका तुम्हारे नामानुसार श्वेतगङ्गा नाम रहेगा और तुम भी अन्तकालमें मेरा पद लाभ करोगे, इसमें संदेह नहीं। तुम्हारा चरित्र जो सुनेगा और तुम्हारा स्तोत्र जो पाठ करेगा उसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। उसे फिर कभी भी यमालय नहीं जाना पड़ेगा। मेरे निकट इस श्वेतगङ्गाके जलमें स्नान कर जो पिण्डदान करेगा, उसे गया-श्राद्ध करनेका फल होगा।'

इस प्राचीन कहानीसे मालूम पड़ता है, कि नाना उष्ण-प्रस्रवणशोभित यह निभृत स्थान बहु-ऋषियों तपस्वियोंका प्रिय स्थान समझे जाने पर भी श्वेत नामक किसी हिन्दू-राजके यत्नसे ही इस पुण्यक्षेत्रकी प्रतिष्ठा हुई है। आज भी नाना स्थानोंसे अनेक यात्री इस तीर्थके दर्शन करने आते हैं। यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। यहांके कुण्डरूपी उष्ण-प्रस्रवणोंका जल सचमुच रोगनाशक है।

वक्रोक्ति (सं० स्त्री०) वक्रा कुटिला उक्तिः। १ काकूक्ति, व्यङ्ग-वचन। २ कुटिलोक्ति, कपट-वचन। ३ शब्दालङ्कारविशेष। काव्यादिमें श्लेषवाक्यके प्रयोग वा व्यङ्गोक्तिको वक्रोक्ति कहते हैं। साहित्यदर्पणके १०म परिच्छेदमें इसका विषय यों लिखा है—

"अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद् यदि।
अन्यःश्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा॥"

(साहित्यदर्पण १०।६४१ पृ०)

साधारणतः वक्रोक्तिसे दो अर्थ समझे जाते हैं। उनमें

एक श्लेषार्थक और दूसरा अर्थवाचक है। निम्नोक्त उदाहरणसे इसका स्पष्ट पता चलेगा—

"के यूयं स्थल एव सम्प्रति वयं प्रश्नो विशेषाश्रयः
किं ब्रूते विहगः स वा फणिपतिर्यत्रास्ति सुप्तो हरिः।
वामा यूयमहो विडम्बरसिकः कीदृक्स्मरो वर्त्तते
येनास्मासु विवेकशून्यमनसः पुंस्येव योषिद् भ्रमः॥"

'के यूयं' तुम लोग कौन हो? इस प्रश्नके उत्तरमें उत्तरदाताने कहा, हम लोग जलमें नहीं हैं। यहां पर 'के' को किम् शब्दकी प्रथमा विभक्तिका बहुवचन न मान कर जलवाचक 'कं' शब्दकी सप्तमी विभक्तिका एकवचन 'के' मान कर उत्तर दिया गया, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है। प्रत्युत्तरमें—'प्रश्नोविशेषाश्रयः' पदमें जिज्ञास्यज्ञापन किया गया है। यहां पर 'वि' पक्षी और 'शेष' अनन्त (नाग) यह विशेष अर्थ ग्रहण करके ही उत्तर दिया गया था; विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया।—तब तुम लोग क्या यह कहना चाहते, 'हम लोग पक्षी हैं अथवा सर्प हैं, जहां विष्णु भगवान् सो रहे हैं?' यहां पर विशेष शब्दका साधारण अर्थ नहीं लिया गया है, वि-शब्दसे पक्षी और शेष शब्दसे सर्पका अर्थ लिया गया है, इस कारण यह वक्रोक्ति हुई है।

द्वितीयार्द्धमें—अहा! तब तुम लोग क्या वामा हो अर्थात् प्रतिकूल अर्थ ग्रहण करते हो (वामा शब्दका एक अर्थ है प्रतिकूलवादी)। क्योंकि हम एक अर्थसे प्रश्न करते है और तुम उसका अर्थ लेते हो। उत्तरवादीने वामा शब्दका प्रतिकूलवादी अर्थ न ले कर साधारणतः स्त्री-अर्थ लिया और कहा,—वाह जी अंधे! तुम ऐसे कामासक्त हो गये; कि तुम्हें पुरुषमें नारीका भ्रम हो गया। यहां वामा शब्दके दो अर्थ हुए १म स्त्री और २य प्रतिकूलवादी। प्रश्नकर्त्ताने प्रतिकूलवादी अर्थ भगाया है; किन्तु उत्तरदाता स्त्री-अर्थ मान कर उत्तर देते हैं, यही वक्रोक्ति है। इन दोनों अर्थोका संयोग होनेके कारण इसको सभङ्गश्लेष कहते हैं। अन्य पक्षमें यह अभङ्ग है।

"काले कोकिलवाचाले सहकारमनोहरे।
कृतागसः परित्यागात् तस्याश्चेतो न दूयते॥"

कोकिलकलरवसे परिपूर्ण आम्रमुकुल विकसित मनोहर वसन्तकालमें दोषी कान्तको त्याग कर कामिनीका चित्त व्यथित नहीं होता, सचमुच व्यथित होता है। यहां पर निषेधार्थमें नञ् शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपर पक्षमें काका अर्थात् ध्वनिविशेष द्वारा विधि अर्थ भी होता है।

वक्रोलक (सं० पु०) १ एक गण्डग्राम। (कथासरित्सा० ७६।१८) २ उसी नामका एक नगर।
(कथासरित्सा० ६३।३)

वक्रोष्ठिका (सं० स्त्री०) वक्रोष्ठोऽस्त्यस्या इति, ठन्। ईषद्धसनेन हि ओष्ठस्य वक्रता जायते अतोऽस्यास्तथात्वम्। यद्वा वक्र ओष्ठो यस्याः। ततः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वम्। अट्टहरदहास्य, ऐसी मंद हंसी जिसमें दांत न खुले केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायं, मुसकान। पर्याय—स्मित।

वक्र (सं० त्रि०) १ तिर्यग्गामी, तिरछा या टेढ़ा चलनेवाला। २ इतस्ततः परिभ्रमणशील, इधर उधर घूमनेवाला।

वक्तन् (सं० त्रि०) गुणवक्ता, स्तोता।

वक्करी (सं० स्त्री०) गुणवक्ती। (ऋक् १।१४४।६)

वक्कस (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका मद्य।
(वल्कस देखो।)

वक्षः (सं० क्ली०) उच्यतेऽनेनेति। वच् (पचिवचिभ्यां सुट् च। उण् ४।२१६) इति असुन् सुट्। वक्षतेरसुन् इति रमानाथः धातुप्रदीपश्च। १ अङ्गविशेष, पेट और गलेके बीचमें पड़नेवाला भाग जिसमें स्त्रियोंके स्तन और पुरुषोंके स्तनके-से चिह्न होते हैं, छाती। पर्याय—क्रोड़, भुजान्तर, उरः, वत्स, अङ्क, उत्सङ्ग, वक्षण, गणपीठक और वक्षःस्थल।

गरुड़पुराणमें वक्षके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। समवक्षोविशिष्ट अन्नवान्, पीनवक्षोव्यक्ति धीर और शक्तिशाली तथा विषमवक्ष व्यक्ति निर्धन और शत्रुके द्वारा निधनप्राप्त होते हैं।

"अन्नवान् समवक्षाः स्यात् पीनैर्वक्षोगभिर्ल्जितः।
वक्षोभिर्विषमैर्निःस्वः शस्त्रेण निधनस्तथा॥"
(गरुड़पुराण ६६ अ०)

(पु०) वहतीति वह-(वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि।

उण्० ४।२२०) इति असुन्, सुट् च। २ अनड्वान्, बैल।

वक्षण (सं० त्रि०) १ शक्तिशाली, बलिष्ठ। (क्ली०) वक्षत्यनेनेति, वक्षरोषसंहत्योः ल्युट्। २ वक्ष, छाती। ३ वाहक।

"क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः" (ऋक् ६।२३।६)

"वक्षणानि वाहकानि स्तोत्राणि क्रियास्म करवाम।" (सायण)

४ अग्नि, आग।

वक्षणा (सं० स्त्री०) १ नदी। (ऋक् ५।४२।१३) २ नदीगर्भ। (ऋक् १०।२६।११) ३ उदर, पेट।

"सा वः प्रजां जनयत् वक्षणाद्भ्य" (अथर्व० १४।२।१४)

वक्षणि (सं० त्रि०) शक्तिदाता।

वक्षणी (सं० त्रि० स्त्री०) वक्षण स्त्रियां ङीप्। १ शक्तिदात्री। २ आनन्दवर्द्धिनी।

वक्षणेस्था (सं० त्रि०) अग्निमें स्थापित।

वक्षथ (सं० पु०) १ बलाधान। २ वृद्धि-प्रकाश।

वक्षस् (सं० पु० क्ली०) १ हृदयोपरिस्थ देहभाग, छाती। २ वृष, बैल।

वक्षःसंमर्द्दिनी (सं० स्त्री०) वक्षसि संमर्द्दते इति सं-मृद्-णिनि। स्त्री, पत्नी।

वक्षःस्थल (सं० क्ली०) १ वक्ष, छाती। २ हृदय।

वक्षस्तटाघात (सं० पु०) वक्षसः तटः वक्षस्तटः तेषु आघातः वक्षः। वक्षस्थलोपरि मुष्ट्याघात, छाती पर मुक्का मारना।

वक्षी (सं० स्त्री०) अग्निशिखा, आगकी लौ।

वक्ष—स्वनाम प्रसिद्ध इक्ष (Oxus) नदी। वंक्षु देखो।

वक्षोग्रीव (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १३ पर्व)

वक्षोज (सं० क्ली०) वक्षसि जायते इति जन-ड। स्तन, कुच।

वक्षोमण्डलिन् (सं० पु०) नृत्यकालीन हस्तविन्यासभेद।

वक्षोरुह (सं० पु०) वक्षसि रोहतीति रुह-कः। स्तन, कुच।

वक्ष्यमाण (सं० त्रि०) १ भविष्यत् कथनीय विषय, जो भविष्यमें कहने लायक हो। २ वाच्य, वक्तव्य। ३ जो कथनका प्रस्तुत विषय हो, जिसे कह रहे हों। (क्ली०) ४ मनोज्ञ वचन, सुन्दर वचन।

वक्ष्यमाणत्व (सं० क्ली०) वक्ष्यमाणका भाव या धर्म।

वख्तसिंह—जोधपुरके राजा अभयसिंहके छोटे भाई। अभयसिंहके स्वर्गवासी होने पर उनके पुत्र रामसिंह पिताकी गद्दी पर बैठे। वख्तसिंह नागौरके जागीरदार थे। रामसिंहके अभिषेकके समय वख्तसिंहको आना आवश्यक था, क्योंकि वे कुलमें बड़े थे। परन्तु न मालूम किस कारणसे उस समय न तो वख्तसिंह आये और न किसी अपने प्रतिनिधि हीको भेजा। रामसिंहके अभिषेकमें नागौरके ठाकुरके यहांसे केवल उनकी एक धाय आई थी। यह देख राजा रामसिंह बड़े अप्रसन्न हुए। उन्होंने उस धायका बड़ा अपमान किया और अभिषेक होनेके बाद ही उन्होंने नागौर पर धावा बोलनेको सेनाको आज्ञा दी। अपने चाचा वख्तसिंहको सेना एकत्रित करनेका भी अवकाश न दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। छः स्थानोंमें बड़े भयंकर युद्ध हुए। अन्तमें युवक रामसिंहने अपनी मूर्खताका फल पाया। वे हार गये। वख्तसिंहको मारवाड़का सिंहासन हाथ लगा। अन्तमें वख्तसिंहको आमेरकी महारानीने मार डाला।

वख्तियार खिलजी—इतिहास-प्रसिद्ध वङ्गविजेता मुसलमान सेनापति। महम्मद-इ-बख्तियार देखो।

वगड़ी (वकद्वीप शब्दका अपभ्रंश)—प्राचीन गौड़राज्य पांच भागोंमें विभक्त है उनमेंसे वगड़ी एक विभाग है। वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें जिस उपवङ्गका उल्लेख है, शायद वही वगड़ी विभागके जैसा मालूम होता है। दिग्विजयप्रकाशमें लिखा है, कि भागीरथीके पूर्वभागमें पांच योजन विस्तृत उपवङ्ग है। यशोरादि देश, कानन और अनेक नदी इसी उपवङ्गके अन्तर्गत है।

सेनवंशके जमानेमें भागीरथीके पूर्व, पद्माके पश्चिम और सागरके उत्तरवर्त्ती डेल्टेका अंश वगड़ी कहलाता था। अभी भागीरथीका पश्चिमी किनारा राढ़ और पूर्वी किनारा वगड़ी कहलाता है। राढ़ और वगड़ी विभागमें विशेषता यह है, कि राढ़ भूभाग शैल और कङ्करमय, अधिकांश स्थल ऊंचा नीचा है, किन्तु वगड़ी भूभाग इसका ठीक विपरीत है। इसकी कुल जमीन उर्वरा है और बाढ़के समय डूब जाती है।

राढ़ और वकद्वीप देखो।

वगदोग्रा—वङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर। जनसंख्या छः हजारके लगभग है।

वगय म—निम्न ब्रह्मके तनासेरिम विभागके अमहर्ष्ट जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह वगय-म नदीके किनारे अवस्थित है। इस नदीका उत्तरी किनारा तव-त-नो कहलाता है।

वगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक नदी।
(भविष्य० ब्रह्मख० ४२।१४१)

वगरू—दक्षिण-ब्रह्मके तानसेरिम विभागके अमहर्ष्ट जिलान्तर्गत एक उपविभाग। इसके पूरब तौङ्ग्यु पर्वतमाला और पश्चिममें वङ्गोपसागर है। भूपरिमाण २८ मील है। यह ऊंची पहाड़ी भूमि वनमालासे समाच्छन्न है, बीच बीचमें धानके खेत और बड़े बड़े गांव भी देखे जाते हैं। दानेदार पत्थरोंके उच्च पर्वतशिखर उस प्राकृतिक गाम्भीर्यको भेद कर उन्नत मस्तकसे ऐश्वरिक महिमा दिखला रहा है।

वगलामुखी (सं० स्त्री०) दशमहाविद्याके अन्तर्गत देवीविशेष। यह दश प्रकारकी शक्तिमूर्त्ति कैसे आविर्भूत हुई थीं वह दशमहाविद्या शब्दमें लिखा जा चुका है।
दशमहाविद्या देखो।

इस महादेवीका पूजामन्त्र और पूजामाहात्म्य तन्त्रसारमें वर्णित है। तन्त्रसारमें लिखा है, कि इसका मन्त्र साधकवर्गका हितकर और शत्रुदलका स्तम्भनकारी ब्रह्मास्त्र-स्वरूप है। इस मन्त्रसे सर्वोको स्तम्भित किया जा सकता है। यहां तक, कि वायुकी भी गति रुक सकती है।

इस देवीकी पूजासे वाक्स्तम्भन, बुद्धिनाश और शत्रुका क्षय होता है। देवीमन्त्रका प्रयोग करनेसे सभी आधिभौतिक व्यापार साधित हो सकते हैं।

दश हजार वार मन्त्रजप करके निशाकालमें हरिद्रा और हरितालके साथ लवणहोम करनेसे दुष्ट व्यक्तिका वाक्स्तम्भन और बुद्धिविपर्यय होता है तथा इससे शत्रु-सैन्यका स्तम्भन किया जा सकता है। घृत, मधु और शर्कराके साथ पीतपुष्पका होम स्तम्भन कार्यविशेषमें फलप्रद है। कार्यसाधनार्थ पहले एक यन्त्र बनवाना आवश्यक है। पीछे स्तम्भनार्थ होमादि पूजा करनी होती है।

धातुफलक पर अथवा पाषाणपट्ट पर अथवा हरिद्रा, धुस्तूर और हरिताल द्वारा यन्त्र अङ्कित करना ही उत्तम है। देवस्तम्भन और शत्रुओंके मुखस्तम्भनार्थ उक्त यन्त्र लिख कर गाढ़ आक्रमण करे। हरिद्रादि पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा भोजपत्र पर यन्त्र लिखे। उस यन्त्र पर कुम्हारके चाककी मिट्टीसे एक बैल बना कर रखे। पीछे उसको पीठ पर रख कर वगलामुखीकी आराधना करनेसे विवादमें जयलाभ होता है। इस बैलकी नाकमें पीली रस्सी डाल कर प्रतिदिन पीतवर्ण पुष्पादि उपचार द्वारा अपने घरमें पूजा करनेसे दुष्टका मुखस्तम्भन होता है।

वगवाड़ी—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत सूरत प्रान्तका एक छोटा सामन्त-राज्य। अभी यह दो अंशोंमें विभक्त हो गया है। ये दोनों सामन्त-वंश अभी गायकवाड़को १३५) रु० और जूनागढ़के नवावको १६) रु० वार्षिक कर देते हैं। वगवाड़ी ग्राम ३ वर्गमील विस्तृत है।

वगासड़ा—१ वम्बईप्रदेशके दक्षिण काठियावाड़के अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। अभी यह छः पट्टीदारोंमें बँट गया है। वर्त्तमान अधिवासी जूनागड़के नवावको १५४०) रु० और बड़ोदाके गायकवाड़को २५४०) रु० वार्षिक कर देते हैं। वार्षिक आय १० हजार रुपयेकी है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° २६´ उ० तथा देशा० ७१° पू०के मध्य अवस्थित है। यह सूरतसे १६० मील पश्चिम काठियावाड़ प्रायोद्वीपके मध्यवर्त्ती गीर नामक ऊंची भूमिके समीप वसा हुआ है।

वगासपुर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

वगाह (सं० पु०) अव-गाह भावे वञ्, अलोपः। अवगाह, जलमें हल कर स्नान।

वगुला—वङ्गालके नदीया जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कलकत्तेसे ५७॥ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां इष्टर्न वंगाल स्टेट रेलवेका एक प्रधान स्टेशन है। नदीयाका सदर कृष्णनगर और नवद्वीप जानेके लिये यहांसे ११ मील दूर तक एक पक्की सड़क है।

वगेपल्ली (वगेनपल्ली)—महिसुर राज्यके कोलावा जिले-

में कम्पल्य तालुकके अंदर एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १३° ४७´ १५´´ उ० तथा देशा० ७७° ५०´ ३१´´ पू० तक विस्तृत है। यहां विचार-सदर स्थापित है।

वगेसर (वक्सर)—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ४६´ २०´´ उ० तथा देशा० ७०° ४७´ ३५´´ पू०के बीच सरयू और गोमती नदीके संगम पर अवस्थित है। कलकत्तेसे यह स्थान ६११ मील उत्तर-पश्चिम तथा अलमोरासे २७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है। नगर समुद्रकी तहसे प्रायः तीन हजार फुट ऊंचा है। इस नगरके साथ मध्य-एशिया और तिब्बतका विस्तृत वाणिज्य है। प्रति वर्ष माघ महीनेमें यहां भूटिया जातिका एक मेला लगता है।

कहते हैं, कि मुगल-साम्राट् तैमूरने पहले वगेसर उपत्यकाभूमिमें एक मुगल-उपनिवेश स्थापन किया था; किन्तु आज कल वह मुगल-जातिके वासका चिह्नमात्र है। केवल पहाड़ी वनिये लोग व्यापार करते हैं।

वगैरह (अ० अव्य०) एक प्रत्यय जिसका अर्थ यह होता है, कि "इसी प्रकार और भी समझिये" इत्यादि, आदि। इसका प्रयोग वस्तुओंको गिनानेमें उनके नामोंके अन्तमें संक्षेप या लाघवके लिये होता है।

वगोर—राजपूतानेके उदयपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह उदयपुर राजधानीसे ६७ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है। पहले यह महाराना सोहनसिंहकी जमींदारीमें था। १८७५ ई०में यह उनके हाथसे छीन लिया है।

वग्नु (सं० पु०) वक्ति इति। वच् (वचेर्गश्च। उण् ३।३३) इति नुः गश्चान्तादेशः। १ वक्ता, कथक। २ वावदूक, बकवादी, बहुल बकनेवाला। ३ पशुओंका चीत्कार। ४ भेकरव, मेढ़कका बोलना।

वग्वन (सं० त्रि०) प्रियवाक्य-कथनशील, मीठी बात करनेवाला। (ऋक् १०।३३।२)

वग्वनु (सं० पु०) शब्द।

वघा (सं० स्त्री०) पतङ्गविशेष, एक प्रकारका पतंग जो टिड्डीके समान होता है।

वघात—पञ्जाबप्रदेशके अन्तर्भुक्त एक पार्वतीय सामन्त-राज्य। यह सिमला-शैलवासके पार्श्वमें अवस्थित है तथा अम्बाला विभागके कमिश्नरकी देख-रेखमें परिचालित होता है। भू-परिमाण ३६ वर्गमील है। इस राज्यमें लगभग १७८ गांव लगते हैं। राज्यका मध्यस्थ अक्षा० ३०° ५५´ उ० तथा देशा० ७७° ७´ पू० तक विस्तृत है।

यहांके सरदार राना दलीप सिंह (१८८५ ई०) राजवंशीय थे। १८५६ ई०में उनका जन्म हुआ था। वे अङ्गरेज-राजको वार्षिक दो हजार रुपये कर देते थे; किन्तु कालका और सिमलाके मध्यवर्त्ती कसौली और सोलान सेनानिवासके लिये अङ्गरेज-गवर्नमेण्टने उनसे लिया था जिससे करमें १३६) रुपये कम कर दिये गये हैं। वाघल-राज्यकी भांति यहांके सरदारगण भी अङ्गरेज-गवर्नमेण्टके साथ सन्धिसूत्रमें आवद्ध हैं। वाघेल देखो।

वघार (वघियाड़)—सिन्धुनदकी एक शाखा। यह करांची जिलेके ठाठा नगरके दक्षिणमें अक्षा० २४° ४०´ उ० सिन्धुगातसे निकल कर समुद्रकी ओर वह गई है। १८वीं सदीमें यह नदी बहुत विस्तृत और वेगवती थी। लाहौरी बन्दरके सभी पण्यद्रव्य उस समय परिचालित हो कर समुद्रके किनारे लाये जाते थे। १८४० ई०में बालूका चर पड़ जानेसे सिन्धुकी गति वदल गई है तथा वह नदीवक्ष धीरे धीरे सूखता जा रहा है। इस नदीके मुहाने पर अवस्थित पिति, पितियानी, जूना और रेछाल शाखामें आज भी नाव द्वारा गमनागमन किया जाता है।

वघेल—राजपूत जातिकी एक शाखा। आदि शोलङ्की वा चौलुक्य श्रेणीसे यह शाखा उत्पन्न हुई है। रेवापति महाराज रघुराजसिंह-रचित भक्तमाल नामक ग्रन्थमें इस राजपूत-शाखाका संक्षिप्त इतिहास लिखा है—उससे जाना जाता है, कि प्रसिद्ध साधु कवीर पश्चिम समुद्रमें स्नान करने लिये गुजरात गये। इस समय चौलुक्य वा सोलङ्कीदेव गुजरातके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। राजाके कोई सन्तान न थी। उन्होंने कबीरसे पुत्रके लिये प्रार्थना की। कबीरके आशीर्वादसे सोलङ्कीराजके दो पुत्र हुए जिनमेंसे एकका आकार व्याघ्रके जैसा था। इस व्याघ्राकार पुत्रका नाम व्याघ्रदेव रखा गया। राजपुरोहितोंने उस दुर्लक्षण पुत्रको समुद्रमें फेंक देनेकी सलाह दी। राजाने भी समुद्रमें फेंक देनेका हुकुम दे दिया। कबीरको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने कुमारको लौटा लाने

कहा और इस कुमारके नामसे एक स्वतन्त्र दलकी उत्पत्ति होगी, यह भी कह दिया। दैवविड़म्बनासे व्याघ्रदेवके भी कोई पुत्र न हुआ। आखिर कबीरके अनुग्रहसे उनके एक पुत्रने जन्म लिया। व्याघ्रदेवके नामानुसार ही उनकी वंश-परम्परा 'वघेल' वा 'वाघेल' नामसे प्रसिद्ध हुई।

व्याघ्रदेवके पुत्रका नाम था जयसिंह। पितामहके आदेशसे वे अनेक सैन्य सामन्तकोंके साथ दिग्विजयमें निकले। नर्मदाके किनारे आ कर उन्होंने गौड़देशको जीता। यहां सुन्धियाखेराकी वैशराजपूत-कन्याके साथ उनका विवाह हुआ। उनके वंशधर करणसिंह और केशरीसिंह दिग्विजयके उपलक्षमें नाना स्थानोंको जीत कर मुसलमान नवावके अधिकारभुक्त गोरखपुर दखल कर बैठे। उन लोगोंके वाद मल्लारसिंह, सारङ्गदेव और भीमलदेवने यथाक्रम राज्यभोग किया। भीमलके पुत्र ब्रह्मदेव गहरवाड़ राजपूतोंके साथ मिल गये। उनके परवर्त्ती प्रतापशाली उत्तराधिकारीका नाम वीरसिंह था। प्रवाद है, कि उनके एक लाख घुड़सवार थे।

वीरसिंहने मुसलमानोंके हाथसे कुछ दिनके लिये प्रयाग तीर्थका उद्धार किया। यह संवाद पा कर वादशाहने दलवलके साथ चित्रकूटमें वीरसिंहका मुकावला किया। वादशाहने उन्हें बुला कर कहा, 'मेरी प्रजाका शान्तिभङ्ग करनेमें क्या तुम्हें भय नहीं हुआ?' वीरसिंहने उत्तर दिया, 'क्षत्रियका अपना अधिकार जायज रखना कर्त्तव्य है। दुष्टका दमन और शिष्टका पालन क्षत्रियधर्म है।' वादशाहने उनकी वीरता पर मुग्ध हो उनके पुत्र वीरभानुको 'राजा' की उपाधि दी। वादशाहके उत्साहसे वीरसिंहने १२ राजोंको हराया और पीछे आप वन्धोगढ़में जा कर रहने लगे। दक्षिणमें तमसा तक उसकी जयपताका उड़ती थी। उन्होंने अन्तिम कालमें पुत्रके हाथ राज्य-भार सौंप प्रयागमें जीवन विसर्जन किया। वीरभानुने कच्छवह-राजकन्यासे विवाह किया। यौतुकमें उन्हें रतनपुरका राज्य मिला था। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम साहवके मतानुसार ५८०से ६८३ संवत् तक वघेलोंने शोन और तमसाकी उपत्यकामें अपना आधिपत्य फैलाया था। पीछे कलचूरी, चन्देल, चाहमान, सेङ्गर और आखिर गोड़ोंने उन स्थानों पर कब्जा किया।

फरुखावादके वघेलोंका कहना है, कि माधोगढ़में उन लोगोंके पूर्व-पुरुषोंका वास था। कनोज-पति जयचन्द्रके समय वे लोग इस देशमें आ कर वस गये। यहांके वघेलपति छत्रशालने वृटिशगवर्मेण्टके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था, इस कारण वघेलराज्य जब्त कर लिया गया। उन लोगोंके वस जानेके कारण ही रेवाराज्य 'वघेल' वा 'वघेलखण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यमुनाके दक्षिण वघेल राजपूत परिहार और गहरवाड़ राजपूतके घर अपनी कन्या देते तथा वैश, गौतम और गहरवाड़की कन्या लेते हैं।

इलाहावाद अञ्चलके वघेल अत्यन्त अवाध्य और दुष्ट स्वभावके होते हैं। मौका पाने पर वे चोरी डकैती करनेसे भी वाज नहीं आते।

वघेलखण्ड—मध्यभारतके अन्तर्गत एक विस्तीर्ण भूखण्ड। वघेल जातिकी वासभूमि होनेके कारण इस विस्तृत भूखण्डका वघेलखण्ड * नाम पड़ा है। अंगरेजोंके जमानेमें यह सामन्तराज्यपुञ्ज वघेलखण्डएजेन्सी नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतराजप्रतिनिधि वड़े लाटके अधीनस्थ मध्यभारतके एजेण्ट तथा रेवाराज्यके परिदर्शक पालिटिकल एजेण्टरूपमें यहांका शासन करते हैं। ये पालिटिकल एजेण्ट सतना वा रेवानगरमें रहते हैं।

इसके उत्तर इलाहावाद और मिर्जापुर जिला, पूर्वमें छोटानागपुरके अधीनस्थ सामन्तराज्य, दक्षिणमें मध्यप्रदेशका विलासपुर और मण्डला जिला तथा पश्चिममें जव्वलपुर और वुन्देलखण्डका सामन्तराज्य है। १८७१ ई० तक यह विभाग वुन्देलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्भुक्त रहा। वुन्देला और वघेल जातिका कीर्त्तिनिकेतन होनेके कारण यह स्थान भौगोलिक और ऐतिहासिक संस्रवमें एकतावद्ध था। पीछे वुन्देलोंका प्रभाव जाता रहा। वृटिश गवर्मेण्टने उन लोगोंमें फूट पैदा कर भविष्य शक्तिसंग्रह-

* जिस वघेला जातिके नाम पर यह इस प्रदेशका नाम पड़ा है, वह शिशोदीय राजपूतोंकी एक शाखा है। गुजरात प्रदेशसे दक्षिण जा कर यह जाति वस गई है। सम्राट् अकवर शाहकी इस वीर जाति पर विशेष कृपा रहती थी। वघेल देखो।

का पथ रोकनेकी चेष्टा की। इसी उद्देशसे उसी साल वघेलखण्ड भूभाग ले कर स्वतन्त्र एजेन्सी प्रतिष्ठित हुई।

बुन्देलखण्ड और बुन्देला देखो।

इस स्थानका भूपरिमाण ११३२३ वर्गमील है। इसमें कुल ४ शहर और ५८३२ ग्राम लगते हैं। रेवा, नगोद, सैहार, सोहावल, कोठी, सिद्धपुरा और जागीर राज्य ले कर यह एजेन्सी बनी है।

इन सब सामन्तराज्योंके मध्य केवल रेवा राजाको अङ्गरेजीराजने सन्धिपत्र दिया है। यहांके सामन्त पण्यद्रव्य वाणिज्यके लिये किसी प्रकारका शुल्क नहीं लेते।

वङ्क (सं० पु०) वङ्कतीति वङ्क-अच्। १ नदीवक्र, नदीका मोड़। (त्रि०) २ वक्र, झुका हुआ।

वङ्कनाल (सं० पु०) शरीरकी एक नाड़ीका नाम।

वङ्कर (सं० पु०) वह स्थान जहांसे नदी मुड़ी हो, नदीका मोड़।

वङ्कसेन (सं० पु०) अगस्तिवृक्ष, वक वृक्ष।

वङ्का (सं० स्त्री०) वङ्क-टाप्। वल्गाग्रभाग, चारजामेकी अगली मेंड़ी।

वङ्काटक (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

वङ्कालकाचार्य—प्राचीन ज्योतिर्विद्भेद।

वङ्काला (सं० स्त्री०) वङ्गालकी प्राचीन राजधानीका नाम जिसके कारण उस देशका बंगाल नाम पड़ा।

(राजतर० ३।४८०)

वङ्किणी (सं० स्त्री०) कोल नासिका नामक क्षुपभेद।

वङ्किम (सं० क्ली०) वङ्क-इमनिच्। ईषत् वक्र, कुछ टेढ़ा या झुका हुआ।

वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय—वङ्गके प्रतिभाशाली अद्वितीय औपन्यासिक, चिन्ताशील कवि और एक प्रधान दार्शनिक। १८६८ ई०की २७वीं जूनको नैहाटी स्टेशनके पार्श्वस्थ कांटालपाड़ा ग्राममें साहित्यरथी वङ्किमचन्द्रने जन्म ग्रहण किया।

वङ्किमचन्द्रके पिता यादवचन्द्र लार्ड हार्डिञ्जके समय डिपटी कलक्टर थे। उनके चार पुत्र थे, श्यामाचरण, सञ्जीवचन्द्र, वङ्किमचन्द्र और पूर्णचन्द्र।

वचपनसे ही वङ्किमचन्द्रको मेधा और प्रतिभाका परिचय पाया जाता है। पांच वर्षकी उम्रमें इन्हें एक ही दिनमें वर्णज्ञान सम्यक्‌रूपसे हो गया था। कांटालपाड़ाकी पाठशालामें इनकी प्रथम परीक्षा हुई। जब इनकी उमर आठ वर्षकी थी उस समय इनके पिता मेदिनीपुरके डिपटी कलक्टर थे। वे वङ्किमचन्द्रको अपने साथ रखते थे। उन्होंने पुत्रको मेदिनीपुरके अङ्गरेजी स्कूलमें भर्त्ती कर दिया। इस समय वङ्किमचन्द्रने अपनी बुद्धिमत्ताका जो परिचय दिया था वह असाधारण है। प्रति वर्ष दो बार करके उन्हें तरक्की मिलती थी। मेदिनीपुर जिलेके कांथि महकूमेके अन्तर्गत मनोरम नदीतटकी दृश्यावली स्वच्छ, विरलतरु, सिकताभूमिकी निर्जन स्वभावसम्पत् वङ्किमचन्द्रके हृदयमें चिरदिन अङ्कित थी। उनकी अपूर्व कपाल-कुण्डलाकी दृश्यावलीमें उस आलेख्यकी छायाने स्पष्ट भावसे पतित हो उसे परम सुन्दर बना डाला है।

१८५१ ई०में यादवचन्द्रकी २४ परगनेमें बदली हुई। वङ्किमचन्द्रने इस समय हुगलीकालेजमें प्रवेश किया। कालेज भी उसकी गवेषणा और शिक्षाका परिचय पा कर अध्यापकगण विस्मित होते थे। वङ्किम केवल पाठ्यपुस्तक पढ़ कर तृप्त नहीं होते थे, कालेजके पुस्तकालयमें जा करके अच्छी अच्छी किताब पढ़ा करते थे। हुगलीकालेजसे इन्होंने सिनियर स्कालरसिप-परीक्षा प्रशंसाके साथ पास की थी। इस समय इन्होंने किसी अध्यापकके निकट चार वर्ष तक संस्कृत ग्रन्थ पढ़े। कालेजमें पढ़ते समय इनकी प्रशंसा सभी अध्यापकोंके मुखसे सुनी जाती थी। केवल साहित्यमें ही नहीं, अङ्कशास्त्रमें भी इनकी असाधारण व्युत्पत्ति हो गई थी।

हुगली कालेजमें अध्ययन शेष कर वे कलकत्ते आये और प्रेसिडेन्सी कालेजमें आईन पढ़ने लगे। इसी समय अर्थात् १८५८ ई०में विश्वविद्यालयमें पहले पहल बी, ए, परीक्षा प्रचलित हुई। उस समय वङ्किमचन्द्रकी उमर २० वर्षकी थी। आईन पढ़ते पढ़ते ही इन्होंने बी, ए, परीक्षा दी तथा विशेष प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए। वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रथम वर्षके बी, ए, थे।

बी, ए, की उपाधि उस समय ऐसी अपूर्व सामग्री समझी जाती थी, कि बङ्किम बाबूको देखनेके लिये बहुत दूरके लोग जाते थे। बङ्किम बाबू शिक्षित-मण्डलीके मुखोज्ज्वल "बी, ए, बङ्किम" कह कर तमाम परिचित हुए थे।

बी, ए, परीक्षा पास करनेके कुछ समय बाद ही छोटा लाट हैलिडे साहबने इन्हें डिपटी मजिष्ट्रेट बना कर भेजा। इस कारण वे आईन परीक्षामें सम्मत न हो सके।

स्वदेशके प्रति इनका बराबर अनुराग रहता था। दूसरेकी वस्तुसे अपने घरकी वस्तु अच्छी होती है, इस बातका इन्होंने सबसे पहले शिक्षित-सम्प्रदायके बीच प्रचार किया। उच्च राजकार्यमें नियुक्त हो कर भी इन्होंने मातृभाषाकी सेवाको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य समझ रखा था।

बाल्यकालसे उनका बङ्गभाषाके प्रति अनुराग दिखाई देता था। वे ईश्वरगुप्तकी कवितामाला बड़े आनन्दके साथ पढ़ा करते थे। १३ वर्षकी उमरमें इन्होंने मानस और ललित नामक कविता लिखी। ईश्वरगुप्त उनकी कविता सुन कर बड़े प्रसन्न होते थे तथा प्रभाकरमें प्रकाश कर उन्हें उत्साहित करते थे। उस दिनसे बङ्किमचन्द्र ईश्वरगुप्तके शिष्य हुए।

१८६१ ई०में उनका प्रथम उपन्यास दुर्गेशनन्दिनी लिखा गया और दूसरे वर्ष प्रकाशित हुआ। यद्यपि अंगरेजी आदर्श पर उक्त उपन्यास रचा गया था, फिर भी इसी प्रथम उद्यमसे उन्होंने बङ्गभाषाके ऊपर असाधारण आधिपत्य और चरित्रचित्रणमें अपूर्व दक्षता दिखलाई है। उपन्यास लिख कर किसीके भाग्यमें ऐसी सफलता न मिली है। इसके पहले इन्होंने Indian field नामक पत्रिकामें 'राजमोहनकी स्त्री' Rajmohan's wife नामक एक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। किन्तु उस पत्रिकाके बंद हो जानेसे इनका अंगरेजी उपन्यास भी असम्पूर्ण रह गया।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि अंगरेजी भाषामें बङ्किमचन्द्रकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। स्टेटसमैन पत्रिकामें जेनरल एसेम्बलीके भूतपूर्व प्रिन्सिपल हेष्टि साहबके साथ जो लेखनी युद्ध चला था। उसमें इनका अंगरेजी लेख पढ़ कर सभी विमुग्ध हो गये थे। यहाँ तक, कि इनके प्रतिद्वन्द्वी हेष्टि साहबने भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया था, 'इतने दिनोंके बाद बङ्गालमें मुझे एक उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी मिला है।'

सरकारी नौकरीसे अलग होनेके कई वर्ष पहले बङ्किमचन्द्र बङ्गाल-गवर्मेण्टके सरकारी सिक्रेटरी हुए थे। किन्तु नाना कारणोंसे इन्हें वह पद परित्याग करना पड़ा था।

दुर्गेशनन्दिनीके प्रचारसे बङ्किमचन्द्रकी ख्याति चारों ओर फैल गई। पीछे १८६७ ई०में कपालकुण्डला और १८७० ई०में मृणालिनी प्रकाशित हुई। १८७२ ई०में बङ्गदर्शनका प्रचार हुआ। बङ्गदर्शनके प्रकाशके साथ बङ्गदेशमें मानों युगान्तर उपस्थित हुआ। बङ्गीय लेखकोंकी रुचि भी परिवर्त्तित हुई। शिक्षित बङ्गवासीके निकट बङ्गदर्शनका जैसा आदर हुआ था, वैसा आदर आज तक किसी सामयिक पत्रका नहीं हुआ है। बङ्गदर्शनके सम्पादक रूपमें बङ्किमचन्द्रने आज कलके श्रेष्ठ बहुतसे लेखकोंको ही लिखनेकी रीति सिखला दी थी तथा आपने भी अनेक प्रबन्ध और उपन्यास लिख कर साहित्यजगत्‌में एकाधिपत्य लाभ किया था। जो बङ्गभाषाको अपनी मातृभाषा स्वीकार करनेमें लज्जा बोध करते थे, अंगरेजीभाषामें लिखित ग्रन्थ ही जिनका एकमात्र वेदस्वरूप था, विदेशीके अनुकरणको ही जो जीवनकी एकमात्र कृतकृतार्थताका कारण समझते थे—उन परम उद्धत प्राज्ञमानी नव्यबङ्गको बङ्किम बाबूने ही उपस्थित कर उनके चरणोंमें अर्घ्यप्रदान करनेके लिये बाध्य किया। तभीसे अंगरेजी शिक्षित युवक ही बङ्गभाषाके सेवकोंके नेता हो गये हैं। बङ्किम बाबूके इस कार्यसे मातृभाषाका तमाम प्रचार हुआ, इसी कारण वे 'बङ्गभाषाके सम्राट्' कहे जाते हैं। इन्होंने बङ्गदर्शनमें निम्नलिखित पुस्त प्रकाशके कीं—

१२७९ सालमें विषवृक्ष और इन्दिरा, १२८० सालमें चन्द्रशेखर और युगलांगुरीय, १२८१ सालमें रजनी, १२८०-८१ और ८२ सालमें कमलाकान्तका दफ्तर, १२८४ सालमें कृष्णकान्तका विल, १२८६ सालमें राजसिंह, १२८७ और ८६ सालमें आनन्दमठ, १२८७ सालमें मुचीरामगुड़के

जीवनचरित, १२८८ सालमें देवी चौधरानी। देवी चौधरानीका कुछ अंश बङ्गदर्शनमें निकल कर पीछे वह पुस्तकाकारमें प्रकाशित हुआ। १२८४ सालमें वङ्किमचन्द्रने बङ्गदर्शनकी सम्पादकता छोड़ दी। पीछे उनके बड़े भाई सञ्जीवचन्द्र सम्पादक हुए। सञ्जीवचन्द्रकी मृत्युके बाद बङ्गदर्शनका निकलना बंद हो गया।

कुछ वर्ष वाद साधारणी-सम्पादक श्रीयुक्त अक्षयचन्द्र सरकार महाशयकी चेष्टासे नवजीवन प्रकाशित हुआ। नवजीवनके साथ वङ्किमचन्द्रने मानो नवजीवन प्राप्त किया। आनन्दमठके शेषमें तथा देवी चौधरानीमें इन्होंने जिस ज्ञान और कर्मयोगका सूत्रपात किया, सीतारामकी उसकी परिणति है।

वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय।

वङ्गके अन्तिम गौरवरवि सीतारामका प्रकृत आलेख्य इनकी तुलिकासे कुछ भिन्नरूपमें चित्रित होने पर भी उनके जीवनमें जो संन्यासिरूपी महापुरुषका प्रभाव विस्तृत हुआ था, सीतारामकी वङ्किमचन्द्रने वही चित्र दिखानेकी चेष्टा की थी। उस समय वङ्किमचन्द्रके जमाई रखालचन्द्र वन्दोपाध्यायने 'प्रचार' नामक एक मासिक पत्र निकाला। वह मासिकपत्र वङ्किम वाबूके परामर्शसे ही निकाला गया था, इसमें सन्देह नहीं। प्रचारमें कृष्णचरित और गीतामें तथा नवजीवनमें धर्मतत्त्व प्रकाश कर उन्होंने अपने नवजीवनका प्रकृत लक्ष्य लोगोंको जना दिया था।

डिपटी-कार्यमें वृटिश-गवर्नमेण्टके निकट इनकी अच्छी ख्याति थी। उपयुक्त समयमें इन्हें पेन्शन मिली। वृटिश-गवर्नमेण्टने इनकी कार्यदक्षतासे संतुष्ट हो इन्हें रायबहादुर और सी, आई, ई, की उपाधि दी। पेन्शनके बाद इनका अधिकांश समय साहित्यसेवा, धर्मचर्चा और ज्योतिःशास्त्रकी आलोचनामें व्यतीत होता था।

इनके एक भी पुत्र न था। केवल दो कन्याएं थीं। पेन्शन पानेके बाद इनके शरीरमें भी शिथिलता आ गई। आखिर १३०० सालकी २६वीं चैत अपराह्णकालके ३ बज कर २३ मिनिटमें वहुमूत्रजनित ज्वर तथा मूत्रनालीके विस्फोटक रोगसे वङ्गके साहित्यरथी महामति वङ्किमचन्द्र परलोकको सिधारे। उनकी मृत्युसे वङ्गसाहित्यकी जो क्षति हुई है, उसकी फिर पूर्त्ति होनेकी नहीं।

उस समय वङ्गालके अधिकांश सामयिक और संवादपत्रके सम्पादकने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, कि वङ्किम वाबूकी मृत्युसे वङ्गालका साहित्यराज्य राजहीन हो गया। वङ्गालीके हृदय-गठनमें वङ्किमचन्द्रकी हृदयप्रतिभा विशेष कार्यकारी हुई थी। जातीय जीवनकी सम्यक् परिणतिके समय अपर सुसभ्य जातिके मध्य भी शायद ऐसी महीयसी प्रतिभाका परिचय मिलता हो। वङ्किम वावू सर्वतोमुखी प्रतिभाके असाधारण दृष्टान्त हैं। इतिहास, गणित, साहित्य आदि विषयोंमें ही वे सर्वश्रेष्ठ थे। इनकी प्रकृतिका प्रधान लक्षण स्वातन्त्र्य था। वंगालमें ऐसे जीवनका नितान्त असद्भाव था। क्या स्वदेशी क्या विदेशी सर्वोंके निकट वे समान स्वाधीन चित्तका परिचय दे गये हैं। स्वतन्त्रता या जातीयता खोये विना वंगाली किस तरह अङ्गरेजी शिक्षासे उपकार उठा सकते हैं, वङ्किमचन्द्र उनके आदर्श थे। वंगालियोंका नितान्त दुर्भाग्य हुआ, कि उनके धर्म और सामाजिक मत अंग अंगमें फैलनेके पहिले ही वे परलोक सिधारे। उनका धर्मतत्त्व उनके धर्मजीवनकी अनुक्रमणिकामात्र थी। उनका धर्ममत गीताके समान था। निष्काम भक्ति या सकल वृत्तिकी अफलाकांक्षी ईश्वरमुखिता उनके प्रचारित

धर्मानुशीलनका मुख्य साधन था। भारतकी भावी आशासे उत्फुल्ल हो उन्होंने जो "वन्दे मातरम्" गाया था। उनके तिरोभावके वारह वर्ष वाद आज वह भारतवासी-के जातीय संगीतरूपमें कोटि कोटिकण्ठसे पुकाराजाता है।

वङ्गमाताकी मूर्त्ति वङ्किमके हृदय-पट पर सदा विराजमान रहती थी, इसका आभास "कमलाकान्तेर दफ्तर" "आमार दुर्गोत्सव" प्रवन्धसे सूचित होता है। वङ्किम वावू वंगालको दीन हीन नहीं समझते थे,—उनके "वन्दे मातरम्" जातीय हीनतासूचक कातरोक्ति नहीं है, उसमें सुदूर जातीय-गौरवकी स्मृतिसे शक्तिहीन निश्चेष्ट स्पर्द्धा नहीं—उसमें वङ्किम वावूने वङ्गमात'को भगवतीकी तरह महीयसी शक्तिशालिनी-स्वरूपमें कल्पना की है,—इस हिसावसे 'वन्दे मातरम्' गान जातीय सङ्गीतोंके मध्य स्वतन्त्र प्रतिष्ठा पाने योग्य है। वङ्गाली जातिके अभ्यन्तर जो महाशक्ति छिपी थी, 'वन्दे मातरम्' गानसे वङ्किम वावूने ही उसका आविष्कार किया।

वङ्किम वावू स्वयं अपना एक 'आत्मचरित' लिख गये हैं। उनकी मृत्युके वारह वर्षके भीतर उनकी जीवनी प्रकाशित न हो, अपने आत्मीय स्वजन तथा वङ्गाली मात्र-से वे प्रार्थना कर गये थे। 'वन्दे मातरम्' गानने भारत-वर्षके कोटिकण्ठसे नववल सञ्चय कर वङ्किम वावूके जातीय अनुरागको समुज्ज्वल कर दिखाया। यदि उनका जीवनचरित प्रकाशित हुआ होता, तो उनकी एक प्रधान कीर्त्तिका हाल प्रकाशित रह जाता।

वङ्किमदास कविराज—'वैषम्योद्धरणी' नामक किरातार्जु-नीयकाव्यकी टीकाके रचयिता।

वङ्किल (सं० पु०) वङ्कति इति वङ्क-इलच्। कण्टक, काँटा।

वङ्कु (सं० त्रि०) १ वक्रगामी। २ वक्रगमनशील।

वङ्कु—प्राचीन एक नदी। (भारत सभापर्व) वंक्षु देखो।

वङ्क्य (सं० त्रि०) वञ्च-ण्यत्। (वञ्चेर्गतौ। पा ७।३।६३) इति अगत्यर्थे कुत्वम् च। वक्र, टेढ़ा।

वङ्क्रि (सं० पु० क्ली०) वङ्कते इति। वकि कौटिल्ये (वङ्क्र्यादयश्च। उण् ४।६६) इति क्रिन् प्रत्ययेन निपात्यते। १ वाद्यविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका वाजा। २ कड़ी, कौड़ी। ३ पार्श्वास्थि, पशुओंकी पसलीकी हड्डी।

वङ्क्षण (सं० पु०) वङ्क्षति संहतो भवतीति वङ्क्ष-ल्युः पृषोदरादित्वात् नुम्। मूत्राशय और जंघास्थलका सन्धि-स्थान, वह स्थान जो पेड़ू और जांघके वीचमें है और जहां 'वर्ध्म' नामक रोगकी गांठ निकला करती है।

वङ्क्षु (सं० स्त्री०) वहतीति वह-वाहुलकात् कुन्, नुम् च। आक्सस नदी। यह हिन्दुकुश पर्वतसे निकल कर मध्य एशियामें वहती हुई आरल समुद्रमें गिरती है। इस नदी-का नाम वेदोंमें कई जगह आया है। पुराणोंमें यह केतु-माल वर्षकी एक नदी कही गई है।

महाभारतीय युगमें इस पुण्यतोया नदीकी गणना पवित्र नदियोंमें की गई थी।

"गोदावरी च वेण्वा च कृष्णावेण्या तथा द्विजा।
दृषद्वती च कावेरी वङ्क्षुर्मन्दाकिनी तथा॥"

(महाभारत १३।१६५।२२)

रघुवंशकी प्राचीन प्रतियोंमें भी रघुके दिग्विजयके अन्तर्गत इस नदीका उल्लेख है और इसके किनारे हूणों-की वस्ती कही गई है।

वङ्ग (सं० क्ली०) वङ्गतीति वगि-गतौ अच्। १ धातु विशेष, रांगा नामकी धातु। पर्याय—त्रपु, स्वर्णज, नाग-जीवन, मृद्वङ्ग, रङ्ग, गुरुपत्र, पिच्चट, चक्रसंज्ञ, नागज, तमर, कस्तीर, आलीनक, सिंहल, स्ववेत, नाग।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि खुरक और मिश्रक भेदसे वङ्ग दो प्रकारका है। मिश्रकसे क्षुरक वङ्ग उत्तम होता है। इसका गुण लघु और सारक तथा प्रमेह, कफ, कृमि, पाण्डु और श्वासरोगनाशक माना गया है। यह शरीरका सुखदायक, इन्द्रियोंके प्रवलता-सम्पादक और मानवदेहका पुष्टिसाधक है।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें वङ्ग (रांगा)-की विभिन्न शोधन-प्रणाली लिखी है। चूनेके पानीमें चार दण्ड तक स्वेद देनेसे वङ्ग विशुद्ध होता है। पीछे हरतालको आकके दुध-में खूव मल कर वह लेह पदार्थ वङ्गके पत्तरमें लेप दे कर पीपलकी छाल आगमें सात वार पुट दे अथवा विशुद्ध वङ्गमें पहले हरिद्राचूर्ण, दूसरेमें जवायन, तीसरे-में जीरा, चौथेमें इमलीकी छालका चूर्ण और पांचवेंमें पीपलकी छालका चूर्ण दे कर यथाविधान पाक करनेसे वङ्गका भस्म तैयार होता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

विशुद्ध वङ्गको दूसरी हंडीमें गला कर उसीके परिमाणमें अपामार्गभस्मचूर्ण उसमें मिला कर खलमें अच्छी तरह घोंटना होगा। पीछे राख फेंक कर शराब पुटमें तेज आंच देने पर वङ्गभस्म होता है।

वङ्गभस्मका गुण—तिक्त, अम्ल, रूक्ष, वातवर्द्धक, मेद, श्लेष्म, कृमि और मेहरोगनाशक।

अविशुद्ध वङ्गका गुण—तिक्त, मधुर, भेदन, पाण्डु, कृमि और वातनाशक, थोड़ा पित्तकर और लेखनोपयोगी।

२ सीसक, सीसा। सीसक और वङ्ग प्रायः एक ही समान होता है। यथास्थान इसका वैज्ञानिक संयोग और गुणावली लिखी गई है। त्रपु, रङ्ग और सीसक देखो।

३ कार्पास, कपास। ४ वार्त्ताकु, वैंगन।

वङ्ग (सं० पु०) मगध या विहारके पूर्व पड़नेवाला प्रदेश, वंगाल। ऋग्वेदमें सबसे पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेशका उल्लेख है, वह 'कीकट' (मगध) है। अथर्व संहितामें 'अङ्ग' देशका भी नाम मिलता है। संहिताओंमें 'वङ्ग' नाम नहीं मिलता। ऐतरेय आरण्यकमें ही सबसे पहले वङ्ग देशकी चर्चा आई है और वहांके निवासियोंकी दुर्वलता और दुराहार आदिका उल्लेख पाया जाता है। बात यह है, कि संहिताकालमें कीकट और वङ्ग देशमें अनार्योंका ही निवास था। आर्यलोग वहां तक न पहुंचे थे। बौधायन-धर्मसूत्रमें लिखा है, कि वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें जानेवालेको लौटने पर पुनस्तोम यज्ञ करना चाहिये। मनुस्मृतिमें तीर्थयात्राके लिये जानेकी आज्ञा है। इससे जान पड़ता है, कि उस समय आर्य वहां बस गये थे। शतपथ ब्राह्मणके समयमें मिथिलामें विदेह वंश प्रतिष्ठित था। रामायणमें प्राग्ज्योतिपुर (रंगपुरसे ले कर आसाम तक प्राग्ज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की स्थापनाका उल्लेख है।

इस प्राचीन वङ्गकी सीमा कहां तक फैली थी, इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। अपेक्षाकृत परवर्त्तीकालमें वङ्गकी जैसी सीमा निर्दिष्ट हुई थी, वह नीचे लिखे श्लोकमें दिया जाता है।

"रत्नाकरं समारभ्य ब्रह्मपुत्रान्तगं शिवे।
वङ्गदेशो मया प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदर्शकः॥"

(शक्तिसङ्गमतन्त्र) विस्तृत विवरण वङ्गदेशमें देखो।

वङ्ग (सं० पु०) चन्द्रवंशीय बलि राजाके पुत्र। (गरुड़पुराण १४४ अ०) महाभारतमें लिखा है, कि राजा बलिको कोई सन्तति न हुई। तब उन्होंने अंधे दीर्घतमा ऋषि द्वारा अपनी रानीके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न कराये। इन पुत्रोंके नाम हुए—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म। इन्हींके नाम पर देशोंके नाम पड़े।

"ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्।
बलिं सुदेष्णां भार्यां स्वां तस्मै तां प्राहिणोत् पुनः।
तां स दीर्घतमाङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत्।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः॥
अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामप्रथिता भुवि॥
अङ्गस्याङ्गो भवेद्देशो वङ्गो वङ्गस्य च स्मृतः।
कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च स स्मृतः॥
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याता सुह्मा सुह्मस्य च स्मृताः।
एवं बलेः पुरा वंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः॥"

(भारत १।१०४।४७-५१) वङ्गदेश शब्दमें पुरावृत्त देखो।

वङ्गज (सं० क्ली०) वङ्गात् धातुविशेषात् जायते इति जन-ड। १ सिन्दूर। २ पित्तल, पीतल। (त्रि०) ३ वङ्गदेश जात। ४ वङ्गदेशवासी कायस्थ, वैद्य आदि जातिका एक श्रेणीविभाग। ये दक्षिण-राढ़ीय श्रेणीकी अन्यतम शाखा कह कर परिचित हैं। यह शाखा वङ्गदेशके पूर्वाञ्चलमें आ कर बस गई है इसलिये वङ्गज कहलाती है।

वङ्गजीवन (सं० क्ली०) रौप्य, चांदी।

वङ्गदेश—स्वनामप्रसिद्ध भारतीय देशभाग। यह भाग भारतवर्षके उत्तर-पूर्व हिमालय पहाड़की जड़से ले कर दक्षिण समुद्रतट तक फैला हुआ है। भारतका यह भाग बंगभूमि, वंगराज्य, बंगला तथा बंगालाके नामसे प्रसिद्ध था। भारतवर्षके पूर्वोत्तर प्रान्तवर्त्ती पुण्यतोया गंगानदी-प्रवाहित डेल्टाके कुछ अंश ले कर यह राज्य संगठित है। बहुत प्राचीन कालमें ही यहांके लोगोंका वाणिज्य कार्यक्रम अरब तथा चीनराज्यके साथ चल रहा था। उस समय भी इस देशके रहनेवालोंकी ज्ञानवत्ता तथा बुद्धिमत्तासे संसार भरके सभी देश परिचित थे। इन लोगोंकी शिल्पादि तथा दूसरी दूसरी कलाविद्याका प्रखर-

प्रभाव चारों ओर फैल गया था। विदेशी-व्यापारी लोग समुद्रकी राहसे आ कर यहांके सुवर्ण-ग्रामादि वन्दरोंसे इस देशकी पैदा होनेवाली अनेक चीजें ले जाया करते थे। उस समयसे ही बंगालका गौरव दिग्-दिगन्तमें व्याप्त हो गया। तभीसे बंगालके दक्षिणं प्रान्त स्थित समुद्रभाग देशके नामानुसार बंगोपसागर तथा वङ्गवासी भी बंगालीके नामसे विदित हुए थे। भारतकी दूसरी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा बंगाली जातिके विद्या गौरवने बंगालको स्वतन्त्र मर्यादा तथा समादर प्रदान किया है।

नामनिरुक्ति।

यह विशाल बंगालराज्य महाभारतके समयमें किस तरह सीमावद्ध था, इसका कोई ठीक पता नहीं है। उस समय बंगराज्य, अंगराज्यके पार्श्ववर्त्ती देशके नामसे पुकारा जाता था। उसके वाद जब बंगालियोंने ज्ञानमार्गमें उन्नति करके तान्त्रिक आलोक प्राप्त किया, उस समय उन्होंने तन्त्रका महिमाविस्तार तथा प्रभाव-प्रचारके साथ हो वंगालको दैर्घ्य तथा विस्तारको कल्पना कर लिया।

'तवकत इ-नासिरी' नामक मुसलमानी इतिहासके पढ़नेसे हम लोगोंको पता चलता है, कि बंगालके सेन वंशीय अन्तिम राजा महाराज लक्ष्मणसेनको हरा कर महम्मद्-ई-वख्तियारने बंगालको विजय किया था। उसके आगमनसे लक्ष्मणावती, विहार, बंगाल तथा कामरूप आदि देश वहुत भयभीत हुए थे। मार्कोपोलो (१२२८ ई०) लिखते हैं, कि १२९० ई० पर्यन्त बंगाल विजय नहीं हुआ। बंगाल उक्त चारों देशोंके दक्षिण भागमें अवस्थित था। उक्त दोनों विवरणी पढ़नेसे जाना जाता है, कि मुसलमानोंके समागमके पूर्व-बंगाल चार खंडोंमें विभक्त था। मार्कोपोलोने उसके ही दक्षिणी भागको बंगालके नामसे उल्लेख किया है। रसीदुद्दिनका कहना है, कि लगभग १३०० ई०में बंगाल दिल्लीश्वरके अधीन हुआ। १३४५ ई० में 'इवन वतुता'-ने बंगालराज्य तथा वहांके धानकी प्रचुरताका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, कि खोरासानवासी इस प्रदेशको नाना प्रकारके उत्कृष्ट पदार्थोंसे परिपूर्ण नगर कहते थे। सुप्रसिद्ध कवि हाफिजकी (१३५० ई०) कविताओंमें बंगालका उल्लेख पाया जाता है। भास्को दी-गामाने (१४९८ ई०) बंगालमें मुसलमानोंकी प्रधानता तथा यहांके सूती तथा रेशमी वस्त्र, चांदी प्रभृति वाणिज्य-पदार्थोंका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, कि अनुकुल हवा वहनेसे ४० दिनमें कालिकटसे बंगाल आ सकते हैं। इसके अलावा १५०५ ई०में लिवनार्दो, १५१० ई०में वार्थेमा तथा १५१५ ई०में वार्वोसा बंगाल-राज्य तथा वहांके रहनेवालोंके व्यापारका विवरण लिपिवद्ध कर गये हैं। अबुलफज़ल-कृत 'आईन-ई अकवरी' नामक मुसलमानी इतिहासमें वङ्गाल शब्दकी एक व्युत्पत्ति दी गई है। उन्होंने लिखा है, कि प्राचीन कालमें यह देश बंग नामसे उल्लिखित होता था। बंगके पूर्वतन हिन्दू राजे पर्वत-पादमूलस्थ निम्नभूमिमें मिट्टीके वांध अथवा आल दिया करते थे। बंगालके अनेकों स्थानमें उक्त राजाओंसे निर्म्मित इस तरहके सैकड़ों आल विद्यमान देख कर आलयुक्त बंगका नामकरण बंगाल हुआ है। सम्राट् औरङ्गजेब बंगालकी समृद्धि देख कर अभिमान सहित कह गये हैं, कि यह स्थान सभी जातियोंके लिये स्वर्गके समान है। १५९० ई० में चमिन्टन लिखते हैं, कि बंगाल-राज्य अराकानके उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। चट्टग्राम बंगालके दक्षिण-पूर्व सीमान्त पर विद्यमान है।

वंग नामकी उत्पत्ति एवं इस राज्यका स्थिति तथा प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंके जैसा विवरण पाया जाता है, वह पुरावृत्त प्रसंगमें लिखा जा चुका है। लुई-वार्थेमा एवं अपरापर पुर्त्तगीज भ्रमणकारियोंने चट्टग्रामके निकटवाले बंगाला नामक एक नगरका उल्लेख किया है। प्राचीन मानचित्रमें उस नगरका स्थान निर्देश किया हुआ है। बहुत सम्भव है, कि वार्थेमाने बंगालमें पदार्पण नहीं किया। वे मलवारके उपकूलमें ही ठहर कर अरवी वणिकोंके पश्चानुवर्त्ती हो कर इस देशके नामानुसार बंगालके प्रधान नगरका नाम बंगाला लिख गये हैं, परन्तु इस बंगाल नगरका कोई निदर्शन विद्यमान नहीं है। जान पड़ता है, कि पुर्त्तगीजोंने बंगालके प्रधान वन्दर चट्टग्राम आ कर उसके दक्षिण उपकण्ठस्थित एक गण्डग्रामको बंगालियोंकी वासभूमि समझ चट्टग्रामको ही बंगाला नगर वतलाया है।

सीमा तथा विभाग इत्यादि।

ब्रह्मपुत्र तथा गंगा नदीके डेल्टाओं एवं उनके अववाहिका प्रदेशकी निम्नतम उपत्यका भूमिको ले कर वस्तुतः वर्त्तमान बंगाल संगठित है। १८७४ ई०में आसाम विभागको बंगालका अंगच्युत करके स्वतन्त्र शासनाधीन किया गया। उस समयसे ही खास-बंगाल, विहार, उड़ीसा तथा छोटानागपुर विभागको एकत्र करके अंग्रेजाधिकृत बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की गई थी। उसके बाद १९०५ ई०की १६वीं अक्टूबरको पूर्व-बंगालको आसाममें मिला कर एक दूसरे छोटे लाटके अधीन 'पूर्व-बंगाल तथा आसाम' प्रदेश स्वतन्त्र संगठित किया गया। १९१२ ई०से विहार और उड़ीसा बंगालसे अलग कर दिया गया और पूर्व-बंगाल बंगदेशमें मिला लिया गया है। यह अक्षा० २१° ३०' से ले कर २७° १२' ४४" उ० तथा देशा० ८६° ५७' ४५" से ले कर ९२° ४९' पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ८०००० वर्गमील है।

इसकी उत्तरी सीमा पर नेपाल तथा भोटान राज्य; पूर्वमें आसाम; दक्षिणमें बंगोपसागर; पश्चिममें विहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर है। बंगाल छोटा लाट (Governor)-के शासनाधीन है।

मुसलमान लोग बंग-विजय करके गंगाके डेल्टाओंको ही संस्कृत नामानुसार बंग कहा करते थे। किसी किसी मुसलमान ऐतिहासिकने राजधानी लक्ष्मणावतीके नामानुसार इस प्रदेशको भी लक्ष्मणावतीके नामसे वर्णन किया है। गौड़ तथा लक्ष्मणावतीके ध्वंसके बाद जिस समय राजपाट ढाका तथा नवद्वीपमें स्थानान्तरित हुआ, उस समय भी निम्न बंग बंगालके नामसे ही परिगणित होता था। इसके बाद मुसलमानोंने पूर्वमें ब्रह्मपुत्र-तीर पर्यन्त अधिकार करके बंगालकी सीमा वृद्धि की। दिल्लीके अधीनस्थ अफगान शासनकर्त्ताओं तथा उसके बादके स्वाधीन अफगान राजाओंके राज्य शेष हो जाने पर मुगल-सम्राट् अकबर शाहके सुविख्यात सेनापति मानसिंहने बंगालको मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया। राजा टोडरमलकी पैमाइशीके बाद राजकरको सुविधाके लिये बंगाल, विहार, तथा उड़ीसाको मिला कर एक सूबा संगठित किया गया एवं उसी सूबेमें जिला, सरकार तथा परगना प्रभृति विभाग निर्दिष्ट किये गये थे। इस सूबेमें बंगालका शासन करने के लिये दिल्लीश्वरके अधीन एक शासनकर्त्ता नवाब बंगालमें रहते थे। ये शेषोक्त नवाब वंशपरम्परासे ही मुर्शिदाबादके नवाबके नामसे परिचित थे। सिर्फ एक नवाबसे ऐसे विस्तृत तथा महासमृद्धिशाली देशका राजकर वसूल होनेकी सुविधा न देख कर उनके अधीन विहार, उड़ीसा तथा ढाकामें एक एक नायब-नाजिम (Deputy Governor) रखनेकी व्यवस्था की गई थी।

अंगरेजाधिकारमें बंगालका सन्निवेश लेनेसे प्रकृत वंग नामका अनेक विपर्यय साधित हुआ है। उड़ीसाके उपकूलस्थित बालेश्वरसे ले कर विहारके मध्यवर्त्ती पटना पर्यन्त स्थानों पर ईष्ट-इण्डिया कम्पनीकी जितनी कोठियां थीं, वे उक्त कम्पनीके दफ्तर (Bengal'Establishment)-के नामसे वर्णित हैं। फ्रान्सिस फार्णण्डेजने चट्टग्रामके पूर्व बहुत दूरसे ले कर उड़ीसाके अन्तर्गत पामिरा पइण्ट (Palmyra Point) पर्य्यन्त विस्तृत उपकूल तथा गंगाप्रवाहित भूमिभाग ले कर बंगालकी सीमा निर्दिष्ट की थी। पार्कसि (Purchas)-के मतसे यह उपकूलभाग प्रायः ५०० मील है।

पूर्व विवरण पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि बंगालकी सीमा किसी समय भी स्थिर नहीं थी। पार्श्ववर्त्ती राजाओंके आक्रमणसे समय समय पर इसका अंगच्युत हुआ करता था। बंगालके अन्तिम मुसलमान नवाब सिराजुद्दौलाके बंग-सिंहासनसे च्युत होने पर तथा बंगालकी दिल्लीश्वर कर्त्तृक दीवानी अङ्गरेजके हाथमें समर्पित होने पर भी आराकान तथा ब्रह्म-वासियोंने बंगालका सीमान्तप्रदेश आलोड़ित कर डाला था। सिपाही-विद्रोहके बाद ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका शासन अपसृत होने पर महारानी विक्टोरियाने इसका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया था। उस समय उन्होंने सुप्रीमकोर्ट तथा सदर दीवानी अदालत हटा कर अपने मतानुसार हाईकोर्ट स्थापित किया। अङ्गरेज-गवर्नमेण्ट विशेष दृढ़ताके साथ बंगालकी शासन-व्यवस्था करने लगी। १८७७ ई०में महारानी 'भारत-सम्राज्ञी'के पद पर अभिषिक्त होने पर भारतमें अङ्गरेजोंका प्रभाव अक्षुण्ण हो उठा। भोटान-युद्ध तथा मणि-

पुर-युद्धावसानमें बंगालकी सीमा परिवर्द्धित हुई। अंगरेज-गवर्नमेण्टने बंगालको प्रेसिडेन्सीभुक्त कर लिया।

अंगरेजाधिकृत यह बंगाल राज्य क्रमसे एक प्रेसिडेन्सीके रूपमें विभक्त हो गया। सिर्फ गंगा तथा ब्रह्मपुत्र प्रवाहित समस्त अववाहिका प्रदेश ही नहीं, बल्कि सिन्धुनदके समग्र अववाहिका प्रदेश तथा उसके हिमालय पृष्ठस्थ शाखा-प्रशाखा-व्याप्त स्थानोंको भी ले कर यह विभाग संगठित हुआ। तात्पर्य यह, कि विन्ध्यपर्वतमालाके उत्तर दिग्वर्त्ती प्रायः समग्र आर्यावर्त्त भूमि बंगाल प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त हुई थी। बंगाल प्रेसिडेन्सीके इस विभागके सम्बन्धमें अब केवल कहनो ही शेष है। जिन पांच सुवृहत् प्रदेशोंको ले कर 'बंगाल-प्रेसिडेन्सी' संगठित हुई थी, वे पांचों प्रदेश क्रमशः निर्द्दिष्ट विभिन्न शासनकर्त्ताके अधीन हुए; किन्तु सबोंके ऊपर भारत-राज-प्रतिनिधि कर्त्तृत्व कर दिये गये। बंगाल प्रेसिडेन्सी इस ऐतिहासिक विभाग संगठित होनेके बहुत पीछे अर्थात् १८५१ ई०में मध्यप्रदेशमें एक स्वतन्त्र शासन-विभाग गठित हुआ था। किन्तु जो बंगाल बंगवासियोंकी जन्मभूमि है, जो गंगा तथा ब्रह्मपुत्रकी उपत्यका ले कर प्रधानतः गठित है, वही अंगरेज राजकीय दफ्तरमें निम्न वंग (Lower Bengal)-के नामसे वर्णित है।

वङ्गदेशका विभाग और जिला।

शासनकार्य चलानेके लिये वंगदेश पांच विभागों (Division) में विभक्त है; फिर विभाग जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेका शासन-भार वहांके कलक्टर-मजिष्ट्रेटके ऊपर अर्पित है। उन कलक्टरोंके कार्योंकी देख रेख करनेके लिये प्रत्येक विभागमें एक एक कमिश्नर नियुक्त हैं। नीचे वंगदेशके विभागों, जिलों और सदरों (Head quarters) के नाम दिये जाते हैं।

जिला	सदर
१ प्रेसिडेन्सी-विभाग—	
(१) कलकत्ता	कलकत्ता
(२) चौवीस परगना	अलीपुर
(३) खुलना	खुलना
(४) नदीया	कृष्णनगर
(५) जशोर	जशोर
(६) मुर्शिदाबाद	बहरमपुर
२—वर्द्धमान-विभाग—	
(१) वर्द्धमान	वर्द्धमान
(२) वांकुड़ा	वांकुड़ा
(३) वीरभूम	सिवड़ी
(४) मेदिनीपुर	मेदिनीपुर
(५) हुगली	हुगली
(६) हवड़ा	हवड़ा
३—राजसाही-विभाग—	
(१) राजसाही	रामपुर-बोआलिया
(२) बोगड़ा	बोगड़ा
(३) पवना	पवना
(४) मालदह	अंगरेज-बाजार
(५) रंगपुर	रंगपुर
(६) दिनाजपुर	दिनाजपुर
(७) जलपाईगोड़ी	जलपाईगोड़ी
(८) दार्जिलिङ्ग	दार्जिलिंग
४—ढाका-विभाग—	
(१) ढाका	ढाका
(२) फरीदपुर	फरीदपुर
(३) वाकरगंज	वारिशाल
(४) मैमनसिंह	मैमनसिंह
५—चट्टग्राम-विभाग—	
(१) चट्टग्राम	चट्टग्राम
(२) पार्वत्य चट्टग्राम	रंगामाटी
(३) नवाखाली	सुधाराम
(४) त्रिपुरा	कोमिल्ला

प्राकृतिक दृश्य।

बंगालप्रदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका विशेष कोई असद्भाव नहीं हुआ है। दक्षिणमें तरंगसंकुल वंगोपसागर उत्ताल ऊर्म्मिमालासे सागरसैकतको विधौत कर रहा है। उत्तरमें हिमाचलशिखर क्रमोच्च शृंगमालासे समारोहित हो कर मानो एक अभि-

नव हृदयपट उन्मोचित कर रहे हैं। उस तुषारमण्डित शिखर पर अरुणकिरणके प्रतिफलित होनेसे तुषार-धवल पर्वतसानु एक ज्योतिर्म्मय हैमस्तूपमें पर्य्यवसित हो रहा है। दिवाभागमें कभी वह सूर्यकिरणसे समुद्भासित हो कर दिग् दिगन्त आलोकित करता है और कभी गाढ़ कुज्झटिकासे समाच्छादित हो कर अपूर्व मेघमालाकी तरह निश्चल दण्डायमान है। ये पर्वत-गात्रको विधौत करके छोटी छोटी स्रोतस्विनी प्रखर गतिसे समतल उपत्यका प्रान्तमें अवतीर्ण हो कर परस्पर के संयोगसे पुष्ट हो एक एक प्रकृष्ट जलधारारूपमें प्रवाहित हो रही है। उक्त नदियोंमें हिमपादनिःसृत गंगा तथा ब्रह्मपुत्र ही यहांके प्रधान प्रवाह हैं। दूसरी उनकी ही शाखा प्रशाखायें हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र देखो।

यही नदियाँ वङ्गालकी शोभा तथा शस्य समृद्धिका एकमात्र कारण हैं। हिमालयपृष्ठ अथवा उत्तर-बंगालके उच्च स्थानोंको विधौत करके इन नदियोंने निम्न बङ्गालकी निम्न भूमिमें एक मृद्द स्तर ला कर संचय कर दिया है। इस स्तर की उर्व्वरताशक्ति ऐसी है, कि जिस स्थानमें इस तरह स्तर संचित हो जाता है, वहां पर्य्याप्त परिमाणमें विभिन्न प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। गंगा तथा ब्रह्मपुत्रके उत्तर उपत्यका खण्ड एवं निम्न बंगालके समतल प्रान्तमें इस तरह नदी-जालसे समाच्छन्न हो जानेसे शस्यक्षेत्रोंको सींचे जानेकी विशेष सुविधा हो गई है। कभी कभी ये नदियां वन्य-विताड़ित हो कर उभय तीरवर्ती ग्रामोंको जलमय कर देती हैं जिससे भूपृष्ठमें एक प्रकारकी पौक जम जाती है। यह पौक भी शस्योत्पादनमें विशेष उपयोगी होती है। कभी कभी ठौर ठौर पर खाई खोद कर नाली प्रभृतिसे जल ला कर खेत सींचनेकी व्यवस्था की जाती है। उच्च भूमिमें कूप अथवा पुष्करिण्यादि खोद कर भी कृषिकार्य सम्पन्न किया जाता है। इन सभी कृषिक्षेत्रोंके बीच छोटे छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर अथवा वाणिज्य-प्रधान बन्दर-समूह विराजित हैं। नगरके आस-पास नगरवासियोंके स्वहस्तरोपित पुष्पोद्यान अथवा फल-वृक्षादि परिशोभित उपवनसमूह तथा तन्मध्यस्थ अट्टालिकादि स्थानीय सौन्दर्यकी वृद्धि कर रही है। गंगादि नदीतीरवर्त्ती ग्राम अथवा नगरोंमें विशेषतः स्नान करनेके घाटों पर देव-मन्दिरादि प्रतिष्ठित हो कर देशवासियोंकी धर्म्मपरायणता तथा स्थापत्यशिल्पका परिचय दे रहे हैं। ग्रामके मध्य अथवा पार्श्वस्थ ये सब अट्टालिकायें या मन्दिर श्यामल ग्राम्य वैचित्र्यकी एकाग्रता भंग कर देते हैं। कहीं कहीं भग्न मन्दिर अथवा प्राचीन प्रासादादि विध्वस्त हो कर जंगलपूर्ण स्तूपराशिमें परिणत हो गये हैं। ये सब प्राचीन कीर्त्तिनिदर्शन प्रत्नतत्त्वविदोंकी आलोचना करनेकी चीजें हैं। पार्वत्य वनमालामें इन सब स्तूपोपरि गठित जंगलोंमें सौन्दर्यका विशेष विकाश न होने पर भी उनमें विभिन्न जातीय हिंस्र जीवोंका वास हो गया है। इन जंगलोंके आस-पासमें भी छोटे छोटे ग्राम विद्यमान हैं। वास्तविकमें बङ्गालके विभिन्न नदीवर्त्ती ग्राम अथवा नगरोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यका इतना ही वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, कि सभी स्थान मानो नवभूषासे सुसज्जित हो कर दर्शकोंके चित्तको आकर्षित करनेका प्रयास कर रहे हैं।

इस बंगाल प्रदेशमें जितनी नदियां तथा शाखा देखी जाती हैं, उन सबोंमें गंगा और ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। तिस्ता, भागीरथी (हुगली), दामोदर, रूपनारायण प्रभृति कई दूसरी दूसरी नदियां अपेक्षाकृत क्षुद्र होने पर भी प्रधान नदियां ही कहलाती हैं। इनके अलावे कई शाखा नदियोंसे अथवा नदीके अंशविशेष विभिन्न नामसे परिचित हैं। जैसे अजय, आड़ियल-खां, बराकर, भैरव, विद्याधरी, बड़ तिस्ता, छोट तिस्ता, बूढ़ीगंगा, चित्रा, धलेश्वरी, धलकिशोर वा द्वारकेश्वर, इच्छामती, यमुना, कपोताक्ष, करतोया, कालीगंगा, कालिन्दी, मेघना, मरा-तिस्ता, मातला वा रायमङ्गल, मयूराक्षी, पद्मा, रूपनारायण, सन्दीप, सरस्वती।

उपरोक्त नदियां अथवा उनकी शाखायें एवं संयुक्त खाइयाँ बंगालके विभिन्न स्थानमें विस्तारित होनेसे कृषिक्षेत्रादिको सींचनेकी जिस तरह सुविधा है, उसी तरह नौकाओंके द्वारा पण्यद्रव्य एक स्थानसे दूसरे स्थान लाने पर एवं ले जानेकी भी सुविधा है। दुःखका विषय है, कि प्राकृतिक परिवर्त्तनसे नदियोंकी गति दूसरी ओर परिचालित होनेके कारण कई नदियोंकी प्राचीन

धारा प्रायः सूख गई है। इन धाराओंमें वर्षा ऋतुके अतिरिक्त अन्य ऋतुओंमें बहुत कम जल शेष रह जाता है। ये सब धारायें मरातिस्ता, बूढ़ीगंगा प्रभृति नामोंसे परिचित हैं। दूसरी दूसरी कितनी ही नदियोंकी धाराओंके कई स्थानोंमें तो बिल्कुल ही जल नहीं रहता। इन नदियोंके ऊपर रेलपथके लिये पुल बांधे गये हैं। कई मरी हुई नदियोंकी धाराओंको भरके उसके ऊपर लौहवर्त्म विस्तारित किया गया है। कई नदियोंसे व्यापारकी सुविधाके लिये गवर्मेण्ट बहादुरने खाई खोद कर उनको धाराओंको दूसरो ओर परिचालित कर दिया है, जिससे इस देशवासियोंमें कितनेको तो लाभ पहुंचता है और कितनेको अत्यन्त हानि होती है। प्राचीन कितनी ही नदियां शुष्क हो कर इस समय शस्यक्षेत्रमें पर्यावसित हो गई हैं। उन स्थानोंके बाशिन्दे जलकष्टसे हाहाकार कर रहे हैं। वारिपातरूप जगदीश्वरकी अनुकम्पाके सिवा यहांकी प्रजाओंके प्राणोंको रक्षाका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कहीं कहीं खाई, बांध प्रभृति द्वारा देश-रक्षाका विधान हुआ है, किन्तु वे सिर्फ स्थानीय लोगोंका ही कुछ उपकार कर सकते हैं। स्वर्णप्रसू बंगालकी नदियां बाहुल्य होने पर भी इस समय जलाभावसे यहांकी प्रजा दुर्भिक्ष तथा अन्नकष्टसे प्रपीड़ित है।

नदियोंके अलावे स्थान स्थान पर कूप तथा तड़ागादिके द्वारा वहांका जलाभाव दूर किया जाता है। दामोदर आदि बहुत-सी नदियों पर बांध बांध कर जल-रक्षाकी व्यवस्था है। वहांकी छोटी छोटी जल-धाराओंसे ये बांध ही वहांके लोगोंके लिये विशेष उपकारी हैं।

वीरभूम आदि नाना स्थानोंमें बहुतसे शीतल, लवण और उष्ण जलपूर्ण प्रस्रवण दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब स्थान बहुत प्राचीनकालसे ही तीर्थक्षेत्ररूपमें गिने जाते हैं। इसका विशेष विवरण जिला प्रसंगमें लिखा गया है। प्रस्रवण जो प्राचीनत्वका परिचालक है, यह बंगालके भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है।

भूतत्त्व।

भूतत्त्वविदोंने विशेष गवेषणा और अनुशीलनके बाद यह स्थिर किया है, कि निम्नवङ्गका अधिकांश स्थान समुद्रगर्भमें पड़ा हुआ था। कालक्रमसे समुद्रगर्भ जितना ही पीछे हटता गया उतना ही चर पड़ता गया। पीछे वही चर जनसमाजके वासस्थानके रूपमें परिणत हो गया है। पृथ्वीके नीचे पड़ी हुई शम्बूक (सीप) मछली आदिकी हड्डी और नवीभूत मिट्टीके स्तरादि उसका प्रमाण देते हैं। महाभारतके वनपर्व ११३ अ० युधिष्ठिरके तीर्थयात्रा-विवरणमें कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पांच सौ नदीयुक्त गङ्गासागर-सङ्गम तथा वहांसे भी कुछ दूर समुद्रके किनारे कलिङ्ग देश रहनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि समस्त तीर उस समय उत्तरराढ़से कुछ दूर तक विस्तृत था। कौशिकीका वर्त्तमान नाम कोसी है। तारकेश्वरके निकटवर्त्ती हरिपाल आदि ग्रामोंके निकट कौशिकीका प्राचीन गर्भ देखा जाता है। ग्रीक-राजदूत मेगास्थनीज पटनासे तीन सौ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमकी बात लिख गये है।

आज कल जिस प्रकार हम लोग नवाखाली जिलेके समुद्रोपकूल पर सनद्वीप आदि चरजात द्वीपकी उत्पत्ति देखते हैं, प्राचीन कालमें भी उसी प्रकार समुद्रतीरवर्त्ती नदियोंके मुहाने पर मिट्टी जम जानेसे क्रमशः द्वीपकी उत्पत्ति हुई थी। इसी कारण बहुत-से स्थानोंके नामके अन्तमें 'द्वीप' 'दियारा या दिया' और 'चर' शब्द दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, अग्रद्वीप, शुकचर, बकचर, कांटादिया, रूपदिया आदि स्थान शायद उसी चरसे उत्पन्न हुए होंगे।

उस समयके लोकसमाजका प्रथित चर आगे चल कर वृक्ष, लतादिसे परिपूर्ण हो उपवन, ग्राम और धीरे धीरे नगरमें परिणत हो गया है। किन्तु आज भी वह चराभिधान दूर नहीं हुआ है। चकदह, खड़दह, शिवादह आदि जिस प्रकार नदीगर्भसे पीछे सौधमाला-मण्डित सुरम्य नगरमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार नदीस्रोतसे लाये गये वालूके कण भी मुहानास्थ समुद्र-तट पर सञ्चित हो जाते हैं और जिससे चरभूमिकी उत्पत्ति होती है। आज जहां पर मकरसंक्रान्तिके दिन सागर-तीर्थयात्रिगण इकट्ठे हो कर स्नानादि करते हैं,

कुछ दिन बाद वह समुद्रगर्भको भेद कर ऊपर उठेगा और क्रमशः ग्राममें नगरमें परिणत हो जायगा।

मेघना नदीके सागरसङ्गम पर वाबुरा, मानपुरा आदि द्वीप जो सौ वर्ष पहले केवल भाटेके समय जग उठता और ज्वारके समय डूब जाता था अभी वही उच्च भूमि और बहुजनाकीर्ण ग्रामोंसे परिपूर्ण हो गया है। उसके बाद नाजीरचर, फालकनचर नामक और भी दो छोटे द्वीप उल्लेखनीय हैं। १८६० ई०में भी वह जंगलोंसे भरा था, अभी वहां बहुत लोगोंका वास हो गया है। उसके बाद चौबिसपरगना, खुलना और बारिशालसे बहुत दक्षिण जहां सौ वर्ष पहले समुद्रतरङ्ग बहती थी अभी उन सब स्थानोंमें असंख्य ग्राम नगर बस गये हैं।

नदी-स्रोतसे लाये गये बालूके कण जब नदी गर्भमें सञ्चित होते, तब चरकी उत्पत्ति होती है। यह बात सर्व-वादिसम्मत है। इस बङ्गभूमिमें प्रवाहित गङ्गा नदी किस वेगसे कितनी मिट्टी प्रति दिन वहन कर समुद्रमुखमें ढाल देती है, उसकी गणना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। करीब ७५ वर्ष पहले कुछ अभिज्ञ यूरोपीय पण्डितोंने गाजीपुरमें बैठ कर नाना उपाय प्रयोग द्वारा स्थिर किया था, कि गङ्गा प्रति वर्ष सागरसङ्गमस्थलमें १७३८२४०००० मन मिट्टी वहन कर ढाल देती है। किन्तु गाजीपुरसे दक्षिण स्वयं गङ्गा और उसकी शोन, अजय आदि शाखा नदियां सुन्दरवनके मध्यमें अवस्थित २५० नदियां तथा उसके बाद उत्तर-पूर्वके कोनेसे आई हुई ब्रह्मपुत्र या ललेश्वरी आदि कई नदियां एकमें मिल कर वहां कितना मन मिट्टी ले जाती हैं, इसका कुछ अन्दाज नहीं लगाया जा सकता।

उपरोक्त मृतिकास्तरको गठन और परिणति वङ्गाल के किसी किसी विभागमें किस तरह संसाधित हुई थी, उसका (विभाग करके) विवरण संक्षेपमें दिया जाता है:—

प्रथम विभाग—राजमहलकी पर्वतश्रेणोसे आरम्भ करके भागीरथीके उत्पत्तिस्थान छापघाटी तक बड़ी गङ्गाके दक्षिण और छापघाटीसे भागीरथीके पश्चिम-द्वारसे, ले कर मेदिनीपुर तक प्रायः एक ही तरहको मिट्टी देखी जाती है। भूतत्त्वविदोंकी सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर उसमें भी विभाग दिखाई देता है। किन्तु मोटी दृष्टिसे एक ही प्रकारकी मिट्टी देखी जाती है। सभी जगह एक समान कंकड़ पत्थरसे परिपूर्ण है, अथवा पहाड़ी कठिन मिट्टी ही दिखाई देती है। विन्ध्य और पूर्वघाट पर्वतमालाकी मिट्टीकी प्रकृतिके साथ इसका अनेक विषयोंमें प्रभेद रहने पर भी एक विषयमें दोनों समान ही है यानी कंकड़ी और पथरीली मिट्टी है। जहां कंकड़ और पत्थर दिखाई नहीं देता, (जैसे वर्द्धमान जिलेके दक्षिण और पश्चिम भागमें तथा हुगलीके पश्चि-मांशमें) वहां मिट्टी इतनी कठिन है, कि उसको भी पत्थर-प्रकृतिकी ही कही जाय तो अत्युक्ति नहीं कही जा सकती और उसकी प्रकृति भी ऐसी है, कि वङ्गालके और कहीं भी वैसी मिट्टी पाई नहीं जाती। इस भूभाग की मिट्टी बहु युगयुगान्तरसे निर्मित है, सुतरां सीधी बातमें उसे पक्की मिट्टी कही जा सकती है। यह निश्चित है, कि एक समयमें समुद्र गौड़के निकट तक फैला था अथवा और भी पहले गङ्गासागरसङ्गम जब राज-महलका सान्निध्यमें अवस्थित था, उस समय समुद्रका जल कभी भी इस मिट्टीको पार नहीं कर सकता था। इसी कारण समुद्रका जल हट जाने पर जो चिह्न देखा जाता है या मछलियोंके अस्थिपञ्जर या जल-जीवोंकी हड्डियां जो दिखाई देती हैं, वे सब इस मिट्टीमें दिखाई नहीं देतीं। इससे स्पष्ट है, कि इस मिट्टी पर समुद्रका जल नहीं था।

द्वितीय विभाग—पद्मा और बूढ़ी गङ्गाके उत्तरी किनारेसे हिमालयके नीचे तराई भूमि तक सारा भूभाग हिमालयकी ढालुई भूमि है। यह हिमालयके ऊंचे प्रदेशसे पद्माके उत्तरी तट पर क्रमागत ढालू होती आई है। इस भूभागकी सर्वत्र ही मिट्टी एक प्रकारकी है; सभी जगह हिमालयके गात्रविधौत बालुकाराशि है। इस पर किञ्चित् परिमाणसे बालुका मिली है। दो अंश मिट्टी एक अंश बालू रहनेसे यह भूमि शस्य-उत्पादनके लिये उपयोगी है। इस ढालुई बालुई जमीनमें सर्वत्र ही हिमालयको गात्रविधौत जलधारा अन्तःसलिलके रूपमें प्रवाहित रहने पर सारे देशको भूमिमें कुछ कुछ जल-सिक्त और आर्द्र है। इस मिट्टीमें अधिक बालू रहनेसे

इस देशमें कूप खुदवानेके सिवा दूसरा कुछ उपाय नहीं। पोखर खुदवाने पर वालू गिर कर गड्ढा भर जाता है। फलतः लम्बा चौड़ा तालाव खुदवाया जा सकता है; किन्तु छोटे छोटे पोखरे नहीं।

वड़े ही आश्चर्य्यका विषय है, कि समुद्रसे इतनी दूर पर और हिमालयके नीचे इतनी वालुका कहांसे आई? भूतत्त्वविदोंका कहना है, कि पृथ्वीके भूपञ्जर वननेके 'यूसिन' युगमें हिमालयके तटदेश तक समुद्र फैला हुआ था। केवल तट ही क्यों—उसकी इस समयकी ऊंचाईका प्रायः एक तृतीयांश तक उस समय भी समुद्रमें डुवा हुआ था। यूसिनके वाद म्योसिन, प्लिओसिन और उसके वाद भूपञ्जरके चौथे युगके स्तर-निर्माणकी क्रिया चल रही है। इसमें म्योसिन स्तरमें ही प्रथम मनुष्य-सृष्टिका चिह्न प्राप्त हो जाता है। उसमें भी फिर निम्न म्योसिनमें प्राप्त चिह्न अति अस्पष्ट और सन्देहजनक है। ऊपर म्योसिनसे ही केवल मानवीय अस्तित्वके स्पष्ट चिह्न प्राप्त होनेसे उसको मानवीय युगका आरम्भकाल कहा जा सकता है। इस तरह एक एक स्तर गठित होनेमें कितने लाख वर्ष वीत जाते हैं। अतएव उस समयके समुद्र-परित्यक्त वालू आज भी प्रस्तरावस्थामें परिणत न हो कर जो अपनी अवस्थामें विद्यमान हैं, यह कभी सम्भवपर नहीं विवेचित होता।

यह वालुकाराशि हिमालयके गात्रविधौत प्रस्तर रेणुकाके सिवा और कुछ भी नहीं। एक तो हिमालयके ढालू प्रदेशकी वजह प्रस्तरप्रवण अथवा ढेका भूमि है, सुतरां वालू जमा होनेमें असुविधा कहां? इस विभाग पर अर्थात् उत्तरांशकी जमीन प्रथम विभागके साथ सम-पुरातन और निम्नांशकी जमीन उसकी अपेक्षा कुछ आधुनिक होने पर भी दूसरे दो विभागोंकी अपेक्षा पुरानी है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि तृतीय और चतुर्थ विभागकी जमीन जैसी कठोर देखी जाती है, इस पुरानी जमीनके किसी भागमें वैसी नहीं दिखाई देती। इस ढालू भूमिमें अन्तःसलिलकी प्रवल प्रवाह-क्रिया निरन्तर सम्पादित होनेसे ही इसका एकमात्र कारण है। फिर यह भी स्वतःसिद्ध है, कि इन सव भूभागोंके उत्पन्न होनेके वहुत समय पहले यह वालुका ढीली भूमि पर जमा हुई थी।

तृतीय विभाग—ब्रह्मपुत्रके पूर्वी तटसे नवाखाली, चट्टग्राम आदि प्रदेश और पश्चिम ओर तमोलुकके निकटके स्थान। नैसर्गिक कारण-विशेषमें* समुद्र हट जाने पर जिस तरह प्रकृतिका भूभाग ऊपर उठ जाता है, अविकल उसी तरह प्रकृतिविशिष्ट भूमि ले कर इन सव स्थानोंकी उत्पत्ति है। समुद्रके हट जाने पर स्थानविशेषमें जो वालुकाराशिका स्तूप जमा हो गया है (जिसको टीला कह सकते हैं) वही इन सव नवोदित स्थानके प्राचीनत्वका कारण है। यह सव स्तूप कहीं खण्ड खण्ड पर्वताकारमें विद्यमान है। कहीं छोटे छोटे कुछ ऊंचे-पहाड़ श्रेणीमें परिणत हुआ है। किन्तु स्थानविशेषमें अव भी अविकल टीलेके आकारमें वालू रह गया है। तमोलुकके निकटके टीले इस समय वालुकास्तूप है; किन्तु चट्टग्राम आदि अञ्चलमें वे पर्वताकारमें परिणत हो गये हैं। इन सव पर्वतोंके वाहरी आवरण काट कर फेंक देनेसे भीतर अव भी वालुकास्तूप दिखाई देता है। किन्तु कहीं कहींका वालुकास्तर पत्थरके स्तरमें परिणत होने लगा है। इन सव पर्वतोंके वीचमें सव जगह सामुद्रिक जलज या जल-जीवोंका पञ्जर दिखाई देता है। चट्टग्राम प्रदेशके सीताकुण्ड तीर्थके निकट जो पर्वतमाला है, वह कितने अंशमें आग्नेय स्वभावके होने पर भी उसकी उत्पत्ति और परिणति कुछ अंशमें उक्त प्रकारके सामुद्रिक वालुकासे ही हुई है। यह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना होगा। ब्रह्मदेशकी पूर्वी सीमा पर दक्षिण उत्तरसे और जो पर्वतमाला आ कर हिमालयमें मिल गई है, उन सव पर्वतोंसे यह वालू-निर्मित पर्वतमालाकी प्रकृति सम्पूर्णरूपसे स्वतन्त्र है। ये सव पर्वतमाला वहुत युग

---

* यूसिन युगमें जो सागर-जल हिमालय तक विस्तृत था, त्रेतायुगमें लङ्काध्वंस करनेके वाद वह स्वाभाविक नियमसे हिमालयको छोड़ क्रमशः लङ्कामें चला गया। लङ्काद्वीपका यह विस्तृत भूखण्ड भी इस समय प्राकृतिक नियमसे स्थान्तरित हो पृथ्वीके विभिन्न अंशमें ग्राम और नगरका आकार वन गया। नदियोंका यह साक्ष्य वलवान् है। अनुमान होता है, कि इसीसे ही या क्रमसे निम्न वङ्गकी उत्पत्ति है।

पहलेसे सृष्ट हुई है। समुद्र एक समय उसीके चरण-स्पर्श कर प्रवाहित हो रहा था। समय पा कर वहांसे हट कर उसने इस तृतीय विभागकी जमीनकी सृष्टि की है। यह भूभाग प्रथम और द्वितीय विभागसे बहुत अर्वाचीन है। किन्तु अर्वाचीन होने पर भी द्वितीय विभागसे बहुत अधिक कठोर हुआ है। किन्तु यह कठोरता प्रथम विभागके बराबर नहीं।

चतुर्थ विभाग—इस विभागकी मिट्टी सब जगह पङ्कीली है, किन्तु किसी किसी जगह जरा कड़ी है। प्रथम और चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी बराबरी करने पर स्पष्ट ही पृथक् धर्म्माक्रान्त मालूम होती है। गङ्गाके दक्षिण राजमहलके दूसरे पार और उत्तर मालदहके पार—इन दोनोंकी मिट्टीका मुकाबला करने पर अच्छी तरह पार्थक्य दिखाई देता है। राजमहलके पार गङ्गाके जलधार तक पत्थर और कंकड़का रास्ता और कड़ी मिट्टी और ठीक उसके दूसरे पार सारी जमीन अथवा मालदह जिलाके दोआंस पंकयुक्त मिट्टी या केवल राजमहल और मालदहके पार ही क्यों, समग्र भागीरथीके दोनों पार मिट्टीकी तुलना करने पर दोनों मिट्टियोंमें सामान्य दृष्टिसे भी प्रभेद परिलक्षित होता है। भागीरथीके पश्चिम पारके नितान्त धारकी मिट्टी ले कर तुलना करनेसे विशेष कुछ भी प्रभेद दिखाई नहीं देता। जहां तक नदीकी क्रियासे मिट्टीका अंश छुट गया है या पहले छुट चुका है, उसकी सीमा पार कर जाने पर मिट्टीकी परीक्षा करना आवश्यक है।

पश्चिममें भागीरथी, उत्तरमें पद्मा और उसकी शाखा-प्रशाखा, पूर्वमें धलेश्वरी और मेघना तथा दक्षिणमें समुद्र तक इस गाङ्गेय वद्वीप भूभाग ही चतुर्थ विभागका आयतन है। गङ्गा और उसकी असंख्य शाखाओंके प्रवाह-द्वारा लाई मिट्टीसे समुद्र भरा जा कर क्रमसे दियारा पड़ कर वद्वीपकी सारी जमीन सृष्ट हुई है। इसलिये प्रायः समस्त भूभाग ही पङ्कीली मिट्टी अति अविकृतरूपसे देखी जाती है। फलतः इस पङ्कीली मिट्टीके गुणसे इस भूभागकी प्रायः सारी जमीन उर्वराशक्ति भी इतनी अधिक है, कि उसके साथ अन्य किसी विभागकी तुलना नहीं की जा सकती। यहां वर्षके भीतर ही कई तरहकी फसल उत्पन्न की जा सकती है। इधर जमीन यदि कुछ भी जोती बोई न जाय पड़ती रह जाय, तो बहुत शीघ्र घास-पात जङ्गलसे परिपूर्ण हो जाती है।

पहली कही हुई चार प्रकारकी मिट्टियोंमें पहली प्रकारकी मिट्टी सबसे नीरस है। चौथे प्रकारकी जमीनकी तरह किसी समय ही घने जङ्गलोंसे पूर्णकी अवस्था नहीं होती। अथवा वहां उद्भिदोंकी वृद्धि और विकाश भी ऐसी सतेज या शीघ्रतर नहीं। द्वितीय और तृतीय विभागीय जमीनकी उर्व्वरता प्रायः एक समान है तथा प्रथम विभागीय जमीनकी अपेक्षा बहुत गुणमें सतेज है। यहां तक, कि कोई कोई अंश चतुर्थ विभागके जैसा है।

चतुर्थ विभागकी मिट्टी और तृतीय विभागकी मिट्टी यद्यपि दोनों ही क्रमसे समुद्र हट जानेसे जाग उठी हैं सही; किन्तु इनके निर्माण-प्रकरणमें प्रकृतिगत विभिन्नता बहुत है। इस तरहकी मिट्टीके निर्माणसे समुद्रके नित्य ज्वार-भाटाका समय जल हट जानेके साथ कुछ सादृश्य दिखाई देता है। भाटाके समय समुद्रके ढालुए किनारेकी भूमिमें जिस तरह स्तवक-स्तवकमें दाग रख जल नीचे जा कर गिर जाता है, यहां भी उसी तरह कोई नैसर्गिक कारणवश कालक्रमसे जैसे समुद्रका जल स्तवक-स्तवकसे हट कर पृथक् हो गया है, ठीक उसी तरह ही इन सारे जमीनका उदय हुआ है और उसके साथ साथ वायुके प्रबल आघातसे बालुकाराशि स्तूपीकृत हो कर और उसी कारणसे क्रमसे मजबूत हो प्रकाण्ड प्रकाण्ड बालूके टीले दिखाई देते हैं, किन्तु चतुर्थ विभागकी मिट्टीकी निर्म्माण-परिपाटी दूसरे तरहकी है।

बङ्गालके दक्षिणका चौबीसप्रगना, खुलना, बरिशाल जिलेका दक्षिण भाग और सुन्दरवनकी अवस्था मनोयोगपूर्वक परिदर्शन करनेसे इस चतुर्थ विभागकी भूमि-निर्म्माणका कौशल अति सहज ही अनुभव किया जा सकता है। नदीके प्रवाहसे लाई मिट्टी क्रिया द्वारा नदीके सङ्गमस्थलस्थ समुद्रमें चर पड़ता है सही; किन्तु वह एक बार ही कुछ स्थान चारों ओर समानभावसे भर

कर टीला नहीं बन जाता या समान भावसे उच्च नहीं हो जाता।

नदीके प्रवाहसे इस तरह मिट्टीकी ढेर समुद्रगर्भमें फेंके जाने पर पहले त्रिकोण क्षेत्रके आकारमें मुहाने पर समुद्रको भरनेकी चेष्टा करते हैं और इस त्रिकोण क्षेत्रका तलदेश नदीकी ओर तथा आगेका कोण समुद्रकी ओर रहता है। किन्तु समुद्रका प्रबल स्रोत-वेग छोटी चौड़ाई-वाले स्थानोंको काट कर फेंक देता है। इसी कारण जब भरा हुआ स्थान क्रमसे समुद्र छोड़ उठता है, तब एक अविच्छिन्न त्रिकोण भूखण्ड निर्मित होनेके बदलेमें कुछ अंश मूल भूभागमें संलग्न है और अवशिष्ट बहुखण्ड द्वीपाकारमें परिणत हुआ दिखाई देता है। उन द्वीपोंमें जो सबके मध्यस्थलमें अवस्थित है, वह छोटी चौड़ाई और लम्बे आकारमें अवस्थित है। फिर यह भरा हुआ भूखण्ड जब जल हटनेसे निकल नहीं आया था, फिर भी मिट्टी जमने लगी थी, तब समुद्रजलका स्रोत-वेग और उसका गात्र काट कर फेंक या विधौत कर नहीं सका था। वरं उसके मध्यस्थित नीचे और नरम अंशको काट कर वहां गहरी रेखा बना देता है। जल हट जानेसे ये ही सब रेखायें उस समय बद्वीपमें अनेक छोटी बड़ी नदियों और नहरोंके रूपमें परिणत होती हैं। यह नवोदित भूमि अपनी जल-क्रिया द्वारा फिर जमा हो कर और क्रमशः ज्वारकी प्रबलतासे प्लावित हो पङ्कीली मिट्टी द्वारा फिर निर्मित होने पर एक तरहसे चिरस्थायित्व प्राप्त करती है, अपूर्ण निम्नभागमें हट जाती और वहां फिर उसी तरह निर्माणका कार्य्य करती रहती है। पुनर्निर्मित भागमें तब जो कुछ नदी और नहर रह जाती है, वह गिनती और आयतनमें सामान्य और उसके द्वारा गठनका कार्य्य इतनी सुस्तीसे होती है, कि देशके बीचकी मिट्टी भी विशेष रूपान्तरित नहीं होती।

गांगेय बद्वीप इसी तरह ही गठित हुआ है और अब भी उसके दक्षिण भागकी गठनक्रिया इस तरह पूर्ण-प्रतापसे चल रही है। नित्य ही मनुष्यका आवास और व्यवहार-उपयोगी नये नये भूमिखण्ड समुद्रसे जल हट जानेके कारण उत्पन्न हो रहे हैं। उपरोक्त भूगठनप्रक्रिया-के अभिनयमें आज भी समुद्रगर्भमें मिट्टीनिर्मित असंख्य चर दिखाई देते हैं, जो ज्वारके समय डूबे रहते हैं और भाटेके समय निकल आते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ये ही भविष्यमें अच्छी तरहसे जमीनकी पांत पर नदी और नहरके आकारमें दिखाई देते हैं, समय पा कर ये नदी नाले भी विस्तृत आयतन हो कर शुष्कगर्भ हो कर हट जायेंगे और छोटे छोटे सब द्वीप देशके साथ जुट कर एक आकारमें परिणत होंगे।

गौड़के पूर्व-दक्षिणका समुद्रभाग भी इसी तरह भरा भूमिखण्डके उदयसे क्रमशः दक्षिण ओर हट गया है और सम्भवतः उसी उन्नत भूखण्ड पर वर्त्तमान सुन्दरबनकी तरह असंख्य नदी नाले तैयार हो जायेंगे। उन नदी-नालोंमें मूल-प्रवाह ही सर्वापेक्षा प्रबल या जलधारा था। वह मूल-प्रवाह आज भी पद्माके आकारमें तट-भूमिको तोड़ कर प्रवाहित हो रहा है।

फलतः समुद्र हट जानेसे जब समुद्रगर्भमें प्रथम बद्वीप उठा, तब गङ्गाका मूल-प्रवाह भागीरथीका खात हो कर प्रवाहित हुआ था। इसी कारणसे बहुत दिनोंसे लोग गङ्गासागर-सङ्गमको "गङ्गासागरसङ्गम" कहते हैं। पद्मा और मेघना सम्भवतः पहले समुद्रकी खाड़ी थी, पीछे नदीके रूपमें परिणत हुई है।

ईसासनकी प्रथम शताब्दीमें लिखे पेरिप्लुसमें दिखाई देता है, कि वर्त्तमान रङ्गपुर प्रभृति अञ्चलसे तेजपात और अन्यान्य व्यवसाय वाणिज्यकी चीजें गङ्गासे नाव या जहाज द्वारा तमोलुकमें लाई जाती थीं। अवश्य ही स्वीकार करना होगा, कि गङ्गाका मूल-प्रवाह भागीरथीके खादसे प्रवाहित न रहनेसे किसी तरह ये सब व्यवसायकी चीजें उत्तरवङ्गसे गंगा द्वारा बहा कर तमोलुक आ नहीं सकती थीं। अथवा ऐसा भी हो सकता है, कि इस समय जैसे मेघनाके मुहाने पर बहुत दूर घुस कर समुद्र-खाड़ीको भी मेघना ही कहते हैं, उस समय भी उसी तरह गंगाके मुखकी ओर बहुत दूर तक भीतरकी और तमोलुकके किनारेकी समुद्रखाड़ीको गंगा कहते होंगे। पेरिप्लुसमें गांगेय बन्दरमें वाणिज्य द्रव्यादिके प्रसंगमें उसी अर्थमें ही गंगाका निर्विशेषत्व सूचित हुआ है। पेरिप्लुससे प्राप्त इसके साथी और भी ये दो

प्रमाणोंसे यह शेषोक्त अनुमान ही ठीक मालूम होता है—गंगासे जो नावें वाणिज्य-द्रव्योंके ढोनेमें व्यवहृत होती थीं, वे समुद्रगामी जहाजके आकारकी थीं, नदीमें जो नावें व्यवहृत होती थीं, वे सम्भवतः वहां जानेका साहस नहीं कर सकतीं। इसीसे सामुद्रिक जहाज व्यवहृत होते थे। सिवा इसके गंगाके मुख पर घन-सन्निविष्ट नगर और वाणिज्य बन्दरादि सह "खसे" नामक एक प्रकाण्ड टापू था। सुतरां गंगाके दक्षिण भागमें नदीके बदले बहुविस्तृत समुद्रखाड़ी विद्यमान न रहनेसे पेरिप्लुसकी इन दो उक्तियोंका कोई मूल्य नहीं रह जाता।

भागीरथीके पूर्वी किनारेकी मिट्टी क्रमसे उच्च और अपेक्षाकृत कठिन हो जाने पर और वद्वीपके अन्यान्य अंशोंमें भी बहुतायतसे भूमिखण्ड निर्मित और जलरेखा छोड़ कर मस्तक उठाने पर विविध नैसर्गिक कारणकी प्रबलतासे गंगाका मूलस्रोत भागीरथीका 'खाद' छोड़ कर पद्मा नाम ग्रहण और स्वतन्त्र खाद अवलम्बन कर भागीरथीके पूर्वी किनारेसे और भी उत्तरपूर्व भागमें हट गया था। इस समय भी पद्मा क्रमशः उत्तर ओर हट रही है। गत सौ वर्षोंमें पद्माकी गति कितनी हट गई है, उसकी चिन्ता करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। फरीदपुर जिलेमें मदारीपुर महकमेके समीप जो छोटी नहर इस समय पालङ्गके नीचेसे होती हुई कीर्त्तिनाशामें जा कर मिली है, वहां ७०-८० वर्ष पहले पद्माका मूलखात था; किन्तु अब पद्मा उससे १५-१६ कोस उत्तर विद्यमान है। जो छोटी नदी कुमार नामसे फरीदपुर जिले भरमें फैली हुई है, ठीक १२५ वर्ष पहले उसका बहुत भाग पद्माका प्राचीन प्रवाह था। वहांसे पद्मा इस समय बहुत दूर हट गई है।

गांगेय वद्वीपकी अवस्था जब ऐसी ही थी, उसका देशविभाग कैसा था? इसकी संक्षिप्त आलोचना सम्भवतः अप्रासङ्गिक नहीं होगी। चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने काजिनगढ़के बाद ही पौण्ड्रवर्द्धन राज्य देखा था। वर्त्तमान ईष्ट-इण्डिया रेलवे कम्पनीके लूप लाइनका रेलवेस्टेशन साहबगञ्जके निकटका स्थान काजिनगढ़ होनेका अनुमान होता है। वहां पहाड़ पर तेलियागढ़ नामक एक प्राचीन किला, अनेक सुरम्य और सुन्दर गृहादिके भग्नावशेष और टूटी-फूटी देवमूर्त्तियां दिखाई देती हैं। जो हो, इस काजिनगढ़ और कोशी नदीके पूर्वतटसे आरम्भ कर ब्रह्मपुत्र तक फैला पूर्णिया, मालदह, दिनाजपुर, रङ्गपुर, बाँकुड़ा, कूचविहार आदि स्थान ले कर प्राचीन पौण्ड्रवर्द्धन राज्य संगठित था। पौण्ड्रवर्द्धनके पूर्व और ब्रह्मपुत्रके पूर्व ओर फैला सारा भूभाग प्राचीन प्राग्ज्योतिष या कामरूप राज्य कहलाता है।

यूएनचुवंगने लिखा है, कि कामरूपसे ढाई सौ मील दक्षिण ओर समतट राज्य मौजूद है। इस दूरत्वके निरूपणसे मालूम होता है समतट राज्यके बदले उसकी राजधानीका दूरत्व ही निरूपित करना यूएनचुवंगका अभिप्रेत है। वर्त्तमान ढाका, पावना जिले मालूम होता है, कि उस समय समतट राज्यके अधीन थे और पद्माके वर्त्तमान खातके दक्षिण भी कुछ दूर तक यह राज्य विस्तृत था। पद्मा क्रमशः और भी उत्तर अर्थात् उसके वर्त्तमान स्थानमें हट जानेसे यह दक्षिणांश क्रमसे गांगेय व द्वीपके अन्तर्गत आ गया है। उस समयके समतट राज्यका आयतन पद्माकी प्रसरणशील गतिसे अनेक रूपान्तर प्राप्त हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। केवल उस समयका समतट ही क्यों—इस समयके विक्रमपुरका भी बहुत रूपान्तर हो गया है। पहले उत्तर-विक्रमपुर और दक्षिण-विक्रमपुर एक ही सटा हुआ भूखण्ड था; किन्तु इस समय मध्यस्थल हो कर पद्मा प्रवाहित होनेसे उत्तर-विक्रमपुरसे दक्षिण-विक्रमपुर पृथक् हो गया है। जो हो, समतटका दक्षिणस्थ भूभाग जो समुद्रतट पर अवस्थित था, यह कहनेका प्रयोजन नहीं। समतट और ब्रह्मपुत्रके पूर्वस्थित भूभाग अर्थात् इस समयका त्रिपुरा, नवाखाली, एवं चट्टग्राम आदि स्थानमें उस समय किरात आदि विविध अनार्य्य जातियोंका निवास था।

पूर्वोक्त काजिनगढ़के दक्षिणसे और भागीरथीके पश्चिम तट तक प्राचीन वङ्गराज्य कहा जाता है। यह दक्षिणमें मेदिनीपुरकी सीमा तक फैला था। रामायण, महाभारत आदि पुराणोंमें जिस वङ्गदेशका उल्लेख

मिलता है, वह सम्भवतः यही वङ्गदेश है। यह कभी किसी समयमें राढ़ और कर्णसुवर्ण आदि भिन्न भिन्न विभागोंमें विभक्त हुआ था। इसके दक्षिण विभागस्थित वर्द्धमान आदि प्रदेश राढ़ और उसके उत्तरका भूभाग कर्णसुवर्ण नामसे परिचित था। गौड़ नगर आदिमें पौण्ड्रवर्द्धनके ही अन्तर्गत था। पीछे गौड़नगरकी समृद्धि चारों ओर फैल जाने पर समग्र वङ्गराज्य—और तो क्या, वर्त्तमान सारा वङ्गाल देश ही गौड़देश या गौड़राज्यके नामसे विख्यात था। मुसलमानोंके अधिकार-कालमें लक्ष्मणावतीकी भी प्रसिद्धि हुई। गौड़ नाम प्रवल होनेसे काल पा कर वङ्गालके पुराने छोटे छोटे विभाग भी विलुप्त हो गये हैं।

भागीरथीके पश्चिमीय किनारेके प्राचीन वङ्गके दक्षिणसे प्रायः समग्र मेदिनीपुर जिला और वालेश्वर जिलाका भी कुछ अंश ले कर उस समयका ताम्रलिप्ति राज्य है। वर्त्तमान तमोलुक नगर उसकी राजधानी और व्यवसायिक वन्दर था। महाभारतके वनपर्वमें ११४ अध्यायमें उल्लिखित हुआ है, कि राजा युधिष्ठिर पांच सौ नदियोंके साथ गङ्गासागर-सङ्गममें तीर्थस्नानादि कर समुद्रके किनारेसे कलिङ्ग देशमें आये। इस कलिङ्गमें ही वैतरणी नदी प्रवाहित होती है। ताम्रलिप्ति देखो।

ऊपरमें वङ्गालकी गठन और देशादि अवस्थानके सम्बन्धमें जो लिखा गया है, उसका संक्षिप्त इतिहास वङ्गालके पुरातत्त्व और प्रत्नतत्त्व विभागमें लिखा गया है।

भूतत्त्वविद् वलानफोर्डने वङ्गालके प्रान्तरकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विशेषरूपसे आलोचना कर लिखा है, कि पहले वालुका-कर्दममिश्रित जीवदेह और उद्भिद्जात पालेज स्तरविशेष (Loam) रूपान्तरित हो भूपृष्ठ पर पड़े हैं। कलकत्ता और उसके निकटके प्रदेश २४ परगना और यशोहर जिलेके नाना स्थानोंमें तालाव खुदवाते समय भूपञ्जरकी मिट्टीका पर्यवेक्षण कर उन्होंने वहांके स्तरोंके गठनपर्याय लिखा है। कलकत्तेके शिवादहके निकट एक पोखर खुदवाते समय उन्होंने भूपृष्ठ पर यथाक्रम 'फाइन साण्ड' लोम, ब्लू क्ले और पिट्लेयर (Peat layer) या अपरिणत पत्थर कोयलेका सामान्य स्तर देखा। निम्नवङ्गके किसी स्थानमें यह पिट लेयर या काले पत्थर कोयलेका स्तर या तह २० से ३० फुट तक मौजूद है। इस स्तरके वाद प्रायः ११ फुट तक वालुका-मिश्रित कर्दम स्तर (Sand clay), इसके वाद १५ फुट तक फिर ब्लू क्ले नामक स्तर है। शेषोक्त दो स्तरोंमें उन्होंने असंख्य ऊंचे सुन्दरी वृक्षकी गुड़ी, वादावन-सुलभ वृक्षादिकी शाखा और शङ्ख, शम्बूक श्रेणीके जीवादिकी अस्थियां देखी थीं। इससे अच्छी तरह अनुमान होता है, कि एक समय शिवादह नदीगर्भमें डुवा हुआ था, क्रमशः वह ऊपर उठ आया है और सुन्दरी वृक्ष सुन्दरवनकी विस्तृतिका साक्ष्य दे रहा है।

कुछ समय पूर्व कलकत्ता फोर्टविलियम किलेमें ४८१ फुट गहरा एक कुआं खोदा गया। भूपृष्ठसे क्रमसे इस कुएंसे वालुका, कर्दम, पिट और प्रस्तर-स्तर वाहर हुआ था। भूपृष्ठसे ३५० फुट नीचे पहले कच्छपकी पृष्ठास्थि, इसके वाद ३८० फुट नीचे सुमिष्ट-जलजीवी शम्बूक जातिकी मृत हड्डियां और इसके वाद ध्वस्त वनमालाका निदर्शन (a bed of decayed wood) दिखाई देता है। इस वृक्षावयवादिका निरीक्षण करने पर मालूम होता है, कि वर्त्तमान भूपृष्ठसे ३८० फुट नीचे अवस्थित भूपृष्ठस्तर वहुत दिन पहले निविड़ वनमालामें आच्छादित था। किन्तु यह भूपृष्ठ सन्देह नहीं, कि सुन्दरवनके समतल प्रान्तरकी तरह ऊंचा था। क्योंकि ऐसा न हो, तो अवश्य ही उसका समुद्रजलमें डूव जाना सम्भव था। ऐसे स्थलमें अवश्य ही मानना पड़ेगा, कि एक समय वृक्ष आदिने प्राचीन वङ्गपृष्ठको परिशोभित किया था। समय पा कर यह भूमिकम्पादि किसी नैसर्गिक कारणसे भूगर्भमें प्रोथित हो गया है। इसके वाद नदीस्रोतसे यह प्रभूत मृत्पिण्ड उस पर सञ्चित हो कर वर्त्तमान स्तर संगठित हुआ है अथवा उस समय यह स्थान क्रमशः चररूपसे समुद्रपृष्ठसे ऊपर उठा था।

भूपञ्जरके वीचमें निहित ये वनमालायें काल पा कर ध्वंस प्राप्त हो कर कोयलेमें रूपान्तरित हुई हैं। वङ्गालमें ऐसे कोयलेकी खनिकी कमी नहीं है। रानीगञ्ज कोयलेकी खनिके लिये प्रसिद्ध है। इस समय वराकर और वाँकुड़ा जिले तक विस्तृत स्थानमें कोयलेकी खनि-

से कोयला निकाला जा रहा है। यह सुविस्तृत खाद देख कर अनुमान होता है, कि प्राचीन युगमें रानीगञ्जसे बराकर तक एक निविड़ बन मौजूद था।

कोयला और प्रस्तर शब्द देखो।

कोयलेके सिवा भूगर्भमें लोहा भी पाया जाता है। बराकर और बीरभूममें कारखाना खोल कर लोहा गलानेका प्रबन्ध हुआ था। अब भी कहीं कहीं देशी प्रथासे लोहा गलाया जाता है। लौह देखो। स्थान स्थान पर अबरकको खान पाई जाती है।

पहले यहां समुद्रके जलसे नमक तैयार कर बेचा जाता था। इसके लिये एक बहुत बड़ा कारखाना खोला गया था। सरकारने विलायती नमकका व्यवसाय बन्द होनेके कारण देशी नमकका कारोबार उठा दिया। अब भी उड़ोसे और २४ परगनेके किसी किसी स्थानमें राजकीय कानूनके अनुसार नमक तैयार किया जाता है।

लवण देखो।

बङ्गालमें उल्लेख योग्य कोई पहाड़ नहीं है। उत्तरमें एकमात्र हिमालयपृष्ठका दार्जिलिङ्ग शृङ्गभाग है। बङ्गालके गवर्नरने वहां राजकार्य-सम्पन्न करनेके लिये एक नगरकी प्रतिष्ठा की है। इस समय यह स्थान और इसके निकटका कर्सियोंङ्ग स्वास्थ्यके लिये उत्तम है।

कृषि।

बंगदेश नदीमातृक देश। गंगा और ब्रह्मपुत्रकी बहुत शाखा-प्रशाखाएं इस देशमें बहनेसे जमीन उर्वरा है। कृषि-कार्यके लिये समूचे भारतमें ऐसा स्थान कहीं नहीं है। इसलिये बंगालको "सुजलां सुफलां शस्य-श्यामलां" कहा है। नीचे प्रधान प्रधान उत्पन्न द्रव्यकी मोटामोटी एक तालिका और उत्पन्न स्थान दिया गया है बारीशाल (बाकरगञ्ज), चौबीस प्रगना, वर्द्धमान, मेदिनीपुर, दिनाजपुर, बीरभूम और हुगली जिलेमें धान अधिक पैदा होता है। नदीया, मालदह, मुर्शिदाबाद जिलोंमें धानकी अपेक्षा गेहूं बहुतायतसे होता है। फरीदपुर, पबना, ढाका, रङ्गपुर, मैमनसिंह, राजशाही, जलपाईगोड़ी और पूर्वकथित चौबीस प्रगना, नदीया और हुगली जिलेके स्थान स्थानमें पटुआ (पाट), तम्बाकू, सोंठ, हल्दी आदि चीजें उत्पन्न होतीं और वहांसे नाना नगरोंमें भेजी जाती हैं। सिवा इनके बांकुड़ा, चट्टग्राम, नवाखाली, त्रिपुरा, बगुड़ा, दार्जिलिङ्ग, यशोहर, खुलना आदि स्थानोंमें भी खेती बहुत होती है।

पहले कहा जा चुका है, कि कृषिकार्य ही यहांके अधिवासियोंकी उपजीविका है। उत्पन्न द्रव्यमें धान और पाट प्रधान है। सिवा इनके यहांके किसान आवश्यकताके अनुसार तेल होने वाले तेलहन, चना, उड़द, आदि कई तरहकी फसलें पैदा होती हैं। आमन, आउस, बोरो, ओरो या जाड़ा (जला) धान विभिन्न समयमें उत्पन्न होता है। सरिसों, तीसी (अलसी) और उड़द आदि रब्बीकी फसल समयान्तरमें उत्पन्न होते देखी जाती है। पटुआ या कोष्टरकी खेती इन दिनों उत्तरोत्तर बढ़ रही है। पूर्व बङ्गकी नीलकी कोठियां इस समय यों ही गिर पड़ रही है। सिर्फ पश्चिम बङ्गके कई स्थानोंमें कुछ नील पैदा होता है। हिमालयके नीचे दार्जिलिङ्ग जिलेमें चाय और सिनकोना (कुनैन) होती है।

इनके अलावा अनेक प्रकारके फलोंके लिये बंगाल प्रसिद्ध है। मालदहका फजली आम बड़ा मशहूर है। मुर्शिदाबाद और राजसाहीमें बहुत आम होता है। दार्जिलिंगका कमला नीबू बड़ा उपादेय फल है।

कलकारखाना और शिल्प।

देशके थोड़े वाशिन्दे शिल्पकर्म द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। पुराना गृहशिल्प क्रमशः कमता जा रहा है तथा वाष्पीय और वैद्युतिक कलका व्यवहार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। पहले जुलाहोंकी संख्या आजकलकी अपेक्षा बहुत ज्यादा थी। पहननेका कपड़ा वे ही प्रस्तुत करते थे। बढ़िया पतला कपड़ा बहुत तैयार होता और विदेश भेजा जाता था। उनमेंसे ढाका ही प्रसिद्ध था। यहांकी तैयारी मसलिनका आदर आज भी कम नहीं है। आज कल कलके कपड़ेका प्रायः सभी जगह प्रचार है, तो भी कलकारखानेमें बंगदेश बम्बई प्रदेशसे बहुत पीछे पड़ा हुआ है। निम्नलिखित पुराना गृहशिल्प आज भी विद्यमान है—

सूती कपड़ा (चन्दननगर, ढाका, शान्तिपुर, हवड़ा और टांगाइल); रेशमी कपड़ा (मुर्शिदाबाद, मालदह,

राजशाही, मेदिनीपुर, वीरभूम और वांकुड़ा)। इनके अलावा सोना, चांदी, पीतल और हाथी दांतका बना शिल्प द्रव्य।

कल-कारखानेमें सूते और कपड़ेकी कल, चटकी कल, कागजकी कल प्रधान है। कलकत्ता, श्रीरामपुर और कुष्टियाके कपड़ेकी कल प्रसिद्ध है। चटका कारखाना कलकत्तेके निकट नदीतीरमें अवस्थित है। बाली, टीटागढ़ और रानीगंजमें कागजकी कल है। कलकत्ते और उसके पासके अनेक स्थानोंमें पाटकी कलें (Jute Presses) हैं। कलकत्ते और हवड़ेमें कई सुवृहत् Engineering works हैं।

अन्यान्य छोटे बड़े कलकारखानेमें कलकत्तेका चमड़ेका कारखाना, साबुनका कारखाना, चावलकी कल और सलाईका कारखाना प्रसिद्ध है। यशोर जिला और कलकत्तेके निकट काशीपुरकी चीनीकी कल रानीगंज और कलकत्तेका मृत्शिल्प (Pottery)-का कारखाना, हवड़ा और शिवपुरका रस्सीका कारखाना विख्यात है।

अधिवासी लोकसंख्या इत्यादि।

वंगालकी जनसंख्या ४ करोड़ ५६ लाखके करीब है अर्थात् प्रति वर्गमीलमें ५७८ लोगोंका वास है। समूचे भारतमें यही सर्वापेक्षा घनजनवसतिपूर्ण प्रदेश है, किन्तु यहांके अधिकांश बाशिन्दे वेकार हैं। इसी कारण देशकी दरिद्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, इसमें सन्देह नहीं। समूची जनसंख्यामें सिर्फ एकतृतीयांश मनुष्य खेती-बारी कर अपनी जीविका चलाते हैं। बहुत थोड़े मनुष्य कलकारखाना, भिन्न भिन्न शिल्प कार्य्य और व्यवसायमें लगे हुए हैं। बाकी मनुष्य नौकरी कर अपना पेट पालते हैं। निकम्मे मनुष्योंमें बालक और बूढ़ेकी ही संख्या ज्यादा है।

हिन्दू, मुसलमान, खृष्टान आदि विभिन्न धर्म्मावलम्बी जातियोंको ले कर यह जनसंख्या संगठित है। यथार्थ वङ्गवासियोंमें सामाजिक मर्य्यादानुसार जो जो श्रेणी-गतविभाग हुए हैं, नीचे उनके नाम या सामाजिक संज्ञा लिखी गई—

इन प्रदेशोंके प्रत्येक जिले और उनके उपविभागोंमें अनेक नगर मौजूद हैं। ये नगर प्रधानतः वहांके वाणिज्य-केन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो विशेष समृद्ध और धन-जन पूर्ण है, नीचे उसकी फिहरिश्त दी गई—

कलकत्ता (जनसंख्या १२२२०००)—वंगालकी राजधानी। त्रिटिश साम्राज्यके मध्य जनसंख्यामें यह स्थान दूसरा है। भारत भरमें यह पहला बन्दर और दूसरा शिल्पकेन्द्र है। यह भागीरथीके मुहानेसे ८६ मील उत्तरमें अवस्थित है। समूचे संसारमें यहांके समान और इतना पाट प्रस्तुत नहीं होता। पाट, चाय, अफीम, चावल, तेलहन, कोयला, पशुचर्म और नीलकी कलकत्तेसे रफ्तनी होती है। नगरमें बहुसंख्यक सुरम्य अट्टालिका हैं इसलिये कलकत्तेको City of palaces कहते हैं। कलकत्ता भारतवर्षका एक प्रधान शिक्षा केन्द्र (Educational Centre) है।

हवड़ा (जनसंख्या १८००००)-वंगालका दूसरा नगर। ईष्ट-इण्डियन रेलवे इस नगरसे आरम्भ हो कर क्रमशः दिल्ली और नागपुर पर्यन्त दौड़ गई है। हवड़ेमें कई कलकारखाने हैं। इसके निकट शिवपुरमें गवर्नमेण्टका बागान (Botanical Garden) और पूर्त्तविद्यालय (Engineering College) अवस्थित है।

ढाका (जनसंख्या १०८०००)—मुसलमानी अमलदारीमें यहां वंगालकी राजधानी थी। यह पतला कपड़ा बुननेके लिये प्रसिद्ध है। सम्प्रति यहां एक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुआ है।

चट्टग्राम (लोकसंख्या २२०००)—यह एक उन्नतिशील बन्दर है। आसाम-वंगाल रेलवे द्वारा यह आसाम और चांदपुरके साथ मिला हुआ है। पाट, चावल, चाय यहांसे भेजी जाती है।

मुर्शिदाबाद—वंगालके नवाबोंको शेष राजधानी। यह स्थान रेशमी कपड़े और मीठे आमके लिये प्रसिद्ध है।

चन्दननगर—यह फरासी अधिकारभुक्त है। यहां महीन सूती कपड़ा प्रस्तुत होता है।

रानीगंज—यह कोयलेकी खान और मृत्शिल्प (pottery) के लिये प्रसिद्ध है। यहां एक कागजकी कल है।

दार्जिलिंग—वंगालकी ग्रीष्म-राजधानी। यह एक प्रधान स्वास्थ्य-निवास (Sanitorium) है।

खड़्गपुर—यहां बंगाल-नागपुर रेलवेका प्रधान कारखाना है। यह उक्त लाइनका एक प्रधान केन्द्र है।

आसनसोल—ईष्ट-इण्डियन और बंगाल-नागपुर रेलवेका जङ्क्शन। [यहां ईष्ट इण्डियन रेलवेका वहुसंख्यक locomotives रहता है।

सीतारामपुर—यह] कोयलेकी खानके लिये प्रसिद्ध है।

नारायणगञ्ज—यह पूर्व-वंगका एक प्रधान वन्दर एवं पाट और चावलके व्यवसायके लिये विख्यात है। यहां पाटकी वहुत सी कलें हैं। नारायणगञ्ज ढाकासे रेलवे लाइन द्वारा संयुक्त है। यहांसे स्टीमरके जरिए ग्वालन्दो और चाँदपुर जाना होता है।

ग्वालन्दो—पद्मा और यमुनाके संगम पर अवस्थित है। यह ईष्टर्न-वंगाल रेलवे द्वारा कलकत्तेसे तथा स्टीमर लाइन द्वारा नारायणगञ्ज, चाँदपुर और कलकत्तेके साथ मिला हुआ है। यह उत्तर और पूर्व-वङ्गका एक प्रधान वन्दर है।

सिराजगञ्ज और मदारीपुर—यह पाटके व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध है।

नवद्वीप—वंगालके हिन्दू राजाओंकी शेष राजधानी। यह चैतन्यदेवका जन्मस्थान और लीलाक्षेत्र है।

अलीपुर—यहां गवर्नमेण्टकी पशुशाला (Zoological garden) है।

वराकर—यहां लोहेकी खान पाई जाती है और लोहा भी प्रस्तुत है।

नैहाटी—ईष्ट इण्डियन और ईष्टर्न-वंगाल रेलवेका जङ्क्शन। यहां भागीरथीके ऊपर एक सुन्दर सेतु है।

वर्त्तमान अवस्था।

अवस्था परिवर्त्तनके साथ वंगवासी वंगालियोंका भाग्य भी मन्दा होता जा रहा है। जिन बंगालियोंकी वीर-कहानियां चिरन्तन कालसे इतिहासमें उज्ज्वल-पट पर अंकित है, वे ही वंगाली आज मुट्ठी भर अन्नके लिए लालायित हैं। महाभारतके युगमें भी वंगीय वीरोंका प्रभाव दिगन्तमें व्याप्त हुआ था। स्वाधीन वंगाली राजे अपने दोर्दण्ड प्रतापसे राज्यशासन कर गये हैं। शूरवंश, पालवंश और सेनवंशीय नरपतियोंका वीरत्व-गौरव शिलालेखों और प्राचीन राजकुल प्रशस्ति दिया गया है। वंगाल जव मुसलमानोंके हाथ चला गया था; तव भी वारभूंइयाका अतुल प्रताप समग्र वंगालमें प्रतिध्वनित होता था। राजा प्रतापादित्य, राजा गणेश, सीताराम आदिकी वीरत्व कहानियाँ और युद्ध-निपुणताका विषय कौन नहीं जानता? अधिक दिनोंकी वात नहीं, ईसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जानकीराम, मोहनलाल आदि वंगाली वीरोंका सदल-वल रणक्षेत्रमें अवतीर्ण होना हम देखते हैं। इसके वाद १९वीं शताब्दीमें लेफ्टनेण्ट कालू घोषने भी उस वीरत्व प्रभावकी अक्षुण्ण-रश्मि हाथमें ली थी। आज भी उस दिनकी वात है, कि श्रीसुरेशचन्द्र विश्वास आदि कई वंगाली वीरोंने जर्मन-वारमें विदेशोंमें जा कर वीरता दिखलाई है। किन्तु दुःखका विषय है, कि अंगरेज राजके कठोर शासनमें और राजदण्डविधिके नियमके कारण सव गौरव न जाने कहां विलुप्त हो गया है, उसका चिह्नमात्र तक नहीं।

सुप्रसिद्ध और प्राचीन वंगालके विभिन्न राजवंश अव वैसे राजशक्ति-सम्पन्न नहीं। दरिद्रताके कारण वे भी अव निस्तेज और निष्प्रभ हो गये हैं। उनके वंशधर या उत्तराधिकारी केवल उपाधि ले कर ही संतुष्ट हैं। कुछ राजे ऋणग्रस्त हो कर सरकारके अधीन हो वृत्तिमात्रका उपभोग कर रहे हैं। वर्द्धमानराज, विष्णुपुरराज, कूचविहारराज, नदियाराज, नाटोरराज, समग्र शक्तिहीन हो गये हैं। इसके सिवा और भी अनेक राजे और जमींदार हैं, वे राजानुग्रहलाभके सिवा कभी भी स्वाधीनताकी लाभेच्छा नहीं करते। वरं विषयवासना और राजाकी कृपाप्राप्तिके लिये निरन्तर अविवेचकोंकी तरह दरिद्र प्रजाका रक्तशोषण कर रहे हैं। अर्थाक्षय होनेके कारण प्रजाका वाहुवल अपनोदित हुआ है और साथ ही साथ राजशक्तिका भी अभाव हुआ है। दरिद्र प्रजा इसी तरह भूखों मर रही है। उन पर भगवान् कष्ट पर कष्ट दे रहे हैं। वह निरन्तर दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है। अनावृष्टिके कारण अन्नाभावसे प्रजाका सर्वनाश हो रहा है।

धर्म ।

इन सब अधिवासियोंमें प्रधानतः हिन्दू, मुसलमान, देशी और विदेशी खृष्टान और आदिम अनार्य्य-धर्मसेवी दिखाई देते हैं। हिन्दू मुसलमान और खृष्टान-धर्मावलम्बी होने पर भी वे सम्प्रदाय-विशेषमें विभिन्न हैं। शैव, शाक्त और वैष्णव आदि जैसे हिन्दुओंमें श्रेणी भाग हैं और उनमें फिर रामानन्दी, कबीरपन्थी आदि जैसे साम्प्रदायिक विभाग दिखाई देता है, मुसलमानोंमें भी उसी तरह सिया और सुन्नीके सिवा वहावी, फराजी आदि पृथक् मत विद्यमान हैं। फिर खृष्टानोंमें रोमन, कैथलिक, यूनानी गिरजे और प्रोटेष्टण्ट समाजके सिवा मेथडिष्ट चापेल, वेसलियान मिसन, एपिसकोपेलियन मिसन, लुदार मिसन आदि साम्प्रदायिक मतभेद दिखाई देता है। अनार्य्य सम्प्रदायका धर्ममत स्थान-भेदसे पृथक् पृथक् है।

बौद्ध और हिन्दू-धर्मस्रोतकी प्रवल वन्या एक समय वङ्गालमें भरपूर थी। पालवंशी बौद्ध राजाओंके अधिकारमें बौद्ध-धर्मका जो अक्षुण्ण प्रभाव वङ्गालमें विराज रहा है, आज भी तान्त्रिक उपासनामें उसका प्रभूत निदर्शन विराज रहा है। वैदिक उपासनापद्धति उस समय एकदम ही वङ्गराज्यसे अन्तर्हित हो गई थी, इसीसे महाराज आदिशूर कनोजसे पांच साग्निक ब्राह्मण ला कर वङ्गालमें वेदमार्गको अक्षुण्ण रखनेकी चेष्टा की। उसके बादके सेनवंशीय हिन्दू राजगण भी हिन्दूधर्म प्रतिष्ठाके लिये विशेष मनोयोगी हुए थे। वल्लालकी कौलीन्य मर्य्यादा इस ब्राह्मण-प्रभाव-विस्तारका अवान्तर फल है।

बौद्ध और हिन्दुओंके समसमयमें वङ्गालमें जैन-धर्मका विस्तार हुआ है। इस समय भी नाना स्थानोंमें जैन और बौद्ध-कीर्त्तियां परिलक्षित हो रही हैं। इन सब कीर्त्तियोंका विवरण वङ्गालके प्रत्नतत्व प्रसङ्गमें लिखा गया है। हिन्दू, जैन और बौद्धधर्म्मका विशेष विवरण उन शब्दोंमें देखो।

इसके बाद सेनवंशके अधःपतनसे वङ्गालके मुसलमानोंके अभ्युदय होनेसे यहां पठान, मुगल आदि विभिन्न श्रेणीके इसलाम-धर्म्मावलम्बियोंका अभ्युदय हुआ। इसी समय वङ्गालके बहुतेरे अधिवासियोंने इसलाम-धर्म ग्रहण किया। तबसे वङ्गालमें अनेक फकीरों, पीरोंका आविर्भाव हुआ। इन सब पीरोंके स्थानमें आज भी मेला लगता है। हिन्दू-मुसलमान दोनों भक्तिपूर्वक पीरकी पूजा किया करते हैं। बहुत दिनोंसे मुसलमानके संसर्गसे हिन्दू समाजमें सत्यनारायणकी (सत्यपीर)-की पूजा प्रवर्त्तित हुई है। मुसलमान शब्द देखो।

वङ्गालके मुसलमान राजत्वके मध्यकालमें अर्थात् ईस्वीसन्‌की १५वीं शताब्दीके अन्तमें सन् १४८५ ई०में नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ। वङ्गके सुविख्यात सुलतान हुसेन शाह और नसरत् शाहके राजत्वकालमें उन्होंने स्वयं वैष्णव मत प्रचार किया था। उसके बाद वैष्णव-धर्म उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उनके समसामयिक और परवर्त्ती वैष्णव कवि धर्म प्रचारमें सहायक हुए थे। इन्होंने उत्तमोत्तम संस्कृत ग्रन्थ रचना और कुछ वंगानुवाद कर जनसाधारणके सम्मुख भागवत आदि प्रोक्त वैष्णव-धर्मके विशद मर्मकी व्याख्या की थी। उनकी सुललित पदलहरी पाठ और गान कर बहुतेरे विमुग्ध चित्तसे श्रीचैतन्यके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करते हैं। श्रीजीव गोस्वामी, रूपसनातन, कृष्णदास कविराज, कविकर्णपुर, नरोत्तम दास, वासुघोष, ज्ञानदास, गोविन्द दास, विद्यापति, जयदेव आदि वैष्णव कवियोंकी ज्ञान-कहानी आज भी वंगालके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक प्रतिध्वनित होती है। श्रीचैतन्यदेव और अन्यान्य कवियोंका नाम देखो।

वैष्णवधर्मवृक्षकी शाखा-प्रशाखाके रूपसे कर्त्ताभजा, गुरुसत्य, सतीमा, हरिबोला, रातभिकारी और उत्कलकी सत्कुली, अनन्तकुली, कविराजी, निहङ्ग, विन्दुधारी, अतिवड़ी आदि मतके उद्भव होने पर भी यथार्थमें वह अभिनव धर्ममत नहीं कहा जाता है। खृष्टीय १६वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें राजा राममोहन रायने वेदान्त मत प्रतिपाद्य ब्राह्ममत प्रचार किया। उसी समयसे ही आदि ब्राह्मसमाजकी ख्याति हुई। इसके बाद उनके प्रवर्त्तितमतका संस्कार कर महात्मा केशवचन्द्रसेनने नवविधान (ब्राह्म) मतकी प्रतिष्ठा की। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और ब्राह्मसमाज शब्दमें विशेष विवरण देखो।

महात्मा राममोहन जिस समय दक्षिण-वङ्गमें ब्राह्मधर्म

प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें, सती-दाहादि निवारणरूप हिन्दूधर्म विरुद्ध घोरतर समाज-विप्लवकर आन्दोलन ले कर हिन्दू अधिवासियोंको तंग कर दिया है, प्रायः उसी समय ही १८२८ ई०में पूर्व-वङ्गमें हाजी सरित् उल्लाने फराजी नामक संस्कृत इस्लाम-धर्ममत प्रवर्त्तन द्वारा सुन्नी-सम्प्रदायकी एक अभिनव शाखाका विस्तार किया था* ।
फराजी देखो ।

वङ्गका पुरावृत्त ।

अति प्राचीन कालसे वङ्गाल नाना नगर तथा छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था । अवसे कुछ समय पूर्व वङ्गालकी सीमा पश्चिम-विहारको सीमासे पूर्व चट्टग्राम और आसामकी सीमा और उत्तरमें हिमालयका पाददेशसे, दक्षिणमें वङ्गोपसागर और उड़ीसाकी सीमा तक थी, किन्तु पहले ऐसी न थी । कब इसका आयतन बढ़ा है और कब कई राज्योंमें विभक्त हो कर एक छोटे देशके रूपमें परिणत हुआ है, इसका परिचय वङ्गके इतिहासकी आलोचना करने पर यह अच्छी तरह समझमें आता है ।

वैदिक समयका वङ्ग ।

प्रथम देखना होगा, कि वङ्ग नाम कितना प्राचीन है ? और 'वङ्ग'(१) कहनेसे किस स्थानका बोध होता है । जगत्‌का आदि-ग्रन्थ ऋक्‌संहितामें अनार्यनिवास "कीकट" (पीछेका नाम मगध), ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें 'पुण्ड्र'(२) और अथर्वसंहितामें 'अङ्ग' (३) देशका उल्लेख रहने पर भी 'वङ्ग' नाम नहीं । हम ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकमें (२।१।१) सबसे पहले वङ्ग नाम पाते हैं । यथा—

"इमाः प्रजास्तिस्रो अत्याय मायं स्तानीमानि वयांसि ।
वङ्गावगधाश्चेरपादान्यंन्या अर्कमभितो विविश्र इति ॥"(४)

'वङ्गाः' अर्थात् वङ्गदेशवासीगण, 'वगधाः' अर्थात् मगधवासीगण और 'चेरपादाः' अर्थात् चेरदेशवासीगण । यह त्रिविध प्रजा ही क्या दुर्बलता क्या दुराहार या बहु अपत्यतासे काक, चटक और पारावत (कबूतर) आदि सदृश हैं ।

वास्तविक वैदिकयुगमें वङ्गदेश अनार्य-निवास ही कहा जाता है । इस अनार्य जातियोंको लक्ष्य कर प्राचीन भाष्यकारोंने वङ्गावगधका राक्षस अर्थ किया होगा । आनन्दतीर्थ उसी प्राचीन भाष्यका ही अनुवर्त्ती हुए हैं ।

केवल ऐतरेय आरण्यक कह कर नहीं, वरं ऋक्‌संहितामें कीकट या मगध अनार्य्य-निवास होनेसे निन्दित है । ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी 'पुण्ड्रा' या पुण्ड्रजनपदवासी 'दस्यूनां भूयिष्ठा' अर्थात् डाकुओंके पिता (जनक) कह कर घृणित और अथर्वसंहितामें अङ्ग और मगध-वासियोंके प्रति अनार्य्योचित श्लेषोक्ति देखी जाती है । इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है,

---

* Bhattacharja's Castes and Sects of Bengal ग्रन्थमें अन्यान्य सम्प्रदायका संक्षेप परिचय द्रष्टव्य ।

(१) ऋक्‌संहिता ३।५३।१४ । (२) ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ । (३) अथर्वसंहिता ५।२२।१४ ।

(४) यहां भाष्यकारने 'वङ्गाः वनगता वृक्षाः' 'अवगधाः व्रीहियवाद्या औषधयः', 'ईरपादाः उरःपादाः सर्पाः' ऐसा अर्थ किया है । फिर भाषा टीकाकार आनन्दतीर्थने 'वयांसि' अर्थमें पिशाच, 'वङ्गावगधः' अर्थमें राक्षस और 'ईरपादाः' अर्थमें असुर निर्देश किया है अतएव भाष्यकार और टीकाकारके बीचमें भी यथेष्ट मतभेद देखा जाता है । भाष्यकारने जहां वृक्ष, ओषधि और सर्प अर्थ किया, उन्हींका टीकाकारने वहीं पिशाच, राक्षस और असुर अर्थ स्वीकार किया है । इस तरहका मतभेद देख कर अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है—

"Possibly they are all old ethnic names like Vanga, Chera &c," (Sacred Books of the East, Vol 1. p. 202f.) अध्यापक सत्यव्रत सामाश्रमी महाशयने भी अपनी त्रयीटीकामें इस तरह व्याख्या की है—

"अस्मन्मते त्वत्र 'वङ्गावगधाश्चेरपादाः' इत्यस्य व्याख्यानायेदृशं कष्टकल्पनं निष्प्रयोजनम् , अपि 'वङ्गा' वंगदेशीयाः 'वगधा' मगधा, 'चेरपादाः' चेरनामजनपदवासिनः । तास्त्रिविधा एव प्रजाः 'वयांसि' काकचटकपारावतादिसदृशाः । दुर्बलत्वेन च सादृश्यम् । इहाङ्गदेशस्यापि मगधत्वेन परिग्रहः, कलिंगसौराष्ट्रयोः कलिंगान्ध्रयोर्वोभयोरेव चेरपाद इति ।" (पृ० १६३)

ऐतरेय आरण्यके उद्धृत अंशका शेषोक्त अर्थ समीचीन जान कर ग्रहण किया गया ।

कि वैदिकयुगमें वर्त्तमान विहारसे वङ्गाल तक भूभागों में अनार्य्य या आर्य्येतर जातिका प्रभाव विस्तृत था। अनार्य्य प्रभावके कारण ही आर्य्य यहां वास करना उचित नहीं समझते थे। और तो क्या, बौधायन-धर्म सूत्रमें लिखा है, कि वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र आदि देशोंमें घूमने पर भी भ्रमणकारीको पुनस्तोम या सर्वपृष्ठोयाग करना पड़ता था।

मनुसंहिता रचनाके समय सम्भवतः वङ्गके निर्जन वनमें दो एक आर्य्य ऋषियोंका आश्रम वन चुका था और उसीके साथ ये सब स्थान तीर्थके रूपमें गण्य हो गया था। मनुसंहिताके रचयिता सम्भवतः इसीसे व्यवस्था कर गये हैं, कि तीर्थयात्राके सिवा कोई आर्य्य अङ्ग-वंगादि देशमें जा न सकेगा—तीर्थयात्राके सिवा वहां जाने पर द्विजातियोंको पुनः संस्कार करना होगा। ऐतरेय-ब्राह्मणमें पुण्ड्रगण विश्वामित्रके सन्तान कहे गये हैं। फिर मनुसंहितामें पौण्ड्रकगणके वृषलत्व या शूद्रत्व प्राप्तिकी कथा है। (१०।४४) इससे मालूम होगा, कि जब विश्वामित्रके वंशधर इस देशमें आ कर वस गये, तब इस देशमें द्विजातियोंका वास न था। इस कारणसे ब्राह्मणके अभावसे उनका संस्कार विलुप्त हुआ। इससे ये वृषल और यहांके अनार्य्योंके साथ मिल कर डाकू कहलाये। दस्यु और वृषल देखो।

यह ठीक जाननेका कोई उपाय नहीं, कि किस समय वङ्गदेशमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी। रामायणके समयमें सम्भवतः इसका सूत्रपात हुआ और महाभारत-के युगमें आर्य्यसभ्यता प्रतिष्ठित हुई थी, इसका प्रमाण भी मिलता है। रामायणमें लिखा है, कि चन्द्रवंशीय अमूर्त्तरजा नामक एक राजाने धर्मारण्यके निकट प्राग्-ज्योतिषपुर स्थापित किया। शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थोंसे ही प्रमाणित हुआ है, कि बहुत प्राचीन कालमें मिथिलामें विदेमाथव द्वारा आर्य्यसभ्यता विस्तृत हुई थी। वर्त्तमान जलपाईगोड़ी रङ्गपुरसे आसामकी पूर्वी-सीमा तक प्राचीन प्राग्ज्योतिष देश फैला था, प्राग्-ज्योतिषपुर (वर्त्तमान गोहाटी) उक्त प्राग्ज्योतिषकी राजधानी थी। इससे यह स्पष्ट है, कि मिथिला (वर्त्त-मान दरभङ्गा) और आसाममें आर्य्यसभ्यता फैली हुई थी, फिर भी बीचमें अङ्ग, वङ्ग और पौण्ड्रमें आर्य्योप-निवेश स्थापित नहीं हुआ, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? महाभारतके कर्णपर्व (४५ अ०)में लिखा है,—"पौण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदी-देशीय सभी महात्मा शाश्वत पुरातनधर्म विशेषरूपसे जानते हैं और उसके अनुसार कार्य्य किया करते हैं।" इस महाभारत-की उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उससे पहले पौण्ड्र अर्थात् उत्तर-वङ्गमें वैदिकधर्म और आर्य्यसभ्यताका विकाश हो गया था।

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि ययातिके पुत्र पुरुकी नीचली २२ पीढ़ीमें महाराज वलिने जन्मग्रहण किया। ये परम योगी और राजा थे। इनके वंशधर पांच पुत्र अंग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग हैं। ये ही महाराज वलिके क्षत्रिय-सन्तान हैं। किन्तु उनके वंश-धर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

महाभारतके आदि पर्व (१०४ अध्याय)में कहा गया है, "भूलोक परशुराम कर्तृक निःक्षत्रिय होनेसे अनेक क्षत्रिय-पत्नियोंने वेदपारग ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न किया था। वेदका विधान यह है, कि जो पाणिग्रहण करता है, उसके क्षेत्रमें जो सन्तान पैदा होता है, वह सन्तान उसीका कहलाता है। अतएव धर्माचरण सोच कर ही क्षत्रिय-पत्नियोंने ब्राह्मणसे सहवास किया था। इस तरह क्षेत्रज पुत्रके दृष्टान्त दिखानेके लिये महा-भारतके रचयिताने यह पुरातन इतिहास लिखा है—

"क्षत्रियराज वलिके पुत्र न था। उन्होंने एक दिन गङ्गास्नान करने जाते समय देखा, कि एक अन्ध ऋषि गङ्गामें बहते चले आते हैं। धार्मिक राजा उनको गंगा-धारसे निकाल घर ले गये। उन अन्ध ऋषिका नाम दीर्घतमा था। धार्मिक नरपतिने उनके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेके लिये अनुरोध किया। इसके अनुसार उनकी महिषी (रानी)-के गर्भसे दीर्घतमाने पांच पुत्र उत्पन्न किये। इन्हीं पांच पुत्रोंके नाम अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म। उन्हींके नाम पर एक एक देश विख्यात है।

हरिवंशमें लिखा है:—परम योगी राजा वलि ऊर्द्ध्वरेता थे। इसलिये उनको पत्नी सुदेष्णाके गर्भसे महातेजस्वी मुनिवर दीर्घतमासे ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए। योगात्मा

बलिने उन निष्पाप पांच पुत्रोंको राजसिंहासन पर बैठा कर योग-मार्गका आश्रय लिया। (३१ अध्याय)

उद्धृत प्रमाणोंके बल कहना पड़ता है, कि बलि अथवा उनके पांच पुत्रोंसे ही अंग-बंगादि जनपदोंमें वैदिक-सभ्यता प्रचारित और चातुर्वर्ण्य समाज संगठित हुआ।

महाभारतकारने बलि-पुत्र अंग, वंगादिके नामानुसार भिन्न भिन्न देशोंकी नामोत्पत्ति स्वीकार की है। पूर्वोक्त अथर्ववेद, ऐतरेय-ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यकके अनुवर्त्ती होनेसे अवश्य ही कहना पड़ता है, कि आर्य्य-सभ्यता विस्तारसे पहले अंग, वंग, पुण्ड्रका नामकरण हुआ था। बलि-पुत्र जिन्होंने जिस राज्यका अधिकार पाया था, वे उन्हीं राज्योंके नामानुसार सम्भवतः विख्यात हुए थे। जैसे पौण्ड्रके अधिपति महानल वासुदेव नाना पुराणोंमें केवलमात्र 'पौंड्रक' नामसे परिचित हैं।

बलि-पुत्र अंगकी छठी पीढ़ी नीचे अंगाधिप दशरथ लोमपादके नामसे विख्यात थे। आप श्रीरामचन्द्रके पिता दशरथके सखा और ऋष्यशृंगके श्वशुर थे। लोमपादके प्रपौत्र चम्पसे अंगकी राजधानी चम्पा नामसे प्रसिद्ध हुए। अंगाधिप चम्पके प्रपौत्र-पौत्र वृहन्मलाके विजय नामक एक पुत्र हुआ। हरिवंशमें वे 'ब्रह्मक्षेत्रोत्तर'* विशेषणसे विभूषित हुए थे। इन विजयके प्रपौत्र पुत्र अधिरथ सूतवृत्ति अवलम्बन कर क्षत्रिय-समाजमें निन्दित हुए थे। सूतने अधिरथ कर्णका प्रतिग्रह किया था इससे कर्णको सभी सूतके पुत्र कहते थे†।

जो हो, हरिवंशके विवरणमें यदि कुछ भी ऐतिहासिकता हो, तो अवश्य ही स्वीकार करना होगा, कि पौरव अधिराज बलिके समय अर्थात् महावीर कर्णकी १६वीं पीढ़ी पहलेसे (वर्त्तमान समयके पांच हजार वर्ष से पहले) अङ्ग-वङ्गमें क्षत्रिय-समाजकी प्रतिष्ठा हुई थी। और तो क्या, यहांके अनेक नृपतिने योगबलसे या कर्मफलसे ब्राह्मणत्व तक लाभ किया था। उसी बहुत पुराने समयसे ही बङ्गालियोंकी जन्मभूमि बहु सात्विक योगी, ऋषि, ज्ञानी, मानी और महावीरोंकी लीलास्थली हुई थी। इसी कारणसे बोधायन-धर्मसूत्रमें और मनुसंहितामें जो स्थान आर्य्यावासके अनुपयुक्त कहा गया था, महाभारतमें वङ्गप्रान्त उसी कलिङ्गदेश "यज्ञीय गिरिशोभित सतत द्विजसेवित" पुण्य स्थान कहा गया है।

महाभारतसे हम लोग और भी जानते हैं, कि महाराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञके समय वह वङ्गदेश नाना छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। भीमके पहले दिग्विजय उपलक्षमें सभापर्वमें लिखा है।

"भीमसेन अपने पक्षके होने पर भी सुह्म प्रभुओंको युद्धमें पराजित कर मगधवासियोंके प्रति चले। वहां दण्ड, दण्डधार और अपरापर महीपालोंको पराजय कर वे सभी एकत्र हो कर गिरिव्रजमें आये और जरासन्ध-नन्दन सहदेवको सान्त्वनायुक्त और करायत्त कर सबको साथमें ले कर्णके प्रति दौड़े। इसके बाद पाण्डवश्रेष्ठ भीमने चतुरङ्ग-सेनाके बलसे पृथ्वी कंपित कर शत्रुनाशन कर्णके साथ घोरतर युद्ध किया और उनको संग्राममें पराजित कर और वशीभूत कर पर्वतवासी राजाओंको महासमरमें अपने बाहुबलसे मारा। इसके उपरान्त तीव्र पराक्रम और महाबाहु पुण्ड्राधिप वासुदेव और कौशिकीकच्छ निवासी राजा महौजा इन दोनों नृपतिको युद्धमें पराजित कर वङ्गराजके प्रति धावमान हुए। समुद्रसेन और चन्द्रसेन नरपतियोंको पराजित कर ताम्रलिप्तराज कर्वटाधिपति, सुह्माधिपति और सागरवासी सब म्लेच्छोंको जीता।

वङ्गमें जैन और बौद्ध-प्रभाव।

हम लोगोंने महाभारत, हरिवंश और नाना पुराणकी आलोचना कर पाया है, कि मगध, अङ्ग, वङ्ग और सुह्मके क्षत्रिय वीरगण आपसमें आत्मीयता और मित्रताके पाश में आवद्ध थे; उनके आचार व्यवहार बहुत कुछ एक था। इसका कारण यह, कि यहांके क्षत्रियवंशमें जब कभी कोई महापुरुष आविर्भूत हुए हैं, तभी उन्होंने साधारणको

* "ब्रह्मक्षेत्रोत्तरः सत्यां विजयोनाम विश्रुतः।" (हरिवंश ३१।५७) यहां ब्रह्मक्षेत्रोत्तर शब्दका किसीने अर्थ किया है, ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों धर्मावलम्बी, फिर बहुतोंने अर्थ किया है:—"शान्ति प्रभृति द्वारा ब्राह्मणसे उत्कृष्ट और वीर्य्यादि द्वारा क्षत्रियसे श्रेष्ठ।"

† हरिवंश ३१ अध्यायमें पूर्वापर वंशावली और विशेष विवरण द्रष्टव्य।

उच्च ज्ञानोपदेश प्रदान कर उन्नत और एकभावापन्न करनेकी चेष्टा कर पाया है। परवर्त्ती ब्राह्मणग्रन्थ इस सम्बन्धमें बहुत कुछ निस्तब्ध है सही, पर प्राचीन जैन और बौद्धग्रन्थोंसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। आदि ब्राह्मणशास्त्र जिस तरह गुरुपरम्परासे मुख-मुखमें चलता आ रहा है, आदिजैन और बौद्धग्रन्थ भी उसी तरह गुरुपरम्परासे मुख-मुखमें चलता रह कर ब्राह्मणशास्त्रोंकी भांति पीछे लिपिबद्ध हुआ है। इन सब परम्परागत जैन ग्रन्थोंसे हम लोग देख सकते हैं, कि जिनधर्मप्रचारक २४ तीर्थङ्करोंमेंसे सिर्फ आदि जिन ऋषभदेवके अलावा २ अजितनाथ, ३ सम्भवनाथ, ४ अभिनन्दन, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ सुविधिनाथ, १० शीतलनाथ, ११ श्रेयांसनाथ, १२ वासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शान्तिनाथ, १७ कुन्थुनाथ, १८ अरनाथ, १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रत, २१ नमीनाथ, २२ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ और २४ महावीर, इन २३ तीर्थङ्करोंके साथ बंगालीका संस्रव घट गया था। ये सभी परम ज्ञानी कह कर जैन-समाजमें 'देवाधिदेव' अर्थात् देवब्राह्मणसे श्रेष्ठ कह कर पूजित थे।

उक्त तीर्थङ्करोंमेंसे २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथने ईस्वीसन् ७७७ के पहले मानभूम जिलेके समेतशिखर पर (वर्त्तमान परेशनाथ पहाड़ पर) मोक्षलाभ किया। २७०० वर्ष पूर्व राढ़वङ्गमें उनके प्रभावसे बहुतोंने ही तत्प्रचारित चातुर्याम-धर्म्म ग्रहण किया था। अरिष्टनेमिपुराणान्तर्गत जैन हरिवंशमें लिखा है, कि यादवपति श्रीकृष्णके ज्ञाति नेमिनाथने अङ्गवङ्गादि देशमें आ कर जैन धर्म प्रचार किया था। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मण्यधर्मरक्षामें सात्वत धर्म प्रचारमें निरत थे, उस समय उनके ही एक ज्ञाति भिक्षुधर्म प्रचारमें अग्रसर हुए थे। उनका मत ब्राह्मणविरोधी था, इसलिए ब्राह्मणोंके धर्मग्रन्थमें स्थानलाभ नहीं किया सही, पर जैनाचार्य्यगण उसकी रक्षा कर आर्यसमाजका एक और तरफका चित्र देखनेका अवसर दे गये हैं। यद्यपि उस समय जिनधर्म आर्य्यसमाजमें सुप्रतिष्ठित हुआ था वा नहीं सन्देह है, किन्तु आज भी जो पूर्व भारतके एक प्रान्तमें क्षत्रिय-सन्तान अपने अपने प्राधान्यकी रक्षामें उद्युक्त थे, वह हिन्दू और जैन दोनोंके हरिवंशमें अल्पविस्तर चित्रित है। यह भी सम्भव नहीं, कि नेमिनाथकी तरह क्षत्रियप्रचारकोंकी उत्तेजनासे पौण्ड्रक वासुदेव कृष्णद्वेषी हो गये थे। जो हो, उस अतीत युगको तिमिरावृत इतिवृत्त तर्कसंकुल कह कर और निःसन्देह भ्रमप्रमादपरिशून्य होनेकी सम्भावना न रहनेसे यहीं क्षान्त हुए।

महाभारतकार "वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानः" कह कर क्षत्रियकी श्रेष्ठताकी घोषणा कर गये हैं। कुरुक्षेत्रके कुलक्षयकर महासमरसे ही आर्यावर्त्तका क्षत्रियप्रभाव खर्व्व होने लगा तथा सीमान्त प्रदेशसे दूसरी दुर्द्धर्ष जातियोंने भारतमें घुसनेकी सुविधा पाई। ब्राह्मणप्राधान्य भी फैलने लगा। इस समय पूर्व और दक्षिण-भारतमें ब्राह्मणलोग कर्मकाण्डप्रचारके साथ पौराणिक देवपूजा प्रतिष्ठामें उद्योगी हुए थे, एवं क्षत्रियेतर जनसाधारण बहुतेरे आदरके साथ कर्मकाण्डबहुल सहज पूजामें अनुरक्त हो रहे थे। किन्तु इस समय उत्तर-पश्चिम भारतमें क्षत्रिय-प्रभाव ह्रास होने पर भी पूर्व भारतमें एकदम ह्रास नहीं हो सका, वरं यहांके क्षत्रियोंके अभ्युदयकी सुविधा हुई थी। वे कर्मकाण्डबहुल देवपूजामें सन्तुष्ट न थे। आत्मसंयम और आत्मोत्कर्ष-लाभमें सभी सचेष्ट थे। कुरुक्षेत्रमें क्षात्रजीवनका भीषण परिणाम देख उन्होंने तलवार चलानेकी अपेक्षा मोक्षपथका उपाय निकालना ही पुरुषार्थ समझा था। उसीके फलसे पूर्व-भारतमें बुद्ध और तीर्थङ्करोंका अभ्युदय हुआ था।

पाणिनिके अष्टाध्यायी (६।२।१००) और जैन-हरिवंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि भारतीय युगके बाद पूर्व-भारतमें "अरिष्टपुर" और "गौड़पुर" नामक दो प्रधान नगर था। जैनहरिवंशमें अरिष्टपुर और सिंहपुरका एकत्र उल्लेख पाया जाता है। अरिष्टनेमि वा नेमिनाथके नाम पर अरिष्टपुरका नाम पड़ा है, इसमें कुछ असम्भव नहीं। इन तीन प्राचीन नगरीमेंसे गौड़पुर पुण्ड्रदेशमें और अरिष्टपुर उत्तरराढ़में था, ऐसा बोध होता है। गौड़पुरसे ही पीछे गौड़राज्यका नामकरण हुआ। प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रन्थोक्त सिंहपुर नामक प्रधान नगर सुह्म या राढ़देशमें अवस्थित था। इस प्रकार समस्त राढ़देश

भी पूर्वकालमें एक समय सिंहपुर राज्य कह कर प्रसिद्ध हुआ। आज 'सिंहभूम' प्राचीन सिंहपुरकी स्मृतिं जगा रहा है।

जैनोंके अंग और कल्पसूत्रके अनुसार खृष्टजन्मके प्रायः ८०० वर्ष पहले २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ स्वामीने कर्मकाण्डके प्रतिकूलमें पुण्ड्र, राढ़ और ताम्रलिप्त प्रदेशोंमें चातुर्याम धर्म प्रचार किया। उसके बाद अंग, वंग और मगधके राजभवनमें अग्निहोत्रशाला प्रतिष्ठित रहने पर भी धार्मिक और ज्ञानी लोग औपनिषदीय अन्तर्यज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर थे।

पार्श्वनाथ स्वामी वैदिक पञ्चाग्निसाधनादिके प्रतिकूलमें स्वीय मत प्रचार करने पर भी जैनोंके सुप्राचीन अंग भगवतीसूत्रसे जाना जाता है, कि शेष तीर्थङ्कर महावीरने चतुर्वेदादिकी अवहेलना नहीं की। उनके पूर्वपुरुष पार्श्व-उपासक और श्रमणके शिष्य थे। वे ज्ञानकाण्डका ही समर्थन कर गये हैं। एक ही समयमें महावीर तथा शाक्य बुद्धका अभ्युदय हुआ था। दोनों ही ब्राह्मणोंकी अपेक्षा क्षत्रियोंकी श्रेष्ठता प्रचार कर गये हैं। दोनों ही आत्मीयताके सूत्रमें आबद्ध थे; दोनों ही वैदिक कर्मकाण्डकी निन्दा एवं ज्ञानकाण्डकी आवश्यकताकी घोषणा कर गये हैं। उनके जन्म-समयमें अंगदेशमें ब्रह्मदत्त और मगधमें श्रेणिक बिम्बिसारके पिता भट्टिय राज्य करते थे। ब्रह्मदत्तने भट्टियको युद्धमें पराजय किया था। उसका प्रतिशोध लेनेके लिये बिम्बिसारने अंगराज्यको अपने अधिकारमें कर लिया था। पिताके मृत्युकाल तक वे अंगकी राजधानी चम्पापुरीमें ही अवस्थान करते रहे। इसके बाद वे राजगृहमें आ कर पिताके सिंहासन पर बैठे।

श्रेणिक बिम्बिसार जिस समय चम्पामें अधिष्ठित थे, उस समय बुद्धदेवने संघका कर्त्तव्याकर्त्तव्य अवधारण किया था। उस समयसे ही बुद्धदेवके प्रति मगध-अधिपतिकी भक्ति-श्रद्धा आकृष्ट हुई।

महावग्गमें वर्णित है, कि जटिल उरुविल्व काश्यपने एक महायज्ञका अनुष्ठान किया था। उनकी यज्ञ-सभामें अंग तथा मगधके बहुत-से लोग उपस्थित हुए थे। उक्त प्रमाणसे मालूम पड़ता है, कि उस समय भी पूर्व भारतमें याग यज्ञका आदर था। दूर दूरके लोग यज्ञ देखने आया करते थे।

वैदिक समयमें स्त्री-शिक्षाका यथेष्ट आदर था। आत्रेयी, गार्गी प्रभृति ऋषि रमणियां ही शिक्षित आर्य-महिलाओंकी उज्ज्वल दृष्टान्त हैं। किन्तु कुछ दिनोंके बाद स्त्रियोंके लिये वेद-पाठ तथा संन्यासाश्रम निषेध कर दिया गया। ईसाके जन्मसे छः सौ वर्ष पूर्व महावीर तथा बुद्धदेवने रमणियोंको समान अधिकार दिया था; किन्तु यह ठीक नहीं। उस समय भी कोई ब्राह्मण और शूद्रके बीचके वर्णधर्मकी कठोरताको शिथिल करनेमें समर्थ नहीं हुआ। दो एक साधुओंकी बात नहीं कही जाती है। महावीर तथा बुद्ध दोनों हीने साधारण शूद्र जातिको उच्च ज्ञानमार्गका अनधिकारी ही बतलाया था।

राजगृह-पति बिम्बिसार (श्रेणिक) महावीर तथा बुद्ध दोनोंके ही धर्मोपदेश अत्यन्त आदरके साथ श्रवण करते थे। यही कारण है, कि जैन तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें वे जैन एवं बौद्ध नरपतिके नामसे विख्यात हैं। उनके लड़के अजातशत्रु जैन ग्रन्थमें कुणिक नामसे विख्यात हैं। अजातशत्रुने राजगृहसे आ कर चम्पामें अपनी राजधानी कायम की। इस समयसे कुछ समय तक चम्पानगरी ही (भागलपुरके निकटवर्त्ती चम्पाई-नगर) भारत-साम्राज्यकी राजधानीके नामसे प्रसिद्ध हो चली थी। अजातशत्रुके राज्यकालमें गणधर सुधर्मस्वामीने जम्बूस्वामीके साथ चम्पामें आ कर जैनधर्म प्रचार किया था। किन्तु उस समय अधिक लोग बुद्धमतमें ही अनुरक्त थे। कुछ समयके बाद जम्बूस्वामीके शिष्य वत्सगोत्र सम्भूत शय्यम्भवने चम्पामें आ कर जैनधर्म प्रचार किया। उनसे बहुत लोग जैन धर्ममें दीक्षित हुए थे। इसी समयमें मगधाधिप अजातशत्रुके पुत्र उदायीने गंगाके किनारे पाटलिपुत्र नगरी स्थापन की थी।

प्राचीन जैनग्रन्थके मतानुसार वीरमोक्षके ६० वर्ष बाद अर्थात् ईसाके जन्मसे ४६७ वर्ष पूर्व प्रथम नन्दका अभिषेक हुआ। इसके चार वर्ष बाद प्रसिद्ध जैन गणधर जम्बूस्वामीने मोक्ष लाभ किया। प्रथम नन्दके बाद और एक नन्दने राज्य किया, कल्पक पुत्र शकटालके भ्रातृगण उनके मन्त्री थे। अन्तमें छठे नन्द सिंहासन पर बैठे,

इनका प्रधान मन्त्री शकटाल था। इसी शकटालका पुत्र स्थूलभद्र था।

स्थूलभद्रके कुछ पहले जैनियोंके अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका अभ्युदय हुआ। उनके शिष्यसे सारा भारतवर्ष परिव्याप्त हो गया था। उनके काश्यप-गोत्रीय चार प्रधान शिष्य थे। उनमेंसे प्रधान शिष्यका नाम गोदास था। इस गोदाससे ही चार शाखाओंकी सृष्टि हुई,—इन चारों शाखाओंके नाम ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षीया, पुण्ड्रवर्द्धनीया तथा दासी कर्व्वटिया थे। इन चारों शाखाओंके नामसे सहज ही मालूम होगा, कि ताम्रलिप्त (वर्त्तमान तमलुक), कोटिवर्ष (वर्त्तमान दिनाजपुर जिलान्तर्गत देवकोट परगना), पुण्ड्रवर्द्धन (मालदह तथा बगुड़ा जिलान्तर्गत) एवं कर्व्वट (सम्भवतः मानभूम जिलान्तर्गत) इत्यादि स्थानोंमें अर्थात् दो हजार वर्ष पहले भी वर्त्तमान वंगदेशके नाना स्थानोंमें जैनियोंकी प्रतिपत्ति तथा श्रेणीविभाग हो चले थे।

इसके बाद चन्द्रगुप्तका अधिकार हुआ। चाणक्यके कौशलसे नन्दवंशका नाश करके चन्द्रगुप्त भारतवर्षके एकच्छत्र अधिपति हुए थे। हेमचन्द्रके परिशिष्ट पर्वमें वीरमोक्षके १५५ वर्ष बाद अर्थात् ईसाके जन्मसे ३७२ वर्ष पहले चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक हुआ था।

इस समय वंगदेशमें ब्राह्मणाचार एक प्रकारसे विलुप्त हो चुका है। सर्वत्र ही जैनाचार प्रबल हो उठा है। स्वयं चन्द्रगुप्तने भद्रबाहुका शिष्यत्व ग्रहण किया है। इसी चन्द्रगुप्तके राज्यकालमें पाटलिपुत्रमें जैनियोंके श्रीसंघ आहूत तथा जैन अंगशास्त्रादि संगृहीत हुआ।

चन्द्रगुप्त एक प्रकारसे भारत सम्राट् ही हुए थे। उनके परिजनवर्ग उन्हींके अधीनमें भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें शासन करते थे। सुतरां पाटलिपुत्रका जैन-अनुष्ठान आसानीसे चन्द्रगुप्तके अधीन सामन्तोंकी चेष्टासे सारे भारतमें परिगृहीत हो गया था।

जैन-प्रभावके फैलनेके साथ साथ सारे भारतमें ब्राह्मण-प्रभाव अत्यन्त क्षीण हो गया। क्षत्रिय-राजाओंकी चेष्टासे ही ऐसा परिवर्त्तन हुआ है, ऐसा कह कर ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंसे अत्यन्त क्रोधित हो गये, अतः उन्होंने पुराणोंके अन्दर लिख दिया, कि क्षत्रियोंके वंशका बिलकुल नाश हो गया, अब और क्षत्री भारतवर्षमें शेष नहीं रहे। चन्द्रगुप्त ब्राह्मण-विरोधी तथा जैन-मतावलम्बी कह कर ब्राह्मणोंके द्वारा 'वृषल' नामसे लाञ्छित किये गये। ईसाके जन्मसे ३१६ वर्ष पहले चन्द्रगुप्तके पुत्र विन्दुसारके राज्यका अन्त एवं अशोकका अभ्युदय हुआ। अशोक प्रियदर्शी चन्द्रगुप्तके अपत्य कह कर चन्द्रगुप्त (Sandrakoptas) नामसे भी पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके निकट परिचित हैं। भारतवर्ष शब्द देखो।

ब्राह्मण-रचित ग्रन्थोंमें अशोक शूद्र कह कर चिह्नित होने पर भी बौद्धग्रन्थोंमें वे क्षत्रिय एवं विशुद्ध क्षत्रियाचारी कह कर परिचित हैं। राज्याभिषेकके पहले वे कुछ ब्राह्मण-भक्त थे। उनके भोजनागारमें सौ सौ पशुवध होता था। राज्याभिषेकके साथ ही वे पहले जैन, फिर बौद्धधर्मानुरागी हुए। हिमालयसे ले कर कुमारिका एवं चट्टग्रामसे ले कर अफगानिस्तानकी सीमा पर्यन्त उनका साम्राज्य फैल गया था। यूरोप तथा आफ्रिका आदि दूर दूर देशोंमें भी बौद्धधर्म प्रचारार्थ उन्होंने उपयुक्त परिव्राजक नियुक्त किया था। उस समयके श्रेष्ठ यवनराजे उनके साथ आत्मीयता तथा मित्रतापाशमें आबद्ध हो गये थे। प्रियदर्शी देखो।

अशोकके समय उनके अधीनस्थ वङ्ग-देश कई प्रदेशोंमें विभक्त हो गया था एवं एक एक प्रदेश एक एक पराक्रान्त सामन्तराजके शासनाधीन था। भारतके अन्यान्य प्रदेशोंकी तरह ही वङ्गके कई स्थानोंमें अशोकका धर्मानुशासन तथा धर्म्मराजिका प्रतिष्ठित हो गई थी। अशोकके समय वङ्गभूमिमें कौन कौन अन्य राजे राज्य करते थे, उनके नाम पाये नहीं जाते। अबुलफ़ज़ल यहांका प्राचीन इतिवृत्त संग्रह करके जो संक्षिप्त विवरण प्रकाश कर गये हैं, उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि वङ्गभूमिमें २४१८ वर्ष क्षत्रियोंका, २०३८ वर्ष कायस्थोंका अधिकार रहा, इसके बाद मुसलमानोंका अधिकार हुआ। पहले ही लिख आया हूं, कि बलिके पुत्र अंग-वङ्गादिके द्वारा ही इस स्थानमें क्षत्रियाधिकारका सूत्रपात हुआ। यह महावीर कर्णके पन्द्रह पूर्व पुरुषोंके समयकी, या यों कहिये कि पांच हजार वर्षसे भी पहलेकी बात है। अर्थात् वर्त्तमान कलियुग प्रवर्त्तित होनेके पहले ही

इस देशमें क्षत्रियोंकी गोटी जम गई थी। इस समय अबुलफ़जलकी गणनानुसार कह सकता हूं, कि सम्राट् अशोकके पहले ही इस स्थानमें कायस्थोंका अधिकार हो चला था एवं वे प्राचीन कालीन कायस्थराजे उनके अधीश्वर मगधाधिपतियोंके मतानुवर्त्ती थे।

अशोकके बाद उनके पौत्र सम्राट् दशरथ जैनधर्मानुरक्त हुए। बराबरके नागार्जुनी पहाड़ पर उत्कीर्ण दशरथकी लिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने जैन आजीवकोंके सम्मानार्थ बहुतों दानकी व्यवस्था की थी।

अशोक-पौत्र दशरथके बाद मौर्यवंशीय पांच राजे पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित हुए। उनके नाम थे—सङ्गत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा तथा वृहद्रथ। इन पांचों राजाओंके राज्यकालमें मौर्य-प्रभाव बहुत कुछ फीका पड़ गया था। अशोक जिस सुविस्तीर्ण साम्राज्यकी प्रतिष्ठा कर गये थे, उस विपुल साम्राज्यकी रक्षा करनेकी शक्ति उनके वंशधरोंमें थी ऐसा नहीं जान पड़ता। अशोक दूर दूरके देशोंमें शासन-निर्वाहके निमित्त राजप्रतिनिधि रख गये थे। धीरे धीरे वे अवसर पा कर स्वाधीन हो गये। मौर्यराज दशरथ जिस राजशक्तिका परिचय दे गये हैं, उनके वंशधरोंमें उसकी क्षीण-ज्योति भी पाई नहीं जाती।

चन्द्रगुप्त तथा अशोक-प्रियदर्शीने ३१५ ३१६से ले कर २१५-२१६ पर्य्यन्त साम्राज्य शासन किया। प्रियदर्शी देखो। अवदानादि बौद्धग्रन्थोंके मतानुसार अशोकके बाद १०० वर्ष तक मौर्य्याधिकार रहा।

उदयगिरिकी हाथीगुफामें १६४ मौर्याब्दमें उत्कीर्ण खारवेलकी सुवृहत् शिलालिपिसे जाना जाता है, कि कलिङ्गपति भिक्षुराज खारवेल उनके १२वें राज्याङ्कमें (अर्थात् १६३ मौर्याब्दमें) गंगातीर जा कर मगधपतिको अपने वशमें लाया था। मगधपति उनके भयसे मथुरा भाग गये। पहले ही लिखा जा चुका है, कि वीरमोक्षके १५५ वर्ष बाद अर्थात् ३१२ खृष्टके पूर्वाब्दमें चन्द्रगुप्तका अभिषेक हुआ था। इसी अभिषेकवर्षसे मौर्य्याब्द आरम्भ हुआ। इस तरहसे ईसाके जन्मसे २०६ वर्ष पूर्व कलिंगपतिने मगध विजय किया था। वे दूसरे दूसरे धर्मोंका विद्वेशी न होने पर भी स्वयं निष्ठावान् जैन थे। उनके प्रभावसे मगध, अंग, वंग तथा कलिंगमें जैनाचार ही प्रबल हो उठा था। वंगाधिपतिने उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ लिया था। कलिंगाधिपतिने शाकपति हथीशाहकी कन्याका पाणि-ग्रहण किया था। उनके अभ्युदयकालमें कुसुम्ब क्षत्रियोंने उनकी यथेष्ट सहायता की थी। खारबेल भिक्षुराजने जिस मगधपति पर आक्रमण किया था, वे ही सम्भवतः अन्तिम मौर्य्यपति वृहद्रथ थे। भिक्षुराजके कलिंगमें प्रत्यावर्त्तन करने पर वृहद्रथ भी फिरसे अपनी राजधानीको लौट आये।

वृहद्रथकी दुर्बलता देख कर उसको राजच्युत करनेका षड्यन्त्र-पट रचा गया। वाणभट्टके हर्षचरितमें लिखा है, कि सैन्यवल परिदर्शन करानेकी छलनासे दुष्ट पुष्यमित्रने अपने स्वामी मौर्य्य-वृहद्रथको मार डाला। इस तरहसे सेनापति पुष्यमित्रने मौर्य्यसिंहासन पर अधिकार जमाया। मौर्य्य-राजमन्त्री कैद कर लिये गये। पुष्यमित्रके साथ ही साथ प्रायः १७६ खृ० पूर्वाब्द शुंगराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

ब्राह्मण्याभ्युदय।

पुष्यमित्र देवविप्रभक्त थे। ब्राह्मण-पुरोहितकी सलाहसे उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। अश्वमेध-सम्पन्न कर पुष्यमित्र भारतके सम्राट् हुए थे। बहुत समय बाद वे पूर्व-भारतमें वैदिक धर्मप्रचारमें मनोयोगी हुए। इन्हीं पुष्यमित्रके राज्यकालमें ग्रीक नृपति मिनिन्द (Menander) ने मध्यमिका और साकेत विजय कर पाटलिपुत्र पर हमला किया। किन्तु वहींसे उन्हें लौट जाना पड़ा। पाटलिपुत्रके पूर्व यवनोंने आगे कदम बढ़ानेका साहस न किया। बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि उस समय यवन लोग अशोक-कीर्त्तियोंको तोड़-फोड़ गये थे। फिर बौद्धग्रन्थके अनुसार पुष्यमित्र ही अशोकके कीर्त्तिलोपके कारण थे। जो हो, यवनके आक्रमणसे मगधराज्य बहुत कुछ विशृङ्खल हो गया था। पीछे बूढ़े राजाके मरने पर उनके वंशधरको धोखा दे कर दूसरे दूसरे राजे राज्य लेनेका षड़यन्त्र रचने लगे। उसी षड़यन्त्रके फलसे अभिनयकालमें मित्रदेवने अग्निमित्रका सर काट डाला। षड़यन्त्रकारियोंने अग्निमित्रके कनिष्ठ सुज्येष्ठको राजा बनाया। किन्तु शुङ्ग सुज्येष्ठके भाग्यमें भी अधिक दिन

वदा न था। महावीर वसुमित्र थोड़े दिनके बाद ही पैतृक सिंहासन पर बैठे। वैदिक धर्मप्रचार करनेकी इच्छासे ही वसुमित्रने दाक्षिणात्यसे वेदज्ञ विप्र मंगा कर उन्हें राजगृह प्रदान किया था। वसुमित्र और उनके परवर्त्ती अन्तक, पुलिन्दक, घोषवसु, वज्रमित्र, भागवत और देवभूमि आदि शुङ्ग राजे सभी देवविप्रभक्त थे। इस वंशने ११२ वर्ष अर्थात् ६४ खृ० पूर्वाब्द पर्यन्त राज्यका भोग करते रहे।

देवभूमि अति लम्पट और व्यसनासक्त थे। उन्हें यमपुर भेज उनके ब्राह्मणमन्त्री वसुदेवने सिंहासन अपनाया। वसुदेवसे ही कण्व या काण्वायण ब्राह्मणवंशकी प्रतिष्ठा हुई। वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मा काण्ववंशीय ये चार राजे ४५ वर्ष तक (करीब २० खृ० पूर्वाब्द पर्यन्त) पाटलिपुत्रमें अधिष्ठित थे।

शुङ्ग और काण्व शाकद्वीपी मालूम पड़ते हैं। उनके समयमें सिर्फ पूर्व-भारत ही नहीं, समूचे भारतवर्षमें सौरमत और प्रतिमापूजा प्रचलित हुई। सौर, भागवत, पाञ्चरात्र तथा पौराणिकोंका भी अभिनव अभ्युत्थान हुआ था।

शुङ्ग और कण्वोंके आधिपत्यकालमें ही उत्तर-पश्चिम भारतमें शकजातिका अभ्युदय था।

भारतवर्ष शब्द विवरण देखो।

वसुमित्र सम्मानित राजगृहस्थित वैदिक विप्रगण वत्स, उपमन्यु, कौण्डिल्य, गर्ग, हारित, गौतम, शाण्डिल्य, भरद्वाज, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ, वात्स्य, सावर्णि और पराशर १४ गोत्रोंमें विभक्त थे। परवर्त्ती कालमें ये सब दाक्षिणात्य विप्रसन्तान वङ्गके नाना स्थानोंमें फैल गये थे। किन्तु वे सब भी जैन बौद्ध-प्रभावमग्र वङ्गकी आबहवा लगनेसे कुछ समय बाद बहुत कुछ वैदिकाचारभ्रष्ट हो गये। तभीसे वङ्गके किसी किसी वन्य प्रदेशमें मेद, कैवर्त्त आदि जातिका आधिपत्य देखा जाता है।

दाक्षिणात्यके अन्ध्र राजाओंसे राज्य छीना जाने पर काण्ववंशने उत्तर-पश्चिम भारतमें शकक्षत्रपोंका आश्रय लिया। आन्ध्रोंने पाटलिपुत्र अधिकार किया सही, पर वहांकी राजधानी उनके बसने लायक न रही। वे यहां प्रतिनिधि छोड़ दाक्षिणात्य लौट गये। जो हो, उस समय पूर्व-भारतमें द्राविड़ीय आचार बहुत कुछ फैल गया था। किन्तु प्रतिनिधियोंके स्वार्थतासे राज्यमें अन्तर्विप्लवकी सूचना हो गई, जिससे अङ्ग, वङ्ग और मगध-राज्य छोटे छोटे भागोंमें बंट कर एक एक स्वाधीन राजोंके हाथ पड़ गया। इस समय पश्चिम प्रदेशमें शकोंकी गोटी पूर्णरूपसे जमी हुई थी। शाकद्वीपी काण्व ब्राह्मणोंके धर्मोपदेशसे शकराजे भारतीय देवविप्रपूजक और प्रजारञ्जक हो गये। प्रजाएं भी उनसे विरक्त हो गईं। इसलिये पूर्वकी ओर आधिपत्य फैलानेमें उन्हें अधिक कष्ट न भोगना पड़ा। शकोंके शुभ दिन आ पहुंचे।

१ली सदीमें शकाधिप कनिष्ठ भारत सम्राट् हुए। सारनाथके भूगर्भसे सम्प्रति महाराज कनिष्ककी जो स्तम्भलिपि आविष्कृत हुई है, उसका अनुसरण करनेसे जान पड़ेगा, कि पूर्व-भारत भी कनिष्कके साम्राज्यभुक्त हुआ था। उनके उदारनैतिक होने पर भी उनकी शिलालिपियां उनके बौद्धधर्मानुरागको घोषणा करती हैं। उनके प्रयत्नसे बनारसकी तरह अंग, वंग और कलिंगमें भी महायान बौद्धमत प्रचारित हुआ था।

महाराज कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर (वर्त्तमान पेशावर) में थी। बहुत दूर पश्चिमी सीमा पर अधिष्ठित रहने पर भी उन्होंने कासघर, यारकन्द, खोतन आदि मध्य एशियाके सुदूर उत्तर प्रदेशसे दक्षिणमें विन्ध्याद्रि तथा पूर्वमें अंग-वंग-कलिंग तक आधिपत्य फैलाया था। 'धर्मपिटक-सम्प्रदायनिदान' नामक बौद्ध-ग्रन्थके मतसे महाराज कनिष्क पाटलिपुत्र आये और यहांके राजाको जीत कर बौद्धस्थविर बौद्धघोषको ले गये। सम्प्रति सारनाथसे वहांकी समतल भूमिसे दश हाथ मिट्टीके नीचे सम्राट् कनिष्ककी शिलालिपि और कीर्त्ति बाहर हुई है। इस शिलालिपिसे पता चलता है, कि उस समय वाराणसी प्रदेश महाराज कनिष्कके अधीन खरपल्लल नामक एक (शक) क्षत्रपके शासनाधीन था। पाटलिपुत्रका प्राचीन भूगर्भ रीतिमत खोदा जाने पर सारनाथकी तरह सुप्राचीन कनिष्क-कीर्त्ति निकल सकती है। तब हम लोग जान सकेंगे, कि पूर्व-भारतमें उनके अधीन कौन क्षत्रप (Satrap) आधिपत्य करते थे।

कनिष्कके प्रभावसे ही शक, यवन, पारद और भारतीय भास्करशिल्पका समीकरण हुआ। सम्राट् अशोकके समय केवल भारतमें ही क्यों, सुदूर मध्य एशिया और यूरोपमें बौद्धधर्मका प्रचार होने पर भी बुद्धदेवकी कोई प्रतिमा प्रतिष्ठित न हुई। अशोकके समय बुद्ध प्रतिमा-पूजाको आवश्यकता भी किसीने हृदयङ्गम नहीं किया। पहले लिखा जा चुका है, कि शाकद्वीपीय गणोंने ही भारतमें देवप्रतिमा निर्म्माण कर प्रचार किया था। इस प्रथाके अनुवर्त्ती हो कर महायान मत प्रचारके साथ शाकपति बुद्धकी लीलाविषयिणी नाना प्रतिमा गढ़ कर भारतके नाना पुण्य स्थानोंमें प्रतिष्ठित करने लगे। उन सब अपूर्व भास्कर शिल्पोंका निदर्शन भारतके नाना स्थानोंसे ही आविष्कृत हुआ है। उन सब शिल्पनैपुण्यको देखनेसे भारतीय शिल्पिगण सभ्यजगत्‌के प्रशंसा-भाजन हो गये हैं।

कनिष्क जो महायान मत प्रचार कर गये, समय पा कर वह संशोधित और परिवर्त्तित हो तान्त्रिक बौद्ध धर्मकी सृष्टि हुई थी। एक दिन समस्त वङ्गदेश इस तान्त्रिक बौद्ध सागरमें डूब गया था, वह बात पीछे लिखी जायगी।

महाराज कनिष्कके बाद उनके पुत्र हुविष्क या हुष्क सिंहासन पर बैठे। पेशावरसे ले कर पूर्व वङ्ग पर्यन्त उनके कब्जेमें था। नाना स्थानोंसे उनकी जो शिलालिपि और मुद्रालिपि निकली है, उससे बोध होता है, कि उन्होंने पितासे अधिक समय तक साम्राज्य शासन किया था। उनके समयमें भी शासन करनेके लिये पाटलिपुत्रमें उनके अधीन एक क्षत्रप अधिष्ठित थे।

हुविष्कके पुत्र शकाधिप वसुदेव या वासुदेव थे। उन्होंने ७४ से ले कर ७८ शकाब्द तक साम्राज्यका भोग किया था। उनकी मुद्रामें शिव, त्रिशूल और नन्दिमूर्त्ति अंकित थी, इसलिये शैव नरपति कहलाते थे। कनिष्क जो सुविस्तीर्ण साम्राज्यका पत्तन कर गये, वसुदेवके समय उसके ध्वंसका सूत्रपात हुआ। सम्भवतः उनके अन्य धर्म ग्रहण करने पर उनके अधीन दूर देशवासी क्षत्रपगण विरक्त हो कर सभी स्वाधीन हो गये। उनमेंसे उज्जयिनीपति रुद्रदाम प्रधान थे। उन्होंने थोड़े ही समयके बीच अवन्ती, अनूप, नीवृद्, आनर्त्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, भरुकच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद आदि जनपद अधिकार कर महाक्षत्रपकी उपाधि ग्रहण की। पाटलिपुत्रके क्षत्रप भी उनके अनुवर्त्ती हुए थे। इस राजद्रोहिताके समय पाटलिपुत्रके निकट लिच्छविगण प्रबल हो उठे। अङ्ग वङ्गके सामन्तराजोंने भी स्वाधीनता अवलम्बन की। उत्तर-पश्चिम सीमान्तमें पारसिक शासनवंश सर उठाने लगे। और कहना क्या, वसुदेवकी मृत्युके साथ उत्तर-भारतीय शकसाम्राज्य ध्वंस हो गया तथा आभीर, गर्द्दभिल्ल, लिच्छवि, नाग, हैहय आदि जातियोंने नाना स्थान अधिकार कर छोटा छोटा राज्य कायम किया। क्षत्रप नाम उत्तर-भारतसे विलुप्त हो गया।

२री सदीके शेष भागमें लिच्छवियोंने पाटलिपुत्र दखल किया। दुःखका विषय है, कि उनका इतिहास लिखनेका उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है। पूर्व-भारतके नाना स्थानोंमें कर्त्तृत्वस्थापनमें प्रवासी सामन्तों द्वारा अन्तर्विद्रोह उपस्थित हुआ जिससे अनेक राजकुमार स्वदेश परित्याग कर सुदूर कम्बोज (वर्त्तमान कम्बोडिया), अङ्गद्वीप (अण्णम्) और यवद्वीप चले गये तथा नवजित कम्बोज आदि स्थानमें शैव और ब्राह्मकीर्त्ति प्रतिष्ठित की। सैकड़ों वर्ष बीत चला, आज भी वह सब हिन्दूकीर्त्ति विद्यमान है।

३री सदीमें मध्यभारतमें त्रैकुटक या हैहयवंश प्रबल हो उठे। इस वंशके ईश्वरदत्त २४९ ई०में उज्जयिनीके क्षत्रपोंको परास्त कर चेदि या कलचुरि-संवत् चलौटे। उनके अभ्युदयसे हैहयोंने अङ्गवङ्ग दखल करनेकी चेष्टा की; किन्तु उनका उद्देश्य व्यर्थ हो गया। ३री सदीके शेष भागमें गुप्त और उनके लड़के घटोत्कच नामक दो सामन्त-महाराज मगधमें प्रबल हो उठे। घटोत्कचके पुत्र १म चन्द्रगुप्तने लिच्छवि राजकन्या कुमारदेवीसे व्याह कर पाटलिपुत्रका सिंहासन पाया। थोड़े ही दिनोंमें वे आर्यावर्त्तके सम्राट् हो गये। गुप्त राजवंश देखो।

कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद जिलेकी रांगामाटी) और उसके निकटवर्त्ती प्राचीन ईंटके स्तूपमें समय समय पर यहांके गुप्तराजोंको समय प्रचलित बहुत स्वर्णमुद्रा

बाहर हुई है। उससे रविगुप्त, जयमहाराज, नरगुप्त, प्रकटादित्य, क्रमादित्य, विष्णुगुप्त आदि नाम मिलते हैं। इन सब गुप्त राजाओंमेंसे किसने तथा कब राजत्व किया, इसके जाननेका उपकरण आज तक भी बाहर नहीं हुआ है। उनमेंसे नर गुप्त या शशाङ्क नरेन्द्र गुप्तका नाम इतिहासमें प्रसिद्ध है। वे एक घोरतर बौद्धविद्वेषी थे।

शूरवंशका अभ्युदय।

देवखड्गके समयमें ही उत्तर राढ़में या कर्णसुवर्णमें आदिशूरका अभ्युदय हुआ। आदिशूरका प्रकृत नाम था जयन्त। वे कविशूरके पौत्र और माधवशूरके पुत्र थे। उन्होंने थोड़े ही समयमें पौण्ड्रवर्द्धन जय करके वहां राजधानी कायम की और ६५४ शकमें या ७३२ ई०में यथारीति अभिषिक्त हुए।

महाराज आदिशूरके अभ्युदय कालमें उनके अधिकारमें नानाविध निरग्निक तथा जैन अथवा बौद्धभावापन्न ब्राह्मणका वास था। उनमेंसे राढ़देशवासी सप्तशती ब्राह्मण लोग ही प्रधान थे।

जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक कनोजागत वैदिक ब्राह्मणोंने गौड़मण्डलमें वैदिकधर्म-प्रचारमें सुयोग और सुविधा पाई थी। उनके मरनेके समय पश्चिमोत्तर गौड़में और मगधमें बौद्ध लोगोंने मिल कर वप्यटके पुत्र गोपालको अभिषिक्त किया एवं उनके द्वारा फिरसे बौद्धप्राधान्य स्थापनका आयोजन होने लगा। किन्तु जब तक आदिशूर जीवित रहे, तब तक वे कुछ भी न कर सके। पालराजवंश देखो।

पूर्व वङ्गमें वर्मवंश।

जैनपति राजेन्द्र चोलके आक्रमणसे पूर्व-वङ्ग हीनवल हो गया। इस समय विक्रमपुरमें वर्म वंश का अभ्युदय था। वर्म-वंशीय किस भूपतिने सर्वप्रथम पूर्व-वङ्ग अधिकार किया, अभी तक मालूम नहीं। इस वंशमें हरिवर्मदेव नामक एक प्रबल-पराक्रान्त वैष्णव नृपतिका इतिहास मिला है। शिलालिपि, ताम्रशासन और वैदिक कुलग्रन्थमें इस नरपालकी कीर्त्ति और परिचय विवृत है।

सेन-राजवंश।

महाराज हरिवर्मदेवका प्रभाव गंगाके उत्तरी किनारेमें नहीं फैला। उत्तरराढ़ और गंगाके परपारस्थ वरेन्द्रसे ले कर गया पर्यन्त उस समय भी बौद्धाधिकार चलता था। राजेन्द्रचोलके राढ़देश पर आक्रमणकालमें दक्षिणापथके बहुसामन्त राजाओंने उनका वल बढ़ाया था। राजेन्द्रचोलके लौटने पर सभी सामन्त उनके अनुगामी हुए थे, ऐसा बोध नहीं होता।

अधिक सम्भव महाराज हरिवर्मदेवकी मृत्यु होने पर समूचे राढ़वङ्गमें अराजकता फैल गई। ऐसा सुयोग पा कर सामन्तसेन-पुत्र हेमन्तसेन राढ़देश पर कब्जा कर बैठे। इनके बाद उनके पुत्र विजयसेन। विजयसेनके पुत्र वल्लालसेन और वल्लालके पुत्र लक्ष्मणसेन आदि प्रसिद्ध राजाओंने राज्य किया। इनका विस्तृत विवरण इन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

वङ्गालमें मुसलमान-प्रभाव।

ईस्वीसन् १२०३ से यथार्थमें बंगालमें मुसलमान-शासन आरम्भ हुआ। तभीसे उन सबोंने इस देशमें अपनी बस्ती कायम कर रखी है। उस समयसे ले कर अङ्गरेज कर्तृक बंगालकी दीवानी लेनेके समय प्रायः ५६२ वर्ष तक मुसलमान लोग इस देशमें राजत्व कर गये हैं।

महम्मद-ई-बख्तियार खिलजी घोरके एक धनी थे। सुलतान गयासुद्दीन महम्मद शाहके समय वे गजनी आये। वहां कुछ दिन रह कर वे भारतवर्ष पहुंचे एवं मालिक मुयाज्जिम हिसाम उद्दीनके यहां नौकरी करने लगे। ये सुलतान शाहव उद्दीनके एक प्रसिद्ध सदस्य थे। तदनन्तर ११९९ ई०में उन्होंने बंगाल पर हमला कर १२०३ ई०में राढ़ और वारेन्द्र नामक प्रदेश जीत लिया।

महम्मद-ई-बख्तियार खिलजीसे आरम्भ करके दाऊद खाँके शासन समय तक बंगाल दिल्ली-साम्राज्यभुक्त था। उस समय दास, खिलजी और तुगलकवंशीय दिल्लीश्वरगण अपने अपने प्रतिनिधिके द्वारा बंगालका शासन करते थे। किन्तु सुलतान फखर उद्दीनके समय बंगाल दिल्लीकी अधीनता तोड़ स्वाधीन हो गया। यह १३४० ई०की बात है। उन्होंने बंगाल-राज्यकी समग्र शासनशक्ति अपने हाथ कर अपनेको बादशाह कह कर घोषणा की। जब तक अकबर बादशाह दाउदको पराजित न कर १५७६ ई०में बंगालकी स्वाधीनता हरण की,

तब तक बंगालको पठान जातिका अक्षुण्ण प्रताप और अपरिसीम अत्याचार अकुण्ठित चित्तसे सहना पड़ा था। कवि-काहिनीमें वह विशेषरूपसे लिखा गया है।

दिल्लीके अधीनस्थ बंगालके पठान शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वङ्गेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
११९९	५९५	महम्मद-ई-वख्तियार खिलजी (लक्ष्मणावती)	शाहबुद्दीन घोरी
१२०५	६०२	महम्मद सिरान खिलजी	कुतबुद्दीन आइवक
१२०८	६०५	अली मर्दन खिलजी	"
१२११	६०८	सुलतान गयासुद्दीन	आलतुमस
१२२७	६२४	नासीरुद्दीन आलतुमस	"
१२२९	६२७	अलाउद्दीन जानी	"
१२२९	६२७	सैफउद्दीन आइवक	"
१२३३	६३१	तुघान खाँ	सुलताना रजिया
१२४३	६४१	ताजी	अलाउद्दीन मसाउद
१२४४	६४२	तैमूर खाँ किरान	"
१२४४	६४२	मालिक युज्वेग तुघ्रिल खाँ	"
१२४६	६४४	सैफउद्दीन	"
१२५३	६५१	इख्तियार उद्दीन मालिक युज्वेग	"
१२५७	६५६	जलाल उद्दीन मसाउद	नासीरुद्दीन महम्मूद
१२५८	६५७	इज्ज उद्दीन वलवन	"
१२५९	६५८	अरशालन खाँ ख्वारीजिमी	"
१२६०	६५९	अरशालन तातर खाँ	"
१२७७	६७६	तुघ्रल (मोइजउद्दीन)	गयासुद्दीन वलवन
१२८२	६८१	नासीरुद्दीन वघरा खाँ (वलवनका पुत्र)	"
१२९१	६९१	रुकनउद्दीन कैकाउस	मुइज उद्दीन कैकोवाद फिरोज शाह खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी।
१३०२	७०२	सामसउद्दीन	फिरोजशाह "
१३१८		शाहवउद्दीन वघराशाह गयासुद्दीन बहादुरशाह	मुबारकशाह तुगलकशाह
		नासीरुद्दीन	महम्मद तुगलक
१३२५	७२५	कादर खाँ	"

बंगालके स्वाधीन पठान नरपति।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वंगेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१३३९	७४०	फकरुद्दीन मुवारक शाह	महम्मद तुगलक
१३४१	७४२	अलाउद्दीन आलीशाह (गौड़)	"
१३४२	७४३	इलयास शाह (गौड)	"
१३४६		गाजी शाह (पूर्ववङ्ग)	"
१३५२	७५३	इलयास शाह (सर्व वङ्ग)	फिरोजशाह
१३५६	७५८	सिकन्दर शाह	"
१३६८	७६९	गयासुद्दीन शाह (पूर्व वङ्ग)	"
	७६५	" (सर्ववङ्ग)	
१४१०	८१३	सैफ उद्दीन विन् गयासुद्दीन हानजा	महम्मद शाह
१४१२	८१५	शाहव उद्दीन वयाजिदशाह	महमूद शाह
१४८५	७८७	राजा गणेश	"
१४१५	८२१	जलाल उद्दीन महम्मद शाह विन गनशा	खिजिर खाँ
१४३१	८३५	अहमदशाह विन जलाल	मुवारक शाह
१४४८	८५०	नासिरुद्दीन महमूद शाह	आलम शाह
१४५७	८६२	वार्वक शाह	वहलोल लोदी
१४७४	८७९	युसुफ शाह विन वार्वक	"
१४८२	८८७	सिकन्दर शाह	"
१४८२	८८७	फते शाह	"
१४९१	८९६	सुलतान शाहजादा	"
१४९२	८९७	सैफउद्दीन फिरोजशाह हवसी	"
१४९४	८९९	नासीरुद्दीन महमूद	सिकन्दर
१४९५	९००	मुजफ्फर शाह हवसी	"
१४९८	९०३	अलाउद्दीन सैयद हुसेन शाह	"
१५२१	९२७	नसरत शाह	इब्राहिम और वावर
१५३२	९३९	फिरोज शाह ३य	हुमायूं
१५३४	९४०	महमूदशाह विन हुसेन शाह (यही यथार्थमें शेष स्वाधीन नरपति थे)	
१५३७	९४४	फरीद उद्दीन शेरशाह	

१५३८	९४५	हुमायूं—इन्होंने गौड़ वा जन्नतावाद में राज-पाट किया था।
१५३९	९४६	शेरशाह (पुनः)
१५४५	९५२	महम्मद खाँ

सूरवंशके अधीन शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वंगेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१५५५	९६२	खिजिर खाँ वाहादुर शाह	शेरशाह
		महम्मद शूर	सलीम शाह
१५५५	९६२	बहादुर शाह	महम्मद आदिली
१५६१	९६८	जलाल उद्दीन विन महम्मद	"
१५६४	९७१	सुलेमान करवानी	"
१५७३	९८१	वाजिद विन् सुलेमान	"
१५७३	९८१	दाउद खाँ विन सुलेमान अकबरके सेनापति मुनाइम खांने इसे मुगल पदानत किया।	

मुगल सम्राट्के अधीनस्थ बंगालके शासनकर्त्ता।

ईस्वीसन्	हि० अ०	वंगेश्वर	सामयिक दिल्लीश्वर
१५७६	९८४	खाँ जहान	अकबर
१५७९	९८७	मुजफर खाँ	"
१५८०	९८८	राजा टोडर मल्ल	"
१५८२	९९०	खाँ अजीम	"
१५८४	९९२	शाहवाज खाँ	"
१५८९	९९७	राजम सिंह	"
१६०६	१०१५	कुतवुद्दीन कोकलतास	जहाँगीर
१६०७	१०१६	जहाँगीर कुली	"
१६०८	१०१७	सेख इसलाम खाँ	"
१६१३	१०२२	कासिम खाँ	"
१६१८	१०२८	इब्राहिम खाँ	"
१६२२	१०३२	शाहजहान	"
१६२५	१०३३	खानजाद खाँ	"
१६२६	१०३५	मकरम खाँ	"
१६२७	१०३६	फिदाई खाँ	"
१६२८	१०३७	कासिम खाँ जबुनी	शाहजहाँ
१६३२	१०४२	आजिम खाँ	"
१६३७	१०४८	इसलाम खां मसहदी	"
१६३९	१०४९	सुलतान सुजा	"
१६६०	१०७०	मीर जुमला	औरङ्गजेव
१६६४	१०७४	साइस्ता खाँ	"
१६७७	१०८७	फिदाई खाँ	"
१६७८	१०८८	सुलतान महम्मद आजिम	"
१६८०	१०९०	साइस्ता खाँ	"
१६८९	१०९९	इब्राहिम खाँ २य	"
१६९७	११०८	आजिम उससान	"
१७०४	१११६	मुर्शिद कुली खाँ	"
१७२५	११३९	सुजा उद्दीन खाँ	महम्मद शाह
१७३९	११५१	अला उद्दौला सरफराज खाँ	"
१७४०	११५३	अलीवर्दी खाँ महव्वत जंग	"
१७५६	११७०	सिराजुद्दौला	आलमगीर
१७५७	११७१	मीरजाफर अली खाँ	"
१७६०	११७४	कासिम अली खाँ	शाह आलम
१७६३	११७७	मीरजाफर अली खाँ	"
१७६५	११७९	नजीम उद्दौला	"

इन सब राजाओंका विस्तृत विवरण इन्हीं शब्दोंमें देखो।

१७६५ ई०के जनवरी महीनेमें जब मीरजाफरकी मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र नजीम उद्दौलाने अङ्गरेज-कम्पनीसे सन्धि कर ली और अङ्गरेजोंके हाथ वङ्ग-राज्यका शासनभार सौंप दिया। वे नाममात्रके नवाब-नाजिम पदाभिषिक्त रहे। वङ्गालके फौजदारी और दीवानी विचारका परिदर्शनभार उनके ऊपर न रहा; उन्होंने वास्तवमें विचार-विभागका व्यवस्थापकत्व और सर्वमय कर्त्तृत्व खो दिया। उनके अधीनस्थ एक दीवानकी देखरेखमें निजामतका कार्य्य चलने लगा। अयोध्याके वजीर सुजाउद्दौलाके पराभवके बाद अंगरेज-कम्पनीने इलाहावाद और काढ़ा प्रदेश दिल्लीके बादशाह-

को उपढौकनमें दे कर उसके बदले वङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सनद पाई। उसमें नवाब 'नाजिम'की निजामत-रक्षाके लिये वार्षिक ५३८६१३१) रु० वृत्ति स्थिर हुई थी। अंगरेजोंको उसी सूत्र पर मुर्शिदाबादके नवाबोंको यह वृत्ति देनी पड़ी। पीछे अङ्गरेजको कूटनीतिसे वह घट गई। वास्तवमें इसी समयसे अङ्गरेज-कम्पनी बङ्गालकी यथार्थ शासनकर्त्ता हुई थी। निजामत मसनद-के उपसत्त्वभोगी बङ्गालके परवर्त्ती नवाब नाजिमोंकी वंश तालिका नीचे दी गई है,—

वृत्तिभोगी बंगालका नवाबवंश।

१७६५ नजीम उद्दौला—मीरजाफरके पुत्र। १७६६ ई०-की ३री मईको इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने दीवान अङ्गरेज-कम्पनीसे सालाना ५३८६३१) रु०की वृत्ति पाई थी।

१७६६ शैफ उद्दौला—मीरजाफरके २य पुत्र। इनकी मृत्यु १७७० ई०को १०वीं मार्चको हुई। इनके समय वार्षिक वृत्ति घटा कर ४१८६१३१) रु०की कर दी गई थी।

१७७० मुबारक उद्दौला—मीरजाफरके ३य पुत्र। १७६३ ई०के सितम्बर महीनेमें ये करालकाल-कवलमें पतित हुए। इन्हें ३१८१६६१) रु० वृत्ति मिलती थी। इनके ही समयमें १७७२ ई०को उक्त वृत्ति घटा कर सालाना १६ लाख रु० कर दी गई थी। यह घटती आज तक भी चली आती है।

१७६३ नाशिर उल मुल्क वजीर उद्दौला दिलवारजंग—मुबारकके पुत्र। १८१० ई०के अप्रेल महीनेमें इनकी मृत्यु हुई।

१८१० सैयद जैन उद्दीन अली खां उर्फ अली जाह—नाशिर-उल् मुल्कके पुत्र।

१८२१ सैयद अह्मद अली खां उर्फ वालाजाह—अली जाहके भाई। १८२४ ई०की ३०वीं अक्तूबर-को ये मृत्युमुखमें पतित हुए।

१८२५ सैयद मुबारक अली खाँ उर्फ हुमायूं जाह—वाला जाहके पुत्र।

१८३८ फरिदून जाह सैयद मनसुर अली खाँ नसरत जंग—हुमायूं जाहके पुत्र। ये नाना कारणोंसे कर्जमें पड़ कर इंगलैण्ड भेज दिये गये।

इस समय अङ्गरेज-गवर्नमेण्टके उन्हें अर्थसाहाय्य करनेमें स्वीकृत होने पर, वे वार्षिक लाख रुपया मुसहरा और कर्ज तोड़नेके लिये दश लाख रुपये पानेकी आशासे १८८० ई०-की १ली नवम्बरको चिरपोषित नवाब नाजिम मर्यादा त्याग करनेमें स्वीकृत हुए। १८८२ ई०में उनके लड़के सैयद हसन अली खाँने सनद द्वारा मुर्शिदाबादके नवाब बहादुरकी उपाधि पाई। १८६१ ई०की १२वीं मार्चको नवाब सर सैयद हसन अली खाँ बहादुर जी. सी, आई, ईने १८८० ई०की १ली नवम्बरको अपने पितृकृत नवाब-नाजिम पदत्यागाङ्गीकार साबित और स्वीकार करते हुए सेक्रेटरी आव स्टेट्सके इंडेचरपत्रमें अपना मतलब प्रकट किया। उसी वर्षके उसी महीनेकी २१वीं तारीख-को सकौंसिल भारत-प्रतिनिधि द्वारा (by the Council of his Excellency the Viceroy and Governor General of India) १८६१ ई०की १५ नं० राजविधि (Act XV of 1891)-में वह स्थिरीकृत और परिगृहीत हुआ। यह मर्यादा त्याग कर उन्होंने उसके बदले अङ्गरेजराजसे एक वंशानुक्रमिक वार्षिकवृत्ति एवं मुर्शिदाबाद कलकत्ता, मेदिनीपुर, ढाका, मालदह, पुर्णियां, पटना, रङ्गपुर, हुगली, राजशाही, वीरभूम और सन्थाल परगनेमें बहुत-सी निर्दिष्ट आयकी भूसम्पत्ति पाई थी। इनके पांच पुत्र थे,—आसफ कादर सैयद, वासिफ अली मीर्जा, इस्कान्दर कादर सैयद नासिर अली मीर्जा, आसफ अली मीर्जा, सैयद याकुब अली मीर्जा और महषिन् अली मीर्जा।

अंगरेजोंका अभ्युदय।

बंगालमें वाणिज्य करनेके अभिप्रायसे अंगरेज ईष्ट-इण्डिया कम्पनी मद्राससे समुद्रकी राहसे बंगालकी ओर चली। १६१४ ई०में सर टामस रो-की मुगल-सम्राट् जहांगीरके अनुग्रहसे वाणिज्य करनेका आदेश मिला। १६२० ई०में बंगालके मुगल-प्रतिनिधि इब्राहिम खाँ फते जङ्गके शासनकालमें कम्पनीने पटनेमें कपड़ा बेचनेके लिये कोठी खोली। तभीसे क्रमशः बंगालमें अतिप्रच्छन्न-भावसे अंगरेजोंका प्रभाव फैलने लगा। कम्पनीके कर्म-

चारी लोगोंने किस तरह अपनी कोठीकी रक्षाके लिये सैन्य इकट्ठा किया था, इतिहास-पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे। १६४० ई०में हुगली नगरमें एवं १६४२ ई०में वालेश्वरमें कोठी खोली गई। १६४५-४६ ई०में सम्राट् शाहजहांके आनुकूल्य और डा० सार्जन ग्रेवियल वाउटन-की प्रार्थनासे हुगलीमें अंगरेज-वणिक्-सम्प्रदायकी गोटी जम गई। तभीसे उक्त कम्पनी अपनी अधिकाररक्षा में विशेष यत्नवान् हुई। क्योंकि इस समय प्रतिद्वन्द्वी ओलन्दाज, दिनेमार, फरासी, जर्मन आदि विभिन्न वणिक्सम्प्रदायके साथ प्रतिपक्षता कर अंगरेजोंको अपनी स्वार्थरक्षा करनी पड़ी थी। इस समय अंगरेजोंने अपनी वाणिज्य-कोठी अच्छी तरह चलानेके लिये एक एक एजेंट नियुक्त किया।"

अंगरेज कम्पनीको इस प्रभाववृद्धिके साथ साथ डिरेकृरके आदेशसे एजेंटके बदले एक एक गवर्नर रखना पड़ा था। १६६० ई०में जाव चार्नक कलकत्तेमें रहे। १६६२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इस साल हुगलीसे कलकत्तेमें अङ्गरेज कम्पनीकी एजेंसी उठा कर लाई गई थी। १८६६ ई०में औरङ्गजेबके लड़के आजिम उससान वंग ल-के शासनकर्त्ता हुए। १६६८ ई०में उन्होंने अङ्गरेजकम्पनी-को कलकत्ता और तत्सन्निहित दो गांव दे कर वहांकी प्रजाओंके दोष-गुणका न्यायविचार करनेका क्षमता दी। उनके ही आदेशसे उक्त वर्षमें कलकत्तेमें "फोर्टविलियम" किलेकी नींवँ डाली गई। अंगरेज गवर्नर ड्रेकके विसदृश आचरणसे विरक्त हो कर नवाब सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में कलकत्ते पर हमला कर दिया और विजय पाई। दूसरे वर्ष मद्रासले आ कर कर्नल क्लाइवने कलकत्ता फिर मुसलमानोंके हाथसे छीन लिया। १७५७ ई०के जून महीनेमें सिराजको गद्दीसे उतार दिया और उन्हें निहत कर क्लाइवने मीरजाफर अली खाँको वंगालके सिंहासन पर विठाया। वहींसे अंगरेज-कम्पनीके राजत्वका सूत्रपात हुआ। मीरजाफर अंगरेजोंके अभिमतसे वंगालका शासन करनेमें पराङ्मुख हुए, तब मीरकासिम अलीको वंगालका शासन-भार दिया गया। कासिम अलीके अंगरेजद्वेषी होनेसे उन्हें पदच्युत कर पुनः मीरजाफरको वङ्ग सिंहासन पर विठाया गया। १७६५ ई०में मीरजाफरकी मृत्यु हो गई। पीछे उनके लड़के नजम उद्दौलाको वंगालकी मसनद पर अभिषिक्त किया गया था। उक्त सालके जून महीनेसे नजम अंगरेज कम्पनीके वृत्तिभोगी हुए। इस सालकी १२वीं अगस्तको मुगल-सम्राट्ने क्लाइवको जागीरस्वरूप वङ्गाल, विहार और उड़ीसाकी दीवानी दी। यह दीवानी सनद ही वंगालके अंगरेज राजत्वकी प्रधान और प्रथम दलील हुई। तभीसे अंगरेज लोग ही वंगालके प्रकृत शासनकर्त्ता हो गये एवं मुर्शिदावादके नवाबवंश अंगरेजोंसे वृत्ति पाने लगे। पूर्वोक्त तालिकामें वहुत संक्षेपसे *इन प्रतिभाशाली नवाबवंशका परिचय* दिया गया है।

ईष्ट-इंडिया कम्पनीके अधीनस्थ वंगालके एजेंट।

नाम	कार्यग्रहणकाल।
मि० राल्फ कार्टराइट	१६३३
" जईस	...
" थार्ड	...
कैपटेन जान व्रुकाभेन	१६५०
मि० जेम्स व्रिजमेन	...
" पाल वालडे ग्रेभ	१६४३
" जार्ज गवटन	१६५३
" जोनाथान त्रेविशा	१६५८
" विलियम व्लेक	१६६३
" शेम व्रिजेस	१६५६
" वाल्टर क्लोवेल	१६७०
" माथियस भिंसेंट	१६७७

वंगालके गवर्नर।

मि० विलियम हेजेस	१६८२ जुलाई
" " गिफोर्ड	१६८४ अगस्त
सर एडवार्ड लिट्लटन	१६९९ जुलाई
" चार्लस आयर	१६वीं मई १७००
मि० जान वीयार्ड	७वीं जनवरी १७०१
" आएटनो वोयेंटडेन	२०वीं जुलाई १७१०
" जान रासेल	४थी मार्च १७११
" रावर्ट हेजेस	३री दिस० १७१३
" सामुएल फिक	१२वीं जन० १७१८

नाम		कार्यग्रहणकाल
,, जान डीन	१७वीं ,,	१७२३
,, हेनरी फ्रैंकलैंड	३०वीं ,,	१७२६
,, एडवार्ड स्टिफेनसन	१७वीं सित०	१७२८
,, जान डीन	,,	,,
मि० जान स्टाकहाउस	२५वीं फर०	१७३२
,, टामस ब्राडिल	२६वीं जन०	१७३६
,, जान फारेस्टर	४थी फर०	१७४६
,, विलियम वारवोएल	१८वीं अप्रि०	१४४८
,, एडाम डूसन	१७वीं जुलाई	१७४६
,, विलियम फिटके (Fytche)	५वीं ,,	१७५२
,, रोजर ड्रेक	८वीं अग०	१७५२
कर्नल रावर्ट क्लाइव	२७वीं जून	१७५८
जान जेड, हालवेल	२२वीं जून	१७६०
मि० हेनरी भान्सीटार्ट	२७वीं जुलाई	१७६०
,, जान स्पेन्सर	३री दिस०	१७६४
लार्ड क्लाइव	३री मई	१७६५
मि० हारि भेरेलेष्ट	२७वीं जन०	१७६७
,, जान कार्टियर	२६वीं दिस०	१७६६
मि० वार्न हेस्टिंग्स	१३वीं अप्रेल	१७७२

माननीय वार्न हेस्टिंग्स पहले गवर्नर थे। १७७३ ई०में पार्लियामेण्टके नियमानुसार मद्रास और बम्बई बंगालके शासनाधीन हुआ एवं वे गवर्नर जनरल पद पर नियुक्त हुए। उस समय गवर्नर जेनरलका वेतन सालाना ढाई लाख और उनकी सभाके चार सदस्योंमेंसे हरएकको एक लाख रुपया मिलता था। भारतवर्षके इतिहासमें भारतके अंगरेज-गवर्नर-जेनरलोंका शासन-विवरण दिया जा चुका है, इसलिये यहां कुल नहीं लिखा गया। सिर्फ बंगालकी कुछ प्रसिद्ध घटना लिख कर अङ्गरेजशासन प्रभावका संक्षेप विवरण दिया जाता है—

ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके दीवानी लेने पर लार्ड क्लाइवने कम्पनीके सेनाविभागको बढ़ाया। वे सब वाणिज्यके बहाने अर्थलोलुप हो कर इस देशके वाशिन्दोंसे अयथा अर्थ ग्रहण करते थे। मीरजाफर और मीरकासिमके समय कम्पनीके कर्मचारियोंकी अर्थगृध्नुता और अत्याचारकी मात्रा दिन पर दिन बढ़ती ही गई। कम्पनीकी अर्थपिपासा बुझानेके लिये नवाबोंको भी प्रजापीड़न कर अर्थसंग्रह करना पड़ा था। इस अत्याचारके साथ साथ प्रजाओं पर ईश्वर भी प्रतिकूल थे। १७६६-७० ई०में बंगालमें भीषण अकाल पड़ा। बंगला १७७६ सालमें यह दुर्घटना घटी थी, इससे यह 'छिहत्तरका मन्वन्तर' नामसे आज भी प्रसिद्ध है।

वार्न हेस्टिंग्सने बंगालका राजस्व वसूल करनेकी सुविधाके लिये कलक्टर नियुक्त किया। इस समय निकासी हड़प कर जानेमें महम्मद रेजा खाँ और राजा सिताब राय कारारुद्ध हुए। हेस्टिंग्स राजकोष और राजकार्यालय मुर्शिदाबादसे कलकत्ते उठा लाये। उन्होंने विचारकार्यकी सुविधाके लिये दीवानी और फौजदारी अदालत कायम की थी। उक्त कलक्टर ही दीवानी अदालतके तथा काजी या मुफती फौजदारीके विचारक हुए। अपीलके लिये कलकत्तेमें "सदर दीवानी अदालत" और "सदर निजामत अदालत" नामक दो प्रधान विचारालय स्थापित हुए थे। १७७५ ई०में "सदर निजामत" मुर्शिदाबादमें उठ गई और महम्मद रेजा खाँ नायब नजीम हो कर वहांके प्रधान विचारपति हुए।

कम्पनीकी श्रीवृद्धि देख १७७३ ई०में इंगलैंडकी पार्लामेण्टने वङ्ग व्यापारमें हस्तक्षेप किया। उनके शासनादेशसे वार्न हेस्टिंग्स गवर्नर-जेनरल हुए और सकौंसिल गवर्नर-जेनरलका कर्तृत्व कम्पनीके भारतीय अधिकारमें व्याप्त हुआ। इसी समय अंगरेज अपराधियोंके दण्डविधानके लिये इंगलैंडीय व्यवस्थानुसार कलकत्तेमें सुप्रीमकोर्ट स्थापित हुई थी। डिरेक्टरोंकी अनुमतिके अनुसार हिन्दुओंका हिन्दूशास्त्रानुसार और मुसलमानोंका मुसलमान सूरेके अनुसार विचार करनेकी आज्ञा जारी हुई। इस पर हालहेड साहबने एक बंगला व्यवस्था-ग्रन्थ संकलन किया। उनका प्रथम बंगला व्याकरण १७७८ ई०में छपा था। चार्लस् विलकिन्सने उस छापेका अक्षर खोदा था। यही बंगला अक्षरकी प्रथम सृष्टि है। १७८० ई०को २६वीं जनवरीको कलकत्तेमें पहला संवाद-पत्र छपना शुरू हुआ।

हेस्टिंगसके शासनकालमें १७७४ ई०को महाराज नन्दकुमारकी फांसी हुई। उनके बाद सुप्रीमकोर्ट

स्थापित होने पर १७८३ ई०में सर विलियम जोन्स प्रधान विचारपति हो कर आये। १७८४ ई०में उन्होंने 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' नामक सभा स्थापन की। उसी साल पार्लामेंटके आदेशसे 'बोर्ड आव कन्ट्रोल' कायम हुआ।

लार्ड कर्नवालिसके शासनकालमें १७६० ई०में सदर निजामत फिर कलकत्ता चली आई। १७६३ ई०में निर्दिष्ट राज्यकर वसूल करनेका दशसाला या चिरस्थायी वन्दोबस्त उनके समयको प्रधान घटना है। इस वर्षमें अंगरेजोंमें लिखी हुई कितनी ही व्यवस्था संगृहीत तथा प्रचारित हुई। मि० फारेष्टरने उनका वंगला अनुवाद किया।

लार्ड कर्नवालिसने कलक्टरोंके हाथमें सिर्फ राज-कर संग्रह करनेका भार दिया था। उन्होंने काजी, मुफ्ती प्रभृतिके स्थान पर प्रति जिलेमें 'जज' नियुक्त करके उनके हाथमें दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमेका विचारभार अर्पण किया। फौजदारी कार्यकालमें मुसलमानी व्यवस्थानुसार ही विचारकार्य निर्वाहित होगा, इसलिये एक एक मुसलमान-कर्मचारी सहकारी रूपमें प्रति जजके साथ रहते थे। जिलाके जजोंसे निष्पादित मुकद्दमेकी अपील सुननेके निमित्त कलकत्ता, मुर्शिदावाद, ढाका एवं पटना नगरोंमें चार 'प्रोभिन्सियल कोर्ट' स्थापित हुई। इन 'प्रोभिन्सयल कोर्ट'के ऊपर सदर-दीवानी तथा सदर निजामत अदालत थी। दीवानी मुकद्दमेके विचारके लिये प्रति जिलेमें एक एक रजिष्टार तथा कई एक मुन्सिफ नियुक्त हुए। स्थान स्थान पर एक एक थाना स्थापित हुआ एवं एक दारोगा प्रति थानाके कर्त्ता नियुक्त हुए।

१७६८ ई०में मार्किस आव वेलेस्ली वंगालके गवर्नर जेनरल हुए। १८०७ ई०में महाराष्ट्रियोंके साथ सन्धि करके कम्पनीने उनसे कटक प्रदेश ले लिया।

उनके समय तक सदर दीवानी तथा सदर निजामतका कार्यभार कौंसिलके साथ गवर्नर जेनरलके हाथमें न्यस्त था। उससे कार्यको असुविधा होती देख वेलेस्लीने तीन 'जज' नियुक्त किये। उनमेंसे प्रथितनामा तथा बहुविद्याविशारद कोलब्रुक एक थे। अंगरेज सिविलियनोंको देशी भाषाकी शिक्षा देनेके निमित्त लार्ड वेलेस्लीने फोर्ट विलियम कालेज स्थापित किया। इस उपलक्षमें वहांके पाठ्यरूपमें कई एक वंगला पुस्तकें सम्पादित हुईं। उनमें रामराम वाबूकी 'प्रतापादित्यचरित' (१८०१ ई०) तथा लिपिमाला (१८०२ ई०), राजीवलोचनका कृष्णचन्द्रचरित, मृत्युञ्जयविद्यालङ्कारकी राजावली, केरी साहवका वंगला व्याकरण तथा अभिधान आदि उल्लेखयोग्य पुस्तकें थीं। १७६६ ई में मिसनरी मार्समान तथा वार्ड श्रीरामपुरमें आ कर रहने लगे। उन्होंने ही जयगोपाल तर्कालंकार द्वारा संशोधन करा कर १८०१ ई०में रामायण और इसके वाद महाभारत छपाना आरम्भ किया। इस समयसे ही स्वभावतः वंगला-साहित्यका आदर घर घरमें है।

१८०७ ई०में लार्ड मिन्टो गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालके शेषभागमें (१८१३ ई०) पार्लामेन्ट प्रदत्त सनदानुसार इसमें कम्पनी एक तरहसे वाणिज्य रहित हो गई। ईसाई मिसनरियोंने यहां धर्म-प्रचार करनेकी अनुमति पाई, इसलिये कलकत्तामें एक 'विशप' नियुक्त हुआ। इसके अलावा कम्पनीको इस देशकी प्रजाओंको विद्याशिक्षा देनेके लिये सरकारी राजकोषमेंसे प्रति वर्ष एक लाख रुपये व्यय करनेकी आज्ञा हुई।

लार्ड मायरा या मार्किस आव हेस्टिङ्गस १८१३ ई०में गवर्नर-जेनरल हो कर वंगालमें आये। उनके समयमें नेपाल तथा महाराष्ट्र-युद्धमें अंगरेज विजयी हुए थे। इस समय कई एक देशी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके यत्न तथा व्ययसे कलकत्तेमें "हिन्दू कालेज" स्थापित हुआ एवं उन लोगों हीके द्वारा उत्साहित हो कर श्रीरामपुरको मिसनरियोंने "समाचारदर्पण" नामक प्रथम वंगला संवादपत्र मुद्रित किया। (२३वीं मई १८१८ ई०)

१८२४ ई०के अगस्त महीनेमें लार्ड ऐमहर्ष्ट गवर्नर जेनरल हो कर कलकत्ता आये। उनके समयमें ब्रह्मयुद्धमें कम्पनीको राज्यवृद्धि एवं भरतपुरका प्रसिद्ध किला अंगरेजोंके हस्तगत हुआ। इस समय कलकत्तामें 'संस्कृत कालेज' स्थापित करनेके विषयमें संस्कृत भाषावित् अध्यापक विलसन साहव विशेष उद्योगी हुए थे। लार्ड ऐमहर्ष्टने १८२७ ई०में पश्चिममें जा कर दिल्ली-

के बादशाहसे कहा, कि कम्पनी ही इस देशका वास्तविक सम्राट् है।

१८२८ ई०मे लार्ड विलियम बेन्टिंग गवर्नर जेनरल हुए। उन्होंने सहमरणकी प्रथाको उठा दिया। राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर, राय कालीनाथ मुन्सी प्रभृति इस देशके अनेकों सुशिक्षित भद्र संतानोंने इस महत् कार्यमें उनकी सहायता की थी। उस समय इस देशमें ठगके नामसे एक डकैतोंका दल था। वे लोग भद्रवेशमें गमनागमन करते थे एवं सुयोग पा कर यात्रियोंका वध करके उनका यथासर्वस्व अपहरण कर लेते थे। कर्नल स्लीमनके उद्योगसे ठग लोगोंका यह दौरात्मिक व्यापार निवारित हुआ।

इस समय इस देशके लोगोंको संस्कृत किंवा अङ्गरेजी भाषाकी शिक्षा देना उचित है, कि नहीं इस विषय पर घोर आन्दोलन उपस्थित हुआ। अध्यापक विलसन साहब संस्कृत भाषाकी शिक्षाके समर्थक थे एवं प्रसिद्ध लार्ड मेकले तथा ट्रीवेलियन साहब पाश्चात्य ज्ञानचर्चाको प्रयोजनीयता दिखा कर अंग्रेजोका पक्ष समर्थन करते थे। गवर्नर जेनरलके विचारानुसार अंग्रेजोको ही जय हुई। १८३५ ई०में मेडिकल कालेज स्थापित हुआ।

लार्ड वेन्टिङ्कके समयमें विचार-विभागका बहुत ही परिवर्त्तन हुआ। 'प्रोविन्सियल कोर्ट' उठा दी गई एवं "रेभिन्यू कमिश्नरी" की स्थापना हुई। कलक्टरोंने फौज़दारी मुकद्दमेके विचारकी क्षमता पाई एवं जज दीवानी तथा दौरेके मुकदमेका विचार करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

१७९३ ई०में 'मुन्सिफ़ी' एवं १८०३ ई०में सदर 'अमीनी' पदकी सृष्टि हुई। अब तक देशी लोग ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। लार्ड वेन्टिङ्कने इस देशीय लोगोंके निमित्त "प्रधान सदर अमोनी" पदकी भी सृष्टि की। इस पदका मासिक वेतन ५००) रुपये निर्द्धारित हुए एवं प्रधान सदर अमीन सब तरहसे दीवानी मुकद्दमा करनेके अधिकारी हुए। १८३३ ई०में "डिपुटी कलक्टर" नियुक्त होनेका नियम बना। यह पद भी देशी लोग पाते थे।

लार्ड वेन्टिङ्कके शासनकालमें ईश्वरचन्द्र गुप्तने "प्रभाकर" नामक संवादपत्र प्रचार किया (१८०३ ई०)। एवं राजा राममोहन रायने कलकत्तामें १८२९ ई०में ब्रह्म समाज स्थापित किया था। जान पड़ता है, भारतवासी हिन्दू भद्रसमाजमेंसे राजा राममोहन राय ही पहले पहल इंगलैण्ड गये एवं उन्होंने वहां जा कर मानवलीला संवरण की। राममोहन रायने कई एक बंगला ग्रन्थोंकी रचना की थी।

१८३५ ई०में लार्ड वेन्टिङ्कने स्वदेशकी यात्रा की एवं स्वतंत्र गवर्नरके न आने तक मेटकाफ् साहब ही उनके कार्य पर नियुक्त रहे। उनके शासनकालमें तथा उनके ही उद्योगसे अंग्रेजी तथा बंगला मुद्रायन्त्रोंकी स्वाधीनता संस्थापित हुई। मेकले साहबने इस विषयमें यथेष्ट पोषकता की थी।

१८३५ से ले कर १८४२ ई० पर्य्यन्त लार्ड आकलैण्ड गवर्नर जेनरल रहे। उनके समयमें काबुलमें अंग्रेजोंकी विलक्षण दुर्दशा हुई। बंगालमें १८३५ ई०में हुगली कालेजकी एवं १८४१ ई०में ढाका कालेजकी स्थापना हुई।

१८४२से ले कर १८४४ ई० तक लार्ड एलेनवराने गवर्नर जेनरलके पद पर शासन किया। उनके अमलमें काबुलमें अङ्गरेज लोग विजयी हो कर मान सहित लौटे एवं सिन्ध देश पर कम्पनीका अधिकार हो गया। लार्ड एलेनवराने डिपटी मजिस्ट्रेटके पदकी सृष्टि की। उनके शासनकाल-(१८४३ ई०)में तत्त्वबोधिनी-पत्रिका प्रकाशित हुई एवं अक्षयकुमार दत्त इस पत्रिकाके सम्पादक हुए।

१८४४ ई० से ले कर १८४८ ई० तक हार्डिंज साहब गवर्नर जेनरल थे। उन्होंने सिक्खोंके युद्धमें विजय पाई। उनके समयमें "हार्डिंज स्कूल" नामसे कई एक गवर्नमेंट बंगला विद्यालय एवं १८४५ ई०में कृष्णनगर कालेज स्थापित हुआ। इस समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने वैतालपचीसी प्रकाशित की (१८४७ ई०)।

१८४८ ई०में लार्ड डलहौसी इस देशके गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालमें पंजाब, पेगु, सतारा, नागपुर, झाँसी, अयोध्या तथा बेरार कम्पनीके अधिकार भुक्त हुए। १८५३ ई०में बहरमपुर कालेजका संस्थापन

हुआ एवं १८५५ ई०में हिन्दूकालेज प्रेसीडेन्सी कालेजमें परिणत हो गया। इसके अलावा अन्यान्य कई गवर्नमेंट आदर्श वंगविद्यालय तथा वंगकी स्त्रीजातिकी विद्याशिक्षाके लिये कलकत्तेमें वेथुन-कालेज प्रतिष्ठित हुआ। इस समय सर चार्लस उड प्रणीत १८५४ ई०में शिक्षाविषयिणी अनुमतिलिपि आई एवं तदनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालयका सूत्रपात हुआ। इसके साथ साथ विद्यालय सम्बन्धमें गवर्नमेण्टकी "ग्रान्ट इन एड" प्रथा भी प्रवर्त्तित हुई थी। इस उपलक्षमें शिक्षाविषयक कमिटि उठ गई, एवं विद्याध्यापनके "डाइरेक्टर" "इन्सपेक्टर" प्रभृति पदोंकी सृष्टि हुई।

लार्ड डलहौसीके यत्नसे इस देशमें ईष्ट इण्डिया-रेलवे तथा खवर भेजनेके तार (टेलीग्राफ) स्थापित हुए (१८५२ ई०)। पोस्टल डिपार्टमेंट स्थापित होनेसे डाकमहसूल कम गया। १८५३ ई०में ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीने पार्लामेंट महासभासे एक सनद प्राप्त की जिसके द्वारा बंगालमें "लेफ्टीनेंट गवर्नर"के नामसे एक स्वतन्त्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी आज्ञा मिली एवं इस देशवासियोंने इङ्गलैण्ड जा कर "सिविल सर्विस"की परीक्षा देनेकी अनुमति पाई। सर फ्रेडरिक हेलिडे २८ अप्रील सन् १८५४ ई०में वंगालका प्रथम लेफ्टीनेंट गवर्नर हो कर आये। १८५६ ई०में विद्यासागर महाशयकी चेष्टासे विधवा-विवाहकी व्यवस्था विधिवद्ध हुई।

१८५६ ई०में लार्ड डलहौसीने स्वदेशयात्रा की एवं लार्ड कैनिङ्ग भारतवर्षके गवर्नर-जेनरल वन कर यहां आये। लार्ड कैनिङ्गके समयमें १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोह हुआ। इस राष्ट्र-विप्लवमें उन्होंने अत्यन्त विलक्षणताके साथ कार्य किया था, इसलिये उन्हें लोग "क्लेमेन्सी कैनिङ्ग" कहते है। सिपाही विद्रोहके वाद महाराणी विक्टोरियाने कम्पनीके हाथसे इस देशका शासन-भार अपने हाथमें ले लिया। उस समय उन्होंने अंगीकार किया था, कि वे इस देशकी प्रजाओंके धर्म तथा स्वत्वकी रक्षा करेंगी एवं उनके योग्य होने पर सारा राज्यकर्म उन्हें दे देंगी (नवम्वर १८५८ ई०)। लार्ड कैनिङ्गके समयमें "भारतवर्षीय दण्डविधि" "दीवानी" "फौजदारीकार्यविधि" एवं "खजाना सम्बन्धी १० आईन प्रचारित हुए एवं "करेन्सी नोट" पहले पहल प्रचलित हुआ।

कैनिङ्गके वाद लार्ड एलगिन गवर्नर जेनरल हुए। उनके शासनकालमें पूर्व-वंगाल तथा मातला रेलवे खुली एवं सदर अदालत तथा सुप्रीमकोर्ट मिला कर "हाईकोर्ट" वनाया गया। हाईकोर्टके विचाराधीशके पद पर इस देशवासीके नियुक्त होनेका नियम है।

दो वर्ष (१८६२-६३ ई०)-के अन्दर ही लार्ड एलगिनने मानवलीला संवरण की। उनकी मृत्युके वाद सर विलियम डेनिसन कुछ दिनों तक गवर्नर जेनरल रहे। इसके वाद सर जान लारेन्स (१८६४-६६ ई०) तक एवं लार्ड मेओ (१८६६-७२ ई० तक) यथाक्रमसे गवर्नर जेनरल रहे। एक निर्व्वासित मुसलमानके अस्त्राघातसे अन्दामन द्वीपमें लार्ड मेओकी मृत्यु हुई (८वीं फरवरी १८७२ ई०)।

इसके वाद ६वीं फरवरीसे २४वीं फरवरी तक सर जान स्ट्रेची तथा २४वीं फरवरीसे ३री मई तक लार्ड नेपियर गवर्नर जेनरलका कार्य करते रहे। १८७२ ई०की ३री मईको लार्ड नार्थब्रूकने इस देशका शासन-भार ग्रहण करके कर-प्रपीड़ित प्रजाओंका कर-भार हलका किया एवं ऊंची अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त करनेका उत्साह दिया।

लार्ड नार्थब्रूकके समय १८७५ ई०के शेषभागमें युवराज प्रिन्स आव वेल्स (भारत-सम्राट् सप्तम एडवर्ड)ने वंगालमें शुभागमन किया। युवराजके इंगलैण्डसे प्रत्यागमन होने पर महाराणी विक्टोरियाने "एम्प्रेस आव इण्डिया"-की उपाधि ग्रहण की (१८७५ ई०)। १८७७ ई०के जनवरी महीनेमें इस उपाधि ग्रहणके उपलक्षमें महा समारोहके साथ दिल्लीमें एक दरवार हुआ। इसी साल दक्षिण-भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा तथा कावुलके अमीरके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ। उस युद्धमें अंगरेजोंकी ही विजय हुई। १८७५ ई०में उन्होंने स्वदेशयात्रा की एवं लार्ड लिटन उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

लार्ड लिटनने देशीय संवादपत्रोंकी स्वाधीनता हरण कर ली एवं उन्होंने अस्त्र-आईन विधिवद्ध किया।

इनके समयमें दुर्भिक्ष निवारणार्थ व्यवसाय करनेवालों पर 'लाइसेन्स-टैक्स' नामक कर संस्थापित हुआ। १८८० ई०के अप्रिल महीनेमें लार्ड लिटनके भारत परित्याग करने पर मार्किस् आव रिपन भारतवर्षके गवर्नर जेनरल हो कर आये। उनके समयमें अंगरेज लोग पुनः काबुल युद्धमें विजयी हुए।

रिपनने देशीय संवादपत्रोंकी स्वाधीनता पुनः प्रदान करके एवं "स्वायत्तशासनप्रणाली" प्रवर्तित करके बंगालका विशेष मंगल साधन किया। इसके अलावे इनके समयमें विद्याशिक्षा सम्बन्धमें "एडुकेशन कमीशन" नियुक्त हुआ। इनके ही अमलमें रमेशचन्द्र मित्रने कुछ काल तक 'जज'-का कार्य किया था।

१८८४ ई०के शेष भागमें लार्ड डफरिनके हाथमें भारतका शासन-भार अर्पण करके लार्ड रिपनने स्वदेशकी यात्रा की। उनके आगमनके कुछ दिन बाद १८८५ ई०में बंगालके प्रजास्वत्वविषयक ८ आईन विधिबद्ध हुए। १८८५ ई०के शेष भागमें ब्रह्मराज थिवको सिंहासनच्युत तथा बन्दी करके उस राज्य पर अधिकार कर लिया गया। १८८६ ई०की पहली जनवरीसे विस्तीर्ण ब्रह्मराज्य भारत-साम्राज्य भुक्त हो गया है। उक्त वर्षके अप्रिल महीनेसे 'इन्कम् टैक्स' कर पुनः स्थापित हुआ। भारत-राजराजेश्वरी विक्टोरियाके राजत्वकालका पांच सौ वर्ष पूर्ण होनेके उपलक्षमें १८८७ ई०की २६वीं फरवरीको भारतवर्षके प्रत्येक स्थानोंमें महासमारोहके साथ "जुबिलि" महोत्सव समाहित हुआ था।

लार्ड डफरिनने देशी लोगोंको अधिक परिमाणमें ऊंचे पद पर नियुक्त करनेके अभिप्रायसे—"पबलिक सर्विस कमीशन" नियुक्त किया, किन्तु उनके मन्तव्यानुसार अभी भी कोई विशेष कार्यका अनुष्ठान नहीं होता। लार्ड डफरिनके शासनकालमें सिकम, तिब्बत तथा पंजाब सीमान्तस्थित कृष्णपर्वतमें युद्ध हुआ। इन्होंने १८८८ ई०की २०वीं दिसम्बरको लार्ड लैन्सडाउनके हाथमें शासन भार अर्पण करके विलायतकी यात्रा की। लार्ड लैन्सडाउनके समयमें १८९० ई०के दिसम्बर महीनेमें रूस-सम्राट्के ज्येष्ठ पुत्र देश भ्रमणकी इच्छासे भारतमें आये थे। मणिपुर राज्यके राजकर्म उत्तम रीतिसे न चलते देख कर भारत-गवर्नमेंट उस विषयमें हस्तक्षेप करनेको वाध्य हुई। उसके उपलक्षमें प्रेरित अंगरेज-कर्मचारिगणके निहत होने पर एक दल अंगरेजी सेनाने मणिपुर पर अधिकार कर लिया एवं अपराधिगण गिरफ्तार कर लिये गये। न्यायाधीश द्वारा अपराधियोंको समुचित दण्ड दिया गया (१८९१ ई०)। युवराज टीकेन्द्रजित्को अंगरेजी राज्यके विचारानुसार प्राणदण्ड मिला।

लार्ड एल्गिन २४वीं जनवरी १८९४ ई०में भारतवर्षके राजप्रतिनिधि तथा गवर्नर जेनरल नियुक्त हुए। उनके शासनकालमें "डायमण्ड जुबिलि" उत्सव महासमारोहके साथ निष्पन्न हुआ था। १८९९ ई०में एल्गिनके चले जाने पर लार्ड कर्जन आव केडल्स्टोन भारत-प्रतिनिधि हुए। उनके शासनकालमें म्यूनिसपलिटि तथा शिक्षाविषयक कितने ही राजनैतिक कार्यका संस्कार हुआ था। उनके शासनकालमें १८९९ ई०की २२वीं जनवरीको भारतेश्वरी विक्टोरियाकी मृत्यु हुई। उनके ज्येष्ठ पुत्र सप्तम एडवर्डके राज्याभिषेकके उपलक्षमें दिल्लीमें एक वृहत् दरबार हुआ। इस समय बंगालमें भी बहुत उत्सव मनाया गया था। उनके अवकाशक समय मन्द्राजके गवर्नर लार्ड एम्पथिल कार्य करते थे। उन्होंने पूर्व-बंगालके कितने ही जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर बंगालके दो टुकड़े कर दिये। इससे बंगालकी राजनैतिक नींव बहुत मजबूत हो गई, इसमें शक नहीं। भारतकी उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओंकी रक्षा करना एवं बंग तथा ब्रह्मके मध्यवर्त्ती वनाकीर्ण पार्वत्य प्रदेशमें अङ्गरेजी-शासनकी प्रतिष्ठा करना ही इस जटिल तत्त्वका गूढ़ उद्देश्य था।

इस समय सामरिक विभागके सुधारके लिए जंगी लाट लार्ड किचनर बहादुरके साथ उनका विरोध उपस्थित हुआ। उससे उन्होंने भारत सचिवके पास कर्मत्यागपत्र भेजा। उनका त्यागपत्र गृहीत तथा अनुमोदित होने पर भी वे भारतवर्षका त्याग नहीं कर सके। इङ्गलैण्डाधीश्वर सप्तम एडवर्डकी आज्ञानुसार वे युवराज प्रिन्स आव वेल्सको अभिनन्दन देनेके लिए भारतवर्षमें रहनेको वाध्य हुए। १९०५ ई०के दिसम्बरको

युवराजने बम्बई शहरमें पदार्पण किया। जब १७वीं तारीखको लार्ड मिण्टो भारत पहुंचे, तब उनके हाथमें भारत-साम्राज्यका कार्यभार दे कर उन्होंने १८वीं दिसम्बरको इङ्गलैण्ड-यात्रा की।

लार्ड मिण्टोके समयमें २४वीं दिसम्बरको युवराज बंगालमें आये थे। कलकत्तामें उनके शुभागमनमें यथेष्ट आनन्दोत्सव हुआ था। कलकत्ताके मैदानमें उनको अभ्यर्थना तथा अभिनन्दनार्थ एक दरबार हुआ था। उस समय छोटालाट बहादुरके बेलभेडियारके प्रासादमें वंगीय हिन्दू महिलाओंने युवराज-पत्नीका वरण किया था।

१९०५ ई०के अक्टूबर महीनेमें बंगराज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ। फुलर साहब वहांके छोटेलाट हुए। बंगवासियोंने इन दिनों अङ्गरेज व्यापारियोंसे प्रपीड़ित हो कर उनके व्यापार-पथको रोध करनेके लिए बंगालमें "स्वदेशी" विस्तार करनेकी चेष्टा की। उन लोगोंने स्वदेशी वाणिज्यकी रक्षाके लिये बंगमाताके श्रीचरणोंमें शरण ली एवं श्रीयुत बङ्किमचन्द्रके उस दिगन्त विस्फारित "वन्दे मातरम्" महामन्त्रसे दीक्षित हो कर जाति तथा देशोद्धारकी चेष्टा की। इस 'वन्दे मातरम्' मन्त्रसे शीघ्र ही विद्रोह होनेकी आशङ्का जान कर अङ्गरेज-राजकर्मचारिगण सशङ्कित हो उठे। उन्होंने चारों ओर 'वन्दे मातरम्' स्तोत्रका प्रतिरोध करनेके लिए सर्कुलर जारी किया। दरिद्र बंगाली प्रजाओंके ऊपर राजपुरुषोंने कुछ अत्याचार भी करना आरम्भ किया। उन राजकर्मचारियोंके मस्तिष्क 'वन्दे मातरम्'की ध्वनिसे विघूर्णित हो गये। उन्होंने बंगालियोंके औद्धत्य दमनके लिए उस स्थानमें गोरखा सेनादल नियुक्त किया। अन्तमें १९०६ ई०में बंगाल प्रोभिन्सियल-कनफ्रेन्सके समय राजा प्रजाविद्वेषका चूड़ान्त हो गया। बंगालके वक्ता सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय राजपुरुषों द्वारा अर्थदण्डसे दण्डित हुए। प्रजाओंमें और भी अशान्ति अनुभूत होने लगी, उस समय राज्यमें विधानके लिए पूर्व बङ्गालके छोटालाट बहादुरने स्वीय आदेश प्रत्याहार किया। किन्तु बंगालमें इस समय "स्वदेशी आन्दोलन" पूर्णरूपसे जग उठा था।

बङ्गालके लेफ्टनाण्ट गवर्नर।

नाम	कार्यारम्भ
सर फ्रेडरिक जे, हालिडे	१८५४ अप्रिल २८,
„ जान पी, ग्राण्ट	१८५९ मई १,
„ सेसिल बिडन K, C. S. I	१८६२ अप्रिल २४,
„ विलियम ग्रे „	१८६७ „ २४,
„ जार्ज कैम्बेल „	१८७१ मार्च १,
„ रिचार्ड टेम्पल Bart „	१८७४ अप्रिल ९,
माननीय आसली इडेन C. S. I C. I. E	१८७७ जनवरी ८,
सर ष्टुआर्ट सि, बेली K C. S, I, C, I, E	१८७९ जुलाई १५,

(इन्होंने आसली इडेनको जगह कुछ समय अस्थायिरूपसे काम किया।)

अगष्टस रिभर्स टम्सन C. S. I. C. I. E.	१८८२ अप्रिल २४,
मि० एच, ए, ककरेल I, C, S, C I, E.	१८८५ अगस्त ११,

(रिभर्स टम्पसनके अवकाश लेने पर अस्थायिरूपसे कार्य किया।)

सर ष्टुआर्ट सि बेली	१८८७ अप्रिल २,
„ चार्लस अलफ्रेड एलियट K, C. S, I,	१८९० दिसम्बर १७,
„ आण्टनी पाट्रिक मैकडोनेल K. C, S. I.	१८९३ मई ३०,

(उसी सालकी ३० वीं नवम्बर तक एलियटकी छुट्टीके समय कार्य किया।)

माननीय सर अलेकजन्दर मेकेञ्जी K. C, S.	१८९५ दिसम्बर १८,

माननीय चार्लस सि, ष्टिभेन्स C. S. I. (अलेकजन्दर मेकेञ्जीके अवकाश लेने पर १८९७ ई०की २८वीं दिसम्बर तक कार्य किया।)

माननीय सर जान उडवरन I. C. S, K. C. S. I.	१८९८ अप्रिल ७,
„ जे, ए, बोर्डिलोन V. D, I. C, S. C, S. I,	१९०२ नवम्बर २२ ऐक्टि

सर ए, एच, एल फ्रेजर M. A, I. C.S,K.C.S.I.
१६०३ नवम्बर २,
(इनके अवकाश लेने पर १६०६ ई०के जून मास तक माननीय एल, हेयरने कार्य किया ।)
विलियम डूयक १६०८,
ई, एन बेकर १६१०,
सर चार्लस ष्टोमेन्स १६११,
लार्ड कारमाइकल १६१२,
लार्ड रोनल्डशे १६१७,
लार्ड लीटन १६२२,
सर स्टान्ली जक्सन १६२७ (वर्त्तमान गवर्नर)

अंग्रेजोंके शासन-कालमें बंगालकी अवस्था ।

अंग्रेजोंके राजत्व-कालमें इस देशके अन्दर नाना प्रकारकी कुप्रथायें फैल गई हैं एवं कितनी ही कुप्रथाओंकी इति हो गई है। सहमरण या सतीदाह, गंगासागरमें संतान-विसर्जन प्रभृति कुप्रथायें जिस तरह दूर हो गई हैं एवं चोर डकैत तथा अत्याचारी जमींदारोंके दौरात्म्य कम हो चला है, उसी तरह नई नई सड़कें, रेलपथें एवं वाष्पीय जहाजों (वायुयान) द्वारा गमनागमन तथा व्यापार करनेकी सुविधायें हो गई हैं। फिर पोष्ट या डाक एवं टेलीग्राफ (तार)के प्रवर्त्तित होनेसे अति अल्प समयमें ही दूर दूर तक संबाद भेजनेका उपाय हो गया है। विचारालयकी वृद्धि होनेसे जनसाधारणकी स्वत्व-रक्षा करनेका पथ प्रशस्त हो गया है। विद्याचर्चा द्वारा लोगोंको बहुत मानसिक उन्नति हुई है। वंगवासियोंकी आँखें खुल गई हैं, मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता पा कर उन लोगोंके राजपुरुषोंसे अपने मनकी बातें खुल कर कहनेका रास्ता मिल गया है।

अंग्रेजोंने इस देशमें नील, चाय प्रभृति द्रव्योंकी खेती करके यहांका कुछ उपकार किया है सही, किन्तु इससे दरिद्र प्रजाओंका कितने ही विषयोंमें अमंगल साधित हुआ है। १८०० ई०में यहां नीलकी खेती आरम्भ हुई एवं उस समयसे ही यहांकी दीनहीन प्रजाओंने धनके लालचमें पड़ कर अपना सर्वस्व नष्ट करके अंग्रेजोंके निकट प्राण तथा मान बचानेकी शिक्षा प्राप्त कर ली। नीलकरोंने किस तरह अपने अमानुषिक अत्याचारोंसे बंगालकी प्रजाओंको निष्पीड़ित किया, इसे नीलदर्पण-पाठकगण अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह नीलकी खेती एक समय पश्चिम तथा दक्षिण-बंगालके प्रायः सभी स्थानोंमें प्रचलित थी। प्रायः प्रति १० मीलकी दूरी पर एक एक नीलकर व्यापारीकी कोठी स्थापित हो गई थी। उन सभी नीलकोठियोंका ध्वंसावशेष आज भी बंगालके उस अतीत दुःखकी स्मृति दिला रही है।

अंग्रेजोंके समयमें बंगालके कोनों कोनोंमें चिरशान्ति विराज रही हैं, इसलिये समाज-सुधार तथा भाषाकी उन्नति करनेका सबोंने अवसर प्राप्त कर लिया है। राजा राममोहन रायने ब्राह्मसमाज संस्थापन करके एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयने विधवाविवाह प्रचलन तथा बहु-विवाह के निवारण करनेका आन्दोलन करके समाज-सुधारका रास्ता खोल दिया है। ईश्वरचन्द्रगुप्त, अक्षय-कुमार दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, माइकेल मधुसूदन दत्त, दीनबन्धु मित्र, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय प्रभृति ग्रन्थकारोंके द्वारा बंगला-भाषा तथा साहित्यकी विलक्षण उन्नति हुई है। बंदीजनों, पंचाली वालों, कीर्त्तन करनेवालों एवं यात्रा करनेवालोंके गान तथा बंगला भाषाकी मधुरताकी अत्यन्त वृद्धि हुई है। वंगीय रंगालयोंमें भी अंगरेजी अनुकरणका यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अंगरेजोंके अमलमें ही जान पड़ता है, बंगला गद्यग्रन्थोंका अधिक प्रचार हुआ है। फारेस्टर साहबके १७९३ ई०के विधिसमूहके बंगला अनुवादके पहले भी कितने ही गद्यग्रन्थोंका परिचय पाया जाता है।

ईसाई मिसनरियोंके यत्नसे कृत्तिवासकृत रामायण तथा काशीदासकृत महाभारत पहले पहल मुद्रित हुआ। इसके बाद उन लोगोंने ही बंगला-सम्वाद-पत्र छापना प्रारम्भ किया। श्रीरामपुर-कालेज, कलकत्ताके कई कालेज तथा स्थान स्थान पर अन्य प्रकारके विद्यालय स्थापित होनेसे इस देशवासियोंको विद्याकी शिक्षा प्राप्त करनेमें यथेष्ट सहायता मिली है। केरी, मार्समैन तथा डफ साहबके नाम इस देशके कृतविद्य व्यक्तिगण सचमुच भूल नहीं सकते। उनके यत्न तथा उद्योगसे बंगालमें अंगरेजी शिक्षाकी नींव सुदृढ़ हो गई है। उसी शिक्षाके फलस्वरूप धीरे धीरे यहां हिन्दू, पेट्रियट

बंगाल हरकरा, इण्डियन डेली न्यूज, इण्डियन मिरर, स्टेट्समैन, इंगलिश मैन, बेंगली तथा अमृतवाजार-पत्रिका प्रभृति अंगरेजी संवाद-पत्र एवं संजीवनी, वंगवासी, वसुमती, हितवादी प्रभृति बंगला संवाद-पत्र प्रचारित हो रहे हैं।

१८१५ ई०में यशोहर जिलेमें पहले पहल महामारी (उलटी रोग) देखी गई। इसके बाद धीरे धीरे सारे भारतमें फैल गई। समय समय पर इस रोगके उत्पातसे सभी देशोंके अधिवासी व्यतिव्यस्त हो पड़े हैं। कितने ही वर्षोंसे नदीया, हुगली, वर्द्धमान, मेदनीपुर प्रभृति जिलोंमें 'संचारी ज्वर'-की प्रकोपाग्निमें पड़ कर कितनी ही दीन प्रजाएं मृत्युको प्राप्त हो जाती हैं। इन्फ्लूयेंजा तथा बंबई प्लेगसे अभी भी देशका सर्वनाश हो रहा है। वैज्ञानिक लोग अनुमान करते हैं, कि नदी, खाई प्रभृतिके धीरे धीरे पंक द्वारा भर जानेसे एवं स्थान स्थान पर प्रयोजनीय नाला न रहनेके कारण पानीके रुक जानेसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है वर्षाऋतुमें निम्न बंगालकी गुल्मलताओंके सड़ जानेसे एक प्रकारका दुर्गन्धमय वाष्प निकलता है। उस अविशुद्ध वायुके सेवनसे रक्त दूषित हो जानेके कारण मलेरिया आदि रोगोंका प्रकोप होता है। कितने तो ऐसी विवेचना करते हैं, कि तीन सौ वर्ष पहले जिस महामारीसे गौड़नगर जनशून्य हो गया था, वह भी एक प्रकारका ज्वर ही था।

१८६४ ई०में वङ्गाल देशमें एक भयङ्कर बवंडर आया था जिससे लोगोंको महती क्षति हुई थी। बहुतों वृक्ष और घर धराशायी हुए थे, बहुतों जहाज और नावें डूब गई थीं। वङ्गोपसागरके जलने २४ परगनेके दक्षिणांशमें प्रवेश कर कितने मनुष्य, जीवजन्तु और लोकालयको विनष्ट किया था, उसकी शुमार नहीं। यह घटना १२७० सालके आश्विन मासमें घटी थी। इसके बाद १२७४ सालके कार्त्तिक मासमें और १२७६ सालमें तूफान आया था। इस प्रकारका तूफान इस प्रदेशके लिये नया नहीं था। आईन ई अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि १५८३ ई०में यहां एक वज्रविद्युत्के साथ भीषण बवंडर आया था। उसके प्रभावसे समुद्रका जल इतना ऊंचा उठ गया था, कि देवमन्दिरके शिखर तथा अत्यन्त ऊंचे स्थानोंको छोड़ कर बाकरगञ्जका अनेकांश जलमग्न हो गया था। इस दुर्घटनामें प्रायः दो लाख मनुष्योंकी मृत्यु हुई थी। १८७६ ई०की ३१वीं अक्टूबरको जो तूफान उठा, वह सबसे मारात्मक था।

वङ्गन (सं० पु०) वङ्गतीति वगि-ल्यु। वार्त्ताकु, बैंगन।

वङ्गवाड़ी—उत्तर-वङ्गका एक गण्डग्राम।

वङ्गभाषा (सं० स्त्री०) बंगाल-वासियोंकी कथित और लिखित भाषा।

वङ्गमल (सं० पु० क्ली०) सीसा नामक धातु। प्राचीनोंको यह धारणा थी, कि रांगा और सीसा दोनों एक ही धातु हैं और वे सीसेको रांगेका मल समझते हैं।

वङ्गला भाषा—जिस भाषामें वङ्गालके अधिवासी बोलते हैं, वही वङ्गला भाषा है। इस भाषाको लिखित और कथित इन दो भागोंमें प्रधानतः विभाग किया जा सकता है। प्रादेशिक हिसाबसे कथित भाषाको भी नाना शाखा प्रशाखाओंमें बांट सकते हैं। देशभेदसे कथित भाषाके मध्य थोड़ी बहुत पृथक्ता तो दिखाई देती है, पर कथित भाषाने जो सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये समय समय पर संशोधित और संस्कृत हो लिखित भाषाका आकार धारण किया है, इसे सबोंको स्वीकार करना पड़ेगा किस प्रकार वङ्गभाषाकी उत्पत्ति हुई, वही वहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

वङ्गभाषाका आदि-निर्णय।

अक्षरलिपि शब्दमें लिखा गया है, कि प्रायः ढाई हजार वर्ष बीत चला, बुद्धदेवके समय वङ्गलिपि नामक एक स्वतन्त्र लिपि प्रचलित थी। जब वङ्गलिपिकी सृष्टि हुई थी, उस समय स्वतन्त्र वङ्गभाषाका प्रचलन रहना कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु उस समयकी वङ्गभाषा फैली थी, उसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है।

पाणिनि-व्याकरणसे मालूम होता है, कि पाणिनिके पहले संस्कृत भाषा ही कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। उनके समय भी प्रादेशिक भाषाके मध्य कुछ इतरविशेष था। उस प्राचीन कालमें प्रचलित संस्कृत भाषाके साथ देशी भाषा भी मिलती थी। वह विभिन्न देशप्रचलित भाषा ही आदि प्राकृत भाषा है।

केदारभट्ट और मलयगिरिने लिखा है, कि 'भगवान् पाणिनिने प्राकृतका लक्षण भी प्रकाश किया है। वह संस्कृतसे भिन्न है। इसमें दीर्घाक्षर कहीं कहीं ह्रस्व हुआ करता है*।' इस प्रमाणसे जाना जाता है, कि पाणिनिके समय प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा समझी जाती थी। किन्तु इस भाषाकी लिखित भाषारूपमें गिनती न रहनेके कारण यह उस समय पुष्टिलाभ न कर सकी। पाणिनिके समय 'प्राकृत' प्रचलित रहने पर भी वह आर्यसाधारणकी स्वीकृत भाषा न समझी जाती थी, क्योंकि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दस' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'लौकिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उनके समय भी संस्कृत-युग चलता था। यह संस्कृत युग कब तक चलता रहा था, उसका आज तक पता नहीं चला है। पर इतना जरूर है, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले संस्कृत जनसाधारणकी कथित भाषा न समझी जाती थी। इस समय जनसाधारण जो भाषा समझते थे, उसका नाम 'गाथा' रखा गया। अभी इस भाषाको ठीक संस्कृत नहीं मान सकते। इस भाषाकी रीति संस्कृत व्याकरणसङ्गत नहीं है। इस कारण हम लोग इसको टूटी फूटी संस्कृत मान सकते हैं। उस समय ब्राह्मण पण्डितोंके निकट विशुद्ध संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी जनसाधारणके निकट गाथा ही चलित भाषारूपमें गिनी जाती थी। सम्राट् अशोककी उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनुशासन निकले हैं, वे गाथाके कुछ परवर्त्ती और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतसे समझे जाते हैं।

बौद्ध और जैनोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थकी भाषा आलोचना करनेसे भी अच्छी तरह जाना जाता है, कि उस प्राचीन गाथासे ही पाली, मागधी और अर्द्धमागधी भाषा परिपुष्ट हुई है।

वररुचि आदि वैयाकरणोंके मतसे मागधी, अर्द्धमागधी यह सब प्राकृत भाषाका ही प्रकारभेद है।

प्राकृत देखो।

पहले कह आये हैं, कि भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत पहले हीसे कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देशभेदसे उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। किन्तु जब वह प्राकृत लिखित भाषारूपमें व्यवहारयोग्य हुई, तब आवश्यकतानुसार संस्कारका भी प्रयोजन हुआ था। उस संस्कृत प्राकृत भाषाने ही पाली, मागधी वा अर्द्धमागधीरूपमें पहले लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

गौड़प्राकृतकी उत्पत्ति।

प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंके मध्य पालीको "तत्सम" तथा अर्द्धमागधीको "तद्भव" श्रेणीमें गिन सकते हैं। परवर्त्तीकालमें उक्त दोनों प्राकृत भाषाके प्रभावसे विभिन्न स्थानकी लिखित प्राकृत भाषाकी पुष्टि हुई। भरतके मतसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ये चार भाषाएं हैं। चण्डाचार्यने अपने "प्राकृत लक्षण"में प्राकृतभाषाको प्राकृत, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भागोंमें विभक्त किया है। वररुचिके प्राकृतप्रकाशमें लिखित प्राकृत मागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री और पैशाची इन चार भागोंमें विभक्त हुई है।

हेमचन्द्राचार्यने अपने प्राकृत व्याकरणमें अर्द्धमागधीको 'आर्ण प्राकृत'के मध्य शामिल किया है। (२।१०) फिर चण्डाचार्यके मतानुसार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनीका प्राचीनरूप ही आर्णप्राकृतके जैसा गिना जा सकता है। किन्तु प्राकृतचन्द्रिकाकार कृष्णपण्डितने आर्णप्राकृतको स्वतन्त्र बतलाया है। उनके मतसे आर्ण, मागधी, शौरसेनी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश ये छः प्रकार मूल प्राकृत हैं।

उन सब प्राकृतोंका प्रचार जब भारतव्यापी हो गया, तब फिरसे भारतके नाना स्थानोंकी प्रचलित प्राकृत धीरे धीरे प्राकृतके आदर्श पर और देशी शब्दके मेलसे लिखित प्राकृतके मध्य स्थान पाने लगी। इस प्रकार ६वीं और १०वीं सदीमें हम लोग बहुतों प्राकृत भाषाका उल्लेख पाते हैं।

---

* केदारभट्टकी उक्ति इस प्रकार है—

"पाणिनिर्भगवान् प्राकृतलक्षणमपि वक्ति संस्कृतादन्यत् दीर्घाक्षरश्च कुत्रचिदेकां मात्रामुपैति।"

१२वों शताब्दीमें प्राकृतचन्द्रिकामें कृष्णपण्डितने लिखा है, कि महाराष्ट्रीय, अवन्ती, शौरसेनी, अर्द्ध-मागधी, वाह्लोकी, मागधी, शकारी, आभीर, चाण्डाल, शावर, व्राचण्ड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्व्वर, आवन्त्य, पाञ्चाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड़, उड्र, दैव, पाश्चात्य, पाण्ड्य, कौन्तल, सैंहल, कालिङ्ग, प्राच्य, कर्णाट, काञ्च्य, द्राविड़, गौर्जर, ये ३४ भिन्न-देश प्रचलित प्राकृत भाषा हैं। इनके सिवा वैड़ालादि २७ अपभ्रंश प्राकृत भी प्रचलित थीं। कृष्ण पण्डितके मतसे उक्त प्राकृत भाषाओंके मध्य काञ्चीदेशीय, पाण्ड्य, पाञ्चाल, गौड़, मागध, व्राचण्ड, दाक्षिणात्य, शौरसेनी, कैकय, शावर और द्राविड़ ये ११ पैशाचीसे निकली हैं†।

प्राकृत-चन्द्रिकाके प्रमाणसे हम अच्छी तरह समझते हैं, कि जब १२वीं सदीमें उन सब प्राकृत भाषाने व्याकरणके मध्य स्थान पाया है, तब उसके बहुत पहले ही वह सब भाषा लिखित भाषा-सी समझी गई थी, इसमें सन्देह नहीं। उक्त प्रमाणसे हम यह भी जानते हैं, कि १२वीं सदीके पहले ही हम लोगोंकी गौड़-मगधभाषा लिखित-प्राकृतके मध्य तथा पैशाची भाषासे उत्पन्न पण्डित समाजमें गण्य हुई थी।

अभी प्रश्न होता है, कि गौड़भाषाको 'पिशाचजा' कहनेका कारण क्या?

ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकमें 'वयः, वङ्ग और वगध'-का उल्लेख है। आनन्दतीर्थने अपनी भाषाटीकामें पिशाच राक्षस, ऐसी व्याख्या की है। उनकी व्यवहृत प्राकृत भाषा ही बहुत पीछे शायद वैदिक ब्राह्मणोंके निकट पैशाची नामसे गण्य हुई होगी। परवर्त्ती कालमें आर्यसंस्रवसे यहांकी स्थानीय भाषा परिपुष्ट हुई सही, पर पूर्वभाषाका प्रभाव बिलकुल दूर नहीं हुआ। इसी कारण १२वीं सदीमें शेष कृष्णपण्डितने पूर्वाचार्योंकी दोहाई देते हुए गौड़मागधभाषाको आर्ष वा मूल पैशाचीसे उत्पन्न स्वीकार किया है।

† "काञ्चीदेशीयपाण्ड्ये च पाञ्चालं गौड़मागधं।
व्राचण्डदाक्षिणात्यञ्च शौरसेनञ्च कैकयं॥
शावरं द्राविड़ञ्चैव एकादश पिशाचजाः॥"
(प्राकृतचन्द्रिका)

पैशाची प्राकृतका लक्षण क्या है?

"पैशाचिक्यां रणयोर्लनौ।"

(चण्डका प्राकृतलक्षण ३।३८)

पैशाचिकी-भाषामें र और ण-की जगह ल और न होता है।

पैशाचीकी विशेषता दिखानेके लिये वररुचिने भी सूत्र किया है,—"णोः नः" (१०।५) अर्थात् मूर्द्धन्य 'ण' के स्थानमें दन्त्य 'न' होता है।

गौड़ भाषाका प्रकृत उच्चारण लेनेसे मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग प्रायः नहींके बराबर है। वङ्गदेशीय निम्न श्रेणीके मनुष्य आज भी 'र' की जगह 'ल' का उच्चारण करते हैं। जैसे 'करिलाम' को 'कल्लाम'। 'र' के गौड़की लिखित भाषामें बहुत दिनसे स्थान लाभ करने पर भी 'ण' ने उतना दिन प्रवेशाधिकार न पाया। १००६ सन्‌की हस्त-लिखित चण्डीदासकी एक पदावलीमें बहुत दिन हुए, इस प्रकारका दृष्टान्त दिखलाया गया है।*

एक दूसरा विशेष लक्षण इस प्रकार है—'रशषाणां सः।' (चण्डप्राकृत ३।१८) रेफयुक्त 'श' और 'ष' की जगह सर्वत्र दन्त्य 'स' प्रयुक्त होता है। जैसे शीर्ष=सीस, आमिष=आमिस।

सच पूछिये, तो गौड़-वङ्गवासीके प्रकृत उच्चारणमें मूर्द्धन्य 'ष' और तालव्य 'श' की जगह आज भी तमाम दन्त्य सकारका उच्चारण सुना जाता है।

एक दूसरी विशेषता यह है—'यस्य जः' (चण्ड ३।१५) अर्थात् 'य' की जगह सर्वत्र 'ज' होता है। जैसे 'याता'—जाता।

यथार्थमें गौड़वङ्गमें 'य' वर्णका प्रकृत उच्चारण प्रचलित नहीं है, सर्वत्र 'य' 'ज' रूपमें ही उच्चारित होता है।

कृष्णपण्डितने प्रायः नौ सौ वर्ष पहले गौड़भाषाको पिशाचजा क्यों कहा, मालूम होता है और अधिक समझानेकी जरूरत नहीं।

पैशाची प्राकृतका मूल कहां है? वररुचिने लिखा है—"पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी" (१०।२) पैशाची भाषाकी प्रकृति शौरसेनी अर्थात् शूरसेन वा मथुरा अञ्चलमें जो प्राचीन प्राकृत भाषा प्रचलित थी, उससे भी पैशाची

* साहित्य-परिषत् पत्रिका ५म भाग १७६-१८४ पृ०।

भाषा पुष्ट हुई है। इसके सिवा नैऋत्यप्रयुक्त मगध-प्रचलित मागधी भाषाके साथ भी बङ्गभाषाका यथेष्ट सम्बन्ध हुआ है।

प्राचीन कालसे नाना समयमें भारतवर्षके नाना स्थानोंसे नाना देशीय लोगोंके गौड़वङ्गमें आने और उनके यहां पर स्थायिरूपसे बस जानेके कारण प्राचीन गौड़ भाषामें भारतीय अपरापर भाषाका भी निदर्शन वा रेखापात मौजूद नहीं है।

जो कुछ हो, प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले वङ्गलिपिका अस्तित्व रहने पर भी वङ्गभाषाका स्वतन्त्र नामकरण नहीं हुआ। ब्राह्मण्यधर्माश्रयी गुप्ताधिकार विस्तारके साथ यहां संस्कृत शास्त्रीय प्रभावका प्रवेश होनेसे संस्कृत और स्थानीय भाषाका पार्थक्य निर्णय करनेके लिये गौड़ भाषाका नामकरण हुआ होगा।

जिस देशमें बुद्धदेव लीला कर गये हैं, जो देश हजारों जैन-तीर्थङ्करोंका कर्मक्षेत्र है, जिस देशकी भाषासे जैन और बौद्ध धर्मवीरोंकी चेष्टासे सैकड़ों ब्राह्मण विरोधी मतकी सृष्टि हुई है, उस देशकी भाषाको ब्राह्मणगण पैशाची वा 'पिशाचजा' कहें, इसमें आश्चर्य्य ही क्या।

सच पूछिये तो किसी भी वैदिक ग्रन्थमें अङ्ग वङ्ग मगध पिशाचभूमि कह कर निर्दिष्ट नहीं है। बौद्धभक्त शकनरपति कनिष्कके अधिकारकालमें उनके अधीन क्षत्रपगण गौड़मगधका शासन करते थे। उन्हींके समय बौद्धशास्त्र प्रचारार्थ संस्कृत और प्रचलित प्राकृत भाषाके मिलनेका सूत्रपात हुआ। उस समय सम्भवतः प्राच्य जनपदकी भाषाने लिखित भाषारूपमें गण्य हो कर ब्राह्मणके निकट 'पैशाची' नाम धारण किया हो। इस समय शूरसेन वा मथुरामें शक-राजाओंकी राजधानी थी; अतएव शूरसेनके प्रभावसे पैशाची भाषाका गठन-कार्य्य साधित हुआ था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। गुप्तराजाओंके समय 'गौड़' जब एक स्वतन्त्र भाषा समझी गई, तब संस्कृत आलङ्कारिकोंने इसकी रीति भी भिन्न बतला कर प्रकाशित की। बहुतों प्राचीन नाटकमें गौड़भाषाका प्रचलन देख कर आलङ्कारिकोंने घोषणा कर दी,—

"शौरसेनी च गौड़ी च लाटी चान्या च तादृशी।
याति प्राकृतमित्येवं व्यवहारेषु सन्निधिं॥"

अर्थात् शौरसेनी, गौड़ी, लाटी और अन्यान्य उसीकी तरह प्राकृत भाषा भी व्यवहृत भाषामें स्थान पाती है।

बङ्गलाका प्राकृत रूप।

इस प्रकार प्रमाण रहने हुए भी कोई कोई गौड़वङ्गकी भाषाको संस्कृतसे ही उत्पन्न बतलाते हैं। किन्तु हम कभी भी समीचीन नहीं मान सकते। आज भी प्रचलित खनाका वचन, डाकका वचन, माणिकचन्द्रका गीत, धर्ममङ्गल, यहां तक कि चण्डिदासकी पदावली आदि प्राचीन पुस्तकोंमें अनेक जगह शब्दोंका जैसा प्रयोग देखा जाता है उससे वङ्गलाको कभी भी संस्कृत-मूलक नहीं कह सकते। वह भाषा बहुत कुछ प्राकृत सी ही है।

हम लोग पुस्तकादिमें जो सब प्राकृत भाषा देखते हैं यद्यपि उनमें पूर्व प्रचलित वङ्गभाषाका ठीक सादृश्य नहीं है, तो भी शब्दगत बहुत कुछ सदृशता देखी जाती है। प्राकृत और वङ्गलाका शब्दसादृश्य दिखानेके लिये यहां बहुत-सी पुस्तकोंसे कुछ शब्द उद्धृत किये गये हैं—

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त*	वंगला
अत्ता	अत्ता	मृ० क०	आता, आइ
अद्य	अज्ज	उ० च०	आज
अर्द्ध	अद्ध	मृ० क०	आध
अनेन	इमिण	मृ० क०	एमने
अष्ट	अट्ठ	मृ० क०	आट
अम्र	अम्ब		आंब
आदर्श	आअरिस्		आरसि
आत्मा	अप्पि	मु० रा०	आपनि
अहं	अह्मि	मृ० क०	आह्मि, आमि
अन्धकार	अन्धार	मृ० क०	आंधार
उपाध्याय	उवज्झाअ	मु० रा०	ओझा
एष	एहु	श० कु०	एहि, एह, एइ
इयत्	एत्तक		एतेक

* मृ० क०=मृच्छकटिक नाटक। उ० च०=उत्तररामचरित। मु० रा०=मुद्राराक्षस। श० कु०=शकुन्तला। च० कौ०=चण्डकौशिक। छन्दोम०=छन्दोमञ्जरी।

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला
अत्र	पथ		पथा
कर्ण	कण्ण	मृ० क०	कान
कर्म्म	कम्म		काम
कार्य्यम्	कज्ज		काज
कियत्	केत्तक		कतक
कुत्र	केथु		कोथा
कृष्ण	काणु		कानु
क्षुर	छुरा		छुरि
गोप	गोयाल	छन्दोम०	गोयाल
गृहम्	घर	मृ० क०	घर
घृतम्	घिअ		घि
घोटक	घोड़ाअ	गाथा	घोड़ा
चक्र	चक्क		चाका
चन्द्र	चन्द	मृ० क०	चन्द, चांद
चतुर	चारि	पिङ्गल	चारि
चेटी	चेड़ी	मृ० क०	चेड़ी
चतुर्दश	चोद्द	पिङ्गल	चोद्द, चौद्द
च	अ	गाथा	ओ
ज्येष्ठ	जेट्ठा		जेठा
त्वम्	तुह्मि	उ० च०	तुह्मि, तुमि
त्वया	तुए	मृ० क०	तुइ
तैल	तेल		तेल
स्तम्भ	खम्भ		खाम्बा
त्रि	तिण्णि	पिङ्गल	तिन
दधि	दही	मृ० क०	दइ
द्वय	दुअ	पिङ्गल	दुइ
द्वादश	बार	„	बार
द्विगुण	दुणा	„	दुना
दृढ़	दढ़	श० कु०	दड़
दुग्ध	दुद्ध		दुध
द्वार	दुआर	मृ० क०	दुआर
द्वाविंश	बाइसा	पिङ्गल	बाइश
न	णो	गाथा	ना
प्रस्तर	पत्थर		पाथर
पञ्चदश	पण्णरह		पनर

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	वङ्गला
पलायन	पल्लाण		पालान
पुस्तक	पोथि		पुथि
विद्युत	बिज्जुली	मृ० क०	बिजुली
बाटी	बाड़ी	„	बाड़ी
वल्कल	वक्कल	श० कु०	बाकल
वधू	वहु	मृ० क०	बउ
वार्त्ता	वत्ता		बात
वृद्ध	बुड्ढ	मृ० क०	बुड़ा
ब्राह्मण	बह्मण	मृ० कु०	बामुन
भक्त	भत्त		भात
भगिनी	बहिनी	„	बहिन्, बोन
मस्तक	मत्थअ	„	माथा
मक्षिका	माछि		माछि
मधु	महु		मौ
मिथ्या	मिच्छा		मिछा
यष्टि	लाट्ठी		लाठी
यावत्	जेत्तक		येतक
यत्र	जत्थ	उ० च०	यथा
राजा	राव, राय	च० कौ० पिङ्गल	राय
राधिका	राई	अपभ्रंश	राइ
रौप्यम्	रूप्पा		रूपा
लवणम्	लोण		लुन, नुन
शृगाल	शिआल	मृ० क०	शियाल
श्मशान	मसाण		मसान
शय्या	शेज		सेज
षष्ठ	छ		छ, छय
षोड़श	सोला	पिङ्गल	षोल
स्थान	ठाण	मृ० क०	ठांइ
सन्ध्या	सञ्झा	„	सांज
सखी	सहि	„	सई
सः	शे	„	से
सत्यम्	सच्च	„	साचा
सप्त	सत्त	पिङ्गल	सात
सर्षप	सरिस्		सरिषा
हस्ती	हत्थी	मृ० क०	हाती
हस्त	हत्थ	श० कु०	हात

संस्कृत	प्राकृत	जिस पुस्तकमें प्रयुक्त	बङ्गला
हृदय	हिअअ	मृ० क०	हिया
हरिद्रा	हलद्दा		हलुद

इन सब शब्दोंमें बङ्गला और प्राकृत शब्द प्रायः एक-से देखे जाते हैं।

पहले ही लिख आये हैं, कि तीन प्रकारके प्राकृतोंमें "देशी" या संस्कृतके साथ सम्बन्धवर्जित शुद्ध देशप्रचलित भाषा भी एक है।

देशी प्रकृत भी विशेषभावसे प्राचीन बङ्गलामें चल गई है। १२वीं सदीमें रचित आचार्य हेमचन्द्रकी 'देशी नाममाला'-से भी बहुतेरे शब्द उठा कर दिखाते हैं। ये सब शब्द हेमचन्द्रके बहुत पहलेसे ही समूचे पश्चिम-भारतमें प्रचलित थे। उद्धृत प्राचीन देशी शब्दोंके देखनेसे सहज ही बोध होगा, कि बङ्गलामें संस्कृत प्रभावकी अपेक्षा प्राकृतका प्रभाव ही अधिक है। बङ्गला भाषा संस्कृत-मूलक नहीं है, वरं प्राकृतमूलक है।

देशी प्राकृत	चलित बङ्गला
अलट्ट पलट्ट	उलोटपालट, उल्टापाल्टा
उत्थल्ला	उतला, उतलान
उत्थल्ल-पत्थल्ल	आथाल-पाथाल
ओड्डिदो	उड्डि
ओड्डने	उड़नी
ओइल्ल	ओला
ओसा	ओस
कच्छर	कचूड़ा
कुड़आ	कड़ङ्ग
कोट्ट	कोट
कोइला	कयला
कोलाहल	कोलाहल
कड्ंग	कांड़ानो
खली	खोल
खड्ड	खड़
खाइया	खाइ
गढ़ो	गड़
गंडीव	गाण्डीव
गड्यड़ि	गड़गड़, घड़घड़ इत्यादि
गेण्ड और गेण्ट अ	गांट, गेरो, गांठरो
गोच्छा	गोच्छा, गोछा
घोड़ो	घोड़ा
घोलइ	घोला
चोट्टि	चुंटि, झुंटी
चट्टु	चाटु
चाउल	चाउल
चिल्ला	चिल
छली	छलि वा छुली
छिनाल, छिनालो	छिनाल
छिवइ, छिहइ	छोंआ
जड़िल	जडित
झडी	झड़
झलसिअ, झलुंकिअ	झलसानि
झालिअ, झलझलिया	झलक
झाड़	झाड़
झड़इ	झरा
टिप्पि	टिप्
टिक्क	टिका
टुंटो	टुंटो
डम्ब, डावो	डेब्रा
डलो	ढिल, डेला
डाली	डाइल, डाल
डुम्ब	डोम
डालो	डुलि
ढंढल्ले	ढल्ढल्
तग्ग	तागा
तड़फड़िअ	धड़फड़
तुलसी	तुलसी
थरहरिअ	थरहरि (कम्प)
दोरा	डोर
धन्धा	धन्धा, धांधा

[illegible]शी प्राकृत	चलित वङ्गला
घनो	धनि
पप्पिअ	पापिया
पुप्फा	फुपा, फुफु
पेल्लइ	फेला
पेट्ट	पेट
पलोट्टई	पोलट, पाल्टान
फग्गु	फाग
फुक्का	फक्का
बड़बड़इ	बड़बड़, बिड़बिड़
वुकइ	बुकनि
बुंड्डइ	[illegible]ड़ा, डोवा
बोक्कड़	बोका (पाँठा)
भल्लू	भालुक
मेरो	मेड़ा
थड्डि	थुड्डि
रोल	रोल
वट्टा	वाट
वरड़ी	
वल्ला	बोलता
वल्लार	
विहाण	विहान
हण्	हन्हन
हड्ड	हाड़
हल्लोसो	हल्लीस
हेला	हेला
हेरिम्बो	हेरम्ब

यहां तक कि, प्रचलित वङ्गला भाषा भी जो एक समय प्राकृत भाषा नामसे प्रचलित थी, उसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं।

बौद्ध और जैन प्राधान्य कालमें प्राकृत भाषाकी चरम उन्नति हुई थी। अनन्तर प्राकृत भाषाको संस्कृत से निरपेक्ष भावमें प्रतिष्ठित करनेकी कोशिश होने पर भी जिस प्रकार कृतकार्य्य न हो सका, अलक्ष्य भावमें भी संस्कृतका सांचा आ कर उसमें पड़ गया है, उसी प्रकार वङ्गभाषा भी प्राकृतसे उत्पन्न हो कर भी बौद्धावनति तथा ब्राह्मणोंके पुनरभ्युदय कालमें संस्कृतको अवलम्बन कर धीरे धीरे उन्नतिके पथ पर अग्रसर होने लगी। उस समयके संस्कृत-पण्डित संस्कृत शब्द-सम्पत्तिको क्रमशः वङ्गला भाषामें योग करने लगे तथा जहां तक सम्भव हो सका प्राकृत भाव लोप होने लगा। जो हो, लिखित भाषाके बहुत कुछ प्राकृतकी शङ्क छोड़ देने पर भी आज कल भाषा किसी अंशमें प्राकृतका ऋण परिशोध न कर सकी। गौड़ीय भाषामें अनेक जगह संस्कृतका शब्द सादृश्य प्राकृतसे अधिक [illegible] सही, पर ऐसा होने पर भी उन सब भाषाओंमें क्रियागत और नित्य व्यवहार्य्य शब्दगत सादृश्य इतना अधिक है, कि उसीसे प्रमाणित होता है, कि वङ्गभाषा प्राकृतसे ही उत्पन्न हुई है।

संस्कृत शब्द जिस भावमें पहले प्राकृतमें और पीछे बंगलामें परिवर्त्तित हुआ है, उसके कुछ नियमोंको क्रिया देखी जाती है, नीचे उनका उल्लेख किया गया है।

आद्य वर्णके बाद संयुक्त वर्ण रहनेसे संयुक्त वर्णका आदि अक्षर लोप और पूर्व्वस्वर दीर्घ होता है। जैसे हस्त—हाथ, हस्ती—हाती, [illegible]—काख, मल्ल—माल इत्यादि।

कभी कभी पूर्व स्वर अथवा आकार शेष वर्णमें युक्त होता है। जैसे, चक्र—चाका, चन्द्र—चान्दा।

कभी शेष वर्णका आकार लोप होता है। जैसे, लज्जा—लाज, ढक्का—ढाक इत्यादि।

आद्य स्वरके परस्थित तथा संयुक्त वर्णके आदिस्थित '०' तथा 'न' कारकी जगह चन्द्रविन्दु होता है। जैसे—वंश—बाँस, कांस्य—काँसा, हंस—हाँस, चन्द्र—चाँद, दन्त—दाँत इत्यादि। अनेक जगह स्वरवर्ण रूपान्तरमें भी व्यवहृत होता है, अ की जगह 'ए' आ की जगह 'इ' जैसे सज्ञान—शियाना, 'अ' की जगह 'उ' जैसे ब्राह्मण—बामुन। इसके सिवा और भी सूत्र हो सकते हैं। अनेक जगह 'ट'की जगह 'ड' होता है। जैसे—घोटक—घोड़ा घट—घड़ा, भाण्ड—भांड़ इत्यादि। कहीं कहीं वर्ण बिलकुल नहीं रहता, जैसे—कर्म्मकार = कमार—कामारो, कुम्भकार = कुम्भार—कुमार, मुत्र—मू। हृदय—हिअअ, हिया इत्यादि। कथित भाषा धीरे धीरे इसी प्रकार सहज आकारमें परिवर्त्तित हुई है।

विभक्ति।

संस्कृत और प्राकृतकी तरह वङ्गला भाषामें भी सात विभक्ति प्रचलित है। वङ्गला भाषाकी विभक्ति पहले कहांसे अनुकृत हुई है उसका अनुमान करना सहज नहीं है। क्योंकि वङ्गला विभक्तिमें-से कुछ संस्कृतकी अनुयायी है। विशेषतः कई जगह प्रथमा विभक्तिका एकवचन संस्कृतका विसर्ग वङ्गलामें नहीं आता।

फिर इसी प्रकार प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें पुराने ग्रन्थमें प्राकृतका अनुयायी व्यवहृत हुआ है। प्राकृतमें प्रथमा विभक्तिमें जिस प्रकार एकवचनमें 'ए' जोड़ा जाता है, वङ्गलामें भी उसी प्रकार प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें पहले एकार जोड़नेकी रीति थी।

(प्राकृत—"शामी ए निद्धयाके विशोहेदि" मृः कः ३ अङ्क)

प्राकृत भाषामें द्विवचनमें कोई भेद नहीं दिखाई देता। प्रायः दोनों ही जगह सिर्फ संख्याबोध वा आकारका योग हुआ है। जैसे—"भव आदि तमसे अर्थदाव परिसो जादो देउण आणामि कुशलवा" (१) "कहि मे पुत्तआ" (२) इन दोनों स्थानोंके "न जानामि कुशलवौ" तथा "कुत्र मे पुत्रकौ" द्विवचनकी जगह आकार जोड़ा गया है। वङ्गला भाषामें अभी दो वचन प्रचलित हैं, एकवचन और बहुवचन, द्विवचन-बोधक किसी विभक्तिका प्रचलन नहीं देखा जाता। पूर्वप्रचलित वङ्गलामें बहुवचनके बोधके लिये प्राकृतके अनुयायी आकार जोड़ा गया है।

आज कल फिर लेख्य भाषाके बहुवचनमें 'आ कार जोड़नेकी प्रथा नहीं देखी जाती। अभी उस स्थान पर 'र' शब्द अधिकार कर बैठा है।

वङ्गलामें द्वितीया और चतुर्थी, इन दोनों विभक्तिमें ही 'के' प्रचलित है। मोक्षमूलरके मतसे इस 'के' संस्कृतके स्वार्थमें 'क' होता आया है। प्राकृत भाषामें भी इस 'क'-का बहुत प्रचार है। विशेषतः गाथामें इस 'क' का प्रचलन सबसे अधिक देखा जाता है।

ढाई सौ वर्ष पहले वङ्गला भाषामें विशेषरूपसे इसी प्रकार 'क' का प्रचलन था। वह क कभी कर्त्ता और कभी कर्मकारकरूपमें व्यवहृत होता था। किन्तु इसका कौन कर्त्ता और कौन कर्मरूपमें व्यवहृत होता था, वह सहजमें नहीं जाना जाता। पीछे यह 'क' 'के' का आकार धारण कर कर्म और सम्प्रदान जतानेके लिये प्रचलित हुआ। किन्तु पूर्वकालमें यही 'के' कर्म और सम्प्रदानको छोड़ कर अन्य सभी विभक्तियोंमें युक्त होता था। इसके भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। अतएव कालक्रमसे कौन किस प्रकार परिवर्त्तित हुआ उसका निर्णय करना बहुत कठिन है। बहुवचन दिखानेके लिये अभी जिस प्रकार 'र' 'दिगेरा' इत्यादिका व्यवहार होता है उसी प्रकार पहले बहुवचन जतानेके लिये शब्दके साथ 'सब' 'सकल' 'आदि' प्रभृति जोड़े जाते थे।

क्रमोन्नतिके विधानानुसार पीछे इस आदि युक्त 'वृक्षादि' शब्दके साथ षष्ठीका योग हो कर वृक्षादिर हुआ है तथा उस वृक्षादिके उत्तर फिर स्वार्थमें 'क' युक्त हुआ है।

पूर्व और पश्चिम वङ्गमें कहीं कहीं आज भी 'आमागो तोमागो रामागो' आदिका व्यवहार देखा जाता है। वे शब्द आदिशब्दशून्य 'क' युक्त मात्र है, पीछे 'क' के 'ग' रूपमें परिवर्त्तन हुए हैं। आमागो आदि शब्द प्राकृत 'अह्माकं' 'तुह्माकं' से प्रतीत होते हैं।

करणकारक बोधक अभी जो द्वारा और दिग द्वारा व्यवहृत होता है, पहले यह सब कुछ भी नहीं था। उस समय संस्कृत 'रामेण'-की जगह प्राकृतमें 'रामए' का व्यवहार था। द्वारा शब्द संस्कृत द्वार शब्दसे निकला है। प्राकृत भाषाकी पञ्चमीके बहुवचनमें 'हिंतो' व्यवहृत होता था,—"भासो हिंतो सुंतो।" (वररुचि)

वङ्गलामें यह 'हितो' पद 'हइते' रूपमें परिणत हुआ है। पूर्वकालमें वङ्गलामें उसने 'हन्ते' रूप धारण किया था।

कालक्रमसे वह 'हन्ते' 'हइते' रूपमें परिवर्त्तित हुआ है। फिर कहीं कहीं 'हने' रूप हुआ है। यह रूप प्रायः प्राचीन ग्रन्थोंमें देखा जाता है।

वररुचिके प्राकृतप्रकाशके मतसे षष्ठीके बहुवचनमें 'ण' होता है। 'ण' और वङ्गलाका 'र' दोनों ही एक मूर्द्धण्य वर्ण हैं, स्वभावतः ही 'ण'के उच्चारणगत प्रभेदसे उड़ीसामें आज भी कथ्य भाषामें 'ण' और 'र' एक ही रूप सुना जाता है।

संस्कृत 'तस्मिन्' से सप्तमीमें 'त' की उत्पत्ति हुई है, संस्कृत सप्तमीका एक ही रूप रहता है, जैसे—'कानने' पर्वते, जले, इत्यादि। संस्कृत—लतायां नद्यां मालायां इत्यादि प्राकृतमें "लताए, नदीए, मालाए" होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थमें वङ्गलामें वह ठीक प्राकृत आकारमें ही है। वर्त्तमान कालमें वे सब परिवर्त्तित हो कर केवल 'शालाय, वेलाय, मालाय' इत्यादि रूप हो गये हैं।

क्रिया।

प्राकृतके भीतर 'करइ' 'वलइ' 'णच्चइ' इत्यादि कुछ क्रियाने वङ्गलामें ठीक 'करे' 'वले' 'नाचे' इत्यादि आकार धारण किया है। प्राकृत 'सुनिअ' 'करिअ' 'लमिअ' इत्यादि स्थानोंमें 'सुनिया' 'करिया' 'लइया' हुआ है। संस्कृत 'अस्ति' क्रियाने प्राकृत 'अच्छि' रूप धारण किया है तथा इस 'अच्छि' के साथ भू धातुकी असमापिका 'हइया' योग कर 'हइयाछे' ऐसा रूप बना है। देखितेछे, करितेछे इत्यादि भी इसी प्रकार उत्पन्न हुआ है। आज भी पूर्ववङ्गमें कहीं कहीं दो शब्द पृथक्‌भावमें उच्चारित होते हैं, जैसे—'जाइते आछे' 'खाइते आछे'। 'आछे' क्रिया संस्कृत 'आसीत्' के ही अपभ्रंश 'आछिल' रूपमें अन्यान्य पूर्ववर्त्ती पदके साथ युक्त हो कर (जैसे राजा आसीत्, सुन्दर आसीत् अर्थात् राजा थे, सुन्दर थे इत्यादि पद) बनी है।

शब्दकी परिवर्त्तन प्रणाली अति विचित्र है। प्रायः अनुकरणप्रियता ही उन सब परिवर्त्तनका कारण है। चलित 'चल' 'खेल' इत्यादि क्रियाओंका 'ल' कार दूसरी जगह भी योग हुआ है। रकार और लकारका सादृश्य तमाम देखा जाता है। संस्कृत 'चलामः' 'खेलामः' इत्यादि क्रिया क्रमशः 'चलिलाम' 'खेलिलाम' रूपमें परिवर्त्तित हुई है। प्राचीन वङ्गलामें अनेक जगह ठीक प्राकृतकी अनुयायी 'करन्ति' 'जानन्ति' 'करसि' 'खाग्रसि' इत्यादि क्रियायें व्यवहृत हुई हैं।

ललितविस्तरमें अनेक जगह 'करोमि' के अपभ्रंशमें 'करोम' मिलता है तथा वह क्रिया उस ग्रन्थमें सभी जगह 'करिष्यामि' के अर्थमें व्यवहृत हुई है। आज भी पूर्ववङ्गमें कहीं कहीं 'करूम' क्रिया प्रचलित है।

'करिमु' क्रिया प्राचीन वङ्गलामें कई जगह मिलती है। 'करिमु' की जगह अनेक स्थानोंमें 'करिवु' व्यवहृत हुई है।

संस्कृत 'कुर्व्वः' क्रियाका 'करिव' रूपमें परिवर्त्तित होना सम्भव है। संस्कृत 'भवतु, ददातु' क्रिया प्राकृतमें यथाक्रम 'हउ', 'देउ' रूपमें व्यवहृत तथा उसके साथ वङ्गलामें सिर्फ एक 'क' का योग कर 'हउक', 'देउक' भावमें प्रचलित हुई है। यह 'क' कहांसे आया, सोचनेका विषय है। वङ्गलाकी अनेक क्रियाओंमें 'क' का व्यवहार देखा जाता है। भू, दा, कृ, इत्यादि क्रियायें जब कर्म और भाववाच्यमें प्रयुक्त होती हैं, तब उन सब क्रियाओंके कर्त्तृत्वबोधके लिए उसमें 'क' शब्दके योगसे उल्लिखित 'करिवेक' इत्यादि पद बने हैं।

संस्कृत अनुज्ञामें 'हि' प्राकृतमें 'ह' रूपमें परिवर्त्तित हुआ है। जैसे—"आगच्छ पुत्तो जुदं रहम।" (मृच्छक० २ अङ्क)

उसी प्रकार वङ्गलामें भी उसी अर्थमें 'ह' का व्यवहार पूर्व वङ्गलामें 'करिह', 'जाइह' इत्यादि रूपमें प्रचलित था। पिङ्गलके छन्दःसूत्रमें कहीं कहीं 'हु' देखा जाता है। आगे पहले कह आये हैं, कि प्राकृतमें वर्गीय और अन्तस्थ इन पहले जकारकी जगह एक 'ज' 'श ष स' की जगह एक 'स' तथा 'ण न' की जगह जिस प्रकार ण-का व्यवहार देखा जाता है, उसी प्रकार वङ्गला भाषामें भी पहले उन सब वर्णोंकी जगह 'ज' 'स' तथा केवल 'न' का व्यवहार देखा जाता है। हस्तलिखित प्राचीन वङ्गला ग्रन्थ देखनेसे ही इसके दृष्टान्तका अभाव न रहेगा।

अनेक प्राचीन वङ्गला ग्रन्थमें भी प्राकृतकी तरह 'द' की जगह 'ड' का व्यवहार होता है।

छन्दः।

प्राचीन वङ्गला-भाषाके छन्दोनियममें कोई छानबीन न थी। पयार, धूआ, नचाड़ी आदि कुछ छन्द पहले प्रचलित थे। वे सब छन्द गानकी तरह सुर दे कर पढ़नेकी रीति थी। संस्कृत 'पद' शब्दसे 'पअ' तथा उससे 'पयार' आया है। जैसे संस्कृत षट्पदी हिन्दी प्राकृतमें 'छप्पई' हुआ है। 'पद' गानेका ही नियम था।

पयार पहले नाना रागोंमें गाया जाता था। प्राचीन कवियोंने भी 'पयार' को गान नामसे भणितामें उल्लेख किया है।

'पयार' का कहीं कहीं धूआ नाम रखा गया है। पयारमें अभी जिस प्रकार १४ अक्षर रहते हैं, पहले इस प्रकार कोई छानवीन न थी, मात्राकी ही ओर विशेष लक्ष्य रहता था। उसी प्रकार पूर्व-प्रचलित पयारमें कोई सुश्रृङ्खला नहीं है। नाचाड़ी भी पहले धूआकी तरह गाया जाता था। किसी किसीके मतसे लाचाड़ी 'लहरी' शब्द का अपभ्रंश है। ऐसा मालूम होता है, कि संस्कृत 'नृत्य-करी' वा 'नृतालि' प्राकृत अपभ्रंशसे 'णच्चरी' तथा वही पीछे वङ्गलामें 'नाचाड़ी' हुआ है। गायक नाच नाच कर जो सब पद गाते थे, वही पीछे नाचाड़ी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

वर्त्तमान लिपदीके स्थानमें ही पहले लाचाड़ीका प्रचलन था। लाचाड़ी 'दीर्घछन्द' वा अन्य किसी रागिणीके नामानुसार भी देखा जाता है।

सच पूछा जाय, तो छन्दकी कोई प्रणाली नहीं देखी जाती, डाक और खनाके वचन छन्दोवन्ध थे वा नहीं यह विचारनेका विषय है। रमाई पण्डितके शून्यपुराण और माणिकचांदके गानमें अक्षर यति वा मिलका वैसा नियम नहीं है। भावरक्षाके लिये कहीं चौवीस अक्षर, कहीं दश अक्षर, इस प्रकार अधिकसे अधिक २६ और कमसे कम १०।१२ तक अक्षर देखे जाते हैं।

कालक्रमसे जिस समय गान और कविताएं पृथक् भावमें निर्दिष्ट होने लगी, तभीसे वङ्गला कविताके मध्य क्रमशः यति अक्षर तथा एकतामें भी छानवीनका आरम्भ हुआ है। वङ्गला छन्दोमाल ही संस्कृत और प्राकृतका अनुकरण है।

वङ्गलाभाषा छन्दोविशेषमें अभी अत्यन्त हीनावस्थामें है। जो दो चार अनुकरण हुए हैं, वे भी असीम संस्कृत हैं, यहां तक कि प्राकृतके निकट भी नगण्य हैं।

वैदेशिक प्रभाव।

पहले लिख आये हैं, कि प्राकृत तीन प्रकारकी है, संस्कृतसम, संस्कृतभव और देशी। प्राकृत देखो। इन तीन प्रकारको प्राकृतका प्रभाव हो प्राचीन वङ्गलामें दिखाई देता है। इसके सिवा मुसलमानी अमलमें अरवी पारसी शब्दमें घुस गया है। नवावी अमलकी शेषावस्थामें तथा अंगरेजी-अमलके आरम्भमें पुर्त्तगीज, मग, ओलन्दाज, दिनेमार आदि वैदेशिकोंके नित्य व्यवहार्य किसी किसी शब्दने भी वङ्गलामें स्थान पाया है।

वर्त्तमान युगमें अंगरेजी महीनेके नाम और Parade March, Railway, Railing, Monument, Fort, Steamer, Engine, Boiler, Vat, Valve, Gate, Sluice, Lock-gate आदि शब्द तथा विचारालयकी अनेक संज्ञा भी वङ्गलामें प्रचलित है। Thermometer, Stethoscope Testtube आदि वैज्ञानिक, आयुर्वेदिक और रासायनिक शब्दोंने इसी प्रकार अंगलामें स्थान पाया है।

अंगरेजी अमलमें इस प्रकार सैकड़ों अंगरेजी शब्द वङ्गलामें घुस गये हैं तथा आज भी घुस रहे हैं। अंगरेजी अमलमें किस प्रकार वङ्गलाभाषाने परिपुष्ट और वर्त्तमान आकार धारण किया, उसका विस्तृत विवरण 'वङ्गलासाहित्य' शब्दमें लिखा गया है।

वङ्गला साहित्य—अति प्राचीन कालसे ले कर आज तक वंगला भाषामें जो जो ग्रन्थ अथवा भाषाके निदर्शन पाये जाते हैं, वे ही वंगला साहित्य कहलाते हैं।

हम लोग वंगला साहित्यको प्राचीन तथा आधुनिक, इन दो अंशोंमें प्रधानतः विभाग कर सकते हैं। मुद्रायन्त्रकी सृष्टिके पूर्व अर्थात् अंगरेज-प्रभावके पहले जो साहित्य प्रचलित था, उसे प्राचीन एवं अंगरेज-प्रभावसे ले कर वर्त्तमान काल पर्यन्त जो साहित्य चल रहा है, उसे ही आधुनिक साहित्य कहते हैं।

प्राचीन अंश।

वंगला साहित्यकी उत्पत्ति।

जिन दिनों वंगलाभाषा लिखित भाषा रूपमें गण्य हुई, उन दिनों जनसाधारणके समझानेके लिये जिन जिन ग्रन्थोंकी रचना हुई, वे ही वंगलाके आदि साहित्य हैं। लिखित वंगलाभाषाके प्रचलनके साथ वंगला साहित्यका सूत्रपात हुआ। कव और किस समय वंगला साहित्यकी उत्पत्ति हुई, इसको स्थिर करना एक प्रकारसे असम्भव है। वंगलाभाषाके प्रस्ताव पर हम लोग अनुमान करते हैं कि, १२वीं शताब्दीमें गौड़ी भाषाको प्राकृत व्याकरणके मध्य स्थान मिला। पहले साहित्यकी सृष्टि हुई, तत्पश्चात् व्याकरणका प्रयोजन हुआ। इस तरहसे १२वीं शताब्दीके बहुत पहले ही गौड़ीय वंगसाहित्यको उत्पत्तिकी कल्पना की जाती है।

१२वीं शताब्दीमें हेमचन्द्राचार्यने जो देशी शब्दसंग्रह संकलन किया था, उससे हम लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं कि, इन सब देशी शब्दोंके साथ बंगला भाषाके प्रचलित देशी शब्दोंका विशेष पार्थक्य नहीं है। बंगलाभाषाके शब्दोंमें देशी शब्दोंकी तालिका देखो। प्रचलित कथाओंने कुछ संस्कृत अथवा शुद्धरूपसे लिखित भाषामें स्थान पाया है। इस तरह प्रचलित देशी शब्द कुछ संशोधित आकारमें ही हेमचन्द्रके प्राकृत अभिधानमें घुस गया है। सचराचर साहित्य-सृष्टिके बाद व्याकरण तथा अभिधानकी सृष्टि होती है। इस तरह हेमचन्द्राचार्यके बहुत पहले ही ये सब शब्द देशी शब्दसाहित्यमें प्रविष्ट हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। हेमचन्द्र गुर्जर राज सभामें रहते थे। गुर्जर तथा महाराष्ट्रसे जिस अति प्राचीन देशी साहित्यका निदर्शन पाया गया है, वह भी हेमचन्द्रके पूर्ववर्त्ती है। उसी प्राचीन साहित्यमें हेमचन्द्रधृत देशी शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है एवं उस प्राचीन भाषाके साथ वर्त्तमान प्रचलित मराठी भाषाका विशेष पार्थक्य है, ऐसा मालूम नहीं होता। इस तरह हम लोग अनुमान कर सकते हैं कि ११वीं सदीके पूर्व जिस गौड़साहित्यकी सृष्टि हुई थी, उस साहित्यके साथ वर्त्तमान प्रचलित भाषाका विशेष पार्थक्य नहीं है। जान पड़ता है, इसके प्रमाणका भी अभाव नहीं होगा।

प्राचीन बंगला-साहित्यकी आलोचना करनेसे मालूम होता है कि, विभिन्न सम्प्रदायोंके धार्म्मिक झगड़ोंसे, अथवा अपने अपने धर्म-प्रभावस्थापन करनेके उद्देशसे ही प्रधानतः बंगलासाहित्यका प्रचार और पुष्टि हुई। इसके अलावा और भी कई कारणोंसे बंगलासाहित्यका प्रसार हुआ है। उन सभी साम्प्रदायिक तथा गौण प्रभावोंको लक्ष्य करके हम लोगोंने प्राचीन बंगसाहित्यको निम्नलिखित खण्डोंमें विभक्त किया है—

१म बौद्धप्रभाव, २य शैवप्रभाव, ३य मनसा, चण्डी प्रभृति भक्त शाक्तप्रभाव, ४र्थ मुसलमान-प्रभाव, ५म पौराणिक प्रभाव, ६ष्ठ वैष्णव तथा गौरांग-प्रभाव, ७म कुलज्ञ-प्रभाव, ८म तात्त्विक प्रभाव, ९म गल्प तथा संगीत प्रभाव एवं १०म विविध।

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावसे पूर्व योगीपाल, गोपीपाल तथा महीपालके गान प्रचलित थे एवं उसे लोग बड़े आनन्दके साथ श्रवण करते थे। गौड़के इतिहाससे भी हम लोग जान सकते हैं, कि ८वीं सदीके शेषभागमें गौड़ पालवंशका अभ्युदय हुआ। पालवंशीय राजाओंकी कीर्त्तिका ध्वंसावशेष आज भी गौड़वंगके सभी स्थानोंमें विद्यमान है। पालवंशी राजाओंकी शिलालिपि तथा ताम्रशासनसे हम लोग मालूम कर सकते हैं, कि उनमें कितने ही धर्मशील, विद्यानुरागी तथा पण्डितप्रिय थे। उनके समयमें बंगदेशमें कितने ही धर्माचार्योंका अभ्युदय हुआ था। उनके आश्रयमें नालन्दाके विश्वविद्यालयमें लक्षों लोग शिक्षा पाते थे। सुतरां उन सबके यत्नसे उस समय जनसाधारणमें धर्मनीति प्रचारके लिये देश-प्रचलित प्राकृत-भाषामें अनेकों गीत कविताओंकी सृष्टि होना कुछ आश्चर्य नहीं। पालवंशीय राजाओंके शासनपत्रोंमें संस्कृत-भाषाका ही प्रयोग देखा जाता है सही, किन्तु वे सब उच्च श्रेणीके उद्देशसे ही लिखे गये हैं। किन्तु जनसाधारणको समझानेके लिये तथा उन्हें धर्मनीतिकी शिक्षा देनेके लिये देशी भाषामें भी रचना होनेकी आवश्यकता हुई थी। बुद्धदेव तथा महावीर स्वामीने पहले पहल जनसाधारणकी बोधगम्य भाषाका ही आश्रय किया था एवं उनके अनुवर्त्ती तथा तत्परवर्त्ती बौद्ध और जैन राजाओं एवं धर्मप्रचारकोंने उनकी ही नीतिका आश्रय लिया था। इस तरह बौद्ध तथा जैनियोंके हाथोंसे देशप्रचलित भाषाके संस्कार तथा देशीय साहित्यका सूत्रपात हुआ।

पालवंशीय राजाओंके समय जो सब नीति तथा स्तुति-गीत प्रचलित हुए थे, उनका अधिकांश इस समय विलुप्त हो गया है। योगीपाल, गोपीपाल तथा महीपालके गीत उस विराट् साहित्यकी क्षीणस्मृतिमात्र हैं। आज भी लोग 'धानभानमें महीपालका गीत' कहा करते हैं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि महीपालका गीत जनसाधारणकी दृष्टि तथा श्रुतिके बहिर्भूत हो गया। दिनाजपुर तथा रङ्गपुरकी योगी जातिके मध्य महीपालके संसारत्यागकी स्मृति परिस्फुट है। पालवंशी राजा मदनपालके ताम्रशासनसे भी हम लोग समझ सकते हैं, कि ३य विग्रहपालके पुत्र २य महीपालकी

कीर्त्ति, शिवतुल्य व्यक्ति कह कर सर्वत्र गीतरूपमें गाई जाती थी।

प्रायः १०५३ ई०से ले कर १०६८ ई० पर्यन्त राजा महीपाल विद्यमान थे एवं उस समय उनके संसार-वैराग्यके साथ लोगोंने सर्वत्र ही उनके कीर्त्तिकलापका गीत गाना आरम्भ किया। महीपालकी वह प्राचीन प्रशस्ति हम लोगोंके दृष्टिगोचर न होने पर भी गोपीपाल या गोपीचन्द्रका गीत अभी भी नितान्त दुष्प्राप्य नहीं है। अभी रङ्गपुर तथा दिनाजपुरमें योगी जाति माणिकचाँद तथा गोपीचाँदका गीत गाते हैं।

धर्मकी पूजाके प्रचारके लिये पहले और पीछे जो सब बङ्गला ग्रन्थ रचे गये हैं, वे ही साधारणतः 'धर्ममङ्गल' नामसे प्रसिद्ध हैं।

अपने शून्यपुराणमें रमाई पण्डित धर्मठाकुरको पूजा-पद्धति प्रकाश कर गये हैं, इसलिए वह ग्रन्थ धर्म-पुराणके नामसे परिचित है।

रमाई पण्डितके भाव तथा भाषामें अहिन्दूपनकी गन्ध पाई जाती है। उन्होंने धर्मठाकुरके अलावे किसीको भी नमस्कार नहीं किया। शून्यपुराणमें उन्होंने शून्य-वादकी ही घोषणा की है।

धर्मपुराण तथा धर्ममङ्गल।

धर्ममङ्गलके मतानुसार धर्मपूजा प्रचार करनेके लिये ही लाउसेनका अभ्युदय हुआ था। उनके असाधारण वीरत्व तथा विमल चरित्र प्रसङ्गमें ही आदिगौड़काव्य अथवा धर्ममङ्गलकी सृष्टि हुई। एक समय गौड़वंगमें उनकी अच्छी धाक जम गई थी। इसी कारण वंगीय पञ्जिकाओंमें लाउसेनके नामने अधीश्वरका स्थान पाया है। द्विज मयूरभट्ट हीने सबसे पहिले लाउसेनके माहात्म्यकी घोषणा करनेके लिये अपने धर्मपुराणोंमें गौड़-काव्यकी सूचना की थी।

मयूरभट्टके बाद हम लोग रूपरामको पाते हैं। खेलाराम, माणिकराम प्रभृति धर्ममंगल प्रणेताओंने रूप-रामको "आदि रूपराम" कह कर उल्लेख किया है। मयूरभट्टके धर्मपुराणकी रचना करने पर भी काव्यके हिसाबसे रूपरामके ग्रन्थ ही प्रधान कहे जा सकते हैं एवं इस हिसाबसे रूपराम ही आदिगौड़काव्यके रचयिता हुए।

रूपरामके ग्रन्थ अति वृहत् हैं, उनकी भाषा अति सुललित है, परन्तु बीच बीचमें प्रादेशिक शब्दोंका प्रयोग किया गया है।

रूपरामके बाद खेलाराम तथा प्रभुरामका नामोल्लेख कर सकते हैं। दोनों हीकी रचनायें अति सरल तथा सुललित है एवं दोनों हीके ग्रन्थ अति वृहत् हैं।

इसके बाद माणिकराम हुए। उच्चश्रेणीके ब्राह्मणोंके मध्य माणिकराम गांगुलि हीने सम्भवतः प्रथम धर्म-मंगल रचना की थी। माणिक गांगुलिका धर्ममंगल १५४७ ई०में रचा गया।

माणिक गांगुलिके समय या उसके कुछ दिन बाद ही सीताराम दासके "अनाद्यमंगल"की रचना हुई। रूपराम, खेलाराम, माणिकराम प्रभृतिने जिस तरह धर्मके स्वप्नादेशसे अपने अपने "धर्ममंगल" गानकी रचना की थी, ठीक उसी तरह सीताराम दास भी स्वप्नमें गजलक्ष्मीके आदेशसे जामकुड़िके वनमें धर्मका दर्शन प्राप्त करके अपना अभीष्ट काव्य लिखने बैठे। वर्द्धमान जिलान्तर्गत इन्दासके दक्षिण राढ़ीय कायस्थ ओम् वंशमें सीताराम-दासका जन्म हुआ था।

इसके बाद हम लोग रामकृष्णके छोटे भाई कवि राम-नारायणका नामोल्लेख करेंगे। इनके द्वारा रचित धर्म-मंगल ग्रन्थ भी अतिवृहत् हैं। रामनारायण एक कट्टर शाक्त थे। उनके पूर्ववर्त्ती कवियोंकी तरह धर्मठाकुरको ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरके जनक कह कर घोषणा करने पर भी उन्होंने अपने ग्रन्थोंके पन्ने पन्नेमें आदिशक्तिको ही प्रधानता स्थापना करनेकी चेष्टा की है।

इसके बाद द्विज रामचन्द्र तथा श्याम पण्डितके धर्ममंगलोंका उल्लेख कर सकते हैं।

अनन्तर हम लोग दक्षिण राढ़ीय कैवर्त्त रामदास आदकका एक 'अनादिमंगल' पाते हैं। यह ग्रन्थ पहलेके सभी धर्ममंगलोंसे बड़ा है।

रामदासके बाद चक्रवर्त्ती घनरामने १७१३ ई०में श्री-धर्ममंगल या गौड़काव्य प्रकाश किया। घनरामके पिता-का नाम गौरीकान्त, माताका नाम सीता, एवं मातामह-का नाम गङ्गाहरि था। कौकुसारीके राजकुलमें गङ्गा-हरिका जन्म हुआ था। घनराम रामपुरकी पाठशाला

(टोल) में पढ़ते थे। थोड़ी उमरमें ही उन्होंने कविता-नैपुण्य दिखा कर कविरत्नकी उपाधि प्राप्त की।

मयूरभट्टसे ले कर घनराम तकके कवियोंने जिस प्रकार लाउसेनको काव्यका नायक बना कर धर्ममंगल वा गौड़ काव्य प्रचार किया, सहदेव चक्रवर्त्तीके ग्रन्थमें उस प्रकार कुछ भी न पाया। कवि सहदेवके वृहत् ग्रन्थमें लाउसेनका प्रसंग नहीं है। सहदेवका आदर्श रमाई पण्डितका शून्यपुराण है। शून्यपुराणके मतानुसार सहदेवका ग्रन्थ रचित होने पर भी वे यह बात स्वीकार नहीं करते। उन्होंने "आदिपुराण" और "अनिलपुराण" कह कर अपने ग्रन्थका परिचय दिया है।

ऊपर जिन सब कवियोंका नामोल्लेख किया गया, उनमेंसे कवित्वमें, पदलालित्यमें, स्वभाववर्णनमें और उद्दीपनाके गुणमें कवि सहदेव चक्रवर्त्ती सभी कवियोंसे उच्चासन पानेके अधिकारी हैं।

घनराम चक्रवर्त्तीकी ओजस्विनी लेखनीके गुणसे जिस प्रकार धर्मपुराणका मूल बौद्धभाव छिप गया है, कवि सहदेवके वर्णनागुणसे भी उसी प्रकार शून्यपुराणके स्पष्ट बौद्धप्रभावका निदर्शन एकदम हिन्दूभावापन्न हो गया है। सहदेवके हाथसे धर्मठाकुरने मानो हिन्दू-देवता धर्मराज यमका रूप धारण किया है।

धर्ममङ्गलोंका सिर्फ संक्षिप्त परिचय दिया गया। इसके सिवा और भी कितने धर्ममङ्गल हैं जो धर्म-पण्डित वा डोमपण्डितोंके घर अच्छी तरह रखे हुए हैं। वे जनसाधारणके हाथ सहजमें लगनेको नहीं हैं।

नीलार वारमास।

धर्मके गाजनके समय डोमजातीय गाजनके संन्यासी किसी किसी स्थानमें 'नीलार वारमास' गान करते हैं। उस गानकी रचनाशैली देखनेसे मालूम होता, कि यह बहुत कुछ बौद्धयुगकी रचना है।

डाक पुरुषका वचन।

इस देशमें डाकपुरुषके वचन नामसे बहुत दिनोंसे कुछ वचन प्रचलित हैं। उनकी भाषाकी आलोचना करनेसे वह बहुत प्राचीन समझी जायगी।

खनाका वचन।

खनाके वचनोंको भी बहुतेरे बौद्धयुगकी रचना समझते हैं, किन्तु हम वैसा नहीं समझते। खनाके वचनोंकी भाषा हम एक व्यक्तिकी रचना नहीं मानते। समय समय पर जनसाधारणकी भलाईके लिए बहुदर्शी ज्योतिर्विदुसे कृषिकार्य्य निपुण गृहस्थोंके हाथ भी लगे हैं, उसीसे खनाके वचनोंमें बौद्ध और हिन्दू दोनों प्रभावका निदर्शन मिलेगा।

बौद्धरक्षिका।

बौद्धप्रभाव बहुत दिन गौड़वङ्गसे तिरोहित होने पर भी चट्टग्राम अञ्चलमें आज भी बौद्ध-समाज विद्यमान है। उन लोगोंके धर्मग्रन्थ पाली वा मगी भाषामें अवश्य लिखे हैं। जनसाधारणको समझानेके लिए वङ्गभाषामें कोई कोई ग्रन्थ अनूदित वा सङ्कलित नहीं हुआ है, सो नहीं। पर हां, उन सब ग्रन्थोंका अभी कम प्रचार है। 'बौद्धरञ्जिका' नामक एकमात्र चट्टग्रामी बौद्धग्रन्थका संधान पाया गया है। यह बौद्धरञ्जिका 'थादुत्तां' नामक मगी बौद्धग्रन्थका भावानुवाद है। इसमें बुद्धदेवकी बाल्य-लीलासे ले कर धर्मप्रचार तक सविस्तर हाल लिखा है। इस कारण वह ग्रन्थ बौद्ध समाजको अति प्रिय वस्तु है। नीलकमल दास इस ग्रन्थके रचयिता हैं। चट्टग्राम पहाड़ी प्रदेशके राजा श्रीधरम् बक्स खाँ बहादुरकी पत्नी कालिन्दी रानीकी आज्ञासे यह ग्रन्थ रचा गया था।

शैवप्रभाव।

वङ्गालका प्राचीन इतिहास इस बातका साक्ष्य-प्रदान करता है, कि परम माहेश्वर सेनराजाओंने ही बौद्धपालराज्य पर अधिकार किया। शैवके हाथसे बौद्धको पराजय हुई तथा शैवलोगोंने ही बौद्ध-समाजको आत्मसात् करनेकी चेष्टा की। नेपालमें शैव और बौद्धोंके मध्य इस प्रकार एकीकरणकी प्रथा आज भी प्रचलित देखी जाती है।

शिवायन और मृगलुब्ध-संवाद।

शिवमाहात्म्यके सम्बन्धमें जो सब ग्रन्थ हमारे हाथ लगे हैं, उनमें रामकृष्णदास कविचन्द्रका शिवायन सबसे प्राचीन है। इस शिवायनमें ३०० वर्षकी हस्तलिपि हमने देखी है, इस कारण कविचन्द्र रामकृष्ण उससे भी बहुत पहलेके आदमी हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

रामकृष्ण एक सुकवि थे। उनकी रचित शिवकी

देवलीला मनोहर और सुललित है। कवि एक कट्टर शैव थे, यह उनकी कवितासे स्पष्ट मालूम होता है।

रामकृष्णके बाद रामराय और श्यामराय नामक दो कवियोंने 'मृगव्याध-संवाद' नामक ग्रन्थमें शिवमाहात्म्य प्रचार किया।

द्विज रतिदेव चट्टग्रामके अन्तर्गत चक्रशालानिवासी थे। उनके पिताका नाम गोपीनाथ और माताका नाम वसुमती था। १५९६ शक (१६७४ ई०)में उन्होंने मृगलुब्ध नामक ग्रन्थ लिखा।

कविचन्द्र रामकृष्ण पश्चिम वङ्ग तथा तत् परवर्ती उक्त कविगण पूर्ववङ्गवासी थे। इस कारण उन लोगोंके ग्रन्थमें अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाका प्रभाव दिखाई देता है।

द्विज भगीरथ और द्विज हरिहरसुत शङ्कर कविने 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक एक शिवमाहात्म्यकी रचना की। इन दोनों ग्रन्थोंमें दो सौ वर्षकी पुस्तकें पाई गई हैं। इस देशमें रामेश्वरका शिवायन वा शिवसंकीर्त्तन ही विशेष प्रचलित है। किन्तु वह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है।

शिवमाहात्म्यसूचक स्वतन्त्र ग्रन्थ अधिक संख्यामें नहीं मिलने पर भी परवर्त्ती शाक्तप्रभावके समय जिन सब मङ्गल-साहित्यकी सृष्टि हुई है उसमें विशेष भावसे शैवोंके असाधारण प्रभावका परिचय पाया गया है। वङ्गीय प्रत्येक हिन्दू गृहस्थको नित्य शिवपूजा करनेकी जो विधि प्रचलित है वह उसी शैव-प्रभावका ज्वलन्त निदर्शन है।

शाक्त-प्रभाव।

तान्त्रिक प्रभाव विस्तारके साथ गौड़वङ्गमें शाक्त-प्रभावका सूत्रपात हुआ। सभी बौद्ध पालराजगण बौद्ध-तान्त्रिक तथा आर्यतारा, वज्रवाराही, वज्रभैरवी आदि शक्तिके उपासक थे। उनके समय बौद्धशाक्तकी संख्या ही अधिक हो गई थी। पीछे शैवोंके पुनरभ्युदय कालमें बहु-तान्त्रिक शैवसम्प्रदायभुक्त हुए थे। शैवगण पहले जो जनसाधारणके बीच शिव-माहात्म्य प्रचार कर उन्हें अपने दलमें मिलाते थे, पीछे उसका बिलकुल उलटा देखा गया। भक्तकी नित्य साहाय्यकारी भक्तप्राण भगवतीके प्रभावने ही कुछ समय बाद जनसाधारणके ऊपर आधिपत्य जमाया। शीतला, विषहरी, मङ्गलचण्डी, षष्ठी आदि देवीकी पूजा ही जनसाधारणके बीच प्रचलित हुई।

शीतलाकी पूजा वङ्गालमें तमाम प्रचलित है। गौड़-वङ्गमें वसन्तरोगके प्रादुर्भावके साथ शीतला पूजा भी सर्वत्र प्रचलित हुई। उसके साथ साथ शीतलाका गान भी रचा गया। अनेक कवि 'शीतला-मङ्गल'की रचना कर गये हैं,—वङ्गके नाना स्थानोंमें बड़ी धूमधाम-से शीतलापूजाके समय वे सब मङ्गल गाये जाते हैं। वे सब गान डोम पण्डितोंके निजस्व होनेके कारण उन्हें पानेका उपाय नहीं। उनमेंसे पांच कवियोंके केवल पांच शीतलामङ्गलका पता चला है। उन पांचोंके नाम हैं, कविवल्लभ दैवकीनन्दन, नित्यानन्द, चक्रवर्त्ती, कृष्णराम, रामप्रसाद और शङ्कराचार्य। इन कवियोंमें-से दैवकीनन्दनको इन बाकी सभी कवियोंसे प्राचीन समझते हैं।

कवि कृष्णराम, रामप्रसाद तथा शङ्कराचार्यने भी शीतलामङ्गलकी रचना की है। उक्त सभी कवियोंमें कवि कृष्णरामकी रचना प्राञ्जल, मनोहर और कवित्व-पूर्ण है। कृष्णरामका 'मदनदासका पाला' एकदम नया है। जो हो, शीतलामङ्गलके पाले हिन्दू कवियोंके हाथ पड़ कर बहुत रूपान्तरित हो गये हैं, फिर भी उन सब ग्रन्थोंमें सुदूर अतीतकी क्षीणस्मृति अङ्कित है। वह स्पष्ट चित बौद्ध शाक्त-समाजका अन्तिम निदर्शन है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय नेपाल जा कर देख आये हैं, कि वहां जहां जहां पर तन्त्रोक्त लोकेश्वरादिका देवालय है, वहां हारीतीदेवी अवस्थान करती हैं। बौद्ध हारीती भी यहांकी शीतला-की तरह वसन्त-व्रण व्याधिनाशिनी है। वङ्ग-देशमें जहां जहां धर्म-मन्दिर है, वहीं वहीं पर मानो शीतलाका अवस्थान स्वतःसिद्ध है। साधारणतः धर्म-पण्डित वा डोमपण्डित शीतलाकी पूजा किया करते हैं। आज भी वे लोग वसन्तरोग-चिकित्सामें सिद्धहस्त समझे जाते हैं। धर्ममङ्गल-प्रसङ्गमें धर्मपण्डितोंके प्रभावका परिचय दिया गया है। उनका प्रभाव नष्ट होने पर उन लोगोंने बौद्ध-तान्त्रिक देवी हारीतीको शीतला-

मूर्त्तिमें हिन्दू-समाजमें हाजिर किया था। आखिर बङ्गमें कवि नित्यानन्दके 'वसन्तकुमारी' अनुग्रह-विस्तारके साथ अनिच्छा रहते हुए भी शैव और वैष्णवगण रोग-नाशके लिये शीतला पूजा करने बाध्य हुए थे। जो धर्म पण्डित हिन्दू-समाजके बाहर पड़े थे, हिन्दू-समाजमें शीतलापूजा प्रचारके साथ उन लोगोंने बहुत कुछ विलुप्त सम्मान प्राप्त किया। दूसरे समय हिन्दू लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं सही, पर शीतलापूजाके समय वे लोग हिन्दूके घर आवालवृद्धवनितासे पूजा पाते हैं। शीतलापूजा प्रचारके साथ शीतलापूजक धर्मपण्डितोंने 'शीतला पण्डित' नामसे प्रसिद्धि पाई है। शीतला पण्डितोंकी पूजिता शीतला-प्रतिमा भावप्रकाश वा पिच्छिलातन्त्रोक्त देवीमूर्त्ति नहीं है। शीतला पण्डितोंकी शीतलाके हाथ पैर नहीं है, सारे शरीरमें सिन्दूर लिपा है, शङ्ख वा धातुखचित व्रणचिह्न अङ्कित है, मुंहमें वसन्तका चिह्न दिखाई देता है। नेपाल-की बौद्ध हारीतीकी मूर्त्ति भी उसी तरह है। शीतला पण्डित आज भी शीतला-मङ्गल गाते हैं। उन लोगोंके पास शीतलाके अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें वे छिपाये रखे हुए हैं, किसीको भी देखने नहीं देते।

विषहरीका गान वा पद्मापुराण (मनसामङ्गल)

बङ्गसाहित्यमें देवीपूजाका प्रथम आदर्श विषहरी है। ये सर्पकी अधिष्ठात्री हैं। पूर्वतन हिन्दूसमाजमें इनका स्थान कहां था, प्राचीन पुराणमें उसका निदर्शन नहीं है। परन्तु भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणोंके आधु-निक अंशमें इनका नाम तो पाया गया है, पर वह भी ८वीं सदीके पीछेका है। जो हो, उसके भी बहुत पीछे विषहरी, मङ्गलचण्डी आदिने बङ्गसाहित्यमें स्थान पाया है।

मनसाकी पूजा करनेसे सांपका भय जाता रहता है। वे विष हरण करती हैं, इस कारण उनका विषहरी नाम हुआ है। विषहरीका गान वा मनसामङ्गल सैकड़ों कवि रच गये हैं पर उनमेंसे किस कविने इसकी प्रथम रचना-की, उसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। विजयगुप्तने १४०१ शकमें अपने पद्मापुराण वा मनसामङ्गलमें लिखा है, कि विजयगुप्तके समय अर्थात् साढ़े चार सौ वर्ष पहले हरिदत्तके गानका लोप हुआ था। इस हिसाबसे हम लोग हरिदत्तको कमसे कम ६०० वर्ष पहलेका आदमी मान सकते हैं। हरिदत्तको किसी किसीने कायस्थ कहा है। इन कायस्थ कविको ही मनसामङ्गलके आदिकवि मान सकते हैं।

इसके बाद नारायणदेवका पद्मपुराण है। नारा-यणदेवके निज परिचयसे जाना जाता है, कि वे जातिके कायस्थ थे, मौद्गल्य गोत्र था, देव पदवी थी। इनके पूर्वपुरुषका वास मगधमें था। इसके बाद वे राढ़में और राढ़से बोरग्राममें आ कर बस गये। (बोरग्राम मैमनसिंह जिला किशोरगञ्ज महकूमेके अन्तर्गत है) इन्हें १४वीं सदीका आदमी मान सकते हैं।

नारायणदेवके बाद हम विजयगुप्तका नाम पाते हैं। विजयगुप्तने १४०१ शक (१४७९ ई०)में पद्मपुराण वा मनसा-मङ्गल प्रणयन किया।

हरिदत्त, नारायणदेव और विजयगुप्तको आदर्श कर बहुत-से कवि मनसामङ्गल लिख गये हैं। अकारादि वर्णानुक्रमसे ५९ कवियोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं—

अनूपचन्द्र, आदित्यदास, कमललोचन, कवि कर्णपुर, कृष्णानन्द, केतकादास क्षेमानन्द, पण्डित गङ्गादास, गङ्गादास सेन, गुणानन्द सेन, गोपी-चन्द्र, गोलोकचन्द्र, गोविन्ददास, चन्द्रपति, जगन्-वल्लभ, विप्र जगन्नाथ, जगन्नाथ [illegible]न, जगमोहन मित्र, जयदेव दास, द्विज जयराम, विप्र जानकीनाथ, जानकी-नाथ दास, नन्दलाल, नारायण, वलराम द्विज, वल-राम दास, वाणेश्वर, मधुसूदन दे, यदुनाथ पण्डित, विप्र रतिदेव, रतिदेव सेन, रमाकान्त, द्विज रसिकचन्द्र, राजा राजसिंह (सुसङ्ग), राधाकृष्ण, रामचन्द्र, रामजीवन विद्याभूषण, विप्र [illegible]मदास, रामदास सेन, [illegible], [illegible], द्विज वंशीदास, वंशीधन, [illegible], [illegible]-मालीदास, वर्द्धमानदास, वल्लभ घोष विजय, विप्रवान, विश्वेश्वर, विष्णु [illegible], षष्ठीवर सेन, सीतापति, सुगन्धि-दास, सुखदास, सुदामदास, द्विज हरिराम, हृदय ब्राह्मण।

उन सब कवियोंके मध्य पूर्व बङ्गवासी कविकी संख्या ही अधिक है। केतकदास क्षेमानन्द, जगमोहन मित्र आदि पश्चिम-बङ्गवासी कविकी संख्या थोड़ी है।

उपरोक्त कवियोंके मध्य क्षेमानन्द दासका मनसा-मङ्गल भावमें, भाषामें और वर्णनमें अपेक्षाकृत मनोहर मालूम होता है।

पूर्व वङ्गके आधुनिक मनसाभक्त कवियोंमें श्रीराम जीवन विद्याभूषण प्रधान हैं। विद्याभूषणी मनसामङ्गल १६२५ शक (१७०३ ई०)-में रचा गया। मनसा-पाञ्चाली-कारोंमें एक राजकविका परिचय पाते हैं। वे सुसङ्गके राजा राजसिंह थे। प्रायः १५० वर्ष पहले उन्होंने मनसामङ्गलकी रचना की।

मनसा-माहात्म्य उपलक्षमें चांद सौदागर और वेहुला वा विपुलाका चरित्र-वर्णन करना ही मनसामङ्गल वा पद्मपुराणका लक्ष्य है। वङ्गके ग्राम्य कवियोंने चांद सौदागरका मानसिक तेजस्विता और इष्टदेवके प्रति ऐकान्तिक-निष्ठाका परिचय दिया है वह किसीसे भी छिपा नहीं है। ग्राम्य कविके हाथसे सती वेहुलाकी पतिभक्तिका जैसा आदर्श चित्रित हुआ है, जगत्‌के किसी भी स्थानमें किसी कविके हाथसे वैसा सती-चरित्र अङ्कित नहीं देखा जाता।

प्रायः सभी मनसामंगलमें पूर्वतन धर्म और शैव प्रभाव-की छाया देखी जाती है। मनसामंगलके अधिकांश प्राचीन कवि ही महाशून्य धर्मनिरञ्जन और योगेश्वर शिव-की पहले ही वन्दना करनेको वाध्य हुए हैं। यहां तक कि मनसाका माहात्म्य-प्रचार करनेके पहले वहुतसे प्राचीन कवि सवसे पहले शिवलीलाका ही गान कर गये हैं। आज भी ज्येष्ठ मासकी शुक्ला दशमीके दिन वङ्गवासी गृहस्थमात्र ही मनसा-पूजा करते हैं।

मङ्गलचण्डीका गान वा चण्डीमङ्गल।

मङ्गल-चण्डीका गीत वहुत पहलेसे वंगालमें प्रचलित है। महाप्रभु चैतन्यदेवके आविर्भावके पहले हीसे मंगलचण्डीका गीत गाया जाता था। इस चण्डीका गीत दो धारामें गाते थे—एक धाराका नाम साधारणतः शुभचण्डी और दूसरी धाराका नाम मंगलचण्डी है। इन दोनों धाराओंके मध्य शुभचण्डीकी पांचाली और व्रत-कथा ही अपेक्षाकृत प्राचीन है। पल्लीग्रामवासी हिन्दू-गृहस्थ शुभचण्डीका गान वड़ी भक्तिसे सुनते थे। वही गान पीछे व्रत-कथामें परिणत हुआ। हमें विश्वास होता है, कि पालराजाओंके समय अर्थात् देशी साहित्यमें संस्कृत भाषाका प्रभाव घुसनेके पहले शुभचण्डीको कथाने स्थान पाया था। वही शुभचण्डी प्राकृत आकार धारण कर 'सुवचनी' रूपसे हिन्दू समाजमें प्रसिद्ध हुई हैं। सभी मङ्गल कर्मोंमें शुभचण्डीकी पांचाली गाई जाती थी। आज भी वंग-रमणियां शुभ कर्मोंमें सुवचनी-की पूजा करतीं और सुवचनीकी कथा सुनती हैं।

सुवचनीकी कथा वंगाली-गृहिणीमात्रके मध्य प्रचलित रहने पर भी वंगभाषाकी अति प्राचीन सुवचनी-के पांचाली-गान पुरुषोंके अयत्नसे अधिकांश विलुप्त हो गये हैं। द्विजवर, षष्ठीवर आदि रचित "सुवचनीकी पांचाली" पाई गई है।

मंगलचण्डीके गानोंकी रचना करके वहुतसे कवियों-ने ख्याति प्राप्त की है। जिस तरह हिन्दुओंके आदि संस्कृत शास्त्रसूत्रोंमें लिखे हैं, ठीक उसी तरह वंगला भाषामें भी देव-देवियोंके माहात्म्य सूचक ग्रन्थ अति संक्षेप-से सूत्रोंमें ही लिखे गये हैं। वे सव ग्रन्थ लोगोंके आग्रह-से परवर्त्ती कवियोंके द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

मंगलचण्डीकी जितनी पांचालियां हम लोगोंके हस्त लगी हैं, उनमें द्विज जनार्दनके वाद माणिक दत्तके ग्रन्थ ही उपस्थित सभी ग्रन्थोंको अपेक्षा अधिक प्राचीन ज्ञान पड़ते हैं। उनकी पांचालीसे जाना जाता है, कि गौड़वंगके मध्य लक्ष्मी सरस्वतीके प्रिय वरपुत्रोंके वास स्थान प्राचीन गौड़ नगरीके निकटवर्त्ती किसी स्थानमें माणिकदत्त का वास था। उन्होंने प्राचीन गौड़ अञ्चल-की निकटवर्त्तिनी महानन्दा, कालिन्दी, पुनर्भवा तथा टांगन नदी, मोड़ग्राम, छात्याभात्याके विल तथा गौड़े-श्वरीका उल्लेख किया है। उन्होंने भगवतीके स्तवके समय उनको द्वारवासिनी कह कर पुकारा है। प्राचीन गौड़के निकट चण्डीपुर ग्राममें रणचण्डी अथवा द्वार-वासिनी देवीका एक विशाल मन्दिर था, इस समय उसका भग्नस्तूप वहां पड़ा है। रणचण्डिका प्राचीन गौड़ राजधानीकी रक्षयित्रीरूपमें द्वार-रक्षा तथा मंगल-विधान करती थीं, इसी कारण वे 'द्वारवासिनी' तथा मंगलचण्डी इन दोनों ही नामोंसे विख्यात थीं। गौड़के पूर्वतन हिन्दू तथा वौद्धराजायें रणचण्डीकी

पूजा करते थे। गौड़नगरके ध्वंससाधनके साथ साथ रणचण्डीका मन्दिर भी परित्यक्त हुआ। रणचण्डीका विशाल मन्दिर जिस समय दर्शकोंके मनमें विस्मय उत्पादन करता था, जिस समय सैकड़ों यात्री वहां जा कर उनकी पूजा करते थे, उसी समय अर्थात् गौड़नगरकी समृद्धिकी अवस्थामें माणिकदत्तने मंगलचण्डीके गानोंकी रचना की थी। विषहरीके गान-रचयिता हरिदत्त जिस तरह काने थे, उसी तरह माणिकदत्त भी काने तथा लंगड़े दोनों ही थे। पहले ही लिख चुके हैं कि बौद्धराजाओंके आधिपत्य कालमें उनके उत्साहसे ही रमाई पण्डितने वंगभाषामें शून्यवादप्रकाशक शून्यपुराण प्रकाश किया था। गौड़ाधिप बौद्ध-भूपालोंके आधिपत्य विलुप्त होने पर भी शून्यवादियोंने जनसाधारणके मनसे छिन्नमूल होनेका अवसर नहीं पाया। इसीलिये हम लोग माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी'में उसी बद्धमूल शून्यवाद तथा शून्यमूर्त्तिधर्मसे आदिसृष्टिका प्रसंग पाते हैं।

माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के अनुसार पहले कलिंग नगरमें, पीछे गुजरातमें एवं उज्जेन नगरमें मंगलचण्डीकी पूजाका प्रचार हुआ। माधवाचार्य, कविकंकण मुकुन्दराम प्रभृतिकी कितनी ही रचनायें पौराणिक मतानुसारिणी हैं, किन्तु माणिकदत्तकी 'मंगलचण्डी' के साथ हिन्दूपुराणका कोई संस्रव नहीं देखा जाता। द्विज जनार्दनके ग्रन्थोंकी तरह माणिकदत्तके ग्रन्थमें भी उस तरहके कवित्व, लालित्य अथवा वर्णनामाधुर्य नहीं हैं, यह मानों पद्यकी गन्धयुक्त गद्य-रचना है।

द्विज जनार्दनके समान ही द्विज रघुनाथकी मंगलचण्डिकाकी पांचाली पाई गई है। इस ग्रन्थकी रचनाप्रणाली द्विज जनार्दनकी रचनाकी तरह ही है। इस ग्रन्थमें भी उस तरहके कवित्व अथवा माधुर्य नहीं हैं,—कालकेतु, धनपति सौदागर तथा श्रीमन्त सौदागरके उपाख्यान सीधी भाषामें अति संक्षेपमें विवृत हुए हैं।

माणिकदत्तके समान ही मदनदत्त-रचित एक मंगलचंडी पाई गई है, यह ग्रन्थ माणिकदत्तका परवर्त्ती-सा जान पड़ता है। कविने बीच बीचमें कवित्वका परिचय दिया है।

माणिकदत्त तथा मदनदत्तके बाद मुक्तारामसेनकी चंडी अथवा 'सारदामंगल'का उल्लेख कर सकते हैं। यह ग्रन्थ (१४६६ शक) १५४७ ई०में रचा गया।

इसके बाद देवीदास सेन, शिवनारायणदेव, क्षितिचन्द्र दास प्रभृति रचित कई एक छोटी छोटी 'मंगलचंडी' पाई गई हैं। इनमें कितने ही ग्रन्थ 'नित्य मंगलचंडीकी पांचाली' नामसे विवृत हुए हैं। इन सभी छोटे छोटे ग्रन्थोंको एक समय मंगलचंडीके भक्तगण नित्य दिन पाठ अथवा श्रवण करते थे।

पहले ही लिख चुके हैं कि सूत्रग्रंथरूप मंगलचंडीकी आदि पांचालियां धीरे धीरे वर्द्धितकलेवर हो कर 'जागरण'के नामसे विख्यात हुई। ये जागरण सात दिन तथा आठ रात्रि गाये जाते हैं, इसीलिये इनका 'अष्टमंगला' नाम हुआ है। जागरणमें मुक्तारामका नाम पहले ही पाया जाता है।

उक्त कवियोंके मध्य बलराम कविकंकणकी मंगलचंडी अति प्राचीन है। मेदनीपुर तथा बांकुड़ामें बलरामकी चंडीके गान प्रचलित थे।

कोई कोई कहते हैं, कि बलराम कविकंकण ही मुकुन्दरामके शिक्षागुरु थे। किन्तु 'गीतोंके गुरु'के उल्लेखसे मालूम पड़ता है, कि उनके ही गान मुकुन्दरामके आदर्श हुए थे। बलराम, मुकुन्दरामके पूर्ववर्त्ती होने पर भी किस समय पैदा हुए थे, इसका ठीक पता नहीं चलता।

बलरामके बाद माधवाचार्यका नाम मिलता है। २१० वर्षके प्राचीन कृष्णरामके ग्रन्थसे पता चलता है कि इसके पहले माधवाचार्यके गाने दक्षिणराढ़में विशेष प्रचलित थे।

कविकंकण मुकुन्दरामने १५१५ शकमें अर्थात् माधवाचार्यके 'जगरण' रचित होनेके १४ वर्ष बाद अपनी अपूर्व कवि कीर्त्ति अभयामंगलमें 'देवीकी चौंतीशा' समाप्त की। इस तरह दोनोंका एक ही आदर्श होना कोई आश्चर्य नहीं।

माधवाचार्यकी रचनामें सरल प्राकृतिक चित्र परिव्यक्त है। उन्होंने छोटी घटना तथा छोटा विषय ले कर ही जिस तरह ग्राम्यचित्र अङ्कन किया है, वह अति

स्वाभाविक एवं सुललित है। यदि कविकङ्कण मुकुन्दराम असाधारण प्रतिभा ले कर जन्म ग्रहण नहीं करते, तो हम-लोग माधवाचार्यको ही चण्डीकविका श्रेष्ठ आसन प्रदान करनेमें अग्रसर होते। दोनों कवियोंकी रचनायें अनेक स्थानोंमें मिलती जुलती हैं एवं उनके पाठ करनेसे मालूम पड़ता है मानो माधवाचार्यकी वातोंको ही मुकुन्द-रामने उज्ज्वल भाषामें एवं अद्वितीय कवित्वनैपुण्यमें परिवर्द्धित कर दिया है।

कविकङ्कणके प्रभावके समय माधवाचार्यके गान दक्षिण राढ़में उस तरह आदृत न हो सके। कविके वंशधरोंने पूर्व-वंगालमें जा कर वास किया। उन्हींके साथ साथ कविके जागरण भी पूर्व-वंगालमें लाये गये। पूर्व-वंगाल तथा चट्टग्राममें आज भी माधवाचार्यके जागरण लोग अत्यन्त आदरके साथ सुना करते हैं।

कविकङ्कण मुकुन्दरामका परिचय पहले ही दे चुके हैं।

कवि कङ्कणकी चण्डीमङ्गल अथवा अभयामङ्गल वङ्गाली ग्राम्यकवियोंकी अद्वितीय कीर्त्ति है। क्या स्वभाव वर्णनामें, क्या सामाजिक चित्र अङ्कनमें, क्या देशकी तत्कालीन रीति नीति प्रदर्शन करने आदि किसी भी विषयमें, आज तक वङ्गालके कोई भी कवि कङ्कणका मुकाविला न कर सके हैं। कविकङ्कणने अति सामान्य विषयोंके वर्णनमें भी जिस तरह अन्तर्दृष्टि तथा प्रतिभाका परिचय दिया है, उस तरह और किसी ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता।

चट्टग्रामके कायस्थ कवि भवानीशङ्कर भी प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले चण्डीका एक जागरण लिख गये हैं। इस जागरणमें भी कायस्थ-कविने असाधारण कवित्व तथा प्रतिभाका परिचय दिया है। उनका चण्डीकाव्य कविकङ्कणके काव्यकी तुलनामें हीन होने पर भी चट्ट ग्रामका गौरव-प्रकाशक माना जाता है। जयनारायण सेन द्वारा रचित एक और चण्डीकाव्य उल्लेखनीय है। ये जयनारायण वैद्यराज राजवल्लभकी जातिके थे। माधवा-चार्य कविकङ्कण भवानीशङ्कर प्रभृतिके ग्रन्थोंमें जिस तरह उच्चभाव तथा भक्तिरसका परिचय पाया जाता है, जयनारायणकी चण्डीमें उनके विपरीत है। ये वैद्यकवि आदिरसके परमभक्त थे।

जयनारायणके समय शिवचरण नामक एक ब्राह्मणने चण्डीके गानोंकी रचना की थी। यद्यपि इसका वर्णनीय विषय तन्त्र तथा मार्कण्डेयपुराणसे लिये गये हैं तथापि इसमें कालकेतुका प्रसङ्ग पा कर हमने इसे मङ्गल चण्डीके गानोंमें ही स्थान दिया है।

कविकंकणके पूर्व इतिहासमें अत्यन्त प्राचीनकाल की एक स्मृति पाई जाती है। उससे मालूम होता है कि कलिंग राज्यमें पहले जंगली असभ्य जातियोंके मध्य ही मंगलचंडीकी पूजा प्रचलित थी। द्विज जनार्दनकी मंगलचण्डीके सूत्रग्रन्थमें भी प्रथम पूजा विस्तारके उपलक्षमें विन्ध्याचालका उल्लेख पाया जाता है। वाक्-पतिके गौड़वधकाव्यका पाठ करनेसे हम लोग जान सकते हैं कि ८वीं सदीके प्रथम भागमें कन्नौजपति यशो-धर्मदेवने जिस समय दिग्विजयके उपलक्षमें विन्ध्याचाल-के जंगलसे हो कर यात्रा की थी, उस समय उन्होंने वहांकी शवर जातिको नरशोणित-लोलुपा महाकालीकी पूजा करते देखा था। इन शवरोंके आचरण व्याघ्रके सदृश थे। अन्तमें शवर जातिके मध्य किसी किसीने तो कलिंगराज्यके कई अंशोंको जीत कर राजपद भी प्राप्त कर लिया था। प्राचीन शिलालिपिसे इसका पता चला है। सम्भवतः वही अतीत कहानी कालकेतुको लक्ष्य करके मंगलचण्डीके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये वर्णन की गई है। असभ्य जातियोंमें ही प्रथमतः मंगलचण्डीकी पूजा होती थी, ऐसा समझ कर ही सम्भवतः सौदागर धनपतिदत्तने उन्हें 'डाकिनीदेवी' कह कर अश्रद्धा दिखलाई थी। अन्तमें गन्धवणिक्-परि वारसे ही अजयनदीके किनारे मंगलचण्डीकी पूजा प्रचलित हुई। यह वहुत दिनोंकी वात है। कारण यह कि हम लोग धर्ममंगलमें भी अजयनदीके तीरवर्त्ती ढेकुराधिपति इच्छाईघोष तथा हरिपालकी कन्या 'कानड़ा' के प्रसंगमें चण्डी-पूजाका आभास पाते हैं। शुभचंडी अथवा मंगलचंडीकी पूजा जिस समय उच्च श्रेणियोंमें होने लगा, उस समय देवीके साथ पौराणिक आद्याशक्तिका अभेदस्थापन करनेकी चेष्टा की गई। इसी कारण परवर्त्ती गौड़मंगल ग्रन्थमें पौराणिक वा आगमोक्त देवीचरित्र मुख्यभावमें एवं कालकेतुका

उपाख्यान गौणभावमें वर्णित देखा जाता है।

कालिकामंगल।

पौराणिकोंके अभ्युदयके समय कालिकादेवीने मंगलचंडीका स्थान धारण किया। इस समय मार्कण्डेयपुराण, कालिकापुराण तथा विभिन्न तन्त्रोंसे सहायता ले कर बहुतसे देवी-मंगलकी रचना होने लगी। उनमें गोविन्ददास, क्षेमानन्द दास, मधुसूदन कवीन्द्र, श्रीनाथ, वनदुर्लभ, द्विज दुर्गाराम, अन्धकवि भवानी प्रसाद, रूपनारायण घोष, कृष्णराम दास, रामप्रसाद सेन, राय गुणाकर भारतचन्द्र, निधिराम कविरत्न एवं द्विज रामनारायणके ग्रन्थोंका परिचय दिया जाता है।

विद्यासुन्दर-कथा।

उक्त कालिकामंगलोंमें गोविन्ददासके ग्रन्थ ही सर्व प्राचीन गिने जाते हैं। गोविन्ददासने १५७१ शक (१५६५ ई०)-में अपने कालिका-मंगलकी रचना की थी। चंडीमंगल जागरणके एक दूसरे प्रधान कवि भवानीशंकरकी तरह इन्होंने भी अपनेको चट्टग्रामान्तर्गत देवग्रामवासी तथा आत्रेय गोत्र नरदासके वंशधर बताया है।

नये शिक्षित सम्प्रदायके भारतचंद्र-ग्रन्थके पाठ करनेसे जो अश्लीलता देख पड़ती है, गोविन्ददासके ग्रन्थोंमें उसका अभाव है। गोविन्ददासके सुन्दर एक मन्त्रतन्त्र-निपुण कालीभक्त थे, सर्वत्र तथा सर्वदा ही उनके चेहरेसे कालीभक्ति टपक रही थी। उनकी असरमान्य-शक्ति तथा देवीभक्तिके प्रभावसे भूखण्ड मानो विदीर्ण हो कर सुरंगमें परिणत हो गया था। गोविन्ददासकी विद्या भी मानो अत्यन्त लज्जाशीला, पतिप्रेमानुरक्ता देवीके भक्तिरसमें आप्लुता है। भारतचन्द्रकी विद्याके समान अति रसिका, अति अधीरा तथा अति वाचाल नहीं है।

गोविन्ददासके बाद कृष्णरामके कालिकामंगलकी रचना हुई। कृष्णरामके बाद रामप्रसाद एवं रामप्रसादके बाद भारतचन्द्रने विद्यासुन्दरकी रचना की।

कृष्णरामके कुछ समय बाद ही क्षेमानन्दने एक कालिकामङ्गलकी रचना की। अभी यह ग्रन्थ नहीं मिलता।

इस समय मधुसूदन कवीन्द्र नामक एक राढ़वासी सुकविने कालिकामङ्गल प्रकाशित किया। कवीन्द्रके बाद रामप्रसाद कविरञ्जनका कालिकामङ्गल है। रामप्रसादसेन एक सुकवि, सुलेखक और एक परम साधक थे। १७५८ ई०में महाराज कृष्णचन्द्रके रामप्रसादको १०० बीघा जमीन देने पर भी कविवर नदियाकी राज सभामें नहीं गये। वे अपनी जन्मभूमि कुमारहट्ट ग्राममें ही रहते थे और वहीं महाराज कृष्णचन्द्रके साथ उनको मुलाकात हुई थी।

अन्नदा-मङ्गलके वचनसे जाना जाता है, कि १६७४ शकमें (१७५२ ई०में) भारतचन्द्रका ग्रन्थ रचा गया। भारतचन्द्र और निधिरामके बाद प्राणराम चक्रवर्त्तीने विद्यासुन्दरकी रचना की। उनकी रचनामें वैसा लालित्य, माधुर्य्य वा शब्दाडम्बर नहीं है। भारतवर्षके विद्यासुन्दरकी तुलनामें प्राणरामका ग्रन्थ नहीं ठहर सकता। आगमानुसार जो सब मङ्गलग्रन्थ रचे गये, उनमें दक्षिण-राढ़ीय कायस्थ-प्रवर रामशङ्करदेवका 'अभयामङ्गल' बहुत बड़ा ग्रन्थ है।

कालिका वा अभयामङ्गलकी तरह बहुतसे कवि मार्कण्डेयपुराणकी चाण्डीका अवलम्बन कर 'कालिकाविलास' 'दुर्गामङ्गल' 'दुर्गाविजय' आदि नामसे कुछ काव्य रचे गये हैं। उन सब ग्रन्थोंमें कालिदासका कालिकाविलास, द्विज कमललोचनका चण्डिकाविजय, रूपनारायण घोष और अन्धकवि भवानीप्रसादका दुर्गाविजय वा चाण्डीमङ्गल उल्लेखनीय है।

भवानीप्रसाद जन्मान्ध और निरक्षर थे सही, पर उन्होंने दैवबलसे जो कवित्वशक्ति ले कर जन्म ग्रहण किया था वह सामान्य नहीं। उनकी रचनामें अच्छा प्रसादगुण है। कहीं कही उन्होंने सप्तशतीचाण्डीके अनुवादमें अच्छे कृतित्वका परिचय दिया है।

भवानीप्रसादके समयमें ही एक दूसरे कविने मार्कण्डेय चाण्डीके अनुवादमें सुतीक्ष्ण प्रतिभा और रचनाके कृतित्वका परिचय देकर अन्धकविको बहुत दूर हटा दिया है। इन कविका नाम रूपनारायण घोष है।

रूपनारायण संस्कृतशास्त्रवित् आद्याशक्तिके उपासक थे। वे मार्कण्डेय चाण्डीका अवलम्बन कर अपना ग्रन्थ

लिखनेको तैयार हुए सही, पर ठीक आक्षरिक अनुवाद न कर सके। कई जगह उन्होंने कालिदासादि महाकवियोंके कवितारत्न और भावराजिको आहरण कर अति निपुणताके साथ सुललित भाषामें उसे अपने ग्रन्थके मध्य निवद्ध किया है। महाकवि कालिदासने रघुवंशके प्रारम्भमें जैसा विनयका परिचय दिया है, कायस्थ कवि रूपनारायणने ठीक उसीका अनुवाद किया है। व्रजलालका चण्डीमङ्गल भी मार्कण्डेय चण्डीका एक अनुवाद है। उनकी भाषामें वहुत कुछ प्राचीनत्व दिखाई देता है।

किस समय व्रजलाल चण्डीका अनुवाद प्रकाशित हुआ, मालूम नहीं। उनकी भाषा देखनेसे मालूम होता है, कि उनका ग्रन्थ भवानीप्रसाद और रूपनारायणके दुर्गामङ्गलसे प्राचीन है। कवि रूपनारायणके वाद कवि कमललोचन चण्डिका-विजय वा कालीयुद्ध ग्रन्थ लिख कर रङ्गपुर अञ्चलमें वहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। यह ग्रन्थ वहुत वड़ा है, १४६ अध्यायमें विभक्त है।

उपरोक्त शाक्त कवियोंको छोड़ कर महाभागवत पुराणोक्त श्रीरामचन्द्रका दुर्गोत्सव अवलम्वन करके भी अनेक कवि दुर्गामाहात्म्यका प्रचार कर गये हैं। उनमें कवि दीनदयालके दुर्गाभक्तिचिन्तामणि और रामप्रसादके दुर्गापञ्चरात्रको उत्कृष्ट ग्रन्थ कह सकते हैं। दीनदयालके वहुत पीछे जगत्‌राम रायके पुत्र रामप्रसादने १६७७ शकके निकटवर्त्ती समयमें दुर्गापञ्चरात्रकी रचना की। कोई कोई कहते हैं, कि रामप्रसादके पिता जगत्‌राम राय ही दुर्गापञ्चरात्रके रचयिता थे। जगत्‌राम राय रामायणके रचयिता थे सही, पर उनके रामायणका अंतिम अंश उनके पुत्र रामप्रसादने ही लिखा है।

रामप्रसादके वाद राजा पृथ्वीचन्द्रने गौरीमङ्गल तथा उसके वाद द्विज रामचन्द्रने दुर्गा-मंगलकी रचना की। राजा पृथ्वीचन्द्रके वाद एक व्यक्ति दुर्गामङ्गल और गौरीविलास लिख कर प्रसिद्ध हो गये हैं। उनका नाम रामचान्द्र मुखोपाध्याय था। अपने काव्यमें वे द्विज रामचंद्र नामसे ही परिचित हैं। इनके वनाये दुर्गामंगल ग्रन्थका एक समय वङ्गाल भरमें आदर था। चट्टग्राममें यह ग्रन्थ 'नल-दमयन्ती' नामसे प्रसिद्ध है।

कविका आदर्श श्रीहर्षका नैषधचरित है। दुर्गामंगलके कुछ अंशोंको नैषधका अनुवाद कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी। मंगल ग्रन्थको छोड़ कर शाक्त उद्देश्य प्रचारार्थ वङ्गभाषामें जो सव ग्रन्थ लिख गये हैं उनमें मुक्ताराम नागका दुर्गापुराण और कालिकापुराण तथा द्विज रामनारायणका शक्तिलोलामृत आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

षष्ठीमङ्गल।

षष्ठोदेवी वङ्गवासो प्रति हिन्दू-गृहस्थके घर पूजित होती हैं। यह षष्ठोदेवी कौन है? किसी प्राचीन स्मृति वा पुराणमें इस षष्ठीदेवीका परिचय नहीं है। आधुनिक ब्रह्मवैवर्त्तमें तथा शाक्तपुराण देवोभागवतमें षष्ठीदेवीका प्रथम उल्लेख मिलता है। षष्ठोके उपासकोंके निकट कृष्णरामके षष्ठोमंगलका ही विशेष आदर हुआ। कृष्णरामके अलावा कविचन्द्र गुणराज आदि रचित अनेक छोटे छोटे षष्ठोमंगल पाये गये हैं।

कमलामङ्गल वा लक्ष्मीचरित्र।

वहुतसे कवि कमलाका माहात्म्य प्रचार करनेके लिये कमलामङ्गल वा लक्ष्मोचरित्र लिख गये हैं। इन सव कवियोंमें गुणराजखान, शिवानन्दकर, माधवाचार्य, भरतपण्डित, परशुराम, द्विज अभिराम, जगमोहन मित्र, रणजित्, रामदास आदिके ग्रन्थ पाये गये हैं।

परशुरामने श्रीवत्सचिन्ताका उपाख्यान ले कर लक्ष्मीका माहात्म्य प्रचार किया है। उनका ग्रन्थ कहो शनिचरित्र, कहीं लक्ष्मोको पांचाली नामसे प्रसिद्ध है। लक्ष्मीमंगलके रचयिताओंमें, क्या कवित्वमें, क्या लालित्यमें, क्या शब्दसम्पद्‌में जगमोहन मित्रकी रचना सर्वश्रेष्ठ है। उनके कमलामङ्गलके वर्णनीय विषय दूसरे लक्ष्मोचरित्रसे विलकुल पृथक् हैं।

जगमोहनने वहुत संक्षेपमें लक्ष्मीभ्रष्ट स्वर्गचित्रको अच्छी तरह चित्रित किया है। जगमोहनके वाद रञ्जितराय दासने १७२८ शकमें कमलाचरित्र प्रकाशित किया। यह कमला-चरित्र मानो गुणराजके सांचेमें ढाला गया है।

सारदा-मङ्गल।

लक्ष्मीकी तरह देवी सरस्वती भी वहुत दिनोंसे जैन,

बौद्ध और हिन्दू-समाजमें पूजा पाती आ रही हैं। उनका माहात्म्य प्रचार करनेके लिये इस देशमें सारदाका मङ्गल गान प्रचारित हुआ था। दयाराम दास वा गणेश मोहनका सारदामङ्गल पाया गया है। वह ग्रन्थ उतना बड़ा नहीं है। उसमें ५०० श्लोक हैं और वह १७ अध्यायमें विभक्त है।

गङ्गामङ्गल।

गंगा बहुत दिनोंसे शिवकी एक शक्ति समझी जाती है। इस कारण बहुत पहले होसे शाक्त-समाजमें गंगा-देवीकी पूजा प्रचलित है। गंगा सभी सम्प्रदायकी उपासिता होने पर भी शाक्तसमाजने गंगाको साकार मूर्त्ति प्रचार करके तमाम उनका माहात्म्य फैला दिया था। वंगालमें ज्येष्ठ मासमें दशहरा मकरसंक्रान्तिके दिन गंगादेवीकी पूजा होती और उनका माहात्म्य गाया जाता है। उस दिन वंगालके अनेक स्थानोंमें 'गंगा-मंगल' गाया जाता था। किसी किसी स्थानमें मुमूर्षु व्यक्तिको गंगा-तट ला कर गंगा-मंगल सुनाया जाता था। बहुतसे कवियोंने गंगामंगल वा गंगाकी पांचाली को लिखा है। उनमें माधवाचार्य, द्विज गौरांग, द्विज कमलाकान्त, जयराम दास, दुर्गाप्रसाद मुखोपाध्याय आदि रचित कुछ ही ग्रन्थ पाये गये हैं।

उक्त कवियोंके अलावा और भी कितने प्रसिद्ध कवि गङ्गाकी वन्दना रच गये हैं। उनमें कविचन्द्र, कविकङ्कण, निधिराम और अयोध्यारामकी वन्दना ही विशेष प्रचलित है।

शाक्त पदकर्त्ता।

शाक्तसमाजमें भी अनेक पदकर्त्ताओंने जन्मग्रहण किया है। उन लोगोंकी मातृभावमय पदावली पर एक दिन बहुतेरे मन्त्रमुग्ध हो गये थे। शक्तिसाधक भक्तकवि रामप्रसादका नाम वंगाल भरमें परिचित है। उनका बनाया शक्तिसंगीत वंगके संगीत सम्प्रदायकी एक अमूल्य वस्तु है।

कविरञ्जन रामप्रसादकी तरह कमलाकान्त भट्टाचार्य भी एक शक्तिसाधक और कवि थे। इनके रचे गानोंमें भी भक्तिके सोते बहते हैं। वर्द्धमान जिलेके अम्बिका-कालनामें कमलाकान्तका जन्म हुआ था। १२१६ साल-में वे महाराज तेजश्चन्द्र बहादुरके सभापण्डित हुए।

वर्द्धमान राजसरकारके दीवान रघुनाथ राय महाशय भी एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ और संगीतरचक थे। उनके सभी संगीत देव-देवी-विषयक हैं। वर्द्धमान कालनाके सन्निकट चूपी ग्राममें ११५७ सालको रघुनाथका जन्म हुआ।

विद्योत्साही नवद्वीपाधिप महाराज कृष्णचन्द्रकी स्मृति वंगसाहित्यमें चिरोज्ज्वल है। उनका जन्म ११११ सालमें और देहान्त ११७२ सालमें हुआ। ये वंग-साहित्यके अद्वितीय उत्साहदाता थे। इनके बनाये अनेक शक्तिसंगीत मिलते हैं। इनकी प्रथमा महिषीके गर्भजात महाराज शिवचन्द्र भी एक प्रसिद्ध शाक्त-पदकर्त्ता और साधक थे। ११९५ सालमें उनका देहान्त हुआ।

फिर महाराज कृष्णचन्द्रकी द्वितीय महिषीके गर्भजात कुमार शम्भुचन्द्र तथा नवद्वीप राजवंश-सम्भूत कुमार नरचन्द्र और महाराज श्रीशचन्द्र आदि भी अनेक शक्ति-सङ्गीत रच गये हैं। इन लोगोंके रचित सङ्गीत बड़े ही प्राञ्जल और मनोहर हैं।

नाटोराधिपति महाराज रामकृष्ण भी एक प्रसिद्ध शक्तिसाधक थे। इनके बनाये अनेक शक्तिसङ्गीत मिलते हैं। ये उन्हीं स्वनामप्रसिद्ध रानी भवानीके दत्तकपुत्र थे। पीछे दाशरथि राय, रामदुलाल सरकार, उनके लड़के आशुतोष देव, काली मीर्जा आदिने शक्ति-सङ्गीतकी रचना की है। आज कल भी अनेक सङ्गीतकारोंने अनेक शक्ति-सङ्गीत रचे हैं।

हिन्दुओंके अलावा शाक्त-धर्ममें विश्वास रखनेवाले कितने मुसलमान कवि भी शक्तिसङ्गीत रच गये हैं। उन लोगोंमें मीर्जा हुसेन अली और सैयद जाफर खाँ इन दोनों कवियोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये दोनों प्रायः एक सदी पहलके आदमी थे। ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके दश साला वन्दोवस्तके कागजमें मीर्जा हुसैन अलीका नाम पाया जाता है। ये त्रिपुराके अन्तर्गत वरदाखातके जमींदार थे। कहते हैं, कि ये कालीपूजा बड़ी धूमधाम-से करते थे।

सौर-प्रभाव ।

सूर्यकी पंचाली ।

बौद्ध, शैव और शाक्त-प्रभावके साथ साथ वङ्गालमें सौर लोगोंका संस्रव हुआ था। शाकद्वीपीय सभी आचार्य ब्राह्मणगण मित्र नामक सूर्यके उपासक थे। उनके यत्नसे भारतवर्षमें तमाम मित्रदेवकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित और मित्रपूजा प्रचलित हुई थी।

सूर्यकी पञ्चालियोंमें द्विज कालिदास और द्विज रामजीवन विद्याभूषणका ग्रन्थ ही अधिक प्रचलित है। इन दोनों ग्रन्थोंमेंसे रामजीवनके ग्रन्थमें बहुत कुछ प्राचीनता देखी जाती है। कवि रामजीवनने १६११ शकमें आदित्य-रचित वा सूर्यकी पञ्चाली लिखी। कालिदासने भी इसी समय सूर्य-कथाका प्रचार किया था।

मुसलमानी अमल ।

अनुवाद साहित्यकी सूचना ।

बौद्ध, शैव और शाक्त-प्रभावकी सूचना मुसलमानी-अमलके बहुत पहले हुई थी। १४वीं सदीके मध्य भागमें हिन्दू मुसलमानका मेल हुआ। इस मेलके फलसे १५वीं सदीके मध्यभागमें राजानुग्रह पानेकी आशासे कोई कोई संस्कृतवित् ब्राह्मण हिन्दूशास्त्रका मर्म समझानेके लिये अनुवाद कार्यमें लग गये।

रामायण ।

गौड़ेश्वरका उत्साह पा कर भाषाकी नींव मजबूत करनेके लिए अनेक वङ्गीय कवि जिन सब संस्कृत ग्रन्थोंका वङ्गभाषामें अनुवाद कर गये हैं उनमें रामायणके अनुवादको ही सर्वप्रथम कह सकते हैं। रामायणके रचयिता वा अनुवादक भी अनेक हैं। उनमेंसे कृत्तिवास, अद्भुताचार्य, अनन्तदेव, फकीरराम कविभूषण और उनके लड़के गङ्गादास सेन, [illegible] वन्द्य, जगत्वल्लभ, शिवचंद्र सेन, भिषक् शुक्रदास, द्विज रामप्रसाद, द्विज दयाराम, राममोहन और रघुनन्दन गोस्वामी, इन २२ कवियोंका संधान पाया गया है। इन सब रामायण-रचकोंके मध्य कवि कृत्तिवास ही अग्रणी हैं।

कृत्तिवासने १४४० ई० अथवा उसके निकटवर्त्ती किसी समय फुलिया ग्राममें माघमासकी श्रीपञ्चमीके दिन रविवारको जन्म ग्रहण किया। कृत्तिवासी-रामायणकी पाठविकृति अनेक रूपोंमें हो गई है। अतएव कृत्तिवासकी शुद्ध रचनाका रसास्वाद पाठकके पक्षमें असम्भव है। हम लोग जो सब रचना कृत्तिवासकी लिखित कह कर प्राचीन कविके कवित्व गौरवकी स्पर्द्धा करते हैं, हो सकता है कि वह गौरवस्पर्द्धा किसी दूसरेके लिये भी की जाती हो। क्योंकि जयगोपाल तर्कालङ्कारकी तरह और भी कितने तर्कालङ्कारोंने वङ्गला-रामायणकी पाठविकृति की है।

कृत्तिवासकी रचनामें प्रसाद और माधुर्यगुणकी भरमार है। कवितानैपुण्यमें भी वे वङ्गके एक प्रधान कविका आसन पानेके बिलकुल अधिकारी हैं। कृत्तिवासके बाद जितने रामायण रचे गये हैं उनमें 'अनन्त रामायण' ही सबसे प्राचीन है। अद्भुताचार्यरचित एक दूसरा प्राचीन रामायण भी पाया गया है। इन कविका पूर्वनाम नित्यानन्द था। ब्राह्मणवंशमें ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अद्भुताचार्य आख्या ले कर सप्तकाण्ड रामायण प्रकाशित किया।

कृत्तिवासके प्रायः सौ वर्ष पीछे पश्चिम-वङ्गमें एक महाकविने जन्म लिया था। उनका नाम शङ्कर कविचन्द्र है। इन्होंने मल्लवंशीय वनविष्णुपुराधिप गोपाल सिंहके आदेशसे समस्त महाभारतका अनुवाद किया। इस कारण कविने मल्लराजसे पारितोषिक-स्वरूप अनेक ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति और 'कविचन्द्र'-की उपाधि पाई। उनके असाधारण अध्यवसाय और वङ्गभाषाकी सेवाकी ओर ख्याल करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। उनके रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतका अनुवाद तथा दूसरे दूसरे ग्रंथोंको एकत्र करनेसे सचमुच एक विराट् काण्ड बन जायगा। कविचंद्रके रामायणकी रचना अति मधुर, सरस और वैष्णवीय भक्ति-युक्त है।

कविचन्द्रके बाद प्रायः तीन सौ वर्ष हुआ, फकीरराम कविभूषण, भिषक् शुक्रदास, जगत्वल्लभ, भवानीशङ्कर वन्द्य और लक्ष्मणवन्द्यने रामायण प्रकाशित किया। उनमेंसे किसीने तो वाल्मीकि रामायण, किसीने अध्यात्म-रामायण और किसीने वशिष्ठ रामायणकी दोहाई दी है। किन्तु यथार्थमें उन लोगोंके ग्रन्थको उक्त किसी एक मूल रामायणका अनुवाद नहीं मान सकते।

कवि भवानीशङ्करके समय लक्ष्मणवन्द्य नामक एक और कविने जन्मग्रहण किया। इन्होंने भी सप्तकाण्ड रामायणकी रचना की है। लक्ष्मणवन्द्यके वाद गोविन्द वा रामगोविन्द दास नामक एक कायस्थने वृहत् सप्तकाण्ड लिखा। इन पांचों कविने राढ़ वा पश्चिम-वङ्गको उज्ज्वल किया है। उन्हींके समय पूर्ववङ्गमें षष्ठीवर और उनके पुत्र गङ्गादास सेन रामायणकी रचनामें अग्रसर हुए थे।

द्विज दुर्गारामका रचित रामायण पाया गया है। यह रामायण कृत्तिवासके वाद लिखा गया है, यह बात कविने स्वयं अनेक वार स्वीकार की है। इन दुर्गाराम कविका कोई आत्मपरिचय नहीं मिलता। द्विज दुर्गाराम-कृत एक कालिकापुराणका अनुवाद भी पाया गया है।

करीव ३०० वर्ष हुआ वांकुड़ा जिलेके भुलुई ग्राममें ब्राह्मणवंशमें जगत्रामका जन्म हुआ। इन्होंने रामायण और दुर्गापञ्चरात्र ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। किन्तु वे दोमें-से एक भी समाप्त न कर सके। उनके कहनेसे उनके लड़के रामप्रसादने दोनों ग्रन्थ सम्पूर्ण कर डाले।

१६७७ शकमें रामप्रसादी रामायण समाप्त हुआ। रामप्रसादके समय माणिकचन्द्र नामक एक व्यक्तिने रामायणकी रचना की। भवानीदासने जयचन्द्र नामक किसी राजाके आदेशसे 'लक्ष्मण-दिग्विजय' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें कई जगह रामचरण नामक कविकी भणिता पाई जाती है। इसके अलावा रामचरितका अवलम्बन कर वहुतसे कवि खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं। उनमें-से गुणराज खाँके श्रीधर्म इतिहास (अर्थात् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर-संवादमें श्रीरामचरित), रामजीवन रुद्रकी कौशल्याके चौतीसा, सुकवि हरिश्चन्द्रके स्वर्गारोहण गुणचन्द्रके पुत्रके सीताके वनवास, लोकनाथ सेनके लवकुशके युद्ध, रघुप्रणिके कनिष्ठ भवानीनाथके पारिजातहरण, द्विज तुलसीदासके रायवार, भवानन्दके राम-स्वर्गारोहण तथा भवानीदासके लक्ष्मण-दिग्विजय, रामचन्द्रके स्वर्गारोहण और रामरत्नगीताकी रचना उल्लेखनीय हैं।

एतद्भिन्न द्विज दयाराम, काशीराम, जगत्वल्लभ, द्विज तुलसी आदि रचित संक्षिप्त रामायण पाये गये हैं। जो गौरीमंगल लिख कर शाक्त समाजमें प्रसिद्ध हुए हैं, उन राजा पृथ्वीचन्द्रने ही फिर भूपण्डी रामायणकी रचना कर मौलिकता और कवित्वका परिचय दिया है।

कवि शिवचन्द्र सेन भारतचन्द्रके कुछ पीछे आविर्भूत हुए। इनका वनाया हुआ एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम 'शारदामंगल' है। रामचन्द्रकी दुर्गापूजा रामायणमें शारदा-माहात्म्य ज्ञापक है, इसी कारण कविने इस रामायणका 'शारदामंगल' नाम रखा है।

रघुनन्दन गोस्वामिकृत एक रामायण मिलता है। इस रामायणका नाम रामरसायन है। कृत्तिवास और कविचन्द्रके रामायणके वाद जो सव रामायणग्रन्थ रचे गये उनमें यही 'रामरसायन' श्रेष्ठ है। पूर्ववर्त्ती रामायणोंसे इस रामायणकी रचना सुन्दर और सुश्रृङ्खल है।

११६३ सालमें रघुनन्दनका जन्म हुआ। ४५ वर्षकी उमरमें उन्होंने इस रामरसायणकी रचना की।

महाभारत।

जिस प्रकार वहुतसे कवि रामायण वा रामचरितका अवलम्बन कर वृहत् वा खण्डकाव्यकी रचना कर गये हैं, उसी प्रकार अनेक कवि भारतकथा वा महाभारतका वर्णनीय विषय ले कर अनेक काव्य रच कर प्रसिद्ध हो गये हैं। उनमें विजयपण्डित, सञ्जय, कवीन्द्र परमेश्वर, श्रीकरनन्दी, कृष्णानन्द वसु, अनन्त मिश्र, [illegible] घोष, द्विज रामचन्द्र खाँ, शङ्कर कविचन्द्र, रामकृष्ण पण्डित, द्विज नन्दराम, घनश्याम दास, षष्ठीवर और गङ्गादास सेन, उत्कल ब्राह्मण सारण, काशीराम दास, नन्दराम दास, द्वैपायन दास, राजेन्द्र दास, गोपीनाथ दत्त, रामेश्वरनन्दी, त्रिलोचनचक्रवर्त्ती, निमाई पण्डित, वल्लभदेव, द्विज कृष्णराम, द्विज रघुनाथ, लोकनाथ दत्त, शिवचन्द्र सेन, भैरवचन्द्र दास, मधुसूदन नापित, भृगुराम दास, भरत पण्डित, मुकुन्दानन्द, रामनारायण घोष आदि ३५ कवियोंके ग्रन्थ पाये गये हैं। इनके सिवा भवानन्द हरिवंश, सञ्जय और विद्यावागीश ब्रह्मचारीने भगवद्गीताका अनुवाद तथा पुरुषोत्तम और राघव दासने महाभारतीय विष्णुभक्तिकी कथा ले कर मोहमुद्गर, लोकनाथ दत्त और रामनारायण घोष नलोपाख्यान ले कर नैषध, पार्वतीनाथने नलोदय, सञ्जय और शिवचन्द्रसेनने भारतसावित्रीकी रचना की।

उपरोक्त ग्रन्थके मध्य भावमें, भाषामें और संक्षिप्त वर्णनमें विजय पण्डितके महाभारतको ही सबसे प्राचीन समझते हैं। सुलतान अलाउद्दीन होसेन शाहके समय केवल गौड़वङ्ग ही नहीं, वङ्गभाषाका भी सुवर्णयुग था। उन्हींके समय (शायद उन्हींके हुक्मसे) विजय पण्डितने 'विजय पाण्डव-कथा' वा 'भारतपांचाली'-की रचना की।

महाभारतका एक और अनुवाद-ग्रन्थ मिलता है। अनुवादकका नाम सञ्जय था। नाना कारणोंसे सञ्जय महाभारत भी अति प्राचीन मालूम होता है। परन्तु इनके गीतमें गौराङ्गदेवका नामोल्लेख रहनेके कारण इन्हें गौराङ्गके समसामयिक वा तत्परवर्त्ती लोग कह सकते हैं। इसके सिवा ग्रन्थकारके आत्मपरिचय सम्बन्धमें भी कुछ विशेष बात नहीं देखी जाती।

श्रीकरनन्दीने परागल खाँके पुत्र सेनापति छुटि खाँ-के आदेशसे महाभारत अश्वमेध पर्वका अनुवाद किया। महाभारतके जितने रचयिता हुए उनमें प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष पहले रचित द्विज रघुनाथकी अश्वमेध-पञ्चालिका पाई गई है। नित्यानन्द घोष एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने सारे महाभारतका अनुवाद किया। इन्हींका महाभारत पश्चिम-वंगमें तमाम प्रचलित था।

रामायण रचकोंके मध्य कविचन्द्रका नाम एक बार उल्लेख किया जा चुका है। महाभारत-रचकोंके मध्य भी इनका नाम पाया जाता है। भागवतके भी ये अनुवादक थे। इनका असल नाम शङ्कर था, 'कविचन्द्र' इनकी उपाधि थी।

राजेन्द्र दास प्रायः तीन सौ वर्ष पहलेके कवि हैं। इनके रचित आदिपर्वका प्रायः सभी अंश पाया गया है। इन्होंने केवल महाभारतके आदिपर्वका ही अनुवाद किया था, कह नहीं सकते।

षष्ठीवर रामायणकी तरह महाभारतका भी अनुवाद कर गये हैं। उन पर्वोंमेंसे केवल स्वर्गारोहण-पर्व मिला है। षष्ठीवरके पुत्रका नाम गंगादास था। रामायणके बनानेवालोंमें इनका नाम आया है। इनके रचित महाभारतका आंशिक अनुवाद मिलता है।

कवि काशीदास सम्पूर्ण महाभारतका अनुवाद कर गये हैं। पूर्वोक्त महाभारतके अनुवादकोंकी अपेक्षा काशीदास कुछ आधुनिक हैं सही, पर बंगाली-हिन्दू नरनारीके घर घर आज काशीदास-कृत महाभारतका ही आदर है।

काशीदासका विराटपर्व १५२६ शक वा १०११ सन्-में सम्पूर्ण हुआ। आज तक आविष्कृत काशीदासी महाभारतके किसी दूसरे पर्वके शेषमें इस प्रकार रचनाकाल-का उल्लेख नहीं है। इधर काशीराम दासके पुत्र नन्दराम दासने भी महाभारतकी रचना की है। उद्योगपर्वसे उनका भणितायुक्त प्राचीन ग्रन्थ पाया गया है। किन्तु आदि, सभा आदि अंश आज भी नहीं मिलता।

काशीरामके बाद रामेश्वरनन्दीने महाभारतकी रचना की। इनकी रचना काशीदाससे भी मार्जित है, कल्पनाका स्रोत भी बहुत दूर तक फैला है और आडम्बर-से परिपूर्ण है।

काशीदासके वंशमें एक और कविने महाभारतकी रचना की है। उनका नाम घनश्याम दास है। नन्दराम दासके समय एक दूसरे व्यक्ति भारत-कथा लिख गये हैं। द्वैपायनदास उनका नाम था। इनका केवल द्रोणपर्व पाया गया है।

द्विज रघुनाथकी तरह द्विज कृष्णराम भी वृहत् अश्वमेधपर्व लिख गये हैं। उनका ग्रन्थ जैमिनि-भारत नामसे प्रसिद्ध है। दो सौ वर्ष हो चला, एक और ब्राह्मणकविने जैमिनीय अश्वमेधपर्वका अनुवाद किया है। उनका नाम रामचन्द्र खाँ था।

दो सौ वर्षसे अधिक हुआ, कृष्णानन्द वसु नामक एक कायस्थकवि महाभारतके अष्टादश पर्वको रचना कर गये हैं। उसकी रचना अति सुललित और प्राञ्जल तथा काशीराम दासको तरह कवित्वपूर्ण है।

शताधिक वर्ष पहले पंद्रह वर्षके उग्र-क्षत्रिय बालक जिनका नाम भैरवचन्द्र था, महाभारत लिख कर प्रसिद्ध हो गये थे। उनका केवल भारतका ऊषारसार्णव नामक अंश पाया गया है।

भागवत और पुराण।

जिस प्रकार रामायण और महाभारतका अनुवाद कर अनेक कवि उसका प्रचार कर गये हैं, उसी प्रकार

वहुसंख्यक कवि श्रीमद्भागवतका अनुवाद कर अथवा भागवतके अनुवर्त्ती हो कर अनेक ग्रन्थ लिख वङ्गसाहित्य-में प्रसिद्ध हो गये हैं। भागवतके अनुवादकोंके मध्य गुण-राज खाँ उपाधिधारी मालाधर वसुका नाम प्रथम पाया जाता है। मालाधर वसुने सात वर्ष कठिन परिश्रम कर-के १३६५ शकमें भागवतके १०वें और ११वें खण्डका वङ्गानुवाद प्रकाशित किया। उनके इस अनुवादका नाम श्रीकृष्णविजय वा श्रीगोविन्दविजय है।

गुणराज खाँके वाद कविवर रघुनाथ भागवताचार्यने समस्त श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया। उनके अनुवाद-का नाम श्रीकृष्णप्रेम-तरङ्गिणी है। चार सौ वर्ष पहले उन्होंने भागवतके पद्यानुवादमें जैसी दक्षता दिखाई है, अभी वह चित्र दुर्ल्लभ है। भागवताचार्य शब्द देखो।

गुणराज खाँ तथा भागवताचार्यका आदर्श ले कर पीछे वहुतसे कवियोंने लेखनी पकड़ी, उनमें माधवाचार्य, श्रीकृष्णकिंकर, नन्दरामघोष, आदित्यराम, अभिराम दास, गोपालदास, द्विज वाणीकण्ठ, दामोदर दास, द्विज लक्ष्मीनाथ, कविशेखर, कविवल्लभ, यशश्चन्द्र, यदुनन्दन, भक्तराम प्रभृति कवियोंने गुणराज-की तरह अधिकांश स्थानोंमें भागवतके दशमस्कन्धका अवलम्वन करके श्रीकृष्णविजय, श्रीकृष्णमंगल, गोविन्द-मंगल, गोपालविजय वा गोकुलमंगल नामसे अपने अपने ग्रन्थोंका प्रचार किया। इन सभी कवियोंके मध्य द्विज माधवका श्रीकृष्णमंगल, कविवल्लभका गोपालविजय, कविचन्द्रका गोविन्दमंगल एवं भक्तरामका गोकुलमंगल तथा द्विज लक्ष्मीनाथका कृष्णमंगल, ये अति वृहत् ग्रन्थ हैं। भागवताचार्यकी तरह मेदनीपुरवासी कवि सनातन चक्रवर्त्तीने भी श्रीमद्भागवतका एक पद्यानुवाद किया है। इस ग्रन्थमें भागवतके प्रत्येक श्लोकोंका अनुवाद दिखाई पड़ता है। आकारमें यह भागवताचार्यकी कृष्णप्रेम-तरंगिणीसे प्रायः द्विगुण है। सुना जाता है कि, द्विज वंशीदासने भी सम्पूर्ण भागवतका अनुवाद किया था।

इसके अलावे कई कवियोंने भागवतके एकादश स्कन्ध-की दोहाई दे कर दण्डीपर्वकी रचना की है, उनमें राजा-राम दत्त तथा महेन्द्रके 'दण्डीपर्व' ही प्रधान हैं।

भागवतकी कृष्णलीलाका अवलम्वन करके वहुतसे कवियोंने कई एक छोटे छोटे ग्रन्थोंकी रचना की है, उनमें नरसिंहदास, माधवगुणाकर तथा कृष्णचन्द्रने हंसदूत; द्विज कंसारि तथा सीताराम दत्तने प्रह्लादचरित्र; माधव, रामशरण तथा रामतनुने उद्धव-संवाद; द्विज परशुराम तथा द्विज जयानन्दने ध्रुवचरित्र; जीवन चक्रवर्त्ती, गोविन्ददास तथा द्विज परशुरामने सुदामा-चरित्र एवं जीवन मैत्र, पीताम्वर सेन तथा श्रीनाथ-देवने ऊषाहरण; द्विज दुर्गाप्रसादने वामनभिक्षा; भवानीदासने गजेन्द्रमोक्षण; वारेन्द्र द्विज कमलाकान्तने मणिहरण; रामतनु कविरत्नने वस्त्रहरण एवं विप्र रूपराम, श्यामलाल दत्त, अयोध्याराम तथा शंकरा-चार्यने गुरुदक्षिणा नामक ग्रन्थ रचा। पौराणिक ग्रन्थोंका अवलम्वन करके जितने दूसरे दूसरे वैष्णव ग्रन्थ रचे गये हैं, उनमें रामलोचनका व्रह्मवैवर्त्तपुराण; शिशुराम तथा ईश्वरचन्द्र सरकारकृत प्रभासखण्ड, द्विज मुकुन्दका जगन्नाथमंगल, कृष्णदास, वाणीकण्ठ तथा महीधरदास का नारदपुराण वा नारदसंवाद, अनन्तराम दत्त तथा रामेश्वरनन्दीका पद्मपुराणान्तर्गत क्रियायोगसार, कृष्ण-दास तथा द्विज भगीरथका तुलसीचरित्र, दुर्गाचरणदास-का विष्णुमंगल, श्रीरामशंकर वाचस्पतिके पुत्र दुर्गा-प्रसादका मुक्तालतावलि, जगत्रामके पुत्र द्विज राम-प्रसादका श्रीकृष्णलीलामृत, कृष्णप्रसाद घोषका विष्णु-पर्वसार, केतकादासका कपिलामंगल, गदाधरदासका राधाकृष्णलीला, रघुनाथदासका शुकदेवचरित, जय-नारायणका द्वारकाविलाश, श्यामदासका एकादशी-व्रतकथा आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। ये सव ग्रन्थ अनुवादशाखाके अन्तर्गत हैं, किन्तु अधिकांश श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रभावसे ही लिखित कह कर प्रधान प्रधान कवियोंका परिचय वैष्णव-साहित्यकी व्याख्या वा अनुवाद-शाखामें दिया गया है।

वैष्णव-साहित्यको हम लोग प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त कर सकते हैं—१म पदशाखा, २य चरितशाखा एवं ३य अनुवाद वा व्याख्या-शाखा।

पदशाखा।

प्रसिद्ध पदकर्त्ता चण्डिदास वंगीय वैष्णव कवियोंके आदि कवि तथा अद्वितीय गिने जाते हैं। वीरभूम

जिलान्तर्गत नान्नूर ग्राममें चंडिदासका जन्म हुआ। इनका जन्मकाल चौदहवीं शताब्दीके शेषभागमें अनुमान किया जाता है।

कवि चंडिदासकी पदावली प्रेमभक्तिका एक अपूर्व उन्मुक्त प्रस्रवण ही है। इस पदावलीकी मधुरमोहन झंकारसे सहृदयोंकी हृदयतंत्रियां भावावेशमें झनक उठती हैं। क्या भावमें, क्या भाषामें, क्या कवित्वमें,—चण्डिदासकी पदावली अत्यन्त ही मर्म-स्पर्शिनी है।

मैथिल-कवि विद्यापति ठाकुर ब्राह्मण-वंशीय थे। ये मिथिला-नरेश शिवसिंहके सभासद एवं कवि चण्डिदासके समसामयिक थे। कवि विद्यापति ठाकुरका जन्म 'विषवियर विस्की'में हुआ था, इसीलिये लोग उन्हें विषवियर विस्की विद्यापति ठाकुर कहा करते थे।

चण्डिदास तथा विद्यापति ठाकुर ही सर्वप्रधान पदकर्त्ता थे। पदकल्पतरु, पदकल्पलतिका प्रभृति ग्रंथोंमें अनेक परवर्त्ती पदकर्त्तृगणोंका उल्लेख पाया जाता है, इन सभी पदोंसे पदकर्त्ताओंके नाम संग्रह करके अकारादि क्रमसे यहां लिखे जाते हैं।

पदकर्त्तृगण जैसे—१ अनंतदास, २ अनंतआचार्य, ३ अकवर अली, ४ आत्माराम दास, ५ आनंददास, ६ उद्धवदास, ७ कवीर, ८ कविरञ्जन, ६ कमराली, १० कन्हाईदास, ११ कानूदास, १२ कामदेव, १३ कालीकिशोर, १४ कृष्णकांत दास, १५ कृष्णदास, १६ कृष्णप्रमोद, १७ कृष्णप्रसाद, १८ गतिगोविंद, १६ गदाधर, २० गिरिधर, २१ गुप्तदास, २२ गोकुलानंद, २३ गोकुलदास, २४ गोपालदास, २५ गोपालभट्ट, २६ गोपीकांत, २७ गोपीरमण, २८ गोवर्द्धन दास, २६ गोविंद दास, ३० गोविंद घोष, ३१ गौरमोहन, ३२ गौरदास, ३३ गौरसुंदर दास, ३४ गौरीदास, ३५ घनराम दास, ३६ घनश्याम दास, ३७ चण्डिदास, ३८ चंद्रशेखर, ३६ चम्पत ठाकुर, ४० चूड़ामणि दास ४१ चैतन्य दास, ४२ जगदानन्द दास, ४३ जगन्नाथ दास, ४४ जगमोहन दास, ४५ जयकृष्ण दास, ४६ ज्ञानदास, ४७ ज्ञानहरि दास, ४८ पुरुषोत्तम, ४६ प्रतापनारायण, ५० प्रमोददास, ५१ प्रसाददास, ५२ प्रेमदास, ५३ प्रेमानन्द दास, ५४ बलराम दास, ५५ बलाईदास, ५६ वल्लभदास, ५७ वंशीवदन, ५८ वसन्तराय, ५६ वासुदेवघोष, ६० विजयानन्द दास, ६१ विद्यापति, ६२ विन्दु दास, ६३ विप्रदास, ६४ विप्रदास घोष, ६५ विश्वम्भर घोष, ६६ वीरचंद्र कर, ६७ वीरनारायण, ६८ वीरवल्लभ दास, ६६ वीरहम्वीर, ७० वैष्णवदास, ७१ वृन्दावन दास, ७२ व्रजानन्द, ७३ तुलसी दास, ७४ दलपति, ७५ दीनघोष, ७६ दीनहीन दास, ७७ दुःखीकृष्ण दास, ७८ दुःखिनी, ७६ देवकीनन्दन दास, ८० धरणीदास, ८१ नटवर, ८२ नन्दनदास, ८३ नन्द, ८४ नयनानन्द दास, ८५ नरसिंह दास, ८६ नरहरि दास, ८७ नरोत्तम दास, ८८ नवकान्त दास, ८६ नवचंद्र दास, ६० नवनारायण भूपति, ६१ नासिर महमूद, ६२ नृपतिसिंह, ६३ नृसिंहदेव, ६४ परमेश्वर दास, ६५ परमानंद दास, ६६ पीताम्बर दास, ६७ फकीर हवीर, ६८ फातन, ६६ भूपतिनाथ, १०० भुवनदास, १०१ मथुरादास, १०२ मधुसूदन, १०३ महेश वसु, १०४ मनोहर दास, १०५ माधव घोष, १०६ माधव दास, १०७ माधवाचार्य, १०८ माधव दास, १०६ माधो, ११० मुरारि गुप्त, १११ मुरारि दास, ११२ मोहनदास, ११३ मोहनी दास, ११४ यदुनंदन, ११५ यदुनाथ दास, ११६ यदुपति, ११७ यशोराज खान, ११८ यादवेंद्र, ११६ रघुनाथ, १२० रसमय दास, १२१ रसमयी दासी, १२२ रसिक दास, १२३ रामकांत, १२४ रामचंद्र दास, १२५ रामदास १२६ रामचंन्द्र दास, १२७ राम दास, १२८ रामी, १२६ राधासिंह भूपति, १३० राधामोहन, १३१ राधावल्लभ, १३२ राधामाधव, १३३ रामानंद, १३४ रामानंद दास, १३५ रामानंद वसु, १३६ रूपनारायण, १३७ लक्ष्मीकांत दास, १३८ लोचनदास, १३६ शङ्करदास, १४० शचीनन्दन दास, १४१ शशिशेखर, १४२ श्यामचाँद दास, १४३ श्यामदास, १४४ श्यामानंद, १४५ शिवराय, १४६ शिवराम दास, १४७ शिवानंद, १४८ शिवा सहचरी, १४६ शिवाई दास, १५० श्रीनिवास, १५१ श्रीनिवासाचार्य, १५२ शेखरराय, १५३ सदानंद, १५४ सालवेग, १५५ सिंहभूपति, १५६ सुंदर दास, १५७ सुवल, १५८ सेख जलाल, १५६ सेखभिक, १६० सेख लाल, १६१ सैयद मर्त्तुजा, १६२ हरिदास, १६३ हरिवल्लभ, १६४ हरेकृष्णदास, १६५ हरेराम दास।

इन १६५ पदकर्त्ताओंके नाम पाये जाते हैं। इन सब पदकर्त्तृगणमें प्रायः सभी ही चैतन्यदेवके समसामयिक एवं कोई कोई परवर्त्ती थे। सिर्फ चण्डिदास तथा विद्यापति पूर्ववर्त्ती थे। इनका परिचय पहले ही दे चुके हैं।

चरित-शाखा।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आविर्भावके समयसे बङ्गला भाषामें चरितरचना विशेषरूपसे प्रवर्त्तित हुई।

श्रीचैतन्यचरित सम्बंधमें निम्नलिखित पुस्तकें हम लोगोंके दृष्टिगोचर होती हैं। वृंदावन दासका चैतन्यभागवत, जयानंदका चैतन्यमङ्गल, लोचन दासका चैतन्यमङ्गल; कृष्णदास कविराजका चैतन्यचरितामृत। इनके अलावे अन्यान्य ग्रंथोंके आंशिक भावमें चैतन्यचरितकी घटनाविशेष दृष्टिगोचर होती है। जैसे—गोविंदका कड़चा प्रभृति। इन सभी ग्रंथोंमें प्रत्येक ग्रंथकी विशिष्टता परिलक्षित होती है। जैसे चैतन्यभागवतमें महाप्रभुकी नवद्वीपलीला तथा नित्यानंद प्रभुकी लीला विशेषरूपसे वर्णन की गई हैं। महाप्रभुकी लीलाके भौगोलिक विवरण एवं ऐतिहासिक तथ्यवर्णन ही जयानन्दके चैतन्यमंगलका विशेषत्व है। लोचनदासका चैतन्यमंगल, मुरारिगुप्त द्वारा लिखे हुए संस्कृत चैतन्यचरितका बंगलानुवाद है। इसके अलावे उन कवियोंने दुर्लभ कल्पनामें मुरारिके कड़चाका अङ्गसौष्ठव सम्पादन किया है। लोचनदासके चैतन्यचरितका विशेषत्व यही है कि, महाप्रभुके चरित्रलेखकोंमें इस तरहके मधुर भावमें किसीने भी उनकी लीला-वर्णना नहीं की है। श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ वैष्णव-समाजमें अधिक आदरणीय है। इसमें एक ओर जिस तरह महाप्रभुके महीयसी मधुर लीला माधूर्य्यकी सरल वर्णना है, दूसरी ओर वैष्णवदर्शन तथा वैष्णव-शास्त्रके सूक्ष्मतत्त्वका समावेश देखा जाता है। गोविन्दके कड़चाके महाप्रभुके चरितकी दूसरी कोई घटना लिखी नहीं गई है, सिर्फ उनके दाक्षिणात्य-भ्रमण ही इस ग्रन्थमें विवृत है।

इनके अलावे चूड़ामणि दासका चैतन्यचरित, शंकरभट्टका निमाई-सन्यास, मनःसन्तोषिणी एवं गोविन्ददासका कड़चा आदि ग्रन्थ भी पाये गये हैं।

इन सब ग्रन्थोंके अलावा महाप्रभुकी लीला-चरित और भी कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। जैसे—प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी, रामगोपालदासका चैतन्यतत्त्वसार, हरिदासका चैतन्यमहाप्रभु एवं गोविन्ददासका गौराख्यान। उनमें प्रेमदासका चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी अपेक्षाकृत वृहत् ग्रन्थ है। इसमें प्रायः ४ हजार श्लोक हैं। यह ग्रन्थ चैतन्यचन्द्रोदय-नाटकका प्राचीन पद्यानुवाद है।

प्रसिद्ध रसज्ञ कवि पीताम्बरदासके पिता रामगोपाल दासने "चैतन्यतत्त्वसार" लिखा है। यह ग्रन्थ छोटा है, इसमें चैतन्यमहाप्रभुके तत्त्वको समझानेकी चेष्टा की गई है। गौराख्यानग्रन्थ 'निगम' भी कहलाता है। यह सहजिया सम्प्रदायका ग्रन्थ है।

महाप्रभुका लीलाचरित ले कर जिस तरह बहुतसे कवियोंने चैतन्यचरितकी रचना की है, उसी तरह कितने ही कवियोंने अद्वैत, नित्यानन्द प्रभृति कई महात्माओंकी लीला प्रकाश करके बंगला साहित्यकी पुष्टि की है।

हरिचरण नामक एक महापुरुषने अद्वैतमंगल ग्रन्थ लिखा है। ईशान-नागरने अद्वैतप्रकाश की रचना की थी। इसे छोड़ कर अद्वैतविलासमें अद्वैत प्रभुकी बाल्यलीलादि वर्णन की गई है। इस ग्रन्थके रचयिता नरहरि दास थे, ये श्रीखण्डवासी नरहरि सरकार नहीं थे।

अद्वैतकी बाल्यलीलाके सम्बन्धमें कृष्णदासकी लिखी हुई एक छोटी पुस्तक पाई गई है। श्यामदासका लिखा हुआ एक अद्वैतमंगल ग्रन्थ देखा जाता है। लोकनाथ दासने सीताचरित्रकी रचना की। इस पुस्तकमें अद्वैत प्रभुकी स्त्री सीताठाकुराणीके चरित्रका वर्णन है। नित्यानन्द-वंशमाला नामक एक रचितग्रन्थ पाया गया है, इस छोटी पुस्तकके रचयिताका नाम वृन्दावनदास था। नरहरि चक्रवर्त्ती प्रसिद्ध भक्तिरत्नाकर ग्रंथके रचयिता थे, इनका दूसरा नाम घनश्याम दास था।

नरहरि चक्रवर्त्तीने नरोत्तमविलास नामक एक और ग्रंथकी रचना की थी। इस ग्रंथमें नरोत्तम ठाकुर महाशयकी जीवनी लिखी हुई है। प्रेमविलास नामक ग्रंथके रचयिता नित्यानंद दास थे। यदुनंदन दासने प्रसिद्ध कर्णानंदकी रचना की थी। इसमें श्रीनिवास आचार्य तथा उनके शिष्योंका वृत्तान्त लिखा हुआ है। वंशी

पुस्तकके लेखकका नाम प्रेमदास था, ये ब्राह्मण जातिके थे, इनकी उपाधि सिद्धान्तवागीश थी। इस ग्रंथमें महाप्रभुका गृहत्याग तथा संन्यास एवं वंशीठाकुर नामक महाप्रभुके अनुचरका जन्म तथा शिक्षाप्रसंग वर्णित है।

उड़िष्यावासी गोपीवल्लभ दासने खृष्टीय १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें विशुद्ध बङ्गलाभाषामें रसिकमंगलकी रचना की थी। श्यामानन्दके प्रधान शिष्य रसिकमुरारिके चरित्रकी वर्णना ही इस ग्रन्थका विषय है।

प्रसिद्ध कवि नरहरि चक्रवर्त्तीने अपने भक्तिरत्नाकरमें श्यामानन्दका कुछ परिचय दिया है। कृष्णदासने श्यामानन्दप्रकाश तथा श्रीजीवदासने श्यामानन्दविकाश लिख कर इस धर्मजीवनके और भी कई अंशोंको स्पष्ट किया है। इन दोनों ग्रन्थोंके मध्य भाषा, भाव तथा वर्णनामें श्यामानन्दप्रकाश ही प्राचीन जान पड़ता है।

भक्त राईचरण दासने अभिरामवन्दनाकी रचना की है। इस छोटी वन्दनामें अभिराम गोस्वामीके चरित्रका कुछ वर्णन है।

देवनाथ तथा बलरामदासने यथाक्रमसे गौरगणाख्यान तथा गौरगणोद्देशकी रचना की। संस्कृत भाषामें गौरगणोद्देशदीपिका तथा वृहत् गौरगणोद्देश नामक ग्रन्थ प्रचलित है, उनके ही भाव ले कर ये दोनों ग्रन्थ प्रायः दो सौ वर्ष पहले बङ्गला भाषामें लिखे गये हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें श्रीगौरांग महाप्रभुके पार्श्वदगणोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रायः तीन सौ वर्ष पहले देवकीनन्दन दासने वैष्णववन्दनाकी रचना की थी। इनके पहले गौड़ीय वैष्णवसमाजमें जितने महात्मा हो गये हैं, प्रायः उन सबोंके नाम इस ग्रंथमें पाये जाते हैं। इस कारण यह ग्रंथ छोटा होने पर भी वैष्णवोंका इतिहास लिखनेके समय बहुत काम आयगा।

आगरदासके शिष्य नाभाजी हिंदी-भक्तमालके रचयिता थे। उनके शिष्य प्रियदासने इस ग्रंथकी टीका की थी। श्रीनिवास आचार्य प्रभुके शिष्य कृष्णदासने बङ्गभाषामें इस ग्रंथका अनुवाद किया है। इसके अलावे इन्होंने और भी कई भक्तोंके चरित्र इस ग्रंथमें संगृहीत करके इसे सर्वाङ्गसुंदर बनानेकी चेष्टा की है।

श्रीनिवास आचार्य प्रभुके पुत्र श्री गतिगोविंदने वीररत्नावलीकी रचना की। इसमें वीरचंद्र गोस्वामीके जीवनचरित्रकी दो चार अद्भुत घटनाओंका वर्णन किया गया है। इसके अलावे गतिगोविंद ठाकुरका लिखा हुआ 'अन्तप्रकाशखण्ड' पाया गया है। इस ग्रंथमें वीरचंद्र प्रभुकी शेष लीलाओंका वर्णन है। इस ग्रंथको हम वीररत्नावलीका शेषांश कह सकते हैं। आनंदचंद्र दास जगदीश पण्डितके चरित्रविजयप्रणेता थे।

अनुवाद तथा व्याख्या शाखा।

संस्कृत ग्रंथोंका बङ्गलानुवाद करके प्राचीन कवियोंने बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट पुष्टि की है। पौराणिक साहित्यकी बङ्गलानुवाद शाखाओंमें इसके पहले कितने ही सुविख्यात ग्रंथोंके नाम तथा परिचय दिये गये हैं। इस ग्रंथमें आकारादि वर्णमाला क्रमसे कतिपय ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथोंके नाम तथा विषयका उल्लेख किया गया है।

अकिञ्चन दासने श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रियपार्षद रामानंदरायकृत जगन्नाथवल्लभ नाटकका पद्यानुवाद किया था।

कविवल्लभका रसकदम्ब ग्रंथ वैष्णव-समाजमें यदुनंदनके विदग्धमाधव नाटकके रसकदम्बकी तरह प्रसिद्ध नहीं है।

कृष्णदास, काशीदास तथा गदाधर ये तीन भाई भी परम-वैष्णव तथा प्रसिद्ध ग्रंथकार थे। गदाधर दासके जगत्मङ्गलमें इन लोगोंका विशेष वंश-परिचय दिया गया है। कृष्णदासके श्रीकृष्णविलास ग्रंथमें प्राञ्जल भाषामें हरिलीला वर्णन की गई है। यह श्रीमद्भागवतका ही आंशिक अनुवाद है।

गदाधर सुविख्यात काशीराम दासके छोटे भाई थे। इन्होंने जगत्मङ्गलकी रचना की थी। यह ग्रंथ स्कन्द तथा ब्रह्मपुराणके भाव ले कर अनूदित है। इस ग्रंथमें उत्कलखण्डकी वर्णना है। यह ग्रंथ १५६४ शकमें (वा १०५० सालमें) लिखा गया था।

जयदेवकृत संस्कृत गीतगोविंद गीतिकाव्यके बङ्गलानुवादकोंमेंसे गिरिधर एक हैं। १७३६ ई०में अर्थात् भारतचंद्रके अन्नदामङ्गलकी रचना होनेके १६ वर्ष

पहले यह ग्रंथ रचा गया। इन्होंने दास गोस्वामीको मनःशिक्षाका भी अनुवाद किया है।

गोपीचरण दास—चैतन्यचन्द्रामृतके अनुवादक थे।

गोविन्द ब्रह्मचारी—इन्होंने जयदेवकृत संस्कृत गीतगोविन्दका वङ्गलाभाषामें पद्यानुवाद किया है।

घनश्यामदास—ये गोविन्दरतिमञ्जरी ग्रन्थके अनुवादक थे। गोविन्दरतिमञ्जरी संस्कृत ग्रंथ इनका ही लिखा हुआ है।

जयानन्द—इन्होंने श्रीमद्भागवतके ध्रुवचरित्र तथा प्रह्लादचरित्रका भावालम्बन करके दो ग्रंथोंकी रचना की है।

दीनहीन दास—इन्होंने कविकर्णपुरके रचे हुए संस्कृत गौरगणोद्देशदीपिकाका अनुवाद किया है। उसी ग्रंथका नाम किरणदीपिका है।

देवनाथ—इन्होंने श्रीमद्भागवतकी भ्रमरगीताका भावगत अनुवाद करके भ्रमरगीता नामक वङ्गला पद्य ग्रंथ प्रणयन किया है।

नरसिंह दास—इन्होंने संस्कृत हंसदूत ग्रंथका भावगत अनुवाद किया है।

नरसिंह द्विज—इनके ग्रंथका नाम उद्धव-संवाद है। यह श्रीमद्भागवतके उद्धव-संवादका भावगत अनुवाद है।

नारायण दास—इन्होंने १५४६ शकमें श्रीमद्दास-गोस्वामीके रचे हुए सुविख्यात मुक्ताचरित्र ग्रंथका पद्यानुवाद किया है।

प्रेमदास—इन्होंने दासगोस्वामीकी मनःशिक्षाका वङ्गलानुवाद तथा स्थान स्थानमें व्याख्या की है। कविकर्णपुरकृत श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद करके ही ये प्रेमदास वैष्णव-समाजमें सुप्रसिद्ध हुए थे। यह ग्रंथ एक समय संस्कृत भाषामें अनभिज्ञ वैष्णव-समाज परम प्रीतिकर पदार्थ गिना जाता था। इसका नाम चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी है। वंशीशिक्षा नामक एक ग्रंथ प्रेमदास द्वारा रचित माना जाता है। वंशीशिक्षामें प्रेमदासका दूसरा नाम पुरुषोत्तम लिखा है, इन्होंने वंशीशिक्षामें अपनेको उपरोक्त ग्रंथ-रचयिता कह कर परिचय दिया है।

भगवानदास—इन्होंने १७५६ शकमें अपने रचित गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है।

माधवगुणाकर—ये उद्धवदूत ग्रन्थके रचयिता थे। यह ग्रन्थ भागवतके उद्धव-संवादका भावगत वंगला अनुवाद है।

मुकुन्द द्विज—ये जगन्नाथमङ्गलाके लेखक थे। जगन्नाथमंगल किसी ग्रन्थका अनुवाद न होने पर भी पुराणविशेषका भावगत अनुवाद है। जगन्नाथमंगल किसी किसी स्थानमें 'जगन्नाथ-विजय'के नामसे भी अभिहित है।

यदुनन्दनदास—ये पाणिहाटीके वैद्यवंशसम्भूत तथा श्रीनिवास आचार्य प्रभुको कन्या श्रीमती मैनकादेवीके मन्त्रशिष्य थे। इन्होंने १६०७ ई०में कर्णानन्द ग्रंथकी रचना की।

कृष्ण-कर्णामृत—विल्वमंगल ठाकुर रचित कृष्ण कर्णामृत एक प्रसिद्ध सुमधुर संस्कृत ग्रंथ है। सुकवि यदुनन्दनने इस पाण्डित्यपूर्ण टीकाका वंगला भाषामें पद्यानुवाद करके संस्कृत न जाननेवाले पाठकोंका बहुत उपकार किया है।

गोविन्दलीलामृत—कृष्णदास कविराज महाशयने राधाकृष्णलीलात्मक गोविन्दलीलामृत नामक जिस ग्रंथको रचना की थी, यह ग्रंथ उसका ही वंगला अनुवाद है। ग्रंथकारने स्थान स्थान पर व्याख्याका कार्य भी सम्पन्न किया है।

रसकदम्ब—यदुनन्दनका रसकदम्ब श्रीरूपगोस्वामी द्वारा रचित विदग्धमाधव नाटकका वंगला भाषामें पद्यानुवाद है।

रसमयदास—इन्होंने गीतगोविन्दका एक पद्यानुवाद किया है। यह अनुवाद पुजारी गोस्वामीकी टीकाके अभिप्रायानुसार ही रचा गया है।

राधावल्लभदास—इन्होंने श्रीमद्दास गोस्वमीकी विलापकुसुमाञ्जलिका पद्यानुवाद किया था।

रूपनाथदास—इनके लिखे हुए श्रीमद्भागवतकी भ्रमरगीताका एक भावगत अनुवाद तथा वंगला पद्यग्रंथ हैं।

लाउड़िया कृष्णदास—इन्होंने विष्णुपुरीकृत भक्तिरत्नावली ग्रंथका अनुवाद किया है। ईशाननागरके अद्वैत-

प्रकाशादि मतानुसार ये अद्वैतप्रभुके बाल्यलीला-सूत्रके रचयिता थे।

चैतन्यमंगल—प्रणेता लोचनदासने राय रामानन्दकृत संस्कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटकके श्लोक तथा गीतांशका बंगला पद्यानुवाद किया है। लोचनदासका अनुवाद अत्यन्त मधुर तथा सरल है। लोगोंको धारणा है, कि आनन्दलतिका तथा दुर्लभसार ग्रंथ इनके द्वारा ही लिखे गये थे।

हरिबोलदास—इन्होंने कृष्णलीलाकी पौराणिक घटनाका भावावलम्बन करके नौकाखण्ड नामक एक ग्रंथकी रचना की है।

भजन-ग्रन्थशाखा।

गौड़ीय वैष्णवोंके रचित बहुसंख्यक भजनग्रंथ देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ गोस्वामियोंका रचित शास्त्रसम्मत है और अधिकांश बाउल तथा सहजिया सम्प्रदायके भजनप्रणालीविषयक हैं। इन सब ग्रंथकारोंके तथा उनके ग्रंथोंके नामादि अकारादि वर्णमालाक्रमसे नीचे लिखे जाते हैं।

अकिञ्चनदास—भक्तिरसात्मिका नामक एक छोटे भजनग्रंथके रचयिता। फिर दीन कृष्णदासका रचित इसी नामकी एक और हस्तलिपि देखी जाती है। यह ग्रंथ ढाई सौ वर्ष रचा गया है।

अच्युतदास—गोपीभक्तिरसगीत नामक ग्रंथ इन्हींका बनाया है।

आनन्ददास—इन्होंने रससुधार्णव नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें व्रजरसका वर्णन है। रसके भजनके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें इसमें लिखी हैं।

कृष्णदास—इनके बनाये निम्नलिखित भजन ग्रन्थ मिलते हैं—स्वरूपवर्णन, वृन्दावनध्यान, स्वरूप-निर्णय, गुरुशिष्यसंवाद, रागमयी कणा, रूपमञ्जरी, प्रार्थना, शुद्ध, रतिकारिका, आत्मनिरूपण, दण्डात्मिका, रसभक्तिलहरी, रागरत्नावली, सिद्धिनाम, आत्मजिज्ञासातत्त्व, ज्ञानरत्नमाला, आश्रयनिर्णय, गुरुतत्त्व, ज्ञानसन्धान। इनके सिवा आश्रयनिर्णय, गुरुतत्त्व, ज्ञानसन्धान, मनोवृत्तिपटल, चमत्कारचन्द्रिका, प्रह्लादचरित, आत्मसाधन, सारसंग्रह, पाषण्डदलन, जवामञ्जरी आदि छोटी छोटी पुस्तकें भी इन्होंने लिखी हैं।

कृष्णरामदास—भजनमालिका नामक ग्रन्थके रचयिता। ग्रन्थकी रचना और भाव अच्छा है। कृष्णभक्तिका प्राधान्य स्थापन ही इस ग्रन्थका विषय है।

गिरिधरदास—स्मरणमङ्गलसूत्र ग्रंथके प्रणेता। इस ग्रंथमें श्रीश्रीराधाकृष्णके अष्टकालीय लीला-स्मरणका विषय लिखा है।

गुरुदास वसु—प्रेमभक्तिसार। इस ग्रन्थमें गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायका साध्यसाधनतत्त्व लिखा है।

गोपाल भट्ट—गोलोकके प्रणेता। इसमें गोलोक-वर्णन और श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द-जाह्नवीतत्त्व आदि लिखे हैं।

गोपीकृष्णदास—हरिनामकवच।

गोपीनाथ दास—सिद्धसार।

गोविन्ददास—निगम नामक ग्रन्थ। वैष्णववन्दना नामका एक दूसरा ग्रन्थ भी इन्होंने लिखा है।

गौरीदास—निगूढ़ार्थप्रकाशावलीके प्रणेता।

चैतन्यदास—इन्होंने रसभक्ति-चन्द्रिका नामक ग्रन्थ लिखा है। ईश्वरतत्त्व और जीवतत्त्वका वर्णन ही इस ग्रन्थका विषय है।

जगन्नाथदास—रसोज्ज्वल ग्रन्थके प्रणेता।

जयकृष्णदास—इन्होंने मदनमोहनवन्दना नामक ग्रन्थ लिखा।

श्रीजीव गोस्वामी—इन्होंने बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं। सहजिया-सम्प्रदायका उपासनासार, नित्य वर्त्तमान आदि ग्रन्थ भी इन्हींके रचित हैं।

जीवनाथ—रसतत्त्वविलास नामक एक ग्रन्थके रचयिता।

दुःखी कृष्णदास—इनका दूसरा नाम श्यामानन्द है। आप सहज-रसायण ग्रन्थ लिख गये हैं।

दीन भक्तदास—वैष्णवामृत ग्रन्थके लेखक।

नरसिंह दास—इन्होंने दर्पणचन्द्रिका नामक ग्रन्थ की रचना की है।

नरोत्तम दास—इनके बनाये प्रार्थना और प्रेमभक्तिचन्द्रिका ग्रन्थ वैष्णव-समाजमें चिरस्मरणीय और चिर-

पूजनीय हैं। इनके नाम पर और भी कितने ग्रन्थ देखे जाते हैं, जैसे—उपासनापटल, अर्थत्रिसंवाद, अमृतरसचन्द्रिका, प्रेमभावचन्द्रिका, सारात्सारकारिका, भक्तिलतिका, साध्यप्रेमचन्द्रिका, रागमाला, चमत्कारचन्द्रिका, स्मरणमङ्गल, स्वरूपकल्पलतिका, प्रेमविलास, तत्त्वनिरूपण और रसभक्तिचन्द्रिका। इन सब ग्रन्थोंका अधिकांश सहजिया सम्प्रदायके, श्रीनरोत्तम ठाकुरका लिखा प्रतीत नहीं होता।

नित्यानन्द दास—रागमयोकणा और रसकल्पसार नामक दो ग्रन्थके प्रणेता।

प्रेमदास—इन्होंने उपासना-पटल और आनन्दभैरव नामक ग्रन्थ लिखे। उपासना-पटल नरोत्तम दासका रचित कह कर उल्लिखित हुआ है। प्रेमदासने मनःशिक्षा और वंशीशिक्षा नामक ग्रन्थकी भी रचना की।

प्रेमानन्द—मनःशिक्षा नामक विवेकवैराग्य-शिक्षाप्रदके प्रणेता। चन्द्रचिन्तामणि नामक एक और ग्रन्थ इनका बनाया हुआ मिलता है। चन्द्रचिन्तामणि गद्यपद्यमय ग्रन्थ है।

बलराम दास—इन्होंने वैष्णवाभिधान और हाटवन्दन नामक ग्रन्थ रचे हैं।

मथुरा दास—आनन्दलहरी नामक सहजिया सम्प्रदायके भजन ग्रन्थ-रचयिता।

मनोहर दास—दीनमणिचन्द्रोदयके रचयिता।

मुकुन्द दास—अमृतरसावली, चमत्कारचन्द्रिका, रत्नसागरतत्त्व, सहजामृत, वैष्णवामृत, सारात्सारकारिका, साधनोपाय, रागरत्नावली, सिद्धान्तचन्द्रोदय, और अमृतरत्नावली आदि सहजिया सम्प्रदायके अनेक भजन ग्रन्थोंके रचयिता। ग्रन्थकारने अपनेको कृष्णदास कविराजका शिष्य बतलाया है।

यदुनाथ दास—तत्त्वकथा। यह भी सहजियाका साधन-भजन ग्रन्थ है।

युगलकिशोर दास—प्रेमविलास नामक एक छोटे ग्रन्थके रचयिता।

युगलकृष्ण दास—योगागम और भगवत्तत्त्वलीलाके लेखक।

रसमयी दास—इनका बनाया भाण्डतत्त्वसार नामक छोटा ग्रन्थ मिलता है। यह भी सहजतत्त्वमूलक है।

रसिक दास—रतिविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

राधावल्लभ दास—सहजतत्त्व। राधामोहनदास—रत्नकल्पतत्त्वसार। रामगोपाल दास—चैतन्यतत्त्वसार। रामचन्द्र दास—सिद्धान्तचन्द्रिका और स्मरणदर्पण। रामेश्वर दास—क्रियायोगसार। इस ग्रन्थमें वैष्णव-सम्प्रदायविशेषकी नित्यनैमित्तिक क्रियाका कुछ वर्णन है। लोचनदास—चैतन्यप्रेमविलास और दुर्लभसार।

वंशीदास—दीपकोज्ज्वल और निकुञ्ज-रहस्य। बाउल चाँद—निगूढार्थप्रकाश। व्रजेन्द्रकृष्ण दास—गोपी उपासना। वाणीकण्ठ—मोहमोचन। वृन्दावन दास—रत्नकल्पसार, रिपुचरित, तत्त्वविलास और छोटे छोटे ग्रन्थोंके प्रणेता। इन्होंने चैतन्य-निताईसंवाद, वैष्णववन्दना इत्यादि दो एक ग्रंथ भी लिखे हैं। भजननिर्णय नामक एक सुन्दर ग्रंथ भी इनका बनाया मिलता है। नित्यानन्दवंशावलीचरित नामक एक ग्रन्थ भी वृन्दावन दास-रचित मालूम होता है। इसके सिवा भक्तिचिन्तामणि, भक्तिमाहात्म्य, भक्तिलक्षण और भक्तिसाधन आदि ग्रन्थ भी वृन्दावन दासके नामसे ही प्रचलित हैं। उपासनासंग्रह नामक ग्रंथ श्यामानन्दका लिखा हुआ है।

सनातन गोस्वामी नामक एक व्यक्तिने सिद्धरतिकारिका ग्रन्थकी रचना की। वैष्णवोंके विशेषतः सहजियोंके भजन साधनके सम्बन्धमें इस प्रकारके और भी सैकड़ों ग्रंथ हैं।

विविध वैष्णव ग्रन्थ।

गोविन्द द्विजका बनाया तुलसीमहिमा ग्रंथ, गोविन्दका श्रीमतीका मानभञ्जन, नन्दकिशोर दासके वृन्दावनलीलामृत और रसपुष्पकलिका, नरसिंह दासका प्रेमदावानल, नरहरिका गीतचन्द्रोदय, नीलाचल दासका द्वादशपाटनिर्णय, पीताम्बर दासका रसमञ्जरी, भक्तरामदासका गोकुलमङ्गल, भवानी दासका राधाविलास, महीधर दासका एकादशी माहात्म्य, माधव दासका कृष्णमङ्गल, मुकुन्दद्विजका जगन्नाथमङ्गल, युगल किशोरदासका चैतन्यरसकारिका, रामगोपाल दासका रसकल्पवल्ली, बलराम दासका कृष्णलीलामृत और वैष्णव चरित, वृन्दावनदासका भक्तिचिन्तामणि और शङ्करदासका

बनाया यम और प्रजापतिसंवाद नामक वैष्णव ग्रंथ मिलता है। ये सब ग्रंथ अंगरेजी-प्रभावके पहले लिखे गये थे।

मुसलमान-प्रभाव।

पहले लिखा जा चुका है, कि गौड़के मुसलमान अधिपतियोंके उत्साहसे अनेक पण्डित शास्त्रानुवादमें अग्रसर हुए थे। महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवके आविर्भावके बादसे वैष्णवकवि जिस प्रकार अनेक ग्रंथ लिख कर वङ्गलाभाषाको अलंकृत कर गये हैं, उसी प्रकार उनके अनुकरण पर बहुतसे मुसलमान-कवियोंने भी नाना ग्रंथ लिख कर वङ्गलासाहित्यकी अङ्गपुष्टि की है। ये सब ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होगा, कि सुपण्डित मुसलमान लोग भी हिन्दूशास्त्रको कैसी भक्ति-दृष्टिसे देखते थे, एक समय हिन्दू-मुसलमानोंके मध्य कैसा सद्भाव था। उस समय मुसलमान समाजमें भी द्वैचरित्रका अभाव न था। इन सब ग्रन्थोंके मध्य इस्लामधर्मको व्याख्यादि, धर्मतत्त्व, नीतितत्त्व, इतिहास, संगीत, गल्प और विरह-गाथा ही अधिक है। इन सब ग्रंथकारोंमेंसे बहुतेरे स्वभाववर्णना और कवित्वमें कृतित्वसम्पन्न थे।

करम अली एक वैष्णव-कवि थे। चट्टग्रामके पटीया थानाके अन्तर्गत करुलडाङ्गामें उनका घर था। अपने ग्रंथमें ग्रंथकारने ऋतुके बारहों महीनेका वर्णन किया है। राधाका द्वादशमासिक विरहवर्णन वैष्णव-कवियोंके प्रेमचित्र वर्णनमें आदर्श स्थानीय था। उस वारमासाके अनुकरण पर किसी किसी मुसलमान कविने भी वार-मासा गाया है। उनमेंसे छकिनाका वारमासा और मेहेर-नेगारका वारमासा मिलता है।

वङ्गला साहित्यके अनुकरण और अनुवादके अति-रिक्त मुसलमान-कविगण इस्लामजगत्‌के अनेक मौलिक-तत्त्व वङ्गलामें अनूदित कर वङ्गलाभाषाके कलेवरको पुष्ट कर गये हैं।

तत्त्वशाखा।

१ ज्ञानप्रदीप—सैयद सुलतान नामक एक मुसल-मान साधुका रचित। उक्त कविका बनाया एक योग-शास्त्रीय ग्रन्थ भी मिलता है। इसका प्रतिपाद्य विषय सर्वतोभावमें योगकालन्दर वा उपरोक्त ज्ञानप्रदीपके जैसा है।

२ तन-तेलाउत वा तनुसाधन—इस ग्रंथमें योग-शास्त्रीय गभीरतत्त्व वङ्गला और मुसलमानी शब्दमें लिखा है। इसमें हिन्दूयोगका मूलाधार मणिपुर आदि संज्ञामें मुसलमानी नामकरण देखा जाता है। बीच बीच-में मुसलमानी योगके भी यथेष्ट निदर्शन हैं।

३ तउफा—एक धर्मग्रंथ। तउफाका अर्थ संहितादि है। मुसलमानके रोजा, नमाज आदि आवश्यकीय विषयोंकी इस ग्रंथमें आलोचना है। इसके सिवा इसमें मुसलमान-सामाजिक धर्मनीतिके अनेक कर्त्तव्य विषय भी लिपिबद्ध हैं। मूल अरबी तउफाके पारसी अनुवादसे कवि आलवालने रोसङ्गके राजा श्रीचन्द्र सुधर्मके मन्त्री श्रीमान् सुलेमानके कहने पर यह ग्रंथ वङ्गलामें लिखा है।

४ मुर्शिदका वारमासा—मुसलमानी धर्मतत्त्व सम्बन्धी एक छोटा ग्रंथ। महम्मद अली इसके रचयिता माने जाते हैं।

५ ज्ञानसागर—धर्मविषयक (फकीरी) ग्रंथ। इसमें योग-शास्त्रीय बहुत-सी बातें हैं। अली राजा उर्फ कानू फकीर इनके रचयिता हैं। ग्रंथकर्त्ताका पद पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्हें हिन्दूयोगशास्त्रमें भी अच्छा ज्ञान था।

६ सिराज कुलुप—एक मुसलमानी धर्मतत्त्व वा धर्मविज्ञान। इसमें स्वर्ग कितने हैं, पृथिवी किस पर अवस्थित है, ईश्वर किस दिन किसकी सृष्टि करते हैं, प्रलयकालमें और पीछे क्या होगा। ये सब पौराणिक आख्यान सन्निवेशित हैं। ग्रंथकर्त्ताका नाम फकीर अली राजा है।

७ मुछार-छौयाल—हजरत मूसा (Moses) पैगम्बरके साथ भगवान्‌का तोर पहाड़ पर जो कथोपकथन हुआ, उसीका अवलम्बन कर कवि नसरुल्लाने इसकी रचना की।

८ साहादल्ला पीर पुस्तक—मुसलमानी दरवेशी ग्रंथ। साहादल्ला पीर नामक कोई सिद्ध पुरुष वक्ता

और चान्द नामक व्यक्ति ग्रन्थकर्त्ता हैं। इसमें मुसलमानी योगसाधनतत्त्वके अनेक विषय हैं।

९ ज्ञान-चौतीसा तत्त्वज्ञानपूर्ण कुछ कविता। कवि सैयद सुलतान इसके रचयिता हैं।

१० अकान-रछूल—इसमें हजरत महम्मद मुस्ताफाके तिरोधानका विवरण है। यह सैयद सुलतान द्वारा रचा गया है।

११ सबेमेहेराज—हजरत महम्मद मुस्तफाका स्वर्ग-परिभ्रमण-व्यापार इस ग्रन्थमें लिखा है। ग्रन्थकर्त्ता सैयद सुलतान है।

१२ हजरत महम्मदचरित—सैयद सुलतानने इसे लिखा है।

१३ यामिनी-वहाल—कवि करीम उल्ला द्वारा रचित।

१४ केकायतोल-मोछलिन् (इसलाम हितकथा) हिंदूकी मनुसंहिताकी तरह एक मुसलमानी संहिता, महम्मदी धर्म-परिच्छदसे आवृत है।

१५ रहातुल कुलुप (आत्ममुक्तिसोपान)—एक धर्म-ग्रन्थ, यह इसी नामके पारसी ग्रंथका अनुवाद है। ग्रंथ-कर्त्ताका नाम सैयद नूर उद्दीन है।

१६ वालका-नामा—प्रणेता नयनचाँद फकीर।

१७ इमामयात्राकी पुस्तक—एक धर्मविषयक मुसलमानी ग्रंथ। इसके रचयिता हैं वगुड़ा जिला-निवासी महिचरण और गैनारों कान्दीके श्रीदुर्गतिया सरकार साहव।

१८ क्लीवत्व—तवारिखो हामिदीके प्रणेता मौलवी हामिदुल खाँने इसकी रचना की। ग्रंथ पद्य और गद्यमें लिखा है। ग्रंथकर्त्ताने मूँछ कटानेवाले मुसलमानों पर श्लेष कर लिखा है। मूँछ कटाना महम्मदीय शास्त्रमें निषिद्ध कर्म है।

१९ त्राणपथ—एक काव्य। यह महम्मद हमिदुल्ला खां द्वारा रचा गया है। ईश्वरका एकत्व तथा सुकृति और कुकृतिका फलाफल इस ग्रंथमें प्रतिपादित हुआ है।

२० पैगम्बर-नामा—सैयद सुलतान द्वारा विरचित। ग्रंथ बहुत बढ़िया है। इसमें हजरत, इछा, मुछा, दाऊद, सुलेमान, बुद्ध, आदि पैगम्बरोंका चरित तथा प्रसङ्गक्रमसे श्रीरामचरित और श्रीकृष्णचरित वर्णित है।

२१ दफायेत्—एक मुसलमानी संहिता। पारसी ग्रंथसे कवि सैयद नूरउद्दीनने अनुवाद किया है।

२२ सुलतान जमज़माका ग्रंथ—यह महम्मद कासिमका रचा हुआ है। इसमें कविने मनुष्यके मृत्युकालीन और तत्परवर्त्ती कालका हाल हकीयत् अर्थात् पापपुण्यका न्याय विचारादि सरल भाषामें दिखलाया है।

गुलाम मौलाका बनाया हुआ एक और सुलतान जमजमाका ग्रंथ मिलता है। प्रतिपाद्य विषयमें दोनों ग्रंथ एकसे हैं, परन्तु रचनामें कुछ पृथक्ता देखी जाती है।

२३ इश्लिछ-नामा—मुसलमानी धर्मग्रंथ। गुरु शिष्यकी कर्त्तव्यता इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

२४ नूर कन्दिल—यह कवि महम्मद छकिने लिखा है। इसमें स्वर्ग, सृष्टि, मनुष्योत्सर्ग आदिसे ले कर मानव जीवनके शेष विचार तककी बातें लिखी हैं।

२५ योग-कालन्दर—एक मुसलमानी योगशास्त्र। योगसाधन किस प्रकार करना होता है तथा परलोकका उपाय क्या है, वही इस ग्रंथमें लिखा है।

२६ आमछेपाराकी व्याख्या—पवित्र कुरान शरीफके अन्तर्गत आमछेपारा अंशकी व्याख्या और उसके पढ़नेका फल इस ग्रन्थमें प्रतिपादित हुआ है। फकीर होछेन इस ग्रंथके रचयिता हैं।

२७ चित्त-इमान—एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। इसका अनुवाद अरवी भाषासे हुआ है। रचयिता काजी बदिउद्दीन हैं।

२८ छरछालकी नीति वा तकिव किताब—एक मुसलमानी संहिता। हुल्लाइन निवासी मुनाइम मुन्शीके कहनेसे कवि करम अलीने इस ग्रंथका पारसी भाषासे अनुवाद किया।

२९ अवतार-निर्णय—एक मुसलमानी ग्रंथ। ग्रंथमें सृष्टिपत्तनसे ले कर अवतारवाद तककी कथाएं लिखी हैं। नवी-वंशके व्याख्यान-प्रसङ्गमें कविने महम्मदका अवतारत्व स्वीकार किया है।

३० फतेमाका छुरतनामा—बीबी फतेमा हजरत महम्मद मुस्तफ़ाकी लड़की और हजरत अली मूर्त्तजाकी स्त्री थी। उनके दो पुत्र थे, इमाम हुसेन और हसन। उनकी अंतर्निहित अव्यक्त रूपराशि देखनेके लिये एक दिन अल

बहुत व्याकुल हो उठे। उसीका अवलम्बन कर ग्रंथकार शाह वदि उद्दीनने यह ग्रंथ समाप्त किया था।

३१ आसफनूरिका एकदिलसार—एक मुसलमान धर्मविषयक ग्रंथ। ग्रन्थकारका नाम कवि कार आसफ महम्मद है।

इतिहास-शाखा।

अनेक मुसलमान कवि इसलाम-धर्मका मर्म समझाने वा उसकी पवित्र कीर्त्ति प्रचार करनेके लिये बहुतसे ऐतिहासिक काव्य वङ्गलामें रच गये हैं। वङ्गलाके अज्ञ और निरक्षर मुसलमान-समाजमें इसलामीय प्रचार ही ग्रन्थरचानाका मुख्य उद्देश्य है। किन्तु उन सब ग्रन्थोंमें वङ्गला रामायण, महाभारतदि ग्रंथका थोड़ा बहुत अनुकरण देखा जाता है। नीचे अति संक्षिप्तभावमें उन सब ग्रंथोंका प्रतिपाद्य विषय और उनका परिचय दिया गया हैं,—

१। हनीफाका पुत्र-महम्मद मुस्तफाके जमाई अलीके दो विवाह हुए थे। बीवो फतीमाके गर्भसे इमाम हुसेन और हसन तथा बीवी हनीफाके गर्भसे महम्मद हनीफाका जन्म हुआ। दमस्कसके दुर्द्दान्त राजा एजिदके हाथसे जब इमाम हुसेन-हसन मारे गये, तब हसनके पुत्र जयनाल आवेदिनने इस घटनाका विवरण करते हुए हनीफाको एक पत्र लिखा। हनीफा उस समय वनोयाजी प्रदेशमें राज्य करते थे। नविवंशीकी ऐसी दुरवस्थाकी वात सुन कर हनीफा क्रोधसे आग ववूले हो दलवलके साथ मदीना आये। मदीना आते ही महावीर हनीफाने एजिदको एक पत्र लिखा। उसीके उत्तरमें एजिदने युद्धकी घोषणा कर दी थी। युद्धमें एजिदकी पराजय और मृत्यु हुई। यही युद्धवृत्तान्त काव्यका वर्णित विषय है।

२। मुक्ताल होछेन ग्रंथ—सुप्रसिद्ध नविवंशका इतिहास है। इसमें हसन और हुसेनकी विषादकहानी तथा मुहर्रमका आमूल इतिहास वर्णित है।

३। इमाम चोरी—बाल्यकालमें इमाम हसन और हुसेनको कोई चुरा कर मुछा बादशाहके निकट ले गया था। उसी घटनाके आधार पर यह छोटा ग्रंथ रचा गया है। कोई कोई इसे प्रसिद्ध कवि महम्मद खाँकी रचना मानते हैं।

४। काशिमका युद्ध—करवला मैदानके उस महायुद्ध प्रसिद्ध मुहर्रमकी संश्लिष्ट घटना।

५। सिकन्दर-नामा—सुप्रसिद्ध कवि आलाउल द्वारा रचित। यह ग्रंथ पारसी कवि नेजामीने पहले पारसी भाषामें लिखा। पीछे अलाउलने उसीका भाषान्तर किया। ग्रंथ माकिदनवीर अलेकजन्दरकी जीवनी ले कर लिखा गया है।

६। अमीर जङ्ग—महम्मदके दौहित्र इमाम हसन-हुसेन जब पापिष्ठ एजिदसे मारे गये, तब उनके वैमात्रेय भाई अमीर महम्मद हनीफाने विषम संग्राममें एजिदका वध किया। मदीना और देमास्क नामक स्थानोंमें युद्ध हुआ था। उक्त दोनों स्थानोंके युद्ध विवरणसे ग्रंथका भी दो भाग हुआ हैं। पहले भागमें मदीना-युद्धका और दूसरेमें देमास्क-युद्धका वर्णन है। श्रीयुत् महम्मद शाहकी आज्ञासे कवि शेख मनसुरने पयारमें इस जङ्गकी पंचाली कथा समाप्त की थी।

७ जङ्ग-नामा—महम्मदके जमाई अलीकी युद्धकहानी ले कर ग्रंथ रचा गया है। ग्रंथकर्त्ताका नाम नससल्ला खाँ है।

उपाख्यान-शाखा।

मुसलमान कविगण अरबी-उपन्यास वा पारसी-उपन्यास वर्णित अपूर्व प्रेमकहानीके अनुकरण पर वङ्गला भाषामें अनेक उपाख्यान रच गये हैं। उनमेंसे कुछ आख्यान ग्रंथोंका परिचय नीचे दिया जाता है—

१ सती मैनावती और लोर चन्द्राणी—ग्रंथकर्त्ताका नाम दौलत काजी और सैयद आलाउल साहब है। यह ग्रंथ दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें लोकराज और रानी चन्द्राणीका वृत्तान्त और द्वितीय भागमें वणिकपुत्र छातन और राजकुमारी मैनाका प्रसङ्ग वर्णित है।

२ मदनकुमार-मधुमालाकी पुस्तक—नायक और नायिकाकी प्रेमकहानी ले कर यह ग्रंथ रचा गया है। ग्रंथकर्त्ता नूरमहम्मद हैं।

३ सप्त पयकर—सात दिनके सात उपाख्यान ले कर काव्य रचा गया है। रोसङ्गकी राजसभामें रह कर महामति आलाउलने यह काव्य सैयद महम्मदके आदेशसे रचा।

४ जोवेलमुल्लुक सामारोक—यह एक मुसलमानी आख्यान ग्रंथ है। सैयद महम्मद अकबर अलीने इसकी रचना की। रचना उतनी खराव नहीं है।

५ कग फ़ुर शाह—एक बड़ा उपन्यास ग्रंथ। इसके रचयिता मियाँ हसमत अली काजी चौधरी हैं।

६ तमिम-गुलाल चैतन्यसिलाल—एक प्रेम-कहानी। महम्मद अकबर इसके रचयिता हैं।

७ पद्मावती—चट्टग्रामके सुप्रसिद्ध कवि आलाउल द्वारा रचित। वङ्गला साहित्यसेवोके निकट इस ग्रंथका विशेष आदर है।

लालमति-सयफल मुल्लुक—लालमति और ओल-कर्णायन सिकन्दरके पुत्र मुल्लुकके प्रणय और परिणय व्यापारको ले कर यह ग्रंथ लिखा गया है।

मल्लिकाका हजार सौयाल—एक पञ्चालिका। सेर वाज वा राज इसके रचयिता हैं।

रङ्गमाला—एक काव्य, कवीर महम्मद-विरचित। यह प्रेम और भक्तिकहानी ले कर लिखा गया है।

रेजवान शाहा—एक मुसलमानी उपाख्यान ग्रन्थ। इसे रूपककाव्य कहनेमें भी कोई अत्युक्ति न होगी। कवि शमसेर अलीने पहले पहल इसकी रचना की। कुछ अंश रचे जानेके वाद उनका देहान्त हो गया। पीछे कवि आछलामने उसकी रचना शेष की।

भावलाभ—एक मुसलमानी केच्छा वा राजकुमार-राजकुमारीकी प्रेमकहानी। समसुद्दीन छिद्दिकीने इसकी रचना की।

युसुफ-जेलेखा—युसुफ और जेलेखाकी प्रेमकहानी ले कर यह ग्रन्थ लिखा गया है। पारसी भाषाके प्रसिद्ध महव्वत-नामा नामक ग्रन्थका यह एक पद्यानुवाद है।

लायली-मजनू—एक मुसलमानी प्रेमकहानी। यह काव्य वियोगान्त है। ग्रन्थकर्त्ता कविका नाम दौलत वजीर वहराम है।

सङ्गीतशाखा।

मुसलमान लोग सङ्गीतशास्त्रमें विशेष पारदर्शी थे। आईन-इ-अकवरी पढ़नेसे इसका अच्छी तरह पता चलता है। हिन्दू और मुसलमान सङ्गीतज्ञोंके यत्नसे रागनामा, तालनामा आदि अनेक पुस्तकें रची गईं जिन्होंने वङ्गला-साहित्यको अलंकृत किया था। नीचे कुछ पुस्तकोंका परिचय दिया जाता है—

१ रागनामा—प्राचीन सङ्गीतका एक इतिहास। इस पुस्तकके वनानेवाले एक नहीं थे। वहुतोंने मिल कर इसका सङ्कलन किया है। इसमें प्राचीन राग और तालका जन्म, गत्, रागका ध्यान तथा प्रत्येक रागानुयायी एक गान लिपिवद्ध है।

२ तालनामा—सङ्गीत-सम्बन्धीय एक पुस्तक। आलोच्य ग्रंथमें द्विज रघुनाथ, श्रीचाँद राय, छैयद आइन-उद्दिन, गोपीवल्लभ, छैयदमूर्त्तजा, हरिहर दास, नाछिर-उद्दिन, गैयाज, आलाउल, भवानन्द अमान, सेरचाँद, शिवरामदास और हीरामणि आदिका भणितायुक्त पद पाया गया है।

३ सृष्टिपत्तन—एक सङ्गीत पुस्तक। इसमें राग-तालके जन्मादिका हाल लिखा है तथा चम्पागाजी, वक्सा अली और अली राजाको भणिता देखनेमें आती है।

४ ध्यानमाला—एक सङ्गीतविषयक पुस्तक। राग-तालकी उत्पत्ति, कौन राग कव गाया जाता है और किसके द्वारा पहले पहल वाद्ययन्त्रोंका आविष्कार हुआ, उसका एक आनुपूर्विक इतिहास पुस्तकके मध्य आलोचित हुआ है।

५ रागतालकी पुस्तक—इसमें राग और तालकी उत्पत्ति, दण्डभाग, घड़ीभाग, रागतालके विवाह आदि विषयक लिखे हैं। इसमें केवल दो व्यक्तिकी भणिता देखी जाती है।

चम्पागाजी एक विख्यात पण्डित थे। सङ्गीतशास्त्रमें उनकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। उनके रचित अनेक सङ्गीत पाये जाते हैं।

६ रागनामा—इसी श्रेणीकी एक दूसरी पुस्तक।

पदसंग्रह—रागमाला आदिमें जिस प्रकार मुसलमान कवियोंके रचित पद और गीतका समावेश हुआ है, आलोच्य पदसंग्रहमें भी उसी प्रकार वहुतसे व्यक्तियोंके रचित विभिन्न पद और गीत लिपिवद्ध देखे जाते हैं।

जुलुआ—एक छोटी गीतकी पुस्तक। इसमें सिर्फ

२० पद हैं। पहले यह मुसलमानोंके विवाहोत्सवमें गाया जाता था।

सत्यनारायणी कथा।

इधर मुसलमान लोग जिस प्रकार हिन्दू-देव देवीके प्रति श्रद्धा दिखा गये हैं, उधर हिन्दू लोग भी उसी प्रकार मुसलमान पीर आदिके भक्त और पूजक हो गये थे। आज भी अनेक अशिक्षित हिन्दूसम्प्रदायके मध्य मुहर्रम-पर्वमें 'ताजिया' मनाते देखा जाता है। शिक्षित-सम्प्रदायमें भी उस संस्कारका अभाव नहीं है। बहुतेरे अभीष्टसिद्धिके लिये 'पीरकी सिन्नी' मानते हैं और वहां मिट्टीका घोड़ा बना कर मानसिक दान करते हैं।

पीरके उद्देशसे यह सिन्निदानप्रथा बङ्गालमें विशेष भावसे प्रचलित है। बौद्धप्रधान बङ्गालमें अधिक दिन हिन्दूप्रधानता स्थापित भी न होने पाई थी, कि मुसलमान प्रभावने धीरे धीरे बङ्गालमें अपनी प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति सुदृढ़ करनेकी कोशिश की। बहुत दिन एक जगह रहनेसे हिन्दू और मुसलमानके बीच धर्मसम्बन्धमें उदारभाव उपस्थित हुआ तथा उसीके फलसे धीरे धीरे बङ्गालमें मिश्रदेवता सत्यदेवता सत्यपीरका उद्भावन हुआ—उनकी पूजा और सिन्निदान विधिमें हेरफेर हुआ। क्रमशः वह पीर हिन्दूभावमें रूपान्तरित हो कर सत्यपीर वा सत्यनारायण नामसे पूजित होने लगे। इन सत्यनारायणकी पूजा-कथा बहुत कुछ पुराणप्रसिद्ध चण्डीगान और शीतला-गान-सी है। साधारणतः ग्रंथ छोटे आकारके होने पर भी शङ्कराचार्य, कवि जयनारायण और उनकी भतीजी आनन्दमयी-रचित तीनों ग्रंथ बहुत बड़े हैं। शङ्कराचार्यको पांचाली १६ पालोंमें ही प्रचलित है।

पीरकी पूजाका प्रचार करनेके लिये ब्राह्मणोंने एक ओर जिस प्रकार अनेक सत्यनारायण-ग्रंथोंका प्रचार किया था उसी प्रकार मुसलमान कविगण भी "लालमोन के केच्छा" आदि विभिन्न नामके ग्रंथ सत्यनारायणका प्रभाव प्रचार करनेके उद्देशसे लिपिवद्ध कर गये हैं। आज तक हम लोगोंने सत्यनारायणके माहात्म्यज्ञापक जितने ग्रंथोंका परिचय पाये हैं, उनमें द्विजराम वा रामेश्वर, फकीररामदास, द्विज विश्वेश्वर, द्विज रामकृष्ण, कविचन्द्र, अयोध्याराम राय तथा शङ्कराचार्यकृत सत्यनारायणी कथा सर्वप्राचीन है। यह कथा प्रायः तीन सौ वर्ष पहले रची गई थी ऐसा अनुमान किया जाता है।

ऊपर कहे गये ग्रंथोंको छोड़ कर जयनारायणसेनका सत्यनारायणव्रत वा हरिलीला तथा शिवरामकृत सत्यपीर पांचाली नामक इस विषयके दो ग्रंथ पाये जाते हैं। जयनारायणके हाथमें पड़ कर यह सत्यनारायणकी व्रतकथा एक सुन्दर सुवृहत् काव्यमें परिणत हो गई है।

इसके सिवा द्विज दीनरामकृत एक नारायणदेवकी पांचाली है। चट्टग्रामसे बहुत-सी 'सत्यपीरकी पांचाली' पाई गई हैं। उनमेंसे ११४० सालमें लिखित फकीरचांदकी तथा ११८२ मघीमें नकलकी गई द्विज पण्डितकी पाञ्चालीपुस्तक उल्लेखनीय है। द्विज रामानन्दकी भणिता युक्त एक और भी 'सत्यपीरकी पाञ्चाली' है। फकीरराम दासने एक सत्यनारायण कथाकी रचना की। बङ्गालके सुप्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय गुणाकरको बनाई हुई एक सत्यनारायणकथा प्रचलित है। द्विज राम वा रामेश्वरका जो सत्यनारायण ग्रंथ इस देशमें प्रचलित है वह रामेश्वरी सत्यनारायण कहलाता है। द्विज विश्वेश्वर विरचित एक सत्यनारायण वा गोविन्दविजय मिलता है। वह ग्रंथ सन् ११५१ सालकी हस्तलिपि है।

१०६२ सालमें लिपिकृत शङ्कराचार्यकी एक 'सत्यपीर कथा' पाई गई है। शङ्कराचार्य बङ्गवासी थे सही पर आज तक उनके कुल ग्रंथ बङ्गदेशमें नहीं मिले हैं। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उड़ीसाके मयूरभञ्जराजमें शालतरुपरिवेष्टित आरण्यपल्लीके मध्य बहुतोंने शङ्कराचार्यके कुल १६ पाले सुने हैं।

शङ्कराचार्य सत्यपीरकी जो जन्मकथा कीर्त्तन कर गये हैं, कविकर्ण, कविवल्लभ आदि द्वारा उत्कलमें प्रचलित सत्यनारायणकथामें वही सब वर्णन पाया जाता है, केवल थोड़ा-सा प्रभेद है। इससे मालूम होता है, कि जन्मपालाके मध्य बहुत कुछ ऐतिहासिक घटना है।

सुलतान हुसेन शाह 'अलाउद्दीन हुसेन शाह' नामसे मुसलमान-इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। शङ्कराचार्य और कविकर्णकी सत्यनारायणकथामें जिन 'आला' बादशाहका उल्लेख है, उन्हें हम लोग अलाउद्दीन हुसेन शाह समझते हैं।

हिन्दू कवियोंकी नकल पर अथवा मुसलमान समाजमें सत्यपीरका सिन्निदान फैलानेके उद्देशसे कुछ मुसलमान कवि भी सत्यनारायणका माहात्म्य गा गये हैं। इन सब पुस्तकोंमें अरिफ कविके लालमोहनकी केच्छा विशेष उल्लेखनीय हैं। सुलतान हुसेन शाहने अपनी कन्याको देशान्तर भेज दिया था, इससे भी वे सत्यपीरके क्रोधसे परित्राण न पा सके थे।

इतिहास तथा कुलजी-साहित्य।

बंगलाभाषामें कुलपंजी वा वंशानुचरित लिखनेकी प्रथा अति प्राचीन है। रामायण तथा प्राचीन पुराणादि शास्त्रोंसे हमलोग जान सकते हैं कि, विवाहसभामें वरकन्याके पूर्व पुरुषोंकी वंशावली कीर्त्तन करनेका नियम था। यह सनातन आर्य प्रथा बहुत दिनोंसे हिन्दू समाजमें चली आती है। दूसरे सभी देशोंकी अपेक्षा बंगाल देशमें ही आब्राह्मणचंडालादि सभी समाजोंमें वंशानुचरित-रक्षा तथा कीर्त्तन-प्रथा विशेषरूपसे फैली हुई थी। इसीसे इस देशमें कुलजी वा वंशानुचरित साहित्यकी यथेष्ट पुष्टि दृष्टिगोचर होती है। वङ्गदेशमें कितने ही विदेशी राजाओंके आक्रमणसे एवं अनेकों धर्मसाम्प्रदायिक विप्लवसे प्रकृत राजनैतिक इतिहासका अधिकांश विलुप्त हो जाने पर भी कुलपंजी वा वंशानुचरित सुरक्षित रहनेसे सामाजिक तथा पारिवारिक इतिहास विलुप्त नहीं हो सकता। अंगरेजी प्रभावसे बंगालीको जातीयता-रक्षाका कठोर शृङ्खल शिथिल होनेके साथ साथ इन सब अमूल्य सामाजिक इतिहासोंका बहुत कम प्रचार हो गया है। उपयुक्त यत्नके अभावसे सैकड़ों कुल ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं; किन्तु सामान्य अनुसन्धानसे ही हमलोगोंने जो कुछ संग्रह किया है, वे कुछ कम नहीं हैं। उनकी संख्या पाँच सौसे अधिक होगी।

बंगलाके सामाजिक इतिहास अथवा कुलग्रंथ व्यतीत, बंगलाभाषामें और भी कई छोटी और बड़ी ऐतिहासिक कविता तथा काव्य रचनायें देखी जाती हैं। इन सब पुस्तकोंके मध्य किसी किसी पुस्तकमें भौगोलिक विवरण इस प्रकारसे है, कि यदि उन्हें एकमात्र भूगोल कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी। ऐतिहासिक सभी कविताओं अथवा काव्योंमें सम्पूर्ण भावसे वंशाख्यान तथा धारावाहिकघटना समाश्रित नहीं है, फिर उनके मौलिक विषय बिलकुल ही प्रमाणशून्य हैं, ऐसा भी नहीं कह सकते। भाषामें रचित राजाख्यानसमूह, महाराष्ट्र पुराण तथा त्रिपुराका राजमाला प्रभृति ग्रंथ इस श्रेणीमें गण्य हो सकते हैं। इनके अलावे छोटी छोटी घटना-समाश्रित वा स्थानोंकी माहात्म्यज्ञापक जितनी कवित्वमयी कीर्त्तिगाथा पाई जाती हैं, वे भी इस श्रेणीमें गिनी जा सकती हैं।

विविध शास्त्रको ग्रन्थमाला।

बंगाली कवियोंने योग तथा धर्मतत्त्व सम्बन्धमें कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की है।

व्रत-कथा।

पुराणोंमें कितने ही व्रतोंका उल्लेख है; वे सब प्रायः संस्कृत भाषामें ही लिखे हुए हैं। उनमेंसे कोई कोई ग्रंथ पहले हीसे बंगला भाषामें अनूदित हैं। बंगालके विभिन्न प्रदेशवासी लोगोंमें इन सब व्रतोंके सिवा और भी कितने ही लौकिक व्रतोंका भी प्रचलन देखा जाता है। ये व्रत 'मेयेली व्रत' के नामसे साधारणतः प्रसिद्ध हैं। इन मेयेली व्रतोंमेंसे कुछ तो भाषामें लिखे गये हैं और कुछ आज भी बंगीय कुल-ललनाओंको कण्ठस्थ हैं।

भाषामें रचित रामायण महाभारतादि तथा कृष्णलीलाविषयक भागवतादि ग्रन्थ गाये जानेके बाद पांचालीके बदलेमें उसके अंश विशेषका कथनीय विषय ले कर पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके मुखसे कहनेके लिये पयारादि छन्दमें घोषाकथादि संयुक्त ग्रंथकी रचना होने लगी। धीरे धीरे वे जब अभिनयके योग्य हुए, तबसे वे सब ग्रंथ मार्जित भावापन्न हो कर 'यात्राके पाला' रूपमें परिणत हो गये।

यात्रा शब्दमें अनेक नाटकोंका परिचय दिया गया है; किन्तु उस स्थानमें उसी पालासमूहके साहित्य विषयकी आलोचना नहीं की गई है, केवल दो एक गानोंका नमूनामात्र दिया गया है। बंगालमें अङ्गरेजसमागमके पहले वा प्रथम यात्रा विषयमें जिस तरहके गद्य तथा पद्यमें वाक्यविन्याशकी प्रथा प्रचलित थी, उसका ही कथंचित आभास ले कर परवर्त्तिकालमें जो सब ग्रंथ रचित हुए, उनके भाव, भाषा तथा वर्णनाप्रणाली वर्त्तमान प्रथा-

से स्वतन्त्र थीं। अंगरेजोंके बंगाधिकारके बाद बंगला साहित्यका जिस तरह क्रमविकाश हुआ है, उसी तरह यात्रा-अभिनयके उपयोगी नाटकोंकी भाषा भी मार्जित रुचि-सम्पन्न हो गई है।

प्राचीन बंगभाषामें रचित जिन सब पुस्तकोंका परिचय पहले दे चुके हैं, कृष्णकमलकी पुस्तक कितने ही अंशोंमें उसी छन्दमें रचित होने पर भी उसकी भाषा कहीं अधिक मार्जित एवं सुरुचि-सम्पन्न है। कृष्णकमलके समयमें ही पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय प्रभृति विद्वानोंने बंगला गद्यसाहित्यके उन्नतिसाधनमें जो अटूट परिश्रम किया था, उसीका फल थोड़े ही दिनोंमें बंगालके सभी स्थानोंमें विस्तृत हो गया। कवित्वमें कृष्णकमलकी बात छोड़ देने पर भी उसी समय सद्भावशतकप्रणेता कृष्णचरण मजूमदार, मेघनादवध प्रणेता माइकेल मधुसूदन दत्त तथा कविवर हेमचन्द्र वन्द्योपाध्यायको उसी मार्जित भाषा-जगत्में विचरते देखते हैं। अङ्गरेजी शिक्षित मधुसुदन, हेमचन्द्र प्रभृतिकी काव्य-भाषामें मानो अङ्गरेजी शब्दरहस्य तथा छन्दोतत्त्वका अस्फुटालोक परिव्यक्त हो रहा है। ईश्वरचन्द्र गुप्त, कृष्णकमल प्रभृति कवियोंकी कविताओंमें हम लोग उसी तरहके प्राचीन बंगला साहित्यका छन्दोबंध तथा पूर्ण बंगला छन्दका अविकल चित्र परिस्फुट देखते हैं।

इस समय यात्रासाहित्यकी परिपुष्टिके लिये ग्रंथकारोंने अपने अपने पालाओंकी श्रीवृद्धके लिये पुस्तक रचना शुरू कर दी। इन सब ग्रंथकारोंके मध्य हम लोग विद्यासुन्दर पालाके रचयिता भैरव हालदारको प्रथम समझते हैं। उसके बाद मदन मास्टर, रामचंद्र मुखोपाध्याय प्रभृति अनेकों कवि यात्राकी रचना कर गये हैं। शेषोक्त समय कवि ठाकुरदास तथा मनोमोहन वसुने भी यात्रासाहित्यका बहुत उत्कर्ष साधन किया है। प्रसिद्ध यात्राकर श्रीयुक्त मोतीलाल रायके कितने ही गीताभिनय हैं, उनमें भरतागमन तथा निमाई सन्न्यास विशेष प्रसिद्ध हैं। संगीत तथा काव्यरचनामें राय महाशय सुपटु थे।

मदन मास्टरके समय यात्राका बहुत कुछ सुधार हुआ। उस समय बंगालमें रंगालयका पूर्ण प्रभाव था। नूतन भावमें रंगाभिनय उस समय जनसाधारणके चित्तको हठात् आकर्षित कर लेता था। इसी कारण लोग उस समय यात्रा-साहित्यके ऊपर उतना ध्यान नहीं देते थे। अनेकों ग्रन्थकारोंने संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटकोंका अनुकरण करके रंगाभिनयोपयोगी नाटकोंकी रचना की। उस समय बंगला गद्य साहित्य भी अपेक्षाकृत उन्नति पर था। उसे हम लोग नाटक साहित्यमें प्रसिद्ध कुलीन कुलसर्वस्व, शकुन्तला, पद्मावती, नवीन तपस्विनी, नीलदर्पण तथा जमाईवारिक नाटकोंके संकलनमें देखते हैं। सुप्रसिद्ध नाटककार दीनबंधु मित्र, मधुसूदन दत्त प्रभृतिने मार्जित गद्य साहित्य-शिक्षाके गुणसे अपनी अपनी पुस्तकोंकी भाषा भी मार्जित करनेका प्रयास किया था। कुलीनकुल सर्वस्व पुस्तक संस्कृतके सांचेमें ढाली हुई है एवं उसकी भाषा भी वर्त्तमान लालित्यपूर्ण शब्दसमूहसे परिपूर्ण नहीं है; सुतरां उसका गद्यांश एकमात्र राममोहनके समयके गद्यसाहित्यमें गण्य हो सकता है, उसे विद्यासागरके समयके मार्जित साहित्यके मध्य सन्निवेश नहीं किया जा सकता।

यात्राकी चाल ढालके परिवर्त्तनके साथ ही प्रथित पाला-समूहका सुधार हुआ एवं यात्रा साहित्यका भी मार्जित भाषामें आदर हो चला। उसीके साथ वर्त्तमान समयमें पांचाली; कवि तथा जारी गानकी रचना, शब्दयोजनाकी विशेष परिपाटी भी देखी जाती है। पहले पांचालीका गान जिस रूपमें था, इस समय उससे भाषा अधिक मार्जित भावापन्न एवं रचना सुरुचि सम्पन्न हो चली है। प्राचीन पांचालियोंसे दशरथि राय प्रभृति आधुनिक कवियोंके द्वारा रचित पांचालियोंमें इस तरहकी पृथकता सुस्पष्ट रूपमें वर्त्तमान है। इस समय जिन सब पांचालियोंके गान हम लोग सुनते हैं, उनके गान तथा भाषा अपेक्षाकृत कहीं अधिक मार्जित हैं, किन्तु सखीसंवादादिमें आदिरस वा अश्लीलताकी दौड़ बहुत बढ़ गई है।

हरुठाकुर, नीलमणि पाटुनी, भोला मयरा प्रभृति कवियोंके गानोंकी रचना सुन्दर तथा भावविकाशपूर्ण है।

पूर्व-बङ्गालमें जारीगानका अभी भी यथेष्ट समादर है। वे निरक्षर कवियोंकी रचना होने पर भी उनमें भाव-विकाशका पूर्ण उपादान विद्यमान देखा जाता है, किन्तु भाषाकी वैसी परिपाटी नहीं है ; फिर भी वे सब कवि भाषामें अपटु थे, ऐसा भी नहीं कह सकते। जारीगान बहुत कुछ कविगानके समान ही होता है। दोनों दलमें प्रश्नोत्तर रूपमें गाना होता है।

एक ओर जिस तरह भूगोल, इतिहास, काव्य तथा नाटकादि एवं अङ्क ज्योतिषादि विज्ञान पुस्तकें पयारादि छन्दोंमें रची गई थीं, दूसरी ओर उसी तरह वैद्यक पुस्तकें भी भाषा पद्य अथवा गद्यमें रची जा कर जन-साधारणके मध्य आयुर्वेदका प्रभाव फैला रही थीं। बङ्गलाभाषामें वैद्यक पुस्तकें साधारणतः 'कविराजी पतरा' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

गल्प।

आध्यात्मिक उन्नतिकी आशासे एवं मानसिक वृत्ति-नियमकी उत्कर्षता सम्पादनके निमित्त बङ्गीय कवियों-ने एक ओर जिस तरह धर्मतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, योगतत्त्व तथा नीतितत्त्वविषयक ग्रन्थोंको भाषामें रचना करके बङ्गवासियोंके मनमें वैराग्यको सूचना कर दी है, दूसरी ओर उसी तरह उन्होंने अपूर्व अपूर्व आख्यानोंकी पुस्तकें रच कर उनके हृदयमें संसारोद्यानके प्रेमप्रस्रवणकी अमृतमयी धारा बहा दी है। इन सब उपाख्यानोंकी अधिकांश पुस्तकें किसी न किसी राजवंशको उद्देश करके रची गई हैं। क्योंकि, ऐसा होनेसे ही तो उन पर जनसाधारणको विश्वास होगा एवं वे सब उन पुस्तकोंसे नीति संग्रह करके संसारक्षेत्रमें न्यायपथ पर दृढ़ रहेंगे। इस श्रेणीके कितने ही आख्यान इतिहास-मूलक हैं और कितने ही भित्तिशून्य गल्पमात्र हैं।

प्राचीन गद्य-साहित्यका इतिहास।

(अङ्गरेजी प्रभावसे पहलेका साहित्य)

बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनाधिकार होनेके पहले बङ्गीय कवियोंने बङ्गलासाहित्यकी परिपुष्टिके लिये पद्य साहित्यके अलावे कई एक गद्य ग्रन्थोंकी रचना की थी। ये सब पुस्तकें साधारणतः देशीय प्रचलित भाषामें ही लिखी गई हैं। देशी अज्ञलोगोंको धर्मतत्त्व शिक्षा देनेके लिये परवर्त्तिकालमें विभिन्न मतावलम्बी वैष्णवों-ने पद्यको तोड़ कर एक प्रकारके गद्यमें कई एक पुस्तकें लिखी। उस प्राचीन गद्यकी भाषा वैसी सरल तथा वर्त्तमान बङ्गला गद्य-साहित्यकी तरह सुललित वा ओजस्वितापूर्ण न होने पर भी भाषातत्त्वके हिसाबसे वे ग्रन्थ अति अमूल्य समझे जायंगे।

शून्यपुराण, चैत्यरूपप्राप्ति प्रभृति कई एक प्राचीन गद्यके निदर्शन-स्वरूप गद्यपद्यमिश्रित ग्रन्थोंके अलावे, हम लोग अपेक्षाकृत परवर्त्ती समयमें अर्थात् बङ्गालमें अङ्गरेजी शासनके सौ वर्षसे कुछ पहलेके रचे हुए कितने ही गद्य ग्रन्थोंका परिचय पाते हैं। इन सब ग्रन्थोंकी भाषा, अङ्गरेजी अधिकारके परवर्त्ती राममोहन राय, रामराम बसु प्रभृतिके रचे हुए ग्रन्थोंकी भाषासे किसी अंशमें भी खराब नहीं है। उनमें वाक्याडम्बर तथा समासकी अधिकता नहीं है—उनकी भाषा सरल है। उनमें वेदान्तादिदर्शनका अनुवाद, व्यवस्थातत्त्व, वृन्दा-वनलीला, भाषापरिच्छेदका अनुवाद एवं वारेन्द्र ब्राह्मण-कुल ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

इसके बाद बहुत समय तक बङ्गला भाषामें जिन सब गद्य तथा पद्यमय पुस्तकोंकी रचना हुई, वे सब प्रायः सहजियाके द्वारा ही रची गई। इनमें कोई कोई श्री-रूपगोस्वामी द्वारा रचित एवं कोई कोई कृष्णदास कवि-राज प्रभृति नामधारी कवियोंके द्वारा रचित कह कर प्रसिद्ध हैं।

अङ्गरेजी-प्रभाव।

अङ्गरेजोंके आनेसे पहले ही इस देशमें गद्य-साहित्य-का सूत्रपात हुआ था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अङ्गरेजी-शासनके प्रारम्भसे इस देशके लोगोंके हृदयमें नाना विषयोंमें कर्मनिष्ठाके भावका सञ्चार हुआ। वही जागरण गद्य-साहित्यका उद्बोधन है—उस विषयमें बङ्गालीके साथ साथ अङ्गरेज-राजपुरुषोंने भी सहायता की थी। केवल साहित्य ही नहीं, अङ्गरेजोंने सारे देश-में विविध विषयोंके परिवर्त्तनकी तरङ्गको अलग कर देनेकी कोशिश की। मुद्रायन्त्रके इतिहासमें हमें उसका पूर्ण चित्र देखनेमें आता है।

१७६५ ई०में अङ्गरेजोंने इस देशका आधिपत्य लाभ

कर दीवानी-भार ग्रहण किया। वङ्गभाषा न जाननेके कारण कम्पनीके कर्मचारियोंको काम काज करनेमें असुविधा होने लगी। उन सब असुविधाओंको दूर करनेके लिये इंगलोके तत्सामयिक सिविल कर्मचारी मि० नैथेनियल प्रासी हालहेड (Mr Nathanial Prassy Halhed) वङ्गलाभाषा सीखने लगे। प्रगाढ़ अभिनिवेशके फलसे उन्होंने थोड़ो ही दिनोंमें वङ्गलाभाषामें ऐसी अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी, कि १७७८ ई०में उन्होंने Grammar of the Bengali Language नामक अङ्गरेजोंकी शिक्षाके लिए वङ्गलाभाषाका एक व्याकरण प्रणयन किया। यही व्याकरण वङ्गलाभाषाका पहला व्याकरण है। उस समय भी यहां मुद्रायन्त्रकी [सृष्टि नहीं हुई थी।] कम्पनीके कर्मचारी वङ्गला अक्षरके ग्रन्थ पढ़नेके लिए वहुत चेष्टा कर रहे थे। आखिर कम्पनीके भूतपूर्व सिविल कर्मचारी मि० चार्लस विलकिन्सको इङ्गलैण्डसे वुला कर उन्हींसे अक्षरादि प्रस्तुत कराये गये। उन्होंने स्वयं मुद्राका कार्य करके मि० हालहेडका व्याकरण छाप दिया।

मि० हालहेडने जो वङ्गभाषामें सविशेष अधिकार प्राप्त किया था, वह उनका व्याकरण पढ़नेसे ही मालूम हो सकता है। उन्होंने ग्रीक, लाटीन, संस्कृत, पारसी और अरवी भाषाके व्याकरणके साथ तुलना करके इस वङ्गव्याकरणको रचना की। इसमें वङ्गलाभाषाकी तात्कालिक और आधुनिक वाक्पद्धतिका यथेष्ट उदाहरण दिखलाया गया है। जब इस देशमें वङ्गीय साहित्यकी किसी प्रकारकी आलोचना नहीं दिखाई देती थी, उस समय एक अङ्गरेजने वङ्गला भाषा अच्छी तरह सीख कर एक व्याकरण लिखा। पीछे वे उसी व्याकरणकी रचनासे भाषाकी शृङ्खला तथा गद्य रचनाके सौकार्यसाधनमें अग्रसर हुए थे। यह वङ्गभाषाके इतिहासकी एक विशिष्ट घटना है।

मि० हालहेडके समय वङ्गीय गद्य भाषाकी अति शोचनीय अवस्था उपस्थित हुई। उन्होंने लिखा है, कि मैंने इस व्याकरणमें प्राचीन वङ्गीय कवियोंकी पुस्तकसे जो सब उदाहरण उद्धृत किये हैं, उनसे स्पष्ट जाना जाता है, कि शब्दके सम्बन्धमें वङ्गला-भाषाका यथेष्ट गौरव है। वङ्गला भाषामें साहित्य, विज्ञान, इतिहास आदिका कोई भी विषय अच्छी तरह रचा जा सकता है। किंतु वङ्गाली लोग इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। उन लोगोंके हाथका लिखना, उनका वर्णविन्यास तथा शब्दनिर्वाचन—सभी भ्रमात्मक और असङ्गत हैं। ये लोग न तो एक शब्दका रूप जानते और न वाक्य ग्रन्थन प्रणाली। इनका लिखना अरवी, पारसी, हिंदुस्तानी और वङ्गला शब्दका खिचड़ीपकान है। उसमें न शृङ्खला है और न कोई अर्थ ही निकलता है। यह वहुत स्पस्ट, अवोध और क्लेश-पाठ्य है*।

वङ्गला भाषामें कोई गद्य साहित्य है वा नहीं, मि० हालहेडने उसे जाननेके लिये बड़ी खोज की थी, किंतु उन्हें एक भी गद्य साहित्यका नाम सुननेमें न आया। उन्होंने लिखा है, थ्युसिडाइडके पहले ग्रीसदेशकी साहित्य की जो दशा थी, वंगीय साहित्यकी भी अभी वही दशा है। ग्रंथकार केवल पद्यमें ही पुस्तक रचा करते हैं। गद्य रचना इस देशके साहित्यमें विलकुल अप्राप्य है। केवल चिट्ठी-पत्र, आवेदन और इश्तहार आदि पद्यमें लिखे नहीं जाते हैं, किंतु इन सब रचनाओंमें भी गद्यका कोई नियम नहीं है, व्याकरणसंगत वाक्यग्रंथकी कोई प्रणाली नहीं है। इसके सिवा धर्मतत्त्व, इतिहास, नीतिकथा, जिस किसी विषयमें पुस्तक लिखनेसे ग्रंथकारोंके नाम चिरस्मरणीय होते हैं, वे सभी पद्यमें लिखे जाते हैं†।

गद्य ग्रन्थ संग्रह करनेके लिये लाख चेष्टा करके भी जब मि० हालहेड कृतकार्य न हुए, तब उन्होंने काशीराम दासके महाभारत, महाप्रभुके लीलामय वैष्णव-ग्रन्थों तथा भारतचन्द्रके विद्यासुन्दर आदिसे उदाहरण संग्रह किया था, कहीं भी वे गद्यसाहित्यमें कोई उदाहरण न दे सके।

मि० हालहेडने जब वङ्गभाषामें इस शोचनीय अभावका अनुभव किया, वङ्गीय गद्यसाहित्यकी उन्नतिके लिये जब उनका हृदय सरल व्याकुलताके प्रवाहसे परिप्लुत होने लगा, ठीक उसी समय विधाताने इस देशमें गद्य-

* Grammar of the Bengali language by Halhed.
† Grammar of the Bengali language, by Halhed.

साहित्यके प्रकृत प्रवर्त्तक स्वनामधन्य महात्मा राममोहन राय महोदयको आविर्भूत्त किया। मि० हालहेडने १७७८ सालमें अपना व्याकरण छपवाया। १७७४ सालसे लगायत १७८२ सालके भीतर किसी समय राममोहनका जन्म हुआ। राममोहन राय देखो।

कहते हैं, कि राजा राममोहन रायने १६ वर्षकी उमरमें ही 'हिन्दुओंकी पौत्तलिक धर्मप्रणाली' नामसे प्रतिमा-पूजाके विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। शायद यही ग्रन्थ वङ्गला भाषाका मुद्रित गद्यग्रन्थ है। किन्तु यूरोपीय-गणके मतसे १८०१ ई०में फोर्टविलियम कालेजके पण्डित रामराम वसुने जो राजा प्रतापादित्यका ग्रंथ लिखा वह वङ्गभाषाका प्रथम गद्य-ग्रंथ है।

किंतु हालहेड और राममोहन रायके पहले जो सब गद्य-ग्रंथ थे उनका परिचय पहले दिया जा चुका है अङ्गरेज अधिकारके प्रारम्भमें १७६५ ई०को ईसाई मशनरी वेण्टोने 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक ईसा-धर्म-सम्बन्धमें एक वङ्गला-गद्य पुस्तक प्रकाश की। यह पुस्तक लण्डननगर में छापी गई थी। १७८० ई०में कलकत्तेमें जो मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ उसमें वङ्गला अक्षर न था। इस यन्त्रमें आवश्यकतानुसार लकड़ीमें खुदाई करके वङ्गला अक्षर छापे गये थे। इसके दश वर्ष पीछे (१७९० ई०में) केरि मार्समन आदि सुप्रसिद्ध मिशनरियां श्रीरामपुरमें बंगला मुद्रायंत्र खोल कर वंगभाषामें पुस्तकादि छापने लगीं। उन्होंने लकड़ीमें खुदाई करके जो एक प्रस्थ बंगला अक्षर तैयार किया उससे पहले बंगला भाषामें बाइबिल पुस्तक छापी गई थी।

१७९३ ई०में लार्ड कार्नवालिसने जो सब आईन संग्रह किये, फोरेष्टर साहबने उनका वङ्गभाषामें अनुवाद किया था। इसके कुछ समय बाद अर्थात् १८०१ ई०-को कलकत्तेमें उन्होंने अङ्गरेजी अभिधान मुद्रित किया। फलतः इस समय मार्समन, वार्ड, केरी आदि ईसा-धर्म-प्रचारकों द्वारा वङ्गलासाहित्यकी बड़ी उन्नति हुई थी। धीरे धीरे वङ्गला गद्य रचनाका अनुशीलन भी चलने लगा था। यहां तक कि इन्होंने वङ्गला स्कूल और वङ्गला संवादपत्र प्रकाश कर वंगभाषा-शिक्षाकी वड़ी सहायता की थी।

इधर अंगरेज-राजकर्मचारियोंको इस देशकी भाषा सिखानेके लिये १८०० ई०में मार्किस आव वेलस्लीने कलकत्तेमें फोर्टविलियम कालेजकी स्थापना की। इस विद्यालय द्वारा वङ्गलागद्यसाहित्यकी वड़ी उन्नति हुई है।

यद्यपि राजा राममोहन राय महाशयके बहुत पहले कुछ पण्डितोंने भाषा-परिच्छेद, स्मृतिशास्त्र तथा उपनिषद् और सांख्यदर्शन आदिका वङ्गानुवाद किया था, किन्तु वे सब ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए जिससे वंगीय-साहित्य-जगत्का आज तक कोई उपकार नहीं हुआ। राममोहन राय महाशयका कोई कोई ग्रन्थ प्रचलित हिन्दू-मतके विरुद्ध होनेके कारण पण्डितोंमें खलबली मच गई। इसी कारण वंगके अघातविक्षुब्ध पण्डित-समाज-सागरमें आन्दोलनकी प्रबल तरंग हठात् उठ खड़ी हुई। इस आन्दोलनके समय वङ्गलाभाषाकी रचनामें अनभ्यस्त कुछ पण्डिताभिमानीने भी वंगभाषामें दो एक छत्र लिख कर ग्रन्थकार होनेका दावा कर लिया। इस कारण इस समय दो एक सामयिक पत्रोंकी सृष्टि भी हुई। किन्तु यथार्थमें राजा राममोहन रायको वंगला गद्यके उन्नति-साधनके प्रधानतम पथदर्शक कह सकते हैं।

अंगरेजी शासनके परवर्त्तीकालसे वंगला गद्य-साहित्यकी जो क्रमोन्नति हुई उसे हम लोग दो अंशोंमें विभाग कर सकते हैं। पहला ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका अमल अर्थात् ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके वंगराज्यका भार-ग्रहणसे ले कर महारानी विक्टोरियाके सिंहासनाधि-रोहण काल तक और दूसरा उस समयसे ले कर विद्या-सागरीय युगकी वर्त्तमान वंगलाभाषाके पूर्णविकाश तक। इतने दिनोंके भीतर जिन सब ग्रन्थकारोंने वंगला भाषामें ग्रन्थ लिखे हैं, नीचे उन्हींकी एक तालिका और ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है—

ईष्ट इण्डिया कम्पनीका अमल।

साधारण साहित्य।

१ प्रश्नोत्तर-माला—वेण्टो साहब इस पुस्तकके प्रणेता हैं। ईसा-धर्मसंवन्धमें तत्त्वादि प्रश्नोत्तरके बहाने इस ग्रन्थमें लिखे गये हैं। १७६५ ई०को लण्डनमें यह ग्रन्थ छापा गया था। वंगमें अंगरेजी-प्रभावके प्रारम्भमें यही सबसे पहला वंगला गद्यग्रन्थ समझा जाता है।

२ हिंदुओंकी पौत्तलिक धर्म-प्रणाली—सुविख्यात राजा राममोहन रायने सोलह वर्षकी अवस्थामें इस ग्रन्थको लिखा। प्रतिमा उपासना-प्रणालीके प्रतिकूल यह ग्रन्थ लिखा गया है। राममोहन राय शब्द देखो।

कथोपकथन—सुविख्यात पादरी रेभरेण्ड डब्ल्यु केरीने १८०१ ई०में यह ग्रन्थ प्रणयन किया। जनसाधारणकी प्रचलित वंगलाभाषा अंगरेजोंको सिखानेके लिये यह पुस्तक रची गई है। इसमें उस समयके प्रचलित वंगला और उसका अंगरेजी अनुवाद है।

१६वीं सदीके आरम्भमें वंगलाभाषाकी प्रकृति कैसी थी इस ग्रन्थमें उसका विशुद्ध नमूना है। रेभरेण्ड केरीने इस ग्रन्थमें वंगलाके तत्सामयिक सभी समाजोंकी प्रचलित कथावार्त्ता और वाक्यपद्धतिका नमूना दिखलाया है।

इतिहासमाला—१८१२ ई०को श्रीरामपुरमिशन-प्रेसमें यह ग्रन्थ छापा गया।

हितोपदेश—१८०१ ई०में गोलकचन्द्र शर्माने पञ्चतन्त्रोक्त हितोपदेश नामक ग्रन्थका वंगानुवाद किया।

तोताका इतिहास—चण्डीचरण मुन्शीने १८०१ ई० में इस ग्रन्थको लिखा। पारसी ग्रंथसे इसका अनुवाद हुआ है।

वत्तीससिंहासन—१८३४ ई०को लण्डनमें इसका संस्करण प्रकाशित हुआ। उसके पढ़नेसे पता चलता है, कि मृत्युञ्जय तर्कालङ्कार इसके अनुवादक हैं।

पुरुषपरीक्षा – यह ग्रंथ संस्कृतका अनुवाद है, १८०८ ई०में प्रकाशित हुआ है। इसकी संस्कृत पुरुषपरीक्षा ग्रंथका अनुवाद होने पर भी भाषा प्राञ्जल है।

प्रवोधचन्द्रिका—पण्डित मृत्युञ्जय तर्कालङ्कारने १८१३ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके लिये यह ग्रंथ प्रकाश किया।

लिपिमाला—प्रतापादित्यचरित नामक सुविख्यात ऐतिहासिक ग्रंथके प्रणेता रामराम वसुने १८०१ ई०में प्रतापादित्यचरित ग्रंथ प्रणयन किया। केरी साहवने लिखा है, कि वसु महाशयकी तरह प्रगाढ़ अध्ययनपटु मनुष्य उन्होंने कभी भी नहीं देखा है। बुकानन साहवने भी उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा की है। वसु महाशयके जीवनमें अनेक विषयोंमें ही राजा राममोहनका चरित्र प्रतिविम्बित हुआ था। कहते हैं, कि राजा राममोहनने ही वसु महाशयको फारसी और वङ्गला गद्य लिखने सिखाया था।

ईशोपकी गल्प—१८०३ ई०में डाकृर गिलक्राइने उर्दू, अरवी, व्रजभाषा तथा वङ्गलामें ईशोपकी गल्प छापनेका बन्दोवस्त किया। इस समय तारिणीचरण मित्र नामक एक व्यक्तिने वङ्गभाषामें ईशोप-गल्पका अनुवाद कर दिया था। ये सब अनुवाद रोमक अक्षरमें छापे गये थे।

इलियड काव्य—१८०५ ई०में फोर्ट विलियम कालेजके छात्र जे सर्जेण्टने भारजिलके इलियड काव्यके प्रधान सर्गका वङ्गानुवाद किया।

टेम्पेष्ट—१८०५ ई०को फोर्ट विलियम कालेजमें। मस्कट नामके एक यूरोपीय अध्यापकने सेक्सपियरके टेम्पेष्ट नामक नाटकका अनुवाद किया। वङ्गभाषामें इसीको पहला नाटक कहना होगा।

वेदान्त-सूत्र-भाष्यानुवाद—१८१५ ई०को राजा राममोहन रायने वेदान्तसूत्र भाष्यका गद्यमें वङ्गानुवाद किया। इसके वाद १८१६ ई०में उन्होंने सामवेदके अन्तर्गत तवलकार उपनिषद्का शङ्करभाष्य वङ्गभाषामें अनुवाद किया। १८१७ ई०में उन्होंने और भी दो उपनिषद्‌ 'कठोपनिषत्' और 'मुण्डकोपनिषद्', १८१८ ई०में 'गायत्रीका अर्थ' तथा १८२६ ई०में 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थका लक्षण' नामक ग्रन्थ लिखे।

राजा राममोहनने १८२१ ई०में मिशनरियोंके प्रचारित ईसा-धर्मका प्रतिवाद करके 'ब्राह्मणसेवधि' नामक एक पुस्तककी रचना की। १८२३ ई०में 'पथ्यप्रदान' नामक एक दूसरी प्रतिवाद-पुस्तिका प्रकाशित हुई। १८२४ ई०में 'प्रार्थनापत्र' १८२७ ई०में 'गायत्र्या परमोपासनाविधानम्', १८२८ ई०में 'ब्रह्मोपासना' तथा १८२६ ई०में 'अनुष्ठान' नामक ग्रन्थ निकाले गये।

इसके वाद राजा राममोहन रायकी अतुल कीर्त्ति ब्रह्मसंगीत है। आज भी उनके रचित सङ्गीत इस देशके शिक्षित समाजमें गाये जाते हैं। फिर उनके रचित 'गौड़ीय व्याकरण', 'अदालत' तिमिरनाशक आदि और भी कई वङ्गला ग्रन्थ मिलते हैं।

इनके अलावा १८१७ ई०में शास्त्रपद्धति और चाणक्य श्लोकका बङ्गानुवाद, १८१८ ई०में स्त्रीशिक्षाविषयक प्रस्ताव, १८१८ ई०में नीतिकथा, १८१६ ई०में मनोरञ्जन इतिहास, श्रीयुत गौरमोहन विद्यालङ्कार और राजा राधाकान्तदेवकी बनाई राधाकान्तनीतिकथा, पियर्सन साहबकी रचित वाक्यावली, मि० स्टुयार्टकी ऐतिहासिक नीतिगल्प, १८२० ई०में राजा राधाकान्तदेव-विरचित स्त्री शिक्षाविषयक, १८२१ ई०को श्रीरामपुरसे मुद्रित सद्गुण और वीर्य और १८२१ ई०को महेन्द्रलाल प्रेसमें मुद्रित आत्मतत्त्वकौमुदी, ये सब ग्रंथ पाये जाते हैं।

आत्मतत्त्व-कौमुदी नामक ग्रंथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका गद्यमें बंगानुवाद है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। किन्तु इस अनुवादके रचयिता तीन व्यक्ति हैं, पण्डित काशीनाथ तर्कपञ्चानन, गंगाधर न्यायरत्न और रामशङ्कर शिरोमणि। तीनों अनुवादकोंने जिस भावमें इसका अनुवाद किया है उससे नाटकका क्रम विनष्ट नहीं होता। इस बंगानुवादसे बंगीयसाहित्यका बहुत लाभ पहुंचा है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कलिराजाकी यात्रा—एक नाटक है। यह १८२१ ई०में रचित और अभिनीत हुआ है।

ज्ञानाञ्जन—यह भी राममोहन रायके अभिमतके प्रतिकूल रचित अति पाण्डित्यपूर्ण एक बंगला गद्यमें प्रतिवाद ग्रंथ है। श्रीमधुसूदन तर्कालङ्कार नामक एक पण्डितने यह ग्रंथ लिखनेका उद्देश क्या है, इस सम्बन्धमें एक भूमिका लिखी है।

रामरत्न—१८२६ ई०में नदिया-जिलावासी एक वारेन्द्र ब्राह्मणने रामरत्न नाम दे कर देवीभागवत ग्रंथका बंगानुवाद किया।

जीवोद्धार—१८२६ ई०में यह ग्रंथ छापा गया है। यह "नित्यकर्म पद्धति" है। इसमें संस्कृत मूल और बंगानुवाद है। गंगाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

वासवदत्ता मदनमोहन तर्कालङ्कार महाशयका द्वितीय ग्रन्थ होने पर भी काव्यांशमें, रचना-सौन्दर्यमें तथा आयतनमें यह सबसे बड़ा है।

इसके सिवा छोटे छोटे बच्चोंकी शिक्षाके लिये मदन मोहन तर्कालङ्कारने शिशुशिक्षाका प्रथम भाग, द्वितीय भाग और तृतीय भाग रचे।

१८५७ ई०से ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा रचित प्रबोध-प्रभाकर नामक गद्य ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १८५८ ई०को ४६ वर्षकी अवस्थामें ईश्वरचन्द्र इस लोकसे चल बसे। मृत्युके पहले वे और भी कितनी पुस्तकें लिख गये थे, किन्तु उनकी जीवद्दशामें प्रबोधप्रभाकरके सिवा और कोई पुस्तक छपी न थी। गुप्त महाशयकी एक दूसरी पुस्तकका नाम हितप्रभाकर है। यह भी गद्य पद्यमय है। बोधेन्दुविकाश भी उन्हींका बनाया हुआ है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकका अनुवाद है—नाटकके आकारमें ही रचा गया है। इस ग्रन्थके छपते न छपते ग्रन्थकार परलोकको सिधारे। उस समय इसके सिर्फ तीन अङ्क छपे थे। गुप्त महाशयकी गद्य रचनाके मध्य यही पुस्तक उत्कृष्ट है।

गुप्त महाशयने कलिनाटक नामक और भी एक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वे अकाल ही इस लोकसे चल बसे। इनके जीवनचरितके सम्बन्धमें अनेक विषय 'ईश्वरचन्द्रगुप्त' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। बङ्गला-साहित्यके मध्ययुगके सबसे अन्तिम ग्रन्थकार ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं। इनके बाद ही बङ्गीय साहित्यके वर्त्तमान युगका आरम्भ हुआ।

संस्कृत कालेजके पण्डितोंके द्वारा बङ्गला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है। संस्कृत कालेजमें भी बङ्गला-भाषाके अनुशीलनके निमित्त एक समिति प्रतिष्ठित हुई थी। रेभरेण्ड कृष्णमोहन बन्धोपाध्याय उस समितिके सदस्य थे। उनके अतिरिक्त और भी कितने सदस्य बङ्गलाभाषाकी उन्नतिके लिये कई एक सारगर्भ प्रस्तावना तथा प्रबन्धका प्रचार करते थे। किन्तु यथार्थमें संस्कृत कालेजके कतिपय पण्डितोंने ही बङ्गलाभाषाकी पुष्टि की। और क्या, उन्हें आधुनिक बङ्गलासाहित्यके जन्मदाता कह सकते हैं। पण्डित ताराशङ्कर, विद्यासागर एवं नाट्यकार रामनारायण प्रभृतिके नाम बंगलाभाषाकी वर्त्तमान उन्नतिके इतिहासमें चिर दिनों तक उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखे रहेंगे।

इसके सिवा १६वीं शताब्दीके आरम्भसे ही साता-

हिक पत्र तथा मासिक पत्र छपने लगे। इन सब सामयिक पत्रों द्वारा बंगलाभाषाकी यथेष्ट उन्नति हुई। गद्यमें तथा पद्यमें संवादपत्र प्रचारित होते थे। केरी प्रभृति मिशनरीगण यूरोपीय विज्ञान, इतिहास, भूगोल, खगोल प्रभृति पुस्तकोंका बंगलानुवाद करके प्रबन्ध लिखते थे एवं अङ्गरेजी अनभिज्ञ बंगालियोंके मध्य इन सब ग्रंथोंका प्रचार करनेकी यथेष्ट चेष्टा करते थे। केरी साहबका "समाचारदर्पण" तथा राममोहन रायका "संवाद-कौमुदी" किसी समय शिक्षित लोग बड़े चावसे पढ़ते थे। रेभरेण्ड कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय महाशयका "विद्याकल्पद्रुम" पढ़ कर भी लोग यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करते थे, किन्तु "कल्पद्रुम"के बहुत पहले ही "चन्द्रिका" का अभ्युदय हुआ था। "चन्द्रिका" हिन्दूसमाजकी मुख्य पत्रिका थी, इसके द्वारा भी बंगला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई। ईश्वर गुप्त महाशयके कवितापूर्ण साप्ताहिक तथा मासिक पत्रोंके द्वारा लोगोंकी साहित्य पाठतृष्णा प्रबल हो उठी थी।

१८०० ई०से ले कर विद्यासागरके पूर्वकाल पर्यन्त गद्य-साहित्यकी प्रकृति।

इस समयके गद्यसाहित्य प्रधानतः अनुवादमूलक थे। इनमें कुछ तो संस्कृत ग्रंथोंके अनुवाद थे, और कुछ अंगरेजी ग्रंथोंके। पारसी प्रभृति अन्यान्य ग्रंथोंकी अनुवाद संख्या बहुत कम थी। पारसीसे अनूदित ग्रंथोंमें तोताका इतिहास ग्रंथ ही सविशेष उल्लेखनीय है। मूलग्रंथ भी दो चार प्रकाशित हुए थे, उनमें रामराम वसुका लिखा हुआ "प्रतापादित्यचरित" ग्रंथ ही सर्वप्रधान था।

आधुनिक बंगलासाहित्य वा विद्यासागरीय युग।

रमाई पण्डितके शून्यपुराणमें, चण्डिदासके "चैत्य रूप प्राप्ति" नामक ग्रंथमें एवं सहजिया-सम्प्रदायके छोटे छोटे धर्मग्रंथोंमें बङ्गीय गद्यसाहित्यके स्फुरण, उत्पत्ति तथा क्रमविकाश परिलक्षित होते थे। दुधमुंहे बच्चेकी तुतली बोलीकी तरह गद्यसाहित्य टूटे फूटे शब्दोंमें अपने शब्दवैभवका परिचय दे रहा था। १८वीं सदीके प्रारंभमें ही उपनिषद्, न्यायदर्शन, वेदान्तदर्शन, स्मृतिशास्त्र प्रभृतिके बङ्गलानुवादमें बंगीय गद्यसाहित्य क्रमशः भावगौरव, विषयगुरुत्व एवं रचनाके उत्कर्षकी भावी महिमा प्रकट करनेकी समुज्ज्वल पताका फहरा कर बंगीय साहित्य-सेवकोंको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। इसके बाद मुद्रायन्त्रके प्रभावसे देशके नवागत शासनकर्त्ताओंके प्रयत्नसे, मिशनरियोंके आग्रहसे एवं देशीय प्रतिभाकी पूर्णस्फुर्त्तिसे बंगीय गद्यसाहित्यकी वही क्षुद्र झरणा क्रमशः संपुष्ट तथा परिवर्द्धित हो कर इस समय शतमुखी गंगाप्रवाहकी तरह तरंग-रंगमें प्रवाहित हो रहा है। पर्वतदुहिता नदी गिरिनिर्झरोंके जलसे शक्तिसंग्रह करके तरंग-रंगमें उछल उछल कर प्रवाहित होने पर भी जिस तरह कूलस्थित जलप्रवाहोंसे संपुष्ट होती है, बंगलाभाषा भी उसी तरह संस्कृत भाषाके अमृतप्रवाहसे संजीवित तथा शक्तिसंपन्न होने पर भी अन्यान्य भाषाओंके शब्द-वैभव तथा भाव-गौरवसे इस समय महाप्रवाहकी महीयसी विशालता कर संसारके सामने अपना गौरव प्रकट कर रही है।

हम लोग यह बात उन्मुक्तकंठसे कह सकते हैं, कि बंगला भाषा इस समय महाशक्तिशालिनी हो रही है। विभिन्न भाषाओंके मिश्रणसे, विभिन्न भाषाओंके सौन्दर्यसे एवं विभिन्न भाषाओंकी भावराशिके समागमसे बंगीय साहित्यने इस समय भावपूर्ण, सौन्दर्यसम्पन्न तथा सर्वप्रकार शब्दसम्पत्तिशाली हो कर संसारके सर्वोत्कृष्ट साहित्यके समान आसन ग्रहण कर लिया है। जो रचना एक समय उत्कट, दुर्बोध, विशृंखल तथा पूर्वापर सम्बन्धवर्जित थी, विद्यासागरके संस्पर्शसे वही सुललित, सुखपाठ्य तथा सुसंस्कृत हो चली है एवं जगत्के समक्ष अपना अनन्त गुणगौरव तथा महिमाका परिचय दे रही है।

ईश्वर गुप्तकी रचना बहुत सरस थी। बंगला गद्य विद्यासागर-संगमके महातीर्थस्पर्शसे एक ओर जिस तरह सरल कोमल तथा सरस हो उठा है, दूसरी ओर उसका प्रसन्न गाम्भीर्य अनन्त भाव एवं शब्दवैभव, साहित्यकगणोंके हृदयकी श्रद्धा तथा भक्ति आकर्षण करता है। प्राञ्जलताके कुसुमित प्राङ्गणमें सौन्दर्य, गाम्भीर्य तथा माधुर्यका अच्छी तरह समावेश करके विद्यासागर महाशयने ही सबसे पहले बंगला गद्यसाहित्यको

जगत्के सामने प्रकट किया है। साहित्यके वर्त्तमान युग-प्रवर्त्तक इन महापुरुषकी जीवनी "ईश्वरचन्द्र विद्यासागर" ग्रन्थमें सविशेषरूपसे लिखी है।

वङ्गला साहित्यमें अंग्रेजी प्रभाव।

कविवर ईश्वरचन्द्रगुप्तकी मृत्युके साथ साथ वंगला साहित्यके प्राचीन युगका अवसान हुआ। अंगरेजी-शिक्षाके वन्याप्रवाहमें, अंगरेजी-साहित्यकी उच्छलित तरंगमें वंगीय साहित्यकी प्राचीन रीति एक तरहसे विलुप्त हो गई। विद्यासागर महाशय संस्कृतके पंडित होने पर भी उसी महाप्रवाहके प्रवल आवर्त्तमें आकृष्ट हो गये थे। इस समय अङ्गरेजी भाव, अङ्गरेजी रीति, अङ्गरेजीसाहित्यका भाव प्रकटन-वैभव, अंगरेजी साहित्यका काव्यसौन्दर्य्य, अंगरेजी साहित्यका उत्तेजनापूर्ण माधुर्य्य एवं अङ्गरेजी दर्शन विज्ञानादिका गौरवगाम्भीर्य्य वंगीय साहित्यक्षेत्रमें सहसा प्रवल आधिपत्य विस्तार कर बैठा। विद्यासागर स्वयं भी अंगरेजी ग्रन्थोंका अनुवाद करके इस देशमें अंगरेजी भाव प्रचार करनेमें प्रवृत्त हुए। यहां तक, कि उनकी साहित्यिक भाषा "साधु भाषा" के नामसे प्रसिद्ध होने पर भी उसमें अंगरेजी रीति एवं अंगरेजी साहित्यके भाव-प्रकटन-वैभव अच्छी तरह प्रवेश कर गया। राजा राममोहन रायके हृदयमें अंगरेजी भाव यथेष्टरूपसे प्रविष्ट हो चुका था सही, किन्तु उनकी लिखी हुई भाषामें अंगरेजी रीति अधिक प्रवेश न कर सकी। राजा राममोहनके वाद जो जो व्यक्ति वंगला लिखनेमें प्रवृत्त हुए, उनमें डाक्टर कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय तथा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र महाशयके नाम उल्लेखनीय हैं। संस्कृत भाषामें तथा अंगरेजी भाषामें ये दोनों ही पूरे पंडित थे। डाक्टर कृष्णमोहन कई भाषाओंमें सुपंडित थे, किन्तु विद्वत्ताके गौरवसे गौरवान्वित हो कर उन्होंने स्वदेशीय भाषाके प्रति उपेक्षा वा औदास्य प्रदर्शन नहीं किया। यद्यपि वे अपने धर्मको छोड़ ईसाई-समाजमें जीवन यापन करते थे, अंगरेजी पोषाक परिच्छद व्यवहार करते थे तथापि उनकी भाषामें अङ्गरेजी रीति आज कलकी भाषाकी तरह परिलक्षित नहीं होती। कृष्णमोहन वन्द्योपाध्यायकी रचनाप्रणाली वैसी सुदृढ़ तथा प्रांजल न होने पर भी उनसे वंगला साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। इन्होंने विदेशीय दर्शन, विज्ञान, भूगोल तथा इतिहास प्रभृतिके विविध अभिनवतत्त्वसे वंगला भाषाको सम्पत्शालिनी वना दिया था।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र भी कृष्णमोहनकी तरह अंगरेजी भाषामें सुपंडित तथा कई शास्त्रोंके जाननेवाले थे। इनकी भाषा अपेक्षाकृत मार्ज्जित तथा विशोधित थी। राजेन्द्रलालके यत्नसे वंगला साहित्य नाना प्रकारके प्रयोजनीय तथ्योंसे परिपूर्ण हो गया है। उनके शास्त्रज्ञान, उनकी गवेषणा एवं उनकी लिपि-क्षमताकी सहायता न पानेसे वंगलाभाषा इतने अल्प समयमें ही इस तरह ज्ञान-रत्नोंकी खान नहीं वन सकती।

डाक्टर कृष्णमोहन तथा डाक्टर राजेन्द्रलाल विद्यासागरके समसामयिक थे। किन्तु इनकी रचनायें विद्यासागरके प्रभावसे प्रभावित नहीं है। विद्यासागर महाशयके समयसे वङ्गलासाहित्यमें अङ्गरेजीसाहित्यका प्रभाव प्रतिमुहूर्त्तमें परिवर्द्धित वेगमें परिलक्षित हो रहा है। आधुनिक साहित्यकी मज्जा मज्जामें अङ्गरेजी रीति अनुप्रविष्ट हो गई है। विद्यासागरके परवर्त्ती लेखकगण इस विशाल स्रोतमें क्रमसे अधिकतर आकृष्ट हो गये हैं।

अक्षयकुमारदत्तने स्वयं अनुशीलन करके क्षेत्रतत्त्व, वीजगणित, त्रिकोणमिति, कोनिक सेक्सन, कैलक्यूलस प्रभृति गणित एवं ज्योतिष, मनोविज्ञान तथा उसके साथ साथ अङ्गरेजीसाहित्य विषयक प्रधान प्रधान ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। वे पहले पद्यकी ही रचना करते थे, किन्तु जव उन्हें प्रभाकरसम्पादक ईश्वरचन्द्र गुप्तके साथ आलाप तथा आत्मीयता हुई, तव उनके अनुरोधसे वे गद्यकी रचना करनेमें प्रवृत हुए। उस समय उनका गद्य प्रवन्ध प्रभाकरपत्रमें प्रकाशित होता था।

१८४३ ई०में तत्त्ववोधिनीपत्रिका प्रकाशित हुई। अक्षयकुमारदत्त ११ वर्ष तक उक्त पत्रिकाका सम्पादन-कार्य करते रहे। इस कार्यका भार ग्रहण करके उन्होंने जिस तरहके यत्न, परिश्रम तथा अध्यवसायका अवलम्बन किया था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। देशहित-कर, समाजसंशोधक एवं वस्तुतत्त्वनिर्णायक अत्यन्त उत्कृष्ट प्रवन्ध वे लिख गये हैं। इसी समय उन्होंने फरासी-भाषाकी शिक्षा प्राप्त की, एवं मेडिकल कालेजमें

जा कर दो वर्ष तक रसायन तथा उद्भिद्‌शास्त्रका उपदेश ग्रहण किया। १८५५ ई०में अक्षय बाबू तत्त्वबोधिनीका सम्पादन-कार्य एक प्रकारसे त्याग कर १५०) रुपये वेतन पर कलकत्ता नार्मल स्कूलमें प्रधान शिक्षकके पद पर नियुक्त हुए। किन्तु दो तीन वर्षके अन्दर ही उनकी पूर्व संचित शारीरिक पीड़ा वृद्धि पा कर उन्हें एक बार ही अकर्मण्य बना दिया। अक्षय बाबूके लिखे हुए ग्रन्थोंमें तीन भाग चारुपाठ, दो भाग बाह्यवस्तुके साथ मानवप्रकृतिका संबन्धविचार, धर्मनीति, पदार्थविद्या तथा भारतवर्षीय उपासक-सम्प्रदाय,—ये कई एक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। प्रथम तथा द्वितीय भाग "बाह्यवस्तुके सहित मानवप्रकृतिका संबन्धविचार' तथा धर्मनीति ये तीनों ही एक ढंगकी पुस्तकें हैं। कुम्ब साहबकी लिखी हुई "कनष्टिट्यूसन" नामक पुस्तकका सार सङ्कलन करके प्रथमोक्त ग्रंथके दोनों भाग रचे गये थे। अक्षय बाबूकी प्रायः सभी पुस्तकोंमें अधिकतर अङ्गरेजी शब्द ही बंगलामें अनुवादित हैं।

भारतवर्षीय "उपासक-सम्प्रदाय" ग्रंथ विलसन साहबके लिखे हुए 'रेलिजियस सेकृस् आफ हिन्दूज' नामक ग्रंथके आधार पर रचा गया है। इसमें भारतवर्षीय धर्मसंप्रदायका संक्षिप्त परिचय अति सरल तथा सुन्दर भाषामें दिया गया है। १८८६ ई०की २१वीं मईको अक्षयकुमार दत्त महाशय परलोक सिधारे।

विद्यासागरने जिस तरह बंगला गद्यको प्राञ्जल किया तत्त्वबोधिनीके संपादन-कार्यसे अक्षयकुमारने उसे उसी तरह ओजस्विनी बना दिया। अक्षयकुमारका गद्य आवेगमय तथा उद्दीपनापूर्ण है। विद्यासागर तथा अक्षयकुमारने बंगलागद्यमें जिस जीवनीशक्तिका सञ्चार कर बंगलाभाषाको ओजस्विनी बना डाला है, उनके परवर्त्ती लेखकोंमें कितने ही उसी आदर्शका अवलम्बन करके ग्रंथ रचना करते हैं। पूर्व-बंगालके साहित्यरथी कालीप्रसन्न घोष महाशयने उक्त दोनों महात्माओंके प्रदर्शित पथसे विचरण करके इस भाषाकी यथेष्ट पुष्टि की है। विद्यासागर तथा अक्षयकुमार दोनोंने ही संस्कृत भाषाके शब्दोंसे बंगला गद्यको सजा कर उसे भुवनमोहिनी एवं शब्दसम्पदामें ऐश्वर्यशालिनी बना दिया है, किंतु इन दोनोंकी रचनायें एक ही भावसे ग्रथित नहीं है। एककी रचना कोमलतापूर्ण एवं दूसरेकी उच्छास-उद्दीपनी है। एक यदि लावण्यमय पूर्णचंद्र है, तो दूसरी ज्वालामय मध्याह्न तपन, एक प्रशान्त भावसे हृदय स्निग्ध करती है, तो दूसरी प्रमत्त भावसे हृदय प्रदीप्त करती है। किंतु दोनों हीके रचे हुए साहित्य अंगरेजी साहित्यके ऋणी हैं। इनमें भी अक्षयकुमारका साहित्य अंगरेजी साहित्यका अपेक्षाकृत अधिक ऋणी है। क्योंकि, उनके अधिकांश ग्रन्थ तथा प्रबन्ध अङ्गरेजीके ही अनुवादमात्र हैं अथवा उस अनुवादमें मौलिकत्वका पूर्णभाव विराजमान है, पढ़नेके समय वह अनुवाद-सा बिलकुल ही जान नहीं पड़ता।

इस समय बंगलासाहित्यक्षेत्रमें और एक महारथीका आविर्भाव हुआ। इन्होंने बंगलाके पद्य-साहित्यमें एक विशाल युगान्तर उपस्थित किया। इनका नाम माइकेल मधुसूदन दत्त था। ये शर्मिष्ठा नाटक, पद्मावती नाटक, तिलोत्तमासंभव, एकेई कि बोले सभ्यता, बूड़ो शालिकेर घाड़े रों, मेघनादवध, ब्रजांगना, कृष्णकुमारी नाटक, वीरांगना, चतुर्दशपदी कवितावली तथा हेक्टार वध, इन ११ ग्रंथोंके रचयिता थे। इनमें शर्मिष्ठा, पद्मावती तथा कृष्णकुमारी, ये तीनों नाटक है। "एकेई कि बोले सभ्यता" तथा "बूढ़ो शालिकेर घाड़े रों" ये दोनों ही हास्यरसोद्दीपक अभिनयकी पुस्तिकायें हैं।

तिलोत्तमासंभव तथा मेघनादवध ये दोनों काव्य ग्रंथ आद्योपान्त अमित्राक्षर छन्दमें विरचित है। बंगला साहित्यमें अङ्गरेजी प्रभावका उत्कृष्ट उदाहरण दिखानेके लिये 'मेघनादवध' काव्य ही उसका उज्ज्वलतम उदाहरण है। उसका छन्द यूरोपीय, भाव यूरोपीय, रचना रीति यूरोपीय, स्थान स्थान पर उपमा उपमेय प्रभृति अर्थालङ्कार भी यूरोपीय ढंगके हैं। फलतः ग्रन्थकार यूरोपीय सांचेमें बंगलाभाषाके इस सुप्रसिद्ध काव्यका प्रणयन करके अमरकीर्त्ति स्थापन कर गये हैं।

मधुसूदनके पूर्ववर्त्ती बंगाली कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त थे। उनकी कविताओंमें विशुद्ध जातीय भाव तथा जातीय रीति विद्यमान थीं, किन्तु माइकेल मधुसूदन दत्त महा-

शयके काव्यसे बंगलासाहित्यमें अंग्रेजी प्रभावकी पूर्णता झलक रही है।

इसके बाद भूदेव मुखोपाध्याय, रंगलाल वन्द्योपाध्याय, हरिनाभिग्रामनिवासी कुलीनकुलसर्वस्व नाटक, रुक्मिणीहरण प्रभृति नाटकके रचयिता रामनारायण तर्करत्न तथा राय दीनबन्धु मित्र बहादुर प्रभृतिके नाम बंगलासाहित्यमें सविशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके बाद बंगला साहित्यके एक और प्रतिभाशाली लेखकका नाम उल्लेख करने योग्य है। उनका नाम प्यारीचांद मित्र था। वंगीय साहित्य जगत्में इन्होंने अपना नाम "टेकचांद ठाकुर" प्रगट किया था। सरल भावमें कथोपकथनकी रीतिसे प्यारीचांदने गद्य लिखनेकी प्रथा परिपुष्ट की। बहुतोंका विश्वास है, कि ये ही इस तरहकी भाषाके आदि-प्रवर्त्तक थे। किन्तु इनसे बहुत पहले ही 'केरी' साहबके एक ग्रन्थमें इस तरहकी रचनाका आदर्श सबसे पहले देखा गया था, मृत्युञ्जय तर्कालङ्कारकी रचनाके किसी किसी स्थानमें इस तरहकी भाषाका निदर्शन इससे मिला है। किन्तु प्रचलित भाषाका ऐसा सर्वांगसुन्दर ग्रंथ इससे पहले प्रकाशित नहीं हुआ था।

कालीप्रसन्न सिंहने अलाली भाषाके अनुकरणसे 'हुतोम पेचार नक्सा' प्रणयन करके समाजमें यथेष्ट यश प्राप्त किया था। उनका महाभारतका बंगलानुवाद वंग-साहित्यकी एक अद्वितीय कीर्त्ति है। सुविख्यात वंकिम बाबू भी अलाली भाषा संशोधित करके नये युगमें बंगला भाषाका यथेष्ट पुष्टिसाधन करके संसारमें अमरकीर्त्ति स्थापन कर गये हैं।

वर्त्तमान समयमें वंगीय गद्यसाहित्यके सेवकोंके मध्य दो श्रेणीके लेखक देखे जाते हैं। एक श्रेणीके लेखक तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा अक्षयकुमारकी रचना-रीतिके अनुगामी हैं। विषयकी गुरुतामें भाषा गाम्भीर्यकी गौरवमयी मूर्त्ति धारण करती है एवं उत्तेजना दिखलाने पर भी ओजस्विनी भाषाको छोड़ कर लघु-तरल भाषामें वह उद्देश्य साधित नहीं होता, इस हिसाबसे विद्यासागर वा अक्षयकुमारके प्रदर्शित पथ ही अवलम्बनीय हैं। फिर जनसाधारणके चित्तरंजनके निमित्त अलाली भाषा अतीव उपयोगिनी है। इस तरहकी भाषा पाठकोंके पक्षमें अत्यन्त प्रीतिकर है। इस रीतिसे कोई कोई भ्रमणवृत्तान्त लिख कर भी पाठकोंका यथेष्ट मनोरंजन किया है। फलतः ये दोनों ही रीतियां बंगला गद्य-साहित्यमें पाई जाती हैं। प्यारीचांद मित्र इस तरहकी भाषाके आदिग्रन्थकर्त्ता थे। सुतरां वंगीय साहित्यके इतिहासमें इस सम्बन्धमें इनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

आधुनिक वंगीय-साहित्यक्षेत्रके विश्वविख्यात महापुरुष वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशयने वंगीयसाहित्यगगनमें पूर्णचन्द्रमाकी तरह उदय हो कर जो बंगलासाहित्यमें अमृतकी धारा बहा दी है, साहित्यके इतिहासमें उसकी तुलना नहीं की जा सकती। वंकिमचन्द्र आधुनिक बंगालियोंकी चिन्ता तथा कल्पना, उद्यम तथा उन्नत आशाके पूर्ण विकाशस्थल थे, यही इस देशीय चिंताशील साहित्यिकगणोंके मध्य अनेकोंकी धारणा है। उनका कहना है, कि बंगदेशको आधुनिक कल्पना उन्हींसे प्रकाशित हुई है, फिर उन्होंने उस कल्पनाका मूर्त्तिनिर्माण किया है। बंगलासाहित्यमें वंकिमचन्द्र अद्वितीय महापुरुष थे।

१९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यूरोपियोंके प्रभावसे पाश्चात्यज्ञान तथा पाश्चात्य-सभ्यताके आलोकमें सहसा बंगदेश उद्भासित हो उठा। इसके साथ साथ समाज तथा साहित्य जिस तरह कितने ही सद्गुणोंसे समुज्ज्वल हो उठे, उसी तरह अनेकों दोषोंसे परिपूर्ण भी हो गये। समाजमें विशृंखल हो उठा, फिर समाजमें अभिनव बलका आविर्भाव भी हुआ। विदेशीयभावका अनुकरण और विदेशीय खान-पानकी प्रवृत्ति प्रबल हो उठीं; फिर उनके साथ साथ स्वदेशप्रियता तथा स्वदेशी तथ्य जाननेकी इच्छा बलवती होने लगी। इन परस्परकी प्रतिघाती तरंगोंमें जातीय चिन्ता तथा जातीय बल, जातीय हृदय तथा जातीय ज्ञान, जातीय धर्म तथा जातीय कर्म; जातीय आचार तथा जातीय व्यवहार प्रभृतिके प्रति साहित्यिकगणोंके चित्त आकृष्ट हुए। मधुसूदनका जातीय साहित्यानुराग इसका ही निदर्शन है। उनका जीवन विदेशीय भाव तथा विदेशीय आचार-विचारसे आच्छन्न होने पर भी उनकी प्रतिभा जातीय भावमें ही पूर्णविकाशित हो उठी थी।

भूदेव बाबू भी अंगरेजी ग्रंथोंके आधार पर उपन्यास लिखनेमें प्रवृत्त हुए थे। पाश्चात्य विद्यासे पाण्डित्य लाभ करके देशीयभाषाके अनुशीलन, जातीय साहित्यकी सेवा तथा पाश्चात्य आदर्श लक्ष्य करके स्वदेशकी सेवा वङ्किमचंद्रकी प्रतिभामें पूर्णरूपसे विकशित हो उठी थी।

वंकिमचन्द्र वंगीय साहित्यमें नूतन युगके प्रवर्त्तक थे। उनकी ग्रन्थावलीमें नूतन भावकी सृष्टि, नूतन चिन्ताकी पुष्टि, एवं अभिनव कल्पनाका युगपत् आविर्भाव देख कर वंगदेशके कोने कोनेमें आनन्द रव गूँज उठा था।

वङ्किमचन्द्रकी मौलिकता, उस तरहकी कल्पनाकी कमनीय लीला, उस तरहकी सौन्दर्य तथा लावण्यच्छटा, उस तरहकी मधुमयी रचना तथा गल्पचतुरतावंगीय गद्यसाहित्यमें और कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। वङ्किमचन्द्रने अंगरेजी साहित्य तथा देशीय संस्कृत साहित्यसे जो सम्पद् संग्रह की थी, जो वल तथा उद्यम प्राप्त किया था एवं उनसे जो माधुर्य तथा सौन्दर्य उनके हृदयमें उद्भासित हो उठे थे, जो स्वदेशानुराग उनके चित्तक्षेत्रमें उपास्य देवताकी तरह विराज रहा था, उन्हीं सब भावोंको वे अपने साहित्यमें प्रतिफलित कर गये हैं। शेष जीवन कालमें वङ्किमचन्द्र महाशयने कई एक धर्मसम्बन्धी ग्रंथोंका निर्माण किया था।

उस समयसे ही वंगसाहित्य वास्तविकमें शतमुखी गंगाप्रवाहकी तरह उच्छलित तरंगोंसे परिपूर्ण विशाल आकार धारण करके उन्नतिकी ओर प्रधावित हो रहा है। इस समय हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, चन्द्रनाथ वसु, महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री पूर्णचन्द्र वसु, शिशिरकुमार घोष, नवीनचन्द्र सेन, श्रीयुत-रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति प्रधान साहित्य महारथियोंने वंगसाहित्य-तरंगिनीके धारा-प्रवाहको गौरव-गर्वसे परिपुष्ट कर दिया है। वर्त्तमान गद्य साहित्य प्रधानतः वङ्किमचन्द्रके आदर्शसे एवं वर्त्तमान पद्य साहित्य प्रधानतः श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथके प्रभावसे प्रभावान्वित हुए हैं।

वंगसाहित्यके वर्त्तमान युगका इतिहास अभी भी लिखनेका समय उपस्थित नहीं हुआ है। इस समय भी पूर्ण उद्यममें, भाव तथा भाषाको विचित्रतामें वंगीय-साहित्य क्षण क्षणमें उत्कर्ष सागरकी ओर प्रवाहित होता जा रहा है। वंगला पद्यसाहित्य बहुत पहले ही यथेष्ट उन्नतिका परिचय दे चुका था, किन्तु गद्यसाहित्यकी वैसी उन्नति १९वीं शताब्दीके पहले परिलक्षित नहीं हुई थी। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जिस साहित्यका प्रचार हुआ, वह साहित्य उस शताब्दीके शेष भाग तक रचना-गौरवमें उन्नत, भाव-प्रवाहमें समृद्ध तथा कतिपय विषयोंमें परिपुष्ट हो चुका था। यदि सच पूछा जाय तो वर्त्तमान वंगला गद्यसाहित्यकी आशातीत उन्नति हुई है।

वङ्गशुल्वज (सं० क्ली०) वङ्गशुल्वाभ्यां रङ्गताम्राभ्यां जायते जन ड। कांस्य धातु, कांसा। रांगे और तांबेके योगसे यह धातु तैयार होती है, इसीलिये इसका नाम वङ्गशुल्वज है।

वङ्गसेन (सं० पु०) रक्त वकवृक्ष, लाल फूलवाला अगस्त।

वङ्गसेन—१ धातुरूप या आख्यातव्याकरणके प्रणेता। २ चिकित्सासारसंग्रह और वङ्गसेन नामक वैद्यकके रचयिता। इनके पिताका नाम था गदाधर। काञ्जिका नगरमें इनका वास था।

वङ्गाधिकश्रमण—अतीचारसूत्रके प्रणेता।

वङ्गारि (सं० पु०) वङ्गस्य रङ्गधातोररिः अस्य वङ्गधातोर्जारकत्वात् तथात्वं। हरिताल, हरताल।

वङ्गालिका (सं० स्त्री०) वंगाली देखो।

वङ्गाली (सं० स्त्री०) वंगाली देखो।

वङ्गावलेह (सं० क्ली०) प्रमेहरोगमें अवलेहविशेष। दो रत्ती रांगेकी भस्मको मधुके साथ पीछे दो तोला गुड़ और गन्धक सेवन करावे। इससे प्रमेहरोग आरोग्य होता है। (रसेन्द्रसारसं०)

वङ्गाष्टक (सं० क्ली०) प्रमेहरोगमें व्यवहार्य औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लौह, रूपा, खर्पर, अवरक और तांबा प्रत्येक समान भाग तथा सभीके बराबर रांगा इन्हें एकत्र कूट कर गजपुटमें पाक करे, पीछे औषध शीतल होने पर उतार ले। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान मधु, हल्दीका चूर और आँवलेका रस है। इसका सेवन करनेसे बीस प्रकारका प्रमेह, आमदोष, विसूचिका, विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, मूत्रातीसार आदि रोग विनष्ट होते हैं।

वङ्गिपुरम्—मान्द्राजप्रदेशके कृष्णा-जिलान्तर्गत एक नगर। यह वापटलासे १६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके वल्लभराय मन्दिरके गरुड़स्तम्भमें तथा अगस्त्येश्वर स्वामीके मन्दिरमें दो शिलाफलक देखे जाते हैं। पहला १४८१ शकमें विजय-नगरराज सदाशिवरायके शासनकालमें उत्कीर्ण हुआ है। इसी साल मुसलमानोंने विजयनगरको तहस-नहस कर डाला था। दूसरा फलक १४७८ शकमें उक्त राजाके समय खुदा गया है। उसमें मूर्त्तराजदेव चोड़ महाराजका दानवृत्तान्त लिखा हुआ है।

वङ्गिरि (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम।

(भागवत १२।१।३०)

वङ्गीय (सं० त्रि०) वङ्ग-(गहादिभ्यश्च। पा ४।२।१३८) इति छ। वङ्गदेशोद्भव, वङ्गदेशका।

वङ्गुला (सं० स्त्री०) एक रागिणी। रागिणी देखो।

वङ्गद (सं० पु०) एक असुरका नाम। इन्द्रने इसका वध किया था।

वङ्गेश्वर (सं० पु०) वङ्गः तन्नामकदेशस्य ईश्वरः अधिपतिः। बंगालका राजा।

वङ्गेश्वररस (सं० पु०) औषधविशेष। यह औषध वङ्गेश्वर और वृहद्वङ्गेश्वरभेदसे दो प्रकारका है। प्रस्तुत-प्रणाली पाराभस्म ८ तोला, गन्धक, ताम्रभस्म प्रत्येक ३२ तोला, अकवनके दूधके साथ घोंट मूषावद्ध करके भूधरयन्त्रमें पाक करे। इस औषधकी मात्रा २ रत्ती है। इसे घीके साथ चाट कर आधा तोला पुनर्णवाके रस वा क्वाथ और गोमूत्र वा हरिद्राके रसके साथ पान करे तो गुल्मोदर रोग जाता रहता है।

(रसेन्द्रसारसं० उदरीरोगाधि०)

दूसरा तरीका—रससिन्दुर और रांगा समान भाग ले कर मर्दन करे। पीछे दो माशा मधुके साथ इसका सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

वृहद्वङ्गेश्वर—प्रस्तुत-प्रणाली—रांगा, पारा, गन्धक, चांदी, कपूर, अवरक प्रत्येक २ तोला; सोना, मुक्ता प्रत्येक दो माशा इन्हें केशरके रसमें भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। प्रमेहरोगाधिकारमें यह एक उत्कृष्ट औषध है। दोषके वलावलके अनुसार वकरीका दूध, गायका दूध वा दधि अनुपानमें सेवन करना होता है। इसके सेवनसे वीस प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थ ज्वर, हलीमक, वात, ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि, वहुमूत्र, मूत्रमेह और मूत्रातिसार आदि रोग प्रशमित होते हैं। इससे कान्ति, वल, वर्ण, ओज और शुक्रकी वृद्धि होती है। (रसेन्द्रसारसं० प्रमेहरोगाधि०)

वच (सं० पु०) वक्तीति वच्-अच्। १ शुक पक्षी, तोता। २ सूर्य। ३ कारण। ४ वचन, वाक्य।

वचःक्रम (सं० पु०) वचसः क्रमः। वाक्यका क्रम, वाक्-प्रणाली।

वचक्नु (सं० पु०) वक्तीति वच् (सृयुवचिभ्योऽन्युजीगूज-क्नुचः। उण् ३।८१) इति अक्नुच्। १ ब्राह्मण। २ वृहदारण्यक उपनिषद्वर्णित एक व्यक्ति। (त्रि०) ३ वावदूक, वक्ता।

वचगोति—राजपूत जातिमें एक किम्वदन्ती है, कि दिल्लीश्वर पृथ्वीराज जव शाहवुद्दीन गोरी द्वारा पराजित हुए, तव उनके भ्राता चाहरदेवके वंशधर कंसराय तथा वरियार सिंहके अधीन कितने ही चौहान लोग संभल गढ़ परित्याग कर १२४८ ई०में सुलतानपुर जिलेके जम्वावन नामक स्थानमें वस गये। यहां उन लोगोंने मुसलमानोंके भयसे अपने चौहान नामके वदले "वत्स्यगोती" नाम ग्रहण किया। आगे चल कर 'वत्स्यगोती'से अपभ्रंशमें 'वचगोति' हो गया है।

द्वितीय उपाख्यानसे जाना जाता है, कि उपरोक्त चाहरदेवके प्रपौत्र राणा संगतदेवके इक्कीस लड़के थे। उनमें सर्वकनिष्ठ ही पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए एवं दूसरे दूसरे लड़कोंने अपने अपने अदृष्टकी परीक्षाके लिये विभिन्न देशोंकी यात्रा की। उनमेंसे वरियार सिंह तथा कंसरायने मैनपुरी जा कर अल्लाउद्दीनके अधीन सैनिक वृत्ति अवलम्वन की। उन लोगोंने वहांसे भर जातिके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये अयोध्यामें आ कर वास किया। वरियार सिंहके जम्वावनमें वस जानेके वाद प्रतापगढ़के निकटवर्त्ती कोटविलखार नामक स्थानमें सामन्तराज तथा विलखरिया दीक्षितोंके सरदार रामदेवके अधीन नौकरी की। धीरे धीरे वे उक्त सामन्तराजके प्रियपात्र वन गये एवं उन्होंने सामन्तराजकी कन्याका

पाणिग्रहण किया। कुछ ही दिनोंके वाद राजपुत्र दलपत शाहको मार कर वे वहांके राजा वन वैठे।

एक समय अयोध्या प्रदेशमें इन वचगोति राजपूतोंको प्रधानता फैली हुई थी। उन्नाव-राजवंशका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि अयोध्याके प्रसिद्ध राजा तिलकचांदके समय तक वचगोतिगण वहांके राज-समाजमें विशेष आदर पाते थे। नये राजाके अभिषेकके समय वे राजकुमारके मस्तक पर राजतिलक लगा कर जब उन्हें राजा मान लेते थे, तव उनको राजमर्यादा सार्थक होती थी। कुर्वारके राजा एवं हसनपुरवंधुआके दीवान इस वंशके प्रधान सामन्त कहलाते हैं।

हसनपुरवंधुआके सरदार इस समय इस्लामधर्ममें दीक्षित हो कर खानज़ादा नामसे परिचित होने पर भी वनौधाके राजाओंको राजतिलक करनेके अधिकारी हैं। अरौरके सोमवंशी सरदारगण, रामपुरके विपेनगण, अमेठीके वन्धल-गोतिगण एवं तिलोई-वासी कन्हाई पुरियागण जब तक इनसे राजटीका नहीं पा लेते, तब तक वे अपने अपने पूर्वपुरुषोंके पदके अधिकारी नहीं हो सकते।

सुलतानपुरके वत्स्यगोत्री लोग विलखरिया, तया-इया, चन्दौरिया, कठवांग, डाले सुलतान, रघुवंशी तथा गर्गवंशी प्रभृतिकी कन्याओंका पाणिग्रहण करते हैं एवं तिलकचांद वाई, मैनपुरी चौहान, सूर्यवंशी, गौतम, विषेन तथा वन्धलगोति प्रभृतिके हाथ कन्यादान करते हैं। जौनपुरके वचगोति लोग रघुवंशी, वाई, जौपटलाम्ब, निकुम्भ, धनमन्त, गौतम, गहरवार, पणवार, चन्देल, शौनक तथा द्रुगवंशी प्रभृतिकी कन्या ग्रहण करते एवं कलहन, सरोति, गौतम, सूर्यवंशी, राजवाड़, विषेन, कन्हाई पुरिया, गहरवार, वघेल, वांग प्रभृतिको अपनी कन्या देते हैं।

वचण्डी (सं० स्त्री०) १ सारिका, मैना। २ एक शस्त्र-का नाम। ३ वत्ती।

वचन (सं० क्ली०) उच्यतेऽनेनेति श्लेष्मनाशकत्वादस्य तथात्वं, वच् ल्युट्। १ मनुष्यके मुंहसे निकला हुआ सार्थक शब्द, वाक्य। पर्याय—इरा, सरस्वती, ब्राह्मी, भाषा, वाणी, सारदा, गिरा, गिर, गिरांदेवी, गीर्देवी, भारतेश्वरी, वाच्, वाचा, वाग्देवी, वर्णमातृका, भाषित, उक्ति, व्यवहार, लपित, वचस्।

वैदिक पर्याय—धारा, इला, गौः, गोरी, गान्धर्वी गभीरा, गम्भीरा, मन्द्रा, मन्द्राजनी, वाशी, वाणी, वाणीच, वाण, पवि, भारती, धमनि, नाली, मेना, मेलि, सूर्या, सरस्वती, निवित, स्वाहा, वग्नु, उपद्धि, मायु, काकुत्, जिह्वा, घोष, स्वर, शब्द, स्वन, ऋक्, होत्रा, गीः, गाथा, गण, धेना, ग्माः, विपा, नन्ना, कशा, धिषणा, नौः अक्षर, मही, अदिति, शची, वाक्, अनुष्टुप्, धेनु, वल्गु, गल्दा, सर, सुपर्णी, वेकुरा।

२ व्याकरणमें शब्दके रूपमें वह विधान जिससे एकत्व या वहुत्वका बोध होता है। हिन्दीमें दो ही वचन होते हैं—एकवचन और वहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओंके समान संस्कृ में एक तीसरा वचन भी होता है। ३ शुण्ठी, सोंठ।

वचनकर (सं० त्रि०) वचस्कर, जो अपने वचन पर अटल हो।

वचनकारिन् (सं० त्रि०) आज्ञाकारी।

वचनगुप्ति (सं० स्त्री०) जैनधर्मके अनुसार वाणीका ऐसा संयम जिससे वह अशुभ वृत्तिमें प्रवृत्त न हो।

वचनगोचर (सं० त्रि०) वचनेन गोचरः। प्रत्यक्षीभूत, जो वचनसे प्रत्यक्ष हुआ हो।

वचनग्राहिन् (सं० त्रि०) वचनं गृह्णातीति ग्रह-णिनि। वचन पर स्थित, वचनके अनुसार काम करनेवाला।

वचनपटु (सं० त्रि०) वचने पटुः। वाक्पटु, वाक्कुशल।

वचनमाल (सं० त्रि०) भित्तिहीन वाक्य।

वचनलक्षिता (सं० स्त्री०) वह परकीया नायिका जिस-की वातचीतसे उसका उपपतिसे प्रेम लक्षित या प्रकट होता हो।

वचनविदग्धा (सं० स्त्री०) नायिकाओंका एक भेद, वह परकीया नायिका जो अपने वचनकी चतुराईसे नायकको प्रीतिका साधन करती हो।

वचनविरुद्ध (सं० त्रि०) शास्त्रविरुद्ध।

वचनविरोध (सं० त्रि०) प्रमाणविरुद्ध शास्त्रवाक्य।

वचनव्यक्ति (सं० त्रि०) मौलिक कथा।

वचनशत (सं० त्रि०) वहु वाक्य।

वचनसहाय (सं० त्रि०) जो किसी मनुष्यके साथ बातचित करनेके लिये विनयी और मिष्टभाषी व्यक्तिको अपने साथ ले जाता हो, बातचीत करनेवाला साथी।

वचनानुग (सं० त्रि०) वचनं अनुगच्छति गम-ड। वाक्यका अनुगामी, जो वचनके अनुसार चलता हो।

वचनावत् (सं० त्रि०) १ वाक्यकुशल, बोलनेमें चतुर। २ सुवक्ता, अच्छा बोलनेवाला। ३ प्रशंसावाक्यकथनशील, बड़ाई करनेवाला। ४ अव्यक्त शब्दकारी।

वचनीकृत (सं० त्रि०) तिरस्कृत, लाञ्छित।

वचनीय (सं० त्रि०) वच-अनीयर्। १ कथनीय। २ निन्दा, शिकायत।

वचनीयता (सं० स्त्री०) वचनीयस्य भावः तल्-टाप्। लोकापवाद।

वचनेस्थित (सं० त्रि०) वचने तिष्ठति स्मेति स्था-क। (तत्पुरुषे कृति बहुलं। पा ६।३।१४) इति सप्तम्या अलुक्। जो वचन पर अटल हो। पर्याय—वचनस्थ, विधेय, विनयग्राही, आश्रव।

वचनोपक्रम (सं० पु०) वचनस्य उपक्रमः। वाक्यारम्भ। पर्याय—उपन्यास, वाङ्मुख।

वचर (सं० पु०) अवान्तरे चरतीति अव-चर-अच्, अल्लोपः। १ कुक्कुट। २ शठ।

वचलु (सं० पु०) शत्रु।

वचस् (सं० क्ली०) उच्यते इति वच (सर्व्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८२) इति असुन्। वाक्य।

वचसांपति (सं० पु०) वचसां वाचां पतिः षष्ठ्या अलुक्। बृहस्पति।

वचस्कर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अच्, वचसः करः। वचनपरस्थित, वचनानुसार कार्यकारी।

वचस्य (सं० त्रि०) वचनयोग्य, प्रशंसनीय, विख्यात।

वचस्या (सं० स्त्री०) स्तुतिकी इच्छा।

वचस्यु (सं० त्रि०) स्तुतिकाम, स्तुतिका अभिलाषी।

वचा (सं० स्त्री०) वाचयतीति वच्-णिच्-अच्, निपातनात् ह्रस्वः, यद्वा अन्तर्भावितण्यर्थात् वचोऽच्। औषधविशेष। यह काश्मीरसे आसाम तक और मणिपुर तथा वर्मामें दो हजारसे छः हजार फुट तक ऊँचे पहाड़ों पर पानीके किनारे होता है। इसके पत्ते सौसनके पत्तेके आकारसे, पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसके फूल नरगिसके फूलकी तरह पीले होते हैं। पत्तोंकी नाल लम्बी होती हैं। पत्तोंसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है। यह तेल खुला रहनेसे उड़ जाता है। इसकी जड़ लाली लिए सफेद रंगकी होती है। जड़में अनेक गांठें होती हैं।

संस्कृत पर्याय—उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका, तीक्ष्णा, जटिला, मङ्गल्या, विजया, उग्रा, रक्षोघ्नी, वच्या, लोमशा, भद्रा। गुण—अति तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, कफ, आम, ग्रन्थिशोफ, वातज्वर और अतिसार-रोगनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे वच, खुरासानी वच और महाभरीवच यही तीन प्रकारकी वच हैं। वचके पर्याय—उग्रगन्धा, षड्ग्रंथा, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मङ्गल्या, जटिला, उग्रा और लोमशा। गुण—उग्रगन्धा, कटुतिक्तरस, उष्णवीर्य, वमिजनक, अग्निवृद्धिकारक, मलमूत्रशोधक तथा विबन्ध, आध्मान, शूल, अपस्मार, कफ, उन्माद, भूतदोष, कृमि और वायुनाशक।

खुरासानी वच—खुरासानी वचको पारसीक वच कहते हैं। यह वच सफेद होती है। इसका दूसरा नाम हैमवती है। इस वचमें पूर्वोक्त सभी गुण हैं, विशेषतः वायुनाशकके पक्षमें यह सर्वश्रेष्ठ है।

महाभरी वच—पश्चिम देशमें कुलिञ्जन नामसे प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम सुगन्धा भी है। गुण—उग्रगन्धविशिष्ट, विशेषतः कफ और कासनाशक, स्वरप्रसादक, रुचिजनक तथा हृदय, कण्ठ और मुखशोधक। इसके सिवा स्थूलग्रन्थिविशिष्ट एक और प्रकारकी सुगन्धित वच है। यह वच पूर्वोक्त वचसे हीनगुणविशिष्ट है।

तोपचीनीको द्वीपान्तर वच कहते हैं। अन्यद्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण इसका द्वीपान्तर नाम हुआ है। गुण—ईषत् तिक्तरस, उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकारक और मलमूत्रशोधक, विबन्ध, आध्मान, शूल, वातव्याधि, अपस्मार, उन्माद और शरीरवेदनानाशक, विशेषतः फिरंगी रोगमें यह बहुत उपकारी है। (भावप्र०)

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि एक मास तक वचका जल, दूध वा घृतके साथ सेवन करनेसे स्मरणशक्ति बढ़ती

चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय एक पल वच दूधके साथ सेवन करनेसे धी-शक्तिकी वृद्धि होती है।

(गरुड़पु० १९३ अ०)

२ सारिका पक्षी, मैना। ३ सूर्य्य। ४ कारण। ५ वचन, वाक्य।

वचाचार्य्य (सं० पु०) आचार्य्यभेद।

वचादिचूर्ण—गुल्मरोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—वच, हरीतकी, हिंगु, सैन्धव लवण, अमल वेत, यवक्षार और यमानी इन सबोंका एकत्र बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे और प्रातःकाल ४ माशा ले कर गरम जलके साथ सेवन करे। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें गुल्मरोग दूर हो जाता और भूख खूब लगती है।

वचार्चा (सं० पु०) १ सूर्योपासकमात्र। २ पारसीजाति।

वचादिवर्ग (सं० पु०) वैद्योक्त ओषधिसङ्घ।

(वाग्भट सू० ३५)

वचाद्यघृत (सं० क्ली०) गण्डमाला रोगाधिकारमें घृतौषधविशेष। (रस०)

वचि (सं० पु०) १ वचन। २ नाम, अभिधान।

वचाग्रह (सं० पु०) गृह्णातीति ग्रह-अच्-वचसां ग्रहः। कर्ण, कान।

वचोयुज् (सं० त्रि०) वाक्यमात्र।

वचोविद् (सं० त्रि०) वचस्-विद्-क्विप्। निवेदित।

वच्छिकवाला—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान।

वच्छिय—निबन्धसारके प्रणेता।

वजन (अ० पु०) १ भार, बोझ। २ तौल। ३ मान, मर्यादा।

वजनी (अ० वि०) १ जिसका बहुत बोझ हो, भारी। २ जिसका कुछ असर हो, माननेयोग्य।

वजह (अ० स्त्री०) १ हेतु, कारण। २ तत्त्व। ३ प्रकृति।

वज़ा (अ० स्त्री०) १ संघटन, रचना। २ आकृति, रूप। ३ दशा, अवस्था। ४ सजधज, चालढाल। ५ प्रणाली, रीति। ६ मिनहा, मुजरा।

वज़ादार (फा० वि०) जिसकी बनावट या गठन आदि बहुत अच्छी हो, दर्शनीय।

वज़ादारी (फा० स्त्री०) १ फैशन, कपड़े वगैरह पहननेका सुन्दर ढंग। २ सजावटका उत्तम ढंग। ३ किसी प्रकारकी मर्यादा आदिका भली भांति निर्वाह।

वज़ारत (अ० स्त्री०) १ वजीरी, मन्त्री या अमात्यका पद। २ मन्त्री या अमात्यका कार्य। ३ अमात्यका कार्यालय।

वज़ीफा (अ० पु०) १ वृत्ति। २ वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदिको दी जाती है। ३ वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है।

वज़ीफाख्वार (फा० वि०) वज़ीफा पानेवाला।

वज़ीर (अ० पु०) १ वह जो बादशाहको रियासतके प्रबन्धमें सलाह या सहायता दे, मन्त्री, दीवान। २ सतरञ्जकी एक गोटी जो बादशाहसे छोटी और शेष सब मोहरोंसे बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएं और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी (अ० स्त्री०) १ वजीरका काम या पद। (पु०) २ घोड़ोंकी एक जाति। यह बलूचिस्तानमें पाया जाता है। इस जातिके घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़नेमें बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊंचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू (अ० पु०) नमाज़ पढ़नेके पूर्व शौचाके लिये हाथ पाँव आदि धोना। मुसलमानोंका नियम है, कि नमाज़ पढ़नेके पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनोंमें पानी देते हैं। फिर मुंह धो कर कुहनियों तक हाथ धोते हैं और सिर पर पानी ले हाथ फेरते हैं। अन्तमें पाँव धोते हैं। इसी आचारका नाम वज़ू है।

वजूद (अ० पु०) १ सत्ता, अस्तित्व। २ शरीर, देह। ३ अभिव्यक्ति, प्रकट या घटित होना। ४ सृष्टि।

वजूहात (अ० स्त्री०) कारणोंका समूह, यह बहुवचन शब्द है और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचनमें ही होता है।

वज्र (सं० पु० क्ली०) वजतीति वज-गतौ (ऋजेन्द्राग्रवज्रविप्रेति। उण् २।२८) इति रन्प्रत्ययेन निपातितः। १ इन्द्रका अस्त्रविशेष। पर्याय—ह्लादिनी, कुलिश, भिदुर, पवि, शतकोटि, स्वरु, शम्ब, दम्भोलि, अशनि, कुलीश, भिदिर, भिदुः, स्वरुस, सम्ब, सब, अशनी, वज्राशनि, जम्भारि, त्रिदशायुध, शतधार, शतार, आपोथ, अक्षज,

गिरिकण्टक, गौ, अभ्रोत्थ, मेघभूति, गिरिज्वर, जाम्बवि, दम्भ, भिद्र, अम्बुज। (त्रिका०) वैदिक पर्याय—विद्युत्, नेमि, हेति, नम, पवि, सृक, वृक, वध, वज्र, अर्क, कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु।

(वेदनि० २।२०)

वज्रकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणादिमें विभिन्न मत देखा जाता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जब विश्वकर्माने सूर्यको भ्रमियन्त्र (खराद) पर चढ़ा कर खरादा था, तब छिल कर जो तेज निकला था, उसीसे विष्णुका चक्र, रुद्रका शूल और इन्द्रका वज्र बना था।

(मत्स्यपु० ११ अ०)

वामनपुराणमें लिखा है, कि इन्द्र जब दितिके गर्भमें घुस गये थे, तब वहां उन्हें बालकके पास ही एक मांसपिण्ड मिला था। इन्द्रने जब क्रुद्ध हो उसे हाथमें ले कर दबाया, तब वह लम्बा हो गया और उसमें सौ गांठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन हो कर वज्र बन गया।

(वामनपु० ६८ अ०)

भागवतमें लिखा है, कि इन्द्रने वृत्रासुरका वध करनेके लिये दधीचि मुनिकी अस्थि द्वारा विश्वकर्मासे वज्र बनाने कहा। विश्वकर्माने वैसा ही किया। इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्रासुरका वध किया था। (भागवत ६।१०-११ अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि जब वज्रका भयानक शब्द सुनाई दे, उस समय पूर्व वा उत्तरमुख खड़े हो जैमिनिमुनिका नाम तीन बार लेनेसे वज्रका भय जाता रहता है। (आह्निकतत्त्वधृत ब्रह्मपु०) ऋग्वेदमें उल्लेख है, कि दधीचि ऋषिकी हड्डीसे इन्द्रने राक्षसोंका ध्वंस किया। ऐतरेय-ब्राह्मणमें इसका वर्णन इस प्रकार आया है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देख कर भाग जाते थे। परन्तु जब वे मर गये, तब असुरोंने उत्पात मचाना आरम्भ किया। इन्द्र दधीचि ऋषिकी खोजमें पुष्कर गये। वहां पता चला, कि दधीचिका देहावसान हो गया। इस पर इन्द्र उनकी हड्डी ढूढ़ने लगे। पुष्करक्षेत्रमें उनके सिरकी हड्डी मिली। उसीका वज्र बना कर इन्द्रने असुरोंका संहार किया।

अतिरिक्त महापातक होनेसे वज्राघातसे मृत्यु होती है। नारियल आदि वृक्षके शिखर पर वज्रपात होते देखा जाता है। वज्रपतनके बाद वह पेड़ मर जाता है। अनेक समय वज्राघातसे मृत वा मृतप्राय व्यक्तिको मिट्टीमें गाड़ रखनेसे पुनर्जीवन लाभ करते देखा गया है। ईंटोंके बने घर पर वज्रपात होनेसे वह चूर चूर हो जाता है।

अंगरेजीमें वज्रको Thunder-bolt कहते हैं। यह दो मेघोंके परस्पर संघर्षणसे विद्युत्के साथ उत्पन्न होता है। कहते हैं, कि गोबरकी ढेर वा कदली वृक्ष पर वज्र गिरनेसे वह ऊपर नहीं उठ सकता और न भीतर ही घुस सकता है। बहुतोंका कहना है, कि वज्र देखनेमें लौह-शलाकाकी तरह होता है, किन्तु यथार्थमें सो नहीं है। विद्युत् देखो।

२ विद्युत्, बिजली। ३ रत्नविशेष, हीरा। पर्याय—इन्द्रायुध, हीर, भिदुर, कुलिश, पवि, अभेद्य, अशिर, रत्न, दृढ़, भार्गवक, षट्कोण, बहुधार, शतकोटि। गुण—षड्रसोपेत, सर्वरोगापहारक, सकलपापनाशक, सौख्यकर, देहदार्ढ्यकारक और रसायन। (राजनि०) विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो। ४ बालक। ५ धात्री। ६ काञ्जिक, कांजी। ७ वज्रपुष्प। ८ लौहविशेष, एक प्रकारका लोहा। यह वज्रलौह अनेक प्रकारका होता है। जैसे—नीलपिण्ड, अरुणाभ, मोरक, नागकेशर, तित्तिराङ्ग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, काङ्कोल, ग्रंथिवज्रक, मदनाख्य। ९ अभ्रविशेष, अबरक। भावप्रकाशमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें इन्द्रने जब वृत्रासुरका संहार करनेके लिये वज्र उठाया, तब उस वज्रसे आगकी चिनगारियां निकल कर भयानक शब्द करती हुई पहाड़ पर गिरीं। जिस जिस पर्वतके शिखर पर वह चिनगारियां गिरी थीं, वहीं अबरककी उत्पत्ति हुई। वज्रसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण इसका वज्र नाम हुआ है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार जातिका है। ब्राह्मण जातिका अबरक सफेद, क्षत्रिय जातिका लाल, वैश्यका पीला और शूद्र जातिका अबरक काला होता है। सफेद अबरक रौप्यके संस्कार विषयमें, लाल रसायनमें, पीला स्वर्ण संस्कारविषयमें और काला अबरक सब रोगोंमें काम आता है।

पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र यही चार प्रकारका

अवरक है। इनमेंसे वज्र नामक अबरकको अग्निमें डालनेसे वज्रको तरह स्थिर भावमें रहता है, कुछ भी विकृत नहीं होता। यह अवरक अन्य सभी अवरकोंसे उमदा होता है। इससे ज्वरादिरोग प्रशमित होता है तथा इससे अकालमृत्यु नहीं होती। अवरकको शोधन करके काममें लाना चाहिये। शोधित अवरक ही गुणकारक होता है।

शोधितका गुण—कषाय, मधुररस, शातवीर्य, आयुष्कर, धातुवर्द्धक तथा त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदर, ग्रन्थि, विष और कृमिनाशक। नित्य सेवन करनेसे यह रोगनाशक, शरीरकी दृढ़तासम्पादक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त कोमलताजनक, परमायुवर्द्धक, पुत्रजनक, सिंहसदृश विक्रमजनक, अकालमृत्युनाशक तथा प्रति दिन सौ स्त्री रमण करनेकी शक्तिजनक होता है।

अशोधितका गुण—पीड़ाजनक तथा कुष्ठ, क्षय, पाण्डु, शोथ, हृद्गत और पार्श्वगत वेदना तथा शरीरकी गुरुताका उत्पादक। अभ्र शब्द देखो।

१० कोकिलाक्षवृक्ष। ११ श्वेत कुश। १२ थूहरका पेड़, सेहुंड़। १३ कृष्णके एक प्रपौत्र जो रुक्मिणीगर्भजात प्रद्युम्नके पुत्र थे। १४ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। १५ भाला, बरछा। १६ ज्योतिषमें २२ व्यतीपात योगोंमेंसे एक। १७ वास्तुविद्याके अनुसार वह स्तम्भ जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। १८ विष्णुके चरणका एक चिह्न। १६ अकलवीर नामका पौधा।

२० विष्कम्भादि सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत पन्द्रहवां योग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि वज्रयोगके आदि ६ दण्ड निन्दनीय हैं अर्थात् इन नौ दण्डोंमें यात्रादि कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। जिस बालकका इस योगमें जन्म होता, वह गुणी, गुणग्राही, बलवान्, तेजस्वी, रत्न और वस्त्रादिका परीक्षक तथा शत्रुनाशक होता है। (कोष्ठीप्रदीप) २१ बौद्धके मतसे चक्राकार चिह्नविशेष।

(त्रि०) २२ वज्रके समान कठिन, बहुत कड़ा या मजबूत। २३ घोर, दारुण।

वज्रक (सं० क्ली०) वज्र संज्ञायां कन्। १ वज्रक्षार। २ फलितज्योतिषके अनुसार सूर्यके आठ उपग्रहोंमेंसे एक जो सूर्यसे तेईसवाँ नक्षत्र होता है

वज्रकक्षार (सं० पु० क्ली०) वज्रक्षार।

वज्रकङ्कट (सं० पु०) वज्रः कङ्कटो देहावरणमस्य। हनुमान्का एक नाम।

वज्रकण्टक (सं० पु०) वज्रस्य कण्टकमिव तद्वारकत्वात्। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमखानाका पेड़।

वज्रकण्टशाल्मली (सं० स्त्री०) नरकभेद। भागवतपुराणके अनुसार अट्ठाईस नरकोंमेंसे यह नरक तेरहवां है। जो सब पापी सर्वाभिगामी है, यमलोकमें उसकी इस नरकमें गति होती है।

"यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्त्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥" (भागवत ५।२६।२१)

वज्रकन्द (सं० पु०) वज्राकारः कन्दोऽस्य। १ वज्रकर्ण, शकरकंद। २ वनशूरण, जंगली सूरण या जिमीकंद। ३ तालके वृक्षका फूल।

वज्रकपाटमत् (सं० त्रि०) सुदृढ़ द्वारयुक्त।

वज्रकपाली (सं० पु०) वज्रकपोलोऽस्यास्तीति इनि। बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, निशुम्भीश, शशिशेखर, वज्रटीक।

वज्रकर्ण (सं० पु०) वज्रकन्द, शकरकन्द।

वज्रकाञ्जिक (सं० क्ली०) स्त्रीरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कांजी १ सेर, कल्कार्थ पीपलका मूल, पीपल, सोंठ, अजवायन, जीरा, मंगरेला, हल्दी, दारुहल्दी, विट्लवण, सचल लवण, कुल मिला कर एक पल, पाकार्थ जल ४ सेर, शेष १ सेर, नियमपूर्वक पाक करे। यह कल्कके साथ पीना होता है। इसका सेवन करनेसे स्त्रियोंको अग्निवृद्धि और आमशूल तथा कफ नष्ट हो कर बल, वीर्य तथा स्तनदुग्धकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यरत्ना०)

वज्रकारक (सं० पु०) नखी नामक गन्धद्रव्य।

वज्रकालिका (सं० स्त्री०) वज्रोपलक्षिता कालिका। १ बुद्धकी माता मायादेवीका एक नाम। २ शाक्यमुनिकी माता।

वज्रकाली (सं० स्त्री०) १ जिनशक्तिभेद। २ हिन्दूदेवीमूर्त्तिभेद।

वज्रकीट (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा जो पत्थर या काठको काट कर उसमें छेद कर देता है। कहते हैं, कि गण्डक नदीमें इन कीटोंके द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्रामकी बटिया बन जाती है। वज्रदंष्ट्र देखो।

वज्रकाल (सं० पु०) वज्र।

वज्रकुक्षि (सं० क्ली०) पर्वतगुहाभेद।

वज्रकूट (सं० पु०) १ एक पर्वतका नाम। २ हिमालयकी चोटी परका एक एक प्राचीन नगर।

वज्रकृच्छ (सं० पु०) प्रायश्चित्तविशेष।

वज्रकेतु (सं० पु०) असुरभेद। यह नरकका राजा था।

वज्रक्षार (सं० क्ली०) वज्र संज्ञकः क्षारं। क्षारविशेष। पर्याय—वज्रक, क्षारश्रेष्ठ, विदारक, सार, चन्दनार, धूमोत्थ, धूमजाङ्गक। गुण—अति उष्ण, तीक्ष्ण, क्षारक, रेचन, गुल्म, उदरपीड़ा, विष्टम्भ और श्रमनाशक।

प्लीहारोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्र लवण, सैन्धव लवण, काच लवण, यवक्षार, सौवर्चल लवण, सोहागा और साचिक्षार इनके बराबर बराबर चूर्णको अकवन और थूहरके दूधमें तीन दिन भावना दे कर एक ताँबेके बरतनमें रखे और मुंह बंद कर लेप लगा दे। पीछे उसे पुटपाक करके चूर्ण करे। इसके बाद त्रिकटु, त्रिफला, जीरा, हरिद्रा और चिता इनके समान भाग चूर्णको मिश्रित कर क्षारका अर्द्धांश देना होगा। मात्रा दोषके बलानुसार स्थिर करनी चाहिये। यदि वायुकी अधिकता रहे, तो उष्ण जल अनुपान, श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घृत, पित्तकी अधिकता रहनेसे गोमूत्र तथा त्रिदोषदुष्ट होनेसे कांजी अनुपानके साथ सेवन करना होता है। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके उदरी, गुल्म, शूल, अग्निमान्ध्य, अजीर्ण और प्लीहादि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

(रसेन्द्रसारस० प्लीहारोगाधि०)

वज्रगर्भ (सं० पु०) बौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार एक बोधिसत्त्वका नाम।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी नामका कीड़ा।

वज्रगढ़—बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग।

वज्रगुग्गुलु (सं० क्ली०) औषधविशेष।

वज्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोपकीटभेद, बीरबहूटी।

वज्रघात (सं० पु०) वज्रपात।

वज्रघोष (सं० त्रि०) वज्रपतनका कड़कड़ शब्द।

वज्रचर्मा (सं० पु०) वज्रवत् दुर्भेद्यं चर्म यस्य। गण्डक, गैंडा।

वज्रचुञ्चु (सं० पु०) गृध्रपक्षी।

वज्रजित् (सं० पु०) वज्रं जयति तस्य आघात सहनेनेति, जि-क्विप्, तुगागमश्च। गरुड़।

वज्रज्वलन (सं० पु०) विद्युत्, बिजली।

वज्रज्वाला (सं० स्त्री०) वज्रस्य ज्वाला। १ वज्राग्नि। २ विरोचन दैत्यकी पौत्रीका नाम। ३ कुम्भकर्णकी पत्नी।

वज्रटङ्कशास्त्री—भवानन्दीयखण्डन और वज्रटङ्कीय न्यायग्रन्थके प्रणेता।

वज्रटीक (सं० पु०) वज्रेण वज्रकपालेन टीकते प्रकाशते इति टीक-क। वज्रकपालि नामक बुद्ध।

वज्रडाकिनी (सं० स्त्री०) महायान शाखाके तान्त्रिक बौद्धोंकी उपास्य डाकनियोंका एक वर्ग। इसके अन्तर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जाती हैं—श्वेतवर्ण लास्या, पीतवर्णा माला, रक्तवर्णा गीता, श्यामवर्णा नृत्या, शुक्लवर्णा पुष्पहस्ता पुष्पा, पीतवर्णा धूपहस्ता धूपा, रक्तवर्णा दीपहस्ता दीपा तथा गन्धहस्ता हरित्वर्णा गन्धा। इनकी पूजा नेपाल और तिब्बतमें होती है। इन अष्टवज्रडाकिनीको बहुतेरे अष्टमातृकाका रूपान्तर मानते हैं।

वज्रणखा (सं० स्त्री०) रमणीभेद। (पा ४।१।५८)

वज्रतर (सं० पु०) ईंटकी जोड़ाईका एक प्रकारका मसाला।

वज्रतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद। वज्रतीर्थमाहात्म्यमें इसका सविस्तर परिचय है।

वज्रतुण्ड (सं० पु०) वज्रं वज्रतुल्यं कठिनं तुण्डं यस्य। १ गरुड़। २ गणेश। ३ गृध्र, गीध। ४ मशक, मच्छड़। ५ स्नुहीवृक्ष, थूहर। (त्रि०) ६ वज्रतुण्डधर।

वज्रतुल्य (सं० पु०) वज्रेण तुल्यः। वज्रके समान।

वज्रदंष्ट्र (सं० पु०) वज्र इव दंष्ट्रा यस्य। १ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी। २ राक्षसभेद। ३ असुरभेद। ४ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (त्रि०) ५ वज्रकी तरह दंष्ट्रायुक्त, जिसके दांत वज्रके समान कठिन हों।

वज्रदक्षिण (सं० त्रि०) वज्र'-दक्षिणे दक्षिणहस्ते यस्य। दक्षिण हस्त द्वारा वज्रयुक्त।

वज्रदग्ध (सं० त्रि०) वज्राग्नि द्वारा दग्ध, जो वज्रकी आगसे जल गया हो।

वज्रदण्ड (सं० पु०) एक अस्त्रका नाम जिसे इन्द्रने अर्जुनको प्रदान किया था।

वज्रदण्डक (सं० क्ली०) गुल्मभेद।

वज्रदत्त (सं० पु०) १ भगदत्तके एक पुत्रका नाम। २ एक वौद्धग्रन्थकारका नाम।

वज्रदन्त (सं० पु०) वज्रमिव कठिना दन्ता यस्य। १ शूकर, सूअर। २ मूषिक, चूहा।

वज्रदन्ता—एक नदीका नाम। (दिग्विजयप्र० ४९३।१)

वज्रदन्ती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पेड़ वा पौधा। इसकी दतुवन अच्छी होती है और वैद्यकमें इसकी जड़ वमनकारक कही गई है।

वज्रदशन (सं० पु०) वज्रमिव कठिनं दशनमस्य। १ मूषिक, चूहा। २ वज्रदन्त, कठिन दांत।

वज्रदाम—कच्छपघातवंशीय एक राजा, लक्ष्मणके पुत्र। इन्होंने गाधिनगरपतिको परास्त कर गोपाद्रि पर दखल जमाया था।

वज्रदूढ़नेत्र (सं० पु०) यक्षराजभेद।

वज्रदेश (सं० पु०) एक देशका नाम।

वज्रदेह (सं० त्रि०) १ वज्रके सदृश कठिन शरीर। २ वलराम।

वज्रद्रु (सं० पु०) वज्रवारको द्रुः। स्नुही वृक्ष, थूहर।

वज्रद्रुम (सं० पु०) वज्रवारको द्रुमः। स्नुही वृक्ष, थूहर।

वज्रद्रुमकेसरध्वज (सं० पु०) गन्धर्व राजभेद।

वज्रधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्। वज्रस्य धरः। १ इन्द्र। २ वौद्धयतिविशेष। ३ वल्लालपुराधिपति। राजविशेष। (राजतरङ्गिणी ८।५४०) ४ वौद्धोंकी महायान शाखाके अनुसार आदि बुद्ध। तिब्बतके तान्त्रिक वौद्ध-मतानुसारसे ये प्रधान बुद्ध, प्रधान जिन गुह्यपति तथा सब तथागतोंके प्रधान मन्त्री आदि, अनन्त और वज्रसत्व हैं। अपदेवताओंने इनसे हार मान कर प्रतिज्ञा की थी, कि वौद्ध-धर्मके विरुद्ध कभी प्रयत्न न करेंगे।

किसी किसी वौद्धतन्त्रके मतसे वज्रधर और वज्रसत्व दोनों भिन्न हैं। वज्रधर ही आदिदेव हैं। वे सर्वदा समाधिमें मग्न रहते हैं। वज्रसत्त्व द्वारा ही वे मनुष्यका कल्याण किया करते हैं। ध्यानी बुद्धके साथ मानुषी बुद्धका जो सम्पर्क है, वज्रधरके साथ वज्रसत्वका भी वैसा ही सम्पर्क है।

वज्रभाली (सं० स्त्री०) विरोचनकी पत्नीभेद।

वज्रनख (सं० त्रि०) नृसिंह।

वज्रनगर (सं० क्ली०) दानवश्रेष्ठ वज्रनाभ-प्रतिष्ठित नगरभेद।

वज्रनाभ (सं० त्रि०) १ स्कन्दानुचर मातृभेद। २ दानवराजभेद। ३ राजा उक्थके पुत्र। ४ उन्नाभके पुत्र। ५ स्थलके पुत्र। ६ कृष्णकी ज्योति।

वज्रनाभीय (सं० त्रि०) वज्रनाभ नामक दानवसम्बन्धीय।

वज्रनाराच (सं० क्ली०) अस्त्रविशेष।

वज्रनिर्घोष (सं० पु०) वज्रस्य निर्घोषः। वज्रजनित शब्द।

वज्रनिष्पेष (सं० पु०) वज्राणां निष्पेषः संघर्षध्वनिः। वज्रनिर्घोष, विजलीकी कड़क। पर्याय—स्फुर्जथु।

वज्रपञ्जर (सं० पु०) १ दुर्गास्तोत्रभेद। २ सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

वज्रपत्रिका (सं० स्त्री०) वृक्षभेद (Asperagus Racemosa)

वज्रपाणि (सं० पु०) वज्रं पाणौ यस्य। १ इन्द्र। २ ब्राह्मण। ३ वौद्धमतानुसार देवयोनिभेद। ४ ध्यानी वौद्धसत्वभेद। नेपाल, सिकिम और भूटानमें अभी भी वज्रपाणिकी द्विभुज-भीषण मूर्त्तिकी पूजा होती है। ड्रिमेद वेल्क्रेङ्ग नामक भोट-ग्रन्थमें लिखा है, कि एक समय सभी बुद्ध मेरु पर्वत पर इकट्ठे हुए। किस तरह समुद्रमेंसे अमृत निकाला जायगा इसका उपाय ढूंढ़नेके लिये सभी सम्मिलित हुए थे। उस समय असुर लोग हलाहल प्रयोग करके मानव जातिका सर्वनाश करनेकी चेष्टा कर रहे थे। अभी अमृत बांट कर मानव समाज अपनी रक्षाके लिये बड़े ही उत्कण्ठित थे। बुद्धोंने मेरु द्वारा समुद्रको मथ डाला। उससे अमृतका घड़ा निकल कर जलके ऊपर तैरने लगा। वज्रपाणिके हाथ उस अमृतका भार सौंपा गया। अचानक राहुको

बोधिसत्वोंकी गुप्तक्रिया मालूम हो गई। वह वज्रपाणिसे चुरा कर सब अमृत पी गया और वज्रपाणिके डरसे वहांसे चम्पत हुए। पीछे वज्रपाणिको अमृत चोरी होनेकी बात मालूम हुई। वे राहुको पकड़ने चले। पहले वे सूर्यलोक गये। सूर्यने राहुके डरसे असल बात छिपा कर सिर्फ इतना ही कहा, कि उन्होंने एक आदमीको उधरसे जाते देखा था। वहांसे वज्रपाणि चन्द्रलोक आये। चन्द्रमाने उनसे सारी बातें कह दीं। तुरत ही वज्रपाणिने राहु पर आक्रमण किया। उनके वज्राघातसे राहुके दो खण्ड हो गये। उसका सिर्फ मुख ही बच रहा, नीचेका हिस्सा गायब हो गया। किन्तु अमृतके प्रभावसे उसके प्राण नहीं निकले। इसके बाद बोधिसत्वगण फिर इकट्ठे हुए। राहुके पेशाबसे अत्यन्त तीक्ष्ण विष पैदा हुआ, जिससे सृष्टि नाश होनेके लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। बोधिसत्वोंके परामर्शसे वज्रपाणिने उस मूत्रका पान करके सृष्टिकी रक्षा की। उस समय वज्रपाणिके शरीरका रंग बिल्कुल काला हो गया। चन्द्र तथा सूर्याके ऊपर राहुका आजन्म क्रोध रहा। केवल वज्रपाणिके कौशलसे वह चन्द्र सूर्याको निगलने नहीं पाता है।

वज्रपाणिने जिस समय राहु पर आक्रमण किया, उस समय उसके कटे हुए स्थानसे अमृत बहने लगा। वह अमृत-रस पृथ्वीके जिन स्थानों पर गिरा, वहां नाना प्रकारके भेषज उत्पन्न हुए। भोट देशमें जितनी वज्रपाणिकी कृष्णवर्ण मूर्त्तियां हैं, उनके दाहिने हाथमें वज्र, बायें हाथमें घण्टापाश प्रभृति तथा कमरमें मुण्डमाला हैं।

वज्रपाणित्व (सं० क्ली०) वज्रपाणेर्भावः त्व। वज्रपाणिका भाव वा धर्म।

वज्रपात (सं० पु०) वज्रस्य पातः पतनं। वज्रपतन।

वज्रपाषाण (सं० क्ली०) दुग्ध पाषाण, फुलखड़िया।

वज्रपुर (सं० क्ली०) वज्रस्य पुरः। वज्रनगर।

वज्रपुष्प (सं० क्ली०) वज्रमिव पुष्पं। १ तिलपुष्प। २ शतपुष्प, सोया।

वज्रप्रभ (सं० पु०) एक विद्याधरका नाम।

वज्रप्रभाव (सं० पु०) करूषराजभेद।

वज्रप्रस्तारिणी (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वज्रप्राय (सं० त्रि०) वज्रकी तरह कठिन।

वज्रबाहु (सं० पु०) १ इन्द्र। २ रुद्र। ३ अग्नि। ४ उड़ीसाके एक राजाका नाम।

वज्रबीजक (सं० पु०) वज्रमिव कठिनं बीजमस्य कन्। लताकरञ्ज।

वज्रभूमि (सं० स्त्री०) नगरभेद।

वज्रभूमिरजस् (सं० क्ली०) वैक्रान्त मणि।

वज्रभृकुटि (सं० क्ली०) तंत्रोक्त देवीभेद।

वज्रभृङ्गी (सं० स्त्री०) मधुर तृणविशेष, एक प्रकारकी मोटी घास। गुण—कटु, उष्ण, श्वास, हिक्का, कम्प, कण्ठरोग, वातगुल्म, पीनस आदि रोगनाशक।

वज्रभृत् (सं० त्रि०) वज्रं बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। इन्द्र।

वज्रभैरव (सं० पु०) महायान शाखाके बौद्धोंके एक देवता। इन्हें भूटानमें 'यमान्तक शिव' कहते हैं। इनके अनेक मुख और हाथ माने जाते हैं। पैरके नीचे बौद्धधर्मद्वेषी बहुतसे पाषण्ड पड़े हैं।

वज्रमणि (सं० पु०) हीरक, हीरा।

वज्रमय (सं० त्रि०) वज्र-स्वरूपे मयट्। वज्रस्वरूप-वज्रके समान।

वज्रमित्र (सं० पु०) राजभेद। (भागवत १२।१६)

वज्रमुकुट (सं० पु०) राजा प्रतापमुकुटके पुत्र।

वज्रमुष्टि (सं० त्रि०) १ इन्द्र। २ एक राक्षसका नाम। ३ आरण्य शूरणकन्द, जंगली सूरन।

वज्रमूली (सं० स्त्री०) वज्रमिव कठिनं मूलं यस्याः। माषपर्णी। जंगली उरद।

वज्रमूषा (सं० स्त्री०) अन्धमूषा यन्त्र।

वज्रयोग (सं० क्ली०) फलितज्योतिषोक्त योगविशेष।

वज्रयोगिनी (सं० स्त्री०) १ तन्त्रोक्त देवीभेद। २ ढाका जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। प्राचीन वङ्गला ग्रंथमें यह वरदयोगिनी नामसे प्रसिद्ध है।

वज्ररथ (सं० पु०) वज्रमिव रथो यस्य। क्षत्रिय।

वज्ररद (सं० पु०) वज्रमिव रदोऽस्य। १ शूकर, सूअर। २ वज्रतुल्य दन्त, वज्रके समान कठिन दांत।

वज्रराष्ट्र (सं० क्ली०) नगरभेद।

वज्ररूप (सं० त्रि०) वज्रकी तरह आकृतिवाला।

वज्रलिपि (सं० स्त्री०) एक प्रकारको लिपि।

देवनागर शब्द देखो।

वज्रलेप (सं० पु०) एक मसाला या पलस्तर जिसका लेप करनेसे दीवार, मूर्त्ति आदि अत्यन्त दृढ़ और मजबूत हो जाती है। यह दो तरहसे बनता है। एकमें तेंदू और कैथके कच्चे फल, सेमलके फूल, शल्लकी (सलई) के बीज, धन्वनकी छाल और जौको ले कर एक द्रोण पानीमें उबालते हैं। जब जल कर आठवाँ भाग रह जाता है, तब उतार कर उसमें गंधविरोजा, बोल, गूगल, भिलाव कुंदरु, गोंद, राल, अलसी और बेलका गूदा घोट कर मिलाते हैं। दूसरा मसाला इस प्रकार है। लाख, कुंदुरु, गोंद, बेलका गूदा, गंगेरनका फल, मजीठ, राल, बोल और आँवला इन सबको द्रोण भर पानीमें उबालते हैं। जब अष्टमांश रह जाता है, तब काममें लाते हैं। इसका लेप करनेसे सहस्रायुत वर्ष तक वह स्थायी रहता है। गाय, भैंस और बकरीके सींग, गदहेके रोएँ, भैंसेके चमड़े, गायके घी तथा नीम और कैथके रसमें चूर करके मिलानेसे वज्रतर नामक लेप बनता है।

(बृहत्संहिता ५७ अ०)

साधारणतः जो सब प्रलेप वज्रके समान कठिन होता है वा उसकी तरह दृढ़संलग्न रहता है उसीको वज्रलेप कह सकते हैं।

वज्रलेपघटित (सं० त्रि०) वज्रलेप द्वारा सम्बन्ध।

वज्रलौहक (सं० क्ली०) १ कान्तलौह। २ चुम्बक।

वज्रवटकमुण्डूर (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गायके मूतमें सोधे हुए कपास मण्डूरचूर्णको दूसरे गायके मूतमें पाक करते हैं, पाक शेष होनेके समय निम्नलिखित द्रव्योंका चूर्ण डाल कर अच्छी तरह घोटते हैं। पीछे ४ माशेको एक एक गोली बनाते हैं। इनका अनुपान तक्र है। प्रक्षेप द्रव्य ये सब हैं—पीपलका मूल, चई, चितामूल, सोंठ, मरिच, देवदारु, त्रिफला, विड़ङ्ग, मोथा प्रत्येकका चूर्ण २ तोला। इस मण्डूरका सेवन करनेसे पाण्डु, अर्श, ग्रहणी, उरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा आदि रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० पाण्डुरोगाधि०)

वज्रवटी (सं० स्त्री०) औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, चिता, मरिच, प्रत्येक एक भाग, गन्धक २ भाग इन्हें कठगूमरके रसमें एक दिन घोंट कर हरें, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, पीपल, मरिच, प्रत्येकके काढ़ेमें ७ बार भावना दे कर गोली बनावे। अनुपान और औषधकी माता दोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करनी चाहिये। इसके सेवनके कुष्ठ और पामा रोग जाते रहते हैं।

(रसेन्द्रसारस० कुष्ठरोगाधि०)

वज्रवध (सं० पु०) १ वज्रपतन द्वारा मृत्यु। २ गुणकाङ्कभेद (Cross multiplication)।

वज्रवरचन्द्र (सं० पु०) उड़ीसाके एक राजाका नाम।

वज्रवर्मन्—एक प्राचीन कवि।

वज्रवल्ली (सं० स्त्री०) वज्रमिव कठिना वल्ली। अस्थिसंहारकलता, हड़जोड़ा नामको लता।

वज्रवारक (सं० पु०) पुराणानुसार जैमिनि, सुमन्त, वैशम्पायन, पुलस्त्य और पुलह नामक पांच ऋषि। कहते हैं, कि इनका नाम लेनेसे वज्रपातका भय नहीं रहता।

"जैमिनिश्च सुमन्तश्च वैशम्पायन एव च।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव पञ्चैते वज्रवारकाः" (पुराण)

वज्रवाराही (सं० स्त्री०) मायादेवी। पर्याय—मारीची, त्रिमुखा, वज्रकालिका, विकटा, गौरी, पालीरथा।

(त्रिका०)

वज्रवाहनिका (सं० स्त्री०) वज्रेश्वरी विद्या।

वज्रेश्वरी विद्या देखो।

वज्रवाहिका (सं० स्त्री०) वज्रवाहनिका देखो।

वज्रविद्राविणी (सं० स्त्री०) बौद्ध देवीभेद।

वज्रविष्कम्भ (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

वज्रविहत (सं० त्रि०) वज्रपात द्वारा आहत।

वज्रवीजक (सं० पु०) वन्धुकनामक लताभेद।

वज्रवीर (सं० पु०) महाकाल रुद्रका नाम।

वज्रवृक्ष (सं० पु०) वज्रनिवारको वृक्षः। सेहुण्ड वृक्ष, थूहर।

वज्रवेग (सं० पु०) १ एक राक्षसका नाम। २ विद्याधरका नाम।

वज्रव्यूह (सं० पु०) एक प्रकारकी सेनाकी रचना जो दुधारे खड्गके आकारमें स्थित की जाती थी।

वज्रशल्य (सं० पु०) वज्रमिव कठिनं शल्यं गात्रलोम शलाका यस्य। शल्यक, साही नामक जन्तु।

वज्रशाखा (सं० स्त्री०) जैनमतके एक सम्प्रदायका नाम जिसे वज्रस्वामीने चलाया था।

वज्रशिष्य (सं० पु०) भृगुके एक पुत्रका नाम।

वज्रशृङ्खला (सं० स्त्री०) वज्रवत् शृङ्खलं यस्याः। जैन-मतानुसार सोलह महाविद्याओंमेंसे एक।

वज्रशृङ्खलिका (सं० स्त्री०) वज्रास्थि, तालमखाना। इसे कलिङ्गमें कोकिस्ता और बम्बईमें विखरा कहते हैं।

वज्रसंघात (सं० पु०) १ वज्रके समान कठिन। २ भीम-सेन। ३ पत्थर जोड़नेका एक मसाला। इसमें आठ भाग सोसा, दो भाग कांसा और एक भाग पीतल होता था। इससे पत्थरको जोड़ाई की जाती थी।

वज्रसंहत (सं० पु०) बुद्धभेद।

वज्रसत्त्व (सं० पु०) एक ध्यानी बुद्धका नाम।

वज्रधर देखो।

वज्रसत्त्वात्मिका (सं० स्त्री०) ध्यानी बुद्धकी पत्नीका नाम।

वज्रसमाधि (सं० पु०) बौद्धधर्मके अनुसार एक प्रकारकी समाधि।

वज्रसमुत्कीर्ण (सं० त्रि०) १ हीरकखचित, हीरा जड़ा हुआ। २ कठिन यन्त्र द्वारा उत्खात, मजबूत औजारसे उखाड़ा हुआ।

वज्रसार (सं० पु०) १ हीरक, हीरा। २ वज्रके समान सारयुक्त।

वज्रसारमय (सं० त्रि०) वज्रसारस्वरूपे मयट्। १ वज्र-सारके सदृश हीरेका बना हुआ।

वज्रसिंह (सं० त्रि०) एक हिन्दू राजा।

वज्रसूची (सं० स्त्री०) १ हीरक निर्मित सूचि, हीरेकी सूई। २ शङ्कराचार्य-रचित उपनिषद् भेद।

वज्रसूर्य (सं० पु०) अतिसारवत्वात् वज्रमिव तेजस्वि-तात् सूर्य इव। बुद्धविशेष, एक बुद्धका नाम।

वज्रसेन (सं० पु०) १ श्रावस्तिपुरीके एक राजा। २ आचार्य भेद।

वज्रस्थान (सं० क्ली०) नगर भेद।

वज्रस्वामिन् (सं० पु०) सत्तरह जैन पूर्विमेंसे एक।

वज्रहस्त (सं० त्रि०) वज्रं हस्ते यस्य। वज्रपाणि, इन्द्र। इससे अग्नि, मरुद्गण, शिव आदिका भी बोध होता है।

वज्रहस्तदेव—गङ्गवंशीय एक राजा। ये त्रिकलिङ्गके एक अधिपति थे। कलिङ्गनगरमें उनकी राजधानी थी। उनके पिताका नाम कामार्णव और माताका नाम विनय महादेवी था।

वज्रहस्ता (सं० स्त्री०) १ समिध्भेद। २ बौद्धदेवीभेद।

वज्रहूण (सं० क्ली०) नगरभेद।

वज्रा (सं० स्त्री०) वजति गच्छतीति वज गतौ रक्-टाप्। १ स्नुही वृक्ष, थूहर। २ गडूची, गुरुच। ३ दुर्गा।

वज्रांशु (सं० पु०) श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

वज्राकर (सं० पु०) हीरकखनि, हीरेकी खान।

वज्राकृति (सं० त्रि०) वज्रकी तरह आकृतिविशिष्ट, जिसका आकार कुसकी तरह हो। पहले व्याकरणमें जिह्वामूलीय वर्ण संज्ञामें जो चिन्ह लगाया जाता था, उसे वज्राकृति कहते हैं।

वज्राख्य (सं० क्ली०) वज्रं आख्या यस्य। १ वज्रपाषाण, फुलखड़ी। २ सेहेंड वृक्ष, थूहर। ३ वज्र।

वज्राघात (सं० पु०) १ वज्रपात, । २ आकस्मिक दुर्घटना वा विपद्।

वज्राङ्कित (सं० त्रि०) वज्रचिह्नयुक्त।

वज्राङ्कुशी (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीविशेष।

वज्राङ्ग (सं० पु०) वज्रमिव अङ्गं यस्य। १ सर्प, साँप। २ हनुमान्। (त्रि०) ३ वज्रके समान अङ्ग विशिष्ट, जिस-का शरीर वज्रके समान कठिन हो।

वज्राङ्गी (सं० स्त्री०) वज्राङ्ग-ङीष्। १ गवेधुका, कौड़िल्ला। २ अस्थिसंहारी, हड़जोड़ नामकी लता जो चोट लगने पर लगाई जाती है।

वज्राचार्य—नेपालके बौद्धतान्त्रिक आचार्य वा गुरु। तिब्बतमें यही वज्राचार्य लामा कहलाते हैं। लामा देखो।

नेपालके मुण्डितकेश 'बांड़ा' नामक बौद्ध आचार्य दो भागोंमें विभक्त हैं—भिक्षु और वज्राचार्य। जो संसार-त्यागी हैं तथा बाह्यचर्याका अनुष्ठान करते हैं, वे भिक्षु और जो गृहस्थ तथा अभ्यन्तरचर्याका पालन करते, वे ही वज्राचार्य कहलाते हैं।

वज्राचार्य गृहस्थ हैं, इस कारण स्त्रीपुत्र ले कर विहारमें वास करते हैं। फिर भी ये लोग एक प्रकारके नेपाल-बौद्धसमाजके कार्यकरी मन्त्रणादाता और प्रधान

मन्त्रगुरु हैं। एक एक विहार एक एक वज्राचार्यके अधीन है। नेपालमें बहुत-से विहार हैं, अतएव बहुत-से वज्राचार्य भी देखे जाते हैं। नेपालके क्या बांड़ा, क्या साधारण बौद्ध गृहस्थ सभी अवनत मस्तकसे वज्राचार्यके आदेश और उपदेशका पालन करते हैं। नेपाल देखो।

नेपालके साधारण मुण्डितकेश बौद्धगण वज्र धारण नहीं कर सकते। जो यह वज्रधारणके अधिकारी हैं, वे ही वज्राचार्य कहलाते हैं। नेवारियोंके निकट वज्राचार्य 'गुभाजु' वा 'गुभाल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। वज्राचार्यका अनुष्ठेय वा प्रवर्त्तित मत ही वज्रयान कहलाता है। भूटान और नेपालके बौद्ध अभी वज्रयान-मतावलम्बी घोर तान्त्रिक हैं। अभी वज्रयान निम्नोक्तरूपमें विभक्त हैं:—

वज्रयान
- निम्नतन्त्र
  - क्रियातन्त्र
  - चायतन्त्र
- उत्तरतन्त्र
  - योगतन्त्र
  - अनुत्तरतन्त्र

वज्राचार्य पञ्चमकारके कट्टर भक्त हैं।
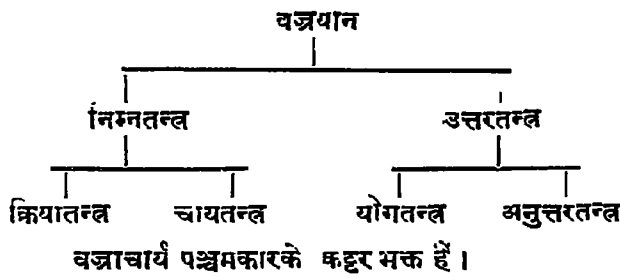
वज्रादित्य—काश्मीरके एक राजाका नाम। इनके पिताका नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्यके छोटे भाई थे। भाईके मरने पर ये काश्मीरके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। वज्रादित्यके दो नाम थे—वप्पियक और ललितादित्य। वज्रादित्य बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गांवसे अपने पिताका बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्यमें सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छोंके हाथ इसने अनेक मनुष्योंको बेचा था। यह पापी राजा सर्वदा रानियोंके साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। अन्तमें क्षयरोगसे इसका देहान्त हुआ।

वज्राभ (सं० पु०) वज्रस्य हीरकस्य आभा इव आभा यस्य। १ दुग्धपाषाण, फुलखड़ी। (त्रि०) २ हीरकतुल्य दीप्तिविशिष्ट, हीरेके समान चमक दमकवाला।

वज्राभिषवन (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका अनुष्ठान। इसमें तीन दिन तक जौका सत्तू पी कर रहते थे।

वज्राभ्यास (सं० पु०) गुणकभेद (Crossmultiplication)।

वज्राभ्र (सं० पु०) एक प्रकारका अबरक जो काले रंगका होता है।

वज्राम्बुजा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वज्रायुध (सं० त्रि०) वज्रं आयुधो यस्य। १ इन्द्र। २ एक प्राचीन कवि।

वज्रावर्त्त (सं० पु०) एक मेघका नाम।

वज्राशनि (सं० पु०) वज्र।

वज्रासन (सं० क्ली०) १ हठयोगके चौरासी आसनोंमेंसे एक। इसमें गुदा और लिङ्गके मध्यके स्थानको बाएं पैरकी एड़ीसे दबा कर उसके ऊपर दाहिना पैर रख कर पालथी लगा कर बैठते हैं। २ वह शिला जिस पर बैठ कर बुद्धदेवने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गयाजीमें बोधिद्रुमके नीचे थी।

वज्रास्थिशृङ्खला (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्राहत (सं० त्रि०) वज्राघात द्वारा मरा हुआ।

वज्राह्निका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

वज्राह्व (सं० क्ली०) तगरपादुक।

वज्रिजित् (सं० पु०) १ इंद्रविजयी। २ गरुड़।

वज्रिणी (सं० स्त्री०) वज्रधारी।

वज्रिवस् (सं० त्रि०) वज्रधारी।

वज्री (सं० पु०) वज्रोऽस्त्यस्येति वज्र, अत इनि ठनौ। पा ५।२।११७) इति इनि। १ वज्रधारी इंद्र। २ बुद्ध वा जैनसाधु। ३ इष्टिकाभेद, एक प्रकारकी ईंट। ४ स्नुही, थूहर। ५ तिधारा, नरसेज।

वज्रेश्वर (सं० पु०) नेपालस्थ तीर्थभेद। यहां प्राचीन हिंदू और बौद्धमिश्रित तान्त्रिकाचार विद्यमान है।

वज्रेश्वरी (सं० स्त्री०) बौद्धदेवीभेद।

वज्रेश्वरीविद्या—गुप्त विद्याभेद। इसका दूसरा नाम वज्रवाहनिका विद्या है। नियमपूर्वक वज्र निर्माण करके इस विद्या द्वारा अभिषेक करना चाहिये एवं काञ्चन द्वारा उसमें मन्त्र लिखना चाहिये। पीछे किसी जितेन्द्रिय व्यक्तिको चाहिये, कि वज्र ग्रहण करके एक लाख जप कर वज्रकुण्डमें घृतादि द्वारा उसका दशांश होम करे इससे वज्र सर्वशत्रु-विजयकारी बन जाता है। इस प्रकार

जपसे पवित्र किया हुआ वज्र राजाओंको रखना उचित है।

प्राचीन कालमें इन्द्रके उपकारार्थ ब्रह्माने महादेवके पास इसका अभ्यास किया था। किसी समय इन्द्रने विश्वरूपकी बतलाई हुई विद्या द्वारा सोमरस तैयार करके विश्वरूपको मार डाला। इसके बाद इन्द्रने सोमयोगसे हुत हविःकी प्रार्थना की। प्रजापति त्वष्टाने अपने पुत्र विश्वरूपके मरनेसे कुपित हो कर उन्हें सोमरस देनेसे इन्कार किया। इस पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए। वे ज़बरदस्ती सोमरस पी गये। प्रजापतिने 'इन्द्रके शत्रुकी वृद्धि हो' कह कर यज्ञमें आहुति डाली। उससे वृत्रासुर प्रकट हुआ। पीछे उस राक्षसने इन्द्र पर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इन्द्र भयसे विह्वल हो कर ब्रह्माकी शरणमें गये। तब ब्रह्माने कहा—"हे अरिन्दम! तुम अभी वज्रेश्वरी मन्त्रसे अभिषिक्त वज्रको छोड़ो, शीघ्र ही तुम्हारे शत्रुका नाश होगा।

इस वज्रेश्वरी मन्त्रमें पहले गायत्री, उसके बाद "ओम् फट्, जहि इत्यादि" मन्त्र हैं। यह ब्राह्मी विद्या सब शत्रुओंका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिबन्धन, सेनास्तम्भन सभी कर्म सिद्ध होते हैं।

"आयाहि वरदे देवि" इत्यादि मन्त्र द्वारा देवीको आवाहन कर पूजा जपादि बाह्य कार्य तथा वश्यादि क्रिया कारक 'ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथासुखं' मन्त्र द्वारा देवीको विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि स्थापन करके होम करना उचित है। इस विद्याके द्वारा सब तरहके कार्य सिद्ध हो जाते हैं। वश्यार्थी जातिपुष्प द्वारा तीन अयुत तथ अर्थात् तीस हजार बार होम करें। घृत करवीर द्वारा होम करनेसे आकर्षणकी सिद्धि होती है। लांगलक पुष्प द्वारा होम करनेसे विद्वेष सिद्ध होता है। तेलके होमसे उच्चाटन, मधु द्वारा स्तम्भन, तिल होमसे मोहन, खर, गज तथा उष्ट्रके रुधिरसे ताड़न, कुश होमसे पाटन, रोटी बीजसे मारण तथा उच्चाटन, पानपत्र द्वारा बन्धन एवं मनःशिलासे होम करनेसे सैन्यस्तम्भन होता है। इनके अलावा घृत होमसे सिद्धि, दुग्ध होमसे विशुद्धि, तिल होमसे रोगनाश, पद्म होमसे धन एवं मधुकपुष्प द्वारा होम करनेसे कान्तिकी वृद्धि होती है। सावित्री द्वारा ३० हजार बार होम करनेसे सब तरहकी जय प्राप्त होती है।

वज्रोदरी (सं० स्त्री०) राक्षसीभेद।

वज्रोली (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक मुद्राका नाम।

वज वज—कलकत्तासे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम। यह स्थान अभी वाणिज्य-बन्दररूपमें गिना जाता है। यहां १८वीं सदीके मध्यभागमें नवाबी सेनाके साथ अङ्गरेजोंका एक युद्ध हुआ था। आखिर अङ्गरेजी-सेनाने दुर्गको अधिकार किया। क्लाइव देखो।

वञ्चक (सं० पु०) वञ्चयते प्रतारयतीति वञ्च-णिच्-ण्वुल्। १ शृगाल, गीदड़। २ गृहबभ्रु, सोंधियार। ३ चोर, ठग। (त्रि०) ४ धूर्त्त, ठग। ५ खल।

वञ्चथ (सं० पु०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च (शीङ्शपीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ धूर्त्त। २ वञ्चना। ३ कोकिल।

वञ्चन (सं० क्ली०) वञ्च-भावे-ल्युट्। प्रतारण, धोखा देना या खाना। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि किसीसे ठग जाने पर बुद्धिमान्‌को चाहिये कि उसे प्रकाश न करें।

वञ्चनता (सं० स्त्री०) वञ्चनस्य भावः तल-टाप्। वञ्चनका भाव वा धर्म।

वञ्चनवत् (सं० त्रि०) वञ्चन अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वञ्चनविशिष्ट, जो ठगा गया हो।

वञ्चना (सं० स्त्री०) वञ्च णिच् युच्-टाप्। प्रतारणा, धोखा, फरेब, छल।

वञ्चनीय (सं० त्रि०) वञ्च-अनीयर्। प्रतारणीय, ठगने लायक।

वञ्चयतृ (सं० त्रि०) वञ्च-णिच्-तृच्। वञ्चक, ठग।

वञ्चयितव्य (सं० त्रि०) वञ्च-णिच् तव्य। वञ्चनाके योग्य, ठगने लायक।

वञ्चित (सं० त्रि०) वञ्च्यते स्मेति वञ्च-णिच्-क। १ वञ्चनाविशिष्ट, धोखेमें आया हुआ। २ अलग किया हुआ। ३ विमुख, अलग।

वञ्चिन् (सं० त्रि०) वञ्चनाकारी, धोखेमें डालनेवाला।

वञ्चुक (सं० त्रि०) वञ्चति प्रतारयतीति वञ्च-उकन्। प्रतारणशील, धूर्त्त, ठग।

वञ्ज (सं० त्रि०) वन्च ण्यत् (वञ्चेर्गतौ। पा ७।३।६४) इति न कुत्वं। गमनीय, जाने लायक।

वञ्जनाचल—पर्वतभेद।

वञ्जरा (सं० स्त्री) नदीविशेष।

वञ्जुल (सं० पु०) वजतीति वज गतौ वाहुलकात् उलच्, नुम् च। १ तिनिश वृक्ष। २ अशोक वृक्ष। ३ स्थलपद्म-वृक्ष। ४ पक्षिविशेष। ५ वेतस वृक्ष, बेंतका पेड़।

वञ्जुलक (सं० पु०) १ वृक्षभेद। २ पक्षिभेद।

वञ्जुलद्रुम (सं० पु०) वञ्जुलो द्रुमः। अशोकवृक्ष।

वञ्जुलप्रिय (सं० पु०) वञ्जुलस्य प्रियः, वञ्जुलः प्रियश्चेति कर्मधारयो वा। वेतसवृक्ष, बेंत।

वञ्जुला (सं० स्त्री०) वञ्जुल-टाप्। १ अतिशय दुग्धवती-गाभी, दुधारो गाय। २ एक नदीका नाम जो मत्स्यपुराणानुसार सह्याद्रि पर्वतसे निकलती है।

वञ्जुलावती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम जो दाक्षिणात्यके पर्वतसे निकलती है।

वट (सं० पु०) वटति वेष्टयति मूलेन वृक्षान्तरमिति वट पचाद्यच्। स्वनामख्यात छायावृक्ष, बरगदका पेड़। (Ficus Bengalenesis syn Ficus Indcia) स्थानीय नाम—हिन्दी—वर, वड़, बरगद; महाराष्ट्र—वट; कलिङ्ग—आल; तैलङ्ग—मरिचेट्ट, मारि, पेड्डि मरि; उत्कल—बोरु; वङ्गला—वड़, वट; कोल—वोइ; लेपछा—काङ्कि; मलयालम्—पेरमु, पेरलिनु; गोंड़—बरेल्ली; उत्तर-पश्चिम—वोरा, कुर्कु; नेपाल—वोरहर; पस्तु—वागात्; हजारा—फगवाड़ी; कनाड़ी—आलव, आनद, आल; ब्रह्म—पित-न्यौङ्ग; शिङ्गापुर—महानुग; अङ्गरेजी—बैनियन ट्री (Banyan tree); संस्कृत—पर्याय—न्यग्रोध, वहुपात्, वृक्षनाथ, यमप्रिय, रक्तफल, शृङ्गी, कर्मज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवणावास, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोही, विटपी, स्कन्दरुह, मण्डली, महाच्छाय, भृङ्गी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, वहुपाद, वनस्पति।

हिमालयसे ले कर दक्षिण भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है। साधारणतः यह ३०से १०० फीट तक ऊंचा होता है एवं शाखा-प्रशाखाओंसे परिपूर्ण हो कर दूर दूर तक फैल जाता है। इस वटवृक्षकी शीतल छाया आतपताप क्लिष्ट पथिकोंके तप्त हृदयको शीतल करती है एवं ग्रीष्म ऋतुकी कड़ी धूपमें प्रयास करनेवालोंके पक्षमें सभी वृक्षोंकी अपेक्षा इसकी छाया अधिक आनन्दप्रद होती है। कर्नल साइकस्‌ने नर्मदा नदी वक्षस्थ एक छोटे द्वीपके अन्तर्गत एक सुवृहत् वटवृक्षका उल्लेख किया है। वह जनसाधारणमें 'कवीरवट'के नामसे प्रसिद्ध है। कितने तो उसे वही सुप्राचीन वृक्ष समझते हैं जिसका वर्णन Nearchus ने अपने ग्रन्थमें किया था। पूनाकी (Gaz. Vol. XVIII) अन्ध्र उपत्यकान्तर्गत मउ ग्राममें एक बहुत विस्तृत वटवृक्ष था। उसकी छायामें २० हजार मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक बैठ सकते थे। इस वृक्षकी परिधि प्रायः २ हजार फीट एवं उसकी डालोंसे जितनी बरोह (Air roots) नीचे आई हैं, उन सबोंसे ३२० बरोहोंने तो मोटे मोटे स्तम्भकी भाँति आकार धारण कर लिया है एवं अविशिष्ट प्रायः तीन हजार पतली जटाएं मृत्तिका संलग्न हो रही हैं। उन जटाओंके मध्य ७ हजार मनुष्य अनायास ही छिप सकते थे। नर्मदाकी भीषण बाढ़में उस द्वीपका एकांश धस जानेसे यह वृक्ष भी नष्ट हो गया।

एतद्भिन्न कलकत्ताके निकटवर्ती शिवपुर ग्रामस्थ रायल बोटानिकल गार्डेनमें एवं बम्बई प्रदेशके सतारा उद्यानमें इस तरहके दो वटवृक्ष हैं। शिवपुर भैषज्य-उद्यानके संरक्षक डाक्टर किंग विशेष पर्य्यवेक्षण करके कहते हैं कि, यह वृक्ष १ सौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। यह १७८२ ई० में एक खजूर वृक्षके ऊपर पैदा हुआ था। उसकी २३२ जड़ें गोल गोल स्तम्भोंके रूपमें मिट्टीसे मिलती हैं। उनमें मूलस्तम्भ (काण्ड)का व्यास प्रायः ४२ फीट है। इसकी पत्रसमाच्छादित शाखा प्रशाखाओंको छाया परिधि लगभग ८५७ फीटकी है। अभी भी यह वृक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। एवं और भी बढ़नेकी आशा की जाती है। १८८२ ई०में सताराके वटवृक्षका परिदर्शन करके मि० वार्नर साहब लिखते हैं, कि यह वृक्ष कलकत्ताके वटवृक्षसे कहीं बड़ा है। उसकी परिधि १५८७ फीट है एवं वह उत्तर-दक्षिण ५६५ फीट तथा पूरब-पश्चिममें ४४२ फीट है।

वट और पीपलकी छाया घनी और ठण्ढी होती है। उनकी डालोंमेंसे जो जटाएं निकलती हैं, वे नीचे आ कर जड़ और तनेका काम देने लगती हैं जिससे वृक्षका विस्तार बहुत शीघ्रतासे होने लगता है। यही कारण है, कि बरगदके किसी बड़े वृक्षके नीचे सैकड़ों हजारों आदमी तक बैठ सकते हैं। इसीलिये ये वृक्ष पुण्यक्षेत्र रूपमें गिने जाते हैं। छायाके लिये ही कितने लोग सड़कके किनारे अथवा पुष्करिणीके तट पर पंचवटीका निर्माण करते हैं। पंजाबमें ये वृक्ष पथिकोंको निशा-शिशिरसे रक्षा करते हैं। इनसे एक ओर जितना लाभ है, दूसरी ओर उतनी ही हानि भी है। पक्षीसमूह यदि वटवृक्षके फलोंको खा कर किसी गृहकी छत पर या मन्दिरोंके शिखर पर विष्ठा त्याग करते हैं, तो उन विष्ठा-स्थित बीजोंसे वृक्ष उत्पन्न हो कर कुछ ही दिनोंमें दीवालके अन्दर जड़ें घुसा देता है। उस समय दीवार तोड़ कर उस वृक्षको समूल नष्ट किये विना निस्तार नहीं। अवहेला करनेसे वह वृक्ष शीघ्र ही बढ़ कर उस गृहको ध्वंस कर देता है। हिन्दू लोग पाप होनेके भयसे वट अथवा अश्वत्थ वृक्षको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। अत्यन्त यत्नके साथ जीवित वृक्ष मूलसहित उखाड़ कर दूसरे स्थानमें जमा देते हैं।

दक्षिण-भारतके रत्नगिरि जिलेमें वटवृक्षके ऊपर कर निर्दिष्ट है। कारण यह है, कि बादुर पक्षी साधारणतः Calophyllum inophyllum वृक्षके फलोंके बीजसहित विष्ठा त्याग करते हैं। इन बीजोंसे तेल निकलता है। अनेक वटवृक्षों पर लाह भी उत्पन्न होती देखी गई है। वटके दूधमें उसका चौथाई भाग सरसों तेल डाल कर आंच देनेसे एक प्रकारका गोंद तैयार होता है। वह गोंद चिड़ीमारके पक्षी पकड़नेके काममें आता है। आसामी लोग इससे एक प्रकारका कागज तैयार करते हैं। कोई कोई वटवृक्षकी जड़ोंके रेशोंसे रस्सी बनाते हैं, किन्तु उससे कोई विशेष काम नहीं चलता।

दुग्धवत् वटवृक्षका लासा वेदनानाशक होता है। वातसे होनेवाली वेदनाके स्थान पर इसका प्रलेप करनेसे बहुत फायदा होता है। पाँवका तलवा कट जानेसे अथवा दन्त-पीड़ा होनेसे इसका दूध उस क्षत स्थान एवं दाँतोंकी जड़में लगानेसे यातनाका शीघ्र ही ह्रास हो जाता है। इसकी छालका गूदा पौष्टिक एवं बहुमूत्र रोगमें विशेष गुणदायक है। बीजका गुण शीतल तथा बलकर है। वटवृक्षके कोमल पत्ते उत्तप्त करके फोड़े पर लगानेसे पुल्टिसका काम करता है। गनोरिया रोगमें इसकी जड़का चूर्ण विशेष उपकारी होता है। वह सालसाका काम करता है।

इस वृक्षकी नई शाखाओंका काढ़ा स्फोटकाशनाशक तथा जड़के कोमल अग्रभाग वमननिवारक होते हैं। शुष्क वटका दूध तथा फल स्वप्नदोष (Spermatorrhaea), प्रमेह (gonorrhaea) नाशक एवं कामोद्दीपक माना गया है। कच्ची कली तथा दुग्धधारकगुणविशिष्ट एवं अजीर्ण तथा उदरामय रोगमें विशेष हितकर हैं।

दुर्भिक्षके समयमें इसके लाल रंगके पके हुए फलको खा कर दरिद्र लोग अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते हैं। हाथी, गाय आदि जानवर भी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ी विशेष उपकारी नहीं होती। सिर्फ पतली पतली सूखी डालियां जलावन (ईंधन)में काम आती हैं। Ficus elastica या दूधदार वट नामक और एक श्रेणीका वटवृक्ष देखा जाता है। उसका दूध रबरके समान ही गुणयुक्त होता है।

गुण—कषाय, मधुर, शिशिर, कफ, पित्तज्वरापहा, दाह, तृष्णा, मेह, व्रण तथा शोफनाशक।

वृक्षोंमें वट तथा अश्वत्थ ये दो वृक्ष ही हिन्दू-समाजमें पूजनीय गिने जाते हैं। हिन्दूलोग वट वृक्षको रुद्रस्वरूप मानते हैं।

इन वृक्षोंके दर्शन, स्पर्श तथा सेवा करनेसे पाप दूर होते एवं दुःख, आपद तथा व्याधि जाती रहती है। अतएव ये वृक्ष रोपनेसे अशेष पुण्य संचय होता है। वैशाखादि पुण्य मासमें इन वृक्षोंकी जड़में जल देनेसे पापोंका नाश होता है एवं नाना प्रकारको सुख सम्पद् प्राप्त होती है।

२ कपर्दक, कौड़ी। ३ गोला। ४ भक्ष्यविशेष, बड़ा। ५ साम्य, समान होनेका भाव। (क्ली०) ६ व्रजमण्डलके

अभ्यन्तरस्थ वटसंज्ञक सोलह वन। यह वट इस प्रकार है,—सङ्केतवट, भाण्डीरवट, यावकवट, शृङ्गारवट, वंशीवट, श्रीवट, जटाजूटवट, कामाख्यवट, अर्थवट, आशावट, अशोकवट, केलिवट, ब्रह्मवट, रुद्रवट, श्रीधराख्यवट, सावित्राख्यवट। (त्रि०) वटतीति वट-अच्। ७ गुण।

वटक (सं० पु०) वट एव स्वार्थे कन्। पिष्टकविशेष, बड़ा, पकौड़ा। इसका गुण विदाही और तृष्णाकारक है।

भावप्रकाशमें वटक तैयार करनेकी प्रणाली और गुणादिका विषय लिखा है;—उर्दकी दालको भिगो कर पीस ले। पीछे लवण, अदरक और हींग मिला कर वटक वा बड़ा बनावे। अनन्तर उसे तैल द्वारा धीमी आँचमें भुननेसे उसे वटक वा बड़ा कहते हैं। इसका गुण बलकारक, शरीरका उपचयकारक, वीर्यवर्द्धक, वायुरोगनाशक, रुचिकारक, विशेषतः अर्द्दित, वायुनाशक, भेदक, कफकारक तथा तीक्ष्णाग्निके पक्षमें हितकर माना गया है।

जीरे और हींगको भून कर लवणके साथ मट्ठेमें डाले। पीछे उस वटकको उक्त मट्ठेमें भिगो रखनेसे वह शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकारक, गुरु, विवन्धनाशक, विदाही, कफकारक और वायुनाशक होता है। यह अत्यन्त रोचक और पाचक है। यह रतुआके साथ खाया जाता है।

वटक अनेक प्रकारका होता है। भिन्न भिन्न द्रव्यसे वटक तैयार किया जाता है। उसकी प्रस्तुत प्रणाली भिन्न भिन्न प्रकारकी है।

काञ्जीवटक—एक नये बरतनमें कटु तैल लेप कर निर्मल जल द्वारा उसे भर दे। पीछे उसमें सरसों, जीरा, लवण, हींग, सोंठ और हल्दी इन सब द्रव्योंका चूर्ण तथा वटकोंको डाल कर बरतनका मुँह बन्द कर दे और तीन दिन उसी तरह छोड़ दे। तीन दिनके बाद वे सब वटक रुचिकारक, वायुनाशक, कफकारक तथा शूल, अजीर्ण और दाहनाशक तथा नेत्ररोगके पक्षमें विशेष हितकर हैं।

अम्लिकावटक—इमलीको जलमें भिगो कर उबालना होगा। पीछे जब देखा जाय, कि इमलीका गूदा जलमें मिल गया है, तब वटकोंको अग्निमें सिद्ध कर उसमें डाल दे। इसको अम्लिकावटक कहते हैं। यह रुचिकारक, अग्निप्रदीपक और पूर्वोक्त काञ्जी वटककी तरह गुणयुक्त होते हैं।

तक्रवटक—मूंगका बड़ा बना कर तक्र (मट्ठे)के साथ पाक करनेसे वह लघु, शीतल, त्रिदोषनाशक तथा हितकारी होता है।

माषवटक—भूसी निकाली हुई उरदकी दालको पीस कर हींग, लवण और अदरकके साथ मिलावे। पीछे वटक तैयार कर एक कपड़े पर सूखने दे। जब वह अच्छी तरह सूख जाय, तब तेलमें भून कर जलमें सिद्ध करना होता है। यह पूर्वोक्त वटककी तरह गुणविशिष्ट तथा रुचिकारक है।

कुष्माण्डवटक—कोंहड़ेका उक्त रूपसे वटक तय्यार करना होता है। यह माषवटकके समान गुणयुक्त, विशेष रक्तपित्तनाशक और लघु होता है।

मुद्गवटक—मूंगका बड़ा पूर्वोक्त माषवटकके विधानानुसार प्रस्तुत करे। यह वटक हितकर, रुचिकारक, लघु तथा मूंगके वटककी तरह गुणविशिष्ट होता है। (भावप्र०)

२ बड़ी टिकियां या गोला। ३ एक तौल जो आठ माशेकी होती और सोना तौलनेके काममें आती थी। इसे क्षुद्रम, दक्षण और कोक भी कहते थे। १० गुंज = १ माशा, ४ माशा = १ शोण, २ शोण = १ वटक।

वटकणिका (सं० स्त्री०) वटवृक्षका टुकड़ा या खण्ड।

वटकाकार (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

वटकिनी (सं० स्त्री०) पौर्णमासीभेद। इस पूर्णिमाको रातको वटक खाना होता है।

वटगच्छ—श्वेताम्बर जैनोंका एक सम्प्रदाय।

वटच्छद (सं० पु०) श्वेतार्जक, सफेद बनतुलसी।

वटच्छाया (सं० स्त्री०) वटवृक्षकी छाया।

"कूपोदकं वटाच्छाया श्यामा स्त्री इष्टकालयं।
शीतकाले भवेदुष्णं ग्रीष्मकाले च शीतलम्॥" (उद्भट)

वटजटा (सं० स्त्री०) वटस्य जटा। वट शुङ्गा, वरोह।

वटतीर्थनाथ (सं० क्ली०) गुजरातके ओखमण्डलके अन्तर्गत एक तीर्थ। आज कल यह वपेत नामसे विख्यात है। (प्रभासख० ८०।१।५) स्कन्दपुराणके अन्तर्गत वटतीर्थनाथ माहात्म्यमें इस तीर्थका सविस्तार विवरण है।

वटद्वीप (सं० क्ली०) द्वीपभेद। (शक्तिसंहिता २६-३४ अ०) बहुतेरे यवद्वीपको राजधानी वातावियाको वटद्वीप कहते हैं। यवद्वीप देखो।

वटपत्र (सं० पु०) वटस्येव पत्रं यस्य। १ सितार्जक, सफेद वनतुलसी। २ वटका पत्ता। स्वार्थे-कन्। ३ वटपत्रक।

वटपत्रा (सं० स्त्री०) वटस्येव पत्रमस्याः। वृत्तमल्लिका नामक फूलका पौधा।

वटपत्री (सं० स्त्री०) वटस्येव पत्रं यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। पाषानभेद, पथरफोड़। पर्याय—इनानी, ऐरावती, गोधावती, इरावती, श्यामा, खट्वाङ्गनामिका। गुण—शीतल, कृच्छ्रमेहनाशक, बलदायक तथा व्रणविशोधक। (राजनि०)

वटयक्षिणोतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

वटर (सं० पु०) १ कुक्कुट, बटेर नामक पक्षी। २ मथानी। ३ शठ। ४ चौर, चोर। ५ विस्तर। ६ पगड़ी। ७ चञ्चल।

वटवासिन् (सं० पु०) वटे वटवृक्षे वसतीति वस-णिनि। १ यक्ष। कहते हैं, कि यक्ष वटवृक्ष पर रहता है। (त्रि०) २ वटवृक्षवासी, वटवृक्ष पर रहनेवाला।

वटसागर—उत्कलके अन्तर्गत एक तीर्थ।

(उत्कलख० १६७।१७७)

वटसावित्रीव्रत (सं० क्ली०) एक व्रतका नाम। इसमें स्त्रियां वटका पूजन करती हैं।

वटारक (सं० पु०) रज्जु, रस्सी।

वटारका (सं० स्त्री०) रज्जु, रस्सी। (भारत १२।३२६।३६)

वटारण्य—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत एक महातीर्थ। यह कावेरीके पास कुञ्जालमयके आधे योजन पश्चिममें अवस्थित है। अग्निपुराणके वटारण्य-माहात्म्यमें इसका सविस्तर विवरण है।

वटावीक (सं० पु०) चौरविशेष, चोर।

वटाश्वत्थविवाह (सं० पु०) हिन्दूशास्त्रोक्त क्रियाविशेष। इसमें वट और पीपलके पेड़को एक दूसरेमें सटा कर पूजा करते हैं।

वटि (सं० स्त्री०) वटतीति वट (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।१।११८) इति इन्। उपजिह्विका, आलजिव।

वटिका (सं० स्त्री०) वटिरेव स्वार्थे कन-टाप्। १ वटी, गोली। पर्याय—निस्तली। २ व्यञ्जनोपयोगि-द्रव्य, बड़ी।

वटी (सं० स्त्री०) वट अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ वटिका, गोली। २ वृक्षविशेष। पर्याय—नदीवट, यक्षवृक्ष, सिद्धार्थ, वटक, अमरी, भृङ्गिणी, क्षीरकाष्ठा। गुण—कषाय, मधुर, शिशिर, पित्तनाशक, दाह, तृष्णा, श्रम, श्वास, विष और छर्द्दिनाशक। (त्रि०) ३ तरक्षु।

वटु (सं० पु०) वटतीति वट (कटिवटिभ्याञ्च। उण् १।१६) इति उ। १ माणवक, ब्रह्मचारी। २ बालक। ३ कुटन्नट वृक्ष।

वटुक (सं० पु०) वटु-स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ बालक। २ ब्रह्मचारी। ३ भैरवविशेष, वटुकभैरव।

मनुष्य जब विपद्‌में पड़ते हैं, तब उससे छुटकारा पानेके लिये वटुकभैरवकी पूजा, वलि और स्तोत्रादि पाठ करते हैं। वटुकभैरवके प्रसादसे वे थोड़े ही दिनोंमें विपद्‌से उद्धार पाते हैं। वटुकभैरवके स्तोत्रका इसी कारण आपदुद्धारस्तोत्र नाम पड़ा है। तन्त्रसारमें इसको पूजा, मन्त्र और स्तवादिका विषय लिखा है—

"ह्रीं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकाय ऐं ह्रीं" यही इक्कीस अक्षर वटुक-भैरवका मन्त्र है। इस मन्त्रसे पूजा करनेसे विपद्‌का नाश होता है। वटुकभैरवकी पूजा करनेमें सामान्य पूजापद्धतिके अनुसार पहले पूजा करके पीठन्यास, ऋष्यादिन्यास और मूर्त्तिन्यासादि करे। पीछे ध्यान करके पूजा करनी होती है। वटुकभैरवका ध्यान सात्त्विक, राजसिक और तामसिकके भेदसे तीन प्रकारका है—

सात्त्विक ध्यान—

"वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुन्तलोद्भासिवक्त्रं।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणीनूपुराद्यैः।
दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रम्
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदन्तौ दधानम्॥"

राजस ध्यान—

"उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजं
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः।
नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशुचूड़ोज्ज्वलं
बन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावये॥"

तामस ध्यान—

"ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमाल्यं महेशं
दिग्वस्त्रं पिङ्गलाक्षं डमरुमथ सृणिं खड्गशूलाभयानि।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किङ्किणीनूपुराढ्यम्॥"

इस ध्यानानुसार ध्यान, मानसपूजा, आवरण और पीठादिकी पूजा करके फिरसे ध्यान करे। पीछे विभवानुसार दश वा षोड़शोपचारसे वटुकभैरवकी पूजा करनी होती है। वटुकभैरवकी पूजाके बाद असिताङ्ग भैरव, रुरु भैरव, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहार इन आठ भैरवोंकी पूजा करनेका विधान है। पीछे षड़ङ्गादि पूजा करके पूर्वादिक्रमसे डाकिनीपुत्र, लाकिनीपुत्र, राकिनीपुत्र, काकिनीपुत्र, शाकिनीपुत्र, हाकिणीपुत्र, मालिनीपुत्र, देवीपुत्र और उमापुत्रकी पूजा करे। अनन्तर जप होमादि करने होते हैं। इस देवताका पुरश्चरण करनेमें २१ लाख जप तथा दशांश घृत, मधु, शर्करान्वित तिल द्वारा होम करना होता है।

इसकी वलिविधि—पहले विघ्ननाशन और दुर्गाकी पूजा करके वलि देनी होती है। वलिके द्रव्य—शालि धान्यका अन्न वा पायस, घृत, लाजचूर्ण, शर्करा, गुड़, इक्षुरस, पिष्टक और मधु इन सब द्रव्योंको मिला कर रात्रिकालमें रक्तचन्दन और रक्तपुष्पके साथ वलि चढ़ावे अथवा सर्वसुलक्षणसम्पन्न एक वकरेको मार कर वलि प्रदान करे। वलिप्रदान करके शत्रुओंको सेनाको वलिरूपमें चढ़ाना होता है।

इस प्रकार वलिदान करनेसे वटुकभैरव सन्तुष्ट हो कर समस्त शत्रुओंका मांस स्वजनोंके बीच बांट देते हैं। अतएव थोड़े ही दिनोंमें शत्रुका नाश हो जाता है।

(तन्त्रसार)

ज्वरादिरोग, शत्रुभय आदि उपस्थित होनेसे वटुक भैरवका स्तवश्रवण वा पाठ करनेसे ज्वरादि रोग और शत्रुभय जाता रहता है।

४ वाराणसीस्थ देवमूर्त्तिविशेष।

वटुकरण (सं० क्ली०) वटोः करणं। उपनयन, यज्ञोपवीत।

वटुरिन् (सं० त्रि०) १ पद द्वारा वेष्टनशील, पैरसे घेरनेवाला। २ सर्वव्याप्तिवत्।

वटेश्वर (सं० क्ली०) काश्मीरस्थित लिङ्गतीर्थ। (राजतर० १।१९४) वटेश्वरमाहात्म्यमें इस तीर्थका विस्तृत विवरण और पूजादिका विषय लिखा है। (स्कान्द-नागरख०)

वटेश्वर—१ मुद्राप्रकाश नामक मुद्राराक्षस-टीकाके प्रणेता। ये गौरीश्वरके पुत्र थे। २ एक प्राचीन कवि।

वटोदका (सं० स्त्री०) पुण्यतोया नदीविशेष।

(भागवत ४।२८।३५)

वट्टकेराचार्य (सं० पु०) आचारसूत्रके प्रणेता। वसुनन्दीने इसकी टीका लिखी है।

वट्य (सं० पु०) १ वटवृक्ष-सम्बन्धीय। २ धातुविशेष।

वठर (सं० त्रि०) वक्तीति वच (वचिमनिभ्यां चिच। उण् ५।३९) इति अरप्रत्ययश्चान्तादेशः। १ मूर्ख। २ शठ। ३ मन्द। ४ वक्र। (पु०) ५ अम्बष्ठ नामक एक वर्णसंकर जाति। ६ शब्दकार।

वड़—वम्बई-प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत एक उपविभाग और नगर। वाड़ देखो।

वड़कट्टलई—मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक नगर।

वड़कु-वलियुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक नगर। नानगुणेरीसे यह ४ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यह अक्षा० ८°२३´ उ० तथा देशा० ७७°३६´ पू०के बीच पड़ता है। यहां प्रति वर्ष अनेक तीर्थयात्री इकट्ठे होते हैं।

वड़गांव—वम्बई-प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक नगर। यहां जी, आई, पी, रेलवेका एक स्टेशन है और थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है। प्रति मङ्गलवारको यहां हाट लगती है। १७७८-७९ ई०में यहां अङ्गरेज-मर्यादाका ह्रास करनेवाला एक छोटा दरवार वैठा था। इससे अङ्गरेज सेनापति १७७३ ई० तक अङ्गरेजोंके अधिकृत सभी राज्य मरहट्टोंके हाथ समर्पण करनेको वाध्य हुए थे। रघुनाथ रावको पेशवापद पर अधिष्ठित करनेके कारण अङ्गरेज सेनापतिको यह लाञ्छना भोगनी पड़ी थी।

वड़गूजर—छत्तीस राजपूत कुलोंमेंसे एक। अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रके पुत्र लवके वंशधर कहलाते हैं। यह जाति एक समय महाप्रभावसम्पन्न थी। समय पा कर कछवाह लोगोंने उनका राज्य छीन लिया। तवसे वड़-

गूजर लोग अनूपशहरमें आ कर वास करते हैं। सम्राट् अकबर शाहके शासनकालमें भी इस जातिकी प्रधानता नष्ट नहीं हुई थी। उस समय वे लोग खुर्जा, दिवाई, पहासु प्रभृति स्थानमें भूम्यधिकारी सामन्तके रूपमें परिगणित था।

इनके मध्य वंशानुगत ऐसी किम्वदन्ती चली आती है, कि मचेरी प्रदेशके देवती-राज्यकी राजधानी राजोड़से राजा प्रतापसिंहने अपने आत्मीय तथा स्वजातीय लोगों के साथ पितमपुरके निकट घेरिया नामक स्थानमें आ कर वास किया। कोयल नगरमें उन्होंने दोर-जातिकी एक राजपूत लड़कीका पाणिग्रहण कर वे दोर-राजपूतों-के प्रीतिभाजन वन गये। इसके अनन्तर उन्होंने दोरराज-पूतोंकी सहायतासे मेवाती तथा भीहर जातियोंको हरा कर बुलन्दशहरके पूर्व गङ्गाके तटवर्त्ती प्रायः २४ सौ ग्रामों पर अधिकार कर लिया। मृत्युके समय उन्होंने बुलन्दशहर जिलान्तर्गत पहासुरके निकटवर्त्ती चौंदेरा नगरमें अपनी राजधानी बनाई थी। राजा प्रतापके जतू तथा राणू नामक दो पुत्र थे। जतू रोहिलखण्डके अन्त-र्गत कटिहार नामक स्थानमें और राणू चौंदेरामें राज-धानी स्थापन करके पैतृक राज्यका शासन करते थे।

कन्नौजके राठौर राजवंशकी आख्यायिकासे जाना जाता है, कि राठौरपति नयनपालके पौत्र भरतने वड़ गूजर सरदार रुद्रसेनके हाथसे कनकसिंहका राज्य छीन लिया। नयनपाल खृष्टीय ५वीं सदीमें राज्य करते थे।

कटिहार एवं अनूपशहरके वड़गूजर लोग अभी तक अपने कुलधर्मका प्रतिपालन करते आ रहे हैं। किंतु अन्यान्य स्थानके विशेषतः मुजफ्फरनगरके वड़गूजर लोगोंने अल्लाउद्दीन खिलजीके राज्यकालमें इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। ऐसा होने पर भी उन लोगोंने राज-पूत कुलकी गौरवज्ञापक ठाकुर उपाधिका परित्याग नहीं किया, अभी भी उनमें ठाकुर अकबर अली खां, ठाकुर मद्दन अली खां प्रभृति नामका प्रचलन देखा जाता है। उनमें कितने ही मुसलमान होने पर भी हिन्दुओंके होली पर्वमें मद्यादि पान करके खूब आनन्द मनाते हैं, किंतु अब धीरे धीरे इस प्रथाका ह्रास हो रहा है। विवाहके समय ये लोग अपने गृहद्वार पर एक कहार-रमणीकी मूर्त्ति चित्रित करते हैं। प्रवाद है—कोई एक कहारिन उन के किसी पूर्व पुरुषको ध्वंसमुखसे पतित करनेमें समर्थ हुई थी। उसी घटनाकी स्मृतिके लिये आज भी वे लोग कहार-रमणीका इस तरह सम्मान करते हैं।

मुजफ्फरनगरवासी वड़गूजर लोग कहते हैं, कि वे लोग अलवर राज्यके दक्षिणस्थ दोवन्देश्वर नामक स्थानसे सरदार कुमारसेनके साथ यहां आये। अभी भी वे लोग उक्त कुमारसेनके पूर्वपुरुष 'बाबा मेघा' के स्मरणार्थ उत्सव करते हैं। वे लोग प्रधानतः गहलोत, भट्टी, तोमर, चौहान, कटिहार, चानवार तथा पण्डिर राजपूतोंके हाथ कन्यादान करते हैं एवं गहलोत, वाछल, पण्डिर, चौहान, वांग, जंगार प्रभृति जातियोंकी कन्या ग्रहण करते हैं।

वड़गेनहल्ली—दक्षिण-भारतके महिसुर राज्यान्तर्गत वङ्ग-जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १३° २८´ उ० तथा देशा० ७७° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां म्युनिसपलिटी रहनेके कारण नगरकी दिन पर दिन उन्नति होती जा रही है। स्थानीय रूई और आलूका व्यवसाय लिङ्गा-यतोंने इजारा ले लिया है।

वड़नगर—१ पश्चिम-भारतके गुजरात-प्रदेशके वड़ौदा राज्य-के अन्तर्गत कौड़ी जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ७६ वर्गमील है। इसके उत्तर पश्चिममें जो खाड़ी है, उसका जल कुछ लवणाक्त है, इसलिये लोग उसे पीनेके काममें नहीं लाते। ८० से १०० फुट गहरा कुआँ खोदे बिना मीठा जल नहीं निकलता।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह विश-नगरसे ४॥ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। कहते हैं, कि अयोध्याके सूर्यवंशीय कोई राजा १४५ ई०में अयोध्या राजधानीका परित्याग कर यहां आये। पीछे उन्होंने परमारवंशीय एक राजकुमारसे यह स्थान जीत कर वहां वड़नगर राजधानी बसाई। नागरगोत्रीय राजा-ओंकी राजधानी आनन्दपुरमें ही यह वड़नगर स्थापित हुआ। इस वड़नगरके नामसे ही यहांके ब्राह्मण नागर ब्राह्मण कहलाने लगे। आनन्दपुरमें २२६ ई० तक नागर गोत्रियोंका प्रादुर्भाव रहा। देवनागर देखो।

चीनपरिव्राजक यूएनचवंग ७वीं सदीमें इस नगरकी

समृद्धि और जनताका उल्लेख कर गये हैं। बहुत दिनोंसे यहां बड़ौदा-राजके आश्रित दीनोज ब्राह्मणोंका वास था। वे लोग कदाचारी और दस्युप्रकृतिके हैं। उनके अत्याचार और उपद्रवका परिचय पा कर बम्बई गवर्मेण्टने सयाजी महाराजके राजत्वकालमें उन लोगोंको बड़ौदा-दरबारका अनुग्रह पानेसे वञ्चित किया। आज भी यहां करीब २ सौ दीनोज ब्राह्मण रहते हैं। अभी उन्होंने दस्युवृत्ति छोड़ दी है। सभी वाणिज्य व्यवसाय अथवा नौकरी करके अपना गुज़ारा चलाते हैं।

वड़व (सं० पु०) घोटक, घोड़ा।

वड़भी (सं० स्त्री०) वड़ यते आरुह्यतेऽस्मिन्निति वड़ बाहुलकात् अभिच्, कृदिकारादिति ङीष्। गृह-चूड़ा, धौरहर, धरहरा। पर्याय—गोपानसी, चन्द्रशालिका, कूटागार, वड़भि, वड़भी, वलभि और वलभी ये चार प्रकारके रूप होते हैं।

वड़र (वरुड़)—दाक्षिणात्यवासी निकृष्ट जातिविशेष। ये लोग जातकर्मादि अनेक विषयोंमें हिन्दू पद्धतिका अनुकरण करते हैं सही, पर सूअर चूहे आदि घृणित मांस भी खानेसे बाज़ नहीं आते। इनमें गाडीवड़र, जातावड़र और माटीवड़र नामक कई एक दल हैं। अपनी अपनी श्रेणीकी वृत्तिके अनुसार इन लोगोंका इस प्रकारका सामाजिक नाम पड़ा है। ये लोग यल्लमा, जनाई, सात भाई और व्यङ्कोबाकी पूजा करते हैं। विवाहके बाद मारुतिपूजा करनेकी विधि है।

वड़वा (सं० स्त्री०) वलं वातीति वल-वा-क-टाप् डलयोरैक्यात् लस्य डत्वं। १ घोटकी, घोड़ी। २ वड़वारूपधारिणी सूर्यपत्नी। ३ अश्विनी नक्षत्र। ४ नारीविशेष। ५ दासी। ६ वासुदेवको स्वनामख्याता परिचारिका। ७ वड़वाग्नि। ८ नदीविशेष। ९ तीर्थभेद।

वड़वाकृत (सं० पु०) वड़वया दास्या कृतः। पन्द्रह प्रकारके गुलामोंमेंसे एक।

वड़वाग्नि (सं० पु०) वड़वायाः समुद्रस्थितायाः घोटक्याः मुखस्थोऽग्निः। समुद्रस्थित अग्नि, वड़वानल।

वड़वान—१ बम्बईप्रदेशके झलावार प्रान्तस्थ एक देशी सामन्तराज्य। भूपरिमाण २३७ वर्गमील है। बम्बई-बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेके इस राज्यके मध्य हो कर दौड़ जानेसे यहांके वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हुई है। १८०७ ई०की सन्धिके अनुसार यहांके सरदार द्वितीय श्रेणीके सामन्तरूपमें गिने गये हैं।

यहांके सरदार दाजीराज ठाकुरसाहब राजकोटके राजकुमार-कालेजमें शिक्षा समाप्त करके पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए हैं। यहांका राजस्व ४ लाख रुपये हैं जिनमेंसे अङ्गरेजराजको और जूनागढ़के नवाबको वार्षिक २८६१२) रु० कर देना पड़ता है। यहांके सरदार झालावंशीय राजपूत हैं, बड़े लड़के ही पितृसम्पत्तिके अधिकारी होते हैं। किन्तु उन्हें गोद लेनेका अधिकार नहीं है। राजाकी सैन्यसंख्या ५ सौ है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४२' उ० तथा देशा० ७१° ४४' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। बम्बई-बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेका यहां एक स्टेशन है। नगरके दक्षिण राजप्रासाद और दुर्ग है। खाई और दीवारसे नगर सुरक्षित है। यहां घी, रूई, तरह तरहके अनाज और देशी साबुनका जोरों कारबार चलता है। देशी भास्करगण शिल्पविद्यामें बड़े उन्नत हैं। भावनगर-गोण्डाल रेलवेके साथ यहां उपरोक्त रेलवेका मेल खाता है, इस कारण शहरकी उन्नति दिन-पर-दिन होती आ रही है।

३ काठियावाड़ एजेन्सीका अङ्गरेजावास। यह वर्द्धमान राज्यके मध्य उपरोक्त वड़वान नगरसे ३ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहांसे रेलवे द्वारा बम्बई और अहादाबाद तथा भावनगर और राजकोट जाया जाता है। पहले वड़वान दरबारसे वार्षिक २२५०) रुपये खजानेमें यह स्थान और २५०) रु० खजानेमें दुधराज गिरासियाका अधिकृत स्थान भाड़ा ले कर यह राजसदर (Civil Station) स्थापित हुआ था। यहां कारागार, स्कूल, धर्मशाला, औषधालय और घटिकास्तम्भ (Clock-tower) आदिसे सुशोभित अच्छे अच्छे महल हैं। गिरासियाके भूमिदानके कारण अङ्गरेजराजने उनकी सन्तानसंततिको राजकुमार-कालेजमें पढ़नेमें अधिकार दिया है।

वड़वानल (सं० पु०) वड़वायाः अनलः। १ वड़वाग्नि। पर्याय—सलिलेन्धन, वड़वामुख, काकध्वज, वाणिजस्कन्दाग्नि, तृणधुक् काष्ठधुक्, और्व, वाड़व। (अमर)

२ लङ्काके दक्षिण पृथ्वीके चतुर्भागरूप स्थलविशेष। (सिद्धान्तशि०) ३ वटिकौषधविशेष। (रसेन्द्रसारस०)

वड़वामुख (सं० पु०) वड़वायाः घोटक्या मुखमाश्रयत्वेनास्त्यस्य अर्श-आदित्वादच्। १ वड़वानल। २ महादेवका मुख। ३ महादेवका एक नाम। (भारत १३।१७।५५) ४ कूर्मकी दक्षिण-कुक्षिका एक जनपद। ५ वटिकौषधविशेष। (रसेन्द्रसारस०)

वड़वावक्त्र (सं० क्ली०) वड़वामुख, वड़वानल।

वड़वासुत (सं० पु०) वड़वायाः घोटकरूपायाः त्वष्टृसुतायाः संज्ञायाः सुतः। अश्विनीकुमार। इस अर्थमें यह शब्द द्विवचनान्त है, दो अश्विनीकुमार।

वड़वाहृत (सं० पु०) वड़वया दास्या हृतः। पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक। वड़वा शब्दसे गृहदासीका बोध होता है। जो लोभमें पड़ इस दासीसे विवाह करके उसके घर रहता है, वही वड़वाहृत कहलाता है। (मिताक्षरा)

वड़विन् (सं० त्रि०) वड़वाजात या तत्सम्बन्धीय।

वड़ा (सं० स्त्री०) वड़-अच्-टाप्। वटक, वड़ा।

वड़िका (सं० स्त्री०) वटिका, वटी।

वड़िश (सं० क्ली०) वलिनो मत्स्यान् श्यति नाशयति शो क, लस्य डत्वं। १ वंसी, जिससे मछली फँसाई जाती है, कंटिया। पर्याय—मत्स्यवेधन, वलिश, वड़शी, वड़िशा, वलिशी, मत्स्यवेधनी, वलिसी, वलिस, वरिशा, वलिशि, मत्स्यभेदन। २ चिकित्सकोंका एक अस्त्र जिससे वे वेधते या नश्तर लगाते हैं।

वड़ौसक (सं० क्ली०) प्राचीन स्थानभेद।

वड्ड (सं० त्रि०) वड़ते इति वड़ बहुलमन्यत्रापीति रक्। वृहत्, वड़ा।

वणिक् (सं० पु०) व्यवसायी व्यक्तिमात्र, वह जो वाणिज्यके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो। बंगालमें गन्धवणिक्, स्वर्णवणिक्, कांस्यवणिक् आदि श्रेणीविभाग है। उत्तर और पश्चिमभारतमें शेठी और बनिया यह दो श्रेणी है। इसके अलावा अङ्गरेज, फरासी, मुसलमान आदि बहुतसे वैदेशिक वणिक् भारतमें देखे जाते हैं। भारतीय व्यवसायी वणिक् जातिका विवरण वैश्य शब्दमें लिखा है। वैश्य तथा वणिक् शब्द देखो।

वणिक्कर्मन् (सं० क्ली०) वणिजां कर्म। वणिकोंका खरीद-बिक्री आदि काम।

वणिक्क्रिया (सं० स्त्री०) वणिजां क्रिया, वणिकोंका काम। (बृहत्स० ६६।२०)

वणिक्पथ (सं० पु०) वणिजां पन्थाः। वाणिज्य, तिजारत।

वणिक्व्रत (सं० क्ली०) वणिक्का काम, व्यवसाय।

वणिक्सार्थ (सं० पु०) वणिक्समूह।

वणिग्जन (सं० पु०) वणिक् जाति।

वणिग्बन्धु (सं० पु०) नीलिवृक्ष, नीलका पौधा।

वणिग्वह (सं० पु०) वहतीति वह-अच् वणिजां वहः। उष्ट्र, ऊंट।

वणिग्भाव (सं० पु०) वणिजो भावः, वाणिज्य, तिजारत।

वणिग्वृत्ति (सं० स्त्री०) वणिजां वृत्तिः। वणिकोंकी वृत्ति, वाणिज्य।

वणिङ्मार्ग (सं० पु०) वणिजां मार्गः। वाणिज्य, विपणि।

वणिज (सं० पु०) पणते क्रयविक्रयादिना व्यवहरतीति पण (पणेरादेश्च वः। उण् २।३०) इति इजि पस्य च वः। १ क्रयविक्रयकर्त्ता, वह जो खरीद-बिक्री करता हो। पर्याय—वैदेहक सार्थवाह, नैगम, वणिज, पण्यजीव, आपणिक, क्रयविक्रयिक वैदेह, विदेह, वाणिज, वाणिजक, क्रायिक, विक्रयिक, वाणिज्यकार। २ वैश्य, बनिया। वाणिज्य ही इसकी वृत्ति है इसलिये इसे वणिज कहते हैं। ३ करणविशेष, वव वालव आदि करणोंमेंसे षष्ठ करण।

वणिज (सं० पु०) वणिजेव वणिज् स्वार्थे अण्, अभिधानात् न वृद्धिः। १ वणिक्। २ नव आदि करणोंमेंसे षष्ठ करण। इस करणमें वाणिज्य शुरू करनेसे शुभ होता है। अन्य शुभकर्ममें यह करण निषिद्ध माना गया है। वणिज करणमें अगर किसी बालकका जन्म हो, तो वह बुद्धिमान्, कृतज्ञ, गुणवान् एवं वणिकोंसे उसकी अभिलाषा पूरी होती है। (कोष्ठीप्रदीप)

वणिजक (सं० पु०) वणिक्, व्यवसायी।

वणिज्य (सं० क्ली०) वणिजो भावः कर्म वा वाणिज् (दूतवणिग्भ्यां। पा ५।१।१२१) इत्यत्र काशिकोक्तेः। वाणिज्य, व्यवसाय।

वण्ट (सं० पु०) वण्ट्यते इति वण्ट घञ्। १ भाग, बांट। २ दात्रमुष्टि, हंसिया आदिकी मूठ या बेंट। (हेम)

३ अकृतोद्वाह; अविवाहित। ४ जिसकी पूंछ न हो या कट गई हो, लंडूरा, बाँड़ा।

वण्टक (सं० पु०) वण्ट एव स्वार्थे कन्। १ भाग, बाँट। वण्ट-ण्वुल्। (त्रि०) २ वण्टनकारी, विभाजक, बाँटनेवाला।

वण्टन (सं० क्ली०) वण्ट-ल्युट्। विभाग।

वण्टनीय (सं० त्रि०) वण्ट अनीयर्। बाँटने लायक, विभाग करनेके योग्य।

वण्टाल (सं० पु०) १ शूरोंका युद्ध। २ नौका। ३ खनित्र, खनती।

वण्टित (सं० त्रि०) वण्ट-इतच्। कृतविभाग, बाँटा हुआ।

वण्ठ (सं० पु०) वण्ठते इति वठि-अच्। १ अकृतोद्वाह, अविवाहित। २ वामन, बौना। ३ दास। ४ कुन्तायुद्ध, भाला। (त्रि०) ५ हीनांग, जिसका कोई अंग खंडित हो। जैसे—लूला, लंडूरा, खंजा आदि।

वण्ठर (सं० पु०) १ स्थगिकारज्जु, वह रस्सी जिससे बकरी, गाय आदिको गलेसे बांधते हैं। २ कुत्तेकी पूंछ। ३ तालपल्लव, ताड़के वृक्षका कोंपल। ४ बाँसके कल्लेका वह मोटा पत्ता जो उसे छिपाये रहता है। यह पत्ता गांठ गांठ पर होता है और बहुत कड़ा तथा भूरे रंगका होता है। ५ स्तन, थन। ६ मेघ। ७ कुक्कुर, कुत्ता।

वण्ठाल (सं० पु०) वण्टाल देखो।

वण्ड (सं० पु०) वनते इति वन सम्भक्तौ (वमसपडात् डः। उण् १।११३) इति ड। १ वह जिसकी लिङ्गेन्द्रियके अग्रभाग पर वह चमड़ा न हो, जो सुपारीको ढाँके रहता है। २ ध्वजभङ्ग नामक रोग। पर्याय—दुश्चर्मा, छिन्नाग्नक, शिपिविष्ट। (त्रि०) ३ हस्तादि वर्जित, लांगूलादिरहित। ४ हीनाङ्ग, बाँड़ा।

वण्डर (सं० पु०) १ कंजूस, मक्खीचूस, सूम। २ वह नपुंसक जो अन्तःपुरका रक्षक हो, खोजा।

वण्डा (सं० स्त्री०) असती स्त्री, पुंश्चली।

वत् (सं० अव्य०) वातीति वा उति। साम्य, समानता। पर्याय—वा, यथा, तथा; एव, एवं।

वतंस (सं० पु०) अवतंसयति अवतंस्यतेऽनेन वा इति अव-तसि अच् घञ् वा अवस्याल्लोपः। १ कर्णपूर, कर्णभूषण, कानका जेवर। २ शेखर, शिरोभूषण। (गीतगोविन्द ३।१२)

वत (सं० अव्य०) १ खेद। २ अनुकम्पा। ३ सन्तोष। ४ विस्मय। ५ आमन्त्रण।

वतण्ड (सं० पु०) वनतीति वन (अपडन् कुसुमवृक्षः। उण् १।१२८) इत्यत्र वनतेस्तकारान्तादेशः। एक मुनिका नाम।

वतन (अ० पु०) १ वासस्थान। २ जन्मभूमि।

वतायन (सं० पु०) वातायन, झरोखा।

वतीरा (अ० पु०) १ ढंग, रीति, प्रथा। २ चाल ढाल। ३ लत, टेव।

वतू (सं० पु०) १ देवनदी। २ सत्यवाक्। ३ पन्था। ४ अक्षिरोग।

वतोका (सं० स्त्री०) अवगतं तोकं अपत्यं यस्याः, अवस्यालोपः। अवतोका, वह गाय जिसका गर्भ पतन हो गया हो।

वत्स (सं० पु०) वदतीति वद (वृतृवदि हनि-कमिकषिभ्यः सः। उण् ३।६२) इति स। १ वर्ष, वत्सर। २ गोशिशु, गायका बच्चा, बछड़ा। पर्याय—शकृत्करि, तर्णक, दोग्धा, दोयक, दोष, रौहिणेय, वाहुलेय, तन्तुभ। सद्योजात वत्सरका पर्याय—तर्णक, तर्णभि, तन्तुभ, कच। ३ शिशु; बालक, बच्चा। ४ दिवोदासका पुत्र। (भागवत ९।१३।५) ५ देशभेद, कौसाम्बी। ६ कंसका एक अनुचर, वत्सासुर। यह असुर श्रीकृष्ण द्वारा निहत हुआ था। (भागवत १० स्क०) ७ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ८ मुनिविशेष। (लिङ्गपु० ७।५०) (क्ली०) ९ वक्षस्, छाती।

वत्स—१ कुमारसम्भवटीकाके रचयिता। २ चरकाध्वर्यु सूत्रके प्रणेता। हेमाद्रिने इनका उल्लेख किया है।

वत्सक (सं० क्ली०) वत्स-संज्ञायां इवार्थे वा कन्। १ पुष्पकसीस। (पु०) वत्स-कन्। २ कुटज। ३ इन्द्रजौ। ४ निर्गुण्डी।

वत्सकगुडिका (सं० स्त्री०) औषधभेद।

वत्सकण्टक (सं० पु०) पर्पटक, खेतपपड़ा।

वत्सकफल (सं० क्ली०) इन्द्रयव, इन्द्रजौ।

वत्सकबीज (सं० क्ली०) वत्सकस्य बीजं। इन्द्रजौ।

वत्सकामा (सं० स्त्री०) वत्सं कामयते इति कम्-अच्-टाप्। १ वत्साभिलाषिणी गाय। पर्याय—वत्सला। २ पुत्रादिकामा स्त्री, वह स्त्री जिसे पुत्रकी कामना हो।

वत्सगुरु (सं० पु०) पुत्रका आचार्य।

वत्सघोष (सं० पु०) एक देशका नाम जो नक्षत्रोंके प्रथम वर्गमें है।

वत्सतन्त्री (सं० स्त्री०) वत्सस्य तन्त्री। वत्सवन्धन रज्जु, वह रस्सी जिसे बछड़ा बांधा जाता है।

वत्सतर (सं० पु०) प्राप्तदमनकाल गोशिशु, जवान बछड़ा जो जोता न गया हो, दोहान। पर्याय—दम्य, दुर्दान्त, गड़ि।

वत्सतरी (सं० स्त्री०) वत्सतर-ङीप्। वह बछिया जो तीन वर्षकी हो, कलोर। वृषोत्सर्गमें चार वत्सतरीके साथ एक वृष उत्सर्ग करनेका विधान है। इस वत्स-तरीको उत्तम रूपसे अलंकारादि द्वारा सजा देना होता है। तीन वर्षसे कमको वत्सतरी नहीं होती।

वत्सदन्त (सं० पु०) बछड़ेके दांतके समान तीरभेद।

वत्सदामन—शूरसेनवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम देवराज और माताका याज्ञिका देवी था।

वत्सनपात् (सं० पु०) बभ्रुका वंशधर।

(शतपथब्रा० १४।५।५।२२)

वत्सनाभ (सं० पु०) वत्सान् नभ्यति हिनस्तीति नभ हिंसायां (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। विषवृक्ष-विशेष, मीठा जहर (Aconitum ferox)। इसे बम्बईमें बछनाग और तामिलमें वसनवी कहते हैं। संस्कृत-पर्याय—अमृत, विष, उग्र, महौषध, गरल, मारण, नाग, स्तोकक, प्राणहारक, स्थावरादि। गुण—अतिमधुर, उष्ण, वात, कफ, कण्ठपीड़ा और सन्निपातनाशक, पित्त तथा सन्तापवर्द्धक।

इसका पौधा हिमालयके कम ठण्ढे भागोंमें होता है। इसकी जड़ विशेषतः नेपालसे आती है। इसके पत्ते संभालूके पत्तोंके समान होते हैं। विष जड़में होता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि वत्सनाभाख्य विषकी आकृति गोवत्सको तरह होती है और इसके पत्ते संभालूके पत्तों-के समान होते हैं। जहां वत्सनाभ विषका वृक्ष रहता है, इसके निकट कोई भी वृक्ष बढ़ने नहीं पाता। यह वृक्ष शोध कर औषधोंमें दिया जाता है।

शोधनप्रणाली—जड़के छोटे छोटे टुकड़े काट कर तीन दिन तक गोमूत्रमें भिगोते हैं। पीछे छालको अलग करके लाल सरसोंके तेलमें भिगोए हुए कपड़ेमें पोटली बांध कर रखते हैं।

गुण—यह विष प्राणनाशक, व्यवायी और विकाशि-गुणयुक्त, अग्निगुणबहुल, वायु और कफनाशक, योग-वाही तथा मत्तताजनक होता है। किन्तु उपयुक्त मात्रा और युक्तिके साथ सेवन करनेसे यह प्राणरक्षाका कारण, रसायन, योगवाही, वातघ्न, कफापहारक और त्रिदोष-नाशक होता है। इसके योगसे मृत्युञ्जयरस, आनन्द-भैरवरस, पञ्चवक्त्ररस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं।

२ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० २७।५७)

वत्सप (सं० पु०) १ वत्सपालक। २ श्रीकृष्ण। ३ दानव-भेद। (अथर्व ८।६।११)

वत्सपति (सं० पु०) राजभेद, वत्सराज। (वासवदत्ता)

वत्सपत्तन (सं० क्ली०) वत्सराजस्य पत्तनं। भारतवर्षके उत्तरका देश, कौशाम्बी।

वत्सपाल (सं० पु०) वत्सान् पालयतोति वत्स-पालि-अण्। १ श्रीकृष्ण और वलदेव। वृन्दावनमें उन्होंने गो-वत्स पालन किया था इसलिये ये वत्सपाल कहलाये। (त्रि०) २ वत्सपालक, बच्चा पालनेवाला।

(हरिवं० ६७।२४)

वत्सप्रचेतस् (सं० त्रि०) पूजा-पाठमें प्रकृतमना।

वत्सप्री (सं० पु०) राजभेद, भलन्दनके पुत्र। इनका दूसरा नाम वत्सप्रीति था। ये ऋग्वेदके ६।६८ और १०।४५, ४६ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं।

वत्सप्रीति (सं० पु०) १ वत्सप्रीति, राजभेद। (स्त्री०) वत्सस्य प्रीतिः। २ वत्सके प्रति प्रीति।

वत्सवन्धा (सं० स्त्री०) बद्धवत्सा। वत्साकांक्षी गाभी।

वत्सवालक (सं० पु०) वसुदेवके भाई।

वत्सभक्षक (सं० पु०) वत्सस्य भक्षकः। ईहामृग। यह गायका बछड़ा खाता है इसीसे इसको वत्सभक्षक कहते हैं।

वत्सभूमि (सं० स्त्री०) १ जनपदभेद, वत्सोंकी वासभूमि। (भारत वन० २५३।८) २ वत्सराजके पुत्रका नाम।

वत्समित्र (सं० पु०) गोभिलऋषि।

वत्समुख (सं० पु०) वह जिसका मुंह गायके बछड़ेके जैसा हो।

वत्सर (सं० पु०) वसन्त्यस्मिन् अयनर्तुमासपक्षवारादय इति, वस निवासे (वसेश्च। उण् ७७१) इति सरन्, (सः स्यार्द्धधातुके। पा ७।४।४६) इति सस्यतः। उतना काल या समय जितनेमें पृथ्वी सूर्यको एक परिक्रमा पूरी करती है, कालका वह मान जो बारह महीनों या ३६५ दिनोंका होता है। पर्याय—संवत्सर, अब्द, हायन, शरत्, समा, शरदा, वर्ष, वरिष, संवत्। (शब्दरत्ना०)

मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे वत्सर चार प्रकारका होता है ; इसलिये सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्रके भेदसे मास भी चार प्रकारका हुआ। इनमेंसे बारह सौर मासका एक सौर वर्ष और बारह चान्द्रमासका एक चान्द्रवर्ष होता है। किन्तु मलमास होने पर तेरह महीनोंका एक चान्द्र वर्ष होता है। "चान्द्रवत्सरोऽपि द्वादशमासैर्भवति, मलमासपाते तु त्रयोदशमासैर्भवति। तथाच श्रुतिः—द्वादशमासाः संवत्सरः, क्वचित् त्रयोदशमासतः संवत्सरः।" (मलमासतत्त्व)

बारह नक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वत्सर और बारह सावन मासका एक सावन वत्सर होता है। सूर्य जब तक एक राशिमें रहते हैं, तब तक एक सौरमास होता है। सूर्यके राशिमें रहनेसे मास हुआ है, इस कारण इसको सौरमास कहते हैं। साल, शकाब्द आदि सौरमासानुसार ही गिना जाता है।

तिथिघटित मासको चान्द्रमास कहते हैं। चान्द्रमास मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है। बारह चान्द्रमासका एक चान्द्रवत्सर होता है। २७ नक्षत्रका एक नाक्षत्र मास और इसके बारह नाक्षत्र मासका एक नाक्षत्र वर्ष होता है। सौर और चान्द्रके भेदसे सावनमास भी दो प्रकारका है। जिस किसी दिनसे ले कर ३० अहोरात्रका जो मास होता है वही सौर सावनमास है। जैसे १०वीं आश्विनसे ले कर ६वीं कार्त्तिक तक ३० अहोरात्रका एक सौरसावन मास हुआ करता है। जिस किसी तिथिसे ले कर उसकी पूर्व तिथि तक ३० तिथिका एक चान्द्रमास और उसके बारह महीनोंका एक सावनवत्सर होता है। विशेष विवरण मास, मलमास और षष्टि संवत्सर शब्दमें देखो।

सौरवत्सर प्रभवादि ६० नामोंमें विभक्त हैं, इस कारण षष्टि संवत्सर नाम हुआ है।

२ ध्रुवके एक पुत्रका नाम। (भागवत ४।१०।१) ३ एक मुनिका नाम। (लिङ्गपु० ६३।५१)

वत्सराज (सं० पु०) वत्सोंका नरपति।

वत्सराज—एक राजाका नाम। इस नामके अनेक राजा हो गये हैं। एक तो कौशाम्बीका प्रसिद्ध राजा था जो गोतम बुद्धका समसामयिक था। चौहानवंशमें भी एक वत्सराज हुआ। लाट देशका एक चौलुक्यवंशी राजा इस नामका हुआ है। महोबेके चंदेल राजाओंका एक मन्त्री वत्सराज था जो अल्हा गानेवालोंमें 'बच्छराज' के नामसे प्रसिद्ध है।

वत्सराज—निर्णयदीपिकाके रचयिता। २ भोजप्रबन्ध और हास्यचूडामणिप्रहसनके प्रणेता। वाराणसीदर्पण और उसकी टीकाके प्रणेता। ये रामाश्रमके शिष्य और राघव त्रिपाठीके पुत्र थे। १६४१ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी थी।

वत्सराजदेव—एक प्राचीन कवि।

वत्सरादि (सं० पु०) वर्षका आदि, मार्गशीर्ष, अगहन।

वत्सरान्तक (सं० पु०) वत्सरस्य अन्ते कायति शोभते इति कै-क, यद्वा वत्सरस्यान्तो नाशो यस्मात्। फाल्गुन मास।

वत्सल (सं० त्रि०) वत्स्ये पुत्रादिस्नेहपात्रे कामोऽस्यास्तीति वत्स (वत्सांसाभ्यां कामबले। पा ५।२।९८) इति लच्। १ पुत्र या संतानके प्रति पूर्ण स्नेहयुक्त, बच्चेके प्रेमसे भरा हुआ। २ अपनेसे छोटोंके प्रति अत्यन्त स्नेहवान या कृपालु। (पु०) ३ साहित्यमें कुछ लोगोंके द्वारा माना हुआ दशवाँ वात्सल्य रस। इसमें पिता या माताका अपनी संततिके प्रति रतिभाव या प्रेम प्रदर्शित होता है।

वत्सलता (सं० स्त्री०) वत्सलस्य भावः तल्-टाप्। वात्सल्य, वत्सलका भाव या धर्म।

वत्सला (सं० स्त्री०) वत्सल-टाप् वा वत्सं लाति ला-क-टाप्। वत्सकामा गो।

वत्सवत् (सं० त्रि०) वत्स अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वत्सयुक्त, जिसे बच्चा हो।

वत्सवती (सं० स्त्री०) वत्सयुक्ता गाभी, वह गाय जिसे बछड़ा हो।

वत्सवरदाचार्य— प्रपण्णपारिजातके प्रणेता।

वत्सविन्द (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वत्सवृद्ध (सं० पु०) एक राजाका नाम। (भाग० ६।१२।६)

वत्सव्यूह (सं० पु०) वत्सका पुत्र। (विष्णुपुराण)

वत्सशाल (सं० त्रि०) गोशालामें उत्पन्न।

वत्सशाला (सं० स्त्री०) गोशाला, गुहाल।

वत्सस्मृति—प्राचीन स्मृतिग्रन्थविशेष। माधवाचार्यने कालमाधवीय ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया है।

वत्सा (सं० स्त्री०) वत्स-टाप्। वत्सा, बछड़ी।

वत्साक्षी (सं० स्त्री०) वत्सस्याक्षीव गात्रचिह्नं यस्याः। षच्, समासान्तः, स्त्रियां ङीष्। तरबूज, कलिन्दा।

वत्साजीव (सं० त्रि०) १ गोवत्स पालन द्वारा जीविका-निर्वाहकारी, बछड़े को पाल कर अपना गुजारा चलानेवाला। २ पिङ्गल ऋषि।

वत्सादन (सं० पु०) अत्तीति अद ल्यु, वत्सानां अदनः भक्षकः। वृक, भेड़िया।

वत्सादनी (सं० स्त्री०) वत्सैरद्यते प्रियत्वादिति, अद-ल्युट्, ङीप्। गुडूची, गिलोय।

वत्सार (सं० पु०) काश्यपके एक पुत्रका नाम।

वत्सासुर (सं० पु०) असुरभेद। यह मथुरापति कंसका अनुचर था। वृन्दावनमें श्रीकृष्ण जब गाय चराते थे, तब यह असुर उनका अनिष्ट करनेके उद्देशसे वत्सरूपमें इधर उधर घूमता था। पीछे श्रीकृष्णने इसका वध किया। (भागवत १०म स्कन्ध)

वत्सिन् (सं० त्रि०) १ वत्सयुक्त, बछड़ोंके साथ। २ पुत्रसमन्वित, पुत्रोंके साथ। (पु०) ३ श्रीकृष्ण।

वत्सिमन् (सं० त्रि०) बाल्यावस्था, लड़कपन।

वत्सीय (सं० त्रि०) वत्स (तस्मै हितं। पा ५।१।५) इति छ। वत्सोंका हितकारी, बछड़ोंकी भलाई करनेवाला।

वत्सेश्वर (सं० पु०) १ राजभेद। २ वैयाकरणभेद। ३ चिकित्सासागरके प्रणेता।

वत्स्य (सं० त्रि०) वत्ससम्बन्धीय।

वथ्सर (सं० पु०) वैयाकरण पौष्करसादिके मतसे वत्सर शब्दका रूपान्तर। (पाणिनि ८।४।४८ वार्त्तिक)

वद (सं० क्ली०) कथन, उक्ति, वोपदेवके मतसे सन्देशवचन और कथन। दीप्ति, सान्त्वन, ज्ञान, उत्साह, विवाद और प्रार्थनाके अर्थ समझे जानेसे वद धातुका आत्मनेपद होता है।

अनु+वद=अनुवाद, सदृशकथन। अप+वद=अपवाद, अकीर्त्ति। अभि+वद=अभिवादन, प्रणाम। प्रत्यभि+वद=प्रत्यभिवादन, प्रतिनमस्कार। परि+वद=परिवाद, निन्दा। प्र+वद=प्रवाद, जनश्रुति। प्रति+वद=प्रतिवाद। सम्+वद=संवाद। विसम्+वद=विसंवाद। वि+वद=विवाद, कलह।

वद (सं० त्रि०) वदति वक्तीति वद-पचा द्यच्। वक्ता, बोलनेवाला।

वदक (सं० त्रि०) वाक्यकथनशील, बोलनेवाला।

वदतोव्याघात (सं० पु०) कथनका एक दोष। इसमें कोई एक बात कह कर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है।

वदन (सं० क्ली०) वदन्त्यनेनेति वद करणे-ल्युट्। १ मुख, मुंह। २ अग्र भाग, अगला हिस्सा। वद भावे ल्युट्। ३ कथन, बात कहना।

वदनदन्तुर (सं० पु०) जातिविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।१२)

वदनरोग (सं० पु०) वदनस्य रोगः। मुखरोग।

वदनश्यामिका (सं० स्त्री०) वदनस्य श्यामिका, ६-तत्। वदनकालिमा, धव्वा।

वदनामय (सं० पु०) वदनस्य आमयः। वदनरोग।

वदनाम्लता (सं० स्त्री०) वदनस्य अम्लता। पित्तज रोगभेद। इस रोगमें मुंह हमेशा खट्टा मालूम होता है।

वदनासव (सं० पु०) वदनस्य आसवः। अधरमधु।

वदन्ति (सं० स्त्री०) वद (वेदश्च। उण् ३।५०) इत्युज्ज्वलदत्तोक्त्या झच्, कृदिकारादिति वा ङीप्।

१ कथा, वात। वद-धातु लट् अन्ति करनेसे भी वदन्ति होती है। यह 'वदन्ति' क्रियापद है। वद धातु शतृ प्रत्यय करके स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्ययमें वदन्तीपद होता है।

वदन्तिक (सं० पु०) जातिविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।४५)

वदन्य (सं० त्रि०) वदान्य, उदार।

वदल—बम्बईप्रदेशके गोहेलवाड प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। अभी यह दो पट्टीदारोंमें बट गया है। राजस्व २५५० रु० है जिनमेंसे बड़ौदाके गायकवाड़को १५४ रु० कर देना पड़ता है। वदल नगर यहांका प्रधान वाणिज्य स्थान है। भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके हल्लार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। राजस्व २००० रु० है जिनमेंसे वृटिश-सरकारको २४६ रु० और जूनागढ़के नवावको वार्षिक ७८ रु० कर देना पड़ता है। वदली ग्राम यहांका प्रधान स्थान हैं, भूपरिमाण दो वर्गमील है।

वदली—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रदेशके महीकान्था विभागका एक प्राचीन नगर। इदरसे यह छः कोस उत्तरमें अवस्थित है। ७वीं सदीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग इस नगरकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। ११वीं सदीमें वदली नगर एक विस्तीर्ण राज्यकी राजधानी रूपमें गिना जाता था।

वदागरा—मन्द्राज-प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११° ३६´ उ० तथा देशा० ७५° ३७´ १५´´ पू०के मध्य समुद्रके किनारे अवस्थित है। कोलिकटसे कोन्नूर तकका विस्तृत पथ इसी नगर हो कर गया है। यहांका दुर्ग कोलत्तिरि (चीरक्कल) राजाओंका बनाया हुआ है। १५६४ ई०में उक्त राजवंशके किसी राजाने यह दुर्ग कोदत्तनाड़-राजवंशके हाथ सौंप दिया। पीछे यह टीपू सुलतानके हाथ लगा। टीपूने इसको वाणिज्य-शुल्क उगाहनेके प्रधान राजकार्यालयरूपमें परिणत किया। १७९० ई०में अङ्गरेजराजने टीपूके हाथसे यह दुर्ग छीन कर पूर्वोक्त कोदत्तनाड़ राजवंशके हाथ दे दिया था। अनन्तर यह तीर्थयात्रियोंके विश्रामभवनमें परिवर्त्तित हुआ है। यह नगर वाणिज्य-प्रधान है।

वदान्य (सं० त्रि०) वदति सर्वेभ्य एव दास्यामीति मनोहरवाक्यमिति वद् (वदेरान्यः। उण् ३।१०४) इति आन्य। १ बहुप्रद, अतिशय दाता, उदार। २ वल्गुवाक्, मधुरभाषी। (पु०) ३ स्वनामप्रसिद्ध ऋषिविशेष।

वदाम (सं० क्ली०) फलविशेष, बादाम। पर्याय—सुफल, वातवैरी, नेत्रोपम। गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, वातनाशक, गुरु और शुक्रवर्द्धक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह मधुर, बलकारक, उष्ण, कन्दनाशक और रक्तपित्त-रोग-नाशक माना गया है।

वदाल (सं० पु०) वद-घञर्थे क, वदेन वदनेन अलति पर्याप्नोतीति वद-अल-अच्। मत्स्यविशेष, पहिना नाम की मछली। इस मत्स्यका हव्यकव्यमें व्यवहार किया जा सकता है। पर्याय—पाठीन।

वदालक (सं० पु०) वदाल एव स्वार्थे कन्। पाठीन-मत्स्य, पहिना मछली।

वदावद (सं० त्रि०) अत्यन्त वदतीति वद-अच्, (परिचाल्लित। पा ३।१।२३४) इत्यस्य वात्तिकोक्त्या निपातितं। वक्ता, बोलनेवाला।

वदावदिन् (सं० त्रि०) अत्यन्त वचनशील, बहुत बोलनेवाला।

वदि (सं० पु०) कृष्ण पक्ष, जैसे वैशाख वदि ५।

वदितव्य (सं० त्रि०) वद-तव्य। कथनयोग्य, कहने लायक।

वदितृ (सं० त्रि०) वद-तृच्। वक्ता, बोलनेवाला।

वदिवास—प्राचीन जनपदभेद। बन्दिवास देखो।

वध (सं० पु०) हननमिति हन-अप् वधादेशः प्राणवियोग-जनक व्यापारविशेष, मारण, नाश। पर्याय—प्रमापण, निवर्हण, निराकरण, निशारण, प्रवासन, परासन, निसूदन, निहिंसन, निर्वासन, संज्ञपन, निग्रन्थन, अपासन, निस्तर्हण, निहनन, क्षण, परिवर्जन, निर्वापण, विशसन, मारण, प्रतिघातन, उद्वासन, प्रमथन, क्रथन, उज्जासन, आलम्भ, पिञ्ज, विशर, घात, उन्मन्थ, हिंसा, घातन, विदारण, पिञ्जक, पात, परिघ, परिघातन, कदन, निवारण, समाघात, निर्ग्रन्थन, मारि, मारी, उत्पात, मारक, मरक, मार, संघात। (शब्दरत्ना०)

किसी भी प्राणीका वध करनेसे पाप होता है। परन्तु आततायी शत्रुका वध करनेसे पाप नहीं होता।

पारिभाषिक वध—

"वपनं द्रविणादानं देशान्निर्यापनं तथा।
एवं हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥"

(भारत सौप्तिकप०)

ब्राह्मणोंके मस्तक मुड़ा देना, उनका समस्त धन अपहरण करना तथा उन्हें देशसे निकाल देना इन्हीं सब कार्योंसे उनका वध होता है। इसीको पारिभाषिक वध कहते हैं।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि जहां एक व्यक्तिका वध करनेसे बहुतोंका कल्याण होता है वहां वह वध पुण्यप्रद है तथा स्वर्णचौर, सुरापायी, ब्रह्महत्याकारी, गुरुपत्नीगामी और आत्मघाती इन सब व्यक्तियोंका वध करनेसे पाप नहीं होता। यह वध भी पुण्यजनक बतलाया गया है।

एकके लिये बहुतोंका वध नहीं करना चाहिये। किन्तु बहुतोंकी शान्तिके लिये एकका वध किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं होता।

(वामनपु० ४ अ०)

वध और बन्धन पूर्वकर्मके वश्य हैं अर्थात् पूर्व कर्मानुसार ही वध और बन्धन होते हैं। (वामनपु० ६२ अ०)

स्मृतिमें वैधहिंसा विचारस्थलमें कहा है, कि यज्ञादिमें जो पशुवधादि किया जाता है उससे पाप नहीं होता। वैधहिंसाके अतिरिक्त जो कोई हिंसा की जाय उसमें अवश्य पाप होता है। यज्ञके लिये जो वध होता है, वह अवध है।

किन्तु सांख्यदर्शनकी सांख्यतत्त्वकौमुदीमें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि यज्ञादिमें पशुवध करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होंगे। वधके कारण जो पाप होता है वह होगा ही तथा यज्ञकी पूर्णताके कारण जो पुण्य होता है वह भी होगा। परन्तु यज्ञमें पुण्यका भाग अधिक और पापका भाग कम है। अतएव बहुत सुखभोग करके थोड़ा-सा कष्ट भोग करना उतना दुःखजनक नहीं है। विशेष विवरण हिंसा शब्दमें देखो।

अज्ञानतः गो आदिका वध करनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्त करनेसे वधजन्य पाप दूर हो जाता है। यज्ञादिको छोड़ कर अन्यस्थलमें वध करनेसे ही प्रायश्चित्त करना होगा।

वधक (सं० पु०) हन्तीति हन-क्कुन (हनो वधश्च। उण् २।३६) इति वधादेशः। १ वधकर्त्ता, वध करनेवाला। हिंस्र, हिंसक। २ व्याधि, रोग। ३ मृत्यु, मरण।

वधक—उत्तर-पश्चिम प्रदेशवासी जातिविशेष। दस्युवृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है, असहाय पथिक अथवा तीर्थयात्रियोंको झांसापट्टी दे कर उनके प्राण ले लेते हैं, इस कारण इनका वधक नाम हुआ है, किन्तु जातिगत सदृशतामें ये बौरिया और बहेलियाके सदृश हैं। केवल इन लोगोंमें राजपूतोंकी ही अधिकता देखी जाती है। वर्त्तमानकालमें अनेक धर्मभ्रष्ट मुसलमान भी इनके दलमें मिल गये हैं।

मथुरा, पिलिभीत और गोरखपुर जिलेमें इन डकैतोंका वास है। अङ्गरेजी शासनमें इन लोगोंने अभी बहुत कुछ शान्तभाव धारण किया है। ये लोग कभी कभी ब्राह्मण, भिक्षुक अथवा वैरागीके वेशमें तीर्थयात्रियोंके साथ जाते हैं और तीर्थक्षेत्रमें यात्रियोंके तीर्थ कार्य्य सम्पन्न करते हैं। इस समय वे दक्षिणा और प्रणामीरूपमें बलपूर्वक उनसे रुपये वसूल करनेकी चेष्टा करते हैं। अनेक समय यात्रियोंको धतूरा मिला हुआ प्रसाद खिला कर उनका सर्वस्व लूट लेते हैं।

कालीमाता इनकी प्रधान उपास्य-देवी हैं। ये लोग देवीकी पूजामें छाग-बलि चढ़ाते हैं। बकरेके मांसके अलावा ये गीदड़, लोमड़ी और नेवले आदिका मांस भी खाते हैं। इनका विश्वास है, कि गीदड़का मांस खानेसे शीतकालमें रातको भ्रमण करनेसे जाड़ा कुछ भी मालूम नहीं होता। ये लोग राजनियमकी प्रतिबन्धकता रहते हुए भी छिपके शराब पीते हैं। डकैतीके उद्देशसे बाहर निकलनेके पहले ये लोग कालीमाताकी पूजा करते हैं और उनके सामने प्रतिज्ञा करते हैं, कि लूटमें जो कुछ माल मिलेगा उसमें कुछ दलमेंके मृतव्यक्तिकी विधवाको या उसके बालकबालिकाको भरणपोषणके लिये देंगे।

वधकर्म (सं० क्ली०) वध एव कर्म। प्राणवियोग फलकव्यापार, वैसा काम जिसने प्राणनाश हो।

वधकर्माधिकारिन् (सं० पु०) राजनियुक्त प्राणहन्तृ, जल्लाद।

वधकाम्या (सं० स्त्री०) वधकामना।

वधजीवी (सं० पु०) वधेन प्राणिवधेन जीवति प्राणान्

धारयति जीव जिनि। वह जो वध करके जीविका निर्वाह करता हो। इनका अन्न भोजन नहीं करना चाहिये। (याज्ञवल्क्य० १।१६४)

वधत्र (सं० क्ली०) वध्यतेऽनेनेति वध (अमि-नक्षि-यजिवधि-पतिभ्योऽत्रन्। उण् ३।१०५) इति अत्रन्। १ अस्त्र, हथियार। २ नाशसे बचानेवाला।

वधदण्ड (सं० पु०) वध एव दण्डः। वधरूप दण्ड, प्राण-नाशकी सजा। (मनु ८।१२९)

वधनिर्णेक (सं० पु०) नरहत्याजनित पापका प्रायश्चित्त।

वधभूमि (सं० स्त्री०) वधस्य भूमिः। वधस्थान, वह जगह जहां प्राणदण्ड दिया जाता हो।

वधस्थली (सं० स्त्री०) वधस्य वा स्थानं भूमिः। प्राण-वधस्थल, वधभूमि। पर्याय—अघात, प्रघात, वधस्थान, आघातन। (हारा०)

वधस्न (सं० त्रि०) १ नाशकारी अस्त्र। २ इन्द्रका वज्र।

वधस्नु (सं० त्रि०) क्षयकारी अस्त्रधारी, प्राण लेनेवाला हथियारबंद।

वधा (सं० अव्य०) वदृष्वा देखो।

वधाङ्गक (सं० क्ली०) वधः बन्धनमेवाङ्गं यस्य, ततः कन्। कारावेश्म, कारागार।

वधार्ह (सं० त्रि०) वधं अर्हतीति अर्ह-अण्। वध्य, मारने लायक।

वधित्र (सं० क्ली०) वध (अशित्रादिभ्य इत्रो गौ। उण् ४।१७२) इति इत्र। मन्मथ, कामदेव।

वधिन् (सं० त्रि०) प्राणवियोगफलकव्यापारो वधः सन्निष्पाद्यत्व निरूपित-निष्पादकत्वे नास्त्यस्येति वध-इनि। वधकर्त्ता। वधकारी, वधप्रयोजक, अनुमन्ता, अनु-ग्राहक और निमित्तक ये पांचो वधके पापभागी होते हैं। (प्रायश्चित्तवि०)

वधीपुर—विन्ध्य-पार्श्वस्थ एक प्राचीन ग्राम।
(भविष्य ब्रह्मख० ८।६५१)

वधु (सं० स्त्री०) वधू देखो।

वधुका (सं० स्त्री०) १ पुत्रवधू, पुत्रकी स्त्री, पतोहू २ नवपरिणीता पत्नी, दुलहन। ३ रमणीमात्र, स्त्री।

वधुटी (सं० स्त्री०) पिताके घरमें बसनेवाली विवाहिता वा अविवाहिता कन्या।

वधू (सं० स्त्री०) बध्नाति प्रेम्णा बन्ध-ऊ नलोपश्च, यद्वा-वहति संसारभारं ऊह्यते भर्त्तादिभिरिति वा वह (वहेर्धश्च। उण् १।८५) इति ऊ धश्चान्तादेशः। १ नारी, स्त्री। २ स्नुषा, पुत्रवधू, पतोहू। ३ नवोढा, नव विवाहिता स्त्री। ४ भार्या, पत्नी। ५ शारिवौषधि। ६ शटी, कचूर। ७ पृक्का, असवरग।

वधूकाल (सं० पु०) बालिकाका विवाहयोग्य समय।

वधूगृहप्रवेश (सं० पु०) द्विरागमन, कन्याका दूसरी बार स्वामीके घर आना।

वधूजन (सं० पु०) वधूरेव जनः। योषित्, स्त्री।

वधूटशयन (सं० क्ली०) वधूटीनां शयनमिव पृषोदरादि-कारस्याकारः। गवाक्ष, झरोखा।

वधूटी (सं० स्त्री०) अल्पवयस्का वधूः अल्पार्थे टि पक्षे ङीष्, यद्वा वधू 'वयस्य चरम् इति वाच्यं' (पा ४।१।२०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ङीप्। १ पुत्र-भार्या, पतोहू। २ नवोढ़ा, दुलहिन। ३ भार्या, पत्नी।

वधूदर्श (सं० त्रि०) वधूदर्शन, पतोहूका मुंह देखना।

वधूपथ (सं० पु०) वधूका कर्त्तव्य।

वधूमत् (सं० त्रि०) १ पत्नीयुक्त। २ लगाम लगा हुआ पशुका झुंड। ३ जलशून्य स्थानके उपयोगी स्त्री-पशु-युक्त। ४ साज लगाने लायक।

वधूयु (सं० त्रि०) १ जो स्त्रीको प्यार करता हो। २ विवाहेच्छु, जो विवाह करना चाहता हो। ३ स्त्रीकामी।

वधूवस्त्र (सं० क्ली०) वह वस्त्र जो विवाहके समय कन्या-को पहनाया जाता है।

वधूसरा (सं० स्त्री०) नदीभेद। भृगुपत्नी पुलोमाके अश्रुजलसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी।

वधैषिन् (सं० त्रि०) हननेच्छु, वधकी इच्छा करनेवाला।

वधोदर्क (सं० त्रि०) मरणकारी, वध करनेवाला।

वधोद्यत (सं० त्रि०) वधाय उद्यतः। वधके लिये तैयार। पर्याय—सन्नद्ध, आततायी।

वधोपाय (सं० पु०) वधस्य उपायः। वधका उपाय।

वध्न (सं० क्ली०) जातिविशेष। (भारत भीष्मपर्व)

वध्य (सं० त्रि०) वधमर्हतीति वध-यत्। वधार्ह, वधके लायक। पर्याय—शीर्षच्छेद्य।

वध्यघ्न (सं० त्रि०) वध्यं हन्ति हन-क। वध्य-घातक, जो वध्य व्यक्तिको मारता हो।

वध्यता (सं० स्त्री०) वध्यस्य भावः तल्-टाप्। वध्यत्व, मारनेका भाव या धर्म।

वध्यपटह (सं० पु०) वह ढाक जो वधके समय बजाया जाता है।

वध्यपाल (सं० पु०) वध्य-बन्धनस्थानं कारागारं पालयतीति वध्यपाल-अण्। कारागृह-रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो।

वध्यभू (सं० स्त्री०) वध्यस्य भूः। वध्यभूमि, वध्य-स्थान।

वध्यमाला (सं० स्त्री०) वह माला जो वधके समय पहनाई जाती है।

वध्यशिला (सं० स्त्री०) वह शिला जिस पर रख कर प्राणिहत्या की जाती है।

वध्यस्थान (सं० क्ली०) वध्य स्थानं। वध्यस्थान।

वध्या (सं० स्त्री०) वधयोग्या। वध, हत्या।

वध्र (सं० क्ली०) वध्यतेऽनेनेति बन्ध (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन्। सीसक, सीसा नामकी धातु।

वध्रक (सं० पु०) सीसक, सीसा।

वध्रि (सं० त्रि०) छिन्नमुष्क, बधिया।

वध्रिका (सं० पु०) वह पुरुष जो बधिया हो, खोजा।

वध्रिमत् (सं० त्रि०) छिन्नमुष्कशाली, जिस स्त्रीका स्वामी ध्वजभङ्गरोगग्रस्त वा रमणमें अक्षम हो।

वध्रिवाच् (सं० त्रि०) जल्पक, बकवादी।

वध्र्यश्व (सं० पु०) १ आखता घोड़ा। २ आखता घोड़े-की वंशपरम्परा।

वन (सं० क्ली० स्त्री०) वनतीति वन-अच् वा वन्यते सेव्यते इति वन-घ; (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) १ बहुवृक्षसमन्वित स्थान, जङ्गल।

घर अथवा घरके समीप किस प्रकार वन लगाना होगा, इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्ड-में इस प्रकार लिखा है—आवास स्थलके मध्य सुन्दर तुलसीका पौधा लगाना कर्त्तव्य है। इससे हरिभक्ति, पुण्य और धनपुत्रका लाभ होता है। यहां तक, कि सबेरे तुलसीवनका दर्शन करनेसे स्वर्णदानका फल प्राप्त होता है। इसके सिवा घरके पूर्व और दक्षिणमें मालती, यूथिका, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन, बकुल तथा अपराजिता इन सब सुन्दर सुन्दर पुष्पवृक्ष द्वारा जो वन लगाया जाता है, वह निःसन्देह कल्याण-कर है।

वराहपुराणमें मथुराके बारह वनोंका विवरण दिया गया है। उन वनोंके नाम ये हैं—मधुवन, तालवन, कुमुद-वन, काम्यकवन, बहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, महा-वन, लोहज धवलवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन और वृन्दावन। इनका विवरण मथुरा शब्दमें देखो।

वनविशेषमें मृत्यु होनेसे उत्तम फल लाभ होता है। देवीपुराणके अरण्योवर प्रशंसामें कहा गया है, कि सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिष, पुष्कर, कुरुजाङ्गल, उपलावृत, जम्बू-मार्ग और हिमवास आदि नौ वनों या अरण्योंमें जिनकी मृत्यु होती है, वे ब्रह्मलोक जा कर परमपदको प्राप्त होते हैं।

२ जल, पानी। ३ आलय, घर। ४ चमसा नामक यज्ञपात्र। (ऋक् १।१४।६) ५ प्रस्रवण, झरना। वन षण सम्भौक्तौ भ्वादि परस्मै वन्यते सेव्यते शीतादिवारणाय, यद्वा वनति हिंसार्थः वन्यते हिंस्यतेऽनेन तमः अथवा वनु याचने तनादि आत्मने वन्यते याच्यते वृष्टिप्रदानाय, किंवा वन शब्दे भू० प० वन्यते शब्द्यते स्तूयते स्तोतृभि-रिति पुंसि संज्ञायां वन-घ। ६ राशि, किरण। (निघण्टु १।५।८) ७ शङ्कराचार्यके शिष्यविशेषकी उपाधि।

जो संन्यासी सुखसम्पदाको तिलाञ्जलि दे कर सुरम्य निर्झरके निकट वनमें वास करते है, उन्हें वन कहते हैं।

८ स्तबक, फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता। ९ कुसुम, फूल।

वनकचु (सं० पु०) जङ्गली कच्चू। इस कच्चूका केवल साग खाया जाता है। यह मानकच्चूसे भिन्न है।

वनकणा (सं० स्त्री०) वनपिप्पली।

वनकण्ठल (सं० पु०) मधुर शूरण; अच्छी जातिका सूरण या जिमीकन्द।

वनकदली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कदली। जङ्गली केला।

वनकन्द (सं० पु०) वनजातः कन्दः। वनशूरण, जङ्गली ओल।

वनकपीवत् (सं० पु०) पुलहके एक पुत्रका नाम।

वनकरिन् (सं० पु०) वनहस्ती, जङ्गली हाथी।

वनकर्कटी (सं० स्त्री०) आरण्य कर्कटी, जङ्गली ककड़ी।

वनकर्कोट (सं० पु०) अरण्यकर्कटिकी, जङ्गली ककोड़ा

वनकर्णिका (सं० स्त्री०) सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

वनकाम (सं० त्रि०) वनभ्रमणेच्छु, वनमें विचरनेवाला

वनकार्पासी (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कार्पासी, जंगली कपास। पर्याय—त्रिपर्णा, भारद्वाजी, वनोद्भवा। (रत्नमाला)

वनकुक्कुट (सं० पु०) वन-ताम्रचूड़, वन-मुरगा।

वनकुञ्जर (सं० पु०) हस्तिभेद, जंगली हाथी।

वनकुण्डली (सं० पु०) वनशूरण, जंगली जिमीकंद।

वनकेन्द्राणी (सं० स्त्री०) श्वेतनिर्गुण्डी, सफेद सम्हालू।

वनकोकिलक (सं० क्ली०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १७ अक्षर रहते हैं। सातवें, छठें और चौथे अक्षरमें यति होती है। इस छन्दके १, २, ३, ४, ५, ६, ८, ६, १०, १२, १३, १५ और १६ अक्षर लघु, बाकी सभी वर्ण गुरु होते हैं। यह कोकिलक नामसे भी प्रसिद्ध है।

वनकोद्रव (सं० पु०) वनज कोद्रवधान्य, जंगली कोदों।

वनकोलि (सं० स्त्री०) वनोद्भवा कोलिः। वनज बदरी, जंगली बेर। पर्याय—कर्कशिका, फलकर्कशा।

वनकक्ष (सं० त्रि०) १ सोमपात्रसे बुद्बुदाका निकलना। २ विभिन्न काष्ठपात्रमें स्थापित। (ऋक् ६।१०८।७ सायण)

वनक्रीड़ा (सं० स्त्री०) वनेक्रीड़ा। वनकेलि, वनमें जो खेल किया जाता है उसको वनक्रीड़ा कहते हैं।

वनखण्ड (सं० क्ली०) वनविशेष।

वनग (सं० त्रि०) वनं गच्छति गम-ड। वनगामी, जंगलमें जानेवाला।

वनगज (सं० पु०) वनोद्भवाः गजः। वनहस्ती, जंगली हाथी।

वनगव (सं० पु०) वनगो, जंगली गाय।

वनगहन (सं० क्ली०) गभीर वन, घना जङ्गल।

वनगुप्त (सं० पु०) गुप्तचर, भेदिया।

वनगुल्म (सं० पु०) वनजात गुल्म, जङ्गली लता।

वनगो (सं० स्त्री०) वनस्य गौः। गवय, जङ्गली नील गाय।

वनगोचर (सं० पु०) वनं गोचरो देशो यस्य। १ व्याध। वनं जलं गोचरो निवासस्थानं यस्य। २ नारायण। (भाग० २।१८) ३ टीका-स्वामी। (त्रि०) ४ जलचर। ५ काननविहारी, जंगलमें विचरनेवाला।

वनघोली (सं० स्त्री०) अरण्यघोली।

वनङ्करण (सं० क्ली०) शरीरका अंशविशेष। सायणाचार्यके मतसे "वनं उदकं क्रियते विसृज्यते येन" इस अर्थमें जलकारी मेघादिका बोध होता है।

वनचन्दन (सं० क्ली०) वनजातं चन्दनं। १ अगुरु, अगर। २ देवदारु, देवदार।

वनचन्द्रिका (सं० स्त्री०) वने चन्द्रिका ज्योत्स्नेव। मल्लिका, एक प्रकारका बेला।

वनचम्पक (सं० पु०) वनजातश्चम्पकः। वनज चम्पकपुष्पवृक्ष, जङ्गली चम्पेका पौधा। पर्याय—वनदीप, हेमाह्व, सुकुमार। गुण—कटु, उष्ण, वात और कफनाशक, चक्षुका दीप्तिवर्द्धक, व्रणरोपण और वयःस्तम्भकारक।

वनचर (सं० त्रि०) वने चरतीति वन-चर ट। १ वनचारी, वनमें भ्रमण करने या रहनेवाला। २ जङ्गली मनुष्य या प्राणी। ३ शरभ नामक वनजन्तु।

वनचर्य्या (सं० स्त्री०) १ वनचारी। २ वनवासी।

वनचारिन् (सं० त्रि०) वने चरतीति चरः णिनि। वनमें विचरण करनेवाला।

वनछाग (सं० पु०) वनस्य छागः। १ अरण्य छागल, जङ्गली बकरा। पर्याय—पङ्क, शिशुवाहक। (त्रिकां०) वने छाग इव। २ शूकर, सूअर।

वनछिद् (सं० त्रि०) १ वनकर्त्तनकारी, जंगल काटनेवाला। (पु०) २ लकड़हारा।

वनच्छेद (सं० पु०) काष्ठकर्त्तन, लकड़ी काटना।

वनज (सं० क्ली०) वने जले जायते इति जन-ड। १ अम्बुज, कमल। २ मुस्तक, मोथा। ३ गज, हाथी। ४ वनशूरण, जंगली जिमीकन्द। ५ तुंबुरुका फल। ६ जंगली बिजौरा नीबू। ७ वनकुलथी। ८ वनतिलक। (त्रि०) ६ वनजात, जो वनमें उत्पन्न हो।

वनजताम्रचूड़ (सं० पु०) वनकुक्कुट, जंगली मुरगा।

वनजमूर्द्धजा (सं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गी, काँकड़ासिंगी।

वनजयूत्तिका (सं० स्त्री०) हस्तमेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

वनजा (सं० स्त्री०) वने जायते इति जन-ड स्त्रियां टाप्। १ मुद्गपर्णी। २ निर्गुण्डी। ३ सफेद कंटकारी। ४ वनतुलसी। ५ असगंध। ६ वनकर्पासी। ७ मिश्रेया, सौंफ। ८ वनोपोदिका। ६ गन्धपत्ता। १० ऐन्द्र, इन्द्र-सम्बन्धी।

वनजार—भारतवासी पण्यजीवि-जातिविशेष। उत्तर-भारतकी अपेक्षा दक्षिण-भारतमें ही इन लोगोंका अधिकतर वास है। यह जाति बहुत प्राचीनकालसे ही व्यापारमें प्रवीण है। एरियन (Indica. xi)-ने इस जातिका उल्लेख किया है। दशकुमारचरितमें भी इन लोगोंका परिचय पाया जाता है। पाश्चात्य जातितत्त्वविदोंका कहना है कि, वणिजार अथवा वनजार शब्द संस्कृत वाणिज्यकारका ही अपभ्रंशमात्र है। एलियट साहबने तो 'वोरञ्जार' पारसी शब्दसे ही इस जातिका नामकरण 'वनजार' होनेकी कल्पना की है। वे इस शब्दके द्वारा भारतवासियोंके साथ पारसियोंके संस्रवकी सूचनाकी मीमांसा कर गये हैं। अध्यापक काउएल इन उक्त मतोंकी सत्यता स्वीकार नहीं करते; वे कहते हैं—हिन्दी वन-ज्वालना अथवा वनझारणा शब्दार्थसे ही 'वनजार' शब्दकी व्युत्पत्ति सिद्ध होनेकी अधिक संभावना है।

इस जातिके नामोत्पत्तिके प्रसंगमें पाश्चात्य पण्डित लोग किसी भी सिद्धान्तमें समुपस्थित क्यों न होवे, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह जाति बहुत प्राचीन कालसे ही हिन्दू समाजमें प्रतिष्ठा पाती आ रही है। ऐतिहासिक उक्ति ही इसे समर्थन करती है। दक्षिण-प्रदेशनिवासी वनजार लोगोंमें माथुरिया, लवाण तथा चारण नामधारी तीन श्रेणीविभाग हैं। ये लोग अपनेको वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण तथा राजपूत जातियोंके वंशधर बताते हैं। माथुरिया श्रेणी मथुरासे आ कर इस स्थानमें बस गई है। अधिक संभव है कि, राजपूत चारण लोग तीर्थयात्राके उद्देशसे एवं लवाण श्रेणीके लोग लवण व्यापारके निमित्त इस प्रदेशमें उपस्थित हुए एवं स्वजातीय कन्याओंके अभावसे यहांके अन्य जातीय कन्याओंका पाणिग्रहण करके अपनी जातिसे पृथक् हो गये। ये लोग सिक्खोंके गुरु नानकको ही अपना धर्म-गुरु मानते हैं।

मुसलमानी इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि दिल्लीके सम्राटोंका दक्षिणविजय-प्रसंगके समयसे समयानुसार राजाओंकी आज्ञासे रसद ले कर ये वनजारगण दक्षिण-भारतमें आ उपस्थित हुए। इस तरहसे १५०८ ई०में दिल्लीश्वर सिकन्दर बादशाहके ढोलपुर पर आक्रमण करनेके समय पहले पहल वनराज लोग यहां आ बसे। चारण श्रेणीके लोग राठोरवंशीय हैं। ये लोग १५३० ई०में मुगल-सेनापति आसफजाके अधीन इस प्रदेशमें आये। इस समय उनकी श्रेणीके भंगी तथा जंगी नायक-वृन्द इस स्थानमें आये। आसफजा सेनापतिने इन लोगोंकी कार्यदक्षता देख कर इन्हें ताम्रपत्र पर सोनेके अक्षरोंसे लिख कर एक सनद प्रदान की थी। इन भंगी वंशधरोंके पास अभी भी वह पत्र वर्त्तमान है। हैदराबादके निजामने उसे देख कर इन्हें खिलत दी थी।

ये लोग जादूविद्या पर विश्वास करते हैं एवं कितने हीमें पारदर्शिता दिखाई देती है। भूत प्रेतोंको भगानेके लिये ये लोग नाना प्रकारके मन्त्र पाठ करते हैं। ज्वर, वातव्याधि तथा उदरामय प्रभृति रोगोंको ये लोग डायनकी दृष्टि निर्देश करते हैं। किसी स्त्रीको डायनी लगी है, ऐसा विश्वास होने पर वे उसे वनमें ले जा कर मार देनेसे भी कुण्ठित नहीं होते।

ये लोग साधारणतः हिन्दू देवदेवीकी उपासना किया करते हैं। वालाजी, महाकाली, तुलजादेवी, मिठुभुखिया तथा सतीमूर्त्ति इन लोगोंकी प्रधान उपास्य है। इनके अलावे और भी कितने ही छोटे छोटे ठाकुरोंकी भी अत्यन्त भक्तिभावसे पूजा किया करते हैं। दस्युकार्यमें प्रवृत्त होनेके पहले ये लोग अपने अपने उपनिवेशके पार्श्वस्थ मिठुभुखियाके मन्दिरमें प्रवेश करते हैं। दस्युवृत्तिमें लिप्त होनेकी पूर्वसन्ध्याके अलावे कोई घरके अन्दर गमन नहीं करता। अतएव पहले ये लोग दस्युपति मिठुकी पूजा करके एक सतीमूर्त्ति निर्माण करते हैं एवं एक घीका प्रदीप जला कर उस वर्त्तिकालोकमें शुभाशुभ निरीक्षण करते हैं। जब इस वर्त्तिकालोकमें शुभलक्षण प्रतिभात होता है, तब ये लोग दलके साथ बाहर होते हैं एवं उक्त गृहके सम्मुखस्थ पताकाके नीचे भूमिष्ठ हो कर इष्टदेवको प्रणाम करके अभीष्ट-पथकी ओर यात्रा करते हैं। लुण्ठनके समय ये लोग किसी तरहकी बात नहीं करते, यदि कोई भूल कर भी रास्तेमें बात कर बैठे तो ये लोग यात्रा अशुभ लक्षणायुक्त समझ कर पुनः

मिठुभुखियाके मन्दिरमें लौट आते हैं एवं पुनः प्रदीपालोक-में शुभलक्षण अवगत होने पर लूट-पाटके निमित्त घरके बाहर होते हैं। रास्तामें छींक होनेसे भी ये लोग कार्यमें विघ्न होनेकी भावना करते हैं।

किसीको पीड़ा होने पर ये लोग वालाजीके नामसे उत्सर्गीकृत 'हटादिया' नामक वृषकी पूजा देते हैं। इस वृष पर कोई कभी भी किसी तरहका बोझा नहीं लादता वरं लाल कपड़े और कौड़ियोंके बने गहनोंसे इसे सुसज्जित रखते हैं। ये लोग गुरु नानकको धर्मजगत्‌का एकमात्र कर्त्ताधर्त्ता समझ कर उनका ध्यान धरते हैं एवं एकमात्र ईश्वरका सर्व्वाधारत्व स्वीकार करते हैं।

युक्तप्रदेशवासी वनजार जातिमें चौहान, वहुरूप, गौड़, यादव, पणवार, राठोर तथा तुथार नामक श्रेणी-विभाग है। वहरूप तथा गौड़के अतिरिक्त इनकी सभी वंशोपाधियां राजपूत जातित्वकी परिचारक हैं। ऐसी किम्वदन्ती चली आ रही है कि, इन लोगोंने एक समय अयोध्या तथा हिमालयके सन्निहित कई स्थानोंमें राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था। वरैली राज्यसे इन्हें जंघार राजपूतोंने भगा दिया। १६३२ ई०में पठान-सरदार रसूल खाँने वराइच जिलान्तर्गत नानापाड़ा परगनासे एवं १८२१ ई०में चकलादार हकीम मोहेन्दोने सिजौली परगनासे इन लोगोंको निकाल दिया। खेरी जिलाके जांग्रे राजपूतोंने अपने मित्र वनजार लोगोंसे खैरागढ़ प्राप्त किया था। सहारनपुर जिलान्तर्गत देववाँध नगर इन लोगोंके द्वारा ही प्रतिष्ठित था, ऐसी किम्वदन्ती है।

हर्दोई जिलान्तर्गत गोपामौ नगरके वनजार टोलावासी अपनेको मुसलमान साधु सैयद सालारके वंशधर वताते हैं, फिर मन्द्राजवासी वनजार लोग अपनेको रामके अनुचर वन्दराधिपति सुग्रीवके वंशधर कहते हैं। इन सव वातों पर आलोचना करनेसे साफ ज्ञात होता है, कि वनजार लोग किसी एक विशिष्ट जातिके सन्तान नहीं हैं। समय समय पर विभिन्न जाति अथवा वंशके लोग स्थानान्तरके प्रवासी हो कर इन लोगोंकी वृत्ति अवलम्बन कर लेनेके कारण वनजार नामसे अभिहित हो गये हैं। इस तरह दस्युवृत्ति किंवा शस्य-वाणिज्यके कारण वनजार श्रेणीभुक्त होने पर भी वर्त्तमान जातीय पेशानुसार मुजफ्फरनगरवासी वनजारोंके मध्य धानकूटा, लवण, नन्दवंशी, जाट, भुखिया ग्वाल, कोटवार, गौड़, कोड़ा तथा मुजइर प्रभृति श्रेणी-विभाग हो गये हैं।

पश्चिम प्रदेशके वनजार लोग साधारणतः पांच विभागोंमें विभक्त हैं, उनके मध्य तुर्किया अथवा मुसलमान श्रेणीमें ३६ गोत्र प्रचलित हैं, जैसे—तोमर, चौहान, गहलोत, दिलवारी, आलवी, कनोठी, बुड़की, दुर्की, शेख, नाथमोर, अघवान, वदन, चकिराह, वहरारी, पद्दड़, कणिके, धाड़े, चन्दौल, तेली, चरका, धङ्गिया, धानकिका, गंगी, तितर, हिन्दिया, राह, मरौथिया, खाखर, कड़ेया, वहलीम, भट्टि, वन्द्वारी, वरगंगा, आलिया तथा खिलजी। ये लोग रूस्तम खांके अधीन मुलतानसे प्रथम तो मुरादावाद आये; इसके वाद विलासपुर तथा उसके समीपवर्त्ती प्रदेशोंमें जा वसे।

वैद्-वनजार लोग भाटनेरसे आये हैं। इनके सरदारका नाम दुल्हा है। इनमें भालोई, तण्डार, हृतार, कपाही, दण्डेरि, कछनी, तारिण, धरपाहि, कीरि तथा वहलीम ११ गोत्र प्रचलित हैं। लवाण (लवणवाही) वनजार लोग अपनेको गौड़ ब्राह्मणके वंशधर कह कर परिचित करते हैं। ये लोग सम्राट् औरंगजेवके समयमें रणस्तम्भगढ़से आ कर दक्षिण-प्रदेशके प्रवासी हुए। इनके बीच भी ११ गोत्र प्रचलित हैं। ये लोग कृषि-कार्यसे अपनी जीविका चलाते हैं।

मुकेरी वनजार लोग कहते हैं, कि मक्कामें उनके एक नायकका शिविर था। वहांसे यह वंश झाझरनगरमें आ कर वास करने पर जनसाधारणमें मक्काई या मुकेरी नामसे परिचित हुआ। इस वातको समर्थन करनेके लिये इन लोगोंने एक अत्यद्भुत उपाख्यानकी कल्पना कर ली है। वह जो कुछ भी हो, किन्तु उन लोगोंके कुलगत नाममें हिन्दू तथा मुसलमानका संमिश्रण देख कर मालूम पड़ता है, कि यह जाति उक्त दोनों ही जातियोंके संमिश्रणसे बनी है। इन लोगोंमें निम्नोक्त वंशाख्या प्रचलित देखी जाती है। जैसे—अघवान, मुगल, मोखर, चौहान, सिमली, छोटा चौहान, पंचतकिया चौहान,

तानहर, काठेरिया, पठान, तरीन पठान, घोड़ी, घोड़ीवाल, वंगारोया, काखिया तथा बहलीम ।

वहरूप वनजार लोग साधारणतः हिन्दू हैं। इनमें मुसलमान भी हैं। मुसलमान श्रेणीकी तरह वनजार हिन्दू लोग गृहस्थाश्रमाचारी नहीं हैं। इनके मध्य राठोर, चौहान, प्रणवार, तोमर तथा भुर्त्तिया नामक कई वंश-विभाग देखा जाता है। इन सब वंशोंमें अब गोत्र-विभाग निर्णीत हो गया है। राठोर वंशमें मुछारी, वांहुकी, मुदवित तथा पणोत नामक चार दल हैं, उनके बीच मुछारीमें ५२, वांहुकीमें २७, मुर्हावतमें ५६ एवं पणोतमें २३ गोत्र प्रचलित हैं। चौहानोंमें ४२ गोत्र विद्यमान है, ये लोग मैनपुरीसे आ कर इस प्रदेशमें वस गये हैं। भुर्त्तिया लोग गौड़ ब्राह्मणके सन्तान हैं। चित्तोरकी राजधानीमें इन लोगोंका वास था। वहांसे वे लोग दक्षिण प्रदेशवासी हो गये हैं। उनके मध्य २० गोत्र हैं।

ये वहरूप वनजार लोग अन्यान्य जातियोंकी तरह सगोत्रमें विवाह नहीं करते। नाट जातिकी कन्या ग्रहण करते हैं सही, किन्तु अपनी कन्या उन लोगोंको समर्पण नहीं करते। नायक या नायक वनजार लोग इन जातिके होते हुए भी साधारण श्रेणीकी अपेक्षा कहीं उन्नत हैं। इनमें राजपूतोंकी संख्या ही अधिक है। गोरखपुर विभागके नायक लोग अपनेको सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं। वे अपनेको पिलिभीतके आदिनिवासी बताते हैं। ये कट्टर हिन्दू हैं। इनके समाजमें बहुविवाह प्रचलित तो है; किन्तु विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। यदि कोई अविवाहिता बालिका परपुरुषके साथ अवैध प्रणय करती है, तो उसके पिताको एक जातीय भोज देना पड़ता है एवं उस बालिकाको सत्यनारायणकी कथा सुना कर पवित्र कर लेते हैं। विवाहके समय वरके पिताके हाथमें कन्याके पिता 'तिलकदान' स्वरूप कुछ रुपये देते हैं। पंचायतके विचारसे सभी अपनी व्यभिचारिणी पत्नीका त्याग कर सकते हैं। इस समाजमें विधवा-विवाह न होनेके कारण ऐसी रमणी फिर अपने स्वजातीय पुरुषके साथ विवाह नहीं कर सकती। ये लोग जन्म, मृत्यु तथा विवाह संस्कार यथाविधि सम्पन्न करते हैं। शवको जलानेके पश्चात् एवं अशौचके अन्तमें श्राद्ध निष्पन्न करते हैं। सर्वरिया ब्राह्मण सभी कार्योंमें इन लोगोंकी पुरोहिती करते हैं।

विवाहके समयमें ये लोग चार चार घड़ोंको उपर्युपरि करके सात थाक सजाते हैं एवं उनके बीचमें दो मूषल तथा एक जलपूर्ण कलसी रख देते हैं। इनके सामने मृत्तिकालिप्त स्थानमें चौका करके पुरोहित होम करता है। तदनन्तर उस नवदम्पत्तीको ग्रन्थि-बन्धन करा कर उस मूषलके चारों ओर सात लपेट घुमता है। अन्तमें उनके एक स्थान पर बैठ जानेके बाद कन्याके पिता वरका पांव पूजते हैं एवं कन्या-सम्प्रदानके यौतुक स्वरूप वरके हाथमें दो या चार रुपये देते हैं। यही बड़े घरोंका विवाह है। निम्न श्रेणीके मध्य कन्याको वरके घर ले जा कर 'घरौआ' विवाहानुसार विवाह करते हैं। इसके बाद स्वजातिभोज होता है।

वनजीर (सं० पु०) वनोद्भवो जीरः। वनजात जीरक, काली जीरी। पर्याय—वृहत्पाली, सूक्ष्मपत्र, अरण्यजीर, कण। गुण—कटु, शीतल और व्रणनाशक।

वनजीविन् (सं० पु०) वह जो जंगलसे लकड़ी ला कर जीविका निर्वाह करता हो, लकड़हारा।

वनतण्डुली (सं० स्त्री०) १ तण्डुलीयभेद। (Amblogina polygonoides) २ वनतण्डुलीय शाक।

वनतरु (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

वनतिक्त (सं० पु० स्त्री०) वनेषु वनोद्भवेषु मध्ये तिक्तः, तिक्ता वा। हरतिकी, हड़।

वनतिक्ता (सं० स्त्री०) ग्रीष्मा नामक लताभेद।

वनतिक्तिका (सं० स्त्री०) वनतिक्ता कन्, टापि अत इत्वं। १ पाठा। पाठा देखो। २ पथरी नामका साग। इसका गुण—तिक्त और शीतल तथा कटु और कफपित्तघ्न।

वनत्रपुष (सं० पु०) १ आरण्यत्रपुष, जंगली टांगा। २ इन्द्रवारुणी। (वैद्यकनि०)

वनद् (सं० त्रि०) १ प्रशंसाकारी, बड़ाई करनेवाला। २ स्तोता, पूजक।

दुर्गादासने 'वनदः' शब्दका 'वनदाः' अर्थात् अभीष्ट पूजोपहार दानकारी अर्थ लगाया है। किन्तु वर्त्तमान टीकाकार 'वनद्' शब्दका प्रबल इच्छायुक्त, ऐसा अर्थ लगाते हैं।

वनद (सं० पु०) वनं जलं ददातीति दा क। १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ वनदातृमात्र।

वनदमन (सं० पु०) वनजातो दमनः। अरण्यदमनक वृक्ष, वनदौना।

वनदारक (सं० पु०) जातिविशेष।

वनदाह (सं० पु०) दावदहन, अग्निसे वन जलाना।

वनदीप (सं० पु०) वनस्य दीप इव। वनचम्पक।

वनदीयभट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध टीकाकार।

वनदुर्गा (सं० स्त्री०) १ तन्त्रोक्त देवीमूर्त्ति। पूर्ववङ्गमें वनदुर्गा पूजा बड़ी धूमधामसे की जाती है। २ इसी नामके एक तन्त्रका नाम। ३ एक उपनिषद्का नाम।

वनदेव (सं० पु०) वनका अधिष्ठात्री देवता। (उत्तरचरित २)

वनदेवी (सं० स्त्री०) वनकी अधिष्ठात्री देवी।

वनद्रु (सं० पु०) चारवृक्ष, पियालका पेड़।

वनद्रुम (सं० पु०) १ अर्जुनवृक्ष। २ काष्ठागुरु।

वनद्विप (सं० पु०) वनहस्ती, जङ्गली हाथी।

वनधारा (सं० स्त्री०) वृक्षकी कतारके बीचका पथ।

वनधिति (सं० स्त्री०) १ कुठार आदि अस्त्र। २ मेघमाला।

वनधेनु (सं० पु०) अरण्यजात गो, नीलगाय।

वनन (सं० क्ली०) १ धन, दौलत। २ इच्छा, वासना।

वननमिश्र—तर्कसंग्रहटिप्पणके प्रणेता।

वननित्य (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

वननीय (सं० त्रि०) वाञ्छनीय, चाहने योग्य।

वनन्वत् (सं० त्रि०) १ उदकविशिष्ट, जिसमें जल हो। २ सम्भक्तव्य धन।

वनप (सं० पु०) १ वनवासी। २ लकड़हारा। ३ वनरक्षक, जङ्गलका रखवाला।

वनपन्नग (सं० पु०) वनस्थ सर्प।

वनपर्वन् (सं० क्ली०) महाभारतका तीसरा अंश। इस अंशमें युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डवके काम्यवनमें रहनेके समयका विवरण है।

वनपलाण्डु (सं० पु०) वनजात पलाण्डु, वनप्याज।

वनपल्लव (सं० पु०) वनमिव निविड़ः पल्लवो यस्य। शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़।

वनपांशुल (सं० पु०) वने पांशुल पापिष्ठः। व्याध, शिकारी।

वनपादप (सं० पु०) वनजवृक्ष, जङ्गली पेड़।

वनपार्श्व (सं० पु०) वनके आस-पासका स्थान।

वनपाल (सं० पु०) वनरक्षक, जङ्गलका रखवाला।

वनपिप्पली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा पिप्पली। छोटी पीपल। मराठी—रानपिपुल ; कनाड़ी—काहिपिप्पली। संस्कृत पर्याय—सूक्ष्मपिप्पली, क्षुद्रपिप्पली, वनकणा। इसका गुण कटु, उष्ण, तीक्ष्ण और रुच्य माना गया है। जब यह पीपल कच्ची रहती है, तभी तक इसमें गुण रहता है, सूखने पर इसका गुण बहुत कुछ कम हो जाता है।

वनपीत (सं० पु०) भूमिजात गुग्गुलु, वह गुग्गुल जो जमीनसे उत्पन्न हो।

वनपुष्पा (सं० स्त्री०) वनमिव निविड़ं पुष्पं यस्याः, टाप्। शतपुष्पा, सोआ।

वनपुष्पामय (सं० त्रि०) वनपुष्पसम्भव।

वनपुष्पोत्सव (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

वनपूतिका (सं० स्त्री०) आरण्यपूतिका, वनपोई। वैद्यकमें इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण और रुक्ष कहा है।

वनपूरक (सं० पु०) वनजातः पूरकः वीजपूरकः। वनवीजपूरक, जंगली बिजौरा नीबू।

वनपूर्व (सं० पु०) एक प्राचीन गांवका नाम।

वनप्रक्ष (सं० त्रि०) जलचारी, जलमें रहनेवाला।

वनप्रवेश (सं० पु०) वनगमन, वह यात्रा जो कोई देवमूर्त्ति बनानेके अभिप्रायसे जङ्गली वृक्षोंको काटनेके लिये दल-बलके साथ वनमें की जाती है।

वनप्रस्थ (सं० क्ली०) १ अधित्यकास्थित वन। २ स्थानविशेष। ३ वानप्रस्थ।

वनप्रस्थायिन् (सं० त्रि०) वनगमनकारी।

वनप्रिय (सं० क्ली०) वनेषु वनजातेषु मध्ये प्रियं। १ त्वक्, दारचीनी। (पु०) २ कोकिल, कोयल। ३ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ४ कपूर, कचरी। ५ शम्बरमृग, सांभर हिरन।

वनफल (सं० क्ली०) जङ्गली पेड़का एक प्रकारका फल। यह खानेमें मीठा होता है।

वनफूल (सं० क्ली०) पुष्पवृक्षभेद। इसकी माला गूंथनेसे

सुन्दर दिखाई पड़ता है। श्रीकृष्ण वनफूलकी माला पहन कर वनमाली हुए थे।

वनवर्व्वर (सं० पु०) कृष्णार्ज्जक, वनतुलसी।

वनवर्व्वरिका (सं० स्त्री०) वनजात अर्ज्जक जातीय पत्र शाक, वनतुलसी। इसका गुण सुगन्ध, उष्ण, कटु, वमिघ्न, पिशाच और भूतघ्न एवं घ्राण-सन्तर्पण माना गया है। (राजनि०)

वनवर्हिण (सं० पु०) वन्य मयूर, जङ्गली मोर।

वनवाह्यक (सं० पु०) जातिविशेष।

वनवीज (सं० पु०) वनस्य वनोद्भवो वा वीजो वीजपूरकः। वनवीजपूरक, जङ्गली बिजौरा नीबू।

वनवीजक (सं० पु०) वनवीज-स्वार्थे कन्। वनवीजपूरक।

वनवीजपूरक (सं० पु०) वनोद्भवो वीजपूरः। आरण्यजात वीजपूर, जंगली बिजौरा नीबू। पर्याय—वनज, वनवीजक, वनवीज, अत्यम्ला, गन्धाम्ला, वनोद्भवा, देवदूती, पीड़ा, देवदासी, देवेष्टा, मातुलुङ्गिका, पचनी, महाफला। इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुचिप्रद तथा वात, आमदोष, क्रमि, कफ और श्वासनाशक। (राजनि०)

वनभद्रिका (सं० स्त्री०) वने भद्रं यस्याः ततष्टापि अत इत्वं। भद्रवला, माधवी लता।

वनभुज् (सं० पु०) वनं भुङ्क्ते इति वन-भुज्-क्विप्। ऋषभौषध।

वनभू (सं० स्त्री०) वनमय स्थान।

वनभूषण (सं० स्त्री०) कोकिला।

वनमञ्जरी (सं० स्त्री०) वननिगुण्डी।

वनमक्षिका (सं० स्त्री०) वनस्य मक्षिका। दंश, डाँस।

वनमल्लिका (सं० स्त्री०) सेवतीका पौधा या फूल।

वनमल्ली (सं० स्त्री०) वनोद्भवा मल्ली, जंगली मल्लिका।

वनमानुष (हिं० पु०) १ वनजात मनुष्य। २ वनवासी। ३ स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जीवविशेष। यह गोरिला अथवा पूँछहीन जातीय या स्वल्प पूँछवाले वन्दरोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु वन्दरोंकी तरह इसे पूँछ चिह्न या गण्डस्थली नहीं होती। यूरोपीय प्राणितत्त्वविद्गण इसके हाथ, पाँव, वक्षस्थल प्रभृतिकी हड्डियों तथा दांतादि की अच्छी तरह पर्य्यवेक्षणा करके एवं इन सबोंका मनुष्य जातिके साथ यथायथ सादृश्य निरूपण करके इस सिद्धान्तको प्राप्त हुए हैं, कि इस जातिके पशु, चतुष्पद वन्दर तथा मनुष्यके मध्यस्थलमें आसन ग्रहण कर सकता है। मनुष्यके साथ इनके पाँवोंकी अंगुलियां परस्पर पृथक पृथक् रहती हैं। इसके कंकालके साथ मनुष्यके कंकालकी तुलना करने पर देखा जाता है, कि मनुष्यकी अपेक्षा इसके हाथ तथा पाँवकी अंगुलियां बड़ी, पांव छोटे, हाथ लम्बे, पञ्जरकी हड्डियां नीचेकी ओर अधिक विस्तृत, कमरकी हड्डी पतली और लम्बी, खोपड़ी चिपटी तथा मुखकी ओर विस्तृत होती है। शरीरके ऊपरी हिस्सेमें शिम्पांजीका कंकाल मनुष्यके कंकालसे बहुत मिलता जुलता है। इस प्रकार अस्थि-संस्थानका लक्ष्य करके वैज्ञानिकोंने इन्हें ओरङ्ग, शिम्पाजी और गिवों नामक तीन स्वतन्त्र श्रेणीमें विभक्त किया है। इस ओरङ्ग और शिम्पाजीको ही हम लोगोंके देशमें वनमानुष कहते हैं।

मलय द्वीपकी भाषामें 'ओरंग-उटान' शब्दसे वनमानुष समझा जाता है। इसलिये वहांके अधिवासी द्विपद चारी एवं वन्दरकी तरह हाथ पाँव-व्यवहारकारी मनुष्याकार इस वन्य-पशुको 'ओरंग-उटान' कहते हैं एवं वोर्निओ तथा सुमात्रा-द्वीपवासी भी इसे इसी शब्दसे उल्लेख करते हैं। वादमें अङ्गरेज-भ्रमणकारियोंके अनुग्रहसे यह भारतीय द्वीपपुञ्जजात जीव देशी भाषामें Orang-outang शब्दसे परिगृहीत हुआ। प्राणितत्त्वविद् लिनियसने इसे Simia श्रेणीका जीव ठहराया है। वैज्ञानिकोंके अनुमानसे ये Pithecus जातिके अन्दर Chimpanzee की एक शाखामात्र हैं।

वैज्ञानिकोंने वन्दरश्रेणीके जीवोंको आकृतिके प्रभेदसे अथवा जातिगत पृथक्ता अनुसार जिस तरह विशिष्ट दलमें विभक्त किया है, उसकी एक संक्षिप्त तालिका नीचे दी जाती है। इस तालिकासे वन्दरोंके साथ इनको कहां तक पृथक्ता है, उसे आसानीसे समझ सकते हैं।

वन्दर जाति (Simiadae)

Siminae	Hybolatinae	Colobinae	Papioninae
	उल्लूक (Gebbon)	(हनुमान)	(नील वन्दर)

Siminae:

शिम्पाञ्जी (अफ्रिका)	गोरिला (अफ्रिका)	वनमानुष
(Troglodytes nigar)	(Tr, gorilla)	(Simia satyrus)

विस्तृत विवरण वानर शब्दमें देखो।
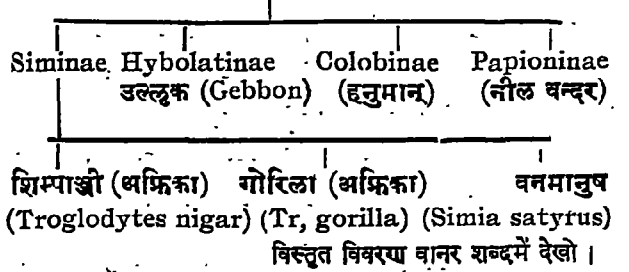
इस बन्दर जातिके मध्य *S. Satyrus* श्रेणीके वनमानुष नामक पशु कुछ लाल रंगका होता है। इसका चेहरा चौड़ा, मुख गोल एवं नुकीला, कपालका पिछला हिस्सा चिपटा तथा आंखें छोटी होती हैं एवं हृद्‌कोष छोटा होता है; दोनों पार्श्वमें बारह हड्डियां होती हैं; छातीकी हड्डियां दो भागोंमें विभक्त रहती हैं। हस्तद्वय गुल्फग्रन्थिविलम्बी, पद लम्बा तथा पतला होता है; इनमें कभी नाखून दिखाई नहीं पड़ते। ये प्रायः पाँच फोटसे ऊंचे नहीं होते। सुमात्रा तथा बोर्नियो द्वीपमें इनका वास है।

जीवतत्त्वविद्‌गण कहते हैं, कि जीवजातिके पशुश्रेणीके मध्य 'गोरिला' प्रथम स्थानका अधिकारी है। शिम्पाजी उसके निम्न आसनके और ओरंग उटान तृतीय स्थानके अधिकारी हैं। कारण यह है, कि इन लोगोंके प्राकृतिक ज्ञानमें भी इसी तरह कुछ पृथक्ता दृष्टिगोचर होती है। आश्चर्यका विषय यह है, कि ओरंग-उटान इन सबोंकी अपेक्षा दीर्घाकार होता है एवं मनुष्यकी आकृतिसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसकी छाती, भुजाएं तथा हाथोंकी बनावट मनुष्यके समान ही होती है। मनुष्यजातिमें जिस तरह सबकी आकृति एक-सी नहीं होती, उसी तरह इनकी मुखाकृतिमें भी कुछ न कुछ अन्तर अवश्य दिखलाई पड़ता है। ओरंगोंमें जो विशेष बुद्धिमान् होता है, वह मुखके भाव तथा रंग-ढंगसे विशेष विचक्षणताके साथ हृदयके भावोंको प्रकट करनेमें समर्थ होता है एवं कितने ही वनमानुष तो मनुष्यकी तरह हर्षक्रोधादि विभिन्न मानसिक वृत्ति भी प्रकाश कर सकते हैं।

ये भारतवर्षके द्वीपोंके वनमाला-परिव्याप्त समतल प्रान्तमें घूम-फिर कर समय विताते हैं। वहां ये मझोले वृक्षके ३०, ४० फीट ऊंची डालों पर वृक्षोंके पत्ते तथा दूसरी फटी डालियां इकट्ठी करके छोटे छोटे झोपड़े बनाते हैं। इनके झोपड़ेका व्यास प्रायः दो फीट होता है। ये वृक्षकी डालोंको चटाईकी तरह बून कर विश्राम करनेकी शय्या तैय्यार कर लेते हैं। वनमें यापन करनेके लिये मनुष्य कुठार वा छुरीके अभावसे जिस तरह वृक्षशाखाओंकी छतरी बना कर सुखसे शयन करते हैं, ठीक उसी तरह ये भी अपने घरोंको पाटते हैं। उन पाटवों पर ये वृक्षोंके कच्चे तथा कोमल पत्ते बिछा कर चित्त लेटा करते हैं। निद्राकालमें ये हाथ वा पांव बढ़ा कर पासकी मजबूत डाली पकड़ कर आनन्दसे सोते हैं। जब तक वे पत्ते सूख कर छिन्न भिन्न न हो जाते हैं, तब तक वे उसी शय्या पर स्वच्छन्दतापूर्वक सोते हैं।

ओरंग उटान।

वर्नियो-द्वीपवासी ओरंग गण अत्यन्त झगड़ालू होते हैं। जब वे वनके अन्दर फल फूल खानेके लिये जाते हैं, तब किसी सामान्य कारणसे भी झगड़ा कर एक दूसरेको क्षत विक्षत कर देते हैं। इनके दांत इनकी आत्मरक्षाके अस्त्रस्वरूप हैं। झगड़ेके समय वे शत्रुके हाथ तथा माथा खींच कर दांतोंसे नोच लेते हैं। यदि किसी समय कोई मनुष्य वा हाथी अचानक उनके झोपड़ेके पास आ पहुंचते हैं, तो वे उन्हें वहांसे भगा देनेके अभिप्रायसे उन पर वृक्षोंकी डाल तथा पत्थरोंके टुकड़े, बड़े

वेगसे प्रहार करना शुरू करते हैं। पीछे हाथी वृक्षको तोड़ कर उनके झोपड़े नष्ट कर देते हैं, इसी भयसे वे हाथोको देखते ही उसे भगानेकी चेष्टा करते हैं। समय समय पर वे वनमध्यगामी असहाय पथिकों पर वृक्षकी डाल लिये बड़े वेगसे आक्रमण करते हैं। कुभियर तथा कप्तान पाइनेरकी वर्णनासे जाना जाता है, कि एक समय इन सबोंने नेग्रो-बालिकाओंको हर कर वनमें छिपा रखा था।

पिंजराबद्ध शिम्पांजीकी अनुकरणप्रियता और सुबुद्धिकी प्रखरताका परिचय पा कर डा० ट्रेल कहते हैं, कि उनका स्वभाव बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। उसे पर्यवेक्षण करके नित्य ही नूतन गल्प सङ्कलन किया जा सकता है। वे आसानीसे वशीभूत होते हैं, यहां तक कि जो उन्हें प्यार करते हैं, उनके पास बैठ कर वे भोजन तक करते हैं। जो व्यक्ति उन्हें सर्वदा चिढ़ाया करते हैं, उन्हें देखते ही वे विरक्ति भाव प्रकाश करके उनके पाससे खिसक जाते हैं। यूरोपीय प्रथानुसार वे भी हाथ मल कर आनन्द प्रकाश करते हैं। उनके शरीर रोएंसे ढके रहने पर भी वे शीतप्रधान देशमें वास करना पसन्द नहीं करते। शीतप्रधान यूरोपखण्डमें वे अपने मालिकके दिये हुए कम्बल बिछा कर आनन्दसे लेटते हैं। क्रोधित होने पर वे ऊंचे स्वरसे चिल्ला उठते हैं एवं मीठा खाना पानेसे वे "हाम हाम" शब्दों द्वारा आनन्द प्रकाश करते हैं।

शरावकसे सर जेमस् ब्रुकने कलकत्ताके बंगाल एसियाटिक सोसाइटीके जादूघरमें एक दीर्घाकार वनमानुषका कंकाल भेजा था। मि० ब्लाइदने उनकी पृथकता लक्ष्य कर उनके पांच दल निर्देश किये हैं,—१ Pithecus Brookei वा मियस रम्बि, २ P. Satyrus वा मियस पप्पन, ३ P Curtus वा मियस छापिन्; ४ P. morio वा, मियस कसर एवं ५ P. Owenii, ये सब विभिन्न दलोंके वनमानुष भारतीय द्वीपोंके विभिन्न भागोंमें वास करते हैं। सुमात्राके उत्तरांशमें P, morio एवं दक्षिणांशमें P. Owenii जातियोंका वास देखा जाता है। जीवतत्त्वविद् जर्डनने इन द्वीपोंके Simaia Satyrus तथा S. morio नामक दो जातीय वनमानुषोंका उल्लेख किया है। पश्चिम अफ्रिकाके गिवून नदीतीरप्रदेशवासी T. gorilla तथा T. nigar दलोंके शिम्पांजी तथा गोरिला जातिका विस्तृत विवरण वानर शब्दमें लिखा गया है। वानर देखो।

शिम्पाञ्जी।

वनमार्जार (सं० पु०) वनविड़ाल।

वनमाल (सं० त्रि०) १ वनमाला। (पु०) २ कृष्ण वा विष्णु। ३ प्रागज्योतिषके भगदत्तवंशीय एक राजा। प्रागज्योतिष देखो।

वनमालदेव—शिलालिपि वर्णित कामरूपके एक राजा।

वनमाला (सं० स्त्री०) वनोद्भवा पुष्परचिता माला, मध्यपदलोपी। १ वनके फूलोंकी माला। २ एक विशेष प्रकारकी माला। यह सब ऋतुओंमें होनेवाले अनेक प्रकारके फूलोंसे बनती और घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला श्रीकृष्ण धारण करते थे। ३ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं। उनमेंसे १, २, ३, ४, ५, ६, ८, ११, १४, और १६ वर्ण लघु तथा बाकी वर्ण गुरु होते हैं। इसका १, २, ३, ४, ५, ७, ६, १०,

११, १३ और १६ वर्ण लघु तथा ६, ८, १२, १४ और १५ लघु होते हैं।

वनमालाधर (सं० लि०) १ श्रीकृष्ण। २ छन्दोभेद।

वनमालिका (सं० स्त्री०) १ आस्फोटा, चमेली। २ वनमल्लिका, सेवती। ३ वाराहीकन्द।

वनमालिदास—वनमाला नामक ग्रन्थके प्रणेता।

वनमालिन् (सं० पु०) वनमाला अस्त्यस्येति इनि। १ श्रीकृष्ण। २ नारायण। (लि०) ३ वनमाला धारण करनेवाला।

वनमालिनी (सं० स्त्री०) १ द्वारकापुरी २ वाराही।

वनमालिभट्ट—गीतगोविन्दके टीकाकार।

वनमाली (सं० पु०) वनमालिन् देखो।

वनमाली—१ अद्वैतसिद्धिखण्डनके प्रणेता। २ खण्डमारुत और मारुतखण्डनके रचयिता। ३ द्रव्यशोधनविधानके प्रणेता। ४ प्रायश्चित्तसारकौमुदीके रचयिता। ५ भक्तिरत्नाकरके प्रणेता। ६ भगवद्गीताके एक टीकाकार। ७ मुक्तावली नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ८ वेदान्तदीप और स्फुटचन्द्रार्की नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता। ९ एक प्राचीन कवि।

वनमाली मिश्र—१ वैयाकरणभूषण-मतोन्मज्जिनी और सिद्धान्ततत्त्व-विवेक नामक ग्रन्थके रचयिता। ये कोण्डभट्टके छात्र थे। २ सारमञ्जरी नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ३ ब्रह्मानन्दनीय खण्डन और वनमालिमिश्रीय नामक वेदान्तके रचयिता।

वनमालीशा (सं० स्त्री०) श्रीराधा।

वनमुच् (सं० पु०) वन जलं मुञ्चतीति मुच्-क्विप्। १ मेघ, बादल। (लि०) २ जलवर्षणकारिमात्र।

वनमुद्ग (सं० पु०) वनोद्भवो मुद्गः। १ मकुष्टक, वनमूंग। पर्याय—वरक, निगूरक, कुलीनक, खण्डी। २ मुद्गपर्णी, मुगानी।

वनमूत (सं० पु०) वनं जलं मूतं बद्धं येन, वनं मुञ्चतीति वा। मेघ, बादल।

वनमूर्द्धजा (सं० स्त्री०) वनस्य मूर्ध्नि जायते इति जन-ड। १ वनबीजपूरक, जङ्गली बिजौरा नीबू। २ कर्कटशृङ्गी, काकड़ासिंगी।

वनमूलफल (सं० क्ली०) वनजात कन्द और फल।

वनमृग (सं० पु०) हरिणविशेष।

वनमेथिका (सं० स्त्री०) आरण्यमेथिका, वनमेथी।

वनमोचा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा मोचा काष्ठकदली, वनकेला।

वनयमानी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात छोटा पौधा, वनअजवायन।

वनयितृ (सं० लि०) हारयिता।

वनर (सं० पु०) वानर-पृषोदरादित्वात् आकार ह्रस्वः। वानर, बन्दर।

वनरक्षक (सं० लि०) वनकी रखवाली करनेवाला।

वनरम्भा (सं० स्त्री०) काष्ठकदली, वनकेला।

वनरसी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके कोलार जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १३° १४′ ३०″ उ० तथा देशा० ७८° ११′ ३१″ पू० तक विस्तृत है। यहां हर साल वैशाख महीनेमें इरालप्पदेवके उत्सवमें एक मेला लगता है। इस मेलेमें एक लाखके करीब गाय आदि पशु बिकते हैं।

वनराज् (सं० पु०) वटवृक्ष, बरगद।

वनराज (सं० पु०) वनस्य वने वा राजा, इति वनराजन्-टच् (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) १ सिंह। २ वनका अधिपति, वनका मालिक। ३ अश्मन्तक वृक्ष।

वनराजि (सं० स्त्री०) १ वनकी श्रेणी, वन समूह। २ वनके बीच गई हुई पगडंडी। ३ वसुदेवकी एक दासीका नाम।

वनराजी (सं० स्त्री०) वनराजि देखो।

वनराट् (सं० पु०) वट वृक्ष, बरगद।

वनराष्ट्र (सं० पु०) जनपदभेद और जाति विशेष।
(मार्कण्डेयपु० ५८।४९)

वनराष्ट्रक (सं० पु०) वनराष्ट्र देखो।

वनरुह (सं० क्ली०) पद्म, कमल।

वनर्गु (सं० लि०) वनगामी।

वनर्ज (सं० पु०) शृङ्गीवृक्ष।

वनर्द्धि (सं० स्त्री०) वनकी समृद्धि, वनसम्पद्।

वनर्षद् (सं० लि०) १ वेदोक्त वनविहरणकारी। (पु०) २ वनवाही वायु।

वनलक्ष्मी (सं० स्त्री०) वनस्य लक्ष्मी शोभा। १ कदली, केला। २ वनश्री, वनकी शोभा।

वनलता (सं० स्त्री०) वनजात लता, वल्ली।

वनलेखा (सं० स्त्री०) वनानां लेखा ६ तत्। वनकी श्रेणी, वन-समूह।

वनवर्व्वरिका (सं० स्त्री०) वनजाता वर्व्वरिका। अरण्यजात वर्व्वरी, वनतुलसी। पर्य्याय—सुगन्धि, सुप्रसन्नक, दोष, क्लेशी, विषघ्न, सुमुख, सूक्ष्मपत्रक, निद्रालु, शोफहारी, सुवक्। इसका गुण—उष्ण, सुगन्धि, पिशाच, वान्ति और भूतघ्न तथा घ्राणसन्तर्पणकारी। (राजनि०)

वनवह्नि (सं० पु०) वनस्य वनोद्भवो वा वह्निः। दावानल।

वनवात (सं० पु०) वनवायु, वनानिल।

वनवास (सं० पु०) वने वासः। १ वनका निवास, जङ्गलमें रहना। २ बस्ती छोड़ कर जङ्गलमें रहनेकी व्यवस्था या विधान। ३ मधूकवृक्ष, महुएका पेड़। (त्रि०) वने वासो यस्य। ४ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला।

वनवासक (सं० पु०) १ शाल्मलीकन्द। २ एक प्राचीन नगर जो कादम्ब राजाओंकी राजधानी था। कादम्ब देखो।

वनवासन (सं० पु०) वनं वासयति गन्धेनेति वासि-ल्यु। १ खट्टाश, उदविलाव। (त्रि०) २ वनमें वसाना।

वनवासिन् (सं० पु०) वनं वासयति सुरभीकरोति इति वासि-णिनि। १ ऋषभ नामक ओषधि। २ मुष्ककवृक्ष, मोखा नामका पेड़। ३ वाराहीकन्द। ४ शाल्मलीकन्द। ५ नीलमहिषकन्द। ६ द्रोणकाक, डोम कौआ, बड़ा काला कौआ। ७ द्वीपारन्तरस्थ खर्ज्जूरीवृक्ष, दोनों किनारे लगा हुआ खजूरका पेड़। (त्रि०) वने वसतीति वस-णिनि। ८ वनवासकारी, वनमें रहनेवाला, बस्ती छोड़ कर जङ्गलमें निवास करनेवाला।

वनवासी (सं० पु० त्रि०) वनवासिन् देखो।

वनवासी—दक्षिणमें तुङ्गभद्राकी शाखा वरदा नदीके किनारे बसा हुआ एक प्राचीन नगर। यह कादम्ब राजाओंका प्रधान नगर था। भौगोलिक टलेमी Banawasei नामसे इसका उल्लेख कर गये हैं। कादम्ब देखो।

वनवास्य—जनपदभेद, दक्षिणका वनवासी राज्य।

वनविड़ाल (सं० पु०) वनमार्जार।

वनविरोधिन् (सं० त्रि०) १ वनका शत्रु। (पु०) २ वर्षा ऋतु।

वनविलासिनी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी लता।

वनवीज (सं० पु०) वनवीजपूरक, जंगली विजौरा नीबू।

वनवीजपूरक (सं० पु०) वनजात मातुलुङ्ग वृक्ष, जंगली विजौरा नीबू। मराठी—वनवाहुलिङ्ग; कनाड़ी—कामाधवल। इसका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, रुच्य, वातघ्न, अम्लदोष और क्रिमिनाशक, कफघ्न तथा श्वासघ्न। (राजनि०)

वनवीर—सिसोदिया वीरवर पृथ्वीराजकी उपपत्नीके गर्भसे इसका जन्म हुआ था। राणा विक्रमाजीत और सरदारोंमें कुछ मनमुटाव हो गया। इसलिये सरदारोंने मेवाड़के सिंहासनसे राणा विक्रमाजीतको उतार कर उस पर वनवीरको बिठाया।

वनवीर गद्दी पर बैठते ही निष्कण्टक होनेका प्रयत्न करने लगा। राणा विक्रमाजीत तो उसकी आँखोंमें गड़ते ही थे। दूसरा संग्रामसिंहका छोटा लड़का उदयसिंह भी शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ रहा था। वह भी वनवीरका एक बहुत दृढ़ कण्टक था। वनवीरने अन्तमें अपने कण्टकोंको निकाल देना ही निश्चित किया। एक दिन वनवीर अपना विचार दृढ़ कर रातकी प्रतिक्षा करने लगा। धीरे धीरे रात आ गई। इस समय कुमार उदयसिंह भोजन करके सोये हैं, उनकी धाय विस्तरे पर बैठी सेवा कर रही है। उसी समय रनिवासमें रोने पीटनेकी आवाज सुनाई दी। धाय उठना ही चाहती थी, कि बारी राजकुमारकी जूठन उठाने वहां आया। उसने कहा बड़ा अनर्थ हुआ, वनवीरने राणा विक्रमाजीतको मार डाला। सुनते ही धायका हृदय कांपने लगा। वह समझ गई, कि वह दुष्ट राणाको मार कर ही क्यों चुप रहेगा। राजकुमारके भी प्राण लेने इधर आयगा। उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने एक टोकरेमें राजकुमारको लेटा कर ऊपरसे पत्ता ढाँप दिया और बारी द्वारा राजकुमारको वहांसे हटा दिया। उसके जाते ही वनवीर रुधिरसे सनी तलवार ले कर वहां आ गया। उसने पूछा "राजकुमार कहां है?" धायने राजकुमारके वदले अपने पुत्रको ही वतला दिया। वनवीरने उसे भी मार डाला और तबसे उसने अपनेको निष्कण्टक समझ लिया।

इस धायका प्रकृत नाम था पन्ना। वह उस बारीको ढूंढ़ते राजमहलसे बाहर निकली और पूर्वनिर्दिष्ट स्थान पर उसने राजकुमार तथा बारीको पाया। धायने कमलभीर नामक स्थानमें पहुंच राजकुमारको आशासाह नामक एक जैनीके घर रख दिया। राजकुमार वहीं फूलने फलने लगे। सामन्त सरदारोंने राजकुमारको अपना राजा मान लिया। जब वनवीरको इसकी खबर लगी, तब वह बहुत चिन्तित हुआ, लेकिन अब वह चिन्तित हो कर कर ही क्या सकता था। सरदारोंने कौशलसे राजकुमार उदयसिंहका अभिषेक किया और वनवीर भाग कर दक्षिणकी ओर चला गया। नागपुरके भोंसले उसीकी सन्तान हैं।

वनवृन्ताकी (सं० स्त्री०) वनस्य वृन्ताकी वार्त्ताकी। वृहती, वनभंटा।

वनव्रीहि (सं० पु०) वनस्य व्रीहिः। देवधान्य, ज्वार।

वनशिम्बिका (सं० स्त्री०) अरण्यशिम्बी, वनछीमी।

वनशूकरी (सं० स्त्री०) वनस्य शूकरीव रोमशत्वात् मांसलत्वाच्च। १ कपिकच्छु, केवाँच। २ आरण्यवराही, जंगली मादा सूअर।

वनशूरण (सं० पु०) वनजातः शूरणः। वनोद्भवाल, वन ओल। पर्य्याय—सितशूरण, वन्य, वनकन्द, अरण्यशूरण, वनज, श्वेतशूरण, वनकण्डुल। इसका गुण—रुच्य, कटु, उष्ण, कृमि, गुल्म और शूलादि दोषघ्न तथा सर्व अरुचिकारक।

वनशृङ्गाट (सं० पु०) वनस्य शृङ्गाट इव, कण्टकावृतत्वात्। गोक्षुर, गोखरू। पर्याय—क्षुरक, त्रिकण्ट, स्वादुकण्टक, गोकण्टक, गोक्षुरक, वनशृङ्गाट, पलङ्कषा, स्वदंष्ट्रा और इक्षुगन्धिका। (भावप्र० १म भाग)

वनशोभन (सं० क्ली०) वनं जलं शोभयतीति शुभ-णिच्-ल्यु। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ वनकी शोभा बढ़ानेवाला।

वनश्वन् (सं० पु०) वने वा श्वा कुक्कुरः। १ गन्धमार्जार, गंधबिलाव। २ वञ्चक, शृगाल। ३ व्याघ्र, बाघ।

वनषण्ड (सं० पु०) कमलका वन या जङ्गल।

वनषद् (सं० त्रि०) १ वनवासी, वनमें रहनेवाला। (पु०) २ रुद्र। (पार० गृ० ३।१५) वनसद् देखो।

वनसंप्रवेश (सं० पु०) लकड़ीकी देवमूर्त्ति बनानेके उद्देशसे लकड़ीके लिये वनमें जाना।

वनस् (सं० क्ली०) वननीय तेज और धन।

वनस (सं० पु०) १ इच्छा। २ अनुरक्ति। ३ वन।

वनसङ्कट (सं० पु०) वने सङ्कटो बाहुल्यं यस्य। मसूर।

वनसद् (सं० त्रि०) १ वनवासी। (पु०) २ वनवह्नि, दावाग्नि।

वनसमूह (सं० पु०) वनानां समूहः। १ अरण्यसंहति, वनराशि। पर्याय—वन्या, वान्या। २ जलसमूह, जलको ढेर।

वनसरोजिनी (सं० स्त्री०) वनस्य सरोजिनी पद्मिनीव शोभाकरत्वात्। वनकार्पासी, जङ्गली कपास।

वनसाह्वया (सं० स्त्री०) वन्य उपोदकी लता।

वनस्तम्भ (सं० पु०) गदके एक पुत्रका नाम।

वनस्थ (सं० पु०) वने तिष्ठतीति स्था-क। १ मृग। २ वानप्रस्थ। गृहस्थोंके द्विगुण, ब्रह्मचारियोंके त्रिगुण और वानप्रस्थ यतिओंके चतुर्गुण शौच होता है। (त्रि०) ३ वनवासी।

वनस्थली (सं० स्त्री०) वनभूमि, अरण्यदेश, जङ्गली जमीन।

वनस्था (सं० स्त्री०) वने तिष्ठतीति स्था-क-टाप्। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

वनस्थान (सं० क्ली०) जनपदभेद।

वनस्नेहफला (सं० स्त्री०) ह्रस्ववृहती, छोटी कटाई।

वनस्पति (सं० पु०) वनस्य पतिः। पारस्करादित्वात् सुट्। १ पुष्पहीन फलवान् वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फूल न हों केवल फल ही हों। जैसे—गूलर, वड़, पीपल आदि वट वर्गके वृक्ष। २ वृक्षमात्र, पेड़। ३ स्थालीवृक्ष, पाडरका पेड़। ४ वटवृक्ष, बरगद। ५ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भाग० ५।२०।२१) ६ घृतपृष्ठके एक पुत्रका नाम।

वनस्पतिकाय (सं० पु०) जागतिक वृक्षोंका समूह।

वनस्पतिशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसके द्वारा यह जाना जाता हो, कि पौधों और वृक्षों आदिके क्या क्या रूप और कौन कौन-सी जातियां होती हैं, उनके भिन्न भिन्न अंगोंकी बनावट कैसी होती है और कलम आदिके द्वारा किस प्रकारके नये पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं; वनस्पतिविज्ञान।

वनस्पतिसत्व (सं० पु०) एकाहभेद।

वनस्रज् (सं० स्त्री०) वनपुष्पोद्भवा या स्रक्। वनमाला।

वनहवन्दि (सं० पु०) नगरभेद।

वनहरि (सं० पु०) सिंह।

वनहरिद्रा (सं० स्त्री०) वनोद्भवा हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, जंगली हल्दी। महाराष्ट्र—साली; कोङ्कण—अडिविशका, अरिसिन; तैलङ्ग—कस्तूरि पशुपु, अड़विपसुपु; बम्बई—वनहल्द, कचोरा; तामिल—कस्तूरि मञ्जल। संस्कृत पर्याय—शोली, शोलिका, वनारिष्टा। गुण—कटु, रुचि-कर, तिक्त, दीपन और गौल्य।

वनहास (सं० पु०) वनस्य हास इव प्रकाशकत्वात्। १ काश, काँस। २ कुन्दका फूल।

वनहासक (सं० पु०) वनहास स्वार्थे कन्। काश, काँसा।

वनहुगली—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रसिद्ध गण्डग्राम।

वनहुताशन (सं० पु०) वनोद्भवः हुताशनः। वनाग्नि।

वनाखु (सं० पु०) वनस्याखुः। शशक, खरगोश।

वनाखुक (सं० पु०) मुद्ग, मूँग।

वनाग्नि (सं० पु०) वनजात अग्नि, वनआग।

वनाचार्य—चन्द्रभरणहोरा नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता।

वनाज (सं० पु०) वनस्य अजः। वनछाग, जंगली बकरा। पर्याय—इड़िक, शिशुवाहक, पृष्ठशृङ्ग।

वनाटन (सं० क्ली०) वने अटनं। वनभ्रमण, जंगलमें घूमना।

वनाटु (सं० पु०) वर्वणा, नीली मक्खी।

वनान्त (सं० पु०) वनस्य अन्तः। वनप्रान्त, जंगली भूमि या मैदान।

वनान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् वनं। अपर वन, दूसरा जंगल।

वनान्तराल (सं० क्ली०) वनपार्श्व, जंगलके आस-पासका स्थान।

वनापगा (सं० क्ली०) वनोद्भव नदी।

वनाब्जिनी (सं० स्त्री०) जलपद्म।

वनाभिलाव (सं० त्रि०) वनध्वंसकारी, जंगलको उजाड़ने-वाला।

वनामल (सं० पु०) वनस्य आमलः आमलक इव। कृष्ण-पाकफल, काला करौंदा।

वनाम्बिका (सं० स्त्री०) दक्षकन्या शक्तिमूर्त्तिभेद।

वनाम्र (सं० पु०) वनस्य आम्र इव। कोशाम्र, कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

वनायु (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। यहांका घोड़ा अच्छा होता था। २ इस देशमें रहनेवाली जाति। ३ दानवविशेष। (भारत १।६५।३०) ४ पुरूरवाके एक पुत्रका नाम।

वनायुज (सं० पु०) वनायौ देशे जायते जन-ड। वनायु-देशोद्भव घोटक, वनायु देशका घोड़ा।

वनारपुर—एक प्राचीन नगरका नाम।
(भविष्य ब्रह्मख० ५८।१७)

वनारिष्टा (सं० स्त्री०) वनजाता अरिष्टेव। वनहरिद्रा, जंगली हल्दी।

वनार्चक (सं० पु०) वनस्य अर्चक इव नियतपुष्पचारि-त्वात् तथात्वं। पुष्पजोवी, वह जो माला बना कर अपनी जीविका चलाता है।

वनार्द्रक (सं० पु०) वनोद्भव आर्द्रकः। जंगली अद-रक।

वनार्द्रका (सं० स्त्री०) वनार्द्रक, जंगली अदरक।

वनालक्त (सं० क्ली०) गैरिक, गेरू।

वनालय (सं० पु०) वनके बीचका रहनेका घर।

वनालयजीविन (सं० पु०) वह जो जंगली द्रव्य द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

वनालिका (सं० स्त्री०) वनं अलति भूषयति अल-ण्वुल्-टाप् टापि अत इत्वं। हस्तिशुण्डी लता, हाथीसूंडी।

वनाली (सं० स्त्री०) वनराजि, वनकी श्रेणी।

वनाश्रम (सं० पु०) वनमेव आश्रमः। वनरूप आश्रम।

वनाश्रमिन् (सं० त्रि०) वनाश्रमः अस्त्यर्थे इनि। जिसने वनाश्रय लिया है, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी।

वनाश्रय (सं० पु०) वनमेव आश्रयो यस्य। १ द्रोणकाक, डोम कौआ। (त्रि०) २ अरण्याश्रयी, जिसने वानप्रस्थ लिया है।

वनाश्रित (सं० त्रि०) वानप्रस्थाचारी, जिसने वान-प्रस्थ लिया है।

वनाहिर (सं० पु०) वनस्य आहिरः। शूकर, सूअर।

वनि (सं० पु०) वन (खनिकषिअजिअसिवसिसनिध्वनि ग्रन्थि चलिभ्यश्च। उण् ४।१३९) इति इ। अग्नि, आग।

वनिका (सं० स्त्री०) कुञ्जवन।

वनिकावास (सं० पु०) १ उपवन मध्यस्थ कुञ्ज। २ प्राचीन ग्रामविशेष।

वनित (सं० त्रि०) वन-क्त। १ याचित, मांगा हुआ। २ सेवित, सेवा किया हुआ।

वनिता (सं० स्त्री०) वन-क्त-टाप्। १ प्रिया, अनुरक्ता स्त्री, प्रियतमा। २ स्त्री, औरत। ३ छः वर्णोंकी एक वृत्ति। इसे 'तिलका' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। इसमें दो सगण होते हैं।

वनिताद्विष् (सं० पु०) स्त्रीद्वेषी, वह जो स्त्रीसे ईर्ष्या करता हो।

वनिताभोजिन् (सं० पु०) १ सर्पवत् क्रूरा स्त्री। २ नागकन्या।

वनितामुख (सं० पु०) १ पुराणानुसार मनुष्योंकी एक जाति। (मार्क०पु० ५८।३०) (क्ली०) २ स्त्री-मुखमण्डल।

वनिताविलास (सं० पु०) १ स्त्रियोंकी भोग करनेकी इच्छा। २ स्त्री-सम्भोग करनेकी इच्छा।

वनितास (सं० क्ली०) प्राचीन वंशभेद।

वनितृ (सं० त्रि०) १ याचक, मांगनेवाला। २ अधिकारी।

वनिन् (सं० पु०) वनं आश्रयत्वेनास्त्यस्येति वन-इनि। वानप्रस्थ।

वनिन (सं० क्ली०) १ वनजात पलाश आदि। (त्रि०) २ वारिदानकारी, जल देनेवाला। ३ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला। ४ वनोद्भव, वनका। ५ इच्छाशील, इच्छा करनेवाला। ६ पूजा या स्तुति करनेवाला।

वनिष्ठ (सं० त्रि०) दातृतम, बड़ा भारी दाता।

वनिष्ठु (सं० पु०) यज्ञ-पशुकी आँत, स्थविरान्त्र।

वनिष्णु (सं० पु०) अपान, गुदा।

वनी (सं० स्त्री०) वनस्थली, छोटा वन।

वनीक (सं० त्रि०) याचक, माँगनेवाला।

वनीयक (सं० त्रि०) वनिं याचनमिच्छतीति क्यच् ततो ण्वुल्। याचक, माँगनेवाला।

वनीयस् (सं० त्रि०) वन-ईयसुन्। अतिशय याचक, बहुत माँगनेवाला।

वनीवन् (सं० त्रि०) वननविशिष्ट, इच्छा करनेवाला।

वनीवाहन (सं० क्ली०) इतस्ततः सञ्चालन या स्थान परिवर्त्तन, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर लाना।

वनु (सं० पु०) हिंसा।

वनुष् (सं० त्रि०) १ हिंसक, मारनेवाला। २ संभक्ता।

वने-किंशुक (सं० पु०) वने किंशुक इव। अयाचित प्राप्त, वह वस्तु जो वैसे ही विना मांगे मिले जैसे वनमें किंशुक विना मांगे या प्रयास किये मिलता है।

वने-क्षुद्र (सं० स्त्री०) वनक्षुद्रा अलुक् समासः। करञ्ज। (रत्नमाला)

वनेचर (सं० त्रि०) वने चरतीति चर इति ट, तत्पुरुष कृतीत्य लुक्। अरण्यचारी, वनमें फिरनेवाला मनुष्य, जंगली आदमी।

वनेज्य (सं० पु०) वने इज्यः। १ वङ्करसाल, आम। २ पर्पटक, पापड़ा।

वनेवल्वक (सं० पु०) वह वस्तु जो वैसे ही विना मांगे मिलता है।

वनेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२०।५)

वनेराज (सं० स्त्री०) वने राजते राज क्विप्, अलुक् समासः। दावानलकी तरह जंगलमें विराजमान। "तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट्" (ऋक् ६।१२।३) 'वनेराट् दावरूपेणारण्ये राजमाणा' (सायण)

वनेरुहा (सं० स्त्री०) त्रिपर्णी कन्द, तिलकन्द।

वनेशय (सं० त्रि०) वनवासी।

वनेसर्ज्ज (सं० पु०) वने सर्ज्ज इव। असन वृक्ष।

वनैकदेश (सं० पु०) वनका एक भाग।

वनोत्सर्ग (सं० पु०) १ देवमन्दिर, वापी, कूप, उपवन आदिका उत्सर्ग जो शास्त्रविधिसे किया जाता है; मन्दिर, कूआँ आदि बनवा कर सर्वसाधारणके लिये दान करना। २ ऐसे दान या उत्सर्गकी विधि।

वनोत्सव (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

वनोत्साह (सं० पु०) गण्डार, गैंड़ा।

वनोद—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके झालावार प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। भू परिमाण ५८ वर्गमील है। यहांके अधिवासी लोग अङ्गरेज राजको सालाना १६५०) रु० कर देते हैं। २ उक्त राज्यके अन्तर्गत एक गण्डग्राम।

वनोद्देश (सं० पु०) १ वनसमीप, जंगलके पासका स्थान। २ वनके बीचका स्थान।

वनोद्भव (सं० त्रि०) वने उद्भवो यस्य। १ वन्यतिल, जंगली तिल। २ शृगालकोली, कर्कंधु। ३ वनशूरण, जंगली ओल। ४ वनवीजपूरक, जंगली विजौरा नोबू।

वनोद्भवा (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, जंगली कपास। २ काष्ठमल्लिका। ३ मुद्गपर्णी, मुगानी।

वनोपप्लव (सं० क्ली०) १ वनदहन। २ दावानल।

वनोर्वी (सं० स्त्री०) वनके समीपका स्थान।

वनौकस् (सं० पु०) वनमेव ओको गृहं यस्य। १ वानर, वन्दर। २ शुकशिम्बी, केवाँच। (त्रि०) ३ वनवासी, वह जिसका घर वनमें हो।

वनौघ (सं० पु०) १ वनसमूह। २ भारतके पश्चिम-दिक्स्थ एक पर्वत और उसके पासका जनपद।

वनौषध (सं० स्त्री०) वनकी ओषधियां, जंगली जड़ी बूटी

वन्ति (सं० त्रि०) वन-संभक्तौ तृच्। संभक्ता।

वन्थलि (वामनस्थली)—बम्बईप्रदेशके सौराष्ट्र-प्रान्तस्थ एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २१° २८´ उ० तथा देशा० ७०° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जूनागढ़से यह ४॥० कोस दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। स्थानीय प्रवाद है, कि भगवान् नारायण वामनरूपमें इस नगरमें अवतीर्ण हुए थे। उन्हींके नामानुसार पीछे यह स्थान वामनस्थली कहलाने लगा। यहां लोहे और तांबेके बरतन बनानेका जोरों कारवार चलता है।

वन्दक (सं० त्रि०) वन्दते इति वन्द-ण्वुल्। वन्दनाकारी, स्तुति करनेवाला।

वन्दका (सं० स्त्री०) वन्दक-टाप्। वन्दा।

वन्दथ (सं० पु०) वन्दते स्तौति वन्द्यते स्तूयते इति वा अथ (वन्दशीङ् शपिरुगमिवश्चिजीवि प्राणिभ्योऽथ)। १ स्तोता, स्तुति करनेवाला। २ स्तुत्य, स्तव या स्तुतिके योग्य।

वन्दन (सं० क्ली०) वन्दतेऽनेनेति वन्द-करणे ल्युट्। १ वदन। वन्द भावे ल्युट्। २ प्रणाम, स्तुति।

हरिभक्तिविलासमें १६ प्रकारकी भक्ति बतलाई है, उनमेंसे वन्दन एक है। भक्तोंको चाहिये; कि वे भव बन्धन काटनेके लिये भगवान्‌में १६ प्रकारकी भक्ति दिखलावें।

> "आद्यन्तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं हरेः।
> धारणञ्चोर्द्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः॥
> अर्च्चनञ्च जपो ध्यानं तन्नामस्मरणं तथा।
> कीर्त्तनं श्रवणञ्चैव वन्दनं पादसेवनं॥
> तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनं।
> तदीयानाञ्च संसेवा द्वादशीव्रतनिष्ठता॥
> तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
> भक्तिः षोड़शधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये॥"

(हरिभक्तिवि० ११ वि०)

देवपूजामें षोड़शोपचारके मध्य यह अन्तिम उपचार है। देवताकी षोड़शोपचार द्वारा पूजा करनेमें शेषमें वन्दन करना होता है।

हरिभक्तिविलासमें वन्दनका विषय इस प्रकार लिखा है। भगवान्‌का स्तुतिपाठ करके वन्दन करनेका विधान है। दोनों हाथसे भगवान्‌के दोनों चरण पकड़ कर शिरको झुका कर वन्दना करे कि, 'हे ईश! मृत्युके आक्रमण-रूप समुद्रसे त्रस्त और आपके आश्रित हूं, मुझे परित्राण कीजिये।

इसके सिवा दोनों बाहु, दोनों चरण, वक्ष, शिर, दृष्टि, मन और वचन इन अष्टाङ्ग द्वारा वन्दन करना होता है। दोनों घुटने, दोनों बाहु, शिर, वचन और बुद्धि इन पञ्चाङ्ग द्वारा भी वन्दन किया जाता है। यह वन्दन निखिल यज्ञमें प्रधान है। एकमात्र वन्दन द्वारा मन विशुद्ध हो कर हरिके दर्शन हो सकते हैं। वन्दन-कालमें भक्तोंके शरीरमें जितनी धूलिकणा रहेंगी, उतने मन्वन्तर उनका स्वर्गमें वास होगा। जो व्यक्ति असंख्य पाप करके अज्ञानमें मुग्ध रहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक हरिकी वन्दना करे, तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव देव-वन्दन पापनाशक और स्वर्गजनक है। देवप्रतिमाको देखनेसे ही वन्दन करना होता है। अज्ञानवशतः यदि देववन्दन न करे, तो उसे नरकमें जाना पड़ता है।

(हरिभक्तिवि० ८वि) प्रणाम और नमस्कार शब्द देखो।

३ शरीर पर बनाये हुए तिलक आदि चिह्न। ४ वंदाक.

बाँदा। ५ एक विषका नाम। ६ एक असुरका नाम। ७ एक राक्षसका नाम। (ऋक् ७।५।१२)

वन्दन—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग और उसके नीचेमें अवस्थित एक बड़ा ग्राम।

वन्दनमाला (सं० स्त्री०) वन्दनार्थं माला यत्र सा। १ तोरण, वहिर्द्वार। २ वन्दनवार, वह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर उत्सवके समय बाँधी जाती है। इस मालामें फूल पत्तियां गुछी रहती है। यज्ञादिमें आमके पल्लव गूँथे जाते हैं।

वन्दनमालिका (सं० स्त्री०) वन्दनमाला स्वार्थे कन्-टाप्, इत्वं। वहिर्द्वारोपरि शुभदा माला, वह माला जो सजावटके लिये घरोंके द्वार पर या मण्डपके चारों ओर उत्सवके समय बाँधी जाती है।

वन्दनवार (हि० स्त्री०) वन्दनमालिका देखो।

वन्दनश्रुत् (सं० त्रि०) वदि अभिवादन स्तुत्योः इदित्वा न्नुम् भावे ल्युट् तेषां श्रोता ; श्रु श्रवणे क्विपि तुगागमः। स्तुतिके श्रोता। (ऋक् ५५।१७)

वन्दना (सं० स्त्री०) वन्द (घट्टि-वन्दि-विदिभ्यश्चेति वाच्यं। पा ३।३।१०७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या युच्, टाप्। १ स्तुति। पर्याय—समीची। २ प्रणाम, वन्दन। ३ होम भस्म द्वारा तिलक, वह तिलक जो होमकी भस्मसे यज्ञके अन्तमें लगाया जाता है।

कवि लोग ग्रन्थके आरम्भमें निर्विघ्नपूर्वक ग्रन्थकी परिसमाप्तिकी कामनासे देवताकी वन्दना किया करते हैं।

वन्दनी (सं० स्त्री०) वन्द ल्युट्-ङीप्। १ नति, स्तुति। २ जीवातु नामक ओषधि। ३ गोरोचन। ४ वटी। ५ याचना कर्म। ६ तिलकादि चिह्न जो शरीर पर बनाए जाते हैं।

वन्दनीय (सं० त्रि०) वन्दना करने योग्य, आदर करने लायक।

वन्दनीया (सं० स्त्री०) वन्दनीय-टाप्। १ पूजनीया। २ गोरोचना।

वन्दा (सं० स्त्री०) वन्दते अपरवृक्षमिति वदि-अच्, टाप्। वृक्षोपरि वृक्ष, दूसरे पेड़ोंके ऊपर उसीके रससे पलनेवाला एक प्रकारका पौधा, बाँदा। (Epidendrum tessellatum) इसका स्वाद तिक्त होता है और वैद्यकमें यह कफ, पित्त तथा श्रमको दूर करनेवाला कहा गया है।

वन्दाक (सं० पु०) वृक्षोपरिवृक्ष, बांदा।

वन्दाका (सं० स्त्री०) वन्दा, बांदा।

वन्दाकी (सं० स्त्री०) वन्दा, बांदा।

वन्दारु (सं० त्रि०) वन्दते स्तौति अभिवादयतीति वन्द (शवन्द्योरारुः। पा ३।२।१७२) इति आरु। १ वन्दनशील। (क्ली०) २ स्तोत्र। ३ वन्दाक, बाँदा।

वन्दि (सं० स्त्री०) वन्दते स्तौति नृपादिकं स्वमुक्त्यर्थमिति वदि (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ आकृष्ट मनुष्य गवादि, कैदी। पर्याय—प्रग्रह, उपग्रह, वन्दी, वन्दिका। (शब्दरत्ना०) २ सोपान, सीढ़ी। ३ लूट या चोरीका माल। (पु०) ४ स्तुतिपाठक, राजाओंका यश वर्णन करनेवाला।

वन्दिग्राह (सं० पु०) वन्दिमिव गृहस्थं गृह्णातीति ग्रहक। अग्न्यायुध देवनागारभेदक, डकैत। ये लोग गृहस्थको वन्दीकी तरह रुद्ध कर उसका यथासर्वस्व लूट लेते हैं। मिताक्षरामें लिखा है, कि राजा इन्हें शूली पर चढ़ा देवें।

वन्दिचौर (सं० पु०) वन्दिमिव विधाय चौरः अपहारकः गृहस्थं वन्दिमिव कृत्वा समस्तद्रव्याणामपहारकत्वादस्य तथात्वं। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—माचल, वन्दीकार। (त्रिका०)

वन्दितृ (सं० त्रि०) वन्द-तृच्। वन्दक, वन्दना करनेवाला।

वन्दिदेश—प्राचीन जनपदभेद। शायद यही राजपूतानेके अन्तर्गत बूंदी राज्य है। (तापीख० ४७ अ०)

वन्दिन् (सं० पु०) वन्दते स्तौति नृपादीनिति वदिस्तुतौ णिनि। राजाओंकी यात्रादिमें वीर्यादि-स्तुतिकारक। पर्याय—स्तुतिपाठक, मागध, मगध। प्रतियाममें जयघोषणादि द्वारा राजाओंका स्तुतिपाठ करना ही इनकी वृत्ति है। ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रियके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है।

"क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।"

(मनु० १४ अ०)

श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि श्राद्धके बाद इन्हें यथाशक्ति दान देना चाहिये। यदि इन्हें कुछ न दिया जाय, तो श्राद्ध निष्फल होता है। फिर शास्त्रमें लिखा है, कि श्राद्धके बाद दान नहीं करना चाहिए, किन्तु दूसरी जगह

लिखा है, कि श्राद्धके बाद वन्दियोंको यथाशक्ति दान देना उचित है। कहनेका तात्पर्य यह कि श्राद्धके पहले इनके लिये भोज्यादि उत्सर्ग करके श्राद्धके बाद इन्हें वह सब वस्तु देवें। -

वन्दिनीका (सं० स्त्री०) एक दाक्षायणीका नाम।

वन्दिपाठ (सं० पु०) भट्टवंशियोंका गीत वा वंशकीर्त्ति-वर्णना।

वन्दिमिश्र—बालचिकित्साके रचयिता।

वन्दिवास (वन्दिवासु)—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत एक उपविभाग या तालुक। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील है। यह स्थान शस्यशाली नहीं है। समतल प्रान्तमें परिव्याप्त होने पर भी वहांकी अधिकांश मिट्टी बालुका तथा कंकड़ोंसे परिपूर्ण है। बीच बीचमें लाल अथवा कृष्णवर्ण भूमिखण्ड देखा जाता है। किन्तु वह क्षार-मिश्रित होनेके कारण शस्योत्पादनके उपयोगी नहीं होता। इस उपविभागमें दो एक उन्नत शिखरवाला पर्वत भी दण्डायमान है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ३०' उ० तथा देशा० ७९° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है। विगत कर्णाटक-युद्धके समय इस स्थानमें भी युद्ध हुआ था। आर्कटके नवाव-वंशके आत्मीय एक मुसलमान सामन्त वन्दिवासदुर्गके अधिनायक थे। १७५२ ई०में अंग्रेज-सेनापति मेजर लारेन्सने वन्दिवास पर आक्रमण किया था। तदनन्तर १७५७ ई०में कप्तान आल्डरकोम नगरको जला कर भी दुर्ग पर अधिकार न कर सके। तत्काल ही दुर्गके मध्य अवस्थित फरासी सेनाने अंग्रेजोंको भगा दिया। १७५९ ई०में मनसोनने अत्यन्त तीव्रगतिसे दुर्ग पर आक्रमण किया तो सही, किन्तु दुर्ग विजय करनेसे असमर्थ हो अपनी सेना ले कर प्रत्यावृत्त हुए। इसी समय दुर्गस्थ फरासी सेनादल विद्रोही हो उठा। अंगरेज-सेनापति आयरकूटने सुअवसर पा कर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्गवासिगणने कुछ दिन अवरोध करनेके बाद अंगरेजोंको आत्मसमर्पण किया। फरासियोंके मुखग्रास हस्तच्युत देख कर १७६० ई०के पहले सेनापति लाली अपने दलबलके साथ दुर्गके सामने आ उपस्थित हुए। देखते देखते दो दिनके मध्य ही लगभग ३ हजार मराठी सेनाके साथ बुशी-रणक्षेत्रमें आ डटे। फरासी सेनाने दुर्गको घेर लिया। निरुपाय हो कर सर आयरकूटने एक दिन दुर्गका द्वार उन्मोचन करके सशस्त्र सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। दोनों दलमें घोरतर संग्राम हुआ; अन्तमें फरासीगण पराजित हुए। बुशी अंगरेजोंके हाथ वन्दी हुए। फरासियोंके साथ अंग्रेजोंकी भारतवर्षमें और कभी ऐसी लड़ाई नहीं हुई। १७८० ई०से ले कर प्रायः तीन वर्ष तक लेफ्टीनेन्ट फिलटने अत्यन्त कौशलके साथ महिसुरपति हैदर अलीकी चढ़ाइयोंसे इस दुर्गकी रक्षा की थी। हैदराबाद पर आक्रमण करनेके समयमें सेनापति आयरकूटने उन्हें दो लड़ाइयोंमें सहायता दी थी एवं दूसरी दूसरी लड़ाईमें उन्होंने अत्यन्त दक्षताके साथ अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए शत्रुदलको मार भगाया था।

वन्दी (सं० स्त्री०) वन्दि 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष्। वन्दा, स्तुतिपाठक।

वन्दीक (सं० पु०) इन्द्र।

वन्दीकार (सं० पु०) वन्दीवत् गृहस्थं करोतीति कृ अण्। वन्दिग्राह, डकैत। पर्याय—माचल, प्रसह्यचौर, विलाभ।

वन्दीकृत (सं० त्रि०) कारावरुद्ध, जो कैदमें बन्द हो।

वन्दीजन (सं० पु०) राजाओं आदिका यश वर्णन करनेवाला एक प्राचीन जाति।

वन्दीपाल (सं० पु०) कारारक्षा (Jailor)।

वन्द्य (सं० त्रि०) वन्द्यते स्तूयते इति वदि-ण्यत्। वन्दनीय, वन्दना करने योग्य।

वन्द्यता (सं० स्त्री०) वन्द्यस्य भावः तल्-टाप्। वन्द्यत्व, वन्द्यका भाव या धर्म।

वन्द्या (सं० स्त्री०) १ वन्द, बाँदा। २ गोरोचना।

वन्द्र (सं० त्रि०) वन्दते स्तौति देवादीन् पूजाकाले इति वन्दि-रक्। पूजक।

वन्धुर (सं० क्ली०) १ रथ या गाड़ीका आश्रय जिसमें दोनों हरसे और धुरा प्रधान है। २ गाड़ीमेंका वह स्थान जहां सारथी या गाड़ीवान बैठ कर उसे चलाता है। सायणाचार्यने वेदभाष्यमें इसका अर्थ यों किया है;—'नीड़ वन्धनाधारभूततम, उन्नतानतरूपवन्धनकाष्ठम्,

वेष्टितं सारथेः स्थानम् यद्वा सारथ्याश्रयस्थानम् ।' पवर्गमें देखो।

वन्धुरस्थ (सं० त्रि०) रथासने उपविष्ट। रथारूढ, रथ पर बैठा हुआ।

वन्धुरायु (सं० त्रि०) वन्धुरयुक्त।

वन्धुरेष्ठा (सं० त्रि०) रथोपविष्ट, रथ पर बैठा हुआ। (इन्द्र)। (ऋक् ३।४३।१)

वन्न—बम्बई-प्रदेशके झालावर प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त-राज्य। यह तीन ग्राम ले कर बना है। भूपरिमाण २४ वर्ग-मील है। यहांके अधिवासी अभी छः अंशोंमें विभक्त हो गये हैं। कुल राजस्व २२३१०१) रु० हैं जिनमें अङ्गरेजराज को वार्षिक ३७१५) रु० और जूनागढ़के नवावको २७७) रु० करमें देने पड़ते हैं।

वन्य (सं० त्रि०) वने भव, वन-यत्। १ वनोद्भूत, वनमें उत्पन्न होनेवाला। २ आरण्य, जङ्गली। (क्ली०) ३ त्वच, दारचीनी। ४ कुटन्नट, नागरमोथा। ५ वनशूरण, जङ्गली जिमीकन्द। ६ वाराहीकन्द। ७ देवनल। ८ क्षीरविदारी। ९ शङ्ख। १० लताशाल।

वन्यजा (सं० स्त्री०) वनोपोदकी, जङ्गली कलम्बी साग।

वन्यजीरक (सं० क्ली०) वनज कटु, जीरक, वनजीरा।

वन्यदमन (सं० क्ली०) वनज दमनपुष्प जङ्गली दौनेका फूल। इसे महाराष्ट्रमें राणदवणा और कलिङ्गमें काडावण कहते हैं। इसका गुण वीर्यस्तम्भक, बलप्रद और आमदोष-नाशकमाना गया है।

वन्यद्वीप (सं० पु०) वन्यहस्ती, जङ्गली हाथी।

वन्यधान्य (सं० क्ली०) नीवार, पसही वा तिनीके चावल।

वन्यपक्षी (सं० पु०) वनजात पक्षी, वह चिड़िया जो स्वच्छन्दपूर्वक वनमें विहार करती है।

वन्यवृक्ष (सं० पु०) १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़। १ जङ्गली पेड़।

वन्यवृत्ति (सं० स्त्री०) वन्योपजीविका। अरण्यवासीका जीवनोपाय।

वन्यसहचारी (सं० स्त्री०) पीतझिण्टी।

वन्या (सं० स्त्री०) वनानामरण्यानां जलानां वा संहतिः वन् (पाशादिभ्यो यः। पा ४।२।४९) इति य-टाप्। १ वन-समूह, वनसंहति। २ मुद्गपर्णी। ३ गोपालकर्कटी, ग्वाल-ककड़ी। ४ गुञ्जा। ५ मिश्रेया, सौंफ। ६ भद्रमुस्ता, भद्र-मोथा। ७ गन्धपत्रा। ८ अश्वगन्धा, असगन्ध। ९ जल-प्लावन, जलसंहति। १० पिण्डखजूर। ११ वनहरिद्रा, जङ्गली हल्दी। १२ मेथिका, मेथी।

वन्याशन (सं० त्रि०) वन्यफलाशी, जङ्गली फल खाने-वाला।

वन्याश्रम (सं० पु०) वनाश्रम।

वन्येतर (सं० त्रि०) १ गृहपालित, पालतू। २ शिक्षित। ३ सभ्य।

वन्योपोदकी (सं० स्त्री०) वन्या वनोद्भवा उपोदकी। लताविशेष। पर्याय—वनजा, वनसाह्वया। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रोचन।

वन्र (सं० पु०) वनति भागमर्हति वनसंभक्तौ (ऋज्रेन्द्राग्रवज्रेति। उण् २।२८) इति रन् प्रत्ययः। अंशी, हिस्से-दार।

वप (सं० पु०) वप घ। १ केशमुण्डन, बाल मुड़ना। २ बीजवपन, बीया बोना।

वपन (सं० क्ली०) वप भावे ल्युट्। १ केशमुण्डन, सिर मुड़ना। २ बीजाधान, बीज बोना।

बीजवपन ज्योतिषोक्त दिन देख कर करना चाहिये। कुदिनमें करनेसे कोई फल नहीं होता। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रोंमें; चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या तिथिमें; शुभग्रहके केन्द्रस्थ होनेसे; स्थिरलग्न वा जन्मलग्न और मिथुन, तुला, कन्या, कुम्भ, और धनुर्लग्नके पूर्वभागमें बीजवपन करनेसे शुभ होता है।

वपनी (सं० स्त्री०) उप्यते मस्तकादिकस्यामिति वप्-अधिकरणे ल्युट् ङीप्। १ नापितशाला, वह स्थान जहां हज्जाम बैठ कर हजामत बनाते हैं। २ तन्तुवायशाला, वह स्थान जहां जुलाहे कपड़ा बुनते हैं। ३ दरकी।

वपनीय (सं० त्रि०) वप-अनीयर्। १ वपनयोग्य, बोने-लायक। २ निषेकयोग्य, वीर्यपात। आयुष्कामी व्यक्तिको चाहिये, कि वे कभी भी परस्त्रीमें बीजवपन न करें।

वपरु (सं० पु०) केशराज।

वपा (सं० स्त्री०) उप्यतेऽसौ इति वप् भिदाद्यङ्, टाप्।

१ छिद्र, छेद। २ चरबी, मेद। ३. वल्मीकि, बाँबी।

वपाटिका (सं० स्त्री०) अवपाटिका, एक रोग। इसमें लिङ्गको आच्छादन करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है।

वपावत् (सं० त्रि०) वपा-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। प्रवृद्ध, मोटा ताजा।

वपावह (सं० क्ली०) मेदस्थान रूप कोष्ठाङ्ग।
(चरकसू० ७ अ०)

वपिल (सं० पु०) वपति वीजमिति वप-इलच्। पिता, बाप।

वपु (सं० पु०) वपुस् देखो।

वपुन (सं० पु०) वप-उनच् वा वयुन पृषोदरादित्वात् यस्य पः। देवता।

वपुनन्दन—एक प्राचीन कवि।

वपुर्धर (सं० त्रि०) धरतीति धृ-अच्, वपुसो धरः। देहधारी।

वपुषा (सं० स्त्री०) हवुषा।

वपुष्टमा (सं० स्त्री०) १ पञ्चचारिणी लता। (जटाधर) २ रूप। (ऋक् ३।२।१५) ३ काशीराजकी कन्या। परीक्षित्के पुत्र जनमेजयसे इनका विवाह हुआ था। हरिवंशमें लिखा है, कि राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर अश्ववध किया। वपुष्टमा उस मरे घोड़ेके पास बैठी हुई थी। देवराज उस राजमहिषीको सर्वाङ्गसुन्दरी देख कर मोहित हो गये और घोड़के शरीरमें प्रवेश कर उसके साथ संभोग किया। जनमेजयने घोड़ेको जीवित देख ऋत्विकोंको इसका कारण पूछा। उन्होंने इन्द्रकी दुरभिसन्धिकी बात कह दी। इस पर जनमेजय बहुत विगड़े और इन्द्रको शाप दिया कि, 'तुमने भारी दुष्कर्म किया है, इसलिये आजसे कोई भी अश्वमेध-यज्ञमें तुम्हारी अर्चना न करेगा।' पीछे ऋत्विकोंकी असावधानीसे ऐसी घटना घटी है, समझ कर उन्हें देशसे निकाल भगाया। इसके बाद वे वपुष्टमाको फटकार रहे थे, इसी समय विश्वावसु नामक गन्धर्वराज वहां पहुंचे और राजासे कहने लगे, 'राजन्! आप तीन सौ अश्वमेध-यज्ञ कर चुके हैं, इस कारण इन्द्रने अपने इन्द्रत्वलोपकी आशङ्कासे रम्भा नामक अप्सराको भेजा था। उसी रम्भाने काशीराजदुहिता रूपमें जन्म ग्रहण किया है। यह वपुष्टमा ही रम्भा नामकी अप्सरा है। इन्द्र इसी छलसे अपना कार्य सिद्ध कर चले गये हैं, आप इसके लिये दुःखित न होवें। काल ही इसका एकमात्र कारण है। ऋत्विकोंका आपने जो अपमान किया, उससे आपका पुण्यक्षय हुआ। इन्द्रके जो आपका भय था, वह भी जाता रहा, इसलिये आप वपुष्टमाको वृथा तिरस्कार न करें। आप इसे पुनः ग्रहण करें, कोई दोष न होगा।' विश्वावसुके कहनेसे राजा जनमेजयने वपुष्टमाको फिरसे ग्रहण किया।
(हरिवंश १९२-१९६ अ०)

वपुष्मत् (सं० त्रि०) वपुस् प्रशस्तार्थे मतुप्। १ प्रशस्त शरीरी, उत्तम शरीरवाला। (पु०) २ शाकद्वीपपति।

वपुष्य (सं० त्रि०) वपुस्-हितार्थे यत्। शरीरको भलाई करनेवाला।

वपुस् (सं० क्ली०) उप्यन्ते देहान्तरभोगसाधन वीजोभूतानि कर्माण्यत्रेति वप् (अर्त्ति-पॄ-वपि यजीति। उण् २।११८) इति उसि। १ शरीर, देह। २ प्रशस्ताकृति, मनोहररूप। ३ अंश, भाग। (स्त्री०) ४ स्वनामख्यात दक्षकी कन्या। यह धर्मराजकी पत्नी थीं।
(मार्कण्डेयपु० ५०।२१)

वपुःप्रकर्ष (सं० त्रि०) शारीरिक सौन्दर्य।

वपुःस्रव (सं० पु०) वपुषः शरीरात् स्रवः क्षरणं यस्य। शरीरस्थित रसधातु।

वपुस्सात् (सं० अ०) शरीरके आकारमें।

वपोदर (सं० त्रि०) पीवरोदर, तोंद।

वप्तव्य (सं० त्रि०) वप-तव्य। वपनीय, वोने लायक। परस्त्रीमें वीज वपन नहीं करना चाहिये।

वप्ता (हिं० पु०) वप्तृ देखो।

वप्तृ (सं० पु०) वपति वीजमिति वप तृच्। १ जनक, पिता। २ कवि। ३ नापित, नाई। (ऋक् १।१४२।४) (त्रि०) ४ वापक, वीज वोनेवाला। ५ कर्षक, जोतनेवाला।

वप्प (सं० पु०) १ पिता। २ पूज्य देवगुरुजन प्रभृति। ३ मेवाड़के राणाओंके पूर्वपुरुष। मेवाड़ देखो।

वप्पटदेवी (सं० स्त्री०) राजमहिषीभेद।

वप्पिय (सं० पु०) एक हिन्दू राजा।

वप्पीह (सं० पु०) चातक (Cocul s Melanoleucus)।

वप्पट—मगधके पालवंशीय प्रथम राजा गोपालके पिता।

वप्यनील (सं० पु०) जनपदभेद।

वप्र (सं० पु० क्ली०) उप्यतेऽत्रेति वप-(कृषिवपिभ्यां रन्। उण् २।२७) इति रन्। १ मिट्टीका ऊंचा धुस्स जो गढ़ या नगरकी खाईसे निकली हुई मिट्टीके ढेरसे चारों ओर उठाया जाता है और जिसके ऊपर प्राकार या दीवार होती है। पर्याय—चय, मृत्तिकास्तूप। (शब्दरत्ना०) दीवारकी तरह खड़ा कृत्रिम मृत्तिकास्तूपका नाम ही वप्र है।

वपति वीजमत्रेति। २ क्षेत्र, खेत। बृहत्संहिता-में लिखा है, कि शुक्र जब वर्षाधिप होते हैं, तब शैलोपम जलदजाल वारि वर्षण करता है, इससे वप्र या खेत भर जाता है, पृथिवी हरियाली दिखाई देती है तथा धान और ईख काफी उत्पन्न होती है। ३ रेणु, धूल। ४ तट, किनारा। ५ पर्वतसानु, पहाड़की चोटी। ६ टीला, भीटा। ७ सीसा नामकी धातु। ८ प्रजापति। (संक्षिप्तसार उणादिवृत्ति) ९ द्वापरयुगके एक व्यास। १० चौदहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

वप्रक (सं० पु०) गोलवृत्तिकी परिधि, गोलाईका घेरा।

वप्रक्रिया (सं० स्त्री०) टीले या ऊंचे उठे हुए मिट्टीके ढेरको हाथी, सांड़ आदिका दांतों या सींगोंसे मारना। यह उनकी एक क्रीड़ा है।

वप्रक्रीड़ा (सं० स्त्री०) वप्रक्रिया देखो।

वप्रवाद—चम्पारनके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह तिलपर्णी नदीके किनारे अवस्थित है।

(भविष्य ब्रह्मख० ४२।२१३)

वप्रा (सं० स्त्री०) वप-रन्-टाप्। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ जैनोंके इक्कीसवें जिन नेमिनाथकी माताका नाम।

वप्रानत (सं० त्रि०) क्रीड़ाके लिये उच्च भूमिके सामने सिर झुकाये हुए।

वप्रान्तर (सं० अव्य०) दोनों किनारेके बीच।

वप्राभिघात (सं० पु०) वप्रक्रीड़ा।

वप्राम्भःस्रुति (सं० स्त्री०) १ नदीकूलवाही स्रोतका जल। २ शाखानदी।

वप्राम्भस् (सं० क्ली०) तीरवाही स्रोतका जल।

वप्रि (सं० पु०) वपति वीजमत्र वप-क्रिन् (वङ्क्र्यादयश्च। उण् ४।६६) १ क्षेत्र, खेत। २ स्थानकी दुर्गमता। ३ समुद्र।

वप्सस् (सं० क्ली०) १ रूप। २ वपु, देह।

वफ़ा (अ० स्त्री०) १ वादा पूरा करना, वात निवाहना। २ निर्वाह, पूर्णता। ३ सुशीलता, मुरौवत।

वफ़ात (सं० स्त्री०) मृत्यु, मरण।

वफ़ादार (अ० वि०) १ वचन या कर्त्तव्यका पालन करनेवाला। २ अपने कामको ईमानदारीसे करनेवाला। ३ सच्चा।

वव (सं० पु०) एकादश करणके अन्तर्गत प्रथम करण। इस करणके अधिपति इन्द्र हैं। इस करणमें जन्म लेनेसे मनुष्य वलवान्, अति धीर, कृती और अति विचक्षण होता है। लक्ष्मी उसके घरमें हमेशा वास करती हैं।

(कोष्ठीप्र०)

दाक्षिणात्य ज्योतिर्विदोंके मतसे 'वव' शब्दका प्रथम वकार वर्गीय और अन्तिम वकार अन्तःस्थ है।

ववा (अ० स्त्री०) १ मरी, महामारी। २ छूतका रोग।

ववाल (अ० पु०) १ वोझ भार। २ आपत्ति, कठिनाई। ३ घोर विपत्ति, आफत। ४ ईश्वरीय कोप। ५ पापका फल।

वभ्रु (सं० पु०) १ मण्डली सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप। २ एक यदुवंशी योद्धा। बभ्रु देखो।

वभ्रुधातु (सं० पु०) सुवर्ण-गैरिक, स्वर्णगेरू मिट्टी।

वभ्रुवाहन—वभ्रुवाहन देखो।

वम् (सं० क्ली०) १ शिवपूजाके बाद गालका बजाना। वम् वम् देखो। २ वरुणवीज।

वम (सं० पु० स्त्री०) वम-अच्। वमन, उलटी।

वमथु (सं० पु०) वमनमिति वम-अथुच् (द्वितोऽथुच्। पा ३।३।८९) १ वमि, कै करना। २ हाथीकी सूड़से निकली हुई जलकणा। पर्याय—करिशीकर।

वमन (सं० क्ली०) वम-भावे ल्युट्। १ छर्द्दन, कै करना। ज्वरादिमें रोगीको जरूरत पड़ने पर वमन कराया जा सकता है। (वाभट) २ वमनद्रव्य, वमन करनेका

पदार्थ। ३ आहुति। ४ आहार। ५ अर्द्दन, पीड़ा। ६ शण, पटसन।

वमनकल्प (सं० पु०) वमन करानेके लिये मदनादि अनेक प्रकारकी योग-योजनविधि। इनमेंसे वमनकल्प ही उत्तम है। (सुश्रुत० सू० ४३ अ०)

वमनद्रव्य (सं० क्ली०) वमिकारक वस्तु। वे ये सब हैं—मैनफल, कूटजकी छाल, देवताड़का फूल, तितलौकीका फूल, घोषा फल, श्वेतघोषा, सफेद सरसों, विड़ङ्ग, पीपल, करञ्ज, नागेश्वर, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, नीम, असगंध, बेत, अपराजिता, कुंदरूका फल, वच, ग्वालककड़ी आदि। (सुश्रुत सू० ३९ अ०)

वमनविधि (सं० त्रि०) वमनक्रिया। वमनक्रियाका समय पूर्वाह्न है। चिकित्सकको चाहिये कि वे शरत्, वसन्त और वर्षाकालमें ही रोगीको रेचन और वमन करावें।

(भावप्र०)

जो रोगी कफाक्रान्त, बलवान्, हिक्कारोगादि द्वारा पीड़ित और वीर हैं, वैसे रोगीको ही वमन कराना उचित है। (भावप्र०)

विषदोष, स्तन्यरोग, अग्निमान्द्य, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, महाजीर्ण, विदारिका, अपची, कास, श्वास, पीनस, वृद्धि अपस्मार, ज्वरोन्माद, रक्तातिसार, कर्णस्राव, अधिजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्तश्लेष्मरोग, मेदोरोग और अरुचि; इन सब रोगोंमें चिकित्सकको वमन कराना चाहिये।

वमन-निषेध विषय—कम्प, उपलेप, निन्द्रा, तन्द्रा आलस्य, दौर्गन्ध, विषजनित उपसर्ग, कफप्रसेक और ग्रहणी आदि दोष वमनकारी व्यक्तिके कभी नहीं रहते। वमनके गुण—वमनसे श्लेष्म शोधन होता है, इस कारण उससे होनेवाले सभी विकार जाते रहते हैं।

निम्नलिखित व्यक्तियोंको कभी भी वमन न करना चाहिये। जैसे—चक्षुरोगी, ऊर्द्धवात, गुल्मोदर, प्लीहा और क्रिमिरोगग्रस्त, श्रमार्त्त, स्थूल, क्षतक्षीण, कृश, अतिवृद्ध, मूत्रातुर, केवल वातरोगी, स्वरोपघाती, अध्ययनरत, दुश्छर्दि, दुःकोष्ठ, तृष्णार्त्त, बालक ऊर्द्धवान्त, पित्त, क्षुधित, निरूह और गर्भिणी आदि! अवम्य वमनमें सभी रोग कृच्छ्र अथवा एकदम असाध्य हो जाते हैं। इस कारण उन्हें वमन कराना उचित नहीं।

अति वमनमें तृष्णा, हिक्का, उद्गार, संज्ञाराहित्य, जिह्वानिःसरण, चक्षुर्व्यावृत्ति, हनुसंहति, रक्तच्छर्दि और कण्ठपीड़ा आदि उपद्रव होते हैं।

वमनव्यापत् (सं० स्त्री०) वमन-असिद्धिके पक्षमें आध्मानादि विकार।

वमनी (सं० स्त्री०) वमन-ङीप्। जलौका, जोंक।

विस्तृत विवरण जलौका शब्दमें देखो।

वमनीया (सं० स्त्री०) वमयतीति वमण्यर्थविवक्षायामभिधानात् कर्त्तरि अनीयरस्त्रियां टाप्। १ मक्षिका, मक्खी। (त्रि०) २ वमनयोग्य।

वमि (सं० स्त्री०) वमनमिति वम (सर्वधातुभ्य इन्। उणा् ४।११३) इति इन्। वमन, छर्दन, प्रच्छर्दिका, रोगभेद, वमिरोग। इस रोगका निदान तथा चिकित्सा आदिका विषय वैद्यकमें इस तरहसे है—अधिक तरल वस्तु पान करनेसे, अतिशय स्निग्ध वस्तु खानेसे, अधिक लवण प्रयोग करनेसे, असमय वा अपरिमित भोजन करनेसे एवं श्रम, भय, उद्वेग अजीर्ण तथा कृमि दोषसे वमन रोग पैदा होता है एवं गर्भावस्था तथा घृणित वस्तुओंके कारण वायु, पित्त, कफ आदि उत्क्लिष्ट हो कर वमनरोग उत्पादन करता है। इस रोगसे मुखमें पीड़ा होती है एवं सारा शरीर दुःखने लगता है।

वमन रोग पांच प्रकारके होते हैं,—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुज। इस रोगके पूर्व लक्षण वमि उपस्थित होनेके पहले हृल्लास अर्थात् वमनोद्वेग, उद्गारावरोध, मुखप्रसेक तथा मुख लवणाक्त मालूम पड़ते हैं एवं खाने पीनेकी चीजोंसे रुचि फिर जाती है।

वमिके सामान्य लक्षण—जिस रोगमें कुपित दोष अत्यन्त वेग तथा अंग पीड़नके साथ मुखकी ओर उमड़ आता है एवं मुखको परिपूर्ण करके बाहर उछल पड़ता है, उसे छर्दि वा वमि रोग कहते हैं।

वातज लक्षण—वातज वमनमें हृदय तथा पार्श्वमें वेदना, मुखशोष, मस्तक तथा नाभीमें शूलवेदनाकी तरह वेदना तथा कास, स्वरभेद, अंगमें सूचीवेधवत् वेदना एवं अति कष्टके साथ वेग, प्रबल उद्गार तथा अतिशय शब्दके साथ फेन मिश्रित विच्छिन्न पतला तथा कषाय रसविशिष्ट वस्तु वमन, ये सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

पित्तज लक्षण—पित्तज वमनरोगमें मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालु तथा दोनों आँखोंमें जलन, आँखोंमें अन्धेरा छा जाना एवं पीत हरा वा धूम्रवर्णयुक्त, कुछ तीता, अति उष्ण पदार्थका वमन तथा वमनके समय कण्ठमें ज्वाला, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफज लक्षण—कफज वमनरोगमें मुख मधुर रसविशिष्ट, कफस्राव, भोजनमें अरुचि, निद्रा, शरीर भारी, स्निग्ध, घन, मधुर रसयुक्त तथा श्वेतवर्ण पदार्थ वमन एवं उलटी होनेके समय शरीरमें रोमाञ्च तथा अति यन्त्रणा होने लगती है।

सन्निपातज लक्षण—वमनरोगमें शूल, अजीर्ण, दाह, प्यास, श्वास, मूर्च्छा एवं लवण रसयुक्त उष्ण, नील वा लोहित वर्णके घने पदार्थका वमन होना प्रभृति लक्षण प्रगट होते हैं।

आगन्तुज वमन—कुत्सित द्रव्य भोजन तथा किसी तरह घृणाजनक वस्तुको देखनेसे जिस वमनरोगकी उत्पत्ति होती है, अथवा स्त्रियोंको गर्भावस्थाके समय जो उलटी होती है, कृमिरोग वा आमरससे जो वमि होती है, उसे आगन्तुज वमि कहते हैं। इस वमनरोगमें वातादि तीन दोषोंमेंसे जिस दोषके लक्षण अधिक दिखाई पड़ें, उनके अनुसार उसे दोषज वमनरोग समझना होगा। केवल कृमियों द्वारा जिस वमनरोगकी उत्पत्ति होती है उसमें अत्यन्त वेदना होती है। जिस तरह आगन्तुज वमनके पांच कारण वतलाये गये हैं, उसी तरह इसके भी पांच भेद हैं, जैसे—असात्मज, कृमिज, आमज, बीभत्स तथा दौर्हृदज। इस आगन्तुज वमनमें वातजादि दोषोंके लक्षणानुसार इसके वातजादि कारण भी स्थिर करने चाहिये।

इस रोगका उपद्रव—कास, तमक श्वास, ज्वर, प्यास, हिचकी, विकृतचित्तता, हृद्रोग एवं आँखोंके सामने अंधेरा छा जाना आदि।

वमन रोगकी साध्यसाध्यता—वमनरोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र, स्वेद तथा जलवाही स्रोत रुद्ध हो कर ऊर्द्ध्वगत होवे एवं उससे रोगीके कोष्ठसे पूर्व संचित पित्त, कफ वा वायु दूषित स्वेदादि धातु उद्गीर्ण होवे और यदि वमि मलमूत्रकी तरह दुर्गन्ध हो तो उससे वमन रोगाक्रान्त रोगी तृष्णा, श्वास तथा हिचकी द्वारा पीड़ित हो कर हठात् मृत्युको प्राप्त होता है। जिस वमन रोगसे रोगी क्षीण हो जाता है एवं सर्व्वदा रक्तपूयादि मिश्रित पदार्थ वमन करता है अथवा वमिमें यदि मयूरपुच्छकी तरह आभा दिखाई पड़े, किंवा वमनरोगके साथ यदि कास, श्वास, ज्वर, हिचकी, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग प्रभृति उपद्रव उपस्थित होवे, तब यह वमनरोग असाध्य हो जाता है। इन सब लक्षणोंके अलावे दूसरे सब प्रकारके वमनरोगकी चिकित्सा करनेसे इसका प्रतीकार हो सकता है।

चिकित्सा—सब प्रकारके वमनरोग आमाशयमें दोष संचित होनेसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये वमनरोगमें सबसे पहले लंघन देना ही कर्त्तव्य है। उसके बाद कफ तथा पित्तको दूर करनेवाली औषधिका सेवन करना चाहिये। किन्तु एक विशेषता यह है कि, वातज वमनरोगमें लंघन देना उचित नहीं। वातज वमिरोगमें दूधमें बराबर भाग जल मिला कर, सेंधा नमक तथा घृत मिश्रित मूंग तथा आंवलेका शोरवा पिलाना चाहिये। गुलंच, त्रिफला, बहेड़ा, आंवला, निम्ब तथा पोलता इन सबोंका काढ़ा बना कर मधुके साथ पान करनेसे पित्तज वमिरोग आराम होता है। हर्रेका चूर्ण मधुके साथ खानेसे भी वमिरोगमें फायदा पहुंचता है।

विड़ंग, त्रिफला तथा शुंठीका चूर्ण, किंवा विड़ंग, कैवर्त्तमुस्तक तथा शुंठीचूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ सेवन करनेसे श्लेष्मज वमिरोग विनष्ट होता है।

आंवला, खै तथा चीनी ८ तोला एक साथ पीस कर उसके साथ ८ तोला मधु एवं ३२ तोला जल मिला कर कपड़े से छान कर पीनेसे त्रिदोषज वमिरोग आराम होता है। गुलच द्वारा हिम (शीतकषाय) तैयार करके मधुके साथ पीनेसे कृच्छ्र साध्य त्रिदोषज वमि भी हठात् आराम होती है।

हर्रे, त्रिकटु, धनिया तथा जीरा समभाग चूर्ण करके मधुके साथ चाटनेसे त्रिदोषज वमि तथा अरुचि नष्ट होती है। बेलकी छाल, गुलंच तथा खेतपपड़ाका काढ़ा मधु मिला कर पान करनेसे सान्निपातिक वमिका निवारण होता है। आमकी गुठली और बेलका काढ़ा मधु-

तथा चीनी मिला कर पीनेसे वमि तथा अतीसार रोगका नाश होता है। जामुन तथा आमके पत्तोंसे काढ़ा तैयार करके ठंढा होने पर उसमें लाईका चूर्ण तथा मधु मिला कर पीनेसे उष्माजन्य वमि, अतीसार तथा पिपासा दूर होती हैं।

पीपलकी छालका भस्म जलमें डाल कर पीनेसे अति दुःसाध्य वमिरोग भी आराम होता है। इलायची, लवंग, नागकेशर, वेरकी आंठीका गूदा, लावा, प्रियंगु, मुस्तक, रक्त चन्दन तथा पिपली इन सब चीजोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण करके मधुके साथ खानेसे वातज, पित्तज तथा कफ ये तीनों प्रकारके वमिरोग छूट जाते हैं।

वीभत्स वमिरोग हृदयग्राही वस्तुओंसे, दोहदज वमिरोग इच्छित फलोंसे तथा आमज वमिरोग लंघनसे आराम होते हैं। उद्गारकी अधिकताके साथ वमि होनेसे मूर्व्वा, धनिया, मुस्तक, जेठी मधु तथा रसाञ्जनका चूर्ण समभाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे साधारण वमि दूर होती है। यह रोग सौवर्च्चल लवण, कृष्णजीरा, चीनी तथा मरिचचूर्ण बराबर भाग ले कर मधुके साथ चाटनेसे भी आराम हो जाता है।

नारियलका पानी, मूढ़ी वा जली हुई रोटी भिंगोया हुआ जल अथवा वरफका पानी वमन निवारणकी उत्कृष्ट औषध है। वड़ी इलायचीका काढ़ा सेवन करनेसे वमनरोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। रात्रिमें गुलंचको जलमें भिगो रखे, प्रातःकाल उस जलको मधुके साथ पीवे तो सब प्रकारके वमिरोग दूर हो जाते हैं। खेतपपड़ा, विल्वमूल वा गुलंचका काढ़ा मधुके साथ एवं मूर्व्वा मूलका काढ़ा चावलके पानीके साथ सेवन करनेसे सब तरहके वमिरोग आराम होते हैं। जेठी मधु तथा रक्तचन्दन दूधके साथ अच्छी तरह पीस तथा घोंट कर पीनेसे रक्तवमन आराम होता है। आँवलेका रस १ तोला तथा कतवेलका रस १ तोला, थोड़ा-सा पीपल चूर्ण तथा मरिचचूर्णके साथ मधु मिला कर सेवन करनेसे प्रवल वमन भी रुक सकता है। तेलचट्टे की विष्ठा ३।४ दाना जलमें भिगो कर उस जलको थोड़ा पीनेसे अति प्रवल वमनका तुरत ही दमन होता है।

श्वेतचन्दन २ तोला, आँवलेका रस २ तोला एकत्र करके, उसमें थोड़ा-सा मधु मिला कर सेवन करनेसे वमिरोग दव जाता है। भुनी हुई मूंग १ पल, जल २ सेर, शेष २ पल, लाईका चूर्ण २ पल तथा थोड़ा मधु और चीनी मिला कर उस जलको पीनेसे वमि, अतीसार, तृष्णा, दाह तथा ज्वर निवारित होता है। इसके अतिरिक्त इलायचीचूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वजरस तथा पद्मकाद्यघृत प्रभृति वमन रोगको अत्युत्तम दवा है।

(भैषज्यरत्ना० वमिरोगाधि)

इस रोगका पथ्यापथ्य—वमि होने पर आमाशयमें वेदना होती है, इसलिये पहले लंघन देना उचित है। वमन वेग रुक जाने पर जल्द हज़म होनेवाला तथा रुचिकारक भोजन क्रमशः देना उचित है। वमनका वेग रुकते ही यदि आहार देनेकी आवश्यकता होवे, तो भुनी हुई मूंगके काढ़े के साथ लाईका चूर्ण, मधु तथा चीनी मिला कर खानेको दे सकते हैं। इस तरहका आहार देनेसे वमन, मेद, ज्वर, दाह और पिपासाकी शान्ति होती है। वमनवेग रुक जानेके वाद सहनीय सभी वस्तु भोजन कर सकते हैं एवं ज्वरादि उपसर्ग न रहने पर अभ्यासानुसार स्नानादि भी कर सकते हैं। स्वच्छ पान, स्वच्छ स्थानका वास एवं मनकी प्रफुल्लता आदि इस रोगमें विशेष लाभ पहुंचाती है। जिन सब कारणोंसे घृणा पैदा होती है, वे सब कारण तथा रौद्रादिके आतप सेवन प्रभृति इस रोगमें वहुत हानिकारक है।

शूलरोग तथा अम्लपित्तरोगमें वमन करानेसे ही लाभ होता है।

वमति उद्गिरति धूमादिकमिति "इक् कृष्यादिभ्यः" इति इक्। २ अग्नि। ३ धूर्त्त।

वमित (सं० त्रि०) वम-क्त। १ जिसको वमन कराया गया हो। (क्ली०) २ वमन किया हुआ पदार्थ।

वमितव्य (सं० त्रि०) वमनके लायक।

वमिन् (सं० त्रि०) १ वमनकारी। २ पीड़ित।

वम्बई—वृटिश सरकारके पश्चिम-भारतका एक देशभाग और विचार-विभाग। यह अक्षा० १३° ५३' से २८° २६' उ० तथा देशा० ६६° ४०' से ७६° ३२' पू०के मध्य विस्तृत है। सिन्ध मिला कर इसका भूपरिमाण १२२९८४ वर्गमील और जनसंख्या १८ करोड़से ज्यादा है। जनसंख्या-

में यह भारतवर्षके मध्य प्रथम और वृटिश साम्राज्यके मध्य द्वितीय नगर है। इसमें ४ उपविभाग, २५ जिला तथा कितने देशी राज्य लगते हैं। इसके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और उत्तर पूर्वमें वलुचिस्तान, पञ्जाव और राजपूताना, पूरवमें मध्यभारत एजेन्सी, मध्यप्रदेश, वरार और हैदरावाद राज्य, दक्षिणमें मन्द्राज प्रेसिडेन्सी और महिसुर तथा पश्चिममें अरव सागर है।

अङ्गरेजाधिकृत सभी जिले साधारणतः ४ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—उत्तर विभाग—अह्मदावाद, खेड़ा, पांच महाल, भरोंच, सूरत, थाना और कुलावा।

मध्य विभाग—खान्देश, नासिक, अह्मदनगर, पूना, सोलापुर और सतारा।

दक्षिण विभाग—वेलगाम, धारवाड़, कलादगी, उत्तर कनाड़ा और रत्नगिरि।

सिन्धुविभाग—कराची, थर और पार्कर, हैदरावाद, शिकारपुर, उत्तरसिन्धु, सीमान्तप्रदेश।

इस प्रेसिडेन्सीमें निम्नलिखित कई सामन्त राज्य हैं। यथाः—वड़ौदा, कोल्हापुर, कच्छ, महीकान्था राज्य, रेवाकान्था राज्य, काठियावाड़ राज्य, पालनपुर राज्य, खम्भात्, सावन्तवाड़ी, जंजीरा, दक्षिण मराठा जागीर, सताराके जागीर, यवहार, सूरतके अन्तर्गत सामन्त राज्य, सावनूर, नाडूकोट, अकालकोट, खान्देशके अन्तर्गत दङ्गराज्य और खैरपुर राज्य।

उक्त सभी जिलों और सिन्धुप्रदेशका भूपरिमाण १२४१२३ वर्गमील तथा सामन्त राज्योंका परिमाण ८२३२४ वर्गमील है। वर्त्तमान समयमें अनेक वैषयिक गोलमालसे उन सव सामन्त राज्योंका परिमाण वहुत घट गया है, मर्दुमशुमारीका विवरण पढ़नेसे इसका पता चलता है। वम्वई प्रसिडेन्सीमें ११६ नगर और १५३३२ ग्राम लगते हैं।

प्रेसिडेन्सीके इन सव स्थानोंके ऐतिहासिक और प्रत्नतत्त्वके विवरण विभिन्न स्थानमें लिखे गये हैं, इस कारण उन विषयोंको आलोचना यहां पर न की गई।

२ वम्वई-प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर और वम्वई-गवर्नमेण्टकी राजधानी। यह अक्षा० १८°५५' उ० तथा देशा० ७२° ५४' पू०के मध्य विस्तृत है। यह पश्चिम-भारतका एक प्रधान वाणिज्य-वन्दर है। विचार-विभागकी सुव्यवस्थाके लिए यहां विचार-अदालत प्रतिष्ठित है तथा वम्वई नगर एक स्वतन्त्र जिलारूपमें गिना जाता है। इसका भूपरिमाण २२ वर्गमील है।

मुम्बादेवीके नामानुसार मुम्बईसे वम्वई नामकी उत्पत्ति हुई है। पुर्त्तगीजोंने समुद्रके किनारे इसका अवस्थान देख कर इसे Bombahia वा Boa-bahia कह कर उल्लेख किया है। पुर्त्तगीज 'वोमवाहिया' शब्दसे कोई कोई अङ्गरेजी वम्वई नामकी भी कल्पना करते हैं।

१६६१ ई०में पुर्त्तगीजोंने इङ्गलैण्डकी रानी कैथरिन आव व्रगञ्जाको यौतुकस्वरूप वम्वईद्वीप प्रदान किया। इस समय इस द्वीपकी आय ६५०००) रु० थी। इस समय सूरत वन्दरमें ही पश्चिम-भारतकी ईष्ट-इण्डिया कम्पनीका प्रधान अड्डा था।

इसके वाद पुर्त्तगीजोंने वम्वई नगरका संस्रव छोड़ कर सालसेटद्वीपमें आश्रय लिया। दुर्वृत्त पुर्त्तगीजोंका दमन करनेके लिये १६६८ ई०में मुगल नौ-सेनापति सिदीने वम्वई दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय अङ्गरेजोंने मुगल वादशाहसे निवेदन किया। वादशाहकी आज्ञासे मुगलसेना वम्वईसे हटा दी गई। १६८४ ई०में डिरेक्टरोंकी अनुमतिके अनुसार सूरतसे कम्पनीका वाणिज्यकेन्द्र वम्वई शहरमें उठा कर लाया गया। उसी सूत्रसे १६८७ ई०में वम्वई शहर अङ्गरेजोंका प्रधान वाणिज्य वन्दररूपमें गिना जाने लगा।

आज तक जिन दो अङ्गरेज कम्पनियोंने इङ्गलैण्डेश्वरसे भारतमें वाणिज्य करनेका अधिकार पाया था, १७०८ ई०में वे दोनों आपसमें मिल कर युनाइटेड इष्ट इण्डिया कम्पनी नामसे प्रसिद्ध हुई तथा वम्वई शहर उस समय स्वतन्त्र शासनाधीन वम्वई प्रेसिडेन्सीका प्रधान नगर समझा जाने लगा। १७७३ ई०में वम्वई नगर गवर्नर जेनरलके शासनाधीन हुआ। तभीसे नगरका इतिहास वम्वई प्रदेशके इतिहासके साथ मिला दिया गया है।

१७७४ से १७८२ ई० तक प्रथम महाराष्ट्र-युद्ध हुआ।

इसमें अङ्गरेज कम्पनीकी जीत हुई। इस सूत्रसे बम्बई और उसके चारों ओरके छोटे छोटे द्वीप तथा भारतोपकूलका प्रसिद्ध थाना नगर अङ्गरेजोंके हाथ आये। महाराष्ट्र-अभ्युत्थानके समय उनके शासनसे तंग आ कर कितने लोग बम्बई नगरमें आ कर बस गये। १८१८ ई०में जब पेशवा-शक्तिका अधःपतन हुआ, तब बम्बई नगर भी मराठाधिकृत समस्त पश्चिम भारतकी राजधानी रूपमें गिना जाने लगा। इसी समयसे पश्चिम भारतकी प्रकृत उन्नतिका काल गिना जाता है।

१८१६ से १८३० ई० तक यहां माननीय मनष्टुआर्ट एलफिन्सष्टन और सर जान माकम नामक दो सुप्रसिद्ध राजनैतिक गवर्नर नियुक्त हुए थे। उनकी ही बुद्धि और अध्यवसायसे यहां शासनशृङ्खला स्थापित हुई थी। महामति एलफिनष्टनने यहांकी शासनपद्धतिका संस्कार किया तथा ख्यातनामा माकमने बोरघाट गिरिसङ्कटको काट कर उपकूलदेशसे दाक्षिणात्य-अधित्यकामें जानेका रास्ता सुगम कर दिया। उसीके फलसे थोड़े ही दिनोंके मध्य दक्षिण भारतमें शासन-विस्तारका रास्ता खुल गया।

बम्बई जब अङ्गरेज-वणिक्के भारतीय वाणिज्यका प्रधान केन्द्र हुआ, उसके पहले हीसे यूरोपीय भ्रमणकारी स्वेज केनलको पार कर वा पारस्यकी राहसे यूरोप यात्रा करते थे। इस प्रकार आने जानेमें बड़ी दिक्कत होती थी। इस दिक्कतको दूर करनेके लिये बड़े यत्न और अध्यवसायसे लेफ्टेनाएट वागइनें "Overland Routs" खोल गये।

इस समय भारतके संवादादि इङ्गलैण्डके डिरेक्टर और यूरोपके अन्यान्य स्थानोंमें भेजनेकी बड़ी असुविधा थी। जहाजसे पत्रादि भेजनेमें बहुत समय लगता था। इस कारण १८३८ ई०में मिस्रकी राहसे संवाद भेजनेकी व्यवस्था हुई तथा प्रथम मासमें सिर्फ एक बार डाक भेजी गई। १८५५ ई०में पेनिनसुलर और ओरिएण्टल कम्पनीने संवाद और यात्री वहनके लिये प्रथम बन्दोबस्त किया था। इस समयके बादसे ही बम्बई बन्दर अङ्गरेजी डाक भेजने और यूरोपीय डाक लेनेका केन्द्र हो गया। भारत प्रवासी यूरोपीयगण तभीसे बम्बई शहरसे ही जहाजों पर चढ़ कर स्वदेशकी यात्रा करते थे। १८५० ई०में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे खुल कर तीन वर्षके भीतर थाना तक फैल गई। १८३६ ई०में वह रेलपथ बोरघाट होता हुआ पूना तक चला गया था। १८७० ई०में कलकत्ता राजधानीके साथ तथा १८७१ ई०में मन्द्राज बन्दरके साथ बम्बई शहरका वाणिज्य सम्बन्ध रखनेके लिये रेलवे लाइन खोली गई। तभीसे इङ्गलैण्ड जानेवाले लोग कलकत्ते से जहाज द्वारा न जा कर रेलगाड़ीसे बम्बई तक आने लगे। पहले इष्ट इण्डियन रेलवे 'भाया जब्बलपुर'से बम्बई जाती थी। पीछे बङ्गाल-नागपुर रेलवे 'भाया नागपुर' हो कर बम्बई तक चली गई है। इस राहसे रेलगाड़ी जल्दी जाती है। बम्बई शहरका "विक्टोरिया टरमिनस" नामक रेलस्टेशन भारतवर्षके मध्य एक अपूर्व दृश्य है।

बम्बई नगरमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर भवन हैं। युनिवर्सीटी सीनेट हाल, क्लाक-टावर, हाईकोर्ट, पबलिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट, पोष्ट और टेलिग्राफ आफिस, सेलर्स होम, बम्बई-क्लब, कष्टम हाउस, टाउन हाल, टकसालघर, गिर्जा तथा कैसल, और फोर्ट-सेण्ट जार्ज नामक दुर्गस्थान देखनेलायक है। ग्रीष्मके समय यहांके गवर्नर महाबलेश्वरमें और वर्षाके समय पूनामें जा कर रहते हैं।

ग्राण्टमेडिकल कालेजमें L M. S. & M. D की डिग्री प्राप्त होती है। यह कालेज १८४५ ई०में स्थापित हुआ है। एलफिनष्टन कालेज जो १८३५ ई०में खोला गया है, वृटिश-सरकारकी देखरेखमें हैं। इसके सिवा और भी कितने प्रसिद्ध कालेज हैं, जैसे विलसन कालेज, सेंट ज़ेभियर्स कालेज, सर जमसेतजी जीजीभाय कला-स्कूल, विक्टोरिया जुबली टेकनीकल स्कूल, मचेशो कालेज। स्कूल और कालेजके अतिरिक्त १५ अस्पताल, २० औषधालय हैं। म्युनिसिपल कमिश्नर मि० एच, ए, आकवर्थ द्वारा स्थापित एक कुष्ठाश्रम है।

बम्बेटिया—जल-डकैत। बम्बई प्रदेशके समुद्रके किनारे नाटे कदके मुसलमान जल-डकैत पण्यवाही नाव चलानेका बहाना करके वणिकोंके पास आते और मौका पा कर उनका यथासर्वस्व लूट लेते हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि बम्बे (जनपद) और बेटिया (नाटा) वा बम्बईवासी

अर्थसे इस दस्यु-सम्प्रदायका नामकरण हुआ है। किन्तु वे लोग जिस प्रकार नाव ले कर समुद्रमें जाते आते हैं अङ्गरेजीमें उसे Bum-boat कहते हैं। अधिक सम्भव है, कि इस 'वम्बोट' शब्दसे ही जलदस्यु सम्प्रदायका वम्बेटे नाम हुआ है।

वम्भ (सं० पु०) वंश, बांस।

वम्भारव (सं० पु०) हम्बारव, गाय या बैल आदिके बोलनेका शब्द, रँभानेकी आवाज।

वम्माग (सं० क्ली०) जनपदभेद।

वम्र (सं० पु०) १ उपजिह्व। (ऋक् ८।९१।२१) वम्र स्त्रियां ङीप्। २ उपजिह्विका। ३ एक वैदिक ऋषि। आप ऋग्वेदके १०।९९ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे।

वम्रट (सं० पु०) छोटी पिपीलिका।

वम्री (सं० स्त्री०) वल्मीक, दीमक।

वम्रीकूट (सं० क्ली०) वल्मीक, विमौट।

वय (सं० पु०) १ तन्तुवाय, जुलाहा। २ वया पक्षी। ३ वयस् देखो। (स्त्री०) ४ जुलाहोंके करघेमें सूतका एक जाल।

वयत् (सं० त्रि०) वयनकार्य, बुननेका काम।

वयत (सं० पु०) ऋग्वेदवर्णित व्यक्तिभेद।

(ऋक् ७।३३।२)

वयन (सं० क्ली०) वस्त्रादिका सूत्रग्रहणरूप कार्यविशेष, बुननेकी क्रिया या भाव।

वयनविद्या—ऊन वा कपासादि सूत्रजात वस्त्रनिर्माणरूप शिल्पविद्याविशेष। पाश्चात्य विज्ञानमें इसे Art of weaving कहते हैं। किस तरह कितने परिमाणमें रूई ले कर कितने नम्बरका मोटा तथा पतला सूता तैयार किया जाता है, इसके बाद वह सूता किस तरह नरियेमें लपेटा जाता है एवं किस तरह उन सूतोंसे कपड़ा तैयार किया जाता है, इत्यादि बातें जिस विद्याके द्वारा सीखी जाती हैं, उसे वयनविद्या कहते हैं।

वर्त्तमान समयमें पाश्चात्य जगत्वासी सभ्य जातियोंने अपनी प्रखर बुद्धिके प्रभावसे इस देशीय तांतोंका अनुकरण करके लौहयन्त्रका आविष्कार किया है। इन कलोंके द्वारा सूत-निर्माणसे ले कर वस्त्रवयन पर्यन्त शिल्पके सभी कार्य एक बार ही सम्पन्न हो जाते हैं। यन्त्रचालनासे सूता कातना, सूता रंगना, कपड़ा बुनना आदि सभी प्रकारके कार्य्य सीखे जाते हैं। विभिन्न प्रकारके तांतोंका विवरण तथा चालना एवं उसकी शिक्षा प्रणाली नीचे लिखी जाती हैं।

अति प्राचीनकालसे ही हम लोग क्या प्राच्य क्या पाश्चात्य सभी सभ्य देशोंमें वस्त्रका प्रचलन देखते हैं। प्राचीन कालमें भी लोग वस्त्र बुननेकी कला अच्छी तरह जानते थे। ऋक्संहिताके १।१४०।१, १।१५२।१, २।१४।३, ६।८।६, ६।९६।१ प्रभृति मन्त्रोंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वेदी तथा रंगस्थानको आच्छादित करनेमें बहुतसे कपड़ोंका व्यवहार किया जाता था। ये कपड़े प्रधानतः शुक्लवर्णके होते थे। (ऋक् १।१३४।४) ये कपड़े उस समय जनसाधारणमें धनस्वरूप समझे जाते थे (ऋक् ५।४७।२३)। माता स्वयं पुत्रादिके पहनने योग्य कपड़े तैयार करती थी। (ऋक् ५।४७।५), उनके कपड़े गाढ़े होते थे। अथर्ववेदके ५।१।३, ६।५।२५, १२।३।२१, १४।२।४१ मन्त्रोंमें वस्त्रका उल्लेख पाया जाता है। इनके अतिरिक्त कात्यायन श्रौतसूत्र (१४।१।२०), आश्वलायन-गृह्यसूत्र (१।८।१२), गोभिलगृह्य (३।२।४२) एवं पारस्करगृह्य (३।१०) सूत्रोंमें वस्त्रकी आवश्यकता तथा व्यवहारादि बातें लिखी हुई हैं। कौषीतकी ब्राह्मणमें (२।२६) काले वस्त्रका प्रचलन देख कर जान पड़ता है, कि उजले कपड़ेको काले रंगमें रंग कर व्यवहारमें लाते थे एवं वे रञ्जनप्रणालीमें भी निपुण थे, इस मन्त्र द्वारा इसका भी पता चलता है।

पौराणिक समय नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए कपड़ेका खूब ही प्रचार था। इसीसे श्रीवृन्दावन-विहारी बनमाली अपने श्यामवर्ण शरीरको पीले कपड़ेसे ढके रहते थे। देवदेवियोंको भी लाल तथा नीले कपड़े पहनाये जाते थे। श्रीरामचन्द्र भगवान्ने ब्राह्मणोंको कौषेयवस्त्र (रामायण २।३२।१६) दान किया था। अयोध्याकाण्डके ३७वें अध्यायमें श्रीराम तथा लक्ष्मणको राजकीय कपड़ोंका त्याग करके वल्कलवस्त्र धारण करनेकी कथा है। फिर २।५२।८२ श्लोकमें सीताके द्वारा ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके वस्त्र तथा अन्न-प्रदान किये जानेका उल्लेख देख कर मालूम होता है, कि

उस समय तरह तरहके रंगोंसे रंगे हुए ऊनी तथा सूती कपड़े पहननेकी चाल थी। महाभारतके विभिन्न राजाओंके वेशभूषा तथा द्रौपदीके वस्त्रहरणके प्रसंगमें वस्त्रोंकी विभिन्नताका निदर्शन पाया जाता है। रामायणके आदिकाण्डके ७७वें अध्यायमें लिखा है, कि अयोध्याधिपति दशरथ जब अपने पुत्र तथा पुत्रवधूको ले कर जनकके घरसे अपने राज्यमें लौट आये, तब उनके स्वजनवर्गोंने नाना प्रकारकी रम्य वस्तुओंसे उनकी पूजा की। उस समय कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी एवं दूसरी दूसरी राजपत्नियां क्षौम्यवस्त्र धारण करके पुत्रवधूके साथ मङ्गल आलाप करती हुई देवालयमें पूजा करने चलीं। इन सबों पर आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि रामायणीय युगमें शुक्ल, काषायरञ्जित वस्त्र एवं शुभकार्यमें क्षौम्यवस्त्र व्यवहारमें लाये जाते थे।

भगवान् मनुरचित स्मृतिग्रन्थके ३।५२, ६।२१६ तथा ११।१८१ श्लोकोंमें वस्त्रका उल्लेख किया गया है। ये परिधेय वस्त्र उस समय भी सम्पत्तिमें गिने जाते थे एवं वस्त्रकी चोरी करनेवालोंको प्राणदण्ड दिया जाता था (८।२२१ श्लोक)। उक्त ग्रन्थमें अन्यान्य सम्पत्तिकी तरह वस्त्रविभागकी भी व्यवस्था देखी जाती है।

जब कोई ऊन, पटसन अथवा कपासादिका सूता चुराता था, तब उसे उस सूतेके दूने मूल्य आदाय करने पड़ते थे (मनु० ८।३२६)। जब कोई सूता बुननेवाला किसी व्यक्तिका १० पल सूता चुरा लेता था एवं पकड़े जाने पर जब वह उस व्यक्तिको ११ पल सूता नहीं लौटा देता था, तब वह राजदण्डानुसार १२ पल आदाय करनेको वाध्य होता था।

मनु ८।३९७ सूक्त द्वारा पता चलता है, कि उस समय जो पहननेके वस्त्र तैयार किये जाते थे, वे लम्बाई तथा चौड़ाईमें वर्त्तमान वस्त्रके समान ही होते थे।

उस समय कपास, रेशम तथा पशमी वस्त्र बहुत प्रचलित थे। वे जलप्रक्षालन द्वारा सूती कपड़े एवं क्षारजमृत्तिका द्वारा रेशमी तथा पशमी कपड़े साफ करते थे—

"अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥
चेलवत् चर्म्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च।
शाकमूलफलानां च धान्यवत् शुद्धिरिष्यते ॥
कौषेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमानां गौरसर्षपैः ॥
क्षौमवत् शङ्खशृंगानां अस्थिदन्तमयस्य च।
शुद्धिर्विजानिता कार्य्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥"
(मनुसंहिता ५।११८-१२१)

उक्त ग्रन्थके दशम अध्यायके अन्दर ३५ तथा ५२वें श्लोकोंमें निषादचण्डालादिमें मृतवस्त्र पहननेकी रीति पाई जाती है, किन्तु अन्य जातिके लोग मृतवस्त्र तो दूर रहे, धोबीकी भूलसे दिये हुए दूसरेके कपड़े भी नहीं पहनते थे। मनुसंहितामें इसका भी निषेध किया गया है—

"शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥" (८।३९६)

उस समय फूलोंके रंगमें रंगे हुए शानक्षौमाजिनादि निर्मित वस्त्र वेचना ब्राह्मणोंके पक्षमें बिलकुल ही मना था। (मनु० १०।८७)

इन सबों पर आलोचना करनेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि वैदिक युगसे ले कर स्मृतियुग पर्यन्त भारतीय आर्यसमाजमें वयनयन्त्र तथा वयनविद्याका बहुत ही प्रचार था। परवर्त्ती पौराणिक युगमें उसका और भी अधिक प्रचार हुआ। रामायण तथा महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें, महाकाव्य एवं पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए कपड़ेके व्यवहारका पूरा प्रमाण है।

यदि जगत्के प्राचीन वस्त्रशिल्पका निदर्शन देखना हो, यदि जगत्के सर्वप्राचीन तांतोंका अस्तित्व प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो, तो एक वार प्राचीन मिस्रराज्यकी ओर दृष्टि निःक्षेप करें, आपके सभी सन्देह मिट जायंगे। वहांके मामि-गह्वरके मध्य (Mummy pits of Egypt) अनुसन्धान करनेसे आज भी शवाच्छादित वस्त्रोंके कितने ही निदर्शन परिलक्षित होंगे। रोजेटाकी प्रस्तरलिपिसे जाना जाता है, कि वहांकी राजसरकारसे पुरोहितोंको उनके चिरप्रिय कपास वस्त्र दिये जाते थे। वहांके उच्च

श्रेणीके सम्भ्रान्त लोग कपास तथा पशमीने कपड़े पहनते थे एवं दरिद्र लोग एकमात्र पशमीने कपड़ोंसे अपने अङ्ग ढकते थे। पशमोने वस्त्रको वहांके पुरोहित सम्प्रदाय भद्दा कह कर लिनेन वस्त्रका ही अधिक पक्षपात करते थे।

हिब्रु जातिके धर्मयाजक तथा पदस्थ सम्भ्रान्त लोग उत्तम लिनेन कपड़े ही व्यवहारमें लाते थे। वाइविल ग्रन्थके अङ्गरेजी अनुवादमें उनके जो रेशमी वस्त्र व्यवहार करनेकी वातें लिखी हैं, वे विलकुल ही प्रामादिक हैं, क्योंकि, प्राचीन हिब्रु वा आसीरीय लोगोंके अन्दर रेशमी वस्त्र व्यवहारका कोई पक्का प्रमाण पाया नहीं जाता। इङ्गलैंडके British Museum नामक जादूघरमें प्राचीन सूक्ष्म लिनेन वस्त्रके सूते थे। १०० लच्छे (Hank) एवं १ इंच स्थानके मध्य तानेमें १४० खाई तथा घेरे (woof) में ६४ खाई सूता विद्यमान है।

थेविस नगर तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जो प्राचीन मिस्रीय तांतोंके नमूने रखे हुए हैं, उनकी वयन-प्रणाली अविकल भारतीय तांतोंके समान ही हैं, अगर प्रभेद है, भी तो वहुत थोड़ा। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि स्मरणातीत समयसे भारतीय आर्य लोग जिस रीतिसे वस्त्र वयन करते आ रहे हैं, वही चिरन्तन प्रथा प्राचीन कालमें पारस हो कर यूरोपमें प्रविष्ट हुई थी। मार्टिकानके भार्जिल ग्रन्थमें मण्टफासोन (Montiaucon) कर्तृक जो मध्ययुगी तांतोंके चित्र अंकित है, लोगोंका अनुमान है, कि वे खृष्टीय ४र्थ शताब्दीके ही तांतोंके चित्र। वे भारतीय तांतोंसे वहुत मिलते जुलते हैं, तव हां एक दो स्थानमें सामान्य परिवर्त्तन भी दृष्टिगोचर होता है। चीन जातियोंके रेशमी वस्त्र वुननेके तांत विलकुल स्वतन्त्र एवं स्वकपोलकल्पित हैं, उनमें यन्त्रपरिपाटी कहीं अधिक है। सम्भवतः इन वातोंका अनुकरण करके ही वर्त्तमान हैण्डलूम तैयार किये गये हैं। अरिष्टलमें रेशमका उल्लेख देख कर मालूम पड़ता है, कि ग्रीक तथा रोमक लोगोंकी सुख-समृद्धिके समय उनकी विलास-वासना पूरी करनेके लिये चीनसे रेशम तथा तांत यूरोप भेजे गये थे। अरिष्टलके पहले यूरोपमें रेशमका ऐतिहासिक उल्लेख नहीं देखा जाता।

वयनयन्त्र।

वस्त्र वुनना सीखनेमें शिक्षार्थीको निपुणता, धैर्यशीलता, हस्त-संचालनादिकी पटुता सीखना अत्यन्त आवश्यक है। सहस्रों सूक्ष्म सूते ले कर उनके प्रत्येक सूतेको नियमानुसार नियमित स्थान पर रखना चाहिये। उसमें किसी तरहकी जल्दवाजी करनेसे या असहिष्णु हो उठनेसे और भी विलम्ब होता है।

हम लोगोंके देशमें हिन्दू तांती एवं मुसलमान जुलाहे हैं, वे अभी भी ऐसे वारीक सूतोंसे चादर तैयार कर सकते है, जो चादर आध इंच चौड़े एक फूट लम्बे चोंगेके अन्दर आसानीसे रखे जा सकते हैं। मैंचेष्टरके वस्त्रवयन-शिल्पके निर्माण होनेके कारण धीरे धीरे हमारे देशकी शिल्पनिपुणता जाती रही। मैंचेष्टरके शुभागमनसे ही हमारे वयनशिल्पकी इतिश्री हुई एवं अन्नाभावसे जुलाहों तथा तांतियोंकी शक्ति क्षीण हो गई। स्थूल वुद्धि तांतोंने लाभकी आशासे सूक्ष्म सूतेका आश्रय लिया एवं सूक्ष्म-वुद्धि तांतियोंने मोटे सूतेका कार्य आरम्भ किया। आश्चर्यका विषय है, कि इन दोनों जातियोंका व्यवसाय एक होने पर भी कपड़ा वुननेके सम्वन्धमें सभी विषयोंमें ही जुलाहों तथा हिन्दू तांतियोंने परस्पर विभिन्न पंथोंका अवलम्बन किया है। नीचे दोनों पक्षके वयनोपयोगी यन्त्रोंका परिचय दिया जाता है।

१ तांत (लूम)—तांत भारतवर्षमें कितने दिनोंसे प्रचलित है, इसका पता नहीं चलता। किन्तु प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थोंमें उसका उल्लेख मिलता है। जो तांत वहुत दिनोंसे इस देशमें चला आ रहा है, वह 'हाथका तांत' वा 'वंगला तांत' कहलाता है। वह ताल-काष्ठसे तैयार किया जाता है, यहां तक, कि एक ही तांत तीन चार पीढ़ी तक कामयावी रहता है। इसकी ढरकीको एक हाथसे चला कर दूसरे हाथसे पकड़ना होता है। इससे अधिक चौड़ा कपड़ा वुननेमें सुविधा नहीं होती; किन्तु इस तांतके द्वारा इच्छानुसार मोटे एवं वारीक सव तरहके कपड़े वुने जा सकते हैं। इसमें अधिक सूते नहीं टूटते। जिस तरह इसमें वारीक कपड़े तैयार किये जा सकते हैं, उस तरह हैण्डलूममें तैयार

करना कठिन है। किन्तु हाँ, इस बंगला ताँतमें उतनी शीघ्रतासे काम नहीं हो सकता। एक सुदक्ष ताँती इस ताँतमें एक मिनटमें ३१।३२ बार ढरकी चला सकता है। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है, कि इसमें ढरकीके ठहरनेका स्थान नहीं होता; इसलिये जरा-सा चूक जानेसे ही ढरकी नीचे गिर जाती है।

कलका ताँत (Fly shuttle loom)—१८वीं शताब्दीके शेष भागमें जान् के नामक साहबने इसका पहले पहल आविष्कार किया था। यह बिल्कुल विदेशी नहीं है; बंगला तांतको ही कुछ नये ढंगसे सुधार कर यह तैयार किया गया है। असलमें उसके साथ इसकी पूरी समानता है। उत्तम शागवान तथा शालके काष्ठसे ही ये दोनों प्रकारके ताँत तैयार किये जाते हैं। लकड़ी खूब मजबूत एवं सूखी होनी चाहिये; नहीं तो थोड़े ही दिनोंमें उसके बेकार हो जानेकी सम्भावना रहती है। इसके कितने ही अंग प्रत्यंग होते हैं; किसी एक अंशके बिगड़ जानेसे ही काम स्थगित हो जाता है।

वयन-प्रक्रिया।

वस्त्र बुननेकी प्रथम सीढ़ी सूता तैयार करना है। सबसे पहले सूताको वयनोपयोगी बना लेना पड़ता है। प्रायः कारीगर-घरकी स्त्रियां ही सूता तैयार करती हैं एवं उसे सोंट कर बुननेके योग्य बनाती हैं। इसके बाद कारीगर उसे ताँत पर चढ़ा कपड़ा बुनना शुरू करता है। जब तक कारीगर उस तैयारी तानीको बुन लेता है तब तक उसकी स्त्रियां दूसरी तानी तैयार कर देती है।

पहले इस देशमें उच्च श्रेणीके हिन्दुओंके घरकी अर्थात् ब्राह्मण कायस्थ परिवारकी स्त्रियां चर्खा चलाया करती थीं। ब्राह्मण कुमारियोंके हाथका काता हुआ सूता आज भी विवाहादि शुभ कार्यमें व्यवहार किया जाता है। कवचादि धारण करनेमें भी कुमारीके हाथका काता हुआ सूता न होनेसे काम नहीं चलता। वे चर्खा कातनेके लिये वारीक एवं मोटे सूतेके हिसाबसे मेहनताना पाती थीं। उस समय एक पोले सूतेकी मजूरी छः आने तक थे। उस समय चर्खा होनेसे इस देशमें अन्न वस्त्रका दुःख नहीं था। सभी दीन दुःखिनी स्त्रियाँ चर्खा चला कर कुछ न कुछ रोजगार कर लेती थी। बूढ़ोंके मुखसे अभी भी चर्खाकी प्रभावज्ञापक इस तरहकी एक किम्वदन्ती सुनी जाती है—

"चरखा मेरा प्यारा बेटा, चरखा मेरा नाती।
चरखेकी दौलतसे मेरे, द्वारे झूमे हाथी॥"

लोगोंसे पता चलता है, कि उस समय चर्खेसे सूता तैय्यार करके कारीगरको देनेमें वह छः आने मजूरी ले कर जो कपड़ा बुन देता था, वह एकसाल तक ठहरता था। इसका कारण यह था, कि उस समयके चर्खेसे काता हुआ सूता खूब पक्का होता था, उससे कपड़े भी आसानीसे बुने जाते थे। इससे गृहस्थोंको कपड़े में बहुत कम खर्च पड़ता था। चर्खाके बन्द हो जानेसे हमारे देशमें बहुत क्षति हुई है। कलका सूता बहुत कमजोर होता है। सुतरां उसे वयनोपयोगी बनानेमें बहुत मजूरी देने पड़ता है। सूतेको सख्त चिकने एवं श्रृंखलाबद्ध नहीं कर लेनेसे कपड़ा नहीं बुना जा सकता। कपड़ेकी लम्बाईके सूतेको तानी (Warp) एवं चौड़ाईके सूतेको भरनी (Weft thread) कहते हैं।

तानीका सूता (Warp) तैयार करनेके समय विशेष मनोयोगकी आवश्यकता है। तानीका सूता अच्छी तरह सोंट (मज) लेना चाहिये; भरनीका सूता (weft thread) कुछ कमजोर रहने पर भी उतनी क्षति नहीं होती, किन्तु तानीके सूतेका खूब सख्त एवं विछिन्न होना अत्यन्त आवश्यक है।

सूता-खोलना (Unfastening)—सूता खरीदनेके समय सूतेमें अधिक खण्ड हैं वा नहीं, इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। प्रति पोलेमें ४०० सौ लच्छे होते हैं। सूते दो लच्छे करके पोलेसे अलग करना चाहिये। ठेहुनेके ऊपर पोला लगा कर लच्छा निकालनेमें सुविधा होती है। इसे ही सूता-खोलना कहते हैं।

सूताविज्ञान (Wetting)—एक बाल्टीके अन्दर स्वच्छ जलमें सूता भींगनेके लिये रख देना चाहिये। तानेका सूता इस तरहसे तीन दिन तक भींगनेसे वयनोपयोगी होता है। उसका पानी प्रत्येक दिन बदल देना चाहिये। भरनीके सूतेको एक दिनसे ज्यादा भिगोनेकी आवश्यकता नहीं होती। सूता भिगानेसे मजबूत होता

है, किन्तु इसलिये उसे अधिक दिनों तक पानीमें भींगते रहने देना उचित नहीं। रंगीन सूतेको ज्यादे भिगोनेकी जरूरत नहीं।

सूता लपेटना (winding the reels)—चौथे दिन जलसे सूता निकाल कर उसके गिरे पड़े लच्छोंको ठीक कर लेना चाहिये। इसके बाद उसे एक चरखी पहना कर उस चरखीको डेढ़ दो हाथकी दूरी पर रखना चाहिये। चरखीके सूतेको दोनों हाथोंसे चीर कर लच्छेको विलग विलग कर देना चाहिये। उन सूतेका जब एकसे ज्यादा छोर निकल पड़े तब उनमेंसे सिर्फ एक एकको पकड़ कर नारेको एक पाटीसे एवं दूसरे दूसरे छोरोंको चर्खेकी एक ओर बाँध देना चाहिये, नहीं तो चरखीके घूमनेके समय सूतेके बार बार टूटनेकी सम्भावना रहती है। इसके बाद 'घुरनी काठके' मध्य स्थित दवात ऐसे सुराखमें नारेके दण्डका अगला हिस्सा रख कर एवं उसके दूसरे छोरको दाहिने हाथसे पकड़ कर वृद्धांगुली द्वारा बाँईसे दाहिनी ओर तथा अन्यान्य उंगलियों द्वारा दाहिनीसे बांई ओर अमेठनेसे नारा खूब जोरोंसे घूमने लगता है। उस समय बांये हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनी द्वारा सूतेको आसानीसे पकड़े रहना चाहिये। इससे सूतेमें किसी तरह की गड़बड़ी नहीं मचती।

पौवन्द लगाना (Piecing)—बीच बीचमें सूता टूट जानेसे उन्हें नीचेकी ओर वा ऊपरकी ओर पारीसे बांध देनेके अलावे निम्नलिखित रीतिसे जोड़ लेना चाहिए। दो सूतोंके अग्रभागको बांयें हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनी द्वारा पकड़ कर दाहिने हाथकी उन्हीं अंगुलियों द्वारा दबा कर बांये हाथकी अंगुलियोंसे अमेठना चाहिए, फिर उसे नीचेकी ओर घुमा कर दाहिने हाथके सूतेमें मिला कर एक बार अमेठ देना उचित है। इस तरह जोड़नेसे सूतेमें ग्रन्थि नहीं पड़ती, अथच वे दोनों इस तरहसे जुट जाते हैं, कि दूसरी जगह भले ही टूट जाय किन्तु वह जोड़ नहीं बिखर सकता। सूतेको खूब अच्छी तरह नहीं जोड़नेसे कपड़ा बुननेके समय बहुत टूटते हैं।

सूता जोड़नेमें भी जुलाहों एवं तांतियोंमें भेद है। उनकी प्रणाली परस्पर विपरीत होती है। ऊपर जुलाहेके सूता जोड़नेकी बातें लिखी गई हैं। हिन्दू तांतो बांये हाथकी वृद्धांगुली तथा तर्जनीके मध्य दोनों सूतोंके अग्रभाग ले कर नीचेकी ओर अमेठ कर ऊपरकी ओर जोड़ते हैं। बारीक सूता जोड़नेमें तांतियोंकी सूता जोड़नेकी अच्छी रीति होती है एवं मोटा सूता जोड़नेमें जुलाहों की।

सूता पर सरेस चढ़ाना (Sizing)—मोटे सूतेमें भातका माँड़ अथवा चूड़े तथा लावेका मिला हुआ माँड़ एवं बारीक सूतेमें लावेका माँड़ व्यवहारमें लाते हैं। कठौतमें मांड़ रख कर बांये हाथसे सूतके लच्छे पकड़ कर दाहिने हाथसे उसे बिखराते हुए माँड़में इस तरह डुबोते हैं, कि सूता माँड़से अच्छी तरह तरबतर हो जाय और विशृङ्खल भी न होने पावे। इसके बाद छोटी चरखीके सिरे पर सूतेके लच्छे लगा कर टेवड़नाके द्वारा पूर्ववत् नराई करनी चाहिये। केवल भातके माँड़से सूत पर सरेस दिया जाता था, इसलिये आज भी कितने कारीगर इस कार्यको 'भातान' कहते हैं।

तंतुको सुखाना (Drying)—नराई हो जानेके बाद उन्हें धूपमें सुखाना पड़ता है। सूख जानेके बाद पहलेकी तरह सूतेको खोल कर एक बांस पर सजा कर रख देना चाहिये। इन सब कार्योंमें जितनी शृंखला रखी जायगी उतनी ही जटिलता कम होगी। यदि आकाश बादलोंसे आच्छन्न रहे अर्थात् धूपमें सूता सुखानेकी सुविधा न रहे, तब अग्निके तापमें सूता सुखाया जा सकता है। बदलीके दिनोंमें कारीगर लोग प्रायः सूतेमें सरेस (मांड़ी) नहीं देते।

छोछी (नरी) भरना (Winding the bobbins)—सूतेके सूख जाने पर उसके लच्छेको बायें हाथके अंगूठेसे दबा कर एवं दाहिने हाथसे धीरे धीरे अमेठ कर अच्छी तरह उलटा देवें, इससे माँड़से चिपके हुए सूत परस्पर बिखर जायेंगे। इसके बाद उन लच्छोंको चरखीमें पहना देवें। फिर सूतके लच्छेमें जहां छोर बंधा रहता है, उसे खोल कर नाटेको नरीमें (छोछी) में चिपका देवें एवं दाहिने हाथसे चर्खा चलावें और बाँये हाथको दोनों अंगुलियोंसे सूत पकड़े हुए नरी भरें। नरीके मध्य भागमें मोटा एवं दोनों किनारे पतला करके

सूत लपेटनेसे अच्छा होता है। नरियेमें उतना ही मोटा करके सूत लपेटना चाहिये जितनेसे वह सुगमतासे ढरकोमें प्रवेश किया जा सके।

तानेका फ्रेम सजाना और बार गूंथना—जितने जोड़ कपड़े एक बारमें तैयार करते हों, उनकी आवश्यकतानुसार नरियाँ (Bobbins) भर कर ताना कल मध्यस्थित सीकोंमें पहनावे। इसके बाद प्रत्येक नरीके सूतके छोरको बाहर करके एक बारके दो छरोंके मध्यस्थ छेदोंके बीचसे हो कर खींच लेवें। इस तरहसे जितने नरियां हों, उनमेंसे आधी तो बारके छेदोंमें एवं आधो छरोंके छेदोंमें प्रवेश कराके एक साथ गाँठ बाँध देनी पड़ती है।

ताना करना (Warping)—तांती लोग एक साथ ४ जोड़ेसे ले कर १२ जोड़े तकका ताना जितने हाथ लम्बे कपड़े बुननेकी इच्छा हो, उससे डेढ़ दो हाथ अधिक लम्बा ताना करना चाहिये। ताना चौकोन किया जाता है। १०+५ हाथके स्थानमें ४० हाथ लम्बा ताना किया जा सकता है। पहले दो नियमित स्थानोंमें ३ वा ३॥० हाथके दो खूटे गाड़ने चाहिये। पहले खूटेकी बाँई ओर ६ वा ७ इञ्चका दूरी पर एवं दाहिनी ओर ३ छड़े, इसके बाद प्रत्येक २॥ वा ३ हाथकी दूरी पर एक एक लाइनमें दो दो छड़ें गाड़नी चाहिये। इसके बाद प्रत्येक २॥ वा ३ हाथकी दूरी पर एक एक लाइनमें दो दो छड़ें गाड़नी चाहिये। इसके बाद तानेकी कल (Bobbin frame) एवं बार ले आवें, सूतके छोरोंकी ग्रन्थि खोल कर पहले खूंटेमें बाँध देवें एवं बारको दाहिने हाथसे पकड़ कर घसकाते ही सूता बाहर होगा। बाँये हाथसे उसका एक प्रस्थ सूता पहली छड़के मध्य और दूसरीके बाहर कर देवें एवं दूसरा प्रस्थ सूता पहली छड़के बाहर और दूसरीके मध्य कर देवें। इस तरहसे सभी छड़ोंमें सूता पहना कर पहले खूंटेके पास आना होता है अर्थात् आधे सूत प्रत्येक छड़के बाहरकी ओरसे एवं आधे भीतरकी ओरसे छड़ोंमें पहनाने पड़ते हैं। किन्तु दोनों ओरके दोनों खूटोंमें इस तरहसे सूता न लपेट कर सिर्फ बाहरकी ओरसे ही घुमाना पड़ता है।

जिस ओर दो शरें गाड़े गये हैं, उस ओर ताना आरम्भ एवं जिस ओर तीन शरें गाड़े गये हैं, उस ओर समाप्त करना होता है। कपड़ा जितना ही चौड़ा करना हो, एवं जितना घना वा पतला बुनना हो, उसी हिसाबसे सूतेकी संख्या भी ठीक करनी होगी। फिर कपड़के दोनों पाढ़ोंके लिये सूते ठीक करके कल पर ताना चढ़ाना चाहिये, कारण यह है, कि कपड़ा बुननेके समय सूते कम वेश हो जाते हैं, इसलिये ताना करनेके समय ही सूते गिन लेने चाहिये एवं १०० सूतको एकत्र कर गाँठ बाँध देनी चाहिये। कलकी सहायतासे पाड़का ताना न करके अलग ही करना उचित है, क्योंकि पाड़ोंके तानेमें दोहरा सूता दिया जाता है अर्थात् दो छड़ोंको एक साथ करके नारेमें लगा कर एवं उस दोहरे सूतेको एक 'बावआ" चरखोमें लगा कर, चरखीको बाँये हाथसे पकड़ दाहिने हाथमें एक "हलको" लेवें, फिर चरखीसे दोहरे सूतेका छोर बाहर करके "हलको" की अंटीके मध्यसे पहले खूंटेमें बांधना होता है। इसके बाद हलकोकी सहायतासे ये सूत एक छड़के भीतरसे हो कर एवं दूसरी छड़के बाहरसे घुमावें। एक ओर पाड़का ताना समाप्त होने पर छड़ोंको क्रम क्रमसे उलटा कर गाड़ देवें एवं दूसरी ओरके कार्य भी उक्त रूपसे सम्पन्न करना चाहिये।

पहले एक ओरके पाड़का ताना करके कपड़ेके शान्तिपाड़ वा रंगीनपाड़का ताना समाप्त करेंगे, फिर दूसरी ओरके पाड़का ताना करनेके लिए छड़ोंको घुमाना नहीं पड़ता। आज कल ताना करनेकी कल हो जानेसे यह काम बहुत सहज हो गया है एवं थोड़े ही समयमें ताना करनेका काम समाप्त होता है, नहीं तो दो जोड़े कपड़ेका ताना करनेमें डेढ़ दिन लग जाते थे। तानेके शेष हो जाने पर मोटे शरोंके बदले पतले 'जो शर' गाड़ने चाहिए एवं पहले खूटेमें लपेटे हुए सूतेको काट कर जिस ओर दो शर हैं, उस ओरसे सावधानीके साथ 'जो शर' में बांध देवें। जहां तीन शर हैं, वहां जा कर लगभग डेढ़ हाथ सूता बाहर रखें और उन सूतोंको फैलाते हुए ऊपर तथा नीचे दोनों "चियड़" से एक बार फिर लपेट कर 'दड़ी' द्वारा 'चियड़' के साथ शरोंको बांध देवें। इसके

बाद जो तीन "जो शर" बाहर रह जाते हैं, उन्हें भी 'दड़ी' के एक ओर पेंच दे कर जिस स्थान पर जैसा शर है, उसे उसी भावसे पेंच दे देवें, जिससे वह गिर न जाय। केवल ये तीन 'जो' रखना ही यथेष्ट होगा, किन्तु किसी कारण बीचसे सूता कट जानेसे भी असुविधा न होने पावे ; इसलिये ताँती लोग अधिक "जो शर" रखे रहते हैं।

रांच भरना—ऊपर लिखे हुए तरीकेसे ताना तैयार कर लेने पर एक ऊंचे स्थान पर सूता बाँध कर जिस ओर तीन छड़ें हैं उस ओर लटका देवें। इसके बाद एक साथ २०।२५ सूत एकत्रित झोंटी बांधी जायगी एवं उन झोंटियोंके मध्य एक 'पालावाड़ी' चला देनेसे सूतेके फांक अलग अलग हो जायेंगे। इसके बाद कपड़ेकी चौड़ाईकी विवेचना करके रांच तथा कपड़ेके मध्य स्थान ठीक करके 'पालावाड़ी' के साथ 'रांच' लगा देवें। एक ओरसे झोंटी खोल कर एक एक जोड़ा सूत रांचके प्रत्येक छिद्रमें पिरो देवें। इसमें दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। एक आदमी सूतेको रांचके छिद्रके पास रखता है और एक आदमी दूसरी ओरसे सुतरी द्वारा सूतेको रांचमें पिरोता है। इस तरह विशेष सतर्कताके साथ राँच भरना होता है। रांचमें २०।३० सूत पिरोनेके बाद उन्हें एकत्रित कर बांध दिया करें। कलमें भी (Mills) रांच भरनेमें इसी तरह दो आदमियोंकी आवश्यकता होती है। उन्हें Reacher in एवं Drower in कहते हैं। जोलाहोंके नियमसे रांच भरना आसान है, क्योंकि वे सिरा नहीं काटते, एक साथ जोड़ा सूत मिले रहनेसे एक आदमी ही रांच भर सकता है।

नराज सजना (Beaming)—यह विशेष सावधानीके साथ सम्पादन करना चाहिये। रांच भर लेनेके बाद सूतके छोरोंकी झोंटी बांध कर बाहरके नराज तथा रांचका मध्यस्थल ठीक मिला देवें, फिर उनके मध्य एक पतली छड़ दे कर बाहरके नराजके बीच एक छड़ लगा देवें एवं एक आदमी दूसरी ओर एक पालावाड़ी दे कर सूतेको कस कर रखे। तब नराजके छिद्रमें एक ताना लपेटनेका शर लगा कर घुमावें और एक आदमी सूत यथास्थान पर बैठता जाता है कि नहीं, इसकी परीक्षा करते रहें, बीचमें सूत ढीले न पड़ जायं वा बिलकुल कस ही न जांय, इसलिये एक एक पतली छड़ समय समय पर लगा दिया करें, अथवा स्थान स्थान पर पत्ता वा कागज रख दिया करें, जिससे तानेके सूत ऊंचे नीचे न हो जांय, उसी तरहकी व्यवस्था करें। जुलाहे लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसी ओरसे नराजका सूता लगते है और साथ ही साथ राँच दूसरी ओर ले जाते हैं। इस यथास्थान पर तंतु स्थापन करनेमें अधिक सुविधा होती है, किन्तु तांती लोग जिस ओरसे रांच भरते हैं, उसकी विपरीत दिशासे नराज लगाते हैं।

"ब" बाँधनेकी प्रणाली—नराजमें सूता सजानेके बाद नराजके दोनों ओर दो खूँटोंके साथ कुछ ऊँचा कर के बाँधना पड़ता है एवं उसकी दूसरी ओर जो सिरे बढ़े हुए हैं, उनके दोनों ओर ६।१० इंच लम्बे दो खूँटे गाढ़ कर इस तरहसे बाँध देना चाहिये, जिससे सब सूत समान भावसे कसे रहें। ऊपर लिखे हुए स्थानोंके तीनों 'जो शरों'के द्वारा दो "जो" (Lease) होते हैं, उनके बीच हो कर 'ब' बाँधना पड़ता है। पहले सामनेके 'जो'के अन्दर एक 'चियर' पहना कर घुमा देनेसे ही सूतोंमें फाँक उठ पड़ेगा। एक 'हाथकी चरखी'में 'ब' बाँधनेका सूता पहना कर उस चरखीको १॥ वा २ हाथकी दूरी पर मिट्टीमें गाड़ देवें। चरखीके सूतका अग्रभाग एक लम्बी छड़के सिरेसे बाँध एवं "जो" के अन्दर घुसा कर सावधानीसे दूसरी ओर खींच लेवें। गुलटके पतले हिस्सेके चिद्रमें ३।४ हाथ लम्बा एक मोटा सूता बाँध देवें सामनेवाले 'जो'के अन्दर "ब" बँधे हुए सूतेको दाहिने हाथसे इस तरह उठावें जिससे 'चियर' के ऊपर तानेका एक एक गुच्छा सूत लिपट जाय। 'ब' सूता उलटा कर गुलटके ऊपर वाले डंडेके नीचेसे घुमावें एवं डंडेके साथ एक पेंच दे कर सूतेको गुलटके नीचेसे हो कर सामनेकी ओर ले आनेसे एक सूतेका 'ब' बाँधा जायगा। इस तरहसे एक एक करके 'चियड़'के ऊपरी सभी सूतोंके "ब" बाँधने चाहिये। समूचे डंडेमें "ब" बाँध चुकने पर गुलटके पतले हिस्सेके पार्श्व संलग्न सूतेसे गुच्छा एक मोटी छड़के साथ बाँध कर डंडेके नीचेसे 'ब' के भीतर रखें। 'द' के अन्दर शर पहना कर उसके दोनों छोरोंको

डंडेके साथ बाँध देवें, इसके बाद ऊपर लिखे हुए तरीके-से दूसरे 'जो' के भीतर उक्त 'चियड़' को पहनानेसे नीचे-वाले 'जो'के सूत ऊपरको उठ जायेंगे एवं इस तरहसे इन सूतोंके भी 'व' बांधना होंगे। इस तरह एक तरफके 'व' बाँध चुकनेपर नराज उल्टा कर दूसरी ओर 'व' बाँधे। इस ओर 'व' बाँधनेके समय तंतु इस तरहसे 'जो'के अन्दर पहनाना पड़ता है कि, वही तंतुगुच्छा पहलेके बँधे हुए 'व' के अन्दर दिया जा सके। तानेके एकसे अधिक तंतु 'व' के अन्दर प्रवेश न कर जाय, उस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

इसके बाद तानेको करघे पर चढ़ा कर कपड़ा बुनना चाहिये। पहले पैड्ल (पाँव दान) दबा कर तानेमें फाँक उठानी पड़ती है। प्रत्येक बार ढरकी चलानेके बाद भरनीके तंतुओंको रांचसे कस देना चाहिये। करघे दो प्रकारके होते हैं, पहला वह जिसमें कुर्सी पर बैठ कर कपड़ा बुना जाता है और दूसरा वह जिसमें भूमि पर ही बैठ कर ढरकी चलानी पड़ती है। इन दोनोंको 'हाईलूम' तथा 'पिटलूम' भी कहते हैं। 'पिटलूम' के कारीगर पाँव-दान रखनेके लिये करघेके नीचे गड्ढे खोद रखते हैं। उसी गड्ढेमें पांव लटका कर वे कपड़ा बुनने बैठते हैं। 'हाईलूम' की अपेक्षा यह लूम सुविधाजनक होता है। इसमें तन्तु अधिक नहीं टूटते।

नवाविष्कृत तांत तथा यन्त्रादि।

वर्त्तमान समय स्वदेशी आन्दोलनसे स्वदेशी वस्त्रोंका अधिक व्यवहार होनेके कारण देशी बंगला तांतोंकी यथेष्ट उन्नति हुई है। अनेकों विदेशी तांतोंका अनुकरण करके देशी तांतोंका किसी किसी विषयमें सुधार किया गया है। उनमें एक ही समय ५ वा १२ नटाइयोंमें सूता लपेटनेके लिये वर्त्तमान आविष्कृत तारिणीयन्त्र; एक ही बार एक ही पुरुष द्वारा ६, १२ वा २४ तानाओंकी नरियोंमें चर्खेकी सहायतासे सूता लपेटनेके लिये सरलायन्त्र (इसके द्वारा भरनी नरियोंमें भी सूता लपेटा जाता है) एवं साधु मिस्त्री-प्रवर्त्तित ताना करनेकी सुन्दर कल उल्लेखनीय हैं।

सूताचक्र वा New spinning wheel—इसमें ठीक सिलाईकी कलकी तरह चेयर पर बैठ कर पाँव चलाना पड़ता है। तूलासे एक बारमें दो सूते भी तैय्यार किये जा सकते हैं।

आज तक जितने नये तांत (Improved Handloom) तैय्यार किये गये हैं, नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ जापानी तांत—(Japanese Handloom)—विला-यती तांतोंकी अपेक्षा जापानी तांत अधिक कार्यकारी होते हैं। व्यक्तिगत हिसाबसे वे कार्य चलानेके उपयुक्त नहीं हैं।

२ हैटर्सली तांत—(Hattersly Domestic Hand-loom) देखने सुनने एवं मजबूतीमें यह तांत बहुत अच्छा होता है। आज कल इसका दाम सस्ता करके १२० रु० कर दिया गया है। परन्तु इसके यान्त्रिक अंश उतने आसान नहीं है, हठात् बिगड़ जानेसे विपद् टूट पड़ती है, कार्य भी बन्द हो जाता है। इस कलसे दैनिक ८ घंटे काम करनेसे ४५ गज, ४४ इञ्च लंबे चौड़े कपड़े तैय्यार किये जा सकते हैं। इसको परिचालनाके लिये शक्तिशाली पुरुषकी जरूरत होती है। कोई भी तीन घंटेसे अधिक काम करनेमें समर्थ नहीं होता। एंजिन द्वारा चलाये जाने पर ये विशेष उपयोगी होते हैं।

३ लाहोरका उन्नत तांत (Lahore Improved Hand loom)—इसका निर्माणकौशल उतना जटिल नहीं है। हमारे देशके जलवायुके लिये बहुत उपयोगी है।

विभिन्न प्रकारके विदेशी तांतोंका संक्षिप्त परिचय,—

४ Jacquard Looms of reed space 82″=इसके द्वारा टेबिल ढकनेके नाना प्रकारके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

५ Drop Box Looms 85″ with I shuttle=इसके द्वारा चेक, ड्रील, डोरिया, साड़ी प्रभृति बने जाते हैं।

६ *Drill mations* Looms 60″ with I shuttle=जिन् तथा ड्रिल प्रभृति कपड़े बुने जाते हैं।

७ Doby Looms 48″ with I shuttle=किनारी (पाड़) में अक्षर, फूल तथा वेल बूटे काढ़े जाते हैं।

८ Dhuty Looms 48″ with I shuttle=इससे धोती तथा साडी तैय्यार की जाती हैं।

९ Calico cloth Looms 48" with I shuttle=केलिको कपड़े तैय्यार करनेके लिये।

१० Plain Looms 42" with I shuttle=इससे रुमाल दोशाले प्रभृति बुने जाते हैं।

११ Drill mation 42" with I shuttle=इससे कमीज़ तथा कोटके रंग विरंगके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

एक देशी तांतमें कितना खर्च पड़ता है एवं उपरोक्त प्रकारसे काम चलानेमें कितनी आय होती है, जनसाधारणकी जानकारीके लिये उसके आयव्ययकी तालिका नीचे दी जाती है—

व्यय—देशी फ्लाइसाटल तांत फ्रेम तथा सरंजाम ४० रु० एवं अतिरिक्त तंतु इत्यादि १० रु० कुल जमा ५० रु०।

आय—१ जोड़ा ४० न० धोती तैयार करनेमें तीन पोले तंतु लगते है, प्रति पोला छः आनेके हिसावसे एक रुपये दो आने, मांड़ इत्यादि एक आने, रंगीन तंतुके लिये इनके अतिरिक्त दो आने, हर एक जोड़े का खर्चा पांच आने, कुल जमा एक रुपये दश आने।

प्रति चढ़ानमें ४से ले कर १२ जोड़े तक कपड़े बुने जा सकते हैं। ४ जोड़े तंतुको वर्त्तमान नियमसे पाटनेमें कमसे कम ४ वा ५ दिन लगते हैं। देहाती कारीगरोंको तंतु देने पर पोला प्रति १० दा० १५ कौ० खर्च पड़ते हैं। उस हिसावसे ४।५ रु० वेतन पर कारीगर-लड़का भी मिलता है। तब भी हम यहां डेढ़ रु०के हिसावसे वेतन जोड़ते हैं। दो रुपये जोड़ा (हम लोगोंके यहां २।० रु० जोड़ा विकता है) बेचनेसे प्रति जोड़ा छः आने अर्थात् मासिक ११॥० वा १२ रु० बचते हैं। किन्तु पक्का कारीगर न रहने पर प्रति दिन एक जोड़ा तैयार नहीं हो सकता। प्रति दिन तीन रैपर तैयार किये जा सकते हैं, इन तीनोंके तैयार करनेमें ४ पोले तन्तु लगेंगे। प्रति पोलेका दाम ८ आनेके हिसावसे २) रु० हुए। तन्तुके अलावे माड़ एवं रंग खर्च ।=; ७ रैपर एक चढ़ानमें तैयार होते हैं। उनके तैयार होनेमें ५ दिन लगते हैं। उस हिसावसे—।०)॥ कुल जमा २॥=॥ प्रति जोड़ा रैपर २॥) रु०के हिसावसे बेचनेसे तीन रैपर का दाम ७॥ रु० होता है। इस हिसावसे १)॥ पैसा अर्थात् मासिक ३२॥-ँ आने होते हैं। ऊपर लिखे हुए नियमोंके अनुसार वस्त्र तथा रैपर बुननेवालोंकी मासिक आय २२॥ रु०से ले कर २३) रु० तक होती है। किन्तु बुननेका काम सब रोज समान भावसे नहीं चलता एवं कारीगरोंको और और कार्य भी देखने पड़ते हैं, इसलिये इस हिसावसे आय कुछ कम होती है। इसके अतिरिक्त रैपरकी विक्री तीन चार माससे अधिक नहीं चलती, इस कारण सब कारीगर इस तरह आय नहीं कर सकते। किन्तु हाँ, अवस्थापन्न व्यक्तियोंके पक्षमें उक्त नियमसे आय करना कुछ असम्भव नहीं।

शिल्प तथा वाणिज्य।

मन्वादि कथित देशी तांतोंका विशेष किसी प्रकारका सुधार न होने एवं उनसे कपड़े बुनना अत्यन्त परिश्रमसाध्य होने पर भी अति प्राचीनकालसे ही भारतके लोग वस्त्रशिल्पकी पराकाष्ठा तक पहुंच चुके थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। भारतवासियोंके अध्यवसाय, अटूट परिश्रम तथा हस्तकौशल द्वारा बहुत दिन पहलेसे ही जिस तरहके वारीक, सुन्दर तथा बहुमूल्य कपड़ोंका प्रचार जनसाधारणमें हो चुका है, संसारमें और भी किसी स्थानमें उस तरहके शिल्पका निदर्शन पाया नहीं जाता। ब्रह्मदेशमें प्रायः प्रत्येक घरमें असवावरूपसे ताँत विराज रहा है। वहांकी रमणियां मानों वैदिक मार्गानुगामिनी हो कर अपने स्वामी पुत्र तथा स्वीय सम्प्रदायके लिये कपास तथा रेशमी कपड़े, रूमाल तथा ओढ़नी प्रभृति बुना करती हैं, किन्तु दुःखकी बात है कि, वे कपड़े उतने परिष्कृत परिच्छन्न नहीं होने, उनमें कितने बहुत मोटे होते हैं। चीन तथा जापानमें इस समय रेशमी शिल्पका बहुत आदर बढ़ तो गया है, किन्तु वह अभी तक भारतके शिल्पका मुकाबिला नहीं कर सके हैं।

यद्यपि भारतवर्षसे वयनशिल्प एक प्रकारसे लुप्त हो गया है, तथापि आज भी कपास, शन, रेशम पशमके जिन सब वस्त्रशिल्पोंका निदर्शन विद्यमान है, उसे देख कर चमत्कृत होना पड़ता है एवं उनके शिल्पचातुर्य्यका विषय अनुधावन करनेसे हृदयमें एक अपूर्व आनन्द होता है।

दुःखका विषय है कि, अङ्गरेज कम्पनीकी अनुकम्पासे ऐसा सुन्दर शिल्प भारतसे लुप्त प्रायः हो गया। मैञ्चेस्टरकी वणिक्-समितिके प्रयत्नसाध्य धोती तथा साड़ीके वाणिज्यकी रक्षा करनेमें धीरे धीरे इस देशकी ताँती जातिके चिरपोषित वाणिज्यकी जड़में कुठाराघात किया गया है। इस समय वे ताँती लोग हताश हो कर उस तरहका उद्यम नहीं कर सकते। प्राचीन शिल्पिगण इस संसारसे अपसृत हो चुके, सुतरां उनके साथ ही साथ भारतीय वस्त्रशिल्प भी एक प्रकारसे जाता रहा। इस समय जो पुरुष अत्यन्त चेष्टा करके उस प्राचीन शिल्पकीर्त्तिको जीवित रखनेमें यत्नवान् हैं, वे भी विदेशी वस्त्रकी तुलनामें लाभसे हानिका अंश ही अधिक देख कर अपने अपने व्यवसायसे हताश हो रहे हैं। इस समय वस्त्रशिल्पमें पूर्वापेक्षा कहीं अधिक दीनता आ घुसी है। फिर भी इस श्रीहीन वाणिज्यके गौरवको स्थिर रखनेवाले अभी भी अनेकों पुरुष विद्यमान हैं।

काशीके सुविख्यात जरीके फीते, सोने वा चांदीके तन्तु द्वारा प्रस्तुत गुलबहार साड़ी, जामदानी, कामदानी तथा संसारके अतुलनीय किंखाप वस्त्र अभी भी शिल्प चातुर्य्यकी पराकाष्ठा दिखा रहे हैं। इन सब कपड़ोंमें प्रधानतः कपास वा रेशमी सूतोंके ऊपर जरीके फूल तथा बेलबूटे खिंचे रहते हैं। बुर्हानपुर, महिसूर, अर्काट, दिल्ली तथा औरंगाबाद प्रभृति स्थानोंमें इस समय भी तन्तुशिल्प के यथेष्ट आदर तथा विस्तार देखे जाते हैं। मन्वादि लिखित उसी सुप्राचीन युगसे आज पर्य्यन्त भारतवासी सभी वर्णोंकी रमणियोंके मध्य चर्खा कातनेकी प्रथा देखी जाती है। इस समय भी ऊपर कहे हुए स्थानोंमें स्त्रियां चर्खेसे बारीक सूता तैयार करती हैं। १९वीं शताब्दीसे भारतवर्षमें इङ्गलैण्ड आदि कई एक पाश्चात्य तथा प्राच्य देशजात द्रव्योंकी आमदनी होनेसे देशी चर्खे द्वारा सूतेके प्रस्तुत तथा प्रचारमें अत्यन्त अवनति हुई है। किंतु तब भी जिन जिन स्थानोंमें रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं, उन सब स्थानोंमें चर्खेका पूरा प्रचार है।

वङ्गालके अन्तर्गत मुर्शिदाबाद जिलेके बहरमपुर शहरमें देशी ताँतोंसे रेशमी गरद वस्त्र एवं मानभूम जिलेके रघुनाथपुरमें इस समय भी कोयेसे चर्खा द्वारा सूता कात कर तसर-वस्त्र बुने जाते हैं। वीरभूम, बांकुड़ा प्रभृति स्थानोंमें भी कोयेसे सूता तैयार करके नाना प्रकारके कपड़े बुने जाते हैं।

इस समय मैञ्चेस्टरकी कलसे काते हुए सूतेकी आमदनी अधिक होनेके कारण भारतकी रमणियोंने चर्खा चलाना बन्द कर दिया है। देशी सूतोंके भावसे विलायती सूतोंका भाव सस्ता देख कर यहांके सभ्यसमाज अपनी कुल-कामिनियोंको चर्खा चलानेका कष्ट नहीं देते, वस्तुतः उसी विलासिताके प्रभावसे आज भारतमें निर्द्धनता आ उपस्थित हुई है। आज भारतवासियोंको अपने शरीर ढकनेके कपड़े के लिये भी दूसरोंका मुंह जोहना पड़ता है। उच्च श्रेणीके शिक्षित तथा विलासी भारतियोंने अपनी कुलकामिनियोंको चर्खा कातनेके कष्टसे उद्धार करके उनको कमर ढकनेके कपड़े तकका भी अभाव कर दिया है। तांतियोंने स्वार्थहानि देख कर जातीय व्यवसायको जलांजलि दे दी। वे भी अब व्यर्थ परिश्रम करके स्वदेश विरागी विदेश-भक्त भारतियोंके अनुग्रहकी आशा प्रत्याशा नहीं रखते, यही कारण है कि, इस देशमें इतने समयके बाद वस्त्र-वयन-शिल्पका इस तरह अधःपतन हुआ है। पहले जिन शिल्पोंके लिये सारा भारत, इतना ही नहीं सारे सभ्य जगत् लालायित होते थे, आज वे शिल्प भारतसे विलुप्त हो गये। उनके बदलेमें एवं उन्हींके अनुकरणसे अङ्गरेज वणिक्-समितिके अनुग्रह द्वारा आज भी सादा तथा डोरीदार डोरिया, मलमल, अबवानि, तुइस, अद्धी प्रभृति सुन्दर बारीक कपड़े वङ्गालसे प्रेरित होते हैं।

ढाकाके उस सुविख्यात मसलिन कपड़े की बात याद करनेसे एवं वङ्गालकी गौरवकीर्त्तिका इतिहास पढ़नेसे जान पड़ता है, कि एक समय वङ्गालकी ताँती-जाति वस्त्र-वयन-शिल्पकी सबसे ऊंची सीढ़ी तक पहुंच गई थी। १६वीं सदीके मध्यभागमें अङ्गरेज याली रल्फ फिच्, सुवर्णग्राममें आ कर यहांके कपास-वस्त्र-वाणिज्यकी भूरि भूरि प्रशंसा कर गये हैं। उस समयकी वंग-राजधानी ढाका शहरमें जो कपासके बारीक कपड़े तैयार किये जाते थे, वे 'ढाका-मसलिन' के नामसे पुकारे जाते थे। वे कपड़े मुगलोंके नगरके मसलिन कपड़ोंसे भी कहीं अच्छे होते थे। अभी जो यूरोपके

विभिन्न राज्योंमें उनकी ही नकल पर मसलिन तैयार किये जाते हैं एवं भारतवर्षमें भेजे जाते हैं। असली 'ढाका मसलिन' बहुत किमती होता था, धनिकोंके सिवा कोई उसे नहीं खरीद सकता था। सुना जाता है, कि तुर्की-सुलतान 'ढाका-मसलिन' को ही पगड़ी पहनते थे।

ढाकाके सूक्ष्म मसलिनके तंतुको पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डित लोग नाना प्रकारके मत प्रकाश करते हैं। उनकी आलोचना करनेसे हम लोग आसानीसे प्राचीन वस्त्रोंकी सूक्ष्मता तथा उस समयके कारीगरोंको कार्यनिपुणताका परिचय पा सकते हैं। मि० टेलर लिखते हैं, कि ढाकेके कारीगर पूरे यत्नसे चर्खोंको कात कर जो वारीक तंतु तैयार करते थे, उसका ७॥ छटाँक वजनका एक पोला तंतु लम्बा करनेसे १५० मीलकी दूरी तक चला जा सकता था। स्वाभाविक शीत तथा जलीयवाष्प-प्रधान स्थानोंमें कपासका तंतु कातनेसे शीघ्र बढ़ता है, ऐसा कह कर ढाकाके तांती लोग सुवहके समय सूर्योदयके पहले ही चर्खा काता करते थे। जिस समय वायु अपेक्षाकृत शुष्क हो जाती थी उस समय वे लोग चर्खेके नीचे जल रख कर कार्य करते थे। उससे वायु जलसिक्त हो कर रूईके अंशको नर्म कर देती थी। इसके वाद प्रातःकालसे ले कर ६ वा १० वजे तक उनकी स्त्रियां तंतु कातती थीं। सन्ध्याके समय ३ वा ४ वजेसे ले कर सूर्यास्त होनेके आध घण्टा पूर्व पर्यन्त तंतु काता जाता था। डा० वाट्सनने ढाकाई, फरासी तथा इङ्गलिश तंतुकी अच्छी तरह परीक्षा करके लिखा है, कि उन सबोंकी अपेक्षा ढाका-मसलिनके तंतुके व्यास कहीं कम होता था एवं यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा प्रत्येक ढाकाई तंतुके रेशे भी कहीं कम देखे जाते थे, किन्तु ढाकाई तंतुके रेशेका व्यास यूरोपीय तंतुकी अपेक्षा वड़ा होता था। इन दो कारणोंसे ही ढाकेके तंतुने सूक्ष्मता तथा दृढ़तामें अन्यान्य सभी देशोंके तंतुको परास्त किया है। और भी विशेषता यह है, कि रूईके रेशे मोटे होनेके कारण एवं चर्खेसे तंतु काते जानेसे ढाकाई तंतुमें यूरोपीय तंतुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक अमेठन रहता है। अभी भी फरासडङ्गा (चन्दननगर), सिमला (कलकत्ता), वगडी, यशोर, शान्तिपुर, कलमें, राधावल्लभपुर प्रभृति स्थानोंमें कपास-वस्त्र वुननेकी विस्तृत आढ़तें हैं। काशीमें रेशमी तथा कपासके तंतु पर जरीका काम की हुई फूलदार वा गुलवहार साड़ी तैयार होती है। वर्त्तमान ढाका शहरमें भी एकमात्र सूक्ष्म कपास वस्त्र तथा नाना प्रकारके नीलाम्बरी कपड़ेके ऊपर जरीके फूलदार पाड़के कपड़े तैयार होते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्द्राज तथा वम्बई प्रेसिडेन्सीके कई स्थानोंमें वस्त्रवयनके वड़े वड़े कारखाने हैं। गुजरात अह्मदावाद, सूरत तथा भरोंचमें नाना प्रकारकी छींटकी साड़ियां तैयार होती हैं। रंगपुरमें लाल तथा काले तंतुसे एक प्रकारका सुन्दर छींट तैयार किया जाता है. उसमें नाना-प्रकारके पौराणिक चित्र देखे जाते हैं। पूना, येवकला, नासिक तथा धारवारमें नाना प्रकारकी रंगीन तंतुकी साड़ियां तैयार होती हैं जो महाराष्ट्रकी रमणियोंके लिये वड़े आदरकी चीजें हैं। नन्दैर, गुटकल, धनवरम्, अमरचिन्ता तथा अरनीमें आज भी ढाकाके समान ही मसलिन तैयार किये जाते हैं। वनारसी साड़ी धोती, किंखाव प्रभृति कपड़ोंके समान पैठान, वुर्हानपुर नारायणपेट, धनवरम्, येवकला प्रभृति स्थानोंमें भी कपड़े तैयार किये जाते हैं। काश्मीर, नूरपुर, लुधियाना, अमृतसर प्रभृति स्थानोंमें पशमी शाल वुने जाते हैं। रंगपुर, भागलपुर, वाराणसी, आगरा, लखनऊ, वरेली, फतहगढ़, लाहौर, मुलतान, हिसार प्रभृति स्थानोंमें कपास तथा पशमके कार्पेट तैयार होते हैं। साधारणतः कपासके कार्पेट आकृति तथा वयनप्रक्रियाके भेदसे गलीचा तथा दुलीचा (Cotton pile carpet) के नामसे पुकारे जाते हैं। पशमी रोयें ऊंचे होनेसे गलीचा (Woolen pile carpet) कहलाता है। मछलीपट्टमके छींट, पलमपोर तथा कार्पेट एवं गोदावरी डेल्टास्थित माधमपलम नामक स्थानजात माडापालम आज कल 'वृटिश-गुड्स' रूपमें भारतमें आते हैं। माधवपलममें अब वे कपड़े वुने नहीं जाते। अङ्गरेज वणिक् लोग तो इन वस्त्रोंको इजारे पर लेनेके लिये वहां कोठी खोली थी। पीछे उसीको नमूना ले कर अपने देशसे माडापालम वस्त्र तैयार करके यहां भेजते हैं। दुःखका विषय है, कि उन्हीं लोगोंके जरिये इस स्थानका वस्त्रवाणिज्य लुप्त हो गया है।

आज भी भारतवर्षके कितने ही स्थानोंमें वयन-शिल्पका यथेष्ट समादर है। कहीं उत्तम कार्पेट, कहीं उत्कृष्ट गलीचा, कहीं कपास तथा रेशमके बारीक कपड़े कहीं पशमीने शाल तथा कम्बल एवं किसी किसी स्थानमें जरी सलमा प्रभृतिके पाड़ तैयार किये जाते हैं। नीचे उत्पन्नवस्त्रादि तथा उनके स्थान और विभागोंके नाम निर्देश किये गये हैं।

अजमेर, अलाई, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमृतसर, अनन्तपुर, अन्धगाँव, अर्काट, अद्दोनी, आगरा, अह्मदाबाद, अरनी, आरा, आसाम, औरंगाबाद, आजमगढ़, बगरू, बहाबरी, बराइच, बंगलूर, बांकुड़ा, बन्नू, बाराबंकी, बराहनगर, बराड़, बर्द्धमान, बरेली, बहरमपुर, मन्द्राज, बरहमपुर, मुर्शिदाबाद, बड़ोदा, बसहर, बस्ती, बताला, बक्सर, बेलगाम, बाराणसी, भचुआ, भागलपुर, भण्डारा, बहबलपुर, भेरा, विकानेर, वीरभूम, विष्णुपुर, बगुड़ा, बम्बई, भरोच, बुलन्दशहर, बुर्हानपुर, कलकत्ता, कालीकट, काम्बे, कानपुर, चम्बा, चम्पारण, चन्दा, चन्देरी, छत्तिसगढ़, चिंगलपत, काकनाड़ा, काञ्चीपुर, कड़ापा, कटक, ढाका, दरभंगा, दतिया, दिल्ली, देरागाजीखां, देरास्माइलखां, धरवार, दिनाजपुर, दीनगर, दोगाछी, एलम्बद, इलोरा, फर्रुखाबाद, फिरोजपुर, गोदावरी, राजमहेन्द्री, गोलकराडा, गुण्डद, गुगैरा, गुजरानवाला, गुजरात, गुलवर्गा, गुरुदासपुर, ग्वालियर, गया, हैदराबाद, (दक्षिणात्य) हैदराबाद, (सिन्ध) हमामकुंड, हद्दों, हसनअवद्ल, हजारा, हिसार, होसंगाबाद, हवड़ा, हुसियारपुर, इन्दाना, इन्दोरा, इन्दुर, आवेमपेट, जब्बलपुर, जाफरगंज, जहानाबाद, जहांगीराबाद, जयपुर, जलालपुर, जालन्धर, जम्मलमड्डुगू, झंग, झांसी, झीलम, जोधपुर, खेड़ा, कालादागी, कालहस्ती, कलमी, कनोज, कांगड़ा, कराची, करौली, कर्णाल, कर्णूल, काश्मीर, श्रीनगर, कसूर, काठियावाड़, खजंवाना, कृष्णा, कोहाट, कोटा, कोट कमालिया, कुम्भकोनम्, लाहोर, ललितपुर, लोहारडगा, लखनऊ, लुधियाना, मन्द्राज, मथुरा, मलबार, मालदह, मालेगाम, मानभूम, मणिपुर, मछलीपट्टन, मऊ, (आजमगढ़) मऊ (झांसी) मेदरपाक, मीरट, मेदनीपुर, मिर्जापुर, मोरादाबाद, मल्लारी, मन्दसोर, मथुरा, मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरनगर, महिसुर, नाभा, नदिया, नागपुर, नेपाल, नूरपुर, उच्छों, पावना, पालमकोट, पटियाला, पटना, पौनी, पेशावर, पूना, प्रतापगढ़, पूरी, रत्लाम, रत्नगिरि, रावलपिंडी, रेवादंड, रीवा, राहतक, (पंजाब) सालेम, संबलपुर, संवर, (काश्मीर) सादनेर, शान्तिपुर, सारण, शारंगपुर, सातक्षीरा, सावन्तवाड़ी, शिउनी, शाहपुरमिशौली, शियालकोट, सिकन्दराबाद, शिकारपुर, शोलापुर, सिमला (पंजाव), सिंहभूम, शीर्षा (पंजाव), सीतामढ़ी, सुलतानपुर (पंजाब), सूरत, ताञ्जोर, थाना, तिलोवानाथ (पंजाव), तिरूपपिलियम, तौड़गढ़, टाटरा, बसिरहाट, त्रिवंकोर, त्रिचिनपल्ली, उज्जैनी, रंगवाड़ो (मन्द्राज), विशाखपाटम, वृद्धाचलम्, वल्लाज (मन्द्राज), जेवला, वरंगल, जेरोवदा, जेलगण्डल।

रेशमी वस्त्रके मध्य अंडी, मूंगा, टसर तथा गरद की धोती, साड़ीं, चादर, पीताम्बर, मसरू, सतरंञ्जो दोपट्टा, गुलबदन, रूमाल, ओढ़ना, हवाके कपड़े, लुंगी, खेश, मेखला, पड़ा, बड़ाकपड़ा, दुकाठिया, रिहा, गमछा, तोयाले इत्यादि कपड़े हैं। पशमी वस्त्रके मध्य रामपुरी तथा काश्मीरी शाल, रामपुरी चादर, अलवान, एकतारा, मलीदा, लुंगी प्रभृति हैं।

कपास एवं रेशमका पशमादिमिश्रित वस्त्र—गर्म सूती (बांकुड़ा तथा मानभूम), आसमानी (बांकुड़ा), वाफता (भागलपुर), मेखली (रंगपुर), अजीजउल्ला वा अजीज (ढाका), सेरोज (ढाका), सादा तथा लाल असमानी सेराज, मछलीकांटा, सवजोकतार, लालकतार, बुलबुल छासम, लालकदमफूली, सादा कदमफूली, कालापाड़दार, लाल पाढ़दार, सर्वार, सेराज, सादा-बड़ाकदमफूली, सफेद-करदार, लाल करदार, काला मछलीकांटा, केंकनीमस्तरू, सुजाखानि, इलाइछा, लुंगी, चन्द्रकला, दुपट्टा, सूती इत्यादि हैं।

छीटके कपड़े-गाजि, गाढ़ा, धोतीजोड़ा, फर्द, रजाई, लिहाफ, पलंगपोष, बुन्दुदी, बन्दसूर्खे, जाजिम, फरास, सामियाना, छींट जरदा, तोशक, छींट-कन्दी, छींट बूटेदार, खेरूआ, नथनी, चपेटा, छीट आम्रावाला, गोल बूटी, तौलिया, शालू, चुनरी, अब्रा, कलमदार, धूपछांह, मयूर-

कण्ठी, वेगुनो, मौजलपुर, चांदतारा, पांचपात, सूती-फुलाल, तरुणसई, झिलमिली, लहेरिया, फुलाल, नामावली, पटोला, पीताम्बर इत्यादि।

सोने वा रूपेके तारों (तन्तु) से तैयार किये हुए कपड़े—जरीका फीता, गोटा, किनारा, अंचला, कालावतून, सूर्ख वा सुनहली, रूपहली, धानक, लचका, पारली बाँकडी, पाटा, पोखुरी, गंगायमुना, किरण, पाइमक, सलमा, कारचिकन, कारचोव, धोती वा साड़ीके पाड़, हँसिया, तास, लप्पो, फीट, पल्लव, किंखाप, लुंगी, वेलदार, बूटेदार, सीकारगाह, जंगला, मीना, जालदार, खंड, चांदतारा, चमसफूल, मोहरबूटी, टेरछा, जालदार, पन्नाहजारा, डोरिया, गेंदा, शाबुर्गा, चिकनदाजी, कशीदा' झापान, मूंगा-चारखाना-कशीदा, काटारोमी कशीदा, नीलचारखाना कशीदा, समुद्रलहर इत्यादि। इन शेषोक्त कपड़ोंके पाड़ रेशम जरी तथा कपाससूत्रके योगसे बूने जाते हैं।

सुईको सहायतासे तसर वा गरदके कपड़ोंके पाड़में, रुमालमें, स्त्रियोंके निमास्तोन एवं बालकोंके पहरनेके कपड़ोंमें चिकनके काम किये जाते हैं। रेशम तथा कपासके मेलसे सुजनी तैयार होती है, स्त्रियां ही प्रधानतः इसके ऊपर सुईसे काम करती हैं। काश्मीर, अमृतसर, लुधियाना, नूरपुर, शियालकोट तथा गुरुदासपुरके शाल तथा शालके पाढ़ बुने जाते हैं। काश्मीरी तांतोंसे बुने हुए शाल—तिलिविनौट, तिलिकार, कणिकार और विनौट एवं सुईसे बुने हुए अमलीकारके नामसे प्रसिद्ध हैं। फूलकारी ओढ़नी कपास वस्त्रोंके ऊपर रेशमके पाड़ दिये जाते हैं। मोटे सूतेके कार्पेट गलीचा, दुलीचा, सतरंजी प्रभृतिके नामसे विख्यात है। पशमके भी गलीचा, (Carpet) कम्बल प्रभृति बुने जाते हैं।

चटाई, शीतलपाटी, तथा खसखसके परदे एवं पाटसन के चट, थैली प्रभृतिकी उत्पत्ति वयन द्वारा होने पर भी वे वयनशिल्पके अन्तर्भुक्त नहीं किये जाते। क्योंकि उनमें सूक्ष्मता तथा शिल्पचातुर्यका वैसा परिचय नहीं पाया जाता। इस समय त्रिपुरा, चट्टग्राम, मेदनीपुर, मन्द्राज, वेलोर, तिन्नेवल्ली प्रभृति भारतके कई स्थानोंमें चटाई बुनी जाती है। ये चटाई दो प्रकारकी होती हैं; काटी तथा वलन्दा। चट्टग्राम, नोआखाली प्रभृति स्थानोंमें वेंतकी छाल चांछ कर अति सूक्ष्म तथा शिल्पयुक्त शीतलपाटी तैयार होती है।

वयनाड़—मन्द्राज-प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक पहाड़ उपविभाग। वैनाड़ देखो।

वयलपाड़—१ मन्द्राज-प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ८३१ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह वयलपाड़ तालुकका विचार-सदर है और मदनपल्लीसे ४ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

वयस (सं० पु०) १ पक्षी, चिड़िया। २ जीवनकाल, अवस्था, उम्र।

वयसिन् (सं० त्रि०) वयसे स्थित। प्राप्तवयस्क, जवान, सयाना।

वयस्क (सं० त्रि०) १ वयस्क, अवस्थावाला। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग समस्त पदके अन्तमें होता है। पूरी अवस्थाको पहुंचा हुआ, जो अब बालक न हो।

वयस्कृत् (सं० त्रि०) आयुष्यप्रद, जीवन देनेवाला।

वयस्थ (सं० त्रि०) वयसि यौवने तिष्ठतीति वयस्-स्था-क। १ प्राप्तवयस्क, सयाना। २ युवा, युवक। ३ समवयस्क। (पु०) ४ समवयस्क पुरुष।

वयस्था (सं० स्त्री०) वयो यौवनं तिष्ठत्यनयेति वयस्-स्था घञर्थे कः; निपातने विकल्पे विसर्ग-लोपः। १ आमलकी, आंवला। २ हरीतकी, हड़। ३ सोमवल्ली। ४ गुड़ूची। ५ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ६ काकोली। ७ शाल्मलि, सेमल। ८ क्षीरकाकोली। ९ अति अम्लपर्णी। १० मत्स्याक्षी। ११ युवती।

वयस्थान (सं० पु०) यौवन।

वयस्फोड़ा (सं० पु०) मुखव्रणविशेष, चेहरे परका वह फुंसियां जो जवानीमें निकलती हैं, मुंहासा।

वयस्थापन (सं० त्रि०) यौवनरक्षा।

वयस्य (सं० पु०) वयसा तुल्यः वयस (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) इति यत्। १ समान वयस्क, एक उमरवाले, हमजोली। पर्याय—स्निग्ध, सवयस्। २ मित्र।

वयस्यक (सं० पु०) वन्धु, मित्र।

वयस्यत्व (सं० क्ली०) वयस्यस्य भावः त्व। वयस्यका भाव या धर्म।

वयस्यभाव (सं० पु०) वयस्यस्य भावः। सख्यभाव, वन्धुत्व भाव।

वयस्वत् (सं० त्रि०) अन्नयुक्त। (ऋक् २।२४।१५)

वयस्या (सं० स्त्री०) वयस्य-टाप्। १ सखी। २ इष्टका, ईंट। ३ आमलकी, आंवला। ४ गुड़ूची, गुड़ूच। ५ क्षीरकाकोली। ६ हरीतकी, हड़।

वयःसन्धि (सं० पु०) वयसः सन्धिः। वाल्ययौवनका सन्धिकाल, चढ़ती जवानी।

वयःसम (सं० त्रि०) वयसा समः। समानवयस्क, समान उमरवाला।

वया (सं० स्त्री०) १ शाखा। "मूर्द्ध नि वया इव रुरुहु" (ऋक् ६।७।६) 'वया इव शाखा इव'। (सायण) २ वयस्, उमर। (ऋक् १।१६५।१५)

वयाकिन् (सं० त्रि०) शाखाविशिष्ट। (ऋक् ५।४४।५)

वयिषु (सं० त्रि०) वस्त्रादि। (ऋक् ८।१९।६)

वयुन (सं० क्ली०) वीयते गम्यते प्राप्यते विषया अनेनेति अज गतौ (अजियमिशीङ्भ्यश्च। उण् ३।६१) सच कित् अजेर्वीभावः। १ ज्ञान, समझ। २ देवतागार, देवालय। (पु०) ३ धिषणाके गर्भसे उत्पन्न कृशाश्वके एक पुत्रका नाम। (भाग० ६।६।२०)

वयुनवत् (सं० त्रि०) प्रकाशयुक्त, प्रकाशविशिष्ट।
(ऋक् ६।२१।३)

वयुनशस् (सं० अव्य०) वयुन-चशस्। ज्ञानक्रम, ज्ञानानुरूप।

वयुनाविद् (सं० त्रि०) वयुनं वेत्ति विद्-क्विप्। प्रज्ञावेत्ता, समझदार (ऋक् ५।८२।१)

वयोगत (सं० क्ली०) वयसे गतं। वयोहानि, बुढ़ापा।

वयोजू (सं० त्रि०) वलवर्द्धिकर, ताकत बढ़ानेवाला।

वयोऽतिग (सं० त्रि०) वृद्धत्वप्राप्त, बूढ़ा।

वयोधस् (सं० पु०) वयो यौवनं दधातीति वयस् असि (वयसि धाञः। उण् ४।१२८) स च डित्। १ युवा, युवक। २ अन्न, अनाज। (वाजसनेय स० १५।७) (त्रि०) ३ आयुर्दाता, जीवन देनेवाला।

वयोधा (सं० त्रि०) १ वलदाता। २ अन्नदाता। ३ युवा। ४ शक्ति।

वयोऽधिक (सं० त्रि०) वयसा अधिकः। वयोज्येष्ठ, वृद्ध, बूढ़ा।

वयोधेय (सं० क्ली०) १ अन्नदान। (ऋक् १०।२५।८)

वयोनाध (सं० त्रि०) प्राण।

वयोवयःशय (सं० त्रि०) खाद्यद्रव्यपूर्ण स्थानमें वसा हुआ।

वयोवस्था (सं० स्त्री०) जीवनकाल, वाल, तरुण और वृद्धादि अवस्था।

वयोविध (सं० त्रि०) पक्षीप्रकृतिसम्वन्धीय।

वयोवृद्ध (सं० त्रि०) वार्द्धक्यप्राप्त, जो अवस्थामें बड़ा हो।

वयोवृध (सं० त्रि०) वलवर्द्धनकारी, ताकत ,बढ़ानेवाला।

वयोहानि (सं० स्त्री०) यौवनह्रास, बुढ़ापा।

वच्य (सं० त्रि०) वच कुलोत्पन्न तुर्व्वीति राजा।

वयोवङ्ग (सं० क्ली०) वयसा वङ्गमिव। सीसक, सीसा

वरंडा (हिं० पु०) बरामदा देखो।

वर (सं० क्ली०) व्रियते इति वृ कर्मणि अप्। १ कुंकुम, केसर। २ त्वक्, दारचीनी। ३ वालक, लड़का। ४ आर्द्रक, अद्रक। ५ सैन्धव नमक। ६ सुगन्धतृण। ७ जामाता, जमाई। ८ गुग्गुल। ९ पति, दूल्हा। १० निग्रह। (ऋक् १।१४३।५) (पु०) वृ-अप्। ११ वरण। पर्याय—वृति। १२ किसी देवता या वड़ेसे मांगा हुआ मनोरथ। १३ फल या सिद्धि। १४ पिङ्ग, विट्। १५ पियाल वृक्ष, चिरौंजीका पेड़। १६ वकुल वृक्ष, मौलसिरी। १७ विवङ्कत वृक्ष। १८ हरिद्रा वृक्ष, हल्दी। १९ गौरा पक्षी। (त्रि०) श्रेष्ठ।

इस शब्दका प्रयोग प्रायः श्रेष्ठता सूचित करनेके लिये संज्ञा या विशेषणोंके आगे होता है। जैसे पण्डितवर, विप्रवर।

वर—पर्वतभेद। (भविष्य ब्रह्मख० ३२।५) शायद यही विहारके अन्तर्गत वरावर शैल है।

वरंवरा (सं० स्त्री०) वरं वृणोतीति वृ-अच्-मुमृच । चक्रपर्णी, पिठवन ।

वरक (सं० क्ली०) व्रियतेऽनेन इति वृ-अप् ततः संज्ञायां कन् । १ पोताच्छादन, नावका आच्छादन । २ साधारण वस्त्र । व्रियते लोकैरिति वृ-अप्, ततः कन् । (पु०) ३ वनमुद्ग, वनमूंग । ४ पर्पटक, पित्तपापड़ । ५ प्रियंगु नामक तृणधान्यभेद, काकुन । पर्याय—स्थूलकंगु, रुक्ष और स्थूल प्रियंगु । गुण—मधुर, रूक्ष, कषाय और वात पित्तकर । ६ ह्रस्वबदरीफल, जंगली बेर । ७ प्रार्थनाविशेष ।

वरक (अ० पु०) १ पत्र । २ पुस्तकोंका पन्ना । ३ सोने, चांदी आदिके पतले पत्तर जो कूट कर बनाये जाते हैं और मिठाइयों पर लगाने और औषधमें काम आते हैं ।

वरकल्याण (सं० पु०, क्ली०) राजभेद ।

वरकन्दा (सं० स्त्री०) क्षीरीश वृक्ष, खिरनीका पेड़ ।

वरकाष्ठिका (सं० स्त्री०) १ वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ । २ राटिका, टिटहिरी नामकी छोटी चिड़िया ।

वरकीर्त्ति (सं० स्त्री०) पञ्चतन्त्रोक्त व्यक्तिविशेष ।

वरक्रतु (सं० पु०) वरा, श्रेष्ठा, क्रतवो यस्य शताश्वमेधित्वात् तथात्वं, यद्वा वर, क्रतुर्यस्मात् शतक्रतुत्वात् तथात्वं । इन्द्र ।

वरकोद्रव (सं० पु०) कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़ ।

वरग (सं० क्ली०) नगरभेद ।

वरघण्टिका (सं० स्त्री०) वृक्षभेद । इस वरघंटी भी कहते है ।

वरङ्गल—दाक्षिणात्यमें हैदराबाद राज्यान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह हैदराबादसे ४३ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है और अक्षा० १७° ५८´ उ० तथा देशा० ७९° ४०´ पू०के बीच पड़ता है । यह नगर निजामके शासनाधीन है। इससे पश्चिम करीमाबाद (४५६५ जनसंख्या) तथा एक मील उत्तर पश्चिममें मतवार (८८१५ जनसंख्या) नगर आज भी वरंगलकी प्राचीन समृद्धिका परिचय दे रहा है ।

प्राचीन तेलिंग राज्यके अन्ध्रवंशीय हिन्दू राजाओंकी समृद्धिके समय यह नगर उन लोगोंकी राजधानी थी । दुःखका विषय है, कि उस राजवंशका कोई प्रकृत इतिहास नहीं मिलता । १३०३ ई०में अल्लाउद्दीनने तेलिंग पर आक्रमण किया । किन्तु वे सफलीभूत न हो सके । इस लड़ाईमें उनको बड़ी क्षति हुई । पीछे वे लाचार हो कर लौट गये । इस समयसे ही मुसलमानोंके इतिहासमें वरंगलका प्रकृत इतिहास पाया जाता है । १३०९ ई०में मालिक काफुरने वरंगल दुर्ग पर अधिकार कर लिया एवं वहांके हिन्दू राजाको कर देनेके लिये बाधित किया । गयासुद्दीन तुगलकके राजत्वकालमें मुसलमानोंने पुनः वरंगल पर अधिकार तो कर लिया पर अधिक दिनों तक वे राज्यपालन न कर सके । क्योंकि, महम्मद तुगलकके शासनकालमें हिन्दुओंने पुनः अपने नष्ट राज्यका उद्धार किया ।

इसके बाद दाक्षिणात्यमें जब बाह्मनी राजवंशका प्रभाव फैल गया तब दोनों देशवासी हिन्दू तथा मुसलमानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ । १५३८ ई०में वरङ्गलके राजाने अपने हृतराज्यकी पुनःप्राप्तिके लिये आवेदन किया इस पर फिरसे दोनों पक्षमें लड़ाई शुरू हो गई । इस युद्धमें वरङ्गलके राजा गोलकोंडा राज्यसे हाथ धो बैठे और उनका पुत्र बाह्मनी राजाके यहां बन्दी हो कर मारा गया । उक्त हिन्दू राज्यका जो अंश शेष बचा था वह भी १५१२ ई०से ले कर १५४३ ई०के अन्दर ही कुली कुतुबशाहके हाथमें चला गया । इसने कुतुबशाही वंशकी प्रतिष्ठा की । गोलकोण्डामें उसकी राजधानी स्थापित हुई थी । यहां अभी हिन्दुओंकी कीर्त्तिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है ।

वरङ्गाउन—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर । यह भूषावल उपविभागके सदरसे ८ मील पूर्वमें अवस्थित है । पहले यह स्थान वाणिज्यमें खूब चढ़ा बढ़ा था । भूषावलमें विभागीय सदर उठ कर चले आनेसे यह स्थान श्रीहीन हो रहा है । १८६१ ई०में सिन्देराजने यह स्थान अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया । इसके पहले यह नगर यथाक्रम मुगल, निजाम और पेशवाओंके अधिकारमें था । म्युनिसपलिटी रहनेसे नहरकी शोभा और सुन्दरता नष्ट नहीं हुई है ।

वरचन्दन (सं० क्ली०) वरं श्रेष्ठं चन्दनं । १ काला चन्दन । २ देवदारु ।

वरज (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

वरज—भोजराज्यके अन्तर्गत एक ग्राम।
(भविष्य ब्रह्मख० ३०।४७।१५४)

वरजानुक (सं० पु०) ऋषिभेद।

वरजीवी (सं० पु०) १ वर्णसंकर जाति जो स्मृतियोंमें गोप और तन्तुवायके संयोगसे उत्पन्न कही गई है। २ ब्राह्मणका औरस पुत्र जो शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हो।

वरट (सं० क्लो०) म्रियते इति वृ-अटन्, (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) १ कुन्दपुष्प, कुन्दका फूल। वरति सेवते सरोवरमिति वृञ् सेवायां अटन्। (पु०) २ हंस। ३ वेदिका, भिड़, बर्रे। पर्याय—गन्धोली, वरटा, गन्धोलि, वरला, वरली, क्षुद्रा, क्रूरा, क्षुद्रवर्णाणा। (राजनि०)

वरटक (सं० पु०) कुसुमवीज।

वरटा (सं० स्त्री०) वरट् टाप्। १ हंसी। २ कुसुमवीज। ३ अग्निप्रकृति कीटभेद, बर्रे नामका उड़नेवाला कीड़ा। ४ वङ्ग, राँगा नामकी धातु। ५ गंधिया कीड़ा।

वरटी (सं० स्त्री०) वरट जातौ ङीष्। १ हंसी। २ गन्धोली, गँधिया कीड़ा।

वरट्टिका (सं० स्त्री०) कुसुमवीज। पर्याय—वरटा। गुण—मधुर, स्निग्ध, गुरु, अवृष्य और वायुहर। (भावप्र०)

वरण (सं० क्ली०) वृ भावे ल्युट्। १ किसीको पसन्द करके किसी कार्यके लिये नियुक्त करना, किसीको किसी कामके लिये चुनना या मुकर्रर करना। २ मङ्गल कार्यके विधानमें होता आदि कार्य-कर्त्ताओंको नियत करके दान आदिसे उनका सत्कार करना। ३ मङ्गल कार्यमें नियत किये हुए होता आदिके सत्कारार्थ दी हुई वस्तु या दान। ४ कन्याके विवाहमें वरको अङ्गीकार करनेकी रीति।

होमसाध्य जिस किसी विदित कर्ममें होम आरम्भ करनेके पहले यजमान अपना शिष्ट और विनीतभाव दिखानेके लिये आचार्य प्रभृतिको स्वयं वरण कर देवें। आचार्य प्रभृति वरणीय ब्राह्मणोंको गन्धादि द्वारा प्रसन्न करके कर्म करनेके लिये प्रेरणा करनेका नाम ही वरण है। दानवाचन, अन्वारम्भ, वरण और व्रत आदि स्थानोंमें यजमान-कर्त्तृताका ही वोध होगा। वरणकालीन यजमानको पूर्वमुख तथा आचार्य आदिको उत्तरमुख बैठना होगा।

"सर्वत्र प्राङ्मुखो दाता गृहीता च उदङ्मुखः।" (स्मृति)

कात्यायनने वरणकी विधि इस प्रकार वतलाई है। पहले यजमान आसन ला कर कहें,—'साधु भवान् आस्तामर्च्चयिष्यामो भवन्त'।' वरणीय ब्राह्मण उत्तर दें 'साध्वहमासे' हरिशर्मा इस प्रकार कहें—'अर्च्चयिष्यामो भवन्त" इसके वाद 'अर्च्चय' ऐसा प्रतिवचन कहना होगा। (संस्कारतत्त्व)

जिस कर्ममें वरण करना होगा, उसमें निम्नलिखित प्रकारसे संकल्प करके वस्त्र और उपवीतादि देने होंगे।

जिसे वरण करना होगा, उसका दाहिना जानु स्पर्श कर 'विष्णुरोम् तत्सदोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुक तिथौ अमुकगोत्रं अमुकप्रवरं श्रीअमुकदेवशर्माणं अमुक कर्मकरणाय एभिर्वस्त्रपुष्पमाल्यादिभिरभ्यर्च्च भवन्तमहं वृणे" एवं ऋत्विक् 'वृतोऽस्मि' कहें। पीछे यजमान कहें—"यथाविहितं अमुक कर्म कुरु।" इसके वाद ऋत्विक्को 'यथाज्ञानं करवाणि' ऐसा कहना होगा।

इस प्रकार ऋत्विक्का वरण हो जाने पर वह अपने सङ्कल्पित कर्म आरम्भ कर दें। यजमान यदि अपना कर्म न कर सके, तो पुरोहित आदिको वरण कर सकते हैं। पीछे पुरोहितको चाहिये, कि वे पूजादि कर्ममें व्रती हो कर उसे समाप्त कर डालें। विवाहमें भी जमाईका पहले वरण कर पीछे कन्यासम्प्रदान करना होता है। विवाहमें वरणकी जगह वर और कन्याके तीन पुरुषोंका नाम उल्लेख कर वरण करना होता है।

विवाहमें वरणवाक्य इस प्रकार होगा। संप्रदाता वरका दाहिना जानु छू कर यों कहें—विष्णुरोम् तत्सदोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकपौत्रं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्रं अमुकगोत्रं अमुकप्रवरं श्रीअमुकदेवशर्माणं वरं; अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पौत्रीं अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्रीं अमुकगोत्रां अमुकप्रवरां श्रीअमुकीदेवीं कन्यां दातुमेभिर्गन्धादिभिरभ्यर्च्च्य वरत्वेन भवन्तमहं वृणे" पीछे जामाता 'वृतोऽस्मि' कहें।

यथाविधि वरण कर देनेके बाद उसे कार्यमें अधिकार होता है, इसी कारण व्रतादिमें पुरोहित आदिको वरण करना पड़ता है।

प्रतिनिधि वा उपयुक्त व्यक्तिनियोगका नाम ही वरण है। जैसे राजपद पर वरण। इसी कारण माङ्गलिक कार्यादिमें नियुक्त व्यक्तिके सम्मानार्थ कुछ माङ्गलिक द्रव्य द्वारा उसकी सम्वर्द्धना की जाती है।

५ वेष्टन, ढकने या लपेटनेकी वस्तु। ६ पूजा, अर्चना, सत्कार। ७ प्राकार, किसी स्थानके चारों ओर घेरी हुई दीवार। ८ उष्ट्र, ऊंट। ९ वरुणवृक्ष। १० सेतु, पुल।

वरणक (सं० त्रि०) १ वरणकारी, वरण करनेवाला। (पु०) २ आच्छादन, आवरण।

वरणमाला (सं० स्त्री०) वरणाय वा माला। वरणस्रज्, वह पुष्पमाला जो वरणके समय पहनाई जाती है।

वरणसी (सं० स्त्री०) वाराणसी। (शब्दरत्ना०)

वरणस्रज् (सं० स्त्री०) वरणमाला। (राजतर० १।६१)

वरणा—१ एक छोटी नदी। यह पञ्जाब देशसे निकल कर सिन्धुनदमें दक्षिण ओरसे अटककी विपरीत दिशासे आ कर मिलती है। प्राचीन ग्रीक भौगलिकोंने इसका Aornos नामसे उल्लेख किया है। २ एक छोटी नदी। यह काशीके उत्तरमें बहती है और वाराणसीक्षेत्रकी उत्तरीय सीमा है। इस नदीमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं। विष्णुके दाहिने पादसे असि नामक नदी निकली है, इसी कारण दोनों नदियाँ पुण्यवर्द्धिनी और पापनाशिनी मानी गई हैं। इन्हीं दोनों नदियोंका मध्यवर्त्ती स्थान वाराणसी कहलाता है। इसके समान पुण्य स्थान स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें दूसरा नहीं है। (वामनपु० ६ अ०)

वरणा (सं० स्त्री०) तुवरी, अरहर।

वरणीय (सं० त्रि०) वृ-अनीयर्। १ वरणके योग्य, जिसे वरण किया जाय। २ प्रार्थनीय, जिसे प्रार्थना की जाय। ३ श्रेष्ठ, बड़ा।

वरण्ड (सं० पु०) वृणोतीति वृ (अण्डन् कृसभृ वृञः। उण् १।१२८) इति अण्डन्। १ अण्डरावेदि, बरामदा। २ समूह। ३ मुंहरोगभेद, मुंहासा। ४ वंशीकी डोर, शिस्त। ५ घासका गट्ठर। ६ फीलखाने आदिमेंकी वह दीवार जो दो लड़ाके हाथियोंके बीचमें लड़ाई बचानेके लिये बनाई जाती है।

वरण्डक (सं० पु०) वरण्ड स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ मातङ्गवेदि, हाथीकी पीठ पर कसा जानेवाला हौदा। २ युद्धमान दो गजोंको मध्यवर्त्तिनी भित्ति, दो लड़ाके हाथियोंके बीचकी दीवार। ३ यौवनकण्टक, मुंहासा। (त्रि०) ४ वर्त्तुल, गोल। ५ विशाल, बड़ा। ६ भीत, डरा हुआ। ७ कृपण, कंजूस।

वरण्डा (सं० स्त्री०) वरण्ड टाप्। १ सारिका, मैना। २ वर्त्ति, बत्ती। ३ शास्त्रभेद, कटारी।

वरण्डालु (सं० पु०) वरण्ड एव आलुरस्य। एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़।

वरतनु (सं० त्रि० १ सुन्दरी स्त्री। २ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे १, २, ३, ४, ६, ७, ९, ११वाँ अक्षर लघु और बाकी सभी गुरु होते हैं।

वरतन्तु—एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वरतिक्त (सं० पु०) वरः श्रेष्ठस्तिक्तस्तिक्तरसोयस्य। १ कुटज, कोरैया। २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ३ पर्पट, पापड़ा। ४ रोहितक, रोहनका पेड़।

वरतिक्तिका (सं० स्त्री०) वरतिक्त स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। पाठा।

वरतोया (सं० स्त्री०) नदीभेद।

वरत्करी (सं० स्त्री०) रेणुका नामक गन्धद्रव्य।

वरत्रा (सं० स्त्री०) व्रियतेऽनेनेति वृ (वृञश्चित्। उण् ३।१०७) इति अत्रन्-टाप्। १ हस्तिकक्ष-रज्जु, हाथी खींचनेका रस्सा। पर्याय—चूषा, कक्ष्या, कक्षा। २ चर्म्मरज्जु, चमड़ेका तसमा। ३ बरेत, बरेता।

वरत्वच (सं० पु०) वरा हितकरी त्वचा यस्य। निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

वरद (सं० त्रि०) वरं ददातीति दा (आतोऽनुपसर्गेति। पा ३।२।३) इति क। १ अभीष्टदाता, वर देनेवाला। पर्याय—समर्द्धक, वांछितार्थद। २ प्रसन्न।

वरद—१ विन्ध्यपार्श्वस्थित शोणनदतीरवर्त्ती एक गण्ड-

ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ८।३७) २ वङ्गका एक प्राचीन विभाग। (भविष्य ब्रह्मख० १०।३)

वरद—दाक्षिणात्यवासी एक संस्कृत शास्त्रवित् पण्डित। ये तोण्डीरमण्डलमें रहते थे। इनके पिताका नाम था श्रीनिवास। इन्होंने अनङ्गजीवन नामक एक भाण लिखा।

वरदकवि—कारिकादर्पणके प्रणेता।

वरदक्षिणा (सं० स्त्री०) १ वह धन जो वरको विवाहके समय कन्याके पितासे मिलता है, दहेज। २ वह वृथा खर्च जो नष्टवस्तुके सुधारनेमें लगता है।

वरदचतुर्थी (सं० स्त्री०) वरदाचतुर्थी, माघमासकी शुक्ला-चतुर्थी।

वरदत्त (सं० त्रि०) वर या अनुग्रह रूपमें प्राप्त।

वरददेशिकाचार्य—१ काञ्चीवासी सुदर्शनके पुत्र। इन्होंने 'वसन्ततिलक' नामक एक भाणकी रचना की। २ एक दार्शनिक। इन्होंने तत्त्वत्रय और वेदान्तकारिकावली नामक दो ग्रन्थ बनाये।

वरदनाथ—तत्त्वत्रयचुलुकार्थसंग्रह नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इनके पुत्रने इस ग्रन्थके आधार पर रहस्य-त्रयचुलुक नामक एक पुस्तक लिखी।

वरदनायकसूरि—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध पण्डित। ये तत्त्वनिरूपण नामक एक ग्रन्थ बना गये।

वरदमूर्त्ति—वाजपेयादि सञ्चयनिर्णय नामक वैदिक ग्रन्थके रचयिता।

वरदयोग—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। (भविष्य ब्रह्मख० १८।२२) इसका वर्त्तमान नाम वज्रयोगिनी है। वज्रयोगिनी देखो।

वरदराज—१ एक विख्यात तार्किक। इन्होंने तर्ककारिका, तार्किकरक्षा तथा सारसंग्रह नामक तार्किकरक्षाकी टीका लिखी। २ एक विख्यात वैयाकरण। इनके पिताका नाम दुर्गातनय था। पाणिनि व्याकरणके आधार पर इन्होंने गीर्वाणपदमञ्जरी, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, लघुकौमुदी तथा सारसिद्धान्तकौमुदी या सारकौमुदी नामक संस्कृत व्याकरण प्रणयन किया। ३ एक विख्यात वेदज्ञ पण्डित। ये वामनाचार्यके पुत्र और अनन्तनारायणके पौत्र थे। इन्होंने ऋग्वेदभाष्य, तैत्तिरीयारण्यकभाष्य, निदानसूत्र-वृत्ति, प्रतिहारसूत्रवृत्ति, मशकफल्पसूत्रभाष्य एवं वरद-राजदीक्षितीय नामक श्रौतग्रन्थ लिखा। ४ एक मीमांसक, इनके पुत्रका नाम रङ्गराज और पौत्रका देवराज था। ये सुदर्शनाचार्यके शिष्य थे। इन्होंने मीमांसानयविवेक-दीपिका लिखी। ५ एक नैयायिक। ये रामदेव मिश्रके पुत्र और हरिदासकी न्यायकुसुमाञ्जलीटीकाके एक टिप्पणी-कार थे। ६ शिवसूत्रवार्त्तिकके रचयिता। ७ व्यवहार-काण्ड या व्यवहारनिर्णयके प्रणेता। ८ यागप्रायश्चित्त व्याख्याकार। ९ आनन्दतीर्थ-रचित महाभारततात्पर्य-निर्णयकी मन्दसुबोधिनी नामकी टीकाके रचयिता। १० भाषामञ्जरी और प्रमाणपदार्थ नामक व्याकरण ग्रन्थ के प्रणेता। ११ न्यायदीपिकाके रचयिता। १२ तत्त्व-निर्णय नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार। १३ किरणावलीके एक टीकाकार। १४ पुरुषसूक्तके एक भाष्यकार। १५ कविजनविनोद नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

वरदराज आचार्य—नाममातृकानिघण्टुके रचयिता।

वरदराज चोलपण्डित—विवेकतिलक नामधेय रामायणके एक टीकाकार।

वरदराज भट्ट—सामान्यपदमञ्जरी नामक वैदान्तिक ग्रन्थ-के रचयिता।

वरदराज भट्टारक— कामन्दकीय नीतिशास्त्रके टीकाकार।

वरदराजीय (सं० त्रि०) वरदराजका लिखा हुआ।

वरदर्शिनी (सं० स्त्री०) देखनेमें सुलक्षण या सुन्दरी।

वरदविष्णुसूरि—एक जैनसूरि।

वरदा (सं० स्त्री०) वरद-टाप्। १ कन्या। २ आदित्यभक्ता। ३ अश्वगन्धा। ४ प्रसन्न चिह्नसूचक हस्तादि विन्यास-रूप मुद्राविशेष। ५ सुवर्च्चला, अड़हुल। ६ वराहीकन्द। (त्रि०) ७ अभीष्टफलदात्री, वर देनेवाली।

वरदा—हिमपादविनिःसृत नदीभेद। (हिमवत्ख० ४।६) यहां अष्टादशभुजा देवीमूर्त्ति विराजित हैं।

(हिम० ४१।३६-४४)

वरदाचतुर्थी (सं० स्त्री०) वरदाख्या चतुर्थी। माघ महीने-के शुक्लपक्षकी चतुर्थी, वरदा चौथ। इस दिन गौरीपूजा करनी होती है और वे वर देती हैं, इसीसे इस चतुर्थीको वरदा चतुर्थी कहते हैं। इस तिथिमें पूजा करनेसे सौभाग्य और अतुल श्रीलाभ होता है। इस चतुर्थीमें

गौरीपूजा करके पञ्चमीमें सरस्वतीपूजा करनी पड़ती है।

वरदाचार्य—बहुतेरे अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। यथा—१ अनङ्गब्रह्मविद्याविलास और अम्बाल-भाण नामक भाणके रचयिता। २ अधिकारसंग्रह-भाष्यकार। ३ अभयप्रदान और अभयप्रदानसारके प्रणेता। ४ उत्प्रेक्षामञ्जरी नामक अलङ्कार-ग्रन्थके रचयिता। ५ कान्तालीयखण्डनमण्डनकार। ६ परतत्त्व-निर्णयकार। ७ कारिकादर्पणके प्रणेता। ८ प्रमेयमाला नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। ९ भगवद्ध्यान-मुक्तावलीकार। १० मङ्गलमयूरमालिका नामक अलङ्कार-ग्रन्थके रचयिता। ११ यतिराजविजय या वेदान्त-विलासनाटककार। १२ विरोधपरिहारकार। १३ व्याकरण लघुवृत्तिके प्रणेता। १४ श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यकार। १५ सावित्री परिणय नामक काव्यके रचयिता।

वरदाता (सं० त्रि०) वरदातृ देखो।

वरदातु (सं० पु०) ददातीति दा-तुन् वरस्य दातुः। वृक्ष-विशेष, सागवानका पेड़। पर्याय—भूमिसह, द्वारदातु, खरच्छद। गुण—शिशिर और रक्तपित्तप्रसादन।

वरदातृ (सं० त्रि०) दा-तृण, वरस्य दाता। अभीष्टफल-प्रदाता, वर देनेवाला।

वरदात्री (सं० त्रि०) वर देनेवाली।

वरदाधीश यज्वन्—एक प्रसिद्ध स्मार्त्त वेङ्कटाधीशके पुत्र। इन्होंने प्रयोगवृत्ति और प्रायश्चित्तप्रदीपिका लिखी।

वरदान (सं० क्ली०) वरस्य दानं। १ अभिलषित विषय-प्रदान, किसी देवता या बड़ेका प्रसन्न हो कर कोई अभि-लषित वस्तु या सिद्धि देना। २ किसी फलका लाभ जो किसीकी प्रसन्नतासे हो।

वरदानमय (सं० त्रि०) वरदान स्वरूपे मयट्। वरदान-स्वरूप।

वरदानिक (सं० त्रि०) वरदान सम्बन्धी।

वरदानी (सं० पु०) वर प्रदान करनेवाला, मनोरथ पूर्ण करनेवाला।

वरदाभूमि—जनपदभेद। (भविष्य ब्रह्मख० ६।२७)

वरदायोगिनी—बंगालकी एक प्राचीन राजधानी। यहां गौड़ाधिप राजत्व करते थे। वर्त्तमान नाम वज्र-योगिनी है।

वरदारु (सं० पु०) १ वृक्षविशेष (Tectona Grandis)। २ श्रेष्ठदारु, पीपल वट आदि बड़ा पेड़।

वरदारुक (सं० पु०) वृक्षभेद। इसके पत्ते विषैले होते हैं।

वरदाश्वस (सं० त्रि०) वरद, वर देनेवाला।

वरदी (अ० स्त्री०) वह परिधान जो किसी विशेष विभाग-के कर्मचारियोंके लिये नियत हो, वह पोशाक या पहनावा जो किसी खास महकमेके अफसरों और नौकरोंके लिये मुकर्रर हो। जैसे—पुलिसकी वरदी, फौजकी वरदी।

वरदेव—राठोर राजवंशके प्रतिष्ठाता। ये कामध्वज उपाधि-धारी तेरह महाशाखाओंके एक आदिपुरुष थे। अपने जेठे भाईके द्वारा वाराणसी और ८४ नगरोंका आधिपत्य पाने पर भी उन सबोंको छोड़ कर इन्होंने पावकपुरमें स्वतन्त्र राजधानी कायम की। इनके वंशधरगण पावक-कामध्वज नामसे प्रसिद्ध हैं।

वरद्रुम (सं० पु०) वृहदाकार वृक्षभेद, एक प्रकारका अगर जिसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। अङ्गरेजीमें इसे Agallochum कहते हैं।

वरधर्म्म (सं० पु०) श्रेष्ठ कार्य, बड़ा काम।

वरधर्म्मकृत् (सं० त्रि०) दूसरोंकी भलाई करनेवाला।

वरन् सं० अव्य०) ऐसा नहीं, बल्कि। इस शब्दका प्रयोग अब उठता जा रहा है।

वरना (अ० अव्य०) नहीं तो, यदि ऐसा न होगा तो। जैसे—आप बैठिये; वरना मैं भी उठ कर चला जाऊंगा।

वरनारी (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री।

वरनिश्चय (सं० पु०) पतिनिर्वाचन, पति चुनना।

वरपक्ष (सं० पु०) वरयात्र, बरात।

वरपक्षिणी (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त देवीभेद।

वरपक्षीय (सं० त्रि०) वरका सम्पर्कीय या वरयात्र-सम्बन्धी।

वरपण्डित—कथाकौतुक नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

वरपर्णाख्य (सं० पु०) वराणि पर्णान्यस्य, वरपर्णेति आख्या यस्य। क्षीरकंचुकी वृक्ष, क्षीरकड़ार।

वरपीत (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

वरपीतक (सं० पु०) वरपीत देखो।

वरपुत्र (सं० पु०) वह जिसने वर पाया है। जैसे—कालि-दास सरस्वतीके वरपुत्र थे।

वरपोत (सं० पु०) श्रेष्ठ शाक।

वरप्रद (सं० त्रि०) वरं प्रदावीति। दा-क। १ वरदाता, वरदेनेवाला। २ प्रसन्न।

वरप्रदा (सं० स्त्री०) लोपामुद्रा।

वरप्रदान (सं० क्ली०) वरस्य प्रदानं। वरदान, मनोरथ पूर्ण करना, कोई फल या सिद्धि देना।

वरप्रभ (सं० त्रि०) १ अति प्रभाविशिष्ट, खूब चमकदमक वाला। (पु०) २ बोधिसत्त्वभेद।

वरप्रस्थान (सं० क्ली०) वरयात्रा।

वरफल (सं० पु०) वरं फलमस्य। १ नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़। (क्ली०) २ नारिकेल, नारियल। ३ श्रेष्ठफल।

वरम (सं० पु०) वर्म देखो।

वरमेल्ही (हिं० पु०) एक प्रकारका लाल चन्दन जो मलय द्वीपसे आता है।

वरयात्रा (सं० स्त्री०) वरस्य यात्रा। विवाह करनेके लिये वरका कन्याके घर जाना। पृथिवीके क्या सभ्य क्या असभ्य सभी सम्प्रदायकी सभी जातियोंके मध्य वरयात्रा प्रचलित है। परन्तु विवाह-पद्धति सभी जातिकी समान नहीं है। आधुनिक शिक्षा और सभ्यताविस्तारके साथ साथ प्राचीन उत्सव तथा हम लोगोंकी रीति-नीतिमें बहुत कुछ हेर-फेर हो गया है। यह परिवर्त्तन केवल उच्च सम्प्रदायके भीतर ही हुआ है, सो नहीं, उच्च संप्रदायका यथासम्भव आदर्श ले कर धीरे धीरे निम्न संप्रदायमें भी हो गया है। फिर किसी जातिने इन सब कामोंमें अपने अपने धर्मोज्ज्वल कर्मको छोड़ा है, ऐसा भी नहीं कह सकते।

यात्रा करनेके पहले अवस्थानुसार वरको सजाया जाता है। कोई कोई वर तो किरीट-कुण्डल कञ्चुकादिमण्डित हो यात्रा करते हैं। फिर किसीको साधारण धोती और अंगरखा पहन कर जाना पड़ता है। यह सब मनुष्यकी अवस्था पर निर्भर करता है, पर धनीकी तो बात ही नहीं, गरीब वरयात्रामें कुछ धूमधाम अवश्य करता है, चाहे उसे ऋण भी क्यों न हो जाय।

वर उपवासी रह कर यथासमय यात्रा करता है। यात्रा करनेसे पहले वरके ललाटमें चन्दन लगाया जाता है। यह काम घरकी स्त्रियां ही करती हैं। वरके विघ्ननाशके लिये उसके चन्दनाङ्कित ललाटमें 'दुर्गा वा हरि' आदि नाम लिख देती हैं। यात्राकालमें एक दधि-मधुलाञ्छित सफलपल्लव पूर्णकुम्भ वरके सामने रखा जाता है। वर उसकी ओर देख कर 'दुर्गा गणेश माधव' आदि भगवत् नाम लेता हुआ यात्रा करता है। इस समय गुरु-पुरोहित अथवा कोई दूसरे शास्त्रज्ञ ब्राह्मण 'धेनुर्वत्सप्रयुक्ता' आदि यात्रामङ्गल मन्त्र पाठ करते हैं। वर यात्रा करके पहले देव, ब्राह्मण और पितामाता आदि अन्यान्य श्रेष्ठ व्यक्तियोंको प्रणाम करता है। वे सब उसे आशीर्वाद करते हैं। इस समय शङ्खकी ध्वनि भी होती है। कहीं कहीं दश पांच स्त्रियां मिल कर माङ्गलिक सङ्गीत गाती हैं। पूर्णकुम्भकी बगलमें एक वरणडाला रहता है। इस वरणडालेमें स्वस्तिक, सिन्दूर, धान्य, दूर्वा, प्रदीप आदि अनेक माङ्गलिक द्रव्य सजे रहते हैं। वर जब यात्रा करता है, तब कोई स्त्री दूधसे उसका हाथ धो देती है।

देशभेदकी प्रथाके अनुसार वर बांयें हाथमें छुरी, कटारी, सरौता, दर्पणादि ले कर घरसे निकलता है। इस समय वरके साथ उसके ज्ञाति-कुटुम्ब भी चलते हैं। अवस्थाभेदसे वर गाड़ी, नाव, पालकी वा घोड़े पर चढ़ कर जाता है। जो खूब धनी हैं वह पथका सुगम और सुयोग होनेसे हाथी, चतुर्दोल वा मूल्यवान् अश्वयान पर यात्रा करते हैं।

राजा जमींदारोंका तो पूछना ही क्या है, जो धनी और शहरवासी हैं, उनकी बारात सचमुच देखने लायक होती है। जिसके धन है, वे चाहे दूसरे कामोंमें भले ही खर्च न करें, पर वरयात्रामें घरकी गृहिणी वा अन्यान्य सम्बन्धियोंसे बाध्य हो कर उन्हें खुले हाथसे खर्च करना पड़ता है। श्वेत, पीत, नील, लोहित वा मिश्रवर्णके चन्द्रातप-राजित रौप्य वा पित्तल दण्डमण्डित अनेक वादक-वादित झालर-झलमलीकृत सुन्दर चतुर्दोलकी लोहित मखमल-मण्डित वेदिका पर चढ़ कर किरीटकुण्डल-कञ्चुक पहन कर किसी राजपुत्र वा नवाब पुत्रकी तरह वर चलते हैं। दोनों बगल दो स्त्रीवेशधारी बालक चामरसे उसे हवा करते हैं। अन्यान्य वरयात्रि-

गण अवस्थानुसार परिष्कार परिच्छन्न वेशभूषा करके वरके साथ साथ पैदल चलते हैं। साथमें तरह तरहके बाजे और रोशनी रहती हैं। धनीकी बारातमें आशा-सोटा वल्लम बर्छा लिये, ढाल तलवार लटकाये, शिर पर भिन्न भिन्न रंगकी पगड़ी बांधे, कतार लगाये, बाजेके ताल पर पैर उठाये अनेक सुसज्जित अनुचर चलते हैं। कागजका हाथी, कागजका घोड़ा, कागजकी नाव और उसके ऊपर बाई-नाच, खेमटा-नाच आदि रंग बिरंगके तमाशे बारातकी शोभा बढ़ाते हैं। भिन्न भिन्न तरहकी रोशनी लोगोंको चकाचौंध कर देती है। इस प्रकारका जुलूस देखनेके लिये रास्तेके दोनों किनारे लोगोंकी भीड़ लग जाती है।

बारात जब कन्याके घरके पास पहुंचती है, तब कन्या-पक्षके लोग बड़े आदर-सत्कारसे उन्हें दरवाजे पर लाते हैं।

बङ्गालके ब्राह्मण, कायस्थ, वैश्य और शूद्रादि जो धनी हैं, उनकी बारात इसी प्रकार सजधज कर जाती है। पर जिनकी अवस्था कुछ खराब है, वे खर्चमें किफायत कर देते हैं।

भारतकी, केवल भारत ही क्यों कहें—पृथ्वीकी सभ्य असभ्य समृद्ध असमृद्ध सभी जातियोंकी वरयात्रा व्यापार इसी प्रकार थोड़े बहुत आमोद उत्सव और समारोह आडम्बरसे परिपूर्ण रहता है। परन्तु जातिविशेष वा सम्प्रदाय विशेषकी रीति-पद्धतिमें बहुत पृथक्ता देखी जाती है। विवाह देखो।

वरयात्रिन् (सं० त्रि०) वरयात्रा-अस्त्यर्थे इनि। वह भीड़ भाड़ जो दूल्हेके साथ चलती है, बरात।

वरयितव्य (सं० त्रि०) वर-णिच्-तव्य। वरणके योग्य।

वरयितृ (सं० पु०) वर-णिच् तृच्। १ भर्त्ता, पति। २ वरकारयिता, वरण करनेवाला।

वरयु (सं० पु०) महाभारत वर्णित एक व्यक्ति।

(भारत उद्योगपर्व)

वरयुवति (सं० स्त्री०) १ छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं। उनमेंसे १, ४, ६, ८, ९ और १६ अक्षर गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। इसके लक्षण—

"भो नयना नगौ च यस्यां वरयुवतिरियं।"

(छन्दोमञ्जरी)

२ रूपयौवनसम्पन्ना स्त्री।

वरयोग्य (सं० त्रि०) १ वर, आशीर्वाद या उपहार पानेके लायक। २ वरणीय, वरण करके योग्य।

वरयोनिक (सं० पु०) केसर।

वररुचि (सं० पु०) वरा रुचिर्यस्य। एक प्राचीन वैयाकरण और प्रसिद्ध कवि। इनका दूसरा नाम पुनर्वसु है। अष्टाध्यायीवृत्ति, एकाक्षरकोष, एकाक्षरनिघण्टु, एकाक्षरनाममाला, एकाक्षराभिधान, ऐन्द्रनिघण्टु, कारकचक्रकारिका, दशगणकारिका, पत्रकौमुदी, प्रयोगविवेक, प्रयोगविवेकसंग्रह, प्राकृतप्रकाश, फुल्लसूत्र (पुष्पसूत्र), योगशतक, राक्षसकाव्य, राजनीति, लिङ्गविशेषविधि, लिङ्गवृत्ति, लिङ्गानुशासन, वररुचिवाक्यकाव्य, वादतरङ्गिणी, वार्त्तिक, शब्दलक्षण, श्रुतबोध और समासपटल आदि ग्रन्थ इन्हींके बनाये हैं। किन्तु सचमुच इन्होंने उक्त सभी ग्रन्थोंको रचना की थी या नहीं इसमें बहुतोंका संदेह है। क्योंकि, अपने अपने ग्रन्थ प्रचारके लिये बहुतोंने वररुचिका नाम छाप दिया है। महाकवि कालिदासके नाम पर भी दूसरोंके रचित अनेक ग्रन्थोंका प्रचार देखा जाता है। एकमात्र पाण्डित्यपूर्ण प्राकृतप्रकाश तथा वाक्यपदीप आदि वररुचिकी रचना है, ऐसा बहुतेरोंका विश्वास है। भोजप्रबन्धमें इनके रचित अनेक श्लोक उद्धृत हैं।

सोमदेव भट्टके कथासरित्सागरमें लिखा है, कि वररुचिका दूसरा नाम कात्यायन है। वे वैयाकरण पाणिनिके सहपाठी थे। इसी कारण दो अथवा इनके नामसे प्रचारित वा इनसे प्रकाशित अष्टाध्यायी पाणिनिसूत्रकी वृत्ति और वार्त्तिकादि नाना व्याकरण ग्रन्थ देख कर दो पण्डितसमाज इन्हें ब्राह्मण-वंशोद्भव सोमदत्तके पुत्र कात्यायन मानते हैं। किन्तु पाणिनिके सूत्र और वार्त्तिककी आलोचना करनेसे सूत्रकार और वार्त्तिककारको कभी भी एक समयका आदमी नहीं कह सकते। वरसूत्रके सैकड़ों वर्ष बाद वार्त्तिक रचा गया है ऐसा प्रतीत होता है। पाणिनि देखो।

वार्त्तिक और प्राकृतप्रकाशकारको भी हम दो व्यक्ति

नहीं मानते। प्राकृत-प्रकाशमें वररुचिका असाधारण कृतित्व देख कर मालूम होता है, कि प्राकृत और पाली-भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। उक्त ग्रन्थके छपते समय उसकी भूमिकामें अध्यापक ई, वी, कावेलने लिखा है, कि वररुचि १ली सदीके आदमी थे। गारेट साहब-के मतसे वे ईसाजन्मसे पहले ४थी शताब्दीमें तथा चन्द्रगुप्तसे भी पहले विद्यमान थे। अभिधानकार हेम-चन्द्रविरचित स्थविरावलीचरितमें लिखा है, कि नन्द-वंशीय राजा ६म नन्दके राजत्वकालमें मगधके अन्त-र्गत पाटलीपुत्र नगरमें वररुचिने जन्मग्रहण किया। ४६६ ई०सन्‌से पहले नन्दवंशका आविर्भाव हुआ। इस देशके बहुतोंका विश्वास है, कि वररुचि महाराज विक्रमादित्यके नौ रत्नोंमेंसे एक थे। इस सम्बन्धमें वे लोग ज्योतिर्विदाभरणका एक श्लोक उद्धृत करते हैं;—

"धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंह-शङ्कु-
वेतालभट्ट-घटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥" (नवरत्न)

किन्तु उक्त नवरत्न जो एक समयके आदमी नहीं थे, यह श्लोक कविकी कल्पनामात्र है, ऐसा प्रमाणित हुआ है। वराहमिहिर देखो।

नन्दवंशके उपाख्यानमें वररुचिका दूसरा दूसरा विवरण लिखा जा चुका है। नन्द देखो।

२ शिव, महादेव।

वररुचितीर्थ—प्राचीन तीर्थभेद।
(स्कान्द नागरख० १२५ अ०)

वररूप (सं० त्रि०) १ सुन्दररूपविशिष्ट, खूबसूरत। (पु०) २ बुद्धभेद।

वरल (सं० पु० स्त्री०) वृणातीति वृ-अलच्। वरट, हंस।

वरलब्ध (सं० पु०) वरः उत्कर्षो लब्धः पुष्पेषु येन। १ चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़। २ रक्तकाञ्चन, कचनाल। ३ नागकेसर चम्पक। (त्रि०) वरेण लब्धः। ४ वर-प्राप्त, जिसे वर मिला हो।

वरला (सं० स्त्री०) वरल-टाप्। १ हंसी। २ बरटा, गंधिया कीड़ा।

वरली (सं० स्त्री०) वरल ङीष्। वरटा।

वरवत्सला (सं० स्त्री०) वरे जामातरि वत्सला। श्वसुर-भार्या, सास।

वरवराह (सं० पु०) वर्व्वर, घुंघराले बालोंवाला जंगली आदमी। भाषाविद्गण अनुमान करते हैं, कि इस शब्दसे ग्रीक Barbaros, रोमक Barbarus और अङ्गरेजी Barbarian शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

वरवर्ण (सं० पु०) १ सुवर्ण, सोना। २ श्रेष्ठ वर्ण, बढ़िया रंग।

वरवर्णिन् (सं० स्त्री०) सुन्दर वर्णशाली, बढ़िया रंग-वाला।

वरवर्णिनी (सं० स्त्री०) वरः श्रेष्ठो वर्णः प्रशस्तः पीता-दिर्वास्त्यस्या इति वरवर्ण-इनि ङीप्। १ अत्युत्तमा स्त्री। पर्याय—वरारोहा, मत्तकामिनी, उत्तमा, मत्त-काशिनी। २ लाक्षा, लाख। ३ हरिद्रा, हल्दी। ४ रोचना। ५ फलिनी, प्रियंगु। ६ साध्वी स्त्री। ७ गौरी। ८ लक्ष्मी। ९ सरस्वती।

वरवारण (सं० पु०) १ जाङ्गल जीवविशेष, जङ्गली जान-वर। २ सुन्दर हस्ती, बढ़िया हाथी।

वरवासि (सं० पु०) जातिविशेष।

वरवाह्लीक (सं० क्ली०) कुङ्कुम, केशर।

वरपूत (सं० त्रि०) वर या आशीर्वादीरूपसे प्राप्त।

वरवृद्ध (सं० पु०) वरः श्रेष्ठो वृद्धः। १ पुरातन, पुराना। २ शिव।

वरशठ—स्वर्णग्रामके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान।
(भविष्य ब्र०ख० ८।४३)

वरशिख (सं० पु०) एक असुर। इसे इन्द्रने सपरिवार मारा था।

वरशीत (सं० क्ली०) त्वच्, दारचीनी।

वरश्रेणी (सं० स्त्री०) ह्रस्वमूर्वा, छोटी मरोड़फली।

वरस् (सं० क्ली०) तेज।

वरसद् (सं० पु०) आदित्य, सूर्य।

वरसान (सं० पु०) वृ (छन्दस्यशानच्‌सृजृभ्याम्। उण् २।८६) इति शानच्। दारिक, पुत्र।

वरसुन्दरी (सं० स्त्री०) १ सुन्दरी स्त्री। २ छन्दोभेद।

इसके प्रति चरणमें १४ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, ५, ६, १३, १४ वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं।

वरसुरत (सं० त्रि०) सुरतक्रियाभिज्ञ, उच्छृङ्खल।

वरसेन (सं० पु०) गिरिसङ्कटभेद।

वरस्त्री (सं० स्त्री०) सुन्दरी नारी, खूबसूरत औरत।

वरस्या (सं० स्त्री०) वरणीया, वरणके योग्य स्त्री। "वरस्या याम्यध्रिगूह्व वे" (ऋक् ५।७३।२) 'वरस्या वरणीया'। (सायण)

वरस्रज् (सं० स्त्री०) वह माला जो कन्या वरके गलेमें डालती है।

वरहक (सं० क्ली०) एक जनपदका नाम।

वरहि—एक पहाड़ी जाति।

वरही (हिं० पु०) १ सोनेकी एक लम्बी पट्टी जो विवाहके समय वधूको पहनाई जाती है, टीका। २ बरही देखो।

वरा (सं० स्त्री०) वृ-अच्-टाप्। १ त्रिफला। २ रेणुका नामक गन्धद्रव्य। ३ गुडूची, गुरुच। ४ मेदा। ५ ब्राह्मी। ६ विडङ्ग। ७ पाठा। ८ हरिद्रा, हल्दी। ९ श्रेष्ठा। १० शणपुष्पी। ११ वार्त्तिकृन, वैंगन। १२ ओड्रपुष्प, अड़हुल। १३ वन्ध्याकर्कोटकी। १४ मद्य। १५ श्वेतापराजिता। १६ सोमराजी। १७ शतमूली।

वराक (सं० पु०) वृणीते तच्छील इति (जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्। पा ३।२।१५५) इति षाकन्। १ शिव। २ युद्ध, लड़ाई। ३ पर्पटक, पापड़ा। (त्रि०) ४ शोचनीय। ५ नीच।

वराकपुर—एक प्राचीन ग्राम। बारिकपुर देखो।

वराग्राम—बम्बई प्रेसीडेन्सीके महीकान्था विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य और उसका प्रधान नगर। यहांके ठाकुर उपाधिधारी सामन्तराज रायसिंह वेहवाड़ वंशीय राजपूत हैं, ज्येष्ठपुत्र ही सम्पत्तिका अधिकारी होता है; किन्तु दत्तक लेनेकी क्षमता नहीं है। यहांका राजस्व ६५०० रु० हैं।

वराङ्ग (सं० क्ली०) वरमङ्गानां। १ मस्तक। २ गुह्य, गुदा। ३ योनि। ४ श्रेष्ठअवयव। ५ चोच, दारचीनी। पाठा। ७ हरिद्रा, हल्दी। ८ मेदा। ९ पेड़की टहनीका सिरा। (पु०) वराणि स्थूलानि अङ्गानि यस्य। १० हस्ती, हाथी। ११ विष्णुका एक नाम। १२ एक प्रकारका नक्षत्र वत्सर। यह ३२४ दिनोंका होता है।

वराङ्गक (सं० क्ली०) वरमङ्गमस्य कप्। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। (त्रि०) २ श्रेष्ठावयवयुक्त।

वराङ्गदल (सं० क्ली०) प्रियंगुपत्र, कंगनीका पत्ता।

वराङ्गना (सं० स्त्री०) वरा श्रेष्ठा अङ्गना स्त्री। अति प्रशस्ताङ्गयुक्ता स्त्री, सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री।

वराङ्गरूपोपेत (सं० त्रि०) अङ्गानां रूपाणि अङ्गरूपाणि वराणि अङ्गरूपाणि तैरुपेतः। श्रेष्ठरूपयुक्त, सुन्दर। पर्याय—सिंहसंहनन।

वराङ्गिन् (सं० त्रि०) वराङ्गमस्त्यस्येति वराङ्ग-इनि। १ श्रेष्ठाङ्गयुक्त, वराङ्गविशिष्ट। (पु०) २ अम्लवेतस, अमलवेत। ३ गज, हाथी।

वराङ्गिनी (सं० स्त्री०) श्रेष्ठाङ्गयुक्ता, वराङ्गविशिष्टा।

वराङ्गी (सं० स्त्री०) वरमङ्गमन्तरवयवो यस्याः। १ हरिद्रा, हल्दी। २ नागदन्ती। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

वराजीवी (सं० पु०) ज्योतिषी, गणक।

वराज्य (सं० क्ली०) उत्कृष्टघृत, बढ़िया घी।

वराट (सं० पु०) वरमन्दमटनीति अट कर्मणि अण्। १ कपर्द्दक, कौड़ी। श्रेष्ठ, मध्य और कनिष्ठके भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। पीतवर्णकी गांठदार छः माशेकी कौड़ी श्रेष्ठ चार माशेकी मध्य और तीन माशेकी कौड़ी कनिष्ठ मानी गई है। वैद्यकके मतसे इसी प्रकारकी कौड़ीको वराटक कहा है।

वराट या कौड़ीकी शोधनप्रणाली—कौड़ीको एक पहर तक कांजीमें स्वेद देनेसे वह शुद्ध होती है। दूसरा तरीका—जमीनमें गड्ढा बना कर पत्ता बिछा दे। पीछे उसको भूसीसे भर कर घरके चूहे रख 'पालिका' नामक यन्त्रमें गोंइठेकी आग जलानेसे कौड़ी भस्म वा विशुद्ध होती है। यह शोधी हुई कौड़ी सब रोगोंको हरनेवाली है। दूसरेके मतसे—जंबीरी नीबू अथवा किसी दूसरे अम्लरसमें कौड़ीको भिगो रखे। जब वह पीली हो जाय, तब उसे निकाल कर धो डाले। इससे कौड़ी विशुद्ध हो जायगी। शोधित कौड़ीका गुण परिणामशूल, क्षय और ग्रहणीनाशक, कटु, तिक्त, अग्निदीपक, शुक्रवर्द्धक तथा वात और कफहर माना गया है।

२ रज्जु, रस्सी। ३ पद्मवीज।

वराटक (सं० पु० स्त्री०) वराट स्वार्थे कन्। १ कपर्द्दक, कौड़ी। लीलावतीमें वराटककी संख्याके भेदसे इस प्रकार नामनिरुक्ति देखनेमें आती है—बीस कौड़ीका नाम काकिणी, चार काकिणीका एक पण, सो ठह पणका एक द्रम्य और सोलह द्रम्यका नाम निष्क है। (लीलावती)

प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि अस्सी वराटकका एक पण, सोलह पणका एक पुराण और सात पुराणका एक रजत होता है।

दक्षिणमें वराटक देनेकी व्यवस्था है। नीच ब्राह्मणको दान और दक्षिणाहीन यज्ञ नष्ट हो जाता है, इस कारण एक कौड़ी वा एक पण कौडी अथवा एक फल वा एक पुष्प भी कमसे कम दक्षिणामें देना चाहिये।

(पु०) २ रज्जु, रस्सी। ३ पद्मबीज।

वराटकरजस् (सं० पु०) वराटक इव रजो यत्र। नागकेसरका पेड़।

वराटकविष (सं० क्ली०) वराटक नामक त्वक्सारनिर्य्यास विष। (सुश्रुत-कल्प० २ अ०)

वराटकी (सं० त्रि०) वराटक सम्बन्धी।

वराटिका (सं० स्त्री०) वराट-स्वार्थे कन्, ततष्टाप्, अत इत्वञ्च। १ कपर्द्दक, कौड़ी। २ तुच्छ वस्तु। ३ नागकेसरका पेड़।

वराड़ी (सं० स्त्री०) रागिणीभेद। राग और रागिणी देखो।

वराण (सं० पु०) व्रियते इति वृ-युच्, पृषोदरादित्वप्रयुक्त दीर्घ। १ इन्द्र। २ वरुणका वृक्ष, बरना।

वराणस (सं० त्रि०) वरणा और असिसम्बन्धी।

वराणसी (सं० स्त्री०) काशी, वाराणसी।

वाराणसी वा काशी देखो।

वरातुष (सं० क्ली०) बौद्रभेद।

वरादन (सं० क्ली०) वरै राजभिरद्यते इति अद ल्युट्। राजादन, टेसू।

वरानना (सं० स्त्री०) वरं आननं यस्याः। सुन्दरी स्त्री।

वरान्न (सं० क्ली०) वरं अन्नं। भर्जितधान्य, दला हुआ उत्तम अन्न। शमीधान अथवा मूँग, मसूर, उड़द आदि को अच्छी तरह भून कर उसको दल ले। पीछे जलमें अच्छी तरह पाक करके सुसिद्ध होने पर वह वरान्न कहलाता है।

वराभिद् (सं० पु०) अम्लवेतस, अमलवेत।

वराबर विहारप्रदेशके अन्तर्गत एक बड़ी शैलश्रेणी। यह गया जिलेके जहानाबाद उपविभागमें अवस्थित है। इस शैलके ऊपर एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें सिद्धेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। प्रवाद है, कि दिनाजपुरके श्रीकृष्णविद्वेषी असुरराजने यहां यह देवमूर्त्ति स्थापन की थी। इसके दक्षिण पर्वतके नीचे 'सातघरा' नामक एक बड़ी गुहा देखी जाती है। उनमेंसे चार गुहामें कर्णछोपर, सुदामा, लोमशऋषि और विश्वामित्रके नाम देखे जाते हैं। उसमें जो पाली अक्षरमें लिखित शिलालिपि है, उससे जाना जाता है, कि सबसे प्राचीन गुहा ईसा जन्मसे पहले ४थी शताब्दीमें और सबसे आधुनिक २६४ ई०में उत्कीर्ण हुई थी। इसके पास ही पातालगङ्गा और नागार्जुनी नामक जलधारा है। उस धाराके निकट गोपी, वापीय और वादिथी नामकी दूसरी तीन गुहाए हैं। ये तीनों गुहाएँ ई०सन्से पहले ३री सदीमें अशोकके पुत्र दशरथ द्वारा प्रतिष्ठित हुई हैं। गोपी गुहामें सम्राट् अशोकके समयकी प्राचीन पाली अक्षरमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। बराबर देखो।

वराम्ल (सं० पु०) श्रेष्ठाऽम्लाऽत्र, रस्य लत्वम्। करमर्द, करौंदा।

वरारक (सं० क्ली०) वरं श्रेष्ठं धनिनम् ऋच्छति गच्छति ऋ ण्वुल्। हीरक, हीरा।

वरारक्षक—विन्ध्यपर्वतपार्श्वस्थित एक ग्राम।

(भविष्य ब्रह्मख० ८।४३)

वरारणि (सं० पु०) माता।

वरारोह (सं० पु०) हस्तिनः उच्चत्वात् आयतपृष्ठत्वाच्च वरः आरोहो यत्र। १ विष्णु। २ एक प्रकारका पक्षी। (त्रि०) २ श्रेष्ठ सवारीवाला।

वरारोहा (सं० स्त्री०) वरः आरोहाः नितम्बो यस्याः। १ उत्तम स्त्री, खूबसूरत औरत। २ कटि, कमर। ३ सोमेश्वरस्थित दाक्षायणी मूर्त्तिभेद।

वरार्थिन् (सं० त्रि०) आशीर्वादाकाङ्क्षी, ईप्सित वस्तुके पानेकी इच्छा करनेवाला।

वरार्द्धक (सं० क्ली०) पूजाकी एक सामग्री। इसमें चन्दन, कंकुम और जल समभाग होता है।

वराई (सं० त्रि०) वरदानके उपयुक्त।

वराल (सं० पु० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

वरालक (सं० पु०) वराल देखो।

वरालि (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ वराड़ी रागिणी।

वरालिका (सं० स्त्री०) वरा आलिका सखी जयादिर्यस्याः। दुर्गा।

वराशि (सं० पु०) स्थूल वस्त्र, मोटा कपड़ा। पर्याय—स्थूलशाटक, वरासि, स्थूलशाटिका, स्थूलपट्टक। जटाधरके मतसे यह शब्द क्लीवलिङ्ग है।

वरासन (सं० क्ली०) वरायै दुर्गायै अस्यते क्षिप्यते दीयते इति यावत्, आस-ल्युट्। १ ओड्रपुष्प, अड़हुल। वरं श्रेष्ठमासनं। २ श्रेष्ठ आसन, ऊंचा आसन, सिंहासन। (पुं०) वरां स्त्रीयां नारीं अस्यति त्यजतीति अस-ल्यु। ३ षिड़ग, हिजड़ा, खोजा। वरानपि जनान् अस्यति दूरीकरोति। ४ द्वारपाल।

वरासन—एक प्राचीन नगर। यह दुर्जयपर्वतके दक्षिण-पूरब कोनेमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें क्षोभक नामक महाशैल और क्षोभक नगर पड़ता है।

(कालिकापु० ७०।१६१)

वरासि (सं० पु०) वरैः श्रेष्ठैः अस्यते क्षिप्यते इति अस-इन्। १ स्थूलशाटक, मोटा कपड़ा। वरोऽसिर्यस्य। २ खड़्गधर, तलवारधारी।

वरासी (सं० स्त्री०) म्लानवास, मैला कपड़ा।

वराह (सं० पु०) १ विष्णु। २ मानभेद, एक मान। ३ एक पर्वतका नाम। ४ मुस्त, मोथा। ५ शिशुमार, सूंस। ६ वाराहीकन्द। ७ अठारह द्वीपोंमेंसे एक छोटा द्वीप।

वराह (अवतार)—विष्णुका तृतीय अवतार। भगवान्ने विष्णु वराहरूपमें अवतीर्ण हो कर पृथिवीका उद्धार किया। इस अवतारका विषय भागवतमें इस प्रकार लिखा है—प्रलयपयोधिजलमें पृथिवी जब निमग्न हुई, तब स्वायम्भुव मनुने ब्रह्माके पास आ कर स्थानके लिये प्रार्थना की। तब ब्रह्मा अत्यन्त चिन्तित हो कर भगवान् विष्णुका स्तव करने लगे। इसी समय भगवान् ब्रह्माके नासारन्ध्रसे अंगूठा भरका एक वराहपोत निकला। निकलते ही वह बातकी बातमें इतना बढ़ा कि आकाशको ढक लिया। उसका अङ्ग प्रत्यङ्ग पत्थरके समान मजबूत हो गया। ब्रह्मादि देवगण भगवान्का अवतार समझ कर उसका स्तव करने लगे। भगवान् उन लोगोंके स्तवसे परितुष्ट हो पृथिवीका उद्धार करनेके लिये प्रलय-पयोधि-जलमें घुसे और पृथिवीका अन्वेषण करने लगे। पीछे रसातलमें जा कर वहां पृथिवीको देख पाया। अनन्तर उन्होंने प्रलयकालमें शयनेच्छु हो सर्वजीवाधार उस धराको अपने जठरमें धारण कर लिया। इसके बाद वे अपने दांतोंसे पृथिवीको पकड़ कर थोड़े ही समयके मध्य रसातलसे बाहर निकल आये। वराहदेवने पृथिवीका उद्धार किया है, देख कर देवगण उनका स्तव करने लगे। अनन्तर उन्होंने दैत्यराज हिरणाक्षका जलके मध्य वध किया। हिरण्याक्ष देखो। (भागवत ३।१३-२० अ०)

कालिकापुराणमें लिखा है, कि भगवान् वराहदेव पृथिवीका उद्धार कर पृथिवी पर यथेच्छ विचरण करने लगे। पृथिवी उनका भार सहन न कर सकी और महादेवकी शरणमें पहुंची। महादेवने वराहरूपी विष्णुसे कहा था, 'देव! आपने जिस उद्देशसे वराहदेवको धारण किया है, वह सिद्ध हो चुका। अभी पृथिवी आपका भार वहन न कर सकनेके कारण विशीर्ण हो रही है, इसलिये आप वराह शरीरको छोड़ दीजिये। विशेषतः आपने जलमय प्रदेशमें कामिनी पृथिवीको कामना पूरी की है। स्त्री-धर्मिनी पृथिवीने आपके तेजसे दारुण गर्भधारण किया है। उस गर्भसे जिसकी उत्पत्ति होगी, वह पुत्र देवद्वेषी असुरभावापन्न होगा। अतः प्रार्थना है, कि रजस्वला-सङ्गममें दुष्ट अनिष्टकारक इस कामुक वराहदेहका त्याग कीजिये।'

वराहदेवने महादेवका वचन सुन कर उनसे कहा था, 'महादेव! तुम्हारे वाक्यानुसार मैं इस वराहदेहका त्याग करता हूं और फिरसे लोकहितके लिये आश्चर्य वराह-देह धारण करूंगा।' इतना कह कर वराहदेव अन्तर्हित हो गये। महादेव भी वहांसे चल दिये।

वराहदेव उस स्थानसे जा कर लोकालोक पर्वत पर वराहरूपिणी मनोरमा पृथिवीके साथ रमण करने लगे। बहुत समय क्रीड़ा करके भी वराहरूपी विष्णु तृप्त न हुए। अनन्तर वराहदेवके वीर्यसे पृथिवीके गर्भसे महा-बलिष्ठ सुवृत्त, कनक और घोर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। वराहदेव इन सब पुत्रोंसे परिवृत्त हो तरह तरह

की क्रीड़ा करने लगे। उस भारसे पृथिवीका बिचला हिस्सा धँस गया। अनन्तदेव कूर्मको आक्रमण करके पृथिवी मध्यस्थायी वराहदेवकी वहनव्यथासे भग्नमस्तक और आतङ्कित हो गई। इस प्रकार पुत्रसे परिवृत वराहदेवके भारसे पृथिवी पर तरह तरहका उत्पात होने लगा, सुमेरुके सभी शृङ्ग टूट फूट गये, मानसादि सरोवर उछल पड़ा और कल्पवृक्ष नष्ट हो गया।

अनन्तर देवगण लोकहितके लिये देवेन्द्र और देवयोनिके साथ मन्त्रणा करके भगवान् विष्णुका स्तव करने लगे। भगवान् देवताओंके स्तवसे संतुष्ट हो बोले, 'तुम लोग जिस भयसे भयभीत हो मेरे निकट आये हो, मुझसे किस प्रकार उस भयकी शान्ति होगी, वह मुझसे जल्द कहो।' देवताओंने कहा, 'वराहकी क्रीड़ाके कारण पृथिवी दिन-पर-दिन शीर्ण हो रही है। मनुष्य उस उद्वेगसे शान्तिलाभ करने नहीं पाते। सूखे कद्दू पर आघात करनेसे वह जिस प्रकार टूट जाता है, वराहके खुरके आघातसे पृथिवी भी उसी प्रकार विदीर्ण हो रही है। आप सृष्टिस्थितिके लिये अपना यह भयङ्कर रूप छोड़ देवें।'

जनार्द्दनने देवताओंकी यह बात सुन कर ब्रह्मा और महादेवसे कहा, 'जगत्‌के दुःखकारणस्वरूप इस वराहदेहका मैं त्याग करूंगा, किन्तु सुखात्मक इस देहका मैं स्वेच्छापूर्वक त्याग नहीं कर सकता। इसलिये हे ब्रह्मन्! तुम महादेवको अपने तेजसे पुष्ट करो, देवगण महादेवको भी अप्यायित करें। रजस्वलाके सङ्गम तथा ब्राह्मणादिके कारण पापपूर्णप्राणको मैं खुशीसे छोड़ दूंगा।' इसके बाद भगवान् विष्णु देवताओंके आदेशसे वराहदेवसे अपना तेज खींचने लगे। तेजके खींच जानेसे वराहदेह सत्त्वहीन हो गई। पीछे महादेव देवताओंके साथ तेजरहित वराहदेवके समीप गये। ब्रह्मादि देवगण महादेवका तेज बढ़ानेके लिये उनके पीछे पीछे चले। उन सबोंके तेज देनेसे महादेव अत्यन्त बलवान् हो उठे। अनन्तर महादेवने ऊर्द्ध्व तथा अधोदेशमें अष्टचरणसमन्वित भयानक शरभरूप धारण किया। वराह और शरभमें तुमुल युद्ध होने लगा। पीछे शरभरूपी महादेवसे वराहदेव मारा गया। पीछे उसके महाबलिष्ठ पुत्र पौत्रादि भी शरभके दारुण आघातसे विनष्ट हुए।

इस प्रकारके कौशलसे वराहदेवके मारे जाने पर उसके शरीरसे सभी यज्ञ उत्पन्न हुए। शरभने वराहदेहको फाड़ दिया और ब्रह्मा, विष्णु तथा प्रमथोंके साथ महादेव जलसे इस देहको ले कर आकाश चले गये। विष्णुने सुदर्शनचक्र द्वारा उस देहको खण्ड खण्ड कर डाला। इसी वराहदेवके दोनों भ्रू और नाकका सन्धिभाग ज्योतिष्टोम नामक यज्ञरूपमें परिणत हुआ। कपोलदेशके उच्च स्थानसे कर्णमूलके मध्यस्थित सन्धिभाग वह्निष्टोमयज्ञ, चक्षु और दोनों भ्रूका सन्धिभाग पौनर्भवस्तोम यज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभाग वृद्धस्तोम तथा वृहत्स्तोम, जिह्वादेशके अधोभागसे अतिरात्र तथा वैराज यज्ञ हुआ। अश्वमेध, महामेध तथा नरमेध आदि प्राणिहिंसाकर जो सब यज्ञ हैं, हिंसाप्रवर्त्तक वे सब यज्ञ चरणसन्धिसे, राजसूय, वाजपेय और सभी गृहयज्ञ पृष्ठसन्धिसे; प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, दान, श्रद्धा और सावित्री आदि यज्ञ हृदयसन्धिसे; उपनयनादि संस्कारके यज्ञ तथा प्रायश्चित्तविधायक यज्ञ मेढ़सन्धिसे; राक्षसयज्ञ, सर्पयज्ञ आदि सभी प्रकारका अभिचार यज्ञ, गोमेध एवं वृक्षजाप आदि यज्ञ खुरसे; मायेष्टि, परमेष्टि, गोपति, भोगज और अग्निषोम यज्ञ लांगूलसन्धिसे; तीर्थप्रयाग, मास, सङ्कर्षण, आर्क और आथर्वण नामक यज्ञ नाड़ीसन्धिसे; अचोत्कर्ष, क्षेत्रयज्ञ, पञ्चभाग, लिङ्गसंस्थान और हेरम्ब यज्ञ जानुदेशसे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वराहकी देहसे आठ हजारसे ऊपर यज्ञ उत्पन्न हुए।

वराहके श्रोतसे स्रुक्, नासिकासे स्रुव, ग्रीवासे प्राक्वंश (होमगृहका पूर्वभागस्थ गृह), कर्णरन्ध्रसे इष्टापूर्त्त, दन्तसे यूप, रोमसे कुश, दक्षिण और वाम पादसे अध्वर्य्यु और होता, मस्तिष्कसे पुरोडाश, मध्यदेशसे यज्ञवेदी, मेढ़से यज्ञकुण्ड, पृष्ठदेशसे यज्ञगृह और हृत्पद्मसे यज्ञकी उत्पत्ति हुई। वराहका आत्मा यज्ञपुरुष हुए। उसकी रक्षासे मुञ्जाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वराहकी देहसे भाण्ड हविः आदि यज्ञीय सभी प्रकारके द्रव्य उत्पन्न हुए थे। यज्ञरूपमें सर्वजगत्‌को आप्यायित करनेके लिये वराहदेवकी देह यज्ञरूपमें परिणत हुई।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस प्रकार यज्ञकी सृष्टि करके वराहदेवके सुवृत्त, कनक और घोर नामक मृत

पुत्रोंके निकट गये। ब्रह्माने सुवृत्तके शरीरको मुखवायुसे भर दिया। जिससे दक्षिणाग्निकी उत्पत्ति हुई। केशवने कनकके शरीरको मुखवायु द्वारा पूर्ण किया जिससे गार्ह-पत्य अग्निकी और महादेवने घोरके शरीरको वायुसे पूर्ण कर दिया जिससे आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वराहदेवसे यज्ञ और यज्ञीय सभी द्रव्य तथा वराहपुत्रसे यज्ञीय अग्निकी उत्पत्ति हुई थी।

(कालिकापु० १६ २२)

वराहमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करनेमें उसके लक्षणादिका विषय हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—वराह-मूर्त्तके मुखका विस्तार अष्टकला, कर्ण द्विगोलक, हनु-देश सात अंगुल, सृक्कणी दो अंगुल, वदन सात अंगुल, दोनों दांत डेढ़ कला, नासिकाविवर तीन जौ, दोनों नेत्र एक जौसे कुछ कम, मुख कुछ मुसकराता हुआ, दोनों कान दो रन्ध्रके समान होने चाहिये। कानका मध्यभाग चार कला और उसकी ऊंचाई दो कला होगी। ग्रीवादेश आठ अंगुल, ऊंचाई नेत्रके समान, अवशिष्ट सभी अंग नृसिंहदेवके समान होंगे। शेषनाग नृ-वराहदेवके चरण पकड़े हुए हैं। वराह अपनी बाहुसे वसुन्धराको धारण कर अवस्थित हैं। इसके वाम भागमें शङ्ख और पद्म, दक्षिण भागमें गदा और चक्र है। इस प्रकार वराहदेव-की मूर्त्ति प्रतिष्ठा करनेसे भवबन्धन दूर होता है तथा इस लोकमें तरह तरहकी सुख सम्पदा प्राप्त होती है।

वराह (सं० पु०) वरान् आहन्ति वर-हन ड। पशुविशेष। पर्य्याय—शूकर, घृष्टि, कोल, पोत्री, किरि, किटि, दंष्ट्री, घोणी, स्तब्धरोमा, क्रोड़, भूदार, किर, मुस्ताद, मुखलांगूल, स्थूलनासिक, दन्तायुध, वक्रवक्त्र, दीर्घनर, आखनिक, भूक्षित्, बहुसू। (शब्दरत्नाकर) इसके मांसका गुण— वृष्य, वातघ्न, बलवर्द्धक, बहुमूत्रकारक और रुक्ष। जंगली वराहके मांसका गुण—मेद, बल और वीर्य-वर्द्धक। (राजनि०)

इसका मांस विष्णुको चढ़ाया नहीं जाता। शास्त्रमें पंचनख जन्तुका मांस खाने योग्य कहा है, किन्तु वराहके पंचनख जन्तुओंके मध्य होने पर भी ग्राम्य वराहका मांस अखाद्य माना गया है। वराहका मांस खा कर भी विष्णुकी पूजा नहीं कर सकते, उसका मांस खानेसे अधोगति होती है। वराहका मांस खानेवाला वराहयोनिमें जन्म ले कर १० वर्ष तक जंगलोंमें मारा मारा फिरता है। इसके बाद वह व्याध हो कर ७७ वर्ष, कृमि रूपमें ७ वर्ष, चूहेकी योनिमें १४ वर्ष, राक्षसका शरीर धारण कर ११ वर्ष, साही नामक जन्तु बन कर ८ वर्ष, फिर व्याघ्र हो कर ३० वर्ष तक जीवन बिताता है। इसके बाद वराह-मांस भक्षण करनेका पाप मिटता है।

भूल कर वराहका मांस खा लेनेसे उसका प्राय-श्चित्तसे पाप कट जाता है। प्रायश्चित्तका विषय इस तरहसे लिखा है। पहले पाँच दिनों तक गोबर भोजन, पीछे ७ दिन चावलका कण खा कर एवं सात दिन केवल जलपान करके रहना पड़ता है। इसके बाद ७ दिनों तक अक्षारलवणभोजन, तीन दिन सत्तू भोजन, ७ दिन तिलभोजन, सात दिन पत्थरभोजन, फिर ७ दिनों तक सिर्फ दुग्धपान, इस तरहसे ४६ दिनों तक आहार संयत तथा जितेन्द्रिय हो कर रहनेसे यह पाप दूर हो जाता है। इस तरह प्रायश्चित्त द्वारा पाप-मुक्त होनेसे वह विष्णुपूजाका अधिकारी हो सकता है। विष्णुभक्तोंके लिये वराहमांस खाना बिल्कुल ही निषेध है, यहाँ तक कि, उन्हें किसी तरहके मांस मत्स्य एवं मद्यादिका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

जंगली वराहका मांस श्राद्धादिमें भोजन करना लिखा है। श्राद्धमें जंगली वराहके मांससे ब्राह्मण भोजन कराया जा सकता है, उससे पाप नहीं होता। विष्णुकी उपासना करनेवाले भूल कर भी इस मांसका भक्षण न करें।

इस श्रेणीके चौपाये जानवरोंको पाश्चात्य प्राणी-तत्त्वविदोंने Suidae नामक पशुका ही एक अंग कायम किया है। जंगली तथा पालतू भेदसे वराह जाति दो भागोंमें विभक्त है। अंग्रेजीमें पु०-जंगली वराहको Sus Indicus (wild boar) तथा स्त्री वराहको Swine कहते हैं। शूकर जाति भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत है, किन्तु शूकर वराहकी अपेक्षा कुछ छोटा होता है। साधारणतः जंगली वा पालतू सभी वराह शूकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। इस श्रेणीके कितने ही पु० वराहोंको भी दाँत नहीं निकलते। यह चतुष्पद जानवर है,

इसके चारों पावोंमें खूर होते हैं। जंगली वराहोंके दांत हाथीकी तरह बाहर निकले होते हैं, किन्तु उसके कुछ छोटे होते हैं। दन्तविहीन वराह ही प्रधानतः शूकर कहलाता है।

भारतके कई स्थानोंमें एवं यूरोपमें जिस तरहके वराह देखे जाते हैं, उनकी अपेक्षा भारतीय द्वीपोंके शूकर कहीं छोटे होते हैं। जंगली वराह प्रायः दिनके समय जंगलमें छिपे रहते हैं एवं रात्रिमें अन्धेरा हो जाने पर अपने अपने आश्रय स्थानका परित्याग करके बाहर निकलते हैं और निकटवर्त्ती ग्रामोंके अनाजसे भरे हुए खेतोंमें घुस कर मनमाना अनाज खा कर पेट भर लेते हैं। वराह खेतमें प्रवेश करके वहांकी मिट्टी उखेल डालते हैं, जिससे अनाजके पौदे बहुत नष्ट हो जाते हैं एवं काफी अनाजके उत्पन्न होनेमें आघात पहुंचता है। कहीं कहीं वराह मिट्टी खोद कर मानकच्चू, आलू इत्यादि कन्द खा जाते हैं। जिस स्थान में इन सब उद्भिदु आदिका अभाव रहता है एवं जहां उन्हें इच्छानुसार कन्दमूल खानेको नहीं मिलते, वहां वे मरे हुए ऊंट आदि पशुओंके मांससे भी अपने पेटको अग्नि बुझाते हैं। भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेसे वे निकटवर्त्ती ग्रामोंमें जा कर ग्रामवासियोंके फेके हुए कूड़े कर्कटसे अपना खाद्य पदार्थ निकाल कर उदरपोषण करते हैं। मानव-विष्ठामें भी उनकी विलक्षण रुचि देखी जाती है।

एशियाके कई एक स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके वन्यवराह देखे जाते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें सात श्रेणियोंमें विभक्त किया है। वे कहते हैं कि भारतीय वन्यवराहकी एक शाखा जो इस समय यूरोप तथा उत्तर-अफ्रिकामें फैल गई है एवं हिन्दुस्तानके बीच जिसके अनुरूप वराह जाति विद्यमान है, उसे यूरोपीय समाज 'चाइनीज ब्रीड' (Chinese breed)-के नामसे पुकारते हैं। विभिन्न शाखायुक्त होने पर भी यह शूकरजाति देशभेदानुसार भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। नीचे विभिन्न देशीय नाम तथा उनकी जातिगत पृथकता निर्देश की गई है—

विभिन्न देशीय नाम,— अरबी तथा पारसी—खान्जिर, खानकर; संस्कृत तथा बङ्गला—वराह; कनाड़ी—हण्डी, सिक्का, जेवाड़ी; डेनमार्क—Svun; ओलन्दाज—Varken, Zwijn; फरासी—Verrat, Cochon. Pourceau; जर्मन—Eber, Schwein; गोंड़—पद्दी; ग्रीक—Choiros; हिन्दी—सूअर, बनैला सूअर; इटली तथा पुर्त्तगाल—Verro, Porco; लैटिन—Sus porcus;—मलय—बवि, बवि आलस, बविउटान; महाराष्ट्र—डुकर; रूस—Svinza; स्पेन—Verraco, Puerco; स्वाडेन—svin; तेलगू—आदावि-कोकू, पण्डि; वेल्स—Hweh Hweh; हिब्रु—हाजिर, छजिर; शिङ्गापुर—बलुर।

एशियाके कई स्थानोंमें एवं भारत-समीपवर्त्ती कितने ही देशोंमें जो विभिन्न श्रेणी देखी जाती है, वे साधारणतः ७ भागोंमें विभक्त हैं। इन सातों शाखाओंका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

sus-Indicus वा S. scrofa भारतीय साधारण वन्यवराह—जर्मनीके वन्यवराहसे इस जातिकी बहुत पृथकता है, किन्तु उससे इनकी एक स्वतन्त्र शाखा कायम नहीं की जा सकती। भारतीय वराहोंका मस्तक बड़ा तथा कोनाकार एवं कपाल चिपटा होता है, किन्तु यूरोपीय वराहके कुबड़े। भारतीय वराहके कान छोटे तथा नुकीले और पाश्चात्य वराहोंके बड़े तथा नीचेकी ओर झुके होते हैं। भारतीय वराह बड़े और तीव्र चालवाले होते हैं, किन्तु जर्मन देशीय वराह बड़े होने पर भी उतनी तेजीसे दौड़ नहीं सकते। इन दोनों देशोंके वन्यवराहोंको छोड़ कर पालतू वराहोंके मध्य भी कितने ही विषयोंमें इस तरहकी पृथकता देखी जाती है।

भारतमें उक्त श्रेणीके वराह ही प्रधान हैं। बङ्गालके कई स्थानोंमें इस श्रेणीके वराह देखे जाते हैं। जब भोजनकी खोजमें वराहसमूह जङ्गलसे निकल कर ग्राममें प्रवेश करते हैं, तब ग्रामवासी दन्ताघातसे आहत होनेके भयसे सशंकित हो उठते हैं और सबके सब एकत्र हो कर उन्हें मारनेकी तैयारी करते हैं। देहाती लोग जङ्गलमें जा कर कुत्तेकी सहायतासे वराहोंका शिकार करते हैं, किन्तु यूरोपीय शिकारी प्रधानतः घोड़े पर सवार हो कर

बरछा हाथमें लिये हुए शिकारको खदेड़ते हैं। इसे अङ्ग-रेजीमें Pig-sticking कहते हैं।

प्राणितत्त्वविदोंकी धारणा है, कि इस श्रेणीके वराह-के चीनदेशजात बच्चोंसे यूरोप तथा अफ्रिकाके शूकर-कुलकी उत्पत्ति हुई है। उत्तर पश्चिम भारतमें इस श्रेणी-का शूकर कभी भी ३६ इञ्चसे बड़ा देखा नहीं जाता, किन्तु बङ्गालमें साधारणतः ४४ इञ्च पर्यन्त बड़ा होता है। रोमराज्यमें जितने शूकर देखे जाते हैं, वे प्रधानतः चीन, कोचीन-चीन तथा श्यामराज्यजात बच्चोंसे उत्पन्न हुए हैं। अन्दालूसिया, इंग्रिया, तुर्क, स्वीजलैंएड तथा दक्षिण पूर्व यूरोपके शूकर इस शाखाके ही अन्तर्भुक्त हैं। बङ्गालमें एक दूसरी श्रेणीके शूकर (S. Bengalensis) पाये जाते हैं। पूर्वोक्त श्रेणीके साथ इस श्रेणी-की शारीरिक गठनमें बहुत ही अन्तर देखा जाता है। अण्डामन द्वीपके शूकरसमूह S. Andamensis एवं मलयप्रायद्वीप तथा उसके समीपवर्त्ती स्थानजात शूकर-वंश S. Malayensis नामसे विख्यात है। जावा द्वीपके कई स्थानोंमें S. verrucosus श्रेणीके शूकर पाये जाते हैं। उनके दोनों कपोलोंका पार्श्वस्थ मांसपिंड अपेक्षाकृत स्थूल तथा दीर्घ होता है, मुखाकृति देखते ही हृदयमें भयका संचार होता है; किन्तु दूसरी दूसरी वराह श्रेणियों की अपेक्षा ये स्वभावतः भीरु होते है। सिंहल, वार्नियो प्रभृति द्वीपोंकी S. barbatus श्रेणीके शूकर S. Indicus श्रेणीसे विल्कुल विभिन्न होते हैं। वोर्नियो द्वीपजातकी खोपड़ीकी सदृशता तथा अन्यान्य अंग प्रत्यंगकी पृथ-कता देख कर मि० ग्लाइथने S. Zeylanesis नामक एक दूसरी शाखाका उल्लेख किया है। न्युगिनीद्वीपजात वराह S Papuensis नामसे पुकारे जाते हैं। उत्तर-भारतके शालवनमें एक प्रकारके छोटे शूकर देखे जाते हैं। देशी लोग उन्हें छोटे शूअर या सानो वनैला कहते है। ये अन्धकार वनमें दलबद्ध हो कर वास करते हैं। उनके पु० शूकर प्रधानतः दलकी रक्षा करते हैं। Guinea-pig नामक एक और भी शूकर जाति देखी जाती है। ये शूकर बहुत ही छोटे होते हैं। ये साधारणतः मिट्टीके नीचे मान बना कर एवं तृणसे भरे हुए मैदानमें वास करते हैं एवं तृण पल्लव आदि खा कर जीवन धारण करते हैं।

जापान तथा फर्मोजा द्वीपमें Sus leucomystax नामक और भी एक श्रेणीके शूकर देखे जाते हैं। इसके अलावे जापानमें एक दूसरी जातिके विकृतमुख तथा लम्बे लम्बे सिंहवाले शूकर होते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें S. pliciceps शाखाभुक्त किया है। उनके शरीर-के चमड़े लम्बे, मोटे तथा सिकुड़े हुए होते हैं। अंग-रेजीमें इन्हें musked pig कहते हैं। अफ्रिकामें भी Musked Boar का अभाव नहीं है।

प्राणितत्त्वविद् F. Cuvier ने विशेष पर्य्यवेक्षण करके Babirussa नामक एक दूसरी वराहश्रेणीका उल्लेख किया है। उन्होंने मलय भाषाके 'बवि' शब्दसे वराह और 'रूसा' शब्दसे हरिण ग्रहण करके, इन दोनों शब्दोंके मध्य इस श्रेणीका नामकरण किया है। भार तीय Sus scrofa से इस श्रेणीके कई विषयोंमें पृथक्ता देखी जाती है। नीचे उक्त दोनों श्रेणीकी दन्तपंक्ति लिखी गई है—

S scrofa—कर्त्तक $\frac{६}{६}$, शौवन $\frac{१—१}{१—१}$; चर्वन $\frac{७—७}{७—७}$= ४४, किन्तु Babirussa पक्षमें—कर्त्तक $\frac{४}{४}$; शौवन $\frac{१—१}{१—१}$ चर्वन $\frac{५—५}{५—५}$=३२।

मलक्का द्वीपके किसी किसी अंशमें, वौरू द्वीपमें एवं सिलेवस तथा टार्नेट द्वीपोंमें B. alfurus शाखाके वराह देखे जाते हैं। इनके शरीर स्थूलकाय, किंतु चारों पाँव अपेक्षाकृत पतले होते हैं। इनके शरीर पर रोएं नहीं होते। ये धूसरवर्णके होते हैं। इनके ऊपरके बड़े बड़े दाँत मुखचर्मसे ऊपर उठ कर वृत्ताकारमें नीचे की ओर झुकते हुए पुनः मुखके ऊपरी भागको स्पर्श करते हैं। उनके नीचे और भी दो छोटे छोटे दाँत होते हैं। स्त्री वराहोंके दांत अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। किसी किसी को तो विल्कुल ही नहीं होते। इस जातिके एक पु० वराहका चित्र दूसरे पृष्ठमें दिया गया है।

भारतीय द्वीपवासियोंका विश्वास है कि, यह वराह-श्रेणी छोटे हरिण और वराहोंके योगसे उत्पन्न हुई है। वे लोग एवं द्वीपवासी विदेशी व्यापारी लोग बड़े आनन्द के साथ इनका मांस खाते हैं। इनके मांसका स्वाद अच्छा

होता है। ये अपने छोटे छोटे दाँतोंसे शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें घायल तो कर सकते हैं, किन्तु भारतीय बड़े बड़े दाँतवाले वराहके समान भयङ्कर नहीं होते। इनके बड़े दाँत विशेष कार्यकारी नहीं होते। जिस समय ये तेजीके साथ घने जंगलमें प्रवेश करते हैं, उस समय ये दाँत लता गुल्मोंको हटा कर इनकी आँखोंकी रक्षामात्र करते हैं।
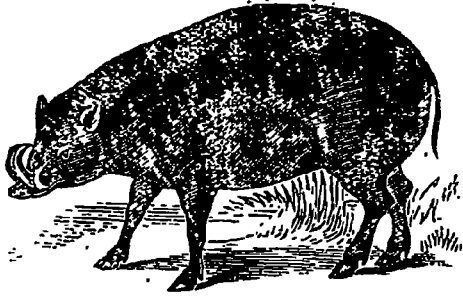
Phacochœrus और Aeliani P. Aethiopicus नामक काले रंगके बड़े बड़े दाँतवाले एवं स्थूलमुखी दो प्रकारके वराह देखे जाते हैं; उनमें प्रथमोक्त श्रेणीको अपेक्षा शेषोक्त श्रेणीके वराह बड़े और भयंकर मुख वाले होते हैं। अङ्गरेजोंमें इस श्रेणीको Wart-hog कहते हैं। इनकी दन्तपंक्ति दूसरी तरहकी होती है। इनके दोनों बड़े दाँत मुखके पार्श्व भागमें फैले हुए रहते हैं। इनके ऊपरके दो कर्त्तन-दन्त लिपल होते हैं, किन्तु नीचेके छः दाँत छोटे और सरल। बड़े दाँत सरल और कुछ ऊपरकी ओर झुके हुए, किन्तु अन्यान्य सभी प्रकारके वराहोंकी अपेक्षा बड़े और मोटे होते हैं। दोनों गाल मांससे भरे हुए एवं स्थूल पिंडवत् (Wart), पूंछ छोटी एवं पाँव भारतीय वराहोंकी तरह मज़बूत होते हैं। इनकी पीठ सख्त और लम्बे लम्बे बालोंसे आच्छादित रहती है। इनके दाँतोंकी पंक्ति—

$$\text{कर्त्तक } \frac{२ \text{ वा } ०}{६ \text{ वा } ०}, \text{ शौवन } \frac{१—१}{१—१}, \text{ चर्वन } \frac{३—३}{३—३} = \text{६ वा २४।}$$

कुमियारका कहना है, कि केपकोलनी (Cape Colony) में जो वार्ट हाग् देखे जाते हैं, उनकी ऊपरी तथा नीचेकी दाढ़ीमें तीन चर्व्वणदन्त होते हैं। इसके अतिरिक्त P. Aeliani और Aape Wart hogमें और भी कई विषयोंका विभिन्नता देखी जाती है। नीचे अफ्रिकाके स्थूलमुख वराह (P. Aeliani) का चित्र दिया गया है—
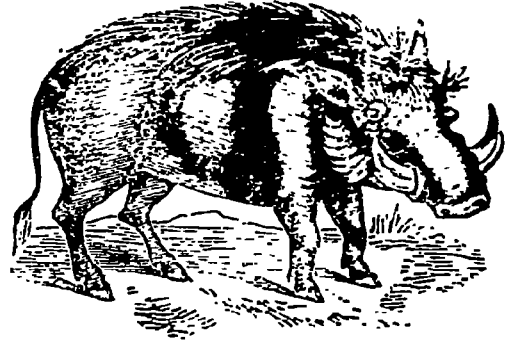
दक्षिण अमेरिकाके आर्कन्ससे ले कर ब्रेजिल पर्य्यन्त विस्तृत भूखण्डमें एक श्रेणीके छोटे शूकर (Dicotyles) देखे जाते हैं उनमें जिनके गलेमें सादा दाग होता है, वे D. torquatus और जिनके ओठ उजले होते हैं, वे D. labiatus कहलाते हैं। अंग्रेजोंमें प्रथमोक्त श्रेणीके वराहको the Coloured Peccary एवं शेषोक्त श्रेणीको The white lipped Peccary कहते हैं। मेक्सिको तथा वेस्ट इण्डियाके द्वीपोंमें जो शूकर देखे जाते हैं, वे प्रथमोक्त श्रेणीके अन्तर्गत है, वे कितने विषयोंमें भारतीय Sus श्रेणीके वराहोंसे मिलते जुलते है, सिर्फ पाँव, दाँत और शारीरिक गठनमें कुछ अन्तर रहता है। इनकी हथेली हड्डी (Metacarpus) तथा तलवेकी हड्डी (Metatarsus) परस्पर मिली रहती है।

इस श्रेणीके वराहकी कमरके ऊपर एक छेद रहता है, जिससे सब्बदा एक प्रकारका दुर्गन्धमय रस निकलता रहता है।

D. torquatus तथा D. labiatus श्रेणीके शूकर एक साथ दल बांध कर घूमने निकलते हैं। कभी कभी एक एक दलमें सैकड़ों वराह देखे जाते हैं। सज्जित सेनाकी तरह वे कतार बाँध कर चलते हैं और एक वा अधिक वराह उनके नेता बन कर आगे आगे चलते हैं। सामनेमें नदी या खाई इत्यादि देख कर वे किनारे पर ठहर जाते हैं। इसके बाद वे थोड़ी देर तक सोच विचार कर एक एक करके नदीके गर्भमें

छलांग मार कर नदी पार करते हैं एवं पुनः सुसज्जित सेनाकी तरह कतार बांध कर अपने गन्तव्य पथकी ओर अग्रसर होते हैं। यदि रास्तेमें कोई अनाजसे भरा हुआ खेत दिखाई पड़ता है, तो वे खेतोंकी उपजको समूल नष्ट करके बिचारे गृहस्थोंका सर्वनाश कर डालते हैं। जब चलते समय किसी प्रकारकी अस्वाभाविक घटना होनेसे वे चकित हो उठते हैं एवं भयसे विह्वल हो कर वे अपने अपने दाँतोंको कडकड़ा कर उस भयावनी वस्तुको देखनेकी प्रतीक्षा करते हैं। जब भयका कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं होता तब शीघ्र ही उस स्थानका परित्याग करके दूसरी ओरकी यात्रा करते हैं। यदि कोई शिकारी ऐसे समय उनके सामने आ जाय तो वे उन्हें चारों ओरसे घेर कर अपने तीखे दाँतोंके आघातसे टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। O, Labiatus वराह साधारणतः ३से ३॥ फीट तक लम्बा एवं १०० पौंड भारी होता है, किन्तु D, torquatus वराह ३ फीटसे अधिक लम्बा तथा ५० पौंडसे अधिक भारी नहीं होता। रिजेंट पार्कके चिड़ियाखानेमें Choiropotamus Africanus नामक और भी एक प्रकारका वराह रखा गया है।

बहुत प्राचीनकालसे ही संसारमें वराहको निदर्शन पाया जाता है। हिन्दू शास्त्रमें विष्णुके तृतीय अवतारमें वराहमूर्त्ति धारण करने और पृथ्वीके उद्धार करनेकी कथा पहले ही वर्णन की गई है। पृथिवी देखो।

भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि, टार्सियारि भूपञ्जरसंस्थित जानवरोंके शरीरकी हड्डियोंके मध्य मायोसिन युगके द्वितीय विभागमें तथा प्लियोसिन युगके तृतीय और चतुर्थ विभागमें वराहका अस्थिनिदर्शन पाया जाता है। ग्रीक जातियोंके इतिहासमें भी टाइफान देवके पवित्र वराहका उल्लेख है। चीनदेशीय एक ग्रन्थमें ४६०० वर्ष पहलेके वराहका वृत्तान्त लिखा हुआ है। मनुसंहितामें भी वराह मांसकी निषेधविधि लिखी है। महाभारतमें वराहके आकारसे रणक्षेत्रमें सेना सजानेकी कथा लिखी हुई है। गुजरातके चौलुक्यवंशीय राजे राजचिह्न स्वरूप वराहलांछन व्यवहार करते थे। इस राजवंशकी चलाई हुई स्वर्णमुद्राओंमें वराहके चिह्न अङ्कित रहते थे। वह वराहमुद्रा कहलाती थी। भारतीय राजपूत वीरगण वासन्ती महोत्सवमें मत्त हो कर जंगली वराहोंका शिकार करते थे। इस दिन वे जीवनकी मोह माया छोड़ कर वराहका शिकार करने जंगलमें जाते थे। वराहका शिकार न कर सकने पर राजपूत-जातिका दमन होगा, ऐसी ही उन लोगोंकी धारणा थी। इस दैवी घटनासे वे समझते थे कि, जगन्माता उमादेवी उन लोगों पर क्रुद्ध हो गई। राजपूत जातिके आहेरिया उत्सवमें भी गौरीके सामने वराहको बलि चढ़ानेकी रीति है।

बसन्तकालमें वराह-शिकार शकजातिकी एक प्राचीन प्रथा है। स्कन्दनाभवासी असिजातिके मध्य वसन्तऋतुके समय "फ्रिया" देवीके महोत्सवमें वराहके बलिप्रदानकी रीति देखी जाती है। उस देशके रहनेवाले इस महोत्सवके दिन मैदे तथा नाना प्रकारके मसालेसे तैयार किये हुए वराहका मांस भक्षण करते थे। इस तरह फारस देशमें भी वर्षारम्भके प्रथम दिन "Co-Chelin" (वराह) भून कर खानेकी प्रथा है। हेरोदोतासकी विवरणीमें मिश्रदेशवासियोंके मसालोंसे तैयार किये हुए सूअरमांस खानेका उल्लेख है।

भारतमें दुसाध जातिके लोग सूअर पालते थे। वे लोग शलेसकी पूजामें सूअरकी बलि देते थे। इसका मांस भी वे लोग खाते थे। किन्तु उनके नेताने उन्हें राजपूतवंशी बता कर सूअर पालने तथा उसका मांस खानेसे रोका, अतः अब वे लोग इसका मांस भक्षण नहीं करते।

वराह—एक अभिधानके प्रणेता। ये शाश्वतके समसामयिक थे।

वराहक (सं० पु०) १ हीरक, हीरा। २ शिशुमार, सूंस।

वराहकन्द (सं० पु०) वराहप्रियः कन्दः। वाराहीकन्द।

वराहकर्ण (सं० पु०) १ एक यक्षका नाम। २ एक बाणका नाम।

वराहकर्णिका (सं० स्त्री०) युद्धास्त्रभेद, लड़ाईका एक हथियार।

वराहकर्णी (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध। (Physalis flexuosa)

वराहकल्प (सं० पु०) एक कल्पका नाम। इस कल्पमें भगवान्‌ने वराहमूर्त्ति धारण की थी।

वराहकवच—धारणीय मन्त्रौषधविशेष। स्कन्दपुराणमें इसका उल्लेख है।

वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहस्य कान्ता प्रिया। वाराही-वृक्ष।

वराहकालिन् (सं० पु०) सूर्य्यमणि पुष्पवृक्ष। पर्याय—सूर्यावर्त्ता।

वराहकाली (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, हुरहुर।

वराहकान्ता (सं० स्त्री०) वराहेण कान्ता। अतिप्रियत्वात्। १ क्षुपविशेष, लजालू। पर्याय—लज्जालु, समङ्गा, लज्जकारिका, वराहनामा, वद्रा, शूकरी, तिक्तगन्धिका, नमस्कारी, गण्डकाली, खादिरी, लज्जालुका, अञ्जलिकारिका, कृताञ्जलि, गण्डकारी, समीच्छरा। २ वाराही।

वराहग्राम—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम।

वराहतीर्थ—एक तीर्थका नाम (कूर्मपु०)

वराहदंष्ट्र (सं० पु०) क्षुद्ररोगविशेष, वराहदन्त।

वराहदत् (सं० स्त्री०) वराहदन्त।

वराहदत्त—वणिक्‌भेद। (कथासरित्सा० ३७।१००)

वराहदन्त (सं० त्रि०) १ वराहदन्तविशिष्ट, जिसके दांत वराहके दांतके समान हों। (पु०) २ वराहका दांत।

वराहदेव स्वामी—गृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता।

वराहद्वादशी (सं० स्त्री०) वह कृत्य जो माघ मासकी शुक्ला द्वादशीमें वराहरूपी विष्णुके लिये किया जाय।

वराहद्वीप (सं० क्ली०) एक द्वीपका नाम। वराह देखो।

वराहनगर—बङ्गालके २४-परगनेके अन्तर्गत एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर। यह गङ्गानदीके बायें किनारे अवस्थित है। यह स्थान पहले वाणिज्य-प्रधान था। गङ्गाभक्ति-तरङ्गिणी आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख आया है। यहां पहले करघेकी धोतीका जोरों वाणिज्य चलता था, अभी उतना नहीं है। पहले ओलन्दाज वणिकोंकी यहां एक कोठी थी। चुंचड़ा आनेके समय ओलन्दाज सौदागरी जहाज यहीं पर लंगर डाल कर रहता था।

इस नगरका जो वराहनगर नाम पड़ा है, इस विषयमें बहुत-सी किंवदन्तियां सुनी जाती हैं। उस समयके एक कागज-पत्रमें लिखा है, कि ओलन्दाजगण यहां वराहको हत्या किया करते थे, इसी कारण इस स्थानका वराहनगर नाम पड़ा है। स्थानीय किंवदन्ती है, कि विष्णुको वराहमूर्त्तिसे यह स्थान देव-नाम पर कीर्त्तित हुआ है। फिर बहुतोंका कहना है, कि यहां एक दस्यु-सरदार रहता था। उसने वराह अवतारके उद्देश्यसे इस नगरको बसाया। जो हो, वराहनगरका स्थान और नाम नितान्त आधुनिक नहीं है। महाप्रभु चैतन्यदेवने आ कर यहां भागवताचार्य पर दया की थी। आज भी वराहनगरमें भागवताचार्यका आसन है। भागवताचार्य देखो।

यहांके ओलन्दाज कीर्त्तिनिदर्शन-स्वरूप आज भी अनेक चित्रित खपड़ेके टूटे फूटे टुकड़े नजर आते हैं। १७९५ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टने यह स्थान अंगरेजोंके हाथ सौंप दिया। ओलन्दाजोंके आनेसे पहले यहां एक पुर्त्तगीज उपनिवेश स्थापित हुआ था। अंगरेजी शासनमें यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है जो 'नार्थसुबर्बन म्युनिसपलिटी आव कलकत्ता' नामसे प्रसिद्ध है। यहां गङ्गाके किनारे अनेक धनी और वणिकोंके बागान हैं। कई एक देवालय भी गङ्गा-तटकी शोभा बढ़ा रहे हैं। आलमबाजारकी रेंड़ी तेलकी कल और उसका वाणिज्य तथा बोर्नियो कम्पनीकी चटकल यहांका प्रसिद्ध वाणिज्य-केन्द्र है। आलमबाजारके उत्तर सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरका काली-भवन है। पूज्यपाद परमहंस रामकृष्णदेव यहां रहते थे।

वराहनामन् (सं० पु०) वराहस्य नामेव नाम यस्य। वाराहीकन्द।

वराहनिर्यूह (सं० पु०) वराहमांसरस, वराहके मांसका शोरवा।

वराह पण्डित—प्रयोगसंग्रहविवेक नामक व्याकरणके रचयिता।

वराहपत्री (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध।

वराहपित्त (सं० क्ली०) शूकरपित्त। इसके शोधनेका तरीका—शूकरपित्तको सुखा लेने पर पीछे नीमके रसमें भावना देनेसे एक दिनमें ही विशुद्ध हो जाता है। मछली आदिका भी पित्त इसी प्रकार शोधा जाता है।

मत्स्यपित्त देखो।

वराहपुराण (सं० क्ली०) वराहप्रोक्त एक महापुराण।

वराहभूम (वराहभूमि)—मानभूम जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम और पुलिस-थाना। इस नामका एक परगना भी है।

वराहमांस (सं० क्ली०) शूकरमांस, सूअरका गोश्त। जंगली तथा ग्रामाण भेदसे यह दो प्रकारका होता है। जंगली वराहके मांसका गुण गुरु, वातहर, वृष्य तथा बल और स्वेदकर और ग्रामीण वराहके मांसका गुण गुरु, मेद, बल और वीर्यवर्द्धक माना गया है।

वराहमिहिर—भारतवर्षमें जितने ज्योतिर्विदोंने जन्म लिया है, उनमें वराहमिहिरको ही सभी सर्वप्रधान समझते हैं। जनसाधारणका विश्वास है, कि वराहमिहिर राजा विक्रमादित्यके नवरत्नमेंसे एक थे।

बहुतोंका कहना है, कि रघुवंश, कुमारसम्भव आदिके प्रणेता कवि कालिदास उक्त ज्योतिर्विदाभरणके रचयिता हैं। अतएव वे वराहमिहिरके समसामयिक थे। प्रमाणके लिये बहुतोंने ज्योतिर्विदाभरणसे यह श्लोक भी उद्धृत किया है—

"वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै (३०६८) र्याते कलौ संमिते।
मासे माधवसंज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥"

उक्त श्लोकानुसार ३०३८ गत कल्यब्दमें वा विक्रमसंवत्में ज्योतिर्विदाभरणका रचनाकाल होता है, किन्तु पीछे ज्योतिर्विदाभरणके मध्य ही—

"शाकः शराम्भोधियुगोनितो हृतो मानं खतर्कैरयनांशकाः स्युः॥"

इत्यादि स्थलमें ४४५ शकका उल्लेख है तथा "मत्वा वराहमिहिरादिमतैः" इत्यादि प्रसङ्ग रहनेके कारण ज्योतिर्विदाभरणको ईसा-जन्मकी पहली सदीका ग्रन्थ अथवा इस ग्रन्थके प्रमाणानुसार वराहमिहिरको नवरत्नमेंसे एक नहीं कह सकते।

फिर कोई कोई ब्रह्मगुप्तटीकाकार पृथुस्वामीकी दोहाई दे कर यह वचन उद्धृत करते हैं—

"नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।"

५०६ शकमें वराहमिहिराचार्य स्वर्गधामको सिधारे। संस्कृत साहित्यके इतिहास-लेखक प्रसिद्ध जर्मन पण्डित वेबर (Weber)ने आमराजकी दोहाई दे कर उक्त ५०६ शक ग्रहण किया है। किंतु आश्चर्यका विषय है, कि पृथुस्वामी वा आमराजकी टीकामें इसका कोई जिक्र भी नहीं है।

फिर हलमञ्जरीकी दोहाई दे कर कोई कोई महाराष्ट्र ज्योतिर्विद् निम्नलिखित वचनका पाठ किया करते हैं,—

"स्वस्ति श्रीनृपसूर्यसुनुजशके याते द्विवेदाम्बर-
त्रैमानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके॥"
"चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्-
वेदाङ्गे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिभिः॥"

अर्थात् ३०४२ युधिष्ठिरके अब्द वा २ विक्रमसंवत्के चैत्र मासमें आदित्यदासके औरससे सूर्यके आशीर्वादसे वेदाङ्गनिपुण वराहमिहिरने जन्मग्रहण किया। दुःखका विषय है, कि यह श्लोक भी किसी प्राचीन ज्योतिर्ग्रन्थमें न रहनेके कारण विश्वासयोग्य नहीं है*।

अब देखना चाहिये, कि वराहमिहिरने अपने ग्रन्थमें कैसा परिचय दिया है। उनके बृहज्जातकके उपसंहाराध्यायमें लिखा है—

"आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्ध-
वरप्रसादः।
आवन्तको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग् होरां वराहमिहिरो
रुचिरां चकार॥"

उक्त श्लोकानुसार वराहमिहिरके पिताका नाम आदित्यदास था। वे अवन्तीवासी थे। कापित्थ नामक स्थानमें उन्होंने सूर्यदेवको प्रसन्न कर वर लाभ किया था। पञ्चसिद्धान्तिकान्तर्गत रोमकसिद्धान्तके अहर्गण स्थिर उपलक्षमें वराहमिहिरने लिखा है—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौमदिवसाद्यः॥"

उक्त श्लोकके अनुसार ४२७ शकमें चैत्र-शुक्ल प्रतिपद् मङ्गलवार पाया जाता है। अपना समय मान कर ही ज्योतिर्विद्गण अहर्गण स्थिर करते हैं।

इस देशमें वराहमिहिर और खनाके सम्बन्धमें अनेक गल्प प्रचलित हैं। कोई कोई खनाको वराहमिहिरकी कन्या, कोई पत्नी और कोई पुत्रवधू मानते हैं। किन्तु

* शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित रचित "भारतीय ज्योतिःशास्त्र" द्रष्टव्य।

उन सब अनुमान वा प्रवादके मूलमें कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता।

वराहमिहिरने तत्पूर्ववर्त्ती पांच सिद्धान्तोंका आश्रय ले कर पञ्चसिद्धान्तिकाकी रचना की। उन पञ्चसिद्धान्तके नाम ये है—

'पौलिश-रोमक-वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।

पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह।

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तोंकी आलोचना करके ज्योतिःशास्त्रके इतिवृत्तलेखकगण उन्हें खृ० पूर्व १३वीं शताब्दीके सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनोंके नाम देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि वराहमिहिरने प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिषसे सहायता ली थी।

पौलिशसिद्धान्तमें यवनपुर वा आलेकजन्द्रियासे देशान्तर लिया गया है। फिर इधर रोमकसिद्धान्तमें गत दिनसंख्याका निर्णय करनेके लिये यवनपुरका मध्याह्न माना गया है (१)।

प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अलवीरुणीने लिखा है, कि पौलिशसिद्धान्त यूनानीके पौलसकी रचना है। तदनुसार कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ग्रीक भाषामें Paulus Alexandrinus-का जो ज्योतिग्रन्थ है, पौलिशसिद्धान्त उसीका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिन्होंने उक्त ग्रीकग्रन्थ मिला कर देखा है वे कहते हैं, कि ग्रीक ग्रन्थके साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता। विशेषतः पौलिशसिद्धान्त एक नहीं था। ब्रह्मसिद्धान्तके टीकाकार पृथूदक और भट्टोत्पलने पौलिशसिद्धान्तसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उन सब श्लोकोंके साथ पञ्चसिद्धान्तिकाके अन्तर्गत पौलिशसिद्धान्तकी कुछ भी एकता नहीं है सौर और आर्यभटसिद्धान्तके मतके साथ मेल भले ही खाता है।

रोमकसिद्धान्त नाम सुन कर भी बहुतोंने स्थिर किया है, कि आलेकजन्द्रियाके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् टलेमीके मूल ग्रन्थके आधार पर संस्कृत भाषामें रोमकसिद्धान्त रचा गया था। किन्तु ब्रह्मगुप्तका ब्रह्मसिद्धान्त पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं होता। लाट, वशिष्ठ, विजयनन्दी और आर्यभट इन चारोंकी गणनाके आधार पर श्रीषेणने रोमकसिद्धान्तकी रचना की। भट्टोत्पल और अलवेरुणीने भी वैसा ही कहा है।

वराहमिहिरने जिन पांच सिद्धान्तोंकी आलोचना की है, उनमें सौर वा सूर्यसिद्धान्तकी समालोचना करके ज्योतिषियोंने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भके समय सङ्कलित हुआ था। उसके पहले पौलिश और पौलिशके पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया। ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे। उनका ग्रन्थ अभी नहीं मिलता। उनका परिदर्शन काल ले कर टलेमीने प्रायः १५० ई०में अपने ग्रन्थकी रचना की। उनके ग्रन्थके साथ रोमकसिद्धान्तका मेल नहीं है। इस हिसावसे उनके बहुत पहले रचित रोमकसिद्धान्त हिपार्कसका ग्रन्थ देख कर सङ्कलित हुआ है ऐसा भी नहीं कह सकते।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि वराहमिहिरने यवनाचार्योंके मतकी भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है। पञ्चसिद्धान्तिकाको छोड़ कर वे बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिर्ग्रन्थ भी रच गये हैं।

एतद्भिन्न आरूढ़जातक-कालचक्र, क्रियाकैरवचन्द्रिका, जातककलानिधि, जातकसरसी, जातकसार, वा लघुजातक, दैवज्ञवल्लभा, प्रश्नचन्द्रिका, बृहदष्टवर्ग, बृहद्यात्रा, मयूरचित्रक, मुहूर्त्तग्रन्थ, योगयात्रा, योगार्णव, वटकणिका, सारावली और वराहमिहिरीय नामक कई ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

वराहमुक्ता (सं० स्त्री०) मुक्ताभेद, एक प्रकारका मोती। जैसे—'गजमुक्ता' हाथीसे उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअरसे उत्पन्न मानी जाती है। मुक्ता देखो।

वराहमूल (सं० क्ली०) काश्मीरका एक जनपद। यहां वराहरूपी विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। काश्मीर देखो।

वराहयु (सं० त्रि०) वराह-इच्छुक, वह कुत्ता जो शूकराभिलाषी हो।

(१) "यवनाच्चरजा नाड्यः सप्तावन्त्यास्त्रिभागसंयुक्ताः।
वाराणस्यां त्रिकृतिः साधनमन्यत्र वक्ष्यामि॥"
(पञ्चसिद्धान्तिका पौलिश)

वराहवत् (सं० अव्य०) वराहसदृश, वराहके समान।

वराहवपुष (सं० क्ली०) १ वराहकी देह। (त्रि०) २ वराहदेहधारी, जिसका शरीर वराहके समान हो।

वराहव्यूह (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका व्यूह या सेनाकी रचना। इसमें अग्रभाग पतला और बीचका भाग चौड़ा रखा जाता था।

वराहशर्मन्—ज्योतिरत्नके प्रणेता।

वराहशिम्बी (सं० स्त्री०) शूकरभोज्य शिम्बी।

वराहशिला (सं० स्त्री०) एक विचित्र पवित्र शिला जो हिमालयके शिखर पर है।

वराहशृङ्ग (सं० पु०) शिव।

वराहशैल (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

वराहसंहिता (सं० स्त्री०) १ वराहमिहिर-विरचित ज्योतिग्रन्थभेद, वृहत्संहिता। २ श्रीकृष्णकी वृन्दावनलीलाज्ञापक एक पुस्तक।

वराहस्वामिन् (सं० पु०) पौराणिक राजभेद।

वराहाङ्गी (सं० स्त्री०) क्षुद्रदन्ती।

वराहाद्रि (सं० पु०) वराहपर्वत।

वराहावतार (सं० पु०) विष्णुका एक अवतार। वराह देखो।

वराहाश्व (सं० पु०) एक दैत्यका नाम।

वराहिका (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवाँच।

वराही (सं० स्त्री०) वराहो भक्षकत्वेनास्त्यस्येति वराह-अच् गौरादित्वात् ङीप्। १ भद्रमुस्ता, नागरमोथा। २ शूकरकन्द, वाराहीकन्द। ३ अश्वगन्धा। ४ एक प्रकारका पक्षी जो गोरैयाके बराबर और काले रंगका होता है। ५ शूकरी, सूअरी। ६ बराही देखो।

वराहु (सं० त्रि०) १ प्रधान शत्रुका घातक। २ उत्तम वृष्ट्युदकहन्ता। ३ हविर्भक्षयिता।

वरिक—एक प्राचीन जाति।

वरितृ (सं० त्रि०) १ आच्छादनकारी, ढकनेवाला २ पसंद करनेवाला।

वरिन् (सं० पु० क्ली०) विश्वेदेवादिके अन्तर्गत एक देवता (भारत

वरिमन् (सं० त्रि०) १ विस्तृत, लंबा चौड़ा। २ वरतम, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट, महत्त्वयुक्त, वरिष्ठ।

वरिया—बम्बईप्रदेशके गुजरात प्रान्तके रेवाकान्था विभागके अन्तर्गत एक मित्रराज्य। यह अक्षा० २२° २१′ से २२° ५८′ उ० तथा देशा० ७३° ४१′ से ७४° १८′ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके पूर्व और पश्चिममें अङ्गरेजाधिकृत पञ्चमहल विभाग, उत्तरमें सञ्जेली और सूत नामक सामन्तराज्य तथा दक्षिणमें छोटा उदयपुर है। इसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिणमें ३० मील तथा चौड़ाई ८१३ वर्गमील है। इस सामन्तराज्यका दक्षिण और पूर्वभाग पर्वतमय है तथा रन्धिकपुर, दुधिया, उमारिया, हवेली, काकदखिला, शागतला और राजगढ़ नामक ७ उपविभागोंमें यह विभक्त है। ये सब उपविभाग तथा पूर्वकथित पर्वतका अधिकांश स्थान जङ्गलावृत है। यहांका जलवायु अच्छा नहीं है, इस कारण लोगोंको अकसर रोग हुआ करता है। वनभागमें शालवृक्ष है। यहांको प्रधान उपज उड़द और तेलहन अनाज है।

यहांके सरदार चौहानवंशीय राजपूत हैं। ११४४ ई०में मुसलमान-सेनासे भगाये जाने पर इन्होंने चम्पानेर दुर्गको कब्जा किया। यहां इन्होंने करीब ढाई-सौ वर्ष तक राज्य किया। पीछे १४८४ ई०में गुर्जरपति महम्मद वेगड़ासे राज्यच्युत होने पर वे वनविभागमें चले गये। आखिर एक वंशने छोटे उदयपुरमें और दूसरेने वरियामें राजपाट स्थापन किया। १८०३ ई०में सिन्देराजके विरुद्ध सहायता करनेसे यहांके सामन्त अंगरेजोंके विशेष अनुग्रह-भाजन हुए। इस प्रत्युपकारमें अंगरेज गवर्मेण्टने वरियाभील सेनादलकी रक्षाके लिये सरदार को मासिक १८८०) रु० देनेकी व्यवस्था कर दी। यहांके सामन्तराज देवगढ़ वरियाके महारावल कहलाते हैं।

वर्त्तमान सामन्तराज अङ्गरेज गवर्मेण्टको वार्षिक ६३३० रु० कर देते हैं। बड़े लड़के ही पितृसम्पत्तिके एकमात्र अधिकारी हैं; किन्तु गोद लेनेका राजाको अधिकार नहीं है। राजाकी सैन्यसंख्या २६३ है। उन्हें सरकारकी ओरसे १०८ सलामी तोपें मिलती हैं। राजा अपराधीको प्राणदण्ड भी दे सकते हैं, इसमें उन्हें पालिटिकल एजेण्टसे सलाह नहीं लेनी पड़ती। राजाके खर्चसे १५ विद्यालय और १ चिकित्सालय परिचालित होते हैं। गुजरातसे मालव तक जो सड़क गई है, उसका

कुछ अंश तथा और भी कुछ सड़कें पक्की बना दी गई हैं।

२ उक्त सानन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४४′ उ० तथा देशा० ७३° ५६′ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। बड़ोदा राजधानीसे यह २५ कोस उत्तर-पूर्वमें पड़ता है।

वरियु—मर्त्तवानवासी एक वणिक्। इसका असल नाम मगदू है। श्यामराजका अनुग्रह लाभ करके वे धीरे धीरे वहांके एक अमात्य हो गये। एक दिन राजा इन्हें राजधानीका शासनकर्त्ता बना कर किसी काममें बाहर चले गये। इसी समय ये श्यामराजकन्याको चुरा कर मर्त्तवान ले आये तथा वहांके शासनकर्त्ता आलेइनमाका विनाश कर मर्त्तवानके शासनकर्त्ता बन बैठे। १२८१ ई०में श्यामराजने उनका पदाधिकार स्वीकार किया। इस समयसे इतिहासमें वे राजा वरियु नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके बाद वरियुने कानपलानी राज्यको जीत कर राजकन्याका पाणिग्रहण किया और अपनी शासनशक्तिको फैलाया। इन्होंने चीनसेनाके अत्याचारसे पेगूराजको बचानेके लिये अपनी सेनासे मदद पहुंचाई थी, किन्तु थोड़े ही दिनोंमें मनमुटाव हो गया जिससे वे पेगूराज्यको अधिकार कर बैठे। १२८२ ई०में इन्होंने मर्त्तवान नगरमें 'मचथिरेनमा' पगोडा स्थापन किया।

वरिवस् (सं० त्रि०) १ अन्तरीक्ष। (पु०) २ धन। ३ पूजा, शुश्रूषा।

वरिवस्कृत् (सं० त्रि०) धनकर्त्ता।

वरिवस्या (सं० स्त्री०) वरिवसः पूजायाः करणम्, वरिवस्-क्यच्। (नमोवरिवसश्चित्रङः क्यच्। पा ३।१।१९) ततः अः, ततष्टाप्। शुश्रूषा, सेवा।

वरिवस्यित (सं० त्रि०) वरिवस्या सञ्जाता अस्य तारकादित्वादितच् अथवा वरिवस्य-क्त, (क्यस्यविभाषा। पा ६।४।५०) पक्षे यलोपाभावः। उपासित, जिसको उपासना की गई हो।

वरिवोद (सं० त्रि०) वरिवः धनं ददातीति वरिवस्-दा-क। धनदाता। (शुक्लयजुः १७।१४)

वरिवोधा (सं० त्रि०) धनदाता।

वरिवोविद् (सं० त्रि०) धनलम्भयिता, जो धन मिलवा दे।

वरिशी (सं० स्त्री०) वड़िशी, कंटिया।

वरिष (सं० क्ली०) वृ-सः बाहुलकात् इट्। वत्सर, वर्ष।

वरिषा (सं० स्त्री०) वृ-सः बहुवचनात् इट्। वर्षा।

वरिषाप्रिय (सं० पु०) वरिषा वर्षा प्रिया यस्य। चातक पक्षी।

वरिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन वर उरुर्वा इष्ठन्, प्रियस्थिरेति वरादेशः। १ वरतम, श्रेष्ठ। २ उरुतम, विस्तीर्ण। (क्ली०) ३ ताम्र, तांबा। ४ मिर्च। (पु०) ५ तित्तिरपक्षी, तीतर। ६ नागरङ्ग वा नारङ्ग वृक्ष, नारंगी नीबूका पेड़। ७ चाक्षुष मनुके पुत्रका नाम। धर्म-सावर्णि मन्वन्तरके सप्त-ऋषियोंमेंसे एक। ९ उरुतमस् ऋषिका एक नाम। १० दैत्यविशेष।

वरिष्ठक (सं० त्रि०) वरतम, श्रेष्ठ, पूजनीय।

वरिष्ठा (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ गुल्मभेद। (Polasina Icosandra)

वरिष्ठाश्रम (सं० पु०) स्थानविशेष।

वरिहिष्ठ (सं० क्ली०) १ कशीर, खश। २ सुगन्धवाला।

वरिहिष्ठमूल (सं० क्ली०) उशोर मूल, खसकी जड़।

वरी (सं० स्त्री०) वृणोतीति वृपदाद्यच् गौरादित्वात् ङीष्। १ शतावरी, सतावर। २ वाजीकरमाग्निसन्दीपनरस। ३ सूर्यकी पत्नी।

वरीताक्ष (सं० पु०) एक दैत्यका नाम। (महाभारत)

वरीतृ (सं० त्रि०) आच्छादनकारी, ढकनेवाला।

वरीदास (सं० पु०) गन्धर्व नारदके पिता।

वरीधरा (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इसके १, २ और ४थे चरणमें ११ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ४, ५, ८, १०, ११वां वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं। तीसरे चरणमें १, ३, ६, ७ और ९वां लघु और बाकी वर्ण गुरु होते है।

वरीमन् (सं० त्रि०) वरिमन् देखो।

वरीयान् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन उरुर्वरो वा ईयसुन्, प्रियस्थिरेति वरादेशः। १ श्रेष्ठ, बड़ा। "वरीयानेषते प्रश्नः कृतो लोकहितो नृप!" (भागवत २।१।१) २ वरिष्ठ, पूजनीय। ३ अति युवा। (पु०) ४ फलित-ज्योतिषमें विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे अठारहवां योग। इस योगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुन्दर, सत्कर्म करनेवाला, मधुर स्वभावका एवं धन-जन-

बल-सम्पन्न होता है। ५ पुलह ऋषिके एक पुत्रका नाम। (भागवत ४०।१।३४)

वरीयसी (सं० स्त्री०) शतमूली।

वरीवर्द्द (सं० पु०) बलीवर्द्द।

वरीवृत (सं० त्रि०) पुनः पुनः आवर्त्तन।

वरीषु (सं० पु०) कामदेव।

वरु (सं० पु०) १ राजा। २ सबोंका वरणीय।

वरुक (सं० पु०) कुधान्यभेद, वरक, चीना धान।

वरुट (सं० पु०) एक म्लेच्छ जाति, वरुड़।

वरुड़ (सं० पु०) एक नीच जाति। पराशरपद्धतिके मतसे कैवर्त्तकी कन्या तथा शौण्डिकसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। यह जाति अन्त्यजमें गिनी जाती है। ब्राह्मण बिना जान बूझ कर यदि इस जातिकी स्त्रीसे गमन करें एवं इसके हाथका भोजन करें, तो वे पतित और जान बूझ कर करनेसे इसी जातिमें गिने जाते हैं। अज्ञानपूर्वक पाप करने पर प्रायश्चित्त करनेसे पापकी शान्ति होती है।

वरुण (सं० पु०) वृणोति सर्वं व्रियते अन्यैरिति वा वृ उनन्, (कृदादिभ्य उनन। उण् ३।५३) १ देवताविशेष। अदिति-तिके गर्भसे कश्यपसे उत्पन्न। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि चर्षिणी नामको पत्नीसे इनके दो पुत्र थे, भृगु और वाल्मीकि। ये जलके अधिपति, पश्चिमदिक्-पाल, दस्युओंके नाशक और देवताओंके रक्षक माने जाते हैं। पर्याय—प्रचेतस्, पाशिन्, यादशाम्पति, अप्पति, यादःपति, अपाम्पति, जम्बूक, मेघनाद, जलेश्वर, परञ्जय, दैत्यदेव, जीवनवास, नन्दपाल, वारिलोम, कुण्डलिन्, राम, सुखास। (जटाधर)

जलाशयोत्सर्ग आदि अनुष्ठानोंमें वरुणदेवकी पूजा करनी होती है। हयशीर्षपञ्चरात्रमें इनकी पूजा-पद्धति लिखी है। पूजाकालमें मूर्त्ति बनाना आवश्यक है। यह मूर्त्ति छोटे छोटे रत्नोंसे बनानी होती है। इनके दो भुज होते हैं, ये हंसके पृष्ठ पर बैठे हैं। दाहिने हाथमें अभय और बायेंमें नागपाश है। बाईं ओर जलराशि और दाहिनी ओर इनके पुत्र पुष्कर हैं तथा ये नाना नदनदी, नाग, जलधि और विविध जलजन्तुओंसे घिरे हैं। जलाशयके किनारे वा प्रान्तभागमें वरुणदेवकी इस प्रकार मूर्त्ति बना कर प्रतिष्ठा करे; पीछे उनकी अर्चना(१)।

इनका ध्यान इस प्रकार है—

"प्रसन्नवदनं सौम्यं हिमकुन्देन्दुसन्निभम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वलक्षणलक्षितम्॥
किरणैः शीतलैः सौम्यैः प्रीणयन्तमवस्थितम्।
लवणयामृतधाराभिस्तर्पयन्तमिव प्रजा॥
राजहंससमारूढं पाशव्यग्रकरं शुभम्।
पुष्कराद्यैर्गणैः सर्वैः समन्तात् परिवारितम्॥
गौर्य्या कान्त्या चानुगतं नदीभिः परिवारितम्।
नागैर्यादोगणैर्युक्तं ब्राह्मण्यामिव चापरं॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारं नारायणमिवापरम्॥"

इस प्रकार ध्यान करके पीछे पूजा करनी होगी।

वरुणका मन्त्र—ओं वौं।

"अष्टाविंशान्तबीजेन चतुर्दशस्वरेण च।
अर्द्धेन्दुबिन्दुयुक्तेन प्रणवोद्दीपितेन च॥"
(हयशीर्षपञ्चरात्र)

प्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठा करके प्रणव द्वारा निरोधमुद्रा दिखलानी होगी। अंगुष्ठ और मुष्टिको अन्तर्गत करनेसे ही निरोधमुद्रा बनती है। पीछे पाशमुद्रासे देवताका सान्निध्य करके गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादि द्वारा पूजा करनी होती है।

वरुणका प्रणाममन्त्र—

"वरुणो धवलो विष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपम्।
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥"
(जलाशयोत्सर्गतत्त्व)

देशमें अनावृष्टि दिखाई देनेसे वरुणकी अर्चना और वरुणमन्त्रका जप करे। इससे अवश्य वृष्टि होगी। अना

---

(१) "अथ वाप्यामतः कुर्यात् सद्मरत्नादिनिर्मितम्।
द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम्॥
वामेन नागपाशन्तु धारयन्तं सुभोगिनम्।
सलिलं याममाभोगं कारयेद् यादसाम्पति॥
वामे तु कारयेद्वृद्धिं दक्षिणे पुष्करं शुभम्।
नागैर्नदीभिर्यादोभिः समुद्रैः परिवारितम्॥
कृत्वैवं वरुणं देवं प्रतिष्ठाविधिनार्च्चयेत्॥"
(हयशीर्षपञ्चरात्र)

वृष्टिके कारण इनकी जो अर्चना की जाती है उसका स्वतन्त्र ध्यान है। वह ध्यान इस प्रकार है,—

"पुष्करावर्त्त केर्मेघैः प्लावयन्तं वसुन्धराम्।
विद्युद्गर्ज्जितसन्नद्धं तोयात्मानं नमाम्यहम्॥
यस्य केशेषु जीमूतो नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥"

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचारसे वरुणकी आराधना करे और पीछे मूलमन्त्र जपे। जपके पहले विनियोग कर लेना होता है। यथा—'प्रजापतिर्ऋषिस्त्रष्टुपछन्दो वरुणो देवता पतांवद्राष्ट्रमभिध्याप्य सुवृष्ट्यर्थं जपे विनियोगः।" मन्त्र गुरुमुखसे ही जान लेना होता है। वह मन्त्र इस प्रकार है—

"ओं वृष्टिरिहानाव्यन्तरयोमरुतास्पृशतीं।
गच्छ वशारगिनहं त्वा दिवं गच्छत तेनो वृष्टिमावह॥"

यह मन्त्र हजार बार जप करनेके बाद निश्चय ही वृष्टि होगी। दूसरेके मतसे कूर्च्च लक्ष्मी और मायावीज, हुं श्रीं ह्रीं इन तीन अक्षरोंके मन्त्रसे यदि नाभि पर्यन्त जलमें मग्न हो कर जप किया जाय, तो अनावृष्टि दूर होती है। मन्त्रकी जपसंख्या आठ हजार है, किन्तु उससे चौगुना अर्थात् बत्तीस हजार जप करना होगा। तीन दिनके बाद चौथे दिनमें इस जपको समाप्ति होती है।

कोई कोई अनावृष्टिके समय वरुणका एकाक्षर मन्त्र जपनेको भी व्यवस्था देते हैं। एकाक्षर मन्त्र हैं 'वं'

मनुने कहा है—महापातकीको जो धनदण्ड किया जाय, साधुचरित्र राजा उसे कभी भी ग्रहण न करें। लोभमें पड़ कर यदि वह ग्रहण किया जाय, तो उस महापातकीके दोषमें ही उन्हें लिप्त रहना पड़ेगा। इसलिये राजाको चाहिये, कि जलमें प्रवेश कर वह धन वरुणको अथवा सद्वृत्तिसम्पन्न शास्त्रज्ञ ब्राह्मणको दे देवें। क्योंकि वरुण दण्डकर्त्ता हैं, वे राजाओंके भी दण्डधर हैं। फिर जो वेदपारग ब्राह्मण है वे सारे संसारके प्रभु हैं।

(मनु ९ अ०)

अति प्राचीन कालसे ही जलाधिष्ठाता वरुणदेवताकी उपासना प्रचलित है। ऋग्वेदमें इन्हें राजा, विशुद्ध बल, विमानचारी, वेगवान् और पराक्रमशाली कहा है। उक्त राजा वरुण सूर्यके जानेके लिये पथ (उत्तरायण और दक्षिणायन भाग)-का विस्तार करते हैं। वे मूलरहित अन्तरीक्षमें रह कर वननीय तेजपुञ्जको ऊपर उठाये हुए हैं। वह रश्मिपुञ्ज अधोमुख है, किन्तु उसका मूल ऊपर है। इससे वे जीवका मरण रोकते हैं। उनके सौ हजार ओषधियां हैं अर्थात् वे ओषधिपति हैं। वे निर्ऋतिको पराङ्मुख करके मनुष्योंके दुरित नाश करनेमें समर्थ हैं। वे परमायुको देते और लेते भी हैं। इन्हींकी आज्ञासे रातको चन्द्रमा चमकते हैं; वे विद्वान् हैं, अहिंसित बन्धन मोचनकारी और मुक्तिदाता हैं। उनके सभी कर्म अप्रतिहत हैं। हे वरुण! नमस्कार करके तुम्हारा क्रोध शान्त करता हूं, यज्ञके हव्य दान द्वारा तुम्हारा क्रोध दूर करता हूं। हे असुर! हे प्रचेतः! हे राजन्! हम लोगोंके लिये इस यज्ञमें निवास करके हम लोगोंका कृतपाप शिथिल करो। हे वरुण! मेरे ऊपरका पाश ऊपरसे, नीचेका पाश नीचेसे और मध्यका पाश मध्यसे खोल दो। इसके बाद हे अदितिपुत्र! हम लोग तुम्हारा व्रतखण्डन न करके पापरहित हो कर रहेंगे।

(ऋक् १।२४।६ १५)

इससे अच्छी तरह जान पड़ता है, कि वरुण दिक्पति या लोकपाल हैं। वे यमकी तरह पापपुण्यके विचार वा निग्रहकर्त्ता हैं। वे धनाधिकारी (ऋक् १।१४३।४) तथा धृतव्रत हैं। (ऋक् २।१।४) ऋक्संहिताके १।१६१।१४ मन्त्रमें लिखा है, कि वरुण समुद्रजलके साथ आगमन करते हैं। ७।८७।६ मन्त्रमें उनके द्वारा समुद्रस्थापनकी बात लिखी है। उनके भीतर तीन प्रकारके द्युलोक विराजित हैं, तीन प्रकारकी भूमि है। उन्होंने अन्तरीक्षमें हिरण्मय दोलाकी तरह दीप्तिके लिये सूर्यका निर्माण किया है। वे जलबिन्दुकी तरह श्वेतवर्ण और मृगके समान बलवान्, उदकके निर्माता और समस्त सत्पदार्थके राजा हैं। ५।४।७ मन्त्रमें वे सूर्य द्वारा स्तुत हुए हैं। ऋक्संहिताके ७ मण्डलके ८७ ८८ सूक्तमें वरुणदेवताकी अनेक स्तुतियां हैं।

एतद्भिन्न उक्त संहिताके १।१५६।४, २।२७।१०, २।२८।६, ४।१।५, ४।४२।१-२, १०।६६।१०, १०।१३२।४

स्थलमें वरुणको सर्वश्रेष्ठ, राजा और शक्तिमान् तथा स्तोत्रविशिष्ठ देवता कहा है अथर्ववेदमें भी इन्हें देवताओंका मुख्य बतलाया है।

"सोमोभग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा।"

(अथर्ववेद ६।२१।२)

ऋक्संहिताके ८।४१ और ८।४२ सूक्तमें वरुणदेवकी स्तुति है। ५।८५ सूक्तके मन्त्रनिचयमें अत्रि ऋषिने वरुण देवताका इस प्रकार स्तव किया है, वे निखिल भुवनके अधिपति हैं और वृष्टिपात द्वारा पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्गको आर्द्र करते हैं।' इस ऋक्के मन्त्र पढ़नेसे स्पष्ट जान पड़ता है, कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही वरुण है। ईश्वरकी कार्यावली स्वतन्त्र अभिधाको प्राप्त होकर वरुणमें आरोपित हुई है। ऋग्वेदके ऋषियोंने प्रकृतिकी विस्मयकर कार्यपरम्परा देख कर वरुण इन्द्रादिदेवके स्वातन्त्र्यकी कल्पना की थी। पीछे उन्होंने उस कार्यपरम्पराकी एकता समझ कर ईश्वरका एकत्व हृदयमें अनुभव किया। वे सूर्य द्वारा अन्तरीक्षका परिमाण लेते हैं (५।८५।५), वे ही सभी नदियोंको एक महासमुद्रमें प्रेरण करते हैं, फिर भी वह महासमुद्र नहीं भरता (५।८५।६), फिर वे ही मनुष्यका पाप विनाश और अपराध खण्डन करते हैं। उन्होंने सूर्यके अस्तरणार्थ तथा वृक्षोंके ऊपर अन्तरीक्षको विस्तारित किया है, वे अश्वगणके बल हैं, धेनुगणको दूध और हृदयमें संकल्प दान करते हैं। उन्होंने ही जलमें अग्निको, अन्तरीक्षमें सूर्यको और पर्वत पर सोमलताको स्थापन किया है।' इत्यादि स्तुति देख कर अनुमान होता है, कि धर्मपरायण वैदिक ऋषिगण वरुण और ईश्वरको एक और अभिन्न बतला गये हैं।

इस एकत्वके कारण ही १।१३६-१३७ सूक्तमें परुच्छेप ऋषिने, १।१५१-१५२ सूक्तमें दीर्घतमा ऋषिने तथा ऋग्वेदके ७।६३-६६ सूक्तमें वशिष्ठ ऋषिने प्रातःकालमें मित्र और वरुणका स्तुतिमन्त्र गाया है। वे नामपार्थक्यमें जगत्के भिन्न भिन्न मङ्गलजनक क्रिया करनेवाले हैं सही, पर मूलमें एक महान् ईश्वरको छोड़ कर और कुछ भी नहीं हैं यह स्पष्ट जाना जाता है। यही कारण है, कि हम लोग ऋक्संहिताके १।१५६।४ मन्त्रमें विष्णु और वरुण तथा दोनों अश्विको एकत्र सखाविशिष्ट हो कर यज्ञमें मिलित देख पाते हैं। शाङ्खायन श्रौतसूत्र (२।२०।४)-में इसी प्रकार विष्णु-वरुणका संयोग और एकाधारत्व वर्णित है। गोभिल ३।६।१२ सूत्रमें यमवरुणका एकयोगत्व तथा शाङ्खायनब्राह्मण १८।१० और कात्यायन श्रौतसूत्र (१०।८।२७)-में अग्नि-वरुणका एकाधारत्व बतलाया गया है। ऋक ४।१।२ मन्त्रमें अग्निवरुणका सखित्व और भ्रातृत्वसम्बन्ध आरोपित है†।

अथर्ववेदके 'इन्द्रेन्द्र मनुष्याः परेहि सं ह्यज्ञास्थावरुणैः संविदानः।" (अथर्व ३।४।६) मन्त्रमें इन्द्र और वरुणका एकमतित्व स्थिर किया गया है। इस प्रकार वाजसनेयसंहितामें इन्द्र और वरुणका एकत्व देखा जाता है। वे सब देवताओंके सम्राट् हैं, अतएव वे इन्द्रावरुण मित्रावरुणकी तरह ईश्वरको छोड़ कर और कोई भी नहीं हो सकते। परन्तु स्थानविशेषमें उन्हें मित्र, अग्नि, इन्द्र, यम वा वायुके साथ ऐशकर्म सम्पादन करते देख उनके मौलिक ईश्वरत्वकी कुछ विशषता निर्दिष्ट हुई है, केवल यही जा सकता है।

ऋग्वेदके १।१२६-१३६ सूक्तके मन्त्र पढ़नेसे उनमें कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती वरं उनका एकत्व ही निष्पादित होता है। ऋक् १।१३६।६-७ मन्त्रमें लिखा है कि, "मैं सूर्य, पृथिवी, आकाश, मित्र और वरुण तथा रुद्रको नमस्कार करता हूं। ये सभी अभिमत फलदायी और सुखदायी हैं। इन्द्र, अग्नि, अर्यमा और भगका स्तव करो। * * * हम लोगोंने इन्द्रको पाया है, * * * इन्द्र अग्नि, मित्र और वरुण हम सबोंके सुखप्रद होवें, हमलोग अन्नवान् हो कर जिससे वह सुखभोग करें। १।१५३ सूक्तमें इन्द्र और वरुणका

---

† "स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व
अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम्॥
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं
रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु॥"
(ऋक् ४।१।२३)

साहचर्य सूचित हुआ है। इसके द्वारा इस देवतामण्डली-का एकत्व और ईश्वरत्व स्पष्ट प्रतिपादित होता है, फिर, शुक्ल यजुर्वेदके ८।३७ मन्त्रमें "इन्द्रश्च सम्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्।" पढ़नेसे मालूम होता है, कि दोनों एक ही हैं। उसके भाष्यमें महीधरने लिखा है,—'तौ देवौ इन्द्रवरुणौते तव एतं सोममग्रे प्रथमं भक्षं चक्रतुः। तौ कौ इन्द्रो वरुणश्च चकारौ समुच्चये, किम्भूत इन्द्रः सम्राट् परमैश्वर्ययुक्तः वाजपेययाजीत्यर्थः। किंभूतो वरुणः राजा राजसूययाजी राजा वै राजसूये-नेष्ट्वा भवति सम्राड्वाजपेयेनेति श्रुतेः।'

ऋक्संहिताके १।१३६।२ मन्त्रमें उषा कर्त्तृक वरुणके घर प्रकाशित होनेकी बात लिखी है। शुक्लयजुर्वेदका "पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपां शिशुर्मातृतमास्व-न्तः" (१०।७) मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि समुद्र वा जलगर्भ ही वरुणका घर है। वे जलके शिशु हैं, जल ही उनका निवासस्थान है। उस मन्त्रके भाष्यमें महीधरने लिखा है—'या एवम्विधा आपस्तासु अन्तर्मध्ये वरुणो देवः सधस्थं सहस्थानं चक्रे कृतवान् सह स्थीयते यस्मिन् तत् सधस्थं। किम्भूतो वरुणः अपां शिशुः बालक अपां वा एष शिशुर्भवति ये राजसूयेन यजत इति श्रुतेः किम्भू-तास्वप्सु पस्त्यासु। पस्त्यमिति गृहनामसु पठितम्। गृहरूपासु सर्वेषामाधारत्वात् तथा मातृतमासु अति-शयेन जगन्निर्म्मात्रीषु।'

उक्त संहिताके ६।२२ मन्त्रमें वरुणके पाशसमन्वित स्थानके भयभीत मानवकी मुक्तिप्रार्थनाकी बात इस प्रकार लिखी है,—"धाम्नो धाम्नो-राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपानहे ततो वरुण नो मुञ्च।" फिर शुक्लयजुः ९।३९ मन्त्रमें लिखा है—"बृहस्पतिर्वाच-मिन्द्रो ज्यैष्ठाय रुद्रः पशुभ्यः मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपती-नाम्।" यहां मन्त्रांशमें वरुणको धर्मपति कहा है। उसके भाष्यमें महीधरने अच्छी तरह समझा दिया है, 'धर्म-पतीनां धर्मेश्वराणां धर्मशीलानामाधिपत्येत्वां सुवतां। सवित्रादयोऽष्टौ देवसु हविषां देवतस्त्वां नानाधिपत्यानि ददत्विति वाक्यार्थः।' उसके परवर्ती मन्त्रमें (९।४०) वरुणादि देव द्वारा राजाओंका महती क्षत्रपदवी पर नियोग की प्रार्थना देखी जाती है। तैत्तिरीय ब्राह्मणके ३।१।२।७ मन्त्रके "क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः" पदमें यह वाक्य समर्थित हुआ है*।

अथर्ववेदके १।१०।१ मन्त्रमें वरुणको दीप्तिशाली और सत्यभाषणशील कहा है। अनृतादि बोलनेके कारण उनके कोपमें पड़नेसे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें जलोदरादि रोग-से आक्रान्त होते हैं। ब्रह्ममन्त्र द्वारा वा वरुणविषयक स्तुतिरूप हविः द्वारा वा अति तीक्ष्ण स्तोत्रादि द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे रोग दूर होता तथा बलकी वृद्धि होती है।

ऐतरेयब्राह्मण (१।४४) पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जलाधिपति देवराज वरुण दिक्पालरूपमें असुरोंके साथ लड़े थे। आदित्योंने उनके साथ अग्रसर हो कर देव-ताओंका भय दूर किया था। उक्त ग्रन्थ (७।१४-१५)-के हरिश्चन्द्र उपाख्यानमें लिखा है, कि ऐक्ष्वाकु राजा हरि-श्चन्द्रने नारदके आदेशसे पुत्रकामी हो वरुण देवकी तपस्या की। आराधनासे तृप्त हो कर वरुणदेवने उन्हें अपना दर्शन दे कर कहा, "राजन्! वर मांगो, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गया हूं।" राजाने पुत्रके लिये प्रार्थना की। इस पर वरुणदेवने कुछ मुसकुरा कर कहा, 'तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उस पुत्रको तुम निःशङ्क चित्तसे यज्ञीय पशुरूपमें मुझे प्रसन्न करनेके लिये बलि देना।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। कुछ समय

* ऋग्वेदमें कई जगह वरुणको सुक्षत्र वा क्षत्रिय कहा है। किन्तु वहां क्षत्रियका अर्थ बलवान् है। तब क्षत्रिय नामक किसी स्वतन्त्र वर्णकी सृष्टि हुई थी या नहीं, सन्देह है। वे बलके अधि-पति हैं, इस कारण परवर्त्ती ब्राह्मणयुगमें क्षत्रिय (बलशाली) राजाओंके वर्णनिर्णयके साथ साथ वरुणको भी क्षत्रियके राजाओंके अधिपति दण्डदाता और रक्षाकर्त्ता कहा है। ऋक्-संहिताके ७।६५।२ मन्त्रमें—

"आराजानामह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक।"

मन्त्रको वरुणको सिन्धुपति और क्षत्रिय कहा है। किन्तु इसका अर्थ दूसरा है।

† "अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शासदानं उग्रस्य मन्योरुदियं नयामि॥" (अथर्व० १।१०।१)

वाद उन्हें रोहित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा-समय वरुणने आ कर राजासे पुत्र मांगा। राजा अनुरोध, विनय तथा नाना आपत्ति दिखलाते हुए पुत्रकी प्राण-रक्षाका उपाय ढूंढ़ने लगे। इस प्रकार टालमटोल करते करते जब रोहितने दशवें वर्षमें कदम बढ़ाया, तब वरुण-देवने आ कर कहा, 'आपका पुत्र यज्ञीय पशु होनेके योग्य हो गया, अपना वचन पूरा कोजिये।' राजाने उन्हें समा-वर्त्तनके वाद नरमेधयज्ञकी कामना जताते हुए विदा किया और पुत्रको बुला कर कहा, 'हे प्रिय! जिनने तुमको मुझे दिया है, मैं यज्ञीय पशुरूपमें तुम्हें मार कर उनके हाथ समर्पण करूंगा।' पिताका ऐसा वचन सुन कर पुत्र नहीं नहीं कहता हुआ तीर धनुष ले जंगलको भाग गया। यथासमय वरुणदेव राजाके निकट आये और 'महाराज! यज्ञ कीजिये' कह कर खड़े हो गये। राजाने पुत्रके जंगल चले जानेका सारा हाल कह सुनाया। वरुणके शापसे राजा जलोदरी रोगसे आक्रान्त हो बड़े चिन्तित हो गये।

पिताके इस रोगका हाल जब रोहितको मालूम हुआ, तब वह जङ्गलको छोड़ कर घर आये। यहां ब्राह्मणरूपमें इन्द्रने अपना दर्शन दे कर उनसे कहा, 'तुम भारी मूर्ख हो, राजसंसारकी दुःखपराकाष्ठाका भोग क्यों करना चाहते हो। मैं सलाह देता हूं, कि तुम हमेशा बाहरमें घुमो करो, भविष्यमें तुम्हारा कल्याण होगा।'

इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें लगातार छः वर्ष आये और रोहितको युक्तियुक्त वचनोंसे निषेध कर गये। छठें वर्षके अन्तमें राजपुत्रने सुखवसके पुत्र अजीगर्त्त ऋषिके आश्रममें आ कर कहा, 'हे ऋषिश्रेष्ठ! मैं आपको सौ गाय प्रदान करूंगा। आप अपने तीन पुत्रोंमेंसे एक पुत्र दीजिये जो मुझे पशुरूपमें यज्ञमें बलि होनेसे बचावे।' ऋषिने अपने मध्यम पुत्र शुनःशेफको दे दिया। राज कुमार ऋषिको सौ गाय दे कर ब्राह्मणकुमार शुनःशेफको साथ ले पिताके निकट आये और बोले, 'इस बालकको ले कर मुझे छुटकारा दीजिये।' इसके वाद राजाने जब यज्ञ ठाना, तब वरुणने स्वयं राजसूययज्ञका अभिषेचनीय कर दिया था।

वरुणने कहा—क्षत्रिय पशु होनेकी अपेक्षा ब्राह्मणका ही यज्ञमें पशु होना अच्छा है। इतना कह कर यज्ञ आरम्भ हुआ। विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्मा और अयास्य उद्गाता हुए। शुनःशेफने जब देखा, कि वे पशुरूपमें यज्ञमें निहत होंगे, तब उन्होंने यथाक्रम प्रजापति (ऋक् १।२४।१), अग्नि (ऋक् १।२४।२), सविता (ऋक् १।२४।३-५) और इसके बाद वरुण (ऋक् १।२४।६-१५, १।२५।१-२१) की स्तुति की थी।

देवीभागवतके ७म स्कन्धके १४-१७ अध्यायमें इस घटनाका विस्तृत उल्लेख है।

[शुनःशेफ और विश्वामित्र शब्दमें देखो।]

तैत्तिरीय ब्राह्मणके १।१।४।८, १।४।१०।६ और शतपथ-ब्राह्मणके १२।८।३।१० और १३।३।४।५ स्थलमें वरुणदेव-की पूजा लिखी है।

इस उपाख्यानसे वरुण प्रजाप्रद, प्रजापालक और प्रजासंहारक देवता ही समझे जाते हैं। अतएव वे सृष्टि, स्थिति और लयकर्त्ताके परम पुरुष हैं। वे राजाओंके राज्यमें वास करते हैं।

"तदेयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि।"

(अथर्व० ३।४।५)

फिर मनुसंहितामें इन्हें राजाओंका दण्डदाता कहा है। (मनु० ९।४५)

वेदमें वरुणको देवताओंमें श्रेष्ठ बतलाया है। वे जल-देवता हैं। जब सभी अन्धकारमें ढके और प्रसुप्तकी तरह थे, तब भगवान्की इच्छासे महाभूतादिका विकाश हुआ। आदिमें अप्की सृष्टि हुई अर्थात् जल ही ईश्वरत्व-का आदि विकाश है, अतएव जलाधिपतिको ईश्वर और देवताओंमें श्रेष्ठ मानना कोई अत्युक्ति न होगी।

महाभारतके उद्योग और शल्यपर्वमें वे उदकपतिरूप-में वर्णित हुए हैं। उन्होंने इस आधिपत्यको सर्वलोक पितामहसे पाया था। "अपां राज्ये सुराणाञ्च विदधे वरुणं प्रभुम्।" (भारत स्त्रीपर्व)

भागवतमें वरुणदेव काश्यपपत्नी अदितिके पुत्ररूपमें कीर्त्तित हुए हैं।

हरिवंशके ३य अध्यायमें वरुणादि देवताओंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक एक कर लिखा है। फिर ऋक्-संहिताके १०।७२।८ मन्त्रमें अदितिके आठ पुत्रोंकी जन्म-कथा है। अदिति अपने आठ पुत्रोंमेंसे मार्त्तण्डको फेंक

कर बाकी सात पुत्रोंके साथ स्वर्ग गई थीं। ऋग्वेदके २।२७।१ मन्त्रमें छः आदित्य तथा ६।११।४।३ मन्त्रमें सात आदित्यका वर्णन है। तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें धाता, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान् इन आठ आदित्योंका हाल है। किन्तु महाभारत और विष्णु आदि पुराणोंमें बारह आदित्यके नाम देखे जाते हैं। शतपथ-ब्राह्मणके ११।६।३।८ मन्त्रमें बारह महीनोंके सूर्यको बारह आदित्य कहा है। ऋक्संहिताके २।२७।१ मन्त्रमें दक्ष अदितिके पुत्ररूपमें उल्लिखित हुए हैं। निरुक्तमें (६।२३) यास्कने लिखा है,—"अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्‌ अदितिः परि" अर्थात् दक्षसे ही अदितिकी उत्पत्ति है। फिर ऋक् ६।५०।२ मन्त्रमें सूर्यको दक्षसे उत्पन्न बतलाया है। इस हिसाबसे कुछ भी स्थिर नहीं किया जा सकता। परन्तु उक्त सूक्तके १म मन्त्रमें लिखा है, 'हे देवगण! मैं सुखके लिये स्तोत्रके साथ अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, भग और सभी रक्षाकारी देवताओंको आह्वान करता हूं।' इन सबकी आलोचना करनेसे पता चलता है, कि वरुण आदित्योंमेंसे एक हैं।

मनुसंहितामें वरुणको अद्वितीय तेजसम्पन्न और पाशहस्त कहा है। उनके पाशसे बद्ध व्यक्ति यदि पाप-प्रशमनार्थ वारुण व्रताचरण करे, तो मुक्ति पाता है। वरुण-मन्त्रके द्वारा सलिल विकारमें वरुणकी पूजा तथा उसके द्वारा नाभिजलमें खड़े रह कर जप और होम करना होता है।

"सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणमन्त्रैः।"

(बृहत्सं ४६।५१)

हरिवंशके ४५वें अध्यायमें वरुणदेवका रूपवर्णन लिखा है। वे हंस पर बैठे हैं। हाथमें पाश अस्त्र है। (बृहत्सं ५८।५७) यह पाश अस्त्र काल वा वरुण-पाश कहलाता है। (रामायण १।२७।६) यही अस्त्र धारण कर वे देवासुरसंग्राममें देवपक्षीय दिक्पतिरूपमें अवतीर्ण हुए थे। ऐतरेय ब्राह्मणमें (१।२४) इस युद्धका हाल लिखा है। रामायणमें भी वरुणकी युद्धकुशलताका परिचय दिया गया है।

ऋग्वेदमें विष्णु और वरुणके सखित्व वा अभेदत्वका जो आभास दिया गया है, गीतामें वह पूर्णरूपसे परिव्यक्त देखा जाता है। स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

"अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्य्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥"

(गीता १०।२६)

फिर महाभारतमें कृष्ण और वरुणके विरोधकी कथा लिखी है। श्रीकृष्णने जलजन्तुसमाकीर्ण समुद्रगर्भमें प्रवेश कर सलिलान्तर्गत वरुणको परास्त किया था।

(भारत द्रोणपर्व ११ अ०)

भागवतमें इस कृष्ण और वरुणका विद्वेषका वर्णन उपाख्यानकी तौर पर किया गया है। एक दिन नन्दने एकादशीके दिन उपवास रह कर जनार्द्दनकी अभ्यर्च्चना की। द्वादशी तिथिको वे आसुरी कालमें कालिन्दीजलमें स्नान करने गये। ज्यों ही वे जलमें घुसे त्यों ही वरुण-का नौकर उन्हें वरुणालयमें घसीट ले गये। भगवान् श्रीकृष्णको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने वरुणके पास जा कर पिताका उद्धार किया। वरुणने इस समय श्रीकृष्णकी पदवन्दना की थी। (१०।२८।५)

स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डके अन्तर्गत वरुणपुरी-माहात्म्यमें लिखा है,—

एक दिन शौनकने सूतसे वरुणपुरका माहात्म्य कहनेके लिये प्रार्थना की। सूतने कहा, नाना रत्नराजिविराजिता मनोरमा वरुणकी एक पुरी थी। वहांके लोग धर्मपरायण और वेदार्थतत्त्वज्ञ थे। उन लोगोंने ज्योतिष्टोम विधि द्वारा रामकी आराधना की थी। इस यज्ञसे देव और पितृगण सभी संतुष्ट हुए। पीछे वहां उपस्थित हो कर रामने वरुणसे कहा था, 'हे जलाधिप वरुण! तुम अपने भवनके सदृश मेरा भी एक भवन निर्माण करो। यह भवन नाना रत्न-विभूषित होगा और उसमें मुनिगण वास करेंगे। वरुणदेवने परशुरामकी यह बात सुन कर एक भवन बनवाया और उसे परशुरामको दे दिया। परशुरामने वह नाना रत्नादि खचित सुरम्य भवन देख कर कहा था, कि यह भवन आजसे वरुणपुर कहलायगा तथा परशुराम इस पुरके अधिपति होंगे। एक दिन मधुमासकी शुक्र-वार नवमी तिथिको सभी मनुष्य एकत्र हो कर सप्तदिन-व्यापी रामका महोत्सव कर रहे थे। इसी समय एक महादैत्य वहां पहुंचा और राम-महोत्सवकारी लोगोंको

तंग करने लगा। वरुणालयवासी बहुत डर गये और परशुरामका स्तव करने लगे। स्तवसे संतुष्ट हो कर परशुराम वहां उपस्थित हुए और उन्हें सम्बोधन कर कहा, 'हे ब्राह्मण! यदि मेरे कथनानुसार कार्य करो, तो तुम लोगोंका दैत्यभय दूर हो जायगा। मैंने दैत्यदानवनाशके लिये वरुण-निर्मित पुरीमें महामायाको स्थापन किया है, तुम सभी आ कर यदि उसकी शरण लो, तो तुम्हारे भय दूर हो जायेंगे।' वरुणालयवासी विप्रोंने परशुरामके आदेशानुसार महालसा नामक महामायाकी शरण ली। वहां वे उनका स्तव और पूजादि करने लगे। महामायाने ब्राह्मणादिके स्तवसे संतुष्ट हो कर उनसे कहा 'हे विप्रगण! तुम लोग भय न करो, मैं उस दैत्यका विनाश करती हूं।' इस प्रकार उन्हें अभय दे कर वे दैत्यके साथ युद्ध करने लगीं। घोर युद्ध करनेके बाद महामायाने उसका शिर काट डाला और उसे बायें हाथमें ले कर वह अपने घरको लौटीं। इस प्रकार दैत्यभय दूर हुआ। देवगण आकाशसे पुष्पवृष्टि और गन्धर्वगण गान करने लगे। राममहोत्सव निर्विघ्नपूर्वक समाप्त हुआ। तभीसे माघ मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिको कामना करके तथा भक्तिपरायण हो कर जो सब व्यक्ति त्रिभुवनेश्वरी देवी महामायाकी पूजा करते हैं, देवी उनकी अभिलाषा पूर्ण करती हैं।

(स्कन्दपु० सह्याद्रिखं० वरुणपुरीमाहात्म्य १-२ अ०)

जिस अन्तरीक्षको देख कर वैदिक युगके आर्योंके हृदयमें ईश्वरकी अभिव्यक्ति उदय हुई थी, वेदमें उन्हींको वरुणदेव कहा है। उन अन्तरीक्षप्रख्यात देवताओंके राजा वरुणके साथ ग्रोक पुराणोक्त उरेनसकी अनेक सदृशता देखी जाती है। वैदिक उपाख्यानमें द्यौस् कर्तृक जिस प्रकार वरुणकी पदच्युति और जलपति रूपमें नियोगकी कथा है, उसी प्रकार ग्रीसके पुरातत्त्वमें ज्युस कर्तृक उरेनसकी पदच्युतिका हाल लिखा है। वरुण वृष्टिदाता और जलगृहविहारो हैं, उरेनस भी उसी उसी कार्यके अधिपति हैं। किन्तु यथार्थमें मेना और अश्विनी तथा अन्न और वरुणके साथ अन्यान्य विषयोंमें बहुत प्रभेद देखा जाता है, वरन् जलाधिकारित्वमें नेपचुनके साथ वरुणका विशेष सदृशता है। नेपचुन देखो।

३ स्वनामख्यात वृक्षविशेष, वरुणका पेड़। पर्याय - वरुण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, अश्मरीघ्न, सेतुक, वराण शिखिमण्डन, श्वेतवृक्ष, श्वेतद्रुम, साधुवृक्ष, तमाल, मारुतापह। इसका गुण—कटु, उष्ण, रक्तदोष और शीतवातहर, स्निग्ध, दीपन तथा विद्रधिरोगघ्न।

(राजनि०)

राजवल्लभके मतसे इसका गुण—वायु और शूलहर, भेदक, उष्ण और अश्मरीनाशक। वरुणका पुष्प गुण—पित्तघ्न और आमवातहर। (राजवल्लभ)
४ जल, पानी। ५ सूर्य। ६ मुनि-गर्भजात कश्यपके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।४३)

वरुणक (सं० पु०) वरुणवृक्ष, वरुनाका पेड़। (Crataeva Roxburghii)

वरुणगुड़—औषधविशेष।

वरुणगृहीत (सं० त्रि०) १ वरुण द्वारा आक्रान्त। २ उदरी आदि रोगग्रस्त।

वरुणग्रस्त (सं० त्रि०) वरुणग्रास, जलमें डुबा हुआ।

वरुणग्रह (सं० पु०) घोड़ोंका एक रोग जो अचानक हो जाता है। इस रोगमें घोड़ेका तालू, जीभ, आँख और लिङ्गेन्द्रिय आदि अंग काले रंगके हो जाते हैं। उसका शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है। यह रोग भयानक होता है और बहुत यत्न करनेसे घोड़ेके प्राण बचते हैं।

वरुणग्राम—एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० ५७।२५९)

वरुणग्राह (सं० पु०) वरुण द्वारा आक्रमण या बन्धन।

(तैत्तिरीयसं० ६।६।५।४)

वरुणघृत—अश्मरीका एक औषध। घी ४ सेर, काढ़ेके लिये कूटी हुई वरुणकी छाल १२। सेर, जल ६४ सेर शेष १६ सेर। कल्कके लिये वरुण मूलकी छाल, केलेकी जड़, नीमके पेड़की छाल, कुशादि पञ्चतृणका मूल, गुलञ्च, शिलाजित, ककड़ीका बीज, दूब, तिलनालका क्षार, पलाशक्षार, जूहीका मूल प्रत्येक २ तोला। रोगीके अवस्थानुसार मात्रा स्थिर करनी होगी। रोग पुराना होनेसे उसके साथ पहले दहीका पानी मिला कर सेवन करना चाहिये। इससे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होते हैं।

वरुणतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि दर्पटनदके पूरब अग्निमान नामक पर्वत है। उसके सम्मुखभागमें कंसकर पर्वतके नीचे वरुण कुण्ड नामका पवित्र सरोवर है। यहां जलाधिप वरुण सर्वदा वास करते हैं। कंसकर पर्वत पर वरुणदेवकी पूजा करके वारुणकुण्डमें स्नान करनेसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। म-से पञ्चम वर्ण 'व'-कारमें अनुस्वार लगानेसे वरुणवीज होता है। उसी वीजमन्त्रसे वरुणदेवको पूजा करनी होती है। (कालिका० ७६।१० १७)

वरुणत्व (सं० क्ली०) वरुणका भाव या धर्म।

वरुणदन्त (सं० पु०) पाणिनि-वर्णित एक व्यक्ति। (पा० ५।३।८४)

वरुणदेव (सं० त्रि०) १ वरुण जिसके देवता हों। (पु०) २ शतभिषा नक्षत्र। (वृहत्स० ३२।२०) ३ वरुण-देवता।

वरुणदैवत (सं०पु०) शतभिषा नक्षत्र।

वरुणध्रुत् (सं० त्रि०) १ वरुणको प्रवञ्चना या लोभ दिखानेवाला। २ वरुण द्वारा हिंसित, वरुणसे मारा हुआ।

वरुणपाश (सं० पु०) १ वरुणका अस्त्र पाशका फंदा। २ नक्र, नाक नामक जल-जंतु।

वरुणपुरुष (सं० पु०) वरुणका भृत्य या नौकर। (आश्व० गृह्य १।१।५)

वरुणप्रघास (सं० पु०) एक व्रत या कृत्य। यह आषाढ़ या श्रावणकी पूर्णिमाके दिन किया जाता है। इसमें लोग जौका सत्तू खा कर रहते हैं। इस व्रतका फल यह कहा गया है कि, व्रत करनेवाला जलमें डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ता।

वरुणप्रशिष्ट (सं० त्रि०) वरुणके द्वारा शासित या परि-चालित।

वरुणप्रस्थ (सं० पु०) एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्रके पश्चिममें था। (भ० ब्रह्मख० ५७।११४)

वरुणभट्ट (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

वरुणमण्डल (सं० पु०) नक्षत्रोंका एक मंडल। इसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं।

वरुणमति (सं० पु०) एक वोधिसत्त्वका नाम।

वरुणमित्र (सं० पु०) गोभिलभेद।

वरुणमेनि (सं० स्त्री०) वरुणका क्रोध। (तैत्तिरीयस० ५।१।५।३)

वरुणराजन् (सं० त्रि०) वरुण जहां राजरूपमें अधिष्ठित हैं। (तैत्तिरीयस० ३।५।८।१)

वरुणलोक (सं० पु०) १ एक लोक। (कौशिकी उप० १।५) काशीखण्डके १०८वें अध्यायमें इसका विवरण है। २ वरुणका अधिकारस्थान वा जल। (तर्कसंग्रह ७ अ०)

वरुणशर्मन् (सं० पु०) देवता और असुरकी लड़ाईमें देवपक्षीय एक सेनापतिका नाम।

वरुणशेषस् (सं० त्रि०) १ वरुणका अपत्य। (ऋक् ५।६५।५ सायण) २ रक्षाकारी पुत्रादिविशिष्ट।

वरुणश्राद्ध (सं० क्ली०) श्राद्धकृत्यभेद।

वरुणसव (सं० पु०) वरुणका अभिप्रेत यज्ञ।

वरुणसेन (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजाका नाम।

वरुणसेना (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (कथासरित्सा० ४४।४४)

वरुणस्रोतस् (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणाङ्गरुह (सं० पु०) १ वरुणका वंशधर। २ अगस्त्य ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

वरुणात्मजा (सं० स्त्री०) वरुणस्य जनस्य आत्मजा; तदुद्भवत्वात्। वारुणी, मदिरा, शराब।

वरुणादिक्वाथ (सं० क्ली०) वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरू कुल मिला कर २ तोला, जल ।।० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ यवक्षार २ माशा, पुराना गुड़ २ माशा। इस क्वाथका पान करनेसे पुरानी वायुज अश्मरीकी शान्ति होती है।

वृहद्वरुणादि—वरुणकी छाल, सोंठ, गोखरूका वीज, तालमूली, कुलथी, कलाय, कुशादि तृणपञ्चमूल कुल मिला कर २ तोला, जल ।।० सेर, शेष आध पाव, प्रक्षेपार्थ चीनी २ माशा, यवक्षार २ माशा। इससे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशूल और लिङ्गशूल जाता रहता है।

वरुणकी छालके काढ़े वा कल्कके साथ पुराना गुड़

और सहिञ्जनके मूलका उष्ण काथ सेवन करनेसे अश्मरी और तज्जनित यन्त्रणा दूर होती है।

वरुणादिगण (सं० पु०) पेड़ों और पौधोंका एक वर्ग। इसके अन्तर्गत वरुण, नीलझिण्टी, सहिंजन, जयन्ती, मेढ़ासींगी, पूतिका, नाटाकरञ्ज, अग्निमंथ (अगेथू), चीता, शतमूली, बेल, अजश्रृंगी, डाभ, वृहती और भटकटैया है। (सुश्रुतसू० ३८ अ०)

वरुणाद्रि (सं० पु०) पर्वतभेद।

वरुणानी (सं० स्त्री०) वरुणस्य पत्नी वरुण (इन्द्रवरुण-भवेति। पा ४।१।४९) इति ङीष्, आनुगागमश्च। वरुणकी पत्नी।

वरुणापुर—सह्याद्रिपर्वतस्थ एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र। वरुण देखो।

वरुणालय (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणावास (सं० पु०) समुद्र, सागर।

वरुणावि (सं० स्त्री०) लक्ष्मी।

वरुणिक (सं० पु०) वरुणदत्तका संक्षिप्त नाम।

वरुणेश (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र, वरुण जिसके अधिपति हैं।

वरुणेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वरुणोद (सं० क्ली०) सागर, समुद्र।

वरुणोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

वरुणोपपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। कूर्मपुराण और रेवामाहात्म्यमें इसका उल्लेख है।

वरुण्य (सं० त्रि०) वरुण-सम्भव, वरुणसे उत्पन्न।

वरुत्र (सं० क्ली०) वृणोति आवृणोत्यनेनेति वृ-उत्र (भाशिश्रादिभ्य इत्रोत्रौ। उण् ४।१७२) उत्तरीय वस्त्र, उपरना, दुपट्टा।

वरुयी (सं० स्त्री०) कामरूपके अन्तर्गत एक नदी। (भविष्य ब्रह्मख० १६।५०)

वरुल (सं० पु०) वृ-उल। संभक्त।

वरुष (सं० पु०) स्थानभेद। पुराणमें 'उरष' नामसे विख्यात है।

वरूतृ (सं० त्रि०) रक्षिता, रक्षक।

वरूथ (सं० क्ली०) व्रियते शरीरमनेनेति वृ-वरणे ऊथन् (जृवृभ्यामूथन्। उण् २।६) १ तनुत्राण, बक्तर। २ चर्म, ढाल। ३ गृह, घर। ४ सैन्य, सेना, फौज। व्रियते वयोऽनेनेति वृ-ञ् वरणे उथन्। (पु०) ५ लोहेकी चद्दर या सीकड़ोंका बना हुआ आवरण या झूल जो शत्रुके आघातसे रथको रक्षित करनेके लिये उसके ऊपर डाली जाती थी। ६ एक प्राचीन ग्राम। (रामायण २।७१।११)

वरूथशस् (सं० अव्य०) सङ्घशः, बहुत-सा।

वरूथाधिप (सं० पु०) वरूथानां सैन्यानामधिपः, रक्षिता। सेनापति।

वरूथाधिपति (सं० पु०) सेनानी, सेनानायक।

वरूथिन् (सं० पु०) वरूथः अस्यास्तीति वरूथ-इन्। १ गजोपरिस्थ गजाकार काष्ठ या रथगुप्तियुक्त, हाथीकी काठी। २ वरुथार्थक वस्तुमात्रयुक्त।

वरूथिनी (सं० स्त्री०) सेना।

वरूथ्य (सं० त्रि०) १ वरणीय, वरणके योग्य। २ परिगृत, वेष्टित। ३ गृहार्ह, घरके योग्य। ४ शीतवातातप-निवारक। ५ गृहोचित धन।

वरेण (सं० पु०) बोलता, बरोल।

वरेणा (सं० स्त्री०) वरेण्या शब्दका अपभ्रंश।

वरेण्य (सं० पु०) व्रियते लोकैरिति वृ-एण्यः, (वृञ् एण्यः। उण् ३।९८) १ भृगुके एक पुत्रका नाम। २ महादेव। ३ कुंकुम, केसर। ४ पितृगणोंमेंसे एक। (त्रि०) ५ प्रधान, मुख्य। ६ वरणीय, पूजनीय।

वरेण्यक्रतु (सं० त्रि०) वरणीय, प्रज्ञायुक्त होता। (ऋक् ८।४३।१२)

वरेन्द्र (सं० पु०) १ राजा। २ सामन्तराज। ३ इन्द्र। ४ बङ्गालका एक विभाग। यह वरेन्द्रभूमि नामसे विख्यात है। देशावलीमें लिखा है, कि एक समय नाटोर ही वरेन्द्रभूमिकी राजधानी थी। वारेन्द्र देखो।

वरेन्द्रगति—परतत्त्वप्रकाशिका नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता।

वरेन्द्री (सं० स्त्री०) गौड़-देश, वरेन्द्रभूमि।

वरेय (सं० पु०) सूर्य।

वरेयु (सं० त्रि०) प्रणयप्रार्थी, विवाहके लिये कन्याको याच्ञा करनेवाला।

वरेश (सं० पु०) सर्वेश्वर, वर देनेवाले। भगवान्।

वरेश्वर (सं० पु०) शिव ।
वरोट (सं० क्ली०) वराणि श्रेष्ठानि उटानि दलानि अस्य । मरुवक, मरुवा ।
वरोत्पल (सं० क्ली०) श्वेत रक्तपद्म ।
वरोद—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके झालावार प्रान्तस्थ एक सामन्तराज्य । यहांके सामन्तराजका राजस्व २१ हजार रु० है जिनमें उन्हें जूनागढ़के नवाबको सालाना २७८) रु० और बड़ौदा-पतिको १२५२) रु० कर देना पड़ता है।

२ उक्त प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सा सामन्त राज्य । अभी यह दो भागोंमें बंट गया है। यहांके अधिकारी लोग वड़ौदा गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।
वरोरु (सं० लि०) वरः ऊरुः कर्मधा० । १ श्रेष्ठ ऊरु, सुन्दर जांघ । (त्रि०) २ श्रेष्ठ उरुशाली, सुन्दर जंघोंवाला । ३ सुन्दरी।
वरोल (सं० पु० स्त्री०) वृ-उलच् । १ वरट । २ भृङ्गरोल।
वरोहशाखी (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।
वरौषधी (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर । २ ब्राह्मी शाक ।
वर्कट (सं० पु०) १ हाथीका बंधन जो लकड़ीका बना हुआ और कांटेदार होता है। २ कांटा, कील । ३ अर्गल, अगरी ।
वर्कणा (सं० स्त्री०) तरुण छागी, जवान बकरी, पठिया ।
वर्कर (सं० पु०) वृक्यते गृह्यते इति वृक-आदाने बहुलवचनात् अर । १ युव पशु, जवान पशु । २ मेषशावक, भेड़का बच्चा, मेमना । ३ छाग, बकरा । ४ परिहास, आमोद-प्रमोद ।
वर्करकर्कर (सं० त्रि०) बहुत तरहका ।
वर्करीट (सं० पु०) वर्करं परिहासं अटति गच्छतीति अच्-टाप् । १ कटाक्ष । २ तरुण तपनप्रभा, मध्याह्नके सूर्यकी प्रभा । ३ स्त्रीके कुचके किनारे लगा हुआ नखक्षत ।
वर्करीकुण्ड (सं० क्ली०) काशीके एक सरोवरका नाम । यह एक पुण्यतीर्थ है । काशी देखो।
वर्करीतीर्थ—एक तीर्थका नाम । (कुमारीका १०७।१७)
वर्किंग कमिटी (अं० स्त्री०) कार्यकारिणी समिति । जैसे—कांग्रेस वर्किंग कमिटी ।
वर्ग (सं० पु०) वृज्यते इति वृजि वर्जने घञ् । १ सजातीय समूह, एक ही प्रकारकी अनेक वस्तुओंका समूह । २ आकार प्रकारमें कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थोंका समूह । ३ शब्दशास्त्रमें एक स्थानसे उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यञ्जनवर्णोंका समूह व्याकरणके मतसे वर्ग पांच हैं, यथा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग । कवर्ग कहनेसे क, ख, ग, घ, ङ, चवर्ग कहनेसे च, छ, ज, झ, ञ, इसी प्रकार टवर्ग कहनेसे ट से 'ण' तक, तवर्ग कहनेसे 'त' से 'न' तक तथा पवर्ग कहनेसे 'प' से 'म' तक पाया जायगा। क च ट त प आदि पांच पांच वर्ण ले कर ही व्याकरणका वर्ग बना है । "कचतपाः पञ्चवर्गा" ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च इत्यादि ।

अभिधानमें इस समष्टि वा समार्थमें स्वर्गपातालादि वर्ग, नानार्थवर्ग, भूमिवनौषधि वर्ग, अव्यय वर्ग, ब्रह्म वर्ग, क्षत्रविट् शूद्रादि वर्गका भी उल्लेख देखा जाता है।
(अग्निपु० ३६६ ३७५ अ०)

फलित ज्योतिषमें लिखा है, कि अवर्गके अधिपति सूर्य, कवर्गके अधिपति मङ्गल, चवर्गके शुक्र, टवर्गके बुध, तवर्गके बृहस्पति, पवर्गके शनि, य और श वर्गके अधिपति चन्द्र हैं। इसके द्वारा गणना करनेसे नामादि जाने जाते हैं।

४ ग्रन्थ परिच्छेद, ग्रन्थका विभाग, प्रकरण, अध्याय । ५ आयुर्वेदोक्त गण । ६ वह चौखूंटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों। ७ दो समान अंकों या राशियोंका घात या गुणनफल । लीलावतीमें इसका विषय लिखा है। इसका उद्देशक वा मन्तव्य निम्नोक्त विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है—

"सखे नवानाञ्च चतुर्दशानां ब्रूहि त्रिहीनस्य शतत्रयस्य ।
पञ्चोत्तरस्याप्ययुतस्य वर्गं जानासि चेद्वर्गविधानमार्गम् ॥"
(लीलावती)

इस सूत्रका अवलम्बन कर ६, १४, २६७ और १०००५ का वर्गफल निर्णय करनेमें यथाक्रम पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा ८१, १९६, ८८२०९ और १००१०००२५ राशि पाई जाती अथवा अन्यप्रक्रियामें ९ संख्याका खण्ड ४ और ५ ले

कर निम्नोक्त प्रकारका अङ्कफल सिद्ध होता है। उक्त दोनों राशिका गुणनफल २० है। उसका दूना ४० होता है। उनमेंसे प्रत्येक खण्डको वर्गफल समष्टि है—

४×४=१६ ; ५×५=२५ ; १६+२५=४१ ; अतएव ४०+४१=मिलनेसे ८१ होता है। वही ९ वर्ग मूलका वर्गफल है। इसी प्रकार १४ का खण्ड ६ और ८ है। इसके गुणनफल ४८ को दोसे गुना करनेसे ९६ होता है। उनके प्रत्येक खण्डके वर्गफलकी समष्टि ३६+६४=१०० है। दोनोंको मिलानेसे ९६+१०० = १९६ होता हैं, अथवा १० और ४=१४ राशिका खण्ड मान कर उक्त प्रथासे हिसाव करनेसे यही फल निकलेगा।

दूसरा उपाय—२९७ राशिमें तीन घटा कर जो घटावफल होगा उसे २९४×३०० द्वारा गुणा करनेसे ८८२०० गुणनफल होता है। पीछे उसमें पूर्वत्यक्त ३ संख्याका वर्गफल ९ योग करनेसे ८८२०९ वर्गफल पाया जाता है। इसी नियमसे सभी राशिका वर्गफल निकाला जा सकता है।

(स्त्री०) ८ अप्सरा विशेष। यह अप्सरा मुनिके शापसे ग्राह हो गई थी। पाण्डु-पुत्र अर्जुनसे इसका उद्धार हुआ।

विस्तृत विवरण महाभारतके १।१२७ अध्यायमें देखो।

वर्गकर्मन् (सं० क्ली०) गणितोक्त वर्गफलनिर्णायक अङ्क-प्रक्रिया समाधानकार्य।

वर्गचर (सं० पु०) पाठीनमत्स्य, पढ़ना या पहिना मछली।

वर्गघन (सं० क्ली०) किसी वर्गराशिका घनफल।

वर्गघनघात (सं० पु०) अङ्कशास्त्रोक राशिका पांचवां वर्गघात (Fifth power)।

वर्गणा (सं० स्त्री०) गुणन, घात। (Multiplication)

वर्गपद (सं० क्ली०) वह अंक जिसके घातसे कोई वर्गाङ्क बना हो, वर्गमूल। (Square-root)

वर्गपाल (सं० पु०) दलरक्षक, यात्रियोंका नायक।

वर्गप्रकृति (सं० स्त्री०) गणितके अनुसार अङ्कप्रक्रिया-विशेष। (an affected square in arithmatic)

वर्गप्रथम (सं० पु०) कादि वर्गका प्रथम वर्ण।

वर्गप्रशंसिन् (सं० त्रि०) अपने अपने दलकी प्रशंसा करनेवाला।

वर्गफल (सं० क्ली०) वह गुणनफल जो दो समान राशियों-के घातसे प्राप्त हो, वह अंक जो किसी अंकको उसी अंकके साथ गुणा करनेसे आवे। जैसे—५का वर्गमूल २५ होता है।

वर्गमूल (सं० क्ली०) वर्गस्य समानाङ्कद्वयस्य मूलं आद्याङ्कः। किसी वर्गाङ्कका वह अंक जिसे यदि उसीसे गुणन करें, तो गुणन वही वर्गाङ्क हो। जैसे—२ वर्गमूल ४ का है और ३ वर्गमूल ९ का।

अङ्गरेजीमें इसे Square-root कहते हैं। किसी संख्याका वर्गमूल इस $\surd$ चिह्नसे प्रकट किया जाता है। यह चिह्न उसके पहले रखा जाता है।

उस संख्याको जिसका वर्गमूल पूर्णाङ्क राशि वा भिन्न द्वारा ठीक प्रकट किया जा सके पूर्णवर्ग कहते हैं। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये, कि जिस संख्या-के अन्तमें २ वा ३ वा ७ वा ८ हों वह संख्या पूर्णाङ्क हो वा दशमलव, वह पूर्णवर्ग नहीं होगी।

जब किसी पूर्णाङ्क राशिका, जो पूर्णवर्ग है वर्गमूल २०से अधिक न हो, तो उसको गुणनपाटी द्वारा जान सकते हैं; जैसे—पाटीसे हम जानते हैं, कि ८१ का वर्ग-मूल ९ है; १६९ का १३ है; परन्तु एक नियम है जिसके द्वारा किसी संख्याका जिसमें २से अधिक अङ्क हों वर्ग-मूल निकाल सकते हैं।

अब कल्पना करो, कि हमको ३१३६ का वर्गमूल निकालना होता है। प्रथम इकाईके अङ्कसे आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्कके ऊपर विन्दु रखते जाओ, इस प्रकार संख्याको दो दो अङ्कोंके अंशोंमें बाँट लो।

```
      ३१३६ ( ५६
      २५
     -------
१०६ ) ६३६
      ६३६
     -------
```

फिर यह विदित होता हैं, कि सबसे बड़ी संख्या ५० है जिसका वर्ग पहले अंशमें सम्मिलित है; यह वर्गमूलका पहला अङ्क है, इस ५ के वर्ग २५ को पहले अंशमेंसे घटाओ और शेष ६ पर दूसरे अंशको उतारो। इस

प्रकार नया भाज्य ६३६ हो गया। फिर इस संख्या- के अन्तिम अङ्कको छोड़ कर उसे इस निकले हुए वर्ग- मूलके दूनेसे भाग दो और भागफल ६ को निकले हुए वर्गमूलकी दाहिनी ओर रखो और जांच भाजक १०में लगा दो जो १०६ हो गया। फिर भाजक १०६को वर्गमूलके उस अङ्कमें जो पीछे रखा है गुणा करो। जब इस गुणनफलको ६३६मेंसे घटानेसे शेष कुछ नहीं रहता है, इससे ज्ञात हुआ कि ५६ वर्गमूल ३१३६ का है।

यदि अधिक अंश उतारने हों, तो पूर्व विधिके अनुसार किया करते जाओ जैसे अगले उदाहरणमें की गई है।

```
      १'५६'२५' ( १२५
      १
      ———
२२ ) ५६
      ४४
      ———
२४५ ) १२२५
      १२२५
      ———
```

इसमें जब दो अङ्क वर्गमूलमें निकल आये तो शेष १२ रह गये। इसमें तीसरे अंश- को मिलानेसे १२२५ भाज्य बन गया।

इस संख्याके दाहिने अन्तिम अङ्कको छोड़ कर प्रथम निकले हुए मूलके दुगने से भाग दो (अर्थात् १२२को २४ से) ५ भागफल निकला। फिर ५को वर्गमूल और जांच भाजक दोनों ओरको रख दो, इत्यादि।

भाग द्वारा वर्गमूलके दूसरे अङ्क निकालनेमें कभी ऐसा भागफल प्राप्त होता है जो ठीक उत्तरसे कहीं अधिक होता है। ऐसी हालतमें वर्गमूलका अङ्क जांचसे प्रतीत होता है।

जब जांच भाजक उस संख्यासे बड़ा हो जिसको इससे भाग देना है (या जब भागफल १ हो, परन्तु उत्तर अधिक हो जाय) तो वर्गमूलमें शून्य बढ़ा देते हैं और दूसरे अंशको उतार लेते हैं तथा साधारण रीतिसे क्रिया करते हैं।

दशमलव भिन्नका वर्गमूल निकालनेकी रीति—दशम लव भिन्नके वर्गमूल निकालनेमें वही क्रिया की जाती है, जो पूर्ण राशिके वर्गमूल निकालनेमें। विन्दु रखनेमें पहला विन्दु इकाईके अङ्क पर रखना चाहिये या रखा हुआ कल्पना कर लेना चाहिये। वर्गमूलमें दशमलव विन्दु पूर्णाङ्क भागके वर्गमूलके पश्चात् ही रख देना चाहिये।

यह ज्ञात होगा, कि यदि किसी दशमलवका वर्ग निकाला जाय, तो फलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या सम होगी। इस कारण दशमलव भिन्नमें वर्गराशि होनेके लिये दशमलव स्थानोंकी समसंख्या होनी चाहिये और वर्गमूलमें दशमलव स्थानोंकी संख्या वर्गसंख्यासे आधी होनी चाहिये।

यदि दी हुई दशमलव भिन्न पूरी वर्गराशि न हो, तो वर्गमूल अनन्त दशमलव होगा और वर्गमूल जितने दश- मलव अङ्कों तक चाहें निकाला जा सकता है।

दशमलवके वर्गमूल निकालनेमें दशमलव अङ्कोंकी संख्या सम होनी चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो शून्य बढ़ा देना चाहिये।

वर्गमूलघन (सं० क्ली०) सजातीयाङ्कत्रयस्य घातः घनः। सजातीय तीन अङ्कोंका परस्पर गुणनफल अथवा किसी एक राशिके वर्गफलके साथ उस राशि द्वारा फिर गुणन। इसीको मूलराशिका घनफल (Cubic root) कहते हैं। लीलावतीमें यह घनमूल प्रकरण स्वतन्त्र है। इसका करणसूत्र त्रिवृत्तात्मक है।

६, २७, १२५ इन तीन राशियोंके यथाक्रम गुणन द्वारा घनफल ७२६, १६६८३ और १६५३१२५ होता है। अथवा ६ राशिको ४ और ५ खण्ड मान कर हिसाब करनेसे दूसरे उपायसे यह सिद्ध होता है। अर्थात् ६ तथा ४ और ५ राशि, इन तीनों राशियोंका परस्पर गुणनफल १८० होता है। इसका तिगुना ५४० हुआ। दोनों खण्ड राशिमेंसे एक एककी घन समष्टि=४×४×४=६४, ५×५×५=१२५, ६४+१२५=१८६। दोनों लब्ध राशिका योगफल ५४०+१८६=७२६। यही ६ राशि- का घनफल है। अथवा २७ राशिका खण्ड २० और ७ होता है। इनका परस्पर गुणनफल तथा त्रिनिघ्न संख्या २७×२०×७=३७८०×३=११३५०, दोनों खण्डराशिके घनफलकी समष्टि—२०×२०×२०=८०००+७×७×७ =३४३=८३४३। इस घनसमष्टि तथा पूर्वोक्त राशि- का योगफल ११३४०+८३४३=१६६८३ है।

अथवा ४ राशि—इसका वर्गमूल २ और घनफल ८ होता है। इनका लब्ध अर्थात् परस्परके गुणनफलका ४

गुणा = ६४ वर्ग राशिका घनफल होता है। इस प्रकार ९ राशि—इसका मूल ३ और घन २७ है। इसका वर्ग—९ का घन ७२९ अर्थात् ३×२७×९ = ७२९। इससे ज्ञान पड़ता है, कि जो वर्ग राशिघन है, वही वर्ग मूलघन वर्ग = ३×३×३ = २७×२७ = ७२९ घनमूल निकालनेके लिये करणसूत्र द्विवृत्त भी है। घन और घनमूल शब्द देखो।

वर्गलाना (फा० क्रि०) १ कोई काम करनेके लिये उभारना, उकसाना। २ बहकाना, फुसलाना।

वर्गवर्ग (सं० पु०) वर्गका वर्गफल (Biquadratic number)।

वर्गशस् (सं० अव्य०) दल दलमें।

वर्गस्थ (सं० त्रि०) दल मध्यस्थ, स्वदलानुरक्त।

वर्गा (वर्गाह, वर्गाहि)—उत्तर-पश्चिम भारतकी एक नीच जाति। इस जातिके लोग खास कर राजपूतोंके यहां नोकरी करके अपनी जीविका चलाते हैं। इस जातिकी रमणियां भी गृहस्थोंके परिवारमें विशेषतः राजपूत सर्दारोंके घर राजकुमारोंकी धाय बन कर वास करती एवं अपने स्तनका दूध पिला कर उनका लालन पालन करती हैं। इस जातिके लोग अपनेको कन्नौजके आदि-निवासी बताते हैं। उनका कहना है कि, वे गहरवाड़-राजपूतोंके साथ आदिनिवासस्थान परित्याग कर कई स्थानोंमें आ बसे हैं। वे ग्वाल, अहीर आदिके सम्बन्धी गिने जाते हैं।

वे अपनी जातिके अन्दर ही आदान प्रदान करते हैं। गोत्र विभाग न रहनेके कारण पिंडदोष होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये वे लोग कई पुरुषे बाद दे कर अर्थात् जितने दिनों तक किसी परिवारकी पूर्व आत्मीयता की स्मृति विलुप्त नहीं हो जाती है, उतने दिनों तक वे लोग उस परिवारमें अपने लड़के लड़कियोंका विवाह नहीं करते। उनकी विवाह-प्रथा साधारण हिन्दुओंकी तरह ही होती है। इन लोगोंमें पूर्ण यौवनप्राप्त लड़के लड़कियोंका विवाह होता है। तीन दिनों तक विवाह-का उत्सव मनाया जाता है। तृतीय दिन वरके यहांसे बरात सजधज कर कन्याके घरकी ओर यात्रा करती है।

वरके घर आने पर कन्याके आत्मीयजन शुभलग्नमें वर और कन्याको मण्डप नामक छतके नीचे बैठाते हैं। इसके बाद कन्याके पिता आते हैं, और वरके पांवों पर हाथ रख कर कन्या सम्प्रदानका अनुरोध करते हैं एवं दानके दक्षिणास्वरूप जामाताके हाथमें एक फल देते हैं। इसके पश्चात् वर तथा कन्याके वस्त्रोंके खूँटोंका 'गेंठ बन्धन' करते हैं एवं वर और कन्या मण्डपके चारों ओर सात बार घूमते हैं। इसके बाद कन्याके पिता वरके ललाटमें हल्दी और चावल छुलाते हैं। इसके उपरान्त जामाता तथा कन्याको कोहबर घरमें ले जाते हैं। वहां बहुत-सी दूसरी दूसरी रमणियां उपस्थित रहती हैं। वे वरके साथ नाना प्रकारके हास्य परिहास करती हैं। इस जातिमें विधवा तथा देवर-विवाहकी प्रथा नहीं है। महावीर और पाँचपीर इनके प्रधान उपास्य देव हैं। इस जातिके बहुतसे लोग कृषिकार्य करके अपनी जीविका चलाते हैं।

वर्गाइयाँ—राजपूत जातिकी एक शाखा। गाजीपुरमें इन-लोगोंका वासस्थान है। ये लोग अपनेको मैनपुरी जिला-वासी चौहान जातिकी एक दूसरी शाखा बतलाते हैं।

वर्गोला—बुलन्दशहर जिलावासी राजपूत जातिकी एक शाखा। ये लोग अपनेको चन्द्रवंशी बताते हैं। इस जातिके अन्दर विधवा-विवाहकी प्रथा है। इस कारण ये लोग अपनेको गौड़िया जातिकी समश्रेणी कहते हैं। इन लोगोंका कहना है, कि ये लोग दिक्पाल तथा भट्टिपालके वंशधर हैं। इनके वंशतिहासमें लिखा है कि, ये दोनों भाई इन्दौरसे मालवा आ कर बस गये। जिस समय महम्मद गोरीने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था, उस समय इन दोनों भाइयोंने दिल्लीकी सेनाओं-के अधिनायक बन रणक्षेत्रमें बड़ी वीरताके साथ युद्ध किया था। सम्राट् औरंगजेबके राज्यकालमें इस जाति-के बहुतसे लोगोंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

वर्गिन् (सं० त्रि०) दलभुक्त।

वर्गी—मथुराके आस पास रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग दासवृत्ति, कृषि अथवा जंगली पशुओंका शिकार कर अपनी जीविका चलाते हैं।

वर्गीण (सं० त्रि०) दलभुक्त, वंशगत।

वर्गीय (सं० त्रि०) वर्गसम्बन्धीय। जैसे,—कवर्गीय, चवर्गीय आदि।

वर्गोत्तम (सं० पु०) वर्गेषु उत्तमः। फलित ज्योतिषमें राशियोंके वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होते हैं। चरराशि (मेष, कर्कट, तुला, मकर)का प्रथम अंश, स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ)का पञ्चम अंश और द्यात्मक राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन)का नवम अंश वर्गोत्तम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राशियोंका नवांश भी वर्गोत्तम कहा जाता है।

वर्ग्य (सं० त्रि०) १ वर्गसम्बन्धीय। (पु०) २ सभाका सभ्य, सहयोगी।

वर्चटी (सं० स्त्री०) १ धान्यभेद। २ वेश्या, रंडी।

वर्चस् (सं० क्ली०) वर्चते इति वर्च (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। १ रूप। २ विष्ठा। ३ तेज। ४ अन्न। (पु०) ५ चन्द्रमाके पुत्र।

वर्चस्क (सं० पु० क्ली०) वर्चस् स्वार्थे कन्। १ विष्ठा। २ दीप्ति, तेज।

वर्चःस्थान (सं० पु०) पाखाना।

वर्चस्य (सं० त्रि०) वर्चसे हितं यत्। तेजवर्द्धक।

वर्चस्वत् (सं० त्रि०) १ जीवशक्तिसम्पन्न। २ समुज्ज्वल तेजवान्।

वर्चस्विन् (सं० पु०) वर्चोऽस्यास्तीति वर्चस् (अस्मायामेधेति। पा ५।२।१२१) इति विनि। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ तेजस्वी, दीप्तियुक्त।

वर्चिन् (सं० पु०) ऋग्वेदके अनुसार एक असुरका नाम। इन्द्रने इसे समूल संहार किया था। (ऋक् २।१४।६) फिर ऋग्वेदमें (७।९९।५) दूसरी जगह लिखा है, कि इन्द्र और विष्णुने इसे निहत किया था।

वर्चोग्रह (सं० पु०) मलरोध।

वर्चोदा (सं० त्रि०) शक्तिद, बल देनेवाला।

वर्जक (सं० त्रि०) वर्जयतीति वृज-ण्वुल्। वर्जनकारी, त्याग करनेवाला।

वर्जन (सं० क्ली०) वृज ल्युट्। १ त्याग, छोड़ना। २ हिंसा, मारण। ३ ग्रहण या आचरणका निषेध, मनाही, मुमानियत।

वर्जनीय (सं० त्रि०) वृज-अनीयर्। १ वर्जनयोग्य, छोड़ने योग्य, न ग्रहण करने योग्य, त्याज्य। २ निषेधके योग्य, निषिद्ध, मना।

राजाका अन्न, नर्त्तकका अन्न, बढ़ईका अन्न, कुम्हारका अन्न, गणान्न, वेश्याका अन्न एवं शूद्रका अन्न वर्ज्जनीय हैं।

मनुसंहितामें लिखा है कि उदय वा अस्त अवस्थामें सूर्यका दर्शन वर्ज्जनीय है। राहुग्रस्त सूर्य, जलप्रतिबिम्बित सूर्य एवं आकाशमण्डलके मध्यगत सूर्यका दर्शन नहीं करना चाहिये। बछड़ा बांधनेकी रस्सीको लांघना, वर्षाके समय दौड़ कर रास्ता चलना एवं जलमें अपनी छाया देखना त्याज्य है। कामपीड़ित होने पर भी रजस्वला स्त्रीके साथ दिनमें सहवास करना; भोजन करती हुई रजस्वला स्त्रीका दर्शन करना, अट्टहास करते समय, आह भरते समय एवं असावधान बैठी हुई भार्य्याकी ओर लक्ष्य करना, आँखोंमें कज्जल प्रदान करते समय, देहमें तेल लगाते समय, सन्तान प्रसव करते समय स्त्री पर दृष्टिनिक्षेप करना पाप है। एक वस्त्र पहन कर अन्नभोजन; नंगे स्नान; रास्ते पर, भस्मके ऊपर, गोचरभूमिमें, हल जोते हुए खेतमें, जलमें, अग्निमें, श्मशानस्थ चिताओंमें, पर्वतों पर, पुराने मन्दिरोंमें, कीड़े द्वारा लगाये हुए मिट्टीके ढेर पर, जिन बिलोंमें जीवोंका वास हो, उनके अन्दर मूत्रत्याग करना निषेध है। चलते चलते खड़े हो कर अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और देखते हुए पेशाब नहीं करना चाहिये। मुखसे फूँक मार कर अग्नि प्रज्वलित करना, भार्याको नंगी देखना तथा अग्निमें अपवित्र वस्तु डालना वर्ज्जनीय है। पाँव पसार कर आग तापना नहीं चाहिये। शय्याके नीचे आग रखना निषिद्ध है। जिस कार्यके करनेसे आत्माको आघात पहुंचे, उसे करना उचित नहीं। सन्ध्याके समय भोजन करना, भ्रमण करना एवं शयन करना पाप है। पृथ्वी पर रेखा नहीं खींचनी चाहिये। मलमूत्रादिसे लिप्त वस्त्रोंका पहनना, वासशून्यगृहमें अकेला शयन करना, श्रेष्ठ पुरुषोंको निद्रावस्थामें जगाना, रजस्वला स्त्रीके साथ बातचीत करना तथा बिना निमन्त्रणके यज्ञशालामें जाना निषेध है।

जल वा दुग्धपान करते समय गायको हाँकना पाप है। जिस ग्राममें विधर्मियोंकी संख्या अधिक हो उस

ग्राममें वास करना निषिद्ध है। जिस स्थानके लोग बहुत दिनोंसे किसी रोगसे आक्रांत हों, उस स्थान पर भी वास करना उचित नहीं। अकेला अधिक दूरकी यात्रा करना, अधिक समय तक पर्वत पर वास करना, शूद्रके अधीन राज्यमें वसना एवं नास्तिकोंके द्वारा आक्रांत देशमें वास करना निषेध है। जिन सव पदार्थोंका सार निकाल लिया गया हो, उनका भोजन तथा अति प्रातःकाल वा सन्ध्याकालमें भोजन करना वर्ज्जनीय है। जिस कार्यके करनेसे किसी तरहका फल न निकले, उस कार्यका करना मना है। अंजलि द्वारा पानी पीना तथा ऊंचे पर रख कर कोई वस्तु भोजन करना वर्ज्जनीय है। विना प्रयोजनके अधिक उतावला न होना चाहिये।

शास्त्रविरुद्ध नाच गान करना निषेध है। कांख वजाना वा ऊपर हथेली रख कर ध्वनि करना, दाँत किटकिटाना, अथवा गधेकी तरह चिल्लाना निषिद्ध है। कांसेके वर्त्तनमें पाँव धोना, टूटे फूटे वर्त्तनोंमें भोजन करना वर्ज्जनीय है। दूसरेके व्यवहार किये हुए जूते, कपड़े, जनेऊ, माला तथा अलंकार नहीं पहनना चाहिये। वदमाश, भूखे, रोगी, टूटे हुए सिंघवाले, अंधे, वा फटे खुरवाले किसी भी पशु पर सवारी नहीं करनी चाहिये। प्रथमोदित सूर्य्यकी धूप, चिताका धुआँ और टूटे फटे आसनोंका परित्याग करना चाहिये। अपने हाथसे नख वा वाल काटना तथा दाँतोंसे नख कुतरना दोष माना गया है। मिट्टी वा ढेलेका व्यर्थ मर्द्दन करना, नख द्वारा तृण खोटना निष्फल कार्य्य करना एवं जिस कार्य्यके करनेसे भविष्यमें दुःख प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, उसे करना पाप वताया गया है। क्या लौकिक, क्या शास्त्रीय किसी तरहकी वात सौगन्ध खा कर नहीं कहनी चाहिये। गलेका माला चादर आदि किसी कपड़ेके ऊपर पहनना, गो वा वैलकी पीठ पर सवारी करना, दिवारोंसे घिरे हुए ग्राम या घरमें दरवाजेको छोड़ कर दूसरी ओरसे प्रवेश करना, रात्रिके समय वृक्षोंके नीचे सोना, वैठना या गमनागमन करना, व्यवहार किये हुए जूतेको हाथमें ले कर रास्ता चलना, शय्या पर वैठ कर भोजन करना, रात्रिके समय तिल वा तिल दे कर तैयार किये हुए पदार्थोंका भोजन कराना, नंगे सोना एवं जूठे मुख कहीं जाना वर्ज्जनीय है।

पतित, चंडाल, पुक्कश, मूर्ख, धनके मदसे मत्त तथा धोवी आदि नीच जातिके लोगोंके साथ ब्राह्मणोंको एक क्षणके लिये भी नहीं वैठना चाहिये।

वर्ज्जनीयअन्न—मत्त, क्रुद्ध तथा रोगी व्यक्तियोंका अन्न नहीं खाना चाहिये। केशकीटादियुक्त अन्न, इच्छानुसार पाँवसे स्पर्श किया हुआ अन्न, भ्रूणघातीका देखा हुआ अन्न, रजस्वला स्त्री द्वारा छुआ हुआ अन्न, पक्षियोंका खाया हुआ अन्न, कुत्तोंसे छुआ अन्न, गायका सुँघा हुआ अन्न, आगन्तुकोंके लिये तैयार किया हुआ अन्न, मठवासियोंका अन्न, वेश्याका अन्न, इन सव प्रकारके अन्नोंका भोजन करना निषेध है। इनके अतिरिक्त चोर, गवैया, वढ़ई, सूदसे जीविका चलानेवाला, इन सवोंके अन्न, कंजूसका अन्न; महापातकी, हिजड़ा, व्यभिचारिणी स्त्री तथा ढोंगीका अन्न, ये सव अन्न त्याज्य हैं। वासी अन्न, शूद्रका अन्न, निर्द्दईका अन्न, जूठा अन्न, वैद्यका अन्न, व्याधका अन्न, जूठाखानेवालेका अन्न, निष्ठुर कर्मचारीका अन्न, अशौचान्न, ये सव अन्न कदापि भोजन नहीं करना चाहिये। पतिपुत्रविहीना स्त्रीका अन्न, द्वेषकारीका अन्न, शत्रुका अन्न, पतित व्यक्तिका अन्न, जो आदमी परोक्षामें दूसरेको निन्दा करता है, जो झूठी गवाही देता है, जो धनके लालचसे यज्ञफल विक्रय करता है, उनका अन्न; नटवृत्त्युपजीवीका अन्न; दर्जी, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रंगरेज, सोनार, वाँस फाड़नेवाला, लोहेका व्यापारी, कुत्ता पालनेवाला, शौण्डिक, वस्त्रधारक तथा निष्ठुर व्यक्तियोंका अन्न नहीं खाना चाहिये। जिस पुरुषकी स्त्री उपपति रखती है, उसका अन्न वर्ज्जनीय है। (मनु० ४।५ अ०)

वर्जयितव्य (सं० पु०) वृज-णिच्-तव्य। वर्जनीय, छोड़नेके योग्य।

वर्जयितृ (सं० त्रि०) वृज् णिच् तृच्। वर्ज्जनकारी, त्यागनेवाला।

वर्जित (सं० त्रि०) वृज-क्त। १ त्यक्त, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ। २ जो ग्रहणके अयोग्य ठहराया गया हो, निषिद्ध। जैसे कलिमें नियोग वर्जित है।

वर्ज्जिन् (सं० त्रि०) त्यज्य, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ।
वर्ज्य (सं० त्रि०) वृज-ण्यत्। वर्ज्जनीय, छोड़नेके लायक।
वर्ण (सं० क्ली०) वर्णयतीति वर्ण-अच्। कुंकुम, केसर।
वर्ण (सं० पु०) व्रियते (इति वृ कृवृजृसिद्रुपन्यनिस्व-पिभ्यो नित्। उण् ३।१०) स च नित्। १ जाति।

जाति चार है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्णों वा चार जातियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वेदमें इस प्रकार लिखा है,—जब भगवान् पुरुषरूपमें सृष्टि करनेको तैयार हुए, तब उनके शरीरसे चार वर्णोंकी उत्पत्ति हुई। भगवान्‌के मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और पादसे शूद्र उत्पन्न हुए थे।

शास्त्रमें इन चार वर्णोंका पृथक् पृथक् धर्मकर्म बतलाया है। ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णोंको शास्त्रके आदेशसे चलना होता है।

भगवान् मनुने चारों वर्णोंका पृथक् पृथक् कर्म निर्दिष्ट किया है—ब्राह्मणका धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। क्षत्रियका धर्म—प्रजारक्षा, दान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन तथा नृत्य गीत और वनितोपभोगादिमें आत्यन्तिक अनासक्ति। वैश्यका धर्म पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीदवृत्ति और कृषिकर्म। शूद्रका धर्म—असूयाहीन हो कर उक्त तीनों वर्णोंकी शुश्रूषा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंको शास्त्र-शासनमें यथाविधि आश्रमी होना पड़ता है। उनमें-से ब्राह्मणके आश्रम चार हैं, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। उपनयनके बाद जितेन्द्रिय हो कर गुरुगृहमें वास और साङ्गवेदका अध्ययन करना होता है, इसीका नाम ब्रह्मचर्य्याश्रम है। वेदाध्ययन समाप्त करके विवाह करनेके बाद स्वधर्माचरणपुरःसर गृहस्थ होना पड़ता है। इस आश्रमका नाम गार्हस्थ्य है। अनन्तर पुत्रोत्पादनके बाद वनमें वास करना, अकृष्टपच्य फलादि खाना और ईश्वरकी आराधना करना, यही हुआ वानप्रस्थाश्रम। इसके बाद गृहादि सभी वस्तुओंका परित्याग कर मुण्डित मस्तक पर गैरिक कौपीन बांध कर दण्डकमण्डलु ले कर भिक्षावृत्तिका अवलम्बन, वनप्रदेशमें वा तीर्थादिमें वास तथा एकमात्र परमेश्वरकी आराधना। इसीका नाम संन्यास आश्रम है।

द्वितीय और तृतीय वर्ण क्षत्रिय और वैश्य है। इनके लिये शेषोक्त संन्यास आश्रमको छोड़ कर प्रथमोक्त ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ ये तीनों ही आश्रम प्रशस्त हैं। एतद्भिन्न शूद्रके लिये केवल गृहस्थाश्रम ही बतलाया गया है। दूसरे किसी भी आश्रममें शूद्रका अधिकार नहीं है।

ईश्वरकी आराधना करना सभी वर्णोंका सभी आश्रमोंका साधारण धर्म है। इनमेंसे जो विष्णुके उपासक हैं वे वैष्णव, शिवोपासक शैव, दुर्गा प्रभृति शक्तिसाधक शाक्त, सूर्योपासक सौर तथा गणेशोपासक गाणपत्य नामसे प्रसिद्ध हैं। यह पौराणिक मत है।

चार वर्णोंके विभिन्न कर्म सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें कहा है, कि ब्राह्मण दान करें, वेदाध्ययनपरायण होवें तथा यज्ञादि द्वारा देवताओंकी अर्चना करें। ब्राह्मणको नित्योदकी होना पड़ेगा तथा अग्निपरिग्रह करना होगा। जीविकाके लिये वे याजन और अध्यापन करें तथा जिस व्यक्तिने वैध उपायसे धन उपार्जन किया है। उसीसे न्यायतः प्रतिग्रह लेवें। ब्राह्मण सबोंके उपकारी बने, कभी भी किसीका अहित वा अनिष्टाचरण न करें। सब भूतों पर मैत्रीस्थापन करना ही ब्राह्मणका परम धर्म है। दूसरेके पत्थर अथवा रत्न दोनों ही वस्तुको समान समझें। ऋतुकालमें पत्नीगमन करें।

ब्राह्मण उपनीत हो कर वेदाभ्यासमें तत्पर होवें। इस समय उन्हें ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर एकाग्रमनसे गुरुगृहमें वास करना होगा। इस समय वे शौच और आचारवान् हो कर गुरुकी शुश्रूषा करें तथा नियमस्थ हो कर पवित्र बुद्धिसे वेद पढ़ें। दोनों ही शाम समाहित हो कर अग्नि और सूर्यकी उपासना तथा गुरुको अभिवादन करना होगा। गुरु यदि खड़े हों, तो आप भी खड़े हो जाँय, यदि वे बैठें, तो आप भी निम्नासन पर बैठ जावें। कभी भी गुरुके प्रतिकूलाचरण न करें। गुरुके आदेशसे गुरुकी ओर बैठ कर अनन्यचित्तसे वेदपाठ करें। उनकी अनुमति ले कर भिक्षान्न भक्षण करें। आचार्यके स्नान करने पर पीछे आप स्नान करें। गुरु-

गृहमें रहते समय समित् और जल प्रभृति प्रयोजनीय सभी वस्तु प्रति दिन सबेरे स्वयं ले आवें। पीछे जब अवश्य अध्येतव्य वेदका अध्ययन शेष हो जाय, तब गुरुकी अनुमति ले कर और यथाशक्ति गुरुदक्षिणा दे कर गार्हस्थ्य धर्मका अवलम्बन करें। इसके बाद यथाविधि दारपरिग्रह और अपनी वृत्ति द्वारा धनसंग्रह करके उन्हें शक्तिके अनुसार सभी गृहस्थोचित कार्य्य करने होंगे। निवाप द्वारा पितृपुरुषोंको, यज्ञ द्वारा देवताओंको, अर्थदान द्वारा अतिथियोंको, स्वाध्यायसे मुनियोंको, अपत्योत्पादनसे प्रजापतिको, बलिकर्मसे भूतवर्गको तथा वात्सल्य दिखा कर समस्त जगत्‌को आप्यायित करें। पुरुष अपने अपने कर्मार्जित सभी लोकोंको प्राप्त होते हैं। क्या भिक्षाभोजी, क्या परिव्राजक, क्या ब्रह्मचारी सबोंकी गार्हस्थ्यधर्ममें प्रतिष्ठा है। इसी कारण गार्हस्थ्यधर्म ही सर्वप्रधान है।

ब्राह्मणको वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और पृथ्वी दर्शन इन तीन कार्य्योंके लिये समस्त पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिये। जिनके कोई गृहसंस्था नहीं है, जिन्होंने खाना पीना छोड़ दिया है, जहां शाम हुई वहीं उनका घर है अर्थात् जो सायंगृह हैं, उनकी गृहस्थाश्रमी व्यक्ति ही प्रतिष्ठा है तथा गृहस्थ ही उनका मूल है। जब वे घर लौटें, तब गृहस्थ उनका स्वागत सम्भाषणादि मधुर वाक्य कहें तथा शयन आसन और पान भोजनादि दे कर गृहस्थ ब्राह्मण उनको आप्यायित करें। क्योंकि, अतिथिके गृहसे हताश हो कर लौटते समय वे अपनी दुष्कृतिके बदलेमें गृहस्थकी सुकृति ले कर चले जाते हैं। अवज्ञा, अहङ्कार, दम्भ, परिताप, उपघात और पारुष्य प्रभृति गृहस्थ व्यक्तिके लिये श्रेय नहीं है। गृहस्थ ब्राह्मण उन सबका परित्याग करें। जो ब्राह्मण इस प्रकार सुचारुरूपसे गृहधर्मका पालन करते हैं, वे सभी बन्धनोंसे मुक्त होते हैं और अन्तमें उनको परमपदकी प्राप्ति होती है।

गृहाश्रमी ब्राह्मणकी जब वयःपरिणति होवे, गृहधर्मके प्रतिपालनमें जब वे कृतकार्य्य हो जावें, तब उन्हें पुत्रादिके ऊपर भार्यारक्षाका भार सौंप कर अथवा भार्याको साथ ले कर वन जाना चाहिये। इस आश्रमका नाम वानप्रस्थ है। यहां आ कर उन्हें केश, श्मश्रु और जटाधारण होना पड़ेगा। फल मूल और पत्र ही उनका आहार तथा भूतल ही बिछावन होगा। मुनिव्रतग्रहण कर आश्रममें आये हुए सभी अतिथियोंका आतिथ्य कराना होगा। वे कृष्णाजिन काश और कुश द्वारा अपना परिधान और उत्तरीय बनावें। वे प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न कालमें स्नान करें। देवार्चना, होम, अभ्यागतोंकी अर्चना, भिक्षा और भूतवर्गोंके बलिदान ये सब कर्म वानप्रस्थाश्रमीके लिये प्रशस्त है। वनवासी हो कर वनजात स्नेह पदार्थोंमें अपना गात्राभ्यङ्ग समाधा करें। तपस्या करते करते धीरे धीरे शीतग्रीष्मादि सहिष्णु होना आवश्यक है। जो वानप्रस्थाश्रमी नियमरत हो कर उक्त रूपसे अपने आश्रमका पालन करते हैं, वे अग्निकी तरह अपने दोषोंको दग्ध कर उस सनातन पद पानेके पथको परिष्कार कर लेते हैं।

इसके बाद चतुर्थाश्रम है। यही आश्रम अन्तिम है। यह यति वा भिक्षुका आश्रम है। समस्त मात्सर्यका परित्याग कर पुत्र, मित्र, कलत्र और समस्त द्रव्य सम्पद्‌की माया ममता वा स्नेह आसक्तिको छोड़ कर इस आश्रममें प्रवेश करना होता है। इस आश्रममें त्रैवर्णिकका हो सबसे पहले त्याग करना होगा। सभी जन्तुओंमें मित्रादिवत् मैत्री स्थापन करें। वाक्य, मन और कर्म द्वारा जरायु और अण्डज आदि किसी प्राणीका कभी अनिष्ट न करें। उन्हें पुरमें पाँच रात तक रहना होगा। इसके सिवा भिक्षु जहां इच्छा हो वहां रह सकते हैं। जब गृहस्थके घरके चूल्हे जब बुझ जाँय, उनका खाना पीना शेष हो जाय, उसी समय भिक्षु वा यतिको प्राणयात्रा निर्वाहके लिये उच्च वर्णके घर भिक्षार्थ जाना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह और गर्व आदि सभी दोषोंका परिहार कर निर्मम और निस्पृह भावमें सर्वत्र परिभ्रमण करें। किसी हिंस्र जीव जन्तुको उनका भय न रहेगा। क्योंकि, मुनिगण सभी प्राणोको अभय दे कर चलते हैं। उन्हें भी कभी किसी प्राणीसे भय उत्पन्न न होगा। जो विप्र भैक्षोपगत हविर्द्वारा अग्निहोत्रको अपने शरीरमें रख कर मुखमें शरीराग्नि वहन करते हैं, वे अग्निचायियोंके सालोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार शुचि और कृतबुद्धि हो कर जो यथोक्त मोक्षाश्रम

धर्मका पालन करते हैं, अनिन्धन प्रशान्त ज्योतिकी तरह वे ब्रह्मलोक लाभ करते हैं ।

(विष्णुपु० २य अंश ८६ अ०)

क्षत्रियके धर्म सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें लिखा है, कि क्षत्रिय ब्राह्मणोंको अपनी इच्छानुसार दान देवें । विविध यज्ञानुष्ठान और अध्ययन करें । शस्त्र धारण कर पृथ्वीकी रक्षा ही उनकी श्रेष्ठ जीविका है, पृथ्वीका परिपालन ही क्षत्रियका प्रधान कार्य है। राज्यरक्षा और राज्यमें शान्तिस्थापनादि करनेमें ही उन्हें कृतकार्य होना पड़ेगा। दुष्टोंका शासन और शिष्टोंका पालन क्षत्रियका ही धर्म है। क्षत्रिय राजपद पर अधिष्ठित होंगे। क्षत्रिय राजाको सभी वर्णोंका संस्कारक होना पड़ेगा। इस प्रकार क्षत्रिय यदि शास्त्रसङ्गत स्वधर्मका पालन करें, तो अन्तमें वे परम पदके अधिकारी हो सकते हैं।

वैश्यके धर्म कर्मके सम्बन्धमें लिखा है, कि पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकर्म ये तीनों वैश्योंकी धर्मसङ्गत जीविका हैं। सृष्टिकर्त्ताने यही जीविका वैश्योंके लिये स्थिर कर दी थी। वैश्य अध्ययन, नित्य नैमित्तिकादि कर्मानुष्ठान, यज्ञ और दानधर्मका अनुष्ठान करें। वैश्यका कर्म द्विजाति संश्रयसे सम्पन्न होगा तथा क्रयविक्रयजात धन वा कारुकार्यजात धन द्वारा वे दानक्रिया सम्पन्न करेंगे।

क्षत्रिय तथा वैश्य इन दोनों वर्गोंके गार्हस्थजीवनका जीविकाधर्म इसी प्रकार है। परन्तु दूसरे दूसरे आश्रममें शास्त्रानुसार उन्हीं आश्रमधर्मका पालन करना होता है।

शूद्र भी दान करे तथा पाक यज्ञ द्वारा पितृपुरुष आदिकी अर्चना करे। (विष्णुपु०)

क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य, क्या शूद्र सभी वर्णोंको भृत्य, अमात्य और आत्मीयवर्गका परिपालन करना कर्त्तव्य है। सभीको उचित है, कि वे विवाह करके ऋतुकालमें अपनी अपनी स्त्रीके साथ सहवास करें। सभी प्राणियोंके प्रति दया रखना, तितिक्षा रखना कर्त्तव्य है। कोई भी वर्ण अभिमानी वा गर्वान्ध न होवे। सत्यशौच, अनायास मङ्गलचेष्टा, प्रियभाषण, सर्वत्र मैत्रबन्धनस्पृहा तथा अकार्पण्य और अनसूया ये सब सभी वर्णोंके साधारण गुण हैं।

आपद् कालमें ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्यवृत्ति ग्रहण कर सकते हैं। तथा क्षत्रियको भी वैश्यवृत्ति लेनेमें बाधा नहीं है। परन्तु इन दोनों वर्णोंको कभी भी शूद्रवृत्ति ग्रहण न करनी चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रियवृत्ति लें और क्षत्रिय वैश्यवृत्ति, यह केवल आपत् कालकी ही विधि है। पारतपक्षमें दोनों वर्णको इसका परित्याग करना ही कर्त्तव्य है। हठात् कोई भी इस कर्मसङ्कर व्यापारमें हस्तक्षेप न करें।

वर्णोंका आपद्धर्मका विषय महाभारतके शान्तिपर्वमें विस्तृतभावमें लिखा है। पद्मपुराण स्वर्गखण्डके मतमें सबसे पहले एक तेजोमय दिव्य पद्मकी सृष्टि हुई। उस पद्मसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मासे मानुषसृष्टिका आरम्भ हुआ। प्रजासृष्टिके प्रारम्भमें ही प्रजापति ब्रह्माने ब्राह्मणकी सृष्टि की। ब्राह्मण आत्मतेजसे अग्नि और सूर्यवत् उद्दीप्त हो उठे। इसके बाद सत्य, धर्म, तप, ब्रह्मपदार्थ, आचार और शौच आदि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए। इन सब सृष्टिके बाद देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, रक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्यकी सृष्टि हुई। अनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकारकी वर्णसृष्टि हुई। उनमेंसे ब्राह्मणका वर्ण सित, क्षत्रियका लोहित, वैश्यका पीत और शूद्रका वर्ण असित अर्थात् कृष्ण हुआ।

मान्धाताने नारदसे पूछा,—अच्छा यदि श्वेतपीतादि वर्णकी पृथक्तासे ही ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण-विभाग होता है, तब तो सभी वर्णमें वर्णसङ्कर देखा जायगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, चिन्ता, क्षुधा आदिका आधिपत्य तो सर्वत्र है। मूत्रपुरीषादि सब कोई त्याग करते हैं, मृत्यु सबोंकी प्रभु हैं, देहक्षय सबोंका अनिवार्य है। अतएव ऐसी दशामें वर्णविभाग हुआ कैसे तथा उससे फल ही क्या हुआ? फिर दूसरी बात यह कि जगत्में स्थावर जङ्गम जितनी असंख्य जातियां उनका वर्ण भी नाना प्रकारका है, अतएव वर्णनिर्णय किस प्रकार होगा?

इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने कहा था, 'राजन्! वर्णोंमें कुछ विशेषता नहीं है। यह समस्त जगत् ब्रह्ममय है। ब्रह्मा सबोंके सृष्टिकर्त्ता हैं। ब्रह्मसृष्ट सभी एक ब्राह्मण हैं, परन्तु कर्मानुसार एक एक सम्प्रदाय एक एक वर्ण हो गया है। जो सब ब्राह्मण स्वधर्मका परित्याग कर कामभोगमें रत रहते थे, जिनका स्वभाव कठोर था, जो क्रोधी, प्रियसाहसी और लोहिताङ्ग थे, वे ही क्षत्रिय हुए थे। जो कृषिकर्ममें लिप्त रह कर उसीसे जीविका चलाने लगे, गवादि पशुपालनमें आसक्त हुए, जिन्होंने स्वधर्मका परित्याग किया, जिनका शरीर पीतवर्णका था, उन्हींकी वैश्यजातिमें गिनती हुई थी। फिर जिन्होंने हिंसा और असत्यका आश्रय लिया, जो किसी भी कर्मसे जीविका निर्वाह करने लगे, जिन्होंने शौचाचार त्याग किया तथा जो अत्यन्त लुब्धस्वभावके हो उठे, जिनका वर्ण कृष्ण था, वे द्विज होते हुए सभी शूद्र कहलाये।

इस प्रकार कर्मानुसार ब्राह्मण ही विभिन्न वर्णोंमें विभक्त हुए। चारों वर्णके लिये ही वेदवाणी कही गई थी। लोभ और अज्ञानमें पड़ कर बहुतोंने उस ब्राह्मी वाणीको खो दिया था। जो धर्मतत्त्वमें एकान्त आसक्त थे, वे ब्राह्मी वाणीको भूले नहीं तथा जो वेदावलम्बन वेदबोधित नित्य नैमित्तिक व्रतनियम और शौच सदाचारादि साधुसेवित पथमें रह कर ब्रह्मस्पष्ट देवप्रतिपाद्य परब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुए थे, वे ही ब्राह्मण हुए।

नारदने मान्धाताके प्रश्नोत्तरमें चारों वर्णका इस प्रकार लक्षण बतलाया, जैसे—जो जातकर्मादि दश प्रकारके संस्कारसे संस्कृत हैं, जो शुचि और वेदाध्ययनसम्पन्न हैं, जो शौचाचारमें रत रह कर यजन याजनादि षट्कर्मोंमें अवस्थित हैं, जो नित्य गुरुप्रिय, नित्यव्रती और सत्यरत हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं। सत्य, दान, आनृशंस्य, अद्रोह, कृपा, घृणा और तपस्या ये सब जिनके निकट सर्वदा विद्यमान हैं, उन्हींको ब्राह्मण कहते हैं।

जो वेदाध्ययन समाप्त करके क्षत्रियोचित कर्मको सर्वदा किया करते हैं, जो दान नहीं लेते, पर दान देते हैं उन्हें क्षत्रिय कहते हैं। जो पवित्र भावमें वेदाध्ययन समाप्त करके पशुपालन और कृषिकर्ममें रत हैं, उन्हींका नाम वैश्य है।

जिन्हें खाद्य अखाद्यका कोई विचार नहीं है, जो अपवित्र अवस्थामें रह कर जिस किसी कर्मसे जीविका निर्वाह करते हैं, जो वेदवर्जित हैं, सदाचारहीन हैं, वे ही शूद्र हैं। (महाभा० और पद्मपु० स्वर्गखण्ड)

चतुर्वर्णके धर्मकर्म सम्बन्धीय विधिव्यवस्था मन्वादि स्मृतिसंहितामें तथा सभी पुराणोंमें सविस्तार वर्णित हैं, बहुत बढ़ जानेके कारण उनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। नरसिंहपुराणके ५६वें अध्यायमें, मार्कण्डेयपुराणके मदालसा उपाख्यानमें, कूर्मपुराणके २२ और ३२ अध्यायमें, पद्मपुराणके स्वर्गखण्ड २५,२६ और २७वें अध्यायमें, वामनपुराणके १४वें तथा गरुड़पुराणके ४६वें अध्यायमें चतुर्वर्णका विस्तृत विवरण देखा जाता है।

वर्ण (सं० पु०) १ गजचित्रकम्बल, हाथीकी झूल। पर्याय—प्रवेणी, आस्तरण, परिस्तोम। २ कुथ, कथरी, कंथा। ३ पदार्थोंके लाल, पीले आदिका भेद, रंग।

यह वर्ण वा रंग अनेक प्रकारका होता है, जैसे—श्वेत पाण्डु, धूसर, कृष्ण, पीत, हरित, रक्त, शोण, अरुण, पाटल श्याव, धूम्र, पिङ्गल तथा कर्बुर। (अमर) सुखबोधके मतसे छठें महिनेमें गर्भस्थ बालकका वर्ण होता है।

४ यश, कीर्त्ति। ५ गुण। ६ स्तुति। ७ स्वर्ण, सोना। ८ व्रत। वर्ण्यते भिद्यते इति वर्ण घञ् (पु० क्ली०) ९ भेद, प्रकार। १० गीतक्रम। ११ चित्र, तस वीर। १२ तालविशेष। १३ अङ्गराग। वर्ण्यते भिद्यते अनेनेति वर्ण घञ्। १४ रूप। वर्णयति वर्ण-अच्। १५ अक्षर। वर्णयते रज्यते इति वर्ण-घञ्। १६ विलेपन। १७ कुङ्कुम, केसर।

वर्ण दो प्रकार होता है, ध्वन्यात्मक तथा अक्षरात्मक। प्राणियोंके मूलाधारमें एक नाड़ी है। वह नाड़ी सांपकी तरह कुण्डलीभूत है। वह सर्वदा मूलाधारके मध्य कुण्डलाकारमें रहती है, इस कारण उसका कुण्डली नाम पड़ा है। कुण्डली चन्द्र सूर्य और अनलरूपिणी, द्विचत्वारिंशद्वर्णमयी अर्थात् भूतलिपिमन्त्रशालिनी तथा पञ्चाशद्वर्णमयी अर्थात् मातृकावर्णस्वरूपिणी है। यह

कुण्डली सभी वर्णोंमें मिल कर मन्त्रमय जगत्को प्रकाश करती है। यह कुण्डली शब्द और शब्दार्थकी प्रवर्त्तिनी तथा त्रिपुष्कर अर्थात् ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्टके भेदसे तीन तीर्थ एवं उदात्त अनुदात्त प्रभृति स्वर-समाहारका प्रकाशक है। तन्त्रशास्त्रमें कुण्डलीको परम देवता कहा है।

वक्त्र और श्रोत्रपथ अपरिष्कार रहता है, इस कारण वह कुण्डली जब अस्पष्ट वर्णमें अर्थात् अस्फुट ध्वनिमें आलापादि करनेको उद्यत होती है, तब मूलाधारमें, आ कर ध्वनित होता है तथा सुषुम्ना नाड़ो भी उस ध्वनिसे बार बार आलोड़ित होती रहती है।

पहले जो तन्त्रोक्त परदेवता कुण्डलीकी बात कही गई है, वह द्विचत्वारिंशद्वर्णमें मिल कर इस प्रकार क्रमपरम्परासे अकारसे ले कर सकार तक द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमालाका उद्भावन करती है। यह द्विचत्वारिंशदात्मक वर्णमाला ही भूतलिपि मन्त्र है। कुण्डलिनी सर्वशक्तिमयी और शब्दब्रह्मरूपिणी है। वह जिस क्रमसे वर्णमाला प्रसव करती है, वह इस प्रकार है, जैसे—पहले कुण्डलीसे शक्तिका विकाश, शक्तिसे ध्वनि, ध्वनिसे नाद, नादसे निरोधिका, निरोधिकासे अर्द्धेन्दु, अर्द्धेन्दुसे विन्दु, विन्दुसे अन्यान्य सभी उत्पन्न होते हैं। समस्त अक्षरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ही परम्परा इसी प्रकार है।

चिच्छक्ति-सत्त्वसम्वलित हो कर शब्दपदवाक्य होती है। वह फिर जब उस सत्त्वसम्वलित अवस्थामें आकाशस्थ हो कर रजोगुणसे अनुविद्ध होती है, तब ध्वनि शब्द कहलाती है। ध्वनि अक्षर अवस्थामें तमोगुणसे अनुविद्ध हो नादशब्दवाक्य होती है। वह अव्यक्तावस्था तमोगुणकी अधिकताके कारण निरोधिका शब्दमें पुकारी जाती है। वह निरोधिका फिर रत और मत दोनों गुणकी अधिकतासे अर्द्धेन्दु हो जाती है। अलङ्कारकौस्तुभ और पदार्थादर्श आदि ग्रन्थोंमें लिखा है,—

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, अवस्थाभेदसे ये सब संज्ञासङ्केत हैं। वर्ण जब नादरूपमें मूलाधारसे पहले पहल उत्पन्न होता है, तब उसे परा कहते हैं। पीछे जब वह वर्ण नादरूपमें मूलाधारसे उठ कर क्रमशः हृदयगत होता है, तब वह पश्यन्ती है। इसके बाद जब हृदयसे उठ कर क्रमशः वुद्धि वा सङ्कल्पके साथ संयुक्त होता है, तब वह मध्यमा तथा उसके बाद बुद्धिसे उठ कर क्रमशः कण्ठगत हो मुख द्वारा अभिव्यक्त होता है, तब वह वैखरी है। यह वैखरी जब अवस्थापन्न नादसे ही पवन प्रेरित होती है, तब वर्णसमूह सबोंके गोचरीभूत होते हैं। परा और पश्यन्ती दशापन्न वर्ण योगियोंके प्रत्यक्ष होते हैं, दूसरेके पक्षमें यह प्रत्यक्ष होना असम्भव है।

व्याकरणके मतसे वर्णोंके उत्पत्तिस्थान आठ हैं। जैसे—हृदय, शिर, जिह्वा, दन्त, नासिका, दोनों ओष्ठ और तालु। इनमेंसे अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (ः), इन सब वर्णोंका उच्चारणस्थान कण्ठ; इ, च, छ, ज, झ, ञ य, श, इनका उच्चारणस्थान तालु; ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष, इनका उच्चारणस्थान मुर्द्धा; लृ, लॄ, त, थ, द, ध, न, ल, स, इनका उच्चारणस्थान दन्त; उ, ऊ, प, फ, व, भ, म और उपध्मानीय इत्यादिका उच्चारणस्थान ओष्ठ; 'व' दन्त और ओष्ठ, 'ए ऐ' कण्ठ और तालु तथा जिह्वा-मूलीयका उच्चारणस्थान जिह्वामूल है।

प्रपञ्चसारके तृतीय पटलमें देहमध्यसे पच स वर्णों वा अक्षरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—वर्ण समोर सञ्चालित हो सुषुम्ना नाड़ोके रन्ध्रके मध्यसे निकलते हैं। पीछे कण्ठादि स्थानको आलोड़ित कर वदन-विवरसे वाहर होते हैं। उच्च उन्मार्ग वायु उदात्त स्वर उत्पादन करती है। वह वायु नीचगत हो कर अनुदात्त तथा तिर्य्यग् भावमें जा कर स्वरित अक्षरकी उत्पादक होती है। इस प्रकार एकार्द्ध, एक, द्वि और त्रिसंख्यक मात्रामें सभी लिपियोंकी सृष्टि हुई। वह व्यञ्जन ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कहलाने लगी।

वर्णाभिधानमें अ-से ह पर्यन्त प्रत्येक वर्णके स्वरूप और अर्थादिका विस्तृत विवरण लिखा है। 'अ' से 'ह' पर्यन्त प्रति वर्णकी उत्पत्ति, स्वरूप और अर्थादिका विवरण दिया गया है।

वर्णक (सं० क्ली०) वर्णयतीति वर्ण-ण्वुल्। १ हरिताल, हरताल। २ अनुलेपन, उवटन। ३ चन्दन। (पु०) ४ विलेपन। वर्णयति नृत्यादीन् विस्तारयति। ५ चरण। ६ मण्डल। (पु० स्त्री०) वर्ण्यते रज्यतेऽनेनेति,

वर्ण घञ्, स्वार्थे कन्। ७ हिंगुल हरिताल काच नील-कादि। ८ मनु। (लिङ्ग ७।२३) ६ मुखोस, अभिनेताओंके परिधान या परिच्छद। १० चित्रकार।

वर्णकण्ट (सं० क्ली०) तुत्थ, तूतिया।

वर्णकदण्डक (सं० पु०) १ चित्रकारकी कूंची। २ छन्दो-भेद।

वर्णकमय (सं० त्रि०) विचित्र वर्णमण्डित।

वर्णकवि (सं० पु०) कुवेरके पुत्र। (त्रिका०)

वर्णकित (सं० त्रि०) वर्णविशिष्ट, रंगवाला।

वर्णकूपिका (सं० स्त्री०) वर्णानां कूपिकेव। मस्याधार, मछलीका वरतन।

वर्णकृत् (सं० त्रि०) वर्णदानकारी, रंग देनेवाला।

वर्णक्रम (सं० पु०) १ रंगका पर्याय। २ उच्च नीचताके भेदसे जातिपरम्परा। ३ अक्षरश्रेणी।

वर्णखण्डमेरु (सं० पु०) पिंगल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इससे विना मेरु वनाये मेरुका काम निकल जाता है अर्थात् यह ज्ञात हो जाता है, कि इतने वर्णोंके कितने वृत्त हो सकते हैं और प्रत्येक वृत्तमें कितने गुरु और कितने लघु होंगे।

जितने वर्णोंका खण्डमेरु वनाना हो, उतनेसे एक कोष्ठ अधिक वाईंसे दाहिनी ओरको वनावे। फिर उन्हीं कोष्ठों-के नीचे पहला स्थान छोड़ कर दूसरे स्थानसे आरम्भ करके ऊपरसे एक कोष्ठ कम वनावे। इसी प्रकार उसी स्थानसे नीचे एक कोष्ठ कम वरावर वनाता जाय, जव तक एक कोष्ठ न आ जाय। इन कोष्ठोंको इस प्रकार भरे। कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें वाईं ओरसे सवमें एक एकका अंक लिखे। दूसरी पंक्तिके पहले कोष्ठसे आरम्भ करके क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ आदि अन्त तक लिख जाय। इसके वाद कोष्ठोंकी प्रथम पंक्तिके तीसरे अंकसे उत्तरो-त्तर नीचेकी ओर वक्रगतिसे अंकोंको जोड़ कर अगले खानोंमें रखता जाय। अन्तिम कोष्ठोंमें जो अंक होंगे, वे लघु गुरुके हिसावसे वृत्तोंके भेद सूचित करेंगे।

वर्णगत (सं० त्रि०) १ वर्णसम्वन्धीय। २ जातिगत। ३ वीजगणितघटित।

वर्णचारक (सं० त्रि०) वर्णान् नीलादीन् चारयति विस्तारयति चर-णिच्-ण्वुल्। चित्रकार।

वर्णज (सं० त्रि०) वर्णात् जायते इति जन-ड। जाति, वर्णोद्भव।

वर्णज्येष्ठ (सं० पु०) वर्णेषु चतुर्षु मध्ये ज्येष्ठः प्रथ-मोत्पन्नात् गुणोत्कृष्टत्वाच्च। १ ब्राह्मण। चारों वर्णोंमेंसे ब्राह्मण ही पहले सृष्ट हुए हैं। ब्राह्मण देखो।

(त्रि०) वर्णेन ज्योतिषोक्तपारिभाषिकवर्णेन ज्येष्ठः श्रेष्ठः। २ स्ववर्णकी अपेक्षा उत्तमवर्ण, स्वयं जो वर्ण है उससे उत्तमवर्ण। विवाहमें वर्णमेलक देखना होता है। हीनवर्ण पुरुषके वर्णज्येष्ठा नारीसे विवाह करने पर छः महीनेके भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है।

मेलक देखो।

वर्णट—कुछ दिनोंके लिये काश्मीरके राजा। राजा यश-स्करका रोग जव अधिक वढ़ गया, जव उन्हें अपने जीवनकी आशा जाती रही, तव उन्होंने अपने पितृव्य पौत्र और रामदेवके पुत्र वर्णटको काश्मीरके सिंहासन पर वैठाया। राजा यशस्करने अपने पुत्र संग्रामदेवको इस हेतु राज्य नहीं दिया, कि इसे वालक जान कर विरोधी वर्ग षड़यन्त्र रचेगा और अनायास ही इसे राज्यच्युत करके राज्य अपने हस्तगत कर लेगा। वर्णटके राजा होनेसे विरोधियोंकी आशा पर एक वार ही पानी फिर गया। सभी निरास हो गये, परन्तु वर्णट राज्य पाते ही उद्धृत हो गये। राज्यदाता यशस्करकी ओरसे उनका ध्यान विलकुल ही जाता रहा। यहां तक, कि उन्होंने राज्य पानेके पीछे राजासे आरोग्य प्रश्न भी नहीं पुछवाया। इससे राजा भीतर ही भीतर दुःखित होने लगे। मन्त्रियों-ने राजाके हृदयको वात जान ली। उन लोगोंने संग्राम-देवको राज्य देनेके लिये यशस्करको उत्तेजित किया। अन्तमें हुआ भी वही। वर्णट एक दिन सभामें वैठे थे, मन्त्रियोंने वहीं उन्हें कैद कर लिया, पीछे वे निर्वासित किये गये।

वर्णतनु (सं० स्त्री०) सरस्वती देवीका उद्देशक मन्त्र-विशेष।

वर्णता (सं० स्त्री०) वर्ण-तल्-टाप्। वर्णका भाव या धर्म।

वर्णताल (सं० पु०) एक राजाका नाम।

वर्णतूलि (सं० स्त्री०) वर्णानां तूलिरिव। लेखनी, वह कूंची जिससे चित्रकार चित्र वनाते हैं।

वर्णतूलिका (सं० स्त्री०) वर्णानां तूलिकेव।
वर्णतूलि देखो।

वर्णत्व (सं० क्ली०) वर्णस्य भावः त्व। वर्णका भाव या धर्म।

वर्णद (सं० क्ली०) वर्णं ददातीति दा (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति क। १ कालीयक, दारुहरिद्रा। (त्रि०) २ वर्णदाता, रंग देनेवाला।

वर्णदातृ (सं० त्रि०) वर्णस्य दाता। वर्णदायक, रंग देनेवाला।

वर्णदात्री (सं० स्त्री०) वर्णं ददातीति दा-तृच्, स्त्रियां ङीष्। हरिद्रा, हल्दी।

वर्णदूत (सं० पु०) वर्ण एव दूता यत्र। लिपि। पर्याय— लेख, वाचिक, हारक, स्वस्तिमुख।

वर्णदूषक (सं० त्रि०) वर्णान् दूषयतीति दूष ण्वुल्। वर्णसमूहका दोषोत्पादक, जातिका नष्ट करनेवाला।

वर्णदेशना (सं० स्त्री०) शब्दशिक्षा।

वर्णधर्म (सं० पु० क्ली०) वर्णानां ब्राह्मणादीनां धर्मः। वर्णाश्रम-धर्म। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णोंका कर्त्तव्य कर्म। वर्ण शब्दमें उक्त चारों वर्णोंके कर्त्तव्य कर्म तथा धर्मके विधिनिषेधादि एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके आचार विचार विशेष रूपसे वर्णन किये गये हैं। राजधर्म तथा आपद्धर्मादि वर्णाश्रमधर्म शब्दमें वर्णन किये गये हैं। इनके अतिरिक्त अनुलोम तथा प्रतिलोम प्रभृति विभिन्न जातियोंके महाभारतमें वर्णन किये गये धर्मविधान नीचे लिखे जाते हैं।

भीष्मने कहा—पूर्व कालमें प्रजापतिने यज्ञके निमित्त केवल चार वर्णोंकी सृष्टि की। ब्राह्मण चारों वर्णोंकी कन्याओंके साथ विवाह कर सकते हैं। उनमें ब्राह्मण तथा क्षत्रियोंकी कन्याओंसे जो पुत्र पैदा होंगे, वे ब्राह्मणोंकी आत्मा वा ब्राह्मण कहलावेंगे, वैश्य तथा शूद्र-कन्याओंसे जो सन्तान पैदा होते हैं, वे कर्मानुसार पूर्वोक्त दोनोंसे हीन गिने जायेंगे। ब्राह्मण और शूद्रकन्याके संयोगसे जो पुत्र पैदा हों वे शवके समान अर्थात् शव स्थान श्मशान-तुल्य किन्तु शूद्रकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझे जायेंगे; इसीलिये पण्डित लोग उन्हें पारशव कहा करते हैं। वे अपने कुलके सेवक हो कर रहेंगे एवं अपने नियत कर्मोंका त्याग नहीं करेंगे। वे जिस तरह भी हो सके, अपने कुलके सभी आवश्यकीय कार्योंको सम्पन्न करें। पारशव ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अवस्थामें बड़े होने पर भी ब्राह्मणोंके साथ छोटे भाईकी तरह व्यवहार करेंगे और उनकी सेवा शुश्रूषा करेंगे एवं दानपरायण होंगे। क्षत्रिय अपनी स्वजातीय लड़की एवं वैश्य तथा शूद्रकी लड़कियोंके साथ विवाह कर सकते हैं। इनकी क्षत्रिया तथा वैश्या स्त्रीसे जो पुत्र होंगे, वे क्षत्रिय एवं शूद्रा स्त्रीसे जो पुत्र पैदा होंगे, वे उग्र नामक शूद्र कहलावेंगे। शूद्र सिर्फ अपनी जातिमें ही शादी कर सकता है। अपने जनकसे अविशिष्ट अधम पुत्र यदि ब्राह्मण-दारादिके साथ बलात्कार करे, तो चातुर्वर्ण्य विगर्हित चण्डालादि वर्ण उत्पादन करेंगे। क्षत्रिय ब्राह्मणीसे चतुर्वेदके बहिर्भूत भूपतिगणके स्तुतिकारक सूत जातीय सन्तानका जन्म देते हैं। वैश्य ब्राह्मणीसे अन्तःपुर-रक्षण-कार्यकारी वैदेह जातीय पुत्र उत्पादन करते हैं। शूद्र ब्राह्मणीके संसर्गसे चंडाल पुत्र पैदा होता है। ये वर्ण संकर कहलाते हैं। वैश्य द्वारा क्षत्रियसे वन्दी मागध जातीय पुत्र पैदा होता है, शूद्र द्वारा क्षत्रियासे मत्स्यघाती निषाद पुत्र उत्पन्न होता है और वैश्यासे ग्राम्य धर्मविशिष्ट पुत्र जन्म ग्रहण करता है, उसे आयोगव (बढ़ई) कहते हैं, स्वधनजीवी बढ़ई लोग ब्राह्मणोंके अप्रतिग्राह्य होते हैं। अम्बष्ठ, पारशव, उग्र, सूत, वैदेहक, चंडाल, मागध, निषाद तथा आयोगव, ये लोग अपनी जातीय स्त्रीसे या अपनी जातसे भी नीच जातीय स्त्रीसे स्वजातीय पुत्र तथा मातृजातीय पुत्र पैदा करते हैं। चारों वर्णोंके मध्य ब्राह्मणादि दो भार्याओंसे स्वजातीय सन्तान पैदा होती है, विजातियोंके संसर्गसे प्रधानानुसार वाह्यपुत्र-जन्मग्रहण करते हैं। वे भी स्वजातीय स्त्रीसे अपने वर्णके पुत्र पैदा करते हैं और परस्परकी पत्नीसे विगर्हित पुत्रोंको देते हैं। शूद्र जिस तरह ब्राह्मणीसे अति हीनवर्ण चण्डालका उत्पादन करते हैं, उसी तरह चारों वर्णोंसे बहिर्भूत हीन वर्णसे अत्यन्त हीनतर वर्ण जन्म ग्रहण करता है। हीनतर वर्णोंसे प्रतिलोमजात वर्णकी वृद्धि

होती हैं। हीनवर्णसे दासादि १५ हीनतर वर्ण पैदा होते हैं। अगम्यागमनसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्णोंसे वहिर्भूत वर्णोंके मध्य सैरन्ध्री तथा मागध जातिसे राजाओंके प्रसाधन-कार्यज्ञ एवं उनके दिव्य अंग-रागघर्षण तथा स्तवादि द्वारा दासजीवन जातिकी सृष्टि होती है। मागध जाति द्वारा सैरन्ध्र योनिसे वागुरावन्ध जीवी आयोगव जाति उत्पन्न होती है। मागधीसे वैदेह द्वारा मद्यकर मैरेयक नामक पुत्र पैदा होते हैं। निषाद्-जाति मद्गुर अर्थात् मद्गु नामक मत्स्योपजीवी तथा नौको-पजीवी दाश सन्तान पैदा करती है और चण्डाल श्वपाक नामक मृतप अर्थात् श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न करता है। मागधी वागुरोपजीवी क्रूर चार पुत्र पैदा करते हैं, मांसविक्रय तथा मांस संस्कार ही उनके प्रधान कार्य होते हैं। इनमें दो मांस तथा स्वादुकर कहलाते हैं; बाकी दोके नाम क्षौद्र तथा सौगन्ध नामसे कथित है। इस तरहसे मागध जातिको चारों वृत्तियाँ निर्दिष्ट की गई है। आयोगवोसे पापीष्ठ, वैदेहसे मांसोपजीवी क्रूर, निषादसे खरयानगामी मद्रनाभ एवं चण्डालसे खराश्वगज भोजी पुक्कशजाति जन्म ग्रहण करती हैं, ये लोग मृतकको वस्त्रसे ढकते एवं भिन्न पात्रमें भोजन करते हैं। निषादी से वैदेह द्वारा क्षुद्र, अन्ध्र तथा आरण्यपशु-हिंसोपजीवी कौमार नामक चर्म्मकार ये तीन पुत्र पैदा होते हैं। ये लोग ग्रामके वाहर वास करते हैं। निषादोसे चर्म्मकार द्वारा कारावर तथा चण्डालसे वेणुव्यवहारोपजीवी पांडुसौपाक जाति जन्म ग्रहण करती है। वैदेहीसे निषाद द्वारा आहिण्डक नामक पुत्र पैदा होता है। चण्डाल द्वारा सौपाकसे चण्डालसम-व्यवहार-विशिष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। निषादी चण्डाल द्वारा वाह्यवर्णोंके वहि-ष्कृत श्मशानवासी अन्त्यवशायी संतान पैदा होती हैं। पितृ मातृ-व्यतिक्रम वशतः ये सव संकरजाति उत्पन्न होती है, ये लोग प्रच्छन्नभावसे रहें वा प्रकाश्यभावसे, किन्तु अपने धर्म द्वारा ही पहचाने जाते हैं। शास्त्रोंमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंका धर्म लिखा है, दूसरे दूसरे धर्म हीन जातियोंके मध्य किसीके धर्मका नियम अथवा इयत्ता नहीं है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंसे अनुलोमजात ६ एवं विलोमजात ६, ये १२ प्रकारके संकीर्ण वर्ण पैदा होते हैं, फिर इन १२ संकीर्ण वर्णोंसे ६६ अनुलोमजात एवं ६६ प्रतिलोमजात, इस तरहसे १३२ प्रकारकी वर्णसंकर जातियां उत्पन्न होती हैं। फिर उनके अनुलोम तथा प्रतिलोमकी गणना द्वारा अनन्त भेद पैदा हो जाते हैं, अतएव इस समुदायके पहले कहे गये १५ भेदोंके मध्य अन्तर्भाव हो गया है, इसलिये सवकी प्रतिसंख्या प्रदर्शित नहीं की गई है। स्वेच्छाचरणसे अर्थात् जातिगत कोई नियम न रहनेके कारण मनमाना समागम करनेसे साधु आदिके द्वारा उत्पन्न वाह्य वर्णसंकरजाति अपने अपने कर्मोंके अनुसार जीविका और जाति प्राप्त करती है। ये लोग चतुष्पथ, श्मशान, पर्वत तथा दूसरी दूसरी वनस्प-तियोंके निकट वास और नियत कृष्णवर्ण लौहमय अलंकार पहन कर अपने कर्म द्वारा अपनी जीविका चलायेंगे एवं अलंकार तथा गृहोपकरण वस्तुसे तैयार करेंगे। ये लोग गो-ब्राह्मणोंकी सहायता करेंगे, इसमें सन्देह नहीं। आनृशंस्य, दया, सत्य, क्षमा एवं अपने शरीर द्वारा विपन्नोंकी रक्षा आदि ही वाह्यवर्णोंकी सिद्धिके कारण होंगी; हे नरश्रेष्ठ! इसमें मुझे संशय नहीं। बुद्धिमान् मनुष्य उपदेशानुसार परिकीर्त्तित हीनजातिकी विवे-चना करके पुत्रोत्पादन करें, जिस तरह जलमें तैरनेको इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रान्तर अवसन्न कर देता है, उस तरह नितान्त हीन जातिसे उत्पन्न पुत्रवंशका नाश कर डालता है। इस संसारमें रमणियां विद्वान् अथवा मूर्ख व्यक्तिको काम-क्रोधके वशीभूत कर नितान्त कुपथमें खींच लेती हैं। नारियोंका स्वभाव ही दोषकी खान है, अतएव विपश्चित् व्यक्ति स्त्रियों पर अत्यन्त आसक्त नहीं होते।

युधिष्ठिर वोले—पाप-योनिज हीनवर्ण व्यक्ति जो आर्यके गृहमें जन्मग्रहण करनेके कारण आर्यरूप हो गया है, किन्तु उत्पत्तिके कारण अनार्य है, उसे हम किस प्रकार पहचान सकेंगे?

भीष्मने कहा—अनार्योंके पृथक् पृथक् भाव तथा चेष्टा-समन्वित मनुष्यको संकरयोनिज समझना चाहिये एवं उनके सज्जनाचरित कर्म द्वारा योनिशुद्धता विज्ञात होगी। इस संसारमें अनार्य्यता, अनाचार, क्रूरता तथा निष्क्रि-यात्मता कलुषयोनिज पुरुषमें ही देखी जाती है। संकीर्ण

जातिकी संतान पिताके अथवा माताके चरित्र किंवा पिता माता दोनोंके स्वभाव प्राप्त करती है, वह कभी भी अपनी प्रकृति गुप्त नहीं रख सकती। तिर्यक् योनिजात व्याघ्र प्रभृति जिस तरह विचित्र वर्णके साथ माता पिताके समान रूपसे ही पैदा होते हैं, ठीक उसी तरह मनुष्य अपने पिताके वर्णमें ही पैदा होता है। वंशस्रोत संच्छन्न होने पर योनिसंकर होता है, वह मनुष्य जिस व्यक्तिके औरससे पैदा होता है, उसका कुछ न कुछ चरित्र अवश्य ही आश्रय करता है। कृत्रिम पथसे विचरनेवाला व्यक्ति शोभनवर्ण है या निकृष्ट, इसका निश्चय उसके स्वभावसे ही हो जायगा। सुवर्ण जिस तरह वाह्यतः कठिन होने पर भी कार्यके समय मृदु होता है एवं सुवर्ण अर्थात् चाँदी जिस तरह नियम मृदु होने पर भी कार्यके समय कठिन है, सुजात तथा दुर्जात पुरुषोंके जन्म और चरित्र भी उसी तरह होते हैं। संकरजात वर्णका शरीर शास्त्रीय बुद्धि द्वारा नीच मार्ग-से आकृष्ट नहीं होता, बीजगुणकी प्रबलता वशतः कालभेदसे बुद्धिवृत्तिकी प्रधानता होने पर भी शरीरा-रम्भक स्वत्वके ज्येष्ठत्व, मध्यमत्वके अनुसार जो समान होता है, वही प्रमुदित हुआ करता है। दूसरा स्वत्व उत्पन्न होते ही शरत्कालके मेघकी तरह पुनः विलीन हो जाता है। ऊंचे वर्णका लड़का जब सदाचारसे दूर हो जाय, तब उसका सम्मान नहीं करना चाहिये और शूद्र यदि सदाचारसम्पन्न तथा धर्मज्ञ हो, तो उसका सम्मान करना चाहिये। मनुष्य शुभाशुभकर्म, सुशीलता, सच्चरित्र तथा कुल द्वारा अपनेको प्रकाश करता है, कुल नष्ट हो जाने पर पुरुष अपने कर्म द्वारा पुनः अपना उद्धार कर लेता है। इन सब संकीर्ण तथा इतर योनियोंमें पुत्रोत्पादन नहीं करना चाहिये, पंडित लोग इस तरह-की स्त्रियोंका त्याग करें। (महाभारत अनुशासन ४८ अ०)

वर्णधातु (सं० स्त्री०) गेरू, ईंगुर आदि रंगके काममें आनेवाली धातु।

वर्णन (सं० क्ली०) वर्णस्तुतौ विस्तारे रञ्जनादौ ल्युट्। १ स्तवन, गुणकीर्त्तन। २ विस्तरण, किसी बातको सविस्तर कहना, कथन। ३ चित्रण, रंगना।

वर्णनष्ट (सं० पु०) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि प्रस्तारके अनुसार इतने वर्णोंके वृत्तोंके अमुक संख्यक भेदका रूप लघु गुरुके हिसाबसे कैसा होगा। जितने वर्णके प्रस्तारके किसी भेदका रूप निकालना हो, उतने लघुके चिह्न लिख कर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक (१ से आरम्भ करके क्रमशः दूने दूने अंक) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमेंसे पूछी हुई संख्याको घटावे। जो अंक बाकी बचे, वह जिन जिन उद्दिष्टोंके योगसे बना हो उनके नीचेकी लघु मात्राओंके चिह्नोंको गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उत्तर होगा।

वर्णना (सं० स्त्री०) वर्ण-णिच्-युच् टाप्। गुणकथन। पर्याय—ईड़ा, स्तव, स्तोत्र, स्तुति, नुति, श्लाघा, प्रशंसा, अर्थवाद। "विदग्धा अपि वर्ण्यन्ते विटवर्णनया स्त्रियः" (कथासरित्सा० ३२।१६६)

वर्णनाश (सं० पु०) वर्णस्य नाशः ६-तत्। निरुक्त-कारके अनुसार शब्दमें किसी वर्णका नष्ट हो जाना।

वर्णनीय (सं० त्रि०) वर्ण कर्मणि अनीयर्। १ वर्ण्य, वर्णितव्य, वर्णनाके योग्य। २ स्तवार्ह, स्तवके योग्य।

वर्णपताका (सं० स्त्री०) पिङ्गल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि वर्णवृत्तोंके भेदोंमेंसे कौन सा (पहला, दूसरा या तीसरा आदि)ऐसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपात (सं० पु०) वर्णस्य पातः। उच्चारणके समय शब्दान्तर्गत वर्णका पतन।

वर्णपाताल (सं० पु०) पिंगल या छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्याके वर्णोंके कुल कितने वृत्त हो सकते हैं और उन वृत्तोंमेंसे कितने लघ्वादि और कितने लघ्वन्त, कितने गुर्वादि और कितने गुर्वान्त तथा कितने सर्वगुरु और कितने सर्वलघु होंगे। जितने वर्णोंका पाताल बनाना हो, उतनी ही खड़ी रेखाएं और उन्हें काटती हुई पांच आड़ी रेखाएं खींचे। इस प्रकार कोष्ठ बन जाने पर कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें क्रमसे १, २, ३, ४, आदि अंक भरे। दूसरी पंक्तिमें २, ४, ८, १६ आदि वर्णसूचीके अंक लिखे। तीसरी पंक्तिमें सूचीके अंकोंके आधे लिखे और चौथी पंक्तिमें पहली और तीसरी पंक्तिके अंकोंका गुणनफल लिखे।

वर्णपात्र (सं० क्लो०) वर्णस्य पात्रं। चित्रकारका रंग रखनेका बरतन।

वर्णपुर (सं० पु०) शुद्ध रागका एक भेद।

वर्णपुष्प (सं० पु०) वर्णयन्ति पुष्पाणि यस्य कप्। राजतरुणी पुष्पवृक्ष।

वर्णपुष्पक (सं० पु०) वर्णपुष्प देखो।

वर्णपुष्पी (सं० स्त्री०) वर्णयन्ति पुष्पाणि यस्याः ङीष्। उण्ड्रकाण्डी पुष्पवृक्ष।

वर्णप्रकर्ष (सं० पु०) वर्णकी अधिकता।

वर्णप्रत्यय (सं० पु०) छन्दःशास्त्र या पिंगलमें वे क्रियाएं जिनके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्याके वर्णवृत्तोंके कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरूप क्या होंगे इत्यादि। जिस प्रकार मात्रिक छन्दोंमें ६ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तोंमें भी ६ प्रत्यय होते हैं।—प्रस्तार, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, खण्ड-मेरु, पताका और मर्कटी।

वर्णप्रसादन (सं० क्लो०) वर्णस्य प्रसादनं यस्मात्। अगुरुचन्दन।

वर्णप्रस्तार (सं० पु०) पिंगल या छन्दःशास्त्रमें वह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है, कि इतने वर्णों-के वृत्तोंके इतने भेद हो सकते हैं और उन भेदोंके स्वरूप इस प्रकार होंगे। जितने वर्णोंका प्रस्तार बढ़ाना हो, उतने वर्णोंका पहला भेद (सर्वगुरु) लिखे। फिर गुरुके नीचे लघु लिख कर शेष ज्योंका त्यों लिखे। फिर सबसे बाईं ओरके गुरुके नीचे लघु लिख कर आगे ज्योंका त्यों लिखे और बाईं ओर जितनी न्यूनता रहे, उतनी गुरुसे भरे। यह क्रिया अन्त तक अर्थात् सर्व लघु भेदके आने तक करे।

वर्णभेद (सं० पु०) वर्णस्य भेदः। १ वर्णका भेद, ब्राह्मणादि वर्णकी भिन्नता। २ रंगका भेद।

वर्णभेदिनी (सं० स्त्री०) लताविशेष।

वर्णमय (सं० त्रि०) वर्णविशिष्ट।

वर्णमर्कटी (सं० स्त्री०) पिंगल छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इससे यह जाना जाता है, कि इतने वर्णोंके इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुर्वादि, गुर्वन्त और इतने लघ्वादि लघ्वन्त होंगे तथा सब वृत्तोंमें मिला कर इतने वर्ण, इतने गुरु लघु, इतना कलाएं और इतने पिंड (=दो कल) होंगे। जितने वर्ण हों, उतने खाने बाएंसे दाहिने बनावे। फिर उन खानोंके नीचे उतने ही खानों-की छः पंक्तियां और बनावे। कोष्ठोंकी पहली पंक्तिमें १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरीमें वर्ण सूचीके अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तिसरी पंक्तिमें दूसरी पंक्ति-के अंकोंके आधे अंक भरे; चौथीमें पहली और दूसरी पंक्तिके अंकोके गुणनफल लिखे; पाँचवींमें चौथी पंक्ति के आधे अंक भरे; छठी पंक्तिमें चौथी और पांचवीं पंक्तिके अंकोंका योग लिखे और सातवीं पंक्तिमें छठी पंक्तिके आधे अंक भरे।

वर्णमातृ (सं० स्त्री०) वर्णस्य मातेव ककाराद्यक्षरप्रसू-त्वात्। लेखनी, कलम।

वर्णमातृका (सं० स्त्री०) वर्णानां वर्णमालानां मातृकेव। सरस्वती।

वर्णमाला (सं० स्त्री०) वर्णस्य माला। ककारादि वर्णोंकी ह्रस्वदीर्घादि माला।

वर्णमाला (सं० स्त्री०) वर्णानां माला। १ जातिमाला, वर्णश्रेणी। २ अक्षरोंके रूपोंकी यथा श्रेणी लिखित सूची, किसी भाषामें आनेवाले सब हरफ जो ठीक सिल सिलेसे रखे हों। संस्कृतमें ५० और अपविषयमें ५१ वर्णमाला है। तन्त्रमें ५१ वर्णमालाका निर्देश और उसके जपका विधान है। अङ्गरेजी वर्णमाला २६, फरासी २३, अरबी २८, पारसी ३१, तुर्की ३३, हिब्रु २२, रूसीय ४१, ग्रीक २४, लाटिन २२, डच २६, स्पेनिस २७, इटाली २०, तातार २०२, ब्रह्म १९। चीन देशमें वर्णमाला शब्दात्मक है, इन शब्दोंकी संख्या प्रायः अस्सी हजार होगी। अक्षरलिपि देखो।

वर्णयितव्य (सं० त्रि०) वर्णनीय, वर्णन करनेके योग्य।

वर्णराशि (सं० पु०) वर्णसमूह, वर्णमाला।

वर्णरेखा (सं० स्त्री०) वर्णं लिख्यन्तेऽनयेति लिख करणे घञ् वलयोरैक्यं। कठिनो, खड़ी।

वर्णलिपि (सं० स्त्री०) वर्ण या अक्षरप्रकाशक लेखन-प्रणाली (Alphabetic writing)।

विशेष विवरण अक्षरलिपि शब्दमें देखो।

वर्णलेखिका (सं० स्त्री०) वर्णलेखा स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं । खड़ी ।

वर्णवत् (सं० त्रि०) वर्णोऽस्त्यस्य वर्ण (रसादिभ्यश्च । पा ५।२।९५) इति मतुप् मस्य वः । वर्णविशिष्ट ।

वर्णवती (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णवर्त्ति (सं० स्त्री०) लेखनी, कलम ।

वर्णवर्त्तिका (सं० स्त्री) वर्णवर्त्ति देखो ।

वर्णवादी (सं० पु०) प्रशंसाकारी, बड़ाई करनेवाला ।

वर्णविकार (सं० पु०) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें एक वर्णका बिगड़ कर दूसरा वर्ण हो जाना । जैसे—'हल्दी' शब्दमें 'हरिद्रा'के 'र' का 'ल' हो गया है । 'द्वादश'के 'द' का 'बारह' शब्दमें 'र' हो गया है ।

वर्णविचार (सं० पु०) आधुनिक व्याकरणका वह अंश जिसमें वर्णोंके आकार, उच्चारण और सन्धि आदिके नियमोंका वर्णन हो । प्राचीन वेदाङ्गमें यह विषय 'शिक्षा' कहलाता था और व्याकरणसे बिलकुल स्वतन्त्र माना जाता था ।

वर्णविपर्य्यय (सं० पु०) निरुक्तके अनुसार शब्दोंमें वर्णोंका उलट फेर हो जाना । जैसे—'हिंस' शब्दसे बने 'सिंह' शब्दमें हुआ है ।

वर्णविलासिनी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी ।

वर्णविलोड़क (सं० पु०) वर्णान् विलोडयतीति विलोडि-ण्वुल् । १ श्लोकस्तेन, वह जो दूसरेका लिखा विषय चोरी करके उसे अपना बतलाता है । २ सन्धिचौर, सेंधिया चोर ।

वर्णवृत्त (सं० क्ली०) वह पद्य जिसके चरणोंमें वर्णोंकी संख्या और लघु गुरुके क्रमोंमें समानता हो ।

वर्णव्यवस्थिति (सं० स्त्री०) वर्णस्य व्यवस्थितिः । चातुर्वर्ण्य विभाग ।

वर्णशिक्षा (सं० स्त्री०) वर्णाभ्यास ।

वर्णश्रेष्ठ (सं० पु०) वर्णेषु श्रेष्ठः । चार वर्णोंमेंसे श्रेष्ठ, ब्राह्मण ।

वर्णसंघाट (सं० पु०) वर्णमाला ।

वर्णसंघात (सं० पु०) वर्ण समूह ।

वर्णसंयोग (सं० पु०) सवर्ण विवाह ।

वर्णसंसर्ग (सं० पु०) असवर्ण विवाह ।

वर्णसंहार (सं० पु०) प्रतिमुख सन्धिके तेरह अंगोंमेंसे एक ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके लोगोंका एक स्थान पर सम्मेलन । अभिनव गुप्ताचार्यका मत है, नाटकके भिन्न भिन्न पात्रोंके एक स्थान पर सम्मेलनको वर्णसंहार कहना चाहिए ।

वर्णस (सं० त्रि०) वर्णयुक्त ।

वर्णसङ्कर (सं० पु०) वर्णतो ब्राह्मणादिभ्यः वर्णानां वा सङ्करो मिश्रणं यत्र । मिश्रित जाति, ब्राह्मणादि वर्णके अनुलोम वा प्रतिलोमसे उत्पन्न जाति ।

गीतामें लिखा है, कि जब अधर्मका अत्यन्त प्रादुर्भाव होता है, तब कुल-ललनायें दूषित होती हैं । जब वे दूषित होती हैं, तब उन्हींसे वर्णसङ्कर जातिकी उत्पत्ति होती है । वर्णसङ्कर होनेसे देव और पितृकार्य लोप तथा कुलधर्म और जातिधर्मका नाश होता है । उस देशमें सबोंको नरक जाना पड़ता है ।

(भगवद्गीता १ अ०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यही चार वर्ण हैं । इनके अतिरिक्त और कोई वर्ण नहीं है । उक्त चार वर्णोंके अतिरिक्त जो सब जातियां देखनेमें आती हैं, वे ही सङ्कर जाति हैं । इन चार वर्णों ही से सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई है । शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंका अति सामान्य कुसंगसे यत्नपूर्वक बचाना चाहिये ; नहीं तो वह स्त्री पिता और स्वामी दोनोंके कुलमें कालो लगाती है । पत्नीकी सर्वतोभावसे रक्षा करना सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ है । क्या दुर्बल, क्या सबल, क्या अन्ध, क्या खञ्ज, सभीको अपनी अपनी भार्याकी रक्षा करनी चाहिये । एक भार्याकी रक्षा करने हीसे कुल और धर्म पवित्र होता है ।

भार्याके सुरक्षिता नहीं होनेसे उनमें व्यभिचार फैल जाता है । उसीसे जो सन्तान पैदा होती है । वह वर्णसङ्कर कहलाती है । वर्णसङ्कर होनेसे धर्म और कुल नष्ट हो जाता है । धर्म और कुलके नष्ट होनेसे ऐहिक और पारत्रिक किसी भी प्रकारके मङ्गलकी सम्भावना नहीं रहती । अतः जिससे वर्णसङ्करत्व न हो सके तथा वर्णसङ्करका मूल कारण जो स्त्री जाति है, उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी । यही शास्त्रका उपदेश है ।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणादि तीन वर्ण यदि स्वधर्मका त्याग करें, तो वे भी वर्णसङ्कर कहलाते हैं। मनुमें लिखा है, कि अन्योन्य स्त्रीगमन, सगोत्रमें विवाह तथा उपनयननादि स्वधर्मका त्याग, इन सब कारणोंसे ब्राह्मणादि तीन वर्णों में वर्णसङ्करत्व होता है।

"व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः ॥"

(मनु १०।२४)

शास्त्रानुसार देखा जाता है, कि दो प्रकारसे वर्णसङ्कर हुआ करता है, एक स्त्रियोंके व्यभिचारसे और दूसरे ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके स्वधर्म त्यागसे। स्त्रियोंके व्यभिचारसे चार वर्णोंके अतिरिक्त जो सब जातियां उत्पन्न होती हैं, वह प्रथम वर्णसङ्कर और स्वधर्म त्याग द्वितीय वर्णसङ्कर है।

चार वर्णोंसे अनुलोम और प्रतिलोमक्रमसे वर्णसङ्करजातके मध्य परस्पर आसक्तिवशतः अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे यह वर्णसङ्कर उत्पन्न होता है।

"सङ्कीर्णयानयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः।
अन्योन्य व्यतिषक्ताश्च तान् प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥"

(मनु० १०।२५)

ब्राह्मणादि चार वर्णोंसे परिणीता स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मणादि वर्ण होती हैं। इसके सिवा असवर्ण पत्नीसे उत्पन्न सन्तान पिताके समानवर्ण नहीं होती, उनकी दूसरी जाति होती है। मन्वादि ऋषियोंने कहा है, कि तीन द्विजवर्णोंसे अनुलोमक्रमसे अनन्तर वर्णजा पत्नीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र माता यदि नीच जातिकी भी क्यों न हो, तो भी पिताकी जातिका होता है। वह यथानम मूर्द्धावसिक्त, माहिष्य तथा करण इन तीन नामोंसे पुकारा जाता है।

ब्राह्मण कर्त्तृक एकान्तर वा वैश्यागर्भसम्भूत सन्तान अम्बष्ठ और द्व्यन्तरज शूद्रागर्भसम्भूत सन्तान निषाद वा पारशव तथा क्षत्रिय कर्त्तृक शूद्रागर्भसम्भूत सन्तान उग्र कहलाती है। क्षत्रिय कर्त्तृक ब्राह्मणीगर्भसम्भूत सन्तानको सूत, वैश्य कर्त्तृक क्षत्रियागर्भसम्भूतको मागध तथा ब्राह्मणीगर्भसम्भूतको वैदेह कहते हैं। शूद्र कर्त्तृक वैश्यागर्भज सन्तानका नाम आयोगव, क्षत्रियागर्भजका क्षत्ता और ब्राह्मणीगर्भज सन्तानका नाम चण्डाल है। शूद्र कर्त्तृक प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न ये तीनों जाति अति निकृष्ट हैं। ब्राह्मण कर्त्तृक उग्रकन्यागर्भसम्भूत सन्तान आवृतकी, अम्बष्ठकन्यासम्भूत आभीर तथा आयोगव-कन्यागर्भज सन्तान धिग्वणकी उपाधि पाती है।

चण्डाल, सूत, वैदेह, आयोगव, मागध तथा क्षत्ता ये छः प्रतिलोमज वर्णसङ्कर हैं। चण्डालादि छः प्रकारकी वर्णसङ्कर जातियोंके परस्पर अनुलोम वा प्रतिलोम क्रमसे परस्पर जातिकी कन्याके गर्भसे जो सब सन्तान उत्पन्न होती है, वह अपने माता पितासे सर्वताभावमें हीन, निन्दार्ह और सत्क्रियावहिर्भूत हैं। शूद्र कर्त्तृक ब्राह्मणीगर्भजात चण्डालादि सन्तान जिस प्रकार अपकृष्ट समझी जाती है, चण्डालादि छः प्रकारके सङ्करों द्वारा ब्राह्मणादि चार वर्णोंसे उत्पन्न सन्तान उनसे हजार गुणा हीन और निन्दार्ह है। आयोगवादि छः प्रकारकी हीन जातियां परस्पर मिलभावमें परस्पर वर्णजा पत्नीके गर्भसे जो सन्तान उत्पादन करती हैं, उनकी संख्या पन्द्रह है। वे लोग पितासे भी कहीं हीन हैं। दस्युजाति कर्त्तृक आयोगव स्त्रीके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उनका नाम सैरिन्ध्र है। ये सब केशरचनादि कार्यों में कुशल होती हैं। यद्यपि यह प्रकृत दास नहीं हैं तथापि दासकार्योपजीवी हैं तथा पाश द्वारा मृगादिका वध कर जीविका निर्वाह करते हैं। वैदेहक जाति कर्त्तृक आयोगवी स्त्रीगर्भसे जो सन्तान पैदा होती है, उनका नाम मैत्रेय है। ये लोग स्वभावतः मधुरभाषी होते हैं। प्रातःकालमें घंटा बजा कर राजा आदिका स्तुतिपाठ करना इनका कार्य है। निषाद कर्त्तृक आयोगव स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको मार्गव वा दाश कहते हैं। ये लोग नाव बनानेमें बड़े चतुर होते हैं। आयोगवी स्त्रीके गर्भसे जनकभेदसे सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव ये तीन जातियां जन्म ग्रहण करती हैं। निषाद कर्त्तृक वैदेहीगर्भसम्भूत सन्तानका नाम कारावर है। चमड़ा काटना इनका काम है। वैदेह जाति कर्त्तृक कारावर स्त्रीसे अन्ध्र और निषाद स्त्रीसे मेद जाति, चण्डाल कर्त्तृक वैदेहीसे वेणुव्यवहारजीवी

पाण्डुसोपाक, निषाद वैदेहीसे आहिण्डिक और चण्डाल कर्त्तृक पुकसी स्त्रीके गर्भसे सोपाक जाति उत्पन्न होती है। यह सोपाक जाति जल्लादका काम करके जीविका चलाती है। चण्डालसे निषादीगर्भसम्भूत सन्तानका नाम अन्त्यावसायी (गङ्गा पुत्र) है। श्मशानकार्य्य इनकी उपजीविका है। यह सब वर्णसङ्कर जाति निन्दनीय और निन्द्यकर्मकारी हैं। (मनु १० अ० और कुल्लूकभट्ट)

वर्णसङ्करिक (सं० त्रि०) वर्णसङ्कर सम्बन्धीय।

वर्णसमाम्नाय (सं० पु०) वर्णमाला।

वर्णसि (सं० पु०) वृणोति स्थलमिति वृञ् आवरणे (धानसिवनषि पर्वासीति। उण् ४।१०७) इति असि धातोर्नुक् च। जल।

वर्णसूची (सं० स्त्री०) छन्दःशास्त्र या पिंगलमें एक क्रिया। इसके द्वारा वर्णवृत्तोंको संख्याकी शुद्धता, उनके भेदोंमें आदि अन्त लघु और आदि अन्त गुरुकी संख्या जानी जाती है। जितने वर्णोंको सूची देखनी हो, उतने वर्णोंकी संख्या तक क्रमसे २, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उत्तरोत्तर दूने अङ्क लिखे। इस क्रियाके अन्तमें जो संख्या आवेगा, वह वृत्तभेदकी संख्या होगी। अन्तके अङ्क [illegible] वाईं ओर जो अङ्क होगा, उतने आदि लघु और अन्त लघु तथा आदिगुरु और अन्तगुरु होंगे। फिर उससे भी बाईं ओर अर्थात् अन्तसे तीसरे कोष्ठमें जो अङ्क होगा, उतने ही आदि अन्तलघु और आदि अन्त गुरु वृत्त होंगे।

वर्णस्थान (सं० क्ली०) वर्ण या शब्द आदिका उच्चारण-स्थान।

वर्णस्वरोदय (सं० पु०) ज्योतिषोक्त शुभाशुभ ज्ञानका प्रकार वा नियमविशेष।

नरपतिजयचर्य्या स्वरोदयधृत ब्रह्मयामलमें स्वरकी संख्या सोलह बताई है। इन सोलह स्वरोंमें अन्त्यस्वर दो है—अं, अः। यह दोनों स्वर छोड़ कर लेना होगा। सोलह स्वरोंमेंसे चार स्वर क्लीव हैं, जैसे—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, अतएव ये चार स्वर भी त्याज्य हैं।

अवशिष्ट दश स्वरोंमें दो दो करके पांच युग्म होंगे। इन पांच युग्मोंके आदि पांच स्वर हैं—अ, इ, उ, ए, ओ। ये सब ह्रस्व स्वरोंमें गिने जाते हैं। अतः ये पांचों स्वर ही स्वरोदयमें अवलम्बनीय हैं।

इस स्वरोदयसे लाभालाभ, सुख-दुःख, जीवन मरण, जय-पराजय और सन्धि ये सब विषय जाने जाते हैं।

मातृका वर्णमें ही चराचर परिव्याप्त है, किन्तु मातृका वर्ण बिना स्वरके उच्चारण करना असम्भव है। सुतरां यह चराचर निखिल जगत् स्वरसे उत्पन्न हुआ, इस कारण स्वरोदय द्वारा ही सभी जाना जा सकता है।

अकारादि पांच स्वर ब्रह्मादि पांच देवता माने गये हैं। जैसे—अकारमें ब्रह्मा, इकारमें विष्णु, उकारमें रुद्र, एकारमें पवन, ओंकारमें सदाशिव हैं। इसी प्रकार उन अकारादि पांच स्वरोंमें निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता ये पांच कला तथा इच्छा, प्रज्ञा, प्रभा, श्रद्धा और मेधा ये पांच शक्ति निर्दिष्ट हैं।

इन पञ्च स्वरके अकारादि क्रमसे चतुरस्र, अर्द्धचन्द्र, त्रिकोण, षड्‌बिन्दुयुत, गोलाकार और शुद्ध गोलाकार ये पांच चक्र; पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पञ्चभूत; गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द ये विषयपञ्चक तथा सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन ये पांच पञ्चबाणके बाणरूपमें निर्णीत हैं।

अकारादि पञ्च [illegible] नागेन्द्र [illegible] मात्रा, वर्ण अः, [illegible], [illegible] और [illegible] स्वर।

जब मात्रास्वर बलवान् रहे, तब मन्त्रसाधन, यन्त्रसाधन और अन्यान्य अर्थ मुक्त न करने चाहिये।

वर्णस्वरके प्रबल रहनेसे शुभाशुभ कर्म करे। वर्णस्वर सभी समय विशेषतः युद्धकालमें सिद्धप्रद है।

ग्रहस्वरके बलवान् रहनेसे मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण, विवाद, युद्ध, प्रदाह और संहार ये सब कार्य्य कर्त्तव्य हैं।

जीवस्वरके बलवान् रहनेसे वस्त्र, अलङ्कार, भूषण, विद्यारम्भ, विवाह, यात्रा और पानादि कार्य्य करे।

राशिस्वरके बलवान् रहनेसे प्रासाद, हर्म्य, उद्यान, देवतास्थापन, राजसिंहासन पर अभिषेक और दीक्षाकार्य्य करे।

नक्षत्रस्वरके बलवान् होनेसे शान्तिक, पौष्टिक, गृहादि प्रवेश, बीजवपन, विवाह और यात्रा कार्य विधेय है।

पिण्डस्वरके प्रबल होनेसे शत्रुपक्ष का देशभङ्ग, सेनापति और मन्त्रिनियोग ये सब कार्य्य करे।

फिर योगेश्वरके प्रबल होनेसे ज्ञानसम्भव आणव अर्थात् अणिमादि अष्टैश्वर्य्यप्राप्तिविषयक, शाम्भव और शाक्तेय इत्यादि शारीरिक योग साधन करे।

जिस नामसे निद्रित व्यक्तिको पुकारा जाता है, जिस नामसे पुकारने पर मनुष्य गमन करते हैं, उस नामके आदि वर्णमें जो मात्रा अर्थात् स्वर होगा उसीका नाम मात्रास्वर है। जिस प्रकार रजनीकान्त, इस नामका आदि अक्षर हुआ 'र' और 'र' वर्णमें अ संयुक्त है। अतएव मात्रास्वर होगा 'अ'। स्वरोदय शब्दमें देखो।

मात्रास्वरचक्र।

अ	इ	उ	ए	ओ
क	कि	कु	के	को
ख	खि	खु	खे	खो
ग	गि	गु	गे	गो
घ	घि	घु	घे	घो
च	चि	चु	चे	चो
छ	छि	छु	छे	छो
ज	जि	जु	जे	जो
झ	झि	झु	झे	झो
ट	टि	टु	टे	टो

वर्णा (सं० स्त्री०) वृण्यते भक्ष्यते इति वृणु भक्षणे घञ्, ततष्टाप्। आढ़की, अरहर।

वर्णाङ्का (सं० स्त्री०) वर्णा अङ्क्यन्तेऽनयेति अङ्क करणे, घञ्, ततष्टाप्। लेखनी, कलम।

वर्णाट (सं० पु०) वर्णान् अटतीति अट-अच्। १ गायन, गवैया। २ चित्रकार। ३ स्त्रीकृतजीवन, वह जिसकी जीविका स्त्रीसे चलती हो।

वर्णात्मन् (सं० पु०) वर्णाः अक्षरम् आत्मा स्वरूपं यस्य। शब्द।

वर्णाधिप (सं० पु०) वर्णानां ब्राह्मणादीनामधिपः। फलितज्योतिषके अनुसार ब्राह्मणादि वर्णोंके अधिपति ग्रह। ब्राह्मणके अधिपति बृहस्पति और शुक्र, क्षत्रियके भौम और रवि, वैश्यके चन्द्र, शूद्रके बुध और अन्त्यजके शनि माने जाते हैं।

वर्णान्यत्व (सं० क्ली०) दूसरे वर्णका भाव, वर्णका परिवर्त्तन।

वर्णापेत (सं० त्रि०) वर्णादपेतः। वर्णहीन, संकरजाति।

वर्णाश्रम (सं० पु०) वर्णानां चातुर्वर्ण्यानां आश्रमः। चातुर्वर्णाश्रम, चारों वर्णका आश्रम।

वर्णाश्रमधर्म (सं० पु०) चारों वर्णका आश्रमधर्म। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण आश्रममें रह कर जिस वृत्ति द्वारा जीविका और जिस कर्म द्वारा ऐहिक और पारत्रिक कल्याण लाभ कर सकते हैं, उसको आश्रमधर्म कहते हैं। भिन्न भिन्न वर्णका भिन्न भिन्न आश्रम है। महाभारतमें लिखा है, कि युधिष्ठिरने भीष्मदेवसे पूछा था, कि सब वर्णोंका साधारण धर्म क्या है? तथा चार वर्णोंका पृथक् पृथक् धर्म ही क्या है? किस किस वर्णका किस किस आश्रममें अधिकार है? भीष्मदेवने उत्तरमें कहा था, कि चार वर्णके आश्रमधर्मका विषय कहता हूं, सुनो। क्रोध-परित्याग, सत्यवाक्य-प्रयोग, सम्यक्‌रूपसे धनविभाग, क्षमा, अपनी पत्नीसे पुत्रोत्पादन, पवित्रता, अहिंसा, सरलता और भृत्यका भरणपोषण ये नौ सभी वर्णोंके साधारण धर्म हैं।

इन्द्रियदमन और वेदाध्ययन ही ब्राह्मणका प्रधान धर्म है। शान्तस्वभाव और ज्ञानवान् ब्राह्मण यदि असत् कार्य न करके सत्पथसे धन लाभ कर सकें, तो विवाह करके सन्तान उत्पादन, दान और यज्ञानुष्ठान करना उनका कर्तव्य है। ब्राह्मण चाहे दूसरे कार्यका अनुष्ठान करें चाहें न करें, पर उनके वेदाध्ययननिरत और सदाचार-सम्पन्न होनेसे ही उनके वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा होती है।

धनदान-यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और प्रजापालन ही क्षत्रियका प्रधान धर्म है। जांचना, याजन वा अध्यापन क्षत्रियोंके लिये निषिद्ध है। चोर डकैतोंका वध करनेके लिये सदैव तैयार रहना, समराङ्गणमें विक्रम दिखलाना क्षत्रियोंका कर्त्तव्य है। चोर डकैतोंके नाश करनेके सिवा

क्षत्रियका प्रधान कर्म और कुछ भी नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ द्वारा ही क्षत्रियोंका कल्याण होता है। राजा दूसरा कोई काम करें चाहे न करें, पर आचारनिष्ठ हो कर उन्हें प्रजापालन करना ही पड़ेगा। इसीसे क्षात्रधर्मकी रक्षा होती है।

दान, अध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सदुपाय द्वारा धन-सञ्चय तथा पुत्रके समान पशुपालन करना ही वैश्यका नित्य धर्म है। इसके सिवा दूसरे किसी कार्यका अनुष्ठान करनेसे वैश्यको अधर्ममें लिप्त होना पड़ता है।

भगवान् प्रजापतिने ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका दास होगा कह कर शूद्रकी सृष्टि की है। अतएव तीन वर्णोंकी परिचर्या करना ही शूद्रका प्रधान धर्म है। शूद्र यदि धनोपार्जन कर धनी हो जावे, तो ब्राह्मण आदि उत्कृष्ट जातियां उसके वशभूत हो सकती हैं, इसलिये शूद्रको चाहिये कि खाने पीनेके सिवा वह अधिक अर्थसञ्चय न करे, करनेसे उसको पापग्रस्त होना पड़ता है। किंतु राजाके आदेशानुसार शूद्र धर्मकार्यके अनुष्ठानार्थ अर्थसञ्चय कर सकता है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण शूद्रको भरण, पोषण तथा छत्र, वेष्टन, शयन, आसन, उपानत्युगल, चामर और वस्त्र आदि प्रदान करें। यह सब द्रव्य शूद्रोंका धर्मलब्ध धन है। अर्थसञ्चय करना शूद्रका अधिकार नहीं है।

यज्ञ नाना प्रकारका है तथा उसके फल भी अनेक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण सभी यज्ञ कर सकते हैं। शूद्रका यज्ञमें अधिकार रहने पर भी मन्त्रमें उसे अधिकार नहीं है। चार वर्णोंके सभी यज्ञोंमें सबसे पहले श्रद्धायज्ञका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। श्रद्धा महद्देवता स्वरूप है। वह याज्ञिकोंकी पवित्रता सम्पादन करती है। चार वर्णोंके मध्य अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होने हीसे यज्ञानुष्ठानका अधिकार होता है। मनुष्य चोरी आदि पापकार्योंमें आसक्त हो कर भी यदि यज्ञानुष्ठान करे, तो भी उसे साधु कहा जा सकता है तथा महर्षिगण भी उसकी प्रशंसा करते हैं। त्रिलोकके मध्य यज्ञके समान दूसरा कोई कार्य नहीं है। अतएव चारों वर्णोंको असूयाशून्य हो कर श्रद्धापूर्वक साध्यानुरूप यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

मनुष्य वानप्रस्थ, भैक्ष्य, गार्हस्थ और ब्रह्मचर्य इन चार आश्रमोंका अवलम्बन करते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रममें केवल ब्राह्मणका ही अधिकार है। आत्मज्ञान सम्पन्न जितेन्द्रिय ब्राह्मण पहले उपनयनादि संस्कारसे संस्कृत हो कर ब्रह्मचर्य ग्रहण, अग्न्याधानादि कार्य समाधान, वेदाध्ययन और पीछे वे गार्हस्थ्य धर्मका प्रतिपालन कर केवल पत्नीके साथ वानप्रस्थ अवलम्बन करें। इस आश्रममें वे आरण्यक शास्त्रोंका अध्ययन कर ऊर्द्ध्वरेता हो आसानीसे ब्रह्ममें लीन हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य समाप्त करके ही मोक्षलाभार्थी भैक्ष्य धर्मका आश्रय लेना ब्राह्मणोंके लिये दोषावह नहीं है। इस आश्रममें वे सुखदुःखरहित, निकेतन विहीन, यदृच्छालब्धजीवी, दान्त, जितेन्द्रिय, सर्वोंके प्रति समदृष्टिसम्पन्न, भोगकामनाशून्य और निर्विकारचित्त हो अन्तमें ब्रह्म पदको प्राप्त होते हैं।

क्षत्रियादि वर्ण भी ब्राह्मणोंके दृष्टान्तानुसार ही वानप्रस्थादि आश्रमका अवलम्बन करें। स्वधर्मनिरत क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका भी भैक्ष्यधर्मग्रहणमें अधिकार है। कृतकार्य परिणतवयस्क वैश्य भी राजाकी अनुमति ले कर दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय वेद और राजनीति अध्ययन, सन्तानोत्पादन, सोमरसपान, राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान, वेदपाठ करा कर ब्राह्मणको दक्षिणा-दान और श्राद्धादि द्वारा पितरोंको तृप्त कर शेषावस्थामें दूसरा आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। क्षत्रिय गृहस्थधर्मका परित्याग कर अपनी जीवन-रक्षाके लिये ही भिक्षावृत्तिका अवलम्बन कर सकते हैं। भिक्षावृत्तिका अवलम्बन क्षत्रियादि तीन वर्णोंका काम्यधर्म है, नित्यधर्म नहीं।

मानवमण्डलीके मध्य एक क्षत्रियवर्ण ही श्रेष्ठतर धर्मकी सेवा करते हैं। वेदमें कहा है, कि अन्य तीन वर्णोंके सभी धर्म तथा सभी उपधर्म क्षात्रधर्मके आयत्त हैं। जिस प्रकार सभी प्राणियोंके पदचिह्न हाथीके पदचिह्नमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म राजधर्ममें लीन हो गये हैं। पण्डितोंने अन्यान्य धर्मोंको अल्पफलप्रद तथा क्षत्रिय-धर्मको आश्रमका सारभूत और कल्याणका एकमात्र निदान बतलाया है।

शास्त्रधर्म सभी धर्मोंका सारभूत है। एक राजधर्मके प्रभाव होसे सभी मनुष्य प्रतिपालित होते हैं। दण्ड-नीति नहीं रहनेसे वेद और धर्म एकदम नष्ट हो जाता। चार आश्रमोंके धर्म, यतिधर्म, लोकाचारप्रथा और सभी कार्य एक क्षत्रियधर्मके प्रभावसे जनसमाजमें प्रतिष्ठित हैं। (भारत शान्तिपर्व वर्णाश्रमधर्म ६० ७० अ०)

भगवान् मनुने वर्णाश्रमधर्मका इस प्रकार निर्देश किया है। ब्राह्मण साङ्गवेद अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छः कर्मोंको करके जीवन यात्रा निर्वाह करें। इन छः कर्मोंके मध्य अध्यापन, याजन तथा सत्प्रतिग्रह ये तीन ब्राह्मणकी उपजीविका है। किन्तु याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह ये तीन क्षत्रियोंके लिये निषिद्ध है। केवल दान, अध्ययन और याग ये तीन उनका कर्त्तव्य है। क्षत्रियकी तरह वैश्यके लिये भी याजनादि निषिद्ध है। प्रजाओंकी रक्षाके लिये अस्त्रशस्त्र-धारण क्षत्रियकी वृत्ति है; पशुपालन, कृषि और वाणिज्य वैश्यकी उपजीविका है तथा दान, याग और अध्ययन दोनोंका ही अवश्य कर्त्तव्य है। स्वधर्मके मध्य ब्राह्मणका वेदाध्यापन, क्षत्रियका प्रजापालन और वैश्यका वाणिज्य तथा पशुपालन श्रेय है।

यदि इन सब स्वकर्म द्वारा जीविका-निर्वाह न हो, तो निम्नोक्त आपद्धर्मोक्त विधानानुसार चार वर्ण जीविका-निर्वाह कर सकते हैं। यदि ब्राह्मणका परिवार बड़ा हो और यथोक्त अध्यापनादि अपनी वृत्ति द्वारा जीविका न चला सकते हों, तो वे ग्रामनगररक्षादि क्षत्रियवृत्ति द्वारा जीविकार्ज्जन कर सकते हैं। क्योंकि यही उनकी आसन्न-वृत्ति है। निजवृत्ति और क्षत्रियवृत्ति इन दोनों कर्म द्वारा भी यदि जीविका न चले, तो वे कृषिवाणिज्यादि वैश्य वृत्ति द्वारा जीवनयात्रा कर सकते हैं। वैश्यवृत्ति द्वारा जीविका चलानेमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंको हिंसा-बहुल गवादि पराधीन कृषिकार्य छोड़ देना चाहिये। यदि कोई कोई कृषिजीविकाकी प्रशंसा करते भी हैं, तो भी विद्वान् इसकी निन्दा करते हैं। क्योंकि, इस उपलक्ष में हल कुदाल आदि चलानेसे भूमिस्थित कितने प्राणियों का प्राणनाश होता है। ब्राह्मण और क्षत्रियको निजवृत्ति-का असद्भाव तथा धर्मनिष्ठाका व्याघात होनेसे निषिद्ध वस्तुका वर्जन कर वैश्यके खरीद-बिक्री व्यवसायसे जीविका निर्वाह कर सकते हैं।

सब प्रकारके रस, तिल, प्रस्तर, सिद्धान्न, लवण, पशु तथा मनुष्य इन सब द्रव्योंका बेचना निषिद्ध है। कुसुम्भादि द्वारा रक्तवर्ण सूत्र-निर्मित सभी प्रकारके वस्त्र पटसन और तीसीके रेशेका बना हुआ वस्त्र तथा रक्तवर्ण नहीं होने पर भी मेषलोमके बने हुए कम्बलादि, इन सब वस्तुओंका विक्रय निषिद्ध है। जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमरस, सब प्रकारके गंधद्रव्य, क्षीर, दधि, मोम, घृत, तैल मधु, गुड़, कुश, सभी प्रकारके जंगली पशु विशेषतः दाँतवाले हाथी बिना खुर फटे हुए घोड़े, पक्षी, नील, शराब और लाह इन सब वस्तुओंका बेचना ब्राह्मणोंके लिये निषिद्ध है।

स्वयं जमीन जोत कर थोड़े ही दिनोंके मध्य विशुद्धा वस्थामें उसे बेच सकते हैं, किन्तु लाभकी आशासे कुछ दिन ठहर कर बेचना मना है। भोजन, मर्द्दन तथा दान-को छोड़ कर यदि कोई तिल विक्रय करे, तो वे पितृपुरुषों-के साथ कृमित्वको प्राप्त हो कर कुत्तेकी विष्ठामें निमग्न रहते हैं। ब्राह्मण यदि मांस, लवण और लाह आदि बेचें, तो वे पतित होते हैं, किन्तु क्रमागत तीन दिन दूध बेचनेसे वे शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं। मांसादिको छोड़ कर अन्य कोई निषिद्ध द्रव्य इच्छापूर्वक लगातार सात दिन बेचनेसे ब्राह्मण वैश्यत्वको प्राप्त होते हैं। एक प्रकारके रसद्रव्यके बदलेमें दूसरा रसद्रव्य लिया जा सकता है, किन्तु रसद्रव्यके बदलेमें नमकका बदला नहीं होता। सिद्धान्नके बदलेमें आमान्न तथा धानके बदले में तिल लिया जा सकता है, किन्तु समान परिमाणमें।

ब्राह्मणके आपत्कालमें जिस प्रकारकी जीविका बतलाई गई है, क्षत्रिय भी उसी प्रकारकी वृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करें। स्वधर्म यदि निकृष्ट हो, तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिये। परधर्म स्वधर्मसे उत्कृष्ट होने पर भी यदि कोई उसका आचरण करे, तो राजा उसे दण्ड देवें। स्वधर्म निकृष्ट होने पर भी वह अनुष्ठेय है। दूसरेके धर्म द्वारा जीवनयापन करनेसे मनुष्य उसी समय स्वजातिसे परिभ्रष्ट होते हैं।

वैश्य स्वधर्म द्वारा अपनी जीविका न चला सके,

तो वह जूठा आदि खानेके सिवा शूद्रवृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह कर सकता है, शूद्र यदि अपनी वृत्ति द्वारा पुत्र-कलत्रादिके भरणपोषणमें अक्षम हो, तो वह कारुकरादि कर्म द्वारा जीविका-निर्वाह करे, जिस कर्माचरणसे द्विज की शुश्रूषा हो सकती है, वैसा ही कारुकर्म और शिल्प-कर्म करना चाहिये।

विपन्न ब्राह्मण सभीसे दान ले सकते हैं। ब्राह्मण स्वभावतः जल और अग्निकी तरह पवित्र हैं। आपत्-कालमें ब्राह्मण यदि निन्दित व्यक्तिका याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करें, तो कोई पाप नहीं होता। भूखसे यदि वे मर रहे हों, तो उस समय वे नीच जातिका भी अन्न ग्रहण कर सकते हैं। आकाशमें जिस प्रकार पङ्क लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार उन्हें भी किसी पापकी आशङ्का नहीं रहती।

बुभुक्षित ऋषि अजीगर्त्त अपने पुत्रके प्राण लेनेको तैयार हो गये थे, तथापि क्षुत्प्रतिकार उनका उद्देश्य होनेके कारण वे पापसे लिप्त न हुए। वामदेव ऋषिने क्षुधार्त्त हो कर प्राणरक्षाके लिये कुत्तेका मांस खा लिया था, इसमें वे पापलिप्त न हुए। अतएव ब्राह्मण आपत् कालमें अतिनिन्दित काम करने पर भी पापभाजन नहीं होते।

ब्राह्मणके निन्दताध्यापन, याजन और प्रतिग्रह इन तीनोंमें प्रतिग्रह ही अति निकृष्ट है। उपनयन-संस्कार-में संस्कृतात्मा ब्राह्मणोंके याजन और अध्यापन कर्म नित्य कर्त्तव्य हैं। आपत्कालमें निकृष्ट जाति वा शेष-जन्मा शूद्रसे भी प्रतिग्रह विधेय है। ब्राह्मणके जप और होम द्वारा शूद्रादि निकृष्ट जातिका याजनाध्यापन-जनित पाप नष्ट होता है। स्ववृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाहमें अक्षम होने पर ब्राह्मण उपपातकी आदिसे शिलोञ्छवृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करें। क्योंकि असत् प्रतिग्रहसे शिल वृत्त श्रेष्ठ है और शिलवृत्तिसे उञ्छवृत्ति और भी श्रेष्ठ है। धनाभावमें अवसन्न ब्राह्मण धान्यवस्त्रादि, ताम्र और कांश्यादि-निर्मित द्रव्य क्षत्रियसे मांग सकते हैं।

जोती हुई जमीनसे विना जोती जमीनका अनाज दान करना अच्छा है। गाय, बकरे, भेड़, हिरण, धान और सिद्धान्न इनमेंसे पहले चारकी अपेक्षा पिछले दोका दान उत्तम बताया गया है। सबोंके ७ प्रकारके धनागम धर्म-संगत हैं, यथा—दाय प्राप्तधन, मित्रसे लब्ध धन, क्रय और धान्यादि वृद्धि लब्ध धन, कृषि वाणिज्यादि कर्मयोग-में लब्ध धन तथा सत्प्रतिग्रह लब्ध धन। इन सात उपायोंसे प्राप्त धन श्रेय कहा गया है। विद्या, शिल्प कार्य, सेवा, गोरक्षा, वाणिज्य, थोड़ेमें सन्तोष, भिक्षा-वृत्ति तथा सूदसे धन लगाना, ये सब जीविकाके कारण हैं। ब्राह्मण वा क्षत्रियको कभी भी सूद पर रुपया नहीं लगाना चाहिये। किन्तु धर्मकर्मार्थमें थोड़ सूद पर निकृष्टकर्माको रुपया दे सकते हैं।

विप्रसेवासे यदि शूद्रकी जीविका न चले, तो वह क्षत्रियकी सेवा, इसके अभावमें वैश्यकी सेवा करके जीविका निर्वाह कर सकता है। स्वर्ग और जीविका लाभार्थ ब्राह्मण शूद्रके आराध्य हैं। शूद्र ब्राह्मणसेवक यह विशेषणमात्र ही कृतार्थता लाभ करता है। ब्राह्मण-सेवाके अतिरिक्त शूद्रका और सभी कार्य निष्फल हैं। ब्राह्मण शूद्रभृत्यकी परिचर्य्या, सामर्थ्य, कार्यनैपुण्य तथा उसके परिवारवर्गको संख्याकी विवेचना करके वेतन स्थिर करें। ब्राह्मण आश्रित शूद्रके भक्ष्यार्थ उच्छिष्ट अन्न, परिधानार्थ जीर्ण वस्त्र, शयनार्थ जीर्ण शय्या तथा धान्यका पुलाक प्रदान करें।

लहसुन आदि अपद्रव्य खानेसे शूद्रके पाप नहीं होता। उपनयनादि संस्कार तथा अग्नि-होत्रादि यज्ञमें शूद्रको अधिकार नहीं है। किन्तु पाक-यज्ञादि कार्य निषिद्ध नहीं है। धर्मज्ञ शूद्र धर्मेच्छु हो कर ब्राह्मणादिके अनुष्ठेय पञ्च महायज्ञादि मन्त्रको त्याग कर सकता है। असूयाशून्य शूद्र सद्वृत्तानुष्ठानमें जिस भावमें प्रवृत्त होता है, उसीके अनुसार इहलोकमें मान्य और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। राजाको चाहिये, कि वे शूद्रको अर्थसञ्चय करने न दें। क्योंकि, शूद्र धन-मदसे मत्त हो कर ब्राह्मणकी अवमानना कर सकता है। इसीसे शूद्रका अर्थसञ्चय निन्दनीय है।

वर्णाश्रमवत् (सं० त्रि०) वर्णाश्रम अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वर्णाश्रम-विशिष्ट।

वर्णाश्रमिन् (सं० त्रि०) वर्णाश्रमः अस्त्यर्थे इनि। वर्णा-श्रमधर्मयुक्त।

वर्णासा—आसामके अन्तर्गत एक नदी।

वर्णार्ह (सं० पु०) वर्णमर्हतीति अर्ह-अण्। मुद्ग, मूंग।

वर्णि (सं० क्लो०) वर्ण्यते स्तूयते इति वर्ण स्तुतौ इन्। १ स्वर्ण, सोना। (पु०) २ वलि।

वर्णिक (सं० पु०) वर्णा लेख्यत्वेन सन्ति अस्येति वर्ण-ठन्। लेखक।

वर्णिकवृत्त (सं० पु०) वह वृत्त या छन्द जिसके प्रत्येक चरणके वर्णोंकी संख्या और लघु गुरुके स्थान समान हों।

वर्णिका (सं० स्त्री०) वर्णा अक्षराणि लेख्यत्वेन सन्त्यस्याः इति वर्ण-ठन्-टाप्। १ कठिनी, खड़िया। २ मसि, स्याही। ३ सोनेका पानी। ४ चन्द्रमा। ५ विलेपन।

वर्णित (सं० त्रि०) वर्ण-क्त। १ स्तुतियुक्त। पर्याय—ईलित, शस्त, पणायित, पनायित, प्रणुत, पनित, गीर्ण, अभिष्टुत, ईड़ित, स्तुत, नुत। २ जिसका वर्णन हो चुका हो, बयान किया हुआ। ३ कथित, कहा हुआ।

वर्णिन् (सं० पु०) वर्णा अक्षराणि लेख्यत्वेन सन्त्यस्येति वर्ण-इनि। १ लेखक। वर्णा नीलपीतादयः लेख्यत्वेन सन्त्यस्येति। २ चित्रकार। वर्ण (वर्णाद्ब्रह्मचारिणि। पा ५।२।१३४) इति इनि। ३ ब्रह्मचारी। (त्रि०) ४ वर्ण-विशिष्ट। वर्णोत्तरपदात्तु (धर्मशीलवर्णान्ताच। पा ५।२।१३२) इति इनि। ५ ब्राह्मण।

वर्णिनी (सं० स्त्री०) वर्णिन् ङीप्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ वनिता।

वर्णिल (सं० त्रि०) वर्ण-(लोमादि-पामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००) इति प्रशस्तार्थे इलच्। प्रशस्तवर्णविशिष्ट, वर्णयुक्त।

वर्णी (सं० पु०) वर्णिन देखो।

वर्णु (सं० पु०) वृङ् संभक्तौ (अजिवृवीभ्यो निच। उण् ३।३८) इति-णु-सच्-नित्। १ एक नदीका नाम, वन्नू, आदित्य। २ वन्नू नामक देश।

वर्णोद्दिष्ट (सं० पु०) छन्दःशास्त्रमें एक क्रिया। इसके द्वारा यह जाना जाता है, कि अमुक संख्यक वर्णवृत्तका कोई रूप कौन-सा भेद है। जो भेद दिया गया हो, उसमें लघु गुरुके ऊपर क्रमसे दूने अंक अर्थात् १, २, ४, ८ इत्यादि लिखे। फिर लघुके ऊपर जितने अंक हों, उन्हें जोड़ कर उसमें १ और जोड़ दे।'

वर्ण्य (सं० क्लो०) वर्ण ण्यत्। १ कुंकुम, केसर। (पु०) २ वनतुलसी, बबई। ३ गन्धक। ४ प्रस्तुत विषय। ५ उपमेय। (त्रि०) ६ वर्णनके योग्य। ७ जो वर्णनका विषय हो।

वर्त्तक (सं० क्लो०) वर्त्तते इति वृत-ण्वुल्। १ वर्त्तलौह, विदरी। २ बटुवा। (पु०) ३ पक्षिविशेष, नर बटेर। ४ घोड़ेका खुर। (त्रि०) ५ पूजक।

वर्त्तका (सं० स्त्री०) वर्त्तक टाप्, 'वर्त्तका शकुनौ प्राचां' इति वार्त्तिकोक्त्या-न-अत इत्वं। वर्त्तक पक्ष', बटेर।

वर्त्तकी (सं० स्त्री०) वर्त्तका देखो।

वर्त्तजन्मन् (सं० पु०) वर्त्तानि आकाशपथे जन्म यस्य। मेघ।

वर्त्तनीक्ष्ण (सं० क्लो०) रुक्मलौह, विदरी।

वर्त्तन (सं० क्लो०) वर्त्तन्तेऽनेनेति वृत करणे ल्युट्। १ वृत्ति, रोजी जीवनोपाय, व्यवसाय। २ साधारण वर्त्तुल। ३ तर्कुपीठ, चरखेकी वह लकड़ी जिसमें तकला लगा रहता है। ४ जीवन। ५ वामन। (त्रि०) ६ वर्त्तिष्णु, वर्त्तनशील। (क्लो०) ७ परिवर्त्तन, फेर-फार। ८ फेरना, घुमाना, बटना। ९ शल्यकम्पनकर्म, घावमें सलाई डाल कर हिलाना डुलाना जिससे घाव या नासूरकी गहराई और फैलाव आदिका पता लगता है। १० स्थिति, ठहराव। ११ स्थापन, रखना। १२ व्यवहार, बरताव। १३ कोआ। १४ बरलोई, बटुला। १५ पेषण, सिलवट्टेसे पीसना, बटना। १६ पात्र, बरतन। १७ वर्त्तमान।

वर्त्तना (हिं० क्रि०) बरतना देखो।

वर्त्तनि (सं० पु०) १ पूर्वदेश, पूर्वदिशा। २ बाट, रास्ता। ३ शुद्ध रागका एक भेद।

वर्त्तनिन् (सं० त्रि०) पथिक, बटोही।

वर्त्तनी (सं० स्त्री०) वर्त्तनि कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। १ पेषण, बटनेकी क्रिया, पिसाई। २ बाट, रास्ता।

वर्त्तनीय (सं० त्रि०) वर्त्तनयोग्य।

वर्त्तमान (सं० पु०) वर्त्तते इति वृत शानच्। १ प्रयोगका अधिकरणीभूत काल, व्याकरणमें क्रियाके तीन कालोंमेंसे एक। इससे यह सूचित होता है, कि क्रिया अभी चली

चलती है, समाप्त नहीं हुई है। यह वर्त्तमान चार प्रकारका है, प्रवृत्तोपरत, वृत्ताविरत, नित्यप्रवृत्त और सामीप्य।

इन चार प्रकारके वर्त्तमानमेंसे सामीप्य दो प्रकारका होता है,—भूतसामीप्य और भविष्यत्सामीप्य। इन चारों वर्त्तमानका उदाहरण, यथा—'मांसं न खादति' इस वाक्यमें 'प्रवृत्तोपरता' पाई जाती है अर्थात् वह जन्मसे ही मांस नहीं खाता। 'इह कुमाराः क्रीड़न्ति' इस वाक्यसे यह मालूम होता है, कि चाहे कहनेके समय लड़के न खेलते रहे हों, पर उसके पूर्व कई बार खेल चुके हैं और आगे भी बराबर खेलेंगे। इसलिये इसे वृत्ताविरत वर्त्तमान कहते हैं। 'पर्वतास्तिष्ठन्ति' इस वाक्यसे पर्वतों पर भूत और भविष्यत्कालमें रहनेका सम्बन्ध सूचित होता है, अतः यह नित्यप्रवृत्त वर्त्तमान है।

'कदा आगतोऽसि इति प्रश्ने अयमेवेदादेवं समानत्वात् एषोऽहं आगच्छामि इति आगतोऽपि वदति' अर्थात् कब आये हो? ऐसा प्रश्न करने पर आया हुआ व्यक्ति 'यहा मैं आया' उत्तर देता है। यहां यद्यपि उसका आना समाप्त हो गया है, तो भी उसकी मौजूदगी रहनेके कारण यहां भूतसामीप्य वर्त्तमान हुआ। 'कदा गमिष्यसि इति प्रश्ने एषोऽहं गच्छामि इति गमनक्रियमाणोऽप्योऽपि वदति' कब जाओगे? यह प्रश्न करने पर जानेवाला व्यक्ति 'अभी ही जाता हूं' यह उत्तर देता है। यहां उसका जाना शुरू न होने पर भी भविष्यत्की समीपताके कारण यहां भविष्यत्सामीप्य वर्त्तमान हुआ। यही चार प्रकारका वर्त्तमान है। धातु और काल शब्द देखो।

वर्त्तमान कालमें लट् विभक्ति होता है। २ वृत्तान्त, समाचार। ३ चलता व्यवहार। (त्रि०) ४ चलता हुआ, जो जारी हो, जो चल रहा हो। ५ विद्यमान, उपस्थित, मौजूद। ६ साक्षात्। ७ आधुनिक, हालका।

वर्त्तमानता (सं० स्त्री०) वर्त्तमानस्य भावः तल्-टाप्। वर्त्तमानत्व, मौजूदगी।

वर्त्तरूक (सं० पु०) वर्त्तो वर्त्तनं राति गृह्णातीति वा बाहुलकात् ऊक। १ एक नदीका नाम। २ काकनीड़, कौवेका घोसला। ३ द्वारपाल।

वर्त्तलोह (सं० क्ली०) वर्त्तते इति वृत् अच्, ततः कर्मधारयः। लोहविशेष, एक प्रकारका लोहा। पर्याय—वर्त्तलोतीक्ष्ण, वर्त्तक, लोहसङ्कर, नीलक, नीललोह, नीलज, वर्त्तलोहक। वैद्यकमें शोधे हुए वर्त्तलोहको कफ, दाह और पित्तका नाशक और उसके स्वादको कटु, मधुर और तिक्त लिखा है। यह वही लोहा है जिसके विदरी बरतन बनते हैं।

वर्त्तस् (सं० क्ली०) पक्ष्मपंक्ति। "द्यावा पृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं" (शुक्लयजु० २५।१) 'वर्त्ता पंक्तिः ताभ्यां'। (महीधर)

वर्त्ति (सं० स्त्री०) वर्त्ततेऽनयेति वृत (हृपिषि रुहि वृतीति। उण् ४।११९) इति इन्। १ दीपदशा, बत्ती। २ भेषजनिर्माण, औषध बनाना। ३ अंजन। ४ लेख। ५ वह बत्ती जो वैद्य घावमें देता है। ६ अनुलेपन, उबटन। ७ गोली, बटी। ८ दीप, दीया।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि रीठा, शंख, सैन्धव, त्रूषण, वच, फेन, रसाञ्जन, मधु, विडङ्ग और मनःशिला, इन सब द्रव्योंकी वर्त्ति कास, तिमिर और परल रोगका नाश करती है। (गरुड़पु० १९८ अ०)

भावप्रकाशमें रोपणी और स्नेहनी वर्त्तिका विषय यों है—

रोपणीवर्त्ति—तिलपुष्प ८०, पीपर ६०, जातीफूल ५० तथा मिर्च १६ इन सबोंको जलमें अच्छी तरह पीस कर वर्त्ति बनावे और इस वर्त्तिसे आंखमें अंजन लगावे। इससे कास, तिमिर, अर्जन शुक्र और मांसवृद्धि नष्ट होती है। इसकी मात्रा उड़द भर है।

स्नेहनीवर्त्ति—आंवलेका बीज १ तोला, बहेड़ेका ३ तोला और हरीतकीका ३ तोला, इन सबोंको जलमें पीस कर उड़द भरकी वर्त्ति बनावे और उससे आंखमें अंजन करे। ऐसा करनेसे अश्रुस्राव और वातरक्तसे जो पीड़ा होती है, उसका नाश होता है। (भावप्र० द्वितीय० ६।०)

वर्त्तिक (सं० पु०) पक्षिविशेष, बटेर। पर्याय—वार्त्तिक, वर्त्ती, गाञ्जिकाय। इसके मांसका गुण निर्दोष, वीर्य तथा पुष्टिवर्द्धक, मधुर, रूक्ष, कफ और वायुनाशक माना गया है। (राजनि०)

वर्त्तिका (सं० स्त्री०) वर्त्तनि वर्त्तते इत्यच्, वर्त्त स्वार्थे क-टाप्। १ वर्त्तकी, बटेर। २ अजशृङ्गी। वर्त्ति स्वार्थे कन्-टाप्। ३ वर्त्ति, बत्ती। कालिकापुराणमें लिखा है, कि वर्त्ति पांच प्रकारकी होती है,—पद्मसूत्रभव, दर्भगर्भसूत्रभव, शाणज, बादरी और फलकोषोद्भव। इन पाँचों प्रकारके सूतेसे दीयेकी बत्ती बनानी होती है और इससे पूजाके समय देवताओंके आरती उतारनेकी विधि है। (कालिकापुराण ७८ अ०) ४ पिष्टकविशेष, पीठा। ५ शलाका, सलाई।

वर्त्तिकाविन्दु (सं० पु०) हीरेका एक दोष। इस प्रकारके हीरेको धारण करनेसे भय उत्पन्न होता है।

वर्त्तित (सं० त्रि०) वृ णिच्-क्त। १ सम्पादित, निष्पादित, किया हुआ। २ कृतसम्पन्न, दुरुस्त किया हुआ। ३ चलाया हुआ, जारी किया हुआ।

वर्त्तितव्य (सं० त्रि०) वृत-तव्य। वर्त्तनयोग्य, स्थितिके लायक।

वर्त्तिन् (सं० त्रि०) वृत इन्। १ वर्त्तनशील, बरतनेयोग्य। २ स्थित रहनेवाला।

वर्त्तिर (सं० पु०) बटेर।

वर्त्तिष्णु (सं० त्रि०) वर्त्तते इति वृत (अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच्। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। वर्त्तनशील, बरतनेयोग्य। पर्याय—वर्त्तन, वर्त्तो।

वर्त्तिष्यमाण (सं० त्रि०) वृत भविष्यति स्यमानप्रत्ययः। भविष्यत्कालादि, वर्त्तमान प्रागभावाश्रय।

वर्त्तिस् (सं० क्ली०) गृह, घर। "त्रिवर्त्तियातं चिरनुव्रते" (ऋक् १।३४।४) 'वर्त्तिस वर्त्ततेऽत्रेति वर्त्तिर्गृह" (सायण)

वर्त्ती (सं० स्त्री०) वर्त्ति-कृदिकारादिति ङीष्। १ वर्त्ति, बत्ती। २ शलाका, सलाई। (त्रि०) ३ वर्त्तिन देखो।

वर्त्तीर (सं० पु०) बटेर।

वर्त्तुल (सं० त्रि०) वर्त्तते इति वृत बाहुलकादुलच्। १ वृत्ताकार, गोल। पर्याय—निस्तल, वृत्त, मण्डलायित। २ सम्पूर्ण गर्भवृत्त। (क्ली०) ३ गृञ्जन, गाजर। ४ मटर। ५ गुण्डतृण। ६ टङ्कण, सुहागा। ७ मणिभेद।

वर्त्तुला (सं० स्त्री०) वर्त्तुल-टाप्। तर्कुपाटी, टेकुआ

वर्त्तुली (सं० स्त्री०) वर्त्तुल गौरादित्वात् ङीष्। गजपिप्पली।

वर्त्म (सं० पु०) १ मार्ग, पथ। २ गाड़ीके पहियेका मार्ग, लीक। ३ नेत्रच्छद, आँखकी पलक। ४ आधार। ५ किनारा, औंट, बारी।

वर्त्मक (सं० त्रि०) १ वर्त्मयुक्त। २ नेत्रपक्ष्मयुक्त।

वर्त्मकर्द्दम (सं० पु०) नेत्रवर्त्मगत रोगविशेष, आँखका एक रोग। इसमे पित्त और रक्तके प्रकोपसे आँखोंमें कीचड़ भरा रहता है।

वर्त्मकर्मन् (सं० क्ली०) पथ या रास्ता बतानेका काम। (Enginering)

वर्त्मद (सं० पु०) अथर्व्ववेदकी एक शाखाका नाम।

वर्त्मन् (सं० क्ली०) वर्त्ततेऽनेनास्मिन् वेति वृत-मनिन्। वर्त्म देखो।

वर्त्मनि (सं० स्त्री०) वर्त्तते इति वृत (वृतेश्च। उण् २।१०७) इति अनि-चकारात् मुडागमोऽप्यत्रेति केचित्। पन्था, राह।

वर्त्मबन्ध (सं० पु०) नेत्रपक्ष्मगत रोग, आँखका एक रोग। इसमें पलकमें सूजन हो जाती है, खुजली तथा पीड़ा होती है और आंख नहीं खुलती।

वर्त्ममाक्षिक (सं० पु०) स्वर्णमाक्षिक, सोनामाखी।

वर्त्मरोग (सं० पु०) वर्त्मनो रोगः। नेत्रपक्ष्मगतरोग, आँखका एक रोग। इसमें पलकोंमें विकार उत्पन्न हो जाता है और आँखोंको खोलनेसे बड़ी पीड़ा होती है। इस रोगके २१ भेद माने गये हैं। यथा—उत्सङ्गिनी, कुम्भिका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, वर्त्मार्श, शुष्कार्श, अञ्जनदूषका, बहुलवर्त्म, वर्त्मबन्धक, क्लिष्टवर्त्म, वर्त्मकर्द्दम, श्यावर्त्म, प्रक्लिन्नवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, वर्त्मार्बुद, निमेष, शोणितार्श, लगण, विषवर्त्म और कुञ्चन।

इसके लक्षण—त्रिदोषका प्रकोप होनेसे वर्त्मका मध्यस्थल कण्डूयुक्त, बाहर रक्तवर्ण तथा अभ्यन्तर मुख विशिष्ट पोड़का उत्पन्न होनेसे उसे उत्सङ्गिनी कहते हैं। जिस नेत्ररोगमें पलकोंके भीतर अनारको तरह पीड़का उत्पन्न होती है और उससे मवाद निकलता है तथा पुनः फूल उठता है, उसीका नाम कुम्भिका है।

कण्डू और स्रावयुक्त, गुरु और वेदनाविशिष्ट लाल

सरसोंके आकारकी पोड़का उत्पन्न होनेसे वह पोथकी कहलाता है।

पलकके भोतर छोटी छोटी फुंसियां निकल आनेसे वह वर्त्मशर्करा कहलाता है।

ककड़ोके बीजके समान नुकीला तेज अथवा अल्प-वेदनायुक्त पीड़का उत्पन्न होनेसे उसे वर्त्मार्श कहते हैं। पलकोंके अन्दर मांसकी वृद्धि होनेसे शुष्कार्श कहलाता है। पलकोंमें जब दाह और सूई गड़नेके समान वेदनायुक्त, कोमल और अल्पवेदनायुक्त पोली पीड़का उत्पन्न होती है, तब उसे दूपिका कहते हैं।

समूची पलकों पर फुंसियोंके होनेसे वह वहुलवर्त्म कहलाता है। वर्त्मरोगमें दोनों पलकोंमें सूजन हो आती है, खुजली तथा पीड़ा होती है और आँख नहीं खुलती। दोनों वर्त्म अल्पवेदनायुक्त और ताम्रवर्ण हो कर अकस्मात् लाल हो जाते हैं, उसे क्लिन्नवर्त्म कहते हैं। वर्त्म कर्द्दममें पित्त और रक्तके प्रकोपसे आँखोंमें कीचड़ भरा रहता है। पलकके बाहर और भीतर कुण्डुयुक्त, श्यामवर्ण अल्पवेदनाविशिष्ट अथच क्लिन्नभावापन्न शोथ होनेसे श्याववर्त्म; बाहरमें अल्प वेदनायुक्त शोथ हो कर उसका उपान्त अत्यन्त क्लिन्न होनेसे प्रक्लिन्नवर्त्म; दोनों पलक पकती नहीं अथच साफ नहीं करनेसे वे आपसमें सट जाती हैं फिर साफ करनेसे खुलती हैं, उसे अक्लिन्नवर्त्म; जिस नेत्ररोगमें वेदना हो या वेदनाहीन हो, वर्त्मसन्धिविश्लिष्ट-प्रयुक्त निमेष और उन्मेषरहित हो एवं संकोचन-असक्तता हेतु आँखें नहीं मुंदी जाती हों, उसे वातहतवर्त्म; वर्त्मके भीतर विषम किञ्चित् वेदनायुक्त थोड़ा रक्तवर्ण अथच अपाकी ग्रन्थिकी तरह होनेसे उसे वर्त्मार्बुद; जिस नेत्ररोगमें वर्त्म और शुक्ल सन्धिस्थित मिलन उन्मीलन-कारी शिराओंमें कुपित वायु घुस कर दोनों पलकोंको चालन करती है, उसे निमेष; कुपित रक्त द्वारा पलकोंमें लाल कोमल मांसकी वृद्धि होनेसे उसे शोणितार्श, वर्त्मका ऊपरी भाग कठिन, स्थूल, कुण्डुयुक्त, पिच्छिल अथच अपाकी बदरी परिमाण ग्रन्थि उत्पन्न होनेसे लगण; जिस नेत्ररोगमें त्रिदोषका प्रकोप होनेके कारण पलकोंमें सूजन हो आती और उसमें बहुतसे छिद्र हो जाते हैं तथा उस छिद्रसे जलके समान बहुत मवाद निकलता है, उसे विषवर्त्म तथा वातादि दोषोंके बिगड़ जानेसे जब वह दोनों पलकोंको सिमटा देते हैं, तब रोगीकी दर्शन-शक्ति क्षीण हो जाती है इस रोगको कुञ्चन कहते हैं। यही इक्कीस प्रकारका वर्त्मरोग है।

(भावप्रकाश नेत्ररोगाधि०) नेत्ररोग देखो।

२ घोड़ेका नेत्रवर्त्मगत रोग। (जयदत्त ३० अ०)

वर्त्मविबन्धक (सं० पु०) वर्त्मरोगविशेष, आंखका एक रोग। वर्त्मरोग देखो।

वर्त्मशर्करा (सं० स्त्री०) वर्त्मरोगविशेष, आंखका एक रोग। इसमें पलकोंमें छोटी छोटी फुंसियोंके सहित एक बड़ी और कड़ी फुंसी हो जाती है।

वर्त्मस्था (सं० स्त्री०) वर्त्मरोग, आंखोंका एक रोग।

वर्त्मायास (सं० पु०) पथका क्लेश।

वर्त्मार्बुद (सं० पु०) आंखोंका एक रोग। इसमें पलकके अन्दर एक गांठ उत्पन्न हो जाती है। यह टेढ़ी और लाल रंगकी होती है और इसमें पीड़ा नहीं होती।

वर्त्मावरोध (सं० पु०) वर्त्मरोग।

वर्त्तृ (सं० त्रि०) १ निवारयिता, निवारण करनेवाला। २ प्रेरक, भेजनेवाला।

वर्त्तृ (सं० त्रि०) १ निवारयिता, निवारण करनेवाला। २ रक्षणशील, रक्षा करनेवाला। (क्ली०) ३ प्रणालिका।

वर्दी (सं० स्त्री०) १ मूंजकी पत्ती जो गजके ढीले होने पर चरखेमें लगाई जाती है। २ वरदी देखो।

वर्द्ध (सं० क्ली०) वर्द्धयति पूरयति वर्द्ध-अच्। १ सीसक, सीसा। (पु०) वृध-अच्। २ ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी। ३ पूर्त्ति, पूरण। ४ तराशना, काटना।

वर्द्धक (सं० त्रि०) वर्द्धते इति वृध-ण्वुल्। १ पूरक, बढ़ानेवाला। २ छेदक, काटनेवाला।

वर्द्धकि (सं० पु०) वर्द्धते छिनत्तीति वर्द्ध-अच्, वर्द्धं कपतोति कप हिंसायां बाहुलकात् डि। त्वष्टा, बढ़ई, लकड़ीका काम करनेवाला।

वर्द्धकिन (सं० पु०) वर्द्धको वर्द्धोऽस्ति अस्येति वर्द्धक-इनि। वर्णसङ्कर जातिविशेष, बढ़ई। पर्याय—त्वष्टा, वर्द्धकि, तक्षा, सूत्रधार, रथकार, रथकर, काष्ठतट्, काष्ठतक्षक। (शब्दरत्ना०)

"अरभंगे वलभेदो नेम्या नाशो वलस्य विज्ञेयः।
अर्थक्षयोऽक्षभंगे तथानिभंगे च वर्द्धकिनः॥"

(वृहत्स० ४३।३२)

वर्त्तमान समय वढ़ई, वर्हि, वर्द्धि, वर्द्धिक वा वर्हि नामसे विख्यात हैं। उत्तर-पश्चिममें ये लोग अपनेको विश्वकर्माकी सन्तान वताते हैं। इस समय प्रकृत वर्द्धकी जाति नहीं देखी जाती। मध्यवृत्त कई श्रेणियोंके लोगोंके वढ़ईका काम करनेसे इस नामकी एक स्वतन्त्र श्रेणी पैदा हो गई है।

विहारके वर्द्धकी लोग छः दलमें विभक्त हैं। वे लोग परस्पर आदान-प्रदान नहीं करते। इनमें कनौजिया दलके लोग काठका काम करते हैं एवं मगहिया लोहे तथा काठकी खिड़की, किवाड़ प्रभृति तैयार करते हैं। भागलपुरमें इस जातिका लोहार नामक एक दल है। वे लोग प्रकृत लोहार जातिसे पृथक् हैं। कमारकल्ला दलके वर्द्धकी लोग काठके पुतले नचा कर वा तमाशा दिखा कर अपनी जीविका चलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतके हिन्दू तथा मुसलमान वढ़ई जातिके मध्य कई शाखाएं हैं। उनमें हिन्दू विभागके वीच ७६ दल हैं। उनमें निम्नोक्त दल स्थानभेदसे विख्यात हैं।

शहारनपुर—वन्दरीया, ढोली, मुलतानी, नागर, तरलोइया; मुजफ्फरनगर—ढलवाल, लोटा; मेरठ—जंघार; वुलन्दशहर—भाल; अलीगढ़—चौहान; मथुरा—वान्धन, सोशनिया; आगरा—नागर, जंघार तथा उपरौत; फर्रुखावाद—पारीतिया; मैनपुर—उमरिया; एटा—अगवरिया, वरमनिया; विशारी, जलेश्वरिया; वलिया—गोकुलवंशी; वस्ती जिलेमें—दक्षिणात्य, सरवरिया, सरयूपारी; गोण्डा—कैराती वा खाती, लोहार; वढ़ई, कोकशवंशी, तथा सन्दी; वारावंकी—जैसवार; मिर्जापुर—कोकशवंशी, मगधिया वा मगहिया, पूर्व्विया, उत्तरिया और क्षत्री वा खाटी दहमान, मैथुरिया, लहोरी, कोकश इत्यादि। इनके अतिरिक्त महूर, ढाँक, ओझा, वामन वढ़ई तथा चमार वढ़ई प्रभृति दल देखे जाते हैं। वाराणसी विभागमें जनेऊधारी नामक एक दल है। वे लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं और मद्य, मांस प्रभृति अखाद्य पदार्थोंको छूते तक नहीं। ओझा दलके लोग जनेऊ पहनते हैं।

सेतुवन्ध-रामेश्वर नामक वर्द्धकी लोग केवल काठको देवमूर्त्ति वना कर वेचते हैं। जातीय व्यवसायमें उच्च स्थानके अधिकारी होने पर भी समाजके मध्य भिक्षुकके नामसे नीच श्रेणीमें गिने जाते हैं। खाटी लोग सिर्फ गाड़ीके पहिये वनाते हैं एवं दिल्लीवासी कोकश लोग टेविल, कुर्सी प्रभृति तैयार करते हैं। ढाँक, उकाट, दिभान तथा जंघार, राजपूत जातिकी एक दूसरी शाखा गिनी जाती है। चुनिआस, कुला तथा कुंदा प्रभृति पर्वतवासी वढ़ई लोग डोम जातिके समान है।

मगहिया जातिके अन्दर ३से ५ वर्षके भीतर ही वालिकाओंका विवाह हो जाता है। किन्तु उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें वालिकाका ७से ११ वर्षके अन्दर एवं वालकका ६से १३ वर्षके मध्य विवाह हो जाता है। उनमें धनियोंके यहां 'चारहौवा' प्रथासे, निर्धनोंके यहां 'दोला' प्रथासे एवं 'अदल वदल' तथा सगाईकी प्रथासे विवाह होता है। इस समाजमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है। विधवा स्त्रियां देवरके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तिको द्वितीय वार पतिरूपसे ग्रहण कर सकती हैं। स्त्रियोंके आचरण भ्रष्ट होने पर समाज उन्हें जातिके वाहर कर देते हैं। यदि वे इस समाजदण्डके वाद पुनः धर्म तथा सम्मानकी रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करती हैं, तो लोग उन्हें फिर समाजमें स्थान देते हैं। समाजमें मिल जानेके वाद वे स्त्रियां सगाईकी रीतिसे फिर विवाह कर सकती हैं। पुरुषोंके पापोंका प्रायश्चित्त ब्राह्मण-भोजन करानेसे, अयोध्यातीर्थ जानेसे अथवा गङ्गा वा सरयूमें स्नान करनेसे होता है।

वे लोग वीराचारी शैव हैं। ये मद्य मांस नहीं खाते। पांचपीर, महावीर, देवी, दुल्हादेव, विवियादेव, विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंकी पूजा वे लोग वड़ी भक्तिसे करते हैं। वे लोग चिताके अन्दरकी वची खुची मृतककी हड्डियां वटोर कर गङ्गा वा और किसी नदीमें फेंक आते हैं। साधु पुरुषोंके समाधिस्थानों पर वे लोग महालयाके दिन जल चढ़ाते हैं तथा त्रयोदशी तिथिको उन स्थानों

पर चावल तथा दूध चढ़ा कर ब्राह्मणोंको कुछ खाद्य पदार्थ दान करते हैं। वसन्त तथा विसूचिका रोगसे मृत्यु होने पर वे लोग शवको गाड़ते हैं अथवा नदीके जलमें बहा देते हैं। विदेशमें किसी आत्मीय वा स्वजनकी मृत्यु होने पर वे लोग कुशपुत्तलिका बना कर उसे ही जलाते हैं।

बिहारके वढई लोग जलाचरणीय हैं। ये लोग उग्र-महाराज, वन्दी, गोरैइया तथा पांचपीर प्रभृति ग्राम्य-देवताओंको पूजा करते हैं। ग्वाला, कोइरी, हजाम इत्यादिकी तरह वे लोग भी समाजमें बराबर आसन प्राप्त करते हैं। काठके कामके अलावे वे लोग खेती-बारी भी करते हैं।

वर्द्धन (सं० लि०) वर्द्धयतीति वृध नन्द्यादित्वात् ल्यु, यद्वा वर्द्धते तच्छील इति वृध-पूर्त्तौ (अनुदात्तेतश्चेति। पा ३।२।१४९) इति युच्। १ वर्द्धिष्णु, बढ़नेवाला। २ वृद्धि, उन्नति। (पु०) ३ बढ़ाना। ४ छेदन, काटना, छीलना, तराशना। ५ पूरण, पूर्त्ति।

वर्द्धनकोट (वर्द्धनकुटी)—बगुड़ा जिलान्तर्गत एक जमीं-दारी। यह अक्षा० २५° ८´ २५´´ उ० तथा देशा० ८९° २८´ पू०के मध्य गोविन्दपुरके निकट करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। अभी यह राजवाटी नामसे विख्यात है। कोई कहते हैं, कि यहां एक समय प्राचीन पौण्ड्र-वर्द्धन राज्यकी राजधानी थी। संस्कृत भविष्यब्रह्मखण्ड-के मतसे वर्द्धनकोट निवृत्ति देशके अन्तर्गत है। यहां प्राचीन राजवाड़ीका खंडहर दिखाई पड़ता है। इस समय भी वर्द्धनकोटमें एक वारेन्द्र कायस्थ राजवंश विद्यमान हैं। एक समय सुविस्तीर्ण वर्द्धनकुटीराज्य जिनके अधिकारमें था, जिन्हें लाखसे अधिक रु० राजस्व देना पड़ता था, आज उनकी अवस्था बड़ी ही सोचनीय हो गई है, दो सौ रुपयेसे अधिक राजस्व देना नहीं पड़ता।

वर्द्धनगढ़—१ बम्बई प्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोटेगां और खटाव उपविभागकी सीमाके बीच महादेव शैलमालाकी एक शाखाके ऊपर सातारा शहरसे १७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

खटाव या पूर्व हो कर एक कुञ्ज होता हुआ इस गढ़ पर चढ़ना होता है। इसके समीप हो कर सातारा पुरन्दर रास्ता चला गया है। इस रास्तेसे दो सौ गज दूर पर एक प्राचीन सरोवर है।

नवजित राज्यकी पूर्वी सीमाकी रक्षा करनेके लिये १७६३ ई०में महाराष्ट्र केशरी शिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था। १८०० ई०में महादजी सिन्दियाने २५०० सेना ले कर प्रतिनिधिसे यह दुर्ग छीन लिया। इस समय सिन्दियाकी बहुत सर्णोवत घोड़पड़ेकी स्त्रीने कुछ अधिक उपद्रव न मचाया। १८०३ ई०में दुर्गाध्यक्ष बलवन्त राव वकसीने यहां आ कर जेसाई तिरन्दीके साथ लड़ाई छेड़ दी। १८०५ ई०में फतेसिंहमानने दुर्ग पर आक्रमण किया और साथमें बहुत घोड़े ले गये। उनके फेके हुए गोलकका चिह्न आज भी दुर्गके फाटककी छत पर दिखाई पड़ता है।

१८०६ ई०में वसन्तगढ़की लड़ाईके बाद बापू गोखले पर दुर्ग सौंपा गया। उन्होंने १८११ ई० तक उसकी देखरेख की, पीछे पेशवाने उसका भार अपने हाथ लिया। १८१८ ई०में विना किसी झंझटके ही यह दुर्भेद्य दुर्ग वृटिश-सरकारके मातहतमें चला गया।

आज कल दुर्गकी अवस्था बड़ी ही खराब हो गई है। इसके अधिकांश भवन ही खंडहरोंमें परिणत हो गये हैं।

२ सातारा जिलेमें महादेव शैलमालाके पूर्वांशमें उन्नत एक शाखा। यह खटाव मीलसे चन्दनवन्दन-शृङ्ग पर्यन्त करीब १६ मील विस्तृत है। इस विस्तृत शैलमालाके ऊपर उत्तरमें वर्द्धनगढ़, कराढ़के निकट सदाशिवगढ़ तथा सदाशिवगढ़से १२ मील दक्षिणमें मछिन्द्रगढ़ अवस्थित है।

वर्द्धनसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

वर्द्धनिका (सं० स्त्री०) वह पात्र वा बरतन जिसमें यज्ञादिका पवित्र जल रखा जाता है।

वर्द्धनी (सं० स्त्री०) १ जलपात्रविशेष, जल रखनेका एक बरतन। २ सम्मार्जनी, झाड़ू। ३ सनाल पात्रविशेष, कमण्डलु।

वर्द्धनीय (सं० लि०) वर्द्ध-अनीयर्। वर्द्धनयोग्य, बढ़ानेके लायक।

"ज्ञातयो वर्द्धनीयास्तैर्य इच्छत्यात्मनः शुभम्।"

(उद्योगप०)

वर्द्धमान (सं० पु०) वर्द्धते इति वृध-वृद्धौ शानच्। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़। २ पशुभेद। ३ शराव। ४ विष्णु। ५ जिनविशेष, पर्याय—वीर, चरमतीर्थकृत, महावीर, देवार्य, ज्ञातनन्दन। महावीर देखो। ६ धनी मनुष्यों के घर। वृहत्संहितामें लिखा है, कि इस घरका दरवाजा दक्षिणकी ओर नहीं बनाना चाहिये। ७ भद्राश्ववर्णके अन्तर्गत कुलपर्वतविशेष। भद्राश्ववर्णके सात कुलपर्वत हैं, 'जिनमेंसे वर्द्धमान' सातवाँ कुलपर्वत है। ८ मिट्टीका प्याला, सकोरा। ९ एक वर्णवृत्त। इसके चारों चरणोंमें वर्णोंकी संख्या भिन्न होती है अर्थात् १४, १३, १८ और १५। (त्रि०) १० वृद्धिविशिष्ट, वर्द्धनशील, बढ़नेवाला। ११ बढ़ता हुआ, जो बढ़ता जा जा रहा हो।

वर्द्धमान—बंगालके छोटा लाटके शासनाधीन एक विभाग, यह एक कमिश्नरके अधीन परिचालित होता है। यह अक्षा० २१° ३६' से ले कर २४° ३५' उ० तथा देशा० ८६° ३३' से ले कर ८८° ३०' पू० तक विस्तृत है। वर्द्धमान, हुगली, हवड़ा, मेदिनीपुर, बांकुड़ा और वीरभूम जिलेको ले कर यह विभाग गठित हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर संथाल परगना और मुर्शिदाबाद, पूर्वमें नदीया और २४ परगना जिला या गंगानदी, दक्षिणमें बङ्गोपसागर और बालेश्वर जिला तथा पश्चिममें मयूरभञ्ज राज्य एवं सिंहभूम और मानभूम जिले हैं। इस विभागमें २७ शहर और २४८३६ गाँव लगते हैं।

वर्द्धमान—बंगालके अन्तर्गत एक जिला। यह लाटकी देखरेखमें है। यह अक्षा० २२° ५६' से ले कर २३° ५३' उ० तथा देशा० ८६° ४८' से ले कर ८८° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६८९ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तरमें वीरभूम, सन्थाल परगना और मुर्शिदाबाद, पूर्वमें भागीरथी तीरवर्त्ती नदीया जिला, दक्षिणमें हुगली, मेदिनीपुर और बांकुड़ा जिला एवं पश्चिममें मानभूम है। जनसंख्या १५३२४७५ है।

इस जिलेकी भूमि प्रायः सर्वत्र ही समतल है, केवल संथाल परगनाके समीपवर्त्ती उत्तर-पश्चिम कोणांश क्रमोच्च निम्न पार्व्वत्य ढालू भूमिसे तथा जंगलोंसे पूर्ण है। इस वनभागमें भेकड़े, चीते तथा अन्यान्य हिंस्र जन्तुओंका वास है। दूसरे दूसरे स्थान श्यामल शस्यक्षेत्रोंसे परिपूर्ण हैं। बीच बीचमें ताल, आम्र, कदली तथा बाँसवन समाच्छन्न बड़े बड़े ग्राम, प्रकृतिको निर्ज्जनताको विदूरित कर जनकोलाहलसे अपने अपने समीपवर्त्ती स्थानोंको परिपूर्ण करते हैं। किसी किसी स्थानसे हो कर धलकिशोर वा दारिकेश्वर, दामोदर, अजय, खारी, बाँका प्रभृति नदियाँ मन्द मन्द चलती, इतराती, इठलाती स्वच्छसलिला भागीरथीसे आ मिली हैं। इनके अतिरिक्त बराकर नदी इस जिलेके उत्तरपश्चिमांशमें दामोदरनदसे आ मिली है, एडेन खाई दामोदर तथा बाँकाको मिलाती है। दक्षिणमें 'काना' नदी प्रवाहित है।

इस तरहसे नदीमालासमाच्छन्न होने एवं विस्तीर्ण श्यामल प्रान्तरके बीच बीचमें तालवृक्षपरिशोभित दिग्घियोंके रहनेके कारण यहां खेती करनेमें बड़ी सुविधा होती है। इन सब नदियोंके द्वारा कालना, काँटोया, दाँईहाट, भावसिंह, मिल्लापुर, उधणपुर प्रभृति गंगातीरवर्त्ती प्रसिद्ध नगरोंमें व्यापार होता है। इन सब बन्दरगाहों द्वारा लवण, वस्त्र तथा पाटके व्यवसाय ही अधिकतर होते हैं। रानीगंज उपविभागमें कोयला, लोहा, पत्थरका चूना प्रभृति यथेष्ट पाया जाता है।

रानीगंज और कोयला देखो।

पौराणिक।

खृष्टीय १६ वीं शताब्दीमें लिखे गये ब्रह्मखंड नामक संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें लिखा है—

वर्द्धमान मंडलका विस्तार २० योजन है। यहां चारों वर्णोंके लोग खेती करते हैं। कलियुगके ४४०० वर्ष बीत जाने पर दामोदरके निकट हेमसिंह नामक एक प्रबल पराक्रान्त राजा होंगे, उनके सात राजमहल होंगे। इनके पुत्रका नाम वीरसिंह होगा। ये अपने बाहुबलसे ताम्रलिप्त, कर्णदुर्ग, वरदाभूमि, सुह्मदेश तथा वीरदेश निजायत्त करेंगे। इस वीरसिंहके चार पुत्र और विद्या नामक एक कन्या होगी। कन्या प्रतिज्ञा करेगी कि, जो पुरुष उसे शास्त्रार्थमें परास्त करेगा, उसीके साथ वह

विवाह करेगी। इस संवादके कांचीपुर पहुंचने पर वहांके राजा गुणसिन्धुके पुत्र सुन्दर वर्द्धमान आवेंगे। वे दामोदरके तीर एक मालीके घर आश्रय लेंगे। कुटनी मालिनकी सहायतासे तपोबलसे एक सुरंग खोद कर वे विद्याको हरण करेंगे। केवल कालीदेवीके प्रसादसे सुन्दर वहांसे सुरक्षित हो घर लौटेंगे। गौड़ादिके लोग उसी विद्यासुन्दरके चरित्रका गान करेंगे। भ०ब्रह्मखंडमें लिखी हुई कहानीसे ऐसा जान पड़ता है कि, खृष्टीय १६-वीं शताब्दीसे पहले ही विद्यासुन्दरके गान प्रचलित थे। उस समय भी वर्त्तमान राजवंशका अभ्युदय नहीं हुआ था।

ब्रह्मखंडकी तरह प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ दिग्विजय-प्रकाशमें भी हम लोग विद्यासुन्दर तथा वर्द्धमानका विवरण इस तरह पाते हैं।

अजयनदके दक्षिण, शिलावतीके उत्तरकी ओर गंगाके पश्चिम एवं दारिकेशीके पूर्व एक अत्यन्त सुन्दर साधारणभोग्य भूभाग है। हे राजन्! इस भूभागका नाम वर्द्धमान है। इस वर्द्धमान देशसे हो कर कितनी ही नदनदियां प्रवाहित होती हैं। इसकी लम्बाई ११ योजन एवं चौड़ाई ८ योजन है। इस देशके मध्य हो कर दामोदर नदी प्रवाहित होती है। इसके पूर्वकी ओर जितनी नदियां हैं, उनमें मुंडेश्वर, बकुला तथा सरस्वती ये तीन प्रधान हैं। इनके अति रिक्त इसके दक्षिण-की ओर अनेकों नदियाँ वहती हैं। तृणधान्यादि-भेदसे १७ प्रकारके धान इस देशमें उत्पन्न होते हैं। रक्त, श्वेत तथा पाटलवर्ण कपास यहां वहुत पैदा होती है। इसके अलावे एक प्रकारके इक्षुवृक्षकी खेती यहां हर एक ऋतुमें होती है। कहनेका अभिप्राय यह है, कि सभी वस्तुओं-की यहाँ वृद्धि अर्थात् उत्पत्ति होती है, इसीलिये इसका नाम वर्द्धमान पड़ा है। दामोदरका जल विष्णुके पादपद्मसे सम्भूत है। सुतरां दामोदर नदीके दोनों पार्श्वव्यापी, वर्द्धमानके अधिवासियोंकी विभिन्न देश-वासी वहुत प्रशंसा करते हैं।

अघोर नामक एक क्षत्रिय राजा वर्द्धमानवासी प्रजाओं पर धर्म्मानुसार शासन करते थे। हे राजन्! कलिके चार हजार वर्ष वीत जाने पर इस वंशीय राजा वीरसिंहके घरमें एक विचित्र घटना घटी।

कांचीपुरमें गुणसिन्धु नामक एक राजा राज करते थे। उनके पुत्रका नाम था सुन्दर। सुन्दर एक समय वर्द्धमान आये। वर्द्धमानके राजा वीरसिंहकी विद्या नामक एक परमा सुन्दरी दुहिता थी। विद्याने उपनिषद् शास्त्रको छोड़ और सभी शास्त्रोंमें अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। सुन्दरने रात्रिके समय सुरंग द्वारा जा कर विद्याके साथ विवाह किया। विद्या शास्त्र विचारमें सुन्दरसे परास्त हुई। इसके वाद सुन्दरने उसके साथ सम्भोग किया। हे नृपवर! इस विद्या सुन्दरका वृत्तांत 'चौरपंचाशत्' ग्रन्थमें वहुत वढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया गया है।

राजा अघोरके पुत्रका नाम श्रीमान् चन्द्रांगद था। ये भी राजा थे। गणेशपुराणमें इनका विस्तृत वर्णन लिपिवद्ध है।

श्रीमान् कान्तिचन्द्र सूर्यवंशी राजा थे। ये कुशके वंशमें उत्पन्न हुए थे। कांतिचन्द्र एक समय वर्द्धमान-का शासन करते थे।

कुश द्वारा सुकन्याके गर्भसे अतिथि नामक एक पुत्र पैदा हुआ। अतिथि द्वारा अंगुराके गर्भसे महावली पुंडरीकका जन्म हुआ। अमोघवीर्य पुंडरीक द्वारा उलूपीके गर्भसे क्षेमधर्मा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। क्षेमधर्मा योगी पुरुष थे। इन्होंने एक मुनिसे वर प्राप्त किया था। इस वरप्रभावसे उनकी पत्नी रतिदाके वेदधर्म नामक एक पुत्र हुआ। वेदधर्म द्वारा वेदानीक-का जन्म हुआ। इन सवोंकी जन्मभूमि वर्द्धमान है।

देवानीक द्वारा फुल्लाके गर्भसे पारिजात नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये राज कार्यमें चतुर एवं युद्धविद्यामें निपुण थे। इनका जन्म घट्टशैलस्थ चक्-चकी नदीके तटवर्त्ती स्थानमें हुआ था। पारिजातसे वढ़ कर प्रतापी राजा उस समय वहां और कोई न था। इस पारिजात द्वारा खंजनीके गर्भसे नातुंग नामक एक पुत्र पैदा हुआ। निर्भीकचित्त नातुंग हिन्तालकाननमें वास करते थे। नातुंग द्वारा मारिषाके गर्भसे अर्कपुत्र, अर्कपुत्र द्वारा प्रमोलाके गर्भसे दिक्पति उत्पन्न हुए। दिक्पति और सुदर्शाके संयोगसे दो वड़े वलवान् पुत्र पैदा हुए। इसके वाद वज्रनाभ, रयाकलि, वामन तथा

छत्रमस्तक नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। गोवर्द्धन देश-में जीमूत नदीके किनारे वज्रनाभकी स्त्री मेनकाके गर्भसे स्वगन तथा गणचूर नामक अति सुन्दर दो पुत्र पैदा हुए। गणचूरने पारली ग्रामके निकट यमकर नदीके तीर वास-स्थापन किया। ये अत्यन्त लुब्धस्वभावके थे। स्वगण-के औरस तथा मोदामतीके गर्भसे विभूति, सुभूति तथा रामभूति नामक तीन पुत्र पैदा हुए। रामभूतिने कीकट देशमें अपनी राजधानी बनाई। यह देश उस समय जंगलों तथा पहाड़ोंसे भरा था। बहुसंख्यक नीच जातीय प्रजा उनके शासनाधीन हुई थी। सुभूति पलासनगढ़में राज्य करते थे। उनका राज्य उदय अस्त तक फैला हुआ था। विभूति अत्यन्त प्रतापी राजा थे। उन्होंने युवावस्थामें ही केरल तथा शतशृंग प्रदेशमें राज्य स्थापन किया। उनके राज्यमें बहुत-सी शूद्रजातीय प्रजा वास करती थी। यही पौराणिक मत है। इसके बाद द्विजकन्या तुंगलेखाके गर्भसे पुष्पांकुरका जन्म हुआ। पुष्पांकुरके पुत्र हटाश्व हुए। ये बड़े कोमल प्रकृतिके राजा थे। इन्होंने तपस्याका अनुष्ठान किया था। अगस्त्य ने इनको वरदान दिया था। उसी वरके प्रतापसे ये उत्कलकी अन्तिम सीमा पर जगन्नाथक्षेत्रके समीपवर्त्ती एकाम्रकाननके राजा हुए। गंडकी नामक स्त्रीके गर्भ-से चन्दनवनमें चन्दन नामक इनके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्दनके छोटे भाईका नाम अघोर था। ये तुलादेशके चन्दनवनमें राज्य करते थे। अघोर द्वारा उसकी पत्नी देशिकाके गर्भसे करणकी उत्पत्ति हुई। करण असाधारण विक्रमसम्पन्न थे। ये वर्द्धमानका परित्याग करके कलापक ग्राममें चले गये। पुष्करानन नामक एक क्षत्रिय राजा वहांकी राजगद्दी पर अभिषिक्त हुए। संक्षेपमें वर्द्धमानाधिपति राजाओंके विवरण लिपि बद्ध हुए। अन्यान्य साधारण देशोंके मध्य वर्द्धमान एक श्रेष्ठतम देश है। यहांके राजाओंका विवरण पुराण-में वर्णन किया गया है। पुष्करानके वंशधर राजे मंगलदेवीकी पूजाके प्रतापसे वर्द्धमानमें राज्य करते आ रहे हैं। (दिग्विजय प्र०)

पुरातत्त्व।

मार्कण्डेयपुराणमें इस वर्द्धमानका उल्लेख है। जैनियोंके मतसे महावीर वा वर्द्धमानस्वामीने राढ़देश-के जिस अंशमें असभ्य जातियोंके मध्य धर्मप्रचार किया था, उनके नामानुसार वही स्थान पीछे वर्द्ध-मान नामसे विख्यात हुआ। इस समय वर्द्धमान मध्य-राट् नामसे मशहूर है। इस जिलेमें एक समय अनेक सुप्राचीन राजवंश राज्य करते थे। इस समय भी उनकी कितनी ही प्राचीन कीर्त्तियां कई स्थानोंमें विद्यमान हैं। शेरगढ़ परगनाकी सिंहारण नामक नदीके किनारे सिंहपुर नामक एक प्राचीन राजधानी थी। यहां सिंहबाहु नामक राजा राज्य करते थे। जब सिंहपुर नगर ध्वंस हो गया, तब वह स्थान सिंहारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी सिंहारण्यसे वर्द्धमान सिंहा-रण नदीका नामकरण हुआ है। इस जिलेके अन्तर्गत सातशैका परगना सप्तशती ब्राह्मणोंका आदिउपनिवेश है। इस जिलेमें उन्होंने जिन सब ग्रामोंको प्राप्त किया था, उन सभी ग्रामोंके नामसे ही सप्तशतियोंकी विभिन्न उपाधियोंकी सृष्टि हुई। गौड़ाधिप आदिशूर जयन्तके अभ्युदयके पूर्व यहां सप्तशती ब्राह्मणोंका ही आधिपत्य था। नारायणके छन्दोगपरिशिष्टप्रकाशसे जाना जाता है, कि किसी राढ़ीय ब्राह्मणके पूर्व पुरुषने उनसे ही कितने कुलस्थान प्राप्त किया था; उनसे कई राढ़ीय ब्राह्मणोंकी उपाधियां प्राप्त हुई हैं। गौड़में पालवंशी राजाओंका आधिपत्य विस्तृत होने पर आदिशूरवंशीय शूरनरपतियोंने बहुत समय तक इस जिलेमें राज्य किया था, उन्होंने भी राढ़ीय श्रेणीके ब्राह्मणोंको इस जिलेके बहुतसे ग्राम दान दिये थे। इन सब ग्रामोंसे ही राढ़ीय ब्राह्मणोंके पूर्वपुरुषोंने बहुत सी उपाधियां प्राप्त की थी।

पालवंशीय राजे जिस समय वारेन्द्रमें बौद्धधर्म प्रचार करनेमें उद्यत थे, उस समय राढ़देशमें शूरराजे यहांके बौद्ध समाजको हस्तगत करनेके लिये आवश्य-कतानुसार शैव तथा शाक्त धर्मप्रचार कर रहे थे। गौड़में बौद्धाधिकारके समय यहांके ढेकुर नामक स्थानमें सोमघोषके पुत्र इच्छाई घोष नामक एक शाक्त राजा अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। उनका प्रतिष्ठित श्यामरूपा-गढ़ ही इस समय सेनपहाड़ीगढ़के नामसे प्रसिद्ध है। इसके समान प्राचीन और कोई दूसरा गढ़ इस

प्रदेशमें नहीं है। गौड़ेश्वर उनसे कई बार परास्त हुए थे। अन्तमें धर्मात्मा लाउसेनसे वे पराजित हुए। इच्छाई घोषके गढ़का भग्नावशेष आज भी सेनपहाड़ीमें वर्त्तमान है।

इस जिलेके अन्तर्गत वर्त्तमान भूरसुट परगनेमें भूरि-श्रेष्ठी नामक एक समृद्धशाली नगर था। यहां खृष्टीय ६वीं शताब्दी तक कायस्थ राजे राज्य करते थे। यहांके पाण्डुआ हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही राजाओंके समय प्रसिद्ध थे। सेनवंशीय राजाओंके मध्य विजय-सेनने विजयपुर नामक एक नगर बसाया था।

यहां बहुत दिनोंसे मुसलमानोंका संस्रव चला आता था। मेमारीके उत्तर-पश्चिम श्रीकृष्णनगर नामक ग्राममें सैयद जलाल उद्दीन् ताब्रिजीने कुछ समय तक अवस्थान किया था। ५४२ हिजरी वा १२४४-४५ ई०में पांडुआमें उनकी मृत्यु हुई। उक्त श्रीकृष्णनगरमें जलाल उद्दीन्के नाम पर 'मदरसा ई-जलालिया' नामक एक मदरसा प्रतिष्ठित है। वर्द्धमान जिलेके कई स्थानोंमें प्राचीन दुर्गोंका ध्वंसावशेष दृष्टि-गोचर होता है। छुटीपुर परगनेमें मेमारी स्टेशनके दक्षिण कुलीन ग्रामके निकट कई प्राचीन गढ़ोंका भग्नावशेष विद्यमान है। अजमतशाही परगनेमें भाटाकुल ग्रामके निकट रामचन्द्रगढ़ एवं अजयनदके निकट शेरगढ़ परगनेमें रानीगञ्जके उत्तर और भी कई एक गढ़ नजर आते हैं। वर्द्धमान शहरमें ही प्रसिद्ध बहरम सक्का नामक प्रसिद्ध मुसलमान कविकी कब्रगाह दिखाई पड़ती है, यह कब्रगाह ठीक दुर्गके समान ही है। आगरासे सिंहलद्वीपकी यात्राके समय कविवरने १५७४ ई०में वर्द्धमानमें ही जीवनयात्रा समाप्त की। इस वर्णके मुसलमान-इतिहासमें प्रथम उल्लेख वर्द्धमानका हो देख पड़ता है। राजमहलमें दाउद खांको पराजय तथा मृत्यु हो जानेके बाद अकबर-की सेना वर्द्धमान पहुंच कर दाउदके परिवारवर्ग पर आक्रमण किया। इसके बाद दश वर्ष तक दाउदके पुत्र कुतलू खां मुगलोंके विरुद्ध वर्द्धमानमें समरानल प्रज्व-लित करते रहे। कुतलू खां देखो।

उनकी कब्रके पास ही नूरजहांके स्वामी शेर अफ-गान तथा बङ्गालके शासनकर्त्ता कुतबुद्दीनके मकबरे देख पड़ते हैं। दिल्लीश्वरके आदेशसे कुतबुद्दीनने नूर-जहांको दिल्ली भेजनेके लिये शेर अफगानके साथ युद्ध किया था। वर्द्धमान स्टेशनके दक्षिण स्वाधीनपुर नामक ग्राममें जिस स्थान पर दोनों वीरोंने युद्ध किया था, आज भी वह स्थान देखनेमें आता है।

१६२४ ई०में शाहजादा खुर्रम (शाहजहां)ने वर्द्धमान दुर्ग तथा शहर अपने अधिकारमें कर लिया। बादशाह औरङ्गजेबके पौत्र आजिम उस्मानने १६६७ ई०से ले कर १७०४ ई०के मध्य वर्द्धमानमें एक सुन्दर मसजिद निर्माण की, आज भी वह देखनेकी चीज है।

वर्त्तमान वर्द्धमान राजवंश।

पञ्जाब-प्रदेशान्तर्गत लाहोर नगरके कोटलो महल्ला-निवासी संगम राय वर्द्धमान-राजवंशके आदिपुरुष थे। खृष्टीय १६वीं शताब्दीके शेष भागमें सङ्गम राय अपने परिवारके साथ जगन्नाथ दर्शन करनेके उद्देशसे श्री-क्षेत्रधाम गये। लौटते समय वे वर्द्धमानके निकट राई-पुर ग्राममें व्यवसाय करनेके अभिप्रायसे बस गये। यहां-से अनाज खरीद कर दूसरे दूसरे स्थानोंमें बेचना ही उनका व्यवसाय था। धीरे धीरे उनके रोजगारमें बड़ी उन्नति हुई।

सङ्गम रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र बङ्कविहारी राय भी राईपुरमें अपने पिताकी तरह व्यवसाय करने लगे एवं सौभाग्यवश इनके व्यापारमें भी धीरे धीरे उन्नति होने लगी।

बङ्कविहारी रायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र आबूराय राईपुरसे वर्द्धमान आ कर बस गये। वे इस देशमें एक विख्यात व्यापारी थे। एक समय दिल्लीश्वरकी सेना वर्द्धमान पहुंची, आबूरायने उन लोगोंको नाना प्रकारके भोजनकी सामग्रियां प्रदान की। इस पर उक्त सेनाके अध्यक्षने खुश हो कर इन्हें १०६४ हिजरी (१६५७ ई०)में वर्द्धमानके फौजदारके अधीन रेकाबी बाजार, इब्राहिम-पुर और मुगलटोलीके कोतवाल एवं चौधरीके पद पर नियुक्त किया। उस समय इन तीनों स्थानोंमें वार्षिक राजस्व सिर्फ ५३२) रुपये थे। सुविशाल समृद्धिशाली वर्द्धमान राज्यका इस तरह सूत्रपात हुआ।

आबूरायकी मृत्युके बाद उनके लड़के बाबूराय पैतृक-पद तथा सम्पत्तिके अधिकारी हुए। धीरे धीरे उन्होंने

भी वर्द्धमान परगनान्तर्गत और भी कई स्थान प्राप्त किये।

बाबूरायकी मृत्युके बाद उनके पुत्र घनश्याम राय पैतृक-पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। वर्द्धमान-के सुप्रसिद्ध श्यामसागर नामक सुविशाल सरोवर घन-श्याम रायकी अतुल कीर्त्ति है।

घनश्याम रामकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कृष्णराम रायने पैतृक पद एवं सम्पत्ति प्राप्त की। १६६४ ई० (११०७ हिजरी) की २४वीं रवियल आयल तारीखको दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहके राजत्वके ३८वें वर्षमें उन्होंने उनसे वर्द्धमानके जमींदार तथा चौधरी पदकी सनद प्राप्त की। इस राजकीय आज्ञापत्र द्वारा उन्होंने और भी कई एक जमींदारी प्राप्त की, उनमें सेनपहाड़ी-गढ़ विशेष उल्लेखनीय है। उक्त कृष्णरामरायके प्रपौत्र महाराजाधिराज तिलकचन्द्र बहादुरके राजत्वकालमें भी वह दुर्ग ज्योंका त्यों वर्त्तमान था।

कृष्णरामरायके जीवितकालमें वरदा तथा चितुआ-के जमींदार शोभासिंह, विष्णुपुरके जमींदार गोपाल सिंह एवं चन्द्रकोनाके जमींदार रघुनाथ सिंहने विद्रोही हो बड़े प्रतापसे मुगलसम्राट्के विरुद्ध अस्त्र धारण कर मुर्शिदाबाद, वीरभूम तथा वर्द्धमान पर आक्रमण किया। शोभासिंहने वर्द्धमान पर आक्रमण करके कृष्णरामराय-के साथ युद्ध किया एवं उसी समय कृष्णरामराय मारे गये। शोभासिंहने जब कृष्णराम रायके राजमहल पर आक्रमण किया, तब उनके परिवारकी १३ रमणियोंने विष खा कर प्राण त्याग किया। कृष्णरामरायकी कन्या शोभासिंहके हाथोंमें पड़ गई। शोभासिंहने उसे अपनी अंकशायिनी बनानेके अभिप्रायसे जिस समय अपने दोनों हाथोंको उसकी ओर बढ़ाया, उसी समय वीर-बालाने अंगरखेसे छुरी निकाल कर उस दुराचारी शोभासिंहके उदरमें घुसेड़ दिया। शोभासिंहके पाप-मय जीवनका अन्तिम पर्दा गिर गया। शीघ्र ही उस बालिकाने अपने वक्षस्थलमें भी छुरी भोंक ली, देखते देखते उस ज्योतिर्मयीकी आत्मा भी शश्वदाके लिये इस असार संसारसे कूच कर गई।

कृष्णरामरायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके पुत्र जगत्राम राय पैतृक पद और सम्पत्तिके अधिकारी हुए। ११११ हिजरीकी ५वीं जमादियल अव्वल तारीखको, तथा दिल्लीश्वरका ४३ वर्ष राज्यकाल व्यतीत होने पर जगत्राम रायने दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे ५० महल जमींदारी एवं जमींदार तथा चौधरीकी उपाधि प्राप्त की। उनकी स्त्रीका नाम ब्रजकिशोरी था, उसके गर्भसे कीर्त्तिचन्द्र तथा मित्रसेन नामक दो पुत्र पैदा हुए। १७०२ ई०को कृष्णसागर-सरोवरमें स्नान करनेके समय एक गुप्त हत्या-कारीको छुरिकाघातसे उन्होंने प्राण त्याग किया। उस दिनसे राजपरिवारके कोई व्यक्ति कृष्णसागरके जलको दूषित समझ कर न तो उसका जल पीते हैं न उसमें स्नान ही करते हैं। वर्द्धमान-राजवंशकी जितनी अतुल कीर्त्तियां दशों दिशाओंको समुज्ज्वल बना रही हैं, उन्हें प्रधानतः कीर्त्तिमती ब्रजकिशोरीने ही स्थापन किया था। वर्द्धमानके सुविस्तृत सागरके समान कृष्णरामकी अतुल कीर्ति है।

जगत्राम रायकी शोचनीय मृत्युके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र कीर्त्तिचन्द्र पिताके पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधि-कारी हुए। कीर्त्तिचन्द्रने छोटे भाईके लिये मासिक वृत्ति नियुक्त कर दी। १११५ हिजरी २० सवाल ४८ जुलूसको दिल्लीश्वर औरंगजेब बादशाहसे कीर्त्तिचन्द्रने पैतृक पद तथा सम्पत्ति प्राप्तिका अनुशासन प्राप्त किया। उन्होंने अपने बाहुबलसे वरदा तथा चितुआके जमींदार शोभा-सिंहके भाई हिम्मत सिंहको पराजय करके वहांकी जमींदारी पर अधिकार कर लिया। चन्द्रकोनाके जमीं-दार रघुनाथसिंहने शोभासिंहके साथ मिल कर वर्द्ध-मान पर आक्रमण किया था, इसका बदला लेनेके लिये ही कीर्त्तिचन्द्रने रघुनाथ सिंहको परास्त करके उनकी जमींदारी छीन ली थी। पीछे उन्होंने विष्णुपुरके जमीं-दार गोपाल सिंहको युद्धमें परास्त तो किया, किन्तु वे उनकी कोई सम्पत्ति ले नहीं सके। भुरसुट, बावदा तथा बेलघरके जमींदारोंको परास्त करके उनकी जमीं-दारी हस्तगत कर ली।

कीर्त्तिचन्द्रने दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन महम्मद शाहसे १५ रमजान १७ जुलुस तारीखको एक दानपत्र प्राप्त किया। उस दानपत्र द्वारा उन्हें उक्त

विजित सम्पत्ति तथा फतहपुर परगनेका अधिकार मिला था। कीर्त्तिचन्द्र अत्यन्त युद्धकुशल थे। उन्होंने बंगालके नवाब बहादुरके आज्ञानुसार विष्णुपुरके राजाके साथ मिल कर कांटोयासे दुर्दान्त मरहट्ठोंको निकाल बाहर किया था। कीर्त्तिचन्द्र बादशाह द्वारा राजाकी उपाधि न प्राप्त करने पर भी देशमें महाराजके नामसे ही विख्यात थे। श्रीधर्ममंगल काव्यमें कविवर घनरामने उन्हें महाराज कह कर ही उल्लेख किया है।

बंगालके नवाब बहादुरके यहां कीर्त्तिचन्द्रकी बड़ी इज्जत थी। एक बार उनकी माताकी श्रीक्षेत्रयात्राके समय बंगेश्वरने उड़िष्या प्रदेशस्थ फौजदारों तथा कोतवालोंको उनकी देख रेख अच्छी तरह करनेको आज्ञा दी थी।

वर्द्धमानके पास कांचननगर नामक जो महा समृद्धिशाली जनपदका ध्वंसविशेष वर्त्तमान है, कीर्त्तिमान् कीर्त्तिचन्द्रने उसका स्थापन किया था। १७४० ई०में कीर्त्तिचन्द्रने परलोककी यात्रा की। उनके हाथकी अनुपम तलवार अभी तक राजकोषमें यत्नपूर्वक रखी है। उन्हें लोग 'कीर्त्तिचन्द्रका तेगा' कहते हैं। कीर्त्तिचन्द्रकी अनेकों कीर्त्तियां अभी तक वर्द्धमान राजवंशके मुखको उज्ज्वल बना रही हैं।

कीर्त्तिचन्द्रके परलोक वास करने पर उन के पुत्र चित्रसेन रायने वर्द्धमानकी जमींदारी प्राप्त की। उन्होंने बादशाहसे परगना मंडलघाट, आरसा, ब्राह्मणभूमि प्रभृति कई एक जमींदारी प्राप्त की। दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन् महम्मदशाह बादशाह द्वारा १५ सवाल १२ जुलुस तारीखको उन्हें राजाकी उपाधि तथा 'परचे खिलअत' प्राप्त हुई एवं एक जोड़ा मुक्ता भी मिली। इस समय कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे।

उक्त बादशाहके २१वें वर्ष राजत्वकालमें २० रमजान तारीखको (१७४० ई०) चित्रसेनको राजाकी उपाधि के साथ साथ चाकले वर्द्धमानकी जमींदारीकी सनद प्राप्त हुई। १७४२ ई०में पुनः दिल्लीश्वरके यहांसे छत्र, आसफी, नकारा, अड़ानीकी खिलअतोंके साथ एक सनद भी मिली। इस समय भी कीर्त्तिचन्द्र जीवित थे। इस तरहसे राजा चित्रसेनको सब मिला कर १२ दानपत्र तथा सनद प्राप्त हुई थी। वे वार्षिक २२७०४७२) रु० राजस्व दिया करते थे।

उनकी दो पत्नियाँ थीं, किन्तु दोनों ही वन्ध्या। १७४४ ई०में चित्रसेनकी मृत्यु हुई। कालनामें उनका निर्म्माण किया हुआ देवालय वर्त्तमान है। इनके राजत्वकालके कितने ही धनुष अभी तक राजमहलमें वर्त्तमान हैं। उन सबों पर पारसी भाषामें उनका नाम खोदा हुआ है।

राजा चित्रसेनकी मृत्युके बाद उनके चचा मित्रसेनके पुत्र तिलकचन्द्र वर्द्धमानके राजा हुए। सन् ११४० साल १२ अग्रहणको महाराज तिलोकचन्द्रका जन्म हुआ था। इन्होंने १७४४ ई० २४ जुलुस ६ जमादियल अव्वल तारीखको दिल्लीश्वर अबुल फतेह नसरुद्दीन महम्मदशाह बादशाहसे वर्द्धमान प्रभृति जमींदारीकी राजोपाधिके साथ प्रथम सनद प्राप्त की। पीछे अबुल नसर मुजाउद्दीनने अहमदशाह बादशाह गाजीसे ७ जुलुस ७ रजब तारीखको पुनः एक दानपत्र प्राप्त किया। दिल्लीश्वर आलमगीर बादशाहसे इन्हें ७ जुलुस २६ महरम तारीखको एक हाथी उपहार मिला।

दिल्लीश्वर शाह आलम बादशाहने इन्हें ७ फिदवी खास नामसे एक पत्र एवं उनके प्रधान सेनापतिने (४ हजार जात तथा २ हजार सवार) चार हजार जात तथा राजा बहादुरके खिताबके साथ एक अनुशासनपत्र दिया था। फिदवी खासके अर्थसे बादशाहके खास कर्म्मचारी, इस तरहका सम्मान राज्यके प्रधान कर्म्मचारीके सिवा और किसीको प्राप्त नहीं होता था एवं बंगदेशके दूसरे किसी राजाने भी उक्त उपाधि न प्राप्त की थी इष्ट इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल बहादुर 'फिदवी खास' शब्द व्यवहार करते थे। इसके साथ साथ तिलकचन्द्रको नहवत तथा झालरदार पालकी भी मिली थी। फिर दिल्लीश्वरसे (१७६८ ई०) ६ जुलुस ८वें रमजानको ५ हजार जात, ३ हजार सवार (पंचहजार जात), महाराजाधिराज खिताब, तोप, नकारा तथा पताका प्राप्ति का पत्र प्राप्त हुआ।

१७५५ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीके तदानीन्तन गवर्नर मि० हेनरी रिसबेट् ने दिल्ली-सम्राट‌के आदेशानुसार महाराज तिलकचन्द्रको एक खिलअत तथा एक हाथी प्रदान किया। पलासीके युद्धके समय तिलक-

चन्द्रने घोड़े प्रदान कर अङ्गरेजोंकी पूरी सहायता की थी। १७६० ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने महाराज तिलकचन्द्र तथा इनके दीवान एवं प्रधान कर्मचारियोंको ७५२५) रु०की खिलअत भेजी।

इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी महाराज तिलकचन्द्रने सहायता भी की, किन्तु अल्पकालके बाद ही कम्पनी महाराजके किये हुए उपकारको भूल गई। यहां तक कि, कुछ ही दिनोंके बाद संगतगोलामें अंग्रेजी सेनाके साथ राजसेनाओंका एक युद्ध हुआ एवं सेनपहाड़ी तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कोठीकी सेनाओंके साथ भी दो बार युद्ध हुआ। इस समय वृटिश सरकारकी १५ सहस्र सेना मौजूद रहती है। उस समय वर्द्धमान एक करदराज्य था। राज्यकी दिवानी तथा फौजदारी विचार महाराजकी अपनी अदालतमें हो हुआ करता था। दस्यु तथा तस्कर आदि दुष्ट अपराधियोंको महाराज अपने हाथसे दण्ड दिया करते थे। महाराज तिलकचन्द बहादुरके अधीन १२ दुर्ग थे, अभी उन बारहों दुर्गोंका ध्वंसावशेष वर्तमान है। १७६७ ई०की वृटिशराजकी तालिकासे पता चलता है, कि उपरोक्त १२ दुर्गोंमें २६ सुदक्ष सवार एवं ११६१ पैदल सेना सर्व्वदा किलेकी रक्षाके लिये नियुक्त रहती थी, इनके अतिरिक्त और भी कितने ही देशी सिपाही तथा पैदल सेना भी नियुक्त थी। १७६५ ई०में महाराज तिलकचन्द्रने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको ४०६४८६३॥।) रु० राजस्व प्रदान करके जो दाखिला प्राप्त की थी, वह अब तक राजप्रासादमें सुरक्षित है।

तिलकचन्द्रने बहुत सी कीर्त्तियां स्थापित की थीं, बहुतसे देवोत्तर तथा ब्रह्मोत्तर प्रदान किये थे। उनके राजत्वकालमें सब मिला कर ४ लाख ६७ हजार बीघे सिर्फ ब्रह्मोत्तर प्रदान किये गये थे। ११५७ सालमें (१७७० ई०) महाराज तिलकचन्द्रने परलोकको यात्रा की। उनकी दो भार्याएं थीं, जिनमें महारांणी विषणकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं, इनके गर्भसे महाराज तेजचन्द्रने इस संसारमें पदार्पण किया।

सन् ११७१ सालके ५वें माघको (१७६४ ई०की १७वीं जनवरी) तेजचन्द्रका जन्म हुआ था। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई एवं ये इसी छोटी अवस्थामें पैतृक पद तथा सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय नितान्त शैशवावस्थाके कारण उनकी असाधारण बुद्धिमती माता महाराणी विषणकुमारी ही अभिभाविका हो कर राजकार्यकी देख-भाल करती थीं। १७७१ ई०में तेजचन्द्र बहादुरने दिल्लीश्वर शाहआलम बादशाहके आज्ञानुसार उनके प्रधान सेनापति द्वारा महाराजाधिराज बहादुरका खिताब, पाँच हजार जात एवं तीन हजार सवार, नकारा, तोप, प्रभृति रखनेका अनुशासनपत्र प्राप्त किया। तेजचन्द्र बालिग हो कर अत्यन्त विलासी हुए, इसलिये उनके राज्यकार्य्य उचित रीतिसे सम्पन्न नहीं होते थे। अतएव थोड़े ही समयमें उनकी जमींदारीके कितने ही हिस्से खजाना खाली हो जानेके कारण निलाम हो गये। उन्हीं सब जमींदारोंको खरीद कर इस देशीय बहुतसे जमींदारोंकी सृष्टि हुई। १७९३ ई०में दशसाला बन्दोबस्तके समय महाराज तेजसिंह बहादुरको वार्षिक ४०१५१०९) रु० राजस्व एवं १९३७२१) रु० पूलबन्दि कर्ज हो गये। दशसाला बन्दोबस्तके बाद तक महाराजकी कितनी जमींदारी बिक चुकी थी, किन्तु इसके बाद ही सहसा उनके स्वभावमें परिवर्त्तन हुआ। वे स्वयं राज्यकार्य्य देखने लगे। उन्होंने सारी जमींदारीको पत्तनी बन्दोबस्त करके एक बार ही बहुतसे रुपये इकट्ठे कर लिये। ये विपुल धनराशि ही वर्द्धमान राजधनागारकी नींव हुई। तबसे इस समय तक राजखर्चसे बचे हुए धन उसी धनागारमें सुरक्षित होती चली आ रही हैं। १७९० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराजके हाथसे दिवानी तथा फौजदारीकी क्षमता, जेलखाना एवं १७९३ ई०में पुलिश-विभाग अपने हाथमें कर लिया। उसके पहले तक इन सब विषयोंकी क्षमताके तथा उनके पूर्वपुरुष पूर्ण रूपसे उपभोग करते थे।

महाराज तेजचन्द्र बहादुरने ६ शादियाँ की थीं, उनमें महाराणी नानकीकुमारी ही पुत्रवती हुई थीं। सन् ११९८ सालमें उनके गर्भसे महाराज प्रतापचन्द्रका जन्म हुआ। शेषावस्थामें महाराज तेजचन्द्र बहादुरने प्रतापचन्द्रको राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त होनेको प्रतिज्ञा

की थी, अतः महाराज प्रतापचन्द्रकी अवस्था पूरी प्राप्त होने पर उन्होंने उन्हें युवराजके पद पर अभिषिक्त किया। महाराज प्रतापचन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान् तथा कार्यपटु थे। राज्यभार पड़ने पर उन्होंने विशेष यत्नसे ८वाँ आईन प्रणयन करके अपने राज्यकी रक्षा करने लगे। सन १२२८ सालके पौष मासमें २६ वर्षकी अवस्थामें महाराज प्रतापचन्द्रने परलोककी यात्रा की। इसी प्रतापचन्द्रको ले कर ही जाली प्रतापचन्द्रकी सृष्टि हुई। महाराज तेजचन्द्र बहादुर पुत्रके परलोक गमन करनेके उपरान्त पुनः राजकार्य सम्भालने लगे। इन्होंने श्यालक पराणचन्द्र कापूरके पुत्र चुन्नीलाल बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम महतावचन्द्र रखा। तेजचन्द्रको अनेकों कीर्त्तियोंसे वर्द्धमान राजवंश समुज्ज्वल हो रहा है। सन् १२३६ सालके भाद्रमासमें महाराज तेजचन्द्र परलोकवासी हुए।

१८२० ई०की १७वीं नवम्बरको महाराज महतावचन्द्र बहादुरका जन्म हुआ था। १८२७ ई०की ११वीं फरवरीको तेजचन्द्र बहादुरके परलोकवासी होने पर उनकी पत्नी महाराणी कमलकुमारी (पराणचन्द्र कापुरकी भगिनी)-ने पुत्रकी राजोपाधि प्राप्तिके लिये भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम वेंटिक बहादुरके पास एक पत्र लिखा। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने (१८३३ ई० ३० अगस्त) गवरनर जेनरल बहादुरसे महाराजाधिराजका खिताब तथा खिलअत प्राप्त की। उनकी नाबालिगावस्थामें उनकी माता महाराणी कमलकुमारी तथा पराणचन्द्र कापुर उनके अभिभावकस्वरूप राज्यकार्यकी देखभाल करते थे। १८२६ ई०की ८वीं फरवरीको महतावचन्द्रने पहली शादी की। उनकी पहली स्त्रीके गर्भसे राजकुमारी श्रीमती धनदेयी देवीकी पैदाइश हुई। दुःखका विषय है, कि कुमारीके जन्मके सात दिनके बाद ही महाराणी परलोकवासिनी हुई। शैशवकालमें ही मातृहीना राजकुमारी विवाहके कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई। सन् १२६२ ई०में सालके दूसर आषाढ़को राजकुमारीने लाला अवनीनाथ मेहरा बाबूको दत्तकपुत्र ग्रहण किया। १८४४ ई०की २४वीं जूनको महतावचन्द्र बहादुरने श्रीमती नारायणकुमारी देवीका पाणिग्रहण किया। महाराणीके गर्भसे संतानादि न होनेके कारण १८६८ ई०को १६वीं मार्चको महाराजने अपने साला लाला वंशगोपालचन्द्र बाबूके ज्येष्ठ पुत्रको दत्तकपुत्र ग्रहण करके उनका नाम कुमार आफतावचन्द्र महताव बहादुर रखा।

१८३६ ई०में महाराजने पुनः गवरनर जेनरल बहादुरसे खिलअत प्राप्त की।

१८५५ ई०में सन्थालोंके विद्रोहके समय एवं १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय महाराजने गवरमेण्टकी बड़ी सहायता की। इसलिये गवरमेण्टने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

१८६४ ई०में महतावचन्दने भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाका सदस्य-पद प्राप्त किया। इस देश-वासियोंके मध्य इन्होंने ही सबसे पहले इस पदकी प्राप्ति की थी। उक्त पदके आवश्यकीय व्ययके लिये गवर्नमेण्टसे इन्हें १० सहस्र रुपये प्रति वर्ष मिलनेका नियम ठीक हुआ। महाराजने तीन वर्ष तक उक्त पद पर समासीन रह कर एक बार ३० सहस्र रुपये प्राप्त किये। उन सब रुपयोंको इन्होंने अलीपुरमें पशुशाला निर्माण करनेके लिये दान कर दिया।

१८६६ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजकी असाधारण दानशीलता देख कर भारतवर्षके तदानीन्तन गवर्नर जेनरल सर जान लारेन्सने अपने हाथसे एक पत्र लिख कर अत्यन्त धन्यवाद दिया। १८६८ ई०में महाराजको वंशानुक्रमसे महामान्या सम्राज्ञीके राजचिह्न (Armour and supporters) धारण करनेकी क्षमता प्राप्त हुई।

१८६६ ई०में वर्द्धमान प्रदेशमें भयङ्कर मलेरिया महामारीके प्रादुर्भाव होने पर उसके प्रतिकारके लिये बङ्गाल गवर्नमेण्टको ५० सहस्र रुपये दे कर वर्द्धमान महाराज गवर्नमेण्टके धन्यवाद-भाजन हुए।

१८७० ई०में महामान्या सम्राज्ञीके पुत्र ड्यूक आव एडिनवराने वर्द्धमानके राजभवनमें पदार्पण करके वर्द्धमानाधिपतिको सम्मानित किया था।

१८७४ ई०में भीषण दुर्भिक्षके समय महाराजने अपने खर्चसे चुंचड़ा, कलना तथा वर्द्धमानके दुर्भिक्षपीड़ित

लोगोंको अन्न वस्त्र प्रदान कर असंख्य दीनोंकी जीवन-रक्षा की थी। बङ्गालके तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवरनर सर जार्ज काम्बेल बहादुरने स्वयं इन सब अन्नवस्त्रोंको दान करते देख कर वर्द्धमान-नरेशकी दानपरायणताकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए अपने हाथसे एक पत्र लिखा था। १८७७ ई०में मन्द्राज प्रदेशके दुर्भिक्षके लिये वर्द्ध-मान-नरेशने १० सहस्र रुपये प्रदान किये थे।

१८७७ ई०में दिल्ली दरबारसे वर्द्धमानपतिने His Highness-की उपाधि एवं आजीवन सम्मान-स्वरूप १३ तोपें प्राप्त की। १८७८ ई०में वर्द्धमानके महाराजने भारत-सम्राज्ञीकी एक प्रस्तरमयी प्रतिमूर्त्ति कलकत्तेके म्यूजियममें स्थापन की।

वर्द्धमान तथा कालनाके अवैतनिक विद्यालय, दातव्य चिकित्सालय, बालिका-विद्यालय प्रभृति बहुत सी देश-हितैषिणी कीर्त्तियां स्थापन कर महतावचन्द्र बहादुर इस देशवासियोंके चिरस्मरणीय हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे अपनी नूतन क्रीत विशाल जमींदारी उड़िष्यामें कुजङ्ग-दुर्ग, मेदनीपुर जिलान्तर्गत सुजामुठा परगनेमें दो अवैत-निक विद्यालय तथा दो दातव्य-चिकित्सालय स्थापन कर गये हैं।

सन् १२६५ सालमें उन्होंने महर्षि वाल्मीकिकृत मूल तथा सरल टीका सहित रामायण एवं महर्षि वेदव्यास कृत मूल तथा व्याख्या सहित महाभारत छपा कर जन-साधारणमें बांटना शुरू किया। किन्तु दुःखका विषय है कि आरब्ध कार्य सम्पूर्ण होनेके पहले ही वे परलोक-वासी हो गये। सन् १८७९ ई०की २६वीं अक्तूबरको ५६ वर्षकी अवस्थामें भागलपुर नगरमें उनकी मृत्यु हुई।

उन्नीस वर्षकी अवस्थामें महाराजाधिराज आफताब महताब बहादुर वर्द्धमानके राजसिंहासन पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था छोटी होनेके कारण वर्द्धमान राज्य कोर्ट आव वार्डके अधीन होनेका प्रस्ताव हुआ, किन्तु महाराज महतावचन्द बहादुरके राजकार्य ऐसे सुप्रबन्धके साथ सम्पन्न होते थे एवं उनके भ्रातुष्पुत्र तत्कालीन दीवान ई राज वनबिहारी कापूर साहेब ऐसी योग्यताके साथ राज्यकार्य परिचालना करते थे, कि बंगेश्वर सर अस्लो एडेन बहादुर, वर्द्धमान राज्य कुछ समय तकके लिये कोर्ट आव वार्डके अधीन न करके, जिस तरह राज्यकार्य चलता था, उसी तरह चलानेकी आज्ञा प्रदान की।

महाराज आफतावचन्दने भी राजकार्यमें स्वयं हस्तक्षेप न करके राजमन्त्री बनबिहारी कापूर साहबके ऊपर ही सारे राज्यकार्यका भार सौंप रखा था। १८८१ ई०में आफताव बहादुरको महासमारोहके साथ गवर-मेण्टसे खिलअत सहित राज-सनद प्राप्त हुई। उन्होंने अति अल्प काल तक राज्य किया था, किन्तु इसी अल्प समयमें ही उन्होंने कई एक महान् कीर्त्तियां स्थापन कर इस देशकी बड़ी भलाई की थी। १८८१ ई०में दार्जिलिङ्ग-में यूरोपीय दातव्य चिकित्सालय स्थापित होने पर उसकी सहायताके लिये उन्होंने एक मुष्ट १० हजार रुपये तथा वर्द्धमान नगरमें जलकी कल तैयार करनेके लिये वर्द्ध-मान म्यूनिसिपलिटीको एक मुष्ट १ लाख रुपये प्रदान किये थे।

महाराज महतावचन्द बहादुरने जो विद्यालय स्थापन किया था, उसमें सिर्फ एन्ट्रेन्स तक पढ़ाई होती थी। आफ तावचन्दने इस स्कूलको दो श्रेणीय कालेजमें उन्नीत करके विना वेतन दिये ही एल० ए० की परीक्षा पर्य्यन्त पाठ करनेकी सुविधा कर दी थी। इस कार्यमें उनके ८० हजार रुपये खर्च हुए थे।

वे वर्द्धमानमें जनसाधारणके लिये पुस्तकालय स्थापन कर गये हैं। इस पुस्तकालयकी स्थापना करनेमें उनके ६ हजार रुपये व्यय हुए थे। इन सब लोक-हितैषी कार्योंको देख कर गवर्नमेंटने उन्हें बहुत ही धन्यवाद दिया।

संस्कृत शिक्षाकी उन्नतिके लिये उन्होंने गवर्नमेंट को एक मुष्ट ५ हजार रुपये दान दिये थे। महतावचन्द बहादुरके स्मरणार्थ वर्द्धमान गवर्नमेंटने दातव्य चिकित्सालय तथा चक्षुःपीड़ाग्रस्थ रोगियोंके वासो-पयोगी एक गृह निर्म्माण किया था। महतावचन्द बहादुर-ने अपने पिताकी पुण्यतम कीर्त्ति रामायण तथा महा-भारत सम्पूर्ण मुद्रित कर जनसाधरणमें बाँट दिया।

सन् १२६१ सालके १३वें चैतको २४ वर्ष की

अवस्थामें ही आफताव चन्दमहताव वहादुरने इस असार संसारसे प्रस्थान किया।

आफतावचन्द महताव वहादुरकी परलोकयात्राके उपरान्त उनकी नावालिग पत्नी महाराणी अधिराणी वेनदेयी देवी वर्द्धमान राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुई। महाराज आफतावचन्द वहादुरके विलमें महाराणीको दत्तकपुत्र ग्रहण करनेकी अनुमति दी गई थी, एवं महाराणीने राजा वनविहारी कापुर महाशयके पुत्र श्रीमान् विजयविहारी (विजयचन्द) कापूरकी १८८७ ई० को ३१वीं जुलाईको वंगेश्वरके आदेशानुसार दत्तक पुत्र ग्रहण किया। इस दत्तकपुत्र ग्रहण करनेके सम्बन्धमें उनकी सास श्रीमती महाराणी नारायणकुमारी देवीने आपत्ति करके वड़ी अदालतमें अभियोग चलाया, किन्तु मुकद्दमेका विचार होनेसे पहले ही आपसमें झगड़ेका निवटेरा हो गया। दत्तकपुत्र ग्रहण करनेके थोड़े ही दिनोंके वाद १८८८ ई०की १३वीं मईको महाराणीने परलोककी यात्रा की।

१८८१ ई०की १९वीं अक्टूवरको महाराजाधिराज विजयचन्द महताव वहादुरका जन्म हुआ था। महाराणी वेनदेयीकी मृत्युके समय महाराज विजयचन्द नावालिग थे, इसलिये राज्य कोर्ट आव वार्डके अधीन हो गया एवं अपने पिता वर्द्धमान राज्यके सुयोग्य मैनेजर श्रीयुक्त राजा वनविहारी कपूर साहेवकी देखरेखमें सुशिक्षित हो कर १८९२ ई०की १९वीं अक्टूवरको वालिग हो कर महाराजाधिराज विजयचन्द महताव वहादुर वर्द्धमानकी गद्दी पर वैठे।

राजा वनविहारीकापुर साहवने १८५३ ई०की २१वीं नवम्वरको वर्द्धमान जिलान्तर्गत सोआई ग्राममें जन्म ग्रहण किया। उनके उद्योगसे वर्द्धमानराज्यकी वड़ी उन्नति हुई। उन्होंने वृटिश गवरमेण्टसे १८९३ ई०की २री जनवरीको राजाकी उपाधि प्राप्त की। विगत १९०१ ई०की मर्दुमसुमारीके समय उन्होंने अपनी जातिकी पदमर्यादाकी रक्षाके लिये वरेलीमें एक क्षत्रिय सभा की। भारतवर्षके सभी स्थानोंसे स्वजातिवृन्द उस सभामें पदार्पण करके उनका यथेष्ट सम्मान किया। उनके ही उद्योग तथा अध्यवसायसे वृटिश गवरमेण्ट वर्द्धमान नरेश तथा उनके स्वजातिवृन्दको क्षत्रिय माननेको वाध्य हुई।

प्राचीन स्थान।

ब्रह्मखंडके मतानुसार वर्द्धमानमें वहुतसे नगर तथा ग्राम हैं, उनमें ये सव प्रधान हैं—

खादुल, दारिकेशी नदीके तीर जहानावाद, मायापुर, शंकरसरित्‌के किनारे गरिष्ट ग्राम, मुंडेश्वरीके निकट श्रीकृष्णनगर, दामोदरके पास राजवल्लभ, भागीरथीतट विद्यास्थान नवद्वीप (गौरांगका जन्मस्थान), मालाजोड़, एकलक्षक, राघववाटिका, अम्बिका, वालुग्राम, मीरग्राम, भूरिश्रेष्ठिक, सेनापि, जनाई, स्फुरण, अङ्कन, तट, स्वर्णटीक। वर्द्धमानके दक्षिणमें पारुल (यहां विजयाभिनन्दन राजा होंगे), कुमार वीथिका, कुलक्षिप्ता, कपल, लौहपुर, गोवर्द्धन, हस्तिक, श्रीरामपुर, वेलुन, अग्रद्वीप, पाटली, कर्णग्राम, जोतिवनी, चन्द्रपुर, वलिहारीपुर, वच्छिकवाला, कुशमान, गंगचारि, जावट, चन्द्रलेश। जंगलके निकट रसग्राम इसके अतिरिक्ति और ८ शहरोंके नाम, जैसे--वैद्यपुर (यह तैलीके अधिकारमें भागीरथीसे दो योजन पश्चिममें हैं), पाटली (यह कायस्थ राजाके अधिकारमें गंगाके निकट है), शिलावती नदीके पास लोहदा, दामोदरके निकट क्षत्रिय राजाके अधिकारमें चन्द्रवाटी, वर्द्धमानके पूर्व वृश्चिकपत्तन, दामोदरके तीर, त्रिवक्रासरितके निकट हाटकनगर, भागीरथीके पश्चिम विल्वपत्तन, वर्द्धमानसे तीस कोसकी दूरी पर सामन्तपत्तन (यहां करतोया नदी वहती है)।

उद्धृत ग्रामनगरादिके नामसे वोध होता है, कि वर्त्तमान हुगली, नदीया तथा पावना जिलेके कितने ही अंश वर्द्धमान प्रदेशके अन्तर्गत थे।

वर्त्तमान समय वर्द्धमान जिलेमें जनाकीर्ण नगरोंके मध्य वर्द्धमान, कालना, श्यामवाजार, रानीगंज, जहानावाद, वाली, काँटोया, दाँईहाट ये ८ शहर प्रधान हैं। इन आठोंके मध्य वर्द्धमानमें प्रायः ४० हजार एवं दाँईहाटमें प्रायः १० हजार लोगोंका वास है। वर्त्तमान वड़े ग्रामोंके मध्य खंडघोष, इन्दास, सलीमावाद, गाँगुरिया, साहवगंज, भातुरिया, मल्लेश्वर, भाऊसिंह, भगवतीपुर, मंगलकोट, उद्धानपुर, वुदवुद, औसग्राम, सोनामुखी, कसवा, दिग्नगर, मानकर, काकसा, निआमतपुर,

गोधार, कोतलपुर, रायना तथा सलीमपुर ये २४ ग्राम प्रधान हैं। इन सब ग्रामोंमें लोगोंकी घनी आबादी है।

उक्त नगर तथा ग्रामोंके मध्य कलना वाणिज्यका केन्द्रस्थान है। मुसलमानी अमलदारीमें भी यह स्थान बहुत समृद्धिशाली था। उस समय कालनाके पास हो कर गंगा नदी बहती थी। प्राचीन कलनामें इस समय वाणिज्यका केन्द्र न होने पर भी बहुतसे सम्भ्रान्त लोगों का वास है। बहुतसे दूकानोंसे परिपूर्ण नये कालनेका निर्माण वर्द्धमान नरेशने बड़े यत्नसे किया है। रानीगंज-की कोयलेकी खान सारे संसारमें विख्यात है।

रानीगंज देखो।

जहानाबाद दारिकेश्वरके तीरस्थित है। यहां महकुमा तथा बहुतसे संभ्रान्त लोगोंका वास है। वालीग्राम भी दारिकेश्वरके तीर वास है। पहले यह स्थान ब्राह्मण तथा कायस्थोंका वासस्थान हो रहा था। भागीरथी तथा अजयनदके संगम पर कांटोया नगरी अवस्थित है, यहां बहुतसे धनियोंका वास है। बहुत पहलेसे ही कांटोयाकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। नवाव अलिवर्दी खाँके समय मराठोंके उत्पातसे कांटोयाकी बड़ी क्षति हुई थी। इस समय भी यह नगर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान गिना जाता है। कांटोया देखो।

दाँईहाट भागीरथीके तीर पर विद्यमान है। पहले यह स्थान भी बहुत उन्नति पर था। इस समय भी यहां अनेक प्रकारके व्यवसायियोंका वास देखा जाता है। यह स्थान वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

वर्द्धमान जिलेमें परती जमीन दृष्टिगोचर नहीं होती, यहां प्रायः सर्वत्र ही खेती होती है।

यहां वन्य-पशुओंके मध्य रानीगंजके जंगलमें अल्प संख्यक व्याघ्र, भालू तथा चीते देखे जाते हैं। यहां विष-धर सांपोंकी कमी नहीं। पक्षियोंके मध्य वन्यकुक्कुट, राजहंस, मयूर, वन्यकपोत, तित्तिर तथा वटेर देखे जाते हैं।

अधिवासी तथा अवस्था।

इस जिलेमें सैकड़े ८० हिन्दू, १८ मुसलमान एवं शेष भिन्न धर्मावलम्बी हैं। हिन्दुओंके मध्य वाग्दी तथा सद्गोपकी संख्या ही अधिक है। इसके बाद संख्यानुसार यथाक्रमसे ब्राह्मण, वाउरी, ग्वाला, चमार, डोम, बनिया, कायस्थ, कैवर्त्त, तेली, कलवार, हाड़ो, तन्तुवा, कर्मकार, सूड़ी, नाई, चंडाल, कुम्हार, मोदी, बढ़ई। मुसलमानोंके मध्य सभी प्रायः सुन्नी हैं, सियाकी संख्या बहुत ही कम है। कृस्तान-सम्प्रदायकी संख्या एक हजारसे अधिक न होगी। उनमें यूरोप तथा यूरेसियों-की संख्या ही अधिक है। देशी कृस्तानोंकी संख्या विशेष नहीं है।

पहले वर्द्धमानकी आबादी बहुत घनी थी। १७६६ ई०में यहां मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ। उस समयसे यहांके लोगोंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जा रही है। थोड़े दिनोंसे कुछ कुछ उन्नति होने लगी है। माघसे ले कर आषाढ़के प्रथमान्त पर्यन्त यह जिला खूब स्वास्थ्य-कर रहता है, इसके बाद वर्षा शुरू होनेके साथ ही ज्वर-का भी प्रादुर्भाव होता है। जलके निकाशकी वैसी सुविधा न रहनेके कारण सर्दी तथा भोजनके दोषसे बहुतसे लोग पीड़ित हो उठते हैं। किसी किसी वर्षमें इस जिलावासियोंके ऊपर भीषण विपत्ति टूट पड़ती है। जनसाधारणका विश्वास है कि, रेलवेका बाँध हो जानेसे ही जलनिकाशकी असुविधाके कारण बड़ी बड़ी नदियों-की गति परिवर्त्तित हो जाती है एवं बाढ़ न आनेके कारण इस जिलेके पूर्वसंचित कूड़े कर्कट यथास्थान ज्योंके त्यों रह जाते हैं, छोटी छोटी नदियोंकी धारायें शुष्क पड़ जाती हैं, जिससे यहांका पानी दूषित हो कर इस जिलेको अस्वास्थ्यकर बना डालता है। इसीसे इस जिलेकी आबहवा शुद्ध करनेके निमित्त दामोदर नदीसे एडेन खाई खोद कर इस जिलेमें शुद्ध पानीका प्रादुर्भाव किया गया है। वर्द्धमान शहरमें जलकी कलें तैयार की गई हैं तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी विशुद्ध सरोवर इत्यादि खोदे गये हैं और खोदे जा रहे हैं।

रेलवेकी सुविधाके लिये दामोदर नदीका बांध तैयार होनेके पहले वर्द्धमान जिलेमें नियत समय पर बाढ़ आया करती थी। १७७०, १८२३ तथा १८५५ ई०की बाढ़ोंसे बहुतसे लोगोंकी हानि तथा प्राणोंका संहार हुआ। बांध हो जानेके दिनसे बाढ़का प्रकोप कम हो गया है।

१८६६ ई०में वर्द्धमानमें दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय यहां मोटे चावलका भाव १॥०) रु० मनसे ले कर ५॥०) रु० तक हो गया था।

वाणिज्य।

यहां देशी लोगोंके उद्योगसे धोती साड़ी तैयार हो कर कई स्थानोंमें भेजी जाती हैं। सोना, चांदी, पीतल तथा कांसाके वरतन यथेष्ट तैयार होते हैं। यहांकी जमीन खूब उपजाऊ है, इसलिये इस जिलेमें परती जमीन दृष्टि-गोचर नहीं होती। यहां फसल भी अच्छी उपजतीहै। यहांसे चावल, तमाकू, पाट, चीनी, लवण, देशी धोती, रूई प्रभृति पदार्थ दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं एवं यहां विलायती कपड़े, विलायती चीजें, लोहे, लवण, गरम मसाला, नारियल तथा अंडीका तेल दूसरे दूसरे स्थानोंसे आते हैं।

इस जिलेमें इष्ट-इण्डिया रेलवेके मेमारी, शक्तिगढ़, वर्द्धमान, कानूजंक्सन, पानागढ़, दुर्गापुर, अंडाल, रानी-गंज, सियारसोल, निमचा, आसनसोल, सीतारामपुर, वराकर, गुसकरा तथा भेद्या प्रभृति स्टेशनोंसे ही अधि कांश वस्तुएं आती तथा भेजी जाती हैं। रानीगंजमें कम्पनीका एक बड़ा कारखाना है। इसमें पाइप, ईंटा तथा नाना प्रकारकी सुन्दर सुन्दर चीजें तैयार होती हैं।

इस जिलेमें चार जेलखाने तथा १७ थाने हैं। उनमेंसे ८ थाने सदरके अधीन हैं, जैसे—वर्द्धमान, साहेबगञ्ज, खंडघोष, रायना, गांगुड़, सलीमाबाद, बुदबुद तथा औस ग्राम। ३ थाने रानीगञ्जके अधीन हैं, जैसे—रानीगञ्ज, आसनसोल तथा फकसा। तीन थाने काँटोयाके अधीन केतुग्राम, काँटोया तथा मङ्गलकोट एवं तीन थाने कालनाके अधीन जैसे—कालना, पूर्वस्थली और मन्तेश्वर। ये सब फिर ७१ परगनेमें विभक्त हैं। इनके अलावा १० अस्प-ताल हैं।

३ उक्त जिलेका सदर महकुमा। यह अक्षा० २२' ५६' से ले कर २३' ३७' ३० तथा देशा० ८७' २६' से ले कर ८८' १४' पू० तक विस्तृत है। भू परिमाण १२६८ वर्ग-मील है। यहांकी जनसंख्या ६७१४१२ है। महकुमेमें एक शहर वर्द्धमान और १६८८ गाँव लगते हैं।

उक्त जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २३' १४' तथा देशा० ८७' ५१' पू०के मध्य वाँका नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३५०२२ है, जिनमें हिन्दू-की ही संख्या ज्यादा है। यहां तेलकी दो कलें हैं। १८८४ ई०में यहां पानी कल बनाई गई है। इसके बनाने-में दो लाख रुपये खर्च हुए थे जिसमें एक लाख महाराज-की ओरसे मिला था। यहां एक कैदखाना है जिसमें २५६ कैदी रखे जाते हैं। यहांका प्रधान वाणिज्य सुरकी, तेल और नेवार है। यहां एक वर्द्धमानराज कालेज है जिसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा यहां एक टेकनिकल स्कूल भी है जिसका खर्च डिस्ट्रिक्ट-बोर्डसे चलता है।

१८६३ ई०से इस शहरमें एक अनर्थकर ज्वरका प्रादुर्भाव हुआ है। इस समय म्युनिसपलिटीका प्रबन्ध हो जानेके कारण वर्द्धमान शहरका बहुत कुछ उन्नति हुई है। पहले यहां वर्द्धमान विभागके कमिश्नर साहब रहते थे। यहां के वर्द्धमान नरेशका सुवृहत् प्रासाद, उनके बनाये हुए १०८ शिव मन्दिरें तथा पीरबरहम् मसजिद् देखनेयोग्य हैं। १६२४ ई०में शाहजादा खुर्रम (शाहजहा) ने वर्द्ध-मान पर अधिकार जमाया। १६६५ ई०में शोभासिंहने वर्द्धमानाधिपतिको मार कर वर्द्धमान पर अधिकार कर लिया था। अन्तमें वर्द्धमानकी राजकुमारीके हाथसे उनकी आयु शेष हुई; वर्द्धमान जिलेके इतिहासप्रसंगमें यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका बड़ा स्टेशन है। यहांका सीताभोग तथा मोती-चूर प्रसिद्ध है।

वर्द्धमान (मरुवर्द्धमान)—उत्तर भारतकी काश्मीर उप-त्यकाके पूर्व एक सुदीर्घ उपत्यका। ये दोनों उपत्यकायें एक ऊंचे पर्वत द्वारा परस्पर अलग हैं। यह उत्तर दक्षिण प्रायः ४० मील लम्बा एवं चौड़ाई प्रायः आधा मील। इसके चारों सीमाओं पर पर्वत-श्रेणियाँ तुषारावृत शिखर-से स्थित हैं। चारों ओर ऊंचे ऊंचे पर्वतोंके रहनेके कारण इसकी निम्नभूमि तक सूर्यकी किरणें नहीं पहुंच सकतीं। वर्द्धमान नदी इस पर्वतमालाको पार करती हुई चन्द्रभागासे जा मिली है। यहाँ कई एक ग्रामोंमें बहुत कम लोगोंका वास है। वे लोग यहाँकी घोर सर्दी वर्दाश्त नहीं कर सकते।

वर्द्धमान—स्वनामख्यात बहुत-से ग्रन्थकर्त्ता। १ कातन्त्र-विस्तरके रचयिता। २ क्रियागुप्तक, सिद्धराजवर्णन और गणरत्नमहोदधिके प्रणेता। इन्होंने ११४० ई०में शेषोक्त ग्रन्थकी एक टीका लिखी थी। सुप्रसिद्ध पण्डित गोविन्द सूरि इनके गुरु थे। ३ नानाशास्त्रार्थनिर्णयके रचयिता। ४ श्राद्धप्रदीपके प्रणेता। ५ एक प्राचीन कवि। ६ एक विख्यात ज्योतिषी। वराहमिहिरने इनका नामोल्लेख किया है।

वर्द्धमान उपाध्याय—१ एक ग्रन्थकार। इन्होंने किरणावली प्रकाश, खण्डनखण्डखाद्यप्रकाश, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाश, न्यायनिवन्धप्रकाश, न्यायपरिशिष्ट-प्रकाश, न्यायलीलावती प्रकाश तथा प्रमेयतत्त्वबोध आदि ग्रन्थोंकी रचना की। ये गङ्गेश या गङ्गेश्वरके पुत्र थे।

२ एक विख्यात पण्डित। ये कविश्रेष्ठ और महाधर्मा-धिराज भवेशके पुत्र थे। इन्होंने अपने पितासे पढ़ा था। ये गङ्गाकृत्यविवेक, दण्डविवेक, धर्मप्रदीप, परिभाषा विवेक, स्मृतितत्त्वविवेक, स्मृतितत्त्वामृत, स्मृतितत्त्वा मृत, सारोद्धार और स्मृति परिभाषा आदि ग्रन्थ बना गये। रघुनन्दन, कमलाकर और केशवने इनका मत उद्धृत किया है।

वर्द्धमानक (सं० त्रि०) वर्द्धमान स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ वृद्धिविशिष्ट, बढ़नेवाला। (पु०) २ शराव। ३ एरण्ड-वृक्ष, रेंड़ीका वृक्ष। ४ आरात्रिक, आरती।

वर्द्धमानगणि—कुमारप्रशस्तिकाव्यके रचयिता। ये हेमचन्द्रके शिष्य थे।

वर्द्धमानद्वार (सं० क्ली०) १ वर्द्धमानका प्रवेशद्वार। २ हस्तिनापुर राज्यका प्रवेशद्वार।

वर्द्धमानपुर (सं० क्ली०) ग्रामविशेष, गुजरातका एक प्रधान नगर।

वर्द्धमानपुरीय (सं० त्रि०) वर्द्धमान नगर-सम्बन्धीय।

वर्द्धमानपति (सं० पु०) वर्द्धमानस्य पतिः। वर्द्धमान-पुरके अधिपति।

वर्द्धमानमति (सं० पु०) बोधिसत्वभेद।

वर्द्धमान मिश्र—एक पुस्तक-प्रणेता। इन्होंने वर्द्धमान-प्रक्रिया नामक एक व्याकरण लिखा।

वर्द्धमानसट्टक (सं० क्ली०) सट्टकभेद, जीरा मिला हुआ मट्ठा। इसके बनानेका तरीका—दही मथ कर उसमें यथा प्रमाण गुड़, मिर्च, सोंठ, पीपर, जीरा इन सबोंका चूर्ण मिलावे। उसके बाद अच्छी तरह हाथसे घोंटे। पीछे पके अनारका रस उसमें मिला कर उसे कपड़ेसे छान ले। इस तरह जो मट्ठा तैयार किया जाता है, उसीको वर्द्धमानसट्टक कहते हैं। यह सट्टक गुरु, अग्निदीप्ति-कर, बलकारी, तृप्तिकारक, कफ, वात, पित्त, श्रम, ग्लानि और तृष्णानाशक होता है। (वैद्यकनि० द्रव्यगु०)

वर्द्धमानसूरि—एक जैनसूरिका नाम। ये अभयदेवके शिष्य तथा १०३२ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने कथा-कोष या शरणरत्नावली तथा उपमितिभव-प्रपञ्चनाम-समुच्चय ११८८ संवत्‌में लिखा था।

वर्द्धमान स्वामी—एक जैन तीर्थङ्करका नाम। महावीर देखो।

वर्द्धमानेश (सं० पु०) वर्द्धमानस्य ईशः। १ वर्द्धमान-पुरके राजा। २ शिवलिङ्ग और मन्दिरभेद।

वर्द्धयितृ (सं० त्रि०) वृद्ध-णिच् तृच्। वर्द्धनकारक, बढ़ानेवाला।

वर्द्धा—मध्यप्रदेशके चीफ कमिश्नरके अधीनस्थ एक जिला यह अक्षा० २०° १८´ से ले कर २१° २२´ उ० तथा देशा० ७८° ३´ से ले कर ७९° १४´ पू० तक विस्तृत है। यह जिला त्रिकोणाकृति है। इसके पादमूलमें चान्दा जिला, पूर्वमें नागपुर तथा पश्चिममें वर्द्धानदी बहनेके कारण वेरारसे यह अलग है। इसका भूपरिमाण २४२८ वर्गमील और जनसंख्या ३८५१०३ है। इस जिलेमें ९०६ शहर और गाँव लगते हैं। जिलेके अन्दर ४ मिडिल इंगलिश स्कूल, ८ वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और ८८ प्रायमरी स्कूल हैं। इनके अलावे १० अस्पताल और १ मवेशी अस्पताल है।

इस जिलेकी अधिकांश भूमि पर्वतोंसे भरी है। सत-पुरा पर्वतमालाकी एक शाखा उत्तरसे ले कर इस जिलेकी दक्षिण-पूर्वकी भूमि तक फैली हुई है। इसकी क्रमोच्च-निम्न तथा पथरीली भूमिमें विशेष कोई वृक्ष लता तथा शस्यादि उत्पन्न नहीं होता। ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके ढालू अंशमें थोड़े बहुत झाड़-झंखाड़ पैदा होते हैं। वर्षा-ऋतुके बाद ये सब स्थान पूर्णरूपसे तृणाच्छन्न हो जाते हैं। उस समय गो, महिष आदि पशु दल बाँध कर यहां तृण इत्यादि चरने आते हैं। अष्टा तथा कन्दाली

परगनेके पर्वत शाल तथा सेगुन वृक्षोंके जंगलसे परिपूर्ण हैं। इन सब पर्वत श्रेणियोंके बीचकी उपत्यका बहुत उपजाऊ है।

इस जिलेके उत्तर विभागसे तलेग्राम, चिचली, धामकुण्ड तथा खानग्राम नामक पहाड़ो रास्ता नागपुरकी ओर गया है। इन सब पर्वतमालाओंके मध्य मालेगाँव, नन्दगाँव तथा जैतगढ़का (२०८६ फीट) शिखर सबसे ऊँचा है। उन्हींके मध्य हो कर फिर पर्वतगात्रप्रसृत जलराशिकी अववाहिका भूमि है। कई एक छोटी छोटी नदियाँ कल-कल गीत गातीं उस गिरिकन्दराओंको पार करती हुई पर्वत पार्श्वस्थित निम्नप्रदेशके समतल प्रान्तसे प्रवाहित हो कर, वर्द्धासलिलमें आ कर मिल गई हैं। इन सबोंमें धाम, बोर, अशोड़ा तथा बसा नामक कई शाखाएँ वर्द्धाका कलेवर पुष्ट कर रही हैं। बड़े बड़े वृक्षोंमें यहां आम, इमली, वटवृक्ष तथा पीपल देखे जाते हैं। पूर्वीविभागके जंगलोंमें उस तरहके दीर्घाकार वृक्ष नहीं पाये जाते। हिंगनघाट-तहसील तथा गिराड़नगरके आस-पासकी भूमिके नीचे मीठे जलका प्रवाह है।

विगत छः शताब्दीसे पूर्व शेख ख्वाजा फरीद नामक एक मुसलमान साधु यहाँके पर्वतशिखर पर वास करते थे। प्रवाद है, कि एक समय कई एक व्यापारी लोग नारियल ले कर व्यापार करनेके निमित्त उस स्थानसे हो कर जा रहे थे। उस मुसलमान-साधुको आडम्बरी समझ कर उन्हें कुछ तीखे वचन सुनाये। इससे साधुके हृदयमें क्रोधका संचार हुआ एवं उनके अभिशापसे सभी नारियल पत्थररूपमें परिणत हो कर पर्वतके चट्टानोंमें मिल गये। अभी इस पर्वतके शिखर पर बहुतसे मुसलमान साधु रहते हैं।

यहां विशेष कोई खनिज पदार्थ नहीं पाया जाता। पर्वतोंसे जो कई प्रकारके पत्थर पाये जाते हैं, वे घर बनानेके अलावे किसी काममें नहीं आते। किसी स्थानमें चूनेके पत्थर पाये जाते हैं, उन पत्थरोंको भस्म करके चूना तैयार किया जाता है। यहां फ्लैगस्टोन तथा ब्लैकवेसल्ट नामक पत्थरोंका अभाव नहीं है।

यहांके जङ्गलोंमें चीता, नेकड़ा, बनबराह तथा वनशृगाल इत्यादि जानवर बहुत देखे जाते हैं। यहांके पर्वतभागमें हिरण, नीलगाय तथा भेंड़ प्रभृति जन्तु दृष्टिगोचर होते हैं। पक्षियोंके मध्य तित्तिर, टिट्टिभ, वटेर, पार्वत्य कपोत आदि प्रधान हैं। सभी प्रकारके सर्प तथा शतपदी एवं वृहत्काय विच्छू रेंगते नजर आते हैं।

यद्यपि यहांके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें विशेष बातें पाई नहीं जातीं, तथापि महाभारतकी उक्ति तथा स्थानीय प्रवादोंसे जाना जाता है, कि यहांका उत्तर-पश्चिम अंश विदर्भराज भीष्मकके शासनाधीन था। भगवान् श्रीकृष्णने इसी भीष्मक राजाकी बेटी रुक्मिणी देवीका पाणिग्रहण किया था।

दक्षिण-पूर्वांशमें गौली जातिका निवास था। सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा पवन पौणारने पवनी तथा पहुआ नामक स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया था। प्रवाद है, उनको एक पारस पत्थर था। जब प्रजा राजकर आदाय नहीं कर सकती थी, तब राजाको राजकरमें लोहेकी फाल ही दिया करती थी। वे लोहेकी फाल उस पारस पत्थरके स्पर्शसे सोनेमें परिणत हो जाती थी।

अन्तमें सैयद सालार कबीर नामक एक मुसलमान जादूगर वहां पहुंचा। उसने जादू बलसे राजाके शिरके समान एक दूसरा शिर तैयार कर एवं अपने शिरको एक गुप्त स्थानमें रख राजाके भेषसे नगरमें प्रवेश किया। राजाने कबीरका प्रभाव देख, लांछनाके भयसे पौनरगढ़की सामनेवाली धाम पुष्करिणीके जलमें प्रवेश किया। उस दिनसे जलके अन्दर नाना प्रकारके भौतिक चित्र दिखाई पड़ते हैं।

किम्वदन्ती है कि, एक समय एक चरवाहा उसी नदीके किनारे गाय चरा रहा था। अपनी गौओंके झुण्डमें एक काले बछड़ेको घूमते देख कर उसने सोचा—यह बछड़ा किसका है? बहुत दिनोंसे यह हमारे गो झुण्डमें सम्मिलित हो कर चरने आता है, किन्तु कभी इसे अपने मालिकके पास जाते नहीं देखता। इसका कारण क्या है? ऐसा सोच कर वह धीरे धीरे उस बछड़ेके पास गया और पूछा—तुम किसके बछड़े हो? उस बछड़ेने इस प्रश्नका कुछ

भी उत्तर नहीं दिया, वरन् धीरे धीरे जलके मध्य प्रवेश किया। चरवाहेने सोचा—यह बछड़ा नित्य यों ही चला जाता है। इसे चरानेका कोई फल मेरे हाथ नहीं आता। आज मैं इसके पीछे पीछे इसके मालिकके पास चल कर अपनी चरवाही वसूल करूँगा। इस तरह सोच विचार कर उसने उस बछड़े की पूंछ पकड़ ली। बछड़ा धीरे धीरे जलके अन्दर घुसने लगा। वह भी उसके पीछे पीछे उस अगम्य जलराशिमें समा गया।

चरवाहेने जलके अन्दर जा कर एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर देखा। उस मन्दिरसे निकल कर एक दिव्य पुरुष उसके पास आये और उस बछड़े को बांधने लगे। चरवाहे ने बड़ी नम्रतासे कहा,—प्रभो! मैं नित्य इस बछड़े-को अपनी गोमण्डलीके साथ चराता हूं, परन्तु आज तक मुझे इसकी चरवाही कुछ न मिली। मैं यह भी न जानता था, कि यह बछड़ा किसका है। आज मैं इसीका पता लगानेके लिये इसके साथ साथ यहां तक आया हूं। आज मेरे परिश्रमके फल मिलने चाहिये। इस पर उस महापुरुषने मुस्कुरा दिया एवं उन्होंने कुछ फल मूल ला कर उसके हाथोंमें रख दिया। वह इस क्षुद्र वस्तुकी प्राप्तिसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह विरक्त हो कर पुनः उस बछड़े की सहायतासे जलके बाहर आया। दूसरे दिन चरवाहा अनिच्छासे ही एक बार उन फल मूलोंकी ओर दृष्टि निक्षेप करके बहुत ही आश्चर्यित हुआ। उसने देखा—वे फल मूल किसी ऐन्द्रजालिक शक्तिके प्रभावसे सुवर्णमें परिणत हो गये थे। पहले जब कभी कोई इस पुष्करिणीमें तंडुल उत्सर्ग करता था, तब वह पका अन्न पाता था। पीछे एक दिन किसी व्यक्तिने अन्नव्यञ्जनपूर्ण थाल उत्सर्ग नहीं किया, उस दिनसे अब उस पुष्करिणीसे वैसा प्रसाद नहीं पाया जाता।

इस तरहकी असंख्य किम्बदन्तीके अतिरिक्त वहांके विशेष कुछ इतिहासका पता नहीं चलता। महाभारतीय भीष्मक राजाके राजत्वकालके बाद इस स्थान पर क्रमशः दाक्षिणात्यके विभिन्न देशोंके राजाओंका अधिकार हो गया। इस स्थानमें कोई स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं हुआ, किन्तु आन्ध्र प्रभृति दाक्षिणात्यके सुप्रसिद्ध राजवंशियों ने यहां अपना अपना शासन-प्रभाव विस्तार किया था, इसमें संदेह नहीं।

दाक्षिणात्यके विभिन्न मुसलमान-राजवंशोंके बाद, जिस समय महाराष्ट्रकी शक्ति प्रबल हो उठी थी, उस समय यह स्थान महाराष्ट्र अभिनयका रंगस्थल हो रहा था। अंगरेजी अमलमें यह स्थान नागपुर जिलेके अन्तर्भुक्त हो गया है। यहांके विचार-विभागका सम्बन्ध नागपुरके साथ हो गया है। पेन्धारी दस्युदलके उपद्रवोंसे यहांके अधिवासिवर्ग बहुत पीड़ित हो उठे थे। इस समय यहांके प्रायः प्रत्येक घरके चारों ओर किलेकी तरह मिट्टीकी ऊंची दीवारें स्थापित हो गई हैं।

नागपुर देखो।

नागपुर, चन्दा, हैदराबाद प्रभृतिके साथ यहांका व्यापार खूब ही चलता है। हिंगनघाटकी कपासके वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। वर्द्धाभेली स्टेट रेलपथ एवं ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलाके रेलपथ इस जिलेसे हो कर जानेके कारण यहां व्यापार करनेकी बड़ी सुविधा हुई है। सोनगांव तथा हिंगनघाटके नाना स्थानोंमें प्रथमोक्त रेलवे पथके दो एवं पालगांव, वर्द्धा, देवगिरि, पावनाड़ तथा सिन्दी नामक स्थानोंमें द्वितीय लाइनके कई स्टेशन इस जिलेमें अवस्थित हैं। रूईके अतिरिक्त यहां तीसी, चमड़ा इत्यादिका व्यापार होता है।

२ उक्त जिलेके मध्यमें स्थित एक तहसील। यह अक्षा० २०° ३०´ से ले कर २१° ३´ उ० तथा देशा० ७८° १५´ से ले कर ७८° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ८०६ वर्गमील और जनसंख्या १५२५६५ है। इस तहसीलमें तीन शहर वर्द्धा, देवली और पुलगांव एवं ३१४ गांव लगते हैं। इसमें ५ दीवानी और ११ फौजदारी अदालत हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर यह अक्षा० २०° ४५´ उ० तथा देशा० ७८° ३७´ पू०के बीच पड़ता है। जनसंख्या ६८७२ है। इस नगरमें एक मिडिल इंगलिश स्कूल, एक गर्ल स्कूल, तीन अस्पताल और एक मवेशी अस्पताल है।

वर्द्धा—मध्य प्रदेशमें बहनेवाली एक नदी। यह नदी नागपुर तथा बेतूलके मध्यवर्त्ती सतपुरा पर्वतसे निकलती

है। पीछे नागपुर, वर्द्धा तथा चन्दा जिलेकी सीमासे होती हुई एवं बरार तथा निजामराज्यको विच्छिन्न करती यह नदी मन्द गतिसे दक्षिण-पूर्वकी ओर १६० मील अग्रसर हो कर अक्षा० २१° ५०´ उ० एवं देशा० ७८° २४´ पू० वेनगंगामें जा मिली है। इसके बाद चन्दासे उत्तर प्रायः २६४ मील चल कर वेनगंगासे मिलती है। तत्पश्चात् 'प्राणहिता' नाम धारण कर इठलाती इतराती गोदावरीमें पतित होती है। इस नदीमें जल इतना कम रहता है कि, लोग इसमें उतर कर आसानीसे पार हो जाते हैं। किन्तु बाढ़के समय अगम्य जलसे परिपूर्ण हो कर यह नदी भीषण आकार धारण करती है। उस समय इसकी गति इतनी तीव्र हो जाती है कि, इसके जलप्रवाहमें असंख्य जीव जन्तु बह जाते हैं। चन्दाके निकटवर्ती सोइत ग्रामके समीप इस नदीकी धारामें एक प्रसिद्ध जलप्रपात है। वर्षाकालमें इस स्थान पर इस नदीका जल ८० गज चौड़ा हो कर एक सुदीर्घ खाईमें पतित होता है। इस समय जलोच्छ्वासित फेनराशिके अपूर्व सौन्दर्यको देख कर आंखें ठंढी हो जाती हैं। आश्विन मासके शेषकालमें इस जलप्रपातका दृश्य देखते ही बनता है।

फूरगाँवके निकट इस नदी पर एक लोहेका पुल है। यह पुल ६० फीट चौड़ा है एवं लोहेके १८ गार्डरोंके योगसे नदीवक्षस्थ इष्टकनिर्मित स्तम्भोंके ऊपर सुरक्षित है। वर्द्धा नदीप्रवाहित उपत्यकाभूमिमें रूई बहुत पैदा होती है। नदीके किनारे स्थान स्थान पर देवमन्दिर, समाधिस्तम्भ तथा मुसलमान साधुओंकी कब्र देखी जाती हैं। देउलपाड़ा नामक स्थानमें प्रतिवर्ष अग्रहायण मासमें एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें प्रायः तीन सप्ताह तक लोग ठहरते हैं।

वर्द्धापक (सं० त्रि०) १ कर्णवेधके समयकी क्रिया करनेवाला। २ उक्त उत्सवमें प्रदत्त उपहारादि।

वर्द्धापन (सं० क्ली०) १ नाड़ीच्छेदन, कर्णवेध, कनछेदन। २ महाराष्ट्र देशमें अभ्यङ्गादि क्रिया जो किसी पुरुषकी जन्मतिथिको की जाती है।

वर्द्धित (सं० त्रि०) वृध-क्त। १ प्रसूत, उत्पादक। २ छिन्न, कटा हुआ। ३ पूर्ण। ४ वृद्धिप्रापित, बढ़ा हुआ।

वर्द्धितृ (सं० त्रि०) वृध तृण्। वर्द्धक, बढ़ानेवाला।

वर्द्धिन् (सं० त्रि०) वर्द्धनशील, बढ़नेवाला।

वर्द्धिष्णु (सं० त्रि०) वर्द्धते इति वृध (अलंकृञिति। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। वर्द्धनशील, बढ़नेवाला।

वर्द्ध (सं० क्ली०) वर्द्धते दीर्घीभवतीति वृध (वृधिवपिभ्यां रन्। उण् २।२७) इति रन्। चर्म, चमड़ा, खाल।

वर्द्धिका (सं० स्त्री) वर्द्धी देखो।

वर्द्धी (सं० स्त्री०) १ चर्मरज्जु, चमड़ेकी रस्सी, बद्धी। २ एक प्रकारका आभूषण जिसे बद्धी कहते हैं।

वर्ध्म (सं० पु०) १ अन्त्रवृद्धि रोग, आँत उतरनेका रोग। २ वह फोड़ा जो जांघके मूलमें सन्धि स्थानमें निकल आता है। यह फोड़ा कठिन होता है। इसके रोगीको ज्वर आता है और वह सुस्त पड़ा रहता है इसे बद भी कहते हैं।

वर्पस् (सं० क्ली०) वृणीते संवृक्तं भवतीति वृ (वृङ्शीङ्भ्यांस्वरूपाङ्गयोः पुट् च। उण् ४।७०) इति असुन् पुड़ागमश्च। १ रूप। २ स्तोत्र। (ऋक् १।१४०।५) 'वर्पः स्तोत्र' (सायण)

वर्पास् (सं० क्ली०) वर्पस् देखो।

वर्म (सं० पु०) वर्मन् देखो।

वर्मक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक जनपदका नाम। इसे ब्रह्मदेश या बरमा कहते हैं। ब्रह्मदेश देखो। २ उस जनपदका बाशिन्दा।

वर्मकण्टक (सं० पु०) पर्पटक, पित्तपापड़ा।

वर्मकषा (सं० स्त्री०) वर्म कषतीति कष-अच् टाप्। सप्तला, सातला।

वर्मण (सं० पु०) नागरङ्गवृक्ष, नारंगीका पेड़।

वर्मन् (सं० क्ली०) वृणोति आच्छादयति शरीरमिति वृ-मनिन्। १ तनुत्र, तनुत्राण, कवच, बकतर।

बहुत प्राचीन कालसे ही भारतमें कवच पहननेकी रीति चली आती है। इस बकतरको पहन कर ही आर्य्य योद्धागण शत्रुके कराल कृपाणसे आत्म-रक्षा करते थे। ऋक्संहिताके ६ मण्डल ७५ सूक्तके प्रथम मन्त्रमें लिखा है, संग्राम उपस्थित होने पर (वह राजा) जब वर्म पहन कर रणक्षेत्र चले तब जीमूतकी तरह उनका रूप हुआ। 'हे राजन्! तुम अविद्ध शरीरसे जय प्राप्त करो। वर्मकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे।' फिर

उक्त सूक्तके 'मर्माणि ते वर्मणा छादयामि' १८ मन्त्रसे साफ मालूम होता है, कि आर्यगण वर्म द्वारा मर्मस्थानोंको आच्छादन करना जानते थे। इसके अलावा ऋग्वेदके ८।४७।८, १०।१०७।७ तथा अथर्ववेदके ८।५।७ और ६।५।२६ मन्त्रमें वर्मको कार्यकारित्व लिखा है। रामायणके ३।३० अध्यायमें तथा महाभारतके आदि, वन, विराट और उद्योगपर्वों में वर्म पहननेकी विधि लिखी है। इनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत, बृहत्संहिता आदि ग्रन्थोंमें भी वर्मके प्रचार और प्रभावका परिचय मिलता है। किन्तु दुःखका विषय है, कि उस समय किस तरह वर्म निर्माण करके भारतीय आर्य योद्धृवर्ग युद्धके समय अपना अपना शरीर आच्छादन करते थे, उसका कोई निदर्शन नहीं पाया जाता।

प्राचीन असुरियोंके उत्कीर्ण शिलाखण्डके युद्ध-चित्रमें वर्मावृत योद्धाओंकी प्रतिकृति खोदी हुई है। भारतके नाना स्थानोंके मन्दिरोंमें ऐसी बहुत सी वर्म-परिवृत मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं। अरबियोंका विश्वास है, कि धर्मप्रचारक दाउदने सबसे पहले बकतर (Coat of mail) तैयार और प्रचार किया था। प्राचीन रोमक योद्धृगण बकतरसे समूचा शरीर ढक कर युद्ध करते थे। उसके बाद क्रमसे अपरापर जनपदवासियोंमें बकतर पहननेकी व्यवस्था जारी हुई। पीछे जब कमान, बन्दूक आदि आग्नेय अस्त्रोंका प्रचार हो गया, तब इसका व्यवहार क्रमशः कमता गया।

२ गृह, घर। ३ पर्पटक, पित्तपापड़ा।

वर्मवत् (सं० त्रि०) वर्म विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। वर्मयुक्त, जो बकतर पहने हो।

वर्महर (सं० त्रि०) हरतीति हृ अच् हरः, वर्मणो हरः। वर्महारक, कवचधारी।

वर्मा (सं० पु०) क्षत्रियों आदिकी उपाधि जो उनके नाम अंतमें लगाई जाती है।

वर्मि (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली इसका गुण—गुरु, बलकारक, कषाय और रक्तपित्तनाशक। भावप्रकाशके मतसे यह मछली लघुपाक एवं वायु और पित्तनाशक मानी गई है।

वर्मिक (सं० त्रि०) वर्मपरिवृत, कवचधारी।

वर्मित (सं० त्रि०) वर्म करोतीति वर्म-णिच्, ततः कर्मणि क्त वर्म सञ्जातमस्येति इतच् वा। वर्मयुक्त, कवचधारी। पर्याय—कृतसन्नाह, सन्नद्ध, सज्ज, दंशित, व्यूढकङ्कट, ऊढकङ्कट।

वर्मिन् (सं० पु०) १ नादेय मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। (त्रि०) २ वर्मयुक्त, कवचधारी।

वर्मुष (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका गुण वातनाशक, स्निग्ध और ग्रहदोषनाशक माना गया है। (राजवल्लभ)

वर्य्य (सं० त्रि०) वर्य्यते प्रार्थ्यते इति वर ईप्सायां (अचो यत्। पा ३।१।९७) इति यत्। १ प्रधान। २ श्रेष्ठ। इसका प्रयोग विशेषतः समस्त पदोंमें होता है। जैसे—विद्वद्वर्य्य। (पु०) ३ कामदेव।

वर्य्या (सं० स्त्री०) व्रियते इति वृ (अवद्यपण्यवर्य्येति। पा ३।१।१०१) इति अप्रतिबन्धे यत्। १ पतिंवरा बधू। २ कन्या। ३ आढ़की, अरहर।

वर्य्याञ्जन (सं० क्ली०) रसाञ्जन।

वर्व्वट (सं० पु०) स्वनामख्यात कलायभेद, लोबिया। अङ्गरेजीमें इसे Dolichos catjam कहते हैं।

वर्व्वणा (सं० स्त्री०) वरित्यव्यक्तशब्देन वणति शब्दायते इति वण शब्दे अच्-टाप्। नीलमक्षिका, नीली मक्खी।

वर्व्वर (सं० क्ली०) वृणुते वरयति नानागुणानिति वृ (कृगॄशॄ वञ्चिभ्यः ष्वरच्। उण् २।१२३) इति ष्वरच्। १ हिङ्गुल, ईंगुर। २ पीतचन्दन, पीला चन्दन। ३ बोल। वृणोति दोषानिति वृ ष्वरच्। (पु०) ४ पामर, नीच। ५ घुंघराले बाल। ६ एक देशका नाम। ७ पञ्जिका। ८ काली बनतुलसी। पर्याय—सुमुख, गरघ्न, कृष्णवर्व्वरक, सुकन्दज, गंधपत्र, पूतगन्ध, सुवाहक। इसका गुण—कटु, उष्ण, सुगन्ध, वमन, विसर्प, विष और त्वग्दोषनाशक। (राजनि०)

वर्व्वर—एक म्लेच्छ जाति। इस जातिकी वासभूमि प्राचीन ग्रन्थादिके अनुसार वर्व्वर जनपद थी। किन्तु यथार्थमें वह स्थान कहां था, इसका ठीक ठीक पता आज तक भी नहीं लगा है। महाभारत-भीष्मपर्व्वके ६।५६ अध्यायमें, वामन १३।३६में, मार्क० ५७।३८में, मत्स्य० १२०।४० अध्यायमें वर्व्वर जातिका उल्लेख देखा जाता

है। पेरिप्लास Barbarikon शब्दमें इस जातिका परिचय है। पाश्चात्य भौगोलिकोंने सिन्धु नदके मुहानेके आसपासके प्रदेशको तथा भारतीय कुछ ग्रंथकारोंने महाराष्ट्र देशके एक विशेष भागको प्राचीन वर्व्वर जनपद कहा है। हिन्दू शास्त्रोक्त वर्व्वर जनपदमें एक स्वतन्त्र अपभ्रंश भाषा भी प्रचलित थी। यथा—

"वर्व्वरावन्त्यपाञ्चालाः टाक्कमालवकेकयाः।"

(प्राकृतचन्द्रिका)

हम लोग प्राचीन रोमक जातिका इतिहास पढ़ कर जान सकते हैं, कि वर्व्वर (Barbarian) नामक एक दुर्द्धर्ष जातिने रोम-साम्राज्यको तहस-नहस कर डाला था। उस वर्व्वर जातिका वासस्थान सम्भवतः पश्चिम और मध्य एशिया था। ग्रीक लोग Barbaros शब्दसे वैदेशिक व्यक्ति या वस्तु ही समझते थे। जो ग्रीक भाषा नहीं जानता था, उसे वे 'वर्व्वर' कहा करते थे। ग्रीकवासियोंकी तरह रोमक लोग भी औरोंको वर्व्वर कहने लगे। इस तरह शक, हूण आदि असभ्य जातियां भी पाश्चात्य रोमकोंसे वर्व्वर कहलाने लगीं।

ग्रीकके वैदेशिक ज्ञापक Barbaros शब्दकी तरह विभिन्न जातिके मध्य भी ऐसी एक स्वतन्त्र अभिधा प्रचलित है। यहूदियोंके Gentile शब्दसे त्वक्‌च्छेदहीन एवं हिन्दुओंके मध्य 'म्लेच्छ' शब्दसे द्विजत्वहीन व्यक्ति समझा जाता है। इस प्रकार काफिर शब्द भी इसलाम-धर्ममें अविश्वासी व्यक्तिमात्रको निर्दिष्ट करता है। चीनी लोग फन वा इ शब्दसे एवं भोट जाति ग्या शब्दसे वैदेशिकको अभिहित करते हैं। अरवियोंका विश्वास है, कि वाणिज्यके अभिप्रायसे जिन सब भारतीय वणिकोंने अरवी भाषा सीखी है अथच वे अरव नहीं जाते, हरगिज अरवी भाषाका उच्चारण नहीं कर सकते हैं, ऐसे भारतवासियों अथवा स्पष्ट उच्चारण नहीं करनेवाले क्रीतदासोंको वे वर्व्वरात्-उल हुतुद कहते थे। पाश्चात्य पंडितोंकी धारणा है, कि ग्रीक "वर्व्वरोस" शब्द संस्कृत 'वरवराह' का अनुकृत है। वरवराह शब्दसे घुंघराले बालवाली जङ्गली या पहाड़ी असभ्य जाति समझी जाती है। अरबको छोड़ उसके आसपास स्थानोंके अरवी मुसलमान ऐसे मनुष्यको अल् आजम कहते हैं। वे अरवके वाशिन्दोंके सिवा दूसरे देशवासियोंको 'आजिमी' नामसे पुकारते हैं। अरवी, पारसी अथवा मुगल लोग भारतके प्राचीन अधिवासियोंकी अवज्ञा कर उन्हें 'काला आदमी' कहते थे। पाश्चात्य वणिक् सम्प्रदाय तथा अङ्गरेज पुंगवगण भी भारतवासियोंको 'काला आदमी' कह कर इनसे घृणा करते हैं।

वर्व्वरक (सं० क्ली०) वर्व्वर स्वार्थे कन्। चन्दनभेद, एक प्रकारका चंदन। पर्याय—वर्व्वरोत्थ, श्वेत वर्व्वर, शीत, सुगन्धि, पित्तारि, सुरभि। इसका गुण शीतल, तिक्त, कफ, वायु, पित्त, कुष्ठ, कण्डु और व्रण तथा विशेषतः रक्तदोषनाशक माना गया है। (राजनि०)

वर्व्वरा (सं० स्त्री०) पुष्पस्येव आकृतिरस्त्यस्या इति वर्व्वर-अच् टाप्। १ पुष्पभेद। २ शाकभेद। वर्व्व इति शब्दं रातीति रा-क। ३ मक्षिकाभेद, एक प्रकारकी मक्खी।

वर्व्वरी (सं० स्त्री०) वर्व्वर-टाप् पक्षे षित्वात् ङीष्। १ वनतुलसी। पर्याय—कवरी, तुङ्गी, खरपुष्पा, अजगन्धिका, अजगन्धा, कवरा, खरपुष्पिका। (भावप्र०) (पु०) २ पुराणानुसार एक मुनिका नाम। (लिङ्गपुराण ७।४७)

वर्व्वरीक (सं० पु०) वृणुते इति वृ वरणे (श्र पृ वृजां द्वे रुक् चाभ्यासस्य। उण् ४।१९) इति ईकन् द्विर्वचन अभ्यासस्य रुगागमश्च। १ ब्राह्मणयष्टिका वृक्ष, भारंगी। २ कुटिल, कुन्तल। ३ अजगन्धिका, वनतुलसी। ४ महाकाल।

वर्व्वा (सं० स्त्री०) वर्व्वरी, वनतुलसी।

वर्व्वार—वैस राजपूतोंकी एक शाखा। ये लोग १२वीं सदीके पहले डुंडियखेरा नामक स्थानसे वरियारसिंह और चाहुलसिंहके अधीन फैजावाद अंचलमें आ कर बस गये हैं। वरियारसिंहके अधीनस्थ दलसे वर्व्वार शाखा एवं चाहुलसे चाहुशाखाकी उत्पत्ति हुई है।

कहते हैं,—दोनों भाइयोंको अकवर शाहने कैद कर लिया था। कैदसे छुटनेके बाद स्वप्न होनेके कारण दोनों भू-गर्भसे देवप्रतिमा उठा कर परिश्रम राठ परगनेके अन्तर्गत चितावन नामक स्थानमें ले गये और वहीं उस देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की। आज भी दोनों शाखाके लोग इस मूर्त्तिकी पूजा कर रहे हैं। जब अयोध्याके सूर्यवंशीय ठाकुर सरदारोंने अयोध्यासे भगा दिया, तब

उनके सरदार पिलाजी सिंदेने वेगमगंजके अन्तर्गत रामघाटमें एक और पवित्र देवतीर्थ स्थापन किया।

दूसरी आख्यायिकासे पता चलता है, कि जयपुरके दक्षिण पश्चिमस्थ मुंगी पाचन या पाचनपुरमें वे रहते थे। यहां उनके राजा शालिवाहन राज्य करते थे। वहांसे चिता-वनकारिया नामक स्थान आये और वहांसे भरजातिको विताड़ित कर दिया। एवं कनोजराजकी कन्या पद्मिनी-को हर कर दिल्लीश्वरके हाथ दे दिया। इसी पारि-तोषिकमें उन्हें १६ कोसकी जागीर मिली थी।

वर्व्वार लोग कन्या पैदा होने पर प्रायः ही उसे मार देते हैं जिससे इस कन्याके विवाहमें उन्हें बहुत कष्ट भुगतना पड़ता है। वे साधारणतः पालवार, कच्छवाह, कौशिक आदि कन्याओंसे विवाह करते हैं। बलियाके वर्व्वार लोग उज्जयिनी, हैहयवंशी, नरवानी, किनवार, निकुम्भ, किनवार, सेनागार और खाटियोंकी कन्या लेते तथा हैहयवंशी उज्जयिनी, नरवानी, निकुम्भ, विषेन, द्राई और रघुवंशियोंको कन्या देते हैं।

दिल्लीके आस पास चेर नगरसे वे आये हैं। इसलिये आजमगढ़में वे लोग छत्री या भूमिहार कहलाते हैं। सरदार गोरक्षदत्तने (१३३६-१४५५ ई०) उन्हें आजमगढ़ लाया था।

वर्व्वि (सं० त्रि०) वृ (वृदभ्यां विन्। उण् ४।५३) इति विन्। घस्मर।

वर्व्वूर (सं० पु०) वृ-बाहुलकात् वूरच्। वृक्षविशेष, बबूल। पर्याय—युगलाक्ष, कण्टालु, तीक्ष्णकण्टक, गोश्रृङ्ग, पंक्तिबीज, दीर्घकण्ट, कफान्तक, दृढ़बीज, अजभक्ष। गुण—कषाय, उष्ण, कफ, कास, आमरक्त, अतीसार, पित्त, दाह और अर्शरोगनाशक।

वर्ष (सं० पु० क्ली०) वृष्यते इति वृषु सेचने (अज्विधौ-भयादीनामुपसंख्यानम्) इति अच् अथवा व्रियते प्रार्थ्यते इति वृ-स (वृ तृ वदि हनि कमि कषिभ्यः सः। उण् ३।६२) १ वृष्टि, जलवर्षण। २ किसी द्वीपका प्रधान भाग, जैसे भारतवर्ष। ३ पुराणमें माने हुए सात द्वीपोंका एक विभाग।

पौराणिक भू-वृत्तान्त पाठ करनेसे जाना जाता है कि, पृथ्वी सात द्वीपोंमें विभक्त है। उक्त सातों द्वीपोंके नाम जैसे—जम्बू प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर। इन सातों द्वीपोंके मध्य फिर एक एक द्वीपका विभाग भी विभिन्न विभिन्न नामसे विभक्त है। उन्हीं विभिन्न भूमिभागोंके नाम वर्ष हैं। वर्षोंके नाम संस्थानविवरण, परिमाण एवं उनके अधिवासियोंका वृत्तान्त क्रमसे नीचे वर्णन किया जाता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि, प्रियव्रतके रथचक्रसे सात खाइयोंकी उत्पत्ति हुई। ये सातों खाइयाँ ही समय पा कर सात समुद्रोंमें परिणत हो गईं। उन्हीं सातों सागरोंके द्वारा हो पहले लिखे गये जम्बू प्रभृति सात द्वीपोंकी सृष्टि हुई। ये सब द्वीप समुद्रोंके चारों ओर फैले हुए हैं। उसी तरहसे समुद्रोंके बाहर भी एक एक समुद्र है। इन समुद्रोंके नाम लवणोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिजल, दुग्धोद एवं शुद्धोद हैं। ये सब सागर प्रथमोक्त समुद्रोंके बाहर असंकीर्ण रूपमें दूर दूर तक फैले हुए हैं।

प्रियव्रतकी भार्याका नाम बर्हिष्मती था। उनके सात लड़के थे। वे सातों ही सच्चरित्र थे। उनके नाम—अग्नीध्र, इध्मजिह्व, इध्मवाह, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधा-तिथि तथा वीतिहोत्र। इन सातों पुत्रोंको प्रियव्रतने एक एक द्वीपका अधिकारी बनाया।

प्रियव्रतकी कीर्त्तिवर्णनप्रसंगमें प्राचीनकालमें इस तरहके श्लोक गाये गये थे कि, एक ईश्वरके अतिरिक्त और कौन ऐसा था, जो प्रियव्रतके कार्योंका अनुकरण कर सकता? उन्होंने अन्धकार दूर करनेके लिये भ्रमण करते करते अपने चक्राग्र द्वारा खोद कर सात समुद्रोंकी सृष्टि की। वे विभागक्रमसे द्वीप रचना करके पृथ्वीका संस्थान निर्णय कर गये हैं एवं प्राणियोंकी विपद् वा असुविधा दूर करनेके अभिप्रायसे नद, नदी, पर्वत, वर्ण प्रभृति द्वारा प्रत्येक द्वीपकी सीमा निर्देश कर गये हैं।

प्रियव्रत यथासमयमें परमार्थचिन्तामें निमग्न हुए। पिताकी आज्ञासे पुत्र अग्नीध्र धर्म्मानुसार जम्बू द्वीप-वासी प्रजाओंका लालन पालन करने लगे। अग्नीध्रने अप्सरा पूर्वचित्तिका पाणिग्रहण किया। पूर्वचित्तिके गर्भसे राजर्षि अग्नीध्र द्वारा ६ पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम, जैसे—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ण, इलावृत, रम्यक,

हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल। अग्नीध्रके ये सब लड़के माताके अनुग्रहसे स्वभावतः ही दृढ़देह तथा बलशाली हो गये। अग्नीध्रने इन पुत्रोंके बीच यथा समय पर पृथ्वीका हिस्सा लगा दिया। उनके पुत्रोंने विभागक्रमसे अपने अपने नामानुसार ही जम्बूद्वीपके एक एक वर्षको अधिकारमें कर लिया। उक्त वर्षाधिपतियोंकी पत्नियोंके नाम यथाक्रमसे मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्रा, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा तथा वेददोधिति ये सब रमणियां मेरुकी कन्यायें थीं।

द्वीपोंके मध्य जम्बू-द्वीप ही सबसे पहला द्वीप है। इसकी लम्बाई नियुत योजन और चौड़ाई लाखयोजन है। इस द्वीपमें ६ वर्ष हैं। इन वर्षोंके मध्य भद्राश्व तथा केतुमाल वर्षोंके अतिरिक्त दूसरे प्रत्येक वर्षका विस्तार ६ सहस्र योजन है। ये नवों वर्ष ८ सोमा पर्वतोंसे विभक्त हैं।

इन सब वर्षोंमें इलावृत वर्ष सबके बीचमें है। उसके मध्यभागमें पर्वत-कुलके राजा सुवर्णमय सुमेरुगिरि विराजमान है। इस सुमेरुको ऊंचाई द्वीपोंकी चौड़ाईके बराबर एक लाख योजन है। उसका विस्तार मस्तककी ओर द्वात्रिंशत् सहस्र योजन एवं जड़में सहस्र योजन है। भूमिके मध्यभागमें भी उतने ही सहस्र योजनका फैलाव देखा जाता है।

इलावृत वर्षके उत्तर भागमें उत्तरादि दिशाक्रमसे क्रमशः नील, श्वेत, शृङ्गवान् ये तीन पर्वत हैं। ये तीनों यथाक्रमसे रम्यक, हिरण्मय तथा कुरु नामक तीन वर्षोंके सीमापर्वतस्वरूप हैं। उक्त तीनों पर्वत पूर्वकी ओर अधिक फैले हुए हैं। इनके दोनों पार्श्वोंमें खारसमुद्र लहरा रहा है। इनका फैलाव दो सहस्र योजन है। अग्रस्थित पर्वतसे परवर्त्ती पर्वत केवल एकादश अंश लम्बाईमें कम है।

इसी तरहसे इलावृतवर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक तीन पर्वत विद्यमान हैं। इन तीनों पर्वतोंको आयत उल्लिखित नीलाद्रि-पर्वतोंके समान है और इन तीनोंमें प्रत्येक तीन सहस्र योजन ऊंचा है। उक्त तीनों पर्वत यथाक्रमसे हरिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष एवं भारतवर्षके सीमापर्वत है। इस तरहसे उक्त इलावृत वर्षके पूर्व तथा पश्चिमकी ओर यथाक्रमसे माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत अवस्थित हैं। ये दोनों पर्वत उत्तरमें नील तथा दक्षिणमें निषध पर्वत तक लम्बे एवं दो सहस्र योजन चौड़े हैं। ये दोनों पर्वत ही यथाक्रमसे केतुमाल तथा भद्राश्ववर्षके सीमापर्वत हैं।

सुमेरुके चारो ओर मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक चार अवष्टम्भ पर्वत विद्यमान् हैं। इन सब पर्वतोंमें प्रत्येककी आयत तथा ऊंचाई दश हजार योजन हैं। उक्त चारों पर्वतके मध्य पूर्व तथा पश्चिमके पर्वत दक्षिणोत्तरमें विस्तृत हैं एवं दक्षिणोत्तरके पर्वत पूर्वपश्चिममें फैले हुए हैं। उक्त चारों पर्वतोंके ऊपर यथाक्रमसे आम, जामुन, कदम्ब तथा वट ये चार वृक्ष नजर आते हैं। इन सब वृक्षोंका विस्तार सौ योजन है। ये पार्वत्य पताकास्वरूप ग्यारह सौ योजन ऊंचे हैं। उनकी शाखाएं उसी तरहसे सौ योजन तक फैली हुई हैं। उक्त चारों वृक्षोंके निकट चार सुन्दर तालाब हैं। उनके मध्य एकमें दुग्धजल, दूसरेमें मधुरजल, तीसरेमें इक्षुरसजल एवं चौथेमें शुद्धजल हैं। इन चारों तालाबोंका जल अति मनोहर है। उपदेवोंने इन सब तालाबोंका जल सेवन करके स्वाभाविक महिमा प्राप्त की है। इन स्थानोंमें उल्लिखित चारों तालाबोंके अतिरिक्त चार उद्यान भी हैं। उनके नाम नन्दन, चित्ररथ, वैभ्राज तथा सर्वतोभद्र।

इन सब उद्यानोंमें देवता लोग सुरसुन्दरीके साथ विहार करते हैं। इस तरह विहार करनेके समय गंधर्वलोग इनका गुणगान करते हैं।

मन्दर-पर्वत पर एक देवच्युत नामक एक वृक्ष है। उसकी ऊंचाई ग्यारह सौ योजन है। इस वृक्षकी डालियोंसे नियमित परिमाणसे अमृतफल टपकते हैं। वे फल पर्वतकी चट्टानकी तरह बहुत बड़े बड़े होते हैं। जब वे फल पर्वतों पर गिर कर फट जाते हैं, तब उनके भीतर एक प्रकारकी मीठी सुगन्ध निकल कर दूर दूर तक फैल जाती है, जिससे वह स्थान सुगन्धमय हो जाता है। उन फलोंके सुगन्धित अरुणरससे एक धारा बह निकली है। इस नदीका नाम अरुणोदा है। यह नदी मन्दर पर्वतके शिखरसे होती हुई पूर्वकी ओर इलावृत वर्षको सींचती

है। भवानीकी सेविका यक्षांगनागण इस रसका सेवन करती हैं, इसीलिये उनके शरीर अत्यन्त सुगन्धमय होते हैं। उनके अङ्गका अङ्गराग लगा कर वायु चारों ओर दश योजन तकके जीव जन्तुओंको आमोदित करती है।

जम्बूवृक्षके फल हाथीके बराबर स्थूल होते हैं। उनके बीज बहुत ही छोटे होते हैं। ये सब फल बहुत ही ऊंचे से गिरनेके कारण फट जाते हैं, उस समय उनके रससे जम्बू नदी नामक एक नदी निकलती है। वही नदी मेरु मन्दर पर्वतकी शिखरसे होती हुई अयुत योजन चल कर भूमण्डल पर आती है। यह जिस स्थान पर गिरती है, उस स्थानसे अपनी दक्षिण ओर सारे इलावृत वर्षमें प्रवाहित होती है। इस नदीकी मिट्टी उसके जलसे अनुविद्ध हो कर वायु तथा सूर्यके संयोगसे विशेष पक्वता पा कर जाम्बूनद अर्थात् सुवर्णमें परिणत हो जाती है। यह सुवर्ण ही अमर तथा अमरकामिनियोंके अलंकार हैं।

सुपार्श्व पर्वतके पास महा कदम्ब नामक एक वृक्ष है। इसके खोड़रेसे पंच व्याम परिमित पांच मधुधाराएं निकलती हैं एवं पर्वत शिखर पर गिर कर पश्चिमस्थ इलावृतवर्षको अपनी सुगन्धसे आमोदित करती हैं। जो लोग इस पर्वतकी मधुधाराका सेवन करते हैं, उनके मुखकी हवासे चारों ओरका शत योजनव्यापी भूभाग सुवासित होता है।

कुमुद पर्वत पर शतवलश नामक एक वटवृक्ष है। उसके स्कन्धभागसे दधि, दुग्ध, घृत, गुड़, अन्न प्रभृति तथा वसन, भूषण, शयन, आसनादि अभीप्सित वस्तु दोहनकारी नद इस पर्वतके अग्रभागसे होता हुआ उत्तरकी ओर चल कर इलावृतवासियोंका बहुत ही उपकार करता है। वहांके अधिवासी इन सब सामग्रियोंका सेवन करनेके कारण कभी भी अङ्गवैकल्य, क्लान्ति, घर्म्म, जरा, रोग, अपमृत्यु, शीत आदि कुछ भी उपसर्ग भोग नहीं करते। इसलिये इस वर्षके अधिवासी आजन्म केवल सुखका ही उपभोग करते हैं।

आग्नीध्रके जिन ६ पुत्रोंके नामसे ६ वर्षोंका नामकरण हुआ है, उन पुत्रोंमें नाभि सबसे बड़े थे। यद्यपि नाभि ही वर्षके अधिपति थे तथापि उनके पौत्र भरतके नाम पर ही यह वर्ष प्रसिद्ध है। नाभिके पुत्र ऋषभ थे। ऋषभके द्वारा ही प्रसिद्ध भरतराजका जन्म हुआ। भरतके नामानुसार ही इस वर्षका नाम भारतवर्ष हुआ। भरतके पिता ऋषभने अजनाभ नामक एक विशिष्ट प्रदेश पर अधिकार कर लिया था, इसीलिये उनके अधिकृत सभी वर्ष अजनाभ नामसे विख्यात थे। पीछे उनके पुत्र भरत राजा हुए, उन्हींके नामसे यह वर्ष विख्यात है।

इस भारतवर्षमें बहुतसी नदियाँ तथा पर्वत श्रेणियाँ हैं। पर्वतोंके मध्य मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्व, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, परिपात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नील, कोकामुख तथा इन्द्रकील तथा कामगिरि ये कितने ही पर्वत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके अलावे और भी कई सौ पर्वत हैं, जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

उक्त पर्वतोंसे कितनी ही नदियां निकल कर भारतवर्षकी भूमिको सींच रही हैं, उन सबोंकी संख्या करना भी असम्भव है। इन सब नदनदियोंके जलसे भारतकी सन्तान पानावगाहन समाधान करती है। उनमें चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायनी, कावेरी, वेण्वा, पयस्विनी, शर्करावर्त्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेण्वा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, अन्धनद (ब्रह्मपुत्र), सोननद, महानदी, वेदस्मृति, त्रिसोमा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वता, दृशद्वती, गोमती, सरयू, ओघवती, पष्ठवती, सप्तवती, सुषमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विपाश आदि महानदियाँ हैं। उक्त महानदियोंके नाम उच्चारण करनेसे ही लोग पवित्र हो जाते हैं। परन्तु भारतवर्षीय प्रजागण इनके जलमें स्नान करते हैं। मनुष्य इस वर्ष (देश)में जन्म ले कर अपने सात्विक, राजसिक तथा तामसिक कर्म्म द्वारा अपने दिव्य, मानुषी तथा नारकी गतिका निर्माण कर लेते हैं। जिन वर्णोंकी जिस तरह मोक्ष प्राप्त करनेकी विधि निर्दिष्ट है उसी विधिका अनुकरण करनेसे इस वर्षके लोग मोक्षको प्राप्त होते हैं। यावतीय वर्षोंके मध्य भारतवर्षको ही

कर्मक्षेत्र कहते हैं। दूसरे दूसरे आठों वर्ष स्वर्गीय लोगोंके पुण्यका फल उपभोग करनेके स्थान हैं।

जम्बूद्वीप भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यान्य आठों वर्षों में जो पुरुष वास करते है, उनकी पुरुष परिमाणसे अयुत-वर्ष परमायु, अयुत हस्तीके तुल्य बल एवं वज्रवत् सुदृढ़ शरीर गठन होती है। उनका शरीर इस तरह बल, यौवन तथा आनन्दसे परिपूर्ण है कि, उनके द्वारा महासुरत व्यापारसे स्त्रीपुरुष अत्यन्त आनन्दित होते हैं एवं सम्भोगके अन्तमें एक वर्ष आयु शेष रहने पर उनकी स्त्रियाँ सिर्फ एक बार गर्भ धारण करती हैं। इस तरहसे विषम सुखकी उन्नतिके कारण इन सब वर्षोंके लोग त्रेतायुगकी तरह अत्यन्त आमोदप्रमोदमें जीवन बिताते हैं।

इन सब वर्षोंमें देवाधिपतिगण अपने अपने अनुचर तथा परिचारकोंके द्वारा पूजित होते हैं। वे स्वेच्छानुसार आश्रमोंमें एवं गिरिगह्वर तथा अमल जलाशयादिमें क्रीड़ा करके समय बिताते हैं। वहांकी सुरसुन्दरियोंकी जलक्रीड़ा तथा अन्यान्य कामोन्मादिनियोंके सविलास हास्य एवं लीलाललित दृष्टिनिक्षेपसे वहांके पुरुषोंका चित्त तथा नेत्र आकृष्ट हो जाते हैं।

इन सब वर्षस्थित आश्रमायतनोंमें जिन पुरुषोंके विहार करनेकी बातें लिखी गई हैं, उनकी शोभा अवर्णीय है। वहांके वृक्षोंकी शाखा प्रशाखाएँ सभी ऋतुओंमें पुष्प-फलि फलों तथा नये पल्लवके बोझसे झुकी रहती हैं। उन शाखाओंपर बहुत-सी लताएँ लहलहा रही हैं। फिर वहांके जलाशयोंकी शोभा देख कर आँखें तृप्त नहीं होतीं। इनके स्वच्छ सुमिष्ट सलिलके मध्य नये नये कमल खिलते हैं, उनके स्वर्गीय सौरभसे वह स्थान सुवासपूर्ण हो उठता है। राजहंस, जलकुक्कुट तथा कारंडव प्रभृति पक्षियोंके कलालाप एवं भ्रमरोंकी मधुर झंकारसे वहां विहार करनेवाले देवाधिपतियोंके मन अनायास ही मुग्ध हो जाते हैं।

उल्लिखित नवों वर्षों में भगवान् नारायण विभिन्न मूर्त्तियोंमें विराजमान हैं। उनमें इलावृत वर्षमें भगवान् 'भव' ही एकमात्र पुरुष हैं। वहां और कोई दूसरा पुरुष नहीं है। कारण यह है, कि जो पुरुष भवानीके शापसे जानकार हैं, वे वहां कभी नहीं जाते। जो पुरुष भूल कर वहां जाते हैं, वे स्त्री-रूपमें परिणत हो जाते हैं। इस वर्षमें भगवान् भवकी सेवा भवानी तथा उनके अधीन बहुसंख्यक स्त्रियाँ किया करती हैं।

भद्राश्व वर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक वर्षपति एवं उनके प्रधान प्रधान सेवकोंका वास है। ये लोग भगवान् हयग्रीव मूर्त्तिकी आराधना करते हैं।

हरिवर्षमें भगवान् नृसिंह मूर्त्तिमें अवस्थित हैं। परम भक्त प्रह्लाद इस वर्षवासी प्रजाओंके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं।

केतुमाल वर्षमें भगवान् कामदेवरूपमें विराजमान हैं। लक्ष्मी, संवत्सर एवं उनकी कन्या रात्र्यभिमानिनी देवता तथा उनके पुत्र दिवसाभिमानी देवोंका प्रियसाधन ही उनकी इच्छा है। उन सब दिवसाभिमानी देवोंकी संख्या ३३६ सहस्र है। इस वर्षके अधिपति महापुरुषके चक्रतेजसे दिवसाभिमानिनी कन्याओंके मन उद्विग्न होते हैं, उससे उनके गर्भ नष्ट हो कर संवत्सरके अन्तमें पतित हो जाते हैं।

रम्यकवर्षके अधिपति मनु हैं। भगवान् उन्हें मत्स्यमूर्त्तिसे दर्शन देते हैं। मनु अभी भी अत्यन्त भक्तिसे उसी मूर्त्तिकी उपासना करते हैं।

हिरण्मय वर्षमें भगवान् हरि कूर्मशरीर धारण करके विद्यमान हैं। पितृगणके अधिपति अर्य्यमा इस वर्षवासी प्रजाओंके साथ निरन्तर उनकी उपासना करते हैं।

उत्तर कुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष ही वराहमूर्त्ति धारण करके विराजमान हैं। देवीपृथ्वी कुरुगणके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी पूजा करती हैं। किम्पुरुषवर्षमें परम भक्त हनुमान् इस वर्षवासी प्रजाओंके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना करते हैं।

(भागवत ५ स्कन्ध १-१९ अ०)

जम्बूद्वीपस्थ वर्षविभागोंका संक्षिप्त विवरण वर्णन किया गया। अब भागवत मतानुसार अन्यान्य द्वीपस्थ वर्षविभागोंका संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णन किया जाता है।

जम्बूद्वीपके बाद प्लक्षद्वीप है। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीपको अपेक्षा दो गुणा बड़ा है। इस द्वीपमें एक सुवर्णमय प्लक्षवृक्ष है। प्रियव्रतके द्वितीय पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके राजा हैं। उन्होंने उस द्वीपको सात भागोंमें विभक्त

करके अपने एक पुत्रको एक एक वर्षका अधिपति बनाया। उनके सातों पुत्रोंको नामानुसार ही उन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। यथा—शिव, वयस्, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय। इन सातों वर्षोंमें भी यद्यपि बहुतसी नदनदियां तथा पर्वत श्रेणीयां हैं तथा सात नदियां एवं सात पर्वत ही यहां विख्यात हैं। उन सात नदियोंके नाम—अरुण, नृमणा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा। वहांके उन सातों सीमापर्वतोंके नाम—वज्रकूट, मणिकूट, इन्द्रासन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव एवं मेघपाल। इन सब वर्षोंके अधिवासी त्रिदेवमूर्त्ति सूर्यको उपासना करते हैं।

शाल्मलद्वीपके अधिपति थे प्रियव्रतात्मज यज्ञबाहु। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके बीच सात वर्षोंमें विभक्त करके बांट दिया। उन पुत्रोंके नामानुसार ही इन सातों वर्षोंका नामकरण हुआ। उन सातों वर्षोंके नाम—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ह, पारिभद्र, आप्यायन तथा अभिज्ञात। इन सातों वर्षोंके सात प्रधान सीमापर्वतोंके नाम—सुरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ण एवं सहस्रश्रुति। सात प्रधान नदियोंके नाम—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा एवं राका। इस वर्षवासी लोग श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर एवं इषुन्धर नामक चार वर्णोंमें विभक्त हैं। वे लोग वेदमय सोमदेवका उपासना करते हैं।

कुशद्वीप सुरोदसागरके बहिर्भागमें है। यह पूर्वोक्त द्वीपकी अपेक्षा दो गुना बड़ा है। प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता कुशद्वीपके राजा थे। उन्होंने अपने अधिकृत द्वीपका सात भाग करके अपने सातों पुत्रोंमें बांट दिया इन सातों पुत्रोंके नामसे ही ये सातों वर्ष प्रसिद्ध हैं। यथा—वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्रनाभ तथा वेदनाभ। इन सातों वर्षोंमें सात पर्वत एवं सात नदियां प्रसिद्ध हैं। इस वर्षके अधिवासी कोविद, अभियुक्त तथा कुलक प्रभृति नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग अपने अपने कर्मकौशलसे अग्निदेवको उपासना करते हैं

क्रौञ्चद्वीपके अधिपति प्रियव्रत-पुत्र घृतपृष्ठ थे। उन्होंने इस द्वीपको अपने सातों पुत्रोंके नामसे सात वर्षोंमें विभक्त कर दिया। वे सातों पुत्र इन सातों वर्षोंके अधिपति हुए। उन वर्षोंके नाम—आत्मा, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितवर्णा तथा वनस्पति। इन सातों वर्षोंके मध्य सात प्रसिद्ध पर्वत तथा नदियां हैं। इस वर्षके अधिवासी पुरुष, ऋषभ, द्रविण तथा देवक इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं।

शाकद्वीपके राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि थे। इस द्वीपका विस्तार ३२ लाख योजन है। मेधातिथिने इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त कर अपने सातों पुत्रोंके बीच बाँट दिया। उन सातों पुत्रोंके नामानुसार उन सातों वर्षोंके नाम यथाक्रमसे पुरोजव, मनोज, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वाधार हुए। इन सातों वर्षोंमें भी सात सीमा पर्वत एवं सात प्रसिद्ध नदियां हैं। उक्त वर्षवासी लोग ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत इन चारों वर्णोंमें विभक्त हैं।

पुष्करद्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र थे। उनके रमणक तथा धातक नामक दो पुत्र हुए। वीतिहोत्र राजाने इस द्वीपको दो वर्षोंमें विभक्त करके अपने दोनों पुत्रको वहांके अधिपति नियुक्त किया।

(भागवत ५।१।२।१६।१६ तथा २० अ०)

पृथ्वीके मध्यस्थ वर्ष विभागोंका संक्षिप्त वर्णन भागवतके मतानुसार किया गया। मार्कण्डेय, वराह, वामन कूर्म प्रभृति यावतीय पुराणग्रन्थोंमें ही कुछ विस्तार पूर्वक वर्षविवरण देखा जाता है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सभी बातें यहां वर्णन नहीं की गई।

वर्षतीति वृष अच्। ५ मेघ, बादल। (त्रि०) ६ वर्षकमात्र। ७वत्सर। प्रभवादि छः संवत्सरोंका विषय एवं उन वत्सरोंमें पूज्य छः प्रकारके देवताओंके नामादि।

संवत्सर शब्दमें देखो।

वर्षक (सं० त्रि०) १ वर्षणशील, बरसनेवाला। २ वत्सर सम्बन्धी।

वर्षकर (सं० पु०) १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ वृष्टिदानकारी, वर्षा करनेवाली।

वर्षकरी (सं० स्त्री०) वर्षं तत्सूचनं रवेण करोतीति वर्ष-कृ-ट, ङीप् । झिल्लिका, झींगुर ।

वर्षकर्मन् (सं० क्ली०) १ वर्षणकार्य । २ वत्सरकृत्य ।

वर्षकाम (सं० पु०) वृष्टि प्रार्थनाकारी, वृष्टिकी कामना करनेवाला ।

वर्षकामेष्टि (सं० पु०) एक यज्ञ जो वर्षाके लिये किया जाता था । (आश्व० श्रौ० २।१३।१)

वर्षकाला (सं० स्त्री०) जीरक, जीरा ।

वर्षकृत्य (सं० पु०) वत्सरमें आचरणीय शास्त्रविहित कार्य आदि ।

वर्षकेतु (सं० पु०) वर्षस्य वृष्टेः केतुरिव सति वर्षे भूरिश उत्पन्नत्वादस्य तथात्वं । १ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना । २ अलर्कवंशीय केतुमालका पुत्र ।

(हरिवंश ३२।४०)

वर्षकोष (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य कोष इव सर्व-वर्षज्ञानवत्त्वात् तथात्वमस्य । १ दैवज्ञ, ज्योतिषी । २ मास ।

वर्षगांठ (हिं० स्त्री०) वह उत्सव जो किसी पुरुषके जन्म-दिन पर किया जाता है । बरसगांठ देखो ।

वर्षगिरि (सं० पु०) वर्षपर्वत । वर्ष शब्द देखो ।

वर्षघ्न (सं० पु०) १ ग्रहोंका वह योग जिससे वर्षा नष्ट हो जाती है । २ पवन ।

वर्षज (सं० त्रि०) वर्षात् जातमिति जन ड । १ वृष्टिजात । २ वत्सरजात, जम्बूद्वीपजात । ३ द्वीपांशजात । ४ मेघ-जात ।

वर्षण (सं० क्ली०) वृष ल्युट् । १ वृष्टि, बरसना । २ वर्षो-पल ।

वर्षणि (सं० स्त्री०) वृष अनि । १ वर्त्तन । २ कृति । ३ क्रतु । ४ वर्षण, बरसना ।

वर्षधर (सं० पु०) १ मेघ, बादल । २ अन्तःपुररक्षक, नपुं-सक, खोजा ।

वर्षधर्प (सं० पु०) अन्तःपुर-रक्षक, खोजा ।

वर्षधार (सं० पु०) नागासुरभेद ।

वर्षधाराधर (सं० पु०) मेघ, बादल ।

वर्षनिर्णिज् (सं० त्रि०) वर्षणकारी, वर्षा करनेवाला । 'निर्णिक्शब्दो रूपवाची निर्णिग्वप्रिरिति तन्नामसु पाठात्, वर्षणं रूपं स्वभावो येषां ते वर्षनिर्णिजो वर्षकाः ।' (ऋक् ३।२६।४ सायण)

वर्षप (सं० पु०) वर्षपति, वर्षके अधिपति ग्रह ।

वर्षपति (सं० पु०) वर्षस्य पतिः । १ वर्षके अधिपति । वर्षप्रवेश होने पर कोई न कोई ग्रह उस वर्षका अधिपति या राजा माना जाता है । किस ग्रहके आधि-पत्यमें कौन वर्ष कैसा फलप्रद होगा, इसका विस्तृत विवरण वर्षाधिप शब्दमें देखो । २ वर्षाधिपति राजगण । पृथ्वी सात द्वीपोंमें विभक्त है । इन सब द्वीपोंका भू-विभाग भिन्न भिन्न नामोंसे बहुत वर्षोंसे परिचित है तथा इन सब वर्षोंके अधिपति वर्षपति कहलाते हैं ।

वर्ष देखो ।

वर्षपद (सं० क्ली०) पञ्जिका ।

वर्षपर्वत (सं० पु०) वर्षाणां भारतादीनां विभाजकः पर्वतः, मध्यपदलोपी समासः । वर्षविभाजक गिरि ।

वर्षपाकिन् (सं० पु०) वर्षे वर्षाकाले पाकोऽस्यास्तीति वर्षपाक इनि । आम्रातक, आमड़ा ।

वर्षपुरुष (सं० पु०) पृथ्वीकी यावतीय वर्षवासी विभिन्न श्रेणीकी प्रजा ।

(भागवत ५ स्कन्ध, १८, २४, २६, २० और २२ अध्याय)

वर्षपुष्प (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम । (संस्कारकौ०)

वर्षपुष्पा (सं० स्त्री०) वर्षे वर्षणकाले पुष्पं यस्याः । सहदेवी लता । विस्तृत विवरण सहदेवी शब्दमें देखो ।

वर्षप्रवेश (सं० पु०) वर्षस्य प्रवेशः । नीलकण्ठताजिक-के अनुसार एक गणना । इस गणनाके द्वारा वर्षका प्रवेश स्थिर किया जाता । जातकने जिस लग्नमें जन्म लिया है, दूसरे वर्ष जब उसका वर्ष पूरा हो कर नये वर्षका आरम्भ हुआ, वह इसके द्वारा सहजमें जाना जाता है ।

वर्षप्रवेश द्वारा जातकके वर्षका शुभाशुभ फल निर्णय किया जाता है, वर्षप्रवेश लग्न स्थिर करके बारह महिनों-मेंसे किस महिनेमें शुभाशुभ क्या फल होगा, वह इसके द्वारा अच्छी तरह बोध होता है । ताजिकमें वर्षप्रवेश-की प्रणाली इस प्रकार दी हुई है ।

जन्मके समय रवि जिस राशिके जितने अंशोंमें अवस्थिति करते हैं, पुनः रवि जिस समय उस राशिके

उतने अंशोंसे आगमन करते हैं—वही समय वर्षप्रवेश समय है। रवि स्फुटस्थिर करके भी वर्षप्रवेशका समय निर्णय किया जाता है, किन्तु वह अति आयाससाध्य है। इस रविस्फुट द्वारा वर्षप्रवेशका समय स्थिर करनेसे बहुत सहजमें समय स्थिर होता है।

ग्रहोंके गोचरफलका जो तारतम्य है, वह प्रतिवत्सर वर्षप्रवेशकालीन लग्न और ग्रहोंकी स्थिति द्वारा निरूपण किया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिके जन्म माससे नया वर्ष आरम्भ होता है। सचराचर ३६५ दिनोंमें एक सौर वत्सर लिया जाता है, किन्तु प्रकृत सौर वत्सर उसकी अपेक्षा और भी १५ दण्ड, ३१ पल, ३१ विपल, २४ अनुपल अधिक होता है। जिस दिन वर्ष आरम्भ होता है, उसके दूसरे दिन दूसरा वर्ष होता है। अतएव जन्म दिनसे जितना वर्ष बीतेगा, उससे १ दिन, १५ दण्ड, ३१ पल, ३१ विपल २४ अनुपल गुणा करे तथा उस गुणनफलमें जन्मदिन और दण्डादि जोड़ दे। इस प्रकार जो योगफल होगा, वही वर्षप्रवेशका दिन और दण्डादि जानना होगा। उक्त रूपसे योग करनेसे यदि दिनका अङ्क सातसे अधिक हो, तो उसमें ७ घटा दे। घटा कर अगर १ बाकी बचे तो रविवार और यदि २ बाकी बचे, तो सोमवार समझना होगा।

जिसका जिस वर्षमें वर्षप्रवेश करना होगा, उसका उस वर्षके पहले जितना वर्ष बीत गया है उसमें अपना चौथाई जोड़ कर एक जगह रखे। पीछे पुनः बीते हुए वर्षको २१से गुणा करके गुणनफलको ४३से भाग दे, जो भागफल होगा उसे आगेके रखे अंकोंमें जोड़ दे। इस प्रकार जोड़नेसे जो उत्तर होगा उसका वार, दण्ड और पलकी विवेचना कर उसमें जन्मवार, दण्ड और पल योग कर दे। ऐसा करनेसे जो वार, जितना दण्ड और जितना पल होगा, जन्मदिनमें उसी वारमें उतना ही दण्ड और उतना ही पल समयमें वर्षप्रवेश हुआ है, स्थिर करना होगा।

दिनका अंक यदि सातसे अधिक हो, तो उसको ७ से भाग दे कर अवशिष्ट अंक लेना होगा। इस अंकसे १ रविवार २ सोमवार ३ मंगलवार इत्यादि जानना होगा। वर्षप्रवेशकी गणना करनेके बहुत-से नियम हैं। नीचे लिखी प्रणाली द्वारा भी वर्षप्रवेश स्थिर किया जाता है।

दूसरा तरीका—पहले १, १५, ३१ और ३० को गत वर्षाङ्क द्वारा गुणा करके चार जगह रखना होगा। इस तरह गुणा करनेसे जो चार गुणनफल होगा, उसके पहले अंकको वार, दूसरेको दण्ड, तीसरेको पल और चौथे अंकको विपल समझ कर उसके साथ जन्मवार, दण्डपल, और विपल जोड़ दे। इसके बाद विपलके अंकको ६०से भाग दे कर भागफलको पलमें जोड़ दे। जो अंक बचता जाय यथास्थान रख दे। इस भांति फिर पलके अङ्कको ६०से भाग दे कर भागफलको दण्डाङ्कसे और दण्डाङ्कको ६० से भाग करके लब्धांकको वारांकसे जोड़ कर बचा हुआ अंक पहलेकी तरह यथास्थान पर रख दे।

इस तरह गणना द्वारा जो अविशिष्ट अंक रहेगा, उससे वर्षप्रवेशका वार, दंड, पल और विपल जाना जा सकेगा।

अन्य प्रकार—५, २ और ६ को गत वर्षाङ्कसे गुणा करके जो तीन गुणनफल होगा, उसे तीन जगह रख दे। पीछे पहले अंकको वार, दूसरेको दंड और तीसरे अंकको पल जान कर उसमें जन्मवार, दंड और पल जोड़ दे। तदनन्तर पलके अंकको चारसे भाग करना होगा और भागफलको दण्डसे तथा दण्डको ४से भाग दे कर भागफलको वारमें जोड़ दे और वारांकको ७ से भाग देना होगा। अवशिष्ट अंक यथाक्रमसे वर्षप्रवेशका वार, दंड और पल होगा।

अन्य विध—गत वर्षाङ्कको १००७से गुणा करके उस गुणनफलको ८०० से भाग देनेसे जो भागफल होगा वही वर्षप्रवेशका वार, अविशिष्ट अंकको ६० से गुणा करके पुनः ८०० से भाग देनेसे जो भागफल होगा वही दण्ड होगा। इस प्रकार प्रणालीमें पल आदि भी पाया जाता है। पीछे उसमें जन्मवार, दण्ड और पल जोड़नेसे वर्षप्रवेशको वार, दण्ड और पल आदि निकाला जाता है।

नीचे लिखे तरीकेसे भी वर्षप्रवेश स्थिर किया जाता है। गत वर्षाङ्कमें उसका चौथाई योग करके वारके स्थानमें तथा इस गत वर्षाङ्कका २से भाग करके भागफलको दण्डके स्थानमें और डेढ़से गुणा करके गुणन-

फलको पलके स्थानमें रखे। उसके बाद इन सब वारों आदिके साथ जन्मवार आदि जोड़ने हीसे उस उस अंक द्वारा वर्षप्रवेशके वार आदि निकलते हैं।

जो कई नियम दिये गये, उन्हीं द्वारा वर्षप्रवेशकी गणना की जाती है।

नीचे एक तालिका दी गई है, इसके देखनेसे सुगमतासे ही बिना गणना किये वर्षप्रवेशका वार, दण्ड आदि जाना जायगा।

वयस	वार	दण्ड	पल	विपल	वयस	वार	दण्ड	पल
१	१	१५	३९	३०	२०	५	३५	१५
२	२	३१	३	०	२०	४	१०	३०
३	३	४६	३४	३०	३०	२	४५	४५
४	५	२	६	०	४०	१	२१	०
५	६	१७	३७	३०	५०	६	५६	१५
६	७	३३	९	०	३०	५	३१	३०
७	९	४८	४०	३०	७०	४	६	४५
८	३	४	१२	०	८०	१	४२	०
९	४	१९	४३	३०	९०	१	१७	१५
					१०३	६	५२	४०

उल्लिखित तालिकामें वर्षके अंकके संलग्नमें जो वार और दण्ड आदि लिखा है, उसमें जन्मवार और दण्ड आदि जोड़नेसे वर्षप्रवेशका वार और दण्ड आदि निकल जायगा। १० और २०, २० और ३०, ३० और ४०, इत्यादि वर्षोंके मध्य वयःक्रमसे १०, २०, ३० इत्यादि वर्षके संलग्नमें जो अंक है, उसमें १, २, ३ इत्यादि वर्षका संलग्न अंक तथा जन्मवार और दण्डादि जोड़नेसे अभीष्ट वयसका वर्षप्रवेशवार और दण्डादि होगा। इस हिसाबसे यह कहना है, कि कभी कभी जन्मकी तारीखके पहले और बादके दिन वर्षप्रवेश हुआ करता है।

उक्त प्रणालीके अनुसार जब वर्षप्रवेशका वार और दण्डादि निर्द्धारित हो जाय, तब वह समय अवलम्बनपूर्वक जन्मपत्रिकाके समान एक वर्षपत्रिका बना कर उसमें वर्षलग्न और तात्कालिक ग्रहस्फुट संस्थापन करें। अन्तमें जन्मकालसे जातलग्नमें जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे उक्त स्थान सञ्चालन करके उतना ही अंतर रखे। इसका कारण यह है, कि वृहस्पति जीवकारक है, इसलिये उसका दूसरा एक नाम जीव तथा मानवके जन्म-लग्नके ऊपर उसकी ऐसी आश्चर्य्य आकर्षण शक्ति है, कि जहां कहीं वह हट क्यों न जाय, वह लग्न उसका अनुवर्त्ती हो कर रहेगा; सुतरां प्रति वत्सर वृहस्पति जिस प्रकार एक राशि करके हटता है, जन्मलग्न भी उसी प्रकार एक राशिसे हट कर दूसरी राशिमें चला जाता है तथा आजीवन काल तक इसी तरह दोनोंको समदूरता कायम रहती है। किन्तु वृहस्पतिकी कभी शीघ्र और कभी वक्रगति होती है; अतएव सूक्ष्मरूपसे गणना किये जाने पर जन्मकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिकी स्फुट राशि आदि निर्णय करके उससे जातलग्न हटा कर उतना अंतर संस्थापन करे तथा इस सञ्चालित लग्नमें शुभाशुभ ग्रहके योग या दृष्टिके अनुसार वर्षफलका विचार करना होगा। वृहस्पतिके स्फुटके अभावमें जन्मकालमें वृहस्पतिसे वाम या दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका जितना अंतर था, वर्षप्रवेशकालमें वृहस्पतिसे यह उतनी ही राशि अंतर रखे अथवा वर्षप्रवेशकालमें जितना वयस होगा, जन्मलग्न उतनी ही राशि हटा करके अतीत वयसका अङ्क जिस राशिमें शेष होगा उसके बादकी राशिमें उसे रखे अर्थात् एक वर्ष अतीत हो कर दूसरे वर्षमें पदार्पण करनेसे जन्मलग्नसे दूसरी राशिमें, दो वर्ष बीत कर तीसरे वर्षमें पैर रखनेसे जन्मलग्नसे तीसरी राशिमें, इस प्रकार नियमपूर्वक जन्मलग्नका संचार हुआ करता है। किन्तु इस भांति स्थूल गणनासे जब वर्षप्रवेशके पहले वृहस्पति अतिचारी हो कर दूसरी राशिमें किंवा वक्र गतिसे पहली राशिमें जाता है, तब गणनाके व्यतिक्रम होनेकी सम्भावना होती है। इस प्रकार कहे गये संचालित जन्मलग्नको मुन्था कहते हैं।

एक उदाहरण दिया जाता है। उदाहरण १७५३ शकको ७वीं आश्विन बृहस्पतिवार १७।३५-पलके समय धनुर्लग्नमें किसी व्यक्तिका जन्म हुआ। १८०४ शककी ७वीं आश्विनमें ५१ वर्ष अतिक्रम कर जिस व्यक्तिने ५२ वर्षमें पदार्पण किया था, वर्षतालिका इस अतीत ५१ वर्षके अन्दर—

	वार,	दण्ड,	पल,	विपल,	अनुपल,
५० वर्ष—	६।	५६।	१५।	१०।	०
१ वर्ष—	१।	१५।	३२।	३१।	२४
५१ वर्ष—	८।	११।	४७।	४१।	२४

होता है।

उसमें उसका जन्मवार और दण्डादि ५।१७।३५ जोड़नेसे १३ वार, २६ दण्ड, २२ पल, ४१ विपल, २४ अनुपल होता है। किन्तु वारका अंक सातसे अधिक है, इसलिये इस अंकको ७से भाग दिये जाने पर ६ बाकी बचता है। सुतरां ७वीं आश्विन शुक्रवार २६ दण्ड, २२ पल, ४१ विपल, २४ अनुपल समयमें उसका वर्षप्रवेश हुआ था। इस समय गणना करके देखनेसे पता चलता है, कि उस समय मीन राशिका पूर्व ओर उदय हुआ है, अतएव यही मीनराशि वर्षलग्न है।

पूर्व ही कह आये हैं, कि उक्त समयमें इस व्यक्तिने ५१ वर्ष पार कर ५२ वर्षमें कदम बढ़ाया था। उसका जन्मफल धनु, ५१ राशि हटानेसे शेष कुम्भ होता है तथा उसके बादकी राशिमीन अतएव ५२ वर्षके आरम्भमें पूर्वोक्त नियमानुसार मीन राशिमें उसका जन्मलग्न सञ्चार हुआ था। किन्तु १८०४ शकाब्दके आश्विन महीनेमें बृहस्पति अतिचारी हो कर मिथुन राशिमें था, इसलिये इस भांति जन्मलग्न संचालन करनेसे गणनामें व्यतिक्रम होता है। यहां सूक्ष्म गणनाकी आवश्यकता है। इस व्यक्तिके जन्मकालमें बृहस्पति मकरके प्रायः २२ अंशमें अवस्थित था तथा उसका जन्मलग्नस्फुट ८।११।५० अर्थात् बृहस्पतिसे दक्षिणावर्त्तके जन्मलग्नका प्रायः ४० अंशका अन्तर था। उसके वर्षप्रवेशकालमें बृहस्पतिका स्फुट २।८।४० था, अतएव वहांसे दक्षिणावर्त्तमें ४० अंश अन्तरमें अर्थात् मेषराशिके २७ अंशमें जन्मलग्न संचालित था।

इस तरह प्रतिवत्सर जन्मलग्नका संचार होता है, इसलिये जन्मराशिसे ग्रहगोचरका फल विचार किया जाता है। अभी इस संचालित लग्न और वर्षलग्नसे जैसे वात्सरिक शुभाशुभ फल निर्णीत होता है, वह बहुत संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

ग्रहगण जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें भी शुभ होनेसे शुभफलकी अधिकता होती है; किन्तु जन्मकालमें शुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें अशुभ होनेसे वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ तथा शेषार्द्धमें अशुभ होता है और यदि जन्मकालमें अशुभ हो कर वर्षप्रवेशकालमें शुभ होता है, तो वर्षके प्रथमार्द्धमें अशुभ तथा शेषार्द्धमें शुभ हुआ करता है।

वर्षलग्न, जन्मलग्न, संचालित जन्मलग्न और जन्मराशिमें शुभग्रहका योग या दृष्टि रहनेसे अथवा उसके अधिपति ग्रहगण शुभग्रहगत हो कर शुभयुक्त या दृष्ट होनेसे उस वर्षमें तरह तरहका सुख होता है।

जन्मलग्न वा जन्मराशिसे अष्टम राशिमें अथवा जन्मकालमें जिस राशिमें शनि किंवा मङ्गल था, उस राशिमें, वर्षलग्न किंवा संचालित जन्मलग्न होनेसे उस वर्षमें विशेषतः इस लग्नमें यदि पापग्रहका योग या दृष्टि रहे तो मानव पीड़ायुक्त और विपदापन्न होता है।

जन्मकालीन अष्टमस्थ पापग्रह वर्षलग्नमें रहनेसे विशेष अशुभफल होता है। यदि वर्षप्रवेशके थोड़े दिन पहले या पीछे पापग्रहगण वक्र हों तथा वर्षलग्नमें पापग्रहका योग या दृष्टि रहे, तो उस वर्षमें नाना प्रकारका कष्ट और व्याधि होती है।

वर्षप्रवेशकालमें चन्द्र जन्मराशिमें जन्मनक्षत्रयुक्त हो कर वर्षलग्नके चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम किंवा द्वादश ग्रहोंको छोड़ अन्य ग्रहमें अवस्थान करनेसे तथा उसके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि रहनेसे उस वर्ष विविध शुभफल होता है। नचेत् विपरीत फल होता है। वर्षलग्नाधिपति, जन्मलग्नाधिपति, संचालित जन्मलग्नाधिपति और जन्मकालीन बलवान् ग्रहोंके वर्ष प्रवेशकालमें नीचस्थ अथवा दुर्बल होनेसे रोग, शोक और अर्थनाश होता है।

वर्षप्रवेशकालमें धनुर्लग्न शुभग्रहयुक्त वा दृष्ट होनेसे धनागम, किन्तु पापग्रहयुक्त वा दृष्ट होनेसे धननाश होता

है। जन्म और वर्ष लग्नमें चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, किंवा द्वादशमें संचालित लग्न होनेसे अथवा उसमें पापग्रहका योग या दृष्टि रहनेसे अशुभ होता है।

जन्म और वर्ष इन दोनों लग्नोंसे उक्त स्थानको छोड़ अन्य किसी गृहमें जन्मलग्न संचालित होनेसे शुभफलका आधिक्य होता है। किन्तु यह संचालित लग्न जन्मलग्नसे शुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नसे अशुभ गृहगत होनेसे वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ एवं शेषार्द्धमें अशुभ होता है और यदि वह जन्मलग्नसे अशुभभावस्थ हो कर वर्षलग्नसे शुभगृहगत हो, तो वर्षके प्रथमार्द्धमें अशुभ एवं शेषार्द्धमें शुभ होता है। संचालित जन्मलग्न चतुर्थ किंवा सप्तम गृहगत हो कर यदि कोई शुभ ग्रहयुक्त हो, तो पूर्वोक्तभावसे अशुभ न हो कर वरं शुभ होता है। यह लग्न रविसंयुक्त होने पर भी शुभफललाभ होता है।

वर्षलग्नमें जन्मलग्नका संचार होनेसे सम्मान, अपत्य, राजप्रसाद और धनलाभ, प्रतापकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा शत्रुका नाश; द्वितीय स्थानमें होनेसे सम्मान, यश, अर्थ, बन्धु, सुख एवं स्वास्थ्य लाभ; तृतीय स्थानमें होनेसे अपने उत्साहसे धन, यश और सुखलाभ, धर्मकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि एवं राजसम्मान लाभ; चतुर्थ स्थानमें होनेसे पीड़ा, शत्रुभय, स्वजनोंके साथ कलह, मनस्ताप, जनापवाद और मनःकष्ट; पञ्चम स्थानमें होनेसे आत्मज, धन और राजप्रसाद लाभ, प्रतापवृद्धि तथा धर्मोन्नति; षष्ठ स्थानमें होनेसे शत्रुवृद्धि, रोग, चोर या राजभय, कार्य और अर्थनाश तथा दुर्बुद्धिवशतः अनुताप; सप्तम स्थानमें होनेसे पुत्र, कलत्र, मित्र और अर्थनाश, शत्रुवृद्धि, कलह, दूरयात्रा एवं उत्साहभङ्ग; अष्टम स्थानमें होनेसे शत्रुभय, धर्म और अर्थक्षय, बलहानि, रोग, शोक, विपद् या मृत्यु; नवम स्थानमें होनेसे अर्थप्राप्ति, धर्मोन्नति, पुत्र, कलत्र, बन्धु, यशोलाभ एवं भाग्योदय; दशम स्थानमें होनेसे सौभाग्य, पद और कीर्त्तिलाभ तथा पराक्रमकी वृद्धि; एकादश स्थानमें होनेसे मनस्तुष्टि, स्वास्थ्य, सन्मित्र, पुत्र, राजाश्रय, हर्षवृद्धि, सौभाग्य और वाहनादि लाभ और द्वादश स्थानमें होनेसे व्ययाधिक्य, ऋण या कारावास, रोग, सज्जनके साथ कलह और गुप्त शत्रुकी वृद्धि होती है; किन्तु शत्रुसे अर्थलाभ होनेकी सम्भावना होती है।

जन्मकालमें ग्रहगण तन्वादि द्वादश भावस्थ हो कर जैसा फल उत्पन्न करता है, वर्षप्रवेशकालमें भी वह सब वैसा ही फल देता है। अर्थात् शुभग्रहोंके केन्द्रमें वा त्रिकोणमें रवि और मङ्गलके उपचयमें एवं शनिके तृतीय षष्ठ, एकादश और द्वादश स्थानमें रहनेसे शुभफलप्रद होता है।

वर्षलग्नसे आरम्भ करके द्वादश राशिके द्वारा द्वादश मासका फल स्थिर होता है। जो जो ग्रह वर्षलग्नमें रहता अथवा वर्षलग्नको देखता है, प्रथम मासमें उसका दिया हुआ फल भोग होता है। इस प्रकार जो जो ग्रह द्वितीय, तृतीय इत्यादि गृहमें रहता है अथवा उसी सब गृहको देखता है, द्वितीय, तृतीय इत्यादि मासमें उन सब ग्रहोंका दिया हुआ फल हुआ करता है। जिस गृहमें किसी ग्रहका योग या दृष्टि नहीं रहता उस मासमें उसी गृहाधिपतिकी स्थिति और शुभाशुभ सम्बन्ध अनुयायी फल होता है।

वर्षलग्नसे द्वादश गृहके जिस जिस गृहमें मङ्गल और शनि रहता है, उसी संख्यक मासमें पीड़ा वा मनःकष्ट होता है। जन्मकालीन चन्द्रसे ग्रहदत्त शुभाशुभ फलका निरूपण करके देखना होगा, कि कौन कौन वर्ष विपद्दायक है। उनमेंसे यदि किसी वर्षमें वर्षलग्न संचालित जन्मलग्न और उसके अधिपतिगण पापयुक्त वा दृष्टि किंवा अशुभ गृहगत हो, तो उस वर्ष मृत्युकी सम्भावना रहती है।

वर्षाधिपानयन। वर्षप्रवेशके वर्षका अधिपति कौन ग्रह है, यह स्थिर करके फलाफलका निर्णय करना होता है। वर्षाधिप स्थिर करने जानेमें त्रिराशिपति कौन कौन ग्रह एवं उसमेंसे कौन ग्रह बलवान् है, यह निर्णय करना पड़ता है। जब दिनमें वर्षप्रवेश होता है; तब वर्षप्रवेशलग्न मेष होनेसे रवि, वृष होनेसे शुक्र, मिथुन होनेसे शनि, कर्कट होनेसे शुक्र, सिंह होनेसे वृहस्पति, कन्या होनेसे चन्द्र, तुला होनेसे बुध और वृश्चिक होनेसे मङ्गल त्रिराशिपति होता है। रात्रिमें वर्षप्रवेश होनेसे वर्षप्रवेश लग्न यदि मेष हो, तो वृहस्पति तथा वृष, वर्ष-

प्रवेश लग्न होनेसे चन्द्र, मिथुन होनेसे चन्द्र, कर्कट होनेसे मङ्गल, सिंह होनेसे रवि, कन्या होनेसे शुक्र, तुला होनेसे शनि एवं वृश्चिक होनेसे शुक्र त्रिराशिपति होता है।

दिन या रातमें वर्षप्रवेश होनेसे धनुका शनि, मकरका मङ्गल, कुम्भका वृहस्पति और मीनका चन्द्र त्रिराशिपति होता है।

जन्मलग्नका अधिपति, वर्षप्रवेशलग्नका अधिपति, मुन्थाधिपति और त्रिराशिपति, दिनमें वर्षप्रवेश होनेसे सूर्यभाग्यमें राशिका अधिपति और रात्रिमें वर्षप्रवेश होनेसे चन्द्रभाग्यमें राशिका अधिपति, इन पांच ग्रहों द्वारा वर्षाधिपतिका विचार करना होता है।

इन पांच ग्रहोंमें पञ्चवर्गी बल द्वारा बलवान् हो कर जो ग्रह लग्नको देखता है, वही ग्रह वर्षाधिपति होता है। जो ग्रह लग्नको नहीं देखता है, वह ग्रह वर्षाधिपति नहीं होता। उक्त पांच ग्रहोंके समान बली होनेसे जिस ग्रहकी दृष्टि अधिक होती है, वही ग्रह वर्षाधिपति होता है। उक्त पांच ग्रह हीनबल हो कर यदि समान दृष्टि करे, तो मुन्थाधिपति ग्रह वर्षाधिपति होता है और उक्त पांच ग्रह यदि लग्नको दृष्टि न करे, तो बलाधिक ग्रह वर्षपति होता है। इसमें किसी किसीका कहना है, कि बल और दृष्टिकी समानता और अभाव होनेसे दिनमें सूर्यभोग्य राशि राशिपति और रात्रिमें चन्द्रभोग्य राशिपति वर्षाधिप होता है।

वर्षप्रवेशमें सोलह प्रकारके योग निर्दिष्ट हुए हैं। इन सब योगोंके द्वारा शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। योगोंके नाम यथा—इकबालयोग, इन्दुवारयोग, इत्थशालयोग, ईशराफयोग, नक्तयोग, यमयायोग, मनुऊयोग, कम्बूलयोग, गैरिकबुलयोग, खल्लासरयोग, रद्दयोग, दुफालिकुत्थयोग, दुत्थोत्थदवीरयोग, तम्वीरयोग, कुत्थयोग, मतान्तरसे दुरफयोग।

इन सब योगोंका विशेष विवरण नीलकण्ठोक्त ताजिकमें वर्णित है। यह सब योग निर्णय कर सहम स्थिर करना होता है। सहम भी ५० प्रकारका होता है। पीछे वर्षप्रवेशकी दशा निरूपण कर फलाफल स्थिर करना होता है। वर्षप्रवेशमें वर्षकुण्डली और जन्मकुण्डली इन दोनोंको देख कर फल स्थिर करना जरूरी है, सिर्फ वर्षकुण्डली देख कर फल निर्णय करनेसे वह नहीं मिलेगा, जन्मकुण्डलीके साथ सम्बन्ध विचार करके फल निरूपण करना होगा। (नीलकण्ठताजिक)

वर्षप्लावन (सं० त्रि०) अत्यधिक वृष्टिपात, बहुत जोर पानी बरसना।

वर्षप्रिय (सं० पु०) वर्षो वर्षणं प्रियं यस्य। चातक पक्षी।

वर्षफल (सं० क्ली०) फलितज्योतिषमें जातकके अनुसार वह कुण्डली जिससे किसीके वर्ष भरके ग्रहोंके शुभाशुभ फलोंका विवरण जाना जाता है। वर्ष और सम्वत्सर देखो।

वर्षभुज् (सं० पु०) खण्डमण्डलपति, पृथक् पृथक् जनपदका अधिपति। (भागवत १०।८७।२८)

वर्षमर्यादागिरि (सं० पु०) वर्ष समूहका सीमापर्वत। (भागवत ५।२०।२६)

वर्षमात्र (सं० अव्य०) एक वत्सर।

वर्षमेदस् (सं० पु०) वृष्टिसार। (अथर्व १२।१।४२)

वर्षवर (सं० पु०) वरतीति वर आवरणे अच्, वर्षस्य रेतो वर्षणस्य वर आवरकः। खण्ड, खोजा।

वर्षवर्द्धन (सं० क्ली०) वयसको वृद्धि।

वर्षवृद्ध (सं० त्रि०) वयोवृद्ध, जो उम्रमें बड़ा हो।

वर्षवृद्धि (सं० स्त्री०) वर्षस्य वृद्धिराधिक्यं यत्र। १ जन्मतिथि। विशेष विवरण जन्मतिथि शब्दमें देखो। २ वयोवृद्धि।

वर्षशत (सं० क्ली०) शताब्द।

वर्षशताधिक (सं० त्रि०) शताब्दसे भी अधिक।

वर्षसहस्र (सं० त्रि०) सहस्र वत्सर।

वर्षांश (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य अंशः। मास, महीना।

वर्षांशक (सं० पु०) वर्षांश देखो।

वर्षा (सं० स्त्री०) वर्षो वर्षण-मस्त्याशु इति वर्ष अर्श-आदित्वादच्, टाप्, यद्वा व्रियन्ते इति (वृतृवदीति। उण् ३।६२) इति सः, ततष्टाप्। १ एक ऋतु। पर्याय—प्रावृट्, घनकाल, जलार्णव, प्रवृट्, मेघागम, घनागम, घनाकर। (शब्दरत्ना०) सौर श्रावण तथा सौर भाद्र इन दोनों महीनेको वर्षाकाल कहते हैं। "नभाश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतुः" (मलमासतत्त्वधृत श्रुति) यह वर्षाकाल दक्षिणायन है, यह देवताओंकी रात्रि है।

आषाढ़ादि मास चतुष्टयात्मक कालको भी वर्षा कहते हैं। आषाढ़, श्रावण, भाद्र तथा आश्विन मास। चातुर्मास्य विधानस्थलमें आषाढ़ माससे ले कर इस व्रतका विधान है एवं ये चारों मास वर्षा ही कहलाते हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है कि, वर्षाऋतु शीतल, विदाहपाकजनक, मन्दाग्निकारक एवं वायुवर्द्धक होता है। वर्षाकालमें पित्तकी उत्पत्ति होती है, वायु प्रबल होती है, अतएव इस वायुकी शान्त करनेके लिये मधुर, अम्ल तथा लवण रसयुक्त पदार्थ विशेषरूपमें सेवन करना चाहिये। इस समय शरीर क्लिन्न हो जाता है, इस क्लिन्नताके निवारणार्थ कड़ुआ, तीता तथा कषायरसका सेवन करना चाहिये। वर्षाकालमें स्वेदकर द्रव्य सेवन तथा अंगमर्द्दन करना चाहिये। इस ऋतुमें दधि, उष्णद्रव्य, जङ्गली पशुओंके मांस, गोधूम, शालितण्डुलके अन्न, माषकलाय, कूप'का जल तथा चूतफल सेवनीय हैं। पूर्वीय वायु, वृष्टि, धूम, हिम, परिश्रम, नदीके किनारे भ्रमण, दिनमें सोना, रूक्षद्रव्य तथा नित्य मैथुन ये सब वर्ज्जनीय हैं।

घृत, मधुर, कषाय तथा तिक्त रसयुक्त द्रव्य, लघुपाक द्रव्य, दुग्ध स्वच्छ तथा शुक्लवर्ण इक्षु विकार, लवण, थोड़ा जङ्गली पशुका मांस, गोधूम, जव, मूंग, शालितण्डुल, कर्पूर, रक्तचन्दन, रात्रिके प्रथम भागके चन्द्रकी ज्योत्सना, माल्यधारण, निर्मलवस्त्रधारण, सुहृद्पुरुषोंके साथ मधुर वार्त्तालाप, सरोवरमें जलक्रीड़ा एवं व्यायामराहित्य वर्षाके अवसान समय हितकर हैं। दधि, व्यायाम, अम्ल तथा कटु द्रव्य, उष्णद्रव्य, तीक्ष्ण द्रव्य, दिनकी निद्रा, हिम एवं धूप ये सब वर्षाके अवसान समय वर्ज्जनीय हैं।

(भावप्र०)

वाभटमें लिखा है कि, वर्षा, शरत् तथा हेमन्तकाल दक्षिणायन है, यह दिन दिन लोगोंका बल विसर्जन अर्थात् बलदान करता है, इसीलिये इसे विसर्जनकाल कहते हैं। इस समय चन्द्र बलवान् तथा सूर्य हीनबल होते हैं और शीतल मेघ वृष्टि तथा वायुयोगसे पृथ्वीके अन्दरकी गर्मी शान्त होती है। इसलिये सभी द्रव्य स्नेहयुक्त होते हैं। अम्ल, लवण तथा मधुर रस प्रबल होते हैं। वर्षामें अम्ल, शरत्में लवण एवं हेमन्तमें मधुर रस प्रबल होते हैं।

वर्षाकालमें कालधर्मवश मनुष्यके पेटकी पाचनशक्ति कम हो जाती है। इससे शरीर खिन्न हो जाता है। उस समय आकाश जलभारावनत तथा जलदजालसे व्याप्त होनेके कारण सहसा शीतल तुषारसिक्त पवन, भूतलोत्थित वाष्प तथा अम्ल विपाकवारिसे एवं अग्नि मन्द होनेके कारण वात, पित्त तथा कफ प्रबल हो उठते हैं। वात, पित्त तथा कफ परस्पर एक दूसरेको दूषित करता है, जिससे पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। इस समय साधारणतः पाचनशक्ति बढ़ानेवाली वस्तुओंका व्यवहार करना चाहिये। इस समय शरीर शोधन करके स्नेहवस्ति, पुरातनधान्य, सुसंस्कृत मांसरस, जंगली पशुओंके मांस, मुद्गादिके जूस, पुराना मधु तथा अरिष्ट, सौवर्च्चलयुक्त मस्तु वा पंचकोलचूर्ण एवं आकाश जल, कूपजल वा अग्निसिद्ध जल सेवन करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। अत्यन्त बदलीके दिन तीक्ष्ण अम्ल, लवण तथा स्नेह सेवन, शुष्क तथा हलका भोजन एवं मधुपान करना चाहिये।

वर्षाकालमें पैदल चलना निषेध है। इस समय सुगंध सेवन तथा धूपित वसन धारण एवं वाष्पशीत शीकर वर्ज्जित हर्म्यपृष्ठ पर वास करना अच्छा है। नदीजल, उदमन्थ (घृत प्रक्षेप किया हुआ जलसिक्त आँटा द्वारा जो खाद्य वस्तु तैयार होती है, उसे उदमन्थ कहते हैं) दिवानिद्रा, परिश्रम तथा आतप सेवन वर्ज्जनीय है।

(वाभट सूत्रस्था० ३ अ०)

वर्षाकालमें इन सब वैद्यकोक्त विधियोंके अनुकरण करनेसे किसी तरहकी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

सुश्रुतमें लिखा है कि, इस समय रात्रिदिवसके मध्य भी संवत्सरकी तरह शीत, ग्रीष्म तथा वर्षादिके समान छः ऋतुओंके लक्षण देखे जाते हैं एवं संध्या समय वर्षाऋतुके लक्षण भी स्पष्टरूपमें पाये जाते हैं। इसलिये वर्षाकालकी निषिद्ध वस्तुएं सन्ध्या समय नहीं खानी चाहिये।

कविकल्पलतामें लिखा है कि, वर्षावर्णन करनेके समय शिखी, स्मय, हंसागम, पंक, कन्दल, उद्भेद,

जाती, कदम्ब, केतक, झंजानिल, निम्नगा तथा हलिप्रीति इन सबोंका वर्णन भी करना होता है।

यह शब्द सदा बहुवचनान्त है। 'दारादेर्नित्यं' इस सूत्रके अनुसार दार, अप्, वर्षा ये तीन शब्द सर्वदा ही बहुवचन होते हैं। इन सब शब्दोंके आगे एकवचन वा द्विवचन नहीं होता।

२ पानी बरसनेको क्रिया या भाव, वृष्टि।

वर्षाकाल (सं० पु०) वर्षाऋतु, बरसात।

वर्षाकालीन (सं० त्रि०) वर्षासमयोपयोगी, बरसातके लायक।

वर्षागम (सं० पु०) वर्षारम्भ, वर्षा ऋतुका आगमन।

वर्षाघोष (सं० पु०) वर्षासु घोषो महान् शब्दोऽस्य। महामण्डूक।

वर्षाङ्ग (सं० पु०) वर्षस्य वत्सरस्य अङ्गमिव अभिधानात् पुंस्त्वम्। मास, महीना।

वर्षाङ्गी (सं० स्त्री०) वर्षासु अङ्गं यस्याः तत्र जाताङ्कुर-दर्शनात् तस्यास्तथात्वम्। पुनर्नवा।

वर्षाचर (सं० त्रि०) वर्षामें विचरण करनेवाला। 'वर्षाचरोऽस्तु भृतकः' (भारत १३ पर्व)

वर्षाज्य (सं० त्रि०) वर्षाकालोत्पन्न घृतसम्बन्धी। (अथर्व १२।१।४७)

वर्षाति (सं० त्रि०) १ वर्षाकाल-सम्बन्धी। (पु०) २ वह वस्त्र जो वर्षाकालमें पहना जाता है। ३ वह रोग जो वर्षाके कारण गाय और घोड़ेको होता है।

वर्षाधिप (सं० पु०) वर्षाणामधिपः ६ तत्पुरुषः। १ वर्ष-समूहके अधिपति। वर्ष देखो।

२ वर्षाधिप ग्रहगण। प्रत्येक नव वर्षके बाद एक एक ग्रह अधिपति होता है। ग्रहानुसार वर्षका फलाफल स्थिर करना होता है। इस वर्षके फलाफलके ऊपर ही पृथ्वीका मंगलामंगल निर्भर करता है।

वराहमिहिरने इस सम्बन्धमें बृहत्संहितामें लिखा है,—सूर्य जिस समय वर्षाधिपति, मासाधिपति वा दिनाधिपति होते हैं, उस समय पृथ्वीके प्रत्येक भागमें उपज कम होती है। वनविभाग बुभुक्षु दंष्ट्रिगणसे पूर्ण हो उठता है, नदियोंकी जलधाराएं शुष्क पड़ जाती हैं, ओषधियोंकी शक्ति ह्रास हो जाती है। वे रोग दूर करनेमें अधिक समर्थ नहीं होतीं। शीतकालमें भी सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे दिग्दिगन्तको तप्त कर रखते हैं। पर्वतोपम मेघराशिसे अधिक वर्षा नहीं होती। आकाशमें टिमटिमानेवाले तारागण, यहां तक कि, ताराके पति चन्द्रदेव भी दीप्तिहीन हो जाते हैं। गो तथा तपस्वी विषादग्रस्त होते हैं। हस्ती, अश्व, पदाति प्रभृति बल-वाहनोंके साथ नरपतिगण अनुचर सहचर समभिव्या-हारसे बहुत वाण, धनुष तथा तलवार प्रभृति अस्त्र शस्त्र ले कर देश ध्वंस करनेको तैयार हो जाते हैं।

चन्द्रमाके वर्षाधिप होने पर पर्वतोपम मेघराशि, कृष्ण सर्प, कज्जल, भ्रमर वा महिषके समान कृष्णवर्ण हो कर आकाशमंडलको आच्छादित कर देती है। निर्मल जलसे पृथ्वी परिपूरित हो जाती है। सरोवरसमूह पद्म, उत्पल तथा कुमुद पुष्पोंसे जगमगा उठते हैं। उद्यानोंमें पुष्पवृक्षकी शाखाएं फूलोंके भारसे झूम जाती हैं, उन कुसुमोंके सौरभसे भ्रमरसमुदाय मदमत्त हो कर वीणा-विनिन्दित स्वरमें गान प्रारम्भ करते हैं, उनकी मधुर झंकारसे दिशाएं गूंज उठती हैं। गो-स्तनोंसे दुग्धकी धारा बहने लगती है। सुन्दरी रूपयौवनसम्पन्ना कामिनियां अत्यन्त अनुरागसे अपने पतिके साथ विहार करती हैं। पृथ्वी गोधूम, शालि, यव, उत्तम धान्य तथा इक्षुसे परिपूर्ण हो कर अनेकों नगर तथा मन्दिरोंसे सुशोभित होती है, उस समय चारों ओर होमकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। नरपतिगण तन्मय हो कर अपनी प्रजाओंका लालन-पालन करते हैं।

मंगल वर्षाधिपति होने पर पवनसे अग्नि पैदा हो कर ग्राम, वन तथा नगर दग्ध करनेको उद्यत होती है. पृथ्वी पर मर्त्यवर्ग दस्युदलसे आहत हो कर हाहाकार कर उठते हैं, पशुकुलका नाश होता है, मेघराशि जलहीन हो जाती हैं, कहीं भी अधिक वर्षा नहीं करती, उपज मारी जाती है। मंगलके वर्षमें राजाओंके चित्त प्रजापालनकी ओर अनुरक्त नहीं होते। घर घरमें पित्तरोगका प्रकोप होने लगता है। सर्प द्वारा बहुतसे लोग कराल कालके गालमें समा जाते हैं। इस तरहसे प्रजाएं शस्यहीन, विपन्न तथा उपहत हो उठती हैं।

बुधके वर्षाधिपति होनेसे माया, इन्द्रजाल तथा

कुहककारो नागरगण एवं गान्धर्व, लेख्य, गणित तथा अस्त्रविदोंकी वृद्धि होती है। राजा लोग परस्परकी प्रोति-कामनासे अद्भुत दर्शन तथा तुष्टिकर द्रव्य एक दूसरेको दान करनेके अभिलाषो होते हैं। कर्त्ता तथा त्रयोशास्त्र संसारमें अविकल एवं सत्य रहते हैं। किसी किसीकी बुद्धि शास्त्रदानमें अभिनिविष्ट होती है एवं कोई कोई आण्वीक्षिकी शास्त्रमें परमपद लाभ करनेकी चेष्टा करता है। बुध ग्रहके वर्ष तथा मासमें इस तरहसे पृथ्वी हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतुजल तथा पर्वतवासियोंको तृप्ति एवं चारों ओर ओषधियों ी तृप्ति एवं प्रचुरता सम्पादन करती है।

वृहस्पतिके वर्षाधिपति होनेसे, यज्ञोच्चारित विपुल आकाशगामी वेदध्वनि यज्ञद्रोहियोंके मन विदीर्ण करती है तथा द्विजवर एवं यज्ञांशभागियोंके हृदयमें आनन्दको धारा बहाती है। पृथ्वी अति शस्यवती होती है एवं अनेक हस्ती, अश्व, चतुरङ्ग सेना, गो धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण हो कर राजाओं द्वारा पालित तथा वर्द्धित होती है। मनुष्य स्वर्गीय लोगोंकी तरह स्पर्द्धाके साथ जीवन यापन करते हैं। गगनोन्नत कई वर्णोंके पयोदगण तृप्तिकर जल द्वारा पृथ्वीको परिपूर्ण करते हैं। सुरगुरु वृहस्पतिके शुभवर्षमें इस तरहसे पृथ्वी अति शस्यपूर्ण तथा समृद्धिशालिनी होती है।

शुक्रके वर्षाधिपति होनेसे, धराधर तुल्य जलदपटल वारिधारा वर्षण करती है। उससे पृथ्वो परिपूर्ण हो जाती है, सरोवरोंका जल सुन्दर कमलो से आच्छादित हो जाता है। पृथ्वो नये अलंकारोंसे अलंकृत हो कर उज्ज्वलांगी नारोकी तरह शोभा पाती है एवं बहुतो शाली तथा इक्षु उत्पादन करती है। राजाओंकी जय-ध्वनिसे दिशाएं गूंज उठती हैं। शत्रुओंका नाश होता है, राजा लोग दुष्टदमन तथा शिष्टपालन करके नगर तथा पृथ्वोकी रक्षा करते हैं। वसन्त ऋतुमें मनुष्य कामिनियोंके साथ मधुपान करते हैं एवं मधुर वीणा बजा कर गान करते हैं। अतिथि सुहृद् तथा सज्जनगणके साथ मिल कर अन्न भोजन करते हैं। शुक्रके वर्षमें इस तरहसे मंगलकी प्रधानता ही सूचित होती है।

शनिके वर्षाधिपति होनेसे दुर्वृत्त दस्युओंके उपद्रव-से तथा संग्रामसे सारा राष्ट्र व्याकुल हो उठता है। अनेकों नर तथा पशुओंके प्राण विनष्ट होते हैं, मनुष्य अपने आत्मीय जनोंके वियोगमें आँसू बहाते हैं। क्षुधा तथा संक्रामक रोगके प्रकोपसे मनुष्य व्यस्त हो उठते हैं। अन्तरीक्षमें वायु विक्षिप्त मेघ और देखा नहीं जाता। आकाशमें चन्द्र तथा सूर्यकिरण अ यधिक धूलिपतनसे छिप जाती है। जलाशय जल-हीन हो जाता है। नदियोंको जलधारायें शुष्क पड़ जाती हैं। कहीं कहीं जलके अभावसे फसल नष्ट हो जाती हैं। कहीं कहीं जलसिक्त भूभागमें उपज भी होती है। इस तरहसे सूर्यके वंशधर शनिके वर्षमें इन्द्र पञ्च-शस्यप्रद जल बरसाते हैं।

फलतः जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नोचगामी वा अन्य द्वारा विजित होते हैं, वे शुभ फल तथा पुष्टिदाता नहीं हो सकते। अशुभ ग्रहके वर्षाधिपति तथा मासाधिपति होनेसे उसीके मासजात फलोंको वृद्धि होती है।

(वृहत्सं० १९ अ०)

वर्षाभृत (सं० त्रि०) वर्षाकालमें लब्ध, वर्षाप्राप्त। (कात्यायन श्रौ० ४।६।१९)

वर्षाप्रभञ्जन (सं० पु०) झटिको।

वर्षाप्रिय (सं० पु०) चातक, पपीहा।

वर्षाबोज (सं० क्लो०) मेघ, बादल।

वर्षाभव (सं० पु०) वर्षासु भवतीति भू अच् वर्षासु भव उत्पत्तिर्यस्य वा। १ रक्त पुनर्नवा। २ पुनर्नवा। (त्रि०) ३ वर्षामें उत्पन्न।

वर्षाभू (सं० पु० स्त्रो०) वर्षासु, भवतीति भू क्विप्। १ भेक, मेढ़क। २ इन्द्रगोप, ग्वालिन नामका कीड़ा। ३ कोड़े मकोड़े। ४ लाल रंगकी पुनर्नवा। (त्रि०) ५ वर्षमें उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाभूशाक (सं० पु०) पुनर्नवा शाक।

वर्षाभ्वी (सं० स्त्रो०) वर्षाभू ङाप्। १ भेको, मेढ़की। २ पुनर्नवा।

वर्षामद (सं० पु०) वर्षासु माद्यति इति मद-अच्। मयूर, मोर।

वर्षाम्बु (सं० क्ली०) वृष्टिजल, वर्षाका पानी।

वर्षाम्बुप्रवाह (सं० पु०) वर्षाके पानीकी धारा।

वर्षाम्भःपारणव्रत (सं० पु०) वर्षाम्भो वृष्टिजलं तस्य पारणं उपवासान्ते पानं व्रतमिव व्रतं यस्य। चातक, पपीहा।

वर्षायस (सं० त्रि०) अतिवृद्ध, नब्बे बरससे ऊपरकी अवस्थाका।

वर्षारात्र (सं० पु०) वर्षाणां रात्रिः ततः समासान्तोऽच्। १ वर्षाकालीन रात्रि। २ वर्षाऋतु।

वर्षार्चिस् (सं० पु०) वर्षासु अर्च्चिर्दीप्तिरस्य। मङ्गलग्रह।

वर्षाल (सं० पु०) पतंग, फतिंगा।

वर्षालङ्कायिका (सं० स्त्री०) पूक्का, पिंड़ि साग।

वर्षाली—पाणिनीय ऊर्यादिगणोद्धृत एक शब्द। (पा १।४।६१)

वर्षावत् (सं० त्रि०) वर्षासदृश, वर्षाके समान।

वर्षावती (सं० स्त्री०) १ इन्द्रगोप, ग्वालिन नामका कीड़ा। २ भेकपत्नी। ३ पुनर्नवा।

वर्षावसान (सं० पु०) वर्षाणामवसानमत्र। १ शरत् काल। (क्ली०) २ वर्षाका शेष।

वर्षाशाटी (सं० स्त्री०) वह वास या कपड़ा जो वर्षा-ऋतुमें बौद्ध लोग पहनते हैं।

वर्षाशरदौ (सं० स्त्री०) वर्षा और शरत्काल।

वर्षासमय (सं० पु०) वर्षाकाल।

वर्षासुज (सं० त्रि०) वर्षामें उत्पन्न होनेवाला।

वर्षाहिक (सं० पु०) विषविहीन सर्पभेद, बरसाती साँप जिसमें विष नहीं होता। (सुश्रुत कल्प० ४ अ०)

वर्षाहू (सं० स्त्री०) वर्षाभू, मेढ़की।

वर्षाह्वा (सं० स्त्री०) पुनर्नवा।

वर्षिक (सं० त्रि०) १ वर्षासम्बन्धीय। २ वर्षसम्बन्धीय। वर्षा और वर्ष इन दोनों शब्दोंके उत्तर ष्णिक् प्रत्यय करनेसे वर्षिक पद होता है।

वर्षित (सं० क्ली०) वृष्टि।

वर्षिता (सं० स्त्री०) वर्षिन् भावे तल् ततष्टाप्। वर्षण-कर्त्ता, बरसानेवाला।

वर्षितृ (सं० त्रि०) वर्षणकर्त्ता, बरसानेवाला। (निरुक्त० ४।८)

वर्षिन् (सं० त्रि०) वर्षणकारी, स्राविन्।

वर्षिमन् (सं० पु०) वृद्धका भाव, दीर्घजीवित्व। (शुक्लयजु० १८।४)

वर्षिष्ठ (सं० त्रि०) १ अतिशय वृद्ध, बड़ा बूढ़ा। २ अत्यन्त बलवान्।

वर्षिष्ठक्षत्र (सं० त्रि०) १ अतिशय क्षमता या शक्ति-शाली। २ मित्रावरुण।

वर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

वर्षीण (सं० त्रि०) वर्षणसम्बन्धीय।

वर्षीय (सं० त्रि०) वत्सर या वयस-सम्बन्धीय।

वर्षीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन वृद्धः, वृद्ध इय-सुन् ततो वर्षादेशः। अति वृद्ध, बड़ा बूढ़ा। पर्याय—दशमी, ज्यायान्।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, कि सोलह वर्ष तक बालक, उसके बाद तरुण या युवक होता है। तब सत्तर वर्षके बाद वृद्ध एवं नब्बेके बाद वर्षीयान् कहलाता है।

वर्षु (सं० त्रि०) वर्षप्रभ तृणादि, वर्षाकालोत्पन्न।

वर्षुक (सं० त्रि०) वर्षति तच्छील इति वृष- (लष-पतपद-स्थाभू-वृष-हन-कम-गम-शृभ्य उकञ्। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। वर्षणकर्त्ता, बरसानेवाला।

वर्षुकाब्द (सं० पु०) वर्षुकश्चासौ अब्दश्चेति कर्मधारयः। बरसनेवाला मेघ।

वर्षेज (सं० त्रि०) वर्षे जायते इति जन-ड, सप्तम्या अलुक्। १ वर्षाकाल जात। २ वत्सरजात।

वर्षेश (सं० पु०) वर्षस्य ईशः। वर्षाधिप।

वर्षौघ (सं० पु०) झड़, प्रभञ्जन।

वर्षोपल (सं० पु०) वर्षाणामुपलः। मेघजात शिला, करका।

वर्ष्टृ (सं० त्रि०) वृष्टिकारी, वर्षा करनेवाला।

वर्ष्म (सं० क्ली०) शरीर। (द्विरूपको०) "वर्ष्मोऽस्मि समानानाम्।" (पारस्करगृह्य० १।३)

वर्ष्मन् (सं० क्ली०) वर्षति वृष्यते वेति वृष-मनिन्। १ शरीर। २ प्रमाण। ३ इयत्ता। ४ जल-रोधक, बाँध। (त्रि०) ५ उन्नत। ६ स्थिर। ७ अति सुन्दरा-कृति। ८ वर्षीयान्, अतिशय वृद्ध।

वर्ष्मल (सं० त्रि०) वर्ष्म मत्वर्थे (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।८७) इति लच्। वर्ष्मयुक्त, वर्ष्मविशिष्ट।

वर्ष्मवत् (सं० त्रि०) शरीरके समान।

वर्ष्मवीर्य (सं० क्ली०) शारीरिक शक्ति।

वर्ष्मा (सं० क्ली० त्रि०) वर्ष्मन् देखो।

वर्ष्माभ (सं० त्रि०) आकार वा गठनविशिष्ट।

वर्ष्य (सं० त्रि०) वर्षासम्बन्धीय।

वर्ह (सं० क्ली०) वर्हयति दीप्यते इति वर्ह-अच्। १ मयूरपुच्छ, मोरकी पंख। २ ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन। ३ पत्र, पत्ता। ४ परीवार।

वर्हण (सं० क्ली०) वर्हतीति वृह-वृद्धौ ल्युट्, वर्हयति शोभते इति वर्ह दीप्तौ ल्युर्वा। पत्र, पत्ता।

वर्हस् (सं० पु०) वृंहति वर्द्धते इति वृहि वृद्धौ (वृहेर्नलोपश्च। उणा् २।११०) इति रसि नलोपश्च। १ अग्नि। २ दीप्ति। ३ यज्ञ। (देम) "मा नोवर्हिः पुरुषता" (ऋक् ७।७५।८) ४ चित्रक, चीतेका पेड़। ५ एक राजाका नाम।

वर्हस (सं० क्ली०) वृहतीति वृहि वृद्धौ इसी नलोपश्च। १ ग्रन्थिपत्र, गंठिवन। २ कुश।

वर्हा (सं० क्ली०) वर्हस् देखो।

वर्हिःपुष्प (सं० क्ली०) वर्हिर्दीप्तिस्तद्युक्तं पुष्पमस्य। ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन।

वर्हिःशुष्मन् (सं० पु०) वर्हिषा कुशेन वर्हिषि यज्ञे वा शुष्कतेजो यस्य। अग्नि, आग।

वर्हिष्ठ (सं० क्ली०) वर्हिरिव तिष्ठतीति स्था-क। ह्रीवेर

वर्हिकुसुम (सं० क्ली०) वर्हिवंर्हयुक्तं कुसुमं यस्य। ग्रन्थिपर्ण, गंठिवन।

वर्हिण (सं० पु०) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हाभ्यामिनच्' इति इनच्। १ मयूर, मोर। (क्ली०) २ तगर।

वर्हिणवाहन (सं० पु०) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य। कार्त्तिकेय।

वर्हिध्वजा (सं० स्त्री०) वर्ही ध्वजो वाहनं यस्याः। चण्डी।

वर्हिन् (सं० पु०) वर्हमस्यातीति वर्ह-इनि। १ मयूर, मोर। २ प्रधाके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।४७) ३ तगर।

वर्हिषद् (सं० पु०) एक पितरका नाम।

वर्ही (सं० पु०) वर्हिन् देखो।

वलंरुज (सं० पु०) मेघनाशकारी; वह जो बादलको नष्ट करता है।

वल (सं० पु०) १ मेघ। २ एक असुरका नाम। यह देवताओंकी गौएं चुरा कर एक गुहामें जा छिपा था। इन्द्र उस गुहाको छेद कर उसमेंसे गौओंको छुड़ा लाये थे। फिर वलने बैलका रूप धारण किया और वह वृहस्पतिके हाथसे मारा गया।

वलक (सं० पु०) १ वल नामक दानव। (हरिवंश) २ पुराणानुसार तामस मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। (मार्क०पु० ७४।५६)

वलकेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वलक्रम (सं० पु०) पर्यायिक वल।

वलक्ष (सं० पु०) श्वेतवर्ण, सफेद।

वलक्षगु (सं० पु०) शुभ्रांशु चन्द्र।

वलग (सं० क्ली०) वध्य व्यक्तिके प्रति आचरित कृत्याविशेष। पराजित राक्षस लोग भाग कर इन्द्र आदि देवताओंका वध करनेके लिये अस्थि, केश और नखादि भूगर्भमें निखाद करके जो जो आभिचारिक कृत्या करते थे, उसीका नाम वलग है।

वलगहन् (सं० त्रि०) वलगान् हन्तीति वलग-हन-क्विप्। कृत्याहननकारी। (शुक्लयजु० ५।२३)

वलगिन् (सं० त्रि०) वलगसमन्वित। (अथर्व० ५।३१।१२)

वलङ्गिमान—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०°५३´ उ० तथा देशा० ७९° २५´ पू०में अवस्थित है। यहांकी उपजका कारवार यहां जोरों चलता है।

वलती (सं० स्त्री०) वह मंडप जो घरके ऊपर शिखर पर बना हो, रावटी।

वलतेरु—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके विजागापट्टम् जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° ४४´ उ० तथा देशा० ८३° २२´ ३६´´ पू० तक विस्तृत है। वर्त्तमान अंगरेजी मानचित्र या भूगोलमें यह वालटेयार (Waltair) नामसे परिचित है। वङ्गोपसागरके तट पर पड़नेके कारण यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है। यहां सिविल और

मिलिटरी विभागके बहुतसे अंगरेज-कर्मचारी रहते हैं। विशाखपत्तनसे यह स्थान तीन मील उत्तरमें अवस्थित है एवं उक्त नगरके यूरोपियोंकी वासभूमि भी उपकण्ठ कह कर परिगणित है। समुद्रको तहसे यह स्थान २३० फीट ऊंचा एवं गण्डशैलमालामें परिवृत है। इष्टकोष्ट रेलपथ इस नगरके पास हो कर मान्द्राजकी ओर दौड़ गया है। इस कारण आज कल यहांकी श्रीवृद्धि बहुत कुछ बढ़ गई है। पहले यहां पीनेके *जलका बड़ा अभाव था, अब उसकी उतनी शिकायत* नहीं रह गई है; परन्तु फलमूल और खानेकी चीजका अब भी अभाव है। यहांके अंगरेज-टोलासे बंगाली-टोला बहुत ही खराब है।

वलदवुर—मान्द्राज प्रसिडेन्सीके दक्षिण आकट जिलेके विल्वपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५८´ ५०´´ उ० तथा देशा० ७९° ४४´ ३०´´ पू० पंडीचेरोसे ६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। फरासियोंने पंडीचेरी राजधानी सुदृढ़ करनेके लिये यहां पहले दुर्ग बना कर सेनानिवाश स्थापन किया था। १७६० ई०में अङ्गरेज सेनापति कूटने पंडीचेरी पर आक्रमण कर इसे अङ्गरेजाधिकृत कर लिया।

१८८२ ई०की ३०वीं जून तक स्थलपथगामी पण्य-द्रव्य पर शुल्क आदाय करनेके लिये यहां फरासियोंका एक शुल्क-कार्यालय था।

वलद्विष् (सं० पु०) इन्द्र।

वलन (सं० क्ली०) ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादिका सायनांशसे हट कर चलना या विचलन (deflection)।

वलनवासना (सं० स्त्री०) ग्रहादिका अयनच्युति प्रतिपादन।

वलनांश (सं० क्ली०) ज्योतिषके अनुसार अयनांशसे किसी ग्रहका चलन अर्थात् हट कर चलने या वक्रगतिकी दूरीका अंश (degree of deflection)।

वलनाशन (सं० पु०) १ वलध्वंसक। २ इन्द्र।

वलनिसूदन (सं० पु०) इन्द्र।

वलन्तिका (सं० स्त्री०) संगीतशास्त्रोक्त स्वरक्रमभेद।

वलपुर (सं० क्ली०) वल नामक दानवकी पुरी।

वलभि (सं० स्त्री०) वलभी देखो।

वलभी (सं० स्त्री०) वलभि कृदिकारादिति वा ङोष् १ वह मण्डप जो घरके ऊपर शिखर पर बना हो, रावटी। २ छानी। ३ गृहचूड़ा, घरकी चोटी। ४ पुरीविशेष।

वलभीराजवंश—सुराष्ट्रका एक प्राचीन राजवंश। सुराष्ट्रके (वर्त्तमान काठियावाड़के) अन्तर्गत, भावनगरके १८ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। वर्त्तमान वाला नामक स्थान पहले वलभी नामसे विख्यात था। प्राचीन वलभी-राजधानीका ध्वंसावशेष उक्त वाला नामक स्थानमें विद्यमान है। यहांके प्राचीन नरपतिवंश वलभी-राजवंश-के नामसे इतिहासमें परिचित हैं।

खृष्टीय ५वीं शताब्दीमें भटार्क नामक एक सेनापतिका अभ्युदय हुआ। वे मैत्रक वा मित्रवंशीय थे। भटार्क सम्भवतः सुराष्ट्रके शकवंशीय राजाओंके किसी सेनापतिके वंशधर थे। वलभी राजाओंको बहुत-सी शिलालिपि तथा ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि भटार्कके अनुसार ही उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रथम धरसेन भी सेनापतिको उपाधिसे भूषित थे। पाश्चात्य-ऐतिहासिक लोग इन्हें विदेशी ही समझते हैं। हम लोगोंको भी ऐसा जान पड़ता है कि, भटार्क भी एक शाकद्वीपी क्षत्रियवंशी थे। अति प्राचीनकालमें जो शाकद्वीपी लोग भारतमें आये थे, वे मित्र नामक सूर्योपासक थे। इसी कारण कितने हो मैत्रक वा मिहिर उपाधि धारण करते थे। अन्तमें वे लोग ही वंशोपाधि रूपमें गिने जाने लगे। भटार्क भी इसी तरहसे किसी मैत्रक-कुलमें उत्पन्न हुए थे, उनके वंशधर भी मैत्रक कहलाते हैं। इस वंशके बहुतसे ताम्रशासन पाये गये हैं। उनसे ही वंशावली निकली है।

देवभट्ट | धरसेन ३य | ध्रुवसेन २य बालादित्य [गुप्त सं० ३१०]

शिलादित्य २य | खरग्रह धर्मादित्य २य, [३७७ गुप्त सं०) | ध्रुवसेन २य महाराजाधिराज धरसेन ४र्थ (गुप्त सं० ३२६)

महाराजाधिराज शिलादित्य ३य (गुप्त सं० ३५२)

" शिलादित्य ४र्थ (गुप्त सं० ३७२)

" शिलादित्य ५म (गुप्त सं० ४०३)

" शिलादित्य ६ष्ठ (गुप्त सं० ४४१)

" शिलादित्य ७म ध्रुवभट (गुप्त सं० ४४७)
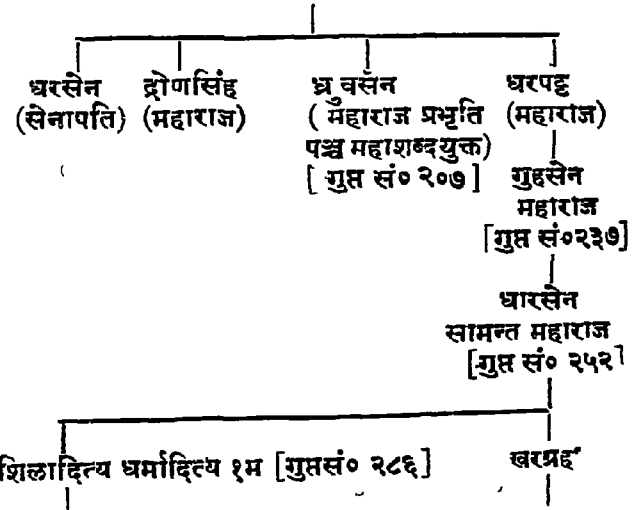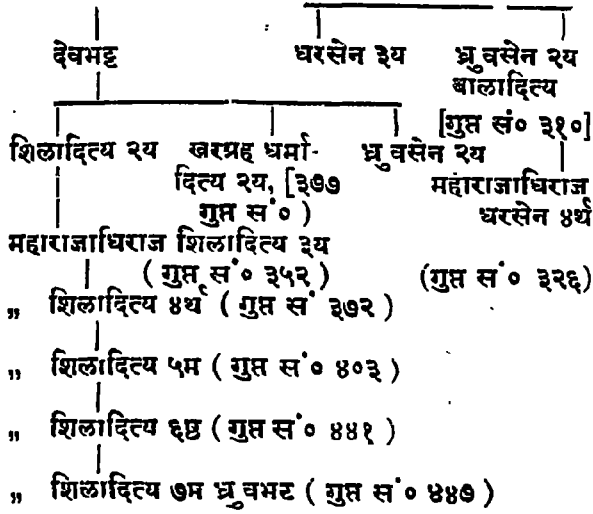
सेनापति भटार्क यद्यपि इस वंशके बीजपुरुष थे, तथापि उनके पुत्र प्रथम ध्रुवसेनने ही स्वभावतः "पंच-महाशब्द" युक्त राजोपाधि ग्रहण की एवं इस वंशीय राजाओंके जितने ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं, उनमें इस ध्रुवसेनका ताम्रशासन ही सर्वप्राचीन है, उसके २०७ अंक दृष्टिगोचर होते हैं। इस अंकको किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्‌ने "वलभीसंवत्" नामसे निर्देश किया है। सुप्रसिद्ध मुसलमान पंडित अलवेरुणी खृष्टीय १०वीं शताब्दीके शेष भागमें लिख गये हैं कि, वल्लभवंश ध्वंस होने पर २४१ शकाब्दमें यह संवत् प्रचलित हुआ। किन्तु हम लोग देखते हैं, कि सेनापति भटार्क द्वारा ही वलभीवंशका अभ्युदय हुआ। इस हालतमें उनके जन्मके शताधिक वर्ष पहले ही किस तरह वलभीराजवंशके ध्वंसकी बात स्वीकार की जा सकती है। हम लोगोंका विश्वास है कि, एक समय वलभी सुराष्ट्रके शक-राजाओंके अधिकारमें था। २४१ शक वा ३१९ खृष्टाब्दमें शक राज्य ध्वंस तथा गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ। २४१ शकाब्दमें ही गुप्तसंवत्सर आरम्भ हुआ। उसके बहुत वर्षोंके बाद सेनापतिवंशका अभ्युदय होने पर भी वलभीराजगण गुप्त सम्राटोंका संवत् ग्रहण करनेको बाध्य हुए। ऐसी दशामें वलभीराज्य ध्वंस होनेसे ही वलभी-संवत् आरम्भ होनेका प्रवाद प्रचलित होना कुछ असम्भव नहीं है। उक्त २०७ अंक+२४१=४४८ शक (वा ५२६ ई०) में १म ध्रुवसेन राज्य करते थे। उनके तथा उनके बादके राजाओंके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि वे राजे "पंच-महाशब्द" व्यवहार करते थे। महाराज, महासामन्त, महाप्रतीहार, महादण्डनायक तथा महाकार्त्ताकृत्य ये सब उपाधियां सम्भवतः उनके पूर्वपुरुषोंके राजकीय पद-निर्देशक थीं, अधस्तन वंशधरने उस स्मृतिका लोप करना कर्त्तव्य नहीं समझा। १म ध्रुवसेन अपने बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी अन्यान्य धर्मविद्वेषी नहीं थे। बहुतसे ताम्रशासनोंमें उनकी बहन दुड्डा "परमोपासिका" नामसे सम्मानित हुई हैं। वलभीराज शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य सम्राट् हर्षदेवसे पराजित हुए।

बालादित्य द्वितीय ध्रुवसेनका ३१० संवत् चिह्नित (६२९ खृ० अ०) ताम्रशासन पाया गया है। इस ध्रुवसेनको चीन-परिव्राजक यूएनसियांगने 'तु-लु-हो पो-टे' वा ध्रुवभटके नामसे परिचित किया है।

उन्होंने वलभीपतिको मालवपति शिलादित्यका भानजा, कान्यकुब्ज हर्षवर्द्धनके पुत्रका जामाता एवं क्षत्रिय जातीय कह कर उल्लेख किया है। वे वलभीराज पहले हिन्दूधर्मावलम्बी होने पर भी इस समयके बौद्ध त्रिरत्नका उपासक हो कर बौद्धधर्म अवलम्बनके साथ साथ अत्यन्त दयालु, विद्योत्साही तथा धार्मिक हो गये थे। प्रति वर्ष ही वे महाधर्मसभा करते थे, श्रोताओंको बहुतसे धनरत्न तथा उत्कृष्ट खाद्य पदार्थ दान देते थे, आचार्योंको वस्त्र, भैषज्यादि तथा मूल्यवान् मणि-रत्नादि बाँटते थे। दूरदेशीय आचार्यगण जो सभामें उपस्थित होते थे, वे राजाके निकट विशेष सम्मानित होते थे। उस समय वलभीराज्यका आयतन ६००० ली वा हजार मील था और इसकी राजधानीका परिमाण ० ली था। इस देशकी आबादी, जलवायु तथा भूसंस्थान मालव-राज्यके समान था। यह स्थान बहुत जनाकीर्ण था, राजधानी धनी लोगोंके उन्नत प्रासादोंसे समाच्छन्न थी एवं इस स्थानमें बहुतसे करोड़पतियोंका निवास था। अनेकों दूर-दूर देशोंकी रत्नराशि यहाँ संचित थी। यहाँ शताधिक संघाराम विद्यमान थे एवं उनमें प्रायः ३००० आचार्योंका वास था। वे सभी प्रायः सम्मतीय शाखाके हीनयान थे। यहां सैकड़ों मन्दिरें विद्यमान थे। चीनपरिव्राजकने इस तरहसे वलभीका परिचय दे कर

अन्तमें लिखा है, कि वे अनेकों बार यहाँ आया करते थे इसलिये अशोकराजने उनके स्मरणार्थ इस स्थान पर कई एक स्मृतिस्तूपें निर्माण किये थे। वलभीनगरके समीप चीनपरिव्राजक अर्हत् आचार्यके प्रतिष्ठित गुणमती तथा स्थिरमतीके स्मृतिन-द्दिंशक वृहत् संघाराम देखे गये हैं।

सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद जिस समय वर्द्धन-साम्राज्य ले कर गोलयोग उपस्थित हुआ था, उस सुअवसर पर ४र्थ धरसेनने बहुत-से राज्य जीत कर "परम-भट्टारक परमेश्वर चक्रवर्त्ती महाराजाधिराज"-की उपाधि ग्रहण की थी। वे स्त्री-पुरुष दोनोंको ही राजकार्यमें समान अधिकारी समझते थे। उनके ३२० वलभी-संवत् (३४९-५० ई०) में उत्कीर्ण ताम्रशासनमें उनकी प्रिय दुहिता भूपा दूतक अर्थात् दानपत्रके कार्य-संसाधनमें प्रधान राजपुरुष कह कर परिचित हैं। उन्होंने भरुकच्छमें (वर्त्तमान भरोच शहरमें) अपनी राजधानी स्थापित की थी।

वलभी-राजवंशके ध्वंस हो जाने पर भी बहुत समय तक वलभी-संवत्का प्रचलन था। बेरावलसे आविष्कृत चौलुक्यराज अर्ज्जुनदेवकी शिलालिपिमें ९४५ वलभी-संवत् अङ्क (=१२४६ ई०) देखा जाता है। वलभीके ध्वंस हो जानेके बाद वलभी वंशीय किसी किसी व्यक्तिने राजपुतानेमें आश्रय लिया। वल्लभ देखो।

वलम्ब (सं० पु०) अवलम्ब, सरल रेखाकी उपरस्थ लम्ब-रेखा (Perpendicular)।

वलम्भ (सं पु०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

वलय (सं० पु० क्ली०) वलते आवृणोति हस्तादिकमिति-वल (वलिमलि-तनिभ्यः कथन्। उण् ४।९९) इति कथन्। १ स्वर्णादिरचित कोष्ठाभरण, चूड़ी। पर्याय—आवापक, परिहार्य, शङ्कक, कम्बु, कुण्डल। २ मण्डल। ३ अस्थि विशेष। (सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ०) ४ दण्डव्यूहका एक भेद। ५ वेष्टन। ६ कंकण। (पु०) वलयवदाकृतिरस्त्य-स्येति अर्श आदित्वादच्। ७ अठारह प्रकारके गलगण्ड रोगोंमेंसे एक। इसमें कफके कारण गलेके अन्दर उस नलीमें जिसमेंसे हो कर अन्न जल पेटमें जाता है, एक गांठ उत्पन्न हो जाती है। यह गांठ ऊंची और बड़ी होती है और अन्न जलके जानेका मार्ग रोक देती है। वैद्य लोग इसे असाध्य मानते हैं।

वलयवत् (सं० त्रि०) वलय अस्त्यर्थे मतुप मस्य वः। वलयविशिष्ट।

वलयित (सं० त्रि०) वलयवत् कृतमिति वलय तत्करोतीति णिच् ततः क्तः, यद्वा वलयं तदाकृतिर्जातमस्येति वलय-इतच्। वेष्टित, परिवृत, घेरा हुआ।

वलयिन् (सं० त्रि०) वलय या वृत्ताकारमें शोभित।

वलयीकृत (सं० त्रि०) १ वलयाकारमें वेष्टित। २ कृत-वलय। ३ कुण्डलीकृत।

वलयीकृतवासुकी (सं० पु०) शिव।

वलयीभूत (सं० त्रि०) १ वलयाकारमें न्यस्त। २ वेष्टित।

वलरामी—वैष्णव सम्प्रदायभेद। वलराम हाड़ी इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे, इसलिये यह सम्प्रदाय वलरामी कहलाता है। नदी या जिलेके अन्तर्गत मेहेरपुर ग्रामके मालापाड़ामें उनका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम गोविन्द हाड़ी एवं माताका नाम गौरमणि था। १२५७ सालकी ३०वीं अग्रहायणको लगभग ६५ वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई।

वलराम इस ग्रामके मल्लिक वाबुओंके घर चौकीदारीका काम करते थे। उनके भवनमें आनन्द-विहारी नामक एक विग्रह है। एक समय इस विग्रहका स्वर्णलंकार चोरी जाने पर वाबुओंने वलराम पर कुछ शासन किया। उससे वे घर छोड़ गेरुआ वस्त्र धारण कर उदासी हो गये। उन्होंने अपने नाम पर उपासक सम्प्रदाय प्रवर्त्तन किया। वलरामके शिष्यगण उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका अवतार मानते थे। किन्तु वलरामने स्वयं ऐसा अभिप्राय प्रकाश किया था, ऐसा जान नहीं पड़ता। सुना जाता है कि, वे स्वयं अपनेको सृष्टिस्थिति प्रलयकर्त्ता कह कर अपना परिचय देते थे। उनके शिष्य लोग कहते हैं कि, वलराम उपदेशक थे एवं वे सत्य व्यवहार करनेका उपदेश दिया करते थे।

वलराम वाक्यपटु थे। वे संसारके यावतीय व्यापारोंके निगूढ़ भावोंकी व्याख्या आसानीसे कर सकते थे, इसीलिये वे वाचकके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक दिन उनके किसी शिष्यने पूछा—पृथ्वी कहांसे पैदा हुई?

उन्होंने उत्तर दिया—'क्षय' से पैदा हुई है। शिष्योंने फिर पूछा—'क्षय' से किस तरह पैदा हुई? वे विशेषरूपसे कहने लगा—आदिकालमें कुछ भी नहीं था, मैंने अपना शरीर 'क्षय' करके अर्थात् अपने शरीरसे इस पृथ्वीकी सृष्टि की। इसीलिये इसका नाम क्षिति है। क्षय, क्षिति तथा क्षेत्र एक ही पदार्थ है। लोग मुझे नीच हाड़ी जाति समझते हैं, किन्तु तुम लोग जो हाड़ी जाति सर्वत्र देखते हो मैं वह हाड़ी नहीं हूं। मैं छतदार गढ़नदार हाड़ी हूं, अर्थात् जो व्यक्ति घर तैयार करते हैं, वे घरामी कहलाते हैं, उसी तरह मैं हाड़की सृष्टि करनेके कारण हाड़ी कहलाता हूं।

एक दिन वलराम नदीमें स्नान करने गये। वहां उन्होंने देखा—कई एक ब्राह्मण वहां पितृतर्पण कर रहे हैं। वे भी उन लोगोंकी तरह नदीके किनारे जल उछालने लगे। उनकी अंगभंगी देख कर एक ब्राह्मणने उनसे पूछा—वलराम! तुम यह क्या कर रहे हो? इस पर वलरामने उत्तर दिया—मैं शाकके खेतमें जल पटा रहा हूं। इस पर ब्राह्मण देवता कहने लगे—यहाँ शाकका खेत कहाँ है? वलरामने जवाब दिया—आप लोग जो पितरोंका तर्पण करते हैं, वे सब यहां कहां हैं? जब नदीका जल नदीमें ही निक्षेप करनेसे पितृदेवको प्राप्त होता है, तब नदीके किनारे जल सिंचन करनेसे शाकके खेतमें क्यों नहीं पहुंचेगा?

होलिकाके समय वलराम स्वयं होलिकामंच पर जा बैठते थे और शिष्यगण अवीर तथा पुष्पादिसे उनकी पूजा करते थे।

इस सम्प्रदायके अनुयायियोंमें जातिविचार नहीं है। इनके अधिकांश गृहस्थ हैं तथा कोई कोई उदासी हैं। उदासी व्याह नहीं करते, अथच इन्द्रिय दोषमें भी लिप्त नहीं होते। गृहस्थ लोग अपने अपने कुलाचारानुसार विवाह-संस्कार सम्पन्न करते हैं।

इनका कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है। ये लोग विग्रहकी सेवा भी नहीं करते, गुरु नहीं कहने पर भी होता है। ब्रह्म मालोनी नामक एक स्त्री थी। वलराम उसे प्यार करते थे। इसीलिये उसने कुछ दिनों तक गुरुका कार्य किया था।

वलरामी सम्प्रदाय दो शाखाओंमें विभक्त है। एक शाखाके लोगोंने वलरामके मृत्युस्थान पर एक छोटा-सा घर वना रखा है। वे लोग सन्ध्या समय वहाँ पर दीप दिखाते हैं और प्रणाम करते हैं। द्वितीय शाखाके लोग वलरामको ऐसी आज्ञा न समझ कर उनके मृत्युस्थानका कोई गौरव नहीं करते।

वलवत् (सं० लि०) वल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वलयुक्त, वलवान्।

वलवत्ता (सं० स्त्री०) वलवतो भावः तल्-टाप्। अतिशय वल, शक्ति, सामर्थ्य।

वलवनूर—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके दक्षिण और आर्कट जिलेमें विल्वपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक समृद्धिशाली गण्डग्राम। यह अक्षा० ११° ५५' उ० तथा देशा० ७९° ४८' पू० पंडीचेरीसे ढाई कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां स्थानीय उपजको खरीद-विक्रीके लिये एक वड़ी हाट लगती है।

वलवला (अ० पु०) उमंग, आवेश।

वलवृत्रघ्न (सं० पु०) वल और वृत्रनाशक इन्द्र।

वलवृत्रनिसूदन (सं० पु०) वलवृत्रौ निसूदयति सूद-ल्यु। वलवृत्रहन्ता इन्द्र।

वलसूदन (सं० पु०) वलं सूदयति सूद-ल्यु। इन्द्र।

वलस्न—वम्वई प्रेसिडेन्सीके महिकान्था विभागान्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यहांके सरदार ठाकुर मानसिंहजी राठोरवंशीय राजपूत हैं। उन्हें दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है; किन्तु राज-नियमसे ज्येष्ठ पुत्र ही राजतख्तके अधिकारी होते हैं। राजस्व ७२४०) रु० है, जिसमें वार्षिक २८०) रुपया कर-स्वरूप वड़ोदाके गायकवाड़को देना होता है।

वलहन्तृ (सं० पु०) वल नामक असुरको संहार करनेवाले इन्द्र।

वलाका (सं० पु०) वगला।

वलाट (सं० पु०) वलेन अटयते प्राप्यते इति अट-घञ्। मुद्ग, मूंग।

वलाराति (सं० पु०) वलस्य अरातिः। इन्द्र।

वलाहक (सं० पु०) वलेन हीयते इति वल-हा-क्वुन्, यद्वा वारीणां वाहकः पृषोदरादित्वात् साधुः। १ मेघ, वादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ पर्वत। ४ एक दैत्यका

नाम। ५ साँपोंकी एक जाति जो दर्व्वीकरके अन्तर्गत मानी जाती है। ६ रमाके गर्भसे उत्पन्न कल्किदेवका पुत्र। ७ श्रीकृष्णके रथके एक घोड़ेका नाम। ८ एक नदीका नाम। ९ कुशद्वीपके एक पर्वतका नाम।

वलि (सं० पु०) १ रेखा, लकीर। २ पेटके दोनों ओर पेटीके सिकुड़नेसे पड़ी हुई रेखा, बल। जैसे—त्रिवली। ३ चन्दन आदिसे बनाई हुई रेखा। ४ पूजोपहार, देवताको चढ़ानेकी वस्तु। ५ राजकर। ६ एक दैत्य जो प्रह्लादका पौत्र था और जिसे विष्णुने वामन अवतार ले कर छला था। बलि देखो। ७ एक प्रकारका बाजा। ८ श्रेणी, पंक्ति। ९ राजकर। १० गंधक। ११ छाजनकी ओलती। १२ बवासीरका मस्सा।

वलिक (सं० पु०) घरकी छत या छाजनकी ढालका अंत जहांसे पानी गिरता है, ओलती।

वलिक्रिया (सं० स्त्री०) १ उपहार दान। २ किसी व्यक्तिके गात्रमें लकीर खींचना।

वलित (सं० त्रि०) १ बल खाया हुआ, लचका हुआ। २ झुकाया हुआ, मोड़ा हुआ। ३ लिपटा हुआ, लगा हुआ। ४ परिवृत, आवेष्ठित। ५ युक्त, सहित। ६ जिसमें झुर्रियां पड़ी हों, जो जगह जगहसे सुकड़ा हो। ७ आच्छादित, ढका हुआ। (पु०) ८ काली मिर्च। ९ नृत्यमें हाथ मोड़नेकी एक मुद्रा।

वलिन् (सं० त्रि०) १ बलशाली। (पु०) २ सिकुड़ा हुआ गात्र-मांस।

वलिभ (सं० त्रि०) वलि-मत्वर्थे (तुन्दिवलिवटेर्भः। पा ५।२।१३९) वलियुक्त, वलिविशिष्ट।

वलिमुख (सं० पु०) १ वानर, बंदर। २ गरम दूधमें मट्ठा मिलनेसे उत्पन्न छठा विकार।

वलिर (सं० त्रि०) वलते संवृणोति चक्षुस्तारामिति वल-बाहुलकात् किरच्। केकर या टेरा चक्षुविशिष्ट, जो ढेरा हो।

वलिवण्ड (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वलिश (सं० क्ली०) वलिना गन्धवद्द्रव्याद्युपहारेण श्यति हिनस्ति मत्स्यानिति शो-क। वड़िश, बंसी।

वलिशान (सं० पु०) मेघ, बादल।

वलिशि (सं० स्त्री०) वलिना आहारोपहारेण मत्स्यादीन् श्यति, विनाशयतीति शो बाहुलकात् कि। वड़िश, बंसी।

वली (सं० स्त्री०) १ श्रेणी, आवली। २ रेखा, लकीर। ३ शिकन, झुर्री। ४ पेटके दोनों ओर पेटीके सुकड़नेसे पड़ी हुई लकीर। ५ चन्दन आदिसे बनाई हुई लकीर।

वली (अ० पु०) १ स्वामी, मालिक। २ शासक, अधिपति। ३ साधु, फकीर।

वलीअहद (अ० पु०) युवराज, टिकैत।

वलीक (सं० क्ली०) वलति संवृणोतीति वल सम्वरणे (अलीकादयश्च। उण् ४।२५) इति कीकन्। १ शर, सरकंडा। २ घरकी छत या छाजनकी ओलती।

वलीदपुर—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ३′ ३५″ उ० तथा देशा० ८३° २५′ ३०″ पू०, तोंस नदीके किनारे आजमगढ़से ६ कोस दूर पर अवस्थित है। नगर तो छोटा है, पर बड़ा ही समृद्धिशाली है। सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। उस हाटमें आसपासके गांवोंसे चीजें बिकने आती हैं। यहां करीब २५० घर जुलाहे हैं जो कपड़ा बुनते हैं। जौनपुरवासी मखदूम शेख मुशेयियोंके वंशधर लोग यहांके जमींदार हैं। उन्होंने १५वीं सदीके शेषमें जौनपुरके शेख राजा सुलतानसे यह जमीन जागीर-स्वरूप पाई थी।

वलीमत् (सं० त्रि०) अलकायुक्त।

वलीमुख (सं० त्रि०) वली युक्तं मुखं यस्य। वानर।

वलीवाक (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। वलिवाक देखो।

वलूक (सं० क्ली०) वलते इति वल संवरणे ((वलेरूकः। उण् ४।४०) इति ऊक। १ पद्ममूल, कमलकी जड़, भिस्सा। (पु०) २ पक्षिविशेष।

वल्क (सं० पु०) वलते वल संवरणे (शूकवल्कोल्काः। उण् ३।४२) इति कप्रत्ययान्तो निपातितः। वक्कल, छाल।

वल्कज (सं० पु०) पुराणानुसार एक जाति।

वल्कतरु (सं० पु०) वल्कप्रधानस्तरुरिति कर्मधारयः। पूगवृक्ष, सुपारीका पेड़।

वल्कद्रुम (सं० पु०) वल्कप्रधानो द्रुमः। भूर्ज्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

वल्कल (सं० क्ली०) वलते संवृणोतीति वल-बाहुलकात् कलन्। १ त्वच, दारचीनी। (पु० क्ली०) २ वृक्ष-

त्वक्, वृक्षकी छाल । पर्य्याय—त्वक्, वल्क, त्वच्, चोच, चोलक, शल्क, छल्कल, छलि, चोतक ।

(शब्दरत्नाकर)

अत्यन्त प्राचीनकालसे ही वल्कल पहननेकी प्रथा प्रचलित थी। रामायणीय युगमें हम लोग रामचन्द्रको सीता तथा लक्ष्मणके साथ (रामा० १।१) एवं महाभारतीय युगमें पांचों पाण्डवोंको अजिन वल्कल धारण करके माता कुन्तीदेवीके साथ (महाभारत १।१५७।१२) वनान्तर-भ्रमणकार्य्यमें नियुक्त देख पाते हैं । साधु संन्यासी लोग उस प्राचीनकालमें सूत्रनिर्मित वस्त्रोंके बदले वल्कल निर्मित कौपीन व्यवहार करते थे। वस्तुतः यह परिधेय 'वल्कल' पर्णाच्छादनके मूल (Leaf wearing) की तरह वृक्षछालके रूपमें ही व्यवहार किया जाता था। अथवा अभ्यन्तरभागस्थ 'नाड़' वा सूक्ष्म तन्तुमय रेसेके सूक्ष्मतम सूत्र द्वारा वस्त्रके रूपमें बुना जाता था इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

वर्त्तमान समय हम लोग देखते हैं, कि वृक्ष-छालके इन कोषमय नाड़ों (Cellular tissue)को कूट कर सूक्ष्म सूक्ष्म सूते (Fibrous material) तैयार किये जाते हैं। उन्हीं तन्तुओंसे सूत्र वा मछली पकड़नेका 'कड़' (Cordage) एवं गलीचा, जाजिम प्रभृति बुने जाते हैं। ब्रह्मदेशमें यह छालतन्तु 'ष' कहलाता है । अङ्गरेजीमें इसे Bast कहते हैं। रूसदेशजात Linden श्रेणीके वृक्षोंके छालतंतु द्वारा विनिर्मित वल्कलवस्त्र सारे यूरोपके वल्कल वस्त्रोंसे अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त Tilia Europea नामक और एक स्वतंत्र श्रेणीका वृक्ष देखा जाता है। उसकी छालके रेसोंसे टेबिल ढकनेके गलीचे तथा जूतेके कपड़े तैय्यार किये जाते हैं।

भारतवर्ष तथा पूर्वभारतीय द्वीपोंमें Grewia, Libiscus तथा Malberry श्रेणीके वृक्षोंकी छालमें उत्कृष्ट तन्तु पाया जाता है। तूँत फलके पेड़ोंकी छालसे मूगा नामक एक प्रकारका तन्तु निकाला जाता है। वह रेशमकी अपेक्षा सख्त और बहुकालस्थायी होता है। मछली पकड़नेकी बड़शि (बंसी) इस सूत्रमें बाँधी जाती है। आराकान देशके थेन्-थम्-ष, प-थ-जौ, ष-क्यू, औलसौ-भू-ष, ष-नी तथा पग्-बोत्-ष नामक वृक्षोंमें बहुतायत वल्कलतन्तु पाये जाते हैं। आकयाव तथा ब्रह्मविभागमें हेन्-क्यू-ष, दम्-ष, मनोत्-प, वाप्रोल्-प, प-गौत्व प्रभृति कई जातिके वृक्षोंसे इस तरहके तन्तु निकाले जाते हैं। उनसे नौका बाँधनेकी रस्सी तथा मछली पकड़नेके जाल प्रभृति तैयार किये जाते हैं।

आकयावके गुयान्-योग-ष वृक्षकी छालके तन्तुओंसे सुदृढ़ जाल तथा जहाज बाँधनेकी रस्सी तैयारकी जाती हैं। मलक्का द्वीपके ग्राम वृक्ष Melaleuca Viridiflora तथा ताली वृक्षकी छालके Artocarpus सूत्र द्वारा मछली पकड़नेके जाल बुने जाते हैं।

शिंगापुरके ताली तरासके तन्तुओंसे एवं श्यामदेशके वृक्षोंकी छालके तन्तुओंसे सुतली (Twine) तैयारी की जाती है।

मलय प्रायद्वीप तथा केदा नामक स्थानोंमें सेमङ्ग जातिके वृक्षोंके छालसूत्र द्वारा एक प्रकारका वल्कलवस्त्र तैयार किया जाता है। सिलेविस् द्वीपके काइली विभागमें एक प्रकारके तूत वृक्षकी छालसे जो सूते तैयार किये जाते हैं, उनसे तैयार वस्त्र भी 'वल्कलवस्त्र' ही कहलाते हैं। १८५७ ई०की मान्द्राज-प्रदर्शनीमें जनसाधारणके सामने मि० जाफरीने Eriodendron anfractnosum नामक वृक्षकी छालसे सूत्र निकाल कर उसकी दृढ़ता तथा वस्त्रवयनोपयोगिता सिद्ध कर दी थी।

वर्त्तमान समय 'छालटी' नामसे एक प्रकारका सुन्दर रेशमी कपड़ा तैयार किया जाता है। वह केवल वृक्षतंतुओंसे ही बुना जाता है। बनारसी सिल्कके नामसे जो शरीर ढकनेके मोटे कपड़े पाये जाते हैं, वे Rheafibre से तैयार किये जाते हैं। इन (Rhea fibre) तन्तुओंसे सिल्ककी चादरके समान पतले तथा शीतकालोपयोगी मोटे गात्रवस्त्र एवं कोट प्रभृति तैयार किये जाते हैं।

वस्त्रोंके अतिरिक्त इस वल्कलसे अनेकों प्रकारकी ओषधियाँ तथा चमड़ा साफ करनेके लिये एक प्रकारका 'कस' तैयार किया जाता है। सिनकोना वृक्ष (Cinchona) की छालसे कुनैन औषध तैयार की जाती है। धाकसछाल, नीमछाल, जामुनछाल, वकुलछाल प्रभृति सभी छालें औषधरूपमें व्यवहृत होती हैं। आयुर्वे-

दोक्त भैषज्यतत्त्वमें इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकारके पेड़ोंकी छालका रस औषध वा अनुपानरूपमें व्यवहार करनेकी विधि बताई गई है। Oaks, Rhus, Eucalyptus तथा बावला (Acacia Arabica) प्रभृति वृक्षोंकी छाल चमड़ा परिष्कार करनेमें tanning विशेष उपयोगी होती हैं। Acacia leucophloeo वा सफेद कीकर नामक वृक्षकी छालसे अर्क चुला कर कार्यमें लाते हैं। इस Acacia श्रेणोभुक्त अष्ट्रेलियाके wattle वृक्षकी छाल भी चमड़ा परिष्कार करनेमें काम आती है। एक प्रकारके ओक वृक्षकी छाल बाजारमें विक्री होती है।

भोजपत्र नामक और भी जो एक प्रकारके वृक्षको छालका सूक्ष्म अंश देखा जाता है, उसकी भी गिनती वल्कलमें ही होती है। उस पर पापग्रहोंकी अशुभ दृष्टि दूर करनेके लिये स्तवकवच आदि लिख कर शरीरमें धारण किया जाता है। प्राचीन शास्त्र ग्रन्थादि भी भोजपत्रमें लिखे जाते थे। इस समय इसका विशेष प्रचार नहीं है। पाट, शन प्रभृति भी वल्कलज तन्तुओंमें गिने जाते हैं।

वल्कलक्षेत्र (सं० पु०) एक पवित्र स्थानका नाम। ब्रह्माण्ड-पुराण और अध्यात्म-रामायणके अन्तर्गत वल्कलक्षेत्र माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

वल्कलवत् (सं० त्रि०) वल्कल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। वल्कलविशिष्ट, वल्कलधारी।

वल्कलसम्वित (सं० त्रि०) वल्कलावृत।

वल्कला (सं० स्त्री०) वल्कल-टाप्। १ शिलावल्का, सफेद रंगका एक प्रकारका पत्थर। इसका गुण—शीतल और शान्तिकारक माना जाता है। २ तेलवल।

वल्कलिन् (सं० पु०) १ श्वेत लोध्रवृक्ष, सफेद लोधका पेड़। (त्रि०) २ वल्कलधारी, वल्कल या पेड़की छाल पहननेवाला।

वल्कलोध्र (सं० पु०) वल्कप्रधानो लोध्रः। पट्टिका-लोध्र, पठानी लोध।

वल्कवत् (सं० पु०) वल्कः शल्कोऽस्त्यस्येति वल्क मतुप् मस्य वः। १ मत्स्य, मछली। (त्रि०) २ वल्कयुक्त।

वल्कष—मध्यभारतके अन्तर्गत एक छोटा ह्रद।

वल्कान—काम्पाय सागरोपकूलके पूर्वदिकस्थ शैलमाला। यह समुद्रपृष्ठसे प्रायः तीन हजार फीट ऊंची है तथा अक्षा० ३६° ३०´ उ० तथा देशा० ५४° ३०´ पू० पर अवस्थित है। यहां नाना प्रकारका खनिज मणिरत्न मिलता है।

वल्किल (सं० पु०) वल्कोऽस्यास्तीति वल्क इतच्। कण्टक, कांटा।

वल्कुत (सं० क्ली०) वल्कल, छाल।

वल्ख (वाल्ख)—अफगान तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक सुप्राचीन नगर। यह अक्षा० ३६° ४८´ उ० काबुल राजधानीसे ३५७ मील उत्तर पश्चिम, कुन्दुजसे १२० मील पश्चिम एवं हिरातसे ३७० मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस नगरके उत्तर-पूर्वमें रक्षु नदी, पूर्वमें कुन्दुज, पश्चिममें खुरासान एवं दक्षिण-पश्चिममें हजारा तथा मैमुनार पर्वतमाला हैं।

रामायणादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें वाल्हीक नामसे इस सुविस्तृत नगरका उल्लेख है। उस समय आर्य हिन्दुओंके साथ वाल्हीक-नगरवासियोंका जो घनिष्ठ सम्बन्ध था, वह भारतयुद्ध पाठ करनेसे स्पष्ट मालूम होता है। पीछे इसी नगरसे भारतमें शकका अभ्युदय हुआ था। वाल्हीक तथा शक शब्दोंमें विस्तृत वर्णन देखो।

इस जनपदका दक्षिण-पूर्व भाग शीतप्रधान तथा पर्वतमय है एवं उत्तर-पश्चिम भाग वालुकापूर्ण होनेके कारण अपेक्षाकृत उष्णप्रधान तथा समतल है। यहां ग्रीष्मकालमें अत्यन्त गर्मी पड़ती है। यहां उजबेक, अफगान, मुगल, तुर्क तथा ताजक जातिके लोगोंको संख्या बहुत कम है। कितने लोग छोटे छोटे ग्रामोंमें श्रेणीवद्ध हो कर वास करते हैं। अनेकों पुरुष गो आदि पशुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जा कर चराते हैं। इन लोगोंका परिवार भी इन लोगोंके साथ ही रहता है। उजबेक जातिके लोग सरलचित्त, साधु प्रकृति एवं दयालु होते हैं। ताजक लोग शराबो तथा पापरत, दुर्द्धर्ष, वज्र-हृदय एवं भ्रष्टाचारी होते हैं।

वर्त्तमान वलख नगरमें १० हजार अफगान, ५ हजार कपचक एवं कितने ही उजबेक, हिन्दू तथा यहूदी लोगोंका निवास है। वलख नगर उतना श्रीसम्पन्न नहीं है। इस नगरसे थोड़ी दूर पर २० मील परिधिविशिष्ट

सुप्राचीन वाह्लीक राजधानीका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। इसके ही वाहर भागमें प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु मूरक्रफट तथा गुप्तोंका समाधिस्तम्भ विद्यमान है। पहले ही कहा गया है कि, रामायणीय तथा महाभारतीय युगमें यह नगर वहुत उन्नति पर था। केवल हिन्दुओंके निकट ही नहीं, पश्चिम एशियाखंडवासियोंके निकट भी इस स्थानका यथेष्ट गौरव था। वे लोग इस राजधानीको आंस-उल-वालाद वा नगरमाता कह कर उल्लेख करते थे। पारसवासी इसे प्राचीन धर्मका केन्द्रस्थान तथा ज्ञानभंडार समझते थे। प्रवाद है, कि पारसवासी काइयतमूर्जने यह नगर स्थापित किया एवं प्रसिद्ध दार्शनिक तथा धर्मप्रचारक जयथुस्त्रने दूसरा अंश स्थापन करके उसकी श्रीवृद्धि की।

माकिदनवीर एलेकजेण्डरने इस स्थान पर अधिकार करके वक्त्रिया राज्यमें मिला लिया। इस समय यह नगर स्थानीय पर्वतश्रेणीसे तीन कोसकी दूरी पर समतलक्षेत्रमें वसा है। यहांका जलवायु वैसा अच्छा नहीं है। नगरमें जल पहुचानेके लिये नदी-तटसे जल-नालियां (Aqueducts) लगी हैं।

एक समय दुर्द्धर्ष वक्त्रियाराजाओंने सेनादलके साथ रणक्षेत्रमें युद्धकौशलका विशेष परिचय दिया था। वाल्खराज १म अर्सकेश पहलववंशीय थे। छोरेनीयासी मोजेसने उनकी वीरताका परिचय दिया है, मतभेदसे अर्साकेश सोगद-जनपदाधीश्वर कहलाते हैं।

चंगेज खांके समय तक वाल्खनगरी अपने सौन्दर्य्य समृद्धिसे एशियाके दूसरे दूसरे नगरोंके मध्य सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती थी। तैमूरने राज्यविजयकी वासनासे अपनी विस्तृत मुगल-सेनाके साथ समय समय पर आ कर इस नगरको मिट्टीमें मिला दिया। विख्यात परिव्राजक मार्कोपोलो इस स्थानकी प्राचीन समृद्धि कितने ही निदर्शन प्रत्यक्ष कर गये हैं। १७३६ ई०में पारसके राजा नादिरशाहने वल्ख तथा कुन्दज पर अधिकार कर लिया। उनकी मृत्युके वाद यह स्थान दुरानीवंशी राजाओंके अधिकारमें चला गया। १८२० ई०में कुन्दजपति शाह मुरादने स्वाधीनता अवलम्बन करके इस स्थानको अफगान शासनसे अलग कर दिया। उसके वाद इस स्थान पर बुखाराका अधिकार हुआ। इसके वाद फिर अफगानिस्तानके सीमाभुक्त हो गया है।

वल्गन (सं० क्ली०) वल्ग-ल्युट्। १ प्लुतगमन, घोड़ेका कूदते या उछलते हुए चलना, दुलकी। २ वहुभाषण, वहुत सी इधर उधरकी बातें कहना।

वल्गा (सं० स्त्री०) वल्गयतेऽनयेति वल्ग-करणे घञ्, टाप्। दण्डालिका, लगाम, वाग। पर्याय—अवक्षेपणी, रश्मि, कुशा।

वल्गित (सं० क्ली०) वल्ग-भावे क्त। वल्गन देखो।

वल्गु (सं० पु०) वलते इति वल प्रीणने वल-ड, (वलेर्गुकच् उण् १।२०) धातुरूत्तर गुगागमः। १ छाग, वकरा। २ वौद्धोंके वोधिद्रुमके चार अधिष्ठाता देवताओंमेंसे एक। (त्रि०) ३ सुन्दर, खूवसूरत।

वल्गुक (सं० क्ली०) वल्गु संज्ञायांस्वार्थे वा कन्। १ चन्दन। २ विपिन, वन। ३ पण, वाजी। ४ सौदा। (त्रि०) ५ रुचिर, सुन्दर।

वल्गुज (सं० पु०) छाग, वकरा।

वल्गुजङ्घ (सं० त्रि०) १ सुन्दर जङ्घाविशिष्ट, जिसकी जांघ सुन्दर हो। (पु०) २ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

वल्गुपत्र (सं० पु०) वल्गु मनोज्ञं पत्रं यस्य। वनमुद्ग, वनमूंग।

वल्गुपोदकी (सं० स्त्री०) १ लहसुआ नामका साग। २ एक प्रकारकी लता।

वल्गुल (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

वल्गुला (सं० स्त्री०) वल्गु लातीति ला-क-टाप्। १ वकुची। २ पक्षिविशेष, चमगादड़। इस अर्थमें व्यवहृत वल्गु शब्दका पर्याय—चक्रविष्ठा, दिवान्धा, निशाचरी, स्वैरिणी, दिवाखाद्या, मांसेष्टा, मातृहारिणी।

वल्गुलिका (सं० स्त्री०) वल्गु संज्ञायां कन्, टापि अत इत्वञ्च। १ कत्थई रंगका पतंग जातिका कीड़ा, चपड़ा। इसे तैलपायी भी कहते हैं। २ मंजूषा, झावा, पिटारा।

वल्गुली (सं० स्त्री०) १ रात्रिचर पक्षिविशेष, चमगादड़। २ मंजूषा, झावा, पिटारा।

वल्गुसोम—एक प्राचीन ग्रन्थकर्त्ता। गोभिलगृह्यसूत्रभाष्यमें इनका उल्लेख है।

वल्द (अ० पु०) औरस बेटा, पुत्र। किसी मनुष्यके कुलके परिचयके लिये उसके नामके आगे इस शब्दका व्यवहार करके उसके पिताका नाम रखा जाता है। जैसे—'गोकुल वल्द बलदेव' अर्थात् "गोकुल, बेटा बलदेवका"। दस्तावेजों और सरकारी कागजों आदिमें जिनकी भाषा उर्दू होती है, इस शब्दका प्रयोग होता है।

वल्दियत (अ० स्त्री०) पिताके नामका परिचय, बापके नामका पता। जैसे—अपनी वल्दियत और सकूनत लिखाओ।

वल्भन (सं० क्ली०) वल्भ भक्षणे भावे ल्युट्। भक्षण, खाना।

वल्मिक (सं० पु० क्ली०) वल्मीक।

वल्मीक (सं० पु० क्ली०) वलते इति वल संवरणे (अलीकादयश्च। उण् ४।२५) मुमागमः कीकनान्तो निपातः। १ उयिकाकृत मृत्तिकास्तूप, दीमकोंका लगाया हुआ मिट्टीका ढेर, बिमौट। इसका पर्याय—वामलूर, नाकु, वल्मिक, वाल्मीक, वाल्मीकि, वा लेमकि, पुगलक, शक्रमूर्द्धा, कृपि, शैलक। (शब्दरत्ना०)

हम लोग घरकी दीवार तथा काष्ठके बने स्तम्भ प्रभृतिमें एक प्रकारका पुत्तिकाकीट (Termites) देखते हैं। वे दीवार वा काष्ठके ऊपर मिट्टीका ढेर लगा कर उसके अन्दर आवागमन करते हैं, फिर कभी कभी काष्ठखण्डके अन्दर सुरङ्ग बना कर काष्ठकी बड़ी क्षति करते हैं। किसी काष्ठके अन्दर एक बार दीमक लग जानेसे फिर उसका उद्धार नहीं। अलकतरा, साबुन तथा चूना बराबर बराबर भागसे जलके साथ अग्निमें उबाल कर काष्ठ पर मल देनेसे दीमक नहीं लगते। कभी कभी मोम तथा तारपिन लगा कर दीमक नाश किये जाते हैं। साल साल वर्षासे पहले काष्ठखण्डमें ब्रह्मदेशजात मिट्टीका तेल लगानेसे दीमक नहीं पकड़ते।

ईखके खेतमें भी बहुत दीमक पैदा होते हैं। वे ईखकी जड़ काट कर फसल नष्ट कर डालते हैं। इसलिये ईखके खेतसे इसे दूर करनेके लिये कितने ही उपाय अवलम्बन किये जाते हैं। हींग ८ छटाक, सरसों ८ सेर, सड़ी मछली ४ सेर, अतिविषामूल चूर्ण २ सेर काफी जलमें सिद्ध करके काढ़ा तैयार करना चाहिये। उस काढ़ेको खेतमें छिड़क देनेसे दीमक तो मर जाते है, किन्तु इससे कुछ पौधे नष्ट हो जाते हैं एवं यह पौधेके खाद्यपदार्थकी शक्ति क्षीण करता है। मैदा या सत्तूके साथ संकोविष मिला कर गुड़ मिलावें, इसके बाद उस मिश्रित पदार्थका पिण्ड बना कर दीमकके टीलहेके पास रख देवें। उस पिण्डके खानेसे दीमक निर्मूल हो जाते हैं। यक्षधूपनिर्यास (Dammer oil) १२ अंश तथा गांभीके वृक्षनिर्यास (Uncaria gambir), दोनोंको मिला कर काष्ठमें लगा देनेसे दीमक नहीं लग सकते। संखियाचूर्णके साथ तूतिया मिला कर काष्ठ पर मल देनेसे दीमक मर जाते हैं अथवा संखिया, मुसब्बर, साबुन तथा सज्जी, इन सबको जलके साथ अग्निमें उबाल कर उस जलसे काष्ठको धो देनेसे भी दीमकोंका नाश हो जाता है।

ये पुत्तिका कीट (White Ant) मैदान, खेत तथा ग्रामके रास्तेके किनारे एक एक मिट्टीका स्तूप बना कर उनमें वास करते हैं।

भारतवर्षमें, विशेषतः निम्न बङ्गके प्रान्तर प्रदेशमें एवं सिंहल द्वीप, उत्तमाशा अन्तरीप तथा सेन्टहेलना द्वीपमें बहुतसे दीमक देखे जाते हैं। उनके सश्रृंग तथा कोनाकार मृदुस्तूपोंकी आकृति देख कर स्वतः ही मनमें विस्मय पैदा होता है। कहीं कहीं उनके मृत्तिकास्तूप २ से १६-१७ फीट तक ऊँचे देखे गये हैं।

खुलना अथवा ग्वालन्द जानेवाली रेलवे लाइनके किनारे किनारे एवं उसके आस पासके खेतोंमें ४।५ फीट ऊँचे अनेक वल्मीकस्तम्भ देखे जाते हैं। ये वल्मीक कीड़े जिस परिमाणमें मृत्तिका स्तूप ऊंचा करते हैं, उसी परिमाणमें वे पृथ्वीके अन्दर गड्ढा खोद कर वहांकी मिट्टी ऊपर उठा देते हैं एवं उसी मिट्टीके द्वारा वे अति सुचारुरूपमें एवं विशेष शिल्पचातुर्यके साथ उसके अन्दर अपना आवश्यकतानुसार गृहादि खोद लेते हैं; अर्थात् यदि वल्मीकका एक भूपृष्ठोपरिस्थ कोनाकार स्तूप ७ फीट ऊँचा है, तो समझना चाहिये, कि मिट्टीके नीचे उतना ही फीट गहरा गड्ढा खोद कर उन कीड़ोंने अपूर्व

निर्म्माणकौशल द्वारा एक वल्मीकगृह निर्म्माण कर लिया है।

सिर्फ इतना ही नहीं, इस मृदाच्छादित अदृश्य वाटिकाके मध्य उन्होंने राणी-कीटके रहनेके लिये एक सुविस्तृत राजप्रासाद तैयार कर लिया है एवं उनके चारों पार्श्वमें असंख्य शिशुकीट-भवन हैं। ये सब भवन सुन्दर सोपानश्रेणी द्वारा परस्पर संलग्न हैं। इनके अतिरिक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके लिये सोपान पथ, वरण्डा, दालान, प्रवेशद्वार प्रभृति सुचारुरूपमें विन्यस्त हैं। इनकी गठन-निपुणता देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। नीचे अफ्रिका देशजात एक प्रकारके दीमकका वर्णन किया जाता है। वे दीमक सामरिक-पुत्तिकाके नामसे विख्यात हैं।

अफ्रिकाकी सामयिक पुत्तिकाएँ जो वल्मीक-गृह प्रस्तुत करती हैं, उसका ऊर्ध्वभाग छेदन करनेसे देखा जाता है, कि वह वल्मीक गृह अपूर्व गठन कौशलसे उनके द्वारा निर्म्माण किया गया है। जो सब सामरिक पुत्तिकाएँ वल्मीक-गृह निर्म्माण करती हैं, उनके शरीरकी लम्बाई १ बुरुलके चतुर्थांशसे भी कम होती है, किन्तु उनके द्वारा निर्म्माण किये गये वासगृह प्रायः ७।८ हाथ ऊँचे होते हैं। कितने ही वल्मीक-गृह उनको अपेक्षा भी बड़े होते हैं।

उल्लिखित वल्मीक-गृह जितने ऊँचे होते हैं, उनकी निर्म्माण-परिपाटी भी उसी अनुसार होती है। उन वल्मीक-गृहोंका भीतरी हिस्सा देखनेसे सामरिक पुत्तिकाओंकी निपुणता तथा विचक्षणताका सुस्पष्ट प्रमाण देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। उनके आहार विहार सम्पादन करनेके लिये वासगृहकी जिस तरहकी शृंखला आवश्यक होती है, वे उसी तरह सुचारुरूपमें उसे सम्पन्न किये रहती हैं। वे राजप्रासाद, भंडार-गृह, शिशु-शाला, पथ, सेतु, सोपान प्रभृति अति चतुरतासे तैयार किये रहती हैं। इनके भवन खिलान द्वारा छाये रहते हैं। एक प्रकोष्ठसे दूसरे प्रकोष्ठ पर गमन करनेके निमित्त सुगमपथ तैयार रहता है। एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें गमन करनेके लिये जिन जिन स्थानोंमें पेचीले रास्तेसे घुम कर जाना पड़ता है, उन सभी स्थानोंमें एक एक खिलान किये हुए बाँधोंका निर्म्माण करके आने जानेकी सुविधा किये रहती हैं। इस तरहसे अपने वासभवनको सर्वांगसुन्दर बना कर उनके मध्य सुखसे वास करता हैं। इनके गृहका ऊपरी भाग ऐसा सुदृढ़ तथा कठिन होता है, कि इसके ऊपर एक साथ चार पाँच मनुष्यके चढ़नेसे भी यह नष्ट नहीं हो सकता।

सामरिक पुत्तिकाओंकी कार्यप्रणाली भी बहुत ही अच्छी होती है। इनकी कार्यप्रणाली ऐसी सुन्दर होती है, कि उसे एक उत्कृष्ट राजाकी व्यवस्था-प्रणाली कह सकते हैं। इनकी तीन श्रेणियाँ होती हैं—श्रमजीवी पुत्तिका, सैनिक पुत्तिका तथा विशिष्ट पुत्तिका। श्रमजीवी पुत्तिकायें गृह, पथ, बाँध प्रभृति तैयार करती हैं। सैनिकपुत्तिकायें गृहकी रक्षणावेक्षण करती हैं एवं आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओंसे युद्ध किया करती हैं। उनका शरीर श्रमजीवी पुत्तिकाओंकी अपेक्षा १५ गुना बड़ा होता है। आश्चर्यका विषय यह है, कि श्रमजीवी-पुत्तिकाएँ किसी समय सैनिक पुत्तिकाओंके कर्ममें प्रवृत्त नहीं होती, इसी तरह सैनिक पुत्तिकाएँ भी कभी श्रमजीवीपुत्तिकाओंके कार्यमें नियुक्त नहीं होतीं।

विशिष्ट पुत्तिकाएं नहीं तो गृहादि ही निर्म्माण करती हैं, न युद्धमें ही प्रवृत्त होती हैं, यहां तक, कि वे अपनी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं होतीं। किन्तु उनका शरीर सर्वापेक्षा बड़ा एवं उत्कृष्ट होता है। वे सैनिकपुत्तिकाओंसे दो गुना एवं श्रमजीवी पुत्तिकाओंसे ३० गुना बड़ी होती हैं। दूसरी दूसरी पुत्तिकाएं उन्हें प्रधान मानती हैं एवं उन्हें प्रधानके पद पर अभिषिक्त करती हैं। वे विशिष्ट पुत्तिकाएं इस पद पर अभिषिक्त होनेके बाद कई सप्ताहके मध्य ही परयुक्त हो कर वहांसे उड़ जाती हैं। किन्तु उड़नेके कुछ ही समयके बाद उनके पंख झड़ जाते हैं, तब पक्षी पतङ्गादि आ कर उन्हें खा जाते हैं। अफ्रिका-निवासी उन पुत्तिकाओंको भुन कर खाते हैं। इस तरहसे प्रायः सभी विशिष्ट पुत्तिकाएं नष्ट हो जाती हैं। यदि किसी तरह दो चार बच जाती हैं, तो पूर्वोक्त श्रमजीवी पुत्तिकाएं उन्हें राजा तथा रानीके पद पर अभिषिक्त करती हैं एवं एक मृत्तिकामय प्रकोष्ठका स्थापन कर यत्नपूर्वक उनका पालन पोषण करती हैं। पीछे जब रानीकी

सन्तानोत्पत्तिका उपक्रम होता है, तब वे एक काष्ठमय प्रकोष्ठ तैयार करनेमें प्रवृत्त होती हैं। राणी जितने अण्डे देती हैं, वे श्रमजीवी पुत्तिकाएं उन्हें शीघ्र ही उठा कर उसी प्रकोष्ठमें स्थापन करती हैं।

भारतमें साधारणतः सन्ध्या समय पंखयुक्त पुत्तिकाएं उड़ती देखी जाती हैं। उन्हें बादल-कीड़ा कहते हैं। जिस समय वे भूगर्भस्थ निवास त्याग दल बाँध कर बादलकी तरह आकाशमार्गसे उड़ती, हैं, उस समय काक, बादुर प्रभृति नाना जातिके पक्षी आ कर उनका भक्षण करना आरम्भ करते हैं। पंखके नष्ट हो जानेसे जो विशिष्ट पुत्तिकाएं पृथ्वी पर गिर जाती हैं वे दूसरे दिन प्रातःकाल काकके उदरस्थ होती हैं, कहीं कहीं निकृष्ट श्रेणीके लोग उनका संचय कर घीमें भुन कर खाते हैं।

उल्लिखित पुत्तिका-महिषी जिस तरह अवस्थान्तर तथा रूपान्तरको प्राप्त होती हैं, उसे सुनकर विस्मित होना पड़ता है। उस समय उसका शरीर क्रमशः फूल कर अन्य पुत्तिकाओंके शरीरकी अपेक्षा १५०० डेढ़ हजार अथवा २००० दो हजार गुना बड़ा हो जाता है। उसका शरीर उसके स्वामीके शरीरकी अपेक्षा १००० एक हजार गुना भारी हो जाता है एवं श्रमजीवी पुत्तिकाओंके शरीरकी अपेक्षा २०।३० हजार गुना विस्तृत हो जाता है। एक पण्डितने गणना करके देखा था—एक पुत्तिका-महिषीने एक समय ५०।६० दण्डमें ८०००० अस्सी हजार अण्डे दिये थे। प्रसवके समय कई एक श्रमजीवी पुत्तिकाएं उसके पास नियुक्त रहती हैं। वे उन अण्डोंको उठा कर पूर्वोक्त काष्ठमय प्रकोष्ठके मध्य स्थापन करती हैं। इन सब अण्डोंसे जितने बच्चे पैदा होते हैं, उन सबका लालन-पालन श्रमजीवी पुत्तिकाएं करती हैं। उनकी रक्षाके लिये जिस समय जिन चीजोंकी आवश्यकता होती है, उस समय वे उन चीजोंको ला कर आवश्यकता पूरी करती हैं। वे सब बच्चे इस प्रकार पल-कर शक्ति सम्पन्न तथा श्रमक्षम होने पर वल्मीकरूप सुरम्य राज्यके कार्यमें नियुक्त होते हैं।

पण्डितोंने प्रत्यक्ष देखा है—यदि किसी प्रकार वल्मीकका कोई स्थान भंग कर दिया जाय, तो उसी समय सैनिक पुत्तिका उस भग्न स्थान पर आ उपस्थित होती है। कुछ देरमें वहां और दो तीन पुत्तिकाएं आ जाती हैं। इसके बाद झुण्डकी झुण्ड पुत्तिकाएं उस वल्मीकसे बाहर निकल पड़ती हैं। इस तरहसे जितनी देर तक वल्मीकके ऊपर आघात किया जाय, उतनी देर तक सैनिक पुत्तिकाएं बाहर निकलती रहेंगी। इसके बाद वे सब मिल कर एक प्रकारकी आवाज करती, आघातकारी पर आक्रमण करती हैं, आघातकारीके पांवोंसे चिपट कर दंशन करती हैं एवं उसे दूर भगानेकी यथासाध्य चेष्टा करती हैं। जब वल्मीकके ऊपर फिर आघात नहीं होता, तब वे उसी क्षण वल्मीकके अन्दर घुस जाती हैं। इसके बाद सहस्र सहस्र श्रमजीवी पुत्तिकाएं बाहर निकल कर वल्मीकके भग्न स्थानको पुनः तैयार करनेमें प्रवृत्त होती हैं। आश्चर्यका विषय यह है, कि लक्ष लक्ष पुत्तिकाएं एक साथ ही कार्य करती हैं, अथच कोई किसीके कार्यमें बाधा नहीं डालती एवं एक क्षणके लिये भी अपने कार्यसे मुख नहीं मोड़ती। एक एक सैनिक पुत्तिका एक एक श्रमजीवी पुत्तिकाओंके दलके साथ रहती है, मालूम पड़ता है, कि वे पुत्तिकाएं उन श्रमजीवी पुत्तिकाओंके अध्यक्ष वा प्रहरी-स्वरूप उनके साथ रहती हैं। विशेषतः एक पुत्तिका भग्नस्थानके समीप खड़ी रहती है, वह एक एक बार शब्द करती है और श्रमी पुत्तिकाएं उसी क्षण एक प्रकारकी ऊंची आवाज करती हुई पहलेकी अपेक्षा दुगुने उत्साहसे काम आरम्भ करती हैं।

सेनेगेल नामक स्थानके समीपवर्त्ती किसी किसी स्थानमें बहुतसे वल्मीक एक साथ देखे जाते हैं, मालूम पड़ता है, कि उन स्थानोंमें एक एक ग्राम बस गया है। सिंहल, सुमात्रा, तथा बोर्नियो द्वीपोंमें एवं भारतके किसी किसी स्थानमें Termes taprobanes नामक एक जातीय पुत्तिका देखी जाती है। सिंहलद्वीपमें T. monoceros श्रेणीकी पुत्तिकाएं वृक्षके कोटरमें वास करती हैं। कभी कभी उस स्थानमें गोखुरा साँपका वास देखा जाता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके वसरपाड़ नामक स्थानमें जो वल्मीक देखे जाते हैं, उनमेंसे बहुतोंके अन्दर बहुसंख्यक विषधर सर्प रहते हैं। किन्सलैंडके उत्तरस्थ समार्सेट् नगरसे एक मीलकी दूरी पर आलवानी गिरि संकटके सामने १६ फीट ऊंचे बहुतों वल्मीक विद्यमान ०

वल्मीकको मिट्टीसे सौच करना निषेध है। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि वल्मीक तथा मूसोंके द्वारा खोदी हुई मिट्टीसे शौचक्रिया नहीं करनी चाहिये।

किसी देवविग्रहकी प्रतिष्ठाके पहले शिल्पि व्यक्तिके स्पर्शदोषको शान्तिके लिये वल्मीक मृत्तिका, गोमय तथा भस्म इन तीनों वस्तुओं द्वारा विग्रहका मार्जन कर लेना होता है। उक्त तीनों वस्तुओंके द्वारा स्नान करानेका कोई पृथक् मन्त्र नहीं है। इसलिये शूलपाणि गायत्री वा उसी देवताके मूलमन्त्र द्वारा ही स्नान करानेकी विधि बताई गई है।

(पु०) २ वल्मीकि मुनि। रोगविशेष।

जिस रोगमें त्रिदोषके प्रकोपके कारण ग्रीवा, अंस, कक्ष, हस्त, पद तथा सन्धिस्थानोंमें एवं गलेके मध्य वल्मीककी तरह गाढ़मूल अथच प्रचुर शिखरयुक्त तथा उन्नत ग्रन्थि उत्पन्न होती है एवं जब उनकी उचित चिकित्सा नहीं की जाती है, तब वे धीरे धीरे बहुत बढ़ जाती हैं और उनमें सूचीवेधवत् वेदना होने लगती है। इनमें कई छिद्र हो कर मवाद निकलने लगता है। इन्हें वल्मीकरोग कहते हैं। इसकी उपयुक्त चिकित्सा न होने पर यह रोग धीरे धीरे असाध्य हो जाता है।

इसकी चिकित्सा—वल्मीकरोग पहले शस्त्र द्वारा उत्पाटन करके क्षार तथा अग्निकर्म द्वारा दग्ध एवं अर्व्वुद रोगकी तरह शोधन करना चाहिये। जिसके मर्मस्थानके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें वल्मीक रोग हो जाय और वह यदि बहुत बढ़ा न हो, तो उसका पहले संशोधन एवं इसके बाद रक्तमोक्षण करके उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

कुलथीकी जड़, गुडूची, सैन्धव, दन्तिमूल, श्यामलताकी जड़, गूदा तथा सत्तू, इन सबको पोस लेवें एवं इस चूर्णमें थोड़ा-सा घी मिला कर अग्नि पर चढ़ावे। जब यह मिश्रित पदार्थ कुछ गर्म हो जाय, तब वल्मीक रोग पर इसका पुलटिश चढ़वें। इससे इस रोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

वल्मीक रोगके पक जाने पर यदि उसमें छिद्र हो जाय तो उसके सभी छिद्रोंका अन्वेषण करके उसका छेदन करना चाहिये एवं इसके बाद पुलटिशका चढ़ानी चाहिये। यदि इस रोगमें मांस दूषित हो जाय, तो उस पर क्षार मलना चाहिये, पीछे फोड़के विशुद्ध होने पर औषधके प्रयोगकी विधि है। मनःशिला, हरताल, भिलावां, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, जातीपत्र तथा इन्द्रजौ इन सबको मिला कर एक सेर लेवें, फिर ४ सेर नीमके तेलमें इन सब चीजोंका यथाविधि पाक करके वल्मीक रोगमें प्रयोग करें। इससे इस रोगका बहुत उपकार होता है। इस तेलको मनःशिलाद्यतैल कहते हैं। हाथ वा पांवमें बहु छिद्रविशिष्ट अथच शोथयुक्त वल्मीक रोग होने पर असाध्य हो जाता है। चिकित्सक ऐसे रोगीका त्याग करें। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

वल्मीक मिट्टीके प्रलेपसे भी इस रोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

४ वह मेघ जिस पर सूर्यकी किरणें पड़ती हों।

वल्मीकमाल (सं० त्रि०) वल्मीकस्तूपके आकारका।

वल्मीकल्प (सं० पु०) कल्पभेद।

वल्मीकशीर्ष (सं० क्ली०) वल्मीकस्य शीर्षमिव शीर्षमस्य। स्रोताञ्जन, लाल सुरमा।

वल्मीकसम्भवा (सं० स्त्री०) अलाबूविशेष।

वल्मीकि (सं० पु०) वल्मीक।

वल्मीकूट (सं० क्ली०) वल्मीकस्य वल्मीकसञ्चितं वा कूटं। वल्मीक।

वल्य (सं० पु०) वल-यत्। १ तार्क्ष्य, तक्ष मुनिके गोत्रज। (क्ली०) २ गुड़त्वक्। (त्रि०) ३ बलकर।

वल्शा (सं० स्त्री०) पीतालगवड़ी लता।

वल्ल (सं० पु०) वल्लते संवृणोतीति वल्ल-अच्। १ परिमाणविशेष, एक मान। यह तीन गुञ्जा या रत्तीके बराबर तौलमें होता है। वैद्यकमें दो गुञ्जाका एक 'वल्ल' माना गया है। राजनिघण्टु १॥ घुंघचीका ही वल्ल मानता। २ खलियानमें भूसा मिले हुए अनाजके दानेको ऊपरसे गिराना जिसमें हवाके जोरसे भूसा अलग हो जाय, ओसाना, बरसाना। ३ सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़। ४ बौरा। ५ आवरण। ६ निषेध।

वल्ल—प्राचीन शकजातिकी एक शाखा। पहले ये लोग सौराष्ट्रमें राजत्व करते थे। ये राजपूतानेके राजकुलके एक हैं। भट्टकवियोंकी वर्णनासे जाना जाता है; कि ये एक समय सिन्धुनदके तीरवर्त्ती ठट्ट और मूलतान प्रदेशोंके

राव थे। किन्तु अब ये लोग और अपनेको शक नहीं समझते वरं सूर्यवंशीय अयोध्यापति रामचन्द्रके पुत्र लवके वंशमें अपने वल्ल या वप्प नामक किसी पूर्वपुरुषकी उत्पत्तिकी कल्पना कर अपनेको सूर्यवंशीय बताते हैं। पहले ये लोग मुङ्गिपाटनके अन्तर्गत प्राचीन धाङ्क नगरमें आ कर बस गये एवं आस-पासके स्थानोंको जीत कर अपनी राजशक्ति फैलाई थी। उनका यह राज्य वल्लक्षेत्र और राजधानी वल्लीपुर नामसे प्रतिष्ठित हो गया तथा वहांके राजवंशने वल्लरायका उपाधि धारण कर अपना प्रभाव फैलाया था।

सौराष्ट्रकी राजशक्तिकी प्रतिष्ठाके बाद वल्लगण अपनेको मेवाड़के गहलोतवंशियोंकी समश्रेणी मानने लगे। किन्तु राज-इतिहास पढ़नेसे पता चलता है, कि गहलोतगण शिवको उपासनाके पहले सूर्यकी उपासना करते थे, तबसे सौराष्ट्रके वल्ल लोग अपनेको इन्दुवंशोद्भव और वलिक पुत्र मानते हैं। वलिकपुत्रगण सिन्धुतीरवर्त्ती अरोर नामक स्थानमें राजत्व करते थे। १३वीं सदीमें वल्लगण बड़े दुर्द्धर्ष हो उठे तथा उपर्युपरि मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा हमीरने एक लड़ाईमें चोतिलाके वल्ल-सरदारको मारा था। धाङ्कके वल्ल-सरदारवंश आज भी जातीय-गौरवकी रक्षा कर रहे हैं।

वलभीराजवंश देखो।

वल्लक (सं० पु०) समुद्रमें रहनेवाला एक प्रकारका जंतु।

वल्लकरञ्ज (सं० पु०) एक प्रकारका करञ्ज।

वल्लकी (सं० स्त्री०) वल्लते इति वल्ल-कुन्, गौरादित्यात् ङीष्। १ वीणा। २ सल्लकीवृक्ष, सलईका पेड़।

वल्लगुणपूग (सं० क्ली०) पूगविशेष, एक प्रकारकी सुपारी।

वल्लटभट्ट—एक प्राचीन कवि। सुवृत्ततिलकमें क्षेमेन्द्रने इनका उल्लेख किया है।

वल्लटभागवत—एक कवि।

वल्लन—एक प्राचीनकवि।

वल्लपुर—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत दो प्राचीन नगर, चिक्क तथा दोद्द, वल्लपुरके नामसे विख्यात हैं। उक्त दोनों नगर परस्पर ७ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। हैदरअली द्वारा ध्वंस होनेके पहले यह नगर अति समृद्धिशाली तथा धन-जन पूर्ण था। चिक्कवल्लभपुरका जल वायु उतना बुरा नहीं है। यहां मोरसु वक्कलियवंशीय कितने ही कृषिजीवी जातियोंका निवास है। वे लोग अपने दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन करना अपने जीवनका कर्त्तव्यकर्म समझते हैं, इसलिये उक्त वक्कलु शाखाभुक्त रमणियाँ अपने धर्मकी रक्षाके लिये अपनी अपनी कन्याओंके विवाह समय कर्णवेधनके साथ साथ दाहिने हाथकी दो अंगुलियोंका छेदन कर देती हैं। इस समय वे यथासाध्य पूजा अनुष्ठान करती हैं एवं ग्रामके कमारको बुलाती हैं और उन्हें कुछ कटाईकी मजूरी दे कर कन्याओंकी दो अंगुलियोंका ऊपरस्थ भाग कटा देती है। यह आईन विरुद्ध होने पर भी १८७४के प्रारम्भमें बङ्गलूरके अन्तर्गत देव सहोल्ली ग्राममें एक रमणीके कर्त्तव्यानुरोधसे दो अंगुलियां काटी गई थीं। चीतल नामक यन्त्र द्वारा एक ही आघातमें अंगुली काटनेकी रीति है।

इस अद्भुत क्रियाके सम्बन्धमें उन लोगोंके बीच एक किम्वदन्ती चली आती है—प्राचीन कालमें वृक नामक एक राक्षस था। उसने कई सहस्र वर्षकी कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न किया था। उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर महादेवने उस राक्षसको दर्शन दिया और कहा— वत्स! हम तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न है, इस समय यथाभिलषित वर माँगो। राक्षस देवादिदेव महादेवकी ऐसी वाणी सुन कर बोला—देव! यदि इस दास पर दया कर दर्शन दिया है, तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये, 'जिससे मैं जिसके मस्तक पर हाथ रखूं, वह तत्काल भस्म हो जाय'। आशुतोषने राक्षसका असदभिप्राय न समझ 'तथास्तु' कह कर वहांसे प्रस्थान किया। दुर्वृत्त वृकने देवप्रदत्त इस असाधारण शक्तिकी परीक्षाके लिये महादेवका पीछा किया। शिव कोई उपाय न देख कर बड़ी शीघ्रतासे भाग चले। राक्षस भी उनके पीछे दौड़ा। महादेवने राक्षसको बहुत समीप देख कर पकड़े जानेके भयसे एक वनमें प्रवेश किया। राक्षस भी बड़ी तेजीसे दौड़ता हुआ वनके समीप पहुंचा। वहां उसने एक खेतमें एक कृषकको देख कर पूछा—शीघ्र बोलो

तुमने इस रास्तेसे किसीको जाते देखा है? उस राक्षसके भीषण रूपको देख कर कृषक मन ही मन सोचने लगा, 'यदि मैं इस राक्षसको महेश्वरका पता नहीं बताता हूं, तो इसी समय यह दुष्ट क्रोधके आवेशमें निश्चय ही मेरा संहार करेगा और यदि शिव इस विषयको ज्ञात पायेंगे तो मुझे उनके कोपानलमें दग्ध होना पड़ेगा; सुतरां किस कर्त्तव्यका अनुसरण करनेसे इस दारुण विपदुसे छुटकारा पाऊंगा।' कृषकको चिन्तानिमग्न देख कर राक्षसको विश्वास हुआ कि, कृषक निश्चय ही महादेवका पता जानता है। तब वह बार बार हुंकार द्वारा कृषकको भय दिखाने लगा। कोई उपाय न देख कर कृषकने चिल्ला कर कहा—"मैं महादेवका कुछ भी पता नहीं जानता।" फिर पीछे उसने धीरे धीरे महादेवके गुप्त स्थानका सारा भेद उस राक्षसको कह सुनाया।

तब वह राक्षस वृक उस वनमें जा कर महादेवको पकड़नेके लिये अग्रसर हुआ, ऐसे समय भगवान् विष्णु महादेवका उद्धार करनेके निमित्त मोहिनी रूप धारण कर उस राक्षसके सामने उपस्थित हुए। युवतीके सुन्दर रूपको देखते ही उस राक्षसके हृदयसे महादेवका ध्यान जाता रहा। वह धीरे धीरे उस सुन्दरीकी ओर बढ़ा, किन्तु वह लाख चेष्टा करने पर भी उसे स्पर्श न कर सका। राक्षसकी प्रेमविह्वलता देख कर सुन्दरीने बड़े मीठे स्वरमें कहा—मैं ब्राह्मणकी कन्या हूं, किस तरह तुम्हारे ऐसे अपवित्र शरीरवाले राक्षसकी प्रार्थना पूरी करूं? तुम पहले सन्ध्यावन्दनादि द्वारा अपने शरीरको पवित्र करो, तब तुम्हारी वासना पूरी होगी और तभी तुम मुझे स्पर्श कर सकोगे।

विष्णुकी छलना राक्षस नहीं समझ सका। नारीके रूप पर मुग्ध हो कर वह अपने हाथका प्रभाव भूल गया। सन्ध्या करनेके समय वह राक्षस अंगन्यासकालमें अपने अंगादिको यथाक्रमसे दाहिने हाथको अंगुलियों द्वारा स्पर्श करने लगा एवं जिस समय अपने दाहिने हाथको मस्तक पर रखा, उसी समय वह भस्म हो गया। इसके बाद महादेव अपने गुप्तस्थानका परित्याग कर बाहर निकले एवं उन्होंने विष्णुके पास जा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। फिर वे उस विश्वासघातक तथा अकृतज्ञ कृषकके अपराध पर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने दण्ड स्थिर कर कृषकसे कहा,—तुमने जिस अंगुली द्वारा निर्देश कर मेरा पता राक्षसको दिया था, मैं उस अंगुलीको नष्ट कर दूंगा। ऐसा कह कर महादेव उसकी अंगुली काटनेको तैयार हो गये। इसी समय अकस्मात् उस कृषककी स्त्री भोजनकी सामग्रियाँ ले कर उस क्षेत्रमें उपस्थित हुई। वह महादेवको अपने पतिकी अंगुली काटनेके लिये उद्यत देख उनके चरणों पर गिर पड़ी एवं बहुत ही अनुनय विनयके साथ बोली—"नाथ! जब आप मेरे पतिकी अंगुली नष्ट कर देंगे, तो मेरा दरिद्र परिवार अन्नाभावसे करालकालके गालमें समा जायगा, सुतरां उसके बदले मैं अपनी दो अंगुलियां देनेको तैयार हूं।" महादेव कृषक-रमणीकी इस प्रकार पतिभक्ति देख कर बोले—"तुम्हारी पतिभक्ति देख कर मैं अति प्रसन्न हुआ। आज दिनसे तुम्हारे वंशमें जितनी रमणियाँ पैदा होंगी, वे हमारे मन्दिरके सामने अपनी दो अंगुलियाँ बलि चढ़ा कर तुम्हारी पतिभक्तिकी घोषणा करेंगी। इसीलिये उसके वंशकी कन्याएं अपनी अंगुलियाँ बलिदान करती आ रही हैं। वे राजनियमका उलंघन करके राजदंड ग्रहण करती हैं, किन्तु तथापि देवताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी इच्छा नहीं करतीं। अभी भी महिसुरके प्रायः दो सहस्र परिवारकी रमणियां इस तरह अंगुलियोंका बलिदान करती हैं।

वल्लपुर—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके सलेम जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोल्लिमल पर्वतके ऊपर स्थापित नामकल नगरसे १६॥ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यहां तोरियूर उपत्यकाके सम्मुखस्थ कन्दरके सामने आरपलेश्वरस्वामीका मन्दिर तथा पोखर है। इस पोखरमें बहुत-सी मछलियाँ हैं। प्रतिदिन घंटा बजा कर उन मछलियोंको भोजन दिया जाता है। घंटाका शब्द सुन कर मछलियाँ बाँधके ऊपर चली आती हैं। इसलिये कितने ही इस मन्दिरको मत्स्यमन्दिर कहते हैं। उस मन्दिरमें अनेकों शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। उनमेंसे एक १३५० ई०में उत्कीर्ण हुई थी।

वल्लभ (सं० त्रि०) वल्ल-अभच्। १ प्रिय, प्यारा। (पु०) २ अध्यक्ष, मालिक। ३ अत्यन्त प्यारा व्यक्ति, प्रिय मित्र,

नायक। ४ सुलक्षणाक्रान्त अश्व, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त घोड़ा। ५ पति, स्वामी। ६ कृष्णागुरु। ७ राजशिम्बी, एक प्रकारकी सेम।

वल्लभ—१ एक राजा। ये दलपतिराजके पिता थे। २ एक राजकुमारका नाम। ये सुप्रसिद्ध रूप और सनातन गोस्वामीके भाई थे। सनातन देखो।

वल्लभ—बहुतेरे सुप्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता—१ वल्लभाचार्य। २ एक वैयाकरण। मल्लिनाथ और रायमुकुटने इनका मत ग्रहण किया है। ३ मोक्षलक्ष्मीविलासके प्रणेता। ४ विद्वज्जनवल्लभ नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ शब्देन्दुशेखरटीकाके प्रणेता। इनका प्रकृत नाम था हरिवल्लभ। ६ समर्पणगद्यार्थके रचयिता। ७ वैद्यवल्लभ नामक ग्रन्थकार।

वल्लभकघृत (सं० पु०) हृद्रोगमें फायदा पहुंचानेवाली एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेकी तरकीब—हरीतकी ५०, सचल लवण २ पल एकत्र घृतपाक करके सेवन करनेसे हृल्लास, शूल, उदररोग और वायुनाश होता है। (भैषज्यरत्नावली हृद्रोगाधिका०)

वल्लभगढ़—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगाम जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह चिकोड़ीसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। शैलशिखरके ऊपरका दुर्गांश प्रायः गोलाकार (२७५×२००) है तथा कहीं कृत्रिम और कहीं पर्वतगात्रने इसे प्राचीररूपमें घेर रखा है। इसके दो प्रवेशद्वार, चार झरने, एक बड़ा कूआं जो अभी एकदम नष्ट हो गया है, मौजूद हैं। मरम्मत न होनेके कारण दुर्गका भी अधिकांश ध्वंस होनेका उपक्रम हो गया है। वल्लभगढ़ दुर्ग १६८० ई०में महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके मातहतमें था। यह बेलगामके १० प्रसिद्ध दुर्गोंमेंसे एक है। १७८९ ई०में निसगींके सामन्त सरदारने कोल्हापुरराजके विरुद्ध अस्त्र धारण कर उनसे वल्लभगढ़, गन्धर्वगढ़ और भीमगढ़ ले लिया; किन्तु कोल्हापुरपतिने दूसरे वर्ष ही विद्रोही सामन्तको हरा कर दुर्ग पुनः अपने कब्जेमें कर लिया। १७९६ ई०में जब परशुराम भाव पूनामें रहते थे, तब कोल्हापुरराजके शत्रु उपरोक्त सरदारने फिर वल्लभगढ़-दुर्ग छीन लिया।

वल्लभगणक—गणितलताके प्रणेता।

वल्लभगणि—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणिके सारोद्धार तथा शेषसंग्रहकी टीकाके प्रणेता। ये ज्ञानविमलके शिष्य थे।

वल्लभजी—१ हस्तश्राद्धके रचयिता। २ नागरखण्डके सारश्लोक और अध्यायानुक्रमणि, महाभारताध्यायानुक्रमणि, महाभारतोद्धतसार तथा वृत्तमालाके सङ्कलयिता।

वल्लभजी गोस्वामी—एक प्रसिद्ध पण्डित।

वल्लभतम (सं० त्रि०) अतिशय प्रिय, बड़ा प्यारा।

वल्लभता (सं० स्त्री०) वल्लभस्य भावः धर्मो वा तल्टाप्। प्रियता, वल्लभका भाव या धर्म।

वल्लभतातिया—महाराष्ट्रका एक प्रधान व्यक्ति। ये सिन्दराजके प्रधान अमात्य थे। १७९५ ई०में पेशवा मधुरावकी मृत्युके बाद पेशवाकी गद्दीके लिये गोलयोग उपस्थित हुआ। इस समय विधवा राजमहिषी यशोदाबाईने दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका संकल्प किया। वल्लभ उसमें बाधा दे कर भी कुछ कर न सके। अन्तमें उन्होंने १७९६ ई०के जनवरी मासमें बाजीरावके षड़यन्त्रमें योग दे कर उन्हें ही राजा बनानेकी व्यवस्था की। किन्तु बाजीरावके पूना आ कर नाना-फड़नवीशसे साक्षात् करने पर दोनोंका पूर्वमनोमालिन्य मिट गया एवं कई राजमन्त्रियोंके सामने बाजीरावके पेशवा होनेकी बात पक्की हुई। इस सम्मिलनको विशेष आशाप्रद न देख कर वल्लभतातियाने दोनोंके गुप्त परामर्शसे विपरीताचरण करनेकी चेष्टा की। उन्होंने अपने बुद्धिबलसे चिमनाजी अप्पाको यशोदाबाईका दत्तकपुत्र बतलाया और कौशलसे परशुराम भावको मंत्री-पद स्वीकार कराया। इसके बाद वे सब मिल कर बाजीरावके सर्वनाश-साधनमें प्रवृत्त हुए। नाना फड़नवीश मंत्री हुए एवं परशुरामने राज्य चलानेका भार ग्रहण किया। इस समय दौलतराव सिन्दे राजविद्रोही हो उठे। उनके प्रतिविधानके लिये वल्लभने नानाके परामर्शानुसार दोनों पक्षमें मेल करानेकी चेष्टा की।

इस समय चिमनाजी अप्पा, बाजीराव तथा नाना फड़नवीश और परशुराम भावको ले कर महाराष्ट्र सरकारमें जो घोर राजविप्लव सूचित हुआ था, वह महाराष्ट्रके

इतिहासमें स्पष्टरूपसे लिखा है । चिमनाजी अप्पाको नया पेशवा बनानेके अभिप्रायसे नानाफड़नवीशने सतारा आ कर राजसनद ग्रहण की, इधर परशुरामके कौशलसे बाजीरावको वल्लभके हाथमें देख कर उन्हें सन्देह पैदा हुआ, उन्होंने उन लोगोंके साथ न मिल कर बाई द्वारा राजसनद प्रेरण की। २६वीं मईको चिमनाजी पेशवा पद पर अभिषिक्त हुए।

इसके बाद परशुरामने नाना फड़नवीशको पूना बुला कर वल्लभतातियाके साथ मेल करानेकी चेष्टा की, किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ । दोनों पक्षमें शत्रुता वृद्धिके साथ निश्चय युद्ध होनेके लक्षण दिखाई पड़े। नानाने विशेष कौशलसे रघुजी भोंसलाको अपने हाथमें किया। सिन्देराज तथा होल्करपति एवं पेशवाके सेनापति मि० वेड सज्जित हुए। ८वीं अक्तूवरको बाजीराव गद्दी पर बैठे और २७वीं अक्तूवरको वल्लभतातिया सिन्देराजके द्वारा पकड़े गये। इसके बाद सिन्देराजने उन्हें बन्धनमुक्त कर फिर मंत्रीका पद दिया । किन्तु १८०० ई०में नानाफड़नवीशकी मृत्युके बाद पेशवा बाजीराव-के साथ सिन्देराजको घोर शत्रुता हो गई। उस समय सिंधराजने फिर विद्रोह होनेकी आशंकासे वल्लभको मार डाला। महाराष्ट्र शब्द देखो।

वल्लभदास—वैष्णवाह्निकके प्रणेता।

वल्लभ दीक्षित (सं० पु०) वल्लभाचार्य। वल्लभाचार्य देखो।

वल्लभदेव—सुभाषितावलिके प्रणेता । ये १६वीं सदीमें विद्यमान थे। इनके यत्नसे शार्ङ्गधरपद्धतिका सङ्कलन कार्य आरब्ध हुआ । २ योगमुक्तावलीके रचयिता । ३ एक कवि। ४ कुमारसम्भवकी अष्टाध्यायटीका, मेघदूत टीका, रघुवंशपञ्जिका, वक्रोक्तिपञ्चाशिकाटीका, शिशुपाल वधकी टीका और सूर्यशतकटीकाके प्रणेता। मल्लिनाथने इनका मत उद्धृत किया है। ये आनन्ददेवके पुत्र और आनन्दवर्द्धनकृत देवीशतकके टीकाकार कय्यटके (९७७-ई०) पितामह थे।

वल्लभन्यायाचार्य (सं० पु०) न्यायलीलावतीके प्रणेता। गङ्गेशतत्त्वचिन्तामणिमें इनका उल्लेख है।

वल्लभपालक (सं० त्रि०) वल्लभानां अश्वविशेषाणां पालकः। अश्वरक्षक।

वल्लभपुर—कलकत्तेके उत्तर गङ्गातीरवर्त्ती एक गण्डग्राम। यहां वल्लभजीका मन्दिर विद्यमान है। प्रति वर्ष रथयात्रा उपलक्षमें यहां द्वादशगोपालका उत्सव होता है। यह स्थान इष्ट-इण्डिया रेलपथके श्रीरामपुर स्टेशनसे आध कोस पर है। माहेश देखो।

वल्लभराज—अनहिलगढ़के एक राजा तथा चामन्दराजके पुत्र।

वल्लभशक्ति (सं० स्त्री०) एक राजपुत्र।
(कथासरित्सा० १०।१७)

वल्लभस्वामी (सं० पु०) वल्लभाचार्य।

वल्लभा (सं० स्त्री०) १ प्रिय स्त्री, प्यारी जोरू। (त्रि०) २ प्रिया, प्यारी।

वल्लभाचारी—वैष्णवसम्प्रदायभेद । इसका दूसरा नाम रुद्रसम्प्रदाय है। वल्लभाचार्य इसके प्रवर्त्तक थे, इस कारण लोग इन सम्प्रदायी वैष्णवोंको वल्लभाचारी कहा करते हैं। भारतवर्षके उत्तरपश्चिममें रामसीताकी उपासना ही प्रचलित देखी जाती है, किन्तु उस स्थानके पश्चिम भागमें ऐश्वर्य्यवान् और भोगवान् गृहस्थके मध्य प्रायः राधाकृष्णकी उपासना ही प्रचलित है। उस प्रदेशमें वल्लभाचार्य प्रवर्त्तित वालगोपालकी सेवा, कुछ दिन हुए खूब प्रवल हो उठी है। गोकुलस्थ गोस्वामी इस धर्मका उपदेश देते हैं, इस कारण यह गोकुलस्थ गोस्वामियोंका धर्म कहलाता है।

प्रवाद है, कि सबसे पहले वेदभाष्यकार विष्णुस्वामीने इस मतका सारतत्त्व प्रचार किया। वे संन्यासाश्रमी ब्राह्मणको छोड़ कर दूसरेको शिष्य नहीं बनाते थे। उनके शिष्यका नाम ज्ञानदेव था । ज्ञानदेवके दो शिष्य थे,—नामदेव और त्रिलोचन। उनके कुछ समय बाद तैलङ्गदेशीय लक्ष्मणभट्टके पुत्र वल्लभाचार्य गुरुपद पर अभिषिक्त हो १५वीं सदीके शेष भागमें बड़े यत्नसे इस मतके प्रचारमें लग गये। पहले वे गोकुलमें¶ रहते थे। वहां कुछ समय रह कर वे तीर्थ-पर्यटनको निकले । भक्तमालमें लिखा है, कि उन्होंने भारतवर्षके दक्षिणखण्डमें

¶ यमुनाके वामतट पर मथुरासे प्रायः तीन कोस पूर्वमें गोकुल ग्राम है।

विजयनगराधिपति कृष्णदेवकी सभामें पहुंच कर वहां के स्मार्त्त-ब्राह्मणोंको तर्कमें परास्त किया। पीछे वे वहांके वैष्णवोंके आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। वहांसे उज्जयिनी नगरी जा कर शिप्रा-तट पर पीपल वृक्षके नीचे रहने लगे। यह स्थान आज भी उनकी बैठक कह कर प्रसिद्ध है।

मथुराके घाट पर इसी प्रकारकी उनकी एक और बैठक देखी जाती है। चुनारमें एक कोम पूरब उनके नाम पर एक मठ और मन्दिर विद्यमान है। उस मठके प्राङ्गणमें जो कूप है वह आचार्य कुआँ कहलाता है। उज्जयिनीमें कुछ दिन रह कर वे वृन्दावन लौटे। श्रीकृष्ण उनकी अचला भक्ति देख कर बड़े संतुष्ट हुए और अति मनोहर रूपमें दर्शन दे कर उन्हें बालगोपालकी सेवाका प्रचार करनेका आदेश दिया।

वल्लभाचार्यका मृत्युघटनाविषयक आख्यान बड़ा ही विस्मयकर है। वे शेषावस्थामें कुछ दिन वाराणसीके जेठनवड़में ठहरे थे। उस जेठनवड़के निकट आज भी उनका एक मठ दृष्टिगोचर होता है। मर्त्यलीला शेष करके वे एक दिन हनुमान्घाटके गङ्गाजलमें स्नान करने पैठे। कहते हैं, कि गोता लगाते ही वे अन्तर्हित हो गये। इसके बाद उस स्थानसे एक देदीप्यमान अग्नि-शिखा प्रदीप्त हो उठी। वह शिखा अनेक दर्शकोंके सामने स्वर्गारोहण करने लगी और आखिर आकाशमें लीन हो गई।

यद्यपि महाभारतादि ग्रन्थोंमें विष्णु और कृष्णके अभेदरूपका वर्णन है तथा श्रीभागवतमें उनकी केलि-कौतुकपूर्ण यौवनलीलाका सविस्तार विवरण पाया जाता है तथापि विष्णुकी अपेक्षा कृष्णका प्राधान्य वर्णन इन दोनों ग्रन्थोंमें कहीं भी नहीं देखा जाता। किन्तु कहीं कहीं श्रीकृष्णके बालरूपकी उपासनाकी सुस्पष्ट विधि पाई जाती है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि वृन्दावनवासी गोपाल होसे यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ है। उनके दक्षिण पार्श्वसे नारायण, वाम पार्श्वसे महादेव, नाभि-पद्मसे ब्रह्मा, वक्षःस्थलसे धर्म, मुखसे सरस्वती, मनसे लक्ष्मी, बुद्धिसे दुर्गा, जिह्वासे सावित्री, मानससे कामदेव तथा वामाङ्गसे रति और राधिकाकी उत्पत्ति हुई। राधाके लोमकूपसे तीस कोटि गोपाङ्गनाओं तथा श्रीकृष्णके लोमकूपसे तीन सौ कोटि गोपोंने जन्म ग्रहण किया। पहले गोलोकवासी, पीछे वृन्दावननिवासी, गाय और बछड़े तक भी उनके लोमकूपसे उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णने अनुग्रह करके उनमेंसे एक गाय महादेवको दी थी। उस पुराणके सृष्टि प्रकरणमें श्रीकृष्णके किशोररूपको ही सृष्टिकर्त्ता बतलाया है।

वल्लभाचार्य कह गये हैं, कि परमेश्वरकी उपासनामें उपवासकी आवश्यकता नहीं, अन्न वस्त्रका क्लेश पानेका भी प्रयोजन नहीं, वनमें कठोर तपस्याकी भी आवश्यकता नहीं; उत्तम वस्त्र-परिधान तथा सुखाद्य अन्न-भोजनादि सभी विषय-सुखोंका सम्भोग कर उनकी सेवा करो। यथार्थमें यह सम्प्रदायी वैष्णव अतिमात्र विषयी और भोगविलासी होते हैं। सभी गोस्वामी गृहस्थ हैं। सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक वल्लभाचार्य यद्यपि पहले संन्यासी थे, पर लोगोंका कहना है, कि पीछे उन्होंने फिरसे गार्हस्थ्याश्रमका अवलम्बन किया था। सेवकगण गोस्वामियोंको उत्तमोत्तम बहु मूल्य वस्त्र पहनने देते हैं तथा चबाने, चूसने, चाटने, पीने योग्य सुरस द्रव्य भोजन कराते हैं।

शिष्योंके ऊपर गोस्वामियोंका अत्यन्त प्रभुत्व देखनेमें आता है। यहां तक, कि शिष्य लोग उन्हें तन, मन और धन ये तीनों ही समर्पण करेंगे, ऐसा स्पष्ट नियम है। बहुतेरे सेवक व्यवसायी हैं। गोस्वामी भी विस्तृत वाणिज्य व्यवसायमें व्याप्त रहते हैं तथा तीर्थभ्रमणोपलक्षमें दूर दूर देश जा कर वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं।

देव-सेवाके विषयमें अन्यान्य सम्प्रदायोंके साथ इन लोगोंकी विशेष विभिन्नता नहीं है। इनके घरमें, मन्दिरमें गोपाल और राधाकृष्ण तथा कृष्णावतार सम्बन्धीय अन्यान्य प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित रहती हैं। ये सब प्रतिमूर्त्ति धातुकी बनी होती हैं। ये लोग दिनमें आठ बार करके श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं।

१ मङ्गलारति। सूर्योदयके आध घण्टा बाद श्रीकृष्णको शय्या परसे उठा कर आसन पर बिठाते और ताम्बूल सम्वलितयत् किञ्चित जलपानकी सामग्री उन्हें चढ़ाते हैं। इस समय वहां दीप रखा जाता है।

२ शृङ्गार। दिनके चौथे दण्डमें श्रीकृष्ण तैल, चन्दन और कर्पूर द्वारा सुगन्धित तथा वस्त्रालङ्कारसे विभूषित हो वार देने बैठते हैं।

३ ग्वाला। छठें दण्डमें श्रीकृष्ण मानो गाय चराने जा रहे हैं, ऐसे वेशभूषासे उन्हें सजाना पड़ता है।

४ राजभोग। मध्याह्नकालमें श्रीकृष्ण गोष्ठसे मानो घर लौट कर भोजन कर रहे हैं। ऐसा समझ कर देवालयके परिचारक विग्रहके सामने नाना प्रकारके मिष्टान्न तथा अन्यान्य सुखाद्य सामग्री रखते हैं। भोग समाप्त होने पर प्रसादी द्रव्य और अन्यान्य सामग्री उपस्थित सेवकोंके बीच बांट देते हैं। कभी कभी वह प्रसाद धनी और मानी शिष्यके यहां भी भेज दिया जाता है।

५ उत्थापन। भोगके बाद विग्रहकी निद्रा होती है, पीछे छः दण्ड रहते उन्हें उठाया जाता है।

६ भोग। उत्थापनके आध घण्टा बाद वैकालिक भोग होता है।

७ सन्ध्या। सूर्यास्तके समय श्रीकृष्णकी सायंकालिक सेवा होती है। इस समय दिनके पहने सभी अलङ्कार उतार कर फिरसे तैल और गन्ध द्रव्यादि द्वारा अङ्गसेवा करनी होती है।

८ शयन। करीब छः दण्ड रात्रिके समय विग्रहको शय्या पर स्थापन कर उनके समीप पानीय जल, ताम्बूलाधार और अन्यान्य श्रान्तिहर द्रव्य रख कर परिचारक देवालयका दरवाजा बन्द कर चले जाते हैं।

इन सभी समयोंमें प्रायः एक ही प्रकारकी सेवा होती है, जैसे—पुष्प, गन्ध और भोगदान तथा स्तोत्रपाठ और साष्टाङ्ग प्रणाम। विग्रहसेवक तथा अन्यान्य मनुष्य भी इन सबोंका अनुष्ठान करते हैं; किन्तु कृष्णस्तोत्र प्रायः सेवकगण ही किया करते हैं।

नित्यसेवाके अतिरिक्त कुछ सांवत्सरिक महोत्सव भी हैं। काशीधाममें और पश्चिम प्रदेशीय अन्यान्य स्थानोंमें जन्माष्टमी और रासयात्राके उत्सवमें बहुत आमोद-प्रमोद होता है। ग्रामसन्निहित किसी चत्वरमें बड़ी धूमधामसे रासयात्रा बनाई जाती है। कितने मनुष्य सफेद, पीत, लोहितादि उत्कृष्ट वस्त्र पहन कर रासभूमिमें इकट्ठे होते हैं, कितने प्रकारका मनोहर नृत्य, गीत और वाद्यका अनुष्ठान होता है तथा श्यामसुन्दरके सुललित लीलानुरूप कितने ही कौतुक दिखलाये जाते हैं। जगह जगह गायक, वादक और नर्त्तक स्वेच्छानुसार उपस्थित हो कर अपना अपना गुण दिखलाते हुए लोगोंको मनोरञ्जन करते हैं तथा दर्शकगण बड़े सन्तुष्ट हो कर उन्हें पुरस्कार देते हैं। कहीं कहीं तृण-गृह, वस्त्रगृह और पण्यशाला बनाई जाती है। उसमें हिंडोले आदि लटका कर लोगोंको अति आमोदित करते हैं। अपर्याप्त फल मूल और नाना प्रकारकी मिष्टान्न सामग्री परिपाटीक्रमसे सजी रहती है। दर्शकगण परम कौतूहलाविष्ट हो कर हर्षोत्फुल्ल चित्तसे चारों ओर विचरण करते हैं। असंख्य लोगोंका समागम! विचित्र वसन! विचित्र भूषण! विविध कौतुक परमाश्चर्य सुदृश्य व्यापार! यह सब देख कर लोगोंके आनन्दका पारावार नहीं रहता। वृन्दावनमें भी चान्द्र आश्विन मासमें दशमीसे ले कर पूर्णिमा तक इसका उत्सव होता है। वहां नदीके किनारे पाषाणमय कृत्रिम वेदोके ऊपर श्रीकृष्णकी रासलीलाका अविकल प्रतिरूप दिखलाया जाता है।

वल्लभाचारी ललाट पर दो ऊर्द्ध्व पुण्ड्र खींच कर नासामूलमें अर्द्धचन्द्राकृति बना कर मिला देते हैं। उन दोनों पुण्ड्रके मध्यस्थलमें एक लाल गोल तिलक रहता है। इस सम्प्रदायके भक्त श्रीवैष्णवोंकी तरह बाहु और वक्षःस्थल पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी प्रतिकृति अंकित करते हैं। कोई कोई श्यामबन्दी नामक काली मिट्टी अथवा काली धातुसे उल्लिखित गोल तिलक लगाता है। ये लोग गलेमें तुलसीकी माला पहनते तथा हाथमें तुलसी काष्ठकी जपमाला रखते हैं और 'श्रीकृष्ण' तथा 'जयगोपाल' कह कर परस्पर अभिवादन करते हैं।

वल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतकी जो टीका लिखी है, वह इन लोगोंका प्रधान साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। उसमें भागवतकी जैसी व्याख्या है, उसीका अवलम्बन कर ये लोग चलते हैं। इसके सिवा वे ब्रह्मसूत्रभाष्य, सिद्धान्तरहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकान्तरहस्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी रच गये हैं। वल्लभाचार्य देखो।

इसके अतिरिक्त सामान्य सेवकोंके मध्य भी कृष्ण-

लीला प्रतिपादक भाषामें लिखित बहुतों सम्प्रदायिक ग्रन्थ प्रचलित हैं। यथा,—

विष्णुपद—यह ग्रन्थ भाषामें लिखा है। वल्लभाचार्य इसके रचयिता हैं। इसमें विष्णुगुण प्रतिपादक कितने पद हैं।

व्रजविलास—व्रजवासीदासने इस ग्रन्थको भाषामें लिखा। इसमें श्रीकृष्णकी वृन्दावनलीलाका वर्णन है।

अष्टछाप—इस ग्रन्थमें वल्लभाचार्यके आठ प्रधान शिष्योंके उपाख्यान हैं।

वार्त्ता—इस भाषा-ग्रन्थमें वल्लभाचार्य और उनके मतानुवर्त्ती ८४ भक्तोंके अति अद्भुत चारित वर्णित हैं उन ८४ भक्तोंमें स्त्री-पुरुष तथा सभी वर्णोंके आदमी थे। इस साम्प्रदायिक शास्त्रमें जीव और ब्रह्मका अभेद भाव साफ साफ दिखलाया गया है। सिद्धान्तरहस्यकी परामुक्ति वा जीवब्रह्म-मिलन सम्बन्धीय प्रसङ्ग चौरासी वार्त्ता नामक ग्रन्थमें एक जगह ऐसा ही लिखा है। वल्लभाचार्य श्रीकृष्णके साथ इस विषयमें कथोपकथन करके इसका मर्म अच्छी तरह समझ गये थे। यथा,—

"तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु-आप कहैं जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत ही हौं, दोषवन्त है, सो तुम सों सम्बन्ध कैसे होय? तब श्रीठाकुरजी आप कहैं जो तुम जीवनको ब्रह्मसम्बन्ध करावोगे तिन कों हों अङ्गीकार करूंगो तुम जीवनको नामि देवगे। तिनको सकल दोष निवर्त्त होयंगे।"

अर्थात्—'तब आचार्यने कहा,—तुम जीवका स्वभाव जानते ही हो, वे सभी दोषी हैं, तब फिर किस प्रकार तुम्हारे साथ उसका संयोग होगा? इस पर ठाकुरजी (अर्थात् श्रीकृष्ण) ने कहा तुम ब्रह्मके साथ जीवका जो संयोग कर दोगे, मैं उसीको स्वीकार कर लूंगा।'

इन सबके अलावा और भी कितने साम्प्रदायिक ग्रन्थ विद्यमान हैं, किन्तु उनका वैसा प्रचार नहीं है। भक्तमालमें भी इस सम्प्रदायसंक्रान्त अनेक उपाख्यान हैं; किन्तु वल्लभाचारी दूसरे दूसरे सम्प्रदायकी तरह इसे मूल शास्त्र नहीं मानते। उल्लिखित वार्त्ता ही इन लोगोंका भक्तमाल है। भक्तमालकी तरह इन सब ग्रन्थोंमें भी श्रीकृष्णके प्रसाद और आविर्भावसूचक अनेक अलौकिक और असम्भावित उपाख्यान सन्निवेशित हुए हैं।

उक्त ग्रन्थके अन्तर्गत एक राजपुतानी वा राजपुतजातीय स्त्रियोंका उपाख्यान पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस सम्प्रदायमें सहमरणका विधान न था। जगन्नाथ और राणाव्यास नामक दो शिष्योंको साथ ले वल्लभाचार्य नदी तार्थमें स्नान कर रहे थे। इसी समय वह स्त्री अपने स्वामी के साथ सती होनेके लिये वहां उपस्थित हुई। यह देख कर जगन्नाथने राणाव्याससे पूछा, 'स्त्रियोंमें सतीत्वधर्म दिखलानेकी जो प्रथा प्रचलित है, उसका क्या मतलब?' राणाव्यासने शिर हिला कर कहा, 'शवके साथ सौन्दर्यका अनर्थ संयोगमात्र है।' राजपुतानी उनके शिर हिलानेका तात्पर्य समझ कर स्वामीके साथ सती न हुई और घर लौट आई। कुछ दिन बाद उस राजपुतानीको उन दोनोंसे अकस्मात् मुलाकात हो गई और वह क्यों नहीं सती हुई, इसका कारण उसने कह सुनाया, पीछे स्त्रीने दोनोंसे प्रार्थना की 'उस दिन आप दोनोंमें मेरे ले कर क्या बातचीत होती थी, सो कृपया कहिये।' राणाव्यास अच्छी तरह समझ गये, कि इस राजपुतानी पर श्रीआचार्यकी कृपा हुई है। जगन्नाथके साथ उनका जो कथोपकथन हुआ था, उसे सुना कर कहा कि, 'अपना रूपलावण्य श्रीठाकुरजीकी सेवामें समर्पित न करके शवके ऊपर जो निक्षिप्त करती रही, वह सचमुच अतिशय अनुचित और अत्यन्त दुःखका विषय था।' अनन्तर राजपुतानीने राणाव्याससे इस प्रकार उपदिष्ट हो कर श्रीठाकुरजीके परिचर्याकार्यमें नियुक्त रह अपना जीवन बिताया।

वल्लभाचार्यके पुत्र विट्ठलनाथ पितृपद पर अभिषिक्त हुए। इस सम्प्रदायके लोग उन्हें श्रीगोसाईंजी समझते हैं। विट्ठलनाथके सात पुत्र थे,—गिर्धररिराय*, गोविन्दराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, यदुनाथ और घनश्याम। ये सभी धर्मोपदेशक थे। इनके मतानुवर्त्ती यद्यपि पृथक् पृथक् समाजभुक्त हैं, पर प्रधान प्रधान विषयोंमें प्रायः सभी समाजोंका एक मत है। केवल

* मालूम होता है, कि यह संस्कृत गिरिधारी शब्दका अपभ्रंश है।

गोकुलनाथके शिष्योंमें कुछ विभिन्नता देखी जाती है। वे लोग बाकी छः समाजके मठोंके प्रति जरा भी श्रद्धा नहीं रखते, अपने समाजके गोस्वामीको छोड़ कर और किसीका भी सम्मान नहीं करते और न किसीको अपना शास्त्रविहित गुरु ही मानते हैं। विट्ठलनाथके और किसी भी पुत्रके मतानुवर्त्तियोंमें ऐसा पक्षपात नहीं देखा जाता।

नाना स्थानोंके, विशेषतः गुजरात और मालवदेशके कितने स्वर्णवणिक् और व्यवसायी वल्लभाचार्यके मतावलम्बी हैं। इसी कारण इस सम्प्रदायमें अनेक धनाढ्य मनुष्य देखे जाते हैं। भारतवर्षके सभी स्थानोंमें, विशेषतः मथुरा और वृन्दावनमें, इन लोगोंके अनेक मठ और देवालय हैं। काशीमें इस सम्प्रदायके दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं,—लालजीका मन्दिर और पुरुषोत्तमजीका मन्दिर*। इन दोनों मन्दिरोंके विग्रह अति विख्यात और बहु सम्पत्तिशाली हैं। इस सम्प्रदायके अनेक पवित्र तीर्थ हैं। जगन्नाथक्षेत्र और द्वारका तथा अजमेरके श्रीनाथद्वारकामठ सबसे महिमान्वित और समृद्धिसम्पन्न हैं। प्रवाद है, कि इस मठके विग्रह पहले मथुरामें थे। औरङ्गजेब बादशाहने जब वहांका मन्दिर ढाहनेका हुक्म दिया, तब वह सर्वान्तर्यामी विग्रह वहांसे अजमेरको चले गये। यहांका वर्त्तमान मन्दिर बहुत दिनोंका नहीं है, किन्तु सेवकके दिये हुए धनसे उस विग्रहको प्रचुर सम्पत्ति हो गई है†। वल्लभाचारियोंको कमसे कम एक बार भी श्रीनाथके दर्शन करने होते हैं तथा कुछ कुछ दान देना पड़ता है।

साम्प्रदायिक बालकोंको गोसाईं लोग गलेमें तुलसीका माला पहना कर "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह अष्टाक्षर मन्त्र पढ़ कर धर्म सम्प्रदायभुक्त कर लेते हैं तथा बारह वा उससे अधिक वर्षोंमें जब वह बालक जीवनका कर्त्तव्याकर्त्तव्य और गुरुत्व अनुभव कर दैनन्दिन क्रियाकलापका आचरण करनेमें समर्थ होते हैं, तब गोसाईं लोग उन्हें दीक्षा देते हैं। दीक्षाके बाद वह बालक श्रीगोपालके चरणोंमें अपना सर्वस्व अर्थात् तन मन और धन समर्पण करना सीखते हैं।

* काश्मीरके पोद्दार प्रत्येक हुंडीमें एक एक पैसा देवालयके नामसे देते हैं तथा वहांके वस्त्र-व्यवसायी प्रति बारके क्रय-विक्रयमें दो दो पैसे करके।

† प्रत्येक मन्दिरमें तीन जगह दान देना होता है, जैसे विग्रहके समीप, प्रवर्त्तककी गद्दीमें और श्रीनाथद्वारके बाक्समें।

वल्लभाचार्य—वल्लभाचारी नामक वैष्णवमतके प्रतिष्ठाता एक आचार्य। इन्होंने लक्ष्मणभट्ट नामक एक तैलङ्ग ब्राह्मणके द्वितीय पुत्ररूपमें १४७९ ई० (विक्रम संवत् १५३५ वैशाख कृष्णा एकादशी) को जन्मग्रहण किया। लक्ष्मणभट्टकी सातवीं पीढ़ीसे ले कर सभी पुरुष सोमयज्ञ करते चले आये थे। जिसके वंशमें १०० सोमयज्ञ पूरे होते हैं, उसके कुलमें साक्षात् भगवान्‌का प्रादुर्भाव होता है, इस शास्त्रीय नियमानुसार लक्ष्मणभट्टजीके समयमें सोमयज्ञकी शत संख्या पूर्ण हुई और भगवान्‌ने 'वल्लभ' इस नामसे आपके यहां जन्म लिया। सोमयज्ञके उपलक्ष्यमें एक लाख ब्राह्मण भोजन काशीमें आ कर करानेके अभिप्रायसे आपके मातापिता चले। रास्तेमें चम्पारण्यमें (जिला रायपुर सी० पी० श्रीवल्लभका प्रादुर्भाव हुआ था।

वल्लभके पिता विष्णुस्वामी सम्प्रदायभुक्त थे। वाराणसी-धाममें रहते समय धर्माचार ले कर वहांके अधिवासियोंके साथ तन्मतावलम्बियोंका घोर विरोध उपस्थित हुआ। इस कारण उन्हें वाराणसी छोड़ कर अन्यत्र जाना पड़ा था। उस समय उनकी पत्नी पूर्णगर्भा थी। थोड़ी दूर तक भी न गये थे कि अकालमें अष्टम मासमें उनकी पत्नीने इस नवकुमारको प्रसव किया। मातापिता चाहे अपने जीवनको विपदसंकुल जान कर हो अथवा पुत्रके देवाश्रय लाभके आश्वाससे हो, उस सद्यःप्रसूत तनयको एक वृक्षके नीचे फेंक चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके बाद जब उनका प्राणभय जाता रहा, तब वे दोनों धीरे धीरे उसी राहसे वृक्षके समीप आये और पुत्रको उसी अवस्थामें अर्थात् शरीर और जीवित देख फूले न समाये, गोदमें उठा कर प्रेमाश्रु बहाने लगे। इसके बाद पुत्रको साथ ले वे वाराणसी आये और वहां कुछ समय रहनेके अनन्तर श्रीवृन्दारण्यके समीपवर्त्ती गोकुल नगरमें आ कर बस गये।

यहां नारायणभट्टके अधीन कोमलप्रकृति बालक वल्लभकी अध्यापना चलने लगी। अपनी सुकृति और अध्यवसायके बल बालक थोड़े ही दिनोंके मध्य नाना शास्त्रोंमें सुपण्डित हो गये। प्रवाद है, कि इन्होंने चार मासके मध्य संस्कृत साहित्य और दर्शनशास्त्रमें सम्यक् व्युत्पत्ति लाभ की थी।
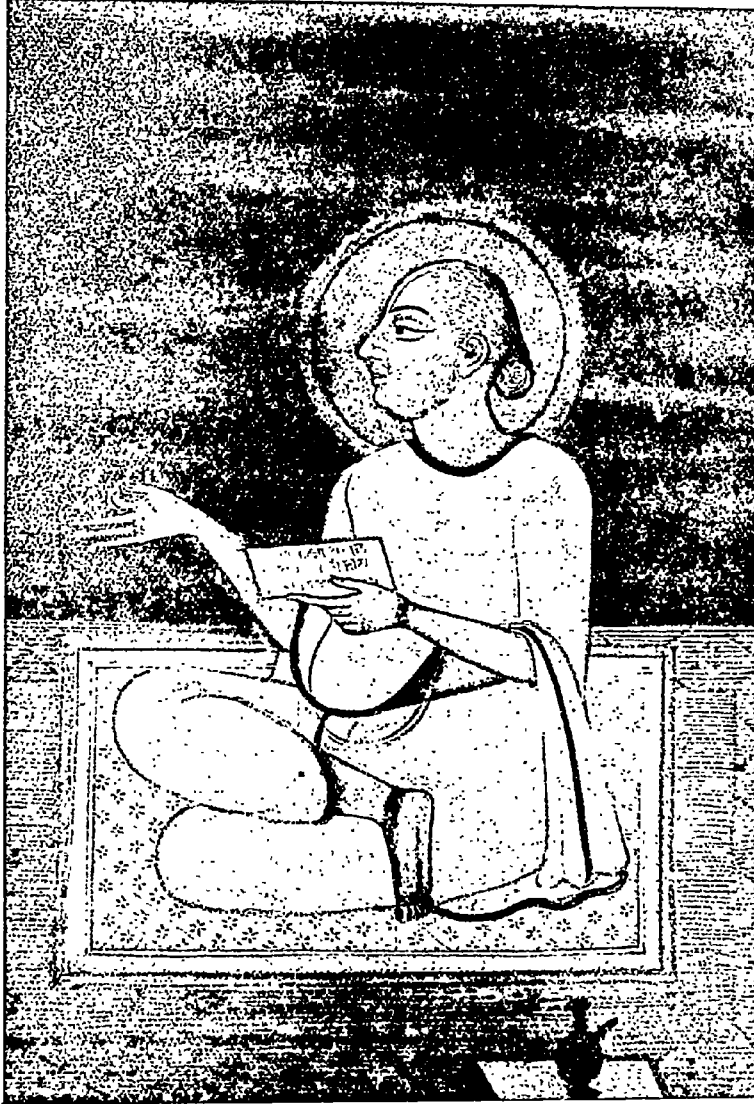
श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें आपके पिता स्वर्गधामको सिधारे। इसी समयसे सांसारिक विश्रृङ्खलाने इनके पाठ्य जीवनको तमसाच्छन्न कर डाला। इससे उनके शान्तिमय चित्तमें घोर सांसारिक विरह आ कर उपस्थित हुआ। उस विश्रृङ्खलाके साथ साथ साम्प्रदायिक आचारानुष्ठानका वैसा दृश्य देख कर वे और भी हतज्ञान हो गये। यह सब देख सुन कर वे धर्मपथाश्रयको ही चित्त-भारापनोदनका एकमात्र अवलम्बन जान धर्मशास्त्रा-लोचनामें प्रवृत्त हुए। क्रमशः साम्प्रदायिक और सामाजिक आचारादि संस्कार द्वारा एक अभिनव-धर्ममत स्थापनकी आशा उनके हृदयमें जग उठी।

इस उद्दीपनाके वशवर्त्ती हो वल्लभ बाल गोपालने

उपासनारूप अपना मत प्रचार किया। उत्तर-भारतमें अपना मत फैलानेके पहले ही इन्हें एक बार मातृभूमिके दर्शन करनेके लिये दाक्षिणात्यमें जाना पड़ा था। यहां थोड़े ही दिनोंमें इनका कीर्त्तिस्तम्भ सुप्रतिष्ठित हुआ। वहां दामोदर दास नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सबसे पहले इनसे दीक्षित हो कर इनके धर्ममतका आश्रय लिया। इसके बाद वे विजयनगरमें अपने मामाके घर गये। यहां राजा कृष्णदेव इस मतलबसे कि "सर्वधर्म-वादियोंका शास्त्रार्थ करा कर जिसकी जय हो उस सम्प्रदायका मैं अनुयायी बनूं" सर्वधर्मके प्रतिनिधियोंको मान-पूर्वक बुलवा कर शास्त्रार्थ करवा रहे थे। उस सभामें जब आप पधारे उस समय समग्र सभा आपकी तेजो-राशिसे चकित हो उठी। सबोंने आपको सर्वोच्च स्थान पर विराजमान किया। राजाकी प्रार्थनासे सर्ववादियों-को आपने पराजित किया और राजा कृष्णदेवको अपना शिष्य बनाया। अनन्तर इन्होंने सर्ववादियोंसे तथा राजा-से बड़े ही मान और समारोहके साथ दी गई 'आचार्य' उपाधिको स्वीकार कर दिग्विजय करनेकी इच्छासे भारत-भ्रमण प्रारम्भ किया। छः वर्षमें एक बार भारतकी परिक्रमा और एक बार दिग्विजय करना इस हिसावसे वीस वर्षकी अवस्थामें आपने तीन बार भारतकी परिक्रमा तथा तीन बार सब तरहके वादियोंसे शास्त्रार्थ कर दिग्वि-जय किया था। जब आप तृतीय बार परिक्रमा कर रहे थे उस समय पंढरपुरमें विराजमान श्रीविट्ठलनाथ पाण्डुरङ्ग भगवान्‌ने आपको आज्ञा दी, "आप विवाह करिये, मैं आपके यहां पुत्ररूपसे प्रकट होना चाहता हूं।" इस आज्ञाको शिरोधार्य कर काशीनिवासी एक स्वजातीय कर्मकाण्डी ब्राह्मणकी महालक्ष्मी नामक कन्याके साथ आपने ब्राह्मविवाह-विधिसे विवाह किया। १५११ ई०में गोपीनाथ तथा १५१६ ई०में विट्ठलनाथ नामक इनके दो पुत्र हुए।

इन्होंने शेष जीवनमें प्रायः व्रजभूमिका त्याग नहीं किया। वहां १५२० ई०में इन्होंने गोवर्द्धनशैलके पार्श्वमें श्रीनाथका सुप्रसिद्ध और सुवृहत् मन्दिर बनवाया। एक दिन वृन्दावनमें भगवद्ध्यानमें निरत रह कर इन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए थे। भगवान्‌ने इन्हें अपनी पूजा वा उपासनाकी एक अभिनव प्रथा चलानेका हुकुम दिया और कहा, कि उस प्रथामें उनकी वालकमूर्त्तिकी ही उपा-सनाकी व्यवस्था जानना। तदनुसार वालकृष्ण वा वाल-गोपाल नामसे वह उपासनापद्धति प्रचलित हुई है।

आपके शिष्य लोग गुजरात, मारवाड़, मेवाड़, सिन्ध, पञ्जाब, उज्जयिनी, वाराणसी, हरिद्वार, प्रयाग आदि प्रसिद्ध और पवित्र धर्मक्षेत्रमें हैं। इनके मतानुसार आजो-वन ब्रह्मचर्यावलम्बन न्यायसङ्गत वा धर्मप्रणोदित नहीं है। इसी कारण इन्होंने विवाह कर लिया था।

वाराणसीमें इनका वासभवन था। वहां वे रहते थे और बीच बीचमें श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीवृन्दावनमें आ कर अपने धर्ममय प्राणको भगवत्-प्रेमसलिलमें निषिक्त कर ले जाते थे। वाराणसीमें रहते समय इन्होंने अपने मतप्रतिष्ठापक बहुतसे धर्मग्रंथ लिखे। उनमेंसे सुबोधिनी नामकी सुविस्तृत भगवद्गीताटीका बहुत प्रसिद्ध है। १५३१ ई०में वल्लभाचार्य परलोकवासी हुए। वे जनसाधारणमें वैश्वानर कह कर पूजित थे। ग्रंथादि-में उनका वल्लभदीक्षित नाम भी पाया जाता है।

उनकी रचित ग्रंथावली—अन्तःकरणप्रबोध और उसकी टीका, आचार्यकारिका, आनन्दाधिकरण, आर्या, एकान्तरहस्य, कृष्णाश्रय, चतुःश्लोकिभागवतटीका, जल-भेद, जैमिनिसूत्रभाष्य (मीमांसा), तत्त्वदीप वा तत्त्वार्थ-दीप और उसकी टीका, त्रिविधलीलानामावली, नवरत्न और उसकी टीका, निरोधलक्षण और विवृत्ति, पलाव-लम्बन, पद्य परित्याग, परिवृढ़ाष्टक, पुरुषोत्तमसहस्रनाम, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद और टीका, पूर्वमीमांसाकारिका, प्रेमामृत और टीका, प्रौढ़चरितनामन्, वालचरितनामन्, वालबोध, ब्रह्मसूत्रवृत्ति, ब्रह्मसूत्रानुभाष्य, भक्तिवर्द्धिनी और टीका, भक्तिसिद्धान्त, भगवद्गीताभाष्य, भागवत-तत्त्वदीप नामकी टीका, निवन्ध और भागवतपुराणटीका सुबोधिनी। इनके अलावे भागवतपुराण दशमस्कन्धानु-क्रमणिका, भागवतपुराण पञ्चम स्कन्धटीका, भागवत-पुराणैकादशस्कन्धार्थनिरूपणकारिका, भागवतसारसमु-च्चय, मङ्गलवाद, मथुरामाहात्म्य, मथुराष्टक, यमुनाष्टक, राजलीलानामन्, विवेकधैर्याश्रय, वेदस्तुतिकारिका, श्राद्ध-प्रकरण, श्रुतिसार, संन्यासनिर्णय और उसकी टीका, सर्व्वोत्तमस्तोत्रटिप्पण और टीका, साक्षात् पुरुषोत्तम-

वाक्य, सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्तरहस्य, सेवाफल स्तोत्र और उसकी टीका, स्वामिन्यष्टक।

वल्लभाचार्यकी मृत्युके वाद उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ मठकी गद्दी पर बैठे। असीम यत्न और उद्यमसे तथा विशेष आग्रहके साथ वे दक्षिण और पश्चिमभारतमें अपने पिताके चलाये धर्ममत फैलानेमें सफल मनोरथ हुए थे। इस धर्मप्रचारमें उन्हें स्वधर्मभुक्त २५२ साधुओंसे सहायता मिली थी। यह सब पवित्र-चरित्र वैष्णवोंकी जीवनी "दाशौवाभनवार्त्ता" नामक हिन्दी ग्रन्थमें लिपिवद्ध है।

विट्ठलनाथ १५६५ ई०में गोकुल आ कर वस गये। यहां ७० वर्षकी उमरमें पवित्र गोवर्द्धन शैल शिखर पर उनकी भवलीला शेष हुई। उनकी दो पत्नी तथा गिरिधर, गोविन्द, वालकृष्ण, गोकुलनाथ, रघुनाथ, यदुनाथ, और घनश्याम नामक सात लड़के थे। उन सातों पुत्रोंमेंसे गोसांई गोकुलनाथ विद्या और बुद्धिमें सवोंसे वढ़ चढ़े थे। गोकुलनाथने अपने पितामह वल्लभाचार्यके लिखे सिद्धान्तरहस्यकी टीका लिखी थी। वल्लभाचार्यके वंशधर गोसाईं उपाधिसे परिचित हैं। वम्बई मठके गोसाईं उनके एक प्रधान प्रतिनिधि थे।

वल्लभाचार्यका धर्ममत।

वल्लभाचार्य-प्रवर्त्तित धर्मतत्त्वका मूलमन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध है। यह वात उन्होंने भगवान्‌से प्राप्त की थी एवं यही वे अपने सिद्धान्तरहस्यमें लिख गये हैं।

विशेष विवरण वल्लभाचारी शब्दमें देखो।

वल्लभानन्द—षटकारक नामक व्याकरणके प्रणेता।

वल्लभी (सं० पु०) वलभी राजवंश देखो।

वल्लभेन्द्र—१ कौतुकचिन्तामणि, शिवपूजासंग्रह और सनत्कुमारसंहिताटीकाके प्रणेता। इनकी उपाधि सरस्वती थी। २ वैद्यचिन्तामणिके रचयिता। ये तेलगू ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम अमरेश्वर भट्ट था।

वल्लभेश्वर (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वल्लम—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह वन्दीवास नगरसे ४ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां प्राचीन चोलराजवंश द्वारा प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है। यहांकी शिलालिपिमेंसे एक १४६६ ई०में रणसिंहदेव महाराय नामक राजाके राजत्वकालकी खोदी है।

वल्लर (सं० क्ली०) वल्लते इति वल्ल-अरन्। १ कृष्णागुरु। २ मंजरी। ३ गहन। ४ कुञ्ज।

वल्लरि (सं० स्त्री०) वल्ल-क्विप्, वल्लं संवरणं ऋच्छतीति ऋ-अच्-इ, कृदिकारादिति वा ङीष्। १ मंजरी। २ वल्ली, लता। ३ मेथिका, मेथी। ४ वचा, वच। ५ एक प्रकारका वाजा।

वल्लरी (सं० स्त्री०) वल्लरि देखो।

वल्लव (सं० पु०) वल्ल-प्रीतौ क्विप् वल्लं प्रीतिं वातीति वा क। २ गोप। २ भीमसेन। विराटनगरमें जव अज्ञातवास अवस्थामें रहते थे, उस समय ये इसी नामसे परिचित थे। ३ सूपकार, सुआर, रसोइया।

वल्लवी (सं० स्त्री) वल्लव ङीष्। वल्लवजाति स्त्री, वल्लवपत्नी। पर्याय—आभीरी, गोपिका, गोपी, महाशूद्री, गोपालिका।

वल्लापुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

(राजतर० ७।२२०)

वल्लाह (अ० अव्य०) ईश्वरकी शपथ, सचमुच।

वल्लि (सं० स्त्री०) वल्लते संवृणोति वल्ल सर्वधातुभ्य इन्। १ लता। २ पृथिवी।

वल्लकण्टकारिका (सं० स्त्री०) वल्लिरूपा कण्टकारिका। अग्निदमनी, शोला। (राजनि०)

वल्लिकण्टारिका (सं० स्त्री०) अग्निदमनी, शोला।

वल्लिका (सं० स्त्री०) १ वृत्तमल्लिका, वेला। २ उपोदकी, पोई नामकी लता। इसकी पत्तियोंका साग वना कर खाया जाता है। वल्लि स्वार्थे कन् टाप्। ३ लता।

वल्लिज (सं० क्ली०) १ मरिच, मिर्च। (त्रि०) २ वल्लिजातमात्र।

वल्लिदूर्वा (सं० स्त्री०) वल्लिरूपा दूर्वा। श्वेतदूर्वा, सफेद दूव। इस दूर्वाका गुण तिक्त, मधुर, शीत, पित्तघ्न तथा कफ, वमि और तृष्णाहर माना गया है।

(राजनि०)

वल्लिमत् (सं० त्रि०) वल्लीयुक्त।

वल्लिमय—मान्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलेकी चित्तुर तालुकके अन्तर्गत एक वड़ा ग्राम। पहले यह दुर्ग

आदि बड़े बड़े प्रासादोंसे पूर्ण एक सुन्दर नगर था। यह थेयासी नदीके तीरवर्त्ती मालपाड़ी ग्रामसे १ मील पश्चिम तथा चित्तारसे १७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। पहले यहां जैनधर्मका बहुत प्रचार था। इसके बाद शैवगणोंने प्रबल हो कर वहां लिंगोपासनाका प्रभाव फैलाया। उन्होंने पर्वतोपरिस्थ प्राचीन जैनमन्दिर पर अधिकार जमा कर उसे सुब्रह्मण्य-मन्दिरमें परिणत कर दिया। पर्वत पर जैनियोंको कीर्त्तिका निदर्शनस्वरूप अनेकों मूर्त्तियां तथा शिल्पलिपियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिरकी गठननिपुणता देख कर मालूम होता कि, ४०×२० फीट परिसरयुक्त एक पर्वत-कन्दराके मध्य यह मन्दिर बनाया गया है। प्रवाद है, चोलवंशके किसी राजाने इस मन्दिरका निर्माण किया था। पर्वतके दक्षिणांशमें पर्वतखण्ड काट कर समतल भूमिमें परिणत कर दिया गया है। उसके चारों ओर दुर्गका ध्वंसावशेष देख कर लोग कहते हैं, कि जैन-प्रादुर्भावके समय यहां एक छोटा-सा गिरिदुर्ग स्थापित था। नगरके प्रधान रास्तेसे पूर्व एक सुवृहत् दुर्गका ध्वस्तनिदर्शन आज भी दृष्टिगोचर होता है।

वल्लियूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह नानगुनेरी तालुकके सदरसे ४ कोस दक्षिण-पश्चिम एवं कुमारिका अन्तरीपसे तिन्नेवल्ली सदर आनेके रास्तेकी पश्चिम ओर अवस्थित है। यहां एक पुष्करिणीमें बहुतसे पत्थरोंके टुकड़े पड़े है। उनका शिल्पनैपुण्य तथा उनमें अङ्कित प्रतिकृति प्रभृति पर्य्यावेक्षण करनेसे अनायास ही मालूम पड़ता है, कि वे पत्थरके टुकड़े जैन-मन्दिरके ध्वसांवशेष हैं। उन पत्थरोंके मध्य बहुत-सी शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। यहां जो जिनमूर्त्ति पाई गई थी, उसे विशाप सर्ज्जेण्ट ले कर रक्षा कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त यहां कुलशेखर पांडेयका स्थापित किया हुआ एक विशाल मन्दिर है। विष्णु तथा सुब्रह्मण्य मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। पांडेय-राजवंशके स्थापित किये हुए एक सुदृढ़ दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी दृष्टिगोचर होता है।

वल्लिराष्ट्र (सं० पु०) जनपदवासी लोकभेद। दूसरा नाम मल्लराष्ट्र है।

वल्लिशाकटपोतिका (सं० स्त्री०) वल्लिप्रधाना शाकटपोतिका। मूलपोडी।

वल्लिशूरण (सं० पु०) वल्लिप्रधानः शूरणः। अत्यम्लपर्णी, रामचना।

ववल्ली (सं० स्त्री०) ल्लि-ङीप्। १ लता। २ कैवर्त्तमुस्ता, केवरी मोथा। ३ अजमोदा। ४ चव्य, चई। ५ अग्निदमनी, शोला। ६ काली अपराजिता।

वल्लीकर्ण (सं० पु०) सम विषमात्पपालि कर्ण।

वल्लीखदिर (सं० पु०) आरुक नामक एक प्रकारका खैर। इसका गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, कषाय, अम्लरस तथा श्वास-कासघ्न और पित्त रक्त त्रिदोषहर। (वैद्यकनि०)

वल्लीगड़ (सं० पु०) वल्लिरूपा गड़ः। मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। यह लघु, रूक्ष, अनभिष्यन्दी, वायुकर और कफनाशक मानी गई है।

वल्लीज (सं० क्ली०) वल्यां लतानां जायते इति जन-ड। मरिच, मिर्च।

वल्लीपञ्चमूल (सं० क्ली०) लतापञ्चमूल। परिभाषाप्रदीपके अनुसार यह पञ्चमूल कफनाशक माना गया है।

वल्लीपलाशकन्दा (सं० स्त्री०) भूमिकुष्माण्ड, भूंई कुम्हड़ा।

वल्लीफुल (सं० क्ली०) कर्कटिकादि।

वल्लीवट (सं० क्ली०) वटवृक्षभेद।

वल्लीवदरी (सं० स्त्री०) वल्लीरूपा वदरी। भूवदरी, मोटा वेर।

वल्लीमुद्ग (सं० पु०) वल्लीपु जातो मुद्गः। मुकुष्टक, मोठ।

वल्लीवृक्ष (सं० पु०) वल्लीवत् दीर्घो वृक्षः। शालवृक्ष।

वल्लुर (सं० क्ली०) वल्ल्यते आव्रियते लतादिनेति, वल्ल-बाहुलकात् उरच्। १ कुञ्ज। २ मंजरी। ३ क्षेत्र। ४ निर्जल स्थान, सूखी जगह। ५ शाद्वल, हराभरा। ६ गहन, दुर्गम स्थान।

वल्लूर (सं० क्ली०) वल्ल्यते संव्रियते इति वल्ल उरच् (खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४।६०) १ आतपादि द्वारा शुष्क मांस, धूपमें सुखाया हुआ मांस। मनुने ऐसा मांस खाना निषेध बताया है। २ शूकरका मांस। ३ वनक्षेत्र, जंगल। ४ वीरान, उजाड़। ५ ऊपर, ऊसर।

वल्लूर (वलूर)—काश्मीर उपत्यकास्थ एक सुवृहत् हृद। यह झीलम नदीके विस्तार द्वारा गठित है। यह पूर्व-पश्चिम २१ मील एवं उत्तर-दक्षिण ६ मील तक फैला हुआ है। इस के ठीक मध्यस्थानका अक्षा० ३४°२०´ उ० एवं देशा० ७४° ३७´ पू० है। इसके मध्यस्थलमें एक छोटा डेल्टा है, उसके ऊपर एक प्राचीन बौद्धमन्दिरका ध्वंसावशेष विद्यमान है। यह बौद्धकीर्त्ति एक समय इस स्थानकी अपूर्वश्री सम्पादन कर रही थी, इसमें सन्देह नहीं। प्राकृतिक सौन्दर्य भी इसके किनारेकी भूमिको उज्ज्वल बना रहा है। यहां प्रायः भीषण तूफान आया करता है।

वल्लूर (राय-वल्लूर)—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर-आर्कट जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ४५४ वर्गमील है। इस उपविभागमें पालर नदी प्रवाहित है। इसका उत्तरांश समतल तथा शेष भाग जङ्गलोंसे भरे हुए पर्वतोंसे परि-पूर्ण है। यहां ६ थाने हैं।

२ उक्त जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ५´ १०´´ उ० तथा देशा० ७६° १०´ १७´´ पू० पालार नदीके किनारे अवस्थित है। उपविभागीय विचारकी सुविधाके लिये यहां दीवानी तथा ४ फौजदारी अदा-लतें हैं। यह नगर म्युनिसपलिटीके अधीन है। यहां एक सब कलेकृर साहब रहते हैं। यहां सेनाओं तथा फौजी कर्मचारियोंके निवासके लिये भवन आदि निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त जेलखाना, गिर्जाघर, अस्पताल प्रभृति राजकीय अट्टालिकायें इस नगरकी शोभा बढ़ा रही हैं। मन्द्राजकी दक्षिण पश्चिम शाखा इस नगरसे हो कर गई है। यहां एक स्टेशन है।

१२७४ ८० ई०के मध्यमें यहांका किला बनाया गया था स्थानीय किम्वदन्ती है, कि भद्राचल-निवासी एक व्यक्ति-ने यह किला बना कर विजयनगरके राजाको राजकरमें दिया था। खृष्टीय १७वीं शताब्दीके मध्यमें विजयपुरके सुलतानने इस नगरको अधिकारमें कर लिया था। इसके बाद १६७६ ई०में तुकाजी रावके अधीन मराठोंने साढ़े बारह महीने घेरा डाले रहनेके बाद इस दुर्ग पर विजय प्राप्त किया था। १७०८ ई०में दिल्लीसे दाउद खां नामक एक मुगल-सेनापति दाक्षिणात्यकी ओर अग्रसर हुआ। उसने महाराष्ट्रके राजाको पराजित कर १७१० ई०में इस दुर्गको अपने जामाता दोस्त अलीके हाथ समर्पण किया। दोस्तअलीके पुत्र मुर्त्तजा अलीने १७४१ ई०में यहां सवदर अलीको चुपकेसे मार डाला। इसके बाद प्रायः बीस वर्ष तक मुर्त्तजा अली इस सुदृढ़ दुर्गका सर्वमय कर्त्ता हो कर आर्कटके नवाब एवं उनके मित्र अङ्गरेजोंको उपेक्षा करता रहा। १७६० ई० तक मुर्त्तजा निर्विवाद इस दुर्ग-का अधीश्वर बना रहा। उक्त वर्षमें एक दल अङ्गरेजी-सेना दुर्गके सम्मुख आ कर गोला बरसाने लगी। उस समय किलावासियोंकी विनीत प्रार्थनासे अङ्गरेज-सेना-पति अपने दलके साथ वहांसे हट गया।

इसके कुछ दिन बाद वल्लूर अङ्गरेजोंके हस्तगत होने पर वहां अङ्गरेजी सेना-स्थापनकी व्यवस्था हुई। १७६८ ई०में हैदरअली अपनी सेनाके साथ किलेके सामने आ कर अधिकार जमानेकी चेष्टा करने लगा। इसके बाद हैदरने फिर इस नगर पर चढ़ाई की। प्रायः दो वर्ष तक हैदरअली इस नगरको घेरे रहा। अन्तमें हैदरअलीको मृत्युके बाद उसकी सेना वहांसे हट गई।

१७९१ ई०में लार्ड कर्नवालिस यहांसे बङ्गलूर पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। १७९९ ई०में श्रीरङ्ग-पत्तनके पतनके बाद टीपूसुलतान कुछ दिनों तक इस स्थानको घेरे रहा। इस समय अंगरेजी सेनाके मध्य राजविद्रोहजनक एक षड़यन्त्र चलने लगा। १८०६ ई०में यहां एक सामान्य सिपाही विद्रोहकी घटना हुई। इसमें कई एक यूरोपियन निहत हुए। कर्नल जिलेस्पीके विद्रोहदमन करनेके बाद शीघ्र ही महिसुरके राजकुमारों-को बंगाल स्थानान्तरित कर अङ्गरेज लोग भावी विद्रोह-की आशङ्कासे मुक्त हुए।

इस दुर्गके अतिरिक्त और भी यहां अनेक अट्टालिकायें तथा मन्दिरें हैं। दुर्गाभ्यन्तरस्थ जलकंठेश्वर स्वामीका मन्दिर अभी भी सुन्दर अवस्थामें सुरक्षित है। वहांके लोगोंसे पता चलता है, कि यह मन्दिर १२७४ ई०में निर्मित हुआ था। किसी किसीका कहना है, कि १२९५ ई०में यह दुर्ग-स्थापनके बाद वह बनाया गया था। कोई कोई कहते हैं, कि विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायके राज्याधिकारके कुछ पूर्व सम्भवतः १४८५ ई०में यह दुर्ग प्रतिष्ठित हुआ था। राजा कृष्णदेवरायने यहांकी

सूर्यगुण्ठ पुष्करिणी एवं उनकी महिषी कृष्णाजीने अम्बा नदीके तीर दो मन्दिरें स्थापन किये थे। यहांके विष्णु-मन्दिर तथा चाँदसाहबकृत जुमामसजिद, हैदरवंशीयका समाधिक्षेत्र एवं और भी कितने ही हिन्दुओंकी कीर्त्तिके निदर्शन देखने योग्य हैं।

वल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कृष्णा जिलेके बेजवाड़ा तालुकान्तर्गत एक नगर। यह वल्लूर जमींदारीकी राजधानी है। यह नगर बेजवाड़ासे १५ मील दक्षिण कृष्णा नदीके तीर पर बसा है।

वल्लूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके वापट्ला तालुकान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह वापट्लासे १५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ गोपालस्वामीका मन्दिर तथा मण्डपके स्तम्भमें दो शिलालिपियाँ उत्कीर्ण हैं। उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि १५७३ ई०में यह मंडप बनाया गया था।

वल्लूरक (सं० पु०) वल्लूर-कन्। वल्लूर देखो।

वल्लूवर—एक जाति।

वल्लेरू—मान्द्राज-प्रेसिडेन्सीके उत्तर विभागस्थ एक धांगड़ जाति। ये लोग थेर-वल्लेरू नामसे भी परिचित हैं।

वल्वग (सं० स्त्री०) वल्व-भावे घञ्, वल्वाय संवरणाय साधुः, वल्व-यत्। धात्रीवृक्ष, आँवलाका पेड़।

वल्वज (सं० पु०) वल्वे पर्वते जायते इति जन-ड। उपल, ओखली।

वल्वजा (सं० स्त्री०) वल्वज-टाप्। एक प्रकारका तृण या घास। पर्याय—दृढ़पत्री, तृणेक्षु, तृणवल्वजा, मौञ्जीपत्रा, दृढ़तृणा, पार्णीयाश्रा, दृढ़क्षुरा। वैद्यकमें यह मधुर, शीतल, पित्त, दाह और तृष्णानाशक, वातवर्द्धक, रुचिकर और कण्ठशुद्धिकारक कही गई है।

वल्वल (सं० पु०) एक दैत्य जिसे बलरामजीने मारा था, इल्वल।

वल्श (सं० पु०) शाखा।

वल्हिक (सं० पु०) जातिविशेष, सम्भवतः वाह्लीक जाति।

वव (सं० पु०) फलित ज्योतिषके अनुसार ग्यारह करणोंमें एक करण। इसमें जन्म लेनेवाले मनुष्यका बलवान्, धीर, कृती और विलक्षण होना माना जाता है।

ववाङ्ग (सं० क्ली०) वराङ्ग।

ववर्ज्जुषी (सं० स्त्री०) कृतप्रायश्चित्त, वह जिसने पापका प्रायश्चित्त किया हो।

वव्र (सं० त्रि०) १ वेष्टित, घेरा हुआ। (पु०) २ अन्धकारावारक। ३ गर्त्त, गह्वर। ४ कूप, कुआँ।

वव्रि (सं० पु०) १ शरीरावरक जरा। "वव्रि कृत्स्नं शरीरमावृत्यावस्थितां जराम्" (ऋक् १।११६।१०) २ रूप।

वव्रिवासस् (सं० त्रि०) रूपयुक्त वसनशाली। 'वव्रि वाससं वव्रिः रूपनाम रूपपेतवसनवन्तम्।'

(अथर्व ८।६।२ भाष्य)

वव्वूल (सं० पु०) वव्वूर, ववूल।

वव्वूलनिर्यास (सं० पु०) वव्वूल वृक्षका निर्यास या गोंद। इसका गुण—ग्राही, पित्त और वायुघ्न तथा रक्तातिसार, पित्तास्र, मेह और प्रदरनाशक।

वव्वूलाद्यरिष्ट (सं० पु०) ग्रहणीरोगाधिकारोक्त औषधभेद। ववूलकी छाल २५ सेर, पाकार्थ जल २५६ सेर, शेष ३४ सेर, गुड़ ३७॥ सेर, धौका फूल १६ सेर, पीपल २ पल, जायफल, गुड़त्वक्, इलायची, तेजपत्र, नागेश्वर, लवंग, मरिच, प्रत्येक १ पल, इन सबोंको एक साथ मिला कर एक महिना तक आवृत बरतन रख छोड़े। उसके बाद इसका सेवन करनेसे अतिसार आदि रोगोंमें फायदा पहुंचाता है। (भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार)

वशंवद (सं० त्रि०) वशं तवाहं वश इति वाक्यं वदतीति वशंवद (प्रियवशे वदः खच्। पा ३।२।३८) इति खच्। (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) इति मुम्। १ वशीभूत, वशवर्त्ती। (पु०) २ आज्ञाकारी, दास।

वशंवदत्व (सं० क्ली०) वशंवदस्य भावः त्व। वशंवदका भाव या धर्म।

वश (सं० पु०) वश (वशिरण्योरुपसंख्यानां। पा ३।३।५८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अप्। १ इच्छा, चाह। २ एक व्यक्ति पर दूसरेका ऐसा प्रभाव कि दूसरा उसके साथ जो चाहे कर सके या उससे जो चाहे करा सके, काबू, इख्तियार। ३ किसी वस्तु या बातको अपने अनुकूल घटित करनेकी सामर्थ्य, शक्तिकी पहुंच। ४ अधीन

करनेका भाव, प्रभुत्व, अधिकार। ५ वेश्याओंके रहनेका स्थान, चकला। ६ जन्म।

वशकर (सं० त्रि०) वशंकरोतीति। वशीभूत, जिसे वश किया जाय, वश्य।

वशका (सं० स्त्री०) वशेन आयत्ततया कायति शोभते इति कै-क। वश्या नारी, वह औरत जो वशमें कर ली गई हो।

वशक्रिया (सं० स्त्री०) वशस्य क्रिया। वशीकरण। वशीकरण देखो।

वशग (सं० त्रि०) वशं गच्छतीति गम-ड। वशगत, वशीभूत।

वशगत (सं० त्रि०) वशंगतः। वशीभूत।

वशगत्व (सं० क्ली०) वशगस्य भावः त्व। १ वशगका भाव या धर्म, वशता।

वशगमन (सं० क्ली०) वश होना, वशीभूत होना।

वशगा (सं० स्त्री०) वशीभूता स्त्री।

वशगामिन् (सं० त्रि०) वशं गच्छतीति गम णिनि। जो वशीभूत हुआ हो, वशमें लाया हुआ।

वशता (सं० स्त्री०) वशस्य भावः तल-टाप्। वशत्व, वशका भाव या धर्म्म।

वशनीय (सं० त्रि०) वशयोग्य, वश्य।

वशवर्त्तिन् (सं० त्रि०) वशं वर्त्तते वृत-णिनि। वशीभूत, जो दूसरेके वशमें रहे, ताबे।

वशवर्त्ती (सं० त्रि०) वशवर्त्तिन् देखो।

वशस्थ (सं० त्रि०) वशे तिष्ठतीति स्था-क। वशवर्त्ती।

वशा (सं० स्त्री०) वश-अच् टाप् (वशिरण्योरुपसंख्यानं। पा ३।३।५) इति अप् वा। १ वन्ध्या स्त्री, बांझ। २ पत्नी, स्त्री। ३ वन्ध्यागवी, वन्ध्या गाय, ठाँठ। ४ पतिकी बहन, ननद। ५ हथिनी। ६ गाय। ७ वशीभूता।

वशाकु (सं० पु०) एक प्रकारकी चिड़िया।

वशाढ्यक (सं० पु०) वशया आढ्यकः. प्रचुरवशावत्वात् तथात्वं। शिशुमार, सूंस।

वशातल (सं० पु०) जातिविशेष।

वशानुग (सं० त्रि०) वशस्य अनुगः। १ वशवर्त्ती, वशीभूत। (पु०) २ आज्ञाकारी, दास, अधीन।

वशान्न (सं० त्रि०) १ वशायुक्त अन्न। २ वशान्नविशिष्ट। (ऋक् ८।४३।११)

वशापायिन् (सं० पु०) वशां पिबतीति पा-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

वशामत् (सं० त्रि०) वशायुक्त।

वशायात (सं० त्रि०) वशं आयातः। वशीभूत, वशप्राप्त।

वशि (सं० क्ली०) वश-भावे इन्। वशित्व, वशता।

वशिक (सं० त्रि०) शून्य।

वशिका (सं० स्त्री०) वशी वशीकरणं साध्यत्वेनास्त्यस्या इति वश ठन् टाप्। अगुरु, अगरकी लकड़ी।

वशिता (सं० स्त्री०) वशिनो भावः वशिन् तल्-टाप्। १ वशित्व, अधीनता, ताबेदारी। २ मोहनेकी क्रिया या भाव, मोहन।

वशितृ (सं० त्रि०) वश तृच्। स्वतन्त्र, स्वाधीन।

वशित्व (सं० क्ली०) वशिन् भावे त्व। १ आयत्तत्व, वशता २ योगके अणिमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंमेंसे एक। कहते हैं, कि इस सिद्धसे साधक सबको अपने वशमें कर लेता है।

वशिन् (सं० त्रि०) वश इनि। १ जितेन्द्रिय, अपनेको वशमें रखनेवाला। २ वशमें किया हुआ, काबूमें लाया हुआ, अधीन।

वशिनी (सं० स्त्री०) वशो वशीकरणं साध्यत्वेनास्त्यस्या इति वश-इनि-ङीष्। १ वन्दा। २ शमीका पेड़।

वशिमा (सं० स्त्री०) योगकी आठ सिद्धियोंमेंसे एक, वशित्व।

वशिर (सं० क्ली०) उश्यते इष्यते इति वश बाहुलकात् किरच्, यद्वा वशत्वं रातीति रा-क। १ समुद्रलवण, सामुद्रीनमक। २ गजपिप्पली। ३ एक प्रकारका वृक्ष। ४ एक प्रकारकी लालमिर्च। ५ अपामार्ग। ६ वचा, वच।

वशिष्ठ (सं० पु०) वशवतां वशिनां श्रेष्ठः, वशवत्-इष्ठन् (विन्मतोर्लुक्। पा ५।३।६५) इति मतोर्लुक्, यद्वा वशिष्ठः पृषोदरादित्वात् साधुः। १ स्वनामख्यात मुनि। पर्याय—अरुन्धतीजानि, अरुन्धतीनाथ, वाशिष्ठ। (हेम०) वशिष्ठ ब्रह्माके प्राणसे उत्पन्न हुए थे। कर्दमकन्या अरुन्धती इनकी स्त्री एवं पुत्र सप्तर्षि थे। (भागवत) कूर्मपुराणके

मतसे इनके सात पुत्र और एक कन्या थी। वसिष्ठ देखो।
२ मित्रावरुणके पुत्र। (अग्निपु०)

वशो (सं० त्रि०) वशिन् देखो।

वशीकरण (सं० क्ली०) वश-कृ भावे ल्युट्, अभूततद्भावेच्वि मणि, मन्त्र या औषध आदिके द्वारा किसीको अपने वशमें करनेका प्रयोग, आथर्व्वणक्रियाभेद। जिस क्रिया द्वारा सबको वश किया जाता है, उसको वशीकरण कहते हैं। मणि आदि धारण करने तथा मन्त्र और औषधका प्रयोग करनेसे वशीकरण होता है। तन्त्रमें वशीकरणको मन्त्रौषधिका विशेष विवरण लिखा जा चुका है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका विषय बहुत संक्षेपमें दिया जाता है।

जो मारण, उच्चाटन और वशीकरणादि कार्य करें, उन्हें मन्त्रसिद्ध होना पड़ेगा, बिना मन्त्रसिद्ध हुए यह सब प्रक्रिया करनेसे वह सिद्ध नहीं होगा। साधकको चाहिये, कि वे स्थिरचित्तसे बीस हजार मन्त्र जप कर यह वशीकरण करें। वशीकरणकार्य करनेसे उनके दर्शनमात्रसे त्रिभुवन क्षुब्ध हो जाता है।

भूमिकुष्माण्ड और बरगदकी जड़ जलमें पीस कर उसका तिलक लगा कर जिसको ओर देखा जाय, वही वशीभूत हो जाता है। पुष्या नक्षत्रमें पुनर्णवाकी जड़ और रुद्रदन्तीकी जड़ उखाड़ कर इसके साथ यवबीज बांधनेके समय 'ओं ऐं पुरं क्षोभ्य भगवति गम्भीरय ब्लुं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रण करे। इसके बांधनेके पहले यह मन्त्र बीस हजार जप करे, इससे सभी मनुष्य वशीभूत हो जाते हैं। पत्ता, मजीठ, अर्जुनवृक्ष, तगरकाष्ठ, इनका सम भाग ले कर जिसको खिलाया तथा शरीरसे छुआ दिया जाय, वही वशीभूत होता है।

पुष्या नक्षत्रमें कंटकारीको जड़ उखाड़ कर कमरमें बांधने तथा कृष्णपक्षको चतुर्दशीको रातमें श्मशानस्थित महा नील वृक्षकी जड़ उपार कर नरतैलका अञ्जन करनेसे जगत् वशीभूत होता है।

श्मशानमें उत्पन्न महानील वृक्षकी जड़ और स्वीय शुक्र एकत्र पीस कर अञ्जन करनेसे वशीकरण किया जा सकता है तथा उक्त जड़ हाथमें बांधनेसे वह व्यक्ति सर्वलोकप्रिय होता है। पुष्या नक्षत्रमें ब्रह्मदन्तीका मूल उखाड़ करके जिसको खिलाया जाता है, वह वशमें हो जाता है। पेचकका कलेजा, घृतकुमारी और गोरोचना, इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले कर आँखमें अञ्जन लगानेसे त्रिभुवन वशीभूत होता है। अञ्जन लगानेके पहले "ओं नमो महायक्षिणी अमुकं मे वशमानय स्वाहा" इस मन्त्रसे दश हजार जप करना होता है। मृग शिरा नक्षत्रमें लाल कनेरकी जड़ उपाड़ कर उसका नौ अंगुलका खूंटा—'ओं ऐं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके नामसे जमीनमें गाड़ा जायगा, वह अवश्य वशीभूत हो जायगा। यह मन्त्र पहले दश हजार जपना चाहिए।

अपामार्गकी जड़ उपार कर उसका तीन अंगुलका खूंटा सात बार अभिमन्त्रित कर जिसके घर फेंका जाय, वह वशीभूत हो जाता है। 'ओं मदन कामदेवाय स्वाहा' यह मन्त्र १०८ बार जप कर सिद्ध होनेसे यह कार्य करे। अभिमन्त्रण भी इसी मन्त्र द्वारा होगा। अपामार्गकी जड़का तिलक लगानेसे भी वशीकरण होता है।

स्वयम्भूकुसुम कपड़ेमें ले कर तिरास्तेके बीच शनि या मंगलवारको जलावे। जला कर जो भस्म होगा, उसका कपालमें तिलक करे। इससे राजा भी वशीभूत होते हैं। जलानेके समय 'ओं नमो भैरवीतरे आज्ञाकाले कमलमुखे राजमोहने प्रजावशीकरणे स्त्रीपुरुषरञ्जनिलोक वश्यमोहनि मे सोहं 'ओं गुरुप्रसादेन' यह मन्त्र पढ़ना होता है।

कृष्णपक्षको चतुर्दशीको रातमें इषलाङ्गलिकाकी जड़, नरतैल, मधु और हरताल, इन सबोंको एक साथ कर कपालमें तिलक लगानेसे सबको वशीभूत किया जा सकता है।

यमानी वृक्षका मूल और हरताल एकत्र पीस कर गोली बनावे। यह गोली मुंहमें रख कर जिससे जो चीज मांगी जायगी, वह वशवर्त्ती हो कर तत्काल ही दे देगा। 'ओं अश्मकर्णेश्वरे दुर्बले अहि केशिक जटाकलापे ढक्कार फत्कारिणी स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर इसका अनुष्ठान करना होता है।

वटपत्र और मयूरशिख समभाग ले घस कर तिलक लगानेसे सर्वलोग वशीभूत होता है एवं कृष्णा अपरा-

जिता, भृङ्गराजकी जड़, गोरोचना, विजवंद और श्वेत अपराजिताकी जड़ इन सबोंको एकत्र पीस कर अविवाहिता कन्याके हाथ छोपे। पीछे इस छोपी हुई वस्तुको जलसे साफ कर तिलक लगानेसे सर्वलोक वशीभूत होता है।

लाल कनेरका फूल, कुट, सफेद सरसों, सफेद आककी जड़, तगर, सफेद गुंजा और गोपालककर्कटी, इन सबोंको पुष्यानक्षत्रयुक्त कृष्णाष्टमी या कृष्याचतुर्दशी तिथिमें एकत्र कर पीसे। इसका तिलक लगानेसे सब लोक वशीभूत होता है।

अपामार्गकी जड़ और गोरोचना एक साथ पीस कर कपालमें तिलक करनेसे त्रिजगत् वशीभूत होता है। 'ओं नमो वरजालिनी सर्वलोकवशङ्करी स्वाहा' यह मन्त्र आठ हजार जप करके उक्त कार्य करे। पेचककी आँख निकाल कर उसके साथ गोरोचना मिला कर जिसको जलके साथ पीने दे, वही वशीभूत हो जायगा।

पेचकके दो कान तथा चटक पक्षीकी आँख इन दोनोंका एकत्र चूर्ण करे। इस चूर्णका कपालमें तिलक लगानेसे जगत् वशीभूत किया जा सकता है। फिर अगर यह चूर्ण किसी मनुष्यको खानेकी चीज़ और पीनेके जलमें मिला कर दिया जाय अथवा गन्धद्रव्य और फूल सुंघाया जाय या किसी व्यक्तिके मस्तक पर दिया जाय, तो वह व्यक्ति वशीभूत होता है।

पेचकका मांस, केसर, अगर, लालचंदन और गोरोचना इन सब द्रव्योंका बराबर बराबर भाग एक साथ पीस कर खाने देने किंवा पीनेके जलके साथ देनेसे त्रिजगत् वशीभूत होता है। इसके पहले 'ओं ह्रीं ह्रीं हः हाः हेः फट नमः' यह मन्त्र सहस्रवार जप करना होता है। इससे क्या स्त्री क्या पुरुष सभी वशीभूत हो जाता है। पहला दिन भूखा रह कर गोपालककर्कटीकी जड़ उखाड़े। इसके बाद उत्तर मुख हो ओखलीमें इस जड़को कूटे। पीछे यह जड़ और त्रिकटु समभाग ले बकरेके मूत्रमें पीस कर छायामें सुखा कर गोली बनावे। इसके बाद यह गोली और रक्तचन्दन एक साथ पीस कर अपनी अंगुलीमें लेपे, इस अंगुलीसे जिसका स्पर्श किया जायगा, वही वशीभूत हो जावेगा।

पूर्वोक्त गोली, देवदारु और सफेद चन्दन समभागले कर जलमें पीस कर जिसको शरीरमें लगानेके लिये दिया जाता है, वही वशीभूत हो जाता है।

पूर्वकृत गोली और गोरोचना इनका समान भाग ले जलके साथ पीस कर कपालमें अगर तिलक लगावे, तो वह व्यक्ति सभी जगह जयी होगा। 'ओं नमः शची इन्द्राणी सर्वशङ्करी सर्वार्थसाधिनी स्वाहा' यह मन्त्र सहस्र वार जप कर इसका अनुष्ठान करना होता है।

कृष्णा चतुर्दशी वा कृष्णाष्टमी तिथिमें उपवास रह देवताको बलिप्रदानपूर्वक विजवन्दकी जड़ उपार कर चूर्ण करे। यह चूर्ण तम्बाकूके साथ जिसे भक्षण करने देंगे, वही वशीभूत हो जायगा।

गोरोचना और विजवन्द एकत्र पीस कर तिलक लगानेसे सकल लोक वशीभूत होता है। मैनसिल और विजवन्दकी जड़ एकत्र पीस कर अञ्जन करनेसे भी सर्वलोक वशीभूत होता है। विजवन्दकी जड़ सप्ताह पर्यन्त ताम्बूलके साथ प्रयोग करनेसे राजा भी वशीभूत हो जाते हैं। विजवन्दकी जड़ चूर्ण करके मस्तक पर धारण करनेसे वशीकरण होता है। इस जड़को मुंहमें रख कर जिस नारीकी कामना की जाय, वही नारी वशीभूत हो जाती है। इसके पहले 'ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वमुखरञ्जनि सर्वेषां महामाये मातङ्गि कुमारिके लेपे लघु लघु वशं कुरु स्वाहा' यह मन्त्र जप कर उक्त प्रक्रिया करनी होता है।

श्मशानका अङ्गार और श्रृगालका लहू एकत्र कर जिसके मस्तक पर फेंका जाय, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत हो जायगा। मयूरका पित्त, गोरोचना, जातीपुष्प, इन सबोंको कुंआरी लड़कीसे पिसवा कर जिसको स्पर्श या खिलाया जाता है, वह व्यक्ति वशीभूत होता है। चन्द्रग्रहणके समय श्वेत अपराजिताकी जड़ ला कर उसका अञ्जन कर कपालमें तिलक लगानेसे सकल लोक वशीभूत होता है। चौलाई सागकी जड़ मुंहमें रखनेसे वशीकरण किया जा सकता है तथा प्रतिवादी गूंगा हो जाता या अन्यत्र भाग जाता है। कृष्णपक्षको चतुर्दशी तिथिको श्वेतगुञ्जाकी जड़ उपार कर ताम्बूलके साथ जिसे दिया जाय, वही वशीभूत हो जायगा। इस प्रक्रिया द्वारा सबोंको वशीभूत किया जा सकता है।

मनःशिला, गोरोचना और श्वेत अपराजिताको जड़ एकत्र कर पीसे। पीछे उसका कपालमें तिलक कर जिससे वातचीत की जाती है, वही वशीभूत हो जाता है। स्वर्ण-वेष्टित श्वेत अपराजिताकी जड़ तावीजमें रख कर जो व्यक्ति पहनता है, उसके वचनसे सभी वशीभूत होता है। श्वेत अपराजिताकी जड़ चवा कर उसका तिलक करनेसे नारी अथवा नर यदि उसकी ओर देखे, तो देखनेसे ही उसके वशमें हो जाता है। इस प्रक्रियाके करनेके पहले 'ओं वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भगवति ममाङ्ग अमृतः कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र सहस्र वार जप करना होता है।

पुष्या नक्षत्रयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें साधक उपवास रह कर पुष्प, धूप, वलि और घृतप्रदीप दे कर 'ओं श्वेतवर्णे सितपर्वतवासिनी अप्रतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा' एक हजार आठ वार जप करे, उसके वाद श्वेत गुञ्जाफल और उसी जगहकी मिट्टी ले कर इस फलमें घृत लेप दे। तदनन्तर यह बीज और मिट्टी एक नये वरतनमें रख कर कृष्णाचतुर्दशी या अष्टमी तिथिमें गाड़ रखे। जव तक इस वोजसे वृक्ष हो कर फल न हो, तव तक 'ओं श्वेतवर्णे सितवासिनि श्वेतपर्वतवासिनि सर्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे जल सींचना होगा। इस वृक्षमें फल लगनेसे पुनः पुष्या नक्षत्रमें शुचि हो कर उपवासी रह धूपादि दे, पीछे 'ओं श्वेतहृदयाय नमः' ओं पद्ममुखे शिरसि स्वाहा, ओं सर्वज्ञानमय्यै शिखायै वषट्, ओं नमः सर्वशक्तिमत्यै कवचाय हुं, ओं नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं परमन्त्रभेदने अस्त्राय फट्, इस मन्त्रसे न्यास करके श्वेतगुंजाकी जड़ उपारे। इसके पहले 'ओं नमो भगवति ह्रीं श्वेतवासे नमः नमः स्वाहा' श्वेतगुंजाकी जड़ उठा कर यह मन्त्र दश हजार जपना तथा घृत मिश्रित तिल और श्वेत-दूर्वा द्वारा सहस्र होम करना होगा। इसके वाद गुंजाकी जड़ और श्वेतचन्दन एकत्र पोस कर शरीरमें लगानेसे उत्तम वशीकरण होता है, गुंजाकी जड़के साथ लेपन करनेसे भी सव वशीभूत होता है।

मनःशिला, कहे गये तरीकेसे उखाड़ा हुआ श्वेतगुञ्जाका मूल और श्वेतचन्दन इन तीनोंको एकत्र जलमें घोस कर तिलक लगानेसे सर्वलोक वशीभूत होता है।

पूर्वरूप श्वेतगुञ्जाकी जड़, सफेद सरसों और प्रियंगु इन तीनों द्रव्योंका समभाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिसके सिर पर निक्षेप किया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा। 'ओं नमः श्वेतगात्रे सर्वलोक वशङ्करि दुष्टान् वशं कुरु कुरु मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र १०८ वार जप कर सिद्ध करे। जव तक यह मन्त्र सिद्ध न होगा, तव तक वशीकरण हो हो नहीं सकता।

अड़ूसकी जड़, प्रियंगु, कुच, इलायची, नागकेशर और सफेद सरसों इन सवोंको एकत्र कर जिसके अंगमें धूप दिया जाता है, वह व्यक्ति वशीभूत होता है। 'ओं कामिनि माधवि माधवि नमः' इस मन्त्रसे धूप अभिमन्त्रित कर देना होगा। इस मन्त्रसे एक फूल ले कर सौ वार अभिमन्त्रित कर जिसे दिया जाता है, वही वशीभूत हो जाता है। खानेके समय इस मन्त्रसे अन्न अभिमन्त्रित कर जिसे वशीभूत करना होगा, उसके नामसे सात दिन भोजन करनेसे वह व्यक्ति वशीभूत होता है। खानेके पहले 'ओं कटं कटे घोररूपिणि ठः ठः' यह मन्त्र सहस्र वार जप करे।

साधक 'क्लीं जनके स्वाहा' यह मन्त्र दो लाख वार जप करके घृताक्त गुग्गुलसे जपका दशांश होम करे। इस प्रकार जप होम करनेसे देवी सौभाग्य प्रदान करती एवं स्पर्शमात्रसे ही साधक त्रिभुवन वशीभूत कर सकता है।

पीपलके पेड़ पर चढ़ कर 'ओं नमो भगवते रुद्राय सिद्धरूपिणे शिखिवन्ध सर्वेषां शिवमस्तु शिवमस्तु हन हन रक्ष रक्ष सर्वभूतेभ्यश्च नमः' यह मन्त्र दश हजार जप करके पोछे एक कनेरका फूल उक्त मन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रित कर जिसको दिया जाता है, वह उसी क्षण वशीभूत हो जाता है।

'ओं नमो भूतनाथाय यं भूपाल वशं कुरु कुरु भुवनक्षोभक सर्वलोकान् क्षोभय क्षोभय स्फें ग्लीं ग्लीं ग्लुं स्वाहा' यह मन्त्र एक लाख जप करनेसे साधकके प्रति भूतनाथ अर्थात् महादेव सन्तुष्ट होते हैं एवं साधक जिसे स्मरण करता है, वह व्यक्ति तत्क्षणात् ही वशीभूत हो जाता है।

राजवशीकरण—केसर, रक्तचन्दन, गोरोचना और कपूर

इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले कर गायके दूधके साथ मिला कर तिलक करनेसे राजवशीकरण होता है। तिलक लगानेके पहले 'ओं क्लीं सः अमुकं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होगा।

मजीठ, केसर, अजवायन, घृतकुमारी, चिताभस्म और अपने शरीरका रक्त, इन्हें एकत्र कर अपने शुक्र द्वारा भावना दे, पीछे पुष्या नक्षत्रमें उसकी गोली बनावे। यह गोली जिसे खाद्यवस्तु या पीनेके जलमें दे कर खिलाओगे, वह व्यक्ति निश्चय ही वशीभूत होगा तथा यह गोली राजासे छुआनेसे चण्डमन्त्रके प्रभावसे राजा भी वशीभूत होते हैं। चण्डमन्त्र 'ओं ह्रीं रक्तचामुण्डे कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र एक हजार जप करना होता है।

चन्द्रग्रहणके समय श्वेत अपराजिताकी जड़ उपार कर मालिकको भोजन करानेसे चण्डमन्त्रबलसे वह तुरत वशीभूत हो जाता है। इसमें भी उक्त चण्डमन्त्र सहस्र बार जप तथा भोजनकालमें भी यह मन्त्र पढ़ना होता है। उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, किंवा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रोंमें प्रातःकाल पीपलके पेड़की जड़ उखाड़ कर हाथमें रखनेसे राज दरबारमें या अन्यान्य स्थानोंमें जयलाभ होता है।

भरणी नक्षत्रमें आँवलेकी जड़, विशाखा नक्षत्रमें आम पेड़का मूल एवं पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें अनार वृक्षको जड़ हाथमें रखनेसे देवराज इन्द्र भी उस पर वशीभूत हो जाते हैं। अश्लेषा नक्षत्रमें नागकेशरकी जड़ हाथमें बांधनेसे राजा वशीभूत होते हैं। रक्तोत्पलकी जड़ अक्षोड़ फलोंके तैलमें घर्षण करके पूर्वोक्त चण्डमन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रन कर कपालमें तिलक करनेसे राजा वशीभूत होते हैं। इसमें भी चण्डमन्त्र सहस्र बार जप करना होता है।

रक्तचन्दन, सफेद सरसों और कटु तेलके साथ चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे फौरन ही राजाको वशीभूत किया जा सकता है। रात्रिकालमें अपने घर बकरेके खूनके साथ सरसों द्वारा उक्त चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे राजाको वशीभूत किया जा सकता है। रातमें मधुके साथ सरसोंके फूल द्वारा चण्डमन्त्रसे सहस्र होम करनेसे समस्त पृथ्वीके अधिपति भी फौरन वशीभूत हो जाते हैं।

स्त्रीवशीकरण—कबूतरका कलेजा और आँख तथा अपने शरीरका लहू, गोरोचना और जीभकी मला (चमड़ा) इन सबोंको एकत्र कर अञ्जन करनेसे स्त्री वशीभूता होती है।

गोरोचना, चिताभस्म, मनुष्यतैल और अपना शुक्र इन्हें एक साथ पीस कर जिस स्त्रीको दिया जाय, वह स्त्री फौरन वशीभूत हो जायगी।

चिताभस्म, रसा, कुट, तगरकाष्ठ और केसर इनका समभाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्रीके सिर पर और पुरुषके पैर पर फेंका जाता है, वह स्त्री और पुरुष वशीभूत होते हैं।

धतूरेका बीया, टाभा नेबूका बीया, जिह्वामल, दन्तमल, चक्षुमल, कर्णमल और नासामल एकत्र करके जिस स्त्रीको खिलाओगे वही वशीभूत हो जायगी। चना ३०, इन्द्रजौ १६, गोदन्त और नरदन्त तेलके साथ पीस कर ललाटमें तिलक करनेसे तिलोत्तमा भी वशीभूत हो जाती है।

सोहागा, जेठीमधु, गोरोचना, चिताभस्म और काकजिह्वा इनका समपरिमाण ले कर एकत्र मधुके साथ तिलक लगानेसे स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। पुष्यानक्षत्रमें काला धतूरेकी जड़, भरणी नक्षत्रमें फल, विशाखानक्षत्रमें पत्र, मूलानक्षत्रमें मूल उखाड़ कर एकत्र पीसे। उसके साथ केसर, कपूर और गोरोचना मिला कर तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

काकजङ्घा, वच, कुट, विष्णुपद, केसर और अपना रक्त एक साथ मिला कर कपालमें तिलक करनेसे स्त्री वशमें हो जाती है। काकजंघा वच, कुट, शुक्र और शोणित इनको एकत्र करके जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री यावज्जीवन उसके वशीभूत हो जायगी।

चटक पक्षीका मस्तक, श्वेत आकन्दकी जड़, मजीठ और खैर यह सब जिसको खिलाओगे, वही स्त्री वशीभूत हो जायगी। साँपकी केंचुल, अनारकी लकड़ी और रेड़ीका तेल सम भाग ले कर धूप देनेसे स्त्री वशीभूत होती है।

अश्विनीनक्षत्रमें पलाशवृक्षकी जड़ संग्रह करके हाथमें बाँधनेसे नायिका वशीभूत होती है। यक्षा-

दुम्बरकी जड़ मृगशिरा नक्षत्रमें हाथमें बांध कर जिसके अंगमें स्पर्श कराओगे, वह कामिनी वशीभूत हो जायगी।

धनिष्ठा नक्षत्रमें शिरीष पेड़का मूल तथा स्वाती नक्षत्रमें धातकीमूल ला कर हाथमें बांधनेसे नारियाँ वशीभूता होती हैं। रेवती नक्षत्रमें वटकी कली ला कर हाथमें बाँधनेसे सबको वशीभूत कर सकते हो तथा मूला नक्षत्रमें बेरकी जड़ उखाड़ जिस स्त्रीको खिलाओगे वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

स्वर्णपात्रमें कुन्दवृक्षका मूल पीस कर जिस स्त्रीको पीठ पर दिया जाता है, वह स्त्री निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। अगहन मासकी पूर्णिमा तिथिमें अपामार्गकी जड़ उपार कर जिस स्त्रीको खिलाया जायगा, वह स्त्री वशमें हो जायगी। श्वेतगुञ्जाकी जड़ एवं पञ्चमल जिह्वा, दन्त, चक्षु, कर्ण और नासामल इनको एकत्र कर चण्डमन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको खिलाया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

यह जितने स्त्रीवशीकरण लिखे गये, इन सबोंको करते जानेमें चण्डमन्त्र जप और मन्त्र पढ़ना होगा; नहीं तो सब निष्फल हो जाता है। सबेरे दाँत साफ कर जिस स्त्रीका नाम ले और 'ओं नमः क्षिप्र कामिनीं अमुकीं वशमानय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर सात गण्डूष (चुल्लू) जल पान करे, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है।

नागकेशरका फूल, प्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, वच, जटामांसी, इन्हें एकत्र चूर्ण कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूलि रक्ष रक्ष सर्वासां क्षे त्वयेभ्ये परेभ्यः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप देता है, उस व्यक्तिको कामदेवको तरह जान कर स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं।

स्वीय जिह्वामल, नासामल और कर्णमल एकत्र कर 'ओं नमः सवायै नमः सवाण्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ करके सुराके सहित जिस स्त्रीको खिलाया जाय, वह स्त्री अवश्य ही वशीभूता हो जायगी।

अपामार्ग वृक्षके मध्यभागका चार अंगुलका काष्ठ 'ओं द्राविणि स्वाहा ओं हर्मिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रण करके वेश्याके घर फेंक देनेसे वह वेश्या वशीभूत हो जाती है।

पेचकको आँख और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचना, केसर तथा मछलीका तेल इन सबोंको एकत्र करके 'ह्रीं, ह्रीं प्लं प्लं फट् नमः' इस मन्त्रसे अपने शरीरमें लगानेसे स्त्रीको वशीभूत किया जाता है। एक गिरगिटका दाहिना पैर मुखमें रख कर जिस स्त्रीके साथ सम्भोग किया जाता है वह स्त्री वशीभूत हो जाती है एवं गिरगिटकी बाईं आंख मधु और तेलके साथ एकत्र करके आंखमें अञ्जन लगानेसे अगर किसी स्त्रीको देखा जाय वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। स्त्रीको देखनेके समय 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं क्लीं प्लां कालि कपालि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना होता है। गिरगिटकी दाहिनी आंख, काँजि और मधु एकत्र करके दाहिनी आंखमें अञ्जन दे 'ओं पूजिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ कर जिस स्त्रीको देखा जाता है, वह स्त्री वशीभूत होती है।

'ओं नमः कामदेवाय सहकल सहदश सहाम सहालिमे वह्ने धूननजनं ममदर्शनं उत्कण्ठितं कुरु कुरु दक्षदण्डधर कुसुमवाणेन हन हन स्वाहा' यह मन्त्र जिस नारीके उद्देशसे एक सप्ताह तक जप किया जायगा, वह नारी समीप आ कर उसके वशमें हो जायगी।

रात्रिकालमें कामाक्रान्त चित्तसे जिसका नाम ले कर 'ओं सहवल्लीं वल्लीं करवल्लीं कामपिशाच अमुकीं कामं ग्राहय स्वपेन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन वन्धय श्रीफट' यह मन्त्र जप किया जायगा, वह नारी वशीभूत होगी।

इस वशीकरण कार्यमें भी पूर्वोक्त चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करना होगा। विना चण्डमन्त्रका जप किये कोई फल नहीं होता।

लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत इन्हें एकत्र करके एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे कुरूप व्यक्ति भी तिलोत्तमाको वशीभूत कर सकता है। सरसों, लवण, दुग्ध, मधु, घृत इनका एक सप्ताह तक होम करते रहनेसे स्त्रियां वशीभूत होती हैं।

चार अंगुलकी अंडीकी लकड़ीसे मन्त्र पाठपूर्वक कड़ुआ तेल और लवणके साथ १०८ होम करे। होम

करनेके समय जिसका नाम लेगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा। महानिम्बके फूलमें घृत मिला कर प्रति दिन १०८ होम करे, इस प्रकार समूचा सप्ताह होम करते रहने से मनोरमा नारी वशीभूत होती है। 'ओं ह्रीं रक्तचामुण्डे कुरु कुरु अमुकीं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र पाठ कर होम करे।

तीन गोमुण्ड ला कर उसका चुल्हा बनावे, उसमें मानवकी खोपड़ीमें धान दे कर उसे भूने। भूननेके समय जो खोई (लावा) इस खोपड़ीसे हो कर बाहर निकलेगी, उसका चूर्ण कर एक स्थानमें रख दे और खोपड़ी की मध्यगत खोई चूर्ण कर दूसरी जगह रखे। पहलेकी निकली हुई खोईका चूर्ण जिस स्त्रीके मस्तक पर दिया जाता है, वह स्त्री वशीभूत हो जाती है। मध्यगत खोई-के चूर्णसे वशीकरण निवृत्त होता है। इस योगमें मन्त्र की आवश्यकता नहीं, यह विना मन्त्र हो सिद्ध होता है।

मानव मस्तकका मध्यभाग, गर्दभका मस्तक मध्यगत मज्जा द्वारा पूर्ण कर उसमें भृङ्गराजके रस द्वारा सात दिन भावना दे कर सुखावे। पीछे रूईका पलीता बना कर यह मज्जा पात्रमें दे दीया जलावे, शनिवारको इसको शिखासे नरकपालमें कज्जल बनावे। यह कज्जल आँखमें लगा कर जिस स्त्रीकी ओर दृष्टि फेरी जायगी, वह स्त्री वशीभूत हो जायगी।

मनःशिला, हरताल, स्वीय शुक्र, आकोड़ फलका तेल तथा हाथोके गण्डका मद, इन सबोंको एकत्र मिला कर कपालमें तिलक करनेसे स्त्री वशीभूत होती है। मनःशिला, प्रियंगु, नागकेशरका फूल और गोरोचना इन्हें एकत्र कर आँखमें अञ्जन करनेसे मनोरमा कामिनीको भी वशीभूत किया जा सकता है।

प्रियंगु, वच, तेजपत्र, गोरोचना, रसाञ्जन और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंको मिला कर आँखमें अंजन लगा कर जिस स्त्रीकी ओर देखा जायगा, वह स्त्री वशीभूता होती है। सोमराजी, आकन्दका मूल या पिठवनकी जड़ जिस स्त्री या पुरुषके नामसे कमरमें बाँधी जाती है, वह स्त्री या पुरुष वशमें हो जाता है।

कृष्णाष्टमी या कृष्णाचतुर्दशी तिथिमें उखाड़ी हुई पीले धतूरेकी जड़, कुट और देवदार इनका समान भाग ले कर चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्री या पुरुषके मस्तक पर फेका जाता है, वह स्त्री या पुरुष वशीभूत होता है। फल सहित आमलकी वृक्षकी जड़ घस कर आँखमें अञ्जन कर किंवा कपालमें तिलक लगा कर जिस स्त्री और पुरुष पर दृष्टिपात होता है, वह स्त्री और पुरुष वशीभूत होता है।

गोपालकर्कटीकी जड़ पुष्या नक्षत्रमें नंगे हो कर उखाड़े। पीछे इस जड़के साथ मिर्च, पीपल और सोंठको गायके दूधमें पीस कर गोली बनावे। इस गोलीको पीस कर रक्तचन्दनके साथ कपालमें तिलक लगा कर स्त्रियोंको देखनेसे स्त्रियां वशीभूत हो जाती है। स्वातीनक्षत्रमें वरवटीका मूल एवं अनुराधा नक्षत्रमें वेरका मूल उपार कर हाथमें ले स्त्रियोंको अवलोकन करनेसे वे वशीभूत होती हैं। ऊर्द्धपुष्पी, अधःपुष्पी, लज्जावती और अपराजिता इन सब पौधोंका फूल ला कर एक सप्ताह तक अपने शुक्रमें भावना दे। पीछे उसमें जिह्वा, दन्त, कर्ण और नासा, इन सबोंका मल एकत्र करके जिस नारीको खाद्य पदार्थ या पीनेके जलमें खाने दोगे, वह नारी वशीभूत हो जायगी।

शुक्लपक्षके पुष्यानक्षत्रमें सम्भोगके समय यत्नपूर्वक योनिस्थित दोनोंका वीर्य बाएं हाथसे ग्रहण कर स्त्रीकी बाईं हथेलीसे छुआनेसे वह स्त्री वशीभूत होती है। कृष्णपक्षके पुष्यानक्षत्रमें भी ऐसा करनेसे वशीकरण होता है। (सिद्धनागार्जुन०)

श्वेत आकन्द, लांगलिया, वच, लज्जावती, मल इन सबोंका बराबर बराबर भाग ले चूर्ण कर कुत्तीके दूधके साथ मिलावे। उसके बाद यह धतूरा फलके बीचमें रखे, यह कामवाण स्वरूप होता है, जिस स्त्रीको यह औषध खिलाओगे, वह स्त्री वशीभूत हो जायगी। इस सब वशीकरणोंमें चण्डमन्त्र दश सहस्र जप करनेसे सिद्ध होगा। पूर्वोक्त चण्डमन्त्रके अलावा वशीकरण सफल नहीं होता।

सात बार जलाञ्जलि दे कर 'ओं विश्वावसुर्नाम गंधर्वः कन्यकानामधिपतिः सुरूपा सालङ्कारां देहि मे नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा' यह मन्त्र एक मास तक जप करते रहनेसे सुन्दरी स्त्री वशीभूत होती है।

षट्कर्मदीपिकामें मारण, उच्चाटन और वशीकरणादिका विस्तार विवरण वर्णित है। इस मतसे वशीकरणका विषय संक्षेपमें आलोचना कर देना जाय।

इसके बाद वशीकरणका विषय लिखा जाता है। इसका ज्ञान हो जानेसे नर और नारी दोनोंको वशीभूत किया जा सकता है। लज्जालु लता, अपामार्गकी जटा, बहेड़ा, अपराजिता और चाण्डाली लता इन सबोंको एक साथ गायके दूधमें पीस कर कीचड़की तरह करे। पीछे इसे एक पट्टवस्त्रके टुकड़ेमें लेप कर उससे बत्ती बनावे। यह बत्ती पद्मनालके मध्यगत सूतेसे घेर दे। उसके बाद एकवर्णा गायके दूधसे घी तैयार कर उसी घीसे पहलेकी बनाई बत्ती आर्द्र कर दे। तदनंतर यह बत्ती जला कर उसको शिखाका कज्जल बनावे। पीछे चतुर्दशी रातको भैरवकी पूजा करके यह कज्जलपात करे। इस कज्जल द्वारा स्त्री पुरुष जिसकी इच्छा की जाय, वही वशीभूत हो जायगा। यह वशीकरण सर्वोत्तम है, स्वयं महादेवने इस वशीकरणका उपदेश दिया है। साधकको उचित है, कि वे इसे यत्नपूर्वक गोपन कर रखें। क्रूर, अल्पविद्य, निन्दक और चपल, इनके निकट प्रकाश न करें।

यह मन्त्र जब तक सिद्ध न हो, तब तक साधक 'ओं ह्रीं मोहिनी स्वाहा' जप करे। मन्त्र सिद्ध होनेके बाद चन्दन, पुष्प, वस्त्र अथवा कोई उत्तम फल उक्त मन्त्रसे १०८ बार अभिमन्त्रित कर जिसके हाथ दिया जायगा, वह व्यक्ति वशीभूत होगा।

साधक 'ओं चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा' यह मन्त्र ताड़के पत्ते पर लिख कर पत्तेको दूध मिले हुए पानीमें फेंट दे और पाक करे। इस मन्त्रमें जिसका नाम लिखा जायगा, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत होगा। किसी किसीका कहना है, कि उक्त मन्त्र बेलके कांटेसे लिखना होगा एवं इस पत्तेको दूधमें पाक कर तीन दिन तक कीचड़में रख दे। पीछे उसे कीचड़से निकाल कर दुर्गोत्सव मण्डपद्वार पर गाड़ कर रख दे। ऐसा करनेसे भी वशीकरण होता है।

पूर्वोक्त ओं चिटि चिटि इत्यादि मन्त्र बेलके काँटेसे ताड़के पत्ते पर लिख कर यथाविधान भद्रकालीकी पूजा करके उसी घरमें उसे ढक कर रख दे। इससे भी वशीकरण होता है। 'रं सर्वलोकं वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रसे जप और पूजा करनेसे अभिलषित व्यक्तिको वशीभूत किया जा सकता है।

'ओं राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु स्वाहा।'

'ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सदुर्घोर सदुर्घोर ह्रीं स्वाहा' यह दो मन्त्र दश हजार जप करके पीछे घृतसंयुक्त पायस द्वारा जपका दशांश होम करना होगा। होम खतम होनेके बाद अङ्गदेवता, अष्टमातृका, और दश दिक्पालकी पूजा करके फिर स्वादुयुक्त तिलतण्डुल, मधुर फल तथा घृतयुक्त रक्तपद्म द्वारा होम करे। इस तरह तीन दिन तक होम करके सूर्यमण्डलाधिष्ठात्री देवताकी आराधना कर सूर्याभिमुख १०८ जप करे। इससे थोड़े दिनमें ही वशीकरण सिद्ध होता है। मन्त्रमें अभिलषित व्यक्तिका नाम लेना होता है। इस मन्त्रके अजऋषि, निवृत् छन्द और गौरी देवता हैं इस प्रकार कराङ्गन्यास करना होता है। 'ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, जये विजये गौरि गान्धारि तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, त्रिभुवन वशङ्करि मध्यमाभ्यां वषट्, सर्वलोकवशङ्करि अनामिकाभ्यां हुं, सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि कनिष्ठाभ्यां वौषट्, सदुर्घोर, सदुर्घोर ह्रीं स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्।' इस प्रकार हृदय आदिमें न्यास करना पड़ता है। इस देवताकी पूजा करनेके समय निम्नोक्त मन्त्रसे ध्यान करनेकी विधि है—

"अमलशशिविराजन्मौलिरावद्धपाशा-
ङ्कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणवर्णा
शुककुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वतीव॥"

इस प्रणालीके अनुसार वशीकरण करनेसे सबोंको वशीभूत किया जा सकता है।

'मद मद मादय मादय ह्रीं वशय अमुकं स्वाहा' इस मन्त्रका नाम मदनमन्त्र है।

"कनकरचितमूर्त्तिः कुण्डलाकृष्टचापो
युवतिहृदयमध्ये निश्चलारोपिताशः।"

मदनदेवका शरीर सुवर्ण-रचित है। वे आकर्ण पर्यन्त धनुर्व्वाण-आकृष्ट एवं युवतियोंके हृदयमें निश्चल भावसे चक्षु आरोपित किये हुए हैं। ऐसा मदनदेवको ध्यान कर मदनमन्त्र दश हजार जप और मदनदेवको सहस्र रक्त पुष्प चढ़ाना होता है। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रबलसे समस्त जगत्‌को वशीभूत किया जा सकता है।

'ओं चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा' यह मन्त्र लाख वार जप कर शिरीष-वृक्षके समिध् द्वारा दश सहस्र होम करे। निम्नोक्त ध्यानसे देवताकी पूजा होती है।

ध्यान यथा—

"दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गासिनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जयविधौ ध्येया सदा साधकैः॥"

विधिपूर्वक इस ध्यानसे पूजा करनेसे मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्रका ऐसा प्रभाव है, कि इससे वशीभूत होता है।

'ओं नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वालय प्रज्वालय सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' यह मन्त्र जपनेसे नर और नारीको वशीकरण किया जा सकता है।

'ओं नमः भगवति सूचिचाण्डालिनी नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे मधूच्छिष्ट (मोम) द्वारा अभिलषित व्यक्तिकी एक प्रतिकृति बनानी होगी। प्रतिमूर्त्ति बना कर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी होती है। पीछे इस प्रतिकृतिके ऊपर पूर्वोक्त 'ओं नमः भगवति' इत्यादि मन्त्र जप करके अङ्गाराग्नि द्वारा इस मूर्त्तिको तपाना होगा। ऐसा करनेसे अभिलषित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। (षट्कर्मदीपिका)

वृहन्नीलतन्त्र, उड्डीश आदि तन्त्रमें वशीकरणादिका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां वह और नहीं लिखा गया।

वशीकरणकार्य वसन्त ऋतुमें या पूर्वाह्नकालमें करना होता है। इसके करनेमें सप्तमी और दशमी तिथि प्रशस्त मानी गई है।

पृथ्वी आदि तत्त्वके दोनों कालमें वशीकरणादि कार्य करने होते हैं। ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा, रोहिणी, यह सब नक्षत्र पृथ्वीतत्त्व हैं। इनका निरूपण कर वशीकरण करना होता है।

यह जो वशीकरणकी सभी प्रक्रियाएं वर्णित हुईं, इनके करनेके पहले साधकको मन्त्र सिद्ध होना होगा। जब तक मन्त्र सिद्ध नहीं होगा, तब तक सफलीभूत हो ही नहीं सकते। सुतरां साधक पहले मन्त्रकी आराधना कर सिद्धिलाभ करें। पीछे मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि जो आभिचारिक क्रिया करेंगे, उसमें वे तत्काल ही सफलकाम होंगे।

वशीकार (सं० पु०) वशीकरण। वशीकरण देखो।

वशीकृत (सं० त्रि०) १ किसी प्रकार वशमें किया हुआ। २ मोहित, मुग्ध। ३ मन्त्रमुग्ध, मन्त्र द्वारा वशमें किया हुआ।

वशीक्रिया (सं० स्त्री०) वशीकरण, वशमें लानेका काम।

वशीभू (सं० त्रि०) वशीभूत किया हुआ।

वशीभूत (सं० त्रि०) अवशो वशोभूतं इत्यर्थे च्विः। १ वशमें आया हुआ, अधीन, ताबे। २ दूसरेकी इच्छाके अधीन।

वशीर (सं० पु०) वश-ईरन्। १ गजपिप्पली। २ चर्वाक, चई। ३ अपामार्ग। (क्ली०) ४ सामुद्र लवण, समुद्री नमक।

वश्चिक (सं० पु०) अग्रहारभेद।

वश्य (सं० क्ली०) वशाय वशीकरणाय साधु इति वश-यत् (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) १ लवङ्ग, लौंग। (शब्दच०) वशमधीनत्वं गत इति वश-यत् (वशं गतः। पा ४।४।८६) (त्रि०) २ आयत्ततापाप्त, वशमें आनेवाला, ताबे होनेवाला। ३ किसीकी इच्छाके अधीन, दूसरेकी आज्ञा या कहनेमें रहनेवाला। (पु०) ४ दास, सेवक। ५ मातहत। ६ अग्निध्रका पाँचवां पुत्र। (मार्कण्डेयपु० ५३।३४)

वश्यक (सं० त्रि०) वश्य स्वार्थे कन्। १ वशीभूत, वशग।

वश्यकर (सं० त्रि०) वश करनेके योग्य।

वश्यकर्मन् (सं० क्ली०) वशीकार्य, वशमें लानेका काम।

वश्यता (सं० स्त्री०) वशमें होनेकी अवस्था या भाव, अधीनता।

वश्यत्व (सं० क्ली०) वश्यता देखो।

वश्या (सं० स्त्री०) वश्य-टाप्। १ वशीभूता नारी। पर्याय—वशगा, वशास्या और वश्यका। २ नीलापराजिता। ३ गोरोचना। ४ लगाम।

वश्यात्मन् (सं० पु०) वश्यः आत्मा कर्मधा०। १ वशीभूत आत्मा। (पु० स्त्री०) २ वशीकृत चित्तेन्द्रिय, वह जिसकी चित्तेन्द्रिय वशानुग हुई है। (चरक० सूत्र० ८ अ०)

वषट् (सं० अव्य०) १ एक शब्द। इसका उच्चारण अग्निमें आहुति देते समय यज्ञोंमें होता है। अङ्गन्यास और करन्यासमें शिखा और मध्यमाके साथ इसका व्यवहार होता है। वह प्रयुक्त मन्त्र जो तान्त्रिक पूजादिमें द्रव्यविशेष देनेके समय पढ़ा जाता है।

अमरटीकाकार भरत कहते हैं—केवल वषट् ही क्यों स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट् और स्वधा इन पाँच शब्दोंसे ही देवोद्देशसे आहुति देनी होती है ।" इस देव शब्दसे इन्द्रादि देवगण समझना होगा। (ऋक् १०।११५।९)

वषट्कार (सं० पु०) वषट् इत्यस्य कारः करणं यत्र। १ देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यज्ञ, होम, होत्र। २ वेदोक्त तेंतीस देवताओंमेंसे एक। यथा—अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार।

वषट्कारनिधव (सं० क्ली०) साममेद।

वषट्कारिन् (सं० त्रि०) वषट् मन्त्रयोगसे होम करनेवाला।

वषट्कृत (सं० त्रि०) वषड़िति मन्त्रेण कृतं। देवताओंके निमित्त अग्निमें डाला हुआ होम, होम किया हुआ, हुत।

वषट्कृत्य (सं० क्ली०) होम।

वषट्क्रिया (सं० स्त्री०) होमकार्य।

वषट्फल (सं० क्ली०) कक्कोल, कंकोल।

वष्कय (सं० पु०) वष्कते इति वष्क-गतौ बाहुलकात् अयन्। एकहायन वत्स, वकेना बछड़ा।

वष्कयणी (सं० स्त्री०) वष्कय एकहायनो वत्सः तेन नीयते इति नी-क्विप्, गौरादित्वात् ङीष्, णत्वम् (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३) वष्कयिणीति पाठे वष्कयोऽस्त्यस्या इति। 'अत इनि ठनौ' इति इनिः, अट् कुप्वाङिति णत्वम्। चिरप्रसूता गामी, वकेनी गाय।

वष्कयिणी (सं० स्त्री०) वष्कयणी देखो।

वष्टि (सं० त्रि०) कामयमान, पार्थनाकारी। "परिचिद्वष्टयो दधुः" (ऋक् ५।७९।५) 'वष्टयः अस्मानेव कामयमाना।' (सायण)

वसंता (हि० पु०) हरे रंगकी एक सुन्दर चिड़िया। इसका कंठ और सिर लाल होता है।

वसंती (हि० पु०) १ एक रंग जो हलका पीला होता है, सरसोंके फूलके रंगका, वसंती। (वि०) २ वसंती रंगका। वसन्तोत्सवमें इस रंगके कपड़े पहने जाते हैं।

वसअत (अ० स्त्री०) १ विस्तार, फैलाव। २ समाई, अँटनेकी जगह। ३ चौड़ाई। ४ सामर्थ्य, शक्ति।

वसई द्वीप—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत, बम्बई शहरसे ३२ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक द्वीप। अक्षा० १९°२४´ से १९°२८´ उ० तथा देशा० ७२°४८´ से ६४°५४´ पू० पर्यन्त विस्तृत है। इसकी लम्बाई ११ मील, चौड़ाई ५ मील, भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। इस छोटे द्वीपके उत्तरमें दन्तषरा खाड़ी, दक्षिणमें वसई प्रणाली, पश्चिममें अरब समुद्र एवं पूर्वमें समुद्रकी पतली खाड़ी भारतवर्षसे इस द्वीपको पृथक् करती है।

यह छोटा द्वीप अतिप्राचीन कालसे ही क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य, दोनों ही जगत्वासियोंके निकट परिचित है। किसी किसीका मत है, कि यह द्वीप संस्कृत 'वसति' मुसलमानी अमलमें 'वसई' पुर्त्तगीजोंके निकट 'वसईम' (Bacaim) एवं अङ्गरेजोंके निकट 'बेसिन' Bassein नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू पौराणिकोंके मतसे यह पुण्य भूमि परशुरामक्षेत्रान्तर्गत सप्तकोङ्कणके मध्य वरलाटके शामिल है। सह्याद्रिखंडमें केरल, तुलूव, गोराष्ट्र, कोङ्कण, करहाट, वरलाट और वर्व्वर, इन्हीं सप्त द्वीपोंको परशुरामक्षेत्र अथवा सप्तकोङ्कन कहते हैं।

उनमें वसईद्वीप वरलाटके अन्तर्गत है। इसको आयत छोटी होने पर भी तुंगारि, निर्मल, इस द्वीपके कल्याण श्रीस्थान और शूर्पारक नामक सुप्राचीन तीर्थस्थान रहनेके कारण मध्य ऐतिहासिक तथा प्रत्नतत्त्व विदोंके जाननेके लिये यहां अनेक निदर्शन वर्त्तमान है।

तुंगारि प्रभृति पंचक्षेत्र, दाक्षिणात्यके हिन्दुओंके निकट अतिपुण्य तीर्थ तथा मोक्षधाम गिने जाते हैं। किस

प्रकार इन सब तीर्थोंकी उत्पत्ति हुई, इसका संक्षिप्त परिचय पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें दिया गया है।

पद्मपुराणीय तुंगाद्रि-माहात्म्यमें लिखा है—असुर लोग बरलाटमें ब्राह्मणोंके ऊपर बहुत अत्याचार करते थे। ब्राह्मण लोग परशुरामकी शरणमें गये। ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये परशुराम बरलाट आये। असुरगण उनके आक्रमणसे विह्वल हो उठे। उन लोगोंने समुद्रमें छिप कर अपनी आत्मरक्षा की। असुरपति विमल तुंग नामक एक पर्वत समुद्रसे स्थापन कर उसी पर निवास करने लगा। वहां वह महादेवकी तपस्यामें निरत हुआ। शिवने सन्तुष्ट हो कर उसे अमर किया। शिवके प्रसादसे यह स्थान तीर्थस्थान हो गया। विमलने यहां दिव्यलिंग स्थापित किया, उसीका नाम तुंगेश्वर पड़ा।

तुंगाद्रि वर्त्तमान 'तुंगार' पर्वत एवं वायुसेवनके लिये एक श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध स्थान है। इसके पास हो कर रेलवे लाइन गई है।

पद्मपुराणीय निर्मल माहात्म्यमें लिखा है—असुरपति विमलने तुंग पर्वतसे ऋषियोंके मुखसे परशुरामका गुणानुकीर्त्तन श्रवण किया। अपने शत्रुकी प्रशंसा सुन कर उसे बहुत क्रोध हुआ। उसने ऋषियोंके हवनकुण्ड पर एक बड़ा-सा पत्थर ला कर रख दिया। ऋषियोंने महादेवके निकट विमल पर अभियोग चलाया। शिवजीने अपनी प्रतिश्रुति भूल कर विमलको दमन करनेके लिये परशुरामको भेजा। परशुरामके साथ विमलका भीषण युद्ध हुआ। विमल शिवके वरदानसे अजेय था। विमलका मस्तक परशुराम द्वारा बार बार काटे जाने पर भी उसके धरसे जुट जाता था। अन्तमें शिवके परामर्शसे परशुरामने परशु द्वारा विमलको परास्त किया। विमल संग्राममें पतित हो कर परशुरामको स्तुति करने लगा। विमलके मुखसे अपनी स्तुति सुन कर परशुरामको दया आई। उन्होंने उसके पतित होनेके स्थान पर उसके स्मरणार्थ 'विमलेश्वर' नामक एक शिवलिंगकी स्थापना की। परशुरामने उसके विमल नामके बदले उसका नाम निर्मल रखा। उसी दिनसे यह क्षेत्र निर्मल नामसे प्रसिद्ध हुआ।

निर्मल-माहात्म्यके अष्टम अध्यायमें लिखा है—निर्मल क्षेत्रके वैतरणी तीर्थमें जो कार्त्तिक कृष्णपक्षकी एकादशीको स्नान करते हैं, उनका सारा पाप दूर हो जाता है।

पुर्त्तगीजोंके द्वारा विमलेश्वरके सुप्राचीन मन्दिर तथा लिंग विध्वस्त हो गये हैं, अब उनका चिह्नमात्र भी नहीं दीख पड़ता। इसके पूर्व पर्य्यन्त विमलेश्वर कर्णाटकवासियोंका एक प्रधान तीर्थस्थानके नामसे प्रसिद्ध था। ११८३ शक (१२६१ ई०)-में उत्कीर्ण चालुक्यवंशीय श्रीकम्भदेवको ताम्रशासन पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उस समय भी विमलतीर्थ अति प्रसिद्ध था और वहां लिंगकी पूजा होती थी। चालुक्यराजने विमलेश्वर लिंगके उद्देशमें जातकेश्वर नामक एक ग्राम दान किया था। निर्मल माहात्म्यमें यहांके बहुतसे छोटे छोटे तीर्थ और कुण्डोंका उल्लेख है। पुर्त्तगीजोंके अधिकारकालमें इन सब तीर्थोंका लोप हो गया था। उसके बाद मराठोंने इस स्थान पर अधिकार करके विमलेश्वर मन्दिरका पुनः संस्कार किया एवं लिंगके स्थानमें दात्तात्रेयको चरणपादुका स्थापित की। उस समय कितने ही तीर्थोंका पुनरुद्धार हुआ। यहांके अधिवासियोंके दिये हुए धनके द्वारा गुरु शंकराचार्य स्वामीके तत्त्वावधानमें देवसेवाका खर्च चलता था। शंकरस्वामी यहां महीने महीने आया करते थे। इस मन्दिरके पास ही यहांके प्रथम शंकराचार्यकी समाधि है। यहां ब्राह्मणोंके लिये भोजनालय हैं। कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी एकादशीको यहां एक यात्रा वा मेला लगता है। दूर दूर देशोंके यात्री लोग इस मेलेमें सम्मिलित होते हैं।

इतिहास।

यहांका प्राचीन इतिहास अस्पष्ट है। अलेकसन्दरके समयके एरियन प्रभृति ग्रीक् ऐतिहासिकगण पश्चिम भारतका जो संक्षिप्त परिचय दे गये हैं, उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय यह द्वीप सुराष्ट्र या लाटके अन्तर्भुक्त था। एरियनने लिखा है—ग्रीकगण अपने अमलके बहुत पहलेसे ही कल्याणमें वाणिज्य करनेके लिये आते थे। इतना ही नहीं, किसी किसी ऐतिहासिकोंने लिखा है, कि ग्रीकोंने शालसेटी द्वीपमें भी उपनिवेश करनेकी चेष्टा की थी। उनका उद्देश्य था दाक्षिणात्य पर अधिकार करना एवं उन्होंने सोचा था, कि शालसेटीसे

..स पर अधिकार करनेमें पूरी सुविधा होगी। रोमकों-ने इजिप्ट पर अधिकार कर लेनेके बाद भारतीय वाणिज्य पर अपना एकमात्र अधिकार जमा लिया था। इस समय अरब समुद्रमें प्रवेश करनेका अधिकार विदेशियों-का बिल्कुल ही नहीं रहा। ग्रीक ऐतिहासिकने लिखा है, कि उस समय 'सारगनस' (Saraganos) सारंग नामक एक राजा कल्याण, वसई तथा बम्बई प्रभृति स्थानोंके अधिपति थे। ग्रीकोंके साथ उनकी मित्रता थी, किन्तु 'सन्दनेस्' (Sandanes) या चन्दनेशने उनके राज्य पर अधिकार जमा कर विदेशियोंके प्रति वाणिज्य निषेधाज्ञा-की घोषणा की, यहां तक कि कितने ही विदेशियोंको कैद कर कड़े पहरेके साथ भरोच भेज दिया। इस प्रकार ग्रीकोंके निर्वासित होने पर भी रोमकोंने भारतसे वाणिज्य-संसर्ग त्याग नहीं किया। जष्टिनियसके राजत्व-कालमें भी कल्याणका वाणिज्यप्रभाव संसार भरमें प्रसिद्ध था। मिस्रका प्रसिद्ध वणिक् 'कसमस' (Kosmos Indikopleustes) प्रायः ५४७ ई०में कल्याण आये। वे यहां के बहुसंख्यक खृष्टानोंको देख कर बहुत विस्मित हुए। ये सब खृष्टान लोग पारसके नेष्टोरियन विशपके धर्म-शासनाधीन थे। इसके बाद खृष्टीय ७वीं शताब्दीमें चीन परिव्राजक यूएनचुवंग आ कर यहांकी वाणिज्य-समृद्धि ओजस्वनी भाषामें वर्णन कर गये हैं।

इस द्वीपके अन्तर्गत श्रीस्थान या ठाना बहुत पहलेसे ही राजधानीमें गिना जाता था। खृष्टीय ६वीं शताब्दीके शेषभागमें यहां शिलाहार-राजवंशका अभ्युदय हुआ। उनके समयमें श्रीस्थान लक्ष्मी-सरस्वतीका प्रियस्थान था। यहां ही अशेष-शास्त्रविद् जीमूतवाहन राज्य करते थे।

खृष्टीय १३वीं शताब्दी पर्य्यन्त वरलाट शिलाहारवंश-के अधिकारमें था, उसके बाद यह यादवराजवंशके अधि-कारमें चला गया। वसईसे ११६४ तथा १२१२ ई०में उत्कीर्ण यादवराजवंशका शासनपत्र पाया गया है। यादवों-के मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार करने पर कोङ्कणका यह अंश खण्ड खण्डमें विभक्त हो कर महिमके भीमराज, देवगिरिके रामदेव एवं नायक, वंगोलि तथा भंडारी उपाधिधारी सामन्तोंके शासनाधीन हो गया था।

१२९४ ई०में दिल्लीश्वर अलाउद्दीनके निकट रामदेव-के पराजित होने पर थोड़े ही दिनोंके मध्य समस्त दाक्षिणात्य मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया था सही, किन्तु उस समय भी वसईद्वीपपति अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर रहे थे। भिनिसके प्रसिद्ध पर्यटक मार्को पोलो १२९५ ई०में श्रीस्थान आये। वे यहां-की समृद्धि देख कर चमत्कृत हो उठे थे। उन्होंने लिखा है, कि यह स्थान प्रतीच्यके एक सुविस्तृत जनपदकी राजधानी था। यहांके राजा स्वाधीन थे। यहांके अधिवासी पौत्तलिक कहलाते थे। वे लोग देशीभाषा-में बातें करते थे। उनके समयमें यहां उत्कृष्ट चर्म तथा कपासके साज, मसलिन एवं सोना चांदीका व्यापार होता था। श्रीस्थानमें नदीसे जलदस्युगण बाहर हो कर यथेष्ट अत्याचार करते थे।

१३११ ई०में मुसलमान विजेतृगणकी तीव्रदृष्टि इस अञ्चल पर पड़ी। उनके उपद्रव तथा अत्याचारसे बहुत दिनों तक यहांके अधिवासीगण विपत्ति-सागरमें गोता लगाते रहे। उस समय केवल वहांके वाशिन्दे ही नहीं वरन् कितने ही विदेशी धर्मप्रचारकगण भी अपने जीवनसे हाथ धो बैठे। १३३० ई०में प्रिउली-निवासी संन्यासी ओदेरिक (Friar Oderic of Priuli) वर्णन कर गये हैं, कि १३२० ई०में फ्रान्सिस्कान् खृष्टीय सम्प्र-दायभुक्त जर्डनस् (Jordanus) नामक एक संन्यासीने अपने साथी चार यतियोंको समाधिस्थ करनेके बाद मुसलमानोंके हाथसे जीवन विसर्जन किया था। ओदेरिक अपनी स्वदेशयात्राके समय उस सब खृष्टान साधुओंकी हड्डियाँ जहाजमें भर कर अपने साथ ले गये। वे कुछ दिनोंके बाद फिर भारतमें आये। वे बहुत-से सह-चरोंके साथ वसईद्वीपमें ही कालयापन करने लगे। उस समय मुसलमान काजीगण विदेशियोंके ऊपर किस तरह अत्याचार करते थे, 'ओदेरिक्' उसे लिपिबद्ध कर गये हैं। विशप जेरोनिमो ओजेरियो (Jeronimo Ozrio) ने लिखा है, कि उन सब फ्रानसिस्कान साधुओंने करञ्ज द्वीपमें एक सुवृहत् खृष्टमन्दिरकी स्थापना की थी। लेवनार्दो पायस (Leonardo Paes) नामक खृष्टान लेखकके वर्णनसे जाना जाता है, कि करञ्जद्वीपमें नीले

पत्थरकी बनी कुमारी 'मेरी' की एक सुन्दर मूर्त्ति थी। पुर्त्तगीज उसे "Nossa Senhor da Pensa" कहते थे। पीछे पुर्त्तगीजोंके अधिकारकालमें करञ्जद्वीप उक्त पुर्त्तगीज नामसे ही विख्यात हुआ।

१५०६ ई०में पुर्त्तगीज वणिक्‌गण वसई उपकूलमें दिखाई पड़े। इसके १७ वर्षके बाद यहाँ पुर्त्तगीजोंने व्यापारकी कोठियां बनाईं। डुआर्त्तमे बर्बोसाकी विवरणीसे जाना जाता है, कि उस समय वसई शहर गुजरातके मुसलमान राजाके अधिकारभुक्त एक वाणिज्यकेन्द्र था। दूर दूरके देशोंसे जहाज आ कर यहां ठहरता था। मालवके उपकूलसे नारियल तथा नाना प्रकारके गरम मसाले यहां आते थे।

१५३० ई०में पुर्त्तगीजोंने वसई द्वीप आ कर थ्रोस्थान तथा कल्याण पर आक्रमण किया एवं उन पर अधिकार जमा कर कर वसूल किया। इससे गुर्जरपति बहादुरशाहके साथ उनकी लड़ाई हुई। बहादुर शाह कतिपय असुविधाएं देख कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। इस सन्धिमें बहादुरशाहसे बम्बई, महीम, द्वीऊ, दमन, चेउल तथा वसई द्वीप पुर्त्तगीजोंके हस्तगत हुए एवं अरब-समुद्रमें वाणिज्यकर वसूल करनेका अधिकार प्राप्त हुआ।

१५३६ ई०में नूनू भाई कुन्हाने वसईद्वीपके दक्षिणांशमें एक दुर्ग निर्म्माण कर अपने शाला गार्सिया डीसाको दुर्गाध्यक्ष बनाया। ज्वावं डी काष्ट्रकी मृत्युके बाद उक्त दुर्गाध्यक्ष ही १५४८ ई०में पुर्त्तगीज अधिकारके गवर्नर-जेनरल हुए।

पुर्त्तगीजोंके लिखे हुए इतिहाससे जाना जाता है, कि वसई दुर्ग सुदृढ़ पत्थरकी दीवारोंसे घिरा था। वह किला ११ बुर्जोंसे सुशोभित था एवं उसमें ९० कमान संयोजित थे। इसके अलावे इस द्वीपमें और भी जितने छोटे छोटे किले थे उनमें १२७ कमान रहते थे। यहांके बन्दरगाहकी रक्षा करनेके लिये २१ कमानवाही समुद्रपोत हमेशा तय्यार रहते थे, एक एक पोतमें १६ से १८ तक कमान लेते थे।

पुर्त्तगीज अधिकारमें भी वसईद्वीप बहुत उन्नति पर था। यहां बड़े बड़े धनी वणिकोंका निवास था। उस समय यहां जितने विदेशी पर्य्यटक तथा लेखक उपस्थित हुए थे, उनकी लिखी हुई विवरणी द्वारा जाना जाता है, कि यहांकी सड़कें यथेष्ट चौड़ी थीं, विपणीके मध्य ऊंचे ऊंचे भवन बने थे। नगरके चारों ओर आम्र, ताल तथा इक्षु प्रभृतिका उद्यान था, ग्रामोंके चारों पार्श्वमें हरे भरे शस्यक्षेत्र थे। खृस्तान, मुसलमान तथा हिन्दू इन तीनों जातियोंकी प्रजाके उद्योगसे यहांका कृषिकार्य सम्पन्न होता था। यहां गृह-निर्म्माणोपयोगी उत्कृष्ट काष्ठके वृक्ष तथा दानेदार पत्थर उत्पन्न होते हैं। स्थानीय तथा गोआके सुवृहत् गिर्जाघर एवं प्रासादादि यहांके पत्थरोंसे ही बने हुए हैं। वर्त्तमान समयमें जिस तरह लोग प्लेगसे मरते हैं, खृष्टीय १७ वीं शताब्दीके शेषभागमें इसी तरहका प्लेग वसईद्वीपमें दिखाई दिया था, उससे कुछ ही दिनोंके अन्दर वसई-शहर एक समय प्रायः जन शून्य हो गया था। उसके बाद फिर इस शहरमें लोगोंके समागम होने पर भी इसका उत्तर भाग (समस्त नगरका प्रायः तिहाई अंश) बहुत समय तक जनशून्य था।

पुर्त्तगीजोंकी आधिपत्यवृद्धिके साथ साथ खृस्तान धर्म्मकी भी यथेष्ट उन्नति हुई। वे अपने धर्म्मावलम्बी व्यक्तियोंके अतिरिक्त सभी जातियोंके लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। खृस्तानोंके मध्य भी जो लोग धर्म-पालन नहीं करते थे, उन्हें वे लोग कारारुद्ध कर बहुत कष्ट देते थे। वसई कारागारमें इस प्रकार बहुतसे खृस्तान तथा अन्य धर्म्मावलम्बी लोग कष्ट भोगते थे। क्रमसे यहांके शासनकर्त्ताने नियम बना दिया, कि खृस्तानके सिवाय और किसी जातिके लोग इस शहरमें वास नहीं कर सकते। सम्भ्रान्त हिन्दू मुसलमानोंको भी इस शहरमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं रहा। यहां तक कि खृस्तानके अतिरिक्त और किसीके साथ पुर्त्तगीजकी जमीन तथा जमाका बन्दोवस्त एवं ऋण आदान-प्रदान वा किसी प्रकार वैषयिक अथवा राजनैतिक कार्य कोई नहीं कर सकता था। खृस्तान लोग सुविधा पा कर क्या हिन्दू क्या मुसलमान, दोनोंको बलपूर्वक खृस्तान बना लेते थे। जो खृस्तानधर्मकी आचार-विधि पालन नहीं करता था, उसे दण्ड देते थे। यहांके अधिवासियोंने इस प्रकार पीड़ित हो कर दिल्लीश्वरके निकट खृस्तानों पर अभियोग चलाया। दिल्लीश्वरने इन धर्मान्ध पुर्त्तगीजोंको दण्ड देने का भार मराठोंको दिया।

मराठी सेनाने पहले अर्नल नदीके पारवर्त्ती नामक

एक छोटे किले पर अधिकार कर लिया। इस समय करञ्जकी रक्षाके लिये शालसेटीके शासनकर्त्ता लुई-डी-वटेलहो, वसई दुर्गकी रक्षाके लिये कप्तान पेरिरा एवं वन्दोराके सेनावासकी रक्षाके लिये कप्तान केराज नियुक्त हुए। इधर भोंसलेने गोआ पर आक्रमण किया। महाराष्ट्र-सेनापति चिमनाजी अप्पा बहुतसे सैन्य-सिपाहियोंके साथ दुर्ग भेद कर पुर्त्तगीजों-के सम्मुख युद्धके लिये अग्रसर हुए। दूसरी ओर मराठी सेनाने शालसेटीको घेर लिया एवं वरसोआ तथा धरावी द्वीप दखल कर वसईके पूर्वांशकी खाड़ीका रास्ता रोक रखा। किलेके चारों ओरसे घिर जानेके कारण पुर्त्तगीजों-को बाहरी सहायताकी भी आशा न रही। १७३९ ई०की १७वीं फरवरीको मराठी सेनाने वसई दुर्गको घेर लिया। लगभग तीन महीने तक किलेके घिरे रहनेके बाद पुर्त्तगीज लोग आत्म-समर्पण करनेको वाध्य हुए। इस पराजयके साथ ही पुर्त्तगीजोंके गौरव-सूर्यका अस्त हुआ। थोड़े ही दिनोंके अन्दर पुर्त्तगीजोंने अपने धनके साथ चिरकालके लिये इस नगरीका परित्याग किया।

वसई मराठोंके हस्तगत होने पर भी यहांकी राज-धानीका सौन्दर्य नष्ट नहीं हुआ। कुछ ही दिनोंके अन्दर एक 'सरसूबा' नियुक्त हुए एवं वाणकोट नदीसे ले कर दमन पर्यन्त सारे देश उनके शासनाधीन हुए। इस समय वसई नगरमें सम्भ्रान्त हिन्दुओंका वास नहीं था, यहांके अधिकांश अधिवासी पुर्त्तगीजोंके अत्या-चारके भयसे खृस्तान हो गये थे। पेशवा माधवरावने उन्हें फिर हिन्दू समाजमें लानेके लिये कितने ही ब्राह्मण नियुक्त किये। उन ब्राह्मणोंके भरणपोषणके लिये प्रजा पर एक कर लगाया। पेशवाकी इस सहृदयतासे बहुतसे जातिच्युत हिन्दू प्रायश्चित्त कर फिर हिन्दू समाजमें आ गये। क्रम क्रमसे महाराष्ट्र तथा गुर्जरसे बहुतों सम्भ्रान्त लोग यहां आ कर बस गये। उनमें प्रभुकायस्थ लोग ही प्रधान थे। इस समय भी वसई शहरमें प्रभुकायस्थ लोग ही धन जनमें श्रेष्ठ हैं।

वर्त्तमान वसई शहर बाजीरावके नामानुसार बाजीपुरके नामसे विख्यात है। इसे वसई जिलेके अन्त-र्गत १६१ मौजे हैं। इन सब ग्रामोंके मध्य खानिवड़ेमें एक छोटा-सा वन्दर है, दक्षिण-पूर्व माणिकपुर महलमें एक रेलवे स्टेशन है, उत्तरमें अघनासी वा अगासी महाल, सयवनमें प्रसिद्ध दुर्ग, पर्वतमय तुंगारिमें प्रसिद्ध तुंगा-रेश्वर मंदिर, निर्मलमें प्रसिद्ध विमलेश्वरतीर्थ, सुपारमें प्राचीन तीर्थ तथा प्रसिद्ध वन्दर है। बाजीपुरके निकट-वर्त्ती पापरग्राममें बहुतसे चित्पावन, कराढ़ और देशस्थ ब्राह्मण एवं पलसा, सोनार प्रभृति दूसरे दूसरे निम्न श्रेणीके लोगोंका वास है। वार्षिक राजस्व प्रायः १८०३०) रुपये हैं।

१७८० ई०में अंग्रेज सेनापति गडार्डने १२ दिन घेरा डाल कर वसई पर अधिकार जमाया। इसके वाद १७८२ ई०में सलवाईको सन्धिके अनुसार इष्ट-इंडिया कम्पनीने मराठोंका यह स्थान छोड़ दिया। अन्तमें १८१८ ई०में पेशवाको पदच्युत करके उनके दूसरे दूसरे अधिकारके साथ साथ वसई द्वीपको भी बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्भुक्त किया।

१८४० ई०में वसईके पार्श्ववर्त्ती कल्याण-खाड़ीमें बांध तैयार करनेके लिये कोर्ट आव डाइरेक्टरने हुकम जारी किया। इस बांधके होनेसे अब समुद्रका पानी ऊपर नहीं आता, इससे बहुत-से जमीनका उद्धार हुआ है। १८७२ ई०में रेलवे कम्पनीने लोहेका एक सुदृढ़ पुल तैयार कर वसईको बम्बईके साथ संयोजित कर दिया है। महाराष्ट्रके अधिकारमें आने पर जिस तरह यहांके बहुतसे प्राचीन हिन्दूतीर्थोंका उद्धार हुआ, उसी तरह पुर्त्तगीजोंकी अनेकों कीर्त्तियां नष्ट हो गई, उनमें १० प्राचीन गिर्जोंका पुनरुद्धार खृस्तान पादरियों द्वारा हुआ। इन सब गिर्जोंके कारुकार्य्य तथा शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है।

डिपो द्रो कोटोने लिखा है, कि पुर्त्तगीजोंने वसई पर अधिकार करके वहांके मन्दिर पलीफण्टा)का विध्वंस किया। उन लोगोंने मन्दिरके सिंहद्वार पर एक पत्थर-लिपि खोदी देखी। वहांसे ला कर पुर्त्तगीज गवर्नरने हिन्दू मुसलमान द्वारा उसे पढ़ानेकी चेष्टा की। किन्तु जब कोई पढ़ न सका, तब उन्होंने उसे पुर्त्तगालके राजाके पास भेज दिया। पुर्त्तगीजपति डो जोआँवने उसे पढ़ाने-की बड़ी चेष्टा की, परन्तु चेष्टा व्यर्थ हुई। अन्तमें १७६५

ई०में जेम्स् मर्फीने अपनी 'पुर्त्तगाल-भ्रमण' पुस्तकमें उक्त शिलालिपिकी प्रतिकृति प्रकाश की है। उनकी इस पुस्तक द्वारा पता चलता है, कि उस समय यह वसई-द्वीप बहुत ही उन्नत दशामें था। इस समय भी वसई अति उर्वर तथा शस्यशाली भूभाग गिना जाता है। यहां ईख, धान तथा ताम्बूलकी यथेष्ट खेती होती है।

स्वास्थ्यकर स्थान होनेके कारण बहुत-से लोग वायु परिवर्त्तनके लिये यहां आते हैं।

वसति (सं० स्त्री०) वस निवासे भावाधिकरणे अति। (वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चित्। उण् ४।६०) १ वास, रहना। २ निकेतन, घर। ३ जैनसाधुओंका मठ। ४ यामिनी, रात। ५ बस्ती, आबादी।

वसतिद्रुम (सं० पु०) वृक्षभेद।

वसती (सं० स्त्री०) वसति कृदिकारादिति ङीष्। १ वास, रहना। २ यामिनी, रात। ३ निकेतन, घर।

वसतीवरी (सं० स्त्री०) सोम बनानेके समय व्यवहार्य पानीयभेद।

वसन (सं० क्ली०) वस्यते आच्छाद्यतेऽनेनेति वस-ल्युट्। १ वस्त्र। २ छादन, आवरण, ढकनेकी वस्तु। वस-आधारे ल्युट्। ३ निवास। ४ स्त्रियोंकी कमरका एक आभूषण। (क्ली०) ५ तेजपत्र, तेजपत्ता। (स्त्री०) ६ पीतकार्पास, पीली कपास।

वसनमय (सं० त्रि०) वस्त्रमय। (लाट्यायन ८।११।२३)

वसनवत् (सं० त्रि०) वसनशाली, वस्त्रधारी।

वसनवीरपुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकान्था विभागके संखेड़मेवासके अन्तर्भुक्त एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार दहिमा जितवारा नामसे परिचित हैं। राजस्व दश हजार रुपया है जिनमेंसे सालाना ४३२) रु० वे बड़ोदाके गायकवाड़को करस्वरूप देते हैं।

वसनसेवदा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकान्था विभागके संखेड़मेवासके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदारवंश राठोर कालूबाबू नामसे विख्यात हैं। ५७१०) रु० सालाना बड़ोदाराजको करमें देना होता है।

वसना (सं० स्त्री०) वस-युच्-टाप्। स्त्रीकटीभूषण, स्त्रियोंकी कमरका एक आभूषण।

वसनार्ण (सं० क्ली०) वसन-ऋण। कपड़ेका छोर, पाड़।

वसनार्णवा (सं० स्त्री०) भूमि, पृथ्वी।

वसनार्ह (सं० त्रि०) १ वसन योग्य। (पु०) २ गार्हपत्य या वासकादि आच्छादक वृक्षनाशक अग्नि।

(ऋक् १।११२।३)

वसन्त (सं० पु०) वसन्त्यत्र मदनोत्सवा इति वस-झच् (तृभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च। उण् ३।१२८) इति अच्। ऋतुविशेष। मलमासतत्त्वमें उद्धृत श्रुति-निर्देश इस तरह है—"मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतुः" अर्थात् चैत्र एवं वैशाख, ये दो महीने वसन्तऋतु हैं। कोई कोई फाल्गुन तथा चैत्रको वसन्तऋतु कहते हैं।

इसका पर्य्याय—पुष्पसमय, सुरभि, मधु, माधव, फल्गु, ऋतुराज, पुष्पमास, पिकानन्द, कान्त तथा कामसख।

केवल कविकी कल्पना अथवा वर्णनामें ही वसन्तकी रमणीयता नहीं पाई जाती, सचमुच ही वसन्तके आगमनसे प्रकृतिका रूप अत्यन्त ही मनोहर, अत्यन्त ही रम्य एवं नयनतृप्तिकर हो उठता है। ज्यों ही वसन्तका आगमन हुआ, कि सारा संसार सौन्दर्य्य-सागरके स्निग्ध जलमें डूब गया। ऐसा कोई मानव मानवी नहीं, ऐसा कोई कीट-पतंग नहीं, ऐसा कोई थल-चर नभचर जीव जन्तु नहीं देखा, जिसके हृदयमें वसन्तके आगमन समय प्रकृतिका प्रफुल्ल एवं मुकुलित नूतन कलिकाके समान सुन्दर, सुवासयुक्त मुखड़ा देख कर आत्मतृप्ति वा आत्म-प्रसादके सुखशान्ति सलिलकी धाराका प्रवल प्रवाह गरज न उठे। और तो क्या, वसन्तमें प्रकृतिकी ऐसी महिमा होती है, कि चिररुग्न, चिरभग्न, चिरविषादमग्न प्राणियोंके मनमें भी आनन्दकी ज्योति जगमगा उठती है। युवकयुवतीकी तो बात ही क्या, बूढ़ेसे बूढ़े व्यक्ति भी वासन्ती प्रकृतिकी प्रमोद-प्रवर्त्तनासे अपने आपको भूल जाते हैं।

धन्य वसन्त-देव! तुम्हारी महिमाकी बलिहारी है। तुम्हारे प्रतापसे भव प्राणियोंको शीत-निश्चरके कठोर स्पर्शकी असह्य उत्पीड़ना सहनी नहीं पड़ती एवं ग्रीष्म-दैत्यके उत्तप्त अत्याचार भी भोगने नहीं पड़ते। वस-न्तागमनसे आकाश तथा दिशाएं प्रसन्न हो उठती हैं। दिनमें न तो अधिक उष्णता है, न तो अधिक ठंढक।

यामिनी प्रमोदना एवं ऊषा मधुरहासिनी होती हैं। जल निर्म्मल एवं पथ सुगम हो जाते हैं। स्थलमें स्थल-पद्म तथा जलमें जल-पद्म प्रस्फुटित होते हैं। कलियां चटक जाती हैं। वनस्थली अलि समुदायकी मधुर झंकारसे गूँज उठती है। मलय-समीर मन्द मन्द चालसे प्रवाहित होती है। स्निग्ध-मधुर तरुलताकुल नाना जातीय प्रचुरतर कुसुमभारसे झूम जाती हैं। कुसुमोंके सौरभसे वन, उपवन, उद्यान प्रभृति आमोदित हो उठते हैं। लताओंके नये नये पल्लव, फल, फूल, एवं कलियोंसे वासन्ती वनभूमि नवीन साज, नवीन वेषमें सुसज्जित हो कर सदैव हास्यमयी बनी रहती है। चन्द्रदेवकी दुग्धस्निग्ध ज्योत्सना, पक्षियोंके कलकूजन, कोकिलकी 'कुहू—कुहू' मलय समीरका मृदु-मन्द हिल्लोल, सुमनोंका सौरभ, अशोककी शोकहर सुषुमा, सभी इस समय हृदयमें अपार आनन्द पहुंचाती हैं। इसीलिये भारतके प्राचीन कवियोंने अपनी अपनी वर्णनामें वसन्तऋतुको सर्वालंकार-सुसज्जिता एवं रूप यौवन सम्पन्ना ऋतुराणी कहा है।

यह भारतवर्ष ही वसन्तऋतुकी माधुरी महिमा पूर्ण लीलाभूमि है। इसीलिये मदनोत्सव-वा वसन्तोत्सवादि वसन्तऋतुके अनुरूप अनुष्ठानादि इस भारतवर्षमें ही सर्वप्रथम प्रचलित हुई, किन्तु धीरे धीरे कालके उलट फेरसे उन उत्सव अनुष्ठानादिके लुप्तप्राय हो जाने पर भी इस सर्वप्राचीन सभ्यदेशके कई स्थानोंमें वसन्तोत्सव मनाया जाता है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तकालके अधिष्ठातृ देवकी उत्पत्ति सम्बन्धमें पौराणिक उपाख्यान इस तरह है—

एक समय विधाताके आह्वानसे मन्मथ उनके समीप आकर बोला—विभो! मैं आपके आदेशानुसार त्रिपुरहर हरके मोहविधानमें समर्थ हूं, किन्तु कामिनी ही मेरा महाअस्त्र है। वही महास्त्र कामिनी आप सृष्टि करें। जिस समय मैं शम्भुको सम्मोहित करूंगा, उस समय वह कामिनी महादेवको बीच बीचमें और भी मुग्ध कर रखेगी सुतरां इस कठोर तपस्वी शिवको सम्मोहन करनेके लिये कामिनीकी बड़ी आवश्यकता है। किन्तु इस समय जितनी कामिनियां हैं, उनमें हरके मनको मोहनेवाली एक भी कामिनी मैं नहीं देखता। अतएव हे विधाता! आप कर्त्तव्य सम्पादनके लिये आपको ही कोई उपाय विधान करना होगा।

कन्दर्पकी बातें सुन कर किस तरह शिवको सम्मोहित किया जायगा, इसकी चिन्तासे विधाता व्याकुल हुए। चिंता करते करते उनका एक निश्वास निर्गत हुआ, उसी निश्वाससे कुसुमसमूह-भूषित वसंतकी उत्पत्ति हुई। चुताङ्कुर, चुतकलिका, भ्रमरसमुदाय एवं किंशुक प्रभृति वसन्तके हाथमें विराजमान थे। उस समय वसन्त एक प्रफुल्ल पादपवत् शोभित हुआ। उसकी आकृति रक्त कोकनदनिभ, दोनों नयन प्रफुल्ल पंकजवत् सुशोभित, मुखमंडल सन्ध्योदित पूर्ण शशाङ्कको तरह समुज्ज्वल, नासिका सुन्दर, कर्णविवर शंख सदृश, केशकलाप कुञ्चित एवं श्यामवर्ण, कर्ण कुण्डल अस्तोन्मुख अंशुमालीकी तरह समुज्ज्वल एवं वक्षस्थल विस्तीर्ण था। इनके अतिरिक्त उसकी गति मत्त मातंगवत्, दोनों भुजदंड पीन स्थूल तथा आयत, करद्वय कठिनस्पर्श, कटि एवं जंघा सुवृत्त, ग्रीवा कम्बुवत्, स्कन्ध उन्नत, जत्रुदेश गूढ़ एवं हृदयदेश सर्व सुलक्षणसे परिपूर्ण था।

इस तरह सर्व सुलक्षणयुक्त सुकुमाराकृति वसन्त के उद्भव होते ही शीतल मन्द सुगन्ध समीर प्रवाहित होने लगा, द्रुमराजि कुसुमित हो उठी, कलकंठ कोकिलसमूह पंचम सुरसे गाने लगे, सरोवरोंका जल स्वच्छ मोतीके समान झलक उठा एवं उस स्वच्छ सलिलमें करोड़ों शतदल (पद्म) प्रस्फुटित हुए।

(कालिकापु० ४ अ०)

हरसम्मोहनके समय वसन्तने किस तरह कन्दर्पकी सहायता की थी, इसके सम्बन्धमें उक्त पुराणोंके सातवें अध्यायमें लिखा है कि मदन जिस समय हरका धैर्यहरण करनेको उद्यत हुआ, उस समय वसन्तने हरके एकान्त आश्रमके चारों ओर किंशुक, केतक, वकपुन्नाग, नागकेशर, माधवी, मल्लिका, पर्णसार तथा कुरवक प्रभृति पुष्पोंको प्रस्फुटित कर दिया। वसन्तकी सहायतासे स्वच्छ सरोवरोंमें कमलवृन्द मुस्कुरा पड़े, शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगी, उससे शंकरका समूचा आश्रम सुगन्धमय हो उठा।

लताराजिने नव पल्लव, नये कुसुम तथा नई नई कलियों-से सुसज्जित हो कर पार्श्वस्थ पुष्प वृक्षोंके गले जकड़ लिये, वहांके सुर, सिद्ध तथा अन्यान्य तपस्वियोंके हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये, किन्तु कठोर संयमी महादेवका आसन तब भी नहीं टला।

(कालिकापुराण ७ अ०)

वसन्तकालके कविवर्णनीय विषय ये हैं—

"सुरभौ दोला-कोकिलमारुत-सूर्यगतितरुदलोद्भिदाः।
जातीतरपुष्पचयाममंजरीभ्रमरझंकाराः॥"

(कविकल्पलता १ स्तवक)

वसन्तकालके गुण—कषाय, मधुर तथा रूक्ष। (राजनि०) हेमन्तकालमें श्लेष्मा उपचित होती है, वसन्तकाल आने पर वह प्रकोपित हो उठती है। इस समय वायु एक तरहसे प्रशमित हो जाती है।

हारीतसंहितामें लिखा है—वसन्तके समय प्रमुदित कोकिलोंकी कूकसे अरण्य, उद्यान गूंज उठते हैं, सुन्दर किंशुक कुसुम कलिकाएं मदनागमनकी सूचना देती हैं। वन, उपवन तथा पर्वतश्रेणियां फूलोंके सुवाससे सुवासित हो उठती हैं। मत्त मधुपसमुदाय मधुके लोभसे पुष्पोंसे लदे हुए विटपों लताओं तथा छोटे छोटे वनस्पतियों पर चक्कर लगाया करते हैं। पशु पक्षी तथा मनुष्य सभी प्राणी मदनवाणसे वेधे जाते हैं, स्वास्थ्यकर मलय-समीर प्रवाहित होती है, कहनेका तात्पर्य यह है, कि सारा संसार ही इस समय प्रफुल्लित हो उठता। किन्तु वसन्त-ऋतु कफवर्द्धक होती है, सुतरां इस समय कफ प्रकोपको दवाये रखनेके लिये वमनादि तथा रूक्षसेवन अत्यन्त प्रयोजनीय है। इनके अतिरिक्त सर्वदा आनन्द मनाना, क्रीड़ाजनित परिश्रम करना इत्यादि भी कफनिवारणका प्रधान उपाय है। कफके उपचारमें कटु, क्षार तथा अम्ल पदार्थ सेवन करना उचित है। इस समय व्यायामादि शारीरिक परिश्रम करनेसे भी स्वास्थ्यको बड़ी वृद्धि होती है।

चरकसूत्रोंमें लिखा है, कि हेमन्तकालमें श्लेष्मा संचित होती है, वसन्तऋतुमें वह सूर्य-करस्पर्शसे दूषित हो कर पाचनशक्ति नष्ट कर देती है। सुतरां इस समय वमनादि द्वारा श्लेष्माका नाश कर देना चाहिये। इस समय लघुपाक, कटु-तिक्त-कषाय लवण रसयुक्त अन्नादि, हरिण, खरगोश आदिका नर्म मांस तथा जौ, गेहूं एवं अभ्यस्त होने पर दाख आदिका पुराना मद्यादिपान एवं स्नान, पान, आचमन तथा शौचादि कार्यमें कुछ उष्ण जलका व्यवहार करना चाहिये। अगर-चन्दनादि अनुलेपन एवं पहननेके कपड़े तथा शय्यादि हेमन्तकालकी तरह व्यवहार करना उचित है। युवती स्त्रीके साथ सहवास तथा अरण्यकी रमणीयता उपभोग करना इस समय अच्छा है। गुरुपाक, स्निग्ध एवं अम्ल तथा मधुर रसयुक्त पदार्थ भोजन तथा दिनका सोना प्रभृति वसन्तकालमें अनिष्टकारक है।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत षष्ठ अध्याय एवं वाग्भटसूत्रस्थान तृतीय अध्यायमें भी वसन्तचर्य्याका विषय उल्लिखित है, विस्तार हो जानेके भयसे वे सब बातें यहां नहीं लिखी गई।

वसन्त (सं० पु०) १ अतिसार। २ छः रोगके अन्तर्गत द्वितीय रोग। संगीतदामोदरमें लिखा है, कि ६ राग एवं ३६ रागिणी हैं। पूर्वोक्त ६ रागोंके मध्य वसन्त एक राग है।

संगीतदर्पणके मतानुसार पंचवक्त्र शिवके वामदेव नामक द्वितीय वक्त्रसे इस रागकी उत्पत्ति हुई थी।

श्रीराग, वसन्त, भैरव, पंचम, मेघराग तथा वृहन्नाट, ये ६ राग पुरुषपद-वाच्य है। इन सब रागोंके मध्य प्रत्येक रागकी अनुगामिनी छः छः रागिणी हैं। जैसे—देशी देवगिरी (देवकिरी), वैराटी, तोड़िका, ललिता तथा हिन्दोला। इसी तरह दूसरे दूसरे रागोंकी भी रागिणी हैं। कल्लिनाथके मतानुसार वसन्तरागकी अनुगामिनी छः रागिणीके नाम पृथक् हैं। जैसे—आन्धुली, गमकी, पटमंजरी, गौड़करी, धामकली तथा देवशाखा। संगीतदामोदरमें वसन्तरागकी अनुगामिनीमात्र पांच रागिणीका उल्लेख देखा जाता है।

वसन्तरागका सुरक्रम जैसे—

"सा, रे, ग, म, प, ध, नी, स"।

इस रागके गानेके समय-सम्बन्धमें संगीतदामोदरमें व्यक्त है, कि श्रीपंचमीसे आरम्भ करके हरिके

शयन पर्य्यन्त जितना समय है, उतने समयके अन्दर ही संगीततत्त्वविदोंने वसन्तराग गानेका समय निर्द्धारण किया है।

संगीतदर्पणके मतानुसार वसन्तानुगामिनी रागिणी-के साथ वसन्तराग वसन्तऋतुमें ही गाना चाहिये। दिन रातके मध्य वसन्तराग गान करनेका समय प्रभातसे आरम्भ होता है।

वसन्त रागके आकार, ताल, लय, सुर-क्रम तथा समयादिके सम्बन्धमें बंगाली संगीत-कवि राधामोहन-सेन दास कृत संगीततरंग ग्रन्थमें संक्षेपसे वर्णन किया गया है। :

वसन्त (सं० पु०) १ पुराण तथा नाटकोक्त प्रसिद्ध ऋतु-पति देवताभेद। ये कामदेव तथा मदनके चिर सहचर हैं। वसन्तदेवके आगमनसे पृथ्वी सचमुच ही माधुरी-मालासे परिप्लावित हो कर हर्षोत्फुल्ल हो उठती है। नवीन श्यामल शस्यक्षेत्रनिचय चूतमुकुल कलिकाकीर्ण नव किशलय समूह कोमलपत्रवल्लियोंके मध्य नवीन रागसे रञ्जित हो कर मानों उन्हींकी दयासे अपूर्व श्री धारण कर रहे हैं। उसी वसन्तऋतुकी प्रेरणासे घरवासी वसन्तकालकी महिमा अनुभव करते हैं।

२ रोगभेद (Small pox) [मसूरिका देखो।] ३ एक तालका नाम। ४ फूलोंका गुच्छा।

वसन्तक (सं० पु०) वसन्त संज्ञायां कन्। १ पृथु-शिम्ब, श्योनाक, सोनापाढ़ो। २ कथासरित्सागर-वर्णित रुम-ण्वानके नर्मसुहृद्के पुत्र।

वसन्तकाल (सं० पु०) वसन्तः कालः कर्मधा०। वसन्त ऋतु, वसन्तका समय।

वसन्तकुसुम (सं० पु०) वसन्ते कुसुमं यस्य। वृक्षविशेष।

वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) वृक्षविशेष।

वसन्तकुसुमाकर (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—मूंगा, रससिन्दूर, मुक्ता, अभ्र प्रत्येक ४ भाग, लोहा, सीसा, राँगा प्रत्येक ३ भाग इन सबोंको एक साथ अड़ूस, हल्दी, ईख, पद्म, चन्दन और कदलीमूलके रसमें, दूध तथा मृगनाभिके काढ़ेमें यथा-क्रमसे सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनानी होती है। दोषानुसार अनुपान स्थिर करना होता है। इसका सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति होती है।

वसन्तकुसुमाकररस (सं० पु०) १ कासाधिकारमें एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—सोना २ भाग, चांदी २ भाग (चांदीके बदले कोई कोई कपूर व्यवहार करते हैं), रांगा, सीसा, लोहा प्रत्येक ३ भाग, अभ्र, मूंगा, मुक्ता प्रत्येक ४ भाग, इन सबोंको एक साथ मल कर यथाक्रमसे गायका दूध, ईक्षुरस, अड़ूसकी छालका रस, लाक्षाका काढ़ा, पथरचूरका काढ़ा, कदलीमूलका रस, मोचाका रस, पद्मका रस, मालती फूलका रस और मृगनाभि इन सब द्रव्योंसे भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान घी, चीनी और मधु है। यह मेहरोगकी सबसे फायदेमन्द औषध है। इससे बहुत रोग दूर होते हैं। चीनी और चन्दनके साथ सेवन करने-से अम्लपित्त आदि अनेक पीड़ा दूर होती है।

२ सोमरोगाधिकारमें एक प्रकारकी दवा। इसके बनानेकी तरकीब—वैक्रान्त (चुन्नी) १ भाग, सोना, अभ्र, मुक्ता, मूंगा प्रत्येक २ भाग, रांगा ३ भाग, रस-सिन्दूर ४ भाग इन्हें नीबूके रसमें, गायके दूधमें, खस-खसकी जड़के काढ़ेमें, अड़ूसकी छाल और इक्षुरसमें सात बार भावना दे कर दो रत्तीकी गोली तैयार करे। इसका अनुपान मधु है। इससे सोमरोग, बहुमूत्र, प्रमेह, तृष्णा, दाह तथा अन्यान्य रोग प्रशमित होते और बलकी वृद्धि होती है। यह उत्कृष्ट रसायन औषध है।

वसन्तगढ़—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक प्राचीन दुर्ग। प्रवाद है, कि ११९२ ई०में पनाला-राज-वंशके किसी एक राजाने यह दुर्ग बनवाया था। पीछे महाराष्ट्रीय अभ्युदयमें वह शिवाजी महाराजके अधीन चला गया। फिर १६९८ ई०में राजारामके निकटसे मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबने तीन दिन घोर युद्ध करनेके बाद यह दुर्ग अपने मातहतमें कर लिया। बहुत दिनोंसे यह दुर्ग दुर्भेद्य कह कर ख्यात थो। सम्राट् दुर्गजयके बाद उसका नाम "कुलोइ-ई-फते" रखा गया।

वसन्तगन्धिन् (सं० पु०) बुद्धभेद। (ललितविस्तर)

वसन्तघोषिन् (सं० पु०) वसन्ते वसन्तकाले घोषति विरौति, यद्वा, वसन्तं घोषयति विज्ञापयतीति वसन्त-घुष-णिनि। कोकिल।

वसन्तज (सं० त्रि०) वसन्ते जायते इति जन-ड। वसन्त-कालोत्पन्न।

वसन्तजा (सं० स्त्री०) १ वासन्ती लता। २ शुक्ल यूथिका, सफेद जुही। ३ वसन्तोत्सव।

वसन्ततिलक (सं० क्ली०) वसन्तस्य तिलकमिव। १ पुष्प-विशेष। २ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, भगण, जगण, जगण, और दो गुरु, इस प्रकार कुल चौदह वर्ण होते हैं।

उदाहरण—

"फुल्लं वसन्ततिलकं तिलकं वनाल्याः
लीलापरं पिककुलं कलमत्र रौति।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो
यातो हरिः स मथुरां विधिना हताः स्मः॥"
(छन्दोम०)

वसन्ततिलक (सं० पु०) १ औषधविशेष। यह औषध गुदज रोगमें प्रयोग की जाती है। २ एक दूसरी औषध, यह कास श्वास आदि कितने रोगोंमें इस्तमाल होती है। इसके बनानेका तरीका—सोना १ तोला, अभ्र २ तोला, लोहा ३ तोला, रांगा २ तोला, पारा, गंधक, मुक्ता, मूंगा प्रत्येक ४ तोला ले कर गोखरू, अडूस और इक्षुरसमें भावना दे कर जंगली हाथीके गोइंठेकी आगमें सात बार पुटपाक करे और कस्तूरी और कपूर उसमें मिला दे। इससे कास, श्वास, वात, पित्त, कफ, क्षय, शूल, पाण्डु, ग्रहणी, बीस प्रकारका प्रमेह, विष, हृद्रोग और ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। मृत्यु-ञ्जयके अनुसार यह औषध वृष्य, बलकर तथा पुष्टिकर मानी गई है। (रसेन्द्रसार बाजीकर०)

वसन्ततिलकतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रग्रन्थभेद।

वसन्ततिलकरस (सं० पु०) कासरोगकी एक प्रकारकी दवा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली सोना १ तोला, अभ्र २ तोला, लोहा ३ तोला, पारा ४ तोला, गंधक ४ तोला, रांगा २ तोला, मुक्ता ४ तोला, मूंगा ४ तोला, इन सबों को गोखरू, अडूस और इक्षुरसमें घोंट कर गोइंठेकी आगमें सात पहर तक पाक करे। पीछे औषध निकाल कर उसके साथ मृगनाभि ४ तोला और कपूर ४ तोला मिला कर मर्द्दन कर ले। यह दवा कास और क्षय-रोगमें बहुत फायदा पहुंचाती है। इसकी मात्रा २ रत्ती है।

वसन्ततिलका (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त।

वसन्ततिलक देखो।

वसन्तदूत (सं० पु०) वसन्तस्य दूत इव। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ कोकिल, कोयल। ३ पञ्चमराग। ४ चैत्र मास।

वसन्तदूती (सं० स्त्री०) वसन्तस्य दूतीव। १ पाटली-वृक्ष। २ पांडरि, पाडर। ३ कोकिला। ४ माधवीलता।

वसन्तदेव—एक प्राचीन कवि।

वसन्तद्रु (सं० पु०) वसन्तस्य द्रुः वृक्षः। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

वसन्तपञ्चमी (सं० स्त्री०) वसन्तस्य पञ्चमी। श्रीपंचमी। मत्स्यसूक्तके ५५वें पटलमें लिखा है, कि सूर्य मकरराशिस्थ होनेसे शुक्लपक्षीय पञ्चमीमें लक्ष्मीसह जगद्धात्रीको स्नान करा कर पूजा करनी होती है। स्नान सवेरे मरकतमय कुम्भमें नदी जलसे करावे। यह वसन्तपञ्चमी सर्वपापनाशिनी है। इस दिन वसन्तकी तथा रति-सह कन्दर्पकी भी पूजा करनी चाहिये। इसके अति-रिक्त इस दिन वसन्तराग सुननेसे अभीष्ट श्रीलाभ होता है। किसी किसी मुनिने इस वसन्तपञ्चमीको श्रीपञ्चमी नामसे उल्लेख किया है। जो कुछ हो, इस दिन एकाहारी रहना उचित है। इससे लक्ष्मी सर्वदा ही प्रसन्न रहती हैं। (मत्स्यसूक्त ५५ पटल)

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि माघमासकी शुक्ल-पञ्चमीके दिन महापूजा करनी होती है। इस पूजाकी विशे-षता यह है, कि इसमें नव प्रवाल, नव कुसुम और अनु-लेपनदान एकान्त आवश्यक है। इनके अलावे बड़े समारोहसे नीराजना, भक्तिसे वैष्णवोंकी सम्मानना एवं वसन्तरागमय सङ्गीत और नृत्यादि करे। कहते हैं, कि श्रीपञ्चमीसे आरम्भ करके श्रीहरिके शयन पर्यन्त वसन्तराग गानेका समय है, दूसरा समय निषेध बताया है। वसन्तपञ्चमीके दिन इस प्रकार वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी पूजा करनेसे वसन्तके समान प्रिय हो जाता है। श्रीपञ्चमी देखो।

वसन्तपाल—महीपालका शिलालेख-वर्णित एक राजकुमार।

वसन्तपुर—१ एक प्राचीन विशाल जनपदके अन्तर्गत एक नगर। (भविष्य ब्रह्मख०३६।२३) २ मल्लभूमिके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह विष्णुपुरके उत्तर उपकण्ठमें अवस्थित है।

वसन्तपुष्प (सं० पु०) १ धूलिकदम्ब। (क्ली०) २ वसंतकालोत्पन्न कुसुम।

वसन्तबन्धु (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तभानु (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वसन्तभैरवी (सं० स्त्री०) एक रागिणीका नाम।

वसन्तमण्डन (सं० स्त्री०) १ सिन्दूर। २ रक्तपद्म, लाल कमल।

वसन्तमहोत्सव (सं० पु०) वसन्तोत्सव। इस दिन जगत्‌के यावतीय देशवासी मनुष्यसमाज शीतकी जड़ता परित्याग कर वसन्तका आगमन ज्ञापनार्थ आनन्दसे उत्फुल्ल हो इधर उधर घूमते हैं। प्राचीनकालमें हिंदू समाजमें मदनमहोत्सव प्रचलित था। आज कल वह वासंतिक होलीपर्वमें पर्यवसित हो गया है, किन्तु यथार्थमें यह श्रीपञ्चमी पूजाके दूसरे दिन ही प्रथम वसंतोत्सव होता है। इस दिन सभी प्रदेशोंमें शीतवास परित्याग कर शुभ्र या वसंती रंगमें रंगा हुआ कपड़ा पहन कर सभी इधर उधर परिभ्रमण करते हैं। वृन्दावनमें आज भी ऐसा दृश्य देखा जाता है। इस दिन एवं होलीपर्वके दिन रातमें भोजन और आमोदकी ज्यादती भी नितान्त कम नहीं हैं। राजपूत जातिके मध्य वसंतोत्सवके दिन उमा वा गौरीकी पूजा और मृगयाकी रीति है। मदनमहोत्सव देखो।

वसन्तमारू (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

वसन्तमालतीरस (सं० पु०) एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—सोना १ भाग, मुक्ता २ भाग, हींग ३ भाग, मिर्च ४ भाग एवं कपूर ८ भाग इन सबोंको पहले थोड़ा मक्खनके साथ मर्द्दन कर पीछे नीबूके रसमें अच्छी तरह घोटे जिससे मक्खन एकदम मिल जाय। इस तरह बना कर २ रत्ती परिमाणमें मधु और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करे। इसका सेवन करनेसे जीर्णज्वर, विषम ज्वर, उदरामय और कास आदि रोग जल्द जाते रहते हैं। यह पश्चिम प्रदेशकी नामी दवा है।

वसन्तमालिका (सं० स्त्री) छन्दोभेद।

वसन्तयात्रा (सं० स्त्री०) वसन्तोत्सव।

वसन्तयोध (सं० पु०) कामदेव।

वसन्तराज—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने प्राकृतसञ्जीवनी नामक प्राकृतप्रकाशकी एक टीका लिखी।

वसन्तराज—कुमारगिरिके एक राजा। ये काटयवेम नामक पण्डितवरके प्रतिपालक थे। इनका लिखा वसन्तराजीय नाट्यशास्त्र नामक एक ग्रन्थ मिलता है। मल्लिनाथने शिशुपालवधटीकामें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

वसन्तराजभट्ट—शकुनार्णव या शाकुनशास्त्रके प्रणेता। इन्होंने मिथिलाधीश्वर चन्द्रदेवके अनुरोधसे यह ग्रंथ रचा। इनके पिताका नाम विजयराज और जेठे भाईका शिवराज था।

वसन्तराजीय (सं० क्ली०) वसंतराजका बनाया हुआ एक नाट्यशास्त्र।

वसन्तराय (राजा)—वङ्गके स्वाधीन बंगाली-वीर प्रतापादित्यके चचा। बंगज कायस्थकुलमें गुहवंशमें गुणानंदके औरससे ये पैदा हुए थे। इनका प्रकृत नाम, जानकीवल्लभ था, किंतु ये वसंतराय नामसे ही साधारणमें परिचित थे। गुणानंदके जेठे भवानंदके पुत्र विक्रमादित्य ही प्रतापके पिता थे।

बचपनसे ही विक्रम और वसंतरायमें बड़ा सद्भाव था। राजमंत्री-पद पर नियुक्त होनेके बाद दोनों भाई गौड़में रहने लगे। इस समय विक्रमने चांद खाँ नामक जागीर पा कर वहां यमुना और इच्छामतीके संगम पर नगर और गढ़ स्थापन किया एवं वहां पुत्र और परिवारादिको भेज दिया। लेकिन दोनों भाई राजधानीमें ही रहे मुनाइम खाँके बंगाल पर आक्रमणके समय यद्यपि गौड़वासी राजधानी छोड़ चले गये, तो भी दोनों भाई छद्मवेशमें वहीं ठहरे रहे। दाउदकी मृत्युके बाद टोडरमल्लको बंगालका राजस्व-विषयक कागज पत्र समर्पण कर देने पर वे दोनों ही मुगल सरकारके अनुगृहीत हुए। दिल्लीश्वरकी ओरसे राजा टोडरमलने विक्रमादित्यको महाराजकी एवं वसंतरायको राजाकी उपाधि मंजूर करा

कर उन्हें जागीरदार कायम किया।

प्रतापने कौशलसे १८ वर्षकी उम्रमें पिता और चचाको उक्त पदसे मुक्त किया। इसके बाद विक्रमादित्यकी मृत्यु हुई। उन्होंने पुत्रको दश आना तथा भाईको छः आना सम्पत्ति बांट दी थी। भतीजे प्रतापको राज्याभिषिक कर वसंतराय बुढ़ापेकी वजहसे गंगातीर पर रायगढ़ नामक स्थानमें रहने लगे। प्रतापकी कन्या बिंदुमतीकी विवाह-उपलक्षमें वे यशोहर आये। इस समय रामचंद्र रायके भाग जानेके कारण चचाके साथ प्रतापकी दुश्मनी हो गई। जब वसंतराय यशोहर हीमें थे, तभी पिताके वार्षिक श्राद्धका दिन उपस्थित हुआ। इसमें उन्होंने प्रताप और आत्मीय स्वजनको निमंत्रण किया। प्रताप भी सानुचर निमंत्रणमें पहुंचे। दुर्भाग्यवश प्रतापने पुत्र सहित वसंतरायको यमपुर भेज दिया।

राघवराय, चंद्रशेखर राय आदि वसंतरायके दूसरे लड़के सब बाहर रहनेके कारण बच गये थे। इस ज्ञाति शत्रुओंके षड़यंत्रसे प्रतापका सर्वनाश हो गया। मानसिंह यशोहरजित् उपाधिके साथ कचूरायको यशोहरकी गद्दी पर बैठा कर दिल्ली चले गये। कचूरायके कोई लड़के न थे, किंतु उनके भाई चंद्रशेखरके वंशधरगण आज भी खुलना जिलांतर्गत नूरनगर और बसिरहाट उपविभागके मध्यस्थित खोड़गाछीमें वास करते हैं।

राजा वसंतराय एक उत्कृष्ट भावुक कवि थे। पदकर्त्ता गोविन्ददासके साथ उनका बराबर ही लड़ाई दंगा हुआ करता था।

वसन्तराय—एक प्रसिद्ध वैष्णव कवि। ये नरोत्तम ठाकुर महाशयके शिष्य थे। नरोत्तमविलासमें कवि नरहरि इन्हें महाकवि कह कर अभिहित कर गये हैं।

भक्तिरत्नाकरसे हम लोग जान सकते हैं, कि ये अन्तिम अवस्थामें वृन्दावनमें रहते थे। बीचमें जीव गोस्वामीका पत्र ले कर एक बार श्रीनिवासाचार्यके पास आये थे। पदकल्पतरुमें वसन्त रायके पद उद्धृत हुए हैं।

वसन्तरोग—मसूरिका। व्रणोद्गमरूप सांघातिक क्षतरोग विशेष। अंग्रेजीमें इसे Small Pox कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम Variola है। यह एक संक्रामक तथा स्पर्शक्रामक सस्फोटक ज्वर है। इस ज्वरका विष शरीरमें प्रवेश करने पर कुछ दिनों तक गुप्त रहता है एवं धीरे धीरे प्रबल ज्वर तथा चर्ममें एक प्रकारका कण्डु उत्पादन करता है। ये कण्डु पहले पैप्युल, इसके बाद भेसिकेल् तथा पष्टिउलके रूपमें परिवर्त्तित होते देखे जाते हैं एवं अन्तमें शुष्क होने पर वहांका कच्छु अर्थात् चमड़ा गिर जाता है। यह रोग एक बार हो जाने पर फिर नहीं होता। इस रोगका संक्रामक विष रोगीके रक्त, स्फोटक तथा चमड़ेमें फैल जाता है, यह समय समय पर पसीना, पेशाब, प्रश्वास एवं अन्यान्य अपस्राव द्वारा भी परिचालित होता है। वस्त्र, गाड़ी तथा गृहादिमें उक्त पदार्थ बहुत दिनों तक वर्त्तमान रहता है एवं यह अधिक दूर दूर तक फैल सकता है। वसन्तरोग द्वारा मृत्यु होने पर मृत शरीरसे जीवित शरीरमें भी उक्त विष प्रवेश कर जानेकी सम्भावना रहती है। मवाद पैदा होनेके समय इस रोगकी संक्रामणशक्ति बढ़ जाती है। कोई कोई ग्रंथकार कहते हैं, कि उक्त स्फोटकमें एक प्रकारका अति सूक्ष्म पदार्थ रहता है। वही दूसरे व्यक्तिके शरीरमें फैल जाता है।

जो टीका नहीं लेता है, उसे एवं काफरी जाति तथा कृष्णकाय व्यक्तिको ही यह रोग अधिक होते देखा जाता है। इसके अलावे गन्दे रहनेसे तथा गन्दे पदार्थको भक्षण करनेसे भी इस रोगके होनेकी सम्भावना रहती है। किसी किसी व्यक्तिकी शारीरिक अवस्था ऐसी होती है, कि उसके शरीरमें यह विषयुक्त संक्रामक रोग आसानीसे प्रवेश नहीं कर सकता। उत्तमरूपसे टीका देने पर कभी यह रोग होते देखा नहीं जाता।

इस रोगके कारण कई स्थानोंके चमड़ेमें सीमाबद्ध प्रदाहका चिन्ह पाया जाता है एवं उस बीच पहले पैप्युल नजर आता है। प्रकृत चमड़ेमें नये नये कोष उत्पन्न होनेसे एपीडार्मिस्के नीचे तरल रस, तत्पश्चात् लिम्फ एवं मवाद पैदा होता है। परिपक्व अर्थात् सातवें दिनकी गोटीको फोड़ कर अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा देखनेसे उसके मध्य छिद्रशून्य वा संकुचित देखा जाता है, किन्तु उसका प्राचीर कौषिक विधानके छोटे छोटे खंड द्वारा चमड़ेसे मिला

रहता है। मृतशरीरके कई स्थानोंमें अर्थात् चमड़े, गले, आँख, नासिका अन्त्र तथा पाकाशयके मध्य स्फोटक देखा जाता है। हृत्पिण्ड, मूत्रयंत्र, यकृत् तथा स्वाधीनपेशी, सभी कोमल एवं वसापकृष्टताविशिष्ट होता है। प्लीहा विवर्द्धित तथा कोमल हो जाता है। स्थान स्थान पर रक्तस्रावका चिन्ह दिखाई पड़ता है। मृतदेह बहुत जल्द सड़ जाती है।

लक्षण

१ गुप्तावस्था—संक्रमण द्वारा रोगोत्पन्न होने पर १२ दिनों तक एवं टीका द्वारा होने पर ७ दिनों तक इस अवस्थामें रोगी कुछ अस्वस्थ रहता है।

२ आक्रमणावस्था—शीत तथा कम्प द्वारा अकस्मात् पीड़ा आरम्भ होती है एवं रोगीको ज्वरके सभी लक्षण अनुभव होते हैं। स्फोटक निकलनेके पहले तापपरिमाण क्रमशः १०४से १०६ डिग्री तक बढ़ जाता है। इसके अलावे पेंडू तथा कमरमें पीड़ा होना एवं बहुत उछाल होना, ये कई लक्षण देखे जाते हैं। अन्यतम लक्षणोंके मध्य शिरोवेदना, मुखमंडल आरक्तिम, हस्तपदादिके स्पन्दन, आलस्य, अत्यन्त दुर्बलता, प्रलाप, अस्थिरता तथा अचैतन्यादि लक्षण भी वर्त्तमान रहते हैं। इसे प्राथमिक ज्वर (Primary Fever) कहते हैं। उक्त अवस्था दो दिनों तक वर्तमान रहनेके बाद स्फोटकावस्थामें परिणत हो जाती है।

३ स्फोटकावस्था—ज्वरके तीसरे दिन मुंह, कपाल तथा हाथोंमें छोटे छोटे लाल दाग देखे जाते हैं। ये लाल दाग बहुसंख्यक उत्पन्न हो कर दो एक दिनके भीतर ही सारे शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इन स्फोटकोंकी संख्या प्रायः १०० से ले कर ३०० तक रहती है। कभी २ रोगोके शरीरमें १००० एक हजार स्फोटक देखे जाते हैं। मुखमंडलमें ही इसकी संख्या अधिक होती है। टीका देनेके बाद अथवा संक्रामक रूपमें वसन्तरोग उपस्थित होनेपर स्फोटकावस्थाके पहले पेट तथा छातीमें वृहदाकार लाल दाग बाहर होते देखे गये हैं, उसे प्रोड्रोमल एकज़ेन्थेम (Prodromal Exanthem) कहते हैं। वसन्तरोगकी गोटियां स्वतंत्र, संश्लिष्ट वा दूसरे प्रकारकी हो सकती हैं। गोटी होनेके पहले छोटे छोटे लाल दाग उत्पन्न होते हैं। स्फोटकके दूसरे दिन कंडुप सर्षपकी तरह ऊंचे देख पड़ने हैं, इसे अंगरेजोमें पैप्युल कहते हैं। तृतीय दिन स्पर्श करनेसे कुछ कठिन मालूम पड़ता है। चौथे दिन गोटियोंके अन्दर रस (सिरम्) पैदा होनेके कारण वे गोटियां नर्म हो जाती हैं एवं मुक्ताकी तरह भेसिकेल देख पड़ते हैं। पांचवें दिन उनके ऊपरी भाग कुछ निम्न हो जाते हैं, इसे अम्बिलाकेटेड् कहते हैं। स्फोटककी परिधि रेटिम्युकोसम (Retemucosum) सिरम द्वारा स्फीत एवं मध्यस्थ सब कोष एपिडार्मिसके साथ मिल जानेसे इसका नया भाव उपस्थित होता है। स्फोटकके मध्यसे हो कर एक हेयर किंवा ग्लैण्ड डक्ट प्रवेश करने पर भी उक्त प्रकारसे चिपक जा सकता है। छठेसे सातवें दिन पर्यन्त स्फोटकके मध्यस्थलमें स्वच्छ तथा तरल सिरम् रहता है एवं चारों तरफ क्रमशः मवाद एकत्र होते देखा जाता है। इन स्वच्छ रस तथा मवादके अन्दर एक प्रकारका आवरण रहता है; जब मवाद बढ़ जाता है तब वह अदृश्य हो जाता है, इस अवस्थाको पष्टिउल कहते हैं, इस समय गोटीके चारों ओर लाल रेखा दिखाई देती है। आठवें दिन स्फोटक मवादसे परिपूर्ण हो जानेके कारण वे गोल तथा ऊंचे दिखाई पड़ते हैं। ११से १८ दिनके मध्य गोटियोंके ऊपरके चमड़े सूख कर झड़ जाते हैं। इसके बाद गोटियोंके स्थान पर लाल लाल दाग मालूम पड़ते हैं। जब स्फोटक कुछ बड़े बड़े रहते हैं, तब वे दाग कुछ गहरे दिखाई पड़ते हैं, इन्हें Pits कहते हैं।

गोटियोंकी संख्यानुसार साधारण लक्षणोंमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है। गोटियोंकी संख्या अधिक होने पर मस्तक, गले तथा शरीरके कई स्थान स्फीत हो उठते हैं, चमड़ा अधिक लाल एवं उसमें कण्डुयन रहनेके कारण नखाघात द्वारा बड़े बड़े फोड़े निकल आते तथा कईस्थानोंमें श्लैष्मिक झिल्लियां देखी जाती हैं, गलेके भीतर गोटियां हो जानेसे बड़ी वेदना होती है एवं खाने पीनेके समय अत्यन्त कष्ट होता है। नासिकामें गोटियां निकलनेसे नाक बहने लगती है एवं श्वास रुक रुकके चलता है। लेरिंस, ट्रेकिया वा ब्रंकाई आक्रान्त होने पर खांसी, स्वरभंग प्रभृति उपस्थित होते हैं। मूत्रमार्गमें श्लैष्मिक

झिल्ली आक्रान्त होने पर मूत्रत्यागके समय बड़ी ज्वाला पैदा होती हैं एवं कभी कभी रक्तस्राव अर्थात् हिमेट्युरिया (Haematuria) हो जाता है। नेत्र आरक्तिम, सजल, वेदनायुक्त एवं स्फीत हो उठता है। रोगीको प्रकाश देखनेमें कष्ट होता है। कभी कभी रोगीके शरीरसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है। स्फोटक निकल जाने पर ज्वर कुछ कम जाता है, किन्तु मवाद पैदा होनेके समय फिर शीत तथा कम्पके साथ ज्वर उपस्थित होते देखा जाता है। उसे द्वितीय ज्वर वा सेकेंडरी फीवर Secondary Fever कहते हैं। इस समय ज्वरकी मात्रा १०४से ले कर १०५ डिगरी तक बढ़ जाती है एवं वह धीरे धीरे कम जाता है। नाड़ी तेजीसे चलने लगती है, प्यास बहुत बढ़ जाती है; जीभ तथा मुख सूखने लगता है। रोग कठिन होने पर विकारके सभी लक्षण उपस्थित हो जाते हैं।

इसके कंडुए नाना प्रकार होते हैं। जैसे—१ डिसक्रीट (Discrete) अर्थात् असंयुक्त। इसमें प्राण जानेका भय नहीं रहता। इसके लक्षण भयंकर नहीं होते। बच्चोंके दांत निकलनेके समय इस रोगके होने पर कुछ बुराईकी संभावना रहती है।

२ कन्फ्लूयेन्ट (Confluent) अर्थात् संश्लिष्ट; इसमें पहले शरीरके मध्य बहुसंख्यक छोटे छोटे तथा कुछ ऊंचे पैप्युल निकल आते हैं एवं उन्हें शीघ्र ही परस्पर मिलते देखा जाता है। भेसिकेल् तथा पष्टियुल अवस्थामें ये बहुत मिल जाते हैं। गोटियां देखनेमें तो छोटी किन्तु बहुत दूरमें फैली हुई एवं जलके समान सिरम्, मवाद किंवा रक्तसे परिपूर्ण रहती हैं। मस्तक, मुखमंडल एवं कंठमें ही ये अधिक निकलते देखी जाती हैं। उनके शुष्क हो जानें पर मुखके ऊपर एक वृहदाकार शुष्क चर्मखंड नजर आता है, उसके उड़ जाने पर मुख पर कुछ कुछ गहरे बहुत-से दाग दिखाई पड़ते हैं। गोटियोंके मध्यवर्त्ती स्थानमें रेखा नहीं दिखलाई पड़ती। समूचे मुखके चमड़ेका रंग कुछ काले रंगकी आभा लिये हुए लोहेके रंगकी तरह हो जाता है। इसमें पहला ज्वर आराम नहीं होता किंवा दूसरे ज्वरका विशेष रूपसे विकाश नहीं होता। अस्थिरता, प्रलाप प्रभृति कठिन स्नायविक लक्षण पूर्वकी भांत वर्त्तमान रहते हैं। यह अत्यन्त सांघातिक होता है। एवं इसमें नाना प्रकारके कठिन उपसर्ग भी उपस्थित होते हैं। डाक्टर कोली (Colli)का कहना है, कि यदि गोटियोंके मध्य मवाद पैदा न होवे तथा रोगीके मुखमंडलका रङ्ग मैदेकी तरह दिखाई दे, तब समझना चाहिये, कि यह सांघातिक रोग है।

३ अर्द्ध संयत (Semiconfluent); यह उपरोक्त दोनों प्रकारके कंडुओंका मध्यवर्त्ती है। इसमें गोटियाँ अलग अलग, किन्तु बहुत सघन होती हैं। इसमें प्राण जानेका कोई भय नहीं रहता।

४ दलबद्ध (Corymbose) अर्थात् इसमें गुच्छेकी तरह गोटियाँ निकलती हैं। यह अत्यन्त सांघातिक होता है।

५ मैलिगनैन्ट (Malignant) अर्थात् सांघातिक। इसमें गोटियाँ देखनेमें काली होती हैं; किन्तु रक्तसे परिपूर्ण रहती हैं। कभी कभी कई स्थानोंसे रक्त बहता रहता है एवं मुखमण्डलमें मलिनता, अस्थिरता, प्रलाप, अचैतन्य प्रभृति लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। चमड़ेमें क्षत विगलन वा पेटिक दृष्टिगोचर होता है। पैप्युल, भेसीक्युल किंवा पष्टियुलकी अवस्थामें गोटियोंके मध्य रक्तस्राव होने पर यथाक्रमसे भेरिओला, हेमरेजिका, पैप्युलोजा, भेसीक्युलोजा अथवा पष्टियुलोजा प्रभृति नामसे अभिहित होता है। इस प्रकार वसन्तरोगाक्रान्त व्यक्तियोंके शरीरसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है। मल मूत्रके साथ रक्तस्राव होते देखा जाता है। एवं छठे, सातवें वा आठवें दिन रोगीकी मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त भेरिओला निग्रा (Variola Nigra) ब्लैक स्माल पौक्स (Black small pox) एक अत्यन्त सांघातिक वसन्तरोग है। इसकी गोटियाँ बैंगनी रंगकी भाँति अथवा काले दागकी तरह दिखाई पड़ती हैं। इसमें नेत्रकी श्लैष्मिक झिल्लीसे रक्तस्राव होता है तथा कनीनिकाके चारों ओर रक्त इकट्ठा हो जाता है। इस रोगमें मृत्यु पर्य्यन्त ज्ञान रहता है। तृतीय वा पांचवें दिन रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

६ विनाइन (Benign) हौर्न (Horn) वा वार्ट पाक (Wart pock) इसमें गोटियोंके अन्दर मवाद संचय नहीं होता एवं ये गोटियां चार पांच दिनके अन्दर ही शुष्क हो जाती हैं, इसमें दूसरा ज्वर प्रकाशित नहीं होता। इस प्रकारका रोग वसन्तटीका देनेके बाद उपस्थित होता है।

उपसर्ग तथा आनुसंगिक पीड़ाके मध्य न्युमोनिया, प्लुरिसी, ग्लासाइटिस, गैट्राइटिस, एपट्राइटिस, उदरामय कई स्थानोंमें प्रदाह तथा स्फोटक, स्कौटम् तथा लेवियामें क्षत वा विलगन, एरिसिप्लैस, पाइमिया, एलबूमिनुरिया, हिमेट्युरिया, एपिसटैक्सिस एवं मेनोरहेजिया प्रभृति विद्यमान रहता है।

यह रोग अत्यन्त सांघातिक होता है। इसमें सैकड़े ३३ की मृत्यु होती है। प्रायः ग्यारहवें दिन ही मृत्यु हो जाती है। अत्यन्त ज्वर, दुर्वलता, श्वासकृच्छ्रता, शरीरमें मवाद एवं रक्तस्राव प्रभृति लक्षणोंके उपस्थित होने पर रोग अत्यन्त कठिन हो जाता है। अति शिशु, मध्यवयस्क तथा गर्भवती स्त्रियोंके होने पर प्रायः असाध्य हो जाता है। १० से १५ वर्षके अन्दरका लड़का प्रायः आरोग्य लाभ करता है। स्फोटक निकलनेके बाद जब ज्वर विशेष चढ़ आवे, कमरमें बड़ी पीड़ा होने लगे एवं अधिक उछाल तथा रक्तस्राव प्रभृति उपसर्ग उपस्थित हो, तब रोग कठिन समझना चाहिये। कनफ्लुयेन्ट तथा करिम्बोज प्रकारका रोग सांघातिक होता है।

चिकित्सा।

निम्नलिखित प्रणालीके अनुसार वसन्त रोगकी डाक्टरी चिकित्सा की जाती है। (१) साधारण शुश्रूषा, (२) गोटियाँ जिससे सुचारुरूपमें बाहर निकल आवें एवं भविष्यमें चमड़ेके अन्दर, विशेषतः मुखमंडलमें दाग न रहे। (३) ज्वरकी अधिकता निवारण करना। (४) बलकारक औषधियोंकी व्यवस्था। (५) विषय विशेषकी चिकित्सा। (६) प्रधान प्रधान उपसर्गोंकी चिकित्सा। (७) प्रतिषेधक चिकित्सा।

(१) पहले वसन्तरोगाक्रान्त रोगीको उत्तप्तगृहमें बन्द रखा जाता था, किन्तु अब लोग ऐसा नहीं करते। आजकलके डाक्टरोंके मतानुसार रोगीको हवादार घरमें ही रखना उचित है, किन्तु जिससे किसी प्रकार रोगीके शरीरमें शीतल वायु स्पर्श न कर जाय, इसका ध्यान रखना अत्यन्तावश्यक है। प्रथम अवस्थामें लघुपथ्य तथा लेमनेड, बरफ इत्यादि ठंढे पानीके साथ एवं कमला नीवू प्रभृति सुरस फल देनेकी व्यवस्था करें। मवाद संचय होनेके समय किंवा रोगीके दुर्वल होने पर 'विफ्टी' 'सूप' 'जेली' तथा थोड़ा-सा मद्य देना चाहिये।

(२) गोटियाँ सुचारुरूपमें वहिर्गत करनेके लिये कार्वोलिक् कांडिज किंवा सलफ्युरस् एसिड लोसनद्वारा गात्र स्पञ्ज करें। कण्डुओंके निवारणार्थ मैदा, आरारोट अथवा अन्य कोई ष्टार्च शरीरमें लगाना चाहिये। भविष्यमें जिससे चमड़ेके ऊपर दाग न रहे, इसके लिये परिपक्क गोटियोंके ऊपर क्रमशः नाइट्रेट अव सिल्भर पेन्सिल अथवा उसका लोसन लगायेंगे। किंवा मार्क्युरियल अथवा सलफर वाइन्टमेंट, टिं आइडिन्, कारोसिव साब्लिमेट लोसन (६ औंस जलके साथ २ ग्रेन) एवं लाइकर गाटापर्चा इत्यादि लगाया जा सकता है। डाक्टर सैन्सम (Dr. Sanosm) कहते हैं, कि कार्वोलिक एसिड थाइमल आयल मिश्रित करके लगानेसे इस रोगमें बहुत लाभ होता है। यदि ऊपरोक्त मलहम द्वारा यन्त्रणा मालूम पड़े, तो कोल्ड क्रीम वा गुलाब जल मिश्रित ग्लीसिरिन् लगाना चाहिये। कोई कोई ग्रन्थकार मेसीकेल अवस्थामें कार्वोलिक एसिड लगानेकी सलाह देते हैं। किन्तु डाक्टर मार्सन (Dr. *Marson*) कहते हैं, कि मवाद निकलने पर गोटियोंके ऊपर कोल्डक्रीम् वा ग्लीसिरिन् लगानेसे यन्त्रणा तथा दाग नहीं होता। उग्र रसके द्वारा चमड़ेमें उत्तेजना होने पर, उस स्थानको उष्णजल द्वारा स्पञ्ज करके उसके ऊपर मैदा, आरारोट, टायलेट पाउडर किंवा कैलेमाइन लगावें।

(३) उत्ताप निवारणके लिये गात्रस्पञ्ज एवं मृदुविरेचक तथा सुख कर औषधियोंकी व्यवस्था करनी चाहिये। उत्तापकी अधिकता होने पर एन्टीफेब्रिन् देना उचित है।

(४) मवाद पैदा होनेके समय टाइफायड्के लक्षण उपस्थित होने पर एमोनिया तथा वार्क प्रभृति उत्तेजक औषधिका प्रयोग करना चाहिये। ब्राण्डी तथा ब्रथ पथ्य दिया जा सकता है। गलेकी वेदना निवारणार्थ

रोगीको कुल्ली करानी चाहिये। रक्तस्रावके लिये एसिड् गलिक्, तार्पीन तेल तथा आर्गट् देना लाभकर है। अनिद्रा तथा प्रलापके लक्षण प्रगट होने पर कोई कोई अफीम अथवा मर्फिया एक दो रात देना चाहिये। किन्तु फफोलेके अन्दर प्रदाह रहने पर अहिफेन किंवा मर्फिया का व्यवहार करना ठीक नहीं। चौथाई ग्रेनकी मात्रामें बेलेडोना देनेसे कभी कभी उपकार होते देखा जाता है।

(५) विशेष चिकित्साके मध्य साल्फो कार्वोलेटस्, कार्वोलिक् एसिड्, हाइपोक्लोराइटस् तथा सालफ्युरस एसिड् प्रभृति एन्टीसेप्टिक् ओषधियोंके प्रयोग करनेकी विधि है। कोई कोई सैलिसिलेट् आव् सोडियम् देनेकी सलाह देते हैं।

(६) उपसर्गकी चिकित्सा—नेत्रमें पीड़ा होने पर आँखोंके ऊपर सर्वदा शीतल जल किंवा कारोसिव् साब्लिमेट् लोसन (६ औन्स जलके साथ १ ग्रेन) तथा सिक्त वस्त्र संलग्न करेंगे। अत्यन्त कंजंक्टिभाइटिस् रहने पर कपोलमें ब्लिष्टर देना उचित है। कर्णियामें क्षत होने पर उसके ऊपर नाइट्रेट् आव् सिल्भार पेंसिल् अथवा उसका लोसन लगाना चाहिये। आँखोंके ऊपर सर्वदा हरे रंगका पर्दा लगाये रखना चाहिये। खाँसी होने पर कफ दूर करनेकी ओषधिका प्रयोग करना चाहिये। स्फोटक होने पर छेद न करके कार्वोलिक तेलयुक्त 'लिन्ट' की पट्टी देनी चाहिये।

(७) प्रतिषेधक—जब तक रोगी अच्छी तरह आरोग्य-लाभ न कर लेवे, तब तक उसे कहीं जाने देना नहीं चाहिये। इस देशमें इस तरहकी प्रथा है, कि किसी ग्राममें वसन्तरोगके प्रादुर्भाव होने पर अथवा देशी टीका लेने पर दूसरे ग्रामोंके लोग उस ग्राममें पांव नहीं रखते। वसन्तरोगाक्रान्त रोगीके आरोग्य लाभ करने पर उसके गृहको चूनेसे पोत कर डिस् इनफेक्टेन्ट औषध छिड़क देनी चाहिये। शय्या तथा वस्त्रादिको धुला लेना चाहिये वा जला देना चाहिये। इस रोगके प्रादुर्भाव होने पर जिसकी टीका नहीं हुई हो, वह टीका लेवे। समुद्रके मध्य जहाजके ऊपर वसंतरोगके प्रकाशित होने पर एवं भैक् सिन् लिम्फ् नहीं रहने पर जिसकी टीका न हुई हो, उसको वसंतवीज द्वारा टीका देनी चाहिये। कारण यह है, कि टीका ले लेने पर वसंतरोग होने पर भी अधिक हानिकारी नहीं होता। वसंतरोगकी मवाद-पूर्ण अवस्थामें निम्न ओषधियोंका प्रयोग करना उचित है

सोडी सल्फो कार्बलस १० ग्रेन।
एक्सट्रेक्ट् सिङ्कौनी लिकिड् १५ बूंद।
एकोया १ औंस।
तीन तीन घंटे पर एक एक खुराक।

देशीटीका (Inoculation)

इसमें वसंतके वीज द्वारा टीका देनी होती है। टीका देनेके दूसरे दिन छिन्नस्थान किंचित् लालवर्ण दिखाई पड़ता है। चौथे वा पांचवें दिन वह स्थान प्रदाहयुक्त होता है एवं उस स्थान पर एक भेसीकेल उत्पन्न होता है। ऊपरोक्त दिवस उसके चारों ओर परिओला हो जाता है। इस समय प्राथमिक ज्वर उपस्थित होता है एवं तीन चार दिनके अन्दर ही शरीरमें गोटियाँ निकलते देखी जाती हैं। इसी बीचमें गोटियाँ क्रमशः मवादयुक्त हो जाती हैं। इसमें गोटियोंकी संख्या प्रायः न्यून एवं लक्षण आसान देखे जाते हैं सही, किन्तु कभी कभी यह रोग भी सांघातिक हो उठता है।

भेरियोलोइड् (Varioloid)—टीका देनेके बाद वसन्तरोग होने पर उसे भेरियोलोइड् कहते हैं। इसमें दूसरे ज्वरके लक्षण प्रायः प्रकाशित नहीं होते। गोटियोंकी गति मृदु एवं भेसिकेल गठित होनेके साथ ही शुष्क पड़ जाता है। समय समय पर पष्टियुल् होने पर भी शीघ्र ही सूख जाता है। शरीरमें गभीर दाग पैदा नहीं होता। किसी स्थानमें गोटी निकलनेके पहले समूचे शरीरमें बड़े बड़े लाल दाग दिखाई पड़ते हैं, उसे राश (Rash) कहते हैं।

अङ्गरेजी टीका (Vaccination)

बहुत दिन पहले इटली देशीय चिकित्सकोंने पता लगाया था, कि बछड़े तथा अन्यान्य पशुओंके शरीरमें भी एक प्रकारका वसन्त बहिर्गत होता है। १७४५ ई०में इङ्गलैण्ड देशमें पहले पहल इस विषयकी आलोचना हुई। १७८० ई०में डाक्टर जेनर (Dr. Jenner) ने टीका देनेकी उपयोगिता सम्बन्धमें एक प्रवन्ध लिखा था। उन्होंने इस प्रवन्धमें उपदेश दिया था, कि मनुष्यके शरीरमें गो-बीज प्रवेश

करने पर गोटियोंकी गति मृदु हो जाती है। कई बार देखा गया है, कि वसन्त संक्रामक होने पर गौवोंके पयोधरमें भी भैक्सिना वा गो-वसन्त होता है। मानव-वसंत बीज गौवोंके उदरके निकट इनोक्युलेट करने पर शरीर के मध्य विशेष परिवर्त्तन होनेके कारण वसन्त-गोटी न निकल कर गो-वसन्त वहिर्गत होता है। उसकी क्रियाएं वसन्तकी क्रियाओंकी अपेक्षा मृदु होती हैं। इस गो-वसन्त की लसिका द्वारा टीका दी जाती है।

गौके स्तनों पर गोटियां निकलनेसे उन्हें भैक्सिना (Vaccina) वा गो-वसन्त कहते हैं। इस प्रकारकी गोटीके रसको काउ लिम्फ अर्थात् गो बीज कहते हैं। इसीके द्वारा टीका दी जाती है। जिस प्रणालीसे इस बीज द्वारा मनुष्यके शरीरमें टीका दी जाती है, उसे भैक्सिनेसन् कहते हैं एवं उसके द्वारा मनुष्यके शरीरमें जो गोटियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें भैक्सिन पोष्टिच्यु कहते हैं। सातवें दिनकी गोटीमें जो रस पाया जाता है, वह लसिका वा लिम्फ् कहलाता है। वह निम्न-लिखित उपाय द्वारा रक्षा की जाती है (१) अति सूक्ष्म ग्लास्ट्युबमें, (२) दो खण्ड काचोंके मध्य, (३) लसिका कम होने पर उसके साथ गिलसिरिन् मिला कर रखते हैं। सातवें वा आठवें दिन अर्थात् परिमोला होनेके पहले स्फोटकके शीर्षस्थानमें अस्त्र बेध कर लसिका ग्रहण करें। पार्श्वमें विद्ध करनेसे मध्य प्राचीरको भेद कर लसिका अस्त्रके ऊपर नहीं आ सकती एवं उससे लसिकामें रक्त मिश्रित हो जानेकी सम्भावना रहती है। शीतकालमें ६।७ एवं ग्रीष्मकालमें ५।६ दिनोंकी गोटियोंसे बीज ग्रहण करना उचित है। एक व्यक्तिके हाथसे बीज ले कर दूसरेके हाथमें टीका देनेसे विशेष लाभ होता है। नीरोग बालककी टीकासे बीज लेनेकी विधि है। किसी बच्चेके चर्मरोग अथवा गुह्यद्वार वा जननेन्द्रियमें उपदंशजनित उच्च स्फोटक किंवा सर्दी तथा गलेमें क्षत रहनेसे उसका बीज लेना उचित नहीं। परिष्कृत लैन्सेट (Lancet) का व्यवहार करना उचित है, अपरिष्कृत अस्त्र व्यवहार करनेसे चमड़ेकी उत्तेजना बढ़ जाती है। २से ४ मासकी उम्रवाले बच्चोंको टीका देनेसे बड़ा लाभ होता है। शिशुके ज्वराक्रान्त होने पर अथवा चर्मरोग, उदरामय वा दंतोद्गमकी सम्भावना रहने पर टीका नहीं देनी चाहिये। विशेष आवश्यक न होने पर १॥ वा २ वर्षके बच्चेको टीका देना उचित है। इसके अतिरिक्त कई ग्रंथकार काफ्‌लिम्फ् अर्थात् गौके बछड़ेसे जो भैक्सिना उत्पन्न होता है, उसीकी लसिका द्वारा टीका देनेका परामर्श देते हैं। इसके द्वारा बच्चोंको एक बार तथा परिणत वयस्कोंको दो बार टीका देनेसे विशेष लाभ होता है।

टीका देनेका स्थान—साधारणतः जिस स्थान पर डेल्टेड् पेशी शेष होती है, उसके बीच तथा नीचे परस्पर एक वा डेढ़ इंच अन्तरित स्थानका चमड़ा आकृष्ट करके अस्त्र द्वारा उपत्वक्‌के निम्नांश पर्य्यन्त बीज प्रवेश कराना होता है। प्रत्येक हाथमें दो टीका देना उचित है। निम्नलिखित चार प्रणालियोंसे टीका देनेकी विधि है—(१) लैन्सेटके अग्रभागमें बीज लिप्त करके उसे वक्रभावसे प्रकृत चर्म पर्य्यन्त विद्ध करना चाहिये; इस तरह अस्त्राघात करना चाहिये, कि केवल विन्दुमात्र रक्त बाहर निकले। ५।६ सेकेंड तक छिन्न स्थानमें अस्त्र रख कर इसको बाहर करना चाहिये। (२) अस्त्र द्वारा समान्तरालभावसे ५।६ छिद्र करके उसके ऊपर लिम्फ लगाना चाहिये। (३) उलकी देनेके तरीकेसे सूई द्वारा उक्त स्थान विद्ध करके उसके ऊपर लिम्फ संलग्न करेंगे। (४) अस्त्र किंवा लाइकर एमोनिया द्वारा ऊपरका चमड़ा उन्मोचन करके बीज देना चाहिये।

गोटीकी गति—टीका देनेके बाद तीसरे दिन छेदे हुए स्थानमें लाल एवं कुछ ऊंचा पैप्युल नजर आता है। दिन दिन उसकी ऊंचाई तथा लाली क्रमशः बढ़ती जाती है। ५।६ दिनके मध्य पैप्युल-समूह भेसिकेलमें परिणत हो जाते हैं। वे देखनेमें गोले वा अण्डाकार होते हैं। उनके बीचका अंश चिपटा हुआ रहता है एवं रंग कुछ नीलापन लिये हुए उजला होता है। सातवें दिनके शेष भागमें उनके चारों ओर लाल रंगकी एक रेखा दिखाई पड़ती है, उसे परिमोला (Areola) कहते हैं एवं उस समय गोटियां पूरी तरह निकल आती हैं। ८वें दिनसे गोटियां क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णरूपसे परिपुष्ट हो जाती हैं। ये गोटियाँ देखनेमें गोल एवं कुछ ऊपर उठी हुई मालूम पड़ती हैं। इनका रंग मुक्ताकी तरह उज्ज्वल तथा इनके

मध्य लिम्फ किंचित् गाढ़ा मालूम पड़ता है। अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा देखनेसे उनके अन्दर सचल पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। उसे डाक्टर बिल् (Dr. Beale)-ने बयोप्लाज़म कह कर उल्लेख किया है। दो दिनों तक परिओला (Areola) बढ़ता रहता है एवं उसका व्यास १से ३ इंच पर्य्यन्त बढ़ता है। क्रमसे उसके चारों ओरका स्थान स्फीत तथा दृढ़ हो जाता है। ११ दिनके बाद स्फोटक क्रमशः शुष्क पड़ जाते हैं एवं सब इकट्ठे हो कर चौदह वा पन्द्रह दिनोंके मध्य एक वृहत् लोहिताभ छिलका उत्पादन करते हैं। यह छिलका २१ से २५ दिनके मध्यमें गिर जाता है। टीका देना सफल होने पर उसका दाग गोलाकार श्वेतवर्ण एवं चमड़ेकी अपेक्षा किंचित निम्न दिखाई देता है। उसका व्यास तृतीयांश इंचसे कम नहीं होता एवं उसके नीचे भागमें छोटे छोटे गर्त्त दिखाई पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त मध्यस्थलसे ले कर चतुष्पार्श्व पर्यन्त रेखावत् चिन्ह दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकारका दाग रहनेसे टीका सफल होती है। दाग इस तरह बड़ा किंवा पूर्वोक्त प्रकार चिन्हयुक्त न होनेसे असंम्पूर्ण वा सन्देहजनक एवं दाग बिल्कुल छोटा होनेसे विफल कहा जाता है। कभी कभी गोटियाँ उक्त नियमानुसार बहिर्गत न हो कर भिन्न स्थानमें २ वा ३ किंवा उनसे भी अधिक भेसिकल् निकलते देखे जाते हैं। अपरिवर्त्तित गो-वीजसे टीका होने पर ८।६ दिनों तक पैप्युपल उत्पन्न नहीं होते; वरं १४ किंवा १५ दिनोंके बाद बैंगनी रंगका परिओला नजर आता है। इसके अतिरिक्त और भी कई एक परिवर्त्तन देखे जाते हैं।

टीका देनेके बाद पहले ज्वर नहीं होता, किन्तु गोटियाँ परिपक्क होनेके समय ज्वर तथा सभी दूसरे दूसरे लक्षण प्रगट होते हैं। शरीरमें १०४ डिग्री पर्य्यन्त उत्ताप रहता है। इस समय टीकाके स्थानमें खुजलाहट, उष्णता, वेदना तथा आकृष्टता अनुभव होती है एवं काँखोंमें ग्लाण्ड-समूह स्फीत तथा वेदनायुक्त हो जाते हैं, जिससे बच्चोंको हाथ हिलाने डुलानेमें बड़ी पीड़ा होती है। कभी कभी परिसिप्लैस वा क्षत एवं दुर्बल बच्चोंको अस्थिरता, उदरामय तथा अन्यान्य कठिन लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। किसी किसी समय खास कर गौवोंकी देहसे निकाले गये लिम्फ् द्वारा टीका देनेसे प्रायः शरीरमें पाटनिका, शैवालिका, वा रसपूर्ण गोटियाँ बाहर निकलते देखी जाती हैं। इस अवस्थामें ज्वर निवारणार्थ १ ड्राम कष्टर् आयल् तथा सामान्य घर्मकारक औषध देनी चाहिये। हाथोंके प्रदाह निवारण करनेके लिये आर्द्र वस्त्रखंड, गोलार्डस् लोषण वा कोल्डक्रिम् अथवा चन्दन लेपन करना चाहिये।

पुनर्टीका प्रदान (Revaccination)—टीका देना किंवा असम्पूर्ण होने पर अथवा वसंतरोगके प्रादुर्भावके समय फिरसे अंग्रेजी टीका दी जाती है। सभी जगह वयःप्राप्तिके बाद फिरसे टीका दी जाती है। कोई कोई ग्रन्थकार कहते हैं, कि ७ वर्ष तकके भीतर टीका देना उचित है, किन्तु दूसरी बार अच्छी तरह टीका देने पर फिरसे टीका देनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। पहली बारकी टीकाकी गोटियोंसे दूसरी वा तीसरी बारकी गोटियोंमें बहुत विभिन्नता रहती है। इसका स्फोटक शीघ्र बहिर्गत होता है एवं ४।५ दिनोंमें ही रसगोटियाँ (Vesicle) परिपूर्ण हो जाती हैं। ८।६ दिनोंमें ये शुष्क पड़ जाती हैं। पुनर्वार टीका देनेके बाद भी ज्वरके सभी लक्षण प्रायः प्रबल हो उठते हैं एवं कभी कभी परिसिप्लैस् उपस्थित हो जाता है। पुनर्टीका प्रदानके समय कभी कभी कोई दुर्बलचित्त व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है।

एक बार टीका देनेके बाद जिसे दूसरी बार टीका दी जाय, उसकी देहमें फिर वसन्तरोग होनेकी सम्भावना नहीं रहती। कभी कभी यदि वसन्तरोग होते देखा भी जाता है, तो उसके सभी लक्षण मृदु होते हैं एवं शरीरमें दाग नहीं पड़ते। टीका देनेकी प्रथा प्रचलित होनेके बाद वसन्तकी संक्रामकता कम हो गई है।

(पानी-वसन्त वा जल-वसन्त। (Varicella)

अंग्रेजीमें इसे Chicken-pox कहते हैं। यह एकसंक्रामक तथा स्पर्शाक्रामक स्फोटक व्याधि है। यह रोग कभी कभी अधिक स्थानको घेर कर शरीरसे बहिर्गत होता है। उक्त रोग एक बार होनेसे दूसरी बार नहीं होता, ऐसा संस्कार है सही, किन्तु कभी कभी एक व्यक्तिको दो बार भी होते देखा गया है। यह रोग प्रायः ४ वर्षके

बच्चे पर आक्रमण करता है, किन्तु कभी कभी युवक व्यक्ति तथा वयस्क स्त्रियोंको भी आक्रान्त होते देखा जाता है। कोई कोई कहते हैं, कि यह भी एक प्रकारका वसन्तरोग है; किन्तु परीक्षा करके देखनेसे अनुमान होता है, कि यह एक स्वतंत्र रोग है। कारण यह है, कि प्रकृत वसंत तथा पान-वसन्तमें मूलतः बहुत पृथक्ता देखी जाती है। अणुवीक्षण द्वारा विशेष पर्य्यवेक्षण करके देखा गया है, कि इसकी लसिका तथा मवादके मध्य एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिज विद्यमान है।

किसी किसी समय यह १० से १८ दिन पर्य्यन्त गुप्तावस्थामें रहता है, उस समय उसमें कोई विशेष लक्षण नहीं देखे जाते। फिर किसी समय ज्वरका कोई लक्षण उपस्थित न हो कर ही पहले कण्डु बहिर्गत होते देखा जाता है। किंतु कभी कभी कण्डु बहिर्गत होनेके २४ वा ३६ घंटा पहले शिरोवेदना, आलस्य तथा सामान्य ज्वर उपस्थित होता है एवं सामान्य खाँसी तथा वायुनलीके प्रदाहके सभी लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। ज्वरके प्रथम वा द्वितीय दिवस सहसा स्फोटकें निकल आते हैं। ये पहले वक्षस्थल तथा स्कन्धमें दिखाई पड़ते हैं, इसके बाद ४।५ रात्रिके मध्य ही क्रमशः सारे शरीरमें फैल जाते हैं एवं मुखमण्डल सामान्य भावमें आक्रान्त होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतानुसार पहलेसे ही स्फोटकोंके मध्य जलके समान थोड़ा थोड़ा रस वर्त्तमान रहता है; किन्तु अधिक समय किंचित् उच्च तथा उज्ज्वल लाल वर्ण दाग बाहर होता है। यह दाग चार पाँच घंटेके भीतर ही रस गोटियोंमें परिणत होते देखा जाता है। उस समय गोटियोंके देखनेसे मालूम पड़ता है, मानो खौले हुए पानीका छींटा दे कर रोगीकी देहमें फफोले उत्पन्न किये गये हों। २४ घंटेके मध्य भेसिकेल्के भीतरका रस कुछ गदोला हो जाता है एवं तीसरे दिन कई एक भेसिकेल मवादसे भरी हुई गोटियोंकी तरह देखे जाते हैं। भेसिकेलसमूह देखनेमें गोल अथवा अंडाकार एवं वसन्तकी गोटीके समान होते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा चिपटा किंवा इनका कोटर विभक्त नहीं रहता। छेद कर देनेसे गोटियाँ बिलकुल सिकुड़ जाती हैं और परिओला नहीं रहता। २४ घंटेके अन्दर उक्त गोटियाँ कुछ गाढ़ा तथा अस्वच्छ हो पड़ती हैं। चौथे तथा पाँचवें दिन कण्डु शुष्क हो जाता है एवं उस पर बारीक झिल्ली पड़ जाती है। इसके बाद धीरे धीरे ऊपरका शुष्क चमड़ा गिर जाता है। इस तरह पपरीके स्खलित हो जाने पर कुछ दिनों तक शरीरमें सामान्य लाल दाग रहता है; किसी किसी स्थानमें गहरे दाग देखे जाते हैं। साधारण लक्षणोंके मध्य सामान्य ज्वर, सर्दी तथा चमड़ेमें कंडुय वर्त्तमान रहते हैं एवं शरीरसे एक प्रकारकी गंध निकलती रहती है।

निर्णयतत्त्व—टीका देनेके बाद वसन्तरोग होने पर कभी कभी जल-वसंत होनेका भ्रम हो सकता है। वसंतकी गोटी निकलनेके पहले कमरमें दर्द, उछाल, शिरमें पीड़ा आदि कई लक्षण दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इस पीड़ामें ये लक्षण प्रगट नहीं होते। जल-वसन्तका आवरण वसन्तकी तरह दृढ़ नहीं होता। भेसिकेल् अवस्थामें परिणत होने पर निम्नभागमें वसन्तकी गोटियोंके समान इसकी गोटियाँ ऊंची वा कठिन नहीं होतीं। सूईसे छिद्र करने पर चिकेन् पाक्स पूर्णतया संकुचित हो जाता है।

भावीफल—इसमें रोगीको अधिक कष्ट भोगना नहीं पड़ता, यह रोग आसानीसे आराम होता है; किन्तु आरोग्य लाभ करने पर भी रोगी कुछ दिनों तक दुर्बल रहता है।

चिकित्सा—इसमें किसी प्रकारके औषधिके प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस रोगमें सर्वदा पेट साफ रखना चाहिये एवं हलका भोजन देना चाहिये। ज्वर तथा खांसी रहने पर उसके निवारणार्थ उपर्युक्त औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः गृहस्थ लोग रोगीको पाचक खिलाते हैं, उसे वसंतकी "जाड़ी" कहते हैं। बनियेकी दूकान पर वसंतकी 'जाड़ी' खोजनेसे पूरे परिमाणमें मिलती है।

वसंतऋतुमें हम लोगोंके देशमें वसंत रोगका प्रादुर्भाव होता है। इस रोगके उपद्रवकी शांतिके लिये हम लोगोंके देशमें शीतलाकी पूजा तथा स्तवकवचादि पाठ होता है। माँ शीतला ही वसंतरोगकी अधिष्ठात्री देवी हैं एवं ज्वरासुर उनका सहकारी है।

मलयानिल संचालित भारतमें इस रोगकी प्रबलता बहुत दिनोंसे सुनी जाती है। 'अथर्ववेदके (१।२५।१) "तक्मन्" शब्दमें शीतला रोगका उल्लेख है। दाक्षिणात्य प्रभृति नाना स्थानोंमें आज भी लोग इस रोगको वसन्त न कह कर शीतला ही कहते हैं। पिच्छिलातन्त्रमें शीतलादेवी विस्फोटककी उग्रतापनाशिनी एवं स्कन्द-पुराणमें वे विस्फोटक-विशीर्णकी अमृतवर्षिणी तथा गल-गण्डादि दारुण ग्रहरोगविनाशिनी कही गई हैं। इस कारण व्रणज क्षत वसन्तरोगकी वे ही अधिष्ठात्री हैं।

हिन्दू मतानुसार एकमात्र शीतलादेवीके पुजारी ब्राह्मण वा डोम पंडितगण ही वसन्तरोगकी पूजा करनेके अधिकारी हैं। वे लोग जिस प्रणालीसे चिकित्सा करते हैं, वह संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

रोगीके शरीरमें वसन्त दिखाई देने पर उसी क्षण उसे स्वतंत्र गृहमें पवित्रतापूर्वक रखना चाहिये। रातके पहने हुए कपड़े बिना बदले एवं किसी प्रकारके अशुचि वस्त्र धारण किये रोगोके घरमें प्रवेश न करना चाहिये। दिनमें तीन वा चार बार घरमें गङ्गाजल छिड़कना चाहिये एवं धूना जलाना चाहिये। घरका कोई व्यक्ति मछली न खाय एवं लाल कपड़ा न पहने, ये दोनों निषेध माने गये हैं। कारण यह है, कि इस समय गृहमें माँ शीतला प्रवेश करती हैं। इस समय लोग गृहमें घट स्थापन करके माँकी पूजा करते हैं। माँ श्वेताङ्गी कह कर वर्णित हुई हैं, किन्तु लोग माँकी लाल रंगकी मूर्त्ति तैयार करते हैं। रोगी इस समय एकाग्र चित्तसे माँकी मूर्त्तिका ध्यान करते हैं। लाल रंगके कपड़े इत्यादि पहनना श्वेताङ्गी देवीका अपमानकर समझ कर ही सम्भवतः इस तरहकी निषेधाज्ञा प्रचारित हुई है। वर्त्तमान किसी वैज्ञानिकने स्थिर किया है, कि वसन्तरोगग्रस्त व्यक्तिको लालवर्णहीन गृहमें रखनेसे लाभ होता है। क्योंकि लालरङ्गके साथ वसन्तकी अधिक सहयोगिता है। इसीलिये बोध होता है, कि हमलोगोंके ज्ञानी मनुष्योंने शीतला देवीकी लालमूर्त्तिकी कल्पना की थी। देवीकी मूर्त्तिके ध्यानसे रोगमुक्तिरूप लौकिक तथा मोक्षरूप पारलौकिक मूर्त्ति विनिविष्ट है। रोग आराम हो जानेके बाद वसन्तके दागको शरीरके चमड़ेके समान बनानेके लिये कई वैज्ञानिकोंने नारियलका तेल शरीरमें मलनेका परामर्श दिया है।

शीतलाके पंडित लोग पहले रोगीके उष्ण रक्तका ताप निवारण एवं गात्रज्वाला शीतल करनेके लिये वैद्यक शास्त्रके मसूरिकाध्यायोक्त एवं पाचक तथा मकर-ध्वजादि औषधियोंकी व्यवस्था करते हैं एवं साथ ही साथ शीतला माताके स्तवादि पाठ करके रोगीके चित्तमें शीतला माताका प्रभाव फैला देते हैं।

जब शरीरमें वसंत अच्छी तरह नहीं निकलता, तब वे पंडित लोग अपनी अभ्यस्त औषधियाँ प्रयोग करके वसंतको बहिर्गत करनेकी चेष्टा करते हैं। इस तरहसे जब वसंतकी गोटियाँ शरीरके सभी स्थानोंमें पूर्णरूपसे निकल कर क्रमशः परिपक्व हो जाती हैं, तब वे रोगीको देहमें चन्दन, कच्ची हलदीका रस तथा मक्खनके संयोगसे एक प्रकारका मलहम तैयार करके लगाते हैं। इससे रोगीका शरीर शीतल होता है। इसके बाद काँटा देनेकी व्यवस्था होती है। इस रोज वे बेलके कांटेसे व्रणको धीरे धीरे फोड़ देते हैं। काँटा देनेके पहले दिनकी रात्रिको वे रोगीके गृहमें पञ्चपात्रोंके मध्य गंगाजल, रूई, शुद्धदुग्ध तथा ५ बेलके काँटे रख कर कहते हैं—"माँ आ कर कांटा देगी, इसके बाद आवश्यकतानुसार मैं दूंगा। आवश्यकता न होने पर मैं काँटा न दूंगा।" बेलके कांटेसे वसन्तका मुख उसका देना बहुत जरूरी है। इससे मवादके निकल जानेकी विशेष सुविधा होती है। इसके बाद शरीरकी ज्वाला निवारणके लिये वे रोगीके समूचे शरीरमें मक्खनका प्रलेप करते हैं। कभी कभी वसन्तरोगका घाव आराम करनेके लिये वे वसन्तकुमारो प्रभृति नाना प्रकारका तेल तैयार करके रोगीकी देहमें क्षत अथवा आक्रान्त स्थान पर लगा देते हैं। इससे बहुत लाभ होता है।

मां शीतलाकी दयासे वसन्तकी उग्र ज्वाला कम जाने पर हिन्दूलोग माँ शीतलाका गाना गाते हैं एवं देवीके सामने पूजा तथा बकरेका बलिदान करते हैं। इस शीतलाकी पूजाके लिये स्थान स्थान पर ब्राह्मण-पुजारी एवं कहीं कहीं डोम पंडित नियुक्त हैं। ये लोग ही वसन्त रोगकी चिकित्सा करते हैं। इनकी चिकित्सा-प्रणाली

स्वतंत्र है। वसन्तरोगकी चिकित्सा कर किसी डोम पंडितने गवर्नमेंटसे डिप्लोमा प्राप्त किया है।

शीतलाके पंडित लोग कहते हैं एवं देवकीनन्दन, कविवल्लभ तथा नित्यानन्दके शीतला-मंगलग्रन्थमें लिखा भी है, कि आलकुशी, घुकुड़िया, चामदल प्रभृति ६४ प्रकारके वसन्तरोग होते हैं।

चौदह प्रहर अर्थात् डेढ़ दिन ज्वर भोग करनेके बाद प्रायः वसन्त दिखलाई देता है एवं शिरमें पीड़ा तथा जड़ैया बुखार ही वसंतरोगके आरम्भ होनेका प्रधान लक्षण है। विभिन्न प्रकारके वसंतके नाम तथा वसंतरोग मुक्तिके निदानभूत शीतलास्तव एवं शीतलाके गान शीतलादेवीके प्रसंगमें वर्णन किया गया है। शीतला देखो।

वसन्तलता (सं० स्त्री०) नायिकाभेद।

वसन्तललना (सं० स्त्री०) शुक्लयूथी, सफेद जुही।

वसन्तलेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (राजतर० ७।९५७)

वसन्तवाक् (सं० पु०) चौदह तालोंमेंसे एक। (संगीत-दामोदर)

वसन्तवितल (सं० पु०) विष्णुकी एक मूर्त्ति।

वसन्तव्रण (सं० क्ली०) वसंत नामक रोगजनित व्रण, मसूरिका।

वसन्तव्रत (सं० पु०) कोकिल।

वसन्तशेखर (सं० पु०) किन्नरभेद।

वसन्तसख (सं० पु०) वसन्तस्य सखा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। कामदेव।

वसन्तसखा (सं० पु०) वसन्तसख देखो।

वसन्तसमयोत्सव (सं० पु०) वसंतसमयस्य उत्सवः। वसंत समयका उत्सव, वसंतोत्सव, वह उत्सव जो फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिमें श्रीकृष्णके उद्देशसे होता है।

वसन्तसेन (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (कथासरित्सा० ३३।९२)

वसन्तसेना (सं० स्त्री०) महाकवि राजा शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिक नामक प्रकरणकी एक नायिका। अवन्तीपुरीमें चारुदत्त नामके एक सार्थवाह ब्राह्मण युवक थे। वसंतसेना वेशवनिता होने पर भी इस दरिद्र युवककी गुणानुरागिणी हो गई। कविकी वर्णनासे वसंतसेना वसंतशोभाकी तरह रमणीया है।

वसन्तार्त्त (सं० पु०) विभीतकवृक्ष, बहेड़ा।

वसन्ताध्ययन (सं० क्ली०) वसंतसंहाचरित अध्ययन।

वसन्तिका (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।

वसन्तोत्सव (सं० क्ली०) वसन्तस्य उत्सवः। फाल्गुनोत्सव, होलीका उत्सव। फाल्गुनमासकी पूर्णिमाके दिन वैष्णवोंके साथ श्रीकृष्णके प्रिय भक्तको वसंतका पूजोत्सव करना होता है। इस उत्सवकी विधिव्यवस्था आदि भविष्योत्तरखण्डमें भगवान्ने स्वयं ही युधिष्ठिरको कही है। इसको फलश्रुतिको ले कर ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य शास्त्रानुसार इस फाल्गुनोत्सवका अनुष्ठान करेगा, मेरे प्रसादसे उसके सभी मनोरथ सिद्ध होंगे। जाड़ा बीतते ही वसंतकालमें जो वासंती-पूर्णिमाके दिन सबेरे चन्दन सहकृत हुआ चूतकुसुम खायगा, वह निश्चय ही सौ वर्ष तक सुखसे अपना जीवन बितावेगा। (हरिभक्तिवि० २४ वि०)

२ एक उत्सव जो प्राचीनकालमें वसंतपञ्चमीके दूसरे दिन होता था। इसे मदनोत्सव भी कहते थे। इसमें उद्यानोंमें जा कर लोग वसंत और कामदेवका पूजन करते थे। होलीका उत्सव इसीकी परम्परा है।

वसन्तोत्सवमण्डल (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

वसमा (अ० पु०) १ नीलका पत्ता। २ उबटन। ३ खिजाव। ४ एक प्रकारका छपा कपड़ा जो चांदीके वर्क लगा कर छापा जाता है।

वसर्हन (सं० पु०) १ नाना वेशधारी। २ अग्नि।

वसव (वृषभ शब्दका कनाड़ी अपभ्रंश)—दाक्षिणात्यके वीरशैव या लिङ्गायत-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक। वीरशैवोंके निकट ये शिवके अनुचर नंदीके अवतार समझे जाते हैं। दाक्षिणात्यमें आज भी लाखों मनुष्य इस वसवके मतानुसार चलते हैं, इसलिये ये एक सामान्य व्यक्ति नहीं थे। इनका माहात्म्य और धर्ममत वीरशैवोंके 'वसवपुराण' और 'छन्नवसवपुराण' में वर्णित है।

वसवपुराणमें लिखा है,—जैन, बौद्ध और चार्व्वाकोंके प्रभावसे भारतभूमिसे शैवधर्म एक प्रकारसे विलुप्त होनेका उपक्रम हो गया। उस समय नारद ऋषिने कैलास

जा कर महादेवको भारतभूमिकी दुरवस्था कह सुनाई। शिव और पार्वती दोनों ही नारदकी बातोंसे विचलित हुए। थोड़ी देर चिंता करनेके बाद शिवने सत्यधर्मका प्रचार करनेके लिये नंदीको भेजा।

वगुवरी नामक गाँवमें मादिराज नामक एक शैव ब्राह्मण अपनी साध्वी पत्नी मदलाम्बिकाके साथ वास करते थे। उनकी कोई सन्तान न थी। पुत्रकी कामनासे उन्होंने नन्दिनाथकी पूजा करा कर नन्दिनाथ ब्राह्मणकी वासना पूरी की। उसीसे ब्राह्मण-पत्नी गर्भवती हुई। ३ वर्ष बीत गये। गर्भके भारसे ब्राह्मणीने बहुत पीड़िता हो कर नंदनाथसे अपना कष्ट सुनाया। नंदीने स्वप्नमें ब्राह्मणीको कहा,—मैं स्वयं तुम्हारे गर्भमें अवतीर्ण होऊंगा, कोई चिन्ता नहीं। कुछ ही दिनोंके पीछे ब्राह्मणीने कष्टसे लिङ्ग-शोभित एक बालक प्रसव किया, जिसका नाम पड़ा वसव।

थोड़े ही दिनोंके अंदर वसवने लिखना पढ़ना सीख लिया। आठवें वर्षमें उनके उपनयनका समय हो आया, पिता उपनयनका आयोजन करने लगे, किंतु वे यज्ञोपवीत लेनेमें राजी न हुए। उन्होंने कहा—'मैं शिव-भक्त हूं, ब्रह्मकुल नहीं चाहता। जातिभेदरूप वृक्षमूल-च्छेदनमें मैं कुठार-स्वरूप हूं।'

इस समय कल्याणपति विज्जलके मन्त्री बलदेव भी वहां उपस्थित थे; वे बालककी अपूर्व शक्तिका परिचय पा कर स्तम्भित हो रहे। यहां तक, कि उन्होंने अपनी कन्या गंगादेवी वसवको ब्याह दी। थोड़े दिनोंमें ही वसवका मत चारों ओर राष्ट्र हुआ। ब्राह्मणोंने निग्रह शुरू किया जिससे उन्हें अपनी जन्मभूमि त्याग करनी पड़ी। वे कप्पड़ी गाँवमें आ कर बस गये। यहां प्रसिद्ध सङ्गमेश्वरका मन्दिर था। सङ्गमेश्वरका प्रत्यादेश हुआ, "तुम्हें शैवधर्म प्रचार करना होगा। जङ्गमोंको मेरे ही समान समझना, हजार दोष करने पर भी उससे द्वेष न करना। पर-धन या पर-स्त्री पर आँखें न गड़ाना, सदा सत्य बोलना एवं सत्यका पालन करना।"

कप्पड़ी गांवमें उत्सव मनाया गया। इस उत्सवमें नन्दीमूर्त्तिकी भी पूजा करनेकी व्यवस्था थी, ब्राह्मणोंने बराबर जिस प्रकार पूजा करते आते हैं, उसी प्रकार सङ्ग-मेश्वरको पूजा की, किन्तु वसवने आ कर दूसरे तरीकेसे पूजा की। ब्राह्मण लोग इससे अपना अपमान समझ वसव पर बड़े बिगड़े, इतना ही क्यों उन्हें मारने पर भी उद्यत हो गये। ऐसे समयमें जङ्गमेश्वरने जलद गम्भीर निनादसे सबों को कहा,—'तुम लोगोंकी पूजा व्यर्थ है, वसवकी पूजा ही ठीक पूजा है।' इस घटनासे वसवका माहात्म्य सर्वत्र प्रचारित हो गया।

कल्याण-राजमन्त्री बलदेवकी मृत्यु होने पर विज्जल-राजने बन्धुवर्गोंके परामर्शसे वसवको ही मन्त्री पर भूषित किया। ज्यों ही वसवने राजमन्त्री हो कल्याणमें प्रथम प्रवेश किया, त्यों ही कल्याण-राजधानीमें माङ्गलिक चिह्न दिखाई पड़े थे। विज्जलराजके यहां इनका खूब सम्मान तथा खूब चलती थी। वे राजमन्त्रीके सिवाय प्रधान सेनापति और प्रधान कोषाध्यक्ष भी रहे। कहना क्या, कल्याणपतिको छोड़ उनके ऊपर और कोई न रहा।

विज्जलराज उनके असाधारण गुण पर मुग्ध हो कर अपनी कनिष्ठ भगिनी नीललोचनाका विवाह वसवसे कर दिया। वसवके उन्नत चरित्र, सदाशयता और स्वाधीन धर्म्मोपदेशसे राज्यके सभी विमुग्ध थे, देश-विदेशमें उनकी कीर्त्ति विघोषित थी। ऐसे उन्नत-चरित्र महापुरुषके भी बारह हजार कुकर्मी लिङ्गायत आचार्य थे, वेश्याके ही घर वे लोग रहते थे।

जब वे राजमंत्री थे, तब राजकीय कार्यके अलावा उनके द्वारा बहुत-से अमानुषिक कार्य भी हुए थे। उन्होंने गेहूं वजनके बटखरेको लिङ्गरूपमें और ज्वारके वस्ते-को मुक्तामें परिणत किया। बाछीका दूध निकाल कर उन्होंने शिष्योंको पिलाया, चित्रसे कटहल निकाला, राजसभामें बैठ कर दो कोस पर गोपाङ्गनाको कातर-वाणी सुनी थी और उसका उद्धार किया था।

विज्जलराजने जब एक दिन सुन पाया, कि मंत्री उनका खजाना खाली कर जङ्गमको रुपये बांटते हैं, तब वे वसव पर बड़े बिगड़े एवं उन्हें बुला कर कहा,—'तुमने अपने मनमें क्या सोच रखा है कि तुम्हारी जो इच्छा होगी वही करोगे। मैं ऐसा आदमी नहीं चाहता।' वसवने हँस कर उत्तर दिया, 'जब तक मेरे पास कामधेनु और कल्प-

तक है, तब तक मुझे किस बातकी चिंता है?' यह कह कर उन्होंने राजाको धनागार दिखा विस्मित कर दिया।

एक दिन राजसभामें वसवने भस्म लगानेका माहात्म्य कहा, राजा जैन धर्मावलम्बी थे। भस्म लगाने या लिङ्गकी उपासना पर उनकी तनिक भी श्रद्धा न थी। वसवके मुखसे भस्मका माहात्म्य सुन राजा हँस पड़े और एक नीच जातिकी स्त्रीको दिखा कर उनसे पूछा, 'यह देखो भस्मावृत हंडीमें कैसी पवित्र सुरा ले कर जा रही।' वसवने उसी समय उत्तर दिया—ऐसे पवित्र बरतनमें सुरा कदापि नहीं रह सकती। यह कह कर राजाका हंडीमें सुराके बदले दूध दिखा दिया। सब कोई चमत्कृत हो गये। कुछ दिन बाद एक वैदांतिक कल्याणकी राजसभामें आ उपस्थित हुए। उनके साथ बहुत-से शिष्य और दश हाथी पर लदी हुई पोथियां थीं। सभामें जितने सभ्य बैठे थे, सबोंने तो वैदान्तिकका सम्मान किया, पर वसवने अपनी ओर आँख भी टेढ़ी न की। वैदान्तिकने यह देख लिया। उन्होने उनकी ओर बता कर राजासे पूछा 'ये भस्मोभूत मूर्त्ति कौन हैं?' राजाने वसवकी बड़ाई करते हुए अपना मंत्री बताया। अनन्तर वैदांतिक उनसे शास्त्रालाप करने लगे। वसव एक एक करके उनके तर्कोंको काटने गये। अन्तमें वैदांतिक शिवकी निन्दा करने लगे। तब वसवने कहा,—शिवकी निन्दा करते जानेमें ब्रह्माका एक सिर गया था। उस प्रकार शिवनिन्दकका भी सिर लेना उचित है, ऐसे व्यक्तिके साथ शास्त्रार्थ करनेमें शोभा नहीं होती। खड़का पुतला ऐसे अर्वाचीनके साथ शास्त्रार्थ कर सकता है। वैदांतिकने खड़का एक पुतला बना कर वसवको दिखाया। क्या आश्चर्य! वसवने उसी खड़में जीवनदान कर उसीसे वैदांतिकका दर्प चूर्ण किया। पीछे वैदांतिकने हार खा कर अपने शिष्योंके सहित वसवका शिष्यत्व ग्रहण किया।

एक दिन बहुत लोगोंके कोलाहलसे विज्जलराजकी नींद टूट गई। वे उस गभीर रात्रिमें प्रासादकी छत पर चढ़ कर क्या देखते हैं, कि चारों ओर लोकारण्य है, आलोकमालासे समस्त पथ ऐसा हो गया है मानों दिवाकर दिनके बदले आज रात हीमें अपनी सारी ज्योति खतम कर देंगे। इनके अलावे और क्या देखते हैं, कि लाखों लिङ्गायत शैव उनकी राजधानी घेरे हुए हैं और मन्त्री उन्हें धन बांट रहे हैं। यह देखते ही उनकी क्रोधाग्नि धधक उठी। दूसरे दिन उन्होंने वसवको खूब डाँट डपट की। वसव यह डांट-डपट कब सुननेवाले थे। उन्होंने कान पर हाथ रखा, पराधीनता उन्हें असह्य जान पड़ी। उसी समय उन्होंने राजाका जो कुछ था उसे अर्पण कर कल्याण राजधानी छोड़ चले।

प्रखर रौद्रतापमें अनाहार चलते चलते जब बारह कोस आये, तब एक पुरोहितसे उनकी मुलाकात हुई। पुरोहित बड़े यत्नसे उन्हें अपने घर लिया गये। यहां भगवान्ने उन्हें स्वप्न दिया, 'वत्स! चिन्ता मत करना! अमुक स्थानके गर्त्तमें तुम एक हार पावोगे, उसीसे तुम्हारी सारी तकलीफें दूर होंगी।' सवेरा होने पर वे उस गर्त्तके पास गये। गर्त्तमें हाथ देते ही एक विषधर सांप निकल पड़ा। भगवान्‌की लीला अपार है, छूते ही वह सांप मूल्यवान् हार हो गया। वह हार बेच कर वसवने प्रभूत धन पाया एवं उसीसे महासमारोहके साथ फिर जङ्गमकी सेवा करने लगे। विज्जलराजने उनकी अपूर्व क्षमता पर विमुग्ध हो फिर उन्हें मन्त्रित्व प्रदान किया। वसवकी क्षमता और भी बढ़ गई, हजारों मनुष्य आ कर उनके भक्त हो गये।

छन्नवसवपुराणमें लिखा है, कि वसवके चरित्रबल, ज्ञानप्रभाव और अलौकिक शक्तिके फलसे शैवसम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुआ। उस समय वसवकी ज्येष्ठा भगिनी नागलाम्बिकाके गर्भमें स्वयं भगवान् शिव अवतीर्ण हुए। नागलाम्बिका चिरकुमारी अथच वयस्था थी। उनका गर्भ देख नाना आदमी नाना तरहकी बातें बोलने लगे। यहां तक, कि राजाके पास भी इसकी शिकायत हुई। नाना विचार करनेके लिये नागलाम्बिकाको बुलवा कर इस गर्भके होनेका कारण पूछा। साध्वी कुमारीने अकुण्ठितभावसे राजाको कहा, 'स्वयं भगवान् मेरे गर्भमें आये हैं। यह उनकी देवपरिचर्याका फल है।' राजाने इतनेमें ही उनकी बातका विश्वास न किया; किन्तु क्या आश्चर्य नागलम्बिकाके गर्भसे स्वयं भगवान्ने हुंकार किया। सभी अचम्भेमें पड़ गये। यथा-

काल स्वयं भगवान् शिव भूमिष्ठ हुए, उनका नाम पड़ा छन्नवसव। वसव और उनके मतानुवर्ती जङ्गमोंने पहले हीसे रास्ता साफ कर रखा था। अब भगवान्‌ने अवतीर्ण हो कर अपने मतकी प्रतिष्ठा की। वसव और लिङ्गायत शब्दोंमें अपरापर विवरण देखो।

वसवास (अ० पु० १ भ्रम, दुविधा, संदेह। २ भुलावा, बहकावा, अलोभन या मोह।

वसवासी (अ० वि०) १ विश्वास न करनेवाला, संशयात्मा, शक्की। २ भुलानेमें डालनेवाला, बहकानेवाला।

वसव्य (सं० क्ली०) धन, अर्थ सम्पत्ति।

वसा (सं० स्त्री०) वसते वस्ते वा वस-निवासे वस-आच्छादने वा वस अच्। स्त्रियामाप्। १ मांसरोहिणी २ मेदो धातु। (राजनि०) ३ शुद्ध मांसभव स्नेह, चरबी।

वसा और स्नेहकी पृथकता बतलाते हुए महीधरने लिखा है—

"ताप्यमानस्य वा स्नेहो मेदसः सा वसा मता॥"
(शुक्लयजु० २५।६ भाष्य)

वैद्यक शास्त्रमें वसाके बहुत-से गुणोंका उल्लेख है। बहुत प्राचीन कालसे ही वसाका प्रचलन है। तैत्तिरीय संहितामें 'वसा होम' (६।३।११।१) की व्यवस्था देखी जाती है। सुश्रुतमें वराहवसाकी उपकारिता दिखलाई गई है। श्वलरोगमें शूकर-वसानिर्मित प्रलेप शरीरके चमड़ेका विशेष उपकारी होता है। वातरोगमें शूकरको वसाकी मालिश करनेसे बड़ा उपकार होता है।

इस वराहवसा वा शूकरकी चरबीकी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें हम भारतके सुविख्यात सिपाही विद्रोहका उल्लेख कर सकते हैं। जिस टोटाको ले कर १८५७ ई०में हिन्दू तथा मुसलमान सिपाही-दल अंग्रेज कम्पनीके विपक्षमें अभ्युत्थित हुआ था, वह टोटा उक्त दोनों जातियोंकी निषिद्ध गो तथा शूकरकी वसाके योगसे तैयार किया गया था, ऐसा उनका विश्वास था।

प्राणियोंके शरीरके मेद वा चरबी अग्निके योगसे गला कर उसके झिल्लिज पदार्थ (Membranous matters) अलग कर लेनेसे घीके समान तथा दानेदार वसा पाई जाती है। इस वसेमें किसी तरहका स्वाद नहीं पाया जाता, उसे एक प्रकारका स्वादहीन पदार्थ भी कह सकते हैं। वाणिज्यके लिये देशदेशान्तरमें जो वसा भेजी जाती है, वह बहुत कुछ अपरिष्कार और कुछ हल्दी रंगकी होती है। प्राणियोंके भेदानुसार एवं पदार्थके तारतम्यानुसार यह साधारणतः बहुत प्रकारकी होती है। इनमेंसे जो वसा अच्छी होती है, वह औषध (मलहम ointment आदि) और बत्ती (Candles) बनानेके काममें आती है। वसाका मलहम या प्रलेप बना कर फोड़े पर लगानेसे फोड़ा जल्द ही आराम हो जाता है। Tallow candles या चरबीकी बत्ती जो झाड़ फनोस, सेज, समादान आदिमें जलाई जाती है, वह भी उत्तम श्रेणीकी वसासे बनती है। खराब वसासे साबुन (Soap) तैयार होता है। चमड़ेको पालिश (Leather dressing) और नरम करनेमें चरबीकी बड़ी ही आवश्यकता होती है। कल-कब्जेमें (Machinery) और गाड़ी आदिके चक्केमें चरबी न लगानेसे काममें बड़ा व्याघात पहुंचता है।

इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, स्कान्दिनेविया, इटली, रूस आदि अंगरेजी राज्योंमें साबुन और बत्ती बनानेके लिये चरबी प्रचुर परिमाणमें गलाई जाती है। अभी अमेरिका, जापान और भारतके नाना स्थानोंमें जीवदेहकी चरबीसे वसा गला कर साबुन, बत्ती आदि बनानेके बहुत-से कारखाने हो गये हैं। इन सब जगहोंमें किस तरह वसा गलाई जाती है वह नीचे लिखा जाता है—

कसाई लोग जानवरोंका मांस बेच कर चरबीसमष्टि (fast and sult) कारखानेमें बेचने आते हैं। वसाकारी (Renderer) इन वसाको छुरीसे काट कर गरम जलमें फेंक देते और उसे आगसे फुटाते हैं। इस तरीकेसे चरबी धीरे धीरे गल कर झिल्लीसे अलग हो जाती है और क्रमशः जलके ऊपर भंसने लगती है। पीछे धीरे धीरे वह वसा हाथसे उठा कर पत्तेमें रखी जाती है। जो चरबी तब तक भी झिल्लीसे मिली रहती है, उसे उपयुक्त 'माड़नयन्त्र'की सहायतासे अच्छी तरह पीस कर निकाल लेना होता है। यह झिल्लीपिंड या खांखर (Graves या Cracklings) कहलाता है। फिर यह खांखरी जलमें सिद्ध करने पर नरम हो जाता है। तब वह पालतू कुत्ते, चिड़िए और दूसरे दूसरे पशुओंको खिलाया जाता है।

जीवहत्याके बाद रसायनकार्य शीघ्र ही सम्पादन करना चाहिए; कारण शवदेहसे तुरत चरबी अलग न करनेसे उसके साथ संयुक्त तन्तु और मांससूत्रके साथ साथ चरबी भी सड़ जाती है।

समूचे संसारके मध्य सिर्फ रूसराज्यमें ही सर्वापेक्षा अधिक परिमाणमें वसा उत्पन्न होती है। उस देशके बाशिन्दे प्रायः प्रति वर्ष २५ करोड़ पौंड वजनको वसा विभिन्न देशोंमें भेजते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग अपने देशवासियोंके व्यवहारके लिये वसा तैयार करते हैं। इतनी वसा साधारणतः यूरोपीय रूसराज्यके दक्षिणस्थ पोण्टाइन ष्टेपी (Pontine steppes) नामक सुविस्तृत तृणप्रान्तके मध्य ही संगृहीत होती है। वहां जितने सुवृहत् वसाके कारखाने हैं, उन्हें Salgans कहते हैं। ये कारखाने केवल ग्रेट-रूसके अधिवासियों की ही देख-रेखमें परिचालित होते हैं। वहांके कर्मचारी लोग हजारों गवादि पशु एक साथ खरीदते और एक वर्ष तक अच्छी तरह खिला कर उसका शरीर चरबीसे भरा देते हैं। जब वे लोग इन पशुओंको चरबी निकालनेके उपयुक्त समझते, तब सबोंको कसाई-बाड़ामें भगा ले जाते और वहीं उन्हें मारते हैं।

इन सब कसाई-बाड़ोंमें कसाई लोगोंके बहुत से घर हैं। उनके बीच एक निहत गोमांस-विक्रयस्थान, कितनेमें मांससिद्ध करनेके लिये वायलर प्रतिष्ठित और किसी घरमें चमड़े रहते हैं। दूसरे कई घर दफ्तरखाने और कर्मचारियोंके वासभवन हैं। ग्रीष्मकालमें कोई भी कसाई-बाड़ामें नहीं रहता, केवल कुत्ते और शिकारी पक्षिगण यहां मांसकी गंध ले विचरते रहते हैं। ग्रीष्म बीत जाने पर वे पहले थोड़ा मोटा ताजा बैल यहां ला कर बध करते हैं। इसके बाद वर्षा ऋतुमें वे लोग यथार्थरूपसे कार्यारम्भ करते हैं। तब दलके दल कसाई-बाड़ामें पशु ला कर नृशंसभावसे निहत किया करते हैं। पशुहत्याके बाद पशुका चमड़ा उतारते और बिना चरबीवाला मांस बाजारमें बेचनेके लिये भेजते हैं। निष्ठुरतासे मारनेके कारण वह मांस इतना खराब होता, कि कोई भद्र पुरुष वह मांस नहीं खरीदते। सिर्फ दरिद्र ही खरीदता है।

अवशिष्ट शवदेहको वे लोग टुकड़ा टुकड़ा करते एवं उसे वायलर (Boiler)-में डाल कर चरबी बाहर करते हैं। एक एक वायलरमें १० से १५ बैलों तकका मांस अंट सकता है। हर एक कसाई-बाड़ामें ऐसे ५ या ६ वायलर होते हैं। तदनन्तर कड़ाहेके गात्रमें मांस लग कर जल उठता है, उस वायलरके मध्य वे लोग थोड़ा जल देते हैं। कड़ाहस्थित मांसास्थिको मज्जा (Soup) कहते हैं। जब कड़ाहके ऊपर चरबी गल कर उठती है, तब हत्थेसे काट कर उसे पीपेमें रखते हैं। उसके बाद वह कस कर वैदेशिक वणिकोंके हाथ भिन्न देशोंमें भेजी जाती है। पहले जो वसा उबलाती है, वह सबोंसे सफेद और अच्छी तथा पीछेवाली वसा कुछ हल्दी रंगकी होती है। पीपेके अभावमें चमड़ेकी सिलाई करके एक एक थैली बनाई जाती है। दूसरी श्रेणीकी वसा उत्थित होने पर वायलर-गात्रस्थ अवशिष्ट मांस और अस्थि-कलकी भयानक चापसे एक प्रकारकी निकृष्ट वसा निकाली जाती है। यह मैली गंदी वसा साधारणतः कलके चक्केमें व्यवहृत होती है।

एक मोटे ताजे बैलसे साधारणतः २५० से २६० पौंड वसा निकलती है, जिसका मूल्य १५० रुबुलसे कम नहीं होता।

इन सब पशुओंकी आंत भी बरबाद होने नहीं पाता। वसाके व्यवसाय करनेवाले सूअर भी रखते हैं, सूअर यह आंत खाते हैं। इसके खानेसे सूअरकी भी चरबी बढ़ती है। पीछे इन सूअरोंकी भी चरबी निकाली जाती है।

वसाके व्यवसायी लोग सफेद और हल्दी रंगकी वसाके मध्य जो पीपा बत्तीमें और जो साबुन बनानेके काममें आता है, उसे अलग कर बेचते हैं।

जीव-शरीरकी स्थान विशेषजात चरबी कड़ी और मुलायम होती है। वृक्क (गुरदा) की पार्श्वस्थ चरबी स्वभावतः ही कड़ी होती है, लेकिन अस्थिगह्वरके मध्य जहां जहां चरबी उत्पन्न होती है, वह उससे बहुत मुलायम होती है। इसके अलावे मांसपेशी और अन्यान्य कमनीय देहांशमें जो चरबी रहती है, वह सबोंसे कोमल होती है और उसमें आधा तेल मिला हुआ रहता है। इस तरह जीवदेहके भी तारतम्यानुसार वसा कड़ी और मुलायम होती

है। बैल और घोड़ेकी चरबीसे बकरे, हरिण आदि कोमल पशुओंकी चरबी मुलायम होती है और थोड़े तापसे गल जाती है। ७२° से ९२° डिग्री तापसे सभी चरबी गल जाती है।

भौतिक कार्य सम्पादन करते जानेमें भी जातीय पशु पक्षी आदिकी वसाका आवश्यक होता है।

मनुष्य, नाना जातिके पक्षी तथा जलचर मत्स्य-नक्रादिके शरीरसे विभिन्न प्रकारकी वसा उत्पन्न होती है। इन सब वसाओंके गुण और स्वातन्त्र्य वैद्यकशास्त्र-में लिखे हैं।

वसाकेतु (सं० पु०) एक प्रकारके धूमकेतु जो पश्चिममें उदय होते हैं और जिनको पूंछका विस्तार उत्तरकी ओर होता है। ये देखनेमें स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उदयसे सुभिक्ष होता है। (वृ० स० ११।२६)

वसाढ्य (सं० पु०) वसया आढ्यः प्रचुरवसावत्त्वादस्य तथात्वं। शिशुमार, सूंस। शुशुक देखो।

वसाढ्यक (सं० पु०) शिशुमार, सूंस। (Dolphinus Gangeticus)

वसाति (सं० स्त्री०) १ उत्तरके एक जनपदका नाम। (पु०) २ वसाति नामक जनपदका अधिवासी। ३ जन्मे-जयके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिप०) ४ इक्ष्वाकु-के एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वसातिक (सं० पु०) वसाति नामक उत्तर जनपदका अधिवासी। (वृ० स० १४।२५)

वसातीय (सं० त्रि०) १ वसाति जाति-सम्बन्धीय। (पु०) २ वसातिराज।

वसादनी (सं० स्त्री०) पीतशिंशपा, पीला शीशम।

वसापायिन् (सं० पु०) वसां पिबतीति पा-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

वसापावन (सं० पु०) एक प्रकारके वैदिक देवता, पशु-भाजा। (शुक्लयजु० ६।१६)

वसामय (सं० त्रि०) वसा स्वरूपे मयट्। वसास्वरूप।

वसामूर (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

वसामेह (सं० पु०) एक प्रकारका मेहरोग जिसमें मूत्र-के साथ चरबी मिल कर निकलती है। आधुनिक डाक्टरी चिकित्सामें यह बहुमूत्रका भेद है। इसमें मूत्रके साथ शरीरका सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है।

वसामेहिन् (सं० त्रि०) वसामेहविशिष्ट व्यक्ति, वह जिसे वसामेह रोग हुआ हो।

वसार (सं० क्ली०) १ इच्छा। २ वश। ३ अभिप्राय।

वसारोह (सं० पु०) छत्रिका, कुकरमुत्ता, खुमी।

वसावि (सं० स्त्री०) वसुसमूह। "वसाव्यामिन्द्र धारय" (ऋक् १०।७३।४) 'वसाव्यां वसुसमूहं' (सायण)

वसि (सं० पु०) वस्ते आच्छादयत्यनेन वस्यते आच्छादन-पूर्वक ध्रियते इति वा वस आच्छादने (घनिकष्यञ्जीति। उण्। ४।१३६) इति इ। वसन, वस्त्र।

वसिक (सं० त्रि०) शून्य। वशिक देखो।

वसितव्य (सं० त्रि०) परिधानयोग्य, पहननेके काबिल।

वसितृ (सं० त्रि०) आच्छादयितृ, वस्त्रसे ढकनेवाला।

वसिन (सं० पु०) वसा, मेद।

वसिर (सं० क्ली०) वस किरच्। १ सामुद्र-लवण। २ गज-पिप्पली। (पु०) ३ लाल रंगका अपामार्ग, लाल चिचड़ा। ४ वारिनिम्ब, जलनीम।

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि। ऋग्वेदके ७म मण्डलका अधिकांश ऋक् ही वसिष्ठ रचित वा वसिष्ठोंका दृष्ट है। वसिष्ठके जन्म-सम्बन्धमें बृहद्देवता नामक वैदिकग्रंथमें इस प्रकार लिखा है—

यज्ञस्थलमें उर्वशीको देख कर मित्र और वरुण इन दोनों आदित्योंका रेतःस्खलित हुआ। वह रेत वस-तीवर नामक यज्ञीय कुम्भमें गिरा। उससे क्षण भरमें अगस्त्य और वसिष्ठ नामक दो वीर्यवान् तपस्वी ऋषि आविर्भूत हुए। वह रेत कलसमें, जलमें और थलमें गिरा था। ऋषिसत्तम वसिष्ठमुनि स्थलसे, अगस्त्य कुम्भसे और महाद्युति मत्स्य जलसे उत्पन्न हुए थे। जलके ढाल लिये जाने पर वसिष्ठ पुष्करमें (जलमें) थे, उस समय देवताओंने सभी दिशाओंसे उस जलमें उनको धारण किया था। ऋक् संहितामें वसिष्ठकी उत्पत्तिके सम्बंधमें इस प्रकार लिखा है—

हे वसिष्ठ! तुम मित्र और वरुणके पुत्र हो। हे ब्रह्मन्! उर्वशीके मनसे तुम उत्पन्न हुए हो। जब (मित्र और वरुणका) रेतःस्खलन हुआ था, उस समय

विश्वेदेवोंने दैव्यस्तोत्र द्वारा पुष्करमें तुमको धारण किया था। प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न वसिष्ठने दोनों (लोक)-को जान कर सहस्र दान किये थे। यम द्वारा विस्तीर्ण वस्त्रवयन करनेकी इच्छासे वसिष्ठने उर्वशीसे जन्मग्रहण किया था। सत्रसे प्रार्थित हो कर मित्र और वरुणने कुम्भके मध्य युगपत् रेतःसेक किया था। अनंतर मध्यसे मानका प्रादुर्भाव हुआ। लोग कहते हैं, कि वसिष्ठऋषि भी उसीसे उत्पन्न हुए थे।

(ऋग्वेद ७।३३।११-१३)

वसिष्ठ किस प्रकार ऋषि हुए, इस सम्बन्धमें ऋग्वेद-(७।८८।३-४) में इस प्रकार लिखा है—

जब मैं (वसिष्ठ) और वरुण दोनों नाव पर चढ़े थे, जब समुद्रके मध्य नाव बड़ी तेजीसे जा रही थी, उस समय शोभा बढ़ानेके लिये मैं हिंडोले पर बड़े आनन्दसे खेल करता था। वरुण वसिष्ठको नाव पर ले गये थे, अपने महातेजसे उन्होंने निज सुकर्म द्वारा वसिष्ठको ऋषि बनाया था। उनका दिन और उषा वर्द्धित होवें, इस प्रकार स्तव करेंगे, इसीसे सुदिनमें उन्हें स्तोता किया था।

ऋग्वेदसे मालूम होता है, कि वसिष्ठ और उनके वंशधरगण सुदास-राजके पुरोहित थे। सुदास पिजवनके पुत्र, देववंतके पौत्र और दिवोदासके वंशधर थे। वसिष्ठ-ने पैजवन सुदासके पौरोहित्य कालमें राजासे प्रचुर धन-रत्न पाया था। ऋग्वेदमें सुदास पैजवनके दानस्तुति-विषयक सूक्त देखे जाते हैं, वसिष्ठ ही उस सूक्तके ऋषि हैं। (ऋग्वेदमें ७ मण्डल १८ सूक्त)

ऋग्वेदके ७म मण्डलके ३३वें सूक्तमें लिखा है—

तृष्णातुर राजाओंसे परिवृत वृष्टिप्रार्थी वसिष्ठोंने दश राजाओंके साथ संग्राममें आदित्यकी तरह इन्द्रको ऊपर उठाया था। इन्द्रने स्तुतिकारी वसिष्ठका स्तोत्र सुना था तथा राजाओंके लिये विस्तीर्ण लोक प्रदान किया था। गोत्रके दण्डकी तरह भरतगण (शत्रुगण) परि-छिन्न और अल्पसंख्यक थे। अनन्तर वसिष्ठ उन्हींके पुरो-हित हुए तथा तृत्सुओंकी प्रजा वृद्धि होने लगी। यहां वसिष्ठ भरतोंके भी पुरोहित होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण (८।२१)-में लिखा है,—वसिष्ठने ऐन्द्र महाभिषेक द्वारा सुदास पैजवनको अभिषिक्त किया था। इसीसे सुदास पैजवनने समस्त पृथ्वी जय कर अश्वमेध यज्ञ किया था।

वसिष्ठ सुदासके पुरोहित होने पर भी सौदास या सुदासके पुत्रोंने उनके सौ पुत्रोंका प्राणसंहार किया था। इस विषयको ले कर बृहद्देवतामें लिखा है,—

महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंका निधन कर एक जिघांसु राक्षसने वसिष्ठका रूप धारण कर उनसे कहा था, 'तुम राक्षस हो, मैं वसिष्ठ हूं।' इस उपलक्षमें वसिष्ठने बहुत-से ऋक् देखे थे। वही ऋक्संहिताके ७म मण्डलमें १०४ सूक्तमें १२से १६ संख्यक मन्त्र है। इनमेंसे १६वें ऋक् में स्पष्ट लिखा है—

"यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥"

जो 'यातुधान' (राक्षस) कह कर मेरा सम्बोधन करता है तथा जो राक्षस 'मैं शुचि हूं' यह बात कहता है, इन्द्र महा आयुध द्वारा उसका विनाश करें, वे सब अधम हो कर पतित होवें।

वसिष्ठका वेदमें इस प्रकार उल्लेख देख कर अध्या-पक मुईर साहबने लिखा है—"वसिष्ठ परवर्त्ती वैदिक-ग्रंथमें ब्राह्मण कह कर गण्य तो हुए हैं, परन्तु यथार्थमें वे ब्राह्मण नहीं थे। उनके जन्मके सम्बन्धमें गोलमाल था, इसी कारण कहीं तो वे ब्रह्माके मानसपुत्र, कहीं मित्रावरुण और कहीं उर्वशीके पुत्र कह कर अभिहित हुए हैं।"

अध्यापक मोक्षमूलरने वेदका प्रमाण उद्धृत कर इन्हें आर्य ब्राह्मण ही बतलाया है। उनके मतसे वेदमें वसिष्ठ मित्रावरुणके पुत्ररूपमें वर्णित होने पर भी मित्र वा सूर्य ही समझे जाते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद वा तैत्तिरीय संहितासे मालूम होता है, कि सौदाससे जब वसिष्ठके पुत्र मारे गये, तब उन्होंने बदला लेनेके लिये चेष्टा की।

कौषीतकी ब्राह्मण (४र्थ अध्याय) में भी इसी प्रकार वसिष्ठके पुत्रलाभ और सौदास-पराभवकी बात लिखी है। मनुसंहिता (८।११०)में लिखा है, कि महर्षि-गण और देवगण कार्यसम्पादनके लिये शपथ खाया करते थे। इस प्रकार वसिष्ठ ऋषिने भी पैजवनराजाके लिये

शपथ खाई थी। शपथ क्यों खाई थी मनुटीकामें कुल्लूकने इस प्रकार लिखा है,—

विश्वामित्रने जब वसिष्ठके सौ पुत्रोंको खा डाला, तब उन्होंने क्रुद्ध हो अपनी परिशुद्धिके लिये पिजवनके पुत्र सुदामन् राजाके निकट शपथ की थी।

यहां कुल्लूकने विश्वामित्रको राक्षस बतलाया है और सुदामन् राजाका नाम लिया है; किन्तु वेदमें ऐसी बात नहीं है। विश्वामित्रने सौ पुत्र भक्षण नहीं किये थे, एक राक्षसने उन्हें भक्षण कर अपनेको वसिष्ठ बतलानेकी चेष्टा की थी। ७।१०४।१२ ऋक्के भाष्यमें सायणाचार्यने बृहद्देवताका मत उद्धृत कर दिखलाया है, पहले वह बात कही जा चुकी है। फिर पिजवनके पुत्रका नाम सुदामन् नहीं, सुदास था।

शाट्यायन ब्राह्मणमें लिखा है, कि (वसिष्ठके पुत्र) शक्तिने सौदास कर्तृक अग्निमें निक्षिप्त होनेके समय प्रगाथका शेषांश पाया था। अद्भुर्व ऋक् बोलनेके अन्तिम समयमें वे दग्ध हुए तथा वसिष्ठने पुत्रोक्त ऋक्‌को सम्पूर्ण उच्चारण किया था। इस प्रकार वसिष्ठने अपनी शपथकी रक्षा की थी।

काठकमें लिखा है, कि ऋषिगण इन्द्रको प्रत्यक्ष देख न सके। एकमात्र वसिष्ठने ही उन्हें देखा था। पीछे वसिष्ठ कहीं ऋषिके सामने उन (इन्द्र)-का विषय वर्णन न करें, इस भयसे उन्होंने वसिष्ठके निकट आ कर एकान्तमें कहा, 'मैं तुमको ब्राह्मण स्वीकार करता हूं, तुम मेरा विषय इन ऋषियोंके सामने न कहना। पीछे जो जन्म लेंगे, वे ही तुम्हें पौरोहित्यमें वरण करेंगे।' यही कारण है, कि इन्द्रने वसिष्ठको स्तोमभाग कह दिया था।

षड्‌विंश-ब्राह्मण (१।३६)-में लिखा है, कि इन्द्रने विश्वामित्रको उक्थ और वसिष्ठको ब्रह्म कहा है। उक्थ ही वाक् है वही विश्वामित्र हैं तथा ब्रह्म जो मन है, वही वसिष्ठ हैं। यही कारण है, कि यह मनन ही वसिष्ठका निजत्व है।

पुराणमें वशिष्ठ।

वेदमें विश्वामित्र और वसिष्ठका प्रसङ्ग रहने पर भी कहीं भी वसिष्ठके आश्रममें राजा विश्वामित्रके जाने और दोनोंके विवादका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

बृहद्देवता (४।२२)-में लिखा है, कि परवर्ती विश्वामित्रप्रोक्त चार ऋक् हैं, वसिष्ठगण उन चारों मन्त्रोंको न सुनेंगे, यही उन लोगोंके आचार्यका मत है।

इस प्रकार विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य परस्पर विद्वेषका आभास रहने पर भी वसिष्ठका ऐश्वर्य देख कर विश्वामित्रकी ईर्षा तथा उससे उनके ब्राह्मणत्व-लाभकी बात भी वेदसंहितामें नहीं मिलती। रामायण, महाभारत और पुराणादिमें इसका विस्तृत विवरण देखनेमें आता है। विश्वामित्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि दक्षकी कन्या ऊर्जाके गर्भसे रजः, गात्र, ऊर्द्ध्ववाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सात सप्तर्षि उत्पन्न हुए। भागवतपुराणके मतसे वसिष्ठकी दूसरी स्त्रीके गर्भसे शक्तृ नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। मनुसंहितामें वसिष्ठकी अक्षमाला नाम्नी एक और पत्नीका उल्लेख मिलता है। अक्षमाला निम्न कुलकी होने पर भी भर्त्ताके गुणसे उन्नत हो गई थी।

"यादृग्‌ गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथाविधि।
तादृग्‌ गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा।
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा॥"

(मनु ९।२२-२३)

महाभारतमें वसिष्ठकी प्रधान पत्नीका नाम अरुन्धती कहा है। रामायणमें लिखा है, कि वसिष्ठके हुङ्कारसे विश्वामित्रके सौ पुत्र दग्ध हुए थे। रामायण और महाभारतसे मालूम होता है, कि इक्ष्वाकु-पुत्र निमिसे सूर्यवंशीय राजाओंके वंशपरम्परा पुरोहित वसिष्ठ थे। विष्णु और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे ८म द्वापरमें वसिष्ठ व्यासरूपमें अवतीर्ण हुए थे। उसी पुराणमें एक जगह लिखा है, कि वसिष्ठ आषाढ़ मासमें सूर्यके रथ पर रहते थे।

तन्त्रमें वसिष्ठ

महाचीनाचारक्रम तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

पूर्वकालमें ब्रह्माके मानस पुत्र स्थिरसंयमी वसिष्ठ मुनिने नीलाचल पर तारादेवीकी आराधना की थी। अयुत वर्ष आराधना करने पर भी तारा देवी प्रसन्न न हुई। अनन्तर मुनिवर अत्यन्त क्रुद्ध हो ब्रह्माके निकट

गये और उनसे कहा 'मैंने नीलपर्वत पर हविष्याशी तथा संयमी हो देवी तारिणीकी आराधना की। परन्तु जब कृपा मुझ पर न हुई, तब सिर्फ एक गण्डूष जल पी कर अयुत वर्ष तक फिरसे देवीकी कठोर आराधना की। किन्तु जब देखा, कि इतने पर भी देवी प्रसन्न न हुई, तब मैंने नीलपर्वत पर एक पदसे दण्डायमान हो परम समाधि अवलम्बन कर निराहार रह देवीके ध्यानमें हजार वर्ष बिताया। इतना ही नहीं, उसी प्रकार कठोर भावमें दश हजार वर्ष कामाख्यामें भी बिताया; किन्तु आज तक कोई अनुग्रह मुझे देखनेमें नहीं आता। अतएव दुःसाध्या इस विद्याको मैं बड़े दुःखके साथ त्याग करता हूं। ब्रह्माने वशिष्ठको सान्त्वना देते हुए कहा, 'वशिष्ठ! तुम फिरसे नीलाचल पर जाओ, वहां रह कर कामाख्या योनिमें उस परमेश्वरीकी आराधना करो। अति शीघ्र तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।' मुनिवर वशिष्ठने पिताके वचन सुन कर हजार वर्ष तक ताराकी आराधना की, परन्तु इतने पर भी महेश्वरी ताराकी उन पर कृपा न हुई। अनन्तर मुनिवरने क्रुद्ध हो कर देवीको शाप देनेके लिये जल ग्रहण किया। वशिष्ठका क्रोध देख कर वन-कानन पर्वतादिके साथ सारी पृथ्वी कांपने लगी, समस्त देव और देवियोंके मध्य हाहाकारकी ध्वनि होने लगी। तब संसारतारिणी तारादेवी वशिष्ठ मुनिके पुरोभागमें आविर्भूत हुई। मुनिवर वशिष्ठने उन्हें देख कर बहुत कठोर शाप दिया। अनन्तर कष्टसिद्धिदात्री तारिणीने वशिष्ठ मुनिसे कहा, 'मुनिवर! क्रोधके आवेगमें क्यों मुझे अभिशाप देते हो। मेरी आराधनाक्रम एकमात्र बुद्धरूपी जनार्दनके सिवा और कोई नहीं जानते। तुमने विरुद्धाचारका आश्रय कर व्यर्थ ही मेरी आराधनामें हजारों वर्ष विताये, वास्तविक तत्त्वका तुम्हें कुछ भी पता नहीं। अतएव अभी बुद्धरूपी विष्णुके निकट जाओ और उनसे मेरा आराधनाक्रम अच्छी तरह जान कर फिरसे मेरी आराधनामें लग जाओ, तब निश्चय ही मैं तुम पर सन्तुष्ट हूंगी।'

वशिष्ठ देवीको प्रणाम कर महाचीन देशको चल दिये। हिमालयके पार्श्वदेशमें लोकेश्वरसेवित तथा मदमत्त सहस्र कामिनियोंसे परिवेष्टित मदिरापानसे मदमन्थरलोचन बुद्धदेवको देखते ही वे विस्मित हो गये। उन्होंने मन ही मन संसारतारिणी ताराको स्मरण कर कहा, कि बुद्धरूपी विष्णुने यह कौन-सा आचार अवलम्बन किया? यह तो देव और देवाचारविरुद्ध है। इसी समय दैववाणी हुई, 'हे मुने! तारिणीका परमार्थिन यह आचार है, इसके विरुद्धाचारसे वे प्रसन्न नहीं होतीं; अतएव यदि तुम उनका अनुग्रह चाहते हो, तो इसी आचारसे उनका भजन करो।" यह आकाशवाणी सुन कर मुनिवर वशिष्ठ दण्डवत् भूमि पर गिर पड़े, पीछे उठ कर कृताञ्जलिपुटसे बुद्धरूपी विष्णुके निकट गये। मदमत्त प्रसन्नात्मा बुद्धने उन्हें देख कर पूछा, 'तुम किस लिये यहां आये हो?' मुनिने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तारिणीकी आदेशवाणी कह सुनाई। भगवान् बुद्धने कहा, 'मुनिवर! यद्यपि यह आचार अप्रकाश्य है, तथापि मैं तुम्हें जो कहता हूं, सुनो,—तारादेवीका आचारानुष्ठान करनेसे संसारमें फिर आना नहीं पड़ता। इस आचारसे स्नानादि सभी मानसिक तथा सभी काल शुभ है, अशुभ काल कोई भी नहीं। इस आचारमें शुद्धि आदिकी अपेक्षा तथा मद्यादिका दोष नहीं है। सर्वदा क्या स्नात क्या अस्नात, क्या भुक्त क्या अभुक्त सभी समय देवीकी पूजा कर सकते हो, इत्यादि प्रकारसे अनेक महाचीनाचारक्रमका उन्हें उपदेश दिया।' पीछे महामुनि वशिष्ठने बुद्धरूपी हरिका वाक्य सुन कर फिरसे उन्हें पूछा, 'प्रभो! तुम तत्त्वज्ञानमय हो, इस महाचीनाचारक्रममें स्त्री और मद दोनों ही सम्मत है; किन्तु इन दोनोंमें कौन प्रधान है?' बुद्धदेवने उत्तर दिया, 'मुने! इस आचारमें दोनों समान होने पर भी स्त्रीके शरीरमें अनेक देवताका वास है, इस कारण स्त्री ही प्रधान है।' तत्त्वज्ञ भगवान्ने इन दोनोंके बहु गुणकीर्त्तन तथा कौलिकोंके मांस और कुलाचार द्रव्यके लक्षण और माहात्म्य तथा समग्र महाचीनाचारक्रमका वर्णन किया।

मुनिवर वशिष्ठने वह सब जान कर उसी आचारका अवलम्बन किया तथा संयतचित्तसे वे देवीका आराधनामें लग गये। कुछ दिन बाद नीलाचल पर देवी-महामाया ताराने दर्शन दे कर कहा, 'वत्स वशिष्ठ! वर

मांगो।' वशिष्ठ बोले, 'महामाये! यदि आपकी मुझ पर कृपा हुई, तो मुझे यही वर दीजिये, 'जो इस आचार-का आश्रय कर तुम्हारी आराधना करेगा, तुम अवश्य उसके प्रति सुप्रसन्न होगी।' देवी 'तथास्तु' कह कर बोली, 'वत्स! अणिमादि सिद्धियां तुम्हारी सर्वदा सेवा करेंगी।' मुनिवर वशिष्ठ महामायासे इस प्रकार वर पा कर नक्षत्रलोकको चले गये और तभीसे आज तक वहीं दीप्ति पा रहे हैं। (चीनाचारक्रम)

वसिष्ठ (सं० पु०) वसिष्ठ पृषोदरादित्वात् शस्य सः। वसिष्ठ मुनि। (द्विरूपको०)

वसिष्ठ—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने इतिहास, गण्डान्तादि दोष विचार, ग्रहशान्तिपद्धति और शान्तिविधि नामक कितने ग्रन्थ लिखे। यह शेषोक्त ग्रन्थ वासिष्ठीशान्ति नामसे परिचित है।

वसिष्ठक (सं० पु०) वसिष्ठ ऋषि या तत्सम्बन्धी।

वसिष्ठतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

वसिष्ठत्व (सं० क्ली०) वसिष्ठके भाव या धर्म।

वसिष्ठनिह्व (सं० पु० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० ३।६।१२)

वसिष्ठपुत्र (सं० पु०) वसिष्ठके पुत्र या वंशधरगण। ये लोग ऋग्वेदके ७।३३।१०-१४ मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। गरुड़-पुराणके पांचवें अध्यायमें वसिष्ठपुत्रोंका विवरण मिलता है।

वसिष्ठपुराण (सं० पु०) एक उपपुराण। इसका उल्लेख देवीभागवतमें है। कुछ लोगोंका कहना है, कि लिङ्गपुराण ही वसिष्ठपुराण है।

वसिष्ठप्रमुख (सं० त्रि०) वसिष्ठपुरतः। वसिष्ठ ऋषि जिस कार्यमें अग्रणी हों।

वसिष्ठप्राची (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

वसिष्ठशफ (सं० पु० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० १।६।३२)

वसिष्ठसंसर्प (सं० पु०) एक प्रकारका संन्यासी। (आश्व० सौ० १०।२।२५)

वसिष्ठसंहिता (सं० स्त्री०) १ एक स्मृतिका नाम, उन्नीस संहिताओंमेंसे एक संहिता। वसिष्ठ मुनिने यह संहिता प्रणयन की है इसीसे इसका नाम वसिष्ठ-संहिता पड़ा है। यह संहिता बीस अध्यायमें समाप्त है। इसमें पहले धर्म और धर्मके लक्षण, वर्णाश्रमधर्म, सदाचार आदि अनेक विषय वर्णित हैं। २ योगवासिष्ठ। योगवासिष्ठ भी वसिष्ठसंहिता ही कहलाता है।

वसिष्ठसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषका एक सिद्धान्त ग्रन्थ।

वसिष्ठाङ्कुश (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठानुपद (सं० पु०) सामभेद।

वसिष्ठापवाह (सं० पु०) सरस्वती नदीके किनारेका एक प्राचीन स्थान। कहते हैं, कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र-के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदीने वसिष्ठ-को विश्वामित्रसे बचानेके लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसिष्ठोपपुराण (सं० क्ली०) एक उपपुराण। देवीभाग-वतमें इस पुराणका उल्लेख है। कोई कोई इसे वासिष्ठ लैङ्गपुराण कहा करते हैं।

वसीका (अ० पु०) १ मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार वह धन जो विधर्मी या काफ़िरसे नकद रुपयेके मुनाफे-के तौर पर लिया जाय। २ वह धन जो इस उद्देश्यसे सरकारी खजानेमें जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवालेके सम्बन्धियोंको मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य, मकानकी मरम्मत आदिमें लगाया जाय। ३ ऐसे धनसे आया हुआ सूद। ४ वक्फका इकरारनामा।

वसीयत (अ० स्त्री०) १ वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष इस उद्देश्यसे करता है कि मेरी अनुपस्थितिमें अमुक काम इस प्रकार किया जाय। २ अपनी सम्पत्तिके विभाग और प्रबन्ध आदिके सम्बन्ध-में की हुई वह व्यवस्था जो मरनेके समय कोई मनुष्य लिख जाता है, विल।

वसीयतनामा (अ० पु०) वह लेख जिसके द्वारा मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी सम्पत्तिका विभाग और प्रबन्ध मेरे मरनेके पीछे किस प्रकार हो, विल।

वसीयस् (सं० त्रि०) धनवान्, दौलतमंद। (काठक २४।६)

वसीला (अ० पु०) १ सम्बन्ध। २ किसी कार्यकी सिद्धिका मार्ग, जरिया, द्वारा। ३ आश्रय, सहायता।

वसु (सं० पु०) वसतीति वस-उ। १ बकवृक्ष, अगस्तका पेड़। २ अनल, अग्नि। ३ रश्मि, किरण। ४ देवताओंका एक गण। इसके अन्तर्गत आठ देवता हैं। यथा—धर,

ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ प्रसिद्ध अष्टवसु हैं।

ऋग्वेदसंहितामें वसुओंका उल्लेख देखा जाता है। पुराणादि शास्त्रग्रन्थोंमें इनकी संख्या आठ बतलाई गई है। इन देवताओंके प्रभाव तथा कार्यकारिताके सम्बन्धमें महाभारतके भीष्मोपाख्यानमें यथेष्ट वर्णन किया गया है; किन्तु वैदिक विवरणके अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि ये एक एक प्रकृतितत्त्वके निवासभूत देवता थे। हम लोग ऋक्संहिताके किसी किसी स्थानमें वसुओंको आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रभास तथा प्रत्यूष प्रभृति प्रकृतिपुञ्जके नियामक कर्त्तृरूपमें देखते हैं। रामायणमें इन वसुओंका वर्णन अदिति-पुत्र कह कर किया गया है। ऋक्संहिताके ३।२७।११,७।५२।१ २, ८।१८।१५में वे आदित्य कह कर वर्णन किये गये हैं। फिर कहीं कहीं ये अग्नि ५।६।१.५।२४।२,५।५१।१३, कहीं पर मरुद्गण ५।५५।८,६।५०।४,७।३६।१७, कहीं इन्द्र १।११०।७, ४।३२।१४,७।३१।३, कहीं पर ऊषा ५।६४।१, कहीं अश्विद्वय १।१५८।१, कहीं पर रुद्र १।४३।५ एवं कहीं पर वायु ४।४०।५ रूपमें वर्णित हैं। उक्त संहिताके १।१६३।२ मन्त्र से मालूम होता है, कि वसुओंने सूर्यसे अश्वका निर्माण किया था। २।३।४ मन्त्रमें इनके घृताक्त वर्हिमें (अग्नि स्वरूप) उपवेशन करनेका आवाहन किया है। वाजसनेय संहिताके ५।११ मन्त्रमें ये अष्ट संख्यक गणदेवता, २।५ तथा ११।५५. मन्त्रोंमें आदित्य तथा रुद्र; ८।१८ मंत्रमें निवासप्रद देवगण एवं अथर्ववेदके "अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पुषा वरुणो मित्रो अग्निः। इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" (१।६।१) मंत्र पाठ करनेसे जाना जाता है, कि उक्त गणदेवता पृथ्वीके नियन्ता थे। वे धनरक्षक एवं इन्द्र तथा अग्नि प्रभृतिके अनुगत सहकारी थे। सायणाचार्यने उक्त मन्त्रके भाष्यमें वसुओंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है :—

'अस्मिन् जने सर्वसम्पदाति फलकामे वसवः निवासहेतुभुता एतत्संज्ञा देवा। वसु अभिलषितं धनं धारयन्तु स्थापयन्त। धृण् धारणे अस्मात् णिच् वसव इति। वस निवासे। शःस्वृ स्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिवन्धिमनिभ्यश्च (उणा १।११) इति उप्रत्ययः। तत्र धान्ये णित् (उणा १।१०) इत्यनुवृत्तेः ञित्यादिर्नित्यम् इति आद्युदात्तत्वम्।" वसुओंके इस धनाधिपत्यके कारण वे परवर्त्ति कालमें विष्णु तथा कुवेरके रूपमें कल्पित हुए हैं।

ये वसुगण पितृविशेष हैं। मनुसंहितामें लिखा है, कि श्राद्धकालमें पितृगणका वस्वादिरूपमें ध्यान करना होता है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—दक्ष प्रजापतिने षष्ठमन्वन्तरमें द्वितीय जन्ममें असिक्नीके गर्भसे ६ कन्याएं उत्पन्न की। ये सब कन्याएं प्रजापतिगणको प्रदत्त हुई थीं। उनमें धर्मको दश कन्याएं दान की गईं। उन दश कन्याओंके नाम जैसे—भानु, लम्बा, ककुत्, यामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता तथा संकल्पा। इनके मध्य वसुनाम्नी कन्याके गर्भसे ८ पुत्र उत्पन्न हुए। ये आठों पुत्र ही अष्टवसु हैं। इन अष्टवसुके नाम जैसे—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु तथा विभावसु। द्रोणकी अभिमती नाम्नी पत्नीके गर्भसे हर्ष, शोक तथा भय प्रभृति पुत्र पैदा हुए। ऊर्ज्जस्वतीके गर्भसे प्राणके दो पुत्र हुए। उनके नाम स्नायु तथा पुरोजव। धारणी पत्नीसे ध्रुवके पुर नामक एक पुत्र हुआ। वासना नाम्नी पत्नीसे अर्कके तर्षादि पुत्र पैदा हुए। अग्नि द्वारा वसुधाराके गर्भसे द्रविणक प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शर्व्वरीके गर्भसे दोष द्वारा एक पुत्र पैदा हुआ। यह पुत्र हरिका अंशस्वरूप था, उसका नाम शिशुमार पड़ा। वास्तुकी आङ्गिरसी नाम्नी पत्नीसे विश्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा चाक्षुष नामधारी मनु द्वारा उत्पन्न हुए थे। मनुके पुत्र विश्वदेवगण तथा साध्यगण थे। विभावसु द्वारा ऊषा नाम्नी पत्नीके गर्भसे तीन पुत्र पैदा हुए। उनके नाम—व्युष्ट, रोचिष तथा तप।

महाभारतके दानधर्ममें अष्ट वसुओंके नाम इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। जैसे—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभाष।

अग्निपुराणमें अष्टवसुओंकी नामनिरुक्ति तथा वंशविवृति इस प्रकार देखी जाती है। नाम जैसे—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। इनमें आपके पुत्रोंके नाम जैसे—वैतण्ड्य, श्रम, शान्त

तथा मुनि। ध्रुवके पुत्र लोकान्तकारी काल ; सोमके पुत्र वर्च्चाः ; धरके पुत्र द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण तथा रमण ; अनिलके पुत्र पुरोजव तथा अविज्ञात ; अग्नि वा अनलके पुत्र कुमार ; इन सबोंने शरस्तम्बमें जन्म ग्रहण किया था। शाख, विशाख तथा नैगमेय ये तीन कुमारके पृष्ठज थे। उक्त कार्त्तिकेय तथा यति सनत्कुमार कृत्तिका द्वारा उत्पन्न हुए। प्रत्यूषसे देवल एवं प्रभाससे विश्वकर्माका जन्म हुआ। ये विश्वकर्मा ही देवशिल्पी हैं। इनके द्वारा नाना प्रकारके शिल्पोंका आविष्कार हुआ है।

देवीभागवतमें अष्टवसुओंका विवरण इस तरह पाया जाता है—एक समय अष्टवसु अपनी अपनी पत्नियोंके साथ स्वेच्छाविहारमें बाहर हो कर घटनाक्रमसे वसिष्ठके आश्रममें पहुंचे। पृथु प्रभृति वसुओंके मध्य द्यौ नामक प्रधान वसुकी पत्नीने वसिष्ठकी नन्दिनी धेनुको देख कर अपने पतिसे उसका परिचय पूछा। स्वामी द्यौने उत्तर दिया—प्रिये! इस प्रधाना धेनुके स्वामी महर्षि वसिष्ठ हैं। नारी हो वा पुरुष, जो कोई इस धेनुका दूध पीता है, उसकी आयु अयुत वर्षकी हो जाती है। उसकी जवानी कभी नष्ट नहीं होती, दुग्धपानके गुणसे यौवन चिर दिनों तक एक-सा बना रहता है।

वसुकी बात सुन कर वसुपत्नी बोली—महाभाग! इस धेनुके दूधका जब ऐसा गुण है, तब मर्त्त्यलोकमें मेरी एक सुन्दरी सखी है, वह राजर्षि उशीनरकी तनया है ; उसके लिये इस नन्दिनी धेनुको ले चलो। इसके दूधको पी कर मर्त्त्यलोकमें एकमात्र मेरी वही सखी जरारोगहीन हो कर सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक कालयापन करेगी। पत्नीके अनुरोधसे अन्यान्य वसुओंकी सहायता द्वारा वसु द्यौने चुपकेसे वसिष्ठकी धेनु चुरा ली।

इधर तपोधन वसिष्ठ वनसे फल ले कर आश्रममें लौटे। आश्रममें उन्होंने नन्दिनी तथा उसके बच्चेको न देखा। वसिष्ठ सोचने लगे इन दोनोंको कौन हर ले गया? वे उसी समय जंगल, पहाड़ तथा कन्दरामें नन्दनीकी खोज करने लगे। बहुत अनुसंधान करने पर भी नन्दिनीका पता न चला। उस समय उस शांत दांत जितेन्द्रिय महर्षिके मनमें क्रोधकी अग्नि धधक उठी। उन्होंने ध्यान करके मालूम किया, कि वसुओंने उनके आश्रमका धेनु नन्दिनीको अन्याय पूर्वक हरण किया है। इस पर मुनिके मुखसे अमोघ अभिशाप निर्गत हुआ। ऋषिने कहा—मेरी अवज्ञा करके वसुओंने जब मेरे आश्रमकी धेनुको चुरा कर ले गया है, तब उन्हें बहुत जल्द मनुष्य योनिमें जन्म लेना पड़ेगा।

वसिष्ठने इस तरह शाप दिया। उस समय इस शापका विवरण मालूम होने पर अभिशप्त वसुगण दुःखित मनसे वसिष्ठके आश्रममें आ कर उनके चरणों पर गिर गये एवं ऋषिके शरणापन्न हो कर अनुनय विनय कर उन्हें खुश करनेकी चेष्टा करने लगे। तब ऋषिने उनसे कहा—'मेरे प्रसादसे सम्वत्सरके मध्य ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे। किन्तु तुम लोगोंके मध्य जिस वसुने मेरी नन्दिनीका हरण किया था, उसे दीर्घकाल तक मनुष्य-लोकमें वास करना पड़ेगा।'

ऋषिकी बातोंमें फिर वसुओंने आपत्ति नहीं की। उन्होंने ऋषिवाक्य अंगीकार कर वसिष्ठाश्रमसे प्रस्थान किया। जाते जाते रास्तेमें उन्हें सरित्-प्रवरा गंगा मिली। इस समय ऋषिके अभिशापसे वसुओंकी महिमा विलुप्त हो गई थी एवं हृदय चिंताज्वरसे जर्जरित हो रहा था। उन्होंने पावनी गङ्गाको देखते ही प्रणाम करके कहा—'देवि! हम लोग ऋषिके शापसे हत-माहात्म्य हो गये हैं। हाय! हम लोग सुधाभोजी देव हो कर किस तरह मनुष्ययोनिमें जन्मग्रहण करेंगे, हमें इसकी बड़ी चिन्ता लग रही है। इसीलिये हम लोग निवेदन करते हैं, हे सरित्श्रेष्ठे! मानुषी हो कर आप ही हम लोगोंका उत्पादन करें। हे निष्पापे! राजर्षि सान्तनु इस समय भूमंडलके नायक हैं। आप जा कर उनकी भार्य्या होवें। हम लोग आपके गर्भसे एक एक करके जन्मधारण करेंगे। जन्म लेनेके साथ ही आप हम लोगोंको जलमें फेंक देंगी। इस तरहसे थोड़े ही दिनोंमें हम लोग ऋषिके शापसे मुक्त हो जायेंगे।' गङ्गासे इस प्रकार अनुरोध कर वसुगण अपने अपने स्थानको चले गये। गङ्गादेवी भी इस विषयको बार बार चिंता करती हुई वहांसे चली गईं। (देवीभागवत २।३।२४-४४)

५ योक्त्र, जोत। ६ राजा। ७ धनाधिप, कुबेर।

८ साधु पुरुष, सज्जन। ६ पीतमुद्ग, पीली मूंग। १० वृक्ष, पेड़। ११ पुष्करिणी, सरोवर। (सिद्धाकौ० उणादि वृत्ति) १२ शिव। १३ सूर्य। १४ विष्णु। (महाभा० १३।१४६।८३)

'वसन्ति भूतान्यत्र एतेषु स्वयमपीति वसुः।' (शाङ्करभाष्य)

१५ कुलीन कायस्थको पद्धतिविशेष। १६ शब्दों द्वारा संख्या सूचित करनेकी रीतिके अनुसार आठको संख्या। १७ वकुल, मौलसिरी। १८ राजा नृगके एक पुत्रका नाम। १६ छप्पयके हो सकनेवाले भेदोंमेंसे ६६वाँ भेद।

(क्ली०) वसत्यनेनेति वस (शृ स्वृ स्निहीति। उण् १।११) इति उ। २० रत्न। २१ धन। २२ वृद्धौषध। २३ श्याम। २४ हाटक, सोना। २५ जल। (स्त्री०) २६ दीप्ति, आभा। २७ दक्ष प्रजापतिकी एक कन्या। यह धर्मको ब्याही थी और इससे द्रोण आदि आठ वसुओंका जन्म हुआ था। (विष्णुपु० १।१५।१०५) (त्रि०) २८ मधुर। २६ शुष्क। ३० जो सबमें वास करता हो। ३१ जिसमें सबका वास हो।

वसुक (सं० क्ली०) वसुवत् कायतीति कै-क। १ साम्भर लवण। २ पांशु लवण। ३ वास्तूक, बथुआ। ४ कृष्णागुरु, काला अगर। ५ क्षार लवण। (भावप्र०) (पु०) वसुः सूर्यस्तन्नाम्ना कायतीति कै आतोऽनुपेति कः। ६ मदारका पेड़। ७ वनहुला वृक्ष, बड़ी मौलसिरी। ८ पुष्पविशेष। यह पुष्प सफेद और लाल दो प्रकारका होता है। पर्याय—वसु, शैव, वक, शिवमल्लिका, पाशुपत, शिवमत, सुरेष्ट, शिवशेखर। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, पाकमें शीतल, दीपन, अजीर्ण, वात और गुल्मनाशक। श्वेत पुष्प—रसायन। (राजनि०) ६ पीतमुद्ग, पीली मूंग

वसुकर्ण (सं० पु०) वसुक गोत्रमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकल्प—एक प्राचीन कवि। इन्होंने अपने ग्रन्थमें केशव, वाण, योगेश्वर और राजशेखर कविका उल्लेख किया है।

वसुकल्पदत्त—एक प्राचीन कवि।

वसुकीट (सं० पु०) वसुनि धने कीट इव प्रार्थकत्वात्। याचक।

वसुकृत् (सं० पु०) वसुकके गोत्रमें उत्पन्न एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकोष्ट्र (सं० क्ली०) तालीशपत्र।

वसुक्र (सं० पु०) एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम। इस नामके दो ऋषि हुए हैं। एक इन्द्रके गोत्रमें उत्पन्न हुए थे; दूसरे वशिष्ठके गोत्रके थे।

वसुक्रश्री—एक वैयाकरण। गणरत्नमहोदधिमें इनका उल्लेख है।

वसुगुप्त—सिद्धांतचन्द्रिका, स्पन्दसूत्र और स्पन्दकारिकाके रचयिता। ये भट्ट कल्लट और राजानक श्रीरामके गुरु थे। सर्वदर्शनसंग्रहमें इनका उल्लेख देखा जाता है। ये वसुगुप्ताचार्य नामसे विख्यात थे।

वसुचन्द्र (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक व्यक्तिका नाम। (भारत द्रोणपर्व)

वसुचरण (सं० पु०) डगणके चौथे भेदका नाम। इसके आदिमें गुरु और फिर दो लघु होते हैं।

वसुचारुक (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

वसुच्छिद्रा (सं० स्त्री०) महामेदा।

वसुजित् (सं० त्रि०) वसुजयकारी, वसुको जीतनेवाला। (अथर्व ५।२०।१६)

वसुता (सं० स्त्री०) वसुसत्वा, धनवत्ता। (ऋक् ६।१।१३)

वसुताति (सं० स्त्री०) धनविस्तार। (ऋक् १।१२२।१२ सायण)

वसुत्ति (सं० स्त्री०) धनलाभ।

वसुत्व (सं० क्ली०) वसोर्भावः त्व। वसुका भाव या धर्म। (ऋक् १०।६१।१२)

वसुत्वन (सं० क्ली०) वासक, वसुत्वयुक्त।

वसुद (सं० पु०) वसूनि ददातीति दा-क। १ कुवेर। वसु धनं ददातीति दा-क। २ विष्णु। (भारत १३।१४६।४२) (त्रि०) ३ धनदाता।

वसुदत्त (सं० पु०) कथासरित्सागरोक्त एक व्यक्तिका नाम। (कथास० २१।५३)

वसुदत्तपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

वसुदा (सं० स्त्री०) १ स्कन्द माताओंमेंसे एक। २ पृथ्वी। ३ माली राक्षसकी पत्नी। यह नर्मदा नामकी गंधर्वोंकी पुत्री थी। इसके अनल, निल, हर और सम्पाति नामक चार पुत्र थे, जो विभीषणके अमात्य थे।

वसुदान (सं० पु०) १ धनदान। २ विदेहराजके एक पुत्रका नाम। (भारत २।४।२६) ३ बृहद्रथके एक पुत्रका नाम। ४ हिरण्यरेताके एक पुत्रका नाम।

(भागवत ५।२०।१४)

वसुदामन् (सं० पु०) बृहद्रथके एक पुत्रका नाम।

वसुदामा (सं० स्त्री०) स्कन्द माताओंमेंसे एकका नाम। (महाभारत शल्यपर्व)

वसुदावन (सं० त्रि०) वसुदा, धन देनेवाला।

वसुदेय (सं० क्ली०) अभिमत धनप्रदान।

वसुदेव (सं० पु०) वसुना धनेन दीव्यतीति दिव्-अच्। १ श्रीकृष्णके पिता। पर्याय—आनकदुन्दुभि, शूर, कृष्ण-पिता। वसुदेवने पूर्वपुण्यके फलसे श्रीकृष्णको पुत्र-रूपमें पाया था। ये चन्द्रवंशीय यदुकुलोद्भव देवमीढुष-तनय शूरके पुत्र थे। यदुकुलपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पिता एवं पांडवमाता कुन्तीदेवीके भ्राता थे। इनके जन्म समय स्वर्गमें दुन्दभि बजनेकी आवाज सुनाई पड़ी थी, इसलिये इनका दूसरा नाम आनकदुन्दुभि रखा गया। इनकी माताका नाम महिषी था। वसुदेव अपने पिताके सबसे बड़े पुत्र थे। ये अत्यन्त सुन्दर, यथेष्ट बली एवं चन्द्रमाके समान कान्तिशाली थे।

वसुदेवको पौरवी, रोहिणी, मदिरा, धरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी तथा देवकी नामक चौदह स्त्रियां एवं सतनू तथा बड़वा नामक दो परिचारिकाएं थीं। उनकी पहली तथा सबसे बड़ी पत्नी वाह्लीककी कन्या रोहिणी थीं। उपरोक्त पत्नियोंके मध्य शेष आहुकके पुत्र देवकका कन्याएं थीं। उनमें सबसे छोटी देवकी ही भगवान् कृष्णकी माता थीं। देवकके भाई उग्रसेनका पुत्र कंस मथुराका राजा था। इस तरहसे वसुदेव कंसके बहनोई थे।

एक समय महर्षि नारदने कंसके पास आ कर कहा- 'महाराज! मैं ब्रह्मादि देवताओंको मन्त्र द्वारा जान सका हूं, कि तुम्हारी बहिन देवकीके गर्भसे जो आठवां पुत्र पैदा होगा, उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।' नारदके मुखसे अपने मरनेकी बात सुन कर असुर कंसने देवकी-के गर्भच्छेदन करनेका संकल्प किया। तदनुसार उसने देवकी तथा वसुदेवको कैद कर रखा। एक एक करके कंसने देवकीके ६ प्रसूत बच्चेको मार डाला। सप्तम गर्भ योगमाया द्वारा रोहिणीके गर्भमें संचारित हुआ। अष्टम गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ। इसी समय गोकुलमें नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे विष्णु-शरीरसम्भवा योगनिद्राका जन्म हुआ था। योगनिद्रा-के पैदा होनेकी बात यशोदा तकको मालूम नहीं हुई।

इधर वसुदेव अपने आठवें पुत्रको श्रीवत्सलांछित तथा दिव्यलक्षणसम्पन्न देख कर कंसके भयसे बोले—हे अधोक्षज! इस रूपका परित्याग करो। तुमसे पहले पैदा होनेवाले मेरे छः पुत्रोंको दुर्वृत्त कंसने मार डाला है। वसुदेवकी बातें सुन कर भगवान्‌ने अपना वह रूप संहार करके कहा—पिता! मुझे शीघ्र गोपपति नन्दके यहां ले चलें। भगवान् कृष्णकी ऐसी बात सुन कर वसुदेव उसी समय उन्हें गोदमें उठा कर बड़ी शीघ्रतासे गोकुलकी ओर बढ़े एवं यमुना नदी पार कर गोकुल पहुंचे। इस समय तक भी यशोदाको अपनी पुत्री होनेकी खबर मालूम न हुई थी। वसुदेवने चुपकेसे यशोदा के शयनागारमें प्रवेश किया एवं भगवान् कृष्णको उसके समीप लिटा दिया। इसके बाद वे यशोदाकी तत्का-लीन प्रसूत पुत्रीको गोदमें उठा कर वहांसे अपने स्थान-को लौट आये। पीछे कंसके पास जा कर उन्होंने अपना लड़की होनेकी सूचना दी। कंस तथा कृष्ण देखो।

२ स्वनामख्यात कलियुग-राजविशेषके अमात्य। ये देवभूतिको मार कर स्वयं राजा हुए थे।

"शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम्।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः॥"

(भाग० १२।१।१८)

(क्ली०) वसवो देवता यस्य। ३ धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव—मलमासनिर्णयतन्त्रके प्रणेता।

वसुदेवत (सं० क्ली०) १ धनिष्ठा नक्षत्र। (बृहत्सं० ८।२२) पु०) २ वसुदेव।

वसुदेवता (सं० स्त्री०) वसवो देवता यस्याः। धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव प्रसाद—सच्चिदानन्दानुभवप्रदीपिकाके प्रणेता।

वसुदेवब्रह्मप्रसाद (सं० पु०) एक ग्रंथकारका नाम ।

वसुदेवभू (सं० पु०) वसुदेवात् भवतीति भू क्विप् । श्रीकृष्ण ।

वसुदेवात्मज (सं० पु०) वसुदेवस्यात्मजः । श्रीकृष्ण ।

वसुदेव्या (सं० स्त्री०) धनिष्ठा नक्षत्र ।

वसुदैव (सं० क्ली०) धनिष्ठा नक्षत्र । (बृहत्सं० ७।११)

वसुदैवत (सं० क्ली०) धनिष्ठा नक्षत्र । (बृहत्सं० १५।३०)

वसुद्रुम (सं० पु०) उदुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़ ।

वसुधर—एक प्राचीन कवि ।

वसुधरा (सं० स्त्री०) बौद्ध भिक्षुकभेद ।

वसुधर्मा (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम ।

वसुधर्मिका (सं० स्त्री०) स्फटिक, बिल्लौर ।

वसुधा (सं० स्त्री०) वसूनि रत्नानि दधाति धारयतीति धा-क, सुवर्णादीनामाकरत्वात् तथात्वं । १ पृथ्वी । वसु-धनं दधाति धत्ते इति धा-क्विप् । (त्रि०) २ धनदाता, वसु अर्थात् धन देनेवाला ।

वसुधाखर्ज्जूरिका (सं० स्त्री०) वसुधा-जाता खर्ज्जूरिका । भूखर्ज्जूरिका, खजूरोका पेड़ ।

वसुधाधर (सं० पु०) १ पर्व्वत । २ विष्णु ।

वसुधाधिप (सं० पु०) वसुधायाः अधिपः । राजा, पृथिवीपति ।

वसुधाधिपत्य (सं० क्ली०) वसुधायाः आधिपत्यं । वसुधाका आधिपत्य, राजत्व ।

वसुधान (सं० पु०) पृथ्वी ।

वसुधापति (सं० पु०) वसुधायाः पतिः । पृथिवीपति ।

वसुधापरिपालक (सं० पु०) वसुधायाः परिपालकः । वसुधापालनकारी, राजा ।

वसुधापाल (सं० पु०) वसुधापालनकारी, राजा ।

वसुधार (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम । (मार्क० पु० ५५।७)

वसुधारा (सं० स्त्री०) वसुवत् रत्नस्यैव धारा यशो यस्याः । १ बौद्धशक्तिविशेष । पर्याय—तारा, महाश्री, ओंकार, स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, लोकेश्वरी, आत्मजा, खदूरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शंखिनी, महातारा, धनंदाता, त्रिलोचना । (हेम) वसूनां रत्नानां धारा सन्ततिर्यत्र । २ कुबेरपुरी । (शब्दरत्नमाला) ३ तीर्थविशेष । (भारत ३।८२।७२)

वसोश्चेदिराजस्य 'प्रिया धारा, वसुनो घृतस्य वा धारा । ४ चेदिराज वसुके उद्देशसे घीको जो धारा दी जाती है, उसे वसुधारा कहने हैं । नान्दीमुख श्राद्धमें वसुधारा देनी होती है । यह धारा चेदिराज वसुकी अति प्यारी है, इसीलिये इसे वसुधारा कहते हैं। दीवारको नोवेंमें इसको धारा दी जाती है । नान्दीमुख श्राद्धमें पहले षष्ठीमार्कण्डेयादिकी पूजा करके वसुधारा देनी चाहिये । वसुधाराके बाद श्राद्ध किया जाता है ।

वसु शब्दसे घृत, चेदिराज वसुकी प्रीतिकामनासे घृतके द्वारा पांच वा सात धाराएं दी जाती हैं। यह धारा न तो बहुत लम्बी और न बहुत छोटी ही होनी चाहिये । दीवार पर नाभि परिमित स्थानसे यह धारा दी जाती है । यह वसुधारा साम, ऋक् तथा यजुर्वेदियों-की पृथक् पृथक् होती है ।

पहले दीवारके नाभिपरिमित स्थानमें ७ सिंदूरकी एवं ७ चन्दनकी लकीर खींच कर घृतकी धारा देनी होती है। सामवेदी लोगोंको चाहिये, कि पहले कोशीमें घृत ले कर निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करें, इसके बाद वसुधारा देवें । मन्त्र यथा—

"यद्वर्च्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्च्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मांस संसृजामसि ॥"

यजुर्वेदीगण निम्नोक्त मन्त्रसे वसुधारा देवें—

"वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्र-धारं देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुत्वा कामधुक्ष्व ।"

इस मन्त्रका पाठ करके एक एक धारा देवें। प्रत्येक धारा देनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये । किन्तु ऋग्वेदियोंको पृथक् सात मन्त्रों द्वारा सात धाराएं देनी होती हैं। ऋग्वेदियोंके मन्त्र—

१ अप संचर आगच्छन्तो भूरिधारे पयस्वती । घृत-प्रघाते सुकृते सुचिव्रते । राजग्म यस्य यस्य भुवनस्य रोदसी आसम रैत सिंचितं यन्मनुकृतम् ।

२ अभ्या इव वनुत्तमे तवासुजना अभिवाकसीमि । यत्र सोमः श्रूयते यत्र यज्ञो पठते घृतस्य धारा मधुमप्तु-वधन्ते ।

३ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्व्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्म्मणा विष्कभिते अजरे भूरि रेतसा।

४ शतधारमुत्समीक्षमाणं विपश्चितं पितरं वक्थाना अभिमदन्त पित्रोरुपस्थेतं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्।

५ शतधारं वायुमर्कवच्चिर्षं नृचक्षुणेस्तेहमिचक्षते हविः। ये च प्रणन्ति प्रयच्छन्ति संगमेति दुदुहे सतधारम्।

६ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारं देवस्त्वा सविता पुनातु। वसोः पवित्रेण शतधारेण सुत्वा कामधुक्ष्व।

७ मूर्द्धानन्दिवोरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजामग्निं कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नाः पात्रं जवयन्त देवाः स्वाहा। (सर्व्वसत्कर्म्मपद्धति)

इन सातों मन्त्रोंके द्वारा सात धाराएं देनी होती हैं। इसके बाद इन घृत धाराओंमें चेदिराज वसुकी पूजा करके 'आयुर्विश्वायुर्विश्वं' इत्यादि मन्त्र जाप किया जाता है। देवीपुराणके ३५वें अध्यायमें वसुधाराका वर्णन है, अधिक विस्तार हो जानेके भयसे उसे यहां वर्णन नहीं किया गया।

५ बौद्ध भिक्षुणीभेद। ६ नदीभेद। (हरिवंश) ७ जैनशक्तिभेद।

वसुधारी (सं० त्रि०) १ वसुधारायुक्त। २ सम्पत्तिशाली।

वसुधार्मिका (सं० स्त्री०) १ स्फटिक, बिल्लौर। २ संगमर्मर।

वसुधासुत (सं० पु०) नरकासुर।

वसुधित (सं० पु०) सुधितवसुधितनेमधितेति (पा ७।४।४५) इति वेदे निपात्यते। वसुहित।

वसुधिति (सं० पु०) १ यजमानका अभीष्ट फलरूप धनदान। (ऋक् ४।८।२) (त्रि०) २ धनदाता।

वसुधेय (सं० क्ली०) धनरक्षा। (निरुक्त ६।४२।४३)

वसुनन्द (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (राजतर० १।३३६)

वसुनन्द—एक ग्रन्थकार तथा क्षितिनन्दके पुत्र। ये स्मरशास्त्रकृत कह कर प्रसिद्ध थे। (राजतर० १।३३६)

वसुनन्दक (सं० पु०) खेटक।

वसुनाग—एक प्राचीन कवि।

वसुनीति (सं० पु०) ब्रह्मा। (अथर्व्व १२।२।६)

वसुनीथ (सं० पु०) अग्नि। (शुक्लयजुः ११।४४ महीधर)

वसुनेत्र (सं० पु०) बौद्धभेद।

वसुनेमि (सं० पु०) नागासुरभेद। (कथासरित्सा० ६।८६)

वसुन्धर (सं० पु०) प्लक्षद्वीपका वर्षपुरुषभेद।

वसुन्धर—एक कवि।

वसुन्धरा (सं० स्त्री०) वसूनि धारयतीति धृ (संज्ञायां भृतवृजिधारिसहितपिदमः। पा ३।२।४६) इति खच् (खचि ह्रस्वः। पा ६।४।६४) इति ह्रस्वः (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) इति मुम्। १ पृथ्वी। २ श्वफल्ककी कन्या जो शाम्बसे व्याही थी। (हरिवंश ३८।५३)

वसुन्धराधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् धरः वसुन्धरायाः धरः। भूधर, पर्वत।

वसुन्धराधर (सं० पु०) वसुन्धरायाः धरः। पृथ्वी-पति।

वसुन्धरेश (सं० पु०) वसुन्धरायाः ईशः। वसुन्धरापति, पृथ्वीपति।

वसुन्धरेशा (सं० स्त्री०) श्रीराधा।

वसुपति (सं० पु०) वसूनां पतिः। धनपालक।

वसुपत्नी (सं० स्त्री०) १ क्षीरदधि आज्यादि बहुविध धनकी सर्वदा रक्षा करनेवाली। (ऋक् १।१६४।२७) वसूनां पत्नी। २ वसुओंकी पत्नी।

वसुपातृ (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ धनरक्षक, कुबेर।

वसुपाल (सं० पु०) पृथ्वी-पति, राजा।

वसुपालित (सं० पु०) एक व्यक्तिका नाम। (दशकुमारचरित ६७।१३)

वसुपूज्यराज् (सं० पु०) जैन अवसर्पिणीके द्वादश अर्हतके भाई।

वसुप्रद (सं० पु०) १ कुबेर। २ शिव। ३ स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

वसुप्रभा (सं० स्त्री०) अग्निकी सात जिह्वामेंसे एक।

वसुप्राण (सं० पु०) वसु दीप्तिः प्राणाइवास्य। अग्नि।

वसुबन्धु—महायानमतविस्तारकारी एक प्रसिद्ध बौद्धस्थविर। ये पुरुषपुर जनपदके कौशिकगोत्रीय एक ब्राह्मण सामन्तराजके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए। कहा गया है, कि इस ब्राह्मणके तीन पुत्र थे। इन्होंने अपने

तीनों ही पुत्रोंका नाम वसुबन्धु रखा था। तृतीय पुत्र सर्वास्तिवाद-शाखाध्यायी हो कर एवं अर्हद्धर्म आचरण करके ज्ञानमार्गानुगामी हो गये थे। वे अपनी माताके नामानुसार विलञ्चीवत्स नामसे विख्यात हुए। ज्येष्ठ वसुबन्धुने कनिष्ठकी तरह ज्ञानमार्गानुगामी हो कर भी प्रकृत ज्ञान वा मोक्ष लाभसे वञ्चित हो कर आत्महत्या करनेकी चेष्टा की। किन्तु पीछे उन्होंने मैत्रेयके निकट महायान-मतविवृति लाभ कर उस संकल्पका त्याग किया। इसके बाद वे जम्बूद्वीपमें लौट आये एवं एकान्त मनसे ज्ञानालोचनामें प्रवृत्त हुए। इसलिये वे असंग वसुबन्धुके नामसे प्रसिद्ध हुए। जम्बूद्वीपमें वास करनेके समय उन्होंने महायानसूत्रका अवलम्बन करके उपदेशकी रचना की थी।

द्वितीय भ्राताने सर्वास्तिवाद शाखाध्यायी हो कर अन्य दो भ्राताओंकी तरह आत्मज्ञान प्राप्त किया था। उनके समान दूरदर्शी तथा ज्ञानवान उस समय कोई न था। वे सिर्फ वसुबन्धुके नामसे विख्यात हुए थे।

बुद्धनिर्वाणकी ९वीं शताब्दीके बाद विन्ध्याचल पार्श्व-वासी विन्ध्याकर तीर्थक नामक एक पंडित एक समय अयोध्या नगरके राजा विक्रमादित्यके राजदरबारमें उपस्थित हुए। उन्होंने राजसभामें बैठ कर वहाँके बौद्ध-पुरोहितोंके साथ शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की। उस समय मणिरात, वसुबन्धु प्रभृति बौद्ध मनीषिगण कोई वहां उपस्थित नहीं थे। वे कार्योपलक्षमें राज्यके बाहर वास करते थे। उस समय केवल वसुबन्धुके गुरु अतिवृद्ध बुद्धमित्र वहां उपस्थित थे। वे राजाकी आज्ञासे शास्त्रार्थ करनेके लिये राजसभामें आये सही, पर वृद्धावस्थाके कारण कोई विशेष तर्क नहीं कर सके। बात बातमें उन्हें पराजय होना पड़ा। राजासे पुरस्कार प्राप्त कर पंडित तीर्थकने अपनी वासभूमि विन्ध्याचलको प्रस्थान किया।

वसुबन्धु जब लौट कर आये, तब उन्हें मालूम हुआ, कि उनके गुरु बुद्धमित्र एक तीर्थक नामक पं[illegible]से शास्त्रार्थमें पराजय हुए हैं। यह सुन कर वे बहुत [illegible] हुए एवं उन्होंने उस तीर्थकके साथ फिर शास्त्रा[illegible] करनेके लिये उसकी बहुत खोज की, किन्तु दुर्भाग्यवश दोनोंमें भेंट न हुई।

वसुबन्धु अन्य कोई उपाय न देख कर उस तीर्थकके मतका खंडन करते हुए एक बड़े ग्रंथकी रचनामें प्रवृत्त हुए। इस ग्रंथके समाप्त होने पर राजाने वसुबन्धुको तीन लाख स्वर्णमुद्रा पारितोषिक रूपमें दी थी। इस धनसे वसुबन्धुने बुद्धकी तीन मूर्त्तियोंका निर्म्माण किया। उनमें एक भिक्षुणियोंके लिये एवं अन्यान्य दो मूर्त्तियाँ सर्वास्तिवाद शाखाध्यायी तथा महायान साम्प्रदायिक लोगोंके लिये निर्दिष्ट हुई थीं।

इसके बाद वसुबन्धुने पवित्र बुद्धधर्म पुनः संस्थापन करनेके लिये बहुत यत्नके साथ वैभाषिक तत्त्वका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने इस मतके प्रचार करनेका संकल्प किया। इस तरहसे वे मूलग्रंथसे अपनी दैनिक वक्तृता या उपदेशके विषयीभूत अंशोंका सारसंग्रह करके उसकी रचना करते थे एवं उस रचनाको एक ताम्रपत्र पर लिख कर ढिंढोरेके साथ सर्वत्र उपदेश किया करते थे। उनको गाथाका अर्थविकाश तथा मीमांसा देख कर कोई उनके विरुद्ध मतप्रकाश करनेमें साहसी नहीं होता था। इस तरह ६ सौसे भी अधिक गाथाएं रचित हो कर समस्त वैभाष्यकी व्याख्या निष्पन्न हुई। इन सब गाथाओंका संग्रह-ग्रंथ कोष वा कोषकार नामसे विख्यात है।

व्याख्याग्रंथ समाप्त होने पर वसुबन्धुने ५०० स्वर्णमुद्रा पुरस्कारमें पाई एवं उस ग्रंथको काबुलराज्यके अभिधर्ममतानुवर्त्ती बड़े बड़े पंडितोंके समीप भेज दिया एवं उन्हें कहला भेजा, कि जो पंडित उनके मतका खंडन करेंगे, वे ही उक्त पुरस्कार पावेंगे। उस ग्रंथको पढ़ कर बौद्ध-यतिगण बहुत संतुष्ट हुए। उस ग्रंथमें बौद्धधर्मका इस तरह विस्तार देख कर वे पंडित लोग बहुत चकित हुए। उस ग्रंथमें किसी किसी स्थल पर पद्य बहुत ही कठिन था, इसलिये उन पंडितोंने उन दुर्बोध पद्योंका गद्यानुवाद करनेके लिये वसुबन्धुसे प्रार्थना की एवं पुरस्कारस्वरूप ५०० स्वर्णमुद्राएं और भेज दीं।

इसके बाद वसुबंधु अभिधर्मकोष लिखने लगे। इस ग्रंथमें इन्होंने सर्वास्तिवादमतका यथेष्ट समर्थन किया था एवं सूत्रपथभ्रष्ट मतोंकी निंदा की थी। इससे काबुलके बौद्ध पंडितोंके साथ इनका घोर विरोध उपस्थित हुआ।

पूर्वोक्त अयोध्याराज विक्रमादित्यके पुत्र प्रादित्य तथा उनकी माताने वसुबन्धुसे बौद्धधर्मकी दीक्षा ली। पिताकी मृत्युके बाद जब प्रादित्य पितृसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने अपनी माताके अनुरोधसे अपने गुरुदेवको अयोध्या बुला लिया। यहां तीर्थक-सम्प्रदायभुक्त तथा प्रादित्यके बहनोई ब्राह्मण-तनय वसुरातने व्याकरणके मतानुसार वसुबन्धुकृत कोषग्रन्थका प्रतिवाद प्रचार किया। वसुबन्धुने भी अपने पक्षको समर्थन करनेके लिये उस प्रतिवादका खंडन करते हुए एक ग्रंथकी रचना की थी। उसके लिये बौद्धधर्मके आस्थावान् राजाने उस महापंडित वसुबन्धुको एक लाख एवं धर्मशीला राजमाताने दो लाख स्वर्णमुद्राएं पारितोषिकमें दी थीं। इस धनसे वसुबन्धुने काबुल, पुरुषपुर एवं अयोध्यामें तीन बुद्धमूर्त्ति स्थापन की थी।

वसुबन्धुके इस तरह प्रतिपत्तिविस्तारसे तीर्थकगण अप्रतिभ हो पड़े। उनको परास्त करनेके लिये तीर्थकगण सिंहभद्र नामक एक महापंडितको अयोध्या बुला लाये। उक्त पंडितने वसुबन्धुकृत कोषका मत खंडन करनेके लिये दो ग्रंथोंको रचना की। उनमेंसे १० सहस्र गाथायुक्त एक ग्रंथमें वैभाषिककी व्याख्या प्रतिपादित हुई थी। दूसरा ग्रंथ १२ हज़ार गाथाओंमें लिखा गया था, उसमें तीर्थक राजाने अपना पक्ष समर्थन करते हुए अभिधर्मकोषका विपरीत अर्थ किया था।

इन दोनों ग्रंथोंकी रचना करनेके बाद सिंहभद्रने वसुबन्धुको तर्क करनेके लिये ललकारा, किंतु वसुबंधु फिर व्यर्थके वादानुवादमें प्रवृत्त नहीं हुए। उन्होंने उन्हीं पण्डितोंके निकट दोनोंके विश्वस्त मतका मीमांसाभार अर्पण किया।

कहा जाता है, कि वसुबन्धु पहले अष्टादश शाखाके धर्ममतको आलोचनामें प्रवृत्त हो कर हीनयानमतके ही पक्षपाती हो गये थे। पहले उन्हें महायानमतमें विश्वास नहीं होता था। वे कहते थे,—प्रकृत प्रस्तावसे इसमें बौद्धमतकी कोई बात नहीं है। पीछे वे कहीं महायानमतका खंडन करते हुए किसी ग्रन्थकी रचना न कर बैठें, इसलिये उनके भाईने उन्हें पुरुषपुर बुला कर महायानमतकी दीक्षा दी। उस समय उनके मनमें महायान मतकी अयौक्तिक समालोचनाके परिताप उपस्थित हुआ, वे अपनी जीभ काट देनेको तैयार हुए। उनके भाईने इस समय विशेष अनुरोध करके उन्हें इस दुर्विषह कार्यसे रोका और कहा इसके बदले तुम महायानमतके प्रतिपोषक दो एक ग्रन्थ लिख कर साम्प्रदायिक उन्नतिकी चेष्टा करो। अपने भाईके मुखसे ऐसी बात सुन कर वसुबन्धुने अवन्तसक, निर्वाणसूत्र, सद्धर्म-पुंडरीक, प्रज्ञापारमिता, विमलकीर्त्ति तथा अन्यान्य सूत्र ग्रन्थोंकी टीकाकी रचना की थी। इनके अतिरिक्त उन्होंने महायान मतके विस्तारार्थ कई एक शास्त्रग्रन्थोंकी रचना की थी।

अयोध्यानगरमें अस्सी वर्षकी अवस्थामें वसुबन्धुने भवलीला सम्बरण की। तिब्बतके तारानाथकृत मगधराजवंशेतिवृत्त पाठ करनेसे जाना जाता है, कि पूर्वजनपदाधीश्वर (वंगराजेश्वर) श्रीचन्द्रके पुत्र राजा धर्मचन्द्रकी सभामें वसुबन्धु विद्यमान थे।

विंशति भाग सम्पूर्ण